

योगसूत्रवाक्यप्रमाणपात्रागमार्गमहामहोपाध्याय

१९९६

निर्णयसिंधु

Sl. 49758-
1996

Ma. 2822

महाश्री भाषांतर

१९९६

१९९६

पाठ्यमहाविद्यालय,

मुंबई.

प्रिन्टर : ... मुंबई.

केले तें अद्याप आहे. त्या दिवसापासून नारायणभट्टांस 'जगद्गुरु' ही पदवी सर्वांनी देऊन अप्रपूजासमानही दिला आहे. विक्रम शके १६०० यांत याचा जन्मसमय असावा. त्या नारायणभट्टानें प्रयोगरत्न (नारायणभट्टी) आणि त्रिस्थलीसेतु असे दोन ग्रंथ केलेले आहेत.

नारायणभट्टाचा पुत्र रामकृष्णभट्ट झाला. तोही मोठा विद्वान् होता. त्यानें जीवत्पितृकनिर्णय केलेला आहे. त्या रामकृष्णभट्टाचा पुत्र दिवाकरभट्ट व कमलाकरभट्ट. ह्या निर्णयसिंधूचा कर्ता हा कमलाकरभट्ट होय. यांनें धर्म-शास्त्रावर पूर्तकमलाकर, शांतिकमलाकर, कमलाकरादिक, आणि शूद्रकमलाकर इत्यादि दुसरेही ग्रंथ केले आहेत. असा हा मोठा पिढीजादा विद्वान् होता.

या ग्रंथामध्ये कोणत्या कर्माचा कोणता काल, याचा मुख्यत्वेकरून निर्णय केलेला आहे. व इतरही सर्व धर्मशास्त्राचे निर्णय आहेत. बाबापाये यांनीं धर्मसिंधुमार ग्रंथ या ग्रंथाच्या आधारानें लिहिलेला आहे असें म्हणण्यास हरकत नाही. या ग्रंथकाराचा असा नियम आहे की, कोणतीही गोष्ट सांगावयाची किंवा निर्णय करावयाचा तो प्रमाणावांचून करावयाचा नाही. याकरितां प्रमाणभूत मूलवचनें सारीं यांत दिलेली आहेत. आणि कोणत्याही वचनाचा अर्थ करावयाचा तोही प्रमाण दिल्या-वांचून केलेला नाही. एकादे ठिकाणीं इतर ग्रंथकारास दुसरा अर्थ इष्ट असला तरी, यांनें धरलेल्या वचनावांचून त्यास दुसरें प्रमाण मिळणें फारच कठीण पडतें. हा प्रकार हा ग्रंथ व दुसरे ग्रंथ पाहिले असतां कळून येईल. अशा ह्या महत्त्वाच्या ग्रंथाचें मराठींत भाषांतर असावें, असें कै० शेट जावजी दादाजी यांचे मनांत आलें. नंतर वे० शा० सं० बापूशास्त्री मोघे यांनीं धर्मसिंधूचें भाषांतर केले, तें लोकाश्रयाय पात्र झालेलें समजून जावजी दादाजी यांनीं बापूशास्त्री यांस निर्णयसिंधूचें भाषांतर करण्यास सांगितलें. त्यांनीं निर्णयसिंधूचे भाषांतरास आरंभ केला व थोडें लिहिलें. नंतर कालगतीनें ते बापूशास्त्री कैलासवासी झाले. पुढें हें काम तसेंच अपुरें राहिलें त्यास बरेच दिवस सुमारे २० वर्षे झालीं. नंतर शेट तुकाराम जावजी यांनीं हें निर्णयसिंधूचें भाषांतर करण्यास मला सांगितलें तें मी यथामति लिहून दिलें. छापण्याची व्यवस्था-वरती संस्कृत मूलग्रंथ, व खाली त्याचें भाषांतर असें घेऊन छापलें आहे. कोणत्याही ग्रंथाचें व ग्रंथकाराचें नांव आलें तें जाड्या अक्षरांत घेतलें आहे. या ग्रंथांत ठिकठिकाणीं प्रायश्चित्तप्रकरण आलें आहे तेथें प्राजापत्य, कृच्छ्र, चांद्रायण इत्यादिक नांवें आली आहेत, त्यांचा अर्थ ग्रंथांत नसल्यामुळें वाचकांच्या ध्यानांत येणार नाहीं म्हणून ह्या ग्रंथाच्या शेवटीं त्या कृच्छ्रचांद्रायणांचीं लक्षणें स्मृतीचे आधार देऊन लिहिली आहेत. ह्या ग्रंथांतील विषय फार कठीण असल्यामुळें व ठिक-ठिकाणीं मीमांसेचे न्याय असल्यामुळें कित्येक ठिकाणीं अर्थामध्ये भ्रम होण्याचा संभव असणें शक्य आहे. तरी पण ईश्वरानें मजकडून हें भाषांतर माझ्या मतीप्रमाणें तडीस नेलेलें आहे; म्हणून विद्वानांजवळ चुकीची क्षमा मागून या ग्रंथाम सर्वांनीं निर्मत्सरपणानें आश्रय द्यावा, अशी जगन्निध्याच्या चरणीं प्रार्थना करितां.

नवरे इत्युपाभिध बाबाजीभट्टात्मज कृष्णशर्मा.

विशेष शोध.

लिंगप्रतिष्ठा पृष्ठ ३४८ यांत 'सहस्राणिसहस्रशो०' ह्या बारा ऋचा सांगितल्या आहेत. पण हल्लींच्या रुद्राच्या पाठांत 'सहस्राणिसहस्रशो०' ह्या अनुवाकाच्या १० ऋचा होतात, दोन ऋचा हल्लींच्या पाठांत नाहीत. त्यांचा शोध करितां एका जुन्या मदनमहर्षणाच्या लेखी प्रतींत दोन ऋचा आढळल्या, व तशाच शंभर वर्षांच्या जुन्या रुद्राच्या पोथींत सांपडल्या. त्या येथें देतां—येतीर्थानिप्रचरतिसृकावंतोनिषणिगः । तेषां५० ॥ ९ ॥ याच्या पुढें—

'येबनाभ्युपसर्पतितेभ्योवृष्टिरुदायते ॥ तेषां५० ॥ १० ॥

येप्राम्यानुपसर्पतितेभ्योवृष्टिमुपासते ॥ तेषां५० ॥ ११ ॥'

श्रीः

निर्णयसिंधूतील विषयांची अनुक्रमणिका.

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--------------------------------------|--------|
| अथ प्रथमपरिच्छेदाची अनुक्रमणिका. | | तिथिनिर्णय | १७ |
| मंगलाचरण | १ | युग्मवाक्यनिर्णय | १८ |
| ग्रंथाचा विषय (कालनिर्णय)... .. | १ | खर्वदर्पहिंसालक्षण | १९ |
| काल सहा प्रकारचा... .. | २ | एकभक्तव्रताचा निर्णय | १९ |
| संवत्सराचे प्रकार पांच | २ | नक्तव्रताचा निर्णय | २० |
| चांद्र संवत्सराचीं नावे ६०... .. | २ | सौरनक्त | २१ |
| संवत्सराची प्रवृत्ति | २ | हरिनक्ते विशेष | २१ |
| संवत्सराचा विनियोग | २ | अयाचितनिर्णय | २१ |
| अयननिर्णय | २ | नक्षत्रव्रताचा निर्णय... .. | २२ |
| अयनांचा विनियोग | ३ | व्रतपरिभाषा | २२ |
| ऋतुनिर्णय व त्याचे प्रकार | ३ | शूद्रादिकांस अधिकार | २२ |
| ऋतूंचा विनियोग | ३ | स्त्रियांस अधिकार | २२ |
| मास चार प्रकारचा व त्याचीं लक्षणें | ३ | व्रतसंकल्पविधि | २३ |
| संक्रांतिनिर्णय | ४ | व्रतारंभकाल | २३ |
| संक्रांतिषु दानें | ४ | भद्रानिर्णय | २३ |
| संक्रांतिषु उपवासदाननिर्णय | ५ | भद्रापुच्छनिर्णय | २३ |
| संक्रांतीं श्राद्धनिर्णय | ५ | व्रतारंभे विशेष | २४ |
| विष्णुपदादि स्वरूप | ६ | व्रतस्थाचे धर्म | २४ |
| अत्र पिंडरहित श्राद्ध... .. | ६ | व्रते ब्राह्मणभोजन | २४ |
| मंगलकार्याविषयी संक्रातिवर्ज्य घटिका | ६ | शूद्राला ब्राह्मणद्वारा होम | २५ |
| संक्रांतिषु रात्रौ ज्ञानश्राद्धादि विचार | ७ | देवताप्रतिमांचें स्वरूप | २५ |
| संक्रांतीं अनध्याय | ७ | द्रव्यमंत्रदेवतांच्या अनादेशीं... .. | २५ |
| चांद्रमास | ८ | होमसंख्या | २५ |
| सावनादि मासव्यवस्था | ९ | उद्यापनविचार | २५ |
| मलमासनिर्णय | ९ | दक्षिणाविचार व रजतनिषेध | २६ |
| क्षयमासाचा आगमनकाल | १० | व्रतस्थाचे नियम | २६ |
| मलमासे कार्याकार्यनिर्णय | १० | क्षारादिवर्जन... .. | २६ |
| मलमासांत कर्तव्यकर्म | ११ | व्रते ग्राह्यपदार्थ | २६ |
| मलमासांत श्राद्धविचार | १२ | गृहीतव्रतव्यागे | २६ |
| मलमासांत वर्ज्य कर्म | १४ | अशक्ताविषयी सांगतो | २७ |
| क्षयमासांत मृतांचा श्राद्धनिर्णय | १५ | स्त्रीव्रताविषयी विशेष सांगतो | २७ |
| मलमासाप्रमाणें गुरुशुक्रास्तादीं वर्ज्य कर्म... .. | १५ | एकादशीस तांबूलनिषेध | २८ |
| सिंहस्थगुरौ अपवाद | १५ | व्रतास अश्रुपातादिनिषेध | २८ |
| ग्रहांच्या अस्तबाह्यादिकांचें लक्षण... .. | १६ | सूतकादिकाविषयी निर्णय | २८ |
| अस्तादिकांचा अपवाद | १६ | रजस्वलेखा प्रतिनिधि | २९ |
| मलमासांत व्रतविशेष | १६ | व्रताविषयी प्रतिनिधि | २९ |
| पक्षनिर्णय | १७ | प्रतिनिधीविषयी विशेष | २९ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---|--------|--|--------|
| एककालीं अनेक व्रतांचा निर्णय | ३१ | याविषयीं विशेष सांगतो | ५३ |
| प्रतिपदादिकांचा निर्णय | ३१ | पशुयाग व सोमयाग यांविषयीं दुसरा काल | ५४ |
| सर्व तिथीस क्रमानें वर्ज्य | ३२ | सोमाविषयीं सांगतो | ५४ |
| द्वितीयानिर्णय | ३२ | आधानकाल | ५५ |
| तृतीयानिर्णय | ३२ | आधाननक्षत्रें | ५५ |
| चतुर्थानिर्णय | ३२ | सोमपूर्वाधाने विशेष | ५५ |
| पंचमीनिर्णय | ३३ | श्राद्धाविषयीं अमावास्यानिर्णय | ५६ |
| षष्ठीनिर्णय | ३४ | याच्या विपरीत | ५६ |
| सप्तमीनिर्णय | ३४ | पिंडपितृतृयज्ञकाल | ५७ |
| अष्टमीनिर्णय | ३४ | हेमाद्रिमते | ५७ |
| नवमीनिर्णय | ३५ | आश्वलायनाचा पिंडपितृतृयज्ञ | ५८ |
| दशमीनिर्णय | ३५ | पिंडपितृतृयज्ञाचा लोप असतां प्रायश्चित्त | ५९ |
| एकादशी उपवासाधिकारिनिर्णय | ३५ | निरम्भिकादिविषयीं अमावास्यानिर्णय | ६० |
| उपवासनिषेधे भक्ष्य पदार्थ | ३६ | अमावास्येस मासिक-वार्षिकादिप्राप्तौ निर्णय | ६१ |
| दशमीवेधाचा निर्णय | ३७ | अनुगृहीतादिकांसही अमाश्राद्ध नित्य | ६१ |
| वैष्णवांस अरुणोदयवेध | ३८ | ग्रहणनिर्णय | ६१ |
| स्मार्तांस उदयवेध | ३८ | चंद्रसूर्याचें प्रस्तास्त असतां | ६२ |
| हृतरवेध | ३९ | बालवृद्धानुरांस वेध | ६२ |
| वैष्णवांस अरुणोदयविद्धा निषिद्धा | ४० | वेधादिकांत पक्वान्नाचा त्याग | ६३ |
| स्मार्तांस सूर्योदयविद्धा निषिद्धा | ४० | वेधकाले ग्रहणे वा भोजने प्रायश्चित्त | ६३ |
| एकादशीस्मार्तवैष्णवनिर्णय | ४१ | सूर्याचा प्रस्तास्त असतां उपवासनिषेध | ६३ |
| एकादशीव्रताविषयीं उपयुक्त | ४४ | ग्रहणाच्या आद्यतीर्त ज्ञान | ६४ |
| एकादशीव्रताविषयीं अधिकारी | ४५ | ग्रहणज्ञानाविषयीं विशेष तीर्थ | ६४ |
| उपवासाविषयीं सामर्थ्य नसतां | ४५ | समुद्रादि तीर्थज्ञानाचें फळ | ६५ |
| काम्यव्रतांचा विधि | ४५ | ग्रहणांत श्राद्ध | ६५ |
| व्रतनाश करणारीं | ४५ | आशांवांतही ज्ञानश्राद्धादि | ६६ |
| व्रतघ्नाविषयीं प्रायश्चित्त | ४६ | रजस्वलेविषयीं | ६६ |
| एकादशीस श्राद्ध प्राप्त असतां | ४६ | ग्रहणांत रात्रीं देखील श्राद्धादि करावें | ६७ |
| व्रतनाश न करणारीं | ४६ | ग्रहणदिवशीं वार्षिक प्राप्त असतां | ६७ |
| एकादशीव्रताचा संकल्प | ४७ | ग्रहणांत मंत्रवीक्षा | ६७ |
| भगवंतास व्रतसमर्पण | ४७ | जन्मराशीस वगैरे ग्रहण निषिद्ध | ६८ |
| सूतकांतही व्रत करणें | ४८ | त्रिजन्मनक्षत्रास ग्रहणादि असतां रोगादि | ६८ |
| आठ महाद्वादशी | ४८ | नागबिंबादिदान | ६८ |
| द्वादशी अल्प असतां पारणा | ४९ | अनिष्टग्रहण असतां शान्ति | ६९ |
| पारणेविषयीं केचिन्मत | ४९ | मंगलकृत्याविषयीं ग्रहणवेध | ७० |
| एकादशी षडली नसतां द्वादशीस उपवास | ४९ | ग्रहणांत पुरश्चरण | ७० |
| द्वादशीत्रयोदशीचतुर्दशीनिर्णय | ४९ | कुरुक्षेत्रांत प्रतिग्रह असतां प्रायश्चित्त | ७१ |
| पौर्णिमामावास्यानिर्णय | ५० | पूर्वसंकल्पित द्रव्य ग्रहणोत्तर दिगुण होतें | ७१ |
| इष्टिकालाचा निर्णय | ५० | ग्रहणाविषयीं बौद्धतुल्यांच्या मताचें खंडन | ७१ |
| पौर्णमासीस विशेष | ५१ | समुद्रज्ञानाचा निर्णय | ७६ |
| क्षेपपर्वानेष्ट्यां विशेष | ५२ | समुद्रज्ञानाचा विधि | ७७ |
| विह्वलीष्ट्यांच्या कालाचा निर्णय | ५३ | | |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---|--------|---|--------|
| अथ द्वितीयपरिच्छेदाची अनुक्रमणिका. | | वैशाखशुक्लसप्तमीस गंगावतार | ९५ |
| चैत्रमास | ७९ | वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती | ९६ |
| मीनसंक्रांतिनिर्णय | ७९ | नृसिंहजयंतीव्रतविधि | ९६ |
| चैत्रशुक्लप्रतिपदानिर्णय | ७९ | वैशाखपौर्णिमेस अन्नउद्कुंभाविदान | ९७ |
| चैत्रशुक्लप्रतिपदि तैलाभ्यंग | ७९ | ज्येष्ठमास | ९७ |
| नवरात्रारंभ | ८० | शृषभसंक्रांतीचा निर्णय | ९८ |
| प्रपादान | ८० | ज्येष्ठशुक्लतृतीयेस रंभाव्रत | ९८ |
| गौरीश्वरांचा दोलोत्सव | ८० | ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा | ९८ |
| मन्वादितिथींचा निर्णय | ८० | दशहरास्नानादिविधि | ९९ |
| मन्वादिश्राद्ध पिंडरहित | ८१ | गंगास्तोत्रपाठ | ९९ |
| मन्वादिश्राद्धाकरणे प्रायश्चित्त | ८१ | ज्येष्ठशुक्लएकादशी निर्जला | ९९ |
| षण्णवतिश्राद्धानि | ८१ | ज्येष्ठशुक्लपौर्णिमेस वटसावित्रीव्रत | १०० |
| दशावतारजयंत्या | ८१ | ज्येष्ठपौर्णिमेस तिलछत्रादिदान | १०१ |
| अन्यमतीं दशावतारजयंत्या | ८२ | आषाढमास | १०१ |
| चैत्रशुक्लपंचमी वगैरे सात कल्पादि | ८२ | मिथुनसंक्रांति | १०१ |
| लक्ष्मीपूजन | ८३ | आषाढशुक्लएकादशीस विष्णुशयनोत्सव | १०२ |
| चैत्र शुक्लष्टमीस भवानीउत्पत्ति | ८३ | चातुर्मास्यव्रताचा आरंभ | १०३ |
| अशोककलिकाप्राशन | ८३ | व्रतप्रहणाचा प्रकार | १०३ |
| ब्रह्मपुत्रनदाचें स्नान | ८३ | शाकवर्जनादि चार व्रतें | १०४ |
| चैत्रशुक्ल नवमी (रामनवमी) निर्णय | ८३ | आमिषपरिगणना | १०५ |
| श्रीरामपूजाविधि | ८४ | हविष्यें | १०६ |
| चैत्रशुक्लएकादशीस दोलोत्सव | ८६ | दुयरीं व्रतें | १०६ |
| चैत्रशुक्लद्वादशीस दमनोत्सव | ८६ | व्रतयमार्गां दानें | १०६ |
| आगमोक्तदीक्षावंताचा दमनारोपणविधि | ८६ | तप्तमुद्राधारण | १०७ |
| दमनारोपणाचा दिननिर्णय | ८७ | आषाढपौर्णिमेस कोकिलाव्रत | १०८ |
| चैत्रशुक्लत्रयोदशीस अंगव्रत | ८८ | आषाढपौर्णिमेस शिवशयनोत्सव | १०८ |
| चैत्रशुक्लत्रयोदशी व चतुर्दशी यांचा निर्णय | ८९ | व्यासपूजा | १०९ |
| चैत्री पौर्णिमेचा निर्णय | ८९ | श्रावणमास | १०९ |
| चैत्रकृष्णत्रयोदशीस महावह्णीयोग | ८९ | कर्कसंक्रांतीचा निर्णय | १०९ |
| वैशाखमास | ९० | नदीस रजोदोष | ११० |
| मेघसंक्रांतिनिर्णय | ९० | रजोदोषाचा अपवाद | १११ |
| वैशाखस्नान | ९० | श्रावणशुक्लतृतीया मधुसूता | १११ |
| वैशाखस्नानाचा विधि | ९० | श्रावणशुक्लपंचमी नागपंचमी | १११ |
| वैशाखांत तुलसीनं विष्णुपूजन | ९० | श्रावणशुक्लद्वादशीस दधिव्रत | १११ |
| अश्वरथमूलसिंचन हविष्यादिनियम | ९१ | विष्णूचें पवित्रारोपण | १११ |
| प्रपागलंतीकादिदान | ९१ | पवित्रारोपणाविषयीं अधिकारी | ११२ |
| वैशाखस्नानाचें उद्यापन | ९१ | देवनासेदानें पवित्रारोपणतिथि | ११३ |
| वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीया | ९२ | पवित्रनिर्माणचा प्रकार | ११३ |
| युगादिनिर्णय | ९२ | पवित्रारोपणविधि | ११३ |
| येथें श्राद्धाचा निर्णय | ९३ | उपाकर्म (श्रावणी) | ११४ |
| उद्कुंभादि दानविधि | ९४ | श्रावणांत औषधी न झाड्या तर | ११६ |
| येथें अपिंडक श्राद्ध | ९४ | यजुर्वेदांचा उपाकर्मकाल | ११७ |
| परशुरामजयंतीनिर्णय | ९५ | उपाकर्माचा कर्मकाल | ११७ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---------------------------------------|--------|---|--------|
| सामवेद्यांचे उपाकर्म | १२० | पार्वणएकोद्दिष्टांची व्यवस्था | १५० |
| उत्सर्जनकाल | १२० | श्राद्धांग तर्पण | १५१ |
| ऋषिपूजन | १२१ | महालयअकरणे प्रायश्चित्त | १५१ |
| श्रावणी पौर्णिमेस रक्षाबंधन | १२१ | कपिलाषष्ठी | १५२ |
| येथेच हयग्रीवावतार | १२२ | चंद्रषष्ठी | १५३ |
| श्रावणी पौर्णिमेस श्रवणाकर्म | १२२ | माघ्यावषे श्राद्ध | १५३ |
| भाद्रपदमास | १२३ | महालक्ष्मीव्रत | १५३ |
| सिंहसंक्रांतिनिर्णय | १२३ | नवमीस अन्वष्टकाश्राद्ध (अविधवा नवमी) | १५४ |
| भाद्रकृष्णतृतीया कज्जली | १२३ | अशक्त अनुकल्प | १५६ |
| भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या | १२३ | संन्याशांचा महालय | १५६ |
| भाद्रकृष्णसप्तमीस शीतलाव्रत | १२३ | मघात्रयोदशीश्राद्ध | १५६ |
| अथ जन्माष्टमीनिर्णय | १२३ | चतुर्दशीश्राद्ध | १५८ |
| जन्माष्टमीव्रत नित्य | १२४ | भाद्र अमावास्यास गजच्छाया | १६१ |
| जयंतीव्रत नित्यकाम्य | १२५ | आश्विन शुक्लप्रतिपदेस मातामहश्राद्ध | १६१ |
| तत्र अष्टमी द्वेधा | १२८ | देवीनवरात्रारंभनिर्णय | १६१ |
| रोहिणीयुता चतुर्था | १२८ | देवीपूजाच प्रधान | १६४ |
| पारणानिर्णय | १३० | देवीपूजन रात्रौ | १६४ |
| जन्माष्टमी व्रतविधि | १३१ | कलशस्थापनाचा रात्रौ निषेध | १६७ |
| कुशग्रहण | १३२ | पूजाविधि | १६७ |
| हरितालिकाव्रतनिर्णय | १३३ | कुमारीपूजा | १६८ |
| भाद्रशुक्लचतुर्थी वरदचतुर्थी | १३३ | वेदपारायणचंडीपाठादिविधि | १६८ |
| भाद्रशुक्लपंचमी ऋषिपंचमी | १३४ | अश्वपूजन | १६९ |
| भाद्रशुक्लषष्ठी सूर्यपष्ठी | १३४ | प्रतिपदादि तिथीस विशेष | १७० |
| अमुक्ताभरणव्रत | १३४ | आशीचांत विशेषनिर्णय | १७० |
| दूर्वाष्टमीव्रत | १३४ | उपांगल्लिताव्रत | १७१ |
| ज्येष्ठाव्रतविधि | १३५ | सरस्वतीस्थापनपूजन | १७१ |
| भाद्रशुक्लद्वादशीस पारणानिर्णय | १३६ | षष्ठीस बिल्वाभिमंत्रण | १७१ |
| विष्णुपरिवर्तनोत्सव | १३७ | सप्तमीस पत्रीप्रवेशपूजा | १७२ |
| श्रवणद्वादशी | १३७ | सप्तमाचा निर्णय | १७२ |
| श्रवणद्वादशीव्रताची पारणा | १३९ | देवीत्रिरात्र | १७३ |
| श्रवणद्वादशीव्रतविधि | १३९ | देवीगृहप्रतिमादिकरणविधि | १७३ |
| वामनव्रताचा विधि | १४० | सप्तमीपूजाविधि | १७४ |
| दुग्धव्रतम् | १४१ | महाष्टमीनिर्णय | १७५ |
| भाद्रशुक्लचतुर्दशीस अनंतव्रत | १४२ | लौहाभिसारिककर्म | १७८ |
| अगस्त्याध्यैविधि | १४२ | राजचिन्ह्यांच्या पूजेचे वेगवेगळे मंत्र | १७९ |
| प्रोष्ठपरीश्राद्ध | १४४ | सिंहासनमंत्र | १८१ |
| आश्विनमास | १४४ | महानवमीनिर्णय | १८२ |
| कन्यासंक्रांतीचा पुण्यकाळ | १४४ | होमाविषयी विशेष | १८४ |
| महालय ' ' | १४४ | बलिदान | १८४ |
| विधवाकर्तुकमहालय | १४६ | शतचंडीविधान | १८५ |
| सकुन्महालयास वर्ज्य | १४६ | सहस्रचंडीविधान | १८६ |
| महालयाचा गौणकाल | १४८ | नवरात्रपारणानिर्णय | १८७ |
| महालयाच्या देवता | १४९ | आशौचिरजस्वलादौ पारणानिर्णय | १८८ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| देवीचें विचर्जन | १८९ | चंपाषष्ठी हीच स्कंदषष्ठी | २०९ |
| विजयादशमीनिर्णय | १८९ | मार्गशीर्षशुक्रचतुर्दशीस पिशाचमोचनतीर्थे धाऊ ... | २०९ |
| शमीपूजन | १९० | दत्तजयंती | २१० |
| आश्विनपौर्णमासी कोजागरी | १९१ | मार्गशीर्षादिकृष्णाष्टमीषु अष्टकाश्चाद् | २१० |
| आश्वयुजीकर्म | १९१ | मार्गशीर्षादिरविवारी काम्यव्रत | २११ |
| आग्रयण | १९२ | पौषमास | २११ |
| आग्रयणाकरणे | १९२ | धनुःसंक्रांति | २११ |
| कार्तिकमास | १९२ | पौष शुक्र अष्टमीस विशेष योगानें ज्ञानादि... .. | २११ |
| तुलासंक्रांति | १९३ | पौषशुक्रएकादशी मन्वादि | २११ |
| कार्तिकज्ञान | १९३ | पौषी अमावास्यास अर्धोदय योग | २११ |
| तुलसीकाष्ठमालाधारण | १९३ | सुवर्णपायसामंत्रदान | २१२ |
| अगस्त्यकमलादिकांनीं विष्णुपूजा | १९४ | माघमास | २१३ |
| द्विदलव्रत | १९४ | माघज्ञान | २१३ |
| आकाशशीप | १९५ | माघज्ञानास अधिकारी | २१३ |
| कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी | १९६ | ज्ञानादिकांचे मंत्र | २१३ |
| गोवत्सद्वादशी | १९६ | ज्ञानाचा काल | २१४ |
| नीराजनविधि | १९६ | अशर्का त्र्यह-एकाहज्ञान | २१५ |
| त्रयोदशीस यमरीपदान | १९६ | माघज्ञानाचे नियम | २१५ |
| नरकचतुर्दशीस अभ्यंग | १९६ | अन्नवस्त्रादिदान | २१६ |
| अगमार्गादि त्रामण | १९८ | मकरसंक्रांति पुण्यकालनिर्णय | २१६ |
| यमतर्पण | १९९ | मकरसंक्रांतीस दानविशेष | २१८ |
| कार्तिकअमावास्यास अभ्यंग | १९९ | माघकृष्णचतुर्दशीस यमतर्पण | २१८ |
| उपवासपूर्वक लक्ष्मीपूजन | २०० | माघशुक्रचतुर्थी तिलचतुर्थी, हीच कुंदचतुर्थी | २१९ |
| गोक्रीडन | २०१ | श्रीपंचमी | २१९ |
| बलिपूजानिर्णय | २०१ | रथमसमी | २१९ |
| द्यूत, गोवर्धनपूजा, मार्गपालीबंधन | २०२ | ज्ञानादिविधि | २२० |
| यमद्वितीया | २०३ | दानविशेष | २२० |
| यमपूजा | २०३ | ही सप्तमी मन्वादि | २२० |
| भगिनीगृहे भोजन | २०३ | भीष्माष्टमी | २२१ |
| कार्तिकशुक्लनवमी युगादि | २०४ | भीष्मद्वादशी | २२१ |
| एकादशीस भीष्मपंचकव्रत | २०४ | साधो पूर्णिमा... .. | २२१ |
| कार्तिकशुक्लद्वादशीपारणानिर्णय | २०५ | साधो अष्टका | २२१ |
| येथेंच देवोत्थापन | २०५ | ही अष्टका आवश्यकी | २२१ |
| चातुर्मास्यव्रतसमाप्ति | २०६ | फाल्गुनमास | २२२ |
| प्रबोधोत्सव | २०६ | कुंभसंक्रांति | २२३ |
| वैकुण्ठचतुर्दशी | २०६ | शिवरात्रिनिर्णय | २२३ |
| कार्तिकव्रतोत्थापन | २०७ | पारणानिर्णय | २२४ |
| कार्तिकी पूर्णिमा | २०७ | शिवरात्रिव्रत नित्यकाम्य | २२५ |
| विशेष योग | २०७ | प्रतिमासे शिवरात्रिव्रतनिर्णय | २२६ |
| मत्स्यावतार | २०७ | साधामावास्या युगादि | २२७ |
| मार्गशीर्षमास | २०८ | फाल्गुनी पूर्णिमा होलिका | २२७ |
| वृश्चिकसंक्रांति | २०८ | भद्रासुखलक्षण | २२८ |
| कालाष्टमीनिर्णय | २०८ | ग्रहणे होलिकानिर्णय... .. | २२८ |
| मार्गशीर्षशुक्रपंचमीस नागपूजा | २०९ | कृष्णप्रतिपदेस वसंतोरसव | २२९ |
| | | धुलिवंदन, चतुकुसुमप्राशन... .. | २२९ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| अथ तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्धाची अनुक्रमणिका. | | मासनाम, नक्षत्रनाम | २५२ |
| प्रकीर्णकर्णिय | २३१ | दोलारोह | २५३ |
| प्रथमरजोदर्शनी तिथिनक्षत्रादिकल | २३१ | कर्णवेध | २५३ |
| दुष्टकाली रजोदर्शन असतां खीगमनवर्जन | २३२ | तांबूलभक्षण | २५४ |
| रजोदर्शनशांति | २३२ | निष्क्रमण | २५४ |
| प्रथमरजोदर्शनी नियम, द्वितीयादिरजोदर्शनी नियम | २३३ | उपवेशन | २५५ |
| रजोदर्शनाच्या पूर्वी खीगमन निषिद्ध | २३४ | अन्नप्राशन | २५५ |
| ऋतुकाली व अतृप्तकाली खीगमन | २३४ | अब्दपूर्ति (वाढदिवसाचा) विधि | २५६ |
| खीगमनास विहित नक्षत्रादिकाल | २३५ | कटिसूत्रबंधन | २५७ |
| चतुर्थ्यादि रात्री खीगमनाचीं फलें | २३५ | चाल संस्कार | २५७ |
| ऋतुकाली श्राद्ध-एकादश्यादिदिवशीदेखील खीगमन | २३५ | माता गर्भिणी किंवा रजस्वला असतां विचार | २५८ |
| ऋतुकाली अगमनी दोष | २३६ | उजरोत्पत्ती मंगलनिषेध | २५८ |
| मैथुनकरणास शौचादि | २३६ | मंडनोत्तर मुंडनाचा निषेध | २५९ |
| रात्री रजोदर्शने दिननिर्णय | २३७ | सहोदरांच्या समानसंस्कारांचा निषेध | २५९ |
| विंशतिदिनात्पूर्व पुनः रजोदर्शने निर्णय | २३७ | शिखा राखण्याचा विचार | २६० |
| रजस्वलांचा परस्पर स्पर्श असतां निर्णय | २३७ | सिंहस्थगुरु असतां मंगलकार्यनिषेध | २६० |
| रजस्वलान्नान | २३८ | चूडासंस्कारादौ भोजने प्रायश्चित्त | २६० |
| पुंसवन अनवलोभनकाल | २३९ | स्त्रियांचे अमंत्रक संस्कार | २६० |
| सीमंतसंस्कार | २३९ | विद्यारंभकाल | २६० |
| सीमंतभोजने प्रायश्चित्त | २४० | धनुर्विद्या | २६१ |
| गर्भिणी व गर्भिणीपति यांचे धर्म | २४१ | अनुपनीताचें यथेच्छ आचरण | २६१ |
| प्रसूतिघरांत प्रवेश | २४२ | रजस्वला, अंत्यज इत्यादि स्पृष्टस्य स्पर्शेपि ज्ञाननिषेध | २६१ |
| जातकर्म | २४२ | शिशु, बाल, कुमारलक्षण | २६१ |
| जातकर्माचेठायीं आमश्राद्ध किंवा हिरण्यश्राद्ध | २४३ | उपनयनाचा काल | २६२ |
| जन्मसमयी दुष्टकाल | २४३ | गुरुबलविचार | २६३ |
| गंडांत | २४३ | जन्मनक्षत्रजन्ममासादौ विचार | २६३ |
| आश्लेषानक्षत्राचें फल | २४४ | उपनयनास तिथि | २६४ |
| मूलनक्षत्राचें फल | २४४ | गलग्रह, सोपपदा, प्रदोषादि विचार | २६४ |
| मूलवृक्ष | २४५ | उपनयनास नक्षत्रें | २६५ |
| मूल, ज्येष्ठा, विशाखा, आश्लेषा यांचीं फलें | २४५ | वारलमादिशुद्धि | २६६ |
| व्यतीपातादिदुष्टकालीं शांति | २४६ | शाखाधिप | २६६ |
| विकृतादिप्रसूति असतां व कृष्णचतुर्दशीशांति | २४६ | प्रातःसंध्यागर्जने विचार | २६६ |
| मातापितरांच्या नक्षत्रां जन्माचें फल | २४६ | मेघगर्जने शांति | २६६ |
| विकृतादिप्रसवांचीं फलें | २४७ | उपनयनकर्ता अधिकारीनिर्णय | २६७ |
| त्रिकप्रसवशांति | २४८ | षंड, मूक इत्यादिकांचें उपनयन | २६७ |
| षष्ठीजन्मदादिपूजा | २४८ | उपनयन, गायत्री उपदेश, भिक्षाविचार | २६८ |
| दत्तकपुत्राचा परिग्रहविधि | २४९ | संस्कारांचा लोप असतां प्रायश्चित्त | २६८ |
| स्त्रिया व शूद्र यांस दत्तकविधि | २४९ | अनेक संस्कारांचें नांदीश्राद्ध | २६८ |
| शूद्राच्या होमाविषयी विचार | २५० | मध्यान्हसंध्या, ब्रह्मयज्ञ | २६९ |
| दत्तकाविषयी विशेषविचार | २५० | उपनयनाभि त्रिरात्र धारण करावा | २६९ |
| यमलांच्या संस्काराचा क्रम | २५१ | ब्रह्मचाऱ्याचे धर्म | २६९ |
| सृष्टिकालान | २५१ | मेखला, अजिन, दंड, यज्ञोपवीतादिकांचें धारण | २७० |
| नामकरणनिर्णय | २५१ | यज्ञोपवीतनिर्माण व अभिमंत्रण | २७१ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| ब्रह्मचारिधर्मलोप असतां प्रायश्चित्त | २७२ | बसिष्ठगण | २९९ |
| अभिकार्य दोन्ही वेळां करणे | २७२ | अगस्त्यगण | ३०० |
| स्त्रीसंग बडला असतां प्रायश्चित्त | २७२ | द्विगोत्री | ३०० |
| यज्ञोपवीतं विना भोजनादिकरणे | २७२ | क्षत्रिय वैश्यांचा किंवा अज्ञातगोत्राचा पुरोहितगोत्रांनं | |
| अभिवादन व प्रत्यभिवादन | २७३ | किंवा आचार्यगोत्रांनं निर्वाह | ३०१ |
| पुनरुपनयननिमित्तं | २७३ | मातृगोत्रप्रवर्जननिर्णय | ३०२ |
| बोधायनोक्त पुनरुपनयनविधि | २७४ | सगोत्रादिविवाहे प्रायश्चित्त | ३०२ |
| पुनरुपनयने प्रेतकर्मकरणादि निमित्तं | २७४ | कन्याविवाहकाल | ३०३ |
| कारिकोक्तविधि | २७५ | दशकुलवर्जन | ३०३ |
| युगांतरी श्रियांचें उपनयन | २७५ | गुरु व रवि यांचें बल | ३०४ |
| अनध्याय | २७५ | बृहस्पतिसांति | ३०५ |
| नैमित्तिक अनध्याय | २७६ | गुर्वादित्यविचार | ३०५ |
| तात्कालिक अनध्याय | २७६ | कन्यादानाचे अधिकारी | ३०६ |
| प्रदोषलक्षण | २७८ | परकीय कन्यादानाविषयीं | ३०७ |
| चेदांगादिकांस अनध्याय नाही | २७८ | विवाहाविषयीं मासनिर्णय | ३०७ |
| महानाश्यादिप्रतें | २७८ | दशदोषकथन | ३०९ |
| समावर्तनसंस्कार | २७९ | कुंभविवाह | ३१० |
| पूर्वभूतांचें त्रिरात्र आशौच | २७९ | विष्णुमूर्तिदान | ३१० |
| ज्ञातकप्रतें | २७९ | प्रतिकूलादिविचार | ३११ |
| छुरिकाबंध | २८० | रजोदोषाविषयीं विचार | ३१२ |
| विवाह | २८० | समानक्रियेचा निर्णय | ३१२ |
| कन्येचीं लक्षणे | २८० | संकटविषये | ३१२ |
| मदनरत्नादिकांच्या मतीं एकक्षरीरावयवान्वयिल | | सहोदरांच्या विवाहाविषयीं | ३१३ |
| सापिंज्य | २८१ | कन्येला रजोदर्शन असतां विचार | ३१५ |
| चंद्रिकादिकांच्या मतीं एकपिंडदानक्रियान्वयिल | | प्रायश्चित्त | ३१६ |
| सापिंज्य | २८२ | ब्राह्मादिक आठ विवाहांचीं लक्षणे व व्यवस्था | ३१६ |
| कूटस्थ धकन गणना | २८३ | आशौच प्राप्त असतां विचार | ३१७ |
| सापिंज्यसंकोचनिषेध | २८४ | अन्नादिकाविषयीं विशेष | ३१७ |
| मातुलकन्योद्वाहविचार | २८६ | धर्मार्थविवाहाचें फल | ३१८ |
| इतरसापिंज्य | २८८ | कन्यागृहे भोजननिषेध | ३१८ |
| सापन्नमातामहकुळांत सापिंज्य | २८८ | विवाहादिकांत श्रियांसह भोजन | ३१९ |
| गुरु, सखा इत्यादिकांचें सापिंज्य | २९० | विवाहास नक्षत्रादि | ३१९ |
| दत्तकविषये सापिंज्य | २९० | विवाहमंडप | ३१९ |
| आतापितृद्वारकसापिंज्यवतीकन्यांची संख्या | २९२ | वेदिनिर्माण | ३२० |
| गोत्रप्रवरनिर्णय | २९३ | अंकुरार्पणाकरितां मृदाहरण | ३२० |
| प्रवर म्हणजे काय | २९३ | वारदानोत्तर वरमरणे विचार | ३२१ |
| बोत्रें आम्बि प्रवर | २९४ | वर देशांतरी गेल्य असतां | ३२१ |
| सुगुण | २९५ | वरास दोष असतां | ३२१ |
| साग्निरसगण | २९५ | नांदीश्राद्धाधिकारी | ३२२ |
| भरद्वाजगण | २९६ | लघ्वतीस्थापन | ३२२ |
| डेवल साग्निरसगण | २९७ | मधुपर्क | ३२२ |
| प्रत्रिगण | २९७ | कन्यादाने उच्चार | ३२३ |
| श्रिश्वाभिगण | २९८ | गृहप्रवेशनीय होम | ३२४ |
| इक्ष्वापण | २९९ | देवकोत्थापन | ३२४ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---|--------|--|--------|
| बध्नुप्रवेश | ३२५ | पुनःप्रतिष्ठेचा विधि | ३५२ |
| द्विरागमन | ३२६ | जीर्णोद्धार | ३५३ |
| पुनर्विवाह | ३२६ | तुलसीप्रहणाचा प्रकार | ३५४ |
| हुसऱ्या विवाहाच्या होमाविषयीं अभि | ३२७ | पुष्पं, पत्रं हीं किती कालानें पुरवित होतात | ३५४ |
| शौनकोक्त अभिद्वयसंसर्ग | ३२७ | शिवनिर्माल्यनिर्णय | ३५५ |
| बौधायनोक्त अभिद्वयसंसर्ग | ३२७ | कृषिकर्मास सुहूर्त | ३५६ |
| द्वितीयादि विवाहाचा काल | ३२८ | वस्त्रधारण | ३५७ |
| तिसऱ्या विवाहाचा निषेध | ३२८ | अलंकार, वलयधारण | ३५७ |
| अर्कविवाहविधि | ३२८ | सूचीकर्म | ३५८ |
| अथ आधान... .. | ३२९ | हत्ती, घोडे, मेणा यांत बसणें | ३५८ |
| अभिहोत्र होमाचा काल | ३२९ | पशु घेण्यास सुहूर्त | ३५९ |
| औपासनाग्नीचें आधान | ३३० | गजदंतच्छेद | ३५९ |
| अग्नेध्वज्ज्वाला आधामरहित असतां निषेध | ३३० | निक्षेप (ठेव ठेवणें)... .. | ३५९ |
| अग्नेध्वज्ज्वाला ह्मीवलादिदोषयुक्त असतां दोषाभाव | ३३१ | कृणमोक्ष | ३५९ |
| शूद्रांचे संस्कार | ३३२ | माणें पाडणें | ३५९ |
| आतां क्षुद्रकाल, जलाशयाचा काल... .. | ३३३ | नौका बांधणें... .. | ३५९ |
| कृपादिकांचा उत्सर्गविधि | ३३४ | भोग्य वस्तूंचा उपभोग | ३५९ |
| बृक्षारोपण | ३३४ | इमशुकर्मास सुहूर्त | ३६० |
| मूर्तिप्रतिष्ठाकाल | ३३५ | काष्ठें, गोंयऱ्यांचा संग्रह | ३६० |
| लिंगप्रतिष्ठाकाल | ३३५ | नवाभमक्षण... .. | ३६० |
| सवैदेवांच्या प्रतिष्ठेचा काल | ३३५ | नवें भोजनपात्र | ३६० |
| देवप्रतिष्ठेविषयीं अधिकारी | ३३६ | नवीं पानें, फलें भक्षण | ३६० |
| क्रीडादिकांचा अनधिकार | ३३७ | होमाविषयीं आहुति नसेल तर विधि | ३६० |
| देवतांच्या प्रतिमा | ३३७ | अश्विन्यादिनक्षत्रांवर ज्वरोत्पत्तीचें फल | ३६१ |
| घरांत भोव्या प्रतिमेचा निषेध | ३३७ | औषधास सुहूर्त | ३६२ |
| प्राणप्रतिष्ठा | ३३८ | आमलकज्ञान... .. | ३६२ |
| लिंगाविषयीं विशेषनिर्णय | ३३८ | तैलज्ञाननिषेध | ३६३ |
| पंचसूत्रीनिर्णय | ३३८ | त्याचा अपवाद | ३६३ |
| लिंगशालग्रामसंख्यादिविचार | ३३९ | गृहारांभास सुहूर्त | ३६४ |
| अविभक्तानाही पृथक् पूजा | ३३९ | नक्षत्रवारादिविचार | ३६४ |
| शालग्रामादिलक्षण | ३४० | शिलाग्न्यास | ३६५ |
| पार्थिवपूजा | ३४१ | स्तंभारोपण | ३६५ |
| रक्षाक्षराणाविषयीं विशेष | ३४२ | गृहप्रवेशास सुहूर्त | ३६६ |
| रक्षाक्षांचें अभिमंत्रण | ३४२ | कलियुगांत बर्ज्य कर्म... .. | ३६७ |
| मालेच्या रक्षाक्षांची संख्या | ३४२ | सर्वाधान व अर्धाधानाविषयीं व्यवस्था | ३७० |
| अभ्यंगादिकांचें परिमाण | ३४२ | | |
| पंचायतनाची मांडणी | ३४३ | | |
| केव्हाचि बोवीस मूर्तीचीं लक्षणें | ३४३ | | |
| लिंगप्रतिष्ठा व मूर्तिप्रतिष्ठाप्रयोग | ३४४ | | |
| स्थिरलिंगार्चादौ विशेष | ३४८ | | |
| चक्रार्चादौ | ३४९ | | |
| प्राणप्रतिष्ठा | ३४९ | | |
| पुनःप्रतिष्ठा | ३५२ | | |

अथ तृतीयपरिच्छेद उत्तरार्धाची अनुक्रमणिका.

| | |
|-------------------------------|-----|
| श्राद्धनिर्णय | ३७२ |
| श्राद्धाचें स्वरूप | ३७३ |
| श्राद्धाचे मेद... .. | ३७४ |
| श्राद्धाचे देव... .. | ३७५ |
| ऊरुकोत्रादिदेवे श्राद्ध... .. | ३७५ |
| गवाभाह | ३७५ |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---|--------|---|--------|
| गवाशिरस्वरूप | ३७६ | त्रिबांकु, चर्वर इत्यादि वेदांतीक वर्ज्य ब्राह्मण ... | ३९९ |
| सप्तगोत्रं | ३७६ | काणकुब्जादि ब्राह्मण वर्ज्य | ३९९ |
| एकोत्तरशत कुल | ३७६ | इतर निषिद्ध ब्राह्मण | ४०० |
| श्राद्धाला निषिद्ध देश | ३७६ | निषिद्ध ब्राह्मणांचा अपवाद | ४०१ |
| श्राद्धाचे काळ | ३७७ | ब्राह्मणांचें निमंत्रण | ४०२ |
| पद्मक योग | ३७७ | विप्रद्वारा श्राद्ध | ४०३ |
| प्रतिकृष्णपक्षश्राद्ध | ३७८ | श्राद्धाविषयी ब्राह्मणसंख्या | ४०३ |
| विशेषतिथीस विशेषफलें | ३७९ | एका ब्राह्मणावर श्राद्ध | ४०३ |
| श्राद्धाचे अधिकारी | ३८० | चतुश्राद्ध | ४०३ |
| द्वादशविध पुत्र | ३८० | मातृश्राद्धांत सुवासिनीभोजन | ४०३ |
| औरस अनुपनीतसुद्धा अधिकारी | ३८१ | लिंग किंवा शालग्राम ठेऊन श्राद्ध करणें | ४०४ |
| औरसामात्रे पोत्रादिक... .. | ३८१ | नियमभ्रावण | ४०४ |
| स्त्रांच्या अभावीं दत्तकादिक... .. | ३८१ | श्राद्धकर्ता व भोक्ता यांचे नियम | ४०४ |
| पुत्राच्या अभावीं औष्वेदेहिकाधिकारी पत्नी | ३८३ | निमंत्रित ब्राह्मणांचा त्याग केला असता | ४०४ |
| क्रियेच्या क्रियेचा अधिकारी पति | ३८३ | आमंत्रण घेऊन दुसरीकडे आईल किंवा न येईक तर | ४०४ |
| सपत्नीपुत्रादिक अधिकारी | ३८३ | श्राद्धकर्त्याला व भोक्त्याला स्वीगमननिषेध... .. | ४०५ |
| अविभक्ताचा पत्नीच्या अभावीं सहोदर अधिकारी... .. | ३८४ | संध्याहोमादिनिषेध | ४०५ |
| विभक्ताची कन्या अधिकारी... .. | ३८४ | वनस्पतिगत सोमस्वरूप | ४०५ |
| स्त्रांच्या अभावीं दौहित्र | ३८४ | प्रतिनिधीलाही नियम | ४०५ |
| सर्वांच्या अभावीं पत्नी | ३८४ | श्राद्धाच्या पूर्वी बालानाही भोजननिषेध | ४०६ |
| स्मृतिसंग्रहोक्त अधिकारी | ३८५ | श्राद्धवस्तु | ४०६ |
| क्षुपा, भागिनेय इत्यादि अधिकारी | ३८५ | दर्भविचार | ४०७ |
| अधिकाराविषयींचें तत्त्व | ३८७ | दशविध दर्भ... .. | ४०७ |
| पूर्व, मध्यम, उत्तरा क्रिया... .. | ३८७ | सुवर्णपवित्रक | ४०७ |
| घनहर्त्याला अवश्य करण | ३८८ | श्राद्धाविषयीं हविष्य पदार्थ... .. | ४०८ |
| पुत्र-कनिष्ठादि क्रियेचा अधिकारी | ३८८ | कंद, मूल, फल, शाक | ४०९ |
| ब्रह्मचान्याविषयी अधिकार | ३८८ | हविष्य, पायस, मांस यांनीं पितृतृप्ति | ४१० |
| पुत्रांमध्ये ज्येष्ठाला अधिकार | ३८९ | मांसनिषेध | ४११ |
| दत्तकाविषयी अधिकार | ३९० | वाध्राणसलक्षण | ४११ |
| दत्तकाला दोन्ही पित्यांच्या कर्माविषयी अधिकार... .. | ३९० | दुग्धविचार | ४११ |
| जारजांविषयी विशेष | ३९१ | माठ, बाळिब बगैरे | ४१२ |
| धर्मार्थ श्राद्धाचें फल... .. | ३९१ | श्राद्धाविषयी वर्ज्य वस्तु | ४१२ |
| क्रिया व श्रद्ध यांना मंत्ररहित अधिकार | ३९२ | श्राद्धाविषयी उदक | ४१६ |
| श्रद्धांना आमश्राद्ध | ३९३ | कुतपलक्षण | ४१६ |
| काश्यपगोत्रादिविचार | ३९३ | श्राद्धकाली दूर करण्याचे पञ्चादिक... .. | ४१७ |
| श्राद्धाविषयी पितरांचा निर्णय | ३९४ | श्राद्धदिवशीचें कृत्य | ४१७ |
| पितृपार्वणे मातामहपार्वण | ३९४ | पाकाविषयी मांडी | ४१८ |
| दर्शादी सपत्नीकांना देवतास | ३९४ | पाक करण्याचा अभि | ४१८ |
| श्राद्धभेदानें विधेदेवभेद | ३९५ | आश्वलायनांस अभि... .. | ४१९ |
| मव, नवमिश्र, पुराण श्राद्धलक्षण | ३९५ | ब्राह्मणज्ञानादि | ४२० |
| श्राद्धाविषयी उत्तम ब्राह्मण | ३९६ | श्राद्धकर्त्याचें कृत्य | ४२० |
| मध्यम ब्राह्मण | ३९७ | ब्रह्माविषयी निर्णय | ४२० |
| वर्ज्य ब्राह्मण... .. | ३९८ | | |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|---|--------|---|--------|
| कर्त्तव्या ऊर्ध्वपुंड्र तिर्यक्पुंड्रादिनिर्णय | ४२० | पाणिहोमे प्रश्नादि | ४४१ |
| श्राद्धारंभकाल | ४२० | आपस्तंबांचें अमौकरण | ४४२ |
| श्राद्धाची परिभाषा | ४२१ | ह्या अमौकरणाविषयीं मते | ४४३ |
| संबंधगोत्रनामांचा उच्चार | ४२१ | अक्षांचें परिवेषण | ४४४ |
| विमर्षाचा विचार | ४२२ | अन्ननिवेदनविधि | ४४५ |
| निवीतीप्राचीनावीतीचा निर्णय | ४२२ | ब्रह्मार्पण, अच्छिद्रवाचन, अपोशन, भोजन यांचा विधि | ४४६ |
| आचमनाचा निर्णय | ४२३ | ब्राह्मणांस सूक्तादि ऐकविणें | ४४७ |
| दानाध्ययनादिनिषेध | ४२३ | भोजनाचा विधि | ४४७ |
| देवपूजापितृपूजानिर्णय | ४२४ | भोजनसमयीं निषिद्ध | ४४७ |
| ऊहविचार | ४२४ | स्वाध्याय, राक्षोघ्नसूक्तादि ऐकविणें | ४४७ |
| पुनः निर्मंत्रण | ४२५ | विव्रवमन झालें असतां निर्णय | ४४८ |
| पाथार्यमंडलविचार | ४२५ | याचें तत्त्व | ४४९ |
| गोमयविचार | ४२६ | भोजनोत्तर प्रश्न, विकिरादि दान | ४५० |
| आसनप्रकार | ४२६ | ब्राह्मणांचें हस्तमुखादिप्रक्षालन | ४५१ |
| अतिथीस बसविणें | ४२६ | पिंडदाननिर्णय | ४५१ |
| श्राद्धारंभ व पाकप्रोक्षण | ४२७ | पिंडकरणप्रकार | ४५२ |
| देवार्चा | ४२७ | पिंडांचें प्रमाण | ४५२ |
| अर्घ्यपात्र | ४२८ | पिंडदानविधि | ४५४ |
| अर्घ्यपात्रपूजा | ४२९ | पित्रादिनामांचें अज्ञान असतां | ४५४ |
| अर्घ्यदानविधि | ४३० | पिंडदानाचा अनुक्रम | ४५४ |
| गंधपुष्पादिकांनीं देवब्राह्मणपूजा | ४३० | पिंड दिल्यावरचा विधि | ४५५ |
| वर्ज्य पुष्पें | ४३१ | पिंडांना अभ्यंजन, अंजनादि दान व गंधादिपूजा ... | ४५५ |
| धूप, दीप, वस्त्र, यज्ञोपवीत | ४३१ | पात्रचालनादि. | ४५५ |
| दीपिका, कंडुक इत्यादिदान | ४३१ | पिंडप्रवाहण | ४५६ |
| कमंडलुषट्टादिदान | ४३२ | आशीर्भहण | ४५६ |
| अग्नीश्राद्धांत स्त्रियांना अलंकारदान | ४३२ | पिंडांचा त्याग | ४५६ |
| बंदीकृतमोचनफल | ४३२ | पिंडांचा उपघात (नाश) असतां | ४५७ |
| पितरांची पूजा | ४३३ | पिंडांना निषिद्ध काल | ४५८ |
| अर्घ्यपात्रविचार | ४३३ | उच्छिष्टोद्वासनादि | ४५९ |
| अर्घ्यपात्रासादनादि | ४३३ | श्राद्धदिवशीं वैश्वदेवादिनिर्णय | ४५९ |
| आवाहनप्रकार | ४३४ | नित्यश्राद्धाचा निर्णय | ४६० |
| अर्घ्यदानविधि | ४३४ | श्राद्ध केल्यानंतर भोजनविचार | ४६१ |
| संस्मरणनिर्णय | ४३५ | श्राद्धशेषभोजनाचा निषेध | ४६२ |
| पितृपात्रस्थापन | ४३६ | श्राद्धाचे अनुकल्प | ४६२ |
| गंधादिकांनीं पित्र्यब्राह्मण पूजा | ४३६ | आमश्राद्धविचार | ४६३ |
| भोजनपात्रें सोम्याचीं व रुप्याचीं | ४३७ | आमश्राद्धाचा विधि | ४६४ |
| पर्णपात्रें पल्लाचीं, मोहाचीं व उंबराचीं | ४३७ | हेमश्राद्धाचा विचार | ४६५ |
| केळीच्या पानांचा विकल्प | ४३७ | श्राद्धीयआमहिरण्याचा विनियोग | ४६५ |
| भस्ममर्यादा व करशुद्धि | ४३७ | अशक्ती सांकल्पिकश्राद्ध | ४६६ |
| अमौकरणनिर्णय | ४३७ | द्रव्याच्या व ब्राह्मणाच्या अमाचीं | ४६७ |
| काष्ठिकाकाही पाणिहोम | ४३८ | श्राद्धभोजनाविषयीं प्रायश्चित्त | ४६७ |
| अमौकरणविधि | ४४१ | सांवत्सरिकश्राद्धाचा निर्णय | ४६८ |
| पाणिहोमप्रकार | ४४१ | एकोद्दिष्टपार्षणविचार | ४७० |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| संन्यासाचें श्राद्ध | ४७० | एक प्राकानें किंवा निच प्राकानें राहणारे असतां ... | ५०४ |
| आत्रादिकांचे एकोद्दिष्टादिविचार | ४७० | तीर्थश्राद्धविचार | ५०५ |
| निपुत्रिकादिकांच्या श्राद्धाचा विचार | ४७१ | उपवासपारणादिने श्राद्ध | ५०६ |
| सूततिथीचा निर्णय | ४७२ | तीर्थयात्राप्रकार | ५०६ |
| पार्वणाचा व एकोद्दिष्टाचा काल | ४७३ | यात्रेंत नवी प्राप्त असतां विशेष | ५०७ |
| दिवसा असंभव असतां रात्रौ श्राद्ध | ४७४ | मुंडन, उपवासाविषयीं विशेष विचार | ५०७ |
| अधिक मास असतां श्राद्धनिर्णय | ४७४ | दुसऱ्याकरितां ज्ञान | ५०८ |
| इशें सांवत्सरिक प्राप्त असतां निर्णय | ४७४ | तीर्थ प्राप्त असतां ज्ञानाविषयीं काळविचार नाही ... | ५०८ |
| वर्षत्रयानंतर शुद्ध श्राद्ध | ४७५ | आशौचादिकांचा विचार | ५०९ |
| मृतदिवसाचें अज्ञान असतां निर्णय | ४७५ | पिंडांचीं द्रव्यें | ५०९ |
| श्राद्धाचा, सूतकादि असतां निर्णय | ४७५ | अनुपनीतालाही अधिकार | ५०९ |
| आशौचांत भोजन असतां प्रायश्चित्त | ४७५ | संन्यासाविषयीं विचार | ५१० |
| विघ्नानें राहिलेल्या श्राद्धाचा निर्णय | ४७८ | तीर्थांत प्रतिग्रहाचा विचार | ५१० |
| भार्या रजस्वला असतां दर्शादिश्राद्धनिर्णय | ४७९ | आशौचप्रकरण | ५११ |
| भार्या रजस्वला असतां आम्बिकनिर्णय | ४८० | स्नानपाताशौच | ५११ |
| हैमाद्रि, वीपिका, यांचें मत | ४८० | सप्तममासाविदशाशौच | ५११ |
| स्त्रियांचें सहगमन असतां श्राद्धाचा निर्णय | ४८१ | सूतिकेला अस्पृश्यत्व आशौच | ५१२ |
| बुध्दीचंद्रादिकांचें मत | ४८२ | सूतिकेला कर्माचा अनधिकार | ५१२ |
| सहगमन असतां पाक, आशौचादिनिर्णय | ४८३ | प्रयोगपारिजातादिमत | ५१२ |
| पिंडदानादिविधि | ४८३ | मृताशौच | ५१४ |
| अनेक श्राद्धें एक दिवशीं प्राप्त असतां निर्णय | ४८४ | कश्चिन्मत | ५१४ |
| श्राद्धांगतर्पणाचा निर्णय | ४८६ | नामकरणोत्तर दंतोत्पत्तीच्या पूर्वीचें आशौच ... | ५१६ |
| कचित् तर्पणाविषयीं विशेष | ४८६ | मातापितरांना दशाहोर्ष्यं मृते त्रिरात्रादि | ५१७ |
| तर्पणाचा विधि | ४८७ | चौलोत्तर बागदानाच्या पूर्वी कन्येचें आशौच ... | ५१८ |
| शिलतर्पणाचा निषेध | ४८८ | श्रद्धाचें आशौच | ५१८ |
| वृद्धिश्राद्धाचा निर्णय | ४८९ | अनुपनीतमृताविषयीं थोडा विचार | ५१८ |
| तीन वृद्धिश्राद्धांचा काल | ४९० | याविषयीं देवयानिकनिबंधांतील विशेष | ५१९ |
| वृद्धिश्राद्धांत देवताक्रम | ४९१ | अनुपनीताच्या श्रद्धाप्रमाणें सर्व क्रिया | ५२० |
| गोयीदिमातृपूजापूर्वक वृद्धिश्राद्ध | ४९२ | ब्राह्मणादिजातीचें आशौच | ५२१ |
| गोयीदि माता | ४९२ | क्षीश्रद्धाविषयीं विचार | ५२१ |
| कचित्स्थळीं वृद्धिश्राद्धाचा निषेध | ४९३ | आशौचसंकोच पक्ष | ५२२ |
| वृद्धिश्राद्धाविषयीं अधिकारी | ४९४ | दत्त, कीत, कृत्रिमादिपुत्रांचें व अहीनवर्णगामिनी | |
| समावर्तन, विवाह यांविषयीं | ४९५ | स्त्रियांचें आशौच | ५२४ |
| जीवत्पितृकाला विशेष विचार | ४९५ | पितृमरणे दत्तकादिकांना आशौच | ५२४ |
| बांशीश्राद्धाची इतिकर्तव्यता | ४९६ | विवाहित कन्यांचें आशौच | ५२५ |
| येथें पिंडांचा निर्णय | ४९७ | दंतोत्पत्तीच्या पूर्वी कन्यांचें आशौच | ५२५ |
| बांशीश्राद्धाचा क्रम (विधि) | ४९८ | आचार्यादिकांचें त्रिरात्रादि आशौच | ५२६ |
| जीवत्पितृकानें करावयाच्या श्राद्धाचा निर्णय ... | ४९९ | आपल्या घरांत परकीय मृत असतां | ५२८ |
| पतितसंन्यस्तपितृकाचा निर्णय | ५०० | खगृहांत मातृव्यस्नादि मृत असतां | ५२८ |
| जीवत्पितृकाला गयादितोर्थ प्राप्त असतां | ५०० | क्रियाकर्तृज्ञनिमित्तक आशौच | ५२९ |
| पितामहादि जीवंत असतां निर्णय | ५०१ | बालग्रस्त, यति इत्यादिकांचें सवःशौच | ५२९ |
| पित्रादि स्त्रिये जीवंत असतां | ५०२ | मुद्धमृताचें सवःशौच | ५२९ |
| स्निग्धास्निग्धांचा निर्णय | ५०३ | मृतनिर्हरणनिमित्तक आशौच | ५३० |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| सिद्धनितमितक आशौच | ५३१ | सर्पसंस्काराचा विधि | ५६६ |
| आशौचाचें अन्नभक्षणनितमितक आशौच | ५३२ | क्रत्वित् जीवताचेंही अल्पकर्म व आशौच | ५६७ |
| दासादिकांस आशौच | ५३३ | कृतचटस्फोटाचा संग्रहविधि... .. | ५६८ |
| आशौचाविषयीं रात्रीचा निर्णय | ५३४ | अल्पकर्म | ५६९ |
| अतिकांत आशौच | ५३५ | आसन्नमरण असतां दानादिविधि | ५७० |
| देशांतरे आशौच | ५३५ | दुर्मरणाविषयीं प्रायश्चित्त | ५७० |
| आशौचसंपात असतां निर्णय | ५३६ | रात्रीं मृत असतां वपनादिप्रकार | ५७१ |
| क्रत्वित् अल्पकालानेंही दीर्घकालाशौचनिवृत्ति | ५३९ | साम्निकाला विशेष | ५७२ |
| इतर मंत्रकारांचें मत... .. | ५४० | पत्नीविषयीं तसेंच | ५७३ |
| मातापित्याच्या परस्पराशौचांत परस्पर मृत असतां | ५४२ | याचें तत्त्व | ५७४ |
| शुद्धीताशौच पुत्रविषये निर्णय | ५४३ | आधानोत्तर द्वितीय विवाह करून यजमान मृत असतां... .. | ५७५ |
| पूर्वशेषानें शुद्धीचें अपवादांतर | ५४३ | स्मार्तिकाविषयीं | ५७६ |
| आशौचाचा अपवाद | ५४४ | षट्पिंडदान | ५७७ |
| कितीएक कल्यांना (महाबारी इत्यादिकांस) आशौच नाहीं... .. | ५४५ | प्रेताला ज्ञान, अलंकार वगैरे | ५७७ |
| कितीएक कर्माविषयीं आशौच नाहीं... .. | ५४६ | दंपती एककालीं मृत असतां | ५७८ |
| दुसरा अपवाद | ५४७ | उदकदानविधि | ५७८ |
| होमाविषयींचा खरा प्रकार | ५४८ | तर्पणप्रकार... .. | ५७९ |
| संध्यादिकर्माविषयींही अपवाद | ५४९ | आशौचांत नियम | ५८० |
| कितीएक इत्यांविषयीं आशौच नाहीं | ५५० | लवणक्षारादिवर्जन | ५८१ |
| कितीएक मृतदोषाविषयीं आशौच नाहीं | ५५० | आशौचांत्यदिवशीं | ५८१ |
| पतितांचीं दाहादिक कर्मे बुद्धिपूर्वक केलीं असतां... .. | ५५१ | प्रेताचे पिंडांचा निर्णय | ५८२ |
| आहिताग्निप्रेताला विशेष | ५५१ | दाहकल्याणें दशाहकिया करणें | ५८३ |
| प्रमादानें चांडालादिकानें मृत असतां | ५५१ | दशाह क्रियेचें फल | ५८४ |
| दुर्मरणानें मृत असतां दानादिक | ५५२ | उदक-दुग्धदान | ५८४ |
| शास्त्रविहितजलादिमरण असतां दोषाभाव | ५५३ | दहा दिवसांत दर्श असतां निर्णय | ५८५ |
| हें वृद्धादिमरण कलियुगांत निषिद्ध... .. | ५५४ | अस्थिसंचय | ५८६ |
| प्रयागातील मरणाविषयीं | ५५५ | अस्थिसंचयनश्राद्ध | ५८६ |
| शास्त्रविहित मरणाविषयीं दशाहाशौच | ५५६ | तीर्थांत अस्थिक्षेपाचा विधि... .. | ५८७ |
| वर्षामध्ये कृत्ये | ५५६ | शौनकोक अस्थिक्षेपविधि | ५८८ |
| आत्मघातादिप्रायश्चित्त, नारायणबलि वगैरे... .. | ५५७ | नवश्राद्धप्रमाण | ५८९ |
| वसितोदकाचा विधि... .. | ५५८ | नवश्राद्धविधि | ५८९ |
| नारायणबलीचा विधि | ५५९ | नवश्राद्धांत वर्ज्य | ५९० |
| सर्पमृताचा विधि | ५६० | आशौचांत्यदिने कृत्य... .. | ५९१ |
| विधानैककन आशौचाभाष | ५६१ | एकादशाह कृत्याचा निर्णय | ५९२ |
| यतीविषयीं नारायणबलि | ५६१ | एकोद्दिष्टाचा काळ | ५९३ |
| शौनकोक नारायणबलिविधि... .. | ५६२ | एकोद्दिष्टाचा विधि | ५९४ |
| कृतजीवच्छाद मृत असतां | ५६३ | श्रुतोत्सर्ग | ५९५ |
| आहिताग्नि प्रवाधांत मृत असतां | ५६३ | पददान | ५९६ |
| अस्थिदाह; पणसरदाहविधि | ५६३ | शय्यादान | ५९७ |
| मिरमिकाचाही अस्थ्यादिदाह | ५६४ | उदकुंभश्राद्ध | ५९८ |
| अभिहोम्याचें पूर्ण आशौच, इतरांचें तीन दिवस | ५६४ | मासिके | ५९९ |
| प्रेतसंस्काराविषयीं काळ | ५६४ | ऊनमासिकांत वर्ज्य... .. | ६०० |
| जीवताचें प्रेतकर्म केले असतां | ५६५ | ऊनमासिकांचा काळ... .. | ६०० |

| विषय. | पृष्ठ. | विषय. | पृष्ठ. |
|--|--------|--|--------|
| अक्षय्याविषयी मासिकांचा काल | ६०१ | स्त्रियांच्या सहगमनाचा विधि | ६२३ |
| एककालीं कर्तव्य असतां पाकादिविचार | ६०२ | ब्राह्मणीला पृथक्कृतिचीचा निषेध | ६२४ |
| वृद्धीचाचून अपकर्ष असतां पुनःकरण | ६०३ | क्षत्रियादिकांना पृथक्कृति... .. | ६२४ |
| संपिंडीकरितां अपकर्ष केला तरी पुनः वृद्धीकरितां अपकर्ष | ६०३ | सहगमनाविषयीं इतर निर्णय | ६२५ |
| वृद्धीचाचून अपकर्षाविषयीं दोष | ६०३ | गर्भिण्यादिकांस सहगमनाचा निषेध | ६२५ |
| अंतरित मासिकादिक पुढच्याबरोबर करणें... .. | ६०४ | रजस्वलेच्या सहगमनाचा प्रकार | ६२५ |
| संपिंडीचा विचार | ६०४ | अग्निप्रवेशाविषयीं शक्ति नसतां | ६२६ |
| सामिकाला संपिंडीचा काल | ६०४ | विधवेचे धर्म... .. | ६२६ |
| निरमिकाला संपिंडीचा काल... .. | ६०५ | संन्यास सांगतो | ६२७ |
| दोषांनाही संपिंडीचे गौण काल | ६०६ | संन्यास चार प्रकारचा | ६२८ |
| वृद्धिशब्दानें कोणते संस्कार घ्यावे याचा विचार... .. | ६०६ | संन्यासाचा विधि | ६२९ |
| संपिंडीस द्वादशाहाचें प्राशस्त्य | ६०७ | आठ आर्दे व त्यांच्या देवता | ६२९ |
| संपिंडीचे इतर काल... .. | ६०८ | अनमिकाला अग्नीचें उत्पादन वगैरे | ६२९ |
| पुत्र असतां दुसऱ्यास अनधिकार | ६०८ | संन्यास घेण्याचा क्रम | ६३० |
| पुत्रांमध्ये ज्येष्ठालाच अधिकार | ६०८ | विरजाहोम | ६३१ |
| आवश्यक वृद्धि असतां कनिष्ठादिकांनाही अधिकार | ६०९ | अग्निममारोप उपवेशादिविधि | ६३२ |
| वृद्धीचाचून कनिष्ठानें केलें असतां पुनः ज्येष्ठाला क- ण्याविषयीं मत | ६०९ | यतिधर्म | ६३३ |
| उलट क्रमानें मरण असतां पिंडांचा विचार | ६०९ | संन्याशाची भिक्षा | ६३३ |
| असंपिंडीकृतांबरोबरही पित्याचें संपिंडन | ६१० | संन्याशाचा वास | ६३३ |
| पितामहादिकांच्या संपिंडनादिकांचा निर्णय... .. | ६११ | संन्याशास अवश्य कर्तव्य व निषिद्ध | ६३४ |
| स्त्रियांच्या संपिंडीचा निर्णय | ६११ | संन्याशाचा संस्कार | ६३५ |
| अन्वारोहण असतां संपिंडनाचा निर्णय | ६१२ | ग्रंथकाराचें नमन व प्रपितामहादिकांचें स्मरण आणि ग्रंथाचा काल वगैरे | ६३६ |
| आसुरादिविवाह असतां स्त्रियांच्या संपिंडनाचा विचार | ६१३ | परिशिष्टविषय. | |
| निपुत्रिक, ब्रह्मचारी इत्यादिकांच्या संपिंडनाचा विचार | ६१३ | कुच्छ्रादिकांचीं लक्षणे | ६३७ |
| संपिंडनाचा विधि | ६१४ | प्राजापत्यकुच्छ्राचें लक्षण | ६३८ |
| पिता मृत असतां प्रथम वर्षी निषिद्ध | ६१५ | अतिकुच्छ्रलक्षण | ६३८ |
| पत्नी इत्यादिकांच्या श्राद्धाविषयीं निषेधाचा अपवाद | ६१६ | कुच्छ्रातिकुच्छ्र | ६३९ |
| वृद्धीसाठीं संपिंडनापकर्ष असतां प्रथम वर्षीही दर्शादि श्राद्ध करावें | ६१६ | तप्तकुच्छ्र | ६४० |
| याविषयींचा खरा प्रकार | ६१६ | सांतपन | ६४० |
| आतां विधानें सांगतो | ६१७ | महासांतपन | ६४२ |
| पंचकांत मृताचें विधान | ६१८ | पराक | ६४२ |
| ब्रह्मचारी मृत असतां विधान | ६१९ | यावकव्रत | ६४२ |
| कुष्ठिमृताविषयीं सांगतो | ६२० | पयोव्रत | ६४२ |
| रजस्वलेच्या मरणाविषयीं सांगतो | ६२१ | चांद्रायण | ६४३ |
| याविषयीं प्रायश्चित्त | ६२१ | पिपीलिकामध्य चांद्रायण | ६४३ |
| गर्भिणीच्या मरणाविषयीं सांगतो | ६२२ | यवमध्य चांद्रायण | ६४४ |
| | | यतिचांद्रायणादिक | ६४५ |
| | | कुच्छ्रचांद्रायणांची इतिकर्तव्यता | ६४६ |

निर्णयसिंधु-

प्राकृत भाषांतरसहित.

प्रथम परिच्छेद.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

यन्नामग्रहणाद्देवा अपि मंगलमायुवन् ॥ ऋद्विसिद्धोः प्रदातारं तं नमामि गजाननम् ॥ १ ॥
अगाधं दुस्तरं सिंधुं तर्तुं निर्णयपूर्वकम् ॥ विरचित्ये बालबोधं तरणिं देशभाषया ॥ २ ॥
अध्यादितरणीभिर्यः पारं गंतुं न शक्यते ॥ साधारणैः स हस्ताभ्यां तर्तुमिच्छेद्यथा पुमान् ॥ ३ ॥
उपहासास्पदं यानि तथैवाहं निराश्रयः ॥ तरणिं कर्तुमुत्सेहे सहायो हरिरस्तु मे ॥ ४ ॥

अशी विज्ञापना करून निर्णयसिंधूच्या मराठी टीकेला आरंभ करितों.

कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥ विश्रामित्रान्ववायव्रततिसमालंबिशालिनं वंदे ॥ १ ॥

कारुण्याचें मुख्य आस्पद (स्थान), सीतारूप वल्लीनें समन्वित, विश्रामित्राची गोत्ररूप जी वल्ली तिला आश्रयभूत असा जो रामरूप वृक्ष त्याला नमस्कार करितों. ॥ १ ॥

लक्ष्मीमहायं कल्पद्रुतलरंजितगोकुलम् ॥ वर्हापीडं घनश्यामं महः किंचिदुपास्महे ॥ २ ॥

लक्ष्मीला महायभूत किंवा लक्ष्मी आहे महाय (वरोवर) ज्याच्या अंमं (लक्ष्मीगहिन), कल्पवृक्षाच्या तलांनीं अनु-
रंजित केले आहे गोकुल ज्यानें अंमं, मयूरपिच्छ-भूषणानें युक्त, मजल मेघाप्रमाणें श्यामवर्ण, अशा एक प्रकारच्या तेजावी
आम्हीं उपासना करितों. ॥ २ ॥

वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥ पितामहं हरिं वंदे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥

वेदप्रतिपाद्य धर्माच्या संरक्षणाकरितां मायेच्या योगानें मनुष्यरूप धारण करणारा साक्षात् हरि असा जो आमचा (श्रव-
कल्याचा) पितामह भट्टनारायण (नारायणभट्ट) त्याला नमस्कार करितों. ॥ ३ ॥

यत्पादमंस्मृतिः सर्वमंगलप्रतिभूर्मता ॥ तान् भट्टरामकृष्णाख्यान् श्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥

ज्याच्या पायांचें स्मरण सर्वे मंगलांना जामिनाप्रमाणें साधन करणारें आहे त्या भट्टरामकृष्णसंज्ञक पित्याला नमस्कार
करितों. ॥ ४ ॥

सर्वकल्याणसंदोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥ द्युनदीमोदरीमंवामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥

जिचे पाय सर्वे प्रकारच्या कल्याणांच्या समुदायांचें निदान (आदिकारण) आहे, व जी भागीरथीची सोदर भगिनीरूप
(परम पवित्र) उमानासक माना तिला आदरपूर्वक नमस्कार करितों. ॥ ५ ॥

विंदुमाधवपादाब्जगोलंबीकृतविग्रहम् ॥ ज्यायांमं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपास्महे ॥ ६ ॥

भगवान् विंदुमाधवाच्या चरणकमली भुंजाप्रमाणें लुब्ध केला आहे देह ज्यानें असा जो आमचा (ग्रंथकर्त्याचा) ज्येष्ठ
भ्राता दिवाकरभट्ट त्याची आम्हीं (कमलाकरभट्ट) उपासना करितों. ॥ ६ ॥

हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां परेषाम् ॥

श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकराख्यः काले यथामति विनिर्णयमातनोति ॥ ७ ॥

हेमाद्रि व माधव यांच्या मतांचा उत्तम प्रकारानें विचार करून व इतर धर्मशास्त्रकारांच्या तत्त्वांचें आलोचन करून
श्रीरामकृष्णभटांचा पुत्र कमलाकर कालाविषयी यथामति निर्णय करितो. ॥ ७ ॥

१ ह्या पहिल्या श्लोकाथोवरून ग्रंथकार (कमलाकरभट्ट) विश्रामित्रगोत्री व रामोपासक होता, असें समजतें. यावरून विश्रामि-
त्रानें इतर धर्मांचा त्याग करून ब्राह्मणत्व संपादिलें असें जे उत्तम ब्राह्मणत्व तें राखण्याविषयी व त्याच्या यातयामतेचा निरास
होण्याविषयी कारणभूत जे धर्म त्यांचा निर्णय त्या विश्रामित्रगोत्री उत्पन्न असे आम्हां करितों, आणि छिद्ररहित धर्मोचरण कर-
णारा जो राम त्याच्याच आश्रयानें आमच्या असीष्ट अर्थाची (अच्छिद्रधर्मप्रतिपादनाची) सिद्धि होईल, इत्यादि समिष्टां होवें,

संति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबंधाश्च कोटिशः ॥ तथाप्यमुष्य वैदग्धी केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥

जरी कालनिर्णय जाणणारे विद्वान् व त्या विद्वानांचे ग्रंथ कोट्यवधि आहेत तथापि या ग्रंथाची कौशल्यशैली जाणण्या-विषयी कितीएक विद्वान् समर्थ होतात. ॥ ८ ॥

तत्रसंक्षेपतःकालःषोढा अब्दोयनमृतुर्मासःपक्षोदिवसइति तत्राब्दोमाधवमतेपंचधा सावनःसौरश्चांद्रो नाक्षत्रोर्बाहस्पत्यइति गुरोर्मध्यमराशिभोगेनर्बाहस्पत्यः सचज्योतिःशास्त्रेप्रसिद्धः हेमाद्रिस्त्वंत्ययोर्धर्म-शास्त्रेऽनुपयोगात्तिस्त्रएवविधाआह तत्रवक्ष्यमाणैःसावनादिद्वादशमासैस्तत्तद्वद्म मलमासेतुसतिषष्टिदिना-त्मकएको मासइतिद्वादशमासत्वमविरुद्धम् तथाचऽव्यासः पश्चादुदिवसैर्मासःकथितोवाद्रायणैरिति ।

यानंतर प्रथमतः कालाचे भेद सांगतो.

संक्षेपेकरून काल सहा प्रकारचा—तो असा-वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष आणि दिवस. त्यामध्ये माधवमती वर्ष पांच प्रकारचे तें असे-सावन, सौर, चंद्र, नाक्षत्र आणि बाहस्पत्य. बृहस्पतीच्या मध्यमराशिभोगानें (मध्यमगतीने) जें वर्ष होतें तें बाहस्पत्य. (म्हणजे मेषादिक बारा राशींतून कोणताही एक राशि बृहस्पतीने मध्यम गतीकरून भुक्त असतां जें वर्ष होतें त्याला बाहस्पत्य वर्ष म्हणतात.) तें वर्ष ज्योतिःशास्त्रांत प्रसिद्ध आहे. हे जे वर वर्षाचे पांच प्रकार सांगितले त्यांपैकी नाक्षत्र वर्ष व बाहस्पत्य वर्ष ह्या दोहोंचा उपयोग धर्मशास्त्रांत फारसा नाही, यास्तव हेमाद्रि तर सावन, सौर व चंद्र हे तीनच प्रकार सांगतो. त्यांमध्ये एथें पुढें सांगावयाचे जे सावनादिक मास ते बारा बारा झाले म्हणजे तें तें वर्ष होतें. मलमास आला असतां साठ दिवसांचा एक मास होतो म्हणून बारा मास झाले असतांच वर्ष होतें, त्याला कोणताही विरोध नाही. तेंच व्यास सांगतो—“(अधिक मास असतां) साठ दिवसांचा एक मास वाद्रायणांनीं मांनिवला आहे.”

तत्रचांद्रोदःषष्टिभेदः तदाहगार्ग्यः “प्रभवोविभवःशुक्लःप्रमोदोथप्रजापतिः अंगिराःश्रीमुखोभावोयु-वाधातेश्वरस्तथा बहुधान्यःप्रमाथीचविक्रमोऽथवृषस्तथा चित्रभानुःसुभानुश्चतारणःपार्थिवोऽव्ययः सर्वजि-त्सर्वधारीचविरोधीविकृतिःखरः नंदनोविजयश्चैवजयोमन्मथदुर्मुखौ हेमलंबोविलंबोऽथविकारीशार्वरीऽवः शुभकृच्छोभनःक्रोधीविश्वावसुपराभवौ प्लवंगःकीलकःसौम्यःसाधारणविरोधकृत् परिधावीप्रमादीच-भानंदोराक्षसोऽनलः पिंगलःकालयुक्तश्चसिद्धार्थीरौद्रदुर्मती दुंदुभीरुधियोद्गारीरक्ताक्षीक्रोधनःक्षयः’ इति ॥

त्यांमध्ये चांद्रवर्षाचे साठ भेद (नामें) आहेत. ते गार्ग्य सांगतो—“प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, शुवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नंदन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलंब, विलंब, विकारी, शार्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्. परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्र, दुर्मती, दुंदुभि, रुधिराद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन, क्षय. (याप्रमाणें संवत्सरांचीं नामें साठ जाणावीं).

यद्यपिज्योतिषेगुरोर्मध्यमराशिभोगेनप्रभवादीनांमाघादौप्रवृत्तिरुक्ता तथापिप्रभवादीनांचांद्रत्वमप्यस्ति चांद्राणांप्रभवादीनांपंचकेपंचकेयुगेइतिमाधवोक्तेःतेनचांद्रप्रभवादिश्चैत्रसितेप्रवर्तते बाहस्पत्यस्तुमाघादौ ।

जरी ज्योतिःशास्त्रांत बृहस्पतीच्या मध्यम राशिभोगेंकरून (मध्यम गतीकरून) प्रभवादि संवत्सरांची प्रवृत्ति (आरंभ) माघशुक्लप्रतिपदेपासून सांगितली आहे; तथापि प्रभव, विभव इत्यादिक जीं साठ संवत्सरांनां तीं चांद्रवर्षांचींही नामें आहेत. कारण, “प्रभव इत्यादिक जे चांद्र संवत्सर त्यांच्याच-संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर व इद्वत्सर अशा शुभ (समूह) संज्ञक पंचकापंचकाचे ठायीं” होतो असें माधवाचें वचन आहे. तेणेंकरून प्रभव, विभव इत्यादिक चांद्र-वर्षांची प्रवृत्ति (आरंभ) होणें ती चैत्रशुक्लप्रतिपदेस होते. बाहस्पत्य वर्षांची प्रवृत्ति तर माघशुक्लपक्षांत होते.

तथोर्विनियोगोज्योतिर्निबंधप्रश्नसिद्धांते व्यावहारिकसंज्ञोऽयंकालःस्मृत्यादिकर्मसु योज्यःसर्वत्र तत्रापिऽबोवानर्मदोत्तरे आर्ष्टिषेणः स्मरेत्सर्वत्रकर्मादौचांद्रसंवत्सरंसदा नान्ययस्माद्वत्सरादौप्रवृत्ति-स्तस्यकीर्तितेति अयनंतुसौरतुत्रयात्मकं सौरतुत्रितयंप्रदिष्टमयनमितिदीपिकोक्तेः तद्विविधम् दक्षिणमुत्त-रंचेति कर्कसंक्रांतिर्दक्षिणायनं मकरंत्यम् अनयोर्विनियोगमाहमदनरत्नेसत्यव्रतः देवतारामवाप्यादि-प्रतिष्ठोदबुखेरवौ दक्षिणाशामुखेकुर्वन्नतत्फलमवाप्नुयात् वैखानसः मातृभैरववाराहनारसिंहत्रिविक्रमाः

महिषासुरहंश्यश्चस्थाप्यावैदक्षिणायने वैशब्दोप्यर्थे नतुदक्षिणायनएवेतिनियमः पूर्ववचनेदक्षिणायनेनिषि-
द्धायादेवप्रतिष्ठायादेवविशेषेप्रतिप्रसवमात्रात् ।

चांद्र व बार्हस्पत्य वर्षाचा विनियोग (उपयोग) ज्योतिर्निबंधांत-ब्रह्मसिद्धांतांत सांगतो—“व्यावहारिक संज्ञक असा हा काल (चांद्रवर्ष) स्मृत्युक्तादि कर्माचेठायीं संकल्पकालीं सर्वदेशांत योजावा; नमंदेच्या उत्तरप्रदेशी चांद्र अथवा बार्हस्पत्य योजावा.” आष्टिषेण म्हणतो—“सर्वत्र ठिकाणीं कर्माच्या आरंभीं संकल्पांत चांद्र वर्षाचाच उच्चार करावा, इतर वर्षाचा करूं नये: कारण, चांद्रवर्षाची प्रवृत्ति चैत्रशुक्लप्रातेपदेरा सांगितली आहे.” सौरऋतु तीन म्हणजे एक अयन होतें. कारण, ‘सौरऋतु तीन तें अयन म्हटलें आहे’ अशी दीपिकेची उक्ति आहे. तें अयन दोन प्रकारचें—एक दक्षिणायन आणि दुसरें उत्तरायण. कर्कसंक्रांतीपासून सहा संक्रांति (म्हणजे ४-९) पर्यंत दक्षिणायन. मकरसंक्रांतीपासून मिथुन-संक्रांतीपर्यंत उत्तरायण. ह्या दोन अयनांचा उपयोग मदनरत्नांत-सत्यव्रत सांगतो—देवता, आराम, वापी, कूप, तलाव इत्यादिकांची प्रतिष्ठा (अर्चा व उत्सर्ग हीं कर्मे) रवि उत्तरायणस्थ असतां करावीं. दक्षिणायनस्थ रवि असतां हीं पूर्वोक्त कर्मे करणाराग त्याचें फल लाभत नाहीं.” वैखानस म्हणतो—“मातृका, भैरव, वाराह, नारसिंह, त्रिविक्रम, देवी, ह्यांची (उपदेवतांची) दक्षिणायनांतही स्थापना करावी.” ह्या वाक्यांत ‘वै’ शब्द आहे तो अप्यर्थी आहे, यावरून दक्षिणायनांतच स्थापना करावी अगा नियम नाहीं. कारण ‘देवतारामवाप्यादि’ ह्या पूर्ववचनेकरून दक्षिणायनांत निषिद्ध केलेल्या देवप्रतिष्ठेचा “मातृभैरववाराह” ह्या वाक्यानें प्रतिप्रसव (निषेधवाध) मात्र सांगितला. म्हणजे माता, भैरव, वाराह इत्यादिकांची प्रतिष्ठा दक्षिणायनांतही करावी, व उत्तरायणांत करावीच इतकें सूचित केलें आहे.

रत्नमालायाम् गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाहचौलव्रतबंधपूर्वम् सौम्यायनेकर्मशुभंविधेयंयद्रहितंतत्
खलुदक्षिणेधेति अस्यापवादःकाशीखंडे सदाकृतयुगंचास्तुसदाचास्तुत्तरायणम् सदामहोदयश्चास्तुकाश्यां
निवसतांसतां इत्ययनम् ।

रत्नमालेंत—“गृहप्रवेश, देवांची अर्चा, विवाह, चौल, उपनयन इत्यादिक शुभकर्म उत्तरायणांत करावीं; आणि जीं अशुभ कर्म तीं दक्षिणायनांत करावीं.” याचा अपवाद काशीखंडांत सांगितला आहे—“काशीनिवासी लोकांना सदा कृतयुग अगो, सदा उत्तरायण अगो, आणि सदा महोदय पर्व असो.” याप्रमाणें अयननिर्णय जाणावा.

ऋतुर्मासद्वयात्मा मलमामेनुमासद्वयात्मकण्कोमासस्तेनमासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम् सद्देधा चांद्रःसौरश्च
चैत्रारंभोवसंतादिश्चांद्रः मीनारंभोमेषारंभोवामौरः मीनमेपयोर्मेषपयोर्वावसंतइतिवौधायनोक्तेः अनयोर्वि-
नियोगमाहत्रिकांडमंडनः श्रौतस्मार्तक्रियाःसर्वाःकुर्याच्चांद्रमसर्तुपु तदभावेतुसौरर्तुष्वित्योतिर्विदामं-
तम् सद्द्विबोधोपिषोढा वसंतोग्रीष्मोवर्षाःशरद्धेमंतःशिशिरः इत्युतुः ।

आतां ऋतु सांगतो—दोन मास म्हणजे एक ऋतु होतो. मलमाम असतां शुद्ध व मलमास मिळून एक मास होतो, म्हणून दोन मास म्हणजे एक ऋतु असें जें सांगितलें तें विरुद्ध नाहीं. तो ऋतु दोन प्रकारचा—चांद्र आणि सौर—चैत्रापासून आरंभ करून दोन दोन महिन्यांचा एकेक ऋतु असा मासपरलें जो वसंतादिक ऋतु तो चांद्र ऋतु. मीन-संक्रांतीपासून किंवा मेषसंक्रांतीपासून दोन दोन राशींस सूर्य अमतां एकेक ऋतु होतो, असा जो संक्रांतिपरलें ऋतु तो सौर ऋतु. कारण, “मान व मेष मिळून वसंत ऋतु; किंवा मेष व वृषभ मिळून वसंत ऋतु होतो” अशी बौधायनाची उक्ति आहे. ह्या सौर व चांद्र ऋतूंचा विनियोग त्रिकांडमंडन सांगतो—“श्रौत, स्मार्त इत्यादिक सर्व कर्मांचेठायीं संकल्पांत उच्चार करणें तो चांद्र ऋतूचा करावा, हें प्रशस्त. चांद्र ऋतूच्या अभावीं सौर ऋतूचा उच्चार करावा असें ज्योतिःशास्त्रज्ञांचें मत आहे.” तो दोन्ही प्रकारचा ऋतु प्रत्येक सहा प्रकारचा आहे, ते प्रकार असे—वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत आणि शिशिर. याप्रमाणें ऋतुनिर्णय जाणावा.

मासश्चतुर्था सावनःसौरश्चांद्रोनाक्षत्रइति त्रिंशद्दिनःसावनः अर्कसंक्रांतेःसंक्रांलवधिःसौरः यद्यपि हेमा-
द्रिमाधवकालाददर्शाद्यलोचनेनमेपसंक्रांत्यांसमाप्तामावात्यकत्वंचैत्रत्वमितिलक्षणाच्चेपसंक्रांतेश्चैत्रत्वं-
प्रतीयते तथापि मेपसंक्रमेदर्शद्वयेसतिवैशाखस्यैवाधिक्यात्तत्पूर्वभावित्वेनमीनस्यैवचैत्रत्वयुक्तं एवंमेचाद्यो वै
शाखाद्याः अतोमीनसंक्रांत्यामधिगतपौर्णमासिकत्वम् आद्यतिथिकत्वंवाचैत्रत्वमितिलक्षणात् मीनएवसौ-
रश्चैत्रः एवंवैशाखाद्योपिमेषाद्याज्ञेयाः ।

आतां मास सांगतो—मास चार प्रकारचा—सावनमास, सौरमास, चांद्रमास आणि नाक्षत्रमास. तीस वि-

सौरमास तो सौरमास. सूर्यसंक्रांतीला आरंभ करून पुढच्या सूर्यसंक्रांतीच्या आरंभापर्यंत जो मास तो सौरमास. जरी हेमाद्रि, माघव, कालादर्श इत्यादि ग्रंथांचें आलोचन (विचार) केल्यानें, आणि मेष संक्रांतींत समाप्त आहे अमावास्या ज्याची तो चैत्र, अशा लक्षणावरूनही मेष संक्रांतीला चैत्रच आहे, असें समजतें, तथापि मेषसंक्रांतींत दोन अमावास्या आल्या असतां, मेषसंक्रांतींत दुसरी अमावास्या आलेला जो मास तो अधिक वैशाखच आहे, म्हणून त्याच्या पूर्वीचा मीनसंक्रांति असलेला तो चैत्र आहे, म्हणून मीनाला चैत्र म्हणणें युक्त आहे. याचप्रमाणें मेषादिक ते वैशाखादि समजावे. आतां वरील लक्षणांला दोष येतो म्हणून, असें लक्षण करावें कीं, मीनसंक्रांतींत प्राप्त आहे पौर्णिमा ज्याची तो चैत्र—असें केलें तरी शुक्लपक्षांत मेषसंक्रांति झाली असतां, त्या ठिकाणीं हें लक्षण येणार नाही म्हणून निर्दोष लक्षण सांगतो—मीनसंक्रांतींत प्राप्त आहे आयतियि ज्याची तो चैत्र, असें लक्षण केलें आहे म्हणून मीनच सौर चैत्र होतो, याप्रमाणें वैशाखादिकही मेषादिक जाणावे.

सौरमासप्रसंगात्संक्रांतिर्निर्णयउच्यते तत्र पूर्वतोपिपरतोपिसंक्रमात्पुण्यकालघटिकास्तुषो-
डशेति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्तः विशेषस्तूच्यते अत्रमामकाःसंग्रहश्लोकाः प्रागूर्ध्वादशपूर्वतःषडव-
गिस्ताद्वत्पराःपूर्वतस्त्रिंशत्वोदशपूर्वतोथपरतःपूर्वाःपराःस्युदश पूर्वाःषोडशचोत्तराक्तुभुवःपश्चात्त्ववेदाःपुनः
पूर्वाःषोडशचोत्तराःपुनरथोपुण्यास्तुमेषादितः अस्यार्थः मेषेप्रागूर्ध्वचदशघटिकाःपुण्यकालः वृषेपूर्वाःषोडश
मिथुने पराःषोडश कर्केपूर्वास्त्रिंशत् सिंहेपूर्वाःषोडश कन्यायांपराःषोडश तुलायांप्रागूर्ध्वादश वृश्चिकेपूर्वाः-
षोडश धनुषिपराःषोडश मकरेचत्वारिंशत्पराः इदंचहेमाद्रिमनेनोक्तम् **माघवमने**त्वत्रपराविंशतिः
पुण्याः कुंभेपूर्वाःषोडश मीनेपराःषोडशेति याप्युत्तरापुण्यतमामयोक्तासायंभवेत्सायदिसापिपूर्वा पूर्वातु-
योक्तायदिसाविभातेसाप्युत्तरारात्रिनिषेधतःस्यात् अर्वाङ्निशीथाद्यदिसंक्रमःस्यात्पूर्वेहिपुण्यंपरतःपरेहि
आसन्नयामद्वयमेवपुण्यंनिशीथमध्येतुदिनद्वयंस्यात् कर्केष्वप्येवमितिह्युवाच**हेमाद्रिसूरिश्चतथापराकः**
ज्ञःप्रदोषेयदिवार्धरात्रेपरेहिपुण्यंत्वथकर्कटश्चेत् प्रभातकालेयदिवानिशीथेपूर्वेहिपुण्यंत्विति**माधवाचार्यः**
अत्रमूलवचनानि**माधवापराकहेमाद्रादिपुद्गलानि** ।

सौर मासाच्या प्रसंगानें संक्रांतिर्निर्णय सांगतो.

‘संक्रांतिप्रवेशापासून पूर्वी व पश्चात् सोळा सोळा घटिका पुण्यकाळ’ याप्रमाणें सर्व ग्रंथकारांनीं सामान्येंकरून पुण्यकाळ सांगितला आहे. विशेष सांगतो—एथें माझे संग्रह श्लोक—“मेषसंक्रांतीच्या पूर्व दहा व पर दहा घटिका पुण्यकाळ. वृषसंक्रांतीच्या पूर्व सोळा घटिका पुण्यकाळ. मिथुनसंक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. कर्कसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या तीस घटिका पुण्यकाळ. सिंहसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. कन्यासंक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. तुलासंक्रांतीच्या पूर्वीच्या १० व पुढच्या १० घटिका पुण्यकाळ. वृश्चिकसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या १६ घटिका. धनुःसंक्रांतीच्या पुढच्या १६ घटिका पुण्यकाळ. मकरसंक्रांतीच्या पुढच्या ४० घटिका. ह्या मकरसंक्रांतीच्या पुण्यकाळ घटिका हेमाद्रिमतीं सांगितल्या. माघवमतीं तर पुढच्या वीस घटिका पुण्यकाळ. कुंभसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या सोळा. मीनसंक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. ज्या संक्रांतीचा पुण्यकाळ, संक्रांति झाल्यावर पुढें सांगितला, ती संक्रांति सायंकाळीं होईल तर तिचाही पुण्यकाळ पूर्वी समजावा. आणि जिचा पर्वकाळ संक्रांति होण्याच्या पूर्वी सांगितला, ती प्रातःकाळीं होईल तर तिचा पर्वकाळ पुढें समजावा. कारण, पर्वकाळाचा रात्री निषेध आहे. मध्यरात्रीच्या पूर्वी संक्रांत होईल तर पूर्वदिवसाचें उत्तरार्ध पुण्यकाळ. मध्यरात्रीच्या पुढें संक्रांत होईल तर दुसऱ्या दिवसाचें पूर्वार्ध पुण्यकाळ. मध्यरात्रीचें संक्रांत होईल तर पूर्व दिवसाचें उत्तरार्ध आणि दुसऱ्या दिवसाचें पूर्वार्ध असा दोनही दिवशीं पुण्यकाळ. कर्क व मकर ह्या संक्रांतीचाही असाच निर्णय होतो, असें हेमाद्रि व अपराक सांगतात. मकरसंक्रांत प्रदोषकाळीं किंवा मध्यरात्रीं होईल तर दुसऱ्या दिवशीं पुण्यकाळ. कर्कसंक्रांत प्रातःकाळीं किंवा मध्यरात्रीं होईल तर पूर्वदिवशीं पुण्यकाळ, असें माधवाचार्य सांगतो.” ह्यांची मूलवचनें माघव, अपराक, हेमाद्रि इत्यादिक ग्रंथांत पहावीं.

सर्वेषुसंक्रांतिषुदानविशेषोहेमाद्रौदानकांडेउक्तः विश्वामित्रः मेषसंक्रमणेभानोर्मेषदानंमहा-
काळं वृषसंक्रमणेदानंगवांप्रोक्तंतथैवच बस्त्राभ्रपानदानानिमिथुनेविहितानितु घृतधेनुप्रदानंचकर्कटेपिविशि-
ष्यते ससुवर्णछत्रदानंसिंहेपिविहितंसदा कन्याप्रवेशेश्वाणांवेश्मनांदानमेवच तुलाप्रवेशेतिलानांगोरसा-
महापीडं अन्नकीचलितेभानौदीपदानंमहाफलं अन्नकीवृश्चिकः धनुःप्रवेशेश्वाणांयानानांचमहाफलं ज्ञाप-

प्रवेशेदारूणादानमग्नेस्तथैवच कुंभप्रवेशेदानंतुगवामंबुतृणस्यच मीनप्रवेशेस्थानानामालानामपिचोत्तममिति ।

यानंतर मेषादिसंक्रांतीचे ठायीं दानें सांगतो.

हेमाद्रीत-दानकांडांत—विश्वामित्र—मेषसंक्रांतीचे ठायीं भानूच्या मॅल्याचे दान करावें. वृषभसंक्रांतीचे ठायीं गोप्रदान सांगितलें आहे. मिथुनसंक्रांतीचे ठायीं वस्त्र, अन्न, पान इत्यादि दानें सांगितली आहेत. कर्कसंक्रांतीचे ठायीं घृतधेनूचें दान; सिंहसंक्रांतीचे ठायीं सुवर्ण व छत्र यांचें दान सदा विहित आहे. कन्यासंक्रांतीचे ठायीं वस्त्र, गृह यांचें दान; तुलासंक्रांतीचे ठायीं तिल, गोरस यांचें दान; वृश्चिकसंक्रांतीचे ठायीं दीपदान महाफल देणारें आहे. धनुःसंक्रांतीचे ठायीं वस्त्र व वाहनें यांचें दान महाफल देणारें आहे. मकरसंक्रांतीचे ठायीं काष्ठें, अग्नि यांचें दान करावें. कुंभसंक्रांतीचे ठायीं गायें, उदक, तृण यांचें दान विहित आहे. मीनसंक्रांतीचे ठायीं राहण्याचीं स्थानें, पुष्पमाला यांचें दान उत्तम आहे.

अत्रोपवासमाह**हेमाद्रावापस्तंबः** अयनेविपुवैचैवत्रिरात्रोपोषितोनरः स्नात्वायस्त्वर्चयेद्भानुं सर्वकामफलं भवेत् अशक्तौ वृद्धवसिष्ठः अयनेसंक्रमेचैवग्रहणेचंद्रसूर्ययोः अहोरात्रोपितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते अत्रोपवासः संक्रमदिने दानादितु पुण्यकालदिन इत्याचार्यचूडामणिः विधिलाघवात् पुण्यकालदिन एवोभयमिति वृद्धाः इदंच पुत्रिग्रहस्थातिरिक्तविषयं आदित्येह निसंक्रांतौ ग्रहणेचंद्रसूर्ययोः उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा तथेति जैमिनिवचनात् ।

संक्रांतीचे ठायीं उपोषण सांगतो—हेमाद्रीत-आपस्तंब—“अयन (कर्क व मकर) संक्रांति आणि विपुव (मेष, तुला) संक्रांति यांचे ठायीं जो मनुष्य त्रिरात्र उपोषण करून स्नान करून सूर्याची पूजा करील त्याला सर्व कामफल प्राप्त होईल.” त्रिरात्र उपोषणाविषयीं शक्ति नसेल तर—**वृद्धवसिष्ठ** म्हणतो—“अयनसंक्रांति आणि चंद्रसूर्याचें ग्रहण यांचे ठायीं अहोरात्र उपोषण करून स्नान करावें. म्हणजे गर्व पापांपासून मुक्त होतो.” संक्रांतिनिमित्तानें उपवास करणें तो संक्रांति-दिवशीं करावा, आणि दानादिक करणें तीं पुण्यकालदिवशीं करावीं, असें **आचार्यचूडामणि** सांगतो. दोघांचा मिळून एक विधि केला असतां लाघव येतें, म्हणून पुण्यकालदिवशींच उपोषण व दानादिक करावें असें **वृद्ध** सांगतात. हें उपोषण पुत्रवान् गृहस्थाश्रमां यांनं करू नयेः इतरांनीं करावें. कारण, “रविवार, संक्रांति, चंद्रसूर्यग्रहण, यांचे ठायीं पुत्रवान् गृहस्थाश्रमांनं उपोषण करूं नये” असें **जैमिनी**चें वचन आहे.

अत्रश्राद्धमुक्तं **हेमाद्रौ विष्णुधर्म** श्राद्धसंक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते अपराकैपिविष्णुः आवित्यसंक्रमणं विशेषेणायनद्वयं जन्मभमभ्युदयश्च एतांस्तु श्राद्धकालान्वैकाम्यानाह प्रजापतिरिति द्वादशाविद्विजैर्वर्गो गयनांशप्रवृत्तावपि पुण्यवक्तुमयनग्रहणमन्यथासंक्रमेणसिद्धेरयनग्रहणं व्यर्थं स्यादित्यपराकः **हेमाद्रावपि गालवः** अयनांशकतुल्येन कालेनैव स्फुटं भवेत् मृगकर्कादिगोसूर्येयाम्योदगयने सति तदा संक्रांतिकाले स्युः क्ताविष्णुपदादय इति अयनांशच्युतिरूपे संक्रांतिकाले विष्णुपदादयः प्रवर्तते तेन तत्प्रयुक्तं पुण्यकालादितत्रापि ज्ञेयमिति स एव न्यायस्त्वयौ तच्चेमपायनं वृषाय नमित्यादिसर्वत्र ज्ञेयं **माधवीयेपि जाबालिः** संक्रांतिपुयथा कालस्तदीयेप्ययने तथा अयने विशतिः पूर्वामकरे विशतिः परेति मकरायणे पूर्वा विशति षटिकाः पुण्याः मकरसंक्रांतौ तु पश्चाद्विशतिः पुण्याः अन्यत्रायने तत्संक्रांतिवदित्यर्थः ।

संक्रांतीचे ठायीं श्राद्ध करावें, असें सांगितलें आहे. **हेमाद्रीत-विष्णुधर्मात**—“सूर्यसंक्रांतीचे ठायीं श्राद्ध करणें प्रवृत्त होय.” **अपराकांतही-विष्णु** म्हणतो—“सूर्यसंक्रमण, विशेषकरून दोन अयनें, जन्मनक्षत्र, अभ्युदय (मांगलिक कमी) हे श्राद्धकाल काम्य (मनोरथ पूर्ण करणारे) होत असें प्रजापति सांगतो.” संक्रांतिप्रवेशापेक्षां बारा इत्यादि दिवस पूर्वी अयनांशप्रवृत्ति झाली असतांही त्या अयनांशप्रवृत्तीचे ठायीं पुण्य सांगण्यासाठीं वरील वचनांत अयनशब्दाचें ग्रहण केले आहे. असें नसेल तर संक्रमशब्दानेंच संक्रांतीचें ग्रहण झालें असतां अयनग्रहण व्यर्थ होईल, असें **अपराक** सांगतो. **हेमाद्रीतही-गालव** म्हणतो—मृग म्हणजे मकर राशीच्या आयक्षणी व कर्क राशीच्या आयक्षणी सूर्य गेला असतां जें उत्तरायण व दक्षिणायन होतें, त्यांत अयनांश वजा केले म्हणजे तें उत्तरायण व दक्षिणायन स्पष्ट होतें, त्या स्पष्ट केलेल्या अयनसंक्रांतीलाही (जे अयनांश असतील ते भोगण्याच्या पूर्वी अयनसंक्रांति होते, तेथें देखील) (संक्रांतीस असलेल्या)

१ संक्रांतिप्रवेशकालाच्या पूर्वी बारा दिवस अयनांशप्रवृत्ति पूर्वकाली होत असे, सांप्रतकाली ग्रहाववाच्या आधारेनं पाहिलें असतां संक्रांतिदिवसाच्या पूर्वी सुमारे २३ दिवस अयनांशप्रवृत्ति होते. तेंच उत्तरायण व दक्षिणायन स्पष्ट समजावें.

विष्णुपदादिक संज्ञा प्रवृत्त होतात, त्या विष्णुपदादिक संज्ञा असल्यामुळे जें पुण्यकालादि तें तेथेही जाणावें, अशी “अयनांशक०” ह्या वचनाची व्याख्या त्यानेच (हेमाद्रीनेच) केली आहे. तीं अयनें मेषायन, वृषायन, इत्यादि सर्व जाणावीं. **माधवीयांतही—जाबालि** म्हणतो—“जसा संक्रांतीचे ठायीं पुण्यकाळ तसाच संक्रांतीच्या अयनकालीही पुण्यकाळ जाणावा. मकरायणाचेठायीं पूर्वीच्या वीस घटिका पुण्यकाळ. आणि मकर संक्रांतीच्या पुढच्या वीस घटिका पुण्यकाळ इतका विशेष. इतर अयन पर्वकाल घटिका त्या त्या संक्रांतीप्रमाणें जाणाव्या.

विष्णुपदादिस्वरूपचर्चादीपिकायामुक्तम् हर्यग्रिर्वृषसिंहवृश्चिकघटेष्वर्कस्यः संक्रमः कन्यामीनधनुर्नृयुक्षुपडशीत्याख्यंतुलामेषयोः प्रोक्तं तद्विपुवंक्षयेयनमुदक्कर्काटकेदक्षिणमिति हर्यग्रिविष्णुपदम् नृयुक्मिथुनं अत्रचपिंडरहितं श्राद्धं कुर्यात् तथाचापराक्रेमात्स्ये अयनद्वितये श्राद्धं विपुवद्वितये तथा संक्रांतिपुत्रसर्वोसु पिंडनिर्वपणादत इति श्राद्धशूलपाणिस्त्वस्य निर्मूलत्वान् समूलत्वेपि ततः प्रभृति संक्रांतावुपरागादिपर्वसु त्रिपिंडमाचरेच्छाद्रमेकौ हिष्टं मृताहनीतिमात्स्योक्तेर्ग्रहणाग्रहणवद्विकल्पपेवत्याह तन्न अस्य पार्वणा नुवादकत्वेन पिंडाविधायकत्वात् पिंडोव्यक्तिः अन्यथैकपदे पिंडानुवादे त्रिविधौ वपदूर्तुः प्रथमभक्षवद्वैरूप्यापत्तेः तथाचोभयसमूलत्वेपिंडरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्युभयवचनयोरर्थः त्रिपिंडशब्देनैको हिष्टव्यावर्तनमात्रम् ।

विष्णुपदादिकांचें स्वरूप सांगतो—दीपिका—वृषभ, सिंह, वृश्चिक, कुंभ, ह्या संक्रांतींला **विष्णुपद** संज्ञा. मिथुन, कन्या, धनु, मीन ह्या संक्रांतींला **पडशीति** संज्ञा. मेष, तुला ह्यांना **विपुत्र** संज्ञा. मकरसंक्रांतीला **उदगयन**, आणि कर्कसंक्रांतीला **दक्षिणायन** अशा संज्ञा आहेत. श्लोकांत ‘नृयुक्’ पदाचा मिथुन हा अर्थ समजावा. ह्या संक्रांतीचे ठायीं पिंडरहित श्राद्ध करावें तेंच **अपराक्रीत-मात्स्य** संक्रांत सांगतो—“दोन अयनें, दोन विपुत्रे, आणि सर्व संक्रांती यांचे ठायीं पिंडरहित श्राद्ध करावें.” **श्राद्धशूलपाणि** तर असें म्हणतो कीं, हें वचन निर्मूल आहे म्हणून पिंडनिषेध नाही. कदाचित् तें वचन समूल जरी असेल तथापि “संपिंडीच्या पुढें संक्रांति, ग्रहण इत्यादि पर्वणीचे ठायीं त्रिपिंडश्राद्ध करावें, आणि मृतदिवशीं एकोद्दिष्ट करावें” असें **मात्स्य** वचन असल्यामुळे षोडशीपात्राच्या ग्रहणाचा जसा विकल्प आहे तसा पिंडनिर्वपणाचाही विकल्पच होतो, असें सांगतो; तें बरोबर नाही; कारण, “ततः प्रभृति” हें वचन पार्वणाचें अनुवादक आहे, म्हणजे इतर वचनांन जें पार्वण प्राप्त झालें, त्याचाच या वाक्यानें ‘त्रिपिंड’ या पदानें अनुवाद केला, त्रिपिंड म्हणजे तीन व्यक्ति (तीन पितर) यांचें करावें, अशा रीतीनें पार्वणाचा अनुवाद करणारें असल्यामुळे तें वचन पिंडविधायक होत नाही. असें न मानितां जर पिंडविधायक आहे असें मानिलें तर, श्राद्धशब्दाचा अर्थच पिंडदान व ब्राह्मणभोजन हा असल्यामुळे पिंड सिद्धच आहे म्हणून त्याचें विधान होत नाही. आतां पिंडाचा अनुवाद न करून त्रिलाचें विधान केलें तर जसा—‘वषट्कर्तुः प्रथमभक्षः’ असें वाक्य आहे, त्या वाक्यानें वषट्कर्ता म्हणजे होता त्याला हविःशेषाचें प्रथम भक्षण सांगितलें आहे, त्या ठिकाणीं इतर ऋत्विजांबरोबर होत्यालाही प्राप्त झालें जें भक्षण त्या भक्षणाला प्राथम्याचें विधान करावें, असें पूर्वपक्षी म्हणतो, परंतु तसें करणें म्हणजे ‘प्रथमभक्ष’ ह्या समास केलेल्या पदाचा ‘जो प्राप्त झालेला भक्ष तो प्रथम’ असा विच्छेद करून संबंध केला पाहिजे, तो केला तर, प्रथमभक्ष या पदाला विरूपता म्हणजे विच्छिन्नरूपता प्राप्त होईल, हें दूषण दिलें आहे, त्याचप्रमाणें एथें ‘जे पिंड ते तीन’ असा ‘त्रिपिंड’ याचा विच्छेद करून अन्वय केला असतां वैरूप्यता म्हणजे विच्छिन्नरूपतारूप दोष प्राप्त होईल हें तात्पर्य. (“अयनद्वितये श्राद्धं०;” “ततः प्रभृति संक्रांतौ”०) हीं दोनही वचनें समूल होत असें मानून पिंडरहित व पार्वणरूप असें श्राद्ध करावें, याप्रमाणें दोन वचनांचा व्यवस्थित अर्थ समजावा. आतां वरील ‘त्रिपिंड’ शब्दानें पार्वणाचा जो अनुवाद केला आहे तेणेंकरून एकोद्दिष्ट करूं मने इतकेंच सूचित होतें.

मंगलकृत्येषु विशेषमाहज्योतिर्निबंधेनारदः त्याज्याः सूर्यस्य संक्रांतेः पूर्वतः परतस्तथा विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडशषोडशेति एतत्पुण्यकालोपलक्षणं भानोः संक्रांतिभोगश्च कुलिकश्चार्थयामक इति ज्योतिःप्रकाशे वज्र्येषु परिगणनात् ।

१ मृतदिवशीं एकोद्दिष्ट करावें किंवा पार्वण करावें त्याचा विचार उत्तरार्धांत क्षयादश्राद्धनिर्णयप्रसंगीं केलेला आहे, त्यावरून विकल्प सिद्ध होतो. अर्थात् देशाचाराप्रमाणें करावें असें सिद्ध केलें आहे.

२ सोमरसाच्या पात्रांपैकीं एका पात्राला षोडशी हें नांव आहे. ज्योतिषोमाची संस्था अतिरात्र म्हणून आहे. तेथे “अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति । नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति । अशीं दोन प्रकारचीं वाक्ये असल्यामुळे अतिरात्रांत षोडशी पात्राच्या ग्रहणाचा विकल्प होतो. न्यायमाला अ० १० पा० ८ अधि. ३. ३ आद्यभक्षो वषट्कर्तुः० न्यायमाला अ० ३ पा० ५ अधि० १००.

विवाहादि मंगलकार्योच्चेठायीं विशेष सांगतो-ज्योतिर्निबंधांत नारद म्हणतो—“विवाहादि मंगलकार्यांचेठायीं, सूर्यसंक्रांतीच्या पूर्वे व पर अशा साधारणपक्षीं सोळा सोळा घटिका टाकाव्या.” हें सांगणें पुण्यकालाचें उपलक्षण आहे; (म्हणजे ज्या संक्रांतीचा जितका पुण्यकाल आहे तितक्या घटिका टाकाव्या असा अर्थ होतो) कारण, सूर्याचा संक्रांतिभोग, व कुलिक अर्धयाम (चार घटिका) हा टाकावा” असें ज्योतिःप्रकाशग्रंथांत वर्ज्य प्रकरणीं परिगणन केलें आहे. यावरून पुण्यकालाच्या सर्व घटिका टाकाव्या.

अयनव्यतिरिक्तासुदशसुसंक्रांतिपुरात्रौस्नानश्राद्धादिनकार्यं अहिसंक्रमणेकृत्स्नमहःपुण्यंप्रकीर्तितं रात्रौसंक्रमणेभानोर्दिनार्धस्नानदानयोः अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरिक्रिया ऊर्ध्वसंक्रमणेचोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयं पूर्णचैर्धरात्रेतुयदासंक्रमतेरविः प्राहुर्दिनद्वयंपुण्यमुक्त्वा मकरकर्कटाविति वृद्धवसिष्ठादिवचनैरहःपुण्यत्वोक्त्या रात्रौसंक्रमणेभानोर्दिवाकुर्वीतुतत्क्रियां पूर्वस्मात्परतोवापिप्रत्यासन्नस्यतत्फलमिति वसिष्ठवचनाच्चार्याद्रात्रौस्नानादिनिषेधप्रतीतेः यानितु विवाहव्रतसंक्रांतिप्रतिष्ठाकृतजन्मसु तथोपरागपातादौस्नानेदानेनिशाशुभेति राहुदर्शनसंक्रांतिविवाहात्ययवृद्धिषु स्नानदानादिकंकुर्युर्निशिकाम्यव्रतेषुचेत्यादीनि विष्णुगोभिलादिवचनानितानिमकरकर्कसंक्रांतिविषयाणि मुक्त्वा मकरकर्कटावितितयोर्दिवानुष्ठानस्यपर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः ।

अयन (मकर व कर्क) व्यतिरिक्त ज्या दहा संक्रांति त्यांविषयीं रात्रीं स्नान, दान, श्राद्धादिक करूं नये; कारण, “दिवसा संक्रांत झाली असतां संपूर्ण दिवस पुण्यकालः रात्रीं संक्रांत झाली असतां स्नानदानाविषयीं अर्धा दिवस पुण्यकालः मध्यरात्रीच्यापूर्वी संक्रांत झाली असेल तर पूर्वे दिवसाचें उत्तरार्ध पुण्यकालः मध्यरात्रीच्या पुढें संक्रांत झाली असतां उत्तर दिवसाचें पूर्वार्ध पुण्यकालः पूर्ण मध्यरात्रीं संक्रांत झाली असतां दोन दिवस पुण्यकाल म्हणजे पूर्वदिवसाचें उत्तरार्ध आणि उत्तर दिवसाचें पूर्वार्ध पुण्यकाल, परंतु मकर व कर्क वर्ज्य करून हा निर्णय जाणावा” ह्या वृद्धवसिष्ठादिकांच्या वचनेंकरून दिवसा पुण्यकाल सांगितला अगत्याकारणानें आणि “मृत्युसंक्रांत रात्रीं झाली असतां तत्संक्रांतिसंबंधी जें स्नानदान करणें तें दिवसा करावें: तो दिवस पूर्वाचा किंवा पुढचा जो सन्निध असेल तो घ्यावा” ह्या वसिष्ठवचनावरूनही, अर्थात् रात्रीं स्नानदानादिक करूं नये, अगा निषेध प्रतीयमान होतो. आतां जें वचन—“विवाह, व्रत, संक्रांति, प्रतिष्ठा, ऋतु, जन्म, ग्रहण, पात, इत्यादिनिमित्तक स्नान दान करण्याविषयीं रात्री शुभ आहे.” हें आणि “ग्रहण, संक्रांति, विवाह, अत्यय, (मरण), वृद्धा (पुत्रजन्म) आणि काम्यव्रतें, पर्तान्नमित्तक स्नानदानादिक रात्रीं करावें.” इत्यादिक विष्णुगोभिल इत्यादिकांचीं वचनें तीं मकर व कर्कसंक्रांतिविषयक जाणावीं: कारण, वरील वृद्धवसिष्ठवचनांत (मुक्ता मकरकर्कटौ) ‘मकर व कर्क वर्ज्य करून’ असें म्हटलें आहे, यास्तव रात्रीं झालेल्या मकर कर्कनिमित्तक स्नानदान दिवसा करण्याविषयीं पर्युदास (निषेध) आहे, असें हेमाद्रि, माधव इत्यादिक म्हणतात.

वस्तुतस्तु प्रागुक्तवचनेनतयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेवपर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि स्नानदानंपरेहनीत्यादिभिरहःपुण्यत्वोक्तेः अहःपुण्यत्वानुपपत्त्याकलयरान्निषेधस्यचप्रत्यक्षरात्रिविधिनावाधात्सर्वसंक्रांतिपुरात्रावनुष्ठानविकल्पः सचदेशाचाराद्यवतिष्ठतइत्युक्तःपंथाः अयनयोस्तुवक्तव्योविशेषःश्रावणेमाघेचवक्ष्यते ज्योतिर्निबंधेगर्गः यस्यजन्मक्षमासागरविसंक्रमणंभवेत् तन्मासाभ्यंतरेतस्यवैकुण्ठशधनक्षयाः तगरःसरोरुहपत्रैरजनीसिद्धार्थलोप्रसंयुक्तैः स्नानजन्मक्षगतेरविसंक्रमणेनुणांशुभदं हेमाद्रौ अहिचेत्रात्रियुगंस्याद्रात्रौचैद्वासरद्वयं संक्रांतिःपक्षिणीज्ञेयादानाध्ययनकर्मसु यत्तुगौडाः संक्रांत्यांपक्षयोरंतेद्वादश्यांश्राद्धवासरे सायंसंध्यांनकुर्वीतकुर्वीतपितृहाभवेदितिकर्मोपदेशिन्यांच्यासोक्तेःसायंपुण्यकालेसंध्यानिषेधमाहुः तन्निर्मूलं अन्यच्चवहुवक्तव्यंविस्तरभीतेर्नोच्यते इतिसंक्रांतिनिर्णयः ।

वास्तविक म्हटलें तर पूर्वीच्या वृद्धवसिष्ठाच्या वचनानें, मकर व कर्क ह्या संक्रांतीला इतर संक्रांतींप्रमाणें दोन दिवस पुण्यकाल प्राप्त झाला, तो दोन दिवस पुण्यकाल यांना नाही, इतकाच निषेध असल्यामुळे; मकर व कर्क यांना देखील स्नान, दान इत्यादि दिवशीं करावें इत्यादि वचनांनीं दिवसा पुण्यकाल सांगितला असल्यामुळे; दिवसा पुण्यकाल सांगितल्यावरून, अर्थात् रात्रीं स्नानदानादिकांचा निषेध कल्पित होतो, त्या कल्पित केलेल्या निषेधाचा ‘विवाहव्रतसंक्रांति’ ‘राहुदर्शनसंक्रांति’ इत्यादि वचनांनीं प्रत्यक्ष सांगितलेल्या रात्रिविधीनं बाध होत असल्यामुळे, सर्व संक्रांतींचे ठिकाणीं रात्री स्नानदानादिकांचा विकल्प होतो, (म्हणजे रात्री संक्रांत झाली असतां रात्री स्नानादिक करावें, अथवा न करावें)

असि क्षुभित होते) ह्या विकल्पाची, ज्या देशांत जसा आचार असेल तदनुकूल व्यवस्था जाणावी, हाच योग्य मार्ग होय. कर्क व मकर ह्या दोन संक्रांतीविषयी काहीं विशेष सांगायचा आहे तो, श्रावण व माघ यांच्या निर्णयप्रसंगी पुढें सांगूं. ज्याच्या जन्मराशीस सूर्यसंक्रमण होतें त्याला त्या महिन्यांत वैर, क्लेश, द्रव्यनाश इत्यादि पीडा होतात. त्याचा परिहार-तत्पर व कमल ह्यांचीं पत्रें, हळद, सर्पप, लोघ्र ह्यांच्या उदकानें स्नान करावें, तेणेंकरून जन्मस्थ सूर्यसंक्रमणसंबंधी पीडा दूर होऊन कल्याण होतें. संक्रांतीचा अनध्याय-हेमाद्रींत सांगितला आहे की—दिवस संक्रांत झाली असतां पूर्वे रात्र, पुढची रात्र आणि संक्रांतिदिवस ह्यांचेठायीं दान व अध्ययन करूं नये. रात्रीं झाली असतां पूर्वे दिवस, पुढचा दिवस आणि ती रात्र यांचे ठायीं दान व अध्ययनादि करूं नये.” आतां जें गौड सांगतात—“संक्रांत, अमावास्या, पौर्णिमा, द्वादशी, श्राद्धदिवस यांचे ठायीं सायंसंध्या करूं नये, केली असतां पितुहा होतो असें कर्मोपदेशिनी ग्रंथांत व्यासवचन आहे, म्हणून ‘सायंकाळीं संक्रांतिपुण्यकाळीं संध्या करूं नये’ असें जें गौड सांगतात, तें निर्मूल होय. आणखी दुसरे निर्णय संक्रांतिविषयक बहुत सांगायचा आहेत परंतु ग्रंथविस्तार फार होईल याकरितां ते येथें सांगत नाहीं. याप्रमाणें संक्रांतीचा निर्णय समाप्त झाला.

पक्षयुगजश्राद्रोमासः सट्पेधा शुक्लादिरमांतः कृष्णादिः पूर्णिमांतश्चेति तथाच त्रिकांडमंडनः चांद्रोपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिवर्तेति च द्विधेत्युक्त्वा देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह कृष्णपक्षादिकं मासं नांगीकुर्वतिकेचन येपीच्छंति न तेषामपीष्टोर्विध्यस्य दक्षिणे इति विध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरतो द्वयोरभ्यनुज्ञागम्यते तत्रापि शुक्लादिमुख्यः कृष्णादिगौणः शास्त्रेषु चैत्रशुक्लप्रतिपद्येव चांद्रसंवत्सरारंभोक्तेः तदुक्तं दीपिकायां चांद्रोद्बो-मधुशुक्लप्रतिपदारंभ इति नहि ये कृष्णादिमन्यंते तेषां वत्सरारंभो भिद्यते अतः शुक्लादिमुख्यः कृष्णादिनामल-मासासंभवाच्च चंद्रस्य सर्वनाक्षत्रभोगेन नाक्षत्रोमासः सावनादीनां व्यवस्थोक्ता हेमाद्रीब्रह्मसिद्धांते अमा-वास्यापरिच्छिन्नोमासः स्याद्ब्राह्मणस्य तु संक्रांतिपौर्णिमासीभ्यां तथैव नृपवैद्ययोः अत्र ब्राह्मणादीनां यत्र कर्मवि-शेषेवचनांतरेण वसंते ब्राह्मणो ग्रीनादधीतेत्यादिवन्मास उक्तस्तत्र दशांतत्वमात्रं नियम्यते न तु सर्वकर्मसु ददर्शांतप-नेति वृष्ट्याद्यर्थसौभरेहीषादिनिधननियमवद्विधिलाघवात् त्रैवर्णिकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः सावना-दीनां शुद्रानुलोमादिपरत्वापत्तेश्चेति गुरुचरणाः ।

चांद्रमास—दोन पक्ष मिळून एक चांद्रमास होतो. तो चांद्रमास दोन प्रकारचा—शुक्लप्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत किंवा कृष्णप्रतिपदेपासून पौर्णिमेपर्यंत जो मास तो चांद्रमास. तेंच त्रिकांडमंडन सांगतो—“शुक्लपक्षप्रतिपदेपासून अमा-वास्येपर्यंत, अथवा कृष्णपक्षप्रतिपदेपासून पौर्णिमेपर्यंत जो मास तो चांद्रमास होय,” याप्रमाणें चांद्रमास सांगून देशभेदानें त्याची व्यवस्था सांगतो. ती अशी—“कृष्णपक्षप्रतिपदेपासून पौर्णिमांत जो चांद्रमास त्याचें ग्रहण कोणी करीत नाहीत, जे कोणी ग्रहण करितात त्यांच्या मतेही तो विंध्याद्रीच्या दक्षिणप्रदेशीं इष्ट नाही.” विंध्याद्रीच्या दक्षिणप्रदेशीं कृष्णपक्षादि चांद्रमासाचा निषेध सांगितल्यावरून विंध्याद्रीच्या उत्तरप्रदेशीं (नर्मदेच्या उत्तरप्रदेशीं) दोनही प्रकारचा चांद्रमास घेण्या-विषयीं शास्त्रसंमत मिळते, त्यांतही शुक्लप्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत जो चांद्रमास तो मुख्य; कृष्णप्रतिपदेपासून पौर्णिमे-पर्यंत जो चांद्रमास तो गौण होय, कारण, चैत्रशुक्लप्रतिपदेचेठायींच चांद्रवर्षाचा आरंभ होतो असें धर्मशास्त्रांत सांगितलें आहे. तेंच दीपिकेंत सांगतो—“चांद्रवर्षाचा आरंभ चैत्रशुक्लप्रतिपदेस होतो.” जे कोणी कृष्णादि चांद्रमास मानितात त्यांच्या वर्षाचा आरंभ भिन्न आहे काय? तर भिन्न नाही. यास्तव शुक्लादि चांद्रमास हाच मुख्य आहे, आणि दुसरे कारण, कृष्णादि चांद्रमासें करून मलमासाचा असंभव आहे. नाक्षत्रमास—अश्विनीपासून रेवतीपर्यंत सत्तावीस नक्षत्रें चंद्रानें भुज असतां जो मास तो नाक्षत्रमास. सावन, सौर, चांद्र, नाक्षत्र हे जे चार प्रकारचे मास, त्यांची व्यवस्था हेमाद्रींत ब्रह्मसिद्धांत सांगतो—“ब्राह्मणास अमांत मास प्रशस्त, क्षत्रियांस संक्रांतिमास (सौरमास) व वैश्यांस पौर्णिमांत मास प्रशस्त आहे. एथें असें समजावें की, ब्राह्मणानें अमीचें आधान वसंत ऋतूत करावें, याप्रमाणें जेथें ब्राह्मणादिकांना ज्या विशेष कर्माविषयीं इतर वचनांनीं जो विशेष मास विहित आहे तेथें तो मास दर्शातच घ्यावा, असा ह्या (“अमावास्या०”) वचनानें नियम केला आहे. सर्व कर्माविषयीं दर्शातच घ्यावा, असें नाही. जसें—जो वृष्टिकाम, जो अन्नाद्यकाम, जो स्वर्ग-काम, त्यांनै सोभरसामानें खुति करावी, असें श्रौतांत सांगितलें आहे, त्यांमध्ये वृष्टिकामासाठीं ‘हीष्’ असें निधन करावें. निधन म्हणजे सामाचे पांच किंवा सात भाग असतात त्यांतील अंतिमभाग होय. अन्नाद्यकामासाठीं ‘ऊर्क्’ असें निधन करावें, आणि स्वर्गकामासाठीं ‘ऊ’ असें निधन करावें. त्या ठिकाणीं इतर वचनांनीं ‘हीष्’ इत्यादि निधनं प्राप्त असतां ह्या वचनानें जीं निधनं सांगितलीं, तीं विशेष कामासाठीं नियमित आहेत, म्हणजे वृष्टिकामाला ‘हीष्’ असेंच निधन करावें, शुद्ध करूं नये, हा नियमविधि आहे; त्याप्रमाणें प्रकृतस्थलींही ब्राह्मणाला सर्व कर्माविषयीं दर्शातच मास घ्यावा, असा अपूर्व

नियम करण्यपेक्षा पूर्वी इतर वचनानीं प्राप्त जो मास तो दर्शातच घ्यावा, असा नियम केला असतां लाघव येतें. आणि असा नियम न करितां, सर्व कर्माविषयीं दर्शातच घ्यावा, असा नियम केला तर ब्राह्मणादि तीन वर्णांला सर्व कर्माविषयीं विशेष मास (सावनादिकही) सांगितले आहेत, त्यांचा विरोध येईल. तसेंच वर सांगितलेल्या नियमवचनानीं ब्राह्मणांला दर्शातच, क्षत्रियांला संक्रांत्यंतच, आणि वैश्यांला पौर्णमास्यंतच, असे नियमित झाल्यामुळे उद्देरित सावन व नाक्षत्र हे मास श्रद्धा, अनुलोमजाति इत्यादिकांनाच प्राप्त होतील, इतरांना प्राप्त होणार नाहीत. असें गुरुचरण (रामकृष्णभट्ट) म्हणतात.

ज्योतिर्गर्गः सौरोमासोविवाहादौयज्ञादौसावनःस्मृतः आब्दिकेपितृकार्येचचांद्रोमासःप्रशस्यते **ऋष्यशृंगः** विवाहव्रतयज्ञेषुसौरमानंप्रशस्यते पार्वणत्वष्टकाश्राद्धेचांद्रमिष्टंतथाब्दिके स्मृत्यंतरे एकोद्दिष्टविवाहादावृणादौसौरसावनौ **ज्योतिर्गर्गः** आयुर्दायविभागश्चप्रायश्चित्तक्रियातथा सावनेनैवकर्तव्या शत्रूणांचाप्युपासना **विष्णुधर्म** नक्षत्रसत्राण्ययनानिचंद्रोर्मासेनकुर्याद्भ्रमणात्मकेनेति ब्राह्मे तिथिकृत्येच कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेवच विवाहादौचसौरादिमासंकृत्येविनिर्दिशेत् ।

ज्योतिर्गर्गः—“विवाह, उपनयन, चूडा, व्रत, नियम, प्रतिष्ठा, गृहकरण, महाषष्ठी, महासप्तमी, दशहरा इत्यादिकांविषयीं सौरमास विहितः यज्ञ, इत्यादिकांविषयीं सावन मास विहित होय. आब्दिक वर्षवृद्धिकर्म, (वाढदिवस) व पितृकार्ये यांविषयीं चांद्रमास प्रशस्त होय.” **ऋष्यशृंगः**—“विवाह, व्रत, यज्ञ, यांविषयीं सौरमास प्रशस्त आहे. पार्वणश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध आणि आब्दिक (सांवत्सरिक) श्राद्ध यांविषयीं चांद्रमास प्रशस्त होय.” **स्मृत्यंतरांतः**—“एकोद्दिष्टश्राद्ध, विवाहादिक, यांविषयीं व ऋण घेणें व देणें यांविषयीं सौरमास व सावनमास प्रशस्त होत.” **ज्योतिर्गर्गः**—“आयुर्दायविभाग, प्रायश्चित्तक्रिया आणि शत्रूंची उपासना (रामयप्रतीक्षा) हीं कर्मे सावनमासंकरूनच करावीं.” **विष्णुधर्मांतः**—“नक्षत्रसत्रें, अयनकृत्यें हीं नाक्षत्रमासंकरून करावीं. (अधिनीपामून रेवतीपर्यंत सत्तावीस नक्षत्रें चंद्रानें भुक्त असतां जो मास तो नाक्षत्रमास) ब्रह्मपुराणांत—तिथिसंबंधी कृत्यांविषयीं कृष्णादि, व्रताविषयीं शुक्लादिक मास घ्यावा. विवाहादिक कार्यांविषयीं सौरादिक मास घ्यावा.”

अथमलमासः तत्रैकमात्रसंक्रांतिरहितःसितादिश्चांद्रोमासोमलमासः एकमात्रसंक्रांतिराहित्यमसंक्रांतत्वेनसंक्रांतिद्वयवत्त्वेनचभवतीतिमलमासोद्वेधा अधिमासःक्षयमासश्चेति तदुक्तं काठकगृहे यस्मिन् मासेनसंक्रांतिःसंक्रांतिद्वयमेववा मलमासःसविज्ञेयोमासःस्यात्तत्रयोदश इति सत्यव्रतोपि राशिद्वयंयत्र-माससंक्रमेतदिवाकरः नाधिमासोभवेदेषमलमासस्तुकेवलमिति अधिकमासस्यकालनियममाह वसिष्ठः द्वात्रिंशद्भिर्मितैर्मासैर्दिनैःषोडशभिस्तथा घटिकानांचतुष्केणपतत्यधिकमासक इति एतच्चसावनादिमानेनसंभवार्यन्तनुनियमार्थम् अन्यथाषोडशदिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानंतरंकृष्णपक्षनियमेनशुक्लादित्वभंगापत्तेः तेनन्यूनाधिककालेमलमासपातेपिनदोषः अतएवोक्तंमाधवीये मासेत्रिंशत्तमेभवेदिति क्षयस्यापिज्योतिःशास्त्रे-असंक्रांतिमासोऽधिमासःस्फुटंस्याद्विसंक्रांतिमासःक्षयाख्यःकदाचित् क्षयःकार्तिकादित्रयेनान्यतःस्यात्तदावर्षमध्येधिमासद्वयंच एकःक्षयात्पूर्वपरतश्चैकइत्यधिमासद्वयंभवतीत्यर्थः ।

आतां मलमासनिर्णय सांगतो.

एकाच संक्रांतीनें रहित जो शुक्लपक्षादिक मास तो चांद्रमास, मलमास होय. एकाच संक्रांतीनें रहित असें म्हटल्यानें ज्यांत संक्रांति नाही, तो होतो, आणि दोन संक्रांति ज्यांत आहेत तोही होतो; म्हणून तो मलमास दोन प्रकारचा—एक अधिकमास आणि दुसरा क्षयमास. तेंच काठकगृहसूत्रांत सांगतो—“ज्या मासांत संक्रांति नाही तो अथवा ज्या मासांत दोन संक्रांति तो मलमास होय आणि तो तेरावा मास जाणावा.” सत्यव्रतही—“ज्या मासांत दोन संक्रांतींचें उल्लंघन सूर्य करितो तो अधिकमास नव्हे, तर तो केवळ मलमास (क्षयमास) जाणावा. अधिकमास किती कालां होतो; या विषयीं कालनियम सांगतो—वसिष्ठ—“३२ मास, १६ दिवस, ४ घटिका इतक्या कालांनें अधिकमास होतो. हें वचन सावनादि मासंकरून संभवार्थ आहे, नियमार्थ नव्हे. संभवार्थ न मानितां नियमार्थ मानिलें तर ३२ मास, १६ दिवसांनंतर नियमानें कृष्णपक्ष असल्यामुळे ‘शुक्लादिक होतो’ असें जें सांगितलें त्याचा भंग होईल, म्हणून तें वचन संभवार्थ मानिल्यानें पूर्वोक्त कालमध्यें न्यूनाधिकत्व होऊनही जरी मलमास झाला तथापि दोष नाही. म्हणूनच माधवीयांत सांगतो—“तिमाव्या मासांत मलमास होतो.” क्षयमासाविषयींही ज्योतिःशास्त्रांत सांगतो—“संक्रांति-विरहित जो मास तो अधिक मास आणि दोन संक्रांतींनीं युक्त जो मास तो क्षयमास; हा कथित होतो. क्षयमास होणें २ निर्णय.

तो कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष या महिन्यांतून कोणता तरी होतो, इतरांपैकीं होत नाही. ज्या वर्षी क्षयमास होतो त्या वर्षी क्षयमासाच्या पूर्वी एक, आणि क्षयमासानंतर एक असे दोन अधिक मास होतात.

अत्रविशेषमाहजाबालिः मासद्वयेन्दमध्येतुसंक्रांतिर्नयदाभवेत् प्राकृतस्तत्रपूर्वः स्यादधिमासस्त-
थोत्तरइति उत्तरएवकालाधिक्यनपूर्वस्मिन्नित्यर्थः यत्तुब्रह्मसिद्धांते चैत्रादवाङ्नाधिमासः परतस्त्वधिको-
भवेदिति तत्रचैत्रात्पूर्वसंक्रांतद्वयेपूर्वोनाधिकः किंतुपरइत्यर्थः यच्च ज्योतिःसिद्धांते धटकन्यागतेसूर्ये-
वृश्चिकेवाथधन्विनि मकरेवाथकुंभेवानाधिमासोविधीयते इति तन् वृश्चिकादिचतुष्टयेमलमासेसति पूर्व
तुलाकन्यागतेसूर्येक्षयपूर्वभाज्यधिमासस्यकालाधिक्यनिषेधार्थनत्वधिकमात्रस्य दशानांफाल्गुनादीनांप्रायो-
माघस्यचकचित् नपुंसकत्वंभवतीत्येषशास्त्रविनिश्चय इति हेमाद्रौविष्णुधर्मविरोधात् मलमासेऽष्टका-
दिनिषेधानुपपत्तेश्च ।

याविषयीं विशेष निर्णय सांगतो.

जाबालिः—जेव्हां एका वर्षात दोन मासांत संक्रांत होत नाही तेव्हां संक्रांतरहित अशा त्या दोन मासांमध्ये—जो दोन संक्रांतींनीं युक्त मास तो क्षयमास होतो, म्हणून—क्षयमासाच्या पूर्वीचा जो मास यो प्राकृत (इतर मासांसारखा) आणि क्षयमासाच्या पुढचा जो मास तो अधिकमास होय, म्हणजे पुढचा तोच अधिकमास, पहिला तो अधिक नाही, सर्व कर्मांला योग्य आहे असा अभिप्राय. आतां जें ब्रह्मसिद्धांतवचन—“चैत्राच्या पूर्वी अधिकमास नाही, पुढे अधिक-
मास होतो.” त्याचा अर्थ—चैत्राच्या पूर्वी संक्रांतरहित दोन मास असतां त्यांत पहिला अधिक नव्हे, तर पुढचा अधिक होय. आणि जें ज्योतिःसिद्धांतांत—“तुल, कन्या यांस सूर्य असतां, तसाच वृश्चिक किंवा धन अथवा मकर किंवा कुंभ ह्या संक्रांतीस सूर्य असतां अधिकमास होत नाही.” हें वचन, वृश्चिकादि चार संक्रांतींत मलमास आला असतां त्याच्या पूर्वी तुला व कन्या ह्या संक्रांतीस सूर्य असतां क्षयाच्या पूर्वी होणारा जो अधिकमास त्यानं कालाधिक्य नाही. (अधिक-
मासनिमित्तक कर्मनिषेध नाही.) इतकेंच सांगण्यासाठीं आहे, अधिकमासाचा निषेध करण्यासाठीं वचन नाही. कारण, फाल्गुनादिक दहा मासांला फारकरून नपुंसकत्व (संक्रांतरहितत्व) होतें, आणि क्वचित् माघमासालाही नपुंसकत्व होतें, हा शास्त्रनिश्चय आहे. अशा हेमाद्रौंतील विष्णुधर्मवचनाचा विरोध येतो. आणि मलमासांत अष्टकाश्राद्धाचा निषेध आहे, त्याचीही उपपत्ति होणार नाही.

क्षयस्यागमनकालउक्तः सिद्धांतशिरोमणौ गतोब्ध्यद्रिर्नदैर्गतेशाककालेतिथीशैर्भविष्यत्यथांगाक्ष-
सूर्यैः गजाश्चभिभूभिस्तथाप्रायशोयंकुवेदेंदुवर्षैः कचिद्रोकुभिश्चेति अन्धयश्चत्वारः अद्रयः सप्त नंदा नव एषां
प्रातिलोम्येनपाते ९७४ तैर्मितेवर्षेकश्चिद्विष्यतीत्यर्थः पूर्वाजातइत्यर्थः तिथयः पंचदश १५ ईशाएकादश
१११५ एवमितेयातेकश्चिद्विष्यतीत्यर्थः अंगा ६ क्ष ५ सूर्याः १२ एकत्र १२५६ गजाः ८ अद्रयः ७
अग्रयः ३ भूः १ एकत्र १३७८ कुः १ वेदाः ४ इंदुः १ एकत्र १४१ गावः ९ कुः १ एकत्र १९
एतैर्मितेवर्षेयातेकश्चिद्विष्यतीत्यर्थः ।

क्षयमास किती वर्षांनीं येतो त्याचा निर्णय सांगतो.

सिद्धांतशिरोमणीत—“९७४ गत शककालीं एक क्षयमास झाला. १११५ एतत्परिमित शककालीं एक होईल. १२५६ शककालीं होईल. १३७८ शककालीं होईल. हा क्षयमास बहुतरून १४१ वर्षांनंतर होतो. क्वचित् १९ वर्षांनींही क्षयमास होतो”.

अथमलमासेकार्याकार्यनिरूप्यते तत्रजाबालिः नित्यनैमित्तिकेकुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलिम्बुचे
तिथिनक्षत्रवारोक्तकाम्यनैवकदाचन अयंचकाम्यनिषेधः आरंभसमाप्तिविषयः असूर्यानामयेमासान्तेषुमम
संमतः व्रतानांचैवयज्ञानामारंभश्चसमापनमितितेनैवोक्तत्वात् असूर्याधिकमासाइत्यर्थः तत्रमंडलंतपतेर-
विरितिबचनात् कारीर्यादेः काम्यस्यत्वारंभसमाप्तीभवतएवेत्यादिरित्यन्यत्रविस्तरः काठकगृह्येपि मलेऽ-
नन्यगतिंकुर्यान्नित्यान्नैमित्तिकीक्रियामिति तानिनैमित्तिकानिदीपिकायामुक्तानि यन्नैमित्तिकमग्निनष्टयुग-
वाध्याधानमर्चासुवासंस्कारादिविलोपनेसतिपुनः प्रोक्तप्रतिष्ठादिकमिति गत्यंतरयुतंतुसोमादिदेयमेव ।

आतां जें **काम्यश्रृंग** सांगतो—“संवत्सरामध्ये अधिक जो मलमास होतो त्या तेराव्या मासांत दर्शश्राद्ध करूं नये” असें वचन तें काम्य दर्शश्राद्धविषयक होय; कारण, काम्यकर्म कदापि करूं नये, असें निषेधवचन आहे. “कन्या कन्यावे-
दिनश्च” इत्यादि वचनेंकरून **याज्ञवल्क्यानें** दर्शाचे ठिकाणीं काम्यश्राद्ध सांगितलें आहे. नित्यश्राद्ध तर मलमासांतही करावें. कारण “दर्शश्राद्ध, नित्यश्राद्ध, गो, भूमि, तिल, सुवर्ण यांचें नित्यदान हीं मलमासांतही करावीं” असें मत्स्यपुरा-
णवचन आहे, असें हेमाद्रि इत्यादिक ग्रंथकार सांगतात. **दिवोदासीयांतही**—“दर्श, पौर्णिमा, द्वादशी, बुधशुक्ल, ह्या तिथि मलमासांत वर्ज्य करूं नयेत, म्हणजे ह्या तिथिसंबंधी श्राद्ध, दानादिक कृत्ये मलमासांतही करावीं; मुलांचे सीमंत व अन्नप्राशन संस्कारही करावे.” काम्य व नित्य असें दोनही प्रकारचें दर्शश्राद्ध करूं नये, असें अपराक सांगतो. कारण, “मलमासांत जें विहित कर्म तें उत्तर मासांत करावें” असें वचन आहे. अधिकमास असतां साठ दिवसांचा एक मास होतो, असे आहे म्हणून शुद्ध मासांत केलें असतांही शास्त्रार्थाची उपपत्ति होते, यास्तव दर्शश्राद्ध मलमासांत करूं नये;” असें **प्राचीनगौड व शूलपाणि** सांगतात. **संवत्सरप्रदीपांतही**—“एकराशित सूर्य असतां जेव्हां दोन दर्श प्राप्त होतात तेव्हां दर्शश्राद्ध पूर्व मासांत करावें, पुढच्या मलमासांत करूं नये;” असें जें वचन आहे, त्याविषयीही पूर्वीप्रमाणेंच (वर सांगितल्याप्रमाणेंच) व्यवस्था जाणावी.

यद्यपि **कालादर्श** सर्ववार्षिकमासद्वयेकार्यमित्युक्तं तथापि हेमाद्रिमाधवापराकादिमतात्प्रथमा-
ब्दिकत्रयोदशेमलमासेद्वितीयाद्याब्दिकंतुशुद्धमासएवकार्यं असंक्रांतपिकर्तव्यमाब्दिकप्रथमं द्विजैः तथैवमा-
सिकंश्राद्धसपिंडीकरणंतथेति **हारीतोक्तेः** आब्दिकप्रथमंयस्यात्तत्कुर्वीतमलिम्लुचे चतुर्दशेतुसंप्राप्तकुर्वीत
पुनराब्दिकमिति **स्मृत्यंतरोक्तेश्च** पुनराब्दिकद्वितीयादिवार्षिकत्रयोदशेमासेऽतीतेचतुर्दशाद्यदिनेकुर्यादि-
त्यर्थः यत्तुसत्यव्रतः वर्षवर्षेतुयच्छ्राद्धमातापित्रोर्मृतेहनि मलमासेनतत्कार्यव्याघ्रस्यवचनंयथेति तद्वि-
तीयादिवार्षिकविषयम् आब्दिकप्रथमंयस्यात्तत्कुर्वीतमलिम्लुचे इतिपूर्वोक्तवचनात् ।

जरी सर्व वार्षिक श्राद्ध दोन मासांत करावें, असें **कालादर्शांत** सांगितलें आहे, तथापि हेमाद्रि, माधव, अप-
राक इत्यादिकांचे मतीं प्रथमाब्दिकश्राद्ध, तेरावा जो मलमास त्यांत करावें, आणि द्वितीयाब्दिक शुद्धमासांतच करावें;
कारण, “द्विजांनीं असंक्रांत मासांत (मलमासांत) हि प्रथमाब्दिकश्राद्ध, मासिकश्राद्ध आणि सपिंडीकरण हीं करावीं” असें
हारीतवचन आहे; आणि “प्रथमाब्दिक जें श्राद्ध तें मलमासांत करावें, व चवदाव्या मासांत पुनराब्दिक करावें” असें
स्मृत्यंतरवचनही आहे. पुनराब्दिक म्हणजे द्वितीयादि वार्षिक, तें तेरावा महिना गेल्यावर चवदाव्या महिन्याच्या प्रथम
दिवशी करावें, असा वरील वचनाचा अर्थ आहे. आतां जें **सत्यव्रत** सांगतो—“प्रतिवर्षीं मातापितरांच्या मृतदिवशी कर्तव्य
जें श्राद्ध तें मलमासांत करूं नये, असें **व्याघ्रकृषीचें** वचन आहे” तें द्वितीयादि वार्षिकाचा निषेध करितें, प्रथमाब्दिक-
काचा निषेध करित नाही. कारण, “प्रथमाब्दिकश्राद्ध मलमासांत करावें” असें पूर्वी (वर) वचन सांगितलें आहे.

यत्रद्वादशमासिकंशुद्धमासेभवति तत्रत्रयोदशेदिकएवाद्याब्दिककार्यम् यत्रवधिकमध्येद्वादशमासिकंत-
त्रतस्यद्विरावृत्तिकृत्वाचतुर्दशेदुष्टएवप्रथमाब्दिकमितिनिष्कर्षः तेनद्वितीयादिशुद्धमासएव **पृथ्वीचंद्रोद-
येदिवोदासीयेमदनपारिजातेचैवं** मलमासमृतानांतुयदासएवाधिकःस्यात्तदातत्रैवप्रतिसांवत्सरिकं
कार्यं यथा**पैठीनसिः** मलमासेमृतानांतुश्राद्धंयत्प्रतिवत्सरं मलमासेपिकर्तव्यंनान्येषांतुक्तयंचनेति हेमाद्रौ-
व्यासोपि मलमासमृतानांतुसौरमानंसमाश्रयेत् सएवदिवसस्तस्यश्राद्धपिंडोदकादिषु अत्राधिकमृतस्यन-
द्वितीयाद्यद्वेपिसौरविधिः द्वितीयादावन्याधिकेवापूर्वनियमविधिवैरूप्यात्किंतुप्रथमाब्दिकस्यमलेनियमात्स-
त्यव्रतेन तद्विभ्रस्यसर्वस्याधिकेनिषेधेप्राप्तेप्रतिप्रसवमात्रंलाघवात् अतोद्वितीयादौसौरमासप्रसंगः चांद्रमि-
ष्टंतदाब्दिके मासपक्षतिथिस्पष्टेइत्यादिविरोधाच्च ।

जेथें बारावें मासिकश्राद्ध शुद्ध मासांत होतें तेथें तेराव्या अधिक मासांतच प्रथमाब्दिक करावें, आणि जेथें अधिक
मासांत बारावें मासिक होईल तेथें अधिक व शुद्ध या दोन मासांत त्याची द्विरावृत्ति करून (व ऊनाब्दकार्त्त ऊनाब्दिक
करून) चवदाव्या शुद्ध मासांतच प्रथमाब्दिक करावें असा फलितार्थ आहे. म्हणून द्वितीयाब्दिक वगैरे शुद्ध मासांतच
करावें. **पृथ्वीचंद्रोदय, दिवोदासीय व मदनपारिजात** या ग्रंथांतही असेंच सांगितलें आहे. मलमासांत मृत
शाले व कांहीं दिवसांनीं तोच मलमास प्राप्त झाला तर त्या अधिक मासांतच त्यांचें प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध करावें. **पैठी-
नसि**—“मलमासांत मृत झालेल्यांचें प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध मलमासांतही करावें, इतरांचें (शुद्ध मासांत मृत झालेल्यांचें)

कधीही करू नये.” हेमाद्रीत-व्यासही-“मलमासांत जे मृत होतात त्यांच्याविषयी सौरमान ध्यावे, म्हणजे त्यांचे श्राद्ध, पिंड, उदकदान यांविषयी ज्या दिवशी मृत असेल तोच दिवस ध्यावा.” ह्या वचनाने अधिकमासांत मृतांच्या द्वितीयादि आब्दिकाविषयी देखील सौरमान ध्यावयाचे नाही; कारण, द्वितीयादि आब्दिकाविषयी जर सौरमान घेतले तर कांही दिवसांनी, ज्या मासांत मृत असेल त्याच्या पूर्वीचा महिना अधिक आला असता त्या अधिकाच्या शुद्धमासांत सौरमानाने प्राप्त होत असल्यामुळे पूर्वीक जो नियमविधि (द्वितीयादिवार्षिक श्राद्ध तेरावा महिना गेल्यावर चवदाव्या मासाच्या आद्य दिवशी करावे इत्यादि) तो असंगत होईल; तर प्रथमाब्दिकाविषयीच मलमाम सांगितला आहे, म्हणून सत्यव्रतवचनाने प्रथमाब्दिकव्यतिरिक्त सर्व श्राद्धांचा अधिकांत निषेध प्राप्त असतो, मलमाममृताविषयी तो मास प्राप्त असेल तर त्या निषेधाचा बाध, ह्या वचनाने केला आहे. असे केले असतां लाघव येते. तो मास प्राप्त असल्यावेळी निषेधबाध केला आहे, म्हणूनच द्वितीयादि आब्दिकाविषयी सौरमासाचा प्रसंग येत नाही. आणि सौरमान घेतले तर “आब्दिकाविषयी चांद्रमान इष्ट आहे.” शिवाय “मास, पक्ष, तिथि यांनी स्पष्ट काळीं करावे” इत्यादि वचनाचा विरोधी येईल.

यतुवृद्धवसिष्ठः श्राद्धीयाहनिस्प्रान्ते अधिमासो भवेद्यदि मासद्वयेपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति यच्च व्यासः उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोरिति तन्मासिकादिविषयं यौगादिकं मासिकं च श्राद्धाचारपरपक्षिकं मन्वादिकं तैत्तिरीयं च कुर्यान्मासद्वयेपि चेति स्मृतिचंद्रिकोक्तेः तैत्तिरीयं तैत्तिरीयं श्राद्धं तच्च मासद्वयेपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः ।

आतां जें वृद्धवसिष्ठ म्हणतो-“अधिक मास प्राप्त असेल व त्यांत श्राद्धदिवस प्राप्त होईल तर दोनही मासांत श्राद्ध करावे,” आणि जें व्यास म्हणतो “उत्तर मासांत देवकार्ये, व पूर्वे, उत्तर अशा दोनही मासांत पितृकार्ये करावी” अशी वचने तीं मासिकादि श्राद्धविषयक होतः कारण, “युगादितिथिनिमित्तश्राद्ध, मासिकश्राद्ध, अपरपक्षिकश्राद्ध (प्रतिकृष्णपक्ष-विहित), मन्वादितिथिनिमित्तक श्राद्ध आणि तैत्तिरीयश्राद्ध हीं दोनही मासांत करावीं” असे स्मृतिचंद्रिकेंत वचन आहे. तैत्तिरीयश्राद्ध दोनही मासांत करावे असे त्रिस्थलीसेतून् भट्ट (नारायणभट्ट) सांगतात.

केचित्तु प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरं मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपीति मरीचिवचनात् वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्भूतेहनि मासद्वयेपि तत्कुर्याद्व्याघ्रस्य वचनं यथेति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुस्तुच्छं प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकं प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कल्पादि श्राद्धमिति मरीचिवचसो मदनरत्नानेन व्याख्यानात् गालवीयस्य च मासद्वयात्मके क्षयमास इति माधवेन व्याख्यानात् ।

कांहीं ग्रंथकार तर “मासिकश्राद्ध, प्रतिमासवत्सरिकश्राद्ध, मन्वादिश्राद्ध, आणि युगादिश्राद्ध हीं दोनही मासांत करावीं” असे मरीचिवचन आहे म्हणून; आणि “प्रतिवर्षा मातापित्रांच्या मृतदिवशीं कर्तव्य जें श्राद्ध तें दोन्ही मासांत करावे, असे व्याघ्रकृषी सांगतो” असे गालवाचेंही वचन आहे, म्हणून प्रत्याब्दिक श्राद्ध दोन मासांत करावे असे सांगतात; परंतु तें केचिन्मत तुच्छ आहे; कारण, ‘प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरं’ ह्या मरीचिवचनांतील ‘प्रतिमासं’ व ‘प्रतिवत्सरं’ ह्या दोन पदांची व्याख्या क्रमानें, प्रतिमासांत मृतदिवशीं करावयाचें मासिक, व प्रतिवर्षी करावयाचें कल्पादि श्राद्ध अशी मदनरत्नानें केली आहे आणि गालववचनांतील ‘मासद्वये’ या पदाची व्याख्या मासद्वयात्मक क्षयमासांत, अशी माधवानें केली आहे.

यच्चैश्चिदुक्तं प्रथमाब्दिकं मासद्वये कार्यं आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलमल्लुचे त्रयोदशे च संप्रान्ते कुर्वीत पुनराब्दिकमिति यमोक्तेरिति तदपि चित्यं पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशेऽतीते च त्रयोदशे कुर्यात् अन्यथा सांवत्सरं न वर्धेत श्राद्धं तत्र मृतेहनीति पैठीनसि विरोधः स्यादिति हेमाद्रौ पृथ्वीचंद्रोदये एतेन न वर्धेत न छिद्याच्छुद्धेपि कुर्यादेवेत्येतन्मद्व्याख्यामानाभावात्परास्ता पूर्वव्याख्यायांतुहारीतीये प्रथममहणमेवमानम् ।

आणि जें कांहीं ग्रंथकार, प्रथमाब्दिक श्राद्ध दोन मासांत करावे; कारण, जें “प्रथमाब्दिक श्राद्ध तें मलमासांत करावे, तेरावा मास प्राप्त असता पुनः आब्दिक करावे” असे यमाचें वचन आहे असे म्हणतात, परंतु तेंही केचिन्मत चित्य (प्रमाणशून्य) होय. कारण, पुनराब्दिक म्हणजे द्वितीयादिवार्षिक श्राद्ध, तें तेरावा मास गत झाल्यानंतर चवदाव्या मासाच्या प्रथमदिवशी करावे, असा त्या वचनाचा अर्थ आहे. तसा अर्थ न मानल्यास ‘मृतदिवशीं कर्तव्य जें सांवत्सरिक

श्राद्ध त्याची वृद्धि (द्विरावृत्ति) करूं नये' ह्या पैडीनसिवचनाशीं विरोध येईल, असें हेमाद्रीत व पृथ्वीचंद्रोदयांतही सांगितलें आहे. यावरून “श्राद्धाची वृद्धि करूं नये, हासही करूं नये, परंतु शुद्ध मासांतही करावेंच” अशी जी अनंत-महाची व्याख्या ती प्रमाणरहित असल्यामुळें खंडित झाली, प्रथमाब्धिक तेराव्या मलमासांत करावें, अशी जी पूर्वी केलेली व्याख्या तिच्याविषयी, ‘असंक्रांतेऽपि’ ह्या हारीतवचनांतील ‘प्रथम’ ग्रहणच प्रमाण आहे.

यदपिनिर्णयामृतपूर्वोक्तकालादर्शवचनात् मलमासेश्राद्धदिवसव्यर्थपित्रुद्देशेनब्राह्मणान् भोजयित्वाशुद्धमासेसपिंडकंश्राद्धं कुर्यात् पिंडवर्जमसंक्रांतौ पिंडसंयुतंप्रतिसंवत्सरंश्राद्धमेवंमासद्वयेपिचेति वृद्धपराशरोक्तेरिति तदपिचिंत्यम् पूर्वोक्तवचनस्यक्षयपूर्वभाष्यधिकमासविषयत्वात् तत्रहि मासद्वये-श्राद्धमुक्तं तदाहसत्यनपाः एकएवयदामासःसंक्रांतिद्वयसंयुतः मासद्वयगतंश्राद्धंमलमासेपिशस्यतइति मासद्वयगतंपूर्वासंक्रांतिगतंक्षयगतंच मलमासेक्षयमासे अपिशब्दात्पूर्वाधमासेचेतिहेमाद्रिः दीपिका-यामपि तत्प्राक्संग्यधिमासकोयदिभवेत्तत्रत्यसांवत्सरंतस्मिच्छुद्धतयाक्षयेचवचनात्कुर्याद्द्वयोःकोविदइति कालादर्शोप्येतद्विषयएवेत्यलंबहुना ।

आतां जें निर्णयामृतांत-पूर्वोक्त कालादर्शवचनावरून मलमासांतील श्राद्धदिवस व्यर्थ जाऊं देऊं नये, म्हणून पित्रु-ईशानं ब्राह्मणाला नुस्तें भोजन घालून शुद्धमासांत सपिंडक श्राद्ध करावें: कारण, “असंक्रांत मासांत पिंडवर्ज्य श्राद्ध व संक्रांतियुक्तमासांत सपिंडक श्राद्ध, याप्रमाणें प्रतिमांवत्सरिकश्राद्ध दोनही मासांत करावें” असें वृद्धपराशराचें वचन निर्णयामृतग्रंथांत सांगितलें आहे, तेंही चिंत्य होय. कारण, तें वृद्धपराशरवचन क्षयमासाच्या पूर्वी होणारा जो अधिकमास तद्विषयक आहे. क्षयमास व तत्पूर्वभावी अधिकमास ह्या दोन मासांत श्राद्ध करावें. असें मांगितलें आहे. तें सत्यनपा सांगतो—“ज्या वर्षी एकच मास दोन संक्रांतींनीं युक्त असा प्राप्त होतो त्यावर्षी मासद्वयगत (पूर्वीच्या संक्रांतिरहित मासांतील व क्षयमासांतील अशीं दोन) श्राद्धें मलमासांत (क्षयमासांत) करावीं. वरील सत्यतपोवचनांत ‘मलमासेऽपि शस्यते’ येथें ‘अपि’शब्द आहे म्हणून पूर्व अधिकमासांतही करावें, असें हेमाद्रि सांगतो. दीपिकें असेंच सांगतो—“क्षयमास प्राप्त असतां, त्याच्या पूर्वीच्या अधिकमासांतील सांवत्सरिक श्राद्ध तो शुद्ध असल्यामुळें त्यांत आणि श्राद्धानें सांगितल्यामुळें क्षयमासांत, असें दोनही मासांत ज्ञाला पुरुषांन श्राद्ध करावें.” कालादर्शी एतद्विषयकच आहे. ह्मत्का निर्णय पुरे. आतां याहून अधिक विचार नको.

मलमासेवर्ज्यान्युक्तानिकालादर्शे अनित्यमनिमित्तचदानंचमहदादिकं अग्न्याधानाध्वरापूर्व-तीर्थयात्रामरेक्षणं देवारामतडागादिप्रतिष्ठासौमिजिबन्धनं आश्रमस्वीकृतिःकाम्यवृषोत्सर्गश्चनिष्क्रमः राजाभि-षेकःप्रथमश्रुडाकर्मव्रतानिच अन्नप्राशनमारंभोगृहाणांचप्रवेशनं स्नानविवाहोनामातिपन्नदेवमहोत्सवः व्रता-रंभसमाप्तीचाकार्यकाम्यचपाप्मनाम् प्रायश्चित्तंतुसर्वस्यमलमासेविवर्जयेन् उपाकर्मोत्सर्जनंचपवित्रदम-नार्पणम् अवरोहश्चहैमंतःसर्पाणांबलिरष्टकाः ईशानस्यबलिर्विष्णोःशयनपरिवर्तनं दुर्गेद्रुथापनोत्थानेध्वजो-त्थानंचवज्रिणः पूर्वत्रप्रतिषिद्धानिपरत्रान्यच्चदैविकमिति अत्रमूलवचनानिहेमाद्रिमाधवादिभ्योज्ञेयानि दिवोदासीयेपि यात्रोत्सवंचदेवादिशपथंदिव्यमेवच मलमासेनकुर्वीतत्र्याघ्रस्यवचनंयथेति अयं-निर्णयःक्षयमासेपिज्ञेयः रविसंक्रमहीनेयोवर्ज्यावर्ज्यविधिःस्मृतः सएवतुद्विसंक्रांतेमलमासेप्युदीरितइति काठकगृहोक्तेः ।

मलमासांत वर्ज्य कर्म सांगतो.

कालादर्शांत म्हणतो—“अनित्य व अनिमित्तक कर्म; महादानादिक; अग्न्याधान; याग; अपूर्व (पूर्वी न झालेली) तीर्थयात्रा; अपूर्व देवदर्शन; देव, आराम, तलाव इत्यादिकांची प्रतिष्ठा (अर्चा); उपनयन; आश्रमस्वीकार; काम्यवृषोत्सर्ग; निष्क्रमणसंस्कार; प्रथम राजाभिषेक; चौलसंस्कार; व्रतें; (महानाम्न्यादि, अनंत, शिवरात्रि इत्यादिक); अन्नप्राशनसंस्कार; गृहारंभ; गृहप्रवेश; स्नान; विवाह; अतिक्रांत असे जातकर्मादिक संस्कार; देवमहोत्सव; व्रतांचा आरंभ व समाप्ति; अकाम्य-कर्म; काम्यकर्म; सर्वप्रायश्चित्त; प्रथम उपाकर्म व उत्सर्जन; पवित्रारोपण; दसनारोपण; हैमंतकृत कर्तव्य अवरोहण; सर्पबलि; अष्टक्राश्राद्धें; ईशानबलि; विष्णूचा शयनोत्सव व परिवर्तनोत्सव; दुर्गा व इंद्र यांची स्थापना व विसर्जन; इंद्रध्वज उभारणें-अभि-नुसरेंही दैविककर्म; हीं सर्व-कर्में पहिल्या (अधिक) मासांत वर्ज्य करावीं. तींच कर्में पुढच्या शुद्ध मासांत करावीं.” याविषयीची मूलवचनें हेमाद्रि, माधव इत्यादिक ग्रंथांत पाहावीं. दिवोदासीयांतही म्हणतो—“यात्रा, उत्सव,

देवादिकांची शपथ, दिव्यकर्म हीं कर्म मलमासांत करूं नयेत, असें व्याघ्रहविषयचन आहे.” हा वर्ज्यनिर्णय क्षयमासा-विषयीही जाणावा; कारण, “सूर्यसंक्रांतिरहित (अधिक) मासांत जो वर्ज्यावर्ज्यनिर्णय सांगितला तोच निर्णय द्विसंक्रांत (क्षय) मासांतही जाणावा” असें काठकगृह्यांत वचन आहे.

क्षयमासमृतानांप्रत्याब्दिकेविशेषोहेमाद्रौ तिथ्यर्धेप्रथमेपूर्वोद्वितीयेर्धेतयोत्तरः मासावि-
तिबुधैश्चिंत्योक्षयमासस्यमध्यगौ ।

आब्दिकवर्धापनेपिज्ञेयं यन्मलमासेवर्ज्यमुक्तं ऋकगुर्वोरस्तादिष्वपिज्ञेयं तदाहबृहस्पतिः बाले-
वायदिवावृद्धेशुकेवास्तंगतेगुरौ मलमासइवेतानिवर्जयेद्देवदर्शनमिति अनादिदेवतांरहद्वाशुचःस्युर्नष्टभार्गवे
मलमासेप्यनावृत्ततीर्थयात्रांविबर्जयेत् आवृत्ततीर्थेदोषाभावमात्रंननुफलमिति वाचस्पतिमिश्राः तत्र
असतिबाधकेफलहेतुत्वाक्षतेः ।

क्षयमासमृतांच्या प्रतिसांवत्सरिक श्राद्धाचा निर्णय सांगतो.

हेमाद्रौ सांगतो—“क्षयमासाच्या प्रतिपदादिक ज्या तिथि त्यांच्या पूर्वाधी मृत असेल तर पूर्वमास व उत्तराधी मृत असेल तर पुढचा मास, याप्रमाणें त्या क्षयमासाच्या सर्व तिथि दोन मासांच्या आहेत, यास्तव क्षयमासांत तिथींच्या पूर्वाधी मृत झाला असेल तर त्याचें प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध पूर्वमासांत व तिथींच्या उत्तराधी मृत असेल तर त्याचें प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध पुढच्या मासांत करावें.”

गुरुशुक्रास्तांचा निर्णय—याप्रमाणें जन्म झाला असतां वाढदिवसाविषयीही असाच निर्णय जाणावा. मलमासांत जो वर्ज्यावर्ज्य निर्णय (वर) सांगितला तो गुरुशुक्रांचे अस्ताविषयीही जाणावा. तेंच बृहस्पति सांगतो—“मलमासांत जें वर्ज्य सांगितलें तें व देवदर्शन हें, गुरु किंवा शुक्र यांचें अस्त, बाल्य किंवा वार्धक्य असतां वर्ज्य करावें. “शुक्र अस्तंगत असतां अपूर्व देवतेचें दर्शन केलें तर शोक होतो; मलमासांतही अपूर्व तीर्थयात्रा करूं नये.” पूर्वी ज्या तीर्थाची यात्रा केली असेल त्याची पुनः यात्रा मलमासांत केली असतां दोष मात्र नाही, परंतु फल नाही, असें वाचस्पतिमिश्र म्हणतात; तें बरोबर नाही; कारण, ज्यापेक्षां बाधक नाही त्यापेक्षां फल होणें निर्विवाद आहे.

लल्लोपि नीचस्थेवकर्मस्थेप्यतिचरणगतेबालवृद्धास्तगेवासंन्यासोदेवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु-
दीक्षा मौजीबंधोन्नानांपरिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठावर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्रिदशपतिगुरौसिंहराशिस्थितेचेति
दीक्षायागदीक्षाआगमदीक्षाच तथा उद्यानचूडाव्रतबंधदीक्षाविवाहयात्राचबधूपवेशः तडागकूपत्रिदशप्रति-
ष्ठाबृहस्पतौसिंहगतेनकुर्यान् दिवोदासीये गुर्वादित्येगुरौसिंहेनष्टेशुक्रेमलिम्बुचे गृहकर्मव्रतंयात्रांमनसा-
पिनचितयेत् ।

लल्लुही सांगतो—“नीचस्थ (मकरस्थ), वक्रस्थ, किंवा अतिचारगत, अथवा बाल, वृद्ध, अस्तंगत असा गुरु असतां किंवा सिंहस्थ गुरु असतां संन्यास, देवयात्रा, व्रतें, नियमविधि, कर्णवेध, दीक्षा (यज्ञदीक्षा व आगमदीक्षा), मौजीबंधन स्त्रियांचा विवाह, गृह बांधणें, देवाची अर्चा हीं सर्व कर्म झाल्या पुरुषांनीं वर्ज्य करावीं—” दीक्षा म्हणजे यज्ञदीक्षा व मंत्र-दीक्षा. तसेंच “सिंहस्थ गुरु असतां उद्यान, चोल, उपनयन, दीक्षा, विवाह, यात्रा, बधूपवेश, तडाग, कूप, देव, यांची अर्चा, हीं कर्म करूं नयेत.” **दिवोदासीयांत** सांगतो—“अस्तंगत गुरु, सिंहस्थ गुरु, अस्तंगत शुक्र, मलमास यांचे ठायीं गृह बांधणें, व्रत, यात्रा हीं करण्याविषयीं मनांतही आणूं नये.”

अस्यापवादः तत्रैवब्राह्मे मुंडनचोपवासश्रगौतम्यांसिंहगेगुरौ कन्यागतेतुक्कृष्णायानंतुत्तरीरवा-
सिनां तथा आद्यासौगौतमीगंगाद्वितीयाजाहवीमृता सर्वतीर्थफलज्ञानाद्रौतम्यांसिंहगेगुरौ ।

याचा अपवाद—तेथेंच ब्राह्मांत सांगतो—सिंहस्थ गुरु असतांही गोदावरीचे ठायीं आणि कन्यागत गुरु असतां कृष्णेचे ठायीं यात्रा करणाऱ्यांस शौर, उपवास आहेत; तीरवासी जनांस नाहीत.” तसेंच “गौतमी पहिली गंगा व दुसरी जाहवी गंगा होय, यास्तव सिंहस्थ गुरु असतां गोदावरीचे ठायीं स्नान केल्यांत सर्वतीर्थस्नानाचें फल प्राप्त होतें.”

संहिताप्रदीपे स्यात्सप्ररात्रंगुरुशुक्रयोश्चबालत्वमह्नांशकंचवार्धम् वृद्धौसितेज्यावशुभौशिशुत्वेऽस्तौ
यतस्तावुपचीयमानौ वसिष्ठः अतिचारगतेजीवेवर्जयेत्तदनंतरं व्रतोद्वाहादिकार्येषुअष्टाविंशतिवासरात् ।

संहिताप्रदीपांत सांगतो—“गुरु व शुक्र यांचे उदयानंतर सात दिवस बाल्य आणि अस्ताचे पूर्वी दहा दिवस वार्धक्य; वार्धक्याचे अधिक दिवस सांगण्याचें कारण, गुरुशुक्रांचें वार्धक्य अशुभ व बाल्य शुभ होय, ते गुरु व शुक्र बात्यापासून

पुढें वृद्धिगत होणारे आहेत" वसिष्ठ म्हणतो-“अतिचारगत (म्हणजे शीघ्र गतीनें पूर्वराशींचे शेष उल्लूचून दुसऱ्या राशींचे ठायीं जो संचार तो अतिचार, त्या अतिचाराप्रत गेलेला) गुरु असतां उपनयन, विवाह इत्यादि शुभ कार्यांचे ठायीं अष्टावीस दिवस टाकावे.”

बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धांति रविणासक्तिरन्येषांप्रहाणामस्तु उच्यते ततोऽर्वाग्वार्धकंप्रोक्त-
मूर्ध्वबाल्यंप्रकीर्तितमिति बाल्यादिपरिमाणंचवृत्तशते बालःशुक्रोदिवसदशकंपंचकंचैववृद्धःपश्चा-
वहान्नितयमुदितःपक्षमैद्याक्रमेण जीवोवृद्धःशिशुरपितथापक्षमन्यैःशिशूतौवृद्धौप्रोक्तौदिवसदशकंचापरेः-
सप्ररात्रम् पश्चिमतउदयेदशदिनानिबालः अस्तेपंचदिनानिवृद्धः पूर्वतोदिनत्रयंबालःपक्षंचवृद्धइत्यर्थः जीवो-
गुरुः अन्यत्रत्वन्यथोक्तं प्राक्पश्चादुदितःशुक्रःपंचसप्तदिनंशिशुः विपरीतंतुवृद्धत्वंतद्वेदगुरोरपीति एषां-
चपक्षाणांव्यवस्थामाहमिहिरः बहवोदृशिताःकालायेबाल्येवार्धकेपिवा ग्राह्यास्तत्राधिकाःशेषा-
देशभेदादुतापदीति देशभेदश्चमदनरत्नेगार्ग्यः शुक्रोगुरुःप्राक्चपराक्चबालोर्विध्येदशावंतितुसप्ररात्रम्
वंगेषुहूणेपुचषट्चपंचशेषेचदेशेत्रिदिनंवदंतीति ।

शुक्र व गुरु यांचें बाल्यादि लक्षण सांगतो.

ब्रह्मसिद्धांतांत-“रवीसहवर्तमान जी अन्य ग्रहांची आसति (जवळ राहणें) तें अस्त म्हटलें आहे. त्या अस्ताच्या पूर्वीची जी अवस्था तें वार्धक्य, उदयानंतर जी अवस्था तें बाल्य म्हटलें आहे.” बाल्यादिक दिवसांची संख्या सांगतो-वृत्तशतांत म्हणतो. “शुक्र पश्चिमदिशेस उदय पावला असतां दहा दिवस बाल्य, अस्तंगत झाला असतां पांच दिवस वार्धक्य; पूर्वे दिशेस उदय पावला असतां तीन दिवस बाल्य, आणि अस्तंगत झाला असतां पंधरा दिवस वृद्धत्व जाणावें; याचप्रमाणें गुरुचें बाल्य व वार्धक्य जाणावें. दुसरे म्हणतात-शुक्र व गुरु यांचें बाल्य आणि वार्धक्य पंधरा पंधरा दिवस आहे; अन्य म्हणतात दहा दहा दिवस; अपर म्हणतात सात सात दिवस आहे.” अन्य ग्रंथीं दुसऱ्या प्रकारें सांगतो-“शुक्र पूर्वे दिशेस उदय पावला असतां पांच दिवस बाल, आणि पश्चिम दिशेस उदय पावला असतां सात दिवस बाल; वार्धक्य तर याच्या उलट, म्हणजे पूर्वे दिशेस अस्त असतां सात दिवस वार्धक्य, आणि पश्चिम दिशेस अस्त असतां पांच दिवस वार्धक्य होय. याप्रमाणेंच गुरुचेंही बाल्य व वार्धक्य जाणावें.” ह्या सर्वे पक्षांची व्यवस्था मिहिर सांगतो-“गुरुशुक्रांच्या बाल्यवार्धक्याविषयीं बहुत काल दाखविले, त्यांमध्ये जे अधिक काल (१५।१० इत्यादि दिवस) असतील ते घ्यावे, इतर (न्यूनकाल) देशभेदानें अथवा आपत्कालीं घ्यावे.” मदनरत्नांत गार्ग्य देशभेद सांगतो-“शुक्र व गुरु हे पूर्वेस व पश्चिमेस उदित असतां विध्यप्रदेशीं दहा दिवस बाल, अर्वादिदेशांत सात दिवस, वंग देशांत सहा दिवस, हूणदेशांत पांच दिवस, इतर देशांत तीन दिवस बाल, असें विद्वान् म्हणतात.”

अस्तादेरपवादःकाशीखंडे नप्रहास्तोदयकृतोदोषोविश्वेश्वरालये त्रिस्थलीसेतौवायवीये
गोदावर्यागयायांचश्रीशैलेग्रहणद्वये सुरासुरगुरूणांचमौल्यदोषोनाविद्यते ग्रहणद्वयेतन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रा-
दानादावित्यर्थः तदाह त्रिस्थलीसेतौलल्लः उपप्लवेशीतलभानुभान्वोरधोदयेवैकपिलाख्यषष्ठ्यां सुरा-
सुरेज्यास्तमयेपित्थेयात्राविधिःसंक्रमणेचशस्तः नमूढदोषोचरात्रिदोषोचधिमासोनमृत्तिर्नसृतिः एवम-
प्युत्तरार्धपठंति इत्यलंबहुना ।

अस्तादिकाचा अपवाद-काशीखंडांत सांगतो-“विश्वेश्वराचें स्थान जें काशीक्षेत्र यांत ग्रहांचा अस्तदोष नाही.” त्रिस्थलीसेतूंत-वायुपुराणांत सांगतो “गोदावरी, गया, श्रीशैल, यांचे ठायीं गुरुशुक्रास्ताचा दोष नाही. आणि चंद्र-सूर्यग्रहणनिमित्तक कुरुक्षेत्रयात्रा, दान इत्यादिकांविषयीं अस्तदोष नाही.” तेंच त्रिस्थलीसेतूंत सांगतो-
लल्ल म्हणतो-“चंद्रसूर्याचें ग्रहण, अधोदयपूर्व, कपिलाषष्ठी, आणि संक्रांति ह्या पंचदिवशीं गुरुशुक्रांच्या अस्तांत देखील तीर्थयात्रा विधि प्रशस्त आहे तो करावा, त्याला दोष नाही.” “न मूढदोषो नच रात्रिदोषो न चाधिमासो न मृत्तिर्न सृतिः” असेंही वरील श्लोकाचें उत्तरार्ध कोणी पठन करितात. अर्थ-“अस्तदोष नाही, रात्रिदोष नाही, अधिक-मासदोष नाही, मृताशौच व जननाशौच यांचाही दोष नाही.” इतका निर्णय पुरे करितों, फार सांगत नाही.

मलमासेचव्रतविशेषउक्तोहेमाद्रौपाद्ये अधिमासेतुसंप्राप्तेगुडसर्पिंयुतानिच त्रयस्त्रिंशदपूपानिदा-
तव्यानिदिनेदिने साज्यानिगुडमिश्राणिअधिमासेनृपोत्तम अधिमासेतुसंप्राप्तेत्रयस्त्रिंशतुदेवताः उदिश्यापू-

पदानेनपृथ्वीदानफलंभेत् त्रयस्त्रिंशदंपूपांशंकांस्यापात्रेनिधावच सधृतंसहिरण्यंचब्राह्मणायनिवेदयेत् विष्णु-
रूपीसहस्रांशुःसर्वपापप्रणाशनः अपूपान्नप्रदानेनममपापंव्यपोहतु नारायणजगद्बीजभास्करप्रतिरूपक व्रतेना-
नेनपुत्रांश्चसंपदंचामिवर्धय यस्यहस्तेगदाचक्रेगरुडोयस्यवाहनं शंखःकरतलेयस्यसमेविष्णुःप्रसीदतु कलाका-
ष्ठादिरूपेणनिमेषघटिकादिना योवंचयतिभूतानितस्मैकालात्मनेनमः कुरुक्षेत्रमयदेशःकालःपर्वद्विजोहरिः
पृथ्वीसममिदंदानंगृहाणपुरुषोत्तम मलानांचविशुद्ध्यर्थपापप्रशमनायच पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थतवदास्यामिभा-
स्कर मंत्रेणानेनयोदयात्रयस्त्रिंशदंपूपकान् प्राप्नोतिविपुलांलक्ष्मींपुत्रपौत्रादिसंपदः इतिनिर्णयसिंधौ मल-
मासनिर्णयः ।

मलमाससंबंधी विशेषव्रत सांगतो.

हेमाद्रि-पञ्चपुराणांत म्हणतो—“अधिकमास प्राप्त असतां गुड, घृत यांनीं युक्त असे तेहतीस अपूप दररोज द्यावे.
अधिकमासांत तेहतीस देवतांच्या उद्देशेंकरून अपूपांचें दान केलें असतां पृथ्वीदानाचें फल मिळतें. कांस्यापात्रांत घृतयुक्त
असे तेहतीस अपूप घालून ते हिरण्यसहित ब्राह्मणाला द्यावे. दानाचा मंत्र—“विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपाप-
प्रणाशनः ॥ अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु ॥ नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक ॥ व्रतेनानेन
पुत्रांश्च संपदं चाभिवर्धय ॥ यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनं ॥ शंखः करतले यस्य स मे
विष्णुः प्रसीदतु ॥ कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना ॥ यो वंचयति भूतानि तस्मै कालात्मने
नमः ॥ कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्व द्विजो हरिः ॥ पृथ्वीसममिदं दानं गृहाण पुरुषोत्तम ॥ मलानां
च विशुद्ध्यर्थं पापप्रशमनाय च ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर ॥” “ह्या मंत्रेंकरून जो पुरुष
तेहतीस अपूपांचें दान करितो त्याला विपुल लक्ष्मी व पुत्रपौत्रादिक संपत्ति हीं प्राप्त होतात.” इति निर्णयसिंधौ
महाराष्ट्रीकायां मलमासनिर्णयः ॥

पञ्चनिर्णयस्तु देवमुख्यःशुक्लपक्षःकृष्णःपित्र्येविशिष्यतइतिमाधवेनोक्तः ।

पक्षनिर्णय सांगतो.

“देवकर्माविषयीं शुक्लपक्ष मुख्य आणि पितृकर्माविषयीं कृष्णपक्ष मुख्य आहे” असा माधवानें निर्णय सांगितला आहे,
तो समजावा.

अथतिथिनिर्णयः तत्रतिथिर्द्वेधा शुद्धाविद्धाच दिनेतिथ्यंतरसंबंधरहिताशुद्धा तद्रहिताविद्धा तत्र
शुद्धायामसंदेहाद्विद्वानिर्णयते तत्रसामान्यतोवेधमाहमाधवीयेपैठीनसिः पक्षद्वयेपितिथयस्तिथिपूर्वा-
तथोत्तरां त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यंतिसामान्योऽयंविधिःस्मृतइति हेमाद्रिमदनरत्नादौतुद्विमुहूर्तौयुक्तः उदिते
दैवतंभानौपित्र्यंचास्तमितेरत्रौ द्विमुहूर्तात्रिरह्नश्चातिथिर्हव्यकव्ययोरिति विष्णुधर्मोक्तेः द्विमुहूर्तं
चानुकल्पः द्विमुहूर्तापिकर्तव्यायातिथिर्द्विगामिनीतिदक्षेणापिशब्दोक्तेः अयंवेधःप्रातरेव सायंतुत्रिमुहूर्तौ
वेधएव यांतिथिसमनुप्राप्ययात्यस्तंपद्मिनीपतिः सातिथिस्तद्दिनेप्रोक्तात्रिमुहूर्तैर्वयाभवेदिति स्कांदोक्तेः
दीपिकापि त्रिमुहूर्तगातुसकलासायेति ।

आतां तिथिनिर्णय सांगतो.

तिथि दोन प्रकारची, एक शुद्धातिथि आणि दुसरी विद्धातिथि; ज्या तिथीस साऱ्या दिवसांत अन्यतिथीचा संबंध
नाहीं ती शुद्धातिथि, म्हणजे सूर्योदयापासून अस्तमानापर्यंत असणारी—व शिवरात्र्यादिक व्रतांचे ठायीं मध्यरात्रीपर्यंत अस्त-
णारी ती शुद्धातिथि; तीहून भिन्न ती विद्धातिथि जाणावी. शुद्धातिथीविषयीं संशय नसल्यामुळे निर्णयाचें प्रयोजन नाही.
विद्धातिथीचा निर्णय सांगतो—त्या विद्धातिथीच्या निर्णयासाठीं सामान्यतः वेध सांगतो—माधवीयांत-पैठी-
नसि म्हणतो—“शुक्ल व कृष्ण ह्या दोन्ही पक्षांत सर्व तिथि, पूर्वे तिथीला व उत्तरे तिथीला तीन मुहूर्तांनीं विद्ध करतात,
हा वेधाचा प्रकार सामान्य सर्व तिथींना सांगितला आहे.” हेमाद्रि, मदनरत्न इत्यादिकांत तर द्विमुहूर्ती वेध सांगितला
आहे. कारण “सूर्याच्या उदयकालीं दोन मुहूर्त दैवत (देवदेवताक), आणि सूर्याच्या अस्तसमयीं तीन मुहूर्त पित्र्य
(पितृदेवताक) होत, यास्तव प्रातःकालीं दोन मुहूर्त असणारी तिथि हव्या (देवकर्मा) विषयीं घ्यावी. आणि सव्यकालीं
तीन मुहूर्त असणारी तिथि कव्या (पितृकर्मा) विषयीं घ्यावी” असे विष्णुधर्मोक्त वचन आहे. प्रातःकालीं दोन मुहूर्त
३ निर्ण.

असें जै सांगितलें, तो अनुकल्प (गौणपक्ष) आहे. कारण, “जी तिथि वाढणारी असेल ती जरी दोन मुहूर्तही असली तरी ध्यावी” या दक्षस्मृतींत ‘अपि’ शब्द (दोन मुहूर्तही) आहे. हा दोन मुहूर्तांचा वेध प्रातःकालीन च ग्रहण करावा. सायंकाळीं तर त्रिमुहूर्तच वेध घ्यावा. कारण, “सूर्य ज्या तिथीला जाऊन अस्त पावतो ती तिथि अस्ताचे पूर्वी तीन मुहूर्त असतां संपूर्ण जाणावी” असें स्कांदवचन आहे. दीपिकाही—“सायंकाळीं त्रिमुहूर्तव्यापिनी जी तिथि ती संपूर्ण तिथि होय.”

यानितु व्रतोपधासस्नानादौघटिकैकापियाभवेत् उदयेसातिथिर्ग्राह्याविपरीतातुपैतृकइत्यादीनिस्कांदादि-
वचनानितानिवैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्यात्रिमुहूर्तप्रशंसापराणि तिथिविशेषेवेधविशेषः-
स्कांदे नागोद्वाद्दशनाडीभिर्द्विक्पंचदशभिस्तथा भूतोद्वाद्दशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरांतिथिमिति अयंचोपवामा-
तिरिक्तविषयइतिवक्ष्यते इतिवेधः ।

आतां जी “उदयकालीं एक घटिका जरी तिथि असली तरी ती व्रत, उपवास, स्नान इत्यादिक कर्माविषयी ध्यावी; पितृकर्माविषयीं अस्तकालगामिनी ध्यावी” इत्यादिक स्कांदादिवचनें तीं, वैश्वानराधिकरणन्यायानें अवयवाच्या स्तुतिद्वारानें त्रिमुहूर्तप्रशंसापर आहेत. विशेष तिथींना विशेष वेध स्कांदांत सांगतो—“पंचमी बारा घटिकांनीं षष्ठीला विद्ध करिते. दशमी पंधरा घटिकांनीं एकादशीला विद्ध करिते. चतुर्दशी अठरा घटिकांनीं उत्तर तिथीला (पौर्णिमेला) विद्ध करिते.” हा सर्व प्रकारचा वेध उपवासव्यतिरिक्तविषयक होय, असें पुढें सांगूं. याप्रमाणें वेधनिर्णय जाणावा.

तत्रसर्वातिथिर्यदहःकर्मकालव्यापिनीसैवग्राह्या कर्मणोयस्ययःकालस्तत्कालव्यापिनीतिथिः तयाकर्मा-
णिकुर्वीतह्वासृद्धीनकारणमितिचिच्छुधर्मात्तेः दिनद्वयेतद्याप्रावेकदेशव्याप्तौवायुमवाक्यान्निर्णयः तस्य
पूर्वाबाधेनोपपत्तेः कर्मकालस्यप्रधानांगत्वाच्च ।

तिथि ध्यावयाची ती अशी—ज्या कर्माचा जो काल रात्री किंवा दिवसा असेल त्या कालीं व्यापून राहणारी ज्या दिवशीं जी तिथि असेल तीच ध्यावी. कारण, “ज्या कर्माचा जो काल तत्कालव्यापिनी तिथि ध्यावी. त्या तिथीनें कर्म करावी; कर्मकालाविषयीं क्षय, वृद्धि हीं कारण नाहीत” असें विष्णुधर्मांत वचन आहे. दोन दिवशीं कर्मकालव्यापिनी तिथि असली किंवा एकदेशव्यापिनी असली तर युग्मवाक्यानें निर्णय करावा. तसा निर्णय केला असतां पूर्वीक कर्मकालाचा बाध न येतां वाक्याची उपपत्ति होते. कर्मकालाचा बाध होऊं या, असें म्हणतां कामा नये; कारण, कर्मकाल हें प्रधान अंग आहे.

युग्मवाक्यंतुनिगमः युग्माग्नियुग्मभूतानांपण्मुन्योर्वसुरंध्रयोः रुद्रेणद्वादशीयुक्ताचतुर्दश्याचपूर्णिमा
प्रतिपद्यमवास्यातिथ्योर्युग्ममहाफलं एतच्चस्वतंमहादोषंहतिपुण्यपुराकृतमिति अत्ररंध्रांताःशब्दाद्वितीया-
दिनवन्त्यततिथिवाचकाः रुद्रएकादशी द्वितीयातृतीयायुतासाचद्वितीयायुतेतिसप्तयुग्मानीत्यर्थः इदंचशुक्ल-
पक्षे अमाप्रतिपद्युग्मस्यपूर्णिमायाश्चतत्रैवसत्त्वादितिकेचित् तत्त्वत्वमावास्याप्रतिपद्युग्मात्शुक्लपक्षलिंगात्प-
क्षद्वयपरमिदंतत्तद्विशेषवाक्यैःकृष्णेतिथिविशेषोपोह्यतइति दशमीतुक्तापुराणसमुच्चये संपूर्णदशमीकार्या-
मिश्रितापूर्वयाथवेति संपूर्णशुक्लपक्षे त्रयोदशीतुसुमंतुनोक्ता त्रयोदशीतुक्तव्याद्वादशीसहितामुनेइति ।

युग्मवाक्य असें—निगम—“युग्म म्हणजे द्वितीया, अग्नि म्हणजे तृतीया, युग म्हणजे चतुर्थी, भूत म्हणजे पंचमी, षट् म्हणजे षष्ठी, मुनि म्हणजे सप्तमी, वसु म्हणजे अष्टमी, रंध्र म्हणजे नवमी, रुद्र म्हणजे एकादशी. द्वितीया तृतीयाविद्धा ध्यावी, तृतीया द्वितीयाविद्धा ध्यावी. याप्रमाणें द्वितीया व तृतीया यांचें युग्म, चतुर्थी व पंचमीचें युग्म, षष्ठी व सप्तमीचें युग्म, अष्टमी व नवमीचें युग्म, एकादशी व द्वादशीचें युग्म, चतुर्दशी व पौर्णिमेचें युग्म, अमावास्या व प्रतिपदेचें युग्म, याप्रमाणें सात युग्मे होत. तिथींचें युग्म महाफल देणारें आहे. आणि याच्या उलट म्हणजे युग्मतिथि ज्या नसतील त्यांचा योग महादोषकारक असून पूर्वीचें पुण्य घालवितो.” हीं युग्मे शुक्लपक्षांतील आहेत. कारण, अमावास्या व

१. वैश्वानराधिकरणन्याय—पुत्र झाला असतां द्वादशकपाल (बाराकपालांत संस्कार केलेल्या) पुरोडाशाचा वैश्वानरदेवतेला होम करावा, असें सांगून पुढें अष्टाकपाल पुरोडाश पवित्र करितो, नवकपाल तेज धारण करितो, दशकपाल अन्नादिक देतो, एकादशकपाल इंद्रियें चांगलीं देतो, आणि द्वादशकपाल पशु देतो. जो पिता पुत्र झाला असतांही द्वादशकपाल इष्टि करितो, तो पुत्र पवित्र, तेजस्वी, अन्नाच, इन्द्रिययुक्त, आणि पशुयुक्त होतो. या ठिकाणीं द्वादशकपालांत अष्टाकपालादिपुरोडाशांचा अंतर्भाव होऊन त्या द्वादशकपालांचेच अष्टाकपालादिकांचीं फळे मिळतात, म्हणून त्या अष्टाकपालादि अवयवांच्या स्तुतीनें द्वादशकपाल जो अवयवी त्याची स्तुति केली जाते. त्या न्यायानें एवें त्रिमुहूर्तांचा अवयव जी एकादिघटिका तिच्या स्तुतीनें त्रिमुहूर्तांची प्रशंसा करणारी ही वचने आहेत, असें समजावें.

प्रतिपदेचं युग्म, आणि चतुर्दशी व पौर्णिमेचं युग्म हीं शुक्रपक्षांतच आहेत असें कोणी म्हणतात. ह्याचें तसेच म्हटलें तर, अमावास्या व प्रतिपदेचं युग्म हें कृष्णपक्षांतील घेण्यास लिंग (प्रमाण) असल्यामुळें हें युग्मवाक्य उभयपक्षपर आहे. आतां कृष्णपक्षांत ज्या ज्या युग्मतिथी इष्ट नसतील त्या त्या युग्मतिथीचें निराकरण त्या त्या विशेष वाक्यांनीं करावें, असें तात्पर्य. **पुराणसमुच्चयांत** दशमी सांगतो—“शुक्रपक्षांतील दशमीतिथि, पूर्वतिथीनं (नवमीनं) मिश्रित (युक्त) अशी ध्यावी. त्रयोदशी तर **सुमंतूनं** सांगितली आहे—ती अशी:—“हे सुने, त्रयोदशी तिथि, द्वादशीसहित असेल ती ध्यावी.”

कृष्णपक्षेत्वापस्तंबः प्रतिपत्सद्वितीयास्याद्वितीयाप्रतिपद्युता चतुर्थीसंयुतायाचसातृतीयाफलप्रदा पंचमीचप्रकर्तव्यापप्रथयायुक्तातुनारद कृष्णपक्षेष्टमीचैवकृष्णपक्षेचतुर्दशी पूर्वविद्धाप्रकर्तव्यापरविद्वानकुत्रचित् दशमीचप्रकर्तव्यासदुर्गाद्विजसत्तम पप्रथष्टमीअमावास्याकृष्णपक्षेत्रयोदशी एताःपरयुताःपूज्याःपराःपूर्वेण-संयुताइति ।

कृष्णपक्षांतील तिथीविपर्यां सांगतो—**आपस्तंबः**—“प्रतिपदा द्वितीयायुक्त ध्यावी. द्वितीया प्रतिपदायुक्त ध्यावी. तृतीया चतुर्थीयुक्त ध्यावी ती फलप्रदा होते. पंचमी षष्ठीयुक्त ध्यावी. कृष्णपक्षांतील अष्टमी, चतुर्दशी, ह्या तिथि पूर्वविद्धा कराव्या, परविद्धा कदापि करूं नयेत. दशमी नवमीयुक्ता करावी. कृष्णपक्षांतील षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या, त्रयोदशी ह्या तिथि उत्तरविद्धा ध्याव्या. आणि उत्तरतिथि पूर्वतिथिविद्धा ध्याव्या.”

यत्तुव्याघ्रः खर्वोदर्पन्मथाहिंसात्रिविधंतिथिलक्षणम् खर्वदर्पोपरीपूज्यौहिंसास्यात्पूर्वकालिकीति खर्वः साम्यम् दर्पोवृद्धिः तयोःपरा हिंसाक्षयस्तत्रपूर्वत्यर्थः एतच्छ्राद्धादिविषयम् द्वितीयादिपुयुग्मानांपूज्यता नियमादिपु एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौद्वास्वृद्ध्यादिचोदनेतिव्यासोक्तेः नियमादिपु व्रतदानादिकर्मसु एकोद्दिष्टादितिथेर्वृद्ध्यादावित्यर्थः ।

आतां जें **व्याघ्र** सांगतो—“खर्व, दर्प, आणि हिंसा असें तीन प्रकारचें तिथिस्वरूप आहे; खर्व व दर्प हे पर ध्यावे, व हिंसा पूर्वे ध्यावी.” खर्व म्हणजे साम्य, दर्प, म्हणजे वृद्धि, साम्य किंवा वृद्धि असतां परविद्धा ध्यावी, आणि हिंसा म्हणजे क्षयगामिनी अगतां पूर्वविद्धा तिथि ध्यावी, असा फलितार्थ आहे. हें वचन श्राद्धादिविषयक आहे. कारण, “द्वितीयादिक तिथींचीं युग्मे जां सांगितलीं नां व्रते, दाने इत्यादिक देवकर्माविपर्यां जाणावीं, एकोद्दिष्टादिक पित्र्यकर्म, तिथीची वृद्धि, क्षय यांचें निणयानें करावें, अशाकरितां क्षयवृद्धी सांगितली आहे” असें **व्यासवचन** आहे.

कर्मकालव्याप्त्यभावंतु कर्मोपक्रमकालगौवग्राह्या कर्मोपक्रमकालगातुकृतिभिर्ग्राह्यानायुग्मादरइतिदीपि-**कोक्तेः यानितु** यांतिथिसमनुप्राप्यउदयंयातिभास्करः सातिथिःसकलज्ञेयादानाध्ययनकर्मस्वित्यादीनि-**तानि**त्रिमुहूर्तादिस्तुतिरिति**निर्णयशैली** ।

कर्मकालव्यापिनी नसेल तर कर्माच्या उपक्रमाचा (आरंभाचा) जो काल ह्या कालीं असेल तीच ध्यावी. कारण, “कर्मोपक्रमकालगामिनी ध्यावी, युग्मवाक्याचा आदर नाही (म्हणजे युग्मवाक्यानें निर्णित असून कर्मकालव्यापिनीच तिथि आवश्यक आहे असें नाही.)” असें **दीपिकावचन** आहे. आतां जां “ज्या तिथीला जाऊन सूर्य उदय पावतो ती तिथि: दान, अध्ययन इत्यादि कर्माविपर्यां संपूर्ण जाणावी” इत्यादिक वचनें तीं त्रिमुहूर्तादि स्तुतिपर होत, याप्रमाणें **निर्णयशैली** आहे.

अथैकभक्तं तत्कालः**पाद्मे** मध्याह्नव्यापिनीग्राह्याएकभक्तेसदातिथिरिति मध्याह्नपंचधाविभक्त-**दिन**तृतीयांशः तेनयद्यपिद्वादशदंडानंतरंप्राप्यते तथापि दिनार्धसमयंतीतेभुज्यतेनियमेनयत् एकभक्तमि-**ति**प्रोक्तमतस्तस्यादिवैवहीतिस्कांदोक्तेःषोडशसप्तदशादिदंडामुख्यःकालः **दीपिकायांतु** मध्याह्नांत्य-**द्वे**त्रिभागदिवसेस्यादेकभक्तमिति ततःसूर्यास्तपर्यंतगौणः दिवैवहीत्यस्यैवध्यापच्यैतत्परत्वात् ।

आतां एकभक्तव्रताचा निर्णय सांगतो.

एकभक्तव्रताचा काल पाश्चांत सांगतो—“एकभक्तव्रताविषयी तिथि मध्याह्नव्यापिनी सर्वदा ध्यावी.” दिवसाचे पांच भाग करून तिसरा जो भाग तो मध्याह्न, यावरून तो जरी बारा घटिकांनंतर प्राप्त होतो तथापि “दिवसाचें अर्थ गेलें असतां नियमंकरून जें भोजन करणें तें एकभक्त म्हटलें आहे, यास्तव तें दिवसासच करावें” असें **स्कंदपुराणवचन** आहे, म्हणून सोळावी, सतरावी इत्यादिक जी घटिका तो मुख्यकाळ. **दीपिकेंत** तर—“दिवसाचे तीन भाग करून मध्या-

न्हाचे शेवटचे भागीं एकभक्तव्रत करावें” असें आहे. मध्यान्हानंतर सूर्यास्तापर्यंत गौण काल. कारण, ‘दिवसासच करावें’ असें जें वरील वचनांत सांगितलें तें व्यर्थ होऊन गौणकालबोधक आहे.

अत्रपूर्वेष्टुरेवव्याप्तिः परेष्टुरेवोभयेष्टुर्याप्तिस्तद्भावोऽश्व्याप्तिस्तत्रापिसाम्यं वैषम्यंचेति षट्पक्षाः तत्राद्योरसंदेहेष्वेव तृतीयेतुपूर्वेहिगौणमुख्यव्याप्तेः सत्त्वात्पूर्वेति माधवः युग्मवाक्यान्निर्णयइति हेमाद्रिः चतुर्थपक्षेपूर्वेवगौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् वैषम्येणांशव्याप्तौ याधिकासाग्राह्या साम्येपूर्वा अयंचस्वतंत्रैकभक्त-निर्णयः अन्यांगे उपवासप्रतिनिधौ तदनुसारेण निर्णयः ।

ह्या एकभक्त तिथीच्या व्याप्ताविषयीं सहा पक्ष आहेत, ते असेः-१ पूर्व दिवशींच (मुख्यकालीं) व्याप्ति, २ दुसऱ्या दिवशींच व्याप्ति, ३ दोनही दिवशीं व्याप्ति, ४ दोनही दिवशीं व्याप्ति नमणें, ५ दोनही दिवशीं सारखी एकदेशव्याप्ति, ६ दोन दिवशीं विषम एकदेशव्याप्ति, याप्रमाणें सहा पक्ष आहेत. त्यांमध्ये पहिल्या दोन पक्षांविषयीं संशयच नाही. तिसऱ्या पक्षीं पहिल्या दिवशीं गौणकालीं व मुख्यकालीं व्याप्ति असल्यामुळे पूर्व करावी, असें माधव सांगतो. युग्मवाक्यानें निर्णय करावा, असें हेमाद्रि सांगतो. दोनही दिवशीं व्याप्ति नमणें, या चवथ्या पक्षां गौणकालीं सायंकाळीं व्याप्ति आहे म्हणून पूर्वीचीच ध्यावी. वैषम्येंकरून एकदेशव्याप्ति असेल तर ज्या दिवशीं अधिक व्याप्ति असेल ती ध्यावी. सारखी एकदेशव्याप्ति असेल तर पूर्वीची ध्यावी. हा निर्णय, स्वतंत्र जें एकभक्तव्रत त्याविषयीं आहे उपवासाचा प्रतिनिधि, अन्य व्रताचें अंगभूत अशा एकभक्तव्रताविषयीं निर्णय त्या त्या व्रताच्या अनुसारें करून जाणावा.

अथनक्तं तच्चादिनानशनपूर्वरात्रिभोजनं तत्रप्रदोषव्यापिनीप्राह्या प्रदोषव्यापिनीप्राह्यातिथिर्नक्तव्रते-सदेति वत्सोक्तेः प्रदोषस्तु त्रिमुहूर्तप्रदोषः स्याद्भानावस्तंगते सति नक्तंतत्रतुक्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयइति-मदनरत्नेव्यासोक्तः तत्रापित्रिदंडोत्तरं कार्यं सायंसंध्यात्रिघटिका अस्तादुपरिभास्वतइति स्कांदोक्तेर्दंडत्रयस्य संध्यात्वात् तत्र चत्वारिमानिकमार्गिणसंध्यायां परिवर्जयेत् आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकमिति-मार्कंडेयभोजननिषेधात् मुहूर्तो नंदिनं नक्तं प्रवर्द्धति मनीषिणः नक्षत्रदर्शनात् नक्तमहं मन्ये गणाधिपेति माधवीये भविष्योक्तेश्च ।

आतां नक्तव्रताचा निर्णय सांगतो.

नक्त म्हणजे दिवसा उपोषण करून रात्रीं भोजन करणें तें. त्या नक्तव्रताविषयीं प्रदोषकालव्यापिनी तिथि ध्यावी. कारण, “नक्तव्रताविषयीं तिथि प्रदोषव्यापिनी सदा ध्यावी” असें वत्सवचन आहे. प्रदोषकाल-“सूर्य अस्तंगत झाल्यानंतर त्रिमुहूर्त (सहा घटिका) जो काल तो प्रदोष होय, त्या कालीं नक्त करावें, असा शास्त्रनिश्चय आहे.” असा मदनरत्नांत व्यासोक्त निर्णय समजावा. त्या प्रदोषकालाच्या पहिल्या तीन घटिका टाकून नंतर भोजन करावें. कारण, “सूर्यास्ता-नंतर तीन घटिका सायंसंध्या” ह्या स्कंदपुराणवचनावरून तीन घटिका हा संध्याकाल आहे: म्हणून त्या कालीं “भोजन, निद्रा, मैथुन, अध्ययन हीं चार कर्मे संध्याकालीं वर्ज्य करावीं” ह्या मार्कंडेयवचनानें भोजनाचा निषेध केला आहे. “सायंकाळीं मुहूर्तापेक्षां कमी दिवस राहिला म्हणजे तो नक्ताचा काल, असें विद्वान् सांगतात: (शिव म्हणतो) हे गणाधिप ! नक्षत्रदर्शनीं नक्त काल, असें मी मानितों” असें माधवाच्या ग्रंथांत भविष्यपुराण वचनही आहे.

गौडस्तु प्रदोषोस्तमयादूर्ध्वघटिकाद्वयमिष्यतइति वत्सोक्तः प्रदोषः संध्याच दिनरात्र्योः संधौ-मुहूर्तः अर्धास्तमयात्संध्याव्यक्तीभूतानतारकायावत् तेजः परिहानिवशाद्भानोरधोदयं यावदिति वराहोक्ते-रित्याहुः तन्न अस्य संध्यावंदनानध्यायादिपरत्वात् अतएव तत्र खंडमंडलस्य संध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण यच्च मदनरत्ने नक्तस्य वैधत्वाद्वागप्राप्तभोजनगोचरो निषेधइत्युक्तं तन्न विधेर्निषेधाविरोधात् अन्यथाक-पिंजलानित्यत्र त्रिभ्योधिकानां हिंसनं स्यात् ।

गौडग्रंथकार तर-“सूर्यास्तानंतर दोन घटिका प्रदोषकाल म्हटला आहे” असा वत्सानें सांगितलेला प्रदोष होय. संध्या म्हणजे दिवस व रात्रि यांच्या संधीचा मुहूर्त होय; कारण, “सूर्याच्या अर्धास्तानंतर जांपर्यंत सूर्याचें तेज कमी होऊन तारका स्पष्ट दृष्टिगोचर झाल्या नाहीत तो संध्याकाल होय, उदयकालींही असाच संध्यानिर्णय आहे” असें वराह-वचन आहे, असें सांगतात. तें बरोबर नाही; कारण, हें वाक्य संध्यावंदन, अनध्याय इत्यादिविषयक आहे. म्हणूनच खंडमंडल (अर्धमंडल) काल तो संध्याकाल, असें विज्ञानेश्वरानें सांगितलें आहे. आतां जें मदनरत्नांत-नक्त विधिप्राप्त असल्यामुळे त्याला हा वरील (“आहारं मैथुनं” ह्या मार्कंडेयवचनोक्त) भोजननिषेध नाही, तर इच्छेनें प्राप्त जें

भोजन खाला तो निषेध आहे. असें सांगितलें; तें बरोबर नाहीं; कारण, एथें निषेधकाल सोडून भोजनविधीला सार्थक्य येत असल्यामुळे विधीला (भोजनाला) निषेधाचा विरोध येत नाहीं, म्हणून तो निषेध विधिप्राप्त नक्ताविषयीही आहे. असें न मानिलें तर—अथमेथ यज्ञांत असें सांगितलें आहे कीं, वसंत देवतेला कर्पिजल पक्ष्यांचें आलभन (याग) करावें, त्या ठिकाणीं बहुवचन असल्यामुळे तिहींपैशां अधिकही पक्ष्यांचें आलभन (हिंसा) होईल, याकरितां त्या ठिकाणीं तीन पक्ष्यांची हिंसा करून शास्त्रार्थाची (विधीची) उपपत्ति झाली असातां अधिक हिंसा होईल तर दोषी होईल असें सांगितलें आहे—त्याप्रमाणें एथें निषेधकालाचें उल्लंघन करून भोजन करावें, असा भावार्थ.

सायंकालेनक्तंतुदिनद्वयेप्रदोषास्पर्शज्ञेयं अतथात्वेपरत्रस्यादस्ताद्वर्गाग्यतोहिसेतिजाबालिवचनान् प्रदोषव्यापिनीनस्याद्विवानक्तंविधीयते आत्मनोद्विगुणाछायांमंदीभवतिभास्करे तन्नक्तंनक्तमित्याहुर्नक्तंनिशि-भोजनमितिस्कांदाच्च यत्यादीनामपिसायाह्ने नक्तंनिशायांकुर्वीतगृहस्थोविधिसंयुतः यतिश्चविधवाचैवकुर्यात्तत्सदिवाकरमिति तत्रैवस्मृत्यंतरान् इदमपुत्रविधुरोपलक्षणं पुत्रवतस्तुरात्रावेव अनाश्रमोयाश्रमीस्यादप-त्नीकोपिपुत्रवानितिस्मंग्रहोक्तेः ।

सायंकाली नक्त करणें तें दोन दिवशां प्रदोषकाली तिथीचा स्पर्श नमेल तर करावें, कारण, “उभयदिनीं प्रदोषकालव्याप्ति नसेल तर परदिवशी नक्त करावें. कारण, परदिवशीं सूर्यास्ताच्या पूर्वी व्याप्ति आहे” असें जाबालिवचन आहे; आणि “प्रदोषव्यापिनी नसेल तर दिवसा नक्त करावें. सूर्य मंद झाला असातां आपशीं छाया दुष्पट झाली म्हणजे त्या वेळीं जें नक्त करणें तें नक्त होय, रात्रीं भोजन करणें तें नक्त नव्हे, असें विद्वान् सांगतात” असें स्कांदवचनही आहे. यति, विधवा यांनींही नक्तभोजन सायंकालीं (सूर्यास्तापूर्वी) करावें. कारण, “विधियुक्त गृहस्थाश्रमी यांनां रात्रीं नक्त करावें, यति व विधवा यांनीं नक्त सूर्य आहे तो करावें” असें तेथेंच स्मृत्यंतरवचन आहे. हें वचन अपुत्र जो विधुर त्याचें उपलक्षण आहे, पुत्रवंतांनां रात्रींच नक्त करावें. कारण, “पत्नारहित असून जर पुत्रवान् असेल तर तो अनाश्रमी असून आश्रमी आहे” असें स्मंग्रहवचन आहे. अर्थात् पुत्ररहित विधुर तो अनाश्रमी होय.

सौरनक्तंतुदिवैव त्रिमुहूर्तस्फुगेवाह्निनिश्चैतावतीतिथिः तस्यांसौरभवेन्नक्तमहन्त्येवतुभोजनमितिस्मंग्र-तूक्तेः ।

सौर (सूर्यदेवताक) नक्त तर दिवसामच करावें; कारण, दिवसा त्रिमुहूर्त (६ घटिका) व रात्रीं सहा घटिका असलेल्या तिथीचें ठायीं सौरनक्त करावें, व भोजन दिवसामच करावें” असें स्मंग्रतूक्चें वचन आहे.

हरिनक्तेविशेषः कालादर्शस्कांदे उदयस्थामदापृज्याहरिनक्तव्रतेतिथिरिति अन्यनक्तंतुसंक्रांत्यादाव-पिरात्रावेव निषेधस्यरागप्राप्तभोजनगोचरत्वेनवैप्राधाधिकत्वान् दिनद्वयव्याप्तौपरा उभयोर्येदिवातिथ्योःप्रदोषव्यापिनीतिथिः तत्रोत्तरव्रनक्तस्यादुभयत्रापिसायतइतिकालादर्शजाबालिवचनान् अन्यपक्षेषुएकभ-क्तवन्निरणयः ।

हरिनक्ताविषयीं विशेष सांगतो.

कालादर्शांत स्कंदपुराणांत—“हरिनक्तव्रताविषयीं उदयकालव्यापिनी तिथि ग्रहण करावी.” इतर नक्तव्रत तर, संक्रांति वगैरे असली तरी रात्रींच करावें. संक्रांति, रविवार इत्यादि दिवशीं रात्रिभोजनाचा जो निषेध, तो इच्छाप्राप्त भोजनविषयक असल्यामुळे त्यांनां विधिप्राप्त भोजनाचा वाध होत नाहीं. दोन दिवशीं प्रदोषव्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची घ्यावी. कारण, “दोनदिवशीं प्रदोषव्यापिनी तिथि असल तर उत्तरदिवशीं नक्त करावें. कारण, परदिवशीं सूर्यास्तापूर्वी व प्रदोषकाली ती तिथि आहे” असें कालादर्शांत जाबालिवचन आहे. इतर पांच पक्षांविषयीं (पूर्वदिवशींच व्याप्ति, परदिवशीं व्याप्ति, दोनीं दिवशीं व्याप्ति नसणें, अंशानें एकदेशव्याप्ति, सारखी एकदेशव्याप्ति, यांविषयीं) एकभक्ताप्रमाणें निर्णय जाणावा.

अत्रविशेषोमदनरत्नेगारुडे हविष्यभोजनंस्नानंसत्यमाहारलाघवं अमिकार्यमधःशय्यांनक्तभो-जीषडाचरेन् अमिकार्यव्याहृतिहोमः इतिनक्तं अयाचितेतुविशेषवचनभावात्पक्षेउपवासेप्राप्तेउपवासव-न्निरणयः ।

ह्या नक्तव्रताविषयीं विशेष सांगतो.

मदनरत्नांत गरुडपुराणांत—“हविष्यभोजन, स्नान, सत्यभाषण, अल्पाहार, अमिकार्य (व्याहृतिहोम), भूमिहव्या,

हे सहा नियम नक्तव्रती यानें पाळावे.” याप्रमाणें नक्तव्रताचा निर्णय समाप्त झाला. अयाचितव्रताविषयी विशेषवचन नसल्यामुळे व अयाचित अन्न न मिळेल त्या दिवशीं उपवास प्राप्त असल्यामुळे त्याचा निर्णय उपवासा-प्रमाणें समजावा.

अथनक्षत्रव्रतकालनिर्णयः विष्णुधर्मं उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः गुज्यते यत्र वाता-
रानि शीथे शनिना सहेति माधवीयेस्कांदे तत्रैवोपवसेदक्षेत्रं निशीथादधो भवेत् उपवासे यद्दृश्यात्तद्विनै-
कभक्तयोः ।

आतां नक्षत्रव्रताच्या कालाचा निर्णय सांगतो.

विष्णुधर्मांत—“ज्या नक्षत्रां सूर्याचें अस्त होतें तें नक्षत्र उपोषणास ध्यावें, अथवा अर्धरात्रीं चंद्राचा ज्या नक्षत्रास योग होतो तें नक्षत्र उपोषणास ध्यावें.” माधवीयांत—स्कंदपुराणांत “जें नक्षत्र अर्धरात्रीच्यापूर्वी असेल त्याच नक्षत्रां उपवास करावा. उपवासाविषयीं जें नक्षत्र तेंच नक्तव्रत व एकभक्तव्रत यांविषयीं ग्रहण करावें.

अथव्रतपरिभाषा तत्राधिकारिणोमदनरत्ने भविष्ये अनग्रयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोविधीयते
व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथानृप अनग्रिग्रहणमुपवासविषयम् अतएव देवलः आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचा-
रीचते त्रयः अश्रंत एव सिध्यंति नैषां सिद्धिरनश्रतां एकादश्यादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ।

आतां व्रतपरिभाषा सांगतो.

व्रताविषयीं अधिकारी सांगतो—मदनरत्नांत—भविष्यांत “अग्निरहित जें विप्र त्यांचें कल्याण व्रतें, उप-
वास, नियम, नानाविध दानं यांहीं करून होतें” ‘अग्निरहित’ असें जें म्हटलें तें उपवासांविषयीं अधिकार सांगण्याकरितां
आहे. म्हणूनच देवल म्हणतो—“आहिताग्नि (अग्नियुक्त ब्राह्मण), अनड्वान् (बेल), आणि ब्रह्मचारी हे तिथे भोजन
करतील तरच कार्यसिद्धि करतील, हे उपोषण करतील तर स्वकीय कार्यसिद्धि करणार नाहीत.” एकादशी इत्यादिक
जीं नित्य उपवासव्रतें त्यांचेठायीं तर शास्त्रवचन आहे म्हणून उपवास होतो, असें पुढें सांगूं.

शूद्रस्याप्यधिकारः शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममहति वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विनेति **व्या-**
सोक्तेः प्राच्यास्तु वैश्यशूद्रयोर्द्विरात्राधिकोपवासनिषेधः वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासप्रकुर्वते त्रिरात्रं-
पंचरात्रं वा ते पाण्डुर्युष्टिर्न विद्यते चतुर्थभक्तक्षपणवैश्ये शूद्रो विधीयते त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिरिति
हेमाद्रौ वचनादित्याहुः यावदुक्तनिषेधइत्यन्ये तत्त्वं तु प्रकरणान्महातपोविषयइतियुक्तम् ।

उपवासाविषयीं शूद्रासही अधिकार आहे; कारण, “शूद्र हा चवथा वर्ण आहे म्हणून तो धर्माविषयीं अधिकारी आहे.
वेदमंत्र, स्वधाकार, स्वाहाकार, वषट्कार यांविषयीं मात्र त्याला अधिकार नाही” असें व्यासवचन आहे. **प्राच्य**
(पूर्वेकडील) विद्वान् तर, वैश्य व शूद्र यांला दोन दिवसांपेक्षा अधिक उपोषणाचा निषेध आहे. कारण, “वैश्य, शूद्र हे
अज्ञानें करून तीन दिवस किंवा पांच दिवस उपवास करतील तर त्यांला उपवासफल मिळणार नाही. वैश्य व शूद्र यांना
दोन दिवसपर्यंत उपोषण विहित होय. त्रिरात्र (तीन दिवस) उपवास विहित नाही, असें धर्मज्ञ ब्रह्मवेत्त्यांनीं सांगितलें
आहे” असें हेमाद्रौ वचन आहे, असें सांगतात. इतर ग्रंथकार तर, जितक्याविषयीं निषेधवाक्य असेल तितक्या-
विषयीं निषेध मानावा, असें सांगतात. खरा प्रकार म्हटला तर हा (वरील) उपवासनिषेध प्रकरणवशें करून महातपो-
विषयक आहे, हें योग्य होय.

एवंस्त्रीणामपि यत्तुस्कांदे नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं तं नाप्युपोषणम् भर्तृशुश्रूषयैवैतालोकानिष्ठान् व्रजं-
ति हि यदेवेभ्यो यज्ञपित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भूताभ्यर्चनं सत्क्रियांच तस्यार्थवैसाफलं नान्यचित्तानारीभुक्ते भर्तृशुश्रू-
षयैव आदित्यपुराणे नारीखल्वननुज्ञाता भर्त्रावापि सुतेन वा विफलं तद्भवेत्तस्यायत्नकरोत्यौर्ध्वदेहिकमिति
और्ध्वदेहिकं पारलौकिकं तद्भर्तृननुज्ञाविषयं भार्यापत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदेहिका **त्यायनोक्तेः** अत्र-
विशेषो हरिबंशो ज्ञानचकार्यशिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् स्नात्वा स्त्रीप्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती तथा
गृहीत्वौदुंबरपात्रं संकुशं साक्षतं तथा गोशृंगं दक्षिणं सिंच्य प्रगृहीषाक्षतं जलं औदुंबरं ताम्रमयं ततो भर्तुः सती-
व्यात्स्नातस्य प्रयत्नस्य च आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसितज्जलं उपवासेषु कर्तव्यमेतद्विप्रतकेषु चेति ।

याप्रमाणे ज्ञियांसही उपोषणाविषयी अधिकार समजावा. आतां जें स्कांदांत—“ज्ञियांला वेगळा यज्ञ, व्रत, उपवास हीं नाहीं. भर्त्याची शुश्रूषा करूनच ज्ञियांला उत्तम लोक प्राप्त होतात. भर्ता देवाच्या व पितरांच्या उद्देशानें जें पूजन, व सरकर्म करील त्या सत्कर्माचें अर्धफल, भर्त्याची एकनिष्ठेनें सेवा करणाऱ्या ज्ञियेला प्राप्त होतें”. आदित्यपुराणांत—“पतीच्या किंवा पुत्राच्या आज्ञेवांचून स्त्री जें काहीं पारलौकिक कर्म करील तें कर्म तिचें विफल होईल”. ह्या बरील बबनावरून ज्ञियांला उपोषणादिकांविषयी अधिकार नाहीच असें होतें, तें भर्त्याची अनुज्ञा नसतां समजावें. कारण, “ज्ञियेनें पतीच्या संमतीनेंच सर्वदा व्रतादिक आचरण करावें” असें कात्यायनवचन आहे. व्रताविषयी विशेष-हरिवंशांत—“ज्ञियेनें डोक्यावरून स्नान करावें म्हणजे तिला व्रताचें फळ मिळेल. ज्ञियेनें प्रातःकाळीं उठून स्नान करून पतीची प्रार्थना करावी” तसेंच “उदकांनं भरलेलें ताम्रपात्र घेऊन त्यांत कुश, अक्षता घालून त्यानें गाईचें उजवें शिंग सिंचन करून तेंच उदक ग्रहण करावें. नंतर त्या ज्ञियेनें स्नान केलेला नियमपर अशा भर्त्याचे मस्तकी व आपले मस्तकी तें उदक सिंचन करावें. उपवासरूप व्रतें, व इतर व्रतें ह्या सर्वांचे ठायीं हा विधि करावा.

सर्वव्रतेषुसंकल्पविधिश्चभारते गृहीत्वौदुंबरपात्रंवारिपूर्णमुदङ्मुखः उपवासंतुगृहीयाद्यद्वासंकल्पयेद्बुधः हस्तैर्नैवेत्यर्थः ।

सर्व व्रतांचे ठायीं संकल्पविधि—भारतांत—“ज्ञात्यानें उदकपूर्ण असें तांब्याचें पात्र हातांत घेऊन उत्तराभिमुख होऊन उपवास ग्रहण करावा किंवा हातांत उदक घेऊनच संकल्प करावा.”

अथव्रतारंभकालः मदनरत्नेगार्ग्यः अस्तगेचगुरोःशुक्रेबालेवृद्धेमलिल्लुचे उद्यापनमुपारंभं व्रतानांनैवकारयेत् रत्नमालायां सोमसौम्यगुरुशुक्रासराःसर्वकर्ममुभवंतिसिद्धिदाः भानुभौमशनिवासरेषुच प्रोक्तमेवखलुर्कमसिद्धति तथा विरुद्धसंज्ञाद्दृश्येचयोगास्तेषामनिष्टःखलुपादआद्यः सर्ववृत्तिस्तुव्यतिपातनामासर्वोप्यनिष्टःपरिधस्यचार्थं तस्मिस्तुयोगेप्रथमेसवज्जेव्याघातसंज्ञेनवपंचशूले गंडेऽतिगंडेचषडेवनाड्यः-शुभेपुकार्येषुविवर्जनीयाः ।

आतां व्रताचे आरंभाचा काल सांगतो—मदनरत्नांत गार्ग्य—“गुरुशुक्रांचें अस्त, बाल्य, वार्धक्य, मलमास, यांत व्रतांचा आरंभ व उद्यापन हीं कलं नयेत.” रत्नमालेंत—“सोमवार, बुधवार, गुरुवार आणि शुक्रवार हे सर्व कर्माविषयी सिद्धि देणारे होत. रवि, भौम, आणि शनि ह्या वारीं मांगितलेले जें कर्म तेंच सिद्ध होतें.” तसेंच—“विरुद्धसंज्ञक योगांचा (म्हणजे विष्कंभ, अतिगंड, शूल, गंड, व्याघात, वज्र ह्या योगांचा) प्रथम पाद अनिष्ट होय. वैश्रुति, व्यतीपात हे सर्व अनिष्ट. परिधाचें पूर्वांचें अर्ध अनिष्ट”. पक्षांतर सांगतो—“विष्कंभाच्या षटिका ३, वज्राच्या ३, व्याघाताच्या ९, शूलाच्या ५, गंडाच्या ६, अतिगंडाच्या ६, याप्रमाणें ह्या पहिल्या षटिका सर्व शुभकार्याविषयी वर्ज्य कराव्या.

संग्रहे कृष्णेभिर्विशयोरूर्ध्वसप्तमीभूतयोरधः शुक्लेवेदेशयोरूर्ध्वभद्राप्राग्वसुपूर्णयोः श्रीपतिः न सिद्धिमायातिकृतंचविष्टांविपारिघातादिकमत्रसिद्धं व्यवहारसमुच्चये दशम्यामष्टम्यांप्रथमघटिकापंचकपरंहरिचुःसप्तम्यांद्विदशघटिकांतेत्रिघटिकं तृतीयाराकायांखयमघटिकाभ्यःपरभवंशुभंविष्टेःपुच्छंशिवसिथिचतुर्थ्योस्तुविरमे तत्रैव सर्पिणीतुसितेपक्षेकृष्णेचैवतुष्ट्रिचिकी सर्पिण्यास्तुमुखंयाज्यंवृक्षिकाःपुच्छमेवच माधवीये विष्टिर्पदाहनिथिरेपरार्धजातापूर्वार्धजानिशितदाशुभदाचपुच्छे ब्रह्मयामले दिनमद्रायदारात्रौरात्रिभद्रायदादिवा नत्याज्याशुभकार्येषुप्राहुरेवंपुरातनाः श्रीपतिः षट्पौष्णतोद्वादशशांकराबपौरंदराद्धानिनवक्रमेण पूर्वार्धमध्यापरभागयुंजिचिरंतनज्योतिषिकैःस्मृतानि ।

संग्रहांत—भद्रालक्षण—“कृष्णपक्षी तृतीया व दशमी यांच्या उत्तरार्धी भद्रा; सप्तमी व चतुर्दशी यांचे पूर्वार्धी भद्रा; शुक्रपक्षी चतुर्थी व एकादशी यांचे उत्तरार्धी भद्रा; अष्टमी, पौर्णिमा यांचे पूर्वार्धी भद्रा” (हिलाच विष्टि व कल्याणी हीं नामांतरे आहेत.) **श्रीपति—**“भद्रेचे ठायीं केलेले कार्य सिद्ध होत नाही. विषप्रयोग, शत्रुघात, इत्यादिक कर्म भद्रेवर केलेले सिद्ध होतें.” **व्यवहारसमुच्चयांत—**“दशमी व अष्टमी या तिथींचे ठायीं भद्रेच्या पहिल्या पांच घटिकांनंतर पुढच्या ३ घटिका भद्रापुच्छ; एकादशी व सप्तमी या भद्रेच्या बारा घटिकांच्या पुढें तीन घटिका भद्रापुच्छ; तृतीया व पौर्णिमा ह्यांच्या भद्रेच्या वीस घटिकांच्या पुढच्या तीन घटिका भद्रापुच्छ; आणि चतुर्दशी व चतुर्थी यांच्या भद्रेच्या षेव-

टक्का तीन षटिका भद्रापुच्छ होय. हें भद्रापुच्छ शुभ होय.” व्यवहारसमुच्चयांत-“शुक्रपक्षातील भद्रा सर्पिणी, कृष्ण-पक्षातील भद्रा वृश्चिकी म्हटली आहे, सर्पिणीचें मुख वर्ज्य करावें, आणि वृश्चिकीचें पुच्छ टाकावें.” माघवीयांत-“जेव्हां तिथीच्या पुढच्या अर्धांतली विष्टि दिवसा असते, आणि तिथीच्या पूर्वार्धांतली विष्टि रात्रीं असते तेव्हां ती शुभ-कारक आहे. आणि भद्रेचें पुच्छही शुभ आहे.” ब्रह्मयामलांत-“दिवसाची (पूर्वार्धांतली) भद्रा जेव्हां रात्रीं असेल व रात्रीची (उत्तरार्धांतली) भद्रा जेव्हां दिवसा असेल, तेव्हां ती शुभकार्याविषयीं वर्ज्य करूं नये, असें प्राचीन विद्वान् सांगतात.” श्रीपति-“(कोणत्याही कर्माविषयीं) रेवतीपासून सहा नक्षत्रांचा पूर्वार्ध घ्यावा, आर्द्रापासून बारा नक्षत्रांचा मध्यभाग घ्यावा, आणि ज्येष्ठानक्षत्रापासून नऊ नक्षत्रांचा उत्तरार्ध घ्यावा, असें प्राचीन ज्योतिष्यांनीं सांगितलें आहे.”

व्रतारंभेचविशेषः मदनरत्नेसत्यव्रतेनोक्तः उद्यस्थितिधिर्याहिनभवेहिनमध्यभाक् साखं-
डानव्रतानांस्यादारंभश्चसमापनमिति देवलः अभुक्त्वाप्रातराहारंस्नात्वाचम्यसमाहितः सूर्यायदेवताभ्य-
श्चनिवेद्यव्रतमाचरेत् मदनरत्नेभविष्ये क्षमासत्यंदयादानंशौचमिन्द्रियनिग्रहः देवपूजाप्रिहवनंसंतोषः-
स्तेयवर्जनं सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्योद्देशधामृतः अग्निहोमस्तदैवत्यः व्याहृतिहोमोवेतिवर्धमानः ।

व्रताचे आरंभाविषयीं विशेष सांगतो.

मदनरत्नांत-सत्यव्रत-“जी तिथि सूर्योदयव्यापिनी असून मध्याह्नीं नाही ती खंडा तिथि, त्या खंडातिथीचे ठायीं व्रतांचा आरंभ व समाप्ति हीं करूं नयेत.” देवल-“प्रातःकालीं कांहीं न खातां स्नात करून व आचमन करून शांतपणानें सूर्य व अन्य देवता यांना निवेदन करून व्रत ग्रहण करावें.” मदनरत्नांत-भविष्यांत-“क्षमा, सत्यभाषण, दया, दान, स्वच्छता, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहोम, संतोष, चोरी न करणें हे दहा धर्म सामान्येंकरून सर्वव्रतांचे ठायीं जाणावे.” अग्निहोम म्हणजे ज्या व्रताची जी देवता त्या देवतेच्या उद्देशानें होम, किंवा व्याहृतिहोम असें वर्धमान म्हणतो.

यजुतेनोक्तं सर्वपदमेतत्पुराणोक्तप्रकृतव्रतपरं व्रतांतरेतुविध्यंतरसत्त्वहोमोऽन्यथान अतएवैकादश्यां-
शिष्टानां होमानाचरणमिति तन्न जपोहोमश्चेतिवक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्यकाभ्यव्रतसमाप्तिपरत्वान् तत्त्वं
तुसौप्तदशस्यपशुमित्रविंदादिप्रकरणस्थेनेवतत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभिरस्योपसंहारइति ।

आतां जें त्यानें (वर्धमानानें) सांगितलें कीं, ‘ह्या वचनांतील सर्वपद ह्या भविष्यपुराणोक्त जीं प्रकृत (चाललेलीं) व्रतें, त्यांविषयीं आहे, अन्यव्रतांत होमाविषयीं दुसरा विधि असेल तर होम करावा, नसेल तर होम करूं नये असें आहे, म्हणूनच एकादशीस शिष्ट होम करीत नाहीत, हें त्या वर्धमानाचें म्हणणें बरोबर नाही; कारण पुढें सांगावयाच्या ‘जपो होमश्च’ या अग्निपुराणवचनाशीं एकवाक्यता पावून हें होमबोधक वचन काम्यव्रताच्या समाप्तिविषयक आहे. खरा प्रकार म्हटला तर-जसा-‘सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात्’ हें वाक्य कोणत्याही प्रकरणांत पठित नाही, प्रकरणाच्या बाहेर आहे. सामिधेनी म्हणजे अग्नि पेटविण्याच्या ऋचा, त्या सतरा म्हणाव्या, असा त्याचा अर्थ. ज्या पशुयाग, मित्रैर्विंदादिक इष्टि सांगितल्या आहेत, त्यांच्या प्रकरणांमध्ये पठित जीं सप्तदशसामिधेनीबोधक वाक्यें त्यांच्याशीं हें वाक्य एकवाक्यता पावून त्या पशुयागादिकांतील सप्तदशसामिधेनीबोधक वाक्यांनीं या वाक्याचा उपसंहार (संकोच) केला, त्याप्रमाणें त्या त्या विशेषव्रताच्या होमविधायक वाक्यांनीं ह्या वाक्याचा उपसंहार (संकोच) केला आहे असें समजावें.

विष्णुधर्मे तज्जप्यजपनंध्यानंतत्कथाश्रवणादिकं तदर्चनंचतन्नामकीर्तनश्रवणादयः उपवासकृतामेतेषु-
णाः प्रोक्तामनीषिभिः कौर्मै बहिर्गर्मांत्यजान्सूतिंपतितंचरजस्वलां नस्पृशेन्नाभिभाषेतनेक्षेतव्रतवासरे पृथ्वी
चंद्रोदयेअग्निपुराणे स्नात्वाव्रतवतासर्वव्रतेषुव्रतमूर्तयः पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्यावैभूभिः शायिना
जपोहोमश्चसामान्यं व्रतातेदानमेवच चतुर्विंशद्वादशवापंचवात्रयएवच विप्राभोज्यायथाशक्तिरेभ्योदद्याब-
दक्षिणां अत्रविप्राइतिपुंल्लिगनिर्देशात्पुमांसएवभोज्याः नतुस्त्रियः एवंसहस्रभोजनादावपि विरूपैकशेषस्य-
प्रमाणांतरंबिनाऽयुक्त्वात् अतएव द्वयोर्यजमानयोः प्रतिपदंकुर्यात्तबहुभ्योयजमानेभ्यइत्यादौविरूपैकशेषायो-
गात्पण्यभिप्रायंद्वित्वंबहुत्वंवानसंबवतीत्युक्तमाचार्यैः पार्थसारथिनाच एतेनैकस्यब्राह्मणस्यावृत्त्या-
भोजनंपरास्तं बहुत्वस्यैकपदश्रुत्याब्राह्मणान्वितत्वेनभोजनान्वयाभावादित्यन्यत्रविस्तरः ।

१. या उदयगा तिथिर्मध्याह्नं न व्याप्नोति सा खंडा तस्यां व्रतारंभं समापनं च न कुर्यात्. दिनार्धानंतरसमाप्तायामारंभसमाप्ति कार्ये इत्यर्थः. २ मित्रविंदा इत्यादि नामाची इष्टि ही दर्शपूर्णमासेष्टीची विवृति आहे.

विष्णुधर्मांत—“ज्या देवतेचें उपोषणव्रत असेल त्या देवतेचा मंत्रजप, ध्यान, कथाश्रवण, पूजा, तन्नामाचें कीर्तन, अथवा इत्यादिक हे उपवास करणारांचे गुण ऋषींनीं सांगितले आहेत.” **कूर्मपुराणांत**—“व्रती यांनीं व्रतदिवशीं महार, अंशज, सूतिका, पतित, रजस्वला, यांला स्पर्श करूं नये व त्यांच्याशीं संभाषण करूं नये व त्यांना पाहूं नये.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत**—**अग्निपुराणांत**—“सर्व व्रतांचे ठायीं व्रती यांनीं स्नान करून ज्या व्रताच्या ज्या देवता असतील त्यांच्या सुवर्णादि प्रतिमा करून त्या व्रतमूर्तीची यथाशक्ति पूजा करावी: भूशयन करावें; जप, होम, व्रताच्या अंतीं दानें; चोवीस, बारा अथवा पांच किंवा तीन विप्रांला भोजन देऊन त्यांला यथाशक्ति दक्षिणा द्यावी. हे सर्व व्रतांचे सामान्य धर्म होत.” ह्या वरील वाक्यांत ‘विप्राः’ असा पुष्टिगनिर्देश केला आहे यास्तव पुरुषविप्रांलाच भोजन घालावें; स्त्रियांला घालूं नये. सहस्रभोजनादिविषयीही हाच निर्णय जाणावा. आतां, एथें ‘विप्राः’ म्हणजे विप्रस्त्रिया आणि विप्रपुरुष हे एकशेषसमास केला तर घेतां येतील; परंतु तसा एकशेषसमास करण्याविषयीं दुसरें प्रमाण असल्याशिवाय एकशेष करणें अयुक्त आहे. इतर प्रमाणावांचून स्त्रीवाचक व पुरुषवाचक यांचा एकशेष करितां येत नाही, म्हणूनच ‘द्वयोर्थयजमानयोः प्रतिपदं कुर्यात्, बहुभ्यो यजमानेभ्यः’ म्हणजे दोन यजमानांला किंवा बहुत यजमानांला प्रतिपत् (म्हणजे शन्न म्हणून ज्या ऋचा त्यांपैकी पहिली ऋचा ती) करावी. या ठिकाणीं यजमानांचें द्वित्व किंवा बहुत्व यजमानस्त्री व यजमानपुरुष असें धरून संभवत नाही, असें **आचार्यांनीं** सांगितलें आहे: व **पार्थसारथी**ही असेंच सांगतो. यावरून एका ब्राह्मणासच पुनः पुनः भोजन घातलें असतां संकल्पोक्त ब्राह्मणभोजन होतें, असें जें मत तें खंडित झालें. कारण, ‘ब्राह्मणान् भोजयेत्’ ह्या वाक्यांतील ‘ब्राह्मण’ या एकपदांत श्रुत जें बहुवचन त्याचा अन्वय (संबंध) ब्राह्मणासच असल्यामुळें भोजनाला बहुत्वाचा अन्वय होत नाही. इत्यादि विस्तार ग्रंथांतरी आहे.

शूद्रस्यतुप्रतिष्ठादिवद्विप्रद्वाराव्याहृतिहोमइतिवर्धमानः व्रतमूर्त्योव्रतदेवताप्रतिमाः प्रतिमास्वरूपं चमदनरत्नेभविष्ये अनुक्तद्रव्यतत्संख्यादेवताप्रतिमानृप सौवर्ण्यराजतीताम्रीवृक्षजामार्तिकीतथा चित्र-जापिष्टलेखोत्थानिजवित्तानुरूपतः आमापात्पलपर्यंतकर्तव्याशाश्रयवर्जितैः ।

शूद्राला देवप्रतिष्ठादिक अनुष्ठानांत जमा ब्राह्मणद्वारा होम सांगितला आहे त्याप्रमाणें व्रतांतही ब्राह्मणद्वारा व्याहृतिहोम करावा, असें **वर्धमान** सांगतो. व्रतमुनि म्हणजे व्रतदेवताप्रतिमा. **प्रतिमास्वरूप सांगतो**—**मदनरत्नांत**—**भविष्यांत**—“ज्या ठिकाणीं अमुक द्रव्याची व अमुक मानाची देवताप्रतिमा सांगितली नाही, त्या स्थलीं सुवर्णमयी, रौप्यमयी, ताम्रमयी, काष्ठमयी, मृन्मयी, चित्रजा, पिष्टमयी किंवा भित्त इत्यादिकांवर लिहिलेली आपल्या वित्ताला अनुसरून एक माशापासून पलपर्यंत प्रतिमा करावी, वित्तशास्त्र करूं नये.”

तत्रैवब्राह्मे आज्यद्रव्यमनदेशेजुहोतिपुविधीयते मंत्रस्यदेवतायाश्चप्रजापतिरितिस्थितिः मंत्रानुक्तौ-समस्तव्याहृतिरूपोमंत्रः प्रजापतिश्चदेवतेतिकल्पतरुः ।

मदनरत्नांत—**ब्राह्मांत**—“जेथें द्रव्य सांगितलें नाही तेथें होमाविषयीं आज्य द्रव्य ग्रहण करावें; जेथें मंत्र उक्त नसेल तेथें समस्तव्याहृति मंत्र, व जेथें देवता उक्त नाही तेथें प्रजापति देवता ध्यावी” असा ब्राह्मवचनाचा अर्थ **कल्पतरु** सांगतो.

वर्धमानधृतदेवीपुराणे होमोप्रहादिपूजायांशतमष्टाधिकंभवेन् अष्टाविंशतिरष्टौवायथाप्राप्तिविधी-यते **मदनरत्ने** अनुक्तसंख्यायत्रस्याच्छतमष्टोत्तरंस्मृतं **वर्धमानधृतवृद्धशातातपः** उपवासद्विजः-कृत्वाततोब्राह्मणभोजनं कुर्यात्तेनास्यसगुणउपवासोऽभिजायते ।

वर्धमानग्रंथांत—**देवीपुराणांत**—“प्रथमख इत्यादिक अनुष्ठानांत ज्या ठिकाणीं होमसंख्या उक्त नाही तेथें एकशेंआठ, अष्टावीस, आठ यांतून यथाशक्ति ध्यावी.” **मदनरत्नांत**—“जेथें संख्या उक्त नाही तेथें १०८ संख्या ध्यावी.” **वर्धमानग्रंथांत** **वृद्धशातातप**—“उपोषण केल्यावर व्रताचे सांगतेसाठीं ब्राह्मणभोजन करावें, तेणेंकरून त्याचा उपवास यथासांग होतो.”

व्रतोद्यापनानुक्तौपृथ्वीचंद्रोदयेनदिपुराणे कुर्यादुद्यापनंतस्यसमाप्तौयदुदीरितं उद्यापनंविना-यत्तुतद्व्रतंनिष्फलंभवेन् यदिचोद्यापनंनोक्तंव्रतानुगुणतश्चरेन् वित्तानुसारतोदद्यादनुक्तोद्यापनेव्रते गात्रैव कांचनंदद्याव्रतस्यपरिपूर्यते **अशक्तौनारदीये** सर्वेषामप्यलाभेतुयथोक्तकरणंविना विप्रवाक्यंस्मृतंशुद्धं व्रतस्यपरिपूर्यते यथाविप्रवचोयस्तुगृह्णातिमनुजःशुभं अदत्वादक्षिणांपापःसयातिनरकंधुवं **भारते** वेवोष-निषदेचैवसर्वकर्मसुदक्षिणा सर्वव्रतमयोद्दिष्टाभूमिर्गावोथकांचनं **बैजबापः** शिवनेत्रोद्भवयस्माद्रजतंपितृ-

वल्लभं अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् **टोडरानंददेवीपुराणे** व्रते च तीर्थेऽप्ययनं श्राद्धेऽपि च विशेषतः परा-
न्नभोजनादेवियस्यान्नं तस्य तत्फलम् ।

ज्या व्रताचें उद्यापन सांगितलें नाहीं त्याविषयीं सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत नंदिपुराणांत**—ज्या व्रताला जें उद्यापन उक्त असेल तें व्रताच्या समाप्तीस करावें. जें व्रत उद्यापनविरहित तें निष्फल होतें. जर उद्यापन उक्त नसेल तर त्या व्रताला योग्य असें उद्यापन करावें. व द्रव्यानुसार गोप्रदान व सुवर्णदान करावें, त्या योगें व्रताची सांगता होते.”—अशक्ति असतां **नारदीयांत**—“सर्वांचाही अलाभ असेल तर यथाविधि केल्यावांचूनही केवळ ब्राह्मणाच्या वचनानें व्रताची सांगता होते. जो मनुष्य ब्राह्मणास दक्षिणा दिल्यावांचून ब्राह्मणवचन घेतो तो पापी होऊन नरकाम जातो.” **भारतांत**—“व्यास म्हणतो—सर्व कर्माविषयीं वेदांत व उपनिषदांत उक्त भूमि, गाय, सुवर्ण ही दक्षिणा मी सांगितली आहे.” **वैजयाप**—“शिवनेत्रापासून रोप्य उत्पन्न झालें आहे म्हणून तें पितरांला प्रिय व अमंगल आहे, यास्तव तें देवकार्यांत वर्ज्य करावें.” **टोडरानंदांत-देवीपुराणांत**—“व्रत, तीर्थ, अध्ययन, श्राद्ध यांचे ठायीं परान्नभोजन केलें अगतां ज्याचें अन्न त्याला त्याचें फल होतें.”

पृथ्वीचंद्रोदयेऽग्निपुराणे नित्यस्नानीमिताहारोगुरुदेवद्विजार्चकः क्षारं क्षौरं च लवणं मधुमांसं च वर्जयेत् **क्षारास्तुतत्रैवोक्ताः** तिलमुद्गादृते शैव्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ धान्यकंदेवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्ष्वम् स्निग्धधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः गोधूमानांतु तत्रैव प्रतिप्रसवः व्रीहिपट्टिकमुद्गाश्च कलायः सतिलं पयः श्यामाकाश्चैव नीवारागोधूमाद्याव्रतेहिताः कृष्णमांडालावुवार्ताकपालं कीज्योत्स्निक्काम्यजेत् चतुर्भैक्षस्तुकणः शार्कं दधिघृतं मधु श्यामाकाः शालिनीवारायावकं मूलं तुलं हविष्यव्रतनक्तादावग्निकार्यादिकेहितं मधुमांसं विहायान्यव्रतेवाहितमीरितमिति शमीधान्यं माषादि पालंकीमध्यदेशे पोई इति प्रसिद्धा ज्योत्स्निक्काकोशातकी ।

पृथ्वीचंद्रोदयांत-अग्निपुराणांत—“व्रती यानें नित्यस्नानीः मिताहारी, गुरु, देव व द्विज यांची पूजा करणारा असें असावें; व क्षार, क्षौर, लवण, मद्य, मांस हीं वर्ज्य करावीं. **क्षारगण** त्याच ठिकाणीं सांगितला तो असाः—“तिल व मूग ह्यांवांचून शेंगेत उत्पन्न होणारीं चवळ्या इत्यादिक धान्ये गहूं, कोद्रव, धणे, देवभाताचे तांदूळ, शमीधान्य (माषादि), गुळ, काकवी, भर्जित धान्य (पृथुकादिक), पण्य (त्या दिवशीं विकत घेतलेलें), मुळा हा क्षारगण जाणावा.” गव्हांविषयीं त्याच ठिकाणीं प्रतिप्रसव (निषेधवाच) सांगतो—“साळी, पेट्टिक (साठेंभात) मूग, वाटाणे, तिल, दूध, सांवे, नीवार (तृणधान्य), गहू इत्यादिक हे व्रताविषयीं हितकारक होत. कृष्णमांड, भोपळा, वांगें, पालंकी (पोईशाक), कोशातकी (घोसाळी) हीं वर्ज्य करावीं. चार घरांचें भिक्षान्न, पीठ, कण्या, शाक, दधि, घृत, मधु, श्यामाक, साळी, नीवार, यव, मुळा, तांदुळचा हे पदार्थ हविष्यव्रत, नक्त इत्यादिकांविषयीं व अग्निकार्य इत्यादिकांविषयीं हित होत. अथवा मधु व मांस वर्ज्य करून इतर पदार्थ व्रताचें ठायीं हित होत.”

मिताक्षरायांगौतमः चतुर्भैक्षस्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकादिहवीं प्युत्तरोत्तरप्रशस्तानि पयोदधिघृतं च गव्यमिति अन्ये च विशेषा एकादशीचा तुर्मास्यादिप्रकरणे वक्ष्यंते ।

मिताक्षरेंत-गौतम—“चार घरचें भिक्षान्न, पीठ, कण्या, यव, शाक, दूध, दधि, घृत, मुळें, फळें, उदक हीं हविष्ये होत, हीं उत्तरोत्तर प्रशस्त जाणावीं. दूध, दधि, घृत हीं गाईचीं प्रशस्त होत. इतर विशेष निर्णय एकादशी, चातुर्मास्य इत्यादि व्रतप्रसंगीं पुढें सांगूं.

गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्नेच्छागलेयः पूर्वव्रतं गृहीत्वा योनचरेत्काममोहितः जीवन्भवति चांडालो मृतः श्वाचाभिजायते तत्र प्रायश्चित्तमुक्तं **पृथ्वीचंद्रोदये अग्निगारुडपुराणयोः** क्रोधात्प्रमादाद्भोभाद्वा व्रतभंगो भवेद्यदि दिनत्रयं न भुंजीत मुंडं शिरसो यवेति प्रायश्चित्तान्नानादित्क्रांतव्रतानुष्ठानं नास्तीति गम्यते यत्तु प्रायश्चित्तंततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेदिति वचनात् यथा त्क्रांतमपि व्रतं कार्यमेवेति **शूलपाणिः** तन्मध्येलोपेव्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयं एतच्च शक्तविषयम् ।

व्रतग्रहण करून तें टाकिलें तर सांगतो—**मदनरत्नांत-छागलेय**—“जो मनुष्य पूर्वी व्रत ग्रहण करून नंतर काममोहित होऊन तें टाकितो तो जीवंत असेपर्यंत चांडालसदृश होऊन मृत झाल्यानंतर कुत्रा होतो.” त्याविषयीं प्रायश्चित्त सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत-अग्नि व गारुडपुराणांत**—“क्रोधानें, प्रमादानें, अथवा लोभानें जर व्रतभंग

होईल तर तीन दिवस उपोषण करावें, अथवा शिरोमुंडन (क्षौर) करावें” असं प्रायश्चित्त सांगितलं आहे म्हणून जें व्रत अतिकांत झालें तें पुनः करावयास नको, असं बोधित होतें. आतां जें “व्रतभंग झाला असतां प्रायश्चित्त करून पुनः व्रत धारण करावें” ह्या वचनावरून अतिकांत असलेलेंही व्रत करावेंच, असं शूलपाणि सांगतो; तें मध्येंच व्रताचा लोप झाला व कांहीं शेष कर्तव्य राहिलें असेल तर त्याविषयी जाणावें. हें पूर्वीक (उपवास) शक्तविषयक आहे.

अशक्तौतुकालहेमाद्रौपुराणांतरे उपवासासमर्थश्चेदेकविप्रंतुभोजयेत् । तावद्भनाविवादशानुक्तस्य द्विगुणतथा भुक्तःकृतभोजनः ब्राह्मणभोजनंविनेतिशेषः सहस्रसंमितांर्देवांजपेद्वाप्राणसंयमान् कुर्याद्वादशसंख्याकान्यथाशक्त्यातुरोनरइति शुद्धितत्त्वेमात्स्ये उपवासेत्वशक्तानांनक्तंभोजनमिष्यते मदनरत्ने-वायवीये द्रव्यदातोपवासस्यफलप्राप्त्यसंशयं तथापराकैदेवलः ब्रह्मचर्यतथाशौचंसत्यमाभिषवर्जनं व्रतेष्वेतानिचत्वारिविष्टानीतिनिश्चयः मात्स्ये तस्मात्कृतोपवासेनह्यानमभ्यंगपूर्वकं वर्जनीयंप्रयत्नेनरूप-प्रंतत्परंनृप अन्येचनियमास्तत्रतत्रान्वेषणीयाः ।

अशक्तविषयीं सांगतो-कालहेमाद्रौत-पुराणांतरांत-“जो मनुष्य रोगादिकानें उपोषण करण्याविषयी असमर्थ असेल त्यानें एका ब्राह्मणाला भोजन द्यावें; अथवा तितकें द्रव्य द्यावें, ब्राह्मणाला भोजन दिल्यावांचून भोजन करील तर भोजनाचे द्विगुणित द्रव्य द्यावें. अथवा सहस्रगायत्रीजप किंवा बारा प्राणायाम, हें प्रायश्चित्त करावें.” शुद्धितत्त्वांत-मत्स्यपुराणांत-“अहोरात्र उपवास करण्याविषयी जे अशक्त त्यांनीं नक्तभोजन करावें.” मदनरत्नांत-वायुपुराणांत-“द्रव्य देणाग याला उपवासाचें निःसंशय फल प्राप्त होतें.” तसेंच अपराकैत देवल-“ब्रह्मचर्य, शुचिर्भूतपणा, सत्यभाषण, आभिषवर्जन हीं चार कर्मे व्रताविषयीं श्रेष्ठ होत.” मत्स्यपुराणांत-“तस्मात् ज्यानें उपवास केला असेल त्यानें अभ्यंगस्नान करूं नये, तें रूपाची हानिकारक होतें.” इतर नियम त्या त्या व्रतप्रकरणीं पहावे.

अथस्त्रीव्रतेषुविशेषउच्यते तत्र हेमाद्रौव्रतकांडे गारुडे गंधालंकारतांबूलपुष्पमालानुलेपनं उपवा-सेनदुष्यतिदंतधावनमंजनमिति इदंचसभर्तृकोपवासविषयं अंजनंचसतांबूलकुंकुमरक्तवाससी धारये-त्सोपवासापिअवैधव्यकरंयतः विधवायतिमार्गेणकुमारीवायदृच्छयेतितत्रैवभविष्योक्तेः तथाविष्णु-धर्मे सर्वेपुनूपवासेपुपुमान्वाथमुवासिनी धारयेद्रक्तवस्त्राणिकुमुमानिसितानिच विधवाशुक्लवसनमेकमेवहि-धारयेत् मनुषि पुष्पालंकारवस्त्राणिगंधधूपानुलेपनं उपवासेनदुष्यतिदंतधावनमंजनम् मदनरत्ने-व्यासः दंतधावनपुष्पादिव्रतेष्वन्यस्यानदुष्यतीति ।

आतां स्त्रीव्रताविषयीं विशेष निर्णय सांगतो.

हेमाद्रौत-व्रतकांडांत-गारुडपुराणांत-“सुगंधि द्रव्ये, अलंकार, तांबूल, पुष्पमाला (पुष्पांची वेणी), अनुलेपन (उटी), दंतधावन, आणि अंजन हीं उपवासाचे ठायीं सेवन केलीं असतां दोषकारक होत नाहीत.” हें वरील वचन सौभाग्यवती स्त्रीच्या उपवासविषयक होय; कारण, “अंजन, तांबूल, कुंकुम आरक्त वस्त्रे हीं, उपवास करणाऱ्या स्त्रियेनेंही धारण करावीं, कारण, तीं अवैधव्यकारक होत. विधवा स्त्रीनें तर यतिमार्गेकरून व्रत करावें. कुमारीनें तर इच्छानुरूप करावें.” असं हेमाद्रौतच भविष्यवचन आहे. तसेंच विष्णुधर्मांत-“पुरुष किंवा सुवासिनी यांनीं सर्वे उपवासव्रतांचे ठायीं आरक्त वस्त्रे, धेतपुष्पे धारण करावीं; विधवा स्त्रीनें एक धेतवस्त्र मात्र धारण करावें.” मनुही-“पुष्पे, अलंकार, रंगीत वस्त्रे, सुगंधि पदार्थ, धूप, चंदनादिकांची उटी, दंतधावन, अंजन हीं उपवासाचे ठायीं दोषकारक नाहीत.” मदनरत्नांत-व्यास-“दंतधावन, पुष्पादिक, हीं स्त्रीला व्रताचे ठायीं दोषकारक नाहीत.”

यद्यपीदंसर्वोपवासविषयंप्रतीयतेतथापिशिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थक्रियमाणनवरात्रत्रिरात्रानुपवासविषय-मेव नत्वेकादश्यादिविषयं असकृजलपानाश्चसकृत्तांबूलचर्वणात् उपवासःप्रणश्येतदिवास्वापाश्चमैथुनादि-त्यपराकैदेवलेनतन्निषेधात् नचास्यपुविषयत्वेनसावकाशत्वात्स्त्रीणांतांबूलादिप्राप्नोतीतिवाच्यम् तांबू-लादिप्रापकस्यैकादशीतरविषयत्वेनवैपरीत्यस्यापिसुवचत्वात् ।

जरी हें वरील सांगणें सर्वे उपवासविषयक आहे असं दिसून येतें, तथापि शिष्टाचारावरून, सौभाग्यादिद्वयार्थे कराव-याचीं जीं नवरात्र, त्रिरात्र, इत्यादिक काम्य उपवासव्रतें तद्विषयकच होय, एकादश्यादिव्रतविषयक नाही; कारण, “वार-वार उदकपान, एकवार तांबूलभक्षण, दिवानिद्रा, मैथुन यांहींकरून उपवास नाश पावतो.” ह्या अपराकैतीक देखून-

वचनानं तांबूलादिकांचा निषेध केला आहे. आतां हें वचन पुरुषपर मानिलें असतां वचनाला सार्थक्य येऊन बियांला तांबूलादिभक्षणाधिकार येईल असें म्हणूं नये; कारण, तांबूलादिप्रापक जें वचन तेंच एकादशी इत्यादि व्यतिरिक्तविषयक आहे, असें म्हटल्यानं तांबूलादिनिषेधही सांगण्यास शक्य आहे.

यत्तुहरिवंशो अंजनरोचनचैवगंधान्मुनसस्तथा व्रतेचैवोपवासेचनित्यमेवविवर्जयेत् शिरसोभ्यंजनं सौम्येनैवमेतत्प्रशस्यते नपादयोर्नगात्रस्यस्नेहेनेतिस्थितिः स्मृतेति तत्तत्रैवोक्तपुण्यकव्रतविषयं नतुसर्वत्र पूर्वोक्तविरोधादिति **मदनरत्ने** उक्तं तत्रैव अश्रुप्रपातरोषश्चकलहस्यकृतिस्तथा उपवासाद्रताद्वापि-सथोभ्रंशयतिस्त्रियं स्त्रियमित्युपलक्षणं **मदनरत्ने** शिवधर्मे दानव्रतानिनियमाज्ञानंध्यानंहृतजपः यत्नेनापिकृतंसर्वक्रोधितस्यवृथाभवेत् ।

आतां जें हरिवंशांत—“अंजन, गोरोचन, सुगंधिद्रव्यें, पुष्पें, हीं व्रत, उपवास यांचे ठायीं नित्य वर्ज्य करावीं. तेहानें (तैलादिकांनं) मस्तकाला अभ्यंग करणें प्रशस्त नाहीं, तसाच पाय व शरीर यांना तेहानें अभ्यंग प्रशस्त नाहीं; असी शास्त्रमर्यादा आहे” असें तें त्या ठिकाणींच उक्त जें पुण्यकव्रत तद्विषयक होय; सर्व व्रतांविषयीं नाहीं; कारण पूर्वोक्त वचनाशीं विरोध येतो, असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. तेथेंच सांगतो—“उपवास, व्रत यांचे ठायीं अश्रुपात, क्रोध, कलह हीं केलीं असतां स्त्रियेला व्रतापासून भ्रष्ट करितात.” ‘स्त्रियेला’ असें जें पद तें व्रती याचें उपलक्षण आहे. **मदनरत्नांत—**शिवधर्मांत—“दानं, व्रतें, नियम, ज्ञान, ध्यान, होम, जप हीं यत्नानें जरी केलीं असतील तरी क्रोध आला असतां सवें व्यर्थ होतात.”

अथसूतकादौर्निर्णयः तत्रशावसूत्याशौचयोःसर्धस्मार्तकर्मनिवृत्तिर्निबंधेषुस्पष्टैव गोडास्तुक्षताशौ-धादावपितामाहुः जानूर्ध्वभूतजेजातेनित्यकर्मनचाचरेन् नैमित्तिकंचतदधःस्ववद्रक्तो नवाचरेन् लोतकेचसमु-स्पन्नेज्वरकर्मणिमैथुने धूमोद्गारेतथावांतौनित्यकर्माणि संयजेत् द्रव्येभुक्तेवजीर्णेचनैवभुक्त्वापि किंचन कर्म-कुर्यान्नरोनित्यसूतकेमृतकेतथेतिकालिकापुराणात् ।

आतां सूतकादिक प्राप्त झालें असतां निर्णय सांगतो.

श्रुताशौच व जननाशौच ह्यांत सर्व स्मार्तकर्मांचा प्रतिबंध निबंधग्रंथांत स्पष्टच सांगितला आहे. **गौड** ग्रंथकार तर-क्षताशौच (क्षतांनीं आलेलें अशुचिल) इत्यादि प्राप्त असतांही सर्व स्मार्तकर्मांचा निषेध सांगतात; कारण, “गुडध्यांचे वर क्षत झालें असतां नित्यकर्मही करूं नयेत. गुडध्यांचे खालीं रक्तस्राव झाला असतां नैमित्तिक कर्म करूं नये. लोतक (लुता-संपर्कजन्यस्फोट), ज्वर, मैथुन, धुरकट, डेंकर, वांति हीं झालीं असतां नित्यकर्म वर्ज्य करावीं. पदार्थ भक्षण केल्यावर अजीर्ण झालें असतां; कांहीं भक्षण करून; तसेंच जननाशौच व श्रुताशौच यांत कोणतेंही कर्म करूं नये.” असें **कालिकापुराण** आहे.

वस्तुतस्तु पूर्वदेवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रविषयत्वमस्येतियुक्तंप्रतीमः तथाहेमाद्रौपाद्मे गर्भिणीसूतिका-दिश्चकुमारीवाथरोगिणी यदाऽशुद्धातदान्येनकारयेत्प्रयतास्वयमिति पुंसोप्येषविधिः लिंगस्याविवक्षितत्वान् तेन यस्मिन्व्रतेयत्पूजायुक्तंदन्येनकारयेत् शारीरनियमान्स्वयंकुर्यादितिहेमाद्रिव्याचख्यौ नवप्रतिनां-व्रतव्रति विष्णुक्तेश्च आरंभस्तुनभवत्येव ।

शास्तिविक म्हटलें तर—**कालिकापुराणांत** एथें पूर्वीं देवीपूजेचा उपक्रम केलेला आहे, यास्तव हीं वरील निषेधक वचनें देवीपूजाविषयक होत, असें योग्य दिसतें. **तसेंच हेमाद्रौत-पद्मपुराणांत—**“गर्भिणी, बाळंतीण, रजस्वला, कुमारी, रोगिणी ह्या स्त्रिया अशुद्धावस्थेंत असतील तर त्यांनीं दुसऱ्याकडून व्रतादिक करावें, आणि शुद्ध असतील तर स्वतः करावें.” पुरुषाविषयींही हाच निर्णय समजावा; कारण, एथें ‘पुरुषच’ किंवा ‘स्त्रियाच’ अशी लिंगविवक्षा नाहीं, असें असल्यामुळें ज्या व्रतांचेठायीं जें पूजादिक उक्त आहे तें दुसऱ्याकडून करावें; शारीरनियम (उपोषणादिक) स्वयमेव करावे असें हेमाद्रि सांगतो. आणि “व्रती जे त्यांचा व्रताविषयीं आशौचदोष नाहीं” असें **विष्णुवचन**ही आहे. प्रथमार्भ तर (आशौचांत) होतच नाहीं.

शुद्धितत्त्वेविष्णुः बहुकालिकसंकल्पोगृहीतश्चपुरायवि सूतकेमृतकेचैवव्रतंतत्रैवदुष्यति एतत्काम्य-

परं नित्यं त्वनारब्धमपिकार्यमिति गौडाः **मदनरत्ने** पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः तत्कर्तव्यं नरैः शुद्ध-
दानार्चनविवर्जितं **माधवीयेकौर्मे** काम्योपवासे प्रकृतां तत्त्वं तस्मात्सूतके तत्र काम्यव्रतं कुर्यादनार्चनविव-
र्जितमिति एतेन सांगेधिकाराद्वा तां देवपूजादिकार्यमिति वर्धमानोक्तिः **परास्ता** प्रारब्धपूजादिकार्यमेव नव-
रात्रेतु तत्रैव विशेषं वक्ष्यामः एवमजस्वलापि ।

शुद्धितत्त्वांत-विष्णु—जर बहुतकालपर्यंत व्रत करावयाचा पूर्वी संकल्प केला आणि पश्चात् जननाशीच किंवा मृताशीच प्राप्त झालें तर तें संकल्पोक्तव्रत करावें, त्याविषयीं दोष नाही.” हें वचन काम्यव्रतपर आहे. नित्यव्रत तर अनारब्ध (आरंभ न केलेलें) जरी असेल तथापि तें करावें असें **गौड** म्हणतात. **मदनरत्नांत**—“नियमानें व्रतें करणारे जे मनुष्य त्यांनीं पूर्वसंकल्पित व्रत करावें; परंतु दान, पूजा हीं मात्र करूं नयेत.” **माधवीयांत-कूर्मपुराणांत**—“काम्यव्रतसंबंधी उपवासाचा आरंभ केला आणि मध्ये मृताशीच प्राप्त झालें तर दान, पूजा विरहित तें काम्यव्रत करावें.” यावरून सांगव्रताविषयीं अधिकार आहे, यास्तव व्रताचें अंग जें देवपूजादिक तें करावें, असें जें वर्धमानानें उक्त तें खंडित झालें. आरंभिलेलें पूजादिक कर्म करावेंच. नवरात्राविषयीं तर विशेष निर्णय सांगणें आहे तो त्याच ठिकाणीं सांगूं. रजस्वले-विषयींही याप्रमाणेंच निर्णय समजावा.

यत्सत्यव्रतः प्रारब्धदीर्घतपसांनारीणां यद्रजोभवेन् न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कथंचनेति तत्प्रति-
निधिना कारयेदित्येतत्परं **तदुक्तं मदनरत्ने मातस्ये** अंतरातुरजोयोगे पूजामन्येन कारयेदिति ।

आतां जें **सत्यव्रत**—“ज्यांनीं बहुत दिवस व्रत धारण केलें आहे अशा स्त्रिया रजस्वला झाल्या असतां रजस्वलावस्थेंतही व्रताचा प्रतिबंध होत नाही.” असें वचन तें ‘प्रतिनिधिद्वारा करावें’ अशा अर्थानें आहे; तें सांगतो—**मदनरत्नांत-मातस्यपुराणांत**—“व्रतामध्ये रजस्वला झाली असतां पूजादिक अन्यद्वारा (प्रतिनिधिद्वारा) करावें.”

प्रतिनिधयश्च निर्णयामृतपैठीनसिः भार्यापत्युर्ब्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिव्रतं असामर्थ्ये परस्ताभ्यां
व्रतभंगो न जायते **स्कांदेपि** पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वानियोजयेत्
कात्यायनः पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् मातामहादीनुद्दिश्य-
एकादश्यामुपोषणे कृते ते तु फलं विप्राः समग्रं समवाप्नुयुः ।

प्रतिनिधि सांगतो-निर्णयामृतांत-पैठीनसि—“भार्येन पतीच व्रत करावें, व पतीनं भार्येच व्रत करावें, उभयतां असमर्थ असतां तिसऱ्यानें करावें, असें केल्यानें व्रतभंग होत नाही.” **स्कंदपुराणांतही**—“विनययुक्त पुत्र, भ्राता, भगिनी यांतून कोणाकडूनही करावें, यांच्या अभावींच दुसरा कोणी, अथवा ब्राह्मण यांकडून करावें.” **कात्यायन**—“पिता, माता, भ्राता, पति, गुरु यांच्यासाठीं उपोषण करणारा त्याला शतगुण फल मिळतें. मातामह इत्यादिकांच्या उद्देशानें एकादशीचें उपोषण करील तर त्याला व मातामहादिकांस समग्र फल मिळेल.”

मदनरत्ने प्रभासखंडे भर्तापुत्रः पुरोधश्च भ्रातापत्नीसखापि च यात्रायां धर्मकार्येषु जायंते प्रतिहस्तकाः
एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् **तत्रैव वायवीये** स्वयंकर्तुमशक्तश्चेत् कारयितुं पुरोधसा इदं च सर्ववर्ण-
साधारणं अविशेषान् ।

मदनरत्नांत-प्रभासखंडांत-भर्ता, पुत्र, पुरोहित (उपाध्याय), भ्राता, पत्नी, मित्र हे यात्रा, धर्मकार्य, यांविषयीं प्रतिनिधि होतात, यास्तव यांच्याकडून केलेलें कर्म स्वयमेव केलेंसें होतें.” त्याच ठिकाणीं **वायुपुराणांत**—“आपण कर-
ण्यास असमर्थ असेल तर उपाध्यायाकडून कर्म करावें.” हें वचन ब्राह्मणादि सवें वर्णांला लागू आहे. कारण, अमुक वर्णानें उपाध्यायाकडून करावें, असें विशेष सांगितलें नाही.

यत्तु कश्चिद्वाह शूद्रस्य ब्राह्मणादिदेवप्रतिनिधिर्युक्तो न शूद्रः जपस्तपस्तीर्थसेवाप्रव्रज्यामंत्रसाधनम् विप्रैः
संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलमिति **मरीचिवचनादिति तत्तुच्छम्** प्रव्रज्यादीनां शूद्रेऽसंभवाद्दिशये
प्रायदर्शनादिति न्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात् यदापि उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकमिति पूर्वोक्तं

पाठस्तदापिसएवदोषः स्त्रीशूद्रपतनानिषडितिमानवीयेजपनिषेधात् वस्तुतस्तु संपूर्णतावाचनमात्रमत्रो-
च्यतइतिप्रतिनिधेःकार्वातैत्यलम् ।

आतां जें कोणी म्हणतो की शूद्राला ब्राह्मणादिकच प्रतिनिधि योग्य, शूद्र प्रतिनिधि योग्य नाहीः कारण, “जप, तप, तीर्थसेवा, संन्यास, मंत्रसाधन हीं ब्राह्मणांनीं ज्याचीं संपादित केलीं त्याला त्यांचें संपूर्ण फल मिळतें.” असें मरीचि-
वचन आहे असें तें त्याचें म्हणें तुच्छ आहेः कारण, संन्यास इत्यादिकांचा, शूद्राचे ठायीं असंभव असल्यामुळें ‘विशये (संशये) प्रायदर्शनात्’ ह्या न्यायानें हें मरीचिवचन ब्राह्मणादिविषयक आहे. ‘जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम्’ या स्थानीं ‘उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम्’ असा पाठ जेव्हां आहे, तेव्हांही वर सांगितलेलाच दोष येतो. कारण, “स्त्रिया व शूद्र यांस जप, तप, तीर्थयात्रा, संन्यास, मंत्रसिद्धि, आणि देवताराधन हीं सहा कमें दोषावह आहेत.” ह्या मनुस्मृतींत जपाचा निषेध आहे. वास्तविक म्हटलें तर ‘केलेंलें कर्म संपूर्ण होवो’ इतकेंच ब्राह्मणाकडून म्हणवावयाचें, असें वरील मरीचिवचनांत सांगितलें आहे. तेथें प्रतिनिधीची वार्ता देखील नाही. आतां इतका विचार पुरे आहे.

अत्रविशेषमाहत्रिकांडमंडनः काम्येप्रतिनिधिर्नास्तिनित्येनैमित्तिकेचमः काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिविदुः नस्यात्प्रतिनिधिर्मंत्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु सदेशकालयोर्नास्तिनारणेरग्नरेवसा नापिप्रति-
निधातव्यंनिषिद्धंवस्तुकुत्रचित् हिरण्यकेशिसूत्रेपि नस्वामित्वस्यभार्यायाःपुत्रस्यदेशस्यकालस्याग्नेर्देव-
तायाःकर्मणःशब्दस्यचप्रतिनिधिविद्यतेइति ।

ह्या प्रतिनिधीविषयीं विशेष सांगतो त्रिकांडमंडन—“काम्य कर्मांचे ठायीं प्रतिनिधि नाही, नित्य व नैमि-
त्तिक कर्मांचे ठायीं तो प्रतिनिधि आहे. काम्यकर्मांचे ठायीं देखील उपक्रम (आरंभ) केल्यावर प्रतिनिधि आहे, असें कोणी सांगतात. मंत्र, यजमान, देवता, अग्नि, कर्म, देश, काल, अर्ण (आग्नेमंथनकाष्ठ) यांविषयीं प्रतिनिधि होत नाही. निषिद्ध पदार्थ प्रतिनिधिस्थानीं कधीही योजू नये”. हिरण्यकेशिसूत्रांतही “यजमान, भार्या, पुत्र, देश, काल, अग्नि, देवता, कर्म, शब्द यांविषयीं प्रतिनिधि नाही.” असें सांगितलें आहे.

अथव्रतादिसन्निपातेनिर्णयः तत्रतिथिद्वयसन्निपातेतत्रोक्तंदानहोमादिक्रमेणानुष्ठेयं अविरोधान् इदंपूर्वारब्धेष्वेव एकमध्येन्यकाम्यकर्मारंभस्तुनभवत्येवगुणफलादृते यस्ययज्ञेप्रतंतैरायज्ञस्तायतेतयज्ञंनिर्क-
तिर्गृह्णातीतिराणकधृतश्रुतेः यज्ञः व्रतादिकर्ममात्रं अतंगनव्यवधानदोषस्यसर्वत्रसाम्यात् शिष्टास्तुमाध-
कार्तिकस्नानादिमध्येलक्षहोमतुलाभारतश्रवणाद्याचरंतित्रित्यमध्येऽस्तु काम्यमध्येचिंत्यम् ।

आतां एककालीं दोन तीन व्रतें किंवा उपोषणें प्राप्त असतां निर्णय सांगतो—

दोन तिथि एक दिवशीं प्राप्त झाल्या असतां त्या ठिकाणीं सांगितलेलें दान होमादिक असेल तें कर्मानें करावें. कारण, विरोध नाही. हा निर्णय पूर्वी आरब्ध जीं व्रतें त्यांविषयीं होतो. पूर्वी एक काम्यकर्म आरंभिलें असेल तर अंग काम्य-
कर्मावांचून दुसऱ्या काम्यकर्माचा आरंभ (पूर्वारब्धाची समाप्ति झाल्यावांचून) होत नाहीः कारण, “ज्याचा एक यज्ञ आरंभिला असतां (त्याची समाप्ति झाल्यावांचून) मध्यें दुसरा यज्ञ आरंभिला तर त्या यज्ञाला राक्षस ग्रहण करितो” अशी राणकग्रंथांत श्रुति आहे. यज्ञ म्हणजे व्रतादिक सर्व कमें जाणावींः कारण, अंगावांचून इतर कर्मानें जो व्यवधान (अंतरजयः) दोष येतो तो सर्वत्र तुल्य आहे. शिष्टजन तर माघस्नान, कार्तिकस्नान इत्यादिक कमें आरंभून त्यांमध्ये

१ स्त्रीशूद्रेति । ‘जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनं ॥ देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षडिति’ २ वातेति । तादृशसंपादनेना-
भुरूपमंयंसाधुप्यमेवानेन बोधते ननु प्रतिनिधिरित्यर्थः. ३ ज्याच्या अर्थाचा संशय असेल तें ज्या बहुत अंगांमध्ये पठित असेल तदनुरूप त्याचा अर्थ समजावा. जसें—‘वत्समालमेत’ (वत्साचें आलभन करावें) आलभन म्हणजे हिंसा सर्वत्र अर्थ होतो, या ठिकाणींही तोच अर्थ आहे की काय ? असा संशय आला असतां, हें वाक्य अग्निहोत्रांग-संस्कारांमध्ये पठित असल्यामुळे इतर संस्कारांप्रमाणेंच एथेंही वत्साला आलभन म्हणजे स्पर्शरूप संस्कार करावा, असें आहे, त्या न्यायानें हें मरीचिवचन शूद्रविषयक आहे की काय ? असा संशय आला असतां प्रव्रज्यादिक असल्यामुळे हें वचन ब्राह्मणादिविषयक आहे. शूद्रविषयक नाही. ४ तस्यार्थः नित्यं नैमित्तिकं च प्रतिनिधिनाप्युपक्रम्य कारयेत् ॥ काम्यं तु सामर्थ्यं विचार्य स्वयमेवोपक्रम्य कुर्यात् । उपक्रमादूर्ध्वं असामर्थ्यं प्रतिनिधिनापि तत्कारयेत् ॥ ५ यावरून नित्य व नैमित्तिक, कर्म प्रतिनिधीकडूनही आरंभ करून करावें आणि काम्य कर्म तर आपल्या सामर्थ्याचा विचार करून स्वतःच आरंभ करून करावें; आरंभ केल्यावर स्वतः करण्याला शक्ति नसेल तर प्रतिनिधीकडून करावें.

लक्षहोम, तुलादान, भारतपुराणश्रवण इत्यादिकांचा आरंभ करितात, तो नित्यकर्मांमध्ये आरंभ असो. काम्यकर्मांमध्ये आरंभ प्रमाणशून्य आहे.

यत्रतुनक्तैकभक्तादौविरोधस्तत्रप्राथम्यादेकभक्तकार्यम् नक्तंतुपरेद्यस्तत्तियौगौणकालेकार्यम् समकालीन-
विरुद्धव्रतादौत्वेकस्वयंकृत्वान्यद्धार्यादिनाकारयेदिति**माधवः** यत्रतुशिवरात्र्यादौतिथिमध्येपारण्याऽह्नि-
भोजनंप्राप्तं भूताष्टम्योर्दिवाभुक्त्वा रात्रौभुक्त्वाचपर्वणि एकादश्यामहोरात्रंभुक्त्वाचांद्रायणचंदरेदितितिभिषे-
धश्च तत्रपारण्यायवैधत्वाद्दिवैवभोजनम् निषेधस्तुरागप्राप्तभोजनविषयः एवमष्टम्यादिनक्तव्रतेसंकांत्यादौ-
रवौसंकष्टचतुर्थ्याचरात्रौभोजनम् ।

जेथें नक्तभोजन, एकभक्त इत्यादिक, परस्परविरुद्ध व्रतें अमतात त्या ठिकाणीं प्रथम असल्यामुळें एकभक्त करावें, आणि नक्तव्रत करणें तें दुसऱ्या दिवशीं ह्या तिथीचे ठायीं गौणकालीं करावें. दोहोंचा समान काल, समान कालीं दोन विरुद्ध (नक्तभोजन, उपोषण इत्यादि) व्रतादिक प्राप्त होतील तर एक आपण करून दुसरें भार्यादि प्रतिनिधिद्वारा करावें असें **माधव** म्हणतो. ज्या स्थलीं शिवरात्रि इत्यादिक व्रतांचे ठायीं पारणाप्रयुक्त तिथीमध्ये दिवसा भोजन प्राप्त झालें, आणि “चतुर्दशीस व अष्टमीस दिवाभोजन व पर्वणीस रात्रिभोजन, एकादशीस अहोरात्र भोजन केलें असतां चांद्रायण करावें” ह्या वचनानें दिवाभोजनाचा निषेधही प्राप्त झाला, तेथें पारणा विधिप्राप्त असल्यामुळें दिवसासच भोजन करावें; दिवाभोजननिषेध तर राग (इच्छा) प्राप्त भोजनविषय आहे. याप्रमाणें अष्टम्यादिक नक्तव्रताच्या दिवशीं संकांति वगैरे असतां आणि रविवारी संकष्टचतुर्थी अमतां रात्रौ भोजन करावें.

यत्रत्वष्टम्यादौदिवाभुजनिषेधः संक्रमेचरात्रव्रतिनिषेधद्वयंतत्रोपवासएवकार्यः यद्यपिपुत्रिणउपवासो-
निषिद्धस्तथाप्युपवासनिषेधेतुभक्ष्यंकिंचित्प्रकल्पयेदितिवचनात्किंचिद्भक्ष्यित्वोपवासःकार्यः चांद्रायणमध्ये-
एकादश्यादौतुप्राप्तसंख्यानियमेनभोजनंकार्यमेव चांद्रायणस्यकाम्यत्वेननित्यबाधकत्वात् अबाधेनगत्यसंभ-
वाच्च एकादश्यामेकांतरोपवामादिपारणायांजलपारणांक्रत्वोपवसेन आपोवाअशितमनशितंचेति**श्रुतेः** एवं-
द्वादश्यां मासोपवासश्चाद्वप्रदोपादिपुद्गेयं एवंकाम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतंवलालंस्वयमूषमितिदिक्
इतिकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौव्रतपरिभाषासमाप्ता ।

जेथें अष्टम्यादिप्रयुक्त दिवाभोजननिषेध आणि संकांतिनिमित्त रात्रौ भोजननिषेध असे दोन निषेध प्राप्त होतात तेथें उपवामच करावा. जरि पुत्रवान गृहस्थाला उपवाम निषिद्ध आहे तथापि “उपवामनिषेध असतां कांहीं अल्प फलादि भक्षण करावें” असें वचन आहे यास्तव कांहीं अल्प उपहार करून उपवाम करावा. चांद्रायण व्रतामध्ये एकादश्यादि उपोषण प्राप्त झालें असतां ग्राससंख्येच्या नियमाचें भोजनच करावें. कारण, चांद्रायण हें काम्यव्रत असल्यामुळें काम्यानें नित्याच म्हणजे एकादश्यादिकांचा वाध होतो: व वाध न करून दुसरी गतिही नाही. एकादशीस ऐकांतरोपवासादिव्रताची पारणा प्राप्त होईल तर उदकांन पारणा करून उपोषण करावें: कारण, “उदकपान करणें हें उपोषण व पारणा असें द्विविध (दोन प्रकारचें) होय” अशी श्रुती आहे. याप्रमाणें द्वादशीचे दिवशीं मासोपवासव्रत (एक महिनापर्यंत सतत उपवास), श्राद्धदिनी प्रदोषव्रत इत्यादि प्राप्त होतील तर उदकांन पारणा करावी. याप्रमाणें (“काम्यं नित्यस्य बाधकं” काम्य कर्म नित्य कर्माचें बाधक होतें इत्यादि वचनांनीं) काम्य, नैमित्तिक (निमित्तप्राप्त), नित्य यांचा प्रबल दुर्बल भाव स्वतः विचार करून आचरण करणें तें करावें.

इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ व्रतपरिभाषाप्रकरणे महाराष्ट्रभाषाटीका समाप्ता ॥

अथप्रतिपदादिनिर्णयः शुक्लप्रतिपदपराहव्यापित्वेपूर्वाग्राह्या युग्मवाक्यात् प्रतिपत्संमुखी
कार्यायाभवेदापराह्कितीति**स्कांदोक्तेः** शुक्लास्यात्प्रतिपत्तिथिःप्रथमतश्चेत्सपराह्भवेदिति**दीपिकोक्तेः**
अपराह्श्रृंषंचधामक्तेदिनेचतुर्थोभागः तदभावेसायाहव्यापिनीग्राह्या तदभावेतुसायाहव्यापिनीपरिगृह्यता-
मिति **माधवोक्तेः** कृष्णातुपरा कृष्णातूत्तरतोखिलेति**दीपिकोक्तेः** कृष्णापिपूर्ववैत्यनंतभट्टाः ।

आतां प्रतिपदादिक तिथींचा निर्णय सांगतो.

शुक्लप्रतिपदा (पूजा व्रतादिकांविषयीं) अपराह्कालव्यापिनी असतां पूर्वा (पूर्वतिथीनें विदा) ध्यावी. कारण, प्रतिपदा

१ एक दिवस उपोषण आणि दुसऱ्या दिवशीं भोजन असें कांही दिवस व्रत करणें तें एकांतरोपवासव्रत म्हण्टे आहे. असें धारणा, पारणा इत्यादि.

व अमावास्या श्रांते युग्म असे पूर्वा युग्मवाक्य सांगितलें आहे. “जी शुक्ल प्रतिपदा अपराह्णकालव्यापिनी असेल ती करावी” असे स्कंदपुराणवचन आहे, व “शुक्लप्रतिपदा अपराह्णकालव्यापिनी असतां ती पूर्वविद्धा ध्यावी” असे दीपिकावचनही आहे. अपराह्णकाल म्हणजे दिवसाचे पांच भाग करून चवथा जो भाग तो. अपराह्णकालव्यापिनी नसेल तर सायंकालव्यापिनी ध्यावी. कारण, “अपराह्णकालव्यापिनी नसेल तर सायंकालव्यापिनी ध्यावी” असे माधवाचें वचन आहे. कृष्णप्रतिपदा तर परा (द्वितीयायुक्ता) ध्यावी. कारण, “सर्वे कृष्णपक्षप्रतिपदा उत्तरा (परा) ध्यावी” असे दीपिकावचन आहे, कृष्णप्रतिपदाही पूर्वाच ध्यावी असे अनंतभट्ट म्हणतात.

सर्वेतिथिषुवर्ज्यान्युक्तानिमुहूर्तदीपिकायां कृष्मांडंबृहतीफलानिलवर्णवर्ज्यतिलाम्लंतथातैलं चामलकंदिवंप्रवसताशीर्षकपालांत्रकम् निष्पावांश्चमसूरिकान्फलमथोवृताकसंज्ञंमधुशूतंस्त्रीगमनंक्रममाप्रतिपदादिष्वेवमापोडश शीर्षनारिकेलम् कपालंअलातु अंत्रपटोलकं भूपालः कृष्मांडंबृहतीक्षारंमूलकंपनसंफलम् धात्रीशिरःकपालांत्रनखचर्मतिलानिच क्षुरकर्मगनासेवांप्रतिप्रभृतिपत्यजेत् नखांशिबी चर्ममसूरिका ।

प्रतिपदादि सर्वेतिथींचे ठायीं क्रमानें वर्ज्य पदार्थ सांगतो-मुहूर्तदीपिकेंत-“कृष्माण्ड (कोहळा), डोरली (वांगी), लवण, तिल, आंबटपदार्थ, तेल, आंबळा, नारळ, भोपळा, पडवळ, निष्पाव (पावटा, पांडरा पावटा, चवळी, काळा बाल, घेवडा इत्यादिक), मसुरा, वृताक (वांगें), मध, दूत, स्त्रीगमन हीं क्रमेकरून प्रतिपदादि सोळातिथींचे ठायीं वर्ज्य करावीं.” **भूपाल-**“कोहळा, डोरली (वांगी), क्षार, सुळा, फणस, फळ, आंबळा, नारळ, भोपळा, पडवळ, पावटे इत्यादिक, मसुरा, तिल, क्षौर, मैथुन हीं क्रमानें प्रतिपदादि तिथींस वर्ज्य करावीं.”

द्वितीयातुकृष्णापूर्वाशुक्लोत्तरेतिहेमाद्रिः कृष्णाद्वितीयादिमा पूर्वाह्ण्यदिसासितानुपरतःसर्वेतिदीपिकोक्तेः माधवानंतभट्टमतेतुसर्वापिद्वितीयापरा तथाचमाधवः पूर्वेगुरसतीप्रातःपरेगुस्त्रिमुहूर्तगा साद्वितीयापरोपोष्यापूर्वविद्धाततोन्वयेति ।

द्वितीयानिर्णय-कृष्णपक्षांतील द्वितीया पूर्वा (पूर्वविद्धा) ध्यावी, शुक्लपक्षांतील द्वितीया उत्तरा (परविद्धा) ध्यावी; असे हेमाद्रि म्हणतो. कारण, “कृष्णद्वितीया जर पूर्वाह्णकालव्यापिनी असेल तर पूर्वा ध्यावी, व सर्व शुक्लद्वितीया परविद्धा ध्यावी” असे दीपिकावचन आहे. **माधव, अनंतभट्ट** यांच्या मतीं तर-शुक्ल-कृष्ण पक्षांतील सर्व द्वितीया तिथि परा (उत्तरविद्धा) ध्यावी. तेंच **माधव** सांगतो-“पूर्वे दिवशीं प्रातःकालीं नसून दुसऱ्या दिवशीं त्रिमुहूर्तव्यापिनी किंवा त्रिमुहूर्ताहूनही अधिकव्यापिनी असेल तर द्वितीया उपोषणाविषयीं दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी तशी नसेल तर पूर्वविद्धा ध्यावी.”

तृतीयातुसर्वमतेरंभाव्यतिरिक्तापरैव तेनयुग्मवाक्यंरंभात्रतविषयं रंभाख्यवर्जयित्वातुतृतीयांद्विजसत्तम अन्येषुसर्वकार्येषुगणयुक्ताप्रशस्यतइतिब्रह्मवैवर्तात् गौरीव्रतेतुविशेषमाह**माधवः** मुहूर्तमात्रसत्त्वेपिदिनेगौरीव्रतंपरे शुद्धाधिकायामप्येवंगणयोगप्रशंसनादिति ।

तृतीयानिर्णय-सर्वमतीं तृतीया, रंभाव्रत व्यतिरिक्त करून अन्य व्रतांविषयीं पराच ध्यावी. तेणेंकरून “तृतीया द्वितीयाविद्धा ध्यावी व द्वितीया तृतीयाविद्धा ध्यावी” असे जें युग्मवाक्य तें रंभाव्रतविषयक आहे; कारण, “रंभाख्यतृतीया वर्ज्य करून अन्य सर्व कार्यांविषयीं तृतीया चतुर्थीयुक्त ध्यावी” असे ब्रह्मवैवर्तवचन आहे, **गौरीव्रताविषयीं तर माधव विशेष सांगतो-**“एक मुहूर्तमात्र जरी दुसऱ्या दिवशीं तृतीया असेल तथापि तीच (चतुर्थीयुक्त) गौरीव्रताविषयीं ध्यावी. दिनवृद्धिवशेंकरून पूर्वदिवशीं साठ घटिका तृतीया असून दुसऱ्या दिवशीं शेष उरलेली दोन घटिका असेल त्या वेळीं देखील चतुर्थीयुक्त असेल तीच ध्यावी; कारण, चतुर्थीयोग प्रशस्त आहे.”

चतुर्थ्यपिसर्वमतेगणेशव्रतातिरिक्तापरैव युग्मवाक्यात् एकादशीतथाषष्ठीअमावास्याचतुर्थिका उपोष्याः परसंयुक्ताःपराःपूर्वेणसंयुताः इति**माधवीये बृहद्वसिष्ठोक्तेश्च** नागचतुर्थीतुमध्याह्नव्यापिनीपंचमीयुताचप्राष्टेति**निर्णयामृतेमाधवीये**चोक्तं युगमध्यंदिनेयत्रतत्रोपोष्यफणीश्वरान् क्षीरेणाप्याय्यपंचम्यां-

१. गौरीव्रतेतुकलाकाष्ठादिपरिमितस्वरूपद्वितीयायुक्तापिनिषिद्धा । परदिनेकलाकाष्ठादिपरिमितास्वरूपापितृतीयापरिग्राह्या । यदातुदिनवृद्धिवशात्परदिनेस्वरूपापिचतुर्थीयुतातृतीयानलभ्यतेपूर्वदिनेचद्वितीयाविद्धातदा द्वितीयाविद्धैवप्राह्या । यदाचदिनवृद्धिवशात् पूर्वदिनेषष्ठिघटिकातृतीयापरदिनेचघटिकादिशेषवतीतदा पूर्वाशुद्धांषष्ठिघटिकामपिलक्त्वाचतुर्थीयुक्तैव गौरीव्रतेप्राह्या इतिपरमैसिंधुः.

पूजयेत्प्रयतोऽनरः विषाणितस्य नश्यंतितान्ति संतिपन्नगा इति माधवीये देवलोक्तेः युगंचतुर्थी पूर्वत्रमध्याह्न्याप्तौ पूर्वा अन्यपक्षेषु परैव पंचम्यां पूजोक्तेः ।

चतुर्थीनिर्णयः—सर्वे ग्रंथांच्या मतीं चतुर्थी, गणेशव्रत वज्र्य करून अन्य सर्व व्रतांविषयीं पराच (पंचमीयुक्त) ध्यावी; कारण, चतुर्थी व पंचमी यांचें युग आहे. आणि “एकादशी, षष्ठी, अमावास्या, चतुर्थी ह्या तिथी उपोषणाविषयीं उत्तरतिथीनें विद्ध ध्याव्या, व ह्यांच्या पुढच्या तिथी पूर्व तिथीनें विद्ध ध्याव्या” असें माधवीयांत बृहद्वसिष्ठवचनही आहे. नागचतुर्थी तर मध्याह्न्यापिनी अशी पंचमीयुक्त ध्यावी, असें निर्णयामृतांत व माधवीयांत सांगितलें आहे; कारण, “ज्या दिवशीं चतुर्थी मध्याह्नीं असेल त्या दिवशीं मनुष्यानें उपोषण करून नागांना दूध पाजून पंचमीस त्यांची पूजा करावी. असें व्रत केल्यानें विषबाधा होत नाही व नाग त्या मनुष्यास दंश करीत नाहीत” असें माधवीयांत देवलवचन आहे. पूर्वदिवशीं मध्याह्नाकालव्यापिनी असेल तर पूर्वा ध्यावी; परदिवशीं मध्याह्न्यापि, दोन दिवशीं मध्याह्न्यापि, दोनही दिवशीं मध्याह्न्यापि नसणें, दोनही दिवशीं सारखी अथवा कमी ज्यास्ती एकदेशव्यापि असेल तर पंचमीयुक्त ध्यावी; कारण, पंचमीस पूजा करण्याविषयीं वचन आहे.

गणेशव्रते तृतीयायुतैव चतुर्थी चतुर्थीतु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा कर्तव्याव्रतिभिर्वत्सगणनाथसुतोषिणीति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तात् माधवीये तु गणेशव्रते मध्याह्न्यापिनी मुख्या चतुर्थीगणनाथस्य मातृविद्धाप्रशस्यते मध्याह्न्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेहनीति बृहस्पतिवचनात् प्रातःशुद्धितिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृपेति तत्कल्पेभिधानाच्च तेन परदिने तत्त्वे परा अन्यथा पूर्वैत्युक्तं वस्तुतस्तु यत्र भाद्रशुद्धचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्नपूजोक्तातद्विषयाप्येव प्रागुक्तवचनानि ननु सार्वत्रिकाणि संकष्टचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेः तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्वैवेति सिद्धं संकष्टचतुर्थीतु चंद्रोदयव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये तत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात् पूर्वैवेति केचित् अन्ये तु दिने मुहूर्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्याभावात् परदिने माधवोक्तमध्याह्न्यापिसत्त्वात्संपूर्णत्वाच्च परत्याचक्षते दिनद्वये तदभावे तु परैव गौरीव्रते तु पूर्वैव गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः चतुर्थ्यः पंचमीविद्धा देवतांतरयोगत इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ।

गणेशव्रताविषयीं चतुर्थी, तृतीयायुक्त ध्यावी; कारण, “तृतीयायुक्त चतुर्थी महापुण्यफलप्रदा असून गणनाथाचा सुसंतोष करणारी आहे. यास्तव व्रती यांनी तीच (तृतीयायुक्त) करावी” असें हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. माधवीयांत तर गणेशव्रताविषयीं चतुर्थी मध्याह्नाकालव्यापिनी मुख्य होय. कारण, गणनाथचतुर्थी पूर्वदिवशीं मध्याह्नाकालव्यापिनी असेल तर तृतीयायुक्त ती प्रशस्त होय, दुसऱ्या दिवशीं मध्याह्नाकालव्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची करावी” असें बृहस्पतिवचन आहे; आणि “प्रातःकाली शुद्ध तिल अंगाम लावून स्नान करून मध्याह्नाकालीं पूजा करावी” असें गणपतिकल्पांतही वचन आहे, तेणेंकरून दुसऱ्या दिवशीं मध्याह्नाकालव्यापिनी असेल तर परा करावी; दुसऱ्या दिवशीं मध्याह्नाकालव्यापिनी नसतां पूर्वा करावी, असें सांगितलें आहे. वास्तविक म्हटलें तर—ज्या भाद्रपदशुद्ध चतुर्थी इत्यादि विशेष व्रताचेठायीं मध्याह्नाकालीं पूजा विहित आहे तद्विषयकच पूर्वोक्त वचन आहेत. सर्वचतुर्थीव्रतविषयक नाहीत; कारण, सर्वत्र पंचमीयुक्त घेतली तर संकष्टचतुर्थी इत्यादि व्रतांच्या बहुत कर्मकालाचा बाध होईल; यास्तव सर्वत्र ठिकाणीं गणेशव्रताविषयीं चतुर्थी पूर्वाच ध्यावी, असें सिद्ध झालें. संकष्टचतुर्थी तर चंद्रोदयव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवशीं चंद्रोदयव्यापिनी असेल तर, तृतीयायुक्त ती प्रशस्त असल्यामुळें पूर्वा ध्यावी, असें केचित् म्हणतात. इतर ग्रंथकार तर, दिवसा मुहूर्तत्रयादिरूप जो तृतीयायोग तो नसल्याकारणानें परदिवशीं माधवानें सांगितलेली मध्याह्न्यापि असल्यामुळें व तिथी संपूर्ण असल्यामुळें दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, असें म्हणतात. दोन दिवशीं चंद्रोदयव्यापिनी नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. गौरीव्रताविषयीं तर पूर्वदिवसाचीच ध्यावी; कारण, “गणेशव्रत, गौरीव्रत (श्रावण कृष्णचतुर्थी बहुला अशी प्रसिद्ध ती) यांचाच अन्य व्रताविषयीं चतुर्थी पंचमीविद्धा ध्याव्या; कारण, अन्यदेवतायोग आहे” असें मदनरत्नांत ब्रह्मवैवर्तवचन आहे.

पंचमीतु माधवमते सर्वापि पूर्वा चतुर्थीसंयुता कार्या पंचमी परयानतु दैवैकर्मणिपित्र्येच शुद्धपक्षे तथासितेति हारीतोक्तेः हेमाद्रिमते तु कृष्णापूर्वासिता परा कृष्णापूर्वयुतासिता परयुता स्यात्पंचमीति दीपिकोक्तेः

१. उत्तरदिन मध्याह्न्याह्नाद्विपक्षपंचमे पंचमीयुतैव ग्राह्या. २. अत्र परतश्चेत्परेहनीत्यनेन पूर्वमध्याह्न्याह्नाद्विपक्षे अथवा द्वितीयमध्याह्ने अधिकव्याप्तावेव परविद्धाविधानं । इतरपक्षे तु तृतीयायुतैव गणनाथव्रते ग्राह्या । अतएव मातृविद्धा प्रशस्त्या सौचतुर्थी गणनाथकै । मध्याह्नात्परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते इति माधवीये स्मृत्यन्तरम्.

वस्तुतस्तुहारीतोक्तिरुपवासविषया प्रतिपत्पंचमीचैवसावित्रीभूतपूर्णिमा नवमीदशमीचैवनेपोष्याः परसं-
युताप्रतिब्रह्मवैवर्तात् यत्तु पंचमीतुप्रकर्तव्याषष्ठयायुक्तातुनारदेत्यापस्तंबीयंतत्स्कंदव्रतपरम् स्कंदोप-
वासेस्वीकार्यपंचमीपरसंयुतेतिवाक्यशेषादितिमाधवः तन्नागपूजाविषयमित्यनंतभट्टनिर्णयामृता-
दयः चमत्कारचिंतामणौच पंचमीनागपूजायांकार्याषष्ठीसमन्विता तस्यांतुषितानागाइतरासच-
तुर्थिकेति तेननागपूजादौपरैव यत्तुमदनरत्नदिवोदासीययोः श्रावणपंचम्यतिरिक्तापूर्वैत्युक्तं श्रावणे
पंचमीशुक्लासंप्रोक्तानागपंचमी तांपरित्यज्यपंचम्यश्चतुर्थीसहिताहिताइतिसंग्रहोक्तेः गणेशस्कंदयोगाभ्यां
क्रमाग्नः शुभाशुभः मित्रामित्रेतयोः पत्रेनागानामाखुबर्हिणावितिषट्त्रिंशन्मताश्च श्रावणपंचम्यतिरि-
क्तायानागपंचम्याश्चतुर्थीयुतत्वमुक्तंतदुपवासादिविषयं पत्रेवाहने ।

पंचमीनिर्णय—माधवाच्या मतीं शुक्ल व कृष्ण या दोनही पक्षांतील पंचमी चतुर्थीविद्ध ध्यावी; कारण, “दैवकर्म व
पितृकर्म या दोनही कर्माविषयीं शुक्ल व कृष्ण पक्षांतील पंचमी तिथि चतुर्थीविद्ध ध्यावी, परतिथीनें विद्ध (षष्ठीविद्ध)
घेऊं नये” असें हारीताचें वचन आहे. हेमाद्रीच्या मतीं तर कृष्णपंचमी पूर्वा, आणि शुक्लपंचमी परा ध्यावी; कारण,
“कृष्णपंचमी पूर्वविद्धा व शुक्लपंचमी परविद्धा ध्यावी” असें दीपिकावचन आहे. वास्तविक म्हटलें तर हारीत-
वचन उपवासविषयक आहे; कारण, “प्रतिपदा, पंचमी, वटपूर्णिमा, नवमी, दशमी, ह्या तिथि उपवासाविषयीं परतिथीनें विद्ध
घेऊं नयेत” असें ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. आतां जें “हे नारद, पंचमी तिथि षष्ठीयुक्त करावी” असें आपस्तंबवचन आहे,
तें स्कंदव्रतविषयक होय; कारण, स्कंदोपवासाविषयीं पंचमी परतिथीनें युक्त ध्यावी. असा वाक्यशेष आहे, असें माधव
सांगतो. आपस्तंबवचन नागपूजाविषयक होय, असें अनंतभट्ट-निर्णयामृतादिक म्हणतात. चमत्कारचिंतामणी-
तही “नागपूजेविषयीं पंचमी षष्ठीयुक्त ध्यावी; कारण, षष्ठीयुक्त पंचमीचे ठायीं नाग संतुष्ट झाले आहेत. इतर पंचमी चतुर्थी-
युक्त ध्यावी” तेणेंकरून नागपूजा इत्यादिकांविषयीं दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. आतां जें मदनरत्नांत व दिवोदासी-
यांत—श्रावणपंचमीहून अन्य पंचमी पूर्वा, असें सांगितलें आहे; कारण, “श्रावणशुक्लपंचमी ती नागपंचमी होय, ती
वर्ज्य करून इतर सर्व पंचमीतिथि चतुर्थीसहित कराव्या, त्या हितकारक होत” ह्या संग्रहवचनावरून; आणि “गणेश व
स्कंद यांचा योग असतां क्रमेंकरून नाग शुभ व अशुभ होतो, गणेशाचें वाहन आखु (उंदीर) व स्कंदाचें वाहन मयूर
आहे, ते नागांचे मित्र व शत्रु होत” ह्या षट्त्रिंशन्मतवचनावरूनही श्रावणपंचमीवांचून अन्य नागपंचमी चतुर्थीयुक्त
ध्यावी, असें सांगितलें तें उपवासादिविषयक होय.

षष्ठीसर्वमतेस्कंदव्रतातिरिक्तापरैव युग्मवाक्यात् नागविद्वानकर्तव्याषष्ठीचैवकदाचनेतिस्कांदाच्च
निर्णयामृते षष्ठीचसप्तमीचैववारश्चेदंशुमालिनः योगोयंपद्मकोनामसूर्यकोटिग्रहैःसमः ।

षष्ठीनिर्णय—सर्वांच्या मतीं षष्ठी, स्कंदव्रत वर्ज्य करून अन्य व्रतांविषयीं पराच ध्यावी. कारण षष्ठी व सप्तमी यांचें
युग्म आहे; आणि “षष्ठी तिथि पंचमीयुक्त कदापि करूं नये” असें स्कांदवचनही आहे. निर्णयामृतांत—“षष्ठी, सप्तमी
व रविवार यांचा योग आला असतां तो पद्मक्रयोग होतो, हा योग कोटिसूर्यग्रहणांशीं तुल्य आहे” असें सांगितलें आहे.

सप्तमीपूर्वैव युग्मवाक्यात् षष्ठयायुतासप्तमीचकर्तव्यातातसर्वदेतिस्कांदाच्च ।

सप्तमीनिर्णय—सप्तमी षष्ठीयुक्तच करावी; कारण षष्ठी व सप्तमी यांचें युग्म आहे. (जेव्हां पूर्व दिवशीं सूर्यास्तापर्यंत
षष्ठी असल्यामुळें दिवसा षष्ठीविद्ध सप्तमी नसेल व दुसऱ्या दिवशीं अष्टमीविद्ध असेल तेव्हां अष्टमीविद्धच करावी. याप्रमाणें
इतर तिथींच्या निर्णयाविषयींही समजावें.) आणि “सर्वदा सप्तमी षष्ठीयुक्त करावी” असें स्कांदवचनही आहे.

अष्टमीतुसर्वमतेकृष्णापूर्वासितापरा व्रतमात्रेष्टमीकृष्णापूर्वाशुक्लाष्टमीपरेति माधवोक्तेः परयुक्तशु-
क्लाष्टमीपूर्वयुक्तकृष्णेतिदीपिकोक्तेश्च शिवशक्त्युत्सवेचकृष्णाप्युत्तरा पक्षद्वयेप्युत्तरैवशिवशक्तिमहोत्सवइति
माधवोक्तेः दिवोदासीयेभविष्ये यदायदासिताष्टम्यांबुधवारोभवेत्कचिन् तदातदाहिसाम्राज्ञापक
भक्ताशनेनृप संध्याकालेतथाचैत्रेप्रसुप्तेचजनार्दने बुधाष्टमीनकर्तव्याहंतिपुण्यपुरातनं अंत्यपदंहेमाद्रौनधृतं ।

अष्टमीनिर्णय—सर्वांच्या मतीं कृष्णाष्टमी पूर्वा करावी; शुक्लाष्टमी परा करावी; कारण, “सर्व व्रतांविषयीं कृष्णाष्टमी
पूर्वा आणि शुक्लाष्टमी परा करावी” असें माधव सांगतो; आणि शुक्लाष्टमी उत्तरविद्धा करावी, आणि कृष्णाष्टमी पूर्वविद्धा

१. पूर्वेषुः षण्णवर्तन्यूनपंचम्या वेधे पूर्वाभि. २. यदा पूर्वेषुरस्तामयपर्यन्ता षष्ठीति दिवा षष्ठीविद्धा न लभ्यते परेषुश्चाष्टमीविद्धा
तदा चागत्या परैव एवं तिथ्यंतरनिर्णयेष्वप्युक्तम्.

करावी" असें दीपिकावचनही आहे. शिवशक्तीच्या उत्सवाविषयी, कृष्णपक्षातील असली तथापि दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी ध्यावी; कारण, "दोनही पक्षांतील अष्टमी शिवशक्तीच्या उत्सवाविषयी दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी" असें माधव सांगतो. दिवोदासीयांत भविष्यांत—"ज्या ज्या वेळीं शुक्लपक्षांतील अष्टमीचे ठायीं बुधवारयोग येईल ती ती बुधाष्टमी एकभक्तव्रताविषयी ग्रहण करावी" "सायाह्मकालीं, चैत्रमासीं आणि चातुर्मास्यांत, बुधाष्टमी असेल ती घेऊं नये; कारण, ती पुरातन पुण्याचा नाश करिते." "संध्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च जनार्दने ॥ बुधाष्टमी न कर्तव्या इति पुण्यं पुरातनं" हा शेवटचा श्लोक हेमाद्रिंत मिळत नाही.

नवमीतुसर्वमेतपूर्वा युग्मवाक्यात् नकुर्यान्नवमीतातदशम्यातुकदाचनेतिस्कांदाश्च ।

नवमीनिर्णय—नवमी तिथि सर्वाच्या मतीं पूर्वा (अष्टमीविद्धा) करावी; कारण, अष्टमी व नवमी यांचें युग्म आहे. आणि "नवमी दशमीयुक्त कदापि करूं नये" असें स्कांदवचनही आहे.

दशमीतुपूर्वापरावेतिहेमाद्रिः कृष्णापूर्वोत्तराशुक्लादशम्येवंव्यवस्थितेति**माधवः** वस्तुतस्तुमुख्यानवमीयुतैवप्राह्या दशमीतुप्रकर्तव्यासदुर्गाद्विजसत्तमेत्यापस्तंबोक्तेः यत्तु संपूर्णादशमीकार्यापूर्वयापरयाथ-वेत्यंगिरसोक्तं तन्नवमीयुक्तालभेओदधिकीप्राह्येवेनेयम् ।

दशमीनिर्णय—उपवासादिकांविषयी दशमी पूर्वा (नवमीयुक्ता) किंवा परा (उत्तरविद्धा) करावी, असें हेमाद्रि म्हणतो. "कृष्णदशमी पूर्वा आणि शुक्लदशमी उत्तरा याप्रमाणें दशमीनिर्णय समजावा" असें माधव म्हणतो. वास्तविक म्हटलें तर-मुख्य दशमी नवमीयुक्त ध्यावी; कारण, "दशमी नवमीयुक्त करावी" असें आपस्तंबवचन आहे. आतां जें "सर्व दशमी पूर्वविद्धा किंवा परविद्धा करावी" असें आंगिरसवचन आहे, तें नवमीयुक्त दशमी न मिळेल तर सूर्योदयव्यापिनी ध्यावी, एतद्विषयक जाणावें.

अथैकादशी तत्रैकादश्युपवासोद्वेधा निषेधपरिपालनात्मकोव्रतरूपश्च तत्राद्यः नशंखेनपिबेतोयंन-ग्वादेत्कूर्मसूक्तौ एकादश्यांनभुंजीतपक्षयोरुभयोरपीति**कौर्मदेवलाद्युक्तेः अग्निपुराणेपि** गृहस्थोब्रह्म-चारीचआहिताग्निस्तथैवच एकादश्यांनभुंजीतपक्षयोरुभयोरपीति नचात्रपर्युदासेनव्रतविधिस्तद्धेतुव्रतादि-शब्दाभावान्न व्रतरूपस्तुव्रतत्वैवनें प्राप्नोतिदिनेसम्यग्निधायनियमंनिशि दशम्यामुपवासस्यप्रकुर्याद्वै-ष्णवव्रतमिति इदंच**शिवभक्तादिभिरपि**कार्यं वैष्णवोवाथशैवोवाकुर्यादेकादशीव्रतमिति**शिवधर्मोक्तेः** वैष्णवोवाथशैवोवासौरोप्येतत्समाचरेदिति**सौरपुराणाच्च ।**

आतां एकादशीनिर्णय—एकादशीचा उपवास दोन प्रकारचा—एक भोजननिषेधपरिपालनात्मक, व दुसरा व्रतरूप. त्यांमध्ये पहिला प्रकार—"शंखानें उदकपान करूं नये, आणि कूर्म (कणगरें), सूकर (कोन) भक्षण करूं नयेत; व शुक्ल, कृष्ण या दोनही पक्षांतील एकादशीस भोजन करूं नये" याप्रमाणें कूर्मपुराण व देवलादिकांनीं सांगितला आहे तो. **अग्निपुराणांतही**—"गृहस्थाश्रमा, ब्रह्मचारी, व अग्निहोत्री, यांनीं शुक्ल व कृष्ण या दोनही पक्षांतील एकादशीस भोजन करूं नये." **शंका**—'एकादश्यां न भुंजीत' ह्या वाक्यांतील 'न' चा अर्थ पर्युदास करावा. म्हणजे—सिद्धांतीं 'भोजन करूं नये' असा निषेध केला आहे; यथें 'भोजनविषय संकल्प करावा' असा पर्युदास केला असतां ह्या वचनांनीं उक्त जो उपवास तो व्रतरूपच आहे! **समाधान**—तसा पर्युदास करण्याला व्रत, नियम इत्यादि शब्द किंवा दुसरें कांहींतरी प्रमाण असलें पाहिजे, तें येथें कांहीं नाही म्हणून पर्युदास होत नाही. **व्रतरूप हा दुसरा प्रकार सांगतो**—ब्रह्मवैवर्तांत—"दश-मीचे रात्रीं उपवासाचा नियम करून एकादशीचे दिवशीं एकादशीव्रत यथाविधि करावें." हें एकादशीव्रत शैव, गाणपत्य इत्यादिकांनींही करावें; कारण, "वैष्णव, अथवा शैव, या सर्वांनीं एकादशीव्रत करावें" असें शिवधर्मवचन आहे; आणि वैष्णव अथवा शैव, सौर या सर्वांनींही हें एकादशीव्रत करावें" असें सौरपुराणवचनही आहे.

सोपिद्वेधा नित्यः काम्यश्च उपोष्यैकादशीनित्यंपक्षयोरुभयोरपीतिगारुडोक्तेः पक्षेपक्षेकर्तव्यमेका-

१. कूर्मसूक्तौ महाराष्ट्र कणगरें इति प्रसिद्धः कंदः कूर्मः । गोडारु इति कोन इति वा प्रसिद्धः कंदः सूकरः. २. पर्युदासः—विषेधप्रधानं प्रतिषेधाप्रधानता । पर्युदासः स विषेधो यत्रांतरपदेननञ् इतिरीत्या नञः संकल्पलक्षणायाः उत्तरपदेन सोत्तर-नामधात्वर्थान्यतरान्वितार्थकतया. ३. व्रतरूप म्हणजे 'उपवास करितो' इत्यादि नियम करून किंवा संकल्प करून उपवास करणें तो व्रतरूप उपवास. आणि असा नियम किंवा संकल्प केल्याबान्चून शास्त्रानें 'भोजन करूं नये' असें सांगितलें म्हणून केवळ भोजन न करणें (ज्यांत आपण कांहीं करितो, असें नाही) तो भोजननिषेधपालनरूप उपवास.

दश्यामुपोषणमिति नारदोक्तेऽनित्यता यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं संततिमात्मनः एकादश्यां न भुंजीत पक्ष-
योरुभयोरपीतिकौर्मादिषु फलश्रुतेऽश्वकाम्यता ।

तो ब्रतरूप उपवासही दोन प्रकारचा, नित्य व काम्य; कारण, “दोनही पक्षांतील एकादशीस नित्य उपोषण करावें” असें गरुडपुराणवचन आहे. आणि “प्रत्येक पक्षाच्या एकादशीस उपोषण करावें” असें नारदवचनही आहे, म्हणून हें नित्य आहे. विष्णूचें सायुज्य, संपत्ति, संतति हीं आपणांस प्राप्त व्हावीं अशी जर इच्छा असेल तर दोनही पक्षांच्या एकाद-
शीस भोजन करूं नये” अशी कूर्मादि पुराणांत फलश्रुति आहे, म्हणून हें व्रत काम्यही आहे.

उभयैकादशीप्रतंगृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यं गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव व्रतं नित्यं न कृष्णायाम् एकादश्यां न भुं-
जीत पक्षयोरुभयोरपि वनस्थयति धर्मोऽयं शुक्लमेव सदा गृहीति देवलोक्तेः न चानेन निषेधपालनमेव वनस्थय-
ति विषये उपसंह्रियते न तु व्रतमिति वाच्यं अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात् अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने
निषेधपालने गृहस्थाधिकांरोक्त्या विरोधः स्यात् निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षणादुपसंहारायो-
गात् अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनां सामान्यवाक्यानां वनस्थयति विषये-
उपसंहारात् गृहस्थास्य कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः कथं तर्हि संक्रांत्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे चंद्रसूर्यग्रहे-
चैव न कुर्वात्युत्तवान् गृहीति नारदादिवचनेषु कृष्णा निषेधः प्राप्त्यभावादिति चेत् श्रूयतां शयनीबोधिनीम-
ध्येया कृष्णैकादशीभवेत् सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचनेति पादो गृहस्थस्य आषाढीकार्तिकी मध्य-
स्थ्या कृष्णा बिहितासा पुत्रवतो निषिध्यते अन्य कृष्णायां तु न विधिः सर्वविधीनां वनस्थयति पूषसंहारात् न नि-
षेधः प्राप्त्यभावात् शयन्यादिवाक्यं तु पुत्रगृहिगोचरमित्यनंत भट्टहेमाद्रादिग्रंथाः दीपिकापि असि-
त्तातु शयनीबोधांतरस्थाप्यथो न स्यात्सात्मवतोपीति ।

शुक्ल व कृष्ण पक्षांतील दोन्ही एकादशींचें व्रत गृहस्थयतिरिक्तांसच नित्य आहे: गृहस्थाला तर शुक्ल एकादशीव्रत मात्र
नित्य, कृष्णैकादशीव्रत नित्य नाही: कारण, “दोनही पक्षांतल्या एकादशीस भोजन करूं नये, हा वानप्रस्थ व संन्यासी
यांचा धर्म आहे. गृहस्थाश्रमी यानें तर शुक्लैकादशीच करावी” असें देवलवचन आहे. आतां पूर्वी देवलदिवचनांनीं उक्त
जो निषेधपालनरूप उपवास तो सर्वांना प्राप्त झाला असतां, हें (वनस्थयति धर्मो) देवलवचन वानप्रस्थ व संन्यासी ह्यां-
विषयीं त्या उपवासाचा उपसंहार (संकोच) करणारें आहे: व्रताचा बोध करणारें नाही, असें म्हणूं नये; कारण, ह्या वचनां-
तील ‘न भुंजीत’ या ठिकाणीं पर्युदास (‘भोजनविरुद्ध संकल्प करावा’ असा अर्थ) करून हें वचन व्रतविधिरूप उपवास-
बोधक आहे: असें न मानिलें तर पूर्वोक्त जें अग्निपुराणस्थ वचन त्यांत निषेधपालनाविषयीं गृहस्थाला अधिकार सांगितला
आहे, त्याच्याशीं विरोध येईल! दुसरें असें कीं, निषेधपालनाचा उपसंहार (संकोच) करणारें हें वचन आहे, असेंही म्हणतां
येत नाही; कारण, निषेधानें भोजनाची निवृत्ति (अभाव) च केवळ होत असल्यामुळें विशेष काहीं कर्तव्य नाही म्हणून
त्याचा उपसंहार (संकोच) करितां येत नाही: उपसंहार हा धर्माचा होत असतो, भोजनाभाव हा धर्म नव्हे म्हणून उपसंहार
होत नाही. तस्मात् ह्या देवलवचनानें एकादशीव्रतविधायक सामान्य सर्व वाक्यांचा वानप्रस्थ व यति ह्यांविषयीं उपसंहार
(संकोच) होत असल्यामुळें गृहस्थाश्रम्याला कृष्णैकादशीस नित्यव्रताची प्राप्ति होत नाही. शंका-जर गृहस्थाश्रम्यास कृष्णै-
कादशीव्रत नित्य नाही तर “संक्रांति, कृष्णैकादशी, चंद्रसूर्यग्रहण, यांचे ठायीं पुत्रवान् गृहस्थाश्रम्यानें उपवास करूं नये”
असा नारदादिवचनांत कृष्णैकादशीव्रताचा निषेध कसा केला? कारण, जें प्राप्त नाही त्याचा निषेध असंभवनिय आहे असें
झाला तर एका! समाधान-“शयनीपासून बोधिनीपर्यंत ज्या कृष्णैकादशी त्यांचे ठायीं व गृहस्थाश्रम्यानें उपोषण करावें,
इतर कृष्णैकादशीस कदापि उपोषण करूं नये” ह्या पक्षपुराणवचनांत आषाढीकार्तिकी मध्यवर्ती ज्या कृष्णैकादशी त्यांचें
उपोषण गृहस्थाला जें प्राप्त झालें त्याचा पुत्रव्रत गृहस्थाला निषेध केला आहे. इतर कृष्णैकादशीस तर व्रताचा विधि नाही;
कारण, सर्व विधींचा वानप्रस्थ व यति यांविषयीं उपसंहार केला आहे, निषेधही नाही; कारण, प्राप्ति असल्यावांचून निषेध होत
नाहीं. शयनी इत्यादि जें वाक्य तें तर अपुत्र गृहस्थाश्रमीविषयक होय, असें अनंतभट्ट व हेमाद्रि, इत्यादि ग्रंथ सांगतात.
दीपिकाही-“शयनी व बोधिनी यांच्या मध्यवर्ती जी कृष्णैकादशी ती पुत्रवान् गृहस्थाश्रम्यानें करूं नये” असें म्हणते.

मदनरत्ने भविष्ये यथाशुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी मे सदा प्रिया शुक्ला गृहस्थैः कर्तव्या भोगसंतानवर्धिनी

मुमुक्षुभिस्तथाकृष्णानतेतेनोपदर्शितेति निषेधपालनकाम्यव्रतंच सर्वकृष्णायांसर्वगृहिणांभवत्येव पुत्रवांश्चस-
भार्यश्चंधुयुक्तस्तथैवच उभयोःपक्षयोःकाम्यव्रतंकुर्यात्तुवैष्णवमिति नारदोक्तेः एतच्चसर्वकालादर्शो-
उक्तं विधवायावनस्थस्ययतेश्चैकादशीद्वये उपवासोगृहस्थस्यशुक्रायामेवपुत्रिणः भुजेनिषेधःकृष्णायांसि-
द्धिस्तस्यततोव्रतेति प्राच्यास्तुवैष्णवगृहस्थानांकृष्णापिनित्या नित्यंभक्तिसमायुक्तैर्नरविष्णुपरायणैः पक्षे-
पक्षेचकर्तव्यमेकादश्यामुपोषणं सपुत्रश्चसभार्यश्चसुजनोभक्तिसंयुतः एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपीति-
नारदोक्तेरित्याहुः पुत्रशब्दश्चापत्यमात्रवचनः नारायणवृत्तौ पुमांसएवमेपुत्राजायेरभित्यत्रापत्य-
मात्रवाचित्वोक्तेः जनयद्बहुपुत्राणीतिर्लिङ्गात् पौत्रीमातामहस्तेनेतिमनूक्तेः पुत्र्याअपत्यमित्यर्थेतुस्त्री-
भ्योढगितिपौत्रेयइत्यापत्तेः पुमान्पुत्रोजायतेइतिच ।

मदनरत्नांत—भविष्यांत—“जशी शुक्रद्वादशी मला प्रिय आहे. तशी कृष्णद्वादशी सदा मला प्रिय आहे, त्यामध्ये
भोग, संतति यांची वृद्धि करणारी शुक्रद्वादशी गृहस्थाश्रमी यांनी करावी. मुमुक्षु जे त्यांनी कृष्णा करावी.” निषेधपालन
आणि काम्यव्रत हे सर्व कृष्णैकादशीस सर्व गृहस्थाश्रम्यांना होतच आहे; कारण, “पुत्रवान्, सपत्नीक, सभ्रातृक, यांनी
दोनही पक्षांचे ठायीं विष्णुदेवताक काम्यव्रत करावें” असें नारदवचन आहे. हा सर्व प्रकार कालादर्शप्रभांत सांगितला
आहे. तो असाः—“विधवा, वानप्रस्थ, यति यांना दोनही एकादशींस उपवास आहे. पुत्रवान् गृहस्थाश्रम्याला शुक्लैकादशी-
सच उपवास आहे, कृष्णैकादशीस भोजननिषेध आहे, यावरून त्याला व्रतसिद्धि होणे.” प्राच्य (पूर्वदेशाकडील) प्रथकार
तर—वैष्णव गृहस्थाश्रम्याला कृष्णैकादशीही नित्य आहे; कारण, “विष्णुपरायण (वैष्णव) अशा भक्तिमान् पुरुषांनीं दोनही
पक्षांचे ठायीं एकादशीचें उपोषण करावें; सपुत्र, सपत्नीक, सजन भक्तियुक्त अशा पुरुषांनीं दोनही पक्षांचे ठायीं
एकादशीचें उपोषण करावें” असें नारदवचन आहे, असें म्हणतात. तरील वचनांत ‘पुत्र’ शब्द आहे तो सामान्य
अपत्याचा (कन्यापुत्रांचा) वाचक आहे; कारण, “अंगुष्ठमेव गृहीयाद्यदि कामयीत पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्” ह्या
गृह्यसूत्रावरील नारायणवृत्तींत—विवाहांत पाणिग्रहणसमयी जर बराच ‘पुरुषरूपच पुत्र व्हावे’ अशी इच्छा असेल तर
त्यानें स्त्रियेचा अंगुष्ठ ग्रहण करावा असें सांगितलें आहे. त्या ठिकाणीं पुत्रशब्द सामान्य अपत्याचा (कन्यापुत्रांचा) वाचक आहे.
म्हणूनच त्याला ‘पुमांसः’ हें विशेषण साथेंच आहे. आणि ‘जनयद्बहुपुत्राणि’ ह्या श्रुतींत पुत्रशब्द अपत्यवाचक आहे म्हणून
नपुंसक आहे. “पौत्री मातामहस्तेन दद्याद्विडं हरेद्धनम्” ह्या मनूच्या वचनाचा अर्थ—त्या कन्येच्या पुत्रांनं मातामह
‘पौत्री’ होतो, येथें पुत्राचें (कन्येचें) अपत्य तो पौत्र, पौत्र आहे तो पौत्री असा अर्थ केला पाहिजे. पुत्रीचें अपत्य असा
अर्थ केला तर ‘स्त्रीभ्यो ढक्’ या पाणिनीच्या सूत्रांनं अपत्यार्थी स्त्रीप्रत्ययांत शब्दाहून ढक् प्रत्यय होऊन ‘पौत्रेय’ असें रूप
होऊन, तो पौत्रेय आहे ज्यास तो मातामह ‘पौत्रेयी’ असें होईल. म्हणून येथें पुत्रशब्द कन्यावाचक आहे. दुसऱ्या ठिका-
णींही ‘पुरुष पुत्र होतो’ असें आहे.

उपवासनिषेधेविशेषोवायवीयेउक्तः उपवासनिषेधेतुभक्ष्यांकिंचित्प्रकल्पयेत् नदुष्यत्युपवासे-
नउपवासफलंभेत् भक्ष्यंचतत्रैवोक्तं नक्तंहविष्यान्नमनोदंनंवाफलंतिताःक्षीरमथांबुचाज्यं यत्पंच
गव्यंयदिवापिवायुःप्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरंचेत्यलं ।

उपवासाच्या निषेधाविषयी विशेष सांगतो—वायुपुराणांत—“उपवासाचा निषेध (संकति, कृष्ण
एकादशी इत्यादिकांस केलेला) असतांही काहीं अल्प भक्ष्य योजावें, तसें केलें असतां उपवास केल्यामुळे दोष न लागतां
उपवासाचें फल मिळतें.” भक्ष्याचे प्रकार—त्याच ठिकाणीं सांगतो—“नक्त, हविष्यान्न, अनोदन, भातावाचून
इतर फल, तिल, दूध, उदक, घृत, पंचगव्य, वायु हीं एकाहून दुसरें प्रशस्त याप्रमाणें उत्तरोत्तर प्रशस्त होत.” आतां
हा विचार पुरे.

तत्रदशमीवेधोद्धेधा अरुणोदयवेधः सूर्योदयवेधश्चेति आद्योगारुडे दशमीशेषसंयुक्तोयदि-
स्यादरुणोदयः नैवोपोष्यवैष्णवेनद्विनैकादशीव्रतमिति अरुणोदयस्वरूपंचमाधवीयेस्कांदे उदयात्प्रा-
क्चतस्त्रस्तुषटिकाअरुणोदयइति यद्यपि उदयात्प्राग्यदाविप्रमुहूर्तद्वयसंयुता संपूर्णैकादशीनामतत्रैवोपवसे-
द्दहीतिगारुडसौरधर्मादिवचनं यच्च भविष्ये आदित्योदयवेलायाःप्राभ्युहूर्तद्वयान्विता एकादशीतु-
संपूर्णाविद्वान्यापारिकीर्तितेति तदप्युपसंहारन्यायेनदंडचतुष्टयपरमेव हेमाद्रावप्येवं यत्तुब्रह्मवैवर्ते
चतस्रोषटिकाःप्रातररुणोदयनिश्चयः चतुष्टयविभागोत्रवेधादीनांफिलोदितः अरुणोदयवेधःस्यात्सार्धद्वय-

टिकात्रयं अतिवेधोद्विघटिकः प्रभासंदर्शनाद्रवेः महावेधोपितत्रैवदृश्यते कौनहृश्यते तुरीयस्तत्रविहितोयोगः—
सूर्योदये बुधैरिति तदप्यवयवद्वारा रूणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवीये मदनरत्ने च ।

आतां वेधाचा निर्णय सांगतो.

दशमीवेध दोन प्रकारचा—अरुणोदयकालीं दशमीवेध, आणि सूर्योदयकालीं दशमीवेध. त्यांमध्ये पहिला म्हणजे अरुणोदयवेध सांगतो—**गरुडपुराणांत**—“सूर्योदयाचे पूर्वी अरुणोदयकालीं दशमी शेष असेल तर त्या एकादशी तिथीस वैष्णवानें उपोषण करूं नये. कारण, तें एकादशीव्रत नव्हे” अरुणोदयाचें स्वरूप सांगतो—**माधवीयांनं स्कांदांत**—“सूर्योदयाचे पूर्वी चार घटिका अरुणोदय म्हटला आहे.” आतां जें “सूर्योदयाचे पूर्वी जेव्हां दोन मुहूर्त एकादशी असेल तेव्हां ती संपूर्ण एकादशी होय, त्याच दिवशीं गृहस्थाश्रम्यांनं उपोषण करावें” असें **गरुडपुराणांत सौरधर्मादिवचन** आहे तें; आणि जें **भविष्यपुराणांत**—“सूर्योदयाचे पूर्वी दोन मुहूर्त जी एकादशी, ती संपूर्ण एकादशी, इतर जी ती विद्धा म्हटली आहे” अशीं वचनं तीं उपसंहारन्यायेंकरून पूर्वोक्ताशीं एकवाक्यतेनें घटिकाचतुष्टयबोधकच आहेत. **हेमाद्रीत**ही असेंच आहे. आतां जें **ब्रह्मवैवर्तांत**—“प्रातःकालीं चार घटिका अरुणोदय आहे; त्यांत वेधादिकांचे चार विभाग केले आहेत, ते असे;—साडेतीन घटिका **अरुणोदयवेधः** सूर्याची प्रभा दिसूं लागल्यापासून दोन घटिका **अतिवेधः** सूर्य दिसतो न दिसतो त्या वेळीं तो **महावेधः**; स्पष्ट सूर्योदय झाला असतां जो योग तो चतुर्थ उदयवेध” असें **ब्रह्मवैवर्तवचनः**; तेंही अवयवद्वारा म्हणजे अवयवाला वेध सांगून अरुणोदयवेधालाच महत्त्वबोधक आहे. असें **माधवीयांत** व **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे.

अंत्यस्तूदयवेधः तथान्येपिवेधाः **हेमाद्रौ माधवीये च गरुडे** उदयात्प्राक्त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशीयदा संदिग्धैकादशीनामवर्ज्येयं धर्मकांक्षिभिः उदयात्प्राङ्मुहूर्तेन व्यापिन्येकादशीयदा संयुक्तैकादशीनामवर्ज्येयं धर्मवृद्धये **हेमाद्रौ** रात्रेरत्योष्टमो भागोऽप्यरुणोदय उक्तः निशः प्रांते तु यामार्धे देववादित्रवादनं सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यत इति स्मृतं; अत्रैके एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्तद्वयेन कोडीकारा निशः प्रांते इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदंडादयो नेके रूणोदयाः **तदाह हेमाद्रिः** सार्धघटिकात्रयोत्तरप्राविशति घटीमित्रात्रिविषया महत्तरास्तुरात्रीरपेक्ष्य च तस्यो घटिका इत्युक्तमितीत्याहुः **तन्न** अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः नच मुहूर्तद्वयमर्थः दंडद्वयैकमुहूर्तादिवेधानां तथाप्युपपत्तेः नहिते पांयामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति मुहूर्तद्वयस्य यामार्धस्य च तस्यो घटिका इत्यनेनोपसंहाराच्च नतदर्थः नच सार्धतुघटिकात्रयमित्यनेनापि तदापत्तिः शंक्या तेन चतुर्दंडवेधस्यैवोक्तेः चतुर्दंडेऽर्धघटीदशमीसत्त्वे विवेधस्तदर्थः द्विघटिकादौ तदयोगाच्च ।

दुसरा उदयवेध. तसेच आणखीहि दुसरे वेध सांगतो—**हेमाद्रींत व माधवीयांत-गरुडपुराणांत**—“ज्या कालीं उदयाच्या पूर्वी तीन घटिका व्यापिनी एकादशी असेल ती संदिग्धनामक एकादशी होय, ती धर्मेच्छु पुरुषांनीं वर्ज्य करावी; जेव्हां उदयाच्या पूर्वी एक मुहूर्त व्यापिनी एकादशी असेल ती संयुक्तनामक एकादशी होय, ती धर्मवृद्धीसाठीं वर्ज्य करावी.” **हेमाद्रींत**—रात्रीचा शेवटचा आठवा भाग तोही अरुणोदय सांगितला आहे; कारण, “रात्रीच्या शेवटच्या अर्ध्या प्रहरी देववायें वाचूं लागलीं म्हणजे तोही अरुणोदयकाल म्हटला आहे.” असें स्मृतिवचन आहे. याविषयीं **काणी ग्रंथकार** म्हणतात—वर सांगितलेले हे जे सर्वे पक्ष त्या सर्वांचा मुहूर्तद्वयांत अंतर्भाव असल्यामुळे आणि “रात्रीच्या शेवटचा अर्धा प्रहर अरुणोदय होय,” असें वचन आहे म्हणूनही रात्रिमानवशें करून साडेतीन घटिका इत्यादिक अनेक अरुणोदयकाल होत, तेंच **हेमाद्रि** सांगतो—साडेतीन घटिकांस अरुणोदय, असें जें वचन तें अष्टावीस घटिका रात्रिमान असतां तद्विषयक आहे; चार घटिका अरुणोदयकाल जो सांगितला तो रात्रिमान मोठें असतां तद्विषयक होय, असें म्हणतात. तें त्यांचें म्हणणें बरोबर नाहीं; कारण, ‘अरुणोदय’ ह्या शब्दाचे अनेक अर्थ होऊं लागतील. आतां असें म्हणतों कीं, अरुणोदय म्हणजे दोन मुहूर्त असा अर्थ समजावा. बत्तीस घटिकांच्या रात्री असल्या तर दोन घटिकांचा मुहूर्त होतो, अष्टावीस घटिकांच्या रात्री असल्या तर पावणेदोन घटिकांचा मुहूर्त, मिळून अरुणोदयशब्दाचा अर्थ दोन मुहूर्तच आहे, असें मानलें म्हणजे अरुणोदयशब्दाचे अनेक अर्थ न होतां सर्वे वाक्यांची संगति होते; असें म्हणतां येत नाहीं; कारण, दोन घटिकांचा वेध, एक मुहूर्ताचा वेध असे जे वेध सांगितले त्यांची उपपत्ति होत नाहीं; कारण, त्या दोन घटिकादि वेधांला यामार्धत्व, किंवा अरुणोदयत्व आहे काय? नाहीं. म्हणून अरुणोदय शब्दाचा दोन मुहूर्त हा अर्थ नाहीं. आणि दोन मुहूर्त, यामार्ध, ह्या वाक्यांचा, चार घटिकावेध ह्या वाक्यानें उपसंहार (तात्पर्यार्थप्रतिपादन) केला आहे, म्हणूनही अरुणोदयशब्दाचा दोन मुहूर्त हा अर्थ होत नाहीं. तर आतां एका वचनानें अरुणोदयवेध साडेतीन घटिका सांगितला आहे;

त्यामुळे अरुणोदयशब्दाचा साडेतीन घटिका अर्थ, व पूर्वी सांगितलेला चार घटिका, मिळून अनेक अर्थांची आपत्ति येईल ! अशी शंका करू नये; कारण, 'साडेतीन घटिका' या वाक्याने चार घटिका वेधच सांगितला आहे, तो असा— चार घटिका अरुणोदयामध्ये अर्ध घटिका दशमी असेल तर वेध होतो, असा त्या वाक्याचा अर्थ आहे. दोन घटिकांचे वगैरे जे वेध सांगितले त्या ठिकाणी अरुणोदय शब्दाची प्रवृत्तीच नाही.

यत्तुमतम् कियतारुणोदयवेधइत्यपेक्षायांसार्धघटिकात्रयनियमादरुणोदयेर्धघटिकातो न्यूनदशमीस-
त्वेनदोषइति **तत्तुच्छम्** द्विदंडादावपितदापत्तेः दशमीशेषसंयुक्तोदयस्यादरुणोदयः नैवोपोष्यवैष्णवेन-
तद्धिनैकादशीव्रतमिति **गारुडेभविष्ये**चयोगमात्रनिषेधात् **नारदीयेपि** लववेधेपिविप्रं दशम्यैकाद-
शीलजेत् सुरायाविंदुनास्पृष्टंगंगाम्भवनिर्मलं **स्कांदेपि** कलाकाष्टादिगल्येवदृश्यतेदशमीविभो एकादश्यां-
नकर्तव्यं व्रतं तं राजन्कदाचनेति **माधवोप्याह** सोऽयंकलादिवेधोऽरुणोदयवेधसूर्योदयवेधेचसमानइति **निग-
मेपि** सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्यदूषकइति अतएव **माधवेन** अरुणोदयाद्यदंडेऽल्पदशमीस्पर्शसंपृक्ता
कृत्स्नघटीयोगे संदिग्धा मुहूर्तव्याप्तौ संयुक्ता उदये संकीर्णेत्युक्त्वा अरुणोदयवेलायां दशमीयदिसंगता संपृ-
क्तैकादशीतांतुमोहिन्येदत्तवान्प्रभुरिति **गोभिलाद्युक्तेः** पूर्वांक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चा-
रुणोदयवेधो निषिद्धः ।

आतां जें कोणाचें मत—किती कालांनं अरुणोदय वेध होतो, अशी आकांक्षा उत्पन्न असतां 'साडेतीन घटिकांस' असा नियम केल्यामुळे, अरुणोदयांत अर्ध घटिकेहून न्यून दशमी असेल तर दोष नाही, असें तें मत तुच्छ आहे; कारण, दोन घटिकांचे वगैरे जे वेध त्या ठिकाणींही अमान (अरुणोदयांत दोन घटिकांहून न्यून दशमी असेल तर दोष नाही असा) अर्थ होऊं लागेल ! म्हणून तसा (अर्धघटिकेहून न्यून दशमी असेल तर दोष नाही असा) अर्थ नाही; कारण, "जर अरुणोदयकालीं दशमी शेष असेल तर त्या दिवशीं वैष्णवांनं उपवास करूं नये; कारण, तें एकादशीव्रत नाही" असा **गारुडांत** व **भविष्यांत** सर्वे यांगाचा निषेध केला आहे. **नारदीयांतही** "जरी गंगोदक निर्मल आहे तथापि जर सुराविंदूनें संस्पृष्ट असेल तर तें जमूं त्याज्य तद्वत् दशमीनें एक लवमात्र वेध केला असतांही ती एकादशी टाकावी." **स्कंदपुराणांतही** "कला, काष्टा इत्यादिक अल्प कालांनं जरी दशमी असेल तथापि अशा दशमीयुक्त एकादशीस कदापि व्रत करूं नये." **माधवही** सांगतो—तो हा कला—काष्टादिपरिमित वेध अरुणोदयवेध व सूर्योदयवेध यांचे ठायीं तुल्य आहे. **निगमांतही**—"सर्वे प्रकारचा हा वेध उपवासाला दूषक होतो" म्हणूनच **माधवानें** अरुणोदयाच्या पहिल्या घटिकेस अल्प दशमीचा स्पर्श असेल तर ती संपृक्ता एकादशी, एक घटिका यांग असेल तर ती संदिग्धा एकादशी, दोन घटिका व्याप्ति असेल तर ती संयुक्ता एकादशी, उदयकालीं व्याप्ति असेल तर ती संकीर्णा एकादशी, असें सांगून "अरुणोदयकालीं जर दशमी प्राप्त असेल तर ती संपृक्ता एकादशी होते, ती एकादशी प्रभूनें मोहिनीला दिली आहे" ह्या **गोभिलादिकांचे** वचनावरून व पूर्वीक "दशमीशेषसंयुक्तो" ह्या **गारुडादिक** वचनावरूनही सामान्यकरून व विशेषकरूनही अरुणोदयवेध निषिद्ध केला आहे.

**यत्त्वष्टमभागोरुणोदयइति हेमाद्रिणोक्तं यच्च महत्तरारात्रीरिति तत्परमतं स्वयमेव दूषितं अंत्येषुक्तं वेध-
तारतम्यंच दोषतारतम्यादुपपद्यतइति** दोषतारतम्यंच प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते **तच्चोक्तं हेमाद्रीस्मृ-
त्यंतरे** अज्ञानाद्यदिवा मोहात् कुर्वन्नेकादशीतरः दशमीशेषसंयुक्ता प्रायश्चित्तमिदं चरेत् कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वांगां-
च दद्यात्सवत्सकाम् सुवर्णस्यार्धकंदेयंतिलद्रोणसमन्वितम् विधानांतरं तत्रैव ब्राह्मणाभोजयेत्त्रिशत्पांचदद्या-
त्सवत्सकां धरणस्यार्धकंदेयंतिलद्रोणमथापि वेति अत्र वेधतारतम्याद्व्यवस्थेति हेमाद्रिः निशः प्रांतइत्यपि दो-
षाधिक्यार्थमेव तस्माच्चतुर्घटिकात्मक एवारुणोदयइतिसिद्धम् तेन पट्पांचाशदंडानंतरं दशमीप्रवेशेरुणोदयवे-
ध उक्तो भवति ।

आतां जें रात्रीचा शेवटचा आठवा भाग तो अरुणोदय, असें हेमाद्रीनें सांगितलें तें, आणि जें रात्रिमान मोठें असतां चार घटिका अरुणोदयकाल तें दुसऱ्यांचें मत आपणच (हेमाद्रीनेच) दूषित केलें व शेवटींही त्यानें सांगितलें कीं, वेधतारतम्य दोषतारतम्यें करून उपपन्न होतें; तें दोषतारतम्य प्रायश्चित्ततारतम्यें करून समजलें जातें, तें सांगतो—
हेमाद्रीत—स्मृत्यंतरांत—"जर कोणी मनुष्य अज्ञानें करून किंवा मोहानें दशमीशेषयुक्त एकादशी करील तर त्यानें हें

(पुढें सांगितले) प्रायश्चित्त करावें.” तें असें—“पादकृच्छ्र करून सवत्स गोप्रदान करावें. द्रोणपरिमित तिलांसहित अर्धं सुवर्ण दान करावें.” दुसरें विधान-त्या ठिकाणींच सांगतो-“तीस ब्राह्मणांस भोजन द्यावें, सवत्स गाई द्यावी, अथवा क्षोणपरिमित तिल किंवा अर्ध धरणपरिमित सुवर्ण यांचें दान करावें.” यांविषयीं वेधतारतम्येंकरून व्यवस्था करावी असें हेमाद्रि म्हणतो. ‘निशः प्रांते’ असें जें पूर्वीक स्मृतिवचन तेंही अधिक दोषप्रदर्शनार्थक आहे, तस्मात् चार घटिकापरिमितच अरुणोदय असें सिद्ध झालें. म्हणून छप्पन्न घटिकांनंतर दशमीचा प्रवेश असेल तर तो अरुणोदयवेध होतो.

अंत्योपितत्रैवकण्वेनोक्तः उदयोपरिविद्धातुदशम्यैकादशीयदि दानवेभ्यःप्रीणनार्थदत्तवान्पाकशासनइति स्मृत्यंतरेपि दशम्याःप्रांतमादाययदोदेतिदिवाकरः तेनस्पृष्टंहरिदिनंदत्तजंभामसुरायतदिति ।

अंत्य म्हणजे सूर्योदयवेधही त्याच ठिकाणीं कण्वानें सांगितला आहे. तो असाः—“जर उदयानंतर दशमीनें विद्ध एकादशी होईल तर ती एकादशी इंद्र दानवांना संतोषार्थ देता झाला.” स्मृत्यंतरानही-“ज्या कालीं दशमीच्या शेवटच्या पलादि भागांत सूर्य उदय पावतो त्या उदयानें स्पर्श केलेली एकादशी जंभामसुराला दिली आहे.”

तत्रारुणोदयवेधोवैष्णवविषयः तद्वाक्येषुवैष्णवग्रहणात् तत्स्वरूपंतुमाधवीयेस्कांदे परमापद-मापन्नोहर्षवासमुपस्थिते नैकादशीत्यजेद्यस्तुयस्यदीक्षास्तिवैष्णवी विष्णवर्पिताखिलाचारःसहिवैष्णवउच्यते-इति यद्यपिपित्रादेरागमदीक्षायांतन्मात्रस्यवैष्णवत्वंनतुपुत्रादेस्तथापिस्वपारंपर्यप्रसिद्धमेववैष्णवत्वंस्मार्तत्वंच-मन्यंतंबुद्धाः तत्त्वसागरभविष्ये यथाशुक्लातथाकृष्णायथाकृष्णातथेतरा तुल्येतेमन्यतेयस्तुसर्ववैष्णवउच्यते केचित्तुदशम्यांनवमीवेधमपित्यजंति तत्रमूलंमृग्यम् ।

त्या वेधांमध्ये अरुणोदयवेध वैष्णवांविषयीं आहेः कारण, अरुणोदयवेधप्रतिपादकवाक्यांत ‘वैष्णव’ असें पद पठित आहे. वैष्णवांचें स्वरूप-माधवीयांत-स्कांदांत-“मोठी आपत्ति प्राप्त झाली, किंवा मोठा हर्ष झाला तरी जो एकादशी टाकीत नाही, ज्याला वैष्णवी दीक्षा (उपदेश) आहे, ज्यानें आपला सर्व आचार (कर्म) विष्णूला अर्पण केलें आहे, तो वैष्णव म्हटला आहे.” पिता, पितामह इत्यादिकांनीं आगमदीक्षा ग्रहण केली असेल तर ते मात्र वैष्णव होतातः त्यांचे पुत्रादिक वैष्णव होत नाहीत, असें जरी आहे तथापि आपल्या परंपरेनें प्रसिद्ध जें वैष्णवल व स्मार्तल तें ब्रह्म मानितात. तत्त्वसागरांत-भविष्यांत-“जशी शुक्लैकादशी तशीच कृष्णैकादशी. जशी कृष्णैकादशी, तशीच शुक्लैकादशी, याप्रमाणें उभय एकादशी जो समान मानितो तो वैष्णव होय.” केचित् ग्रंथकार तर, दशमीचे ठायीं नवमीवेधही वर्ज्य करितात, परंतु त्याविषयीं मूळ (प्रमाण) नाही.

उदयवेधस्तुपरिशेषात्स्मार्तगोचरः तदाहमाधवः अरुणोदयवेधोत्रवेधःसूर्योदयेतथा उक्तौद्वौदशमी-वेधौवैष्णवस्मार्तयोःक्रमात् ।

जो उदयकालिक वेध तो स्मार्तविषयक होय, तेंच माधव सांगतो-“ह्या एकादशीत्रताविषयीं अरुणोदयवेध आणि सूर्योदयवेध असे दोन दशमीवेध, वैष्णव व स्मार्त यांना कर्मेकरून सांगितले आहेत.” म्हणजे अरुणोदयवेध वैष्णवांनीं व सूर्योदयवेध स्मार्तांनीं ध्यावा.

हेमाद्रिस्तुकेषांचिदधरात्रेपिदशमीवेधमाह अर्धरात्रेकेषांचिदशम्यावेधउच्यते कपालवेधइत्याहुराचार्यायेहरिप्रियाः नतन्मममतंतयस्मात्त्रियामारात्रिरिध्यतइतिब्रह्मवैवर्तात् अस्यार्थः अनद्यतनेलङ् इत्यत्रातीतायारात्रेःपश्चिमयामद्वयमागामिन्यारात्रेःपूर्वयामद्वयंदिवसश्चसकालएषोद्यतनःसकलइत्युक्तंमहाभाष्ये सएषवर्तमानःकालएकादश्यहोरात्रउपोष्यः तन्मध्येदशमीप्रवेशेविद्धासात्याज्या अतएवहेमाद्रौ दशम्याःसंगदोषेणअर्धरात्रात्परेणतु वर्जयेच्चतुरोयामान्संकल्पार्चनयोःसदेतिदोषउक्तः चतुरोयामान्दिवसस्येत्यर्थः स्वमतेतु रात्रेऽभियामत्वात्प्रहरत्रयंपूर्वशेषः तेनचतुर्थप्रहरएववेधोयुक्तः सोप्यरुणोदयएव सूर्योदयविनानैवस्नानदानादिकःक्रमइति मार्कंडेयपुराणात् प्रत्युषोऽहर्मुखंकल्यइतिकोशादरुणोदयमारभ्य सूर्याशुप्रवृत्तेस्तत्रैवनिषेधः तेनमतभेदाव्यवस्थेतिकेचित् कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैवेयंस्तुतिरिति-

१ पादकृच्छ्रादिकांचीं लक्षणं ग्रंथाच्या शेवटीं देऊं. २ द्रोण म्हणजे चार प्रस्थ (शाकीय चार शेर). ३ सुवर्ण म्हणजे ८० गुंजा सोन्यास नांव आहे. अर्धं सुवर्ण म्हणजे ४० गुंजा सोनें समजावें. ४ परिशेषादिति । अतिवेधादयः सर्वे ये वेधास्तिथिपु र्युताः । सर्वेप्यवेधा विज्ञेया वेधः सूर्योदये स्मृत इत्युक्तः वैष्णवाप्रति अतिवेधादीनां वेधत्वनिराकरणवाधादित्यर्थः.

माधवः यस्तु दिक्पंचदशभिस्तथेतिवेषः स उपवासातिरिक्तविषय इति **माधवः** सर्वप्रकारवेषोऽयमुपवासस्य रूपकः सार्धसप्तमुहूर्तस्तु योगोऽयं बाधते ब्रतमिति निगमादित्यलम् ।

हेमाद्रि तर किलेकांस अर्धरात्रीही दशमीवेष सांगतो. तो असा—“किलेकांस अर्धरात्री दशमीचा वेध उक्त आहे, तोच कपालवेध होय असें वैष्णव आचार्य म्हणतात. परंतु माझे मत तसें नाहीं; कारण, तीन प्रहरांची रात्र सांगितली आहे” असें ब्रह्मचैवर्तवचन आहे. या वचनाचा अर्थ असा—“अनद्यतने लङ्” या सूत्राचे ठिकाणीं, अतीत (गत) रात्रीचे पश्चिम (पुढचे) दोन प्रहर, आणि येणाऱ्या रात्रीचे पूर्वे दोन प्रहर व मध्यवर्ती दिवस मिळून जो काल तो सर्व अनद्यतनकाल होय, असें व्याकरणमहाभाष्यांत अनद्यतनकालाचें विवरण केलें आहे, तो हा वर्तमानकाल, एकादशीचा अहोरात्र उपोष्य (उपोषणास विहित) होय; त्या कालांत दशमीचा प्रवेश अमतां ती विद्वैकादशी टाकावी, असें आहे म्हणूनच **हेमाद्रीत**—“अर्ध रात्रीच्या पुढें दशमीचा संगदोष असेल तर तो एकादशीचा दिवस (दिवसाचे चार प्रहर) संकल्प व पूजा यांविषयीं सर्वदा वर्ज्य करावा” असा दोष सांगितला आहे. आपल्या मते तर—रात्रि ही तीन प्रहरात्मक आहे, म्हणून तीन प्रहर हे पूर्वे दिवसाचा शेष आहे, यावरून चवथ्या प्रहरांच वेध योग्य, व तोही अरुणोदयकालीच येतो, कारण, “सूर्योदयावांचून ज्ञानदानादिक क्रिया होत नाहींत” असें **मार्कंडेयपुराण** वचन आहे. प्रत्युष, अहर्मुख ही नांवें कोशकारांनीं त्यालाच सांगितली आहेत, म्हणून अरुणोदयापासून सूर्यकिरणांनी प्रवृत्ति होते, याकरितां अरुणोदयकालीच दशमीचा निषेध आहे. यावरून मतभेद करून वेधाची व्यवस्था जाणावी, असें **केचित्** ग्रंथकार म्हणतात. कैमुतिकन्यायानें (दोन प्रहरांत दशमी अगली तरी वेध आहे, मग अरुणोदयकाली दशमी असेल तर वेध काय सांगावा ! अशा न्यायानें) अरुणोदयवेधाचीच स्तुति आहे असें तर **माधव** म्हणतो. आतां जो “दशमी पंधरा घटिकांनीं एकादशीला विद्ध करिते” असा वेध सांगितला तो उपवागव्यतिरिक्तविषयक होय असें **माधव** म्हणतो; कारण, “हा सर्व प्रकारचा वेध उपवासाचा रूपक होतो, पंधरा घटिकापरिमित दशमीयोग हा त्रास वाध करितो” असें **निगमवाक्य** आहे. आतां हा विचार पुरे.

अत्रमाधवमने वैष्णवैरुणोदयविद्धाया ज्या यदा त्वेकादश्येव शुद्धासती वर्धते द्वादशीवा उभयं वा तदा परोपोष्या एकादशीद्वादशीवाधिकाचेत्यज्यतां दिनम् पूर्वग्राह्यं तूत्तरस्यादिति वैष्णवनिर्णयः इति माधवोक्तेः ।

या विद्ध एकादशीमध्ये माधवाचे मनीं वैष्णवांनीं अरुणोदयविद्धा टाकावी. ज्या वेळीं एकादशीच शुद्धा असून वृद्धिगत होते (दुसऱ्या दिवशीं अमते), किंवा द्वादशी वृद्धिगत होणे, अथवा एकादशी व द्वादशी दोन्ही तिथि वृद्धिगत असतात त्या वेळीं दुसऱ्या दिवसाची ती वैष्णवांनीं उपोषणाम ध्यावी; कारण, “एकादशी किंवा द्वादशी वृद्धिगमिनी (दुसऱ्या दिवशीं उर्वरित) असेल तर वैष्णवांनीं पूर्वदिवसाची टाकून उत्तरदिवसाची ध्यावी, असा वैष्णवांचा निर्णय आहे” असें **माधवानें** सांगितलें आहे.

स्मार्तैस्तु सूर्योदयविद्धाया ज्या यदा त्वेकादशीशुद्धासती वर्धते द्वादशीच समान्यूनवातदा गृहस्थैः पूर्वाय-तिभिर्मुत्तराकार्या प्रथमेहनि संपूर्णा व्याप्याहोरात्र संयुता द्वादश्यांच तथा तातदृश्यते पुनरेव च पूर्वाकार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तराविभोऽतिस्कांदोक्तेः वर्धमानोऽप्येवमेवाह ।

स्मार्तांनीं तर सूर्योदयविद्धा टाकावी. ज्या वेळीं एकादशी शुद्धा असून वाढते (दुसऱ्या दिवशीं असते), आणि द्वादशी तर समा किंवा न्यूना अमते, त्या वेळीं गृहस्थाश्रमी यांनीं पूर्वा करावी. यति (संन्यासी) विधवा यांनीं उत्तरा करावी; कारण, “पूर्वदिवशीं अहोरात्र व्याप्ति संपूर्ण असून दुसऱ्या दिवशीं द्वादशीचे ठायीं एकादशी असेल तर गृहस्थांनीं पूर्वा आणि यतींनीं उत्तरा करावी.” असें **स्कंदपुराण** वचन आहे. **वर्धमान** ही असेंच सांगतो.

उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धावासर्वेपां परैव संपूर्णैकादशीयत्र प्रभाते पुनरेव सा सर्वैरेवोत्तराकार्या परतो द्वादशीय-दीति नारदोक्तेः द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैव नैवेदेकादशीविष्णौ द्वादशीपरतः स्थिता उपोष्यैकादशीत-त्रयदीच्छेत्परमंपदमिति नारदोक्तेः द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धा विद्धेऽप्यवस्थिते शुद्धापूर्वोत्तराविद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृश इति माधवोक्तेश्च मदनरत्नेऽप्येवम् यत्तु विद्धाप्यविद्धाविज्ञेया परतो द्वादशीनचेन् अविद्धापि च विद्धास्यात्परतो द्वादशीयदीति हेमाद्रौ पाद्मवचनंतदेकादश्यावृद्धौ ज्ञेयम् तदुक्तं माधवेन एकादशीद्वाद-शीचेत्युभयवर्धतेयदा तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनमिति ।

१ पंचदशनाडीवेषस्तु स्कंदपुराणे दक्षितः ॥ नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पंचदशभिस्तथा ॥ भूतो द्वादशनाडीभिर्द्वयस्तु पुरातिथिमिति ॥

२ पतञ्जलने परेषु द्वादश्याभावविषयं ॥ ३ द्वादश्याधिक्ये पूर्वेषु रूपवासमाह नारदः ॥

६ निर्णो.

एकादशी व द्वादशी ह्या दोघांची वृद्धि असेल तर शुद्धा असो किंवा विद्धा असो, सर्वांनी पराच करावी; कारण, “पूर्व-दिवशीं संपूर्ण एकादशी असून दुसऱ्या दिवशीं पुनः वृद्धिगामिनी एकादशी व तिसऱ्या दिवशीं द्वादशी जर असेल तर सर्वांनी उत्तराच करावी” असें नारदवचन आहे. द्वादशीची मात्र वृद्धि असेल तर शुद्धा असतां पूर्वाच करावी; कारण, “द्वादशीचे दिवशीं एकादशी अल्प शुद्धा नाही, आणि द्वादशी त्या दिवशीं असून पुढच्या दिवशीं आहे त्या वेळीं, एकादशीलाच उपोषण करावें” असें नारदवचन आहे; आणि “द्वादशीची मात्र वृद्धि असेल तर शुद्धा आणि विद्धा व्यवस्थित जाणाव्या, म्हणजे शुद्धा असतां पूर्वा, आणि विद्धा असतां उत्तरा करावी, याप्रमाणें स्मार्तनिर्णय समजावा” अशी माधवाचीही उक्ति आहे. मदनरत्नांतही असेंच आहे. आतां जें “दुसऱ्या दिवशीं द्वादशी नसेल तर, ती विद्धा असतांही अविद्धा जाणावी. आणि जर दुसऱ्या दिवशीं द्वादशी असेल तर अविद्धा असतांही विद्धा जाणावी” असें हेमाद्रीत पाझवचन, तें एकादशीची वृद्धि असतां जाणवें. तें माधवानें सांगितलें आहे. तें असें:—“ज्या कालीं एकादशी व द्वादशी ह्या दोन्ही तिथि वाढतात, त्या कालीं स्मार्तांनीं पूर्वदिवस टाकून दुसरा दिवस उपोषणाला ध्यावा.”

विद्वैकादश्याद्वादशीमात्रवृद्धौचसर्वेपांपरैव तत्रैवैकादशीमात्रवृद्धौगृहिणःपूर्वायतेरुत्तरा पूर्वोक्तपा-
प्तोक्तेः एकादशीविबुद्धाचेच्छुद्धेकृष्णविशेषतः उत्तरांतुयतिःकुर्यात्पूर्वामुपवसेद्दृढीतिप्रचेतसोक्तेः एत-
च्छुद्धाविद्धातुल्यमितिमाधवः त्रयोदश्यांनलभ्येतद्वादशीयदिकिंचन उपोष्यैकादशीतत्रदशमीमिश्रितापि-
चेतिस्कांदात् अविद्वानिनिषिद्धैश्चनलभ्यतेदिनानितु मुहूर्तैःपंचभिर्विद्वद्वाप्राह्यैवैकादशीतिथिरित्युच्यते-
शोक्तेश्च मुहूर्तपंचकमरुणोदयमारभ्यज्ञेयम् अन्यथोत्तरेऽह्निकेकादश्यभावासंभवात् यदपिहेमाद्रिणा
शुद्धसमाशुद्धन्यूनावाधिकद्वादशिकाचेत्सर्वेपांपरैवेत्युक्ततदपिवैष्णवविषयं स्मार्तानांतुपूर्वैवेत्यविरोधः ।

विद्वैकादशी असून द्वादशीची मात्र वृद्धि असतां सर्वांनी दुसऱ्या दिवसाचीच उपोषणाला ध्यावी. विद्वैकादशी असून एकादशीची मात्र वृद्धि असतां गृहस्थाश्रमी यांनी पूर्वा करावी; संन्यासी यांनी उत्तरा करावी; कारण, “जर दुसऱ्या दिवशीं द्वादशी नसेल तर, ती विद्धा असतांही अविद्धा आणि जर दुसऱ्या दिवशीं द्वादशी असेल तर अविद्धा असतांही विद्धा जाणावी” असें पूर्वोक्त पाझवचन आहे. “शुद्धपक्षी आणि कृष्णपक्षी एकादशीची वृद्धि असेल तर गृहस्थाश्रम्यांनीं पूर्वा करावी, आणि यतींनीं उत्तरा करावी” असें प्रचेतसाचें वचन आहे. हे (प्रचेतसाचें) वचन शुद्धा व विद्धा यांविषयीं मुख्य आहे असें माधव म्हणतो; कारण, “त्रयोदशीस अल्पही द्वादशी नसेल तर दशमीयुक्तही एकादशी उपोषणाला ध्यावी” असें स्कांदवचन आहे. आणि “जर निषिद्ध अशा दशमीनें अविद्ध अशी एकादशी मिळत नाही, तर पांच मुहूर्तांनीं विद्ध अशी एकादशी ग्रहण करावी.” असें ऋष्यशृंगाचेंही वचन आहे. येथें पांच मुहूर्ते म्हटले ते अरुणोदयापासून समजावे. अरुणोदयापासून न समजतां सूर्योदयापासून घेतले तर दुसऱ्या दिवशीं एकादशी नाही, असें होणार नाही. आतां जें हेमाद्रीनें सांगितलें की, शुद्धसमा किंवा शुद्धन्यूना अशी एकादशी व दुसऱ्या दिवशीं अधिक द्वादशी असेल तर सर्वांनीं पराच करावी, तेंही हेमाद्रिमत वैष्णवविषयक समजावें. स्मार्तांनीं तर पूर्वाच करावी, म्हणजे कोणताही विरोध येत नाही.

हेमाद्रिमततूच्यते तत्र शुद्धाविद्धाद्वयीनंदान्नेधान्यूनसमाधिकैः षट्प्रकाराःपुनस्त्रेधाद्वादश्यूनस-
माधिकैरित्यष्टादशैकादशीभेदाः तत्रशुद्धाधिकन्यूनद्वादशिकाशुद्धाधिकसमद्वादशिकाचसकामैःपूर्वानिष्कामै-
रुत्तराकार्या प्रथमेहनिर्णयपूर्णेतिपूर्वोक्तस्कांदात् ऊनद्वादशिकायांतुविष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयकार्यम् संपू-
र्णैकादशीयत्रप्रभातेपुनरेवसा लुप्यतेद्वादशीतस्मिन्नपवासःकथंभवेत् उपोष्येद्वेतिथीतत्रविष्णुप्रीणनतत्परि-
तिवृद्धचसिष्टोक्तेः शुद्धन्यूनाशुद्धाधिकाशुद्धसमाविद्धन्यूनाविद्धसमावाधिकाद्ववादशिकाचेत्सर्वेपांपरैवेति-
हेमाद्रिः ।

आतां हेमाद्रिमतीं तर सांगतो—शुद्धा भेद—१ शुद्धन्यूनान्यूनद्वादशिका, २ शुद्धन्यूनासमद्वादशिका, ३ शुद्धन्यूनाऽधिकद्वादशिका, ४ शुद्धसमा न्यूनद्वादशिका, ५ शुद्धसमा समद्वादशिका, ६ शुद्धसमाऽधिकद्वादशिका, ७ शुद्धाधि-
कान्यूनद्वादशिका, ८ शुद्धाधिकासमद्वादशिका, ९ शुद्धाधिकाधिकद्वादशिका. विद्धाभेद—१ विद्धन्यूनान्यूनद्वादशिका, २ विद्धन्यूनासमद्वादशिका, ३ विद्धन्यूनाधिकद्वादशिका, ४ विद्धसमान्यूनद्वादशिका, ५ विद्धसमासमद्वादशिका, ६ विद्धसमा-

१ एथे न्यूनत्व म्हणजे साठ घटिकांत कांहीं कमी असणें. समत्व म्हणजे साठ घटिका बरोबर असणें, आणि अधिकत्व म्हणजे साठ घटिकांपेक्षां अधिक असणें असें समजावें. वैष्णवांची शुद्ध एकादशी म्हणजे पूर्वदिवशीं ५६ घटिकांनंतर पलमात्र देखील दशमी नाही ती होय. आणि स्मार्तांची शुद्ध एकादशी म्हणजे ज्या एकादशीस सूर्योदयास दशमी नाही ती होय.

धिकद्वादशिका, ७ विद्वाधिकान्यूनद्वादशिका, ८ विद्वाधिकासमद्वादशिका, ९ विद्वाधिकाऽधिकद्वादशिका. याप्रमाणे शुद्धाभेद ९ व विद्वाभेद ९ मिद्धन एकादशीचे अठरा भेद होतात. त्यांमध्ये शुद्धाधिकान्यूनद्वादशिका व शुद्धाधिकासमद्वादशिका ह्या दोन एकादशी सकामांनीं पूर्वा व निष्कामांनीं उत्तरा कराव्या; कारण, “पूर्वदिवशी अहोरात्रव्यासीनें संपूर्ण असून दुसऱ्या दिवशीं द्वादशीचे ठायीं व्याप्ति असेल तर गृहस्थांनीं पूर्वा आणि यतींनीं उत्तरा करावी” असें पूर्वांत स्कांदवचन आहे. ऊनद्वादशिका असेल तर वैष्णवांनीं दोन उपोषणे करावीं; कारण, “जर पूर्वदिवशीं संपूर्ण एकादशी असून दुसऱ्या दिवशींही वृद्धिगामिनी एकादशी असेल आणि द्वादशीचा क्षय झाला असेल तर उपवास कसा होतो? अशा समयीं वैष्णवांनीं एकादशी व द्वादशी ह्या दोन दिवशीं उपोषण करावे” असें बृहद्वसिष्ठाचें वचन आहे. शुद्धन्यूना, शुद्धाधिका, शुद्धसमा, विद्धन्यूना, विद्धसमा अशी अधिकद्वादशिका असेल तर सर्वांनीं (वैष्णव व स्मार्त यांनीं) पराच उपोषणाला ध्यावी, असें हेमाद्रि सांगतो.

मदनरत्नेतुशुद्धाधिकापरा संपूर्णैकादशीयत्रेतिपूर्वोक्तेः अन्यापूर्वा शुद्धायादासमाहीनासमाहीनाधिको-
त्तरा एकादशीमुपवसेन्नशुद्धावैष्णवीमपीतिस्कांदात् शुद्धाएकादशी उत्तराद्वादशी नचेदेकादशीविष्णौइति
नारदोक्तेश्च । यत्तु अविद्धापिचविद्धास्यादितिपाञ्चतच्छुद्धाधिकापरम् **यत्तु** संपूर्णैकादशीत्याज्यापर-
तोद्वादशीयदि उपोष्याद्वादशीशुद्धाद्वादश्यामेवपारणमित्यादितद्वैष्णवपरम् स्मार्तानांतुपूर्वैवेत्युक्तं ।

मदनरत्नाच्या मते तर शुद्धाधिका अधिकद्वादशिका असतां परा करावी. कारण, “पूर्वदिवशीं संपूर्ण एकादशी असून पुनः दुसऱ्या दिवशीं प्रभातकालीं एकादशीच आहे, व तिसऱ्या दिवशीं द्वादशी असेल तर सर्वांनीं (स्मार्त व वैष्णवांनीं) पराच करावी” असें पूर्वां (**नारद**) वचन सांगितलें आहे. अन्या म्हणजे शुद्धन्यूना किंवा शुद्धसमा अशी अधिकद्वाद-
शिका असेल तर पूर्वा करावी; कारण, “जर एकादशी शुद्धा असून समा म्हणजे दुसऱ्या स्योदयापर्यंत किंवा त्याहून कमी अशी असेल तर आणि द्वादशी हीना, समा किंवा अधिका अशी असेल तर एकादशीसच उपोषण करावे, द्वादशीस करूं नये” असें स्कांदपुराणवचन आहे. आणि एकादशी दुसऱ्या दिवशीं नसून द्वादशी तिसऱ्या दिवशीं अधिक असेल तर त्या ठिकाणीं एकादशीस उपोषण करावे” असें पूर्वांत **नारद** वचनही आहे. आतां जें “अविद्धा जी एकादशी ती विद्धा होते, जर दुसऱ्या दिवशीं द्वादशी असेल तर” असें पाञ्चवचन तें शुद्धाधिकाविषयक जाणावें. आणि जें “पूर्वदिवशीं संपूर्ण एकादशी असून दुसऱ्या दिवशीं व तिसऱ्या दिवशीं द्वादशी असेल तर ती एकादशी ठाकून केवळ द्वादशीचे ठायीं उपोषण करून द्वादशीलाच पारणा करावी” इत्यादिक वचन तें वैष्णवपर जाणावें. स्मार्तांनीं तर पूर्वाच करावी असें सांगितलें आहे.

विद्धन्यूनासमद्वादशिकातुमुमुक्षूणांपुत्रवतोचपरा अन्येषांपूर्वा पुत्रवतोपिपूर्वेतिमदनरत्ने विद्धन्यूनान्यू-
नद्वादशिकासैषसर्वैःकार्येतिहेमाद्रिः मुमुक्षूणांपरान्येषांपूर्वेति**मदनरत्ने** विद्धसमासमद्वादशिकोनद्वाद-
शिकाचमुमुक्षुभिःपराऽन्यैःपूर्वाकार्या दशमीमिश्रितापूर्वाद्वदशीयदिलुप्यते शुद्धैवद्वादशीराजन्नुपोष्यामोक्ष-
कांक्षिमिरिति**न्यासोक्तेः** मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषांपूर्वैव सर्वत्रैकादशीकार्याद्वादशीमिश्रितानरैः प्रातर्भव-
तुवामावायतो नित्यमुपोषणमिति**पाद्मोक्तेः** ।

विद्धन्यूनासमद्वादशिका तर मोक्षेच्छु व पुत्रवंत यांनीं परा करावी, इतरांनीं पूर्वा करावी. पुत्रवंतांनींही पूर्वा करावी असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. विद्धन्यूनान्यूनद्वादशिका अशी असेल तर सर्वांनीं पूर्वाच करावी असें **हेमाद्रि** सांगतो. मोक्षेच्छूंनीं परा करावी, इतरांनीं पूर्वा करावी असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. विद्धसमा एकादशी समद्वादशिका किंवा ऊनद्वादशिका असेल तर मोक्षेच्छूंनीं परा करावी, अन्यांनीं पूर्वा करावी. कारण, “दशमीमिश्रित अशी पूर्वा एकादशी असून द्वादशी क्षयगामिनी असेल तर मोक्षेच्छूंनीं शुद्ध द्वादशीचे ठायींच उपोषण करावे” असें व्यासवचन आहे. व्यासवचनांत ‘मोक्षेच्छूंनीं’ असें म्हटलें आहे, यास्तव इतरांनीं पूर्वा करावी; कारण, द्वादशीमिश्रित एकादशी प्रातःकालीं असो अगर नसो, तथापि तीच सर्वांनीं करावी; कारण, एकादशीप्रयुक्त उपोषण नित्य आहे” असें पाञ्चवचन आहे.

विद्वाधिकासमद्वादशिकाचसर्वेषांपूर्वैव पारणाहेनलभ्येतद्वादशीकलयापिचेत् तदानींदशमीविद्धाप्युपो-
ष्यैकादशीतिथिरिति**ऋष्यशृंगोक्तेश्च** माधवमतेतु अत्रगृहिणःपूर्वायतेरुत्तरा विद्वाधिकान्यूनद्वाद-
शिका मोक्षपापक्षयविष्णुप्रीतिकाभैःपराकार्या गृहस्थेनतुनक्तंकार्यम् एकादशीद्वादशीचरात्रिशेषेत्रयोदशी
उपवासनकुर्वीतपुत्रपौत्रसमन्वितइति कौर्मैदिनक्षयेउपवासनिषेधात् दशम्यैकादशीविद्धाद्वादशीचक्षयंगता
क्षीणासाद्वादशीक्षेयानक्तंगृहिणःस्मृतमिति**बृहद्शातातपोक्तेश्च** गृहिणःपूर्वत्रोपवासः एकादश्याःशुद्धः

न्यूनत्वे शुद्धसमत्वेवा द्वादश्याः न्यूनसमत्वयोरेकादश्यामुपवासः यानितु दशम्यनुगताहंतिद्वादशद्वाद-
शीफलम् धर्मापत्यधनार्युपित्रयोदश्यांतुपारणमिति कौर्मादीनि दशमीवधत्रयोदशीपारणयोः निषेधकानि
तानि विहितभिन्नपारणि अत्रमूलवचनानितद्व्यवस्थाचाकरेज्ञेया ।

विद्वाधिकासमद्वादशिका ही सर्वांनी पूर्वांच करावी. कारण, “जर पारणादिवशीं कलामात्रही द्वादशी नसंल तर दशमी-
विद्धा असली तरी पूर्वा उपोषणाला घ्यावी” असं ऋष्यशृंगवचनही आहे. माधवाच्चा मतीं तर ही एकादशी गृहस्था-
श्रम्यांनी पूर्वा करावी. यतींनी परा करावी. विद्वाधिका न्यूनद्वादशिका एकादशी असेल तर मोक्षेच्छु, पापक्षयेच्छु, आणि
विष्णुप्रीतिकाम यांनी परा करावी; गृहस्थाश्रम्याने तर नक्त करावें; कारण, “एकादशी व द्वादशी एक दिवशीं असून
रात्रिशेषकालीं त्रयोदशी असेल तर पुत्रपौत्रयुक्त पुरुषांचे त्या दिवशीं उपोषण करूं नये” असं कौर्मवचन दिनक्षयाचे ठायीं
उपवासाचें निषेधक आहे; आणि “एकादशी दशमीविद्ध असून द्वादशीचा क्षय असेल तर ती क्षीणा द्वादशी होय, यास्तव
तिचे ठायीं गृहस्थाश्रम्याने नक्त करावें” असं बृहज्जातातपवचनही आहे. एकादशी शुद्धन्यूना किंवा शुद्धसमा असेल तर
गृहस्थाश्रम्याने पूर्वदिवशीं (त्याच दिवशीं) उपोषण करावें. आणि द्वादशी न्यून किंवा सम असेल तर एकादशीस उपोषण
करावें. आतां जीं “दशमीयुक्त एकादशी, बारा द्वादशीचें फल नष्ट करिते: त्रयोदशीचे ठायीं पारणा केली असतां धर्म,
अपत्य, धन, आयुष्य यांचा नाश करिते” अशीं कौर्मादिवचनें दशमीवध व त्रयोदशीपारणा यांचा निषेध करणारीं
आहेत, तीं विहितभिन्नपर जाणावीं. याविषयींचीं मूलवचनें आणि त्या वचनांची व्यवस्था आकर ग्रंथांत पाहावी.

यत्कालहेमाद्रौ बहुवाक्यविरोधेनसंदेहोजायतेयदा द्वादशीतुतदाप्राह्यात्रयोदश्यांतुपारणमिति
मार्कंडेयोक्तेः संदिग्धेषुवाक्येषुद्वादशींसमुपोषयेत् तथा विवादेषुचसर्वेषुद्वादश्यांसमुपोषणम् पारण-
चत्रयोदश्यामाज्ञेयंमामकीमुने इतिपाद्योक्तेश्च वेधसंदेहेज्योतिर्विदांविप्रतिपत्तौवापराकार्येत्युक्तं तद्वै-
ष्णवविषयमित्यलंबहृना ।

आतां जें कालहेमाद्रौत—“परस्परविरोधक अशीं बहुत वाक्यें असल्याकारणानें निर्णयाचा संदेह जेथें प्राप्त होतो
तेथें द्वादशीस उपोषण करून त्रयोदशीस पारणा करावी” ह्या मार्कंडेयवचनावरून आणि “संदिग्ध वाक्यें असतां द्वाद-
शीचे ठायीं उपोषण करावें.” तसेंच “हे मुने, सर्व विवादस्थलीं द्वादशीचें ठायीं उपोषण करून त्रयोदशीस पारणा करावी,
अशी ही माझी आज्ञा आहे” ह्या पाद्मवचनावरूनही वेधसंदेह असतां किंवा ज्योतिःशास्त्रज्ञांची विप्रतिपत्ति असतां परा
करावी, असें सांगितलें तें वैष्णवविषयक होय. याप्रमाणें एकादशीविषयक इतका निर्णय पुरे आहे, याहून अधिक नको.

अथात्रोपयुक्तं किंचिदुच्यते तत्र दशम्यामेकादशीयोगे दशमीमध्ये एव भोजनं कार्यं एकादश्यां न भुं-
जीतेतितस्या एव निमित्तत्वात् निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते इति देवलोक्तेश्च केचित्तु एकादशीव्रतां-
गत्वेन पूर्ववृत्तेक भक्तविधानाद्विधिस्पष्टेच निषेधानवकाशात्तत्रागम्यव्रतांगे भोजननिषेधः प्रवर्तते तेनैकादशीमध्ये-
पि पूर्वदिने भोजनमित्याहुः ।

आतां एकादशीव्रताविषयीं उपयुक्त असं कांहीं सांगतो.

दशमीचे दिवशीं एकादशीचा योग असेल तर दशमीमध्येच भोजन करावें; “एकादशीचे ठायीं भोजन करूं नये” या
वाक्यांतील भोजननिषेधाला एकादशीच निमित्त आहे; आणि “निषेध तर निवृत्तिरूप असल्यामुळें तो एकादशीकालमात्रा-
चीच अपेक्षा करितो म्हणजे एकादशीतिथीत भोजननिषेध आहे” असं देवलवचनही आहे. कोणी ग्रंथकार तर—
काम्य एकादशीव्रताच्या अंगत्वाचें पूर्वदिवशीं एकभक्त करावें, असा विधि आहे, म्हणून विधिप्रयुक्ताविषयीं निषेध होत
नसल्यामुळें काम्यव्रताचें अंग जें पूर्वदिवशीं भोजन त्याविषयीं निषेध प्रवृत्त होत नाही, याकरितां पूर्वदिवशीं एकादशी-
मध्येही भोजन करावें, असें म्हणतात.

१ गार्ग्यः । निमित्तं कालमादाय वृत्तिर्विधिनियमयोः । विधौ पूज्यतिथौ तत्र निषेधः कालमात्रके ॥ तिथीनां पूज्यतां नाम
कर्मानुष्ठानयोग्यता ॥ निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते इति । अयमर्थः । निषेधवाक्येन कालविशेषे कर्मविशेषानुष्ठानस्यानर्थ-
हेतुत्वबोधनापवादकदापि तत्काले कर्मानुष्ठानेऽनर्थप्रसंगात्सर्वदैव तत्काले वर्जनीयमिति न तत्र निर्णयापेक्षा । विधिवान्वयेन तु विधेयानु-
ष्ठानस्याभ्युदयहेतुत्वबोधनात्सूक्ष्मदुष्टानुष्ठानादेवाभ्युदयसिद्धेः साच पूज्यतिथावनुष्ठान एव भवति नापूज्यतिथाविति ॥ ततश्च कर्मयोग्य-
तिथौ कृतेपि कर्मणि अकाले यत्कृतं कर्म विधिशीच विवर्जितम् । अकृतं तद्विजानीयात्पुनरित्याश्रुतेर्वलादिति वचनेन तस्य वैयर्थ्यबोध-
नासिधिवैधे कस्मिन्कर्मणि का तिथियोग्येति निर्णयः कर्तव्य एव ॥

अत्राधिकारीमाधवीयेकात्यायनेनोक्तः अष्टवर्षाधिकोमर्त्यांश्चशीतिन्यूनवत्सरः एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोर्हभयोरपीति भविष्ये ब्रह्मचारीचनारीचशुक्लमेवसदागृहीति यत्तु विष्णुः पत्यौजीवत्यानारीउपोष्यव्रतमाचरेन् आयुष्यंहरतेभर्तुर्नरकंचैवगच्छतीति तदुद्भूतनुज्ञाविषयमितिप्रागुक्तम् ।

एकादशीव्रताविषयी अधिकारी सांगतो—माधवीयांत कात्यायन—“आठ वर्षाहून अधिक वयाचा आणि ऐशी वर्षाहून कमी वयाचा अशा मनुष्याने शुक्ल व कृष्ण एकादशीचे ठायीं उपोषण करावें.” **भविष्यपुराणांत—**“ब्रह्मचारी, सौभाग्यवती स्त्री आणि गृहस्थाश्रमी यांनीं शुक्लैकादशीच निल्य करावी.” आतां जें विष्णु—“पति जीवंत असतां जी स्त्री उपोषण करून व्रताचरण करिते ती भर्त्याचें आयुष्य हरण करून नरकाप्रत जाते” असें वचन तें भर्त्याच्या आक्षेपिरहित व्रतविषयक होय, असें पूर्वीं (व्रतपरिभाषाप्रकरणीं) सांगितलें आहे.

उपवासासामर्थ्येनुमार्कंडेयकौर्मयोः एकभक्तेनकेनतथैवायाचितेनच उपवासेनदानेनननिर्द्वादशिकोभवेन् अत्र एकभक्तेनयोर्मर्त्य उपवासव्रतंचरेदित्येकभक्तादिपूपासशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थः तेनतत्प्रयुक्ताःसर्वेधर्माः संकल्पमंत्रैकेकभक्तादिपेदेनोद्कार्यइति**मदनरत्ने** तथाऽसामर्थ्येप्रतिनिधिनाकारयेदितिप्रागुक्तम् व्रताकरणेप्रायश्चित्तमाह **माधवीये कात्यायनः** अर्केपर्वद्वयेरात्रौचतुर्दश्यष्टमीदिवा एकादश्यामहोरात्रंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेदिति ।

उपवासाविषयीं सामर्थ्य नमेल तर **मार्कंडेय व कूर्मपुराणांत—**“एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, आणि दान, यांतून कोणतेही एक करावें; परंतु एकादशीव्रताचा त्याग करू नये.” ह्या स्थलीं “जो मनुष्य एकभक्त करून उपवासव्रत करील” अशी जी एकभक्तादिक अनुकल्पविषयक वाक्यें त्यांमध्यें जो ‘उपवास’ शब्द तो त्या उपवासाच्या धर्माचा अतिदेश करण्याकरितां आहे, म्हणून उपवासप्रयुक्त सर्व धर्म करावें, व संकल्पमंत्रांत एकभक्तादिपदाचा ऊह करावा, असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. तसेंच सामर्थ्य नमतां प्रतिनिध्यांकडून करावें असें पूर्वीं सांगितलें आहे. **व्रत न केलें असतां प्रायश्चित्त सांगतो—माधवीयांत कात्यायन—**अक (रविवार), पाणिमा, अमावास्या, यांचे ठायीं रात्री भोजन केलें असतां चतुर्दशी व अष्टमी यांचे ठायीं दिवा भोजन केलें असतां आणि एकादशीचे ठायीं दिवसा व रात्री भोजन केलें असतां चांद्रायण करावें.

अथकाम्यव्रतविधिः लघुनारदीये दशम्यादिमहीपालत्रिदिनंपरिवर्जयेत् गंधतांबूलपुष्पादिस्त्रीसंभोगमहायज्ञाः तत्रदशम्यांविधिः**कौर्म** कांस्यमांसमसूरांश्चचणकानकोरदूषकान् शाकंमधुपरांश्चत्यजेदुपवसनस्त्रियम् तथा शाकंमांसमसूरांश्चपुनर्भोजनमैथुनं द्यूतमत्यंबुपानंचदशम्यावैष्णवस्त्यजेत् **मदनरत्ने नारदीये** अक्षारलवणाःसर्वेहविष्यान्ननिषेविणः अवनीतल्पशयनाःप्रियासंगमवर्जिताः ।

आतां काम्यव्रताचा विधि सांगतो.

लघुनारदीयांत—“दशमा, एकादशी, द्वादशी ह्या तीन दिवशीं सुगंध द्रव्यें, तांबूल, पुष्पें, स्त्रीसंभोग हीं वर्ज्य करावीं.” **दशमीस विधि—कौर्मांत—**“कांस्यपात्र, मांस, मसूरा, चण, कोदव, शाक, मधु (मध), पराज, बी हीं वर्ज्य करावीं.” तसेंच “शाक, मांस, मसूरा, पुनर्भोजन, मैथुन, द्यूत, अति उदकपान हीं दशमीचे ठायीं वैष्णवानें वर्ज्य करावीं.” **मदनरत्नांत—नारदीयांत—**“क्षार-लवणविवाजित, हविष्यान्नभोजी, भूमिशायी, स्त्रीसंगविरहित असें असावें.”

व्रतघ्नान्याहहेमार्द्रौदेवलः असकृजलपानाच्चसकृतांबूलचर्वणान् उपवासःप्रणश्येत्दिवास्वापाश्चमैथुनात् अशक्तौतु**मदनरत्नेदेवलः** अत्यंचांबुपानेननोपवासःप्रणश्यति अत्ययेकप्रे **विष्णुरहस्ये** गात्राभ्यंगंशिरोभ्यंगंतांबूलंचानुलेपनं व्रतस्थोवर्जयेत्सर्वयज्ञान्यन्ननिराकृतं ।

व्रतघ्नं सांगतो—हेमार्द्रौत देवल—“वारंवार उदकपान करणें, एकवार तांबूल चर्वण करणें, दिवानिद्रा, मैथुन, यांहींकरून उपोषणाचा नाश होतो.” येथें मैथुनशब्दंकरून अष्टांगमैथुन. तें असें—स्त्रीसंभोगाचें स्मरण करणें विषयाच्या

१ अक्षारलवणांइति पाठे क्षाराश्चलवणाश्चेति विग्रहः । अक्षारलवणा इति पाठेपि क्षाराश्च लवणानिचेति समासानंतरं नृत्समासः समान एवार्थः । क्षारलवणं खारेति प्रसिद्धं तन्निषेधोयमिति केचित् ॥ २ मैथुनादिति । स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्धृतिरेव च ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिण इत्यष्टांगमैथुनस्यापि निषेधः ॥ ३ यथाश्चद्वारागच्छदिति वा पाठः ॥

गोष्टी सांगणें, क्लीशीं क्रीडा करणें, क्लीकडे विषयदृष्टीनें पाहाणें, क्लीशीं गुप्त गोष्टी करणें, मी विषयोपभोग करीन असा संकल्प करणें, उपभोगाचा निश्चय करणें, व प्रत्यक्ष मैथुन करणें; याप्रकारें अष्टविध मैथुनांतून कोणतेंही आचरण करूं नये. उपोषणानें व्याकुळ असतां **मदनरत्नांत देवळ** सांगतो—“महासंकटकालीं वारंवार उदक प्राशन केलें असतां उपवास व्यर्थ होत नाही.” **विष्णुरहस्यांत**—“शरीरास अभ्यंग, मस्तकास अभ्यंग, तांबूल, गंधाची उटी, आणि अन्यत्र ठिकाणीं निविद्ध कर्में सांगितलीं तीं व्रतस्थानें सर्व वर्ज्य करावीं.”

एषुप्रायश्चित्तमुक्तंनिर्णयामृते संग्रहे स्नेहसिकयोःसख्यंकृत्वास्तैन्यंचहिंसनम् प्रायश्चित्तं व्रतीकुर्याज्जपेन्नामशतत्रयं मिथ्यावादेदिवास्वापेबहुशोबुनिषेवणे अप्राक्षरंव्रतीजप्त्वाशतमष्टोत्तरंशुचिः ॐनमो नारायणयेत्यष्टाक्षरः तत्रैव **पैठीनसिः** तांबूलचर्वणेस्त्रीसंभोगमांसनिषेवणे व्रतलोपोनचेत्कुर्यात्कृष्णावद्भुजिर्वर्जनमिति कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालनेतुतांबूलचर्वणादावपिनदोषइत्यर्थः संभोगोऋतुकालादन्यत्र रेतःसेकात्मसंभोगमृतेऽन्यत्रक्षयःस्मृतइतिकात्यायनोक्तेः **हेमाद्रौवसिष्ठः** उपवासेतथाश्राद्धेनकुर्यादंतधावनं दंतानांकाष्ठसंयोगोदहत्यासप्तमकुलं काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्टाद्यनिषेधइतिहेमाद्रिः **विष्णुरहस्ये** श्राद्धोपवासदिवसेखादित्वादंतधावनं गायत्र्याशतसंपूतमंबुप्राशयविशुद्ध्यति **निर्णयामृतेऽन्यासः** वर्जयेत्पारणेमांसं व्रताहेप्यौषधंसदेति ।

याविषयीं प्रायश्चित्त सांगतो—निर्णयामृतांत—संग्रहांत—“चोर, हिंसक यांशीं सख्य केलें अमतां किंवा अल्प चोरी, कीटादिक प्राण्यांची हिंसा केली असतां व्रती यानें विष्णूच्या नामाचा तीनशें जप करावा. मिथ्या भाषण, दिवा-निद्रा, बहुत वेळां उदकपान करणें, यांतून कोणतेंही एक करील तर त्यानें अष्टाक्षर मंत्राचा अष्टोत्तरशत जप करावा, म्हणजे तो शुद्ध होतो.” “ॐ नमो नारायणाय” हा अष्टाक्षर मंत्र होय. त्याच ठिकाणीं **पैठीनसि—**“जर कृष्णैकादशीप्रमाणें केवळ भोजननिषेध मात्र पालन करीत असेल तर त्यानें तांबूलचर्वणें, स्त्रीसंभोग, मांससेवन यांतून कोणतेंही केल्यानें व्रतलोप होत नाही.” स्त्रीसंभोग म्हणजे ऋतुकालाहून अन्य कालीं संभोग होय. **कारण** “रेतःसेकरूप संभोग ऋतुकालीं होतो, त्यावांचून अन्यकालीं संभोग तो केवळ रेतःक्षयरूप म्हणला आहे.” असें **कात्यायन** वचन आहे. **हेमाद्रिंत वसिष्ठ—**“उपवासदिवस, श्राद्धदिवस, यांचे ठायीं दंतधावन करूं नये; कारण, त्या दिवशीं दंत व काष्ठ यांचा संयोग होईल तर तो सात कुलांचा नाशक होतो.” ह्या वचनांत केवळ काष्ठचें ग्रहण आहे. म्हणून मृत्तिका, ढंकूळ इत्यादिकांनीं दंतधावन करण्यास निषेध नाही असें **हेमाद्रि** सांगतो. **विष्णुरहस्यांत—**“श्राद्धदिवशीं व उपवासदिवशीं काष्ठानें दंतधावन केलें असतां गायत्रीमंत्रानें शतवार अभिमंत्रित केलेलें उदक प्राशन करून शुद्ध होतो.” **निर्णयामृतांत अन्यास—**“पारणेच्या दिवशीं व व्रतदिवशीं मांस व औषध हीं नित्य वर्ज्य करावीं” असें म्हणतो.

एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौमाधवीये कात्यायन आह उपवासोयदानित्यःश्राद्धंनैमित्तिकंभवेत् उपवासांतदाकुर्यादाघ्रायपितृसेवितं मातापित्रोःक्षयेप्राप्तेभवेदेकादशीयदि अभ्यर्च्यपितृदेवांश्चआजिघ्रेत्पितृसेवितमिति हेमाद्र्यादिसर्वनिबंधेष्वेवं एतेनएकादशीनिमित्तकंश्राद्धंद्वादश्यांकार्यमितिवदंतःपरास्ताः किंच **महालये** सपक्षःसकलःपूज्यःश्राद्धषोडशकंप्रतीतिश्रुतंषोडशत्वं पौषैकादश्यांचमन्वादिश्राद्धं क्षयाहापरिज्ञानेचतत्पक्षैकादश्यांविहितंश्राद्धंबाधितमेवस्यात् यदपि **स्मृतिचंद्रिका** स्पंठति अन्नाश्रितानिपापानितनद्भोक्तुर्दातुरेवच मज्जंतिपितरस्तस्यनरकेशाश्वतीःसमाइति तस्यापिरागप्राप्तभुजिगोचरस्यवैधंश्राद्धंगोचरयतांमहत्साहसमित्यलम् योपि अकृतश्राद्धनिचयाजलपिंडंविनाकृताइतिलघुनारदीयेएकादश्यांश्राद्धादिनिषेधः समातापितृभिन्नविषयः पूर्ववाक्येतद्ग्रहणात् निचयःप्रतिग्रहः ।

एकादशीचे दिवशीं श्राद्ध प्राप्त असतां माधवीयांत कात्यायन सांगतो—“जेव्हां उपवास नित्य असून त्या दिवशीं नैमित्तिक श्राद्ध प्राप्त होईल तेव्हां श्राद्ध करून श्राद्धशेष सर्व प्रकारचें अन्न एका पात्रावर वाढवून तें सर्व अन्न अवघ्राण करून उपवास करावा. मातापितरांच्या श्राद्धदिवशीं एकादशी प्राप्त होईल तर यथाविधि श्राद्ध करून श्राद्धशेषाचाचें अवघ्राण करावें.” असें **हेमाद्रि** इत्यादि सर्व निबंधग्रंथांत सांगितलें आहे. येणेंकरून, एकादशीनिमित्तक श्राद्ध द्वादशीचे दिवशीं करावें, असें जे म्हणतात ते खंडित झाले. आणि असें कीं, जर एकादशीस श्राद्ध नाही तर महालयांत “षोडश श्राद्धाविषयीं तो सर्व पक्ष पूज्य होय” अशा वचनानें सांगितलेलीं सोळा महालयश्राद्धें, पौषैकादशीचे ठायीं करावयाचें मन्वादि श्राद्ध, आणि क्षयाहाचें अज्ञान असतां त्या पक्षांतील एकादशीचे ठायीं विहित श्राद्ध हीं बाधित होतील

असें जाणावें. आतां जें स्मृतिचंद्रिकेतील वचन सांगतात की, “पापे अन्नाश्रित आहेत तीं अन्नदाता व भोक्ता या उभयतांस प्राप्त होतात, आणि त्यांचे पितर नरकांत शाश्वत कालपर्यंत वास करितात” असें वचन तें इच्छाप्राप्तभोजनविषयक असतां विधिप्राप्त श्राद्धभोजनविषयक मानितात, तस्मात् त्यांचें मोठें साहस होय. एथें इतका विचार पुरे आहे. आतां जो “एकादशीय श्राद्ध व प्रतिग्रह न करणारे व उदकदान, पिंडदानविरहित श्राद्ध करणारे ते उत्तम लोकांस जातात” असा लघुनारदीयांत एकादशीचे दिवशीं श्राद्धादिकांचा निषेध आहे, तो मातापितृव्यतिरिक्तविषयक होय; कारण, पूर्ववाक्यांत मातापितरांचें श्राद्ध करण्याविषयीं उक्त आहे.

अन्नतन्नान्याह मदनरत्नेदेवलः सर्वभूतभयंव्याधिः प्रमादोगुरुशासनं अन्नतन्नानिपठ्यंतेसकृदे-
तानिशास्त्रतः स्कांदेपि अष्टौतान्यन्नतन्नानिआपोमूलफलंपयः हविर्ब्राह्मणकाम्याचगुरोर्वचनमौषधं इदंचा-
तिसंकटविषयम् नारदीये अनुकल्पोनृणांप्रोक्तः क्षीणानांवरवर्णिनि मूलफलंपयस्तोयमुपभोग्यंभवेच्छुभे
नत्वेवभोजनंकैश्चिदेकादश्यांबुधैः स्मृतमिति अस्यापवादः शयनेचमदुत्थानेमत्पार्श्वपरिवर्तने नरोमूलफला-
हारीद्विशल्यंममार्पयेत् एतेचाविरोधिनोनिर्णयाः सर्वत्रतेपुज्ञेयाः ।

अन्नतन्ने सांगतो—मदनरत्नांत देवल—“सर्वे भूतांपासून भय, व्याधि, प्रमाद, गुरुची आज्ञा यांदून व्रतनाशक
एकादी गोष्ट एकवार झाली असतां व्रत नष्ट होत नाही.” **स्कंदपुराणांतही—**“उदक, मुळें, फळें, दूध, दूध, दूध, ब्राह्मण-
कामना, गुरुवचन, औषध, हीं आठ व्रतघ्न होत नाहीत.” हें वचन अतिसंकटविषयक जाणावें. **नारदीयांत—**“शक्तिहीन
मनुष्यांना गौणपक्ष उक्त आहे तो असा—मूल, फल, दूध, उदक, हीं शक्तिहीनास उपभोग्य होत; परंतु एकादशीस भोजन
करण्याविषयीं कोणत्याही विद्वानांनीं सांगितलें नाही.” **दरील वचनाचा अपवाद—**“शयनी, बोधिनी आणि परि-
वर्तिनी ह्या एकादशीचे ठायीं मूलफलाद्वारी जो मनुष्य तो माझ्या हृदयांत शल्य करणारा होतो. अर्थात् ह्या एकादशीस
मूलफलाद्वारी करूं नये.” हे पूर्वोक्त निर्णय अविरुद्ध असल्यामुळें सर्वे व्रतांविषयीं जाणवे.

तत्रैकादश्यांसंकल्पः गृहीत्वौदुंबरपात्रवारिपूर्णमुदञ्जुष्वः उपवासंतुगृहीत्याद्यद्वावार्येवधारयेदिति
माधवीये वाराहोक्तेः मंत्रस्तुविष्णूक्तः एकादश्यांनिराहारःस्थित्वाहमपरेऽहनि भोक्ष्यामिपुंडरीकाक्ष-
शरणंभेभवाच्युतेति शैवादीनांतु हेमाद्रौसौरपुराणे सावित्र्यापथ्यवानाम्रासंकल्पंतुसमाचरेन् शिवादि
गायत्र्योयजुर्वेदप्रसिद्धाः वाराहे इत्युच्चार्यततोविद्वान्पुष्पांजलिमथार्पयेन् ततस्तज्जलंपिबेत् अष्टाक्षरेणमं-
त्रेणत्रिजनेनाभिमंत्रितं उपवासफलंप्रेप्नुःपिबेत्पात्रगतंजलमिति**कात्यायनोक्तेः** मध्यरात्रेउदयेवादशमी-
वेधेरात्रौसंकल्पइति**माधवः** दशम्याःसंगदोषेणअर्धरात्रात्परेणतु वर्जयेच्चतुरोयामानसंकल्पार्चनयोस्तदा
विद्योपवासेनश्रंस्तुदिनंत्यक्त्वासमाहितः रात्रौसंपूजयेद्विष्णुंमंकल्पंचतदाचरेदिति**नारदीयोक्तेः** तत्रैवपू-
जामभिधाय देवस्यपुरतःकुर्याज्जागरंनियतोव्रती ।

“एकादशीव्रताचा संकल्प उदकपूर्व ताम्रपात्र हातांत घेऊन उत्तराभिमुख होत्वाता उपवासाचा संकल्प करून उपवास
ग्रहण करावा, अथवा हातांत उदक धारण करावें.” असें **माधवीयांत वराहपुराण**वचन आहे. **संकल्पाचा मंत्र-**
विष्णु सांगतो—“एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि । भोक्ष्यामि पुंडरीकाक्ष शरणं भे भवा-
च्युत.” शैव, सूर्योपासक इत्यादिकांविषयीं सांगतो—**हेमाद्रौत-सौरपुराणांत—**“शिवादि गायत्रीमंत्रानें
अथवा नाममंत्रानें संकल्प करावा.” शिवादि गायत्रीमंत्र यजुर्वेदांत प्रसिद्ध आहेत. **वराहपुराणांत—**“याप्रमाणें संक-
ल्पमंत्र म्हणून विष्णूला पुष्पांजलि समर्पण करावी” नंतर तें पात्रस्थ उदक प्राशन करावें. कारण, “उपवासफलेच्छूनें
पात्रगत उदक अष्टाक्षर मंत्रानें तीन वेळ अभिमंत्रित करून प्राशन करावें” असें **कात्यायन**वचन आहे. मध्यरात्री
किंवा उदयकालीं दशमीचा वेध असेल तर व्रताचा संकल्प एकादशीचे रात्रीं करावा, असें **माधव** सांगतो. कारण,
“मध्यरात्रीनंतर दशमीचा वेध असेल तर संकल्प, पूजा यांविषयीं चार प्रहर (दिवसाचे चार प्रहर) वर्ज्य करावे.
विद्वेकादशीचें उपोषण करीत असेल तर त्यानें तो दिवस वर्ज्य करून रात्रीं विष्णुपूजन व संकल्पही त्याच वेळीं करावा”
असें **नारदीय**वचन आहे. त्याच ठिकाणीं पूजा सांगून “व्रती यानें नियमंकरून देवाच्या अग्रभागीं जागर करावा”
असें सांगितलें आहे.

द्वादश्यांनिवेदनमंत्रउक्तः कात्यायनेन अज्ञानतिमिरांधस्यव्रतेनानेनकेशव प्रसीदसुमुखोनाथज्ञान-

दृष्टिप्रदोभवेति नारदीये ब्राह्मणानभोजयेच्छत्तयाद्याद्वैदक्षिणांततः स्कांदेपि कृत्वाचैवोपवासंतुयोश्री-
याद्वादशीदिने नैवेद्यंतुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् द्वादश्यांचवर्ज्यां न्याह बृहस्पतिः दिवा निद्रा पराश्रं
च पुनर्भोजनमैथुने शौद्रं कांस्यामिषंतैलं द्वादश्यामष्टवर्जयेत् हेमाद्रौ ब्रह्मांडपुराणे पुनर्भोजनमध्यायो-
भारआयासमैथुने उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्राचपंचमी स्कांदे पराश्रं कांस्यातां ब्रूलेलोभं वितथभाषणम् वर्जये-
दिति शेषः विष्णुधर्मे असंभाष्यानहि संभाष्यतुलस्यतसिकादलम् आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य-
शुद्धतिं बृहन्नारदीये रजस्वलांच चांडालं महापातकिनं तथा स्मृतिकांपतितंचैव उच्छिष्टं रजकादिकं व्रतादि-
मथ्ये शृणुयाद्यद्येषां ध्वनिमुत्तमः अष्टोत्तरसहस्रंतु जपे द्वैवेदमातरम् ।

द्वादशीचे दिवशीं प्रातः कालीं भगवंताला व्रत समर्पण करण्याचा मंत्र कात्यायन सांगतो. तो असा-“अज्ञानतिसि-
रांधख व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव.” नारदीयांत-“यथाशक्ति ब्राह्मणांस
भोजन घालून नंतर दक्षिणा द्यावी.” स्कंदपुराणांतही-“एकादशीचे दिवशीं उपवास करून द्वादशीचे दिवशीं जो मनुष्य
विष्णुनैवेद्य तुलसीमिश्रित भक्षण करील त्याच्या कोटिहत्यांचा नाश होईल.” द्वादशीचे दिवशीं वर्ज्य सांगतो-
बृहस्पति-“दिवा निद्रा, पराश्रभोजन, पुनर्भोजन, मैथुन, मद्य, कांस्यपात्रभोजन, आमिष, तैल हे आठ प्रकार द्वादशीचे
दिवशीं वर्ज्य करावे.” हेमाद्रौत ब्रह्मांडपुराणांत-“पुनर्भोजन, स्वाध्याय, भार वाहणें, आयाम, मैथुन, व पांचवी
दिवा निद्रा हीं उपवासफलाचा नाश करितात.” स्कंदपुराणांत-“पराश्र, कांस्यपात्रांत भोजन, तांबूल, लोभ, व्यर्थ भाषण,
हीं वर्ज्य करावीं.” विष्णुधर्मांत-“असंभाष्य (चांडालादिक) यांच्याशीं संभाषण केलें असनां तुलसीपत्र किंवा आंवळा
पारणाभोजनांत भक्षण केल्यानें शुद्ध होतो.” बृहन्नारदीयांत-“रजस्वला स्त्री, चांडाल, महापातकी, स्मृतिका, पतित,
उच्छिष्ट, रजक इत्यादिकांचा शब्द व्रतादिकांमध्ये श्रुत होईल तर एक हजार आठ (१००८) गायत्रीजप करावा.”

एतद्व्रतं सूतकेऽपि कार्यं सूतकेऽमृतकेचैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतमिति विष्णुः । तत्र त्यक्तं दानादि सूतकांते कार्यं
सूतकांतं नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनं दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुत इति मात्स्योक्तेः । रजोदर्शनपिका-
र्यम् एकादश्यां न भुंजीत नारी दुष्टरजस्यपीति पुलस्त्योक्तेः । यदा द्वादश्यां श्रवणं श्रूतं दाशुद्धामप्येकादशीत्य-
क्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः शुक्लावायदिवा कृष्णाद्वादशीश्रवणान्विता तयोरेवोपवासश्च त्रयोदश्यांच पारणमिति
नारदीयोक्तेः । एते च नियमाः काम्यव्रतेनियताः नित्यव्रते मत्तिसंभवे कार्याः शक्तिमांस्तु पुमान्कुर्यान्नियमंसं
विशेषणमिति कात्यायनोक्तेः । अशक्तौ तु माधवीये ब्रह्मवैवर्ते इति विज्ञाय कुर्वाता वश्यमेकादशीव्रतम्
विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजि वर्जित इति ।

हे व्रत सूतकांतही करावें; कारण, “जननाशौच व श्रुताशौच यांमध्येही द्वादशीव्रत (एकादशीव्रत) टाकूं नये” असें
विष्णुवचन आहे. त्या आशौचांत वर्ज्य केलेलें दानादिक सूतकांतीं करावें; कारण, “सूतकांतीं मनुष्यानें स्नान करून जना-
र्दनाची पूजा करून यथाविधि दान करावें, म्हणजे व्रताचें फल मिळते” असें मत्स्यपुराणवचन आहे. रजस्वलावस्थे-
मध्येही हे एकादशीव्रत करावें; कारण, “स्त्री रजस्वला असतांही तिनें एकादशीचे दिवशीं भोजन करूं नये” असें पुल-
स्त्यवचन आहे. ज्या कालीं द्वादशीचे ठायीं श्रवणनक्षत्राचा योग असेल त्या कालीं शुद्धा जरी एकादशी असेल, तरी ती
टाकून द्वादशीसच उपोषण करावें; कारण, “शुक्लपक्षांतील किंवा कृष्णपक्षांतील द्वादशी श्रवणयुक्त असेल तर त्या दोघांचा
(श्रवण व द्वादशी यांचा) च उपवास करून त्रयोदशीस पारणा करावी” असें नारदीयवचन आहे. हे सर्व नियम
काम्यव्रताचे ठायीं अवश्य पाळावे, नित्यव्रताचे ठायीं संभव असतां पाळावे; कारण, शक्तिमान् पुरुषांनें तर विशेषकरून
नियम पाळावे” असें कात्यायनवचन आहे. अशक्त असेल तर त्याविषयीं माधवीयांत ब्रह्मवैवर्तांत-“असें
जाणून अवश्य एकादशीव्रत करावें, विशेष नियम पाळण्याविषयीं जर अशक्त असेल तर त्यानें अहोरात्र भोजन वर्ज्य करावें.”

अथाष्टौ महाद्वादश्यः । तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुताद्वादशी उन्मीलिनी संज्ञा द्वादशेयवशुद्धाधिकावर्धते-
चेत्सावंजुली वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा अग्नेपर्वणः संपूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी पुष्यक्षयुताजया श्रवणयुतावि-
जया पुनर्वसुयुताजयंती रोहिणीयुतापापनाशिनी एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ।

आतां आठ महाद्वादशी सांगतो.

१ शुद्धाधिक एकादशीनें शुक्ल जी द्वादशी ती उन्मीलिनी संज्ञक. २ द्वादशीच शुद्धाधिका वाढती असेल तर ती

बंजुली. ३ सूर्योदयाच्या पूर्वी असून दुसऱ्या दिवशीं सूर्योदयोत्तर असलेली द्वादशी तीन दिवसांचा स्पर्श असल्यामुळे ती त्रिसृष्टा. ४ पक्षपर्वत पुढच्या तिथि वाढत्या असतात तेव्हां पक्षवर्धिनी. ५ पुष्यनक्षत्रानें युक्त ती जया. ६ श्रवणयुक्त ती विजया. ७ पुनर्वसूनें युक्त ती जयंती. ८ रोहिणीयुक्त ती पापनाशिनी. पापक्षय आणि सुक्ति यांची इच्छा करणारांनीं ह्या आठ द्वादशींचे ठायीं उपोषण करावें. याविषयीचीं मूलवचनें हेमाद्रीत पाहावी.

एकादशीद्वादशयोरेकत्वेतत्रेणोपवासः पार्थक्येतुशक्त्योपवासद्वयं एकादशीमुपोष्यैवद्वादशीसमुपोषयेदिति विष्णुरहस्यात् अशक्तौतुद्वादश्यामेव एवमेकादशीत्यक्त्वाद्वदशीसमुपोषयेत् पूर्ववासरजंपुण्यं सर्वप्राप्तोत्यसंशयमितितत्रैवोक्तेः यदात्वल्पाद्वादशीतदोक्तंमात्स्ये यदाभवतिअल्पापिद्वादशीपारणादिने उपःकालेद्वयंकुर्यात्प्रातर्माध्याह्निकंतदा नारदीयेपि अल्पायामथविप्रेत्रद्वादश्यामरुणोदये स्नानार्चनक्रियाः कार्यादानहोमादिसंयुताइति संकटेतुमाधवीयेदेवलः संकटविपमेप्राप्तेद्वादश्यांपारयेत्कथं अङ्गिस्तुपारणांकुर्यात्पुनर्भुक्तंनदोषकृदिति संकटत्रयोदशीश्राद्धप्रदोपादौ ।

ह्या आठ द्वादशींतून द्वादशी व एकादशी ह्या दोन एक दिवशीं प्राप्त अशांना एकत्रवांचे उपवास करावा. निरनिराळ्या दोन दिवशीं अगतील तर सशक्तानें दोन उपोषणे करावी; कारण, “एकादशीचें उपोषण करूनच द्वादशीचें उपोषण करावें” असें विष्णुरहस्यवचन आहे. दोन उपोषणे करण्यास शक्ति नसेल तर द्वादशीचेंच उपोषण करावें; कारण, “अशक्तानें एकादशी टाकून द्वादशीचे ठायीं उपोषण केल्यानें एकादशीप्रतापे सवे पुण्य प्राप्त होतें” असें त्याच ठिकाणीं वचन आहे. जेव्हां द्वादशी अल्प असेल तेव्हां याविषयी सांगतो—मत्स्यपुराणांत—“जेव्हां द्वादशी पारणादिवशीं अल्प असेल तेव्हां प्रातःकालीन व माध्याह्निक सवे कर्मे उपकारणीं करावीं.” नारदीयान्तही—“हे विप्रेत्र, द्वादशी अल्प असेल तेव्हां स्नान, संध्या, व्रत, पूजा, होम, इत्यादिक सवे किंवा अरुणोदयकालीं कराव्या.” संकटविषयी सांगतो—माधवीयांत देवल—“संकट (त्रयोदशीश्राद्ध, प्रदोषपत्रा इत्यादि) अशांना द्वादशीत पारणेचा असंभव असेल तर उदकेंकरून पारणा करावी; म्हणजे पुनर्भोजन करूं अशांना उपोष नाहीं.

अत्रकेचिदाहुः अपकर्षवाक्यान्यनाहिताग्निविषयाणि अग्निहोत्रादीनांश्रौतत्वेनापकर्षयोगादिति द्वादश्यांचप्रथमपादमतिक्रम्यपारणंकार्यं द्वादश्याःप्रथमःपादोहरिवासरसंज्ञितः तमतिक्रम्यकुर्वीतपारणंविष्णुतत्परइति निर्णयामृतेमदनरत्नेचविष्णुधर्मोक्तेः अत्रकेचित्संगिरंते यदाभूयसीद्वादशीतदापिप्रातर्मुहूर्तत्रयेपारणंकार्यं सर्वेषामुपवानानांप्रातर्गवह्निपारणमितिवचनादिति अस्मदुरवस्तु बहूनांकर्मकालानांविनाकारणंवाधापत्तेः प्रागुक्तवचनंश्चअल्पद्वादश्यामेवापकर्षविधानादपराह्णैवकार्यम् प्रातःशब्दस्तु सायंप्रातर्द्विजातीनामशनंश्रुतिचोदितमिति वदपराह्वाचित्वेप्युपपन्नः नचवाक्यवैयर्थ्यं पुनर्भोजनसायंपारणानिवृत्त्यर्थत्वात्तस्येत्याहुः ।

याविषयी केचित् असें म्हणतात—अपकर्षकरून कर्मे करण्याविषयी जीं वाक्ये, तीं अनाहिताग्निविषयक होतः कारण, अग्निहोत्रादिक हीं श्रौतकर्मे अथव्यामुळे त्यांचा अपकर्ष होणार नाहीं. द्वादशीचा प्रथम पाद टाकून पारणा करावी. कारण, “द्वादशीचा प्रथम पाद तो हरिवासर होय, तो प्रथम पाद टाकून वैष्णवानें पारणा करावी” असें निर्णयामृतांत व मदनरत्नांत विष्णुधर्मवचन आहे. याविषयी केचित् म्हणतात—जेव्हां पुढील द्वादशी असेल तेव्हांही प्रातःकालीं सहा घटिकांमध्ये पारणा करावी; कारण, “सवे उपवागांची पारणा प्रातःकालींच करावी” असें वचन आहे. आमचे गुरु (रामकृष्णभट्ट) तर, बहुनकर्मकालांचा कारणावांचून बाध होईल म्हणून, आणि पूर्वेक वचनांनीं अल्पद्वादशी असेल तरच कर्मांचा अपकर्ष करण्याचें सांगितल्यावरून पुढील द्वादशी असेल तेव्हां अपराह्णकालींच पारणा करावी. “सवे उपवासाची पारणा प्रातःकालींच करावी” ह्या वचनांत जो प्रातःशब्द आहे, तो तर, “द्विजातींनीं सायंकालीं व प्रातःकालीं भोजन करणें, हे श्रुतिप्रणीत आहे” ह्या वचनांतील प्रातःशब्दासारखा अपराह्णकालाचा मानल्या अशांनाही उपपत्ति होते. आतां असें म्हटलें तर प्रातःकालींच पारणा करावी, हे वाक्य व्यर्थ होईल असें म्हणूं नये. कारण, पुनर्भोजन व सायंकालीं पारणा यांची निवृत्ति होण्यासाठीं तें वचन सार्थक आहे, असें म्हणतात.

प्रमादेनएकादशुपवासातिक्रमे अपराह्णैवाराहे एकादशीविभुताचेद्वादशीपरतःस्थिता उपोष्याद्वादशीतत्रयदीच्छेत्परमंपदमिति कैश्चित्तुविष्णुनाचेदितिपठितम् अत्राविरोधिनोनियमाः सर्वव्रतेषुबोद्धव्याः अन्येचनवरात्रेवक्ष्यंतेइतिदिक् इतिश्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौएकादशीनिर्णयः ।

प्रमार्देकरून एकादशीचें उपोषण घडलें नसतां सांगतो—अपराकांत वाराहपुराणांत—“जर एकादशीस उपोषण झालें नाही आणि दुसऱ्या दिवशीं द्वादशी आहे तर द्वादशीस उपोषण करावें.” कित्येकांनीं तर—“एकादशी विमुक्ताचेत्” ह्या ठिकाणीं “एकादशी विष्णुनाचेत्” असा पाठ केलेला आहे. ह्या एकादशीव्रताचे ठायीं सांगितलेले नियम अविरोध असतील ते सर्व व्रतांचे ठायीं जाणावे. इतर नियम नवरात्रप्रकरणीं पुढें सांगूं. ही दिशा दाखविली आहे. इति श्रीएकादशीनिर्णयाची महाराष्ट्रीका समाप्त झाली ॥

द्वादशीतुपूर्वेव युग्मवाक्यान् द्वादशीतुप्रकर्तव्याएकादश्यायुताप्रभो इतिस्कांदाच्च त्रयोदशीतु सर्वमतेशुक्लापूर्वाकृष्णोत्तरा त्रयोदशतिथिःपूर्वःसितोथाऽसितःपश्चादितिदीपिकोक्तेः शुक्लात्रयोदशीपूर्वा- पराकृष्णत्रयोदशीतिमाधवाच्च चतुर्दशीसर्वमतेकृष्णापूर्वाशुक्लोत्तरा उपवामेतुद्वयपिपरेतिमदनरत्ने ।

द्वादशीचा निर्णय—सामान्य कर्माविषयीं द्वादशी पूर्वा (एकादशीयुक्त) ध्यावीः कारण, एकादशी व द्वादशी यांचें युग्म आहे; आणि “एकादशीयुक्त द्वादशी करावी” असें स्कंदपुराणवचनही आहे. **त्रयोदशीचा निर्णय**—सर्वांचे मतीं शुक्लपक्षांची त्रयोदशी पूर्वा करावी; कृष्णपक्षांची उत्तरा करावीः कारण, “शुक्लपक्षांची त्रयोदशी तिथि पूर्वा आणि कृष्णपक्षांची त्रयोदशी तिथि परा करावी” असें दीपिकावचन आहे. व “शुक्ल त्रयोदशी पूर्वा आणि कृष्ण त्रयोदशी परा करावी” असें माधववचनही आहे. **चतुर्दशीचा निर्णय**—रावेमतीं कृष्णचतुर्दशी पूर्वा व शुक्लचतुर्दशी परा करावी. उपवासाविषयीं तर शुक्ल व कृष्ण दोन्ही चतुर्दशी परा कराव्या असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे.

पौर्णिमास्यमावास्येतुसावित्रीव्रतंविनापरेग्राह्ये भूतविद्धेनकर्तव्येदर्शपूर्णकदाचन वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठसावित्रीव्रतमुत्तममिति ब्रह्मवैवर्तात् अमायायोगविशेषमाहाऽपराकेशातातपः अमावास्यांभवेद्वारोयदा- भूमिसुतस्यवै जाह्नवीस्नानमात्रेणगोसहस्रफलंलभेत् अमावसोमवारेणरविवारेणसप्तमी चतुर्थीभौमवारेण- विषुवत्सहस्रफलं तत्रैवव्यासः सिनीवालीकुहूवापियदिसोमदिनेभवेत् गोसहस्रफलंदद्यात्स्नानंवैमोनिना- कृतम् हेमाद्रौबृहन्मनुः श्रवणाश्विधनिष्ठाद्रानागदैवतमस्तके यद्यमारविवारेणव्यतीपातःस उच्यते नागदैवतंआश्लेषा मस्तकोमृगशिरः प्रथमपादइत्यन्ये सचसर्वेपाम ।

पौर्णिमा व अमावास्या यांचा निर्णय—पौर्णिमा व अमावास्या ह्या दोन तिथि सावित्रीव्रत खेरीज करून परा ध्याव्या; कारण, “हे मुनिश्रेष्ठ, सावित्रीव्रताखेरीज अमावास्या, पौर्णिमा, ह्या तिथि चतुर्दशीवद्ध कधीही करूं नयेत” असें ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. **अमावास्याचे ठायीं विशेष योग सांगतो**—अपराकांत-शातातप—“अमावास्यास भौमवार असेल तर भागीरथांत स्नान केल्याने गोसहस्रदानाचें फल प्राप्त होतें, सोमवारयुक्त अमावास्या, रविवारयुक्त सप्तमी, आणि भौमवारयुक्त चतुर्थी यांचे ठायीं स्नान दान केलें असतां विषुवसंकांतीसारखे फल होतें.” **अपराकांत-व्यास**—“जर सोमवारीं सिनीवाली किंवा कुहू अशी अमावास्या येईल आणि त्या दिवशीं मोनी होतसाता स्नान करील तर गोसहस्रदानफल प्राप्त होईल.” **हेमाद्रौत-बृहन्मनु**—“रविवारयुक्त अमावास्याचे ठायीं श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा, मृग, यांतून कोणतेंही नक्षत्र असेल तर तो व्यतीपात म्हटला आहे.” अन्य म्हणतात—मृगावांचून बाकीच्या वरील नक्षत्रांचा प्रथमपाद असेल तर व्यतीपात योग होतो.

अथेष्टिकालः गोभिलः पक्षांताउपवस्तव्याः पक्षादयोऽभियष्टव्याइति उपवासोन्वाधानम् तत्र मध्याह्नेतत्पूर्वपर्वप्रतिपत्संधौतद्दिनेयागः पूर्वाह्णेवाऽथमध्याह्नेयदिपर्वसमाप्यते उपोष्यतत्रपूर्वेद्युस्तदहर्याग- इष्यतइतिलौगाक्षिवचनात् अत्रचद्वेधाविभागः आवर्तनातुपूर्वाह्णेपराराहस्ततःपरः मध्याह्नुतयोः संधिर्यदावर्तनमुच्यतइति **मदनरत्ने**वचनात् मध्याह्नादूर्ध्वसंधौ **माधवमते**परेऽह्नियागः अपराह्नेऽथवा रात्रौयदिपर्वसमाप्यते उपोष्यतस्मिन्नहनिश्वोभूतेयागइष्यतइति **लौगाक्षिणोक्तेः हेमाद्रिस्त्वपराह्-** संधावपिपरदिनेप्रतिपच्चतुर्थीशेचंद्रोदयेचसतिद्वितीयादिष्वत्यंतक्षयेसतिपूर्वेद्युयागः पर्वणंशेद्वितीयेतुयष्टव्यं तुद्विजातिभिः द्वितीयासहितंयस्मादूर्ध्वयंत्याश्वलायनाइति द्वितीयेत्वितिकैमुतिकन्यायेनतुर्यांशपरम् तुरीयेत्विति शूलपाणौपाठःस्पष्टार्थएव तथा भूतापंचदशीपूर्णाद्वितीयाक्षयगामिनी चरुरिष्टिरमायांस्याद्भूते-

१ सादृष्टेऽऽसिनीवाली सानष्टेऽडुकला कुहूरित्यमरः. अर्थ—ज्या अमावास्यास पक्षांतें चंद्र दिसतो ती सिनीवाली, आणि चंद्र दिसत नाही ती कुहू होय.

कव्यादिकीक्रियेतिबौधायनवचनाच्चेतूचिवान् मदनरत्नेषि चतुर्दशीचतुर्यामाअमावास्यानदृश्यते
श्रोभूतेप्रतिपक्षेत्स्यात्पूर्वातत्रैवकारयेदिति ।

यानंतर इष्टिकालाचा निर्णय सांगतो.

गोभिल—“पक्षाच्या शेवटच्या तिथि (अमावास्या व पौर्णिमा) हे उपवासाचे (अन्वाधानाचे) काल आणि पक्षाच्या आय तिथि (प्रतिपदा) यागचे काल होत.” अन्वाधानाचें नांव उपवास. मध्याह्नकालीं किंवा त्याच्या पूर्वी पर्वाचा (अमावास्यापौर्णिमांचा) व प्रतिपदेचा संधि असेल तर त्या दिवशीं याग करावा. कारण, “पूर्वाह्नकालीं किंवा मध्याह्नकालीं जर पर्व समाप्त होत असेल, तर पूर्वदिवशीं अन्वाधान करून त्या दिवशीं याग करावा” असें लौगाक्षीवचन आहे. येथें दिवसाचे दोन भाग करावे, कारण “सूर्योदयापासून दोन प्रहर (पहिला अर्धाभाग) तो पूर्वाह्नकाल, आणि दिवसाचा पुढचा अर्धा भाग तो अपराह्नकाल. पूर्वाह्नाची शेवटची एक घटिका व अपराह्नाची प्रथमची एक घटिका मिळून संधिभूत ज्या दोन घटिका (एक मुहूर्त) तो मध्याह्न. त्यालाच आवर्तन असें म्हणतात” असें मदनरत्नांत वचन आहे. मध्याह्नोत्तर संधि असेल तर माधवाच्या मर्ती परदिवशीं याग करावा. कारण “अपराह्नकालीं किंवा रात्रीं जर पर्व समाप्त होईल तर त्या दिवशीं अन्वाधान करून दुसऱ्या दिवशीं याग करावा” असें लौगाक्षीचें वचन आहे. हेमाद्रि तर—अपराह्नकालीं संधि अगला तरी जर दुसऱ्या दिवशीं प्रतिपदेच्या चवथ्या अंशी चंद्रोदय असेल आणि द्वितीयादि तिथि अत्यंत क्षीण झालेल्या अगतील तर पूर्वदिवशीं याग करावा. कारण, “द्विजार्त्तांनीं पर्वाचे द्वितीय भागीं याग करावा. कारण, आश्वलायनशास्त्री द्वितीयागहित याग दूषित आहे, असें म्हणतात.” ‘द्वितीय भागीं’ असें सांगितलें तें कैमुतिक-न्यायानें चतुर्थभागीं जाणावें. शूलपाणिप्रश्नांत ‘पर्वणोशे तुरीये तु’ अगा पाठ आहे, त्याचा अर्थ—“पर्वाचे चतुर्थ-भागीं” असाच होतो. तसेंच “चतुर्दशी पूर्णा असून अमावास्या किंवा पौर्णिमा पूर्णा आहे, आणि द्वितीया क्षयगमिनी आहे तर स्वल्प अमावास्यायुक्त चतुर्दशीम अन्वाधान व धाद्र कळून अमावास्यास याग करावा” असें बौधायनवचन आहे, असें (हेमाद्रि) मांगता झाल्या. मदनरत्नांतही “पूर्वदिवशीं चवथ्या प्रहरपर्यंत चतुर्दशी आहे, अमावास्या अपरा-ह्नांत नाही, आणि दुसऱ्या दिवशीं प्रतिपदा आहे तर (अन्वाधानादिकांविषयीं) पूर्वाची चतुर्दशीयुक्त अमावास्या ध्यावी.”

यजुन्माधवः यस्तुवाजसनेयीस्यातस्यसंधिदिनात्पुरा नकाप्यन्वाहितिः किंतुसदासंधिदिनेहिसेत्याह
यच्चकालादर्शयुक्तं आवर्तनाद्धःसंधिर्यगन्वाधायतद्दिने परेगुरिष्टिरित्याहुर्विप्रावाजसनेयिनइति
यच्चमदनरत्ने मध्यंदिनात्स्यादहनीहयस्मिनप्राक्पूर्वणःसंधिरियंतृतीया साखर्विकावाजसनेयिमत्यातस्या-
मुपोष्याथपरेगुरिष्टिरिति एतत्पौर्णमासीपरमितितत्रैव आवर्तनोर्ध्वमर्वागस्ताद्रात्रौवासमाप्रौढे मध्याह्नादर्वा-
क्समाप्रौढतीत्यर्थः तत्कर्कभाष्य, देवजानी, श्रीअनंतभाष्य इत्यादिक तच्छास्त्रीयग्रंथांशीं विरुद्ध असल्यामुल्लं-
घानादराक्षोपेक्ष्यम् ।

आतां जें माधव—“जो वाजसनेयी शास्त्रेचा आहे त्याला संधिदिवसांच्या पूर्वदिवशीं कोठेही अन्वाधान सांगितलें नाहीं, तर त्याला संधिदिवशांचे अन्वाधान आहे” असें सांगता झाल्या. आणि जें कालादर्शांतही सांगितलें आहे की, “जर आवर्तनकालाचे पूर्वी संधि असेल तर त्या दिवशीं अन्वाधान करून दुसऱ्या दिवशीं याग करावा, असें वाजसनेयी ब्राह्मण सांगतात.” आणि जें मदनरत्नांत—“ज्या दिवशीं मध्यंदिनाच्या पूर्वी पर्वसंधि असेल तर ही संधि तिसरी होय. वाजसनेयी यांच्या मर्ती ती तिथि खर्विका आहे. त्या संधिदिवशीं अन्वाधान करून दुसऱ्या दिवशीं याग करावा.” हें वचन पौर्णमासीविषयक होय असें त्याच ठिकाणीं सांगितलें आहे. आवर्तनानंतर आणि अस्ताच्या पूर्वी तिथि समाप्त होते ती एक, रात्रीं समाप्त होणारी ती दुसरी आणि आवर्तनाच्या (मध्यंदिनाच्या) पूर्वी समाप्त होते ती तिसरी संधि जाणावी. तें माध-वादिकांनीं सांगितलें; कर्कभाष्य, देवजानी, श्रीअनंतभाष्य इत्यादिक तच्छास्त्रीयग्रंथांशीं विरुद्ध असल्यामुल्लं आणि वृद्धांना तें अमान्य असल्यामुल्लं अप्राप्य होय.

पौर्णमास्यांविशेषमाह कात्यायनः संधिश्चेत्संगवाद्ध्वं प्राक्पर्यावर्तनाद्रवेः सापौर्णमासीविज्ञेयासद्य-
स्कालविधौनरैः अमायांविशेषमाह बौधायनः द्वितीयात्रिमुहूर्तांचेनप्रतिपद्यापराह्निकी अन्वाधानांचतु-
र्दश्यांपरतःसोमदर्शनात् कात्यायनश्च यजनीयेऽह्निसोमश्चेद्धारण्यादिशिदृश्यते तत्रव्याहृतिभिर्वृत्वा-

१ चतुर्थे वामे अमावास्या संपूर्णा न दृश्यते किं स्ववसाने स्वस्था साच परदिने क्षीयते तदानीं चतुर्दश्यां माद्रमाचरेत् ।
चतुर्दश्याश्चतुर्थ्यां अमावास्या न दृश्यते । श्रोभूते प्रतिपद्य भूते कव्यादिकी क्रियेति माधवीये पाठान्तरम् ॥

दंडं दद्याद्दिजातयइति एतच्चवौधायनवाजसनेयिविषयं तैत्तिरीयश्रुतौ तु चंद्रदर्शनेऽपि याग उक्तः एषा वै-
सुमनानामेष्टिर्यमैद्यजानन् पश्चाच्चंद्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवास्मै लोकेऽर्घुर्कं भवतीति श्रुत्यंतरेऽपि यदहः पश्चा-
च्चंद्रमा अभ्युदेतितदह्यजन्निर्माँल्लोकानभ्युदेतीति इदं बह्वृचापस्तंबविषयं मदनरत्नेष्वेवं आपस्तंबभा-
ष्यार्थसंग्रहेष्वेवम् अतः पक्षद्वयस्य स्वस्वसूत्राद्व्यवस्थेति तत्त्वम् दृपयंत्याश्रलायनादितु पूर्वाह्नसंविषय-
मिति माधवः ।

पौर्णमासीविषयीं विशेष सांगतो-कात्यायन-“संगवकालानंतर अर्ध्या दिवसाच्या पूर्वी संधि असेल तर ती
पौर्णमासी सद्यस्काला होय, म्हणजे पौर्णिमेंत संधिविषयांच अन्वाधान करून तत्कालीच याग करावा.” अमावास्ये-
विषयीं विशेष सांगतो-वौधायन-“प्रतिपदेचे दिवशीं अपराह्णकालीं त्रिसुहृतेपरिमित द्वितीया असेल तर चतु-
र्दशीस अन्वाधान करून अमावास्येस याग करावा. कारण, दुसऱ्या दिवशीं चंद्रदर्शन आहे.” कात्यायनही “ज्या दिवशीं
याग केला असेल त्या दिवशीं पश्चिमेस चंद्रदर्शन होईल तर चंद्रदर्शनप्रयुक्त दोषपरिहारार्थ व्याहृतिमंत्रांनीं प्रायश्चित्तहोम
करून ब्राह्मणाला दंड द्यावा.” हें वचन वौधायन व वाजसनेयी एतद्विषयक होय. तैत्तिरीयश्रुतीन तर चंद्रदर्शनयुक्त
प्रतिपदेचे दिवशींही याग सांगितला आहे. तो असाः-“चंद्रदर्शनयुक्त दिवशीं जी इष्टि करी जाते ती सुमनानामक इष्टि
जाणावी, तशी इष्टि करणाऱ्या यजमानास अभिलक्षून त्याच दिवशीं पश्चिमदिशेन चंद्र दृष्टिगोचर होतो, व तो यागकर्त्या
यजमानास समृद्धिकारक होतो.” दुसऱ्या श्रुतीतही-“ज्या दिवशीं पश्चिमेन चंद्रादय होतो त्या दिवशीं याग केला असतां
यागकर्त्याचा अभ्युदय होतो.” हें श्रुतिवचन बहुच व आपस्तंब यांविषयीं आहे. मदनरत्नांतही असेंच सांगितलें आहे.
आपस्तंबभाष्यार्थसंग्रहांतही असेंच आहे, म्हणून ह्या दोन पक्षांची आपापल्या सूत्राप्रमाणे व्यवस्था जाणावी, हें तत्त्व
होय. “आश्वलायन, द्वितीयासहित याग दूषित आहे असें म्हणणान्” असें जें पूर्वीक वचन तें तर पूर्वाह्नसंविषयक
आहे असें माधव सांगतो.

शेषपर्वणीष्टौ विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः प्रतिपद्यर्वाष्टयायदिचेष्टिः समाप्यते पुनः प्रणीयकृत्स्नेष्टिः
कर्तव्यायागवित्तमैः गृह्याभेनान्यनियमइति मदनपारिजातः एवं पर्वायांशः प्रतिपदश्च त्रयोऽंशायागकाल-
उक्तः क्वचित् प्रतिपत्तुर्योऽपि यागः संधिर्यद्यपराहंस्याद्यागंग्रातः परं इह नि कुर्वाणः प्रतिपद्वांगे चतुर्थेऽपि निदु-
ष्यतीति वृद्धशातातपोक्तेः एतत्पूर्णमापरमिति मदनरत्ने पर्वणि प्रतिपदः क्षयस्य वृद्धेश्चार्धप्रक्षिप्यसंधि-
ज्ञेयः तदाह माधवः वृद्धिः प्रतिपदोयास्तितदर्थपर्वणि क्षिपन् क्षयस्यार्धतथाक्षिप्वांसंधिर्निर्णयतांसेदिति
कात्यायनोपि परेह्यष्टिका न्यूनास्त्येवात्यधिकाश्च याः तदर्थकृत्पूर्वस्मिन् ह्यास वृद्ध्या प्रकल्पयेदिति एवं-
स्मार्तस्थालीपाकेपि ज्ञेयम् तत्रेष्टिस्थालीपाकावाधानगृहप्रवेशनीयहोमानंतरं भाविन्यां पौर्णमास्यां प्रारंभणीयान-
तुदर्शे यद्यारंभेमलमासपौर्णमासगुरुशुक्रास्तादिभवतितद्राग्यारंभः कार्यः ।

शेष (उर्वरित) पर्वाचे ठायीं इष्टीविषयीं विशेष सांगतो-माधवीयांत-गार्ग्य-“प्रतिपदा तिथि प्रविष्ट
झाली नसतां पर्वांचे ठायीं यागाची समाप्ती होईल तर यागवेत्त्यांनीं पुनः अग्निप्रणयन करून सर्व इष्टि करावी.” हा पुनः
इष्टि करण्याचा नियम गृह्याम्रीला नाही, असें मदनपारिजात सांगतो. याप्रमाणे पर्वाचा शेवटचा अंश आणि प्रतिपदेचे
पहिले तीन अंश मिळून यागकाल विहित होय. क्वचिद्धंयांत प्रतिपदेच्या चतुर्थभागांही याग सांगितला आहे. कारण,
“पौर्णिमेचा किंवा अमावास्येचा संधि जर अपराह्णकालीं असेल तर दुसऱ्या दिवशीं प्रातःकालीं प्रतिपदेच्या चतुर्थभागांही
याग केला असतां दोष नाही” असें वृद्धशातातपाचें वचन आहे. हें वचन पूर्णिमाविषयीं होय असें मदनरत्नांत
सांगितलें आहे. पर्व खंडित असेल तर पर्वापेक्षां प्रतिपदेच्या क्षयवृद्धीच्या घटिका मोजून निम्मे घटिका पर्वांत कमी जास्त
करून संधि जाणावा. तेंच सांगतो-माधव-“पर्वापेक्षां प्रतिपदेची वृद्धि असतां वृद्धीच्या ज्या घटिका त्यांच्या निम्मे
घटिका पर्वांत मिळवाव्या; आणि क्षय असतां जितक्या घटिका पर्वापेक्षां कमी असतील त्यांच्या निम्मे पर्वांत कमी कराव्या
व त्यावरून संधिकालाचा निर्णय करावा.” कात्यायनही-“दुसऱ्या दिवशीं प्रतिपदेच्या घटिका न्यून किंवा अधिक
असतील त्यांतून अर्ध्या घटिका, क्षय असतां पर्वांत कमी कराव्या व वृद्धि असतां मिळवाव्या, याप्रमाणे पूर्वेदिवशीं पर्वांत
कमीज्यास्ती करून संधि जाणावा.” स्मार्त स्थालीपाकाविषयींही याप्रमाणेच संधिनिर्णय जाणावा. इष्टि आणि स्थालीपाक
यांचा प्रथम आरंभ करणें तो आधान (अभ्याधान) व विवाहांतील गृहप्रवेशनीयहोम हे झाल्यानंतर येणाऱ्या पौर्णिमेचे

ठायीं करावा, दर्शांचे ठायीं प्रारंभ करूं नये. प्रथमारंभ जर जवळचे पौर्णिमेस कर्तव्य असेल आणि मलमास, पौषमास, गुरुशुक्रांचे अस्तादिक प्राप्त असतील तरी देखील आरंभ करावा.

यानितु उपरागोधिमासश्चयदिप्रथमपर्वणि तथा मलिम्लुचेपौषेनान्वारंभणमिष्यते गुरुभार्गवयोर्मौह्ये-
चंद्रसूर्यग्रहेतथेति **संग्रहवचनानि** तानि आलस्यादिनातिकांतशुद्धकालप्रारंभविषयाणि नामकर्मचदर्शेष्टिय-
थाकालंसमाचरेत् अतिपातेसतितयोः प्रशस्ते मासि पुण्यभट्ट्य **पराकैर्गर्गवचनादिति प्रयोगपारिजाते**
उक्तंचैतत् **प्रयोगरत्ने भट्टैः कालादर्शेतु** नामकर्मचजातेष्टिमिति पाठः **याज्ञिकास्तु** आधानानंत-
रापौर्णमासीचे नमलमासगा तस्यामारंभणीयादीन्नकुर्वीतकदाचनेति **त्रिकांडमंडनवचनाच्छुद्धकालएववि-**
भ्रष्टेष्टिकृत्वारंभं कुर्यादित्याहुः कालादर्शस्मृतिसंग्रहेपि आरंभदर्शपूर्णेश्वोरग्रिहोत्रस्यचादिमं प्रतिष्ठाः
पंचकूर्माद्यामलमासेविवर्जयेदिति ।

आतां जीं “ग्रहण, अधिकमास, मलिम्लुच (क्षयमास), पौष, गुरुशुक्रांचे अस्तादिक, चंद्रसूर्यांचीं ग्रहणं यांतून कोण-
तेही प्रथम पौर्णिमेचे ठायीं अंमल तर त्या दिवशीं आरंभ करूं नये” अशीं संग्रहवचनं, तीं आलस्यादिकानें प्राप्तकालाचा
अतिक्रम होऊन इतर कालीं आरंभ करावयाचा असेल तद्विषयक होत. कारण, “नामकर्म, दर्शेष्टि, हीं प्राप्तकालीं करावीं; त्या
कालीं करावयाचीं राहतील तर प्रशस्तमासी पुण्याश्चर्यां करावीं” असे **अपराकांत गगवचन** आहे, असें **प्रयोगपारि-**
जातांत सांगितलें आहे. हें **नारायणभट्टांनींही प्रयोगरत्नांत** सांगितलें आहे. **कालादर्शांत** तर—“**नामकर्म**
च दर्शेष्टि” एथें “**जातेष्टि**” असा पाठ आहे. **याज्ञिक** तर—“आधान केल्यानंतर जी रजिद्विष्ट पौर्णिमा ती मलमा-
सगत असेल तर तिचे ठायीं आरंभणीय कर्म (ज्यांचा आरंभ पूर्वा केलेला नाही अशीं कर्म) कदापि करूं नयेत” ह्या
त्रिकांडमंडनवचनावरून शुद्धकालीन विभ्रंशेष्ट करून आरंभ करावा, असें म्हणतात. **कालादर्शांत-स्मृतिसंग्र-**
हांतही “दर्शपौर्णमासेष्टि व अग्रिहोत्र यांचा प्रथमारंभ, कूर्मादिकांच्या पांच प्रतिष्ठा, हीं मलमासांत करूं नयेत.”

अथविकृतीष्टिः तत्रापस्तंबः यदीष्टयाद्यदिपशुनायदिमोमेनयजेत सोमावास्यायांपौर्णिमास्यांचेति
अत्रप्रकृतितः कालेसिद्धेपिमस्यकालतार्थवधेया तृतीययामांगत्वेनोक्तः अत्रपौर्णिमास्यमावास्याशब्दाभ्यांतद्वय-
क्षणो गृह्यते तेनतद्वयहोरात्रइत्यर्थमाह **रामांडारः माधवोपि** इत्यादिविकृतिः सर्वापर्वण्येवंति निर्णयइति ।

आतां विकृतीष्टींच्या कालाचा निर्णय सांगतो.

त्याविषयी **आपस्तंब**—“जर इष्ट, पशुनाग, किंवा सोमयाग करणें आहे, तर तो अमावास्या व पौर्णमासी यांतून
कोणत्याही पक्षाचे ठायीं करावा.” ‘प्रकृतीप्रमाणें विकृत करायी’ या वचनानें प्रकृतीचा (दर्शपौर्णमासेष्टीचा) काल ह्या
विकृतीविषयी सिद्ध असतो हे वचन, त्या विकृतीचा गत्यकालत्व (अमावाधान व याग यांना एककालत्व) विधान करण्यासाठीं
आहे. कारण, ‘इष्ट्या, पशुना’ ह्या पदांत तृतीयाधिमर्क अगत्यामुळे सांगकर्म त्याच दिवशीं करावें, असें सूचित होतें.
ह्या स्थळीं पौर्णमासी अमावास्या शब्दांनीं त्यांचा अंत्यक्षण ध्यावा, म्हणजे अंत्यक्षणयुक्त अहोरात्राचे ठायीं, असा अर्थ
रामांडार सांगतो. **माधवही**—“इष्ट्यादिक रवे विकृति पक्षाचे ठायींच कराव्या असा निर्णय जाणावा.”

अत्रविशेषमाहत्रिकांडमंडनः कात्यायनश्च आवर्तनानुप्राग्यदिपर्वसंधिः कृत्वातुतस्मिन्
प्रकृतिविकृत्याः तदैवयागः परतोयदिस्यात्तस्मिन्विकृत्याः प्रकृतेः परं गुरिति धूर्तस्वाम्यादयोप्येवमाहुः
यदीष्टयेतिसांगायाविकृतेः पर्वकालत्वादावर्तनानुप्राक्संधौ संधिमभितोयजेतेति प्रकृतेः प्रतिपदिसमाप्तिनियमात्
प्रकृत्यनंतरं प्रतिपदिविकृत्ययोगात्पूर्वैव विकृतिरित्युक्तं तत्ररत्नेपार्थसारथिना यद्यपि प्रकृतेः पूर्वत्वात्पूर्व-
मंतेत्यादित्यापस्तंबेनोक्तं तथापि हेतुवादेन श्रुतिमूलत्वाभावादंग्वांसमभिध्याहारादितिवदप्रा-
माण्यमितितदाशयः **आग्रयणे** तु विशेषपंवक्ष्यामः अन्वारंभणीयातुचतुर्दश्यां कार्येति हिरण्यकेशिबृ-
त्तौमातृदत्तीये अन्येषांपर्वण्येव ।

याविषयी विशेष सांगतो—त्रिकांडमंडन व कात्यायन—“आवर्तनाचे पूर्वी जर पर्वसंधि असेल तर त्या
संधिदिवशीं प्रकृतियाग करून नंतर विकृतियाग त्याच दिवशीं करावा. जर आवर्तनकालापलीकडे पर्वसंधि असेल तर त्या
दिवशीं विकृतियाग करावा; आणि प्रकृतियाग संधिदिवसाच्या दुसऱ्या दिवशीं करावा.” **धूर्तस्वाम्यादिक** ग्रंथकारही
असेंच सांगतात. “यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत” ह्या **आपस्तंबवचनानें** सांग विकृतीचा काल पर्व (अमा-

मास्या पौर्णिमा) सांगितल्यावरून व आर्वेनाच्या पूर्वी संधि असतां “संधीच्या पूर्वी व पलीकडे याग करावा” ह्या वचना-
वरून प्रकृतीची समाप्ति प्रतिपदेंत करावी असा शास्त्रनियम असल्यामुळें प्रकृतीनंतर प्रतिपदेंत विकृति होत नसल्यामुळें
पूर्वदिवशी विकृति करावी, असें तंत्ररत्नांत पार्थसारथीनें सांगितलें आहे. जरी “प्रकृति ही पहिली असल्यामुळें
अपूर्व कर्म जें विकृति तें शेवटीं करावें” असें आपस्तंबानें सांगितलें आहे, तथापि त्या आपस्तंबवचनांत हेतुवाद
(म्हणजे प्रकृति पूर्वी असण्याला हेतु प्रकृति पहिली आहे, आणि विकृति नवीन आहे, म्हणून ती नंतर असावी, असें
कारण) असल्यामुळें या सांगण्याला मूलश्रुति नाहीं म्हणून जसें—काल्यायन शाखेंत पिंडपितृयज्ञ दर्शश्राद्धाच्याबरोबर
सांगितल्यामुळें तो दर्शचें अंग आहे: पण अशा हेतूनें सांगितलेलें अंगत्व सर्वांना प्रमाणभूत होत नाहीं—तसें येथें प्रामाण्य
नाहीं, असा पार्थसारथीचा आशय होय. आप्रयणाविषयी विशेष निर्णय पुढें (द्वितीय परिच्छेदांत) सांगूं.
अन्वारंभणीया इष्टि चतुर्दशीचे दिवशीं करावी, असें हिरण्यकेशिसूत्राचे मातृदत्तीयुक्तींत आहे. इतरांनीं
पर्वीचे ठायींच करावी.

पशौसोमेचकालांतरमप्याहबौधायनः आमावास्येनवाहविषेष्टानक्षत्रेचेति शुक्लपक्षेकृत्तिकादिविशा-
खातेषुदेवनक्षत्रेष्वितिकेशवस्वामीव्याचख्यौ चातुर्मास्येष्वपिद्वादशाह्यथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रेष्वप्या-
रंभः यावज्जीवसांवत्सरप्रयोगोस्तुफाल्गुन्यांचैत्र्यावारंभः पशौविशेषमाहकात्यायनः अर्धादहोभव-
तिनियतंपर्वसंधिःपरस्तात्कृत्वातस्मिन्नहनिनुपशुंसद्यएवब्रह्म आरंभ्याथप्रकृतिरथचेत्पर्वसंधिःपुरस्तात्कृत्वा-
तस्मिन्प्रकृतिमथतुस्यात्पशुःसद्यएव अधिकारपशुस्त्वग्नीषोमीयेणसवनीयेनवासमानतंत्रोवाकार्येति
त्रिकांडमंडनः ।

पशुयाग व सोमयाग यांविषयी दुसराही काल सांगतो—बौधायन—“आमावास्येन वा हविषेष्टानक्षत्रे
क्ष” नक्षत्रे च याचा अर्थ—शुक्लपक्षांत कृत्तिकेपासून विशाखेपर्यंत जीं नक्षत्रें तीं देवनक्षत्रें होत, त्यांचे ठायीं पशुयाग
व सोमयाग करावा असें केशवस्वामी सांगतो. **चातुर्मास्यांचा काल सांगतो—**चातुर्मास्यांच्या प्रयोगाचे चार पक्ष
आहेत. ते असेः—द्वादशाहपक्ष, यथाप्रयोगपक्ष, यावज्जीवपक्ष आणि सांवत्सरप्रयोगपक्ष. प्रथम दिवशीं वैश्वदेवपर्व,
चवथ्या दिवशीं वरुणप्रघासपर्व, आठवा व नववा ह्या दिवशीं साकमेघपर्व, बाराव्या दिवशीं शुनासीरीयपर्व, असा बारा
दिवसांचा जो पक्ष तो द्वादशाहपक्ष. पांच दिवसांनीं समाप्ति करणें तो यथाप्रयोगपक्ष. द्वादशाहपक्ष व यथा-
प्रयोगपक्ष यांचा आरंभ उदगयनांत शुक्लपक्षीं देवनक्षत्राचें ठायींही (कृत्तिकेपासून विशाखांपर्यंत जीं नक्षत्रें तीं देवनक्षत्रें
त्यांचे ठायींही) करावा. यावज्जीवपक्ष व सांवत्सरपक्ष यांचा आरंभ वैत्री किंवा फाल्गुनी पौर्णिमा यांतून कोणत्याही
दिवशीं करावा. **पशुयागाविषयी विशेष सांगतो—कात्यायन—**“जर दिवसाच्या उत्तरार्धांत पर्वसंधि असेल तर
त्या संधिदिवशीं सद्यस्काल किंवा बृहत्काल (दोन दिवस करणें तो) असा पशुयाग करून प्रकृतीचा आरंभ करावा: आणि
पर्वसंधि दिवसाच्या मध्याह्नी किंवा पूर्वाह्नी असेल तर संधिदिवशीं प्रकृति समाप्त करून सद्यस्कालिक पशुयाग करावा.”
अधिकारपशुयाग तर अग्नीषोमीय पशु अथवा सवनीय पशु यांसह समानतंत्र करावा, असें त्रिकांडमंडन सांगतो.

सोमेत्वाहापस्तंबः अमावास्यायां दीक्षायजनीयेवामावास्यायां यजनीयेवासुत्यमहः पौर्णिमास्यां दी-
क्षायजनीयेवापौर्णिमास्यां यजनीयेवासुत्यमहरिति लाट्यायनसूत्रेपि पूर्वपक्षस्य प्रथमेहनिदीक्षेतदृष्ट्वा वान-
क्षत्रयोगेचेति पूर्वपक्षःशुक्लपक्षः नक्षत्रयोगेचेत्यमर्थः चैत्र्यादिपूर्णिमायाश्चित्रानक्षत्रयोगेदीक्षेतेति ।

सोमाविषयी सांगतो.

आपस्तंब—“सोमयागाची दीक्षा अमावास्येस किंवा यजनीयदिवशीं (प्रतिपदेस) घ्यावी. अमावास्यास किंवा यज-
नीयदिवशीं सुल्य दिवस (सोमरस तयार करण्याचा दिवस) समजावा. पौर्णिमेस किंवा यजनीयदिवशीं दीक्षा घ्यावी.
पौर्णिमेस किंवा यजनीयदिवशीं सुल्य दिवस समजावा.” **लाट्यायनसूत्रांतही—**“शुक्लपक्षीं प्रतिपदेस दीक्षा घ्यावी,
किंवा चैत्री इत्यादि पौर्णिमेस चित्रादि नक्षत्राचा योग असतां दीक्षा घ्यावी.”

आधानंतुपर्वणिनक्षत्रेषुचोक्तम् तत्रपर्वनक्तं गार्हपत्यमादधीतेत्यादिकर्मकालव्यापिग्राह्यम् दिनद्वयेतत्त्वेपरं
प्राज्ञं संकरूपस्यपर्वणिनाभात् पूर्वनक्षत्रयोगेतदेवग्राह्यम् यत्रत्रीणिसन्निपतितान्यतुर्नक्षत्रंचपर्वतत्समृद्धविप्र-
सिषेधेऋतुर्नक्षत्रंचबलीयइति हिरण्यकेशिसूत्रात् ऋतुर्वसंतैर्ब्राह्मणोमीनादधीतेत्यादिः रेणुकारि-
कार्यांतु माघादिपंचमासेषुश्रावणेबाश्विनेतथा मार्गशीर्षेशुक्लपक्षेआधानमथकारयेदित्युक्तं अत्रमूलमृग्यम्

आधाननक्षत्राणि तु आपस्तंबसूत्रे कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपुष्यपूर्वोत्तरापूर्वाषाढोत्तराषाढाहस्ताचि-
त्राविशाखाऽनुराधाश्रवणोत्तराभाद्रपदा इति ।

आधान—आधान करणें तें पर्वदिवशीं आणि नक्षत्राचे ठायीं सांगितलें आहे. आधानासाठीं पर्व घेणें तें, “रात्रीं गार्हपत्याधान करावें” इत्यादि वाक्यानें प्रतिपादित जो कर्मकाल त्याला व्यापून असेल तें घ्यावें. दोन दिवशीं पर्व कर्मकाल-
व्यापी असेल तर दुसऱ्या दिवसाचें घ्यावें. कारण, तसें घेतलें असतां पर्वांत संकल्प होतो. पूर्वदिवशीं नक्षत्रयोग असेल
तर पूर्वदिवसाचें घ्यावें. कारण, “ऋतु (वसंतऋतु), पर्व, आणि उक्त नक्षत्र या तिहींचा एककालीं योग असेल तर तो
अति उत्तम. पर्व एक दिवशीं आणि ऋतुनक्षत्र एक दिवशीं असेल तर पर्वापेक्षां ऋतु व नक्षत्र श्रेष्ठ” असें हिरण्यकेशिसूत्र
आहे. ऋतु म्हणजे “ब्राह्मणानें वसंतऋतूंत आधान करावें.” इत्यादिवाक्यप्रतिपादित वसंत ऋतु जाणावा. **रेणुकारि-**
कैतव—“माघादि पांच मास, श्रावण, आश्विन, मार्गशीर्ष, या मासांत शुक्रपक्षां आधान करावें” असें सांगितलें आहे.
याविषयीं मूलवचन शोध्यावें. **आधाननक्षत्रं सांगतो-आपस्तंबसूत्रांत**—“कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, पुनर्वसु,
पुष्य, पूर्वा, उत्तरा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, आणि उत्तराभाद्रपदा.”

सोमपूर्वाधानेविशेषमाह आपस्तंबः सोमेन यक्ष्यमाण आदधानो नर्तुं सूक्ष्मेन्न नक्षत्रमिति अत्र प्रकरणादा-
धानकालबाधः तेन सोमस्य वसंतकालतानवाध्यत इति रुद्रदत्तवृत्तौ नारायणवृत्तौ चोक्तम् । तंत्ररत्ने-
वार्तिके च तेवागते उभये अपहतपाप्मानोऽकृतवः एष वा उद्यन्नादित्येषां पाप्मनोऽपहंता यदैवैनं कदाचन यज्ञ-
मुपनमेदथा दधीतेत्यत्रोक्तगणयरूपदैवदक्षिणायनरूपपंचपिच्यमित्युभयमृतुत्रयं सोमाधाने शतपथे विशिष्य-
विहितम् तदेकवाक्यतया शास्त्रांतरे नर्तुं सूक्ष्मेदित्यत्र सोमकालबाध एव आधानकालबाधस्य यदैवैनं श्रद्धोपन-
मेत्तदा दधीतेत्यस्यां शाखायां वाक्यांतरेण सिद्धत्वात् सोमकालबाधार्थमेवेदमित्युक्तं ।

सोमपूर्वाधानाविषयीं विशेप सांगतो—आपस्तंबः—“सोमयाग करण्याकरितां आधान करणारा यानें ऋतु,
नक्षत्र यांचा विचार करूं नये.” ह्या म्थली, प्रकरणवशें करून पूर्वांत आधानकालाचा बाध होतो, म्हणून सोमयागाविषयीं
जो वसंतकाल सांगितला तो बाधित होत नाही, असें रुद्रदत्तवृत्तौ व नारायणवृत्तौ सांगितलें आहे. **तंत्र-**
रत्नांत-वार्तिकांत “दक्षिणायनांतील तीन व उत्तरायणांतील तीन असे हे सहा ऋतु निष्पाप होत, उदय पावणारा हा
सूर्य या ऋतूंची पापें दूर करितोः ज्या कोणत्याही कालीं (ऋतूंत) यज्ञ करावयाचा असेल तत्कालीं आधान करावें” ह्या
वाक्यांत उत्तरायणरूप तीन ऋतु देवकर्मांचे आणि दक्षिणायनरूप तीन ऋतु पिच्यकर्मांचे, ते हे सहा ऋतु, सोमाच्या
आधानाविषयीं शतपथब्राह्मणांत विशेषकरून सांगितले आहेत, त्यांची एकवाक्यता केली असतां, अन्य शाखेचे ठायीं
“ऋतु, नक्षत्र यांचा विचार करूं नये” असें जें सांगितलें, तें थें सोमकालाचा (वसंताचा) च बाध होतो. आधानकालाचा
बाध “ज्या कालीं श्रद्धा उत्पन्न होईल त्या कालीं आधान करावें” ह्या शाखेच्या या दुसऱ्या वाक्यानें सिद्ध होतो, म्हणून
सोमकालाचा बाध होण्यासाठींच हें बरील (आपस्तंबाचें) वाक्य होय, असें सांगितलें आहे.

धूर्तस्वामी तु सोमस्यापिय ऋतुस्तस्यापिन सूक्ष्मेदिति लिखनादुभयकालबाधं मन्यते श्रीरामांडारस्तु
कालांतरविधानं वा सर्वकालानादरो वेति पक्षद्वयमुक्तवान् तत्राद्ये कृत्तिकादिकालांतरस्य थाधाने वसंताद्यबाधेन-
विधानम् तथा सोमेप्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसन्निपाते यज्ञकालो नादेश इति छंदोगसूत्रोक्तोदगयनाबाधेन-
सोमाभिसंधिरूपकालांतरविधानादुदगयनत्वपक्षे तदित्युक्तम् द्वितीयपक्षेत्युदयदैवैनं यज्ञउपनमेदिति सर्वकाला-
नादरुक्त इति भरद्वाजसूत्रात्सर्वशब्दस्य च विश्वजित्सर्वप्रइति बहुयोरप्रयोगात्सर्वकालबाध इति तेन दक्षि-
णायनेऽपि भवतीत्युक्तम् षड्गुरुभाष्ये देवत्रात भाष्ये तंत्ररत्ने च पट्स्वपि ऋतुपुभवतीत्युक्तमिति दिक् ।

धूर्तस्वामी (म्हणजे आपस्तंबसूत्रावरील भाष्यकार) तर “सोमयागाचाही जो ऋतु त्याचाही विचार करूं नये” असें
सूत्र आहे म्हणून तो सोमकाल व आधानकाल या दोनही कालांचा बाध मानितो. **श्रीरामांडार** (आपस्तंबसूत्रावरील
भाष्याची व्याख्या करणारा) तर (आपस्तंबवचनानें) इतरकालाचें विधान किंवा सर्वे कालाचा अनादर केला आहे, असे
दोन पक्ष सांगता झाला. त्यांमध्यें, प्रथमपक्षां जसें आधानाविषयीं वसंतादिकालाचा बाध न करितां कृत्तिकादि इतर-
कालाचें विधान केलें, तसेंच सोमयागाविषयींही “जेथें काल सांगितला नाही तेथें उत्तरायण, शुक्रपक्ष, पुष्यदिवस हीं तीन
प्राप्त असतां तो यज्ञकाल होतो” ह्या छंदोगसूत्रांत उक्त उत्तरायणाचा बाध न करितां सोमाभिसंधि (सोमेच्छा) रूप
दुसऱ्या कालाचें विधान केल्यावरून उत्तरायण तर पाहिजे, असें सांगितलें. दुसऱ्या (सर्वकालानादर) पक्षां तर,
“ज्या कालीं ह्याला यज्ञ करण्याची इच्छा होईल, या वाक्यानें सर्वे कालाचा अनादर उक्त आहे” ह्या

“विश्वजित्सर्वपृष्ठः” या वाक्याचे ठायीं जसा दोहोंविषयीं सर्वशब्दाचा प्रयोग संभवत नाही, तद्वत् येथेही दोघांचा (शुक्लपक्ष व पुण्यदिवस म्हणजे नक्षत्र यांचा) बाध करण्यासाठी सर्वशब्द नव्हे आहे, तर सर्व उक्त कालाचा बाध होण्याकरिता आहे. म्हणून दक्षिणायनांतही सोमाधान होतें असें सांगितलें. षड्गुरुभाष्य, देवत्रानभाष्य, व तंत्ररत्न या ग्रंथांतही सहाही ऋतूंचे ठायीं सोमाधान होतें असें सांगितलें आहे. याप्रमाणें हें दिक्प्रदर्शन केलें आहे.

श्राद्धेवमावास्यात्रेधाविभक्तदिनतृतीयांशेयोऽपराह्णभागस्तथापिनीमाग्निकंप्राह्या पिंडान्वाहार्यकंश्राद्धं-
क्षीणेराजनिशस्यते वासरस्यतृतीयंशेनातिसंध्यासमीपतइतिकाल्यायनोक्तेः दर्शश्राद्धतुयन्प्रोक्तपार्वणतन्-
प्रकीर्तितम् अपराह्णेपितृणांचतत्रदानंप्रशस्यतइतिशानातपोक्तेश्च दिनद्वयेनत्रमत्वेमर्वापराह्णव्यापीदर्शो-
प्राह्यः यशुभयेगुरेपविहितःसर्वापराह्णस्थितइतिदीपिकोक्तेः यतुकार्णाजिनिः भूतविद्धाममावास्यां-
सोहादज्ञानतोपिवा श्राद्धकर्मणियेकुर्युस्तेषामायुःप्रहीयतइति तदपराह्णेचतुर्दशीवेधपरमितिश्राद्धहेमाद्रिः
अपराह्णव्याप्तिपरमितिमाधवः दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेऽगतोऽप्रागैवतित्थिक्षयेपूर्वेतिहेमाद्रिः यदा-
चतुर्दशीयामंतुरीयमनुपूरयेत् अमावास्याक्षीयमाणातदैवश्राद्धमिष्यतइतिकाल्यायनोक्तेः चतुर्दश्याश्रतु-
र्थयामंदर्शःपूरयेत् चतुर्दशीयामत्रयंस्यादित्यर्थः क्षीयमाणापरदिनेऽपराह्णव्यापिनीनेत्यर्थः ।

श्राद्धाविषयीं अमावास्येचा निर्णय सांगतो.

दिवसाचे तीन भाग करून तिसऱ्या भागांत जो अपराह्णकाल तत्कालव्यापिनी अमावास्या दर्शश्राद्धाविषयीं सामिकर्मांनीं ध्यावी; कारण, “पिंडान्वाहार्यकंश्राद्ध (दर्शश्राद्ध) चंद्रमा क्षीण असेल त्या दिवशीं (अमावास्यास्य) दिवसाच्या तिसऱ्या भागांत करावें, संध्याकालाच्या फार जवळ करूं नये” असें काल्यायनवचन आहे. आणि “दर्शश्राद्ध जें तेंच पार्वणश्राद्ध म्हटलें आहे, त्याविषयीं जें पितरांस यावयाचें तें अपराह्णकालीं यावें हें प्रशस्त होय” असें शानातपवचनही आहे. दोन दिवशीं अमावास्येची अपराह्णव्याप्ति असेल तर सर्व अपराह्णकालव्याप्ति ज्या दिवशीं असेल ती ध्यावी. कारण, “जर दोन दिवशीं दर्श अपराह्णांत असेल तर सर्व अपराह्णांत असेल त्या ध्यावा” असें दीपिकावचन आहे. आतां जें कार्णाजिनि-“मोहानं किंवा अज्ञानानं चतुर्दशीविद्ध अमावास्या श्राद्धकर्मविषयीं जे घेतात त्यांचें आयुष्य क्षीण होतें” असें वचन, तें अपराह्णकालीं चतुर्दशीवेध असेल तर तद्विषयक आहे असें श्राद्धहेमाद्रि सांगतो. अपराह्णकालीं दर्शची अव्याप्ति असेल तर तद्विषयक तें वचन असें माधव सांगतो. दोन दिवशीं अपराह्णव्याप्ति नसेल, किंवा दोन दिवशीं अंशानः व्याप्ति असेल तर तिथिक्षय असतां पूर्वा ध्यावी असें हेमाद्रि सांगतो; कारण, “जेव्हां चतुर्दशी तीन प्रहर असून नंतर अमावास्या, व दुसऱ्या दिवशीं अपराह्णकालीं अमावास्या नसेल तेव्हां पूर्वदिवशींच श्राद्ध करावें” असें काल्यायनवचन आहे.

व्यतिरेकमाह वर्धमानाममावास्यालक्षयेदपरेहनि यामांघ्नीनधिकांवापिपितृयज्ञस्ततोभवेत् ततःश्रा-
द्धं च दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौतिथिवृद्धौचहारीतः त्रिमुहूर्ताचकतत्रयापूर्वामर्वाचवह्वचः कुहूरध्वयुभिः-
कार्यायथेष्टसामगीतिभिः त्रिमुहूर्ताभावेतुपूर्वनेत्यर्थः ।

१ ‘विश्वजित्सर्वपृष्ठो भवति’ असें श्रुतींत वाक्य आहे. पृष्ठ म्हणजे एका सूक्तांत असलेल्या तीन कृचांचें ब्राह्मणाक्त विधानांचें सतराव्यां गान करणें, त्या स्तोत्रांना पृष्ठ असें म्हणतात. रथंतरपृष्ठ व बृहत्पृष्ठ हीं दोन पृष्ठें ज्यातिष्टोमामध्ये विकल्पित आहेत, त्यांचा विश्वजित यागामध्येही अतिदेशानें विकल्प प्राप्त झाला असतां ‘सर्वपृष्ठो’ ह्या वाक्यांतील सर्वशब्दानें त्या दोघांचा समुच्चय (दोन्ही करणें तें विधान) केला आहे, असें पूर्वपक्षीं म्हणतो. सर्वशब्द दोघांचा बाधक होत नाही म्हणून, ह्या वाक्यानें सहा पृष्ठांचा अतिदेश केला आहे. तीं सहा पृष्ठें येणेंप्रमाणें:-रथंतर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाकर आणि रैवत. ह्या सामांनीं निष्पन्न (निष्पन्न होणारी) तीं होत. त्याप्रमाणें येथेही सर्वशब्दानें, छंदोगसूक्तांनील पूर्वपक्ष व पुण्याह या दोघांचेंच ग्रहण होत नाही, तर उदगयनाचेंही ग्रहण होतें, म्हणून त्या सर्वांचा बाध समजून दक्षिणायनांतही सोमाधान होतें असा भाव. २ पिंडानां पिंडपितृयज्ञांगभूतानामनु पश्चादाहियते कियत इति पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धममावास्यायांतत् क्षीणे राजनीदोक्तव्यं ‘वासरस्य तृतीये’ इत्यनेनेषक्यूनोऽपराह्णःसायाह्णसहितोऽभिधीयते तत्रनातिसंध्यासमीपतइति सायाह्णस्य प्रतिपद्ये सत्यपराह्णः कर्मकाल-
त्वेन परिशिष्यते ॥ ३ खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् । खर्वदर्पो परो कार्यां हिंसा स्यात्पूर्वकालिकीति ॥ खर्वः समतिथिः । दर्पो वृद्धियुक्ता । हिंसा क्षययुक्ता ॥ ४ वृष्टचंद्रासिनीवाली नष्टचन्द्राकुहूमेतेति ॥ ५ पुरुषार्थचिंतामर्णांतुबह्वैस्तैत्तिरीयैश्चसाम्निकै-
पराह्णव्याप्त्यसत्वेपि इष्टिदिनात्पूर्वदिनेऽपदर्शश्राद्धकार्यं तथाचदिनद्वयेकात्स्न्येनापराह्णव्याप्तौ परत्रैवदर्शः एकदेशेनापराह्णद्वयव्याप्तौ प्रति-
पह्णव्या प्रतिपदीष्टावुत्तरेवदर्शः द्वितीयदिनेऽपराह्णव्याप्तौ यदिप्रतिपक्षयवशाद्दर्शदिनेऽपवृष्टिप्राप्तिस्तदा बहुचानां सिनीवाली तत्ति-
रीयाणां कुहूग्राह्य सामगानां विकल्पेनद्वयं । यदापूर्वदिनेऽपराह्णऽधिकाव्याप्तिः परदिनेऽस्या तदा सामगानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां युत्तरा
ऽवधयपराह्णपक्षाभावेपि सामगानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां परेत्याद्युक्तमिति धर्मसिंधुः ॥

याच्या विपरीत सांगतो-“दुसऱ्या दिवशीं तीन प्रहर किंवा अधिक अमावास्या असून वृद्धिगामिनी असेल तर त्या दिवशीं पिंडपितृयज्ञ करून दर्शश्राद्ध करावें. दोन दिवशीं अंशतः अपराह्नयासि असतां व तिथिशुद्धि असतां सांगतो-**हारीत-**“पूर्वदिवशीं अमावास्या तीन सुहूर्त असून समा किंवा वृद्धिगामिनी आहे तरी बह्वृक्षासीयांनीं तीच चतुर्दशीयुक्त घ्यावी, तीन सुहूर्तपेक्षां कमी असेल तर पूर्वा घेऊं नये. यजुर्वेद्यांनीं परा घ्यावी आणि सामवेद्यांनीं पूर्वा किंवा परा यथेष्ट घ्यावी.”

पिंडपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेऽशुःकार्यः पूर्वोवांगत्वात्पिंडपितृयज्ञइतितत्सूत्रान् व्याख्यातंचैतन् **कर्काचार्यैः** पूर्वएवदर्शात्पिंडपितृयज्ञोनपश्चात् कुतः अंगत्वान् **तथाचश्रुतिः** तस्मात्पूर्वेद्युःपितृभ्यः क्रियतउत्तरमहर्देवान्यजंतइति पूर्वद्युपितृभ्योयज्ञनिष्पृणीयप्रातर्देवेभ्यःप्रतनुतइतिच तेनतन्मतेअंगमेवासौ **तदुक्तम्** अंगवासमभिव्याहारादिति तेनकर्कमतेचतुर्दशीयुक्तदर्शेपिंडपितृयज्ञइति **श्रीअनंतभाष्ये**तु परेद्युर्नियुक्तम् अत्रद्वेधाप्याचारोदृश्यते ।

कात्यायनशास्त्री यांनीं पिंडपितृयज्ञ तर यागदिवसाच्या पूर्वदिवशीं करावा; कारण, “पिंडपितृयज्ञ हा दर्शाचें अंग आहे यास्तव पूर्वी करावा” असें **कात्यायन**मत्र आहे. **कर्काचार्यांनीं** त्या सूत्राची व्याख्या केली आहे, ती अशीः— “दर्शश्राद्धाच्या पूर्वीच पिंडपितृयज्ञ करावा, पश्चात् करूं नये; कारण, तो पिंडपितृयज्ञ दर्शश्राद्धाचें अंग आहे;” तशीच श्रुति आहे, ती अशीः—“यागाच्या पूर्वदिवशीं पितरांचें यजन व उत्तरदिवशीं देवांचें यजन करितात.” “पूर्वदिवशीं पितरांस यजन करून दुसऱ्या दिवशीं देवांचा यज्ञ करावा” असेही श्रुतिवाक्य आहे. म्हणून त्यांच्या मतानें पिंडपितृयज्ञ हा अंगभूत आहे, तें सांगतो-“पिंडपितृयज्ञ हा पार्वणश्राद्धाच्या बरोबर सांगितला आहे, म्हणून तो त्याचें अंग आहे” तेणेंकरून **कर्काचार्यांचे** मनीं चतुर्दशीयुक्त दर्शाचे ठायीं पिंडपितृयज्ञ करावा. **श्रीअनंताचे भाष्यांत** तर पिंडपितृयज्ञ दुसऱ्या दिवशीं करावा असें सांगितलें आहे. याविषयीं दोनही प्रकारचा (म्हणजे चतुर्दशीयुक्त दर्शाचे दिवशीं किंवा दुसऱ्या दिवशीं करण्याचा) आचार दृष्टीग पडतो.

आपस्तंबानांतु परदिनेमुहूर्तमपिदर्शमन्वेतत्रैवपितृयज्ञः तदाह**आपस्तंबः** अमावास्यायांयदहश्चंद्रमसंनपश्यतितदहःपिंडपितृयज्ञंकुरुतइति अस्य**रुद्रदत्त**सीयाच्याख्या पिंडेयुक्तःपितृयज्ञःपिंडपितृयज्ञः सचकर्मातरं ननुदर्शोपः यथावक्ष्यति पितृयज्ञःस्वकालविधानादनंगंस्यादिति तंचयदहश्चंद्रमसंनपश्यति पंचदश्यंप्रतिपदिवातदहःकुरुते यदहस्तयोःसंधिस्तदहर्गित्यर्थइति **रामांडारोप्याह** पिंडपितृयज्ञस्तुपूर्वसंधिमदहोरात्रापराह्नइति अतःपूर्वसंधिदिनेपितृयज्ञः **शतपथश्रुति**रपि यदैवैपनपुरस्तात्पश्चाद्दृश्यते-थपितृभ्योददातीति पूर्वसंधिदिनेहिपूर्वतःपश्चाद्वाचंद्रोनदृश्यतण्वेत्यर्थः **सत्याषाढोपि** पितृयज्ञंप्रक्रम्य-दृश्यमानेनूपोध्यश्चोभूतेयजतइत्याह ।

आपस्तंबांचा तर दुसऱ्या दिवशीं सुहूर्तमात्र जरी अमावास्या अगली तथापि त्याच दिवशीं पिंडपितृयज्ञ होतो. तें **आपस्तंब** सांगतो-“अमावास्या ज्या दिवशीं चंद्रमा दृष्टीम पडत नाही त्या दिवशीं पिंडपितृयज्ञ करावा.” याची **रुद्रदत्त** व्याख्या करितो ती अशीः—“पिंडांनीं युक्त जो पितृयज्ञ तो पिंडपितृयज्ञ, हा भिन्न कर्म आहे, दर्शाचें अंग नाही; कारण, तोच आपस्तंब पुढें सांगतो कीं, “पिंडपितृयज्ञ हा आपल्या कार्त्तिक विहित असल्यामुळे दुसऱ्याचें अंग होत नाही” तो पिंडपितृयज्ञ ज्या अमावास्या किंवा प्रतिपदेम चंद्र दिसत नाही म्हणजे अमावास्या व प्रतिपदा यांच्या संधिदिवशीं करावा. **रामांडार**ही सांगतो—“पिंडपितृयज्ञ करणें तो पूर्वसंधियुक्त जें अहोरात्र त्याचे अपराह्नकार्त्तिक करावा” असें आहे, म्हणून पूर्वसंधिदिवशीं पिंडपितृयज्ञ करावा. **शतपथश्रुति**ही—“ज्या दिवशीं हा चंद्र, पूर्वेस व पश्चिमेसही दिसत नाही त्या दिवशीं पितरांस यावें.” पूर्वसंधीच्या दिवशीं पूर्वेकडे किंवा पश्चिमेकडे चंद्रदर्शन होत नाहीच असा अर्थ. **सत्याषाढ**ही-पितृयज्ञाचा उपक्रम करून “ज्या दिवशीं चंद्र दिसत असेल त्या दिवशीं अन्वाधान करून दुसऱ्या दिवशीं याग करावा” असें सांगतो.

हेमाद्रिस्तु अमावास्याशब्दस्तिथिवचनएव पूर्वोक्तापस्तंबसूत्रेयदुर्कनपश्यतीति तत्रक्षयोभिप्रेतः अतश्चतुर्दश्यांचंद्रमसश्चक्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शेपितृयज्ञः पितृयज्ञानुनिर्वर्त्यविप्रश्चंद्रक्षयेऽभिमानिति**मन्त्रोक्तेः** यदुक्तंयदहस्त्वेवदर्शनंनैतिचंद्रमाः तत्क्षयापेक्षयाज्ञेयंक्षीणेराजनिचेत्यपीति यदुक्तंदृश्यमानेपितृचतुर्दश्यपेक्षये-तिच**कात्यायनोक्तेः** दृश्यमानेप्येकइति**गोभिलोक्तेः** यस्यांसंध्यागतःसोमोमृणालमिबदृश्यते अपरा-

हेक्षयस्त्यांपिंडानां करणं भुवमिति हारीतो केचन चंद्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन अष्टमं शेषं चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चंद्रमाः अमावास्याष्टमं शेषं पुनः किल भवेदणुरिति तेन पूर्वशुरेव पितृयज्ञ इत्युचिवाच कर्काचार्यै-
रपि अपराह्णे पिंडपितृयज्ञचंद्रादर्शनेमावास्यायामिति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन क्षय एवोक्तः तस्मिन् क्षीणे
वृषातीति श्रुतेः अतस्तन्मते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोर्थात्सिद्धः तदेतत्सर्वोक्तं प्रमपि हेमा-
द्रिकर्कादिभ्यां स्थानमापस्तंबैरनभ्युपगमात्कातीयबौधायनादिविषयम् ।

हेमाद्रि तर—अमावास्याशब्द तिथिवाचीच आहे, तदंत्यक्षणवाची नाही. पूर्वांक्षापस्तंबसूत्रांत, जें सांगितलें की, अमावास्यास ज्या दिवशी चंद्र दिसत नाही, त्या ठिकाणी चंद्राचा क्षय समजावयाचा. म्हणून चतुर्दशीस चंद्र क्षीण अम-
ल्यामुळे चतुर्दशीयुक्त अमावास्यास पिंडपितृयज्ञ होतोः कारण, “साम्रिक ब्राह्मणां चंद्रक्षययुक्त दिवशी पिंडपितृयज्ञ करून”
असें **मनून** सांगितलें आहे. आतां जें सांगितलें आहे की, “ज्या दिवशी चंद्रमा दृष्टिगोचर होत नाही” इत्यादि, तें सांगणें
चंद्राचा क्षय असल्यामुळे समजावें. दर्शश्राद्ध, राजा म्हणजे चंद्रमा क्षीण असतां प्रशस्त, असेंही सांगितलें आहेच. “चंद्र
दृष्टिगोचर असतांही होतो” असें जें सांगितलें आहे तें चतुर्दशीविषयक होय, असें **कात्यायनानें** सांगितलें आहे. “चंद्र
दिसत असतांही होतो असें कितीएक म्हणतात” असें **गोभिल** वचन आहे. “आणि ज्या अमावास्यास प्रातःकाली चंद्रमा
कमलाचे बिसासारखा दिसतो, त्याचा अपराह्णी क्षय होतो, त्या अमावास्यास निश्चयें पिंडपितृयज्ञ करावा” असें **हारीत-**
वचनही आहे. **चंद्रक्षयाचा काल सांगतो-कात्यायन**—“चतुर्दशीच्या आठव्या अंशी चंद्र क्षीण होतो, आणि
अमावास्याच्या आठव्या अंशी पुनः अणुप्रमाण होतो” अशा ह्या सर्व प्रमाणांवरून पूर्वे दिवशीच पिंडपितृयज्ञ करावा असें
(हेमाद्रि) सांगता झाला. **कर्काचार्यांनीं** देखील “अमावास्यास चंद्राचें अदर्शन असतां अपराह्णकाली पिंडपितृयज्ञ होतो”
ह्या कात्यायनसूत्रांत अदर्शनशब्देंकरून क्षयच ध्यावा, असें सांगितलें आहे. “चंद्र क्षीण असतां याचें” अशी **श्रुति** आहे,
यावरून कर्काचार्याचे मतीं चतुर्दशीयुक्त अमावास्यास पिंडपितृयज्ञ झाला अगतां दुसऱ्या दिवशी याग अर्थात्सिद्ध आहे.
असें हें पूर्वी **हेमाद्रि कर्काचार्य** इत्यादिक ग्रंथकारांचें व्याख्यान जरी सर्वोत्कृष्ट आहे, तथापि तें **आपस्तंबांनीं**
परिगृहीत नसल्यामुळे तें कात्यायन-बौधायनादिविषयक जाणवें.

आश्वलायनानामपिशेषपर्वणि पिंडपितृयज्ञः तथाचसूत्रम् अमावास्यायामपराह्णे पिंडपितृयज्ञ इति
अन्ननारायणवृत्तिः अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पंचदशयोः संधिवचनोप्यत्रापराह्णशब्दसमन्वयात्तद्व्यहो-
रात्रेवर्तते तस्यापराह्णेऽश्वस्तुर्थभागे पिंडपितृयज्ञः कार्यः औपवसभ्येयजनीयेवाहनि यदात्वहोरात्रसंधौ तिथि-
संधिः स्यात्तदौपवसभ्येयवाहनिक्रियतइति अतएव मुहूर्तमप्यमावास्याप्रतिपद्यपि चेद्भवेत् तद्वत्तमक्षयं ज्ञेयं-
पर्वशेषंतु पूर्ववदिति हेमाद्रौ वचनं पिंडपितृयज्ञपरमुक्तं प्रयोगपारिजाते अयंचस्मार्ताभिमततासंपूर्णदर्शेश्रा-
द्धव्यतिषंगेण कार्यः व्यतिषंगोनामोभयोः सहानुष्ठानम् एतच्च स्थालीपाकेन सह पिंडार्थमुद्धृत्येति सूत्रे वृत्तिकृ-
तोक्तम् खंडपर्वणितुकेचिदाहुः पूर्वेह पिंडपितृयज्ञव्यतिषंगेश्राद्धं कृत्वा परेहिकेवलः पिंडपितृयज्ञः कार्यः
वृत्तिकृतात्वन्वष्टक्यंच पूर्वैर्मुर्मासिमास्यथपार्वणं काम्यमाभ्युदयेष्टमायामेकोद्विष्टमथाष्टममित्युदाहृत्य पूर्वेषु चतु-
र्षु स्थालीपाकादुद्धृत्यामौ करणमित्युक्तेर्दर्शेश्राद्धे स्थालीपाकोनियतइति गम्यते स्थालीपाकश्च पितृयज्ञ एवेति पूर्व-
दिने व्यतिषंगः सिद्धः प्रयोगपारिजाते तु वार्षिकश्राद्धादेरपि व्यतिषंगोक्तः किमु तदर्शश्राद्धस्य ।

आश्वलायनांचाही शेष (उर्वेरित) पर्वांचे ठायीं पिंडपितृयज्ञ होतो. त्याविषयीं **आश्वलायनसूत्र**—“अमावास्यास
अपराह्णकाली पिंडपितृयज्ञ करावा.” या सूत्रावरची **नारायणवृत्ति** अशी—अमावास्या हा शब्द, प्रतिपदा व पंचदशी
(अमावास्या) यांच्या संधीचा वाचक जरी आहे, तथापि ह्या स्थलीं अपराह्णशब्दाशीं त्याचा समन्वय (संबंध) अस-
ल्यामुळे संधियुक्त अहोरात्राचा वाचक होतो. त्या संधियुक्त दिवसाचे पांच भाग करून चवथा भाग जो अपराह्ण, त्यांत
पिंडपितृयज्ञ करावा. तो पिंडपितृयज्ञ अन्वाधानाच्या दिवशी किंवा यागाच्या दिवशी होतो. ज्या काली दिवस आणि रात्र
यांच्या संधीचे ठायीं तिथिसंधि होईल, त्या काली अन्वाधानाच्या दिवशीच पिंडपितृयज्ञ करावा. म्हणूनच “प्रतिपदेस
मुहूर्तमात्र जरी अमावास्या असेल तरी त्या दिवशीं जें दिलें तें अक्षय होतें; कारण, पर्वशेष हें पर्वासारखेंच फलदायक
होय” असें **हेमाद्रि**तील वचन पिंडपितृयज्ञविषयक होय, असें **प्रयोगपारिजातांत** सांगितलें आहे. संपूर्ण अमावास्या
असतां दर्शश्राद्ध व पिंडपितृयज्ञ हे दोन्ही एका दिवशीं प्राप्त होतील तेव्हां दर्शश्राद्धाच्या व्यतिषंगानें (बरोबर) हा

पिंडपितृयज्ञ करावा. व्यतिषंग म्हणजे दोहोंचें बरोबर अनुष्ठान करणें. हा प्रकार “स्थालीपाकेन सह पिंडार्पणमुद्बल्य” ह्या सूत्रावर वृत्तिकारानें सांगितला आहे. खंडपर्व (अमावास्या) असतां कोणी असं म्हणतात की, पूर्वे दिवशीं पिंडपितृयज्ञ व्यतिषंगें करून धाद्व करून दुसऱ्या दिवशीं केवळ पिंडपितृयज्ञ करावा: कारण, वृत्तिकारानें “१ अन्वव्यथाद्वा, २ पूर्व-द्युध्वाद्वा, ३ मासिमासिधाद्वा, ४ पार्वण्यथाद्वा (दर्शथाद्वा), ५ काम्यथाद्वा, ६ अभ्युदयथाद्वा, ७ अष्टमीथाद्वा, ८ एकोद्दिष्ट,” अशीं हीं आठ धाद्वें सांगून पहिल्या चार धाद्वामध्ये स्थालीपाकांतून अन्न घेऊन अमोकरण करावें असं सांगितलें आहे. म्हणून दर्शधाद्व्याचे ठायीं स्थालीपाक निश्चित आहे असं सूचित होतें. तो स्थालीपाक पिंडपितृयज्ञांतच होत असल्यामुळे पूर्वे दिवशीं पिंडपितृयज्ञ व दर्शधाद्व यांचा व्यतिषंग (दोघांचें बरोबर अनुष्ठान) सिद्ध झाला. प्रयोगपारिजातांत तर वार्षिक धाद्वदिकांचाही व्यतिषंग सांगितला आहे, मग दर्शधाद्व्याचा व्यतिषंग आहे, हें काय सांगावें !

न्यायविदस्त्वाहुः सूत्रस्यवृत्तेऽसंपूर्णदर्शविषयत्वात्खंडपर्वणिपूर्वदिनेकेवलं धाद्वपरदिनेचकेवलः पितृयज्ञः कार्यः अतएवोक्तं वृत्तिकृता नात्रापूर्वः स्थालीपाकश्चोद्यते सर्वधाद्वेषु प्रसंगादिति प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयैव पूर्वदिनेच धाद्वमौकरणमेव न पाणिहोमः चतुर्ध्वाघेषु सामीनां वह्नों होमो विधीयते पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरे पुचतुर्ध्वपीति परिशिष्टे नियमान् न च लौकिकामौपकस्य कथं गृह्यामौहोमः नान्यामौपकमन्यामौ जुहुयादिति निषेधान् मैवं धाद्वस्य गृह्यत्वेन स्मार्तामौपचनामौवाकर्तव्यत्वात् तस्मात्पूर्वेषु केवलं धाद्वान्न व्यतिषंगः इदमेव च युक्तं आहिताग्निना तु सर्वाधानि नार्धाधानि नावा संपूर्णं खंडे वा दर्शं श्रौतामौपथगे वपितृयज्ञः कार्यो न तु दर्शधाद्वव्यतिषंगेणेति विस्तरभीतेर्विरसामः ।

न्यायवेत्ते तर असं म्हणतात की, “सूत्र आणि लावरीची वृत्ति ही पूर्ण दर्शविषयक आहे, म्हणून खंडपर्व (दर्श) असतां पूर्वे दिवशीं केवळ धाद्व करून दुसऱ्या दिवशीं पिंडपितृयज्ञ करावा. म्हणूनच वृत्तिकारानें सांगितलें की, “ह्या दर्शधाद्व्याविषयीं अपुवे स्थालीपाक सांगत नाही: जर सांगितला तर त्याची मग धाद्वामध्ये प्रसक्ति होईल !” प्रयोगपारिजातांत जो व्यतिषंग सांगितला तो देखील पूर्ण दर्शविषयकच गमजावा. पूर्वे दिवशीं करावयाच्या दर्शधाद्वीत अमौकरणच करावें, ब्राह्मणाच्या हातावर होम करूं नये: कारण, “मागिकांनीं पहिल्या चार धाद्वामध्ये अग्नीत होम करावा, आणि पुढच्या चार धाद्वामध्ये पित्रादिस्थानीं बसलेल्या ब्राह्मणाच्या हातावर होम करावा” अशा परिशिष्टांत नियम आहे. शंका-लौकिकामौवर जें पक्क झाले त्याचा होम गृह्यामौवर करा होईल ! कारण, एका अग्नीवर पक्क झालेल्याचा होम दुसऱ्या अग्नीवर करूं नये, असा निषेध आहे. समाधान—धाद्व गृह्य असल्यामुळे तें गृह्यामौवर किंवा पचनमौवर करावें असं आहे. यास्तव पूर्वदिवशीं केवळ धाद्व करावें: व्यतिषंग (दोन बरोबर) करूं नये, हेंच योग्य आहे. जो आहिताग्नि (श्रौताग्निमान्) तो अर्धाधानी असो किंवा रार्धाधानी असो, त्यानें पूर्ण किंवा खंड दर्श असला तथापि श्रौतामौवर निराळाच पिंडपितृयज्ञ करावा. दर्शधाद्व्याच्या व्यतिषंगांनं करूं नये. आतां विस्तरभयास्तव पुरे करितों.

संपूर्ण दर्शच विशेषमाह लौगाक्षिः पक्षांतं कर्मनिर्वर्त्य वैश्वदेवं च सामिकः पिंडयज्ञंततः कुर्यात्ततो न्वाहार्य-कंबुध इति पक्षांतं कर्मान्वाधानं अन्वाहार्यकंदर्शधाद्वं अयमेव सामेर्जीवत्पितृकस्य पिंडपितृयज्ञकालो ज्ञेयः तस्यापिकात्यायनेन होमांतमनारंभो वत्यान्नानान् ।

संपूर्ण दर्श असतां विशेष सांगतो-लौगाक्षि-श्रौताग्निमान् यानें प्रथम अन्वाधान करून नंतर वैश्वदेव करावा, त्यानंतर पिंडपितृयज्ञ करून दर्शधाद्व करावें. सामिक (अग्निमान्) अशा जीवत्पितृकाला पिंडपितृयज्ञाचा काल हाच आहे असं समजावें. सामिक जीवत्पितृकानेही होमापर्यंत पिंडपितृयज्ञ करावा, अथवा पिंडपितृयज्ञाला आरंभ करूं नये, असं कात्यायनानें सांगितलें आहे.

पिंडपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाधवीये कात्यायनः पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्यये च भोजने पतितान्नस्य चरुवैश्वानरो भवेदित्यलम् ।

पिंडपितृयज्ञाचा लोप होईल तर प्रायश्चित्त सांगतो-पराशरमाधवीयांत-कात्यायन-पिंडपितृयज्ञाचा लोप, वैश्वदेवलोप, पतितान्नभोजन यांतून कोणतें एक घडलें असतां वैश्वानर चरुचा होम हें प्रायश्चित्त करावें. हा इतका विचार पुरे आहे.

१ तृतीयपरेच्छेदाच्या उत्तरार्धांत धाद्वप्रकरणीं पाकानि सांगितला तेथें पचनानि सांगितला आहे. २ श्रौतापानाच्या वेळीं गृह्याग्नि अर्धा श्रौतांत मिळवून अर्धा ठेवावयाचा आहे; तें अर्धाधान होय, तें केले ज्यानें तो अर्धाधानी.

प्रकृतमनुसरामः निरमिकादिभिस्त्वमावास्याऽपराह्व्याप्त्यभावेतुकुतुपकालव्यापिनीप्राह्या भूतविद्याप्य-
मावास्याप्रतिपन्मिश्रितापिवा पित्र्येकर्मणिविद्वद्भिर्प्राह्याकुतुपकालिकीतिहारीतोक्तेः इदंचनिरमिकादिवि-
षयं सिनीवालीद्विजैःकार्यासाम्रिकैःपितृकर्मणि स्त्रीभिःशूद्रैःकुहूःकार्यातथाचानम्रिकैर्द्विजैरितिलौगाक्षि-
वचनात् अत्रसाम्रिरौपासनाम्रिपीतिमदनपारिजातेउक्तम् कुतुपश्चापराह्व्याप्त्यलाभेनकल्पः अपरा-
ह्व्याप्त्यपीयविदर्शस्तिथिक्षयः आहिताग्नेःसिनीवालीनिरभ्यादेःकुहूर्मतेतिजाबालिनाऽभावेविधानात्
तेनसामीनांनिरमीनांवापराह्व्यापिन्येवमुख्या तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैःसमव्याप्तौखर्वादिनानिर्णयः वैषम्ये-
धिका दिनद्वयेपराह्वास्पर्शकुतुपव्यापिनीतिमाधवः इदमेवयुक्तम् ।

आतां प्रकृत विषयास अनुसरतो—निरमिकादिकानां, श्राद्धाविषयीं अमावास्या पराह्व्यापिनी नसेल तर कुतुपकालव्या-
पिनी ध्यावी; कारण, “विद्वानां चतुर्दशीयुक्त अमावास्या, किंवा प्रतिपदायुक्त अमावास्या, पित्र्यकर्मविषयीं कुतुपकाल-
व्यापिनी अशी ध्यावी” असें हारीतवचन आहे. हें (प्रतिपदायुक्त सांगणें) निरमिकादिविषयक आहे; कारण, “साम्रिक
द्विजांनीं पित्र्यकर्मविषयीं सिनीवाली (दृष्टचंद्रा) अमावास्या करावी; आणि अम्रिविरहितांनीं व स्त्रीशूद्रादिकानीं कुहू (नष्ट-
चंद्रा) अमावास्या करावी” असें लौगाक्षिवचन आहे. ह्या वचनांत ‘साम्रिक’ ह्या शब्दानें औपासनाम्रिही ध्यावा, असें
मदनपारिजातांत सांगितलें आहे. कुतुपकाल हा अपराह्व्याप्ति मिळत नसेल तर अनुकल्प आहे; कारण, “दोन दिवशीं
अपराह्व्याकालीं व्याप्ति नसून अमावास्याचा क्षय असेल तर श्रौताभिमानांनीं सिनीवाली करावी, आणि निरमिकादिकानीं कुहू
अमावास्या करावी” असें जाबालीनं अपराह्व्याप्ति नसेल तर निरभ्यादिकांना कुहूचें विधान केलें आहे; यास्तव साम्रिक
अथवा निरम्रिक यांस अपराह्व्यापिनीच मुख्य होय. उभय दिवशीं सारखी एकदेशव्याप्ति असेल व तिथिक्षय असेल तर
पूर्वीची ध्यावी, तिथीची वृद्धि असेल किंवा समा तिथि असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. (दोन दिवशीं समव्याप्ति
असेल तर वृद्धि, क्षय, समतिथि यांचीं क्रमानें उदाहरणें;—चतुर्दशी १९ घ०, अमावास्या २३ घ० दिनमान ३० घ०
या उदाहरणीं दोनही दिवशीं सारखी पांच घटिका एकदेशव्याप्ति आहे व चतुर्दशीहून चार घटिकांनीं अमावास्याची वृद्धि
आहे, म्हणून परा ध्यावी. चतुर्दशी २३ अमावास्या १९ या उदाहरणांत दोन्ही दिवशीं एक घटिका सारखी व्याप्ति आहे,
पण चार घटिकांनीं अमावास्या तिथीचा क्षय आहे यास्तव पूर्वीची ध्यावी. उदाहरणें;—चतुर्दशी २१ घ०, अमावास्या २१
घ० या उदाहरणीं दोन दिवशीं तीन घटिका सारखी अंशतः व्याप्ति आहे व तिथीची वृद्धि किंवा क्षय कांहीच नाहीं तर
तिथि सम आहे याकरितां दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोन दिवशीं पूर्ण अपराह्व्याप्ति असेल तर तिथीची वृद्धि असल्या-
मुळे परा ध्यावी. दोन दिवशीं अपराह्व्यास्पर्श नसेल तेव्हां गृह्याग्नि व श्रौताग्नि यांनीं पहिली ध्यावी, इतरांनीं परा, असें
धर्मसिंधूत आहे.) दोन दिवशीं विषमव्याप्ति असेल तर जी जधिक असेल ती ध्यावी. दोन दिवशीं अपराह्वीं स्पर्श नसेल
तर कुतुपव्यापिनी ध्यावी असें माधव सांगतो. हेंच मत युक्त आहे.

हेमाद्र्यादिमतेकुतुपव्यापिन्येवनिरभ्यादेमुख्या सिनीवालीदृष्टचंद्रा तथाचव्यासः दृष्टचंद्रासिनी-
वालीनष्टचंद्राकुहूःस्मृतेति पूर्वदिनेपरदिनएववातद्व्यापित्वेसैवप्राह्या अंशव्यापित्वेवैषम्येधिककालव्यापिनी
प्राह्या दिनद्वयेशतःसमव्याप्तौतिथिक्षयपूर्वा वृद्धौसाम्येचपरा तिथिक्षयेसिनीवालीतिथिवृद्धौकुहूःस्मृता सा-
म्येपिचकुहूर्ज्ञेयावेदवेदांगवेदिभिरितिप्रचेतोवचनात् दिनद्वयेंसंपूर्णकुतुपव्याप्तिस्तुतिथिवृद्धावेवभवतीत्य-
न्तरवचनात्परैवेति कुतुपस्त्वहोमुहूर्ताविज्ञेयादशपंचचसर्वदा तत्राष्टमोमुहूर्तोयःसकालःकुतुपःस्मृतइतिमा-
हस्योक्तः तुलादानपितृदेवप्रीत्यर्थोपवासादौतुपप्राह्येत्यन्यत्रविस्तरः ।

हेमाद्र्यादिकांच्या मतीं निरभ्यादिकांना कुतुपव्यापिनीच मुख्य आहे. ज्या अमावास्यास चंद्रदर्शन होतें ती सिनीवाली.
तेंच व्यास सांगतो—“ज्या अमावास्यास चंद्रदर्शन होतें ती सिनीवाली, आणि जी नष्टचंद्रा ती कुहू म्हटली आहे.” पूर्व
दिवशीं किंवा दुसऱ्या दिवशींच कुतुपकालव्यापिनी असतां तीच ध्यावी. दोन दिवशींही कमीजास्ती मानांनं एकदेशव्याप्ति
असेल तर जी अधिकव्याप्ति असेल ती ध्यावी. दोन दिवशीं सारखी एकदेशव्याप्ति असतां तिथिक्षय असेल तर पूर्वीची
ध्यावी, आणि तिथिवृद्धि किंवा तिथिसाम्य असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. कारण, “तिथिक्षय असतां सिनीवाली

१ रौद्रः श्वेतस्तथा मैत्रः सारभद्रस्तथा स्मृतः । सावित्री वैश्वदेवश्च गांधर्वः कुतुपस्तथा ॥ रोहिणस्तिलकश्चैव विभवं निकृतिजयः ।
शंवरं विजयश्चैव मेदाः पंचदश स्मृताः ॥ कुतुप हा दिवसाच्या पंधरा मुहूर्तांपैकीं आठवा मुहूर्त होय. ते मुहूर्त येणेंप्रमाणें—
१ रौद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ सारभद्र, ५ सावित्र, ६ वैश्वदेव, ७ गांधर्व, ८ कुतुप, ९ रोहिण, १० तिलक, ११ विभव,
१२ निकृति, १३ जय, १४ शंवर, १५ विजय.

(चतुर्दशीमिश्रित), तिथिवृद्धि असतां कुहू (प्रतिपदामिश्रित), तिथिसाम्य असतां कुहू ध्यावी" असें प्रचेतसांचें वचन आहे. दोन दिवशीं संपूर्ण कुतुपकालव्यापिनी तर तिथिवृद्धि असेल तेव्हांच असते म्हणून ह्या वचनावरून पराच ध्यावी. कुतुपकाल म्हणजे "दिवसाचे पंधरा सुहूर्त आहेत त्यांपैकी जो आठवा सुहूर्त तो कुतुपकाल म्हटला आहे." असा मात्स्योक्त समजावा. तुलादान, पितृदेवग्रीत्यर्थ उपवासादिक यांविषयीं अमावास्या घेणें ती परा ध्यावी, याचा अन्य ग्रंथी विस्तार आहे.

दर्शचमासिकवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौकालादर्शविशेषउक्तः दर्शस्यचोदकुंभस्यदर्शमासिकयोरपि नित्यस्य चाव्दिकस्यापिदार्शिकाव्दिकयोरपीत्युक्त्वा संपातेदेवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मंसमाचरेत् निमित्तानियतिश्चात्रपूर्वा-
नुष्ठानकारणमिति अत्रक्रमोर्निर्णयदीपेउक्तः नष्टचंद्रेयदाकालेक्षयाहदिवसोभवेत् वैश्वदेवक्षयश्राद्धंक्रुर्या-
त्प्राग्दर्शकर्मणः ।

अमावास्याचे दिवशीं मासिक, वार्षिक इत्यादि श्राद्धें प्राप्त झालीं असतां कालादर्शांत विशेष सांगतो—“दर्शश्राद्ध व उदकुंभश्राद्धः किंवा दर्शश्राद्ध व मासिकश्राद्धः अथवा नित्यश्राद्ध व वार्षिकश्राद्धः किंवा दर्शश्राद्ध व वार्षिकश्राद्ध अशी एक दिवशीं दोन दोन प्राप्त असतां असें सांगून देवताभेद असल्यामुळें दोन्ही श्राद्धें करावीं, त्यांमध्ये ज्याचें निमित्त नियत (ठरलेलें) नाही तें पूर्वीं करावें.” याविषयीं कम निर्णयदीपांत सांगितला आहे तो असाः—“अमावास्याेस जर क्षयदिवस (वार्षिक) प्राप्त होईल तर दर्शश्राद्धाचे पूर्वीं वैश्वदेव व वार्षिकश्राद्ध करून नंतर दर्शश्राद्ध करावें.”

अमाश्राद्धंचानुपनीतोपिकुर्यात् श्राद्धशूलपाणौ अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपंचदशीषुचेत्युपक्रम्य एत-
च्चानुपनीतोपिकुर्यात्सर्वेषुपर्वसु श्राद्धंसाधारणंतामसर्वकर्मफलप्रदम् भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपिनित्यशः
शूद्रोप्यमंत्रवत्क्रुर्यादनेनविधिनावुधइतिमात्स्योक्तः अमाश्राद्धातिक्रमेप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने न्यूषु-
वाचंजपेन्मंत्रशंतवारंदिनेदिने अमाश्राद्धयदानास्तितदासंपूर्णमेतितम् ।

दर्शश्राद्ध हें अनुपनीतानें (मांजी न झालेल्यानें) ही करावें. कारण, श्राद्धशूलपाणिग्रंथांत—अमावास्या, अष्टका, कृष्णपक्षांतील पंधरा तिथि (महालयांतील) यांचा उपक्रम करून सांगतो—“सर्वे पक्षांचे ठिकाणीं होणारें हें साधारण श्राद्ध सवे कर्माचें फल देणारें असल्यामुळें अनुपनीतानेंही करावें. तसेंच विधुरानेंही प्रवासांत देखील नित्य करावें. शूद्रानें देखील उक्तविधीनें अमंत्रक करावें” अशी मात्स्योक्ति आहे. दर्शश्राद्धाचा लोप झाला असतां प्राश्चित्त सांगतो—ऋग्वि-
धानांत—“जेव्हां दर्शश्राद्ध घडलें नसेल तेव्हां ‘न्यूषुवाचं’ या ऋचंचा शंभर वेळां जप करावा, तेणेंकरून दर्श-
श्राद्धाचें संपूर्ण फल मिळतें.”

अत्रपूर्वोक्तसामिकपदेनाहिताग्निःस्मार्ताग्निमांश्रगृह्यते विच्छिन्नाग्निकादिश्चनिरग्निः तथाचेमाद्रि-
रग्नौकरणप्रकरणे साम्निरग्निमग्निस्तुद्विजपाणावथाप्सुवा कुर्यादग्नौक्रियानित्यलौकिकेनेतिनिश्चितमितिस्मृति-
वाक्यमुदाहृत्य यस्त्वस्वीकृतोपासनतयासमुच्छिन्नाग्निनयाभार्याविधुरतयावाग्निरहितस्तस्यद्विजपाणौजला-
दौवाहोमइतिव्याचचक्षे मदनपारिजातेप्येवम् इदमेवसामिकानग्निस्वरूपसर्वत्रज्ञेयम् ।

ह्या प्रकरणांत पूर्वोक्त सामिकशब्देंकरून श्रौताग्निमान् व स्मार्ताग्निमान्ही ध्यावा, ज्याचा अग्नि विच्छिन्न वगैरे असेल तो निरग्नि समजावा. तेंच हेमाद्रि अग्नौकरणप्रकरणीं सांगतां—“सामिकानें सवेदा अग्नौकरण अग्नौत करावें; अन-
ग्निनानें ब्राह्मणाच्या हस्तावर किंवा उदकांत करावें; परंतु लौकिकामांवर कदापि करूं नये” हें स्मृतिवाक्य घेऊन, गृह्या-
ग्निस्वीकार केला नसल्यामुळें अथवा स्वीकार करून नष्ट झाल्यामुळें किंवा स्त्री नसल्यामुळें जो अग्निरहित त्यानें ब्राह्मणाच्या हस्तावर किंवा उदकादिकांत अग्नौकरण करावें, असा त्या वाक्याचा अर्थ सांगता झाला. मदनपारिजात ग्रंथांतही असेंच आहे. हेंच सामिक व अनग्नि यांचें स्वरूप सर्वत्र ठिकाणीं समजावें.

अथग्रहणंनिर्णयते तत्रचंद्रग्रहेणयस्मिन्यामेग्रहणंतस्मात्पूर्वप्रहरत्रयंनभुंजीत सूर्यग्रहेतुप्रहरचतुष्ट-
यंनभुंजीत सूर्यग्रहेतुनाभ्रियात्पूर्वयामचतुष्टयं चंद्रग्रहेतुयामांस्त्रीन्वाल्गृद्धातुरैर्विनिति माधवीयेवृद्धगौ-
तमोक्तेः ग्रहणंतुभवेदिदोःप्रथमादधियामतः भुंजीतावर्तनात्पूर्वप्रथमेप्रथमादधहतिमार्कंडेयोक्तेश्च अधि-
ऊर्ध्वं ननुचंद्रग्रहेयामचतुष्टयनिषेधउचितोनतुसूर्यग्रहेसूर्योदयात्प्राक्भोजनाप्राप्तेः सैवं वचनस्यप्रथमयामे-

१ रात्रौ प्रथमयामादूर्ध्वं चंद्रग्रहणंचेत् आवर्तनान्मध्याह्नात्पूर्वं भुंजीत । रात्रौ प्रथमग्रहरे ग्रहणंचेत्प्रातः प्रथमग्रहरे भुंजीत.
अहस्तृतीयग्रहरेचेद्विग्रहस्तदा पूर्वदिनस्याधरात्राभ्यामुंजीत । अहस्तृतीयग्रहरेविग्रहणंचेदरात्रेश्चतुर्थग्रहरादधोभुंजीतैतवः ॥

सूर्यग्रहेऽसिपूर्वेषुःपूर्वरात्रेभोजननिषेधपरत्वान् चंद्रग्रहेविशेषमाह माधवीयेष्टवसिष्ठः प्रस्तोदयेविधोः-
पूर्वनाह्नोर्जनमाचरेदिति ।

यानंतर ग्रहणाचा निर्णय सांगतो.

चंद्रग्रहण असेल तर ज्या प्रहरीं ग्रहण लागतें त्या प्रहरापासून पूर्वी तीन प्रहर भोजन करूं नये. सूर्यग्रहण असेल तर ज्या प्रहरीं ग्रहण, त्यापासून पूर्वी चार प्रहर भोजन करूं नये; कारण, “सूर्यग्रहणीं पूर्वी चार प्रहर भोजन करूं नये, व चंद्रग्रहणीं पूर्वी तीन प्रहर भोजन करूं नये, व हा निषेध बाल, वृद्ध, रोगी एतद्यतिरिक्त जाणावा” असें माधवीयांत वृद्धरात्रौतमवचन आहे. “रात्री पहिल्या प्रहरानंतर चंद्रग्रहण असेल तर मध्याह्नाच्या पूर्वी भोजन करावें, आणि रात्रीच्या प्रथम प्रहरीं चंद्रग्रहण असतां दिवसाच्या प्रथम प्रहराच्या आंत भोजन करावें” असें मार्कंडेयवचनही आहे. शंका—चार प्रहरपर्यंत भोजनाचा जो निषेध तो चंद्रग्रहणीं योग्य आहे, सूर्यग्रहणीं चार प्रहर भोजननिषेध योग्य नाही, कारण, सूर्योदयाचे पूर्वी भोजनाची प्राप्ति नाही. समाधान—दिवसाच्या प्रथम प्रहरीं सूर्यग्रहण असेल तर पूर्वे दिवशीं पूर्वे रात्रीं भोजनाचा निषेध करणारें तें वचन आहे. चंद्रग्रहणाविषयी विशेष सांगतो—माधवीयांत-वृद्धवसिष्ठ-“ग्रहण लागून चंद्राचा उदय होईल तर चार प्रहर दिवसा भोजन करूं नये.”

द्वयोर्ग्रस्तास्तेतुमाधवीयेन्यासः अमुक्तयोरस्तगयोरद्याहृद्वापरं हनीति विष्णुधर्मैपि अहोरात्रं न भोक्तव्यं चंद्रसूर्यग्रहोयदा मुक्तिद्व्यातुभोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परं अहोरात्रनिषेधः सूर्यग्रस्तास्ते मदनरत्नेगार्ग्यः संध्याकालेयदाराहुर्ग्रस्तेशशिभास्करौ तदहर्नैव भुंजीतरात्रावपिकदाचन सायंसंध्यायांसूर्यग्रस्तास्ते पूर्वेहिरात्रौचनभोक्तव्यं प्रातःसंध्यायांचंद्रस्यग्रस्तास्तेपूर्वरात्रावुत्तरेह्निचनभोक्तव्यमित्यर्थः चंद्रग्रस्तास्तेउत्तरदिने-संध्याहोमादौनदोषः तदाहोशनाः ग्रस्तास्तंगतेत्विदौज्ञात्वामुक्तयवधारणं स्नानहोमादिकं कार्यं भुंजीतंदूदयेपुनः एतदनाहिताभिषिष्यं अपराह्णव्रतोपायनीयमश्रीतेति कात्यायनोक्तेर्ब्रतस्य श्रौतत्वेन विहितत्वेन च प्रबलत्वात् अङ्गिर्ब्रतंकुर्यादिति निर्णयदीपः रागप्राप्तभोजनेकालनियमोयं तेन अजरादाविवनभोजनमिति कर्कानुसारिणः ।

चंद्र व सूर्य यांचें ग्रस्तास्त होईल तर माधवीयांत-न्यास-सांगतो-“ग्रहणाचा मोक्ष झाल्यावांचून चंद्र व सूर्य अस्त पावतील तर दुसऱ्या दिवशीं शुद्ध बिंब पाहून भोजन करावें.” विष्णुधर्मांतही—चंद्रसूर्यग्रहण असतां अहोरात्र भोजन करूं नये, तर मोक्ष झालेला पाहून नंतर स्नान करून भोजन करावें.” अहोरात्रीं भोजनाचा निषेध सूर्याचें ग्रस्तास्त असतां समजावा. मदनरत्नांत-गार्ग्य-“ज्या दिवशीं संध्याकालीं सूर्याला किंवा चंद्राला राहु प्राशील त्या दिवशीं व त्या रात्रीही कदापि भोजन करूं नये.” या वचनाचा अर्थ—सायंसंध्याकालीं सूर्याचें ग्रस्तास्त झालें असतां त्या दिवशीं व त्या रात्रीं भोजन करूं नये; प्रातःसंध्याकालीं चंद्राचें ग्रस्तास्त झालें असतां पूर्वे रात्रीं व उत्तर दिवशीं भोजन करूं नये, असा समजावा. चंद्राचें ग्रस्तास्त झालें असतां दुसऱ्या दिवशीं संध्यावंदन, होम इत्यादि कर्माविषयीं दोष नाही. तैच्च खडगा सांगतो—“चंद्रग्रस्त असून अस्तंगत होईल तर मुक्तिनिश्चय शास्त्रावरून जाणून स्नानहोमादिक करावें, आणि भोजन उदयोत्तर करावें.” हें वचन अनाहिताभिषिष्यक होय. कारण, “व्रती यांनीं अपराह्णकालीं व्रतोपायनीय (व्रतविहित पदार्थ) भक्षण करावे” असें कात्यायनवचन आहे, यास्तव व्रत हें श्रौतकर्म व विहित असल्यामुळे प्रबल आहे. उदक प्राशन करून व्रत करावें, असें निर्णयदीप सांगतो. रागप्राप्त भोजनाविषयी हा कालनियम सांगितला, यावरून उपरादिक अवस्थेंत जसा भोजननिषेध तद्वत् हा निषेध असें कर्कानुसारी म्हणतात.

बालवृद्धादुराणांतुग्रहणयामात्पूर्वमेकयामोनिषिद्धः सायाह्णग्रहणचेत्स्यादपराह्णेनभोजनं अपराह्णेनमध्याह्णेनमध्याह्णेनतुसंगवे भुंजीतसंगवेचेत्स्यान्नपूर्वभोजनक्रियेति मार्कंडेयोक्तेः इदंचबालादिविषयं बालवृद्धादुरैर्विनेसिपूर्वोक्तेः ।

बाल, वृद्ध व आतुर यांविषयीं तर, ज्या प्रहरीं ग्रहण असेल त्या प्रहरापूर्वी एक प्रहर निषिद्ध आहे; कारण, “सायंकालीं ग्रहण असेल तर अपराह्णकालीं भोजन करूं नये; अपराह्णकालीं ग्रहण असेल तर मध्याह्नीं भोजन करूं नये; मध्याह्नीं ग्रहण

१ संवत्सरप्रदीपे तु स्नानपाकादिकं कार्यमिति पाठः तेन शास्त्रावगतमुक्त्युत्तरमुदयात्पूर्वमपि पाकादि कार्यं भोजनंतूदयोत्तरमित्युक्तं । सिद्धास्तु उदयोत्तरमेव सर्वं कुर्वति ॥

असेल तर संगवकालीं भोजन करूं नये; संगवकालीं ग्रहण असेल तर तत्पूर्वी भोजन करूं नये” असें मार्कंडेयवचन आहे. हें वचन बालादिविषयक जाणावें; कारण, “बाल, वृद्ध व आतुर यांचाचून तीन चार प्रहर निषेध असें पूर्वी सांगितलें आहे.

वेधकालेग्रहणेवापकमंत्रं त्याज्यं सर्वेषामेव वर्णानां सूतकराहुदर्शने स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रुतमभिवर्जयेदिति हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मतात् श्रुतमितितदंतरितस्थोपलक्षणं नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं प्रहृत्युषितंचयदिति मिताक्षरायां वचनान् भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबंधमेधातिथिः आरनालंपयस्तक्रं दधिस्नेहाज्यपाचितं मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके भन्वर्थमुक्तावल्याम् अन्नंपकमिहत्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे वारितकारनालादितिलदर्भेन दुष्यति जलेत्वदोषो गांगविषयः ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेदिति त्रैवचतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्य दोषोक्तेः ।

वेधकालीं किंवा ग्रहणकालीं शिजवलेलें अन्न टाकावें. पूर्वी शिजवलेल्या अन्नावरून ग्रहण गेलें असतां तें टाकावें; कारण, “सर्वे वर्णानां ग्रहणाचें मृतक आहे, यास्तव स्नान करून संध्या-देवपूजादिक कर्म करावीं आणि शिजलेलें अन्न टाकावें” असें हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मतावचन आहे. ‘शिजवलेलें अन्न टाकावें’ असें जें वचनांत आहे तें ग्रहणांतरिताचें उपलक्षण होय, म्हणजे शिजवलेल्या अन्नावरून ग्रहण गेलें असतां तेंही अन्न टाकावें असा अर्थ. कारण, “नवश्राद्धाचें अवशिष्ट, आणि ज्यावरून ग्रहण गेलें तें अन्न टाकावें” असें मिताक्षरेत वचन आहे. भार्गवार्चनदीपिकेत-ज्योतिर्निबंधांत-मेधातिथि-“आरनाल (कांजिक), दूध, तक्र, दही, तेल व तूप यांत तळलेले वटकादिक, माठांतलें उदक, यांवरून जरी ग्रहण गेलें तरी ते दुष्ट होत नाहीत.” मन्यर्थमुक्तावलीत-“ग्रहणांत शिजवलेलें अन्न टाकावें; सचेल स्नान करावें; उदक, तक्र, कांजिक, ग्वावर तिल दर्भ टाकून ठेवावे म्हणजे ते घेण्यास दोष नाही.” जलाविषयीं दोष नाही असें जें सांगितलें तें गंगाजलाविषयीं जाणावें; कारण, “आणलेल्या उदकावरून ग्रहण गेल्यावर तें प्राशन केलें असतां पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें” असा तेथेंच चतुर्विंशतिमतांत अन्यजलाविषयीं दोष सांगितला आहे.

वेधकालेग्रहणेवाभोजनेप्रायश्चित्तमुक्तम् माधवीयेकात्यायनेन चंद्रसूर्यग्रहेभुक्त्वाप्राजापत्येन शुद्ध्यति तस्मिन्नेवदिनेभुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यतीति ग्रहणेच त्रिरात्रमेकरात्रोपवासः श्रेयोर्थिना कार्यः एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा इत्वाचशक्तिः कंचुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः त्रिरात्रं समुपोष्यैव ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः स्नात्वा दत्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणामहेति हेमाद्रौलैंगोक्तेः इदंच पुत्र्यतिरिक्तविषयं आदिलेह निःसंकांतौ ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः पारणंचोपवासंच न कुर्यात् पुत्रवान्गृहीति जैमिनिवचनात् ।

वेधकालीं किंवा ग्रहणांत भोजन केलें असतां प्रायश्चित्त सांगतो-माधवीयांत-कात्यायन-“चंद्र-सूर्याच्या ग्रहणकालीं भोजन केलें असतां प्राजापत्य कृच्छ्र (वाग दिव्य करावयाचें तें) प्रायश्चित्त करावें म्हणजे शुद्ध होतो. वेधकालीं भोजन केलें असतां त्रिरात्र उपोषण करून शुद्ध होतो.” कल्याणच्छ्रं ग्रहणाचे ठायीं त्रिरात्र किंवा एकरात्र उपवास करावा; कारण, “एकरात्र उपोषण करून स्नान करून यथाशक्ति दान केलें असतां, सर्प जसा आपली मँग टाकून देदीप्यमान होतो तद्वत् पापापामून मुक्त होतो. चंद्रसूर्याच्या ग्रहणाचे ठायीं त्रिरात्र उपोषण करून स्नान करून यथाशक्ति दान दिलें असतां ब्रह्मदेवासह आनंद पावतो” असें हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मतावचन आहे. हें वचन, पुत्रवंताहून इतरविषयक जाणावें; कारण, “रविवार, संक्रांति व चंद्रसूर्यग्रहण यांचे ठायीं पुत्रवान् गृहस्थांनं पारणा व उपवास करूं नये” असें जैमिनिवचन आहे.

यदातुरवेप्रस्तास्तदापुत्रिणः प्रहरद्वयं हित्वा बालादिवद्भोजनं न तूपवासः सायाह्नेग्रहणंचेत्यादिति पूर्वोक्त-मार्कंडेयवचनात् सायाह्नेसंगवे श्रीयाच्छारदेसंगवाधः मध्याह्नेपरतो श्रीयान्नोपवासो रविग्रह इति स्मृतेश्चेति हेमाद्रिः शारदोपराहः माधवमते तु पुत्रिणोपितत्रोपवास एव अहोरात्रं न भोक्तव्यमिति पूर्वोक्तनिषेधस्य तेनापि पालनीयत्वात् उपवासनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः कृष्णैकादशीनिषेधवदिति मदनरत्नेप्येवम् इदमेवच युक्तम् ।

ज्या कालीं सूर्याचा प्रस्तास्त असेल त्या कालीं पुत्रवंत गृहस्थाश्रम्यांनं बालाप्रमाणे ग्रहणाच्या पूर्वी दोन प्रहर टाकून भोजन करावें, उपोषण करूं नये; कारण, “सायंकालीं ग्रहण असेल तर अपराह्नकालीं भोजन करूं नये” ब्रह्मादि पूर्वी मार्कंडेयवचन सांगितलें आहे. आणि “सायाह्नकालीं ग्रहण होईल तर संगवकालीं भोजन करावें, अपराह्नकालीं ग्रहण होईल तर संगवकालाच्या पूर्वी भोजन करावें, मध्याह्नीं ग्रहण होईल तर ग्रहणोत्तर भोजन करावें, सूर्यग्रहाणीं उपवास करूं

नये" असें स्मृतिवचनही आहे असें हेमाद्रि सांगतो. माघवर्मा तर पुत्रवंतानेही सूर्यग्रहणीं उपोषणच करावें; कारण, "चंद्रसूर्यग्रहणीं अहोरात्र भोजन करूं नये" हा जो भोजननिषेध सांगितला तो पुत्रवंतासही पाळणें अवश्य आहे. "पुत्रवंतांनं उपवास करूं नये" असा जो निषेध तो कृष्णैकादशीनिषेधासारखा व्रतरूप उपवासविषयक आहे. मदन-रत्नांतही असेंच सांगितलें आहे. पुत्रवंतानेही निषेधपालनरूप उपवास करावा हेंच योग्य होय.

वर्धमानस्तु अहोरात्रंनभोक्तव्यमितिशातातपीयात्रे सूर्याचंद्रमसोलोकानक्षयानयातिमानवइति-फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शनेउपवासःकाम्यः नत्वयंनिषेधइत्याह तन्न अत्रव्रतत्वेपिप्रागुक्तविष्णुधर्मेनिषेधावश्यंभावान् तथाव्यासः रविग्रहःसूर्यवारेसोमसोमग्रहस्तथा चूडामणिरितिख्यातस्तत्रदत्तमनंतकम् वारेष्वन्येषुपुण्य-पुण्यग्रहणेचंद्रसूर्ययोः तत्पुण्यंकोटिगुणितंयोगेचूडामणौम्भृतम् ।

वर्धमान तर "अहोरात्रांत भोजन करूं नये" ह्या शातातपवचनाच्या पुढें 'तो मनुष्य चंद्रसूर्याच्या अक्षय लोकां-प्रत जातो' अशी फलश्रुति आहे, याकरितां ग्रहणमोक्ष न दिसल्यामुळें जो उपवास सांगितला तो कामनिक आहे. हा भोजननिषेध आहे असें नाही, असें सांगतो. तें वर्धमानाचें म्हणणें बरोबर नाही. कारण, उपवास हा व्रतरूप जरी आहे, तथापि पूर्वीक विष्णुधर्मस्थवचनांत भोजननिषेध सांगितला तो अवश्य आहे. चूडामणियोग सांगतो-व्यास- "रविवारी सूर्यग्रहण व सोमवारी चंद्रग्रहण असें असेल तर चूडामणि योग होतो. त्या योगावर दानादिक केलें अमतां अनंतफल होतें. इतर वारी चंद्रसूर्यग्रहण अमतां जें पुण्य सांगितलें त्याच्या कोटिगुणित पुण्य चूडामणियोगावर प्राप्त होतें."

अत्रचाद्यंतयोःस्नानंक्षुर्यात् प्रस्यमानेभवेत्स्नानंप्रस्तेहोमोविधीयते मुच्यमानेभवेद्दानंमुक्तेस्नानंविधीयतइ-तिहेमाद्रौवचनात् स्नानंस्यादुपरागादौमध्येहोमःसुरार्चनमितिब्रह्मवैवर्ताच्च सर्वेषामेववर्णानांसूतंकराहु-दर्शने सचैलंतुभवेत्स्नानंसूतकान्नचवर्जयेदितिबृद्धवसिष्ठोक्तेश्च सचैलंमुक्तिस्नानपरमितिमदनरत्ने-उक्तम् भार्गवार्चनदीपिकायांचतुर्विंशतिमते मुक्तौयस्तुनकुर्वीतस्नानंग्रहणसूतके मसूतकीभवे-त्तावद्यवत्स्यादपरोग्रहः इदंचस्नानममंत्रंकार्यमितिस्मृतिरन्नावल्याम् ।

ग्रहणाच्या स्पर्शकालीं व ग्रहण सृटल्यानंतर स्नान करावें; कारण, "ग्रहणाच्या स्पर्शकालीं स्नान, मध्ये होम, सृटण्यास आरंभ झाल्यावर दान, निःशेष सृटल्यावर स्नान करावें." असें हेमाद्रिंत वचन आहे; व "ग्रहणाच्या आरंभी स्नान, मध्ये होम व देवपूजा करावी" असें ब्रह्मवैवर्तवचनही आहे. "राहुदर्शन झालें अमतां सर्व वर्णास अशौच आहे यास्तव सचैल स्नान करावें, आणि सूतकाच वर्ज्य करावें" असें बृद्धवसिष्ठचेंही वचन आहे. सचैल स्नान करावें असें जें सांगितलें तें मुक्तिस्नानाविषयीं होय, असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. भार्गवार्चनदीपिकेंत-चतुर्विंशतिमत-ग्रंथांत "ग्रहण सृटल्यानंतर जो मनुष्य मुक्तिस्नान करीत नाही तो दुसऱ्या ग्रहणापर्यंत मृतकी होतो असें जाणावें." हें ग्रहणसंबंधी स्नान अमंत्रक करावें, असें स्मृतिरत्नावलींत सांगितलें आहे.

तत्रतीर्थविशेषोभारते गंगास्नानंप्रकुर्वीतग्रहणेचंद्रसूर्ययोः महानदीषुवान्यासुस्नानंक्षुर्याद्यथाविधि महा-नदीष्वपिमासविशेषेकाश्चिच्छ्रेष्ठाः प्रयागंदेविकारेवासन्निहत्याचवारणम् सरस्वतीचंद्रभागाकौशिकीतापिका तथा सिंधुर्गंडकिकाचैवसरयूःकार्तिकादितः मूलहेमाद्रौस्पष्टम् ।

ग्रहणस्नानाविषयीं विशेष तीर्थं सांगतो-भारतांत-"चंद्रसूर्यग्रहणीं गंगास्नान करावें. किंवा इतर महानदीचे ठायीं यथाविधि स्नान करावें." महानद्यांपैकी कोणत्या नदींत कोणत्या मार्गीं स्नान करावें तें सांगतो-"प्रयाग, देविका, रेवा, सनिहत्या, वारण, सरस्वती, चंद्रभागा, कौशिकी, तापिका, सिंधु, गंडकी, सरयू, ह्या महानदी कमेंकरून कार्तिकादिक मासकमानें होत. त्या ग्रहणाचे ठायीं स्नानाविषयीं प्रशस्त जाणाव्या." याविषयींचीं मूलवचनें हेमाद्रिंत स्पष्ट सांगितलीं आहेत.

व्यासः इवोर्लक्षगुणपुण्यंवेदशगुणततः गंगातोयेतुसंप्राप्तइंदोःकोटीरवेदश गवांकोटिसहस्रस्यत्यक्-लंभतेनरः तत्फलंभतेमयोग्रहणेचंद्रसूर्ययोः असंभवेतुमाधवीयेशंखः वापीकूपतडागेपुगिरिप्रस्रवणे-पुच नद्यांनदेदेवखातेसरसीपूडूतांबुनि उष्णोदकेनवास्नायाद्ग्रहणेचंद्रसूर्ययोः अत्रतारतम्यमाहमार्कंडेयः

१ हेमाद्रौयथा-कार्तिकेग्रहणश्रेष्ठं गंगायस्तुनसंगमे । मार्गेंतुग्रहणप्रोक्तदेविकायांमहामुने ॥ पौषेतुनर्मदापुण्या माघेसन्निहिता शुभा ।
आश्विनेवारणापुण्याचैत्रपुण्यासरस्वती ॥ वैशाखेतुमहापुण्याचैत्रपुण्यासरस्वती । ज्येष्ठेतुकोशिकीपुण्याआषाढेतापिकानदी ॥ श्रावणेसिंधु-
आनापुण्याकार्द्वेगंडकी । आश्विनेसरयूःश्रेष्ठातथापुण्यातुलसी ॥

शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यंपरोदकात् भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यंततःप्रस्रवणोदकम् ततोपिसारसंपुण्यंततःपुण्यं-
नदीजलम् तीर्थतोयंततःपुण्यंमहानद्यंबुपावनम् ततस्ततोपिगंगांबुपुण्यंपुण्यस्ततोबुधिरिति उष्णोदकमातुर-
विषयम् तथा गोदावरीमहापुण्याचंद्रेराहुसमन्विते सूर्यचराहुणाप्रस्तेतमोभूतेमहामुने नर्मदातोयसंस्पर्शकृत-
कृत्याभवन्तिहि ।

व्यास—“चंद्रग्रहणीं ज्ञान केलें असतां लक्षगुणित पुण्य, सूर्यग्रहणीं त्याच्या दशगुणित पुण्य, गंगोदक प्राप्त असतां
चंद्रग्रहणीं कोटिगुणित, सूर्यग्रहणीं दशकोटिगुणित पुण्य प्राप्त होतें. सहस्रकोटिसंख्याक गोदानं करून जें फल पुरुष पावतो
तें फल भागीरथीच्या उदकांत चंद्रसूर्यग्रहणीं ज्ञान केलें अमतां पावतो,” गंगेचा असंभव असतां सांगतो—
माधवीयांत—शंख—“चंद्रसूर्यग्रहणीं वापी, कूप, तडाग, गिरिप्रस्रवण (ज्ञान्याचें उदक), नदी, नद, देवखात,
सरोवर, काहून आणलेलें उदक, यांतून कशांतही ज्ञान करावें, अथवा उष्णोदकेंकरून ज्ञान करावें.” याविषयीं तर-
तमभाव सांगतो—मार्कंडेय—“उष्णोदकाहून शीतोदक श्रेष्ठ, परकीय उदकाहून स्वकीय उदक श्रेष्ठ, बाहेर काढलेल्या-
हून भूमींतील श्रेष्ठ, त्याहून प्रस्रवणोदक श्रेष्ठ, त्याहून सरोवरांतील उदक पुण्यकारक, त्याहून नदीचें उदक पुण्यकारक,
त्याहून तीर्थोदक पुण्यकारक, त्याहून महानदीचें उदक पवित्र, त्याहून गंगोदक पवित्र, त्याहून समुद्रोदक पवित्र.” उष्णो-
दकज्ञान रोग्याविषयीं जाणावें. “चंद्रग्रहणीं गोदावरी महापुण्यकारक होय. सूर्य राहून प्राप्त तमोमय झाला असतां
नर्मदोदकाच्या स्पर्शानें कृतकृत्य होतात.”

पृथ्वीचंद्रोदयेप्रभासखंडे गावोनागास्तिलाधान्यंरत्नानिकनकंमही संप्रदायकुरुक्षेत्रेयत्फलंलभते
नरः तदिदुग्रहणेभोधौज्ञानाद्भवतिपङ्कणम् तत्रैवसौरपुराणेंबुधिज्ञानमुपक्रम्य दानानियानिलोकेषुवि-
ख्यातानिमनीपिभिः तेषांफलमवाप्नोतिग्रहणेचंद्रसूर्ययोः देवीपुराणे गंगाकनखलंपुण्यंप्रयागःपुष्करंतथा
कुरुक्षेत्रंमहापुण्यंराहुप्रस्तेदिवाकरे ज्ञानासंभवेस्मरणंवाकार्यं स्मृत्वाशतक्रतुफलंदृष्ट्वासर्वाघनाशनं स्पृष्ट्वागोमे-
धपुण्यंतुपीत्वासौत्रामणेर्लभेत् ज्ञात्वावाजिमखंपुण्यंप्राप्त्यादविचारतः रविचंद्रोपरागेचअयनेचोत्तरेतथेति
मार्कंडेयोक्तेः ।

पृथ्वीचंद्रोदयांत—प्रभासखंडांत—“कुरुक्षेत्रीं गार्द, हत्ती, तिल, धान्य, रत्ने, सुवर्ण, भूमि, यांचीं दानं करून जें
फल मनुष्य पावतो त्याच्या सहापट फल, चंद्रग्रहणीं समुद्रज्ञान केलें अमतां पावतो.” पृथ्वीचंद्रोदयांतच सौरपुराणीं
समुद्रज्ञानाचा उपक्रम करून सांगतो—“लोकांत ऋषींनीं जीं प्रख्यात दानं सांगितलीं, त्या सर्व दानांचें फल चंद्रसूर्यग्रहणीं
समुद्रज्ञान केलें असतां प्राप्त होतें.” देवीपुराणांत—“सूर्यग्रहणीं गंगा, कनखल तीर्थ, प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, हीं
महापुण्यकारक होत.” यांच्या ज्ञानाचा असंभव असतां त्याचें स्मरण करावें; कारण, “चंद्रसूर्यग्रहणीं व उत्तरायण संक्रां-
तीचे ठायीं यांचें स्मरण केल्यानें शतक्रतुफल, दर्शन केल्यानें सर्व पातकांचा नाश, स्पर्श केल्यानें गोमेधयज्ञाचें पुण्य,
उदकपान केल्यानें सौत्रामर्ण यज्ञाचें फल, ज्ञान केल्यानें अश्वमेधाचें पुण्य प्राप्त होतें” असें मार्कंडेयवचन आहे.

अत्रश्राद्धमाहऋष्यशृंगः चंद्रसूर्यग्रहेयस्तुश्राद्धंविधिवदाचरेत् तेनैवसकलापृथ्वीदत्ताविप्रस्यवैकरे
भारते सर्वस्वेनापिकर्तव्यंश्राद्धंवैराहुदर्शने अकुर्वाणस्तुनास्तिक्रयांतंकेगौरिवसीदति विष्णुः राहुदर्शन-
दत्तंशिवाद्दमाचंद्रतारकम् ।

ग्रहणाचे ठायीं श्राद्ध करण्याविषयीं सांगतो—ऋष्यशृंग—“जो चंद्रसूर्यग्रहणीं यथाविधि श्राद्ध करितो
त्याला सर्व पृथ्वीचें दान ब्राह्मणाचे हातावर केल्यामारखें फल होतें.” भारतांत—“ग्रहणकालीं अवश्य श्राद्ध करावें,
नास्तिकपणानें न करणारा, जशी चिखलांत गाय हतल्यानें कष्ट पावते, तसा तो कष्ट पावतो.” विष्णु—“ग्रहणांत केलेलें
श्राद्ध चंद्रतारका आहेत तोंपर्यंत राहातें.

इदंचामाभेनहेप्नावाकार्यनत्वन्नेन आपद्यनमौतीर्थेचचंद्रसूर्यग्रहेतथा आमश्राद्धंप्रकुर्वीतहेमश्राद्धमथापिबैति
शातातपोक्तेस्तिहेमाद्रिमाधवादयः ।

हें ग्रहणसंबंधी श्राद्ध आमाज्ज्ञानं किंवा हिरण्यानें करावें, अज्ञानं करूं नये; कारण, “आपत्कालीं, अग्नि नसतीं (मर्णा
नसतां) तीर्थाचे ठायीं, तसेंच चंद्रसूर्यग्रहणांत आमाज्ज्ञानं किंवा हिरण्यानें श्राद्ध करावें.” असें शातातपवचन आहे,
असें हेमाद्रि-माधवादिक सांगतात.

अपराकस्तु एतद्विजातीनांपाकाभावेद्रष्टव्यंतीर्थश्राद्धवत् पाकाभावेद्विजातीनामामश्राद्धंविधीयतेइति **सुमंतुक्तेः** सैहिकेयोयदासूर्यप्रसतेपर्वसंधिषु गजच्छायातुसाप्रोक्तातस्यांश्राद्धंप्रकल्पयेत् धृतेनभोजयेद्वि-
प्राणृतंभूमौसमुत्सृजेदिति**वायवीयोक्ते**श्रेत्याह **विज्ञानेश्वरोप्याह** ग्रहणश्राद्धेभोक्तुर्दोषोदातुस्त्वभ्यु-
दयइति सूतकेभूतकेभुंक्तेगृहीतेशशिभास्करे छायायांहस्तिनश्चैव नभूयःपुरुषोभवेदित्यापस्तंबेनभोजननि-
षेधाच्च अयंचनिषेधःश्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात् अत्रग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासंक्रांत्यादिनैमित्ति-
कानांसिद्धिः दार्शिकालभ्ययोरपीतिकालादर्शोक्तेः ।

अपराक तर-हैं शातातपवचन, द्विजांना पाकश्राद्धाच्या अभावीं समजावें, जसें पाकाच्या अभावीं तीर्थश्राद्ध आमा-
दिकानें करावें तद्वत्; कारण, “पाकाच्या अभावीं द्विजातींना आमश्राद्ध विहित आहे.” असें **सुमंतु**वचन आहे; आणि
“ज्या पर्वकालीं राहु सूर्याला प्रस्त करितो ती गजच्छाया पर्वणी होय, त्या पर्वणीचे ठायीं श्राद्ध करावें, ब्राह्मणांस घृतयुक्त
भोजन द्यावें, भूमीवर घृत पाडवावें” असें **वायुपुराणांत**ही वचन आहे, असें सांगतो. **विज्ञानेश्वर**ही सांगतो—
ग्रहणश्राद्धी भोजन करणाऱ्या ब्राह्मणांस दोष, व श्राद्धकर्त्यांस पुण्य होतें. आणि “जननाशौच, मृताशौच, चंद्रसूर्यग्रहण,
गजच्छाया, रांचे ठायीं भोजन करणारा पुनः पुरुष होत नाही” असा **आपस्तंब**नांही भोजननिषेध केला आहे. हा निषेध
श्राद्धभोक्त्यास आहे; कारण, वचनांत गजच्छाया बरोबर सांगितली आहे. येथें ग्रहणनिमित्तक श्राद्ध केल्यानंच दर्श,
संक्रांति इत्यादिक नैमित्तिक श्राद्धांची सिद्धि होते; कारण, “दर्शश्राद्ध व अलभ्ययोगप्रयुक्त श्राद्ध हीं दोन एकदिवशीं प्राप्त
असतां अलभ्ययोगप्रयुक्त श्राद्ध केल्यानं दर्शश्राद्धाची सिद्धि होते” असें **कालादर्शांत** वचन आहे.

अत्राशौचमध्येपिस्नानश्राद्धादिकार्यमेव सूतकेभूतकेचैव नदोषोराहुदर्शने तावदेवभवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न-
दृश्यतइति**माधवीयेवृद्धवसिष्ठोक्तेः** स्मार्तकर्मपरित्यागोराहोरन्यत्रसूतकइतिव्याघ्रपादोक्तेश्च
कालादर्शअंगिराः सर्ववर्णाःसूतकेपिमृतकेराहुदर्शने स्नात्वाश्राद्धंप्रकुर्वीरनदानंशाश्वविवर्जितम् **मद-
नपारिजाने**प्येवम् तेन स्नानमात्रंप्रकुर्वीतदानश्राद्धविवर्जितमितिनिर्मूलवंदंतो**गौडाः**परास्ताः इयंचशु-
द्धिरविशेषातुमंत्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्वस्मार्तकर्मविषया **मदनरत्ने**प्येवम् ।

येथें (ग्रहणांत) आशौचामध्येही स्नान, श्राद्ध इत्यादि करावें; कारण, “ग्रहणांत जरी मृताशौच किंवा जननाशौच असलें
तथापि दोष नाही. मुक्तिपर्यंत शुद्धता आहे” असें **माधवीयांत** **वृद्धवसिष्ठ**वचन आहे; आणि सूतकांत स्मार्तकर्माचा
जो निषेध आहे तो ग्रहण नसेल त्या वेळीं समजावा.” असें **व्याघ्रपाद**वचनही आहे. **कालादर्शांत अंगिरा**—“मृता-
शौच, जननाशौच असतांही सर्व वर्णांनीं ग्रहणांत स्नान करून श्राद्ध करावें, व कार्पण्य सोडून दान करावें.” **मदनपारि-
जातांत**ही असेंच सांगितलें आहे. यावरून, “आशौचांत ग्रहणसमयीं स्नान मात्र करावें, दान व श्राद्ध करूं नये” हें
वचन निर्मूल असल्यामुळें स्नानही करूं नये असें म्हणणारे गौड खंडित झाले. ही शुद्धि सामान्यतः सांगितली असल्यामुळें
मंत्रदीक्षा, पुरश्चरण इत्यादि सर्व स्मार्तकर्मविषयीं जाणावी. **मदनरत्नांत**ही असेंच आहे.

रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायाम् सूर्योदयनिबंधे नसूतकादिदोषोस्तिग्रहेहोमजपादिषु
ग्रस्तेस्नायादुदक्यापितीर्थादुद्धृतवारिणेति अत्रच स्नानेनैमित्तिकेप्राप्तेनारीयदिरजस्वला पात्रांतरिततोयेन
स्नानंकृत्वाव्रतंचरेदित्यादि**मिताक्षरोक्तो**विधिर्ज्ञेयः ।

रजस्वलास्त्रीविषयीं तर भार्गवार्चनदीपिकेंत सूर्योदयनिबंधांत—“ग्रहणांत होम, जप, इत्यादि करण्या-
विषयीं सूतकादि दोष नाही; रजस्वलास्त्रियेनेंही ग्रहण लागल्यानंतर तीर्थांतून पात्रांत उदक घेऊन स्नान करावें.” ह्या स्थलीं
“स्त्री रजस्वला असून नैमित्तिक स्नान प्राप्त होईल तर भांड्यांत उदक घेऊन स्नान करून व्रत करावें” इत्यादिक, **मिता-
क्षरेंत** सांगितलेला विधि जाणावा.

तथाग्रहणेत्रात्रावपिश्राद्धादिकार्यम् ग्रहणोद्वाहसंक्रांतियात्रार्तिप्रसवेषुच दाननैमित्तिकंज्ञेयंरात्रावपितदि-
प्यतइत्यपराकेंव्यासोक्तेः चंद्रग्रहेतथारात्रौस्नानंदानंप्रशस्यतइति**देवलोक्ते**श्च यदातुज्योतिःशास्त्र-

१ अपराकस्त्विति तुनाऽरुचिः । सात्रामहेमश्राद्धविधानात् । पाकाभावेइत्यस्य यत्रपाकासंभवस्तत्रामश्राद्धमितिनीर्थः किंतु यत्र-
पाकोविहितोपिकेनचिद्वेत्तुनानसंभवति तच्चश्राद्धंनत्याज्यं किंतु आमश्राद्धकार्यमित्यर्थः । ग्रहणेतुपाकोनविहित इतिनपाकश्राद्धप्राप्तिः ।
२ घृतेनेति । घृतस्यप्राप्त्युर्थोक्तं । तेनंपाकोपपत्तिः । आमश्राद्धेवघृतस्य हेमश्राद्धेचतद्रूपस्य दानार्थं । घृतमिति तु आमहेमश्राद्धयोः
अनुरूप्यघृतद्रव्यकपिदशानार्थं तथाचास्त्रनिवेदनवाक्ये हृदमजमित्यत्र पिष्टदानवाक्ये चायंपिष्टइत्यत्र हृदघृतमितिप्रयोगइत्यर्थेइति केचित् ।

गम्योदिनेचंद्रमहोरात्रौचसूर्यग्रहस्तदास्नानादिनकार्यं सूर्यग्रहोयदारात्रौदिवाचंद्रग्रहस्तथा तत्रस्नानं कुर्वीत-
द्याहानं च कचिदिति षट्त्रिंशन्मतात् ।

तसेच ग्रहणांत रात्रीही श्राद्धादिक करावें; कारण, “ग्रहण, विवाह, संक्रांति, यात्रा, आर्ति (संकटप्रसंग), व पुत्रजनन यांतून कोणतेही निमित्त प्राप्त असतां तज्जिमतक दान रात्रीही करावें” असें अपराकृत व्यासवचन आहे; आणि “चंद्रग्रहणांत रात्रीही ज्ञान व दान प्रशस्त होय” असें देवलवचनही आहे. जेव्हां दिवसा चंद्रग्रहण आहे व रात्री सूर्यग्रहण आहे, हें केवळ ज्योतिःशास्त्रावरून मात्र समजतें तेव्हां ज्ञानादिक करूं नये; कारण, “जेव्हां रात्री सूर्यग्रहण व दिवसा चंद्रग्रहण असेल तेव्हां तज्जिमतक ज्ञान व दान हें कधीही करूं नये” असें षट्त्रिंशन्मतवचन आहे.

ग्रहणदिनेवार्षिकश्राद्धप्राप्तौतुप्रयोगपारिजातेगोभिलः दर्शोर्विग्रहेपित्रोःप्रत्याब्दिकमुपस्थितम् अन्नेनासंभवेद्ब्राह्मकुर्यादामेनवासुतइति अत्रदर्शोर्विपितृसुतशब्दाःप्रदर्शनार्थाः न्यायसाम्यात् तेनचंद्रग्रहेपि सपिंडादिवार्षिकमन्नादिनातद्दिनएवकार्यमिति मदनपारिजातेव्याख्यातम् पृथ्वीचंद्रोदयेप्येवम् तेन यानि आमश्राद्धं कुर्वीतमाससंवत्सरादृतइति अन्नैवाब्दिकं कुर्याद्वेत्तावामेनन कचिदिति मरीचिलौ-
गाक्ष्यादिवचनानि तानिग्रहणदिनातिरिक्तविषयाणि निर्णयामृतयेवम् ।

ग्रहणदिवशीं वार्षिक श्राद्ध प्राप्त असेल तर प्रयोगपारिजातांत गोभिल-“अमावास्यास सूर्यग्रहण असून त्या दिवशीं मातापितरांचें प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध प्राप्त होईल तर पुत्रांनं तें श्राद्ध अज्ज्ञानं करावें; अज्ञाच्या असंभवीं आमामांनं किंवा हिरण्यानं करावें.” ह्या वाक्यांत अमावास्या, सूर्यग्रहण, मातापितर, पुत्र हे जे शब्द आहेत ते प्रदर्शनार्थ आहेत; कारण, इतर श्राद्धाविषयीही तोच न्याय आहे. म्हणून पौर्णिमेम चंद्रग्रहण असतांही सपिंडादिकांचें वार्षिक श्राद्ध प्राप्त असतां तें अज्ञादिकांनं त्याच दिवशीं करावें, असें मदनपारिजातांत ह्या वचनाचें व्याख्यान केलें आहे. पृथ्वीचंद्रो-
दयांतही असेंच आहे. यावरून जीं “मासिक, सांवत्सरिक यांचांचून इतर श्राद्ध आमामांनं करावीं” “सांवत्सरिक श्राद्ध पक्षाज्ञानं करावें, हिरण्यानं किंवा आमामांनं कदापि करूं नये” अशीं मरीचि, लौगाक्षि इत्यादिकांचीं वचनें तीं ग्रहण-
दिवसातिरिक्तविषयक होत. निर्णयामृतांतही असेंच आहे.

यानितु ग्रहणात्तद्वितीयेऽह्निरजोदोपातुपंचमे तथा प्रस्तोदयेयदाचंद्रेप्रत्यब्दंसमुपस्थितं तद्दिनेचोपवासः स्यात्प्रत्यब्दंतुपरेहनि तथा प्रस्तावेवास्तमानंतुरवीदूप्राप्तोयदि प्रत्यब्दंतुतदाकार्यपरेहन्येवसर्वदा चंद्रसूर्यो-
परागेचतथाश्राद्धंपरेहनीत्यादीनिवचनानितानि महानिबंधेषुकाप्यनुपलंभान्निर्मूलानि प्रत्युतपूर्वोक्तनिबंधे-
पुतद्दिनएवश्राद्धमुक्तमित्यलम् ।

आतां जी “ग्रहण असतां दुसऱ्या दिवशीं, स्त्री रजस्वला असतां पांचव्या दिवशीं श्राद्ध करावें” तसेंच-“चंद्र ग्रस्त असून उदय होईल आणि त्या दिवशीं प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध प्राप्त असेल तर त्या दिवशीं उपवास करून दुसऱ्या दिवशीं सांवत्सरिक श्राद्ध करावें.” तसेंच “जेव्हां सूर्य व चंद्र हे ग्रस्त असून अस्तेगत होतील त्या दिवशीं प्राप्त झालेलें सांवत्सरिक श्राद्ध सर्वदा दुसऱ्या दिवशीं करावें,” “चंद्रसूर्याला ग्रहण असतां श्राद्ध दुसऱ्या दिवशीं करावें” इत्यादिक वचनें, तीं गोम्या निबंधग्रंथांत कोठें मिळत नसल्यामुळें तीं निर्मूल होत. याच्या उलट पूर्वोक्त (मदनपारिजात, पृथ्वीचंद्रोदय, निर्णयामृत इत्यादि) निबंधांत ग्रहणदिवशींच श्राद्ध करावें असें सांगितलें आहे. इतका निर्णय पुरे आहे.

ग्रहणादिसप्तदिनपर्यंतरामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ताशिवार्चनचंद्रिकायांज्ञानार्णवे मंत्राधारंभणं कुर्याद्ग्रहेणचंद्रसूर्ययोः ग्रहणाद्वापिदेवेशिकालःसप्तदिनावधीति रत्नसागरे सत्तीर्थेऽर्कविधुप्रासेतंतुशमनप-
र्वणि मंत्रदीक्षांप्रकुर्वाणोमासश्र्क्षदीक्षशोधयेत् अत्रसूर्यग्रहणमेवमुख्यम् सूर्यग्रहणकालेतुनान्यदन्वेषितंभवेत् सूर्यग्रहणकालेनसमोनान्यःकदाचन नमासतिथिवारादिशोधनंसूर्यपर्वणीतितत्रैवकालोत्तरवचनात् चंद्र-
ग्रहेतुयादीक्षायादीक्षाव्रतचारिणाम् वनस्थस्यचयादीक्षादारिद्र्यसप्तजन्मस्वितितत्रैवद्योगिनीतंत्रेनिषेधाच्च ।

मंत्रदीक्षा—ग्रहणदिवसापासून सात दिवसपर्यंत राम, गोपाल इत्यादिकांचे आगममंत्राची शीक्षा सांगतो—शिवाय-
नचंद्रिकेत-ज्ञानार्णवांत-“हे देवेशि ! चंद्रसूर्यांचे ग्रहणकालीं मंत्रादि आरंभ करावा, अथवा ग्रहणदिवसापासून सात दिवसपर्यंत आरंभाचा काल समजावा.” रत्नसागरांत—“उत्तमतीर्थ, चंद्रसूर्यग्रहण, तंतुशमनपर्व, यांचे ठायीं मंत्राची

रीक्षा (उपदेष्टा) घेणें असतां मास, नक्षत्र इत्यादिक शोधूं नयेत.” मंत्ररीक्षेविषयीं सूर्यग्रहणच मुख्य होय; कारण, “सूर्य-ग्रहणकार्यां दुसरें कांहीं पाहूं नये; कारण, सूर्यग्रहणकालासारखा दुसरा काल नाही. सूर्यग्रहणपूर्व असतां मास, तिथि, वार इत्यादिकांचे शुद्धीची अपेक्षा नाही” असें तेथेंच कालोत्तरवचन आहे; आणि “चंद्रग्रहणीं घेतलेली रीक्षा, व्रतस्थाची घेतलेली रीक्षा, वानप्रस्थाची घेतलेली रीक्षा, यांपासून सात जन्म दरिद्र प्राप्त होतें” असा तेथेंच योगिनीतंत्रांत चंद्र-ग्रहणीं रीक्षेचा निषेधही केला आहे.

ग्रहणंच जन्मराश्यादौ निषिद्धम् तदुक्तं ज्योतिषे त्रिषट् दशाद्योगगतं नराणां शुभप्रदं स्याद् ग्रहणं रवीन्द्रोः द्विसप्तनंदेषु मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनींद्रैरिति आयत्तकादश नंदानव इषुः पंच मदनरत्नेर्गर्गः जन्मसमाष्टरिः फांकदशमस्थे निशाकरे दृष्टोरिष्टप्रदो राहुर्जन्मक्षे निधनेपि च रिः फं द्वादशम् अंकानव निधनं सप्रमतारा पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुधर्मं यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करो तज्जातानां भवेत्पीडा येन राः शांतिवर्जिताः ।

जन्मराशीस वंगरे ग्रहण निषिद्ध (अशुभ) आहे, तें सांगतो—ज्योतिषांत—“जन्मराशीपासून ३१६। १०११ या स्थानीं सूर्यचंद्रग्रहण शुभ; २१७।९१५ या स्थानीं मध्यम; ११८।८१२ या स्थानीं अशुभ; असें ऋषिवर्यांनीं सांगितलें आहे.” मदनरत्नांत गर्ग—“जन्मराशि, व जन्मराशीपासून सात, आठ, बारा, नऊ, दहा, या राशीमः तसेंच जन्मनक्षत्र व जन्मनक्षत्रापासून सातवें नक्षत्र या ठिकाणीं ग्रहण असतां तें ग्रहण जर पाहिलें तर अरिष्टकारक होतें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत-विष्णुधर्मांत—“ज्या नक्षत्रां ग्रहण असतें त्या नक्षत्रावर जे झालेले असतात त्यांनीं शांति केली नाही तर त्यांस पीडा होते.”

तत्रैव पुराणांतरे सूर्यस्य संक्रमो वापि ग्रहणं चंद्रसूर्ययोः यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथवा मृतिः तस्य दानं च होमं च देवार्चनं जपैतथा उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छांतिर्भविष्यति स्वर्गेन वाथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम् ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते जन्मदशमैकोनविंशतितारा इति केचित् सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः अद्भुतसागरे भार्गवः यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते राज्यभंगं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निदिशेत् राज्यस्य नक्षत्रं अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम् ।

पृथ्वीचंद्रोदयांत-पुराणांतरांत—“ज्याचे त्रिजन्मनक्षत्रावर, (जन्मनक्षत्र, त्याच्या पूर्वीचे व पुढचे नक्षत्रावर) सूर्याची संक्रांति अथवा चंद्रसूर्यग्रहण होईल त्यास रोग किंवा मरण प्राप्त होईल; त्याच्या पारहाराकरितां दान, होम, देव-पूजा, जप, बिंबावर अभिषेक हीं करावीं म्हणजे शांति होते. सुवर्णाचा किंवा पिष्टाचा सर्पाकृति राहु करून तो ब्राह्मणाम द्यावा, म्हणजे रोगादिक होत नाहीत.” अद्भुतसागरांत-भार्गव—“ज्या नक्षत्रां राज्याभिषेक झाला त्या नक्षत्रां राहु असून ग्रहण होईल तर राज्यभंग, सुहृन्नाश, मरण हीं प्राप्त होतात.” ‘राज्यस्य नक्षत्रं’ याची राज्याभिषेकनक्षत्र अशी तेथेंच व्याख्या केली आहे.

भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिःसागरे सौवर्णकारयेन्नागं पलेनाथपलाधतः तदर्धेन तदर्धेन फणा-यां मौक्तिकं न्यसेत् ताम्रपात्रे निधाय अथ घृतपूर्णं विशेषतः कांस्ये वा कांतलोहं वा न्यस्य दद्यात्सदक्षिणं चंद्रग्रहेतु रूप्यस्य बिंबं दद्यात्सदक्षिणम् नागरुक्ममयं सूर्यग्रहे बिंबं च हेमजम् तुरंगरथगोभूमितिलसर्पिश्च कांचनम् काल-विवेकेपि सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम् सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् सौवर्णराजतं वापि बिंबं कृत्वा स्वशक्तिः उपरागभवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् मंत्रस्तु तमोमयमहाभीमसोमसूर्यविमर्दन हेमताराप्रदानेन मम शांतिप्रदो भव विधुंतु दनमस्तु भ्यसिंहिकानंदनाच्युत दानेनानेन नागस्य रक्षमां वेधजाङ्ग-याविति ।

भार्गवार्चनदीपिकेंत-ज्योतिःसागरांत—पलै किंवा अर्धपल, अथवा पावपल, किंवा अष्टमांशपल परिमित सुवर्णाचा नाग करावा, व त्याचे फणेंवर मौक्तिक लाडून तो घृतपूर्ण ताम्रपात्रांत किंवा कांस्यपात्रांत अथवा कांतलोहपात्रांत ठेवून त्याचें दक्षिणासहित दान करावें. चंद्रग्रहणीं रूपाचें चंद्रबिंब, आणि सुवर्णाचा नाग करून दक्षिणासहित दान करावें.

१ दशमस्थे दिवाकरे इति पाठान्तरम्. २ त्रिजन्मनक्षत्र म्हणजे जन्मनक्षत्र व तत्पूर्वोत्तर नक्षत्रे २ मिळून नक्षत्रे ३. कोणाचे मतीं जन्मनक्षत्र, दशम नक्षत्र, आणि एकोनविंशति नक्षत्र मिळून नक्षत्रे ३. ३ पेशीं गुंजा म्हणजे एक कर्ष, ४ कर्ष म्हणजे १ पल होते.

सूर्यग्रहणीं सुवर्णाचें सूर्यबिंब व सुवर्णाचा नाग करून दान करावें. अश्व, रथ, गाढे, भूमि, तिल, घृत, सुवर्ण यांचीही दानें, करावीं. 'कालविवेकांतही "सुवर्णाचा नाग करून तो कांस्यपात्रांत ठेवून तिल, वस्त्र, दक्षिणा यांही युक्त ब्राह्मणांस द्यावा. आपल्या शक्तीप्रमाणें सुवर्णाचें किंवा रुप्याचें बिंब करून ग्रहणजन्य क्लेश दूर करण्याविषयीं समर्थ अशा ब्राह्मणास द्यावें." दानाचा मंत्र—"तमोमयमहाभीमसोमसूर्यविमर्दन ॥ हेमताराप्रदानेनममशांतिप्रदो भव ॥ विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानंदनाच्युत ॥ दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाड्ययात्" ॥

अत्रशांतिरप्युक्तामात्स्ये यस्यराशिसमासाश्रयवेदग्रहणसंभवः स्नानंतस्यप्रवक्ष्यामिमंत्रौषधिसमन्वितम् चंद्रोपरागसंप्राप्यकृत्वाब्राह्मणवाचनम् संपूज्यचतुरोविप्रान्छुक्कमात्यानुलेपनैः पूर्वमेवोपरागस्यसमानीयौषधादिकम् स्थापयेच्चतुरःकुंभानव्रणानसलिलान्वितान् गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्भद्रगोकुलान् राजद्वारप्रदेशाच्चमृदमानीयनिक्षिपेत् पंचगव्यपंचरत्नपंचत्वक्पंचपल्लवम् रोचनपद्मकंशंखंकुंकुमरंरक्तचंदनम् शुक्तिस्फटिकतीर्थंबुसितसर्षपगुग्गुलून् मधुकंदेवदारुचविष्णुकांतांशतावरीं वलांचसहदेवींचनिशाद्वितयमेवच गजदंतंकुंकुमंचतथैवोशीरचंदनं एतत्सर्वविनिक्षिप्यकुंभेष्वावाहयेत्सुरान् सर्वेसमुद्राःसरितस्तीर्थानिजलदानदाः आयांतुयजमानस्यदुरितक्षयकारकाः योसौवज्रधरोदेवआदित्यानांप्रभुर्मतः सहस्रनयनःशक्रोग्रहपीडांश्वपोहतु मुखंयःसर्वदेवानांमत्ताचिरमितश्रुतिः चंद्रोपरागसंभूतामग्निःपीडांश्वपोहतु श्रःकर्मसाक्षीलोकानांधर्मोमहिषवाहनः यमश्चंद्रोपरागोत्थांग्रहपीडांश्वपोहतु रक्षोगणाधिपःसाक्षात्रीलांजनसमप्रभः खड्गहस्तोतिभीमश्चग्रहपीडांश्वपोहतु नागपाशधरोदेवःसदामकरवाहनः सजलाधिपतिर्देवोग्रहपीडांश्वपोहतु प्राणरूपोहिलोकानांसदाकृष्णमृगप्रियः वायुश्चंद्रोपरागोत्थांग्रहपीडांश्वपोहतु योसौनिधिपतिर्देवःखड्गशूलगदाधरः चंद्रोपरागकलुषधनदोत्रव्यपोहतु योसाविंदुधरोदेवःपिनाकीवृषवाहनः चंद्रोपरागपापानिसनाशयतुशंकरः त्रैलोक्येयानिभूतानिस्वावराणिचराणिच ब्रह्माविष्ण्वर्करुद्राश्चदहंतुममपातकम् एवमावाहयेद्देवानामंत्रैरभिश्चरारुणैः एतानेवतथामंत्रान्स्वर्णपट्टेविलेखयेन् ताम्रपट्टेथवालिलेख्यनववस्त्रेत्तथैवच मस्तकेयजमानस्यनिदध्युस्तेद्विजोत्तमाः कलशान्द्रव्यसंयुक्तात्रानारूपसमन्वितान् गृहीत्वाम्नापयेद्दूढंभद्रपीठोपरिस्थितम् पूर्वैरेवतुमंत्रैश्चयजमानंद्विजोत्तमः अभिपेकंततःकुर्यान्मंत्रैर्वारुणमूक्तकैः आचार्यवरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टंनिवेदयेन् आचार्यदक्षिणांदाश्रोदानंचम्वशक्तितः होमंप्रापिप्रकुर्वीततिलैर्व्याहृतिभिस्तथा दानंचशक्तितोदाशायदीच्छेदात्मनोहितं सूर्यग्रहसूर्यतामयुक्तान्मंत्रांश्चकीर्तयेन् अनेनविधिनायस्तुग्रहणेस्नानमाचरेन् नतस्यग्रहणेदोषःकदाचिदपिजायते इतिग्रहणशांतिः ।

याविपर्यीं शांतिही सांगितली आहे मत्स्यपुराणांत—"ज्याचे जन्मराशीय ग्रहण होतें त्याम मंत्रौषधियुक्त स्नान सांगतां. चंद्रग्रहण आलें अमतां ते ब्राह्मणाच्या मुखपासून श्रवण करून ग्रहणाच्या पूर्वीच श्वेतपुष्प, श्वेतगंध यांहीकरून चार ब्राह्मणांचें पूजन करून त्यामहं हे पुढचे कर्म करावें. तें असे—ओषध्यादिक आणून उदकपूर्ण असे नूतन चार कलश घेऊन ते स्थापित करावे. नंतर त्या कलशांत हत्ता वांधण्याची जागा, अश्वशाला, राजमार्ग, वारूळ, दोन नद्यांचा संगम, डोह, गोठा, राजद्वार, या ठिकाणांहून मूर्तिका आणून (कलशांत) ठाकावी. नंतर कलशांत पंचगव्य, पंचरत्न, पंचलवचा, पंचपल्लव, गोरोचन, पद्मकाष्ठ, शंख, कुंकुम, (केशर), रक्तचंदन, शुक्ति, स्फटिक, तीर्थोदक, श्वेतसर्षप, गुग्गुलु, ज्येष्ठमध, देवदारु, विष्णुकांता, शतावरी, चिकणा, सहदेवी, हळद, दारुहळद, गजदंत, कुंकू, वाळा, चंदन, हे सर्व पदार्थ कुंभांत टाकून पुढें सांगितलेल्या मंत्रांनीं देवतांचें कुंभांवर आवाहन करावें. ते मंत्र असे—**"सर्वे समुद्राः सरितः स्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ आयांतु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ योसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ॥ सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ मुखं यः सर्वदेवानां मत्ताचिरमितश्रुतिः ॥ चंद्रोपरागसंभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥ यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ॥ यमश्चंद्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ रक्षोगणाधिपः साक्षात्रीलांजनसमप्रभः ॥ खड्गहस्तोतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ॥ स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः ॥ वायुश्चंद्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ योसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ॥ चंद्रोपरागकलुषं धनदोत्र व्यपोहतु ॥ योसाविंदुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ॥ चंद्रोपरागपापानि स नाशयतु शंकरः ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्वावराणि चराणि च**

ब्रह्मविष्णवर्करुद्राश्च दहंतु मम पातकम् ॥ याप्रमाणे ह्या व वरुणदेवताक मंत्रांनी वरील देवतांचें आवाहन कल-
शांनर करावें. तसेंच हे मंत्र खगपट्टावर किंवा ताम्रपट्टावर अथवा कोऱ्या वस्त्रावर लिहून यजमानाचे मस्तकावर ब्राह्मणांनीं
तो पट धरावा. नंतर ब्राह्मणांनीं नानाद्रव्यांसहित ते कलश हातांत घेऊन त्यांतील उदकांत भद्रपीठस्थित (उच्च आसनावर
बसलेल्या) यजमानाला पूर्वीक मंत्रांनीं स्नान घालावें. नंतर वरुणसूक्तमंत्रांनीं अभिषेक करावा. नंतर आचार्याला स्वर्णपट्ट,
आचार्यदक्षिणा, गोप्रदान, हीं यथाशक्ति द्यावीं. व्याहृति मंत्रांनीं तिलहोम करावा, व यथाशक्ति दान करावें. असें केलें
असतां कल्याण होतें. सूर्यग्रहणीं सूर्यनामयुक्त मंत्र म्हणावे. ह्या पूर्वीक विधीनें जो मनुष्य ग्रहणांत स्नान करील त्याला
ग्रहणसंबंधी कोणतीही पीडा होणार नाही.” याप्रमाणे ग्रहणशांति जाणावी.

भार्गवार्चनदीपिकायांब्रह्मसिद्धांते सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्य स्वस्थं तैलांबुदपणैः ग्रहणगुर्विणी जातु-
न पश्येत पटविना तथा मंगलकृत्ये पुत्रे धविशेषो हेमाद्रौ त्रयोदश्यादितो वज्रं दिनानां नवकंध्रुवम् मांगल्ये-
षु समस्ते पुग्रहणे चंद्रसूर्ययोः प्रकारांतरं तत्रैवोक्तं द्वादश्यादितृतीयांतो वधे इदुग्रहे स्मृतः एकादश्यादिकः सोमो
चतुर्थ्यतः प्रकीर्तितः इदं च पूर्णप्रासे त्र्यहं खंडग्रहे तयोरितित तत्रैवोक्तेः इदं च प्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वमिति नारदेन-
प्रस्तास्ते विशेषोक्तेः प्रस्तास्तं भिन्नग्रहणपरं ज्योतिर्निबंधे च यवनः ग्रहणोत्पातं भंग्याज्यं मंगले पुक्रतु त्रयं याव-
श्चरविणाभुक्त्वा मुक्तं भंदग्धकाष्ठवत् अन्यानि चाग्नेयादिमंडलानितत्फलं वर्णविकारादिफलं च दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ।

भार्गवार्चनदीपिकेंत—ब्रह्मसिद्धांतांत—“ग्रहण पाहणें तें सर्वांनीं वस्त्र, तेल, उदक, दर्पण (आरसा किंवा भिंग)
यांतून पाहवें. गर्भिणी स्त्रीनें तर वस्त्र आठ केल्यावांचून कदापि ग्रहण पाहूं नये. मांगलिककृत्यांविषयीं ग्रहणसंबंधीं वर्ज्य
दिवस सांगतो—हेमाद्रींत “चंद्र सूर्य ग्रहण असतां सर्व मांगलिककृत्यांविषयीं त्रयोदशीपासून नऊ दिवस टाकावे.”
दुसरा प्रकार—तेथेंच सांगतो—“चंद्रग्रहणीं द्वादशीपासून तृतीयेपर्यंत मान दिवस टाकावे. सूर्यग्रहणीं एकादशीपासून
चतुर्थीपर्यंत नऊ दिवस टाकावे” हा वैध पूर्ण प्राप्त असतां जाणावा; कारण, “खंडग्रहास असतां तीन दिवस टाकावे” असें
तेथेंच सांगितलें आहे. हें वचनही, “प्रस्तास्त असेल तर पूर्वांचे तीन दिवस टाकावे” असा नारदानें प्रस्तास्त ग्रहणाचा
विशेष सांगितला आहे म्हणून प्रस्तास्तभिन्न ग्रहणविषयक जाणावें. **ज्योतिर्निबंधांत—**यवनः—“ज्या नक्षत्रीं ग्रहणरूप
उत्पात झाला असेल तें नक्षत्र सहा महिनेपर्यंत मंगलकार्यांविषयीं वर्ज्य करावें. कारण, जोपर्यंत रवीनें भोगून सोडलें
नाहीं, तोपर्यंत तें नक्षत्र दग्ध काष्ठप्रमाणें आहे.” (तीन ऋतु वर्ज्य हें चंद्रग्रहणनक्षत्राविषयीं आहे, सूर्यग्रहणनक्षत्र वारा
महिन्यावांचून पुनः सूर्यभुक्त होत नाही.) ग्रहणसमयीं चंद्रसूर्याचे बिंबाचे ठायीं आभेयादि मंडलें होतात तीं व त्यांचीं
फलें, वर्णविकारादि फलें हीं दैवज्ञां (जोशां) पासून जाणावीं.

पुरश्चरणचंद्रिकायाम् चंद्रसूर्योपरागेच्छात्वात् प्रयतमानमः स्पर्शादिमोक्षपर्यंतं जपेन्मंत्रं समाहितः
जपादशांशतो होमस्तथा होमात्तु तर्पणम् तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल तत्रैव देवतारूपंध्यात्वात्मानं प्रपू-
ज्य च नमोऽंतं मंत्रमुच्चार्य तदेतदेवताभिधाम् द्वितीयांतामहंपश्चादभिषिचाम्यनेन तु तोयैरंजलिना शुद्धैरेभिः सिंचे-
त्स्वमूर्धनि मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत् जपोर्चा पूर्वको होमस्तर्पणंचाभिषेचनम् भूदेवपूजनं पंचप्र-
कारोक्ता पुरस्किया तथा होमाशक्तौ जपंकुर्याद्वोमसंख्याचतुर्गुणम् एवं कृते तु मंत्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ।

पुरश्चरणचंद्रिकेंत—“चंद्रसूर्यांचें ग्रहण लागलें असतां स्नान करून एकाग्र मन करून स्पर्शकालापासून मोक्षापर्यंत
मंत्राचा जप करावा. जपाचे दशांश होम, होमाचे दशांश तर्पण, तर्पणाचे दशांश मार्जन करावें. त्या मार्जनाचा प्रकार—
ज्या देवतेचा जप केला असेल त्या देवतेच्या रूपाचें ध्यान आपल्या ठिकाणीं करून आपली पूजा करून मंत्राचे शेवटीं
'नमः' शब्द लावून त्या मंत्राचा उच्चार करून त्याचें शेवटीं द्वितीयाविभक्तयंत असें देवतेचें नांव घेऊन 'अनेन अहमभि-
षिचामि' असें म्हणून शुद्ध उदक अंजलींत घेऊन आपल्या मस्तकावर अभिषेक करावा. मार्जनाच्या दशांश ब्राह्मणभोजन
घालावें. जप, पूजनपूर्वक होम, तर्पण, अभिषेक, ब्राह्मणपूजन, याप्रमाणें पांच प्रकार पुरश्चरणाचे होत.” तसेंच—“होम
करण्याविषयीं शक्ति नसतां होमाच्या चतुर्गुण जप करावा. याप्रमाणें पुरश्चरण केलें असतां मंत्राची उत्तम सिद्धि होते.”

ग्रहणप्रसंगात्कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहप्रायश्चित्तमुच्यते तत्रारुणस्मृतौ प्रतिग्रहीकुरुक्षेत्रेनभूयः पुरुषोभ-
वेत् तथापि मनसः शुद्धैर्प्रायश्चित्तं समाचरेत् तप्तकृच्छ्रद्वयंकुर्याद्वेदेन समन्वितम् सत्रेण वा यजेताथ जपेद्बाल-
क्षसप्तकम् वापीकूपतडागादिखननैर्विसृजेद्धनमिति एतच्च यद्गर्हितेनार्जयंतिकर्मणा ब्राह्मणाधनम् तस्योत्सर्गे-
ण शुद्ध्यति दानेन तपसैव चेति मनूक्तेरुत्सर्गांतरज्ञेयमिति दिक् ।

ग्रहाच्या प्रसंगेंकरून कुरुक्षेत्रीं प्रतिग्रह क्रमणारास प्रायश्चित्त सांगतो—तेथें अरुणस्मृतींत—“कुरुक्षेत्रीं प्रतिग्रह करणारा पुनः पुरुष होणार नाही, म्हणजे अधोगतीस जाईल, तथापि त्यानें मनाची शुद्धि होण्यासाठीं प्रायश्चित्त करावें; चांद्रायणासह दोन तप्तकृच्छ्रें करावीं; किंवा सत्रयाग करावा; अथवा सात लक्ष जप करावा; निर्जल प्रदेशीं वापी, कूप, तलाव बांधून द्रव्याचा व्यय करावा.” हें प्रायश्चित्त “ब्राह्मण नियम कर्म करून जें द्रव्य संपादन करितात त्याचा उत्सर्ग, दान व तपश्चर्या करून ते ब्राह्मण शुद्ध होतात” ह्या मनुवचनावरून घेतलेल्या द्रव्याचा उत्सर्ग (त्याग) केल्यावर जाणावें. ही दिशा दाखविली आहे.

ग्रहानंतरितस्यपूर्वसंकल्पितद्रव्यस्यद्वैगुण्यंभवतीतिशिष्टाः पठन्तिचलघुब्रह्मवैवर्ते दातव्यमिति नो-काश्यांवक्तव्यंकुत्रचित्कचिन् अहोरात्रमतिक्रम्यतद्दानं द्विगुणंभवेत् दशोत्तरं पर्वसुस्याच्छतंचंद्रग्रहेभवेत् सूर्य-ग्रहेसहस्रं तन्मरणेनंतं कस्मृतमिति अत्रमूलंचितम् ।

ग्रहाच्या पूर्वी संकल्पित जें द्रव्य तें ग्रहणोत्तर दिलें असतां द्विगुण देण्यास योग्य होतें, असें शिष्ट म्हणतात व लघु-ब्रह्मवैवर्तीतील वचन सांगतात—“काशीक्षेत्रीं दानव्यं (यावयाचें) असें कोठें कधीही बोलूं नये. कारण, ‘यावयाचें’ असें बोलून तें न देतां अहोरात्र गेलें तर तें दान द्विगुण देण्यास योग्य होतें. पर्व (अमावास्या अथवा पौर्णिमा) गेल्यावर दसपट होतें. चंद्रग्रहण गेल्यावर शंभरपट देण्यास योग्य होतें. सूर्यग्रहण गेल्यावर गह्वरपट देण्यास योग्य आणि मेल्यावर अनंतपट होतें.” याविषयी मूल नित्य होय.

अत्रकेचिद्वैद्वैतुन्याआहुः ग्रहणस्यनिमित्तत्वेनतन्निश्चयस्यप्रयोजकत्वाज्योतिःशास्त्रादिनाज्ञान-स्यनिमित्तत्वेप्रापेयि स्नानंदानंतपःश्राद्धमनंतराहुदर्शने, चंद्रसूर्यापरागेतुयावदर्शनगोचरइतिजात्राल्यादिव-चनेपुट्टशिप्रयोगाच्चाक्षुपज्ञानस्यैवोपसंहारन्यायेननिमित्तत्वम अन्यथादृशौलक्षणास्यान् तेनमेघाच्छादनंऽधा-दीनांजन्ममप्राप्रेत्यादिनिपिद्धदर्शनानांचस्नानश्राद्धादौनाधिकारइति कल्पनरूप्याह दर्शनशब्देनचाक्षु-पज्ञानंगृह्यतेनज्ञानमात्रम् अज्ञातस्यनिमित्तत्वासंभवात्निमित्तमहिषैवज्ञानलाभेनदर्शनपदवैयर्थ्यापत्तेः तेन-चाक्षुषधीयोग्यःकालःपुण्यः योग्यत्वंचप्रयत्नानपनयचाक्षुपज्ञानप्रतिबंधकराहित्यं तेनमेघच्छन्नेयोग्यताभा-वात्तस्नानादीति निर्णयामृतान्तेष्वेवम् ।

ह्या ग्रहाविषयी केचित् वैद्वैतुल्य ग्रंथकार असें सांगतात—स्नानादिकांना ग्रहण हें निमित्त आहे खरें, परंतु तें निमित्त निश्चया (खऱ्या ज्ञाना) वाचून संभवत नाही. याकरितां ग्रहणाचें खरें ज्ञान निमित्त आहे. म्हणून ज्योतिःशास्त्रादि-कांवरून झालेले ज्ञान तें निमित्त असें प्राप्त झालें तरी ते निमित्त नाही. कारण, ‘स्नानं दानं’, ‘चंद्रसूर्यां’, ह्या जात्रालि-प्रभृतींच्या वचनांमध्ये दृश धातूचा प्रयोग आहे. ‘दृश’ याचा अर्थ ‘चक्षूनें पाहणें’ असा आहे, म्हणून उपसंहारन्यायानें (पूर्वी सांगितलेला विषय अनेक प्रकारचा असल्यामुळे शेवटीं त्याचें एका विषयावर पर्यवसान करणें ह्या न्यायानें) त्या जात्रालिप्रभृतींनीं चाक्षुष ज्ञानावर उपसंहार केला असल्यामुळे ग्रहणाचें चाक्षुषज्ञानच स्नानादिकांना निमित्त आहे. चाक्षु-पज्ञान निमित्त नाही, सामान्य ज्ञान निमित्त असें मानलें तर ‘दृश’ धातूचा मुख्यार्थ—डोळ्यांनीं झालेले ज्ञान—हा सोडून लक्षणा करून सामान्यज्ञान असा लाक्षणिक अर्थ करावा लागेल, याकरितां चाक्षुपज्ञानच निमित्त आहे असें झालें. त्या योगानें असें झालें की, मेघाच्छादित असता सर्वांना चाक्षुपज्ञान नसल्यामुळे स्नानादिकांविषयी अधिकार नाही. अंधादिकांना व ज्यांच्या राशीस अथवा मातेवें किंवा आठवें ग्रहण असेल त्यांना दर्शनाचा निषेध असल्यामुळे त्यांना स्नानादिकांविषयी अधिकार नाही. कल्पतरूही सांगतो—“दर्शन” या शब्दानें चाक्षुपज्ञान ध्यावयाचें, सामान्यज्ञान ध्यावयाचें नाही; कारण, ज्ञानावांचून निमित्तत्वाचा असंभव असल्यामुळे, ज्यापेक्षां ग्रहण हें निमित्त म्हणून शास्त्रानें सांगितलें, त्यापेक्षां त्याचें ज्ञान असलें पाहिजे. (जसें संकांति स्नानादिकांना निमित्त सांगितलें त्यावरून संकांतीचें ज्ञान अर्थात् निमित्त तद्गत). यावरून ज्ञानाला निमित्तत्व सिद्ध झालें असतां पूर्वाक्त वचनांत दर्शनपद व्यर्थ होईल ! याकरितां चाक्षुपज्ञान निमित्त असें झाल्यानें चाक्षुपज्ञानाला योग्य जो काळ तो पुण्यकाळ सिद्ध झाला. येथे योग्यता म्हणजे प्रयत्नानें दूर करण्यास न येणारें असें जें चाक्षुपज्ञानाला प्रतिबंधक तद्रहितत्व होय. ही योग्यता मेघाच्छादित नसतां येते. ती अशी—प्रयत्नानें दूर करण्यास येणारें वज्रादि, न येणारा असा जो मेघ चाक्षुपज्ञानाला प्रतिबंधक तद्रहितत्व आहे. मेघाच्छादित असतां तद्रहितत्व नाही, म्हणून ही योग्यता नसल्यामुळे स्नानादिक करूं नये. निर्णयामृतांतही असेंच आहे.

१ ‘पुरोडाशं चतुर्धा करोति’ या सामान्यवाक्यानें पुरोडाशाचें चतुर्धाकरण सांगितले तें, ‘आग्नेयं चतुर्धा करोति’ या विशेष वाक्यानें आग्नेयपुरोडाशविषयक चतुर्धाकरण केलें आहे, तद्वत्.

तदेतत्तुच्छम् यदिचाक्षुषज्ञाननिमित्तस्यात्तदा सूर्यग्रहोयदारात्रौ दिवाचंद्रग्रहस्था तत्रज्ञाननकुर्वीतदद्या-
हाननचकचिदितिवाक्यव्यर्थस्यात् चाक्षुषज्ञानाभावेनप्राप्त्यभावात् तत्पूर्वकत्वाच्चनिषेधस्य नचेदंप्रस्तास्तपरं
रविचंद्रयोरस्तानंतरंरात्रिदिवाग्रहत्वादितिवाच्यम् तत्रपदस्यग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगान्निमित्तपरत्वेचतद्ग-
हननिमित्तकज्ञानादेरस्ताप्रागप्यभावापत्तेः अथतत्रेतिरात्रिदिने उच्येतेसावैश्वदेवीतिवद्गुणभूतेऽपि तत्र तादृश-
मंत्रलिङ्गाभावात् तयोर्निमित्तत्वेऽधिकरणत्वेवाऽन्यप्रयुक्तज्ञानाद्यभावापत्तेश्च किंच नेक्षेतोद्यंतमादित्यनास्तंयं
तंकदाचन नोपरक्तनवारिस्थानमध्यनभसोगतमिति**मनुवचनं**बाध्येत दृष्टोरिष्टप्रदोगदुरित्यादिच नचात्रवि-
हितेदर्शनेनिषेधाप्रवृत्तिवत्पर्युदसनीयतापिनयुक्तेतिवाच्यम् दर्शनस्यानुवादेनविधेयत्वाभावात् एतच्चाप्रेव-
क्ष्यामः तत्त्वेवाविरुद्धत्रिकद्वयापत्तेः अस्तुसकृदर्शनविधानेनसंकोचइतिचेन्न मुक्तिदृष्ट्वाततः स्नायादितिमुक्ति-
ज्ञानेपिचाक्षुषज्ञानस्यनिमित्तत्वापत्तेः अस्तु किंनश्छिन्नमितिचेन् न प्रस्तास्ते तयोःपरेद्युक्तदेहद्वाभ्यवहरे-
च्छुचिरितिदर्शनोत्तरंभोजनविधानादंधस्यपूर्ववेधकालइवावदर्शनंभोजननिषेधापत्तिः मध्येऽधीभूतस्यमुन-
रांयावच्चक्षुःप्राप्त्युपवासप्रसंगश्च ।

तें हें सारें मत तुच्छ आहे. कारण, जर चाक्षुषज्ञान निमित्त होईल तर “जेव्हां सूर्यग्रहण रात्रीं आणि चंद्रग्रहण दिवसा
असेल तेव्हां ज्ञान करूं नये व दानही देऊं नये” हें वाक्य व्यर्थ होईल; कारण, ह्या स्थलीं सूर्यचंद्रग्रहणांचें चाक्षुषज्ञान
नसल्यामुळें ज्ञानादिकांची प्राप्तीच नाही; प्राप्ति असेल तर निषेध पाहिजे, प्राप्ति नसल्यामुळें निषेधाची गरज नाही.
शंका—हें (सूर्यग्रहोयदा०) वाक्य ग्रस्तास्तविषयक आहे. ग्रस्तास्तस्थलीं चाक्षुषज्ञान असल्यामुळें ज्ञानादिकांची प्राप्ति येते,
आणि सूर्यचंद्रांच्या अस्तानंतर रात्रीं व दिवसा ग्रहण असल्यामुळें या वचनांनं ज्ञानादिकांचा निषेध केला आहे. असें म्हणूं ;
तर तसें म्हणतां येत नाही; कारण, त्या वचनांतील ‘तत्र’ या पदाचा अर्थ ‘ग्रहण’ असा घेतला तर तें ज्ञानादिकांना
अधिकरण (आधार) होत नाही. ‘निमित्त’ असा घेतला तर तद्ग्रहणनिमित्तक ज्ञान करूं नये असा अर्थ झाल्यानें अस्त
होण्यापूर्वीं देखील ज्ञानाचा अभाव (निषेध) होऊं लागेल. आतां ‘तत्र’ या पदानें रात्रीं व दिवसा घेतां. जसें—“तसें
पयसि दधानयति सा वैश्वदेव्यामिक्षा” असें श्रुतिवाक्य आहे. त्याचा अर्थ—तापलेल्या दुधामध्यें दही घालें म्हणजे ती
विश्वदेव देवांची आमिक्षा (हवनीयद्रव्य) होते. या स्थलीं दुधांत दही घालून जें द्रव्य होतें तें प्रधान व दूध हें गुण
(अप्रधान) आहे तरी त्या वाक्यांतील ‘सा’ या पदानें दुधाचें ग्रहण केलें आहे, तसें—प्रकृत स्थलीं प्रधान ग्रहण व
अप्रधान (गुण) रात्रि दिवस असले तरी ‘तत्र’ या पदानें ते घेतां, असें म्हणाल तर तें म्हणणें बरोबर नाही; कारण,
बरील श्रुतिवाक्यांत ‘सा’ शब्दानें गुणभूताचें ग्रहण करण्यास मंत्र प्रमाण आहे, या ठिकाणीं तसें घेण्यास मंत्र प्रमाण
नाहीं. आणि असें असूनही जर ‘तत्र’ पदानें रात्रि दिवस घेतले तर त्यांना निमित्तत्व मानलें अगतां त्या रात्रिदिवसांचे
निमित्तानें अथवा अधिकरणत्व मानलें तर त्या दिवशीं ज्ञान करूं नये, अर्थ झाल्यानें इतरप्रयुक्तही ज्ञानादिकांचा अभाव
होऊं लागेल; आणखी चाक्षुषज्ञान निमित्त मानलें अगतां अर्थात् राहुदर्शन करावें, असें झाल्यानें “उदय पावणारा,
अस्तास जाणारा, राहूनं ग्रासलेला, उदकांत प्रतिबिंबित झालेला, आणि मध्यान्हीं असलेला असा सूर्य पाहूं नये” या मनुच्या
वचनामध्ये राहुग्रस्त सूर्य पाहूं नये, असा जो निषेध त्याचा बाध होईल. तसाच “जन्मराशीस व जन्मनक्षत्रास वगैरे राहु
असतां जर पाहिला तर अरिष्टकारक होतो, म्हणून पाहूं नये” या निषेधाचाही बाध होईल. शंका—या ठिकाणीं दर्शन
विहित असल्यामुळें मनुनं केलेला (राहुग्रस्त सूर्य पाहूं नये) हा निषेध प्रवृत्त होत नाही, मग त्या निषेधाचा बाध
कोठून होणार ? आतां त्याचा अर्थ कसा करावा असें म्हणाल तर ‘उपरक्तं आदित्यं नेक्षेत’ म्हणजे ग्रस्त आदित्यविषयक
ईक्षणविरुद्ध व्यापार करावा, असा पर्युदास करावा असेंही म्हणतां येत नाही; कारण, जसा निषेध प्रवृत्त होत नाही, तसा
येथें पर्युदासपक्षीं आर्थिक निषेध होतो म्हणून तोही करणें युक्त नाही, याकरितां चाक्षुषज्ञान निमित्त मानण्यास अडचण
नाहीं. समाधान—दर्शनाचा अनुवाद करून ज्ञानादिकांचें विधान असल्यामुळें दर्शन विषये (विहित) नाही. हा प्रकार
पुढें सांगूं ज्याचा अनुवाद त्याला विधेयत्वही मानलें तर विरुद्ध त्रिकद्वय प्राप्त होईल. असूं या त्रिकद्वय, असें म्हटलें

१ विरुद्ध त्रिकद्वय म्हणजे—उपादेयत्व, विधेयत्व, गुणत्व, हें एक त्रिक. उद्देश्यत्व, अनुवाद्यत्व, मुख्यत्व, हें दुसरें त्रिक. दर्श-
नाच्या उद्देशानें ज्ञानाचें विधान असतां दर्शनावर उद्देश्यत्वादि त्रिक व ज्ञानावर उपादेयत्वादि त्रिक असें येतें आणि ग्रहणाच्या
उद्देशानें दर्शनाचें विधान असतां ग्रहणावर उद्देश्यत्वादि त्रिक आणि दर्शनावर उपादेयत्वादि त्रिक येतें. एकसमयावच्छेदानें ग्रह-
णाच्या उद्देशानें दर्शनाचें विधान व दर्शनाच्या उद्देशानें ज्ञानाचें विधान केलें असतां दर्शनावर ग्रहणाकडून उपादेयत्वादि त्रिक
येईल आणि ज्ञानाकडून उद्देश्यत्वादि त्रिक प्राप्त होईल. याप्रमाणें दर्शनावर विरुद्ध अशीं हीं दोन्ही त्रिकें प्राप्त होतील असा भाव.

तरी पुनः मनूनं केलेला निषेध व्यर्थ होतो, म्हणून चाक्षुषज्ञान निमित्त मानितां येत नाही. असें जर आहे, तर मनूनं केलेला दर्शननिषेध ग्रहण आहे तोपर्यंत आहे, म्हणून 'राहुदर्शने' इत्यादि वचनानं एकवार दर्शन विधान करून त्या मनूच्या निषेधाचा संकोच करितों, म्हणजे दर्शनक्षणव्यतिरिक्तक्षणीं निषेध प्रवृत्त होतो, असें झाल्यानें मनुवचन व्यर्थ होत नाही, असें जर म्हणाल, तर तसेंही म्हणतां येत नाही; कारण, 'मुक्ति पाहून नंतर ज्ञान करावें' असें वचन असल्यामुळे मुक्ति-ज्ञानविषयीं देखील चाक्षुषज्ञान निमित्त होऊं लागेल ! होऊं या ! आमचें काय नुकसान आहे, असें जर म्हणाल तर तसें म्हणतां येणार नाही; कारण, प्रस्तासस्थलीं "त्या चंद्रसूर्याचा दुसऱ्या दिवशीं उदय झाला असतां शुद्ध बिंब पाहून आपण ज्ञान करून शुद्ध होऊन नंतर भोजन करावें" या वचनानं दर्शनोत्तर भोजन विहित असल्यामुळे, अंधाला पूर्वी वेधकालीं जसा भोजननिषेध तसा दर्शन होईपर्यंत भोजननिषेध प्राप्त झाला ! प्रस्तास्तानंतर त्याचा उदय होई इतक्या कालामध्ये जो अंध झाला असेल त्याला तर भोजनाचा अत्यंत निषेध प्राप्त झाल्यामुळे चक्षु प्राप्त होईपर्यंत उपवासप्रसंगही आला.

अथान्नलोलुपतयातत्रज्ञानमात्रविषयेतत्पूर्वमपिनिर्लज्जेनस्वीक्रियताम् एतेनयत्केनचिदुक्तस्पर्शज्ञानं मुक्तिज्ञानचयस्यदर्शनेनैवकार्यम् नान्येन क्त्वाप्रत्ययेनसमानकर्तृक्त्वावगतेरिति तन्निरस्तम् कातर्हितस्य-गतिः दृशेरुद्देश्यविशेषणत्वाद्ग्रहैकत्ववदविवक्षयार्थतःसिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वेसर्वसुस्थम् अंगुलाद्यानादेश्यप्र-हृत्यावृत्त्यावाददर्शनस्यार्थवत्त्वम् नचोक्तयोग्यतापिसाध्वी दर्शनोत्तरंमेघच्छन्नेयोग्यताभावापत्त्यादानाद्यभा-वापत्तेः तेनतत्तद्रेखावच्छेदेनज्योतिःशास्त्रावेद्यत्वमेवयोग्यता किंच रजसोदर्शनेनारीत्रिरात्रमशुचिर्भवेदित्य-प्राप्यंधस्त्रीणामाशौचाभावप्रसंगः ।

आतां तो अंध अत्राविषयीं लोलुप (लुब्ध) अगल्यामुळे त्या ठिकाणीं सामान्य ज्ञानच ध्यावयाचें असेल तर तें ज्ञान पूर्वी देखील निर्लज्जानें स्वीकारावें. यावरून (सामान्य ज्ञानाला निमित्तत्व स्वीकारल्यानें), जें कोणी सांगितलें कीं, स्पर्श-ज्ञान व मुक्तिज्ञान हें ज्याला ग्रहणाचें दर्शन असेल त्यानेंच करावें, इतरांनां करूं नये; कारण, 'मुक्ति दृष्ट्वा ततः स्नायात्' या वचनांत 'हश्' धातूच्या पुढें अमल्लेखा 'क्वा' प्रत्ययानें, ज्यानें मुक्तीचें दर्शन केलें त्यानेंच ज्ञान करावें, म्हणजे दर्शनाचा जो कर्ता तोच ज्ञानाचा कर्ता आहे, असें बोधित झालें आहे; असें कोणाचें मत तें खंडित झालें. आतां सामान्यज्ञानाला निमित्तत्व मानलें म्हणजे 'राहुदर्शने' इत्यादि वाक्यांतील दर्शनपदाची गति कोणती ? असें म्हणशील तर सांगतों—'राहु-दर्शने' याचा अर्थ 'राहुदर्शन अगतां' म्हणजे दर्शनाला विषय राहु अगतां अगा आहे. 'यावद्दर्शनगोचरः' या ठिकाणीं तर 'जोपर्यंत दर्शनाला विषय चंद्रसूर्यग्रहण (राहु) आहे, असा अर्थ स्पष्टच आहे. या ठिकाणीं ज्ञानाला उद्देश्य जो राहु त्याला 'दृश' म्हणजे दर्शन हें विशेषण अमल्यामुळे जशी ग्रहाची एकल संख्या अविवक्षित तसें येथें उद्देश्याचें विशेषण जें दर्शन तें अविवक्षित (सार्थकलेंकरून अप्रयुज्यमान) अमल्याकारणानें आर्थिक सिद्ध जें सामान्य ज्ञान त्याचेंच हें दर्शनपद अनुवादक आहे असें झालें असतां सर्व व्यवस्थित होतें, म्हणजे कोणतीही आपत्ति येत नाही. अथवा अंगुलादि न्यून असलेलें जें ग्रहण सांगण्यास योग्य नाही त्याची व्यावृत्ति (निवारण) होण्यासाठीं दर्शन पदाला सार्थकत्व येतें. वर सांगितलेली जी योग्यता (प्रयत्नानें दूर करण्यास न येणारीं) असें जें चाक्षुषज्ञानाला प्रतिबंधक तद्रहितत्व) तीही चांगली आहे असें नाही; कारण, दर्शनोत्तर मेघानें आच्छन्न असतां योग्यतेचा अभाव प्राप्त झाल्यामुळे दानादिकांचा अभाव प्राप्त होईल. म्हणून त्या त्या रेखांतींकरून ज्योतिःशास्त्रानें आसमंतात् जाणण्याला योग्य असणें हीच योग्यता समजावी. आणि सर्वत्र दर्शनपदानें चाक्षुषज्ञान घेतलें तर 'रजोदर्शन झालें असतां स्त्री तीन दिवस अशुचि होते' या स्थलींही आंधळ्या स्त्रियांना चाक्षुषज्ञान नसल्यामुळे अशुचित्वाच्या अभावाचा प्रसंग येईल.

१ सोमयागप्रकरणीं भुतिवचन असें आहे कीं; 'दशापवित्रेण ग्रहं संमार्ष्टि' दशापवित्र म्हणजे बळाचा तुकडा. ग्रह म्हणजे सोमरस ठेवण्याची काष्ठाची पात्रें. बळाच्या तुकड्यानें ग्रहाचें संमार्जन म्हणजे शोधन करावें, असा अर्थ. या ठिकाणीं पूर्वपक्षी म्हणतो—जसें 'पशुना यजेत' या वाक्यामध्ये पशु उपादेय (विषय) आहे, त्या पशूची एकल संख्या विवक्षित आहे. म्हणून 'एक पशूनें याग करावा' असा अर्थ होतो, त्याप्रमाणें ग्रहाची एकल संख्या विवक्षित मानून 'एक ग्रहाचें संमार्जन करावें' असा अर्थ करावा. सिद्धांती म्हणतो—'ग्रह' या द्वितीया विभक्तीनें, ग्रहाला उद्देश्यत्व असल्यामुळे प्राधान्य आहे असें होतें, संगमार्ग (शोधन) हा गुण आहे, प्रतिप्रधानाला गुणाची आवृत्ति होते, असा न्याय आहे. म्हणून जितके ग्रह तितके शोधावे, असें झाल्यानें इय-त्तेची आकांक्षा होत नाही, म्हणून उद्देश्याची एकल संख्या विवक्षित नाही. आतां तुम्ही असें म्हणाल कीं, एकत्वाचें व संगमार्गाचें दोघांचें विधान करावें, असें म्हटलें तर वाक्यभेद होतो तो असा—'ग्रहं संमृज्यात्' 'तं च एकम्' याप्रमाणें विषेयमिन्न असल्यामुळे मित्रवाक्यें होतात, याकरितां उद्देश्यगत एकल संख्या विवक्षित नाही. आतां 'पशूनें याग करावा' या ठिकाणीं यागाचा गुण (अंग) पशु आहे, प्रत्येक गुणाला प्रधानयागाची आवृत्ति नाही, म्हणून किती पशू अशी जाणण्याची इच्छा झाली याकरितां त्या पशुशब्दावर श्रूयमाण जें एकवचन तें विवक्षित आहे, म्हणून 'एक पशूनें याग करावा' असा अर्थ होतो.

यत्तु वर्धमानेनोक्तम् ज्ञानोत्तरं त्वधिकारो न ज्ञानकाले ज्ञानकाले ज्ञानाभावात् एव दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्य-
तमस्यैव योग्यतेति तदपि प्रतिज्ञामात्रम् किंच प्रस्तास्ते तयोः परे गुरुदये दृष्ट्वा भयवहरेच्छुचिरित्यादिवाक्यवै-
यर्थ्यापत्तिः चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये ज्ञानसिद्धेः ननु मुक्तिज्ञाने शास्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं चाक्षुषं
चंद्रसूर्यग्रहणेनाद्यात्स्मिन्नहनिपूर्वतः राहोर्विमुक्तिविज्ञाय ज्ञात्वा कुर्वीत भोजनमिति वृद्धगौतमेन विज्ञाये-
ति ज्ञानमात्रोक्तेः यत्तु मुक्तिदृष्ट्या तु भोक्तव्यं ज्ञानं कृत्वा ततः परमिति तदपि ज्ञानमात्रपरम् मेघमालादिदोषेण य-
दि मुक्तिर्न दृश्यते आकलय्य तु तं कालं ज्ञात्वा भुंजीत वाग्यत इति गौडनिबन्धे वचनात् मैवम् अज्ञानस्य निमि-
त्तत्वाभावेन निमित्तमहिर्नैव ज्ञानलाभे वाक्यवैयर्थ्यात् प्रस्तास्तेऽपि तदापत्तेश्च ।

आतां जे वर्धमानाने सांगितले की, 'ज्ञानोत्तर ज्ञानादिकां विषयी अधिकार, ज्ञानकाली अधिकार नाहीः कारण, ज्ञान-
काली अधिकार मानला तर ज्ञानकाली ज्ञानाचा अभाव असल्यामुळे अधिकार नाहीसा होईल. याप्रमाणे 'दर्शनोत्तर मुक्ति-
पर्यंत योग्यता आहेच' असे तेंही सामान्यतः सांगणे आहे. आणखी 'मुक्ति दृष्ट्वा ततः ज्ञायात्' म्हणजे 'मुक्ति पाहून नंतर
ज्ञान करावे' या ठिकाणी मुक्तिज्ञानाला चाक्षुषज्ञान निमित्त असे मानले असता, प्रस्तास्तस्थली "दुमन्या दिवशी त्या चंद्र-
सूर्याचा उदय झाल्यावर पाहून शुद्ध होऊन भोजन करावे" या वाक्याला व्यर्थत्व प्राप्त होईलः कारण, अन्यथा म्हणजे
उदयावांचून चाक्षुषज्ञानाची अनुपपत्ति अपल्यामुळे अर्थात् उदय झाल्यावर ज्ञान सिद्ध आहेः त्याकरितां वाक्याची गरज
नाहीं. शंका—मुक्तिज्ञानाविषयी शास्त्रीयच ज्ञान निमित्त, चाक्षुषज्ञान निमित्त नाहीः कारण, "चंद्रसूर्यग्रहण ज्या दिवशी
असेल त्या दिवशी पूर्वी जेवू नये; ग्रहणाची मुक्ति जाणून नंतर ज्ञान करून भोजन करावे," ह्या वचनांत वृद्धगौतमाने
'विज्ञाय' (जाणून) असे सामान्य ज्ञान सांगितले आहे. आतां जे "मुक्ति पाहून नंतर ज्ञान करून भोजन करावे" असे वचन
तेंही सामान्यज्ञानविषयक आहे; कारण, "मेघमाला इत्यादि दोषांमुळे जर मुक्ति झालेली दिसणार नाही, तर मुक्ति-कालाचें
आकलन करून (ज्ञानादिकां ज्ञान करून घेऊन) ज्ञान करून भोजन करावे" असे गौडनिबन्धांत वचन आहे.
अर्थात् मुक्तिज्ञानाविषयी सामान्य ज्ञान निमित्त असे म्हणतो? समाधान—असे म्हणतां येणार नाहीः कारण, अज्ञान जो
ग्रहणमोक्ष त्याला निमित्तत्वाचा अभाव असल्यामुळे ज्यापेक्षां निमित्त म्हणून सांगितले त्यापेक्षां निमित्ताच्या महिम्यानेच
ज्ञान असले पाहिजे असे ज्ञान असतां 'राहोर्विमुक्ति विज्ञाय' हे वृद्धगौतमाने वचन व्यर्थ होईल. आणि प्रस्तास्तस्थली
देखील मुक्तिज्ञानानंतर भोजन प्राप्त होईल.

किंच दर्शनपुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा नाद्यः दर्शनावच्छिन्ने काले ज्ञानतुलादानादेर्वाधानं दर्शनविच्छेदं
कृतमपि ज्ञानादिनग्रहणनिमित्तं स्यात् नांत्यः यावदर्शनगोचरइतियावत्पदवैयर्थ्यप्रसंगात् दृष्टग्रहस्य ग्रहणोत्तर-
मपि ज्ञानाद्यापत्तेश्च ज्ञानपक्षेऽप्येषदोषस्तुल्यइति चेत् मूर्खोसि यदि ज्ञानवाचकपदं श्रूयेत ततस्तस्यान्वयो विचार्येत
दृशिस्तु श्रूयत इति वैषम्यम् कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते संक्रांतौ स्नायादिति वदार्थादित्येव हि अश्रुतत्वादेव नोद्देश्य विशेष-
णविवक्षाकृतो वाक्यभेदोपि अस्तु तर्हि दृष्टग्रहणनिमित्तमिति चेत् प्रस्तास्तेऽस्तोत्तरं ज्ञानापत्तेः विशिष्टोद्देशे
वाक्यभेदाच्च तवाप्येतत्तुल्यमिति चेत् यावदर्शनगोचरइति वचनेन तन्निषेधानं तव त्वन्यग्रहइव प्रस्तास्तेऽपि स्यात् ।

आणखी 'राहुदर्शने' या ठिकाणी जर दर्शनपद विवक्षित आहे, तर तें दर्शन पुरुषाचें विशेषण आहे किंवा उपलक्षण
आहे. विशेषण म्हटलें म्हणजे दर्शनयुक्त जो पुरुष त्यानें ज्ञानादि करावें, असा अर्थ होतो. पहिला पक्ष विशेषण म्हणतां
येत नाही; कारण, दर्शनयुक्तकाली ज्ञान, तुलादान इत्यादिकांचा बाध (असंभव) आहे. दर्शन नसतां ज्ञानादि केलें तरी
तें ग्रहणनिमित्तक होणार नाही. दुसरा पक्ष उपलक्षण. तेंही म्हणतां येत नाही; कारण, 'यावदर्शनगोचरः' म्हणजे 'जोपर्यंत
दर्शनाला विषय आहे, तोपर्यंत अधिकार' ह्या वाक्यांतील यावत्पद व्यर्थ होईल. आणि ज्यानें ग्रहण पाहिलें त्याला ग्रहणोत्तर
कधीही ज्ञानादिक प्राप्त होईल. ज्ञानपक्षी देखील हा दोष सारखाच आहे, म्हणजे ज्ञान विशेषण मानलें तर ज्ञानकाली
ज्ञानादिकांचा बाध व ज्ञानाचा विच्छेद झाला असतां केलेलें ज्ञानादिक ग्रहणनिमित्तक नाही. उपलक्षण मानलें तर याव-
त्पदाला व्यर्थत्व; आणि ज्ञान झाल्यावर कधीही ज्ञानादिक प्राप्त होतील. हा दोष येतोच असें म्हणतील तर तूं मूर्ख आहेस !
कारण, जर ज्ञानवाचक पद असेल तर त्याच्या अन्वयाचा विचार केला जाईल ! पण ज्ञानवाचकपद नाही. दर्शनपद

१ उपलक्षण म्हणजे व्यावर्तक. जसे—विशेषण इतरांची व्यावृत्ति करितें तसेच उपलक्षणही इतरांची व्यावृत्ति करितें, जसे—काक-
वदेवदत्तस्य गृहम्' या ठिकाणी देवदत्ताचें गृह कोणतें ? असा प्रश्न केला असतां त्याला कोणी एकानें सांगितलें की, ज्या घरावर
त्या दिवशीं अमक्या वेळी काकला बसला होता तें घर देवदत्ताचें होय. येथें काक हा उपलक्षण आहे, परंतु तो सर्वदा नाही.
आणि विशेषण सर्वदा असतें.

प्रत्यक्ष श्रुत आहे असे ज्ञानपक्षाहून दर्शनपक्षाी वैषम्य आहे. जर ज्ञानवाचकपद नाही तर 'राहुज्ञान झाले म्हणजे ज्ञानादि करावे' या ठिकाणी ज्ञान हा अर्थ कसा लब्ध होतो ? असे म्हणशील तर 'संकांतीम ज्ञान करावे' ह्या स्थलीं जसे संकांति-निमित्तक ज्ञान सांगितल्याने अर्थात् तिचे ज्ञान प्राप्त होते त्याप्रमाणे येथेही 'ज्ञान' हा अर्थ अर्थात् प्राप्त होतो, असे जाण. ज्ञानवाचकपद श्रुत नाही म्हणूनच उद्देश्याचे विशेषण विवक्षित असल्याने जो वाक्यभेद होत असतो तोही येथे होत नाही. आतां पाहिलेले जे ग्रहण ते ज्ञानादिकांला निमित्त असू या ! असे जर म्हटले तर प्रस्तास्यस्थलीं अस्तोत्तर ज्ञान प्राप्त होईल. आणि दर्शनविशिष्ट ग्रहणाचा उद्देश केला असतां 'दर्शन करावे' हे एक वाक्य आणि 'दर्शनयुक्त ग्रहण असतां ज्ञान करावे' हे दुसरे वाक्य. याप्रमाणे वाक्यभेदही होईल. तुला ही (ज्ञातग्रहण निमित्त असे म्हणणारा नाही) हा दोष (प्रस्तास्ती अस्तो-त्तर ज्ञानापत्तिरूप) सारखा आहे असे म्हणशील तर 'यावद्दर्शनगोचरः' ह्या वचनाने दर्शनपर्यंत अधिकार सांगितल्याने अस्तोत्तर ज्ञानादिकाचा निषेध आहे. तुझ्या मतीं तर इतर ग्रहणाविषयीं जसे दृष्टग्रहण निमित्त तसे प्रस्तास्यस्थलीं देखील दृष्टग्रहण असल्यामुळे ज्ञानादिक प्राप्त होईल. आमच्या मतीं "यावद्दर्शनगोचरः" याचा अर्थ जोंपर्यंत दृष्ट (पाहिलेले) ग्रहण आहे तोपर्यंत अधिकार असा केल्यामुळे या वचनाने निषेध होत नाही.

किंच दर्शनस्यविधिरनुवादोवा आद्ये ग्रहणोद्देशेनदर्शनविधिरुतदर्शनविशिष्टज्ञानविधिरुतज्ञानोद्देशेन-दर्शनविधिः नाद्यः ग्रहोद्देशेनज्ञानविधानेदर्शनविधानेचवाक्यभेदान् एतेनद्वितीयोपपिरास्तः नतृतीयः ज्ञानस्याप्राप्तेः दर्शनस्यनिमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च अन्यथासोमवमनादौप्रसंजनविधिःकेनावर्त्येत ।

आणखी 'राहुदर्शने' येथे दर्शनाचा विधि आहे किंवा अनुवाद आहे. पहिल्यापक्षां (विधिपक्षां) ग्रहणोद्देशेकरून दर्शनाचा विधि, किंवा दर्शनविशिष्ट ज्ञानविधि अथवा ज्ञानोद्देशेकरून दर्शनाचा विधि. या तिघांमध्ये पहिला पक्ष युक्त नाही; कारण, 'ग्रहण असतां ज्ञान करावे' असे ग्रहणाच्या उद्देशाने ज्ञानाचे विधान आणि 'ग्रहण पाहावे' असे ग्रहणाच्या उद्देशाने दर्शनाचे विधान केले असतां वाक्यभेद होतो. येणेकरून दुसराही पक्ष खंडित झाला. तिसराही पक्ष युक्त नाही; कारण, ज्ञान अप्राप्त असल्यामुळे त्याचा उद्देश करिता येत नाही. आणि दर्शन निमित्त असल्यामुळे त्याचे विधानही होत नाही. अन्यथा म्हणजे जे निमित्त असते त्याचे विधान मानले तर 'सोमाचे वमन झाले असतां सोमदे देवतेला श्यामाकचरूचा निर्वाप (होम) करावा' असे सांगितले आहे. या ठिकाणी श्यामाकचरूला निमित्त सोमवमन आहे. या स्थलीं 'सोमवमन करावे' असा सोमवमनाचा विधि प्रसक्त झाला त्याचे वारण कराने होणार ! याकरिता निमित्ताचे विधान होत नाही, असे म्हटले पाहिजे.

अथनानावाक्येषुकचिद्दर्शनविशिष्टज्ञानविधिः कचिच्चप्राप्रदर्शननिमित्तीकृत्यज्ञानमात्रविधिः तन्न ज्ञानस्यप्रधानस्यप्राप्तेतदंगदर्शनप्राप्तिः तस्यांचनिमित्तेसतिज्ञानमित्यन्योन्याश्रयान् एवंदर्शनविधौसतितन्निमित्तकज्ञानविधिः सतिचप्रधानज्ञानविधौतदंगदर्शनविधिः एवमधिकारेप्रयोजकत्वेचयोज्यम् क्त्वार्थपूर्वकाल-त्वविधौचास्येववाक्यभेदः अन्यथाज्ञानोत्तरमपिदर्शनमंगस्यान् नद्वितीयः तत्रापिदर्शनग्रहयोर्निमित्तत्वेज्ञानद्वयापत्तेः दर्शनावृत्तौनैमित्तिकावृत्तिप्रसंगान् दर्शनविशिष्टग्रहस्यविशिष्टस्यानुवादेवाक्यभेदापत्तेः नचह-विरातिवद्विशिष्टनिमित्तमितिवाच्यम् आतिमात्रस्यहिनिमित्तत्वेनिमेपादात्तेरपितत्त्वापत्तेर्नैमित्तिकत्वभंगा-द्युक्तंविशिष्टोद्देश्यत्वम् इहनुग्रहणमात्रस्यनिमित्तत्वेनकाचिद्भ्रतिः तस्माद्दर्शनवाक्यानांप्रस्तास्यविषयत्वादाना-देश्यग्रहपरत्वाद्वाज्ञानस्यचार्थतःप्राप्तेस्तदेवनिमित्तं तेनमेधाद्याच्छादनंऽधादेश्चज्ञानादिभवत्येवेत्यलंबेवद्वाह्यैः-संलापेन इतिग्रहणनिर्णयः ।

आतां नाना वाक्यांमध्ये कचिदस्थलीं ('मुक्तिं दृष्ट्वा ततः स्नायान्' मुक्ति पाहून ज्ञान करावे, इत्यादि स्थलीं) दर्शनविशिष्ट ज्ञानाचा विधि. कचित्स्थलीं ('राहुदर्शने' इत्यादि स्थलीं) प्राप्त जे दर्शन त्याला निमित्त करून ज्ञानाचाच विधि आहे. हे म्हणजे बरोबर नाही; कारण, 'दर्शन करून ज्ञान करावे', असे ज्ञानाने प्रधान ज्ञान त्याची प्राप्ति असेल त्या वेळीं त्याची अंगभूत जी दर्शनाची प्राप्ति ती येणार, आणि दर्शनाची प्राप्ति निमित्त झाले असतां ज्ञानाची प्राप्ति येणार, असा अन्योन्या-

१ उद्देश्याचे विशेषण विवक्षित असतां वाक्यभेद होतो तो असा- 'रक्तवस्त्रमानय' या ठिकाणी उद्देश्य वस्त्र त्याचे विशेषण रक्त हे जर विवक्षित म्हणजे साधक व्हावे असे असेल, तर 'वस्त्रमानय' या वाक्याने आनयनाचे विधान. 'तत्र रक्तं' या वाक्याने रक्तत्वाचे विधान. तसे येथे जर ज्ञानवाचकपद श्रुत असते तर 'ग्रहणं ज्ञेयं' ह्या एक वाक्याने ज्ञानविषयत्वाचे विधान करून नंतर 'तस्मिन् सति स्नायान्' या वाक्याने ज्ञानाचे विधान. याप्रमाणे वाक्यभेद झाला असता तो होत नाही. २ वचनांतच दोषांचे विधान असल्यामुळे निराळा वाक्यभेद करण्याची गरज नाही. म्हणून बरील वाक्यभेदाची आपत्ति नाही.

अथ (परस्परसापेक्षत्वं) रूप दोष येतो. जाग्रमाणे दर्शनविधि असतां दर्शननिमित्तक ज्ञानविधि, आणि प्रज्ञान ज्ञानविधि असतां तदंग दर्शनविधि. यासारखेंच अधिकाराविषयीं योजावें. तें असें—दर्शनाधिकार असतां तन्निमित्तक ज्ञानाधिकार, प्रज्ञानज्ञानाधिकार असतां तदंग दर्शनाधिकार. असेंच प्रयोजकत्वाविषयींही योजावें. आतां या स्थलीं (‘मुक्तिं दृष्ट्वा ततः ज्ञायात्’ येथें) वचनांत दोषांचें विधान असल्यामुळे वाक्यभेद नाही, असें म्हणशील तर ‘हृत्’ या धातूहून ‘ज्ञा’ प्रत्यय आहे, त्याचा अर्थ पूर्वकालख त्याचें विधान करतेवेळीं वाक्यभेद आहेच. तो असा—‘मुक्ति पूर्वकालीं पाहावी’ असें भिन्न वाक्य करून पूर्वकालाचें विधान केलेंच पाहिजे, नाही केलें तर ज्ञानोत्तरही त्या ज्ञानाचें अंग दर्शन होईल म्हणजे त्या वाक्याचा ‘ज्ञानोत्तर दर्शन करावें’ असाही अर्थ होईल. आतां दुसरा पक्ष म्हणजे प्राप्तदर्शनाला निमित्त करून ज्ञानाचाच विधि. हा पक्षही युक्त नाही; कारण, एक दर्शन निमित्त व दुसरें ग्रहण निमित्त अशीं दोन निमित्ते झालीं असतां दोन ज्ञानें प्राप्त होतील. दर्शनाची आवृत्ति झाली असतां नैमित्तिक जें ज्ञान त्याच्या आवृत्तीचा प्रसंग येईल. आतां दर्शनाचा अनुवाद या पक्षीं दर्शनविशिष्ट जें ग्रहण तें निमित्त, असा विशिष्टग्रहणाचा अनुवाद केला असतां (म्हणजे ‘दर्शन करावें, तें झालें असतां ज्ञान करावें’ असा) वाक्यभेद प्राप्त होतो. शंका—आतां असें म्हणतां की, जशी—हविराति (हविर्विशिष्ट आर्ति) हें विशिष्टनिमित्त पंचशरावओदन यागाला आहे, तसें येथें दर्शनविशिष्टग्रहण असें विशिष्ट निमित्त आहे असें म्हणू ! तर तसें म्हणतां येत नाही; कारण, त्या ठिकाणीं सामान्य आर्ति म्हणजे पीडा ही त्या यागाला निमित्त असें म्हटलें तर त्या मनुष्याच्या निमेषादि आर्तीलाही निमित्तत्व प्राप्त होईल, तसें झालें म्हणजे पंचशरावओदनयागाला नैमित्तिकत्व येणार नाही, म्हणून विशष्टाला (हविर्विशिष्ट आर्तीला) उद्देश्यत्व (निमित्तत्व) युक्त आहे. येथें तर सामान्य ग्रहणाला निमित्तत्व मानलें असतां कोणताही दोष येत नाही; म्हणून दर्शनविशिष्ट ग्रहणाला निमित्तत्व नाही. या कारणास्तव दर्शनपदयुक्त जीं वाक्यें (मुक्तिं दृष्ट्वा ततः ज्ञायात्’ इत्यादि व ‘ज्ञानंदानंततः श्राद्धमनंतरं राहुदर्शने’ इत्यादि) तीं प्रस्ताप्ताची व्यावृत्ति करणारी अथवा अनादेश्य (सांगण्यास अयोग्य) असे जे अंगुलादि न्यूनग्रह त्यांची व्यावृत्ति करणारी आहेत, व ज्ञान तर संक्रांत्यादिप्रमाणें अर्थात् प्राप्त आहे म्हणून अर्थात् प्राप्त झालेलें जें ज्ञान तेंच ज्ञानादिकांला निमित्त आहे. त्या कारणानें मेधादिकानें आच्छादित असतां व अंधादिकांना ज्ञानादि होतच आहे. आतां वेदवाङ्मोक्षीं (नास्तिकांबरोबर) संलप (संभाषण) पुरे करितों. याप्रमाणें ग्रहणाचा निर्णय समाप्त झाला.

अथ समुद्रज्ञानम् आश्वलायनः समुद्रे पूर्वमुस्त्रायादमायांचविशेषतः पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां-ज्ञानमाचरन् भृगौ भौमदिने ज्ञानं नित्यमेव विवर्जयेत् भारते अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन अश्व-त्थं मंदवारेतु सागरं पर्वणि स्पृशेत् पृथ्वीचंद्रोदये स्कांदे पुनाति पर्वणि ज्ञानात्तपणैः सरितांपतिः कदाचिद-पिनैवात्र ज्ञानं कुर्यादपर्वणि अस्यापवादस्तत्रैव प्रभासखंडे पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनांच समागमे सेतुबंधे तथा-सिंधौ तीर्थेष्वन्येषु संयतः एवमादिषु सर्वेषु मेध्योऽन्येतु स्वकर्मणि तथा विनामंत्रं विना पर्वक्षुरकर्म विना नरैः कुशाग्रेणापि देवेशि न स्पृष्टव्यो महोदधिः तथा न कालनियमः सेतौ समुद्रज्ञानकर्मणि ।

आतां समुद्रज्ञानाविषयीं निर्णय सांगतो.

आश्वलायन—“समुद्राचें ज्ञान करणें तें पर्वाचे ठायीं करावें. अमावास्यापर्वणीस तर अवश्य करावें. अमावासेस समुद्रज्ञान करणारा सर्वपापांपासून मुक्त होतो. शुक्रवार व मंगळवार या दिवशीं समुद्रज्ञान सर्वदा वर्ज्य करावें.” **भार-तांत**—“अश्वत्थ आणि सागर हे सेव्य होत, परंतु त्यांना स्पर्श कधींही करूं नये. शनिवारी अश्वत्थाला स्पर्श करावा व पर्वणीचे दिवशीं समुद्राला स्पर्श करावा.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत—स्कांदांत**—“पर्वाचे ठायीं समुद्रज्ञान करून तर्पण करावें, तेणें करून समुद्र पवित्र करितो. पर्वावांचून अन्य कोणत्याही दिवशीं समुद्रज्ञान करूं नये.” **याचा अपवाद पृथ्वी-चंद्रोदयांत—प्रभासखंडांत**—“पूर्वकाल प्राप्ति, नदींचा समागम, सेतुबंध, सिंधु, व अन्य तीर्थे यांचे ठिकाणीं असलेला समुद्र पवित्र आहे. इतर तीर्थे विशेष आपआपल्या कर्माविषयीं पवित्र आहेत.” तसेंच “मंत्रावांचून, पर्वणीवांचून व क्षुरकर्मावांचून कुशाग्रानेंही समुद्राला स्पर्श करूं नये”. तसेंच—सेतुबंधीं समुद्रज्ञानाविषयीं कोणताही कालनियम नाही, अर्थात् सर्वकालीं ज्ञान करावें.”

१ दशपूर्णमासयागप्रकरणीं असें छुतिवचन आहे कीं, “यस्योभयं हविरातिमाच्छेत्—पेद्रं पंचशरावओदनं निर्वपेत्” याचा अर्थ—आत्मी दोन वेळची हवि पीछित होतील त्यानें इंद्रदेवतेला पंचशरावओदनाचा होम करावा, या ठिकाणीं गाय दोहून करून काढलेले दूध त्याला आति (पीडा, विषडणें) झाली असतां प्रायश्चित्तार्थ पंचशरावओदनाचा याग सांगितला आहे. तेथें हविराति म्हणजे हविःपीडा हें विशिष्ट निमित्त पंचशरावयागाला सांगितलें आहे.

तद्विधिश्च तत्रैव पिप्पलादसमुत्पन्नेकृत्येलोकभयंकरे पाषाणस्तेमयादत्तआहारार्थेप्रकल्प्यतामितिपाषाणं प्रक्षिप्य विश्वाचीचघृताचीचविश्वयोनेविशांपते सान्निध्यंकुरुमेदेवसागरेलवणांभसि नमस्तेविश्वगुप्तायनमो- विष्णोअपांपते नमोजलधिरूपायनदीनांपतयेनमः समस्तजगदाधारशंखचक्रगदाधर देवदेहिममानुज्ञांतव- तीर्थनिषेवणे त्रितत्त्वात्मकमीशानंनमोविष्णुमुमापतिम् सान्निध्यंकुरुदेवेशसागरेलवणांभसि अग्निश्चयोनिर- निलश्चदेहोरेतोधाविष्णुरमृतस्यनाभिः एतद्ब्रुवन्पांडवसत्यवाक्यंततोऽवगाहेतपतिंनदीनामितिभारतोक्तमंत्रा- न्पठित्वाविधिवत्स्नात्वा सर्वरत्नोभवाञ्छ्रीमान्सर्वरत्नाकरोयतः सर्वरत्नप्रधानस्त्वंगृहाणार्घ्यमहोदधे इत्यर्घ्य- दत्वात्तर्पयेत् यथोक्तपृथ्वीचंद्रोदयेस्कांदे पिप्पलादं विकण्वंचकृतांतंजीवकेश्वरम् षसिष्ठवामदेवंचपराश- रमुमापतिं वाल्मीकिनारदंचैववालखिल्यांस्तथैवच नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गंधमादनम् जांबवंतंहनूमंतं सुप्रीवं- चांगदंतथा मैदंचद्विविदंचैवऋषभंशरभंतथा रामंचलक्ष्मणंचैवसीतांचैवयशस्विनीम् एतांगुतर्पयेद्विद्वाञ्ज- लमध्येविशेषतः आब्रह्मस्त्वपयंतंयत्किंचित्सचराचरम् मयादत्तेनतोयेनतृप्तिमेवाभिगच्छत्विति ॥ ॥ इति- श्रीमीमांसकनारायणभट्टसूरिसूनु रामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौप्रथमः परि- च्छेदः समाप्तः ॥

समुद्रस्नानाचा विधि—तेथेंच सांगतो—“पिप्पलादसमुत्पन्नेकृत्येलोकभयंकरे ॥ पाषाणस्तेमयाद- त्तआहारार्थेप्रकल्प्यताम्” या मंत्रानं समुद्रांत पाषाण टाकून, विश्वाचीचघृताचीचविश्वयोनेविशांपते ॥ सान्निध्यंकुरुमेदेवसागरेलवणांभसि ॥ नमस्तेविश्वगुप्तायनमोविष्णोअपांपते ॥ नमोजलधिरूपाय नदीनांपतयेनमः ॥ नमस्तेजगदाधारशंखचक्रगदाधर ॥ देवदेहिममानुज्ञांतवतीर्थनिषेवणे ॥ त्रितत्त्वा- त्मकमीशानंनमोविष्णुमुमापतिम् ॥ सान्निध्यंकुरुदेवेशसागरेलवणांभसि ॥ अग्निश्चयोनिरनिलश्च- देहोरेतोधाविष्णुरमृतस्यनाभिः ॥ एतद्ब्रुवन्पांडवसत्यवाक्यंततोवगाहेतपतिंनदीनाम्” हे भारतोक्त मंत्र पठण करून यथाविधि स्नान करून “सर्वरत्नोभवान्छ्रीमान्सर्वरत्नाकरोयतः ॥ सर्वरत्नप्रधानस्त्वंगृ- हाणार्घ्यंनमोस्तुते.” या मंत्रानं अर्घ्य देऊन तर्पण करावें. तें तर्पण असं—पृथ्वीचंद्रोदयांत स्कंदपुराणांत- “पिप्पलादं तर्पयामि, विकण्वंतं, कृतांतं, जीवकेश्वरंतं, वसिष्ठंतं, वामदेवंतं, पराशरंतं, उमापतिंतं, वाल्मी- किंतं, नारदंतं, वालखिल्यान्तं, नलंतं, नीलंतं, गवाक्षंतं, गवयंतं, गन्धमादनंतं, जांबवंतंतं, हनूमन्तंतं, सुप्रीवंतं, अंगदंतं, मैदंतं, द्विविदंतं, ऋषभंतं, शरभंतं, रामंतं, लक्ष्मणंतं, यशस्विनीं सीतांतं ह्या देवतांचें तर्पण उदकांत करावें; नंतर आब्रह्मस्त्वपयंतंयत्किंचित्सचराचरं ॥ मयादत्तेनतोयेनतृप्तिमेवाभिगच्छतु ॥ असं म्हणून पाणी सोडावें.” इति श्रीनिर्णयसिंधूच्या प्रथमपरिच्छेदाची महाराष्ट्रीका समाप्त झाली.

इति प्रथमपरिच्छेदः समाप्तः ॥

द्वितीय परिच्छेद.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथसंवत्सरप्रतिपदमारभ्य तिथिकृत्सेचकृष्णादिं व्रतेशुक्लादिमेव च विवाहादौ च सौरादिमासकृत्सेविनिर्दिशेदिति ब्राह्मणप्रायशोनुसृत्य तिथिनिर्णयस्तत्कृत्यंचनिरूपयते तत्रमीनसंक्रांतौ पश्चात्पौडशघटिकाः पुण्यकालः रात्रौ तु निशीथात्प्राक्परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तरदिनार्धपुण्यं निशीथेतु दिनद्वयं पुण्यमिति सामान्यनिर्णयादवसेयम् ।

आतां “तिथिकृत्सेचकृष्णादि, व्रतां विषयीं शुक्लपक्षादि व विवाहादिकार्यां विषयीं सौरादि महिना ध्यावा” ह्या ब्राह्मणवचनात् प्रायशः अनुसरून संवत्सरप्रतिपदेला आरंभ करून तिथिनिर्णय व तिथिकृत्से सांगतो. चैत्रमासनिर्णय— त्यांत मीनसंक्रांतीचे ठिकाणी पुढच्या सोळा घटका पुण्यकाळ. रात्री मीनसंक्रांत असतां मध्यरात्रीच्या पूर्वी असेल तर पूर्व दिवसाचें उत्तरार्ध पुण्यकाळ, मध्यरात्रीच्या पुढें संक्रांत असेल तर पुढच्या दिवसाचें पूर्वार्ध पुण्यकाळ, मध्यरात्री झाली तर पूर्व दिवशीं व पर दिवशीं दोन्ही दिवशीं पुण्यकाळ, असा सामान्य निर्णयावरून हा पुण्यकाळ समजावा.

अथ तिथिनिर्णयः तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदिवत्सरांरंभः तत्रौदयिकीप्राह्णा चैत्रेमासिजगद्ब्रह्माससर्जप्रथमेऽहनि शुक्लपक्षे समप्रतुतदामृयांदये सतीति हेमाद्रौ ब्राह्मणेऽक्तेः दिनद्वये तत्रात्रावव्यापौवापूर्वैव तदुक्तं ज्योतिर्निबंधे चैत्रे सितप्रतिपदिवारोकांदये सवर्षशः उदयद्वितये पूर्वो नोदयगुलेऽपि पूर्वः स्यात् यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्धानोः प्रवृत्तिरुददिगिति वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्येतथैव च पूर्वविद्वैवकर्तव्याप्रतिपत्सर्वदाबुधैरिति वृद्धवसिष्ठोक्तेः चैत्रमासस्य याशुक्लप्रथमाप्रतिपद्वेन तद्विब्रह्मणः कृत्वा सोपवासस्तु पूजनं संवत्सरमाप्रोति सौख्यनिभृगुनंदनेति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोक्तेः यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा दैव कार्यस्य तत्र निषिद्धत्वाच्च वृद्धे मासि संवत्सरांरंभः कार्य इति केचिदाहुः निष्कर्षस्तु शुक्लादेर्मलमासस्य संतर्भवतितोत्तरादयः विवचनादग्रिमवर्षांतः पातान्मलमासमारभ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्लादाविवमलमास एव कार्य इति वचनं प्रतीतिमः ननु शुक्लादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदंतरस्याभावाद्युक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानं मलमासे तु शुद्धप्रतिपदंतरस्य संभवात् शुद्ध एव वत्सरांरंभो युक्त इति चेन्न भ्रान्तोऽसि नहि प्रतिपदंतरमत्त्वंप्रयोजकं द्विः करणापत्तेः वर्षे शुद्धयापत्तेश्च अपितु वत्सरांरंभः स तु मलमासं पीत्युक्तं प्राक् न हि चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेऽनर्भवतीति ब्रह्मणापि सुवचम् तत्र तैल्लभ्यं गोतिल्यः वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्येतथैव च तैल्लभ्यंगमकुर्वाणोत्तरकंप्रतिपद्यत इति वसिष्ठोक्तेः ।

आतां तिथिनिर्णय सांगतो—चैत्रशुक्लप्रतिपदेम संवत्सराचा आरंभ होतो, त्या विषयीं प्रतिपदा सूर्योदयव्यापिनी ध्यावी; कारण, “चैत्रमासीं शुक्लपक्षीं प्रथम दिवशीं सूर्योदयीं ब्रह्मदेवांचं सर्वे जग निर्माण केलें” असें हेमाद्रौ ब्राह्मणवचन आहे. दोन दिवशीं उदयव्यापिनी अगो किंवा नमो तथापि पूर्वदिवशींच करावी. तेंच ज्योतिर्निबंधांत सांगितलें, तें असें—“चैत्रशुद्ध प्रतिपदेम सूर्योदयीं जो वार तो वर्षश (वर्षपति) होय. दोन दिवशीं सूर्योदयीं प्रतिपदेस वार अमतां पूर्व ध्यावा, व नमतांही पूर्व ध्यावा; कारण, चैत्रशुक्लाचा आदि जो सूर्योदय, त्यापासून वर्षाचे आदीची प्रवृत्ति (आरंभ) होते.” “वर्षप्रतिपदा, वसंत ऋतूचा आरंभ, बलिप्रतिपदा यांचे ठायीं पूर्वविद्धा प्रतिपदा ध्यावी” असें वृद्धवसिष्ठवचन आहे. “चैत्रमासाचे शुक्लपक्षाची जी पहिली प्रतिपदा, त्या दिवशीं उपोषण करून ब्रह्मदेवांचं पूजन करावें. तें केलून वर्षपर्यंत अनेक सुखें प्राप्त होतात” असें हेमाद्रौ विष्णुधर्मवचन आहे, यास्तव पूर्वविद्धाच करावी. जेव्हां चैत्र मलमास होईल तेव्हां देवकार्य त्या मलमासांत करण्याविषयीं निषिद्ध असल्यामुळे शुद्धमासीं संवत्सरांरंभ करावा, असें केचित् सांगतात. खरोखर म्हणजे—“शुक्लपक्षादि मलमास प्राप्त असतां तो मलमास पुढच्या शुद्ध मासांत अंतर्भूत होतो” इत्यादि वचनांवरून तो मलमास पुढच्या वर्षांत पडल्यामुळे मलमास धरूनच वर्षाची प्रवृत्ति (प्रारंभ) झाल्याने—शुक्ल, शुद्ध यांचे अस्तादिकांमध्ये जसा संवत्सरांरंभ होतो तसा—मलमासांतच संवत्सरांरंभ करावा, असें आम्हीं (कमलाकरभट्ट) समजतो. शंका—शुक्लादिकांचे अस्तादिकांत दुसरी, चैत्रशुक्लप्रतिपदा नसल्याकारणाने अस्तादिकांमध्येच वर्षारंभ करावा हें युक्त आहे. मलमासांत तर दुसऱ्या शुद्ध प्रतिपदेचा संभव असल्यामुळे शुद्धमासींच नवीन वर्षाला आरंभ करावा हें योग्य आहे, असें म्हणू ? समाधान—असें जर म्हणशील तर तूं भ्रान्त आहेस. कारण, दुसऱ्या प्रतिपदेम वर्षारंभ करण्यास दुसरी प्रतिपदा असणें हें प्रयोजक आहे काय ? नाही; कारण, तें प्रयोजक मानलें तर दोन वेळां संवत्सरांरंभ करावा, असें प्राप्त होईल. आणि वर्षे नाही दोन प्राप्त होतील. तर संवत्सराचा आरंभ तो

मलमासांतही होतो, असें पूर्वी सांगितलें आहे. चैत्रशुक्लादि मलमास पूर्व वर्षांत अंतर्भूत होतो, असें ब्रह्मदेवास तरी सांगतां येईल नाय ? कोणासही सांगतां येणार नाही. चैत्रशुद्धप्रतिपदेस तैलाभ्यंग नित्य आहे; कारण, “वर्षाचा प्रथम दिवस, वर्षाचा प्रथम दिवस, बलिराज्य (बलिप्रतिपदा) यांचे ठायीं तैलाभ्यंग न करणारा नरकास जातो” असें वसिष्ठवचन आहे.

अस्यामेवनवरात्रारंभः तदुक्तं मार्कंडेयपुराणे शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकीति तत्रपरयुतैव प्राह्या अमायुक्तानकर्तव्याप्रतिपक्षडिकार्चने मुहूर्तमात्राकर्तव्याद्वितीयादिगुणान्वितेतिदेवीपुराणात् तिस्त्रोखेताःपराःप्रोक्तास्तिथयःकुरुनंदन कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रेमासिचभारतेतिहेमाद्रौब्राह्मोक्तेः पराःपरयुताः अत्रविशेषःपारणानिर्णयश्चशारदनवरात्रेवक्ष्यते ।

याच प्रतिपदेस नवरात्रारंभ. तें मार्कंडेयपुराणांत सांगितलें आहे. तें असें—“शरत्कालीं व वर्षारंभकालीं महा-पूजा कर्तात.” त्या नवरात्राविषयीं प्रतिपदा द्वितीयायुक्तच ध्यावी; कारण, “चंडिकार्चनाविषयीं अमायुक्त प्रतिपदा न करावी, मुहूर्तमात्र असली तरी द्वितीयायुक्त करावी” असें देवीपुराणांत वचन आहे; आणि “कार्तिक, आश्विन, व चैत्र ह्या तीन महिन्यांच्या प्रतिपदा तिथि परा कराव्या.” असें हेमाद्रौत ब्राह्मवचन आहे. येथें सांगावयाचा विशेष व पारणानिर्णय हा आश्विनमासांत पुढें सांगूं.

अत्रप्रपादानमुक्तमपरार्कभविष्ये अतीतेफाल्गुनेमासिप्राप्तेचैत्रमहोत्सवे पुण्येहिविप्रकथितेप्रपादानसमारभेदित्युपक्रम्य ततश्चोत्सर्जयेद्ब्रह्मन्मंत्रेणानेनमानवः प्रपेयंसर्वसामान्याभूतेभ्यःप्रतिपादिता अस्याः-प्रदानात्पितरस्तृप्यंतुहिपितामहाः अनिवार्यततोदेयंजलमासचतुष्टयमिति तथा प्रपांदातुमशक्तेनविशेषाद्धर्म-मीप्सुना प्रत्यहंधर्मघटकोवत्संवेष्टिताननः ब्राह्मणस्यगृहेदेयःशीतामलजलःशुचिः तत्रमंत्रः एषधर्मघटो दत्तोब्रह्मविष्णुशिवात्मकः अस्यप्रदानात्सकलाममसंतुमनोरथाः अनेनविधिनायस्तुधर्मकुंभंप्रयच्छति प्रपादानफलं सोऽपिप्राप्नोतीह न संशय इति ।

या प्रतिपदेस प्रपादान (वाटसरांस पाणी देणें) सांगतो—अपरार्कत-भविष्यांत “फाल्गुनमास जाऊन चैत्रमहोत्सव प्राप्त झाला असतां ब्राह्मणांन सांगितलेल्या शुभ दिवशीं प्रपादानाचा आरंभ करावा.” असा उपक्रम करून पुढें सांगतो “या (पुढें सांगितलेल्या) मंत्रांन तिचा उत्सर्ग करावा, तो मंत्र असा—प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥ अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यंतु हि पितामहाः ॥ या मंत्रांन उत्सर्ग करून चार महिने प्राणिमात्रांस जल द्यावें.” तसेंच “चार महिने प्रपादान करण्याला शक्ति नाही, पण विशेष धर्म व्हावा अशी इच्छा करणारांन प्रतिदिवशीं वस्त्रांन मुखाला वेष्टन केलेला असा धर्मघट ब्राह्मणाच्या घरीं द्यावा, तो थंड स्वच्छ पाण्यांन भरलेला व शुद्ध असावा. त्याचा मंत्र—एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात्सकला मम संतु मनोरथाः ॥ या विधींन जो धर्मघट देईल तोही प्रपादानाचें फल पावेल यांत संशय नाही.”

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुतांसंपूज्यदोलोत्सवंकुर्यात् तदुक्तं निर्णयामृतेदेवीपुराणे तृतीयायांयजेद्देवीशंकरेणसमन्वितां कुंकुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगंधकैः स्रगंधधूपदीपैश्चदमनेनविशेषतः आंदांलयेत्ततोवत्सशिबोमातुष्टयेसदेति अत्रचतुर्थीयुताप्राह्या मुहूर्तमात्रसत्त्वेपिदिनेगौरीव्रतंपरइतिमाधवोक्तेः अत्रैवसौभाग्यशयनव्रतमुक्तंमात्स्ये वसंतमासमासाद्यतृतीयायांजनप्रिये सौभाग्यायसदास्त्रीभिःकार्यपुत्रसुखेप्सुभिरिति तत्रापिपरयुतैव ।

तृतीया—चैत्रशुक्ल तृतीयेस ईश्वरयुक्त गौरीचें पूजन करून मासपर्यंत दोलोत्सव करावा. तो निर्णयामृतांत देवीपुराणांत उक्त आहे, तो असा—“तृतीयेस शिवयुक्तदेवीचें कुंकुम, अगुरु, कर्पूर, मणि, वस्त्र, सुगंधिद्रव्यें, माला, गंध, धूप, वीप व दमनक (दवणा) यांनीं पूजन करून शिवपार्वतीच्या संतोषार्थ शिवयुक्त देवीला पाळण्यांत घालून आंदोलन करावें.” ह्या दोलोत्सवाविषयीं चतुर्थीयुक्त तृतीया ध्यावी; कारण, “दुसऱ्या दिवशीं जरी तृतीया एक मुहूर्त उर्वरित असली तरी त्या दिवशींच गौरीव्रत करावें” असें माधववचन आहे. याच तृतीयेस सौभाग्यशयनव्रत सांगतां—मात्स्यपुराणांत—“वसंतमास प्राप्त झाला असतां तृतीयेस पुत्रसुखेच्छु स्त्रियांनीं सौभाग्य प्राप्त होण्यासाठीं सौभाग्यशयनव्रत करावें.” ह्याविषयींही चतुर्थीयुक्त तृतीया ध्यावी.

इयंचमन्वादिपि अत्रैवप्रसंगात्सर्वमन्वादिनिर्णयउच्यते ताश्चोक्तादीपिकायां तिथ्यमीनतिथिस्ति-ध्याशेष्णोभोनलोमहः तिथ्यकौनशिबोश्चोमातिथीमन्वादयोमधोरिति तिथिःपूर्णिमा अमिस्तृतीया नेति-

वैशाखेनास्तीत्यर्थः आशादशमी कृष्णोऽष्टमी अनलस्तृतीया ग्रहोऽष्टमी अर्कोद्वादशी नेतिमार्ग-
शीर्षेनास्तीत्यर्थः शिवएकादशी अश्वःसप्तमी मधोऽश्वैत्रादारभ्यैतामन्वादयइत्यर्थः अग्रमूलवचनानिहेमा-
द्वादेर्ज्ञेयानि एताश्चमन्वादयोहेमाद्रिमतेशुक्लपक्षस्थाःपौर्वाहिकाः कृष्णपक्षस्थाःअपराहिकाःप्राज्ञाः पूर्वाहे-
तुसदाप्राज्ञाःशुक्लमनुयुगादयः दैवेकर्मणिपिउच्येचकृष्णेचैवापराहिकाइतिगारुडवचनात् अधोमन्वादियु-
गादिकर्मतिथयःपूर्वाहिकाःस्युःसितेविज्ञेयाअपराहिकाश्चबहुलेइतिदीपिकोक्तेश्च कालादर्शत्वपराह-
व्यापित्वमन्वादिषूक्तंतत्त्वयुक्तमितियुगादिनिर्णयेवक्ष्यामः ।

ही तृतीया मन्वादिकही आहे. येथेंच प्रसंगेंकरून सर्व मन्वादितिथींचा निर्णय सांगतों. त्या सांगतो—दीपिकेंत
“चैत्रांत शुक्लतृतीया व पौर्णिमासी, वैशाखांत नाही, ज्येष्ठांत पौर्णिमा, आषाढांत शुक्लदशमी व पौर्णिमासी, श्रावणकृष्ण
अष्टमी, भाद्रपदांत शुक्लतृतीया, आश्विनांत शुक्लनवमी, कार्तिकांत शुक्लद्वादशी व पौर्णिमा, मार्गशीर्षांत नाही, पौर्षांत
शुक्ल एकादशी, माघांत शुक्लसप्तमी, फाल्गुनांत पौर्णिमासी व अमावास्या, ह्या तिथि मन्वादिक होत. याविषयीं मूलवचनें
हेमाद्रि इत्यादि ग्रंथीं पाहावीं. ह्या मन्वादितिथि हेमाद्रिमतीं शुक्लपक्षांतल्या पौर्वाहिका व कृष्णपक्षांतील अपराहिका
ध्याव्याः कारण, “मन्वादि व युगादि तिथि दैवपित्र्यकर्माविषयीं शुक्लपक्षांतील पूर्वाह्नव्यापिनी व कृष्णपक्षांतील अपराह-
व्यापिनी ध्याव्या” असें गारुडपुराणांत वचन आहे. व “मन्वादि युगादि कर्मतिथि शुक्लपक्षीं पूर्वाह्नव्यापिनी व कृष्णपक्षीं
अपराह्नव्यापिनी ध्याव्या” असें दीपिकेंतही सांगितलें आहे. कालादर्शांत तर मन्वादितिथि अपराह्नव्यापिनी ध्याव्या
असें सांगितलें आहेः परंतु तें योग्य नाही, असें युगादिनिर्णयांत पुढें सांगूं.

अत्रचश्राद्धमुक्तंमात्स्ये कृतंश्राद्धंविधानेनमन्वादिपुयुगादिपु हायनानिद्विसाहस्रंपितृणांवृष्टिदंभवेदिति
मन्वादिश्राद्धंचमलमानेमसितमामद्वयेपिकार्यं मन्वादिकंतैथिकंचकुर्यान्मासद्वयेपिचेतिस्मृतिचंद्रिकोक्तेः
अत्रपिंडरहितंश्राद्धंकुर्यात् तदुक्तंकालादर्शं विषुवायनसंक्रांतिमन्वादिपुयुगादिपु विहायपिंडनिर्वापंसर्व-
श्राद्धंसमाचरेदिति मन्वादिश्राद्धंनित्यं अकरणेप्रायश्चित्तदर्शनात् तदुक्तमृग्विधाने त्वंभुवःप्रतिमंत्रंच-
शतवारंजलेजपेन मन्वादयोयदान्यूनाःकुरुतेनैवचापियइति एवंयत्रप्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनेतानिषण्व-
तिश्राद्धानिनित्यानि तानिनु अमायुगमनुक्रांतिधृतिपातमहालयाः अन्वष्टक्यंचपूर्वेषुःपण्णवत्यःप्रकीर्तिता-
इत्युक्तानि चकारादष्टकाप्रहणम् ।

या मन्वादितिथींचे ठायीं श्राद्ध सांगितलें आहे—मात्स्यपुराणांत—“मन्वादि व युगादि तिथींचे ठायीं यथाविधि
श्राद्ध केलें अगतां दोन हजार वर्षंपर्यंत पितर तृप्त होनात.” मन्वादिश्राद्ध मलमास अगतां दोनही महिन्यांत करावें;
कारण, “मन्वादिक व तीर्थसंख्यां हीं श्राद्धं दोनही महिन्यांत करावीं” असें स्मृतिचंद्रिकेंत सांगितलें आहे. ह्या मन्वा-
दितिथींचे ठायीं पिंडरहित श्राद्ध करावें, तें कालादर्शांत सांगतों—“विषुवसंक्रांति व अयनसंक्रांति (मकर व कर्क),
मन्वादिक व युगादिक तिथि यांचे ठायीं पिंडदानावांचून सर्व श्राद्ध करावें.” मन्वादिश्राद्ध नित्य; कारण, न केलें तर
प्रायश्चित्त आहे. तें प्रायश्चित्त सांगतों—मृग्विधानांत “मन्वादिश्राद्ध न केलें किंवा करून न्यून झालें तर जलांत बसून
“त्वंभुवः प्रति०” हा मंत्र शंभर वेळ जपावा.” असें जेथें अकरणे प्रायश्चित्त किंवा करण्याविषयीं पुनः पुनः सांगितलें
आहे तीं षण्णवति (९६) श्राद्धं नित्य होत. तीं षण्णवतिश्राद्धं अशीं—“अमावास्या १२, युगादि ४, मन्वादि १४,
संक्रांति १२, वैधृति १२, व्यतीपात १२, महालय १५, अन्वष्टक्य ५, पूर्वेषु ५, अष्टका ५, हीं होत.”

चैत्रशुक्लतृतीयैवमत्स्यजयंती अत्रैवप्रसंगाद्दशावतारजयंत्योनिर्णीयंते तत्रपुराणसमुच्चये मत्स्योभूदु-
तभुग्दिनेमधुसितेकूर्मोविधौमाधवेवाराहो गिरिजासुतेनभसियद्भूतेसितेमाधवे सिंहोभाद्रपदेसितेहरितिथौ-
श्रीवामनोमाधवेरामो गौरितिथावतःपरमभूद्रामो नवम्यांमधोः कृष्णोऽष्टम्यांनभसिसितपरेचाश्विनयेदशम्यां-
बुधःकल्कीनभसिसमभूच्छुक्लपष्ठ्यांक्रमेण अह्नोमध्येवामनोरामरामोमत्स्यःकोडश्चापराह्वेविभागे कूर्मः-
सिंहोबौद्धकल्कीचसायंकृष्णोरात्रौकालसाम्येचपूर्वेति केचित्सुफुटान्श्लोकांन्यपठंति तथा चैत्रेनुशुक्लपंचम्यां
भगवान्मीनरूपधृक् ज्येष्ठेनुशुक्लद्वादश्यांकूर्मरूपधरोहरिः चैत्रेकृष्णेनवम्यांतुहरिर्वाराहरूपधृक् नरसिंहश्च-
तुर्दश्यांवैशाखेशुक्लपक्षके मासिभाद्रपदेशुक्लद्वादश्यांवामनोहरिः राधशुद्धतृतीयायांरामोभार्गवरूपधृक् चैत्र-

शुक्लनवम्यां तुरामोदशरथात्मजः नभस्येतुद्वितीयायां बलभद्रो भवद्वरिः श्रावणे बहूले ऽष्टम्यां कृष्णो भूङ्गोकर-
क्षकः ज्येष्ठेशुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यतीति ।

आतां दशावतारजयंत्या सांगतो.

चैत्रशुक्लतृतीया हीच मत्स्यजयंती होय. येथेंच प्रसंगें करून दशावतारांच्या जयंत्या (जन्मदिवस) सांगतो. पुराणस-
मुच्चयांत—चैत्रशुद्ध तृतीयेस मत्स्यावतार, वैशाखशुद्ध पौर्णिमेस कूर्मावतार, भाद्रपदशुद्ध तृतीयेस वराहावतार, वैशाख-
शुद्ध चतुर्दशीस नारसिंहावतार, भाद्रपदशुद्ध द्वादशीस वामनावतार, वैशाखशुद्ध तृतीयेस परशुरामावतार, चैत्रशुद्ध नवमीस
रामावतार, श्रावणकृष्ण अष्टमीस कृष्णावतार, आश्विनशुद्ध दशमीस बौद्धावतार, श्रावणशुद्ध षष्ठीस कल्क्यवतार, असे हे
दहा अवतार झाले. दिवसाच्या मध्यभागी (मध्याह्नी) वामन, परशुराम, आणि राम हे झाले. अपराह्नी मत्स्य व वराह हे
झाले. सायंकाळीं कूर्म, नारसिंह, बौद्ध व कल्की हे झाले. मध्यरात्रीस कृष्ण झाला. याप्रमाणें हे अवतारकाल होत. या
जन्मतिथि दोनही दिवशीं जन्मकालीं सम असतां पूर्वतिथि ध्याव्या.” या अवताराविषयीं **केचित् ग्रंथकार** स्फुट श्लोक
म्हणतात—ते असे—“चैत्रशुक्लपंचमीस मत्स्यरूपधारणकर्ता भगवान् झाला. ज्येष्ठशुद्ध द्वादशीस कूर्म, चैत्रकृष्ण नवमीस
वराह, वैशाखशुद्ध चतुर्दशीस नारसिंह, भाद्रपदशुद्ध द्वादशीस वामन, वैशाखशुद्ध तृतीयेस भार्गवराम, चैत्रशुद्ध नवमीस
दाशरथीराम, भाद्रपदशुद्ध द्वितीयेस बलभद्र, श्रावणकृष्ण अष्टमीस कृष्ण, ज्येष्ठशुद्ध द्वितीयेस बौद्ध, हे अवतार या तिथींम
झाले. व कल्की पुढें होईल.”

कौंकणास्तु वराहपुराणस्थत्वेन वाक्यानि पठंति आपादेशु कृपक्षेतु एकादश्यां महातिथौ जयंती मत्स्य-
नाम्नीति तस्यां कार्यमुपोषणं नभोमासितृतीयायां हरिः कमठरूपधृक् नभस्यशुक्लपंचम्यां वराहस्य जयंतिका वैशा-
खेतुचतुर्दश्यां नारसिंहः समपश्यत मासि भाद्रपदशुद्धैकादश्यां वामनो हरिः वैशाख्येशु कृपक्षेतु तृतीयायां भृगुद्वहः
चैत्रेन वम्यां रामो भूक्तौ शल्यायां परः पुमान् श्रावणे बहूले ऽष्टम्यां वामुदेवो जनार्दनः पौषशुक्ले तु मत्स्यम्यां कुर्याद्वौद्ध-
स्य पूजनं माघशुक्लतृतीयायां कल्किनः पूजनं हरेः प्रातः प्रातस्तु मध्याह्ने सायंसायंतथानि शि मध्याह्ने मध्यरात्रे च-
सायं प्रातरनुक्रममिति तदत्र समूलत्वेन निर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्थाद्वय्या एताश्च तदुपासकानां नित्याः अन्ये-
षां तु काम्याः जन्माष्टम्यादैस्तु विशेषवक्ष्यामः ।

कौंकणस्थजन तर वराहपुराणांतील म्हणून वाक्यें (वचनें) म्हणतात, तीं अशीं—“आषाढशुद्ध एकादशी ही
मत्स्यजयंती, तिचे ठायीं उपोषण करावें. श्रावणमासीं तृतीया ही कूर्मजयंती. भाद्रपदशुद्ध पंचमी ही वराहजयंती. वैशाखशुद्ध-
चतुर्दशी ही नृसिंहजयंती. भाद्रपदशुद्ध एकादशी वामनजयंती. वैशाखशुद्ध तृतीया भार्गवजयंती. चैत्रशुद्ध नवमी दाशरथि-
रामजयंती. श्रावणकृष्ण अष्टमी कृष्णजयंती. पौषशुद्ध सप्तमीस बौद्धपूजन करावें. माघशुद्ध तृतीयेस कल्कीचें पूजन
करावें. प्रातःकालीं मत्स्य व कूर्म, मध्याह्नी वराह, सायंकाळीं नारसिंह व वामन, रात्रीस भार्गवराम, मध्याह्नी राम, मध्य-
रात्रीं कृष्ण, सायंकाळीं बौद्ध, प्रातःकालीं कल्की, हे अवतार या कालीं झाले.” येथें कितीएक जयंतींविषयीं पुराणमसुच्याचें
मत वेगळें, स्फुटश्लोकांचें वेगळें आणि वराहपुराणस्थवाक्यांचें वेगळें अशीं मते भिन्न आहेत. हीं सारीं वचनें समूल अस-
तील तर त्या मतभेदांची व्यवस्था कल्पभेदानें समजावी. ह्या जयंत्या त्या त्या देवतांच्या उपासकांस नित्य व इतरांस काम्य
होत. जन्माष्टमी इत्यादिक जयंत्यांविषयीं तर नित्य व काम्य याचा निर्णय पुढें मांगूं.

चैत्रशुक्लपंचमी कल्पादिः तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये ब्रह्मणो यादिन स्यादिः कल्पादिः साप्रकीर्तिता वैशाख-
स्य तृतीयाया कृष्णाया फाल्गुनस्य च पंचमी चैत्रमासस्य तथैवां त्या तथा परा शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी
नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहं कल्पानामादयो ह्येतादत्तस्याक्षयकारकाः अत्र सर्वेऽपि निर्णयो मन्वादि-
वज्ज्ञेयः **हेमाद्रौ ब्राह्मे** शुक्लायामथ पंचम्यां चैत्रे मासि शुभानना श्रीब्रह्मलोकान्मानुष्यसंप्राप्ताकेशवाज्ञया
ततस्तां पूजयेत्तत्रयस्तं लक्ष्मीर्न मुंचति ।

चैत्रशुद्ध पंचमी ही कल्पादि तिथि होय, तेंच सांगतो—**हेमाद्रौ त-मत्स्यपुराणांत**—“ब्रह्मदेवाच्या दिवसाची जी
आदि तिथि ती कल्पादि होय. त्या कल्पादि तिथि येथें प्रमाणें—वैशाखशुद्ध तृतीया, फाल्गुनकृष्ण तृतीया, चैत्रशुद्ध पंचमी,
चैत्रकृष्ण पंचमी, माघशुद्ध त्रयोदशी, कार्तिकशुद्ध सप्तमी, मार्गशीर्षशुद्ध नवमी ह्या सात तिथि कल्पादि होत. या
तिथींचे ठायीं दान दिलें असतां तें अक्षय होतें.” या तिथींचा सर्व निर्णय मन्वादितिथींसारखा जाणावा. **हेमाद्रौ त-
ब्राह्मपुराणांत**—“चैत्रशुद्ध पंचमीस शुभानना लक्ष्मी विष्णूच्या आज्ञेन ब्रह्मलोकापासून मनुष्यलोकीं आली, यास्तव तिचें
पूजन त्या दिवशीं जो करितो त्याला ती लक्ष्मी सोबीत नाहीं.”

चैत्रेशुक्लाष्टम्यांभवान्याउत्पत्तिः तन्ननवमीयुताप्राह्या अष्टमीनवमीयुक्तानवमीचाष्टमीयुतेतिब्रह्मवैव-
र्तात् अन्नभवानीयात्रोक्ताकाशीखंडे भवानीयस्तुपश्येतशुक्लाष्टम्यांमधोनरः नजातुशोकंलभतेसदानंरु-
योभवेदिति अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तहेमाद्रौलैंगे अशोककलिकाश्चाष्टौयेपिबंतिपुनर्वसौ चैत्रेमासि-
सितेष्टम्यांनतेशोकमवाप्नुयुः प्राशनमंत्रस्तु त्वामशोकवराभीष्टंमधुमाससमुद्भवं पिबामिशोकसंतप्तोमाम-
शोकंसदाकुर्विति अत्रविशेषः पृथ्वीचंद्रोदयेविष्णुः पुनर्वसुबुधोपेताचैत्रेमासिसिताष्टमी प्रातस्तुविधि-
वत्स्नात्वावाजपेयफलंलभेदिति तिथितत्त्वेकालिकापुराणे चैत्रेमासिसिताष्टम्यांयोनरोनियतेंद्रियः
स्नायालौहित्यतोयेपुसयातिब्रह्मणःपदं चैत्रंतुसकलंमांसंशुचिःप्रयतमानसः लौहित्यतोयेयःस्नायात्सकैवल्यम-
वाप्नुयान् लौहित्योब्रह्मपुत्रः मंत्रस्तु ब्रह्मपुत्रमहाभागशंतनोःकुलसंभव अमोघागर्भसंभूतपापंलौहित्यमेहर ।

चैत्रशुद्ध अष्टमीस भवानीची उत्पत्तिं ज्ञात्री, त्याविपरीं ती अष्टमी नवमीयुक्त ध्यावीः कारण, 'अष्टमी नवमीयुक्त व
नवमी अष्टमीयुक्त ध्यावी.' असें ब्रह्मवैवर्त पुराणवचन आहे. काशीखंडांत या तिथिस भवानीयात्रा सांगितली आहे,
ती अशी—“जो मनुष्य चैत्रशुद्ध अष्टमीस भवानीचें दर्शन घेईल तो कदापि शोक पावणार नाही व सर्वकाल आनंदयुक्त
होईल.” याच तिथीचे ठायीं अशोककलिकाप्राशन सांगितलें आहे—हेमाद्रौत-लिंगपुराणांत—“जे मनुष्य चैत्रशुद्ध
अष्टमीस पुनर्वसुनक्षत्रावर असोगीच्या कळ्या आठ प्राशन करितील ते शोक पावणार नाहीत.” प्राशनमंत्र—“त्वाम-
शोकवराभीष्टं मधुमाससमुद्भवं । पिबामिशोकसंतप्तोमामशोकंसदाकु ॥” येथे विशेष सांगतो—पृथ्वी-
चंद्रोदयांत विष्णु—“पुनर्वसुनक्षत्र, बुधवार यांहीं युक्त चैत्रशुद्ध अष्टमीस प्रातःकाळीं यथाविधि स्नान केलें असतां
वाजपेययज्ञाचें फळ प्राप्त होतें.” तिथितत्त्वांत कालिकापुराणांत—“चैत्रशुद्ध अष्टमीस जितेंद्रिय होऊन जो मनुष्य
लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तीर्थांत स्नान करील तो ब्रह्मपदीं जाईल. जो पुरुष शुद्ध व नियतमन होऊन सारा चैत्रमहिना
लौहित्यतीर्थादकांत स्नान करील त्यास मोक्ष प्राप्त होईल.” स्नानमंत्र—“ब्रह्मपुत्रमहाभागशंतनोःकुलसंभव ।
अमोघागर्भसंभूतपापंलौहित्यमेहर ॥”

चैत्रशुक्लनवमीरामनवमी तदुक्तमगस्त्यसंहितायां चैत्रेनवम्यांप्राक्पक्षेदिवापुण्येपुनर्वसौ उदयेगुरु-
गौरांशोःस्वोच्चयेप्रहपंचके मेपेपूषणिंसंप्रलेखेनकटककाह्वये आविरासीत्सकलयाकौशल्यायांपरःपुमान्
तस्मिन्दिनेतुर्कतंरुपपवामव्रतंसदा तत्रजागरणंकुर्याद्रघुनाथपरोमुवीति इयंचमध्याह्नयोगिनीप्राह्या चैत्रशु-
क्लेतुनवमीपुनर्वसुयुतायदि सैवमध्याह्नयोगेनमहापुण्यतमाभवेदितिनत्रैवोक्तः तथा चैत्रमासेनवम्यांतु-
जातोराजःस्वयंहरिः पुनर्वस्तृक्षसंयुक्तामातिथिःसर्वकामदा श्रीरामनवमीप्रोक्ताकोटिसूर्यग्रहाधिका तथा
केवलापिसदोपोप्यानवमीशब्दसंग्रहान् तस्मात्सर्वात्मनासर्वैःकार्येननवमीव्रतम् ।

चैत्रशुद्ध नवमी ही रामनवमी. तें सांगतो—अगस्त्यसंहितेंत—“चैत्रशुद्ध नवमीस दिवसास पुण्य पुनर्वसुनक्षत्रीं गुरु
व चंद्र हे लक्षां असतां व पांचग्रह उच्चांचे अगतां, मेपाग सूर्य अगतां कर्कळीं कौसल्येचे ठायीं परपुरुष (नारायण)
अंशानें प्रकट झाला; यास्तव त्या दिवशीं भूमीवर राहणारानें उपोषणव्रत नित्य करावें व रामनवमी होऊन जागरण करावें”
ही नवमी मध्याह्नव्यापिनी ध्यावीः कारण, “चैत्रशुद्ध नवमी पुनर्वसुयुक्त असेल तर तीच मध्याह्नीं महापुण्यकारक होते”
असें अगस्त्यसंहितेंतच सांगितलें आहे. तसेंच “चैत्रमासीं नवमास हरि स्वतः झाला, ती पुनर्वसुनक्षत्रानें युक्त सर्व
मनोरथ देणारी होत. ही श्रीरामनवमी कोटि सूर्यग्रहांहून अधिक आहे.” तसेंच “नवमी या शब्दावरून ती तिथि केवळ
(पुनर्वसुरहित) देखील उपोषणाला योग्य आहे. नक्षत्राचें प्रयोजन नाही, तस्मात् सर्वांनीं सर्वात्मभावानें नवमीव्रत करावें.”

पूर्वेगुरेचमध्याह्नयोगेकर्मकालव्याप्रेःसैवप्राह्या दिनद्वयेमध्याह्नव्याप्तौतद्भावेवापूर्वदिनेपुनर्वस्तृक्षयुक्तम-
पित्यक्त्वापरैवकार्या तदुक्तमाधवीयेऽगस्तिसंहितायां नवमीचाष्टमीविद्धात्याज्याविष्णुपरायणैः उपो-
षणंनवम्यांचदशम्यांचैवपारणमिति अष्टमीविद्धासकृद्भ्रापिनोपोष्येतिमाधवः रामार्चनचंद्रिकायामपि
विद्धैवचेदश्रयुक्ताव्रतंतत्रकथंभवेत् विद्वानिपिद्धश्रवणान्नवमीचेतिवाक्यतः वैष्णवानांविशेषानुतत्रविष्णुपरै-
रपि दशम्यादिपुवृद्धिश्चेद्विद्धात्याज्यैववैष्णवैः तदन्येपांचसर्वेपांचव्रतंतत्रैवनिश्चितमिति अत्रदशम्यादिपुवृद्धिश्चे-
दितितद्व्येपामितिचवदन् यदाप्रातस्सिंहूर्तानवमीदशमीचक्षयवशात्सूर्योदयात्प्रागेवसमाप्यतेतदास्मार्ता-
नांतत्रैवएकादशीनिमित्तोपवासान्ननवमीव्रतांगपारणालोपःस्यान् अतोऽष्टमीविद्धैवस्मार्तैःकार्या वैष्णवानांत्व-

रुणोदयविद्वैकादश्याहेयत्वात्रपारणालोपप्रसंगइतिद्वितीयैवतैः कार्यैस्त्रिसूचयति दशमीवृद्ध्यभावेष्टमीविद्ध्याया एवमध्याह्नव्यापित्वेक्षयेचवैष्णवैरपिविद्वैवोपोष्येत्यर्थसिद्धम् ।

पूर्वदिवशीं मध्याह्नयोग असतां कर्मकालव्याप्ति आहे म्हणून तीच ध्यावी. दोनही दिवशीं मध्याह्नव्याप्ति असो किंवा दोन्ही दिवशीं मध्याह्नव्याप्ति नसो, पूर्व दिवशीं पुनर्वसुयुक्त असली तरी ती सोडून पराच करावी, तें सांगतो-**माधवीयांत अगस्तिसंहितेंत**—“विष्णुभक्तांनीं अष्टमीविद्ध नवमी टाकावी. नवमीस उपोषण करून दशमीस पारणा करावी.” अष्टमीनें विद्ध नवमी पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त असली तरी तीस उपोषण करूं नये, असें **माधव** सांगतो. **रामार्चनचंद्रिकेंतही** “अष्टमीविद्धाच पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त असली तर तिचे ठायीं व्रत कसें होईल ? कारण, अष्टमीविद्ध नवमी निषिद्ध असें पूर्वीच्या ‘नवमी चाष्टमी०’ या वाक्यानें सांगितलें आहे, म्हणून वैष्णवांस स्मार्तांहून विशेष असल्यामुळें विष्णुपर अशा वैष्णवांनीं दशम्यादिकांची वृद्धि असेल तर विद्धा सोडावीच. वैष्णवांचून इतर सर्वांस अष्टमीविद्ध नवमीदिवशींच व्रत निश्चित होय.” येथें बरील वाक्यांत ‘जर दशम्यादिकांची वृद्धि असेल तर वैष्णवांनीं विद्ध टाकावी व त्यांहून (वैष्णवांचून) अन्यांनीं करावी’ असें सांगितलें, यावरून जेव्हां प्रातःकाळीं त्रिसुहृन् नवमी असून दशमी, क्षयवशान् सूर्योदया-पूर्वीच समाप्त होईल तेव्हां स्मार्तांस एकादशीनिमित्तक उपवासामुळें त्या ठिकाणीं नवमीव्रताचा पारणालोप होईल, म्हणून अष्टमीविद्धाच स्मार्तांनीं करावी. वैष्णवांस तर अरुणोदयविद्ध एकादशी त्याज्य असल्यामुळें पारणालोपप्रसंग येत नाही, यास्तव त्यांनीं (वैष्णवांनीं) दुसरे दिवशींच करावी असें सुचविलें आहे. दशमीची वृद्धि नसून अष्टमीविद्ध नवमीच मध्याह्नव्यापिनी असेल किंवा क्षय असेल तर वैष्णवांनींही विद्ध नवमीराच उपोषण करावें असें अर्थात् सिद्ध होतें.

इदंचव्रतंसंयोगपृथक्त्वन्यायेनकाम्यनित्यं तदुक्तंहेमाद्रावगस्तिसंहितायां उपोषणंजागरणंपितृनुद्दिश्यतर्पणं तस्मिन्दिनेतुर्कृत्यंब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः सर्वेषामप्ययंधर्मोभुक्तिमुक्त्यैकसाधनः अशुचिर्वापिपापिष्ठःकृत्वेदंचव्रतमुत्तमं पूज्यःस्यात्सर्वभूतानांयथारामस्तथैवमः यस्तुरामनवम्यांतुभुक्तेमोहादिमुद्वेदधीः कुंभीपाकेपुषोरेपुपच्यतेनात्रसंशयः तथा अकृत्यारामनवमीव्रतंसर्वव्रतोत्तमं व्रतान्यन्यानिकुरुतेन तेषांफलभागभवेत् प्राप्तेश्रीरामनवमीदिनेमर्त्योविमूढधीः उपोषणंकुरुतेकुंभीपाकेपुपच्यते अत्रकेचित् तदुपासकानामेवेदंचव्रतनित्यंतन्वन्येषामित्याहुः **अन्येतु** अकरणेदोषश्रवणान् तस्मात्सर्वात्मनासर्वैःकार्येनैवममीव्रतमितिपूर्वोक्तवचनाच्च जन्माष्टम्यादिवदिदमपिसर्वेषांनित्यं अन्यथाजन्माष्टम्यादावपितदुपासकानामेवनित्यतांवक्तुःकोवारयितेत्याहुः ।

हें व्रत संयोगपृथक्त्वन्यायानें काम्य व नित्यही आहे. तें **हेमाद्रांत अगस्त्यसंहितेंत** सांगतो—“ब्रह्मप्राप्ति ईच्छिष्यान्त्यांनीं रामनवमीस उपोषण व जागरण, पितरांच्या उद्देशानें तर्पण हीं करावीं, हा सर्वांना भुक्तिमुक्तिसाधन करणारा धर्म होय. अशुद्ध किंवा पापी असेल तोही हें उत्तम व्रत करून सर्व भूतांस पूज्य जसा राम तसाच तो होतो. जो मूर्ख मनुष्य रामनवमीस मोहानें (अज्ञानानें) भोजन करतो तो कुंभीपाक नरकास जातो यांत संशय नाही.” तसेंच. “सर्व व्रतोत्तम असें रामनवमीव्रत न करितां अन्य व्रतें करील तर त्या व्रतांचें त्यास फल प्राप्त होणार नाही. श्रीरामनवमीदिवस प्राप्त झाला असतां जो मूर्ख मनुष्य उपोषण करीत नाही तो कुंभीपाकनरकांत पडतो.” एथें **कोणी ग्रंथकार**—हें व्रत रामोपासकांसच नित्य आहे, इतरांस नाही, असें म्हणतात. **अन्यग्रंथकार** तर, अकरणीं दोषश्रवण असल्यामुळें व ‘सर्वांनीं सर्वभावानें रामनवमीव्रत करावें’ असें पूर्वी वचन सांगितल्या वरूनही जन्माष्टमीप्रभृति व्रतासारखें हेंही व्रत सर्वांस नित्य आहे. असें नसेल तर जन्माष्टम्यादिव्रतही कृष्णोपासकांसच नित्य, इतरांस नित्य नाही, असें बोलणाराचें कोण निवारण करील ? असें सांगतात.

अत्रविशेषोहेमाद्रावगस्त्यसंहितायां आचार्यचैवसंपूज्यवृणुयात्प्रार्थयेन्निशि श्रीरामप्रतिमादानंकरिष्येहंद्विजोत्तम भक्त्याचार्योभवप्रीतःश्रीरामोस्त्वमेवच तथा स्वगृहेचोत्तरेदेशेदानस्योज्ज्वलमंडपं शंख-

१ एकस्य उभयाधर्तवे संयोगपृथक्त्वन्यायः । एकाला दोन प्रयोजनें असलीं म्हणजे त्याला संयोगपृथक्त्वन्याय म्हणतात. जसें—नित्यअग्निहोत्र होमाची जी द्रव्यें सांगितली आहेत त्यांत ‘दध्ना जुहोति’ म्हणजे नित्याग्निहोत्रहोम दद्यानेंही होतो, असें सांगितलें आहे. आणि ‘दध्ना इन्द्रियकामस्य जुहुयाद्’ इन्द्रियकामना असेल त्यानें होम करावा, ह्या वाक्यानें दद्याच्या होमानें इन्द्रियपाटवरूप कामना असेल तर ती पूर्ण होते. या ठिकाणीं संयोगपृथक्त्वन्याय येतो तो असा. नित्यत्व व काम्यत्व या दोहोंचा संयोग म्हणजे दोन्ही पाहिजे असल्यास दधिहोमानें सिद्ध होतात. आणि इन्द्रियकामना नसेल तर दधिहोमानें पृथक्त्वेकरून नित्य होमाचीच सिद्धि होते.

चक्रहनुमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतं गरुत्पच्छाङ्गवाणैश्च दक्षिणे समलंकृतं गदाखङ्गाङ्गदैर्ध्रैव पश्चिमे सुविभूषितं पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेरैः समलंकृतं मध्ये हस्तचतुष्काढ्यैवेदिका युक्तमायतं ततः संकल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने-
अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः उपोष्याष्टसुयामे पुपूजयित्वा यथाविधि इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रय-
त्नतः श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते प्रीतो रामो हरत्वा शुपापानि सुबहूनि मे अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्य-
स्तानि महाति च ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमात्रतः निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामां कथितजानकीं विभ्रतीं द-
क्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने वामेनाधः करेणाराद्देवीमालिङ्ग्य संस्थिताम् सिंहासने राजते तत्र पलद्वयविनिर्मिते तथा
अशक्तो यो महाभागः स तु विज्ञानुसारतः पलेनार्धतदर्धार्धतदर्धार्धेन वामुने सौवर्णं राजतं वापिकारयेद्द्रुघुनं दनम्
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकरावुभौ चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं चापिकारयेत् दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रावैश्वर्यतत्परम्
मातुरङ्कगतं राममिदानीं लसन्प्रभम् पंचामृतस्नानपूर्वसंपूजयित्वा यत्ततः कौशल्यामंत्रस्तु रामस्य जननी-
चासिरामरूपमिदं जगत् अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु ते नमो दशरथायैति पूजयेत्पितरंततः अत्र द-
शावरणपंचावरणादिपूजाऽन्यत्रज्ञेया अशोककुसुमैर्युक्तमर्धदद्याद्विचक्षणः दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापना-
य च राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रा-
तृभिः सहितोऽनघ पुष्पांजलिपुनर्दत्वा यामेयामे प्रपूजयेत् दिवैव विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणंततः ततः प्रातः स-
मुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः समाप्य विधिवद्ग्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमंत्रेण मंत्रविन्
पूर्वोक्तपद्मकुंडे वा स्थंडिले वा समाहितः लौकिकाग्रौ विधानेन शतमष्टोत्तरंततः साध्येन पायमेनैव स्मरन् राममन-
न्यधीः ततो भक्त्या मुसंतोष्य आचार्यपूजयेन्मुने ततो रामं स्मरन् दद्याद्वंमंत्रमुदीरयेत् इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां-
समलंकृताम् चित्रवस्त्रयुगच्छत्रां रामो हं गायवायते श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु गायवः इति दत्त्वा विधानेन दद्या-
द्देवदक्षिणां भुवम् ब्रह्महत्यादिपापंभ्यो मुच्यते तत्र संशय इति ।

येथं विशेष विधि हेमाद्रौ न अगस्त्यसंहितेन सांगितः ना अगः—रात्रौ आचार्या वरुन त्यानें पूजन करून
“श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येदं द्विजोत्तम । भक्त्याचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव च ॥” अशी
प्रार्थना करावी. तसेच “स्वयंही उत्तरमार्गां प्रतिमादानाग्रे सुंदर मंडप करून तो पूर्वेद्वारां येव, चक्र व हनुमान् यांहीं
अलंकृतः दक्षिणद्वारां गरुड, शाङ्गधनुष, वाण यांहीं अलंकृतः पश्चिमद्वारां गदा, खड्ग, अंगद यांहीं विभूषितः उत्तरद्वारां
कमल, स्वस्तिक, नील यांहीं अलंकृत अशा मंडपामध्ये चारहातांची विमाणीं वेदि करावी. नंतर रामाचेंच स्मरण करून उपो-
पणाचा संकल्प करावा. संकल्पाचा मंत्र—उपोष्ये नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव । तेन प्रीतो भवत्व मे संसा-
रात् ब्राह्मिमां हरे ॥ ह्या मंत्रानें रामनवमीं रामाराधनतत्पर होऊन आठप्रहर उपोषण करून रामप्रतिमेचें यथाविधि
पूजन करून नंतर प्रतिमादान करावें. दानाचा मंत्र—इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः । श्रीरामप्रीतये
दास्ये रामभक्ताय धीमते ॥ प्रीतो रामो हरत्वा शुपापानि सुबहूनि मे । अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि
महाति च ॥ दानाचा विधि—एकपल (चारकप) सुवर्णानें निमाण केली, दोन, भुजांची, सुंदर, डाव्या मांडीवर
सीता व उजव्या हातांत ज्ञानमुद्रा धारण करणारी, डाव्या हस्तानें सीतेला आलिङ्गणारी व दोनपलमित रुप्याच्या गिहागनीं
बसलेल्या अशी प्रतिमा करावी. अथवा अशक्त (द्रव्यहीन) असेल तर त्यानें आपल्या द्रव्यानुसार पलाची (चारतोळ्यांची),
दोन कर्पांची, एक कर्पाची, किंवा अर्धकर्पाची करावी. मोन्याची किंवा रुप्याची रामचंद्रप्रतिमा करावी. दोहोंबाजूस छत्र-
धारणारे असं भरत व शत्रुघ्न करावे. दोन धनुष्यांनी युक्त अगा लक्ष्मण करावा. उजव्या अंगास रामाकडे दृष्टि ठेवणारा
अगा दशरथ करावा. मातेच्या मांडीवर बसलेला, इंद्रनीलमण्यासारखा नीलवर्ण अशा रामाचें पंचामृतस्नानपूर्वक शाळोक
विधीनें पूजन करावें. कौसल्येच्या पूजनाचा मंत्र—“रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत् । अतस्त्वां
पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥” नंतर ‘दशरथाय नमः’ ह्या नाममंत्रानें दशरथाची पूजा करावी. येथें
दशावरण व पंचावरणादि पूजा सांगितली आहे ती अन्यप्रार्थी पहावी. “नंतर अशोकपुष्पांनी युक्त असें अर्थ शार्वे.
अर्घ्याचा मंत्र—दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ या मंत्रानें
अर्ध देऊन पुनः पुष्पांजलि द्यावी. याप्रमाणें प्रहराप्रहराने ठायीं पूजा करावें. याप्रमाणें दिवसास पूजन करून रात्रीस
जागरण करावें. नंतर प्रातःकाली उठून स्नानसंध्यादि कर्मे समाप्त करून रामाचें यथाविधि पूजन करावें. नंतर मूलमंत्रानें

होम करावा. पूर्वोक्त (अगस्तिसंहितेंत उक्त) पद्मकुंडांत अथवा स्थंडिलावर लौकिकाग्नींत यथाविधि अष्टोत्तरशत आज्य-सहित पायसानें रामस्मरण करीत होम करावा. नंतर भक्तीनें आचार्याचें पूजन करून त्याला संतुष्ट करावें. नंतर रामस्मरण करून या (पुढील) मंत्राचा उच्चार करून रामप्रतिमादान करावें. दानाचा मंत्र—**इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृताम् । चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोहं राघवाय ते ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥** या मंत्रानें प्रतिमा दान देऊन भूमि दक्षिणा घावी. तेणेंकरून ब्रह्महत्यादिपापांपासून मुक्त होतो यांत संशय नाही.”

इयंमलमासेनकार्या सुजप्तमप्यजप्तंस्यान्नोपवासःकृतोभवेदिति नकुर्यान्मलमासेतुमहादानव्रतानिचेतिच माधवीयेसंग्रहवचनात् ननुरामनवमीव्रतस्यनित्यत्वादेकादशीवन्मलमासेपिकर्तव्यतास्यादितिचेन् अत्र-**ब्रूमः** नैकादश्युपवासस्यव्रतत्वेनप्राप्तिः किंतु एकादश्यांनभुंजीतपक्षयोरुभयोरपीत्यादिनिषेधस्यमलमासे-पिपालनीयत्वात्कृष्णैकादश्यांपुत्रवद्बृह्णिग्वार्थादुपवासःप्रसज्यते नत्विहृतथेतिव्रतत्वेनप्राप्तिर्वाच्या साच-निषिद्धेत्यप्रसंगः स्पष्टमासविशेषाख्याविहितंवर्जयेन्मलइतिनिषेधाच्च एवंजन्माष्टम्यादावपिबोद्धव्यं इति रामनवमी ।

ही रामनवमी मलमासांत करूं नये; कारण, “मलमासांत उत्तम जप केल्या तरी तो न केल्यासारखा व उपवास केला तरी न केल्यासारखा होतो” असें व “महादानं, व्रतें हीं मलमासामध्ये करूं नयेत” असेंही **माधवाच्या** ग्रंथांत संग्रह-वचन आहे. **शंका**—रामनवमी हें व्रत नित्य असल्यामुळे एकादशीसारखें मलमासांतही कर्तव्य आहे असें कोणी म्हणेल तर त्याविषयी सांगतां. एकादशीच्या उपवासाची व्रतलेकरून प्राप्ति नाही, तर दोहों पक्षांतील एकादशीस भोजन करूं नये.” इत्यादि वचनानें जो भोजन निषेध केला तो मलमासांतही पालन करणें अवश्य आहे. म्हणून कृष्णैकादशीस पुत्रवान् गृह-स्थाला जसा उपवास येतो तसा मलमासांतील एकादशीस अर्थात् उपवास प्राप्त होतो तसा ह्या नवमीव्रताचे ठायीं उपवास प्राप्त होत नाही. येथें व्रतलेकरून प्राप्ति सांगितली पाहिजे, ती तर मलमासांत निषिद्ध आहे. यास्तव ह्या स्थलीं त्याचा प्रसंग नाही. आणि “विशेषमासाचें स्पष्ट नांव घेऊन विहित जें कर्म तें मलमासामध्ये वर्ज्य करावें.” असा निषेधही आहे, यास्तव मलमासांत हें नवमीव्रत करूं नये. याप्रमाणें जन्माष्टमा इत्यादि स्थलीही निर्णय समजावा. **इतिरामनवमी.**

चैत्रशुक्लैकादश्यांदोलोत्सवउक्तोब्राह्मे चैत्रमासस्यशुक्लायामेकादश्यांतुवैष्णवैः आंदोलनीयोदेवेशःसल-क्ष्मीकोमहोत्सवैरिति चैत्रशुक्लद्वादश्यांदमनोत्सवः द्वादश्यांचैत्रमासस्यशुक्लायामनोत्सवः बौधायनादि-भिःप्रोक्तःकर्तव्यःप्रतिवत्सरमितिरामार्चनचंद्रिकोक्तः ऊर्जेव्रतंमघौदोलाश्रावणेतंतुपूजनं चैत्रचंदमना-रोपमकुर्वाणोब्रजज्यधइतितत्रैवपाद्मवचनाच्च शिवभक्तादिभिस्तुचतुर्दश्यादौकार्यं तत्रस्यात्स्वीयतिथिपुव-ह्यादेर्दमनार्पणमितितत्रैवोक्तेः ज्योतिःप्रकाशोपि स्वस्वदेवप्रतिप्रायामंत्रसंग्रहेतथा पवित्रदमना-रोपेप्राह्यातत्तत्तिथिर्बुधैः तिथयस्तु बह्विर्विरिंच्योगिरिजागणेशःफणीविशाखोदिनकृन्महेशः दुर्गातको विश्वहरिःस्मरश्चशर्वःशशीचेतितिथीपुपूज्या इत्युक्ताः ।

चैत्रशुक्लैकादशीस दोलोत्सव सांगितला. **ब्रह्मपुराणांत**—“चैत्रमासाचे शुक्लैकादशीस वैष्णवांनीं मोठ्या उत्साहानें लक्ष्मीसहित विष्णूचें आंदोलन करावें.” चैत्रशुक्ल द्वादशीस दमनोत्सव (दवण्यानं पूजा) करावा; कारण, “चैत्रशुक्ल द्वाद-शीस विष्णूचा दमनोत्सव बौधायनादिकांनीं सांगितला, तो प्रतिवर्षीं करावा.” असें **रामार्चनचंद्रिकेंत** वचन आहे. आणि “कार्तिकमासीं व्रत, चैत्रमासीं दोलोत्सव, श्रावणांत तंतुपूजन (पवित्रारोपण), चैत्रमासीं दमनारोपण (दवण्यानं पूजा) हीं न करणारा नरकास जातो.” असें तेथेंच **पद्मपुराण** वचनही आहे. शिवभक्तादिकांनीं तर चतुर्दश्यादितिथींस दमनारोपण करावें; कारण, “स्वीय तिथींस (म्हणजे ज्या देवतेची जी तिथि असेल त्या तिथीस) अभ्यादि देवतांना दमनार्पण करावें” असें येथेंच सांगितलें आहे. **ज्योतिःप्रकाशांत**ही “ज्या ज्या देवतेची देवप्रतिष्ठा, मंत्रग्रहण, पवित्रा-रोपण व दमनारोपण हीं करावयाचीं असतील त्या त्या देवतेची तिथि घ्यावी.” तिथींच्या देवता सांगतो—“अग्नि, ब्रह्मा, गौरी, गणेश, सर्प, स्कंद, सूर्य, महेश, दुर्गा, अंतक (यम), विषेदेव, हरि, मदन, शिव, चंद्र, ह्या अनुक्रमानें प्रतिपदादि तिथींच्या देवता होत.”

अथागमोक्तदीक्षावतोदमनारोपणविधिः**रामार्चनचंद्रिकायां** तत्रैकादश्यां क्रियालोपविघातार्थं यथस्वयविहितंप्रभो नमेविप्रोभवेदत्रकुरुनाथ**कुंभमसि** सर्वथासर्वदाविष्णोममत्वंपरमागतिः उपवासेनत्वांदे-वतोपयामिजगत्पते कामक्रोधाद्योयेतेनमेस्युर्व्रतघातकाः अद्यप्रभृतिदेवेशयावद्वैशेषिकंदिनम् तावद्रक्षात्वया

कार्यासर्वस्यास्यजगत्पते इतिदेवंप्राथ्व्यदमनमादायपंचगव्येनप्रोक्ष्यवारिणाप्रक्षाल्याशोकमूलेदेवाग्नेवा अशो-
कायनमस्तुभ्यंकामस्त्रीशोकनाशन शोकार्तिहरमेनित्यमानंदंजनयस्वमे इत्यशोकं युट्यादिकालपर्यंतः
कालरूपोमहाबलः कलतेचैवयः सर्वतस्मैकालात्मनेनमइतिकालं वसंतायनमस्तुभ्यंवृक्षगुल्मलताश्रय सह-
स्रमुखसंवासकामरूपनमोस्तुतइतिवसंतं कामभस्मसमुद्भूतरतिवाष्पपरिप्लुत ऋषिगंधर्वदेवादिविमोहकन-
मोस्तुतइतिदमनंचसंपूज्य नमोस्तुपंचवाणायजगदाह्लादकारिणे मन्मथायजगन्नेत्ररतिप्रीतिप्रियायते इति
दमनमुपस्थाय ॐ कामायनमइतिसंपूज्यनिशायां देवताग्रेपंचवर्णैः चंदनेनवाअष्टदलंकृत्वावदिश्रुतुरसंततुह्रिर्व-
र्तुलत्रयंतद्वहिर्वृत्तंचतुरस्रंचकृत्वातत्रकुंभंसंस्थाप्योपरिदमनंपूजयित्वा पूजार्थं देवदेवस्यविष्णोलक्ष्मीपतेप्रभो
मदनत्वमिहागच्छसांनिध्यंकुरुतेनमः ॐ ह्रींकामदेवायनमः ॐ ह्रींरत्नैरनमइत्यावाह्य दिक्षुपूर्वादितः स्मर-
शरीरायनमः अंतगाय० मन्मथाय० कामाय० ह्रींवसंतसखाय० स्मराय० इक्षुचापाय० पुष्पास्त्रायनम
इति पूजयित्वा ॐ तत्स्वरूपायविद्महेकामदेवायधीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् इत्यष्टोत्तरशतंसंमंत्र्यपूजयित्वा
ह्रींनमइतिपुष्पांजलिंदत्वा नमोस्तुपुष्पवाणायजगदाह्लादकारिणे मन्मथायजगन्नेत्ररतिप्रीतिप्रियायतेइतिनित्वा
आमंत्रितोसिदेवेशपुराणपुरुषोत्तम प्रातस्त्वांपूजयिष्यामिसान्निध्यंकुरुकेशव श्रीरोदधिमहानागशय्यावस्थि-
तविग्रह प्रातस्त्वांपूजयिष्यामिमन्त्रिभौभवतेनमः निवेदयाम्यहंतुभ्यंप्रातर्दमनकंशुभं सर्वदासर्वथाविष्णो-
नमस्तेस्तुप्रसीदमेइतिदेवंप्राथ्व्यपुष्पांजलिंदत्वा अस्त्रेणचक्रमंत्रेणवारश्मांकुर्यात् ततःप्रातर्नित्यपूजांकृत्वापुन-
र्देवंसंपूज्यगंधदूर्वाश्रतयुक्तंदमनमादायमूलमंत्रंपठित्वा देवदेवजगन्नाथवांछितार्थप्रदायक हृदिस्थानपूरयेः
कामानममकामेश्वरीप्रिय इदंदमनकंदेवगृहाणमदनुग्रहान् इमांसां वनमरीपूजांभगवन्परिपूरयइतिमंत्रांतेपुनर्मू-
लमंत्रेणदेवेसमर्पयेत् ततः अंगदेवताभ्यःस्त्र्यस्रमंत्रेणदत्त्वाप्रार्थयेत् मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुमुमादिभिः इयं-
सावत्सरीपूजातवास्तुगुरुडध्वज वनमालांयथाविष्णोर्कोस्तुभंसनतंतद्वदि तद्वदामनकीमालांपूजांचहृदयेवह
जानताजानतावापिनकृतंयत्तवार्चनम् तत्सर्वपूर्णतांयातुत्वत्प्रसादाद्रमापते जितंतेपुंडरीकाक्षनमस्तेविश्वभावन
नमस्तेस्तुहृषीकेशमहापुरुषपूर्वज मंत्रहीनमितिचमंप्राथ्व्य पंचोपचारैःपुनःसंपूज्यनीराज्यप्रार्थयेदिति ।

आतां आगमोक्त दीक्षा ज्यास आहे त्यानें कर्तव्य

दमनारोपणविधि सांगतो.

रामार्चनचंद्रिकेत—एकादशीचे ठायीं “क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो । नमेविघ्नोभवेद्वक्ष
कुश्च नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन त्वां देव तोपयामि
जगत्पते ॥ कामक्रोधाद्योप्येने न मे स्युर्वतघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनं ॥ ताव-
द्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य जगत्पते ॥” अशी देवाची प्रार्थना करून दमनक (दवणा) आणून पंचगव्यानें
प्रोक्षण करून उदकानें धुवावा. नंतर अशोकवृक्षाचे मूर्ती किंवा देवाचे अग्रभागीं पूजा करावी, ती अशी—पूजामंत्र—“अशो-
काय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन । शोकार्ति हर मे नित्यमानंदं जनयस्व मे ॥” यानें अशोकाची पूजा
करावी. “युट्यादिकलपर्यंतः कालरूपो महाबलः । कलते चैव यः सर्वं तस्मै कालात्मने नमः ॥” यानें
कालाची पूजा करावी. “वसंताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताश्रय । सहस्रमुखसंवास कामरूपनमोस्तु ते ॥”
यानें वसंताची पूजा करावी. “कामभस्मसमुद्भूत रतिवाष्पपरिप्लुत । ऋषिगंधर्वदेवादिविमोहकनमोस्तु ते ॥”
यानें दवण्याची पूजा करावी. नंतर “नमोस्तु पंचवाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीति-
प्रियाय ते ॥” या मंत्रानें दमनकाचें उपस्थान करून “ॐ कामाय नमः” ह्या नाममंत्रानें पूजन करून रात्री देवाचे पुढें
पांच रंगांनीं किंवा चंदनानें अष्टदल करून त्याचे बाहेर चतुरस्र, त्याचे बाहेर तीन वर्तुलें, त्याचे बाहेर वृत्त व चतुरस्र
असें मंडल करून त्यावर कलश स्थापन करून त्या कलशावर दमनाची पूजा करावी. ती अशी—“पूजार्थं देवदेवस्य
विष्णो लक्ष्मीपते प्रभो । दमनत्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः ॐ ह्रीं कामदेवाय नमः । ह्रीं रत्नै
नमः” या मंत्रानें आवाहन करून पूर्वादि अष्ट दिशांचे ठायीं—“भस्मशरीराय नमः. अनंगाय० मन्मथाय०
कामाय० ह्रीं वसंतसखा० स्मराय० इक्षुचापाय० पुष्पास्त्राय नमः” या नाम मंत्रांनीं अष्टदिशांचे ठायीं
पूजन करून ॐ तत्स्वरूपाय विद्महेकामदेवाय धीमहि ॥ तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ॥ ह्या मंत्रानें एकसैं आठवेळ

दमनक मंत्रून “ह्रींनमः” ह्या मंत्रानं पुष्पांजलि देऊन “नमोस्तु पुष्पवर्णाय०” या पूर्वोक्तमंत्रानं नमस्कार करून “आमंत्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निध्यं कुरुकेशव ॥ क्षीरोदधि-महानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ निवेद्याभ्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम् । सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे ॥” ह्या मंत्रांनीं देवाची प्रार्थना करून पुष्पांजलि द्यावी. अन्नां किंवा चक्रमंत्रानं रक्षा करावी. नंतर प्रातःकालीं निल्यपूजा करून पुनः देवाची पूजा करून गंध, दूर्वा, अक्षता यांनीं युक्त दमनक घेऊन मूलमंत्र पठन करून, “देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक । हृदिस्थान् पूरयेः कामान् मम कामेश्वरीप्रिय ॥ इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् । इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परि-पूरय ॥” याप्रमाणे मंत्र म्हणून पुनः मूलमंत्रानं देवास दवणा अर्पण करावा. नंतर अंगदेवतांस त्यांच्या नाममंत्रानं दवणा अर्पण करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र—“मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः ॥ इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथाविष्णो कौस्तुभं सततं हृदि ॥ तद्ब्रह्मानकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताजानता वापि न कृतं यत्तत्त्वाचनम् ॥ तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्विमापते ॥ जितं ने पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं०” या मंत्रांनीं प्रार्थना करून पुनः पंचोपचारांनीं पूजा करून आरती करून पारणा करावी.

दीक्षारहितानां तु नास्मैवममर्पणं अत्रचद्वादशीमंत्रीकृत्यपारणाहोत्राहं पारणाहेनलभ्येतद्वादशीघटिका-पिचेत् तदात्रयोदशीप्राह्यापवित्रदमनार्पणइतितत्रैवोक्तेः गौणोपिकाल उक्तस्तत्रैव हर्गोनदमनारोपः-स्यान्मधौविप्रतोयदि वैशाखेश्रावणेप्रापितत्तियौस्यात्तदर्पणम् श्रावणावधिशुक्रास्तेकर्तव्यमितिनारदः इति पाठांतरं इदंचमलमासेनकार्यं उपाकर्मोत्सर्जनंचपवित्रदमनार्पणमितिकालादर्शंमलमासवर्ज्यंपुपरिगण-नात् उपाकर्मचहव्यंचकव्यंपर्वोत्सवंतथा उत्तंगनियतंकुर्यात्पूर्वतन्निष्फलंभवेदितिमाधवीये प्रजापति-वचनाच्च शुक्रास्तादौतुकार्यमेव पूर्वोक्तवचनान् उपाकर्मोत्सर्जनंचपवित्रदमनार्पणम् ईशानस्यबलिंविष्णोः शयनंपरिवर्तनम् कुर्याच्छुक्रस्यचगुरोर्मौल्येऽपीतिविनिश्चयइतिज्योतिर्निबंधवृद्धगार्ग्यवचनाच्च इति दमनारोपः ।

मंत्रदीक्षा ज्याला नसेल त्यांनीं नाममंत्रानंच दवणा गमर्पण करावा. येथे द्वादशी मुख्य न धरतां एकादशीव्रताचा पारणा-दिवस घ्यावा; कारण, “पारणादिवशीं एक घटिकाही द्वादशी नसेल तर पवित्रारोपण व दमनार्पण यांविषयीं त्रयोदशी घ्यावी.” असें रामार्चनचंद्रिकेंतच सांगितलें आहे. दमनारोपणाविषयीं गौणकालही तथंच सांगितला आहे, तो असा—“चैत्रमासीं कांहीं विघ्नानं हरीचं दमनारोपण न झालें तर वैशाख, श्रावण यांतही त्या तिथीस (द्वादशीस) करावें”, “वैशाखे श्रावणे०” ह्या अर्थाच्या स्थानीं ‘श्रावणावधिशुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः’ असा दुसरा पाठ आहे. अर्थ—श्रावणापर्यंत शुक्रास्त असलें तरी दमनारोपण करावें, असें नारद सांगतो. हें मलमासांत करूं नये; कारण, ‘उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रारोपण व दमनारोपण हीं मलमासांत वर्ज्य होत’ असें कालादर्शांत मलमासवर्ज्यांमध्ये सांगितलें आहे. आणि “उपाकर्म, हव्य, कव्य, पर्वोत्सव हीं कर्मे पुढील (शुद्ध) मासी निश्चयें करावीं, पूर्वमासीं (अधिकमासीं) केलीं तर निष्फल होतात.” असें माधवीयांत प्रजापतिवचन आहे. शुक्राचें अस्तादिक असलें तथापि करावेंच; कारण, ‘श्रावणा-वधि०’ असें वचन उक्त आहे. आणि “उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रारोपण, दमनारोपण, ईशानबलि, विष्णूचें शयन व परिवर्तन हीं शुक्र व गुरु यांचे अस्तादिकांतही निश्चयानं करावीं.” असें ज्योतिर्निबंधांत वृद्धगार्ग्यवचनही आहे.

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंग्रतं तत्रसापूर्वाप्राह्या त्रयोदशतिथिःपूर्वःसितइतिदीपिकोक्तेः चैत्रशुक्लचतु-र्दशीपूर्वाप्राह्या मधोःश्रावणमासस्यशुक्लायातुचतुर्दशी सारात्रिव्यापिनीप्राह्यानान्याशुक्लाकदाचनेतिहेमाद्रौ-बौधायनोक्तेः परापूर्वाह्णगामिनीतिवापाठः अत्रकेचिद्यथाश्रुतमेवार्थवर्णयंति निशिभ्रमंतिभूतानिशक्त-यःशूलभृद्यतः अतस्तत्रचतुर्दश्यासत्यांततपूजनंभवेदितिब्रह्मवैवर्तात् हेमाद्रिमाधवादिखिलनमव्येवं संप्रदायविदस्त्वाहुः चतुर्दशीतुर्कर्तव्यात्रयोदश्यायुताविभोइतिस्कांदमुत्सर्गः तदपवादश्च तृतीयैकादशी-षष्ठीशुक्लपक्षेचतुर्दशी पूर्वविद्वानकर्तव्याकर्तव्यापरसंयुतेतिनारदीयवचनं तदपवादश्च मधोःश्रावणमासस्येति तत्रापवादाभावेपुनरुत्सर्गस्यस्थितिरितिन्यायेनपूर्वविद्वैवप्राह्येति सिध्यति ब्रह्मवैवर्तु सामान्यरूपमन्यत्र-ज्ञावकाशमिति तेनपूर्वदिनेमुहूर्तत्रयवेधेपूर्वा अन्यथोत्तरेति ।

चैत्रशुद्ध त्रयोदशीस अनंगव्रत सांगितलें आहे. त्याविषयी त्रयोदशी पूर्वविद्धा ध्यावी: कारण, “शुक्लपक्षी त्रयोदशी तिथि पूर्वा ध्यावी” असें दीपिकेंत सांगितलें आहे, चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ध्यावी: कारण, “चैत्र व श्रावण या मासांतील जी शुक्लचतुर्दशी ती रात्रिव्यापिनी ध्यावी, इतर शुक्लचतुर्दशी रात्रिव्यापिनी कदापि घेऊं नये” असें हेमाद्रींत बौधायनाचें वचन आहे. ह्या वचनाच्या शेवटच्या चरणीं ‘परा पूर्वाङ्गगामिनी’ म्हणजे अन्यमासांतील शुक्लचतुर्दशी पूर्वाङ्गगामिनी (उत्तरविद्धा) ध्यावी असा पाठ आहे. येथें केचित् यथाश्रुत (रात्रिव्यापिनी असाच) अर्थ वर्णन करतात. पूर्वविद्धा असें म्हणत नाहींत; कारण, “भूतें, शक्ति, शूलभृत् (शिव) हे रात्रीं भ्रमण करतात, यास्तव रात्रीं चतुर्दशी असतां त्यांचें पूजन करावें” असें ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. हेमाद्रि, माधव इत्यादिकांचाही लेख असाच आहे. संप्रदायवेत्ते तर असें सांगतात की, “त्रयोदशीनें युक्त अशी चतुर्दशी करावी” हें स्कंदपुराणांतील वचन उत्तरार्ग (सामान्यविधि) आहे. त्याचा अपवाद—“शुक्लपक्षांतील तृतीया, एकादशी, पष्ठी, आणि चतुर्दशी ह्या पूर्वविद्धा करूं नयेत. परविद्धा कराव्या” हें नारदवचन होय. ह्या नारदवचनाचा अपवाद—“चैत्र व श्रावण यांची शुद्धचतुर्दशी रात्रिव्यापिनी ध्यावी” हें पूर्वोक्त बौधायनवचन होय. तेथें अपवादाचा (नारदवचनाचा) अपवादानें (बौधायनवचनानें) बाध केला असतां उन्मार्गनी (स्कंदवचनानी) स्थिति राहते, या न्यायानें पूर्वविद्धान ध्यावी, असें सिद्ध होतें. ब्रह्मवैवर्तवचन तर सामान्य असल्यामुळे या चैत्र व श्रावण चतुर्दशीवांचून इतर ठिकाणीं प्रवृत्त होतें. तेणेंकरून पूर्वे दिवशीं चतुर्दशीस तीन मुहूर्तपर्यंत त्रयोदशीचा वेध अगेल तर पूर्वाची ध्यावी. अधिक वेध अगेल तर उत्तरा ध्यावी.

चैत्रपूर्णिमामामान्यनिर्णयान्परैव अत्रविशेषो निर्णयामृतेविष्णुस्मृतौ चैत्रीचित्रायुताचेत्स्यात्तस्यांचित्रवस्त्रप्रदानेनमौभाग्यमाप्नोतीति तथा ब्राह्मे मंदेवाकैंगुरौवापिवारेष्वेतेपुचैत्रिका तत्राभ्यमेधजपुण्यस्नानश्राद्धादिभिर्लभेदिति अत्रमर्वदेवानां दमनपूजोक्ता तत्रैववायवीये संवत्सरकृताचार्याः साफलयाया-ग्विलान्मुगान् दमनेनार्चयेच्चैत्र्यांविशेषेणमदाशिवमिति अत्रस्वीयतिथ्याममुष्यइतिकेचिन् स्वीयतिथ्यामकरणेत्रदमनपूजनमित्यन्ग्रे दीक्षिततदितरविषयत्वेनव्यवस्थेत्यपरे इयंमन्वादिगपि साचपूर्वमुक्ता ।

चैत्री पौर्णिमा सामान्य निर्णयेंकरून पुराण करावी येथें विशेष विधि निर्णयामृतांत विष्णुस्मृतींत “चैत्री पौर्णिमा चित्रानक्षत्रानें युक्त असतां चित्रवस्त्रदान करावें, तेणेंकरून मौभाग्य प्राप्त होतें” तसेंच ब्राह्मानं—“शनि, रवि, गुरु या वारीं चैत्री पौर्णिमा अगेल तर त्या दिवशीं स्नान व श्राद्धादिक करावें, तेणेंकरून अश्वमेधफल प्राप्त होतें.” चैत्री पौर्णिमेस सर्व देवांची दमनपूजा सांगितली आहे. तेथेंच वायुपुराणांत—“वर्षपर्यंत केलेल्या पूजेच्या साफल्यार्थ सर्व देवांचें चैत्री पौर्णिमेस दमनकांनं पूजन करावें. मदाशिवाचें तर विशेषेंकरून पूजन करावें.” ही दमनकपूजा त्या त्या देवतांच्या तिथीस करून पौर्णिमेमदीं करावी, असें केचित् म्हणतात. स्वदीयतिथ्यां (त्या त्या देवांच्या तिथीस) न केलें तर याच पौर्णिमेस सर्व देवतांचें दमनकांनं पूजन करावें असें अन्य म्हणतात. मंत्रदीक्षावंतांनीं त्या त्या तिथीस व इतरांनीं या पौर्णिमेस करावें, अशी व्यवस्था करावी, असें दुसरे आचार्य म्हणतात. ही पौर्णिमा मन्वादिकही आहे, ती पूर्वी सांगितली.

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यांमहावारुणीसंज्ञोयोगोगौडेपुप्रसिद्धः तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कांदे वारुणेन समायुक्तामधौकृष्णा त्रयोदशी गंगायांयदिलभ्येतसूर्यग्रहैः समा शनिवारसमायुक्तासामहावारुणी-स्मृता गंगायांयदिलभ्येतकोटिसूर्यग्रहैः समा शुभयोगसमायुक्ताशनौशनभिपायदि महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेन् तत्रैव ज्योतिषे चैत्रास्ति वारुणकक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्ववारे योगेशुभेसामहतीमह-त्यांगंगजलेर्कग्रहकोटितुल्येति त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्मांडपुराणे वारुणेन समायुक्तामधौकृष्णा त्रयोदशी गंगायांयदिलभ्येतशतसूर्यग्रहैः समेति कल्पतरौ ब्राह्मे मधौकृष्णत्रयोदश्यांशनौशनभिपायुता वारुणी-तिसमाख्याता शुभेतुमहतीस्मृता चैत्रकृष्णचतुर्दश्यांविशेषः पृथ्वीचंद्रोदयेपुलस्त्यः चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायांतु विशेषत इति अत्र पूर्वाग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वान् गौडस्त्वेतदेव-शुक्लचतुर्दश्यामित्येवं देवलीयत्वेन पठितं इति श्रीकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिंधौ चैत्रमासः ।

चैत्रकृष्णत्रयोदशीस महावारुणीसंज्ञक योग, हा गौडदेशांत प्रसिद्ध आहे. त्याचें स्वरूप वाचस्पतिप्रभांत व शूल-

१ वारुणीयोगे कृष्णादिः पौर्णिमास्यंतो मासस्तेनासांत मासे फाल्गुनकृष्णत्रयोदशी ग्राह्येति धर्मसिंधुः. अर्थ—वारुणीयोगाविषयी कृष्णप्रतिपदेपासून पौर्णिमांत मास ध्यावा. म्हणजे चाललेल्या अमावास्यांत मासाप्रमाणें फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी ध्यावी असें धर्मसिंधूंत सांगितलें आहे.

पार्णीत स्कंदपुराणांत—“शततारकानक्षत्रां युक्त अशी चैत्रकृष्णत्रयोदशी गंगेचे ठायीं जर प्राप्त होईल तर शंभर सूर्य-प्रहणांशीं समान होय. ती शनिवारानें युक्त असतां महावारुणी होते. ती गंगेचे ठायीं कोटिसूर्यप्रहणसमान आहे. शुभयोग, शनिवार व शततारकानक्षत्र यांनीं युक्त असतां महामहावारुणी होय. ही तीन कोटि कुलांचा उद्धार करील.” **तेथेंच ज्योतिषांत**—“चैत्रकृष्णत्रयोदशी शनिवार, शततारकानक्षत्र, शुभयोग यांहीं युक्त असतां **महामहावारुणी**. ती गंगाजलाचे ठायीं कोटिसूर्यप्रहणतुल्य होय.” **त्रिस्थलीसेतूत ब्रह्मांडपुराणांत**—“शततारकानक्षत्रां युक्त चैत्रकृष्णत्रयोदशी गंगेमध्ये जर मिळेल तर ती शंभर सूर्यप्रहणतुल्य होते.” **कल्पतरूत ब्राह्मांत**—“चैत्रकृष्णत्रयोदशी शनिवार व शततारकायुक्त असेल तर तिला चारुणी म्हणावें, त्यांत शुभयोग असेल तर तिला महामहावारुणी म्हणावें.” चैत्रकृष्णचतुर्दशीस विशेष सांगतो **पृथ्वीचंद्रोदयांत पुलस्त्य**—“चैत्रकृष्णचतुर्दशीस शिवाजवळ जो ज्ञान करील तो प्रेतत्व (पिशाचत्व) पावत नाही. गंगेमध्ये तर विशेषकरून ज्ञान करावें म्हणजे पिशाचत्व होणार नाही.” ही चतुर्दशी कृष्णपक्षस्थ असल्यामुळें सामान्य तिथिनिर्णयावरून पूर्वा ध्यावी. **गौडानीं** तर हें पुलस्त्यवचन ‘चैत्रशुक्रचतुर्दश्यां’ म्हणजे चैत्रशुद्धचतुर्दशीस ज्ञान करावें, अशा अर्थाचें देवलाचें म्हणून सांगितलें आहे. इति श्रीचैत्रमासनिर्णयाची महाराष्ट्रभाषाटीका समाप्त झाली.

मेषसंक्रमेप्रागपरादशदशघटिकाः पुण्यकालः रात्रौप्रागुक्तं अत्रधर्मघटादिदानमुक्तं **पृथ्वीचंद्रोदयेपा-** **प्ते** तीर्थंचानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणं दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनं माधवेमासिकुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ।

वैशाखमास—मेषसंक्रांतीचे ठायीं पूर्वाच्या १० व पुढें १० घटिका पुण्यकाल होय. रात्री संक्रांत होईल तर पूर्वी प्रथमपरिच्छेदांत पर्वकाळ सांगितला आहे. या मासांत धर्मघटादिदान सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत-पञ्चपुराणांत**—“प्रतिदिवशी तीर्थांत स्नान, तिलांनीं पितृतर्पण, धर्मघटादिकांचें दान व मधुसूदनपूजन हीं वैशाखमासीं मधुसूदनप्रीत्यर्थ करावीं.”

अथवैशाखस्नानं तत्र **पृथ्वीचंद्रोदयेविष्णुस्मृतिपादयोः** तुलामकरमेपेपुप्रातः स्नानं विधीयते हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनमिति सौरमास उक्तः अन्यत्पक्षद्वयमुक्तं तत्रैव **पादो** मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः पंचदश्यांच भोवीरमेषसंक्रमणेतुवा वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्संकल्पपूर्वकं **तत्रमंत्रः** वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणेरवेः प्रातः सनियमः स्नात्ये प्रीयतां मधुसूदनः मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहं माधवे मे मेषे भानौ मुरारे मधुसूदन प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् । तीर्थविशेषोपितत्रैवोक्तः मेषसंक्रमणे भानौ माधवे मासियन्नतः महानृणानदीतीर्थे न देसरसिनिर्झरे देवखातेथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये दीर्घिकाकूपवापीपुनियतात्मा हरिं स्मरन्निति संकल्पे च तत्तत्तीर्थनामग्राह्यं अज्ञानेतुविष्णुतीर्थमिति वदेत् यदानज्ञायतेनामतस्य तीर्थस्य भो द्विजाः तत्रेत्युच्चारणकार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति तीर्थस्य देवताविष्णुः सर्वत्रापिन संशय इति तत्रैवोक्तः ।

आतां वैशाखस्नानं सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत विष्णुस्मृतींत व पञ्चपुराणांत**—“तुला, मकर, मेष या संक्रांतीचे ठायीं प्रातःस्नान, हविष्यान्न, ब्रह्मचर्य हीं केलीं असतां महापातकाचा नाश होतो” याप्रमाणे सौरमास (संक्रांतिमास) सांगितला आहे. दुसरे दोन पक्ष एकादश्यादि व पौर्णिमादि तेथेंच **पञ्चपुराणांत** सांगतो—“चैत्रमासाच्या शुक्रपक्षां एकादशीस किंवा पौर्णिमेस किंवा मेषसंक्रांतीस उपोषण करून ब्राह्मणांच्या आज्ञेनें मधुसूदनाची पूजा करून संकल्पपूर्वक वैशाखस्नानाचा नियम धारण करावा.” त्याचा मंत्र—“वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः ॥ प्रातः सनियमः स्नात्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ॥ निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहं ॥ माधवे मेषे भानौ मुरारे मधुसूदन ॥ प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् ॥” विशेष तीर्थेही तेथेंच सांगतो—“सूर्याच्या मेषसंक्रांतींत वैशाखमासीं प्रयत्नानें महानदी, नदी, तीर्थ, नद, तळे, निर्झर, देवखात, अथवा कोणताही जलाशय, दीर्घिका, कूप, वापी इत्यादि तीर्थी नियम धरून विष्णुस्मरण करून प्रातःस्नान करावें” संकल्पांत त्या त्या तीर्थाचें नाम ग्रहण करावें. तीर्थाचें नांव अज्ञात असेल तर विष्णुतीर्थ असें म्हणावें; कारण, “जेव्हां तीर्थाचें नांव अज्ञात असेल तेव्हां तेथें हें विष्णुतीर्थ असा उच्चार करावा. कारण, सर्वत्र तीर्थांची देवता विष्णु होय, यांत संशय नाही” असें तेथेंच सांगितलें आहे.

तथान्योपि विशेषस्तत्रैव **पादो** तुलसीकृष्णगौराख्यातयाभ्यर्च्य मधुद्विषं विशेषेण तु वैशाखेन रोनारायणो-भवेत् माधवं सकलं मासं तुलस्यायोर्चयेन्नरः त्रिसंध्यं मधुहंतारं नास्तितस्य पुनर्भवः तथा प्रातः स्नात्वा विधाने-

नमाधवेमाधवप्रियं योश्चत्थमूलमासिचेन्नोयेनबहुनासदा कुर्यात्प्रदक्षिणंतंतुसर्वदेवमयंततः पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरं योश्चत्थमर्चयेदेवमुदकेनसमंततः कुलानामयुतंतैततारितस्यान्नसंशयः कंडूयपृष्ठतोगांतुक्त्वात्वापिपलतर्पणं कृत्वागोविंदमभ्यर्च्यनदुर्गतिमवाप्नुयात् तथा एकभक्तमथोनक्तमयाचितमतंत्रितः माधवेमासियःकुर्यालभतेसर्वमीप्सितं वैशाखेविधिनास्नानंदेवनद्यादिकेवहिः हविष्यब्रह्मचर्यचभूशय्यानियमस्थितिः व्रतंदानंदमोदेविमधुसूदनपूजनं अपिजन्मसहस्रोत्थपापंदहतदारुणं मदनरत्नेस्कांदे प्रपाकार्याचवैशाखेदेवेद्यागलंतिका उपानव्यजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसिचंदनं जलपात्राणिदेयानितथापुष्पगुहाणिच पानकानिचचित्राणिद्राक्षारंभाफलान्यपि निधितत्त्वे ददातियोहिमेपादौसक्तूनबुधटान्वितान् पितृतुद्दिश्यविप्रेभ्यःसर्वपापैःप्रमुच्यतइति तथा वैशाखेयोघटंपूर्णसभोज्यंवैद्विजन्मने ददातिसुरराजेंद्रसयातिपरमांगतिं एवंसंपूर्णस्नानाशक्तौत्र्यहंवास्नान्यान् तदुक्तंनत्रैवपादौ त्रयोदश्यांचतुर्दश्यांवैशाख्यांवादिनत्रयं अपिसम्यग्विधानेननारीवापुरुषोपिवा प्रातःस्नातःमनियमःसर्वपापैःप्रमुच्यते यदातुवैशाखोमलमासोभवतितदाकाम्यानांतत्रसमाप्तिनिषेधान्मामद्वयंस्नानंतत्रियमाश्चकर्तव्याः मासोपवासचांद्रायणादितुमलमासएवसमापयेत् तदुक्तंदीपिकायां नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभेमास्यारभ्यसमापयेतमलिनेमासोपवासव्रतमिति ।

तयाच दुग्गरी धिशेष तेष्वेन पञ्चपुराणांत गांगतो “कृष्ण व श्वेन तुलशीनीं भगवंतांचे पूजन करावे, वैशाखमासीं तर विशेषकरून करावे, तेंपेकरून पूजनकर्ता नारायणस्वरूप होतो. सर्ववैशाखपर्यंत तुलशीनीं जो नारायणाचे त्रिकाल पूजन करील त्याम पुनर्जन्म होत नाही.” तसेच “जो मनुष्य वैशाखमासीं प्रातःकाळीं विधिपूर्वक स्नान करून माधवप्रिय अश्वत्थाच्या मूलाचे बहुत उदकाचे प्रत्यहीं मिचन करून नंतर सर्व देवमय अशा अश्वत्थास प्रदक्षिणा करील त्याने पितर, देव, मनुष्य यांचे व चराचरजगाचे तर्पण केले, असे होते. जो अश्वत्थाचे आममंतात भागी उदकाचे पूजन (सिंचन) करील त्याने दहा हजार कुठे तारिलीं यांत संशय नाही. गाईच्या पाठीवर खाजवून स्नान करून पिंपळाचे तर्पण करून गोविंदाचे पूजन केले तर दुर्गति प्राप्त होणार नाही.” तसेच “वैशाखमासीं आलस्यरहित होऊन एकभुक्त, नक्त, अयाचित यांतून कोणतें एक जो करील तो सर्व मनोरथ पावेल. वैशाखमासीं भागीरथी इत्यादि तीर्थां यथाविधि बाहेर स्नान करून हविष्यान्न, ब्रह्मचर्य, भूशय्या, नियमांचे गृहण, वन, दान, उर्ध्वयानप्रद, विष्णुपूजन हीं केलीं अगतां हजारों जन्मांत केलेले मोठे पापही दम्य होतें.” मदनरत्नांत—स्कंदपुराणांत “वैशाखमासीं प्रपा (पाणपोई) करावी, देवावर गळती (पाण्याची धार) धरावी, उपानव (वाहणा, जोडा), विरगणा, लज्ज, बारीक वस्त्रे, चंदन, उदकपात्रे, तशींच पुष्पयुक्त गृहे, नाना प्रकारचीं सुवासिक पानके (पर्तही), द्रवि, केळीं इत्यादिक द्यावी.” तिथितत्त्वांत “जो मनुष्य भेषकांतीच्या आरंभांत उदकयुक्त घटाने सहित सक्तु (मातूंचे पीठ) पितरांच्या उद्देशाने ब्राह्मणांकारणें देतो तो सर्व पापांपासून मुक्त होतो.” तसेच “जो मनुष्य वैशाखमासीं भोजनाग्रहित पूर्णपट ब्राह्मणां देतो तो उत्तम गति पावतो.” अथवा सहिनापर्यंत स्नान करण्याम शांति नमेळ तर तीन दिवस तरी स्नान करावे. तें गांगतो तेष्वेन पाक्षांत—“वैशाखांत त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णिमा या तीन दिवशीं तरी यथाविधि स्ना किंवा पुष्प नियमांचे प्रातःकाळीं स्नान करील तर तो सर्व पापांपासून मुक्त होईल.” ज्या वर्षी वैशाख मलमास होतो त्या वर्षी, मलमासांत काम्यकर्मांच्या समाप्तीचा निषेध सांगितल्यामुळे दोन महिने स्नान व स्नानाचे नियम करावे. मासोपवास व चांद्रायणादिक व्रतें तर मलमासींच समाप्त करावी. तें सांगतो दीपिकेंत—“तीस दिवस नियमांचे करावयाचे असे मासोपवासव्रत शुद्ध मासांत आरंभून मलमासांत समाप्त करावे.”

अत्रदानविशेषउक्तोऽपराकैवामनपुराणे गंधाश्चमाल्यानितथावैशाखेसुरभीणिच देयानिद्विजमुख्येभ्योमधुसूदनतुष्टये एवंस्नानेकृततस्योद्यापनंकार्यं तदुक्तंनत्रैव मासमेवंबहिःस्नात्वानद्यादौविमलेजले एकादश्यांचद्वादश्यांपौर्णमास्यामथापिवा उपोष्यनियतोभूत्वाकुर्यादुद्यापनंबुधः मंडलंकारयेदादौकलशंतत्र विन्यसेन् निष्केणवातदर्धेनतदर्धार्धेनवापुनः शक्त्यावाकारयेद्देवंसौवर्णलक्ष्णान्वितं लक्ष्मीयुक्तंजगन्नाथं पूजयेदासनेबुधः भूषणैश्चंदनैःपुष्पैर्दार्पेनैर्वेद्यसंचयैः एवंसंपूज्यविधिवद्रात्रौजागरणंचरेत् श्रोभूतेकृतमैत्रोथप्रह्वेद्यांप्रहान्यजेत् होमंकुर्यात्प्रयत्नेनपायसेनविचक्षणः तिलाज्येनयवैर्वापिसर्वैर्वापिस्वशक्तिः अष्टोत्तरस-

हस्त्रंवाशतमष्टोत्तरंतुवा प्रतद्विष्णुरनेनैवइदंविष्णुरनेनवा व्रतसंपूर्तिसिद्ध्यर्थधेनुमेकांपयस्विनीं पादुकोपानहौ-
छत्रंगुरवेव्यजनंतथा शय्यांसोपस्करांदद्याहीपिकांदर्पणंतथा ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रिंशतेभ्योदद्याच्चदक्षिणां कल-
शाञ्जलसंपूर्णांस्तेभ्योदद्याद्यवास्तथा एवंकृतेमाधवस्यचोद्यापनविधौशुभे फलमाप्नोतिसकलंविष्णुसायुज्यमा-
प्नुयात् एतावत्यशकौतत्रैवोक्तं वैशाख्यांविधिनास्नात्वाभोजयेद्ब्राह्मणान्दश कृसरंसर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्र-
संशयइति ।

ह्या वैशाखस्नानांत विशेष दानं सांगतो—अपराकांत वामनपुराणांत—“वैशाखमासीं सुगंध व मृगभि पुष्पं मधु-
सूदनाच्या संतोषार्थं ब्राह्मणांस द्यावीं” याप्रमाणें स्नान केलें असतां त्याचें उद्यापन करावें. तें सांगतो तेथेंच—“याप्रकारें
महिनापर्यंत बाहेर नद्यादिस्वच्छजलांत स्नान करून एकादशीस किंवा द्वादशीस अथवा पौर्णिमेस उपोषण करून नियम धारण
करून उद्यापन करावें. तें असें—प्रथम सर्वतोभद्र मंडल करून त्याजवर कलश स्थापून त्यावर निष्क (चारतोळे) अथवा
त्याचे निम्मे किंवा त्याचे अर्धे अथवा अर्धे तोळा अथवा शतयनुसार सुवर्णाची लक्षणयुक्त लक्ष्मीसहित विष्णूची प्रतिमा
करून आसनावर ठेवून भूषणें, चंदन, पुष्पें, दीप, अनेकप्रकारचे नैवेद्य यांहीं यथाविधि पूजन करून रात्रीस जागरण करावें.
दुसरे दिवशीं स्नानसंध्यादि करून ग्रहवेदीवर ग्रहांचें पूजन करून पायस (क्षीर), तिल, घृत, यव यांतून एका द्रव्यानें
अथवा सर्व द्रव्यांनीं आपल्या शक्तीप्रमाणें अष्टोत्तरसहस्र किंवा अष्टोत्तरशत संख्याक “प्रतद्विष्णु०” किंवा “इदंविष्णु०”
या मंत्रानें होम करावा. व्रत संपूर्ण होण्याकरितां एक पयस्विनी धेनु, पादुका, उपानह, छत्र, व्यजन, उपसाहिल्यसहित
शय्या, दीप, आरसा हीं गुरूरा (उपाध्यायाग) द्यावीं व तीस ब्राह्मणांस भोजन देऊन दक्षिणा द्यावी. तसंच जलपूर्ण
कलश व यव ब्राह्मणांस द्यावे. असा वैशाखमासाचा शुभ उद्यापनविधि केला असतां सर्व फल प्राप्त होऊन विष्णुमायुज्य
प्राप्त होतें.” इतकें करण्यास शक्ति नसेल तर तेथेंच सांगतो—“वैशाखी पौर्णिमेस यथाविधि स्नान करून दहा ब्राह्मणांस
कृसरास्नाचें (खिचडीचें) भोजन द्यावें, म्हणजे सर्व पापांपासून मुक्त होतो यांत संशय नाही.”

वैशाखशुक्लतृतीयाअक्षय्यतृतीयोच्यते सापूर्वाह्नव्यापिनीप्राह्या दिनद्वयेपितद्व्यामौपरैव तदुक्तंनिर्णया-
मृतनारदीये वैशाखेशुक्लपक्षेतुतृतीयारोहिणीयुता दुर्लभावुधवारंणसोमेनापियुतातथा रोहिणीबुधयुक्ता-
पिपूर्वविद्धाविवर्जिता भक्त्याकृतापिमांधातःपुण्यं हंतिपुराकृतं गौरीविनायकोपेतारोहिणीबुधसंयुताविनापि-
रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदासदेति इयंयुगादिरपि साचोक्तारत्नमालायां माधेपंचदशीकृष्णानभस्येचत्र-
योदशी तृतीयामाधवेयुक्कानवम्यूर्जेयुगादयइति यत्तुगौडाः माधस्यपौर्णमास्यांतुघोरंकलियुगंस्मृतमिति-
ब्राह्मोक्तेः वैशाखमासस्यचयातृतीयानवम्यसौकार्तिकशुक्लपक्षे नभस्यमासस्यतमिस्रपक्षेत्रयोदशीपंचदशी-
चमाधे इतिविष्णुपुराणे चकारेणतमिस्रपक्षानुपंगेपिपूर्वानुरोधात्पौर्णमास्यंबज्ञेया द्रेशुक्लइत्यादिकंतुनिर्मू-
लमित्याहुः तन्न दर्शेतुमाधमासस्यप्रवृत्तंचद्रापरंयुगमितिभविष्यविरोधात् एतेनब्राह्मणानुसारात्पूर्णमायामे-
वयुगादिश्राद्धंवदनशूलपाणिःपरास्तः तेनकल्पभेदाद्युगभेदाद्वाव्यवस्थेतितत्त्वं एतेनकार्तिकेनवमीशुक्लामा-
घमासेचपूर्णमेतिबृहन्नारदीयंव्याख्यातं निर्मूलत्वोक्तिर्नारदीयाज्ञानकृता ।

वैशाखशुद्ध तृतीया ही अक्षय्यतृतीया. ती पूर्वाह्नव्यापिनी ध्यावी. दोनही दिवशां पूर्वाह्नव्यापिनी असतां पराच ध्यावी. तें
सांगतो—निर्णयामृतांत नारदीयांत “वैशाखशुद्ध तृतीया ही रोहिणी व बुधवार किंवा सोमवारयुक्त असेल तर ती
दुर्लभ होय. रोहिणी व बुधवार यांहीं युक्त असली तरी ती पूर्वविद्धा निषिद्ध आहे. ती भक्तीने केली तरी पूर्वी केलेल्या
पुण्याचा नाश करिते. तृतीया चतुर्थीने युक्त व रोहिणी, बुधवार यांहीं युक्त अथवा रोहिणीयोगावांचूनही केली असतां
कोटिपुण्य देणारी होय.” ही तृतीया युगादिही आहे. ती सांगतो रत्नमालेंत—“माघमासाची अमावास्या, भाद्रपदकृष्ण
त्रयोदशी, वैशाखशुद्ध तृतीया व कार्तिकशुद्ध नवमी ह्या चार तिथि युगादि होत.” आतां जें गौड—“माघमासीं पौर्णिमेस
घोर कलियुग प्रवृत्त झालें” ह्या ब्राह्मणवचनावरून “वैशाखमासाची शुद्ध तृतीया, कार्तिकशुद्ध नवमी, भाद्रपदकृष्ण त्रयो-
दशी व माघमासांत पंचदशी ह्या युगादि” या विष्णुपुराणवचनांत पंचदशीस चकारानें कृष्णपक्षाचा अनुषंग (संबंध)
केला तरी पूर्वब्राह्मणवचनानुरोधानें पौर्णिमासीच युगादि जाणावी. ‘शुद्धपक्षीं दोन युगादि’ हें वचन तर निर्मूल होय असें
म्हणतात. तें बरोबर नाही. कारण, “माघमासीं अमावास्यास द्वापरयुग प्रवृत्त झालें.” या भविष्यवचनाशीं विरोध येतो.
यावरून ब्राह्मणवचनानुरोधानें पौर्णिमेसच युगादिश्राद्ध करावें असें सांगणारा जो शूलपाणि तो खंडित झाला. तेणेंकरून
कल्पभेदानें किंवा युगभेदानें व्यवस्था करावी हें तत्त्व होय. यावरून (कल्पभेदानें व्यवस्था सांगितल्यावरून) “कार्तिकशुद्ध

नवमी, माघी पौर्णिमा ह्या युगादि" असें बृहन्नारदीयवचन व्याख्यात झालें. निर्मूलोक्ति तर नारदीयवचनाच्या अज्ञाना-मुळें समजावी.

अत्रश्राद्धमुक्तंमात्स्ये कृतंश्राद्धविधानेनमन्वादिषुयुगादिषु हायनानिद्विसाहस्रपितृणांतृप्तिर्भवेदिति भारतेपि यामन्वाद्यायुगाद्याश्चतिथयस्तासुमानवः स्नात्वाहुत्वाचदत्त्वाचजप्त्वांतफलंभवेदिति श्राद्धेपि-पूर्वाह्नव्यापिनीप्राह्या पूर्वाह्नेतुसदाकार्याः शुक्लामनुयुगादयः दैवेकर्मणिपित्र्येचकृष्णेचैवापराह्निकाइति पाद्मोक्तेः द्वेऽशुक्लेद्वेत्थाकृष्णेयुगादीकवयोविदुः शुक्लेपौर्वाह्निकेमाह्येकृष्णेचैवापराह्निके इतिहेमाद्रौनार-दीयवचनाच्च दीपिकापि अथोमन्वादियुगादिकर्मतिथयःपूर्वाह्निकाःस्युःसितेविज्ञेयाअपराह्निकाश्चबहु-लेइति स्मृत्यर्थसारेपि युगादिमन्वादिश्राद्धेषुशुक्लपक्षेउदयव्यापिनीतिथिर्माह्या कृष्णपक्षेऽपराह्नव्यापि-नीति दिवोदासीयेगोभिलः वैशाखस्यतृतीयायःपूर्वविद्धांकरोतिवै हव्यदेवानगृह्णतिकव्यंचपितर-स्तथेति गोविंदाणवेप्येवं तेनेयंपूर्वाह्नव्यापिनी दिनद्वयेतत्त्वेपरैवेतिधर्मतत्त्वविदोहेमाद्रादयः अनं-तभट्टस्तु सर्वधृतिर्व्यतीतातोयुगमन्वादयस्तथा सन्मुखाउपवासेस्युर्दानादावंतिमाःस्मृताइत्याह दानादा-वितिश्राद्धसंग्रहः उपवासस्त्वप्रेवक्ष्यते हेमाद्रावप्येवं माधवस्तुव्यतीपातःश्राद्धेपराह्नव्यापीमाह्यइत्याह स्मृत्यर्थसारेतुकुतुपकालयोगीत्युक्तं यतुमार्कंडेयः शुक्लपक्षस्यपूर्वाह्निश्राद्धंकर्याद्विचक्षणः कृष्णपक्षा-पराह्निहिरौहिणंतुनलंघयेत् रौहिणेनोवमोमुहूर्तः अत्रशुक्लपक्षयुगादिश्राद्धंपूर्वाह्निकार्यमितिशूलपाणिः निर्णयामृतादयस्तुकालादर्शेऽमाश्राद्धमापराह्निकमुक्त्वाएवमन्वंतरादीनांयुगादीनांविनिर्णयइत्युक्त-त्वाद्देशुशुद्धत्यादिवचनंविष्णुपूजनविषयं श्राद्धेत्वापराह्निक्येवेतिव्यवस्थांजगदुः सेयंपूर्वोक्तानेकवचोवि-रोधात्पूर्वाह्नेदैविकंकुर्यादित्यादिवचनादेवसिद्धेवचनवैयर्थ्याच्चस्वाच्छंशविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया किंच कालादर्शोक्तिर्न्यायमूला वचोमूलावा नाव्यः युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेनन्यायतो पराह्न-व्याप्रावपिवचनंचतस्यबाधान नांत्यः अतिदेशादेवापराह्नप्राप्तेवचनवैयर्थ्यान अप्राप्तिशास्त्रमर्थवदितिन्या-यान तेनयदिकालादर्शोक्तिःकथंचिच्छ्रद्धाजाड्येनसमाधिन्सा तर्हिन्यायप्राप्तकृष्णपक्षयुगादिविषयत्वेनसा-व्यवस्थापनीयेतिदिक पूर्वाह्नमन्त्रद्वेधाभक्तदिनपूर्वार्धः द्वेधाभक्तदिनांशकोत्रगदितः प्राह्णापराह्णाविति दीपि-कोक्तेः माधवादयोप्येवम् ।

या तृतीयेय श्राद्ध सांगतो. मन्व्यपुराणांत—“मन्वादि व युगादि तिथींय यथाविधि श्राद्ध कलें अगतां दोन हजार वंषं पितरांचा नृप्ति होतें.” भारतांतही—“ज्या मन्वादि व युगादि तिथि त्यांचे ठायीं मनुष्यानें ज्ञान, हवन, दान, जप, हीं कलें अगतां त्यांचे अनंतफल प्राप्त होतें.” ही तिथी श्राद्धाविषयींही पूर्वाह्नव्यापिनी ध्यावी. कारण, “शुक्लपक्षांच्या मन्वादि व युगादि तिथि देवपित्र्यकर्माविषयीं पूर्वाह्नव्यापिनी व कृष्णपक्षांच्या अपराह्नव्यापिनी ध्याव्या” असें पद्मपुराण-वचन आहे. “युगादि तिथि दोन शुक्लपक्षांत व दोन कृष्णपक्षांत आहेत असें विद्वान् म्हणतात, त्या शुक्लपक्षांतील पूर्वाह्न-व्यापिनी ध्याव्या, व कृष्णपक्षांतील अपराह्नव्यापिनी ध्याव्या” असें हेमाद्रौत नारदीयवचन ही आहे. दीपिकाही “मन्वादि व युगादि कर्मतिथि, शुक्लपक्षांतील पूर्वाह्नव्यापिनी व कृष्णपक्षांतील अपराह्नव्यापिनी ध्याव्या.” स्मृत्यर्थसारांतही-युगादि मन्वादि श्राद्धाविषयीं शुक्लपक्षांतील उदयव्यापिनी तिथि ध्यावी. व कृष्णपक्षांतील अपराह्नव्यापिनी ध्यावी. दिवोदासीयांत गोभिल—“जो मनुष्य वैशाखशुद्धतृतीया पूर्वविद्धा करील त्याचें हव्य (देवांना दिलेलें) देव ग्रहण करीत नाहीत, व कव्य (पितरांस दिलेलें) पितरही ग्रहण करीत नाहीत.” गोविंदाणांतही असेंच आहे. तेणेंकरून ही तिथि पूर्वाह्नव्यापिनी ध्यावी;—दोन दिवशीं पूर्वाह्नव्यापिनी अगतां पगच ध्यावी असें धर्मतत्त्ववेत्ते हेमाद्रादिक म्हण-तात. अनंतभट्ट तर—“वधृति, व्यतीपात, हे योग, व युगादि, मन्वादि, ह्या तिथि; उपवासाविषयीं संयुक्त ध्याव्या. व दान (श्राद्ध) इत्यादिकांविषयीं परविद्धा ध्याव्या” असें सांगतो. येथें उपवास पुढें सांगूं. हेमाद्रौतही असेंच सांगितलें आहे. माधव तर—श्राद्धाविषयीं व्यतीपात अपराह्नव्यापी ध्यावा असें सांगतो. स्मृत्यर्थसारांत तर कुतुपकालव्यापि ध्यावा असें सांगितलें आहे. आतां जें मार्कंडेय—“शुक्लपक्षांत पूर्वाह्नी श्राद्ध करावें, व कृष्णपक्षांत अपराह्नी करावें. रौहिण (नवम मुहूर्त) तर उल्लंघन करूं नये” असें सांगतो त्याचा अर्थ-शुक्लपक्ष युगादिश्राद्ध पूर्वाह्नी करावें, असें शूल-पाणि सांगतो. निर्णयामृतादिक ग्रंथकार तर, कालादर्शांत अमावास्याश्राद्ध अपराह्नी करावें, असें सांगून “ह्याच

निर्णय मन्वंतरादींचा व युगादींचा आहे” असे सांगितल्यामुळे “शुक्लपक्षी, दोन युगादि” इत्यादि पूर्वीक नारदीयवचन विष्णुपूजनविषयक होय. श्राद्धाविषयी तर अपराह्नव्यापिनीच ध्यावी, अशी व्यवस्था सांगते झाले. ती ही व्यवस्था पूर्वीक पाश्चादि अनेक वचनांशीं विरुद्ध असल्यामुळे आणि “पूर्वाह्नीं देवकार्य करावें व अपराह्नीं पित्र्य करावें” इत्यादि वचनांनंच सिद्ध असतां वचन व्यर्थ होत असल्यामुळे ही स्वच्छंदविलसित (बडबड) मात्र म्हणून उपेक्षणीय (अग्राह्य) होय. आणखी असें की, कालादर्शाचें सांगणें न्यायमूलक आहे किंवा वचनमूलक आहे ? पहिला पक्ष न्यायमूलक तो नाही. कारण, युगादि श्राद्ध हें अमावास्याश्राद्धाची विकृति असल्यामुळे प्रकृतीप्रमाणे विकृति करावी, या न्यायानें अपराह्नकालाची प्राप्ति युगादिश्राद्धाविषयीं प्राप्त झाली तरी पूर्वीकवचनांनीं त्याचा (अपराह्नकालाचा) बाध होतो. दुसरा पक्ष वचनमूलक तोही नाही. कारण, अतिदेशानें (प्रकृतीप्रमाणे विकृति करावी अशा सांगण्यानंच) अपराह्नकालाची प्राप्ति असल्यामुळे नवीन वचनं व्यर्थ होतात. कारण, पूर्वी अप्राप्तविषयाविषयीं जें शास्त्र (वचन) तें सार्थक होतें, असा न्याय आहे. यावद्दल जर कालादर्शाच्या सांगण्याविषयीं श्राद्ध असल्यामुळे कसें तरी तें त्याचें सांगणें लावून ध्यावयाचें असेल तर न्यायानें प्राप्त असलेल्या कृष्णपक्षयुगादि श्राद्धाविषयीं तें सांगणें व्यवस्थित करावें, ही दिशा समजावी. दिनमानाचे दोन भाग म्हणून जो पूर्वभाग तो पूर्वाह्न येथें समजावा. कारण, “दिनमानाचें दोन भाग केले असतां पूर्वभाग पूर्वाह्न व दुसरा भाग अपराह्न” असें दीपिकेंत सांगितलें आहे. माधवादिकही असंच सांगतात.

अत्रविशेषो हेमाद्रौ भविष्ये वैशाखेशुक्लपक्षेतुत्तरीयायांतयैव च गंगातोयेनरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः तस्यांकार्येयवैर्होमोयवैर्विष्णुसमर्चयेत् यवान्दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवानिति अत्रदानविशेषस्तत्रैव भविष्ये इमां प्रक्रम्य उदकुंभान्सकनकान्सान्नान्सर्वरसैः सह यवगोधूमचणकान्सक्तुदधोदन्तं तथा ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यत इति देवीपुराणेपि तृतीयायांतु वैशाखेरोहिण्यक्षं प्रपूज्यतु उदकुंभप्रदानेन शिवलोके महीयते मंत्रस्तु एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः अस्य प्रदानात्पुण्यं तु पितरोपि पितामहाः गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितं पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठति ।

ह्या तृतीयेविषयीं विशेष विधि सांगतो — हेमाद्रींत भविष्यपुराणांत — “वैशाखशुक्लपक्षी तृतीयेस गंगादकामध्ये जो नर स्नान करितो तो सर्व पातकांपासून मुक्त होतो. त्या तिथीस यवांनीं होम करावा व यवांनीं विष्णुपूजन करावें, आणि यव ब्राह्मणांस द्यावे व यव (सातु) प्राशन करावें.” या तिथीस विशेष दान सांगतो. तेथेंच भविष्यांत — या तृतीयेचा उपक्रम करून “सुवर्ण व अन्न यांनीं युक्त सर्व रसांसहित उदकुंभ, यव, गोधूम, चणक, सक्तु, दधोदन व ग्राम्यकटूतील सर्व धान्यें हीं दानाविषयीं प्रशस्त होत.” देवीपुराणांतही — “वैशाखमासीं रोहिणीयुक्त तृतीयेस शिवाचें पूजन करून उदकुंभदान करावें, तेणेंकरून शिवलोकीं पूज्य होतो.” उदकुंभदानाचा मंत्र — “एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्पुण्यं तु पितरोपि पितामहाः ॥ गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितम् । पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥”

अत्रचपिंडरहितं श्राद्धं कुर्यात् अयनद्वितये श्राद्धं विपुलद्वितये तथा युगादिपुचसर्वासुपिंडनिर्वपणादृते इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात् अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधाने राजौभुक्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु अभिस्ववृष्टिं मंत्रं च जपे दशनपातकमिति अपराह्नक्यमः कृतोपवासाः सलिलये युगादिदिनेषु च दास्यं तन्नादि सहितं तेषां लोकामहोदया इति वैशाखेमलमासे सति तत्रैव युगादिः कार्या तथाच हेमाद्रौ ऋष्यशृंगः दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्विधयुगादिषु उपाकर्मणि चोत्सर्गं ह्येतदिष्टं वृषादित इति एतद्दशहरादिकं वृषादिसंक्रमेष्टं कन्याचंद्रेष्वेव वा वित्यादिना सौरमासोक्तेरित्यर्थः कालादर्शेपि अद्भोदकुंभमन्वादिमहालययुगादिष्विति मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च महालयशब्देन मघात्रयोदययुच्यत इति माधवः स्मृतिचंद्रिकायां तु मासद्वयेकर्तव्यमित्युक्तं यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकं मन्वादिकं तैथिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि चेति अपरपक्षः कृष्णपक्षः ननु महालयः तस्य तत्र निषेधात् मदनरत्नेपिमरीचिः प्रतिमासं मृताहेच श्राद्धं यत्र प्रतिवत्सरं मन्वादौ च युगादौ च तन्मासो रूभयोरपीति प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने नयस्यद्यावामंत्रं च शतवारं तदा जपेत् युगादयो दान्यूनाः कुरुते नैव चापि य इति अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तं तदुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये सौरपुराणे युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवत्त्वणोदधौ

गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं हियन् तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवमिति अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः इति युगादिनिर्णयः ।

या तिथीय पिंडरहित धाद करावें; कारण, “दोन अयनसंक्रांति, दोन विषुवसंक्रांति व सर्व युगादि तिथि यांचे ठायीं पिंडदानावांचून धाद करावें” असें हेमाद्रीत पुलस्त्यवचन आहे. या तिथीस रात्रिभोजन केलें तर प्रायश्चित्त सांगतो—**ऋग्विधानांत**—“मन्वादि व युगादि ह्या तिथींस रात्रिभोजन केलें तर तद्दोषनिवृत्त्यर्थं “अभिस्रवृष्टिः०” हा मंत्र दहावेळ जपावा.” **अपराकांत यम**—“जे मनुष्य युगादि तिथींचे ठायीं उपवास करून अन्नादिसहित जलदान करितात त्यांस उत्तम लोक प्राप्त होतात.” वैशाख मलमास अमतां त्यांतच युगादि तिथि कराव्या. तेंच हेमाद्रीत ऋष्यशृंग सांगतो—“दशहरा, चार युगादि, उपाकर्म व उत्सर्जन यांचे ठायीं उत्कर्ष (अधिकांतील कृत्य शुद्धांत नेणें हें) नाही. कारण, हें वृषभादिसंक्रांतींत इष्ट होय.” कारण, ‘कन्येस चंद्र व वृषभाम रवि अगतां दशहरा होते’ इत्यादि वचनं करून सौरमास सांगितला आहे, असा भाव. आणि **कालादर्शांतही**—वर्षपर्यंत उदकं मन्वाद्, मन्वादिधाद, महालय व युगादिधाद, यांची मलमासांत कर्तव्यामध्ये गणना केलेलीही आहे. महालयशब्दानें मघात्रयोदशी ध्यावी असें माधव सांगतो. **स्मृतिचंद्रिकेंत** तर—दोनही महिन्यांत युगादि व मन्वादि करावें असें सांगितलें आहे—तें असें—“युगादि धाद, मासिक, आपर-पक्षिक धाद, मन्वादिधाद, तीर्थधाद, हीं दोनही महिन्यांत (मलमासांत व शुद्धमासांत) करावीं.” आपरपक्षिक म्हणजे कृष्णपक्षांतील धाद. महालय नव्हे. कारण, महालयाचा मलमासांत निषेध आहे. **मदनरत्नांतही मरीचि**—“दरएक महिन्यांत मृगदिवशीं करावयाचें धाद (मासिक), प्रतिवार्षिक धाद, मन्वादि व युगादि धाद हीं दोनही मासांत करावीं.” प्रतिवत्सर म्हणजे ‘प्रतिवर्षी करावयाचें कल्पादिधाद’ अशी गोच (मदनरत्नच) व्याख्या करता झाला. या तृतीयेस धाद न केलें तर **ऋग्विधानांत** प्रायश्चित्त सांगितलें आहे तें असें—“ज्या वेळीं युगादिधाद यथायोग्य होणार नाही किंवा जो मनुष्य करीत नाही त्यानें ‘नयस्यथावा०’ या मंत्राचा शंभरवेळां जप करावा.” या तिथीय समुद्रस्नान प्रशस्त. तें **पृथ्वीचंद्रोदयांत सौरपुराणांत** सांगता—“जो मनुष्य युगादि तिथीय क्षारसमुद्रामध्ये स्नान करितो तो हजार गाई कुरुक्षेत्रामध्ये दिल्याचें जें फल तें फल पावतो व भूमिदानाचें फल पावतो” हा निर्णय रावे युगादि तिथींचे ठायीं जाणावा, इति युगादिनिर्णयः ॥

इयमेव तृतीयापरशुरामजयंती सांप्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तदुक्तं **भार्गवाचनदीपिकायां स्कांद भविष्ययोः** वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः स्वोच्चैः पद्महैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते रेणुकायास्तु योगर्भाद वतीर्णा हरिः स्वयमिति दिनद्वये तथा प्रावंशतः समव्याप्तौ च परा अन्यथा पूर्वैव तदुक्तं त्रैव **भविष्ये** शुक्रतृतीया वैशाखशुद्धोषोऽप्यादिनद्वये निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विकेति वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिस्तदुक्तं **पृथ्वीचंद्रोदये ब्राह्मे** वैशाखशुक्लसप्तम्यां जहनु जाह्नवीपुरा क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णं प्रातुदक्षिणान तांतत्र पूजयेद्देवीं गंगामगनमेखलामिति अत्र शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये तथा प्रावव्याप्रावंकं दशव्याप्रांवापूर्वा युगमवाक्यान् वैशाखशुद्धद्वादश्यां योगविशेषो **हेमाद्रौ ज्योतिःशास्त्रे** पंचाननस्यौ गुरुभूमिपुत्रौ मंगे रविः स्याददिशुक्लपक्षे पाशाभिधानाकरभेण युक्ता तिथिर्व्यतीता पात इतीह योगः अस्मिन् तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सप्तवर्षपरिहाय पापं मूर्तत्विमिद्वत्त्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्य इति पंचाननः सिंहः पाशाभिधानातिथिर्द्वादशी करभोहस्तः ।

हीच तृतीया परशुरामजयंती होय. ती प्रदोषव्यापिनी (रात्रिप्रथमप्रहरव्यापिनी) ध्यावी. तें सांगतो **भार्गवाचनदीपिकेंत स्कांदं भविष्यांत**—“वैशाखशुक्लपक्षी तृतीयेस पुनर्वसुनक्षत्रावर रात्रीच्या प्रथमप्रहरी सहा प्रह उचीचे व मिथुनेचा राहु अमतां रेणुकेच्या गर्भापासून परशुराम अवतार झाला”. ही तृतीया दोन दिवशीं प्रदोषकाली पूर्णव्यापिनी किंवा अंशतः समव्यापिनी अमतां परा करावी. तशी नमतां पूर्वाच करावी. तें सांगतो तेथेंच **भविष्यांत**—“वैशाखशुक्ल तृतीया शुद्ध (इतरांनं अविद्ध) असेल त्या दिवशीं उपोषण करावें. दोन दिवशीं रात्रीच्या प्रथम प्रहरीं असेल तर दुसरे दिवशीं उपोषण करावें. तशी नसेल तर पूर्वदिवशीं उपोषण करावें.” वैशाखशुक्लसप्तमीस गंगोत्पत्ति (गंगावतार) झाली. तें सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत**—“जह्नुक्षीनें गंगा क्रोधानं प्राशन केली ती वैशाखशुक्ल सप्तमीस पुनः उजव्या कर्णें प्रांनं बाहेर टाकिली. त्या तिथीस गंगादेवीचें पूजन करावें.” ह्या गंगापूजनाविषयी शिष्टाचारावरून मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी ध्यावी. दोन दिवशीं मध्याह्नव्याप्ति, अव्याप्ति अथवा एकदेशव्याप्ति असतां युगमवाक्यावरून पूर्वा ध्यावी. वैशाखशुक्ल द्वादशीचे ठायीं विशेष योग सांगतो—**हेमाद्रीत ज्योतिःशास्त्रांत**—“वैशाखशुक्लपक्षी सिंहास शुक्र

व मीम, मेघास सूर्य आणि हस्तनक्षत्रांनी युक्त द्वादशी तिथि असेल तर व्यतीपात योग होतो. या योगावर गाई, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र यांचे दान केल्याने सर्व पाप घालवून देवत्व, इंद्रत्व, रोगरहितत्व आणि मनुष्याधिपत्य यांत मनुष्य पावतो.”

वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती साप्रदोषव्यापिनीग्राह्या तदुक्तं हेमाद्रीनृसिंहपुराणे वैशाखेशुक्लपक्षेचतुर्दशीं नृसिंहासुखे मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनं वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मम संतुष्टिकारणमिति दिनद्वये पितृव्याप्तावशतः समव्याप्तौ च परा विषमव्याप्तौ त्वधिकव्याप्तिमती दिनद्वयेऽप्यव्याप्तौ परा परदिने गौणकालव्याप्तेः सस्वातपूर्वदिने च तदभावात् यत्तु ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले इत्युपक्रम्य परिधाय ततो वा सो व्रतकर्म समारभेदिति तत्रैवोक्तं तत्संकल्परूपव्रतोपक्रमविषयं नत्वेतावता मध्याह्नव्यापिनीग्राह्येति भ्रमितव्यं पूर्वोक्तवचनविरोधान् वैशाखस्य चतुर्दशीयां सोमवारं निलक्ष्मे अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषममये द्विजा इति टोडरानंदे स्कांदात् कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायमिति पूर्वोक्तपुराणसमुच्चयवचनाच्चेति केचित् तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन निर्मूलत्वात् हेमाद्रीनृसिंहपुराणे मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनमित्युपक्रम्य स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारं तु मद्रतं सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणेन तथा पुंसां मौभाग्ययोगे न लभ्यते दैवयोगतः सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं ह्या कोटि विनाशनं एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनं केवलेऽपि प्रकर्तव्यं मद्दिनं व्रतमुत्तमं अन्यथानरकं याति यावच्चंद्रदिवाकरावित्युक्त्वा ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले इत्यादिना मध्याह्न एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्मप्रतीयते संध्यायां जन्ममुक्ताप्यनुत्तमौख्यकृतं तद्वशां निर्णयश्च हेय एवेति ।

वैशाखशुक्ल चतुर्दशी ही नृसिंहजयंती. ती प्रदोषव्यापिनी ध्यावी. तें सांगतो-हेमाद्रीत नृसिंहपुराणांत-“वैशाखशुक्ल चतुर्दशीस प्रदोषकालीं माझे (नृसिंहाचे) जन्म झालें. तें पुण्यकारक, पापनाशक माझे व्रत प्रतिवर्षी करावें, तेणें करून माझा संतोष होतो.” दोनही दिवशीं प्रदोषव्याप्ति असतां किंवा अंशनः समव्याप्ति असतां परा करावी. दोन दिवशीं विषमव्याप्ति असेल तर अधिक व्याप्ति असेल ती ध्यावी. दोनही दिवशीं व्याप्ति नसेल तर परा ध्यावी; कारण, दुर्गच्या दिवशीं गौणकालीं (संकल्पकालीं) व्याप्ति आहे, व पूर्वदिवशीं व्याप्ति नाही. आतां जे “मध्याह्नगमयीं नद्यादि स्वच्छ जलांत स्नान करून-असा उपक्रम करून सांगतो-वस्त्रधारण करून व्रतकर्माम प्रारंभ करावा” असें तेंथेंच सांगितलें आहे, तें, संकल्परूप जो व्रतारंभ तद्विषयक होय. यावरून मध्याह्नव्यापिनी ध्यावी, अशा भ्रमांत पडूं नये. कारण, पूर्वोक्त नृसिंहपुराणवचनाशीं विरोध येईल. आणि “वैशाखशुक्ल चतुर्दशीत सोमवार व स्वाती नक्षत्र यांचा योग असतां प्रदोषसमयीं नृसिंहाचा अवतार झाला” असें टोडरानंदांत स्कंदपुराणवचन आहे. आणि “कूर्म, नृसिंह, बौद्ध, कल्की हे सायंकालीं अवतीर्ण झाले” असें पूर्वी चैत्रमासीं पुराणसमुच्चयवचनही सांगितलें आहे, असें केचित् म्हणतात. खरा प्रकार म्हणता तर, पूर्वीचीं वचनें मोठ्या प्रसिद्ध निबंधांत उपलब्ध नसल्यामुळे निर्मूल असल्याकारणांतः आणि हेमाद्रीत नृसिंहपुराणांत-“माझ्या जन्मानें उत्पन्न पुण्यव्रत पापनाशक आहे” असा उपक्रम करून “स्वातीनक्षत्र, शनिवार, सिद्धयोग, वणिजकरण यांचा योग असतां तें व्रत पुरुषांना रौभाग्ययोगानें व दैवयोगानें प्राप्त होतें. या सर्वे योगांनीं युक्त असें माझे व्रत कोटिहत्या नाश करणारें होतें. यांतून एकादाही योग जरी असेल तथापि तो माझा दिवस पापनाश करणारा होय. (केवल योगरहित) ही माझ्या दिवशीं हें उत्तम व्रत करावें, न करतील तर चंद्र सूर्य आहेत तोपर्यंत नरकाप्रत जातील.”-असें सांगून “नंतर मध्याह्नी नदी इत्यादि स्वच्छजलामध्ये स्नान करावें” इत्यादि वचनें करून मध्याह्नीच व्रत सांगितल्यावरून चतुर्दशीच्या उत्तरार्धां वणिजकरण येतें त्या वेळीं मध्याह्नी जन्म आहे असें स्पष्ट प्रतीतीस येतें. संध्यासमयीं जन्म झालें असें तर कोणत्याही ग्रंथांत सांगितलें नसल्याकारणांत तें वचन मूर्खपणांन कोणीतरी केलेलें आहे यास्तव त्याला अनुसरून जो निर्णय तोही त्याज्यच आहे.

तथा इयमेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता तदुक्तं तत्रैव स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारं च मद्रतं सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा पुंसां सौभाग्ययोगे न लभ्यते दैवयोगतः एभिर्योगैर्गैर्विनापि त्यान्मद्दिनं पापनाशनं सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्रते मद्रकैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः तथा सिंहः स्वर्णमयो देयो मम संतोषकारकः तथा विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लब्धये तपापकृत्तरः स याति नरकं घोरायावच्चंद्रदिवाकरौ इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च अथात्र विशेषः मध्याह्ने भृद्रोमयतिला मलकस्नानं कृत्वा नृसिंहदेवदेवेशतव जन्मदिने शुभे

उपवासंकरिष्यामिसर्वभोगविवर्जितइतिमंत्रेणसंकल्पंकृत्वा आचार्यश्रुत्वासायंकाले हैमीतुतत्रमन्मूर्तिःस्था-
प्यालक्ष्म्यास्तथैवच पलेनवातदर्धेनतदर्धार्धेनवापुनः यथाशक्तितथाकुर्याद्विजृम्भितशाल्यविवर्जितइत्युक्तं नृसिंह-
मूर्तिशक्त्याकृतसुवर्णसिंहचक्रलशोपरिसंपूज्यरात्रौजागरणंकृत्वाप्रातःपुनःसंपूज्य नृसिंहाच्युतदेवेशलक्ष्मी-
कांतजगत्पते अनेनार्चाप्रदानेनसफलाःस्युर्मनोरथाः इत्याचार्यायदत्त्वा मद्देशेनराजातायेजनिष्यंतिचापरे
तांस्त्वमुद्धरदेवेशदुस्तराद्भवसागरात् पातकार्णवमग्रस्यव्याधिदुःखांबुवारिभिः तीव्रैश्चपरिभूतस्यमहादुःख-
गतस्यमे करावलंबनंदेहिशेषशायिन्जगत्पते श्रीनृसिंहरमाकांतभक्तानांभयनाशन क्षीरांबुधिनिवासिस्त्वंच-
क्रपाणेजनार्दन व्रतेनानेनदेवेशभुक्तिमुक्तिप्रदोभवेतिप्रार्थयेदितिसंक्षेपः ।

तशी हीच नृसिंहचतुर्दशी तिथि योगविशेषानं अतिप्रशस्त होय. तें तेथेंच गांगतो —“स्वातीनक्षत्र, शनिवार, सिद्धयोग, वणिजकरण, यांच्या योगानं युक्त चतुर्दशी प्राप्त होईल तर तो महादैवयोग होय, कदाचित् हे पूर्वीक योग जरी नसले तथापि माझा जन्मदिवस पापनाशक आहे. मजे वर्णीय माझ्या व्रताचा अधिकार आहे. माझे जे भक्त मत्परायण त्यांनीं तर अवश्य करावें.” तसेच “सुवर्णाचा सिंह माझ्या संतोषार्थ द्यावा.” तसेच—“जो मनुष्य माझा दिवस जाणून त्या दिवशीं उपोषणादि करीत नाही तो नंदमूर्त्य आहेत तोपर्यंत घोर नरकास जातो.” हें व्रत संयोगपृथक्कल्याणाचें नित्य व काम्यही आहे. आतां या तिथीचे श्राव्य विशेष विधि गांगतो. मध्याह्नां मूर्तिका, गोमय, तिल, आंबळ्यांचा कल्क यांहीं स्नान करून “नृसिंह देवदेवेश तव जन्मदिने शुभे ॥ उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः” या मंत्रानें व्रताचा संकल्प करून आचार्य वरून मायेंकालीं “पलप्रमाण (नार तोळे) सुवर्णाची किंवा त्याचे अर्धानें अथवा अर्धाचे अर्धानें किंवा यथाशक्ति नृसिंह व लक्ष्मी यांची मूर्ति करून स्थापन करावी.” असें मांगितलें आहे. नृसिंहमूर्ति व शक्ती-प्रमाणें केल्या सुवर्णसिंह यांची कलशावर पूजा करून रात्रौ जागरण करून प्रातःकालीं पुनः पूजा करून “नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः” या मंत्रानें ती मूर्ति आचार्योस द्यावी आणि “मद्देशे ये नरा जाता ये जनिष्यंति चापरे ॥ तांस्त्वमुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ॥ पातकार्णवमग्रस्य व्याधिदुःखांबुवारिभिः ॥ तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥ करावलंबनं देहि शेषशायिन् जगत्पते ॥ श्रीनृसिंह रमाकांत भक्तानां भयनाशन ॥ क्षीरांबुधिनिवासिस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन ॥ व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव” या मंत्रांनीं प्रार्थना करावी. याप्रमाणें हें संक्षेपानें व्रत सांगितलें, असें समजावें.

वैशाखपौर्णमास्यांविशेषोऽपराकांतजावालिः श्रुतान्नमुदकुंभंचवैशाख्यांचविशेषतः निर्दिश्यधर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयान सुवर्णतिलयुक्तैस्तुब्राह्मणान्ममप्रपंचच तर्पयेदुदपात्रैस्तुब्रह्महत्यांघ्यपोहतीति उदकुंभदान मंत्रस्त्वभक्ष्यवृत्तीयाप्रकरणेउक्तः भविष्येपि वैशाखीकार्तिकीमाधीतिथयोतीवपूजिताः स्नानदानविहीनास्नाननेत्याःपांडुनंदन अत्रकृष्णाजिनदानंकार्यं तथाचविष्णुः कृष्णाजिनंनित्यानकृष्णानहिरण्यमधुसर्पिपी ददातियस्तुविप्रायसर्वतरतिदुष्कृतमिति इतिश्रीकमलाकरभट्टकृतेकालनिर्णयसिंधौवैशाखमासःसमाप्तः ॥

वैशाखपौर्णमासीम विशेष गांगतो अपराकांत जावालि—“वैशाखी पौर्णिमेस शिजविलेले अन्न व उदकुंभ विशेषेकरून धर्मराजाला द्यावा, म्हणजे गोदानाचें फल प्राप्त होतें. सुवर्णतिलयुक्त उदकपात्रांनीं (उदकुंभांनीं) वारा ब्राह्मणांस तृप्त करावें, म्हणजे ब्रह्महत्येचें पाप नाहीमें होतें.” उदकुंभदानाचा मंत्र तर अक्षयनृतीयाप्रकरणीं पूर्वी सांगितला आहे. भविष्यांतही—“वैशाखी, कार्तिकी आणि माघा ह्या पौर्णिमा अत्यंत पूज्य आहेत ह्या तिथींस स्नान दान केल्याविरहित राहूं नये.” या वैशाखी पौर्णिमासीस कृष्णाजिन दान करावें. तेंच गांगतो विष्णु—“कृष्णाजिन, काळे तिल, सुवर्ण, मध, तूप हीं जो ब्राह्मणास देतो त्याचें सर्व पातक नष्ट होतें.” इति वैशाखमासनिर्णयाची महाराष्ट्र टीका समाप्त झाली.

वृषसंक्रांतौपूर्वाःपोडशष्टिकाःपुण्यकालः रात्रौसंक्रमेसतिप्रागेवोक्तं ज्येष्ठशुक्लतृतीयायांरंभाप्रतमुक्तं माधवीयेभविष्ये भट्टेकुरुष्वयत्नेनरंभाख्यंव्रतमुत्तमं ज्येष्ठशुक्लतृतीयायांस्नातानियमतत्परेति सापूर्वेविद्धाप्राह्या बृहत्तपातथारंभासावित्रीवटपैतृकी कृष्णाष्टमीचभूताचक्रतंव्यासमुखीतिथिरितिस्कांदोक्तेः ।

आतां ज्येष्ठमास.

वृषभसंक्रांतीच्या पहिल्या सोळा घटिका पुण्यकाल होय. रात्रीं संक्रांति झाली तर त्याचा निर्णय पूर्वीच (प्रथमपरिच्छेदांत) सांगितला आहे. ज्येष्ठशुक्र तृतीयेचे ठायीं रंभा (कदली) व्रत सांगतो माधवीयांत भविष्यांत—“हे भद्रे, ज्येष्ठशुक्र तृतीयेस स्नान करून नियमतत्पर होऊन यज्ञानें उत्तम रंभाव्रत कर.” त्या व्रताविषयी तृतीया पूर्वविद्धा ध्यावी. कारण, “बृहत्तपा (श्रावणकृष्ण द्वितीया) रंभा, वटमावित्री (वटपूर्णाणिमा), वटपैतृकी (सावित्रीव्रतसंबंधी अमावास्या) कृष्ण पक्षांतली अष्टमी व चतुर्दशी, ह्या तिथि संमुख (पूर्वविद्धा) कराव्या” असे स्कंदपुराणवचन आहे.

ज्येष्ठशुक्रदशमीदशहरा तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता हस्ते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्मृतेति वाराहेपि दशमीशुक्रपक्षेतु ज्येष्ठे मासि कुजे हनि अवतीर्णायतः स्वर्गाद्धस्तक्षेत्रं च मरिद्वरा हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्मृतेति स्कांदे तु दशयोगो उक्ताः तथा ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः व्यतीपाते गरां नंदे कन्या चंद्रे वृषे रवौ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यत इति अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था इयंच यत्रैव योगवाहुल्यं नैव प्राह्या योगाधिक्यं फलाधिक्यान् ज्येष्ठमलमामे मति तत्रैव दशहरा कार्या न तु शुद्धे दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्विधयुगादि विधिते हेमाद्रौ कल्पशृंगोक्तेः तथा स्कांदे यां कांचित्मरितं प्राप्य दद्यादर्थतिलोदकं मुच्यते दशभिः पापैः समहापातकोपमैः ।

ज्येष्ठशुक्र दशमी ही दशहरा होय. तें सांगतो हेमाद्रौ व्रतपुराणांत—“ज्येष्ठमासीं शुक्रपक्षां हस्तनक्षत्रयुक्त दशमी दहा* पापे हरण करिते म्हणून ती दशहरा होय.” वराहपुराणांत ही सांगतो—“ज्येष्ठमासीं शुक्रपक्षां भौमवारीं दशमीस हस्तनक्षत्रावर स्वर्गापासून भागीरथी अवतीर्ण झाली, ती त्या तिथीस स्नान करणाऱ्यांनीं दहा पापे हरण करिते म्हणून ती दशहरा म्हटली आहे.” स्कंदपुराणांत तर दहा योग सांगितले आहेत—ते हे—“ज्येष्ठमास १, शुक्रपक्ष २, दशमी ३, बुधवार ४, हस्तनक्षत्र ५, व्यतीपात ६, गरकरण ७, आनंदौख्ययोग ८, कन्येस चंद्र ९, वृषभाग मूर्ध १०, हे दहा योग असतां मनुष्यांनं गंगेत स्नान केलें तर तो सर्व पापांपासून मुक्त होतो.” येथे वरील वचनांत भौमवार व या वचनांत बुधवार सांगितल्या त्यांची कल्पभेदांनं व्यवस्था समजावी. ही दशमी ज्या दिवशीं बहुत योग अमलील त्या दिवशीं—चीच ध्यावी; कारण, योग अधिक असतां अधिक फलप्राप्ति होते. ज्येष्ठ मलमाम असेल तर मलमागांतच दशहरा दशमी करावी. शुद्ध मासांत करूं नये. कारण, “दशहरा, चार युगादि तिथि ह्यांविषयीं उत्कर्ष (पुढील मार्गी नेणें) नाही” असे हेमाद्रौ कल्पशृंगवचन आहे. तसेंच स्कंदपुराणांत—“कोणत्याही नदींत स्नान करून या दशमीस अर्घ्य तिलोदक देईल तर तो महापातकांयारख्या दहा पातकांपासून मुक्त होतो.”

अत्र विशेषः काशीवंदे ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिं दशाश्वमेधे स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः एवं सर्वासु तिथिपुक्रमस्नायी नरोत्तमः आशुक्रपक्षदशमी प्रतिजन्माघमुत्सृजेत् तथा लिंगदशाश्वमेधं दद्याद्दशहरा तिथौ दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः तथाच भविष्योत्तरकाशीवंदयोः निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः पुष्पैर्गंधैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया तथा दीपैश्च तांबूलैः पूजयेच्छुद्धयान्वितः स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः दशप्रसूति कृष्णांश्च तिलान्सर्पिश्च वैजले सक्तु पिंडान् गुडपिंडान् दद्याच्च दशसंख्यया ततो गंगा तटे रम्ये हेमरात्र्येण वा तथा गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणं स्वरूपिणीं संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मुदापि च अथ तत्राप्यशक्तश्चेत्तिष्ठेत्पिष्टेन वैभुवि वक्ष्यमाणेन मंत्रेण कुर्वात्पूजां विशेषतः नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा भगीरथं च नृपतिं हिमवतं नगेश्वरं गंधपुष्पादिभिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयेत् दशप्रस्थान् तिलान् दद्याद्दशविप्रेभ्य एव च दशप्रस्थान्यवान् दद्याद्दशसंख्यगवींस्तथा प्रस्थः षोडशपलानि पलंतु मुष्टिमात्रं पलं स्मृतमिति महार्णवे उक्तं मत्स्यकच्छपमंडूकमकरादिजले चरान् हंसकारंडववकचक्र-

१ सावित्रीव्रत ज्येष्ठ अमावास्यासही सांगितले आहे, तें त्या व्रतनिर्णयप्रसंगीं पुढें पहावें. २ दश पापानि मनुनोक्तानि । पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ॥ असंबद्धप्रलापश्च वाक्छयं स्याच्चतुर्विधं ॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतं ॥ परद्रव्येष्वभिधानं मनसानिष्ठचित्तं ॥ वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतमिति ॥

* १ कठोरभाषण, २ अनृतभाषण, ३ पैशुन्य (चहाडी करणें), ४ बडबड, ५ न दिलेली वस्तु घेणें, ६ विधीवांचून हिंसा, ७ परकीसेवन, ८ परद्रव्याचा अभिलाष, ९ अनिष्टचित्त, १० व्यर्थ आग्रह, ११ बुधवार व हस्तनक्षत्र यांचा योग आनंद होय.

दिट्ठिभसारसान् कारयित्वायथाशक्तिस्वर्णेनरजतेनवा तदलाभेपिष्टमयानभ्यर्च्यकुसुमादिभिः गंगायांप्रक्षिपे-
दाज्यदीपांश्चैवप्रवाहयेत् पुष्पाद्यैःपूजयेद्गंगामंत्रेणानेनभक्तितः ॐनमःशिवायैनारायण्यैदशहरायैंगंगायैनमो-
नमः इतिमंत्रंतुयोमत्योदिनेतस्मिन्दिवानिशं जपेत्पंचसहस्राणिदशधर्मफलंलभेत् **काशीखंडे**त्वन्योमंत्र-
उक्तः नमःशिवायैप्रथमंनारायण्यैपदंततः दशहरायैष्टमितिगंगायैमंत्रएवै स्वाहांतःप्रणवादिश्चभवेद्दिशा-
क्षरोमनुः पूजादानंजपोहोमस्तेनैवमनुनास्मृतमिति ।

येथं विशेष सांगतो—**काशीखंडांत**—“ज्येष्ठमासीं शुक्लपक्षीं प्रतिपदा तिथीम दशाश्वमेधनीयांत स्नान केलें अगतां सर्वे
पापांपासून मुक्त होती. या प्रकारें प्रतिपदेपासून दशमीपर्यंत कमानीं स्नान करणाऱ्या मनुष्याचें सर्व जन्मांचें पाप जातें.”
तसेंच “दशहरा तिथीम दशाश्वमेधलिंगाचें दर्शन केलें तर दशजन्मांजित पापें जातात, यांत संशय नाही.” तसेंच
भविष्योत्तरांत व **काशीखंडांत**—“रात्रीम जागरण व उपोषण करून पुष्प, गंध, भैवेद्य, दहा फळे, तसेंच रीप,
तांबूल यांहींकरून भक्तीनं गंगेची पूजा करावी. भक्तीनं भागीरथीमध्ये यथाविधि दहा वेळ स्नान करून दहा पळें काळें
तीळ, घृत, मत्स्यपिंड, गुटपिंड हे दहा दहा उदकामध्ये यावे. नंतर गंगेच्या तीरीं सुवर्णाची अथवा रुप्याची गंगेची प्रतिमा
पुढें सांगितलेल्या स्वरूपाची स्थापन करून पत्रा करावी. सुवर्णादिकांची नमेल तर मृत्तिकांची मूर्ति करून पूजा करावी. तशी
मूर्ति करण्यास अशक्त असल तर पिडांनं भस्मीकर मृत्त लिहून पुढें सांगितलेल्या मंत्रांनं पूजा करावी. तसेंच विष्णु, शिव,
ब्रह्मा सूर्य, राजाभागीरथ, पर्वतश्रेष्ठ हिमालय, यांची गंधपुष्पादिकांनीं चांगडी पूजा करून दहा प्रस्थ (शेर) तिल दहा
ब्राह्मणांस यावे. व दहा प्रस्थ यव आणि दहा गांठे द्याव्या.” मोठ्या पळे म्हणजे एकप्रस्थ आणि एक मूठ म्हणजे एक पल,
असें महाणांवांत उक्त आहे. “मत्स्या, कच्छप, वैडूर्य, मगर, इत्यादि जलधर व हंग, कारंदव, बक, चक्रवाक, दिट्ठिभ,
सागर हे पक्षा यथाशक्ति सुवर्णांनं किंवा रुप्यांनं करावे. सुवर्णरुप्याचे अनावा पिडांनं करून पुष्पादिकांनीं पुजून गंगेमध्ये
सोडावे आणि घृतदीपदी गंगेनं सोडावे आणि पुष्पादिकाना गंगेचे पूजन पुढें सांगितलेल्या मंत्रांनं मार्कतुकु होतमाता
करावे. ती मंत्र असा—“ॐनमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै नमोनमः” या मंत्राचा जो मनुष्य त्या
दिवशीं अहोरात्री पांच हजार जप करील तो दशधर्मांनं फळ पावतो.” **काशीखंडांत** तर दुसरा मंत्र सांगितला
आहे—तो असा—“नमः शिवायै” हे प्रथम पद, नंतर “नारायण्यै” हे दुसरें पुढें “दशहरायै” नंतर
“गंगायै” याच्या अर्धा “स्वाहा” शब्द व प्रथमांरमा ‘ॐ’ असा तीस अक्षरांचा मंत्र होय. पूजा, दान, जप, होम हे
या मंत्रांनं करावे असें समजातें.”

अत्रगंगामोत्रपाठमपिदशवारंकुर्यात् तदुक्तं **भविष्ये** तस्यांदशम्यामेतच्चमोत्रंगंगजलंस्थितः यःपठेद्दश-
कृत्वस्तुदुरिटोवापचाश्रमः सोपितत्फलमाप्नोतिगंगांसेवृज्ययत्रतडति स्मोत्रंचप्रतिपदादिदशमीपर्यंतंदिनवृद्धि-
संख्ययापठनीयमितिशिष्टाः अत्रचसर्वोपविस्तरःमोत्रादिच **भट्टकृतत्रिस्थलीसेनो**गवधयः विस्तर-
भीतेस्तुनलिख्यते एवंकुर्वतःफलमुक्तं**काशीखंडे** एवंकृत्वाविधानेनवित्तशास्त्रविचरितः उपवासीवक्ष्यमा-
णैर्दशपापैःप्रमुच्यते सर्वानकामानवाप्नोतिप्रत्यत्रब्रह्मणितीयनडतिच अस्यांसेतुबंधरामेश्वरस्यप्रतिष्ठादिनत्वाद्वि-
शेषेणपूजाकार्या तदुक्तं**स्कांदेसेतुमाहात्म्ये** ज्येष्ठमासेमितपश्चदशम्यांबुधहस्तयोः गगनंदेव्यतीपातेक-
न्याचंद्रेवृषरवौ दशयोगेसेतुमध्येलिंगरूपधरंहरम् रामोवैस्थापयामासशिवलिंगमनुत्तममिति इतिदशहरा ।

येथे गंगामोत्राचा पाठही दहा वेळ करावा, तें सांगला. **भविष्यांत**—“जो दिवशीं किंवा पूर्वोक्त विधि करण्यास असमर्थ
असल त्यानं त्या दशमीस उदकान उभे राहून दहा वेळ गंगामोत्राचा पाठ करावा म्हणजे त्यालाही पूर्वोक्त उत्तम फल
प्राप्त होतें.” प्रतिपदादि दशमीपर्यंत मोत्रपाठही दिनवृद्धिसंख्येनं (पहिल्या दिवशी एक पाठ, दुसऱ्या दिवशी दोन पाठ
असा) करावा, असें शिष्ट म्हणतात. याविषयीं सर्वे विस्तर व मोत्रादिक हे सर्वे, नारायणभट्टांनीं केलेल्या **त्रिस्थली-**
सेतूत पहावें. येथे ग्रंथविस्तारभयांनं लिहीन नाही. असें हे पूर्वोक्त व्रत करणारास फल सांगला—**काशीखंडांत**—“जो
मनुष्य उपवास करून इत्याचें कापण्य न करितां पूर्वोक्त विधीनं व्रत करील तो पुढें सांगितलेल्या दहा पापांपासून मुक्त
होऊन सर्व मनोरथांत पावतो, व मरणानंतर ब्रह्मस्वरूपांनं लीन होतो.” ही दशमी सेतुबंधरामेश्वराचा प्रतिष्ठादिवस आहे,
यास्तव त्या दशमीस विशेषकरून सेतुबंधरामेश्वराची पूजा करावी. तें सांगला—**स्कंदपुराणांत सेतुमाहात्म्यांत**—
“ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमी, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गरकरण, आनंदयोग, व्यतीपात, कन्येस चंद्र व वृषभास सूर्य हे दहा
योग असतां रामानं सेतुमध्ये उत्तम शिवलिंगाची स्थापना केली.” इति दशहरा.

ज्येष्ठशुक्लैकादशीनिर्जला तत्रनिर्जलमुपोष्यविप्रेभ्योजलकुंभानदद्यादितिनिर्णयामृतेउक्तम् **मदनरत्ने**

स्कांदे ज्येष्ठमासिनृपश्रेष्ठयाशुक्लैकादशीशुभा निर्जलंसमुपोष्यात्रजलकुंभान्सर्शकरान् प्रदायविप्रमुख्येभ्यो मोदतेविष्णुसन्निधौ ।

ज्येष्ठशुक्ल एकादशी ही निर्जलासंज्ञक होय. ह्या एकादशीस उदकप्राशनावांचून उपोषण करून ब्राह्मणांस उदककुंभ द्यावे असें निर्णयामृतांत सांगितलें आहे. **मदनरत्नांत स्कंदपुराणांत** गंगतो—“ज्येष्ठमासीं शुक्लपक्षीं जी एकादशी तिचे ठायीं जलरहित उपोषण करून शर्करासहित उदककुंभ श्रेष्ठ ब्राह्मणांस द्यावे म्हणजे विष्णुजवळ आनंद पावतो.”

ज्येष्ठपौर्णमास्यांसावित्रीव्रतम् तदुक्तं**स्कांद भविष्ययोः** ज्येष्ठमासिसितेपक्षेद्वादश्यांरजनीमुखेइत्युप-
क्रम्य व्रतंत्रिरात्रमुद्दिश्यदिवारात्रिस्थिराभवेदिति अंत्येप्युपसंहृतम् ज्येष्ठमासिसितेपक्षेपूर्णिमायांथात्रव्रतम्
चीर्णपुरामहाभक्त्याकथितंतेमयानृपेति दाक्षिणात्याश्चैतदेवादित्यंते एतन्नामावास्यायामभ्युक्तं**निर्णयामृते-**
भविष्ये अमायांचतथाज्येष्ठेवटमूलेमहासती त्रिरात्रोपोपितानारीविधिनानेनपूजयेत् **मदनरत्ने**त्विदं-
वाक्यं पंचदश्यांथाज्येष्ठे इतिपठित्वाज्येष्ठपौर्णमास्यामुक्तं तथा अशक्तौतत्रयोदश्यांनक्तंकुर्याजितेंद्रिया अयां-
चित्तंचतुर्दश्याममायांसमुपोषणमिति तत्तुपाश्चात्याआदित्यंते हेमाद्रिसमयोद्योतादिपुत्राभद्रपदपूर्णिमा-
यामुक्तं तत्तुनेदानींप्रचरति **गौडास्तु** मेषेवावृषभेवापिमावित्रींतांविनिर्दिशेत् ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यांमावित्रीम-
र्चयंतियाः वटमूलेसोपवासानतवैधव्यमाप्रयुरितिपराशरोक्तेश्चतुर्दश्यांप्रदोषेव्रतं दिनद्वयेतद्व्याप्रौपरैवेत्याहुः
तन्निर्मूलं ।

ज्येष्ठमासीं पौर्णिमेस वटसावित्रीव्रत, तें सांगतो—**स्कांदांत भविष्यांत**—“ज्येष्ठमासीं शुक्लपक्षीं द्वादशीस प्रदोषकालीं”
असा उपक्रम करून “त्रिरात्रव्रताचा उद्देश करून रात्रदिवस स्थिर व्हावें.” असें सांगून अंती उपसंहार (पूर्वांक्त विषयाचें
या व्रताविषयीं पर्यवसान) केला, तो असा—“ज्येष्ठमासीं शुक्लपक्षीं पौर्णिमेस तसें व्रत पूर्वा महाभक्तीनं आचरण केलेलें असें
हे राजा ! तुला मीं सांगितलें.” दाक्षिणदेशीय लोक हेंच (या पौर्णिमेचे ठायींच) व्रत करितात. हेंच व्रत अमावास्यासही
सांगितलें आहे—**निर्णयामृतांत भविष्यांत**—“ज्येष्ठमासीं अमावास्यास महासती स्त्रांते त्रिरात्र उपोषण करून यथाविधि
वटमूलीं पूजा करावी.” **मदनरत्नांत** तर हें वाक्य ‘पंचदश्यां तथा ज्येष्ठे’ असें पठन करून हें व्रत ज्येष्ठपौर्णिमेस करण्या-
विषयीं सांगितलें आहे. तसेंच—“त्रिरात्रउपोषणाविषयीं अशक्त असेल तर त्रयोदशीस नक्त करून जितेंद्रिय होऊन चतुर्द-
शीस अयाचित व अमावास्यास उपोषण करून व्रत करावें” तें अमावास्यास व्रत पाश्चात्य (पश्चिमेकडचे लोक) करितात.
हेमाद्री, समयोद्योत इत्यादि ग्रंथांत तर आद्रपद पौर्णिमेस हें व्रत सांगितलें आहे तें तर सांप्रत काळीं प्रचारांत नाही.
गौडग्रंथ तर “मेष किंवा वृषभ या संक्रांतींत ती सावित्री समजावी, ज्येष्ठकृष्णचतुर्दशीस ज्या स्त्रिया उपोषण करून वट-
मूलीं सावित्रीचें पूजन करितात, त्यांस वैधव्य प्राप्त होत नाही.” ह्या **पराशर**वचनावरून चतुर्दशीस प्रदोषीं व्रत करावें.
ती चतुर्दशी दोन दिवशीं प्रदोषकाळीं असतां परदिवशींच व्रत करावें असें म्हणतात, तें निर्मूल होय.

अत्रपूर्णिमावास्यापूर्वविद्वेष्टाह्ये भूतविद्वानकर्तव्याअमावास्याचपूर्णिमा वर्जयित्वानरश्रेष्ठसावित्री-
व्रतमुत्तममितिब्रह्मवैवर्तात् **स्कांदेपि** भूतविद्वत्सिनीवालीनतुतत्रव्रतंचरेत् वर्जयित्वातुसावित्रीव्रतं
तुशिखिवाहनइति **मदनरत्नेब्रह्मवैवर्तेपि** प्रतिपत्पंचमीभूतसावित्रीवटपूर्णिमा नवमीदशमीचैवनो-
पोष्याःपरसंयुताइति यदावष्टादशघटिकाचतुर्दशीतदापराग्राह्या पूर्वविद्वैवसावित्रीव्रतेपंचदशीतिथिः न-
ड्योष्टादशभूतस्यस्तुश्चेत्तच्चपरेऽहनीति**माधवः वस्तुतस्तु** भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरांतिथिमित्यस्य-
व्रतांतरेसावकाशत्वाद्द्विशेषपवृत्तपूर्वविद्वत्विधायकवचनेनतस्यबाधादष्टादशनाडीवेधेपिपूर्वैवेत्ययंपंथाःसाधुः
अत्रपूर्णिमानुरोधेनैवयथात्रिरात्रसंपत्तिर्भवतितथात्रयोदश्यादिग्राह्यं तस्याःप्रधानत्वात् अयंनिर्णयोऽमाया-
मपिज्ञेयः पारणंतुपूर्णिमांतकार्यम् अत्रस्त्रीव्रतेषुविशेषाःपरिभाषायामुक्ताः ।

ह्या व्रताविषयीं पौर्णिमा व अमावास्या पूर्वविद्वत् (चतुर्दशीयुक्त) ध्यावी; कारण, “अमावास्या व पौर्णिमा चतुर्दशीविद्वत्
वेळें नये, हें सावित्रीव्रत वर्ज्य करून समजावें, अर्थात् सावित्रीव्रताविषयीं चतुर्दशीविद्वत् ध्यावी” असें **ब्रह्मवैवर्तांत** वचन
आहे. **स्कंदपुराणांतही**—“चतुर्दशीविद्वत् अमावास्यास व्रत करूं नये, परंतु हें सावित्रीव्रतावांचून समजावें.” **मदनरत्नांत**
ब्रह्मवैवर्तांतही—“प्रतिपदा, पंचमी, चतुर्दशी, सावित्री, वटपूर्णिमा, नवमी, दशमी, ह्या तिथि उपोषणाविषयीं परयुक्त
वेळें नयेत.” ज्या वेळीं अठरा घटिका चतुर्दशी असेल तेव्हां परा ध्यावी. कारण, “सावित्रीव्रताविषयीं पौर्णिमा पूर्वविद्वत्

ध्यावी, जर चतुर्दशी १८ घटिका असेल, तर दुसऱ्या दिवशीं करावी.” असें **माधव** सांगतो. वास्तविक म्हटलें तर “चतुर्दशी १८ घटिकांनीं उत्तरतिथीस दूषित करते” असें जें वचन तें अन्यत्रांनीं चरितार्थ असल्यामुळे विशेषकरून प्रवृत्त झालेल्या ‘पूर्वेविद्धा ध्यावी’ या वचनांनीं ‘भूतोष्टादश’ या वचनाचा बाध होत अगल्यानें अठरा घटिका वेध असला तरी पूर्वांच ध्यावी, हाच मार्ग उत्तम होय. येथें पूर्णिमेच्या अनुरोधानेंच जसें त्रिरात्र व्रत होईल तशा त्रयोदश्यादि तिथि ध्याव्या. कारण, पौर्णिमा मुख्य आहे. हाच निर्णय अमावास्येविषयीही जाणावा. पारणा तर पौर्णिमांनीं करावी. येथें स्त्रियांच्या व्रताविषयी विशेष निर्णय (म्हणजे स्त्रीला रजस्वला इत्यादि दोष प्राप्त होईल तर पूजादिक ब्राह्मणकडून करवावी; उपोषण इत्यादिक स्वतां करावें असे स्त्रीव्रताचे विशेष निर्णय) व्रतपरिभाषेत (प्रथमपरिच्छेदांत) सांगितले आहेत ते जाणावे.

अत्रविशेषो **भविष्ये** गृहीत्वावालाकांपात्रेप्रस्थमात्रांयुधिष्ठिर ततोवंशमयेपात्रेवत्त्रयमेनवेष्टिते सावित्री-प्रतिमांकुर्यात्सौवर्णावापिमृन्मयीम् सार्धसत्यवतासाध्वीफलनैवेद्यदीपकैः रजन्याकंठसूत्रैश्चशुभैःकुंकुमकेशरैः पूजयेदितिशेषः रजनीहर्गिदा कंठसूत्रमौभाग्यतंतुः सावित्र्याख्यानकंवापिवाचयीतद्विजोत्तमैः रात्रौजागरणंकृत्वाप्रभातेविमलेततः तामपित्राह्मणेदत्त्वाप्रणिपत्यक्षमापयेन् मंत्रस्तु सावित्रीयंमयादत्तासहिरण्याम-हासती ब्रह्मणःप्रीणनार्थायब्राह्मणप्रतिगृह्यताम् व्रतेनानेनराजेंद्रवैधव्यंनानुयात्कचिदिति ।

या व्रताचे ठायीं विशेष विधि **भविष्यपुराणांत** सांगतो, तो असा—“प्रस्थ (शेर) प्रमाण वाळू पात्रांत घेऊन नंतर दोन वस्त्रांनीं वेष्टित अशा वेष्ट्या पर्यांत सुवर्णाची किंवा मृत्तिकेची सावित्रीची प्रतिमा करून राखवानासहवर्तमान गावित्रांची पूजा फल, मंत्रेय, शीप, हळद, चंद्रमूत्र, कुंकुम, केशर, यांहींकरून करावी. नंतर सावित्रीव्रतकथा ब्राह्मणाकडून वाचवावी. व रात्रोय जागरण करून प्रातःहाळी ती प्रतिमाही ब्राह्मणाम देऊन नमस्कार करून क्षमा मागावी.” दानाचा मंत्र—“सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती ॥ ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यतां” ॥ “हें व्रत केलें असतां वैधव्य कधीही प्राप्त होणार नाही.”

ज्येष्ठपौर्णमास्यांविशेष **आदित्यपुराणे** ज्येष्ठमासितिलान्दद्यात्पौर्णमास्यांविशेषतः अश्वमेधस्ययत्पुण्यं तत्प्राप्नोतिनसंशयः **विष्णुरपि** ज्येष्ठीज्येष्ठपुत्राचेत्यात्तस्यांछत्रोपानत्प्रदानेननरोनराधिपत्यमाप्नोतीति **हेमाद्रौज्योतिषे** ऐंद्रगुरुःशशीचैवप्राजापत्येराविस्तथा पूर्णिमाज्येष्ठमासस्यमहाज्येष्ठीप्रकीर्तितेति इयं मन्वादिपरि सापोर्वाह्मिकीग्राह्या विशेषस्तुचैत्रेउक्तः तथाऽ**परांकेवामनपुराणे** उदकुंभांबुदानंचतालवृत्तं सचंदनम् त्रिविक्रमस्यप्रीत्यर्थंदातव्यंज्येष्ठमासिनिवृत्ति इतिकमलाकरभट्टकृतनिर्णयसिंघौज्येष्ठमासःसमाप्तः ।

ज्येष्ठपौर्णमासीस्य विशेष सांगतो **आदित्यपुराणांत**—“ज्येष्ठमासा पौर्णमेय विशेषकरून तिळ द्यावे, तेंणेकरून अश्वमेधाचे पुण्य प्राप्त होतें, यांत संशय नाही.” **विष्णुही** “ज्येष्ठा पौर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्रांनीं युक्त असतां तिचे ठायीं छत्र व उपानत् (चमाजोडा) याचें दान करावें, तेंणेकरून पुरुषाम राज्य मिळतें.” **हेमाद्रौति ज्यातिपांत**—“ज्येष्ठानक्षत्रीं गुरु व चंद्र, राहणोस सूर्य अशी ज्येष्ठा पौर्णिमा असेल तर तिच्या **महाज्येष्ठा** म्हणतात.” ही पौर्णिमा मन्वादिकही आहे, ती पूर्वाह्न्यापिनी ध्यावी, तिचा विशेष निर्णय वैत्रमासांत सांगितला आहे. तसेंच **अपरांकांत वामनपुराणांत**—“ज्येष्ठमासी उदकुंभ, उदक, तालवृत्त (ताडाचा पंखा), चंदन हीं त्रिविक्रमप्राप्त्यर्थे द्यावी.” इति श्रीज्येष्ठमासाची महा-राष्ट्र टीका समाप्त झाली.

मिथुनसंक्रांतौपराःषोडशघटिकाःपुण्यकालः रात्रौतुप्रागंबोक्तम् आपादशुक्लद्वितीयायांरथोत्सवः तदुक्तं **निथिनत्वेस्कांदे** आपादस्यसितपक्षेद्वितीयापुण्यसंयुता तस्यांरथेसमारोप्यरागंमैभद्रयामह यात्रोत्सवं प्रवर्थाथप्रीणयंतद्विजान्वहून् तथा ऋक्षाभावेतिथौकार्यायात्रासौममपुण्यदा आपादशुक्लदशमीपौर्णमासीच-मन्वादः साचपूर्वाह्न्यापिनीप्राह्येतिप्रागुक्तं आपादशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायांपारणंक्रुर्यान् तदुक्तं **भविष्ये** आभाकासितपक्षेपुमैत्राश्रवणरेवती संगमेनहिभोक्तव्यंद्वादशद्वादशीहरेन् अस्यार्थः आपादभाद्र-पदकार्तिकशुक्लद्वादशीध्वनुराधाश्रवणरेवतीयोगेपारणंक्रुर्यादिति अत्रयद्यप्येतावदेवोक्तं तथाप्यनुराधाप्रथम-पादएववर्ज्यः तदुक्तं**विष्णुधर्म** मैत्राद्यपादेस्वपितीहविष्णुःपौर्णायपादेप्रतिबोधमेति श्रुतेश्चमयेपरिवर्त-मेति सुप्रिबोधपरिवर्तनमेववर्ज्यमिति वस्तुतस्तुपूर्ववचनमिदंचनिर्मूलम् ।

आतां **आषाढमास**—मिथुनसंक्रांतीच्या पुढील सोळा घटिका पुण्यकाल होय. रात्री संक्रांत झाली असता पुण्यकाल-

निर्णय पूर्वीच (प्रथम परिच्छेदांत) सांगितला आहे. आषाढशुक्ल द्वितीयेचे ऋग्नी श्रीरामाचा रथोत्सव करावा. तो सांगतो **तिथितत्त्वांत स्कंदपुराणांत**—“आषाढाच्या शुक्लपक्षां पुण्य नक्षत्रयुक्त द्वितीयेस भद्रसहित रामाला रथावर बगवून यात्रोत्सव करून (द्रव्यादिकांनं) बहुत ब्राह्मणांस संतुष्ट करावें.” तसेंच “माझी पुण्यकारक यात्रा पुण्यनक्षत्र नमतांही ह्या तिथीस करावी, असें राम सांगतो.” आषाढशुक्ल दशमी व पौर्णिमा ह्या मन्वादि होत. त्या पूर्वाह्न्यापिनी ध्याव्या असें पूर्वीच (चैत्रांत) सांगितलें आहे. आषाढशुक्ल द्वादशी अनुराधा नक्षत्ररहित असतां एकादशीची पारणा करावी. तें सांगतो **भविष्यांत**—“आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक यांच्या शुक्लपक्षांतील द्वादशी अनुक्रमानें अनुराधा, श्रवण, रेवती या नक्षत्रांनीं युक्त असतां भोजन करूं नये, केलें तर बारा द्वादशींचें पुण्य व्यर्थ होतें.” ह्या वचनांत सर्वे नक्षत्रांचा योग जरी निषिद्ध सांगितला आहे तथापि अनुराधांचा पहिला चरणच वर्ज्य करावा. तें सांगतो **विष्णुधर्मांत**—“अनुराधांच्या पहिल्या चरणीं विष्णु निद्रा करितो. रेवतीच्या अंत्यचरणीं जागृत होतो. श्रवणाच्या मध्यभागीं कुशीम वळतो. यास्तव निजणें, जागृत होणें, व कुशीम वळणें हें ज्या भागांवर होतें ते भाग मात्र वर्ज्य करावे.” वामविक्र मष्टलें तर पूर्ववचन व हें वचन हीं दोनही निर्मूल होत. (कारण, महानिबंधांत हीं वचनें आढळत नाहीं.)

अत्रैवविष्णुशयनोत्सवउत्तोहेमाद्रौब्राह्मे एकादश्यांतुशुक्लायामाषाढेभगवानहरिः भुजंगशयनेशेते क्षीरार्णवजलेसदेति कल्पतरौयमः क्षीराब्धौशेषपर्यंकेआपाढ्यांसंविशेद्धरिः निद्रान्त्यजतिकर्तृक्रयांतयोः संपूजयेत्सदा ब्रह्महत्यादिकंपापंक्षिप्रमेवंव्यपोहति हिंसात्मकैस्तुकिंतम्ययज्ञैःकार्यमहात्मनः प्रस्वापेचप्रवो- धेचपूजितोयेनकेशवः टोडरानंदेपिस्कांदे आपाढशुक्लेकादश्यांकुर्यात्स्वप्नमहोन्मव अयंद्वादश्यामप्युक्तः आभाकासितपक्षेपुमैत्रश्रवणरेवती आदिमध्यावसानेपुप्रस्वापावर्तनोत्सवाः निशिस्वापोदिवोत्थानसंध्यायां परिवर्तनम् अन्यत्रपादयोगेपिद्वादश्यामेवकारयेत् आभाकांछेपुमांसपुमिथुनेमाधवस्यच द्वादश्यांशुक्लपक्षेच प्रस्वापावर्तनोत्सवाइति भविष्योक्तेः द्वादश्यांसंधिसमयेनक्षत्राणामसंभवे आभाकासितपक्षेपुशयनावर्त- नादिकमितिबाराहोक्तेश्च द्वादश्यामित्यत्रापिपारणाहोमात्रंविचक्षितं पारणाहंपूर्वरात्रेघंटादीन्वादयन्मुहु- रितिरामार्चनचंद्रिकोक्तेः अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभेदेनव्यवस्था ।

ह्या एकादशीसच विष्णुशयनोत्सव सांगतो हेमाद्रौत ब्राह्मांत—“आषाढशुक्ल एकादशीस भगवान् हरि क्षीरम- द्राच्या उदकामध्ये शेषशयनावर निद्रा करतो.” कल्पतरूंत यम—“आषाढ शुक्ल एकादशीस क्षीरममुद्रांत शेषपर्यंकी हरि निजतो व कार्तिक शुक्ल एकादशीस जागृत होतो, यास्तव त्या तिथीस हरीचें पूजन केलें असतां ब्रह्महत्यादि पापे तत्काळ जातात, ज्यानें निद्राकालीं व प्रबोधकालीं हरीची पूजा केली त्या महात्म्याचें हिंसात्मक यज्ञांनीं काय करावयाचें आहे. यज्ञपेशांही हें अधिक होय.” टोडरानंदांतही स्कांदांत—“आषाढ शुक्ल एकादशीस निद्रामहोत्सव करावा.” हा निद्रामहोत्सव द्वादशीसही सांगितला आहे—“आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक यांच्या शुक्ल पक्षां अनुक्रमानें अनुराधा, श्रवण, रेवती या नक्षत्रांच्या पहिल्या, मधल्या व शब्दच्या भागांवर निद्रा, परिवर्तन व जागर यांचे उत्साह करावे. रात्री निद्रा, दिवसा उत्थापन, संध्यासमयीं परिवर्तन अशीं होतात. अनुराधा, श्रवण, रेवती यांचे प्रथमादिपाद अन्य तिथीस अमले तरी द्वादशीसच निद्रादि उत्सव करावे. कारण, आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक या मासांत शुक्ल पक्षांच्या द्वादशींस अनुक्रमें भगवंताचे प्रस्वाप, परिवर्तन, व प्रबोध हे उत्सव होतात” असें भविष्यवचन आहे. आणि “आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, या महिन्यांत शुक्लपक्षां द्वादशीस संध्यासमयीं नक्षत्रे नसतांही शयन, परिवर्तन इत्यादि उत्सव होतात” असें वाराहपु- राणवचनही आहे. “द्वादशीस उत्सव करावा” असें जें सांगितलें तें पारणादिवस मात्र विवक्षित आहे; कारण, “पार- णादिवशीं पूर्वरात्रीं वारंवार घंटादि वाजनीत उत्सव करावे” असें रामार्चनचंद्रिकेंत वचन आहे. येथे एकादशी व द्वादशी या दोन तिथींस उत्साह सांगितला त्याची व्यवस्था देशभेदानें जाणावी.

इदंचमलमासेनकार्य ईशानस्यबलिर्विष्णोःशयनपरिवर्तनमितिकालादर्शनिषेधान् यदपि एकादश्यांतु गृहीयात्संक्रांतौकर्केटस्यच आषाढ्यांवानरोभक्त्याचातुर्मास्यव्रतक्रियामितिहेमाद्रौब्रह्मवैवर्त तदपिमल- मासेसतिद्रष्टव्यम् मिथुनस्योयदाभानुरमावास्याद्वयंस्पृशेत् द्विराषाढःसविज्ञेयोविष्णुःस्वपितिकर्केटइतितत्रैव मोहचूलोत्तरोक्तेः ।

हा विष्णुशयनोत्सव मलमासांत करूं नये. कारण, “ईशानबलि, विष्णूचें शयन व परिवर्तन मलमासांत करूं नये, असा कालादर्शांत निषेध आहे. आतां जें “कर्केटसंक्रांतींत एकादशीस किंवा आषाढी पौर्णिमेस मनुष्यानें भक्तियुक्त होऊन

१ ‘मिथुने’ असें जें पद तें आषाढमासाकडेच लावावें, भाद्रपद व कार्तिक यांजकडे त्याचा असंभव आहे.

चातुर्मास्यव्रतकर्म करावें” असें हेमाद्रीत ब्रह्मवैवर्तवचन तेही मलमास अमतां जाणावें. कारण, “ज्या काळीं मिथुनाचा सूर्य दोन अमावास्यांना स्पर्श करील त्या काळीं दोन आषाढ होतात, व तेव्हां कर्कसंक्रांतीत विष्णु निद्रा करतो.” असें तेथेंच मोहचूळोत्तराचें वचन आहे.

अत्रैवचातुर्मास्यव्रतारंभउक्तोभारते आपाढेतुसितेपक्षेएकादश्यामुपोषितः चातुर्मास्यव्रतंक्षुर्याद्यत्किंचिन्नियतोन्नरइति अस्मिनित्यत्वंतत्रैवोक्तम् वार्षिकांश्चतुर्गोमासानवाहयेत्केनचिन्नरः व्रतेननोचेदाप्नोति किंस्त्रिषं-वत्सरोद्धवम असंभवेतुलार्कपिकर्तव्यंतत्प्रयत्नतइति तेनापाढशुक्लैकादश्यांद्वादश्यांपाणमास्यांवारंभः समा-मिभुकार्तिकशुक्लद्वादश्यामेवतदुक्तंहेमाद्रौभारते चतुर्थागृह्यवेचीर्णचातुर्मास्यव्रतंनरः कार्तिकेशुक्लपक्षेतु-द्वादश्यांतत्समापयेदिति अस्यांभःशुक्रास्तादावपिकार्यः नशैशवंनमौह्यंचशुक्रगुर्वोर्नवातिथेः खंडत्वंचित्त-येदादौचातुर्मास्यविधौन्नरइतिहेमाद्रौबृद्धगार्यांक्तेः इदंचद्वितीयाद्यांरभविषयम् प्रथमारंभस्तुनभवत्येव आशौचमध्येपिद्वितीयाद्यांरभोभवति अशुचिर्वाशुचिर्वापियदिस्त्रीयदिवापुमान् व्रतमेतन्नरःकृत्वामुच्यतेसर्व-पातकैरितिभार्गवार्चनदीपिकायांस्कांदोक्तेः आरब्धेसूतकंनस्यादनारब्धेतुसूतकमिति विष्णुवच-नाच्च यतुअसंक्रांतंश्रामासंदैवेपित्र्यचकर्मणि मलमासमशौचंचवर्जयेन्मतिमान्नरइतिहेमाद्रौ चातुर्मास्यव्र-तप्रकरणेभविष्यवचनं तत्पूषानुमंत्रणमंत्रवदसंबद्धमध्येपठितमितिज्ञेयं अन्यथापित्र्यस्यपूर्वोक्तस्यविवाहादेश्च-चातुर्मास्यव्रतेकःप्रसंगः प्रकरणनिवेशेपिवाप्रथमारंभविषयंज्ञेयं केचित्तुप्रतिवर्षंचातुर्मास्यव्रतप्रयोगानांभि-न्नत्वादाशौचादिपतेद्वितीयादिप्रयोगोनभवत्येवेत्याहुः तत्र प्रतिवर्षंचयःकुर्यादेवंवैसंस्मरन्हरिं देहतेऽतिप्रदी-पेनविमानेनार्कवर्चसा मोदतेविष्णुलोकंसायावदाभूतसंप्रवमितिहेमाद्रौभविष्यवचनादित्यास्तांविस्तरः ।

या एकादशीमथ चातुर्मास्यव्रताचा आरंभ मागवो. भारतांत—“आषाढशुक्लपक्षां एकादशीय उपोषण करून कोण-त्याही चातुर्मास्यव्रताचा आरंभ नियमित होऊन मनुष्याने करावा.” चातुर्मास्यव्रत नित्य आहे, असें तेथेंच मांगतो—“वार्षिक (वर्षाकाळाचे) चार महिने कोणत्याही व्रतानें घालवावे. असें न करील तर त्या मनुष्यास संवत्सराचें पाप लागतें. चार महिने व्रत न होईल तर तुल्यसंक्रांतीस सूर्य अगताही तें व्रत यजानें करावें.” यावरून आषाढशुक्ल एका-दशी, द्वादशी, किंवा पूर्णिमा यांचे ठायीं आरंभ करावा. आणि गमासि तर कार्तिकशुक्ल द्वादशीमथ करावी; तें मांगतो. हेमाद्रीत भारतांत—“मनुष्याने चातुर्मास्यव्रत चार प्रकारचें (श्रावणांत शाक, भाद्रपदांत दही, आश्विनांत दूध, कार्तिकांत द्विदल हे वर्जनरूप) घटण करून आचरण केलेलें तें कार्तिकशुक्ल द्वादशीस गमास करावें.” चातुर्मास्यव्रताचा आरंभ गुरुशुक्रांच्या अस्तादिकानही करावा. कारण, “शुक्र व गुरूचें शिशुव, अन्न व खंडातिथि यांचा विचार चातुर्मास्य-व्रताचे आरंभविषयी मनुष्याने करू नये” असें हेमाद्रीत बृद्धगार्याचें वचन आहे. हें वचन दुसऱ्या वगैरे आरंभ-विषयी होय. प्रथमारंभ तर होत नाहीच. आशौचामध्येही दुसऱ्या वर्षी वगैरे व्रतारंभ होतो. कारण “स्त्री किंवा पुरुष अशुचि किंवा शुचि असले तथापि त्यानें हे व्रत केले अगतां सगळे पातकांपागून मुक्त होतो” असें भार्गवार्चनदीपिकेत स्कांदवचन आहे. आणि प्रारंभ केलेल्याविषयी सूतक नाही. आरंभ केल्या नसेल तर त्याविषयी सूतक दोष होतो” असें विष्णुवचनही आहे. आतां तें “दैवपित्र्यकर्मोचं ठायीं मलमास व अशौच वर्ज्य करावी, म्हणजे मलमासांत व आशौचांत दैवपित्र्यकर्म करू नये.” असें हेमाद्रीत चातुर्मास्यव्रतप्रकरणीं भविष्यवचन आहे तें पूषानुमंत्रण मंत्रासा-रग्ये असेंचद मध्ये पठित आहे, असें जाणावें. असंबद्ध म्हटले नाही तर हेमाद्रीत पूर्वोक्त पित्र्यकर्म व विवाह यांचा चातुर्मास्यव्रतामध्ये काय प्रसंग आहे ! अथवा चातुर्मास्यव्रतप्रकरणांत तें वचन सुसंबद्ध मानिलें तरी प्रथमारंभविषयक जाणावें. केचित् विद्वान् तर प्रतिवर्षी चातुर्मास्यव्रतप्रयोग भिन्न भिन्न अगल्यामुळे दुसऱ्या वर्षी आशौचादि प्राप्त

१ चातुर्मास्यव्रतारंभे चत्वारः पक्षाः, आषाढशुक्लैकादशी-तद्वादशी-तत्पूर्णिमासौ-संक्रांतिमेदात् । २ पूर्वेति दर्शपूर्णमासप्रकरणे ‘पूर्णाहं देवयज्ञायप्रजयापशुभिश्च जनिषीदंति’ पूषानुमंत्रणमंत्रः पठित्वापि स तत्र न विनियुज्यते तत्र तदेवविरहेण प्रकरणस्य दोष-स्यात् । विनियोग्यस्वरूपमासस्थमनपेक्ष्य विनियोगाभावात् । अतः स पूषयागे नेतव्य इत्यर्थः । ३ प्रकरणदोषस्यमाहान्ययेति । देवं विवाहादि । ४ चातुर्मास्यव्रतदैवमितिमत्वाह प्रकरणेति । ५ प्रतिवर्षं चेति वस्तुतस्मिन्द पालनविशेषाधोवृत्तिनोषकं प्रयोगव्यपक्षे मानाभावात् । ६ पूषानुमंत्रण म्हणजे दर्शपूर्णमासयागप्रकरणीं ‘पूर्णाहं’ हा पूषानुमंत्रणाचा मंत्र पठित आहे. त्या प्रकरणांत पूषा देवता नाही म्हणून त्या मंत्राचा विनियोग तेथें होत नाही. पूषादेवतेच्या यागात त्याचा विनियोग करावा असें आहे, साध्या-क्षारखे येथें समजावें.

असतां द्वितीयादिप्रयोग (द्वितीयादिप्रवर्तारंभ) होतच नाही असे म्हणतात. ते बरोबर नाही; कारण, “प्रतिवर्षीं हरीचें स्मरण करून असें जो व्रत करील तो देहांतीं सूर्यासारख्या तेजस्वी अशा विमानांत बसून कल्पपर्यंत विष्णुलोकीं आनंद पावतो.” असें हेमाद्रीत भविष्यवचन आहे. यावरून द्वितीयादि आरंभ अवश्य आहे. आतां हा विस्तार राहू दे.

‘इदंच शिवभक्तादिभिरपिकार्यं शिवेवाभक्तिसंयुक्तोभानौवागणनायके कृत्वाव्रतस्य नियमं यथोक्तफलभा-
ग्ववेदिति ब्रह्मवैवर्तात् व्रतग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्री भविष्ये महापूजांततः कुर्यादेव देवस्य चक्रिणः जाती-
कुसुममालाभिर्मंत्रेणानेन पूजयेत् सुमेत्वयि जगन्नाथे जगत्सुमं भवेदिदं विबुद्धे च विबुद्धे तत्प्रसन्नो मे भवाच्युत एवं
तांप्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः प्रभाषेताप्रतो विष्णोः कृतां जलिपुटस्तथा चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्यो-
त्थापनावधि इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मे च्युत इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव निर्विघ्नं सिद्धिमाया तु प्रसा-
दात्तवकेशव गृहीतेस्मिन् व्रते देव पंचत्वं यदि मे भवेत् तदा भवतु संपूर्ण त्वत्प्रसादाज्जनार्दन गृहीतेस्मिन् व्रते देव-
यद्यप्येवं सृतो ह्यहं तन्मे भवतु संपूर्ण त्वत्प्रसादाज्जनार्दनेति ।

हे चातुर्मास्यव्रत शिवभक्तादिकांनींही करावें. कारण, “शिव किंवा सूर्य अथवा गणपति यांचे ठायीं भक्तियुक्त असलेला मनुष्य व्रतनियम करील तर यथोक्त फल पावेल.” असें ब्रह्मवैवर्तांत वचन आहे. व्रतग्रहणाचा प्रकार तर हेमाद्रीत भविष्यपुराणांत सांगतो—“देवांचाही देव असा जो विष्णु त्याची महापूजा करून जाईच्या पुष्पमालांनीं पुढें सांगित-
लेल्या मंत्रांनीं पूजा करावी.” तो मंत्र—“सुमे त्वयि जगन्नाथे जगत्सुमं भवेदिदं ॥ विबुद्धे च विबुद्धे तत्प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥” या मंत्रांनीं त्या विष्णुप्रतिमेची पुरुषांनीं स्वनः पूजा करून हात जोडून विष्णूच्या पुढें प्रार्थना करावी. ती अशी—“चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधि ॥ इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ॥ निर्विघ्नं सिद्धिमाया तु प्रसादात्तव केशव ॥ गृहीते-
स्मिन् व्रते देव पंचत्वं यदि मे भवेत् ॥ तदा भवतु संपूर्ण त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ गृहीतेस्मिन् व्रते देव यद्यप्येवं सृतो ह्यहं तन्मे भवतु संपूर्ण त्वत्प्रसादाज्जनार्दनेति ॥”

तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिचर्यायांच भविष्ये श्रावणवर्जयेच्छाकंदधिभाद्रपदे
तथा दुग्धमाश्रयुजे मासिकार्तिके द्विदलं त्यजेदिति स्कांदे पिचातुर्मास्यकल्पे चत्वार्येता निनित्यानि चतुरा-
श्रमवर्णिनां प्रथमे मासिकर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरैः द्वितीये मासिकर्तव्यं दधिव्रतं मनुजैः तृतीये मासिकर्तव्यं पयोव्रतं तृतीये तु चतु-
र्थे पिनिशामय द्विदलं बहुबीजं च वृताकं च विवर्जयेत् नित्यान्येता निविघ्नं व्रतान्याहुर्मनीषिणः जंबीरराजमा-
षांश्च मूलकं रक्तमूलकं कूष्मांडं चेक्षुदंडं च चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः तथा विशेषाद्द्विधात्रीकूष्मांडं तितिर्णीत्य-
जेत् जीर्णधात्रीफलं ग्राह्यं कथंचित्कायशोधनमिति तीर्थसौख्ये स्कांदे वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुमेवैजना-
र्दने मंचखट्वादि शयनवर्जयेद्भक्तिमान्नरः अनृतौ वर्जयेद्धार्यामांसं मधुपरौदनं पटोलं मूलकं चैव वृताकं च न भक्ष-
येत् अभक्ष्यं वर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्पपं राजमापान्कुलित्थांश्च आशुधान्यं च संत्यजेत् शाकं दधिपयोमाषान्-
श्रावणादिषु संत्यजेत् अत्र त्यजेदिति वर्जनसंस्काररूपः पर्युदासो ज्ञेयः व्रतोपक्रमात् ।

चातुर्मास्यव्रताविषयीं भार्गवार्चनदीपिकेंत नृसिंहपरिचर्यांत भविष्यांत—“श्रावणमासीं शाक (भाजी), भाद्र-
पदांत दधि, आश्विनांत दुग्ध, कार्तिकांत द्विदल (दोन डाळीचा) हीं सोडावीं.” स्कांदांतही चातुर्मास्यकल्पांत-
“चार वर्णांच्या चारी आश्रमांतल्या मनुष्यांस हीं चार व्रतें नित्य होत. तीं अशीं—मनुष्यांनीं पहिल्या महिन्यांत नित्य शाकव्रत करावें. दुसऱ्या महिन्यांत उत्तम दधिव्रत करावें. तिसऱ्या महिन्यांत पयोव्रत करावें. चवथ्यांतही सांगतां,
श्रवण कर-द्विदल, बहुबीज, वृताक हीं वर्ज्य करावीं. हीं व्रतें नित्य होत असें विद्वान् म्हणतात. जंबीर, राजमाष (चवळ्या) मुळा, रक्तमूलक, कूष्मांड, इक्षुदंड हीं चातुर्मास्यांत वर्ज्य करावीं. तसेंच विशेषें करून बोर, आंवळा, कूष्मांड, विंच, हीं वर्ज्य करावीं. परंतु जुने आंवळे देहशोधनार्थ कांहीं घ्यावे.” तीर्थसौख्यांत स्कंदपुराणांत—“वार्षिक चार महिन्यांत जनादेन निजला असतां मंचक, खट्वा इत्यादिकांवर शयन भक्तिमान् मनुष्यानें वर्ज्य करावें. ऋतुकाला-
(रजोदर्शनापासून १६ दिवस) दांचून स्त्रीगमन वर्ज्य करावें. मांस, मध, पराज, पडवळ, मुळा, वांगें हीं भक्षण करूं नयेत. अभक्ष्य पदार्थ मसूरा, पांढरे सर्षप (मोहऱ्या) हे अत्यंत सोडावे. चवळ्या, कुलित्थ, आशुधान्य (तुषधान्य)

हीं मोडावीं. शाक, दधि, पय, माष हीं श्रवणादि चार मासांत वर्ज्य करावीं.” येशें वर्जन करणें हें व्रत असल्यामुळें ‘त्यजेत्’ हा वर्जनसंकल्परूप निषेध जाणावा.

अत्रकेचिच्छाकाख्यंपत्रपुष्पादीन्यमरकोशस्यशक्यतेशितुमनेनेतिशाकइतिश्रीरस्वामिनाव्याख्यानात् व्यंजनमात्रस्यनिषेधमाचक्षते अन्येतुशाकशब्दस्यपत्रादिदशविधशाकेयोगरूढत्वान् योगाश्रुतेर्बलीयस्त्वात्सुपादीनामपित्यागापत्तेश्चतत्प्रत्याचक्षते तेन मूलपत्रकरीराप्रफलकांडाधिरूढकाः त्वकपुष्पंकवचंचेति-शाकंदशविधंसृत् इतिश्रीरस्वामिनोक्तस्यशाकस्यनिषेधइति अधिरूढकअंकुरः वस्तुतस्तु तत्तत्कालोद्भवाः-शाकावर्जनीयाःप्रयत्नतः बहुवीजमवीजंचविकारिचविवर्जयेदितिभविष्यवचनान्तत्तत्कालोत्पन्नानांदशविध-शाकानानिषेधः अत्रतत्कालोद्भवजातीयत्वंविवक्षितं तेनानपादिशोषितानांवर्षांतरोद्भवानामपिनिषेधः अत्र-तत्कालोद्भवत्वमात्रंविवक्षितंनतुतन्मात्रकालोद्भवत्वंगौरवान् तेनान्यकालोद्भवानांतत्कालोद्भवानांचविंबादी-नानिषेधः अत्रतत्तत्कालोद्भावादतिवीर्यभावशतस्वकालोद्भवानांसर्वपाणिनंपेधइतिनिष्कर्षः बहुवीजमित्य-नेकवीजमितिकेचित् इतरावयवापेक्षयावीजावयवायववह्वस्तदित्यन्ये अवीजंकदलादि वस्तुतस्तु इदंमहानिवंधेष्वभावात्त्रिमूलमेव आचारप्रदीपे वृंताकंचकलिंगंचबिल्वौदुंबरभिःसंटाः उदरस्यसजीर्य-तितस्यदृतरोगहरिः तथापराकंदेवलः ब्रह्मचर्यतथाशौचंमन्यमामिषवर्जनं व्रतेष्वेतानिचत्वारिवरिष्ठा-नीतिनिश्चयः ॥

येथें कोणी ग्रंथकार ‘शाकाख्यं पत्रपुष्पादि’ असें अमरांत आहे. त्याची व्याख्या ‘शक्यतेऽशितुं अनेन’ इ० ज्यानें भोजन करण्यास शक्य होणें. ते शाक अशी आरम्भांतर्ने कधी आहे म्हणून भोजनसमयीं मोडाय लावण्याच्या मये चटणी कोशिंबीरी भाज्या यांना निषेध करितात. इतर तत्पत्र फळ पत्र इत्यादि पुढे सांगण्याच्या दहा प्रकारच्या शाकांचेठायीं शाकशब्द योगरूढ आहे, व योगपेक्षा (वृषणापेक्षा) इत्यादयत्तर अगत्यामुळे; आणि असें न केलें तर वर्ण इत्यादिकांचाही त्यास प्राप्त होत असल्यामुळे वर्जित माना. तथा हांमना. तेणें म्हणत असें सूचित होतें कीं, “मूळ, पत्र, कगीर (कोंब), अन्न, फळ, कोंड, अधिरूढक (मोड आळेंडें पान्य), मांड, पुष्प, कवच त्या दहा प्रकारच्या शाका होत.” ह्या श्रीरस्वामीनें माणिलेल्या दशांध शाकांचा निषेध होय. यास्तोच म्हणजे तर—“त्या त्या कार्यां उत्पन्न ज्या शाका त्या प्रथवानें मोडाव्या. बहुवीज, बीजरहित व निरुपेत हा मोडावी” ह्या भविष्यवचनावरून त्या त्या कार्यां उत्पन्न दश-विध शाकांचा निषेध होय. येथें त्या कार्या उत्पन्न जाणाऱ्या शाका वर्ज्य, असें अगत्यामुळे प्रवेवर्षा उत्पन्न असून उन्हांनें मुकवून टाविलेल्यांचाही निषेध होतो. या वचनांत ‘त्या कार्या उत्पन्न’ इतकाच अर्थ काढण्याचा आहे. ‘त्याच कार्या उत्पन्न’ असा नाही. कारण, त्या केल्या तर मोरव हा दोष येतो. यावरून असा अर्थ केल्यानें त्या कार्या उत्पन्न होत असून इतर कार्या होणाऱ्या तोडरी इत्यादिकांचा निषेध होतो. या वचनांत ‘तत्तत्कालोद्भवाः’ म्हणजे ‘त्या त्या कार्या उत्पन्न’ अशी वीष्णा (द्विरुक्ति) असल्यामुळे आपापल्या कार्या उत्पन्न झालेल्या सर्वांचा निषेध हा मागणें समजावा. बहुवीज म्हणजे अनेक बीज असें कोणी म्हणतात. इतर अवयवापेक्षां बीजावयव ज्यांत अधिक नें बहुवीज, असें अन्य म्हणतात. वस्तुतः पाहिलें तर हें वचन महानिवंधान तगल्यामुळे नें निर्मूलच होय. आचारप्रदीपांत—“वृंताक (वांग), कलिंग, बिल्व, उंबर, भिःसटा (दरधान्न) ही ज्याच्या पोटांत जिरतात त्यास हरि दूर होतो.” तसेंच अपराकंद देवल—“ब्रह्मचर्य, शुचिभूतपणा, मल्यभाषण, आमिषवर्जन हीं चार, व्रतामध्ये वरिष्ठ होत हा निश्चय आहे.”

आमिषानिचोक्तानिरामार्चनचंद्रिकायांपादो प्राण्यंगचूर्णचर्मावुजवीरवीजपूकं अयश्शशिष्टमापा-दियद्विष्णोरनिवेदितं दधमन्नंमसूरंमंसंचेयप्रधामिपं रुच्यंततत्तेशलभ्यंसुमेदेवेविवर्जयेन पादो कार्ति-कमाहात्म्ये गोछागीमहिषीदुग्धादन्यदुग्धादिचामिपं धान्येमसूरिकाःपोक्ताअन्नंपर्युपितंतथा द्विजक्रीता-रमाःसर्वलवणभूमिजंतथा ताम्रपात्रस्थितंगठ्यंजलंपल्लवंस्थितं आत्मार्थपाचितंचात्रमामिपंततस्मृतंबुधैः तथा निष्पावानगरजमापांश्चमसूरंमंधितानिच वृंताकंचकलिंगंचसुमेदेवेविवर्जयेन मंधितानिलवणशाकादीनि

आमिषं मांगतो रामार्चनचंद्रिकेत पशुपुराणांत—“प्राण्यंगचूर्ण (शिंपीचा चुना), चर्मोदक (पखाल इत्यादि-

१ अवीज कदलादीनि अनुरा कन्येतित्व अस्यस्वीजमित्यर्थान्. २ भिःसटा दरधान्न भःसटतिपाठे श्रेयमातकमिति धन्वंतरिनिषेधः ।

३ प्राण्यंगचूर्णं मौक्तिकमुक्त्यादिचूर्णम् ।

कांतलें उदक), जंवीर, बीजपूरक (महाळुंग), यज्ञशेष नसून विष्णूय निवेदित नाही तें माषादि अन्न, दग्धान्न, मसूरा, मांस हीं आठ प्रकारचीं अमिषें होत. आपआपल्या देशांत मिळणारा असा रुचकर पदार्थ तोही देव निजला असतां वर्ज्य करावा.” **पद्मपुराणांत कार्तिकमाहात्म्यांत**—“गाय, बकरी, महिषी यांवांचून इतरांचें दुग्धादिक, व धान्या-मध्ये मसूरा, पर्युषित अन्न, ब्राह्मणापासून विकत घेतलेले सर्व रम्य, भूमीपासून उत्पन्न झालेलें मीठ, तांब्याच्या पात्रांत ठेवलेलें गाईचें दुग्धादि, पल्वलोदक, आपणासाठींच शिजवलेलें अन्न हीं अमिषें होत, अमें विद्वान् मांगतात.” **तसेंच** “पावटे, चवळी, मसूरा, संधित (लोणचें वगैरे), वांगें, कलिंगडें हीं देव निद्रिस्थ असतां वर्ज्य करावीं.”

तत्रैवविष्णुधर्मं चतुर्ष्वपीहमासेषु हविष्याशीतपापभाक् हविष्याणितुष्ट्वीचंद्रोदये भविष्ये हैमंतिकसितास्त्रिधान्यं मुद्रायवास्तिलाः कलायकंगुनीवागवास्तुकंहिलमोचिका पष्टिकाकालशाकंचमूलकंके मुकेतरत् कंदः सैधवसामुद्रेगव्येचदधिसर्पिणी पयोनुद्धृतसारंचपनसाम्रहरीतकी पिंपलीजीरकंचैवनागरंगंचित्तिष्णी कदलीलवलीधात्रीफलान्यगुडमैक्षवं अतैलपकंमुनयोहविष्याणिप्रचक्षते इति सितास्त्रिधान्यं अन्नपकं धान्यंचतंडुलाः केमुकंकेमुताइतिप्राच्येपुप्रसिद्धः कंदः कलायस्तुमतीनकद्वयमरः वटुरीइतिप्रसिद्धं धान्यं मदनरत्नैष्येवं अगस्तिसंहितायां हैमंताद्युक्त्वा नारीकेलफलंचैवकदलीलवलीतथा आम्र-मामलकंचैवपनसंचहरीतकी व्रतांतरप्रशस्तंचहविष्यमन्वतेवुधाः ।

तेथेंच **विष्णुधर्मांत**—“चातुर्मास्यांत जो हविष्य भक्षण करील तो पापी होत नाही.” हविष्यें मांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत भविष्यांत**—हेमंत ऋतूंत उत्पन्न झालेलें असून ऊष्णयावांचून पक्क, धान्य (तंडुल), मूग, यव, तिल, कलाय (वाटाण, मठरी), कांग, नीवार (देवभात), वास्तुक (वथुवा-चंदनचटुवा), हिलमोचिका (चाकवत), पष्टिका (साठें-भात), कालशाक (), मुळा, केमुकेतरत् (केमुता अगा प्राच्यदेशी प्रसिद्धकंद), संधेलोण, समुद्रमांठ, गाईचें दही व तूप, लोणी न काढलेलें दूध, फणस, आंबा, हरीतकी, पिंपळा, जिरे, नागरंग, चिंचा, केळे, लवंगीफल, आंबळा, गुळावांचून इतर उंसाचे पदार्थ, हे सारे तैलांत पक्क न केलेले अगळे म्हणजे हविष्य आहेत, अमें मुनि मांगतात.” **मदनरत्नांत**ही असेंच सांगितले आहे. **अगस्तिसंहितेंत**—“हैमंतिकं” हें वरील वचन गांगून—“नारीकेलफल, केळे, लवली (), आंबा, आंबळा, फणस, हरीतकी, आणि अन्यव्रतांत प्रशस्त नी, यांस पंडित हविष्यें मानितात.

अन्यान्यपित्रतान्युक्तानिहेमाद्रौ भविष्ये स्त्रीव्रानरोवामद्भुतधर्मार्थसुदृढव्रतः गृह्णीयान्नियमानेता-न्रंदंतधावनपूर्वकान् तेषांफलानिवक्ष्यामितत्कर्तृणां पृथक्पृथक् मधुरस्वरोभवेद्राजापुरुषोगुडवर्जनान् तैलस्यव-र्जनाद्राजनुसुंदरांगः प्रजायते कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते योगाभ्यासीभवेद्यस्तुसब्रह्मपदमाप्नुयात् तांबूलवर्जनाद्भोगीरक्तकंठश्चजायते घृतत्यागाच्चलावर्ण्यं सर्वस्निग्धतनुर्भवेत् शाकपत्राशनाद्भोगीअपक्वादोऽम-लोभवेत् भूमौप्रस्तरशायीचविप्रोमुनिवरोभवेत् एकांतरोपवासेनब्रह्मलोकेमहीयते धारणास्त्रस्वरोष्णांचगंगा-स्नानफलंलभेत् मौनव्रतीभवेद्यस्तुतस्याज्ञाऽस्त्वलिताभवेत् भूमौभुंक्तसदायस्तुसप्रथिव्याः पतिर्भवेत् प्रदक्षि-णाशतंयस्तुकरोतिस्तुतिपाठकः हंसयुक्तविमानेनसचविष्णुपुरंजनेन् अयाचितेनप्राप्नोतिपुत्रान्धर्म्यांन्विशे-पतः षष्ठान्नकालभोक्तायः कल्पस्थायीभवेदिति पर्णेपुयोनरोभुंक्तकुरुक्षेत्रफलंलभेत् गुडवर्जिनरोदद्यात्तद्भूतता-म्रभाजनं सहिरण्यंनरश्रेष्ठलवणस्याप्ययंविधिः सुमेदेवतुयोविष्णोः शिवस्यांगणमचंयन् पंचवर्णैस्तुयोनित्यं-स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा सयातिरुद्रलोकंहिगाणपत्यमवाप्नुयात् अथैषांसमाप्तौ कार्तिक्यां दानानि एकभक्तव्रतेदं-पतीसंपूज्यधेनुर्देया नक्तैवस्त्रयुगम् एकांतरोपवासेगौः भूशयनेशय्या षष्ठकालभोजनेगौः ब्रीहिगोधूमादित्या-गेहैमव्रीह्यादि कृच्छ्रेयोगुगं शाकाशनेगौः पयोव्रतेच दधिमधुघृतव्रतेपुवासोगौश्च ब्रह्मचर्यंस्वर्णमूर्तिः तांबू-लव्रतेवासोयुगं मौनेघृतकुंभोवस्त्रयुगंधंटाच देवाग्रैरंगमालिकाकरणधेनुर्हेमपद्मंच दीपिकाव्रतेदीपिकावासो-युगंच भूमिभोजनेपर्णभोजनेचकांस्यपात्रंगौश्च चतुष्पथदीपेगोप्रासेचगोवृषौ प्रदक्षिणाशतेवस्त्रं अनुक्तेषु-स्वर्णगौश्चेत्यादिहेमाद्रौज्ञेयम् ।

इतरही व्रतें सांगतो **हेमाद्रौत भविष्यांत**—“स्त्री किंवा पुरुष जो माझा भक्त त्यानं दृढव्रत होऊन दंतधावन करून हे (पुढें सांगवयाचे) नियम ग्रहण करावे. ते ग्रहण करणारांस फळें निरनिराळीं सांगतो—गूळ वर्ज्य केल्यांनं मधुरस्वरी राजा होतो. तेल वर्ज्य केल्यांनं सुंदरांग होतो. कटुतैल वर्ज्य केल्यांनं शत्रुनाश होतो. योगाभ्यास करील तो ब्रह्मपदातें

प्राप्त होतो. तांबूल वर्ज्य केल्याने नानाविध भोगप्राप्ति व रक्तकंठ होतो. घृत वर्ज्य केल्याने लावण्ययुक्त व स्निग्धशरीर होतो. शाकपाने भक्षण करून राहाणारा भोगी होतो. अपक्व खाणारा स्वच्छ होतो. भूमीवर किंवा प्रस्तरावर (दर्भावर) निजणारा मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मण होतो. एकांतरोपवामाने ब्रह्मलोकी पूज्य होतो. नखे व रोम यांच्या धारणाने गंगानानाचे फल प्राप्त होते. मौनव्रत जो करतो त्याची आज्ञा अस्खलित चालते. भूमीवर निरंतर जो भोजन करतो तो पृथ्वीपति होतो. जो स्तुतिपाठ करित विष्णूला शंभर प्रदक्षिणा करितो तो हंसयुक्त विमानांत बसून वैकुंठी जातो. अयाचित भोजनाने धर्म्य (धर्मीय हितकर) पुत्रांत प्राप्त होतो. मद्याच्या अन्नकाली (दोन दिवस उपोषण करून तिगल्या दिवशीं रायकाळी) जो भोजन करतो तो स्वर्गलोकी चिरकाल राहणो. पानांवर जो मनुष्य भोजन करतो तो कुहक्षेत्रफल पावतो. गूळ वर्ज्य करणाऱ्याने गुडपूर्ण ताम्रपात्र सुवर्णगहित यावे. गीठ वर्ज्य करणारांमंती गहिरण्य ताम्रपात्र यावे. देव निजला असतां पांचरंगी स्वस्तिके व कमले यांहीकरून विष्णूचे किंवा शिवाचे अंगणाची पूजा करील तो रुद्रलोकी जाऊन गाणपत्यांत पावेल. आतां या व्रतांच्या समाप्तीस कार्तिकीस दावे गांगो—एकभुक्तव्रती यावे दंपत्याची पूजा करून धेनु (गाय) घ्यावी. नक्तव्रताचे ठायीं दोन वस्त्रे. एकांतरोपवामास गाय, भुशयनास शय्या, पप्रकालभोजनास गाय, व्रीहि-शोभूमादिकांच्या त्यागास सुवर्ण-व्रीह्यादिक. कृच्छ्रव्रत केले तर दोन गायी. शाकभक्षणास व पयोव्रतास गाय. दधि, मध, पूत यांच्या व्रतांस वस्त्र व गाय. ब्रह्मचर्यधाराण केले तर सुवर्णमूर्ति. तांबूलव्रतास दोन वस्त्र. मौनव्रतास पुनकुंभ, दोन वस्त्रे, घंटा हीं यावीं. देवापुढें रंग-मालिका करण्यास गाय व सुवर्णकमल. दीपिकाव्रतास दीपिका व दोन वस्त्रे. भूमिभोजनास व पर्णभोजनास कांस्यपात्र व गाय. चतुष्पत्थी दीपदानास व गोप्रागास गाय व वेळ. शतप्रदक्षिणाव्रतास वस्त्र. न गांगितलेला अन्यव्रतांविषयीं स्वर्ण व गोदान करवावे, इत्यादि प्रकार हेमाद्रीवरून जाणावा.

तथाच भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे शयनीवोधिनीमध्ये शमीद्वर्पापमार्गकैः भृंगराजेन देवांस्तु नार्चयितकदाचन हेमाद्रौ पाद्मे आपाढादिचतुर्मासान्भ्यंगं वर्जयेन्नरः समाम्रौचपुनर्दयात्तिलैल्लयुतं घटं आपाढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नरः कृतं वृत्ताकं गुंजतं चैव मधुसर्पिर्घटांस्त्रितं कार्तिक्यांत पुनर्हं मंत्राह्वयानि वेदयेत् अन्यन्यापि केशकृतीनां दिवजनसं कल्पानुरूपणि पृथ्वीचंद्रोदयजंघ्यानि टोडरानंदे स्कंदे एकांत-रंज्यंतरं वाकुर्यान्मासोपवासकं अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथापि वा ।

तसेच भार्गवार्चनदीपिकेंत पद्मपुराणांत गांगो—“शयनी व बोधिनी या एकादशीमध्ये (चातुर्मासांत) शर्मा, दुर्गा, आपाडा, माळा यांहीकरून देवांचे पूजन कपाढा करूं नये ” हेमाद्रींत पद्मपुराणांत—“आपाढादि चार महिन्यांत मनुष्याने अभ्यंग वर्ज्य करावा. त्याच्या नमाप्राप्त निलेक्याने युक्त घट घ्यावा. आपाढादि चार महिने नखे काढणें, व वांग, गाजर, मध, हीं वर्ज्य करावा व त्याचे नमाप्राप्त सुवर्णाचा तो तो पदार्थ व घृतयुक्त घट ब्राह्मणास द्यावा.” अन्यही केशकृतीनां दिवजनसं कल्पानुरूपणि पृथ्वीचंद्रोदयावरून जाणावी. टोडरानंदांत स्कंदपुराणांत—“एकांतरोपवास, दोन दिवसांच्या अंतराने उपवास, मासोपवास, अनोदन, फलाहार, अथवा नक्तव्रत हीं करावीं.”

अत्रैव तत्प्रमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचंद्रिकायां भविष्ये शयन्यां चैव बोधिन्यां च कर्तृथेतैव च शंखचक्रविधानेन व हस्तिपुतो भवंन्नर इति अतः प्रतनुर्नतदामो अश्नुते इति ऋग्वेदात् महोवाच यज्ञवल्क्यस्तस्मात्पुमानात्महिताय हरिं भजेत् सुश्लोकमालैर्बर्माण्यघ्नतासंदधत इति शतपथश्रुतेः प्रतद्विष्णो अञ्जचक्रे मुतं प्रजन्मां भोर्धर्तते वै चर्पणीटाः मूलवाहोर्दधन्ये पुराणा तुल्लिगान्यंगे तप्रायुधान्यपयंत इति सामवेदात् अग्निहोत्रं यथानिर्वेदस्याध्ययनं यथा ब्राह्मणस्य तथैवेदं तत्प्रमुद्रादिधारणमिति पद्मपुराणां चैत ब्राह्मणः अत्रियो वैत्रयः शूद्रो वायदिवेतरः शंखमुद्राकृततनुस्तुलसीमंजरीधरः गोपीचंदनलिमांगोदप्रश्चेत्तदधंकुतः इति काशीखंडात् तत्प्रकारस्तुरामार्चनचंद्रिकातो ज्ञेयः ।

याच एकादशीस तत्प्रमुद्राधारण गांगो रामार्चनचंद्रिकेंत भविष्यांत—“शयनी व बोधिनी एकादशीस तसेच चक्रीयांत शंखचक्रविधानं करून मनुष्याने अभिपूत व्हावे.” कारण, “ज्याची तनु तप्त झाली नाही त्याला परमेश्वरप्राप्ति होत नाही” असा ऋग्वेदमंत्र आहे. “त्या याज्ञवल्क्याने असे सांगितले आहे की, पुरुषाने आत्महिताकरितां हरीचें भजन करावे. भगवंताची चिह्ने अत्राच्या योगाने धारण करितात.” अशी शतपथश्रुति आहे. “श्रेष्ठ मनुष्य अंगावर तप्त आयुधें अर्पण करणारे जन्मसागर तरण्याकरितां विष्णूची कमलचक्रे तापवून बाहुमूलाचे ठायीं धारण करितात.” असा

सामवेद आहे, आणि “जसें अग्निहोत्र नित्य व वेदाध्ययन नित्य तसें तप्तमुद्रादिधारण ब्राह्मणाला नित्य आहे.” असें **पद्मपुराण** वचनही आहे. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शूद्र किंवा दुसरा कोणी मनुष्य आपलें अंग शंखमुद्रें अंकित करून तुलसीमंजरी धारण करणारा व गोपीचंदनाचा अंगास लेप केलेला असा मनुष्य पाहिला असता त्याला (पाहणाराला) पातक कोटून होणार ?” असें **काशीखंड** वचन आहे. तो तप्तमुद्राधारणप्रकार तर **रामार्चनचंद्रिके-पासून** जाणावा.

पृथ्वीचंद्रोदयादयस्तु यस्तुसंतप्रशंखादिलिंगचिह्नतनुनरः ससर्वयातनाभोगीचंडालोजन्मकोटिपु द्विजंतुतप्तशंखादिलिंगांकिततनुनरः संभाष्यरौरवंयातियावदिद्राश्रतुर्दशेतिबृहन्नारदीयोक्तेः शंखचक्रा-
शंकनंचगीतनृत्यादिकंतथा एकजातेरयंधर्मोनजानुस्याद्विजन्मनः शंखचक्रेमुद्रायस्तुकुर्यात्तप्रायमेनवा सशूद्र-
वद्वहिः कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः यथाश्मशानजंकाष्ठमनर्हमर्वकर्मसु तथाचक्रांकितोविप्रः सर्वकर्मसुगर्हितः
तथा शिवकेशवयोरंकांश्छूलचक्रादिकान्द्विजः नधारयेतमतिमान्वेदिकैवर्त्मनिस्थित इतिविष्णुवाश्वला-
यनादिवचनान् ऋग्वेदादिश्रुतीनामन्यार्थत्वादन्यश्रुतीनांचामस्त्वान् चक्रादिधाराणंशूद्रैर्विषयमित्युच्युः नृत्य-
चोदरार्थनिषिद्धमिति**श्रीधरस्वामी** यद्यपिनिषेधस्यप्राप्तिमापंश्वत्वाद्विधिंविनाचतदयोगादुपजीव्यविरोधेन
नतौपशौकरोतीतिवद्विकल्पोयुक्तस्तथापि एकजातेरयंधर्मइत्यनेनविधिवाक्यानामुपसंहारान्द्विजातिनिषेधो-
नित्यानुवादइतितदाशयः अत्रशिष्टाचारएवसंकटपाशनिःसर्गणसृणिरितिसंक्षेपः ।

पृथ्वीचंद्रोदयादिक ग्रंथकार तर “जो तप्तशंखादिमुद्रायुक्तशरीर मनुष्य तो सर्व यातना भोगणारा व कोटि जन्माचं-
ठार्थी चंडाल होतो. तप्तशंखादिचिह्नांनी अंकित आहे शरीर ज्याचें अशा द्विजांशीं जो मनुष्य भाषण करितो तो चवदा
इंद्र आहेत तोपर्यंत रौरव नरकांत जातो” अशा **बृहन्नारदीय** वचनावरूनः आणि “शंखचक्रादिकांनी शरीर अंकित
करणे व गीत, नृत्य इत्यादिक करणे हा एकजातीचा (शूद्राचा) धर्म होय. द्विजातींचा मुळींच धर्म नाही. जो मृत्तिकेनं
किंवा तापविलेल्या लोखंडानें शरीरावर शंखचक्रें करील त्याला सर्व ब्राह्मणकर्मापासून शूद्रागारखा वाहेर करावा. जसें
स्मशानांतील काष्ठ सर्वकर्मस अयोग्य तगा चक्रांकित ब्राह्मण सर्व कर्माविषयी नित्य होय.” तसेंच “वेदिकमार्गी स्थित अशा
बुद्धिवान् ब्राह्मणानें शिव व विष्णु यांच्या शूलचक्रादिक मुद्रा धारण करूं नयेत” ह्या **विष्णु, आश्वलायन** इत्यादिकांच्या
वचनांवरून व ऋग्वेदादिक श्रुतींचा अन्य अर्थ असल्यामुळे (म्हणजे ‘अनस्तनूनतदामोअश्रुते’ या मंत्राचा अर्थ—पयो-
व्रतादिकंकरून ज्याची तनू तप्त शायी नाही त्याला सोमरगाची प्राप्ति नाही—इत्यादि अर्थ अगत्यामुळे) व इतर श्रुति
मुळींच नसल्यामुळे चक्रादिकमुद्राधारण शूद्रविषयक आहे, असें मांगते झाले. नृत्य हें उदरभरण्याकरितां निषिद्ध आहे,
भगवंताकरितां निषिद्ध नाही, असें **श्रीधरस्वामी** मांगतो. आतां **बृहन्नारदीय-विष्णु-आश्वलायनादि** वचनांनीं
तप्तमुद्राधारणाचा निषेध केला. यावरून तप्तमुद्राधारणाची प्राप्ति आहे असें होतें व ती प्राप्ति विधीवांचून संभवत नाही,
म्हणून त्याचा विधि आहे, असें होतें. ज्याच्या आश्रयाचें जो झाला तो त्याचा (आश्रयाचा) सर्वथा बाध करित नाही
असा न्याय आहे, जसें—‘नतौ पशौ कराति’ म्हणजे पशुयागाचें ठायीं आज्यभाग करित नाही असा निषेध केला
तरी तो निषेध आज्यभागांचा सर्वथा बाध करित नाही. करील तर उपजीव्याचा (आश्रयाचा) विरोध होईल म्हणून
एकवेळ बाध व एकवेळ आज्यभागांची प्रवृत्ति, याप्रमाणें विकल्प होतो. तसा येथें एकदां विधि एकदां निषेध अर्थात्
विकल्प युक्त आहे, असें जरी आहे तरी ‘एकजाति जो शूद्र त्याचा हा धर्म’ या वाक्यानें तप्तमुद्राधारणाचीं जीं सामान्य
वाक्यें त्यांचा उपसंहार म्हणजे—अनेकांविषयीं प्रवृत्त जीं तप्तमुद्राधारणाचीं सामान्य वाक्यें त्यांचा एक विषयावर म्हणजे
(शूद्रावर पर्यवसान) केल्यामुळे द्विजातील जो तप्तमुद्राधारणनिषेध केला तो अपूर्व नाही, तर नित्य जी अप्राप्ति त्याचाच
अनुवाद (सिद्धकथन) आहे, असा **पृथ्वीचंद्रोदयादि** ग्रंथांचा आशय होय. ह्या वरील सर्व वाक्यांच्या तात्पर्यावरून
तप्तमुद्राधारण केलें तरी दोष आणि न केलें तरी दोष असा संकटपाश आला त्यांतून सुटण्याला मार्ग म्हटला म्हणजे एक
शिष्टाचारच आहे. म्हणजे जसा शिष्टाचार असेल तसें करावें, हा सारांश थोडक्यांत समजावा.

आषाढपौर्णमास्यांकोकिलाव्रतमुक्तंहेमाद्रौभविष्ये आषाढपौर्णमास्यांतुसंध्याकालेबुपस्थिते संकल्प-
येन्मासमेकंश्रावणेप्रत्यहं ह्यहं स्नानंकरिष्येनियताब्रह्मचर्येस्थितासती भोक्ष्यामिनक्तंभूशय्यांकरिष्येप्राणिनां-

१ अन्यार्थत्वात् तसादिपदस्य कृच्छ्राच्चाद्रायाणादिपरत्वात् । २ सप्तसंहितायां तु विष्णुवागमादितंत्रेषु दीक्षितानां विधीयते । शंख-
चक्रगदापद्मैरंकनं नाग्यदेहिनां ॥ वेदमार्गकतिष्ठस्तु मोहेनानंकितो यदि । पतयेव न संदेहस्तथा पुण्ड्रत्तथापि चेत्थुक्तम् ।

दयामिति अस्थनक्तव्रतत्वात्सायाह्वय्यापिनीप्राह्या अत्रैवशिवशयनोत्सवउक्तो हेमाद्रौवामनपुराणे पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपतेचर्मसंस्तरे वैव्याघ्रेचजटाभारंसमुद्राहिवर्ष्मणा मदनरत्नेष्वेवं इयंचप्रदोष-
व्यापिनी अत्रैवव्यासपूजोक्ता तत्रत्रिमुहूर्ताचेत्परैवेति संन्यासपद्धतौ त्रिमुहूर्ताधिकप्राहंपर्वशौरप्रणामयोरिति-
वचनान् इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ आपाढः समाप्तः ॥

आषाढपौर्णमासीस कोकिलाव्रत गांगतो हेमाद्रौत भविष्यांत—“आषाढ पौर्णमासीचे ठायीं संध्याकाल प्राप्त असतां अया संकल्प करावा की, ‘श्रावणाचेठायीं एक महिना प्रत्यहो खान करीन व नियम धारण करून ब्रह्मचर्यव्रतानें राहून नक्त-
भोजन करीन, भुशण्या करीन, व प्राण्यांवर दया करीन’ अशा अर्थाचा संकल्प करावा.” हें व्रत नक्तव्रत अगत्यामुळे ही आपाढी गायहव्यापिनी ध्यावी. याच तिथीस शिवशयनोत्सव गांगतो. हेमाद्रौत वामनपुराणांत—“आषाढ पौर्ण-
मासीचेठायीं उमापति (शंकर) सर्पशरीरानें आपला जटाभार बांधून व्याघ्रचर्मवर शयन करितो.” मदनरत्नांतही असेंच सांगितलें आहे. ही पौर्णिमा शिवशयनोत्सवाविषयी प्रदोषव्यापिनी ध्यावी. याच तिथीला व्यासपूजा सांगितली आहे. व्यासपूजेविषयी दुसऱ्या दिवशीं तीन मुहूर्त (६ घटिका) असेल तर पराच ध्यावी, असें संन्यासपद्धतींत सांगितलें आहे. कारण, “अंधार व नमस्कार याविषयीं पदे ध्यावयाचें तें तीन मुहूर्तांहून अधिक असेल तें ध्यावें” असें वचन आहे. इति आपाढमासनिर्णयाची महाराष्ट्रीका समाप्त झाली.

कर्मसंक्रांतौ पूर्वत्रिंशदंडाः पुण्यकालः सूर्योदयोत्तरसंक्रमेतुपरतएवपुण्यं रात्रौतुनिशीथात्प्राक्परतश्चसंक्रमे-
ऽपराकहेमाद्यनंतभट्टादिमते पूर्वोत्तरदिनयोः पंचनाड्यः पुण्यकालः धनुर्मीनावतिकर्म्यकन्यांचमि-
थुनंतथा पूर्वापरविभागेनरात्रौसंक्रमतेरविः दिनांतपंचनाड्यस्तुतदापुण्यतमाः स्मृताः उदयेपितथापंचदैवे-
पिच्येचकर्मणीत्स्कांदोक्तेः पूर्वापरविभागेनतिसंक्रमेकर्मभ्रंशसंक्रांतिपरं वक्ष्यमाणवचोविरोधादित्युक्तं-
मदनरत्ने तेनायमर्थः रात्रौपूर्वभागेमकरं उदयपंचनाड्यः पुण्यकालः रात्रावपरभागेकर्मकटेदिनांतपंचना-
ड्यः पुण्यकालः विपुवतोस्तु पूर्वदिनेपंचापरदिनेचपंचतिवाक्यांतरानुगोधान तेनहेमाद्रिमाधवयोः सर्व-
वचनानांचाविरोधः माधवमते अर्धरात्रेनदूधवासंक्रांतौदक्षिणायने पूर्वमेवदिनंप्राह्यावत्रोदयतेरविरिति
वृद्धगार्ग्योक्तेः मिथुनात्कर्मसंक्रांतियेदित्यादंशुमालिनः प्रभातेवानिशीथेवातदापुण्यंतुपूर्वतइति भवि-
ष्योक्तेश्चपूर्वदिनएवपुण्यं दक्षिणात्यास्त्वेतदेवाद्वयं अत्ररात्रावपिस्नानादिभवंतीत्युक्तंप्राक् अत्रदा-
नोपवामादिपूर्वमुक्तं तथाकर्मकेशादिकर्तननिषिद्धं कुंभेकर्मकटेकवापिकन्यायांकार्मुकरवो रोमग्वंडंगृहस्थस्यपि-
तृन्प्राशयतेयमइति सुमंतुवचनादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णयेगुरुभिः ॥

आतां श्रावणमास—कर्मसंक्रांतौचे ठायीं पूर्वाच्या तीन घटिका पुण्यकाल होय. सूर्योदयानंतर सकांति झाली तर पुढेंच पुण्यकाल. रात्रां तर मध्यरात्राच्या पूर्वा किंवा नंतर संक्रांत अशा अपराक, हेमाद्रि व अनंतभट्ट इत्यादिकांचे मती पूर्वे व उत्तर अशा दोन दिवशा पांच पांच घटिका पुण्यकाल. कारण, “धनु, गीन, कन्या, मिथुन, या संक्रांती सोडून पुढील संक्रांतंय रात्राच्या पूर्वभागां सूर्य जाईल तर पूर्वदिवसाचे अर्धा पांच घटिका पुण्यकाल. आणि रात्राच्या अपरभागां सूर्य जाईल तर परदिवसाच्या सूर्योदयकार्त्ती पांच घटिका पुण्यकाल देव पिच्य कर्माविषयी जाणावा.” असें स्कंदपुराण-
वचन आहे. “पूर्वापरविभागेकरून” असें जे वरील वचनानें म्हटलें तें मकर व कर्क या संक्रांतींवांचून इतर संक्रांतींविषयक होय. कारण, मकर व कर्क यांविषयीही म्हटलें तर पुढें गांगावयाच्या वचनाना विरोध येईल असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. त्यावरून असा अर्थ होतो की, रात्राच्या पूर्वभागां मकरसंक्रांति होईल, तर परदिवशीं सूर्योदयीं पांच घ० पुण्यकाल. रात्राच्या उत्तरभागां कर्कसं० तर पूर्वदिवसाच्या अर्धी पांच घ० पुण्यकाल. विपुवसंक्रांतीचा तर पूर्वदिवशीं पांच व पुढील दिवशीं पांच घटिका असा अन्य वाक्यांच्या अनुगोधानें अर्थ समजावा. तेणेंकरून हेमाद्रि, माधव व इतर सर्ववचनांची एकवाक्यता होऊन विरोध नाहीया होतो. माधवमतीं तर अर्धरात्री किंवा त्यापुढें संक्रांत झाली असतां दक्षिणायनाचेठायीं पूर्वच दिवस पुण्यकाल ध्यावा. कारण, “जोपर्यंत सूर्योदय झाल्या नाही” असें वृद्धगार्ग्योचें वचन आहे व “सूर्याची मिथुनापासून कर्मसंक्रांति जर प्राप्तःकार्त्ती किंवा मध्यरात्री होईल *तर पूर्वी पुण्यकाल” असें भविष्य-
वचनही आहे. म्हणून पूर्वदिवशींच पुण्यकाल होतो. दक्षिणदेशीयलोक तर या पक्षाचाच खोकार करतात. या पुण्यकाली

१ केशादीति नगनामनुक्तवात्तखंडनेनदोषरह्यादुः । कर्तनमितवपनस्यापिग्रहः । रोमखंडमितिसामान्योक्तेः । २ गृहस्थस्येति
वर्णादित्युदासः जीवत्पितृकस्यापित्युदास्रतिकेचित् ।

रात्रीसही स्नानदानादि कर्णवं असे पूर्वी सांगितलें आहे. ह्या संक्रांतीचेअर्थी दान उपवासादिक करणें तें पूर्वी (प्रथमपरिच्छेदांत) सांगितलें आहे. तसेंच कर्कसंक्रांतिस्थ रवि असतां केशादिकांचें कर्तन (कापणें) करूं नये. कारण, “कुंभ, कर्क, कन्या, धनु, यांस रवि असतां जर केशादिकर्तन केलें तर गृहस्थाचे रोमखंड पितरांकडून यम खाववितो” असे सुमंतु-वचन आहे असें जीवत्पितृकनिर्णयांत गुरूंनीं सांगितलें आहे.

अथनदीनारजोदोषः हेमाद्रावत्रिः सिंहकर्कटयोर्मध्येसर्वानद्योरजस्वलाः नस्नानादीनिकर्माणितासु कुर्वीतमानवः इदंचक्षुद्रनदीषु सिंहकर्कटयोर्मध्येसर्वानद्योरजस्वलाः तासुस्नानंनकुर्वीतवर्जयित्वासमुद्रगाइति व्याघ्रोक्तेः मात्स्येत्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तं यावन्नोदेतिभगवान्दक्षिणाशाविभूषणः तावद्रजोमहानद्यः- करतोयाःप्रकीर्तिताः करतोयाअल्पतोयाः तथाकात्यायनः याःशोपमुपगच्छंतिग्रीष्मेकुसरितोभुवि तासु- प्रावृषितस्नायादपूर्णदशवासरे इदंचापदि स्मृतिसंग्रहे धनुःसहस्राण्यष्टौतुगतिर्यासानविद्यते नतानदी- शब्दवहागर्तास्ताःपरिकीर्तिताः महानदीषुभविष्येउक्तं आदौतुर्कटदेविमहानद्योरजस्वलाः त्रिदिनंच- षत्तुर्येहिशुद्धाःस्युर्जाह्वीयथा महानद्यश्चब्राह्मे गोदावरीभीमरथीतुंगभद्राचवेणिका तापीपयोष्णीविंध्यस्य- दक्षिणेतुप्रकीर्तिताः भागीरथीनर्मदाचयमुनाचसरस्वती विशोकाचविहस्ताचविंध्यस्योत्तरसंस्थिताः द्वादशै- तामहानद्योदेवर्षिक्षेत्रसंभवाः मदनरत्नेपुराणांतरे महानद्योदेविकाचकावेरीवंजरातथा रजसातुप्रमुद्राः- स्युःकर्कटादौत्र्यहंनृप कात्यायनः कर्कटादौरजोदृष्टागोमतीवासरत्रयं चंद्रभागासतीसिंधुःसरयूर्नर्मदा- तथा इदंगंगाद्यतिरिक्तविषयं गंगाचयमुनाचैवप्लक्षजातासरस्वती रजसानाभिभूयंतयेचान्येनदसंज्ञिताः शोण- सिंधुहिरण्याख्याःकोकलोहितघर्घराः शतद्रुश्चनदाःसप्तपावनाःपरिकीर्तिताः इतिदेवलोक्तेः यत्तु प्रथमं- कर्कटदेविष्यहंगंगारजस्वलेत्यादिवचनं तज्जाह्वीभिन्नगोदावर्यादिगंगांतरपरमितिमदनरत्ने अन्येत्वंतर्ग- तरजोविषयं गंगाधर्मद्रवःपुण्यायमुनाचसरस्वती अंतर्गतरजोदोषाःसर्वावस्थासुचामला इतिनिगमोक्तेः ।

आतां नदींस रजोदोष सांगतो.

हेमाद्रीत अत्रि—“सिंह व कर्क या संक्रांतीमध्ये सर्व नद्या रजस्वला होतात त्यांमध्ये मनुष्यां स्नानादि कर्मे करूं नयेत.” हें वचन क्षुद्रनदीविषयक आहे; कारण, “सिंह व कर्क या संक्रांतीत सर्व नद्या रजस्वला असतात, त्यांत स्नान करूं नये, हा निषेध समुद्रास पांचणाऱ्या महानद्या सोडून समजावा.” असे व्याघ्रवचन आहे. मात्स्यपुराणांत तर अगस्त्योदयापर्यंत नद्या रजस्वला असतात असें उक्त आहे—जोपर्यंत दक्षिणदिशेला भूषणभूत भगवान् अगस्त्यऋषि उदय पावत नाही तोपर्यंत अल्पोदक महानद्या रजस्वला असतात.” तसेंच कात्यायन म्हणतो—“ग्रीष्मऋतूंत शुष्क होणाऱ्या ज्या लहान नद्या त्यांत वर्षाकालीं दहा दिवसपर्यंत स्नान करूं नये.” हें वचन आपत्कालविषयक समजावें. आपत्काल नसतां वरील वचन समजावें. स्मृतिसंग्रहांत सांगतो—“ज्या नद्यांची आठ हजार धनुष्ये गति नाही त्यांम नद्या म्हणूं नयेत, तर त्या गर्त होत.” महानदीविषयीं तर भविष्यांत सांगतो—“कर्कसंक्रांतीत प्रथम तीन दिवस महानद्या रज- स्वला असून चवथ्या दिवशीं भागीरथीसारख्या शुद्ध होतात.” महानद्या कोणत्या तें ब्रह्मपुराणांत सांगतो—“गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी ह्या विंध्याद्रीच्या दक्षिणेस होत. भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, विहस्ता ह्या विंध्याद्रीच्या उत्तरेस अशा ह्या बारा नद्या देवर्षिक्षेत्रांत उत्पन्न महानद्या आहेत.” मदनरत्नांत पुराणांत- रांत—“महानदी, देविका, कावेरी, वंजरा ह्या कर्कसंक्रांतींत प्रथम तीन दिवस रजोदूषित होतात.” कात्यायन—“कर्क- संक्रांतीच्या आरंभी तीन दिवस गोमती, चंद्रभागा, सती, सिंधु, सरयू, नर्मदा ह्या नद्या रजोदूषित होतात.” हा रजोदोष गंगादिव्यतिरिक्त नद्यांस होय. कारण, “गंगा, यमुना, प्लक्षजाता, सरस्वती, या रजोदूषित होत नाहीत व जे नदसंज्ञक तेही रजोदूषित होत नाहीत. ते नद असे—शोण, सिंधु, हिरण्य, कोक, लोहित, घर्घर, शतद्रु हे सात नद पवित्र सांगितले आहेत.” असें देवलोचें वचन आहे. आतां जें “हे देवि, कर्कसंक्रांतीत प्रथम तीन दिवस गंगा रजस्वला असते” इत्यादि वचन तें जाह्नवीव्यतिरिक्त ज्या गोदावर्यादि अन्य गंगा तद्विषयक होय, असें मदनरत्नांत आहे. अन्य ग्रंथकार तर तें वचन अभ्यंतर रजोविषयक आहे असें म्हणतात; कारण, “गंगा, धर्मद्रव, पुण्या, यमुना, सरस्वती, ह्या नद्या अंतर्गतरजोयुक्त असतात म्हणून सर्वदा स्वच्छ आहेत” असें निगमवचन आहे.

तीरवासिनांतुरजोदोषोनास्ति नतुबत्तीरवासिनामितिनिगमोक्तेः रजोदुष्टमपिजलंगंगाजलयोगेपावनं गंगांभसासमायोगाद्दुष्टमप्यंबुपावनमितिमातस्योक्तेः नूतनकूपादौतुयोगियाज्ञबल्क्यः अजागावोम-
हिष्यश्चब्राह्मणीचप्रभृतिका भूमेर्नवोदकंचैवदशरात्रेणशुध्यतीति कचित्त्वदोषमाहृत्याघपादः अभावेकूप-
वापीनामनपायिपयोभृतां रजोदुष्टेपिपयसिग्रामभोगोनदुष्यति गौडास्तु अन्येनापिसमुद्भूतेइतिद्वितीयपा-
देपाठः तेनोद्धृतेनदोषः तथाचतासुस्नानेनेतिप्रागुक्तमित्याहुः वसिष्ठोपि उपाकर्मणिचोत्संग्रंतेतस्मानेतथै-
वच चंद्रसूर्यग्रहेचैवरजोदोषोनाविद्यते इत्यलंविस्तरेण ।

तीरवासी लोकांस तर रजोदोष नाही. "कारण, त्या नद्यांच्या तीरवासीजनांस स्नानादिकांविषयीं दोष नाही" असें निगम-
वचन आहे. रजोदुष्टही उदक गंगाजलाच्या योगानें पवित्र होतें. कारण, "गंगाजलाशीं योग झाला म्हणजे दुष्ट असलेलेंही
उदक पवित्र होतें" असें मत्स्यपुराणांत वचन आहे. नूतन कूपादिकांविषयीं तर योगियाज्ञबल्क्य म्हणतात—
"वकरी, गाई, महिषी, ब्राह्मणी ह्या प्रभूत जाल्या अगतां व भूमीचें नवोदक हीं दहा दिवसांनीं शुद्ध होतात." कचित्
छिकाणीं दोष नाही असें सांगतो—व्याघ्रपाद—"शुष्क न होणाऱ्या अशा उदकांनं युक्त असे कूप, वापी नसतील तर
रजोदुष्टही उदक गांवांतील लोक मेवन करतील तर ते दूषित होणार नाहीत." गौड तर वरील व्याघ्रपादवचनाचे
द्वितीयचरणीं "अनपायिपयोभृतां" या स्थानीं "अन्येनापि समुद्भूते" अशा पाठ मानितात, तेणेंकरून काढलेल्या
जलाविषयीं दोष नाही. त्यांमध्ये स्नान करूं नये, असें पूर्वी सांगितलें आहे, असें सांगतात. वसिष्ठही—"उपाकर्म, उत्तर-
र्जन, प्रेतस्नान व चंद्रसूर्यग्रहण, यांविषयीं रजोदोष नाही." याप्रकारें विस्तार केला इतका पुरे.

श्रावणशुक्लतृतीयामधुस्रवाग्यागुर्जेरपुप्रमिद्धा मापरयुताप्राह्येतिदिवोदासः श्रावणशुक्लचतुर्थीपूर्वयुता
मातृविद्वोगोष्णरश्म्यादिवचनान श्रावणशुक्लपंचमीनागपूजादौपरंवेतिसामान्यनिर्णयेउक्तं चमत्कार-
चिंतामणौ पंचमीनागपूजायांकार्यापश्रीममन्विता तस्यांतुपितानागाइतरासचतुर्थिकेति श्रावणेपंचमी-
शुक्लासंप्रोक्तानागपंचमी तांपरित्यज्यपंचम्यश्चतुर्थीमहिताहिताइतिमदनरत्नेभिधानाच्च तेनपरंवेति अत्र-
विशेषोहेमाद्रौभविष्ये श्रावणमासिपंचम्यांशुक्लपश्चनर्गाधिप द्वारस्योभयतोलेख्यागोमयेनविपोलबणाः
पूजयेद्विधिवद्वीरदधिर्द्वारकुरेःकुशैः गंधपुष्पोपहारैश्चब्राह्मणानांचतर्पणैः येतस्यांपूजयंतीहनागान्भक्तिपुरः-
सराः नतेपांसपत्नेवीरभयंभवत्तिकुचचिदिति श्रावणशुक्लद्वादश्यांदधिव्रतंप्रागुक्तं तत्कादीनांत्वनिषेधः तत्रदधि
व्यवहाराभावादितिवक्ष्यते ।

श्रावणशुक्ल तृतीया ही मधुस्रवानाम्ना गुर्जेरदेशांत प्रसिद्ध आहे. ती चतुर्थांयुक्त ध्यावी असें दिवोदास सांगतो.
श्रावणशुक्ल चतुर्थां ही तृतीयायुक्त ध्यावी; कारण, चतुर्थां तृतीयाविद्ध ध्यावी, इत्यादि वचन आहे. श्रावणशुक्ल पंचमी नाग-
पूजादिकृत्यांविषयीं पराच ध्यावी, असें सामान्यनिर्णयान (प्रथमपरिच्छेदांत) सांगितलें आहे. चमत्कारचिंताम-
णौ—"नागपूजेविषयीं पंचमी पश्यायुक्त करवी; कारण, तिचे ठायीं नाग संतुष्ट होतात. इतर कृत्यांविषयीं पंचमी
चतुर्थांयुक्त ध्यावी." आणि "श्रावणशुक्ल पंचमी ही नागपंचमी म्हण्टी आहे, ती वज्र करून गर्वे पंचमी चतुर्थांयुक्त ध्याव्या
त्या हिनकारक होत." असें मदनरत्नांतही सांगितलें आहे. तेणेंकरून पराच ध्यावी. या तिथीचे ठायीं विशेष सांगतो—
हेमाद्रौभविष्यपुराणांत—"श्रावणमहिन्यांत शुक्लपक्षीं पंचमीम गृहद्रागाच्या दोन बाजूंम गोमयांनं भित्त सारवून
गर्भ काढावे आणि दधि, दूर्वाकुर, कुश, गंध, पुष्प, उपहार, ब्राह्मणभोजन यांहींकरून यथाशास्त्र पूजावे. जे मनुष्य या
पंचमीम भक्तियुक्त नागपूजन करतील त्यांस सर्पापासून भय कोटेंही होणार नाही." श्रावणशुक्ल द्वादशीम दधिवर्जनरूप
व्रत पूर्वी सांगितलें आहे, त्यांत तत्कादिकांचा निषेध नाही. कारण, तत्काविषयीं दधिशब्दाचा व्यवहार नाही, असें पुढें सांगूं.

अत्रैवविष्णोःपवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौविष्णुरहस्ये श्रावणस्यसितेपक्षेकर्कटस्थंदिवाकरे द्वादश्यां
वामुदेवायपवित्रारोपणंस्मृतं द्वादश्यांश्रावणेवापिपंचम्यामथवाद्विज आनुकूल्येपुर्कर्तव्यंपंचदश्यामथापिवेति
शिवेतुतत्रैवकालोत्तरे आपाढांतचतुर्दश्यांनभस्यनभसोस्था अष्टम्यांचचतुर्दश्यांपक्षयोरुभयोःसममिति
अन्यदेवतानांतुवक्ष्यते अधिवासनंतुदीपिकायां गोदोहांतरितेकालपूर्वगुर्वाधिवाहनमिति गौणका-
लोरामार्चनचंद्रिकायां पवित्रारोपणंविघ्नाच्छ्रावणेनभवंद्यदि कार्तिक्यवधिशुक्लास्तेकर्तव्यमितिनारदः

हैमरोप्यतान्नश्रौमैःसूत्रैःकौशेयपद्मजैः कुशैःकाशैश्चकार्पासैर्ब्राह्मण्याकृतितैःशुभैः कृत्वात्रिगुणितंसूत्रत्रिगु-
णीकृत्यशोधयेत् तत्रोत्तमंपवित्रंतुषष्ट्यासहस्रतैस्त्रिभिः सप्तत्यासहितंद्वाभ्यांशताभ्यामध्यमंस्मृतं साशीतिना-
शतेनैवकनिष्ठतत्समाचरेत् साधारणपवित्राणित्रिभिःसूत्रैःसमाचरेत् उत्तमंतुशतग्रंथिपंचाशद्विंशमध्यमं कनि-
ष्ठंतुपवित्रंस्यात्षट्त्रिंशद्विंशशोभनं षट्त्रिंशच्चतुर्विंशद्वादशेतिचकेचन चतुर्विंशद्वादशाष्टाविलेकेमुनयोविदुः
हेमाद्रौविष्णुरहस्येत्वन्यथोक्तं अष्टोत्तरशतंकुर्याच्चतुःपंचाशदेववा सप्तविंशतिरेवाथष्टमध्यकनीयसं
अधमंनाभिमात्रंस्याद्रूमित्रंद्वितीयकं प्रलंब्रतोजानुमात्रंप्रतिमायांनिगद्यते शिवपवित्रंतुतत्रैवशैवागमे
एकाशीत्यथासूत्रैस्त्रिंशतावाप्रयुक्तया पंचाशतावाकर्तव्यंतुत्यग्रंयंतरालकं द्वादशंगुलमानानिव्यासाद-
ष्टंगुलानिवा लिंगविस्तारमानानिचतुरंगुलकानिचेति ।

ह्याच द्वादशीचेठायां विष्णूचें पवित्रारोपण मांगितलें आहे—**हेमाद्रींत विष्णुरहस्यांत**—“श्रावणमासाच्या शुक्लपक्षां
कर्कास सूर्य अमतां द्वादशीस विष्णूचें पवित्रारोपण करावें. द्वादशी किंवा श्रावणनक्षत्र किंवा पंचमी अथवा पौर्णिमा यांतून
अनुकूल असेल त्या दिवशीं पवित्रारोपण करावें.” शिवाचें पवित्रारोपण तर—**हेमाद्रींत कालोत्तरांत**—“आषाढाच्या
शेवटीं चतुर्दशीस किंवा श्रावण, भाद्रपद यांच्या दोनही पक्षांच्या अष्टमी, चतुर्दशी या दोनही तिथींम पवित्रारोपण समान
होय.” अन्य देवतांचें पवित्रारोपण पुढें सांगूं. अधिवासन सांगतो—**दीपिकेंत**—“त्या दिवशीं गोदोहनसमयीं (प्रातः-
काली) किंवा पूर्वदिवशीं अधिवासन करावें.” गौणकाल सांगतो—**रामार्चनचंद्रिकेंत**—“कांहीं विप्रानें श्रावणांत जर
पवित्रारोपण झालें नाहीं तर कार्तिकीपौर्णमिपर्यंत शुक्लास्तांतही करावें, असें नारद सांगतो. सुवर्ण, रुपें, तांबें, जवग, रेशीम,
कमल, कुश, काश, कापूर यांचें ब्राह्मणीचें काढलेलें सून घेऊन तें सूत्र त्रिगुण करून पुनः तिष्ठ करून शुद्ध करावें
(धुवावें) त्या तीनशेंसाठ सूत्रांचें पवित्रक उत्तम, दोनशेंसत्तरांचें मध्यम, एकशेंगोशीं सूत्रांचें कनिष्ठ होय, याप्रमाणें तें
करावें. साधारण पवित्रकें तीन सूत्रांनीं करावीं. शंभर ग्रंथींचें पवित्रक उत्तम, पन्नास ग्रंथींचें मध्यम, छत्तीस ग्रंथींचें
कनिष्ठ होय. छत्तीस, चोवीस, बारा ग्रंथींचें अनुक्रमानें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ असें कोणी म्हणतात. चोवीस, बारा, आठ
ग्रंथींचें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ असें कितीएक मुनि म्हणतात.” **हेमाद्रींत विष्णुरहस्यांत** तर निराळेंच सांगितलें
आहे—तें असें—“एकशेंआठ, चौपन्न, सत्तावीस, नव सूत्रांचें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ होय. प्रतिमंच्या नाभीपर्यंत पांचवणारें
कनिष्ठ, मांड्यांइतकें मध्यम, गुडघ्यांइतकें उत्तम.” शिवपवित्रकें तर **हेमाद्रींत शैवागमांत** सांगतो—“एकयायशीं,
किंवा अडतीस अथवा पन्नास सुतांचीं व तितक्याच ग्रंथींनीं युक्त करावी. बारा किंवा आठ अथवा चार अंगुलें लिंगाचा
विस्तार असेल तशीं पवित्रकें करावीं.”

अधिकारिणोपितत्रैवविष्णुरहस्ये ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यस्तथास्त्रीशूद्रपण्यच स्वधर्मावस्थिताःसर्वेभ-
क्त्याकुपुःपवित्रकं तथा अतोदेवेतिमंत्रेणद्विजोविष्णौनिवेदयेत् शूद्रस्यमूलमंत्रोवायेनवापूजयेद्धरिं एतच्चनित्यं
नकरोतिविधानेनपवित्रारोपणंतुयः तस्यांवात्सरीपूजानिष्फलामुनिसत्तम तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरा-
यणैः वर्षेवर्षेप्रकर्तव्यंपवित्रारोपणंहरेरितितत्रैवोक्तेः देवताविशेषेतिथयोपितत्रैव धनदश्चरमागौरीग-
णेशःसोमराज्जुहः भास्करश्चंडिकांवाचवासुकिश्चतर्पयः चक्रपाणिर्हर्नंगश्चशिवोब्रह्मातथैवच प्रतिपत्प्रभृ-
तिष्वेताःपूज्यास्तिथिपुदेवताः यथोक्ताःशुक्लपक्षेतुतिथयःश्रावणस्यचेति तथा**हेमाद्रौकालोत्तरे** चतुर्द-
श्यामथाष्टम्यांसर्वसाधारणंतुतदिति ।

त्याविषयीं अधिकारीही हेमाद्रींत विष्णुरहस्यांत सांगतो—“स्वधर्मावस्थित असे ब्राह्मण, क्षात्रिय, वैश्य, स्त्री,
शूद्र, या सर्वांनीं भक्तीनें पवित्रकें करावीं.” तसेंच—“द्विजांनीं ‘अतोदेवा०’ या मंत्रानें विष्णूस निवेदन करावें. शूद्रांनीं
मूलमंत्रानें अथवा जेणेंकरून हरीचें पूजन करील त्या मंत्रानें पवित्र वाहावें.” हें पवित्रारोपण नित्य आहे; कारण—“जो
मनुष्य यथाविधि पवित्रारोपण करणार नाहीं त्याची संवत्सरपूजा व्यर्थ होते, यास्तव भक्तियुक्त व विष्णुपरायण मनुष्यांनीं
प्रतिवर्षीं हरीचें पवित्रारोपण करावें.” असें तेथेंच वचन आहे. इतर देवतांच्या पवित्रारोपणाविषयीं तिथीही तेथेंच सांगतो—
“कुबेर, रमा, गौरी, गणेश, चंद्र, स्कंद, सूर्य, चंडिका, देवी, वासुकि, ऋषि, चक्रपाणि, काम, शिव, ब्रह्मा, ह्या देवतांचें
पवित्रारोपण प्रतिपदादि तिथींचे ठायीं अनुक्रमें करावें. ह्या तिथि श्रावण शुक्लपक्षांच्या ध्याव्या. तसेंच **हेमाद्रींत कालो-
त्तरांत**—“चतुर्दशीस किंवा अष्टमीस सर्वेधारण पवित्रारोपण करावें.”

तत्प्रकारस्तुरामार्चनचंद्रिकायां यथा ततस्तानिपवित्राणिवैणवेपटलेशुभे संस्थाप्यशुचिवक्षेणपिधाय

पुरतो न्यसेत् अरत्निसंमितां वेणीं कुर्यात्षट्त्रिंशताकुशैः क्रियालोपविधातार्थयत्त्वया विहितं प्रभो मयैतत्क्रियते-
देवतव तुष्ट्यै पवित्रकं न मे विप्रो भवेद्देवकुरु नाथ दयामयि सर्वथा सर्वदा विष्णो मम सर्वं परमा गतिः उपवासेन दे-
वत्वां तोषयामि जगत्पते कामक्रोधादयोप्येते न मे सुर्वत्रे तघातकाः अद्य प्रभृति देवेश यावद्देशिकं दिनं तावद्रक्षा-
त्वया कार्या सर्वस्यास्य न मोस्तुते इति देवं संप्राथ्यं कुंभं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे ॐ सांवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरण-
ाय भो विष्णु लोकात्पवित्राद्य आगच्छेह न मोस्तुते अने न मूलेन चावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान् सत्व-
रजस्तमांसि वेदत्रयं वैनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिमूर्त्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रंथिषु क्रिया पौरुषी वीरा
विजया ईशा अपराजिता मनोन्मनी जया भद्रा मुक्तिश्चेत्यावाह्य संपूज्य ॐ संवत्सरकृताचार्याः संपूर्णफल-
दोषियन् पवित्रारोपणायैतत्कुरु कंधर ते नमः विष्णुते जोद्धुं वं रम्यं सर्वपातकनाशनं सर्वकामप्रदं देवतवांगो धार-
त्रास्य हस्मिति देवकरे मंगलसूत्रं बध्वा देवं संपूज्य निमंत्रयेन आमंत्रितो सिद्देश पुराण पुरुषोत्तम प्रातस्त्वां पूजयि-
ष्यामि सांनिध्यं कुरु केशव क्षीरोदधि महानागशय्यावस्थितविग्रह प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः
निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरे तत्पवित्रकं सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे ततः पुष्पांजलिं दत्त्वा राजौ जागरणं
कुर्यादिति **अभिवासनम् ।**

त्या पवित्रारोपणाया प्रकार गंगतो—**रामार्चनचंद्रिकेत**—पूर्वोक्तप्रमाणं पोवर्त्ती तयार केल्यानंतर ती पवित्रकं
चांगल्या वेणिव (वेल्च्या) पात्रांत ठेवन शुद्ध वस्त्रां आच्छादन देवापुढे ठेवावी. अर्चमानाची छतांन दर्भाची वेणी करून
ती त्या पवित्रकांत ठेवन प्रार्थना करावी **प्रार्थनेचे मंत्र**—‘क्रियालोपविधातार्थयत्त्वया विहितं प्रभो ॥ मयैतत्क्रियते
देव तव तुष्ट्यै पवित्रकं ॥ न मे विप्रो भवेद्देव कुरु नाथ दयामयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम सर्वं परमा गतिः ॥ उपवासेन
देव त्वां तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे सुर्वत्रे तघातकाः ॥ अद्य प्रभृति देवेश यावद्देशिकं दिनं ॥ तावद्रक्षा
त्वया कार्या सर्वस्यास्य न मोस्तु ते ॥’ यशी देवाची प्रार्थना करून हेम स्थापन त्यावर वंशपात्रामध्ये—‘**ॐ सांवत्स-**
रस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भो ॥ विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह न मोस्तु ते ॥’ या मंत्रांन व मूलमंत्रांन
आवाहन करून उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रांचे ठाणीं विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र तंमंन गत्व, रज, तम व तीन वेद यांचे आवाहन
आणि वनमालावर प्रकृतींचे आवाहन करून त्रिमूर्तींचे ठाणीं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र व ग्रंथोच्यं ठाणीं क्रिया, पौरुषी, वीरा, विजया,
ईशा, अपराजिता, मनोन्मनी, जया, भद्रा, मुक्ति यांचे आवाहन करून पूजा करून ‘**ॐ संवत्सरकृताचार्याः संपूर्ण-**
फलदोषियन् ॥ पवित्रारोपणायैतत् कुरु कंधर ते नमः ॥ विष्णुते जोद्धुं वं रम्यं सर्वपातकनाशनं ॥
सर्वकामप्रदं देव तवांगे धारयाम्यहं ॥’ या मंत्रांन देवाचे हस्तांन मंगलमंत्र वांधून देवाची पूजा करून निमंत्रण
करवें. तें असे—‘**आमंत्रितो सिद्देश पुराण पुरुषोत्तम ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सांनिध्यं कुरु केशव ॥**
क्षीरोदधि महानागशय्यावस्थितविग्रह ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ निवेदयाम्यहं
तुभ्यं प्रातरे तत्पवित्रकं ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे ॥’ असे निवेदन करून नंतर पुष्पांजलि
देऊन रात्री जागरण करवें—याप्रमाणे हे अभिवासन होय.

प्रातर्नित्यपूजांकृत्वा गंधर्वाभ्रतयुतं पवित्रमादाय ॐ देवदेवतमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकं पवित्रीकरणार्थाय-
वर्षपूजाफलप्रदं पवित्रकं कुरुष्व आशयन्मया दुष्कृतं कृतं शुद्धो भवाभ्यहं देवत्वत्प्रसादान्महेश्वर मूलसंपुटितेना-
नेन दत्त्वांगे देवताभ्यो नान्नासमर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य मणिविद्रुममालाभिरित्यादिभिर्दमनारोपोक्तमं-
त्रैः प्रार्थयित्वा गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वाभ्यंगं धारयेत् तथा मासपञ्चमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत् तथा देवेतं सूत्रसंदर्भ-
देशकालविवक्षया अकरणे तु तत्रैव पवित्रारोपणकालेन करोति कथंचन तदायुतं जपेन्मंत्रं स्तोत्रं वापि समाहित
इत्युक्तं **इति पवित्रारोपः** श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुताप्राह्णा अत्रवत्कव्यो विशेषश्चैत्रचतुर्दश्यामुक्तः ।

प्रातःकाळीं नित्यपूजा करून गंध, दूर्वा, अक्षतायुक्त पवित्रक घेऊन “**ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवि-**
त्रकं ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदं ॥ पवित्रकं कुरुष्व आशयन्मया दुष्कृतं कृतं ॥ शुद्धो भवाभ्यहं
देव स्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥” या मूलसंपुटित मंत्रांन पवित्रक अर्पण करून अंगदेवतांस नाममंत्रांन समर्पून महानैवेद्य

१ वनमालाक्षणे तत्रैव । आरभ्य शुद्धं यावत्स्पर्शविरजिता शुभा ॥ आपादलं विनी माला वनमाला प्रकीर्तिषा ॥ २ निस्तुव जी
निष्ठांगुली, तिनें युक्त जी मुष्टि तपुक्त जी हात तो भरल्लि होय.

देऊन आरती करावी. नंतर “मणिविद्रुममालाभिः” इत्यादिक दसनारोपणीं पूर्वी सांगितलेल्या मंत्रांनीं प्रार्थना करून गुरु व ब्राह्मण यांसही पवित्रकें देऊन आपण स्वतां धारण करावें. तसेंच “महिना, पंधरा दिवस, अहोरात्र, किंवा त्रिरात्र देशकालानुसार देवाचेठायीं तें सूत्र (पवित्रक) ठेवावें.” हें पवित्रारोपण न केलें तर रामार्चनचंद्रिकेंतच—“पवित्रारोपण उक्तकालीं न करील तर मंत्राचा (त्या देवतेच्या मूलमंत्राचा) दहा हजार जप किंवा स्तोत्राचा जप एकाप्रचित्तानें करावा” असें सांगितलें आहे. इति पवित्रारोपणम् ॥ श्रावणशुद्ध चतुर्दशी पूर्वतिथीनें विद्ध अशी ध्यावी. येथें सांगावयाचा विशेष प्रकार तो चैत्रचतुर्दशीस सांगितला आहे, तो तेथें पाहा.

अथोपाकर्म तत्रबहुचानांप्रयोगपारिजातेशौनकः अथातःश्रावणेमासेश्रवणक्षयुतेदिने श्रावण्यांश्रावणेमासिपंचम्यांहस्तसंयुते दिवसेविदधीतेतदुपाकर्मयथोदितं अध्यायोपाकृतिंकुर्यात्तत्रोपासनवह्निनेति अत्र पौर्णमास्युपसंहारग्न्यायेनयजुर्वेदिपरेतिहेमाद्रिः अत्रहस्तयुक्तापंचम्युक्ता कारिकापि तन्मासेहस्तयुक्तायांपंचम्यांवातदिष्यते इति केवलपंचम्यांहस्तयुतेन्यग्मिनदिनेइतिहेमाद्रिः उपासनवह्निनेतितु कर्मद्वयमिदंकेचिल्लौकिकाग्नौप्रकुर्वतेइतिकारिकोक्तलौकिकाग्निनाविकल्पते तत्राध्याय्यायैरन्वारब्धइतिसूत्रात्सशिष्यत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नांनान्यस्याग्नावन्योजुह्यादितिनिषेधाल्लौकिकएव तदभावेतुस्मार्तैइति निर्गर्वः ।

आतां उपाकर्म (श्रावणी) सांगतो.

प्रयोगपारिजातांत शौनक—“यानंतर श्रावणमासांत श्रवणनक्षत्रयुक्त दिवशीं, श्रावणीपूर्णिमेस, श्रावणमासाच्या पंचमीस, हस्तयुक्त दिवशीं हें उपाकर्म यथांक्त विधीनं करावें. वेदांचें उपाकरण (स्वीकार) उपासनाग्नीनं करावें.” अथे श्रावणीपूर्णिमासी सांगितली ती उपसंहारग्न्यायानं यजुर्वेदिविषयक आहे. असें हेमाद्रि सांगतो. या कर्माविषयीं हस्तयुक्त पंचमी सांगितली आहे. **कारिकाही**—“अथवा त्या पूर्वोक्तमासांत हस्तयुक्त पंचमीस ते उपाकर्म इष्ट आहे.” केवल पंचमीस व हस्तयुक्त इतर दिवशीं करावें, असें तर हेमाद्रि सांगतो. बरील वचनांत ‘उपासनवह्निना’ असें आहे तें तर “हीं दोन कर्में (उपाकर्म व उत्पन्न) कितीएक लौकिकाग्नीवर करितात” ह्या कारिकेंत सांगितलेल्या लौकिकाग्नीशीं विकल्पित (उपासनाग्नीनं किंवा लौकिकाग्नीनं करावें असें) हांतें तो विकल्प असतांही “शिष्यांनीं अन्वारब्ध अशा आचार्यानें करावें” ह्या सूत्रावरून शिष्यांसह करावयाचें असतां त्या उपकर्माविषयीं शिष्य अधिकारी असल्यामुळे ‘दुग्ध्याच्या अग्नीवर अन्यानं होम कर्हे नये’ या वचनांत आचार्याच्या अग्नीवर होमाचा निषेध असल्यामुळे लौकिकाग्नीवरच करावें असें झालें. शिष्यांच्या अभावीं तर स्मार्ताग्नीवर करावें, असें निर्गर्व सांगतो.

यद्यपिदीपिकायां वेदोपाकृतिरोपधिप्रजननेपक्षेसितेश्रावणेइति शुक्लपश्चापिसर्वेषामुल्लेखकालत्वेनोक्तः वक्ष्यमाणं गार्ग्यवचनेनछंदोगान्प्रतिविहितस्यतस्याविरोधिनःसर्वान्प्रतिप्रवृत्तश्च तथापिश्रावणमाससंबंधस्यसूत्रोक्तत्वात्कृष्णपक्षेपिकार्यमितिबृद्धाः तथाचसूत्रम् अथातोध्यायोपाकरणमोपधीनांप्रादुर्भावेश्रवणेनश्रावणस्यपंचम्यांहस्तेनवा अत्रश्रवणोमुख्योन्येगौणाः तत्प्राथम्यात् तस्याहर्द्वययोगेहेमाद्रौन्यासः धनिष्ठासंयुतंकुर्याच्छ्रावणकर्मयद्भवेत् तत्कर्मसफलंज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितं श्रवणेनतुयत्कर्मह्युत्तरापादसंयुतं संवत्सरकृतोध्यायस्तत्क्षणादेवनश्यतीति गार्ग्योपि उदयव्यापिनिखेवविण्णवर्क्षघटिकाद्वयं तत्कर्मसफलंज्ञेयं तस्यपुण्यत्वंनंतकं इति पूर्वैश्चुत्तरापाढायोगेपरेश्रवणाभावेघटिकाद्वयन्यूनेवापंचम्यादौकार्यं नतुपूर्वविद्धायांसंगवमात्रे अपवादाभावात् किंच परेश्रुःसंगवास्पर्शेनिषिद्धपूर्वाग्रहणेकिंमानं संगववाक्यंश्रवणवाक्यं चेतिचेत् तर्हिब्रीहिवाक्यादश्चशफवाक्याश्चमाषमिश्राणामप्युपादानंस्यादितिमहत्पांडित्यं निषेधानुप्रवेशान्नैरपेक्ष्यबाधानेतिचेत् इहापितुल्यं एतेनपर्वप्यौदयिकंव्याख्यातं निषेधानुप्रवेशोभयत्रतुल्यत्वान् ।

आतां जरी दीपिकेंत—“ओषधी उत्पन्न झाल्या असतां श्रावणशुक्लपक्षांत वेदांचें उपाकरण करावें” असा शुक्लपक्षही सर्वास मुख्य काळ सांगितला आहे; आणि पुढें सांगावयाच्या ‘शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्णिकं’ ह्या गार्ग्यवचनांत

१ उपाकर्मैतिकर्मनामधेयं । अध्यायोपाकरणमित्यादेस्तु अधीयते यः सोध्यावो वेदस्तस्योपाकरणं उपक्रममित्यर्थः । २ अधीयंत इत्यध्यायावेदास्तेषामुपाकृतिरारंभः । ३ स्मार्तं इति शिष्याभावेपि स्मार्तासत्त्वे लौकिको बोध्यः । ४ शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मापराह्णिकम् । ५ ब्रीहिरिभ्यजेत, ‘अश्वशफपरिमितैर्यजेत’ इति वाक्ये ।

छंदोगशाख्यांना शुक्लपक्ष सांगितलेला असून तो अविरुद्ध असल्यामुळे सर्वशाख्यांना प्रवृत्तही होत आहे तरी श्रावणमासाचा संबंध सूत्रांने उक्त असल्यामुळे कृष्णपक्षांतही करावे, असे वृद्ध सांगतात. तेंच सूत्र सांगतो—“आतां अध्यायांचें (वेदांचें) उपाकरण ओषधींचा प्रादुर्भाव असतां श्रावणमासाचे श्रवणनक्षत्रावर, पंचमीस, किंवा हस्तनक्षत्रावर करावे.” याविषयी श्रवण मुख्य. इतर काल गौण होत. कारण, तो प्रथम सांगितला आहे. त्या श्रवणाचा दोन दिवस योग असतां सांगतो हेमाद्रिंत व्यास—जें उपाकरण कर्म तें श्रवणयुक्त धनिष्ठा नक्षत्रावर करावे म्हणजे सफल होतें. आणि उत्तराषाढायुक्त श्रवणावर जें होतें त्या योगानें एकवर्षपर्यंत केलेलें अध्ययन तत्क्षणींच नष्ट होतें”. गार्ग्यही—“उदयव्यापि श्रवणनक्षत्र दोन घटिका अमलें तरी त्या दिवशीं केलेलें कर्म सफल होतें व त्याचें पुण्य अनंत आहे.” पूर्वदिवशी उत्तराषाढायोग व दुसऱ्या दिवशीं श्रवण नाही किंवा दोनघटिकांहून न्यून असेल तर त्या वेळीं पंचमी इत्यादि काली करावे, पण उत्तराषाढाविद्ध अशा श्रवणावर संगवकाली (पांच भाग केलेल्या दिनाच्या दुसऱ्या भागां) करूं नये. कारण, उत्तराषाढाविद्ध निषेधाचा अपवाद नाही. आणखी असें की, दुसऱ्या दिवशीं श्रवणाचा संगवकालास स्पश नसतां निषिद्ध अशी पूर्वनिधि घेण्याविषयी काय प्रमाण आहे ! जर पुढें गांगावयाचें ‘संगवकालीं करावें’ हें वाक्य आणि ‘श्रवणावर करावें’ हें वाक्य प्रमाण आहे, असें म्हटलें तर ‘वाहिमिर्यजेत’ (वाहीनी होम करावा), ‘अश्वशफपरिमितैर्यजेत’ (घोड्याच्या पायांच्या खुगां राहतील तितक्यांनी होम करावा) त्या दोन वाक्यांवरून, वाहि अल्प असल्यामुळें त्यांत माष (उडीद) मिश्रणानें घोड्याच्या गुर परिमिति करून घ्यावे, असें होईल, हें मोठें पांडित्य म्हणावयाचें आहे ! आतां असें म्हणतां की, ‘माषांनी होम करूं नये’ या निषेधाचा त्यांत प्रवेश अगल्यामुळें माष येत नाहीत. असें म्हटलें तर एथेही उत्तराषाढाविद्धाचा निषेध अगल्यामुळें उत्तराषाढायुक्ताचें ग्रहण होत नाही हें गमान आहे. यावरून पर्व (पौर्णिमा) देखील ध्यावयाचें तें उदयव्यापि ध्यावें, असें बोधित झालें. कारण, पूर्वाचा निषेध दोन्ही ठिकाणीं (श्रवण व पर्व यांविषयी) समान आहे.

श्रवणयुतदिनसंक्रांत्यादीतु उपाकर्मनकुर्वतिक्रमात्सामर्थ्यजुविदः ग्रहसंक्रांतियुक्तपुहस्तश्रवणपर्वस्वितिहे-
माद्रौनिषेधात्पंचम्यादयोप्राह्याः मदनरत्नेपि यदिस्याच्छ्रावणपर्वग्रहसंक्रांतितृप्तिनं स्यादुपाकरणशुक्लपंच-
म्यांश्रावणस्यतु स्मृतिमहार्णवे संक्रांतिग्रहणत्रापियद्विषणिजायते तन्मासेहस्तयुक्तायांपंचम्यांवात-
दिष्यते तत्रापि प्रयोगपारिजातं वृद्धमनुकात्यायनौ अर्धरात्रादधन्नाश्चसंक्रांतिग्रहणतदा उपाक-
र्मनकुर्वतपरतश्चेन्नदोपकृदिति मदनरत्नेगार्ग्योपि यदधरात्रादवाक्तुग्रहःसंकमएवच नोपाकर्मतदाकुर्या-
च्छ्रावण्यांश्रावणपिवा एतत्सग्रहणसंक्रांतिकालश्रवणसत्त्वेएवनिषेधोनार्वागितिमूर्धशंकापरास्ता ग्रहविशिष्टानां
हस्तश्रवणपर्वणांप्रत्येकनिषेधतद्युतोपाकर्मनिषेधचविशिष्टादेशवाक्यभेदान पंचम्यांसंक्रांतौनिषेधाभावापत्तश्च
तेनार्धरात्रात्पूर्वग्रहसंकमसत्त्वेनोपाकर्मनिषेधोतत्तद्योगेन यत्तु प्रतिपन्मिश्रितनैवनोत्तराषाढसंयुते श्रवणे-
श्रावणकुर्त्युर्ग्रहसंक्रांतिवर्जित इतिप्रतिपन्मिश्रितनिषेधकंचचनंतन्निर्मूलम् ।

श्रवणयुक्त दिवशी संक्रांति वर्गरे असेल तर “ग्रहण किंवा संक्रांतियुक्त अशा हस्त-श्रवण-पक्षावर अनुक्रमानें साम-
धेयी, ऋग्वेदी, यजुर्वेदी हे उपाकर्म करीत नाहीत” असा हेमाद्रिंत निषेध अगल्यामुळे पंचम्यादिक काल ध्यावे. मदन-
रत्नांतही—“जर श्रावणीपौर्णिमा ग्रहण किंवा संक्रांति यांना दूषित होईल तर श्रावणाच्या शुक्लपंचमीस उपाकरण होईल.”
स्मृतिमहार्णवांत—“जर पक्षाचे ढावी संक्रांति किंवा ग्रहण होईल तर त्या माग्यां हस्तयुक्त पंचमीस तें उपाकरण इष्ट
आहे.” संक्रांत्यादि अगलाही सांगतो—प्रयोगपारिजातांत वृद्धमनु व कात्यायन “त्या दिवशीं मथ्यरात्राच्या आंत
जर संक्रांति किंवा ग्रहण असेल तर उपाकर्म करूं नये. मथ्यरात्राच्या पुढें असेल तर दोष नाही.” मदनरत्नांत
गार्ग्यही—“जर अर्धरात्राच्या आंत ग्रहण किंवा संक्रांति असेल तर श्रावणपौर्णिमासीस किंवा श्रवणावर उपाकर्म करूं नये.”
यावरून ग्रहणकाली व संक्रांतिकाली श्रवण असेल तरच निषेध आहे. ग्रहण व संक्रांती होण्याच्या आंत श्रवण असतां
निषेध नाही, अशी मूर्धशंका खंडित झाली. कारण, ग्रहणयुक्त हस्त, श्रवण, पर्व या प्रत्येकाचा निषेध केला असतां व
तमत्या नक्षत्रादियुक्त उपाकर्माचा निषेध केला असतां विशिष्टाचा (ग्रहणविशिष्ट श्रवणादिकांचा) उद्देश करून निषेधाचें
विधान झाल्यामुळे भिन्न भिन्न वाक्यें होतील, हा दोष समजावा. आणि ग्रहण व संक्रांतियुक्त श्रवणाचाच निषेध केला
असतां पंचमीस संक्रांति असेल तर निषेध होणार नाही. तेणेंकरून अर्धरात्राच्या पूर्वी ग्रहण किंवा संक्रांति असेल तरच
उपाकर्माचा निषेध आहे. ग्रहणादिकांचा योग श्रवणादिकांस असतांच निषेध नाही. आतां जें “ग्रहणसंक्रांतिरहित श्रवणावर
श्रावणी करावी. प्रतिपदायुक्त किंवा उत्तराषाढायुक्त श्रवणावर करूं नये” असें प्रतिपदायुक्त श्रवणाचें निषेधवाक्य
निर्मूल आहे.

अत्रच वेदोपाकरणेप्राप्तेकुलीरेसंस्थितेवौ उपाकर्मनकर्तव्यकर्तव्यसिंहयुक्तके इतिवचनदेशांतरविषयं नर्म-

दोत्तरभागेतुर्कृत्यसिंहयुक्तके कर्कटेसंस्थितेभानावुपाकुर्यात्तुदक्षिणइतिबृहस्पतिवचनादितिप्रयोगपा-
रिजातेनोक्तं पराशरमाधवीयेप्येवं सामगानांसिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषयइदं पुरोडाशचतुर्धाकरणवदु-
पसंह्रियते तेषामेवदेशव्यवस्था नतुबह्वृचादिपरं तेषांसूत्रेचांद्रश्रावणोक्तेः सौरेपंचम्ययोगान्इतितुवयंपश्यामः
यत्तुकालादर्शो अध्यायानामुपाकर्मश्रावण्यांतैत्तिरीयकाः बह्वृचाःश्रवणेकुर्युःसिंहस्थोर्कोभवेद्यदि सहस्तशु-
क्लपंचम्यांवातद्रहणसंक्रमे असिंहार्केप्रोष्ठपद्यांश्रवणेनव्यवस्थयेति तन्मूलालेखनाच्चित्यम् ।

या ठिकाणी “वेदांचें उपाकरण प्राप्त असतां सूर्य कर्काला असेल तर उपाकर्म करूं नये. सिंहराशीस सूर्य असतां करावें.” असें वचन तें इतर देशविषयक आहे. कारण, “नर्मदेच्या उत्तरभागी सिंहराशीस सूर्य असतां उपाकर्म करावें. आणि दक्षिणभागी कर्कास सूर्य असतां करावें” असें बृहस्पतिवचन आहे म्हणून प्रयोगपारिजातानें उक्त आहे. पराशरमाधवीयांतही असेंच आहे. सामवेद्यांना सिंहस्थ रवि असतां उपाकर्म सांगितल्यामुळे त्यांविषयींच ह्या वच-
नानें—जसें ‘पुरोडाशं चतुर्धा करोति’ ह्या सामान्य पुरोडाशचतुर्धाकरणवाक्याचा ‘आग्नेयं चतुर्धा करोति, (आग्नेयपुरो-
डाश चतुर्धा करावा) ह्या वाक्यानें उपसंहार (एक विषयावर म्हणजे आग्नेयपुरोडाशावर चतुर्धाकरणाचें पर्यवसान) केला आहे तसा—येथें उपसंहार केला आहे. त्यांना (सामगांना) च नर्मदेत्तरीं मिहास सूर्य असतां इत्यादि पूर्वांत देशव्यवस्था समजावी. बह्वृचादिकांविषयीं नाही. कारण, यांच्या सूत्रांत चांद्रश्रावणमास सांगितला आहे. सौरमास श्रावण म्हणला तर पंचमी सांपडत नाही, असें तर आम्हीं (कमलाकरभट्ट) समजतो. आतां जें कालादर्शन—“वेदांचें उपाकर्म तैत्तिरी-
यशाख्यांनीं सिंहराशीस सूर्य असेल तर श्रावणीपौर्णमासीस करावें. बह्वृचांनीं श्रवणावर करावें त्या दिवशीं ग्रहण किंवा संक्रांत असेल तर हस्तयुक्त पंचमीस करावें. सिंहराशीस सूर्य गेला नसेल तर प्रोष्ठपदी पौर्णमासीस व श्रवणावर पूर्वांत व्यवस्थेनें करावें” असें वचन आहे त्याचें मूल ग्रंथकाराचें लिहिलें नमल्यामुळे तें चित्य (प्रमाणशून्य) आहे.

श्रावणेसस्यानुद्गमादौतुबह्वृचपरिशिष्टे अवृष्ट्यांपधयस्तास्मिन्मासंतुनभवंतिचेत् तदाभाद्रपदेमासिश्र-
वणेनतदिष्यतेइति तत्राप्यनुद्गमेतु कुर्यादेवतद्वार्षिकमित्याचक्षतेइतिसूत्रात् वर्षर्तौभवंवार्षिकं एतच्चशुक्रास्ता-
दावपिकार्यं उपाकर्मोत्सर्जनंचपवित्रदमनार्पणमितिदमनारोपे लिखितवचनान् नित्येनैमित्तिकेजप्येहोमे
यज्ञक्रियासुच उपाकर्मणिचोत्सर्गग्रहवेधोनविद्यतइति प्रयोगपारिजातेसंग्रहोक्तेः पर्वणिग्रहणेसतिपू-
र्वत्रिरात्रादिवेधाभावंवक्तुमिदं तेनपर्वणिग्रहणंपिचतुर्दश्यांश्रवणकार्यमितिहेमाद्रिः अस्तंप्रथमारंभस्तुनभ-
वति गुरुभार्गवयोमौढ्येवात्येवावार्धकेपिवा तथाधिमाससंसर्पमलमासादिपुद्बिजे प्रथमोपाकृतिर्नस्यात्कृत-
कर्मविनाशकृदितितत्रैवकश्यपोक्तेः अत्रप्रथमारंभंवृद्धिश्राद्धंकुर्यादितिनारायणवृत्तौ एतच्चाधिमासेन-
कार्यं उपाकर्मतथोत्सर्गःप्रसवाहोत्सवाष्टकाः मासवृद्धौपंरकार्यार्जयित्वातुपैतृकमितिज्योतिःपराश-
रोक्तेः उत्कर्षःकालवृद्धौस्यादुपाकर्मादिकर्मणि अभिषेकादिवृद्धीनानंतृकपौर्ण्युगादिष्वितिकालायायनो-
क्तेश्च यत्तु उपाकर्मणिचोत्सर्गंहेतुदिवृष्टादितइतिक्लृप्यशृंगवचनं तत्सामगविषयं तेषांसिंहार्केणोक्तेः
एतच्चापराहकार्यं उपाकर्मापराहस्यादुत्सर्गःप्रातरेवत्विति अध्यायानामुपाकर्मकुर्यात्कालेऽपराह्निके पूर्वाह्णेतु-
विसर्गःस्यादितिवेदविदोविदुरितिचहेमाद्रौगोभिलोक्तेः वस्तुतस्तु भवेदुपाकृतिःपौर्णमास्यांपूर्वाह्ण-
एषत्विति प्रचेतसोवचनात् पूर्ववाक्यंसामगविषयं तेषामपराह्णोक्तेरित्यनुपदंवक्ष्यते दीपिकापि
अस्यतुविधेःपूर्वाह्णकालःस्मृतइति ।

श्रावणांत ओषधी न झाल्यावर सांगतो—बह्वृचपरिशिष्टांत—“वृष्टि न झाल्यामुळे त्या मासांत ओषधि उत्पन्न न
होतील तर त्या वेळीं भाद्रपदांत श्रवणावर तें उपाकर्म इष्ट आहे.” त्या भाद्रपदांतही ओषधी न होतील तर “तें वार्षिक
म्हणजे वर्षांश्रुत होणारें उपाकर्म करावेंच, असें सांगतात” असें सूत्र आहे. हें उपाकर्म शुक्रास्तादिकांतही करावें. कारण,
“उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रारोपण व दमनारोपण हें करावें” असें दमनारोपणाचे प्रसंगीं लिहिलेलें वचन आहे. “नित्य व
नैमित्तिक कर्म, जप, होम, यज्ञकर्म, उपाकर्म, आणि उत्सर्जन यांविषयीं ग्रहवेध नाही.” असें प्रयोगपारिजातांत संग्र-
हवचन आहे. पर्व्याचे ठिकाणीं ग्रहण असतां पूर्वी त्रिरात्रादिवेधाचा अभाव सागण्याकरितां हें वचन आहे. तेणेंकरून पर्व-
वेद्यार्थी ग्रहण असले तरी चतुर्दशीस श्रवणावर करावें, असें हेमाद्रि सांगतो. गुरुशुक्रास्तांत प्रथमारंभ तर होत नाही

कारण, “गुरुशुक्रांचं अस्त, बाल्य किंवा द्वाध्वय, अधिकमास, संसर्पमास, मलमास, इत्यादिकांत पहिलें उपाकर्म होत नाही. केलें तर तें नाश करणारें आहे” असें तेथेंच कश्यपवचन आहे. उपाकर्माच्या प्रथमारंभाची वृद्धिश्चाद करावें, असें नारायणवृत्तींत सांगितलें आहे. हें उपाकर्म (प्रथमारंभावांचूनही) अधिकमासांत करूं नये. कारण, “उपाकर्म, उत्सर्जन, वाढदिवस, अष्टकाश्चादं हीं अधिमास असतां पुढच्या मासांत करावीं. पित्र्यकर्म त्या मासांत (अधिकांत) करावें.” असें ज्योतिःपराशरवचन आहे. आणि “अधिकमास अगतां उपाकर्मोदिकर्माविषयीं व राजाभिषेकादि संबंधी इद्दींचा उत्कर्ष (पुढच्या मासांत नेणें) करावा. युगादिश्चादं उत्कर्ष नाही” असें कात्यायनवचनही आहे. आतां जें “दशहरा, चार युगादि, उपाकर्म व उत्सर्ग यांविषयीं उत्कर्ष नाही. कारण, हें दशहरादि कर्म वृषादि संक्रांतींत (सौरमासांत) इष्ट आहे” असें ऋष्यशृंगवचन तें सामवेदिविषयक आहे. कारण, त्यांचं उपाकर्म सिद्धसंक्रांतींतच सांगितलें आहे. हें उपाकर्म अपराह्णी करावें. कारण, “उपाकर्म अपराह्णी होतें व उत्सर्जन प्रातःकालीच होतें. वेदांचें उपाकर्म अपराह्णकाली करावें. पूर्वाह्णी उत्सर्जन करावें असें वेदवेत्ते जाणतात.” असेंही हेमाद्रींत गोभिलवचन आहे. वास्तविक म्हणजे तर “पौर्णिमासीस पूर्वाह्णीच उपाकरण होतें” ह्या प्रचेतसाचे वचनावरून पूर्वांचें (अपराह्णबोधक) वचन सामवेदिविषयक आहे. त्या गामगांना अपराह्णीच सांगितलें आहे, तें जवळच पुढें सांगूं. दीपिकाही—“ह्या विधीचा (उपाकर्माचा) पूर्वोक्तकाल स्मृतींत उक्त आहे.”

याजुवास्तुपर्वणिकुर्युः तच्चापसंबैरोदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्व पर्वण्यौदयिकेकुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः बह्वृचाः श्रवणकुर्युः प्रहसंक्रांतिवर्जित इति गार्ग्योक्तेः संप्राप्तवाञ्छुती ब्रह्मापर्वण्यौदयिके पुनः अतोभूतदिने तस्मिन् नोपाकरणमिष्यत इति कालिकापुराणाच्च अथ चेद्दोषसंयुक्तं पर्वणि स्यादुपाक्रिया दुःस्वशोकामयप्रस्ताराप्रेतस्मिन् द्विजातय इति मदनरत्न हेमाद्रौ गार्ग्येण दोषोक्तेः अत्र शिंगाभट्टीये विशेषः श्रवणः श्रावणपर्वसंगवस्पृश्यदाभवेन तदेवौदयिकं कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत् पराशरमाधवीयेऽपि गार्ग्यः श्रावणीपौर्णमासी तु संगवात्परतो यदि तदेवौदयिकी प्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत् ।

यजुवेद्यांनां तर पर्व्यांचे ठायीं करावें. ते पर्वे आपसंबांना उदयव्यापि ध्यावें. इतरांनीं पूर्वदिवशींचें ध्यावें. कारण, “तैत्तिरीय शाख्यांनां ग्रहणसंक्रांतिवर्जित अशा सुगोदयव्यापि पर्व्यांचे ठायीं श्रावणी करावी. बह्वृचांनीं श्रवणावर करावी.” असें गार्ग्यवचन आहे. आणि “उदयव्यापि पर्व्यांचे ठायीं ब्रह्मदेवाला श्रुति प्राप्त झाल्या म्हणून नतुर्दशीयुक्त पूर्वदिवशी उपाकरण इष्ट नाही” असें कालिकापुराणवचनही आहे. “आतां जर दोषयुक्त पर्व्यांचे ठायीं उपाकरण होईल तर त्या राष्ट्रांत ब्राह्मण दुःख, शोक व रोग यांनीं प्रमत्त होतील” असा मदनरत्न हेमाद्रि इत्यादिकांत गार्ग्यांनीं दोष सांगितला आहे. या ठिकाणीं शिंगाभट्टीयांत विशेष गांगनां—“श्रवणनक्षत्र व श्रावणीपौर्णिमा ज्या वेळीं संगवकालीं असेल त्या वेळींच उदयकालव्यापि ध्यावी. अन्य म्हणजे संगवव्यापि नमना उदयव्यापि धेऊं नये.” पराशरमाधवीयांतही गार्ग्य—“श्रावणी पौर्णमासी संगवकालाच्या पुढे जर असेल तर त्या वेळींच उदयव्यापि ध्यावी. इतर उदयव्यापि धेऊं नये.”

कर्मकालमाह कालादर्शनिगमः श्रावण्याप्रीप्रपञ्चावप्रतिपत्यणुहृतकेः विद्धास्याच्छंदसांतत्रोपाकर्मात्सर्जनं भवेत् अत्र पौर्णमासी श्रवणहस्तयोरुपलक्षणं तेन तावपि संगवस्पृशौ उदये संगवस्पृशं श्रुतौ पर्वणि चार्कभे कुर्युर्न भस्युपाकर्माक्रम्य जुः सामगाः क्रमादिति पृथ्वीचंद्रः तेनोदयसंगवोभयव्यापिनी मुख्या परेद्युः संगवाभावे पूर्वैद्युदयाभावे चैकैकसत्त्वे पूर्वैद्युश्च नतुर्दशीवेधनिपेधात्सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ता प्राह्या न पूर्वा संगवनिमित्तपूर्वविद्धापवादाभावान् नान्यदौदयिकीत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावान् तेन भाद्रादौ कालांतरे स्यान्नतु निषिद्धे नहि त्रीणि ललाभे निषिद्धमापग्रहणयुक्तं अतएव परंशुः संगवव्याप्री पूर्वविद्धानिपेधः तदाभावे तुनेति मुख्यव्यवस्थाप्ययुक्ता विधिवैपम्यान् मापनिपेधपितथापत्तेश्च पूर्वविद्धावचनसत्त्वे हि सायुज्येते एवं श्रवणेपिबेयं तच्च विष्ण्वर्धघटिकाद्वयमिति पूर्वोक्तविरोधान् तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदं तत्त्वं तु एतच्छुद्धाधिकपरं तेन यथाभिहोत्रादौ सांप्रातः कालावाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वा नुष्ठानं यथावा त्रीणि शफाद्यभावे यागाक्षिप्तनिषिद्धवर्जद्वयेण तथा त्रसंगवाभावे निषिद्धवर्जकर्मपर्याप्तौदयिके कालांतरे वा नुष्ठानं नतु कदाचिन्निषिद्धे अपवादाभावे उत्सर्गस्यैव प्राप्तेः कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्नव्याप्री एकदेशस्पर्शापूर्वैवेति हेमाद्रिः यद्वि

श्रावणीदुर्गनवमीदूर्वाचैवहुताशनी पूर्वविद्धाप्रकर्तव्याशिवरात्रिर्वेलेर्दिनमितिब्रह्मवैवर्त तद्ब्रह्मपवित्रश्रव-
णाकर्मादिवैवर्तकर्मविषयमितिहेमाद्रिः अतएववचनान्कुलधर्मव्रतादावपिपूर्वव मदनरत्नेप्येवं मदन-
पारिजातेपि पूर्वविद्धायांश्रावण्यांवाजसनेयिनामुपाकर्मेत्युक्तम् ।

कर्मकाल सांगतो कालादर्शान निगम—“श्रावणी किंवा प्रौष्ठपदी पौर्णमासीनं सहा सुहर्तानी (१२ घटिकांनीं) विद्ध प्रतिपदा असेल त्या ठिकाणीं वेदांचें उपाकर्म व उत्सर्जन होतें.” वरील गार्ग्यवचनांत पौर्णमासी सांगितली ती श्रावण व हस्त यांचें उपलक्षण (बोधक) आहे. तेणेंकरून ते श्रावणहस्तही संगवकालस्पर्शा ध्यावे. कारण, “मृगं द्युकाळीं व संगवकालीं श्रावणक्षत्र, पवै आणि हस्तनक्षत्र यांवर अनुक्रमानें ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी यांनीं उपाकर्म करावें” असें पृथ्वीचंद्र सांगतो. तेणेंकरून उदयकाल व संगवकाल या दोन काळीं व्यापणारी पौर्णिमा मुख्य आहे. दुसऱ्या दिवशीं संगवकालीं नाहीं, व पूर्व दिवशीं उदयकालीं नाहीं, दोन्ही दिवशीं एक एक काळीं असेल त्या वेळीं पूर्वदिवशीं चतुर्दशी-वेधाचा निषेध असल्यामुळे सामान्यवचनावरून उदयव्यापिनी कर्मकालास पुरण्याइतकी असेल ती ध्यावी. पूर्वदिवसानी घेऊं नये. कारण, संगवकालीं असल्यामुळे पूर्वविद्धा घण्याविषयीं अपवादवचन नाहीं. वर सांगितलेलें ‘संगवाच्या पुढें असेल तरच औदायिकी ध्यावी, दुसरी औदायिकी घेऊं नये’ हें गार्ग्यवचन पूर्वविद्धा घण्याविषयीं सांगत नाहीं. तेणेंकरून भशा स्थलीं भाद्रपदादि इतर काळीं श्रावणी होईल. पण निषिद्ध अशा चतुर्दशीयुक्त पौर्णिमेस होत नाहीं. ब्रीह न मिळतील तर निषिद्ध अशा माषांचें होमाविषयीं ग्रहण युक्त आहे काय ! युक्त नाहीं. निषिद्ध पूर्वदिवसांचें ग्रहण नाहीं म्हणूनच ‘दुसऱ्या दिवशीं संगवकालव्यापिनी पौर्णिमा असली म्हणजे पूर्वविद्धाचा निषेध, दुसऱ्या दिवशीं संगवव्यापिनी नसेल तर पूर्वविद्धाचा निषेध नाहीं’ ही मूर्खानें केलेल्या व्यवस्थेची अयुक्त आहे. कारण, पूर्वांत विधि विषय होईल. आणि निषिद्धपूर्वा ग्रहण केली तर माषांचा निषेध असला तरी ब्रीहि अथशफपरिमित असले तर माषांचा निषेध, नसेल तर माषांचा निषेध नाहीं, अशी व्यवस्था प्राप्त होईल. पूर्वविद्धा ग्रहण करण्याविषयीं वचन असेल तर ती वरील व्यवस्था युक्त झाली असती. याप्रमाणें ऋग्वेदांना श्रावणाविषयींही समजावें. म्हणजे वरील मूर्खानें केलेल्या व्यवस्थेप्रमाणें दुसऱ्या दिवशीं संगवव्यापि श्रावण असेल तर उत्तराषाढायुक्त श्रावणाचा निषेध. अन्यथा नाहीं. ही व्यवस्था उत्तराषाढायुक्त घण्याविषयीं वचन असतें तर युक्त झाली असती तें बरोबर नाहीं. कारण, ‘उदयव्यापि दोन घटिका श्रावण असतां तें कर्म सफल होतें’ ह्या पूर्वांत गार्ग्यवचनाशीं विरोध येतो. यावरून ‘नान्यद् औदायिकी भवेत्’ हें वरील गार्ग्यवचन संगवकालाला प्राशस्त्यमात्रबोधक आहे. खरें म्हटलें तर—हें वचन, पूर्वदिवशीं शुद्ध पौर्णिमा असून दुसऱ्या दिवशीं उर्वरित जी पौर्णिमा तीविषयीं आहे. तेणेंकरून अग्निहोत्रहोमाचा सायंकाल व प्रातःकाल यांचा बाध झाला म्हणजे कोणत्याही अडचणीमुळे होम राहिले असतां जिवंत आहे तोपर्यंत कधीही किंवा दशादिकाळीं त्या होमांचें अनुष्ठान करावें. अथवा अथशफपरिमिति ब्रीहिच्या अभावां यागाला कोणतें तरी द्रव्य पाहिजे म्हणून निषिद्धवर्ज्यद्रव्यानें होम करावा. तसा एथें संगवकालीं पौर्णिमा नसेल तर निषिद्ध वर्ज्य व कर्माळा पुरे इतक्या उदयव्यापि पौर्णिमेस किंवा इतर काळीं उपाकर्म करावें. पण कधीही निषिद्ध दिवशीं कर्म नये. कारण, अपवादवाक्य नसल्यामुळे उत्सर्ग (सामान्य) ‘अतो भूतदिने’ हें निषेधक वचनच प्राप्त होतें. कात्याय-
नादिकांना तर दोन दिवशीं सकलपूर्वाह्नव्यापिनी पौर्णिमा असतां किंवा एकदशव्यापिनी असतां पूर्वाच समजावी, असें हेमाद्रि सांगतो. आतां जें “श्रावणीपौर्णिमा, दुर्गानवमी, दूर्वाष्टमी, हुताशनापौर्णिमा, शिवरात्रि आणि बालप्रतिपदा ह्या पूर्वविद्धा कराव्या” असें ब्रह्मवैवर्तवचन तें ब्रह्मपावित्र, श्रावणाकर्म इत्यादि वैवर्तकर्मविषयक आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. याच वचनावरून कुलधर्म, व्रत इत्यादिकांविषयीं देखील पूर्वाच ध्यावी. मदनरत्नांतही असेंच आहे. मदनपारिजा-
तांतही—पूर्वविद्ध अशा श्रावणीपौर्णिमेस वाजसनेय्यांचें उपाकर्म होतें, असें सांगितलें आहे.

मदनरत्नेतु पर्वण्यौदयिकेकुर्युःश्रावणतैत्तिरीयकाइतिबह्वचपरिशिष्टेबह्वचान्प्रतिकर्मविधानार्थप्र-
युक्तेतत्रतैत्तिरीयककर्मविध्ययोगात्पूर्वाक्तकालिकापुराणादौसामान्यतऔदयिकपर्वप्राप्तेस्त्रिषेधेनबह्वचानांश्र-
वणविधानात्तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात्स्यचप्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्चयजुर्वेदिमात्रपरत्वात्सर्वयजुर्वेदुपलक्षणार्थ
अवयुल्यानुवादोवा ननुविधायकं येनविशेषविधिनोपसंहारःस्यान अनुवादत्वालक्षणादोपः अन्यथात्वौद-
यिकपर्वविशिष्टोपाकर्माद्देशेनकर्तृविधौ कर्तृविशिष्टवाऔदयिकपर्वविधौवाक्यभेदापत्तः तस्मात्तैत्तिरीयकपदा-
विवक्षयासर्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेवपर्वेत्युक्तं तन्न नतावत्परिशिष्टेबह्वचान्प्रत्येवविधिः धनिष्ठाप्रतिपशुक्त-
त्वाद्भूक्षसमन्वितमित्यादितदुदाहृतेएवपरिशिष्टेवेदांतरधर्मविधीनां दर्शनात् नाप्यनुवादोयं कालिकापुराणा-

द्रुहृचादीनामपितदापत्तेः कुर्युरित्यस्यविधित्वेनतस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्राप्तानुवादित्वाच्च नचतैत्तिरीयकाणां-
गृह्येतद्विधिरस्ति येनानुवादःस्यान् नचवाक्यभेदः तैत्तिरीयकमात्रस्यकर्ममात्रस्यवाउद्देश्यत्वायोगेनहविरा-
निवन् अप्रवृत्तब्राह्मणमुपनयीतइतिवच्चागत्याविशिष्टस्योद्देश्यत्वान् अन्यथोत्तराध्वं बह्वचपदस्याप्यविवक्षापस्या-
श्रवणस्यसर्वमाधारण्यापत्तेः तस्मात्तद्देमाद्रिमतमेवयुक्तमितिदिक् ।

मदनरत्नांत तर—‘उदयव्यापि पर्वोचे ठायीं तैत्तिरीय शाख्यांनीं श्रावणी करावी’ हे बह्वचपरिशिष्ट बह्वचना कर्म
सांगण्याकरितां प्रवृत्त आहे. त्यांत तैत्तिरीय शाख्यांचा कर्मविधि होत नगल्यामुळे पूर्वी सांगितलेल्या ‘संप्राप्तवान् शुतीब्रह्मा०’
या काळिकापुराणादिवाक्यांत सामान्यंकरून उदयव्यापि पर्वे सर्वांना प्राप्त अगल्यामुळे त्याचा या परिशिष्टांत बह्वचना निषेध
करून श्रवणाचें विधान केल्यामुळे त्या परिशिष्टांत तैत्तिरीयकपद हें अनुवाद आहे. तो अनुवाद पूर्वी उदयव्यापि पर्वोची
प्राप्ति असेल तर होतो. ती प्राप्ति काळिकापुराणवचनावरून सामान्य यजुर्वेद्यांना अगल्यामुळे हें परिशिष्टांतील ‘तैत्तिरी-
यक’ पद सर्व यजुर्वेद्यांचें उपलक्षण आहे. अथवा यजुर्वेद्यांतून तैत्तिरीयकांना प्रथक करून अनुवाद केला आहे. ज्या विशेष
विधीने उपमेढार (एक विषयावर पर्यवसान) होईल अशाचें हें तैत्तिरीयक पद विधायक नाही. अनुवादक झाल्यामुळे,
तैत्तिरीयक पदाची यजुर्वेद्यांवर लक्षणा, अशी लक्षणा केश अगतां दोष नाही. विधायक मानिलें तर उदयव्यापि पर्वयुक्त
उपाकर्मोचा उद्देश करून तैत्तिरीयक कर्त्याचें विधान केलें किंवा तैत्तिरीयक कर्तृयुक्त उपाकर्मोचा उद्देश करून उदयव्यापि
पर्वोचें विधान केलें अगतां वाक्यभेद दोष येईल तो यमा—‘उदयव्यापिपर्वणि उपाकर्म, तच्च तैत्तिरीयकाणां’ किंवा
‘तैत्तिरीयका उपाकर्म कुर्युः, तच्च उदयव्यापिपर्वणि’ अर्थां भिन्नवाक्यें होतील. तस्मात् तैत्तिरीयक पद विवक्षित (सार्थक)
न मानितां सर्वे यजुर्वेद्यांना उदयव्यापीन पर्वे समजावें, असें (मदनरत्नांत) सांगितलें आहे. तें बरोबर नाही. कारण,
तर सांगितलें की, परिशिष्ट हें बह्वचनांचा कर्मविधायक आहे असें नाही कारण, “धनिरा, प्रतिपदा, चित्रा यांनीं युक्त
श्रावणी कर्म अनुकर्में ऋगयजुःसामवेद्यांनीं करावें” इत्यादि इतर वेदाच्या कर्मांचे विधि याच परिशिष्टांत सांगितलेले
दिसतात. हें तरील तैत्तिरीयक पद अनुवादकी नाही काळिकापुराणवचनावरून अनुवाद झटल्या तर ‘संप्राप्तवान् शुतीब्रह्मा०’
या काळिकापुराणवचनांत सामान्यश्रुत्याचा उदयव्यापि पर्वेकाल सांगितल्यामुळे बह्वचपदकांना देखील तोच काल प्राप्त
होईल. आणि त्या परिशिष्टांतील ‘कुर्युः’ हे शब्द अगल्यामुळे त्यांचें युक्त जें वाक्य तेंच अर्थवाद (अनुवाद) झाल्यानें
या परिशिष्टवचनांत प्राप्त जी गोष्ट निषेध अनुवादक जें पचन होईल, तशीं दोष येतो. कारण, ज्या योगानें हा परिशिष्टांतील
विधि अनुवाद होईल अशा रीतीचा तैत्तिरीयकाच्या श्रुत्याचा उदयव्यापि पर्वोवर श्रावणी करावी’ असा विधि आहे काय ?
नाही. आतां वर वाक्यभेद दोष सांगितला तो येत नाही. कारण, केवळ तैत्तिरीयकरूप कर्त्याचा किंवा सामान्यकर्माचा उद्देश
करून कशाचेही विधान करत नाही. तर तैत्तिरीयकाचे उपाकर्म उपाकर्म विशिष्ट उद्देश करून उदयव्यापि पर्वोचें विधान,
किंवा ‘उदयव्यापिपर्वोर्वाश्रय उपाकर्म’ असे विशिष्ट उद्देश करून तैत्तिरीयक कर्त्याचें विधान करितां, जसें—हविर्विशिष्टे
आतांचा उद्देश करून पंचमसाव आदनाचा विशिष्ट सांगितला आहे. तसें अथवा आठ वर्षांच्या ब्राह्मणाचें उपनयन करावें, या
शिक्षणां जशी दुसरी यांत नगल्यामुळे अप्रवृत्तविशिष्ट ब्राह्मणाचा उद्देश करून उपनयनाचें विधान,—तसें विशिष्टाला उद्देश्यत्व
समजावें. असें केल्यानें वाक्यभेद नाही. असें न करता तैत्तिरीयक पद वर सांगितल्याप्रमाणें अविवक्षित मानिलें तर
त्याच परिशिष्टवचनाच्या इतरांशीं बह्वचनाः श्रवणे कुर्युः’ या शिक्षणां बह्वच पदही अविवक्षित झाल्यानें श्रवणकाल
सर्वसाधारण (इतरवेद्यांनाही) होईल. तस्मात् हेमाद्रोचे मतच (कात्यायनादिकांना पूर्वी इत्यादि) युक्त आहे. ही
दिशा समजावी.

इदंचशिष्यान्तध्यापयन्तआवसथ्येभ्यो अन्तध्यापयन्तोनाधिकारइतिकर्कः श्रावण्यामपिप्रहणादिदुष्टायां-
कार्तीयभिन्नेःप्रौष्ठपद्याकार्यं तैस्तुश्रावणपंचम्यां संक्रांतिप्रहणंवापिपौर्णमास्यांयदाभवेन् उपाकृतिस्तुपंचम्यां-
कार्यावाजसनेयिभिरितिस्मृतिमहार्णवेवाजसनेयिप्रहणादिनिहमाद्रिः इदंचसूत्रोक्तकालपरत्वाद्बहुच-
परमपि सांख्यायनैस्तुहन्तकार्यं आपस्तंबैरार्थवर्णैश्चप्राष्ठपद्यां यजुर्बौधायनः श्रावण्यापौर्णमा-
स्यामापाह्यावोपाकृत्येत्यूचे तत्प्राष्ठपद्यामपिदोषेआपाह्यांकार्यमित्येवमर्थं तच्छास्त्रीयविषयंवा ।

हें उपाकर्म शिष्यांना अध्ययन पटविणाराचें आवसथ्य अर्थावर होतें. अध्यापन न करणाराला त्या अर्थावर अधिकार
नाहीं, असें कर्क सांगतो. श्रावणी पौर्णमासी देखील प्रहण, संक्रांति यांनीं दूषित अगतां कात्यायनभिक्तांनीं प्रौष्ठपदीस
करावें. कात्यायनांनीं तर श्रावणपंचमीस करावें. कारण, “पौर्णमासीला ज्या वेळीं संक्रांति किंवा प्रहण असेल त्या वेळीं
वाजसनेयींनीं उपाकर्म पंचमीस करावें” असें स्मृतिमहार्ण्यांत ‘वाजसनेयी’ पदाचें प्रहण केलें आहे, असें हेमाद्रि

१ हविरातीचा विशिष्ट उद्देश याचा अर्थ प्रथमपरिच्छेदांत प्रहणनिर्णयांत बौद्धयत्याच्या मतखंडनावसरी लिहिता आहे तो पहा.

सांगतो. हें वचन सूत्रोक्त कालबोधक असल्यामुळे बहुचांविषयीं देखील आहे. सांख्यायनांनीं तर हस्तावर करावें. आपस्तंबांनीं व आथर्वणांनीं प्रौष्ठपदीस करावें. आतां जें बौधायन—“श्रावणी पौर्णमासीस किंवा आषाढीस उपाकरण करून” असें सांगता झाला, तें प्रौष्ठपदीसही दोष असतां आषाढीस करावें, अशाच अर्थाकरितां आहे. अथवा त्या बौधायनशास्त्रीयां-विषयीं आहे.

सामगास्तुश्रावणेहस्तेकुर्युः बहुचाःश्रावणेचैवहस्तश्चसामवेदिनइतिनिर्णयामृतेगोभिलोक्तेः सोप्युत्तरः धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तत्वाप्रकरश्चमन्वितं श्रावणं कर्मकुर्यीरन्नृग्यजुःसामपाठकाः इतिमदनरत्नेपरिशिष्टोक्तेः गार्ग्योऽपि सिंहेरवौतुपुष्यश्चपूर्वाह्नेविवरेवहिः छंदोगामिलिताः कुर्युस्त्वर्गस्वस्वछंदमां शुक्लपक्षे-तुहस्तेनवपाकर्मपराह्णिकमिति अविवरेग्रहादिदोषहीने विचरेदितिपाठोऽज्ञानकृतः पुष्यश्चपूर्वाह्ने उत्सर्गः अपराह्णिकमुपाकर्मैत्यन्वयः अन्यस्तुविशेषः पूर्वमेवोक्तः ।

सामवेद्यांनीं तर श्रावणांतील हस्तावर करावें. कारण, “बहुचांनीं श्रावणावर आणि सामवेद्यांनीं हस्तावर करावें” असें निर्णयामृतांत गोभिल उवचन आहे. तो हस्ताही दुसऱ्या दिवशींचा ध्यावा. कारण, “ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी यांनीं अनुक्रमानें धनिष्ठा, प्रतिपदा, चित्रा यांनीं युक्त अशी श्रावणी करावी” असें मदनरत्नांत परिशिष्टवचन आहे. गार्ग्यही—“सिंहास सूर्य असतां अदृषित पुष्य नक्षत्रावर घराच्या बाहेर पूर्वाह्णां छंदोगांनीं एकत्र मिळून आपापल्या वेदाचें उत्सर्जन करावें. आणि शुक्लपक्षांतील हस्तनक्षत्रावर अपराह्णकालीं उपाकर्म करावें.” या वचनानें ‘अविवरे’ असें पद आहे त्याचा अर्थ—ग्रहादिदोषरहित, असा समजावा. ‘विचरेत्’ असा पाठ अज्ञानानें केलेला आहे. पुष्यावर पूर्वाह्णां उत्सर्जन व हस्तावर अपराह्णां उपाकर्म, असा अन्वय (संबंध) समजावा. इतर विशेष पूर्वाच सांगितला आहे.

प्रयोगपारिजातेगोभिलः उपाकर्मोत्सर्जनंचवनस्थानामपीष्यते धारणाध्ययनांगत्वाद्विहितां ब्रह्मचारिणां उत्सर्जनंचवेदानामुपाकरणकर्मच अकृत्वावेदजप्येनफलं नाप्नोतिमानवः सर्वथा लोपेतु कृच्छ्र उपवासश्च वेदोदितानां नित्यानामिति मनुनाऽभोजनोक्तेः एवमुत्सर्गोऽपि ।

प्रयोगपारिजातांत गोभिल—“उपाकर्म व उत्सर्जन हें वेदांचें धारण व अध्ययन यांचें अंग असल्यामुळे वान-प्रस्थानाही इष्ट आहे. गृहस्थाना व ब्रह्मचार्यांना आहेच. वेदांचें उत्सर्जन व उपाकर्म केल्यावांचून वेदाच्या जपाचें फल मनुष्याला प्राप्त होत नाही.” उपाकर्माचा सर्वथा लोप झाला असतां कृच्छ्र आणि उपवास करावा. कारण, वेदविहित नित्य-कर्म झालीं नसतां मनुनें उपवास सांगितला आहे. याप्रमाणें उत्सर्जनाविषयीही समजावें.

अथप्रसंगादत्रैवोत्सर्जनमुच्यते तच्चपौषमासेरोहिण्यातत्कृष्णाष्टम्यांवाकार्यं पौषमासस्यरोहिण्यामष्टका-यामथापिवा जलांतेंछंदसांकुर्यादुत्सर्गविधिवद्द्विहितियाज्ञवल्क्योक्तेः श्रावण्यांप्रौष्ठपद्यांवोपाकृतौक-मेणपौषशुक्लप्रतिपदिमाघशुक्लप्रतिपदिवाकार्यं अर्धपंचमान्मासानधीयीतेतितेनैवोक्तेः अर्धःपंचमोयेपु सार्धचतुरइत्यर्थः यतुहारीतः अर्धपंचमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजेत् पंचार्धपप्रान्वेतितदापाह्युपाकर्मवि-षयं बौधायनास्तु पौष्यामाध्यांवाकुर्युः पौष्यामाध्यांचोत्सृजेदितितत्सूत्रात् तैत्तिरीयैस्तु तैष्यां-कार्यं तैष्यांपौर्णमास्यांरोहिण्यांवाविरमेदितितत्सूत्रात् बहुचैस्तुमाध्यांकार्यं अध्यायोत्सर्जनंमाध्यांपौर्ण-मास्यांविधीयतइतिकारिकोक्तेः कातीयास्तुभाद्रपदेकुर्युः उत्सर्गश्चेतिनंदादितिभ्यांप्रौष्ठपदेपिवेति कात्या-यनोक्तेः सामगास्तुसिंहाकेंपुष्येकुर्युः तथाचसिंहेरवौत्वितिगार्ग्यवचनंपूर्वमुक्तं सर्वैरुपाकर्मदिनेवाकार्यं पुष्येत्सर्जनंकुर्यादुपाकर्मदिनेथवेतिहेमाद्रौखादिरगृह्योक्तेः यदासिंहस्यसूर्यसत्तितन्मध्यस्थहस्तनक्ष-त्रात्प्राक्पुष्यःकर्कटस्थोभवति तदातस्मिन्पुष्येउत्सर्गकृत्वातदुत्तरहस्तेउपाकर्मसामगाःकुर्युः मासेप्रौष्ठपदेह-स्तात्पुष्यःपूर्वोभवेद्यदा तदाचश्रावणेकुर्यादुत्सर्गछंदसांद्विजइतितत्रैवपरिशिष्टोक्तेः अत्रद्वावपिसौरौ-मासौज्ञेयौ तेषांसौरस्यैवोक्तेः ।

आतां प्रसंगेंकरून एथेंच उत्सर्जन सांगतों.

तें पौषमासांत रोहिणीनक्षत्रावर किंवा पौष कृष्ण अष्टमीस करावें. कारण, “पौषमासी रोहिणी नक्षत्रावर किंवा

कृष्णाष्टमीय वेदांचा यथाविधि उत्सर्ग बाहेर उदकाजवळ करावा" असे याज्ञवल्क्यवचन आहे. श्रावणी किंवा भाद्रपदी पौर्णिमेस उपाकरण केले असतां अनुक्रमानें पौषशुक्लप्रतिपदेस किंवा माघशुक्लप्रतिपदेस उत्सर्जन करावें. कारण, "साडेचार महिने अध्ययन करावें" असे याज्ञवल्क्यानेच सांगितले आहे. आतां जें हारीत "अर्धपंचम (साडेचार) किंवा अर्धपष्ट (साडेपाच) महिने अध्ययन करून पुढें उत्सर्जन करावें," असें सांगतो, तें आपाढा पौर्णिमेस उपाकरण केले असतां तद्विषयक होय. बौधायनांनीं तर पौषा किंवा माघी पौर्णिमेस करावें. कारण, "पौषी पौर्णिमेस किंवा माघी पौर्णिमेस उत्सर्जन करावें." असें बौधायनसूत्र आहे. तैत्तिरीयांनीं तर पौषी पौर्णिमेस करावें. कारण, "पौषी पौर्णिमेस किंवा रोहिणी नक्षत्री (तैत्तिरीयांनीं) उत्सर्जन करावें" असें त्यांचें सूत्र आहे. ऋग्वेदीयांनीं तर माघी पौर्णिमेस करावें. कारण, "वेदांचें उत्सर्जन माघी पौर्णिमेस करावें" असें कारिकेंत उक्त आहे. कात्यायनशाखीयांनीं तर भाद्रपदमासी करावें. कारण, "भाद्रपदमासी प्रतिपदादि तिसरी उत्सर्ग करावा" असें कात्यायनवचन आहे. गामगांनीं तर गिहाना सूर्य असतां पुण्यनक्षत्री करावें. कारण, "गिहस्थ सूर्य असतां पुण्यनक्षत्री करावें" असें गार्ग्यवचन पूर्वी सांगितले आहे. अथवा गर्वांनीं उपाकर्मदिवशी करावें. कारण, "पुण्यनक्षत्री अथवा उपाकर्मदिवशी उत्सर्जन करावें" असें हेमाद्रीत खादिर-गृह्यसूत्रवचन आहे. तेव्हां गिहस्थ सूर्य असतां त्यांतील हस्तनक्षत्राच्या पूर्वी पुण्यनक्षत्र कर्कसंकार्त्त होईल तेव्हां त्या पुण्यनक्षत्री उत्सर्जन करून पुढील हस्तनक्षत्रावर उपाकर्म गामवेदीयांनीं करावें. कारण, "भाद्रपदमासी हस्ताच्या पूर्वी पुण्य तेव्हां होईल तेव्हां श्रावणांत वेदांचें उत्सर्जन दिज्ञानें करावें" असें हेमाद्रीतच परिशिष्टवचन आहे. येथें श्रावण व भाद्रपद हे दोन्ही मास सौर ध्यात कारण त्यांना सौरच मास उक्त आहेत.

अत्रविशेषमाहकार्णाजिनिः उपाकर्मणिचोत्सर्गयथाकालंममेत्यच ऋषीन्दर्भमयान्कृत्वापूजयेत्तर्पयेत्ततइति उपाकर्मण्युत्सर्गचत्रिगत्रंपक्षिणीमहोरात्रवानध्यायइतिमिताक्षरायामुक्तं अत्रनदीनारजोदोपोनाम्नि उपाकर्मणिचोत्सर्गजोदोपोनवियतेइतिगार्ग्योक्तं ।

येथें विशेष सांगतो-कार्णाजिनि-“उपाकर्म व उत्सर्जन यांचेप्राचीं यथाकार्त्त गर्वांनीं एकत्र मिळून दर्भमयऋषींचें पूजन करून तर्पण करावें.” उपाकर्म व उत्सर्जन यांनंतराचीं त्रिगत्र किंवा पक्षिणी किंवा अहोरात्र अनध्याय करावा असें मिताक्षरेत सांगितले आहे. या उपाकर्म उत्सर्जनांतपक्षी नष्टांना रजोदोष नाही. कारण, “उपाकर्म व उत्सर्जन यांचे-ध्यानीं रजोदोष नाही” असे गार्ग्यवचन आहे.

अत्रैवश्रावंधनमुक्तं हेमाद्रौभविष्ये संप्राप्तश्रावणस्यानेपौर्णमास्यादिनोदये स्नानं कुर्वीतमतिमान्-श्रुतिस्मृतिविधानतः उपाकर्मादिकंप्रोक्तमृषीणांचैवतर्पणं गृहाणांमंत्रगृहितंस्नानंदानंचशस्यते उपाकर्मणिकर्तव्यमृषीणांचैवपूजनं ततोपराह्ममयेरश्रापोदलिकांशुभां कारयेदश्वनैःशमनैःसिद्धार्थैर्होमभूपितैरिति अत्रोपाकर्मानंतरम्यपूर्णतिथ्यावार्थिकस्यानुवादेननुविधिः गौरवात्प्रयोगविधिभेदेनक्रमायोगान्छद्वादौतदयोगाच्च तेनपेरशुरुपाकरणेपिपूर्वशुरुपरगृह्णतत्करणंमिद्धं उदंभद्रायानकार्यं भद्रायाद्विनक्तव्यश्रावणीफाल्गुनीतथा श्रावणीनृपतिर्हन्तिग्रामंदहतिफाल्गुनीतिसंग्रहोक्तेः तत्सत्त्वेनुरात्रावपितदंतेकुर्यादितिनिर्णयामृते इदं-प्रतिपद्युतायानकार्यं नंदायादर्शनरश्रावलिदानं दशासुच भद्रायागोकुलक्रीडादेशनाशायजायते इतिमदनरत्नेत्रद्वयैववर्तान् भविष्ये उपलिप्रग्रहमध्येदत्तचतुष्केन्यसेत्कुंभं पीठेनत्रोपविशेद्राजामालैर्युतश्चसु-मुहूर्ते तदनुपुरोधानृपतेरश्रावत्रीतमंत्रेण इदंश्रावंधनंनियतकालत्वाद्भद्रावर्ज्यग्रहणदिनेपिकार्यहोलिकावन्-ग्रहसंकांत्यादौरश्रानिषेधाभावान सर्वपासेववर्णानांमृतकंराहुदर्शने इतित्कालीनकर्मपरएवन्त्वन्यत्र अन्य-थाहोलिकायांकागतिः अतएव नित्येनैमित्तिकेजप्यहोमेयज्ञक्रियासुच उपाकर्मणिचोत्सर्गग्रहवेधेनविशतइ-तिनियतकालीनतदभावइतिदिक् उपाकर्मणितहिनभिन्नपरं तत्रतन्निषेधादित्युक्तंप्राक् मंत्रस्तु येनबद्धोबली-राजादानवेद्रोमहाबलः तेनत्वामपिवद्नामिरक्षेमाचलमाचल ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैःशूद्रैरन्यैश्चमानवैः कर्तव्यो-रश्रिताचारोद्विजान्संपूज्यशक्तितइति अत्रैवहयग्रीवोत्पत्तिः तदुक्तं कल्पतरौ श्रावण्यांश्रवणेजातःपूर्वहय-शिरोहरिः जगादसामवेदंनुसर्वकल्मषनाशनं स्नात्वासंपूजयेत्तनुंशंग्यचक्रगदाधरम् ।

या पौर्णिमेस ठायींच रक्षाबंधन करण्याविषयी सांगितले आहे. तें असें-हेमाद्रीत भविष्यपुराणांत-“श्रावणमा-साच्या अंती पौर्णिमेस सूर्योदयी ज्ञात्याने स्नान करून श्रुतिस्मृतिविधानानें उपाकर्म व ऋषींचें तर्पण करावें. शस्त्रांनीं मंत्ररहित

ज्ञान, दान करावें, तें प्रशस्त होय. उपाकर्माचे ठायीं ऋषींचें पूजन करावें, नंतर अपराह्नी शुभकारक रक्षापोटलिका (राखी) स्वच्छ तांदूळ व सुवर्णयुक्त सिद्धार्थ (पांढरे शिरीष) यांहींकरून करावी.” येथें हें रक्षाबंधन उपाकर्मानंतर सांगितलें तें पूर्णतिथि असतां अर्थात् त्या दिवशीं प्राप्त झालें त्याचा अनुवाद आहे, उपाकर्मानंतरच करावें, असा विधि नाही. कारण तसा विधि केला असतां गौरव येतें. याचा प्रयोग भिन्न असल्यामुळें उपाकर्म केल्यावर हें रक्षाबंधन करावें, असा क्रमही होत नाही. आणि शूद्रादिकांना उपाकर्म नसल्यामुळें क्रमही संभवत नाही. तेणेंकरून दुसऱ्या दिवशीं उपाकरण अमतांही पूर्वदिवशीं अपराह्नी रक्षाबंधन करावें असें मित्र होतें. हें रक्षाबंधन भद्रेचे ठायीं करूं नये. कारण, “भद्रा (कल्याणी) अमतां श्रावणी व फाल्गुनी ह्या दोन करूं नयेत. श्रावणी राजाचा नाश करिते, फाल्गुनी ग्रामदाह करिते” असें **संग्रहवचन** आहे. दिवसा भद्रा असतां भद्रा गेल्यावर रात्रीसही करावें, असें **निर्णयामृतांत** सांगितलें आहे. हें रक्षाबंधन प्रतिपदायुक्त पौर्णिमा तिथीस करूं नये. कारण, “प्रतिपदेंत रक्षाबंधन, दशमीस बलिदान, भद्रेला (द्वितीयेला) गोकुलक्रीडा ही देशनाशकारक होते” असें **मदनरत्नांत** ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. **भविष्यपुराणांत** “सारवलेल्या घरांत चतुष्कोणी वेदीवर कुंभस्थापना करून तेंथें आमनावर समुद्धर्ती राजानें वसावें. नंतर उपाध्यायानें राजास मंत्रानें रक्षाबंधन करावें.” हें रक्षाबंधन नियमितकालीं सांगितल्यामुळें भद्रावर्ज्यग्रहणदिवशींही करावें. कारण, जशी होलिका तद्वत् हें रक्षाबंधन आहे. ग्रहण, संक्रांति इत्यादिक असतांही रक्षाबंधनाचा निषेध नाही. “गर्वे वर्णाम ग्रहणसंघर्षी मृतक आहे” असें जें वचन तें तत्कालीन (ग्रहणकालीन) कर्मविषयक आहे, अन्यत्र नाही. असें नमेल तर होलिकेविषयीं गति काय? म्हणूनच “नित्य, नैमित्तिक, जप, होम, यज्ञक्रिया, उपाकर्म, उत्सर्जन यांचे ठायीं ग्रहणबंध नाही.” यावरून नियतकालीं होणाऱ्या कर्माविषयीं ग्रहणदोष नाही, असें दिग्दर्शन केलें आहे. ह्या वचनांत ‘उपाकर्माविषयीं ग्रहणबंध नाही’ असें सांगितलें तें ग्रहणदिवसाहून भिन्नदिवशीं नाही, असें गमजावें. कारण, ग्रहणदिवशीं उपाकर्माचा निषेध आहे, असें पूर्वीं उक्त आहे. **रक्षाबंधनाचा मंत्र—येन बद्धो बलीराजा दानवैरो महाबलः ॥ नेन त्वामपि बध्नामि रक्षे माचल माचल ॥** “ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व इतर मनुष्य यांनींही ब्राह्मणाचें यथाशक्ति पूजन करून जसा आचार असेल तसें रक्षाबंधन करावें.” ह्याच पौर्णिमेचे ठायीं हयग्रीवाचा अवतार झाला, तो **कल्पतरूंत** सांगतो— “श्रावणी पौर्णिमेस श्रवणनक्षत्रावर पूर्वीं हयग्रीव उत्पन्न झाला व त्यानें गर्वे पापनाशक अगा गामवेद सांगितला, म्हणून त्या दिवशीं ज्ञान करून शंख चक्र, गदा धारण करणाऱ्या हयग्रीवरूप हरीचें पूजन करावें.”

अत्राश्र्वलायनेनश्रवणाकर्मोक्तं श्रावण्यापौर्णिमास्यांश्रवणाकर्मोति तत्रात्ममययोगिनीग्राह्या अस्तमितेस्थाली पाकश्रपथित्वेति**सूत्रात्** अतएवनिशीष्टेर्दर्शप्रयोगांतःपातनियमात्तदंगेःप्रसंगसिद्धिरुक्ताद्वा**दशे** अन्यथा परेद्युःप्राप्तौकःप्रसंगःप्रसंगस्य **याज्ञिकास्तु**पौर्णिमादर्शशब्दयोःपर्वाव्यक्ष्णवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैवकर्म-कालव्याप्तिग्राह्येतिविकृतित्वाच्छेपपर्वच्छंति श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षद्वितीयासुअशून्यशयनव्रतं तत्र-चंद्रोदयव्यापिनी दिनद्वयेतत्त्वेपरेति**निर्णयामृते** इतिकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौश्रावणमासः ।

ह्या पौर्णिमेस **आश्वलायनांनीं** श्रवणाकर्म सांगितलें आहे—“श्रावणी पौर्णिमेस श्रवणाकर्म करावें.” ह्या श्रवणाकर्मविषयीं पौर्णिमा सूर्यास्तव्यापिनी ध्यावी. कारण, “सूर्यास्तां स्थालीपाक श्रवण करून” असें **आश्वलायन** सूत्र आहे. सूर्यास्तव्यापिनी ध्यावी म्हणूनच रात्रीं इष्टीच्या दर्शप्रयोगामध्ये हें श्रवणाकर्म अंतर्भूत होत असल्यामुळें त्या दर्शप्रयोगाच्या अंगांनीं ह्या श्रवणाकर्माची प्रसंगसिद्धि बाराव्या अध्यायांत **जैमिनींनीं** सांगितली आहे. दुसऱ्या दिवसाची पौर्णिमा श्रवणाकर्माला घेतली तर प्रसंगसिद्धीचा प्रसंग काय आहे? **याज्ञिक** तर पौर्णिमा व दर्श ह्या शब्दांनीं पर्वाचे अंत्यक्षणांत युक्त असा अहोरात्र ध्यावयाचा असल्यामुळें त्याच दिवशीं कर्मकालव्यापिनी असेल ती ध्यावी, असें विकृतिइष्टीच्या कालांत सांगितलें आहे व ही विकृति असल्यामुळें शेष (उर्वरेत) पर्व ध्यावें, असें इच्छितात. श्रावण इत्यादि चार महिन्यांच्या कृष्णपक्षांच्या द्वितीयांस अशून्यशयनव्रत सांगितलें आहे, त्याविषयीं चंद्रोदयव्यापिनी द्वितीया ध्यावी. दोन दिवशीं चंद्रोदयीं व्याप्ति असतां परा ध्यावी, असें **निर्णयामृतांत** सांगितलें आहे. **इति श्रावणमासाची महाराष्ट्र टीका समाप्त झाली.**

सिंहपराःपोडशघटिकाःपुण्यकालः अन्यत्पूर्ववत् अत्रगोप्रसवेऽद्भुतसागरेनारदः भानौसिंहगतेचैव

१ अस्तमयेति । कर्मकालशास्त्रात् दिनद्वयेतव्याप्तावव्याप्तौवापरा विकृतित्वात् एवंच सर्पबलावपीति । श्रवणाकर्मसंप्रबल्यकरणं प्रायश्चित्तमाह प्रजापतिः । इतिर्वैश्वशक्तसुखसमयेकमादितः । प्राजापत्येनशुष्येतपाकसंस्कारासुचैवहीति । एतच्च श्रवणाकर्म संप्रब-ल्याश्रयुजीकर्माग्रयणप्रत्यवेषु प्रवर्तते तत्रप्रायश्चित्तांतरादर्शनात् । २ चंद्रोदयेति । एकभक्तेदिवाभक्तेनिशिचंद्रोदयव्रते । तिथिस्ता-क्कालिकीयाद्यापारणेत्वरितिथिरितिस्मृतिसंग्रहात् । इदंचंद्रोदयव्रतं चंद्रोदयेचंद्रार्धदानविधानात् ।

यस्यगौःसंप्रसूयते मरणंतस्यनिर्दिष्टंपङ्क्तिर्मसैनसंशयः तत्रशांतिप्रवक्ष्यामियेनसंपद्यतेशुभं प्रसूतांतक्षणादे-
वतांगांविप्रायदायेन् ततोहोमंप्रकुर्वीतधृतकैराजसर्पपैः आहुतीनांधृताक्तानामयुतंजुहुयात्ततः व्याहृतिभि-
श्चायंहोमः सोपवासःप्रयत्नेनदशद्विप्रायदक्षिणामिति तथा सिंहराशौगतेसूर्यगोप्रसूतियदाभवेत् पौषेचम-
हिषीमूतेदिवैवाश्रतरीतथा तदानिष्टंभवेत्किंचित्च्छांत्यैशांतिकंचरेन् अस्ववामेतिसूक्तेनतद्विष्णोरितिमंत्रतः
जुहुयाच्चतिलाज्येनशतमष्टोत्तराधिकं मृत्युंजयविधानेनजुहुयाच्चतथायुतं श्रीसूक्तेनततःस्नायाच्छांतिसूक्तेनवा-
पुनः मध्यरात्रेनिशीथेवायदागौःकंदतेमदा प्रामेवाम्बुगृहेवापिशान्तिकंपूर्ववहिशेन एवंश्रावणेवडवाप्रसवोदि-
नेनिषिद्धः तदुक्तमथर्ववेदिनांगार्ग्यपरिशिष्टे माधेनुधेचमहिषीश्रावणेवडवादिवा सिंहगावःप्रसूयतेस्वा-
मिनोमृत्युदायकाइति अत्रतदुक्तामृताख्याशांतिःकार्या ।

आतां भाद्रपद गांगतो. गिहसंकांतीला पुटच्या गोळा पटिका पुण्यकाळ. रात्रीं संकांत अगतां पूर्वीप्रमाणे रामजातें. गिहसंकांतींत गाई व्याधी अगतां गांगतो—आहुतसागंगंत—नारद "सूर्य गिहसंकांतीय गोळा अगतां ज्याची गांग प्रसूत होईल त्यांग गदा महिन्यांनीं मरण होतें, यांग संशय नाही. त्याविषयीं शांति गांगतो की जी केशी अगतां कल्याण होईल. प्रसूत जालेली गांग त्याच पेढी ब्राह्मणांग यांनी, नंतर पुनयुक्त राज्यापेढांनी होम करावा. पुनयुक्त आहुती अयुत (१००००) याच्या. ज्योतिर्वांनी हा होम करावा. प्रयत्नाने उपवास करून ब्राह्मणांग दक्षिणा यांनी." तसेंच "सिंहराशीय सूर्य गोळा अगतां जेव्हा गांग प्रसूत होईल, पौषमासीं महिषी प्रसूत होईल, तशीच श्रावणांत दिवसांग घोडी प्रसूत होईल तेव्हा कांही अनिष्ट होईल तें जाण्याकरिता जांति करावी. "अस्ववाम" या सूक्तांत व "तद्विष्णोः" या मंत्रांत तिल-
युक्तपुताचा अष्टोत्तरशत होम करावा. मृत्युंजयमंत्राने तपानासनें तपान अयुत (१००००) होम करावा. नंतर श्रीसूक्तांत अथवा शांतिस्मृतांत पुनः स्नान करावें. रात्रांत तीन भाग करून मधमासी किंवा दोनप्रहर रात्रीं जर गाई गांवांत किंवा स्वगृहांत निरंतर ओरकेंड तर पनापमाणें आत करावी. "यापमाणेच थाकणमासी दिवसा घोडी व्याडेंड निषिद्ध होय. तें अथर्ववेद्यांचे गार्ग्यपरिशिष्टांत नासणें. "माधमासी किंवा पुष्यांग महिषी, श्रावणांत दिवसा घोडी, सिंहसंकांती गांग प्रसूत होईल तर त्यांग घन्यांग मृत्युंजो " येथे तें गार्ग्यनेन सांगिलेलें अमृताह्यजांति करावी.

भाद्रकृष्णतृतीयाकज्जरीमंजा मापराप्राह्येतिदिवोदासीयउक्तं वचनंतुहरितालिकाप्रकरणेवक्ष्यामः
भाद्रकृष्णचतुर्थीवहलुख्यामध्यदेशेप्रसिद्धा सामायादव्यापिनीप्राह्या दिनद्वयेतत्त्वेपूर्वाप्राह्या गौर्याश्रुतुर्थीव-
टधेनुपूजादुर्गाचनेंदुर्भरहोलिकेच वत्सम्भपूजाशिवरात्रेभताःपरान्वितांत्रितुंनृपमगाष्टमितिदिवोदासीये-
वचनान अत्रवत्सम्भपूजायाःपृथगुपादानांदेनुपूजाशब्देनवहलुख्यागृहगतनिसम्भव्याचख्या मदनरत्नेष्येवं
अत्रगोपूजायवात्राशनेचनत्रैवोक्तं भाद्रकृष्णपष्टीहल्पष्टी सामप्रमीयुतेतिदिवोदासः भाद्रकृष्णसप्तमीस-
शीतलात्रन तत्रपूर्वाप्राह्येतिहेमाद्रौ ।

भाद्रपदकृष्ण तृतीया ही कज्जरीसजक होय. ती परग ध्यावी, असें दिवोदासीयांत सांगितलें आहे. त्याविषयीं वचन तर हरितालिकात्रनप्रकरणां पुढें गातें. भाद्रकृष्णचतुथा ही बहुयानासक मध्यदेशी प्रसिद्ध आहे. ती मायाहव्यापिनी ध्यावी, दोन दिवशा मायाहव्यापिनी अगतां पूर्वा ध्यावी. कारण, "गौराचतुथा, वटपौर्णिमा, धेनुपूजा (बहुला), दुर्गाअष्टमी, दुर्भरा, होलिका, गोवत्सडादशी, शिवरात्रि ह्या परयुक्त घेनच्या तर गृष्टमहिन राजाचा नाश होतो." असें दिवोदासीयांत वचन आहे. येथे वत्सपूजेचे पृथक् प्रहण असल्यामुळे धेनुपूजाशब्दानें बहुलुख्या चतुथा ध्यावी, अशी त्यानें (दिवोदा-
सानेच) व्याख्या केली आहे. मदनरत्नांतही असेच आहे. या चतुर्थाचे दिवशी गोपूजा व यवाप्रप्राशन दिवोदासीयांत सांगितलें आहे. भाद्रकृष्ण पष्टी ही हल्पष्टी होय. ती सप्तमायुक्त ध्यावी असें दिवोदास गांगतो. भाद्रपदकृष्णसप्तमीस शीतलात्रन सांगितलें. त्याविषयीं पूर्वा ध्यावी असें हेमाद्रौ आहे.

अथजन्माष्टमी साचकृष्णादिमासेनभाद्रपदकृष्णाष्टमी तथाभाद्रपदेमासिकृष्णाष्टम्यांकलौयुगे अष्टा-

१ तृतीया नमः शुक्रा मधुश्रावणाका स्मृता । सादस्य कज्जरी कृष्णा शुक्रा च हरितालिका इति । २ भाद्रकृष्णतिथिमासमासेन-
श्रावणकृष्णेश्चैव भाद्रपदकृष्णचतुर्थीसंकष्टचतुर्थात्रनं स्कांदे । श्रावणेवदुत्तपक्षे चतुर्थ्यानुविभूदये । गणेशपूजयिवातुचंद्रावार्थप्रदीपते ।
श्रावणोऽसातः त्रैनुकुदिमंबचैत्युक्तः । इयंचंद्रोदयव्यापिनीप्राह्या तत्कालेचंद्राध्वेदानीनयाचंद्रोदयव्रतत्वात् । चंद्रोदयव्रतेचैवतिथि-
स्तात्कालिकास्मृत्युक्तेः । दिनद्वयेचंद्रोदयेसत्त्वेऽमसत्त्वेवा पूर्वनिरूपितंसामान्यतिगये । ३ नव्यारतु हल्पष्टीशीतलासप्तमीच शीतलाव्रतेम-
ध्याहव्यापिनीप्राह्या पूजाव्रतेपुसर्वेपुमध्याहव्यापिनीतिभिरित्युक्तेः दिनद्वयेसत्त्वेऽमसत्त्वे वा पूर्वां गुरुमवाक्यादित्याहुः ।

विंशतिमेजातः कृष्णोसौदेवकीसुतइतिकल्पतरौब्राह्मोक्तेः अत्रेदंमाधवमतं अष्टमीद्वेधा जन्माष्टमीजयंतीचेति तत्राद्याकेवलाष्टमी येनकुर्वतिजानंतःकृष्णजन्माष्टमीव्रतं तेभवंतिनराःप्राज्ञव्यालाव्यात्राश्रकानन-इतिस्कांदात् दिवावायदिवारात्रौनास्तिचेद्वेहिणीकला रात्रियुक्तांप्रकुर्वीतविशेषेणंदुसंयुतामितिपुराणां-तरात् श्रावणेवहुलेपक्षेकृष्णजन्माष्टमीव्रतं नकरोतिनरोयस्तुभवतिकूरराक्षसइतिभविष्योक्तेश्चकेवला-ष्टम्याएवोपोष्यत्वावगतेः सैवरोहिणीयुक्ताजयंती कृष्णाष्टम्यांभवेद्यत्रकलैकारोहिणीयदि जयंतीनामसाप्रो-क्ताउपोष्यासाप्रयत्नतइतिवह्निपुराणात् अष्टमीकृष्णपक्षस्यरोहिणीरक्षसंयुता भवेत्प्रौष्ठपदेमासिजयंती-नामसास्मृतेतिविष्णुरहस्यादिवचनाच्च ज्योतिरादिवत्संज्ञायार्कमभेदः रोहिणीयोगश्चाहोरात्रंमुख्यः निशीथमात्रेमध्यमः दिवसादावधमः अहोरात्रंतयोर्योगोह्यसंपूर्णोभवेद्यदि मुहूर्तमप्यहोरात्रयोगश्चेत्तामुपोप-येदितिवसिष्ठसंहितोक्तेः अर्धरात्रेतुयोग्यंतारापत्युदयेसति नियतात्माशुचिःस्नातःपूजांतरव्रतयेदि-तिविष्णुधर्मोक्तेः वासरेवानिशायांवायत्रस्वल्पापिरोहिणी विशेषेणनभोमामेवैवोपोष्यामनीपिभिरिति-पुराणांतराच्च विशेषेणेतिश्रुतेर्भाद्रपदेपीदं श्रावणेवानभस्यंवतिवक्ष्यमाणान गौडान्तिनिशीथपर्वरोहिणी-योगेजयंतीनान्यथेत्याहुः तन्न वासरेवानिशायांवैतिविरोधान् योगविशेषाद्गुणात्फलमित्यन्ये तेष्यकरणे-दोषश्रुतेरुपेक्षयाः ।

आतां जन्माष्टमी सांगतो—ती जन्माष्टमी कृष्णपक्षादिमासानं (पौर्णिमांत मासानं) भाद्रपदकृष्णाष्टमी जाणावी. कारण, “अठ्ठाविम्या कलियुगामध्ये भाद्रपदमासानं कृष्णपक्षा अष्टमीस हा कृष्ण देवकीपुत्र झाला ” असें कल्पतरूंत ब्राह्मवचन आहे. या व्रताविषयी माधवमत असें—अष्टमी दोन प्रकारची, एक जन्माष्टमी व दुसरी जयंती. त्यांत पहिली केवळ अष्टमी. कारण, “जे समजून कृष्णजन्माष्टमीव्रत करीत नाहीत ते मनुष्य अरण्यामध्ये व्याघ्र किंवा व्याघ्र होतात” ह्या स्कंदपुराणवचनावरून, व “दिवसा किंवा रात्रीस जर रोहिणी कळामात्रही नाही तर रात्रियुक्त अष्टमी विशेषकरून चंद्रयुक्त असेल ती करावी” ह्या पुराणांतरवचनावरून, आणि “जो मनुष्य श्रावणमासी कृष्णपक्षा कृष्णजन्माष्टमीव्रत करीत नाही तो कूर राक्षस होतो” ह्या भविष्यपुराणवचनावरूनही केवळ अष्टमीसच उपोषण करावें असें समजतें. तीच अष्टमी रोहिणीयुक्त असतां जयंती होते. कारण, “कृष्णाष्टमीच ठायीं जर एक कळामात्रही रोहिणीयोग असेल तर ती अष्टमी जयंतीनामक म्हण्य आहे, तिचें उपोषण प्रयत्नानें करावें” असें वह्निपुराणवचन आहे आणि “भाद्रपदमासानं कृष्णपक्षाची अष्टमी, रोहिणीनक्षत्रयुक्त होईल तर ती जयंतीनामक होते” असें विष्णुरहस्यादिवचनाही आहे. जसें—“अथैष ज्योतिः, अथैष विश्वज्योतिः, अथैष सर्वज्योतिः” ह्या वाक्यांत ज्योतिः, विश्वज्योतिः, सर्वज्योति ह्या भिन्न भिन्न संज्ञांनीं भिन्न भिन्न कर्मे होतात, तसें येथें जन्माष्टमी व जयंती ह्या संज्ञा निरनिराळ्या असल्यामुळे निरनिराळीं कर्मे आहेत असें समजतें. रोहिणीयोग रात्रदिवस असणें मुख्य, मध्यरात्रीसच असणें मध्यम, दिवसा प्रदोषकालीं वगैरे असणें अधम. कारण, “रोहिणीनक्षत्र व अष्टमी यांचा योग संपूर्ण अहोरात्रांत नाही तर अहोरात्रांत मुहूर्तमात्रही योग असल्या तरी तिचें उपोषण करावें” असें वसिष्ठसंहितेंत वचन आहे, आणि “हा नक्षत्रतिथियोग अर्धरात्री चंद्रोदया अमता नियतात्मा शुद्ध होत्याना, स्नान करून त्या वेळीं पूजेस प्रारंभ करावा” असें विष्णुधर्मोत वचन आहे. “दिवसा किंवा रात्री जेव्हां स्वल्पही रोहिणी असेल तेव्हां विशेषकरून श्रावणमासी त्याच दिवशीं बुद्धिमतांना उपोषण करावें” असें पुराणांतरही आहे. ह्या पुराणांतरवचनांत “विशेषेण नभोमासे” असें म्हटलें, यावरूनही भाद्रपदांतही हे व्रत होतें. कारण, “श्रावणांत किंवा भाद्रपदांत” असें वचन पुढें सांगायचें आहे, गौड तर मध्यरात्रीसच रोहिणीयोग असतां जयंती होते, मध्यरात्रीं नसतां जयंती नाही असें म्हणतात, तें बरोबर नाही. कारण, “दिवसा किंवा रात्रीं अवघडी रोहिणी असतां उपोषण करावें” असें जें पूर्वीचें पुराणांतरवचन त्याच्याशीं विरोध येईल. विशेष यांकरूप जो गुण त्याचें विशेष फल आहे, असें अन्य ग्रंथकार म्हणतात. त्यांचें मतही उपेक्षणीय (अग्राह्य) आहे. कारण, केलें नसतां दोष सांगितला आहे.

तत्रजन्माष्टमीव्रतंनित्यं पूर्वोक्तवचनेषुअकरणेनिंदाश्रुतेः वर्षेवर्षेतुयानारीकृष्णजन्माष्टमीव्रतं नकरोतिमहा-प्राज्ञव्यालीभवतिकाननइतिस्कांदेवीप्साश्रुतेश्च नकरोतिनरोयस्त्वितिपूर्वमुक्तेरब्रह्मलिंगमतंत्रं मदनरत्ने स्कांदेवत्वत्रफलमप्युक्तं जन्माष्टमीव्रतंयैवैप्रकुर्वतिनरोत्तमाः कारयंत्यथवालोकांनलक्ष्मीस्तेपांसदास्थिरा सि-द्धयंतिसर्वकार्याणिश्रुतेजन्माष्टमीव्रतइति ।

त्या दोन व्रतांमध्ये जन्माष्टमीव्रत नित्य आहे. कारण, पूर्वांक्त वचनांमध्ये न करणाऱ्यांची निंदा गांगित्या आहे. आणि “जी स्त्री वर्षावर्षाचे ठायीं कृष्णजन्माष्टमीव्रत करीत नाही, ती अरण्यांत व्याघ्र (गरुडिणी) होते” ह्या स्कंदवचनांत ‘वर्षवर्षे’ अशी वीण्या (द्रिस्तिकी) ही आहे. आतां ह्या वचनांत स्त्रियेला दोष गांगित्या तरी स्त्रियेलाच समजावयाचा नाही. तर ‘जो मनुष्य करीत नाही तो क्रूर राक्षस होतो’ ह्या वरील भविष्यवचनावरून पुरुषासही दोष समजावा. **मदनरत्नांत स्कंदपुराणांत** तर ह्या व्रताचे फल्ही सांगितले आहे. — “जे मनुष्येष्टे, जन्माष्टमीव्रत करितात किंवा लोकांकडून करवितान त्यांची लक्ष्मी निरंतर स्थिर होते व जन्माष्टमीव्रत केले असतां सर्व कार्य सिद्ध होतात.”

जयंतीव्रतंतुनित्यं काम्यं च महाजयार्थं कुरुतां जयंतीं मुक्तये न च धर्ममर्थचक्रां च मोक्षं च मुनिपुंगव ददाति-
वांछितानर्थानथे चान्येष्यति दुर्लभा इति **स्कांदादौ** फलश्रुतेः शूद्राग्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने तत्पापं लभ-
ते कुंतिजयंती विमृशो नरः न करोति यदा विष्णो जयंती संभव व्रतं यमस्य वशमापन्नः सह ते नारकीयथा मिल्य-
क-
रणं निंदाश्रुते च यदा च पूर्वद्युः परं दुर्वारो रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी जयंती यामंत भूताज्ञेया न तु जन्माष्टमीव्रत-
पृथक् कार्यं विष्णुश्रृंगलवनं तदुक्तं **माधवे** नेव यस्मिन् वर्षे जयंतीयास्यो योगो जन्माष्टमीतदा अंतर्भूता जयंती-
स्यादक्षयोगप्रशस्तिरिति **मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिल** मतेष्वेव ।

जयंतीव्रतं तर नित्यं च काम्यं ही आहे. कारण, “महाजयार्थं च मुक्तिप्राप्त्यर्थं जयंतीव्रतं करावें, तें जयंतीव्रत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यांना व उत्तर अति दुर्लभ गोष्टांना देतें” असे **स्कंदपुराणादिकांत** फल सांगितल्यावरून काम्य आहे. आणि “अवदस्तांतील शूद्रांसाठी मोक्षन केले असता जे पाप त्यागले तें पाप जयंतीव्रत न करणारास प्राप्त होतें. जेव्हां मनुष्य विष्णूचे जयंतीव्रत करित नाहीं, तेव्हा तो यमाने साक्षीत होऊन नरकपरीत पावतो.” अशा अकरणीं निंदाश्रवणावरून नित्य आहे. त्या वेळां तो दिवस किंवा पुनरे हिंदूना रोहिणीयोग अंगेष्ट. त्या वेळां जन्माष्टमी जयंतीत अंतर्भूत जणांना जन्माष्टमीव्रत जेव्हा जेव्हा करे नये. त्या वर्षापासून विष्णुश्रृंगलयोग सांगितला आहे. तथा हा योग होतो. तें **माधव** च नासणे — “जो वर्षा जयंती योग होतो त्या वर्षी जन्माष्टमी, नक्षत्रयोगाच्या प्राशस्त्यामुळे जयंतीत अंतर्भूत होतें.” **मदनरत्न, निर्णयामृत, गौड, मैथिल** यांच्या मतांत असेच आहे.

हेमाद्रादयस्तु रोहिणीमयुतोपाध्यामयार्थोपाविनाशिनी अथरात्रादध्वोर्ध्वकलयावायदाभवेन जयं-
तीनामसाप्रोक्तं सर्वपापप्रणाशिनीत्य **अग्निपुराणादध्वरात्रयवरोहिणीयोगस्य प्राशस्त्यात्** मुहूर्तमपिलभ्येतेत्या-
दीनां चार्धरात्रयोगेषु पपन्नं जयंतीव्रतं भिन्नं **तत्त्वंतु** हेमाद्रिमतं पि जयंतीव्रतं भिन्नमेव उदयचाष्टमीत्यस्य तेन-
जयंतीपग्नोक्तः किंच रोहिण्यामध्वरात्रययदा कृष्णाष्टमीभवेन तस्यामभ्यर्चनं शौरेहंति पापं त्रिजन्मजसमिति
विष्णुधर्मोक्तः समयोगो न तु रोहिण्यां निशीथरात्रसत्तम समजायत गोविंदो बालरूपी चतुर्भुजः तस्मात्पूज-
येत्तत्र यथावित्तानुरूपत इति **वह्निपुराणाच्चाध्वरात्रयस्य कर्मकालत्वमवसीयते** अतः कर्मणो यस्य सः काल इत्या-
दिवचनात्पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने समोपि रोहिणीयोगस्य तत्र योजकत्वं अन्यथा बुधवारंगदं गपितत्त्वापत्तेः किंच जयं-
तीशब्दो रात्रिविशेषचनः अभिजिन्नामनक्षत्रं जयंतीनामशर्वरी मुहूर्तं विजयोनामयत्रातो जनादेन इति-
ब्रह्मांडपुराणात् तेनतद्योगिरोहिण्यां गौणत्वाच्च व्रतभेदः यत्तु वामं रवानिशायां व्रतितत्कमुक्ति कन्यायेन नि-
शीथयोगस्य वस्तुन्यर्थपूर्वदिने धरात्रयोगाभावे प्राशस्त्यार्थ इत्याहुः यद्यपि दिवावायदिवारात्रोनास्ति चेद्वोहिणी-
कला रात्रियुक्तां प्रकुर्यात्तच्चि शेषेण दुस्संयुतामित्यनेन रोहिणीयोगाभावे धरात्रयोगप्राप्ताद्येनां तथापि यस्मिन् वर्षे-
जयंतीयोगो नास्ति तत्र जयंतीव्रतलोपे प्राप्तेः अष्टमीमात्रे पि जयंतीव्रतं कार्यमित्येवंपरसिद्धमिति न दाशयः अत्र हि स-
त्रायामर्थविभजिताय जेत एषामसंभवे कुर्यादिष्टिर्वैश्वानरी द्विजइति वदो रोहिणीयोगाभावे विधानात्कार्यापत्तिः-
स्यात् अत एवोक्तं जयंतीनामशर्वरीति ।

हेमाद्रि प्रभृति ग्रंथकार तर “रोहिणीयुक्त अष्टमी मध्ये पानकांच नाश करणारी अगत्यामुळे तिचें उपोषण करावें. अध्वरात्राच्या आंत किंवा बाहेर एक कलामात्रही रोहिणीचा योग जेव्हां होईल तेव्हां ती सर्वपापनाश करणारी जयंती म्हण्यी आहे.” ह्या **अग्निपुराणा**वरून अध्वरात्रांच रोहिणीयोग प्रशस्त अगत्यामुळे, व ‘मुहूर्तमात्र जरी प्राप्त होईल’ इत्यादि वचनांची अध्वरात्रांमात्रविषयीही उपपत्ति होत अगत्यामुळे जयंतीव्रत भिन्न नाही. आतां यांत खरा प्रकार म्हणजे तर हेमाद्रिंमती देखील जयंतीव्रत भिन्नच आहे. कारण, ‘उदय चाष्टमी किंचित्’ हें पुढील स्कंदवचन ह्या हेमाद्रिनें

जयंतीपर सांगितले आहे. हें असो; आणखी “रोहिणीनक्षत्रावर अर्धरात्री जेव्हां कृष्णाष्टमी होईल तेव्हां तिच्या ठिकाणी कृष्णाचे पूजन करावे, म्हणजे तीन जन्मांचें पाप जातें” ह्या विष्णुधर्मवचनावरून, व “मध्यरात्री रोहिणीच्या व अष्टमीच्या योगावर बालरूपी चतुर्भुज असा गोविंद झाला, तस्मात् त्या वेळीं त्याची आपल्या द्रव्यानुरूप पूजा करावी” ह्या ब्रह्मपुराणवचनावरूनही अर्धरात्र हा कर्मकाल आहे, असें समजतें. म्हणून ‘ज्या कर्माचा जो काल तत्कालव्यापिनी तिथि घ्यावी. इत्यादि वचनावरून पूर्वदिवशींच प्राप्त असल्यामुळे दुसऱ्या दिवशीं रोहिणीयोग असला तरी तो जयंतीव्रताच्या प्रयोजक नाही. प्रयोजक आहे असें म्हटलें, तर बुधवारादिकांनाही प्रयोजकत्व प्राप्त होईल. आणखी जयंती हा शब्द विशेष रात्रीचा वाचक आहे. कारण, “ज्या वेळीं जनार्दन झाला त्या वेळचें नक्षत्र अर्धजित्, रात्रि जयंती आणि मुहूर्त विजय होय” असें ब्रह्मांडपुराणवचन आहे. तेणेंकरून तादृशरात्रियुक्त रोहिणी गौण (अगुण्य) अगल्यामुळे व्रतभेद नाही. आतां जें ‘दिवसा किंवा रात्रीं अल्पही रोहिणी असेल’ असें पूर्वी गांगिनलेलें पुगणांतरवचन, तें कैमुतिकन्यायानें (म्हणजे इतर वेळीं देखील अल्पही योग असला तरी उपोषणाय योग्य होतें मग मध्यरात्री योग असला तर काय सांगावें ? या न्यायानें) मध्यरात्री योगाच्याच स्तुतीकरितां आहे व पूर्व दिवशीं अर्धरात्री योग नगतां व दिवसा योग अमतां प्राशस्त्य बोधन करण्याकरितां आहे, असें सांगतात. जरी “दिवसा अथवा रात्रीं एक कलामात्रही रोहिणी नसेल तर रात्रियुक्त असेल ती करावी, विशेषेंकरून चंद्रोदयीं असेल ती घ्यावी” ह्या वचनानें रोहिणीयोग नगतां अधरात्रव्याप्ति प्राप्य म्हणून सांगितली आहे. तरी ज्या वर्षी जयंतीयोग नाही त्या वर्षी जयंतीव्रतगोप प्राप्त अमतां केवळ अष्टमीचे टावीच जयंतीवन करावें, अशा अर्थाचें बोधक हें वचन आहे, अशा त्यांचा आशय होय. या ठिकाणीं, जसें—“सत्रयाग करण्याधिपर्यां उद्युक्त होऊन तो सत्रयाग झाला नाही तर विश्वजित् याग करावा. त्यांच्या असेंभवीं वैश्वानरी दृष्टि करावी” असें गांगिनले आहे, त्याप्रमाणें अष्टमीस रोहिणीयोगाच्या अभावीं जयंतीव्रताचें विधान त्या दिवशीं केल्यामुळे जयंतीव्रताच्या कार्याची प्राप्ति होईल. म्हणूनच जयंती म्हणजे शर्वरी (रात्रि) असें गांगिनलें आहे.

यच्च स्कांदे उदयेचाष्टमीकिंचिन्नवमीसकलायदि भवतेवुधप्रसंयुक्ताप्राजापत्यक्षसंयुता अपिवर्षशतेनापि लभ्यतेवाथवानवेति यच्च पाद्मे प्रेतयोनितानांतुप्रतत्वंनाशितंतुतेः यैःकृताश्रावणमासिअष्टमीरोहिणीयुता किंपुनर्बुधवारणसोमेनापिविशेषतः किंपुनर्नवमीयुक्ताकुलकोट्यास्तुमुक्तिदेतितद्दानादिविषयं उपवासमाश्रवणादित्यनंतभट्टः जयंतीपरमितिहेमाद्रिः उदयेचंद्रोदयइतिकेचित् तत्र चंद्रोदयसत्त्वेऽसंदेहान्नवमीमकलेत्ययोगान्मानाभावाच्च तेनपूर्वेषुःसप्तमीवेधेपरदिनेसूर्योदयेघटिकाप्राह्या पूर्वविद्धाष्टमीतिपाद्मेःकृतः इतियुक्तं अतोन्नतभेदोनायंतर्भावंइत्यूचिवान् गौडास्तुनवमीक्षयपरमिदंवचनं नवमीसकलायदीतिविशिष्योक्तेः एतत्पूर्वदिनेजयंत्यभावपरमित्याहुः जयंत्यादिसर्वापवादोयमितिचूडामण्यादयः वयंतुसत्यंनतभेदः लोकास्तुजन्माष्टमीमेवानुतिष्ठति नहि श्रावणवानभस्येवारोहिणीसहिताष्टमी यदाकृष्णान्तर्गच्छामासजयंतीतिकीर्तिता श्रावणेनभवेद्योगोन्नतभस्येतुभवेद्बुधमितिमाधवीयवसिष्ठसंहितोक्तापिभाद्रजयंतीकनापिक्रियते अतःपूर्वगुरेवोपवासः यद्वागुणात्फलं सप्तमेब्रह्मवर्चसकाममुपनयेदितिवादित्यन्यं तन्न नित्यत्वातुपपत्तेः अत्र गौणमुख्यचांद्राभ्यामेकएवमासइत्यन्ये तन्न एकवाक्येऽभयनिर्देशेवाशब्दद्वयायोगात् अतो जयंतीव्रतस्यापिनित्यत्वादुपवासद्वयंकार्यमितिब्रूमः अतएवहेमाद्रिमदनरत्नादौ जन्माष्टमीव्रतंजयंताव्रतं चभिन्नमुक्तं भिन्नकालत्वात्सर्वथातावदंतर्भावोनेतिसिद्धं यद्यपि पूर्वापरावाल्पारोहिणीयुतैवकार्येतिप्रधानांतत्त्वंप्रतीयतेतदपिजयंतीपरमेव इदंचकाम्यमेवेत्यनंतभट्टः तद्गुणहेमाद्रौज्ञेयं नित्यंकाम्यमितितुवहवः ।

आतां जें स्कांदांत—“जर उदयकालीं किंचित् अष्टमी असून सारा दिवस नवमी आहे व ती बुधवार व रोहिणीनक्षत्र यांनी युक्त आहे तर असा उत्तम योग शेंकडों वर्षांनीं प्राप्त होईल किंवा न होईल.” आणि जें पाद्मांत “ज्यांनीं श्रावणमासांत रोहिणीयुक्त अष्टमी केली त्यांनीं प्रेतयोनींत गेलेल्या मृतांचें प्रेतल नष्ट केलें असें समजावें. मग बुधवार किंवा विशेषेंकरून सोमवारयुक्त असेल तर काय सांगावें ? आणि ती नवमीयुक्त असली म्हणजे काय सांगावें ? ती अष्टमी कोटिकुलांना मुक्ति देणारी आहे.” असें वचन तें दानादिविषयक आहे. कारण, ह्या वचनांत उपवासाचें श्रवण नाही, असें अनंतभट्ट सांगतो. हें वचन जयंतीविषयक आहे, असें हेमाद्री सांगतो. बरील स्कांदवचनांत ‘उदये’ याचा अर्थ चंद्रोदये, असें केचित् म्हणतात. तें बरोबर नाही. कारण, चंद्रोदयीं अष्टमी असेल तर संशय नाही, व सारा दिवस नवमी सेभवत नाही आणि तसा अर्थ करण्याविषयीं प्रमाणही नाही. तेणेंकरून पूर्वदिवशीं सप्तमीवेध असतां दुसऱ्या दिवशीं सूर्योदयीं एक घटिका असली तरी ती, ‘पूर्वाविद्धाष्टमी या तु’ असें पुढें सांगायचाचें पाद्मवचनावरून घ्यावी, हें योग्य आहे.

म्हणून व्रतभेद नाही, व जयंतीत अष्टमीव्रताचा अंतर्भावही नाही, असें (तो अनंतभट्ट) सांगता आला. गौड तर—नवमीचा क्षय असेल त्याविषयीं हें वचन आहे. कारण, 'उदयीं अष्टमी असून सारा दिवस नवमी असेल तर' असें विवेचें. करून सांगितलें आहे. ह्याच्या पूर्वदिवशीं जयंती नाही, असा त्याचा अर्थ समजावा, असें सांगतात. जयंती, जन्माष्टमी या सर्वांचा अपवाद हें वचन आहे, असें चूडामणि इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. आह्मी तर—खरोखर दोन व्रतें भिन्न आहेत, असें सांगतां. आतां लोक तर जन्माष्टमीचेंच अनुष्ठान करितात. जरी जयंतीव्रत सांगितलें तरी करीत नाहीत. "श्रावणांत किंवा भाद्रपदांत ज्या वेळीं रोहिणीमहिन कृष्णाष्टमी मनुष्यांस प्राप्त होईल त्या वेळीं ती जयंती अशी म्हटली आहे. श्रावणांत हा योग नसल्या तर भाद्रपदांत निश्चयानें योग होईल" याप्रमाणें माधवीयांत वसिष्ठसंहितेंत उक्त भाद्रपदांतील जयंती कोण करितात काय ! कोणीही करीत नाहीत. मग जयंतीव्रत सांगितलेलें असून उपयोग काय ! म्हणून पूर्वदिवशींच उपयोग करावा. अथवा जयंतीरूप गुणानें विशेष फल होतें. जसें—ब्रह्मवर्चस (वेदाध्ययनाचें तेज) इच्छिणाराचें सातव्या वर्षी उपनयन करावें. येथें सातवें वर्षरूप गुणानें ब्रह्मवर्चसरूप फल प्राप्त होतें, तसें जयंतीव्रत केल्यानें फल प्राप्त होतें, असें अन्य म्हणतात, तें बरोबर नाही. कारण, पूर्वीच्या वचनांनीं जयंतीव्रत नित्य सांगितलें आहे तें उपपन्न होणार नाही काम्यमात्र होईल. आतां ह्या वरील वसिष्ठसंहितावचनांत श्रावण व भाद्रपद असे दोन मास म्हटले ते असे—कृष्णप्रतिपदेपासून पार्णिमेष्यंत मास धरला तर गौण चांद्र भाद्रपद ध्यावा. आणि शुक्ल प्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत मास धरला तर मुख्य चांद्र श्रावण ध्यावा. मिळून दोन सांगितले तरी तो एकच मास आहे, असें इतर म्हणतात, तें बरोबर नाही कारण, त्या एका वचनांत दोन मास सांगितले असून त्या ठिकाणीं दोन 'वा' हे शब्द आहेत ते लागत नाहीत. म्हणून जयंतीव्रताची मात्र धरल्यामुळे दोन उपयोग करावे, असें आह्मी सांगतां. म्हणूनच हेमाद्रि—मदनरत्न इत्यादि येथील जन्माष्टमीव्रत आणि जयंतीव्रत भिन्न सांगितलें आहे. दोघांचे काल भिन्न असल्यामुळे सर्वथा एकांत दुसऱ्याचा अंतर्भाव होत नाही. जसें मिर सांगे आतां जरी पूर्वी किंवा परा अन्य अष्टमी असली तरी रोहिणीयुक्त असेल तीच करावी, असें ग्रंथाचे नव्वे प्रतीपाद येते, तें देखील जयंतीविषयकच आहे. जन्माष्टमीविषयक नाही. हें जयंतीव्रत काम्यन आहे, जसें अनंतभट्ट सांगतो त्याचे कृष्ण हेमाद्रिंत पाहावे. निरा व काम्य आहे असें तर बहुत लोक सांगतात.

ननुयथाविष्णुशंखलयोगेश्रवणद्वादशीवामनजयंत्यादिसर्वमिद्विधैवावैकादशीम्बन्धापिपरातथा कला-काष्ठामुहूर्तापियदाकृष्णाष्टमीतिथिः तवस्यांसैवप्राह्यास्यात्मप्रमीसंयुतानहि इत्यादिवचनादर्धोदयाविषयो-गाधिक्यकलाधिक्यात्परंयजन्माष्टमीयुक्तनिचेन वार्तामात्रं नहितव्रतभेदोद्वयोर्नित्यद्वयोरकणेदोषोवा-धृतः इहत्वेतैस्त्रिभेदोभिमःसंज्ञाभेदाद्वर्गभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदःस्पष्टएव एकदैवतत्वाच्छ्रवणद्वादशीव-त्रपारणालोपदोषोपि तेनव्रतद्वयमेवयुक्तं द्वयोरपिनित्यत्वात् केचित्तु व्रतायांद्वापरंचैवराजनकृतयुगेतथा रोहिणीसंहिताचेयंविद्वद्धिःसमुपोषिता अतःपरमर्हापालसंप्राप्ततामसेकलौ जन्मनावामुदेवस्यभविताव्रतमु-त्तममितिहेमाद्रौवह्निपुराणात् कलौजन्माष्टमीव्रतमेवतजयंतीव्रतमित्याहुः तत्र तामसेकलावित्युक्तेः परमश्रेयोहेतोरस्यकलौपापिनांदुर्लभत्वमुच्यते तेनकलौतामसानकल्पितं किंतुधन्याएवेत्यर्थः अन्यथाशू-द्राश्रवाक्षणाचाराभविष्यंतियुगेकलौ इत्यादौविधिकल्पनापत्तेः अत्रनिशीथेवधएवप्राज्ञः पूर्वोक्तवचनेषुतस्यै-वमुख्यकालत्वोक्तेः अष्टमीशिवरात्रिश्रद्धार्धरात्रादधोयदि दृश्यतेघटिकायामपूर्वविद्वत्प्राकीर्तितेतिमाधवी-येपुराणांतरात् अर्धरात्रेतुगेहिण्यांयदाकृष्णाष्टमीभवेत्तस्यामभ्यर्चनंशौरेर्हतिपापंत्रिजन्मजमितिभवि-ष्योक्तेः अष्टमीरोहिणीयुक्तानिश्यधेदृश्यतेयदि मुख्यकालइतिव्यातस्तत्रजातोहरिःस्वयमिति वसिष्ठसं-हितोक्तेश्च ।

शंका—श्रवणद्वादशीप्रकर्णी विष्णुशंखलयोग सांगितला आहे, तो योग अमतां जशी-श्रवणद्वादशी, वामनजयंती इत्यादि सर्वांची मिद्धि होतें, अथवा जशी-स्वल्प एकादशी अमर्श तरा परा करावी, तशी—“ज्या वेळीं नवमीत कलमात्र, किंवा काष्ठा (कलेचा तिसरा भाग) मात्र अथवा मुहूर्तमात्र अष्टमी असेल त्या वेळीं, तीच ध्यावी; सप्तमीयुक्त घेऊं नये” इत्यादि वचनांवरून—जसें अर्धोदय, महादय पर्वचे ठायीं अधिक योग अमतां अधिक फल आहे तसें अधिक योग अमतां अधिक फल असल्यामुळे—पराच जन्माष्टमी युक्त आहे असें म्हणू ! समाधान—ही तर वार्ता बोर्लू नकोस ! कारण, त्या विष्णुशंखलयोगाचे ठिकाणीं भिन्न व्रतें, किंवा दोन्ही नित्य अथवा दोन्ही न केळीं अमतां दोष सांगितला आहे काय ! सांगितला नाही. या ठिकाणीं भिन्न व्रतें, दोन्ही नित्य व दोन्ही न केळीं अमतां दोष ह्या तीन कारणांनीं आम्ही

दोन्ही व्रतांचीं नामें भिन्न, धर्म भिन्न, काल भिन्न असल्यामुळें उपवास भिन्न स्पष्टच आहे. दोन्ही व्रतांची देवता एक असल्यामुळें पूर्वीच्या उपवासाचे पारणेचा लोपप्रयुक्त दोषही नाही. तेणेंकरून दोन व्रतेंच युक्त आहेत. कारण, दोन्ही नित्य आहेत. केचित् ग्रंथकार तर—“कृत, त्रेता आणि द्वापार ह्या तीन युगांमध्ये विद्वानांनीं रोहिणीसहित ह्या अष्टमीचें उपोषण केलें आहे. याउपर तामस असें कलियुग प्राप्त झालें अमतां वामुदेवाच्या जन्माचें उत्तम व्रत होणार आहे” ह्या हेमाद्रीतील वह्निपुराणवचनावरून कलियुगांत जन्माष्टमीव्रतच आहे. जयंतीव्रत नाही, असें गांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, ‘तामस कलियुग प्राप्त अमतां’ असें सांगितल्यावरून हें व्रत परम कल्याणाला कारण असल्यामुळें पाण्यांना हें दुर्लभ, असें सुचविलें आहे. तेणेंकरून कलियुगांत तामस करणार नाहीत. तर धन्य अमतील तेच करितील. असा त्याचा अर्थ आहे. असा अर्थ न करितां ‘तामस कलि प्राप्त अमतां रोहिणीसहित करणार नाहीत, तर जन्माष्टमीव्रत करितील’ याचा अर्थ—रोहिणी सहित जयंतीव्रत करूं नये, असा विधि जर काल तर “कलियुगांत शूद्र ब्राह्मणांचा आचार करतील” याचा अर्थ—शूद्रांनीं ब्राह्मणांचा आचार करावा, असा विधि होऊं लागेल. येथें समर्पविधनिषेधक वचनांत वेध ध्यावावा तो मध्यरात्रीच वेध ध्यावा. कारण, पूर्वी सांगितलेल्या वह्निपुराणादिवचनांमध्ये मध्यरात्रच मुख्य काल सांगितला आहे. व “अष्टमी आणि शिवरात्रि जर अंधरात्रीच्या आंत एक घटिका असेल तर ती पूर्वविद्धा म्हण्यी आहे” असें माधवीयांत पुराणांतरवचन आहे. “अंधरात्री रोहिणीवर जेव्हां कृष्णाष्टमी होईल त्या वेळीं तिच्या ठिकाणीं कृष्णाचें पूजन केलें असतां तीन जन्मांचें पाप जातें.” असें भविष्यवचन आहे. आणि “जर रोहिणीयुक्त अष्टमी मध्यरात्रीं दिगम्यी तर तो मुख्य काल आहे, कारण, त्या काळीं हरि स्वतः उत्पन्न झाला आहे.” असें वसिष्ठसंहितावचनही आहे.

तत्राष्टमीद्वेधा रोहिणीरहितातद्युताच आद्यापिचतुर्धा पूर्वगुरेवनिशीथेरोहिणीपरेगुरेवोभयेगुरनुभयेगुश्चेति तत्राद्ययोरसंदेहएव कर्मकालव्याप्तेः जन्माष्टमीरोहिणीचशिवरात्रिसंयैवच पूर्वविद्वैवकर्तव्यातिथिर्भातेच- पारणमितिभृगुक्तेश्च अम्मात्केवलरोहिण्युपवामोपसिद्धः अंत्ययोःपरेव प्रातःसंकल्पकालव्याप्तेराधि- क्त्यात् । वर्जनीयाप्रयत्नेनसप्तमीसंयुताष्टमीतिब्रह्मवैवर्ताच्च एवमंशतःसप्तम्याप्रावपि विषमव्याप्तौत्वा- धिक्येननिर्णयः ।

आतां अष्टमीचे भेद सांगतो—अष्टमी दोन प्रकारची—रोहिणीरहिता आणि रोहिणीसहिता. पहिली रोहिणी-रहिता, तिचेही चार प्रकार आहेत—पूर्वदिवशीच मध्यरात्रव्यापिनी, दुसऱ्या दिवशीच मध्यरात्रव्यापिनी, दोन्ही दिवशीं मध्यरात्रव्यापिनी, दोन्ही दिवशीं मध्यरात्रव्यापिनी नाही. असे चार पक्ष आहेत. त्यांमध्ये पहिल्या दोन पक्षांविषयीं संदेह नाहीच. कारण, कर्मकालव्याप्ति आहे. आणि “जन्माष्टमी, रोहिणी, व शिवरात्रि ह्या पूर्वविद्वान्च कराव्या, तिथि व नक्षत्र यांच्या अंती पारणा करावी” असें भृगुवचनही आहे. या वचनावरून केवळ रोहिणीचा उपवासही निष्ठ झाला. पुढच्या दोन्ही पक्षां पराच करावी. कारण, पूर्वदिवसापेक्षा परादिवशी प्रातःसंकल्पकार्य व्याप्ति अधिक आहे. आणि “सप्तमीयुक्त अष्टमी प्रयत्नानें वर्ज्य करावी” असें ब्रह्मवैवर्तवचनही आहे. याप्रमाणें अंशानें दोन्ही दिवशीं समव्याप्ति अमतांही समजावें. अंशानें विषमव्याप्ति असेल तर जी अधिक व्याप्ति असेल ती ध्यावी.

रोहिणीयुतापिचतुर्धा पूर्वगुरेवनिशीथेरोहिणीयुतापरेगुरेवोभयेगुरनुभयेगुश्च अत्राप्याद्ययोरसंदेहः कार्याविद्धापिसप्तम्यारोहिणीसहिताष्टमीतिपाद्भोक्तेः जयंत्यांपूर्वविद्वद्यामुपवासंसममाचरेदितिगारुडाच्च सप्तमीसंयुताष्टम्यानिशीथेरोहिणीयदि भवितासाष्टमीपुण्यायावचंद्रदिवाकरावितिबह्निपुराणाच्च द्विती- येऽसंदेहएव तृतीयपक्षेपरैव वर्जनीयाप्रयत्नेनसप्तमीसंयुताष्टमी सक्तृश्चापिनकर्तव्यासप्तमीसंयुताष्टमीतिब्रह्म- वैवर्तात् चतुर्ध्वपित्रेधा पूर्वगुरिनिशीथेप्रमीपरेहिरोहिणी परेह्यष्टमीपूर्वेहिरोहिणी उभयगुरुभयस्यनिशी- थासंबंधोवेति आद्येपरेगुरजयंतीयोगस्यसत्त्वान्परैवेतिमाधवः तदुक्ततेनैव यस्मिनवर्पेजयंत्याख्योयोगोज- न्माष्टमीतदा अंतर्भूताजयंत्यास्यादृक्षयोगप्रशस्तितइति पूर्वविद्धाष्टमीयातुदयेनवमीदिने मुहूर्तमपिसंयुक्ता- संपूर्णासाष्टमीभवेत् कलाकाष्टामुहूर्तापियदाकृष्णाष्टमीतिथिः नवम्यांसैवाग्राह्यास्यात्सप्तमीसंयुतानहीतिपा- द्भोक्तेश्च केचितुहेमाद्रौ अष्टम्याःप्राधान्यात्तस्याश्चपूर्वगुःकर्मकालव्याप्तिव्याप्त्यैव पाद्भतुपूर्वहिनिसी- थेष्टम्यभावेज्ञेयं अंतर्भावोक्तिस्तुमूर्खदंघ्रणमात्रमित्याहुः अन्येतुपूर्वविद्धाष्टमीवाक्येनजन्माष्टम्यांसूर्योदये- सप्तमीवेधनिषेधात् कलाघटीमात्राप्यौदयिकीप्राह्या कार्याविद्धापिसप्तम्येतिजयंतीपरं जयंत्यांपूर्वविद्वद्यामु-

पवासंसमाचरेदित्येकवाक्यत्वात् तत्राभिद्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवाससद्वयंभवत्येव यदातुकेबलाष्टमीशुद्धा-
धिकातदात्यागहेतोःसप्तमीवेधस्याभावात्पूर्वैव यदिवाविद्वन्यूनतदापरदिनेप्राणतिथेरभावात्पूर्वैव एवंसर्वा-
ण्यौदयिकैवाक्यानि सप्तमीवेधपराणि येतु जन्माष्टमीपूर्वविद्धांसक्तृक्षांसकलामपि विहायनवमीशुद्धासुपोष्य-
व्रतमाचरेदिति न्यासोक्तेर्विद्धायाः श्वेदशुद्धनवम्यामुपवासः दशमीवेधेद्वादश्युपवासवदित्याहुः तेनिर्मूल-
त्वादुपेक्ष्याः मुहूर्तमपिसंयुतेतिरोहिणीयोगेत्याज्यत्वोक्तेः तिथ्यंतपारणवाक्यानांनिर्विषयत्वापत्तेः नचज-
यंतीपराणिशुद्धाधिकापराणिवाता निभृग्वाद्यैःपूर्वविद्धाष्टम्यामपितिथ्यंतपारणोक्तेः तेनकलाकाष्ठेतिवाक्या-
ंतरवशाज्ययंतीपरमेतत् ।

रोहिणीयुक्त अष्टमी देखील चार प्रकारची—पूर्वदिवशीच मध्यरात्री रोहिणीयुक्तः दुसऱ्या दिवशीच मध्यरात्री रोहिणी-
युक्तः दोन्ही दिवशीं मध्यरात्री रोहिणीयुक्तः दोन्ही दिवशीं मध्यरात्री रोहिणीरहित. येथं देखील पहिल्या दोन पक्षांविषयीं
संदेह नाही. कारण, “सप्तमीविद्ध असली तरी रोहिणीयुक्त अष्टमी करावी” असें पाद्यवचन आहे. आणि “पूर्वविद्ध-
जयंतीचे ठायीं उपवास करावा” असें गारुडवचनही आहे. आणि “सप्तमीयुक्त अष्टमीचे ठायीं जर मध्यरात्री रोहिणी
असेल तर ती अष्टमी चंद्रमूर्त्य आहेत नांपर्यंत पुण्य देणारी होतं” असें वह्निपुराणवचनही आहे. हा प्रकार पूर्वे दिवशीं
रोहिणीयुक्त पक्षाविषयीं झाला. दुसऱ्या पक्षां संदेह नाहीच. तिगऱ्या पक्षां पराच करावी. कारण, “सप्तमीयुक्त अष्टमी,
प्रयत्नांचे वर्ज्य करावी. नक्षत्रयुक्त असली तरी सप्तमीयुक्त अष्टमी करू नये” असें ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. चवथा प्रकार
(दोन्ही दिवशीं मध्यरात्री रोहिणीयुक्त नाही) त्याचेही तीन प्रकार आहेत—१ पूर्व दिवशीं मध्यरात्री अष्टमी परदिवशीं
रोहिणी. २ परदिवशीं अष्टमी पूर्वदिवशीं रोहिणी. ३ दोन्ही दिवशीं दोघांचा मध्यरात्री संबंध नाही. यांत पहिल्या पक्षां पर-
दिवशीं जयंतीयोग असल्यामुळे पराच करावी, असें माधव सांगतो. ते त्यांचेच सांगितले आहे—“ज्या वर्षी जयंतीयोग
होतो, त्या वर्षी नक्षत्रयोगाच्या प्राशस्त्यामुळे जन्माष्टमी जयंतीच अंतर्भूत होते” आणि “जो अष्टमी पूर्वविद्धा असून नव-
मीच्या दिवशीं सूर्योदयां मुहूर्त (दोन घटी) जरी असली तरी ती संपूर्ण अष्टमी होतं. ज्या वेळीं कृष्णार्धमा तिथि कला, काष्ठा,
मुहूर्तमात्र जरी नवमांत असली तरी ती ध्यावी. सप्तमीयुक्त घेऊ नये” असें पाद्यवचनही आहे. केचित् तर हेमाद्रींत
अष्टमांस प्राधान्य सांगितल्यामुळे ती पूर्वदिवशीं कर्मकालव्यापिनी असल्यामुळे पूर्वीचीच ध्यावी. बरील पाद्यवचन
तर पूर्वदिवशीं मध्यरात्री अष्टमी नमतां जाणावे. जयंतीच अंतर्भाव जो सांगितला तो केवळ मूर्तीची प्रनारणा मात्र आहे,
असें सांगतात. अन्यग्रंथकार तर—“पूर्वविद्धाष्टमी या तु” ह्या बरील पाद्यवचनाने जन्माष्टमीस सूर्योदयां सप्तमीवेधनिषेध
केल्यामुळे कलामात्र किंवा घटीमात्र अशी देखील सूर्योदयव्यापिनी ध्यावी. “कार्या विद्धापि सप्तम्या” हें बरील पाद्यवचन
जयंतीविषयक आहे. कारण, “पूर्वविद्ध जयंतीच्या ठिकाणीं उपवासव्रत करावे, ह्या बरील गारुडवचनाशीं एकवाक्यता
होते. असें केले असताही दोन्ही व्रतं नित्य असल्यामुळे व दोघांचा काल निज असल्यामुळेही दोन उपवास होतातच. ज्या
वेळीं केवळ अष्टमी शुद्धाधिक म्हणजे अष्टमीची वृद्ध असेल त्या वेळीं त्यामात्र कारण सप्तमीवेध, तो पूर्व दिवशीं नसल्या-
कारणाने पूर्वाच ध्यावी. अथवा विद्ध असून अष्टमीचा क्षय असेल त्या वेळीं पर दिवशीं ग्रहण करण्याच्या तिथीचा
अभाव असल्यामुळे पूर्वाच ध्यावी. याप्रमाणे मारा उदयव्यापि धेण्याविषयींचा वाक्ये सप्तमीवेधविषयक आहेत. आतां
जे कोणी “पूर्वविद्धा जन्माष्टमी रोहिणीयुक्त, मारी असली तरी तो टाकून शुद्ध नवमीस उपासण करून व्रत करावे.”
ह्या व्यासवचनावरून विद्धेचा क्षय असतां शुद्ध नवमीस उपासण करावा, दशमीविद्ध एकादशी असतां जगा द्वादशीस
सांगितला तसा करावा, असें सांगतात. त्यांचे तें मत मूलरहित असल्यामुळे अप्राप्य आहे. ‘मुहूर्तमपि संयुक्ता’ या वचनाने
रोहिणीयोग असतां त्याज्यत्व सांगितले आहे. पूर्वविद्धाष्टमी टाकून पर अष्टमी केली असतां ‘तिथीच्या अंतीं पारणा
करावी’ अशीं जें वाक्यें त्यांना विषय सांपडणार नाही. तीं तिथीच्या अंतीं पारणाविधायक वचनें जयंतीविषयीं किंवा
पूर्व दिवशीं शुद्ध असून दुसऱ्या दिवशीं वृद्ध असणाऱ्या तिथीविषयीं होत नाहीत. कारण, सृष्ट इत्यादिकांनीं पूर्वविद्ध
अष्टमीचे ठायीं देखील तिथीच्या अंतीं पारणा सांगितली आहे. तेणेंकरून ‘कला काष्ठा’ ह्या बरील पाद्यवचनानुरोधानें
हें व्यासवचन जयंतीविषयक आहे.

तत्तुंतु अष्टम्याःकर्मकालव्याप्तेः दिवावायविवारात्रौनास्तिचेद्वोहिणीकळा रात्रियुक्तंप्रदुर्वातविशेषेपेण्डु-
संयुतामितिपूर्वोक्तवाक्यैः रोहिणीयोगाभावेप्राणत्वोक्तैर्वचनात्कर्मकालव्यापिनीत्यक्त्वापूर्वापरावाल्यापिरो-
हिणीयुताप्राणा माधवमदनरत्ननिर्णयामृतानंतभट्टगौडमैथिलप्रधादिष्वप्येवमिति युक्तमुप-

वासद्वयकार्यद्वयोनित्यत्वादितितुवयं अंत्ययोःपरैव सप्तमीसंयुताष्टम्यांभूत्वाऋक्षद्विजोत्तम प्राजापत्यद्विती-
येहिमुहूर्तार्थभवेद्यदि तदाष्टयामिकंपुण्यंप्रोक्तव्यासादिभिःपुरेतिस्कांदात् मुहूर्तनापिसंयुक्तासंपूर्णाष्टमी-
भवेत् किंपुनर्नवमीयुक्ताकुलकोट्यास्तुमुक्तिदेतिपाद्माच्चेतिदिक ।

खरा प्रकार म्हटला तर—“दिवसा किंवा रात्रीस एक कलामात्रही रोहिणीयोग नसेल तर रात्रियुक्त विशेषंकरून
चंद्रोदययुक्त असेल ती करावी” ह्या पूर्वोक्तवचनांनीं रोहिणीयोग नसतां कर्मकालव्यापिनी अष्टमीस ग्राह्यल सांगितल्यावरून
पूर्वोक्त जयंतीवचनावरून कर्मकालव्यापिनी टाकून पूर्वा किंवा परा अल्प असली तरी रोहिणीयुक्त ती ध्यावी. **माधव—**
मदनरत्न—निर्णयामृत—अनंतभट्ट—गौड—मैथिल—इत्यादि ग्रंथांतही असेंच आहे. युक्त म्हटलें तर दोन उपवास
करावे. कारण, दोन्ही नित्य आहेत, असें तर आम्हीं (कमलाकरभट्ट) सांगतां. हा निर्णय पूर्व दिवशीं मध्यरात्रीं अष्टमी
व पर दिवशीं रोहिणी या वरील पहिल्या प्रकारचा झाला. पुढच्या दोन प्रकारांविषयीं पराच अष्टमी करावी. कारण,
“सप्तमीयुक्त अष्टमीस रोहिणी नक्षत्र असून दुसऱ्या दिवशीं एक घटिका असेल तर त्या दिवशीं आठ प्रहरांचें पुण्य
व्यासादिकांनीं पूर्वी सांगितलें आहे” असें स्कांदवचन आहे, आणि “दुसऱ्या दिवशीं दोन घटिका अष्टमी असली तरी ती
संपूर्ण अष्टमी होईल. मग नवमीयुक्त असली तर काय सांगावें ? ती कोटि कुलांना मुक्ति देणारी आहे” असें पाद्मवचनही
आहे. ही दिशा दाखविली आहे.

निंबादित्योपासकास्तुजन्माष्टमीरामनवमीशिवरात्र्यादौपूर्वेहिकर्मकालीनांतिथित्यक्त्वाद्वित्रिमुहूर्तापरैव-
तिथिर्ग्राह्या उदयव्यापिनीग्राह्याकुलेतिथिरूपोपणे निंबार्कोभगवान्येपांवांछितार्थफलप्रद इतिहेमाद्रौमा-
तस्योक्तमुक्तिसप्तमीव्रतेभविष्योक्तेरित्याहुः तन्न यदिद्वितीयेदिवसेतुऋक्षतिथ्योर्युतिःस्यान्नतदोपवासः
पूर्वंप्रकुर्यादिवसेद्वितीयेदिनेशभक्तोयतदाव्रताद्यमितिमातस्यवाक्येनतत्रैवउपसंहारात्सर्वार्थत्वेनमानाभा-
वात् ऋक्षतिथ्योर्हस्तसप्तम्योः अन्यथाऋषिपंचम्यादौतदापत्तिः शिष्टाचारान्नेतिचेन् न तस्यन्यायवचोवि-
रोधेनहेयत्वान् इदानींकापिनिंबार्कोपासनाभावाच्चेतिसंक्षेपः ।

निंबादित्योपासक तर—जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि इत्यादिक व्रतांविषयीं पूर्वदिवशीं कर्मकालव्यापिनी तिथि
वर्ज्य करून दुसऱ्या दिवशीं दोन तीन मुहूर्तव्यापिनी तिथि असेल तीच ध्यावी. कारण, “ज्यांच्या कुलांत निंबार्क भगवान्
वांछितार्थ फल देणारा आहे त्यांनीं उपोषणांविषयीं उदयव्यापिनी तिथि ध्यावी” असें हेमाद्रौत मातस्योक्त मुक्तिसप्तमी-
व्रतांत भविष्यवचन आहे, असें सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, “जर दुसऱ्या दिवशीं नक्षत्र तिथि (हस्त सप्तमी)
यांचा योग होईल तर सूर्यभक्तांना त्या दिवशीं उपवास नाही. पूर्व दिवशीं उपवास करावा, आणि दुसऱ्या दिवशीं व्रतादिक
करावें.” ह्या मातस्यवचनानें त्याच व्रतांविषयीं (हस्तयुक्त सप्तमी व्रतांविषयीं) पूर्वोक्त (उदयव्यापिनी ध्यावी, एतदर्थ-
बोधक) वचनाचा उपसंहार (पर्यवसान) केल्यामुळें वरील भविष्यवचन सर्व उपोषणांविषयीं आहे, असें म्हणण्यास
प्रमाण नाही. सर्व उपोषणांविषयीं आहे असें म्हटलें, तर ऋषिपंचमी इत्यादिकांचे ठायीं तें वचन प्राप्त होईल. शिष्टाचार-
वरून तें प्राप्त होत नाही, असें म्हणूं ! तर तसें नाही. तें म्हणणें न्यायविरुद्ध व वचनविरुद्ध असल्यामुळें त्याज्य आहे. आणि
सांप्रत कालीं कोठेंही निंबार्कोपासनाही नाही. असें थोडक्यांत सांगून पुरे करितां.

पारणंतु तिथिरष्टगुणंहंतिनक्षत्रंचचतुर्गुणं तस्मात्प्रयत्नतःकुर्यात्तिथिभातेचपारणमितिब्रह्मवैवर्तात्
तिथ्यर्क्षयोर्दोषदाछेदोन्नक्षत्रांतमथापिवा अर्धरात्रेथवाकुर्यात्पारणंतवपरेहनीतिहेमाद्रौवचनाच्चाधरात्रेपुभयां-
तेन्यतरातेवेतिमुख्यःपक्षः सर्वेष्वेवोपवासेपुदिवापारणमिष्यतइतिब्रह्मवैवर्तत्वन्यविषयं दिनेमुख्यकाल-
लाभेन्यतरातेवाज्ञेयं गौडास्तु नरात्रौपारणंकुर्यादृतेवैरोहिणीव्रतात् तत्रनिश्चितत्कुर्याद्वर्जयित्वामहानि-
शमिति ब्रह्मांडपुराणाद्रात्रौसार्धप्रहरमध्येकार्यं महानिशातुविज्ञेयामध्यमंमध्ययामयोः तथा मध्यमप्र-
हरात्रेर्विज्ञेयातुमहानिशेतिस्मृत्यंतरात् कल्पतरौमदनरत्नेचैव । कामधेनौगर्गस्तु महानिशातु-
विज्ञेयामध्यमंप्रहरद्वयमित्याह वृद्धशातातपस्तु महानिशाद्वेघटिकेरात्रौमध्यमयामयोरित्याह वेदपाठप-
रमेतदित्यन्ये महानिशायांमन्यतरातेतृतीयदिनेपारणं अपरेहनीतिपारणोत्तरदिनपरत्वान् उभयांतापेक्षणा-
दित्याहुः तच्चतुमहानिशातोर्वागन्यतरांतलाभेमहानिशानिषेधः महानिशायांमेवलाभेतत्रैवपारणमिति
दिबोदास्तु रजनीप्रहरंयावत्प्रवृत्तिःकर्मणोमता पारणंतावदेष्टंप्रमादान्नभवेद्यदीतिस्कांदादूर्ध्वनिषेध-

माह तन्निर्मूलं अशकौतुबहिपुराणे भांतेकुर्यात्तिथेर्वापिशस्तंभारतपारणमिति गारुडेविष्णुधर्मैव
जयंत्यांपूर्वविद्धायामुपवाससमाचरेत् तिथ्यंतेवोत्सवांतेवाव्रतीकुर्वीतपारणं अशकौतु तिथ्यंतेतिथिभांतेवा-
पारणयंत्रचोदितं यामत्रयोर्ध्वगामिन्यांप्रातरवेहपारणा सएवोत्सवांतइतिकालादर्शोक्तेतिथेति संक्षेपः ।

पारणा तर—“तिथि अष्टगुण पुण्याचा नाश करिते व नक्षत्र चतुर्गुण पुण्याचा नाश करितें, यास्तव प्रयत्नांनें तिथि व नक्षत्र यांच्या अंतीं पारणा करावी” ह्या ब्रह्मवैवर्तवचनावरून; आणि “तिथि व नक्षत्र यांचा अंत जेव्हां होईल अथवा नक्षत्राचा अंत जेव्हां होईल तेव्हां मध्यरात्री किंवा दुसऱ्या दिवशीं पारणा करावी” ह्या हेमाद्रींतील वचनावरूनही अर्धरात्रीही तिथि-नक्षत्रांच्या अंतीं किंवा दोहोंतून एकाचे अंतीं पारणा करानी” हा मुख्य पक्ष. “सर्वे उपवासांचे ठायीं दिवसा पारणा इष्ट होय.” असें जें ब्रह्मवैवर्तवचन तें तर अन्य वनविषयक होय. किंवा दिवसा मुख्यकाल मिळेल तर दोहोंतून एकाच्या अंतीं जाणावें. **गौड तर** “रोहिणीव्रतावांचून रात्रीं पारणा करूं नये, रोहिणीव्रताचे ठायीं रात्रीही पारणा करावी; परंतु महानिशा वर्ज्य करावी” ह्या ब्रह्मांडपुराणवचनावरून रात्रीं वीडप्रहरामध्ये पारणा करावी. कारण, “मध्यम दोन प्रहरांचा मध्यभाग (मधल्या आठ घटी) महानिशा जाणावी.” तसेंच रात्रीच्या मध्यमप्रहराचे ठायीं महा-निशा जाणावी” असें स्मृत्यंतर आहे. कल्पतरूंत व मदनरत्नांतही असेंच आहे. **कामधेनु** मंथांत गर्ग तर—“रात्रीचे मध्यम दोन प्रहर ती महानिशा होय” असें सांगतो. **बुद्धशातातप** तर—“रात्री मध्यम दोन प्रहरांच्या दोन घटिका ती महानिशा” असें सांगतो. हें वचन वेदपाठविषयक आहे, असें अन्य ग्रंथकार म्हणतात. महानिशाचे ठायीं तिथि किंवा नक्षत्र यांतून एकाचा अंत असेल तर तिसऱ्या दिवशीं पारणा करावी कारण, “अपरेऽहनि” हें वरील हेमाद्रिवचन तिसऱ्या दिवसाचें बोधक असल्यामुळे दोघांच्या अनाची अपेक्षा आहे. असें सांगतात. सारा प्रकार म्हटला तर महानिशाच्या अर्धघटे एकाचा अंत असेल तर महानिशाचा निषेध महानिशाच्या पूर्वेत एकाचा अंत असेल तर तेव्हांच पारणा करावी. **द्विवोदास** तर “रात्री प्रहरपर्यंत कर्माची प्रवृत्ति सांगितली आहे, तोपर्यंतच पारणा इष्ट आहे” ह्या रुक्मादिवचनावरून प्रहरगुढें पारणाचा निषेध सांगतो, नें निमूल होय. अशक असेल तर सांगतो **वक्त्रिपुराणांत**—“नक्षत्रांतीं किंवा तिथ्यंतीं पारणा प्रशस्त होय.” **गारुडांत व विष्णुधर्मांत**—“व्रती यांनीं पूर्वोक्त जयंतीचे ठायीं उपवास करावा आणि तिथीच्या अंतीं किंवा उग्याच्या अंतीं पारणा करावी.” शक असेल तर सांगतो—“त्या ठिकाणीं तिथीच्या अंतीं किंवा तिथि व नक्षत्र यांच्या अंतीं पारणा सांगितली आहे, त्या ठिकाणीं तिथि तीन प्रहरांहून अधिक असेल तर प्रातःकालीच पारणा करावी” कारण, तीन उग्याचा आहे, असें कालादर्शाचें वचनही आहे. याप्रमाणें हें संक्षेपाचें सांगितलें आहे, असें समजावें.

अष्टम्यांविशेषो हेमाद्री भविष्ये ततोऽष्टम्यांतिलेः स्नानोत्तमादौ विमले जले मुंदशेशोभनं कुर्यादेव कन्याः
मृत्तिकागृहं तन्मध्ये प्रतिमां स्थाप्यामाचाप्यष्टविधां मृता कांचनी राजतीताम्रीपैतली मृन्मयी तथा वार्शमणि-
मयी चैव वर्णैर्कलित्विताथवा सर्वलक्षणसंपूर्णापर्यंकेचपटावृते देवकीतत्रचैकस्मिन् प्रदेशे मृत्तिकागृहे प्रमृतांच-
प्रमृतांचस्थापयेन्मंचकोपरि मांतत्रवालकं मुमंपर्यंकेन नपायिनं यशोदांतत्रचैकस्मिन् प्रदेशे मृत्तिकागृहे तद्वक्त्र-
त्पयेत्पार्थप्रसूतवरकन्यकां कउयपोवमुंदवोयमदिति श्रैवदेवकी शेषावैवलभद्रोयं यशोदाक्षिति रन्वभूत् नंदः-
प्रजापतिर्दशोग्रगश्चापि चतुर्मुखः गौर्धनुः कुंजरश्चैव दानवाः शम्भुपाणयः लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्वये
इत्येवमादित्येकचिच्छक्यते चरितं मम लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तिनत्परः मंत्रेणा नंतकौंतेय देवकीपूजयेन्नरः
गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वंशुदीणानिनादेः शृंगारादर्शकुंभप्रवरकृतकरैः किंकरैः सेव्यमाना पर्यंके स्वा-
भृतयेतामुदिततरमुखी पुत्रिणी मम्यगाम्भेमादेवकी देवमाना जयति सुतनया देवकीकां तरूपा पादौ सबाहयंती श्रीदे-
वक्याश्चरणांतिके निपण्णापंकजे पूज्या नमो देव्यै श्रिये इति ।

अष्टमीचे दिवशीं विशेष विधि सांगतो—हेमाद्रीं भविष्यांत—“त्या जन्माष्टमीचे दिवशीं तिळ वाटून अंगास लावून नद्यादिकांच्या स्वच्छ जलमध्ये स्नान करून उत्तम प्रदेशीं देवकीचें मुंदर मृत्तिकागृह करावें, व त्यामध्ये कृष्णाची प्रतिमा (मूर्ति) स्थापावी. ती आठ प्रकारची सांगितली आहे ती अशी—सुवर्ण, रजत, ताम्र, पित्तल, मृत्तिका, वृक्ष, मणि यांची अथवा रंगांनीं लिहिलेली अशी सर्वे लक्षणयुक्त (कृष्णाची) प्रतिमा वस्त्रावृत पलंगावर ठेवून, त्या मृत्तिका-गृहामध्ये एका प्रदेशीं मंचकावर प्रसूत झालेल्या व दुग्ध स्तवनाच्या अशा देवकीचें स्थापन करावें. त्या पर्यंकावर निजलेख व स्तनपान करणारा असा जो मी बालक याचें (कृष्णाचें) स्थापन करावें, व त्या मृत्तिकागृहामध्ये एका प्रदेशीं यशोदा व तिला झालेली कन्या अशीं पूर्वीप्रमाणेंच स्थापावीं. वसुदेव हा कदप, देवकी ही अदिति, बलराम हा शेष, यशोदा ही

पृथ्वी आहे, नंद हा प्रजापति दक्ष, गर्ग हा ब्रह्मदेव आहे. गाय ही घेऊ, हत्ती, शस्त्र धरणारे दानव हे सर्व तेथें लिहावे. तसाच यमुनेचा हृद लिहून त्यामध्ये कालिया सर्प लिहावा. इत्यादिक जें कांहीं माझें चरित्र लिहिण्यास शक्य आहे तें लिहून प्रयत्नानें भक्तियुक्त होऊन पूजन करावें व देवकीचेंही पूजन करावें. पूजाध्यानमंत्रः—“गायद्भिः किंनराद्यैः सततपरिवृता वेषुवीणानिनादैः शृंगारादर्शकुंभप्रवरकृतकरैः किंकरैः सेव्यमाना ॥ पर्यंके स्वास्तुते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुतनया देवकी कांतरूपा ॥ १ ॥” “देवकीचे चरणजवळ (कृष्णाचें) पादसंवाहन करणाऱ्या व कमलांत बसलेल्या अशा लक्ष्मीचें “नमो देव्यै श्रिये” या मंत्रानें पूजन करावें.”

अर्धरात्रेवसोर्धारांपातयेद्रुडसर्पिणा नाडीवर्धापनंपट्टीनामादेःकरणमम ततोमंत्रेणवैदद्याचंद्रायाध्यसमा- हितः शंखेतोयसमादायसपुष्पकुशचंदनं जानुभ्यांधरणीगत्वाचंद्रायाध्यनिवेदयेत् क्षीरोदाणवसंभूतअत्रि- गोत्रसमुद्भव गृहाणार्घ्यशशंकेंद्रोहिण्यासहितोमम ज्योत्स्नापतेनमस्तुभ्यंनमस्तेज्योतिषापते नमस्तोहि- णीकांतअर्घ्यनःप्रतिगृह्यतां यथापुत्रंहरिंलब्ध्वाप्राप्तातेनिवृतिःपरा तामेवनिवृतिंदेहिमुपुत्रंदर्शयस्वमे इति- देवक्यर्घ्यः ततःपुष्पांजलिदत्वायामेयामेप्रपूजयेत् प्रभातेब्राह्मणानशक्त्याभोजयेद्भक्तिमात्रः औंनमो- वासुदेवायगोब्राह्मणहितायच शांतिरस्तुशिवंचास्तुइत्युक्त्वामां विसर्जयेत् इदंप्रतिमासकृष्णाष्टम्यामप्युक्तं- मदनरत्नेवह्निपुराणे प्रतिमासंचतेपूजामष्टम्यांयःकरिष्यति ममचैवाखिलांनकामान्ससंप्राप्त्यत्यसंशयं तथा अनेनविधिनायस्तुप्रतिमासंनरेश्वर करोतिवत्सरंपूर्णयावदागमनंहरेः दद्याच्छय्यांसुसंपूर्णाभोगीरत्नै- रलंकृतां इतिजन्माष्टमीव्रतं ।

मध्यरात्री गुड व घृत यांची वसोर्धारा घालावी. नालच्छेदन, पट्टीपूजन, नामकरण इत्यादिक माझें (कृष्णाचें) करावें. नंतर समाहितचित्त होऊन चंद्राला अर्घ्य द्यावें. त्याचा प्रकार—शंखामध्ये उदक घेऊन त्यांत पुष्प, दर्भ, चंदन घालून गुठ्यांनीं भूमिस्पर्श करून (गुठ्ये भूमीवर टेंकून) चंद्राला अर्घ्य द्यावें.” त्याचा मंत्रः—“क्षीरोदाणवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ॥ गृहाणार्घ्यं शशंकेंद्रोहिण्या सहितो मम ॥ ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषापते ॥ नमस्ते रोहिणीकांत अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यतां ॥” “यथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निवृतिः परा ॥ तामेव निवृतिं देहि मुपुत्रं दर्शयस्व मे” ॥ हा देवकीच्या अर्घ्याचा मंत्र. “नंतर पुष्पांजलि देऊन प्रहरा- प्रहराचे ठायीं पूजन करावें. भक्तियुक्त होऊन प्रातःकालीं यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन घालावें. “ॐ नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥ शांतिरस्तु शिवं चास्तु” असे म्हणून माझें विसर्जन करावें” हें कृत्य प्रत्येक महिन्याच्या कृष्णपक्षाच्या अष्टमीस करण्याविषयीं सांगितलें आहे. मदनरत्नांत वह्निपुराणांत—“प्रत्येक मासाचे कृष्णाष्टमीचे ठायीं तुम्ही (देवकीची) पूजा जो करील व माझी (कृष्णाची) ही पूजा जो करील त्याचे सर्व मनोरथ पूर्ण होतील यांत संशय नाही.” तसेंच “या विधीनें जो प्रत्येक महिन्यामध्ये जांपर्थत हरीचें आगमन होईल (जन्माष्टमी येईल) तोंपर्थत सान्या वर्षभर पूजन करील व पूर्वी सांगितलेल्या शय्या रत्नांनीं अलंकृत करून देईल त्याला सर्व भोग प्राप्त होतील.” ॥ इति जन्माष्टमीव्रताचा निर्णय समाप्त झाला ॥

भाद्रमावास्यायांकुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौहारीनेन मासेनभस्यमावास्यातस्यांदर्भोच्चयोमतः अयातया- मास्तेदर्भविनियोज्याःपुनःपुनः नभाःश्रावणः तेनदर्शातमासेजन्माष्टम्यनंतरंदर्शोल्भ्यते मदनरत्नेतु मासेनभस्यमावास्यातस्यांदर्भोच्चयोमतइतिमरीचिवाक्यमुक्तं नभस्योभाद्रपदः तेनमहालयांतर्गतदर्शोल्भ्यते अत्रगौणमुख्यचंद्राभ्यामेकएवदर्शइत्यन्ये ।

भाद्रपद अमावासेस नवीन दर्भ काढण्यास सांगतो हेमाद्रौत-हारीत—“श्रावणमासी अमावासेस नवीन दर्भसंचय करावा, ते दर्भ पर्युषित (बासे) होत नाहीत म्हणून त्यांचा आपआपल्या कर्माविषयीं वारंवार उपयोग करावा.” येथें ‘नभस्’ या पदानें श्रावणमास समजावा, तेणेंकरून दर्शांत मास धरला असतां जन्माष्टमीनंतरचा दर्श येतो. मदन- रत्नांत तर—“भाद्रपदांतील जी अमावास्या तिचे ठायीं दर्भग्रहण करावें” असें मरीचिचवचन सांगितलें आहे. तेणेंकरून महालयांतील दर्श येतो. येथें गौण चांद्र (पूर्णिमांत) म्हटला म्हणजे भाद्रपद आणि मुख्य चांद्र (अमावास्यांत) म्हटला म्हणजे श्रावण असा समजून दोन्ही वचनांनीं एकच (जन्माष्टमी नंतरचाच) दर्श येतो, असें अन्य विद्वान् सांगतात.

१ सप्तपुष्पकुशादीनांद्वितीयःप्रहरोमत इत्युक्तेस्तथापिनीअमावास्या । २ मदनरत्नेत्विति तुनाऽरुचिः शुक्लादिकृष्णादिमासमेवेन एकस्येवचांद्रस्यग्रहीतुंशक्यत्वात् ।

भाद्रपदशुक्लतृतीयायांहरितालिकाव्रतं तत्रपराप्राह्या मुहूर्तमात्रसंख्येऽपिदिनेगौरीव्रतंपरे शुद्धाधिकायामध्येवं गणयोगप्रशंसनादिति**माधवोक्तेः** चतुर्थीयुक्तायांफलाधिक्यं **माधवीयेआपस्तम्बः** चतुर्थीसहिताया-
तुसातृतीयाफलप्रदा अवैधव्यकरास्त्रीणांपुत्रपौत्रप्रवर्धिनी द्वितीयायोगेप्रत्यवायमाहसएव द्वितीयाशेषसंयु-
क्तायाकरोतिविमोहिता सवैधव्यमवाप्नोतिप्रवदंतिमनीषिणइति आद्यामधुश्रावणिकाकज्जलीहरितालिका
चतुर्थीमिश्रितास्त्रीभिर्दिवानक्तेविधीयते तृतीयानभसःशुक्लामधुश्रावणिकासमृता भाद्रस्यकज्जलीकृष्णाशुक्ला-
चहरितालिकेति**दिवोदासो**दाहृतवचनाच्च ।

भाद्रपदशुक्ल तृतीयेस हरितालिकाव्रत आहे. त्या व्रताविषयी तृतीया परा ध्यावी. कारण, “पर दिवशी मुहूर्तमात्र तृतीया असली तरी गौरीव्रत पर दिवशीं होतें. पूर्वे दिवशीं शुद्ध असून दुसऱ्या दिवशीं रुद्ध असली तरी पर दिवशींच गमजावें, कारण, चतुर्थीयोग प्रशस्त आहे” असें **माधवाचें** वचन आहे. चतुर्थीयोग असतां फल अधिक आहे, असें सांगतो-**माधवीयांत-आपस्तम्बः**—“चतुर्थीयुक्त जी तृतीया ती स्त्रियांना फल देणारी, अवैधव्य करणारी व पुत्रपौत्र वाढविणारी अशी आहे.” द्वितीयेना योग असतां प्रत्यवाय नाच (आपस्तम्ब) सांगतो-“जी अविचारी स्त्री द्वितीयायुक्त तृतीयेचा उपवास करिते तिला वैधव्य प्राप्त होतें, असें विद्वान् सांगतात” आणि “स्त्रियांनीं मधुश्रावणिका, कज्जली व हरितालिका ह्या तिथि रात्रिदिवसाच्या व्रताविषयीं चतुर्थीयुक्त ध्याव्या. श्रावण शुक्ल तृतीया ही मधुश्रावणिका होय. भाद्रपदकृष्ण (श्रावणकृष्ण) तृतीया कज्जली आणि भाद्रपदशुक्ल तृतीया हरितालिका होय” असें **दिवोदासानें** दिलेलें वचनही आहे.

भाद्रशुक्लचतुर्थीवरदचतुर्थी सामध्याह्नव्यापिनीप्राह्या प्रातःशुक्लतिलैःस्नात्वामध्याह्नेपूजयेन्नृपेति**हेमा-
द्रौभविष्ये**तत्रैवपूजोक्तेः **मदनरत्ने**प्येवं परदिनेएवांशेनसाकन्येनवामध्याह्नव्याम्यभावेसर्वपक्षेषुपूर्वा-
प्राह्या तथाच**बृहस्पतिः** चतुर्थीगणनाथस्यमातृविद्वाप्रशस्यते मध्याह्नव्यापिनीचेत्स्यात्परतश्चेत्परेहनीति
मातृविद्वाप्रशमास्याच्चतुर्थीगणनाथके मध्याह्नपरतश्चेत्स्यान्नागविद्वाप्रशस्यतइति**माधवीयेस्मृत्यंतरा**
तत्रगणेशरूपं**स्कांदे** एकदंतंशूर्पकर्णनागयज्ञोपवीतितं पाशांकुशधरंदेवंध्यायेन्मिद्विविनायकमिति ह्यंरवि-
भौमयोरतिप्रशस्ता भाद्रशुक्लचतुर्थीयाभौमेनार्कणवायुता महतीमात्रविघ्नेशमर्चित्वेष्टंलभेन्नरइति**निर्णयामृ-
तेवाराहोक्तेः** । अत्रचंद्रदर्शननिषिद्धं तथाचा**परांकेमार्कंडेयः** मिहादित्येशुक्लपक्षेचतुर्थ्यांचंद्रदर्शनं
मिथ्याभिद्रूपणंकुर्यात्तस्मात्पश्येन्नतमंदंति चतुर्थ्यानपश्येदित्यन्वयः प्रधानक्रियान्वयलभान् तेनचतुर्थ्या-
मुदितस्यपंचम्यांतनिषेधः **गौडा**अप्येवमाहुः **पराशरोपि** कन्यादित्येचतुर्थ्यांशुक्लेचंद्रस्यदर्शनं मिथ्या-
भिद्रूपणंकुर्यात्तस्मात्पश्येन्नतमंदा तदोपशान्तयेमिहःप्रसेनमितिचैवपठेदिति **श्रोकम्तुविष्णुपुराणे सिंहःप्र-
सेनमवर्धात्मिहोजांवचनाहृतः** मुकुमारकमारोदीम्नवक्ष्यमंतकइति ।

भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी वरदचतुर्थी-ती मध्याह्नव्यापिनी ध्यावी. कारण, “प्रातःकालीं पांढरे तिल अंगास लावून ज्ञान करून मध्याह्नी पूजन करावें.” अशी **हेमाद्रौत भविष्यांत** मध्याह्नीच पूजा उक्त आहे. **मदनरत्नांतही** असेंच आहे. तिथीचे महा पक्ष आहेत ते असे-१ पूर्वे दिवशींच मध्याह्नव्यापिनी, २ पर दिवशींच मध्याह्नव्यापिनी ३ दोन्ही दिवशीं मध्याह्नव्यापिनी नाही, ४ दोन्ही दिवशीं सकल मध्याह्नव्यापिनी, ५ दोन्ही दिवशीं मध्याह्नी अंशानें समव्यापिनी, ६ दोन्ही दिवशीं अंशानें विषमव्यापिनी. ह्या महा पक्षांत पर दिवशींच मध्याह्नव्याप्ति आहे, मग ती सकल मध्याह्नव्याप्ति असो किंवा अंशतः मध्याह्नव्याप्ति अगो, आणि पूर्वे दिवशीं सुर्वींच मध्याह्नव्याप्ति नाही तर ह्या वर्गील दुसऱ्या पक्षां पराच करावी. इतर सर्वे पक्षां पूर्वा करावी. तेंच सांगतो **बृहस्पतिः**—“गणेशचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी असेल तर मातृविद्वा (तृतीयायुक्त) प्रशस्त होय. पर दिवशींच मध्याह्नव्यापिनी असेल तर पर दिवशींच करावी.” आणि “गणपतीचे पूजना-
विषयीं चतुर्थी तृतीयायुक्त असून मध्याह्नी असेल तर ती प्रशस्त होय; पर दिवशींच तशी (मध्याह्नी) असेल तर पंचमी-
विद्वा प्रशस्त आहे” असें **माधवीयांत स्मृत्यंतरही** आहे. त्या चतुर्थीचे ठायीं गणेशाच्या ध्यानाचें स्वरूप सांगतो-
स्कांदांत—“एकदंतं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतितं ॥ पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकं.” अथ-

१ द्वितीयेचा योग अल्प असला तरी तो निषिद्ध आहे. कारण, “कला काष्ठपि वा यत्र द्वितीया संप्रवृत्तये ॥ सा तृतीया न कर्तव्या कर्तव्या गणसंयुता” अर्थ—ज्या दिवशीं कलाकाष्ठादिपरिमितही द्वितीया असेल ती तृतीया करू नये, चतुर्थीयुक्त असेल ती करावी, असें **स्कांद**वचन आहे.

एकदंत, शूर्पकर्ण, सर्पांचें यज्ञोपवीत, पाश व अंकुश धरणारा, देव सिद्धिविनायक त्याचें ध्यान करावें. ह्या चतुर्थास रवि किंवा भौम वार असतां अति प्रशस्त आहे. कारण, “भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी जी भौम किंवा रविवार यांनीं युक्त ती महती होय. तिचे ठायीं गणपतीचें पूजन केलें असतां मनुष्यांस इष्टप्राप्ति होते” असें निर्णयामृतांत वाराहवचन आहे. ह्या चतुर्थाचे ठायीं चंद्रदर्शन निषिद्ध. तेंच सांगतो अपराकांत-मार्कंडेय-“सिंहराशीस सूर्य असतां शुक्लपक्षी चतुर्थांस चंद्रदर्शन झालें तर मिथ्यापवाददोष येतो. म्हणून त्या चंद्रास चतुर्थीत पाहूं नये” चतुर्थीत पाहूं नये असा अन्वय करावा. असा केला असतां प्रधानक्रियेचा अन्वय होतो. तेणेंकरून चतुर्थीत उदय झालेल्या चंद्राचें दर्शन पंचमीत झालें असतां तो दिवस विनायकव्रताचा असला तरी निषेध नाही. गौडही असेंच सांगतात. पराशरही “कन्याराशीस सूर्य जातो त्या मासांत शुक्लपक्षी चतुर्थांस चंद्राचें दर्शन झालें असतां मिथ्याभिदूषण प्राप्त होतें, म्हणून त्या चतुर्थास सर्वदा चंद्रास पाहूं नये. आणि पाहिला असतां त्या दोषाचे शांतीकरितां ‘सिंहः प्रसेन०’ या श्लोकाचा जप करावा.” तो श्लोक असा-
विष्णुपुराणांत-“सिंहः प्रसेनमवधीर्लसिंहो जांबवता हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्त्व ह्येष स्यमतकः”

भाद्रपदशुक्लपंचमीऋषिपंचमी सामाध्याह्न्यापिनीग्राह्या पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्न्यापिनीतिथिरिति माधवीयेहारीनोक्तेः दिनद्वयेतत्त्वे हेमाद्रिमते परा सितापरयुतास्यात्पंचमीति दीपिकोक्तेः माधवमते पूर्वा सर्वत्र पंचमी पूर्वेल्युक्तेः युग्मवाक्याभिर्णयस्तु युक्तः ऋषिपंचमी पृथीयुतैवेति दिवोदासः अत्र ऋषीन्प्रतिमासु पूजयित्वाऽऽष्टभूमिजशाकेन वर्तनं एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्रकुंभेषु प्रतिमासु मंजूष्यापरे हितत्तन्मंत्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान्हृत्वा सप्तब्राह्मणान्भोजयदिति निर्णयामृते ।

भाद्रपदशुक्ल पंचमी ही ऋषिपंचमी—ती मध्याह्न्यापिनी ध्यावी. कारण, “सर्वे पूजाव्रतांत मध्याह्न्यापिनी तिथि ध्यावी.” असें माधवीयांत हारीतवचन आहे. दोन दिवशां मध्याह्न्यापिनी असतां हेमाद्रिमती परा करावी. कारण, “शुक्लपंचमी परयुक्ता ध्यावी” असें दीपिकावचन आहे. माधवमती पूर्वा—कारण, “सर्वत्र पंचमी पूर्वा ध्यावी” असें वचन आहे. युग्मवाक्यानें निर्णय करणें म्हणजे चतुर्थीयुक्त घणें हें योग्य आहे. ऋषिपंचमी पृथीयुक्तच ध्यावी असें दिवोदास सांगतो. या पंचमीचे ठायीं सप्तऋषींची प्रतिमेचे ठायीं पूजा करून न नांगरलेल्या भूमीत उत्पन्न झालेल्या शाकांचा आहार करावा. असें सात वर्षे व्रत करून सात कुंभांवर सात ऋषिप्रतिमा पुजून दुसरे दिवशीं त्या त्या मंत्रांनें अष्टोत्तरशत संख्याक तिलहोम करून सात ब्राह्मणांस भोजन घालावें असें निर्णयामृतांत सांगितलें आहे.

भाद्रशुक्लपृथीसूर्यपृथी सासप्तमीयुतैवेति दिवोदासः शुक्लभाद्रपदपष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनं प्राशनं पंचगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकमिति वचनात् कल्पतरौ भविष्ये थंयं भाद्रपदे मासि पृथीस्य द्वात्रतर्पणं योस्यां पश्यति गांगेयं दक्षिणापथवासिनं ब्रह्महत्यादि पापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः गांगेयः स्वामिकार्तिकेयः भाद्रपदशुक्लसप्तम्यामुक्ताभरणव्रतं तत्र सप्तमी पूर्वायुताग्राह्या पण्मुन्योरिति युग्मवाक्यात् ।

भाद्रपदशुक्लपृथी सूर्यपृथी. ती सप्तमीयुक्तच ध्यावी, असें दिवोदास सांगतो. कारण, “भाद्रपदशुक्लपृथीस स्नान, सूर्यपूजन, आणि पंचगव्याचें प्राशन केल्यानें अश्वमेधाहून अधिक फल होतें” असें वचन आहे. कल्पतरूंत भविष्यांत—“भाद्रपदमासी जी पृथी प्राप्त होते तिचे ठायीं जो मनुष्य गांगेय (गंगापुत्र) दक्षिणदिशेंस राहणारा अशा कार्तिकस्वामीचें दर्शन घेतो तो ब्रह्महत्यादि पापांपासून मुक्त होतो, यांत संशय नाही.” भाद्रपदशुक्लसप्तमीस मुक्ताभरणव्रत. त्या व्रताविषयी सप्तमी पृथीयुक्त ध्यावी. कारण, “पृथी व सप्तमी यांचें युग्म” असें युग्मवाक्य (प्रथमपरिच्छेदांत) उक्त आहे.

भाद्रपदशुक्लाष्टमीदूर्वाष्टमी सापूर्वाग्राह्या श्रावणीदुर्गनवमीदूर्वाचैव हुताशनी पूर्वविद्धातुर्कृतव्याशिवरात्रिर्बलेर्दिनमिति हेमाद्रौ बृहदयमोक्तेः शुक्लाष्टमीतिथिर्यातु मासि भाद्रपदे भवेत् दूर्वाष्टमीतु साज्ञेयानोत्तरासाविधीयत इति पुराणसमुच्चयाच्च यत्तु मुहूर्ते रौहिणेष्टम्यां पूर्वावाय दिवा परा दूर्वाष्टमीतु साकार्याज्येष्टामूलं च वर्जयेदिति तत्रैव पराकार्येल्युक्तं तत्पूर्वदिने ज्येष्टादियोगे द्रष्टव्यं दूर्वाष्टमीसदा त्याज्याज्येष्टामूलक्षंसंयुता तथा ऐर्ध्रक्षेपूजिता दूर्वाहंत्यपत्यानि नान्यथा भर्तुरायुर्हरामूले तस्मात्तां परिवर्जयेदिति तत्रैव तन्निषेधात् इदमगस्त्योदये कन्याकैचन कार्यं शुक्लभाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी सिंहार्कैव कर्तव्या न कन्याकैकदाचन सिंहस्थे सोत्तमास्ये नुदिते मुनिसत्तम इति मदुनरत्ने स्कांदोक्तेः अगस्त्ये उदिते तात पूजयेदश्वतोद्भवं वैधव्यं पुत्रशोकं च दशवर्षाणि पंचचेति तत्रैव दोषोक्तेश्च भाद्रपदशुक्लाष्टम्यामगस्त्योदये भाविनिसति पूर्वकृष्णाष्टम्यामेव

कुर्यादिति हेमाद्रिः दीपिकाप्येकं इदंच व्रतं स्त्रीणां नित्यं यानपूजयते दूर्वामोहाविह्वयथाविधि त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैरिति पुराणसमुच्चयात् यथा ज्येष्ठादिकं विनाष्टमीनलभ्यते तदा तत्रैवोक्तं कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठा मूल्यदा भवेत् दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वध्यं दिवसं नयेदिति ।

भाद्रपद शुक्लाष्टमी ही **दूर्वाष्टमी** होय. ती पूर्वे दिवसाचीच घ्यावी. कारण, “श्रावणी पूर्णिमा, दुर्गा नवमी, दूर्वाष्टमी, हुताशनी, शिवरात्रि, व बलिप्रतिपदा, त्या पूर्वेविद्धा कराव्या” असें **हेमाद्रीत वृक्षयमाचें** वचन आहे; आणि “भाद्रपदमासांत शुक्लपक्षां जी अष्टमी तिथि ती दूर्वाष्टमी जाणावी, ती दुसरे दिवशीची घेऊं नये” असें **पुराणसमुच्चयांत** ही वचन आहे. आतां जें राहिण (नवव्या) सुहृती पूर्वे दिवशी किंवा पर दिवशी जी अष्टमी असेल ती दूर्वाष्टमी करावी, परंतु ज्येष्ठा व मूल ही नक्षत्रे गोडावीं” असें **हेमाद्रीतच** परा करणी म्हणून सांगितलें तें पूर्वे दिवशी ज्येष्ठादि योग असतां जाणावें. कारण, “दूर्वाष्टमी, सर्वथा ज्येष्ठा व मूलनक्षत्रयुक्त टाकावी” तसेंच “ज्येष्ठा नक्षत्रावर दूर्वेचें पूजन अपत्यांचा नाश करितें. अन्यथा अपत्यनाश करीत नाही. मूलनक्षत्रावर दूर्वेचें पूजन पतीचें आयुष्य हरण करितें, यास्तव ज्येष्ठमूलनक्षत्रांनी युक्त दूर्वाष्टमी टाकावी” असा हेमाद्रीतच ज्येष्ठादिगोणांचा निषेध केला आहे. हें दूर्वापूजन व्रत अगस्त्योदय व कन्येचा सूर्य अमतां करूं नये. कारण, “भाद्रपदमासीं शुक्लपक्षां अष्टमी दूर्वासंज्ञक होय. ती गिहाचा सूर्य अमतांच करावी, कन्येचा सूर्य असतां कधीही करूं नये. गिहाचा सूर्य व अगस्त्याचा अनुदय असतां ती अष्टमी उत्तम होय” असें **मदनरत्नांत** स्कांदवचन आहे. आणि “अगस्त्योदय अमतां दूर्वेचें पूजन केलें तर पंधरा वर्षे वैधव्य व पुत्रशोक प्राप्त होतो.” असा तेंथेन शेष उक्त आहे. भाद्रपदशुक्ल अष्टमीस अगस्त्योदय होणार असेल तर पूर्वे कृष्णाष्टमीसच हें दूर्वापूजांतन करावें, असें **हेमाद्रि** सांगतो. **दीपिकेंत**ही असेच आहे. हें व्रत स्त्रियांस नित्य आहे. कारण, “जी स्त्री इहलोकीं यथाविधि दूर्वापूजांत करीत नाही ती तीन जन्म वैधव्य पावते, यांचा संशय नाही. यास्तव स्त्रियांनी प्रतिवर्षी दूर्वापूजन करावें” असें **पुराणसमुच्चयांत** वचन आहे. जेव्हां ज्येष्ठा व मूल यांचाचून अष्टमी न मिळेल तर तेंथेंच सांगतो—“ज्येष्ठा किंवा मूल नक्षत्र जेव्हा अष्टमीस असेल ते ही एकमुक्तान करून मर्त्यानें दूर्वापूजन करावें, परंतु बंध्य (पूजाहित) दिवस करूं नये.

अत्रविधिर्मदनरत्ने भविष्ये शुचोद्देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तमं स्थाप्य लिङ्गतो गोधेः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत्तु दध्यध्नतर्द्धिजश्रेष्ठ अर्घ्ये दद्यात्त्रिलोचने दूर्वाशमीभ्यां विधिवत् पूजयेच्छुद्धयान्वितः **मंत्रस्तु** त्वं दूर्वैश्च न जन्मासि वंदितासि सुरासुरैः सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखा प्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ॥ तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरं ॥” या व्रताचे शशी अग्निपक्ष (शिवांकेंद्र) नमेऊं तें भक्षण करावें. कारण, “अमीवर न शिजविलेलें असें अन्न व दही, फळे हीं भक्षण करावी; हे व्रदानं! महांतें युक्त, व क्षार लवणरहित भक्षण करावें” असें तेंथेंच **भविष्यवचन** आहे. भाद्रपदमास अधिक अमतां सांगतो—**निर्णयदीपांत** स्कांदांत—“भाद्रपद अधिकमास असतां शुद्धमासाच्या अष्टमीस अगस्त्याचा उदय अगस्त्यामुळे अधिकमासांत दूर्वाव्रत करावें, शुद्धांत कधीही करूं नये.”

या व्रताचा विधि **मदनरत्नांत** भविष्यांत—“हे ब्राह्मणश्रेष्ठा! शुद्ध प्रदेशां उत्पन्न झालेल्या दूर्वेचे शशीं लिङ्ग स्थापून गंध, पुष्प, धूप इत्यादिकांनी पूजन करावें, आणि शिवाय दधि व अक्षतांनी अर्घ्य द्यावें. धनदायक होऊन दूर्वा व शमी यांही करून यथाविधि पूजन करावें.” प्रार्थनामंत्र—“त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वंदितासि सुरासुरैः ॥ सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखा प्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ॥ तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरं ॥” या व्रताचे शशी अग्निपक्ष (शिवांकेंद्र) नमेऊं तें भक्षण करावें. कारण, “अमीवर न शिजविलेलें असें अन्न व दही, फळे हीं भक्षण करावी; हे व्रदानं! महांतें युक्त, व क्षार लवणरहित भक्षण करावें” असें तेंथेंच **भविष्यवचन** आहे. भाद्रपदमास अधिक अमतां सांगतो—**निर्णयदीपांत** स्कांदांत—“भाद्रपद अधिकमास असतां शुद्धमासाच्या अष्टमीस अगस्त्याचा उदय अगस्त्यामुळे अधिकमासांत दूर्वाव्रत करावें, शुद्धांत कधीही करूं नये.”

अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीये स्कांदे मासि भाद्रपदं शुक्लपक्षे ज्येष्ठश्रंसंयुता रात्रिर्यस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनमिति इयं ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वापरावाप्राह्या दिनद्वययोगे परा पूर्वे हिरात्रियोगे पूर्वेव नवम्यासहकार्या स्यादष्टमीनात्र संशयः मासि भाद्रपदं शुक्लपक्षे ज्येष्ठश्रंसंयुता रात्रिर्यस्मिन्दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनमिति तत्रैवोक्तः अस्यापवादः यस्मिन्दिने भवेज्ज्येष्ठमाध्याह्नादूर्ध्वमप्यणुः तस्मिन् हविष्यपूजाचन्युताचे-

पूर्ववासरहति इदंकेवलतिथौनक्षत्रेचोक्तं तत्राद्यंकेवलतिथौकार्यं अंत्यंकेवलर्क्षं तदुक्तंमात्स्ये प्रत्यादिकं-
 तिथायुक्तंयज्येष्टादैवतव्रतम् प्रतिज्येष्ठाव्रतंयज्ञविहितंकेवलोडुनि तिथावेवाचरेदाद्यंद्वितीयंकेवलर्क्षतइति अत-
 एवमदनरत्नो भविष्येनक्षत्रमात्रेउक्तम् मासिभाद्रपदेपक्षेशुक्लेज्येष्ठायदाभवेत् रात्रौजागरणंकृत्वाएमिर्मंत्रै-
 श्वपूजयेदिति दाक्षिणात्यास्तृक्षपवकुर्वति हेमाद्रौस्कांदेपि मासिभाद्रपदेशुक्लपक्षेज्येष्ठर्क्षसंयुते यस्मि-
 न्कस्मिन्दिनेकुर्वाज्येष्ठायःपरिपूजनमिति तथा मैत्रेणावाहयेद्देवींज्येष्ठायानुप्रपूजयेत् मूलेविसर्जयेद्देवींत्रि-
 दिनंव्रतमुत्तममिति मंत्रस्तु एहोहित्वंमहाभागेशुरासुरनमस्कृते ज्येष्ठेत्वंसर्वदेवानांमत्समीपगताभवेत्यावाह्य-
 तामग्निवर्णामितिसंपूज्य ज्येष्ठायैतेनमस्तुभ्यंश्रेष्ठायैतेनमोनमः शर्वायैतेनमस्तुभ्यंशंकर्यैतेनमोनमः ज्येष्ठेश्रे-
 ष्ठेतपोनिष्ठेब्रह्मिष्ठेसत्यवादिनि एहोहित्वंमहाभागेश्वरस्यति इत्यर्घ्यः ।

ह्या अष्टमीसच ज्येष्ठदेवीपूजा सांगतो माधवीयांत-स्कंदपुराणांत-“भाद्रपदमासांत शुक्लपक्षी ज्या दिवशी ज्येष्ठा-
 नक्षत्रयुक्त रात्रि असेल त्या दिवशी ज्येष्ठदेवीचें पूजन करावें.” ही अष्टमी ज्येष्ठानक्षत्रांत युक्त पूर्वा किंवा परा असेल ती
 ध्यावी. दोन दिवशी ज्येष्ठानक्षत्रयोग असतां परा ध्यावी. पूर्वदिवशी रात्रीस योग अमतां पूर्वाच करावी. कारण, “नवमी-
 युक्त अष्टमीच करावी यांत संशय नाही. भाद्रपदमासांत शुक्लपक्षी ज्या दिवशी ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त रात्रि असेल त्या दिवशी
 ज्येष्ठदेवीचें पूजन करावें” असें तेथेंच सांगितलें आहे. याचा अपवाद-“ज्या दिवशी मध्याह्नापुढें ज्येष्ठानक्षत्र अल्पही
 असेल त्या दिवशी हविष्य व पूजा हीं करावीं. मध्याह्नांत न्यून असेल तर पूर्वे दिवशीं करावीं.” हें व्रत केवलतिथीस व
 केवलनक्षत्रावरही करण्याविषयी सांगितलें आहे. त्यांत पहिलें केवल तिथीस करावें. दुसरें केवल नक्षत्रावर करावें. तें
 सांगतो-मत्स्यपुराणांत-“प्रतिवर्षी करावयाचें जें ज्येष्ठदेवतव्रत तें तिथीस सांगितलें आहे. आणि प्रतिज्येष्ठानक्षत्रावर
 करावयाचें जें ज्येष्ठव्रत तें केवल नक्षत्रावर सांगितलें आहे. पहिलें केवल तिथीसच करावें. आणि दुसरें केवल नक्षत्रावरच
 करावें.” म्हणूनच मदनरत्नांत भविष्यांत नक्षत्रावर करण्याविषयी सांगितलें आहे, तें असें-“भाद्रपदमासांत शुक्लपक्षी
 ज्या दिवशी ज्येष्ठा असेल त्या रात्रीस जागरण करून ज्येष्ठदेवीचें पुढील मंत्रांतें पूजन करावें.” दाक्षिणात्यलोक तर केवल
 नक्षत्रावरच करतात. हेमाद्रींत स्कांदांतही “भाद्रपदमासांत शुक्लपक्षी ज्येष्ठानक्षत्र कोणत्याही दिवशीं असेल त्या दिवशीं
 ज्येष्ठदेवीचें पूजन करावें.” तसेंच “अनुराधानक्षत्रावर ज्येष्ठदेवीचें आवाहन, ज्येष्ठानक्षत्रावर पूजन व मूलनक्षत्रावर
 विसर्जन करावें, असें हें त्रिदिनात्मक व्रत होय.” पूजेचा मंत्र-“एहोहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ॥ ज्येष्ठे
 त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव” यांत आवाहन करून “तामग्निवर्णो” यांत पूजन करून “ज्येष्ठायै ते
 नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमो नमः ॥ शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शंकर्यै ते नमो नमः ॥ ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे
 ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि ॥ एहोहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति ॥” यांत अर्घ्य द्यावें.

भाद्रपदशुक्लद्वादश्यांश्रवणयोगरहितायांपारणंकुर्यान् आभाकासितपक्षेध्वितिदिवोदासोदाहृतवचनान्
 उपोष्यैकादशीमोहात्पारणंश्रवणयदि करोतिहंतितत्पुण्यंद्वादशद्वादशीभवमिति तत्रैवस्कांदाच्च अस्त्यतत्रैव-
 प्रतिप्रसवः मार्कंडेयः विशेषेणमहीपालश्रवणवर्धतेयदि तिथिक्षयेनभोक्तव्यंद्वादशीलंपयंत्रहीति केचित्तु
 यदात्वपरिहार्योयोगस्तदाश्रवणनक्षत्रेध्याविभक्तेमध्यमविंशतिघटिकायोगंत्यक्त्वापारणंकार्यं तदुक्तंविष्णु-
 धर्मं श्रुतेश्चमध्येपरिवर्तमेतिसुमित्रबोधपरिवर्तनमेववर्ज्यमिति केचित्तुर्धाविभज्यमध्यपादद्वयंवर्ज्यमाहुः
 अत्रमूलंचित्यम् ।

श्रवणयोगरहित भाद्रपदशुक्ल द्वादशीस एकादशीची पारणा करावी. कारण, “आ (आषाढ), भा (भाद्रपद), का
 (कार्तिक) यांच्या शुक्लपक्षाच्या द्वादशीस अनुक्रमानें अनुराधा, श्रवण, रेवती यांचा योग असतां पारणा करूं नये; कारण,
 पारणा केली तर बारा द्वादशींचें पुण्य जातें.” असें दिवोदासानें वचन सांगितलें आहे. आणि “एकादशीचे ठायीं उपो-
 षण करून अज्ञानानें श्रवणनक्षत्रावर पारणा करील तर बारा द्वादशींपासून उत्पन्न झालेल्या पुण्याचा नाश होतो,” असें
 तेथेंच स्कांदवचनही आहे. याचा तेथेंच प्रतिप्रसव (निषेधाचा अपवाद) सांगतो-मार्कंडेय-“हे राजा ! विशेषकरून
 श्रवणनक्षत्र जर बाढेल व तिथीचा क्षय असेल तर श्रवणांत भोजन करूं नये; पण द्वादशीचें उलंघन करूं नये.” केचित्
 ग्रंथकार तर-जेव्हां श्रवणनक्षत्राचा योग परिहार करण्यास अशक्य असेल तेव्हां श्रवणनक्षत्राचे तीन भाग करून मधल्या
 बीस घटिका सोडून पारणा करावी. तें सांगतो-विष्णुधर्मांत “भगवान् अनुराधेच्या प्रथमपादीं निजतो, रेवतीच्या
 अंत्यपादीं जाग्रत होतो, श्रवणाच्या मध्यभागी परिवर्तन (कुशीस वळणें) करतो. यास्तव निद्रा, जागर, परिवर्तन हेच

काल सोडावे.” केचित् ग्रंथकार तर, श्रवणाचे चार भाग करून मधले दोन पाद सोडावे असें सांगतात. या विष्णुधर्म-
वचनाविषयी मूळ विल्य आहे.

अत्रैवविष्णुपरिवर्तनोत्सवंकुर्यात् संध्यायांविष्णुसंपूज्यप्रार्थयेत् मंत्रमुनिथितत्त्वेउक्तः ॐ वामुदेव-
जगन्नाथप्राप्तेयद्वादशीतव पार्ध्वेनपरिवर्तस्वसुखंस्वपिहिमाधवेति अत्रैवशकध्वजोत्थापनमुक्तमपराकै-
गर्गेण द्वादश्यांतुसितेपश्चिमासिप्रौष्ठपदेतथा शकमुत्थापयेद्राजाविश्वश्रवणवामवे ।

येथेंच विष्णुपरिवर्तनोत्सव करावा. संध्यासमयी विष्णुपूजन करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र तर—तिथितत्त्वांत
सांगतो—**वामुदेव जगन्नाथ प्राप्तेय द्वादशी तव ॥ पार्ध्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव.**” या द्वादशीचे
दिवशीच दंडश्रवजांचें उत्थापन सांगतो **अपराकांत—गर्ग**—“भाद्रपद शुक्रपक्षाच्या द्वादशीम उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा
या नक्षत्रांवर राजांचें दंडश्रवजांचें उत्थापन करावें.”

इयमेवश्रवणद्वादशी तत्रैकादश्यांद्वादशीश्रवणयोगेमेवोपोष्या एकादशीद्वादशीचवैष्णव्यमपितत्रचेत्
तद्विष्णुशृंग्वलंतामविष्णुमायुज्यकृद्भवेदिति विष्णुधर्मांक्तेः नारदीयेपि संपृश्यैकादशींराजनद्वादशी-
यदिसंपृश्येन श्रवणंय्येतिपांशुप्रब्रह्महत्यांन्यपोहति द्वादशीश्रवणस्पृष्टांशुदेकादशीयदि सपवैष्णवोयोगो-
विष्णुशृंग्वलसंज्ञित इतिहेमाद्रौमात्स्योक्तेश्च दिनद्वयेद्वादशीश्रवणयोगेपिपूर्वा निर्णयामृतत्वंस्यपूर्वा-
धर्मन्यथापठितं द्वादशीश्रवणश्रमंस्पृष्टेदेकादशीयदीति तेनहेमाद्रिमतेएकादश्याःश्रवणयोगाभावेपितद्युक्त
द्वादशीयोगमात्रेणविष्णुशृंग्वलंभवति निर्णयामृतमतेतु श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यांयोगएवविष्णुशृंग्वलं-
नान्यथेति यदानिशीथानंतरंमुर्येदियावधद्विकलामात्रमपिश्रवणश्रमभवतितदापिपूर्व तदुक्तंतत्रैवनारदीये
उमांप्रकृत्य तिथिनश्रवणयोगोयोगोश्रवणराशिप द्विकलोयदिलभ्येतमज्ञेयोष्यप्रयामिकइति द्वादशीश्रवणस्पृ-
ष्टाकृत्स्नापुण्यतमातिथिः नंतुमातेनसंयुक्तातावत्येवप्रशस्यतइतिमदनरत्नेमात्स्योच दिवोदासीयेतु
गत्रेःप्रथमपादंचेच्छ्रवणंहरिवासरे तदापूर्वामुपवसेत्प्रातर्भातेचपारणमिन्युक्तं इदंतुनिर्मूलत्वात्पूर्वविरोधापो-
पेक्ष्यं इयंबुधवारोतिप्रशस्ता बुधश्रवणसंयुक्तार्थेवचेद्वादशीभवेत् अयंतमहतीमास्याहंतंभवतिचाक्षयमिति
हेमाद्रौस्कांदांत ।

श्रवणद्वादशी.

हीच श्रवणद्वादशी होय त्या श्रवणद्वादशीचा निर्णय असा—एकादशीम श्रवणाचा आणि द्वादशीचा योग असता त्या
दिवशीच उपोषण करावे कारण, “जर एक दिवशी एकादशी, द्वादशी आणि श्रवणनक्षत्र ही तीनही अगतील, तर त्या
योगाला विष्णुशृंग्वल म्हण्टे आहे. तो योग विष्णुचे मायज देणारा होतो, असे **विष्णुधर्मांत** वचन आहे. **नारदीयां-**
तद्वा—“रावांमये अष्ट असे श्रवणनक्षत्र जर एकादशीम स्पर्श करून द्वादशीम स्पर्श करील तर तें—उपोषणाच्या
योगाने—ब्रह्महत्या दूर करिते” “श्रवणाने स्पर्श केल्या द्वादशी जर एकादशीम स्पर्श करील तर तोच विष्णुशृंग्वल नांवाचा
वैष्णवयोग आहे” असे **हेमाद्रौत मात्स्य**वचनही आहे. दोन दिवस द्वादशी व श्रवण यांचा योग असताही पूर्वा करावी.
निर्णयामृतांत तर ‘द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृष्टेदेकादशी यदि’ या स्थानी ‘द्वादशी श्रवणधर्म च स्पृष्टेदेकादशी यदि’ असा
पाठ केल्या आहे. म्हणजे द्वादशी आणि श्रवणनक्षत्र ही दोन जर एकादशीम स्पर्श करतील तर तो विष्णुशृंग्वलयोग
होतो. यावरून **हेमाद्रौ**च्या मतीं एकादशीम श्रवणयोग नसल्या तरी श्रवणयुक्त द्वादशीचा योग एकादशीम असल्या म्हणजे
विष्णुशृंग्वलयोग होतो. **निर्णयामृता**च्या मती तर श्रवणाचा एकादशी व द्वादशी या दोघांचा योग असेल तरच विष्णु-
शृंग्वलयोग होतो, अन्यथा होत नाही. जेव्हां मायराशीनेंनर मुर्योदयाच्या आंत दोन कलाही श्रवणनक्षत्र असेल तेव्हां देखील
पूर्वाच करावी. तें तेंथेंच **नारदीयांत**—आ श्रवणद्वादशीचा उपक्रम करून सांगतो—“तिथि व नक्षत्र यांचा योग हा
दोन कला योग जर मिळेल तर तो आठ प्रहर योग जाणवा.” आणि ‘श्रवणाने स्पर्श केल्या द्वादशी तिथि ती सारी
पुण्यकारक आहे. श्रवणानें युक्त जितकी द्वादशी तितकीच पुण्यकारक आहे, असे नाही” असे **मदनरत्नांत मात्स्य-**
वचनही आहे. **दिवोदासीयांत** तर—“जर एकादशीचे दिवशी रात्रीच्या पहिल्या प्रहरी श्रवण असेल—अर्थात् दुसऱ्या
दिवशी द्वादशी व श्रवण असेल—तर पूर्वे दिवशी उपवास करावा, आणि दुसऱ्या दिवशी प्रातःकाली नक्षत्र संपल्यावर

१ नतिवति यावती तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते इति तु न तेन तावत्या यत्तुं शक्यं आनादि तद्योगकालिकं तदेव स्वादृष्ट
तु श्रवणसंबंधेन पूर्वोत्तरकालेपि उपवासादि सुकरमित्यर्थः ।

पारणा करावी" असे सांगितले आहे. हे वचन निर्मूल असल्यामुळे व 'तिथिभक्षणत्रययोगो' इत्यादि पूर्ववचनाचा विरोध येत असल्यामुळे उपेक्षणीय (अस्वीकार्य) आहे. ही श्रवणद्वादशी बुधवारी असेल तर अतिप्रशस्त आहे. कारण, "तीच द्वादशी बुधवार व श्रवण यांनी युक्त असेल तर ती अतिशय मोठी आहे. त्या दिवशी दान केलेले अक्षय्य होते." असे हेमाद्रीत स्कांदवचन आहे.

यानितुपठंति उत्तराषाढसंयुक्ताश्रोणामध्याह्नापिवा आसुरीसैवतारास्याद्धंतिपुण्यपुराकृतं उदयव्यापिनी-
प्राह्याश्रोणाद्वादशिकायुता विश्वश्रंसंयुतासाचनैवोपोष्याशुभेषुभिरित्यादीनिविष्णुधर्मस्कांदभविष्या-
दिवचनानि तानिनिर्मूलानि यदपिस्मृत्यर्थसारे उदयव्यापिनीप्राह्येत्युक्तं यच्चबृहन्नारदीये उदयव्यापि-
नीप्राह्याश्रवणद्वादशीव्रतइति तद्यदाशुद्धाधिकाद्वादशीपरदिनएवोदयश्रवणयोगः पूर्वंहिचतद्विभेदकालेयोगस्त-
त्परम् दिनद्वये उदययोगेपूर्वव बहुकर्मकालव्यापेरित्युक्तंमदनरत्ने यदावेकादश्येवश्रवणयुतानद्वादशीतदापि-
पूर्वव यदानप्राप्यतेऋशंद्वादश्यांवैष्णवंकचिन एकादशीतदोपोष्यापापत्रीश्रवणान्वितेतिमदनरत्नेनारदी-
योक्तेः यदापरैर्वर्षयुतातदापरा तत्रशक्तेनोपवासद्वयंकार्य एकादशीमुपोष्यैवद्वादशींसमुपोषयेन नचात्रवि-
धिलोपःस्यादुभयोर्द्वैवतंहरिरितिभविष्योक्तेः यत्तुविष्णुधर्मे पारणांतं व्रतं ज्ञेयं व्रतांते विप्रभोजनं अस-
माप्रेव्रते पूर्वैनैव कुर्याद्व्रतांतरमिति तदेतद्विन्नपरं अन्नगौडाः ऋगुराजन्परं काम्यं श्रवणद्वादशीव्रतमितिस्थूल-
शीर्षवचनात्काम्यमेवेदम् तेनाशक्तस्यनित्यैकादशीव्रतमेवेति मन्यंते द्वादश्यामुपवासेनशुद्धात्मानुपसवेशः
चक्रवर्तित्वमतुलंसंप्राप्त्युत्तमांश्रियमितिगौडनिबंधमार्कडेयोक्तेश्च दाक्षिणात्यास्तु एकादश्या-
नरोभुक्त्वाद्वादश्यांसमुपोषणान् व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वप्राप्त्युत्तमांश्रयमिति वराहवामनपुराणोक्तेः श्रव-
णद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः भुक्त्वेतिफलाद्याहारपरम् तत्त्वन्नपरं अन्नाश्रितानिपापानीतिनिषेधान् उपवासद्वयंक-
र्तुंनशक्नोतिनरोयदि प्रथमेऽह्निफलाहारीनिराहारोपरेहनीतिदिवोदासीयेभविष्योक्तेश्च अशक्तौतुगृही-
तैकादशीव्रतोयस्तंप्रत्युक्तंमात्से द्वादश्यांशुक्लपक्षेतुनक्षत्रंश्रवणंयदि उपोष्यैकादशीतत्रद्वादश्यांपूजयेद्धरिमिति
पूजयेन्नतूपवसेदित्यर्थः अगृहीतैकादशीव्रतश्चेदेकादश्यांभुक्त्वाद्वादश्यामुपवसेन एवमेकादशींभुक्त्वाद्वादशीं-
समुपोषयेत् पूर्ववासरजंपुण्यंसर्वप्राप्त्युत्तमांश्रयमिनारदीयोक्तेः ।

आतां जी कोणी सांगतात की, "उत्तराषाढायुक्त श्रवणतारा मध्याह्नव्यापिनी अगम्य तरी ती तारा आसुरी आहे, ती पूर्वी केलेले पुण्य घालविते. द्वादशीनं युक्त श्रवणतारा (नक्षत्र) उदयव्यापिनी घ्यावी. तीच श्रवणतारा उत्तराषाढायुक्त अशी असतां तिचें उपोषण कल्याणेच्छूनीं करूं नये." इत्यादिक विष्णुधर्म-स्कंदपुराण-भविष्यपुराणादिकवचनं ती निर्मूल होत. आतां जें स्मृत्यर्थसारांत उदयव्यापिनी श्रवणद्वादशी घ्यावी असे सांगितलें आहे, आणि जें बृहन्नारदीयांत—“व्रताविषयीं श्रवणद्वादशी उदयव्यापिनी घ्यावी.” तें सांगणें जेव्हां पूर्वदिवशीं द्वादशी संपूर्ण असून दुसऱ्या दिवशींच वाढलेल्या द्वादशीस सूर्योदयकालीं श्रवणयोग असेल व पूर्वदिवशीं उदयभिन्नकालीं श्रवणयोग असेल तद्विषयक आहे. दोन दिवस उदयकालीं श्रवण असतां पूर्वाच करावी. कारण, पूर्वदिवशीं बहुत कर्मकालाला श्रवणद्वादशीची व्याप्ति आहे, असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. जेव्हां तर एकादशीच श्रवणयुक्त आहे, द्वादशी श्रवणयुक्त नाही तेव्हां देखील पूर्वाच करावी. कारण, “जेव्हां श्रवणनक्षत्राचा योग द्वादशीम मुळींच नसेल तेव्हां श्रवणयुक्त एकादशीस उपोषण करावें, ती पापनाश करणारी आहे” असें मदनरत्नांत नारदीयवचन आहे. जेव्हां दुसऱ्या दिवशींच श्रवणयुक्त द्वादशी असेल तेव्हां पराच करावी. त्या वेळीं सशक्तां दोन उपवास करावे. कारण, “एकादशीस उपोषण करूनच द्वादशीचें उपोषण करावें. आतां एकादशीव्रत व द्वादशीव्रत हीं दोन व्रतें भिन्न असल्यामुळे एकाची समाप्ति झाल्यावांचून दुसरे केलें असतां व्रतविषींचा विघात होईल ? असें म्हणूं नये; कारण, दोन्ही व्रतांची देवता हरि (विष्णु) आहे.” असें भविष्यपुराणवचन आहे. आतां जें विष्णुधर्मांत—“पारणा होईपर्यंत व्रत समजावें. व्रत समाप्त झाल्यावर ब्राह्मणभोजन करावें. पहिलें व्रत समाप्त झाल्यावांचून दुसरे व्रत करूं नयेच” असें वचन, तें हें व्रत सोडून इतरव्रतविषयक आहे. या स्थळीं गौड ग्रंथकार—“हे राजा ! दुसरे काम्य असें श्रवणद्वादशीव्रत सांगतो, श्रवण कर.” ह्या स्थूलशीर्षवचनावरून हें श्रवणद्वादशीव्रत काम्यच आहे. यावरून अशक्त मनुष्याला एकादशीव्रतच नित्य आहे. आणि द्वादशीव्रत काम्य आहे असें मानितात. आणि “हे राजा ! द्वादशीस उपवास केल्यानें सर्व प्रकारांनीं आत्मा शुद्ध होऊन अनुपम चक्रवर्तित्व आणि उत्तम संपत्ति यांतें पावतो” ह्या गौडनिबंधांतील मात्स्यवचनावरूनही हें

द्वादशीव्रत काम्य असें होत आहे. दक्षिणेकडील विद्वान् तर—“एकादशीस भोजन करून द्वादशीस उपवास केल्याने दोन्ही व्रतांचें सारें पुण्य निःसंशय प्राप्त होतें” ह्या वराह-वामनपुराणवचनावरून श्रवणद्वादशीव्रतच नित्य आहे, असें सांगतात. आतां ह्या वचनांत “एकादशीस भोजन करून” असें सांगितलें तें ‘फलादि आहार करून’ असें समजावें. ‘अन्नभोजन करून’ असें समजूं नये. कारण, ‘अन्नाश्रित पापे आहेत, तीं एकादशीस अन्न खाणारास प्राप्त होतात.’ या वचनेंकरून एकादशीस भोजनाचा निषेध आहे. आणि “मनुष्यास दोन उपवास करणाऱ्या शक्ति जर नसेल तर पहिल्या दिवशीं फलाहार करून दुसऱ्या दिवशीं निराहार करावा” असें दिव्योदासीयांत भविष्यवचनही आहे. दोन उपवासांविषयीं अशक्त असून ज्यानें एकादशीव्रत घेतलें आहे त्याला सांगतो—मात्स्यांत—“शुक्लपक्षातील द्वादशीस जर श्रवण नक्षत्र असेल तर त्या वेळीं एकादशीचें उपोषण करून द्वादशीचे दिवशीं हरीची पूजा करावी” अर्थात् द्वादशीस उपवास करूं नये. एकादशीव्रत ग्रहण केलेंलें नसेल तर एकादशीस भोजन करून द्वादशीचें उपोषण करावें. कारण, “एकादशीस भोजन करून द्वादशीस उपवास करावा, म्हणजे पूर्वे दिवगाचें सारें पुण्य निःसंशय प्राप्त होतें” असें नारदीयवचन आहे.

पारणंतुभयांतैन्यतरांतेवाकुर्यान् तिथिनक्षत्रनियमेतिथिभांतेचपारणमितिस्कांदात् तिथिनक्षत्रसंयोग-उपवासोयदाभवेन पारणंतुनकर्तव्यंयावन्नैकस्यसंक्षयइतिनारदीयादितिहेमाद्रिः यद्यप्यत्रनक्षत्रमात्रांते-पिपारणंप्रतिभाति तथापितिथिमात्रांतैज्ञेयम् नत्तुक्ष्रांतेतिथिमध्येपि याःकाश्चित्तिथयःप्रोक्ताःपुण्यानक्षत्रयो-गतः ऋक्षांतेपारणंकुर्याद्विनाश्रवणरोहिणीमिति विष्णुधर्मं श्रवणांतमात्रेपारणनिषेधान रोहिण्यांतु भांते-कुर्यान्तिथेर्वापिइतिवह्निपुराणात् तदंतैष्यन्तुनन्वत्रैवमस्मीतिनक्ष्रांतोतुनक्षपइतिमदनरत्ने असंभवेतु तिथ्यंतेतिथिभांतेवापारणंयत्रचोदितम् यामत्रयोर्ध्वगामिन्यांप्रांतरेवहिपारणेतिज्ञेयम् यतुमदनरत्ने द्वाद-शीवृद्धौश्रवणवृद्धौवाश्रवणांतएवपारणंकुर्यान् पारणंतिथिवृद्धौतुद्वादश्यामुडुसंभयान वृद्धौकुर्यान्नयोदश्यांतत्र-दोषोनविद्यतइतिवह्निपुराणादित्युक्तम् तत्प्रकरणादेतस्यामेवश्रवणयुक्तैकादश्यांविहितविजयैकादशीव्रतप-रंतुश्रवणद्वादशीपरमितिमदनरत्ने गौडानुश्रवणद्वादशीपरमाहुः ।

ह्या श्रवणद्वादशीव्रताची पारणा तर—श्रवण व द्वादशी दोन्ही संपल्यावर किंवा दोघांपैकी एक संपल्यावर करावी. कारण, “तिथि व नक्षत्र यांच्या निमित्तानें उपवास अगता तिथि व नक्षत्र संपल्यावर पारणा करावी” असें स्कांदवचन आहे. आणि “जेव्हा तिथि व नक्षत्र यांच्या संपोगाचा उपवास असेल तेव्हा जोपर्यंत एकाची समाप्ति झाली नाही तोपर्यंत पारणा करूं नये” असें नारदीय वचन आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. आतां जरी येथे या वचनावरून केवळ नक्षत्र संपल्यावरही पारणा करावा असें दिसतें, तरी एक संपल्यावर म्हणजे तिथि संपल्यावर पारणा जाणावी. नक्षत्र संपल्यावर तिथि असेल तर तिथीमध्ये (द्वादशीमध्ये) ही पारणा समजूं नये. कारण, “जा कोणत्या तिथि नक्षत्रयोगांत पुण्यकारक म्हणून सांगितल्या त्या तिथ्याची पारणा नक्षत्र संपल्यावर करावी; पण श्रवण व जन्माष्टमासंबंधी रोहिणी ही दोन नक्षत्रे वर्य करून हा निषेध समजावा” असा विष्णुधर्मांत केवळ श्रवण संपल्यावर द्वादशी अमतां पारणेचा निषेध केला आहे रोहिणीविषयीं तर “नक्षत्रांनी पारणा करावी, किंवा जन्माष्टमाच्या अनी पारणा करावी” ह्या अग्नि-पुराणवचनावरून केवळ नक्षत्रांनी मुद्रां पारणा अगो, तशी या शिक्कांनी (श्रवणद्वादशीव्रतांत) केवळ नक्षत्रांनीच पारणा नाही; म्हणून नक्षत्रांनी पारणा, हा अनुकल्प (कनिष्ठपक्ष) असें समजूं नये; अर्थात् श्रवणांनीच पारणा हा मुळीच पक्ष नाही, असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. आतां जें मदनरत्नांत—द्वादशीची वृद्धि किंवा श्रवणाची वृद्धि अमतां श्रवणांनीच पारणा करावी. कारण, “द्वादशीचे दिवशीं तिथीची वृद्धि अमतां नक्षत्र संपल्यावर द्वादशींत पारणा करावी. आणि नक्षत्राची (श्रवणाची) वृद्धि असेल तर (द्वादशी संपल्यावर) त्रयोदशींत पारणा करावी, त्याविषयीं दोष नाही” असें वह्निपुराणवचन आहे, असें सांगितलें तें प्रकरणावरून ह्याच श्रवणयुक्त एकादशीस विहित जें विजयैक-दशीव्रत तद्विषयक आहे. श्रवणद्वादशीव्रतविषयक नाही, असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. गौड तर—हें वचन श्रवणद्वादशीव्रतविषयक आहे, असें सांगतात.

अत्रविधिर्मदनरत्नेविष्णुधर्मं तस्मिन्दिनेतथास्नानंयत्रकचनसंगमे तथा दध्योदनयुतंतस्यांजलपूर्णं घटद्विजे वस्त्रसंवैष्टितंद्वाछत्रोपासनहमेवच नदुर्गतिमवाप्नोतिगतिमग्र्यांचर्विदति मंत्रस्तुभविष्ये घटेज-नार्दनपूजामभिधाय नमोनमस्तेगोविंदबुधश्रवणसंज्ञक अघौघसंभयंकृत्वासर्वसौख्यप्रदोभव प्रीयतांवेवदेवे-शोमसंसंशयनाशनः ।

ह्या श्रवणद्वादशीव्रताचा विधि सांगतो—मदनरत्नांत विष्णुधर्मांत—“ज्या दिवशी कोठें तरी नद्यादिकांच्या संगमीं स्नान करावें” तसेंच—“त्या द्वादशीचे दिवशीं दधिमिश्रित ओदनानें युक्त व जलपूर्ण असा घट वस्त्रानें वेष्टित करून ब्राह्मणांला द्यावा. आणि छत्र, उपानह (जोडा) ब्राह्मणांला द्यावा, असें केल्यानें दुर्गति होत नाही व उत्तम गति प्राप्त होते.” मंत्र सांगतो भविष्यांत—घटावर जनादेवाची पूजा करून त्याचें दान करावें.—दानाचा मंत्र—नमो नमस्ते गोविंद बुधश्रवणसंज्ञक ॥ अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥ प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः ॥

वामनावतारनिमित्तोपवासस्तुत्रतद्देमाद्रीं भविष्ये द्वादश्यास्तेविधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः एकादशीयदासास्याच्छ्रवणेन समन्विता विजयासातिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदेत्युपक्रम्य अथ काले बहुतिथे गते सागुर्विणी भवेत् सुषुवेन वमेमासि पुत्रं सा वामनं हरि मित्युक्त्वा एतत्सर्वसमभवदेकादश्यां युधिष्ठिर तेनेष्टादेवदेवस्य सर्वथा विजयातिथिः एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणां निवेत्युपसंहारादेकादश्यामेव व्युष्टिः फलं भागवते ऽष्टमस्कंधे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्ते भितिप्रभुः ग्रहनक्षत्रताराद्याश्च कुस्तज्जन्मदक्षिणम् द्वादश्यां सविता तिष्ठन्मध्यं दिनगतो नृप विजयानामसाप्रोक्ता यस्यां जन्मविदुर्हरेः श्रोणायां चंद्रे ऽभिजिच्छ्रवणप्रथमोऽंशः गौडा अप्येवम् अत्र कल्पभेदाद्व्यवस्था ।

वामनावतारनिमित्तक उपवास सांगतो—व्रतहेमाद्रींत भविष्यांत—“हे युधिष्ठिरा ! श्रवणयुक्त द्वादशीचा विधि तुला सांगितला, तो सर्व पापांची शांति करणारा व सर्व सौख्य देणारा होय. एकादशी जर श्रवणांनं युक्त असेल तर ती तिथि विजयासंज्ञक होय. ती भक्तांस विजय देणारी होते.” असा उपक्रम करून—“यानंतर बहुत काल गेल्यावर ती (अदिति) गर्भिणी झाली आणि नवममासीं साक्षात् विष्णुरूप वामनांवाच्या पुत्रास प्रसवली ” असें सांगून “हे धर्मा ! हा सर्व प्रकार एकादशीस झाला. तेणें करून भगवंतास ती विजया एकादशी सर्वथा इष्ट होय. हें फल एकादशीस आहे असें मी तुला सांगितलें. श्रवणयुक्त द्वादशी पूर्वीच सांगितली ” अशा उपसंहारा (एकादशीविषयीं पर्यवसाना) वरून एकादशीसच वामनावतार आहे. भागवतांत ऽष्टमस्कंधांत तर द्वादशीचे ठायीं वामनोत्पत्ति सांगितली आहे. “श्रवणयुक्त द्वादशीस श्रवणनक्षत्रीं चंद्र असतां श्रवणाच्या प्रथमांशीं अभिजिन्मुहूर्तावर भगवान् होता झाला. ग्रह, नक्षत्र, तारा इत्यादिक त्याचे जन्माला अनुकूल झाले. हे राजा ! ज्या द्वादशीस सूर्य दिनमध्यभागीं असतां हरीचा जन्म झाला ती विजयानामक तिथि होय.” गौडही असेंच सांगतात. पूर्वी एकादशीस वामनावतार सांगितला, येथें द्वादशीस सांगितला, याविषयीं कल्पभेदानें व्यवस्था जाणावी.

तद्विधिश्च हेमाद्रीवह्निपुराणे नदीनांसंगमेस्त्रायादर्चयेदत्र वामनम् सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं द्वादशांगुलमुच्छ्रितम् ततो विधिवत्संपूज्य हिरण्मयेन पात्रेण दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे महाहरि वपुस्कंधधृतस्कंधाय चक्रिणे नमः शार्ङ्गसीरवाणपाणये वामनाय च यज्ञभुक् फलदात्रे च वामनाय नमो नमः देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमो नमः एवं संपूजयित्वा तद्द्वादश्यामुदये रवेः शृंगारसहितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो हं ददामि ते वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादयेदिति अनंत भट्टोऽप्याह श्रवणद्वादश्यां जनार्दननामा विष्णुः पूज्यते श्रवणैकादश्यां वामनावतार इति श्रवणयुतशुद्धैकादश्यलाभे तु दशमी विद्वापि श्रवणक्षयुताकार्या दशम्यैकादशीयत्रसानोपोष्या भवेत्तिथिः श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदेति वह्निपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने पूजाचमद्याह्निकार्या अह्नोमध्ये वामनो रामरामाविति पूर्वोक्तवचनात् ।

वामनव्रताचा विधि—हेमाद्रींत—वह्निपुराणांत—“नद्यांच्या संगमीं स्नान करून या तिथीस सुवर्णमय, वस्त्रयुक्त, बारा अंगुलें उंच अशा वामनप्रतिमेचें पूजन करावें. तदनंतर यथाविधि पूजन करून सौवर्णपात्रानें अर्घ्य द्यावें. त्याचा मंत्र—नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे ॥ नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे ॥ महाहरि वपुस्कंधधृतस्कंधाय चक्रिणे ॥ नमः शार्ङ्गसीरवाणपाणये वामनाय च ॥ यज्ञभुक् फलदात्रे च वामनाय नमो नमः ॥ देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ॥ प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमो नमः ॥ या प्रकारें द्वादशीस सूर्योदयीं वामनाची पूजा करून अलंकारसहित ती मूर्ति ब्राह्मणांला द्यावी. दानमंत्र—वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो हं ददामि ते ॥ वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय

प्रतिपाद्ये." अनंतभट्टही सांगतो. ध्रुवणद्वादशीस जनार्दननामक विष्णूची पूजा करितात. श्रवणयुक्त एकादशीस वामनावतार झाला. श्रवणयुक्त शुद्धैकादशी न मिळेल तर दशमीविद्धही श्रवणयुक्त करावी. कारण, "दशमीविद्ध एकादशीस उपोषण करूं नये; परंतु ती श्रवणयुक्त जर असेल तर सर्व कामना देणारी होते," असे बह्मिपुराणवचन आहे. असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. पूजा मध्याह्नी करावी. कारण, "मध्याह्नी वामन, परशुराम, आणि राम हे झाले" असें पूर्वी चैत्रमासी वचन सांगितलें आहे.

अत्रैवदुग्धव्रतसंकल्पयेत् तदुक्तं दुग्धमाश्रयजेमासीति अत्रेदंचित्यते दुग्धव्रतेपायसादिवर्ज्यनवेति नेति केचित् नहिप्रकृतिवर्जनेविकारवर्जनेयुक्तं दधिघृतादीनामपिवर्जनापत्तेः नचयत्रप्रकृतिरसोपलंभस्तद्वर्जनमितिवाच्यम् मांसविकारस्यौष्ट्रध्यादेश्चावर्जनापत्तेः तस्माद्ध्यादिवत्पायसादिभक्ष्यमिति अत्रब्रूमः यत्रविकारेप्रकृतिरसोपलंभस्तत्प्रत्यभिज्ञावातत्रविकारस्यापिनिषेधः अस्तिचमांसविकारेमांसप्रत्यभिज्ञामांसत्वानपायात् यत्तु औष्ट्रध्यादेरनिषेधापत्तिरिति तत्र औष्ट्रमिति विकारतद्धितेननिषेधात् तथाचविज्ञानेश्वरः औष्ट्रमैकशकलैणमारण्यकमथाविकमित्यत्र औष्ट्रमिति विकारतद्धिताच्छकृन्मूत्रादीनामपिनिषेधइत्याह नन्वेवंसंधिन्यनिर्दशाऽवत्सागोपयःपरिवर्जयेदितिसंधिन्यादिक्षीरनिषेधेपिदध्यादिग्रहणस्यात् सत्यंप्राप्तं वचनेनपरनिषेधः तदाहापराकेशंश्वः क्षीराणिन्यान्यभक्ष्याणितद्विकाराशनेबुधः सप्तरात्रंतर्कुर्यात्प्रयत्नेनसमाहि-तइति व्रतंगोमूत्रयावकं तस्मात्पायसेदुग्धरसोपलंभाद्वर्जनं अतएवामिक्षायांदधिसत्त्वेपिमाधुर्योपलंभात्पयोरूपत्वमुक्तंमीमांसकैः तदुक्तं पयएवघनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयतइति दध्यादिषुतुतदभावादवर्जनमिति एवं-दध्यादिव्रते नतकादीनांनिषेधः उक्तोभयहेत्वभावादितिकेचित् पूर्वोक्तशंखवचनात्सर्वविकारनिषेधइति-युक्तप्रतीमः इतिदुग्धव्रतम् ।

या द्वादशीराच दुग्धव्रताचा संकल्प करावा. तें मांगतो—'आश्विनमासांत दुग्ध वर्ज्य करावें' असें पूर्वी सांगितलें आहे. या दुग्धव्रताविषयीं अया (पुढें लिहिल्याप्रमाणें) विचार करितात—दुग्धवर्जनव्रताचे ठायीं पायसादिक वर्ज्य करावें किंवा न करावें ? न करावें, असें केचित् म्हणतात. कारण, दूध ही प्रकृति व पायसादिक हे त्या दुधाचे विकार असल्यामुळे, प्रकृतीचें वर्जन सांगितलें असतां विकृतीचें (विकाराचें) वर्जन युक्त नाही. जर विकाराचें वर्जन केलें तर दधि, घृत इत्यादिकांचें देखील वर्जन प्राप्त होईल. आतां अमें म्हणूं कीं, ज्यांत प्रकृतीचा रस (मधुरादि) उपलब्ध आहे, त्याचें वर्जन करावें. असें म्हणतां येणार नाही. कारण, मांसाचा विकार एकादा असेल व त्यांत मांसरसाचा उपलंभ नसेल तर त्याचें आणि उंटाचें दही वगैरे याचें वर्जन होणार नाही. म्हणून प्रकृतिरसाचा उपलंभ ज्यांत आहे त्याचें वर्जन असें म्हणूं नका. तर दधि इत्यादिक जमें भक्ष्य आहेत तसें पायसादिक भक्षण करावें. येथें आम्हीं (कमलाकरभट्ट) असें सांगतो कीं, ज्या विकाराचे ठायीं प्रकृतिरसाचा उपलंभ होतो, किंवा तोच (प्रकृतीच) हा असें ज्ञान होतें त्या ठिकाणीं विकाराचाही निषेध आहे. मांसाच्या विकारांत मांसाचें ज्ञान आहे. कारण, मांसत्व नाहीसं होत नाही. आतां जें उंटाचें दही वगैरे त्याचें वर्जन होणार नाही, म्हणून सांगितलें, तें बरोबर नाही. कारण, 'औष्ट्र' हा विकारार्थी तद्धित प्रत्यय असल्यामुळे त्याचा निषेध होतो. तेंच विज्ञानेश्वर—“उंटाचें, एकशफाचे पशूचें, स्त्रियेचें, अरण्यांतील प्राण्याचें, व सेंढ्याचें दूध वर्ज्य.” या वचनानें 'औष्ट्र' ह्या उष्ट्र शब्दाद्वन विकारार्थी तद्धित प्रत्यय केल्यामुळे उष्ट्राचे (उंटाचे) विकार असे जे विष्टा, मूत्र इत्यादिक त्यांचाही निषेध, असें मांगतो. शंका—“संधिनी (वृषभानें सेंधुनाथें आक्रमिलेली गाय), प्रसूत होऊन दहा दिवस न झालेली, वस्त्ररहित, अशा गाईचें दूध वर्ज्य करावें” असा संधिनी इत्यादिकांच्या दुधाचा निषेध असला तरी दधि इत्यादिकांचें ग्रहण होईल. अमें प्राप्त झालें खरें; पण वचनानें त्याचा निषेध होतो. तें सांगतो—अपराकीत शंख—“जीं अभक्ष्य दुग्धें सांगितलीं त्यांचे विकार भक्षण केले असतां प्रयत्नानें सप्तरात्र व्रत करावें.” व्रत म्हणजे गोमूत्रांत यव क्षिजवून खावे. तस्मात् पायसाचे ठायीं दुग्धरसाचा उपलंभ होत असल्यामुळे पायस वर्ज्य आहे. म्हणूनच आमिक्षेचे ठायीं (कढत दुधांत दही घातल्यानं झालेल्या द्रव्याचे ठायीं) दही असलें तरी मधुररस असल्यामुळे तें दुग्धरूप आहे, असें मीमांसकांनीं सांगितलें आहे. तें सांगतो—“दूधच घट झालें म्हणजे त्याला आमिक्षा म्हणतात.” दधि इत्यादिकांत दुग्धाचा रस (माधुर्य) नसल्यामुळे त्याचें वर्जन नाही. याप्रमाणें दधि इत्यादि व्रतांत तत्कादिकांचा निषेध नाही. कारण, वर सांगितलेले दोन हेतु (प्रकृतिरसाचा उपलंभ किंवा तोच हा अशी प्रत्यभिज्ञा) हे नाहीत, असें केचित् म्हणतात. वर सांगितलेल्या शंखवचनावरून सर्व विकारांचा निषेध युक्त आहे, असें आम्हीं (कमलाकरभट्ट) समजतो. इति दुग्धव्रतं. ॥

भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनंतव्रतं तत्र त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकीप्राद्येति माधवः तदुक्तम् उदये त्रिमुहूर्तापि प्रा-
ज्ञानंतव्रतेतिथिरिति मध्याह्ने भोज्यवेलायामितिकथायां श्रवणादुपरि हि देवेभ्यो धारयतीति वद्विधिकल्पनान् पू-
जाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनीतिथिरिति माधवीये वचनात् मध्याह्नव्यापिनीप्राद्येति तु दिवोदासः प्रता-
पमार्तण्डेये च इदमेव च युक्तं निर्णयामृतनेतुघटिकामात्राप्यौदयिकीत्युक्तम् तथा भाद्रपदस्यां चतुर्दश्यां-
द्विजोत्तम पौर्णमास्याः समायोगे व्रतंचानंतकंचरेदिति भविष्योक्तेः मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी सं-
पूर्णातां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययमिति स्कांदाच्चेति अत्र मूलंचित्यम् अहोप्यौदयिकत्वे पूर्णत्वात्पूर्वेति युक्तम्
तत्तवंतु विध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे एकवाक्यतायागता संदिग्धेषु एकवाक्यत्वादिति न्यायेन पूर्वापरावामध्याह-
न्यापिन्येव मुख्या माधवस्तु सामान्यवाक्यान्निर्णयंकुर्वन् भ्रातएव अनंतव्रतस्य पुराणांतरेऽवभावाच्च वचनांतरे-
ऽवभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति ।

भाद्रपदशुक्ल चतुर्दशीस अनंतव्रत. त्याविषयीं उदयकाळीं तीन मुहूर्तही असली तरी ती चतुर्दशी ध्यावी, असें माधव
सांगतो-तें असें—“उदयकाळीं त्रिमुहूर्तही चतुर्दशी अनंतव्रताविषयीं ध्यावी.” “मध्याह्नीं भोजनाच्या वेळीं कांडिन्यकृषीच्या
पक्षीं नदीच्या कांठीं उतरून इत्यादि” अनंताचे कथेंत सांगितल्यावरून, ‘उपरि हि देवेभ्यो धारयति’ म्ह. देवतोद्देश्यक
यागामध्ये जुहूचें उपभृतीवर धारण करितो, हें वेदांतील वाक्य अर्थवाद असतां याच वाक्यानें विधि आहे अशी कल्पना
होते, तसें येथें या कथेंतील वचनावरून मध्याह्नकालाचे विधीची कल्पना होत असल्यामुळे, “सर्वे पूजाव्रतांचे ठायीं मध्या-
ह्नव्यापिनी तिथि ध्यावी” असें माधवीयांत वचन आहे म्हणून तोच विधि समजून मध्याह्नव्यापिनी ध्यावी, असें तर
दिवोदास सांगतो. प्रतापमार्तंडांतही असेंच आहे. हेंच युक्त आहे. निर्णयामृतांत तर घटिकामात्रही उदय-
व्यापिनी ध्यावी, असें सांगितलें आहे. कारण, “हे द्विजोत्तमा ! भाद्रपदाचे अंती चतुर्दशीस पौर्णिमेचा योग असतां
अनंतव्रत करावें” असें भविष्यपुराणवचन आहे. व “भाद्रपदमासीं पौर्णिमेस मुहूर्तमात्रही चतुर्दशी असेल तर ती
संपूर्ण जाणून तिचे ठायीं अनंतरूपी विष्णूची पूजा करावी” असें स्कंदपुराणांतही वचन आहे. याविषयीं मूल चिंत्य
आहे. दोन दिवशीं उदयकाळीं असतां पूर्वदिवशीं पूर्ण असल्यामुळे पूर्वा ध्यावी हें योग्य. खरा प्रकार म्हटला तर—‘उदये
त्रिमुहूर्तापि’ हें माधववचन व ‘मुहूर्तमपि’ इत्यादि स्कांदवचन हीं विधिवान्वये म्हटलीं असतां विधिवान्वयांचा आणि
वरील कथेंतील अर्थवादवाक्याचा अर्थ भिन्नभिन्न झाला असतां दोघांची (अर्थवाद व विधि यांची) एकवाक्यता होणार
नाहीं, म्हणून संदिग्धस्थळीं एकवाक्यतेनें अर्थ करावा, या न्यायानें पूर्वा किंवा परा मध्याह्नव्यापिनीच मुख्य आहे. माधव
तर सामान्य वाक्यावरून निर्णय करितो म्हणून तो भ्रांतिष्ठ झाला आहे. अनंतव्रत इतर पुराणांत व इतर निबंधांतही
नसल्यामुळे वरील भविष्यादिवचन निर्मूलच आहे.

अथागस्त्यार्घ्यः तत्कालो व्रतहेमाद्रौ भविष्ये कन्यायामागते सूर्ये अर्वागवै सप्तमे दिने कन्यायां स-
मनुप्राप्तेर्घर्घकालो निवर्तते तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये इत्यर्थः यत्पाद्रे आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्य-
मेतत्सकलं नरेण यावत्समाः सप्तदश श्रवसायुरथोर्ध्वमप्यत्र वदंतिकेचित् यमस्यागस्त्यस्य उदयकालश्च दिवो-
दासीये उक्तः उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमेह्यगस्त्यः सप्तमे स्तं वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादि-
भिरप्यभाणि ।

आतां अगस्त्यार्घ्य सांगतो—त्याचा काल व्रतहेमाद्रौ भविष्यति—“कन्यारात्रीस सूर्य जाण्याचे पूर्वी सातव्या
दिवशीं अगस्त्यार्घ्य अर्घ्यकाल प्राप्त आहे. कन्येस सूर्य गेला असतां अर्घ्यकाल निवृत्त होतो.” या वचनावरून उदयोत्तरही
सातदिवसांमध्ये अर्घ्य द्यावा, असा अर्थ. कारण, पाद्मांत सांगतो—“अगस्त्यार्घ्या उदयापासून सातदिवसपर्यंत हें अग-
स्त्या अर्घ्य सकल मनुष्यांनीं द्यावें. याप्रमाणें सतरावर्षपर्यंत करावें. अथवा सतरावर्षांनंतरही ह्या काळीं हें अर्घ्यदानादि
करावें, असें केचित् म्हणतात.” उदयकाल दिवोदासीयांत सांगतो—“सूर्याच्या सिंहसंक्रांतीपासून एकवीस दिवसांनीं
दक्षिणेस अगस्ति उदय पावतो, आणि वृषसंक्रांतीपासून सातवे दिवशीं अगस्तीचें अस्त होतें, असें गर्गादिकांनीं
सांगितलें आहे.”

अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणेः प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुंभे खलंकृताम्
कुंभस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः दध्यक्षत बलिं दद्याद्वा त्रौक्यात्प्रजागरं पूजाचक्ष्यमाणार्घ्यमंत्रेण कार्या

१ अत्र मूलं चिंत्यमिति योगमुहूर्तादिवचनानां त्रिमुहूर्तत्वावकाशेनोपपत्तेः स्वार्थमात्रे मानाभावात् । २ अहो औदयिकत्वे इति यत्र
परोक्षे न त्रिमुहूर्ता तत्र विष्णुपि पूर्वा बोध्या ।

प्रभातेतांसमादाययायात्पुण्यंजलाशयं निशावसानेतांपश्यन्जलांतेप्रतिमांमुनेः अर्घ्यं दद्याद्गस्त्यायभक्त्या-
सम्यगुपोषितः मात्स्ये तु अंगुष्ठमात्रं पुरुषं तथैवसौवर्णमस्यायतबाहुदंडं पूर्वकाशमयीत्वमशक्तौ चतुर्भुजकुं-
भमुखेनिधायधान्यानि सप्ताङ्कुरसंयुतानि सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तमंत्रेण दद्याद्द्विजपुंगवाय धेनुंबहुक्षीरवती-
चदद्यात्सवस्त्रघंटाभरणाद्विजाय भविष्ये विरूढैः सप्तधान्यैश्चवंशपात्रनिधापितैः सौवर्णरूपपात्रेण ताम्र-
वंशमयेन वा मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां धरणीगतः विष्णुरहस्ये अगस्त्यः खनमानेति पठन्मंत्रमिमं मुनेः
अर्घ्यं दद्याद्गस्त्याय शूद्रे मंत्रविधिस्त्वयं काशपुष्पप्रतीकाशवह्निमारुतसंभव मित्रावरुणयोः पुत्रकुंभयोनेन मो-
स्तुते विंध्यवृद्धिक्षयकरमेघतोयविषापह रत्नबलभदेवेश लंकावासनमोस्तुते वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषि-
तः पुरा लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमो नमः येनोदितेन पापानि विलयं यांति व्याधयः तस्मै नमोऽस्त्वग-
स्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे अगस्त्यः खनमानेति विप्रोर्घ्यं विनिवेदयेत् राजपुत्रिमहाभागो ऋषिपत्निवरानने लोपा-
मुद्रेन मस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्णातां दत्तैवमर्घ्यं कौरव्यप्रणिपत्य विसर्जयेत् अर्चितस्त्वं यथाशक्त्यानमोगस्त्यमहर्षये
ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं ब्रजस्व मे विसर्जयित्वा गस्त्यंतं विप्राय प्रतिपादयेत् अगस्त्यो मे मनस्योस्तु अग-
स्त्योऽस्मिन् घटे स्थितः आगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः दानमंत्रः अगस्त्यः सप्तजन्माधं नाशयत्वा वयो-
रयम् अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने प्रतिग्रहमंत्रः विष्णुरहस्ये त्यजेद्गस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं र-
सम् होमं कृत्वा ततः पश्चाद्ब्रजे न्मानवः फलम् होमश्चार्घ्यमंत्रेणाज्येन भविष्ये दत्त्वा र्घ्यं सप्तवर्षाणि कमेणाने-
न पांडव ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः क्षत्रियः पृथिवीपतिः वैश्ये च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान्भवेत् यावदायुश्चयः-
कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति इत्यगस्त्यार्घ्यः ।

अगस्त्यार्घ्याचा विधि विष्णुरहस्यांत—“अगस्त्याची मूर्ति काशतृण, पुष्पं यांनीं मंदर करून तिला अलंकार घालून
प्रदोषकालीं पूर्णकुंभावर ठेवावी आणि कुंभावर ठेविलेली ती मूर्ति पुष्प, धूप, गंध यांहीं करून पुजावी. दधियुक्त अक्षतांचा
बलि द्यावा, व रात्रीम जागरण करावें.” पूजा तर पुढें सांगितलेल्या अर्घ्यमंत्रानें करावी. “प्रातःकालीं ती मूर्ति घेऊन पुण्य
अशा उदकाजवळ जावें. चांगलें उपोषण करून रात्र गेल्यानंतर उदकाच्या समीप त्या मुनीच्या प्रतिमेतें पाहून होत्वाता
भक्तीनं अगस्त्यास अर्घ्य द्यावें. मत्स्यपुराणांत तर “मुवर्णाचा अंगुष्ठप्रमाण पुरुष करावा, त्याचे बाहुदंड फार लांब
असावे. पूर्वी काशतृणाची मूर्ति करावी, म्हणून सांगितलें तें शक्ति नमनां गमजावें. अंकुर आलेलीं सप्तधान्यें, काशपुष्पें,
अक्षता, शिंप यांनीं सहित चतुर्भुज अशी प्रतिमा कुंभाच्या मुखावर ठेऊन ब्राह्मणश्रेष्ठांला द्यावी व बहुतदुधाची गाय वस्त्र,
घंटा, अलंकार यांनीं सहित ब्राह्मणास द्यावी. भविष्यांत “बांबूचे पात्रांत ठेवून हजलेल्या सप्तधान्यांनीं युक्त सोन्याचें,
रुप्याचें, तांब्याचें अथवा बांबूचें पात्र मस्तकीं ठेऊन नम्र होऊन गुडघ्यांनीं भूमीला स्पर्श करावा.” विष्णुरहस्यांत
“अगस्त्यः खनमानः” हा मंत्र म्हणून अगस्त्यास अर्घ्य द्यावें. शूद्राविषयी हा पुढें सांगितलेला मंत्र—काशपुष्प-
प्रतीकाश वह्निमारुतसंभव ॥ मित्रावरुणयोः पुत्र कुंभयोने नमोस्तु ते ॥ विंध्यवृद्धिक्षयकर मेघतो-
यविषापह ॥ रत्नबलभदेवेश लंकावास नमोऽस्तु ते ॥ वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा ॥
लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः ॥ येनोदितेन पापानि विलयं यांति व्याधयः ॥ तस्मै नमो-
स्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥ “अगस्त्यः खनमानः” ह्या मंत्रं करून ब्राह्मणानें अर्घ्य द्यावें. नंतर अगस्त्याचे
पत्नीस अर्घ्य द्यावें. त्याचा मंत्र—राजपुत्रिमहाभागो ऋषिपत्नि वरानने ॥ लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे
प्रतिगृह्णातां असें अर्घ्य देऊन नमस्कार करून विसर्जन करावें. विसर्जनाचा मंत्र—अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या नमो-
गस्त्यमहर्षये ॥ ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं ब्रजस्व मे ॥ याप्रमाणें अगस्त्याचें विसर्जन करून तो
अगस्त्य ब्राह्मणाला द्यावा. दानाचा मंत्र—अगस्त्यो मे मनस्योस्तु अगस्त्योऽस्मिन् घटे स्थितः ॥ अगस्त्यो
द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः ॥ प्रतिग्रहाचा मंत्र—अगस्त्यः सप्तजन्माधं नाशयत्वा वयो-
रयम् अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने ॥” विष्णुरहस्यांत—“अगस्त्याच्या उद्देशानें एक धान्य, एक फल, एक रस,
ही सोडावी. नंतर होम करून मनुष्यानं फल वज्यं करावें.” होमही अर्घ्यांक मंत्रानें आज्याचा करावा. भविष्यांत—“हे
पांडवा ! या क्रमानें सात वर्षे अर्घ्य दिलें असतां ब्राह्मण चतुर्वेदेवेता होतो. क्षत्रिय पृथिवीपति होतो. वैश्यास धान्यप्राप्ति,
व शूद्र धनवान् होतो. आयुष्य आहे तोंपर्यंत जो अगस्त्याला अर्घ्यदान करितो तो परब्रह्मपदास जातो.” ॥ इत्यगस्त्यार्घ्यः ॥

भाद्रपौर्णमास्यांप्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्यश्राद्धकार्यं तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्ममार्कंडेययोः नांदीमुखानां प्रत्यब्धं कन्याराशिगतेरवौ पौर्णमास्यां तु कर्तव्यवराहवचनं यथेति नांदीमुखत्वं चोक्तं ब्राह्मे पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः त्रयोहस्तमुखाह्येते पितरः परिकीर्तिताः तेभ्यः पूर्वतराये च प्रजावंतः सुखे धिताः ते तु नांदीमुखानां दीसमृद्धिरितिकथ्यते एतच्च प्रत्यब्धमित्युक्तेः पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपारिजाते अत्रमातामहापिकार्याः पितरो यत्र पूज्यं ते तत्र मातामहा अपीति धौम्योक्तेः पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्नपरत्वात् वार्षिकेतुवचनाप्रवृत्तिः न च जीवत्पितृकस्यान्यवृत्त्या मातृश्राद्धे तदापत्तिः इष्टापत्तेः अतएव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमातामहयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादर्शौ एतज्जीवत्पितृकश्राद्धे वक्ष्यामः केचित्तु अजहल्लक्षणाया पित्रादयो यत्र तत्र मातामहास्तेनात्रनेत्याहुः न चात्रनाम्नानां दीश्राद्धधर्मातिदेशः वैष्णवादिशब्दवदेव तापरस्य कर्मनामत्वाभावान् नापि नांदीमुखत्वं पितृविशेषणपारिभाषिकत्वादिति दिक् तथा निर्णयदीपे गार्ग्यः पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिंडपातनम् वर्जयित्वा प्रौष्ठपदीयथावर्शस्तथैव सेति इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मजभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिंधौ भाद्रपदमासः ।

भाद्रपदपौर्णिमेचे ठायीं प्रपितामहाच्या पूर्वीचे जे तीन पुरुष त्यांच्या उद्देशें करून श्राद्ध करावें. तें सांगतो हेमाद्रीत ब्राह्मांत व मार्कंडेयांत—“कन्याराशीस सूर्य गेला असतां पौर्णमासीस प्रतिवर्षी नांदीमुखांचें श्राद्ध करावें, असें वराहवचन आहे.” नांदीमुख कोणते ते सांगतो ब्राह्मांत—“पिता, पितामह, प्रपितामह हे तीन पितर अशुमुख होत; त्यांहून पूर्वीचे (पलीकडचे) जे प्रजावंत सुखानें वाढलेले ते नांदीमुख होत. नांदी म्हणजे समृद्धि म्हणली आहे.” हें श्राद्ध प्रतिवर्षी करावें असें सांगितल्यावरून महालयश्राद्ध पंधरा दिवस करावयाचें ह्या पक्षीं व सकृन्महालयपक्षीही आवश्यक होय, असें प्रयोगपारिजातांत सांगितलें आहे. ह्या श्राद्धांत मातामहही ध्यावे; कारण, “पितरांची जेथें पूजा करावयाची, तेथें मातामहांचीही करावी” असें धौम्यवचन आहे. या ठिकाणीं पिता इत्यादिक पितर नसून वृद्धप्रपितामहादिक असल्यामुळे ‘पितरो यत्र पूज्यंते’ ह्या धौम्यवचनाची प्रवृत्ति कशी ? असें कोणी म्हणेल तर, ‘पितृ’ हा शब्द जनकपित्याचा वाचक मानला तर बहुवचनाचा विरोध येत असल्यामुळे ज्यांना पितृत्व प्राप्त झालें आहे त्यांचा वाचक (बोधक) पितृ शब्द आहे. प्रतिवार्षिक श्राद्धांत मातामह कां येत नाहीत असें म्हणलें तर त्या ठिकाणीं मातामहश्राद्ध करूं नये, अशा वचनावरून मातामहांची निवृत्ति होते. आतां असें म्हणलें तर जीवत्पितृकाचे अन्वष्टकाचे ठायीं मातृश्राद्धांत मातामह प्राप्त होतील ? तर ते इष्ट आहेत. मातृश्राद्धांत मातामह इष्ट आहेत म्हणूनच “त्यांनं, उक्त श्राद्धांत आपल्या मातेला व मातामहाला द्यावें” असें मदनरत्न व कालादर्श सांगतात. हा प्रकार जीवत्पितृकश्राद्धप्रकरणीं (तृतीयपरिच्छेदाच्या उत्तरार्धात) पुढें सांगूं. केचित् तर—‘पितृ’ या शब्दाची पिता व पित्याचे पूर्वीचे ह्यांच्यावर अजहल्लक्षणा करून पिता धरून पूर्वीचे जेथें असतील तेथें मातामह पुजावे, असा अर्थ करावा. तेणें करून येथें (या प्रौष्ठपदीश्राद्धांत) पिता नसल्यामुळे मातामह नाहीत, असें सांगतात. आतां असें म्हणूं की, ह्या वृद्धप्रपितामहादिकांना नांदीमुख असें नांव असल्यामुळे नांदीश्राद्धाचे धर्म या श्राद्धांत येतील ? असें म्हणतां येत नाही. कारण, जसे वैष्णव इत्यादिक शब्द देवताबोधक आहेत, तसा येथें नांदीमुख हा शब्द या श्राद्धांत जे पितर देवता त्यांचा बोधक आहे, म्हणून या श्राद्धरूप कर्माचा बोधक तो शब्द नाही. ह्या श्राद्धांतील पितरांना नांदीमुख हें विशेषणही नाही. ते पितर नांदीमुख आहेत, इतकाच संकेत आहे. ही दिशा समजावी. तसेंच निर्णयदीपांत गार्ग्य—“साच्या पौर्णिमेचे ठायीं पिंडदान निषिद्ध आहे. प्रौष्ठपदी पौर्णिमा वर्ज्य करून हें समजावें. कारण, जसा दर्श तशीच ती प्रौष्ठपदी आहे.” इति भाद्रपदमासः ॥

कन्यासंक्रमेपराः षोडशघटिकाः पुण्याः शेषप्राग्वत् अथ महालयः तत्र पृथ्वीचंद्रोदये वृद्धमनुः आषाढीमवधिं कृत्वा पंचमं पक्षमाश्रिताः कांक्षंति पितरः छिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलं कन्यायोगे पुण्यतमत्वं माह श्राव्यायनिः कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोत्यंतं पुण्यमुच्यते इति अत्र विशेषमाह वृद्धमनुः मध्येवायुदिवाप्यंते यत्र कन्यां प्रजेद्विः सपक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति तथा ब्रह्मांडमार्कंडेययोः कन्यागते सवितरिनिना निवशपंचच पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते तथा तत्रैव षोडशदिनान्युक्तानि कन्यागते सवितरि-

१ जसे—‘काकेभ्यो दधि रक्ष्यता’ या वाक्यांत काक या पदानी दधिघातक जे त्यांच्यावर लक्षणा केली आहे. त्यांत काक छुटत नाहीत, व इतरही मार्जारादिक येतात, म्हणून ती अजहल्लक्षणा होय. तशी येथें ‘पितृ’ या शब्दाची पिता व त्याच्या पूर्वीचे ह्यांच्यावर अजहल्लक्षणा होते, असा भाव.

यान्यहानितुषोडश क्रतुभिस्तानितुल्याद्भिवोनारायणोब्रवीत् अत्रहेमाद्रिःषोडशत्वत्रेधाव्याचख्यौ तिथि-
वृद्ध्यापक्षस्यषोडशदिनात्मकत्वेऽप्यवृद्धयर्थमेकःपक्षः भाद्रपदपूर्णिमयासहेतिद्वितीयः आश्विनशुक्रप्रतिपदा-
सहेतितृतीयः अंत्यएवतुयुक्तः अहःषोडशकयंतुशुक्रप्रतिपदासह चंद्रक्षयाविशेषेणसापिदर्शात्मिकास्मृतेति-
देवलोक्तेः ।

आतां आश्विनमास.

कन्यासंक्रांतीच्या पुढच्या षोडश (सोळा) घटिका पुण्यकाळ. बाकीचा निर्णय (रात्री संक्रांत असतां वगैरे) पूर्वी-
प्रमाणे समजावा. आतां महालय सांगतो—पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धमनु—“केशयुक्त झालेले पितर आषाढीपासून
पांचव्या पक्षामध्ये दररोज अन्न व उदक यांची इच्छा करितात.” कन्यासंक्रांतीचा योग असतां अतिशयैकहून पुण्य
सांगतो शाळ्यायनि—“कन्यार्कांत युक्त जो पक्ष तो अत्यंत पुण्यकारक सांगितला आहे.” येथे विशेष सांगतो वृद्धमनु—
“ज्या पक्षाच्या मध्ये किंवा अंती सूर्य कन्येस जाईल तो सारा पक्ष सोळाश्राद्धांविषयी श्रेष्ठ आहे.” तसेच ब्रह्मांडांत व
मार्कंडेयांत—“सूर्य कन्येस गेला असतां जे पंधरा दिवस त्यांचे ठायीं पार्वणविधीनं श्राद्ध करावें.” तसे तेथेच सोळा
दिवस सांगितले आहेत—“सूर्य कन्येस गेला असतां जे सोळा दिवस ते यज्ञसमान आहेत, असे देवनारायण सांगतात.”
या वचनांत सोळा दिवस सांगितले ते हेमाद्रि तीन प्रकारानें सांगतो—ह्या भाद्रपदकृष्णपक्षांत तिथीची वृद्धि होऊन
पक्षाचे सोळा दिवस झाले असतां श्राद्धांनी वृद्धि (गोळा श्राद्ध) होते हा एक पक्ष. भाद्रपदपूर्णिमेसह सोळा दिवस
होतात, हा दुसरा पक्ष. आश्विन शुक्रप्रतिपदेसह गोळा दिवस होनात, हा तिसरा पक्ष. ह्या तीन पक्षांत शेवटचा तिसरा
पक्षच युक्त आहे. कारण, “आश्विनशुक्रप्रतिपदेसह जे सोळा दिवस ते श्राद्धाला योग्य आहेत; कारण, शुक्रप्रतिपदेसही
चंद्राचा क्षय अगत्यामुळं ती देखील दर्शरूपी आहे” असें देवलवचन आहे.

तत्रपंचपक्षाः तदुक्तेहेमाद्रौब्राह्मे आश्वयुक्कृष्णपक्षेत्तुश्राद्धकार्यदिनेदिने त्रिभागहीनपक्षंवात्रिभाग-
त्वधर्मेववा दिनेदिनेइतिपक्षपर्यंतत्वमुक्तम् त्रिभागहीनमितिपंचम्यादिपक्षः त्रिभागमितिदशम्यादिपक्षः
त्रिभागहीनमितिचतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेतिक्लृप्ततरुः अत्रदिनपदंतिथिपरंवीप्स-
यातत्पक्षीयतिथित्वंश्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् तेनपंचदशतिथिव्यापिश्राद्धंस्थिति तेनचतुर्दशीनिषेधोऽन्य-
कृष्णपक्षपरइतिगौडाः तत्र श्राद्धंशस्त्रहतस्यैवचतुर्दश्यांमहालये इत्यादिविरोधान् यच्च कश्चित् पूरणप्र-
त्ययलोपेनतृतीयभागहीनंप्रत्यादिपक्षं तृतीयभागमेकादश्यादि तदध्वन्योदश्यादि उत्तरोत्तरंलघुकालोक्तेरिति
तत्र गौतमादिवचनेनमूलकल्पनालाघवान् पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च पंचम्यध्वंचतत्रापिदशम्यध्वंचततोप्यतीति
विष्णुधर्मोक्तेःषष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपिज्ञेयावितितत्त्वम् कालादर्शोपि पक्षाद्यादिचदर्शांतपंचम्या-
दिदिगादिच अप्रम्यादियथाशक्तिकुर्यादापरपक्षिकम् पक्षादिःप्रतिपत्तं दिक्दशमी दर्शांतमितिसर्वत्र गौत-
मोपि अथापरपक्षेश्राद्धंपितृभ्योदद्यात्पंचम्यादिदर्शांतमप्रम्यादिदशम्यादिसर्वस्मिंश्चेति तथैकस्मिन्नपिदिने
श्राद्धमुक्तेहेमाद्रौनागरवंडे आपाठ्याःपंचसेपक्षेकन्यासंस्थेदिवाकरे योवैश्राद्धंनरःकुर्यादेकस्मिन्नपिवा-
सरे तस्यसंवत्सरंयावत्संप्रदाःपितरोधुवमिति अत्रशक्ताशक्तपरान्वयवस्थेतिप्रांचः तत्र तद्वाचकपदाभावान्
नत्रयोदश्यादिपक्षएवमित्यः तत्रैवनिंदाश्रुतेः ब्राह्मेएवकारेणतस्यैवपंचमपक्षयोगव्यवच्छेदोक्तेरितिगौडाः
तत्र एकस्मिन्नपीतिविरोधान् तेनफलभूमार्थानान्यानिकार्याणीतिनचवम् तत्रचतुर्दशीश्राद्धाभावेपंचम्यादिद-
शम्यादिपक्षौ तत्सर्वेषप्रत्याद्येकादश्यादिकौ एवंचतुर्दश्याभावेद्वादश्यादिःतत्सर्वेत्रयोदश्यादिरितिव्यवस्था।

ह्या महालयश्राद्धांचे पांच पक्ष आहेत. ते सांगतो हेमाद्रिं ब्राह्मांत—“आश्विनकृष्णपक्षांत दररोज श्राद्ध करावें.
अथवा तिथीच्या तिसऱ्या भागांत हीनपक्ष म्हणजे पंचमीपासून श्राद्ध करावें. किंवा तिसरा भाग म्हणजे दशमीपासून श्राद्ध
करावें. अथवा निंमे तिसरा भाग श्राद्ध करावें.” या वचनांत दररोज करावें, असें सांगितलें तें सारा पक्ष समजावा.
‘तिसऱ्या भागांत हीन’ म्हटलें तें पंचमीपासून समजावें. ‘तिसरा भाग’ असें म्हटलें तें दशमीपासून समजावें. तिसऱ्या
भागानें हीन पक्ष असें सांगितलें त्याचा अभिप्राय असा—प्रतिपदादि चार तिथि आणि चतुर्दशी ह्या पांच तिथि वर्ज्य
कहून, असें कल्पतरु सांगतो. या वचनांत ‘दिने’ हें पद तिथिवाचक आहे, त्या पदाची वीप्सा (द्विरुक्ति) असल्यानें
असा अर्थ होतो की, त्या पक्षातील जी जी तिथि त्या त्या तिथीस श्राद्ध होतें. असा अर्थ सात्यानं पंधरा तिथींना व्यापून

श्राद्ध सिद्ध झाले आहे. तेथें करून चतुर्दशीला जो श्राद्धनिषेध तो इतर कृष्णपक्षाविषयी आहे, असें गौड सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, “शस्त्रानें मारलेल्याचेंच महालयांतील चतुर्दशीस श्राद्ध होतें” इत्यादि वचनाचा विरोध येईल. आतां जें कोणीएक सांगतो कीं, वरील वचनांत ‘त्रिभागहीन’ या पदांत ‘त्रि’ शब्दापुढें पूरणप्रत्ययाचा लोप झालेला आहे. त्यावरून ‘तृतीयभागहीन’ म्हणजे तिसऱ्या भागानें हीन असा पक्ष म्हटला म्हणजे षष्ठीपासून अमावास्यापर्यंत होय. तसाच ‘त्रिभाग’ म्हणजे तिसरा भाग होय, तो एकादशीपासून अमावास्यापर्यंत. त्याचा अर्थ म्हणजे त्रयोदशीपासून अमावास्यापर्यंत. कारण, उत्तरोत्तर अल्पकाल सांगितला आहे, असें सांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, गौतमादिवचन पंचम्यादि पक्षांविषयी असल्यामुळे वचनाचा असा अर्थ करण्यापेक्षा तशाविषयी मूलवचनाची कल्पना केली तर लाघव येईल. आणि ‘पक्ष’ ह्या पदाला तिसऱ्या भागानें (प्रतिपदादि पांच तिथींनीं) हीन, अमा अन्वयही होत नाही. “त्या कृष्णपक्षांतही पंचमीच्या पुढच्या तिथींस करावें. अथवा दशमीच्या पुढच्या तिथींस करावें.” ह्या विष्णुधर्मवचनावरून षष्ठीपासून व एकादशीपासून तिथींस करावें, हे पक्षही आहेत असें समजावें, हें खरें तत्त्व होय. कालादर्शांतही—“प्रतिपदेपासून अमावास्यापर्यंत आपरपक्षिकश्राद्ध (महालय) करावें. पंचमीपासून अमावास्यापर्यंत, दशमीपासून अमावास्यापर्यंत, अष्टमीपासून अमावास्यापर्यंत, आपल्या शक्तीप्रमाणें आपरपक्षिक श्राद्ध करावें.” गौतमही—“आतां अपरपक्षांत पितरांना श्राद्ध द्यावें. तें असं—पंचमीपासून दशापर्यंत, अष्टमीपासून दशापर्यंत, दशमीपासून दशापर्यंत, आणि पक्षाच्या सर्वेतिथींस अमे पक्ष आहेत.” तसेंच एकाही दिवशीं श्राद्ध सांगतो हेमाद्रिंत नागरखंडांत—“आषाढीपासून पांचव्या पक्षांत कन्याराशीस सूर्य गेला असतां जो मनुष्य एकाही दिवशीं श्राद्ध करील त्याचे पितर संवत्सरपर्यंत तृप्त होतात, यांत संशय नाही.” ह्या वरील सर्व पक्षांविषयी शक्ति व अशक्ति पाहून व्यवस्था करावी, असें प्राचीन पंडित सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, त्या वरील वचनांत शक्ति व अशक्तिबोधक पद नाही. त्रयोदशीपासून अमावास्यापर्यंत हाच पक्ष नित्य आहे, असें नाही. कारण, त्या त्रयोदशीसच निंदा पुढें केलेली आहे. वरील ‘आश्वयुक्त कृष्णपक्षे तु’ ह्या ब्राह्मवचनांत ‘त्रिभागलघमेव’ म्हणजे तिसऱ्या भागाचा अर्धच (त्रयोदशीपासून अमावास्यापर्यंतच) करावें. यथे ‘गव’ काराच्या योगंकरून त्या त्रयोदश्यादिपक्षालाच पांचव्या पक्षा (ह्या वचनांत सांगितलेल्या चार पक्षांहून अधिक पक्षा) चा योग नाही असें सांगितल्यावरून तो त्रयोदश्यादि पक्षच नित्य आहे, असें गौड सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, ‘एकस्मिन्नपि वामरे’ ह्या वरील नागरखंडवचनाशीं विरोध येतो. यावरून सकृन्महालयच नित्य आहे. मोठें फल इच्छितारांनीं सकृन्महालयांचून इतर प्रतिपदादि श्राद्धे करावीं, हें तत्त्व होय. त्यांमध्ये चतुर्दशीश्राद्ध करावयाचें नसेल तर पंचमीपासून व दशमीपासून हे पक्ष घ्यावे. चतुर्दशीश्राद्ध करावयाचें असेल तर षष्ठीपासून व एकादशीपासून हे पक्ष घ्यावे. याप्रमाणें चतुर्दशीश्राद्धाभावीं द्वादश्यादि पक्ष, व चतुर्दशीश्राद्ध असेल तर त्रयोदशीपासून हा पक्ष होय, अशी वर सांगितलेल्या पक्षांची व्यवस्था समजावी.

विधवायास्तुविशेषः स्मृतिसंग्रहे चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि स्वभर्तृश्वशुरादीनां माता-पित्रोस्तथैव च ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् तथा श्वश्रूणां च विशेषेण मातामहास्तथैव चेति अशक्तौ तु स्मृतिरन्नावल्याम् स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च विधवाकारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतंत्रिता विधवास्वयंसंकल्पं कृत्वान्यद्ब्राह्मणद्वारा कारयेदित्युक्तं प्रयोगपारिजाते ।

विधवाकर्तृक श्राद्धांत विशेष सांगतो स्मृतिसंग्रहांत—“विधवेला श्राद्धांत चार पार्वण सांगितले आहेत. ते असे—भर्तृतत्पित्रादिपार्वण, मातृपार्वण, पितृपार्वण, आणि मातामहपार्वण यांना श्राद्ध द्यावें.” तसेंच “श्वश्रूपावर्ण आणि मातामहीपार्वण यांनाही द्यावें.” चार पार्वणाविषयी अशक्ति असेल तर सांगतो स्मृतिरन्नावलींत—“भर्तृतत्पितृपितामहानां आणि आपल्या पितृपितामहप्रपितामहानां विधवेनं यथाकालीं श्राद्ध करावें.” विधवेनं स्वतः आपण संकल्प करून इतर विधि ब्राह्मणाकडून करवावा, असें प्रयोगपारिजातांत सांगितले आहे.

सकृन्महालयेच वर्ज्यति ध्याद्युक्तं पृथिवीचंद्रोदयप्रयोगपारिजातादिषु वसिष्ठः नंदायां भार्गव-दिनेचतुर्दश्यांत्रिजन्मसु एषु श्राद्धंत कुर्वीत गृहीतपुत्रधनक्षयात् जन्मभंतपूर्वोत्तरेच त्रिजन्मानि वृद्धगार्ग्यः प्राजापत्येच पौष्णेच पितृर्क्षे भार्गवे तथा यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति प्राजापत्यं रोहिणी पौष्णं रेवती पित्र्यं मघा अन्यान्यपि प्रत्यरादीनितत्रैव ज्ञेयानि केचित्तु नंदाश्वकामरव्यारभृग्वभिपितृकालभे गंडे वैधृतिपाते-चर्षिडास्त्याज्याः सुतेऽप्युभिरिति संग्रहात् नंदाप्रतिपत्पष्ठ्येकादश्यः अश्वः सप्तमी कामख्योदशी आरोभौमः शृगुः शुक्रः अभिभंकृत्तिका कालभंभरणी अत्र पिंडास्त्याज्या इत्याहुः तत्र मूलं मृग्यम् एतच्च सकृन्महालयविषयं सकृन्महालयेकाम्ये पुनः श्राद्धे खिलेषु च अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिंतयेदिति पृथ्वीचंद्रोदयेनारदोक्तः ।

सकृन्महालायास वर्ज्य तिथि, वार इत्यादिक पृथ्वीचंद्रोदय, प्रयोगपारिजात इत्यादि ग्रंथांत सांगतो. **वसिष्ठ**—“नंदा तिथि (११६११), श्रुगुवार, चतुर्दशी, त्रिजन्मनक्षत्रे (जन्मनक्षत्र व त्याच्या पूर्वीचे आणि पुढचे) यांचे ठायीं गृहस्थांत श्राद्ध करूं नये; केले तर पुत्र व धन यांचा क्षय होतो.” **वृद्धगार्ग्य**—“रोहिणी, रेवती, मघा, शुक्रवार यांचे ठायीं जो श्राद्ध करील त्याचा पुत्र नष्ट होतो.” प्रत्यर (जन्मनक्षत्राहून पांचवे नक्षत्र) इत्यादिक अन्यही निषिद्ध आहेत तीं तेथेंच (पृथ्वीचंद्रोदयादिकांतच) जाणावीं. **केचित्** तर—“नंदा तिथि (११६११), सप्तमी, त्रयोदशी, रविवार, भौमवार, शुक्रवार, कृत्तिका, मघा, भरणी, गंड, वैश्वति, तृतीयापात यांचे ठायीं पुत्रेच्छूनीं पिंड वर्ज्य करावे” ह्या **संप्रह-**वचनावरून नंदादि तिथी आणि वर सांगितलेले वार, नक्षत्रे, योग यांच्यावर पिंड वर्ज्य करावे, असें सांगतात. त्याविषयीं मूल शोधवें. हा वर सांगितलेला तिथि इत्यादिकांचा निषेध सकृन्महालयविषयक आहे. कारण, “सकृन्महालय (एकदिवशीं करावयाचा महालय), काम्य श्राद्ध, दुग्ण्या वेळीं करावयाचें श्राद्ध, खिलश्राद्ध, अतिक्रान्तमहालय, इत्यादींचे ठिकाणीं हा वर सांगितलेला सर्व तिथ्यादिवचार करावा” असें **पृथ्वीचंद्रोदयांत नारद**वचन आहे.

अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचंद्रोदये च अमापाते भरण्यांच द्वादश्यांपक्षमध्ये तथा तिथिचनश्रवणं चनविचारयेत् पराशरमाधवीये मदनपारिजातादिषु चैव निर्णयदीपिकायांतु पितृमृताहे निषिद्धदिनेपिसकृन्महालयः कार्य इत्युक्तम् आपाक्याः पंचमेपक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे मृताहनिपितुयां वैश्राद्धं दास्यति मानवः तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो भुवमिति नागरखंडोक्तेः यातिथिर्यस्य मासस्य मृताहेतुप्रवर्तते सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाशौचं यदृच्छया पिंडश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिनैव कारयेत् अशक्तः पक्षमध्ये तु कुर्यात्पिंडदानं यथाविधीति कात्यायनोक्तेश्च अत्र मूलं चिंत्यम् ।

ह्याचा अपवाद सांगतो हेमाद्रीं व पृथ्वीचंद्रोदयांत—“अमावस्या, व्यतीपात, भरणी, द्वादशी, अष्टमी यांचे ठायीं तिथि, वार, नक्षत्र यांचा विचार करूं नये.” पराशरमाधवीयांत व मदनपारिजात इत्यादिकांतही असेंच आहे. **निर्णयदीपिकेत** तर—पित्याच्या मृतदिवशीं निषिद्ध दिवग अगला तर्ग सकृन्महालय करावा, असें सांगितले आहे. कारण, “आषाढीपासून पांचव्या पक्षांत मृत्यु कन्याराशीम अमतां पित्याच्या मृतदिवशीं जो मनुष्य श्राद्ध करील त्याचे पितर संवत्सरपर्यंत निश्चयांत नृप होतात” असें **नागरखंड**वचन आहे. आणि “ज्याच्या मृतदिवशीं मासाची जी तिथि अमते ती तिथि पितृपक्षांत त्याच्यापुढीं पत्य (श्राद्धदानाच्या योग्य) आहे. आशांचावांचून स्वेच्छेन श्राद्धविरहित तिथि करूं नये. गपिंडक श्राद्ध करावें, विच्छेद करूं नये. पक्षपर्यंत श्राद्ध करण्याविषयीं अशक्त असल्यामुळे जेव्हां पितृपक्षांत एकदिवशीं श्राद्ध करीत असले तेव्हां निषिद्धदिवशीं देखील यथाविधि पिंडदान करावें” असें **कात्यायन**वचनही आहे. याविषयीं मूल पित्य (विचारणीय) आहे.

तथापक्षश्राद्धकरणेपिनंदादिपुपिंडनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये कार्णाजिनिः नभस्यस्यापरे पक्षश्राद्धं कार्यं दिनेदिने नैव नंदादिब्रह्मज्ञानैव निश्चाचतुर्दशीति अत्र श्राद्धमित्येकवचनादिनेदिने इति विष्णोः शास्त्रं सोमयागवदेकस्याभ्यासेनैकप्रयोगपरमिदं अतः प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां व्रजित्वा चतुर्दशीमितियाज्ञवल्कीयप्रयोगभेदपरम् नतु पंचम्यादिपक्षविषयम् प्रतिपत्प्रभृतिष्वेति विशिष्योक्तः **निर्णयदीपे पृथिवीचंद्रोदये मदनपारिजाते चैव** अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्कीयम् एतत्परत्वेनैव निश्चाचतुर्दशीविरोधादिति **गौडाः** तत्र श्राद्धशस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालय इति विरोधान् न च वंतु निधिनक्षत्रवारादिनिषेधो य उदाहृतः स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुपगम्यते ह्यसाविति **दिवोदासीये वृद्धगार्ग्योक्ते** तन्निमित्ते पक्षांतरे च ज्ञेयः सकृन्महालये तु वचनाभिषेधः अन्यत्र न कोपि निषेधः कार्णाजिनिस्मृतेरिति अतो नंदादौ सपिंडकश्राद्धे पुत्रवतोप्यधिकारः **अत्रिरपि** महालये क्षयाहे च दर्शपुत्रस्य जन्मनि तीर्थेपि निर्वपेत् पिंडान् रविबारादिकेष्वपि पूर्वोक्तनंदादिनिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे तन्निमित्ते च ज्ञेयः यतु स्मृत्यर्थसारे विवाहव्रतचूडासुवर्षमर्धतर्द्धकं पिंडदानं मृदास्नानं कुर्यात्तिलतर्पणमिति तस्यापवादो **दिवोदासीये वृद्धस्पतिः** तीर्थसंवत्सरेप्रेतेपितृयागे महालये पिंडदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः

क्षयेहनि कृतोद्वाहोपिकुर्वीतपिंडनिर्वपणंसदेति निर्णयदीपेतुनंदादिनिषेधःप्रत्यहभिन्नश्राद्धविषयः षोड-
शाह्व्यापिश्राद्धप्रयोगैकत्वेतुप्रत्यहंपिंडदानंकार्यमेवेत्युक्तम् तदयमर्थःसंपन्नः षोडशाह्व्यापिश्राद्धैक्ये नपिं-
डनिषेधः मृताहेसकृन्महालयेपितथाप्रत्यहंश्राद्धभेदेपिच्यतीपातादौतथा अन्यत्रमृताहातिकाक्रमेमहालयेचपिं-
डनिषेधइति संन्यासिनांतुद्वादश्यांश्राद्धंकार्यं यतीनांचवनस्थानांवैष्णवानांविशेषतः द्वादश्यांविहितंश्राद्धं-
कृष्णपक्षेविशेषतइतिपृथ्वीचंद्रोदयेसंग्रहोक्तेः ।

तसंच पक्षश्राद्ध (पंधरादिवस श्राद्ध) कर्तव्य असतांही नंदादिकांचे ठायीं पिंडनिषेध नाही, असें सांगतो पराशरमा-
धवीयांत कार्णाजिनि—“भाद्रपदाचे अपरपक्षांत दररोज श्राद्ध करावें. नंदादिक वर्ज्य नाहीत, व चतुर्दशी नियं
नाहीं.” या वचनांत ‘श्राद्ध’ असें एकवचन असल्यामुळे व ‘दिने दिने’ म्ह० दिवसादिवसाचे ठायीं अशी द्विरुक्ति असल्या-
मुळेही पक्षश्राद्धाच्या एकप्रयोगपक्षविषयक हें वचन आहे. जसा—सोमयागाचा आवृत्तीनं एक प्रयोग होतो, तसा या
श्राद्धाचा एक प्रयोग होतो. म्हणून “प्रतिपदादिक श्राद्धांचे ठायीं एक चतुर्दशी वर्ज्य करावी” हें याज्ञवल्क्याचें वचन
भिन्नप्रयोगविषयक आहे. पंचमीपासून वगैरे जे पक्ष सांगितले तद्विषयक नाही. कारण त्याच वचनांत ‘प्रतिपदादिक
श्राद्धांत’ असें विशेषेकरून सांगितलें आहे. निर्णयदीप—पृथ्वीचंद्रोदय—मदनपारिजात या ग्रंथांतही असेंच
आहे. वर सांगितलेलें याज्ञवल्क्यवचन भाद्रपदाहून इतर कृष्णपक्षांत श्राद्धे सांगितलीं त्याविषयीं आहे. ह्या कृष्णपक्षा-
विषयीं याज्ञवल्क्यवचन म्हटलें तर ‘चतुर्दशी नियं नाही’ ह्या वर सांगितलेल्या कार्णाजिनिवचनाचा विरोध येईल, असें
गौड सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, असें म्हटलें तर महालयांतील चतुर्दशीस पक्ष करावा, असें झालें म्हणजे
“महालयांतील चतुर्दशीस शस्त्रां मारलेल्यांचेंच श्राद्ध करावें, इतरांचें करूं नये” या वचनाचा विरोध येईल. म्हणून
याज्ञवल्क्यवचन भिन्नप्रयोगविषयक आहे. खरा प्रकार म्हटला तर “तिथि, नक्षत्र, वार इत्यादिकांचा जो निषेध
सांगितला, तो त्या तिथिनक्षत्रादिनिमित्तक श्राद्धाविषयीं होतो. इतराच्या अनुषंगानं प्राप्त झालेल्या श्राद्धाविषयीं तो निषेध
नाहीं” असें दिवोदासीयांत वृद्धगार्ग्यवचन सांगितल्यावरून चतुर्दशीनिमित्तक श्राद्धाविषयीं व इतर पक्षांविषयीं तो
निषेध जाणावा. सकृन्महालयाविषयीं तर वर सांगितलेल्या वसिष्ठ-नारदादिवचनांवरून चतुर्दशीचा निषेध आहे. वर
सांगितलेल्या कार्णाजिनिस्मृतीवरून प्रतिदिवशीं श्राद्धाविषयीं कोणताही निषेध नाही. ही कार्णाजिनिस्मृति आहे म्हणूनच
नंदादिकांचे ठायीं सपिंडक श्राद्धाविषयीं पुत्रवंतालाही अधिकार आहे. अत्रिही—“महालय, मृतदिवस, दर्श, पुत्रजन्म,
तीर्थप्राप्ति, इतक्यांचे ठायीं रविवार इत्यादि निषिद्ध दिवस असतांही पिंडदान करावें.” वसिष्ठादिवचनांनीं वर सांगितलेला
नंदादिनिषेध तर मृतदिवस टाकून पुढें करावयाच्या सकृन्महालयाविषयीं, पौर्णमासीस वगैरे मृताच्या पुढें करावयाच्या
श्राद्धाविषयीं आणि तिथ्यादिनिमित्तक श्राद्धाविषयीं जाणावा. आतां जें स्मृत्यर्थसारांत—“विवाह, उपनयन, चाल हीं
झालीं असतां अनुक्रमानं एक वर्ष, अर्ध वर्ष, तीनमास पर्यंत पिंडदान, मृत्तिकास्नान आणि तिलतर्पण हीं करूं नयेत”
असें सांगितलें, त्याचा अपवाद सांगतो दिवोदासीयांत वृहस्पति—“तीर्थश्राद्ध, सांवत्सरिक, मृतपित्याचें और्ध्व-
देहिक, महालय, युगादिश्राद्ध, भरणीश्राद्ध, मघाश्राद्ध यांचे ठायीं पिंडदान करावें. विवाह केला असला तरी महालय,
गयाश्राद्ध, मातापितरांचा मृतदिवस यांचे ठायीं सर्वदा पिंडदान करावें.” निर्णयदीपांत तर नंदादिनिषेध सांगितला तो
दररोज करावयाच्या श्राद्धावांचून इतर श्राद्धांविषयीं समजावा. वर सांगितलेलें एकप्रयोगानं सोळा दिवस व्यापून करावयाचें
श्राद्ध असेल तर प्रतिदिवशीं पिंडदान करावेंच, असें पूर्वी सांगितलें, तस्मात् असा अर्थ निष्पन्न झाला की, सोळा दिवस
व्यापून एकप्रयोगानं एक श्राद्ध असतां पिंडांचा निषेध नाही. मृतदिवशीं सकृन्महालय असतांही तसाच पिंडनिषेध नाही.
भिन्नप्रयोगानं दररोज भिन्नश्राद्ध असतांही व्यतीपातादिक असतां तसाच पिंडनिषेध नाही. व्यतीपातादिक नसतां भिन्न-
प्रयोगाविषयीं आणि मृतदिवस टाकून महालय असतां वर सांगितलेला पिंडनिषेध आहे. संन्याशांचें तर द्वादशीस
श्राद्ध करावें. कारण, “संन्याशी, वानप्रस्थ यांचें आणि विशेषेकरून वैष्णवांचें श्राद्ध द्वादशीस विहित आहे. कृष्णपक्षांतील
द्वादशीस विशेषेकरून विहित आहे” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत संग्रहवचन आहे.

अत्रपक्षेश्राद्धाकरणेगौणकालमाहमेमाद्रौयमः हंसेकन्यासुवर्षास्थेशकेनापिगृहेवसन् पंचम्योरंतरेदद्या-
दुभयोरपिपक्षयोः आश्विनकृष्णशुक्लपंचम्योर्मध्यइत्यर्थः तत्राप्यसंभवेभविष्ये येयंदीपान्विताराजन्ख्या-
तापंचदशीभुवि तस्यांदद्यान्नचेदत्तपितृणांवैमहालये तत्राप्यसंभवेभारते यावच्चकन्यातुलयोःक्रमादास्ते
विधाकरः शून्यंभ्रेतपुरंतावद्वृश्चिकंयावदागतः ब्राह्मे वृश्चिकेसमतिक्रांतेपितरोदैवतैःसह निःश्वस्यप्रतिग-
च्छंतिशापंदत्वासुदारुणं यतुजातूकर्ण्यः आकांक्षंतिस्मपितरःपंचमंपक्षमाश्रिताः तस्मात्तत्रैवदातव्यंदत्त-
मन्यत्रनिष्फलमितितत्फलातिशयहानिपरम् कन्यांगच्छतुवानवेतितुर्थपादेवापाठः तेनकन्यायोगेप्राशस्त्य-
मात्रं अतःश्राद्धविवेकोक्तंश्राद्धद्वयंहेयम् ।

या पक्षांत श्राद्ध केलें नसतां गौणकाल सांगतो हेमाद्रीत यम—“घरांत राहणारानें वर्षाभूतंत कन्येस सूर्य असतां भाद्रपदकृष्णपंचमी व आश्विनशुक्लपंचमी यांच्या मध्ये भाजीपाला यानें देखील श्राद्ध करावें.” या वचनानें आश्विनाच्या शुक्लप्रतिपदेपासून शुक्लपंचमीपर्यंत काल सांगितला. त्या कालीही असंभव असतां सांगतो भविष्यांत—“जर महालयाचे ठायीं पितरांना श्राद्ध दिलें नसेल तर जी ही दीपयुक्त अमावास्या भूमीवर प्रसिद्ध आहे तिच्या ठिकाणी श्राद्ध थावें.” त्या काली देखील असंभव असतां सांगतो भारतांत—“जों कालपर्यंत कन्या व तूळ या संकांतीस सूर्य अनुक्रमानें प्राप्त आहे, तों कालपर्यंत प्रेतनगर शून्य झालेलें अगतें. तें वृश्चिकास सूर्य येई तोपर्यंत शून्य समजावें; म्हणजे प्रेतनगरांतून सारे पितर आपापल्याला श्राद्ध देणारांकडे जात अगतात.” ब्राह्मांत—“वृश्चिकापर्यंत श्राद्ध केलें नसून वृश्चिकसंक्रांति भत्तिकांत झाली असतां पितर देवतांमहित श्वासोच्छ्वास टाकून दारुण श्वाप देऊन निघून जातात.” आतां जें जातूकपर्यंत—“आषाढीपासून पांचव्या पक्षांत पितर अन्नोदकाची इच्छा करतात, म्हणून पांचव्या पक्षांतच अन्नादिक द्यावें. इतर काली (पुढें) दिलेलें निष्फल होय.” या वचनानें पुढें आश्विनादिकांत दिलेलें निष्फल होतें असें सांगितलें, तें अतिशय फलाच्या हानिवोधक गमजावें. अथवा या वचनाच्या चवथ्या पादांत ‘दत्तमन्यत्र निष्फलं’ या स्थानी ‘कन्यां गच्छतु वा न वा’ असा पाठ आहे. म्हणजे ‘आषाढीपासून पांचव्या पक्षांत अन्नादिक द्यावें. सूर्य कन्येस जावो किंवा न जावो’ असा अर्थ आहे. तेणेंकरून कन्यासंकांतीचा योग अगतां श्राद्ध प्रशस्त इतकेंच समजावें. योग नगतां पुनः करावें असें नाही. म्हणून श्राद्धविचकांत दोन श्राद्धें करावीं, असें सांगितलें तें त्याचें गांणें त्याज्य आहे.

इदंचश्राद्धमन्त्रेनैवकार्यनामात्रादिना मृताहंचमपिंडंचगयाश्राद्धंमहालयम् आपन्नोपिनकुर्वीतश्राद्धमाभे-
नकहिंचिदितिस्मृतिर्दपणेगालवोक्तेः ।

हे श्राद्ध अन्नानेंच करावें, आम्राज, हिरण्य इत्यादिकांत कळ नये. कारण, “सांवत्सरिकश्राद्ध, सपिंडीकरण, गयाश्राद्ध, महालय हीं श्राद्धें आपत्कालीं देखील कधीही आम्राजानें कळ नयेत” असें स्मृतिर्दपणांत गालववचन आहे.

अथात्रदेवताः संग्रहे तातांबात्रितयंसपन्नजननीमातामहादित्रयंसखिस्त्रीतनयादितातजननीस्वभ्रातर-
स्तत्स्त्रियः तातांबात्मभगिन्यपत्यध्वयुरजायापितासद्गुरुःशिष्याप्राःपितरोमहालयविधौतीर्थेतातार्पणे अस्या-
र्थः तातत्रयीपितृत्रयी अंबात्रयीच स्मृत्यर्थसारेपि महालयेमातृश्राद्धं पृथक्प्रशस्तमिति अत्रविशेषःस्मृति-
दर्पणे गालवः अनेकमातरोग्यस्यश्राद्धेचापरपक्षिके अर्थदानंपृथक्कुर्यात्पिंडमेकंतुनिर्वपेत् जीवन्मातृक-
स्तुसापन्नमातुरेकोहिंप्रकुर्यान्नपार्वणम् श्राद्धदीपकलिकायांतुपार्वणमुक्तं अन्वष्टक्यंचयन्मातुरीयाश्राद्धं-
महालयम् पितृपत्नीपुत्रश्राद्धंकार्यपार्वणवद्भवेदितिबृहन्मनूक्तेः मस्त्रीतिमातामहानांसपत्नीकत्वेपिबिभवे-
सतिमातामहीनांपृथक्कार्यम् महालयेगयाश्राद्धेवृद्धौचान्वष्टकासुच ज्येष्ठादशदैवत्यंतीर्थेप्रौष्ठेमघासुचेतिनि-
गमोक्तेः हेमाद्रिमेतेवत्रनवदैवत्यमेव महालयेगयाश्राद्धेवृद्धौचान्वष्टकासुच नवदैवत्यमन्त्रेप्रशेषपाट्पौ-
रुपंवितुरितिचिष्णुधर्मांक्तेः तातभ्रातापितृव्यः जननीभ्रातामातुलः तत्स्त्रियः पितृव्यस्त्रीमातुलानीभ्रा-
तृजायाः पितृव्यसूमातृव्यसूस्वभगिन्योपत्यभर्तृयुक्ताः तेनसापत्याथैसधवायैइतिप्रयोगोक्षेयः एनासुसतीपु-
नतद्भर्त्रादेर्दानम् द्वारलोपान् जायापिताश्वशुरः श्वशूरपत्यत्रोपलक्ष्या अत्रमूलंस्मृतिचंद्रिकायांक्षेयम् ।

आतां महालयश्राद्धाच्या देवता सांगतो.

संग्रहांत—“पितृत्रयी; मातृत्रयी; सापन्नमाता; मातामहत्रयी सपत्नीक; पत्नी; पुत्र; कन्या; पितृव्य, मातुल, भ्राता हे व यांच्या स्त्रिया (म्हणजे पितृव्यस्त्री, मातुलानी व मातृजाया); पितृभगिनी, मातृभगिनी, आत्मभगिनी ह्या सभर्तृक, व सापत्यः श्वशुरः गुरुः शिष्यः आमः हे पितर महालयश्राद्धांत, तीर्थश्राद्धांत आणि तर्पणाविषयीं समजावें” हा अर्थ सामान्य झाला. आतां विशेषकरून सांगतो—येथें मातृत्रयी पृथक् सांगितली. स्मृत्यर्थसारांतही महालयांत मातृश्राद्ध पृथक् करणें प्रशस्त होय. येथें मातेविषयीं विशेष सांगतो गालव—“ज्याला अनेक माता आहेत त्यानें अपरपक्षश्राद्धांत अर्थदान वेगवेगळें करावें. आणि पिंड सर्वांना एक द्यावा.” जीवन्मातृकानें सापन्नमातेचें एकोद्दिष्ट करावें, पार्वण करूं नये. श्राद्धदीपकलिकेंत तर पार्वण सांगितलें आहे. कारण, “मातेचें जें अन्वष्टक्य, गयाश्राद्ध, महालय, आणि पित्याच्या पत्नीविषयीं करावयाचें श्राद्ध तें पार्वणयुक्त होतें” असें बृहन्मनूचें वचन आहे. बरील संग्रहवचनांत मातामह

१ पृथगिति—अन्वष्टकासुवृद्धौचप्रतिसांवत्सरोत्तरा ॥ महालयेगयायांचसपिंडीकरणानुरा ॥ मातुःश्राद्धं पृथक्कुर्यादन्वष्टक्यपित्नासहेति वाक्यात् नवदैवत्यमन्त्रेष्टमिति वचनाच्च ॥ २ अनेका मातर इति सापन्नमातृमात्रासहेकमन्त्रेण द्विपितृकश्राद्धवदित्यर्थः ॥

सपत्नीक सांगितले तरी द्रव्यावुकृत्य असतां मातामहींचें पृथक् करावें. कारण, “महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध, अन्वष्ट-काश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, ग्रौष्ठपवीश्राद्ध आणि मघाश्राद्ध यांचे ठायीं बारा देवतांचें (पितृत्रयी, मातृत्रयी, मातामहत्रयी मातामहीत्रयी यांचें) श्राद्ध जाणावें.” असें निगमवचन आहे. हेमाद्रिर्मती तर येथें नवदेवताकच आहे. कारण, “महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध, अन्वष्टका यांचे ठायीं नवदेवताक श्राद्ध इष्ट आहे. इतर श्राद्ध षट्देवताक, असें सांगतात.” असें विष्णुधर्मवचन आहे. ‘तातजननीस्वभ्रातरस्तत्त्रियः’ याचा अर्थ—तातभ्राता म्हणजे पितृव्य, जननीभ्राता म्हणजे मातुल, आणि स्वभ्राता, हे व यांच्या स्त्रिया म्हणजे पितृव्यस्त्री, मातुलानी, आणि भ्रातृजाया ह्या होत. ‘तातांवात्मभगिन्य-पत्यधवयुक्’ याचा अर्थ—पितृवसा (आल्या), मातृवसा (मावशी), आत्मभगिनी, ह्या अपत्यभर्तृयुक्त होत. म्हणजे ‘सापत्यायै सधवायै’ असा प्रयोग समजावा. ह्या जीवंत असतां त्यांच्या भर्त्याला व अपत्यांना श्राद्धदान नाही. कारण, त्यांच्या द्वारानें भर्ता इत्यादिकांना दान सांगितलें, तें द्वार नसल्यामुळें भर्तादिकांना नाही. जायापिता म्हणजे श्वशुर. येथें उपलक्षणें-करून श्वश्रू (सासू) ही समजावी. ह्या संप्रवचनाना मूल स्मृतिचंद्रिकेंत जाणावें.

अत्रपार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थोक्ताहेमाद्रौपुराणांतरे उपाध्यायगुरुश्वरूपितृव्याचार्यमातुलाः श्वशुरभ्रातृ-तत्पुत्रपुत्रत्विंशिशिष्यपोषकाः भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः पितरौपितृपत्नीनांपितुर्मातुश्चास्वसा सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थैवमहालये एकोद्दिष्टविधानेनपूजनीयाःप्रयत्नतइति इतरपांपित्रादीनांपार्वणमर्थ-सिद्धम् अत्रक्रमान्यत्वेप्याचाराव्यवस्था अशक्तौतुपृथिवीचंद्रोदयेचतुर्विंशतिमते एकस्मिन्ब्राह्मणे-सर्वानाचार्यादीन्प्रपूजयेत् दशद्वादशवापिंडान्दद्यादकरणंनतु एकोद्दिष्टस्वरूपंचाहयाज्ञवल्क्यः एकोद्दि-ष्टदेवहीनमेकार्थैकपवित्रकम् आवाहनाभ्रौकरणरहितत्वपसंव्यवदिति अत्रैकपाकोवैश्वदेवतंत्रपिंडबर्हिश्चैक-मिति स्मृत्यर्थसारेउक्तम् अत्रपाणिहोमः पिंडाश्चात्रद्विजांतिकइत्याहप्रयोगपारिजातेआचार्यः का-म्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् चतुर्ष्वेपुकरेहोमःपिंडाश्चात्रद्विजांतिकइति पार्वणैकोद्दिष्टयोःसमानतं-त्रवेतुअभिसमीपएव अत्रधुरिलोचनौवैश्वदेवौ अपिकन्यागतेसूर्यैकाम्येचधुरिलोचनौइतिहेमाद्रौवादित्य-पुराणात् अत्रप्रतिदिनंभिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदोवाप्रयोगैक्यादंतेएववादक्षिणेतिहेमाद्रौउक्तम् ।

ह्या देवताविषयीं पार्वण कोणाचें व एकोद्दिष्ट कोणाचें ती व्यवस्था सांगतो हेमाद्रौत पुराणांतरांत—“उपाध्याय, गुरु, श्वश्रू, पितृव्य, आचार्य, मातुल, श्वशुर, भ्राता, भ्रातृपुत्र, पुत्र, ऋत्विक् शिष्य, पोषक, भगिनी, स्वामी, कन्या, जामाता, भगिनीपुत्र, पित्याच्या पत्नीचे मातापितर, पितृवसा, मातृवसा, सखा, द्रव्यद, शिष्य इत्यादिकांची तीर्थांत, व महालयांत एकोद्दिष्टविधीकरून प्रयत्नानें पूजा करावी.” इतर पिता इत्यादिकांचें पार्वण अर्थात् सिद्ध झालें. ह्या पुराणांतर-वचनांत क्रम निराळा सांगितला आहे, तरी त्या क्रमाची आचारावरून व्यवस्था जाणावी. शक्ति नसेल तर सांगतो—पृथ्वीचंद्रोदयांत चतुर्विंशतिमतांत—“एका ब्राह्मणावर सर्वे आचार्यादिकांची पूजा करावी. दहा किंवा बारा पिंड द्यावे. परंतु केल्यावांचून राहूं नये.” एकोद्दिष्टाचें स्वरूप सांगतो याज्ञवल्क्य—“ज्यांत देव नाहीत, एक अर्ध व एक पवित्रक असतें, आवाहन व भ्रौकरण नाही, अपसव्यांनं सारें होतें, तें एकोद्दिष्ट होय.” एकोद्दिष्टांत पाक एक, वैश्वदेवाचें तंत्र, पिंड व बर्हि एक, असें स्मृत्यर्थसारांत सांगितलें आहे. एकोद्दिष्टांत ब्राह्मणाचे हातावर होम व पिंड ब्राह्मणाच्या समीप द्यावे, असें सांगतो प्रयोगपारिजातांत आचार्य—“काम्यश्राद्ध, आभ्युदयिकश्राद्ध, अष्टमीश्राद्ध, एकोद्दिष्ट ह्या चार श्राद्धांमध्ये ब्राह्मणाच्या हातावर होम आणि पिंड ब्राह्मणाच्या समीप द्यावे.” पार्वण व एकोद्दिष्ट यांचें एक तंत्र असेल तर अभिसमीपच होम होतो. ह्या महालयश्राद्धांत धुरिलोचन विश्वेदेव समजावे. कारण, “कन्यागतसूर्य असतां करावयाचें श्राद्धांत (महालयांत) व काम्यश्राद्धांत धुरिलोचन विश्वेदेव” असें हेमाद्रौत आदित्यपुराणवचन आहे. ह्या पक्षांत प्रतिदिवशीं भिन्न प्रयोगानें श्राद्ध असतां दक्षिणा वेगवेगळी द्यावी. अथवा एक प्रयोगानें श्राद्ध असतां अंतीच दक्षिणा, असें हेमाद्रौत सांगितलें आहे.

एतच्चसंन्यस्तपितृकादिनाजीवत्पितृकेणापिकार्यं वृद्धौतीर्थेचसंन्यस्तेतातेचपतितेसति येभ्यएवपितादद्या-त्तेभ्योदद्यात्स्वयंसुतइतिकात्यायनोक्तेः यत्तुर्कौडिन्यः दशश्राद्धंगयाश्राद्धंश्राद्धंचपरपक्षिकम् नजीव-त्पितृकःकुर्यात्तिलैस्तर्पणमेवचेति तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् काम्यश्राद्धपरंवा अत्रबहुवक्तव्यंश्रीपितृ-

१ अन्वष्टवय, पूर्वेणःश्राद्ध, मासिमासिश्राद्ध, पार्वण, काम्य, आभ्युदयिक, अष्टमीश्राद्ध, एकोद्दिष्ट हीं आठ श्राद्धें गृह्यसूत्राच्या नारायणवृत्तींत चवथ्या अध्यायांत सांगितलीं आहेत तेथें पाह्यावीं.

कृतजीवत्पितृकनिर्णयेक्षेयम्, एतच्च जीवत्पितृकेण पिंडरहितं कार्यम् **मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वज्ञः** न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विणीपतिरेव चेति दृष्टेः णतस्य पिंडनिषेधात् अन्वष्टक्यमातृवार्षिकादौ तु वचनाद्भवतीति-
वक्ष्यामः **तथा छागलेयः** पिंडो यत्र निवर्तते तमघादिषुकथंचन सांकल्पं तु तदा कार्यनियमाद्ब्रह्मवादिभिः सांक-
ल्पस्वरूपंच वक्ष्यते ।

हैं श्राद्ध (महालय) ज्याचा पिता संन्याशी वगैरे आहे अशा जीवत्पितृकानें देखील करावें. कारण, वृद्धिकर्माचे ठायीं, तीर्थाचे ठायीं आणि पिता संन्यस्त (संन्याशी) व पतिन अमतां ज्यांचें श्राद्ध पित्यानें करावयाचें त्यांचें श्राद्ध स्वतः पुत्रांनें करावें. असें कात्यायनवचन आहे. आतां जें कौंडिण्य-“दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध, आपरपक्षिकश्राद्ध हीं जीवत्पितृकानें करूं नयेत. आणि जीवत्पितृकानें तिलतर्पणही करूं नयेत” असें सांगतो, तें ज्याचा पिता संन्यस्त वगैरे आहे त्यावांचून इतरविषयक किंवा काम्यश्राद्धविषयक समजावें. या ठिकाणीं बहुत गांगवयाचें तें पित्यानें (रामकृष्णभट्टांनें) केलेल्या जीवत्पितृकनिर्णयानें जाणावें. हें महालयश्राद्ध जीवत्पितृकानें पिंडरहित करावें. कारण, “क्षौर, पिंडदान, आणि सर्दप्रेतकर्म हीं जीवत्पितृकानें व गर्भिणीपतीनें करूं नयेत.” या दृष्टवचनानें जीवत्पितृकाला पिंडदानकर्माचा निषेध केला आहे. अन्वष्टक्य, व मातेचें वार्षिक इत्यादिकांत तर करण्याविषयी वचन अगल्यावरून जीवत्पितृकाला पिंडदान कर्म होतें, असें पुढें सांगूं तसेंच छागलेय “ज्या मघादिश्राद्धांत पिंडाची निवृत्ति कशीही झालेली अमो त्या ठिकाणीं ब्रह्मवेत्त्यांनीं नियमानें (निश्चयानें) मांकल्पश्राद्ध करावें.” मांकल्पश्राद्धाचें स्वरूप पुढें (तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धां) सांगूं.

अत्र श्राद्धांगतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तरम् सकृन्महालये तु परे ह्येव हि कार्यम् तदुक्तं नारदीये पक्षश्राद्धं यदा कुर्यात्तर्पणं तु दिने दिने सकृन्महालये चैव परे ह्येव नितिलोदकम् **गर्गां पितृपक्षश्राद्धे हि रण्ये च अनुब्रज्य तिलोदकमिति** तथा **प्रयोगपारिजाते गर्गः** कृष्णमात्रपदेमासिश्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धे ह्यपितर्पणं सकृन्महालये च स्यादष्टकास्वत एव हि इदं निषिद्धदिने पितृकार्यम् तिथितीर्थविशेषेषु कार्यप्रेते च सर्वदेति **स्मृत्यर्थसारोक्तेः** तीर्थं तिथि विशेषे च गयायां प्रतपक्षके निषिद्धे पिदिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितमिति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च ।

ह्या महालयश्राद्धांत श्राद्धांगतर्पण पक्षश्राद्धाचे ठायीं प्रतिदिवशीं श्राद्धोत्तर करावें. सकृन्महालयाचे ठायीं तर दुसऱ्या दिवशीं करावें. तें सांगतो नारदीयांत—“ज्या वेळीं पक्षश्राद्ध करील त्या वेळीं दररोज तर्पण करावें. सकृन्महालयाचे ठायीं परदिवशीं तिलोदक द्यावें.” **गर्गही**—“पक्षश्राद्धांत व हिरण्यश्राद्धांत श्राद्धोत्तर ब्राह्मणांम पांचवून तिलोदक द्यावें.” तसेंच **प्रयोगपारिजातांत गर्ग**—“माद्रपदेमागाचे कृष्णपक्षांत पितरांचें प्रतिदिवशींच श्राद्ध होतें, त्या ठिकाणीं प्रत्यहं निषिद्धदिवशीं देखील पितरांचें तर्पण करावें. सकृन्महालयाचे ठायीं दुसऱ्या दिवशीं करावें. आणि अष्टकांत अंतीच होतें.” हें महालयश्राद्धांगतर्पण निषिद्धदिवशींही करावें. कारण, “विशेष तिथि, विशेष तीर्थ यांचे ठायीं आणि मृत असतां सर्वदा तर्पण करावें.” असें स्मृत्यर्थसारांत उक्त आहे. आणि “तीर्थ, विशेष तिथि, गया, पितृपक्ष यांचे ठायीं निषिद्धदिवशीं देखील तिलमिश्रित तर्पण करावें” असें स्मृतिरत्नावलींत वचनही आहे.

एतच्च श्राद्धं मलमासेन कार्यम् तदाह भृगुः वृद्धिश्राद्धं तथा सोममभ्याधेयं महालयम् राजाभिषेकं काम्यंचन कुर्याद्भानुलंघित इति हेमाद्रीनागरखंडे नभोवाथनभस्यो वामलमामोयदा भवेत् सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पंचमः ।

हें महालयश्राद्ध मलमासांत करूं नये. तें सांगतो भृगु—“वृद्धिश्राद्ध, सोमयाग, अभ्याधान, महालय, राज्याभिषेक आणि काम्यकर्म हीं मलमासांत करूं नयेत.” हेमाद्रींत नागरखंडांत “श्रावण किंवा भाद्रपद जेव्हां मलमास होईल तेव्हां आषाढीपासून सातवा पक्ष पितृपक्ष होतो. व मलमास नमतां पांचवा पितृपक्ष होतो.”

एतच्च पित्रोर्मरणे प्रथमांश्चेकृतकृतमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टाः इदंचनित्यं काम्यंच पुत्रानायासुत्तया रो-
ग्यमैश्वर्यमनुलंघितं तथा प्राप्नोति पंचमेदं त्वाश्राद्धं कामान्सुपुष्कलानिति जाबाल्युक्तेः वृश्चिके समतिकांते पितरो-
दैवतैः सह निःश्वस्य प्रतिगच्छंति शापं दत्त्वा सुदारुणमिति काष्णार्जिनि वचनाच्च तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्त्यु-

१ नभोवेति नवत्रयदाधिनो धिमासस्तदा तत्र कार्यं सत्त्वात् श्राद्धप्रसंगः । अत्र नम्यास्तु यातुषानभिधो मासः कन्याकैवावसेवदा ॥
देवं पिश्र्य तदा कर्म उचरेमासि योजयेदिति वचनानुलोकं कार्यमिच्छादुः ॥ २ कृताकृतमिति कृते अभ्युदयः अकृते न दोषः ॥

ग्विधानै दुरोअश्वस्यमंत्रचदशमासं द्विमासयोः महालयं यदान्यून्तद्व्यसंपूर्णमेतितदिति द्विमासयोः कन्या-
तुलयोर्महालयश्राद्धयदाहीनमित्यर्थः अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथिवीचंद्रोदये मात्स्ये भर-
णीपितृपक्षेतुमहतीपरिकीर्तिता अस्यां श्राद्धं कृतं येन सगया श्राद्धं कृद्भवेत् पृथिवीचंद्रोदये श्रीधरीये बृह-
स्पतिः नभस्यापरपक्षस्य द्वितीयाय दियाम्यभे तृतीयाचा म्रिताराभिः सहिता प्रीतिदापितुः ।

हे महालयश्राद्ध मातापिता मृत असतां प्रथमवर्षी कृताकृत (केलें असतां फल आहे व न केलें तर दोष नाही) असें
त्रिस्थलीसेतूंत भट्ट सांगतात. हे श्राद्ध नित्य व काम्य आहे. कारण, “पांचव्या पक्षांत श्राद्ध दिलें असतां पुत्र,
आयुष्य, आरोग्य, अतुल ऐश्वर्य, आणि पुष्कळ मनोरथ यांची प्राप्ति होते” असें जाबालिवचन आहे, यावरून काम्य
होतें. आणि वृश्चिकसंक्रांत अतिक्रांत झाली असतां (वृश्चिकसंक्रांतीपर्यंत श्राद्ध केलें नसतां) देवतासहित पितर श्वासो-
च्छ्वास टाकून दारुण शाप देऊन जातात” असें काष्ठाजिनिवचनही आहे. यावरून नित्य सिद्ध होतें. श्राद्धावांचून
वृश्चिकसंक्रांत झाली असतां प्रायश्चित् सांगतो ऋग्विधानांत—“ज्या वेळीं दोन मासांत (कन्या व तृळ या दोन संक्रां-
तींत) महालयश्राद्ध होणार नाही त्या वेळीं ‘दुरोअश्वस्य०’ ह्या मंत्राचा दहा महिने जप करावा, म्हणजे तें महालयश्राद्ध
संपूर्ण होतें.” ह्या पक्षांत भरणीवर श्राद्ध अतिप्रशस्त आहे. तें सांगतो पृथ्वीचंद्रोदयांत मात्स्यांत—“पितृपक्षांतील
भरणी मोठी सांगितली आहे. हिच्या ठिकाणीं ज्यानें श्राद्ध केलें त्याला गयाश्राद्धाचें फल प्राप्त होतें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत
श्रीधरीयांत बृहस्पति—“भाद्रपदाच्या कृष्णपक्षाची द्वितीया जर भरणीनक्षत्रावर असेल आणि तृतीया कृत्तिकायुक्त
असेल तर ती पित्याला प्रीतिदायक आहे.”

एतत्पक्षे षष्ठीयोगविशेषेण कपिलासंज्ञा तदुक्तवाराहे नभस्य कृष्णपक्षेतुरोहिणीपातभूसुतैः युक्ता षष्ठीपु-
राणज्ञैः कपिलापरिकीर्तिता व्रतोपवासनियमैर्भास्करंतत्रपूजयेत् कपिलाचंद्रिजायाय दत्त्वा कृतुफलं भेत पुरा-
णसमुच्चये भाद्रमास्यसिते पक्षे भानौ चैव करोत्येते पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिलां भवेत् अत्र दर्शातत्वेन
महालयोभाद्रपदकृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ च हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः संयोगे तु चुतुर्णा-
वैनिर्दिष्टापरमेष्ठिने तितत्रैवोक्तेः अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कांदे देवदारुंतथोशीरंकुंमैलामनःशिला म पत्र-
कंपद्मकं यष्टिमधुगव्येन पेयेत् क्षीरेणालोड्य कल्केन स्नानं कुर्यात्समंत्रकम् आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरे-
व च पापनाशय मे देव बाह्यनः कायकर्मजम् पंचगव्यकृतस्नानः पंचभंगेस्तु मार्जयेत् पंचभंगैः पंचपल्लवैः तथा
रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णकारयेद्विं शक्तिस्तु पलादूर्ध्वतर्धकर्पतोपि वा सौवर्णमरुणं कुर्यान्नौकांचैव तथारथम्
तथा अल्पवित्तोपियः कश्चित्सोपिकुर्यादिमं विधिम् प्रभासवंडे स्थापयेद्व्रणकुंभं चंदनोदकपूरितम् रक्त-
वस्त्रयुगच्छन्नं तन्नात्रेण संयुतम् रथोरौकमपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रितः सौवर्णपलसंयुक्तं मूर्तिसूर्यस्य कारयेत्
ततः सूर्यकपिलाचषोडशोपचारैः संपूज्य दद्यात् दिव्यमूर्तिर्जगच्चतुर्द्वादशात्ममादिवाकरः कपिलासहितो देवो-
मममुक्तिप्रयच्छतु यस्मात्त्वं कपिले पुण्यासर्वलोकस्य पावनी प्रदत्तासहसूर्येण मममुक्तिप्रदा भवेति विशेषांतरं
तत्रैव ज्ञेयमिति दिक् ।

ह्या पक्षांतील षष्ठी विशेषयोगानें कपिलानांवाची होते. तें सांगतो वाराहांत—“भाद्रपदाच्या कृष्णपक्षांत रोहिणीनक्षत्र,
व्यतीपात, व भौमवार यांनीं युक्त जी षष्ठी ती प्राचीन ऋषींनीं कपिला म्हटली आहे. त्या षष्ठीस व्रत, उपवास, नियम
यांही करून भास्कराची पूजा करावी. आणि कपिला गाई ब्राह्मणश्रेष्ठाला द्यावी म्हणजे यज्ञाचें फल प्राप्त होतें.” पुराणसमु-
च्चयांत—“भाद्रपदमासी कृष्णपक्षांत सूर्य हस्तनक्षत्रीं असतां व्यतीपात, भौमवार, रोहिणीनक्षत्र यांचे ठायीं जी षष्ठी ती
कपिला होते.” ह्या षष्ठीविषयीं दर्शात चांद्रमानानें महालयरूप भाद्रपदकृष्णपक्ष जाणावा, असें सांगितलें आहे निर्णया-
मृतांत व हेमाद्रौंत. हस्ताला सूर्य असला म्हणजे फल अतिशय आहे. पण नसला तरी “चवथांचा (षष्ठी, रोहिणी,
व्यतीपात, भौमवार यांचा) योग असतां ब्रह्मदेवानें कपिला षष्ठी म्हणून सांगितली आहे.” असें तेथेंच सांगितलें आहे.
एथें विशेष सांगतो हेमाद्रौंत स्कांदांत—“देवदार, वाळा, केशर, वेलची, मनशीळ, तमालपत्र, पद्मकाष्ठ, ज्येष्ठमध हे
पदार्थ गाईच्या दुधांत वाटून अंगसा लावून समंत्रक ज्ञान करावें. ज्ञानमंत्र—आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां
पतिरेव च ॥ पापं नाशय मे देव बाह्यनः कायकर्मजम् ॥ पंचगव्यानें ज्ञान करून पंचपल्लवांनीं मार्जन करावें.”

तसेंच “शक्तीच्या मानानें चार कर्षाहून अधिक सुवर्णाची किंवा दोन कर्षांची अथवा एक कर्षाची सूर्यमूर्ति नानाविधरत्नांनी युक्त अशी करावी. सोन्याचा अहण, नौका व रथ करावा.” तसेंच “जो कोणी अल्पद्रव्यवान् असेल त्यानें देखील हा विधि करावा.” प्रभासखंडांत—“चंद्रोदकांनं भरलेला छिद्ररहित कलश, दोन वर्षांनीं आच्छादित व ताम्रपत्रांनं युक्त असा स्थापन करावा. चार कर्ष सुवर्णाचाच एकचकी उत्तमचित्रयुक्त असा रथ असावा. चार कर्ष सुवर्णाची सूर्याची मूर्ति करावी.” तदनंतर सूर्य व कपिला गाई यांची षोडशोपचार पूजा करून ब्राह्मणाला घावी. दानमंत्र—“दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः ॥ कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यस्मात्त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी ॥ प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव ॥” इतर विशेष तेथेंच जाणावा. ही दिशा समजावी.

इयमेवचंद्रषष्ठी साचंद्रोदयव्यापिनीप्राह्या उभयत्रतथात्वेपूर्वा तदुक्तं भविष्ये तद्वाद्रपदेमासिषष्ठ्यां पक्षेसितेतेरे चंद्रषष्ठीव्रतंकुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते चंद्रोदयेयदापष्ठीपूर्वाहेवापरेहनि चंद्रषष्ठ्यसितेपक्षेसैवोपोष्या प्रयन्नतइति ।

हीच चंद्रषष्ठी होय. ती चंद्रोदयव्यापिनी घ्यावी. दोन दिवशीं चंद्रोदयव्यापिनी असेल तर पूर्वा घ्यावी. तें सांगतो भविष्यांत—“भाद्रपदांत कृष्णपक्षांत षष्ठीमं चंद्रषष्ठीव्रत करावें. तेथें पूर्वदिक्षा षष्ठी प्रशस्त आहे. कृष्णपक्षांत चंद्रोदयीं पूर्वदिवशी किंवा परदिवशी जेव्हां षष्ठी असेल तेव्हां ती चंद्रषष्ठी होय, तिचेंच उपोषण प्रयत्नांनं करावें.

अष्टम्यामाश्वलायनेनमघावर्षसंज्ञंश्राद्धमुक्तं एतेनमाध्यावर्षप्रौष्ठपद्याअपरपक्षेइति इदं सप्रम्यादिपुत्रिवहःसुकार्यमिति नारायणवृत्तिः हरदत्तस्तुमघायुक्तवर्षासुभवंत्रयोदशीश्राद्धमितिव्याचख्यौ पृथ्वीचंद्रोदयेब्राह्मे आपाल्याःपंचमेपक्षेगयामध्याष्टमीमृता त्रयोदशीगजच्छायागयातुल्यातुपैवृके ।

ह्या पक्षांतील अष्टमीस आश्वलायनानें माध्यावर्ष नांवाचें श्राद्ध मांगितलें आहे, तें असें—“येणेंकरून प्रौष्ठपदीच्या अपरपक्षांत माध्यावर्षश्राद्ध व्याख्यात झालें.” हे माध्यावर्ष गयमी, अष्टमी, नवमी ह्या तीन दिवशीं करावें, अशी नारायणवृत्ति आहे. हरदत्त तर—मघायुक्त वर्षाकडे. होणारें तें माध्यावर्ष म्हणजे त्रयोदशीश्राद्ध असें व्याख्यान करिता झाला. पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत—“आपादीपामन पांचव्या पक्षांतील मध्या अष्टमी गया म्हटली आहे. आणि त्रयोदशी गजच्छाया होय. ती पैगूकर्मविपर्यां गयानुत्य फल देणारी आहे.”

आश्विनकृष्णाष्टम्यांमहालक्ष्मीव्रतं तत्रनिर्णयामृते पुराणसमुच्चये श्रियोर्चनंभाद्रपदेसिताष्टमीप्रारभ्यकन्यामगतचमूर्त्यं समापयेत्तत्रतिथौचयावत्सूर्यस्तुपूर्वाधगतोयुवत्याइति तत्रैव कन्यागतेर्कंप्रारभ्यकर्तव्यंनश्रियोर्चनं हस्तप्रांतदलस्थंकेतुद्रन्तंनममापयेत् पूजनीयागृहस्थानामष्टमीप्रावृषिश्रियः दोषैश्चतुर्भिःसंयुक्ता सर्वसंपत्करीतिथिः तथा पुत्रसौभाग्यराज्यायुर्नाशिनीसाप्रकीर्तिता तस्मात्सर्वप्रयत्नेनत्याज्याकन्यागतेरबौ विशेषेणपरित्याज्यानवमीदृषिनायदीति दोषचतुष्टयंतत्रैवोक्तं त्रिदिनेचावमेचैवअष्टमीनोपवासयेत् पुत्रहानवमीविद्धास्त्रद्विह्माधर्गेरवाविति त्रिदिनावमदिनलक्षणं चरत्तमालायाम् यत्रैकःस्पृशतितिथिद्वयावसानंवारश्चेदवमदिनंतदुक्तमर्थः यःस्पर्शाद्व्रततिथिस्त्रयस्यचाह्वांत्रिद्युस्पृकथितमिदंद्रव्यंचनेष्टम् एतेचसर्वेनिपेधाःप्रथमारंभविषयाः मध्येतुमतिसंभवेज्ञेयाः व्रतस्यपोडशादमाध्यत्वेनमध्येत्यागायोगात् इयंचंद्रोदयव्यापिनीप्राह्या तत्रैवपूजायुक्तः परदिनेचंद्रोदयादूर्ध्वंत्रिमुहूर्तत्रयापित्वेपरैवकार्या अन्यथापूर्वैव पूर्वावापरविद्धावाप्राह्याचंद्रोदयेसदा त्रिमुहूर्तापिमापूज्यापरतश्चोर्ध्वगामिनीतिमदनरत्नेनिर्णयामृतेचसंग्रहोक्तेः अर्धरात्रमतिक्रम्यवर्ततेयोत्तरातिथिः तदातस्यांतिथौकार्यंमहालक्ष्मीव्रतंसदेतिवचनाच्चेतिसंक्षेपः इतिमहालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ।

आश्विनकृष्ण अष्टमीस महालक्ष्मीव्रत मांगितलें आहे. त्याविपर्यां सांगतो निर्णयामृतांत पुराणसमुच्चयांत—“सूर्य कन्याराशीस गेला नसतां भाद्रपदशुक्लाष्टमीस लक्ष्मीपूजन आरंभून कन्याराशीच्या पूर्वाधीत सूर्य आहे तोंपर्यंत त्या अष्टमी तिथीय समाप्त करावें—” तेथेंच—“कन्यागत सूर्य असतां लक्ष्मीपूजन आरंभून करूं नये. हस्तनक्षत्राच्या शेवटच्या अंशी सूर्य असतां तें व्रत समाप्त करूं नये. प्राङ्मूळतूतील लक्ष्मीची अष्टमी गृहस्थांना पूजनीय आहे. ती तिथि चार दोषांनीं वर्जित असतां सर्वसंपत्ति देणारी होते.” तसेंच—“सूर्य कन्यागत असतां पुत्र, सौभाग्य, राज्य, आयुष्य यांचा नाश करणारी म्हटली आहे: तस्मात् ती सर्वप्रयत्नांनं त्याज्य आहे. जर नवमीनें दूषित असेल तर विशेषेकरून टाकावी.” ते चार २० निर्णो.

दोष तेयेंच सांगतो—“त्रिदिन, आणि अवम असतां अष्टमीचें उपोषण करूं नये. नवमीविद्ध असतां पुत्रहानि करणारी आणि हस्तक्षत्रार्थात रवि असतां आपला नाश करणारी आहे म्हणून तिचेंही उपोषण करूं नये.” त्रिदिन आणि अवमदिन यांचें लक्षण सांगतो रत्नमालेंत—“ज्या दिवशीं एक वार दोन तिथींच्या अंताला स्पर्श करितो त्या दिवसास अवमदिन (क्षय-दिवस) असें आर्य म्हणतात. तीन दिवसांना (वारांना) स्पर्श करणारी जी तिथि ती त्रिवृष्टक (त्रिदिन, वृद्धि) म्हटली आहे, हीं दोन्ही (क्षय आणि वृद्धि) इष्ट नाहीत.” हे सारे निषेध प्रथमारे भाविष्यी आहेत. द्वितीयादि वर्षीं वर्ज्य करण्याचा संभव असेल तर वर्ज्य करावे. दोष असल्यामुळें व्रत टाकूं नये. कारण, हें व्रत सोळा वर्षांनीं माध्य होत असल्यामुळें मध्यें टाकतां येत नाही. ही अष्टमी चंद्रोदयव्यापिनी ध्यावी. कारण, चंद्रोदयींच पूजादिक सांगितली आहेत. दुसऱ्या दिवशीं चंद्रोदयानंतर तीन मुहूर्तव्यापिनी असेल तर पराच करावी. अन्यथा पूर्वाच करावी. कारण, “चंद्रोदयीं अमलेली पूर्वा किंवा परा सर्वदा ध्यावी. दुसऱ्या दिवशीं चंद्रोदयानंतर तीन मुहूर्त असेल तर तीच ध्यावी.” असें मदनरत्नांत व निर्णयामृतांत संग्रहवचन आहे. आणि “जी उत्तरातिथि अधरात्रीच्या पुढें आहे त्या वेळीं त्या तिथीस महालक्ष्मीव्रत सदा करावें” असें वचनही आहे. हें संक्षेपानें सांगितलें आहे असें समजावें. असा महालक्ष्मीव्रताचा निर्णय समजावा.

अथनवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् तत्रकात्यायनः अन्वष्टकासुनवभिःपिंडैःश्राद्धमुदाहृतं पित्रादिमातृमध्य-
चततोमातामहान्तकम् पृथ्वीचंद्रोदयेब्रह्मांडे पितृणांप्रथमंदद्यान्मातृणांतदनंतरम् ततोमातामहानांच-
आन्वष्टक्येक्रमःस्मृतः श्राद्धहेमाद्रौछागलेयः केवलास्तुक्षयेकार्यावृद्धावादौप्रकीर्तिताः अन्वष्टकासुम-
ध्यस्थानांत्याःकार्यास्तुमातरः दीपिकायांतुमातृश्राद्धमादौकार्यमित्युक्तं मातृयजनंत्वन्वष्टकास्वादितइति
हेमाद्रौब्राह्मेपि अन्वष्टकासुक्रमशोमातृपूर्वतदित्यतइति अत्रशाखाभेदेनव्यवस्थेतिपृथ्वीचंद्रोदयः
जीवत्पितृकविषयमितिनिर्णयदीपः इदंचजीवत्पितृकेणापिकार्यम् तदुक्तंनिर्णयामृतेमैत्रायणीय-
परिशिष्टे आन्वष्टक्यंगयाप्राप्तोसत्यांयज्ञमृतेहनि मातुःश्राद्धंसुतःकुर्यात्पितर्यपिचजीवति यद्यपिजीवत्पि-
तृकसंप्रचान्वष्टकाअवश्यंकर्तव्याः तथाप्यशक्तस्येयमावश्यकी प्रौष्ठपष्टकाभूयःपितृलोकेभविष्यतीतिहे-
माद्रौपाद्योक्तेः सर्वासामेवमातृणांश्राद्धंकन्यागतेरवौ नवम्यांहिप्रदातव्यंब्रह्मलब्धवरायतइतिसूतेनाव-
श्यकत्वोक्तेश्च अत्रसर्वासामित्युक्तेःस्वमातरिजीवंत्यामपिसपन्नमातृभ्योदद्यान् तन्मरणेसतितस्यैताभ्यश्चद-
द्यादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णयेगुरुभिः अत्रसर्वासानामनिर्देशेनैकोब्राह्मणोर्ध्वःपिंडश्च नामैकयेतुद्वि-
वचनादिप्रयोगइत्युक्तंनारायणवृत्तौ अन्वष्टकाश्राद्धंतद्यागश्चगोभिलीयानांमध्यमायामेवनसर्वासु आन्व-
ष्टक्यंमध्यमायामितिगोभिलगौतमावितिछंदोगपरिशिष्टात् अत्रभर्तृमरणोत्तरंपूर्वमृतमातृश्राद्धनकार्य-
मितिकेचिदाहुः पठंतिच श्राद्धंनवम्यांकुर्यात्तन्मृतेभर्तरिलुप्यतइति तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्रतारणमात्रं श्रा-
द्धदीपकलिकायांब्राह्मे पितृमातृकुलोत्पन्नायाःकाश्चितुमृताःस्त्रियः श्राद्धार्हमातरोज्ञेयाःश्राद्धंतत्रप्रदी-
यतइति अत्रदेशाचाराद्यवस्था ।

आतां नवमीस अन्वष्टकाश्राद्ध सांगतो.

त्याविषयीं कात्यायन—“अन्वष्टकांचे ठायीं नऊ पिंडांनीं श्राद्ध सांगितलें आहे. पहिली पितृव्रयी, मथली मातृव्रयी, अंती मातामहव्रयी असें नवदेवताक श्राद्ध करावें. पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्रह्मांडांत “प्रथम पिता इत्यादिकांस द्यावें. नंतर मातांना द्यावें. तदनंतर मातामहानां द्यावें. आन्वष्टक्य श्राद्धांत असा क्रम समजावा.” श्राद्धहेमाद्रौत छागलेय-
“मृतदिवशीं केवळ मातेचेंच श्राद्ध करावें. वृद्धिकर्माचे ठायीं मातेचें आधीं करावें. अन्वष्टकांमध्यें मातेचें मध्यें करावें. मातेचें श्राद्ध अंती करूं नये.” दीपिकेंत तर—मातृश्राद्ध आधीं करावें असें सांगितलें आहे—“अन्वष्टकांचे ठायीं मातृ-
पूजन (श्राद्ध) आधीं करावें.” हेमाद्रौत ब्राह्मांतही—“अन्वष्टकांचे ठायीं क्रमानें मातृपूर्वक तें इष्ट आहे.” येथें शाखाभेदानें व्यवस्था जाणावी, असें पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. मातृपूर्वक यजन हें जीवत्पितृकाविषयीं आहे, असें निर्ण-
यदीप सांगतो. हें अन्वष्टक्य श्राद्ध जीवत्पितृकानेंही करावें. तें सांगतो निर्णयामृतांत मैत्रायणीयपरिशिष्टांत—
“पिता जीवंत असतांही अन्वष्टकाचे ठायीं, गया प्राप्त असतां आणि मृतदिवशीं मातेचें श्राद्ध पुत्रानें करावें.” आतां जरी जीवत्पितृकाला पांच अन्वष्टका अवश्य कर्तव्य आहेत तरी अशकाला ही अन्वष्टका आवश्यक आहे. कारण, “भाद्रपदांतील

अष्टका (अन्वष्टका) पितृलोकांत फार मोठी फलदायक होईल.” असे हेमाद्रिीत पाश्चवचन आहे. आणि “रवि कन्यागत असतां नवमीस साऱ्याच मातांना श्राद्ध द्यावे; कारण, त्यांना ब्रह्मदेवानें वर दिलेला आहे.” असें सूतानें ह्या नवमीस श्राद्ध आवश्यक सांगितलेंही आहे. ह्या वचनांत ‘साऱ्याच’ असें सांगितल्यावरून आपली माता जीवंत असताही सापन्नमातेला द्यावे, असें जीवत्पितृकनिर्णयांत गुरुंनीं सांगितलें आहे. ह्या श्राद्धांत सर्वांचें नांव घेऊन श्राद्ध करावें. एक ब्राह्मण, एक अर्ध व एक पिंड असावा. दोघांचें नांव एक असेल तर द्विवचनादिप्रयोग करावा, असें नारायणवृत्तींत सांगितलें आहे. अन्वष्टकाश्राद्ध आणि त्याचा याग गोभिलशास्त्र्यांचा मधल्या (पौषमासाचे) अन्वष्टकेंतच होतो. साऱ्या पांचही अन्वष्टकांत होत नाहीं. कारण, “अन्वष्टका मध्यमेचे ठायीं होते, असें गोभिल व गौतम सांगतात.” असें छंदोगपरिशिष्ट आहे. येथें भर्ता मेल्यावर पूर्वीं मृत मातेचें श्राद्ध करूं नये, असें केचित् सांगतात. त्याविषयीं वचनही म्हणतात. “नवमीस श्राद्ध करावें. भर्ता मृत अतनां तें लुप्त होतें.” तें हें वचन निर्मूल असल्यामुळे मूर्खीची प्रतारणामात्र आहे. श्राद्धदीपकलिकेंत ब्राह्मांत—“पित्याच्या कुळांत व मातेच्या कुळांत उत्पन्न झालेल्या ज्या कांहीं स्त्रिया मृत असतील त्या साऱ्या माता श्राद्धाला योग्य आहेत, त्यांना नवमीस श्राद्ध देतात.” हें कोणास द्यावें त्याविषयीं देशाचारावरून व्यवस्था जाणावी.

इदंचानुपनीतेनापिकार्यम् तदुक्तंश्राद्धशूलपाणीमात्स्ये अमावास्याप्रकाकृष्णपक्षपंचदशीपुचेल्यभि-
धाय एतच्चानुपनीतोपिकुर्यात्सर्वेषुपुर्वसु श्राद्धसाधारणंनामसर्वकामफलप्रदम् भार्याविरहितोत्पेतत्प्रवासस्यो-
पिनित्यशः शूद्रोऽप्यमंत्रवत्कुर्यादनेनविधिनावुधइति तेनसांप्ररेवेदमितिपरास्तं अन्वष्टकातःप्रथमेवेदंमातुःश्रा-
द्धमित्यपिपरास्तं लाघवेनमूलैक्यादष्टकापदाविशेषाच्च तेनान्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्यांगस्याप्यत्रप्रधानत्वं वचनात्
अवेष्टेरिवराजसूयांतर्गतायागृतयान्नाशकमंयाजयेदितिफलार्थत्वम् अत्राष्टकाऽन्वष्टका पूर्वानुरोधात् तथा-
ग्निपुराणे अन्वष्टकासुवृद्धौचगयायांचक्षयंहनि अत्रमातुःप्रथक्श्राद्धमन्यत्रपतिनासह आपस्तंबानांत्वष्ट-
कासुचवृद्धौचेतिभाष्यकारैःपाठादष्टकायांमातृकाश्राद्धं छंदोगैस्त्वत्रमातृमातामहश्राद्धेनकार्येकिंतुत्रिपुरुषमेव-
नयोपिद्वयःप्रथकदद्यादवमानदिनाहते कर्पूस्मन्वितंमुक्त्वातथाश्राद्धपोडशं प्रत्याद्विकंचशेषेषुपिंडाः-
स्युःपडितिस्थितिरितिछंदोगपरिशिष्टात् अन्वष्टकासुतेषांपूर्वविधानादितिशूलपाणिः यत्तु तमि-
स्तपक्षेनवमीपुण्याभाद्रपदेहिथा चत्वारःपार्वणाःकार्याःपितृपक्षमनीपिभिरितितद्देशाचारतोव्यवस्थितंज्ञेयम्
इदंजीवत्पितृकेणापिमपिंडंकार्यम् हेमाद्रौविष्णुधर्मांतरे अन्वष्टकासुचस्त्रीणांश्राद्धकार्यतथैवचेत्युप-
क्रम्य पिंडनिर्वपणंकार्यतस्यामपितृसत्तमेतिवचनंश्राद्धविधिनापिंडदानेप्राप्ते पुनस्तत्कीर्तनंयस्यजीवत्पितृ-
कगर्भिणीपतित्वादिनापिंडदानंनिपिद्धंतस्यतत्प्राप्त्यर्थमितिश्रीनातचरणाः ।

हें नवमीश्राद्ध अनुपनीतानेही करावें, तें मांगना श्राद्धशूलपाणींत मात्स्यांत—“अमावास्या, अष्टका, कृष्णपक्षा-
तील पंधरा तिथि यांचे ठायीं श्राद्ध करावें.” असें मांगून “हें मये काम फल देणारें साधारण श्राद्ध अनुपनीतानेही (मौंजी
न झालेल्यानेही) मये पर्वाचे ठायीं करावें. भार्याविरहित अमला तरा, व प्रवासांत अमला तरी त्यानें नित्य करावें. शूद्रानेही
ह्या सांगितलेल्या विधीनें अमंत्रक करावें,” यावरून हें अन्वष्टकाश्राद्ध साम्निकालाच आहे, असें म्हणणें खंडित झालें.
अन्वष्टकहून हें मातृश्राद्ध वेगळेंच आहे, असें म्हणणें तेंही खंडित झालें. कारण, अन्वष्टका आणि नवमीश्राद्ध या दोघांचें
मूलवचन एक आहे, असें म्हटलें अमनां लाघव येतें. आणि ह्या वरील मात्स्यवचनांत ‘अष्टका’ पद सामान्य सांगितलें
आहे, त्यावरून नवमीश्राद्धही तेंच समजावें. तेणेंकरून इतर ठिकाणीं अन्वष्टकाश्राद्ध अंग असलें तरी येथें वरील वचना-
वरून प्रधान समजावें. जसा—राजमय्यजाच्या अंतर्गत अवेष्टीचा याग आहे, त्याला राजसूयांत अंगल असलें तरी ‘एतया
अज्ञायकामं याजयेत्’ म्हणजे अज्ञादिकांची इच्छा असेल त्याच्याकडून ह्या अवेष्टीचा याग करावा, या वचनावरून फला-
करितां प्रधानल सांगितलें आहे. तसें इतर अष्टकाश्राद्धांत अन्वष्टकाश्राद्धाला अंगल असलें तरी एथें प्रधानल समजावें.
यावरील मात्स्यवचनांत पूर्वीच्या अनुरोधानें अष्टका म्हणजे अन्वष्टका समजावी. तसेंच—अग्निपुराणांत “अन्वष्टका,
वृद्धिश्राद्ध, गया आणि मृतदिवस यांचे ठायीं मानेचें पृथक् श्राद्ध करावें. अन्यत्र ठिकाणीं पत्नीसह मातेचें श्राद्ध करावें.”
आपस्तंबांचें तर “अष्टकांचे ठायीं, आणि वृद्धीचे ठायीं” असें भाष्यकारांनीं वचन पठित असल्यामुळे अष्टकेचे ठायीं
मातृश्राद्ध करावें. छंदोगांनीं (सामगांनीं) तर येथें अष्टकांचे ठिकाणीं माता व मातामह यांचीं श्राद्धं करूं नयेत. तर

पित्रादि तीन पुरुषांचेंच करावें. कारण, “मृतदिवसावांचून स्त्रियांना पृथक्श्राद्ध देऊं नये. कर्षूयुक्त श्राद्ध (अन्वष्टक्य), पहिल्या वर्षातील पोडश श्राद्ध आणि प्रतिसांवत्सरिक हीं वर्ज्य करून इतर श्राद्धांचे ठायीं सहा पिंड द्यावे, अशी शास्त्र-मर्यादा आहे. असें छंदोगपरिशिष्ट आहे. त्यांच्या अन्वष्टकाश्राद्धांत कर्षूचें विधान आहे, म्हणून कर्षूयुक्त श्राद्ध म्हणजे अन्वष्टकाश्राद्ध समजावें असें शूलपाणी सांगतो. आतां जें “भाद्रपदांत कृष्णपक्षाची जी पुण्यकारकनवमी तिचे ठायीं विद्वानांनीं चार पावेण करावें.” असें सांगितलें त्याची देशाचारावरून व्यवस्था जाणावी. हे श्राद्ध जीवन्पितृकांनं देखील संपिंडक करावें. कारण, हेमाद्रीत विष्णुधर्मोत्तरांत “अन्वष्टकांचे ठायीं स्त्रियांचें श्राद्ध तसेंच करावें” असा उपक्रम करून “त्या ठिकाणींही पिंडप्रदान करावें” असें सांगितलें आहे. श्राद्धविधीनें पिंडदान प्राप्त असतां हें पुनः पिंडदान सांगितलें अशाकरितां की, जीवन्पितृक, गर्भिणीपति इत्यादि कारणांनीं ज्याला पिंडदान निषिद्ध आहे, त्याला तें पिंडदान प्राप्त होण्याकरितां आहे, असें आमचे वडील (रामकृष्णमठ) सांगतात.

अन्नसुवासिनीभोजनमुक्तं मार्कंडेयपुराणे मातुःश्राद्धेतुसंप्राप्तेब्राह्मणैःसहभोजनम् सुवासिन्यैप्रदात-
व्यमितिशातातपोब्रवीत् भर्तुरप्रेमृतानारीसहदाहेनवामृता तस्याःस्थानेनियुंजीतविप्रैःसहसुवासिनीं तत्रैव
मदालसावाक्यम् स्त्रीश्राद्धेपुत्रदेयाःस्युरलंकाराश्रयोपिते मंजरीमेखलादामकर्णिकांकंकणादयइति ।

येथें सुवासिनीभोजन सांगतो मार्कंडेयपुराणांत—“मातेचें श्राद्ध प्राप्त असतां ब्राह्मणांसह सुवासिनीला भोजन द्यावें, असें शातातप सांगता झाला. भल्यांचे आधीं मृत झालेली स्त्री, किंवा पतीवरोबर सहगमनानें मृत झालेली स्त्री तिच्या स्थानीं ब्राह्मणांसह सुवासिनीची योजना करावी.” तेथेंच मदालसेचें वाक्य—“स्त्रीश्राद्धाचे ठायीं सुवासिनीला मंजरी, मेखला (कमरपट्टा), सर, कर्णिका, कांकण इत्यादि अलंकार द्यावे.”

अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः अनडुहोयवसमाहरेदग्निनावाकक्षमुपोपेदेपामेऽष्टकेतिनवेवानष्ट-
कःस्यादिति हेमाद्रीपितामहः अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकामुच विद्वान्श्राद्धमकुर्वाणोनरकंप्रति-
पद्यते अकरणेचप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने एभिर्बुभिर्जपेन्मंत्रंशतवारंतुनहिने आन्वष्टक्यंयदान्यूनसंपूर्ण-
यातिसर्वथेति एतत्पक्षेद्वादश्यांविशेषःपृथिवीचंद्रोदयेवायवीये संन्यासिनोप्याव्दकादिपुत्रःकुर्याद्य-
थाविधि महालयेतुयच्छ्राद्धंद्वादश्यांपार्वणंतुतदिति ।

अन्वष्टकाश्राद्धाविषयीं अशक्ति असेल तर अनुकल्प सांगतो आश्वलायन—“वृषभाला गवत घालावें, अथवा अर्घ्नानें गवत जाळावें, आणि ही माझी अष्टका असें म्हणावें. पण अष्टका केल्यावांचून राहूं नये.” हेमाद्रीत पितामह—“अमावास्या, व्यतीपात, पौर्णमासी, अष्टका यांचे ठायीं विद्वान् श्राद्ध न करणारा नरकास जातो.” अन्वष्टक्य न केलें असतां प्रायश्चित्त सांगतो ऋग्विधानांत—“त्या अन्वष्टक्यदिवशीं ‘एभिर्बुभिः’ ह्या मंत्राचा शंभर वेळां जप करावा, म्हणजे अन्वष्टक्य झालें नसेल तर तें संपूर्ण सर्वथा होतें.” ह्या कृष्णपक्षांत द्वादशीस विशेष सांगतो पृथ्वीचंद्रोदयांत वायवीयांत—“पुत्रांनं संन्याशांचेंही सांवत्सरिकादिक श्राद्ध यथाविधि करावें. महालयांत जें संन्याशांचें श्राद्ध तें द्वादशीस पावेण करावें.”

अथत्रयोदशीश्राद्धं तत्रचंद्रिका त्रयोदशीभाद्रपदीकृष्णामुख्यापितृप्रिया तृप्यंतितपितरस्तस्यांस्व-
यंपंचशतंसमाः मघायुतायांतस्यांतुजलाद्यैरपितोपिताः तृप्यंतितपितरस्तद्द्वर्षाणामयुतायुतं प्रयोगपारि-
जातेशंखः प्रौष्ठपद्यामतीतायांमघायुक्तांत्रयोदशीम् प्राप्यश्राद्धंतुर्कृतव्यंमधुनापायसेनच प्रजामिष्टांयशः-
स्वर्गमारोग्यंश्चनंतथा नृणांश्राद्धेसदप्रीताःप्रयच्छंतितपितामहाः एतन्नित्यमपि पृथ्वीचंद्रोदयेविष्णु-
धर्मे प्रौष्ठपद्यामतीतायांतथाकृष्णात्रयोदशीत्युक्त्वा एतांस्तुश्राद्धकालान्वैनित्यानाहप्रजापतिः श्राद्धमेतेष्व-
कुर्वाणोनरकंप्रतिपद्यतइत्युक्तेः एतच्चाविभक्तैरपिपृथक्कार्यं तथाचहेमाद्री विभक्तावाऽविभक्तावाकुर्युःश्राद्धं-
पृथक्सुताः मघासुचततोन्नयननाधिकारःपृथग्विनेति अपराकैवायवीये हंसेहस्तस्थितेयातुमघायुक्तात्रयो-
दशी तिथिवैवस्वतीनामसाछायाकुंजरस्यतु अत्रच अपिनःसकुलेभूयाद्योनोदद्यात्रयोदशीम् पायसंमधुसर्पि-
र्भ्यांप्राक्छायेकुंजरस्यचेतिविष्णुमनुवचनेकेवलत्रयोदशीश्रुतेर्मघागुणइतिकल्पतरुः शूलपाणिस्तु-

१ कर्षू म्हणजे खळगे करून ते पायसादि पदार्थांनीं भरावे, इत्यादि प्रकार तृतीयपरिच्छेदाच्या उत्तरार्धांत सांगितला आहे, तो तेथें पाहिला.

केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्विधौचमधुयोगश्रुतेर्विधिलाघवान्विशिष्टमेवनिमित्तमित्याह वस्तुतस्तु मधुमां-
सैश्वशाकैश्चपयसापायसेनच एषोदास्यतिश्राद्धवर्षासुचमघासुचेतिवसिष्ठवचनेकेवलमघाश्रुतेर्विनिगमका-
भावादुभयंभित्रनिमित्तं पूर्वोक्तवचनाच्चयोगाधिक्येफलाधिक्यम् अतएवयाज्ञवल्क्यः तथावर्षात्रयोद-
श्यामघासुचविशेषतइति त्रयोदशीश्राद्धनित्यम् अन्यत्काम्यं अत्रत्रयोदश्यां बहुपुत्रायुवमारिणस्तुभवंती-
त्यापस्तंबोक्तैर्युवमारित्वमपत्यदोषसहिष्णोरपत्यमात्रार्थिनः स्मृत्यंतरोक्तधनार्थिनोवाधिकारइतिकल्प-
तरुः अपत्यनिंदयातदर्थिनोऽनधिकारान् फलांतरकामस्यैवाधिकारइतिहलायुधः एतत्पिंडरहितंकार्यं
मघायुक्तत्रयोदश्यांपिंडनिर्वपणंद्विजः ससंतानोनैवकुर्यान्नित्यंतेकवयोविदुरितिबृहत्पराशरोक्तेः इदं-
मलमासेपिकार्यं मघात्रयोदशीश्राद्धंप्रत्युपस्थितिहेतुकम् अनन्यगतिकत्वेनकर्तव्यस्यान्मलिम्लुचेइतिकाठक-
गृह्योक्तेः ।

आतां त्रयोदशीश्राद्ध सांगतो.

त्याविषयी चंद्रिका—“भाद्रपदाक्षी कृष्णत्रयोदशी मुख्य व पितरांना प्रिय आहे. तिच्या ठिकाणी श्राद्ध केलं असतां पांचवे वषेपर्यंत पितर नृत्य होतात. मघायुक्त त्या त्रयोदशीम उदकादिकांनीं देखील नृष्ट केलेले पितर लाखोंवषेपर्यंत तसेच नृत्य होतात.” प्रयोगपारिजातांत शंख—“प्रौष्ठपदी पाणिमा अतिकांत आल्यावर पुढें मघायुक्त त्रयोदशी प्राप्त असतां मघाचें व पायगानें श्राद्ध करावें. श्राद्धाचे ठायीं संतुष्ट झालेले पितामह मनुष्याला अमीष्ट प्रजा, कीर्ति, स्वर्ग, आरोग्य आणि द्रव्य देतात.” हें श्राद्ध नित्यही आहे. कारण, पृथ्वीचंद्रोदयांत विष्णुधर्मांत—“तशीच प्रौष्ठपदी गेली असतां त्रयोदशी” असें सांगून “हे श्राद्धकाल नित्य आहेत, असें प्रजापति सांगतो. यांचे ठायीं श्राद्ध न करणारा नरकाम जातो” असें सांगितलें आहे. हें श्राद्ध अविभक्तांनीं देखील वेगवेगळें करावें. तसेंच हेमाद्रींत—“विभक्त किंवा अविभक्त अशा पुत्रांनीं मघांचे ठायीं श्राद्ध पृथक् करावें. अन्यत्र ठिकाणीं पृथक् करण्याविषयीं विभक्तावांचून अधिकार नाही.” अपराकांत वायवीयांत—“सृष्टे दत्तनक्षत्राग अगतां जी मघायुक्त त्रयोदशी तिथि ती यमाची आहे, तिला गजच्छाया म्हणतात.” या ठिकाणीं “पितर अशी आज्ञा करितात की, त्रयोदशीम गजच्छायेचे ठायीं मधुपुत्रानें युक्त पायम देणारा असा कोणी आमच्या कुत्र्यां उत्पन्न होईल काय ?” ह्या मनुवचनांत व पूर्वोक्त विष्णुधर्मवचनांत केवळ त्रयोदशीचें श्रवण अगत्यामुळे मघानक्षत्र हा गुण आहे, असें कल्पतरु सांगतो. शूलपाणि तर—केवळ त्रयोदशीची वास्तव्ये अर्थवाद अगत्यामुळे (शंख-हमाद्यादि) विधिवान्यांत मघायोगश्रवण असल्यामुळे मघाविशिष्ट (युक्त) त्रयोदशीचा उद्देश करून श्राद्धाचें विधान केल्यानें लाघव येत अगत्यामुळे श्राद्धाविषयीं मघाविशिष्टच त्रयो-
दशी निमित्त आहे, असें सांगतो. वास्तविक म्हणजे तर—“मधु, मांस, शाक, दूध, पायम यांहींकरून वर्षाकरत आणि मघावर हा (पुत्र) आद्यांम श्राद्ध देईल” असें पितर इच्छितात, ह्या वसिष्ठवचनांत केवळ (त्रयोदशीविषाय) मघाश्रवण असल्यामुळे व पूर्वाच्या विष्णुधर्मवचनांत केवळ त्रयोदशीश्रवण असल्यामुळे त्रयोदशी किंवा मघा अमुकच निमित्त मानावें व अमुक मानूं नये, याविषयीं प्रमाण नगल्यामुळे दोन्ही धगवेगळीं निमित्त आहेत. आणि पूर्वी सांगित-
लेल्या चंद्रिकादि वचनावरून अधिक योग असतां अधिक फल होतें. म्हणूनच सांगतो याज्ञवल्क्य—“तसेंच वर्षाकालीं त्रयोदशीम श्राद्ध करावें. मघावर विशेषेंकरून फलदायक आहे.” त्रयोदशीश्राद्ध नित्य आहे. दुसरें (मघावरचें) काम्य आहे. “ह्या त्रयोदशीस श्राद्ध केलें असतां तारुण्यावस्थेंत मरणारे असें बहुत पुत्र होतात” ह्या आपस्तंबवचना-
वरून तारुण्यांत मरणरूप अपत्यदोष सहन करणारा व केवळ अपत्याचीच इच्छा करणारा अशाला ह्या त्रयोदशीश्राद्धाविषयीं अधिकार किंवा इतर स्मृतींत सांगितलेल्या धनाची इच्छा करणाराला ह्या श्राद्धाविषयीं अधिकार, असें कल्पतरु सांगतो. अपत्याची निंदा (मरणरूप दोष) सांगितल्यामुळे अपत्येच्छाला अधिकार नगल्यामुळे इतर फलेच्छालाच अधिकार आहे, असें हलायुध सांगतो. हें श्राद्ध पिंडरहित करावें. कारण, “संतानयुक्त द्विजानें मघायुक्त त्रयोदशीस कधीही पिंडदान करूं नये, हें विधान जाणतात.” असें बृहत्पराशरवचन आहे. हें श्राद्ध मलमागांतही करावें. कारण, “मघात्रयोदशी-
श्राद्ध हें मघायुक्तत्रयोदशीप्राप्तिनिमित्तक असल्यामुळे दुसरी गति (पुढच्या मासांत) नसल्याकारणानें मलमासांत करावें.” असें काठकगृह्यवचन आहे.

१ विशिष्टाला निमित्त मानलें नाहीं तर केवळ त्रयोदशीचा उद्देश करून श्राद्धाचें विधान. आणि मघारूपगुणाचें विधान जसें केलें असतां गौरव येतं, असा अभिप्राय.

यानितु अंगिराः त्रयोदश्यांकृष्णपक्षेःश्राद्धं कुरुते नरः पुंस्त्वन्तस्यजानीयाज्येषुपुत्रस्यनिश्चितम्
 वामनपुराणे त्रयोदश्यांतुवैश्राद्धंनकुर्वात्पुत्रवानगृहीत्यादीनिवचनानितानिपुत्रवद्विषयाणि वामहालयस्थ-
 सिध्नत्रयोदशीविषयाणिवाकाम्यश्राद्धविषयाणिवासपिंडकश्राद्धविषयाणिवेति केचित् हेमाद्रिप्रमुखास्त्वेक-
 वर्गश्राद्धविषयाणि श्राद्धनैवैकवर्गस्यत्रयोदश्यामुपक्रमेत् नतुप्रास्तत्रयेयस्यप्रजाहिंसंति तस्यतइति काष्ण-
 जिनिस्मृतेः यद्यपि पितरोयत्रपूज्यंतेतत्रमातामहाअपीतिधौम्योक्तेर्नकेवलपितृवर्गस्यप्राप्तिस्थापिव्यामो-
 हादिप्राप्तनिषेधोयमित्याहुः वयंतुपश्यामःपुत्रवद्विषयाण्येवेति असंतानस्तुयस्तस्यश्राद्धेप्रोक्तात्रयोदशी संता-
 नयुक्तोयःकुर्यात्तस्यवंशक्षयोभवेदिति हेमाद्रौनागरखंडोक्तेः पूर्ववाक्यमप्यसंतानस्यैवैकवर्गनिषेधक-
 मिति अत्रमघात्रयोदशीमहालययुगादिश्राद्धानांतंत्रेणप्रयोगः नतुप्रसंगसिद्धिरित्यन्यत्रविस्तरः ।

आतां जी—अंगिरा—“त्रयोदशीस कृष्णपक्षांत जो मनुष्य श्राद्ध करितो, त्याचा ज्येष्ठ पुत्र निश्चयानं मरतो.” वामन-
 पुराणांत—“त्रयोदशीस पुत्रवंतं गृहस्थानं श्राद्ध करुं नये” इत्यादिक वचनं तीं पुत्रवंतविषयक किंवा महालयांतील
 त्रयोदशीवांचून इतर त्रयोदशीविषयक, अथवा काम्यश्राद्धविषयक, किंवा सपिंडकश्राद्धविषयक समजावीं, असें केचित्
 सांगतात. हेमाद्रिप्रमुख ग्रंथकार तर—एक वर्ग श्राद्ध विषयक तीं वचनं आहेत. कारण, “त्रयोदशीस एक वर्गाचें
 श्राद्ध करुं नयेच. कारण, त्या श्राद्धानं ज्याचें जे पितर तृप्त होत नाहीत ते पितर त्याच्या प्रजेचा नाश करितात.” अशी
 काष्णजिनिस्मृति आहे. जरी “ज्या ठिकाणीं पितरांची पूजा असते त्या ठिकाणीं मातामहांचीही पूजा करावी” ह्या
 धौम्यवचनावरून केवळ पितृवर्गाचेंच श्राद्ध प्राप्त होत नाही, तरी व्यामोहादिकें करून केवळ एक वर्गाचें श्राद्ध प्राप्त होईल
 त्याचा हा काष्णजिनिस्मृतीनं निषेध केला आहे, असें सांगतात. आम्हीं तर असें समजतां कीं, हीं वरील वचनं
 पुत्रवंतविषयक आहेत. कारण, “जो संततिरहित असेल त्याला श्राद्धविषयी त्रयोदशी सांगितली आहे. जो संतानयुक्त
 मनुष्य त्या त्रयोदशीस श्राद्ध करील त्याचा वंशक्षय होईल” असें हेमाद्रौन नागरखंडवचन आहे. पूर्वीचें काष्ण-
 जिनिवाक्यही असंतानालाच एकवर्गश्राद्धचें निषेधक आहे. येथें मघात्रयोदशीश्राद्ध, महालय, युगादिश्राद्ध ह्या तीन
 श्राद्दांचा तंत्रानं प्रयोग करावा. एकानं इतरांची प्रसंगसिद्धि होत नाही. ह्याचा अन्यग्रंथां विस्तार केलला आहे.
 इति त्रयोदशी ।

अथचतुर्दशी पृथ्वीचंद्रोदयेप्रचेताः वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विजुज्जलविपान्निभिः नग्निदंष्ट्रिविपन्नायते-
 षांशस्ताचतुर्दशी ब्राह्मे युवानःपितरोयस्यमृताःशस्त्रेणवाहताः तेनकार्यचतुर्दश्यांतेपातृमिभीप्सता
 नागरखंडे अपमृत्युर्भवेद्येषांशस्त्रमृत्युरथापिवा श्राद्धंतेपांप्रकर्तव्यंचतुर्दश्यांनराधिप एतच्च प्रायोनाशक-
 शस्त्राभिविषोदकोद्वंद्वधनप्रपतनैश्चेच्छतामितिगौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणम् एकयोगनिर्देशान् सर्वेषांतुल्य-
 धर्माणामेकस्यापियदुच्यते सर्वेषांतत्समंज्ञेयमेकरूपाहितेस्मृताइत्युशनसोक्तेश्च तत्कृतक्रियाणामेवेति-
 वक्ष्यामः मरीचिः विषशस्त्रापदाहितिर्यग्राह्यणघातिनाम् चतुर्दश्यांक्रियाःकार्याअन्येषांतुविगर्हिताः
 अत्रग्राह्यणघातीतेनहतोनतुब्रह्महा तस्यपतितत्वादितिशूलपाणिः अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वान्
 स्त्रीणामपिशस्त्रादिहतानामेकोदिष्टंकार्यनपार्वणमितिश्रीदत्तोपाध्यायः इदंविषादिहतानामेवप्रसवादि-
 मृतानामितिवाचस्पतिः यत्तुशाकटायनः जलामिभ्यांविपन्नानांसंन्यासेवागृहेपथि श्राद्धंकुर्वीततेषां-
 वैवर्जयित्वाचतुर्दशीमिति तत्प्रायश्चित्तार्थंजलादिमृतविषयमित्याकरेउक्तम् अतएववैधत्वात्सहगमनेपिन-
 कार्यमितिहेमाद्रिः एतच्चदैवयुक्तमेकोदिष्टंकार्यमित्युक्तंप्रयोगपारिजाते प्रेतपक्षेचतुर्दश्यामेकोदिष्टंवि-
 धानतः दैवयुक्तंतुतच्छ्राद्धपितृणामक्षयंभवेत् तच्छ्राद्धंदैवहीनंचेतुत्रदारधनक्षयः एकोदिष्टदैवयुक्तमित्येवंम-
 नुरब्रवीत् भविष्येपि समत्वमागतस्यापिपितुःशस्त्रहतस्यच चतुर्दश्यांतुकर्तव्यमेकोदिष्टंमहालये चतुर्द-
 श्यांतुयच्छ्राद्धसपिंडीकरणेकृते एकोदिष्टविधानेनतत्कार्यंशस्त्रघातिनइति संवत्सरप्रदीपेहारीतः विश्वे-

१ एकवर्गस्य पितृपितामहप्रपितामहमात्रस्य. २ अत्रैवं भाति अंगानामेकं प्रधानमात्रमेदं तंत्रं तेन विश्वेदेवपाकांधंगाना-
 भेद्यं विप्रार्थपिकादेर्भेद एव । प्रसंगसिद्धिस्तु तु प्रधानमपि न भिद्यते इति । त्रयोदशीश्राद्धपरपक्षत्वादूरलोचना विश्वेदेवाः
 श्राद्धसागरे उक्ताः इति धर्मसिंधुसारम्.

देवांश्चतत्रापिपूजयित्वादितोमलान् ब्रह्मेशस्त्रहतास्तेषांश्राद्धं कुर्यादतद्रितः अत्रैकोद्दिष्टवचनानां निर्मूलत्वम् समूलत्वेपिपार्वणाशक्तपराणि विष्ण्वादिवचनैः प्रकरणात्कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिः तत्र वाक्येन प्रकरणस्य बाधात् पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोद्दिष्टमिति गौडार्वाचः तत्र पितुरित्यनेन विरोधात् विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च अत्र शस्त्रहृतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो न तु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहृतस्येति श्राद्धं शस्त्रहृतस्यैव चतुर्दश्यां महालये इति कालादर्शात् वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च तेन महालये एव दिनांतरे पार्वणमातामहादिवृत्त्यर्थकार्यमेव पितामहोपिशस्त्रहृतश्चेदेकोद्दिष्टद्वयं कार्यं तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यंतरे एकस्मिन्द्वयोर्वैकोद्दिष्टमिति त्रिपुशस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यम् ।

आतां चतुर्दशीश्राद्ध सांगतो.

पृथ्वीचंद्रोदयांत प्रचेता—“वृक्षावर चटणं, लोहादिक शस्त्रं, बीज, उदक, विष, अग्नि, नखांचे पशु, दाढांचे पशु इत्यादिकांनीं जे मृत झाले त्यांच्या श्राद्धाविषयीं चतुर्दशी प्रशस्त आहे.” **ब्राह्मांत**—“ज्याचे पितर तरुण असतां मृत झाले किंवा शस्त्राने मृत झाले अमनील त्यांचे त्यांच्या तृतीकरितां चतुर्दशीस श्राद्ध करावें.” **नागरखंडांत**—“ज्यांना अपमृत्यु होईल, किंवा शस्त्राने मृत्यु होईल, त्यांचें श्राद्ध चतुर्दशीस करावें.” हें वरील वचनांनीं सांगितलेलें मरण, “प्रायोपवेशन, अनशन, शस्त्र, अग्नि, विष, उदक, फांस लावून घेणें, पर्वतादिकांवरून उडी घेणें, यांनीं मरण इच्छिणाऱ्यांचें” त्या **भौतमाने** सांगितलेल्या दुर्मरणांचें उपलक्षण (बोधक) आहे. कारण, वरील वचनांत तरुणमरण, अपमृत्यु व शस्त्रमरण असें एका वचनांत सांगितले आहे, म्हणून तरुणमरणादिकही दुर्मरण समजावें. आतां कोणी म्हणेल की, वरील वचनांनीं सांगितलेल्या मरणावांचून इतर मरणांला चतुर्दशी येत नाही, आणि उपलक्षण केलें असतां इतरही दुर्मरणांला चतुर्दशी येत तीं दृष्ट नाही, तर असें म्हणूं नये; कारण, “मारे समानभर्मा अगतां त्यांमध्ये एकालाही जें सांगितलें तें त्या सर्वांना समजावें. कारण, ते मारे एकरूपी आहेत” त्या **उशनसाचे** वचनावरून इतरही दुर्मरणांला चतुर्दशी दृष्ट आहे. तें चतुर्दशीस श्राद्ध ज्यांनीं किया केली असेल त्यांचेंच होते, हा प्रकार पुढें सांगूं. **मरीचि**—“विष, शस्त्र, धापद, गर्प, तिगण्यानि, ब्राह्मण यांनीं मारलेल्यांच्या किया (श्राद्धें) चतुर्दशीस कराव्या. अन्यांच्या करूं नयेत” या वचनांत “ब्राह्मणघाती” असें पद आहे त्याचा अर्थ-ब्राह्मणांचें मारलेल्या, असा समजावा. ब्राह्मणमारणारा, असा समजू नये; कारण, तो पतित आहे, असें **शूलपाणि** सांगतो. येथें वरील वचनांत शस्त्रादिमृत अशा पुष्टिगी मनुष्यांचा उद्देश करून चतुर्दशीस श्राद्ध सांगितलें तेथें उद्देश्याचें विशेषण पुष्टिग हें अविवक्षित अगत्यामुळे स्त्रिया देखील शस्त्रादिमृत असतां त्यांचेही एकोद्दिष्ट करावें. पार्वण करूं नये, असें **श्राद्धोपाध्याय** सांगतो. हें श्राद्ध विपादिमृतांचेंच समजावें, सूतिकादि मृतांचें नाही, असें **वाचस्पति** सांगतो. आतां जें **शाकटायन**—“संन्यास घेतलेला अमतां किंवा घरांत अधवा मार्गांत अमतां उदक व अग्नि यांनीं जे मृत झाले त्यांचें श्राद्ध चतुर्दशीस वज्यं करून इतर तिथीस करावें” असें सांगितलें तें, प्रार्थनाकारितां उदकादिमृतविषयक समजावें, असें **आकरांत** सांगितलें आहे. म्हणूनच विधिविहित मरण असल्यामुळे स्त्रियांचें सहगमन अगतांही चतुर्दशीस करूं नये, असें **हेमाद्रि** सांगतो. हें चतुर्दशीश्राद्ध दैवयुक्त एकोद्दिष्ट करावें, असें सांगितलें. **प्रयोगपारिजातांत**—“पितृपक्षांतील चतुर्दशीस विधीनं विहित जें एकोद्दिष्ट श्राद्ध तें दैवयुक्त केलें तर पितरांना अक्षय होतें. तें श्राद्ध दैवहीन केलें तर पुत्र, स्त्रिया, धन यांचा क्षय होतो. एकोद्दिष्ट दैवयुक्त करावें, असें मनु सांगता झाल्या.” **भविष्यांत**—“शस्त्राने मृत झालेला पिता समानल (पितुल) पावला असला तरी त्याचें महालयांत चतुर्दशीस एकोद्दिष्ट करावें. शस्त्राने मारलेल्याचें संपिंडीकरण केल्यावर जें चतुर्दशीस श्राद्ध करावयाचें तें एकोद्दिष्ट विधीनं करावें.” **संवत्सरप्रदीपांत हारीत**—“चतुर्दशीसही पूर्वी निमेल अशा विश्वेदेवांची पूजा करून जे शस्त्राने मृत अमनील त्यांचें श्राद्ध निरुत्सवणानें करावें.” येथें एकोद्दिष्टबोधकवचनं निर्मूल आहेत. समूल असलीं तरी पार्वणाविषयीं अशक्त असेल त्याविषयीं आहेत. कारण, विष्णु इत्यादिकांच्या वचनांनीं प्रकरणावरून कृष्णपक्षांतील पार्वण येथें प्राप्त होतें, असें **शूलपाणि** सांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, वचनांत प्रकरणाचा बाध होतो. पिता इत्यादिकांचें पार्वण, आणि भ्राता इत्यादिकांचें एकोद्दिष्ट करावें, असें अर्वाचीन **गौड** सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, वरील भविष्यवचनांत ‘पितुः’ असें म्हटलें आहे त्याचा विरोध येईल. अणि हें विशेष वाक्य व्यर्थही होईल. या ठिकाणीं शस्त्रहतांचेंच श्राद्ध चतुर्दशीस, असा नियम आहे. शस्त्रहतांचें श्राद्ध चतुर्दशीसच करावें, असा नियम नाही. कारण, “शस्त्रहतांचेंच श्राद्ध महालयांतील चतुर्दशीस करावें” असें **कालादर्शवचन** आहे. असा नियम केल्यानें महालयांतील चतुर्दशीस इतरांचें श्राद्ध करूं नये, असें झालें. असा नियम न करितां, शस्त्रहतांचें श्राद्ध महालयांतील चतुर्दशीसच करावें, असा नियम केला तर इतर दिवशीं वार्षिकादिक श्राद्धं करूं नयेत, असेंही होईल, तें अनेक आहे. तेज-

करून (शस्त्रहताचे श्राद्धाची इतरदिवशी निवृत्ति नसल्याने) महालयांतच इतरदिवशी मातामहादिकांच्या तृतीकरितां शस्त्रहताचें पार्वणश्राद्ध करावेंच. पितामह देखील शस्त्रहत असेल तर पित्याचें व पितामहाचें अशीं दोन एकोद्दिष्टे करावीं, तें सांगतो हेमाद्रीत स्मृत्यंतरांत—“एक किंवा दोघे शस्त्रानें मृत असतां एकोद्दिष्ट करावें.” तिघे शस्त्रहत असतां पार्वणच करावें.

यत्तुदेवस्वामिनोक्तं त्रिष्वपि शस्त्रहते पुपृथगे कोद्दिष्टत्रयं कार्यम् न तु पार्वणमाहृत्य वचनाभावादिति तदयुक्तम् पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुकृताम् स भूते पार्वणं कुर्याद्वादिदिकानि पृथक् पृथगिति बृहत्पराशरोक्तेः एकस्मिन्वा द्वयोर्वापि विगुच्छस्त्रेण वा हते एकोद्दिष्टमुतः कुर्यान्नयाणां दर्शवद्भवेदिति स्मृत्यंतराच्चेति पृथिवीचंद्रोदये वक्तव्यम् अपराकांतहेमाद्रीचैवम् यस्तु अत्रैव शस्त्रादिनाहृतस्तस्य वापि कमेव पार्वणमेकोद्दिष्टवा- कार्यं न तु श्राद्धद्वयं प्रसंगसिद्धेरिति पृथिवीचंद्रोदये अत्र श्राद्धाकरणे प्रिमापरपक्षे दिनांतरे पार्वणेनैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम् यद्यपि शस्त्रविप्रहतानां च शुं गिदंष्ट्रिसरीसृपैः आत्मनस्त्यागिनांचैव श्राद्धमेपांनकारयेदिति छागलेयाद्यैः शस्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धं तथापि प्रमादमृतानां श्राद्धार्हत्वात् कार्यं वृद्धादिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यम् यत्तु चतुर्दश्यांतर्पणीया लुप्तपिंडोदकक्रिया इति ब्राह्मणैर्द्रौणमिति शूलपाणिः लक्षणायां मानाभावात् पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य चेति गयादिवद्विशेषविधिवत्पतितानामपि कार्यमिति नन्यगौडः तत्त्वंतु समत्वमागतस्येत्यादिव शास्त्रतत्क्रियाणां कार्यनान्येपामिति वयंप्रतीमः यत्तु मनुः नपैतृयज्ञियो होमो- लौकिकाभौविधीयते न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताभेदं विधीयत इति अत्र पूर्वार्धहेतुत्वेनोक्तम् तत्राश्रुतमेव मन्यंते- पृथ्वीचंद्रोदयादयः आहिताभेः पिंडपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं न तु साकल्यादेरपीत्यस्मदुरवः कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्राप्तमाहिताभेदर्शेनियम्यत इति तु वयम् दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं तेन कापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टेनेति हरिहरः इति चतुर्दशी ।

आतां जें देवस्वामीनें सांगितलें कीं, तिघेही शस्त्रहत असतां वेगवेगळीं तीन एकोद्दिष्टे करावीं. पार्वण करूं नये. कारण, पार्वण करून करण्याविषयीं विधि वचन नाही. तें अयुक्त आहे. कारण, “ज्याचें पिता, पितामह, प्रपितामह हे शस्त्रानें अनुक्रमानें मृत आहेत, त्यांचें चतुर्दशीस पार्वण करावें. सांवत्सरिकें वेगवेगळीं करावीं.” असें बृहत्पराशरवचन आहे. आणि “विजेनें किंवा शस्त्रानें एक किंवा दोन मृत असतां पुत्रांन एकोद्दिष्ट करावें. तीन असामी शस्त्रानें मृत असतां त्यांचें दर्शाप्रमाणें होईल.” असें स्मृत्यंतरही आहे, असें पृथ्वीचंद्रोदयांत सांगितलें आहे. अपराकांत व हेमाद्रीतही असेंच आहे. जो मनुष्य ह्याच चतुर्दशीस शस्त्रादिकांन मृत असेल त्याचें सांवत्सरिकच पार्वण किंवा एकोद्दिष्ट करावें. दोन श्राद्धे (सांवत्सरिक व अपरपक्षिक अशीं दोन) करूं नयेत. कारण, सांवत्सरिकांन अपरपक्षिकाची प्रसंगसिद्धि होते, असें पृथ्वीचंद्रोदयांत सांगितलें आहे. ह्या चतुर्दशीस श्राद्ध केलें नसेल तर पुढच्या अपरपक्षांत चतुर्दशीभिन्न दिवशीं पार्वणाचें करावें, असें तेथेंच (पृथ्वीचंद्रोदयांतच) सांगितलें आहे. आतां जरी “शस्त्र, ब्राह्मण, शृंग्याचें व दाढांचे पशु, सर्प यांनीं मारलेल्यांचें आणि आत्महत्या करणारांचें श्राद्ध करूं नये” असें छागलेयादिकांनीं शस्त्रादिहतांचें श्राद्ध निषिद्ध आहे, तरी प्रमादानें मृत झालेले श्राद्धाला योग्य असल्यामुळे त्यांचें करावें. वृद्धादिमरण तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धांत सांगितलें आहे त्यांचाचून इतर बुद्धिपूर्वक मृत असतील त्यांचें करूं नये. आतां जें “ज्यांची पिंडउदकक्रिया लुप्त असेल (मृतदोषामुळे झालेली नसेल) त्यांना चतुर्दशीस तृप्त करावें” हें ब्राह्मणवचन दुर्मरणाचें मृतांचें श्राद्ध चतुर्दशीस सांगतें, यांचा वरच्या सांगण्यास विरोध येईल, असें म्हणूं नका. कारण, तें ब्राह्मणवचन गौण (लाक्षणिक म्हणजे लुप्तपिंडोदकक्रिया हा शब्द लक्षणें प्रमादमृतांचा बोधक) असें शूलपाणि सांगतो. लक्षणा करण्याविषयीं प्रमाण नसल्यामुळे, “गयेंत पतितानेही करावें, आणि पतिताचंही करावें” हें जसें गयादिकश्राद्ध विशेष विधीनें सांगितलें, तसें-दुर्मरणाचें मृतांचें चतुर्दशीस श्राद्ध करण्याविषयीं विशेष विधि वर सांगितला आहे, त्याच्या बळांन पतितांचंही करावें, असें नवीन गौड सांगतात. खरा प्रकार म्हणजे तर—‘समत्वमागतस्यापि’ ह्या वर सांगितलेल्या भविष्यादिवचनानुषंगानें ज्यांच्या क्रिया

१ प्रसंगसिद्धेरिति चतुर्दशीश्राद्धं न भवतीति भावः । २ श्राद्धाकरणे इति यदि महालये चतुर्दशीश्राद्धं न कृतं तदा वृश्चिकदर्शनेन पर्यंतं कस्मिंश्चिदेने कार्यमित्यर्थः । ३ पार्वणेनेवेति संक्राता उपरागे च पूर्वोत्सवमहालये । निर्वपेद्दत्तपिंडानामिति प्राह प्रजापतिरिति वाक्यस्य शस्त्रहता- नादिनांतरे पार्वणमापकत्वादिति मयूखाशयः । ४ लक्षणायामिति लुप्तपिंडोदकक्रिया इति पदं लक्षणया प्रमादादिमरणबोधकमित्यर्थः । ५ पतितेनापीति अपतितस्येति शेषः पतितस्येति अपतितेनापीति शेषः ॥

केल्यो असतील त्यांचें करावें, इतरांचें करूं नये, असें आम्हीं समजतो. आतां जें मनु-“पिंडपितृयज्ञाचा होम लौकिकामीबर होत नाही, म्हणून आहितामीला दर्शावांचून इतर दिवशीं श्राद्ध सांगितलें नाही.” ह्या वचनांत पहिल्या अर्धांत दर्शावांचून श्राद्ध न होण्याला हेतु सांगितला आहे. पृथ्वीचंद्रोदयादिक या वचनांत सांगितलें तसेंच मानितात. आहितामीला इतर दिवशीं पिंडपितृयज्ञ विधीनं श्राद्धनिषेधाकरितां हें वचन आहे. सकल श्राद्धादिकांच्या निषेधाकरितां नाही, असें आमचे गुरु सांगतात. कृष्णपक्षांतील श्राद्ध इतरदिवशीं प्राप्त झालें तें आहितामीनं दर्शाचे ठायींच करावें. असा ह्या वचनांत नियम केला आहे, असें आम्हीं (कमलाकरभट्ट) सांगतो. आहितामीला दर्शावांचून म्हणजे पार्वणावांचून श्राद्ध नाही, तें ऐकून कोणेंही सांवत्सरिकादिश्राद्धांत एकोद्दिष्ट नाही, असें हरिहर सांगतो. इति चतुर्विंशी.

अमायाविशेषमाहापराकैयमः हंसेकरस्थितेयातुअमावास्याकरान्विता साशेयाकुंजरच्छायाइतिबौ-
धायनोब्रवीत् वनस्पतिगतेसोमेछायायाप्राज्जुखीभवेत् गजच्छायातुसाप्रोक्तातस्यांश्राद्धंप्रकल्पयेत् भारते
अजेनसर्वलोहेनवर्षासुनियत्रतः हस्तिच्छायासुविधिवत्कर्णव्यजनवीजितम् श्राद्धंदद्यादितिशेषः ।

अमावास्यास्य विशेष सांगतो अपराकांत यम—“सूर्य हस्तनक्षत्रास्य असतां जी हस्तनक्षत्रयुक्त अमावास्या ती गज-
च्छाया जाणावी, असें बौधायन सांगता झाला.” सोम वनस्पतींत गेला असतां जी प्राज्जुख छाया होते ती गजच्छाया
म्हंटली आहे, तिच्या ठिकाणीं श्राद्ध करावें.” भारतांत—“वर्षाकालीं व्रतनियम धारण करून गजच्छायेचे ठायीं म्हणजे
हस्तीच्या (हस्तनक्षत्राच्या) कानांनी छाया जेथें पडली असेल अशा ठिकाणीं यथाविधि श्राद्ध करावें.”

आश्विनशुक्लप्रतिपदिदौहित्रस्यमातामहश्राद्धमुक्तम् हेमाद्रीसंग्रहेच जातमात्रोपिदौहित्रोविणमानेपि-
मातुले कुर्यान्मातामहश्राद्धंप्रतिपद्याश्विनेसितइति इयंसंगवव्यापिनीप्राह्येतिनिर्णयदीपेउक्तम् प्रतिपद्या-
श्विनेशुक्लेदौहित्रस्त्वेकपार्वणम् श्राद्धंमातामहंकुर्यात्सपितासंगवेमदा जातमात्रोपिदौहित्रोजीवत्यपिचमातुले
प्रातःसंगवयोर्मध्येआर्यस्यप्रतिपद्भवेदिति वचनान् अत्रममूलत्वंविमृश्यम् इदंचमलमासेनकार्यं स्पष्टमास-
विशेषाख्याविहितंवर्जयेन्मलेइतिनिषेधान् इदंच जीवत्पितृकृणैवकार्यमितिशिष्टाः इदंचशिष्टाचारात्सपि-
डकंकार्यमतिकेचित् पिंडरहितंनयुक्तं जीवत्पितृकस्य मुंडनंपिंडदानंचप्रेतकर्मचसर्वशः नजीवत्पितृकः-
कुर्याद्विर्णीपतिरेवचेतिदक्षेणपिंडनिषेधान् आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावाच्चेतिसंक्षेपैः इतिश्रीकमलाकर-
भट्टकृतेनिर्णयसिंधौमहालयनिर्णयः ।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदेस्य दौहित्राया मातामहश्राद्ध सांगितलें आहे—हेमाद्रींत व संग्रहांत—“मातुल वियमान
अमतांही उत्पन्न झालेल्याही (बाल्य अवस्थेंत अमलेल्याही) दौहित्रांनं आश्विनशुक्लप्रतिपदेस्य मातामहश्राद्ध करावें.”
ही प्रतिपदा दौहित्रश्राद्धाविषयी संगवकालव्यापिनी घ्यावी, असें निर्णयदीपांत सांगितलें आहे. तें असें—“जीवत्पितृक
दौहित्रांनं आश्विनशुक्लप्रतिपदेस्य संगवकालीं एकपार्वण मातामहश्राद्ध गर्वेदा करावें. मातुल जीवत असतांही उत्पन्न होतांच
दौहित्रांनं प्रतिपदेस्य प्रातःकाल व संगवकाल यांच्यामध्ये आर्यांचें (मातामहांचें) श्राद्ध करावें.” असें वचन आहे. ह्या
वचनाविषयीं समूलपणाचा विचार करावा. हें मातामहश्राद्ध मलमासांत करूं नये. कारण, “विशेष महिन्यांचें स्पष्ट नांव
थेऊन जें विहित कर्म तें मलमासांत वर्ज्य करावें.” असा निषेध आहे. हें श्राद्ध जीवत्पितृकानेंच करावें, असें शिष्ट
सांगतात. हें श्राद्ध शिष्टाचारावरून सपिंडक करावें असें केचित् म्हणतात. पिंडरहित करणें हें योग्य आहे. कारण,
“क्षौर, पिंडदान, आणि सर्व प्रेतकर्म हें जीवत्पितृकानें व गर्भिणीपतीनं करूं नये” असा दृष्टान्त जीवत्पितृकाला पिंडनिषेध
केला आहे. आणि आन्वष्टक्य (नवमी) श्राद्धांत पिंडाविषयी विशेष वचन आहे, तसें येथें विशेष वचनही नाही. याप्रमाणें
हा संक्षेपांत निर्णय समजावा. इति महालयनिर्णयः.

अथाश्विनशुक्लप्रतिपदिनवरात्रारंभः तर्निर्णयः तत्रभार्गवार्चनदीपिकायांदेवीपुराणेसुमेधा-
उवाच शृणुराजन्प्रवक्ष्यामिचंडिकापूजनक्रमम् आश्विनस्यसितेपक्षेप्रतिपत्सुशुभेदिने इत्युपक्रम्योक्त्वा शुद्धे-

१ “त्रिमुहूर्तं वसेदहं त्रिमुहूर्तं वसेज्जले त्रिमुहूर्तं वसेद्रोपु त्रिमुहूर्तं वनस्पतीं” ॥ हें वचनं ह्तीयाचे उत्तरार्धांत सांगितले
आहे. त्याचा अर्थ—सोम म्हणजे चंद्र नष्ट झाला असतां तीन मुहूर्तं सूर्यांत असतो, तीन मुहूर्तं उदकांत असतो, तीन मुहूर्तं
गारेंत असतो, आणि तीन मुहूर्तं वनस्पतींत असतो. २ या वचनाचा अर्थ, असा समजावयाचा आहे. इतर रीतीनें होव असेल
तर विद्वानांनीं करावा. ३ अत्र पुरुरवार्चनसंबंधकाविशेषदेवाः भूतिलोचना इतिकेचित् । एवं प्रतिपदपराह्मव्यापिनी प्राक्षेति वक्ष्यः
संगवव्यापिनीति केचित् । अस्य श्राद्धस्य यावद्विश्विकदशनं गौणकाल इति कालतत्त्वविवेचने इति धर्मसिंधुसारम् ॥

विचौप्रकर्तव्यप्रतिपदोर्ध्वगामिनी आद्यास्तुनाडिकास्यक्त्वाषोडशद्विंशतिपदा अपराह्वेचकर्तव्यशुद्धसंतति-
कांक्षिभिः इदंचापराह्वयोगिन्याः प्राशस्त्यद्वितीयदिनेप्रतिपदोभावेक्षेयम् तथातत्रैवदेवीपुराणेडामरतं-
त्रैवदेवीवचः अमायुक्तानकर्तव्याप्रतिपत्पूजनमम मुहूर्तमात्रकर्तव्याद्वितीयादिगुणान्विता आद्याःषोड-
शनाडीस्तुलब्धायःकुरुतेनरः कलशस्थापनंतत्रस्मरिष्टंजायतेध्रुवं मार्कण्डेयदेवीपुराणयोः पूर्वविद्वातु-
याशुक्लामवेत्यप्रतिपदाश्विनी नवरात्रव्रतंतस्यानकार्यशुभमिच्छता देशभंगोभवेत्तत्रदुर्भिक्षंचोपजायते नंदायां-
दर्शयुक्तायांयत्रस्यान्मपूजनमिति स्कांदेपि प्रतिपदाश्विनेमासिसाशुद्वाशुभदाभवेत् भाद्रपंचदशीकृष्णा-
तयायुक्तानशस्यते विरुद्धफलदासाहिपुत्रदारभयावहेति तथा वर्जनीयाप्रयत्नेनअमायुक्तातुपार्थिव द्वितीया-
दिगुणैर्युक्ताप्रतिपत्सर्वकामदा तथादेवीपुराणे योमांपूजयतेनित्यंद्वितीयादिगुणान्विताम् प्रतिपच्छारदी-
क्षात्वासोश्रुतेसुखमन्ययम् यदिकुर्यादमायुक्ताप्रतिपत्स्थापनेमम तस्यशापायुतंदत्वाभस्मशेषंकरोम्यहम्
आग्रहात्कुरुतेयस्तुकलशस्थापनंमम तस्यसंपद्विनाशःस्याज्येष्ठःपुत्रोविनश्यति अमायुक्तानकर्तव्याप्रतिपदं-
डिकार्चने धनार्थिभिर्विशेषेणवंशहानिश्चजायते नदर्शकलयायुक्ताप्रतिपदंडिकार्चने उदयेद्विमुहूर्तापिप्राक्षासो-
दयदायिनीति देवीपुराणे याचाश्रयजिमासेत्यात्प्रतिपद्द्रयान्विता शुद्धाममाचनंतस्यांशतयज्ञफलप्रदम्
रुद्रयामले अमायुक्तासदाचैवप्रतिपदिनिदितामता तत्रचेत्स्थापयेत्कुंभंदुर्भिक्षंजायतेध्रुवं प्रतिपत्सद्वितीयातु-
कुंभारोपणकर्मणीति यद्यपिरुद्रयामलंडामरंचनिर्मूलंतथाप्यविरोधानंप्रचाराश्चतद्वचनानिलिख्यंते तिथि-
तत्त्वदेवीपुराणेपि प्रातरावाहयेदेवीप्रातरेवप्रवेशयेत् प्रातःप्रातश्चसंपूज्यप्रातरेवविसर्जयेत् तत्रैव
शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकी साकार्योदयगामिन्यांतत्रतिथियुग्मता तथा कुहूकाष्ठोपसंयुक्तावर्ज-
येत्यप्रतिपत्तिथिम् राज्यनाशायसाप्रोक्तानिदिताचाश्रपूजनइति ।

आतां आश्विनशुक्ल प्रतिपदेस देवीनवरात्रारंभ होय. त्याचा निर्णय—त्याविषयी भागवार्चनदीपिकेत—देवी-
पुराणांत—सुमेधा सांगतो—“हे राजा, चंडिकेच्या पूजनाचा क्रम सांगतो, श्रवण कर ! आश्विन शुक्ल पक्षी प्रतिपदेस
शुभ दिवशी” असा उपक्रम करून सांगतो—“तें नवरात्र शुद्ध तिथीस करावें. प्रतिपदा ऊर्ध्वगामिनी असतां शुद्ध संतति
इच्छिणाऱ्यांनी पहिल्या सोळा किंवा बारा घटिका सोडून अपराह्णी करावें.” ही जी अपराह्णव्यापिनी प्रतिपदा प्रशस्त
सांगितली ती दुसऱ्या दिवशी प्रतिपदा नसतां जाणावी. तसें तेथेंच (भागवार्चनदीपिकेत) देवीपुराणांत व डामर-
तंत्रांत देवीवाक्य—“माझ्या पूजेविषयी अमावास्यायुक्त प्रतिपदा घेऊं नये. द्वितीयादि गुणांनी युक्त अशी मुहूर्तमात्र
जरी प्रतिपदा असली तथापि तीच घ्यावी. पहिल्या सोळा घटिकांत जो मनुष्य कलशस्थापन करितो तेथें निश्चयानें अरिष्ट
होतें.” मार्कण्डेय व देवीपुराणांत—“शुभ इच्छिणारां पूर्वविद्धा (अमावास्यायुक्त) जी आश्विनशुक्ल प्रतिपदा तिचे
ठायीं नवरात्रव्रत करूं नये; कारण, दर्शयुक्त प्रतिपदेस जेथें माझें पूजन होतें तेथें देशभंग होतो व दुर्भिक्षही होतें.”
स्कंदपुराणांतही—“आश्विनमासांत जी प्रतिपदा शुद्ध ती शुभदायक होईल. भाद्रपद कृष्ण अमावास्यायुक्त प्रतिपदा
प्रशस्त नाही. कारण, ती विपरीत फल देणारी पुत्र, स्त्रिया यांस भयावह होते.” तसेंच “हे राजा ! अमायुक्त प्रतिपदा
प्रयत्नानें वर्ज्य करावी. व द्वितीयादि गुणांनी युक्त प्रतिपदा सर्वे मनोरथ देणारी होय.” तसेंच देवीपुराणांत—“द्विती-
यादि गुणयुक्त अशी शारदीप्रतिपदा जाणून जो माझें पूजन नित्य करितो तो अविनाशी सुख पावतो. जर अमायुक्त प्रति-
पदेस माझें स्थापन करील तर त्यास मी हजारों शाप देऊन भस्म करीन. जो आग्रहानें माझें कलशस्थापन (अमायुक्त-
प्रतिपदेस) करतो त्याच्या संपत्तीचा नाश होतो व ज्येष्ठपुत्राचा नाश होतो. चंडिकेच्या पूजनाविषयी अमायुक्त प्रतिपदा
करूं नये; धनाची इच्छा करणारांनीं तर विशेषकरून न करावी. केली तर वंशहानि होते. कलामात्र दर्शानें युक्तही प्रतिपदा
चंडिकापूजनाविषयी करूं नये. सूर्योदयां दोन मुहूर्तही प्रतिपदा असेल ती घ्यावी. कारण, ती उत्कर्ष करणारी आहे.”
देवीपुराणांत—“आश्विनमासांत द्वितीयेन युक्त जी प्रतिपदा ती शुद्ध, तिचेठायीं माझें पूजन केलें असतां तें शंभर
यज्ञांचें फल देणारें होतें.” रुद्रयामलांत—“अमायुक्त प्रतिपदा सर्वथा निंदित होय. अमायुक्त प्रतिपदेचे ठायीं जर
कुंभस्थापन करील तर निश्चयानें दुर्भिक्ष होईल. द्वितीयासहित प्रतिपदा कुंभस्थापनकर्माविषयी शुभ होय.” जरी रुद्रया-
मल व डामरतंत्र हीं निर्मूल आहेत तरी तीं अविरुद्ध असल्यामुळे व प्रचारांत असल्यामुळे त्यांची वचनें लिहिलीं

१. प्रतिपत्सद्वितीयाचैवदाहणकालमाह प्रातरिति । यद्यपीदं पत्रिकापूजाविषयं तथापि देवीपूजायामपि योजितं वाचकाभावात् ॥
२ न तत्र तिथियुक्तवेति । शुभमावास्याजुरोषेन दुर्गापूजाया न निर्णय इत्यर्थः ॥

आहेत. तिथितत्त्वांत—देवीपुराणांतही—“प्रातःकालीं देवीचें आवाहन करावें व प्रातःकालीं स्थापन करावें. वररोज प्रातःकालीं पूजन करून प्रातःकालीच विसर्जन करावें.” तेथेंच—“शरदृतूत आणि वर्षप्रतिपदेस जी महापूजा करितात, ती उदयव्यापिनी तिथीस (प्रतिपदेस) करावी. त्या पूजेविषयीं युग्मवाक्यानें अमावास्यायुक्त प्रतिपदा घेऊं नये.” तसेंच “काष्ठा (कलेचा तिसावा भाग) प्रमाणही अमावास्यायुक्त प्रतिपदा वर्ज्य करावी. कारण, ती राज्यानांशाकरितां होचे, आणि अश्वपूजेविषयीं ती निंदित आहे.”

एषुवचनेषुकलशस्थापनग्रहणात् तदेवप्रथमदिनेनिषिध्यतेनतूपवासादि तस्य प्रतिपद्यमावास्यास्येति युग्मवाक्यात् शुक्लास्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमत इति दीपिकोक्तेः शुक्लपक्षेदर्शविद्धेतिमाधवोक्तेश्च पूर्वदिने प्राप्तस्यबाधेमानाभावादितिकेचित् वस्तुतस्तुपूर्वोक्तवाक्येषुबुद्धिकार्वनपूजाग्रहणादुपवासादेःश्रांगत्वात्प्रधानदेवीपूजादावपिपरेतिथुक्तं कलशस्थापनग्रहणंतुपलक्षणम् अतएवदेवबलः व्रतोपवासनियमेषट्टिकैकापियाभवेत् सातिथिस्तद्दिनेपूज्याविपरीतातुपैतृकइति अत्रघटिकांमुहूर्तइतिगौडाः यदातुपूर्वदिनेसंपूर्णाशुद्धाच भूत्वापरदिनेवर्धतेतदासंपूर्णत्वादमायोगाभावाच्चपूर्वैव यानिचद्वितीयायोगनिषेधकानिवचनानिकेचित्पठंति तान्यपिशुद्धाधिकनिषेधपराणि परदिनेप्रतिपदोत्पत्तासत्त्वेतुदर्शयुतापिपूर्वप्राक्षा तदाहलल्लुः तिथिःशरीरं तिथिरेवकारणंतिथिःप्रमाणंतिथिरेवसाधनमिति यानिर्त्वमायुक्ताप्रकर्तव्येत्यादीनिनृसिंहप्रसादेवचनानितानिसमूलवेसत्येतद्विषयाणि अत्रेदंतत्त्वम् पूर्वोक्तवाक्यानांसर्वेषांहेमाद्राद्यलिखितत्वेननिर्मूलत्वात्तैश्चान्यनिर्णयस्यानुक्तेःसामान्यनिर्णयान्तुपूर्वप्राप्तावपि गौडनिबंधेषुविशेषोपनिर्णयादौदयिकीप्राक्षा तत्रापिघटिकैकेत्यस्य द्विमुहूर्तस्तुतिवोक्तेर्द्विमुहूर्ताप्राक्षा उदितेदेवतंभानावित्यत्रद्विमुहूर्तत्रिरहश्चेतिऔदयिक्याद्विमुहूर्तत्वनियमात् तेनउदयेद्विमुहूर्तापीत्याद्यनुसारोपि मुहूर्तमात्राकर्तव्येतिद्विमुहूर्तस्तुतिः अन्यथाद्विमुहूर्तविधिबैयर्थ्यात् केचित्तुमुहूर्तमात्रेतिवचनान्ततोऽन्यूनत्वेपरानेत्याहुः गौडाअप्येवम् ।

वरील वचनांत कलशस्थापन सांगितल्यामुळे तेंच अमावास्यायुक्त प्रतिपदेस निषिद्ध केलें आहे. उपवासादिक निषिद्ध केलें नाहीं. कारण, ‘प्रतिपदा व अमावास्या यांचें युग्म महाफलदायक आहे.’ असें युग्मवाक्य प्रथम परिच्छेदांत सांगितलें असल्यामुळे; आणि “शुक्लपक्षांतील प्रतिपदा अमायुक्त ध्यावी” असें दीपिकावचन असल्यामुळे; व “शुक्लपक्षीं (प्रतिपदा) दर्शविद्धा करावी” असें माधवानें ही वचन असल्यामुळे पूर्वेदिवशीं जें प्राप्त उपवासादिक त्याचा बाध करण्याविषयीं प्रमाण नाहीं, असें केचित् म्हणतात. वास्तविक म्हटलें तर-पूर्वोक्त वाक्यांत ‘चंद्रिकेचें अर्चन-पूजन’ असें सांगितल्यामुळे पूजा प्रधान व उपवासादिक त्याचें अंग असल्यामुळे प्रधान अशा देवीपूजादिकांविषयीं देखील परा ध्यावी, हें योग्य आहे. कलशस्थापन म्हटलें तें पूजेचें उपलक्षण होय. म्हणूनच देवल सांगतो—“व्रत, उपवास, नियम यांविषयीं प्रातःकालीं एक घटिकाही जी तिथि असेल ती तिथि त्या दिवशीं पूज्य आहे. पैतृककर्माविषयीं याच्या विपरीत समजावी.” या वचनांत घटिका म्हणजे मुहूर्त समजावा, असें गौड सांगतात. ज्या वेळीं पूर्वदिवशीं संपूर्ण शुद्ध (१० घटिका) असून परदिवशीं वाढलेली असेल त्या वेळीं संपूर्ण असल्यामुळे व अमावास्याचा योग नसल्यामुळे पूर्वाच ध्यावी. जीं द्वितीयायोगनिषेधक वचनें केचित् सांगतात तीं देखील पूर्वदिवशीं शुद्ध असून दुसऱ्या दिवशीं वाढलेल्या तिथीचा निषेध करणारीं आहेत. दुसऱ्या दिवशीं प्रतिपदा मुळीच नसेल तर दर्शयुक्त असली तरी पूर्वाच ध्यावी. तें सांगतो लल्लु—“कर्माचें शरीर तिथि आहे. कर्मांला कारण तिथि आहे. कर्मांला प्रमाण तिथि आहे. आणि कर्मांला साधन तिथिच आहे.” ह्या चार हेतूंनीं ज्या कर्मास जी तिथि सांगितली ती अवश्य असलीच पाहिजे असें समजावें. आतां जीं “अमावास्यायुक्त प्रतिपदा करावी” इत्यादिक नृसिंहप्रसादांत सांगितलेलीं वचनें तीं समूल अगतील तर ह्या (प्रतिपदा-क्षया) विषयीं समजावीं. येथें खरा प्रकार अग्या की, पूर्वी सांगितलेलीं वाक्ये हेमाद्रिप्रभृति निबंधकारांनीं न लिहिल्यामुळे तीं सारीं निर्मूल असल्याकारणानें, व त्या निबंधकारांनीं अन्य निर्णय सांगितला नसल्याकारणानें, सामान्य निर्णयावरून पूर्वीची प्राप्त असली तरी गौडनिबंधांत विशेष निर्णय केल्यानें उदयव्यापिनी ध्यावी. त्या उदयव्यापिनींतही ‘एक घटिका’ असें सांगितलें तें द्विमुहूर्ताची लुति आहे, असें सांगितल्यावरून द्विमुहूर्ता ध्यावी. कारण, प्रथम परिच्छेदांत

१ व्रतोपवासस्नानादौ घटिकेका यदा भवेत् ॥ उदये सा तिथिस्तत्र विपरीता तु पैतृक इति पाठांतरं ॥ २ द्वितीयेति । द्वितीयावैष-
संयुक्ता प्रतिपच्छंभिकार्वने ॥ मोहाद्रयोपदेशोक्तयुत्पन्नविनाशनमित्यादीनीत्यर्थः ॥ ३ इदानीं अमायुक्तविधि व्यवस्थापयति ।
अमेति । अमायुक्ता प्रकर्तव्या प्रतिपच्छंभिकार्वने । न प्राक्षा परसंयुक्ता शुद्धसंतिकांक्षिमिरित्यादीनीत्यर्थः ॥ ४ उदये देवतं भवती
पिथं चास्तमिते रवौ ॥ द्विमुहूर्तं त्रिरहश्च सा तिथिर्हंभ्यकव्ययोः ॥

विशिष्टिर्गण्यं प्रकरणीं “उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ ॥ द्विसुहृत् त्रिरहश्च सा तिथिर्ह्यव्यवयोः” असें विष्णु-
स्मृत्यवचन आहे. त्याचा अर्थ—“सूर्योदय झाला असतां दोन सुहृत् देवांचे आहेत. आणि दिवसाचे शेवटचे तीन सुहृत्
पितरांचे आहेत, म्हणून जी तिथि प्रातःकाळीं दोन सुहृत् असेल ती देवकर्माविषयीं ध्यावी, आणि जी सायंकाळीं तीन सुहृत्
असेल ती पित्र्यकर्माविषयीं ध्यावी.” या वचनानें उदयव्यापिनी म्हणजे द्विसुहृतां असा नियम सांगितला आहे. तेणेंकरून
‘उदये द्विसुहृतां पि प्राह्या’ ह्या वर सांगितलेल्या देवीपुराणवचनास अनुसरल्यासारखेंही झालें. ‘सुहृत्तमात्रा कर्तव्या’ हें वर
सांगितलेलें देवीपुराण—डामरतंत्रांतील देवीवचन तें द्विसुहृतांची स्तुति आहे. असें नसेल तर (सुहृत्तमात्रा ध्यावयाची
असेल तर) देवीपुराणांत द्विसुहृतांचें विधान केलें तें व्यर्थ होईल. केचित् तर ‘सुहृत्तमात्रा कर्तव्या’ ह्या वचनावरून
सुहृत्तांपेक्षां न्यून असेल तर परा करूं नये, असें सांगतात. गौडही असेंच सांगतात.

अत्रदेवीपूजैवप्रधानम् उपवासादित्वंगम् अष्टम्यांचनवम्यांचजगन्मातरमंबिकाम् पूजयित्वाश्विनेमासि-
विशोकोजायतेनरइतिहेमाद्रौभविष्ये तस्याएवफलसंबंधान् नवमीतिथिपर्यंतवृद्ध्यापूजाजपादिकमिति-
तत्रैवदेवीपुराणात् शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवर्षिकीतिमार्कंडेयपुराणाच्च पूर्ववचनादष्टमीनव-
मीपूजैवप्रधानमन्यत्सर्वमंगमितिगौडाः एकाहपक्षोपिकालिकापुराणे यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यांचनवम्याम-
थसाधकः पूजयेद्वरदादेवीमहाविभवविस्तारैरिति तत्त्वंतुराजसूयेन्ययागैःसमप्रधानायाःसहितायाअप्यवे-
ष्ट्रेरेतयाभ्राद्यकामंयाजयेदित्येकत्वान्मध्येविधानाच्च यथाफलार्थोबहिःप्रयोगस्तथा नवरात्रमध्यस्थायाअष्टम्या
नवम्यावाफलार्थःपृथक्प्रयोगः रूपनारायणधृतदेवीपुराणे महानवम्यांपूजेयंसर्वकामप्रदायिका
सर्वेषुचैववर्णेषुतवभक्त्याप्रकीर्तिता कृत्वाप्रोतियशोराज्यपुत्रायुर्धनसंपदः साचकाम्यानित्याच एवमन्यैरपि-
तथादेव्याःकार्यंपूजनम् विभूतिमतुलालंघुंचतुर्वर्गप्रदायकमिति योमोहादथवालस्यादेवीदुर्गामहोत्सवे न-
पूजयतिदंभाद्राद्वेषाद्वाप्यत्रभैरव क्रुद्धाभगवतीतस्यकामानिष्टान्निहंतिवै इतिकालिकापुराणेफलनिंदाश्रुतेः
वर्षेवर्षेविधातव्यंस्थापनंचविसर्जनमिति तिथितत्त्वेदेवीपुराणाच्च अत्रोपवासादिकमुक्तंहेमाद्रौभ-
विष्ये एवंचविध्यवासिन्यांचनवरात्रोपवासतः एकभक्तेननक्तेनतथैवाथाचितेनच पूजनीयाजनैर्देवीस्थाने-
स्थानेपुरेपुरे गृहेगृहेशक्तिपरैर्ग्रामेग्रामेवनेवने स्नातैःप्रमुदितैर्हस्तैर्ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्नृपैः वैश्यैःशूद्रैर्भक्तियुक्तै-
र्म्लेंच्छैर्न्यैश्चमानवैरिति यत्तुरूपनारायणीयेभविष्ये एवंनानाम्लेच्छगणैःपूज्यतेसर्वदस्युभिरिति तत्तां-
मसपूजापरम् विनामंत्रैस्तामसीस्यात्किंरातानांतुसंमतेतितत्रैवोक्तेः मदनरत्ने देवीपुराणेपि कन्या-
संस्थेरवौशक्रशुक्लामारभ्यनंदिकां अयाचीह्यथवैकाशीनक्ताशीवाथवांन्वदः भूमौशयीतचामंत्र्यकुमारीभोजये-
न्मुदा वस्त्रालंकारदानैश्चसंतोष्याःप्रतिवासरम् बलिंचप्रत्यहंदद्यादोदनंमांसमापवत् त्रिकालंपूजयेद्देवींजप-
स्तोत्रपरायणइति नंदिकाप्रतिपत्तिथिरिति मैथिलाः षष्ठीतिगौडाः ।

ह्या नवरात्राचे ठायीं देवीपूजाच प्रधान. उपवास, स्तोत्रपाठ, जप इत्यादिक तर अंग आहे. कारण, “आश्विनमासांत
अष्टमी व नवमी या तिथीस जगन्माता अंबिकेचें पूजन केलें असतां मनुष्य शोकरहित होतो—” ह्या हेमाद्रींतील
भविष्यवचनांत पूजेलाच फल सांगितलें आहे. व “नवमी तिथीपर्यंत वृद्धीनं (पहिले दिवशीं एक, दुसऱ्या दिवशीं दोन
असें) पूजा व जप इत्यादि करावें,” असें तेथेंच देवीपुराणवचन आहे: आणि “शरत्काळीं प्रतिवर्षीं महापूजा कर्तात”
असें मार्कंडेयपुराणवचनही आहे. वरील भविष्यवचनावरून अष्टमी-नवमीपूजाच प्रधान आहे; बाकीचें सर्व अंग होय
असें गौड सांगतात. एक दिवसाचा पक्षही सांगतो, कालिकापुराणांत—“जो साधक असेल त्यानं एका अष्टमीस
अथवा नवमीस वरदादेवीचें मोठ्या ऐश्वर्यविस्तारांनीं पूजन करावें.” याचें तत्त्व म्हणलें तर असें की, राजसूयज्ञांत अवेष्टि
नांवाचा याग व इतर याग सांगितले आहेत. इतर यागांत जीं प्रधानकर्म तींच या अवेष्टियागांत आहेत. असें असून ती
अवेष्टि सर्व यागांसह सांगितली असूनही ‘जो अन्नादिकांची इच्छा करील त्याच्याकडून ही अवेष्टि करावी’ या अर्थाच्या

१ स्थाने स्थाने ब्राह्मणैः । पुरे पुरे क्षत्रियैः नृपैः । गृहे गृहे वैश्यैः । ग्रामे ग्रामे शूद्रैः ॥ वने वने म्लेच्छैः ॥ अथवा खाना-
दिभिः सर्वत्र ब्राह्मणादिभिरित्यर्थः ॥ २ अन्यैः प्रतिलोमानुलोमैः ॥ ३ तामसेति पूजा त्रिविधा भविष्ये ॥ सात्त्विकी राजसी पूजा
तामसी चेति सा त्रिधा ॥ सात्त्विकी जपयज्ञाद्यैर्नैवैश्व निरामिषैः ॥ राजसी बलिदानेन नैवैश्वः सामिषैस्तथा ॥ सुरांसांसाधुपाहारैर्ज-
पयैर्विंशतु या ॥ विना मंत्रैस्तामसी स्यात्किंरातानां तु संमतेति ॥ तत्र सात्त्विक्यां ब्राह्मणसैवाधिकारः राजस्यां क्षत्रियादेरिति ॥
४ किंरातानामिति म्लेच्छाद्युपलक्षणं साम्यात् ।

वचनांत 'एतया' असे एकवचन असल्यामुळे; आणि मध्ये विधान केल्यामुळे; त्या अन्नादिकलाकरितां राजपूजवकास बाहेर जसा प्रयोग होतो, तसा नवरात्रामध्ये असलेल्या अष्टमीचा किंवा नवमीचा फलार्थ पृथक् प्रयोग होतो. रूपनारायणग्रंथांत—**देवीपुराणांत**—“महानवमीचे ठायीं ही पूजा सर्व मनोरथ देणारी होय. हे वत्सा ! सर्व वर्णाधिपती तुम्हा भक्तीस्त्व सांगितली आहे, ही केली असतां यश, राज्य, पुत्र, आयुष्य, धन, संपत्ति, हीं प्राप्त होतात.” ही पूजा काम्य व नित्यही आहे. कारण, “असेंच अन्यानीही बहुत ऐश्वर्यप्राप्तीकरितां धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हे चार वर्ग देणारे देवीचें पूजन करावें.” “जो मनुष्य मोहानें अथवा आलस्यानें अथवा दमानें किंवा द्वेषानें महोत्सवांत दुर्गादेवीचें पूजन करित नाही त्यावर भगवती क्रुद्ध होऊन इष्ट मनोरथांचा नाश करिते.” असें **कालिकापुराणांत** फल व निदाभवण आहे. आणि “प्रतिवर्षीं देवीचें स्थापन व विसर्जन करावें.” असें **तिथितत्त्वांत देवीपुराणांत** वचनही आहे. तेथे उपवासादिक सांगतो—**हेमाद्रीत—भविष्यांत**—“याप्रमाणें विंध्यवासींनीं देवीचेठायीं नवरात्र उपवास, किंवा एक-भक्त, किंवा नक्त, अथवा अयाचित करून जनांनीं प्रत्येक स्थानीं, प्रत्येक नगरीं, प्रत्येक ग्रहीं, प्रत्येक ग्रामीं, प्रत्येक वनीं नवरात्र करावें. नान केलेले अत्यंत आनंदित असे ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजे, वैश्य, शूद्र यांनीं व भक्तियुक्त स्लेच्छांनीं व अन्य मनुष्यांनींही देवीचें पूजन करावें.” आतां जें **रूपनारायणग्रंथांत भविष्यांत**—“असेंच अनेक स्लेच्छ व भिन्न इत्यादि चोर देवीची पूजा करतात” असें वचन तें तामसपूजापर होय. कारण, “मंत्रावांचून तामसीपूजा भिलांस विहित आहे.” असें तेथेंच सांगितलें आहे. **मदनरत्नांत देवीपुराणांतही**—“कन्याराशीस सूर्य असतां शुक्ल प्रतिपदेस आरंभ करून अयाचित, अथवा एकभुक्त, किंवा नक्त, अथवा उदकभक्षण करून भूमीवर निद्रा करून कुमारीस आमंत्रण करून त्यांना आनंदानें भोजन घालावें. प्रतिदिवशीं वस्त्र अलंकार कुमारीला देऊन संतुष्ट करावें. प्रतिदिवशीं मांसमाषयुक्त भाताचा बलि द्यावा. जप व स्तोत्रपाठ करून त्रिकाल देवीचें पूजन करावें.” या वचनांत नंदिका म्हणजे प्रतिपदा तिथि असें **मैथिल** सांगतात. नंदिका म्हणजे पक्षा असें **गौड** म्हणतात.

तच्चपूजनंरात्रौकार्यम् आश्विनमासिमेघांतेमहिषासुरमर्दिनीं निशामुपूजयेद्भक्त्यासोपवासादिकः क्रमादिति **देवीपुराणात् संग्रहेपि** आश्विनमासिमेघांतेप्रतिपद्यातिथिर्भवेन तस्यानक्तप्रकुर्वीतरात्रौदेवीचपूजयेत् रात्रिरूपायतोदेवीदिवारूपोमहेश्वरः रात्रित्रतमिदंदेविसर्वपापप्रणाशनम् सर्वकामप्रदंनृणांसर्वशत्रुनिवर्हणं रात्रित्रतमिदंतस्यरात्रांतकृत्यतेष्यते नक्तत्रतमिदंयस्मादन्यथानरकेगतिरित्यादिवचनाच्च रात्रित्रतत्वमेवाभिप्रेत्यमाधवेनोक्तम् तस्यनक्तत्रतत्वादिति नतुरात्रिभोजनान् ननु मासिचाश्वयुजेशुक्लेनवरात्रेविशेषपतः संपूज्यनवदुर्गाचनक्तंकुर्यात्समाहितः नवरात्राभिधंक्रमनक्तत्रतमिदंस्मृतं आरंभेनवरात्रस्येत्यादिस्कांदान्माधवोक्तेश्वनक्तमेवप्रधानमितिचेत् न नवरात्रोपवासतइत्यादेरनुपपत्तेः तेनपाक्षिकनक्तानुवादेशं नित्यानित्यसंयोगविरोधान् नह्यग्निहोत्रेदशमपक्षेप्राप्तस्य द्वात्रिंशोतीत्यसंश्रित्यकामहोमेनुवादोषदते नित्यवदनुवादयोगादित्युक्तं**वार्तिके** तथात्रापि तेनात्रतद्वदगुणात्फलमितिज्ञेयम् ननु रात्रेः कर्मकालत्वेतस्यापिनीपूर्वैवप्रतिपत्प्राप्त्यान् मैत्रम् न्यायतःप्राप्तावपिपूर्वाक्तवचनैर्बाधान् यथापूर्वेषुःकर्मकालव्यापिनीमपित्यक्त्वास्वल्पापिपरैवरामनवमीतिप्रागुक्तम् यथावा निशीथेसतीमपिपूर्वाजन्माष्टमीत्यक्त्वा रोहिणीयुक्तापरैवेति**माधवेनोक्तम्** तथात्रापि वस्तुतस्तु रात्रेःकर्मकालत्ववचसांहेमाद्याल्लिखनान्समूलत्वंविमृश्यमेव त्रिकालंपूजयेदित्यादिपूर्वविरोधाच्च माधवोक्तिस्तुपाक्षिकनक्तानुवादइत्युक्तं तस्मात्सर्वपक्षेषुपरैवप्रतिपदिति सिद्धम् अत्रकेचित्रवरात्रशब्देनवाहोरात्रपरः षट्द्वैसमाप्तिरष्टम्यांहासेमाप्रतिपत्तिशि प्रारंभोनवचंङ्ग्यास्तुनवरात्रमतोर्थवदिति**देवीपुराणादित्याहुः** तन्न अतिहासवृद्ध्योन्युनादिकत्वापत्तेः अत्रमूलाभावाच्च तेनतिथिवाच्येवायं तदुक्तं तिथिवृद्धौतिथिहासेनवरात्रमपार्थक्यम् अष्टरात्रेनदोषोयनवरात्रतिथिक्षेपेइति सचनवरात्रशब्दःकचिल्लक्षणयार्कर्मवाची यथाप्रारंभोनवरात्रस्येत्येतिदिक् ।

तें देवीपूजन रात्रीस करावें. कारण, “आश्विनमासीं मेघांती (शरदृक्तंत) उपवासादियुक्त होऊन क्रमानें महिषासुरमर्दिनी देवीचें भक्तीनें रात्रास पूजन करावें.” असें **देवीपुराण**वचन आहे. **संग्रहांतही**—“आश्विनमासीं मेघांती जी प्रतिपदा तिथि होते तिचेठायीं नक्त करावें, आणि रात्रीस देवीचें पूजन करावें. कारण, देवी रात्रिरूपा व महेश्वर विश्वारूप आहे. यास्तव हे देवि, हें रात्रित्रत सर्व पापनाश करणारें व मनुष्यांस सर्व मनोरथ देणारें व सर्व शत्रुनाश करणारें असें आहे. हें रात्रित्रत रात्रीं करावें, हें इष्ट आहे. कारण, हें नक्तत्रत आहे. हें कंळें नाही तर नरकांत गति होते.” इत्यादि

वचनही आहे. हें रात्रिप्रत आहे, असम्भ अभिप्रायानें माधव सांगतो की, “तें नक्तप्रत आहे.” रात्रिभोजनानें हें होत नाहीं. शंका—आश्विनमासांत शुक्लपक्षांत नवरात्रामध्ये विशेषकरून नवदुर्गेची पूजा करून समाधानपूर्वक नक्त करावें. नवरात्र गावाचें हें कर्म नक्तप्रत म्हटलें आहे. नवरात्राच्या आरंभी.” इत्यादि स्कांदवचनावरून आणि वर माधवानें सांगितल्यावरून ह्या नवरात्रांत मन्त्रच प्रधान (मुख्य) आहे, असें म्हणू ? समाधान—नक्तच प्रधान असें म्हणतां येत नाहीं. कारण “नवरात्रोपवाससः” म्हणजे नवरात्र उपवास किंवा एकभक्त अथवा नक्त इत्यादि वर सांगितलेलें (भविष्यादि-वचन) उपपन्न होणार नाही. तेणेंकरून (भविष्यादि वचनाच्या अनुपपत्तीवरून) असें समजतें की, स्कंदवचन, माधव इत्यादिकांनीं सांगितलेलें वैकल्पिक (विकल्पानें होणाऱ्या) नक्ताचा अनुवाद आहे, म्हणजे भविष्यादिकांनीं सांगितलेलें नक्तप्रत करावें, असें माधव, स्कांद इत्यादिकांनीं सांगितलें आहे. अपूर्व नक्त सांगितलें नाहीं. आतां याच्या उलट म्हणतां—म्हणजे स्कांद—माधव इत्यादिकांनीं सांगितलेल्या नित्य नक्ताचा वर भविष्यादिकांनीं सांगितलेलें अनित्य (वैकल्पिक) नक्त हा अनुवाद असें म्हटलें, तर नित्य तेंच अनित्य (वैकल्पिक) म्हटलें असतां नित्यत्वाचा विरोध येईल. कारण, नित्यत्व व अनित्यत्व एकत्र असत नाहींत. अभिहोत्रांत दहाव्या पक्षां ‘दध्रा जुहोति’ म्हणजे अभिहोत्राचा होम दद्यानं करावा. असें सांगितलें आहे. हा होम नित्य आहे; आणि ‘दध्रा इन्द्रियकामस्य जुहुयात्’ या वाक्यानें इन्द्रियें चागलीं व्हावीं, असें शिक्षणारानें दद्यानं होम करावा, असें सांगितलें आहे. हा होम अनित्य आहे. हा अनित्य होम त्या नित्य होमाचा अनुवाद घडेल काय ? अनुवाद घडत नाहीं. कारण, “नित्याचा अनित्य अनुवाद होत नाहीं.” असें वार्तिकं सांगितलें आहे. तसेंच येथें समजावें. तेणेंकरून त्या ठिकाणीं जसें इन्द्रियेच्छला दधिरूप गुणानें फल आहे. तसें येथें नक्ताद्विप्रत गुणानें फल आहे, असें समजावें. शंका—वरील संग्रहादिवचनावरून रात्री हा कर्मकाल झाला असतां रात्रिव्यापिनी पूर्वा (अमवास्यायुक्त) प्रतिपदा प्राप्त होईल ? समाधान—प्राप्त होत नाहीं. कारण, न्यायानें ‘कर्मणो यस्य यः कालः क्षत्कालव्यापिनी तिथिः’ या वचनानें पूर्वीची प्राप्त झाली तरी पूर्वी सांगितलेल्या अमवास्यायुक्तनिषेधक वचनांनीं बाध होतो. जशी रामनवमी पूर्वदिवशी कर्मकालव्यापिनी असली तरी ती टाकून पराच सांगितली आहे. अथवा जशी जन्माष्टमी मध्यरात्री असलेली देखील पूर्वीची टाकून रोहिणीयुक्त पराच करावी, असें माधवानें सांगितलें आहे, तसें येथेही समजावें. वास्तविक म्हटलें तर, रात्री कर्मकाल आहे, असें बोधन करणारीं वचनं हेमाद्रिप्रभृति निबंधकारांनीं न लिहिल्यामुळे तीं समूल असल्याविषयींचा विचार करावयाचाच आहे. अर्थात् तीं निर्णयाविषयीं प्रमाण होतील असें म्हणतां येत नाहीं. आणि रात्रीच कर्मकाल म्हटला तर, वर सांगितलेल्या मदनरत्नांत धरलेल्या ‘देवीपुराणांतील ‘त्रिकालं पूजयेद्वी’ इत्यादि वचनाचा विरोधही येतो. माधवोक्ति तर पाक्षिक नक्ताचा अनुवाद आहे, असें पूर्वी सांगितलें आहे. तस्मात् सवै पक्षांचे ठायीं पराच प्रतिपदा घ्यावी असें सिद्ध झालें. या ठिकाणीं क्वचित् ग्रंथकार—‘नवरात्र’ हा शब्द नऊ अहोरात्रांचा बोधक आहे. कारण, “एकाद्या तिथीची वृद्धि असतां नवचंडीची समाप्ति अष्टमीस करावी. क्षय झाला असतां अमवास्यायुक्त प्रतिपदेस रात्री प्रारंभ करावा. म्हणून नवरात्र हा शब्द यथार्थ होतो” असें सांगतात. तें बरोबर नाहीं. कारण, अतिहास (दोन तिथींचा क्षय) किंवा अतिवृद्धि झाली असतां कमज्यास्ती होईल. आणि ह्या वचनाविषयीं मूलही नाहीं. तेणेंकरून हा नवरात्रशब्द नऊ तिथींचा बोधक आहे. तें सांगतां—“तिथीची वृद्धि किंवा तिथीचा क्षय असतां नवरात्र निरर्थक होतें. नवरात्रांतील तिथीचा क्षय होऊन आठरात्री झाल्या असतां हा दोष येत नाहीं. कारण, नऊ तिथि आहेत.” नऊ तिथींचा वाचक तो नवरात्र शब्द क्वचित् ठिकाणीं लक्षणेकरून नवरात्रकर्मवाचक होतो. जसें ‘नवरात्राचा प्रारंभ’ वा ठिकाणीं नवरात्रकर्माचा प्रारंभ, असा अर्थ आहे. ही दिशा समजावी.

प्रतिपदिष्वैधृत्यादियोगनिषेधो भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे वाधूवैधृतियुक्ताचे प्रतिपदं-
द्विकार्चने तयोरंते विधातव्यंकलशारोपणं गुहेति चित्रावैधृतियुक्तापि द्वितीयायुताचेत्सैव प्राद्येत्युक्तं दुर्गांतसवे-
भद्रान्विताचेत्प्रतिपत्तुलभ्यते विरुद्धयोगैरपिसंगतासती सैवापराह्वे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतु-
रिति यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्नलभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्यायनेन प्रतिपद्याधिनेमासि भवेद्वैधृति-
चित्रयोः आद्यपादौ परित्यज्य प्रारंभे नवरात्रकर्ममिति भविष्येपि चित्रावैधृतिसंपूर्णा प्रतिपद्वैधृत्येनृप त्याज्या-
ष्टांशाक्षयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनमिति ह्यत्र यामलेपि वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम् तस्मान्न-
स्थापयेत्कुंभं चित्रायां वैधृतौ तथा संपूर्णा प्रतिपदे चित्रायुक्ताय दाभावेत् वैधृत्यावापित्युक्ता स्यात्तदामध्यदिने-
रवौ अभिजित्तुमुहूर्तयत्तत्स्थापनमिष्यत इति चित्रादिनिषेधमूलं चिंत्यम् ।

प्रतिपदेस वैधृति इत्यादि योगाचा निषेध सांगतो—भार्गवार्चनदीपिकेंत देवीपुराणांत—“चित्रानक्षत्र, वैधृति-

योग बानीं युक्त जर प्रतिपदा चंडिकापूजनविध्यां असेल तर चित्रा, वैश्विती संपत्त्यावर कलशस्थापन करावें," चित्रा व वैश्विती यांहीं युक्त असली तरी द्वितीयायुक्त असेल तर तीच ध्यावी असें सांगितलें आहे, पुर्णोत्सवांचा "द्वितीयायुक्त प्रतिपदा जर मिळत असेल, मग ती विव्द (निविद) योगांनीं युक्त असली तरी तीच अपराधी करावी. कारक, ती मन्नी, पुत्र, राज्य इत्यादिकांच्या वृद्धिला कारण आहे." जेव्हां तर, वैश्व्यादि योग बर्ज्य करून प्रतिपदा मिळत नसेल तेव्हां सांगले कात्यायन— "आश्विनमासातील प्रतिपदा वैश्विती व चित्रा यांवर असेल तेव्हां वैश्विती व चित्रा यांचे पश्चिमे दोन पक्ष सोडून नवरात्राचा प्रारंभ करावा. अविष्ट्यांतही— "संपूर्ण प्रतिपदा चित्रा, वैश्विती यांनीं युक्त होईल तर पश्चिमे दोन पक्ष सोडून चातुर्थभागांत पूजन करावें." रुद्रयामलांतही— "वैश्वितीचे ठायीं पुत्रनाश, व चित्रानक्षत्रावर वननाश होतो, यास्तव चित्रा व वैश्विती यांचे ठायीं कुंभस्थापन करूं नये. जेव्हां संपूर्ण प्रतिपदा चित्रायुक्त होईल अथवा वैश्वितीयुक्त होईल तेव्हां मध्याह्नीं सूर्य असतां अभिजिन्मुहूर्तावर कलशस्थापन इष्ट आहे." ह्या चित्रादिनिषेधाविषयीं मूल ब्राम्हण विलंब आहे.

इदंकलशस्थापनंरात्रौनकार्यम् नरात्रौस्थापनंकार्यनचकुंभामिषेचनमितिमात्स्ययोक्तेः आत्करोवयमा-
रभ्ययावत्तुदशनाडिकाः प्रातःकालइतिप्रोक्तःस्थापनारोपणादिवितिविष्णुधर्मोक्तेश्च रुद्रयामले
स्नानमांगलिकंकृत्वाततोदेवींप्रपूजयेत् शुभामिभृत्तिकाभिश्चूर्णपूर्वकृत्वातुवेविकाम् यवावैवापयेत्तत्रगोधूमैश्चा-
पिसंयुतान् तत्रसंस्थापयेत्कुंभविधिनामंत्रपूर्वकम् सौवर्णराजतंबापितान्मृन्मयजंतुवेति ।

हैं कलशस्थापन रात्रीं करूं नये, कारण, “रात्रीस (कलश) स्थापन करूं नये, व कुंभाभिषेचनही करूं नये.” असें **मात्स्यवचन** आहे. “सूर्योदयापासून आरंभ करून ज्या दहा घटिका तो प्रातःकाळ स्थापना आरोपण इत्यादिकर्माविषयी सांगितला आहे.” असें **विष्णुधर्मवचन**ही आहे. **रुद्रयामलांत**—“मांगलिक ज्ञान करून नंतर देवीचें पूजन करावें. पूर्वी शुद्धमृत्तिकेची वेदिका करून तिजवर गोधूम व यव पेरावे आणि त्या वेदीवर समंत्रक यथाविधि कुंभस्थापन करावें. तो कुंभ सोन्याचा, रुप्याचा, तांब्याचा, अथवा मातीचा करावा.”

अथ पूजाविधिः साचजयतीमंत्रेण नवाक्षरेण वा कार्यं तदुक्तं दुर्गाभक्तितरंगिण्याह्वेषीपुराणे कुया-
देव्यास्तुमंत्रेण पूजां क्षीरघृतादिभिरित्युक्त्वा जयतीमंगलाकालीभद्रकालीकपालिनी दुर्गाभमाशिवाधात्रीस्व-
धास्वाहानमोस्तुते अनेनैव तुमंत्रेण जपहोमौतुकारयेदिति ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहेति नवाक्षरः तत्र प्रतिपदि-
प्रातरभ्यंगंकृत्वा देशकालौसंकीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वोपच्छांतिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्य-
नवच्छिन्नसंततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्धयर्थं शारद नवरात्रप्रतिपदिविहितकलश-
स्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादिकरिष्ये इति संकल्प्य महीश्वोरिति भूमिस्पृष्ट्वा ओषधयः समितियवाभिश्चिप्य
आकलशेष्वितिकुंभं संस्थाप्य इमं मे गेग इति जलेनापूर्य गंधद्वारा मिति गंधं या ओषधीरिति सैबौषधी कांडात्कां-
डादिति दूर्वाः अश्वत्थे व इति पंचपल्लवान् स्योनाप्रथिवीतिसमृद्धः याः फलिनीरिति फलम् सहिरज्जानीति पंच-
रत्नानि हिरण्यंचक्षिष्वायुवासुवासा इति वस्त्रेणावेष्ट्य पूर्णादर्वीति पूर्णपात्रं निधाय तत्र वरुणं संपूज्य जीर्णायानूतना-
यां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् तत्रथा पूर्वोक्तं मंत्रमुक्त्वा आगच्छ वरदे देवि देव्यदर्पनिपूबनि पूजांगृहाण सु-
मुखिनमस्ते शंकरप्रिये सर्वतीर्थमयं वारिसर्वदेवसमन्वितं इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह दुर्गे देविसमाग-
च्छ सान्निध्यमिह कल्पय बलिं पूजांगृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह त्यावाह्य पूर्वोक्तं मंत्रेण षोडशोपचारैः पूजयित्वा
माषभक्तबलिं कृष्णान्डादिबलिवानिवेदयेत् ।

आतां पूजाविधि सांगतो—ती पूजा जयंतीमंत्रांनं किंवा नवाक्षरांनं करावी. तो प्रकार दुर्गाभक्तिरत्नविणीत-
देवीपुराणांत सांगतो—“देवीची पूजा देवीच्या मंत्रांनं क्षीरघृतादिक उपचारांनं करावी.” असे सांगून, मंत्र सांगतो—
“जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी ॥ दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तु ते” ॥ याच
मंत्रांनं जप व होम करावे. “ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा.” हा नवाक्षरमंत्र. तेथें प्रतिपदेस प्रातःकाली अभ्यंगस्नान करून

१ प्रातरिति प्रातःकालीनव्रतादिसंकरपरतु प्रातःसंध्यां कुर्येव कार्यः ॥ प्रातःसंध्यां नुधः कृत्वा संकरं तत आचरेदिति च भाष्य ॥

२ सर्वोपधीः । कुष्ठमासीहरिद्रेद्रे मुराशैलेयचंदनं ॥ वचाचंपकमुस्ताश्वसर्वोपधी दश स्मृताः ॥ ३ पंचपल्लवान् मन्थरपोषुंवरपल्लवसूत-
न्यघोषपल्लवाः ॥ पंचभंगा इतिप्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभना इत्युक्तान् ॥ ४ सप्तमदः गजाश्वरध्यावलीकसंगमाकूटगोकुण्ड ॥ राक्षार-
प्रदेशाश्चशृङ्गमानीयनिक्षिपेत् इत्युक्ताः ॥

देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा—“ममेहजन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छांतिपूर्वकदीर्घा-
युधिपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसंततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्ध्यर्थे शार-
दनवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादिकरिष्ये” असा संकल्प करून “महीद्यौ०”
या मंत्रानें भूमीला स्पर्श करून, तीवर “ओषधयः सं०” या मंत्रानें यव पेरून “आकलशेषु०” या मंत्रानें कुंभ
स्थापून “इमंमेगंगे०” ह्या मंत्रानें उदक कलशांत भरावें. “गंधद्वारां०” गंध, “याओषधीः०” सर्वांषधी घालून,
“कांडात्कांडा०” इर्वा, “अश्वत्थेव०” पंचपल्लव, “स्योनापृथिवि०” सप्तमृत्तिका, “याःफलिनी०” फल,
“सहिरस्मानि०” पंचरत्ने व हिरण्य घालून “युवासुवासा०” यानें वस्त्रां वेषन करून “पूर्णादर्वि०” यानें पूर्णपात्र
ठेऊन तेथें वरुणाची पूजा करावी. त्यावर जीण किंवा नवीन प्रतिमा ठेऊन दुर्गादेवीचें आवाहन करून पूजन करावें. तें
असें-वरील मंत्र उच्चारून—“आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि । पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ।
सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितं । इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणेः सह । दुर्गे देवि समागच्छ
साक्षिभ्यस्मिह कल्पय । बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह” या मंत्रांनी आवाहन करून पूर्वाक्त
मंत्रानें षोडशोपचारांनी पूजा करून माषभक्तबलि किंवा कृष्मांडादिवलि निवेदन करावा.

ततःकुमारीपूजा तदुक्तंहेमाद्रौस्कांदे एकैकांपूजयेत्कन्यामेकवृद्धयातथैवच द्विगुणंत्रिगुणंवापिप्रत्येकं
नवकंतुवा तथा नवभिलेभतेभूमिमैश्वर्यद्विगुणेनतु एकवृद्धयालभेत्क्षेममेकैकेनश्रियंलभेत् एकवर्षांतुयाकन्या-
पूजार्थेतांविबर्जयेत् गंधपुष्पफलादीनांप्रीतिस्तस्यानविद्यते तेनद्विवर्षामारभ्यदशवर्षापर्यंताण्वपूजयाः नत्व-
न्याःतासांचक्रमेण कुमारिकात्रिमूर्तिःकल्याणीरोहिणीकालीचंडिकाशांभवीदुर्गासुभद्रेतिनामभिःपूजाकार्या
आसांचप्रत्येकंपूजामंत्राःफलविशेषाश्चतत्रैवज्ञेयाः सामान्यतस्तु मंत्राक्षरमयींलक्ष्मीमातृणांरूपधारिणीम्
नवदुर्गात्मिकांसाक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् एवमभ्यर्चनंकुर्यात्कुमारीणांप्रयत्नतः कंचुकैश्चैववस्त्रैश्चगंधपुष्पा-
क्षतादिभिः नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत्पायसादिभिः तथा ग्रंथिस्फुटितशीर्ष्णांगीरक्तपूयव्रणांकिताम्
ज्वालंधांकेकरांकाणींकुरूपांतनुरोमशाम् संत्यजेद्रोगिणींकन्यांदासीगर्भसमुद्भवाम् तथा ब्राह्मणींसर्वकार्येषु-
जयाथैर्नृपवंशजाम् लाभार्थैर्वैश्यवंशोत्थांसुतार्थैर्शूद्रवंशजाम् दारुणेचांत्यजातानांपूजयेद्विधिनानरइति ।

नंतर कुमारीची पूजा करावी. तो प्रकार सांगतो—हेमाद्रौत—स्कांदांत—“प्रतिदिवशीं एकैक कन्या पुजावी.
अथवा एक वृद्धीनं, किंवा दोन अथवा तीन वृद्धीनं किंवा प्रतिदिवशीं नऊ अशा पुजाव्या.” तसेंच “प्रतिदिवशीं नवांनीं
भूमि प्राप्त होते. दोन वृद्धीनं ऐश्वर्य मिळतें. एक वृद्धीनं कल्याण प्राप्त होतें. प्रतिदिवशीं एकैक पुजली असतां लक्ष्मी प्राप्त
होते. एक वर्षाची जी कन्या ती पूजेस वर्ज्य करावी. कारण, तिला गंध, पुष्प, फळ इत्यादिक पदार्थसेवनाची प्रीति नाही.”
म्हणून दोन वर्षांपासून दहा वर्षांपर्यंतच कन्या पुजाव्या. अन्य पुत्र नयेत. त्या कुमारिकांचीं अनुक्रमानें नांवें—१ द्विवर्षा ती
कुमारिका २ त्रिवर्षा ती त्रिमूर्ति ३ चतुर्वर्षा ती कल्याणी ४ पंचवर्षा ती रोहिणी ५ षड्वर्षा ती काली ६ सप्तवर्षा ती
चंडिका ७ अष्टवर्षा ती शांभवी ८ नववर्षा ती दुर्गा ९ दशवर्षा ती सुभद्रा या नामांनी पूजा करावी. या कुमारिकांचे प्रत्येक
पूजामंत्र व विशेष फलें हीं हेमाद्रौतच पाहावीं. सामान्यतः मंत्र तर हा—“मंत्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारि-
णीम् । नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम्.” “या मंत्रानें कुमारीचें प्रयत्नां कंचुक (चोळ्या),
वस्त्रें, गंध, पुष्प, अक्षता इत्यादिकांनीं पूजन करावें. नानाप्रकारचे भक्ष्य, भोज्य, पायस इत्यादि पदार्थांनीं भोजन घालावें.”
तसेंच “जिचें अंग ग्रंथियुक्त किंवा फुटलेलें आहे ती; मस्तक फुटलेली; रक्त, पू, व्रण यांत वाहणारी; जन्मांध; केकरा;
काणी; कुरूपा; शरीरावर केश अल्प किंवा बहुत असलेली; रोगिणी; दासीगर्भोत्पन्ना अशी कन्या पूजेविषयीं वर्ज्य होय.”
तसेंच “सर्वे कार्यविषयीं ब्राह्मणी पुजावी. जयाकरितां क्षत्रियवंशांतील पुजावी. लाभकरितां वैश्यवंशोत्पन्ना पुजावी.
पुत्राकरितां शूद्रवंशजा पुजावी. दारुणकर्माविषयीं अंत्यजापासून उत्पन्न अशा कन्येचें पूजन मनुष्यानं विधीनं करावें.”

अत्रवेदपारायणमप्युक्तंरुद्रयामले एवंचतुर्वेदविदोविप्रान्सर्वान्प्रसादयेत् तेषांचवरणकार्यवेदपाराय-
णायवैइति तथा एकोत्तराभिष्टुद्यातुनवमीयावदेवहि चंडीपाठजपेच्चैवजापयेद्वाविधानतः तिथितत्त्वे-
वाराहीतंत्रे प्रणवंचादितोजत्वास्तोत्रंवासंहितांपठेत् अंतंचप्रणवंदद्यादित्युवाचादिपूरुषः आधारेस्थापयि-
त्वातुपुस्तकंप्रजपेत्सुधीः हस्तसंस्थापनादेवयस्माद्वैविफलंभवेत् स्वयंचलिसिखितंयश्चरद्रेणलिसितंभवेत् अब्राह्म-
णेनलिसितंतथापिबिफलंभवेत् ऋषिच्छंदादिकन्यस्यपठेत्स्तोत्रंविचक्षणः स्तोत्रेनदृश्यतेयत्रप्रणवंतत्रविन्य-

सेन् सर्वत्रपाठ्येविज्ञेयस्त्वन्यथाविफलंभूवेत् एवंनवमीपर्यंतप्रत्यहंकुर्यान् अत्रविज्ञेयोहेमाद्रीदेवीपुराणे यदाद्येदिवसेकुर्याच्चण्डिकापूजनादिकं द्विगुणतद्वितीयेह्नित्रिगुणतत्परेह्नि नवमीतिथिपर्यंतवृद्ध्यापूजाजपादिकमिति एतेननवरात्रेपूजैवप्रधानंउपवासादित्वंगमितिगम्यते तिथिहासेतुतिथिद्वयनिमित्तंपूजादिमहालय-श्राद्धवेदेकदिनेआवृत्त्याकार्यम् वृद्धौतेद्वेदावृत्तिः ततो नवरात्रोपवासादिसंकल्पंकुर्यान् स्वस्याश्तावन्येनवा-पूजादिकारयेन् स्वयंवाप्यन्यतोवापिपूजयेत्पूजयीतवेतितरंगिण्यादेवीपुराणात् इदंचदेवीपूजनंशुका-स्तादावपिकार्यम् तदुक्तंधर्मप्रदीपे नष्टेशुकैतथाजीवेसिंहस्येचबृहस्पतौ कार्यचैवस्वेदेव्यर्चाप्रैत्यब्दकुलध-र्मतइति मलमासेतुवचनाभावान्नभवति ।

या नवरात्रांत वेदपारायणही गांगतो-रुद्रयामलांत-“असेंच चतुर्वेदेवत्या सर्वे ब्राह्मणांस प्रसन्न करावें, आणि त्यांना वेदपारायणाकरितां वरावें.” तमाच “एकोत्तरवृद्धीनें नवमीपर्यंत चंडीपाठाचा जप यथाविधि स्वतः करावा. अथवा दुग्ग्याकडून करावा.” तिथितत्त्वांत वाराहीतंत्रांत-“प्रथम प्रणवाचा जप करून स्तोत्र किंवा संहिता पठन करावी, नंतर अंतीही प्रणवाचा जप करावा, असें आदिपुरुष गांगता ज्ञाता, आधारावर पुस्तक ठेवून वाचन करावें. कारण, हस्तांत पुस्तक घेतल्यानें पाठ विफल होतो. स्वतां लिहिलेलें किंवा शूद्रांनीं लिहिलेलें व अब्राह्मणांनीं लिहिलेलें पुस्तक अमेल तर तेंही वाचन विफल होतें. ऋषि, छंद, देवता यांचा त्याग करून स्तोत्रपाठ करावा. स्तोत्रांत जेथें प्रणव नमेल तेथें प्रणव योजावा. हा क्रम सर्वे पाठांत जाणावा. प्रणवावांचून पाठ विफल होतो.” असें नवमीपर्यंत प्रतिदिवशीं करावें. याविषयी विशेष गांगतो-हेमाद्रीत-देवीपुराणांत-“जे प्रथमदिवशीं चंडिकेचें पूजनादिक करावें तें दुसरे दिवशीं द्विगुणित व तिसरे दिवशीं त्रिगुणित असें नवमीतिथिपर्यंत पूजा, जप इत्यादिक वृद्धीनें करावें.” या वचनावरून नवरात्रांत पूजान प्रधान आहे, उपवासादिक तर अंग होय, असें गम्यते. तिथिक्षय अमेल तर दोन तिथिनिमित्तानें करावयाच्या दोन पूजा वगैरे, महालयश्राद्धासारख्या एक दिवशींच आवृत्तीनें कराव्या. तिथीची वृद्धि अगतां महालयासारखीच द्विरावृत्ती करावी. नंतर नवरात्रांत कर्तव्य जें उपवागादिक त्याचा संकल्प करावा. आपणांस गम्यथं नमेल तर दुग्ग्याकडून पूजादिक करावें. कारण, “स्वतां पूजन करानें किंवा दुग्ग्याकडून करावें.” असें दुर्गाभक्तिरंगिणींत-देवीपुराणवचन आहे. हें देवीपूजन शुकास्तादिकांतही करावें. तें गांगतो धर्मप्रदीपांत-“शुक व गुरु यांचें अस्त किंवा बृहस्पति गिहस्प अमतांही प्रतिवर्षीं कुलधर्मास्तव आपल्या देवीचें पूजन करावें.” मलमागांत कण्याधिपणीं वचन नमत्यामुळे होत नाहीं.

अत्रसाश्र्वस्याश्र्वपूजनमुक्तम् मदनरत्नेदेवीपुराणे आश्र्वयुक्तशुकप्रतिपत्स्वातीयोगशुभेदिने पूर्वमुच्चैः-श्रवानामप्रथमंश्रियमावहन् तस्मात्साश्र्वनैस्तत्रपृथ्वीमौश्र्वद्वयामह पूजनीयाश्र्वतृगानवमीयावदेवर्हा शांतिः-स्वस्त्ययनंकार्यतदातेपादिनेदिने धान्यंभक्षान्तंकुपुत्रंवाचामिद्वार्थकाम् तथा पंचवर्णनमूत्रेणप्रथितेपातुबंधयेन् वायव्यैवार्णुःमौरेःशाक्तमैत्रैःसर्वेण्वैः वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमैःकार्येदिनेदिने कल्पतरौत्वेतदमेन्यदपि ज्येष्ठायोगेपुरातनराजाश्चाष्टौमहाबलाः पृथिवीमावहन्पूर्वमशौल्यनकान्ताम् कुमुदैरावणोपद्वाःपुष्पदंतोश्रवा-मनः सुप्रतीकोजनीलस्तस्मात्तांस्तत्रपूजयेन् शाकाहक्ष्मात्ममारभ्यनयम्यंतंचपूर्ववत् अश्वचट्टोमादीत्यर्थः ।

हा प्रतिपदेचे ठायीं ज्याचे अश्व अमनील त्याम अश्वपूजन गांगितलें आहे-मदनरत्नांत-देवीपुराणांत-“आधि-नशुक प्रतिपदेस स्वातीनक्षत्राचा योग अगतां शुभ दिवशीं पूर्वा उच्चैःश्रवानामक अश्वाला प्रथम जोभा प्राप्त झाली, या कारणास्तव अश्वयुक्त मनुष्यांनीं त्या तिथीम उच्चैःश्रव्याची पूजा करावी व अश्यांचीही पूजा नवमीपर्यंत करावी. प्रतिदिवशीं त्यांची शांति व स्वस्त्ययन (मंगल) करावें. ध्ये, भक्षान्त (विचये), कोष्टकोलिजन, वेच्ये, गई त्यांचा पंचवर्ण सूत्रानें प्रथि बांधून त्यांचे कंठांत बांधावें. वायु, वरुण, सूर्य, शक्ति, विष्णु, विश्वदेव, अग्नि यांच्या मंत्रांनीं प्रतिदिवशीं होम करावा.” कल्पतरूंत तर याच्या पुढें दुसऱ्या प्रकार गांगतो-“पूर्वा नवरात्रांनील ज्येष्ठानक्षत्रावर महाबलिष्ठ असे आठ हत्ती पर्वत, अरण्य यांसहवर्तमान पृथ्वीला वाहते झाले, म्हणून पृथ्वी वाहणाऱ्या कुमुद, ऐरावण, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अंजन, नील, ह्या आठ हत्तींची पूजा करावी. ती पूजा ज्येष्ठानक्षत्रावर आरंभ करून नवमीपर्यंत अश्वपूजेप्रमाणें होमादि करून करावी.”

१ महालयेति एकस्मिन्दिने आवृत्त्या एकेन अनुष्ठानेन तंत्रेणेति यावत् । नद्या महालये यथा तत्र तथा देवीपूजायामपीत्यर्थः ॥
२ तद्वत् महालयवत् ॥ ३ प्रत्यब्दिमिलारंभनिषेधार्थं ॥ अस्तंतेन गुरो शुके सिद्धये वग्धापि ॥ देवीपूजनमुपि हं स्वपिरे वाक्ये तथा ॥ आधारे विरामः स्याद्वितीयादौ न चितयेदिति देवीपुराणात् ॥

अथप्रतिपदादिषुविशेषोदुर्गाभक्तितरंगिण्यां भविष्ये केशसंस्कारद्रव्याणिप्रदद्यात्प्रतिपदिने पक्क-
तैलद्वितीयायांकेशसंयमहेतवे पट्टदोरमितिगौडपाठः दर्पणंचतृतीयायांसिंदूरालक्तकंतथा मधुपर्कचतुर्थ्या-
तुतिलकनेत्रमंडनं पंचम्यामंगरागंचशक्त्यालंकरणानिच पष्ठ्यांबिल्वतरौवोधंसायंसंध्यासुकारयेत् सप्तम्यां-
प्रातरानीयगृहमध्येप्रपूजयेत् उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्याचपूजनम् नवम्यामुप्रचंडायाः पूजांकुर्याद्भूलितथा
संपूज्यप्रेषणंकुर्याद्दशम्यांसारवोत्सवैः अनेनविधिनायस्तुदेवीप्रीणयतेनरः स्कंदवत्पालयेद्देवीतंपुत्रधनक्री-
र्तिभिः कृत्यतत्त्वाणवेलैंगे कन्यायांकृष्णपक्षेतुपूजयित्वाद्रुमेपिवा नवम्यांवोधयेद्देवीमहाविभवविस्तरैः
शुक्लपक्षेचतुर्थ्यातुदेवीकेशविमोक्षणम् प्रातरेचतुपंचम्यांस्नापयेत्सुशुभंजलैः पष्ठ्यांमायंप्रकुर्वीतविल्ववृक्षेधि-
षासनम् सप्तम्यांपत्रिकापूजाअष्टम्यांचाप्युपोषणम् पूजाचजागरश्चैव नवम्यांविधिवद्भलिः विमर्जनंदशम्यां-
तुकीडाकौतुकमंगलैः अत्रनवम्यांवोधनासामर्थ्यंपष्ठ्यांवोधनमितिस्मार्ताः फलभूमार्थिनःममुच्चयइत्यन्ये
नवम्यामंत्रः कालिकापुराणे इपेमास्यसितेपक्षेनवम्यामार्द्रभेदिवा श्रीवृक्षेवोधयामित्वांयावत्पूजांकरो-
म्यहम् अत्रस्त्रीव्रतेविशेषःपरिभाषायाज्ञेयः ।

आतां प्रतिपदादि तिथींचे ठायीं विशेष सांगतो. दुर्गाभक्तितरंगिणींत-भविष्यांत-“केशसंस्कारद्रव्यं प्रतिपदेय
द्यावीं. द्वितीयेस केशसंयमना (बंधना) करितां पक्क तैल द्यावें. ‘पक्कतैल’ या म्यानीं ‘पट्टदोर’ असा गौडपाठ आहे.
तृतीयेस दर्पण, मिदूर व अळता. चतुर्थांग नेत्रभूषण, तिलक व मधुपर्क. पंचमीस यथाशक्ति अलंकार व अंगराग द्यावे.
षष्ठीस सायंसंध्यासमयीं विल्ववृक्षाचे ठायीं बोध (पुढें सांगवयाचा तो) करावा. सप्तमीस प्रातःकालीं गृहामध्ये आणून
पूजन करावें. अष्टमीस उपोषण व आपल्या शक्तीने पूजन करावें. नवमीस चंद्रिकेची पूजा व बलिदान करावें. दशमीस
सारवोत्सवांनीं पूजन करून देवी पांचवाती. या विधींनीं जो मनुष्य देवीतें संतुष्ट करतो त्याला देवी पुत्र, धन, कीर्ती हीं
देऊन स्कंदासारखें त्याचें पालन करिते.” कृत्यतत्त्वाणवर्णांत-लिगपुगाणांत-कन्यासंकांतींत आश्विन कृष्णपक्षांत
(दर्शातमासानें भाद्रपदकृष्णपक्षांत) आर्द्रानक्षत्रावर किंवा नवमीस मोठ्या पेश्र्वयिस्तरांनीं देवीचा प्रबोधोत्सव करावा.
आश्विन शुक्लपक्षांत चतुर्थांग देवीचें केशविमोक्षण करावें. पंचमीस प्रातःकालींच स्वच्छ जलांनं स्नान घालावें. षष्ठीस
सायंकालीं विल्ववृक्षीं अधिवागन करावें. सप्तमीस पत्रिकापूजा, अष्टमीस उपोषण, नवमीस पूजा, जागरण व यथाशास्त्र
बलिदान करावें. दशमीस कीडा-कौतुक-मंगलांनीं विमर्जन करावें.” या लिखाणीं आश्विनकृष्ण नवमीस प्रबोधोत्सवाचें
सामर्थ्य नसेल तर आश्विनशुक्लपष्ठीस प्रबोध करावा, असें स्मार्त सांगतात. मोठ्या फलाची इच्छा असेल त्यांनं नवमीस
व षष्ठीसही प्रबोधोत्सव करावा, असें अन्य सांगतात. आश्विन कृष्ण नवमीस प्रबोधनाचा मंत्र-कालिकापुराणांत—
‘इपेमास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रभे दिवा । श्रीवृक्षे वोधयामि त्वां यावत्पूजां करोम्यहम् ।’ यथं
स्त्रीव्रताविषयीं विशेष आहे तो परिभाषित (प्रथमपरिच्छेदांत) पाहावा.

अत्राशौचेविशेषोनिर्णयामृतेविश्वरूपनिबंधे आश्विनेशुक्लपक्षंतुप्रारब्धेनवरात्रके शावाशौचेसमु-
त्पन्नेक्रियाकार्याकथंबुधैः सूतकेवर्तमानेचतत्रोत्पन्नेसदाबुधैः देवीपूजाप्रकर्तव्यापशुयज्ञविधानतः सूतकेपू-
जनंप्रोक्तदानंचैवविशेषतः देवीमुद्दिश्यकर्तव्यंतत्रदोपोनविद्यतइति कालादर्शेविष्णुरहस्येपि पूर्व-
संकल्पितंयज्ञव्रतंसुनियतव्रतैः तत्कर्तव्यंनरैःशुद्धदानार्चनविचारजितमिति गौडनिबंधेनिश्चितत्वेयुक्तम्
आश्विनकृष्णनवम्यादिशुक्लप्रतिपदादिपष्ठ्यादिसप्तम्यादिचैकैकर्म अतश्चमध्येआशौचपातेपिनदोषः संकल्पो-
व्रतसत्रयोरितिविष्णूक्तेरिति आरब्धंस्वयमेवकार्यं अनारब्धत्वन्येनकारयेदितिदिवोदासः रजस्वला-
त्वन्येनकारयेत् सूतकादिवद्विशेषवचनाभावान् स्त्रीणांचनवरात्रेतांबूलादिवर्चणंभवति तदुक्तंव्रतहेमाद्रौ-
गारुडे गंधालंकारतांबूलपुष्पमालानुलेपनम् उपवासेनदुष्यंतितदंथावनमंजनमिति एतत्समर्पकपोपवासवि-
षयम् अन्यश्चात्रविशेषःपरिभाषायासुक्तः ।

आतां आशौचांत विशेष सांगतो.

निर्णयामृतांत विश्वरूपनिबंधांत—“आश्विनशुक्लपक्षांत नवरात्राचा प्रारंभ झाला असतां मृताशौच झालें तर
झाल्यांनीं तें नवरात्र कर्म कसें करावें ? पूर्वी सूतक उत्पन्न असतां किंवा त्या नवरात्रांत सूतक उत्पन्न असतां निरंतर
विद्वानांनीं पशुयज्ञविधीनं देवीपूजा करावी. सूतकामध्ये पूजन व विशेषेकरून दान देवीच्या उद्देशानं करावें, त्याविषयीं दोष

नाहीं.” कालादर्शांत-विष्णुरहस्यांतही-“पूर्वसंकल्पित जें व्रत तें नियमितव्रत करणाऱ्या मनुष्यांनीं केवळ दान व पूजन यांचाचून करावें.” गौडनिबंधांत तिथितत्त्वांतही सांगतो-आश्विनकृष्ण नवमीपासून शुक्लनवमीपर्यंत, तसेंच शुक्लप्रतिपदेपासून, षष्ठीपासून, आणि सप्तमीपासून, नवमीपर्यंत जे नवरात्राचे पक्ष सांगितले आहेत त्यांतील कोणताही पक्ष स्वीकारला असतां तें एक कर्म आहे. म्हणून मध्यें आशौच आलें असतांही दोष नाही. कारण, “व्रत आणि सत्र यांचा संकल्प झाला म्हणजे आरंभ झाला, आरंभ झाला असतां आशौच नाही” असें विष्णुवचन आहे. आरंभलेलें तें स्वतांच करावें. आरंभ न केलेलें इतरांकडून करावें, असें दिव्योदास सांगतो. रजस्वलेनें तर दुसऱ्याकडून करावें. कारण, सूतकांत करण्याविषयी वचन आहे. तसें येथें विशेषवचन नाही, नवरात्रांत स्त्रियांना तांबूलादि भक्षण होत आहे, तेंच सांगतो-व्रतहेमाद्रिंत-गारुडांत-“गंध, अलंकार, तांबूल, पुष्पमाला, अनुलेपन, दंतधावन, व अंजन हीं उपवासांत निषिद्ध नाहींत.” हें वचन गमनृक स्याच्या उपवागविषयक होय. एथें अन्यही विशेष आहे तो (प्रथमपरिच्छेदांत) परिभाषेनें सांगितला आहे.

आश्विनशुक्लपंचम्यामुपांगललिताव्रतं महाराष्ट्रेषुप्रसिद्धं तत्रयत्रापिकथायांकालविशेषोक्तस्तथापि रात्रौ-जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रिभिः स्वनेरिति रात्रौ जागरोक्तः शक्तिपूजायारात्रौ प्राशस्त्याश्च रात्रिव्यापिनीप्राज्ञेति केचित् वस्तुतस्तु वचनं विनारात्रिपूजायां मानाभावान् जागरस्य चांगत्वाद्युपमावाक्यान् भुक्त्वा जागरणेन केचंद्राद्यध्वं व्रते तथा ताराव्रते पुमर्वेपुरात्रियोगो विशिष्यत इति कालहेमाद्रौ वचनात्पूर्वविद्धाप्राज्ञा रात्रिशब्दः-पूर्वविद्धावचनं इति हेमाद्रिः अस्य च भुक्त्वा जागरणं भुक्त्वा इति साधुप्रतीतिः भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकपदं तस्मिन् व्रते इत्यर्थः अन्यथा भुक्त्वेत्यसंगतेः दिव्योदासीयेत्यर्थः ।

आश्विनशुक्लपंचमीस उपंगललिताव्रतं महाराष्ट्रांत प्रसिद्ध आहे. त्याविषयी जरी कथंमध्ये विशेष काल सांगितला नाही तथापि “रात्रांग गायन, वाघे यांच्या शब्दांनीं जागरण करवें.” असें रात्रांग जागरण करण्याविषयी सांगितलें असल्यामुळे व शक्तिपूजन रात्रौ प्रचलणपाहोत असल्यामुळे पंचमी रात्रिचापिनी ध्यावी, असें केचित् म्हणतात. वास्तविक म्हटलें तर वचनावांचून रात्रिपूजेविषयी प्रमाण नमल्यामुळे, जागरण गायितलें तें व्रताचें अंग असल्यामुळे युगमवाक्यावरून; आणि “भोजन करून जागरण ज्या व्रतांत आहे त्या व्रताविषयी, नक्त व्रताविषयी नंद्रादिकांच्या अर्थव्रताविषयी, आणि सर्व नक्षत्रव्रतां-विषयी रात्रियोग विशिष्ट आहे” या कालहेमाद्रिंतील वचनावरूनही पंचोपवादा (चतुर्थांविदा) ध्यावी. या वचनांत ‘रात्रि’ हा शब्द पूर्वविद्धावाचक आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. हें व्रत भुक्त्वा जागरणम्प आहे, म्हणून याविषयी पंचमी, पूर्वविद्धा ध्यावी हें बरें, असें आम्हां समजतो. कारण, “भुक्त्वा जागरणं” हें एक पद आहे. भोजन करून जागरण ज्या व्रतांत आहे तें व्रत असा अर्थ आहे. असा अर्थ नाही केल्या तर ‘भुक्त्वा’ याची संगति लागणार नाही. दिव्योदासीयांत असेंच आहे.

आश्विनशुक्लपक्षं मूलनक्षत्रं पुस्तकपुस्तकस्वर्तास्थापनम् यथोक्तं निर्णयामृतं देवीपुराणे मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वापाठासु पूजनम् उत्तरापाठांश्च वलिदानं श्रवणावर विसर्जनं येदिति रुद्रयामलेपि मूलक्षेत्रे सुराधीशपूजनीया सरस्वती पूजयेत्प्रत्यहं देवयावद्वैष्णवमश्रुकम् नाध्यापयेन्न च लिखेन्न धीयीत कदाचन पुस्तके स्थापिते देवविद्या कामोद्विजोत्तमः संग्रहे आश्विनस्य मिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम् मूलेनावाहयेद्देवी श्रवणेन विसर्जयेत् मूलस्याद्यपादे आवाहनमिति शिष्टाः श्रवणाद्यपादं च विसर्जयेत् आदिभागो निशायांतु श्रवणस्य यदा भवेत् संप्रेषणं तदा देव्या दशम्यां च महोत्सव इति चिंतामणौ ब्रह्मांडपुराणात् ।

आश्विनशुक्लपक्षांत मूलनक्षत्रावर सरस्वतीस्थापन सांगतो-निर्णयामृतांत देवीपुराणांत-“मूलनक्षत्रावर सरस्वतीदेवीचें स्थापन, पूर्वापाठांवर पूजन, उत्तरापाठांवर वलिदान आणि श्रवणावर विसर्जन करावें.” रुद्रयामलांतही “मूलनक्षत्रावर सरस्वतीचें पूजन करावें. पूजन तें श्रवणनक्षत्र येईपर्यंत प्रतिदिवशी करावें. विद्येच्छा ब्राह्मणधेष्टांनें पुस्तकांचें स्थापन केलें असतां पटवूं नये, लिहूं नये, व अध्ययनही करूं नये.” संग्रहांत-“धारणाबुद्धि इच्छा करणारां आश्विनाच्या शुक्लपक्षां मूलनक्षत्रावर सरस्वतीदेवीचें आवाहन करावें व श्रवणनक्षत्रावर विसर्जन करावें.” मूलाच्या पहिल्या पादावर आवाहन करावें, असें शिष्ट सांगतात. श्रवणाच्या प्रथमपादावर विसर्जन करावें. कारण, “जेव्हा श्रवणाचा पहिला भाग रात्री असेल तेव्हा देवीचें संप्रेषण (विसर्जन) दशमी महोत्सवांत करावें.” असें चिंतामणीत ब्रह्मांडपुराणवचन आहे. यावरून श्रवणाच्या प्रथमभागी विसर्जन मुख्य आहे.

अथ षष्ठी गौडनिबंधे देवीपुराणे ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां पष्ठ्यां बिल्वामिमंत्रणं सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेक्ष्णम् पूर्वापाठायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् उत्तरेण नवम्यांतु बलिभिः पूजयेच्छिवम् अथ-

णेनदशम्यांतुप्रणिपत्यविसर्जयेत् कालिकापुराणे बोधयेद्विल्वशाखायांषष्ठ्यांदेवींफलेषुच सप्तम्यांविल्व-
शाखांतामाहृत्यप्रतिपूजयेत् पुनःपूजांतथाष्टम्यांविशेषेणसमाचरेत् जागरंचस्वयंकुर्याद्वलिदानंमहानिशि प्रभू-
तबलिदानंतुनवम्यांविधिवच्चरेत् विसर्जनंदशम्यांतुकुर्याद्वैसारवोत्सवैः धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकोतुकमंगलैः
अत्रसर्वत्रतिथिनक्षत्रयोगादरोमुख्यः कल्पः तदभावेतुतिथिरेवग्राह्या तिथिःशरीरंदेवस्यतिथौनक्षत्रमाश्रितम्
तस्मात्तिथिप्रशंसंतिनक्षत्रंनतिथिर्विनेतिविद्यापतिलिखितवचनान् तिथिनक्षत्रयोयोगेद्वयोरेवानुपालनम्
योगाभावेतिथिर्ग्राह्यादेव्याःपूजनकर्मणीतितत्रैवदेवलोक्तेश्च ।

आतां षष्ठी सांगतो—गौडनिबंधांत-देवीपुराणांत—“ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त षष्ठीचेठायीं बिल्ववृक्षावर अधिवासनादि
करावें. मूलनक्षत्रयुक्त सप्तमीचेठायीं पत्रिकेचें प्रवेशन करावें. पूर्वाषाढायुक्त अष्टमीचेठायीं पूजा, होम इत्यादि व उपोषण
करावें. उत्तराषाढायुक्त नवमीचेठायीं बलिदानांनीं देवीचें पूजन करावें. श्रवणयुक्त दशमीचेठायीं देवीला नमस्कार करून
विसर्जन करावें.” कालिकापुराणांत “षष्ठीम बिल्ववृक्षाच्या शाखेचेठायीं व फळांचेठायीं देवीचा प्रबोधोत्सव करावा.
सप्तमीचेठायीं ती बिल्ववृक्षाची शाखा आणून तिचें पूजन करावें. तशीच अष्टमीस विशेषंकरून पुनः पूजा करावी. व
मोठ्या रात्रीं स्वतां जागरण करून बलिदान करावें. नवमीस यथाशास्त्र मोठें बलिदान करावें. दशमीस सारवोत्सवांनीं,
धूलिकर्दमनिक्षेपांनीं व क्रीडाकौतुकमंगलांनीं विसर्जन करावें.” येथें सर्वत्र तिथिनक्षत्रयोग असावा हा मुख्य पक्ष आहे, तो
नसेल तर तिथीच ध्यावी. कारण, “देवाचें शरीर तिथि आहे. तिथीचा आश्रय करून नक्षत्र राहतें; याकरितां तिथीची
प्रशंसा करितात. तिथीवांचून नक्षत्र प्रशस्त नाही.” असें विद्यापतीनें लिहिलेलें वचन आहे. आणि “तिथि व नक्षत्र
यांचा योग असतां दोघांचेंही ग्रहण करावें. तिथि व नक्षत्र या दोघांचा योग नसेल तर देवीच्या पूजेविषयीं तिथि ध्यावी.”
असें तेथेंच देवलवचनही आहे.

अत्रचपत्रीप्रवेशात्पूर्वेषुःसायंकालेषष्ठ्यभावेतत्पूर्वदिनेऽधिवासनंकार्यम् सायंकालेयंतासत्स्वेत्वधिवासन-
लोपः षष्ठ्यांसायंकुर्वीतबिल्ववृक्षेधिवासनमितिपूर्ववचनादितिकल्पतरुः सायंश्रुतिःफलातिशयमात्रार्था
नतुकर्मलोपइत्याचार्यचूडामणिः अत्रक्रमः बिल्वसमीपंगत्वादेवींबिल्वंचसंपूज्यप्रार्थयेत् तत्रमंत्रः राव-
णस्यवधार्थारामस्यानुग्रहायच अकालेब्रह्मणाबोधोदेव्यास्त्वयिकृतःपुरा । अहमप्याश्रितःषष्ठ्यांसायाहं-
बोधयाम्यतः श्रीशैलशिखरेजातःश्रीफलःश्रीनिकेतनः नेतव्योऽसिसमागच्छपूज्योदुर्गास्वरूपतइति एवंदेवीम-
धिवास्यपरदिनेनिमंत्रितबिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजांकुर्यात् तदुक्तंहेमाद्रौलिंगे मूलाभावेतुसप्तम्यांकैवलायां-
प्रवेशयेत् युग्माभ्यांनवबिल्वस्यफलाभ्यांशाखिकांतथा तथैवप्रतिमादेव्याःस्नात्वाभ्युक्ष्यप्रवेशयेत् ।

येथें पत्रीप्रवेशाच्या पूर्वदिवशीं सायंकालीं षष्ठी नसेल तर त्याचें पूर्वदिवशीं अधिवासन करावें. सायंकालीं मुळींच
षष्ठी नसेल तर अधिवासनाचा लोप होतो. कारण, “षष्ठीस सायंकालीं बिल्ववृक्षावर अधिवासन करावें” असें पूर्वीं वचन
सांगितलें आहे, असें कल्पतरु सांगतो. सायंकालीं षष्ठी असावी ही फलातिशयाकरितांच सांगितली आहे. ती नसेल तर
कर्मलोप होत नाही, असें आचार्यचूडामणि सांगतो. याविषयां क्रम सांगतो—बिल्ववृक्षाच्या समीप जाऊन देवी व बिल्व
यांची पूजा करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—“रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा
बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा ॥ अहमप्याश्रितः षष्ठ्यां सायाहं बोधयाम्यतः । श्रीशैलशिखरे जातः
श्रीफलः श्रीनिकेतनः । नेतव्योऽसि समागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः” इति. असें पूर्वदिवशीं देवीचें अधि-
वासन करून दुसऱ्या दिवशीं निमंत्रित बिल्वशाखेवर पत्रीप्रवेशपूजा करावी. तें सांगतो—हेमाद्रौत लिंगपुराणांत—
“मूलनक्षत्र नसेल तर केवळ सप्तमीचेठायीं नूतन बिल्ववृक्षाच्या दोन फळांसहित शाखे(खांदी)चें आणि देवीच्या प्रतिमेचें
अभ्युक्षण करून प्रवेशपूजा करावी.”

अत्रचोपवासपूजादावौदयिकीसप्तमीग्राह्या नतुयुग्मवाक्यानुपूर्वा युगाद्यावर्षवृद्धिश्चसप्तमीपार्वतीप्रिया
रवेरुदयमीक्षतेनतत्रतिथियुग्मतेतिकृत्यतत्त्वार्णवोदाहृतवचनान् भगवत्याःप्रवेशादिविसर्गाताश्चयाः-
क्रियाः तिथाबुदयगामिन्यांसर्वास्ताःकारयेद्बुधइतितिथितत्त्वेनंदिकेश्वरपुराणाच्च दुर्गाभक्तितरं-
गिण्यामप्येवम् तत्रापिघटिकातोन्मूतत्वेपरानकार्या त्रतोपवासनियमेघटिकैकापिथाभवेदितिदेवलोकेरि-
तिगौडाः द्वाक्षिणात्यास्तुपूर्ववचनमद्वयुग्मवाक्यात्पूर्वाकुर्वति पत्रिकापूजाचपूर्वाह्णवकार्यानुमूला-

नुरोधान्मध्याह्नादवितिकृत्यतत्त्वापूर्ववेत्तम् पत्रिकास्तु रंभाकवीहरित्राच जयंतीविस्ववाडिमौ अशोको-
मानवृक्षश्चान्यादिनवपत्रिकाइतितत्रैवोक्ताः ।

एथं उपवास, पूजा इत्यादिकांविषयीं उदयव्यापिनी सप्तमी ध्यावी. युग्मवाक्यावरून पूर्वीची (षष्ठीयुक्त) वेजं नये. कारण, “युगादि तिथि, वाढदिवसाची तिथि, देवीसप्तमी, ह्या तिथि सूर्योदयव्यापिनी ध्याव्या. एथं युग्मवाक्याची प्रश्रुति करूं नये.” असें कृत्यतत्त्वावर्णवांत सांगितलेलें वचन आहे. आणि “भगवतीदेवीच्या प्रवेशापासून विसर्जनापर्यंत ज्या क्रिया करावयाच्या त्या सान्या उदयव्यापिनी तिथिचेठायीं कराव्या.” असें तिथिनत्त्वांत नंदिकेश्वरपुराणवचनही आहे. दुर्गाभक्तितरंगिणीतही असेंच सांगितलें आहे. त्यामध्येही सूर्योदयकालीं घटिकेढून कमी असेल तर परा करूं नये. कारण, “व्रत, उपवास, नियम यांविषयीं एक घटिका जरी असेल तरी ती ध्यावी” असें देवलवचन आहे, असें गौड म्हणतात. दाक्षिणात्य तर, पहिलें वचन न पाहतां युग्मवाक्यावरून पहिली करितात. पत्रिकापूजाही पूर्वाह्नीच करावी. मूलनक्षत्रानुरोधानें मध्याह्नादिकालीं करूं नये, असें कृत्यतत्त्वावर्णवांत सांगितलें आहे. पत्रिका तर—“धणे, रंभा (केळी), कवी, हरिदा, जयंती, विस्व, दाडिम, अशोक, मानवृक्ष, ह्यांच्या नऊ पत्रिका होत.” अशा कृत्यतत्त्वावर्णवांतच सांगितल्या आहेत.

अस्यामेवसप्रम्यांदेवीत्रिरात्रमुक्तेहेमाद्रौ प्रतिपदादिनवतिथिपु उपवासकरणासामर्थ्येसप्रम्यादिदिनत्र-
येवाकुर्यात् तदाहधौम्यः आश्विनमासिशुक्लतुर्कृत्यंनवरात्रकम् प्रतिपदादिक्रमेणैवयावचनवमीभवेत्
त्रिरात्रंवापिकर्तव्यंसप्रम्यादियथाक्रमम् अतएवहेमाद्रौदेवीपुराणेमंगलाव्रते आश्विनेवाधवामाघेचै-
त्रेवाश्रावणेपिवा कृष्णाष्टम्यादिकर्तव्यंव्रतंशुक्लावधिहरेः यावच्छुक्लाष्टमीशकउपोष्यातुविधानतः दानंहोमो-
जपःपूजाकन्याभोज्यास्तथान्वहम् महाभैरवरूपेणअस्थिमालाधराश्रये पूजनीयाविशेषेणवस्त्रैर्भामपुराविषु
इतिमासचतुष्टयेभिधाय अन्यत्रापि अथवानवरात्रंचसप्रपंचत्रिकंदिवा एकभक्तेनन केनायाचितोपोषितैः-
क्रमादिति पूजयेताश्विनशकयावच्छुक्लाष्टमीभवं सर्वकार्याणिस्मिद्धयंतिशकनास्त्यत्रसंशयइत्युक्तम् दिवेत्ये-
करात्रमुक्तम् गोविंदार्णवेदेवीपुराणे नवरात्रव्रतेऽशक्तस्त्रिरात्रंचैकरात्रकं व्रतंचरतियोभक्तस्तस्मैदास्या-
मिवांछितमिति तत्रापिसप्रम्याःपूजनेपूर्वांतोनिर्णयः अत्रतिथियौगपद्यंतंत्रेणोपवासः तिथिद्वयनिमित्तंपूजा-
दिकंतुभेदेन ।

याच सप्तमीपासून तीन दिवस देवीत्रिरात्र गांगतो हेमाद्रौत—प्रतिपदादिक नऊ तिथीस उपवास करण्यास सामर्थ्य
नसेल तर सप्तम्यादि तीन दिवस उपोषण करून त्रिरात्र करावें. तें धौम्य गांगतो—“आश्विनमागांत शुक्रपक्षी नवरात्र
करावें. तें प्रतिपदेपासून क्रमानें नवमार्थन करावें. अथवा अशक्तां न सप्तमीपासून त्रिरात्रही क्रमानें करावें.” म्हणूनच
हेमाद्रौत—देवीपुराणांत मंगलाव्रतांत—“आश्विनांत अथवा माघांत अथवा चैत्रांत किंवा श्रावणांत कृष्णाष्टमीपासून
शुक्लाष्टमीपर्यंत यथाविधि व्रत करावें. म्हणजे शुक्लाष्टमीपर्यंत यथाविधि उपोषण करावें. व प्रतिदिवशी दान, होम, जप,
पूजा, आणि कन्याभोजन करावें. ग्राम, नगर इत्यादिकांचे ठायीं महाभैरवरूपानें जे अस्थिमाला धारण करणारे ह्यांची
वस्त्रादिकांनीं विशेषकरून पूजा करावी.” असें चार मागांत व्रत गांगून अन्यत्रही सांगतो “अथवा नऊ, सात, पांच, तीन,
किंवा एक दिवस एकभक्त, नक्त, अयाचित, किंवा उपोषण करून क्रमानें व्रत करावें. आश्विनशुक्लाष्टमी होईल तोंपर्यंत
पूजन करावें. तेणेंकरून सर्वकार्यें सिद्ध होतात यांत संशय नाही.” असें सांगितलें आहे. गोविंदार्णवांत—देवीपुरा-
णांत—“जो भक्त नवरात्रव्रताविषयीं अशक्त अमत्यामुळें त्रिरात्र किंवा एकरात्र व्रत आचरण करितो, त्यास मी इच्छित
फल देतें.” त्यांतही सप्तमीच पूजविषयीं पूर्वांत निर्णय जाणावा. एथें दोन तिथि एकदिवशी प्राप्त असतां तंत्रानें उपवास
करावा. दोन तिथींच्या निमित्तानें पूजादिक करणें तें तर वेगवेगळें करावें.

अत्रविशेषोनिर्णयामृतेभविष्ये सप्तम्यांनवगेहानिदारुजानिनवानिच एकंवावित्तभावेनकारयेत्सु-
समाहितः दुर्गागृहंप्रकर्तव्यंचतुरस्रंसुशोभनम् तन्मध्येवेदिकांकुर्याच्चतुर्हस्तांसमांशुभाम् तस्यांसिंहासनंशौ-
मंकंबलाजिनसंयुतम् तत्रदुर्गाप्रतिष्ठाप्यसर्वलक्षणसंयुताम् भुजैश्चतुर्भुजैर्दशभिर्वाविभूषिताम् तप्तहाटक-
वर्णाभांत्रिनेत्रांशिशेखराम् अनेककुसुमाकीर्णांकपदेनसुशोभिताम् नितंबद्विबसद्भक्तिंकिणीकाणनाशिनीम्
शूलचक्रदंडशक्तिवज्राचापासिधारिणीम् घंटाभ्रमालाकरकपानपात्रलसत्कराम् तदप्रेक्ष्यशिरसंमाहिर्बन्धि-

राहुतम् निःसृतार्धतनुंकठनालेचर्मासिधारिणम् देवीधृतकरप्रीवंशूलेनोरसिताडितम् नागपाशेनविक्षिप्तं हर्ष-
क्षेणापिविदुतम् वमद्बुधिरवकेणधुन्वतोर्ध्वसटावुषा सर्वतोमातृचक्रेणसेव्यमानां सुरैस्तथेति तत्रदेवीप्रकृत-
व्याहैमीवाराजतीतथा मृद्वार्क्षीलक्षणोपेताखड्गशूलेचपूजयेत् वार्क्षीदारुमयी ।

एयं विशेष सांगतो निर्णयामृतांत भविष्यांत—“सप्तमीचे दिवशीं समाहित होऊन काष्ठांचा नऊ गृहं नवीं अशीं करावी. अथवा एक करावें. अत्यंत सुंदर व चार कोनाचें असं दुर्गागृह करावें. त्यामध्ये सुंदर सारखी चार हात वेदिका करावी. तिचे ठायीं शैल (पटवन्न), कंबल व अजिन यांनी युक्त सिंहासन करावें. त्या सिंहासनावर सर्वलक्षणयुक्त दुर्गेची प्रतिष्ठा करावी. ती दुर्गामूर्ति चार किंवा दहा सुंदर भुजांनीं भूषित; तप्तसुवर्णासारखी कांति; तीन नेत्रांची; चंद्रशेखरा; बहुतपुष्पांनीं व्याप्त; जटाजूटांनं सुशोभित; कमरेस बांधलेल्या वारीकघंटांच्या शब्दानें युक्त; शूल, चक्र, दंड, शक्ति, वज्र, धनुष्य, तरवार यांतें धारण करणारी; घंटा, रुद्राक्षमाला, करक (कमंडलु), पानपात्र यांनीं सुशोभित आहेत हन्म जीचे अशी दुर्गामूर्ति करावी. तिच्या पुढें मस्तक तुटलेला, रक्तांनं भरलेला, अंधं शरीर बाहेर आलेला, कंठनालावर डाल तरवार धरणारा, देवीनं घरली आहे हस्तांचे ठायीं ग्रीवा ज्याची असा, शूलानं उरावर ताडित, नागपाशांनं वद्ध, सिंहांनं पराभूत, मुखानं रक्त ओकणारा, क्रोधानं सटा (मानेवर्गल केश) वर उडवणारा असा महिषामुर करावा. आणि चव्हाकडे देवींच्या समूहांनीं व देवांनींही सेवा केलेली अशी दुर्गादेवी करावी. दुर्गादेवीची मूर्ति करावयाची ती गोव्याची, रुप्याची, मातीची किंवा लांकडाची करावी आणि तरवार व शूल हीं आयुधं करून त्यांची पूजा करावी.”

देवीमूर्तिस्थापनेविशेषोदुर्गाभक्तितरंगिण्यांदेवीपुराणे याम्यास्याशुभदादुर्गापूर्वास्याजयवर्धिनी पश्चिमाभिमुखीनित्यंनस्थाप्यासौम्यदिङ्मुखी प्रतिमाभावेविशेषस्तत्रैव हैमराजतमृद्वानुशैलचित्रार्पितापि-
वा खड्गे शूलैर्वितादेवीसर्वकामफलप्रदा यमयस्यायुधंप्रोक्तं तस्मिंस्तान्प्रतिपूजयेत् देवीभक्त्यार्थितापुंसारज्या-
युःसुतसौख्यदा कृत्यतरवारणवेकालिकापुराणे लिंगस्यांपूजयेद्देवीमंडलस्यांतथैवच पुस्तकस्यांमहा-
देवीपावकेप्रतिमासुच चित्रेचत्रिशिखेखड्गेजलस्यांवापिपूजयेत् विल्वपत्रैर्यजेद्देवीतथाजार्ताप्रसूतकैः नाना-
पिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः भगलिंगाभिधानैश्चभगलिंगप्रगीतकैः भगलिंगक्रियाभिश्चप्रीणयेद्वरचंडिकाम
परैर्नाक्षिप्यतेयस्तुयःपराभ्राक्षिपत्यपि तस्यकुद्धाभगवतीशापंदद्यात्सुदारुणम् चित्रमृन्मयादौस्नानाद्यसंभवे-
तत्रैवोक्तम् अंतिकेस्थापितेखड्गे स्नापयेद्दर्पणेथवेति ।

देवीचे मूर्तिस्थापनाविषयीं विशेष सांगतो दुर्गाभक्तितरंगिणींत-देवीपुराणांत-“दुर्गादक्षिणाभिमुख स्थापित्वा असतां शुभ देणारी होते. पूर्वाभिमुख जयवर्धिनी होते. पश्चिमाभिमुख व उत्तराभिमुख देवी स्थापू नये.” प्रतिभेच्या अभावीं. विशेष सांगतो-तेथेंच “सुवर्ण, रजत, मृत्तिका, धातु, शिला, चित्र, यांचीं केल्या अथवा खड्ग व शूल यांचे ठायीं पूजलेली देवी सर्व मनोरथ देणारी होते. जें जें जिचें आयुध सांगितलें त्याचे ठायीं तिचें पूजन करावें. भक्तांनं देवीची पूजा केली असतां ती देवी पुरुषांस राज्य, आयुष्य, पुत्र, सांख्य देणारी होते.” कृत्यतरवारणवांत कालिका-
पुराणांत-“लिंगाचे ठायीं देवीचें पूजन करावें. तसेंच स्थंडिल, पुस्तक, अग्नि, प्रतिमा, चित्र, त्रिशूल, किंवा खड्ग अथवा उदक यांचे ठायींही पूजन करावें. विल्वपत्रांनीं देवीचें यजन (पूजन) करावें. तसेंच जाईच्या पुष्पांनीं, नानाप्रकारच्या पिठाच्या पदार्थांच्या नैवेद्यांनीं, सुंदर धूपदीपांनीं, पूजा करावी. आणि भग व लिंग यांच्या नामांनीं, भगलिंगायांनांनीं, आणि भगलिंगक्रियांनीं श्रेष्ठ चंडिकेला संतुष्ट करावी. दुसऱ्यांनीं ज्याचा आक्षेप केला नाही व जो दुसऱ्याला आक्षेप (निंदा) करीत नाही त्यास भगवती क्रुद्ध होऊन भयंकर शाप देते.” चित्र किंवा मातीची वर्गरे मूर्ति असतां स्नानादिकांचा असंभव असेल तर तेथेंच सांगतो-“देवीच्या जवळ स्थापन केलेल्या खड्गाला किंवा दर्पणाला स्नानादि उपचार करावे.”

अथसप्तमीपूजाविधिः प्रतिपद्युक्तविधिनाफलसंकीर्तनातेनवपत्रिकामृन्मयदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्येइतिसंकल्प्यपूर्वनिमंत्रितविल्वसमीपंगत्वासंपूज्य आगच्छसर्वकल्याणीतिपूर्वोक्तमंत्रंपठित्वा विल्ववृ-
क्षमहाभागसदात्वंशंकरप्रिय गृहीत्वातवशाखांचदेवीपूजांकरोम्यहम् शाखाछेदोद्भवदुःखंनचकार्यत्वयाप्रभो गृहीत्वातवशाखांचपूज्यादुर्गेतिचस्मृतिः उत्तिष्ठपत्रिकेदेविसर्वकल्याणहेतवे पूजांगृहाणसकलामस्माकंवरदा-
भव मेरुमांदारकैलासहिमवच्छिखरेगिरौ जातःश्रीफलवृक्षत्वमंबिकायाःसदाप्रियः इतिसंप्राप्त्यैःअंधिधिक-
दफ्दुंहुंफट् स्वाहेतिछित्त्वासंपूज्य अंबामुंडेचलचलइतिवाद्यघोषेणदेवीतांचगृहंप्रवेश्य आरोपितासिदुर्गे-

त्वंमृन्मयांश्रीफलेपिच स्थिरानितांतंभूत्वाचगृहेत्वंकामदाभवेति स्थिरिकृत्य रंभादिपत्रिकाः पंचगव्येनपंचामृतेनचस्नापयित्वावस्त्रेणावेष्टयथापयेन् ततःपूर्ववत्संकल्पंकृत्वाऽक्षतानादायदेवीमावाहयेत् तत्रमंत्रः
आवाहयाम्यहंदेवींमृन्मयांश्रीफलेतथा कैलासशिखरादेविविंध्याद्रैहिमपर्वतात् आगत्यबिल्बशाखायांचंडि-
केकुरुमन्निधिम स्थापितासिमयादुर्गंपूजयेत्वांप्रसीदमे आयुरारोग्यमैश्वर्यदेहिदेविनमोस्तुते दुर्गेदुर्गास्वरूपा-
मिमुरतेजोमयार्चिते मदानंदकरेदेविप्रसीदममसिद्धये गृहेहिभगवत्यंबशत्रुश्रयजयप्रदे भक्तितःपूजया-
मित्वांदुर्गेदेविमुरार्चिते पद्मैश्चफलोपेतैःपुष्पैश्चमुमनोहरैः पद्मैस्त्वस्थितेदेविपूजयेत्वांप्रसीदमे दुर्गेदेविइहाग-
च्छमात्रिध्यसिंहकल्पय यज्ञभागान्गृहाणत्वं योगिनीकोटिभिःसहेति ततोमूलमंत्रेणपाशादिगंधांतोपचारैः
अमृतोद्भवंचत्रीवृक्षंशंकरस्यमदाप्रियम् त्रिव्रपत्रंप्रयच्छामिपवित्रंतेसुरेश्वरीतिबिल्बपत्रम् ब्रह्मविष्णुशिवा-
दीनांद्रोणपुष्पंसदाप्रियम् तत्तेदुर्गंप्रयच्छामिसर्वकामार्थसिद्धयइतिद्रोणपुष्पंनिवेश धूपादिदक्षिणांतांपूजांमू-
लेनकृत्वाप्रार्थयेत् ॐ महिपत्रिमहामायेचामुंडेमुंडमालिनि आयुरारोग्यमैश्वर्यदेहिदेविनमोस्तुते कुंकुमेन-
ममालम्बेचंदनेनविलेपिते त्रिव्रपत्रंकृतापीडेदुर्गंहंशरणगतः रूपंदेहियशोदेहिभगंभगवतिदेहिमे पुत्रान्दे-
हिधनंदेहिस्वर्वांकामांश्चदेहिमे सर्वसंगलमांगल्येइतिचसंप्राप्त्यपत्रिकाःपूजयेत् कदल्यांब्रह्माण्डी दाडिमे-
रक्तदंतिकाम धान्यैलक्ष्मी हरिद्रायांदुर्गा मानेचामुंडाम कवौकालिकाम त्रिव्वेशिवां अशोकेशोकरहिताम्
जयंत्यांकार्तिकीचावाह्यसंपूज्यदुर्गायैवल्लिदद्यात् अत्रशस्त्रादिपूजावक्ष्यते ततःस्तुतिपठेत् तदुक्तंशिवरहस्ये
दुर्गाशिवांशान्तिकरींब्रह्माण्डीब्रह्मणःप्रियाम सर्वलोकप्रणेत्रींचप्रणमामिसदाशिवाम् मंगलांशोभनांशुद्धां-
निष्कलांपरमांकलाम विश्वेश्वरींविध्यमातांचंडिकांप्रणमाम्यहम् सर्वदेवमयीदेवीसर्वरोगभयापहाम् ब्रह्मेश-
विष्णुनमितांप्रणमामिसदाऽमाम विध्यम्यांविध्यनिलयांदिव्यस्थाननिवासिनीम् योगिनींयोगमातांचंडिकां-
प्रणमाम्यहम् ईशानमातरंदेवीमांश्चरामीश्वरप्रियाम प्रणनोस्मिमदादुर्गांसंमार्गणवतारिणीम् यइमंपठते-
स्तोत्रंशृणुयाद्वापियोत्तरः समुक्तःसर्वपापंस्तुमोदतेदुर्गयामह ।

आतां सप्तमीपूजाविधि भागवतो-प्रतिपद्य भागविल्लया विनीतं संकल्प संकीर्तनाच्या अंती "नम्रपत्रिका मन्मथ-दुर्गापूजावलिदानानि करिष्ये" अया संकल्प करून पंचा निमंत्रण दिवल्या विन्याच्या समीप जाऊन पूजन करून, 'आगच्छ सर्वकल्याणि' हा पूर्वोक्त मंत्र म्हणून— "विल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शंकरप्रिय ॥ गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां करोम्यहं ॥ शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो ॥ गृहीत्वा तव शाखां च पूज्या दुर्गंति च स्मृतिः ॥ उत्तिष्ठ पत्रिके देवि सर्वकल्याणहेतवे ॥ पूजां गृहाण सकलामत्माकं वरदा भव ॥ मेरुमांदारकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ ॥ जातः श्रीफलवृक्ष त्वमधिकार्याः सदा प्रियः ॥" अशी प्रार्थना करून— "ॐ छिधि फट् फट् ॐ हुं फट् स्वाहा" या मंत्राने छेदन करून पूजन करावे. "ॐ वामुंडे चलचल" या मंत्राने वायव्योपांत देवी व ती शाखा घरांत आणून— "आरोपितासि दुर्गे त्वं मन्मथयां श्रीफलेपि च । स्थिरा नितांतं भूत्वा च गृहे त्वं कामदा भव." या मंत्राने स्थिर ठेऊन, रत्नादिपत्रिकांला पंचगव्यांत व पंचाश्रुतांत खान घालून वस्त्रांत घेऊन करून स्थापन कराव्या. नंतर पूर्वाप्रमाणे संकल्प करून अक्षता घेऊन देवीचें आवाहन करावे—त्याना मंत्र— "आदाहयाम्यहं देवि मन्मथयां श्रीफले तथा ॥ कैलासशिखरांदिवि विंध्या-द्रोहिमपर्वतात् ॥ आगत्य विल्वशाखायां चंडिके कुरु संनिधि ॥ स्थापितासि मया दुर्गे पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ आयुगारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ दुर्गे दुर्गस्वरूपासि सुरतेजोमयेऽक्षिते ॥ सदानंदकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये ॥ प्लव्ही भगवत्स्यं शत्रुक्षयजयप्रदे ॥ भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुराक्षिते ॥ पल्लवंश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः ॥ पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे । दुर्गे देवि हृदागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ॥ यज्ञभागान् गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह ॥" नंतर मूलमंत्राने पाद्यादि गंधापर्यंत उपचारांनी पूजा करावी. नंतर— "अमृतोद्भवं च श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियं ॥ विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि" या मंत्राने विल्वपत्र, आणि "ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा प्रियं ॥ तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये ॥" यांनं द्रोणपुष्प (तुंब्याचें पुष्प) निवेदन करावे. नंतर धूपवीपादि दक्षिणत पूजा, मूलमंत्राने करून प्रार्थना करावी. "ॐ महिषासि महामाये वामुंडे मुंडमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ कुंकुमेन समालम्ब्य चंदनेन विलेपिते ।

विद्वपप्रकृतापीठे दुर्गेहं शरणं गतः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥ सर्वमंगलमांगल्ये०” यांही प्रार्थना करून पत्रिका पुजाव्या. कदलीचे ठायीं ब्रह्माणी, दाढिमाचे ठायीं रक्तदंतिका, धणेच्या पत्रिकेचे ठायीं लक्ष्मी, हरिद्वेर दुर्गा, मानवृक्षपत्रिकेवर चामुंडा, कवीचे ठायीं कालिका, बिल्वाचे ठायीं शिवा, अशोकावर शोकरहिता, जयंतीचे ठायीं कार्तिकी, असें आवाहन करून, व पुजून दुर्गादेवीस बलि द्यावा. येथें शस्त्रादि पूजा पुढें सांगूं. नंतर स्तुतिपाठ करावा, तो सांगतो-**शिवरहस्यांत**—“**दुर्गा शिवां शांतिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियां । सर्वलोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवां । मंगलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलां । विश्वेश्वरीं विश्वमातां चंडिकां प्रणमाम्यहं ॥ सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरो-गभयापह्नां । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमां । विध्यस्थां विध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीं । योगिनीं योगमातां च चंडिकां प्रणमाम्यहं । ईशानमातरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रियां । प्रणतोस्मि सदा दुर्गा संसाराणवतारिणीं । जो मनुष्य हें स्तोत्र पठण करील किंवा श्रवण करील तो सर्वपातकांपासून मुक्त होऊन दुर्गादेवीसहचरमान आनंद पावेल.”**

अथमहाष्टमी साचपरयुता शुक्लपक्षेष्टमीचैवशुक्लपक्षेचतुर्दशी पूर्वविद्वानकर्तव्याकर्तव्यापरसंयुतेति **ब्रह्मवैवर्तात् मदनरत्नेस्मृतिसंग्रहे** शरन्महाष्टमीपूज्यानवमीसंयुतासदा सप्तमीसंयुतानित्यंशोकसं-तापकारिणी जंभेनसप्तमीयुक्तापूजितातुमहाष्टमी इंद्रेणनिहतोजंभस्तस्माद्दानवपुंगवः तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसप्त-मीमिश्रिताष्टमी वर्जनीयाप्रयत्नेनमनुजैःशुभकांक्षिभिः सप्तमींशल्यसंयुक्तामोहादज्ञानतोपिवा महाष्टमींप्रकु-र्वाणोनरकंप्रतिपद्यते सप्तमीकलयायत्रपरतश्चाष्टमीभवेत् तेनशल्यमिदं प्रोक्तंपुत्रपौत्रश्रयप्रदम् **तथा** पुत्रान्दं-तिपशून्हंतितंतिराष्टंराजकम् हंतिजातानजातांश्चसप्तमीसहिताष्टमी तेननात्रत्रिमूर्तवैधः तदाघटिकामा-त्राप्यौदयिकीग्राह्या व्रतोपवासनियमेघटिकैकापियाभवेदिति**दंबलोक्तेः गौड**आख्येवमाहुः अतएवोक्तं **भोजराजेन** नचसप्तमीशल्यसमोपहतेति इयंभौमेतिप्रशस्ता अष्टम्यामुदितेसूर्येदिनातेनवमीभवेत् कुज-वारोभवेत्तत्रपूजनीयाप्रयत्नतइति**मदनरत्ने**वचनान् सप्तमीशल्यसंविद्धावर्जनीयासदाष्टमी स्तोकापिसाम-हापुण्यायस्यांसूर्योदयोभवेदिति**मदनरत्नेस्मृतिसमुच्चय**वचनान् अष्टमीनवमीयुक्तानवमीचाष्टमीयुतेति-**पाद्म**वचनाञ्च इयमेवमूलयुक्ताचेन्महानवमीसंज्ञा आश्वयुक्शुक्लपक्षेयाष्टमीमूलेनसंयुता सामहानवमीप्रो-क्तात्रैलोक्येपिसुदुर्लभेति**हेमाद्रौस्कांदात्** मूलयुक्तापिसप्तमीयुताचेत्याज्यैवेत्युक्तं**निर्णयामृतेदुर्गा-****त्सवे** मूलेनापिहिसंयुक्तासदात्याज्याष्टमीबुधैः लेशमात्रेणसप्तम्याअपिस्याद्यदिदृषितेति महाष्टमीपूर्वेद्युःपूर्वा-ह्वयापित्वेपूर्वान्यथापैवेति**निर्णयदीप**मतम् एतच्चतुच्छत्वादुपेक्ष्यम् **रूपनारायणधृतेदेवीपुराणे** सप्तमीवैधसंयुक्तयैःकृतातुमहाष्टमी पुत्रदारधनैर्हीनाभ्रमंतीहपिशाचवन् यत्तु सप्तम्यामुदितेसूर्येपरतोयाष्ट-मीभवेत् तत्रदुर्गात्सवंकुर्यान्नकुर्यादपरेहनीति**विश्वरूपनिबंध**वचनंतदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम् कन्यायां-कृष्णपक्षेत्तुपुजयित्वाष्टमीदिने नवम्यांबोधयेद्देवीगीतवादित्रनिःस्वनैरिति**देवीपुराणे**तत्रापिपूजोक्तेरिति**हे-****माद्रौनिर्णयामृते**चोक्तम् ।

आतां महाष्टमी सांगतो—ती अष्टमी नवमीयुक्त घ्यावी. कारण, “शुक्लपक्षांतील अष्टमी व चतुर्दशी ह्या तिथि पूर्वविद्धा करूं नयेत, परयुक्ता कराव्या.” असें **ब्रह्मवैवर्त**वचन आहे. **मदनरत्नांत**—**स्मृतिसंग्रहांत**—“शरदृतंतील महाष्टमी नवमीयुक्त सर्वदा पूज्य होते. सप्तमीयुक्ता अष्टमी शोक व संताप करणारी आहे. जंभासुरांन सप्तमीयुक्त महाष्टमी पूजिली म्हणून तो जंभासुर सर्व दानवांत श्रेष्ठ असतांही इंद्रांन मारला. या कारणास्तव शुभेच्छु मनुष्यांनीं सप्तमीयुक्त अष्टमी प्रयत्नांनं वर्ज्य करावी. सप्तमीरूपशल्यांनं युक्त महाष्टमी अविचारानें अथवा अज्ञानानें जो करितो तो नरकास जातो. जेव्हां सप्तमी एक कला असून पुढें अष्टमी असेल तेव्हां तें शल्य होतें, तें पुत्रपौत्रांचा क्षय करणारें होय.” तसेंच—“सप्तमी-सहित अष्टमी पुत्रांचा, पशूंचा, राजासहित राष्ट्रांचा, आणि झालेले व होणारे यांचा नाश करिते.” यावरून येथें सामान्य वाक्यावरून तीन मुद्दतें सप्तमी असेलतरच वैध समजूं नये. जेव्हां पूर्वीची सप्तमीयुक्त असेल तेव्हां घटिकामात्र देखील उदयव्यापिनी असेल ती घ्यावी. कारण, “व्रत, उपवास, नियम, यांविषयीं प्रातःकालीं एक घटिकामात्रही असलेली तिथि घ्यावी” असें **देखल**वचन आहे. **गौड**ही असेंच सांगतात. म्हणूनच **भोजराजांन**ें सांगितलें आहे, की “शल्यासारख्या सप्तमींनं उपहत (दुषित) अष्टमी करूं नये.” ही भौमवारीं असतां अतिप्रशस्त, कारण, “अष्टमीत सूर्योदय असून

सार्यकालीं नवमी असेल व त्या दिवशीं भौमवार होईल तर अशा योगावर देवीपूजन प्रयत्नां करावें.” असें **मदन-रत्नांत** वचन आहे. आणि “सप्तमीशालीं निरंतर वर्ज्य करावी: जीचेठायीं सूर्योदय असेल ती अल्पही असली तरी मोठी पुण्यकारक होते.” असें **मदनरत्नांत स्मृतिसमुच्चय** वचन आहे. व “अष्टमी नवमीयुक्त करावी व नवमी अष्टमीयुक्त करावी.” असें **पाश्चात्तवचन**ही आहे. हीच अष्टमी मूलनक्षत्रयुक्त असेल तर ती महानवमी होते. कारण, “आश्विनशुक्रपक्षांत मूलनक्षत्रां युक्त जी अष्टमी ती महानवमी म्हटली आहे, ती त्रैलोक्यांतही अति दुर्लभ होय.” असें **हेमाद्रींत स्कान्दवचन** आहे. मूल नक्षत्रां युक्त असली तरी गमनीयुक्त असेल तर ती वर्ज्य करावीच, असें **निर्णयामृतांत** दुर्गांगवांत सांगितलें आहे—“जर गमनीच्या लेशानेही दूषित असलेली अष्टमी मूल नक्षत्रां युक्त असली तरी ती विद्वानांनीं सर्वदा टाकावी.” महाष्टमी, पूर्व दिवशीं पूर्वाह्न्यापिनी अगतां पूर्वा, पूर्व दिवशीं पूर्वाह्न्यापिनी नगतां पराच करावी, असें **निर्णयदीपानें** मत. हें तुच्छ अगत्यामुलें उपेक्षणीय होय. **रूपनारायणभूत देवीपुराणांत**—“सप्तमीवैषयुक्त महाष्टमी ज्यांनीं केली ते पुत्र ह्वा, धन यांनीं हीन होऊन पिशाचाभावाये इहलोकीं फिरतात.” आतां जें “सप्तमींत सूर्योदय होऊन पुढें जी अष्टमी अगते निचे ठायीं दुर्गांगव करावा. दुर्गांग्या दिवशीं करूं नये.” असें **विश्वरूपनिबंधवचन** तें आश्विन कृष्णष्टमीवैषयक होय. कारण, “कन्यासंक्रान्ति कृष्णपक्षां अष्टमीदिवशीं देवीचें पूजन करून नवमींग गीत, वाद्य शब्दांनीं देवी जागृत करावी.” अशी **देवीपुराणांत** आश्विन कृष्णपक्षांतही पूजा सांगितली आहे, असें **हेमाद्रींत व निर्णयामृतांत** सांगितलें आहे.

यानितु भद्रायांभद्रकाल्याश्रमध्वेस्यादर्चनक्रिया तस्माद्वैमप्रमीविद्धाकार्यादुर्गाष्टमीबुधैरिति यंश्च **मोह-चूलोत्तरेब्राह्मेच** आश्विनम्यसिनाष्टम्यामधरात्रेतुपार्वती भद्रकालीसमुत्पन्नापूर्वापाढासमायुतेति तथा तत्राष्टम्यांभद्रकालीदक्षयज्जविनाशिनी प्रादुर्भूतामहायोगयोगिनीकोटिभिःसहेति यंश्च **मदनरत्ने** महा-ष्टम्याश्विनेमासिशुक्लकन्याणकारिणी मप्रम्यापियुताकार्यामूलननुविशेषतइति तानिपरदिनेऽष्टम्यभावविषयाणीति **मदनरत्ने** उक्तं यत्तुत्रैवपरदिनेष्टमीमन्त्रेपिपूर्वविद्धाविधायकंवचनम् यदाष्टमीतुसंप्राप्यसंया-तिदिवाकरः तत्रदुर्गात्सर्वंकुर्यान्नकुर्यादपरेहनि दुर्भिक्षंतत्रजानीयान्नवम्यांयत्रपुन्यतइतितत्परदिनेदशम्यांन-वम्यभावविषयम् यदासूर्योदयेनस्यान्नवमीचापरेहनि तदाष्टमीप्रकुर्वीतमप्रम्यामहितांनृपेतित्रैवस्मृति-संग्रहोक्तेः उत्तरास्तिथयोयत्रक्षययांतिनगधिप पूर्वाष्टमीतदाकुर्यादन्यथात्वशुभंभवेदितिदुर्गात्सर्वोक्तेः **मदनरत्ने** वस्तुतस्तुद्वंद्वचनद्वयंअष्टमीनवम्योःसूर्योदयद्वयासंबंधपरम् अतएवनवमीचेतिचकारादष्टमीच तिथयइतिबहुवचनादष्टमीनवमीदशम्युक्ता अन्यथापूर्वोक्तविरोधादिनिदिक् ।

आतां जीं “भद्रेवर मध्यें भद्रकालीची पूजा होते. नाम्नाव गमर्गाविद्ध दुर्गाष्टमी विद्वानांनीं करावी.” आणि जें **मोह-चूलोत्तरांत व ब्राह्मांत**—“आश्विनाच्या शुक्र अष्टमींग पूर्वापाढायोग अगतां मध्यारात्रीं पार्वती भद्रकाली उत्पन्न झाली. तसेंच त्या अष्टमींग दक्षयज्जनाशकत्रीं भद्रकाली कांश्यवधि योगिनींगहित महाभयंकर उत्पन्न झाली.” आणि जीं **मदन-रत्नांत**—“आश्विनमासांत शुक्रपक्षां कल्याण करणारी महाष्टमी गमनीं युक्त ही करावी. विशेषकरून मूल नक्षत्रां युक्त ती करावी” अशीं वचनें तीं परदिवशीं अष्टमी सर्वथा नमेल तशाविषयीं होत असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. आतां जें तथेंच पर दिवशीं अष्टमी अगतांही पूर्वविद्धा घेण्याविषयीं, वचन “ज्या दिवशीं अष्टमींत सूर्य जाऊन अस्तांग जातो, त्या दिवशीं दुर्गात्सव करावा. पर दिवशीं करूं नये. ज्या देशांत नवमींग दुर्गापूजन केलें असेल त्या देशांत दुर्भिक्ष पडेल असें जाणावें.” असें तें परदिवशीं दशमीचे ठायीं नवमीचा अभाव असेल त्याविषयीं समजावें. कारण, “ज्या वेळीं सूर्योदयी अष्टमी नाही, आणि परदिवशीं नवमी असेल त्या वेळीं सप्तमींगहित अष्टमी करावी.” असें तथेंच **स्मृतिसंग्रहवचन** आहे. आणि “ज्या वेळीं पुढच्या तिथि क्षयगामिनी अगनील त्या वेळीं पूर्वाष्टमी करावी. परदिवशीं केली असतां अशुभ होईल” असें **दुर्गात्सववचन**ही आहे, असें **मदनरत्नांत** आहे. नाम्नाविक म्हटलें तर ‘यदा सूर्योदये’ व ‘उत्तरास्ति-थयो’ हीं दोन वचनें अष्टमी व नवमी ह्या दोन तिथींग दोन सूर्योदयांचा संबंध नमेल तद्विषयक आहेत. म्हणजे दोहों-पैकी एकाचा क्षय असेल त्या वेळीं यांची प्रवृत्ति होते. म्हणूनच ‘नवमीचापरेहनि’ येथें ‘च’ शब्दानें अष्टमीही येते. म्हणजे—ज्या वेळीं नवमी आणि अष्टमी ह्या दोन तिथि सूर्योदयीं नाहीत, तर दोहोंपैकी एकाचा क्षय आहे त्या वेळीं पूर्वा-ष्टमी करावी. असा अर्थ होतो. ‘उत्तरास्तिथयो’ ह्या वचनांत ‘तिथयः’ ह्या बहुवचनां अष्टमी, नवमी, दशमी, ह्या तीन तिथि जेव्हां क्षयगामिनी असतील त्या वेळीं पूर्वाष्टमी करावी, असा अर्थ होतो. असा अर्थ न केला तर पूर्वीक (**स्थितिसमु-च्चयदुर्गात्सव**) वचनाचा विरोध येईल, अशी दिशा समजावी.

यत्तु अहंभद्राचभद्राहंनावयोरंतरंकरन्ति सर्वसिद्धिप्रदास्यामिभद्रायामर्चिताहमितिदेवीपुराणे तदि-

ष्टिकरणमध्येपूजाविधानार्थम् विष्टित्यक्त्वामहाष्टम्यांममपूजांकरोतियः तस्यपूजाफलंनस्यात्तेनाहमवमानिते-
तितत्रैवोक्तेरितिनिर्णयामृते तथाकालिकापुराणे सप्रम्यांपत्रिकापूजाअष्टम्यांचाप्युपोषणम् पूजाच
जागरश्चैव नवम्यांविधिवद्बलिरिति अष्टम्युपवासश्चपुत्रवतानकार्यः उपवासमहाष्टम्यांपुत्रवाजसमाचरेन्
यथातथावापूतात्माव्रतीदेवीप्रपूजयेदितितत्रैवोक्तेः रूपनारायणीयेब्राह्मे अत्यर्थपूजनीयासातस्मि-
न्नहनिमानवैः उपोषितैर्वस्त्रधूपमाल्यरत्नानुलेपनैः पशुभिःपानकैर्हृद्यैरात्रौजागरणेनच दुर्गागृहेचशस्त्राणि
पूजितव्यानिपंडितैः वाद्यभांडानिचिह्नानिकवचान्यायुधानिच ।

आतां जें “देवी म्हणते-मी देवी भद्रा (कल्याणी) आहे, आणि भद्रा जी ती मी देवी आहे. भद्रा (कल्याणी, विष्टि)
व मी ह्या दोघांमध्ये कांहीं अंतर नाही, म्हणून कल्याणीवर माझी पूजा केली असतां मी सर्व सिद्धि देते” हें **देवीपुरा-
णांतील** वचन विष्टि करणावर पूजा करण्यास सांगण्याकरितां आहे. कारण, “जो मनुष्य महाष्टमीचे ठायीं विष्टीचा
त्याग करून माझी पूजा करितो त्याला पूजेचें फल प्राप्त होत नाही. कारण, त्यानें माझा अपमान केला आहे.” असें तेथेंच
सांगितलें आहे, असें **निर्णयामृतांत** आहे. तसेंच **कालिकापुराणांत**—“सप्तमीचे ठायीं पत्रिकापूजा करावी. अष्ट-
मीचे ठायीं उपोषण, पूजा, जागर हीं करावीं. नवमीचे ठायीं यथाशास्त्र बलिदान करावें.” अष्टमीचे ठायीं उपवास पुत्र-
वंतांनं करूं नये. कारण, “पुत्रवंतांनं महाष्टमांस उपवास करूं नये, जया तगा पवित्र होऊन व्रतस्थ राहून देवीचें पूजन
करावें.” असें तेथेंच सांगितलें आहे. **रूपनारायणीयांत**—**ब्राह्मांत**—“अष्टमीचे दिवशीं मनुष्यांनीं उपोषण करून
वस्त्र, धूप, माल्य, रत्नें, अनुलेपन, पशूंचें बलिदान, आवडणारीं पानकें (मधें वगैरे), रात्रां जागरण इत्यादि उप-
चारांनीं देवीचें पूजन करावें. दुर्गा देवीच्या गृहांत पंडितांनीं शस्त्रें पुजावीं. व वाजविण्याचीं भांडीं, चिन्हें, कवचें,
आयुधें हींही पुजावीं.”

अत्रविशेषोहेमाद्रौनिर्णयामृतेभविष्ये आश्वयुक्शुक्लपक्षस्यअष्टमीमूलसंयुता सामहानवमीनाम
त्रैलोक्येपिसुदुर्लभा कन्यागतेसवितरिशुक्लपक्षेष्टमीयुता मूलनक्षत्रसंयुक्तासामहानवमीस्मृता नवम्यांपूजि-
तादेवीददात्यमिमंतफलम् सापुण्यासापवित्राचसाधन्यासुखदायिनी तस्यांसदापूजनीयाचामुंडामुंडमालिनी
सदेत्युक्तेर्नित्यतापि तस्यांयेह्युपयुज्यतेप्राणिनोमहिषादयः सर्वेतेस्वर्गतिंयातिप्रतांपापंपनविद्यते यावन्नचालये-
द्वात्रंशस्तुतावन्नहन्यते नतथाबलिदानेनपुष्पधूपविलेपनैः यथासंतुष्यतेमेपैर्महिषैर्विध्यवासिनी एवंचविध्य-
वासिन्यांनवरात्रोपवासतः एकभुक्तेननकेनस्वशक्त्यायाचितेनच पूजनीयाजनैर्देवीस्थानेस्थानेपुरेपुरे गृहे-
गृहेभक्तिपरैर्प्रांमेप्रामेवनेवने स्नातेःप्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्नृपैः वैश्यैःशूद्रैर्भक्तियुतैर्मल्लैरन्यैश्चमानवैः
स्त्रीभिश्चकुरुशार्दूलतद्विधानमिदंशृणु जयाभिलापीनृपतिःप्रतिपत्प्रभृतिक्रमान् लौहाभिसारिककर्मकारयेद्या-
वदष्टमीति लौहाभिसारिककर्मविधानंतत्रैवोक्तम् प्रागुदकप्रवणेदेशोपताकाभिरलंकृतम् मंडपंकारयेद्व्यंन-
वसप्तकरंपरम् षोडशहस्तमित्यर्थः आग्नेय्यांकारयेत्कुंडंहस्तमात्रंसुशोभनम् मेखलात्रयसंयुक्तंयोन्याश्वत्थद-
लाभया राजचिह्नानिसर्वाणिशस्त्राण्यस्त्राणियानिच आनीयमंडपेतानिसर्वाण्यत्राधिवासयेत् ततस्तुब्राह्मणः-
स्नातःशुक्लांबरधरःशुचिः ॐकारपूर्वकैर्मंत्रैस्तल्लिगैर्जुहुयाद्धृतम् शस्त्रास्त्रमंत्रैर्होतव्यंपायसघृतसंयुतम् हुत-
शेषंतुरंगाणांराजानमुपहारयेत् लोहाभिसारिककर्मतेनैवऋषिभिःस्मृतम् धृतपत्ययनानश्वाणांजाश्रंसमलं-
कृतान् भ्रामयेन्नगरेनित्यंबंदिघोषपुरःसरम् प्रत्यहंनृपतिःस्नात्वासंपूजयपितृदेवताः पूजयेद्राजचिह्नानिफल-
माल्यविलेपनैः तस्याभिसरणाद्राज्ञोविजयःसमुदाहृतः पूजामंत्रान्प्रवक्ष्यामिपुराणोक्तानहंतव यैःपूजिताः-
प्रयच्छंतीकिर्तिमायुर्यशोबलम् ।

येथें विशेष सांगतो—**हेमाद्रौंत व निर्णयामृतांत भविष्यांत**—“आश्विन शुक्लपक्षाची जी मूलनक्षत्रयुक्त अष्टमी
ती महानवमी होय, ही त्रैलोक्यांत दुर्लभ आहे. सूर्य कन्याराशीस असतां शुक्लपक्षांतील अष्टमी व मूलनक्षत्र यांनीं युक्त
जी नवमी ती महानवमी होय. नवमीस देवीचें पूजन केलें असतां ती देवी इच्छितफल देते. ती महानवमी पुण्य,
पवित्र व सुख देणारी आहे. तिचे ठायीं मुंडांची माला धारण करणाऱ्या चामुंडादेवीचें सदा पूजन करावें.” ह्या वचनांत

‘सदा’ असे सांगितल्यावरून हे देवीपूजन नित्यही आहे, असे होतें. त्या महानवमीचेठायी ज्या महिषादिक प्राण्यांचा उपयोग केला जातो, ते सारे प्राणी स्वर्गामें जातात. व त्यांची हिंसा करणारांना पाप लागत नाही. जोंपर्यंत पशु आपलें शरीर चाळवीत नाही तोंपर्यंत तो पशु मारूं नये. विध्यवासिनी देवी जशी गेव व महिष यांनी संतुष्ट होते तशी बलिदान, पुष्प, धूप, विलेपन, यांनी संतुष्ट होत नाही. याप्रमाणें नवरात्रामध्यें उपवास, एकभुक्त, नक्त, अयाचित यांतून आपल्या शक्तीप्रमाणें कोणतें एक करून जनांनी विध्यवासिनी देवीचें पूजन जागोजागी, नगरानगरांत, प्रतिगृही, प्रतिग्रामी, प्रतिवनी भक्तियुक्त होऊन करावें. स्नान करून आनंदित होऊन हर्षयुक्त अशा ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजे, वैश्य, शूद्र, भक्तियुक्त म्लेच्छ, अन्यही मनुष्य व स्त्रिया यांनी पत्रा करावी. हे कुरुश्रेण ! त्याचें विधान सांगितों, ध्रुवण कर. जयेच्छराजानें प्रतिपदेस आरंभ करून कमानें लोहाभिगारिक कर्मे अष्टमापर्यंत करावें.” लोहाभिगारिककर्माचें विधान तेथेंच सांगितलें आहे. तें असें—“प्रागुदकप्रवण (पर्वकटे व उत्तरेकटे राखल) प्रदेशी पनाकांनी अलंकृत, सुंदर सोळा हात लांब असा उच्छ्रुत मंडप करावा. त्याचे आग्नेयीय एकाहातानें सुंदर, तीन मेगलांनी युक्त, अश्वत्थपत्राकार योनीनें युक्त असें कुंड करावें. नंतर जी राजानव्हें, अश्व व अश्व अगशील नी गारां या मंडपांत आणून अधिवागन करावें. नंतर ब्राह्मणानें स्नान करून पांढरें वस्त्र धारण करून शुद्ध होऊन त्या देवतेच्या लिंगांनी युक्त अशा ॐकारपूर्वक मंत्रांनी आज्यहोम करावा. शस्त्रास्त्रमंत्रांना वृत्तयुक्त पाषाणाचा होम करावा. वृत्तशेष अग्रेल तें अक्षांच्या राजास द्यावें. यावरून हे लोहाभिगारिक कर्मे ऋषींनी सांगितले आहे. जिन पातळेल अथ व अलंकृत गज यांना वायवोपामहित नित्य नगरांत फिरवावें. राजांनं प्रतिदिवशी स्नान करून पियार, देवता यांचें पूजन करून फळें, मान्ये, गंध यांही करून राजचिन्हांचें (छत्रचामरादिकांचें) पूजन करावें. त्याच्या आत्मधारणानें (गमनानें) राजाचा विजय सांगितला आहे. आतां त्यांचे पूजेविषयीं पुराणोक्त पूजामंत्र मो तुला गांगवो. त्या मंत्रांनी पूजन केल्या लव्रादि देवता कीर्ति, आयुष्य, यश, व बल देतात.”

अथमंत्राविष्णुधर्मोत्तरोक्ताः छत्रस्य यथावुदञ्जलदयतिशिवायैमांभसुधराम तथाछादयराजानं विजयारोग्यवृद्धये चामरस्य शशांककरमंकाशक्षीरडिंडीरपांचुर प्रोत्सारयाशुदुरितंचामरामरदुर्लभ अश्वानां वृद्धवर्धरेवंतपूजनमहंकरिष्य मय्यपुत्रमहाबाहोछायाहृदयनंदन शान्तिकुरुतुंगगणारेवंतायनमोनमः अनेनमंत्रेणपूजा अथाश्वस्य गंधर्वकुलजानभवंमाभूयाःकुलदृपकः ब्रह्मणःसत्यवाक्येनमोमस्यवरुणस्यच प्रभावाच्चहुताशस्यवर्धयत्वंतुंगमान तेजसांचैवमय्यमुनीनांतपमातथा रुद्रस्यब्रह्मचर्येणपवनस्यबलेनच स्मरत्त्वंराजपुत्रत्वंकौस्तुभंचमणिस्मर यांगतित्रह्महागच्छेन्मातृहापितृहानथा धृणहानृतवादीचक्षत्रियश्वपराक्षुखः सूर्याचंद्रमसौवायुर्यावन्पउयतिदुःकृतम् व्रजाध्वनांगतिश्रिप्रंतच्चपापंभवेत्तत्र निष्क्रुतोयदिगच्छेथायुद्धाध्वनितुंगम रिपून्विजित्यममंगमह्रात्रामुखीभवेति अथध्वजस्य शक्रकेतोमहावीर्यइयामवर्णाचयाम्यहम् पत्रिराजनमस्तेस्तुतथानारायणध्वज काश्यपेयारुणभ्रानतांगारेविष्णुवाहन अप्रमेयदुर्गाधरपणेदेवारिसूदन गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयिमन्निहितोयतः सारवंत्यायुधान्यत्रश्रत्वंचरिपून्दह अथपनाकायाः हुतभुग्वसवोरुद्रावायुःसोमोमहर्षयः नागकिन्नरगंधर्वयक्षभूतगणप्रहाः प्रमथाम्तुमहादित्यैभूतेशोमातृभिःसह शक्रःसेनापतिःस्कंदोवरुणश्चाश्रितास्त्वयि प्रदहंतुरिपून्मवांग्राजाविजयमृच्छतु यानिप्रयुक्तान्यरिभिरायुधानिसमंततः पतन्तुरिशत्रूणांहतानितवतेजसा हिरण्यकशिपायुद्धेयुद्धेदेवासुरेतथा कालनेमिवधेयद्वष्टद्वित्रिपुरघातने शोभितासितैर्धवाद्यशोभयाम्मांश्रसंस्मर नीलान्श्वेतानिमान्हृद्वानश्यंत्वाशुनृपारयः व्याधिभिर्विबिधैर्धैरैःशमैश्चयुधिनिर्जिताः पूतनारेवर्तानाम्राकालरात्रिश्रयास्मृता दहत्याशुरिपून्सर्वानृपताकेत्वंमयार्चिता अथगजस्य कुमुदेरावणौपद्मःपुष्पदंतोथवामनः सुप्रतीकोजोनीलपतेष्टौदेवयोनयः तेषांपुत्राश्चपौत्राश्च वनान्यष्टौसमाश्रिताः मंदोभद्रोभृगश्चैवगजःसंकीर्णएवच वनेवनेप्रसूतास्तेयूथानिसुमहांतिच पांतुत्वांवसवोरुद्रादिव्याःसमरुद्राणाः भर्तारंगश्रतागेंद्रस्वामिवत्प्रतिपान्यताम् अवाप्रुहिजयंयुद्धेगमनेस्वस्तिनोब्रजश्रीस्तेसोमाद्रुलविष्णोस्तेजःसूर्याज्जवोनिलान् स्थैर्यमेरोर्जयंरुद्रागशोदेवात्पुंरंदान युद्धेशंतुनागास्त्वांदिशश्चसहदैवतैः अधिनोसहगंधर्वैःपांतुत्वांसर्वतःसदेति अथखड्गमंत्रः असिर्विशसनःखड्गस्तीक्ष्णधारोदुरासदः श्रीगर्भोविजयश्चैवधर्मधारस्तैवच एतानितवनामानिस्वयमुक्तानिवेधमा नश्चत्रंकृत्तिकातेतुगुरुदैवोमहेधरः रोहिण्यश्चशरीरतैदैवतंचजनार्दनः पितापितामहोदेवस्त्वमांपालयसर्वदा नीलजीमूतसंकाशस्तीक्ष्णवर्धूःकुशो-

वरः भावशुद्धोर्मर्षणश्च अतितेजास्तथैव च इयं येन धृताक्षोणीहतश्चमहिषासुरः तीक्ष्णधारायशुद्धायतस्मैखङ्गा-
यतेनमः अथ **हुरिकायाः** सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासिपिनाकिना शूलायुधादिनिष्कृत्य कृत्वा मुष्टिप्रहंशुभम्
चंडिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिबर्हिणी तथा विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता सर्वसत्वांगभूतासि सर्वांशुभ-
निबर्हिणी **हुरिकेश्रमां** नित्यं शांतिं च्छनमोस्तुते अथ **कट्टारकपूजा** रक्षांगानि गजान् रक्षश्वाजिधनानि च
मम देहं सदारक्ष कट्टारकनमोस्तुते कट्टारको मध्यदेशे कटारीति प्रसिद्धा **धनुःपूजा** सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवा-
रिसूदन चापमांसमरेरक्षसाकंशरवरैरिह धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरखनं माम्य-
हम् **कुंतपूजा** प्रासपातय शत्रूंस्त्वमनयानाकमायया गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च रक्षताम् **चर्मपूजा**
शर्मप्रदस्त्वं समरे चर्मसैन्ये यशो व मे रक्षमां रक्षणीयो हंता पनेयनमोस्तुते अथ **कनकदंडमंत्रः** प्रोत्सारणाय
दुष्टानां साधुं रक्षणाय च ब्रह्मणानिर्मितश्चासि न्यवहारप्रसिद्धये यशो देहि सुखं देहि जयद्रोभवभूपतेः ताडय-
स्वरिपूंसर्वान् हेमदंडनमोस्तुते अथ **दुंदुभिमंत्रः** दुंदुभे त्वं सपन्नानां घोरो हृदयकंपनः भव भूमिपसैन्यानां त-
था विजयवर्धनः यथा जीमूतघोपेण प्रहृष्यंति च बर्हिणः तथा स्तुतव शब्देन ह्योस्माकं मुदा बहः यथा जीमूतशब्दे-
न क्षीणां त्रासो भिजायते तथा त्रतव शब्देन त्रयं त्वस्मद्विपोरणे अथ **शंखमंत्रः** पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मंगलानां
च मंगलम् विष्णुना विधृतो नित्यमतः शांतिप्रदो भव ।

आतां विष्णुधर्मोत्तरांतील मंत्र सांगतो.

छत्राचा मंत्र—“यथा बुद्धश्चादयति शिवायेमां वसुंधरां ॥ तथा छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये.”
चामराचा मंत्र—“शशांककरसंकाश क्षीरडिंडीरपांडुर ॥ प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुलभ ॥”
“अश्वानां वृद्धयर्थं रेवंतपूजां करिष्ये” असा संकल्प करून “सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनंदन ॥ शांतिं
कुरु तुरंगाणां रेवंताय नमोनमः ॥” या मंत्रां रेवंताची पूजा करावी. अश्वानां पूजामंत्र—“गंधर्वकुलजा तस्त्वं
मा भूयाः कुलदूषकः ॥ ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं
तुरंगमान् ॥ तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा ॥ रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च ॥ स्मर
त्वं रात्रपुत्रं च कौस्तुभं च मणिं स्मर ॥ यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा ॥ भूणहाऽनुत-
वादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः ॥ सूर्याचंद्रमसौ वायुर्यावत्पश्यति दुष्कृतं ॥ व्रजाश्च तां गतिं क्षिप्रं
तच्च पापं भवेत्तव ॥ निष्कृतो यदि गच्छेथा युद्धाध्वनिं तुरंगम ॥ रिपून् विजित्य समरे सह भ्रात्रा
सुखी भव ॥” ध्वजाचा मंत्र—“शक्रकेतो महावीर्य इयामवर्णाचंयाम्यहं ॥ पत्रिराज नमस्तेस्तु तथा
नारायणध्वज ॥ काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन ॥ अप्रमेय दुराधर्ष रणे देवारिसूदन ॥
गहस्तान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहिनो यतः ॥ सारवंत्यायुधान्यत्र रक्ष त्वं च रिपून् दह ॥” पताकेचा
मंत्र—“हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ॥ नागकिन्नरगंधर्वयक्षभूतगणग्रहाः ॥ प्रमथास्तु
सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ॥ शक्रः सेनापतिः स्कंदो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥ प्रदहंतु रिपूंस-
र्वान् राजा विजयमृच्छतु ॥ यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समंततः ॥ पतंतूपरि शत्रूणां हतानि तव
तेजसा ॥ हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा ॥ कालनेमि वधे यद्वद्यद्विपुरघातने ॥ शोभितासि
तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संसर ॥ नीलान् श्वेतानिमान् दृष्ट्वा नश्यंत्वाशु नृपारयः ॥ व्याधिभिर्विधिधै-
द्यैरेः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥ पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता ॥ दहत्वाशु रिपून्
सर्वान्पताके त्वं मयाचिंता ॥” आतां गजाचा मंत्र—“कुमुदैरावणौ पक्षः पुष्पदंतोऽथ वामनः ॥ सुप्रती-
कोऽजानो नील एतेष्टौ देवयोनयः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः ॥ मंदो भद्रो मृग-
श्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥ वने वने प्रसृतास्ते यूथानि सुमहांति च ॥ पांतु त्वां वसवो रुद्रा
आदित्याः समरुद्रणाः ॥ भर्तारं रक्ष नागेंद्र स्वामिवत्प्रतिपात्यतां ॥ अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति
नो व्रज ॥ श्रीस्ते सोमाद्वलं विष्णोस्तेजः सूर्याजवोऽनिलात् ॥ स्यैर्यं मेरोर्जं रुद्राद्यशो देवात्पुरंदरात् ॥
युद्धे रक्षंतु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ॥ अश्विनौ सह गंधर्वैः पांतु त्वां सर्वतः सदा ॥” आतां
क्षत्रमंत्रः—“असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥ श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥
एतानि एव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ॥ नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्वैवो महेश्वरः ॥ रोहिण्यश्च

शरीरं ते दैवतं च जनार्दनः ॥ पितुः पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥ नीलजीमूतसंकाशस्त्री-
 क्षणदंष्ट्रः कुशोदरः ॥ भावशुद्धो मर्षणश्च अतितेजास्तथैव च ॥ इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषा-
 सुरः ॥ तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः ॥” छुरिकेचा मंत्र—“सर्वांगुधानां प्रथमं निर्मितासि
 पिनाकिना ॥ शूलगुधाद्विनिष्कृत्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभं ॥ चंडिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिर्वाहिणी ॥
 तथा विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥ सर्वसत्त्वांगभूतासि सर्वांगुभनिर्वाहिणी ॥ छुरिके रक्ष
 मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोस्तु ते ॥” कटारपूजा मंत्र—“रक्षांगानि गजान् रक्ष रक्ष वाजिघनानि च ॥
 मम देहं सदा रक्ष कटारक नमोस्तु ते” कटारक ऋणजे मध्यदेशांत कटारी अशी प्रसिद्ध आहे. धनुष्याचा
 मंत्र—“सर्वांगुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन ॥ चाप मां समरे रक्ष साकं शरवरेरिह ॥ धृतं कृष्णेन
 रक्षार्थं संहराय हरेण च ॥ त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहं ॥” कुंतपूजा मंत्र—“प्रास पातय छात्र-
 स्वमनया नाकमायया ॥ गृहाण जीविनं तेषां मम सैन्यं च रक्षतां ॥” चर्म (ढाल) पूजा मंत्र—“शस्त्र-
 प्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोयमे ॥ रक्ष मां रक्षणीयोहं तापनेय नमोस्तु ते ॥” कनकदंडपूजा मंत्र—
 “प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च ॥ ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥ यशो देहि
 सुखं देहि जयदो भव भूपतेः ॥ ताडयस्व रिपून् सर्वान् हेमदंड नमोस्तु ते ॥” तुंडुमिपूजा मंत्र—“तुंडुमे
 त्वं सपत्नानां घोरो हृदयकंपनः ॥ भवभूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्धनः ॥ यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोभि-
 जायते ॥ तथात्र तव शब्देन त्रस्यंस्त्वस्मद्विपो रणे ॥” शंखाचा पूजामंत्र—“पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मङ्ग-
 लानां च मंगलं ॥ विष्णुना विधूतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव ॥”

अथसिंहासनमंत्रः विजयो जयदोजेता रिपुघाती शुभंकरः दुःखहाधर्मदः शांतः सर्वारिष्टविनाशनः
 एतेवै सन्निधौ यस्मात्तव भिहामहाबलाः तेन सिंहासनं नित्यं देवैर्मंत्रैश्च गीयमे त्वयि स्थितः शिवः शांतस्त्वयि शक्रः-
 सुरेश्वरः नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः त्रैलोक्यजयसर्वस्वसिंहासननमोस्तुतं तथैव कर्मचिह्नानि स्वानि-
 पूज्यानि शिल्पिभिः लोहाभिमारिकं कर्मकृत्वेवं मंत्रपूर्वकम् नियमकृत्वा तथाष्टम्यां पूर्वाह्ने स्नानमाचरेन् कुंकुमच-
 दनचंपकचतुःसमैः शैलपिष्टैश्च चर्चितगात्रीं देवीं कुमुदैरभ्यर्चयेद्गृहिभिः कुमुदैः सपद्मपुष्पैः सदीपधूपैः सनैवेद्यैः
 मांसैर्वन्युपहारैर्मंगलशब्दैः ममुच्छलितैः विहितच्छत्रैर्यानेः स्यंदनसितशबधारिजनलोकैः तुष्टैः पञ्चस्त्रावितु
 निवेद्यते सर्वमेव भगवत्यै दुर्गासापृजनीयाचतर्दिने द्रोणपुष्पकैः ततः खड्गं नमस्कृत्य शस्त्राणां वधसिद्धये इच्छेत
 विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मनः पुनः पुनः प्रणम्यार्यासंस्मरन् हृदयशिवाम् सर्वकृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं
 निशि नटनर्तकगीतेश्च कारयेच्च महोत्सवम् एवं हृष्टैर्निशान्तीत्वा प्रभाते अरुणोदये घातयेन्महिषान्मेघान्प्रतोन्-
 तकंधरान् शतमर्धशतं वापितदध्वायथेच्छया मृगासवभृतैः कुंभेस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् कापालिकेभ्यस्तदेयं दासी
 दासजने तथा ततोपराह्णमयेन वस्त्रांचैरथे स्थिताम् भवानीं भ्रामयेद्वाप्रेस्वयं राजामशब्दान् कश्चिदोपोषि-
 तो वीरो विधृतोऽन्येन खड्गवान् भूतेभ्यस्तु वलिं दद्यान्मंत्रेणानेन मामिपम् सरक्तं सजलं चात्रंगंधपुष्पाक्षतैर्युतम्
 त्रींस्त्रीन्वारान्समूलेन दिग्विदक्षुकिरेद्वलिम् मंत्रश्च वलिं गृह्णत्विमं देवा आदित्यावसवस्तथा मरुतश्चाश्विनौ
 रुद्राः सुपर्णाः पन्नगाग्रहाः असुरायातुधानाश्च पिशाचो गगराश्च साः डाकिन्यो यक्षश्चेतालायोगिन्यः पूतनाः
 शिवाः जृम्भकाः सिद्धगंधर्वा मालाविधा धरानगाः दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विप्रविनायकाः जगतां शांति-
 कर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः माविभ्रमाचमेपापं मासंतु परिपंथिनः सौम्या भवंतु नृपाश्च भूतप्रेताः सुखावहा इति
 इति महाष्टमी ।

सिंहासनमंत्रः—“विजयो जयदो जेता रिपुघाती शुभंकरः ॥ दुःखहाधर्मदः शांतः सर्वारिष्टविनाशनः ॥
 एते वै संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः ॥ तेन सिंहासनेति त्वं देवैर्मंत्रैश्च गीयसे ॥ त्वयि स्थितः
 शिवः शांतस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः ॥ नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः ॥ त्रैलोक्यजयसर्वस्व
 सिंहासन नमोस्तु ते ॥” “तस्माच्च शिल्प्यानीं आपआपत्या कामाचीं आयुधं अवतील त्याची पूजा करवी. वा प्रकटं

लौहभित्तारिक कर्म मंत्रपूर्वक करून नंतर नियम करून अष्टमीच्या दिवशी पूर्वाह्नी स्नान करावें. केशर, चंदन, अगर, चंपक, ह्या चवघांबरोबर शैलपिष्ट घेऊन देवीच्या शरीराम उटी लावून बहुत पुष्पांनी तिची पूजा करावी. चंद्रविकासी कमलें, सूर्यविकासी कमलें, धूप, वीप, नैवेद्य, मांस, वस्त्र, उपहार, मंगलशब्द या उपचारांनी पूजा करावी, छत्र धारण करणारे, वाहनावर बसलेले, रथावर बसलेले, शस्त्र धरणारे अशा आनंदित जनांनी पशु-अन्न इत्यादि सर्व भगवतीला अर्पण करावें. राजानें त्या दिवशी त्या दुर्गेचें द्रोणपुष्पांनी पूजन करावें. नंतर शत्रूंच्या वधाकरितां खड्गाला नमस्कार करून आपला विजय, राज्य व सुभिक्ष यांची इच्छा राजानें करावी. हृदयामध्ये कल्याणकारक देवीचें स्मरण करीत तिला बारंवार नमस्कार करून अष्टमीस रात्री जागरण करावें, नाच, नमाशा, गाणें यांहींकरून मोठा उन्मव करावा. याप्रमाणें आनंदानें रात्र घालवून प्रभातकाळीं अरुणोदयीं देवीच्या अग्रभागीं शंभर, किंवा पन्नास अथवा पंचनीम आपल्या इच्छेप्रमाणें महिष व मेंढे मारावे. त्यांच्या रक्तमांसांनी, आणि मद्य, आसव यांनी पूर्ण भरलेल्या कुंभांनी परमेश्वरी देवीला तृप्त करावें. तें मद्यमांसादिक कापालिकांना व दासीदासांना द्यावें. नंतर नवमीचे दिवशी अपराह्नीं स्वतः राजानें देवीला रथावर बसवून वाद्यघोष करीत नगरांत फिरवावें. अन्यानें धरलेल्या कोणी एका वीरानें उपोषित राहून हातांत खड्ग घेऊन मूलमंत्रासहित पुढें सांगवाव्याच्या मंत्रानें आसिष, रक्त, जल, गंध, पुष्प, अक्षता यांनीं युक्त अन्नाचा बलि द्यावा. तो बलि दिशा विदिशांचे ठायीं तीन तीन वेळ द्यावा.” बलिदानाचा मंत्र—“बलिं गृह्णत्वमं देवा आदित्या वसवस्तथा ॥ मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुघानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः ॥ डाकिन्यो यक्ष-वेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगंधर्वा माला विद्याधरा नगाः ॥ दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ॥ मा विघ्नं मा च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ॥ सौम्या भवंतु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः” ॥ इति महाष्टमी ॥

महानवमीतुपूर्वयुताग्राह्या पूर्वोक्तवचनान् नवमीदुर्गाव्रतेश्रावणीतिदीपिकोक्तेः श्रावणीदुर्गानवमीदूर्वाचैवहुताशनी पूर्वविद्धाप्रकर्तव्याशिवरात्रिर्बलेर्दिनमितिहेमाद्रौपाद्योक्तेश्च भविष्येपि आश्व-युक्शुक्लपक्षेतुअष्टमीमूलसंयुता सामहानवमीनामत्रैलोक्येपिमुदुर्लभेति मूलमुपलक्षणम् दुर्गापूजासुनवमी-मूलाष्टम्यत्रयान्विता महतीकीर्तितातस्यादुर्गामहिमर्दिनीइति मदनरत्नेल्लेगात् अत्रपूजयेदित्यशेषः यानितु साकार्योदयगामिन्यामित्यादिप्रागुक्तानितानिनवमीभिन्नतिथिपराणि नवम्यांविशेषोक्तेः वेधश्चमुहूर्तत्रयेणैवज्ञेयः यद्यपिहेमाद्रिमतेमुहूर्तद्वयात्मापिवेधोस्तितथापिसूर्योदयएवसः सायंतुत्रिमुहूर्तएव तदुक्तंदी-पिकायाम् त्रिमुहूर्तगातुसकलासायमिति माधवोपि सायंतृत्तरयातद्वन्यूनयानतुविध्यतइति तेनत्रिमु-हूर्तयोगेपूर्वानवमी पूर्वोक्तवचनान् नकुर्यान्नवमीतातदशम्यांतुकदाचनेतिस्कांदेपरानिषेधाच्च त्रिमुहूर्तयोगा-भावेतुनिषिद्धापिपरैवकार्येतिनिष्कर्षः ।

महानवमी तर अष्टमीयुक्त ध्यावी. कारण, “अष्टमी नवमीयुक्त ध्यावी आणि नवमी अष्टमीयुक्त ध्यावी. असें पूर्वा पाद्यवचन सांगितलें आहे. “दुर्गाव्रताविषयां नवमी व श्रावणी पौर्णिमा ह्या पूर्वविद्धा ध्याव्या” अशी दीपिकाही आहे. आणि “श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वाअष्टमी, हुताशनी, शिवरात्रि, व बलिप्रतिपदा ह्या पूर्वविद्धा कराव्या.” असें हेमाद्रीत पाद्यवचनही आहे. भविष्यांतही—“आश्विनशुक्लपक्षांतली मूलनक्षत्रयुक्त अष्टमी ती महानवमी होय, ती त्रैलोक्यामध्येही अत्यंत दुर्लभ.” बरील वचनांत ‘मूलसंयुता’ असें जें पद तें मूलादि तीन नक्षत्रांचें उपलक्षण आहे, म्हणजे मूलादि तीन नक्षत्रांतून कोणत्या एकानक्षत्रानें युक्त ती महानवमी असा अर्थ. कारण, “दुर्गापूजेविषयां नवमी मूल पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा या तीन नक्षत्रांनीं युक्त ती महती म्हटली आहे, तिचे ठायीं महिषासुरमर्दिनी दुर्गा पुजावी.” असें मदनरत्नांत लिंगपुराणवचन आहे. आतां जीं “शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । सा कार्यादयगामिन्यां न तत्र तिथि-युग्मता” हें वचन प्रतिपदानिर्णयांत उक्त आहे; आणि “तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कार्येयुत यः” हें वचन सप्तमीनिर्ण-यांत उक्त आहे. इत्यादि वचनें ती नवमीभिन्न तिथिविषयक आहेत. कारण, नवमीस विशेष निर्णय (अष्टमीविद्धा ध्यावी) असा सांगितला आहे. वेध सांगितला तो तीन मुहूर्तांनींच जाणावा. जरी हेमाद्रिमतीं दोन मुहूर्तही वेध आहे तरी तो वेध सूर्योदयीच समजावा. सायंकालीं वेध तीन मुहूर्तच आहे. तें सांगतो—दीपिकेंत—“सायंकालीं त्रिमुहूर्तगामिनी तिथि ती संपूर्ण समजावी.” माधवही—“सायंकालीं तर उत्तर तिथि त्रिमुहूर्ताहून न्यून असतां तिनें प्रातःकालीन तिथीप्रमाणें विद्ध होत नाही.” तेणेंकरून सायंकालीं तीन मुहूर्त असतां पूर्वा नवमी ध्यावी. कारण, अष्टमीयुक्त नवमी ध्यावी, असें

पूर्वी सांगितलेलें वचन आहे. आणि “दशमीचे दिवशी नवमी कधीही करूं नये” असा इकांदांत पर नवमीचा निषेधही केला आहे. त्रिमुहूर्त योग नसेल तर निषिद्ध असली तरी पराच करावी, हा निषेध (मथितार्थ) समजावा.

यत्तु नवम्यांच जपं होमं समाप्य श्रवणेपिवेति संग्रहोक्तेः । व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद् बलिरिति देवीपुराणाच्च नवम्यां होमबल्यादिविहितं तत्र आश्वयुक्शुक्लनवमीमुहूर्तवाकलायदि सातिथिः सकलाज्ञेयालक्ष्मीविद्याजयार्थिभिरिति सौरपुराणात् सूर्योदयेपरं रिक्ता पूर्णास्यादपरायदि बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशेषु भावहम् बलिदाने कृते प्रम्यां पुत्रभंगो भवेन्नृपेति मदनरत्ने देवीपुराणाच्च बल्यादौ पराकार्या उपवासादौ तु पूर्वैः तिमदनरत्ने उक्तम् प्रतापमार्तं डेप्येवम् यत्तु अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद्ब्रुवमिति कालिकापुराणं तत्संधिपूजापरं अष्टमीनवमीसंधौ तृतीयाखलुकथ्यत इति तत्रैव तदुक्तेः कामरूपनिबंधे अष्टम्याः शेषवृद्धश्रनवम्याः पूर्वाण्वच तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेयामा महाफला अष्टमीमात्रे भवत्येव आश्विने पूजयित्वा तु अधरात्रे अष्टमीपुच घातयंति पशून् भक्त्यते भवंति महाबलाः तथा कन्यासंस्थेरवावीपे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् सोपवासो निशार्धं तु महाविभवविस्मरैः तथा पशुघातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथेति रूपनारायणीये देवीपुराणात् तत्रैव भविष्ये तस्मादिदं महापुण्यात् नवमीपापनाशिनी उपोष्यामुप्रयत्नेन मततं सर्वपापार्थिवैः निर्णयदीपेतुमहानवमीपरदिने पराह्वय्यापित्वे परा अन्यथा पूर्वा आवर्तनात् पूर्वकालेनवमीस्यात्परेहनि दुर्गार्चातत्र पूर्वैः शुः पूर्वाह्ने त्वष्टमीयदीति धौम्यवचनादिन्युक्तम् अस्य तु शास्त्रादानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विष्टयम् यानितु नंदायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम् भद्रायां गोकुलक्रीडातत्र गार्ग्यं विनश्यतीति नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते दशमीं वजेत्तत्र नात्र कार्याविचारणेति नंदायादर्शनेन श्रावलिदानं दशासुच भद्रायां गोकुलक्रीडादेशनाशाय जायत इति ब्रह्मवैवर्तनारदादि वचनानि तानि शुद्धाधिकनिषेधपराणीति मदनरत्ने तथा कालिकापुराणे नवम्यां बलिदानं तु कर्तव्यं वैयथाविधि जपं होमं च विधिवत्कुर्यात्तत्र विभूतये केचित्तु पूर्वापाठायुताष्टम्यां पूजा होमाद्युपोषणमिति पूर्वोक्तं दर्श्यापुगाणादष्टम्यां होममाहुः अन्ते तु द्विविधवाक्यवशादष्टम्यामारभ्य नवम्यां समापयंति समुच्चयस्तु युक्तः रुद्रयामले तु विकल्प उक्तः तत्तु निर्मूलम् दुर्गाभक्तितरंगिण्यादिगौडप्रंथेष्वपि नवम्यां होम उक्तः ।

आतां जे “नवमीस किंवा श्रवणनक्षत्रावर जप, होम समाप्त करून” ह्या संग्रहवचनावरून; आणि “नवमीस व्रत, जागर, यथाविधि बलिदान हीं करावी.” ह्या देवीपुराणवचनावरूनही नवमीस वलि, होम इत्यादि विहित आहे, ह्या ठिकाणीं “आश्विन शुक्ल नवमी मुहूर्तेनात्र किंवा कलामात्र असेल तर ती निषिद्धशी, विद्या, जय, इच्छिणारांनीं सकल समजावी” ह्या सौरपुराणवचनावरून; आणि “जर सूर्योदशी रिक्ता (नवमी) व पुढें पूर्णा (दशमी) असेल तर ह्या दिवशीं बलिदान करावें, तें त्या देवीं शुभावह होतें. अष्टमीस वलिदान केले असतां पुत्रनाश होईल” ह्या मदनरत्नांतील देवीपुराणवचनावरूनही वलि—होमादिकांविषयी परा करावी उपवासादिकांविषयी तर पूर्वा करावी, असें मदनरत्नांत उक्त आहे. प्रतापमार्तं डांतही असेच आहे. आतां जे “अष्टमीस वलिदान केल्यानें निश्चयां पुत्रनाश होईल” असें कालिकापुराणवचन तें संधिपूजाविषयक आहे. कारण, “अष्टमी व नवमी यांच्या मंरीचे ठायीं तृतीया पूजा सांगितली आहे.” अशी तथेच ती संधिपूजा आहे. कामरूपनिबंधांत—“अष्टमीची घंवटची घटिका आणि नवमीची आय घटिका ह्या ठिकाणीं जी पूजा केली जाते ती महाफलदायक जाणावी.” कंबळ अष्टमीस पूजा होतच आहे. कारण, “आश्विनमासी अष्टमांचे ठायीं मध्यरात्री पूजन करून भक्तीनें पशूंचा घात करितात ते महाबल होतात.” तसेंच कन्याराशीस सूर्य अमतां “आश्विनमासी शुक्लाष्टमास उपवास करून मध्यरात्री मोठ्या विभवविस्तरांनीं पूजन करावें.” तसेंच “पशुवध करावा, आणि गवय व अज (बोकड) यांचा वध करावा.” असें रूपनारायणीयांत—देवीपुराणवचन आहे. तेथेच भविष्यांत—“ह्या कारणामुळे ही नवमी महापुण्या व पापनाशिनी आहे. गवे राजांनीं हिचें प्रयत्नां सतत उपोषण करावें.” निर्णयदीपांत तर—महानवमी परदिवशी अपराह्वय्यापिनी अमतां परा करावी; परदिवशी अपराह्वय्यापिनी नमतां पूर्वा करावी. कारण, “दुसऱ्या दिवशीं आवर्तनकालाच्या (मऱ्याही सूर्य फिरण्याच्या) पूर्वी नवमी संपत असेल व पुर्वेदिवशी पूर्वाही अष्टमी असेल तर दुसऱ्या पूजा पुर्वेदिवशी करावी.” असें धौम्यवचन आहे, असें सांगितले. हें वचन

तर ह्यां नवमीविषयक आहे व समूल आहे, याचा विचार करावा. आतां जीं—“नंदेवर (प्रतिपदेंत) अग्निप्रज्वलन (होळी पेटविणें), दशमीत पशुघात करणें, कार्तिकशुक्ल द्वितीयेचे ठायीं गोकुलक्रीडा अशीं जेथें होतात तेथें राज्यनाश होतो.” “नवमीत अपराधी बलिदान प्रशस्त आहे. बलिदानाविषयीं दशमी सोडावी, याविषयीं विचार करू नये.” “प्रतिपदेचे ठायीं रक्षाबंधन, दशमीत बलिदान, भद्रेचे ठायीं (कार्तिकशुक्लद्वितीयेचे ठायीं) गोकुलक्रीडा, हीं देशनाशास कारण होतात” अशीं ब्रह्मवैवर्त—नारद इत्यादिकांचीं वचनं आहेत तीं पूर्वदिवशीं शुद्ध असून परदिवशीं उर्वरित पूर्वतिथिनिषेधक आहेत, असें मदनरत्नांत उक्त आहे. तसेंच कालिकापुराणांत—“नवमीचे ठायीं यथाविधि बलिदान, जप, होम, हीं करावीं; तेणेंकरून ऐश्वर्य प्राप्त होतें.” कोणी प्रथकार तर “पूर्वाषाढायुक्त अष्टमीस पूजा, होम, उपोषण इत्यादि करावीं” ह्या पूर्वेक देवीपुराणवचनावरून अष्टमीस होम करावा असें सांगतात. अन्य पंडित तर—दोन प्रकारचीं वाक्यें असल्यामुळे, अष्टमीत होम आरंभ करून नवमीत समाप्त करतात. अष्टमीत व नवमीत दोन्ही दिवशीं करणें हें तर युक्त आहे. रुद्रयामलांत तर अष्टमीत किंवा नवमीत असा विकल्प सांगितला आहे, तो तर निर्मूल आहे. दुर्गाभक्तिरंगिण्यादिक गोडग्रंथांतही नवमीत होम सांगितला आहे.

होमेच विशेषउक्तोडामरतंत्रे पायसंसर्पिपायुक्ततिलैःशुक्लैर्विमिश्रितम् होमयेद्विधिवद्भक्त्यादशांशेन-
नृपोत्तम रुद्राध्यायेयथाहोममंत्रेणैकेनसाधयेत् तथास्तोत्रजपेहोमश्लोकेनैकेनसाधयेत् यद्वासप्रशतीजप्यहो-
ममंत्रो नवाक्षरः ऐंहींक्लींचामुंडायैविषेइतिनवाक्षरइतिकेचित् पूजोक्तोप्राह्यइतियुक्तं रुद्रयामलेपि प्रधा-
नद्रव्यमुद्दिष्टपायसान्नतिलास्तथा किंशुकैःसर्पपैःपूगैर्लाजदूर्वाकुंजरैरपि यवैर्वाश्रीफलेर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा
रक्तचंदनखंडैश्चगुग्गुलैश्चमनोहरैः प्रतिश्लोकंचजुहुयात्सर्वद्रव्याणिचक्रमान् नवाक्षरेणवाहुत्वानमोदेव्याइ-
तीतिचेति रहस्येतु प्रतिश्लोकंचजुहुयात्पायसंतिलसर्पिपेत्युक्तम् दुर्गाभक्तिरंगिण्यांतुतिलैर्जयंती-
मंत्रेणचहोमउक्तः पुरश्चरणकार्येतुबिल्वपत्रयुतैस्तिलैरिति कालिकापुराणाद्विल्वपत्रैश्चेतिस्मार्ताः तन्न
अत्रमानाभावान् ।

होमाविषयीं विशेष प्रकार सांगतो—डामरतंत्रांत—“घृतयुक्त पायस, शुक्लतिलांनीं मिश्रित करून भक्तीनें यथाविधि जपाचे दशांशानें होम करावा. रुद्राध्यायाचा होम जसा एका मंत्रानें होतो तसा स्तोत्रजपाचा होम एका श्लोकमंत्रानें करावा. अथवा सप्तशतीचा जप करून नवाक्षर मंत्रानें होम करावा. “ऐं—हींक्लींचामुंडायैविषे” हा नवाक्षर मंत्र असें केचित् म्हणतात. पूर्वी सांगितलेला पूजेचा नवाक्षर मंत्र घ्यावा हें तर योग्य होय. रुद्रयामलांत ही—“पायसाच व तिल हें प्रधानद्रव्य सांगितलें आहे. पळमाचीं फुलें, सर्पप (राई), पूग (सुगंध्या), लाव्हा, दूर्वाकुंजर, यव, श्रीफल (नारळ), उत्तम नानाप्रकारचीं फळें, रक्तचंदनाचीं खंडें, सुंदर गुग्गुळ ह्या सर्व द्रव्यांचा अनुक्रमानें दर एक श्लोकमंत्रेंकरून होम करावा. अथवा नवाक्षरमंत्रानें किंवा ‘नमोदेव्यै०’ या मंत्रानें होम करावा.” रहस्यांत तर—“दरएक श्लोकमंत्रानें तिल व घृत यांनीं युक्त पायसाचा होम करावा” असें सांगितलें आहे. दुर्गाभक्तिरंगिणींत तर—जयंती-मंत्रानें तिलांचा होम सांगितला आहे. “पुरश्चरण कार्याचे ठायीं तर बिल्वपत्रयुक्त तिलांनीं होम करावा.” ह्या कालिकापुराणावरून बिल्वपत्रांनींही होम करावा, असें स्मार्त म्हणतात. तें बरोबर नाहीं. कारण, येथें तो (बिल्वपत्र होम) कारणाविषयीं प्रमाण नाहीं.

अथबलिदानम् तत्राश्वमेधलागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरप्राशस्त्यंफलविशेषश्चान्यतोवसेयइतिदिक्-
बलिप्रकारस्तुदेवीपुराणे कन्यासंस्थेरवौशक्तःशुक्लाष्टम्यांप्रपूज्यत द्रोणपुष्पैश्चबिल्वाम्रजातीपुन्नागचंपकैः
पंचाब्दलक्षणोपेतंगंधपुष्पसमन्वितम् विधिवत्कालिकालीतिजह्वाखड्गेनघातयेत् ॐकालिकालियज्ञेश्वरिलो-
हदंडायैनमइतिमंत्रः तदुत्थरुधिरमांसंगृहीत्वापूतनादिपु आदिशब्दान् चरकीविदारीपापराक्षस्यः नैऋते-
भ्यःप्रदातव्यमहाकौशिकमंत्रितम् मंत्रस्तुवक्ष्यते तथा तस्याप्रतो नृपःस्नायात्कृत्वाशत्रुतुपैष्टिकम् खड्गेनघा-
तयित्वातुदद्यात्स्कंदविशाखयोः अशक्तौब्राह्मणेनचकूष्मांडादिभिर्बलिदानंकार्यम् तदुक्तंकालिकापुराणे कूष्मां-
डमिश्रुद्वंद्वचमांसंसारसमेवच एतेबलिसमाःप्रोक्तास्तृप्तांलागसमाःसदा रुद्रयामलेपि लागाभावेतुकूष्मां-
डंश्रीफलवामनोहरं वस्त्रसंवेष्टितंकृत्वाछेदयेच्छुरिकादिना तथा ब्राह्मणेनसदादेयंकूष्मांडंबलिकर्मणि श्रीफ-
लंबासुरापीशछेदंनैवतुकारयेत् छेदेविकल्पः माषात्रेनबलिर्देयोब्राह्मणेनविजानत कालिकापुराणे उत्त-
राभिमुखोभूत्वाबलिपूर्वमुखंतथा निरीक्ष्यसाधकःपश्चादिमंमंत्रमुदीरयेत् पशुस्त्वंबलिरूपेणममभाग्यादुप-

स्थितः प्रणमामिततः सर्वरूपिणंबलिरूपिणं चंडिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्मिनाशनम् चासुंडाबलिरूपाय बलेतु-
भ्यंनमोस्तुते यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा अतस्त्वांघातयान्यघातस्माग्नैवधोवधः ऐं ह्रीं श्रीमिति मंत्र-
त्रेणतंबलिमत्स्वरूपिणम् चितयित्वान्यसेत्पुष्पमूर्ध्नि तस्य तु भैरव रसनात्वं चंडिकायाः सुरलोकाप्रसाधकः ह्रीं ह्रीं-
खड्गेति मंत्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूजयेत् पूजयित्वा ततः खड्गं ओं हुं फडिति मंत्रैः गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद्बलिमुत्तमं
ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिराणां व्यायतामिति बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः मत्स्यसूक्ते नव-
म्यां पूर्ववत् पूजाकर्तव्या भूतिमिच्छता दक्षिणां वस्त्रयुग्मं च आचार्यानिवेदयेत् ।

आतां बलिदान सांगतो—बलिदानाविषयी घोटा, मेंडा, बकरा, महिष व खशरीरमांस हे पूर्वपूर्वाह्न उत्तरोत्तर
प्रशस्त व त्यांची विशेष फळे अन्य ग्रंथांवरून जाणावीं. ही दिशा समजावी. **बलिप्रकार तर देखी पुराणांत**—“पशु-
बलिदानाग समर्थ असेल त्याने कन्यामंकांतीग गृह्य अगतां गुरुपक्षांत अष्टमीचे दिवशीं द्रोणपुष्पें, बिल्व, आम्र, जाई,
पुन्नाग, चंपक, या पुष्पांनी [देवीची] पूजा करून गवें लक्षणांनीं युक्त व गंधपुष्पांनीं युक्त पांच वर्षांचा पूर्वेक भक्षादि
पशु “**कालिकालि**” या मंत्राचा यथाविधि जप करून खड्गानें मारावा. “ॐ कालि कालि यक्षेश्वरि लोहवृंदायै
नमः” हा मंत्र होय. त्या पशूनें रक्त व मांस घेऊन पतना, चरकी, विदागी, पापराक्षसी यांना द्यावें. आणि महाकौशि-
कीमंत्रानें मंत्रित असें रक्त मांस राक्षसांना द्यावें.” मंत्र पुढें गांगूं. तसेंच—“त्या पशूच्या पुढें राजानें ज्ञान करावें आणि
पिठाची शक्तीची मूर्ति करून खड्गानें ती तोडून स्फंद व विंशाख यांस द्यावी.” क्षत्रियादिकांस शक्ति नसतां कृष्णादिकांनें
बलिदान करावें. ब्राह्मणांनें कृष्मांड, मापमिश्रित अन्न यांचें बलिदान करावें. तें सांगतो—**कालिकापुराणांत** “कृष्मांड,
इशुदंड, गारम पक्ष्यांचें मांस, हे बलिममान असून गृहाविषयीं छगगमान सांगितले आहेत.” **रुद्रयामलांत** ही
“छागाच्या अभावीं कृष्मांड किंवा सुंदर श्राफल वस्त्रवेष्टा करून गुरी इत्यादिकांनें छेदन करावें.” तसेंच “ब्राह्मणांनें
बलिकर्माचे ठायीं गदा कृष्मांड द्यावा, अथवा श्राफल द्यावें, छेद करूं नये.” यावरून छेदाविषयीं विकल्प म्हणजे छेद
करावा किंवा न करावा. “ब्राह्मणांनें मापाचानें वळि द्यावा.” **कालिकापुराणांत**—“मापकांनें आपण उत्तराभिमुख
होऊन पूर्वाभिमुख बलि करून त्याजकडे पाहून नंतर हा पुढील मंत्र म्हणावा. तो मंत्रः—पशुस्त्वं बलिरूपेण मम-
भाग्यादुपस्थितः ॥ प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणं ॥ चंडिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्मिनाशनं ॥
चासुंडाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ अतस्त्वां घात-
याम्यघ तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ कालिका म्हणते—“ऐं ह्रीं श्रीं” या मंत्रानें तो बलि मत्स्वरूपी आहे असें चिंतन
करून त्याच्या मस्तकावर पुष्प ठेवावें. देवलोकांचा माधक तूं चंडिकेची जिह्वा आहेय, असें ध्यान करून “ह्रीं ह्रीं खड्ग” या
मंत्रानें खड्गाचें पूजन करावें. या प्रकारें खड्गाची पूजा करून “ॐ हुं फट्” या मंत्रानें खड्ग घेऊन उत्तमबलीचें छेदन करावें.
मंत्रः—“ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिराणां व्यायतां.” दुर्गेच्या बलिदानाविषयीं सर्वत्र हा विधि सांगितला आहे.”
मत्स्यसूक्तांत—“पशूय इच्छिणारांनें नवमीस पूर्वीं गारखी पूजा करावी आणि दक्षिणा व दोन वस्त्रें आचार्यांस द्यावीं.”

अथात्र प्रसंगाच्छतचंडीविधानमुच्यते **रुद्रयामले** शतचंडीविधानं च प्रोच्यमानं शृणुष्व तत् सर्वोपद्रवना
शार्थं शतचंडीसमारभेत् पोडशस्तं भंसयुक्तं मंडपं पल्लवोद्भवम् वसुकोणयुतावेदीं मध्ये कुर्यान्नभागतः पकेष्टक
चित्तांरम्यामुच्छ्राये हस्तसंमिताम् पंचवर्णरजोभिश्च कुर्यान्मंडलकं शुभम् पंचवर्णवितानं च किंकिणीजालमंडितम्
आचार्येण समं विप्रान्वरयेद्दशमुत्रतान् ईशान्यां स्थापयेत्कुंभं पूर्वांक्तविधिनाचरेण वारुण्यां च प्रकर्तव्यं कुंडलभ्रण-
लक्षितम् मूर्तिदेव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वं तदर्धेन तदर्धेन तदर्धेन महामते अष्टादशभुजादेवीं कुर्याद्वाष्टकरा-
मपि पट्टकूलयुगच्छन्नादेवीं मध्ये निधापयेत् देवीं संपूज्य विधिवज्रपंकुर्युं दशद्विजाः शतमादौ शतं चांतेजपेन्मंत्रं
नवार्णवम् चंडीसप्रशंतीमध्ये संपुटोयमुदाहृतः एकंद्वेत्राणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् रूपाणि क्रमशस्तद्वत्पूज-
नादिकमाचरेत् पंचमेदिवसे प्रातर्होमं कुर्याद्विधानतः गुडूचीपायसं दूर्वां तिलाच्छुक्रान्यवान्यपि चंडीपाठस्व-
होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः होमं कुर्याद्वादिभ्यः समिदाज्यचरुं क्रमान् हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद्विप्रेभ्यो व दक्षिणां-
क्रमान् कपिलांगां नीलमणिश्चेताश्चंद्रचामरे अभिषेकततः कुर्युर्यजमानस्य ऋत्विजः एवंकृते मरे शानसार्ध-
सिद्धिः प्रजायते ।

आतां या स्थलीं प्रसंगें करून शतचंडीविधान सांगतां.

रुद्रयामलांत “शतचंडीविधान सांगतां. तें श्रवण कर ! सर्व उपद्रवनां शाकरितां शतचंडी करणी. शोळा खड्गानीं
२४ निर्ण०

युक्त व पात्रांनीं सुशोभित असा मंडप करून त्या मंडपाच्या तिसऱ्या भागांत आठकोनी वेदी करावी. ती वेदी भाज-
केल्या विटांची सुंदर व एक हात उंच असावी. त्या वेदीवर पांच रंगी सुंदर मंडल करावें. त्यावर बारीक घंटांनीं सुशो-
भित पांच रंगी छत करावें. नंतर व्रतस्थ असे आचार्यासहित दहा ब्राह्मण वरावे. वेदीच्या ईशानीस कुंभस्थापना पूर्वोक्त
विधीनें करावी. पश्चिमेस लक्षणयुक्त कुंड करावें. नंतर देवीची मूर्ति सोन्याची पल (चार तोळे) प्रमाण अथवा त्याचें
अर्ध २ किंवा त्याचें अर्ध १ अथवा त्याचें अर्ध (६ मासे) यांची, अष्टादश (१८) भुजांची अथवा आठ भुजांची
करावी. ती वेदी दोन पीतांबरांनीं आच्छादित करून वेदीच्या मध्यभागीं स्थापावी. त्या देवीची पूजा यथाविधि करून दहा
ब्राह्मणांनीं सप्तशतीचा जप करावा. जपाचे आदीं व अंतीं नवार्णमंत्राचा शंभर शंभर जप करावा आणि मध्यें सप्तशती-
चंढीचा जप, हा संपुटित जप म्हटला आहे. याप्रमाणे प्रथमदिवशीं एक, दुसरे दिवशीं दोन, तिसरे दिवशीं तीन, चवथे
दिवशीं चार, असे पाठ, चारदिवस प्रत्येक ब्राह्मणानें करावे. तसेंच पूजनादिकही वृद्धीनें करावें. पांचव्या दिवशीं प्रातःकाळीं
यथाविधि होम करावा. गृह्णी, पायस, दूर्वा, श्वेततिल व यव या द्रव्यांनीं चंढीपाठाचा होम पाठांच्या दशांशमानानें प्रति-
श्लोकानें करावा. नंतर प्रहादिकोना होम समिधा, घृत, चरु यांचा करून पूर्णाहुति द्यावी. नंतर ब्राह्मणांस दक्षिणा अनुक-
मानें द्यावी व कपिला गाय, नीलमणि, पांढरा घोडा, छत्र, चामर, हीं द्यावीं. नंतर ऋत्विजांनीं यजमानास अभिषेक
करावा. असें शतचंढीविधान केले असतां सर्व कार्यसिद्धि होते.”

अथसहस्रचंडी साचतत्रैवोक्ता सहस्रचंडीविधिवच्छृणुविष्णोमहामते राज्यभ्रंशेमहोत्पातेजनमारेम-
हामये गजमारेऽश्वमारेचपरचक्रभयेतथा इत्यादिविविधेदुःखेक्षयरोगादिजेभये सहस्रचंडिकापाठंकुर्याद्वा-
कारयेत्तथा जापकास्तुशतंप्रोक्ताविंशद्विस्तश्रमंडपः भोज्याःसहस्रंविप्रेत्रागोशतंदक्षिणांदिशेत् गुरवेद्विगुणंदे-
यंशय्यादानंतथैवच सप्तधान्यंचभूदानंश्चेताश्रंचमनोहरम् पंचनिष्कमितामूर्तिःकर्तव्यावार्धमानतः अष्टाद-
शभुजादेवीसर्वायुधविभूषिता अवारिताभ्रान्तादव्यंसहस्रंप्रत्यहंप्रभो शतंवानियताहारःपयःपानेनवर्तयेत् एवं-
यश्चंडिकापाठंसहस्रंतुसमाचरेत् तस्यस्यात्कार्यसिद्धिस्तुनात्रकार्याविचारणेति एतद्व्यंयद्यपिमहानिबंघेषुनास्ति-
तथापिप्रचरद्रूपत्वादुक्तमितिदिक् ।

यानंतर सहस्रचंडीविधान.

ही सहस्रचंडी तेथेंच सांगतो “सहस्रचंडीचें विधान यथाविधि सांगतों श्रवण कर. राज्यनाश, मोठा उत्पात, जनमार
(महामारी, ग्रंथिक संनिपात वगैरे), महाभय, गजमार, अश्वमार, शत्रुभय इत्यादिक अनेक दुःखें, क्षयरोगादि भय
ह्यांपून कोणतेंही प्राप्त असतां सहस्रचंडीपाठ करावा किंवा करवावा. त्याविषयीं पाठकतें शंभर ब्राह्मण असावे. वीस हस्त-
परिमित मंडप असावा. सहस्र ब्राह्मणभोजन करावें. शंभर गाई दक्षिणा द्यावी. गुरूस दुप्पट दक्षिणा द्यावी. व शय्या,
सप्तधान्यें, भूमि, पांढरा सुंदर घोडा हीं द्यावीं. पांच निष्क (२० तोळे) सुवर्णाची देवीची मूर्ति करावी. अथवा त्याचे
अर्ध (१० तोळे) सुवर्णाची करावी. ती अष्टादश (१८) भुजांची व सर्व आयुधांनीं युक्त सुंदर करावी. प्रतिदिवशीं
अवारित (जो येईल त्यास) व सहस्र ब्राह्मणांस अन्न द्यावें. आणि पाठाविषयीं वरलेल्या शंभर ब्राह्मणांस फलाहार व
दुग्ध द्यावें. असा सहस्रचंडीपाठ जो करील त्याचीं सर्व कार्यें सिद्ध होतील यांत संशय नाही” हीं दोन (शतचंढी व सहस्र-
चंढी) जरी महानिबंदांमध्ये सांगितलीं नाहीत तथापि यांचा प्रचार असल्यावरून सांगितलीं आहेत. ही दिशा दाखविली आहे.

बाराहीतंत्रे संकटसमनुप्राप्तेदुश्चिकित्स्यामयेतथा जातिभ्रंशेकुलोच्छेदेऽप्यायुधोनाशआगते वैरिवृद्धौ-
व्याधिबुद्धौधननाशेतथाक्षये तथैवत्रिविधोत्पातेतथाचैवोपपातके कुर्याद्यन्नाच्छतावृत्तंततःसंपद्यतेशुभम् श्रेयो-
वृद्धिःशतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथापरा मनसाचितितंदेविसिद्धेदष्टोत्तराच्छतात् सहस्रावर्तनालक्ष्मीरावृणोतिस्व-
यंस्थिरा भुक्त्वामनोरथान्कामान्नरोमोक्षमवाप्नुयात् चंड्याःशतावृत्तिपाठात्सर्वाःसिद्धयंतिसिद्धयः इति
शतचंडीसहस्रचंडीविधिः ।

बाराहीतंत्रांत “संकट प्राप्त झालें असतां, चिकित्सा करण्यास कठिण रोग, जातिभ्रंश, कुलाचा उच्छेद, आयुष्य-
नाश, शत्रुवृद्धि, रोगवृद्धि, धननाश, क्षय, त्रिविध (दिव्य, भौम, अंतरिक्ष) उत्पात, उपपातक, हीं प्राप्त झालीं असतां
शंभर पाठ करावे, तेणेंकरून शुभ होतें. शंभर पाठांनीं श्रेयोवृद्धि व राज्यवृद्धि होते. अष्टोत्तरशत (१०८) पाठांनीं
मनातील चिंतितकार्य सिद्ध होतें. सहस्रपाठांनीं लक्ष्मी स्थिर होऊन राहते व मनोरथ भोगून मनुष्य मोक्षातें पावतो.
चंढीच्या शंभर पाठांनीं सर्व सिद्धि होतात.” असा शतचंढीचा व सहस्रचंडीचा विधि समजावा.

अथनवरात्रपारणानिर्णयः साचदशम्यांकार्या आश्विनेमासिशुद्धे तु कर्तव्यं नवरात्रकम् प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्चनवमीभवेत् त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादियथाक्रममिति हेमाद्रौ धौम्यवचनान् नवमीतिथिपर्यंतं दुःस्वापूजाजपादिकमिति प्रागुक्तवचनैर्नवमीपर्यंतं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेव श्रांगत्वेन तत्पर्यंतत्वात् आविशब्देनोपवासोक्तेः पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रतेन वम्या अप्युपोष्यत्वाच्च न च पारणांतत्वेन त्रिरात्रत्वं विष्णुत्रिरात्रादौ तथा प्रसक्तेः न चात्रोपवासेमानाभावइति वाच्यम् एवं च विध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः एकभक्तेन न केनतश्चैवायाचितेन च पूजनीयाजनैर्देवीस्थाने स्थाने पुरे पुर इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः नवरात्रसमाख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च ननु तिथिह्रासेऽष्टावप्युपवासा भवतीति कथं समाख्या तेन कर्मविशेषेन वरात्रशब्दोरुद्धः अतएवोक्तं देवीपुराणे तिथिवृद्धौ तिथिह्रासेन वरात्रमपार्थक्यमिति चेन्न तिथिह्रासेऽपि नवतिथीनामुपोष्यत्वाच्च वरात्रत्वाश्रितेः एतेन रात्रीणां प्राधान्यात् न ह्रासे अमा मादाय न वत्वमिति मुखोक्तिः परास्ता यत्तु देवीपुराणे कन्या संस्थेरवौ शक्रशुक्लामारभ्य नंदिकाम् अयाची ह्यथ वै काशीनक्ताशीप्यथ वां वदइति व्रतचतुष्टयमुक्तं लौहाभिसारिकविषयम् तस्य जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमान् लौहाभिसारिकं कर्म कारयेयावदष्टमीमिति भविष्येऽष्टमीपर्यंतत्वमेवोक्तेः रूपनारायणेन तु नंदादि व्रतप्रयोगं प्रथगेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् यदपि निर्णयदीपे आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोषितः नवम्यां पारणं कुर्यादशमीमिश्रितानचेत् दशमीमिश्रिता यत्र पारणेन नवमीभवेत् दुःस्वदादि द्वादत्रेयानां व्रतविनाशिन्येति ब्राह्मणानामालिखितं वचनं यच्च रुद्रयामल इति वदंति अष्टम्यामहकार्याम्यान्नवमीपारणादिने यो मोहादशमीवेधेन वम्यांचंडिकायां जेत् पारणं च प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् नवम्यां पारिता देवीकुलवृद्धिप्रयच्छति दशम्यां पारिता देवीकुलनाशं करोति वै तस्मात्पारणं कुर्यान्नवम्यां धितुः प्राधेयत्वादीनि तानि यदि ममूलानि तालां हाभिसारिकं नंदादि व्रतचतुष्टयविषयाणि तस्याऽष्टमीपर्यंतत्वमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक् अन्यथा महाष्टम्यां परगद्धायां पारणाविधाने पूर्वनिर्वाधैर्विरोधोर्दुर्वारः स्यात् यानितुर्कैश्चिद्विहितानि नवम्यां पारणाविधाय कानि वचनानि तानि हेमाद्रादिविरुद्धत्वाभिर्मूलानि समूलवेपियदाश्विनैर्द्वयेन वमीतदा द्वितीयां दिन उपोष्यति भ्यंते पारणान् किंतु नवमीमध्ये कार्ये लोबनेयानि शिवरात्रिपारणावत् ।

आतां नवरात्रपारणानिर्णय सांगतो.

ती पारणा दशमीचेठायीं करावी. कारण, “आश्विन महिन्यामध्ये शुक्रपक्षांत नवरात्र करावें, तें प्रतिपदेपासून नवमीपर्यंत करावें. अथवा मगसांपासून त्रिरात्र करावें.” ह्या हेमाद्रौतील धौम्यवचनावरून: व “नवमी तिथीपर्यंत वृद्धीं पूजा, जप, उपवास इत्यादिक करावी” ह्या पूर्वोक्त वचनांनीं नवमीपर्यंत मुख्य पूजादिक सांगितल्यावरून उपवासादिक अंगभूत कर्म तेथपर्यंत करावी, असें झालें आहे. ‘जपादिक’ येथें आदिशब्दानें उपवास सांगितला आहे. आणि पूर्वोक्त त्रिरात्रव्रतांत नवमीचंही उपोषण सांगितलें आहे. आतां तें त्रिरात्रव्रत असें होतें की, दोन दिवस उपोषण व तिसऱ्या दिवशीं पारणा, असें केल्यानें पारणापर्यंत व्रत धरून तें त्रिरात्र होतें, असें म्हणूं ! तर तसें म्हणतां येणार नाही. कारण, विष्णुत्रिरात्रादि व्रताचेठायीं देखील तसा प्रसंग (पारणामहित त्रिरात्र) येईल. आतां ह्या नवरात्रव्रताचेठायीं उपवास करण्याविषयीं प्रमाण नाही, असें म्हणूं ! तर असें म्हणतां कामा नये: कारण, “नवरात्र उपवास किंवा एकभक्त किंवा नक्त अथवा अयाचितमक्षण करून नगरानगरामध्ये जागोजागी विध्यवासिनां देवीचें पूजन करावें.” असें हेमाद्रौत भविष्यवचन आहे आणि नवरात्र असें नाम असल्याकारणानें नवमांचें दिवशींही उपोषण आवश्यक आहे. शंका—तिथिक्षय असतां जर आठवी उपवास होतात तर नवरात्र असें नाम कसें ? यावरून विशेष कर्मांचे ठायीं नवरात्र शब्द रूढ आहे. नव रात्रींनीं होणारें तें नवरात्र असा यांगिक समजू नये. म्हणूनच देवीपुराणांत सांगतो. “तिथिवृद्धि व तिथिक्षय असतां नवरात्र शब्द व्यर्थ आहे.” यावरून नवरात्र शब्द अन्वर्थक होण्याकरितां नवमांचें दिवशींही उपोषण करावें, असें नाही ? समाधान—‘नवरात्र’ हा शब्द नक्त रात्रींचा बोधक यांगिकच आहे. रात्रि म्हणजे तिथि मगजावी. तिथिक्षय असला तरी नक्त तिथीचें

१ साचेति । संपूज्ये प्रपणं कुयादशम्यां शारवात्सवेरित्युक्तं भविष्यात् । पारणस्य नियमत्वाग्रूपस्य विसर्जनेोत्तरकाळत्वात् तदतिविसर्जनेोत्तरदशम्यामेव कार्यमित्यर्थः ॥ तत्र नियमं नवमीपर्यंतं दर्शयति आश्विन इति ॥ २ बिरोध इति अष्टमीविद्यावां नवम्यामष्टपूजासंविधानादिति भावः ॥ ३ दिनद्वयेन वमीति अष्टमीविद्यानवमीपरे बुध्ननवमीत्यर्थः ॥ ४ द्वितीयेति दशमीमिश्रितानचेति त्वेन कर्तृनवम्यां नवम्यंते प्राप्तायाः पारणाया बाधस्येवोक्तेरिति भावः ।

उपोषण होत असल्यामुळे नवरात्रल नष्ट होत नाही. 'नवरात्र' या पदांत रात्र शब्द तिथिबोधक आहे. यावरून, रात्री प्रधान असल्यामुळे तिथिक्षय असतां अमावास्या धरून नऊ रात्रि कराव्या, असें मूर्खानें सांगितलें तें खंडित झालें. आतां जीं वैष्णोपुराणांत—“कन्यासंक्रांतीस सूर्य असतां शुक्लप्रतीपदेस आरंभ करून अयाचित अथवा एकभुक्त किंवा नक्त अथवा उदकभक्षण करावें” अशीं चारप्रकारचीं व्रतें सांगितलीं; तीं पूर्वीं लौहाभिसारिक कर्मविषयक आहेत. कारण, तें लौहाभिसारिक कर्म “जयेच्छु राजानें प्रतिपदेपासून अनुक्रमानें अष्टमीपर्यंत लौहाभिसारिक कर्म करावें” ह्या भविष्यवचनांत अष्टमीपर्यंतच सांगितलें आहे. रूपनारायणानें तर-प्रतिपदादि व्रतप्रयोग वेगळाच सांगून त्याची नवमीत पारणा सांगितली आहे. आणि जें निर्णयदीपांत—“आश्विनशुक्लपक्षांत नवरात्र उपोषण करून दशमीमिश्रित नसेल त्या नवमीत पारणा करावी. जेथें पारणाविषयीं दशमीमिश्रित नवमी असेल तेथें ती नवमी दुःखदायिण्य देणारी व व्रतनाश करणारी होते” असें ब्रह्मपुराणांतील म्हणून लिहिलें वचन तें; आणि जें रुद्रयामलांत म्हणून सांगतात कीं, “अष्टमीयुक्त नवमीत पारणा करावी. जो मोहानें दशमीयुक्त नवमीत चंडिकेचें पूजन करील व पाणाही करील त्याचें पुण्य निरर्थक होईल. देवीची पारणा नवमीस केली तर कुलवृद्धि होते, व दशमीस देवीची पारणा केली तर कुलनाश होतो; तस्यांत नवमीस पारणा करावी.” इत्यादि वचनं तीं जर समूल असतील तर लौहाभिसारिक कर्मांत जीं चार व्रतें सांगितलीं तद्विषयक जाणावीं. तें लौहाभिसारिक कर्म अष्टमीपर्यंतच करावें, असें पूर्वीं सांगितलें आहे. तसें नसेल तर परविद्ध महाष्टमीचेठायीं (नवमीत) पारणाविधान केलें असतां वर सांगितलेल्या ग्रंथांशीं विरोध निवारण करण्यास अशक्य होईल. आतां जीं केचित् ग्रंथकारांनीं वचनं नवमीचेठायीं पारणा करण्याविषयीं लिहिलीं आहेत, तीं हेमाद्रादि ग्रंथविरुद्ध असल्यामुळे निर्मूल होत, समूल असलीं तरी जेव्हां दोनदिवशीं नवमी असेल तेव्हां दुसऱ्या (उर्वरित) नवमीदिवशीं उपोषण केलेल्या तिथीच्या अंती पारणा करूं नये, तर नवमीमध्ये करावी, अशाविषयीं त्यावाचीं. जशी शिवरात्रीची पारणा दुसऱ्या दिवशीं चतुर्दशीत सांगितली, तद्वत्.

अत्रकेचित्पारणाहेसूतकादिप्राप्तौतदतिक्रम्यपारणांकुर्यादित्याहुः तन्मंदम् काम्योपवासेप्रक्रांतेत्वंतरा-सूतसूतके तत्रकाम्यव्रतंकुर्यादानार्चनविवर्जितमिति माधवीयेकौर्मोक्तेः व्रतयज्ञविवाहेषुश्राद्धेहोमेर्चनेजपे प्रारब्धेसूतकंनस्यादनारब्धेसूतकमिति विष्णुवचनाच्चाशौचमध्येपितृत्कर्तव्यतावगतेः पारणांतत्वाद्गतस्य-प्रारंभस्तुतेनैवोक्तः प्रारंभोवरणयज्ञेसंकल्पोव्रतसत्रयोः नांदीमुखंविवाहादौश्राद्धेपाकपरिक्रियेति रुद्रयाम-लेपि सूतकेपारणंकुर्यान्नवम्यांहोमपूर्वकम् तदंतेभोजयेद्विप्रान्दानंद्याश्चशक्तितइति तदंतेसूतकांते एवंस्त्री-भिरपिरजोदर्शनमध्येकर्तव्यमेवपारणम् संप्रवृत्तेपिरजसिनत्याज्यंद्वादशीव्रतमिति माधवीयेकह्यशृंग-वचनात् द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् प्रारब्धदीर्घतपसान्नारीणांयद्रजोभवेत् नतत्रापिव्रतस्यस्यादुपरोधः कदा-चनेतितत्रैवसत्यव्रतवचनात् किंच एकादश्यादौपंचपाशौचपातेमासांतेपारणापत्तिः मासोपवासांतेपंचपा-शौचपातेजीवनासंभवश्च यत्तु नियमस्थापदानारीप्रपश्येदंतरारजः उपोष्यैवतुतारात्रीःस्नात्वाशेषंचरेद्व्रतमि-त्यंगिरोवचनम् यच्चहारीतवचनम् नियमस्थाव्रतस्थास्त्रीरजःपश्येत्कथंचन त्रिरात्रंतुक्षिपेदूर्ध्वव्रतशेषंसमा-पयेत् तद्विधोपवासविषयम् तासांतत्रभोजननिषेधादितिकेचित् वयंतुप्रागुक्तसत्यव्रतवचनेदीर्घतपसामिति विशेषणोपादानाद्वादशीव्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयंनिषेधः त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषुतुरजोम-ध्येपारणेतिब्रूमः आशौचमध्येतुसर्वापिपारणाभवतिप्रागुक्तकौर्मवचनादितिसिद्धम् अयंचोपवासपारणानि-र्णयःसर्वव्रतेषुबोद्धव्यइत्यलंभूयसा ।

येथें केचित् ग्रंथकार—पारणादिवशीं सूतकादिक प्राप्त असतां तें गेल्यानंतर पारणा करावी असें म्हणतात. तें त्यांचें म्हणणें मंद आहे. कारण, “काम्य उपवासाचा आरंभ केल्यावर मध्यें मृताशौच येईल तर आशौचामध्ये काम्यव्रत करावें. दान व पूजन करूं नये.” ह्या माधवीयांतील कौर्मवचनावरून; व “व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजन, जप यांचा आरंभ केला असतां सूतक असलें तरी सूतक नाही. प्रारंभ केला नसेल तर सूतक आहे” ह्या विष्णुवचनावरूनही आरंभिलें व्रत आशौचामध्येही करावें असें होतें. व्रत पारणा होईपर्यंत आहे. प्रारंभ कोणता तो त्यानेच सांगितला आहे—

१ व्रतशब्देन पारणाया अपि ग्रहणमिति भावः ॥ २ प्रारब्धेति यद्यपीदं दीर्घकालव्यापिमासोपवासाधिकप्रयोगविषयं तथापि निषत-तिष्ठ्यादितिषिकेक्षपि प्रारब्धेषु योजयितुं शक्यमितिभावः ॥ ३ केचिदित्यल्लुप्तिः निषेधस्यरागप्राप्तगोचरत्वेन वैधपारणगोचरत्वायो-गात् ॥ विषयायाभोजननिषेधादर्शनाच्चेति ॥

“यज्ञाचा प्रारंभ ब्राह्मणवरणः व्रत व सत्र यांचा प्रारंभ संकल्पः विवाहादिकांचा प्रारंभ नांशुश्राद्धः आणि भाक्षाचा प्रारंभ पाकनिष्पत्ति होय.” **ऋष्यामलांत**ही ‘सूतकामध्ये नवमीस होम करून पारणा करावी व सूतकाचे समाप्तीनंतर ब्राह्मण-भोजन करून यथाशक्ति दक्षिणा द्यावी.” असेंच श्रियांनीही रजोदर्शनामध्ये पारणा करावी. कारण, “रजोदर्शन झाले अगतांही द्वादशीव्रत सोडू नये.” असे **माघवीयांत ऋष्यशृंगवचन** आहे. द्वादशीव्रत म्हटले तें इतर व्रतांचें उपलक्षण आहे. कारण, “दीर्घ तपास आरंभ केलेल्या श्रियांस त्या तपामध्ये जें रजोदर्शन होतें त्या अवस्थेंतही कधीच व्रतलोप होत नाही.” असें **माघवीयांतच सत्यव्रतवचन** आहे. आणखी असें की, जर आशौचावस्थेंत पारणा होत नसेल तर एकादश्यादिक व्रताचेठायीं एकानंतर दुसरें, त्यानंतर तिसरें, असें आशौच एकावर एक पांच सहावेळ प्राप्त असतां मासाचे अंती पारणा प्राप्त होईल. मासोपवासव्रताचे अंती (एकामागून दुसरें असें) पांचसहावार आशौच प्राप्त असतां बांघच्छया असंभवही होईल. आतां जें “जेव्हां व्रतस्थ स्त्री असून मध्ये रजस्रला होईल तेव्हां ते विटाळाचे दिवस उपोषण करून खान केल्यानंतर राहिलेलें व्रत करावें” असें **अंगिराचें** वचन आणि जें **हारीतवचन** “नियम धरणारी व्रतस्थ स्त्री रजस्रला होईल तर तीन दिवस गेल्यानंतर तिनें शेष राहिलेलें व्रत समाप्त करावें” तें विधवेच्या उपवासाविषयीं जाणावें. कारण, त्यांस रजोदर्शनावस्थेंत भोजनाचा निषेध आहे; असें **केचित्** म्हणतात. आम्ही तर पूर्वींच सत्यव्रतवचनामध्ये ‘दीर्घतपसां’ असें विशेषण अगत्यामुळे द्वादशीवांचून इतर सकल एकदिवस उपवासाचे पारणेविषयीं हा अंगिरानें व हारीतानें सांगितलेला निषेध होय. त्रिरात्र, नवरात्र इत्यादिक दीर्घव्रताविषयीं तर रजोदर्शनामध्येही पारणा होते, असें सांगतां. पूर्वींच कौर्मवचनावरून आशौचामध्ये तर सारी पारणा होते, असें सिद्ध झालें. हा उपवासाचे पारणेचा निर्णय सर्व व्रतां-विषयीं जाणावा. आतां बहुत सांगणें पुरे करितों.

दशम्यादेवीविसर्जयेत् तदुक्तं दुर्गाभक्तिरंगिण्यादेवीपुराणे ततः प्रातः पूजयित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम् संप्रेषणं तु कर्तव्यं नीतवादित्रनिःस्वनैः रूपं देहियशो देहि भगं भगवति देहि मे पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे महिषत्रिमहामाये चामुंडे मुंडमालिनि आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते इति संप्राथ्य देवीं तु तत उत्थापयेद्बुधः उत्तिष्ठ देवि चंडेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च कुरुष्व मम कल्याणमप्राभिः शक्तिभिः सह गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चंडिके व्रजस्नानो जलं वृद्धैः स्थीयतां च जलं त्विहेति उत्थाप्य जलं नीत्वा दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै इमां पूजां मया देवियथाशक्त्योपपादिताम् रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमं इति जलं प्रवाहयेत् ।

दशमाचेठायीं देवीचें विगर्जन करावें. तें गायना — **दुर्गाभक्तिरंगिणीत देवीपुराणांत** — “नंतर दशमीस प्रातःकाळा यथाविधि पूजन करून गायन, वाघ यांच्या शब्दांनी देवीचें संप्रेषण (विगर्जन) करावें. **प्रार्थनेचे मंत्र —** रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ॥ पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ महिषघ्नि महा-माये चामुंडे मुंडमालिनि ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ अशी देवीची प्रार्थना करून नंतर उत्थापन करावें. उत्थापनाचा मंत्रः — **उत्तिष्ठ देवि चंडेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥ कुरुष्व मम कल्याणमप्राभिः शक्तिभिः सह ॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चंडिके ॥ व्रज स्नानो जलं वृद्धैः स्थीयतां च जले त्विह ॥ असें उत्थापन करून उदकाजवळ नेऊन —** **दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते ॥ संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादितां ॥ रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमं ॥** या मंत्रानें उदकांत बाहवावी.”

इयमेव विजयादशमी साचद्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे पूर्वाभाषा तदुक्तं हेमाद्रौ स्कांदे दशम्यांतुरैः सम्यक् पूजनीया पराजिता पेशांनीं दशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयन्नतः या पूर्णानवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता श्वेमाथर्व विजयार्थं च पूर्वीं कविधनानरः नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिता ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी तथा आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः एकादश्यां कुर्वीत पूजनं चापराजितमिति यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः परदिने चाल्पापितयोगिनी तदा परैव तथाच हेमाद्रौ व्रतकांडे कश्यपः उदये दशमी किंचित्संपूर्णकादशी यदि श्रवणशून्यदा काले सातिथिर्विजयाभिधा श्रवणश्रंतु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः उल्लसयेयुः सीमानंतं दिनश्रंतो न राहति कालेऽपराह्णे परदिने अपराह्णे श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव मदनरत्नेऽप्येवम् ज्योतिर्निबंधैरन्नकोशचनारदः इषत्संध्यामतिक्रांतः किंचिदुद्भिन्नतारकः विजयोनाम कालो बस्येव

कार्यार्थसिद्धिः इषस्यदशमीशुक्लापूर्वविद्वानकारयेत् श्रवणेनापिसंयुक्तांराह्णापट्टाभिषेचने सूर्योदयेयदाराजन् दृश्यतेदशमीतिथिः आश्विनेमासिशुक्लेतुविजयातांविदुर्बुधाः अत्रायंनिर्गलितोर्थः अपराहोमुख्यःकर्मकालःतत्रैवपूजायुक्तेः प्रदोषगौणः तत्रदिनद्वयेऽपराह्व्यापित्वेपूर्वा प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् दिनद्वयेप्रदोषव्यापित्वेपरा अपराह्व्याप्तेराधिक्यात् श्रवणस्तुरोहिणीवदप्रयोजकः दिनद्वयेऽपराह्वास्पर्शेनुपूर्वा तत्रापिपरदिनेऽपराह्वश्रवणसत्त्वेपरैवेतिदिक् ।

आश्विनशुक्लदशमी हीच विजयादशमी. ती विजयादशमी दुसऱ्या दिवशीं श्रवणयोग नसतां पूर्वा ध्यावी. तें सांगतो हेमाद्रींत स्कांडांत-“पुरुषांनीं दशमीचेठायीं ईशानी दिशेस जाऊन अपराह्नीं यथाविधि अपराजिता देवीचें पूजन करावें. नवमीयुक्त दशमीचेठायीं कल्याणासाठी व विजयासाठी पूर्वीकविधींनीं अपराजितेचें पूजन पुरुषांनीं करावें. नवमीयुक्त दशमीचेठायीं अपराजितेचें पूजन केलें असतां ती जय वाढविणारी देवी विजय देते.” तसेंच “आश्विनशुक्लदशमीस अपराजितेचें पूजन करावें. एकादशीस अपराजितेचें पूजन करूं नये.” जेव्हां पूर्वदिवशीं श्रवणयोग नसेल व परदिवशीं अल्पही दशमी श्रवणयुक्त असेल तेव्हां पराच करावी. तसेंच हेमाद्रींत व्रतकांडांत कश्यप-“उदयकालीं किंचित् दशमी व सर्वदिवस एकादशी जर असेल आणि अपराह्नीं श्रवणनक्षत्र असेल ती तिथि विजया होय. कारण, दशमीचेठायीं श्रवणनक्षत्रावर रामांनीं प्रस्थान केलें आहे यास्तव त्या दिवशीं व त्या नक्षत्रावर मनुष्यांनीं सीमेचें उल्लंघन करावें.” दुसऱ्या दिवशीं अपराह्नीं श्रवण नसेल तर सर्वपक्षीं पूर्वाच करावी. मदनरत्नांतही असेंच सांगितलें आहे. ज्योतिर्निबंधांत व राजकोशांत नारद-“संध्यासमय किंचित् जाऊन कांहीं नक्षत्रें दिसू लागलीं म्हणजे तो काल विजयनांवाचा आहे. हा सर्व कार्याची सिद्धि करितो. आश्विनशुक्लदशमी श्रवणनक्षत्रानेंही युक्त असली तरी राजांच्या पट्टाभिषेकाविषयीं नवमीयुक्त घेऊं नये. आश्विनशुक्लपक्षांत सूर्योदयीं जेव्हां दशमी असेल तेव्हां तिला विजया असें पंडित म्हणतात.” या वरील वचनांवरून निघालेला अर्थ असा आहे कीं,—अपराह्णकाल हा मुख्य कर्मकाल. कारण, त्या कालीच पूजादिक सांगितली आहेत. प्रदोषकाल हा गौणकाल. त्यांत दोनदिवशीं अपराह्णव्यापिनी दशमी असतां पूर्वा करावी. कारण, पूर्वदिवशीं प्रदोषव्याप्ति अधिक आहे. दोनदिवशीं प्रदोषव्यापिनी असतां परा करावी. कारण, परदिवशीं अपराह्णव्याप्ति अधिक आहे. श्रवणनक्षत्र तर रोहिणीसौरखें अप्रयोजक आहे. म्हणजे श्रवणाच्या अनुरोधानें निर्णय करावयाचा नाही. दोनदिवशीं अपराह्नीं दशमीचा स्पर्श नसेल तर पूर्वा करावी. त्यामध्येंही परदिवशीं अपराह्नीं श्रवण असेल तर पराच करावी. ही दिशा दाखविली आहे.

अत्रविशेषोभार्गवार्चनदीपिकायांभविष्ये शमीयुक्तंजगन्नाथभक्तानामभयंकरम् अर्चयित्वाशमीवृक्षमर्चयेन्नततःपुनः शमीमंत्रस्तुहेमाद्रौगोपथब्राह्मणे अमंगलानांशमनींशमनींदुष्कृतस्यच दुःस्वप्नाशिनींधन्यांप्रपद्येहंशमींशुभाम् तथाभविष्ये शमीशमयतेपापंशमीलोहितकंटका धारिण्यर्जुनबाणानांरामस्यप्रियवादिनी करिष्यमाणयात्रायांयथाकालंसुखंमया तत्रनिर्विघ्नकर्त्रीत्वंभवश्रीरामपूजितेइति तथा गृहीत्वासाक्षतामार्द्रांशमीमूलगतांमृदम् गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहंप्रति ततोभूषणवस्त्रादिधारयेत्स्वजनैः सहेति अत्रैवबलनीराजनमुक्तकृत्यरत्ने तत्रमंत्रः चतुरंगंबलंमहानिररित्वंब्रजत्विह सर्वत्रविजयोमेस्तुत्वत्प्रसादात्सुरेश्वरीति गौडनिबंधेज्योतिषे कृत्वानीराजनंराजाबलवृद्धयैयथाक्रमं शोभनंस्वजंनपश्येज्जलगोगोष्ठसन्निधौ अस्वफलानिशुभाशुभदेशाश्चतत्रैवज्ञेयाः ।

या विजयादशमीचेठायीं विशेष सांगतो भार्गवार्चनदीपिकेंत भविष्यांत-“भक्तांना अभय करणाऱ्या अशा शमीयुक्त भगवंताचें पूजन करून नंतर शमीवृक्षाचें पुनः पूजन करावें.” शमीच्या पूजनाचा मंत्र हेमाद्रींत गोपथब्राह्मणांत आहे तो असाः-“अमंगलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च ॥ दुःस्वप्नाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभां ॥” तसेंच भविष्यांत मंत्रः-“शमी शमयते पापं शमी लोहितकंटका ॥ धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया ॥ तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥” या मंत्रानें पूजन करून नंतर “शमीवृक्षाच्या मुळांशील ओली माती अक्षतासहित घेऊन गीतवायें वाजवीत आपल्या घरीं आणावी. नंतर भूषण व वस्त्रे स्वजनांसहित धारण करावीं.” या दशमीचे दिवशींच सैन्यास नीराजनविधि सांगतो-कृत्यरत्नांत-नीराजनमंत्रः-“चतुरंगं बलं मह्यं निररित्वं ब्रजत्विह ॥ सर्वत्रविज-

१ जसा रोहिणीनक्षत्रानें जन्माष्टमीचा निर्णय नाही तसा श्रवणनक्षत्रानें दशमीचा निर्णय नाही. २ शमीरहितदेशेअदमंतकं पूजयेदाचार्य ॥ अदमंतकमहावृक्ष महादोषनिवारण ॥ इष्टानांदर्शनंदेहि शत्रूणांचनिवारयेति प्राथयेत् ॥

योमेस्तु स्वप्नसादास्तुरेभ्यः ॥” गौडनिबंधांत ज्योतिषांत “राजानं सैन्यवृद्धीकरितां अनुक्रमानं गीराजनविधि करून शुभकारक खंजनपक्ष्याचें दर्शन, उर्दकाजवळ किंवा गाईच्या गोठ्याजवळ करावें.” या खंजनपक्षाच्या दर्शनाची फळे व शुभाशुभ प्रदेश गौडनिबंधांतच पाहावे.

आश्विनपौर्णमासीपराप्राह्या सावित्रीव्रतमंतरेणभवतोमापौर्णमास्यौपरेइतिदीपिकोक्तेः अत्रविशेष-
स्तिथितत्त्वेल्लेगे आश्विनेपौर्णमास्यांतुचरेजागरणनिशि कौमुदीसासमाख्याताकार्यालोकैर्विभूतये कौमु-
द्यांपूजयेल्लक्ष्मीमिद्रमैरावतस्थितम् सुगंधिर्निशिसद्वेपअक्षैर्जागरणंचरेत् तथा निशीथेवरदालक्ष्मीःकोजागर्ती-
तिभाषिणी तस्मैवित्तंप्रयच्छामिअक्षैःक्रीडांकरोतियइति ।

आश्विनपौर्णमासी परा ध्यावी. कारण, “सावित्रीव्रतावांचून अमावास्या व पौर्णमासी ह्या दुसऱ्या दिवशीच्या ध्याव्या.” असें दीपिकावचन आहे. या पौर्णिमेचे दिवशी विशेष कृत्य सांगतो—**तिथितत्त्वांत लिङ्गपुराणांत**—“आश्विन पौर्णमासीचे दिवशी रात्री जागरण करावें. ती पौर्णिमा कौमुदी म्हटली आहे. लोकांनी ऐश्वर्यप्राप्तीकरिता ती करावी. वा कौमुदीचे ठायी रात्री लक्ष्मी व ऐरावतावर बसलेला इंद्र यांचें पूजन करून सुगंधि द्रव्यें अंगाला लावून उत्तम वेष (पोषाक) करून फांशांनी खेळून जागरण करावें.” तसेंच “मध्यरात्री वरदालक्ष्मी, ‘कोण जागरण करीत आहे, जो फांशांनी खेळून जागरण करीत असेल त्यास मी द्रव्य देतें’ असें बोलते.”

अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तमाश्वलायनेन आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्मैति तच्छेषपर्वणिकार्यम् विकृतिस्त्वात् तत्रपूर्वाह्नव्यापिनीप्राह्या दैवकर्मत्वात् आप्रयणंतुपर्वणिकार्यम् शरद्याप्रयणंनामपर्वणिस्तदुच्यतइतिश्रीम-
कोक्तेः तत्रापिशेषपर्वणिकार्यमितिप्रागुक्तं तच्चब्रीहिभिरिष्टाब्रीहिभिरेवयजेतयवेभ्योयवैरिष्टावयैरेवयजे-
तब्रीहिभ्यइतिश्रुत्यादर्शपूर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमादर्शेष्टयाःपरंपौर्णमासेष्टयाश्चप्राग्भवतीतिहेमा-
द्रादयः दर्शेष्टयाःपरमुक्तमाप्रयणंकंप्राक्पौर्णमासाच्चतदितिदीपिकोक्तेश्च तच्चाप्रयणंत्रेधा ब्रीह्याप्रयण-
यच्चाप्रयणंत्रयामाकाप्रयणंचेति एपांकालःश्रुतौ गृहमेधीब्रीहियवाभ्यांशरद्वसंतयोर्जेतयामाकैर्नीवारैर्वर्षा-
स्वाप्तकालेनान्येनपुराणैर्वेति आपस्तंबोपि वर्षासुप्रयामाकैर्जेत शरदिब्रीहिभिर्वसंतयेवैर्येधेतुवेणुय-
वैरिति तत्रापिप्रयामाकाप्रयणमनित्यमितरेतुअनाहिताग्नेर्नित्ये यवाप्रयणंचकार्यमितिस्मार्तवृत्तादुक्तत्वात्
सूत्रेत्रीहियवदेवतासंबद्धानामेवमंत्राणामाभ्रानाश्च आहिताग्नेस्तुयवाप्रयणस्याप्यनित्यत्वम् अपिवाक्रियाय-
वेवितिसूत्रात् यद्वाब्रीह्याप्रयणेनसमानतंत्रता इयामाकैस्तुप्रस्तरंकुर्याभाप्रयणम् यदिवत्तदपिसमानतंत्र-
मित्यादिनारायणवृत्तौपरिश्रमवतांमुलभमित्यलम् ॥

याच पौर्णिमेस आश्वयुजीकर्म आश्वलायन सांगतो—“आश्विनी पौर्णिमेचे ठायी आश्वयुजीकर्म करावें.” तें आश्वयुजी-
कर्म शेष (उर्वरित) पर्वाचे ठायीं करावें. कारण, ही विकृति आहे. त्या आश्वयुजीकर्माविषयी पूर्वाह्नव्यापिनी पौर्णिमा
ध्यावी. कारण, हे दैवकर्म आहे. आप्रयण तर पर्वाचे ठायीं (अमावास्यास्य किंवा पौर्णिमेस) करावें. “शरदृतंत आप्रयण
पर्वाचे ठायीं होतें, तें सांगतां.” असें शौनकावचन आहे. तेंही उर्वरित पर्वाचे ठायीं करावें, असें पूर्वी सांगितलें आहे.
तें आप्रयण, “यव होण्याच्या पूर्वी (पौर्णिमेस) ब्रीहींनी होम करून (अमावास्यास्य) ब्रीहींनीच होम करावा. ब्रीहि
होण्याच्या पूर्वी (पौर्णिमेस) यवांनीं होम करून (अमावास्यास्य) यवांनीच करावा.” ह्या श्रुतीवरून दर्शपूर्णमासयाग हें एक
कर्म असल्यामुळे एक द्रव्याचा नियम असल्याकारणांत (आप्रयण) दर्शेष्टीनंतर आणि पौर्णमासेष्टीच्या पूर्वी होतें, असें
हेमाद्रिप्रभृति ग्रंथकार सांगतात. आणि “दर्शेष्टीनंतर व पौर्णमासेष्टीच्या पूर्वी तें आप्रयण सांगितलें आहे.” असें हीचि-
कावचनही आहे. त्या आप्रयणाचे प्रकार तीन आहेत. ब्रीह्याप्रयण, यवाप्रयण, आणि इयामाकाप्रयण. ह्या आप्रयणांचा
काल सांगतो श्रुतीन—“गृहस्थाश्रम्यां शरदृक्तंत ब्रीहींनी आणि वसंतऋतंत यवांनीं होम करावा. इयामाक (सांचे),
नीवार (तृणधान्यें) यांहींकरून वर्षाऋतंत व आप्तकालीं होम करावा. इतर द्रव्यांत किंवा जुन्या ब्रीह्यादिकांनीं होम करूं
नये.” आपस्तंबही—“वर्षाऋतंत इयामाकांनीं यजन करावें. शरदृतंत ब्रीहींनीं, वसंतंत यवांनीं यजन करावें. वैशु-
यवांनीं ज्या ऋतंत उत्पन्न होनील त्या ऋतंत यजन करावें.” त्या तीन आप्रयणांमध्ये इयामाकाप्रयण अनित्य आहे.

१ शरद् आश्विनकातिकी । वसंतः चैत्रवंशाखी । वर्षाः श्रावणभाद्रपदी । २ यधनुंतेणुयवैरिति काल्यायनेन तु वैष्णो प्रीष्ण इति
वेणुयवाप्रयणे प्रीष्ण एवोक्तः ॥ ३ इयामाकचर्वमंभवे इयामाकतुगेः प्रस्तर कृत्वा स्रवादुत्तरत आस्तीर्य तत्र सुचो निषागं वाप्यैव
इयामाकाप्रयणतिदिरिति वृष्टिकृन्नारायणरति मिथुमारम् ॥

इतर दोन आग्रयणे तर अनाहिताभि (आधान न केलेल्या) गृहस्थाला नित्य आहेत. कारण, “ग्रीह्याग्रयण करून यवा-
ग्रयणही करावे.” असे स्मार्तवृत्तीत सांगितले आहे. आणि सूत्राचे ठायीं ग्रीहि-यव देवतायुक्त मंत्रही सांगितले आहेत.
आहितामीला तर यवाग्रयणही अनित्य आहे. कारण, ‘अथवा क्रिया (कर्म) यवांचे ठायीं होतात’ असे सूत्र आहे. अथवा
आहितामीला यवाग्रयण ग्रीह्याग्रयणाशी समानतंत्रानें (एकतंत्रानें) होतें. श्यामाकांनीं तर प्रस्तर करावा. म्हणजे श्यामाक-
तृणांचा प्रस्तर (सुष्टि) करून खुबेच्या उत्तरेस पसरून त्याजवर सुचा ठेवावी, आग्रयण करूं नये. अथवा तें श्यामाका-
ग्रयणही एकतंत्रानें करावें इत्यादि प्रकार नारायणवृत्तीत सांगितला आहे, तो पाहण्याचा वगैरे परिश्रम करणारांस
समजण्यास सुलभ आहे. इतकें सांगून पुरे करितों.

इदंचपर्वाभावेशुक्लपक्षेदेवनक्षत्रेकृत्तिकादिविशाखांतकार्यमितिस्मृत्यर्थसारेउक्तम् बौधायनीयेके-
शवस्वामिनाप्येवमुक्तम् परिशिष्टे श्यामाकेर्वीहिभिश्चैवयवैश्चान्योन्यकालतः प्राग्यष्ट्युज्यतेवश्यं-
ह्यत्राग्रयणालयः त्रिकांडमंडनोप्येवम् यदात्वेतदाश्विनपौर्णमास्यांक्रियतेतदैककालत्वादाश्वयुजीकर्मणो-
स्यचसमानतंत्रताभवति तदेतद्वृत्तिकृताएकवर्हिर्दिग्धाज्येतिसूत्रेस्पष्टमुक्तम् अस्याकरणेप्रायश्चित्तमुक्तंस्मृति-
चंद्रिकायांकात्यायनेन नित्यज्ञात्ययेचैववैश्वदेवद्वयस्यच अनिघ्नानवयज्ञेननवाज्ञप्राशनेतथा भोजने-
पतिताग्रस्यचरुवैश्वानरोभवेत् कारिकापि अकृताग्रयणोऽश्विनात्रवान्नंयदिवैनरः वैश्वानरायक्तव्यश्चरुः
पूर्णाहुतिस्तुवेति ऋग्विधानेतु समिद्रगयामंत्रंचवर्षेवर्षेजपेच्छतम् आग्रयणंयदान्यूनंतदासंपूर्णमेतितदि-
त्युक्तम् एतच्चापदिमलमासेकार्यमन्यथानेतिप्रागुक्तम् अन्योप्याहिताग्न्यादिविशेषःशौनकादेर्ज्ञेयइत्यलंबहुना
इत्याश्विनमासः ॥

हें आग्रयण पर्वाचे अभावीं शुक्लपक्षांत कृत्तिकांपासून विशाखांपर्यंत ह्या देवनक्षत्रांवर करावें, असें स्मृत्यर्थसारांत
सांगितलें आहे. बौधायनीयांत (बौधायनसूत्रव्याख्येत) केशवस्वामीनें देखील असेंच सांगितलें आहे. परिशिष्टांत
“ग्रीहिकांच्या पूर्वी श्यामाकांनीं, यवकालाच्या पूर्वी ग्रीहींनीं, श्यामाककालाच्या पूर्वी यवांनीं होम करावा. असें केलें असतां
आग्रयणाचा अतिक्रम होत नाही.” त्रिकांडमंडनही असेंच सांगतो. जेव्हां हें आग्रयण आश्विनपौर्णमासीस करावयाचें
असेल तेव्हां आश्वयुजीकर्म व आग्रयण यांचा एक काल असल्यामुळें एकतंत्रानें होतें, तो हा प्रकार ‘एकवर्हिर्दिग्धाज्य-
खिष्टकृतः’ ह्या गृह्यसूत्रावर वृत्तिकारांनीं स्पष्ट सांगितला आहे. आग्रयण न केलें असतां प्रायश्चित्त गांगतो—स्मृतिचंद्रि-
केंत कात्यायन—“नित्यज्ञात्या लोप असतां, सायंप्रान्तवैश्वदेवांचा लोप असतां, नवान्नानें होम न करितां नवान्नभक्षण
झालें असतां, आणि पतिताज्ञाचें भोजन केलें असतां वैश्वानरचरु करावा.” कारिकाही—“आग्रयण केल्यावांचून जर
मनुष्य नवान्न भक्षण करील तर वैश्वानरदेवतेला चरु करावा, किंवा पूर्णाहुति करावी.” ऋग्विधानांत तर—“प्रतिवर्षीं
‘समिद्रगया०’ ह्या मंत्राचा शंभर जप करावा, म्हणजे जेव्हां आग्रयण न्यून झालें असेल तेव्हां तें संपूर्ण होतें” असें
सांगितलें आहे. हें आग्रयण आपत्काल असतां मलमासांत करावें. आपत्काल नसतां मलमासांत करूं नये, असें पूर्वी
सांगितलें आहे. आहिताभि इत्यादिकांचा इतरही विशेष शौनकादि ग्रंथावरून जाणावा. आतां बहुत सांगत नाहीं.
इति आश्विनमासः ॥

अथकार्तिकमासः तुलासंक्रमेप्रागपरादशघटिकाःपुण्याः रात्रौतुप्रागुक्तम् अथकार्तिकस्नानम् तत्र
पृथ्वीचंद्रोदयेविष्णुस्मृतिपाद्मयोः तुलामकरमेपेपुप्रातःस्नानंविधीयते हविष्यंत्रह्यचर्यचमहापात-
कनाशनमिति सौरमासउक्तः प्राच्याश्चतदेवादित्रियंते दाक्षिणात्यास्तु आश्विनस्यतुमासस्ययाशुक्लैकादशी-
भवेत् कार्तिकस्यव्रतानीहृतस्यावैप्राग्भेत्सुधीरितिपाद्मोक्तः भार्गवार्चनेच प्रारभ्यैकादशीशुक्लमाश्विन-
स्यतुमानवः प्रातःस्नानंप्रकुर्वीतयावत्कार्तिकभास्करइतिविष्णुरहस्योक्तः हेमाद्रावादित्यपुराणे
पूर्णआश्वयुजेमासिपौर्णमास्यांसमाहितइत्युक्त्वा मासंसमग्रपरयाचभक्त्यासमाप्यतेकार्तिकपौर्णमास्यामित्यंते-
भिधानाश्चाश्विनशुक्लैकादश्यांपौर्णमास्यांवारभ्यकार्तिकशुक्लद्वादश्यांपौर्णमास्यांवासमापयेदित्याहुः मदनपा-
रिजातेविष्णुः कार्तिकंसकलमासंनित्यस्नायीजितेंद्रियः जपन्हविष्यभुक्शांतःसर्वपापैःप्रमुच्यते अत्रदेश-
विशेषःपाद्मे कार्तिकंप्रक्रम्य कुरुक्षेत्रेकोटिगुणोगंगायामपितत्समः ततोधिकःपुष्करेस्याह्वारवत्यांचभार्गव
पुण्याःपुर्यश्चसत्तैवमुनयोमथुराधिका दुर्लभःकार्तिकोविप्रासमथुरायांनृणामिह यत्रार्चितःस्वकंरूपंभक्तेभ्यः-

संप्रयच्छतीति इदंचस्नानंकाशीस्थपंचनदेत्यतिप्रशस्तम् शतंसमास्तपस्तात्वाकृत्येतत्प्राप्यतेफलम् तत्कार्तिके-
पंचनदेसकृत्स्नानेनलभ्यते कार्तिकेविंदुतीर्थेयोम्रह्मचर्यपरायणः स्नात्यत्युदितेभानौभानुजातस्वभीःकुत
इत्यादिकाशीखंडोक्तेः भानुजोयमः ॥

आतां कार्तिकमासकृत्यं सांगतो.

तुलासंक्रांतीच्या पूर्वीच्या दहा व पुढच्या दहा षटिका पुण्यकाल. रात्री संक्रांत असतां पुण्यकाल पूर्वा (प्रथम परि-
च्छेदांत) सांगितला आहे. आतां कार्तिकस्नान सांगतो—पृथ्वीचंद्रोदयांत विष्णुस्मृतींत व पद्मपुराणांत—
“तुला, मकर, मेष या संक्रांतींत प्रातःस्नान, हविष्यभक्षण व ब्रह्मचर्यव्रत हीं करावीं म्हणजे महापातकाचा नाश होतो.”
याप्रमाणें हा सौरमास (संक्रांतिमास) सांगितला आहे. प्राग्देशीय लोक हा सौरमासच घेतात. दक्षिणात्य तर,
“आश्विनमासाचे शुक्लपक्षांतील एकादशीस कार्तिकाचे व्रतांचा आरंभ करावा” ह्या पाश्चात्तयावरून व भार्गवाचार्यांतही
“आश्विनशुक्ल एकादशीस प्रारंभ करून कार्तिकशुक्ल द्वादशीपर्यंत मनुष्याने प्रातःस्नान करावें” ह्या विष्णुसहस्रनामवरून
आणि हेमाद्रिंत आदित्यपुराणांत “आश्विनमास पूर्ण झाला अगतां पौर्णिमेचे ठायीं समाहितपणानें” असें सांगून
“मग महिनाभर परमभक्तानें स्नान करून कार्तिकपौर्णिमेचे ठायीं गमाप्त करावें” असें अंती सांगितल्यावरूनही आश्विनशुक्ल
एकादशीस किंवा पौर्णिमेस प्रारंभ करून कार्तिकशुक्ल द्वादशीस किंवा पौर्णिमेस गमाप्त करावें, असें सांगतात. मदनपारि-
जातांत विष्णु—“मग कार्तिकमासामध्यें जितेंद्रिय व शांत होऊन नित्यस्नान, जप व हविष्यान्नभोजन करणारा सर्व
पापांपासून मुक्त होतो.” ह्या कार्तिकस्नानाविषयी विशेष देश पद्मपुराणांत कार्तिकमासाचा उपक्रम करून सांगतो—
“कुरुक्षेत्रांत कार्तिकमास कोटिगुणत फल देणारा आहे. गंगेमध्येही त्याच्या गमान आहे. पुष्करतीर्थाचे ठायीं व द्वारकेंत
त्याच्याहून अधिक फल देणारा आहे. गान्धारी (अंधोपा, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका, आणि द्वारावती
ह्या) पुण्यक्षेत्र आहेत. पण त्या गांवांमध्ये मथुरापुरा अधिक पुण्यक्षेत्र आहे. मनुष्यांना मथुरेमध्ये कार्तिकमास प्राप्त
होणें दुर्लभ आहे. इतलोकी ज्या मथुरेन पुजिल्या भगवान् भक्तांचा आत्मस्वरूप देतो.” हें कार्तिकस्नान काशीतील पंचनद
तीर्थांतही अति प्रशस्त आहे. कारण, “कुरुक्षेत्रामध्ये शंकर वेंच तप करून जें फल प्राप्त होतें तें फल कार्तिकमासांत
पंचनदतीर्थांत एकवेल स्नान केल्याने प्राप्त होतें. कार्तिकमासांत जो मनुष्य ब्रह्मचर्यव्रत धारण करून सूर्योदयापूर्वी बिंदु-
माधवतीर्थामध्ये स्नान करील त्याला यमाचे तप होऊन होणार !” इत्यादिक काशीखंडवचनें आहेत.

इदंचप्रातःस्नानसंभ्यांचकृत्वाकार्यम् तेनविनेतर्गकर्मानधिकारगदितिवर्धमानः यद्यपिप्रातःसंध्यायाःसू-
र्योदयेसमाप्तिस्तथापिचचनवलादननुदितहोमवद्विष्यति स्नानमंत्रश्रवणत्रैव कार्तिकेऽहंकरिष्यामिप्रातःस्नानं-
जनार्दन प्रीत्यर्थतवदेवशदामोदरमयामह इममंत्रंमुच्चार्यमौनीस्नायाद्भर्तृजनगति अर्थमंत्रोपितत्रैव व्रतिनः-
कार्तिकेमासिस्नानस्यविधिचक्रमम गृहाणार्थमयादत्तंदनुजेंद्रनिपूदन नित्यनैमित्तिकेकृष्णकार्तिकेपापनाशने
गृहाणार्थमयादत्तंग्रथयामहितोदरे इममंत्रांमुच्चार्योऽर्थमहंप्रयच्छति सुवर्णरत्नपुष्पांनुपूर्वशंखेनपुण्य-
यान् सुवर्णपूर्णांशुधिवीतेनदत्तानमंशयति एवंसंपूर्णस्नानाशक्तोऽयहंस्नायान् वाराणस्यांपंचनदेऽयहंस्नातास्तु-
कार्तिके अस्मिंतपुण्यवपुःपुण्यभाजोऽतिनिर्मलाइतिकाशीखंडोक्तेः ॥

हें कार्तिकस्नान प्रातःस्नान व संध्या हीं करून करावें. कारण, प्रातःस्नान व संध्या हीं केल्यावांचून इतर कर्मांस अधिकार
नाहीं, असें वर्धमान सांगतो. जरी प्रातःसंध्याची समाप्ति सूर्योदयाकाली होतें असें आहे, तथापि वचनबलांनें जसा
सूर्योदयाच्या पूर्वी अग्निहोत्रहोम होतो तसें सूर्योदयाच्या पूर्वी प्रातःसंध्या समाप्त करून हें कार्तिकस्नान होतें. स्नानाचा
मंत्र तथैव सांगतो—“कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया
सह ॥ हा मंत्र म्हणून व्रती मनुष्यानें मान धारण करून स्नान करावें.” अर्घ्याचा मंत्रही तथैव सांगतो—“व्रतिनः
कार्तिके मासि स्नानस्य विधिचक्रमम ॥ गृहाणार्थं मया दत्तं दनुजेंद्रनिपूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण
कार्तिके पापनाशने ॥ गृहाणार्थं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ हे दोन मंत्र म्हणून सुवर्ण, रत्न, पुष्प,
उदक हीं शंखांत घालून शंखानें जो पुण्यवान् भगवंताला अर्घ्य देतो त्यानें सुवर्णपूर्णं पृथिवी दिव्यी यांत संशय नाही.”
याप्रकारें मग महिना स्नान करण्याला शक्ति नमेल तर तीन दिवस करावें. कारण, “वाराणसीमध्ये पंचनदतीर्थांत कार्तिक-
मासी तीन दिवस ज्यांनी स्नान केलें ते हे पुण्याग्ने, पुण्य भोगणारे अतिनिर्मल होनात” असें काशीखंडवचन आहे.

अथमालाधारणम् तत्रस्कांदेद्वारकामाहात्म्ये निवेशकेशवेमालांतुलसीकाष्ठसंभवाम् बहुतेयोनरो-
भक्त्यातस्यवेनास्तिपातकम् नजझातुलसीमालांधात्रीमालांविशेषतः महापातकसंहर्त्रीधर्मकामार्घ्यदायिनीम्

विष्णुधर्मे स्पृशेत्तुयानिलोमानिधात्रीमालाकलौनृणाम् तावद्वर्षसहस्राणिवैकुण्ठेवसतिर्भवेत् मालायुग्मंतु-
योनित्यंधात्रीतुलसिसंभवम् बहतेकंठदेशेतुक्लपकोटिर्दिवं वसेत् तुलसीकाष्ठसंभूतेमालेकृष्णजनप्रिये बिभ-
र्मित्वामहंकंठेकुरुमांकृष्णवल्लभम् एवंसंप्राथ्यविधिवन्मालांकृष्णगलेऽर्पिताम् धारयेत्कार्तिकेयोवैसगच्छे
द्वैष्णवंपदमिति अत्रमूलंचित्यम् ॥

आतां तुलसीकाष्ठमालाधारण. त्याविषयी स्कंदपुराणांत द्वारकामाहात्म्यांत सांगतो—“तुलसीकाष्ठांची माला भगवंताला निवेदन करून जो मनुष्य भक्तीने धारण करितो त्याला पानक खरोखर नाही. तुलसीकाष्ठमाला व विशेष-
करून धात्री (आमलकी) काष्ठमाला टाकू नये. कारण, ती महापापाचा नाश करणारी व धर्म, काम, अर्थ यांत देणारी आहे.” **विष्णुधर्मान**—“कलियुगामध्ये आमलकीकाष्ठमाला मनुष्याच्या अंगावरील जिनक्या रोमांला स्पर्श करील तितक्या सहस्र वर्षे वैकुण्ठांत वास होईल. धात्री व तुलसी यांच्या दोन माला जो नित्य कंठांमध्ये धारण करितो तो कोटि-
कल्पपर्यंत स्वर्गवास करितो. मालाधारणाचा मंत्रः—**तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये ॥ बिभर्मि त्वामहं कंठे कुरु मां कृष्णवल्लभं ॥** अशी प्रार्थना करून यथाविधि कृष्णाच्या कंठांमध्ये अर्पण केलेली अशी माला कार्तिक-
मासांमध्ये जो धारण करील तो विष्णुलोकाप्रत जाईल.” या मालाधारणवचनाविषयी मूल प्रमाणचा विचार करावा.

तथाकाशीखंडे कार्तिकेमासिमेयात्रायैःकृताभक्तिनत्परैः बिन्दुतीर्थकृतस्नानैस्तेपांमुक्तिर्नदूरतः
भार्गवार्चनदीपिकायांनृसिंहपुराणे अगस्तिकुसुमैर्देवयोऽर्चयेच्चजनार्दनं दर्शनात्तस्यदेवर्षेनरंकना-
श्रुतेनरः विहायसर्वपुष्पाणिमुनिपुष्पेणकेशवम् कार्तिकेयोऽर्चयेद्भक्त्यावाजपेयफलंभजेत् **स्कांदेकार्तिक-**
माहात्म्ये मालतीमालयाविष्णुःकेतक्याचैवपूजितः समाःसहस्रंमुप्रीतोभवेत्तेमधुसूदनः **पृथ्वीचंद्रो-**
दयेपाद्मे कार्तिकेनार्चितोयैस्तुकमलैःकमलेक्षणः जन्मकोटिपुविप्रैर्नतेपांकमलगृहे तथा कार्तिकेकेशवे-
पूजायेषांनान्नासुतैःकृता तेनिर्भर्त्यरवेःपुत्रवंसंतित्रिदिवेसदा तुलसीदललक्षेणकार्तिकेयोऽर्चयेद्धरिम् पत्रेप-
त्रेमुनिश्रेष्ठमौक्तिकंलभतेफलम् तथा**स्कांदेकार्तिकमाहात्म्ये** धात्रीच्छायेतुयःकुर्यात्पिंडदानंमहामुने
मुक्तिप्रयातिपितरःप्रसादान्माधवस्यतु धात्रीफलविलिप्तांगोधात्रीफलविभूषितः धात्रीफलकृताहारोऽनरोना-
रायणोभवेत् धात्रीच्छायांसमाश्रितयोऽर्चयेच्चधारिणम् पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोतिमानवः तथा**स्कांदे**
कार्तिकेमासिविप्रैर्द्रधात्रीवृक्षोपशोभिते वनेदामोदरंविष्णुचित्रात्रैस्तोपयेद्विभुम् मूलेनपायसेनाथहोमंकुर्याद्वि-
चक्षणः ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्यास्वयंभुंजीतबंधुभिरिति ॥

तसेच काशीखंडांत “कार्तिकमासामध्ये भक्तियुक्त होऊन बिंदुमाधवतीर्थतः स्नान करून ज्यांनी माझी (भग-
वंताची) यात्रा केली त्यांस मुक्ति दूर नाही.” **भार्गवार्चनदीपिकें नृसिंहपुराणांत**—“अगस्तिपुष्पांनी जनार्दन
देवाचें जो पूजन करील त्याच्या दर्शनानें मनुष्यास नरक प्राप्त होत नाही. कार्तिकमासीं सर्व पुष्पें सोडून अगस्तिपुष्पांनें
केशवाचें जो भक्तीनें पूजन करील त्यास वाजपेयज्ञाचें फल प्राप्त होईल.” **स्कंदपुराणांत—कार्तिकमाहात्म्यांत**—
“मालती (जाई, चमेली) पुष्पांच्या मालेनें व केतकीपुष्पांनें पूजिलेला भगवान् विष्णु हजार वर्षे संतुष्ट होतो.” **पृथ्वी-**
चंद्रोदयांत पद्मपुराणांत—“कमलनेत्र भगवान् कार्तिकमासामध्ये ज्यांनी कमलांनीं पूजिला नाही त्यांच्या घरीं लक्ष्मी
कोटिजन्मपर्यंत राहणार नाही.” तसेंच “कार्तिकमासामध्ये केशवाची पूजा ज्यांच्या नांवांनें पुत्रांनीं केली ते यमाची अवज्ञा
करून (यमलोक सोडून) निरंतर स्वर्गवास करतात. कार्तिकमासीं लक्ष तुलसीपत्रांनीं जो हरीचें पूजन करील त्याला एक
एक पत्राला मौक्तिक दानाचें फल प्राप्त होतें.” तसेंच **स्कंदपुराणांत कार्तिकमाहात्म्यांत**—“आंबळीच्या छायेमध्ये
जो पिंडदान करील त्याचे पितर भगवंताच्या प्रसादानें मुक्तीस जातात. धात्रीफलें वाटून अंगास लावणारा, धात्रीफलांनीं
भूषित व धात्रीफलें भक्षण करणारा मनुष्य नारायण होतो. धात्री (आमलकी) छायेचा आश्रय करून जो भगवंताचें
पूजन करितो तो मनुष्य पुष्पापुष्पाचे ठायीं अश्वमेधाचें फल पावतो.” तसेंच **स्कंदपुराणांत**—“कार्तिकमासीं धात्रीवृक्षांनीं
सुशोभित वनामध्ये दामोदर नामक विष्णूला नानाप्रकारच्या अन्नांनीं संतुष्ट करून (नैवेद्य दाखवून) मूलमंत्रांनें पायसाचा
होम करावा, आणि यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करून आपण बंधूसह भोजन करावें.

तथा कार्तिकेद्विदलव्रतप्रागुक्तं कार्तिकेद्विदलं त्यजेदिति पाद्मेपि कार्तिकमाहात्म्ये राजिकामा-
ढकंचैव नैवाद्यात्कार्तिकव्रती द्विदलं तिलतलैश्च तथान्यन्मतिदूषितम् **स्कांदेपि** कार्तिकेवर्जयेत्तद्विदलंबहु-

बीजकम् मापमुद्रमसूराश्चक्षणकाश्चकुलित्थकाः निष्पावाराजमापाश्चादकयोद्विदलंस्मृतम् नूतनान्यपिजी-
र्णानिमवाण्येतानिवर्जयेत् अत्रकेचिदुत्पत्तिसमयेदलद्वयंयस्यभवतितद्गतपूर्वगत्याद्विदलमित्युच्यतइत्याहुः
उदाहरतिच बीजमेवसमुद्भूतंद्विदलंचांकुर्विना दृश्यतेयत्रसस्येपुद्विदलंतन्निगद्यतइति अन्येतुलक्षणायां-
मानाभावाद्वचनस्यनिर्मूलत्वाद्विदलात्मकंयस्यस्वरूपंतदेववर्जयेदित्याहुः तथानारदीये कार्तिकेवर्जयेत्सै-
लंकार्तिकेवर्जयेन्मधु कार्तिकेवर्जयेत्कांस्यंकार्तिकेशुक्तसंधितम् कांस्यंतत्पात्रभोजनम् शुक्तंपर्युषितम् संधितं-
लवणशकः तत्रैव कार्तिकेविष्णुमूर्त्यभेदीपदानादिवंब्रजेन् तथा कार्तिकेनुकृतादीक्षानृणांजन्मविमोचनी तथा
कार्तिकेकृच्छ्रसेवीयःप्राजापत्यपरोथवा एकांतरोपवासीवात्रिरात्रोपोषितोपिवा पड्वाद्वादक्षपक्षंवामासंवा-
वरवर्णिनि एकभक्तेननक्तनतथैवायाचितेनच उपवासेनभक्षेणव्रजतेपरमंपदम् अन्येपिनियमाःप्रागुक्ताः ।

तमेव कार्तिकमासीं द्विदलव्रतं स्मरणं 'कार्तिके द्विदलं त्यजेत्' (कार्तिकांत द्विदलं गोडावं) असं पूर्वा चातुर्मास्यव्रत
प्रकरणं सांगितं आहे. **पद्मपुराणांतही कार्तिकमाहात्म्यांत**—“राजिका (राई, मोहरी), गुरी, द्विदल (दोन
डाळींचीना पदार्थ), तिळांचें तेल, आणि वृज्जीला दधिन करणारा दुग्ग्रा कोणताही पदार्थ हे कार्तिकव्रत करणारानें भक्षण
करूं नयेत.” **स्कंदपुराणांतही** “कार्तिकमासामध्ये द्विदल व बहुबीज गोडावं. उडीद, मूग, मसुरा, चणे, कुळीथ,
पावटे, चवळ्या, तुरी हीं धान्ये द्विदल होत. हीं नवीं किंवा जुनीं अमळीं तरी गोडावीं.” या द्विदलाविषयीं **केचित्**
ग्रंथकार-उत्पत्तिसमयीं ज्यानीं दोन दलें होताना, तें भूतपूर्वगतीनें (पूर्वा द्विदल अगत्यामुळे) द्विदल म्हटलें आहे, असं
सांगतात. उदाहरणही देतात—“ज्या धान्यामध्ये अंकुरावांचून बीजान द्विदल झाल्ले दृष्टीम पडतें तें द्विदल म्हटलें आहे.”
अन्य ग्रंथकार तर—अग्रा अर्थे, द्विदलजवळानीं उत्पत्तिसमयीं द्विदलावर लक्षणा करून करावयाचा आहे, व या
टिकाणीं तशी लक्षणा करण्याविषयीं प्रमाण नमल्यामुळे ‘बीजमेव समुद्भूतं’ हें वचन मूलरहित अगत्यामुळे ज्याचें स्वरूप
द्विदलात्मक आहे तेंच वर्ज्य करावें, असं सांगतात. तमेव **नारदीयांत**—“कार्तिकमासांत तेल, मधु, कांस्यपात्रभोजन,
शुक्त (पर्युषित, शिळें), संधित (लवणयुक्त शाक, योग्यच) हीं गोडावीं.” तमेव “कार्तिकमासीं विष्णुमूर्तीच्या पुढें वीप
लावला क्षयनां स्वर्गाप जातो.” तमेव “कार्तिकमासांत मंत्रवीक्षा घेतली अगदीं मनुष्यांस जन्मापासून गोडविते.” तसेंच
“कार्तिकमासीं कृच्छ्रव्रत करणारा किंवा प्रजापत्यव्रत करणारा किंवा एकांतरोपवासी अथवा त्रिरात्र उपोषण करणारा,
अथवा महा, वारा, पंधरा दिवस किंवा एक महिना एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास अथवा भिक्षात्र भक्षण करणारा
परमपदाम जातो.” अन्यही नियम पुढां चानुमांस्यामांसांसांगितले आहेत.

ग्राह्यमुक्तस्कांदे ब्रह्मयोगवगोभूमाःप्रियंगुतिलशालयः एतेहिमास्त्विकाःप्रोक्ताःस्वर्गमोक्षफलप्रदाः **का-
शीखंडे** ऊर्जेयवात्रमभ्रीयादेवात्रमथवापुनः वृताकंमृगणंचैवशुक्लशिखीश्रवर्जयेत् **पृथ्वीचंद्रोदयेपाद्यो**
नोर्जोवंध्योविधानव्योव्रतिनांकनचिक्चिक्चिक् तथा नारदीये अत्रतनश्चपेयस्तुमासंदांमोदरप्रियम् तिर्यग्यो-
निमवाप्रोतिनात्रकार्याविचारणा अन्यान्यपितांबूलतैलकेशकर्तनादिवर्जनसंकल्परूपाणिप्रागुक्तानि ।

कार्तिकमासांत ग्राह्य पदार्थे सांगतो—**स्कंदपुराणांत**—“ग्राहि, यव, गहू, कांग, तिल, शालि हीं धान्ये सालिक
सांगितली आहेत, तीं स्वर्गमोक्षरूप फल देणारीं होत.” **काशीखंडांत**—“कार्तिकमासीं यवाज अथवा शालि, गहू इत्यादि
देवांचें अन्न भक्षण करावें. वृताक (वांग). मृगण, शुक्लधान्ये व अंगेतील धान्ये हीं गोडावीं.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत**
पाशांत—“कोणत्याही व्रतस्थ मनुष्यानें कोणीही कार्तिकमास व्रतावांचून व्यर्थे दवडूं नये.” तसेंच **नारदीयांत** “दामोद-
राला प्रिय अग्रा कार्तिकमास व्रतावांचून जो दवडील तो तिर्यग्योनीन जातो यांत संशय नाही.” इतरही तांबूल, तेल, केश-
कर्तन इत्यादि वर्ज्य करण्याची व्रते पूर्वा आपादमास प्रकरणं सांगितली आहेत.

तथा कार्तिकेआकाशदीपउक्तो **निर्णयामृतनेपुष्करपुराणे** तुल्यांतितिलतैलेनमायंकालेसमागते आका-
शदीपयोदधान्मासमेकंहरिप्रति महतींश्रियमाप्नोतिरूपमौभाग्यसंपदमिति तद्विधिश्चेद्दामाद्रावादिपुराणे
दिवाकरेस्नाचलमौलिभूतेगृहाददूरेपुरुषप्रमाणम् यूपकृतियज्ञियवृक्षदारुमारोप्यभूमावथतस्यमूर्ध्नि यवां-
गुलच्छिद्रयुताम्नुमध्येद्विहस्तदीर्घाअथपट्टिकास्तु कृत्वाचतस्रोऽष्टदलाकृतींमुयाभिर्भवेदष्टदिशानुसारी तत्क-
र्णिकायांतुमहाप्रकाशोदीपःप्रदयोदलगास्तथाष्टौ निवेद्यधर्मायहरगयभूम्यैदामोदगयाप्यथधर्मराजे प्रजापति-
भ्यस्त्वथसत्पितृभ्यःप्रेतेभ्यपवाथतमःस्थितेभ्यइति अपराकैवन्वयोमंत्रउक्तः यथा दामोदरायनमसिबु-
लायांलोलयासह प्रदीपंतेप्रयच्छामिनमोन्तायवेधसइति ।

तसाच कार्तिकमासामध्ये आकाशदीप सांगतो—**निर्णयामृतांत पुष्करपुराणांत**—“तुलासंक्रांतीत तिलतैलानें सायंकालीं एक महिना हरीला जो आकाशदीप देईल तो मोठी लक्ष्मी व रूप सौभाग्य संपत्ति पावेल. त्या आकाशदीपाचा विधि—**हेमाद्रींत आदिपुराणांत**—“सूर्य अस्ताचलाग्रत गेला असतां गृहाजवळ एकपुरुष उंच यज्ञस्तंभासारखें यज्ञियवृक्षाचें (खदिरादिकाचें) काष्ठ भूमींत पुरून त्याचे मस्तकावर दोन हात लांबीच्या चार पट्ट्या त्या, मध्यभागीं यवपरिमित एक अंगुल लांब असें छिद्र पाडलेल्या अष्टदलाकृति बसवाव्या. नीं अष्टदलें आठ दिशांम येतील असें दीपयंत्र करावें. त्याच्या कर्णिकेमध्ये मोठा दीप लावावा. आणि आठ दलांवर आठ दीप लावावे. ते दीप धर्माय, हराय, भूष्ये, दामोदराय, धर्मराजाय, प्रजापतिभ्यः, पितृभ्यः, तमःस्थितेभ्यः प्रतेभ्यः ह्या नाममंत्रांनीं समर्पण करावे”. अपराक्रांती तर दुसरा मंत्र सांगितला, तो असाः—“**दामोदराय नमसि तुलायां दोलया सह ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोन्ताय वेधसे.**”

कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी साचंद्रोदयव्यापिनीग्राह्या दिनद्वयेतत्त्वेपूर्वा तत्रैवपूजाद्याभ्रानान् कार्ति-
ककृष्णद्वादशीगोवत्ससंज्ञा साप्रदोषव्यापिनीग्राह्या दिनद्वयेतत्त्वेपूर्वा **युग्मवाक्यात्** वत्सपूजावटश्चैव
कर्तव्याप्रथमेहनीतिनिर्णयामृतेभिधानाच्च अत्रविशेषोमदरत्नेभविष्ये सबत्सांतुल्यवर्णाचशीलिनीं
गांपयस्विनीम् चंदनादिभिरालिप्यपुष्पमालाभिरर्चयेत् अर्घ्यताम्रमयेपात्रेकृत्वापुष्पाक्षतैस्तिलैः पादमूलेतु-
दद्याद्वैमंत्रेणानेनपांडव श्रीरोदाणवसंभूतेमुरासुरनमस्कृते सर्वदेवमयेमातर्गृहाणार्घ्यंनमोनमः नतोमापादि-
संसिद्धान्वटकान्विनिवेदयेत् सुरभित्वंजगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता सर्वदेवमयेग्रासंमयादत्तमिमं ग्रस ततः-
सर्वमयेदेविसर्वदेवैरलंकृते मातर्ममाभिलषितं सफलंकुरु नंदिनि इतिप्रार्थयेत् तथा तद्दिनेतैलपक्वस्थालीप-
कंयुधिष्ठिर गोक्षीरगोघृतंचैवदधितक्रंचवर्जयेत् ।

कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी. ती चंद्रोदयव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवग चंद्रोदयव्यापिनी अमतां पूर्वा ध्यावी. कारण, चंद्रोदयकालींच पूजादि कृत्य सांगितलें आहे. कार्तिककृष्ण द्वादशी ही गोवत्सद्वादशी होय. ती गोवत्सद्वादशी प्रदोषकाल-
व्यापिनी ध्यावी. दोन दिवशीं प्रदोषव्यापिनी अमतां युग्मवाक्यावरून पूर्वा करावी. आणि “गोवत्सपूजा, आणि वटपूजा हीं पूर्वदिवशीं करावीं” असें निर्णयामृतांतही सांगितलें आहे. हा गोवत्सद्वादशीचें ठायीं विशेषविधि—**मदनरत्नांत भविष्यांत**—“सवत्स गाई वत्सतुल्य वर्णाची उत्तम स्वभावाची बहुत दूध देणारी अशी अणूत तिला चंदनादिकांनीं लेप करून पुष्पमालांनीं पूजन करावें. आणि ताम्रपात्रामध्ये पुष्प, अक्षता, तिल यांनीं अर्घ्य करून पायांजवळ पुढील मंत्रांनं घावें. तो मंत्रः—**क्षीरोदाणवसंभूते सुरासुरनमस्कृते ॥ सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमो नमः ॥** नंतर भाषादिकांनं केलेले वटक गाईस द्यावे. देण्याचा मंत्रः—**सुरभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता ॥ सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस ॥** नंतर प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्रः—**ततः सर्वमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नंदिनि ॥** तसंच, त्या दिवशीं तेलानं तळलें, स्थालींत शिजवलेला पदार्थ आणि गाईचें दूध, तूप, दही, ताक हीं अर्घ्य करावीं.”

ज्योतिर्निबंधेनारदः आश्विनेकृष्णपक्षेतुद्वादश्यादिपुपंचसु तिथिपूक्तःपूर्वरात्रेनुणांनीराजनाविधिः
नीराजयेयुर्देवांस्तुविप्रान्गाश्चतुरंगमान ज्येष्ठान्श्रेष्ठान्जघन्यांश्चमातृमुख्याश्चयोपितइति **निर्णयामृते-**
स्कांदे कार्तिकेकस्यासितेपक्षेत्रयोदश्यानिशामुखे यमदीपंबहिर्दद्यादपमृत्युधिंनश्यति **मंत्रस्तु** मृत्युनापाश-
दंडाभ्यांकालेनश्यामयासह त्रयोदश्यादीपदानात्सूर्यजःप्रीयतांममेति ।

ज्योतिर्निबंधांत मारदः—“आश्विनकृष्णद्वादशीपासून कार्तिकशुद्धप्रतिपदेपर्यंत पांचादवस पूर्वरात्रीं मनुष्यांस नीरा-
जनविधि सांगितला आहे तो असा—देव, ब्राह्मण, गाई, घोडे, ज्येष्ठ, भ्रेष्ट, लहान या सर्वांस मातृमुख स्त्रियांनीं नीराजन करावें (दिवे ओवाळवे).” **निर्णयामृतांत स्कांदांत**—“कार्तिककृष्णपक्षीं त्रयोदशीचे दिवशीं प्रदोषकालीं घराबाहेर यमाल दीप द्यावा, तेणेंकरून अपमृत्यूचा नाश होतो.” त्याचा मंत्रः—“**मृत्युना पाशदंडाभ्यां कालेन श्यामया सह ॥ त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतां मम.**”

कार्तिककृष्णचतुर्दश्यांप्रभातेचंद्रोदयेऽव्यंगं कुर्यात् तदुक्तं हेमाद्रौनिर्णयामृतेचभविष्योत्तरे
कार्तिकेकृष्णपक्षेतुर्दश्यामिनोदये अवश्यमेवकर्तव्यंस्नानंरक्तभीरुभिः इत्यश्वंत्रं **मदनरत्ने**विषूदयइति
पाठः दिनोदयइतिपाठात्सूर्योदयोत्तरं त्रिसुहूर्तेस्नानं वदतांगौडानांतदनुसारिणांचाज्ञतैव पूर्वविद्वच्चतुर्दश्यां-

कार्तिकस्यसितंतरे पक्षे प्रत्यूपसमयं स्नानं कुर्यात्प्रयत्नत इति स्मृतिदर्पणेऽपि चतुर्दशीचाश्वयुजश्च कृष्णस्वात्यू-
श्रयुक्ताच भवेत्प्रभाते स्नानं समभ्यज्य नैस्तु कार्यं सुगंधतैलेन विभूतिका मैरिति पृथ्वीचंद्रोदये पाक्षे आश्वयु-
ज्कृष्णपक्षश्चतुर्दश्याविभूदये तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुणेति कर्तव्यं मंगलस्नानं नैर्निरयभीरुभिरिति
कालादर्शोपाठः उभयत्राश्वयुगित्यमावास्यांतं मासमभिप्रेत्योक्तम् तथा तैलेलक्ष्मीर्जले गंगादीपावल्याश्चतु-
र्दशीं प्राप्येति शेषः प्रातः स्नानं तु यः कुर्याद्यमलो कंनपश्यतीति ।

कार्तिककृष्णचतुर्दशीचेठायी प्रभातकाळी चंद्रोदयी तैलाभ्यंग करावा. तें गांगनो हेमाद्रीत व निर्णयामृतांत भवि-
ष्योचरांत — “कार्तिककृष्णपक्षामध्ये चतुर्दशीचेठायी चंद्रोदयी नरकाय भिणारांनी अवश्य स्नान करावें.” मदनरक्षांत
‘इनोदये’ याश्यांनी ‘विभूदये’ अगा पाठ आहे. ‘दिनोदये’ अशा पाठावरून सूर्योदयानंतर तीन मुहूर्तांत स्नान करावें, असें
गांगणारे गौड व त्यांचे अनुयायी अज्ञाननेत्र म्हटले पाहिजेत. “कार्तिकमाच्या कृष्णपक्षांत त्रयोदशीयुक्त चतुर्दशीचे ठायीं
उपःकाळीं प्रयत्नानें स्नान करावें” असें वचन आहे. स्मृतिदर्पणांतही “आश्विनकृष्णचतुर्दशी स्वातीनक्षत्रानें युक्त असतां
ऐश्वर्येच्छा नरांनीं प्रातःकाळी सुगंधितैलानें अभ्यंग करून स्नान करावें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत पाक्षान् — “आश्विनकृष्णप-
क्षाच्या चतुर्दशीस चंद्रोदयी नरकाय भिणारांनीं तिळांचें तेल लावून स्नान करावें.” वरील वचनांत ‘कर्तव्यं मंगलस्नानं नैर्निर-
यभीरुभिः’ अगा कालादर्शान् पाठ आहे. मंगलस्नान करावें, अगा अर्थ. त्यावरील दोन्ही वचनांमध्ये आश्विन असें पद
आहे तें अमावास्यानंतर सांग घेऊन गांगिनले आहे. तसेच ‘दीपावलीची चतुर्दशी प्रातःकाळी म्हणजे तैलांत लक्ष्मी व उद-
कांत गंगा अगते, स्नान नैलाभ्यंग करून प्रातः स्नान जो करील त्याच्या दृष्टीस यमलो पडत नाहीं.”

दिनद्वयेऽपि चंद्रोदये चतुर्दशीसमवेत न भवेत्परुणोदयसंपूर्णं खंडे वा दिनद्वये चतुर्दशीसमवेच पूर्वदिनेभ्यंगं कु-
र्यान् पूर्वविद्धचतुर्दश्यामिति वचनात् पूर्वदिनेपरदिन एव वासत्त्वे सैव प्राह्या दिनद्वयेऽप्यसत्त्वे अरुणोदयव्यापि-
नीप्राह्या पक्षे प्रत्यूपसमयं न्युक्तः वक्ष्यमाणवचनाच्च तदभावे तु चतुर्दशीहासं पूर्वेणुः प्रवेश्य पूर्वेऽह्नि त्रयोदशी-
मध्यपराभ्यंगं कुर्यादिति दिवोदासः केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति तिथ्यादौ तु भवेद्यावा न्हासोष्ट-
द्विः परेऽह्नि तावानप्राह्यः स पूर्वद्वयद्वयोऽपि स्वकर्मणीति तन्मदम् नहीदं वचनं पूर्वदिनस्याऽपूर्वप्राह्यत्वं विधत्ते
न तैकभक्तजन्माष्टम्यादां दिनद्वये कर्मकालव्याप्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य प्राह्यत्वप्रसंगान् किंतु यत्रैकभक्तादौ वि-
नद्वये कर्मकालव्याप्यभावे वाक्यान्तरेण न्यायं न वा पूर्वदिनस्य प्राह्यत्वमुक्तम् तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि तत्रैवा-
नुष्ठानबोधकमिदम् नचात्र तदस्मान्तिथिः क्विदंत तं तेन चतुर्थयामगामिनीप्राह्या अतएव सर्वज्ञानारायणः
तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनोऽर्कोदयात्पुरा यामिन्याः पश्चिमयामेतैलाभ्यंगो विशिष्यत इति मृगांकोदयवेलायां-
त्रयोदश्यां यदा भवेत् दर्शे वा मंगलस्नानंदुःखशोकभयप्रदमिति कालादर्शत्रयोदशीनिषेधाच्च तेनायमर्थः
यथाग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालं पुण्याप्यकालस्य गुरुत्वम् तथात्र चतुर्दशीचतुर्थयामारुणोदयचंद्रोदयाना-
मुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद्गुरुत्वमिति यदपि दिवोदासीये त्रयोदशीयदाप्रातःश्रयं याति चतुर्दशी रात्रिशेषे-
त्वमावास्यातदाभ्यंगे त्रयोदशीति वचनं तद्वद्मात्रिनिर्णयामृताद्यलिखितत्वेन निर्मूलम् समूलवेपिनच-
तुर्दश्याः सूर्योदयद्वयासंबंधित्वरूपः श्रयोत्रविश्रुतः सूर्योदयात्प्राक् समामौ चंद्रोदयकालसत्त्वे च त्वयैवांगी-
कारान् किंतु अभ्यंगकालात्प्राक् समामिप्सोऽत्रहामः श्रयत्राज्ज्वलविवश्रुतः सचारुणोदयाच्चतुर्थयामाहाप्राक्-
यदाहामस्तत्परमिदम् अतएव सर्वज्ञानारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तम् तथाचोदाहृतम् तथा कृष्णच-
तुर्दश्यामिति ज्योतिर्निबंधेनारदोऽपि उपासितचतुर्दश्यामिदुःश्रयतिथावपि ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्तेतदा-
दीपावलीभवेत् कुर्यात्संलघ्नेन बर्दीपोत्सवदिनत्रयम् येन त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहृतेऽपामाश्रयं न विषादयत्यंभू-
यसा यदपि अरुणोदयनोऽन्यत्र रिक्तायां स्नातियो नरः तस्यादिक भवो धर्मो नश्यत्येव न संशय इति दिवोदा-
सीये भविष्यवचनं तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेऽपि तत्रैव स्नानव्यमित्येवं परमिति सर्वसिद्धम् चतुर्द-
श्यात्मकोऽरुणोदय इति तत्रैवोक्तम् ।

दोन्ही दिवशी चंद्रोदयी चतुर्दशी अमतां, दोन्ही दिवशी चंद्रोदयी नमेल तर अरुणोदयी संपूर्ण अथवा खंड व्याप्ति
अमतां आणि दोन्ही दिवशी चतुर्दशीची सम व्याप्ति अमतां पूर्वदिवशी अभ्यंग करावा. कारण, “त्रयोदशीयुक्त चतुर्दशीचे

ठायीं ज्ञान करावें.” असें वचन येथेंच वर सांगितलें आहे. पूर्वदिवशींच चंद्रोदयव्यापिनी असतां पूर्वांच ध्यावी. परदिवशींच चंद्रोदयव्यापिनी असतां पराच ध्यावी. दोन्हीं दिवशीं चंद्रोदयीं नसेल तर अरुणोदयव्यापिनी ध्यावी. कारण, “**पश्चे प्रत्युषसमये.**” म्हणजे वरील वचनांत उषःकालीं (अरुणोदयीं) ज्ञान करावें, असें सांगितलें आहे. आणि “आश्विन-मासीं कृष्णचतुर्दशीस रात्रीच्या चतुर्थप्रहरां तैलाभ्यंग विशेष फलदायक आहे.” असें **सर्वज्ञनारायण** वचन पुढें सांगावयाचेंही आहे. दोन्हीं दिवशीं अरुणोदयव्यापिनी नसेल तर चतुर्दशीचा जितका क्षय असेल तितका पूर्वदिवसांत मिळवून तितकी चतुर्दशी पूर्वदिवशीं आहे असें समजून त्या कालीं वस्तुतः त्रयोदशीमध्येच अभ्यंग करावा, असें **दिवोदास** सांगतो. **केचित्** ग्रंथकार असें करण्याविषयीं साधकवचन देखील सांगतात—“जितक्या घटी तिथिक्षय झालेला असेल तितकी तिथि त्या तिथीच्या आदीं नसली तरी कर्माविषयीं ध्यावी. आणि जितकी वृद्धि असेल तितकी परदिवशीं ध्यावी.” तें सांगणें मंद आहे. कारण, इतर वचनांनं पूर्वीं ग्रहण अप्राप्त असतां हें वचन पूर्वदिवस ग्रहण करण्याविषयीं सांगत नाही. जर हें वचन पूर्वदिवस ग्रहण करण्याविषयीं सांगल तर नक्त, एकभक्त, जन्माष्टमी इत्यादिकांविषयीं दोन दिवस कर्मकालव्याप्ति नसतां सर्वत्र ठिकाणीं पूर्वदिवसाला ग्रहण करण्याचा प्रसंग येईल ! तर ज्या एकभक्तादि व्रताचे ठायीं दोन दिवस कर्मकालव्याप्ति नसतां इतर वाक्यांनं किंवा न्यायांनं पूर्वदिवस ध्यावा म्हणून सांगितलें आहे, त्या ठिकाणीं मुख्यकालीं त्या तिथीचा अभाव असला तरी त्याच कालीं त्या कर्माचें अनुष्ठान बोध करणारें हें वचन आहे. ह्या प्रकृतस्थलीं त्रयोदशी ग्रहण करण्याविषयीं वचन नसल्यामुळें हें वचन एथें लागू होत नाही, म्हणून हें काहींतरी सांगणें आहे. तेणेंकरून अरुणोदयीं नसेल तर रात्रीच्या चतुर्थप्रहरांत असणारी चतुर्दशी ध्यावी. म्हणूनच **सर्वज्ञनारायण** सांगतो—“आश्विनमासीं कृष्णचतुर्दशींत सूर्योदयाच्या पूर्वीं रात्रीच्या शेवटच्या प्रहरां तैलाभ्यंग विशेष फलदायक आहे.” आणि “ज्या वेळीं चंद्रोदयकालीं त्रयोदशींत अथवा दशांत मंगलज्ञान होईल त्या वेळीं तें दुःख, शोक, भय यांत देणारें आहे.” असा **काला-दशात** त्रयोदशीचा निषेधही आहे. ह्या वरील वचनावरून असा अर्थ झाला की, जमा—अग्निहोत्रहोमाविषयीं यावजीव-पर्यंत असलेल्या सायंप्रातःकालामध्ये सायंप्रातःकालांनीं व्यापलेल्या अशा उदितादि कालाला गुरुल (श्रेष्ठल) आहे. तसें-येथें चतुर्दशी, चतुर्थप्रहर, अरुणोदय, चंद्रोदय हे पूर्वपूर्वांनीं उत्तरोत्तर व्यापलेले असल्यामुळें उत्तरोत्तराला गुरुल (श्रेष्ठल) आहे. आतां जें **दिवोदासीयांत**—“ज्या वेळीं त्रयोदशी प्रातःकालीं असून चतुर्दशीचा क्षय होतो आणि त्या दिवशीं पहाटेस अमावास्या असते त्या वेळीं अभ्यंगाविषयीं त्रयोदशी होते.” असें वचन तें **हेमाद्रि-निर्णयामुन** इत्यादिकांनीं लिहिलेलें नसल्यामुळें निर्मूल आहे. समूल मानिलें तरी पूर्वदिवशींचा सूर्योदय व परदिवशींचा सूर्योदय या दोघांलाही चतुर्दशीचा संबंध नसणें अशा प्रकारचा तिथिक्षय एथें क्षयशब्दानें ध्यावयाचा नाही. कारण, तसा तिथिक्षय घेतला तर परदिवशीं सूर्योदयाच्या पूर्वीं चतुर्दशी समाप्त असतां व चंद्रोदयीं असतां त्याच चतुर्दशीचा तृंच (दिवोदासानेंच) स्वीकार केलेला आहे. तर अभ्यंगकालाच्या पूर्वीं समाप्ति होणें हा क्षय एथें क्षयशब्दानें ध्यावयाचा आहे. तो हास (क्षय) अरुणोदयाच्या किंवा चतुर्थप्रहराच्या पूर्वीं जेव्हां असेल तद्विषयक हें वचन आहे. म्हणजे जेव्हां परदिवशीं अरुणोदयाच्या किंवा चतुर्थप्रहराच्या पूर्वीं चतुर्दशी समाप्त होईल तेव्हां त्रयोदशीचे दिवशीं पहाटेस चतुर्दशीमध्येच अभ्यंग करावा. पहाटेस सूर्योदयाच्या आंत चतुर्दशी नसेल तर परदिवशीं रात्रीचे चतुर्थप्रहरां असलीच पाहिजे, त्या वेळीं अभ्यंग करावा. असें आहे म्हणूनच **सर्वज्ञनारायणानें** चवथ्या प्रहरां अभ्यंगज्ञान सांगितलें आहे. तेंच सांगतो.—“आश्विनकृष्ण-चतुर्दशीचे ठायीं सूर्योदयाचे पूर्वीं रात्रीच्या चतुर्थप्रहरां तैलाभ्यंग करावा.” हें वचन वर लिहिलें आहे. **ज्योतिर्निबंधांत नारदही**—“आश्विनकृष्ण चतुर्दशी, अमावास्या व स्वातियुक्त कार्तिकशुक्ल प्रतिपदा हे तीन दिवस वीपावलि होते. ह्या तीन दिवशीं वीपोत्सव करावा.” जे ग्रंथकार त्रयोदशीमध्ये ज्ञान करावें असें सांगतात त्यांचा आशय आम्हांला कळत नाही, असेंच म्हणतो. याहून ज्यास्त सांगत नाही. आतां जें “जो मनुष्य चतुर्दशीचे दिवशीं अरुणोदयाचाचून इतरकालीं ज्ञान करितो, त्याचा एक वर्षात उत्पन्न झालेला धर्म नष्ट होतो, यांत संशय नाही.” असें **दिवोदासीयांत भविष्यवचन** तें ज्ञानाचा मुख्य काल जो अरुणोदय त्यावेळीं चतुर्दशी नसली तरी त्याचवेळीं ज्ञान करावें, अशा अर्थाचें बोधक आहे. तात्पर्य—वरील सर्व वचनांवरून सूर्योदयाच्या पूर्वीं पहाटेस चतुर्दशी नसतां त्रयोदशींत ज्ञान करावें, असा अर्थ होत नाही. याप्रमाणें सर्व अनीष्ट सिद्ध झालें आहे. अरुणोदय कोणता म्हणाल तर सूर्योदयाच्या पूर्वीं चार घटिका जो काल तो अरुणोदय, असें तेथेंच सांगितलें आहे.

मदनरत्नेपादो अपामार्गमधोर्तुर्वीप्रपुत्राटमथापरम् भ्रामयेत्ज्ञानमध्येपुनरकस्यक्षयायवै प्रपुत्राटश्च-
क्रमदः मंत्रस्तु सीतालोष्ठसमायुक्तसंकटकदलान्वित हरपापमपामार्गभ्राम्यमाणःपुनःपुनरिति अस्यामे-
वप्रदोषेदीपान्दद्यादित्युक्तेहेमाद्रौस्कांदे ततःप्रदोषसमयेदीपान्दद्यान्मनोरमान् ब्रह्मविष्णुशिवादीनांभव-
नेषुमठेषुचेति **दिवोदासीये**ब्राह्मे अमावास्याचतुर्दश्योःप्रदोषेदीपदानतः यममार्गाधिकारेभ्योमुच्यते

कार्तिकेनरः खंडतिथौतुपूर्वेह्निप्रदोषेदीपानदस्वापरेणुःस्नायादितिदिवोदासीयेउत्तम् अत्रनरकोद्देशेनच-
तुर्वर्तियुक्तेदीपदानंकार्यम् तत्रमंत्रः दत्तोदीपश्चतुर्दश्यांनरकप्रीतयेमया चतुर्वर्तिसमायुक्तःसर्वपापापनुत्तये
तत्रैवल्लंगो मापपत्रस्याकेनभुक्त्वातत्रदिनेनरः प्रेताख्यायांचतुर्दश्यांसर्वपापैःप्रमुच्यते ।

मदनरज्ञांत पाश्चांत—“आघाडा किंवा भोषण्याचें पान अथवा टाकळा हा ज्ञानकारी नरकनाशार्थ अंगावरून
फिरवावा.” फिरविण्याचा मंत्रः—“सीतालोट्टसमायुक्त सकंटक द्वाण्वित ॥ इर पापमपामार्ग आभ्यमाणः
पुनः पुनः” या चतुर्दशीचे दिवशीच प्रदोषकारी दीप लावावे असे गांगतो—हेमार्द्रांत स्कांदांत “नंतर प्रदोषसमयी
ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इत्यादिकांच्या मंदिरांत व मठांत दीप लावावे.” दिवोदासीयांत ब्राह्मांत “कार्तिकमासामध्ये
अमावास्या व चतुर्दशी ह्या दिवशी प्रदोषकारी दिवे लावल्यानें मनुष्य यममार्गाच्या अधिकारांपासून मोकळा होतो.” खंड-
तिथि चतुर्दशी असेल तर पूर्वदिवशी प्रदोषकारी दिवे लावून परदिवशी ज्ञान करावें, असें दिवोदासीयांत सांगितलें
आहे. या चतुर्दशीचे ठायीं नरकामुगचे उद्देशाने चार वार्षींनी युक्त दीप लावावा. त्याविषयी मंत्रः—“दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां
नरकप्रीतये मया ॥ चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये.” दिवोदासीयांत लिंगांत “नरकचतुर्दशीचे
दिवशी उडडांच्या पानांच्या भाजीनें भोजन केलें अगतां मनुष्य सर्व पापांपासून मुक्त होतो.”

अत्रयमतर्पणमुक्तंमदनपारिजानेवृद्धमनुना दीपोत्ववचतुर्दश्यांकार्यतुयमतर्पणम् मदनरज्ञे-
ब्राह्मे अपामार्गस्यपत्राणिधामयेच्छिरसोपरि तंतश्चनर्पणंकार्यधर्मराजस्यनामभिः यमायधर्मराजायमृत्य-
वेयांतकायच वैवस्वतायकालायसर्वभूतक्षयायच औदुंबरायदध्रायनीलायपरमेष्ठिने वृकोदरायचित्रायचि-
त्रगुप्ताययैनमइति तर्पणप्रकारस्तुहेमार्द्रौ एकैकेनतिलमिश्रानदद्यात्त्रींस्त्रीनजलांजलीन संवत्सरकृतंपापंत-
क्षणादेवनश्यति तथामदनरत्वेस्कांदे दक्षिणाभिमुखोभूत्वातिलैःसव्यंसमाहितः देवतीर्थेनदेवत्वासि-
लैःप्रेताधिपेयतः तथा यज्ञोपवीतिनाकार्यप्राचीनावीतिनाथयेति इदंजीवत्पितृकेणापिकार्यम् जीवत्पितापि-
कुर्वीततर्पणंयमभीष्मयोरितिपाश्चात्तेः अत्रभीष्मतर्पणमप्युक्तंदिवोदासीये तत्प्रकारस्तुमाधेवक्ष्यते
इतिनरकचतुर्दशी ।

या चतुर्दशीचे ठायीं यमतर्पण गांगतो मदनपारिजातांत वृद्धमनु—“दीपोत्ववचतुर्दशीचे ठायीं यमतर्पण करावें.”
मदनरज्ञांत ब्राह्मांत—“आघाड्याची पानें मस्तकावर फिरवावी. नंतर (ज्ञानानंतर) यमाच्या नांवांनीं तर्पण
करावें” तें असे—“यमाय नमः यमतर्पयामि, धर्मराजाय नमः धर्मराजंत०, मृत्युवेनमः मृत्युंत०,
अंतकाय नमः अंतकंत०, वैवस्वताय नमः वैवस्वतंत०, कालाय नमः कालंत०, सर्वभूतक्षयाय नमः
सर्वभूतक्षयंत०, औदुंबराय नमः औदुंबरंत०, दध्राय नमः दध्नंत०, नीलाय नमः नीलंत०, परमेष्ठिने
नमः परमेष्ठिंत०, वृकोदराय नमः वृकोदरंत०, चित्राय नमः चित्रंत०, चित्रगुप्ताय नमः चित्रगु-
प्तंत०, याप्रमाणें तर्पण करावें.” तर्पणाचा प्रकार हेमार्द्रांत गांगतो—“एकेक नाम घेऊन तिलांनीं मिश्र अशा
तीन तीन जलाजरी घाव्या, म्हणजे वर्षेपथेत केल्ले पाप त्याच क्षणीं नाश पावतें.” तसेच मदनरज्ञांत स्कांदांत-
“दक्षिणाभिमुख होऊन सव्य करून तिलमहिततर्पण करावें. यम हा देव अगत्यामुळे देवतीर्थानें करावें. आणि तो प्रेताधिप
अगत्यामुळे तिलमहित करावें.” तमेंच “मव्यानें किंवा अपमव्यानें करावें.” हें यमतर्पण जीवत्पितृकांनहीं करावें. कारण,
“पिता जीवत अगतांही यम व भीष्म यांचे तर्पण करावें” असें पाश्चात्तय आहे. या चतुर्दशीस भीष्मतर्पणही दिवो-
दासीयांत सांगितलें आहे. त्या भीष्मतर्पणाचा प्रकार माघमासप्रकरणी पुढें सांगूं. इति नरकचतुर्दशी.

कार्तिकामावास्यायांप्रातरभ्यंगंकुर्यात् तदुक्तंकाळादर्शे प्रत्यूपआश्वयुग्दशंकृताभ्यंगदिमंगलः भक्त्या-
प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये अस्मद्व्याख्यानेआदिग्रंथान्पंचत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः तदुक्तंपुष्करपु-
राणे स्वार्तस्थितेनर्वाविदुर्यदिस्वार्तगतोभवेत् पंचत्वगुदकस्नानीकृताभ्यंगविधिर्नरः नीराजितोमहालक्ष्मी-
मर्चयन्श्रियमभ्रुते आश्वयुग्दशइतिदर्शज्यःप्रत्यूपेस्वातियुक्ततिथिपरः ‘तदुक्तंब्राह्मे ऊर्जेशुद्धितीयांतसि-
धिपुस्वातिक्रमशो मानवोमंगलस्नानीयलक्ष्म्यावियुज्यते तत्रैव इपेभूतेचदर्शेचकार्तिकप्रथमेदिने यथास्ना-
तीतदाभ्यंगस्नानंकुर्याद्विनोदये कश्यपसंहितायांतुदीपावलिदर्शप्रकम्य इदुभयेपिसंकांतौरबौपातेदिन-

क्षये तत्राभ्यंगोनदोषायप्रातःपापपनुत्तयइतिस्वातियोगविनाप्यभ्यंगउक्तः मात्स्ये दीपैर्नैराजनादत्रसैषा-
दीपावलीस्मृता ।

कार्तिक अमावास्याये प्रातःकाळीं अभ्यंग करावा. तें सांगतो कालादर्शांत “आश्विनमासाचे अमावास्याचे ठायीं प्रातः-
काळीं अभ्यंगदि मंगल करून अलक्ष्मी जाण्याकरतां भक्तीनें लक्ष्मीदेवीचें पूजन करावें.” या वचनाची व्याख्या करतेवेळीं
‘अभ्यंगदि’ यांतील आदिशब्दानें पंचवल्कलसहित उदकस्नानादिकांचा संग्रह करावा. तें पंचवल्कलसहित उदकस्नान
पुष्करपुराणांत सांगतो—“स्वातीनक्षत्रीं सूर्य असतां जेव्हां चंद्र स्वातीनक्षत्राम असेल त्या दिवशीं अभ्यंगविधि करून
पंचलक् (अश्वत्थ, उदुंबर, पृश्न, आम्र, वट यांच्या लवचांनी युक्त) उदकानें स्नान करणारा व स्त्रियांनीं नीराजित होऊन
महालक्ष्मीचें पूजन करणारा मनुष्य लक्ष्मीतें पावतो.” ‘आश्वयुग्दर्शे’ ह्या वचनांत जो दर्शशब्द तो प्रातःकाळीं स्वाती
नक्षत्रानें युक्त तिथीचा बोधक आहे. तेंच सांगतो-ब्राह्मांत “कार्तिकशुक्लद्वितीयापर्यंत तिथींमध्ये ज्या तिथीस स्वातीनक्षत्र
असेल त्या तिथीचे ठायीं स्वातीनक्षत्रावर मंगलस्नान करणारा लक्ष्मीविरहित होतच नाही.” तेंथेंच—“आश्विनमासाची
चतुर्दशी व अमावास्या आणि कार्तिकशुक्लप्रतिपदा यांमध्ये जेव्हां स्वातीनक्षत्र असेल तेव्हां सूर्योदयीं अभ्यंगस्नान करावें.”
कथ्यपसंहितेंत तर दीपावली दर्शाचा उपक्रम करून “अमावास्या, संक्रांति, रविवार, व्यतीपात, दिनभय हे अमले तरी
प्रातःकाळीं अभ्यंग दोषाकारणें न होतां पाप दूर करणारा होतो.” असा स्वातियोगावांचूनही अभ्यंग सांगितला आहे.
मत्स्यपुराणांत-“हे तीन दिवस दीपांनीं आरती करताना म्हणून ही दीपावली म्हटली आहे.”

अत्रविशेषोहेमाद्रौभविष्ये दिवातत्रनभोक्तव्यमृतेवालातुराज्जनान प्रदोपसमयेल्क्ष्मीपूजयित्वाततः
क्रमात् दीपवृक्षाश्चदातव्याःशक्तयादेवशुहेपुच तत्रैवाभ्यंगमभिधाय एवंप्रभातमसयेत्वमावास्यांनराधिप
कृत्वातुपार्वणश्राद्धदधिक्षीरघृतादिभिः दीपान्दत्त्वाप्रदोपेतुलक्ष्मीपूज्ययथाविधि स्वलंकृतेनभोक्तव्यंसितव-
क्षोपशोभिना अयंप्रदोषव्याप्रीग्राह्यः तुलासंस्थेसहस्रांशंप्रदोषेभूतदर्शयोः उल्काहस्तानराःकुर्युःपितृणांमा-
गदर्शनमिति ज्योतिषोक्तेः दिनद्वयेमन्त्रेपरः दंडेकरजनीयोगेदर्शःस्यात्तुपरेहऽग्नि तदाविहायपूर्वेयुःप-
रेऽहिसुखरात्रिकेइतित्थितत्त्वेज्योतिर्वचनान् दिवोदासीयेतुप्रदोषस्यकर्मकालत्वात् अर्धरात्रेभव-
त्वेवलक्ष्मीराश्रयितुंगृहान् अतःस्वलंकृतालिप्रादीपैर्जाग्रजनेत्सवाः सुधाधवलिताःकार्याःपुष्पमालोपशो-
भिता इतिब्राह्मोक्तेश्च प्रदोषार्धरात्रव्यापिनीमुख्या एकैकव्याप्तांपरैव प्रदोषस्यमुख्यत्वादधर्गत्रेऽनुष्ठेया-
भावाच्च यत्तु अपराह्नेप्रकर्तव्यश्राद्धपितृपगयणैः प्रदोषसमयेराजनकर्तव्यादीपमालिकेतिक्रमः स संपूर्ण-
तिथावेवप्राप्तेरनुवादोतविधिः तत्तत्कर्मकालव्याप्तेर्बलवत्त्वात्संपूर्णतिथौप्राप्त्याखंडतिथावप्राप्त्याविध्यनुवाद-
विरोधाच्चेत्युक्तं अत्रैवदर्शेऽपररात्रेऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्तंमदनरत्नेभविष्ये एवंगतेनिशीथ्रेतुजनेनिद्वार्ध-
लोचने तावन्नगरनारीभिःशूर्पडिंडिमवादनैः निष्काश्यतेप्रहृष्टाभिर्गलक्ष्मीःस्वगृहांगणान् ।

या अमावास्याचे ठायीं विशेष सांगतो हेमाद्रौत—भविष्यांत—“त्या आश्विन अमावास्याचे दिवशीं बाल व रोगी
यांवांचून इतरांनीं दिवसा भोजन करूं नये. प्रदोषकाळीं लक्ष्मीचें पूजन करून नंतर क्रमानें देवालयामध्ये यथाशक्ति
दीपवृक्ष लावावे.” त्याच ग्रंथांत अभ्यंग सांगून “याप्रमाणें अमावास्याचे ठायीं प्रातःकाळीं दधि, दुग्ध, घृत, इत्यादिकेंकरून
पार्वण श्राद्ध करून प्रदोषकाळीं दीप लावून यथाविधि लक्ष्मीपूजन करून श्वेतवस्त्रांनं शोभित व उत्तम अलंकारयुक्त होऊन
भोजन करावें.” ही अमावास्या प्रदोषव्यापिनी ध्यावी. कारण, “तुलारात्रीस सूर्य असतां चतुर्दशी व अमावास्या ह्या दोन
दिवशीं प्रदोषकाळीं मनुष्यांनीं चूड हातांत घेऊन पितरांस मार्ग दाखवावा.” असें ज्योतिषग्रंथांत वचन आहे. दोन दिवशीं
प्रदोषकाळीं असेल तर परा करावी. कारण, “जर दुसऱ्या दिवशीं रात्रीं अमावास्या एक घटिका असेल तर पूर्वे दिवस
सोडून परदिवशीं सुखरात्रि (लक्ष्मीपूजनादि) करावी” असें तिथितत्त्वांत ज्योतिर्वचन आहे. दिवोदासीयांत
तर-प्रदोषकाल हा कर्मकाल असल्यामुळे; आणि “लक्ष्मी ही मध्यरात्रीं घरांत येऊन राहते म्हणून घरें स्वच्छ सारवून
चुना लावून शुभ्र करावी; व त्यांस रंग देऊन पुष्पें, माला यांनीं सुशोभित करावी; दिवे लावावे. आणि मनुष्यांनीं जाग्रत
राहून उत्सव करावा”, ह्या ब्राह्मवचनावरून अर्धरात्रीं लक्ष्मी येत असल्यामुळे प्रदोष व अर्धरात्रव्यापिनी अमावास्या
मुख्य आहे. म्हणजे वरील ज्योतिषवचनांनीं प्रदोष कर्मकाल सांगितल्यामुळे प्रदोषव्यापिनी असावी, आणि ब्राह्मवचनानें
मध्यरात्रव्यापिनी असावी, असें आहे म्हणून दोन्ही कालव्यापिनी मुख्य होय. एक एक काळीं व्याप्ति असतां पराच
करावी. कारण, प्रदोषकाल मुख्य आहे. आणि मध्यरात्रीं कांहीं कर्तव्यही नाही. आतां जें “पितृभक्तांनीं अपराधीं श्राद्ध
करावें. प्रदोषकाळीं दीपांची माला करावी” असा क्रम सांगितला आहे. वर सांगितल्याप्रमाणें प्रदोष व अर्धरात्रव्यापिनी

पूर्व दिवशीची घेतली असतां पर दिवशीं अपराह्नव्यापिनीत श्राद्ध असल्यामुळे या क्रमाचा बाध आला, असे म्हणूं नये. कारण, संपूर्ण तिथीचे ठायींच त्या क्रमाची प्राप्ति असल्यामुळे त्याचा अनुवाद केला आहे. त्या क्रमाचा अपूर्वविधि नाही. कारण, ह्या क्रमविधायक वाक्यापेक्षां त्या त्या कर्मकालव्याप्तिशास्त्राला बलिष्ठत्व आहे. आणि जर हें वाक्य क्रमाचे विधायक म्हटलें तर संपूर्ण तिथि असतां कमप्राप्त असल्यामुळे त्याविषयी अनुवादक म्हटलें पाहिजे, व शंड तिथीचे ठायीं अप्राप्त असल्यामुळे त्याविषयी विधायक म्हटलें असतां जें विधिवाक्य तेंच अनुवादक शास्त्र्यानें विधीचा व अनुवादाचा एकत्र विरोधही येतो, असें मांगितलें आहे. ह्याच अमावास्येस अपररात्री अलक्ष्मीचें निःसारण सांगतो मदनरक्षांत भविष्यांत—“याप्रमाणें मध्यरात्र गेली असतां निद्रेनें लोकांचे अर्धे डोळे मिटले असतां त्या वेळीं नगरांतील स्त्रियांनीं सूप व डिडिम (दंतडी) वाजवून मोठ्या आनंदांनें आपआपल्या गृहांगणांतून अलक्ष्मी बाहेर घालवावी.

कार्तिकशुक्लप्रतिपदिगोकीडनमुक्तनिर्णयामृतने अस्यामेवरात्रौबलेःपूजाकाहेमाद्रौभविष्ये कृतै-
तत्त्वमेवेहरात्रौदैत्यपतेर्वलेः पूजांकुर्यान्नृपःसाक्षाद्भूमौमंडलकेशुभे बलिमालिख्यदैत्यैर्द्रवर्णकैःपंचरंगकैः
गृहस्थमध्येशालायांविशालायांततोऽर्चयेत् लोकैश्चापिगृहस्थांतःशय्यायांशुक्रतंदुलैः संस्थाप्यबलिराजानंफलेः-
पुष्पैश्चपूजयेत् मंत्रस्तुपाद्मे बलिराजनमस्तुभ्यदैत्यदानववंदित इंद्रशत्रोऽमरारातेविष्णुसाम्निध्यदोभवेति
तथा बलिमुद्दिश्यदीयंतेदानानिकुरुनंदन यानितान्यक्षयाण्यादुर्मयैवंसंप्रदर्शितमिति तदेतत्पूर्वविद्धमतिपदि-
कर्तव्यम् पूर्वविद्धाप्रकर्तव्याशिवरात्रिर्वलेर्दिनमितिहेमाद्रौपाद्मेः माधवोपि बल्युत्सवंचपूर्वेषुगुरु-
पवासवदाचरेदिति निर्णयामृतनेपि याकृद्ःप्रतिपन्मिश्रातत्रगाःपूजयेन्नृप पूजनाग्नीषिर्वधतेप्रजागाबोम-
हीपतिरिति तथा भद्रायांगोकुलक्रीडासदेशोर्वविनश्यति भद्रायांद्वितीयायाम तथा प्रतिपद्यक्रिणरणंद्वितीया-
यांतुगोर्चनम् छत्रच्छेदंकरिष्यतेवित्तनाशंकुलक्षयमिति तथा प्रतिपद्दर्शसंयोगेकीडनंतुगवांमतम् परविद्येषु-
यःकुर्यात्पुत्रदायधनक्षयइतिदेवलवचनाच्च एतेचविधिप्रतिपद्याःपूर्वदिनेप्रतिपदःसायाह्नव्यापित्वेद्वितीय-
दिनेचंद्रदर्शनसंभवेचजेयाः गवांकीडादिनेयत्ररात्रौदृश्येतचंद्रमाः सोमोगजापशूनहंतिसुरभेःपूजकांस्तयेति
पुराणसमुच्चयात् दिनद्वयेमायाह्नव्यापित्वेतुपरैवप्राह्या वर्धमानतिथौनंदायदासाधंत्रियामिका द्वितीया-
वृद्धिगामित्वादुत्तगतत्रचोच्यतइति तथा त्रियामगादर्शतिथिर्भेष्वेत्स्माधंत्रियामाप्रतिपद्विष्ट्वौ दीपोत्सवेते-
मुनिभिःप्रदिष्टअनोन्यथापूर्वयुतेविधेयइतिपुराणसमुच्चयादितिनिर्णयामृतकारः सार्धंत्रियामिकेत्य-
नेनचंद्रदर्शनाभावउक्तः द्वितीयायाःपंचधाविभक्तदिनचतुर्थांशरूपापराह्नव्याप्तावेवचंद्रदर्शनसंभवात् बयं-
त्वेतद्वचनद्वयपूर्वविद्धासंभवेवदितव्यमितिब्रूमः दिनद्वयेप्रतिपदःसायाह्नव्याप्त्यभावेतुपूर्वैव रात्रौबलिपूजा-
विधानेनकर्मकालव्यापित्वान् परदिनेचंद्रोदयतन्निषेधादितिदिक् ।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदेस गोकीडन निर्णयामृतांत मांगितलें आहे. ह्याच प्रतिपदेस रात्रौ बलिपूजा सांगतो हेमाद्रीत भविष्यांत—“ह्या प्रतिपदेस हें पुर्वीक मारें कृत्य करून रात्रांचे ठायीं दैत्यांचा पति जो बलिराजा त्याची पूजा, भूमीचे ठायी मंडलावर स्वनां राजानें करावी. गृहामध्ये मोठ्या विस्तृत घालिचें ठायीं पांच रंगांच्या वर्णांनीं दैत्यांचा राजा बलि काढून पूजा करावी. लोकांनाही गृहामध्ये दाय्येचें ठायीं ध्वनं नंदुलांनीं बलिराजाच्या म्यापून फलपुष्पांनीं पूजन करावें.” पूजेचा मंत्र पद्मपुराणांतः—“बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववंदित ॥ इंद्रशत्रोऽमराराते विष्णुसाम्नि-
ध्यदो भव” तसेंच “बलीच्या उद्देशानें जीं दांनें देनात तीं अक्षय होनात असें मांगनात. कृष्ण म्हणतात धर्मा ! हें मी तुला दाखविलें आहे.” हें कृत्य पूर्वविद्ध (अमावस्याविद्ध) प्रतिपदेचे ठायीं करावें. कारण, “शिवरात्रि व बलिप्रति-
पदा ही पूर्वविद्धा करावी.” असे हेमाद्रीन पादवचन आहे. माधवही “बलीचा उत्सव उपवासामारखा पूर्ण दिवशीं करावा.” निर्णयामृतांतही “अमावस्यायुक्त प्रतिपदेचे ठायीं गाईचें पूजन करावें. त्या पूजनानें प्रजा, गाई, राजा हीं तीन वृद्धित होतात.” तसेंच—“ज्या देशांत द्वितीयेचें ठायीं गोकुलक्रीडा होते, तो देश नष्ट होतो.” तसेंच—“प्रतिपदेचे ठायीं होलिका पेटविणें व द्वितीयेचें ठायीं गोपूजन, हीं झालीं असतां छत्रच्छेद, वित्तनाश व कुलक्षय करतात.” तसेंच—
“प्रतिपदा व अमावस्या यांच्या योगाचे ठायीं गोकीडन मान्य आहे. तें द्वितीयाविद्ध प्रतिपदेचे ठायीं जो करीक झाल्या पुत्र, स्त्री, धन यांचा नाश होईल.” असें देवलवचनही आहे. ह्या बरील वचनांनीं अमावस्यायुक्त प्रतिपदेस गोक्षीडनाच विधि व द्वितीयायुक्त प्रतिपदेस निषेध केल्या तो पूर्व दिवशीं प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी असून इसच्या दिवशीं चंद्रपूर्ववाच्या संभव असतां जाणावा. कारण, “ज्या दिवशीं गोकीडा ह्या दिवशीं रात्रौ चंद्रदर्शन होईल तर सोमराज पर्वचा व गोकुलव-

कर्त्या नाश करितो” असें **पुराणसमुच्चय**वचन आहे. दोन दिवशीं प्रतिपदेची सायाहकालव्याप्ति असेल तर पराच ध्यावी. कारण, “वाढणारी तिथि असतां जेव्हां प्रतिपदा साडेतीन प्रहर असेल तेव्हां द्वितीया वृद्धिगमिनी असल्यामुळे परा सांगितली आहे.” तसेंच—“तिथि वाढल्या असतां तीन प्रहरपर्यंत जर अमावास्या असेल व दुसऱ्या दिवशीं प्रतिपदा साडेतीन प्रहर असेल तर त्या तिथि वीपोत्सवाविषयीं मुनींनीं सांगितल्या आहेत. अशा नसतील तर पूर्वयुक्त ध्याव्या” असें **पुराणसमुच्चय**वचन आहे, असें **निर्णयामृतकार** सांगतो. ‘प्रतिपदा साडेतीन प्रहर’ असें सांगितल्यावरून चंद्रदर्शनाचा अभाव सांगितला आहे. कारण, दिनमानाचे पांच भाग करून त्याच्या चवथ्या भागीं अपराह्नी द्वितीयेची व्याप्ति असतांच चंद्रदर्शनाचा संभव असतो. आम्हीं (कमलाकरभट्ट) तर हीं दोन वचनें पूर्वविद्धेचा असेंभव असतां जाणावीं असें सांगतो. दोन दिवशीं प्रतिपदेची सायाहकालव्याप्ति नसेल तर पूर्वाच करावी. कारण, रात्रीं बलिपूजा सांगितल्यामुळे पूर्वदिवशीं कर्मकालव्यापिनी आहे. आणि परदिवशीं चंद्रोदय असल्यामुळे गोपूजनाचा वगैरे निषेध आहे. ही दिसा दाखविली आहे.

मदनरत्नेतुपूर्वविद्धायांगोकीडा नीराजनमंगलमालिकेतूत्तरत्रकार्ये कार्तिकेशुक्लपक्षेतुविधानद्वितयंभवेत् नारीनीराजनप्रातःसायंमंगलमालिका यदाचप्रतिपत्स्वल्पानारीनीराजनंभवेत् द्वितीयायांतदाकुर्यात्सायंमंगलमालिकामितिब्राह्मोक्तेः लभ्यतेयदिवाप्रातःप्रतिपद्वटिकाद्वयम् तस्यांनीराजनंकार्यसायंमंगलमालिकेतिभविष्योक्तेः प्रातर्वायदिलभ्येतप्रतिपद्वटिकाशुभा द्वितीयायांतदाकुर्यात्सायंमंगलमालिकाम् कार्तिकेशुक्लपक्षादौत्वमावास्याघटीद्वयम् देशभंगभयान्नैवकुर्यान्मंगलमालिकामितिदेवीपुराणाचेत्युक्तम् ।

मदनरत्नांत तर—पूर्वविद्ध प्रतिपदेचे ठायीं गोकीडा आणि नीराजन (दिवे ओवाळणें) व मंगलमालिका हीं कृत्यें तर परदिवशीं करावीं. कारण, “कार्तिकशुक्लपक्षांत दोन कृत्यें आहेत तीं अशींः—प्रातःकालीं स्त्रियांनीं करावयाचा नीराजनविधि व सायंकालीं मंगलमालिका हीं होत. जेव्हां प्रतिपदा स्वल्प असून स्त्रियांचा नीराजनविधि प्रातःकालीं होईल तेव्हां द्वितीयेत सायंकालीं मंगलमालिका करावी.” असें **ब्राह्मवचन** आहे. आणि “प्रातःकालीं जर दोन घटिका प्रतिपदा मिळेल तर तिचे ठायीं नीराजनविधि करून सायंकालीं मंगलमालिका करावी.” असें **भविष्यवचन** आहे. व “अथवा प्रातःकालीं जर प्रतिपदा एक घटिका चांगली असेल, तर द्वितीयेमध्ये सायंकालीं मंगलमालिका करावी. कार्तिकशुक्लपक्षाच्या प्रतिपदेचे दिवशीं दोन घटिका जर अमावास्या असेल तर देशभंगाच्या भीतीनें त्यादिवशीं मंगलमालिका करूंच नये.” असें **देवीपुराणवचन**ही आहे, असें सांगितलें आहे.

अत्रविशेषोहेमाद्रौब्राह्मे बलिप्रतिपदंप्रक्रम्य तस्माद्भूतंप्रकर्तव्यंप्रभातेतत्रमानवैः तस्मिन्भूतेजयो-यस्यतत्संयसंवत्सरंजयः पराजयविरुद्धश्चलाभनाशकरोभवेत् दयिताभिश्चसहितैर्नैयासाचभवेन्निशेति अत्र गोवर्धनपूजादिमार्गपालीबंधनादिचोक्तहेमाद्रौनिर्णयामृतेचस्कांदे प्रातर्गोवर्धनंपूज्यभूतंचापिसमाचरेत् भूषणीयास्तथानावःपूज्याश्चावाहदोहनाः गोवर्धनश्चगोमयेनकार्यश्चित्रेणवा मंत्रस्तु गोवर्धनधराधारगोकुलत्राणकारण विष्णुबाहुकृतच्छाद्यगवांकोटिप्रदोभव गोमंत्रस्तु लक्ष्मीर्यालोकपालानांघेनुरूपेणसंस्थिता घृतंवहतियज्ञार्थेममपापंघ्न्यपोहतु तत्रैवस्कांदे ततोऽपराहसमयेपूर्वस्यांदिशिभारत मार्गपालींप्रब-ध्रीयातुंगेस्तंभेयपादपे कुशकाशमयींदिव्यालंबकैर्बहुभिर्मुने दर्शयित्वागजानश्वान्सायमस्यास्तलेनयेत् कृते-होमेद्विजैर्द्रैस्तुवध्रीयान्मार्गपालिकाम् नमस्कारंततःकुर्यान्मंत्रेणानेनसुव्रत मार्गपालिनमस्तेस्तुसर्वलोकमुख-प्रदे विधेयैःपुत्रदारायैःपुनरेहिब्रतस्यमे नीराजनंचतत्रैवकार्यराष्ट्रजयप्रदं राजानोराजपुत्राश्चब्राह्मणाःशूद्र-जातयः मार्गपालींसमुल्लंघनीरुजःस्युःसुखान्विताः तत्रैवादित्यपुराणे कुशकाशमयींकुर्याद्वष्टिकासुदृढां-नवाम् तामेकतोराजपुत्राहीनवर्णास्तथान्यतः गृहीत्वाकर्षयेयुस्तांयथासारंसुहृदुः जयेऽत्रहीनजातीनांज-योराहस्तुवत्सरमिति ।

या प्रतिपदेचे ठायीं विशेष **हेमाद्रौत ब्राह्मांत** बलिप्रतिपदेचा उपक्रम करून सांगतो—“तस्मात् प्रतिपदेचे दिवशीं प्रातःकालीं मनुष्यांनीं घृत करावें, त्या घृतामध्ये ज्याचा जय होईल त्याचा वर्षपर्यंत जय होईल. व पराजय झाला असतां तो लाभाना नाश करणारा होईल. ती रात्र स्त्रियांसहित मोठ्या आनंदांत घालवावी.” या प्रतिपदेचे ठायीं गोवर्धनपूजा, घृत इत्यादिक व मार्गपालीबंधन वगैरे कृत्यें सांगतो—**हेमाद्रौत व निर्णयामृतांत स्कांदांत**—“प्रातःकालीं गोवर्धनाची पूजा करून घृतही करावें. तसेंच गाईला व वृषभाला अलंकार घालून त्यांची पूजा करावी. आणि त्या दिवशीं दूध काढणें

व भार वाहविणें वर्ज्य करावें.” गोवर्धन पर्वत गोमयानें करावा किंवा रंगानें लिहावा. **पूजेचा मंत्रः**—“गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारण ॥ विष्णुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव.” **गोपूजनमंत्रः**—“लक्ष्मीर्वा लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ घृतं वहति यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु.” तेथेंच स्कांदांत—“नंतर अपराह्णकालीं कुशांची व काशतृणांची सुंदर मार्गपाली नांवाची रज्जु बहुत लंबकांनीं युक्त करून ती उच्च संभास व वृक्षास बांधावी. सायंकालीं तिच्या खालून हत्ती घोडे न्यावे. ब्राह्मणांनीं होम केल्यावर ती मार्गपालिका (कुशप्रचनव दोरी) पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें बांधावी. नंतर या पुढील मंत्रानें तिला नमस्कार करावा. **मंत्रः**—मार्गपालि नमस्तोस्तु सर्वलोकसुखप्रदे ॥ विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥ राज्यास जय देणारा असा नीराजनविधिही तेथेंच करावा. राजे, राजपुत्र, ब्राह्मण व शूद्रजाति हे सारे मार्गपालीचें उल्लंघन करून गेले असतां निरोगी व सुखी होतात.” तेथेंच **आदित्यपुराणांत**—“कुश व काशतृण यांची नवी घट अशी वष्टिकानांवाची दोरी करून ती, एकीकडे राजपुत्र व दुसरीकडे हीनजातीचे लोक यांनीं धरून तिचें आपल्या बलाप्रमाणें वारंवार आकर्षण करावें. त्यांत हीनजातीचा जय झाला असतां वर्षभरपर्यंत राजाचा जय होईल, असें समजावें.”

यमद्वितीयातुप्रतिपद्युताप्राद्येत्युक्तं निर्णयामुनादौ यमद्वितीयामध्याह्नव्यापिनीपूर्वविद्धाचेतिहे-
माद्रिः अत्रविशेषोहेमाद्रौस्कांदे ऊजंशुक्रद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् स्नानंकृत्वाभानुजायांयमलोक-
नपश्यतीति ऊजंशुक्रद्वितीयायांपूजितस्तर्पितोयमः वेष्टितःकिन्नरैर्ह्रैस्तस्मैयच्छतिवांछितम् तथाभविष्ये
प्रथमाश्रावणेमासितथाभाद्रपदेपरा कृतीयाश्रयुजेमासिचतुर्थीकार्तिकेभवेत् श्रावणेकलुषानामतथाभाद्रेच-
गीर्मला आश्विनेप्रेतसंचाराकार्तिकेयाम्यकामतेत्युक्त्वा प्रथमायांत्रतद्वितीयायांसरस्वतीपूजाकृतीयायांश्राद्ध-
मुक्त्वा चतुर्थ्यामुक्तम् कार्तिकेशुक्रपश्रम्यद्वितीयायांयुधिष्ठिर यमोयमुनयापूर्वभोजितःस्वग्रहेऽर्चितः अतो-
यमद्वितीयेयंत्रिपुलोकैषुविश्रुता अस्यानिजग्रहेविप्रनभोक्तव्यंतोनरैः स्नेहेनभगिनीहस्ताद्भोक्तव्यंपुष्टिर्बर्धनम्
दानानिचप्रदेयानिभगिनीभ्योविधानतः स्वर्णालंकारवस्त्राभूषणाम्भोजनैः सर्वाभगिन्यःसंपूज्याअ-
भावेप्रतिपन्नकाः प्रतिपन्नाःमताभगिन्यइतिहेमाद्रिः पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायांयुधिष्ठिर मातुलस्य-
सुताहस्ताद्वितीयायांतथानृप पिनुर्मानुःस्वमुःकन्येकृतीयायांतयोःकरान् भोक्तव्यंसहजायाश्रभगिन्याहस्त-
तःपरम सर्वाभुभगिनीहस्ताद्भोक्तव्यंलवर्धनं यस्यांतिथौयमुनयायमराजदेवःसंभोजितःप्रतिजगत्स्वसृसौ-
हृदेन तस्यांस्वमुःकरतलादिहयोभुनक्तिप्राप्नोतिगन्तुमवधान्यमनुत्तमंसः **गौडास्तु** यमंचचित्रगुप्तंचयमदू-
तांश्चपूजयेत् अर्घ्यश्चात्रप्रदानव्योयमायमहजद्वयैः **मंत्रः** पद्मेहिमार्तडजपाशहन्मयमांतकालोकधरामरेश
भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजांगहाणचाऽर्घ्यभगवन्नमस्ते भ्रातस्त्वानुजाताहंसुंक्ष्वभक्तमिदंशुभं प्रीतयेयमराज-
स्ययमुनायांविशेषतः ऽयंप्राप्रजातेतिवदेदिति**स्मार्ताः** इत्यन्नदानमित्यप्याहुः **ब्रह्मांडपुराणेपि** यातु-
भोजयतेनारीभ्रातरंयुगमेकतिथौ अर्चयेच्चापितांवृत्तेनमावैष्यमप्राप्रान् भ्रातुरायुःश्रयोराजन्नभवेत्तत्रकहिं-
चिदिति ।

यमद्वितीया तर प्रतिपदायुक्त ध्यायी, असें निर्णयामुनादिकांत सांगितलें आहे. यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी व पूर्वविद्धा (प्रतिपदाविद्धा) ध्यायी, असें हेमाद्रि सांगतो. या यमद्वितीयेचे ठायी विशेष सांगतो—हेमाद्रिंत स्कांदांत—“कार्तिकशुक्रद्वितीयेचे ठायी अपराह्ण यमुनेनें स्नान करून यमाचें पूजन करणारा यमलोक पहात नाही.” “कार्तिकशुक्रद्वितीयेचे ठायी पूजा करून नृप केलेला असा यम आनंदित किन्नरांनीं वेष्टित होऊन पूजाकर्त्यास इच्छित फल देतो.” तसेंच **भविष्यांत**—“पहिती श्रावणांतील द्वितीयाः दुसरी भाद्रपदांतील द्वितीयाः तिसरी आश्विनांतील द्वितीयाः आणि चवथी कार्तिकांतील द्वितीया आहे. श्रावणांतील द्वितीया कलुषा नांवाची होय. भाद्रपदांतील गीर्मला. आश्विनांतील प्रेतसंचारा. आणि कार्तिकांतील याम्यका होय.” असें सांगून पहिलीम व्रत, दुसरीम सरस्वतीपूजा, तिसरीम श्राद्ध सांगून चवथीस सांगतो—“पूर्वा कार्तिकशुक्र द्वितीयेचे ठायी यमुनेनें आपल्या घरीं यमाचें पूजन करून भोजन घातलें, म्हणून ही यमद्वितीया तीन लोकांमध्ये प्रसिद्ध झाली, या कारणास्तव या द्वितीयेचे ठायी आपल्या घरीं पुरुषांनीं भोजन करूं नये. प्रीतीनें भगिनीच्या हातचें पुष्टिकारक भोजन करावें. आणि भगिनीला यथाशास्त्र दांतीं दीयावी; सोन्याचे दागिने, वस्त्रे, अन्न, पूजा, सत्कार व भोजन यांहीकरून सर्व भगिनीचें पूजन करावें. भगिनी नयनील तर प्रतिपन्न (मानलेल्या) भगिनीचें पूजन

करावें.” प्रतिपन्न म्हणजे मानलेल्या भगिनी, असें हेमाद्रि सांगतो. “पहिल्या (श्रावणांतल्या) द्वितीयेस चुलतबहिणीच्या हातचें जेवावें. दुसऱ्या द्वितीयेस मातुलकन्येच्या हातचें जेवावें. तिसऱ्या द्वितीयेस आल्याच्या व मावशीच्या कन्येच्या हातचें भोजन करावें. चवथ्या (कार्तिक) द्वितीयेस सोदरभगिनीच्या हातचें जेवावें. वर सांगितलेल्या चारही द्वितीयांचे ठायीं भगिनींच्या हातचें भोजन करावें, तें बलवर्धक आहे. प्रत्येक जगांत ज्या तिथीचे ठायीं यमुनेनें भगिनीपणाच्या भैरवीं देव यमराजाला भोजन घातलें त्या तिथीचे ठायीं या लोकीं जो मनुष्य भगिनीच्या हातचें भोजन करितो त्याला रत्नें, सुख, धान्यें हीं उत्तम प्राप्त होतात.” गौड तर—“यम, चित्रगुप्त, यमदूत यांचें पूजन करून सहजद्वय (भ्राता व बहीण) यांनीं या द्वितीयेचे ठायीं यमाला अर्घ्यही द्यावें.” मंत्रः—“एहोहि मार्तंडज पाशहस्त यमांत-कालोकधरामरेश ॥ भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते” ॥ “भ्रातस्तवानुजानाहं भुंक्ष्व भक्तसिद्धं शुभं ॥ प्रीयते यमराजस्य यमुनाया विशेषतः” ॥ वडील भगिनीनें “भ्रातस्तवाप्रजाताऽहं” असें म्हणवें असें स्मार्त सांगतात. या मंत्रांनें अन्नदान करावें असेंही (गौड) सांगतात. ब्रह्मांडपुराणांतही “जी स्त्री द्वितीयेचे ठायीं भ्रात्याला भोजन देते व तांबूलादिकांनें पूजन करिते तिला वैधव्य प्राप्त होत नाही, व तसें केल्यानें भ्रात्याच्या आयुष्याचा क्षय कधीही होत नाही.”

कार्तिकशुक्लनवमीयुगादिः सापौर्वाहिकीग्राह्या शुक्लपक्षस्थत्वान् अत्रपिंडरहितंश्राद्धंकर्तव्यम् अन्यत्प्रागुक्तम् अत्रैवविष्णुत्रिरात्रमुक्तंहेमाद्रौपाद्मे कार्तिकेशुक्लनवमीमवाप्यविजितेंद्रियः हरिविधायसौवर्णतुलस्यासहितंविभुम् पूजयेद्विधिवद्भक्त्याव्रतीतत्रदिनत्रयम् एवंयथोक्तविधिनाकुर्याद्वैवाहिकंविधिमिति ।

कार्तिकशुक्लनवमी ही युगादि तिथि होय. ती पूर्वाह्नव्यापिनी ध्यावी. कारण, शुक्लपक्षांतील युगादि पूर्वाह्नव्यापिनी ध्याव्या, असें सांगितलें आहे. या नवमीचे ठायीं पिंडरहित श्राद्ध करावें. अन्य सर्व प्रकार पूर्वी वैशाखमासांत अक्षयतृतीयाप्रसंगीं सांगितला आहे. एथेंच विष्णुत्रिरात्रव्रत सांगतो-हेमाद्रौत पाद्मांत—“कार्तिकशुक्लनवमी प्राप्त असतां व्रत धारण करून जितेंद्रिय होऊन तुलसीसहित हरीची सुवर्णाची मूर्ति करून तीन दिवस भक्तीनें यथाशास्त्र पूजा करावी आणि शास्त्रोक्त विधीनें तुलसीसहित हरीचा विवाह करावा.”

कार्तिकशुक्लैकादश्यांभीष्मपंचकव्रतमुक्तंनारदीये अतोन्नरैःप्रयत्नेनकर्तव्यंभीष्मपंचकम् कार्तिकस्याम-लेपक्षेस्नात्वासम्यग्यतव्रतः एकादश्यांतुगृहीयाद्व्रतंपंचदिनात्मकमिति तद्विधिस्तुगोमथेनस्नात्वाभौनीपंचा-मृतैःपंचगव्यैर्विष्णुसंस्त्राप्यसंपूज्यपायसंनिवेद्यद्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतंजप्त्वा ओंनमोविष्णवइतिषडक्षरेणघृ-ताक्तान्यवान्त्रीहींश्राष्टोत्तरशतंहुत्वाभूमौस्वेपथु एवंपंचदिनेपुकुर्यान् विशेषस्तवाद्येऽह्निरैःपादौकमलैःसंपूज्य-त्रिगोमंयंप्राश्यम् द्वितीयेऽह्निरित्त्वपत्रैर्जानुनीसंपूज्यगोमूत्रम् त्रयोदश्यांभृंगराजेननाभिंसंपूज्यक्षीरम् चतु-र्दश्यांकरवीरैः स्कंधंसंपूज्यदधि पौर्णमास्यांहोमांतेलौहींपापप्रतिमांस्वङ्गचक्रहस्तांकृष्णवस्त्रेणवेष्टितांप्रस्थतिलो-परिस्थांकृत्वाधर्मराजनामभिःकरवीरैःसंपूज्य यदन्यजन्मनिकृतमिहजन्मनिवापुनः तत्सर्वप्रशंसंयामुत्पापं-तवपूजनादितिपुष्पांजलिंक्षिप्वाकृष्णप्रतिमांचसंपूज्यविप्रायदत्त्वाविप्रान्संभोज्यदक्षिणांदत्त्वापंचगव्यंप्राश्य-पौर्णमास्यानक्तंभुंजीतेतिलघुनारदीये पंचगव्यप्राशनंपडक्षरेणेतिहेमाद्रिः हेमाद्रौभविष्येतु शकै-र्मुन्यन्नैर्वापंचाहंवर्तनमुक्तम् अंत्येप्युक्तम् यद्भीष्मपंचकमितिप्रथितंप्रथिव्यामेकादशीप्रभृतिपंचदशीनिरुद्धम् मुन्यन्नभोजनपरस्यनरस्यतस्मिन्निष्टफलंदिशतिपांडवशङ्खधन्वेति तथापाद्मे पंचाहंपंचगव्याशीभीष्माया-व्यंचपंचसु अहःस्वपितथादद्यान्मंत्रेणानेनसुव्रत सत्यव्रतायशुचयेगांगेयायमहात्मने भीष्मायैतद्दाम्यर्घ्यमा-जन्मब्रह्मचारिणे वैराघ्रपद्यगोत्रायेतिच स्वयनेनानेनमंत्रेणतर्पणंसार्ववर्णिकमिति ।

कार्तिकशुक्लैकादशीस भीष्मपंचक व्रत सांगतो नारदीयपुराणांत-“मनुष्यांनीं प्रयत्नांनें भीष्मपंचकव्रत करावें. व्रताचा चांगला निश्चय करून कार्तिकशुक्ल पक्षाच्या एकादशीस स्नान करून पांचदिवसांचें व्रत ध्यावें.” त्या व्रताचा विधि—गोमय अंगास लावून स्नान करून मौन करून पंचामृतें व पंचगव्यें यांनीं विष्णूला स्नान घालून पूजन करून पायसाचा नैवेद्य अर्पण करून द्वादशाक्षर मंत्राचा अष्टोत्तरशत (१०८) जप करून “ॐ नमो विष्णवे” या षडक्षर मंत्रांनें घृतयुक्त यव व व्रीही यांचा अष्टोत्तरशत होम करून भूमीवर निद्रा करावी. असें पांचदिवस व्रत करावें. आतां प्रतिविबशी विशेष म्हणजे-पहिल्या दिवशीं हरीचे पाय कमलांनीं पुजून तीन वेळ गोमय प्राशन करावें. दुसऱ्या

दिवशीं चित्रपत्रांनीं जांन्वी पूजा करून गोमूत्र भक्षण करावें. त्रयोदशीस भृंगराज (माका) यानें नाभीचें पूजन करून दुरध प्राशन करावें. चतुर्दशीस करवीर (कहेर) पुष्पांनीं स्क्ंधांची पूजा करून दधि प्राशन करावें. पौर्णिमेस होम झाल्यावर लोखंडाची पापाची प्रतिमा खड्गचक्रयुक्त हस्ताची करून कृष्णवस्त्रांनं वेष्टित करून प्रस्थ (शास्त्रीय क्षेत्र) प्रमाण तिलावर ठेऊन धर्मराजाच्या नामांनीं करवीरपुष्पांनीं पूजा करून “यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः ॥ तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात्.” या मंत्रानें पुष्पांजलि देऊन कृष्णप्रतिमेचेंही पूजन करून ब्राह्मणामा तिचें दान करून ब्राह्मणभोजन घालून दक्षिणा देऊन पंचगव्य प्राशन करून पौर्णमासीच्या दिवशीं नक्त (रात्रि) भोजन करावें. असं हें व्रत लघुनारदीयांत सांगितलें आहे. पंचगव्य प्राशन षडक्षरमंत्रानें करावें, असं हेमाद्रि सांगतो. हेमाद्रिंत भविष्यपुराणांत तर-शाक भक्षण करून किंवा मुनींचीं अन्न, देवभात वगैरे भक्षण करून हें पंचदिनात्मक व्रत करावें, असें सांगितलें आहे. याप्रमाणें व्रत मांगून अंतीही असें गांगतो की,—“एकादशीपासून पौर्णिमेपर्यंत करावयाचें म्हणून जें भीष्मपंचक व्रत पृथ्वीवर प्रसिद्ध आहे त्या व्रताचेठांवीं मुन्यत्र भक्षण करणाऱ्या मनुष्याला शार्पधन्वा भगवान् इष्ट फल देतो.” तसेंच पाश्चांत-“पांच दिवस पंचगव्य प्राशन करून राहावें व पांचही दिवस या पुढील मंत्रानें भीष्माला अर्घ्य द्यावें.” अर्घ्यमंत्रः—“सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ॥ भीष्मायैतद्दद्याम्यर्घ्य-माजन्मव्रतक्षारिणे.” आणि “विद्याप्रपद्यमोत्राय सांकुलप्रवराय च ॥ गंगापुत्राय भीष्माय प्रदास्येहं तिलोदकं ॥ हा मंत्र म्हणून सव्यांनं तर्पण गवे वपणींनीं करावें.”

कार्तिकशुक्लद्वादश्यारेवतीनक्षत्रयोगरहितायांपारणंकार्यम् तदुक्तम् आभाकासितपक्षेपुमैत्रभ्रंशरेवती संगमेनहिभोक्तव्यंद्वादशद्वादशीर्हरेदिति यदातुरेवतीयोगरहिताद्वादशीसर्वथानलभ्यतेतदारैवत्याश्चतुर्थपाद-वर्जयेत् वचनंतुप्रागुक्तम् लघुनारदीये कार्तिकेशुक्लपक्षस्यकृत्वाचैकादशीनरः प्रातर्दत्त्वाशुभान्कुभान्प्र-यातिहरिमंदिरम् मदनरत्नेवाराहे एकादशीसोमयुक्ताकार्तिकेमासिभामिनि उत्तराभाद्रपदयोगेअनंतासा-प्रकीर्तिता तस्यांयत्कियतेभद्रमसर्वमानंन्यमभुते ।

कार्तिकशुक्लद्वादशीचे दिवशीं पारणा करणे या रेवतीनक्षत्ररहिताद्वादशीचे ठायीं करावी. तेंच सांगतो—“आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक यांच्या शुक्लपक्षांतलं द्वादश्यास अनुक्रमानें अनुगृह्या, श्रवण, रेवती ह्या नक्षत्रांच्या योगावर भोजन करूं नये; केलें तर चारा द्वादशींचें पुण्य जातें.” जेव्हां रेवतीयोगरहिताद्वादश्या गर्भथा मिळणार नाहीं तेव्हां रेवतीचा चतुर्थ चरण सोडावा. याविषयी वचन तर पुढी (आपाशुक्लद्वादशीपारणाप्रसंगी) सांगितलें आहे. लघुनारदीयांत—“कार्तिकशुक्ल एकादशी करून प्रातःकार्यां शुभ उदकेन देणारा पैकुंदास जातो.” मदनरत्नांत वाराहांत—“कार्तिकमासाची एकादशी सोमवार व उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र यांनीं युक्त असतां ती अनंता म्हणवी आहे. तिचे ठायीं जें व्रतादि केलें असेल तें सर्व अनंत होतें.”

अस्यमेवरात्रौदेवोत्थापनमुक्तंहेमाद्रौब्राह्मे एकादश्यांचशुक्लायांकार्तिकेमासिकेशवम् प्रसुप्तबोधयेद्वा-त्रौश्रद्धाभक्तिममन्वितइति मदनरत्नेभविष्ये कार्तिकेशुक्लपक्षेनुएकादश्यांपृथामुत मंत्रेणानेनराजेंद्रदेव-मुत्थापयेद्विजः रामार्चनचंद्रिकादौनुद्वादश्यामुक्तम् पारणाहपूर्वगात्रेघंटादीन्वाद्येन्मुहुरिति अत्रदे-शाचारतोष्यवस्था तत्रैवदेवदेवस्यस्नानंपूर्वमहद्भवेन महापूजांतःकृत्वादेवमुत्थापयेत्सुधीः मंत्रास्तुवाराह-पुराणेउक्ताः ॐब्रह्मेन्द्रनामिकृत्वेरमृयसोमादिभिर्वंदितवंदनीय बुध्यम्येवेशजगन्निवासमंत्रप्रभावेणसुखे-नदेव इयंतद्वादशीदेवप्रबोधार्थविनिर्मिता त्वयैवमर्वलोकानांहिनार्थशेषशायिना उत्तिष्ठोत्तिष्ठगोविंदत्यजनि-द्रांजगत्पते त्वयिमुप्रेजगन्नाथजगत्सुप्तमभवैदिदम् उत्थितेचेष्टतेस्वामुत्तिष्ठोत्तिष्ठमाधव गतामेधावियैवनि-र्मलंनिर्मलादिशः शारदानिचपुष्पाणिगृह्णाममकेशव इदंविष्णुरितिप्रोक्तोमंत्रउत्थापनेहरेरिति एवंदेवमुत्था-प्यतद्रूपेचानुर्मास्यव्रतसमाप्तिंकुर्यात् तदुक्तंभारते चतुर्धागृह्यवैचीर्णचानुर्मास्यव्रतंनरः कार्तिकेशुक्लपक्षेनुद्वा-दश्यांतत्समापयेत् लघुनारदीये चानुर्मास्यव्रतानांचसमाप्तिःकार्तिकेस्मृता मंत्रश्चनिर्णयामृतैस्सव-त्कुमारेणोक्तः इदंव्रतंमयादेवकृतंप्रीत्यंतवप्रभो न्यूनसंपूर्णतांयानुव्यवसादाज्जनार्दनेति ।

याच एकादशीम रात्रीं देवोत्थापन (देवाम जाग्रत करणें) गांगतो—हेमाद्रिंत ब्राह्मांत “निजलेल्या भगवंताला कार्तिकशुक्ल एकादशीचे दिवशीं रात्रीं श्रद्धा व भक्तियुक्त होऊन उठवावें.” मदनरत्नांत भविष्यांत—“कार्तिकशुक्ल एकादशीचे दिवशीं ब्राह्मणानें पुढील मंत्रानें देवाला जाग्रत करावें.” रामार्चनचंद्रिकादिग्रंथांत तर द्वादशीचे दिवशीं

जाग्रत करणें सांगितलें आहे. तें असें—“पारणादिवशीं पूर्वरात्रीं वारंवार घंटादिक वाजवावीं.” वरील वचनांवरून एकादशीस प्रबोधोत्सव करावा, असें होतें, आणि रामार्चनचंद्रिकेवरून द्वादशीस करावा, असें होतें, आतां करावा कधी म्हणाल तर ज्या देशांत जसा आचार असेल तसा करावा. त्या उत्थापनसमयींच देवाला पूर्वी मोठें स्नान घालावें नंतर महापूजा करून देवाला उठवावें.” मंत्र तर वराहपुराणांत सांगितले आहेत. ते असें—“ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्नि-कुबेरसूर्यसोमादिभिर्वेदित वंदनीय ॥ बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मंत्रप्रभावेण सुखेन देव ॥ इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थे विनिर्मिता ॥ त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद त्यज निद्रां जगत्पते ॥ त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् ॥ उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ॥ गता मेघा वियञ्चव निर्मले निर्मला दिशः ॥ शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव.” “इदं विष्णु० हा मंत्रही भगवंताच्या उत्थापनाविषयीं सांगितला आहे.” याप्रमाणें देवाला उठवून त्याच्या पुढें चातुर्मास्यव्रतांची समाप्ति करावी. तें सांगतो—भारतांत—“आषाढांत चारप्रकारचें व्रत घेऊन आचरण केलें असेल त्याची समाप्ति कार्तिकशुक्र द्वादशीस करावी.” लघुनारदीयांत—“चातुर्मास्यव्रतांची समाप्ति कार्तिकमासांत सांगितली आहे.” त्याचा मंत्र निर्णयामृतांत सनत्कुमारानें सांगितला, तो असा—“इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ॥ न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन.”

अथ वाराहोक्तो बोधिनीविधिः एकादश्यां रात्रौ कुंभघृतपात्रोपरि हेमं मापयितुं मत्स्यं पंचामृतेन संस्नाप्य कुंभ-कुमपीतवस्त्रयुगपद्वाद्यैः संपूज्य मत्स्यादि दशावतारान् संपूज्य जागरं कृत्वा प्रातर्देवमाचार्य च वस्त्राद्यैः संपूज्य जग-दादिर्जगद्रूपोजगदादिरनादिमान् जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दन इति नत्वा दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान् भोज-येदिति तथा ब्राह्मे महातूर्यरवैरात्रौ भ्रामयेत्स्यंदने स्थितम् उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम् चतुरो वार्धि-कान्मासान्निभयं स्यत्युत्कृतम् कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम् यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तद्भवं द-द्यादित्यर्थः इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् आशौचेतु पूजामन्येन कारयेत् कार्तिकशुक्रद्वादशीपौर्णमासी च मन्वादिः सापौर्वाहिकी ग्राह्या अन्यत्प्रागुक्तम् ।

आतां वाराहपुराणोक्तो बोधिनीविधिः सांगतो—एकादशीचे दिवशीं रात्रीं कुंभावर घृतपात्र ठेऊन त्याजवर माषप्रमाण सुवर्णाचा मत्स्य ठेवून त्याला पंचामृतानें स्नान घालून केशर, पिवळीं दोन वस्त्र, कमळें इत्यादिकांनीं त्या मत्स्याची पूजा करून व मत्स्यादि दशावतारांची पूजा करून जागरण करून प्रातःकालीं देव आणि आचार्य यांची वस्त्रादिकांनीं पूजा करून, “जगदादिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिमान् ॥ जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः” या मंत्रानें नमस्कार करून दक्षिणा देऊन ब्राह्मणभोजन करावें. तसेंच ब्राह्मांत—“रात्रीं वायांचा मोठा गजर करून उत्थित देवाला रथावर बसवून तो रथ स्वतां राजानें नगरामध्यें फिरवावा.” “चार महिनं ज्यानं ज्या पदार्थाचा नियम केला असेल तो पदार्थ ब्राह्मणाला सांगून भक्तीनं दक्षिणासहित तो द्यावा.” म्ह० जो भक्ष्य पदार्थ वर्ज्य केला असेल तो द्यावा असा अर्थ. हा सर्व विधि शुक्र, गुरु यांचें अस्त वगैरे अनंतांही करावा. आशांच असेल तर पूजा अन्याकडून करावी. इतर नियम स्वतः करावे. कार्तिकशुक्रद्वादशी व पौर्णिमा ह्या मन्वादिक होत. ती मन्वादिक तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी ध्यावी. इतर निर्णय पूर्वी (चैत्र शुक्रतृतीयाप्रसंगीं) सांगितला आहे.

कार्तिकशुक्रचतुर्दशीवैकुण्ठसंज्ञा साविष्णुपूजायारात्रिव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वयेतद्व्यापौ निशीथप्रदोषो भयव्या-पिनी ग्राह्या तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां न राधिप सोपवासस्तु संपूज्य हरिरात्रौ जि-तें द्विय इति अस्या एव विश्वेश्वरप्रतिष्ठा दिनत्वात् तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादिक्रियेत तदा ऽरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या तदुक्तं-त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायाम् वर्षे च हेमलंबाख्ये मासे श्रीमतिकार्तिके शुक्लपक्षे चतुर्दश्याम-रुणाभ्युदयप्रति महादेव तिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयदिति तत्पूर्वदिने-चोपवासः कार्यः ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् दंडपाणेर्माहाधाम्निवने स्मिन्कृतपारण इति तत्रैवोक्तेः शिवरहस्येपि पूजा जागराद्युक्तोक्तम् ततो ऽरुणोदये जाते स्नात्वा स्नात्वा च भस्मना संध्यांसमाप्य विश्वेशं मा-मभ्यर्चयथाविधि मद्भक्तान् भोजयामासु र्कपयो बुभुजुस्त इति ।

कार्तिकशुक्रचतुर्दशी ही वैकुण्ठचतुर्दशी होय. ती विष्णुपूजेविषयीं रात्रिव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवशीं रात्रिव्यापिनी असतां मध्यरात्री व प्रदोषकाली जी असेल ती ध्यावी. तें सांगतो—हेमाद्रौ त भविष्यांत—“कार्तिकशुक्रचतुर्दशीस

उपवास करून जितेंद्रिय होऊन रात्री हरीचें पूजन करावें." याच चतुर्दशीचे दिवशी विश्वेश्वराची प्रतिष्ठा (स्थापना) झाली असल्यामुळे त्याच्या प्रीत्यर्थ जेव्हा उपवासादिक कर्तव्य असेल तेव्हां त्याविषयी अरुणोदयव्यापिनी प्यावी. तें सांगतो **त्रिस्थलीसेतूत सनत्कुमारसंहितेत**—“हेमलंब नांवाच्या संवत्सरी श्रीमान् कार्तिकमासाचे शुक्लपक्षाची शिवतिथि जी चतुर्दशी तिचे ठायीं अरुणोदयकालीं ब्राह्ममुहूर्तावर मणिकर्णिकेमध्ये विश्वेश्वरानें ज्ञान करून देवीसहस्रनाम विश्वेश्वराचें पूजन केलें आहे.” त्याचे पूर्वदिवशी उपवास करावा. कारण, “नंतर स्वच्छ प्रातःकालीं मोठी अद्भुत पूजा करून दंडपाणीचें मोठें वमतिस्थान अशा या वनामध्ये पावणा केली.” असें तेथेंच सांगितलें आहे. **शिषरहस्यांतरी**—पूजा, जागर इत्यादिक सांगून सांगतात—“नंतर ते ऋषि अरुणोदय झाला असतां ज्ञान व भस्मज्ञान हीं करून संध्या समाम करून माझी विश्वेश्वरानीं यथाविधि पूजा करून माझ्या भक्तांला भोजन देऊन नंतर ऋषि भोजन करिते झाले.”

अत्रकार्तिकव्रतोद्यापनपाद्ये कार्तिकमाहात्म्ये उक्तम् अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु ऊर्ज-
शुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती तुलस्या उपरिष्ठात् कुर्यान्मंडपिकां शुभाम् तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च
तस्योपरिष्ठात्कलशं पंचरत्नसमन्वितम् पूजयेत्तत्र देवेशं मौर्वणं गुरुं नृपं राजां जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः
ततस्तु पौर्णमास्यां वै संपत्नीकान्द्रिजोत्तमान् त्रिंशन्मिनान् तथैकं वा स्वयं शक्त्या वा नान्येन त्रयेण अतो देवा इति द्वाभ्यां जु-
ह्यात्तिलपायसम् ततो गां कपिलां दद्यात्पूजयेद्द्विवद्रुमिति ।

या चतुर्दशीस कार्तिकव्रताचें उद्यापन सांगतो—**पद्मपुराणां कार्तिकमाहात्म्यांत**—“यानंतर कार्तिकव्रताचा उद्यापनविधि सांगतो, श्रवण कर! कार्तिकव्रत करणागें कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीस त्या व्रताचें उद्यापन करावें. तुलसीवर सुंदर मंडप घालावा. तुलसीच्या मूलप्रदेशी सर्वतोभद्र मंडप करून त्यावर पंचरत्नयुक्त कलश स्थापन करावा. त्या कलशावर गुरूच्या आज्ञेनें मुक्ताच्या विष्णुप्रतिमेचे पूजन करावें. रात्री गीत, वाद्य इत्यादिमंगल शब्दांनीं जागरण करावें. नंतर पौर्णिमेचे दिवशी प्रातःकालीं उत्तम संपत्नीक अशा एकत्रीय ब्राह्मणांस अथवा आपणांस शक्ति असेल तितक्या ब्राह्मणांस निमंत्रण द्यावें. ‘अतो देवाः’ व ‘इदं विष्णुः’ या दोन मंत्रांनीं तिलयुक्तपायसाचा होम करावा. नंतर कपिला गाय देऊन यथाविधि गुरूचे पूजन करावें.”

कार्तिकीपौर्णमासीपराब्राह्म अमापौर्णमास्योपरं इति दीपिकोक्तेः अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे पुण्या महाकार्तिकीस्या जीवेंद्रोः कृत्तिका मुच तथा आप्रयंतु यदा कश्चं कार्तिक्यां भवति कश्चिन् महती सा तिथिर्ज्ञेया-
ज्ञानदानेषु चोत्तमा यदा तु यास्यं भवति कश्चं तस्यां तिथौ कश्चिन् तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता प्राजापत्यं यदा कश्चं तिथौ तस्यां नर्गाधिप मामहाकार्तिकी प्राक्ता देवानां सापि दुर्लभेति **पाद्ये** विशाखा सुयदाभानुः-
कृत्तिका मुच चंद्रमाः सयोगः पद्मकोनाम पुष्करे ध्वनि दुर्लभः पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति सहित्वा-
सर्वपापानि विष्णुबलं भते पदम् **गमः** कार्तिक्यां पुष्करे स्नानः सर्वपापैः प्रमुच्यते माध्यां स्नानः प्रयागे तु मुच्यते सर्व-
किंस्वपैः अस्यामेव सायंकाले नम्या च तारो ज्ञानं न्युक्तं **पाद्ये कार्तिकमाहात्म्ये** वरान्दत्वाय तो विष्णुर्म-
त्स्य रूप्य भवत्ततः तस्यां दत्तं हुतं जपंत दक्षय फलं भूतमिति अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तो **भार्गवार्चनदीपिका-**
याम् पौर्णमास्यां तु संध्यायां कर्तव्यं त्रिपुरोत्सवः दद्यादनेन मंत्रेण प्रदीपांश्च मुगलये कीटाः पतंगामशकाश्च-
वृक्षा जले स्थले ये विचरंति जीवाः इष्ट्वा प्रदीपं तच्च जन्म भागिनो भवंति नित्यं श्रवचा हि विप्राः अत्र वृषोत्सगोतिप्र-
शस्तः तदुक्तं **मान्द्वे** कार्तिक्यां यो वृषो नमस्कृतवान् कंसमाचरेत् शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतमिति
अत्र कार्तिकेयदर्शनमुक्तं **काशीवंडे** कार्तिक्यां कृत्तिका योगेयः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् सप्तजन्म भवेद्दिप्रोचना-
द्वयो वेदपाठगः इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधो द्वितीयपरिच्छेदे कार्तिकमासः ।

कार्तिकपौर्णमासी परा (दुसऱ्या दिवसाची) प्यावी. कारण, “अमावास्या व पौर्णिमा परा प्याव्या” असें **दीपिकेत** सांगितलें आहे. या पौर्णिमेचे दिवशी विशेष सांगतो **हेमाद्रौ तं ब्राह्मंत**—“गुरु व चंद्र कृत्तिका नक्षत्रास असतां पुण्य-
कारक महाकार्तिकी होते.” तसेंच—“जेव्हा कार्तिकी पौर्णिमेस कृत्तिक नक्षत्र कधी असेल तर ती महातिथि जाणावी, ती ज्ञानदानविषयी उत्तम होय. जेव्हा कार्तिकपौर्णिमेस भरणीनक्षत्र कश्चित् असेल तेव्हा देखील ती तिथी महापुण्यकारक म्हणून सुनांनीं सांगितली आहे. जेव्हा रोहिणीनक्षत्र त्या पौर्णिमेस असेल तेव्हा ती महाकार्तिकी म्हटली आहे, ती देवासही दुर्लभ होय.” **पाद्यांत**—“विशाखानक्षत्रास सूर्य व कृत्तिका नक्षत्रास चंद्र असा योग जेव्हा असेल तेव्हा तो पद्मक नांवाचा

योग पुष्करतीर्थाचे ठायीं अतिदुर्लभ होय. पद्मकयोग पुष्करतीर्थाचे ठायीं प्राप्त असतां कपिला गाई जो देतो तो सर्व पापांपासून मुक्त होऊन विष्णुपदास जातो.” यम—“कार्तिकी पौर्णिमेस पुष्करतीर्थांत ज्ञान केलें असतां सर्व पापें जातात. माघी पौर्णिमेस प्रयागतीर्थांत ज्ञान केलें असतां सर्व पापांपासून मुक्त होतो.” या कार्तिकपौर्णिमेचे ठायींच सायंकाळीं मत्स्यावतार झाला असें सांगतो—पद्मपुराणांत कार्तिकमाहात्म्यांत—“ज्या कारणास्तव ऋषीला वर देऊन कार्तिकी पौर्णिमेस विष्णु मत्सरूपी झाला म्हणून त्या तिथीचे ठायीं दान, होम, जप हे केले असतां अश्रव्य फल प्राप्त होतें.” या पौर्णिमेचे ठायीं त्रिपुरोत्सव सांगतो—मार्गवाचनदीपिकें—“कार्तिकपौर्णिमेचे ठायीं संध्यासमयीं त्रिपुरोत्सव करावा. यापुढें सांगितलेल्या मंत्रानें देवालयामध्यें दीप लावावे.” तो मंत्रः—“कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विषरंति जीवाः ॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवंति नित्यं श्वपचा हि विप्राः ॥” या पौर्णिमेचे ठायीं वृषोत्सर्ग करणें अति प्रशस्त होयः तें सांगतो—मत्स्यपुराणांत—“जो मनुष्य कार्तिकीपौर्णिमेस वृषोत्सर्ग करून नक्त करील तो शिवपदास जाईल. कारण, हें शिवव्रत म्हटलें आहे.” या पौर्णिमेस कार्तिकेयस्वामीचें दर्शन सांगतो—काशीखंडांत—“कार्तिकी पौर्णिमेस कृतिकानक्षत्र असतां जो कार्तिकस्वामीचें दर्शन करील तो सात जन्मपर्यंत धनवान् आणि वेदपारंगत असा ब्राह्मण होईल.” इति कार्तिकमास समाप्त झाला.

वृश्चिकपूर्वाःषोडशघटिकाःपुण्याः शेषप्राग्वन् मार्गशीर्षकृष्णाष्टमीकालाष्टमी साचरात्रिव्यापिनीब्राह्मा मार्गशीर्षसिताष्टम्यांकालभैरवसन्निधौ उपोष्यजागरं कुर्वन्सर्वपापैः प्रमुच्यते इति काशीग्वंडांतरात्रिव्रत-त्वावगतेः रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्यासंमुखीतिथिरिति ब्रह्मवैवर्ताच्च दिनद्वयं शततोरात्रिव्याप्रावुत्तैव भैरवो-त्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादितिकेचित् तत्र शिवरहस्यमध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणान् तथा च तत्रैव नित्ययात्रा-दि कृतत्वा मध्याह्ने संस्थितेरवावित्युपक्रम्य ब्रह्मणारुद्रेवज्ञाते उक्तम् तदोपग्रहपादनव्यान्मन्तः श्रीकालभैरवः आ-विरासीत्तदालोकान्भीषयन्नखिलानपीति अत्रोपवासगवग्रधानमित्युक्तं तत्रैव उपोषणस्यांगभूतमर्घ्यदानमि-हस्मृतम् तथा जागरणं रात्रौ पूजायामचतुष्टये संध्यायामपि पूजैवोक्ता तेन मध्याह्नव्यापिनीयुक्ता दिनद्वयं शतः-संपूर्णयांवातव्याप्तौ पूर्वं पूर्वांक्तवचनान् पारणातुप्रातरेव यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणेति वचनान् अत्रचकालभैरवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ कृत्वा च विविधां पूजां महासंभारविस्तारैः नरो मार्गसिताष्टम्यांवा-र्षिकं विप्रमुत्सृजेत् तथा तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः विलोक्य कालराजानं निरयादुद्धरेत्पितृनि-ति इत्यंच कार्तिक्यनंतरा गौणचांद्राभिप्रायेण ।

आतां मार्गशीर्षमासकृत्यं सांगतो.

वृश्चिकसंक्रांतीच्या पहिल्या सोळा घटिका पुण्यकाल होय. इतर निर्णय पूर्वीसारखा जाणावा. मार्गशीर्षकृष्ण अष्टमी ही कालाष्टमी होय. ती रात्रिव्यापिनी ध्यावी. कारण, “मार्गशीर्षकृष्ण अष्टमीचे ठायीं कालभैरवाच्या संनिध उपोषण करून जागरण करणारा मनुष्य सर्वपापांपासून मुक्त होतो.” ह्या काशीखंडस्थ वचनावरून हें कालाष्टमीव्रत रात्रिव्रत असें बोधित होतें. आणि “साऱ्या रुद्रव्रतांचे ठायीं संमुखी (पुढें येणारी) तिथि करावी.” असें ब्रह्मवैवर्तवचनही आहे. दोन दिवशीं अंशानें रात्रिव्याप्ति असतां पराच करावी. कारण, भैरवाची उत्पत्ति प्रदोषकाळी आहे, असें केचित् सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, शिवरहस्यांत मध्याह्नीं भैरवाची उत्पत्ति श्रुत आहे. तसेंच तेथेंच सांगतो—“नित्ययात्रादिक करून मध्याह्नीं सूर्य आला असतां” असा उपक्रम करून ब्रह्मादेवांनं रुद्राचा अपमान केला असतां सांगतो.—“त्या काळीं उपग्रसरूप धरणारा व दोषरहित अशा मजपासून श्रीकालभैरव सर्वलोकांस भय करणारा प्रगट झाला.” ह्या कालाष्टमीव्रताचे ठायीं उपवासच प्रधान असें तेथेंच सांगितलें आहे—“उपोषणाचें अंगभूत अर्घ्यदान येथें सांगितलें आहे. तसेंच रात्रौ जागरण व चार प्रहरांचे ठायीं पूजा सांगितली आहे.” संध्यासमयींही पूजाच सांगितली आहे. यावरून (कालभैरवाची मध्याह्नीं उत्पत्ति असल्यावरून) मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी ध्यावी, हें युक्त होय. दोन दिवशीं अंशानें किंवा संपूर्ण मध्याह्नव्यापिनी असतां पूर्वाच ध्यावी. कारण, त्याविषयीं पूर्वी सांगितलेलें ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. पारणा तर प्रातःकाळींच करावी. कारण, “तीन प्रहर होऊन गेलेल्या तिथींत प्रातःकाळींच पारणा करावी” असें वचन आहे. या अष्टमीचे ठायीं कालभैरवाची पूजा सांगतो—त्रिस्थलीसेतूंत—“मार्गशीर्षकृष्ण अष्टमीचे ठायीं मोठ्या सामग्रीच्या विस्तारांनीं अनेकप्रकारची कालभैरवाची पूजा मनुष्यानें केली असतां त्याचें वर्षांत उत्पन्न होणारें विप्र दूर होतें.” तसेंच—“कालोदकीर्थांत ज्ञान करून तर्पण करून कालभैरवाचें दर्शन घेईल तो तत्काल पितरांचा नरकापासून उद्धार करील.” ही अष्टमी कार्तिकी पौर्णिमेच्या पुढची जाणावी. गौण (पौर्णिमांत) चांद्रमासानें मार्गशीर्षकृष्ण अष्टमी असें सांगितलें आहे.

मार्गशीर्षशुक्लपंचम्यांनागपूजोक्ताहेमाद्रौस्कांदे शुक्लामार्गशिरेपुण्याश्रावणेयाचपंचमी स्नानदानैर्बहु-
फलानागलोकप्रदायिनीति इयंनागपूजायांपष्टीयुतैवप्राज्ञा पंचमीनागपूजायांकार्याषष्ठीसमन्विता तस्यामुतु-
पितानागाइतरासचतुर्थिकेतिमदनरत्नेवचनात् ।

मार्गशीर्षशुक्लपंचमीस नागपूजा सांगतो.-हेमाद्रीत स्कांदांत-“मार्गशीर्षातील शुक्लपंचमी आणि श्रावणांतील शुक्लपंचमी ह्या पुण्यकारक आहेत: स्नानदानंकरून बहुफलदायक व नागलोक प्राप्त करून देणाऱ्या आहेत.” ही पंचमी नाग-
पूजेविषयीं पष्टीयुक्त व ध्यावी. कारण, “नागपूजेविषयीं पंचमी पष्टीयुक्त ध्यावी, त्या षष्ठीयुक्त पंचमीस नाग संतुष्ट होतात.
इतर पंचमी चतुर्थांयुक्त ध्यावी.” असें **मदनरत्नांत** वचन आहे.

मार्गशीर्षशुक्लपष्टी चंपापष्टीतिमहाराष्ट्रेप्रसिद्धा मोत्तरयुताप्राज्ञा पण्मुन्योरितियुग्मवाक्यान् पूर्वाहेदै-
विकंकुर्यादितिवचनादस्यचंद्रैवकर्मत्वात् इयमेवयोगविशेषेणचंपेत्युच्यते तदुक्तं**ब्रह्मांडपुराणेमह्यारि-**
माहात्म्ये मांभाद्रपदशुक्लपष्टीवैभृतिसंयुता रविवारेणसंयुक्तामाचंपेतीहकीर्तितेति विशाखाभौमयोगे-
नसाचंपेतीहकीर्तितेति**मदनरत्ने**पाठः मार्गशीर्षेऽमलेपक्षेपष्ठ्यांवारंऽगुमालिनः शततारागतेचंद्रेलिंगस्याद्दृ-
ष्टिगोचरमिति इयंचयोगवशेनपूर्वापरवाकार्या चंपापष्टीसमप्रमीयुतेति**दिवोदासः** इयमेवस्कंदपष्टी सापू-
र्वयुता कृष्णाष्टमीस्कंदपष्टीशिवरात्रिश्चतुर्दशी एताःपूर्वयुताःकार्यास्त्यंतेपारणंभवेदिति**भृगुक्तेः** परेऽहि-
रात्रावाद्ययाममध्येपारणासंभवेऽदम अन्यथोत्तरेवेति**दिवोदासः** अर्द्धपर्यंतपष्टीपु सेनाविदारकस्कंदम-
हासेनमहाबल रुद्रोमाग्निजपद्भृकंगंगागर्भनमोस्तुते इतिराजतंस्कंदसंपूज्यविप्रायदश्यादिति**दिवोदासः** ।

मार्गशीर्षशुक्लपष्टी ही **चंपापष्टी**, म्हणून महाराष्ट्रदेशांत प्रसिद्ध आहे. ती रागमांयुक्त ध्यावी. कारण, “पष्टी व रागमां
यांचें युग्म” असें युग्मवाक्य प्रथमपरिच्छेदाने सांगितलें आहे. आणि “पूर्वाही देवांचें कर्म करावें” असें वचन आहे, व
हें देवकर्म आहे. हीच पष्टी विशेषयोगानें **चंपा** अशी म्हणली आहे. तें रागमां **ब्रह्मांडपुराणांत** **मह्यारिमाहा-**
त्म्यांत—“मार्गशीर्षांतलें व भाद्रपदांतलें शुक्लपक्षां वैभृतियोग व राविवार यांनीं युक्त अगतां **चंपा** अशी म्हणली आहे.”
‘रविवारेण संयुक्ता’ याव्याप्ती ‘यशस्वान्भौमयोगिनः’ असा **मदनरत्नांत** पाठ आहे. अर्थ—“विशालानध्वज व भौमवार
यांच्या योगानें ही **चंपा** अशी प्रसिद्ध आहे.” “मार्गशीर्षशुक्लपक्षां राविवार अमन शतताराकानध्वरी चंद्र असती लिंगदर्शन
होतें.” ही पष्टी अधिक योग मिलताना तशी पूर्वा किंवा परा करावी. (म्हणजे ही चंपापष्टी दोन दिवस असेल तर रविवार,
भौमवार, शतताराकानध्वज, वैभृतियोग यातून अधिकाराचा योग ज्या दिवशी येईल ती त्रिमूर्तनैव्यापिनी पूर्वदिवसाची किंवा
दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोनही दिवशां पक्षां गांभितिकेच्या योग नसेल तर रात्र पष्टिकाव्यापिनी अशी दुसऱ्या दिवसाचीच
ध्यावी. असें **धर्मसिंधुसारांत** आहे) चंपापष्टी सममांयुक्त करावी असें **दिवोदास** सांगतो. हीच स्कंदपष्टी होय. ती
पंचमांयुक्त ध्यावी. कारण, “कृष्णजन्माष्टमी, स्कंदपष्टी आणि शिवरात्रि चतुर्दशी ह्या तिथि पूर्वयुक्त कराव्या व तिथीचे अंतीं
पारणा करावी ” असें **भृगुवचन** आहे. दुसरे दिवशी रात्राच्या पहिल्या प्रहराच्या आंत पारणेचा संभव असतो हें वचन
जाणवें. रात्राच्या प्रथम प्रहरा पारणासंभव (तिथीचा अंत) नमना पराच ध्यावी, असें **दिवोदास** सांगतो. वर्षपर्यंत
प्रत्येक मागाचे पष्टीस “सेनाविदारक स्कंद महासेन महाबल ॥ रुद्रोमाग्निज पद्भृक गंगागर्भ नमोस्तु ते ॥”
या मंत्रानें हथ्याच्या स्कंदप्रतिमेची पूजा करून शेवटीं ती प्रतिमा ब्राह्मणाला द्यावी, असें **दिवोदास** सांगतो.

मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यांपिशाचविमोचनीर्तार्थश्राद्धं त्रिस्यलीसेतौ भट्टचरणैरुक्तम् तस्यप्राप्तपैशाच्य-
स्त्वपिनाद्युद्देश्यकत्वेपार्वणत्वादपराह्व्यापिनीप्राज्ञा अज्ञाननामपिशाचाशुद्देश्यकत्वेवेकोद्दिष्टत्वान्मध्याह्न-
व्यापिनीति कुलधर्मव्रतादांतूत्तरं चैत्रनभोगतंतरसिनाम्यादूर्ध्वमितिदीपिकोक्तेः ।

मार्गशीर्षशुक्ल चतुर्दशीस पिशाचमोचनीर्तार्थार्थं श्राद्धं त्रिस्यलीसेतून् नारायणभगवतीं गांभितलं आहे. तें
श्राद्ध पिशाचयोनि प्राप्त झालेल्या स्वकीय पिशादािकांच्या उद्देशानें कर्तव्य असतां तें पार्वण असल्यामुळें त्याविषयीं अपराह्न-
व्यापिनी चतुर्दशी ध्यावी. नांव माहीत नाही अशा पिशाचादिकांच्या उद्देशानें कर्तव्य असल तर तें श्राद्ध एकोद्दिष्टम्
असल्यामुळें त्याविषयीं मध्याह्नव्यापिनी ध्यावी. कुलधर्म, व्रत इत्यादिकांविषयीं तर पराच ध्यावी. कारण, “चैत्र व श्रावण
यांचाचून शुक्लपक्षाची चतुर्दशी परा करावी” असें **दीपिकेंत** सांगितलें आहे.

१ वैभृतियोग व विशाखानध्वज ही भाद्रपदांतील शुक्लपक्षास असतात. मार्गशीर्षांतील शुक्लपक्षास असल्याचा संभव नाही,
असें समजावें.

मार्गशीर्षपौर्णमास्यांदत्तात्रेयोत्पत्तिः तदुक्तंस्कांदेसह्याद्रिखंडे मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽहिसुनिर्मले मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां ब्रह्मचवासरे जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिनीमाकरोत्स्वयम् दत्तवान्स्वस्य पुत्रत्वाद् दत्तात्रेय इतीश्वर इति इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येति वृद्धाः ।

मार्गशीर्षपौर्णिमेचे ठायीं दत्तात्रेयाचा अवतार झाला, तें मांगतो स्कांदांत सह्याद्रिखंडांत—“गर्भधारणापासून दहाव्या मार्गशीर्षमासांत पौर्णिमेस मृगशीर्षनक्षत्रानें युक्त पुण्यकारक दिवशीं बुधवारीं देदीप्यमान अशा कल्याणकारक पुत्रास अत्रिऋषीची पत्नी अनुसूया प्रसवती झाली. अत्रिऋषीनं तो प्रत्यक्ष विष्णू जन्माला आला आहे, असें जाणून त्याचें नामकरण केलें, तें असें—ईश्वर स्वतः आपणांतें देता झाला म्हणून तो दत्तः आणि स्वस्य (अत्राचा) पुत्र असल्यामुळे आत्रेय. मिळून दत्तात्रेय होय. ही पौर्णिमा प्रदोषव्यापिनी ध्यावी, असें वृद्ध सांगतात.

मार्गशीर्षपौर्णिमानंतराष्टमीअष्टका एवं पौषादिमासत्रयेऽपि हेमंतशिशिरयोश्चतुर्णामपगपक्षानामष्टमीष्वष्टका एकस्यावेत्याश्वलायनोक्तेः एकस्यामष्टम्यां वैकाकार्येति हरदत्तः क्वचित्पंचम्यप्युक्ता प्रौष्ठपयष्टकाभूयः पितृलोके भविष्यतीति पाद्मवचनान् तत्पूर्वसप्तमीपुर्वेद्युः तत्परनवमीष्वनष्टकाच श्राद्धमुक्तम् कालादर्शं मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठपयष्टकालुने कृष्णपक्षे च पूर्वद्युः गन्वष्टक्यंतथाष्टका इति यत्तु विष्णुः अमावास्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽनष्टका इति यच्च कौर्मं अमावास्याष्टकास्ति त्रयः पौषमासादिपुत्रिष्विति तच्चतुर्थ्यामनावश्यकत्वार्थं याचाप्यन्याचतुर्थ्याम्यात्तांच कुर्यात्प्रयत्नत इति वायुब्रह्मांडपुराणात् श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रति पद्यत इति विष्णुक्तेरिति शूलपाणिः यागवाभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् वायुब्रह्मांडयोः आद्यापूषैः सदाकार्यामासैरन्यासदाभवेत् शाक्रेः कार्यावृत्त्याम्यादपदव्यगतेर्विधिः पौषादिक्रमः अन्वष्टकातु प्रागेव निर्णीता तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या अथाच्छादनपर्यंतं श्राद्धपार्वणवद्धवेदित्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्णकालत्वाच्च पार्वणस्य पूर्वद्युः गन्वष्टकाश्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुगोधेन निर्णयः अतएव सूत्रम् पूर्वद्युः पितृभ्यो दद्यात् अपरेद्युः गन्वष्टक्यमिति च अत्र कामकालो विधेर्देवोऽष्टाष्टकं नृदक्षवष्टम्यां कामकालावितिसायणीये शांखोक्तेः अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं मृगिवधाने एभिर्भुजिर्भजेन्मंत्रं श्रंतवार्तुतद्दिने आन्वष्टक्यं यदान्यूनं संपूर्णयातिसर्वथेति अशकौत्वाश्वलायनः—अथ श्राद्धेष्टकाः पशुनास्थालीपाकं न चाप्यनडुहोयवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोपेद पामेष्टके तित्वेवानष्टकः स्यादिति मार्गशीर्षादिपुमलमासे सतितत्राष्टकानकार्या चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं नारायणवृत्तौ तथा काठकगृह्येऽपि महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्मव्यपिकर्मयत् स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मलं इति ।

मार्गशीर्षपौर्णिमेच्या पुढील (कृष्णपक्षांतील) अष्टमास अष्टकाश्राद्ध होतं. अशाच पौषादिक. तीन मासांमध्ये हा कृष्ण अष्टमीस अष्टका होतात. कारण, “हेमंत व शिशिर या ऋतूंचे जे चार महिने त्यांच्या कृष्णपक्षांतील अष्टमांचे ठायीं अष्टका कराव्या. अथवा एका अष्टमांचे ठायीं अष्टका (श्राद्ध) करावी.” असें आश्वलायनां ग्रां सत्रांत सांगितलें आहे. सूत्रांतील ‘एकस्यां’ याचा अर्थ—एका अष्टमांचे ठायीं एक अष्टका करावी, असें हरदत्त सांगतो. क्वचित् ठिकाणीं पांचवीही अष्टका सांगितली आहे. कारण, “भाद्रपदांतील अष्टका पितृलोकांत मोठी होईल” असें पाद्मवचन आहे. त्या अष्टकांच्या पूर्वदिवशां सप्तमीचे ठायीं पूर्वद्युःश्राद्धे, आणि अष्टकांच्या दुसऱ्या दिवशीं नवमीचे ठायीं अन्वष्टकाश्राद्धे सांगतो कालादर्शांत—“मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन आणि भाद्रपद या मासांमध्ये कृष्णपक्षांत पूर्वद्युः, अन्वष्टका आणि अष्टका हीं श्राद्धे होतात.” आतां जें विष्णु—“अमावास्या, तीन अष्टका, आणि तीन अन्वष्टका अशीं श्राद्धे होतात.” आणि जें कौर्मोक्त—“अमावास्या बारा आणि पौषादि तीन मासांमध्ये तीन अष्टका कराव्या” असें सांगितलें तें चवथी आवश्यक नाही, असें सुचविण्याकरितां आहे. सर्वथा चवथी नाही असें नाही. कारण, “जे इतर चवथी अष्टका आहे तीसुद्धां प्रयत्नानें करावी.” असें वायुपुराण व ब्रह्मांडपुराणवचन आहे. यावरून चवथी अष्टका आहे. पण तीन अष्टका जशा अनश्य आहेत, तशी चवथी नाही. कारण, “ह्या वर सांगितलेल्या अमावास्या व तीन अष्टका यांचे ठायीं श्राद्ध न करणारा नरकास जातो” असें विष्णुवचन आहे, असें शूलपाणि सांगतो. तीन कोणास व चार कोणास

१ एक अष्टका करावयाची ती माघ पूर्णिमेनंतर येणाऱ्या कृष्ण पक्षाच्या सप्तमी, अष्टमी, नवमी या तीन दिवस करावी. तीन दिवस करण्यास अशक्त असेल तर माघ कृष्ण अष्टमीश्राद्धच करावें. असें अर्मेसिंधुसारांत आहे.

यात्री शास्त्राभेदानं व्यवस्था करावी, हें नक्च होय. वायु व ब्रह्मांडपुराणांत—“पहिली अष्टका अपूर्वांनीं सदा करावी. दुसरी अष्टका मांग्रांनीं सदा करावी. तिसरी अष्टका शाकांनीं करावी. हा अष्टकांग खगणान्या पदार्थांचा विधि समजावा. ह्या तीन अष्टका पांप, माघ, फाल्गुन ह्या मांग्रांनील अनुक्रमानें समजाव्या. अन्वष्टकेचा निर्णय तर पूर्वीच (भाद्रपदप्रकरण) केला आहे. ह्या अष्टकाश्राद्धविधीं अष्टमी अपराह्नव्यापिनी घ्यावी. कारण “आच्छादनपर्यंत श्राद्ध पार्वणासारखें होतें” असें आश्वलायनकाराकेंत पार्वण सांगितलें आहे. पार्वणाचा अपराह्नकाल आहे. पूर्वेयुःश्राद्ध व अन्वष्टकाश्राद्ध यांचा निर्णय अष्टमीच्या अनुरोधानें म्हणजे अष्टकाश्राद्धाच्या पवे दिवशीं पूर्वेयुःश्राद्ध व अष्टकाच्या दुसऱ्या दिवशीं अन्वष्टक्य असा समजावा. म्हणूनच सूत्रकार सांगतो—“अष्टकाच्या पूर्वदिवशीं पितरांका घ्यावें, आणि परदिवशीं अन्वष्टका श्राद्ध करावें” ह्या श्राद्धांत कामकाल विश्वेदेव होनाच. कारण, “दृष्टिश्राद्धाने ठायीं कनुक्ष विश्वेदेव, आणि अष्टमीश्राद्धाने ठायीं कामकाल विश्वेदेव समजावें” असें सायणीयघंथांत शांख्यवचन आहे. अन्वष्टकाश्राद्ध न केलें तर प्रायश्चित्त सांगतो ऋग्विधानांत—“त्या दिवशीं ‘एभिर्भुजिः’ ह्या मंत्राचा शंकरवेदा तर करावा. म्हणजे अन्वष्टकाश्राद्ध जर न्यून असेल तर तें सर्वथा संपूर्ण होतें” ह्या अष्टकाश्राद्धविधी यांंत तसेल तर सांगतो आश्वलायन—“दुसऱ्या दिवशीं अष्टका पशुयागांनीं व श्वार्थापाकांनीं कराव्या. पंधरा वर्षाच्या वृष घ्यावें किंवा अश्वानें वृष जाळावें. आणि ही माझी अष्टका असें म्हणावें; पण अष्टका केल्यावाचन राहें नये.” मार्गशीर्षदिनामागास. सत्यमास पाल्या थयानां त्या मलमागांत अष्टका करूं नये. कारण, तर सांगितलेल्या अथर्वश्रौतसंज्ञांत “अवशा” म्हणजे नागसायने करणपांतान असें म्हणलें आहे, असें नारायणवृत्तींत सांगितलें आहे. तसेच काठकगृह्यांतही—“मलमास, अष्टका गज, उताकमी इत्यादिक जें कर्म स्पष्ट मागाचें नांव घेऊन सांगितलें तें सत्यमागांत वज्र करवें.”

मार्गादिरविवारेपुकास्यंत्रनमुक्तं हेमाद्रौ तत्रभक्ष्याण्युक्तानिसंग्रहेसौरधर्मे पत्रत्रित्वंतुलस्यास्त्रिपलमथृत्तंमार्गशीर्षादिभक्ष्यमुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपलदधितथादुग्धकंगोमसंच त्रित्वंतोयांजलीनां त्रिमरिचकमथोत्रिःपलः सक्तवःस्थुगोमंत्रंशंकरास दुर्विरगितिर्विनाभानुवारिकमेणेति इतिश्रीकमलारभट्टकृतेनिर्णयसिंधीद्वितीयपरिच्छंदेमार्गशीर्षमासःसमाप्तः ॥

मार्गशीर्षमासच परा माहिला-या सनासनाची समाप्ती हेमाद्रौत सांगितलें आहे. त्या व्रताचे ठायीं भक्ष्य पदार्थ सांगतो—संग्रहांत सौरधर्मांत मार्गशीर्षात सनासना नष्टाची नाच पवे सजण करावी. पाषांत तीनपलें पुत, मासांत तीन सुष्ट, तीन पलें मास, तीन पलें दही, तेलीं तीन पलें दूध, वेश्यागांत तीन पलें गोमय, ज्येष्ठांत तीन उदकाजडि, आप घात तीन मिना, सपत्यांत तीन पलें मास, सत्यपदांत गोमय, आर्तिनांत शंकरा, आणि कार्तिकांत उत्तम हांव, याप्रमाणें सनासने सजण करावी” इति मार्गशीर्षमासनिर्णय समाप्त झाला.

धनुःसंक्रमे पराःपोड्यघटिकाःपुण्याः अन्यन्प्राग्धन अत्रोत्सर्जननिर्णयोवक्तव्योप्युपाकर्मप्रसंगात्प्रागेवोक्तः कल्पतरौ भविष्ये पापमासियददंविशुद्धाष्टस्यांबुशोभवेन तस्यांस्नानंजपोहोमस्तर्पणविप्रभोजनम मन्थ्रीतयंकृतंदेवशनसाहस्रिकंभवेन अत्रैवरोहिण्याद्रोयोगोपुण्यतमन्वंतत्रैवज्ञयम पापशुक्लैकादशीमन्वादिः साचोक्ताप्राक् पापपौर्णिमानंतगाःसप्रस्यश्र्मीतवस्योष्टकाद्याःप्रागुक्ताः ।

आनां पापमासकृत्ये सांगतो.

धनुःसंक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ जाणावा. एतद राने निर्णय पूर्वी (प्रथमपरिच्छेदांत) सांगितल्याप्रमाणें समजावा. पंधें उत्सर्जनाचा निर्णय मार्गवत्याचा पण तो उपाकर्मोच्या प्रसंगानें पंधाच सांगितल्या आहे. कल्पतरूंत भविष्यपुराणांत—“शंकर म्हणतात हे देव” पापशुद्ध अष्टमींत जेव्हां बुधवार असेल तेव्हां स्नान, जप, होम, तर्पण, ब्राह्मणभोजन हीं माह्या प्रान्त्ये करवावी. तीं नष्टपट होताना.” या अष्टमीयच रोहिणी व आर्द्रा नक्षत्र यांचा योग अतिशय-पुण्यकारक होतो. असे तथैव सांगितलें आहे. पापशुद्धैकादशी ही मन्वादि होय. तिचा निर्णय पूर्वी सांगितला आहे. पापपौर्णिमेच्या पुढच्या सप्तमी, अष्टमी, नवमी ह्या अष्टकांदेक श्राद्धतिथि पूर्वी (मार्गशीर्षांत) सांगितल्या आहेत.

पापमासाव्यायामर्थोदयोयोगविशेषः तदुक्तंमदनरत्नेमहाभारते अमार्कपातश्रवणंयुक्ताचेत्पौषमाघयोः अर्धोदयःसविज्ञेयःकांठिमूर्धप्रहःसमडति पापमाघयोर्मध्यवर्तिनीपौषीपौर्णमास्युत्तरामावासेत्यर्थइति भट्टाः मदनरत्नेपापस्यचमाघस्यचेत्यर्थउक्तः तत्र हेमाद्रिविरोधान् तत्रहिमाघण्नोक्तः तथा विषैवयोगःशस्त्रोयंतनुरात्रौकादचनेति इदमर्थमन्यनिवंधेवभावार्ज्जुनयाभृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव तेनहेमाघ्याविमते-

रात्रावधोदयोभवत्येव केचित्कुकिंचिदूनोमहोदयइत्याहुस्तन्निर्मूलम् हेमाद्रौमदनरत्नेचस्कांदे माघमा-
याव्यतीपातेआदित्येविष्णुदैवते अर्धोदयंतदित्याहुःसहस्रार्कग्रहैःसमम् तत्रैव माघमासेकृष्णपक्षेपंचदश्यां-
रवेर्दिने वैष्णवेनतुक्क्षेणव्यतीपातेसुदुर्लभे व्रतंकुर्यादित्यग्रेऽन्वयः तत्रैव ब्रह्मविष्णुमहेशानांसौवर्णीःपल-
संख्यया प्रतिमास्तुप्रकर्तव्यास्तद्धर्धेनद्विजोत्तम सार्धशतत्रयंशंभोर्द्रोणानांतिलपर्वतः कर्तव्योपर्वतौविष्णुरुद्र-
योःपूर्वसंख्यया शंभुरत्रब्रह्मा शय्यात्रयंततःकुर्यादुपस्करसमन्वितम् तिलैर्होमंकृत्वाप्रतिमांदद्यादित्युक्तम्
स्कांदे अर्धोदयेतुसंप्राप्तेसर्वगंगासमंजलम् शुद्धात्मानोद्विजाःसर्वेभवेयुर्ब्रह्मसंमिताः यत्किंचिद्दीयतेदानंत-
हानंमेरुसन्निभमिति ।

पौष अमावास्यास्येव अर्धोदय ऋणून विशेष योग होतो. तो मांगतो—मदनरत्नांत महाभारतांत—पौषमाघांची
अमावास्या रविवार, व्यतीपात, श्रवणनक्षत्र यांनी युक्त आर्षा तर तो अर्धोदय योग जाणावा. तो कोटि सूर्यग्रहणांशीं
समान आहे.” पौष व माघ या दोन मासांच्या मधल्या ऋणजे पौषीपौर्णिमेच्या पुढची अमावास्या. अमा अर्थ, असें
नारायणभट्ट मांगतात. मदनरत्नांत पौषाची आणि माघाची अमावास्या. अमा अर्थ मांगितला आहे. तो वरोवर नाही.
कारण, हेमाद्रौचा विरोध येतो. त्या हेमाद्रौंत माघमासाचेच अमावास्यास्येव अर्धोदय योग मांगितला आहे, तो पौर्णिमांत
साम धरून समजावा. तसेंच—“हा योग दिवसासच प्रशस्त आहे. रात्री कधीही प्रशस्त नाही.” हा अर्धा श्लोक इतर निबंध-
ग्रंथांत नसून केवळ निर्णयामृतांत मांगितल्यामुळे निर्मूलच आहे. यावरून हेमाद्रादिमनी रात्री अर्धोदय योग होतच आहे.
केचित् तर “किंचित् न्यून (काही योग कमी) असेल तर तो महोदय होतो” असे मांगतात. तें निर्मूल आहे.
हेमाद्रौंत व मदनरत्नांत स्कांदांत—“माघअमावास्यास्य व्यतीपात, रविवार, श्रवणनक्षत्र ही असतां त्याला अर्धोदय
असें म्हणतात. तो सहस्र सूर्यग्रहणांशीं समान आहे.” तेथेंच—“माघमासांत कृष्णपक्षां अमावास्यास्य रविवार, श्रवणनक्षत्र,
आणि व्यतीपात असतां व्रत करावें.” तेथेंच—“ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर यांच्या पेलप्रमाण मूर्त्तींच्या प्रतिमा कराव्या अथवा
त्याच्या अर्धानं कराव्या. आणि साडेतीनशें द्रोणपरिमित तिलांचा पर्वत ब्रह्मदेवप्रोत्यर्थ करावा. विष्णु व रुद्र यांचेकरितां
दोन तिलपर्वत बरील प्रमाणानं करावे. नंतर उपसाहित्यासहित तीन शय्या कराव्या. त्यांजवर प्रतिमांचें पूजन करून
तिलांनीं होम करून प्रतिमांचें दान करावें ” असे मांगितलें आहे. स्कांदांत—“अर्धोदय प्राप्त झाला असतां सर्व उदक
गंगासम होय. सर्व ब्राह्मण ब्रह्मतुल्य शुद्धात्मे होत. जे कांहीं दान द्यावे, तें मेरुतुल्य होतें ”

अत्रदानविशेषोनिर्णयामृतेस्कांदे चतुःषष्टिपलमुख्यममंत्रनत्रकारयेत् चत्वारिंशत्पलंवाथपंचविंश-
तिरेववा अमंत्रपात्रम् तच्चकांस्यमयमित्युक्तंतत्रैव एवंसुघटितंकार्यकांस्यभाजनमुत्तममिति तथा निधायपायसं
तत्रपद्ममष्टदलंलिखेत् पद्मस्यकर्णिकायांतुर्कर्मपात्रंसुवर्णकम् तदभावेतदर्धवातदर्धवापिकारयेत् भूमौ-
तुतंडुलैःशुद्धैःकृत्वाष्टदलमुत्तमम् अमंत्रस्थापयेत्तत्रब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् तेषांपूजाततःकार्याश्वेतमाल्यैस्तु-
शोभनैः वस्त्रादिभिरलंकृत्यब्राह्मणायनिवेदयेत् मंत्रस्तु सुवर्णपायसामंत्रंयस्मादेतन्नयमीमयम् आपतेस्तारकं-
यस्मात्तद्गृहाणद्विजोत्तम समुद्रमेखलांपृथ्वीसम्यग्दातुश्चयत्फलम् तत्फलंभतेमर्त्यःकृत्वेदंदानमुत्तममिति
इतिश्रीकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौपौषमासः ॥

या अर्धोदयीं विशेष दान मांगतो—निर्णयामृतांत स्कांदांत—त्या अर्धोदयीं पर्वचेठायीं चौंसष्ट पलप्रमाण सुदृढ
पात्र करावें. अथवा चाळीस पलांचें किंवा पंचवीस पलांचें पात्र करावें.” “तें पात्र कांस्यमय असावें असें तेथेंच सांगि-
तलें आहे तें असें—“असें चांगलें घडलेलें कांस्यपात्र उत्तम करावें.” तसेंच “त्या पात्रांत पायस ठेऊन त्यांत अष्टदल
कमल काढावें. त्याच्या कर्णिकेचे ठायीं एककर्म सुवर्ण ठेवावें. तितकें नसेल तर त्याचें अर्ध अथवा अर्धाचें अर्ध ठेवावें.
भुईवर शुद्ध तंडुलांनीं उत्तम अष्टदल करून त्यावर तें ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक पात्र ठेऊन नंतर त्या ब्रह्मविष्णुशिवांची
(म्हणजे कांस्यपात्रावर ब्रह्माची, पायसावर विष्णूची, सुवर्णावर शिवाची) पूजा सुंदर श्वेतपुष्पांनीं करावी, आणि वस्त्रादिकांनीं
अलंकृत करून तें ब्राह्मणाला द्यावें. दानमंत्रः—सुवर्णपायसामंत्रं यस्मादेतन्नयमीमयम् आपतेस्तारकं
यस्मात्तद्गृहाण द्विजोत्तम ॥ समुद्रवलयंकित पृथ्वीच्या उत्तम दानानें दाखाला जें फल प्राप्त होतें तें फल मनुष्यास हें उत्तम
दान करून प्राप्त होतें” इति पौषमासनिर्णय समाप्त झाला.

१ ऐशीं गुंजा म्हणजे एक कर्म. चार कर्म म्ह० एक पल होय. २ द्रोण म्हणजे कोठें चार आढकांचा, कोठें आठ आढ-
कांचा सांगितला आहे. चार शेर म्हणजे एक आढक होतो.

अथमाघस्नानम् तत्रविष्णुः तुलामकरमेवेषुप्रातःस्नायीसदाभवेत् हविष्यब्रह्मचर्यमाघस्नानेमाहात्म्य-
लमिति सौरमासउक्तः ब्राह्मेतुमावनेउक्तः एकादश्यांशुक्रपक्षेपौषमासेसमारभेत् द्वादश्यांपौर्णमास्यांवाशु-
क्रपक्षेसमापनमिति पाद्मेपि पौषस्यैकादशीशुक्रामारभ्यस्थंडिलेशयः मासमात्रनिराहारस्त्रिकालंस्नानमाच-
रेत् त्रिकालमर्चयेद्विष्णुत्यक्तभोगोजितेंद्रियः माघस्यैकादशीशुक्रायावद्विद्याधरोत्तमेति त्रिकालस्नानंमासोप-
वासविषयम् निराहारइत्युक्तेः पृथ्वीचंद्रोदयेत्वन्यथोक्तम् विष्णुः दर्शवापौर्णमासीवाप्रारभ्यस्नान-
माचरेत् पुण्यान्यहानित्रिंशत्तुमकरस्थेदिवाकरइति अत्रदर्शमितिशुक्रादिमुख्यचंद्राभिप्रायेण अयंतुपक्षो-
नेदानींप्रचरति ।

आतां माघमासांतील कृत्यं सांगतो.

माघस्नान—त्याविषयीं विष्णु—“तृत्, मकर आणि भेष या संक्रांतींत दररोज प्रातःस्नान करावें. मकरसंक्रांतिरूप
माघांत स्नान करणाऱ्या हविष्यभक्षण व ब्रह्मचर्यव्रतधारण हीं मोठें फल देणारी आहेत.” ह्या वचनांत स्नानाविषयीं
मकरसंक्रांतिरूप मीर माघमास सांगितला आहे. ब्रह्मपुराणांत तर स्नानाविषयीं गावन (तीस दिवसांचा) माघमास
सांगितला आहे, तो असा—“पौषमासाचे शुक्र एकादशीस माघस्नानाचा आरंभ करावा. आणि माघ शुक्रपक्षाचे द्वादशीस
किंवा पौर्णिमेस माघस्नानाची समाप्ति करावी.” पद्मपुराणांतही—“पौष शुक्र एकादशीपासून माघ शुक्र एकादशीपर्यंत
एक महिनाभर दररोज भूमीवर राशन व निराहार करून त्रिकाल स्नान करावें. आणि सारे उपभोग टाकून जितेंद्रिय होऊन
त्रिकाल विष्णूचें पूजन करावें.” या वचनांत त्रिकाल स्नान सांगितलें तें जो माघपर्यंत उपवास करणारा असेल त्याला
गमजावें. कारण, तेथेंच ‘निराहार करून’ असें सांगितलें आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत तर वेगळ्याच प्रकारानें सांगितलें आहे,
तें असें—विष्णु—“पौष अमावास्येस किंवा पौर्णिमेस प्राग्भ करून तीस दिवस स्नान करावें. सूर्य मकरास ज्या मासांत
अगतो त्या मागाचे तीस दिवस पुण्यकारक आहेत.” या वचनांत अमावास्येस आरंभ करून असें जें सांगितलें तें शुक्र
प्रतिपदेपासून मुख्य चंद्रमास म्हणून सांगितलें आहे. स्नानाविषयीं मुख्य चंद्रमास धरणें हा पक्ष सांप्रत प्रचारांत नाही.

अत्राधिकारिणोभविष्ये ब्रह्मचारीगृहस्थोवावानप्रस्थोथर्माभक्तुकः बालवृद्धयुवानश्चनरनारीनपुंसकाः
स्नान्वासाधेशुभेर्तार्थेप्राप्नुवंतीप्सितंफलम् पाद्मे सर्वेऽधिकारिणोह्यत्रविष्णुभक्तौयथानुप ब्राह्मे उष्णोदके-
नवास्नानमशक्येमनिकुर्वते दृढेपुमर्वात्रपुउष्णोदंनविशिष्यते वैष्णवामृतेगौडनिबंधेचस्कांदे
पौष्यांतुममतीतायांवाचद्ववतिपूणिमा माघमासस्यनात्रद्विपूजाविष्णोर्विधीयते पितृणांदेवतानांचमूलकंनैव-
दापयेत् ब्राह्मणोमूलकंभुक्त्वाचरेच्चांद्रायणंत्रतम् अन्यथायातिनरकंअत्रविदूशूद्रावच वर्जनीयंप्रयत्नेनमूलकं-
मदिरोपसम यदानुमाघोमलमासोभवतितदाकाम्यानांतत्रसमाप्तिनियेधान्मासद्वयेस्नानंतत्रियमाश्रकार्याः
मासोपवासचंद्रायणादितुमलमासग्वसमापयेत् तदुक्तंदीपिकायाम् नियतत्रिंशदिनत्वाच्छुभेमास्थार-
भ्यसमापयेतमलिनेमासोपवासव्रतमिति मामोपवासपदंचांद्रायणादेरूपलक्षणम् ।

या माघस्नानाविषयीं अधिकारी सांगतो भविष्यांत—“ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थ, संन्यासी, बालक, वृद्ध,
तरुण, पुरुष, स्त्रिया, नपुंसक हे सारे माघमासांत शुभ तीर्थांचे ठायीं स्नान करून असीष्ट फल पावतात.” पाश्चांत—
“जसे विष्णूची भक्ति करण्याविषयीं सारे अधिकारी आहेत तसे माघस्नानाविषयीं सारे अधिकारी आहेत.” ब्राह्मांत—
“शीतोदकां स्नानाविषयीं शक्ति नमनां उष्णोदकां स्नान करितान. सारे शरीरावयव दृढ असतां उष्णोदक विशेष
फलदायक होत नाही.” वैष्णवामृतांत व गौडनिबंधांत स्कांदांत—“पौषी पौर्णिमेपासून माघी पौर्णिमा येई तोपर्यंत
दररोज विष्णूची पूजा करावी. ह्या माघमासांत पितृगंला व देवांला मुळा अर्पण करूं नये. ब्राह्मणानें मुळा भक्षण केला
असतां चांद्रायण व्रत करावें. चांद्रायण केलें नाही तर नरकाम जाईल. अत्रिय, वैश्य, शूद्र यांनी देखील मयासारखा मुळा
असल्यामुळें तो प्रयत्नानें वर्ज्य करावा.” ज्यावेळां माघ मलमास येईल त्यावेळां, मलमासांत काम्य व्रतांचे समाप्तीचा निषेध
असल्यामुळें दोन मासांत स्नान व स्नानाचे नियम करावे. मासपर्यंत उपवासव्रत आणि चांद्रायणव्रत इत्यादिकांची समाप्ति
तर मलमासांतच करावी. तें सांगतो दीपिकेंत—“मासोपवासव्रतांचे दिवस नियमित (ठरलेले) तीस असल्यामुळें
शुद्धमासांत तें आरंभून मलमासांत समाप्त करावें” ह्या दीपिकेच्या वचनांतील ‘मासोपवास’ या पदानें उपलक्षणेकरून
चांद्रायणादिक ध्यावें.

स्नानारंभेचमंत्रोविष्णुनोक्तः तत्रचोत्थायनियमंगृहीयाद्विधिपूर्वकम् माघमासस्मिन्पूर्णेस्नातुं

देवमाधवः सूर्यस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेत्सीति प्रत्यहं मंत्रश्च पाद्मे दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोष-
णाय च प्रातः स्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् मकरस्थे रवौ माघे गोविंदाच्युत माधव स्नानेनानेन मे देव यथो-
क्तफलदो भव इमं मंत्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वित इति प्रत्यहं सूर्यार्घ्यम् मंत्रस्तु पृथ्वीचंद्रोदये पाद्मे सवि-
त्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ।

स्नानारंभाविषयी मंत्र सांगतो विष्णु—“ज्या दिवशी स्नानाचा आरंभ करावयाचा त्या दिवशी पहाटेस उठून स्नानाचा
नियम धरावा, तो असा—‘माघमासमिमं पूर्ण स्नास्येह देव माधव ॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य
चेत्सीति.’ प्रतिदिवशी स्नानाचा मंत्र सांगतो पद्मपुराणांत—“दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च ॥
प्रातः स्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविंदाच्युत माधव ॥ स्नानेनानेन
मे देव यथोक्तफलदो भव ॥” ह्या मंत्राचा उच्चार करून मौन धारण करून स्नान करावे.” स्नान केल्यावर प्रतिदिवशीं
सूर्याला अर्घ्य द्यावे. अर्घ्याचा मंत्र पृथ्वीचंद्रोदयांत पाश्चांत—‘सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम ॥
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा’

स्नानकालश्च सूर्योदयः त्रिस्थलीसेनौ मकरस्थेरवौ यो हि न स्नात्यभ्युदितेरवा विनि माघमासे रदं त्यापः-
किंचिदभ्युदितेरवा विनि च पाद्मवचनान् संप्राप्ते माघमासे तु न पम्बि जनवद्भ्यः कोऽंति सर्ववारीणि मम दूच्छति-
भास्करे पुनीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशय इति नारदीयोक्तेः यो माघमास्युपसिम्य कगाभितमे स्नानं स-
माचरति चारु नदी प्रवाहे उद्धृत्य सप्रपुरुषानपितृमातृवंश्यान् स्वर्गप्रयात्य मरं दह धरो नरोऽसौ इति भविष्यो-
त्तरवचनाच्च ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः अरुणोदये तु संप्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः माधवांघ्रियुगंध्याय नयः-
स्नातिसुरपूजित इति तथा अरुणोदयसागभ्यप्रातः कालावधिं प्रभो माधव स्नानवनां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा उत्त-
मंतु सनक्षत्रं मध्यमं लुप्ततारकम् सवितर्युदिते भूपततो हीनं प्रकीर्तितमिति तेनात्र शक्त्यपेक्षया न्यवस्था इदं च-
स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गंगाया मुनसंगमे महस्त्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी पश्चि-
माभिमुखी गंगा कालिंदा सहसंगता हंतिकल्पकृतं पापं समाधेन पदुर्लभेत्यादि पाद्मादिवचोभ्यः विस्तरस्तु म-
त्पितामहकृतप्रयागसेनौघेयः ब्राह्मे यत्र कुत्रापि यो माघप्रयागं स्मरणां न्वितः करोति मज्जनं तीर्थे सल-
भेद्भागमज्जनम् तथा समुद्रेऽप्यतिप्रशस्तम् तदुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये प्रभासवंडे माघमासि च यः स्नायान्नैरतये-
ण भावतः पौंडरीकफलं तस्य दिवसे दिवसे भवेत् माघस्नानं काम्यमेवेति भट्टाः विष्णवादिवाक्ये सदा वश्यं श-
ब्दाभित्यत्वावगतेर्नित्यकाम्यमिति तु युक्तम् ।

स्नानाचा काल म्हणजे सूर्योदय होय. कारण, त्रिस्थलीसेनौ—“मकराय सूर्य अगतां जो मनुष्य सूर्योदयकालीं
स्नान करित नाही त्यास पाप लागते.” व “माघमासांत किंचित् सूर्योदय झाला असतां उदकें शब्द करितात. की, ब्रह्महत्या
करणारा किंवा सुरापान करणारा अशा कोणा कोणा महापाप्यास पवित्र करूं ?” असेंही पाद्मवचन आहे. आणि “तपस्वी
लोकांस प्रिय असा माघमास प्राप्त असतां सूर्य उदय पावते वेळीं सारीं उदकें ओरटनात की, आम्हीं त्रिविध (कायिक,
वाचिक, मानसिक) अशा साऱ्या पापांस पवित्र करितों, यांत संशय नाही” असें नारदीय वचन आहे. आणि “जो मनुष्य
माघ मासांत प्रातःकालीं सूर्यकिरण पडलेल्या अशा सुंदर नदीप्रवाहांत स्नान करितो तो मनुष्य पित्याच्या व मातेच्या वंशांतील
सात पुरुषांचा उद्धार करून देवशरीर प्राप्त होऊन स्वर्गास जातो.” असें भविष्योत्तर वचनही आहे. ब्रह्मपुराणांत
तर स्नानाचा काल अरुणोदय सांगितला आहे. तो असा—“स्नानाचा काल अरुणोदय प्राप्त झाला असतां जो मनुष्य
भगवंताच्या चरणकमलद्वाराचें ध्यान करून स्नान करितो त्याची देव पूजा करितात.” तसेंच—“अरुणोदयाला आरंभ करून
प्रातःकालपर्यंत माघस्नान करणाऱ्याला पुण्य प्राप्त होतें: त्या पुण्याचा उत्तम मध्यम कनिष्ठ भाव अनुक्रमानें सांगतो—नक्षत्रें
दिसत आहेत त्या वेळीं स्नान उत्तम पुण्यकारक. नक्षत्रें दिसेनाशीं झाल्यावर जें स्नान तें मध्यम पुण्यकारक. आणि सूर्याचा
उदय झाल्यावर जें स्नान तें कनिष्ठ पुण्यकारक सांगितलें आहे.” या स्नानाचा वर सांगितलेल्या पाद्म-नारदीय—भविष्योत्तर
वचनांत सूर्योदय काल सांगितला. आणि ब्राह्मांत अरुणोदय काल सांगितला. यावरून या दोन कालांची शक्तीप्रमाणें व्यवस्था
जाणावी. म्हणजे सशक्तांस अरुणोदय काल व अशक्तांस सूर्योदय काल समजावा. हें माघस्नान प्रयागाचे ठायीं अति प्रशस्त
आहे. कारण, “गंगायमुनेच्या संगमाचे ठायीं काशीपेक्षां शंभरपटीनें अधिक आहे. ती गंगा जेथें पश्चिमवाहिनी आहे येथें
खडसपड पुण्य देणारी आहे. यमुनेस मिळून पश्चिमाभिमुखी झालेली गंगा कल्पपर्यंत केलेल्या पापाचा नाश करिते. ती

पश्चिमाभिमुखी गंगा माघमासांत मिलणें दुर्लभ आहे” इत्यादिक पञ्चपुराणादि वचने आहेत. याचा विस्तार आमच्या पितामहांनीं (नारायणभट्टांनीं) केलेल्या प्रयागसेतुंत पाहावा. ब्राह्मांत—“जो मनुष्य माघमासांत कोणत्याही तीर्थांत प्रयागाचें स्नान करून स्नान करितो, त्याला गंगास्नानाचें फल प्राप्त होतें.” तसेंच हें माधस्नान समुद्रांतही अति प्रशस्त आहे. तें सांगतो—पृथ्वीचंद्रोदयांत प्रभासखंडांत—“जो मनुष्य माघमासांत शुद्ध भावांनं निरंतर स्नान करितो त्यास प्रतिदिवशीं कमलार्पणाचें फल प्राप्त होतें.” हें माधस्नान काम्यच आहे, असें नारायणभट्ट सांगतात. विष्णु इत्यादिकांच्या वचनांत ‘सदा’ ‘अवश्य’ असे शब्द असल्यावरून निलत्वाचें बोधन असल्यामुळे आणि इतर बहुत वचनांत फल सांगितल्यामुळे नित्य व काम्य, असे म्हणणें युक्त आहे.

मासपर्यंतस्नानासंभवेतुच्यहमेकादवास्नायान् महामार्थीपुरस्कृत्यसत्त्वौतत्रदिनत्रयमिति लिङ्गात् अस्मिन् योगेत्वशक्तोपिस्नायादपिदिनत्रयम् प्रयागेमाघमासेतुच्यहंस्नानस्ययत्फलम् नाश्वमेधसहस्रेणतत्फलंलभते भुवीतिपाद्मादिवचनान् अत्रमकरसंकमोश्मप्रमीमाधीतिच्यहमित्येके माघशुद्धदशम्यादीत्यन्ये मकराद्यद्यहइत्यपरे माघमासाद्यद्यहइतिकेचित् त्रयोदश्यादीतिवद्वः महामार्थीपुरस्कृत्यसत्त्वौतत्रदिनत्रयमितिपाद्मोक्तेः एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किंचिदिनत्रयमितिभट्टाः तत्त्वंतुसंदिग्धेषुवाक्यशेषादितिन्यायाश्रयोदश्याद्येवेति प्रयागंविनापिपाद्म अस्मिन्योगेत्वशक्तोपिस्नायादपिदिनत्रयमिति ।

एक मासपर्यंत स्नानाचा अभिप्राय असेल तर तीन दिवस किंवा एक दिवस स्नान करावें. कारण, “महामार्थी पौर्णिमा पुढें करून तीन दिवस स्नान करितो त्याला” असें पाद्मांत तीन दिवस स्नान केल्याचें बोधक वचन आहे. “महामार्थी व प्रयाग या थोगाचे ठायीं स्नानार्थपूर्वीं अशक्त असलेल्यांनीं माघमासांत तीन दिवस स्नान करावें. माघमासांत प्रयागाचे ठायीं तीन दिवस स्नान केल्यानें जें फल प्राप्त होतें तें फल गृहस्थ अश्वमेध केल्यानें भूमीवर प्राप्त होत नाहीं.” असें पञ्चपुराणादि वचन आहे. या माधस्नानार्थपूर्वीं तीन दिवस यावयाचे ते मकरसंक्रांति, रथसप्तमी, मार्गशीर्ष पौर्णिमा हे होय, असें कितीएक सांगतात. माघ शुद्धदशमी, एकादशी, द्वादशी, असे अन्य सांगतात. मकराचे पहिले तीन दिवस, असें इतर म्हणतात. माघ मासाचे पहिले तीन दिवस, असें केचित् म्हणतात. त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णिमा, असें बहुत विद्वान् सांगतात. कारण, ‘महामार्थी पुढे करून तीन दिवस स्नान करितो त्याला’ हे वर सांगितलेले पाद्म वचन आहे. हें वचन अश्वमेध (झालेल्या अश्वानें प्रातःपादक) असल्यामुळे कोणते तरी तीन दिवस स्नान करावें, असें भट्ट सांगतात. खरा प्रकार म्हणजे तर—‘मार्गशीर्षास्य वायव्योपानं त्रिणय समजावा’ या श्रुत्यानें ‘महामार्थी पुरस्कृत्य’ या वर सांगितलेल्या पाद्म श्रुत्यावरून त्रयोदश्यादि पौर्णिमापर्यंतचे तीन दिवस स्नानाचे. प्रयागावांचूनही सांगतो पाद्मांत—या योगावर (प्रयागाचे ठायीं) स्नानार्थपूर्वीं अशक्त असलेल्यांनीं तीन दिवस स्नान करावें.

माधस्नाननियमास्तु नारदीये नवहस्तिसेवयेन स्नानोद्यस्नानोपिवगनने होमार्थसेवयेद्विंशतीतार्थनकादाचन अह्न्यहनिदानव्यास्तिलाः शर्करान्विताः त्रिभागस्तु नित्यानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः अनभ्यंगीवराहो हे सर्वमासंनयेद्वृत्ती तथा अप्रावृत्तशर्गरस्तुयः कष्टस्नानमाचरेत् पदपदे श्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः तथा शंखचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् बह्निहुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाग्रानो भवेत् भूशय्याब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वच्छासर्वत्र कथ्यते तथा तिलस्नार्या तिलोद्वर्नी तिलहोमी तिलोदकी तिलभुक्तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशना इति प्रयागासंभवेकादश्यां दशश्वमेधोत्तरस्थ प्रयागार्तीर्थे स्नानमुक्तं काशीखंडे काश्यपवेप्रयागे येतपस्तिस्नाति मानवाः दशश्वमेधजनितं फलं ते पांभवेद्भुवमिति ।

माधस्नानाविषयीं नियम सांगतो, नारदीयांत—“स्नान केल्यावर किंवा स्नान करण्याचे पूर्वीं देखील अग्नीचें सेवन (अग्नीचा संक) करूं नये. होमाकरितां अग्निसेवन करावें. शीत जाण्याकरितां कधीही अग्नि सेवन करूं नये. दररोज शर्करा युक्त तीळ याचें. त्यांत तीन भाग तीळ आणि एक भाग साखर असावी. व्रतस्थानें अभ्यंग केल्यावांचून सारा महिना घालवावा.” तसेंच—“जो मनुष्य शर्गरावर प्रावरण न घेतां कष्टानें जाऊन स्नान करील त्याला पदापदाचे ठायीं अश्वमेधाचें फल प्राप्त होईल.” तसेंच—“शंख, चक्र धारण करणाऱ्या देव माधवाचें पूजन करावें. यथाविधि अग्नीत होम करून नंतर एकभुक्त करावें. सशक्त असलेल्यांनीं भूमीवर शयन व ब्रह्मचर्य धारण करून स्नान करीत असावें. ब्रह्मचर्य, भूशयन इत्या-

१ महामार्थी कोणती त्याचा निर्णय मार्गशीर्षपौर्णिमेच्या निर्णयप्रसंगी पाहावा. २ तिलस्नायीपदेन तिलयुक्तोदकेन स्नानं तिलहोमपदेनाः शुतलक्षतिलहोमाचारमकस्यग्रहमलस्वामिंसंग्रहः तिलोदकीति तिलयुक्तोदकेन देवपूजातपसां संध्यादिकंपानं च कार्वायमिति । इति धर्मसिद्धिः ।

रिकाविषयीं अशक्त असेल त्यानें यथेच्छ वर्तन करावें.” तसेंच—“तिलयुक्त उदकानें स्नान, तीळ वाटून अंगास लावणें, तिळांचा होम, तिलोदकतर्पण, तिल भक्षण, आणि तिळांचें दान याप्रमाणें सहा प्रकारचा तिळांचा उपयोग पापनाश करणारा आहे.” माघ मासांत प्रयागास जाणें न घडेल तर काशींत दशाश्वमेध तीर्थाचे उत्तरेस असणाऱ्या प्रयागतीर्थांत स्नान सांगतो काशीखंडांत—“काशीतील प्रयागतीर्थांत माघमासामध्यें जे स्नान करितात त्यांस निश्चयानें दशाश्वमेधाचें फल प्राप्त होतें.”

स्नानोत्तरमदनपारिजानेविष्णुः काष्ठमौनान्नमस्कृत्यपूजयेत्पुरुषोत्तमम् अवश्यमेवकर्तव्यमाघस्नानमिति श्रुतिः भविष्ये तैलमामलकाश्चैवतीर्थेदेयास्तुनित्यशः ततःप्रज्वालयेद्वह्निसेवनार्थद्विजन्मनाम् एवं स्नानावसानेनुभोज्यंदेयमवारितम् भोजयेद्विजदांपत्यंभूपयेद्वस्त्रभूपणैः कंबलाजिनरत्नानिवासांसिविविधानि च चोलकानिचदेयानिप्रच्छादनपटास्तथा उपानहौतथागुप्रमोचकौपापमोचकौ अनेनविधिनादद्यान्माधवः प्रीयतामिति पाद्मे भूमौशयीतहोतव्यमाज्यंतिलसमन्वितम् तथा अन्नंचैवयथाशक्त्यादेयंमाघेनराधिप सुवर्णरक्तिकामात्रंदद्याद्वेदविदेतथा माघातेनुविशेषो नारदीये माघावसानेमुभगोपडसंभोजनंमृतम् सूर्यो मेप्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरंजनः दंपत्योर्वाससीसूक्ष्मेमप्रधान्यसमन्विते त्रिंशत्तुमोदकादेयाः शर्करातिलसंयुक्ता इति अत्रैकादशीविधानेनव्रतस्योद्यापनंतथेति पाद्मवचनान् पूर्वेऽह्नि उपवासपूजनादिकृत्वापरेऽह्नितिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतंहोमंकृत्वा सवित्रे प्रसवित्रे चेति पूर्वोक्तं मंत्रमुक्त्वा दिवाकरजगन्नाथप्रभाकरनमोस्तुते परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते इति समापयेदितिसंक्षेपः ।

स्नान केल्यानंतर कर्तव्य सांगतो—मदनपारिजानांत विष्णु—“काष्ठमौनांला नमस्कार करून पुरुषोत्तमाची पूजा करावी. हें माघस्नान अवश्य करावें, असें वेदांत सांगितलें आहे.” भविष्यपुराणांत—“स्नानानंतर तीर्थांचे ठायीं तेल व आंवळे हे दररोज द्यावे. नंतर ब्राह्मणांला शेकण्याकरितां अग्नि पेटवावा. याप्रमाणें एकमास स्नान समाप्त झाल्यानंतर मुक्तद्वार भोजन घालावें. ब्राह्मणांचे दांपत्यास भोजन घालावें, आणि वस्त्रें व भूषणें यांनीं भूषित करावें. धाबळी, कृष्णाजिन, रत्नें, नाना प्रकारचीं वस्त्रें, चोळणे, प्रावरणवस्त्रें, पायांनींल जोडा, पलंगपोस हे सर्व, देव माधवाच्या प्रीत्यर्थ ब्राह्मणास द्यावे.” पाद्मांत—“भूमीवर शयन करावें. तिलसहित घुताचा होम करावा.” तसेंच—“माघमासांत आपल्या शक्तीप्रमाणें अन्न समर्पण करावें. वेदवेत्त्या ब्राह्मणास एक गुंज सुवर्ण द्यावें.” माघमासाचें अंती विशेष सांगतो नारदीयांत—“माघमासाचें शेवटीं ‘सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरंजनः’ असें म्हणून पडरंगाचें भोजन द्यावें. आणि दंपत्याला सप्त धान्यांसहित दोन सूक्ष्म वस्त्रें द्यावीं. शर्करा व तीळ यांचें तीस लाडू करून ते द्यावे.” “एकादशी व्रताच्या विधीनं माघस्नानरूप व्रताचें उद्यापन करावें.” ह्या पद्मपुराण वचनावरून माघस्नानसमाप्तीच्या पूर्वदिवशी उपवास, पूजा इत्यादि करून दुसऱ्या दिवशीं तिल, चर, आज्य ह्या तीन द्रव्यांनीं अष्टोत्तरशत होम करून ‘सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ॥’ ह्या पूर्वोक्त मंत्राचा उच्चार करून ‘दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तुते ॥ परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते’ ह्या मंत्रानें समाप्त करावें. असा हा माघस्नानविधि संक्षेपानें सांगितला आहे.

मकरसंक्रांतौ हेमाद्रि मते परतश्चत्वारिंशद्वटिकाः पुण्याः त्रिंशत्कर्काटकेनाड्योमकरेतुदशाधिका इति ब्रह्मवैवर्तात् माधवमतेनुविंशतिः त्रिंशत्कर्काटकेपूर्वामकरेविंशतिः परेति वृद्धवसिष्ठोक्तेः यदा तु सूर्यास्तात्पूर्वसंक्रांतिर्भवति तदुभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः रात्रौ तु प्रदोषे निशीथं वामकरसंक्रमे माधवमते द्वितीयदिन एव पुण्यम् यद्यस्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः प्रदोषे वा धरात्रे वा स्नानं दानं परे हनीति वृद्धगार्ग्यवचनात् अस्तमयं प्रदोषः प्रदोषे पूर्वरात्रे कार्मुकं तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः प्रदोषे वा धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनीति भविष्योक्तेश्च तदा भोगः परे हनीति हेमाद्रौ पाठः कालादर्शनं निर्णयामृतमदनपारिजातादयोप्येवमूचुः दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्विंशते यत्तु हेमाद्रिणाऽऽद्यो वाशब्दो यथार्थे द्वितीयस्तथार्थे यथा प्रदोषे पूर्वेषु स्तथार्थरात्रे परेऽह्नीत्युक्तम् तस्मै नमोस्तु तेन परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति दिनद्वये पुण्यनिरासार्थं अर्धरात्रप्रहणम् हेमाद्रिस्मृत्यर्थं सारानंत भट्टादि मते तु निशीथात् पूर्वपश्चात्संक्रांतौ पूर्वदिने परदिने वा पुण्यं धनुर्मीनावति क्रम्य कन्यांच मिथुनं तथा पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा दिनांतं पंचनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः-

स्मृताः उदयेपितथापंचदैवेपिऽथेचकर्मणीतिस्क्रांदवचनान् पूर्वापरविभागेनेतिमकरकर्मभिन्नविषयम् पूर्वोक्तवचोविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् पडशीतिसुखेऽतीते अतीतेचोत्तरायणे इत्यादिविरोधाच्च तेन वैक-
वाक्यतयाऽयमर्थः रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि उदये पंचनाड्यः पुण्याः रात्रावपरभागे कर्मसंक्रमे पूर्वदि-
नांते पंचनाड्य इति एवं सर्वेषामविरोधः मकरे सामान्येन परदिने पुण्यत्वेऽपि पुण्यातिशयार्थमिदम् ।

मकरसंक्रांतीचे ठायीं हेमाद्रीच्या मतीं पुढच्या चाळीं षटिका पुण्यकाळ. कारण, “कर्मसंक्रांतीचे ठायीं तीस घटिका पुण्यकाळ. आणि मकराचे ठायीं दहा घटिका अधिक पुण्यकाळ” असें ब्रह्मवैवर्ते वचन आहे. माधवाच्या मतीं तर मकराचे ठायीं वीस घटिका पुण्यकाळ. कारण, “कर्मसंक्रांतीचे ठायीं पहिल्या तीस घटिका आणि मकराचे ठायीं पुढच्या वीस घटिका पुण्यकाळ.” असें बृद्धवसिष्ठाचें वचन आहे. ज्या वेळीं सूर्याच्या पूर्वी दिवसा संक्रांत होते त्या वेळीं दोघांच्या (हेमाद्रीच्या व माधवाच्या) मतीं पूर्वांच पुण्यकाळ. आतां रात्रीं संक्रांत झाली तर मग ती प्रदोषकाली झालेली अगो किंवा मध्यरात्री झालेली अगो, मकरसंक्रांतीचे ठायीं माधवाच्या मतीं दुसऱ्या दिवशींच पुण्यकाळ. कारण, “जर प्रदोषकाली किंवा पूर्वरात्री अथवा मध्यरात्री सूर्य मकराग जाईल तर खान व दान परदिवशीं करावें” असें बृद्धगार्ग्य-
वचन आहे. ह्या वचनांतील ‘अन्तमय’ शब्दाचा अर्थ प्रदोष, आणि ‘प्रदोष’ शब्दाचा अर्थ पूर्वरात्र समजावा. आणि ‘प्रदोषकाली’ अथवा अर्धरात्री सूर्य धनुःसंक्रांतीला सोडून मकराग गेला तर खान, दान परदिवशीं करावें” असें भविष्यपुराणवचनही आहे. ‘खानं दानं परेऽह्नि’ या श्यानीं ‘तदा भोगः परेऽह्नि’ अगा हेमाद्रीन पाठ आहे. अर्थ — त्या वेळीं भोगी परदिवशीं करावी. कालादर्श, निर्णयामृत, मदनपारिजात इत्यादिक ग्रंथकारही असेंच सांगते झाले. दाक्षिणात्य लोक हेंच मत (परदिवशांच पुण्यकाळ) घेतात. आतां जे हेमाद्रीनं सांगितलें की, ‘प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा’ या ठिकाणचा पहिला ‘वा’ शब्द ‘तथा’ शब्दाच्या अर्था आहे, व दुसरा ‘वा’ शब्द ‘तथा’ शब्दाच्या अर्था आहे, म्हणजे जसा प्रदोषकाली संक्रांत अगता परदिवशीं पुण्यकाळ तसा अर्धरात्री संक्रांत अगता परदिवशीं पुण्यकाळः असें सांगितलें, त्या हेमाद्रीला नमस्कार अगो. वायनाचा अगो अर्थ करणें बरोबर नमल्यामुळे प्रदोषकाली संक्रांत झाली अमतां इतर वचनानें अप्राप्त अगो परदिवशीं पुण्यकाळ सांगण्याकरितां ‘प्रदोष’ या पदानें ग्रहण केलें आहे. अर्धरात्री संक्रांत अमतां इतर सामान्य वचनानां दानं दानम् (पुत्रे व पर) पुण्यकाळ प्राप्त झाल्या त्याच्या निराकरणार्थे ‘अर्धरात्रे वा पदाने ग्रहण केलें आहे. हेमाद्री, स्मृत्यर्थसार, अनेकभट्ट इत्यादिकांच्या मतीं तर मध्यरात्रीच्या पूर्वी व पश्चात् संक्रांत झाल्या अगतां पूर्वदिवशी किंवा परदिवशी पुण्यकाळ. कारण, “धनु, मीन, कन्या, मिथुन या संक्रांतीला सोडून पूर्वरात्री किंवा अपररात्री जर पुढच्या संक्रांतीस (मकर, मेष, तूळ, कर्क यास) सूर्य जाईल तर पूर्वदिवसाचे अर्ती पांच घटिका व पर दिवसाचे उदशी तशाच पांच घटिका देव पित्र्य कर्माधिपती पुण्यकाळ सांगितला आहे” असें स्क्रांदवचन आहे. आता ‘पूर्वरात्रे व अपररात्री’ असें जे म्हणले तें मकर व कर्क यांचाच उत्तरांचपक्ष आहे. कारण, पूर्वी सांगितलेल्या ‘प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा खानं दानं परेऽह्नि’ या वचनाशीं विरोध येतोः असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. आणि ‘पडशीति-
मुत्त व उत्तरायण अतिक्रान्त अगतां पुण्यकाळ नाही’ इत्यादि वचनांचा विरोध येतो. तेणेंकरून ‘प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा’ या पूर्ववचनाची व ‘पूर्वापरार्धभागं’ ह्या वचनाची एकवाक्यता (एक अन्वय) करून अगो अर्थ होतो की, रात्रीच्या पूर्वभागी मकरसंक्रांत झाली अगतां परदिवशी उदयकाली पांच घटिका पुण्यकाळ. आणि रात्रीच्या अपरभागी कर्म संक्रांत झाली अगतां पूर्व दिवसाचे अर्ती पांच घटिका पुण्यकाळ, अगो अर्थ केला म्हणजे सर्व वाक्यांचा विरोध येत नाही. मकराचे ठायीं वर्गल वचनांनीं सामान्यतः पुढचा दिवस पुण्यकाळ सांगितला तरी अतिशय पुण्य पांच घटिका, असें सांगण्याकरितां हें वचन आहे.

यत्तु देवलयज्ञपार्श्वी आसन्नसंक्रमपुण्यदिनार्थस्नानदानयोः रात्रौसंक्रमणे भानोर्विपुवत्यनेन दिवेति अत्रमाधवः अयनेदिवाजातेतदर्थपुण्यम् कर्मपूर्वमकरेऽत्यम् एतन्मध्यदिनायनपरमिति हेमाद्रीस्तु रात्रौविपुवत्यासन्नदिनार्थपुण्यम् अयनेत्वासन्नदिनपुण्यम् दिनेइतिपाठेऽभयत्रदिनार्थपुण्यमित्याह एतदेवोक्तं-
दीपिकायाम् अथायनमधःपश्चान्निशीथाद्भवेद्यत्तासन्नमहस्तदर्थमथवापुण्यमिति तत्त्वंतु आसन्नसंक्रम-
मित्यस्यविपुवत्येवान्वयः अयनेरात्रौसतिदिनेपुण्यम् कस्मिन्नित्यपेक्षायांकर्मपूर्वेऽह्निमकरेऽपरेह्निइतिवाक्या-
तरवशादर्थेऽय्यमानेनकोपिविरोधः यत्स्वनंतभट्टः अथसंक्रमणभानोर्निशीथात्ताग्यदाभवेत् अयनविपुवं
तत्रप्राग्दिनातिमनाडिकाः पंचपुण्यतमाःपश्चान्निशीथाद्भवेत्तथा आद्याःपरदिनस्यापितद्वित्येवनिर्णयइति
अपराकैट्येवम् अस्तंगतेयदासूर्येऽस्तमित्यसिद्धिवाकरः प्रदोषेवार्धरात्रेवातदापुण्यंदिनइत्यसिद्धिवाक्यम्-

वचनादिनद्वयं वा पुण्यकालः तदा पुण्यं दिनांतरमिति मदनरत्नेपाठः गुर्जरप्राच्योदीच्यास्त्विदमेवात्रियते अत्रापि पूर्ववद्वाख्येयम् तिथितत्त्वाद्योगौडग्रन्थास्तु प्रदोषार्धरात्रिभेदेरात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने परभागे च परदिने पुण्यमन्यसंक्रांतिवद्विशिष्यतयोर्निर्देशात् प्रदोषश्च प्रदोषोऽस्तमयाध्वर्षघटिकाद्वयमिष्यते इति वत्सोक्तइत्याहुः तन्न अस्तंगत इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः अतः प्रदोषपदेन तद्भूतैव रात्रिरुच्यते अतएव यावन्नोदयते रविरिति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्वदिनमुक्तम् वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा इहतुत्रिमुहूर्त एव प्रदोषः ।

आतां जें देवल व यज्ञपार्थ सांगतात—“संक्रांतीच्या जवळचें दिवसाचें अर्ध स्नानदानाविषयी पुण्य आहे. रात्रीं विषुव (मेष, तुला) संक्रांत असतां व अयन (मकर, कर्क) असतां दिवसा पुण्यकाळ.” येथें माधव—अयनसंक्रांति दिवसा झाली असतां दिवसाचें अर्ध पुण्यकाळ. त्यांत कर्कसंक्रांत अगतां पहिलें अर्ध आणि मकर अगतां पुढचें अर्ध पुण्य. हें सांगणें दोनप्रहरां अयनसंक्रांत अगतां तद्विषयक समजावें, असें सांगतो. हेमाद्रि तर—रात्रीं विषुवसंक्रांत असतां जवळचे दिवसाचें अर्ध पुण्य. आणि अयनसंक्रांत रात्रीं असेल तर जवळचा दिवस पुण्यकाळ. वरील वचनांत ‘अयने दिने’ असा पाठ असतां दोन्ही ठिकाणीं (विषुवसंक्रांती व अयनसंक्रांतीचे ठायीं) दिवसाचें अर्ध पुण्यकाळ असें सांगतो. हेंच सांगतो—दीपिकेंत—“मध्यरात्रीच्या आंत किंवा बाहेर अयनसंक्रांति होईल तर जवळचा दिवस किंवा जवळच्या दिवसाचें अर्ध पुण्यकाळ.” खरा प्रकार म्हणजे—वरील देवल-यज्ञपार्थवचनांत ‘आमन्नसंक्रम’ याचा अन्वय ‘विषुवति’ याजकडेसच करावयाचा आहे. म्हणजे रात्रीं विषुवसंक्रांति झाली असतां जवळचें दिनार्ध पुण्य, असा अर्थ. आणि रात्रीं अयनसंक्रांति झाली असतां दिवसा पुण्य. आतां कोणत्या दिवशीं अशी आकांक्षा झाली असतां कर्काचे ठायीं पूर्वदिवशीं व मकराचे ठायीं परदिवशीं, असा इतर वाक्यानुगोधानें अर्थ केला असतां कोणताही विरोध येत नाही. आतां जें अनंतभट्ट सांगतो कीं, “ज्या वेळीं सूर्याची अयन किंवा विषुव संक्रांति मध्यरात्रीच्या पूर्वा होईल त्यावेळीं पूर्व दिवसाच्या शेवटच्या पांच घटिका पुण्यकाळ. आणि मध्यरात्रीच्या पुढें होईल त्यावेळीं पुढच्या दिवसाच्या तशाच पहिल्या पांच घटिका पुण्यकाळ, हा निर्यय समजावा.” अपराकांतही असेंच आहे. “ज्या वेळीं सूर्य अस्तंगत असतां मकरास जातो किंवा प्रदोषकाळीं अथवा अर्धरात्री मकराग जातो त्या वेळीं पूर्वे व पर दोन दिवशीं पुण्यकाळ.” ह्या बौधायनवचनावरून अथवा दोन दिवस पुण्यकाळ. ‘तदा पुण्यं दिनद्वयं’ या ठिकाणीं ‘तदा पुण्यं दिनांतरं’ असा मदनरत्नांत पाठ आहे गुर्जर, प्राच्य व उदीच्य लांक तर हेंच मत स्वीकारितात. या अनंतभट्टादि मताची देखील पूर्वीप्रमाणें (म्हणजे रात्रीं कर्कसंक्रांति असतां पूर्वदिवशीं व मकर असतां परदिवशीं पुण्यकाळ अशी) व्याख्या करावी. तिथितत्त्व—इत्यादि गौड ग्रंथकार तर—प्रदोष व अर्धरात्र वर्ज्य करून रात्रीच्या पूर्वभागां संक्रांत असतां पूर्वदिवशीं पुण्य, आणि रात्रीच्या परभागां संक्रांत असतां परदिवशीं पुण्य; इतर संक्रांतीप्रमाणें समजावें. आणि प्रदोषां किंवा मध्यरात्रीं दोन दिवस पुण्यकाळ. कारण, विशेषकरून प्रदोष व अर्धरात्र यांचे म्हणून वरील वचनांत आहे. प्रदोष म्हणजे ‘अस्तानंतर दोन घटिका प्रदोषकाळ आहे’ या वत्सवचनानें सांगितलेला प्रदोषकाळ समजावा, असें सांगतात. ते बरोबर नाही. कारण, त्याच वचनांत ‘अस्तंगते’ हें तिसरें पद व्यर्थ होईल. म्हणून ‘प्रदोष’ या पदानें प्रदोषांमन्त्रच पूर्व रात्रि समजावी. म्हणूनच—“जोंपर्यंत सूर्याचा उदय झाला नाही तोंपर्यंत संक्रांत अगतां” ह्या वृद्धगार्ग्यादि वचनांनीं दक्षिणायनाचे ठायीं (कर्काचे ठायीं) पूर्वरात्रीं संक्रांत असतां पूर्व दिवस पुण्यकाळ सांगितला आहे. वत्सानें सांगितलेला प्रदोष तो देखील अध्ययनादिविषयक आहे. या ठिकाणीं तर तीन मुहूर्तच प्रदोष समजावा.

मकरेदानविशेषो हेमाद्रौ स्कांदे धेनुतिलमयी राजन्दद्याद्यश्चोत्तरायणे सर्वांन्कामानवाप्नोति विंदते परमं सुखम् विष्णुधर्मे उत्तरेत्वयने विप्रावस्त्रदानं महाफलम् तिलपूर्णमनडाहं दत्त्वारोगैः प्रमुच्यते इति शिवरहस्येपि तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्धर्तं न शुभैः तिलादेयाश्च विप्रेभ्यः सर्वदेवोत्तरायणे तिलतैलेन दीपाश्च देवाः शिवगृहे शुभाः कल्पतरौ कालिकापुराणे होमंतिलैः प्रकुर्वीत सर्वदेवोत्तरायणे तान्यो देवाय विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् उत्तरायणमासाद्य नरः कस्मात्स शोचति तथा मकरे रात्रावपिश्राद्धादि भवतीत्युक्तं प्राक् ।

मकरसंक्रांतीचे ठायीं विशेष दान सांगतो हेमाद्रौ त स्कांदांत—“जो मनुष्य उत्तरायणांत तिलमय धेनूचें दान करितो त्याला सर्व काम प्राप्त होतात व तो परमसुख पावतो.” विष्णुधर्मांत—“उत्तरायणसमयीं वस्त्रदान मोठें फल देणारें आहे. तिळांच्या वृषभाचें दान केलें असतां रोगांपासून मुक्त होतो.” शिवरहस्यांतही—“मकरसंक्रांतीचे ठायीं भांगले काळे तीळ वाटून अंगास लावून तिलयुक्त उदकानें स्नान करावें. उत्तरायणसंक्रांतीचे ठायीं सर्वदा ब्राह्मणास तीळ

बावे. शिवमंदिरांत तिळांच्या तेलाचे दीप सुंदर लावावे” कल्पतरूंत कालिकापुराणांत—“उत्तरायणांत सर्वदा तिळांनीं होम करावा. जो मनुष्य उत्तरायण प्राप्त असतां देवाला व ब्राह्मणांना मृगणसहित तीळ देईल त्याला शोक को होईल ! अर्थात् त्याला शोक होणार नाही.” तसेंच मकरसंक्रांतीचे ठायीं रात्री देखील श्राद्धादिक होतें, असें पूर्वी प्रथम-परिच्छेदानें सांगितलें आहे.

माघामायायोगविशेषोर्धोदयः प्रागेवोक्तः माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं हेमाद्रौ यमेन अनर्काभ्यु-
दिते काले माघकृष्णचतुर्दशीम् स्नातः संतर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यत इति ।

माघी अमावास्या (शुक्लपक्षादि माघांनं पौषी अमावास्यास्य) अर्धोदय योग होत असतो त्याचा निर्णय येथेंच पूर्वी पौषमासानें सांगितला आहे. माघ कृष्णचतुर्दशीस यमतर्पण सांगतो हेमाद्रौ न यम—“माघकृष्णचतुर्दशीस पहाटेस उठून सूर्योदयाचे पूर्वी स्नान करून यमाचें तर्पण करणारा सर्व पापापासून मुक्त होतो.”

माघशुक्लचतुर्थीतिलचतुर्थी साप्रदोपव्यापिनी प्राह्या माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रत परायणाः येत्वा दुंदुभेऽर्चयि-
ष्यंति ते चर्याः स्युरमुग्द्रुहामितिकाशी गंडात् माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन् काल उपोषितः अर्चयित्वा तु यो दे-
वि जागरंत तत्र कारयेदिति त्रिस्थलीसेनौलंगाच्च इयमेव कुंदचतुर्थी साप्रदोपव्यापिनी प्राह्या माघशुक्ल-
चतुर्थ्यां तु कुंदपुष्पैः सदा शिवम् संपूज्य यो हि न क्काशीम प्राप्नोति श्रियं नर इति कालादर्शकौर्मोक्तेः माघशु-
क्लपंचमी श्रीपंचमी तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः पंचम्यां कुंदकुसुमैः पूजां
कुर्यात्समृद्धये इयं माघवमते पूर्वा हेमाद्रि मते परा चैत्रशुक्लश्रीपंचमीति दिवोदासः ।

माघशुक्लचतुर्थी ही तिथ्युक्त्या, ती प्रदोपव्यापिनी ध्यावी. कारण, “हे दुंदुभे देवि ! माघशुक्लचतुर्थीस नक्तव्रत करणारे असून तुझी पूजा करितांल ते देवांना पूजा होनांल” असें काशीखंडवचन आहे. आणि “हे देवि ! माघमासांत चतु-
र्थीस प्रदोषकालीं उपासित राहून पूजन करून त्या कालीं जागरण करावें” असें त्रिस्थलीसेतुन लिंगपुराणवचनही आहे. हीच कुंदचतुर्थी होय. ती प्रदोपव्यापिनी ध्यावी. कारण “जो मनुष्य माघशुक्लचतुर्थीस कुंदपुष्पांनीं सदा शिवाची पूजा करून नक्तभोजन करितो त्याला लक्ष्मी प्राप्त होते” असें कालादर्शांत कूर्मपुराणवचन आहे. माघशुक्ल पंचमी ही श्रीपंचमी होय. तें सांगतो हेमाद्रौ वाराहांत—“माघशुक्लचतुर्थीस लक्ष्मीचें उत्तम आराधन करून पंचमीस कुंद-
पुष्पांनीं पूजा करावी. म्हणजे समृद्धि प्राप्त होते.” ही पंचमी माघवाच्या सर्वां पहिली (चतुर्थीयुक्त) ध्यावी. हेमाद्रौच्या मतां परा (पष्ठीयुक्त) ध्यावी. चैत्रशुक्ल पक्षांत श्रीपंचमी होते, असें दिवोदास सांगतो.

माघशुक्लसप्तमी रथमसप्तमी सा अरुणोदयव्यापिनी प्राह्या सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्लमाघस्य सप्तमी अरुणोदयवे-
लायांत स्यां स्नानं महाफलमिति चंद्रिकायां विष्णुवचनान् अरुणोदयवेलायां शुक्लमाघस्य सप्तमी प्रयागे यदि-
लभ्येत कोटि सूर्यग्रहैः समेतैव च नाना यत्तु दिवोदासीये अचलासप्तमी दुर्गाशिवरात्रिर्महाभरः द्वादशीव-
त्सपूजायां सुवदप्राग्युनाम देति पष्ठीयुतत्वं मुक्तम् तद्यदा पूर्वेऽह्नि घटिकाद्वयं पष्ठीसप्तमीच परेद्युः श्रयवशादरुणो-
दयात् पूर्वसमाप्त्येतत्परं ज्ञेयम् तत्र पप्रमांसप्तमी श्रयं प्रवेद्यारुणोदये स्नानं कार्यम् मदनरत्ने भविष्योत्सरे
माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटि भास्करा कुर्यात्स्नानार्थं दानाभ्यामायुरारोग्यसंपदः ।

माघशुक्लसप्तमी ही रथमसप्तमी होय. ती अरुणोदयव्यापिनी ध्यावी. कारण, “माघमासाची शुक्लसप्तमी सूर्यग्रहणासारखी पुण्यकारक आहे. त्या सप्तमीस अरुणोदयकालीं स्नान केल्याने मोठे फल प्राप्त होतें.” असें चंद्रिकेंत विष्णुवचन आहे. आणि “प्रयागाचे ठायीं अरुणोदयकालीं माघशुक्लसप्तमी जर प्राप्त होईल तर ती कोटि सूर्यग्रहणांशीं समान आहे” असें वचनही आहे. आतां जें दिवोदासीयांत—“रथमसप्तमी, दुर्गाष्टमी, शिवरात्रि चतुर्दशी, महाभर, आणि गोवत्सद्वादशी ह्या तिथि सर्वदा पूर्वयुक्त ध्याव्या, त्या सुवदायक होनात.” ह्या वचनांत रथसप्तमी पष्ठीयुक्त ध्यावी असें सांगितलें, तें ज्या वेळीं पूर्वदिवशी पष्ठी दोन घटिका आणि त्याच दिवशीं सप्तमी असून दुसऱ्या दिवशीं अरुणोदयाचे पूर्वी समाप्त होत असेल त्या वेळीं पष्ठीयुक्त ध्यावी, असा त्याचा अभिप्राय समजावा. त्या ठिकाणीं ‘तिथ्यादीं’ तु भवेद्यावान हासो ब्रुहिः परेऽहनि । तावान् प्राह्यः स पूर्वैरुदृष्टोपि स्वकर्मणि’ या वचनावरून सप्तमीच्या क्षयघटिका जितक्या असतील तितक्या घटिका पष्ठीत

१ प्रदोपव्यापिनीति नक्ताशीत्युक्तः । वस्तुनस्तु मध्याह्नव्यापिनीति बहुपुस्तकपाठो युक्तः पूजाव्रतत्वात् । नक्तंतु निर्णायकमर्थ-
त्वात् । २ माघशुक्लचतुर्थीस दुंदिराजाच्या उद्देशानें नक्तव्रत, दुंदिराजाची पूजा, तिळांचे लाडूंचा वगैरे नैवेद्य, आणि सिद्ध-
भक्षण सांगितलें आहे. असें धर्मसिंधुसारांत आहे. ३ हे वचन नरकचतुर्दशीप्रसंगी लिहिलें आहे, तेथें पाहावें.

सप्तमी आहे असें समजून षष्ठीतच अरुणोदयकालीं ज्ञान करावें. **मदनरत्नांत भविष्योत्तरांत**—“माघमासांत शुद्ध पक्षांतील सप्तमी कोटिभास्करतुल्य आहे; ती ज्ञान व अर्घ्यदान केल्यानें आयुष्य, आरोग्य व संपत्ति यांना देते.”

अत्रविधिर्भविष्ये स्नात्वापष्ठ्यामेकभक्तसप्रम्यानिश्चलंजलम् रात्र्यंतंचालयेथास्त्वंदत्वाशिरसिदीप-
कम् तथाजलंप्रक्रम्य नकेनचाल्यतेयावत्तावत्क्षानंसमाचरेत् सौवर्णेराजतेपात्रेभक्त्यालालुभयेथवा तैलेनव-
र्तिर्वातव्यामहारजनरंजिता महारजनंकुमुभम् समाहितमनाभूत्वादत्वाशिरसिदीपकम् भास्करं हृदयेध्यात्वा
इमंमंत्रमुदीरयेत् नमस्तेरुद्ररूपाय रमानांपतयेनमः वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवासनमोऽस्तु जलेपरिहरेद्दीपंध्या-
त्वासंतर्प्य देवता इति चंदनेन लिखेत्पद्मपत्रं सकर्णिकम् मध्ये शिवसंपत्नीकंप्रणवेन च संयुतम् पूर्वादिदलेषु-
विभानुविवस्वद्भास्करसवित्रकंसहस्रकिरणसर्वात्मकान्संपूज्य गृहंगच्छेदिति स्नानमंत्रश्च **काशीवंडे** यथ-
ज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हंतु सप्तमी एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मांतरार्जितम्
मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि-
सप्तमि एतन्मंत्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदकेनरः केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निःकलुषो भवेत् ।

या सप्तमीचे दिवशीं विधि सांगतो **भविष्यांत**—“बघीचे दिवशीं ज्ञान करून एकभक्त करावें. आणि रात्रीच्या अंतीं (पहाटेस) सप्तमींत मस्तकावर दीप ठेऊन निश्चल (कोणी न चाळविलें) जल चाळवावें.” तमंच—उदकाचा उपक्रम करून सांगतो—“जोपर्यंत कोणीही उदक चाळविलें नाहीं तोपर्यंत उदकांत जाऊन स्नान करावें. सोन्याच्या किंवा रंग्याच्या अथवा भोपळ्याच्या पात्रांत तेल घालून कुसुमाच्या रंगानें रंगविलेली वान घालून दीप लावावा. आणि मन स्वस्थ करून मस्तकावर दिवा धरून हृदयाचेठायीं भास्कराचें ध्यान करून हा पुढील मंत्र म्हणावा.” तो मंत्र असा:—“**नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः ॥ वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तुते.**” या मंत्रानें ध्यान करून उदकामध्ये दीप द्यावा, व देवतांचें तर्पण करावें.” चंदनानें अष्टदलांचें कर्णिकायुक्त कमल काढावें. मध्ये पत्नीसहित ओंकारयुक्त शिवाची आणि पूर्वादि आठ पत्रांचे ठायीं रवि, भानु, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रकिरण, सर्वात्मा, यांची पूजा करून गृहाम जावें. स्नानमंत्र सांगतो—**काशीखंडांत**:—“यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु ॥ तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हंतु सप्तमी ॥ १ ॥ एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मांतरार्जितं ॥ मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः ॥ २ ॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि ॥ ३ ॥ हे तीन मंत्र जपून पादोदका (गंग) मध्ये स्नान करून केशवादित्याचें दर्शन घेईल तो मनुष्य क्षणांत निष्पाप होईल.”

दिवोदासीये मदनरत्ने च इक्षुदंडेन जलंचालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बघरीपत्राणि च शिरसि निधाय पूर्वो-
क्तैर्मंत्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमया पूपैर्हैमसूर्यसंपूज्य विप्राय दद्यात् अर्घ्यमंत्रो **मदनरत्ने** सप्तसप्तिवह्नीतसप्तलोक-
प्रदीपन सप्तमीसहितो देवगृहाणार्घ्यं दिवाकर ततः जननीसर्बलोकानां सप्तमीसप्तसप्तिके सप्तव्याहृतिके देवि-
नमस्ते सूर्यमंडल इति प्रार्थयेत् **सौरागमे** अर्कपत्रैः सबदरैर्दूर्वाक्षतसचंदनैः अष्टांगविधिना चार्घ्यं दद्यादादि-
त्युष्टये अत्रदानविशेषो **मदनरत्ने भविष्ये** ताम्रपात्रे यथाशक्त्या मृन्मये वाथ भक्तिमान् स्थापयेत् तिलपिष्ट-
चसघृतसंगुडं तथा कांचनं तालकंकट्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् संच्छाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत् **दानमं-**
त्रस्तु आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नानफलेन च दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् तालकं कर्णाभरणमिति त-
त्रैवोक्तम् दीपपात्रमिति हे **माद्रौ** तत्रैव **भविष्योत्तरे** एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च हैमशतदीधिति-
नासमेतम् दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरेयः सोसंगचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति इयं मन्वादि रपि इयं च शुक्लपक्ष-
स्थत्वा त्वौर्बाह्विकी प्राद्या यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादिश्चाद्रं कुर्यात् मन्वादिकं तैथिकं च कुर्या-
न्मासद्वये पिचेति स्मृतिचंद्रिकोक्तेः ।

दिवोदासीयांत व मदनरत्नांतही सांगतो—उंसाचे दंडानें उदक चाळवून रुईचीं सात पानें व बोरीचीं सात पानें मस्तकावर ठेवून वर सांगितलेल्या मंत्रांनीं स्नान करून तिलपिष्टाच्या अपूपानीं सुवर्णाच्या सूर्यप्रतिमेची पूजा करून ती प्रतिमा ब्राह्मणा लावी. अर्घ्यमंत्र—**मदनरत्नांत सांगतो**—“सप्तसप्तिवह्नीत सप्तलोकप्रदीपन ॥ सप्तमी-
सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर. ॥” नंतर “जननी सर्बलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याहृतिके

देवि नमस्ते सूर्यमंडले ॥ या मंत्रानं प्रार्थना करावी. **सौरागमांत—**“आदित्याच्या संतोषार्थं रश्मिं पातं, बोरं, दूर्वा, अक्षता, चंदन यांहीकरून अष्टांगविधीनं अर्घ्यं दावे.” या सप्तमीस विशेष दान सांगतो **मदनरत्नांत भविष्योक्त—**“भक्तिमान् मनुष्यानं तांच्याच्या पात्रांत किंवा आपल्या शक्तीप्रमाणें सूक्ष्मपात्रांत घृतगुडसहित तिलांचें पीठ ठेवावें, त्याजवर सोन्याचें तालक (कर्णभूषण, तानवड) करून व अशक्तां तिलपिष्टाचें करून रक्तवस्त्रां आच्छादित करून ठेवावें आणि त्याची पुण्यांनी व भूपांनी पूजा करावी.” त्याच्या दानाचा मंत्र—“**आदित्यस्य प्रसादेन प्राप्तः ज्ञानफलं च ॥ दृष्टदोर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ॥**” तालक म्हणजे कर्णभूषण असें तेथेंच सांगितलें आहे. तालक म्हणजे दीपपात्र, असें हेमाद्रींत आहे. तेथेंच **भविष्योक्तांत—**“याप्रमाणें सोन्याचा उत्तम रथ घोड्यांसहित करून त्यांत मृगणांचा सूर्य उदरून जो मनुष्य माघ शुद्ध सप्तमीच्या दिवशीं ब्राह्मणाग देईल त्याच्या रथाच्या गतीचा कोठेंही प्रतिबंध न होना तो पृथ्वीचा उपभोग घेईल. म्हणजे निष्कण्टक पृथ्वीचें राज्य करील.” ही सप्तमी मन्वादिही आहे. ही शुक्लपक्षस्थ असल्यामुळें पूर्वाह्नव्यापिनी ध्यावी. जेव्हां माघ मलमास असेल तेव्हां मलमास व शुद्धमास या दोन्ही मासांत मन्वादिश्राद्ध करावें. कारण, “मन्वादिक श्राद्ध आणि तीर्थश्राद्ध हे दोन्ही मासांत करावें असें स्मृतिचंद्रिकावचन आहे.

माघशुक्लाष्टमीभीष्माष्टमी तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे माघे मासिसिताष्ट्यां सतिलभीष्मतर्पणम् श्राद्धचयेन-
गः कुर्युस्तेभ्यः संनतिभगिन इति भारतेपि शुक्लाष्ट्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय योजलम् संवत्सरकृतं पापंत-
क्षणादेव न उच्यतेति भवत्वनिबन्धे स्मृतिः अष्ट्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् अन्नं च विविधदुःस-
र्षवर्णाद्विजातयः सर्ववर्णो केन्द्रिजातय इति संबोधनम् तर्पणमंत्रस्तत्रैव भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेंद्रियः
आभिरङ्गिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् वैयाघ्रपद्मगोत्राय सांकृत्य प्रवराय च अपुत्राय ददाम्येत जलं-
भीष्माय वर्मणे वसुनामवताराय शंतनोरात्मजाय च अर्घ्यं ददामि भीष्माय आवालब्रह्मचारिणे इति एतज्जीव-
त्पितृकम्यापि भवति जीवत्पितापि कुर्यात्तर्पणं यमभीष्मयोरिति पाद्मे उक्तेरिति जीवत्पितृकनिर्णये पि-
तृचरणैरुक्तम् एतच्चापमव्ययं कार्यमिति दिवोदासीये अत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं च नित्यम् ब्राह्मणाणां श्रवणार्ण-
वशुभीष्माय नो जलम् संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं न उच्यते इति मतेति मदनरत्ने वचनात् ।

माघ शुक्ल अष्टमी ही भीष्माष्टमी होय. तें सांगतो हेमाद्रींत पद्मपुराणांत—“माघमासांतील शुक्लअष्टमीस भीष्माच्या उद्देशानें तिलतर्पण व श्राद्ध जे मनुष्य करितात ते संनतियुक्त होतील.” **भारतांतही—**“जे मनुष्य माघ शुक्ल-
अष्टमीस भीष्माच्या उद्दक देईल त्याचें एका वर्षांत केलेले पाप वार्षिकां नष्ट होईल.” **धवलनिबंधांत स्मृति—**“हे द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) हो ! शुक्ल पक्षाच्या अष्टमीस माघाच्या वर्षांनी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र यांनी) भीष्माच्या तिलोदक व अन्न (श्राद्ध) यथाविधि द्यावें.” भीष्माच्या तर्पण करावें म्हणून सांगितलें त्या तर्पणाचा मंत्र तेथेंच सांगतो—“**भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ आभिरङ्गिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥ वैयाघ्रपद्मगोत्राय सांकृत्य प्रवराय च ॥ अपुत्राय ददाम्येत जलं भीष्माय वर्मणे ॥**” ह्या दोन मंत्रांनी अपमव्यानें तर्पण करून गव्यानें अर्घ्य द्यावें. अर्घ्यमंत्र—“**वसुनामवताराय शंतनोरात्मजाय च ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय आवालब्रह्मचारिणे ॥**” हे भीष्मतर्पण जीवत्पितृकालाही आहे. कारण, “यमाचें तर्पण व भीष्माचें तर्पण हे जीवत्पितृकांनं देखील करावें” असें पद्मपुराणावचन आहे, असें जीवत्पितृकनिर्णयांत आमच्या वडिलांनी (**रामकृष्णभट्टांनी**) सांगितलें आहे. हे तर्पण अपमव्यानें करावें, असें दिवोदासीय ग्रंथांत सांगितलें आहे. येथें श्राद्ध सांगितलें तें कामनिक आहे. तर्पण सांगितलें तें नित्य आहे. कारण, “जे ब्राह्मणादिक चारी वर्ण भीष्माच्या उद्दक देत नाहीत त्यांचें एका वर्षांत केलेलें पुण्य नष्ट होतें.” ह्या मदनरत्नांतील वचनांत उद्दक न दिलें तर पुण्यनाश सांगितला आहे.

माघशुक्लद्वादशीभीष्मद्वादशी त्वया कृतमिदं वीरतवनाम्ना भविष्यति साभीष्मद्वादशीत्येपासर्वपापहराशु-
भेति हेमाद्रौ पाद्मे वचनात् इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात् साधीर्णीमापरेत्युक्तं प्राक् तथा हेमाद्रौ ब्राह्मे
मघास्थयोश्च जीवेंद्रोर्महामाधीतिकथ्यते तत्रैव ज्योतिषे मेघप्रेष्ठे तथा सौरिः सिधेचगुरुचंद्रमाः भास्करः
श्रवणर्क्षे च महामाधीतिसास्मृता तथा भविष्ये वैशाखीकार्तिकीमाधीति ग्रयोऽतीव पूजिताः ज्ञानदानविही-

१ अध्याचा अष्टांगविधि असा ‘आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा ॥ यवाः सिद्धार्थकोश्चति अध्यांष्टांगः प्रकीर्तितः ॥’ अर्थ—उदक, दूध, कुशाग्रें, दरी, अक्षता, तिल, जव, श्वेत सर्षप हे पदार्थ एकत्र करून जो अर्घ्य होतो तो अष्टांगअर्घ्य म्हणतात आहे.
२ अत्र जीवत्पितृकस्य नाधिकार इति कोस्तुभः । ३ अत्र मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी माघा आढावेरेकोष्टित्वादिति । ४ मेघप्रेष्ठे मेघराशौ । सौरिः शनिः ।

नास्त्राननेयाः पांडुनंदन तथा तिलपात्राणि देयानिकंचुकाः कंबलास्तथेति माघपूर्णिमानंतराष्टमीमाघीअष्टका तर्भिर्नयः पूर्वैर्नुरन्वष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः मलमासे चैतान भवन्तीत्येतत्सर्वमार्गशीर्षप्रकरणेऽभिहितम् तथा-
चतसृष्वष्टकास्वशक्तावेपा आवश्यकी हेमंतशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाण्येवत्याश्वला-
यनोक्तेः तथा माघाष्टकांप्रक्रम्य तामेकाष्टकेत्याचक्षत इत्यापस्तंबवचनाच्चेत्यादिप्रयोगपारिजाते ज्ञेयम्
इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ द्वितीयपरिच्छेदे माघमासः समाप्तः ।

माघशुक्ल द्वादशी ही भीमद्वादशी होय. कारण, 'हे वीरा भीमा ! हे व्रत तू केलेंस म्हणून तुझ्या नांवानें प्रसिद्ध होईल. ती ही भीमद्वादशी सर्व पाप हरण करणारी कल्याणकारक आहे.' असें हेमाद्रीन पाञ्चवचन आहे. ही द्वादशी युग्मवाक्यावरून पूर्वा करावी. माघी पूर्णिमा परा ध्यावी, असें पूर्वी सांगितलें आहे. तमेंच हेमाद्रीत ब्राह्मणं—“गुरु व चंद्र हे मघानक्षत्रास अमले म्हणजे त्या पूर्णिमेस महामार्घी असें म्हटलें आहे.” तेथेंच उद्योतिषांत—“मेघराशीम शनि, सिंहास गुरु व चंद्र, आणि ध्रुवणनक्षत्राम सूर्य असे असले म्हणजे ती पूर्णिमा महामार्घी म्हटली आहे.” तमेंच भविष्यांत—“हे पांडुपुत्र ! वैशाखी, कार्तिकी आणि माघी ह्या पूर्णिमा अतीव पूज्य आहेत. ह्या तिथींम खान व दान केल्यावांचून राहूं नये.” तसेंच—“ह्या माघी पूर्णिमेस तिलपात्रें द्यावीं. आंगरग्वे द्यावे. धावळ्या द्याव्या.” माघी पूर्णिमेच्या पुढची अष्टमी ही माघी अष्टका, तिचा निर्णय व पूर्वैद्युःश्राद्धाचा आणि अन्वष्टकाश्राद्धाचा निर्णय पूर्वी मार्गशीर्षांत सांगितला आहे. आणि मलमासांत ही अष्टकादि श्राद्धे होत नाहीत, हे गार्ग मार्गशीर्षमासप्रकरणांत सांगितलें आहे. तमेंच मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ह्या चार मासांतील चार अष्टका करण्यास अशक्त असेल त्यानें ही माघी अष्टका अवश्य करावी. कारण, “हेमंतऋतु व शिशिरऋतु यांच्या चार ऋण पक्षांतील अष्टमींचे ठायीं चार अष्टका कराव्या. अथवा एका अष्टमीस एक अष्टका करावी.” असें आश्वलायनसूत्र आहे. तमेंच माघी अष्टकेचा उपक्रम करून “ती एक अष्टका आहे, असें विद्वान मांगतात” असें आपस्तंबवचनही आहे, इत्यादि प्रकार प्रयोगपारिजातांत पाह्यावा.

इति माघमास समाप्त झाला.

कुंभेषोडशघटिकाः पुण्याः शेषप्राग्वत् फाल्गुनकृष्णाष्टम्यां विशेषः कल्पतरौ फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीपते इत्युपक्रम्य जातादाशरथेः पत्नीतस्मिन्नहनिजानकी उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा रामपत्नी च संपूज्यासीताजनकनंदनीति ।

आतां फाल्गुनमासार्ची कृत्ये सांगतो—

कुंभसंकांतीला पूर्वीच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. इतर सर्व निर्णय प्रथमपरिच्छेदांत सांगितल्याप्रमाणें समजावा. फाल्गुन कृष्ण अष्टमीस विशेष सांगतो कल्पतरूंत—“हे राजा ! फाल्गुन कृष्णअष्टमीचे दिवशीं” असा उपक्रम करून “दाशरथि रामाची पत्नी जानकी त्या दिवशीं झाली. त्या दिवशीं रघुपति राम समुद्राच्या तीरां उपोषित राहिला होता. रामाची पत्नी व जनकाची कन्या जी सीता तिची त्या दिवशीं पूजा करावी.”

फाल्गुनकृष्णचतुर्दशीशिवरात्रिः साचकेषुचिद्वचनेषुप्रदोषव्यापिनीप्राह्येत्युक्तम् केषुचिन्निशीथव्यापिनी तत्राद्यामाधवीये त्रयोदश्यस्तगेसूर्यंचतसृष्वेवनाडिषु भूतविद्धातुयातत्रशिवरात्रिब्रतंचरेत् स्मृत्यंतरेपि प्रदोषव्यापिनीप्राह्याशिवरात्रिचतुर्दशी रात्रौजागरणंयस्मात्तस्मात्तांसमुपोषयेत् अत्रप्रदोषोरात्रिः उत्तरार्धे-
तस्याहेतुत्वोक्तेः कामिकेपि आदित्यास्तमयेकालेअस्तिचेद्याचतुर्दशी तद्वात्रिःशिवरात्रिःस्यात्सामवेदुक्त-
मोक्तमेति द्वितीयापितत्रैव नारदसंहितायाम् अर्धरात्रियुतायत्रमाघकृष्णचतुर्दशी शिवरात्रिब्रतंतत्रसोऽ-
श्वमेधफलंभेत् स्मृत्यंतरेपि भवेद्यत्रत्रयोदश्यांभूतव्याप्तमहानिशा शिवरात्रिब्रतंतत्रकुर्याज्जागरणंतथेति
ईशानसंहितायाम् माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवोमहानिशि शिवलिंगतयोद्भूतःकोटिसूर्यसमप्रभः
तत्कालव्यापिनीप्राह्याशिवरात्रिब्रतेतिथिरिति अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वयुक्तायत्रचतुर्दशी तत्तिथावेवकुर्वीतशिव-
रात्रिब्रतंनृती नार्धरात्रादधश्चोर्ध्वयुक्तायत्रचतुर्दशी नैवतत्रतंत्रकुर्यादायुरैश्वर्यहानितः अर्धरात्रश्चद्वितीययामां-

१ या ठिकाणीं शंका उत्पन्न होते ती अशी—सीता त्या दिवशीं झाली आणि राम समुद्रतीरां उपोषित राहिला याचा संबंध कसा लावावा. कारण, जेव्हां राम समुद्रतीरां गेला तेव्हां सीता पूर्वीच रावणानें नेलेली होती. असा संशय येतो याचें वारण असें कीं, सीतेचा जन्मदिवस तो असल्यामुळे त्या दिवशीं रामानें उपोषण केलें असावें असें मला वाटतें.

त्यतृतीययामाधघटीद्वयरूपइतिमाधवः वचनंतूक्तंप्राक् एवंसतिपूर्वगुरेवोभयव्याप्तौपूर्वव त्रयोदशीय-
दादेविदिनभुक्तिप्रमाणतः जागरेशिवरात्रिःस्यान्निशिपूर्णाचतुर्दशीतिस्कांदोक्तेः दिनभुक्तिरस्तमयः जयं-
तीशिवरात्रिश्चकार्येभद्राजयान्वितेइतिस्कांदाच्च दिनद्वयेनिशीथव्याप्तौहेमाद्रिमतेपूर्वा अर्धरात्रात्पुर-
स्ताब्जेजयायोगयदाभवेत् पूर्वविद्वैवकर्तव्याशिवरात्रिःशिवप्रियैरितिपाद्मवचनात् मदनरत्नेप्येवम्
गौडाअप्येवमाहुः ।

आतां शिवरात्रिनिर्णयः—फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी (तीच अमावास्यांत मास या मानानं माघ कृष्ण चतुर्दशी ही)
शिवरात्रि आहे. ती कितीएक वचनांत प्रदोषव्यापिनीं ध्यावी, असें आहे. आणि कितीएक वचनांत निशीथ मध्यरात्र,
(रात्रीचा मध्य सुहृत्) व्यापिनीं ध्यावी, असें आहे. त्या दोहोंपैकी पहिली (प्रदोषव्यापिनी) सांगतो **माधवीयांत**—
“मृगंस्तापासून चार घटिकांच आंतच चतुर्दशीयुक्त जी त्रयोदशी तिचेठायीं शिवरात्रिचन करावें.” **स्मृत्यंतरांतही**—
“शिवरात्रि चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनीं ध्यावी. ज्या कारणास्तव रात्रीं जागरण आहे म्हणून रात्रीं असलेल्या त्या चतुर्दशीस
उपोषण करावें.” ह्या वचनांत प्रदोष म्हणजे रात्रि समजावा. कारण, पुढच्या अर्थात रात्रीं जागरण हा हेतु सांगितला आहे.
कामिकांतही—“मृगंच्या अस्तकालीं जी चतुर्दशी असेल ती रात्र शिवरात्रि होय. ती उत्तमोत्तम आहे.” दुसरी
(निशीथव्यापिनी) देखील तेथेंच **नारदसंहितेंत** गांगनी—“ज्या दिवशीं माघकृष्णचतुर्दशी अर्धरात्रीं असेल त्या दिवशीं
जो शिवरात्रिचन करील त्याला अयुधभक्षक प्राप्त होईल.” **स्मृत्यंतरांतही**—“ज्या दिवशीं त्रयोदशीचे ठायीं चतुर्दशीनें
व्याप्त महानिशा (मध्यरात्र) होईल त्या दिवशीं शिवरात्रिचन व जागरण करावें.” **ईगानसंहितेंत**—“माघकृष्ण चतु-
र्दशीचे ठायीं मोठ्या रात्रीं आदिदेव भगवान कोटिमृगप्रमाणें देदीप्यमान अगा शिवलिंगरूपांनं उत्पन्न (प्रगट) झाला,
म्हणून शिवरात्रिचन्याचे ठायीं तत्कालव्यापिनीं तिथि ध्यानी.” “ज्या दिवशीं अर्धरात्राच्या पूर्वी व पुढें चतुर्दशी असेल त्या
तिथीचेठायींच शिवरात्रिचन व्रतां यांनं करावें. ज्या दिवशीं अर्धरात्राच्या पूर्वी व पुढें चतुर्दशी नसेल त्या तिथीस शिवरात्रिचन,
कहूं नयेच. कारण, आयुष्य, ऐश्वर्य यांची हानि होतें.” अर्धरात्र म्हणजे दुर्गत्या प्रहरांनीं शेटची एक घटिका आणि
तिमच्या प्रहराची पहिली एक घटिका झेळून दोन घटिकारूप काल होय, असें **माधव** गांगतो. त्याविषयीं वचन पूर्वीं
जन्माष्टमाप्रकरणीं सांगितलें आहे. असें अगतां पूर्वदिवशींच मध्यरात्रव्यापिनीं व प्रदोषव्यापिनीं चतुर्दशी असेल तर
पूर्वांच करावी कारण, “हे देव, जेव्हा अस्तमयपर्यंत त्रयोदशी असून रात्रीं संपूर्ण चतुर्दशी असेल तेव्हां ती शिवरात्रि
जागरावपरीं समजावी” असें **स्कांद**वचन आहे. आणि “कृष्णजयंतीं सप्तमायुक्त करावी, व शिवरात्रि त्रयोदशीयुक्त
करावी” असें **स्कांद**वचनही आहे. दोन दिवस मध्यरात्रव्याप्त अमतां **हेमाद्री**च्या मतां पूर्वीं करावी. कारण, “जर अर्ध-
रात्राच्या पूर्वीं जेव्हा त्रयोदशीचा योग असेल तेव्हां तीच पूर्वविद्ध शिवरात्रि शिवभक्तांनीं करानीं” असें **पाद्म**वचन आहे.
मदनरत्नांतही असेच आहे. **गौडा**ही असेच गांगतात.

निर्णयामृतेनुमर्वापिशिवरात्रिःप्रदोषव्यापिन्येव अर्धरात्राव्याप्त्यानिकैमुक्तिकन्यायेनप्रदोषस्तावकानी-
त्युक्तम् तत्र अर्धरात्रस्यपूर्वकर्मकालत्वोक्तः परदिनेप्रदोपनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात्परैवेतितु**माधवः** इद-
मेवचयुक्तप्रतीमः परेणुःप्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौपूर्वगुःसंपूर्णतद्वाप्तौच सत्यपिपरेणुःप्रदोपनिशीथोभ-
ययोगेपूर्वगुःसंपूर्णव्याप्तःपूर्वव व्याप्त्यार्धरात्रयस्यांतुलभ्यतेयाचतुर्दशी तस्यामेवव्रतकार्यमत्प्रसादार्थिभिर्नरैः
तदूर्वाधोन्विताभूतासाकार्याव्रतिभिःसदेति**माधवधृतेशानसंहितोक्तेः** पूर्वद्युर्निशीथस्यपरेणुःप्रदोष-
स्येत्येकैकव्याप्तौतुपूर्वव जयायोगस्यप्राप्त्यान् तच्चोक्तं**नागरम्बडे** माघफाल्गुनयोर्मध्येअसितायाचतुर्दशी
अनंगेनसमायुक्ताकर्तव्यासासदातिथिरिति **पाद्मे** अर्धरात्रात्पुरस्ताब्जेजयायोगयदाभवेत् पूर्वविद्वैवकर्त-
व्याशिवरात्रिःशिवप्रियैरिति **स्कांदेपि** भवेद्यत्रत्रयोदश्यांभूतव्याप्तमहानिशा शिवरात्रिचनतंत्रकुर्याज्जा-
गरणंतथेति महतामपिपापानांष्टाष्ट्रंविष्कृतिःपरा नष्टाकुर्वतांपुमांकुहूयुक्तातिथिंशिवामिति**स्कांदे**दशयोग-
स्यनिदितत्वाच्च यदाचतुर्दशीपूर्वगुर्निशीथादूर्ध्वप्रवृत्तापरेणुश्चनिशीथादूर्वागेवसमाप्तातदापरेणुरेकव्याप्तिस-
त्त्वात्परैव माघासितेभूतदिनंहिराजनुपैतियोग्यदिपंचदश्याः जयाप्रयुक्तानंतुजातुकुर्याच्छिवस्यरात्रिप्रियकु-
च्छिवस्येतिवचनान् एवंदिनद्वयेप्रदोषव्याप्त्यभावेनिशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वव तेनेदिनद्वयेनिशीथव्याप्तौप्रदोष-

१ निशीथस्य रात्रेरष्टमोसुहृत् इत्युक्तम् ॥ २ तदेतदुपसंहरति तेनेति । ३ निशीथव्याप्ताविति निशीथस्येनेतिशेषः । ४ अक्षीव-
व्याप्त्येति परेणुरेवेत्यर्थः ।

व्याप्त्यानिर्णयः दिनद्वयेप्रदोषव्याप्तौनिर्णीयेननिर्णयः एकैकव्याप्तौतुनिर्णीयेननिर्णयइति इयंचरविभौमसो-
मवारेषुशिवयोगेचातिप्रशस्ताहेमाद्रीतीर्थखंडेऽलौके फाल्गुनस्यचतुर्दश्यांकृष्णपक्षेसमाहिताः कृत्तिवासे-
श्वरलिंगमर्चयतिशिवंशुभे तेयातिपरमंस्थानंसदाशिवमनामयम् ।

निर्णयामृतांत तर—सर्वे मासांतील शिवरात्रि प्रदोषव्यापिनीच ध्यावी. अर्धरात्रव्यापिनी ध्यावी अशी जी वाक्ये तीं कैमुतिकन्यायांनं प्रदोषस्तुतिबोधक आहेत, असें मांगितलें आहे, तें बरोबर नाही. कारण, पूर्वी अर्धरात्र हा कर्मकाल सांगितला आहे. ज्या वेळीं दोन्ही दिवशीं अर्धरात्रव्याप्ति असेल त्या वेळीं पर दिवशीं प्रदोषकालीं व अर्धरात्रीं व्याप्ति असल्यामुळे पराच करावी, असें तर माधव सांगतो. हेंच युक्त आहे, असें आम्हां समजतो. परदिवशीं पूर्वी सांगितलेल्या-द्विषटिकात्मक-अर्धरात्राच्या एकदेशीं व्याप्ति असतां आणि पूर्वदिवशीं संपूर्ण अर्धरात्रव्याप्ति असतां परदिवशीं प्रदोष व अर्धरात्र या दोषांचा योग असला तरी पूर्वदिवशीं संपूर्ण अर्धरात्रव्याप्ति असल्यामुळे पूर्वाच करावी. कारण, “ज्या तिथीचे ठायीं चतुर्दशी अर्धरात्राला व्यापून मिळते त्या तिथीचे ठायींच शिवप्रसादेच्छु मनुष्यांनीं व्रत करावें. अर्धरात्राच्या पूर्वी व पश्चात् असलेली चतुर्दशी व्रतकरणांसाठीं सदा ध्यावी.” असें माधवानें धरलें. ईशानसंहितावचन आहे. पूर्वदिवशीं निशीथ (अर्धरात्र) व्याप्ति आणि परदिवशीं प्रदोषव्याप्ति अशी एक एक काल व्याप्ति असल तर पूर्वाच करावी. कारण, ज्या (त्रयोदशी) योग प्रशस्त आहे. तें सांगता नागरखंडांत—“माघ व फाल्गुन यांच्या मध्ये जी कृष्णचतुर्दशी त्रयोदशीनं युक्त असेल ती सदा करावी.” पाद्मांत—“ज्या वेळीं अर्धरात्राच्या पूर्वी त्रयोदशीचा योग होईल त्या वेळीं शिवभक्तांनीं पूर्वविद्धाच (त्रयोदशीयुक्ताच) शिवरात्रि करावी.” स्कांदांतही—“ज्या त्रयोदशीचे ठायीं चतुर्दशीव्याप्ति महानिशा (मध्यरात्र) होईल त्या तिथीस शिवरात्रिव्रत व तसेंच जागरण करावें.” आणि “महापातकांना देखील उत्कृष्ट निष्कृति (प्रायश्चित्त) पाहिली आहे; पण अमावास्यायुक्त चतुर्दशी करणाऱ्या पुरुषांम निष्कृति (प्रायश्चित्त) कोटें पाहिली नाही.” अशी स्कांदांत अमावास्यायोगाची निंदाही केलेली आहे. ज्या वेळीं पूर्वदिवशीं चतुर्दशी मध्यरात्रीच्या पुढें प्रवृत्त झाली व परदिवशीं मध्यरात्रीच्या पूर्वाच समाप्त झाली त्या वेळीं परदिवशीं एकप्रदोषकालीं व्याप्ति असल्यामुळे पराच करावी. कारण, “माघमासाचे कृष्णचतुर्दशीस जर अमावास्येचा योग असल तर शिवभक्तांनं त्रयोदशीयुक्त शिवरात्रि कधींही करूं नये” असें वचन आहे. याप्रमाणें दोन दिवशीं प्रदोषव्याप्ति नसेल तर पूर्वदिवशीं निशीथ (अर्धरात्र) व्याप्ति असल्यामुळे पूर्वाच करावी. ह्या सर्व वरील अर्थावरून असा सारांश झाला की, दोन दिवशीं मध्यरात्रव्याप्ति असतां प्रदोषव्याप्तीनं निर्णय म्हणजे ज्या दिवशीं प्रदोषव्याप्ति ती करावी. दोन दिवशीं प्रदोषव्याप्ति असतां मध्यरात्रव्याप्तीनं निर्णय म्हणजे ज्या दिवशीं मध्यरात्रव्याप्ति असेल ती करावी. एक एक व्याप्ति म्हणजे प्रदोषव्याप्ति किंवा मध्यरात्रव्याप्ति असल तर मध्यरात्रव्याप्ति असेल ती ध्यावी, ह्या चतुर्दशीस रवि, भौम व सोम यांतील वार व शिवयोग असतां ही चतुर्दशी अति प्रशस्त आहे. हेमाद्रींत तीर्थखंडांत लिंगपुराणांत—“फाल्गुनकृष्णचतुर्दशीचेठायीं जे मनुष्य स्वस्थचित्त होऊन कृत्तिवासेश्वर शिवलिंगाची पूजा करितात ते उत्तम व रोगरहित अशा सदाशिवस्थानाप्रत जातात.”

अथ पारणानिर्णयः ॥ शिवरात्रिपारणेतुविरुद्धवाक्यानिदृश्यंते स्कांदं कृष्णाष्टमीस्कंदपट्टीशि-
वरात्रिचतुर्दशी एताःपूर्वयुताःकार्यास्तिथ्यंतपारणंभवेत् जन्माष्टमीरोहिणीचशिवरात्रिसंश्लेषेच पूर्वविद्धव-
क्तव्यतिथिभतेचपारणमिति तिथिमध्येपिपारणंस्कांदे उक्तम् उपोषणचतुर्दश्यांचतुर्दश्यांतुपारणम् कृतैः-
सुकृतलक्षैश्चलभ्यतेवाथवानवा ब्रह्मांडोदरमध्येतुयानितीर्थानिसंतिवै संस्नातानिभवतीहभूतायांपारणेकृते
तिथीनामेवसर्वासामुपवासव्रतादिषु तिथ्यंतपारणंकुर्याद्विनाशिवचतुर्दशीमिति अत्रयामत्रयादर्वाकचतुर्दशी-
समाप्तौ तदंततदूर्ध्वगामिन्यांप्रातस्तिथिमध्यएवेतिहेमाद्रिमाधवादयोव्यवस्थामाहुः तत्र तिथ्यंतति-
थिभान्तेषापारणयंत्रचोदितम् यामत्रयोर्ध्वगामिन्यांप्रातरेवहिंपारणेत्यादिसामान्यवचनैरेवव्यवस्थानिद्वेभ-
यविधवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः वयंतुतिथ्यंतपारणंभवेदितिकृष्णाष्टम्यादिविषयमेव नतुशिवरात्रिविषयम् तदु-
पादानंतुपूर्वयुतत्वमात्रकथनार्थम् कथमन्यथास्कांदेएवशून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्येपारणविधानंघटते तस्मा-
द्विना शिवचतुर्दशीमितिपर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याःसर्वप्रकारेषुतिथिमध्यएवपारणेतित्रूमः शिष्टाचारोप्येवमेव
दीपिकायांतुरात्रापितिथ्यंतएवोक्तम् व्रततिथेरंतनिशीथेपिषाडभीयादिति मदनरत्नकालादर्शयोस्तु

१ निशीथेनेति पूर्वपुर्वेत्वर्थः । २ कैमुतिकन्याय म्हणजे—अर्धरात्रव्यापिनी देखील ध्यावी, मग प्रदोषव्यापिनी ध्यावी, हें काय सांगणें. यावरून प्रदोषाची स्तुति बोधित होते.

साक्षात्समयपर्यंतव्यापिनीचेत्परहेहनि दिवैवपारणंकुर्यात्पारणेनैवदोषभागित्युक्तम् तन्न तिथिमध्येपारणविधानाभिप्रेक्षेफलायोगाच्चतिथ्यंतानपेक्षणाद्दोषाप्रसक्त्याचतुर्थपादासंगतेः तेनेदंशिवरात्रिभिन्नव्रतपरंक्षेयम् ।

आतां शिवरात्रीच्या पारणेविषयीं तर विरुद्ध वाक्यें दिसतात. तीं अशीं स्कांदांत—“कृष्णजन्माष्टमी, स्कंदपष्टी, शिवरात्रि चतुर्दशी, ह्या तिथि पूर्वयुक्त कराव्या, आणि तिथीच्या अंतीं पारणा करावी. जन्माष्टमी, रोहिणी (कृष्णजयंती), आणि शिवरात्रि, ह्या पूर्वविद्धाच कराव्या. तिथि व नक्षत्र (रोहिणी) यांचे अंतीं पारणा करावी.” तिथीमध्येही पारणा सांगतो स्कांदांत—“चतुर्दशींत उपोषण व चतुर्दशींत पारणा हें लक्षावधि मुकृतें केल्यानें प्राप्त होईल किंवा न होईल असें आहे. चतुर्दशींत पारणा केली असतां ह्या ब्रह्मांडांत जितकीं तीर्थे आहेत तितक्या तीर्थांचें ज्ञान केल्यासारखें होतें. गर्बे तिथीच्या उपवासव्रतादिकांत तिथीच्या अंतीं पारणा करावी. शिवरात्रिचतुर्दशी वर्ज्य करून हा निर्णय समजावा.” या पारणेविषयीं दिवसा तीन प्रहरांच्या आंत चतुर्दशी समाप्त असेल तर चतुर्दशीच्या अंतीं पारणा. तीन प्रहरांच्या पुढें चतुर्दशी असेल तर प्रातःकालीं तिथीमध्येच पारणा, अशी हेमाद्रि, माधव इत्यादि ग्रंथकार व्यवस्था सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, “तिथीच्या अंतीं किंवा तिथि व नक्षत्र यांच्या अंतीं पारणा जेथें सांगितली आहे, तेथें तीन प्रहरांच्या पुढें तिथि असतां प्रातःकालींच पारणा करावी.” इत्यादि सामान्य वचनांनींच व्यवस्था सिद्ध असल्यामुळें तिथीच्या अंतीं व तिथीच्या मध्ये अशीं दोन प्रकारची पारणा सांगणारीं वाक्यें व्यर्थ होतील. आम्हीं (कमलाकरभट्ट) तर—वर स्कांदवचनांत ‘तिथ्यंते पारणं भवेत्’ म्हणजे तिथीच्या अंतीं पारणा करावी, असें सांगितलें तें कृष्णाष्टमी इत्यादिविषयींच समजावें. शिवरात्रिविषयीं समजूं नये. त्या वचनांत ‘शिवरात्रि’ ग्रहण अशा करितां कीं, पूर्वयुक्त करावी, इतकेंच सांगण्याकरितां आहे. असें जर नसेल [चतुर्दशीविषयीं देखील तिथीच्या अंतीं पारणा दृष्ट असेल] तर स्कांदांतच विचारशून्य हृदयाच्या वाक्याप्रमाणें तिथीच्या मध्ये पारणा सांगणें कसें घडतें ! तस्मात् ‘तिथ्यंते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशी’ या वरील वचनांनं चतुर्दशी वगळल्यामुळें यामत्रयोर्वेगामिनी व यामत्रयाच्या पूर्वगमाप्ति इत्यादि गर्बे प्रकारचेठायीं शिवरात्रिव्रताची तिथिमध्येच पारणा करावी, असें सांगतां. शिष्टाचारही अग्राच आहे. दीपिकेंत तर—रात्रीं देखील तिथीच्या अंतींच पारणा सांगितली आहे—“व्रततिथीच्या अंतीं अथवा ती व्रततिथि मयरात्रीपर्यंत असेल तर समाप्त झाल्यावर मयरात्रीं भोजन करावें.” मदनमूल व कालादर्श यांत तर—“ती चतुर्दशी परदिवशी अस्तमयपर्यंत असेल तर दिवसामच पारणा करावी. दिवसा पारणा केली असतां दोष लागत नाही” असें सांगितलें आहे. तें बरोबर नाही. कारण, तिथीच्या मध्ये पारणा सांगितली असल्यामुळें व तिथीच्या मध्ये पारणाच्या निषेधाविषयीं फलही नगल्यामुळें तिथीच्या अंताची (समाप्तीची) अपेक्षा नगल्याकारणानें तिथीमध्ये पारणाला दोषाचा प्रसंग नगल्यानें वरील वचनांतील ‘पारणे नैव दोषभाक्’ म्हणजे तिथीमध्ये पारणा केली असतां दोष लागत नाही, हा चवथा पाद असेंगत होईल. कारण, दोषाची प्रसक्ति नसल्यामुळें, दोष लागत नाही हें सांगणें नको आहे. तेणेंकरून हें वचन शिवरात्रिभिन्नव्रतविषयक समजावें.

इदंचव्रतंसंयोगप्रवृत्तव्यन्यायेननित्यकाम्यंच तथाचमाधवीयेस्कांदे परात्परनरंनास्तिशिवरात्रिव्रतात्परम नपृजयतिभक्त्येशंकुर्दत्रिभुवनेश्वरम् जंतुर्जन्मसहस्रेषुभ्रमतेनात्रसंशयइत्यकरणेप्रत्यवायश्रवणात् वर्षे-वर्षमहादेविनरोनारीपतिव्रता शिवरात्रौमहादेव्रनित्यंभक्त्याप्रपूजयेदितिबीप्साश्रुतेः अर्णवोयदिव्वाशुष्येत श्रीयतहिमद्यानपि चलंत्येतकदाचिद्वैनिश्चलंहिशिवव्रतमितिवचनाच्चनित्यता ममभक्तस्तुयोदेविशिवरात्रिमुपोपकः गणत्वमभ्रयंदिव्यमभ्रयंशिवशासनम् सर्वान्मुक्त्वामहाभोगांस्ततोमोक्षमयाप्रयादितिस्कांदात् द्वादशाधिकमेतस्याच्चतुर्विंशदधिकंतुवेतितत्रैवैशानसंहितावचनात्काम्यता तत्रैव शिवरात्रिव्रतंनामसर्वपापप्रणाशनम् आचंडालमनुष्याणांभुक्तिमुक्तिप्रदायकं अत्रजागरोपवासपूजाःसमुदिताःव्रतं ननुप्रत्येकम् समुदितानांफलसंबंधान् यत्तु अथवाशिवरात्रिचपूजाजागरणैर्नयेत् तथा अखंडितव्रतोयोहिशिवरात्रिमुपोपयेत् सर्वान्कामानवाप्नोतिशिवेनसहमोदते कश्चित्पुण्यविशेषेणव्रतहीनोपियःपुमान् जागरंकुरुतेतत्रसरुद्र-समतांत्रजेदित्यादिस्कांदंतदनुकल्पत्वादशक्तपरम् ।

हें शिवरात्रिव्रत ‘संयोगप्रवृत्तव्यन्यायानें नित्य व काम्य आहे. कारण, तसेंच माधवीबांत स्कांदांत—“शिवरात्रिव्रताहून दुरारं कांहीं अत्यंत श्रेष्ठ नाही. त्या व्रतदिवशी जो प्राणी भक्तीनें त्रिभुवनेश्वर रुद्रांत पूजित नाही तो या संसारांत हजारों जन्मपर्यंत फिरतो, यांत संशय नाही.” न केलें तर असा दोष सांगितल्यावरून; पुरुष अथवा स्त्री यांनीं वर्षोवर्षाचे ठायीं

१ संयोगप्रवृत्तव्यन्यायस्तु अस्मिन्नेव परिच्छेदे चैत्रमासे रामनवमीव्रतप्रसंगे प्रतिपादितः स तत्रैव द्रष्टव्यः. २ आषाढाळीति शिवरात्रिव्रतं चांडालपर्यंतमधिकार इति भावः.

शिवरात्रीचे दिवशी महादेवाची भक्तीने पूजा करावी” या वचनांत ‘वर्षे वर्षे’ अशी द्विरुक्ति असल्यावरून; आणि “कदाचित् समुद्र शुष्क होईल व हिमवान् पर्वतही क्षीण होईल व ते कदाचित् चलित होतील; पण शिवव्रत कधीही चलित होणार नाही” या वचनावरूनही नित्य आहे. “भगवान् शिव म्हणतात—हे देवि ! जो माझा भक्त शिवरात्रीचें उपोषण करितो त्याला दिव्य (उत्कृष्ट) नाशरहित कोठेंही शिवाज्ञाभजन होणारें असें गणल (आधिपत्य) प्राप्त होऊन सारे मोठे भोग भोगून तो मोक्षास जाईल.” असें स्कांदवचन असल्यावरून; आणि “हें शिवरात्रिव्रत द्वादशाब्दिक होतें, अथवा चतुर्विंशब्दिक (चोवीस वर्षेपर्यंत) होतें” असें तेथेंच ईशानसंहितावचनावरूनही काम्यल आहे. तेथेंच—“शिवरात्रिव्रत सर्व पाप नाश करणारें व चांडालापर्यंत मनुष्यांना भुक्ति व मुक्ति देणारें होय.” ह्या शिवरात्रिव्रताचे ठायीं जागरण, उपवास, पूजा हीं सर्व मिळून व्रत होतें. जागरण, उपवास, पूजा यांतून एक करणें हें व्रत होत नाही. कारण, फलसंबंध सर्वांना मिळून सांगितला आहे. आतां जें—“अथवा शिवरात्रि पूजा व जागरण यांनीं करावी.” तसेंच—“जो अखंडित-व्रत होत्साता शिवरात्रीचें उपोषण करितो तो सर्व मनोरथ पावून शिवासहवर्तमान आनंद पावतो. कोणी एकादा पुरुष व्रतहीन असतांही कांहीं पुण्यविशेषांत त्या शिवरात्रीचे ठायीं जागरण करितो तो रुद्रसमान होतो.” इत्यादिक जें स्कंद-पुराणांतील वचन तें अनुकल्प (कनिष्ठ पक्ष) असल्यामुळे अशक्तविषयक जाणावें.

माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु शिवरात्रिशब्दस्यमाघकृष्णचतुर्दश्यामेवरूढत्वात् माघमासस्यशेषेयाप्रथमाफाल्गुनस्यच कृष्णाचतुर्दशीसातुशिवरात्रिःप्रकीर्तितेति हेमाद्रौवचनाच्च नायनिर्णयस्तत्रेति रात्रौयामचतुष्टयेपूजाविधानाद्यस्मिन्दिनेअधिकारात्रिव्याप्तिःसाम्राह्या साम्येतुपूर्वैवेतिहेमाद्रिरूचिवान् वस्तुतस्तुप्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि सर्वकामप्रदंकृष्णचतुर्दश्यांशिवव्रतमित्युपक्रम्यचतुर्दशाब्दकर्तव्यंशिवरात्रिव्रतंशुभमितिहेमाद्रौकालोत्तरेशिवरात्रिशब्दप्रयोगात् कौंडपायिनामयनाग्रिहोत्रेनैत्यकामिहोत्रधर्माइवतद्धर्मप्राप्तिःस्यादेव अतःप्रदोपनिशीथोभयव्यास्यैवनिर्णयइतिव्यंग्यप्रतीमः ।

माघावांचून इतर प्रतिमासांतील शिवरात्रि तर—‘शिवरात्रि’ हा शब्द माघकृष्णचतुर्दशीचे ठायींच रूढ असल्यामुळे; आणि “माघमासाच्या शेवटीं आणि फाल्गुनमासाच्या पूर्वी जी कृष्णचतुर्दशी ती शिवरात्रि म्हटली आहे” ह्या हेमाद्रींतील वचनावरूनही हा (माघकृष्णचतुर्दशीचा) निर्णय त्या इतर चतुर्दशींविषयी नाही. म्हणून रात्री चार प्रहरांचे ठायीं पूजा सांगितल्यावरून ज्या दिवशी अधिक रात्रिव्याप्ति असेल ती ध्यावी. दांन्ही दिवशी रात्री समानव्याप्ति असेल तर पूर्वांच ध्यावी, असें हेमाद्री सांगता झाला. वास्तविक म्हटलें तर—प्रत्येक मासां कृष्णचतुर्दशीचे ठायीं देखील “कृष्णचतुर्दशीचे ठायीं शिवव्रत सर्व काम देणारें आहे” असा उपक्रम करून “कल्याणकारक शिवरात्रिव्रत चवदा वर्षे करावें” असा हेमाद्रींत कालोत्तरांत शिवरात्रि याशब्दाचा प्रयोग केलेला असल्यामुळे; जसें—कौंडपायीशाह्यांच्या अयनाग्रिहोत्राचे ठायीं नित्य अग्रिहोत्राचे धर्म प्राप्त होतात—तसे शिवरात्रीचे सारे धर्म प्रतिमासशिवरात्रीचे ठायीं प्राप्त होतच आहेत. म्हणून प्रदोष व निशीथ (अर्धरात्र) या दोन व्याप्तीनेंच निर्णय करावा. असें आह्मी (कमलाकरभट्ट) समजतो.

अस्वारंभेहेमाद्रौ स्कांदे आदौमार्गशिरेमासिदीपोत्सवादिनेपिवा गृहीयान्माघमासेवाद्वादशैवमुपोषयेत् तथा दीपोत्सवेतथामाघेकृष्णायानुचतुर्दशी द्वादशस्वपिमासेपुप्रकुर्यादिहजागरम् एवंद्वादशवर्षेषुद्वादशैवतपोधनान् वरयेदितिशेषः चतुर्दश्याविप्रान्आचार्यचवृत्वा कुंभोपरिन्यसेहेवमुमयासहितंशिवम् सौवर्ण्यथवारौप्येवृषभेसंस्थितंशुभेइत्युक्तम् हैमीमूर्तिसंपूज्यस्त्रिचरंवालिंगंपंचामृतसहस्रशतपंचाशत्तर्धान्यतरकुंभैःसंस्तूप्यसंपूज्यजागरंक्रुत्वापरेशुस्तिलानसहस्रशतंवाहुत्वाविप्रेभ्योवस्त्राणिद्वादशगाश्चदत्वाआचार्यायधेनुंशय्यांचदत्वाविप्रान्भोजयेदितिमदनरत्नेउक्तम् ।

या प्रतिमासशिवरात्रिव्रताचा आरंभ सांगतो—हेमाद्रींत स्कांदांत—“मार्गशीर्षमासांत अथवा दीपावलींतील चतुर्दशीस, किंवा माघमासांत, प्रथम व्रत ध्यावें, व याप्रमाणे बारा चतुर्दशींचे ठायीं उपोषण करावें.” तसेंच “दीपावलींत किंवा मार्घांत जी कृष्णचतुर्दशी तिचे ठायीं आरंभ करून बाराही महिन्यांत जागरण करावें. याप्रमाणे बारा वर्षे व्रत करून बारा तपोधन ब्राह्मण वरावे.” अथवा चवदा ब्राह्मण आणि आचार्य वरून “कलशावर सोन्याच्या किंवा रुप्याच्या सुंदर वृषभावर बसलेल्या उमासहित शिवाची स्थापना करावी” असें सांगितलें आहे. याप्रमाणे सुवर्णाचे शिवमूर्तीची पूजा करून अथवा स्थिरलिंगाला किंवा चरलिंगाला पंचामृतांच्या सहस्र कलशांनी किंवा शंभर कलशांनी अथवा पक्षास कलशांनी किंवा पंचवीस फलशांनी ज्ञान घालून पूजा करून जागरण करून दुसऱ्या दिवशीं तिलांचा सहस्रसंख्य किंवा शतसंख्य होम करून ब्राह्मणांना वस्त्रे व बारा गाई देऊन आचार्याला धेनु आणि शय्या देऊन ब्राह्मणभोजन करावें; असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे.

माघामावास्यायुगादिः तदुक्तम् माघमासेत्स्वमावास्येति अन्यत्रागवत् तथान्योपविशेषोविष्णुपुराणे
माघासितेपंचदशीकदाचिदुपैतियोग्यं दिवाहणेन ऋक्षेणकालः सपरः पितृणां ह्यल्पपुण्यैर्नृपलभ्यतेऽसाविति
वारुणशतभिषक् इदंचकुंभादित्येज्ञेयमिति हेमाद्रिः भारते कालेधनिष्ठा यदिनामतस्मिन् भवेत्तु भूपालतदा-
पितृभ्यः दत्तं तिलाक्षप्रददाति तृप्तिं वर्षायुतंतत्कुलजैर्मनुष्यैरिति ।

माघमासाची अमावास्या ही युगादि आहे. तें सांगतो—“माघमासांत अमावास्या युगादि समजावी.” युगादीविषयीं
इतर निर्णय पूर्वी (वैशाखशुक्लतृतीयानिर्णय) प्रमाणें समजावा. तसाच अन्यही विशेष सांगतो विष्णुपुराणांत—“माघ-
कृष्ण अमावास्येस शततारका नक्षत्राचा योग जर कदाचित् प्राप्त होईल तर तो काल पितरांना अति पुण्यकारक आहे. हा
योग अल्पपुण्याच्या मनुष्यांस प्राप्त होत नाही.” हा योग कुंभराशीस सूर्य असतां जाणावा, असें हेमाद्रि सांगतो.
भारतांत—“माघकृष्ण अमावास्येस जर धनिष्ठा नक्षत्र असेल तर त्या कालीं आपआपल्या कुलोत्पन्न मनुष्यांनीं पितरांना
दिलेलें तिलांसहित अन्न त्या पितरांनीं दहा हजार वर्षपर्यंत तृप्ति करितें.”

फाल्गुनपौर्णमासीहोलिका साचमायाह्नव्यापिनीग्राह्या मायाह्नेहोलिकांकुर्यात्पूर्वाह्नेक्रीडनंगवामिति-
वचनादिति निर्णयामृतने उक्तम् ज्योतिर्निबंधेतु प्रतिपद्भूतभद्रासुयार्चिताहोलिकादिवा संवत्सरंचतद्रा-
ष्ट्रंपुंरदहृतिसाद्भुतम् प्रदोषव्यापिनीग्राह्यापौर्णिमाफाल्गुनीमदा तस्यांभद्रामुखंयक्त्वापूज्याहोलानिशासुखइति
नारदवचनात्प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् हेमाद्रौमदनरत्नेचभविष्ये अस्यानिशागमेपार्थसंरक्ष्याः शिशवो-
गृहे गोमयेनोपलिमेचसचतुष्केगृहांगणेऽन्यादिनानत्रैवतद्विधानाच्च तेनेयंपूर्वविद्वद्वा श्रावणीदुर्गनवमीदूर्वाचै-
वहुताशनी पूर्वविद्वैवकर्तव्याशिवरात्रिर्वलेर्दिनमितिबृहद्यमब्रह्मवैवर्तांक्तेश्च दिनद्वयेप्रदोषव्याप्तौपरैव-
पूर्वदिनेभद्रासत्त्वात्तत्रचहोलिकानिषेधान तदुक्तं निर्णयामृतनेमदनरत्नेचपुराणसमुच्चये भद्रायांदी-
पिताहोलीराष्ट्रभंगं करोतिवै नगरम्यचनेवेष्टान्मात्तांपरिवर्जयेत् तथा भद्रायांद्वेनकर्तव्येश्रावणीफाल्गुनीतथा
श्रावणीनृपतिहंतिग्रासंदहतिफाल्गुनी तथा दिनार्थात्पग्नोपिस्म्यत्फाल्गुनीपौर्णिमायदि रात्रौभद्रावसानेतुहो-
लिकादीप्यतेतदेति यदातुपूर्वदिनेचतुर्दशीप्रदोषव्यापिनीपरदिनेचश्रयवशात्मायाह्नात्प्रागेवपूणिमासमाप्यते
तदापूर्वदिनेसंपूर्णरात्रौभद्रासत्त्वात्तत्रचतस्त्रिषेधानपरेऽहनिप्रतिपद्येवकुर्यात् सार्धयामत्रयंवास्याद्वितीय-
दिवसेयदा प्रतिपदार्धमानानुतदामाहोलिकामृतंति भविष्यवचनादिनिर्णयामृतकारः मदन-
रत्नेऽप्येवम् यत्तु वहौवह्निपरित्यजेदिति भविष्यम् वह्नाहोलिकायांचह्निप्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः तदुक्तंभिन्न-
विषयमितितत्रैवोक्तम् अन्येतुतस्यांभद्रामुखंयक्त्वेत्यर्थः प्रदोषव्यापिनीचेन्म्यागदापूर्वदिनेतदा भद्रामुखं वर्ज-
यित्वाहोलिकायाः प्रदीपनमिति नारदवचनात् निशागमेप्रपूज्येतहोलिकासर्वदावुधेः नदिवापूजयेद्गुहापूजि-
तादुःखदाभवेदितिदिवोदासीयेवचनान् यामत्रयोर्ध्वयुक्ताचेनप्रतिपत्तुभवेत्तिथिः भद्रामुखंपरित्यज्यका-
र्याहोलामनीपिभिरिति विद्याविनोदेऽभिधानाच्च भद्रामुखंविहायपूर्वदिनाप्यकार्येन्याहुः भद्रामुखं तु नाज्य-
स्तुपंचवदनंगलकस्तथैकेतिरत्नमालोक्तंज्ञेयम् शिष्टाचारोप्येवमेव ।

फाल्गुनपौर्णमासी ही होलिका होय. होलिकेधंप्या ही पूर्णिमा सायाह्नी (पाच भाग केलेल्या दिवसाचे पांचव्या भागी)
असलेली ध्यावी. कारण, “होलिका सायाह्नी करावी, आणि बलिप्रतिपदेस गोकांठन करणें तें पूर्वाह्नी करावें” असें वचन
आहे, असें निर्णयामृतांत सांगितलं आहे. ज्योतिर्निबंधांत तर—“प्रतिपदा, चतुर्दशी व भद्रा (कल्याणी, पूर्णिमेचें
पूर्वाध) यांचे ठायीं आणि दिवसा केलेली जी होळी ती एका वर्षाचे आन त्या नगराम व राष्ट्राम जाळिते; म्हणून फाल्गुनी
पौर्णिमा सर्वदा प्रदोषव्यापिनी ध्यावी. त्या पौर्णिमेंत भद्रामुख वर्ज्य करून प्रदोषकारी होळी पुजावी” ह्या नारदवचनावरून

१ पूर्णिमेचें पूर्वाध भद्रा. त्या भद्राच्या क्षिप्त्या पादाच्या शेवटच्या तीन घटिका भद्रापुच्छ. आणि चवथ्या पादाच्या पहिल्या
पांच घटिका भद्रामुख. म्हणजे मध्यम मानानें ६० घटिका पूर्णिमा असेल तर पूर्णिमा सुरू झाल्यापासून साडेएकोणीस घटिका-
नंतर तीन घटिका भद्रापुच्छ. आणि साडेबावीस घटिकानंतर पांच घटिका भद्रामुख होय. तिथि ६४ घटिका असेल तर पूर्णिमा
सुरू झाल्यापासून २१ घटिकानंतर ३ घटिका पुच्छ, आणि २४ घटिकानंतर ५ घटिका मुक्त. याप्रमाणें तिथीच्या इतरही
मानाविषयीं जाणावें. धर्मसिंधुसार.

प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमा होळीविषयीं घ्यावी, असें सांगितलें आहे. हेमाद्रींत व मदनरत्नांत भविष्यांत—“ह्या पौर्णिमेच्या दिवशीं प्रदोषकालीं बालक बाहेर जातील त्यांना घरांत संरक्षण करून ठेवावें. आणि गोमयानें सारविलेल्या चतुष्कोण गृहाच्या अंगणांत होळी करावी” इत्यादि वचनानें प्रदोषकालींच होळीचें विधानही आहे. यावरून ही होळिका पूर्णिमा चतुर्दशीयुक्त घ्यावी, असें होतें. आणि “श्रावणी पूर्णिमा, दुर्गानवमी, दुर्वाष्टमी, होळिकापूर्णिमा, शिवरात्रि चतुर्दशी आणि बलिप्रतिपदा ह्या पूर्वविद्धाच कराव्या” असें बृहद्यमाचें व ब्रह्मवैवर्तपुराणाचें वचनही आहे. दोन दिवस प्रदोषव्याप्ति असतां पराच करावी. कारण, पूर्वदिवशीं प्रदोषकालीं भद्रा (कल्याणी) असल्यामुळें त्या कल्याणीवर होळीचा निषेध आहे. तें सांगतो निर्णयामृतांत व मदनरत्नांत पुराणसमुच्चयांत—“भदेवर पेटविलेली होळी राष्ट्राचा नाश करिते. आणि त्या नगरासही ती इष्ट नाही. म्हणून होळीविषयीं भद्रा वर्ज्य करावी.” तसेंच—“श्रावणी पौर्णिमेस सांगितलेलें रक्षाबंधन, आणि फाल्गुनी पौर्णिमेस सांगितलेलें होळिका पेटविणें हीं दोन कृत्यें भदेवर करूं नयेत. कारण, रक्षाबंधन भदेवर केलें असतां राजाचा नाश करितें. आणि होळी पेटविली असतां गांवाला जाळिते.” तसेंच—“जेव्हां दिवसा दोन प्रहरांनंतर फाल्गुनी पौर्णिमा असेल तेव्हां रात्रीं भद्रा संपल्यानंतर होळी पेटवावी.” ज्या वेळीं पूर्वदिवशीं प्रदोषकालीं चतुर्दशी असेल व दुसऱ्या दिवशीं पूर्णिमा तिथि क्षीण झालेली असल्यामुळें सायाहाच्या (पांच भाग केलेल्या दिवसाचे पांचव्या भागाच्या) पूर्वीच संपत असेल त्या वेळीं पूर्वदिवशीं साऱ्या रात्रीं भद्रा असल्यामुळें त्या भदेचे ठायीं होळीचा निषेध असल्याकारणानें परदिवशीं प्रतिपदेंतच होळी करावी. कारण, “दुसऱ्या दिवशीं जेव्हां मांडेतीन प्रहर पौर्णिमा असून प्रतिपदा वाढती असेल तेव्हां ती होळिका म्हटली आहे” असें भविष्यवचन आहे, असें निर्णयामृतकार सांगतो. मदनरत्नांतही असेंच आहे. आतां जें—“अग्निविषयीं अग्नि वर्ज्य करावा, म्हणजे होळीविषयीं प्रतिपदा वर्ज्य करावी” असें भविष्यवचन तें वर सांगितलेल्या व्यतिरिक्त पौर्णिमाव्याप्तिविषयीं आहे, असें तेथेंच सांगितलें आहे. इतर ग्रंथकार तर—तिचे ठायीं भद्रासुख टाकून, असा अर्थ सांगतात. कारण, “जेव्हां पूर्वदिवशीं प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमा असेल तेव्हां भद्रासुख वर्ज्य करून हांगी पेटवावी” ह्या नारदवचनावरून; व “सर्वदा प्रदोषकालीं विद्वानांनीं होळिका पुजावी. दिवसा होळिका पुजूं नये. कारण, दिवसा पुजली तर दुःख देणारी होईल.” ह्या दिवोदासीयांतील वचनावरून; आणि “तीन प्रहरांपुढें प्रतिपदा तिथि असेल तर पूर्व दिवशीं भद्रासुख वर्ज्य करून विद्वानांनीं होळिका करावी” असें विद्याविनोदांत सांगितल्यावरूनही भद्रासुख टाकून पूर्वदिवशींच होळिका करावी, असें मांगतात. भद्रासुख कोणतें म्हणाल तर सांगतो—“पूर्णिमेचें पूर्वार्ध भद्रा होय. त्या भदेच्या चवथ्या पादाच्या पहिल्या पांच घटिका भद्रासुख होय. आणि एक घटिका गलक (गळा) म्हटला आहे” असें रत्नमालेंत सांगितलेलें भद्रासुख समजावें. शिष्टाचारही अमान (भद्रासुख सोडून पूर्वदिवशींच करण्याचा) आहे.

अत्रचेचंद्रग्रहणंतदाततोर्वाङ्गिभिर्ब्राह्मवर्ज्यपौर्णमास्यांहोलिकादीपनम् अथपरेह्निप्रस्तोदयस्तदापूर्वदिनेभद्रावर्ज्यरात्रौचतुर्थयामेविष्टिपुच्छेवाहोलिकाकार्या ग्रहोत्तरप्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वचदिवाहोलानिषेधादिति-दिवोदासचंद्रप्रकाशौ वस्तुतस्तुपरदिनेप्रदोषेपौर्णमासीसत्त्वेकर्मकालस्पर्शेचतुर्थयामादिगौणकाल-ग्रहणेमानाभावाद्भद्राभावाच्चग्रहणकालएवहोलिकाकार्या नच सर्वपामेववर्णानांसूतकराहुदर्शने स्नात्वाकर्माणि-कुर्वीतशृतमन्नविबर्जयेदितिनिषेधात् कथंसूतकेहोलेतिवाच्यम् तस्योत्तरार्धशेषत्वात् पूजामंत्रस्तु अस्तृक्पाभयसंभ्रस्तैःकृतात्वंहोलीबालिशैः अतस्त्वांपूजयिष्यामिभूतेभूतिप्रदाभवेति * यत्तुवार्तिककारैर्होलिका-आचारप्राप्तेत्युक्तम् तत्रहेमाद्र्याद्युदाहृतभविष्यवचनान्यसिद्धानिकृत्वाचिंताज्ञेया आर्यधिकरणवत् * हुताशनीमलमासेनभवति इयंमन्वादिरपि सातुपौर्वाहिकीप्राह्या मलमासेमतिमन्वादिश्राद्धमासद्वयेकार्यमित्युक्तं-प्राक् कृत्यचिंतामणौब्राह्मे नरोदोलगतदृष्टगोविंदपुरुषोत्तमं फाल्गुन्यांसंयतोभूत्वागोविंदस्यपुरंजते ।

ह्या पौर्णिमेस जर चंद्रग्रहण असेल तर चंद्रग्रहणाच्या पूर्वी रात्रीं भद्रारहित पौर्णिमेंत होळी पेटवावी. आतां जेव्हां दुसऱ्या दिवशीं चंद्राचा प्रस्तोदय असेल तेव्हां पूर्वदिवशीं रात्रीं भद्रा टाकून चवथ्या प्रहरां किंवा भद्रापुच्छावर होळिका करावी. कारण, दुसऱ्या दिवशीं ग्रहण संपल्यानंतर प्रतिपदा असल्यामुळें प्रतिपदेंत होळीचा निषेध आहे. आणि ग्रहणापूर्वी म्हटलें तर दिवसा होळीचा निषेध आहे, असें दिवोदास व चंद्रप्रकाश सांगतात. वास्तविक म्हटलें तर—दुसऱ्या दिवशीं प्रदोषकालीं पौर्णिमा असतां व तिचा कर्मकालाला स्पर्श असतां पूर्वरात्रीं पहाटेस चवथा प्रहर व भद्रापुच्छ इत्यादि गौण कालाचें ग्रहण करण्याविषयीं प्रमाण नसल्यामुळें व प्रदोषकालीं भद्रा नसल्यामुळें ग्रहणकालींच होळी करावी. आतां

टीप—* * या दोन चिन्हांमधील ग्रंथ जुन्या लेखी प्रतींत नसल्यामुळें बाहेरचा प्रक्षिप्त असावा, म्हणून त्याचें भाषांतर दिलें नाहीं.

“राहुदर्शन झालें असतां ब्राह्मणादि सर्वही वर्णाना सूतक आहे, म्हणून ज्ञान करून विहित कर्मे करावी, आणि शिजविलेले अन्न असेल तें टाकावें” ह्या वचनांत निषेध असल्यामुळे सूतकांत होळी कशी होईल ? अर्थात् होणार नाही; असें बोलूं नये. कारण, तें राहुदर्शननिमित्त सूतक पुढच्या अर्थांत सांगितलेल्या कर्मविषयक आहे. होळीविषयी नाही. होळीच्या पूजेचा मंत्र—“असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता एवं होलि बालिदौः ॥ अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव ॥” होळिका मलमासांत होत नाही. ही फाल्गुनी पूर्णिमा मन्वादिही आहे. ती तर मन्वादिश्राद्धाविषयी पूर्वाह्नव्यापिनी ध्यावी. फाल्गुन मलमास असतां मन्वादिश्राद्ध दोन्ही मासांत करावें, असें पूर्वी सांगितलें आहे. कृत्याचिंतामणीत ब्रह्म-पुराणांत—“फाल्गुनी पूर्णिमेस मनुष्यानें नियमित होऊन गोविंद पुरुषोत्तमाला दोलेंत बसवून त्याला शोपी काढून त्याचें दर्शन घेतल्यानें तो मनुष्य वैकुंठास जाईल.”

चैत्रकृष्णप्रतिपदिवसंतोत्सवः साचौदयिकीग्राह्या प्रवृत्तेमधुमासेतुप्रतिपद्युदितेरवाविति भविष्योक्तेः दिनद्वयेतथात्वेपूर्वा यत्स्मरादौवसंतादौबलिगज्येतथैवच पूर्वविद्धैवकर्तव्याप्रतिपत्सर्वदाबुधैरितिबुद्धवसिष्ठवचनानां अत्रविशेषोद्देशमादौ भविष्ये चैत्रेमासिमहाबाहोपुण्येतुप्रतिपदिने यस्तत्रश्वपंचंस्पृष्ट्वास्नानं कुर्यान्नरोत्तमः नतस्यदुर्गितंकिंचिन्नाश्रयोव्याधयोनृपेति तथा प्रवृत्तेमधुमासेतुप्रतिपद्युदितेरवौ कृत्वाचावश्य-कार्याणिसंतर्प्यपितृदेवताः वंदयेद्धोलिकाभूमिसर्वदुःखोपशान्तये मंत्रश्च वंदितासिसुरेंद्रेणब्रह्मणाशंकरेणच अतस्त्वंपाहि नोदेविभूतेभूतिप्रदाभवेति अत्रचूतकुमुमप्राशनमुक्तंतत्रैवपुराणसमुच्चये वृत्तेतुपारसमयेसि-तपंचदश्यांप्रातर्वसंतममयेमसुपस्थितेच संप्राश्यचूतकुमुमंसहचंदनेनसत्यंहिपार्थपुरुषोऽथसमाःसुखीस्यात् मंत्रस्तु चूतमश्र्यंवसंतस्यमाकंदकुमुमतत्र सचंदनंषिवाम्यद्यसर्वकामार्थसिद्धयइति चैत्रामावास्यामन्वादिः साचापराह्नव्यापिनीग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वात् इतिफाल्गुनमासः समाप्तः ॥

चैत्रकृष्णप्रतिपदेस वसंतोत्सव करावा. ती प्रतिपदा सूर्योदयव्यापिनी ध्यावी. कारण, “प्रतिपदेंत सूर्योदयकालीं मधुमास (चैत्रमास) प्रवृत्त झाला अगतां” असें भविष्यपुराणवचन आहे. दोन दिवस सूर्योदयकालीं प्रतिपदा असतां पहिली ध्यावी. कारण, “संवत्सरारंभाची प्रतिपदा, वसंतारंभाची प्रतिपदा आणि बलिप्रतिपदा ह्या गर्वदा विद्वानांनीं पूर्वविद्धाच कराव्या.” असें बुद्धवसिष्ठाचें वचन आहे. ह्या प्रतिपदेस विशेष गांगनी हेमाद्रीत भविष्यांत—“चैत्रमासांत पुण्यकारक प्रतिपदेच्या दिवशीं जो मनुष्य अंत्यजांस (चांडालादिकांस) स्पर्श करून ज्ञान करील त्याला कोणतेंही पातक असणार नाही, आणि मनोव्यथा व शारीरव्याध होत नाहीत.” तसेंच—“प्रतिपदेंत सूर्योदयकालीं मधुमास प्रवृत्त झाला अगतां ज्ञानमंभ्यादि आवश्यक कृत्यें करून पितर व देवता यांचें तर्पण करून गर्व दुःखांच्या शांतीसाठीं होळीच्या भूमीला नमस्कार करावा.” नमस्काराचा मंत्र—“वंदितासि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव.” या प्रतिपदेस आम्रकुमुमप्राशन गांगनी तथैव पुराणसमुच्चयांत—“फाल्गुनशुक्रपूर्णिमेस शिशिर ऋतु संपल्यावर प्रातःकालीं वसंत ऋतु प्राप्त झाला अमनां आंध्याचा मोहर चंदनासह वाटून प्राशन केल्यानें तो पुरुष वर्गपर्यंत सुखी होईल.” आम्रकुमुमप्राशनाचा मंत्र—“चूतमश्र्यं वसंतस्य माकंद कुमुमं तव ॥ सचंदनं षिवाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये ॥” चैत्री अमावास्या ही मन्वादि आहे. ती कृष्णपक्षांतील मन्वादि असल्यामुळे अपराह्नव्यापिनी ध्यावी. याप्रमाणें फाल्गुनमासाचा निर्णय समाप्त झाला.

एवंनिरूपितमिदंगहनंतुकालतत्त्वविचार्यवचनैश्चनयैश्चसम्यक् तद्गोपट्टिमपहायविवेचनीयंविद्वद्भिरित्य विरतंप्रणतोस्मितेपु १ मयासद्वाऽस्मदायदिहगदितमंदमतिनाकिमेतच्छक्यंवाध्यवसितुमपिस्वल्पमतिना तदे-वंयत्किंचिद्वदितमिहविरत्यातमहिमाप्रतापोऽयंसर्वोविकसतितुपित्रोश्चरणयोः २ योभाटृतंग्रहगर्णवर्षकर्ण-धारःशास्त्रांतरेपुनिविलेध्वपिमर्मभेत्ता योऽत्रश्रमःकिलकृतःकमलाकरेणप्रीतोऽसुनाऽस्तुमुकृतीबुधरामकृष्णः ३ इतिश्रीमन्नागयणभट्टसूरिसुनुरामकृष्णभट्टसुतदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौसंवत्सर-कृत्यनिरूपणंनामद्वितीयपरिच्छेदः समाप्तः ।

या प्रकारां हें गहन (समजण्यास कठीण) असें कालाचें तत्त्व ऋषिवचनांनीं व न्यायांनीं चांगला विचार करून निरूपण केलें आहे. विद्वानांनीं दोषदृष्टि दूर करून त्याचें विवेचन करावें. म्हणून विद्वानांचे ठिकाणीं सतत नी नम्र झालों आहें. ॥ १ ॥ मी मंदमति कमलाकरांनं येथें चांगलें किंवा वाईट जें सांगितलें आहे तें स्वल्पमति अशा मला मनांत आणण्याविषयीं तरी

शक्य आहे काय ? तस्मात् या ग्रंथांत जें कांहीं मी निरूपण केलें हा सारा मातापितरांच्या चरणांचा विख्यातमहिमा प्रताप प्रफुल्लित झालेला आहे, असें समजावें. ॥ २ ॥ या ग्रंथांत जो मी कमलाकरानें श्रम केला आहे त्या श्रमानें, जो मीमांसारूप गहन (खोल) समुद्राचा नावाडी व इतर सर्वशास्त्रांचेही मर्म जाणणारा असा धन्य पंडित रामकृष्ण (माझा पिता) संतुष्ट असो ॥ ३ ॥

इति द्वितीय परिच्छेदाची महाराष्ट्र टीका समाप्त झाली.

इति द्वितीयपरिच्छेदः समाप्तः ॥

तृतीयपरिच्छेद पूर्वार्ध—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथप्रकीर्णकनिर्णयः श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः निरूप्यतिथिकृत्यंतुप्रकीर्णवक्तुमुद्यतः १

आतां प्रकीर्णकनिर्णय सांगतो.—

श्रीरामकृष्णभग्नचा पुत्र कमलाकरभट्ट पूर्वी (द्वितीय परिच्छेदांत) तिथिकृत्य निरूपण करून प्रकीर्णक (मिश्रप्रकरण) सांगण्याकरितां उद्युक्त (उत्कंठित) झालेला आहे.

तत्रादौसंस्कारेपुर्गर्भाधानम् तत्रप्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणसंक्रमादिफलंतत्रशांत्यादिचपितृकृतंभट्टकृतप्रयोगरत्नेज्ञेयम् किंचित्सूच्यते **मदनरत्नेनारदः** अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि परिघस्यतुपूर्वार्धे व्यतीपातेचवैधृतौ संन्यासपुत्रवेविष्ट्यामशुभप्रथमार्तवं रोगीपतिव्रतादुःखीपुत्रिणीभोगभोगिनी पतिव्रताक्लेशभागीसूर्यवारादिपुक्रमात् वैधन्यंसुतलाभश्चमैत्रंशत्रुविवर्धनम् मित्रलाभःशत्रुवृद्धिःकुलद्विर्बधुनाशनम् मरणवंशवृद्धिश्चनिराहारःकुलक्षयः तेजश्चसुतनाशश्चकुलहानिस्तिथिक्रमान् **गर्गः** सुभगाचैवदुःशीलाबंध्यापुत्रसमन्विता धर्मयुक्ताव्रतप्रीचपरसंतानमोदिनी सुपुत्राचैवदुःपुत्रापितृवेऽमरतासदा दीनाप्रजावतीचैवपुत्राह्याचित्रकारिणी साध्वीपतिप्रियानित्यंसुपुत्राकष्टचारिणी स्वकर्मनिरताहिंसापुण्यपुत्रादिसंयुता नित्यंधनचयासक्तापुत्रधान्यसमन्विता मूर्खाचाज्ञापुण्यवर्तादन्त्रश्र्दःक्रमात्फलम् **नारदः** कुलीरवृषचापांत्यनृयुक्न्यातुलाघटाः राशयःशुभदाज्ञेयानारीणांप्रथमार्तवे **गर्गः** सुभगाश्चेतवस्त्रास्यादृढवस्त्रापतिव्रता क्षौमवस्त्राक्षितीशास्यान्नववस्त्रासुखान्विता दुर्भगाजीर्णवस्त्रास्याद्रोगिणीरक्तवाससा नीलांबरधरानारीपुष्पिताविधवाततः वस्त्रेभ्युर्विपमारक्तविंदवःपुत्रमाप्नुयान् ममाश्वेत्कन्यकाश्चेतिफलंस्यात्प्रथमार्तवे ।

त्यांत आर्थी संस्कार मांगावयाचे त्या संस्कारांपैकी गर्भाधानसंस्कार मांगतां—त्या गर्भाधानसंस्कारांत प्रथम रजोदर्शनाचे ठायीं दुष्टमास, ग्रहण, संक्रांति इत्यादिकांचें फल व त्याविषयीं शांति वगैरे करणें तो सर्व निर्णय आमच्या वडिलींनीं केलेला आहे तो **नारायणभट्टांनीं** केलेल्या **प्रयोगरत्नांतून** जाणावा. थोडेंसे येथें सांगतां—**मदनरत्नान्नारदः**—“अमावास्या, रिक्ता (४।९।१४) तिथि, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, प्रतिपदा, परिघयोगाचा पूर्वार्ध, व्यतीपात, वैधृति, संन्यासमय, उपव्रव, विष्ट, यांचें ठायीं प्रथम रजोदर्शन झालें अमतां तें अशुभ होय. रविवारीं रोगी, सोमवारीं पतिव्रता, मंगलवारीं दुःखी, बुधवारीं पुत्रवती, गुरुवारीं भोग भोगणारी, शुक्रवारीं पतिव्रता, शनिवारीं क्लेश भोगणारी याप्रमाणें वारांचे ठायीं प्रथम रजोदर्शनाचें फल समजावें. प्रतिपदेस वैधन्य, द्वितीयेस पुत्रलाभ, तृतीयेस मित्रत्व, चतुर्थीस शत्रुवृद्धि, पंचमीस मित्रलाभ, षष्ठीस शत्रुवृद्धि, सप्तमीस कुलवृद्धि, अष्टमीस बंधुनाश, नवमीस मरण, दशमीस वंशवृद्धि, एकादशीस उपवास, द्वादशीस कुलक्षय, त्रयोदशीस तेज, चतुर्दशीस पुत्रनाश, पंचदशीस (अमावास्या पौर्णिमेस) कुलहानि याप्रमाणें प्रथमरजोदर्शनाचे ठायीं तिथिफलें समजावीं.” **गर्गः**—“अश्विनीस सुभगा, भरणीस दुःशीला, कृतिकेस बंध्या, रोहिणीस पुत्रवती, मृगास धर्मयुक्त, आर्द्रास व्रतघातकी, पुनर्वसुस परसंतानानें हर्ष पावणारी, पुष्यास सुपुत्रवती, आश्लेयास दृष्टपुत्रवती, मघास पितृवृद्धी गदा राहणारी, पूर्वास दीना, उत्तरास प्रजायुक्त, हस्तास बहुत पुत्रयुक्त, चित्रास चित्रकरणारी, स्वातीस साध्वी, विशाखास नित्य पतिप्रिया, अनुराधास सुपुत्रा, ज्येष्ठास कष्ट करणारी, मूळास आपल्या कर्माविषयीं तत्पर, पूर्वाषाढास हिंसाकरणारी, उत्तराषाढास पुण्यकारक पुत्रादिकांनीं युक्त, श्रवणास सतत द्रव्यसंचय करणारी, धनिष्ठास आसक्त, शततारकास पुत्रधान्ययुक्त, पूर्वाभाद्रपदास मूर्ख, उत्तराभाद्रपदास ज्ञानशील, रेवतीस पुण्यवती याप्रमाणें प्रथम रजोदर्शनाविषयीं नक्षत्रांचें फल समजावें.” **नारदः**—“कर्क, वृषभ, धनु, मीन, मिथुन, कन्या, तुळ, कुंभ, म्या राशी क्रियांच्या प्रथम रजोदर्शनाविषयीं शुभ आहेत.” **गर्गः**—“शुभवस्त्र परिधान केलेलें असतां प्रथम रजोदर्शन झालें तर सुभगा होते. दृढवस्त्रावर झालें तर पतिव्रता होते. पाटाव नेसलेली असून झालें तर पृथिवीपति होते. नव्या वस्त्रावर झालें तर सुखयुक्त होते. जीर्णवस्त्रावर रजोदर्शन प्रथम झालें तर दुर्भगा (दुर्भाग्यवती) होते. रक्तवस्त्रावर प्रथम रजोदर्शन असतां रोगिणी होते. नीळवस्त्रावर

१ संमार्जनीकाष्टवृणादिशृणान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् ॥ तत्पुत्रभोगे तपसि स्थिता चैवदुष्टं रजो भाग्यवती सदा स्यात् । रश्मतिरत्ने । शुभं चैव तु पूर्वांके मध्याह्ने मध्यमं फलं ॥ अपराह्ने तु वैधन्यं पूर्वावे शुभं भवेत् इत्यादि.

प्रथम रजोदर्शन झालें तर ती स्त्री विधवा होते. वस्त्रावर आर्तवाचे बिंदु विषम पडले असतां पुत्र होतो. आणि सम बिंदु पडले असतां कन्या होते. याप्रमाणें प्रथमरजोदर्शनाचें फल समजावें.”

अथ स्त्रीसंसर्गवर्जनमाह वसिष्ठः प्रभूतदोषेयदिदृश्यतेतत्पुष्पतदांशान्तिकर्मकार्यम् विवर्जये-
देवतदैकशय्यायाबद्रजोदर्शनमुत्तमेहि **ज्योतिर्निबंधवसिष्ठः** आद्यतौपौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः
कुयुक्पापवारारिक्तामार्काष्टपृष्ठयःपितृपरसदनेरात्रिसंध्यापराह्णे मिश्रोमामूलतीक्ष्णविवरमनरुणात्पाधिकां-
गराष्ट्रोत्पातःपापस्यलग्नसदृशजरलीलचित्रांबरंच आद्यतौदुर्भगानारीविष्कंभेचेद्रजस्वला बंध्याचैवातिगंड-
चश्लेशलवतीभवेत् गंडेतुपुंश्चलीनारीव्याघातेचात्मघातिनी वज्रेचस्वैरिणीप्रोक्तापातेचपतिघातिनी परिध-
मृतबंध्याचवैधृतौपतिमारिणी शेषाःशुभावहायोगायथानामफलप्रदाः ।

आतां स्त्रीसंबंध वर्ज्य सांगतो. **वसिष्ठ**—“जेव्हां पुष्कळ दोष असतां प्रथम रजोदर्शन होईल तेव्हां शांति करावी, जोंपर्यंत उत्तम दिवशीं रजोदर्शन होई तोंपर्यंत स्त्रीसंयोग वर्ज्यच करावा.” **ज्योतिर्निबंधांत वसिष्ठ**—“पौष, ज्येष्ठ, कार्तिक, चैत्र, आषाढ, भाद्रपद हे मास; निंद्य योगः पापवार (रविवार, मंगळवार, शनिवार) : रिक्ता तिथि (४।९।१४), अमावास्या, द्वादशी, अष्टमी, षष्ठी, ह्या तिथिः पितृगृहः परगृहः रात्रिः संध्यासमयः अपराह्णकालः मिश्र (कृत्तिका, विशाखा), उग्र (पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी), तीक्ष्ण (आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा) हीं नक्षत्रेः तिथि, वार इत्यादिकांचा संधि; अरुण भिन्न वर्णाचें अल्प किंवा अधिक असं रक्तः गरजकरणापासून पुढचीं आठ करणेः उत्पानः पापप्रहाच्या राशीचें लग्न; अरुण, जीर्ण, नील व चित्र असें वस्त्र; हीं प्रथम रजोदर्शनाचे ठायीं चांगलीं नाहींत.” “स्त्री विष्कंभयोगावर प्रथम रजस्वला झाली तर दुर्भाग्ययुक्त होते. अतिगंडावर बंध्या होते. शूलयोगावर झाली तर शूलयुक्त होते. गंडयोगावर झाली तर आरिणी होते. व्याघातयोगावर झाली तर आत्मघातकी होते. वज्रयोगावर झाली तर जारिणी होत. व्यतीपातावर झाली तर पतिघातकी होते. परिधावर झाली तर मृतबंध्या (मुलें मरणारी, मरनवांझ) होते. वैश्रुतीवर झाली तर पत्नीस मारणारी होते. बाकीचे शुभकारक योग आपल्या नांवासारखें फल देणारे आहेत.”

शांतिमाहप्रयोगपारिजातेशौनकः सार्तवानानुनारीणांशांतिक्षयमिशौनकः पंचमोहचतुर्थे-
षाप्रहयक्षपुरःसरम् तस्मिन्नहनिर्कृतव्योक्तुहोमोविधानतः आचार्यवरयेत्प्राज्ञोभुवनेश्वरितुष्टये । होमार्थच-
जपार्थचवरयेद्विजोबहून् । यजमानोद्विजैःसार्धंशांतिहोमंसमाचरेत् । गृहादीशानदिग्भागे देवनापूजना-
यच द्रोणप्रमाणधान्येनब्रीहिराशित्रयंभवेत् कुंभत्रयंन्यसेद्राशौतंतुवस्त्रादिवेष्टितम् पूरयेत्तीर्थसलिलैःप्रतिकुं-
भंपृथक्पृथक् सूक्तेनाथनवर्चनप्रसुवआपइत्यथ ऋचायाःप्रवतस्तद्वायव्याचततःक्रमान् मध्यकुंभेक्षिपेद्वा-
न्यमौषधानिचहेमश्च ततश्चपंचरत्नानिगंधपुष्पाक्षतादिकान् औषधानिचवक्ष्यतेमुनिभिःशांतिकागणान् उदुं-
धरःकुशोदूर्वाराजीववटविल्वकाः विष्णुकांताथतुलसीबहिर्पंशंखपुष्पिका शतावर्यश्रगांधाचनिर्गुडीसर्पपद्म-
यम् अपामार्गःपलाशश्चपनसोजीवकस्तथा प्रियंगबश्चगोधूमाब्रीहयोऽश्वत्थगवच क्षीरंदधिवचसर्पिश्चपद्मप-
त्रंतथोत्पलम् कुरंतकत्रयंगुंजावचाभद्रकमुस्तकाः द्वात्रिंशदौषधानीहयथासंभवमाहरेत् मृत्तिकाश्चौषधादी-
नितमंत्रेणक्षिपेत्क्रमात् कुंभोपरिन्यसेत्पात्रांकांस्वमृद्रेणुताम्रजम् भुवनेश्वरीन्यसेत्तत्रइंद्राणींचपुरंदरं जपेद्वाय-
त्रिमाहोमाच्छ्रीसूक्तंचजपेत्ततः स्पृशन्वैदक्षिणकुंभमृत्विगेकोजपेदथ चत्वारिरुद्रसूक्तानिचतुर्मंत्रोत्तराणिच
संस्पृशन्नुत्तरकुंभंश्रीरुद्रंरुद्रसंख्यया शनैर्इंद्रादीसूक्तंचतत्रैवसंस्पृशन्जपेत् कुंभस्यपश्चिमेदेशांतिहोमंसमाच-
रेत् दूर्वाभिस्तिलगोधूमेःपायसेनघृतेनच तिसृभिश्चैवदूर्वाभिरैकैकाचाहुतिर्भवेत् अष्टोत्तरसहस्रंवाशतमष्टो-
त्तरंतुवा गायत्र्यैवतुहोतव्यंहविरत्रचतुष्टयम् ततःस्विष्टकृतंहुत्वासमुद्रादूर्मिसूक्ततः संततामाज्यधारांतांपूर्णा-
हुतिमथाचरेत् अथाऽभिषेकंकुर्वीतप्रतिकुंभस्थितोदकैः आपोहिष्ठेतिनवभिःसूक्तेनचततःपरम् इंद्रोअंगृचे-
नैवपावमानैःक्रमेणतु उभयंशृणवन्नःस्वस्तिदाविशएकया त्रैयंबकेनमंत्रेणजातवेदसएकया समुद्रज्येष्ठाइत्या-
दित्रायंतांचत्रिभिःक्रमात् इमाआपस्पृचेनैवदेवस्यत्वेतिमंत्रतः मंत्रेणाथतमीशानंतवमग्रेरुद्रइत्यथ तमुष्टुहीति-
मंत्रेणभुवनस्यपितरंतथा यातेरुद्रेतिमंत्रेणशिवसंकल्पमंत्रतः इद्रत्वावृषभंपंचमंत्रंश्रैवाभिषेचयेत् धेनुंपयस्वि-
नीद्यादाचार्यायचभूषणैः सदक्षिणमनड्वाहंप्रदद्याद्बुद्रजापिने महाशांतिप्रजप्याथब्राह्मणान्भोजयेत्ततइति ।

दुष्टरजोदर्शनाविषयीं शांति सांगतो.—

प्रयोगपारिजातांत शौनक—“मी शौनक रजस्वला स्त्रियांची शांति सांगतो—पांचव्या किंवा चवथ्या दिवशी प्रहयज्ञपूर्वक शांति करावी. त्या दिवशीं यथाविधि ऋतुहोम करावा. भुवनेश्वरीच्या संतोषाकरितां होमासाठीं व जपासाठीं बहुत ऋत्विज बरावे. ब्राह्मणासहवर्तमान यजमानानें शांतिहोम करावा. घराच्या ईशान दिशेकडे देवतापूजनासाठीं एक श्रेण (चार पायली) भाताच्या तीन राशी कराव्या. त्या राशींवर सूत, वस्त्र इत्यादिकांनीं वेष्टिलेले असे तीन कुंभ स्थापावे. त्या प्रत्येक कुंभांत ‘प्रसुव आप०’ ह्या नऊ ऋचांनीं आणि ‘याःप्रवतो०’ या एक ऋचेनें व गायत्रीमंत्रानें अनुक्रमानें शुद्ध उदक भरावें. आणि गंधादिक घालावीं. मध्यकुंभांत धान्यें (यव, व्रीहि, तिल, उडीद, राळे, सांवे, मूग,); ओषधी म्हणजे—उंबर, कुश, दूर्वा, रक्तमळ, वड, बेल, विष्णुकांता, तुळस, बर्हिष, शंखपुष्पी, शतावरी, अस्फंध, निर्गुंडी, दोन प्रकारचे सर्षप, आघाडा, पळम, फणस, जीवक, राळे, गहू, व्रीहि, अधत्थ, कमळपत्र, कमळ, तीन प्रकारचा कोरांडा (पांढरा, तांबडा, पिवळा), गुंजा, वेखंड, भद्रमोथा, मोथा, ह्या वस्तीम ओषधी मिळतील त्या मिळवून घालाव्या. आणि दूध, दही, तूप घालावें. नंतर तीन कलशांत मृत्तिका (हत्तीची जागा, अश्वशाला, राजरस्ता, वारुळ, नवीसंगम, पाण्याचा डोह, गोठा यांतील सात मृत्तिका), ओषधी इत्यादि म्ह० दूर्वा, पंचपल्लव, (अश्वत्थ, उंबर, पायरी, आम्र, वट यांचे पल्लव), पूर्गीफळे, पंचरत्ने (सुवर्ण, हिरा, नील, पद्मराग, मौक्तिक), हीं त्या त्या मंत्रानें अनुक्रमानें टाकावीं. गंध, पुष्पें, अक्षता, इत्यादिक टाकावीं. नंतर तीन कलशांवर कांशाचीं, किंवा मातांचीं, अथवा वेळूचीं किंवा तांद्याचीं तीन पात्रें ठेवावीं. त्यांत मध्यकलशावर भुवनेश्वरीची, दक्षिणकलशावर इंद्राणीची आणि उत्तरकलशावर इंद्राची अशा सुवर्णप्रतिमा स्थापून त्यांच्या त्यांच्या मंत्रांनीं षोडशोपचारांनीं पूजा करावी. नंतर आचार्यानें मध्यकुंभाला स्पर्श करून अष्टसहस्र किंवा अष्टशत गायत्रीजप करून श्रीसूक्तजप करावा. एका ऋत्विजानें दक्षिणकुंभाला स्पर्श करून रुद्रसूक्तें चार (कद्रुद्राय० हें नऊ ऋचांचें सूक्त पहिलें, इमारुद्राय० हें अकरा ऋचांचें सूक्त दुसरें, आनेपितॄ० हें पंधरा ऋचांचें सूक्त तिसरें, इमारुद्रायस्थिर० हें चार ऋचांचें चवथें), पुढचे चार मंत्र (आवांराजा०, तमुष्टुहि०, भुवनस्य पितरं०, व्यंयकं०), यांचा जप करावा. दुसऱ्या ऋत्विजानें उत्तरकुंभाला स्पर्श करून रुद्राच्या अकरा आवांन कराव्या. आणि त्याच कुंभाला स्पर्श करून इतरानें, शान इंद्राभी० सूक्ताचा जप करावा. कुंभाच्या पार्श्वमार्गां स्थंडिल घालून त्याजवर शांतिहोम करावा. तो असा—नवग्रहांचा होम समिधा, तिल, आज्य ह्या द्रव्यांनीं करावा. भुवनेश्वरीला गायत्रीमंत्रानेंच दूर्वा, तिलमिश्र गोधूम, पायग, घृत, ह्या चार द्रव्यांचा अष्टोत्तर महस्र (१००८) किंवा अष्टोत्तरशत (१०८) मंत्रांचा होम करावा. तीन तीन दूर्वांची एक एक आहुति होते. नंतर स्विष्टकृताचा होम करून ‘समुद्राद्भि०’ या सूक्तानें सनत आज्यधारा ती पूर्णाहुति करावी. नंतर प्रत्येक कुंभातील उदक एका पात्रांत घेऊन ‘आपोहिष्टा०’ या नऊ ऋचांच्या सूक्तानें, ‘उंद्रोअंग०’ ह्या तीन ऋचा, पवमानमंत्र, ‘उभयं शृणवन्न०’ ही एक ऋचा, ‘स्वस्तिदावशम्पतिः०’ हा एक ऋचा, ‘व्यंयकं०’ हा एक मंत्र, ‘जातवेदसे०’ ही एक ऋचा, ‘समुद्रज्येष्ठाः०’ ह्या चार ऋचा, ‘त्रायंतां०’ ह्या तीन ऋचा, ‘दमाआपः०’ ह्या तीन ऋचा, ‘देवम्यत्वा०’ हे आपस्वंब शाखेंतील तीन मंत्र, ‘तर्मीशानं०’ हा एक मंत्र, ‘त्वमंश्वर०’ हा एक मंत्र, ‘तमुष्टुहि०’ हा एक मंत्र, ‘भुवनस्य पितरं०’ हा एक मंत्र, ‘याते रुद्र०’ हा एक मंत्र, ‘यज्ञाग्रत०’ हे महा शिवमंथन मंत्र, ‘उंद्र त्वा वृषभे०’ हे पांच मंत्र, यांनीं यजमान व पत्नी यांजवर अभिषेक करावा. नंतर आचार्याला अलंकारमहित पुष्कळ दूध देणारी धेनु द्यावी. रुद्रजप करणाराला दक्षिणासहित वृषभ द्यावा. व इतर ऋत्विजांना दक्षिणा द्यावी. नंतर ब्राह्मणाकडून महाशांतिजप करावा. महाशांति म्हणजे ‘आनोभद्रा०’ ह्या दहा ऋचा, ‘स्वस्तिनोमिमांता०’ ह्या पांच ऋचा, ‘जनं इंद्राभी०’ ह्या पंधरा ऋचा, ही होय. महाशांतीचा जप झाल्यावर ब्राह्मणांना भोजन घालावें.”

नारदः तत्रशांतिप्रकुर्वीतघृतदूर्वातिलाश्रनेः प्रत्येकाष्टशतंचैवगायत्र्याजुहुयात्ततः स्वर्णगोभूतिलानृद-
द्यात्सर्वदोपापनुत्तये प्रकारांतरमदनरत्नेत्रेयम विस्तरभयान्नोच्यते ग्रहणेरजोदर्शनेतुजातकर्मप्रस्तावेशांति
वक्ष्यामः । अथप्रथमतोविशेषःस्मृतिचंद्रिकायाम् प्रथमतोतुपुष्पिण्याःपतिपुत्रवतीस्त्रियः अक्षतेरा-
सनंकृत्वातस्मिस्तामुपवेशयेन् हरिद्रागंधपुष्पादिद्रव्युस्तांवूलकंस्रजम् दीपैर्नीराजनंकुर्यात्सदीपेवासयेद्दृष्टे लव-
णापूपमुद्रादिदद्यात्ताभ्यःस्वशक्तितइति ।

नारद—“रजोदर्शनाविषयीं सर्व दोषनशानाकरितां शांति करावी. घृत, दूर्वा, तिल, अक्षता, ह्या प्रत्येक द्रव्याचा गायत्री-
मंत्रानें अष्टशत होम करावा; नंतर सुवर्ण, गाई, भूमि, तिल, हीं ब्राह्मणांस द्यावीं.” दुसरा प्रकार **मदनरत्नांतून** जाणावा.
येथें फार विस्तार होईल म्हणून सांगत नाहीं. ग्रहणांत रजोदर्शन झालें असेल तर त्याची शांति जातकर्मप्रकरणीं पुढें सांगूं.
प्रथम रजोदर्शनाचे ठायीं विशेष सांगतो **स्मृतिचंद्रिकेत—**“स्त्रियेला प्रथम रजोदर्शन झालें असतां पतिपुत्रवती स्त्रियांनीं

अक्षतांचें आसन करून त्या आसनावर तिला बसवावी. आणि हळद, गंध, पुष्पें, तांबूल, सक् (माळा) हीं तिला घावीं. दिवे लावून नीरांजन करावें. दीपयुक्त घरांत तिला बसवावी. त्या स्त्रियांना आपल्या शक्तीप्रमाणें लवण, अपूप, मूग इत्यादिक द्यावे.”

द्वितीयाद्यर्तुषुतत्रियममाह पारिजातेदक्षः अंजनाभ्यंजनेस्नानं प्रवासं दंतधावनं न कुर्यात्सार्तवानारी प्रहाणामीक्षणंतथा अत्रिरपि वर्जयेन्मधुमांसंच पात्रे खर्वे च भोजनं गंधमाल्ये दिवा स्वापं तांबूलं चास्य शोधनं दग्धेशरावेभुंजीतपेयं चांजलिनापिवेत् मदनरत्नेहारीतः रजःप्राप्तावधः शयीत भूमौ कार्णाय सेपाणौ मृन्मये वाऽभियादिति विष्णुधर्मो आहारंगोरसानांच पुष्पांलंकारधारणं अंजनं कंकतं गंधान्पीठशय्याधिरोहणं अप्रिंसं स्पर्शनं चैव वर्जयेत्सादिनत्रयमिति ।

इदं च ऋतूपासून पुढें रजस्वला स्त्रियांचा नियम सांगतो पारिजातांत दक्ष—“डोळ्यांत काजळ घालणें, तेल लावणें, स्नान, प्रवास, दंतधावन, आणि प्रहणाचें दर्शन हीं रजस्वला स्त्रियेनें करूं नयेत.” अत्रिही—“रजस्वला स्त्रियेनें मध व मांस वर्ज्य करावें. खर्व (लहान) पात्रांत भोजन, गंध, माल्य, दिव्या निद्रा, तांबूल, मुखशोधन, हीं वर्ज्य करावीं. परळांत भोजन करावें. आणि पेय पदार्थ अंजलीनें प्यावा.” मदनरत्नांत हारीत—“रजोदर्शन प्राप्त असतां स्त्रियेनें भूमीवर शयन करावें. कृष्णलोहपात्रांत, हातावर किंवा मातीच्या पात्रांत भोजन करावें.” विष्णुधर्मांत—“रजस्वला स्त्रियेनें गोरसभक्षण, पुष्प व अलंकार यांचें धारण, डोळ्यांत अंजन, कंकत (फणीनें केशसंस्कार), गंध, आसन व शय्या ह्यांवर बसणें, अग्नीचा स्पर्श, हीं तीन दिवस वर्ज्य करावीं.”

तथाच प्रथमतोः पूर्वस्त्रीगमनं न कार्यम् प्राग्जोदर्शनात्पत्नीनेयाद्रत्वापतत्यधः व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयादिति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः एतत्तु दशवर्षात्प्राक्क्षेयम् प्रथमतो गमने गौतमेन विशेषो दर्शितः गौरीमपि चरत्यर्थं गच्छेत्पुरुषाकुलः अन्यथा वीर्यपातो हि सहस्रकुलपातकः अन्यथापि तदिच्छया भवतीति विज्ञानेश्वरः तत्र ऋतौ गमनमाह याज्ञवल्क्यः षोडशर्तुर्निशाब्धीणां तस्मिन् युग्मासु संवसेदिति अनृतावप्याह गौतमः ऋतावुपेयात्सर्वत्रवाप्रतिषिद्धवर्जमिति मनुः ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृताः तासामाद्याश्च तस्त्रुनिंदितैकादशी तथा त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दशरात्रयः मदनरत्ने देवलः तस्मात्त्रिरात्रांचंडालीं पुष्टितां परिवर्जयेदिति ।

तसेंच प्रथम ऋतुदर्शनाच्या पूर्वी स्त्रीगमन करूं नये. कारण, “रजोदर्शनाच्या पूर्वी स्त्रीयेप्रत गमन करूं नये. गमन करील तर अधःपात (नरकपात) होईल. कारण, निरर्थक शुक्रपात केल्यानें ब्रह्महत्याचा दोष प्राप्त होईल” असें तेथेंच विष्णुधर्मांत आश्वलायनवचन आहे. हें स्त्रीगमन वर्ज्य सांगितलें तें दहा वर्षांच्या आंतील स्त्री असतां समजावें. कारण, ऋतुदर्शनाच्या पूर्वी गमनाविषयी गौतम विशेष दाखवितो—“स्त्रीसंगाविषयी आकुल (कामातुर) झालेल्या पुरुषानें सुरतासाठीं गौरी (दहावर्षांचे) देखील स्त्रियेप्रत गमन करावें. कारण, स्त्रीसंगावांचून इतर प्रकारानें वीर्यपात झाला तर तो हजारों कुलांना अधःपात करणारा आहे.” स्त्रीसंगावांचूनही स्त्रियेची इच्छा झाल्यानें वीर्यपात होतो, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. आतां ऋतूचे ठायीं गमन सांगतो. याज्ञवल्क्य—“स्त्रियांना रजोदर्शनापासून सोळा रात्रि ऋतुकाल म्हटला आहे. त्या ऋतुकालांत समरात्रींचे ठायीं (सहाव्या, आठव्या इत्यादि रात्री) गमन करावें.” ऋतुभिन्नकालीं देखील सांगतो गौतम—“ऋतुकालीं स्त्रियेप्रत गमन करावें. अथवा निषिद्ध दिवस वर्ज्य करून सर्वकालीं (ऋतुकालीं व अनृतुकालीं) गमन करावें.” मनु—“स्त्रियांचा स्वाभाविक ऋतुकाल सोळा रात्री म्हटला आहे. त्या सोळा रात्रींमध्ये पहिल्या चार रात्री, अकरावी आणि तेरावी रात्र ह्या निंदित आहेत. बाकीच्या दहा रात्री प्रशस्त आहेत.” मदनरत्नांत देवल—“तस्मात् कारणात् रजस्वला स्त्री तीन दिवस चांडालीप्रमाणें वर्ज्य करावी.”

तत्र तिथ्यादीनाह श्रीधरः षष्ठ्यष्टमीपंचदशीचतुर्थीचतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशांकार्यसिते दुजानाम् उभयत्र पक्षद्वये आर्योगुरुः सितः शुक्रः इंदुजोबुधः विष्णुप्रजेशरविमित्र समीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानिनिषेककार्ये पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्यश्रममध्यमफलाविफलाः स्युरन्ये विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्राण्युक्तानि रत्नमालायां भेशादस्य ममाभिधातृशशिनः शर्वोदितिर्वाकपतिः कश्रुजाः पितरो भगोर्यभरवीत्वष्ट्राह्वयो मारुतः शक्राग्नीत्वथमित्रइंद्रनिर्ऋतीतोयंच विधेविधिर्गोविंदो वसवो बुधा-

जचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः उत्तराशब्देनोत्तरात्रयं अत्रमूलस्यपूज्यत्वमुक्तम् याज्ञवल्क्येनतु एवंगच्छन्-
स्त्रियंक्षामांमघांमूलंचवर्जयेदित्युक्तं तैनपूर्वत्रमूलंचित्यम् ।

त्या गमनाविषयीं तिथि, वार इत्यादिक सांगतो श्रीधर—“षष्ठी. अष्टमी, पंचदशी (पंधरावी तिथि), चतुर्थी आणि चतुर्दशी ह्या शुक्र व कृष्ण दोन्ही पक्षांतील तिथि वर्ज्य करून उरलेल्या बाकीच्या तिथि आणि सोम, गुरु, शुक्र, बुध हे वार स्त्रीगमनाविषयीं प्रशस्त आहेत. विष्णु (श्रवण), प्रजापति (रोहिणी), रवि (हस्त), मित्र (अनुराधा), वायु (स्वाती), पूषा (रेवती), मूल, उत्तरा (उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा), वरुण (शततारका) हीं नक्षत्रं गर्भाधानाविषयीं शुभ आहेत. पुष्य, वसु (धनिष्ठा), चंद्र (मृगशीर्ष), अश्विनी, चित्रा, अदिति (पुनर्वसु), हीं नक्षत्रं मध्यम आहेत. आणि बाकीचीं नक्षत्रं अशुभ आहेत.” वरील श्लोकांत विष्णु इत्यादिक नक्षत्रं सांगितली आहेत तीं कोणतीं, हें समजण्याकरितां नक्षत्रांच्या देवता सांगतो **रत्नमालेंत**—“अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, धाता (प्रजापति), चंद्र, शंकर, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग. अर्यमा, रवि, लग्ना, वायु, इंद्राग्नी, मित्र, इंद्र, निर्ऋति, उदक, विश्वेदेव, विधि, विष्णु, वसु, वरुण, अजचरण, अहिर्बुध्न्य, आणि पूषा, ह्या अश्विनीपासून अष्टावीस नक्षत्रांच्या देवता अनुक्रमानें आहेत.” ह्या वरील श्लोकांत मूल नक्षत्र गर्भाधानाविषयीं शुभ सांगितलें आहे. **याज्ञवल्क्यानें** तर—“याप्रकारें स्त्रियेप्रत गमन करणारानें मघा व मूल नक्षत्र वर्ज्य करावें. असें मूल नक्षत्र वर्ज्य सांगितलें आहे. तेणेंकरून पूर्ववचनांत मूल नक्षत्र उक्त सांगितलें तें चित्य (प्रमाणशून्य) होय.

अत्रसमासुपुत्राः विषमामुक्त्यकेतिज्ञेयम् युग्मासुपुत्राजायंतेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिष्वितिहेमाद्रौशं-
खोक्तेः तत्राप्युत्तरोत्तराःप्रशस्ताः तदाहापस्तंबः तत्राप्युत्तरोत्तराप्रशस्तेति तत्रैवव्यासः रात्रौचतुर्थ्या-
पुत्रःस्यादल्पायुर्धनवर्जितः पंचम्यांपुत्रिणीनारीपप्रयांपुत्रभुतमध्यमः सप्रम्यामप्रजायोपिदृष्टम्यामीश्वरः
पुमान् नवम्यांभुभगानारीदशम्यांप्रवरःसुतः एकादश्यामधर्मास्त्रीद्वादश्यांपुरुषोत्तमः त्रयोदश्यांसुतापापा-
वर्णसंस्करकारिणी धर्मज्ञश्चक्रतज्ञश्चात्मवेदीदृढव्रतः प्रजायतेचतुर्दश्यांपंचदश्यांपतिव्रता आश्रयःसर्वभू-
तानांपोडश्यांजायतेपुमानिति अत्रचतुर्थदिननिषेधेपि स्नातांचतुर्थदिवसेरात्रौगच्छेद्विचक्षणइति**महाभा-**
रतोक्तेः चतुर्थेहनिस्नातायांयुग्मासुवागर्भसंदधातीतिहारीनोक्तेर्विकल्पोज्ञेयः तत्रापि स्नानंरजस्वला-
यास्तुचतुर्थेहनिशस्यते गम्यानिवृत्तेरजसानिनिवृत्तंकथंचनेत्यापस्तंबोक्तेर्व्यवस्थाज्ञेया ।

ह्या ऋतुकाळांत समरात्रां गमन केलें तर पुत्र व विषम रात्री गमन केलें तर कन्या होतात असें जाणावें. कारण, “युग्म (सम) रात्रीं पुत्र होनात व विषम रात्रीं कन्या होतात” असें हेमाद्रौत शंखवचन आहे. त्यांतही उत्तरोत्तर रात्री प्रशस्त आहेत. तें सांगतो आपस्तंब—“त्यांतही उत्तरोत्तर रात्रि प्रशस्त आहेत.” तेथेंच व्यास—“चवथ्या रात्री पुत्र होतो, तो अन्त्यायुर्धन व धनरहित होतो. पांचव्या रात्री गमन केलें तर पुत्रवती कन्या होते. सहाव्या रात्री मध्यम पुत्र होतो. सातव्या रात्री प्रजा न होणारी कन्या होते. आठव्या रात्री ईश्वरतुल्य पुत्र होतो. नवव्या रात्री सुभग कन्या होते. दहाव्या रात्री श्रेष्ठ पुत्र होतो. अकराव्या रात्री अधर्म करणारी कन्या होते. बाराव्या रात्री पुरुषश्रेष्ठ होतो. तेराव्या रात्री पापी कन्या वर्णसंस्कर करणारी अशी होते. चवदाव्या रात्री धर्मवेत्ता उपकार जाणणारा आत्मवेत्ता दृढ व्रत धरणारा असा पुत्र होतो. पंधराव्या रात्री पतिव्रता कन्या होते. सोळाव्या रात्री गर्व प्राण्यांना आश्रयरूप असा पुरुष होतो.” येथें वरील मनु इत्यादिवचनांत चवथ्या दिवसाचा निषेध केला तरी “चवथ्या दिवशीं स्नान केलेल्या स्त्रियेप्रत रात्री गमन करावें.” ह्या महाभारतवचनावरून; व चवथ्या दिवशीं स्नान केलेल्या स्त्रियेचे टाळीं अथवा युग्म (सम) रात्री पति गर्भसंधान (स्थापन) करितो” ह्या हारीतवचनावरून चवथ्या रात्री विकल्प जाणावा. त्या विकल्पामध्यें देखील “रजस्वलेचें स्नान चवथ्या दिवशीं प्रशस्त आहे. रजाची निवृत्ति झाली असतां स्त्रीप्रत गमन करावें. रजाची निवृत्ति झाली नसेल तर कदापि गमन करूं नये.” ह्या आपस्तंबवचनावरून व्यवस्था जाणावी.

अत्रसर्वासुयुग्मासुगमनमावश्यकम् युग्मास्वितिवहुवचननिर्देशादितिविज्ञानेश्वरः तथैकस्यांरात्रौस-
कृदेवकार्यं सुस्थंइदौसकृत्पुत्रंलक्षण्यंजनयेत्पुमानिति**याज्ञवल्क्योक्तेः** इदंचतौगमनमन्यकालेप्रतिबंधा-
दिनागमनासंभवेश्राद्धैकादश्यादावपिकार्यं ब्रह्मचार्येवपर्वाण्याद्याश्रतस्त्रयवर्जयेदिति**याज्ञवल्क्योक्तेः**
व्याख्यातचैवंमिताक्षरायां यत्रश्राद्धादौब्रह्मचार्यविहिततत्राप्यतौगच्छतोतब्रह्मचार्यस्त्वलनदोषइति पर्वाणीति
बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमितिच मदनरत्नेप्येवं यदुहेमाद्रौशिखरइत्ये दिवाजन्मदिनेचैवब्रह्म-

र्यान्मैथुनव्रती श्राद्धदत्वाच्चभुक्त्वाचभ्रेयोर्थीनचपर्वस्विति तदनृतुविषयं ब्रह्मचार्येवभवतियत्रतत्राश्रमेवस-
न्निति**मनूक्तेः** दर्शदौतुनभवत्येव पर्वणांपर्युदस्तत्वात् **माधवीये**तु ऋतुकालनियुक्तोवनैवगच्छेत्स्त्रियं
कचित् तत्रगच्छन्समाप्रोतिहानिष्टफलमेवत्विति**वृद्धमनूक्तेः** श्राद्धेब्रह्मचर्यनियतमित्युक्तम् **पृथ्वीचंद्रोद-**
येष्वेवं एतत्सतिसंभवेज्ञेयं अनेकभार्यस्यतुयौगपद्येहे**माद्रीकश्यपः** यौगपद्येतुतीर्थानांविवाहक्रमशोत्र-
जेत् रक्षणार्थमपुत्रांवाग्रहणक्रमशोपिवेति ग्रहणमृतुग्रहणं **ऋग्विधाने** विष्णुर्योनिंजपेत्सूक्तंयोनिंस्पृष्ट्वात्रि-
भिर्व्रती गर्भाधानंततःकुर्यात्सुपुत्रोजायतेध्रुवम् ।

ह्या ऋतुकालीं साऽन्या युग्मरात्रीं गमन अवश्य आहे. कारण, वरील याज्ञवल्क्यवचनांत 'तस्मिन् युग्मासु संवसेत्' म्हणजे ऋतुकालीं युग्म (सम) रात्रीं गमन करावें. यांत 'युग्मासु' समरात्रीं, असें बहुवचन केलेलें आहे, असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. तें गमन एका रात्रीं एकवारच करावें. कारण, चंद्रबळ असतां पुरुष एकवार गमन करून मुलक्षणी पुत्र उत्पन्न करील" असें **याज्ञवल्क्य**वचन आहे. हें ऋतुकालीं गमन इतर दिवशीं प्रतिबंध वगैरे असल्यामुलें झालें नसेल तर श्राद्धाचा दिवस, एकादशी इत्यादिकांचे ठायीं देखील करावें. कारण, "पर्व दिवस आणि पहिल्या चार रात्री वर्ज्य करून गमन करणारा ब्रह्मचारीच समजावा" असें **याज्ञवल्क्याचें** वचन आहे. या वचनाची व्याख्या **मिताक्षरेंत** केली आहे, ती अशी—जेथें श्राद्धादिकांत ब्रह्मचर्य सांगितलें आहे तेथें देखील ऋतुकालीं गमन करणाराला ब्रह्मचर्यहानिरूप दोष होत नाही. आणि त्या वचनांत 'पर्वणि' ह्या बहुवचनानें अष्टमी व चतुर्दशी यांचें ग्रहण होतें, असेंही **मिताक्षरेंत** सांगितलें आहे. **मदनरत्नां**ही असेंच आहे. आतां जें **हेमाद्रींत शिवरहस्यांत**—"दिवसा, व जन्मदिवशीं मैथुन करूं नये. व्रतस्थानें मैथुन करूं नये. दुसऱ्याच्या श्राद्धांत भोजन करून व आपण श्राद्ध करून मैथुन करूं नये. आणि कल्याणेच्छेन पर्वीचे ठायीं मैथुन करूं नये" असें सांगितलें तें ऋतुभिन्नकालविषयक आहे. कारण, "कोणत्याही आश्रमांत (गृहस्थाश्रमांतही) राहणारा ऋतुकालीं गमन करील तर तो ब्रह्मचारीच होतो म्हणजे ब्रह्मचर्यापासून भ्रष्ट होत नाही" असें **मनु**वचन आहे. दर्शदि पर्वीचे ठायीं तर ऋतुकालीं गमन नाहीच. कारण, वरील याज्ञवल्क्यवचनांत पर्व वगळलीं आहेत. **माधवी-यांत** तर—ऋतुकालीं स्त्रीगमनाविषयीं वडिलांनीं नियोग (आज्ञा) केली असली तरी श्राद्धदिवशीं स्त्रीगमन कदापि करूं नये. कारण, श्राद्धदिवशीं गमन करणारास अनिष्ट फलच प्राप्त होतें" ह्या **वृद्धमनु**वचनावरून श्राद्धाचे ठायीं ब्रह्मचर्य नियमित आहे, असें सांगितलें आहे. **पृथ्वीचंद्रोदयांत**ही असेंच आहे. हें नियमित ब्रह्मचर्य संभवत असतां जाणावें. ज्याला अनेक भार्या आहेत त्याचे अनेक स्त्रियांना एक समर्थी ऋतु प्राप्त असतां सांगतो **हेमाद्रींत कश्यपः**—"अनेक स्त्रियांना एक समर्थी ऋतु प्राप्त असेल तर त्या स्त्रियांप्रत विवाहक्रमानें (ज्या क्रमानें विवाह झालेला असेल त्या क्रमानें) गमन करावें. अथवा जिला पुत्र नसेल तिच्या संतोषार्थ पूर्वी तिजप्रत गमन करावें." किंवा ज्या क्रमानें ऋतु प्राप्त असेल त्या क्रमानें गमन करावें." **ऋग्विधानांत**—"व्रतस्थ पुरुषानें स्त्रियेला ऋतु प्राप्त असतां तीन अंगुलींनीं योनीला स्पर्श करून 'विष्णुर्योनिं०' या सूक्ताचा जप करावा, नंतर गर्भाधान (स्नांसंभोग) करावें, म्हणजे उत्तम पुत्र निश्चयानें होतो."

अगमनेदोषमाहपराशरः ऋतुज्ञातांतुयोभार्यासन्निधौनोपगच्छति घोरायांभ्रूणहत्यायांपच्यतेनात्रसं-
शयः अस्यापवादमाह**मदनरत्ने**न्यासः व्याधितोबंधनस्थोवाप्रवासेष्वथपर्वसु ऋतुकालेपिनारीणांभ्रूण-
हत्याप्रमुच्यते वृद्धांवंध्यामसदृत्तांमृतापत्यामपुष्पिणीं कन्यासूंबहुपुत्रांचवर्जयेन्मुच्यतेभयान् वृद्धांगतरजस्कां
गर्भाधानांगहोमाकरणेप्रायश्चित्तमाह**पारिजाते आश्वलायनः** गर्भाधानस्याकरणात्तस्यांजातस्तुदुष्यति
अकृत्वागां द्विजेदत्वाकुर्यात्पुंसवनं पतिः गर्भाधानंमलमासगुरुशुक्रास्तादावपिकार्यं उत्सवेषुचसर्वेषुसीमंतेऋ-
तुजन्मसु सुरासुरेज्ययोश्चैवमौढ्यदोषोनविद्यत इति **ज्योतिर्निबंधेभृगूक्तेः** ऋतुगमने**पराशरः**
ऋतौतुगर्भंशक्तिवात्स्नानंमैथुनिनःस्मृतं अनृतौतुयदागच्छेच्छौचंमूत्रपूरीषवत् स्त्रीणांतुनस्नानं उभावप्यशु-
चीस्यातांपतीशयनंगतौ शयनादुत्थितानारीशुचिःस्यादशुचिःपुमानिति **वृद्धशातातपोक्तेः** ।

ऋतुकालीं गमन न केलें असतां दोष सांगतो पराशरः—"जो मनुष्य संनिध असलेल्या ऋतुज्ञात भार्येप्रत गमन

१ शौचद्वयं कार्यमित्यर्थः । तच्च बसिष्ठः—एका लिंगे करे तिल उभयोर्मृत्तिकाद्वयम् ॥ एकैकथा मृदा पादौ प्रक्षाल्य तु शुचिर्भ-
वेत् ॥ मूत्रशौचं समाख्यातं शुके तु द्विगुणं स्मृतं । स्युः—दे लिंगे मृत्तिके देये गुदे पंच करे दश । उभयोः सप्त दातव्या विद-
शौचे मृत्तिकाः स्मृताः ॥ शंखः—तिलस्तु पादयोर्देयाः शौचकामस्य नित्यशः । शौचे तु वामपूर्वं स्यादन्यत्र स्यात् दक्षिणं ॥
शौचाद्वेते वामपादपूर्वं प्रक्षालनं नास्तीत्यर्थः ॥

करीत नाही, तो भयंकर अशा भ्रूणहत्या दोषाचे ठायीं पक्क होतो, यांत संशय नाही.” याचा अपवाद सांगतो **मदनरकांत व्यास**—“व्याधिग्रस्त, बंदीत असलेला, किंवा प्रवासांत असलेला, आणि पर्व दिवस असतां पुरुष स्त्रियांच्या ऋतुकालीं देखील गमन न करील तरी त्याला भ्रूणहत्या दोष सुटलेला आहे. वृद्धा (विटाळ गेलेली), वांझोटी, असत् वर्तन करणारी, मुलें मरणारी, रजोदर्शन नसलेली, कन्या प्रमवणारी, बहुत पुत्र झालेली, अशा स्त्रियांला वज्य करणारा दोषापासून मुक्त होतो.” गर्भाधानांग होम न केला तर प्रायश्चित्त सांगतो **पारिजातांत आश्वलायन**—“गर्भाधान न केल्याने तिच्या ठिकणीं झालेला दुष्ट होतो. तें गर्भाधान न करितां गभिणी झाली तर पतीनें ब्राह्मणाला गाई देऊन पुंसवन संस्कार करावा.” गर्भाधान मलमाम, गुरुशुक्रांचें अस्त इत्यादिकांतही करावें. कारण, “सर्व उत्सव, सीमंतसंस्कार, ऋतुदर्शनसंस्कार यांविषयीं गुरुशुक्रांच्या अस्ताचा दोष नाही.” असें **ज्योतिर्विंधान भृगुवचन** आहे. ऋतुगमनाविषयीं सांगतो **पराशर**—“ऋतुकालीं मंथून करणाऱ्या पुरुषाम शंका अगत्यामुलें ज्ञान मागितलें आहे. जेव्हां ऋतुभिन्नकालीं गमन करील तेव्हां मूत्र व पुरीष केल्याप्रमाणें शुद्ध करावी.” हें ऋतुकालीं ज्ञान मागितलें तें पुरुषास समजावें. स्त्रियांना तर ज्ञान नाही. कारण, “एकत्र शयनावर निजलेली स्त्री-पुरुष दोघेही अशुचि होतात. शयनापासून उठलेली स्त्री शुद्ध आहे. पुरुष अशुद्ध आहे” असें **वृद्धशानातपवचन** आहे.

अत्रकश्चिद्विशेष उच्यते तत्ररात्रौ रजसिजननादौ चरात्रिभिर्भागांकृत्वा आद्यभागद्वयेचेत्पूर्वदिनं ब्राह्मं परत-
स्तृत्तरदिनमिति **मिताक्षरायां** यत्तु प्रागर्धरात्रात्प्राग्वामूर्त्यदयात्पूर्वदिनं ब्राह्ममित्युक्तं तत्र देशाचाराव्यवस्था
तथासप्तदशदिनपर्यंतं पुनारजोदर्शने स्नानमात्रं अष्टादशेणकरात्रं एकानविंशेद्वयहः विंशतिप्रभृति त्रिरात्रमि-
तिततएवज्ञेयं यत्तु चतुर्दशदिनाद्वर्गागशुचित्वं न विद्यत इति तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतं एतच्च यस्याविंशतिदि-
नोत्तरं प्रायशोरजस्तत्रैव यस्यास्त्वर्वाकप्रायशोरजस्तत्रोक्तं **स्मृत्यर्थसारं** त्रयोदशदिनादूर्ध्वप्रायोरजोवती-
नामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति एकादशदिनेणकरात्रम् द्वादशेद्विरात्रं ऊर्ध्वत्रिरात्रमिति **प्रयोगपारि-
जातेष्वेवं** रोगजेतुतत्रैव विशेषः **संग्रहे** रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैका-
रिकं मतमिति कर्माधिकारस्तुरजोनिवृत्तावेव साध्याचागनतावत्यात्स्नातापि स्त्रीरजस्वला यावत्प्रवर्तमानं हि र-
जो नैव निवर्तत इति **श्राद्धहमाद्रौ शंखोक्तं** तत्रापि स्वकालं अशुचिरेवेत्याह **ऋषयः** रोगजेवर्तमाने-
पिकाले निर्यातिकालं तस्मात्कालं प्रमत्ताभ्यां दान्यथा संकरो भवेत् तथा रजस्वलायाः रजस्वलांतरस्पर्शे अकामतः-
स्नानं कामतः उपवासः पंचगव्याशनं च असवर्णानां तु ब्राह्मण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे कमेण कृच्छ्राधपादो न कृच्छ्र-
कृच्छ्राः क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपाद एव क्षत्रियादीनां हीनवर्णास्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः वैश्याशूद्रोः पूर्वयास्पर्शे हो-
रात्रंद्विरात्रं च एतच्च कामतः अकामतस्तु प्राक्शुद्धं रजः न अकामतः चांडालादिस्पर्शे न्वनशनमेव प्राक्शुद्धेः
कामतस्तु प्रथमे ह्यहः द्वितीये द्वयहः तृतीये द्वयहः श्रमशंशुद्धाहणाकोवा भुजानायाश्चांडालादिस्पर्शे पद्मात्रं
उच्छिष्टप्रयोः स्पर्शं तु कृच्छ्रडल्यादि **मिताक्षरायां ज्ञेयं स्मृत्यर्थसारं तु** सर्वत्रवालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते-
भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याग्राय इति स्नानविधिचाह **पराशरः** स्नानेनैमित्तिके प्राप्तेनारी यदिरजस्वला पात्रांत-
रिततो येन स्नानं कृत्वा त्रतंचरेत् सित्कगात्रा भवेदङ्घ्रिः सांगोपांगाकथंचन न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ।

व्या रजोदर्शनाविषया कांहीं विशेष सांगतो—रात्री रजोदर्शन आणि जननादिक आशांच प्राप्त असतां रात्रीचे तीन भाग करून पहिल्या दोन भागांमध्ये असेल तर पूर्व दिवस धरावा. तिसऱ्या भागांत असेल तर पुढचा दिवस धरावा, असें **मिताक्षरेंत** मागितलें आहे. आतां जें “अधरात्राच्या पूर्वा रज वर्गरे प्राप्त असतां पहिला दिवस किंवा सूर्योदयापूर्वी प्राप्त असतां पहिला दिवस धरावा, असें मागितलें आहे, तेथें देशाचारावरून व्यवस्था जाणावी. तसेंच रजोदर्शन दिवसापासून पुनः सतराव्या दिवसापर्यंत रज प्राप्त झालें असतां ज्ञान मात्र करावें. अठराव्या दिवशीं रज प्राप्त असतां एक दिवस धरावा. एकोणिसाव्या दिवशीं प्राप्त असतां दोन दिवस धरावे. विंशत्या दिवसापासून पुढें प्राप्त असतां तीन दिवस अशुचिल धरावे, हें सर्वे मिताक्षरा ग्रंथापासूनच जाणावें. आतां जें “चवदाव्या दिवसापूर्वी रज प्राप्त झालें असतां अशुचित्वा नाही” असें मागितलें आहे, तेथें ज्ञानादिक जाणावें. म्हणजे चवदाव्या दिवशीं असेल तर ज्ञान, पंधराव्या दिवशीं असेल तर एक दिवस, सोळाव्या दिवशीं असेल तर दोन दिवस, आणि सतराव्या दिवसापासून पुढें असेल तर तीन दिवस, असा अभिप्राय. हा प्रकार जिला विसाव्या दिवसापुढें प्रायशः रज प्राप्त होत असेल ती विषयांच जाणावा. जिला बहुतकरून लवकर रज प्राप्त

होत असतें तीविषयीं सांगतो **स्मृत्यर्थसारांत**—तेराव्या दिवसापुढें फार करून रजस्वला होणाऱ्या स्त्रियांना अकराव्या दिवसाच्या पूर्वी प्राप्त होईल तर अशुचिल नाही. अकराव्या दिवशीं प्राप्त असतां एक दिवस. बाराव्या दिवशीं प्राप्त असतां दोन दिवस. याच्या पुढें प्राप्त असतां तीन दिवस. **प्रयोगपारिजातांत**ही असेंच आहे. रोगापासून झालेल्या रजाविषयीं तर सेथेंच विशेष सांगतो **संप्रदांत**—“स्त्रियांना रोगानें जें प्रत्यहीं रज प्रवृत्त होतें, त्या योगानें ती स्त्री अशुचि होत नाही. कारण, तें रज वैकारिक (विकारानें झालेलें) आहे.” कर्माविषयीं अधिकार तर रजाची निवृत्ति झाल्यावरच समजावा. कारण, “रजस्वला स्त्री ज्ञान केली तरी जोंपर्यंत प्रवृत्त झालेलें (खवणारें) रज निवृत्त (बंद) झालें नाही, तोंपर्यंत तिनें चांगला आचार (कर्म) करूं नये” असें **श्राद्धहेमाद्रीत** शंखवचन आहे. रोगजन्य रज प्रत्यहीं अमतां देखील कालिक रजाच्या कालीं अशुचिच आहे, असें सांगतो **ऋष्यशृंग**—“रोगजन्य रज प्रवृत्त असतांही आपल्या कालीं कालज रज प्रवृत्त होतें तत्सात् त्या कालिक रजाच्या कालीं हें रज रोगज किंवा कालिक, असें जाणण्याविषयीं स्त्रियेनें सावध असावें. सावध नसेल तर कालिक व रोगज यांचा संकर होईल.” तसेंच रजस्वलेला दुसऱ्या रजस्वलेचा स्पर्श न यमजून झाला असतां ज्ञान करावें. मुद्दाम स्पर्श करील तर उपवास करावा, आणि पंचगव्य प्राशन करावें. भिन्न जातीच्या स्त्रियांना तर सांगतो—रजस्वला ब्राह्मणीला रजस्वला क्षत्रियेचा स्पर्श झाला तर अर्ध कृच्छ्र, वैश्येचा स्पर्श झाला तर पाऊण कृच्छ्र, शूद्रेचा स्पर्श झाला तर एक कृच्छ्र. आणि क्षत्रियेला, वैश्येला, व शूद्रेला ब्राह्मणीचा स्पर्श असतां पादकृच्छ्रच आहे. रजस्वला क्षत्रियादि स्त्रियांना हीन जातीच्या रजस्वलेचा स्पर्श असतां तीन दिवस उपवास सांगितला आहे. वैश्या व शूद्रा यांना क्षत्रियेचा स्पर्श अमतां अनुक्रमानें अहोरात्र आणि द्विरात्र उपवास. हें प्रायश्चित्त मुद्दाम होऊन स्पर्श अमतां समजावें. माहजिक स्पर्श होईल तर शुद्धीपर्यंत भोजन करूं नये. साहजिक चांडालादिकांचा स्पर्श झाला तर शुद्धीच्या पूर्वीं अभोजनच सांगितलें आहे. चांडालादिकांना मुद्दाम स्पर्श केला तर प्रथम दिवशीं स्पर्श असतां तीन दिवस उपवास. दुसऱ्या दिवशीं स्पर्श केला तर दोन दिवस उपवास करावा. तिसऱ्या दिवशीं स्पर्श केला तर एक दिवस उपवास. कुत्र्याचा स्पर्श झाला तर दोन किंवा एक दिवस उपवास करावा. रजस्वला भोजन करीत असतां चांडालादिकांचा स्पर्श होईल तर सहा दिवस व्रत (उपवासादि) करावें. रजस्वला स्त्रिया उच्छिष्ट असतां त्यांचा परस्पर स्पर्श झाला तर कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें, इत्यादि प्रकार **मिताक्षरें** तून जाणावें. **स्मृत्यर्थसारांत** तर—मूल लहान असलेल्या रजस्वलेला वर सांगितलेल्या सर्व स्पर्शांविषयीं ज्ञान केल्यावर भोजन आहे. नंतर उपवासाचा प्रतिनिधि सांगितला आहे. नैमित्तिक स्नानाचा विधि सांगतो **पराशर**—“नैमित्तिक स्नान प्राप्त असतां जर स्त्री रजस्वला असेल तर तिनें बुडी न मारतां पात्रांत उदक घेऊन स्नान करून व्रत (रजस्वलाधर्म) करावें. तिचीं मुख्य अंगें व उपांगां उदकानें भिजतील असें कसेंही तिनें स्नान करावें. वस्त्र पिळूं नये व दुयारें वस्त्र नसूं नये.”

अथरजस्वलान्नं दैवज्ञवल्गुभः ब्रह्मानुराधाश्विनसोमभेपुहस्तानिलाखंडलवासवेपु विश्वार्यम-
क्षोत्तरभाद्रभेपुवरांगनास्नानविधिःप्रदिष्टः **ज्वरेतूशनाः** ज्वराभिभूतायानारीरजसाचपरिमुता कथंतस्या-
भवेच्छौचंशुद्धिःस्यात्केनकर्मणा चतुर्थेहनिंसंप्राप्तेस्पृशेदन्यातुतांस्त्रियं सासचैलावगाह्यापःस्नात्वास्नात्वापुनः
स्पृशेत् दशद्वादशकृत्वोवाआचामेष्पुनःपुनः अंतचवाससांत्यागस्ततःशुद्धाभवेत्तुसेति इदंचातुरमात्रेज्ञेयं
आतुरेस्नानउत्पन्नेदशकृत्वोह्यानतुरइति**पराशरोक्तेः** रजसोज्ञानेतुपराशरमाधवीयेप्रजापतिः
अविज्ञातेमलेसाचमलवद्वसनयदि कृतंगहेपुदुष्टस्याच्छुद्धिस्तस्यास्त्रिरात्रतः **देवजानीयेकारिकायां**
उच्छिष्टातुद्विजातीनांरजःस्त्रीयदिपश्यति उपवासमधोच्छिष्टेऋवोच्छिष्टेऽग्न्यहंक्षिपेदिति ।

आतां रजस्वलान्न सांगतो.

दैवज्ञवल्गुभः—“रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, मृगशीर्ष, हस्त, स्वाती, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तराषाढा, उत्तरा, उत्तराभाद्र-
पदा, या नक्षत्रांचे ठायीं श्रेष्ठ स्त्रियांना स्नान सांगितलें आहे.” ज्वर असेल तर सांगतो **उशना**—“जी स्त्री ज्वरानें व्याप्त असून रजस्वला झाली असेल तिचें शौच कसें होईल ? व कोणत्या कर्मानें तिची शुद्धि होईल ? चवथा दिवस प्राप्त झाल्यावर दुसऱ्या स्त्रियेनें तिला स्पर्श करून उदकांत वस्त्रसहित बुडी मारून पुनः स्पर्श करून स्नान करावें. याप्रमाणें दहावेळां किंवा बारावेळां स्नान करावें आणि वारंवार (प्रत्येक स्नानानंतर) आचमन करावें. रजस्वला स्त्रियेनें प्रत्येक वेळीं वस्त्र पाळटावें. अंती सारीं वस्त्रें टाकून धावीं. असें केल्यानें ती रजस्वला स्त्री शुद्ध होईल.” हा स्नानप्रकार सर्व आतुरांच्या स्नानाविषयीं समजावा. कारण, “आतुरांना नैमित्तिक स्नान प्राप्त असतां अनातुर (निरोगी) असेल त्यानें दहावेळां स्नान करावें” असें **पराशरवचन** आहे. रजाचें अज्ञान असेल तर सांगतो **पराशरमाधवीयांत प्रजापति**—“स्त्रियेला रजाचें ज्ञान झालें नसतां तिचें वस्त्र जर रजानें भरलें असेल तर तिनें घरांत केलेलें कर्म दूषित होईल. व तिची शुद्धि

तीन दिवसांनीं होईल.” देवजानीयांत कारिकेंत—“ब्राह्मणादिकांची जी उच्छिष्ट असून रजस्वा होईल तर सांगतो—अधरोच्छिष्ट असून झाली तर उपवास. आणि ऊर्ध्वोच्छिष्ट असून झाली तर तिने तीन दिवस उपवासप्रत करावे.”

अथपुंसवनं प्रयोगपारिजातेजातूकर्ण्यः द्वितीयेवातृतीयेवामासिपुंसवनंभवेत् व्यक्तेगर्भे भवेत्कार्यसीमंतेनसहायवा बृहस्पतिः तृतीयेमासिकर्तव्यंगृष्टेत्रन्यत्रशोभनं गृष्टेत्रतुर्थेमासेतुष्टेमास्यथा-
ष्टमे सकृत्प्रसूतागृष्टिः एतेनप्रतिगर्भमपिभवतीतिविज्ञायते बह्वचकारिकापि कर्तास्यादेवरस्तस्यायस्याः-
पत्युरसंभवः आवर्ततद्दुकर्मप्रतिगर्भमितिस्थितिः ब्राह्मे गर्भाधानादिसंस्कर्तापैतिःश्रेष्ठतमःस्यूतः अमा-
वेस्वकुलीनःस्याद्वांधवोवान्यगोत्रजः मदनरत्नेसत्यव्रतः मृतोदेशांतरगतोभर्तास्त्रीयद्यसंस्कृता देवरोषा-
गुरुर्वापिवंद्योवापिसमाचरेत् हेमाद्रौयमः प्रथमेमासिद्वितीयेवायदापुनक्षत्रेणचंद्रमायुक्तःस्यादितिब-
राहः हस्तोमूलश्रवणःपुनर्वसुर्मुगशिरस्तथापुष्यः पुंसंज्ञकेषुकार्येष्वेतानि शुभानिधिष्यन्ति अनूराधापिपुं-
नक्षत्रं अनूराधानहविषावर्धयंतइतिश्रुतेः गर्गोपि पुत्रामाश्रवणस्तिष्योहस्तश्चैवपुनर्वसुः अभिजित्
प्रोष्ठपाचैवअनूराधास्तथाश्रयुक् नृसिंहः रिक्तापर्वचनवर्मीत्यक्त्वापुंसवनेशुभाः ज्योतिर्निबंधेव-
सिष्ठः मृत्युश्चसौरैस्तनहानिर्दिष्टमृतप्रजापुंसवनेबुधस्य काकीवंध्याभवतीहशुक्रेस्त्रीपुत्रलाभोरभिभौम-
जीवैः अनवलोभनस्याप्ययमेवकालः दीपिकायांतुचतुर्थेऽनवलोभनमित्युक्तम् ।

आतां पुंसवन सांगतो.

प्रयोगपारिजातांत जातूकर्ण्य—“गर्भधारणापासून दुसऱ्या किंवा तिसऱ्या मासांत पुंसवन संस्कार होतो. पुंसवन संस्कार गर्भ व्यक्त (स्पष्ट) झाल्यावर करावा. किंवा सीमंतोन्नयनासह करावा.” बृहस्पति—“गृष्टि (एकवार प्रसूत जी) वर्य करून इतर स्त्रियेचें पुंसवन तिगऱ्या मासांत करावें, तें शुभ आहे. गृष्टीचें चवथ्या किंवा सहाव्या अथवा आठव्या मासांत करावें.” या वचनावरून पुंसवन संस्कार प्रत्येक गर्भासाठी होतो, असें समजतें. बह्वचकारिका ही—“जिच्या पतीचा असंभव असेल तिच्या त्या संस्काराचा कर्ता वीर होईल. त्या पुंसवनकर्माची प्रत्येक गर्भाला आवृत्ति होते, अशी शास्त्रमर्यादा आहे.” ब्राह्मांत—“गर्भाधानादिक संस्काराचा कर्ता पति मुख्य आहे. पतीच्या अभावी आपल्या कुळातील पुरुष, अथवा अन्यगोत्रज वांधव कर्ता होय.” मदनरत्नांत सत्यव्रत—“भर्ता मृत झाला किंवा देशांतरी गेला असून जर स्त्रियेचा संस्कार झाला नसेल तर तिचा वीर किंवा गुरु अथवा वंशातील पुरुष यांनी तिचा संस्कार करावा.” हेमाद्रौयम—“पहिल्या मागांत किंवा दुसऱ्या मागांत ज्या वेळीं पुरुष नक्षत्रांनीं युक्त चंद्रमा असेल त्या वेळीं पुंसवन करावें.” वराह—“हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशीर्ष, पुष्य हीं पुरुषनांवाच्या कर्माविषयीं शुभ आहेत.” अनूराधा देखील पुंनक्षत्र आहे. कारण, “अनूराध जे त्यांना हवीं न वाढविणारे” अशी श्रुति आहे. या श्रुतींत ‘अनूराधान्’ असा पुक्तिगनिर्देश आहे. गर्गही—“श्रवण, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, प्रोष्ठपदा (अपाढा), अनूराधा, आणि अश्विनी हीं पुंनक्षत्रें होत.” नृसिंह—“रिक्ता तिथि, पर्व (अमा, पूर्णिमा), नवमी त्या तिथि टाकून बाकीच्या तिथि पुंसवनाविषयीं शुभ आहेत.” ज्योतिर्निबंधांत वसिष्ठ—“शनिवारीं पुंसवन झालें असतां मृत्यु येतो. इंदुवारी स्तनहानि होते. बुधवारीं पुंसवन असतां प्रजा मरते. शुक्रवारीं काकबंध्या (एकवार प्रसवणारी) होते. रविवारीं, भौमवारीं, गुरुवारीं पुंसवन केलें असतां कन्या व पुत्र होतात.” अनवलोभन संस्काराचा देखील हाच काल आहे. दीपिकेंत तर चवथ्या मासांत अनवलोभन होतें, असें सांगितलें आहे.

अथसीमंतः हेमाद्रौबैजवापः अथसीमंतोन्नयनंचतुर्थेपंचमेपष्टेचेति वसिष्ठः चतुर्थेसप्तमेमा-
सिपष्टेवाप्यथवाष्टमे हेमाद्रौशंग्वः गर्भस्पंदनेसीमंतोन्नयनंयावद्धानप्रसवः कार्णार्जिनिः गर्भलंभ-
नमारभ्ययावन्नप्रसवस्तदा सीमंतोन्नयनंकुर्याच्छंखस्यवचनंयथा मासश्चात्रसौरःसावनोवा कालविधाने
चतुर्थपष्टाष्टममासभाजिसौरेणगर्भेप्रथमेविधेयं सीमंतकर्मद्विजभामिनीनांमासेष्टमेविष्णुबर्लिचकुर्यात् ब-
सिष्ठः चतुर्थेसावनेमासिपष्टेवाप्यथवाष्टमे ज्योतिर्निबंधनारदः अस्तिकापर्वदिवसेकुजजीवार्कवासरे

१ मूत्रपुरीष केल्यावर प्रक्षालनादि शौच करण्याच्या पूर्वीच्या स्थितीला अधरोच्छिष्ट म्हणतात. आणि भोजनोपर मूत्र प्रक्षाल-
नादि करण्याच्या पूर्वीच्या स्थितीला ऊर्ध्वोच्छिष्ट म्हणतात. २ पिता श्रेष्ठतमः स्यूतः रति पाठांतर. ३ नावक्ष्यते गर्भोऽनेनेति
व्युत्पत्त्या अनवलोभनकर्मणः गर्भाविनाशकत्वामाद प्रतिगर्भमावृत्तिलभ्यते. सकृत्पु संस्कृतानारी सर्वगर्भेषु संस्कृतेषु देवण्यात्वं पु-
सीमंतविषयमितितदाशयः विज्ञानेश्वरादिभिः अनयोः सकृत्करणसिद्धातितत्वादेवे सकृदेव कुर्वति ॥

कालविधाने सीमंतेतिष्यहस्तादिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पक्षच्छिद्रं चरिक्तां पितृतिथिमपहाया-
पराः स्युः प्रशस्ताः अदितिः पुनर्वसुः पक्षच्छिद्रं चाहवसिष्ठः चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा षष्ठी च-
द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राः प्रकीर्तिताः क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्चनाडिकाः भूता ५ दृ ८ मनु १४ तत्वां २५
क ९ दश १० शेषास्तु शोभनाः **कालनिर्णये** शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशी पौर्णमासी प्रशंसंति-
केचित् सीमंतकर्मणि **बृहस्पतिः** पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चां त्यत्रिकं विना चतुर्दशी चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभ-
प्रदे **नारदः** विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमंतकर्म तत् वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवानिश्यपिकेचन वाराः पूर्वोक्ता एव ।

आतां सीमंत संस्कार सांगतो—

हेमाद्रीन वैजवाप—“आतां सीमंतोन्नयन चवथ्या, पांचव्या व महाव्या मासांत करावें.” **वसिष्ठ—**“चवथ्या किंवा सातव्या अथवा महाव्या किंवा आठव्या मासांत सीमंतोन्नयन करावें.” **हेमाद्रीन शंख—**“गर्भाचें चलन होऊं लागलें असतां सीमंतोन्नयन करावें. अथवा जोपर्यंत प्रसूत झाली नाही तोपर्यंत करावें.” **काष्णाजिनि—**“गर्भधारणाला आरंभ करून जोपर्यंत प्रसूती झाली नाही तोपर्यंत सीमंतोन्नयन करावें, असें शंखाचें वचन आहे.” ह्या सीमंतोन्नयनाविषयीं वर सांगितलेला मास तो सौर (संक्रांतिमास) किंवा सावन (तीस दिवसांचा) ध्यावा. **कालविधानांत—**“द्विजस्त्रियांचा सीमंत संस्कार सौरमानानें चवथा किंवा सहावा अथवा आठवा मास प्रथम गर्भाला असतां करावा. आणि आठव्या मासांत विष्णुबलि करावा.” **वसिष्ठ—**“सावन (तीस दिवसांच्या) चवथ्या किंवा सहाव्या अथवा आठव्या मासांत सीमंतसंस्कार करावा.” **ज्योतिर्निबंधानं नारद—**“रिक्ता तिथि, पर्वदिवस वर्ज्य करून भौम, गुरु, रवि, यांच्या वारीं सीमंत करावा.” **कालविधानांत—**“सीमंताविषयीं पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, मृगशीर्ष, रेवती, अभिजित् तीन उत्तरा हीं नक्षत्रें प्रशस्त आहेत. पक्षच्छिद्र (पुढील श्लोकांत उक्त), रिक्ता व पितृतिथि ह्या वर्ज्य करून बाकीच्या तिथि प्रशस्त आहेत.” पक्षच्छिद्र सांगतो **वसिष्ठ—**“चतुर्दशी, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, षष्ठी आणि द्वादशी ह्या तिथि पक्षच्छिद्र म्हटल्या आहेत. ह्या तिथींच्या अनुक्रमानें ५ । ८ । १४ । २५ । ९ । १० ह्या घटिका वर्ज्य करून शेष घटिका शुभ आहेत.” **कालनिर्णयांत—**“चंद्र शुभ राशीस अगतां चतुर्थी, चतुर्दशी व पौर्णमासी ह्या सीमंतकर्माविषयीं प्रशस्त आहेत, असें केचित् सांगतात.” **बृहस्पति—**“शुक्लपक्ष शुभ आहे. आणि कृष्णपक्ष शोच्यत्वे पांच दिवस वर्ज्य करून शुभ आहे. शुक्लपक्षांतील चतुर्थी व चतुर्दशी ह्या शुभ आहेत.” **नारद—**“ब्राह्मण व क्षत्रिय यांचें सीमंतकर्म दिवसा करावें. वैश्य व शूद्र यांचें सीमंतकर्म दिवसा व रात्रीही करावें, असें कोणी सांगतात.” वार पूर्वी सांगितले आहेतच.

एतच्चसकृत्कार्यमिति विज्ञानेश्वरः सकृच्चसंस्कृतानारीसर्वगर्भेषु संस्कृतेति देवलोक्तेः सकृन् प्रतिगर्भ-
वाकार्यमिति हेमाद्रिः सकृच्चकृतसंस्काराः सीमंतेन द्विजस्त्रियः ययंगर्भप्रसूयतेतसर्वः संस्कृतो भवेदिति
हारीतोक्तेः सीमंतोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते केचिद्गर्भस्य संस्कारात् प्रतिगर्भप्रयुज्यत इति हेमाद्रौ वि-
ष्णुवचनाच्च स एव स्त्रीयश्चकृतसीमंताप्रसूयतेतथंचन गृहीतपुत्राविधिवत् पुनः संस्कारमर्हति सीमंते भोजने-
प्रायश्चित्तमुक्तं **पराशरमाधवीये धौम्येन** ब्रह्मादनेच सोमेच सीमंतोन्नयने तथा जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा-
चांद्रायणं चरेत् ऋग्विधानेतु अराइवेजपेन्मंत्रं शतवारं न संशयः सीमंते च यदा मुंके मुच्यते किं त्विषात्तदेति ।

हें सीमंतकर्म एकवार करावें, असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. कारण, “एकवार संस्कृत झालेली स्त्री सर्व गर्भाचे ठायीं संस्कृत आहे” असें **देवल** वचन आहे. एकवार करावें किंवा प्रतिगर्भाला करावें, असें **हेमाद्रि** सांगतो. कारण, “सीमंत संस्कारानें एकवार संस्कार केलेल्या द्विजस्त्रिया ज्या ज्या गर्भाला प्रसवतात तो तो गर्भ संस्कृत होतो” असें **हारीत** वचन आहे. यावरून एकवार करावें असें झालें. आणि “सीमंतोन्नयन हें कर्म स्त्रीसंस्कार होत नाही, म्हणून केचित् विद्वान् गर्भ-संस्कार असल्यामुळें प्रतिगर्भाला सीमंत करितात” असें **हेमाद्रीन** विष्णुवचनही आहे. तोच सांगतो—“स्त्रियेचा सीमंत केलेला नसून ती जर प्रसूत होईल तर पुत्रासहित त्या स्त्रियेचा पुनः यथाविधि संस्कार करावा.” सीमंत संस्काराचे ठायीं भोजन केलें असतां प्रायश्चित्त सांगतो **पराशरमाधवीयांत धौम्य—**“ब्रह्मादन, सोमयाग, सीमंतोन्नयन, जात-कर्म, नवश्राद्ध यांचे ठायीं भोजन केलें असतां चांद्रायण करावें.” **ऋग्विधानांत** तर—“जेव्हां सीमंताचे ठायीं भोजन करील तेव्हां ‘अराइवे०’ या मंत्राचा शंभरवेळां जप करावा, म्हणजे पातकापासून मुक्त होईल, यांत संशय नाही.”

अथगर्भिणीतत्पतिधर्माः

वराहः सामिषमशनं यत्नात्प्रमदापरिवर्जयेदतः प्रभृति गृह्यकारिका अंगारभस्मास्थिकपालचुडी-
शूर्पादिकेषूपविशेन्नारी सोल्लखलाद्येष्टपदादिकेवायं त्रेतुपाद्येन तथोपविष्टा नोमार्जनीगोमयपिंडकादौ कुर्यान्न-
वारिण्यवगाहनंसा अंगारभूत्याननखैल्लिखेत्क्ष्मां कलिं वपुर्भगमथोन कुर्यात् नोमुक्तकेशीविवशाथवास्याङ्कुतेन-
संध्यावसरे न शेते नामंगलं वाक्यमुदीरयेत्साशून्याल्यं वृक्षतलं न यायात् **विष्णुधर्मोत्तरे** कटुतीक्ष्णकषा-
याणि अत्युष्णलवणानि च आयासं च व्यवायं च गर्भिणीवर्जयेत्सदेति **हेमाद्रौ कौंडिण्यः** मुंडनं पिंडदानं च-
प्रेतकर्म च सर्वशः न जीवत्पितृकः कुर्याद्दुर्विणीपतिरेव च **मिताक्षरायां** उदन्वर्तो भसिन्नाननखकेशादिक-
र्तनं अंतर्वह्याः पतिः कुर्यान्न प्रजाजायते ध्रुवं **पृथ्वीचंद्रोदये गारुडे** गयायां पिंडदानं न स्य न कदाचिन्निराक्रिया
अत्र काले दाप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु जीवत्पितृकगर्भिणीपत्याशौचादिनिमित्तस्य निमित्तसंयोग-
स्य कालसंयोगाद्भेदेनापवादाभावान् अभिहोत्रवन्त्यावजीवपरत्वाभावान् अन्यथाऽऽशौचेऽपि गयायात्राश्राद्ध-
चक्ष्यान् यत्र निमित्तसंयोगस्यापवादो यथाशौचेऽभिहोत्रादेर्यथावा जीवत्पितृकस्यापवादो मातुर्गयान्वष्टक्यादौ त-
देव भवति नान्यदितिसंक्षेपः ।

आतां गर्भिणी व गर्भिणीपति यांचे धर्म सांगतो—वराह—“गर्भधारणं ज्ञात्वा पातूनं स्त्रियेनं मांसभक्षणं
यत्नानं वर्ज्यं करावें.” **गृह्यकारिका—**“कोळसे, भस्म, हाडे, मापन्या, चूल, शर्पा इत्यादिकांचे ठायीं गर्भिणीनं बसूं नये.
तसेच पाषाण-काष्ठ इत्यादिकांचे उखळ, मुगळ, जांते यांच्यावरः तुप, केश इत्यादिकांवर तिनं बसूं नये. केरमुणी, शेणी
इत्यादिकांचे ठायीं गर्भिणीनं बसूं नये. उदकांत चुडी मांक नये. कोळसे, भस्म, नखे, यांनीं भुईवर रेपा काहूं नये. कलह,
अंग पिळणं हें गर्भिणीनं करूं नये. केश मोकळे गोडून राहूं नये. व उडिद्र असूं नये. संयारामयीं भोजन व शयन करूं
नये. अमंगळ वाक्य उच्चारूं नये. गर्भिणीनं शून्य घरीं व झाडामालीं जाऊं नये. **विष्णुधर्मोत्तरांत—**“तिखट, तीक्ष्ण,
तुरट, अतिउष्ण, अतिस्वारट, आयाम, मैथुन हीं गर्भिणीनें मदा वर्ज्यं करावें.” **हेमाद्रौ कौंडिण्य—**“मुंडन (क्षौर),
पिंडदान, आणि सर्वे प्रेतकर्म हें जीवत्पितृकानं व गर्भिणीपतीनं करूं नये.” **मिताक्षरेंत—**“समुद्राच्या उदकांत स्नान
आणि नखें व केश यांचें छेदन गर्भिणीपति करील तर प्रजा होणार नाही.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत गारुडांत—**“गयेंत
पिंडदानाचा कदापि निषेध नाही.” येथें ‘कदा’ या पदानं काल, या अर्थां ‘दा’ प्रत्यय श्रुत असल्यामुळे इतर वचनानं
पिंडदानाला निषिद्ध जां काल (तिथिवारादि) त्याचाच अपवाद हें वचन आहे. जीवत्पितृकाल, गर्भिणीपतिल, आशौच
इत्यादिनिमित्तक जो निषेध त्याचा अपवाद हें वचन नाही. कारण, निमित्तसंयोग (जीवत्पितृकालादि) आणि कालसंयोग
(तिथ्यादि) हे भिन्न असल्यामुळे कालबोधक वचन विजातीय असल्यानं निमित्तसंयोगाचा अपवाद होत नाही. जसें—
‘ब्राह्मणभ्यो दधि दीयतां, तर्कं कौंडिन्याय’ येथें कौंडिन्याला तर्कदान सांगितल्यानं त्या तर्कदानाचें सजातीय जें दधिदान
त्याचा बाध होतो. इतर दानाचा बाध होत नाही—तसें येथें गमजावें. अभिहोत्राहोम जया यावजीवपर्यंत आहे, तसें गयें-
तील पिंडदान यावजीवपर्यंत असतें तर सर्वे निषेधांचा अपवाद हें वचन झालें अगतें; पण यावजीवपर्यंत हें पिंडदान नाही.
असें न मानिलें तर आशौचांत देखील गयायात्रा व गयाश्राद्ध होईल. म्हणून हें वचन निमित्तसंबंधी निषेधाचा अपवाद
नाहीं. ज्या ठिकाणीं निमित्तसंबंधी निषेधाचा अपवाद सांगितला आहे, जया—आशौचांत अभिहोत्रादिकांविषयीं अपवादव-
चन आहे. अथवा जीवत्पितृकाला मानुंगया, अन्वष्टक्य इत्यादिकांत पिंडदानाविषयीं अपवाद आहे तेंच होतें. इतर होत
नाहीं. अर्थात् जीवत्पितृक, गर्भिणीपति इत्यादिकांना गयेंत पिंडदानाविषयीं अपवाद वचन नाही, हें संक्षेपानं सांगितलें
आहे असें गमजावें.

प्रयोगपारिजातेकश्यपः गर्भिणीकुंजराश्रादिसौलहर्न्यादिरोहणम् व्यायामंशीघ्रगमनं शकटारोहणं
त्यजेन् शोकरं कृत्वमोक्षं च साध्वसंकुक्कुटासनं व्यवसायं दिवास्थापरात्रौ जागरणं त्यजेन् **मदनरत्नेस्कांदे**
हरिद्रांकुंकुमचैवसिंदूरं कज्जलं तथा कूर्पासकंचतायूलं मांगल्याभरणं शुभं केशसंस्कारकवरीकरणं विभूषणं
भर्तुरायुष्यमिच्छंती वर्जयेद्गर्भिणीनहि **बृहस्पतिः** चतुर्थे मासि पष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणीयदा यात्रानित्यं विवर्ण्या-
स्यादाषाढे तु विशेषतः **याज्ञवल्क्यः** दौहदस्याप्रदानेन गर्भोदोपमवाप्नुयात् वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं
प्रियं स्त्रियाः दौहदं गर्भिणीप्रियम् **तत्रैवाश्वलायनः** वपनं मैथुनं तीर्थवर्जयेद्गर्भिणीपतिः श्राद्धं च सप्तमास्या-
सादूर्ध्वानान्यत्र वेदवित् श्राद्धं तद्भोजनमिति प्रयोगपारिजानः कालविधाने शुद्धं दीपिकायां च

क्षौरंशवानुगमनंनखकृतंनचयुद्धादिवास्तुकरणंत्वतिदूरयानं उद्वाहमौपनयनंजलवैश्वगाहमायुःक्षयार्थमिति-
गर्भिणिकापतीनां रत्नसंग्रहेगालवः दहनंवपनंचैवचौलवैगिरिरोहणं नावआरोहणंचैववर्ज्येद्वर्भिणी-
पतिः अन्यत्रापि प्रव्यक्तगर्भापतिरब्धियानंमृतस्यवाहंक्षुरकर्मसंगं तस्यांतुयत्नेनगयादितीर्थयागादिकंवास्तु-
विधिंनकुर्यात् प्रव्यक्तगर्भावनिताभवेन्मासत्रयात्परं षण्मासात्परतःसूतिर्नवमेरिष्टवासिनी ।

प्रयोगपारिजातांत कश्यप—“गर्भिणीं हत्ती, घोडा, पर्वत, घराचा उच्च प्रदेश यांजवर चढूं नये. व्यायाम करणें, जलद चालणें, गाडीवर बसणें हें गर्भिणीनं वर्ज्य करावें. तसेंच शोक, रक्तवाव, भीति, कुकुटासन, व्यवसाय, दिवसा निद्रा, आणि रात्री जागरण, हीं वर्ज्य करावीं.” **मदनरत्नांत स्कांदांत**—“हळद, कुंकू, सेंदूर, काजळ, कूर्पासक, तांबूल, मांगल्याभरण, केशशंस्कार, केशांतील हातांतील व कानांतील अलंकार, हीं भर्त्यांचें आयुष्य इच्छिणाऱ्या गर्भिणीनं वर्ज्य करूं नयेत.” **बृहस्पति**—“गर्भिणीनं चवथ्या किंवा सहाव्या अथवा आठव्या मासांत यात्रा (परगांवीं जाणें) सदा वर्ज्य करावी. आषाढ मासांत तर विशेषकरून वर्ज्य करावी.” **याज्ञवल्क्य**—“डोहाळे न पुरविल्यामुळे गर्भाला दोष प्राप्त होईल. त्या योगानें गर्भ विरूप होईल किंवा मरेल, म्हणून झिंयेला प्रिय असेल तें करावें.” दौहद म्हणजे डोहाळे, तेंच गर्भिणीप्रिय होय. तेथेंच **आश्वलायन**—“गर्भिणीच्या पतीनं वपन, मंथन, तीर्थ व श्राद्धभोजन हीं गर्भिणीस सातवा महिना लागल्यावर वर्ज्य करावीं. पूर्वी वर्ज्य नार्हात.” येथें श्राद्ध म्हणजे श्राद्धभोजन, असें **प्रयोगपारिजात** सांगतो. **कालविधानांत** आणि **मुहूर्तदीपिकेंत**—“क्षौर, प्रताबरोबर गमन, नखें काढणें, युद्धादि करणें, घर बांधणें, अति दूर गमन करणें, विवाह, उपनयन, समुद्रस्नान, हीं कर्म गर्भिणीपतीला आयुष्य नाश करणारी आहेत.” **रत्नसंग्रहांत गालव**—“वाह, वपन, चौल, पर्वतावर चढणें, नावेवर चढणें, हीं गर्भिणीपतीनं वर्ज्य करावीं.” **अन्य ग्रंथांनही**—“जी प्रव्यक्तगर्भा (जिचा गर्भ चांगला व्यक्त झाला) तिच्या पतीनं समुद्रयान, प्रेत वाहणें, इमश्रुकर्म, गर्भिणीचा संग, गयादि-तीर्थगमन, यज्ञादिकर्म, घर बांधणें, हीं करूं नयेत.” तीन महिन्यांच्या पुढें झिंयेचा गर्भ चांगला व्यक्त होतो म्हणून ती प्रव्यक्तगर्भा म्हटली आहे. सहा मासांपुढें सूति म्हटली आहे. आणि नवव्या मासांत अरिष्ट (स्तिकाग्रह) वास करणारी होय.”

अथसूतिकाग्रहप्रवेशः गर्गः रोहिण्यैदवपौष्णेपुस्वातीवरुणयोरपि पुनर्वसौपुष्यहस्तधनिष्ठात्र्यु-
त्तरासुच मैत्रेत्वाष्ट्रेतथाश्विन्यांसूतिकागारवेशनम् एतच्चसंभवे प्रसूतिसमयेकालेसद्यएवप्रवेशयेदिति वसि-
ष्ठोक्तेः तच्चनैर्ऋत्यांकार्यं वारुण्यांभोजनगृहनैर्ऋत्यांसूतिकाग्रहमिति वसिष्ठोक्तेः विष्णुधर्मे दशाहंसू-
तिकागारमायुधैश्चविशेषतः वह्निनातिदुकालातैःपूर्णकुंभैःप्रदीपकैः मुसलेनतथावारिवर्णकैश्चित्रितेनचेति ।

आतां प्रसूतिघरांत प्रवेश सांगतो.

गर्ग—“रोहिणी, मृग, रेवती, स्वाती, शततारका, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, धनिष्ठा, तीन उत्तरा, अनुराधा, चित्रा, अश्विनी या नक्षत्रांवर गर्भिणीनं प्रसूतिघरांत प्रवेश करावा.” हीं नक्षत्रें मिलण्याचा संभव असंल तर ध्यावीं. कारण, “प्रसूतिसमय प्राप्त झाला असतां तत्कालींच प्रसूतिगृहांत प्रवेश करवावा” असें वसिष्ठवचन आहे. तें प्रसूतिगृह नैर्ऋति दिशेस करावें. कारण, “पश्चिमदिशेस भोजनगृह आणि नैर्ऋतीस स्तिकाग्रह करावें.” असें वसिष्ठवचन आहे. **विष्णु-धर्मांत**—“स्तिकाग्रह दहा दिवसपर्यंत विशेषकरून आयुधें, अग्नि, टंभुरणीचीं पेटतीं लांकडें, पाण्यानें भरलेले कुंभ, शीप, मुसळ, उदक यांनीं युक्त करावें. आणि त्यांत अनेक वर्णांचें रंगवस्त्रादि काढावें.”

अथजातकर्म पारिजातेवसिष्ठः श्रुत्वाजातंपितापुत्रंसचैल्लानमाचरेत् **मनुः** प्राङ्नाभिबर्ध-
नात्पुंसोजातकर्मविधीयते वर्धनच्छेदनं हेमाद्रौबैजवापः जन्मतोनंतरंकार्यंजातकर्मयथाविधि दैवादती-
तकालंचेदतीतेसूतकेभवेत् पृथ्वीचंद्रोदयेविष्णुधर्मे अच्छिन्ननाभिकर्तव्यंश्राद्धवैपुत्रजन्मनि पुत्रपदेन
कन्यापिगृह्यते तदाहत्तत्रैवकार्ष्णाजिनिः प्रादुर्भावेपुत्रपुत्र्योर्ग्रहणेचंद्रसूर्ययोः स्नात्वानंतरमात्मीयान्पि-
तृन्श्राद्धेनतर्पयेत् एतच्चरात्रावपिकार्यं पुत्रजन्मनियान्नायांशर्वर्यादत्तमक्षयमिति तत्रैवठ्यासोक्तेः बैज-
वापः जातमात्रकुमारस्यजातकर्मविधीयते स्तनप्राशनतःपूर्वनाभिकर्तनतोपिवा एतेननैमित्तिकमपीदंजाते-
ष्टिषदाशौचांतकार्यमितिशांकापरास्ता जातेकुमारेपितृणामामोदात्पुण्यंतदहरितिहारितोक्तेश्च ।

आतां जातकर्म सांगतो—

पारिजातांत वसिष्ठ—“पुत्र झालेला श्रवण करितांच पित्यानें वस्त्रसहित स्नान करावें.” **मनु**—“नाभिच्छेदनाचे पूर्वी पुत्राचें जातकर्म करावें.” **हेमाद्रौत बैजवाप**—“जन्म झाल्यानंतर त्या वेळीं जातकर्म यथाविधि करावें. दैवानें त्या

काली झाले नाही तर जननाशौच गेल्यावर जातकर्म होईल.” पृथ्वीचंद्रोदयांत विष्णुधर्मांत—“पुत्रजन्मसमयी नाभिच्छेदन झाले नाही तोंपर्यंत श्राद्ध करवें.” या वचनांत पुत्रपदानं कन्या देखील ध्यावयाची आहे. तें सांगतो तेथेंच **कार्णाजिनि**—“पुत्र व कन्या यांच्या उत्पत्तिकालीं, व चंद्रसूर्यांच्या प्रहणांत, ज्ञान करून नंतर आपल्या पितरांना श्राद्धनें तृप्त करावें.” हें श्राद्ध रात्रीं सुद्धां करावें. कारण, “पुत्रजन्मकालीं, आणि यात्रेचे ठायीं रात्रीं दिलेलें अक्षय होतें” असें तेथेंच व्यासवचन आहे. **बैजवाप**—“उत्पन्न होतांक्षणीं पुत्राचें जातकर्म स्नानप्राशनाच्या पूर्वी किंवा नाभिच्छेदनाच्या पूर्वी करावें.” हें जातकर्म नैमित्तिक असलें तरी तत्कालीं आशौचांतही करावें, असें सांगितल्यावरून—जशी पुत्र-जातेष्टि आशौचांतली करावयाची, तसें हें जातकर्म आशौचांतही करावें, अशी शंका होती ती खंडित झाली. आणि “पुत्र झाला असतां पितरांना हर्ष होत असल्यामुळे तो दिवस पुण्य आहे” असें हारीतवचनही आहे. या वचनावरूनही तत्कालीं करावें, असें होतें.

अत्रश्राद्धमात्रमेनेह्रावाकार्यमित्युक्तं पृथ्वीचंद्रोदयेआदित्यपुराणे जातश्राद्धेत्पक्षाग्रंनदद्याद्वाष्म-
गेष्वपीति हेमाद्रिस्तु पुत्रजन्मनि कुर्वीतश्राद्धहेन्रैवबुद्धिमान् नपकेननचामेनकल्याणान्यभिकामयभिति
संवर्तोक्तेर्हेन्रैवेत्याह एतच्चजननाशौचेमरणाशौचेचकार्यमित्याहमिताक्षरायांप्रजापतिः आशौचेतुस-
मुत्पन्नेपुत्रजन्मयदाभवेत् कर्तुंस्तात्कालीकीशुद्धिःपूर्वाशौचेनशुध्यति केचित्तु मृताशौचस्यमध्येतुपुत्रजन्म-
यदाभवेत् आशौचापगमेकार्यजातकर्मयथाविधीति स्मृतिसंग्रहोक्तेराशौचांतकार्यमित्याहुः स्मृत्यर्थ-
सारेपिविकल्पउक्तः मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेवामुदयेपुच गुरौशुक्रेथवाकंद्रेजातकर्मचक्षनामच मृदादिलक्षणमा-
हश्रीधरः रोहिण्युत्तरमंस्थिरगिरिगमूलेंद्रोर्गगदारुणंक्षिप्रंकाश्चिदिनेशुपुष्यमनलेंद्राप्तीतुसाधारणं उग्रपूर्वम-
घांतकंमृदुगतित्वाष्ट्रांत्यमैत्रंचरंविष्णुम्यातिशतोडुवम्वदितयःकुर्युःस्वसंज्ञाफलं अत्रसर्वत्रजातकर्मनामकर्मादा-
वुक्तकालातिक्रमेनश्रादिकंज्येयम् देशकालोपघातायैःकालातिक्रमणंयदि अनस्तोरोज्येंदुसितेतत्कार्योत्तरा-
यणे इतिमदनरत्नेनारदोक्तेः बृहस्पतिरपि मुख्यालाभेविधिज्ञेनविधिश्चित्योऽप्रमादतः नक्षत्रतिथि-
लग्नानांविचार्यैवंपुनःपुनः सूतकेसंध्यादौविशेषवक्ष्यामः ।

ह्या जातकर्माचे ठायीं आमार्ने किंवा हेमार्ने (गुवर्णार्ने) श्राद्ध करावें, असें सांगतो **पृथ्वीचंद्रोदयांत आदित्य-पुराणांत**—“जातकर्मश्राद्धांत ब्राह्मणांना देखील पक्षात्र देऊं नये.” **हेमाद्रि** तर—“पुत्रजन्माचे ठायीं श्राद्ध हेमार्नेच करावें. कल्याण इच्छिणारांनं पक्षात्रानं किंवा आमार्नेच करूं नये” ह्या संवर्तेवचनावरून हेमार्नेच करावें असें सांगतो. हें श्राद्ध जननाशौचांत व मरणाशौचांतही करावें, असें सांगतो **मिताक्षरेंत प्रजापति**—“आशौच उत्पन्न असतां जेव्हां पुत्रजन्म होईल तेव्हां कर्त्याची तात्कालिक शुद्धि होते. म्हणजे कर्ता पूर्वी असलेल्या आशौचांनं शुद्ध होतो.” **केचित्तु** विद्वान् तर—मृताशौचामध्ये जेव्हां पुत्रजन्म होईल तेव्हां आशौचममाप्तीनंतर जातकर्म यथाविधि करावें” ह्या **स्मृति-संग्रह**वचनावरून आशौचांतही करावें, असें सांगतात. **स्मृत्यर्थसारांत**ही मृताशौच असतां त्यांत किंवा आशौचांतलीं करावें, असा विकल्प सांगितला आहे. “मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र, ह्या नक्षत्रांवर; आणि ह्या नक्षत्रांच्या उदयकालीही; गुरु किंवा शुक्र केंद्रां (१।४।७।१० या स्थानी) असतां जातकर्म व नामकर्म करावें.” मृदु इत्यादि नक्षत्रे कोणतीं तीं सांगतो **श्रीधर**—“रोहिणी व तीन उत्तरा (उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा) हीं स्थिर होत. आर्द्रा, मूल, ज्येष्ठा, आश्लेषा, हीं दारुण होत. अश्विनी, हस्त, पुष्य, हीं क्षिप्र होत. कृत्तिका, विशाखा हीं साधारण होत. पूर्वा तीन, मघा, भरणी हीं उग्र होत. मृग, चित्रा, रेवती, अनुराधा हीं मृदु होत. श्रवण, स्वाती, शततारका, धनिष्ठा, पुनर्वसु हीं चर होत. हीं नक्षत्रे आपापल्या नांवासारखें फल करितात.” येथें जातकर्म, नामकर्म इत्यादि सर्व कर्मांविषयी उक्तकालाचा अतिक्रम झाला असतां नक्षत्रादिक पाहवें. कारण, “देशाचा उपघात (उच्छेद, अशुद्धि वगैरे), कालाचा उपघात (विघ्नदि) इत्यादि कारणांनीं जर मुख्य कालाचें अतिक्रमण (उल्लंघन) होईल तर उत्तरायणांत गुरु, चंद्र, शुक्र हे अस्वंगन नसतां तें कर्म करावें” असें **मदनरत्नांत नारद**वचन आहे. **बृहस्पति**ही—“मुख्य कालाचा लाभ नसतां नक्षत्र, तिथि, लग्न यांचा पुनःपुनः विचार करून अप्रमादानं काल (मुहूर्त) पहावा.” सूतकांत संध्यादि कर्मांविषयी विशेष विचार पुढें (आशौचप्रकरण) सांगूं.

अथजन्मनि दुष्टकालाः

तत्रगंडांतः ज्योतिर्निबंधेनारदः पूर्णानंदाख्ययोस्तिथ्योःसंधिर्नाडीद्वयंतथा गंडांश्चक्षुषं
जन्मयात्रोद्वाहप्रतादिषु कुलीरसिंहयोःकीटचापयोर्मीनमेषयोः गंडांतमंतरालंस्याद्वाटिकार्धसुक्षिप्रं सार्धैर्ब्रह्म-

अभेद्यस्योदशांशमसंधयः तदभेद्याद्यपादाभानांगंडांतसंज्ञकाः रत्नमालायां पौष्पाऽश्विन्योःसार्प-
पित्रर्क्षयोश्चयज्येष्ठामूलयोरंतरालं स्याद्रंडांतस्याश्चतुर्नाडिकंहियात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् रत्नसंग्रहेन-
वनीतारिष्टे सर्वेषांगंडजातानांपरित्यागोविधीयते वज्रयेद्दर्शनंश्रावंतश्चापमासिकंभवेत् तिथ्यर्क्षगंडेपितृ-
मातृनाशोलमेतुसंधौतनयस्यनाशः सर्वेषुनोजीवतिहंतिबंधून्जीवन्पुनःस्याद्बहुवारणाश्वः अथैषांदानमुत्त-
रगार्ग्यं तिथिगंडेत्वनद्वाहंनक्षत्रेधेनुरुच्यते कांचनंलग्नगंडेतुंगंडदोषोविनश्यति उत्तरेतिलपात्रंस्यात्पुण्येगो-
दानमुच्यते अजाप्रदानंत्वाष्ट्रेस्यात्पूर्वाषाढेचकांचनं उत्तरापुण्यचित्रासुपूर्वाषाढोद्भवस्यच कुर्याच्छांतिप्रयत्ने-
ननक्षत्राकरजांबुधः ।

आतां जन्मसमयीं दुष्टकाल सांगतो—

लामर्थ्ये प्रथम गंडांत सांगतो ज्योतिर्निबंधांत नारद—“पूर्णा (पूर्णिमा, अमावास्या) व प्रतिपदा यांच्या संधीच्या दोन घटिका गंडांत होय, हें गंडांत जन्म, यात्रा, विवाह, उपनयन इत्यादिकांचे ठायीं असेलं तर मृत्युदायक आहे. कर्क व सिंह, वृश्चिक व धन, मीन व मेष या लग्नांचा संधि अर्धघटिका गंडांत, हें मृत्युदायक आहे. आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती, या नक्षत्रांचे शेवटचे सोळावे अंश नक्षत्रसंधि आणि त्यांच्या पुढच्या (मघा, मूल आश्विनी या) नक्षत्रांचे पहिले चरण हे नक्षत्रगंडांत होत.” रत्नमालेंत—“रेवती व अश्विनी, आश्लेषा व मघा, ज्येष्ठा व मूल यांच्या संधीच्या चार घटिका गंडांत आहे. हें यात्रा, जन्म, विवाह यांचे ठायीं अनिष्ट आहे.” रत्नसंग्रहांत नवनीतारिष्टांत—गंडांतावर उत्पन्न झालेल्या सर्वांचा परित्याग सांगितला आहे. सहा महिनेपर्यंत त्यांचें दर्शन व श्रवण वर्ज्य करावें.” तिथींच्या व नक्षत्रांच्या गंडांतावर उत्पन्न झाला असतां पिता व माता यांचा नाश होतो. लग्नाच्या गंडांतावर उत्पन्न पुत्रांचा नाश होतो. सर्वे गंडांतावर उत्पन्न झालेला जीवंत राहात नाही व बांधवांचा नाश करितो. तो जीवंत असेल तर बहुत हत्ती, घोडे यांनीं युक्त होतो.” आतां यांच्या दोषाविषयीं दानं सांगतो उत्तरगार्ग्यांत—“तिथिगंडांतावर उत्पन्न असतां वृषभदान करावें. नक्षत्रगंडांतावर उत्पन्न असतां धेनुदान करावें. लग्नगंडांतावर मुवर्णदान करावें. म्हणजे गंडदोष नष्ट होतो. उत्तरा नक्षत्रावर उत्पन्न असतां तिलपात्रदान. पुण्यावर उत्पन्न असतां गोदान. चित्रावर उत्पन्न असतां बकरीदान. पूर्वाषाढावर उत्पन्न असतां मुवर्णदान. उत्तरा, पुण्य, चित्रा, पूर्वाषाढा यांच्यावर उत्पन्न झालेल्याची नक्षत्राकरांत सांगितलेली शांति प्रयत्नांनं करवी.”

अथाश्लेषाफलं मूर्धास्यनेत्रगलाकांसयुगंचबाहूहृज्जातुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः बाणाद्रिनेत्रहुतभुक्श्रु-
तिनागरुद्रपण्णंदपंचशिरसःक्रमशस्तुनाड्यः राज्यंपितृक्षयोमातृनाशःकामक्रियारतिः पितृभक्तोबलीस्वप्न-
स्यागीभोगीधनीक्रमान् अथज्येष्ठाफलंब्रह्मयामले ज्येष्ठादौजननीमाताद्वितीयेजननीपिता तृतीयेज-
ननीभ्रातास्वयंमाताचतुर्थके आत्मानंपंचमेहंतिपष्ठेगोत्रक्षयोभवेत् सप्तमेचोभयकुलंज्येष्ठभ्रातरमष्टमे नवमे-
श्वशुरंहंतिसर्वहंतिदशांशकइति ।

आतां आश्लेषा नक्षत्राचें फल सांगतो—

आश्लेषाची देवता सर्प त्याचा देह—५ घ० मस्तक, ७ घ० मुख, २ घ० नेत्र, ३ घ० गळा, ४ घ० दोन स्कंध, ८ घ० दोन बाहु, ११ घ० हृदय, ६ घ० जानु, ९ घ० गुह्य, ५ घ० घटी पद याप्रमाणें सर्व देहाचे अवयव आहेत. ह्या अवयवांवर उत्पन्न असतां अनुक्रमानें राज्य, पितृनाश, मातृनाश, कामक्रियारति, पितृभक्त, बन्दी, स्त्रीकीयनाशक, दानशील, भोगवान्, धनवान्, अशीं फले होतात.” आतां ज्येष्ठा नक्षत्राचें फल सांगतो. ब्रह्मयामलांत—“ज्येष्ठा नक्षत्राचे दहा भाग करून पहिल्या भागांत उत्पन्न असतां जननीची माता मरते. दुसऱ्या भागांत उ० जननीचा पिता मरतो. तिसऱ्या भागांत उ० मातुल मरतो. चवथ्या भागांत उ० पुत्राची माता मरते. पांचव्या भागांत उ० आपण मरतो. सहाव्या भागांत उ० गोत्राचा क्षय होतो. सातव्या भागांत उ० दोन्ही कुलांचा (मातृपितृकुलांचा) नाश होतो. आठव्या भागांत उ० ज्येष्ठ भ्राता मरतो. नवव्या भागांत उ० श्वशुर मरतो आणि दहाव्या भागांत उ० सर्वांना मारितो.

अथमूलफलं भल्लाटः अभुक्तमूलसंभवंपरित्यजेत्तुवालकं समाष्टकंपिताथवानतन्मुखं विलोकयेत्
सदाद्यपादकेपिताद्वितीयकेजनन्यथ धनक्षयस्तृतीयकेचतुर्थकःशुभावहः प्रतीपमंन्यपादतःफलंतदेवसार्पभे
अभुक्तमूलंत्वाहबृद्धबसिष्ठः ज्येष्ठांतघटिकाचैकामूलादौघटिकाद्वयं अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्रजातंशिशुं-

यजेत् केचिज्येष्ठांलंमूलाद्यं च पादमभुक्तमूलमाहुः कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तं मूलाद्यपादजोहंसि वि-
रंतु द्वितीयजः मातरं स्वां वृत्तीयो र्यानमुह दंततुरीयजः फलंतदेवसार्पक्षे प्रतीपत्वंत्यपादतः ।

आतां मूल नक्षत्राचें फल सांगतो—

भ्रूयाट—“अभुक्त मूलावर उत्पन्न झालेल्या बालकाचा त्याग करावा, अथवा पित्यानें आठ वर्षेपर्यंत त्या बालकाचें मुख पाहूं नये. मूलाच्या पहिल्या पादावर झाला असतां पिता, व दुसऱ्या पादावर माता, तिसऱ्या पादावर धन यांचा नाश होतो. चवथा पाद शुभकारक आहे. आश्लेषा नक्षत्राच्या अंत्य पादापासून उलट प्रथम पादापर्यंत तेंच फल समजावें. अभुक्त मूल सांगतो **वृद्धवसिष्ठ**—“ज्येष्ठा नक्षत्राची शेवटची एक घटिका व मूलाच्या पहिल्या दोन घटिका यांच्या अभुक्त मूल असें म्हणतात. त्या अभुक्त मूलावर झालेला शिशु टाकावा.” **केचित्**—ज्येष्ठाचा अंत्य पाद व मूलाचा पहिला पाद अभुक्तमूल म्हणतात. कश्यपसंहितेंत तर—निरालें सांगितलें आहे—“मूलाच्या पहिल्या पादावर झालेला पित्याला मारितो. दुसऱ्या पादावर झालेला स्वकीय मातेला मारितो. तिसऱ्या पादावर झालेला द्रव्याचा नाश करितो. चवथ्या पादावर झालेला मृहदांना मारितो. आश्लेषा नक्षत्रावर अंत्य पादापासून उलट प्रथम पादापर्यंत तेंच फल समजावें.”

**अथमूलवृक्षः जयार्णवे मूलस्तंभं त्वचाशाखापत्रं पुष्पं फलं शिखा वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा नंदावाणारसारुद्रामूलभेदः प्रकीर्तितः मूले मूलविनाशाय स्तंभेऽर्हानि धनक्षयः त्वचिभ्रातृविनाशाय शाखामातृ-
विनाशकृत् पत्रेऽसपरिवारः स्यात्पुष्पेऽपुनरुपवल्गुः फलेऽपुलभते राज्यं शिखायामल्पजीवितं अन्यत्र त्वन्यथोक्तं मूलेऽसप्रघटीपुमूलहननं स्तंभेऽष्टमुस्वक्षयं त्वग्निदग्धं धुविनाशनं च विटपेरुद्रैर्हतो मातुलः पत्रकैः सुकृती तु बाणकुसुमे-
मंत्री फलेऽसागरैराजा व द्विशिख्याल्पमायुरितिसन्मूलां त्रिपे स्यात्फलं भूपालवल्गुः वृषालिंसि हे पुष्यदेव मूलं-
दिवि स्थितं युग्मतुलांगनां त्वे पातालंगमेऽपधनुः कुलीरनक्रेऽपुमर्त्यं प्वितिसंमगंति स्वर्गं मूले भवेद्वाज्यं पाताले चेद्ध-
नागमः मर्त्यलोकेऽयदा मूलं तदा शून्यं समदिशेत् ।**

आतां मूलवृक्ष सांगतो जयार्णवानं—“मूळ, स्तंभ, त्वचा, शाखा, पत्र, पुष्प, फल, शिखा, हे मूलवृक्षाचे अवयव अनुक्रमानें १।७।१०।८।९।१०।११। अशा घटिकांनीं सांगितले आहेत. मूळावर झालेला मूलनाश होतो. स्तंभावर झालेला हात व धननाश करितो. त्वचेवर झालेला शिखाचा नाश करितो. शाखेवर झालेला माननाश होतो. पत्रावर झालेला परिवारमहिन होतो. पुष्पावर झालेला राजप्रिय होतो. फलावर झालेला राज्य पावतो. शिखेवर झालेला अल्पदिवस वांचतो.” इतर ग्रंथांत तर निरालें सांगितलें आहे तें असें—“मूलनक्षत्राच्या पहिल्या ७ घटिका मूळ, त्यांजवर मूलनाश होतो. पुढच्या ८ घटिका स्तंभ, त्याजवर धननाश. पुढच्या १० घ० त्वचा, त्याजवर बंधुनाश. पुढच्या ११ घ० विटप, त्यांजवर मातुलनाश. पुढच्या १२ घ० पत्र, त्याजवर पुणवान. पुढच्या १३ घ० पुष्प, त्यांजवर मंत्री. पुढच्या ४ घ० फल, त्यांजवर राजा. पुढच्या ३ घ० शिखा, त्याजवर अल्पायुष्य असा होतो. हे मूलवृक्षाचें फल होय.” **भूपालवल्गु**—“वृषभ, वृश्चिक, मिथुन, कुंभ, या लक्षांचे ग्रह मूलनक्षत्र स्वर्गांत अगते. मिथुन, तुळ, कन्या, मीन, या लक्षांचे ग्रह मूल पातालान्त अगते. मेष, धन, कर्क, मकर, या लक्षांचे ग्रह मूलनक्षत्र मनुष्यलोकीं अगते असें मुनि सांगतात. स्वर्गांत मूल असेल तर राज्यप्राप्ति होत, पातालान्त असेल तर द्रव्यप्राप्ति होत. जेव्हां मनुष्यलोकीं मूल असेल तेव्हां शून्य समजावें.”

वसिष्ठः नैर्ऋत्यभोजनमुतः सुतावाक्षिप्रान्दवश्यं श्वशुरनिहंति तदंत्यपादे जनितो न हंतितस्योक्तमेणादि-
भवेकलत्रं मुरेशताराजनिताधवाप्रजं द्विदैवताराजनितातुदेवरं पुंरंद्रं जनिताः सुतस्तथास्वस्याप्रजं हंति न पुत्रि-
कायदि प्रयोगपारिजाते मूलजाश्वशुरं हंति न्यालजाचतदंगनां माहेंद्रजाप्रजं हंति देवरं तु द्विदैवजा नृसिं-
हप्रसादे धवाप्रजं हंति सुरेंद्रजातानथैव पत्न्याभगिनीपुमांश्च द्विदैवजादेवरमाशुहन्त्याद्वायानुजामाशुनिहंति-
सूनुः पत्न्यप्रजामप्रजं वा हंति ज्येष्ठश्वजः पुमान् तथा भार्यास्वमारंवाशालं कंवा द्विदैवजः कन्यकादेवरं हंति विशा-
खांत्यसमुद्भवा आद्यपादत्रयेनैव आद्यभेतुपुमानभवेन् न हन्यादेवरं कन्यातुलामिश्राद्विदैवजा तदक्षांतोद्भवा-
वर्ज्यादुष्टावृश्चिकपुच्छवन् चित्रार्धपुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वापादाधिप्यपादे तृतीये जातः पुत्रश्चोत्तरार्धे विषधे म-
तापित्रोर्भ्रातरं बालनाशं द्विमासं चोत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः पूर्वापादाष्टमे मासि चित्राषाष्मासिकं फलं नक्ष-
मासं तथा श्लेषामूले चाष्टकवर्षकं ज्येष्ठापंचदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता ।

वसिष्ठ—“मूल नक्षत्रावर उत्पन्न झालेला पुत्र किंवा कन्या श्वशुराचा अवश्य लवकर नाश करितो. मूलाच्या शेवटच्या चरणावर उत्पन्न झालेला मारीत नाही. आश्लेषावर उत्पन्न (पुत्र, कन्या) मूलाच्या उलट रीतीने म्हणजे आश्लेषा प्रथम पाद वर्ज्य करून इतर पादांवर झालेला श्वशुराचे स्त्रियेला मारितो. ज्येष्ठावर उत्पन्न कन्या वडील वीरास मारिते. विशाखावर झालेली कन्या वीरास मारिते. ज्येष्ठावर उत्पन्न पुत्र वडील भ्रात्याला मारितो. वडील कन्या असेल तर तिला मारीत नाही.”

प्रयोगपारिजातांत—“मूलावर झालेली कन्या श्वशुरास मारिते. आश्लेषावर झालेली श्वशुरास्त्रियेला (सासूला) मारिते. ज्येष्ठावर झालेली वडील भ्रात्यास मारिते. विशाखावर झालेली वीरास मारिते.”

नृसिंहप्रसादांत—“ज्येष्ठावर झालेली कन्या वडील वीरास मारिते. ज्येष्ठावर उत्पन्न पुत्र पत्नीच्या वडील बहिणीस मारितो. विशाखावर झालेली कन्या कनिष्ठ वीरास मारिते आणि पुत्र भायेंच्या कनिष्ठ भगिनीस मारितो. ज्येष्ठानक्षत्रावर झालेला पुत्र पत्नीच्या ज्येष्ठ भगिनीस किंवा बंधूस मारितो. विशाखावर झालेला भायेंच्या भगिनीस (कनिष्ठेस) किंवा शालकास मारितो. विशाखाच्या अंत्यपादावर झालेली कन्या वीरास मारिते. विशाखांच्या पहिल्या तीन पादांवर म्हणजे तूळराशीस चंद्रमा असतां झालेला पुत्र शालकास मारीत नाही. तुळाराशियुक्त विशाखानक्षत्रावर झालेली कन्या वीरास मारीत नाही. विशाखानक्षत्राच्या अंत्यपादावर झालेली कन्या विंचवाच्या नांगीप्रमाणें दुष्ट असल्यामुळें वर्ज्य करावी. चित्रा नक्षत्राचें पहिलें अर्ध, आणि पुण्याचे मधले दोन पाद, पूर्वाषाढांचा तिसरा पाद, आणि उत्तरा नक्षत्राचा पहिला पाद यांजवर झालेला पुत्र मातापितरांच्या बंधूचा व बालांचा नाश करितो. उत्तरानक्षत्राचा दोष दोन महिने. पुण्याचा दोष तीन महिने. पूर्वाषाढांचा दोष आठ महिने. चित्राचा दोष सहा महिने. आश्लेषांचा दोष नऊ मास. मूलाचा दोष आठ वर्षे. ज्येष्ठा नक्षत्राचा दोष पंधरा मासपर्यंत आहे. याकरितां जोंकाल-पर्यंत दोष आहे तोपर्यंत पुत्रदर्शन वर्ज्य करावें.”

वसिष्ठ: व्यतीपातेंगहानिः स्यात्परिधेसृत्युमादिशेत् वैधृतापितृहानिः स्यान्नष्टेदावभ्रतांत्रजेत् मूलेसमूल-नाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् विकृतांगश्चहीनश्चसंध्योरुभयोरपि पर्वण्यपि प्रसूतौ चमर्चारिप्रभयप्रदः तद्वत्सदंतजातश्चपादजातस्तथैवच विपरीतप्रसूतौ तु नाभिनालेन वेष्टितः राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव म्वस्यापि च विनाशकः तस्माच्छांतिप्रकुर्वीतग्रहाणां क्रूरचेतसां गर्गः कृष्णांचतुर्दशीषोढाकुर्यादादौ शुभं मृतं द्वितीयेपितरंहंति तृतीयेहंतिमातरं चतुर्थेमातुलंहंतिपंचमेवंशनाशनं पष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनं तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शांतिं कुर्याद्विधानतः ।

वसिष्ठ—“व्यतीपातावर झालेल्याची अंगहानि होते. परिधावर सृत्यु. वैधृतीवर पितृनाश. नष्टचंद्र असतां झालेल्याला अंधत्व प्राप्त होतें. मूलावर समूलनाश होतो. धृतीवर कुलनाश. दोन्ही संध्यासमयां झालेल्याचे अंगाला विकृति आणि हीनत्व प्राप्त होतें. पूर्वावर (अमा पूर्णिमेस) प्रसूति असतां सर्वे अरिष्ट व भयदायक होतो. दंतसहित व पायांकडून जन्मास आलेला तसाच समजावा. विपरीत प्रसूति झाली असतां व नाभिनालानें वेष्टित उत्पन्न झाला असतां राष्ट्राचा, राजाचा व आपला नाश करणारा होतो. तस्मात् क्रूर ग्रहांची शांति करावी.”

गर्ग—“कृष्णचतुर्दशीस जन्म झालें असतां त्या चतुर्दशीचे महाभाग करावे. पहिल्या भागावर शुभ म्हटलें आहे. दुसऱ्या भागावर पित्याचा नाश. तिसऱ्या भागावर मातेचा नाश. चवथ्या भागावर मातुलाचा नाश. पांचव्या भागावर वंशनाश. सहाव्या भागावर धननाश व आपल्या वंशाचा नाश होतो. तस्मात् सर्वे प्रयत्नानें विधियुक्त शांति करावी.”

अथपित्रोर्नक्षत्रेजन्मदोषः तत्रदेवकीर्तिः यद्येकस्मिन्धिष्ये जायते दुहितोऽथवा पुत्राः पितु-रंतकरास्तेत्येवपरीतिरतुला स्यात् गर्गः एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रावपि पुत्रयोः प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेक-स्य निश्चितं शौनकः ग्रहणे चंद्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् इत्थं सं-जायते यस्य तस्य सृत्तुर्न संशयः शांतिस्तु तद्व्याधिपतेरूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं चंद्रतुराजतं राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः नागः सीसं त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् आकृष्णेनाप्यायस्वस्व-भार्नोरिति पूजामंत्राः नक्षत्रदेवतायास्तन्मंत्रेण संपूज्य तु यजेत् सूर्यसमिद्धिश्चार्कसंभवैः चंद्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वा-भीराहुमेवच समिद्धिर्ब्रह्मवृक्षस्य भेदाय जुहुयाद्बुधः आज्येन च रूपाणां चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः पंचगव्यैः पंच-रत्नैः पंचत्वक्पंचपल्लवैः जले रोषधिकलैश्च अभिषेकं समाचरेत् मंत्रैर्वा रुणसंभूतैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः इमं-मेगंगे पुरतस्तत्स्वायामीति मंत्रैः यजमानस्ततो दद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयमिति ।

आतां मातापितरांच्या नक्षत्रीं जन्म असतां सांगतो.

देवकीर्ति—“पित्याचें अथवा मातेचें जें जन्मनक्षत्र त्या नक्षत्रावर कन्या किंवा पुत्र होतील तर ते मातापितरांचा नाश करणारे होतात. इतर नक्षत्रांवर होतील तर अपरिमित प्रीति होईल.” **गर्ग**—“भ्राते किंवा पिता पुत्र यांचें जन्म एकाच नक्षत्रावर होईल तर त्या दोघांमध्ये एकाल निश्चयानें मृत्यु प्राप्त होईल.” **शौनक**—“चंद्रसूर्याच्या ग्रहणांत जर प्रसूति होईल तर स्त्रियांना ऋतुदर्शनाच्या पूर्वी (प्रसूतिअवस्थेंत) रोगपीडा होते. याप्रमाणें ज्याचें जन्म ग्रहणांत होतें त्याला मृत्यु येतो, यांत संशय नाही.” शांति सांगतो—“ग्रहणकालिक जें नक्षत्र असेल त्या नक्षत्राधिपतीची सुवर्णप्रतिमा करावी. सूर्यग्रहणाची शांति असतां सूर्याची सुवर्णप्रतिमा करावी. चंद्रग्रहणाची शांति असतां चंद्राची प्रतिमा करावी. राहूची प्रतिमा शिशाचीच करावी. ह्या तीन प्रतिमांचें स्थापन त्या शांतीचे ठायीं करावें. ‘आकृष्णेन’ ‘आप्यायस्व’ ‘स्वर्भातो’ हे पूजामंत्र होत. नक्षत्रदेवतेची पूजा त्या नक्षत्रदेवतामंत्रानें करावी. याप्रमाणें पूजा करून अर्कसमिधांनीं सूर्याला होम, पालाशसमिधांनीं चंद्राला होम, दूर्वांनीं राहूला होम, ब्रह्मवृक्षाच्या (पळसाच्या) समिधांनीं नक्षत्राधिपतीला होम करावा. आणि सूर्य, चंद्र, राहू, नक्षत्राधिपति यांना आज्य, चरु, तिल यांचाही होम करावा. नंतर पंचगव्यें, पंचरत्नें, उंबर, वट, पिंपळ, पायरी, आम्र या पंचवृक्षांच्या पांच साली व पांच पल्लव, यांनीं युक्त उदकांनीं वरुण देवतेचे मंत्र, ‘आपोहिष्ठा’ ह्या तीन ऋचा, ‘इममेगंगे’ ही एक ऋचा, ‘तत्त्वायामि’ ही एक ऋचा यांहीं करून अभिषेक करावा. नंतर यजमानानें त्या तीन प्रतिमा ब्राह्मणांस द्याव्या.”

मात्स्ये अकालप्रसवानार्यः कालातीतप्रजास्तथा विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवकास्तथा अमानुषा अमुंडा-
श्च अजातव्यं जनस्तथा हीनांगा अधिकांगाश्च जायंते यदिवान्नियः पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः विनाश-
तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् निर्वासयेत्तानगरात्ततः शांतिं समाचरेत् **पाद्मे** उपरिप्रथमं यस्य जायंते च शि-
शोर्द्विजाः दंतैर्वासहयस्य स्याज्जन्मभार्गवसत्तम द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पंचमे तथा यदा दंताश्च जायंते मासे चै-
व महद्भूयं मातरं पितरं वाथ गवादे दात्मानमेव च गजप्रुग्रतं वालं नैस्व वास्थापयेद्बिजं तदभावे तु धर्मज्ञां चने-
वा वरासने सर्वौषधैः सर्वगंधैर्वीजैः पुष्पैः फलैस्तथा पंचगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव स्थालीपाकेन धातारं-
पूजयेत्तदन्तरं सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनं भद्राग्नेनि वैश्यैर्नमृद्धिर्मूलैः फलैस्तथा सर्वौषधैः सर्वगंधैः-
सर्ववीजैस्तथैव च स्नापयेत्पूजयेच्चात्र यद्विंशो मसमीरणं पर्वतांश्च तथा ख्याता न देवदेवंच केशवं एतेषामेव जुहुया-
द्भूतमग्नौ यथाविधि ब्राह्मणानां तु दातव्या ततः संपूज्य दक्षिणा ॥

मात्स्यांत—“अकाली प्रसूत झालेल्या स्त्रिया, प्रमवकालाचें अतिक्रमण होऊन झालेल्या प्रजा, विकृतियुक्त झालेले, जुंबळ झालेले, मनुष्य स्त्रियांला अमानुष, अमुंड, जातिलक्षण वाजित, अंगहीन व अधिकांग असे पुरुष किंवा कन्या आणि पशु, पक्षी व सर्प यांच्या आकृतीचें गर्भ, हे ज्याच्या देशांत व कुलांत होतील त्या देशाचा व कुलाचा नाश सांगावा. ज्या स्त्रियेला असे गर्भ होतील त्या स्त्रियेस नगरांतून बाहेर घालवून नंतर शांति करावी.” **पाद्मान**—“ज्या शिशूला प्रथम वरचे दंत उत्पन्न होतात अथवा ज्याचें जन्म दंतांमह होतें, आणि दुग्ध्या, तिमःया, चवःया, किंवा पांचव्या मासांत जेव्हां दंत उत्पन्न होतात तेव्हां मोठें भय गमजावें. तो बाल मातेला किंवा पित्याला अथवा आपल्याला खाईल. त्या बालकास गजप्रुष्ठावर किंवा नौकेवर बसावें. त्याच्या अभावीं सुवर्णाच्या उत्तम आगनावर वगवावें. आणि सर्वौषधि, सर्वगंध, बीजें, पुष्पें, फळें, पंचगव्यें, रत्नें, पताका यांनीं अलंकृत करावा. तदनंतर स्थालीपाकविधीनं धात्याची पूजा करावी. सात दिवस ब्राह्मणभोजन करावें. त्या बालकास भद्रासनावर बसवून मृत्तिका, मुळें, फळें, सर्वौषधें, सर्वगंध, सारं बीजें, यांनीं युक्त उदकांनीं स्नान घालून त्या ठिकाणीं अग्नि, सोम, वायु, प्रसिद्ध पर्वत आणि देवांचा देव केशव यांची पूजा करावी. आणि याच देवतांना यथाविधि अर्घीत घृताचा होम करावा. तदनंतर ब्राह्मणांची पूजा करून दक्षिणा द्यावी.”

ब्रह्मयामले प्रथमं दंतनिर्मुक्तिरुर्ध्वबालस्य चेद्भवेत् क्लेशाय मातुलस्ये ह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः **सौवर्णरत्न-**
जतं बापिताम्रं कांस्यमयं तु वा दध्योदनेन संपूर्णपात्रं दद्याच्छिशोः करे समंत्रं भाजनं दत्त्वा सपश्येन्मातुलः शिष्टं
सालंकारं सबलं च शिशुमालिग्य सादरं **तत्र मंत्रः** रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलं गृहीत्वा भाजनं साधं
सन्नो भव सर्वदा निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नं च स्वमातरं मय्यात्मानमधिष्ठाय चिरं जीव भव साह एव कुते विचाने
सुविघ्नः कोपिन जायत इति ॥

ब्रह्मयामलांत—“बालकास प्रथम वरचे दंत जर उत्पन्न होतील तर मातुलास क्लेश सांगितले आहेत. झणून मातुलानें सोप्याचें, रुप्याचें, किंवा तांब्याचें अथवा कांशाचें पात्र दधिमिश्र ओदनांनं परिपूर्ण भरून बालकाच्या हातांत पुढील मंत्रं करून द्यावें. आणि अलंकार, वस्त्र यांनीं युक्त त्या बालकास आदरपूर्वक आलिंगन करून पाहावें. त्याविषयीं मंत्र—‘रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुल ॥ गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नं च स्वमातरं ॥ मय्याःमानमधिष्ठाप्य चिरं जीव मया सह ॥’ याप्रमाणे विधान केलें असतां कोणतेंही विघ्न होत नाही.”

अथ त्रिकप्रसवशान्तिः ।

शान्तिसर्वस्वे सुतत्रयेसुताचेत्यात्तत्रयेवासुतोयदि मातापित्रोःकुलस्यापितदानिष्टमहद्भवेत् ज्येष्ठना-
शोधनेहानिर्दुःखंवासुमहद्भवेत् तत्रशान्तिप्रकुर्वीतवित्तशास्त्रविवर्जितः जातस्यैकादशाहेवाद्वादशाहेशुभेदिने
आचार्यमृत्विजोवृत्वाग्रहयज्ञपुरःसरं ब्रह्मविष्णुमहेशं प्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि-
शक्तिः पंचमेकलशेशं पूजयेद्द्रुमसंख्यया रुद्रस्तूतानिचत्वारिंशान्तिस्तूतानिसर्वशः द्विजण्कोजपेद्धोमकले-
शुचिसमाहितः आचार्यो जुहुयात्तत्रसमिदाज्यतिलांश्चरं अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा देवताभ्यश्चतुर्व-
क्कादिभ्योऽग्रहपुरःसरं ब्रह्मादिमंत्रैरिन्द्रस्य तत इन्द्र भयामहे ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिपूर्णाहुतिं ततः अभिषेकं कुटुं-
बस्य कृत्वा चार्यं प्रपूजयेत् हिरण्यधेनुरेकाच ऋत्विजां दक्षिणां ततः आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत्
प्रतिमागुरवे दत्त्वा उपस्करसमन्विताः ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानां चांश्च तर्पयेत् एवं शान्तिविधानेन सर्वारि-
ष्टं प्रलीयत इति अन्येषु मूलाद्यष्टशेषु शांत्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् ॥

आतां त्रिकप्रसवशान्ति सांगतो—

शान्तिसर्वस्वांत—“तीन पुत्रांवर जर कन्या होईल अथवा तीन कन्यांवर जर पुत्र होईल तर मातापितरांना व कुलालाही अनिष्ट मोठें होईल. ज्येष्ठानाचा नाश, धनाची हानि अथवा मोठें दुःख होईल. त्याविषयीं, वित्तकार्पाण्य वज्र्य करून शान्ति करावी. मूल उत्पन्न झाल्यापासून अकराव्या किंवा बाराव्या शुभ दिवशीं आचार्य आणि ऋत्विज वरून ग्रहयज्ञ-पूर्वक शान्ति करावी. ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इंद्र यांच्या सुवर्णप्रतिमा करून धान्यराशांवर कलश स्थापून त्यांजवर त्या प्रतिमांची यथाशक्ति पूजा करावी. पांचव्या कलशावर रुद्राची पूजा करावी. आणि होमकालीं एका ब्राह्मणानें शुचिभूत व समाहित होऊन चार रुद्रसूक्तं (गर्भाधानप्रकारणीं उक्त) अकरावेंल जपावीं व सर्वे शान्तिसूक्तं जपावीं. आचार्यानें ग्रहयज्ञपूर्वक ब्रह्मादिक देवतांना ब्रह्मादिकांच्या मंत्रांनीं व इंद्राला ‘यत इन्द्र भयामहे’ या मंत्रानें समिधा, आज्य, तिल, चरु या चार द्रव्यांचा अष्टोत्तर सहस्र किंवा अष्टोत्तर शत अथवा त्रिशत होम करावा. तदनंतर स्विष्टकृताचा होम करून बलिदान व पूर्णाहुति द्यावी. कुटुंबाला अभिषेक करून आचार्याची पूजा करावी. आणि हिरण्य व एक धेनु द्यावी. नंतर ऋत्विजांना दक्षिणा द्यावी. आज्यावलोकन करून शान्तिपाठ करावा. त्या देवतांच्या प्रतिमा उपस्करसहित गुरुस द्याव्या. यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन घालावें. दीन व अनाथ यांना तृप्त करावें. याप्रमाणें शान्तिविधान केल्यानें सर्वे अरिष्ट नाहीसिं होतें.” इतर मूलादिक नक्षत्राविषयीं शांत्यादि प्रकार प्रयोगपारिजातांत व मी (कमलाकरानें) केलेल्या शान्तिरत्नांत पाहावा.

मिताक्षरायामार्कंडेयः रक्षणीयातथापष्टीनिशातत्रविशेषतः रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानांतथा बलिः पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः रात्रौ जागरणं कुर्यादशम्यांचैव सूतके व्यासः सूतिकावास-
निलया जन्मदानां देवताः तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनिकीर्तिता प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा त्रिंश्वे-
तेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि अपराकैर्ब्राह्मे कन्याश्चतस्रो राकाद्यावातघ्नीचैव पंचमी क्रीडनार्थाच्च बाला-
नां षष्ठीच शिशुरक्षिणी खड्गे तु पूजनीया वै वैश्यैर्ब्राह्मणैर्द्विजातिभिः राकाऽनुमतिः सिनीवाली कुहूरिति चतस्रः
कन्या इत्यर्थः ॥

मिताक्षरेंत मार्कंडेय—“सूतिकाघरांत सहावी रात्र विशेष करून रक्षण करावी. रात्री जागरण करावें आणि जन्मदा देवतांना बलि द्यावा. पुरुषांनीं हातांत शस्त्र ग्रहण करून आणि स्त्रियांचें नर्तन व गायन करून रात्री जागरण करावें. व जननाशौचांत दहाव्या रात्रीही जागरण करावें.” **व्यास**—“सूतिकागृहांत जन्मदा नांवाच्या देवता असतात त्यांच्या पूजेनिमित्त जननाशौचांत शुद्धि सांगितली आहे. पुत्रजन्म असतां प्रथम दिवस, सहावा दिवस, आणि दहावा दिवस ह्या तीन दिवसांचे ठायीं जननाशौच करूं नये. म्हणजे दानादिकांविषयीं शुद्धि समजावी.” **अपराकांत ब्राह्मांत**—“एका,

अनुमति, सिनीवाली, कुड्ड ह्या चार कन्या; बालांस खेळविणारी अशी पांचवी वातप्री; आणि शिडुरक्षण करणारी वही; वा देवतांची वैद्यांनीं व ब्राह्म द्विजातींनीं खज्जिर पूजा करावी.”

अथ दत्तपुत्रपरिग्रहविधिः ॥

पारिजातेशौनकः अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थसमुपोष्य च वाससीकुंडले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीयकं बंधू-
नभ्रेन संभोग्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः अन्वाधानादियत्तंत्रं कृत्वा ज्योत्पवनांतकं दातुः समभंगत्वा तु पुत्रं देहीति या-
चयेत् दाने समर्थो दाता सौम्येयज्ञेनेति पंचभिः देवस्य त्वेति मंत्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य च अंगादंगेत्यृचं जप्त्वा आप्नाय-
शि शुमूर्धनि गृहमभ्येत मादाय च रुंहुत्वा विधानतः यस्त्वाह दत्तं च वैवृत्युभयमप्र ऋचैकया सोमोददत्तयेता-
भिः प्रत्यृचं पंचभिस्तथा स्विष्टकृदादि होमं च कृत्वा शेषं समापयेत् स च ब्राह्मणानां संपिंडे पुकर्तव्यः पुत्रसंप्रहः
तदभावेऽसंपिंडो वा अन्यत्र तु न कारयेत् **मिताक्षरा** दौतु व्याहृतिभिराग्येन होमोक्तः स च होमोत्तरं जलपूर्वकं
कंदेयः नवाब्दात्रेण व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृहीयादिति वसिष्ठोक्तेः मातापितावा दद्यातां यमद्विः पुत्रमापयि-
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्तमिदं मुत इति मनूक्तेः ।

आतां दत्तक पुत्राचा परिग्रहविधि सांगतो—

पारिजातांत शौनकः—“अपुत्रकानं किंवा मृतपुत्रकानं पुत्राकारणं उपोषण करून दोन वस्त्रें, दोन कुंडलें, पागोटें,
अंगुलीयक हीं देऊन बांधव आणि विशेषकरून ब्राह्मण यांम अन्नानं भोजन घालून (किंवा भोजनसंकल्प करून) अग्न्या-
धानादिक आज्योत्पवनापर्यंत स्थालीपाकनंतर करून दात्याच्या समक्ष (समीप) जाऊन ‘पुत्रं देहि’ अशी याचना करावी.
दानाविषयीं समर्थ जो दाता त्यानं ‘येयज्ञेन०’ ह्या पांच मंत्रांनीं पुत्र यावा. प्राहकानं ‘देवस्यत्वा०’ ह्या मंत्रें करून दोन
हतांनीं प्रहण करून ‘अंगादंगात्०’ ह्या ऋचेचा जप करून पुत्राच्या मस्तकाचें अवघ्राण करून घरांत आणून यथाविधि
स्वर्गहोम करावा. तो असा—‘यस्त्वाह दत्त०’ ह्या दोन ऋचांनीं एक आहुति, ‘तुभ्यममे०’ ह्या एक ऋचेनं एक आणि
‘सोमोददत्त०’ ह्या पांच ऋचांनीं पांच चरूच्या आहुति याच्या व स्विष्टकृदादि होम करून शेषकृत्य समाप्त करावें.” तोच
शौनकः—“ब्राह्मणांनीं संपिंडांतील पुत्र घ्यावा. संपिंडाच्या अभावीं असंपिंड (संपिंडमदश आपल्या जातींतील) घ्यावा.
इतरांतील (भिन्न जातींतील) घेऊं नये.” **मिताक्षरा**दिकांत तर व्याहृतिमंत्रांनीं आज्यहोम सांगितला आहे. तो पुत्र-
प्राहकानं होम केल्यावर दात्यानं उदकपूर्वक यावा. केवळ वाणीनंच देऊं नये. कारण, “व्याहृतींनीं होम करून प्रतिग्रह
करावा” असें वसिष्ठवचन आहे. “आपत्कालीं माता व पिता जो प्राहकाच्या सदृश व प्रीतियुक्त असा उदकानं पुत्र
देतात तो दत्तक पुत्र जाणावा” असें मनुवचन आहे.

तत्रैव वसिष्ठः नवैवैकं पुत्रं दद्यात् प्रतिगृहीयाद्दानस्त्रीपुत्रं दद्यात् प्रतिगृहीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भूरिति श्वं-
च भर्तृसत्त्वे अन्यथा दद्यान्मातापितावायंस पुत्रोदत्तमिदं स्मृत इति वत्सव्यासवचोविरोधः स्यात् दानं प्रति-
ग्रहोपलक्षणं यत्तु समंत्रकहोमस्य पुत्रप्रतिग्रहांगत्वात् व्याहृत्यादिमंत्रपाठे च स्त्रीशूद्रयोरनधिकारात् तयोर्दत्तकः
पुत्रोनभयत्येवेति शुद्धिविवेके रुद्रधरेणोक्तं वाचस्पतिश्चैव मेवाह तत्र भर्तुरुनुज्ञया स्त्रिया अपि प्रतिग्र-
होक्तेः यद्यपि मेधातिथिना भार्यत्ववददृष्टरूपं दत्तकत्वं होमसाध्यमुक्तं स्त्रियाश्च होमासंभवस्तथापि प्रवृत्ति-
वद्विप्रद्वारा होमाधिकारयेदिति हरिनाथादयः संबंधनत्वेत्येवं एवं शूद्रस्यापि स्त्रीशूद्राश्च सधर्माण इति-
स्मृतेः अतएव शूद्रकर्तृकहोमो विप्रद्वारैव पराशरेणोक्तः दक्षिणार्थतुयो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्विः ब्राह्मण-
स्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् अत्र माधवाचार्यः यो विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय तदीयं हविः शान्तिं पुष्पा-
दिसिद्धये वैविकैर्मंत्रैर्जुहोति तस्य विप्रस्यैव दोषः शूद्रस्तु होमफलं लभेत्तैवेति व्याचक्षे ।

तेथेंच वसिष्ठ—“एक पुत्र असेल तो दात्यानं देऊं नये, व घेणारानं घेऊं नये. स्त्रियेनं भर्त्याच्या आहेवाचून पुत्र
देऊं नये किंवा घेऊं नये.” हा प्रकार भर्ता असतां समजावा. अन्यथा (भर्ता नसतां स्त्रियेला अधिकार नाही, जसें
म्हटलें तर) “माता पिता ज्या पुत्राचें दान करितो तो दत्तक पुत्र म्हटला आहे.” ह्या वरस व व्यासवचनाचा विरोध
येईल. या वचनांत ‘दान’ म्हटलें तें प्रतिग्रहाचें उपलक्षण आहे. आतां जें ‘पुत्रप्रतिग्रहाचा अंगभूत समंत्रकहोम अवस-
मुलें व्याहृतिप्रथति मंत्रांच्या पठनाविषयीं स्त्रीशूद्रांना अधिकार नसल्याकारणानं स्त्रीशूद्रांना दत्तक पुत्र होत नाहीत’ असें
शुद्धिविवेकांत रुद्रधरानं सांगितलें आहे, आणि वाचस्पतिही असेंच सांगतो, तें बरोबर नाही. कारण, प्रत्येक
अनुज्ञेनं स्त्रियेला देखील प्रतिग्रह सांगिला आहे. आतां जरी मेधातिथीनं, जसें—स्त्रीचे ठावीं अदृष्टकप आणीत

होमानें साध्य होतें तसें—पुत्राचे ठायीं दत्तकत्व होमानें साध्य आहे असें सांगितलें. स्त्रीयेला तर होम नाही. तरी जसें व्रतादिकांत स्त्रिया ब्राह्मणद्वारा होमादि करवितात, तसें येथें ब्राह्मणद्वारा स्त्रियेनं होमादि करावें, असें **हरिनाथादिक** सांगतात. संबंधतत्त्वांतही असेंच आहे. याप्रमाणें शूद्रालाही समजावें. कारण, “स्त्रिया व शूद्र हे समानधर्मी आहेत” अशी स्मृति आहे. म्हणून शूद्रानें करावयाचा होम ब्राह्मणद्वाराच **पराशरानें** सांगितला आहे. “जो ब्राह्मण दक्षिणा मिळविण्यासाठी शूद्राच्या हवीचा होम करील तो ब्राह्मण शूद्र होईल. व तो शूद्र ब्राह्मण होईल.” येथें **माधवाचार्य**—जो ब्राह्मण शूद्राची दक्षिणा घेऊन त्याचे हवीचा शांति, पुष्टि इत्यादि सिद्धीकरितां वैदिकमंत्रांनीं होम करितो त्या ब्राह्मणालाच दोष आहे, शूद्र तर होमाचें फल पावेलच, असें व्याख्यान करिता झाला.

**दत्तकविशेषः कालिकापुराणे पितृगोत्रेणयः पुत्रः संस्कृतः पृथिवीपते आचूडांतंनपुत्रः सपुत्रतांया-
विचान्यतः चूडोपायनसंस्कारानिजगोत्रेणवैकृताः दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथादासउच्यते ऊर्ध्वतुपंचमाद्र-
र्षाभदत्ताद्याः सुतानृप गृहीत्वापंचवर्षीयंपुत्रेष्टिप्रथमंचरेत् पंचमोर्ध्वतुस्वदानेच्छोरेवदानंनान्यथा विक्रयंचै-
वदानंचननेयाः स्युरनिच्छवः दाराः पुत्राश्चसर्वस्वमात्मनैवतुयोजयेदिति हेमाद्रिमाधवधृतन्यासद-
क्षादिवचनात् यच्चयाज्ञवल्क्यः स्वकुटुंबाविरोधेनदेयंदारसुतादृतइति तदूर्ध्वस्वदानानिच्छुपुत्रपरम् तेन-
सर्वस्वदानेस्वदानेच्छुदारपुत्रदानंसिद्धम् यत्तु विश्वजिदधिकरणषष्ठे तत्रपुत्रादीनांज्ञातित्वेनस्वदान्दवाक्य-
त्वात्पुत्रत्वेनदानमाशंक्यनिराकृतम् जन्यपुंस्त्वस्यदानेनानिष्पत्तेः दासत्वेनदानंभवत्येव तस्माद्यथेष्टविनियो-
गाहृत्वंस्वत्वंभवत्येव पुत्रेस्वत्वाभावंवदन्पुत्रकयविक्रयादिशुनःशेषविक्रयादि श्रौतलिंगादासकयविक्रयादिव्य-
वहारायोगात्तूर्खेण योपि नहिप्रभायारणःसुशेवोन्योदर्योमनसामंतवाडइतिश्रुतौदत्तकनिषेधःसोप्यौ-
रसातिशयार्थः अन्यथाशुनःशेषादिप्रतिग्रहश्रौतलिंगविरोधापत्तेः उपेयांतवपुत्रतामित्युक्तेः इदंचश्रौ-
तलिंगंस्वयंदत्तक्रीतपरं नदत्तकपरं द्वादशविधपुत्रमध्ये दत्तात्मातुस्वयंदत्तः क्रीतश्चताभ्यांविक्रीतइति याज्ञ-
वल्क्येनतयोर्दत्तकाद्वेदोक्तेः तयोश्च दत्तौरसेतरेषांतुपुत्रत्वेनपरिग्रहइतिकलौनियेधात्तेनसंस्कारोचरंदत्त-
कोनभवत्येवेतिसिद्धम् ।**

दत्तकाविषयीं विशेष सांगतो **कालिकापुराणांत**—“ज्या पुत्राचे चौलापर्यंत संस्कार पित्याच्या गोत्रानें झाले आहेत तो पुत्र दुसऱ्याचा होत नाही. ज्याचे चौल, उपनयन संस्कार आपल्या (प्राहुकांच्या) गोत्रानें केलेले आहेत ते **दत्तादिक** पुत्र होतात. आपल्या गोत्रानें संस्कार ज्याचे झाले नसतील तो **दास** म्हणला आहे. पांच वर्षांहून अधिक वयाचे दत्तादिक पुत्र होत नाहीत. पांच वर्षांचे वयाचा पुत्र घेऊन प्रथम पुत्रेष्टि करावी.” पांचव्या वर्षांहून अधिक वयाचा असेल तर आपलें दान इच्छिणाराचेंच दान होतें. न इच्छिणाराचें दान होत नाही. कारण, “विक्रय आणि दान हें न इच्छिणाऱ्या स्त्रीपुत्रांचें करूं नये. दानविक्रयप्रसंगीं सर्वस्व आपल्यासहच दान विक्रयाविषयीं योजावें.” असें हेमाद्रि—माधवांनीं धरलेलें **व्यास व दक्ष** इत्यादिकांचें वचन आहे. यावरून इच्छिणारांचेंच दान होतें. आणि जे **याज्ञवल्क्य**—“आपल्या कुटुंबाच विरोध न होईल त्या रीतीनं स्त्रीपुत्रांवांचून इतर वस्तूचें दान करावें.” यांत पुत्राचें दान करूं नये असें सांगतो, तें पांचवर्षांनंतर आपलें दान न इच्छिणाऱ्या पुत्रविषयक आहे. तेणेंकरून सर्वस्वदानप्रसंगीं आपलें दान इच्छिणाऱ्या स्त्रीपुत्रांचें दान सिद्ध झालें. आतां जें **जैमिनिसूत्रांच्या** सहाव्या अध्यायांत सातव्या पादांत विश्वजित् अधिकरण सांगितलें आहे, तें असें—“विश्वजित् सर्वस्वं ददाति” अशी श्रुति आहे. त्याचा अर्थ—विश्वजित् यागामध्ये सर्वस्व द्यावें. तेथें असें आहे कीं, पुत्र इत्यादिक आप्त हे ज्ञाति असल्यामुळे ‘स्वो ज्ञातावात्मानि स्वं त्रिष्वात्मीये’ या कोशावरून ‘सर्वस्वं’ यांतील ‘स्व’ शब्दाचा अर्थ ज्ञाति (पुत्र इत्यादिक) होत असल्यामुळे पुत्राचें पुत्रलेंकरून दान होईल ? अशी शंका करून त्या शंकेचें निराकरण केलें आहे. कारण, ‘पुत्रल’ म्हणजे ‘जन्यपुंस्त्व’ म्ह. उत्पत्तिसहित पुरुषधर्म, तो दानेंकरून निष्पन्न होत नाही. अर्थात् ज्याला दान केलें त्याचा तो पुत्र होत नाही. दासलेंकरून दान होतच आहे. तस्मात् पुत्राचे ठायीं आपल्या इच्छेनुसार विनियोगयोग्यस्वरूप स्वल होतच आहे. पुत्राचे ठिकाणीं स्वल नाही, असें जो सांगणारा तो मूर्खच आहे. कारण, पुत्राचा कय, विक्रय इत्यादि प्रकार श्रुतीत सांगितला आहे. शुनःशेष ऋषींचा विक्रयादि प्रकार ब्राह्मणांत उक्त आहे. आणि स्वल नाही असें म्हटलें तर दासलेंकरून कय—विक्रय इत्यादि व्यवहार सांगितला आहे, तो उपपन्न होणार नाही. आतां जो “रममाण व अत्यंत सुखकारक असा अन्याच्या उदरांत उत्पन्न झालेला पुत्र ग्रहण करण्यासाठीं मनांत देखील आणूं नये” या श्रुतींत पुत्र घेण्याचा निषेध केलेला आहे, तो देखील औरसाच्या स्तुतीसाठीं आहे. खरोखर

निषेध मानिला तर शुनःशेष इत्यादिकांचा प्रतिग्रह श्रुतीत (ब्राह्मणांत) सांगितला आहे, त्याचा विरोध येईल. 'दुष्ट' (विश्वामित्राच्या) पुत्रलाप्रत प्राप्त झालीं*असें शुनःशेषांनं म्हटलें आहे. हा शुनःशेष संस्कारोत्तर झालेला असल्यामुळे दत्तक पुत्र संस्कारोत्तर होतो, असें म्हणूं नये. कारण, हा श्रुतीत सांगितलेला प्रकार स्वयंदत्त (आपले आपण दान केलेला) व क्रीत (विकत घेतलेला) अशा पुत्रविषयक आहे. दत्तकविषयक नाही. कारण, बारा प्रकारच्या पुत्रांमध्ये 'आपले आपण दान केलेला तो दत्त. आणि आईबापांनीं विकलेला तो क्रीत' असें याज्ञवल्क्यानें दत्तकाहून दत्त व क्रीत हे भिन्न आहेत, असें सांगितलें आहे. आतां दत्तक संस्कारोत्तर होत नाही तर दत्त व क्रीत हे संस्कारोत्तर होतील ? असें म्हणतां कामा नये. कारण, "दत्तक व औरस ह्यांचाचून इतरांचें पुत्रत्वकरून ग्रहण करूं नये. या वचनानें इतरांचा कलियुगांत निषेध केलेला (पुढें कलिवर्ज्यांत) आहे. यावरून संस्कार झाल्यावर दत्तक होतच नाही, असें सिद्ध झालें आहे.

अथयमलयोःसंस्कारकर्मार्थज्येष्ठकनिष्ठभाव उच्यते मनुः पुत्रःकनिष्ठोज्येष्ठप्रायांकनिष्ठप्रायांचपूर्वजः कथं तयोर्विभागःस्यादितिचेत्संशयोभवेत् सदृशस्त्रीप्रजातानांपुत्राणामविशेषतः नमावृतोऽयैष्ठ्यमस्तिजन्मतोऽयैष्ठ्यमुच्यते तेनकनिष्ठप्रायांचपूर्वजातएवज्येष्ठेनज्येष्ठप्रायांचपश्चाज्जातइत्यर्थः सएवश्राद्धाधिकारी जन्मज्येष्ठेनचाह्वा-
नंसुब्रह्मण्यास्वपिस्मृतं यमयोश्चैवगर्भेपुजन्मतोज्येष्ठतामता देवलः यस्यजातस्ययमयोःपश्यतिप्रथममुखां-
संतानःपितरश्चैवतस्मिन्ज्यैष्ठ्यप्रतिष्ठितम् भागवते तु द्वौतदाभवतोर्गर्भासूतिर्वैश्विपर्ययादित्युक्तेः पश्चा-
दुत्पन्नस्यज्यैष्ठ्यमुक्तं अत्रदेशाचारतोव्यवस्था पूर्वमेवतुयुक्तं गर्भाष्टमहत्यादौविशेषनिर्देशेएवगर्भग्रहणानान्यत्र
अन्यथातद्वैयर्थ्यात् ।

आतां जुंवळ पुत्राच्या संस्कारकमायात्री ज्येष्ठल कनिष्ठल कोणावर तें सांगतां—मनु—'एका पुरुषाला दोन भार्या असतां वडील भार्याचा पुत्र तो वयाने कनिष्ठ आणि धाकट्या भार्याचा पुत्र तो वयाने ज्येष्ठ असेल तर त्या दोन पुत्रांचा दाव-
विभाग कर्तव्य अगतां ज्येष्ठाला अधिक अश दावयाचा तो कोणाला द्यावा ! अमा जर संशय उत्पन्न होईल तर सांगतो—
समान जातीच्या स्त्रियांचे ठायीं उत्पन्न झालेल्या पुत्रांना माता ज्येष्ठ अमल्याकारणानें ज्येष्ठल सांगितलें नाही; तर जन्मानें ज्येष्ठल सांगितलें आहे. म्हणजे ज्यांचे जन्म आधी झाले तो ज्येष्ठ रामजावा." यावरून कनिष्ठेला पूर्वी झालेला तोच ज्येष्ठ. वडील बियेला नंतर झालेला तो ज्येष्ठ नाही, आणि तोच पहिला पुत्र श्राद्धाचा अधिकारी होतो. आणि मनु "सुब्रह्मण्या नांवाच्या इष्टीत जन्मानें जो ज्येष्ठ त्यानं आह्वान (देवतेचें आवाहन) करावें, असें सांगितलें आहे. आणि जुंवळ गर्भाचे ठायीं, ज्याचें पूर्वा जन्म, त्याला ज्येष्ठल विद्वानांग मान्य आहे." देवल—"जावळे जन्मले असतां वंशज व माता पिता हे ज्याचें मुख प्रथम पाहताना त्याला ज्येष्ठल सांगितलें आहे." भार्गवतांत तर—"तेव्हां दोन गर्भ राहिले त्यांत जो गर्भाधान समर्थी प्रथम गर्भ राहिला तो मागाहून जन्मला. आणि मागाहून राहिलेला गर्भ प्रथम जन्मला" असें सांगितल्यावरून पश्चात् उत्पन्नाला ज्येष्ठल सांगितलें आहे. या ठिकाणी (जावळ्याविपर्या) ज्या देशांत जसा आचार असेल तशी व्यवस्था जाणावी. परंतु यांत पहिला पक्षच (पूर्वी उत्पन्न झालेला ज्येष्ठ हा पक्षच) युक्त आहे. गर्भापासून काल धरावयाचा तो 'गर्भाष्टमे' म्हणजे गर्भापासून आठव्या वर्षी उपनयन करावें, अमा विशेष सांगितला असेल त्या ठिकाणींच गर्भापासून काल धरावा. अन्यत्र ठिकाणीं गर्भापासून धरावयाचा नाही. सवेंच ठिकाणीं गर्भापासून काल धरला तर 'गर्भाष्टमे' या सूत्रांत 'गर्भ'ग्रहण व्यर्थ होईल.

अथसूतिकास्त्रानं ज्योतिषे करेद्रभाग्यानिर्लवासवांत्यमैत्रैदवाश्विभ्रुवभेऽह्निपुसां तिथावरिकेशुभ-
मामनंतिप्रसूतिकास्त्रानविधिमुनीन्द्राः ।

आतां सूतिकास्त्रान सांगतो—

ज्योतिषांत—"हस्त, ज्येष्ठा, पूर्वा, स्वाती, धनिष्ठा, रेवती, अनुराधा, मृग, अश्विनी, तीन उत्तरा, रोहिणी, या नक्ष-
त्रांवर रिक्ता तिथि वज्य करून अन्यतिथींचे ठायीं प्रसूतिकास्त्रान शुभ, असें मुनीन्द्र सांगतात."

अथनामकर्म मदनरत्नेबृहस्पतिः द्वादशेदशमेवापिजन्मतोऽपित्रयोदशे षोडशेविंशतौचैववृद्धा-
त्रिशेवर्णतःक्रमात् याज्ञवल्क्यः अहन्येकादशेनाम हेमाद्रौभविष्ये नामषेयंदशम्यांतुद्वादश्यांना-
सिकेचन अष्टादशेहनितावदत्यन्येमनीषिणः दशम्यामतीतायामितिज्ञेयं आशौचापगमेनामचेवमिति

१ 'दौ तदा भवतो' हा श्लोक श्रीमद्भागवत स्कंध ३ हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष जन्मप्रसंगी 'वः प्राक्सदेराचमवीरवाक्' हा श्लोकाच्या श्रीधारीकैत आढळतो.

विष्णुक्तेः गृह्यपरिशिष्टेऽपि जननादशरात्रेऽष्टशतरात्रेऽसंवत्सरेऽबानामकरणं व्युष्टेऽतीते ज्योति-
र्निबंधेऽर्गः अमासंक्रांतिविष्टयादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत् **श्रीधरः** मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक् स्वाती-
धनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विज्यां कौषीण्यदिनकृतपुष्येऽपराशौस्थिरे छिद्रांपंचदशीविहाय नवमीशुद्धेष्टमेभार्गवज्ञा-
चार्यामृतपादभागदिवसेनामानिकुर्याच्छिशोः **मनुः** शर्मांतब्राह्मणस्यस्याद्वर्मांतक्षत्रियस्य तु वैश्यस्य धन-
संयुक्तं शुद्धस्य प्रेक्ष्य संयुतं **मदनरत्ने नारदीये** सूतकांतेनामकर्मविधेयं स्वकुलोचितम् नामपूर्वतुमासस्य-
मंगलं सुसमाक्षरैः तत्रैव गार्ग्यः मासनामगुरोर्नामदद्याद्बालस्य वैपिता ।

आतां नामकरण सांगतो.

मदनरत्नांत बृहस्पतिः—“जन्मदिवसापासून अकराव्या किंवा बाराव्या दिवशीं ब्राह्मणाचें; तेराव्या दिवशीं क्षत्रियाचें; सोळाव्या किंवा विसाव्या दिवशीं वैश्याचें; बत्तिसाव्या दिवशीं शूद्राचें; याप्रमाणें नामकरण करावें.” **याज्ञवल्क्यः**—“जन्म-
दिवसापासून अकराव्या दिवशीं नामकर्म करावें.” **हेमाद्रिंत—भविष्यांत**—“अकराव्या किंवा बाराव्या दिवशीं नाम
करावें. मासांतीं करावें, असें कोणी सांगतात. इतर विद्वान् अठराव्या दिवशीं करावें असें सांगतात.” या वचनांतील
‘दशम्या’ याचा अर्थ दहावी रात्र गेली असतां अकराव्या दिवशीं करावें, असा आहे. कारण, आशौच दूर झाल्यानंतर
नामकर्म करावें” असें विष्णुवचन आहे. **गृह्यपरिशिष्टांतही**—“जन्मदिवसापासून दहा रात्री गेल्यानंतर अथवा
शंभर रात्री किंवा संवत्सर गेल्यावर नामकरण करावें.” **ज्योतिर्निबंधांत—गर्गः**—“अमावास्या, संक्रांति, भद्रा
(कल्याणी) इत्यादि दुष्ट दिवस असतां प्राप्तकाल असला तरी करूं नये.” **श्रीधरः**—“अनुराधा, पुनर्वसु, मघा, तीन
उत्तरा, शतताराका, स्वाती, धनिष्ठा, श्रवण, रोहिणी, अश्विनी, मृग, रेवती, हस्त, पुष्य या नक्षत्रांवर; स्थिरलमीं; छिद्रांतिथि,
पौर्णिमा, अमावास्या, नवमी ह्या तिथि वर्ज्य करून; आठवें लग्न शुद्ध असतां; शुक्र, बुध, गुरु, सोम ह्या वारीं बालांचीं
नामं करावीं.” **मनुः**—शर्मशब्द ज्याच्या अंतीं असें ब्राह्मणाचें नाम, जसें—**शिवशर्मा**; वर्मशब्द ज्याच्या अंतीं आहे असें
क्षत्रियाचें नाम, जसें—**बलवर्मा**; धनवाचक शब्द ज्याच्या अंतीं आहे असें वैश्याचें नाम, जसें—**वसुभूति**; प्रेक्ष्यवाचक
शब्द ज्याच्या अंतीं आहे असें शूद्राचें नाम, जसें—**दीनदास**; याप्रमाणें नामं ठेवावीं.” **मदनरत्नांत नारदीयांत**—
“जननाशौच गेल्यानंतर स्वकुळाला उचित असें नाम ठेवावें, प्रथमतः सम अक्षरांनीं युक्त असें मंगलकारक मासनाम
ठेवावें.” **मदनरत्नांत गार्ग्यः**—“पित्यानें बालकास मासनाम व गुरूचें नाम ठेवावें.”

स्मृतिसंग्रहे कृष्णानंतोच्युतश्चक्रीवैकुण्ठश्च जनार्दनः उपेंद्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः योगीशः पुंड-
रीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् अत्र मार्गशीर्षादिश्चैत्रादिर्वाक्रम इति **मदनरत्ने** तन्मासनामप्रथमं दद्यात्संबुध्य-
वैबहि देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापि कूपयोः सर्वापणानां पण्यानां चिह्नार्थं योषितां नृणां काव्यानां च कवीनां-
च पश्यादीनां च सर्वशः राजप्रासादावास्तूनां नामकर्मविशिष्यते नाक्षत्रमपि नामकार्यं अभिवादीनां च समीक्षेत
सन्मातापितरौ विद्यातामोपनयनादित्याश्च **लायनोक्तेः** कुलदेवतानक्षत्रसंबद्धं पितानामकुर्यादिति **मदन-
रत्ने शांखोक्तेः** तच्च नक्षत्रपादाक्षराद्याक्षरं कुर्यादित्युक्तं **परिशिष्टे** तदक्षरादिकं नामयस्मिन्धिष्ण्येदक्षर-
मिति **सुदर्शनभाष्येतु** रोरेममृज्येचिषुवृद्धिरादौ ठाले च बांयश्रवशाश्च युक्षु शेषेषु नाम्नोः कपरः स्वरोऽयः
स्वावोरदीर्घः सविसर्गइष्टः इत्युक्तं ठालेति प्रोष्ठपदेत्यत्रादौ ठाल्परे च वृद्धिः प्रोष्ठपादइति । अंयमपभ्रणी-
शब्दः श्रुतायुक्तः तत्र श्रवणादौ च वादिवृद्धिः अपभरणः आपभरण इत्यादि **मदनरत्ने वसिष्ठः** जन्मा-
द्देवादशाहे वा दशाहे वा विशेषतः उत्तरारेवतीहस्तमूलपुष्याः सवारुणाः श्रवणादिति मेतत्र च स्वातीमृगशिरस्तथा
प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्तानामकर्मणि ।

स्मृतिसंग्रहांत—“कृष्ण, अनंत, अच्युत, चक्री, वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेंद्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश,
पुंडरीकाक्ष, याप्रमाणें अनुक्रमानें मासनामं जाणावीं.” ह्या नामकरणाविषयीं मार्गशीर्षापासून किंवा चैत्रापासून क्रम धरवा,
असें **मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. “प्रथमतः मासनाम ठेवावें. व तें संबुद्धि विभक्ति अंतीं ज्याच्या असें म्हणजे—कृष्णा,
अच्युत, असें ठेवावें. देवालय, गज, अश्व, वृक्ष, वापी, कूप, सर्व बाजार, विकण्याचे पदार्थ, स्त्रिया, पुरुष, काव्य, कवि,

१ चतुर्दशी, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, द्वादशी ह्या पक्षच्छिद्रातिथि सीमंतोन्नयनसंस्कारप्रसंगीं सांगितल्या आहेत. त्यांच्या
त्याज्य घटिका तेथेंच पहाव्या.

पशु वगैरे, राजवाडे, घरे, यांचीं नांवें व्यवहारासाठीं ठेवावीं.” नाक्षत्रनामही ठेवावें. कारण, “पुत्र ज्या नामाचा उच्चार करून मातापितरांस पादग्रहणपूर्वक अभिवादन (नमस्कार) करितो तें अभिवादनीय नाम, तें उपनयन होईपर्यंत माता-पितरांस मात्र ज्ञात असें गुप्त ठेवावें.” असें आश्वलायनानें (गृह्यसूत्र अ. १ खं. १५ यांत) सांगितलें आहे. आणि “कुलदेवतानाम् (श्रीहरेश्वरभक्त वगैरे), व नाक्षत्रनाम हें पिल्यानें ठेवावें.” असें मदनरक्षांत शांखायनें वचन आहे. तें नाक्षत्रनाम, नाक्षत्राचे पादाचें अक्षर प्रथम आहे ज्यास असें ठेवावें.” असें परिशिष्टांत सांगितलें आहे. तें असें:—“ज्या नाक्षत्राचे पादाचें जें अक्षर तें ज्याला प्रथम आहे तें नाक्षत्रनाम जसें—चूचेचोला अश्विनी इत्यादि अक्षरांवरून चूडामणिः, चेरीशः, चोलेशः, लक्ष्मणः इत्यादिक नांव समजावें.” सुदर्शनभाष्यांत तर, ज्या नाक्षत्री जन्म झालें असेल त्या वक्षत्र-वाचक शब्दावरून ‘तत्र जातः’ ह्या पाणिनीच्या सूत्रानें तद्धित प्रत्यय करून जीं नांमें सिद्ध होतात त्यांच्या संप्रदायाचा हा पुढें सांगितल्याप्रमाणें श्लोक आहे:—तो श्लोक असा:—“रोरेममृज्येचिषु वृद्धिरादौ ठाप्ते च बाल्यश्रवशाश्वयुक्तु ॥ शेषेषु नाम्नीः कपरः स्वरौलः स्वाप्वरौषः सविसर्ग इष्टः” इति ॥ रो (रोहिणी), रे (रेवती), म (मघा), मृ (मृगशीर्ष), ज्ये (ज्येष्ठा), चि (चित्रा) यांचे ठायीं आदिबुद्धि करून रोहिणः, रेवतः, माघः, मार्गशीर्षः, ज्येष्ठः, आणि चैत्रः, अशीं सहा नांमें सिद्ध होतात. पूर्वाश्रोष्ठपदा व उत्तराश्रोष्ठपदा ह्या दोन शब्दांचे ठायीं ठकारावरून पुढचें जें अक्षर प त्याला बुद्धि करून प्र यालाही बुद्धि करावी म्हणजे पूर्वाश्रोष्ठपादः, उत्तराश्रोष्ठपादः, अशीं दोन नाक्षत्रनामें सिद्ध होतात. अंल्य (अपभरण), श्रव (श्रवण), श (शतभिषक्), अश्वयुक् यांचे ठायीं आदिबुद्धि वैकल्पिक करून अपभरणः, आपभरणः, अश्वणः, श्रवणः, शतभिषक्, शतभिषः, अश्वयुक्, आश्वयुजः अशीं चार नाक्षत्रांचीं नांमें सिद्ध होतात. शेष जीं भविष्ठः, पूर्वाफल्गुनः, उत्तराफल्गुनः, अनुराधः, तिष्यः, आश्लेषः, हस्तः, विशाखः, पूर्वाषाढः, उत्तराषाढः, कृतिकः, यांचे ठायीं बुद्धि होत नाहीं. आम्हीं म्हणजे आर्द्रा आणि मूल यांचे ठायीं ठञ् प्रत्ययाचा ककार होऊन ककारावरून पर अंल्य खर होऊन आर्द्रकः, मूलकः, अशीं नांमें सिद्ध होतात. स्वाप्योः म्हणजे स्वाती व पुनर्वसू यांचा जो अंल्य खर तो हस्त विसर्गयुक्त करून स्वातिः, पुनर्वसुः, अशीं दोन नांमें सिद्ध होतात. याप्रमाणें नाक्षत्रनामांची सिद्धि जाणावी, असें सांगितलें आहे. मदनरक्षांत—वसिष्ठ—“जन्मदिवशी किंवा बाराव्या दिवशीं अथवा दहाव्या दिवशीं नामकरण करावें. तीन उत्तरा, रेवती, हस्त, मूल, पुष्य, शततारका, श्रवण, पुनर्वसु, अनुराधा, स्वाती, मृगशीर्ष, रोहिणी, आणि भनिष्ठा हीं नक्षत्रे नामकर्माविषयीं प्रशस्त जाणावीं.”

अथदोलारोहः पारिजातेबृहस्पतिः दोलारोहस्तुकर्तव्योदशमेद्वादशोपिवा षोडशेदिवसेवापि-
द्वाविंशेदिवसेपिवा ज्योतिर्निबन्धे करत्रयेवैष्णवरेवतीष्वदितिद्वयेवाश्विनकध्रुवेषु कुर्याच्छिशूनांनृपतेभ्यत-
द्वांदोलनवैमुखिनोभवति तत्रैव आंदोलनयनेपुंमोद्वादशोदिवसःशुभः त्रयोदशस्तुकन्यायाननक्षत्रविचार-
णा अन्यस्मिन्दिवसेचेत्स्यात्तिथ्यागस्यप्रशस्यते अथ दुग्धपानं नृसिंहः एकत्रिंशदिनेचैवपयःशंखेन-
पाययेत् अन्नप्राशननक्षत्रेदिवसोदयराशिषु ।

आतां दोलारोह (मुलास पाळण्यांत घालणें) सांगतो.

पारिजातांत बृहस्पति—“जन्मदिवसापासून दहाव्या किंवा बाराव्या, अथवा सोळाव्या, किंवा वेविसाव्या दिवशीं दोलारोह करावा.” ज्योतिर्निबन्धांत—“हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, तीन उत्तरा, ह्या नाक्षत्रांवर विश्वं व राजाचें आंदोलन करावें, म्हणजे ते मुली होतात.” ज्योतिर्निबन्धांतच—“पाळण्यांत घालण्याविषयीं पुरुषास बारावा दिवस शुभ होय; आणि कन्येस तेरावा दिवस शुभ, त्या दिवशीं नाक्षत्रविचार करण्यास नको. यावरून इतर दिवशीं पाळण्यांत घालणें असेल तर तिथिबुद्धि नाक्षत्रांवर प्रशस्त जाणावीं.” आतां दुग्धपान सांगतो—
नृसिंह—“जन्मदिवसापासून एकतिसाव्या दिवशीं, व अन्नप्राशननक्षत्रांवर, दिवसा उदय झालेल्या लग्नावर शंखानें मुलास दूध पाजवें.”

अथकर्णवेधः मदनरक्षेवसिष्टश्रीधरौ मासेपष्टेसप्तमेवाष्टमेबावेधौकर्णौद्वादशेषोडशोद्धि मध्ये
नाहःपूर्वभागेनरात्रौनक्षत्रेद्वेद्वेतिथीवर्जयित्वा अत्रजन्ममासोवर्त्यः ज्योतिर्निबन्धेगर्गः मासेषष्ठेसप्तमे-
वाप्यष्टमेमासिवत्सरे कर्णवेधंप्रशंसंतिपुष्टयायुःश्रीविवृद्धये मदनरक्षे प्रथमेसप्तमेमासिअष्टमेदशमेवबा-
द्वादशेचतथाकुर्यात्कर्णवेधंशुभावहं हेमाद्रौन्यासः कार्तिकेपौषमासेवाचैत्रेवाफाल्गुनेपिवा कर्णवेधंप्रशं-
संतिशुक्लपक्षेभेदिने श्रीधरः हरिह्यकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरार्यादितिवसुपुष्यतालीसिंहवर्ग्येसुक्लमे क्षि-
गुरुबुधकाव्यानांदिनेपर्वरिक्तारहिततिथिपुशुद्धेनैवनेकर्णवेधः मदनरक्षेबृहस्पतिः द्वितीयावसनीपक्षी-

सप्तमीचत्रयोदशी द्वादशीपंचमीशस्तातृतीयाकर्णवेधने सौवर्णीराजपुत्रस्वराजतीविप्रवेश्ययोः शूद्रस्यचाय-
सीसूचीमध्यमाष्टांगुलात्मिका हेमाद्रौदेवलः कर्णरंघ्रवेच्छायानविशेदप्रजन्मनः तद्व्याविलयंयांति-
पुण्यौघाश्चपुरातनाः शंखः अंगुष्ठमात्रमुषिरौकर्णौनभवतोयदि तस्मैश्राद्धंनदातव्यंदत्तंचेदासुरंभवेत् ।

आतां कर्णवेध सांगतो.

मदनरत्नांत—षसिष्ठ व श्रीधर—“जन्मदिवसापासून बाराव्या किंवा सोळाव्या दिवशीं बालकाचे कान टोंचावे. अथवा सहाव्या, सातव्या, किंवा आठव्या, मासांत कान टोंचावे. दिवसाच्या मध्यभागी, पूर्वभागी व रात्री कान टोंचूं नयेत. कर्णवेधास नक्षत्रवृद्धि व दिनवृद्धि वर्ज्य करावी.” कर्णवेधाविषयी जन्ममास वर्ज्य करावा. **ज्योतिर्निबंधांत—गर्ग—**“सहाव्या, सातव्या किंवा आठव्या मासांत अथवा बाराव्या मासांत कर्णवेध प्रशस्त आहे. त्यापासून पुष्टि, आयुष्य, श्री यांची वृद्धि होते.” **मदनरत्नांत—**“पहिला, सातवा, आठवा, दहावा किंवा बारावा ह्या मासांत कर्णवेध करावा, तो शुभ होय.” **हेमाद्रौत—व्यास—**“कार्तिक, पौष, चैत्र, अथवा फाल्गुन या मासांत शुक्रपक्षांत शुभदिवशीं कर्णवेध प्रशस्त होय.” ‘कर्णवेध विषमवर्षी करावा, समवर्षी करूं नये. त्यांत प्रथमवर्षी कर्तव्य असतां वर सांगितलेले मास ध्यावे. तृतीयादिवशीं कर्तव्य असतां हे कार्तिकादिक मास समजावे, असे धर्मसिंधुसारांत आहे.’ **श्रीधर—**“श्रवण, अश्विनी, हस्त, चित्रा’ मृग, रेवती, तीन उत्तरा, पुष्य, पुनर्वसु, धनिष्ठा ह्या नक्षत्रांवरः चंद्र, गुरु, बुध, शुक्र ह्या वारीं; अमा, पूर्णिमा, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ह्या तिथि वर्ज्य करून अन्य तिथींचे ठायीं; कुंभ, वृश्चिक, सिंह हीं लग्ने वर्ज्य करून अन्य लग्नीं; अष्टमस्थान शुद्ध असतां कर्णवेध शुभ होय.” **मदनरत्नांत—बृहस्पति—**“द्वितीया, दशमी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पंचमी आणि तृतीया, ह्या तिथि कर्णवेधाविषयीं शुभ होत. बालकाच्या आठ अंगुळें लांबीची सूनी (कर्णवेधाची तार) असावी. ती अशी—राजपुत्राच्या कर्णवेधाविषयीं सुवर्णाची; ब्राह्मण, वैश्य यांना रुप्याची; शूद्राला लोखंडाची, याप्रमाणें तार करावी.” **हेमाद्रौत—देवल—**“ज्या ब्राह्मणाच्या कानाच्या छिद्रांतून सूर्याचे किरण बाहेर पडत नाहीत त्या ब्राह्मणाला पाहिलें असतां पाहणाराचे पुरातन पुण्यसमुदाय नाश पावतात. अर्थात् मोठें छिद्र वाढवावें.” **शंख—**“ज्याचे कर्ण, अंगुष्ठमात्र छिद्र नाहीत अशा ब्राह्मणास श्राद्धास सांगूं नये. सांगितलें असतां तें श्राद्ध आसुर (असुरांनीं भक्षित) होतें,”

अथतांबूलभक्षणं चंडेश्वरः सार्धमासद्वयेदद्यात्तांबूलंप्रथमंशिशोः कर्पूरादिकसंमिश्रं विलासाय-
हितायच मूलार्कचित्रकरतिष्यहरींद्रभेषुपौष्णेतथाभृगुशिरोदितिवासवेपु अर्केदुर्जीवभृगुबोधनवासरेषुतां-
बूलभक्षणविधिर्मुनिभिःप्रदिष्टः ।

आतां तांबूलभक्षण सांगतो.

चंडेश्वर—बालकास अडीच महिने झाल्यानंतर प्रथम तांबूलभक्षण करावें. तें तांबूल कर्पूरादि सकल पदार्थांनीं युक्त असें करून भक्षण करावें, तें विलास (शोभा) कारक व हितकारक होतें. मूल, अनुराधा, चित्रा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, मृग, पुनर्वसु, धनिष्ठा ह्या नक्षत्रांवर, रवि, इंद्र, गुरु, शुक्र, बुध ह्या वारीं तांबूलभक्षणाचा विधि ऋषींनीं सांगितला आहे.”

अथनिष्क्रमणं ज्योतिर्निबंधेयमः तृतीयेवाचतुर्थेवामासिनिष्क्रमणंभवेत् यमः ततस्तृतीये कर्तव्यंमासिसूर्यस्यदर्शनं चतुर्थेमासिकर्तव्यंशिशोश्चंद्रस्यदर्शनं अत्र सूर्येद्वोःकर्मणीयेचतयोःश्राद्धंनविद्यत-
इति छंदोगपरिशिष्टात् छंदोगानांनिष्क्रमणेवृद्धिश्राद्धंनास्तीतिकल्पतरुः व्यासः मैत्रेयपुण्यपुनर्वसुप्र-
थमभेषुपौष्णेनूकूलेविधौहस्तेचैवसुरेश्वरेचमृगभेतारासुशस्तासुच कुर्यान्निष्क्रमणंशिशोर्बुधगुरौशुकेविरिकेति-
थौकन्याकुंभतुलाभृगारिभवनेसौम्यग्रहालोकिते मदनरत्ने अन्नप्राशनकालेवाकुर्यान्निष्क्रमणक्रियां विष्णु-

१ अर्थात् ब्राह्मणाचे कर्ण अंगुष्ठमात्रछिद्र असावे असें झालें आहे. हें वचन परिसंख्यारूप नियमविधीनें अंगुष्ठाहून अधिक छिद्राचा निरास करण्याकरितां आहे. अधिकछिद्र कशानें प्राप्त झालें, असें म्हटलें तर सांगतो—संस्कारकौस्तुभांत विष्णु-
धर्मांत—“शिशोर्विवर्धनं कार्यं यावदाभरणक्षमं” अर्थ—बालकाचें कर्णछिद्र जितकें आभरणाच्या योग्य होईल तितकें वाढवावें. या वचनावरून कदाचित् अंगुष्ठाहूनही अधिक होण्याचा संभव आला तर त्याचा निरास करण्याकरितां हें शंखाचें वचन समजावें. ब्राह्मणाचे कर्ण अंगुष्ठाहून कमी छिद्राचे अर्ज्य नयेत, अशा अर्थानें तें शंखवचन म्हटलें तर—“ब्राह्मणाच्या कर्णांचे छिद्रांत सूर्याची छाया (किरण) प्रविष्ट होईल इतकें मोठें तें छिद्र असावें. अशा अर्थानें बरील देवलाचें वचन व्यर्थ होईल. तात्पर्य—अंगुष्ठाहून अधिक मोठें छिद्र अर्ज्य नये, असा भाव.

धर्मे दिगीशानांदिनेतत्रतथाचंद्रार्कयोर्द्विजः पूजनंवापुदेवस्यगगनस्यचकारयेत् बहिर्निष्कासयेद्देहाच्छंस-
पुण्याहनिस्वनैः चंद्रार्कयोर्दिगीशानांदिशांचगगनस्यच निक्षेपार्थमिमं दक्षितेमेरक्षंतुसर्वदा अप्रमत्तंप्रमत्तंवा-
दिवारात्रमथापिवा रक्षंतुसततंसर्वदेवाः शक्रपुरोगमाः माधवीयेमार्कंडेयः अप्रतोद्यप्रविन्यस्यशिल्प-
भांडानिसर्वशः शस्त्राणिचैववस्त्राणिततःपश्येत्तुलक्षणं प्रथमंयत्पृष्ठेद्वालस्ततोभांडंस्वयंतदा जीविकालस्य-
बालस्यतेनैवतुभविष्यतीति ।

आतां निष्क्रमण सांगतो.

ज्योतिर्निबंधांत—यम—“तिसन्या किंवा चवथ्या मासांत निष्क्रमण करावें.” यम—“तिसन्या मासांत सूर्याचें दर्शन बालकास करावें. चवथ्या मासांत बालकास चंद्राचें दर्शन करावें.” ह्या ठिकाणीं “सूर्य व चंद्र ह्यांचीं दर्शनरूप जीं कमें त्यांचे ठायीं श्राद्ध करूं नये” ह्या छंदोगपरिशिष्टवचनावरून छंदोगांना निष्क्रमणसंस्कारी वृद्धिश्राद्ध नाही, असें कल्पतरू सांगतो. व्यास—“अनुराधा, पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा, मृग, ह्या नक्षत्रांवर; शोभेन तारा असतां; बुध, गुरु, शुक्र, ह्या वारीं; रिकारिविरहित तिथीचे ठायीं: कन्या, कुंभ, तुला, सिंह ह्या लमीं शुभ ग्रहांची दृष्टि लमावर असतां बालकाचा निष्क्रमणसंस्कार करावा.” मदनरत्नांत—“अथवा अन्नप्राशनकार्त्तं निष्क्रमण संस्कार करावा.” विष्णुधर्मांत—“निष्क्रमणदिवशीं ब्राह्मणांनं दिक्पति, चंद्र, सूर्य, वासुदेव, आकाश यांची पूजा करून शंख, मंगलवाद्यें, वेदमंत्र यांचा घोष करीत बालकाला घरांतून बाहेर आणून सूर्यादि देवतांचें दर्शन करवून प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र—‘चंद्रार्कयोर्दिगीशानां दिशां च गगनस्य च ॥ निक्षेपार्थमिमं दक्षि ते मे रक्षंतु सर्वदा ॥ अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवारात्रमथापि वा ॥ रक्षंतु सततं सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ॥’ माधवीयांत—मार्कंडेय—“बालकाच्या पुढें कलाकौशल्याचे सवे पदार्थ, शस्त्रे, वस्त्रे इत्यादिक ठेऊन त्यावरून त्या बालकाचें लक्षण पाहावें. पुढें ठेवलेल्या पदार्थांतून ज्या पदार्थाला बालक स्पर्श करील त्या पदार्थांचेंच त्याची उपजीविका होईल.”

अथोपवेशनं प्रयोगपारिजाते पाद्मे विष्णुधर्मच पंचमेचतथामासिभूमौतमुपवेशयेत् तत्र सर्वेग्रहाःशस्ताभौमोप्यत्रविशेषतः उत्तरात्रितयंसौम्यपुष्यश्रृंगशक्रदैवतं प्राजापत्यंचहस्तश्चशस्तमाश्विनमित्रमं वाराहंपूजयेद्देवंप्रथिवींचतथाद्विजः रश्मैर्नवमुधेदेविसदासर्वगतंशुभे आयुःप्रमाणंसकलंनिक्षिपस्वहरिप्रिये अचिरादायुपस्त्वस्ययेकेचित्परिपंथिनः जीवितारोग्यवित्तेपुनिर्दहस्वाचिरेणतान् वरेण्याशेषभूतानांमातात्व-
मसिकामधुक् अजराचाप्रमेयाचसर्वभूतनमस्कृता चराचराणांभूतानांप्रतिष्ठानाव्ययाह्यसि कुमारंपाहिमा-
तस्त्वंब्रह्मातदनुमन्यतां ।

आतां उपवेशन सांगतो.

प्रयोगपारिजातांत—पाद्मांत व विष्णुधर्मांत—“पांचव्या मासीं त्या बालकास भूमीवर बसवावें. त्या समयीं सारे ग्रह शुभस्थानीं असावे आणि मंगळ तर विशेषकरून योग्य स्थानीं असावा. नक्षत्रें सांगतो—तीन उत्तरा, मृग, पुष्य, ज्येष्ठा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, अनुराधा, ह्या नक्षत्रांवर भूमीवर उपवेशन करावें. द्विजानें वराह देव, पृथ्वी यांची पूजा करून बालकाला भूमीवर ठेऊन पुढें सांगितलेल्या मंत्रांनं भूमीची प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र—‘रश्मैर् नवमुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे ॥ आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये ॥ अचिरादायुपस्त्वस्य ये केचित्परिपंथिनः ॥ जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् ॥ वरेण्याशेषभूतानां माता त्वमसि कामधुक् ॥ अजरा चाप्रमेया च सर्वभूतनमस्कृता ॥ चराचराणां भूतानां प्रतिष्ठानाव्यया ह्यसि ॥ कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यतां ॥’

अथान्नप्राशनं पारिजाते नारदः जन्मतोमासिपष्ठेस्यात्सौरेणान्नाशनंपरं तदभावेऽष्टमेमासिन-
वमेदशमेपिवा द्वादशेवापिकुर्वीतप्रथमान्नाशनंपरं संवत्सरेवांसंपूर्णेकेचिद्विच्छंतिपंडिताः मदनरत्नेलौ-
गाक्षिः षष्ठेन्नप्राशनंजातेपुढंतेपुवेति शंखः संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्थसंवत्सरेवेति ज्योतिर्निबंधेना-
रदः षष्ठेवाप्यष्टमेमासिपुंसांस्त्रीणांतुपंचमे सप्तमेमासिवाकार्येनवान्नप्राशनंशुभं रिकामिनक्षयंनंवाद्वादशीम्-

१ जन्म, संपद, विपद, क्षेम, प्रलारि, साधक, बध, मैत्र, अतिमैत्र ह्याप्रमाणे नऊ तारा होत. ह्या नऊ ह्यांवावर पुढें कन्या संपद याप्रमाणे सप्तजाम्बा. यांचीं फले नामासारखीं जाणवीं.

अस्मिन्मन्त्रे स्वस्वान्यतिथयः प्रोक्तः सितजीवश्चासराः चंद्रवारप्रशंसंति कुण्डोचांत्यत्रिंविना श्रीधरः
आदित्यसिंध्यवसुसौम्यकरानिलादिचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः बालाभभोजनविधौ दशमे विद्युच्छेदि-
ग्राविहायनवमीतिथयः शुभाः स्युः वसिष्ठः बालाभमुक्तौ व्रतबंधने च राजाभिषेके खलु जन्मधिष्यं शुभं त्व-
निष्ठं सततं विवाहे सीमंतयात्रादिषु मंगलेषु मार्कण्डेयविष्णुधर्मयोः ब्रह्माणंशकरं विष्णुचंद्राकौचदिगीय-
रान् सुवर्गविश्वसंपूज्यदुत्वावहौ तथा चरुं देवतापुरतस्तस्य धांश्र्युत्संगतस्य च अलंकृतस्य दातव्यमन्नपात्रे स-
क्रांचनं मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत्पायसंतु वेति ।

आतां अन्नप्राशन संस्कार सांगतो.

पारिजातांत—नारद—“जन्ममासापासून सौरमानाचें सहाव्या मासांत अन्नप्राशन करावें. त्याच्या अभावीं आठव्या, नवव्या, दहाव्या अथवा बाराव्या मासांत बालकाला प्रथम अन्नप्राशन करावें, अथवा वर्ष संपूर्ण झाल्यावर अन्नप्राशन करावें असें केचित् विद्वान् सांगतात.” मदनरत्नांत—लौगाक्षि—“सहाव्या मासांत किंवा दंतोत्पत्ति झाल्यानंतर अन्नप्राशन करावें.” शंख—“वर्षातीं अन्नप्राशन करावें. किंवा सहाव्या मासांत करावें.” ज्योतिर्निबंधांत—नारद—“सहाव्या किंवा आठव्या मासीं पुरुषाचें प्रथम अन्नप्राशन करावें. स्त्रियांचें पांचव्या किंवा सातव्या मासीं अन्नप्राशन करावें. चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, दिनक्षय, प्रतिपदा, द्वादशी, अष्टमी, अमावास्या, ह्या तिथि वर्ज्य करून अन्य तिथि शुभ होत. बुध, गुरु, शुक्र, हे वार अन्नप्राशनाविषयीं प्रशस्त होत. कृष्ण पक्षांतील शेवटचे पांच दिवस टाकून इतर दिवशीं चंद्रवार प्रशस्त आहे.” श्रीधर—“पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठा, मृग, हस्त, स्वाती, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, श्रवण, शततारका, तीन उत्तरा, रेवती, अनुराधा, हीं नक्षत्रे अन्नप्राशनाविषयीं शुभ होत. धरलेल्या लग्नापासून दशम लग्न शुद्ध असावें. छिन्ना तिथि, व नवमी वर्ज्य करून इतर तिथि शुभ होत.” वसिष्ठ—“बालकाचें अन्नप्राशन, उपनयन, राजाभिषेक, यांचे ठायीं जन्मनक्षत्र शुभ आहे. विवाह, सीमंतसंस्कार आणि यात्रादिक मंगल कृत्ये यांविषयीं जन्मनक्षत्र अशुभ जाणावें.” मार्कण्डेयांत व विष्णुधर्मांत—“ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, चंद्र, सूर्य, दिक्पाल, भूमि, दिशा, यांची पूजा करून अग्नीमध्ये चरुहोम करून कुलदेवतेच्या अग्रभागीं मातेच्या मांडीवर बसलेला असून अलंकारयुक्त अशा बालकाला, पात्रांत दधि, मध, घृत यांनीं मिश्रित असें अन्न किंवा क्षीर, सुवर्णयुक्त हस्तानें घेऊन प्राशन करावें.”

अथाब्दपूर्तिः व्यवहारनिर्णये नवांबरधरोभूत्वापूजयेच्च चिरायुषं मार्कण्डेयं नरोभक्त्यापूजयेत्प्र-
यतस्तथा ततोदीर्घायुषं व्यासं रामं त्रैलोक्यं कृपं बलिम् प्रह्लादं च हनूमंतं विभीषणमथाचयेत् स्वनक्षत्रं जन्मतिथिप्रा-
प्यसंपूजयेन्नरः षष्ठीं च दधिभक्तेन वर्षे वर्षे पुनः पुनः तिथितत्त्वेऽप्येतन्नामभिस्तिलहोमोऽयुक्तः आदित्यपु-
राणे सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मंगलवारिभिः गुरुदेवाम्निविप्राश्नपूजनीयाः प्रयत्नतः स्वनक्षत्रं च पितरौ तथा-
देवः प्रजापतिः प्रतिसंवत्सरं यन्नात्कर्तव्यश्चमहोत्सवः कृत्यचिंतामणौ गुडदुग्धतिलान् दद्याद्वस्तेभ्यो च-
बंधयेत् गुग्गुलुनिंबसिद्धार्थदूर्वागोरोचनादिकं संपूज्य भानुविश्वेशौ महर्षिप्रार्थयेदिदं चिरंजीवीयथा त्वं भो-
विष्णामितथामुने रूपवान्वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा मार्कण्डेयनमस्तेस्तु सप्तकल्पांतं जीवन आयुरारोग्य-
सिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने चिरंजीवीयथा त्वं तु मुनीनां प्रवरद्विज कुरुष्व मुनिशार्दूलतथामां चिरंजीविनं मार्कण्डे-
यमहाभागसप्तकल्पांतं जीवन आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं मस्माकं वरदो भव सतिलंगुडसंमिश्रमंजल्यर्धमित्तंपयः
मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबान्यायुर्विबृद्धय इति पयःपिबेत् तिथितत्त्वेऽस्कांदि खंडनं स्वकेशानां मैथुनाध्वा-
गमौ तथा आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् तत्रैव दीपिकायां कृतांतं कुजयोर्वारैर्यस्य जन्मतिथिर्भवेत्
अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विप्रस्तस्य पदे पदे कृतांतः शनिः तस्य सर्वौषधिलानं गुरुदेवाम्निपूजनं वृद्धमनुः मृते जन्म-
निसंक्रांतौ त्राद्वे जन्मदिने तथा अष्टमिदिने तस्यैव नस्त्रायादुष्णवारिणा अन्नजन्मतिथिरौ दयिकी प्राप्ता युगाद्या-

१ मातृसंगतस्य चैति पाठांतरं. २ छिद्रातिथि सीमंतोन्नयनप्रकरणीं पहाव्या. ३ कुष्ठं मांसी हरिद्रे दे मुरा शैलेयचंदनं ॥ वचाचं-
पकुसुस्ताश्च सर्वौषधौ दश स्मृताः ॥ ४ जन्मतिथिरिति तत्रैवे राजमातलिः ॥ घनद्वये जन्मतिथिर्विदिस्वात्कुयां तदा जन्मसंयुताया ॥
असंगतातेन दिनद्वये चेत्पूज्यापराया भवतीह यन्नादिति ॥ खट्वारो ह दुग्धपानकर्णे वेधनिष्क्रमणजीविकापरीक्षोपवेशनवराहादिपूजाक्रमश्च-
नाभ्यपूर्तिकटिदृशणि मयूखकौस्तुभप्रयोगपारिजातादौ धर्मसिंधौ च विस्तृतानि बोध्यानि ॥

वर्षवृद्धिस्सप्तमीपार्वतीप्रिया रवेरुदयमीक्षतेनतत्रतिथियुग्मतोतिक्कृत्यतत्स्वार्णविषेचत्वात् विशेषोक्तत्वात्
शूद्रधर्मोक्तः ॥

आतां अब्दपूर्ति (वर्धापन, वाढदिवसाचा विधि) सांगतो.

व्यवहारनिर्णयांत—“पुरुषार्थे प्रतिवर्षी आपले जन्मनक्षत्र, व जन्मतिथि प्राप्त असतां नूतन वस्त्रनिर्माण करून चिरायु मार्कंडेयाची भक्तीने पूजा करावी. नंतर व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृप, बलि, प्रह्लाद, हनुमान्, विभीषण, अश्वि षष्ठी देवी ह्या देवतांची (नाममंत्रांनी) पूजा करून षष्ठी देवीला दहीभाताचा नैवद्य समर्पण करावा.” तिथितत्त्वांत—ह्या देवतांच्या नाममंत्रांनी तिलहोमही सांगितला आहे. आदित्यपुराणांत—“सर्वांनी आपापल्या जन्मदिवशी तैलभ्यंग करून मांगलिक उदकानें स्नान करून तिलक करावा. आणि गुरु, देव, अग्नि, ब्राह्मण, आपलें जन्मनक्षत्र, माता, पिता, देव प्रजापति, यांची पूजा करावी. याप्रमाणें प्रतिवर्षी मोठा उत्सव करावा.” कृत्यचिंतामणींत—“गूळ, दूध, तीळ यांचें दान करावें. आणि गुग्गुलु, निंब, राई, दुर्वा, गोरोचन इत्यादिक पदार्थ वस्त्राच्या ग्रंथीत घालून ते हातांत बांधावे. नंतर भानु, व गणपति यांची पूजा करून मार्कंडेयाची प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र—“चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥ रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा ॥ मार्कंडेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन्मुने ॥ चिरंजीवी यथा त्वं तु सुनीनां प्रवर द्विज ॥ कुरुष्व सुनिशार्दूल तथा मां चिरंजीविनं ॥ मार्कंडेय महाभाग सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव ॥” याप्रमाणें प्रार्थना केल्यानंतर ‘सतिलं गुडसंमिश्र-मंजल्यधर्मितं पयः ॥ मार्कंडेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥’ ह्या मंत्रांनीं दुरध प्राशन करावें.” तिथितत्त्वांत स्कादांत—“नखें व केश यांचें छेदन, मंथुन, प्रयाण, मांसभक्षण, कलह, हिंसा हीं वाढदिवसाचे दिवशीं वर्ज्य करावीं.” तेथेंच दीपिकेंत “शनिवारी व भौमवारी ज्याची जन्मतिथि प्राप्त झाली असेल व जन्मनक्षत्र, जन्मयोग नसेल त्याला पदोपदीं विघ्न प्राप्त होतें, त्याच्यापरिहारामाठी सर्वोपयुक्त उदकानें स्नान व गुरु, देव अग्नि यांचें पूजन हीं करावीं.” बृह-मनु—“सपिंडादिकांचें मरण, पुत्र कन्या यांचें जन्म, सूर्याची संक्रांति, श्राद्ध, वाढदिवस चांडालादिकांचा स्पर्श यांतून कोणतेंही असतां जें स्नान करणें तें उष्णोदकानें करूं नये.” ह्या वर्धापनाविषयीं जन्मतिथि ध्यावयाची ती सूर्योदयव्यापिनी ध्यावी. कारण, “युगादितिथि, वर्धापनाची तिथि, नवरात्रांतील सप्तमी, ह्या तिथि सूर्योदयव्यापिनी ध्याव्या. शुभमाक्यानें प्राप्त झालेल्या धेऊं नयेत.” असं कृत्यतत्स्वार्णवांत वचन आहे. याविषयींचा विशेष विचार मी (कमलाकरां) केलेल्या शूद्रकमलाकरांत पाहावा.

अथकटिसूत्रं प्रयोगपारिजाते ब्राह्मे प्रतिसंवत्सरांतक्षेत्रक्षेयनृणांविधिपरं दत्वागोभूहिरण्या-
दितथास्वर्णादिनिर्मितं वप्रियात्कटिसूत्रंचवासःसंगुह्यनूतनं दूर्वाकुरैरथाज्येनचरुणावापिनाकिनं आयुष्य-
होमंकृत्वाचतर्पयेत्पितृदेवताः ।

आतां कटिसूत्रबंधन सांगतो.

प्रयोगपारिजातांत ब्राह्मांत—“प्रत्येक वर्षाचे अंती जन्मनक्षत्रीं मनुष्यांना कर्तव्य विधि सांगतो—गाई, भूमि, हिरण्य इत्यादि दान करून नवीन वस्त्र परिधान करून सुवर्णादिकांचा केलेला कटिदोरा बांधावा; दूर्वाकुर किंवा घृत अथवा चरु यांचा द्रवदेवतेच्या उद्देशानें आयुष्यहोम करून पित्रांचें व देवतांचें तर्पण करावें.”

अथचौलं प्रयोगपारिजातेषड्गुरुशिष्यः जाताधिकाराज्जन्मादितृतीयेन्देवचौलकं आयेन्दे-
कुर्वतेकेचित्पंचमेन्देद्वितीयके उपनीत्यासहैवेतिविकल्पाःकुलधर्मतः बृहस्पतिः तृतीयेन्देशिशोर्भाज्जन्म-
तोवाविशेषतः पंचमेसप्तमेवापिब्रिह्माःपुंसोपिवासमं तत्रैव नारदः जन्मतस्तुतृतीयेन्देब्रेष्ठमिच्छंतिपण्डिताः
पंचमेसप्तमेवापिजन्मतोमध्यमंभवेन् अधमंगर्भतःस्यातुनवमैकादशेपिवेति पारिजातेबृहस्पतिः उस्-
रायणगेसूर्येविशेषात्सौम्यगोलके शुक्रपक्षेशुभंप्रोक्तंकृष्णपक्षेशुभेतरत् अशुभौल्यत्रिभागःस्यात्कृष्णपक्षेत्रिधा-
कृते तत्रैववसिष्ठः द्वित्रिपंचमसप्तम्यामेकादश्यांतयैवच दशम्यांचत्रयोदश्यांकार्यक्षौरविजानता बृह-
हीये षष्ठपष्टमीचतुर्थीचनवमीचचतुर्दशी द्वादशीदर्शपूर्णेद्विप्रतिपच्चैवनिदिताः वसिष्ठः रवेरंगारकौष-

१ कुष्ठ, जटांमासी, हळद, बावेहळद, मुरा, शैलेय, चंदन, वेखंड, चांफा, नागरमोक्षा ह्या सर्वोपि होत. २ जे कोणतेही कर्म, कटिबंधन करून केले असतां ते सर्व निष्फळ होतें. शय्याचा, कापसाचा, सुवर्णाचा अथवा रजमाचा कटिदोरा कर्मासाठीं कर्म करावा, असे गृहस्वधर्मप्रकरणें आश्वलायन सांगतो.

सूर्यपुत्रादिविधि निदितादिवशाः क्षौरेशेषाः कार्यकराः स्मृताः ज्योतिर्निबंधे बृहस्पतिः पापप्रहाणां वारादीविप्राणां शुभदरवौ क्षत्रियाणां क्षमासूनौ विदुः श्राणां शनौ शुभं हस्ताधिबिष्णुपौष्णाश्रविष्ठादित्यपु-
ष्पभं सौम्यचित्रेन बक्षौरैः उत्तमानवतारकः त्रीण्युत्तराणि वायव्यं रोहिणीवारुणं तथा क्षौरैः षण्मध्यमाः प्रोक्ताः-
क्षोषाद्वादशगर्हिताः निर्धने जन्मनक्षत्रे वैनाशे चंद्रमेष्टमे विपत्करे वषे क्षौरप्रत्यरे च विवर्जयेत् अत्र लग्नशुद्धिरन्ये-
च योगाज्योतिर्विज्ञो ज्ञेयाः अन्ये च विशेषाः इमं शुक्रमनिर्णये वक्ष्यंते ।

आतां चौलसंस्कार सांगतो.

प्रयोगपरिजातांत—बृहगुरुशिष्य—“चौलविषयीं तिसः वर्षी अधिकार प्राप्त झालेला असल्यामुळे जन्मापासून तिसः वर्षी चौल संस्कार करावा. किती एक विद्वान् प्रथम वर्षी किंवा पांचव्या वर्षी अथवा दुसः वर्षी अथवा मौजीसह-
वर्तमान करितात. हे विकल्प कुलधर्मावरून जाणावे.” **बृहस्पति—**“गर्भापासून किंवा जन्मापासून तिसः वर्षी मुलाचा चौलसंस्कार विशेष करून करावा. अथवा पांचव्या किंवा सातव्या वर्षी करावा. हा कन्येचा व पुत्राचाही समान आहे.” तेथेच **नारद—**“जन्मापासून तिसः वर्षी करावा तो श्रेष्ठ आहे, असे पंडित सांगतात. जन्मापासून पांचव्या किंवा सातव्या वर्षी मध्यम होय. गर्भापासूनही नवव्या व अकराव्या वर्षी अधम होय.” **परिजातांत बृहस्पति—**“सूर्य उत्तरायणांत असतां व विशेष करून उत्तर गोलार्तांत असतां, शुक्रपक्षां शुभ होय. कृष्णपक्षाचे शेवटचे पांच दिवस अशुभ होत.” तेथेच **वसिष्ठ—**“द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, दशमी, त्रयोदशी ह्या तिथींचे ठायीं झाल्या पुरुषांनी क्षौर करावे.” **नृसिंहाच्या ग्रंथांत—**“षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा आणि प्रतिपदा ह्या तिथि क्षौरकर्माविषयीं निंदित होत.” **वसिष्ठ—**“रवि, मंगळ, शनि हे वार क्षौराविषयीं निषिद्ध होत. इतर वार शुभ जाणावे.” **ज्योतिर्निबंधांत बृहस्पति—**“पापग्रहांचे जे वार त्यापैकी रविवार ब्राह्मणांस शुभः मौमवार क्षत्रियांस शुभः आणि शनिवार वैश्य व शूद्र यांना शुभ. इस्त, अश्विनी, श्रवण, रेवती, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य, मृग, चित्रा हीं नऊ नक्षत्रें नवीन क्षौराविषयीं उत्तम होत. तीन उत्तरा, स्वाती, रोहिणी, शतताराका हीं सहा नक्षत्रें क्षौरा-
विषयीं मध्यम. बाकीचीं वारा नक्षत्रें निंदित होत.” निधनतारा, जन्मतारा, वैनाशतारा, अष्टमचंद्र, विपदातारा, वधतारा आणि प्रत्यरितारा ह्या क्षौराविषयीं वर्ज्य कराव्या.” ह्या चौल संस्काराविषयीं लग्नशुद्धि व इतर योग ज्योतिष ग्रंथांतून जाणावे. इतर विशेष निर्णय इमं शुक्रमर्माचे निर्णयप्रसंगी पुढें सांगूं.

एतच्च शिशोर्मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् तदाह ज्योतिर्निबंधे मदनरत्ने च बृहद्गार्ग्यः पुत्रचूडाकृतौ मातायदिसा गर्भिणी भवेत् श्लेष्णे मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् अस्यापवादमाह तत्रैव नारदः सूनोर्मा-
तरि गर्भिण्यां चूडाकर्म्मकारयेत् पंचाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपिकारयेत् यदि गर्भविपत्तिः स्याच्छिशोर्वा-
मरणं यदि सहोपैनीत्याकुर्याच्चैतदादोषो न विद्यते **बृहस्पतिः** गर्भिण्यां मातरिशिशोः क्षौरकर्म्मकारयेत् व्रता-
भिषेकेष्वेवं स्यात्कालो वेदव्रतेष्वपि अभिषेकः समावर्तनं गर्भिण्यामपि पंचममासपर्यंतं न दोष इत्युक्तं मुहूर्त-
दीपिकायां गार्गेण पंचममासादूर्ध्वं मातुर्गर्भस्य जायते मृत्युरिति **मदनरत्ने बृहस्पतिः** पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणीयदिवा भवेत् विपद्यते गुरुस्तत्र दंपती शिशुरब्धतः गर्भमातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म्म तु पंचमा-
सादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् **गार्ग्यः** ज्वरस्योत्पादनं स्वल्पं तस्य न कारयेत् दोष निर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्म-
समाचरेत् लग्नमिति मंगलोपलक्षणम् **ज्योतिर्गर्ग्यः** विवाहोत्सवयज्ञेषु मातायदिरजस्वला तदा स मृत्युमा-
प्नोति पंचमं दिवसं विना **वसिष्ठः** यस्य मांगलिकं कार्यं तस्य मातारजस्वला अर्धवत्देव तत्रैव **बृहस्पतिः** प्राप्त-
मभ्युदयश्राद्धं पुत्रसंस्कारकर्मेणि पत्नीरजस्वला चेत्स्यान्न कुर्यात्तत्पिता तदा पितेतिकर्तव्यमात्रोपलक्षणं संकटे तु
वाक्यसारे उक्तं अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषेऽप्युपस्थिते श्रियं संपूज्य विधिवत्ततो मंगलमाचरेत् ।

हा चौलसंस्कार ज्याचा करावयाचा त्याची माता गर्भिणी असतां करूं नये; तें सांगतो—**ज्योतिर्निबंधांत व मदनरत्नांत बृहद्गार्ग्य—**“माता गर्भिणी असतां पुत्राचा चौलसंस्कार केला तर तिला राज्ञापासून मृत्यु प्राप्त होतो;

१ निधनादिवाताः सुहृद्वैश्वदेव्यो ज्ञेयाः ॥ २ मातेति जननीविषयकं तेन सापन्नमातरि गर्भिण्यामपि न दोषः । तदुक्तं भट्टोजिना ।
भिन्नमासोत्सवे न दोषश्चौलकर्मेणीति ॥ ३ सहोपनीतेति । यद्यु सूनोर्मातरि गर्भिण्यां मौजीचूडे न कारयेदिति तत्पक्षेकं निषेधकं
न तु सक्षितेति ॥

यास्तव चौल करुं नये.” यात्रा अपवाद सांगतो— सेवेच नारद—“माता गर्भिणी असेल सहा पुत्रांचे चौल करुं नये. पुत्रांचे वय पांच वर्षांहून अधिक असल्यास माता गर्भिणी असताही करावे. जर गर्भाला विपत्ति प्राप्त होईल किंवा विषाच मरण प्राप्त होईल, असा दोष सांगितला आहे, असे कोणी म्हणेल तर मौजीसह चौल करावे, म्हणजे तो दोष नाही.” बृहस्पति—“माता गर्भिणी असता पुत्रांचे क्षौर (चौल) करुं नये. मौजींचे समावर्तन, वेदव्रत (ब्रह्मचर्याचें करणवाची ती) यांविषयीही असाच काल जाणावा.” माता गर्भिणी असली तरी पांच मासपर्यंत दोष नाही, असे सांगतो ऋषिः पिकेत गर्ग—“गर्भिणीला पांच महिने होऊन गेल्यानंतर (पुत्रांचे चौल केले असता) मातेच्या गर्भास मृत्यु होतो.” मदनरक्षांत बृहस्पति—“माता गर्भिणी असता पुत्राचा चौल संस्कार होईल तर गुरु (आचार्य), संपत्ती, आणि शिशु हे एका वर्षात नाश पावतात, यास्तव माता गर्भिणी असता पुत्राचे चौल करुं नये. पांच महिन्यांचे पूर्वी करावे, पांच महिन्यांनंतर करुं नये.” गर्ग—“ज्याला ज्वर उत्पन्न होईल त्याचें लग्न (मंगलकार्य) करुं नये. ज्वरादिक दोष दूर झाल्यानंतर स्वस्थ झाल्यावर धर्म (मंगलकार्य) करावा.” ज्योतिर्गर्ग—“विवाह, उत्सव, यज्ञ, यांमध्ये जर माता रजस्वला होईल तर कर्त्याला मृत्यु प्राप्त होतो. पांचव्या दिवशीं विवाहादिक केले असतां दोष नाही.” वसिष्ठ—“ज्याचें मंगलकार्य करावयाचें आहे त्याची माता रजस्वला असेल आणि पांचव्या दिवसावांचून पूर्वीच मंगल केले असेल तर त्याला मृत्यु प्राप्त होईल. पांचव्या दिवशीं दोष नाही.” तेथेंच बृहस्पति—“पुत्राच्या संस्कारकर्मात प्राप्त झालेले नारीश्राद्ध, जर पत्नी रजस्वला असेल तर पित्यानें तें नारीश्राद्ध करुं नये.” ‘पित्यानें’ म्हणजे जो कोणी कर्ता असेल त्यानें, असें समजावें. संकटविषय असतां वाक्यसारांत सांगतो—“कर्त्याची पत्नी रजस्वला झाली असून सन्धिधु सुसुद्धत नसेल तर श्रीशान्ति करून मंगलकार्य करावें.”

एतच्चमंडनोत्तरंनकार्यं नमंडनाश्चापिहिमुंडनंचगोत्रैकतायांयदिनावदभेद इति मदनरक्षेवसिधोक्तेः तत्रैवकात्यायनः कुलेऋतुत्रयादवर्वाब्ज्मंडनान्नमुंडनं प्रवेशान्निर्गमोनेष्टोनकुर्त्यान्मंगलत्रयं तथाबुद्धमनुः एकमातृजयोरेकवत्सरेपुरुषस्त्रियोः नसमानक्रियांकुर्यान्मातृभेदेविधीयते आशौचेतुसंग्रहे संकटेसमनुप्राप्तेसूतकेसमुपागते कूष्मांडीभिर्घृतंहुत्वागांचदद्यात्पयस्विनीम् चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेदिति ज्योतिर्निबंधे षष्ठेद्वेषोडशेवर्षेविवाहान्देतथैवच अंतर्वर्त्यांचजायायानेष्ट्यतेमुंडनंकचिन् अन्योपिबिषोषोविवाहप्रकरणेवक्ष्यते दीपिकायां नचूडाजन्मभागेयदारुणेषुशनोःकुजे प्रतिपद्भरिक्तसुविद्यारंभस्तुपंचमे ।

हें चौल मंडनोत्तर (मंगल कार्य केल्यानंतर) करुं नये. कारण, “एक गोत्रांत (त्रिपुरुषांत) मंगलकार्य केल्यानंतर वर्ष भिन्न झाल्यावांचून मुंडन (चोलादि) करुं नये. वर्षभेद झाला असतां दोष नाही.” असें मदनरक्षांत वसिष्ठवचन आहे. तेथेंच कात्यायन—“एका कुलांत (त्रिपुरुषांत) सहा महिन्यांच्या आंत मंगलकार्योत्तर मुंडन करुं नये. आणि प्रवेश (पुत्रविवाह) केल्यावर निर्गम (कन्याविवाह) उष्ट नाही. आणि तीन मंगलकार्ये करुं नयेत.” तसाच बुद्धमनु—एका संवत्सरांत सद्योदर अशा कन्यापुत्रांचे समान संस्कार करुं नयेत. माता भिन्न असतील तर करावे.” आशौच प्राप्त असेल तर सांगतो संग्रहांत—“मृताशांच अथवा जननाशांच प्राप्त असेल तर कूष्मांडी ऋचांनी घृताचा होम करून दुभती गाय ब्राह्मणाला द्यावी. आणि चौल, मुंज, विवाह, प्रतिष्ठा इत्यादि शुभ कार्य करावे” ज्योतिर्निबंधांत—“सहाव्या वर्षी, सोळाव्या वर्षी, विवाह केल्या असेल त्या वर्षी आणि स्त्री गर्भिणी असतां कधीही मुंडन करुं नये.” इतरही विशेष निर्णय पुढें विवाहप्रकरणें सांगूं. दीपिकेत—“जन्मनक्षत्र, कृत्तिका, मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा ह्या नक्षत्रांवर; शनि, मंगळ ह्या वारी; प्रतिपदा, भद्रा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी), रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) ह्या तिथींचे ग्रहौ चौल संस्कार करुं नये. विद्यारंभ पांचव्या वर्षी करावा.”

प्रयोगरक्षे मध्येशिरसिचूडास्याद्वासिष्ठानांतुदक्षिणे उभयोःपार्श्वयोरत्रिकश्यपानांशिखामता माधवी-येत्येवं आपस्तंबस्तवाह तूर्णीकेशान्विनीययथर्पिशिखानिदधाति यथर्षिप्रवरसंख्यया तासांमध्यशिखा-वर्जमुपनयनेवपनंकार्यं प्रतिदिशंप्रवपतीत्युपनयनेनेनैवोक्तेः रिक्तोवाएषोनपिहितोयन्मुंडस्तस्मैतदपिधा-न्यच्छिखेति श्रुतेः विशिखोव्युपवीतश्चयत्करोतिनतत्कृतमितिनियेषाच्च सत्रेतुवचनात्सशिखंवपनमिति सुदर्शनभाष्येउक्तं यत्कुमाराविशिखाद्देवतिलिङ्गसच्छंदोगपरं अपराकैमदनरक्षेचलौगाक्षिः दक्षिणतःकुमुजावसिष्ठानामुभयतोरिकश्यपानांमुंडाभृगवः पंचचूडांगिरसोवाजिमेकेमंगलार्थशिखिनीऽ-

१ पुत्रोद्वाहः प्रवेशस्तवः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः । मुंडनं चौलमित्युक्तं त्रयोद्वाहं तु मंगलं ॥ चौलं मुंडनयोर्दोषं वर्षभेदोत्तरादभेदः । वराणांचपुष्पमालादिलेखः । मौजी चोमवतः कर्णा यतो मौजी न मुंडनं ॥ उपनयते विवाहात्प्राग्वर्षं चेत्तर्षः ॥ इति चौलसंस्कारः ॥

न्येयथाकुलधर्मवेति कमुंजाशिखा वाजिःकेशपंक्तिः स्मृतिदर्पणे एकाशिखादक्षिणतोवसिष्ठोत्रस्यपंचांगिरसोभृगोस्तु नैकाशिखाकश्यपगोत्रजानांशिखोभयत्रापियथाकुलंच एतच्छूद्रातिरिक्तविषयम् शूद्रस्यानियताःकेशवेशादिति वसिष्ठोक्तेः यत्तु पाद्मे नशिखीनोपवीतीत्याश्रोत्रेस्तस्मृतांगिरमिति शूद्रमुपक्रम्योक्तं तदसच्छूद्रस्येतिकेचित् विकल्पइतितुयुक्तं अतएवहारीतः स्त्रीशूद्रौतुशिखांछिन्वाक्रोधाद्वैराग्यतोपिवा प्राजापत्यंप्रकुर्यातांनिष्कृतिर्नान्यथाभवेत् एतत्परिग्रहपक्षे अत्रदेशभेदाद्व्यवस्थेतिदिक् ।

प्रयोगरत्नांत—“मस्तकाच्या मध्यभागीं शिखा राखावी. वासिष्ठांची शिखा दक्षिणेस राखावी. अत्रि आणि कश्यप यांची शिखा दोन्ही बाजूंस राखावी.” **माधवीयांत**ही असेंच सांगितलें आहे. **आपस्तंब** तर सांगतो—“जितके प्रवराचे ऋषि तितक्या शिखा ठेवाव्या आणि इतर केश काढून टाकावे. त्याविषयीं मंत्र नाही.” चौलसंस्कारांत ज्या शिखा राखल्या असतील त्यांपैकीं एक मध्यशिखा ठेऊन इतर शिखांसह मस्तकाचें वपन उपनयनकालीं करावें. कारण, “मस्तकाच्या प्रत्येक बाजूस वपन करावें” असें उपनयनसंस्कारांत त्यानेंच (**आपस्तंबानेंच**) सांगितलें आहे. यावरून साऱ्या बाजूंच्या शिखा काढाव्या असें झालें. आणि “ज्यानें डोक्याचे सर्व केश काढले तो आच्छादित नसल्यामुळें रिक्त (सवेरहित) आहे. त्याला शिखा ही आच्छादन आहे.” अशी श्रुति आहे. आणि “जो शिखारहित व उपवीतरहित असून कर्म करितो, त्याचें तें कर्म केल्यासारखें होत नाही” असा शिखारहित असण्याचा निषेधही असल्यामुळें मध्यशिखा राखावी, असें सिद्ध होतें. सत्रयागामध्ये तर शिखासहित वपनाविषयीं वचन असल्यामुळें सर्वशिखांचें वपन होतें, असें **सुदर्शनभाष्यांत** सांगितलें आहे. आतां जें “शिखारहित जसे कुमार शोभतात” या मंत्रावरून शिखारहित कुमार असतात असें होतें, तें छंदोगशाखा-विषयक आहे. **अपराकांत** आणि **मदनरत्नांत** **लौगाक्षि**—“वासिष्ठांची शिखा दक्षिणेकडे राखावी. अत्रि व कश्यप यांची शिखा दोन्ही बाजूंस राखावी. भृगूला शिखा राखूं नये. आंगिरसांना पांच शिखा राखाव्यात. कितीएक मंगलाकरितां केशपंक्ति राखितात. इतरांनीं आपल्या कुलधर्माप्रमाणें शिखा राखाव्या.” **स्मृतिदर्पणांत**—“वसिष्ठगोत्राला दक्षिणेकडे एक शिखा असावी. आंगिरसांना पांच शिखा. भृगूंना एकही शिखा नाही. कश्यपगोत्रजांना दोन्ही बाजूंस शिखा असाव्यात. आणि आपल्या कुलधर्माप्रमाणें शिखा राखाव्यात.” हे शिखांचे विधि शूद्रव्यतिरिक्तविषयक आहेत. कारण, “शूद्रांचे केशवेष अनियत (नियमरहित) आहेत” असें **वसिष्ठवचन** आहे. आतां जें **पाद्मांत**—“शूद्रांनीं शिखा राखूं नये, उपवीत धारण करूं नये, आणि संस्कृतवाणीचा उच्चार करूं नये” असें सांगितलें तें असच्छूद्राला समजावें, असें केचित् सांगतात. शूद्राला शिखेविषयीं विकल्प समजावा, हें तर युक्त आहे. म्हणूनच सांगतो **हारीत**—“ज्या व शूद्र हे क्रोधाच्या आवेशानें अथवा वैराग्यानें शिखा तोडतील तर त्यांनीं प्राजापत्य प्रायश्चित्त करावें. त्यावाचून त्यांची निष्कृति होणार नाही”, हें वचन शिखाधारणपक्षीं जाणावें. शूद्राला शिखाधारणाचा विकल्प आहे. कोणता पक्ष घ्यावा याची देशभेदांनं व्यवस्था जाणावी. याप्रमाणें ही दिशा दाखविली आहे.

ज्योतिर्निबंधे नर्मदेशोत्तरदेशोत्सिंहस्थेदेवमंत्रिणि शुभकर्मनकुर्वीतनिषेधोनास्तिदक्षिणे अत्रभोजने प्रायश्चित्तमुक्तंपराशरमाधवीये निवृत्तेचूडहोमेतुप्राङ्गामकरणात्तथा चरेस्तांतपनंभुक्त्वाजातकर्मणिचै-
बहि अतोन्नेषुतुसंस्कारेषूपवासेनशुध्यति एतेसंस्काराःस्त्रीणाममंत्रकाःकार्याः होमस्तुसमंत्रकइति **प्रयो-**
गपारिजाते आश्वलायनोपि होमकृत्यंतुपुंवत्स्यात्स्त्रीणांचूडाकृतावपीति **मनुरपि** अमंत्रिकातुकार्ये-
यंस्त्रीणामावृदशेषतइति होमोप्यमंत्रकइत्येके संस्काराःस्त्रीणामहोमकास्तूष्णींस्थुरितिस्मृत्यर्थसारेहोमोने-
तिवृत्तिकृत् ।

ज्योतिर्निबंधांत—“सिंहस्थ गुरु असतां नर्मदेच्या उत्तर देशीं मंगलकार्य करूं नये. नर्मदेच्या दक्षिणदेशीं निषेध नाही.” ह्या चौलसंस्कारीं भोजन केलें असतां प्रायश्चित्त सांगतो **पराशरमाधवीयांत**—“चौलसंस्कार व नामकरणाचे पूर्वीं जातकर्म, यांचे ठायीं भोजन केलें असतां सांतपनकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. यांहून जे इतर संस्कार त्यांचे ठायीं भोजन केलें असतां उपवास करून शुद्ध होतो.” हे जातकर्मपासून चौलापर्यंत संस्कार ज्ञियांचे अमंत्रक करावे, होम मात्र समंत्रक करावा, असें **प्रयोगपारिजातांत** सांगितलें आहे. **आश्वलायनही**—“ज्ञियांचे चौलसंस्कारांतही होमकृत्य, पुरुषासा-
रखें समंत्रक करावें.” **मनुही**—“ज्ञियांचे सर्व संस्कार (विवाहावांचून) मंत्रविरहित करावे.” होमही अमंत्रक करावा, असें कितीएक सांगतात. ज्ञियांचे संस्कार होमविरहित अमंत्रक होतात, असें **स्मृत्यर्थसारांत** सांगितलें आहे. होम करूं नये. असें वृत्तिकार सांगतो.

अथविचारंभः मदनरत्नेद्वसिंहः अक्षरस्त्रीकृतिंकुर्यात्प्राप्तेपंचमहायने उत्तरायणगेस्यैकुंभमा-

संविर्वर्जयेत् दीपिकायाम् वर्षेपर्जन्यकेकालेषष्टीरिक्तांशानि कुजं अनध्यायान्बिनानत्वादेवंप्रथकृतंगुं
श्रीधरः हस्तादित्यसमीरमित्रपुरंजित्यौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाचार्यशदिनोव्यादिरहितेराशौस्थिरेचोभये
 पक्षेपूर्णनिशाकरोप्रतिपदंरिक्तांविहायाष्टमीपष्टीमष्टमशुद्धभाजिभवनेप्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः **विष्णुधर्मोत्तरे**
 पूजयित्वाहरिलक्ष्मीतथादेवीसरस्वतीं स्ववेदसूत्रकारांश्चस्वांविद्यांचविशेषतः एतेपामेवदेवानानाम्नागुजुह्वया-
 दृतम् दक्षिणाभिर्द्विजैर्द्राणांकर्तव्यंचात्रपूजनमिति ।

यानंतर विद्यारंभकाल सांगतो.

मदनरत्नांत—नृसिंह—“पांचव्या वर्षी उत्तरायणांत कुंभसंक्रांति वर्ज्य करून अक्षर लिहिण्यास आरंभ करावा.”
दीपिकेंत—“पर्जन्यविरहित अशा कार्त्तिकी पष्टी, रिक्ता ह्या तिथी आणि शनि व मंगळ हे वार वर्ज्य करून अनध्यायरहित
 दिवशीं कुलदेवता, व गुरु यांना नमस्कार करून लेखनारंभ करावा.” **श्रीधर—**“हस्त, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, आश्ले-
 रेवती, अश्विनी, चित्रा, ध्रुव ह्या नक्षत्रांवरः मंगळ व शनि ह्यांचे वार, अंश, व लग्न वर्ज्य करून अन्यवारी स्थिरलग्नां
 शुक्लपक्षांत व कृष्णपक्षांत चंद्रक्षीण नमतां प्रतिपदा, रिक्ता, पष्टी, अष्टमी ह्या तिथी वर्ज्य करून अन्य तिथींचे ठायीं; अष्ट-
 मस्थान शुद्ध अमतां अक्षरलेखनाला आरंभ करावा ” **विष्णुधर्मोत्तरांत—**“विद्यारंभकार्त्तिकी हति, लक्ष्मी, सरस्वती,
 आपला वेद आपले सूत्रकार व आपली विद्या यांची विशेषतः पूजा करून, ह्याच, देवतांच्या नाममंत्रांनी घृताचा होम करून
 ब्राह्मणांची पूजा करून त्यांना दक्षिणा द्यावी.”

अथधनुर्विद्या दीपिकायां अदितिगुरुयमार्कस्वातिचित्रामिषिष्यध्रुवहरिवसुमूलेष्विदुभागांत्य-
 भेषु शनिशशिबुधवारिविष्णुबोधेविषोपेसुममयतिथियोगेचापविश्राप्रदानम् ।

आतां धनुर्विद्या सांगतो दीपिकेंत—“पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, स्वाती, चित्रा, कृत्तिका, मघा, तीन उत्तरा,
 रोहिणी, ध्रुव, धनिष्ठा, मूल, मृग, पूर्वा, रेवती ह्या नक्षत्रावरः शनि, गोम, बुध ह्या वारी; विष्णुशयन (चार मास) व
 पौषमास वर्ज्य करून एतन्नामांत शुभतिथि व शुभयोग पाहून धनुर्विद्याचा आरंभ करावा.”

अथानुपनीतस्यविशेषः गौतमः प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षादिति भक्षणंलशुनादेरपीतिहरदत्तः
अपराकैवृद्धशानानपः शिशोरभ्युक्षणंप्रोक्तंवालस्याचमनंस्मृतं रजस्वलादिसंस्पर्शज्ञानमेवकुमारके
 प्राक्चूडाकरणाद्बालःप्रागन्नप्राशनान्छिद्यः कुमारकस्तुविज्ञंयोयावन्मौंजीनिबध्नं **आपस्तंबोपि** अन्नप्रा-
 शनात्प्रयतोभवत्यासंवत्सरादित्येकइति **गौतमोपि** नतदुपस्पर्शनादाशौचम्. तस्यानुपनीतस्यचांडालादि-
 स्पृष्टस्यापिस्पर्शान्नज्ञानं इदंचपप्रवर्पात्प्राक् ऊर्ध्वतुल्लानंभवत्येव बालस्यपंचमाद्वर्पाद्रक्षार्थशौचमाचरेदिति
स्मृतेः कामचारादिकेप्येवं ऊनेकादशवर्षस्यपंचवर्पात्परस्यच चरेद्गुरुःमुहूर्त्तश्चैवप्रायश्चित्तंविशुद्धये अतोबा-
 लतरस्यास्यनापराधो नपातकमितिस्मृतेरितिहरदत्तः **स्मृत्यर्थसारेप्येवं ।**

आतां अनुपनीताला विशेष सांगतो—

गौतम—“सुंज होण्याच्या पूर्वी मुलानें आपल्या इच्छेप्रमाणे आचरण, भाषण व भक्षण करावें.” भक्षण म्हणजे लसूण,
 कांदा इत्यादि पदार्थांचेही भक्षण करावें, असें हरदत्त सांगतो. **अपराकांत वृद्धशानातप—**“रजस्वला इत्यादिकांचा
 स्पर्श झाला असतां शिशूला प्रोक्षण सांगितलें आहे. बालाला आचमन आणि कुमाराला ज्ञानच सांगितलें आहे.
 अन्नप्राशनाच्या पूर्वी मुलाला शिशु म्हणावें. अन्नप्राशनानंतर चाल होण्याच्यापूर्वी बाल आहे. चौलापासून मौंजीबंध
 होण्याच्या पूर्वी कुमार हें नांव आहे.” **आपस्तंबही—**“अन्नप्राशन झाल्यावर प्रयत (आचमनयोग्य) होतो. कितीएक
 आचार्य असें सांगतात की, एक वर्षानंतर आचमनाला योग्य होतो.” **गौतमही—**“ज्याचें उपनयन झालें नाहीं त्याच्या
 चांडालादिकांचा स्पर्श झाला असला तरी त्याचा स्पर्श झाला म्हणून ज्ञान करूं नये.” हा निर्णय सहाव्या वर्षाच्या पूर्वी आहे.
 सहाव्या वर्षापासून पुढें ज्ञान अवश्य आहेच. कारण, “बालकाकडून पांचव्या वर्षापासून पुढें संरक्षणार्थ शौच आचरण
 करावें.” अशी स्मृति आहे. ऐच्छिक आचार, ऐच्छिक भाषण, आणि ऐच्छिक भक्षण यांविषयी असाच निर्णय समजावा.
 कारण, “पांचवर्षापुढें व अकरावर्षाकडून कमी वयाचा जो कुमार त्यानें पापाचरण केलें असतां त्याचे शुद्ध्यर्थ कुमारचे पुढें
 (पित्यानें) किंवा आप्तानें प्रायश्चित्त करावें. याहून अल्पवयाचा जो बाल त्याच्याकडून एकादें वाईट कृत्य बघलें असा
 त्याला अपराध नाहीं व पाप नाहीं” अशी स्मृति आहे, असें हरदत्त सांगतो. **स्मृत्यर्थसारांतही** असेच सांगितलें आहे.

अथोपनयनं आश्वलायनः गर्भाष्टमेष्टमेवाव्देपंचमेसप्तमेपि वा द्विजत्वंप्राप्नुयाद्विप्रवर्षेत्वेकादशे-
वृषः मनुः ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यविप्रस्य पंचमे राक्षोबलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थीर्थिनोष्टमे विष्णुः षष्ठे तु धन-
कामस्य विद्याकामस्य सप्तमे अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कांतिमिच्छतः आपस्तंबः गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयति
बहुवचनं गर्भषष्ठ्यगर्भसप्तमयोः प्रत्यर्थमिति सुदर्शनभाष्ये केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यते आपस्तंबः अथ
कान्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममष्टम आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमेऽन्नाद्यकाममेकादशं इन्द्रियकामं द्वादशे प-
शुकाममुपनयेत् गौणकालमाह मनुः आपोऽंशद्वा ब्राह्मणस्य सावित्रीनातिवर्तते आद्यां विंशत्क्षत्रत्रयं धोराचतुर्विंश-
तेर्विशः ज्योतिर्निबंधे अग्रजाबाहुजावैश्याः स्वावधेरुर्ध्वमवदतः अकृतोपनयाः सर्वे वृषला एव ते स्मृताः ।

आतां उपनयन (मौजी) संस्कार सांगतो.

आश्वलायन—“गर्भापासून आठव्या वर्षी किंवा जन्मापासून आठव्या वर्षी, अथवा पांचव्या किंवा सातव्या वर्षी ब्राह्मणाची मौजी करावी. क्षत्रियाची अकराव्या वर्षी करावी.” मनु—“वेदाध्ययनाचे समृद्धीची इच्छा करणाऱ्या ब्राह्मणाची मौजी पांचव्या वर्षी करावी. बलाची इच्छा करणाऱ्या क्षत्रियाची सहाव्या वर्षी, आणि धनाची इच्छा करणाऱ्या वैश्याची आठव्या वर्षी मौजी करावी.” विष्णु—“धनाची इच्छा करणाऱ्याची सहाव्या वर्षी, विद्येची इच्छा करणाऱ्याची सातव्या वर्षी, सर्वकामाची इच्छा करणाऱ्याची आठव्या वर्षी, आणि कांतीची इच्छा करणाऱ्याची नवव्या वर्षी मौजी करावी.” आपस्तंब—“गर्भापासून आठव्या वर्षी ब्राह्मणाची मौजी करावी.” ह्या आपस्तंबवचनांत ‘गर्भाष्टमेषु’ ह्या बहुवचनावरून गर्भापासून सहाव्या व गर्भापासून सातव्या वर्षी ब्राह्मणाची मौजी करावी, असें सुदर्शनभाष्यांत सांगितलें आहे. केचित् तर सहावे वर्षी ब्राह्मणाची मौजी करावी, असें मानीत नाहींत. आपस्तंब—“आतां काम्य उपनयनं सांगतो—ब्रह्मवर्चस कामाचें सातव्या वर्षी, आयुष्कामाचें आठव्या वर्षी, तेजस्कामाचें नवव्या वर्षी, अन्नादिकामाचें दहाव्या वर्षी इन्द्रियकामाचें अकराव्या वर्षी, आणि पशुकामाचें बाराव्या वर्षी उपनयन करावें.” गौणकाल सांगतो मनु—“ब्राह्मणाची सोळा वर्षेपर्यंत, क्षत्रियाची वेवीस वर्षेपर्यंत आणि वैश्याची चोवीस वर्षेपर्यंत, गायत्री अतिकांत (गत) होत नाहीं.” ज्योतिर्निबंधांत—“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हे आपापल्या वर्षांच्या अवधीनंतर उपनयनविरहित राहतील तर ते सर्व वृषलच (शूद्रच) म्हटले आहेत.”

गर्गः विप्रवसंतेक्षितिपनिदाधेवैश्यघनान्तेत्रितिनंविदध्यात् माघादिशुक्लान्तिकपंचमासाः साधारणावास कलद्विजानां हेमाद्रौ ज्योतिषे माघादिषु च मासेषु मौजीपंचमुशस्यते कालादर्शो वृद्धगार्ग्यः माघादिमासषट्के तु मेखलाबंधनमतं चूडाकरणमन्त्रचश्रावणादौ विवर्जयेत् मैत्रेयसूत्रेऽपि वसंतो मीष्मः शरदित्यूतबोवर्णानुपूर्व्येण माघादिषु मासावासा सर्ववर्णानामेतदुद्गयनमनयोर्विकल्पइति अत्रेदंतत्वं नात्र वसंतोत्तरायणस्य संकोचः श्राद्धे दर्शस्यापराह विधिनेवाधाने वसंतादेः कृत्तिकादिने वसायं प्रातर्विधिना यावज्जीविविवेचि-
बयुक्तः आद्ययोः परस्परव्यभिचाराभियमः अंत्ये निमित्ते सांगकमोक्तेः कालापेक्षा इह तूत्तरायणविनावसंत-
स्याभावाद्भनियमः नवानिमित्तत्वं नचैकवृणीतइति वदवयुलानुवादः तद्वद्वाक्यभेदापरिहारात् उत्तरायणवि-
धिबैयर्थ्यात्वनुकल्पोयमिति माघादिर्येषां पंचानां एव षट् ।

गर्गः—“वसंतऋतुंत ब्राह्मणाची, ग्रीष्मऋतुंत क्षत्रियाची, शरदऋतुंत वैश्याची, मौजी करावी. अथवा माघापासून ज्येष्ठापर्यंत पांच मास सर्व द्विजार्तीस साधारण विहित होत.” हेमाद्रौ ज्योतिषांत—“माघादि पांच मासांचे ठायीं मौजी प्रघात आहे.” कालादर्शांत वृद्धगार्ग्य—“माघादि सहा मासांचे ठायीं मेखलाबंधन (मौजी), चौल, अन्नप्राशन हे संस्कार करावे. श्रावणादि मासांत करू नयेत.” मैत्रेयसूत्रांतही—“वसंतऋतु, ग्रीष्मऋतु, आणि शरदऋतु हे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यांना अनुक्रमानें सांगितले आहेत. अथवा माघापासून आषाढापर्यंत सहा मास सर्ववर्णांना (ब्राह्मणादिकांना), सांगितले आहेत. हे माघादिक सहा मास म्हटले हें उद्गयन समजावें. वसंतादि ऋतु व उद्गयन यांचा विकल्प समजावा” याचें तत्त्व असें आहे की, ब्राह्मणादिकांना वसंतादि ऋतु आणि उत्तरायण असें सांगितलें आहे. त्यांत वसंत ऋतुनें

१ वृषला एवेति । न चेत्प्रायश्चित्तमनुतिष्ठतीति शेषः ॥ अत ऊर्ध्वं पतंत्येते सर्ववर्षवहिष्कृताः ॥ सावित्रीपतिता ब्राह्मणा ब्राह्मस्तो-
माहृते कृतोति ति याज्ञवल्क्यवचनात् । आपोऽंशदित्यत्र गर्भादिः संख्या । तथाच जन्मतः पंचदशवर्षपर्यंत विप्रस्य न विशेषतः
प्रायश्चित्तं । षोडशवर्षे सखिलवपनं कृत्वा एकविंशतिरात्रं यावकाशनमन्ते द्वादशब्राह्मणभोजनमिति प्रायश्चित्तं । सप्तदशावधिषु कृच्छ्रव्या-
हिस्रायश्चित्तपूर्वकमुपनयनं बोध्यं । इति धर्मसिंधुसारं ।

उत्तरायणाचा संकोच होतो (म्हणजे वसंत ऋतु असतां उत्तरायण ध्यावें. इतर उत्तरायण नाही.) असें म्हणूं नये—
 श्राद्धाविषयीं दर्श (अमावास्या) सांगितला आणि अपराह्न काल सांगितला आहे. तेथें अपराह्नानें दर्शाचा संकोच होतो, म्हणजे
 अपराह्नाचाच इतर दर्श ध्यावयाचा नाही तसें. आणि जसें—अमीच्या आधानाविषयीं वसंतादिक ऋतु आणि कृत्तिकादिक
 नक्षत्रें सांगितलीं आहेत. तेथें कृत्तिकादिक नक्षत्रांनीं वसंतादिकांचा संकोच होतो तसा. आणि अग्निहोत्राविषयीं सायंप्रातःकाल
 व यावर्जीवपर्यंत काल सांगितला आहे, तेथें सायंप्रातःकालनें यावर्जीव कालाचा संकोच होतो तसा. ह्या तीन दृष्टांतांप्रमाणें
 येथें वसंतानें उत्तरायणाचा संकोच होतो, असें म्हणूं नये. कारण, दृष्टांतांत व यांत वैषम्य आहे, तें असें—श्राद्धा-
 विषयीं व आधानाविषयीं जे दोन दोन काल मांगितले त्यांचा परस्पर व्यभिचार असल्यामुळें त्या ठिकाणीं नियम केला
 आहे. म्हणजे—श्राद्धाविषयीं दर्श व अपराह्न असे दोन काल सांगितले आहेत. तेथें परस्पर व्यभिचार असा—दर्श
 नसलेल्या काळीं अपराह्न असतो व अपराह्न नसलेल्या काळीं दर्श असतो, म्हणून त्या ठिकाणीं अपराह्नयुक्त दर्शच ध्यावा,
 असा नियम झाल्यामुळें इतर दर्शांची व्यावृत्ति झाल्यानें अर्थात् संकोच झाला आहे. तसेंच आधानाविषयीं वसंतादि ऋतु
 व कृत्तिकादि नक्षत्रें यांचाही परस्पर व्यभिचार आहे. म्हणजे वसंतादि ऋतु नसल्या काळीं कृत्तिकादिक नक्षत्रें आहेत आणि
 कृत्तिकादि नक्षत्रें यांचाही परस्पर व्यभिचार आहे. म्हणून त्या ठिकाणींही कृत्तिकादियुक्त वसंतादिकाल ध्यावा, असा नियम
 झाल्यानें अर्थात् इतर वसंतादिकांचा व्यावृत्तिरूप संकोच झाला आहे. शेवटच्या दृष्टांतांत सायंप्रातःकालनिमित्तानें सांग
 कर्म होतें असें सांगितल्यामुळें सायंप्रातःकालाची अग्निहोत्रहोमाविषयीं अपेक्षा आहे. प्रकृतस्थलीं उत्तरायणाचाच इतर
 काळीं वसंत ऋतु नसल्याकारणानें परस्पर व्यभिचार येत नाही. म्हणून नियम होत नाही. अथवा उपनयनाला वसंत ऋतु
 निमित्तही नाही. आतां 'एकं वृणीते' म्हणजे एक ऋषि वरावा, या वाक्यांत जसा अनेकांतून एक ऋषि पृथक् कडून स्वागत
 वरण सांगितलें आहे. तो जसा अवयुल (पृथक्कृत्य) अनुवाद केला आहे, तसा येथें अवयुलानुवाद समजू ! असें
 म्हणतां येत नाही. कारण, त्या ठिकाणीं वाक्यभेद (भिन्नवाक्यें) झाला आहे. तसा येथेंही वाक्यभेद होईल ! म्हणजे
 उत्तरायणाचा विधि वेगळा आणि वसंतऋतूचा विधि वेगळा होईल ! तसें झालें असतां उत्तरायणविधि व्यर्थ होईल ! म्हणून
 वसंताचाच उत्तरायणविधि हा अनुकूल आहे, असें समजावें.

पारिजातेबृहस्पतिः श्रपचापकुलीरस्थोजीवोप्यशुभगोचरः अतिशोभनसांघ्याद्विवाहोपनयनविधु
 वृत्तशते नजन्मधिष्ण्येनचजन्ममासेनजन्मकालीयदिनेविदध्यात् ज्येष्ठेनमासिप्रथमस्यसूनुस्तथासुताया
 अपिमंगलानि राजमार्तंडः जातदिनंदूषयतेवसिष्ठोद्वाष्टौचगर्गोनियतं दशात्रिः जातस्यपक्षंफलिभागुरिद्वि-
 शेषाःप्रशस्ताःखलुजन्ममासि जन्ममासेतिथौभेचविपरीतदलेसति कार्यमंगलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनसाः
 जन्ममासनिषेधेपिदिनानिदशवर्जयेत् आरभ्यजन्मदिवसाच्छ्रुभाःस्युस्थियोपरे ग्रंथांतरे प्रतेजन्मत्रिसा-
 रिस्थोजीवोपीष्टोर्चनात्सकृत् शुभोत्तिकालेतुर्याष्टव्यस्योद्विगुणार्चनात् शुद्धिर्नैवगुरोर्यस्ववर्षेप्राप्तेष्टमेववि-
 चैत्रेमीनगतेभानौतस्योपनयनंशुभं जन्मभादपमेसिंदेहीनेचाशुभेगुरौ मीजीबंधःशुभःप्रोक्तश्चैत्रेमीनगतेरवी
 नारदः बालस्यबलहीनोपिशांत्याजीवोबलप्रदः यथोक्तवत्सरेकार्यमनुकेचोपनायनं शांतिप्रापेवक्ष्यते ।

पारिजातांत बृहस्पतिः—“मीन, धनु, कर्क या स्थानींचा गुरु गोचरी (राक्षीस) जरी अष्टम असला तरी तो
 विवाह, उपनयन इत्यादिकांविषयीं अति शुभकारक होय.” वृत्तशतांत—“जन्मनक्षत्रांतर, जन्ममासांत, आणि जन्म-
 दिवशीं, मंगल कार्ये करूं नयेत. ज्येष्ठपुत्र व ज्येष्ठकन्या यांचीं मंगल कार्ये ज्येष्ठ मासांत करूं नयेत.” सारा जन्ममास
 टाकण्यास अशक्य असेल तर अपवाद मांगतो—**राजमार्तंडः**—“जन्मदिवस निषिद्ध आहे, असें वसिष्ठ सांगतो.
 जन्मदिवसापासून आठ दिवस वर्ज्य करावे, असें गर्ग सांगतो. जन्मदिवसापासून दहा दिवस वर्ज्य करावे, असें अग्नि
 सांगतो. आणि भागुरीच्या मर्ती पक्ष वर्ज्य करावा. जन्ममासांतील अवशेष राहिलेले दिवस प्रशस्त होत. जन्ममास,
 जन्मतिथि, आणि जन्मनक्षत्र यांचे ठायीं मंगलकार्ये कर्तव्य असतां उत्तर भागांत करावें; असें गर्ग, भार्गव शौनक हे
 सांगतात. सर्व जन्ममासाचा निषेध जरी आहे तथापि जन्मदिवसापासून दहा दिवस वर्ज्य करावे. शेष दिवस शुभ होत.”
ग्रंथांतरांत—“जन्मराक्षीपासून प्रथम, तृतीय, दशम, षष्ठ, या स्थानींचा गुरु असतां एकावर पूजा (बृहस्पतिर्चाहि)
 केल्यानें शुभकारक जाणावा. अतिकाल झाला असतां ४ । ८ । १२ या स्थानींचा असतांही द्विवार पूजेनें शुभकारक होतो,
 आठवें वर्ष प्राप्त झालें असतां जरी गुरुबल नसलें तरी चैत्र मासांत मीनराक्षीचा सूर्य असतां त्याचें उपनयन करावें. जन्म-

१ युगकुंभगते भानी मध्यम मीनमेधयोः ॥ उत्तमं गोयुगत्वेकं क्षपमं चोपनायनमिति बृहस्पत्युक्तः तत्रापि मीनार्तुद्वयवर्षः
 प्रशस्ततमः अनेकनिषेधापवादकृत्वा । अत्र युगे नष्टे तथा जीवे दुर्बले चंद्रभास्वरे ॥ उपोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनवर्षे एषाति ॥
 जीवभार्गवयोरस्ते सिद्धे देवतागुरौ ॥ मेखणवर्षनं क्षपं चैत्रे मीनगते रवावित्वादयोपवसादा इत्यादि ॥

राशीपासून अष्टमस्थ, सिंहस्थ, नीचस्थ (मकरस्थ) अथवा शत्रुस्थानस्थित असा गुरु असला तथापि मीनराशीचा सूर्य असतां चैत्रमासांत मौंजीबंध शुभ होय.” नारद—“कुमाराला गुरु जरी बलहीन असला तथापि बृहस्पतिशांति केली असतां तो बल देणारा होतो. मुख्य कार्त्ती व असुख्यकार्त्ती कधीही मौंजी कर्तव्य असतां गुरुबल नसेल तर बृहस्पतिशांति करून मौंजी करावी.” बृहस्पतिशांति पुढें (विवाहप्रकरणीं) सांगूं.

ज्योतिर्निबंधनृसिंहः तृतीयापंचमीषष्ठीद्वितीयाचापिसप्तमी पक्षयोरुभयोश्चैवविशेषेणसुपूजिताः धर्मकामौसितेपक्षेकृष्णेचप्रथमातथा शुक्लत्रयोदशीकेचिदिच्छंतिमुनयस्तथा **टोडरानंदवसिष्ठः** नैमित्तिकमनध्यायंकृष्णेचप्रतिपदिनं मेखलाबंधनेशस्तंचौलेवेदव्रतेष्वपि प्रशस्ताप्रतिपत्कृष्णेनपूर्वापरसंयुता एतदतीतकालस्यातैस्त्वबटोरुपनयनविषयम् प्रशस्ताप्रतिपत्कृष्णेकदाचिच्छुभगेविधौ चंद्रबलयुतेलग्रेवर्षाणामतिलंघनइतिव्यासोक्तेरित्याहुः एवंसप्तम्यपि तस्यागलग्रहत्वोक्तेः ।

ज्योतिर्निबंधांत नृसिंहः—“शुक्ल व कृष्ण दोन्ही पक्षांतील द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी ह्या तिथि विशेषें करून (उपनयनाविषयीं) प्रशस्त जाणाव्या. शुक्ल पक्षांतील दशमी व एकादशी प्रशस्त. कृष्णपक्षांनील प्रतिपदा प्रशस्त. केचित् मुनि शुक्लत्रयोदशी प्रशस्त असें सांगतात.” **टोडरानंदांत वसिष्ठः**—“नैमित्तिक अनध्याय, व कृष्णप्रतिपदा दिवस हे मौंजी, चाल, आणि वेदव्रतें ह्यांविषयीं प्रशस्त आहेत. कृष्णपक्षांतील प्रतिपदा प्रशस्त सांगितली ती पौर्णिमायुक्त प्रशस्त नाहीं. द्वितीयायुक्त प्रशस्त आहे.” हें वचन ज्याचा उपनयनकाल गेला असेल त्याच्या मौंजीविषयीं जाणावें. कारण, “लमाला शुभस्थानीं चंद्र, राशीस चंद्रबल व लग्न बलिष्ठ असें असून ज्याच्या उपनयनाच्या काळाचीं वर्षे फार गेलीं असतील त्याच्या उपनयनाविषयीं कृष्णप्रतिपदा कदाचित् प्रशस्त आहे.” असें व्यासवचन आहे, असें विद्वान् सांगतात. याचप्रमाणें सप्तमीही समजावी. कारण, ती सप्तमी गलग्रह म्हणून सांगितली आहे.

बृहस्पतिः शुक्लपक्षःशुभःप्रोक्तःकृष्णश्चात्यत्रिकंविना तथा मिथुनेसंस्थितेभानौज्येष्ठमासोनदोषकृत् **मदनरत्नेनारदः** विनर्तुनावसंतेनकृष्णपक्षेगलग्रहे अपराह्णेचोपनीतःपुनःसंस्कारमर्हति अपराह्णेष्वेधाविभक्तदिनतृतीयांशइत्युक्तंतत्रैव वसंतगलग्रहो नदोपायेत्यर्थः **नारदः** कृष्णपक्षेचतुर्थीचसप्तम्यादिदिनत्रयम् त्रयोदशीचतुष्कंचअष्टावतेगलग्रहाः **वसिष्ठः** पापांशकगतेचंद्रेअरिनीचस्थितेपिच अनध्यायेचोपनीतःपुनः संस्कारमर्हति अनध्यायस्यपूर्वेषुस्तस्यचैवापरेहनि व्रतबंधं विसर्गचविद्यारंभनकारयेत् **राजमार्तंडः** आरंभानंतरंयत्रप्रत्यारंभोनसिध्यति गर्गादिमुनयःसर्वे तमेवाहुर्गलग्रहं **ज्योतिर्निबंधे** अष्टकासुचसर्वासुयुगमन्वंतरादिषु अनध्यायंप्रकुर्वीततथासोपपदास्वपि सोपपदास्तुस्मृत्यर्थसारे सिताज्येष्ठेद्वितीयाचआश्विनेदशमीसिता चतुर्थीद्वादशीमाघेएताःसोपपदाःस्मृताः एवंप्रदोषदिनंवर्यं प्रदोषस्वरूपमाह**गोभिलः** षष्ठीचद्वादशीचैवअर्धरात्रोननाडिका प्रदोषमिहकुर्वीततृतीयातूनयामिका **ज्योतिर्निबंधेव्यासः** याचैत्रवैशाखसितातृतीयामाघस्यसप्तम्यथफाल्गुनस्य कृष्णेद्वितीयोपनयेप्रशस्ताप्रोक्ताभरद्वाजमुनीद्रमुख्यैः अत्रापिकृष्णप्रतिपद्वज्ज्ञेयम् यत्तु**बृहद्गार्ग्यः** अनध्यायेप्रकुर्वीतयस्तुनैमित्तिकोभवेत् सप्तमीमाघशुक्लेतृतीयाचाक्षया तथा बुधत्रयेंदुवाराश्चस्तानिव्रतबंधनइति तत्प्रायश्चित्तार्थोपनयनविषयम् स्वाध्यायवियुजो घक्षाःकृष्णप्रतिपदादयः प्रायश्चित्तनिमित्तेतुमेखलाबंधनेमता इतितेनैवोक्तेरिति**निर्णयामृतकालादशीं** यद्यप्यथोपेतपूर्वस्थेत्युक्त्वा अनिरुक्तंपरिदानंकालश्चेत्याश्वलायनेनपुनरुपनयनेकालानियमउक्तस्तथापिनिमित्तानंतरमेवसः तदानीमकरणेतुपूर्वोक्तकालोज्ञेयः प्रतिवेदमुपनयनेकालानियमइतितुयुक्तम् **गर्गः** ग्रहेर्वीद्वोरवनिप्रकंपेकेतूद्रभोल्कापतनादिदोषे व्रतेदशाहानिवदंतितज्ज्ञास्त्रयोदशाहानिवदंतिकेचित् संकटेतुचंडेश्वरः दाहेदिशांचैवधराप्रकंपेवअप्रपातेथ विदारणेच केतौतथोल्कांशुकणप्रपातेऽयहंनकुर्याद्व्रतमंगलानि तत्रैव वेदव्रतोपनयनेस्वाध्यायाध्ययनेतथा नदोषोयजुषांसोपपदास्वध्ययनेपि च ॥

१ तत्र तृतीयाषष्ठीद्वादशीषु प्रदोषसत्त्वे मौंजी न कार्या । रात्रेः प्रथमयामे चतुर्थी सार्धयामे सप्तमी यामद्वये त्रयोदशीचेत्तदा प्रदोषः । दिनद्वये प्रथमयामादिषु चतुर्थ्यादि व्याप्ती पूर्वदिने प्रदोषो नोत्तरदिने इति कौस्तुभे वक्तं ॥ २ दशाहानीति चंद्रस्योपरागे तु व्यर्थं प्रागशुभं भवेत् । सप्तहमशुभं पश्चात्स्मृतं ग्रहणसूक्तमिति गर्भोक्तानि ।

बृहस्पति—“शुक्रपक्ष शुभ होय. शेवटचे पांच दिवस वर्ज्य करून कृष्णपक्ष शुभ होय.” तसेच—“मिथुनस्थ रवि अमतां ज्येष्ठमास दोषकारक होत नाही.” **भद्रनरकांत नारद**—“वसंतव्यतिरिक्त ऋतूंत कृष्णपक्ष, गलग्रह व अपराह्ण काल, यांचे ठायीं ज्याचें उपनयन झालें तो पुनरुपनयनास योग्य होतो.” अपराह्ण काल म्हणजे दिवसाचे तीन भाग करून त्यांपैकी तिसरा भाग होय, असें तेथेंच (मदनरकांतच) सांगितलें आहे. वसंत ऋतूंत गलग्रहाचा दोष नाही, असा भाव. **नारद**—“कृष्णपक्षांतील चतुर्था, दोन्ही पक्षांतील सप्तमी, अष्टमी, नवमी, आणि त्रयोदशीपासून ४ तिथि ह्या आठ तिथि गलग्रह होत.” **वसिष्ठ**—“पाषांशी किंवा षष्ठ्यानीं, व नीचस्थानीं चंद्र असतां अथवा अनध्याय असतां ज्याचें उपनयन होईल तो पुनःसंस्कारास योग्य होतो. अनध्यायाचे पूर्वदिवशीं किंवा दुसऱ्या दिवशीं मौजी, समावर्तन (सोडमुंज), आणि वेदारंभ हे करूं नयेत.” **राजमार्तंड**—“जेथें आरंभ झाल्यानंतर प्रत्यारंभ (दुसऱ्या दिवशीं अध्ययन) होत नाही तो दिवस गलग्रह होय, असें गर्गादि मुनि सांगतात.” **ज्योतिर्निबंधांत**—“सर्वे अष्टका, युगादि तिथि, मन्वादि तिथि, आणि सोपपदा तिथि यांचे ठायीं अनध्याय करावा, म्हणजे वेदाध्ययन करूं नये.” **सोपपदा तिथि सांगतो स्मृत्यर्थसारांत**—“जेष्ठशुक्र द्वितीया, आश्विनशुक्र दशमी, माघशुक्रांतील चतुर्था व द्वादशी ह्या तिथि सोपपदा जाणाव्या.” याप्रमाणें प्रयोगदिवसही वर्ज्य करावा. **प्रदोषाचें स्वरूप सांगतो गोभिल**—“षष्ठी व द्वादशी ह्या तिथि मध्यरात्रीच्या आंत संपल्या अगतां त्या दिवशीं प्रदोष होतो. आणि तृतीया एक प्रहर रात्रीच्या आंत संपली असतां त्या दिवशीं प्रदोष होतो.” **ज्योतिर्निबंधांत व्यास**—“चंद्र व वैशाख या मासांतील शुक्रपक्षांच्या तृतीया, माघमासांतील सप्तमी, आणि फाल्गुन मासांतील कृष्णपक्षाची द्वितीया, ह्या तिथि मौजीविषयीं प्रशस्त आहेत, असें भरद्वाज मुनि सांगतात.” ह्या तिथींचाही निर्णय कृष्णप्रतिपदेप्रमाणें. म्हणजे ज्याचा अनीत काल झाला असेल त्याच्या मौजीविषयीं ह्या तिथि प्रशस्त होत असें जाणावें. आतां जे **बृहद्भाग्य**—“नैमित्तिक अनध्यायदिवशीं मौजी करावी. माघशुक्र सप्तमी, अक्षय्यतृतीया, आणि बुध, गुरु, शुक्र, शुक्र हे चार मौजीविषयीं प्रशस्त होत” असें सांगतो तें प्रायश्चित्तार्थ उपनयनाविषयीं आहे. कारण, “कृष्णप्रतिपदाप्रभृति जे अनध्याय दिवस उपनयनाविषयीं गांमिले, ते अध्ययनाचा विषय करणारे असल्यामुळे पहिल्या उपनयनाविषयीं प्रशस्त नाहीत. प्रायश्चित्ताकरितां जे उपनयन त्याविषयीं प्रशस्त होत.” असें त्याच ग्रंथकारांनीं सांगितलें आहे, असें **निर्णयामृत व कालादर्श** सांगतात. आतां जरी “ज्याचें उपनयन पूर्वी झालें आहे त्याला” असें सांगून “पुनरुपनयनाविषयीं परिधान व काल गांमिल्या नाही” असा **आश्वलायन सूत्रकारांनीं** पुनरुपनयनाविषयीं कालाचा अनियम गांमिल्या आहे, तथापि तो अनियम उपनयनाचें निमित्त उत्पन्न झाल्यावर लगेच उपनयन कर्तव्य असतां समजावा. निमित्त उत्पन्न झाल्यावर त्या वेळीं पुनरुपनयन केलें नसेल तर पूर्वा गांमितलेला काल जाणावा. प्रत्येक वेदाचें उपनयन कर्तव्य अगतां कालाचा नियम नाही, असें म्हणणें तर युक्त आहे. **गर्ग**—“चंद्रसूर्याचें ग्रहण, भूकंप, भूभूकेतूची (शेंडे-नक्षत्राची) उत्पत्ति, उल्कापात (आकाशांतून अभिरूप तारा पडणें), इत्यादि दोष उपस्थित झाले असतां दहा दिवसपर्यंत मौजी करूं नये. तेरा दिवसपर्यंत करूं नये असें केचित् सांगतात.” **संकट असेल तर सांगतो चंडेश्वर**—“दिशा पेटणें, भूकंप, वज्रपात (गीज पडणें), भूविदाग्न, केतु (गंडे नक्षत्र) उगवणें, उल्कापात (आकाशांतून अभिरूप तारा पडणें) हीं झालीं अगतां तीन दिवसपर्यंत उपनयन मंगल कार्यें करूं नयेत.” तेथेंच सांगतो—“वेदव्रतें, उपनयन, वेदाचें अध्ययन, यांविषयीं यजुर्वेदांना सोपपदा तिथींचा दोष नाही.”

हेमाद्रौज्योतिषे हस्तत्रयपुष्यधनिष्ठप्रोषपौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेपु शस्तेतिथौचंद्रबलेनयुक्ते कार्याद्विजानां व्रतबंधमोक्षां **ज्योतिर्निबंधेनारदः** श्रेष्ठान्यकत्रयांयेज्यचंद्रादित्युत्तराणिच विष्णुत्रयाश्विमित्राधज्योनिभान्युपनायने **बृहस्पतिः** त्रिपूतरेपुरोहिण्यांहस्तेमंत्रेचवासवे त्वाप्रेसौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमंशुपनायनं **ज्योतिर्निबंधे** पूर्वाहस्तत्रयैर्मापश्रुतिमूलेपुत्रहृचां यजुषांपौष्णमैत्राकादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः सामगांनाहरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः धनिष्ठादिनिमैत्राकंपिंडुपौष्णप्यथर्वणां **राजमार्तंडस्तु** ब्राह्मणस्यपुनर्वसुं निषेधति ताराचंद्रानुकूलेपुग्रहान्देपुशुभेष्वपि पुनर्वसोऽकृतोविप्रःपुनःसंस्कारमर्हति ।

हेमाद्रौत ज्योतिषांत—“हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृग, पुनर्वसु, श्रवण या नक्षत्री; पूर्वीक तिथींस चंद्रबल असतां द्विजार्तीची मौजी व समावर्तन (सोडमुंज) हीं करावीं.” **ज्योतिर्निबंधांत—नारद**—“हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, पुष्य, मृग, पुनर्वसु, तीन उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतताराका, अश्विनी, अनुराधा, रोहिणी हीं नक्षत्रें उपनयनाविषयीं श्रेष्ठ होत.” **बृहस्पति**—“तीन उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, धनिष्ठा, चित्रा, मृग,

१ श्विकस्थानी. २ अष्टका, युगादि, मन्वादि ह्या तिथि द्वितीयपरिच्छेदांत सांगितल्या आहेत. ३ परिदाह ऋ० अक्षय्यपतीला बडदान.

पुनर्वसु, ह्या नक्षत्रावर उपनयन उत्तम होय.” ज्योतिर्निबंधांत—“पूर्वा, हस्त, चित्रा, स्वाती, आश्लेषा, श्रवण, मूल ह्या नक्षत्रावर ऋक्शाखांची मौंजी करावी. रेवती, अनुराधा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, मृग, चित्रा, तीन उत्तरा, रोहिणी ह्या नक्षत्रावर यजुःशाखांची मौंजी करावी. श्रवण, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा, पुष्य, तीन उत्तरा, अश्विनी ह्या नक्षत्रावर सामवेद्यांची मौंजी करावी. धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मृग, रेवती, ह्या नक्षत्रावर अथर्वणवेद्यांची मौंजी करावी.” राजमार्तंड तर—ब्राह्मणाविषयीं पुनर्वसूचा निषेध करितो. तो असा—“तारा, चंद्र, ग्रह, वर्ष हीं सर्व शुभ असतांही जर पुनर्वसु नक्षत्रावर मौंजी होईल तर तो ब्राह्मण पुनरुपनयनास योग्य होतो.”

ज्योतिर्निबंधेनारदः सर्वेषांजीवशुकज्ञवाराः प्रोक्ताव्रतेशुभाः चंद्राकौमध्यमौज्ञेयौसामबाहुजयोः-
कुजः शाखाधिपतिवारश्चशाखाधिपबलंतथा शाखाधिपतिलग्रंचदुर्लभंत्रितयंत्रते शाखाधिपाश्चरत्नसं-
ग्रहे ऋगथर्वसामयजुषामधिपागुरुसौम्यभौमसिताः जीवसितौविप्राणांक्षत्रस्यारोष्णगूविशांचंद्रइति पारि-
जातेबृहस्पतिः बह्वचानांगुरोर्वारेयजुर्वेदजुषांबुधे सामगानांधरासूनोरथर्वविदुपारंवेः अत्रलग्रशुद्ध्या-
दिदैवज्ञेभ्योज्ञेयम् विस्तरभयान्नोच्यते ।

ज्योतिर्निबंधांत नारद—“गुरु, शुक्र, बुध हे वार सर्वास उपनयनाविषयीं श्रेष्ठ होत. रविवार व सोमवार हे मध्यम होत. सामवेदी व क्षत्रिय यांना सोमवार प्रशस्त आहे. शाखाधिपतीचा वार, शाखाधिपतीचें बल, आणि शाखाधिपतीचें लग्न हीं तीन, मौंजीविषयीं दुर्लभ होत.” शाखाधिपति सांगतो रत्नसंग्रहांत—ऋग्वेदाचा अधिपति गुरु, अथर्वण वेदाचा अधिपति बुध, सामवेदाचा अधिपति भौम, यजुर्वेदाचा अधिपति शुक्र, याप्रमाणें वेदाधिपति होत. गुरु व शुक्र हे ब्राह्मणांचे अधिपति. मंगल व रवि हे क्षत्रियांचे अधिपति. चंद्र हा वैश्यांचा अधिपति. याप्रमाणें वर्णाधिपति जाणावे.” पारिजातांत बृहस्पति—“ऋक्शाखांची गुरुवारी, यजुःशाखांची बुधवारी, सामवेद्यांची भौमवारी, आणि अथर्वण-वेद्यांची रविवारी मौंजी करावी.” ह्या मौंजीविषयीं लग्नशुद्धि, षड्वर्गशुद्धि इत्यादि निर्णय ज्योतिष्यांकडून जाणावा. ग्रंथविस्तर होईल म्हणून मी सांगत नाहीं.

लल्लुः व्रतेऽह्निपूर्वसंध्यायांवारिदोयदिगर्जति तद्दिनेस्यादनध्यायोव्रतंतत्रविबर्जयेत् ज्योतिर्निबंधे नांदीश्राद्धकृतचेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः तदोपनयनकार्यवेदारंभनकारयेत् एतद्रह्वचातिरिक्तानां तेपांतदि-
नेवेदारंभाभावात् अतस्तेषामुपनयनंभवत्येव एतरेयोपनिषदि मृगादिष्येष्टांतवर्षर्तुः तंविनावर्षादौ-
त्रिरात्रमनध्यायइतिवेदभाष्येउक्तं एतच्चप्रातस्तनिते सायंस्तनितेतुदिवैवचरंश्रपयित्वासायंसंध्योत्तरंहो-
मंकुर्यात् नसंध्यागर्जितेकालेनवृष्ट्युत्पातदूषिते ब्रह्मौदनंपचेदप्रौपंकचेन्ननिवर्तते ब्रह्मौदनंपचेदप्रौपंकमन्नंदु-
ष्यतीतिसंग्रहोक्तेरितिप्रयोगरत्नेभट्टचरणाः अत्रशांतिरप्युक्तानृसिंहप्रसादे ब्रह्मौदनविधेःपूर्वप्र-
दोषेगर्जितयदि तदाविघ्नकरंज्ञेयंबटोरध्ययनस्यतत् तस्यशांतिप्रकारंतुवक्ष्येशास्त्रानुसारतः प्रधानंपायसंसा-
यंद्रव्यंशांतियजौभवेत् सूक्तबृहस्पतेर्विद्वान्पठेत्प्रज्ञाविबुद्धये गायत्रीचैवमंत्रःस्यात्प्रायश्चित्तंतुसर्पिषा भेनुंस-
वत्सकांदद्यादाचार्यायपयस्विनीं ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्ततोब्रह्मौदनंचरेत् ।

लल्लु—“ज्या दिवशीं उपनयन करावयाचें त्या दिवशीं पूर्वसंध्येचे ठायीं मेघ गर्जना करील तर तो अनध्याय दिवस आहे म्हणून त्या दिवशीं उपनयन करूं नये.” ज्योतिर्निबंधांत—“नांदीश्राद्ध केल्यानंतर जर अकालिक (अकालीं मेघगर्जनाहूय) अनध्याय प्राप्त होईल तर उपनयन करावें; पण वेदारंभ करूं नये.” हें वचन ऋक्शाखिव्यतिरिक्तविषयक जाणावें. कारण, ऋक्शाखांच्या वेदारंभ उपनयनदिवशीं होत नाहीं, मग वेदारंभ करूं नये, हें सांगणें त्यांना लागू होत नाहीं. म्हणून ऋक्शाखांच्या उपनयन (नांदीश्राद्धोत्तर अकालिक अनध्याय असतां) होत नाहींच. एतरेय उपनि-
षदांत—मृगनक्षत्रापासून ज्येष्ठानक्षत्रपर्यंत जो काल तो वर्षाकाल सांगितला आहे. त्यावाचून अन्य कालीं वृष्टि, गर्जना इत्यादि असतां त्रिरात्र अनध्याय होतो, असें वेदभाष्यांत सांगितलें आहे. हा (उपनयन करूं नये असा) जो पूर्वी निर्णय सांगितला तो प्रातःकालीं गर्जना असतां समजावा. सायंकालीं गर्जना होण्याचा संभव असेल तर दिवसासच चरु शिजवून ठेवून सायंसंध्योत्तर अनुप्रवचनीय होम करावा. कारण, “संध्यागर्जित काल, वृष्टि व उत्पात यांनीं दूषित काल, अशा कालीं अभीवर ब्रह्मौदन (चरु) शिजवूं नये. गर्जना, वृष्टि वगैरे होण्याचे पूर्वी शिजविलेला चरु असेल तर व्यर्थ होत नाहीं. म्हणून अशा समयीं ब्रह्मौदन (चरु) पूर्वी शिजवावा. शिजविलेला चरु डुष्ट होत नाहीं.” असें संग्रहकाराचें वचन आहे, असें प्रयोगरत्नांत नारायणभट्ट सांगतात. चरु शिजवून ठेविला नसतां गर्जना इत्यादि निमित्त उपस्थित होईल तर

त्याविषयीं शांतिही सांगतो नृसिंहप्रसादांत—“ब्रह्मोदनविधीचे पूर्वी प्रदोषकालीं जर गर्जना होईल तर ती गर्जना बद्धचे विठेला विघ्नकारक आहे, यास्तव त्याची शांति शास्त्रानुसार सांगतो—ह्या शांतियज्ञाचे ठायीं घृतयुक्त पायस हें प्रधानद्रव्य, त्याचा होम करावा. प्रह्लाद्विदीसाठीं बृहस्पतिसूक्ताचा पाठ करावा. गायत्रीमंत्रेंकरून प्रधान होम करून प्रायश्चित्ताहुति घृताच्या घालाव्या. नंतर दूध देणारी सवस्त अशी गाई आचार्याला देऊन ब्राह्मणांना भोजन देऊन नंतर ब्रह्मोदन चरु शिजवावा.”

उपनयनेचाधिकारिणः माधवीयेवृद्धमनुनोक्ताः पितापितामहोभ्राताज्ञातयोगोत्रेजाप्रजाः उपायनेधिकारीत्यात्पूर्वाभावेपरःपरः प्रयोगरत्ने पितैवोपनयेत्पुत्रतदभावेपितुःपिता तदभावेपितुर्भ्रातातदभावेतुसोदरः पितेतिविप्रपरं नक्षत्रियादेः तेषांपुरोहितण्व उपनयनस्यदृष्टार्थत्वात् तेषांचाध्यापनेऽनधिकारान् अत्रपितृव्यस्यज्येष्ठभ्रात्रभावेधिकारः असंस्कृतास्तुसंस्कार्याभ्रातृभिःपूर्वसंस्कृतैरितियाज्ञवल्क्योक्तेः तेनेदमविभक्तपरं पूर्वतुविभक्तपरं मातूरजोदोषेतुप्रागुक्तम् ।

आतां उपनयन करण्याचे अधिकारी सांगतो.

माधवीयांत वृद्धमनु—“पिता, त्याच्या अभावीं पितामह, तदभावीं भ्राता, भ्रात्याचे अभावीं ज्ञाति (सगोत्र सपिंड), ज्ञातीचे अभावीं गोत्रज, याप्रमाणे पूर्वाच्या अभावीं पुढचा अधिकारी जाणावा. हा अधिकारी कुमारपेक्षां वयानें ज्येष्ठ असावा.” **प्रयोगरत्नांत**—“पित्यानेंच पुत्राचें उपनयन करावें, पित्याचे अभावीं पितामह, पितामहाचे अभावीं पितृव्य, पितृव्याचे अभावीं सोदर भ्राता.” “पित्यानेंच उपनयन करावें” असें जें सांगितलें तें ब्राह्मणविषयक आहे. क्षत्रियादिविषयक नाही. कारण, क्षत्रियादिकांचें उपनयन पुरोहितानेंच करावें. त्यांच्या पित्यानें कंठ नये; कारण, उपनयन हें अध्ययनासाठीं आहे. क्षत्रियादिकांना अध्ययन पदविषयाचा अधिकार नाही. गेथें उपनयनाविषयीं ज्येष्ठ भ्रात्याला पूर्वी अधिकार. त्याच्या अभावीं पितृव्याला अधिकार समजावा. कारण, “असंस्कृत भ्रात्यांचे संस्कार पूर्वी संस्कार झालेल्या भ्रात्यांनीं करावे” असें याज्ञवल्क्याचें वचन आहे. यावरून प्रयोगरत्नांत भ्रात्याच्या पूर्वी पितृव्याला अधिकार सांगितला तो पितृव्यादिक अविभक्त अगतां समजावा. आणि विभक्त अगतींत तर वृद्धमनूनें सांगितलेला भ्रात्याला अधिकार समजावा. माता रजस्वला स्नात्री असतां तद्विषयक निर्णय पूर्वा (नौलप्रकर्णी) सांगितला आहे.

अथपंडमृकादीनांविशेषः प्रयोगपारिजानेब्राह्मे ब्राह्मण्यांब्राह्मणाज्जातोब्राह्मणःसइतिश्रुतिः तस्माच्चपंडवविरकुटजवामनपंगुपु जडगद्ददरोगार्तशुष्कांगविकलांगिपु मतोन्मतेपुमूकेपुशयनस्थेनिरिंद्रिये ध्वस्तपुंस्त्वेपुचैतेपुसंस्काराःस्युर्यथोचितं मतोन्मत्तौनसंस्कार्याविति केचिन्प्रचक्षते कर्मस्वनधिकाराश्चापतित्यं नास्तिचैतयोः तदपत्यंचसंस्कार्यमपरेत्वाहुरन्यथा संस्कारमंत्रहोमादीन्करोत्याचार्यएवतु उपनेयांश्चविधिवदाचार्यस्यसमीपतः आनीयाग्निमसीपंवासावित्रीस्पृश्यवाजपेन कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वविप्रेणकारयेत् एवमेवद्विजैर्जातोसंस्कार्यैंकुंडगोलकौडिति स्मृत्यर्थसारेप्येवं कुंडगोलकयोःसंस्कार्यत्वंश्राद्धेनिपेधश्चक्षेत्रजपुत्रविषयः अन्यस्य विन्नास्येपविधिःस्मृतइतिवचनान् अब्राह्मण्येनोपनयनाद्यप्राप्तेरित्यपरांकः ।

आतां पंड, मूक इत्यादिकांचा विशेष सांगतो.

प्रयोगपारिजातांत ब्राह्मण—“ब्राह्मणापासून ब्राह्मणी स्त्रीचे ठायीं झाला तो ब्राह्मण अशी श्रुति आहे, यास्तव पंड, बधिर, कुटज (कुबडा), वामन (खुजा, ऱ्हास), पंगु, जड, गद्ददवाक, रोगार्त, शुष्कांग, विकलांग (ज्यास स्वभावतः कांहीं अवयव कमी आहे तो), मत्त, उन्मत्त, मूक, शयनस्थित, इंद्रियरहित, पुरुषलहीन, ह्यांचे यथायोग्य संस्कार करावे. मत्त व उन्मत्त ह्यांचे संस्कार करूं नयेत. कारण, मत्त व उन्मत्त यांना कर्माविषयीं अधिकार नाही, म्हणून त्यांचें उपनयन झालें नाही, तरी त्यांना पतितपणा नाही. त्यांच्या अपत्यांचे संस्कार करावे, असें केचित् सांगतात. दुसरे विद्वान् असें सांगतात की, पूर्वीचे सर्वांचें उपनयन करावें. ज्यांना मंत्रोच्चार, होम इत्यादिक होत नाहीत त्यांचे ते मंत्रोच्चारदिक आचार्यानेंच करावे. उपनयन करावयाच्या वर्तना आचार्याच्या समीप यथाविधि नेऊन अथवा अग्नीच्या समीप नेऊन त्यांना स्पर्श करून गायत्री जपावी. विवाहसमयीं कन्यास्वीकारावांचून बाकीचें सर्व कृत्य ब्राह्मणद्वारा करावें. असाच ब्राह्मणापासून झालेल्या कुंडगोलकांचा संस्कार करावा.” **स्मृत्यर्थसारांत**ही असेंच सांगितलें आहे. कुंड व गोलक यांचे संस्कार करावे

१ इदं वचनं वृद्धगार्ग्येस्त्युक्तं कौस्तुभे । २ गोत्रजाप्रजा इत्यत्राकारलोपवृद्धादसः पित्राशुक्तप्रकार्यभावे कर्तारमाह कौकृद् कृमसारोपनयनं धृताभिर्जनवृत्तवान् । तपसा धृतनिःशेषपाप्मा कुप्याद्विजोत्तमः ।

हा निर्णय व त्या कुंडगोलकांचा श्राद्धभोजनाविषयी जो निषेध केला तो, हे दोनही निर्णय क्षेत्रज्ञ पुत्रविषयक आहेत. कारण, “हा जो सवर्णमूर्धावसिक्तादि संज्ञाविधि सांगितला तो विवाहित स्त्रियांविषयी जाणवा.” असे (आचाराध्यायांत) याचवचन्यवचन आहे. यास्तव अन्य (क्षेत्रज्ञ पुत्रावांचून कुंड, गोलक) जो पुत्र तो ब्राह्मण्यविरहित असल्यामुळे त्यास उपनयनादिक संस्कार प्राप्त होत नाहीत, असे अपरार्क सांगतो.

उपनयनंचकुमारंभोजयित्वाकार्यम् प्रागेवैनंतदहर्भोजयंतीतिमदनपारिजातेगोभिलोक्तेः गाय-
त्र्युपदेशश्चोत्तरतोमेःकार्यः उत्तरेणाग्निमुपविशतःप्राङ्मुखआचार्यःप्रत्यङ्मुखइतरोऽधीहिभोइति शांखाय-
नसूत्रोक्तेः यद्यपि कात्यायनेनाथास्मैसावित्रीमन्वाहोत्तरतोमेःप्रत्यङ्मुखयेत्युक्त्वादक्षिणतस्तिष्ठतआ-
सीनायवैकैइतिविकल्पउक्तस्तथापि कातीयानामेवसः बहुचानांतूत्तरएववैदक्यात् भिक्षायांविशेषमाह
कात्यायनः मातरमेवाग्नेभिक्षेत पराशरमाधवीये मातरंवास्वसारंवामातुर्वाभगिनीनिजाम् भिक्षेत-
भिक्षांप्रथमंयाचैनंनविमानयेत् ।

मौजी करावयाची ती कुमाराला भोजन घालून करावी. कारण, “मौजीच्या दिवशीं पूर्वी ह्याला (कुमाराला) भोजन घालितात” असे मदनपरिजानांत गोभिलाचें वचन आहे. गायत्रीमंत्राचा उपदेश अग्नीच्या उत्तर प्रदेशीं करावा. कारण, “अग्नीच्या उत्तर प्रदेशीं बसणारा कुमार पूर्वामिमुख आचार्य व कुमार पश्चिमामिमुख वसून, भो आचार्य, मला गायत्रीचा उपदेश करा” असे शांखायनसूत्रवचन आहे. जरी कात्यायनानें “आनां अग्नीच्या उत्तरेस पश्चिमामिमुख असलेल्या ह्याला (कुमाराला) गायत्री सांगावी” असें सांगून नंतर अग्नीच्या दक्षिणेंस उभ्या राहिलेल्या किंवा वसलेल्या कुमाराला गायत्री सांगावी, असें कितीएक आचार्य सांगतात.” याप्रमाणें अग्नीच्या उत्तरेस किंवा दक्षिणेंस असा विकल्प सांगितला आहे, तथापि तो विकल्प कातीयांनाचै समजावा. बहुचानां तर अग्नीच्या उत्तरेसच उपदेश समजावा. कारण, शांखायन व बह्वच यांचा वेद एक आहे. भिक्षेविषयीं विशेष सांगतो कात्यायन—“मातेजवळच प्रथमतः भिक्षा मागावी.” पराशरमाधवीयांत—“माता, किंवा मावशी, अथवा आपली भगिनी यांच्या जवळ प्रथम भिक्षा मागावी. किंवा जी ह्या ब्रह्मचाऱ्याचा अपमान करणार नाही तिच्याजवळ भिक्षा मागावी.”

अथसंस्कारलोपेशौनकः आरभ्याधानमाचौलात्कालेतीतेतुकर्मणाम् व्याहृत्याग्निमुसंस्कृत्यहुत्वा-
कर्मयथाक्रमं एतेष्वेकैकलोपेतुपादकृच्छ्रसमाचरेत् चूडायामर्धकृच्छ्रस्यादापदित्वेवमीरितं अनापदितुसर्वत्र-
द्विगुणंद्विगुणंचरेत् पारिजातेकात्यायनः लुप्रेकर्मणिसर्वत्रप्रायश्चित्तंविधीयते प्रायश्चित्तेकृतेपश्चादुप-
मसमाचरेत् स्मृत्यर्थसारेचैवं कारिकायांप्रायश्चित्तेकृतेतीतंलुप्रेकर्मकृताकृतमित्युक्तं प्रायश्चित्तेकृते-
पश्चादतीतमपिकर्मवै कार्यमित्येकआचार्यानेत्यन्येतुविपश्चित्तइति त्रिकांडमंडनेतुकालातीतेपुकार्येपुप्राप्त-
वत्स्वपरेषुच कालातीतानिकृत्वैवविदध्यादुत्तराणितु तत्रसर्वेषांतंत्रेणनांदीश्राद्धंकुर्यात् देशकालकत्रैक्यान्
गणशःक्रियमाणानांमातृणांपूजनंसकृत् सकृदेवभवेच्छ्राद्धमादौनपृथगादिष्वितिछंदोगपरिशिष्टात् एत-
द्बहूनामपत्यानांयुगपत्संस्कारकरणविषयमिति बोपदेवः अतीतसंस्काराणांयुगपत्करणइत्यन्ये तत्रापिचौ-
लस्योपनीत्यासहेतिपक्षेउपनीतिदिनएवानुष्ठानंनपूर्वदिने सहत्वस्यदिवसैक्येसन्निकृष्टतरत्वान् वृद्धाचारोप्येवं ।

आतां संस्कारांचा लोप झाला असतां सांगतो शौनक—गर्भाधान, पुंसवन, सीमेंतोन्नयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकर्म, निष्कमण, अन्नप्राशन आणि चौल ह्या संस्कारांचा काल अतीत झाला असतां अग्निसंस्कार करून समस्तव्याहृतिमंत्रांनीं प्रतिसंस्काराला कर्मकरून एकेक आज्याहृतिरूप कौलातिपत्तिनिमित्तक प्रायश्चित्त करावें. आणि चौलव्यतिरिक्त गर्भाधानादि संस्कारांपैकी प्रमादानें एकेकाचा लोप असेल तर प्रत्येक संस्काराविषयीं पाँदकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. चौलसंस्काराविषयीं अर्धकृच्छ्र करावें. याप्रमाणें हें प्रायश्चित्त करून नंतर चौलसंस्कार करावा. आपत्ति असतां हें प्रायश्चित्त सांगितलें आहे. आपत्ति नसेल तर सर्वत्र द्विगुण करावें. पारिजातांत कात्यायन—“कर्माचा लोप असतां सर्वत्र लोपनिमित्त प्रायश्चित्त करावें. प्रायश्चित्त केल्यानंतर लुप्तकर्म करावें.” स्मृत्यर्थसारांतही असेंच सांगितलें आहे, कारिकेंत—तर अतीताचें प्रायश्चित्त केलें असतां अतीत कर्म कृताकृत आहे असें सांगितलें आहे. तें असें—“प्रायश्चित्त

१ क्षेत्रज्ञ पुत्र म्हणजे स्वकीय स्त्रियेचे ठायीं जो सपिंडापासून किंवा दिरापासून उत्पन्न तो. २ कात्यायनशाखा यजुर्वेदांतर्गत आहे व यजुर्वेदाच्या शाखा बहुत असल्यामुळे सुत्रेही अनेक आहेत. ३ म्हणजे संस्कारांचा विहितकाल टळून गेला तन्निमित्तक. ४ कृच्छ्रांचीं लक्षणें ग्रंथाच्या शेवटीं सांगूं.

केल्यानंतर अतीत कर्म (संस्कार) ही करावें. असें कोणी आचार्य सांगतात. इतर विद्वान् अतीत कर्म करूं नये, असें सांगतात.” **त्रिकांडमंडनांत** तर—“बहिर्ली संस्कारादि कार्ये अतिक्रांत (राहिलीं) असून दुसरी कार्ये प्राप्त झालीं असतां पूर्वीचीं (म्हणजे ज्यांचा काळ टळून गेला आहे तीं) केल्यानंतर पुढचीं प्राप्त झालेलीं कार्ये करावीं. त्या स्थलीं सर्वे संस्कारांचें नांदीश्राद्ध तंत्रेंकरून करावें. कारण, सर्वे संस्कारांचा देश, काल व कर्ता एक आहे. “बहुत संस्कार एक समर्थी करावयाचे असतां त्यांमध्ये मातृकापूजन, व नांदीश्राद्ध हीं एकवारच (एकतंत्रानें) करावीं. पृथक् पृथक् करूं नयेत.” असें **छंदोगपरिशिष्ट** वचन आहे. हें वचन बहुत अपत्यांचे एकाकालीं संस्कार कर्तव्य असतां तद्विषयक आहे, असें **बोपदेव** सांगतो. अतीत संस्कार एककालीं एकदम कर्तव्य असतां हें वचन आहे, असें इतर ग्रंथकार सांगतात. त्यांतही चौलसंस्कार, मौंजीसहकरणपक्षीं मौंजीच्या दिवशींच करावा. पूर्वेदिवशीं करूं नये. कारण, सहपणास मौंजीचा दिवस हाच फार जवळ आहे. आणि वृद्धाचारही असाच मौंजीच्या दिवशींच चौल करण्याचा आहे.

उपनीतिदिनेमध्याह्नसंध्यामाहपारिजातेजैमिनिः यावद्ब्रह्मोपदेशस्तुतावत्संध्यादिकंचन ततोमध्याह्नसंध्यादिसर्वकर्मसमाचरेदिति ब्रह्म गायत्री यत्तुवचनम् उपायनेतुकर्तव्यंसायंसंध्येउपासनं आरभेद्ब्रह्मयज्ञंतुमध्याह्नेतुपुरेहनीति तच्छाग्यांतरविषयमिति **पारिजातः** विकल्पइतियुक्तंपश्यामः उपनयनाग्निस्त्रिरात्रंधार्यः त्र्यहमेतमग्निधारयंतीत्यापस्तंबोक्तेः **बौधायनसूत्रे** तु सदाधारणमप्युक्तं उपनयनादि-रग्निस्तसौपासनमित्याचक्षते पाणिग्रहणादित्येकेनित्योधार्योनुगतो निर्भयइति इदंजातारणिपक्षे अन्यथामंथनासंभवान् ब्रह्मयज्ञे विशेषमाह तत्रैव **जैमिनिः** अनुपाकृतवेदस्यकर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः वेदस्थानेतुसावित्रीगृह्य-तेतस्ममायतइति येपांतद्दिनण्ववेदारंभस्तेपांनेदमितिदिक् ।

उपनयनदिवशीं मध्याह्नसंध्या सांगतो-पारिजातानं जैमिनिः—“जोपर्यंत गायत्रीचा उपदेश झाला नाही तोपर्यंत संध्यादिक कर्म नाही. गायत्रीचा उपदेश झाल्यानंतर मध्याह्नसंध्यादिक गर्व कर्म करावें.” आतां जें “उपनयनदिवशीं गायत्रीकालीं मधोपागन करावें, आणि दुसऱ्या दिवशीं ब्रह्मयज्ञाला आरंभ करावा” असें वचन, तें अन्यशाखा-विषयक आहे, असें **पारिजात** सांगतो. त्या दिवशीं मध्याह्नसंध्यापागन किंवा गायत्रिसंध्यापासून आरंभ करावा, असा विकल्प युक्त आहे, असें आम्हीं समजतो. उपनयनाग्नि तीन दिवस पर्यंत धारण करावा. कारण, “हा उपनयनाग्नि तीन दिवस धारण करितात” असें **आपस्तंब** वचन आहे. **बौधायनसूत्रांत** तर—उपनयनाग्निचें सदा धारणी सांगितलें आहे, तें असें—“उपनयनाचा जो अग्नि तो **औपासनाग्नि** असें म्हणतात. कितीएक आचार्य विशाखापासून जो अग्नि तो औपासनाग्नि असें म्हणतात. तो औपासनाग्नि नित्य धारण करावा. गेल्या अमनां मंथन करून उत्पन्न करावा.” “अग्नि नष्ट झाला असतां मंथन करून उत्पन्न करावा” असें जें सांगितलें तें अरणी सिद्ध असतां जाणावें. अरणी सिद्ध नसेल तर मंथनाचा असेंभव आहे. **ब्रह्मयज्ञाविषयीं विशेष सांगतो. पारिजातानं—जैमिनिः**—“ज्याच्या वेदाचें उपाकरण झालें नाही त्यानेंही ब्रह्मयज्ञ करावा. त्यानें वेदस्थानीं गायत्र्यामंत्राचा पाठ करावा. कारण, गायत्रीमंत्रानें सर्वे वेदाचें फल प्राप्त होतें.” ज्यांचा उपनयनदिवशींच वेदारंभ असेल त्यांना हें सांगितलें नाही. याप्रमाणें ही दिशा दाखविली आहे.

अथब्रह्मचारिधर्माः याज्ञवल्क्यः मधुमांसंजनोच्छिष्टशुक्लीप्राणिहिंसनं भास्करालोकनाश्ली-लपरिवादादिवर्जयेत् **मनुः** अभ्यंगमंजनंचाक्ष्णोरुपासच्छत्रधारणं वर्जयेदितिप्रकृतं **पारिजातेकौर्मै** नादर्शचैववीक्षेतनाचरेद्दंतधावनं गुरुच्छिष्टभेषजार्थप्रयुंजीवनकामतः एतन्निपिद्धमध्वादिविषयं अन्यस्य-**गुरुच्छिष्टस्य** सर्वदाप्राप्तेः सचेद्याधीयीतकामंगुरोच्छिष्टभेषजार्थमसर्वप्राप्तीयादितिवसिष्ठोक्तेः **व्येष्टभ्रा-तुरित्यपिज्ञेयम्** पितुर्व्येष्टस्यचभ्रातुरुच्छिष्टभोभ्यमित्यापस्तंबोक्तेः **गुरुपुत्रे** तु स्मृत्यंतरेउक्तं **गुरुवदुरुपु-त्रः** स्यादन्यत्रोच्छिष्टभोजनान् **प्रचेताः** तांवूलाभ्यंजनंचैवकांस्यपात्रेचभोजनं यतिश्चब्रह्मचारीचविधवाच-विवर्जयेत् ।

आतां ब्रह्मचारिधर्म सांगतो.

याज्ञवल्क्य (आचाराध्याय)—“मधु, मांस, अंजन (डोळ्यांत काजळ), गुरूवांचून इतराचें उच्छिष्ट, आंबळेला पदार्थ, खांसवन, प्राणिहिंसा, सूर्याचें उदयकालीं व अस्तकालीं अवलोकन, ग्राम्य भाषण, परनिंदा इत्यादि वर्ज्य करावीं.”

१ ऋक्शास्त्रीयांचा वेदारंभ उपनयनकालीं होत नाही. उपाकरणसमयीं त्यांचा वेदारंभ होतो, असें सांगितलें आहे म्हणून वेदाचा तात्पर्यत अभाव असल्याकारणानें ब्रह्मयज्ञाचाही अभावप्रसंग येईल यास्तव हा निर्णय सांगितला आहे.

मनु—“तैलादि अभ्यंग, डोळ्यांत अंजन (काजळ) घालणें, पायांत जोडा घालणें, छत्री घेणें, हीं ब्रह्मचाऱ्यानं वर्य करावीं.” **पारिजातांत कूर्मपुराणांत**—“आरशांत पाहुं नये. दंतधावन करूं नये. गुरूचें उच्छिष्ट औषधाकरितां असेल तर भक्षण करावें. लोमानें भक्षण करूं नये.” हें सांगणें ब्रह्मचाऱ्याला निषिद्ध जो मधु इत्यादि पदार्थ त्याचें भक्षण सुचविण्याकरितां आहे. कारण, इतर (निषिद्धभिन्न) गुरूच्छिष्टाचें भक्षण सर्वदा प्राप्त आहे. “तो ब्रह्मचारी जर व्याधिग्रस्त होईल तर गुरूचें सर्व (निषिद्ध मध्वादिकही) उच्छिष्ट औषधाकरितां यथेच्छ भक्षण करावें” असें वसिष्ठवचन आहे. ज्येष्ठ भ्रात्याचेंही उच्छिष्ट असेंच जाणावें. कारण, “पिता व ज्येष्ठ भ्राता यांचें उच्छिष्ट भक्षण करावें” असें आपस्तंबवचन आहे. गुरुपुत्राविषयीं तर **स्मृत्यंतरांत** सांगतो—“जसा गुरु तगाच गुरुपुत्र आहे. गुरुपुत्राचें उच्छिष्ट मात्र भक्षण करूं नये.” **प्रचेता**—“तांबूल, काजळ, आणि कांस्यपात्रांत भोजन, हीं यति (संन्यासी), ब्रह्मचारी आणि विधवा यांनीं वर्य करावीं.”

यमः मेखलामजिनंदंडमुपवीतंचनित्यशः कौपीनंकटिसूत्रंचब्रह्मचारीतुधारयेत् अग्नीधनंभैक्ष्यचर्यासधःशय्यांगुरोर्हितं कुर्यादितिशेषः **मेखलामाहाश्वलायनः** तेपांमेखलामौजीब्राह्मणस्यधनुर्ज्याक्षत्रियस्यावीवैश्यस्येति **आचार्यः** त्रिवृतामेखलाकार्यात्रिवारंस्यात्समावृता तद्वथयस्त्रयःकार्याःपंचवामप्रवापुनः **मनुः** मौजीत्रिवृत्समाश्लक्षणाकार्याविप्रस्यमेखला त्रिवृताग्रंथिनैकेनत्रिभिःपंचभिरेववा मौज्यभावेतुकर्तव्याःकुशाश्मंतकबलवज्रैः अत्रप्रवरसंख्यानियमइतिवृद्धाः **अथदंडाः मनुः** ब्राह्मणोत्रैल्वपालाशौक्षत्रियोवाटखादिरौ पैपलौदुंबरौवैश्योदंडानहर्तिधर्मतः एषामभावे **गौतमः** यज्ञियोवासर्वेषांमूर्धललाटनासाप्रमाणइति **अजिनमाहाश्वलायनः** अहंतेनवासमासंवीतमैणेयेनवाजिनेनब्राह्मणंगोरिवेणक्षत्रियमाजेनवैश्यमिति यद्यप्यैणेयशब्देनमृगीचर्मैवोच्यते एष्यादचिति**पाणिनि**भृतेः ऐणेयमेण्याश्चर्माद्यमेणस्यैणमुभेत्रिविति**अमरकोशाच्च** तथापिकृष्णरुक्मस्तान्यजिनानीति**शंखोक्तेः** सर्वेषांवारौगवमिति**यमोक्तेश्च** मृगचर्मणासहविकल्पोज्ञेयः वस्त्राजिनयोस्तुविकल्पः कार्पासंवाविकृतमिति**गौतमोक्तेः** ।

यम—“मेखला, अजिन, दंड, यज्ञोपवीत, कौपीन, कटिसूत्र हीं ब्रह्मचाऱ्यानं नित्य धारण करावीं. अग्नीधनं समिधा देणें, भिक्षा मागणें, भूमिशयन, आणि गुरूचें हित, हीं करावीं.” **मेखला सांगतो**—**आश्वलायन**—“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यांच्या मेखला — ब्राह्मणाची मेखला मौजी (मुंजतृणाची), क्षत्रियाची मेखला धनुर्ज्या (मुर्वा तृणाची), वैश्याची मेखला आवी (मेळ्याचे लोंकरीची), समजावी.” **आचार्य**—“मेखला तिपेड करावी; त्या मेखलेचे कमरेम तीन फेरे घालून तीन, पांच अथवा सात गांठी घाव्या.” **मनु**—“मोळाच्या तिपेडासारखी मृदु अशी ब्राह्मणाची मेखला करावी. त्या मेखलेचे तीन फेरे घालून एक, तीन किंवा पांच ग्रंथि यावे. वर सांगितलेल्या मोळ इत्यादिकांच्या अभावीं ब्राह्मणादि तीन वर्णांनीं अनुक्रमानें कुश, अश्मंतक (आपटा) आणि लवाळा यांच्या मेखला कराव्या.” ह्या मेखलेस जे ग्रंथि द्यावयाचे ते जितके प्रवराचे ऋषि असतील तितके द्यावे, असें **वृद्ध** सांगतात. आतां **दंड सांगतो मनु**—“ब्राह्मणानें वेलाच्या किंवा पळसाचा, क्षत्रियानें वडाचा किंवा खदिराचा, वैश्यानं पिंपळाचा किंवा उंवराचा, याप्रमाणें धर्मकरून दंड धारण करावे.” हे दंड न मिळतील तर सांगतो **गौतम**—“अथवा सर्वांनीं उदुंबरादिक यज्ञियवृक्षाचे दंड धारण करावे. ब्राह्मणानें मस्तकापर्यंत उंचीचा, क्षत्रियानें ललाटापर्यंत उंचीचा आणि वैश्यानं नासिकापर्यंत उंचीचा दंड धारण करावा.” **अजिन सांगतो आश्वलायन**—“अहत म्हणजे नवें असून वापरलेलें नसेल अशा वस्त्रानें प्रावृत कुमार अथवा मृगीचर्मनं प्रावृत ब्राह्मणकुमार, रुद्रमृगचर्मनं प्रावृत क्षत्रियकुमार, आणि बोकडाच्या चर्मनं प्रावृत वैश्यकुमार, यांना आणून होम करावा.” आतां जरी ‘ऐणेयेन वाऽजिनेन ब्राह्मणं’ ह्या वरील आश्वलायन सूत्रांतील ‘ऐणेय’ शब्दानें मृगीचर्म चर्म सांगितलें आहे. कारण, “एण्याडव्” ह्या **पाणिनि**सूत्रावरून एणी म्ह. मृगी तिचें चर्म विवक्षित असतां ‘ऐणेय’ असा शब्द सिद्ध होत आहे. आणि “एणीचें (मृगीचें) चर्मादिक तें ऐणेय होय. आणि एणाचें (मृगाचें) चर्मादिक तें ऐण होय.” असा **अमरकोशाही** आहे. तथापि “कृष्णसार, रुद्र मृग आणि बोकड यांचीं चर्म तीं अजिनं वर्णानुक्रमानें घ्यावीं.” ह्या **शंखवचनावरून**; “अथवा सर्वांनीं रुद्रमृगाचें चर्म धारण करावें” ह्या **यमवचनावरूनही** मृगचर्मासह त्या मृगीच्या चर्माचा विकल्प जाणावा. वस्त्र आणि अजिन यांचा तर विकल्प आहेच. कारण, “अथवा रंराविलेलें कार्पासवस्त्र धारण करावें.” असें **गौतमाचें** वचन आहे.

१ अहतं नवमपुराणं अनुपभुक्तमित्यर्थः । प्रचेताः—ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितं । अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पाषनमिति ।

अथयज्ञोपवीतं मनुः कार्पासमुपवीतंस्याद्विप्रस्योर्ध्ववृत्तं त्रिवृत् पारिजातेदेवलः कार्पासश्चौम गोवालशणबत्वृणादिकं यथासंभवंतोर्ध्वयुपवीतं द्विजातिभिः शुचौदेशे शुचिः सूत्रं संहतांगुलिमूलके आर्त्यपणवत्यातत्रिगुणीकृत्ययत्नतः अद्विलग्नैस्त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योर्ध्ववृत्तं त्रिवृत् अप्रदक्षिणमाधृत्यसावित्र्या त्रिगुणीकृतं ततः प्रदक्षिणावर्तसमस्यान्नवसूत्रकं त्रिरावेष्टयदृढं बध्वा ब्रह्मविष्ण्वीश्वराजमेत् तन्मवतंतु कार्य सावित्र्या त्रिगुणं कुर्यान्नवसूत्रंतु तद्भवेदिति तेनैवोक्तेः **छंदोगपरिशिष्टे** त्रिवृदूर्ध्ववृत्तं कार्यंतु तत्रयमधोवृत्तं त्रिवृत्तंचोपवीतं स्यात्तस्यैकोग्रंथिरिष्यते ऊर्ध्ववृत्तं दक्षिणं करमूर्ध्वं कृत्वा वलितं **भृगुः** वामावर्तवलितं त्रिगुणं कृत्वा दक्षिणावर्तवलितं त्रिगुणं कार्यं स एकस्तंतुरेवं त्रितंतुकमित्यर्थः **कात्यायनः** पृष्ठदेशे च नाभ्यांच धृतं यद्विदते कटिं तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलंबं न चोच्छ्रितं **वसिष्ठः** नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधोनाभेस्तपःक्षयः तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः **पारिजातेदेवलः** उपवीतं वटोरेकंद्वेतेतरयोः स्मृते एकमेव यतीनां स्याद्वितिशाल्यस्य निश्चयः **सएव** बहूनि वायुष्कामस्य तत्र मंत्रमाह **सएव** यज्ञोपवीतमिति वाच्याहृत्यावापि धारयेत् **हेमाद्रौ** यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्माते च कर्मणि तृतीयमुत्तरीयाथेव स्नाभाभावेतदिष्यते **देवलः** सावित्र्या दशकृत्वोद्भिर्मंत्रिताभिस्तदुक्षयेत् विच्छिन्नं चायधोयातं भुक्त्वानिर्मितमुत्सृजेत् **मनुः** मेखलामजिनंदंडमुपवीतं कमंडलुं अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृहीतान्यानि मंत्रतः ॥

आतां यज्ञोपवीतं सांगतो.

मनु—“ब्राह्मणाया यज्ञोपवीतं कापसाचं अगावं, तं असें कीं, सूतं त्रिगुणं करून उजवा हात वर करून वळलेलें करावें.” **पारिजातांत देवल—**“कार्पाग (कापसाचं सूत), धौम (अळशीचं सूत), गोवाल (अरण्य गाईचे केश), शण (तागाचं सूत), वन्व (लव्हाचं सूत), यांपंकी ज्याचें मिळेल व हांडेल त्याचें यज्ञोपवीतं ब्राह्मणादिकांनीं धारण करावें. शुचिर्भूत ब्राह्मणाचें शुद्ध भुगांवर वसून सूत काढावें. नंतर हातांनीं गारखीं चार बोटे एकत्र करून त्या बोटांना (चंबग्याला) त्रिगुणित केलेल्या गुनाचें (तिसुतीचें) शाण्वत फेरे घालावे, म्हणजे तिसुती तयार झाली. नंतर “आपो-हिष्टा” हे तीन मंत्र म्हणून उदकाचें चांगलें धुवून ती तिसुती ऊर्ध्ववृत्त रीतीनें अप्रदक्षिण वळून गायत्रीमंत्रानें त्रिगुणित करून प्रदक्षिण वळावें. ती नवसुती गारखी होते. तिचे तीन फेरे करून घट् ग्रंथि बांधावी. त्या ग्रंथीचे ठायीं ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर यांना नमस्कार करावा.” तें यज्ञोपवीतं नवसुती करावें. कारण, “तिसुती गायत्रीमंत्रानें त्रिगुणित (तिपेड) करावी, म्हणजे नवसुती होते.” असें त्याचें (**देवतानें**) च गोंगितलें आहे. **छंदोगपरिशिष्टांत—**“तिसुती करून ऊर्ध्ववृत्त वळावें. पुनः तिपेड करून अधोवृत्त वळावें. म्हणजे नवसुती झाली. त्याचे तीन फेरे करून त्याला एक ग्रंथि (गांठ) बांधावा, म्हणजे यज्ञोपवीत होतें.” ऊर्ध्ववृत्त याचा अर्थ—डावा हात खाली आणि उजवा हात वर करून त्या उजव्या हाताचें वळलें तें ऊर्ध्ववृत्त, याच्या उलट म्हणजे उजवा हात खाली करून वळलेलें तें अधोवृत्त होय. **भृगु—**“वामावर्त (अप्रदक्षिण) वळलेली तिसुती करून पुनः प्रदक्षिण वळलेलें असें त्रिगुणित करावें.” तो एक तंतु (नवसुती) होतो, त्याच्या तीन तंतूंचें यज्ञोपवीत होतें, असा भाव. **कात्यायन—**“जे यज्ञोपवीत घातले असतां स्केधावरून पाठीवर आणि पुढें नाभीवर येऊन कटिप्रदेशापर्यंत पोहोचतें, तें यज्ञोपवीत धारण करावें. फार लांब व फार आंखूड असूं नये.” **वसिष्ठ—**“नाभीच्या वरती राहणारं यज्ञोपवीत आयुष्यदान करणारं होतें. नाभीच्या खाली जाणारं यज्ञोपवीत तपाचा क्षय करणारं होतें; म्हणून झाल्या पुरुषाचें नाभिसमान यज्ञोपवीत धारण करावें.” **पारिजातांत देवल—**“वटूनें (ब्रह्मचाच्यानें) एक यज्ञोपवीत धारण करावें. गृहस्थाश्रमी व वानप्रस्थ यांनीं दोन. यतींनीं (त्रिदंडी यांनीं) एक यज्ञोपवीत धारण करावें, असा शास्त्राचा निश्चय आहे.” **देवलच—**“अथवा आयुष्कामाचें बहुत (तीन, चार) धारण करावीं.” त्या यज्ञोपवीत धारणाविषयीं मंत्र सांगतो **देवल—**“यज्ञोपवीतं परमं” ह्या मंत्राचें किंवा व्याहृति मंत्राचें धारण करावें.” **हेमाद्रौत—**“श्रौतकर्म व स्मार्तकर्म यांचे ठायीं दोन यज्ञोपवीतें धारण करावीं. तिसरें यज्ञोपवीत, उत्तरीय किंवा वस्त्र यांच्या अभावीं धारण करावें.” **देवल—**“गायत्रीमंत्रानें दशवार अभिमंत्रित केलेल्या उदकाचें तें प्रोक्षण करावें. तुटले असतां किंवा खाली गळले असतां तें टाकावें. व भोजन करून निर्माण केलेलें टाकावें.” **मनु—**“मेखला, अजिन, दंड, यज्ञोपवीत, कमंडलु हीं छिन्न भिन्न झालीं असतां तीं उदकांत टाकून मंत्रानें नवीं धारण करावीं.”

१ ऊर्ध्ववृत्तमाहसंग्रहकारः । करेण दक्षिणेनोर्ध्वगतं त्रिगुणीकृतं । वलितं मानवैः सूत्रं शास्त्रे ऊर्ध्ववृत्तं स्मृतम् ॥ संस्कारकौस्तुभ.

२ उत्तरीयाथे इति जीवत्पितृकस्य तु उत्तरीयं निषिद्धं ॥ पादुके चोत्तरीयं च तज्ज्यां रौप्यधारणं ॥ न जीवत्पितृकः कुंभीरूपेणे आतरे जीवतीति स्मृत्यैः ॥

अथैतल्लोपेप्रायश्चित्तंमनुः अकृत्वाभैक्ष्यचरणमसमिध्यचपावकं अनातुरःसप्तरात्रमवकीर्णिव्रतंचरेत्
अमला आपदित्यागेतु याज्ञवल्क्यः भैक्ष्यामिकार्यैत्यक्त्वातुसप्तरात्रमनातुरः कामावकीर्णइत्याभ्यांजुहु-
यादाहुतिद्वयं उपस्थानंततःकुर्यात्समासिचंत्यनेनतु मंत्रास्तु मिताक्षरायांज्ञेयाः सकृद्लोपेतुऋग्विधाने
मानस्तोकेजपेन्मंत्रंशतसंख्यंशिवालये अमिकार्यविनाभुक्तौनपापंब्रह्मचारिणः स्मृत्यर्थसारेतु संध्यामि-
कार्यलोपेस्नात्वाऽष्टसहस्रंजपः भिक्षालोपेष्टशतं अभ्यासेद्विगुणंपुनःसंस्कारश्चेत्युक्तं अपराकैसंवर्तः
यःसंध्यांचैवनोपास्तेअमिकार्ययथाविधि गायत्र्यष्टसहस्रंतुजपेत्स्नात्वासमाहितः ।

आतां ब्रह्मचारिधर्माचा लोप झाला असतां प्रायश्चित्त सांगतो—

मनु—“ब्रह्मचारी आतुर (रोगपीडित) नसून त्यानें मात दिवसपर्यंत भिक्षा मागितली नाही व अग्नींत समिधा दिली
माही तर अवकीर्णिव्रत सांगितलें आहे तें त्यानें करावें.” (हें प्रायश्चित्त, जाणतेपणानें भिक्षाचरणादि केलें नसतां समजावें).
अजाणतेपणानें व आपत्कालीं भिक्षादिकांचा त्याग असेल तर सांगतो याज्ञवल्क्य—“स्वस्थ (निरांगी) असतां जो ब्रह्म-
चारी भिक्षा मागणें, अमिकार्य हीं सप्तरात्रपर्यंत टाकील त्यानें ‘कामावकीर्णोऽस्यवकीर्णोऽसि कामकामाय स्वाहा’
‘कामावपन्नोऽस्यवपन्नोऽसि कामकामाय स्वाहा’ ह्या दोन मंत्रांनीं दोन आज्याहुतिहोम करून नंतर ‘समा सिंचंतु
मरुतः समिद्रः संवृहस्पतिः समायमभिः सचतां यशसा ब्रह्मवर्चसा.’ ह्या मंत्रेंकरून अश्व्युपस्थान करावें.” हे मंत्र मिताक्षरेंत
पहावे. एकवार लोप झाला असेल तर सांगतो ऋग्विधानांत—“ब्रह्मचारी अमिकार्य केल्यावांचून भोजन करील तर
त्यानें शिवालयांत ‘मानस्तोके०’ ह्या मंत्राचा शतवार जप करावा, तेणेंकरून ब्रह्मचारी निर्दोषी होतो.” स्मृत्यर्थसारांत
तर—संध्या व अमिकार्य यांचा लोप झाला असतां स्नान करून गायत्रीमंत्राचा अष्टसहस्र जप करावा. भिक्षालोप असतां
अष्टशत जप करावा. अभ्यास असतां (हेंच प्रायश्चित्त) द्विगुणित करून पुनःसंस्कार करावा, असें सांगितलें आहे.
अपराकांत संवर्त—“जो संध्या व अमिकार्य हीं यथाविधि करीत नाही त्यानें स्नान करून स्वस्थचित्तपणानें गायत्री-
मंत्राचा अष्टसहस्र जप करावा.”

अमिकार्यसंध्याद्वयेकार्य अमिकार्यततःकुर्यात्संध्ययोरुभयोरपीति याज्ञवल्क्योक्तेः सायमेववा सा-
यमेववामिमिधीतेत्येकेइति लौगाक्षिणोक्तेः पारिजातेवृद्धशातातपः ब्रह्मचारीतुयोश्रीयान्मधुमां-
संतथैवच प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रव्रतशेषसमापयेत् ऋग्विधाने तंवोधियाजपेन्मंत्रंलक्षचैवशिवालये ब्रह्म-
चारीस्वधर्मेषुन्यूनंचेत्यूनमेतितत् ।

अमिकार्य (अग्नींत समिधाहोम) सायंकालीं व प्रातःकालीं असें द्विवार करावें. कारण, “नंतर दोन संध्याकालींही
अमिकार्य करावें.” असें याज्ञवल्क्याचें वचन आहे. अथवा सायंकालीं मात्र अमिकार्य करावें. कारण, “अथवा सायंकालीं
मात्र अग्नींत समिधा द्यावी, असें कितीएक आचार्य सांगतात” असें लौगाक्षीचें वचन आहे. पारिजातांत वृद्ध-
शातातप—“जो ब्रह्मचारी मधु व मांस भक्षण करितो त्यानें प्राजापत्य कृच्छ्र प्रायश्चित्त करून शेष ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त
करावें.” ऋग्विधानांत—“ब्रह्मचारी हा स्वकीय धर्मांत न्यून असेल तर त्यानें शिवालयांत ‘तंवोधिया०’ ह्या मंत्राचा
एक लक्ष जप करावा, तेणेंकरून धर्माचा न्यूनपणा पूर्ण होतो.”

स्त्रीसंगेतुमनुः अवकीर्णीतुकाणेनगर्दभेनचतुष्पथे स्थालीपाकविधानेनयजेद्वैर्निकृतिनिशि विस्तरस्तु
मिताक्षरादौज्ञेयःउपवीतनाशेतुहारीतः मनोव्रतपतीभिश्चतस्रआज्याहुतीर्हुत्वापुनःप्रतीयात् तत्रैव
मरीचिः ब्रह्मसूत्रंविनाभुंक्तेविष्णूत्रेकुरुतेथवा गायत्र्यष्टसहस्रेणप्राणायामेनशुध्यति ।

स्त्रीसंग घडला असतां सांगतो.

मनु—“अवकीर्णी ब्रह्मचाऱ्यानें चवाठ्यावर स्थालीपाकविधानंकरून रात्रीं निकृति देवतेला उद्देशून काण अशा गर्दभ
पशूनें याग करावा.” याचा याहून विस्तर पहावयाचा असल्यास मिताक्षरादि ग्रंथांत पहावा. यशोपवीताचा नाश झाला

१ अवकीर्णिव्रत म्हणजे ब्रह्मचाऱ्यानें स्त्रीसंग केला असतां जें प्रायश्चित्त सांगितलें आहे, तें अवकीर्णिव्रत होय. २ ब्रह्मचार्य-
पकुर्वाणो नैष्ठिकश्चासौ योषितं गत्वावकीर्णी भवति । चरमधातोर्विसर्गोवकीर्णं तदस्यास्ति सोवकीर्णी ॥ ब्रह्मचारीचेच स्त्रियमुपेयादरण्ये
चतुष्पथे लैकिकेऽग्नौ रक्षोदेवतं गर्दभं पशुमालभेतेतिवसिष्ठस्मरणात् । पशोरभावे चरुणा यष्टव्यं । नैर्कतं वा चरं निर्वपेत्तस्य
ऋग्यजुर्वात्कामायस्वाहा कामकामायस्वाहा निरुल्लेखाहा रक्षोदेवताभ्यःस्वाहा इति वासिष्ठात् । ३. चरम धात्वा जो विसर्ग (पतन)
तें अवकीर्ण, तें ज्या ब्रह्मचाऱ्याला आहे तो अवकीर्णी, म्हणजे ज्या ब्रह्मचाऱ्यानें स्त्रीसंग केला तो अवकीर्णी म्हण्टा आहे.

असतां सांगतो ह्यरीत—“मनोज्योतिः०” ह्या एका मंत्रानें व ‘व्रतपतीभिः०’ ह्या तीन मंत्रांनीं असा वृताच्छेद आहूतींनीं होम करून पुनः दुसरें यज्ञोपवीतं यथाविधि समंत्रक धारण करावें.” यज्ञोपवीतावांचून भोजनादि केलें असतां तेथेंच गांगतो मरीचि—“यज्ञोपवीतावांचून जर भोजन किंवा मलमूत्रोत्सर्ग करील तर प्राणायाम व श्मशान गायत्री-जप करून शुद्ध होतो.”

मनुः भोःशब्दकीर्तयेदंतेस्वस्थनामोभिवादाने आयुष्मान्भवसौम्येतिवाच्योविप्रोभिवादाने अकारभ्या-
स्यनामोतेवाच्यःपूर्वाक्षरःश्रुतः शर्मन्नितिनकारात्पूर्वइत्यर्थः अभिवादनप्रत्यभिवादानादौविशेषःस्मृत्यर्थ-
सारे पारिजातादौज्ञेयः यमः ज्यायानपिकनीयांसंस्थायामभिवादयेत् विनाशिष्यंचपुत्रंचदौहित्रं-
दुहितुःपतिं ।

अभिवादन व प्रत्यभिवादन सांगतो.

मनु—“अभिवादन (प्रणाम) करतेसमयीं आपल्या नामाच्या अंती ‘भोः’ असा शब्द उच्चारवा. कारण, भोःशब्द हा नामाचें स्वरूप होय, असें ऋषींनीं सांगितलें आहे. म्हणजे—‘रामशर्माऽहंभोः अभिवादये’ असें शिष्यानें अभिवादन केल्यावर गुरूनें प्रत्यभिवादन (आशीर्वाद) देण्याचे समयीं ‘आयुष्मान् भव राम शर्मन्’ असा ब्राह्मणस आशीर्वाद द्यावा. नामाच्या अंतीचा व नकाराचे पूर्वीचा जो अकारादि स्वर तो श्रुत (त्रिमात्रात्मक) उच्चारवा.” म्हणजे ‘आयुष्मान्भव राम शर्मन्’ असा प्रयोग होतो. अभिवादन व प्रत्यभिवादन इत्यादींचा विशेष प्रकार स्मृत्यर्थसार, पारिजात इत्यादि ग्रंथांत पाहावा. यम—“ज्येष्ठानेंही संस्थासमयीं कनिष्ठाला (पितृव्यादिकांना) अभिवादन करावें; परंतु शिष्य, पुत्र, दौहित्र, जामाता यांना मात्र अभिवादन करूं नये.”

अथपुनरुपनयनं पारिजाते शातातपः लशुनंशृंगंजंजग्ध्वापलांडुंचतथाशुनः उध्रूमानुषके-
भाभ्ररासभीक्षीरभोजनात् उपायनंपुनःकुर्यात्तप्तकृच्छ्रंचरेन्मुहुरिति हेमाद्रौवृद्धमनुः जीवन्यविसमा-
गच्छेद्धृतकुंभेनिमज्जयच उद्धृत्यस्नापयित्वास्त्यजातकर्मादिकारयेत् तत्रैवपाप्मे प्रेतशय्याप्रतिप्राहीपुनःसंस्का-
रमर्हति चंद्रिकायांबौधायनः सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथाप्रत्यंतवासीनः अंगवंगकलिंगांभ्राह्मणत्वासंस्का-
रमर्हति हेमाद्रौप्रायश्चित्तकांडे वृद्धगौतमः खरमुध्रूंचमहिषमनुवाहमजंतथा वस्तमातृक्ष्णमुत्तजः-
क्रोशेचांद्रविनिर्दिशेत् मार्कंडेयः खरमारुह्यविप्रस्तुयोजनंयदिगच्छति तप्तकृच्छ्रत्रयंप्रोक्तंशरीरस्वविशोधनं
पुनर्जन्मप्रकुर्वीतघृतगर्भविधानतः मदनरत्नेमिताक्षरायांचस्नानमात्रमुक्तं मनुः अज्ञानात्प्रायश्चि-
प्मंत्रंसुरासंस्पृशेवच पुनःसंस्कारमर्हतित्रयोवर्णाद्विजातयः मिताक्षरायांपराशरः यःप्रत्यवसितो-
विप्रःप्रव्रज्यातोविनिर्गतः अनाशकनिवृत्तश्चगार्हस्थ्यंचेक्षिकीर्षति सचरेत्रीणिकृच्छ्राणित्रीणिचांद्रायणानिच
जातकर्मादिभिःसर्वैःसंस्कृतःशुद्धिमाप्नुयात् ।

यानंतर पुनरुपनयन सांगतो.

पारिजातांत शातातप—“लसूण, गाजर, पलांडु, हीं भक्षण केलीं असतां; आणि शुनी, उंट, मनुष्य स्त्री, हस्तिनी, घोडी, गाढवी यांचें दूध प्राशन केलें अमनां तप्तकृच्छ्रें प्रायश्चित्त व पुनः उपनयन करावें.” हेमाद्रौत वृद्धमनु—
“देशांतरीं गेलेला ‘मृत ज्ञाला’ अशी वार्ता ऐकून त्याची औष्वदेहिक क्रिया केली असतां तो जर पुनः जीवंत आला तर त्याला घृताच्या कुंभांत बुडवून नंतर बाहेर काढून स्नान घालून त्याचे जातकर्मापासून मौजीपर्यंत संस्कार करावे.” तेथेंच पद्मपुराणांत—“मृतशय्येचें दान घेणारा पुनःसंस्काराला पात्र होतो.” चंद्रिकेंत बौधायन—“(तीर्थयात्रा इत्यादि कारणावांचून) सिंधु, सौवीर, सौराष्ट्र, प्रत्यंतवासी (म्लेच्छदेश), अंग, वंग, कलिंग, ह्या देशांमध्ये गमन केलें असतां तो पुनःसंस्काराला योग्य होतो.” हेमाद्रौत प्रायश्चित्तकांडांत—वृद्ध गौतम—“गाढव, उंट, टोणगा, बैल, बोकड, एडका, यांच्यावर ब्राह्मण बसून एक कोशपर्यंत गमन करील तर त्याला चांद्रायण प्रायश्चित्त सांगावें.” मार्कंडेय—“ब्राह्मण गाढवावर बसून एक योजनपर्यंत जर जाईल तर त्याच्या शरीरशुद्धीसाठीं तीन तप्तकृच्छ्रें प्रायश्चित्त सांगावें. नंतर घृतकुंभांत बुडवून पुनः बाहेर काढून स्नान घालवें.” मदनरत्नांत व मिताक्षरेंत ज्ञान मात्र सांगितलें आहे. मनु—“अज्ञातें करून विद्या, मूत्र व सुरा लागलेला पदार्थ यांतून कोणतें एक भक्षण करतील तर ते तीनही वर्ण द्विजाति पुनःसंस्काराला पात्र होतील.” मिताक्षरेंत पराशर—“जो ब्राह्मण संन्यास घेऊन नंतर त्या आश्रमांतून निवृत्त होऊन गृहस्थाश्रममार्गांत

द्वितीया, मन्वादि, युगादि, आणि सोपपदा तिथि यांचेठायीं अनध्याय करावा." चातुर्मास्यद्वितीया सांगतो गर्ग—
 "आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन मासांतील कृष्णपक्षांच्या ज्या द्वितीया त्या चातुर्मास्यद्वितीया होत, असें विद्वान् सांगतात."
स्मृत्यर्थसारांतही—आषाढी पौर्णिमा, कार्तिकी पौर्णिमा, आणि फाल्गुनी पौर्णिमा ह्यांच्या जवळच्या द्वितीयांसाठी अनध्याय करावा, असें सांगितलें आहे. **मनु**—"उपाकर्म व उत्सर्जन यांचे ठायीं त्रिरात्र अनध्याय; अष्टका आणि ऋतूचे शेवटचे दिवस यांचेठायीं एक अहोरात्र अनध्याय करावा." **मनुच्या** मतीं उत्सर्गाचे ठायीं पक्षिणी किंवा अहोरात्र अनध्याय आहे. त्यासह ह्या तीन दिवस अनध्यायाचा विकल्प समजावा, असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. अष्टका म्ह० मार्गशीर्ष, पौष, माघ यांतील कृष्ण पक्षांतील सप्तमी, अष्टमी, आणि नवमी ह्या तीन तिथि जाणाव्या. कारण, "अष्टका तीन आहेत, म्हणून त्रिरात्र अनध्याय करावा. कितीएक आचार्य शेवटचे अष्टकेला अनध्याय करितात." असें **गौतमवचन** आहे. ऋतूचे शेवटचे दिवस म्हणजे सौरऋतूचे शेवटचे दिवस समजावे. कारण, चांद्रऋतूचे शेवटीं पर्वदिवस असल्यामुळे त्याचा निषेध सिद्धच आहे, असें **सर्वज्ञानारायण** सांगतो. हे नित्य अनध्याय समजावे.

नैमित्तिकानप्याह याज्ञवल्क्यः त्र्यहंप्रतेष्वनध्यायः शिष्यत्विर्गुरुबंधुषु उपाकर्मणिचोत्सर्गस्वशाखा श्रोत्रियेतथा संध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने समाप्यवेदंश्चुनिशमारण्यकमधीत्यच पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांराहुसूतके ऋतुसंधिपुभुक्त्वावाश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूपकैः कृतंतरे-त्त्वहोरात्रंशैक्रपातेतथोच्छ्रये ग्रहणेशुनिशोक्तावपिग्रस्तास्तेत्र्यहमित्युक्तंप्राक् ।

नैमित्तिक (निमित्तानें प्राप्त) ही अनध्याय सांगतो—याज्ञवल्क्य—"शिष्य, ऋत्विक्, गुरुबंधु, स्वशाखेचा श्रोत्रिय (वैदिक) यांतून कोणी गृत असतां तीन दिवस अनध्याय. उपाकर्म व उत्सर्जन यांचे ठायींही तीन दिवस अनध्याय. संध्यासमयीं मेघघर्जना, निर्घात (वीज पडणें), भूमिकंप, उल्कापात (आकाशांतून अभिरूप तारा पडणें), आहूत्तीची समाप्ति, अरणांचें अध्ययन, हीं झालीं असतां एक अहोरात्र अनध्याय करावा. पौर्णिमा, अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी, ग्रहणदिवस, ऋतुसंधि, उत्सवांतील भोजन, श्राद्धीय द्रव्याचा प्रतिग्रह, इतक्या ठिकाणीं एक अहोरात्र अनध्याय. पशु, वेष्टक, सुंगुस, कुत्रा, सर्प, मार्जार, उंदीर ह्यांतून एकांदें दोघां अध्ययन करणांरंचे मधून गेलें असतां एक अहोरात्र अनध्याय. इंद्रध्वज उतरविला किंवा चढविला असतां एक अहोरात्र अनध्याय." ग्रहणाचे दिवशीं अहोरात्र अनध्याय असें जरी वर सांगितलें तथापि ग्रस्तास्त असतां त्रिरात्र अनध्याय, असें पूर्वी सांगितलें आहे.

स्मृत्यर्थसारेतुरात्रौतुग्रहेतिस्रोरात्रीः दिवाचत्र्यहमित्युक्तं ऋतुःसौरः भुक्तेत्युत्सवविषयं ऊर्ध्वभोज-नादुत्सवेइति गौतमोक्तेः श्राद्धिकंमहैकोद्विष्टभिन्नं तत्रतुत्र्यहमितिमनुः **स्मृत्यर्थसारेचैवं** यत्तु पश्चाद्यंतरायेत्र्यहमुपवासोविप्रवासश्चेतिगौतमोक्तंतत्प्रथमाध्ययने ।

स्मृत्यर्थसारांत तर—रात्रीं ग्रहण असतां तीन रात्रि आणि दिवसा ग्रहण असतां तीन दिवस अनध्याय, असें सांगितलें आहे. वरील याज्ञवल्क्यवचनांत ऋतुसंधि सांगितले, त्या ठिकाणीं ऋतु म्हणजे सौरऋतु घ्यावा. 'भोजन करून' असें जें सांगितलें तें विवाहादि उत्सवांतील भोजन समजावें. कारण, "उत्सवाचे ठायीं भोजनोत्तर अहोरात्र अनध्याय" असें **गौतमाचें** वचन आहे. 'श्राद्धीय द्रव्याचा प्रतिग्रह' असें जें वर सांगितलें तें महैकोद्विष्टभिन्न श्राद्धाविषयीं समजावें. कारण, महैकोद्विष्ट श्राद्धाचा प्रतिग्रह असतां तीन दिवस अनध्याय, असें **मनु** सांगतो. **स्मृत्यर्थसारांतही** असेंच सांगितलें आहे. **आतां जें**—"पशु इत्यादिकांनीं विघ्न असतां तीन दिवस उपवास करून तेथून निघून जावें" असें **गौतमानें** सांगितलें, तें प्रथमाध्ययनाविषयीं समजावें.

याज्ञवल्क्यः श्रक्रोष्टृगर्दभोल्कसामबाणार्तनिःस्वने अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके देशेषुचा-वात्मनिचविद्युत्स्तनितसंप्लवे भुक्त्वाद्रौपाणिंरभोतरधरात्रेतिमारुते पांसुप्रवर्षेदिग्दाहेसंध्यानीहारभीतिषु धावतःपूतिगंधेचशिष्टेचगृहमागते खरोष्ट्रयानहस्यश्चनौवृक्षगिरिरोहणे सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिका-न्विदुः बाणोवंशः शततंतुर्वीणेतिह्रदत्तः अमेध्याःसूतिकादयः स्तनितगर्जः वर्षातोन्त्यत्रगर्जवृष्टिविद्युतां-यौगपद्येआकालिकः वर्षासुतात्कालिक इतिनारायणः संध्यागर्जेतुहारीतः सायंसंध्यास्तनितेरात्रिः

१ यत्तुध्यहनकीर्तयेद्भस्मराक्षोराहोश्चसूतकश्चि तद्वस्तास्तविषयं ॥ २ मासिभाद्रपदेराजन् शक्रयष्टिनिपातनं । पौर्णमास्यांतुर्कतव्यमिति शंसः । गार्ग्यस्तु द्वादश्यांतुसितेपक्षेमासिमोष्टपदेतथा ॥ शक्रमुत्थापयेद्राजाविश्वश्रवणवासवे ॥ ३ इंद्रध्वजोत्थापनं भाद्रपदशुद्धद्वादशीस सांगितलें आहे. ४ प्रतिगृष्ण द्विजो विद्वानेकोद्विष्टस् केतनं ॥ त्र्यहनकीर्तयेद्भस्मराक्षोराहोश्चसूतकश्चि एकोद्विष्टस् मनुक्तेः ॥ ५ सामवेदश्रवणकालेवेदांतरानध्यायः । सामध्वनाध्वयजुषीनाधीयीतकदाचनेतिमनुवचनात् ॥

प्रातःसंध्यास्तनितेहोरात्रं रात्रौविशुलपररात्र्यवधिः विद्युतिनक्तं चापररात्रादिति गौतमोक्तेः तृतीयदिनां-
शोचरंतुविद्युतिसर्वरात्रमित्याहसएव त्रिभागादिप्रवृत्तौसर्वमिति अर्धरात्रे मध्ययामद्वयमिति विज्ञानेश्वरः
मध्यदण्डचतुष्टयइति निर्णयामृते मनुः नविवादेन कलहेन सेनायानसंगरे नभुक्तमात्रेनाजीर्णेन वसित्वान-
सूतके रुधिरेश्चुतेगात्राच्छ्लेणचपरिश्रुते कौर्मे श्लेष्मातकस्यच्छायायांशाल्मलेर्मधुकस्यच कदाचिदपिना-
ध्येयंकोविदारकपित्थयोः मनुः शयानःप्रौढपादश्चक्रुत्वाचैवावसक्थिकाम् नापीयीतामिपंजग्ध्वासूतकात्रा-
शमेवच प्रौढपादःपादोपरिपाददाता आसनारूढपादोवेतिहरदत्तः सोपपदास्वपिप्रागुक्तं स्मृत्यर्थसारे
श्रवणद्वादशीमहाभरणयोः प्रेतद्वितीयायांरथसप्रम्यामाकाशेशवदर्शनेचाहोरात्रं असपिडेगुरौमृतेत्रिरात्रं
आचार्यंउपाध्यायेचपक्षिणी आचार्यंभार्यापुत्रशिष्येष्वहोरात्रम् अष्ट्युत्पातेनगोविप्रमृत्तौत्रिरात्रम् अयनेविषु-
वेचपक्षिणी अकालवृष्टौच आरण्यमार्जारसर्पनकुलपंचनखादेरंतरागमनेत्रिरात्रम् आरण्यश्वस्तृगालादिवा-
नररजकादौद्वादशरात्रं खरवराहोष्ट्रचांडालसूतकोदक्याशवादौमासम् गोगवयाजानास्तिकादौत्रिमासम्
शशमेपश्वपाकादौषमासं गजगंडसारससिंहव्याघ्रमहापापिकृतघ्नादावब्दमनध्यायः शोभनदिनेचानध्यायः
विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिध्वासमाप्तेःसगोत्राणामनध्यायः उदयेस्तमयेवापिमुहूर्तत्रयगामियन् तद्दिनंतद्दहोरात्रं-
चानध्यायविदोविदुः केचिदाहुःकचिदेशेयावत्तद्दिननाडिकाः तावदेवत्वनध्यायोतन्मिश्रेदिनांतरे ।

तात्कालिक (तं निमित्त आह तौपर्यन्त) अनध्याय सांगतो.

याज्ञवल्क्य—“कुत्रा, कोल्हा, गाडव, घुवड, रामवेद, वंशवाद्य, आर्त (दुःखित) प्राणी यांचा शब्द ऐकूं येत असतां तात्कालिक अनध्याय. अपवित्र (स्तिकादिक), शव, शूद्र, अंत्यज, रमशान, पतित हे संनिध अगतां तात्कालिक अनध्याय. अपवित्रप्रदेश, अपवित्र देह, वीज चमकणें, भेषगर्जना, हीं अगतां तात्कालिक अनध्याय. भोजन करून हात ओले आहेत तौपर्यंत अध्ययन करूं नये. जलामध्ये, मथ्यरात्रीं, अति वाग मुदणें, धूळ उडून असतां, दिशा पेटल्या असतां, दोन संध्याकालीं, धुकें असतां, व भीति अगतां तात्कालिक अनध्याय. पांवन अगतां, दुर्गंध आला अगतां तात्कालिक अनध्याय. शिष्ट म्हणजे श्रोत्रियादिक महाविद्वान् आला अगतां तात्कालिक अनध्याय. गाडव, उंट, रथादियान, हत्ती, घोडा, नौका, वृक्ष, पर्वत यांच्यावर आरोहण केलें अगतां तात्कालिक अनध्याय. याप्रमाणें हे सदृशीस तात्कालिक अनध्याय विद्वानांनीं सांगितले आहेत.” या वचनांतील ‘वाण’ याचा अर्थ—वंश (वेळ) होय. शंभर तारांची वीणा, असें हरदत्त सांगतो. स्तनित म्हणजे भेषगर्जना. वर्षाकालावांचून अन्यकालीं गर्जना, वृष्टि, वीज हीं एकदस उत्पन्न झालीं असतां आकालिक अनध्याय. आकालिक म्हणजे ज्या वेळीं अनध्यायाचें निमित्त (गर्जनादिक) उत्पन्न झालें असेल त्यावेळेपासून दुसऱ्या दिवशीं त्यावेळेपर्यंत जो अनध्याय तो आकालिक अनध्याय होय. वर्षाकालीं गर्जना, वृष्टि हीं उत्पन्न असतां तात्कालिक (तीं आहेत तौपर्यंत) अनध्याय, असें नारायण सांगतो. संध्याकालीं गर्जना असेल तर सांगतो हारीत—“सार्धसंध्येचै ठायीं गर्जना झाली असतां रात्रीं अनध्याय. प्रातःसंध्येचै ठायीं गर्जना झाली असतां तो दिवस आणि ती रात्र अनध्याय.” रात्रीं वीज उत्पन्न असतां दुसरी रात्र येईपर्यंत अनध्याय. कारण, “रात्रीं वीज उत्पन्न असतां दुसरी रात्र येईपर्यंत अनध्याय” असें गौतम-
माचें वचन आहे. दिवसाच्या तिसऱ्या भागानंतर वीज उत्पन्न झाली असतां सारी रात्र अनध्याय, असें तोच (गौतम) सांगतो—“दिवसाच्या तिसऱ्या भागापासून पुढें वीज प्रवृत्त झाली असतां सारी रात्र अनध्याय.” अर्धरात्रीं वीज प्रवृत्त झाली असतां मधले दोन प्रहर अनध्याय, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. मधल्या चार घटिका अनध्याय, असें निर्णया-
मृतांत सांगितलें आहे. मनु—“विवाद चालला असतां, कलह चालला असतां, सेनेमध्ये, युद्धांत, भोजनोत्तर, त्या वेळीं अजीर्ण झालें असतां, वसन झालें असतां, सूतकांत, शरीरापासून रक्तस्राव झाला असतां, शस्त्रां क्षत पडलें असतां, अध्ययन करूं नये.” **कूर्मपुराणांत**—“श्लेष्मातक (भोंकर), सांवरी, मधुक (मोहाचा वृक्ष), कांचनवृक्ष, कंवठीचा वृक्ष यांच्या छायेला वसून अध्ययन करूं नये.” मनु—“शयान (निजलेला), पायांवर पाय चढवून बसलेला, वलादिकेंकरून जाणु बंधन करून बसलेला, अशा अवस्थेंत अध्ययन करूं नये. मांस व सूतकाच भक्षण करून वेदाध्ययन करूं नये.” प्रौढपाद म्हणजे पायांवर पाय चढविणारा अथवा आसनावर पाय ठेवणारा असें हरदत्त सांगतो. सोपपदा-
तिथींचेठायींही अनध्याय पूर्वी सांगितला आहे. **स्मृत्यर्थसारांत**—श्रवणद्वादशी, महाभरणी, यमद्वितीया, रथसप्तमी, यांचेठायीं अहोरात्र अनध्याय. आकाशांत शवाचें दर्शन असतांही अहोरात्र अनध्याय. असपिंड गुरु मृत असतां त्रिरात्र अनध्याय. आचार्य व उपाध्याय मृत असतां पक्षिणी अनध्याय. आचार्यांची भार्या, पुत्र मृत असतां अहोरात्र अनध्याय. शिष्य मृत असतांही अहोरात्र अनध्याय. अग्नीचा उत्पात होऊन गाई, ब्राह्मण मृत असतां त्रिरात्र अनध्याय. अयन-

संक्रांति, विषुवसंक्रांति, अकालवृष्टि यांचे ठायीं पक्षिणी अनध्याय. रानमांजर, सर्प, मुंगुस, पंचनखांचे प्राणी वगैरे, हे दोघांच्या मधून गेले असता तीन दिवस अनध्याय. अरण्यांतील कुत्रा, कोल्हा वगैरे, वानर, रजक इत्यादिक दोघांच्या मधून गेले असता बारा दिवस अनध्याय. गर्दभ, वराह, उंट, चांडाल, सूतिका, रजस्राल, भेत इत्यादिक दोघांच्या मधून गेले असता एक मासपर्यंत अनध्याय. गाई, गवय, शेळी, नास्तिक इत्यादिक दोघांच्या मधून गेले असता तीन महिने अनध्याय. ससा, मेंढा, श्वपाक इत्यादिक दोघांच्या मधून गेले असता सहा मास अनध्याय. हत्ती, गेंडा, सारस, सिंह, व्याघ्र, महापातकी, कृतघ्न इत्यादिक दोघांच्या मधून गेले असता एक वर्षपर्यंत अनध्याय. शुभदिवशीं अनध्याय. विवाह, देवा-दिकांची प्रतिष्ठा, व्रतादिकांचीं उद्यापनादि कार्ये यांचेठायीं समाप्तीपर्यंत सगोत्रांना अनध्याय. “जी अनध्यायतिथि सूर्याच्या उदयकाली व अस्तकाली त्रिमुहूर्तव्यापिनी असेल त्या दिवशीं तो अहोरात्र अनध्याय आहे, असें अनध्यायवेत्ते सांगतात.” “कचित् देशांत अनध्यायदिवसाच्या जितक्या घटिका असतील तोंपर्यंतच अनध्याय होतो. अनध्यायदिवसानें मिश्रित स्वाध्यायदिवशीं अनध्याय होत नाहीं असें केचित् सांगतात.”

प्रदोषत्वाह प्रजापतिः पृथ्वीचद्वादशीचैव अर्धरात्रौ नानाडिका प्रदोषेन त्वधीयीत तृतीयानवनाडिका **निर्णयामृतगर्गः** रात्रौ यामद्वयादर्वाकुसप्तमीवात्रयोदशी प्रदोषः सतुविज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः रात्रौ नवसुनाडीषु चतुर्थ्यादिदृश्यते प्रदोषः सतुविज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः **कौर्म** अनध्यायस्तु नांगे पुनेतिहासपुराणयोः नधर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येता न विजयेत् **शौनकः** नित्येजपेचकाम्येचक्रतौ पारायणेपिच नानैध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे प्राहणे स्मृतः इत्यनध्यायाः ।

प्रदोष सांगतो **प्रजापतिः**—“पृथ्वी, आणि द्वादशी अर्धरात्रीच्या आंत संपली असता प्रदोष. आणि तृतीया रात्रीं नऊ घटिकांचे आंत संपली असता प्रदोष. त्या प्रदोषरात्रीं अध्ययन करूं नये.” **निर्णयामृतांत गर्गः**—“सप्तमी किंवा त्रयोदशी तिथि रात्रीं दोन ग्रहणांचे आंत असली म्हणजे तो प्रदोष समजावा. तो वेदाध्ययनाला निघ आहे. रात्रीं नऊ घटिकांचे आंत जर चतुर्थां असेल तर तो प्रदोष समजावा. तो सर्व अध्ययनाला निघ आहे.” **कौर्म**—“वेदांचीं अंगें, इतिहास (भारतादिक), पुराण, धर्मशास्त्रें आणि इतर शास्त्रें यांच्या अध्ययनाविषयीं अनध्याय करूं नये. हीं वेदांगादिक अमावास्या पौर्णिमा पक्षांचे ठायीं वर्ज्य करावीं.” **शौनकः**—“नित्यकर्म, जप, काम्यकर्म, यज्ञकर्म, पारायण, यांविषयीं वेद म्हणणें व वेद सांगणें असतां अनध्याय नाही.”

॥ इति अनध्यायाः ॥

अथ महानाड्यादि व्रतानि श्रीधरः तिथिनक्षत्रवारांशवर्गोदयनिरीक्षणं चौलवत्सर्वमाख्यातंस-
गोदानव्रतेषु च एषां लोपे **शौनकः** व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनचरेत् अकृत्वाभ्यस्यते येन स पापी वि-
धिघातकः प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वा ज्याहुतीः शतं हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह **शौनकः स्मृत्यर्थ-
सारेतु** त्रीनपटद्वादशवाकृच्छ्रान्कृत्वा पुनर्व्रतचरेदित्युक्तं ।

आतां महानाड्यादि व्रतं सांगतो—

श्रीधरः—“महानाडीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत, आणि गोदान हीं चार व्रतें कर्मां जन्मापासून तेराव्या, चवदाव्या, पंधराव्या आणि सोळाव्या वर्षी उत्तरायणांत चौलास सांगितलेली तिथि, नक्षत्र, वार, अंश, वर्ग, लग्न यांची शुद्धि पाहून करावी, असें सांगितलें आहे.” या व्रतांचा लोप झाला असतां सांगतो **शौनकः**—“ब्रह्मचाऱ्यानें यथाविधि व्रतें करून आपल्या शास्त्रेचें अध्ययन करावें. व्रतें केल्यावांचून जो वेदाचा अभ्यास करितो तो विधिघातक असल्यामुळें पापी समजावा. प्रत्येक व्रताच्या लोपनिमित्तक एक एक कृच्छ्र प्रायश्चित्त करून गायत्रीमंत्रानें शंभर आज्याहुति देऊन ज्ञान (समावर्तन) करावें, असें शौनक सांगतो.” **स्मृत्यर्थसारांत** तर—तीन, सहा किंवा बारा कृच्छ्र करून पुनः व्रत करावें, असें सांगितलें आहे.

१. **बृहन्मनुः**—चतुर्थ्याचत्रयोदश्यासप्तम्यामर्धरात्रतः । अर्वाहनाध्ययनं कुर्याद्यदीच्छेत्तस्य धारणं ॥ स्मृत्यर्थे सारे—चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तुनवनाडीपुदरुने । नाध्येयं पूर्वात्रे स्यात्सप्तमीचत्रयोदशी ॥ अर्धरात्रापुराचे स्यात्त्राध्येयं पूर्वात्रात्रके ॥ २ अनध्यायस्तिवति । चतुर्दश्य-
ष्टमीपर्वप्रतिपदजितेषु च । वेदांगन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥ ३ नित्येनैमित्तिके काम्ये व्रते यज्ञे क्रतौ तथा ॥ प्रवृत्ते काम्यकार्ये च-
नानध्यायाः स्मृतास्तथा ॥ देवताचेन मंत्राणां नानध्यायः कदाचन ॥ **शौनकः**—नानध्याये जपे द्वे दान् रुद्राश्चैव विशेषतः ॥ पौरुषपाव-
मानं च गृहीतनियमावृते ॥ नारदः—घृतं पुस्तकं शुश्रूषा नटाकसक्तिरेव च ॥ स्त्रियस्तं द्राचतिद्राच विद्याविज्ञकाराणि षट् ॥ ४ घोटे-यजुर्वे-
दिनां प्राजापत्यैराश्विनसोम्यानि । सामवेदिनां केशांतगोदानमहानाडीज्येष्ठसामव्रतानि । अथर्वणां गोदानसावित्रीव्रतव्रततविसर्जन-
व्रतानि ॥ आश्वलायनः—प्रथमं स्यान्महानाडीद्वितीयं स्यान्महाव्रतं ॥ तृतीयं स्यादुपनिषद्व्रतं गोदानाख्यंततः परमिति ॥

अथसमावर्तनं सुरेश्वरः भौमभानुजयोर्वारिरेक्षेत्रेचव्रतोदिते ताराचंद्रविशुद्धौचस्यात्समावर्तन-
क्रिया बौधायनसूत्रे तु रोहिण्यांतिष्येउत्तरयोः फाल्गुन्योर्हस्तेचित्रायामैत्रेविशाखायांवास्वायादित्युक्तं
वसिष्ठः स्नानमध्याह्नकालेतुहोरायांकारयेच्छुभं पूर्वाह्नेतदभावेतुक्रुयात्स्नानंयथाविधि सर्वश्रुतबोविवाह-
स्येतिसूत्रात् यदादक्षिणायनेविवाहस्तदासमावर्तनमपितत्रैवअन्यथोदगयनेसमावर्तनेअनाश्रमीनतिष्ठेतेति-
विरोधःस्यादित्युक्तं सुदर्शनभाष्ये एतच्चब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तकृत्वाकार्यं तदाह बौधायनः
शौचसंध्यादर्भभिक्षाभिकार्यराहित्यकौपीनोपवीतमेखलादंडाजिनाधारणदिवास्वापच्छत्रपादुकास्त्रग्विधारणां-
गोद्वर्तनानुलेपनंजनयूतनृत्यगीतवाद्याभिरतौब्रह्मचारीकृच्छ्रत्रयंचरेत् महाव्याहृतिहोमंपाहित्रयोदशहोमंच-
कुर्यात् समावर्तनोत्तरपूर्वमृतानां त्रिरात्रमाशौचंकार्यम् आदिष्टीनोदकं कुर्यादाव्रतस्यसमापनात् समाप्तेतूद-
कंदत्वात्रिरात्रमशुचिर्भवेदिति मनुः आदिष्टीब्रह्मचारीति विज्ञानेश्वरः ब्रह्मचर्येयदिकश्चिन्नमृतस्तदा-
त्रिरात्रमध्येविवाहः कार्योऽन्यथानेतिसिध्यति जननेतुमत्यपिनत्रिरात्रम् तत्रातिक्रान्ताशौचाभावादुदकंदत्वे-
तिवचनाच्चेतिदिक् तत्रापिविकल्पः पितर्यपिमृतेनैपादोपोभवतिकर्हिचिन् आशौचं कर्मणोतेत्याश्रयहंवाब्रह्म-
चारिणामिति छंदोगपरिशिष्टात् ।

आतां समावर्तन सांगतो—

सुरेश्वर—“भौम आणि जनिवारी, उपनयनोक्त नत्रावर, तारावळ आणि चंद्रवळ अगतां समावर्तन संस्कार करावा.”
बौधायनसूत्रांत तर—रोहिणी, पुष्य, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखा, या नक्षत्रांवर समावर्तन करावें, असें
सांगितलें आहे. वसिष्ठ—“मध्याह्नकात् शुभ होरेवर समावर्तन करावें. त्याच्या अभावीं पूर्वाह्नीं यथाविधि समावर्तन
करावें.” “विवाहाला गारे ऋतु सांगितले आहेन” या सूत्रावरून जेव्हा दक्षिणायनांत विवाह करावयाचा असेल तेव्हा
समावर्तनही दक्षिणायनांतच होतें. अन्यथा ऋणजे दक्षिणायनांत समावर्तन होत नगल्यामुळे दक्षिणायनांत विवाह
करावयाचा असतां त्याच्या पूर्वी उदगयनांत समावर्तन केलें तर ‘द्विजानं आश्रमावांचून एक दिवसही राहूं नये’ या वचनाचा
विरोध येईल, असें सुदर्शनभाष्यांत सांगितलें आहे हें समावर्तन ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्त करून करावें. तें सांगतो
बौधायन—“ब्रह्मचार्याम शौच, संया, दर्भग्रहण, निधा आणि अभिकार्य हीं झालीं नाहीत; कौपीन, यज्ञोपवीत, मेखला,
दंड, अजिन हीं धारण केली नाहीत. दिवसा निद्रा, छर्वा, जोरा, सक्त, ही धारण केली; अंगाला उद्वर्तन व उडी लावली;
ओळ्यांत काजळ घातलें; घृत, नर्तन, गायन, वाद्यवादन यांविषयीं आगत झाला अगतां ब्रह्मचार्यानें प्रायश्चित्तार्थ तीन
कृच्छ्र करावें. आणि महाव्याहृति होम (भग्नये च पृथियै० इत्यादि) व ‘पाहिनी अग्न एतमे०’ इत्यादि होम करावा.
ब्रह्मचार्याचें समावर्तन झाल्यानंतर, पूर्वी ब्रह्मचर्यावस्थेंत मृत झालेल्या सपिंडांचें त्रिरात्र आशौच करावें. कारण, “ब्रह्म-
चर्यव्रत समाप्त होईपर्यंत मृत झालेल्या सपिंडांम ब्रह्मचार्यानें उदक देऊं नये. व्रत समाप्त झाल्यावर पूर्वी मृत सपिंडांस
उदक देऊन तीन दिवस आशौच करावें” असें मनुचें वचन आहे. या वचनांतील ‘आदिष्टी’ या पदाचा अर्थ ब्रह्मचारी,
असें विज्ञानेश्वर सांगतो. ब्रह्मचर्यावस्थेंत जर सपिंडांतील कौपीनी मृत नसेल तर तीन दिवसांचे आंत विवाह करण्यास
हरकत नाही. मृत असेल तर तीन दिवसांत विवाह होत नाही, असें सिद्ध होतें. ब्रह्मचर्यावस्थेंत जननाशौच उत्पन्न असलें
तरी त्रिरात्र आशौच नाही. कारण, त्या जननाशौचांत अतिक्रान्ताशौच नाही. आणि बरील मनुवचनांत ‘उदक देऊन त्रिरात्र
आशौच करावें.’ असें सांगितल्यावरून जननाशौचांत उदकदान नगल्यामुळे आशौचही नाही. ही दिशा दाखविली आहे.
समावर्तनोत्तर पूर्वी मृत झालेल्या सपिंडांचें त्रिरात्र आशौच सांगितलें त्याचाही विकल्प आहे. कारण, “पिता मृत झाला
तरी ब्रह्मचार्याना कधीही दोष (आशौच) नाही. अथवा ब्रह्मचार्यांना व्रताच्या अंती तीन दिवस आशौच आहे.” असें
छंदोगपरिशिष्टाचें वचन आहे.

स्नानकव्रतान्याहव्यासः यज्ञोपवीतद्विनयंसोदकंचकमंडलुम्. छत्रंचोष्णीपममलंपादुकेचाप्युपा-
नहौ रौक्मेचकुंडलेवेदःकृत्तकेशनखःशुचिः वेदोदर्भवटुः मनुः उपानहौचवासश्चधृतमन्येनेधारयेत् उप-
वीतमलंकारंस्नजंकरकमेवच अन्यान्यपिबहुचगृह्यस्मृत्यादिभ्योज्ञेयानि ।

आतां स्नातकाचीं (समावर्तन केलेल्याचीं) व्रतें सांगतो.

व्यास—“दोन यज्ञोपवीतें, उदक भरलेला कमंडलु, छत्री, पागोटें, खडावी, चर्मोजोडा, सोन्याचीं कुंडलें, दर्भमुष्टि, केश व नखें काढणें, शुचिर्भूतपणा, हीं स्नातकांनं नित्य धारण करावीं.” **मनु**—“उपानह (चर्मोजोडा), वस्त्र, यज्ञोपवीत, अलंकार, सक् आणि कमंडलु, हीं दुसऱ्यानें वापरलेलीं स्नातकांनं वापरूं नयेत.” इतरही व्रतें बह्वचर्यसूत्र आणि स्मृति इत्यादिकांतून जाणावीं.

अथछुरिकाबंधः ज्योतिर्निबंधेनारदः छुरिकाबंधनबंधेनृपाणांप्राकरग्रहान् विवाहोक्तेषुमा-
सेषुशुक्लपक्षेप्यनस्तगे जीवेशुकेचभूपुत्रेचंद्रताराबलान्विते मौजीबंधक्षतिथिषुकुजवर्जितवासरे संग्रहे शूद्रा-
णांराजपुत्राणांमौज्यभावेऽस्त्रबंधनं मौजीबंधोक्ततिथ्यादौकार्यंभौमदिनविना ।

आतां छुरिकाबंध सांगतो—

ज्योतिर्निबंधांत नारद—“राजांना (क्षत्रियांना) विवाहाच्या पूर्वी छुरिकाबंधन सांगतो—विवाहास उक्त मासांत शुक्लपक्षांत गुरु, शुक्र, भौम यांचें अस्त नसतां, चंद्रबळ व ताराबळ असतां, मौजीबंधाम सांगितलेल्या नक्षत्रांवर व तिथींवर, भौमवर्जितवारी छुरिकाबंधन करावें.” **संग्रहांत**—“शुद्ध आणि राजपुत्र यांचें मौजीबंधन नसल्यामुळें मौजीबंधास सांगितलेल्या तिथिनक्षत्रादिकांवर, भौमवार वर्ज्य करून इतर वारी अस्त्रबंधन (छुरिकाबंधन) करावें.”

अथविवाहः याज्ञवल्क्यः अविष्णुतब्रह्मचर्योलक्षण्यांस्त्रियमुद्रहेतु अनन्यपूर्विकांतामसपिंडाय-
वीयसीम् आरोगिणींभ्रातृमतीमसमानार्पणोत्रजाम् लक्षण्यांबाह्याभ्यंतरलक्षणेयुक्ताम् बाह्यानि काशीखं-
डादौप्रसिद्धानि आंतराण्याश्वलायनोक्तान्यष्टौपिंडान्कृत्वेत्यादीनि **मनुः** असपिंडाचयामातुरस
गोत्राचयापितुः साप्रशस्ताद्विजातीनांदारकर्मणिमैथुने दत्रिममातुर्गृहीताअसपिंडासगोत्रा तत्कुलनिवृत्तये-
षकारान्मातुरसगोत्रा दत्तस्यपितुर्जनककुलेपितुरसगोत्रापिसपिंडत्वान्निपिद्वेत्यन्यश्चकारः असपिंडासपिंड्य
रहिताम् तच्चैकशरीरावयवान्वयेनभवति एकस्यहिपितुर्मातुर्वाशरीरस्यावयवाःपुत्रपौत्रादिपुसाक्षात्परंपरया-
बाशुक्रशोणितादिरूपेणानुस्यूताः यद्यपिपद्भ्याःपत्यासहभ्रातृपत्नीनांचपरस्परंनैतत्संभवति तथापिआधारत्वे-
नैकशरीरावयवान्वयोस्त्येव अस्थिभिरस्थिनीतिमंत्रलिंगात् एकस्यहिपितृशरीरस्यावयवाःपुत्रद्वारातास्वा-
हिताइतिमदनरत्नपारिजातविज्ञानेश्वरादयः वाचस्पतिशुद्धिविवेकशुलपाण्यादि गौड-
मैथिलादयोप्येवम् श्रुतावपि एतत्पाट्कौशिकशरीरं त्रीणिपितृतस्त्रीणिमातृतोऽस्थिस्नायुमज्जनःपितृतस्त्व-
ज्ज्ञांसरुधिराणिमातृतइति प्रजामनुप्रजायसेइतिच ।

आतां विवाह सांगतो—

याज्ञवल्क्य—“ज्याचें ब्रह्मचर्य अस्खलित आहे अशा पुरुषांनं समावर्तन केल्यावर चांगल्या लक्षणांनीं युक्त अशी स्त्री वरावी. ती स्त्री कशी असावी ती सांगतो—जिला पूर्वी कोणी वरलेली नाहीं अशी, आपल्याला आवडणारी, आपल्या सपिंडांतील नसलेली, वयानें व शरीरांनं धाकटी, रोगरहित, जीचा भ्राता आहे अशी, जिचा प्रवर व गोत्र पतीच्या प्रवर व गोत्राहून भिन्न आहेत अशा प्रकारची स्त्री वरावी.” येथें लक्षणांनीं युक्त स्त्री वरावी, असें सांगितलें, तीं लक्षणे दोत प्रकारचीं—बाह्य लक्षणे आणि आभ्यंतर लक्षणे. बाह्य लक्षणे (शारीर लक्षणे) काशीखंडादिकांत प्रसिद्ध आहेत. आभ्यं-

१ गृह्यसूत्रोक्त व्रतें आणि स्मृत्युक्त व्रतें धारण करावीं. तीं दोन्ही धारण करण्यास अशक्त असेल त्यानें गृह्यसूत्रोक्तच करावीं. तीं गृह्यसूत्रोक्त व्रतें येणेंप्रमाणें—निमित्तावांचून रात्रीं स्नान करणार नाहीं. नम्र असून स्नान करणार नाहीं. नम्र झिळ्या मैथुनवर्क्य-
काली पाहणार नाहीं. पजेन्य पडत असतां धांवणार नाहीं. विहिरींत उतरणार नाहीं. वृक्षावर चढणार नाहीं. बाहूंनीं नदींत पोहणार नाहीं. प्राणसंशय उत्पन्न होणारें कार्य करणार नाहीं. हीं सूत्रोक्त व्रतें समजावीं. स्मृत्युक्त व्रतें धर्मेसिधुसारांत सांगितलीं आहेत, तीं येथें पाहानीं. २ काशीखंड-कूर्मपुष्पाकृति, हत्तीच्या स्कंधासारखा, असा गुप्त अवयव (योनि) शुभ होय. वामोन्नत असेल तर कन्या देणारा, व दक्षिणोन्नत असेल तर पुत्र देणारा होय. आणि आखुरोमा, गुदमणि, सुफिष्ट, संवत, पृथु, तुंग, कमलवर्णसदृश, अश्व-
स्थपर्णसदृश, हरिणाच्या खुरासारखा, इत्यादि शुभ होय. वाग्भट स्त्री-पुरुषांचीं लक्षणे सांगतो—अंगावर फार रोम किंवा सर्वथा रोमरहित, काळा वर्ण किंवा अति पांढरा, अतिस्थूल किंवा अति कृश, उंच किंवा न्हस हीं लक्षणे वाईट समजावीं. क्षिप्र, मृदु, सूक्ष्म, जनेकांचीं मूले एकत्र नसलेले असे केश चांगले आहेत. उन्नत असें अर्धचंद्राकार ललाट शुभ. कान मागच्या बाजूस मोठे

तर लक्षणें म्हणजे शरीरावरून न समजणारी पुढील शुभाशुभसूचक चिह्ने आश्वलायनांनीं सूत्रांत सांगितलीं तीं अशीं—
चट्टकडे शेत असलेल्या मधल्या क्षेत्रांतील मातीचा एक पिंड, गोठ्यांतील मातीचा एक पिंड, अग्निहोत्राच्या शाळेंतील भस्माचा एक पिंड, पाणी न आटणाऱ्या डोहांतील मातीचा एक पिंड, जुगार खेळण्याच्या जाग्यावरील मातीचा एक पिंड, चवाठ्यावरील मातीचा एक पिंड, गवत व शेत न रुजणाऱ्या जागेच्या मातीचा एक पिंड, आणि स्मशानांतील मातीचा एक पिंड, असे आठ पिंड (गोळे) करून “ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितं ॥ यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद्दृश्यतां” या मंत्रेंकरून पिंडांचें अभिमंत्रण करून, कन्येला सांगावें की, ‘या आठ पिंडांतून एक पिंड तूं वे.’ त्या कन्येनें क्षेत्राच्या मातीचा पिंड घेतला तर तिची प्रजा अन्नवती (अन्नसमृद्ध) होईल असें समजावें. गोठ्यांतील मातीचा घेईल तर गाई, महिषी इत्यादि पशूंनीं समृद्ध होईल. अग्निहोत्राच्या भस्माचा घेईल तर वेदाध्ययनसंपन्न होईल. डोहाच्या मातीचा घेईल तर पूर्वोक्त सर्व संपन्न होईल. जुगार खेळण्याच्या भूमीच्या मातीचा घेईल तर कपटी होईल. चवाठ्यावरील मातीचा घेईल तर दोन्ही कुलांतून बाहेर (व्यभिचारिणी) होईल. ईरिणस्थानच्या (गवत शेत न होणाऱ्या स्थलाच्या) मातीचा घेईल तर अभाग्या होईल. आणि स्मशानांतील मातीचा घेईल तर पतिघातकी होईल. मनु—“मातेच्या सपिंडांतील नसलेली व पित्याच्या गोत्रांतील नसलेली अशी जी कन्या ती द्विजातींना (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यांना) दारकर्मविषयी (ब्रौलप्रयुक्त श्रौतस्मार्तकर्मविषयी) आणि मैथुनाविषयी प्रशस्त आहे.” या मनुवचनांत दोन चकार आहेत त्यावरून दत्तकाच्या मातेच्या कुलांतील घेतली तर ती असपिंडा व सगोत्रा होते त्या कुलांतील कन्येचा निषेध करण्याकरितां पहिला चकार आहे. आणि दत्तकाला जनककुलांतील कन्या पित्याची असगोत्रा होते तिचा सपिंडत्वानें निषेध करण्याकरितां दुसरा चकार आहे. वरील दोन्ही वचनांत ‘असपिंडा’ असें पद आहे त्याचा अर्थ—समान म्हणजे एक आहे पिंड म्हणजे वेह (देहाचे अवयव) जीचा ती सपिंडा होय. सपिंडा नव्हे ती असपिंडा होय. असपिंडा म्हणजे सापिंज्वरहित. तें सापिंज्वर एक शरीराचे अवयव असल्यानें होतें तें असें—एक पिता किंवा एक माता यांच्या शरीराचे अवयव पुत्र कन्या इत्यादिकांचे ठायीं साक्षात् शुक्र-शोणित इत्यादिरूपानें अनुगत (आलेले) असतात. पौत्र-दौहित्र इत्यादिकांचे ठायीं परंपरासंबंधानें म्हणजे यांचे शुक्र-शोणितादि अवयव पुत्र-कन्यांचे ठायीं व पुत्र-कन्यांचे शुक्र-शोणितादि अवयव पौत्र-दौहित्र यांचे ठायीं असे परंपरेनें असतात. हें एकशरीरावयवरूप सापिंज्वर जरी पतीसह पत्नीला येत नाही. म्हणजे पतीच्या शरीराचे शुक्र-शोणितादि अवयव भिन्न आणि पत्नीच्या शरीराचे शुक्र-शोणितादि अवयव भिन्न असल्यामुळे दोघांना (पतिपत्नीला) परस्पर सापिंज्वर संभवत नाही. तसेंच अनेक भ्रात्यांच्या पत्नीला परस्पर सापिंज्वर संभवत नाही. तथापि एक शरीराच्या शुक्र-शोणितादि अवयवांना त्या स्त्रिया आधार असल्यामुळे आधारत्वेकरून सापिंज्वर संबंध आहेतच. “पित्याच्या अस्थींनीं पुत्राचे अस्थि उत्पन्न झाले” असें मंत्रांत सांगितलें आहे. यावरून एका पितृशरीराचे अस्थ्यादि अवयव पुत्राच्या द्वारानें त्या भ्रातृपण्यादिकांचे ठायीं स्थापित आहेत, असें मदनरत्न—पारिजात—विज्ञानेश्वर इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. वाचस्पति—शुद्धिविवेक—शूलपाणि—इत्यादि गौड—मैथिलादि ग्रंथकारही असेंच सांगतात. श्रुतीतही—“ह्या शरीरांत सहा अंश (अंश) आहेत. मातेचे तीन अंश व पित्याचे तीन अंश. अस्थि, जाग्रू, मज्जा, हे तीन पित्याचे अंश. त्वचा, मांस, रुधिर, हे तीन मातेचे अंश होत.” असें सांगितलें आहे. “हे भगवता ! प्रजेला अनुसरून तूं उत्पन्न होतोस.” असेंही श्रुतीत आहे. ह्या वरील प्रमाणावरून एकशरीरावयवरूप सापिंज्वर सिद्ध होतें.

चंद्रिकापराकमेधातिथिमाधवादयस्तु एकपिंडदानक्रियान्वयित्वंसापिंड्यम् लेपभाजधनुर्थाद्याःपित्राद्याःपिंडभागिनः पिंडदःसप्तमस्तेषांसापिंड्यंसाप्तपौरुषमितिमात्स्योक्तेः । नचपितृव्यादिव्येत-

व मांसल असून पुढच्या बाजूस उन्नत असावे. डोळ्यांतील पांढरा भाग व काळा भाग हे दोन्ही भाग व्यक्त म्हणजे स्पष्ट असावेत. आणि पापण्यांचे केश घट्ट असावेत. नासिका पुष्ट, सरळ, मोठा श्वास सोडणारी व तिचे अग्न वर उचलेले अशी असावी. ओठ लाल न उचललेले असे असावेत. हनुवटी मोठी अर्धे नये. तोंड मोठें असावें. दांत दाट, किंघ, गुळगुळीत, शुभ्र व सारखे असावेत. जीभ लाल, लांब, पातळ अशी असावी. चिबुक पुष्ट मोठें असावें. ग्रीवा (मान) आकृष्ट, घट्ट, बटुल अशी असावी. खांदे वर उचललेले, पुष्ट असावे. उदर वर उचललेले, दक्षिणावर्त व गुप्त अशा नाभियुक्त असावें. हातापायांची नखें पातळ, काळ, उन्नत अशीं असावीत. हातपाय किंघ, तांबूस, व मांसभरित मोठे असावेत. अंगुल्या लांब, छिद्ररहित अशा असाव्यात. झब्र गंभीर, वर्ण किंघ असावा. स्वाभाविक सख (स्वभाव) स्मिर असावें. ही लीयांची व पुराणांची शुभ लक्षणे वैषकांत (अष्टांगिक्रयांत) सांगितली आहेत. आश्वलायन गुह्यसूत्रांत सांगतात—शुद्धिमयी, रूपसंपन्न, सुखभावाची व चांगल्या कल्याणी अशी कन्या बरावी. लक्षणें सांगतो मनु—“जीव्या अंगांत व्यंग नाही अशी, जीचें नांव सौम्य (अकठोर) वी; हंस, हत्ती यांच्या सारखें गमन करणारी; बीचे केश, कोम, दांत हे क्कान आहेत वी; आणि जीचीं अंगें सुदु आहेत अशी जी कपटी. ही सख (शारीर) क्कणें होव.

आस्तीतिवाच्यम् तत्कर्तृकश्राद्धे वैवर्तयेन तत्सत्त्वात् देवदत्तकर्तृश्राद्धे हि ये देवताभूतास्तेषां मध्येयः कश्चिदन्य-
कर्तृकश्राद्धेऽनुप्रविशतितेषां सापिंड्यं तद्भार्याणामपि भर्तृकर्तृकश्राद्धे सहाधिकारित्वेन तदन्वयात् एकत्वं सागता-
भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके इति स्मृत्येव श्रुतीनां च वैराग्यार्थत्वात्तस्य सापिंड्यनिमित्तत्वे मानाभावात् न च मातुला-
दिष्वेत आस्तीतिवाच्यम् मातामह रूपदैवतैक्यात् ननु गुरुशिष्यादेरपि श्राद्धदेवतात्वात्सापिंड्यत्वं स्यात् किं-
हुना सर्वाभावे तु नृपतिः कारयेत्तत्स्वरिक्थत इति मार्कंडेयपुराणाद्राज्ञोपि श्राद्धकर्तृत्वात्सापिंड्यप्रसंगः सत्यम्
पंचमात्मसप्तमादूर्ध्वमातृतः पितृतस्तथेति याज्ञवल्क्यवचनेन मातापितृसंबंध एव तत्सत्त्वात् ऊर्ध्वसापिंड्यनि-
वर्तत इति शेषः ननु पंचमत्वाद्यत्र नियम्यतेन मातृत इत्यादि वाक्यभेदात् मैवं मातृकुले पंचमत्वस्य पितृकुले स-
प्तमत्वस्य च बोधने तुल्यत्वात् पौरुषेयत्वादोपइति चेत् तुल्यमन्यत्रापि अन्यकर्तृके राज्ञस्तपितृणां वा देवता-
त्वाभावाच्च किंच अवयवान्वयपक्षेयथायोगरूढ्यापरिहारस्तथेहापि तेन मातृकुले पितृकुले चैकपिंडदानक्रिया-
न्वयित्वं सापिंड्यमित्याहुः तेनैकस्यपित्रादयः पट् पुत्रादयश्च षट्सपिंडा भवंति ।

चंद्रिका—अपरार्क—मेधातिथि—माधव—इत्यादि ग्रंथकार तर—सापिंड्य म्हणजे एकपिंडदानक्रियान्व-
यिल होय. समान म्हणजे एक आहे पिंड म्हणजे पिंडदानक्रियासंबंध ज्यास तो सपिंड. त्याचा धर्म सापिंड्य होय. हें
सापिंड्य सात पुरुषांपर्यंत येतें तें असें—एकानें केलेल्या पिंडदानक्रियेमध्ये एक दाता, पित्रादि तिघे पिंडभागी, आणि
वृद्धप्रपितामहादिक तिघे लेपभागी आहेत म्हणून त्या पिंडदानक्रियेचा संबंध सातांना आहे. कारण, “चवध्यापासून (वृद्ध-
प्रपितामहापासून) पुढचे तिघे लेपभागी व पित्रादिक तिघे पिंडभागी आहेत. आणि पिंड देणारा सातवा आहे, म्हणून
सात पुरुषांपर्यंत सापिंड्य आहे.” असें मातस्यवचन आहे. आतां हें एकपिंडदानक्रियान्वयिल रूप सापिंड्य चुलता, चुलत-
बंधु इत्यादिकांचे ठायीं येत नाही, असें म्हणूं नये. कारण, चुलता इत्यादिकांनीं करावयाचे श्राद्धांत जी देवता ती देवता
आपले पितामहादिक असल्यामुळें आपण केलेली जी पिंडदानक्रिया तिचा संबंध पितामहाला आहे, व चुलत्यानें केलेल्या-
चाही संबंध त्याला आहे, म्हणून एकपिंडदानक्रियासंबंधरूप सापिंड्य येतें. यावरून असें होतें की, देवदत्तानें—(अ)
मनुष्यानें—करावयाच्या श्राद्धांत जे पितर देवता झालेले आहेत त्यांपैकी कोणी तरी (क) मनुष्यानें करावयाचे श्राद्धांत
प्रविष्ट असेल तर त्या (अ) चें व (क) चें परस्पर सापिंड्य येतें. त्या श्राद्धकर्त्याच्या पत्नींना देखील भर्त्यानें करावयाच्या
श्राद्धांत सहाधिकार असल्यामुळें त्या सापिंड्याचा संबंध आहे. आणि “जीचा विवाह झाला ती स्त्री पिंडाविषयी, गोत्राविषयी,
व सूतकाविषयी भर्त्याशीं एकल पावली, म्हणजे भर्त्याचा पिंड, गोत्र, सूतक, तीच तिचीं झालीं.” या स्मृतिवरूनही स्त्रियांना
तेंच सापिंड्य आहे. वर सांगितलेल्या ‘ह्या शरीराचे सहा कोश आहेत इत्यादिक’ श्रुति वैराग्य उत्पन्न करण्याकरितां
असल्यामुळें ती श्रुती एकशरीरावयरूप सापिंड्य मानण्याविषयी प्रमाण आहे, असें म्हणतां येत नाही. आतां हें (एकपिंड-
दानक्रियान्वयिल) सापिंड्य मातुल इत्यादिकांचे ठायीं येणार नाही, असें म्हणूं नये. कारण, आपण करावयाच्या श्राद्धांत
मातामह रूप जी देवता तीच मातुलकर्तृक श्राद्धांत देवता असल्यामुळें वर सांगितलेल्या रीतीनें एकपिंडदानक्रियान्वयिल रूप
सापिंड्य मावळ्याचें व भाच्याचें येत आहे. **शंका—**गुरु, शिष्य, आप्त, हे देखील श्राद्धांत देवता असल्यामुळें त्यांचें
(गुरु, शिष्यादिकांचें) सापिंड्य येईल. फार काय सांगावें की, “सर्वे अधिकाऱ्यांच्या अभावीं राजानें मृताची जिदगी घेऊन
श्राद्धादि क्रिया करावी.” ह्या मार्कंडेय पुराणावरून राजा देखील श्राद्धकर्ता झाल्यामुळें त्याचेंही सापिंड्य प्राप्त होईल.
शंका खरी आहे. **समाधान—**“मातेकडून पांचांपलीकडे आणि पित्याकडून सातांपलीकडे सापिंड्य निवृत्त होतें” ह्या
याज्ञवल्क्यवचनावरून मातेचा किंवा पित्याचा संबंध असतांच सापिंड्य आहे, अन्यथा नाही, असें होतें. अर्थात् गुरु-
शिष्यादिकांना माता-पितृसंबंध नसल्यामुळें त्यांचें सापिंड्य नाही. **शंका—**ह्या याज्ञवल्क्यवचनांत पंचमत्वादिकांचा नियम
करितां, म्हणजे मातेकडे पांचव्यानंतरच आणि पित्याकडे सातव्या नंतरच सापिंड्यनिवृत्ति, अर्थात् पूर्वी सापिंड्यनिवृत्ति
नाहीं, असें याज्ञवल्क्यवचनानें बोधन केलें आहे. माता-पितृसंबंध असतांच सापिंड्य आहे, अन्यथा नाही. असें बोधन
केलें नाहीं. कारण, नियम न करितां वर लिहिल्याप्रमाणें यथाश्रुत अर्थ केला तर वाक्यभेद (मातेकडून पांचांपलीकडे
सापिंड्य निवृत्त होतें आणि पित्याकडून सातांपलीकडे सापिंड्य निवृत्त होतें—अशीं दोन वाक्यें रूप दोष) होतो.
असें म्हणूं नये. कारण, नियम केला असतांही मातृकुलांत पंचमल आणि पितृकुलांत सप्तमल यांचा बोध होण्याकरितां
भिन्नवाक्यें होत असल्यामुळें वाक्यभेदरूप दोष नियमपक्षीं व यथाश्रुतपक्षीं समान आहे. हें याज्ञवल्क्यवचन पौरुषेय
असल्यामुळें वाक्यभेद हा दोष नाही, असें नियमपक्षीं म्हटलें तर यथाश्रुतपक्षींही तो दोष नाही. तस्मात् यथाश्रुत अर्था-
वरून माता-पितृसंबंध असतांच सापिंड्य आहे, अन्यथा नाही, असें झालें आहे. आणि राजाला श्राद्धाला अधिकार
असल्यामुळें राजाला सापिंड्यप्रसंग येईल असें म्हटलें तो प्रसंग येत नाही. कारण, अन्यानें करावयाच्या श्राद्धांत राजा किंवा

राजाचे पितर देवता होत नाहीत. आणखी असे आहे की, प्रथम सांगितलेलें एकशरीरावयवान्वयिलरूप सापिंज्य मानलें. तर शंभर पुरुष झाले तरी एकशरीरावयवाचा संबंध असल्यामुळें निवृत्त न झाल्याकारणानें जसा योगरूढीनें त्याचा परिहार केला पाहिजे आहे, तसा येथेही योगरूढीनें गुरुशिष्यादिकांच्या सापिंज्याचा परिहार करावा. तेणेंकरून मातृकुलांत व पितृकुलांत एकपिंडदानक्रियान्वयिलरूप सापिंज्य आहे, असें सांगतात. तेणेंकरून (सात पुरुषांपर्यंत सापिंज्य सांगितल्यावरून) एकाचे पिता इत्यादिक सहा आणि पुत्र इत्यादिक सहा हे सपिंड होतात.

अत्रकेचिदुभयतःसापिंज्यनिवृत्तावेवोद्वाहोनान्यथेत्याहुः शुद्धिर्चिंतामणिवाचस्पतिहरदत्ता-
दयस्तु सगोत्रत्ववत्सापिंज्यस्यसप्रतियोगिकत्वेनसंयोगवदुभयनिरूप्यत्वान् एकतोनिवृत्तावन्यतोनिवृत्तेरा-
वश्यकत्वान्मूलपुरुषमारभ्याष्टमोवरोमूलपुरुषमारभ्यद्वितीयावृतीयादिकांकन्यामुद्बहेदित्याहुः शिष्टास्तु
नवधूवरयोःस्वतःसापिंज्यं किंतु कूटस्थसंततित्वात्तत्सापिंज्येनैव अतोष्टमवरंप्रतिकन्यायाअसापिंज्येपिक-
न्यायाःकूटस्थेनसापिंज्यात्तसंततित्वाद्द्वरस्तांप्रतिसपिंडएवेत्यविवाहः सापिंज्यासापिंज्ययोःप्रतियोगिभेदे-
नाविरोधादित्याहुः इदमेवचयुक्तं आशौचेत्येवंसापिंज्यंज्ञेयम् यत्रतुमध्येविच्छिन्नमपिसापिंज्यंमंडूकमुत्तिव-
त्पुनरनुवर्तते यथा कूटस्थात्पंचम्योःकन्ययोःपुत्रौतत्रनिवृत्तिः तदपत्ययोस्त्वनुवृत्तिस्तत्रापिनसापिंज्यासापिं-
ज्ययोर्दोषः संबंधिभेदान् तेनतत्रनविवाहः ।

येथें कोणी पंडित—दोघांकडून (वधूकडून व वराकडून) सापिंज्यनिवृत्ति असतांच विवाह होतो, अन्यथा होत नाही, असें सांगतात. शुद्धिर्चिंतामणि—वाचस्पति—हरदत्त—इत्यादिक तर—जसें—सगोत्रत्व सप्रतियोगिक आहे तसें सापिंज्य सप्रतियोगिक आहे. म्हणजे ज्याचें सगोत्रत्व येतें त्याच्यावर त्याचें प्रतियोगिक असतें. एकावर सगोत्रत्व आणि तत्प्रतियोगिक हे दोन्ही धर्म येत असतात. जसें—देवदत्ताचें व यज्ञदत्ताचें गोत्र एक असतां देवदत्ताचें सगोत्रत्व यज्ञदत्तावर आणि यज्ञदत्ताचें देवदत्तावर आलें म्हणजे यज्ञदत्तावर देवदत्ताचें सगोत्रत्व आलें व यज्ञदत्ताचें सगोत्रत्व देव-
दत्तावर असल्यामुळें त्याचें प्रतियोगिकही यज्ञदत्तावर आलें. तसेंच सापिंज्य सप्रतियोगिक असल्यामुळें संयोगरूप धर्म जसा दोघांवर राहतो, तसें सापिंज्य दोघांवर राहतें. दोन पदार्थांवर संयोग राहतो. याचा संयोग त्याच्यावर नाही तर त्याचा संयोग याच्यावर नाही. त्याप्रमाणें—देवदत्ताचा सपिंड यज्ञदत्त होईल तर यज्ञदत्ताचा सपिंड देवदत्त होईल. ह्याचा तो सपिंड नाही तर त्याचा हा सपिंड नाही. म्हणून एकीकडून (वराकडून किंवा वधूकडून) सापिंज्यनिवृत्ति असतां दुसरी-
कडून निवृत्ति अवश्य असल्यामुळें मूलपुरुषापासून आठव्या वरानें मूलपुरुषापासून दुसरी, तिसरी, इत्यादिक कन्या वरावी, असें सांगतात. शिष्ट तर—वधूवरांचें स्वतः सापिंज्य नाही तर—वधूवर हे कूटस्था (मूलपुरुषा) ची संतति असल्यामुळें कूटस्थ पुरुषाच्या सापिंज्याचेंच त्या वधूवरांना सापिंज्य आहे. म्हणून आठव्या वराला द्वितीया-तृतीयादि कन्येचें असापिंज्य असलें तरी कन्येला कूटस्थाशी सापिंज्य असल्याकारणानें त्या कूटस्थाच्या संततीतील वर असल्यामुळें तो त्या कन्येला सपिंड होतच आहे, म्हणून त्यांचा विवाह होत नाही. सापिंज्याचा प्रतियोगि भिन्न आणि असापिंज्याचा प्रतियोगि भिन्न असल्यामुळें विरोध नाही, असें सांगतात. हेंच मत युक्त आहे. आशौचाविषयीही असेंच सापिंज्य जाणावें. आतां ज्या ठिकाणीं मध्ये निवृत्त झालेलेही सापिंज्य मंडूकाच्या (वेडकाच्या) उड्डाणाप्रमाणें पुनः अनुवृत्त होतें. जसें—मूलपुरुषापासून पांचव्या कन्येच्या पुत्राचें व दुसऱ्या पांचव्या कन्येच्या पुत्राचें सापिंज्य निवृत्त होतें. त्या पुत्रांच्या अपत्याचें सापिंज्य अनुवृत्त होतें. म्हणजे पुत्रांच्या मातेकडून मूल पुरुष पांचवा असल्यामुळें सापिंज्य निवृत्त होतें. आणि पुत्रांच्या अपत्याचें म्हटलें तर पित्याकडून मूल पुरुष सहावा झाल्यामुळें सापिंज्य अनुवृत्त होतें, त्या ठिकाणीं देखील सापिंज्य व असापिंज्य यांचा दोष (विरोध) नाही. कारण, सापिंज्य व असापिंज्य यांचा संबंधि भिन्न (कन्यापुत्र व पुत्रापत्य असा) आहे. तेणेंकरून त्या ठिकाणीं विवाह होत नाही.

अत्रकूटस्थमारभ्यगणनाकार्या तदुक्तं वध्वावरस्यवातातःकूटस्थाद्यदिसप्तमः पंचमीचेत्तयोर्मातातत्सा-
पिंज्यनिवर्ततइति कूटस्थोमूलपुरुषः विश्वरूपनिबंधे एवमुक्तप्रकारेणपितृबंधुपुत्रसप्तमात् ऊर्ध्वमेववि-
वाह्यत्वंपंचमान्मातृबंधुतः संतानोभ्यदतेयस्मात्पूर्वजादुभयत्रच तमादायगणेद्वीमान्वरंयावचकन्यकाम्
स्मृतितत्त्वेनारदः आसप्तमान्पंचमाश्वबंधुभ्यःपितृमातृतः अविवाह्यासंगोत्राचसमानप्रवरातथा अत्र-
बंधुभ्यइतिपंचमीनिर्देशात् पितुःपितृष्वसृपुत्रात्सप्तमी मातुःपितृष्वसृपुत्रावपंचमीमपत्यजेत् एवमन्यबंधु-
पुत्रेयम् तत्रापि त्रिगोत्रात्येवांगपिविवाहंक्रूर्यात् वक्ष्यमाणवचनान् त्रिगोत्रगणनाचमातामहगोत्रापेक्षया
नतुस्वापेक्षया अन्यथा पितुःपितामहदुहितुर्द्वित्रीपुत्रीपरिणेत्याद्याद्वधाःमातामहगोत्रापेक्षयातुत्रिविगोत्रांवरं-

तेनविवाहप्रसंगइतिसंबंधतत्त्वाद्योगौडग्रंथाः संबंधविवेकेशूलपाणिग्रन्थाह पंचमात्सप्तमाधर्वा-
गपित्रिगोत्रांतरिताविवाहा असंबन्धाभवेन्मातुःपिंडेनैवोदकेनवा साविवाहाद्विजातीनांत्रिगोत्रांतरिताचये-
तिबृहन्मनूक्तेः सन्निकर्षेपिकर्तव्यत्रिगोत्रांतरतोयदीतिदेवलोक्तेश्चेति एतच्चदाक्षिणात्यानमन्यते
यत्तुवसिष्ठः पंचमीसप्तमीचैवमातृतःपितृतस्तथेति यच्चविष्णुपुराणम् पंचमीमातृपक्षाच्चपितृपक्षाच्चस-
प्तमी गृहस्थउद्धेत्कन्यान्याय्येनविधिनानृपेति तत्पंचमीसप्तमीमतीत्येतिव्याख्येयम् पंचमेसप्तमेचैवयेषां वैवा-
हिकीक्रिया क्रियापराअपिहितेपतिताःशूद्रतांगताइत्यपराकैमरीचिवचनात् हारलतायां शंखलि-
खितौ सर्पिडतातुसर्वेषांगोत्रतःसामपौरुषी पिंडश्चोदकदानंचआशौचंचतदानुगं गोत्रंसंतानं आशौचंता-
नभिव्याप्यगच्छतीत्यर्थः ।

ह्या सापिञ्च्यविषयीं पिढ्यांची गणना करावयाची ती कूटस्थ (मूलपुरुष) धरून गणना करावी. तें सांगतो—“वधूचा व
वराचा पिता जर मूल पुरुषापासून सातवा होईल तर त्यांचें सापिञ्च्य निवृत्त होतें. आणि वधूवरांची माता जर मूलपुरुषा-
पासून पांचवी होईल तर त्यांचें सापिञ्च्य निवृत्त होतें.” विश्वरूपनिबंधांत—“याप्रमाणें पूर्वीक प्रकारेंकरून
वधूवरांच्या पित्याकडून मोजून सप्तमाच्या पुढेंच (अष्टमादिकालाच) विवाहाला योग्यल येतें, आणि मातेकडून मोजून
पंचमापुढेंच (षष्ठालाच) विवाहयोग्यल येतें. ज्या पूर्वजापासून संतति भिन्न होते त्याला घेऊन दोहींकडे वरापर्यंत आणि
वधूपर्यंत पिढ्यांची गणना करावी.” स्मृतितत्त्वांत नारद—“पित्याकडून सप्तमापर्यंत आणि मातेकडून पंचमापर्यंत जी
कन्या तिच्याशीं विवाह करू नये. आणि सगोत्रा व सप्रवरा तिच्याशींही विवाह करू नये” या वचनांत ‘बंधुभ्यः’ असा पंचमी
विभक्तीचा निर्देश केल्यामुळें पित्याच्या आतेच्या पुत्रापासून सातवी आणि मातेच्या मातेच्या पुत्रापासून पांचवी ह्या देखील
टाकाव्या. याप्रमाणें ईतर बंधूविषयीं जाणवें. त्यांतही असें आहे कीं, पुढें सांगावयाच्या बृहन्मनु—देवचल वचनावरून तीन
गोत्रांच्या पलीकडची कन्या असेल तर पांचांच्या आंतल्याही कन्येशीं विवाह करावा. त्रिगोत्रगणना करावयाची ती वराचें माता-
महगोत्र धरून करावी. वराचें गोत्र धरून करूं नये. कारण, वराचें गोत्र धरून केली तर वराला पित्याच्या पितामहकन्येच्या
दौहित्रीच्या कन्येशीं विवाह प्राप्त होईल. तो अनिष्ट आहे. आणि वधूच्या मातामहाचें गोत्र धरून गणना केली तर तीन
गोत्रांच्या आंत विवाहप्रसंग येईल. असें संबंधतत्त्व इत्यादि गौडग्रंथ सांगतात. संबंधविवेकांत शूलपाणिही
सांगतो—मातेकडून पंचम व पित्याकडून सप्तम यांच्या आंतली असली तरी तीन गोत्रांतून पलीकडची असली तर विवाह
करावा. कारण, “जी कन्या मातृकुलांत पिंडानें किंवा उदकक्रियेनें संबद्ध नसेल तिच्याशीं द्विजांनीं विवाह करावा. आणि
पिंडादिसंबद्ध असली तरी जी त्रिगोत्रान्तरित असेल तिच्याशीं विवाह करावा.” असें बृहन्मनुवचन आहे. आणि “जर
तीन गोत्रांच्या पलीकडची असेल तर जवळची असली तरी विवाह करावा” असें देवचलवचनही आहे. हें मत दाक्षिणात्य
मानीत नाहींत. आतां जें वसिष्ठ—“मातेकडून पांचवी आणि पित्याकडून सातवी कन्या वरावी.” आणि जें विष्णुपुराण—
“मातृपक्षाकडून पांचवी आणि पितृपक्षाकडून सातवी कन्या गृहस्थानें योग्य विधीनें वरावी” असें आहे तेथें पांचवी व
सातवी टाकून वरावी असें व्याख्यान करावें. कारण, “पांचव्या आणि सातव्या पुरुषांत ज्यांचा विवाह होतो, ते मनुष्य
श्रुतिस्मृतिकर्म करणारे असले तरी पतित होऊन शूद्रलाला पावतात” असें अपराकांत मरीचिवचन आहे. हारलतेंत
शंख व लिखित—“सर्वांचें सापिञ्च्य संततीनें सात पुरुषांपर्यंत आहे. पिंड व उदकदान हें सात पुरुषांपर्यंत प्राप्त होतें.
आशौच हें संततीला सात पुरुषांपर्यंत व्यापून राहतें.”

शुद्धिविवेके शुद्धिचिंतामणौचब्राह्मे सर्वेषामेववर्णानांविज्ञेयासामपौरुषी सर्पिडताततःपश्चा-
त्समानोदकधर्मता ततःकालवशात्तत्रविस्मृतौनामगोत्रतः समानोदकसंज्ञातुतावन्मात्रापिनश्यति सप्तोर्ध्व-
त्रयःसोदकास्तोगोत्रजाः तत्रैवब्राह्मे अविभक्तधनास्त्वेतेसर्पिडाःपरिकीर्तिताः तेनाविभक्तधनाभावेवि-
भक्तःसर्पिडोधनहारी नान्यथेत्यर्थः तेनविवाहेआशौचेधनग्रहणेचत्रिधासापिंड्यसिद्धं यत्तु पंचमीमातृतः-

१ आत्मबंधु २, पितृबंधु ३ आणि मातृबंधु ३ असे नऊ बंधु सांगितले आहेत-ते असे—“आत्मपितृबन्धुः पुत्रा आत्म-
मातृबन्धुः सुताः । आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबांधवाः ॥ पितुः पितृबन्धुः पुत्राः पितृमातृबन्धुः सुताः । पितृमातुलपुत्राश्च
विज्ञेयाः पितृबांधवाः । मातुःपितृबन्धुः पुत्रा मातृमातृबन्धुः सुताः । मातृमातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबांधवाः ॥ अर्थ-आपल्या आत्माचे
पुत्र, आपल्या मावशीचे पुत्र व आपल्या मावळ्याचे पुत्र हे तीन आत्मबंधु. पित्याच्या आतेचे पुत्र, पित्याच्या मावशीचे पुत्र, व
पित्याच्या मावळ्याचे पुत्र हे तीन पितृबंधु. मातेच्या आत्माचे पुत्र, मातेच्या मावशीचे पुत्र, व मातेच्या मावळ्याचे पुत्र हे
तीन मातृबंधु होत.

परिहरेत्सप्तमीपितृतस्त्रीन्मातृतः पंचपितृतोवेतिपैठीनसिस्मृतौ श्रीनित्यनुकल्पइतिस्माधचोक्तेः पंचमी-
सप्तमीचैवमातृतःपितृतस्तथा दशभिःपुरुषैःख्याताच्छ्रोत्रियाणामहाकुलात् उद्गहेत्सप्तमादूर्ध्वतदभावेतुसप्त-
मीम् पंचमीतदभावेतुपितृपक्षेऽप्ययविधिः सप्तमीचतथाषष्ठीपंचमीचतथैवच एवमुद्गहेत्कन्यांनदोषःशाक-
टायनः रूतीयांवाचतुर्थीवापक्षयोरुभयोरपि विवाहयेन्मनुःप्राहपाराशर्योगिरायमः यस्तुदेशानुरूपेणकुल-
मार्गेणचोद्गहेत् नित्यंसव्यवहार्यःस्याद्देवाश्चैतत्प्रहृत्यतइतिचतुर्विंशतिमतात् चतुर्थीमुद्गहेत्कन्यांचतु-
र्थःपंचमोपिवा पराशरमतेषष्ठीपंचमोनतुपंचमीमितिपराशरोक्तेश्चानुकल्पत्वेनापदिपंचम्यादिपरिणयनं-
कार्यमितिप्रतीयते अत्रहितदभावेइतिस्पष्टमेवानुकल्पत्वमुक्तम् तन्नयथाश्रुतज्ञेयम् पूर्वोक्तमरीचिवचोविरो-
धात् वस्तुनिविकल्पासंभवात् पंचमात्सप्तमाद्धीनांयःकन्यामुद्गहेद्विजः गुरुतल्पीसविज्ञेयःसगोत्रांचैवमुद्ग-
हमितिपिष्णुक्तेः पराशरस्यमूलाभावाच्च तस्मान्मदनपारिजाताद्युक्तदिशादत्तकसापन्नसंबंधाद्यनुप्रवे-
शेब्राह्मणादीनांक्षत्रियादिसपिंडविषयेवापूर्वोक्तानिनेयानि नत्वनुकल्पइतिभ्रमितव्यं ।

शुद्धिविवेकांत व शुद्धिचिंतामर्णीत ब्राह्मांत—“सांन्या वर्णांना सापिंड्य सात पुरुषांपर्यंत जाणावें. सातापुढें
समानोदकल जाणावें. तदनंतर कांहीं कालांनं नांवांची व गोत्रांची विस्मृति झाली असतां तेथपर्यंत असलेलें समानोदकलही
नष्ट होतें.” म्हणजे सातापुढें तीन पुरुषांपर्यंत समानोदक होतात. पुढें गोत्रज्ञ समजावे.” तेथेंच ब्राह्मांत—“हे सपिंड
अविभक्तधन म्हटले आहेत. म्हणजे सपिंडांच्या धनाचा विभाग झाला तरी ते विभक्त समजूं नयेत” यावरून मृताचे जिद-
गीचा वारस अविभक्त नसेल तर विभक्त झालेला सपिंड वारस होतो. सपिंडांचून दुसरा होत नाही, असा भाव. तेणेंकरून
विवाहाविषयी, आशौचाविषयी आणि धनग्रहणाविषयी असें तीन प्रकारचें सापिंड्य सिद्ध झालें. आतां जें “मातेकडून पांचवी
वर्ज्य करावी आणि पित्याकडून सातवी वर्ज्य करावी, अथवा मातेकडून तीन आणि पित्याकडून पांच पुरुष वर्ज्य करावे” ह्या
पैठीनसिस्मृतींत तीन पुरुष वर्ज्य करावे, हा अनुकल्प आहे, अशा माधवाच्या सांगण्यावरून; “मातेकडून पांचवी आणि
पित्याकडून सातवी वरावी. दहा पुरुषांनीं प्रख्यात अगलेल्या श्रोत्रियांच्या मोठ्या अशा कुलांतून सातव्या पुरुषांपलीकडचीं
कन्या वरावी. तिच्या अभावीं गातवी वरावी. तिच्या अभावीं पांचवी वरावी. पितृपक्षां देखील हाच विधि समजावा.
सातवी, सहावी व पांचवी कन्या वरावी, याविषयीं दोष नाही, असें शाकटायन ऋषि सांगतो. दोन्ही पक्षां (मातृपक्षां व
पितृपक्षां) तिमरी किंवा चवथी कन्या वरावी, असें मनु, व्यास, यम, अंगिरा हे सांगतात. जो मनुष्य देशाच्या अनुरोधानें
व कुलपरंपरागत चालीप्रमाणें विवाह करील त्या मनुष्याशीं व्यवहार सतत करावा. वेदावरूनही असा आचार दिसत आहे.”
ह्या चतुर्विंशतिमतावरून; आणि “चतुर्थ किंवा पंचम वरानें चवथी कन्या वरावी. पराशरमतीं सहावी वरावी. पंचमानें
पांचवी वरूं नये” ह्या पराशरवचनावरूनही अनुकल्प म्हणून समजून आपत्कालीं पांचवी इत्यादि कन्येशीं विवाह करावा,
असें समजतें. ह्या वरील चतुर्विंशतिमतांत सातव्या पलीकडच्या अभावीं सातवी, तिच्या अभावीं पांचवी, असें सांगितल्या-
वरून स्पष्टपणानेंच हा अनुकल्प असें सांगितल्यासारखें होत आहे. तें तसेंच समजूं नये. कारण, वर सांगितलेल्या ‘पंचमे
सप्तमे चैव’ ह्या मरीचिवचनाशीं विरोध येतो. वस्तुविषयीं विकल्प संभवत नाही. आणि “मातेकडून पांचव्या व पित्याकडून
सातव्या पुरुषांतील कन्या जो ब्राह्मण वरील तो, आणि सगोत्रा वरील तो, गुरुपत्निगामी समजावा” असें पिष्णुवचनही
आहे. आणि वर सांगितलेल्या ‘चतुर्थीमुद्गहेत्कन्यां’ ह्या पराशरवचनास मूलही नाही. तस्मात् मदनपारिजातादिकांनीं
सांगितलेल्या रीतीनं दत्तकसंबंध—सापन्नसंबंध वगैरे असतां किंवा ब्राह्मणादिकांना क्षत्रियादिकांचा सापिंड्यसंबंध असतां
त्याविषयीं वर सांगितलेलीं वचनं समजावीं. हा पंचम्यादि कन्याविवाह अनुकल्प आहे, अशा भ्रमांत पडूं नये. अर्थात्
पंचम्यादि कन्याविवाह अनुकल्प देखील नाही.

१ सापिंड्यदीपिकाकारादयोऽंचीनास्तु चतुर्थांमुद्गहेत्कन्यां चतुर्थः पंचमोऽपि वा । पराशरमते षष्ठीं पंचमो नतु पंचमीमित्यादि-
वचनानां समूलत्वं निश्चित्य अशक्तैः संकटे समाश्रयणीयस्य सापिंड्यसंकोचस्य व्यवस्थाःमनुः । तथाहि । चतुर्थां कन्या पितृपक्षे मातृ-
पक्षे च चतुर्थेन पंचमेन वा पुंसां विवाहा । द्वितीयरूतीयषष्ठाथैश्चतुर्थी नोद्गहा । पराशरमते पंचमः षष्ठीमुद्गहेत् । द्वितीयरूतीय-
चतुर्थादिः षष्ठी नोद्गहेत् । पंचमः पंचमी नोद्गहेत् । मातृतः पितृतश्चापि षष्ठः षष्ठी समुद्गहेदिति वचनांतरात्पठेनापि षष्ठी विवाहा ।
पंचमषष्ठभिः षष्ठी न विवाहेति पर्यवसन्नं । तथा पितृपक्षे सप्तमी मातृपक्षे पंचमी च तृतीयाथैः सर्वैः परिणया इत्यादि भ्रमैरिष्टः ।
२ आश्वलायनश्रौतसूत्रांत नवम्या अध्यायांत दशमेय प्रकरणीं असें सांगितलें आहे कीं, मातृकुलांतील पांच पुरुष आणि
पितृकुलांतील पांच पुरुष, हे विद्या, तप, पुण्य कर्म यांनीं संपन्न आहेत ज्या कुलांत, तें कुल होय. त्यांतील कृत्विज् वराये ।
कृत्विज् वरण्याकरितां जी कुलपरीक्षा सांगितली आहे, तीच परीक्षा कन्या वरण्याकरितां करावी. अर्थात् मातेकडील पांच पुरुष आणि
पित्याकडील पांच पुरुष हे प्रसिद्ध विद्वान् असलेल्या कुलांतील कन्या वरावी, असा भाव.

यत्तुस्मृतिचन्द्रिकामाधवादयआहुः तृतीयेसंगच्छावहैचतुर्थेसंगच्छावहाइतिशतपथश्रुतेः
 तृप्तांजहुर्मातुलस्येवयोषाभागस्तेपैतृष्वसेयीवपामिवेति गर्भेननौजनितादंपतीकरितिचमंत्रवर्णात् मातृष्व-
 ससुतांकेचित्पितृष्वसुसुतांतथा विवहंतिकविदेशेसंकोच्यापिसपिंडतामितिशातातपोक्तेश्चमातुलकन्यो-
 द्वाहःकार्यः । यद्यपिपितृष्वसुकन्योद्वाहोपिप्राप्तस्तथाप्यस्वर्ग्यलोकेविद्विष्टधर्म्यमप्याचरेन्नत्वितिनिषेधाद्वचना-
 तरेणतत्तुद्वाहस्याविधानाच्चनकार्यः अयंतुर्दाक्षिणात्यशिष्टाचारात्कार्यइति नचपूर्वोक्तश्रुतीनामर्थवादमात्रता
 मानांतरेणोसिद्धौ उपरिहिदेवेभ्योधारयनीतिवदनुवादातुपपत्त्याविधिकल्पनान् यत्तुशातातपः
 मातुलस्यसुतामूढामातृगोत्रांतथैवच समानप्रवरांचैवत्यक्त्वाचांद्रायणंचरेत् यच्चमनुः पैतृष्वसेयीभगिनी-
 स्वस्तीयांमातुरेवच मातुश्चभ्रातुराप्तस्यगत्वाचांद्रायणंचरेत् एतास्तिस्त्रस्तुभार्याथेनोपयच्छेतबुद्धिमान् यच्च-
 व्यासः मातुःसपिंडायत्नेनवर्जनीयाद्विजातिभिरिति तद्गार्धर्वादिविवाहोदमातृविषयम् तत्रपितृगोत्रानिवृत्तेः
 अतएवमार्कंडेयपुराणं गांधर्वादिविवाहेपुपितृगोत्रेणधर्मविदिति ब्राह्मादिविवाहेतुपरिणयैवेति भट्ट-
 सोमेश्वरोपि तृतीयेध्याये वाक्यपादेमातुलकन्योद्वाहमुदाहृत्यस्मृतिविरोधेनाचारप्राप्तस्यास्यवार्ति-
 केबाधोक्तावपिपूर्वोक्तश्रौतलिंगबलीयस्वादस्यकर्तव्यतामाह तदेतद्वक्तव्यपालकदत्त्रिममातृसोदरकन्यावि-
 षयत्वेनासवर्णमातुलकन्याविषयत्वेनयुगांतरपरत्वेनचोपपन्नमपिअविचारितरमणीयंयथातथास्तु तथापि-
 कलौतावन्निषिद्धमेव गोत्रान्मातुःसपिंडाच्चविवाहो गोवधस्तथेत्यादिपुराणात् माधवीये बौधायनो-
 प्यस्यनिंदामाह पंचधाविप्रतिपत्तिर्दक्षिणतस्तथोत्तरतऊर्णाविक्रयोनुपेतैनस्त्रियाचसहभोजनंपर्युषितभोजनं-
 मातुलपितृष्वसुदुहितृपरिणयनमिति अथोत्तरतस्सीधुपानादिकमुक्त्वाइतरइतरस्मिन्कुर्वन्दुष्यतिइतर-
 इतरस्मिन्निति भट्टसोमेश्वरेणापिस्मृतिविरुद्धानांमातुलकन्योद्वाहादीनामस्माद्वचनादप्राप्त्याप्यमित्युक्तम्
 बृहस्पतिरपि उद्धृतेदाक्षिणाल्यैर्मातुलस्यसुताद्विजैः मत्स्यादाश्चनराःपूर्वव्यभिचाररताःस्त्रियः उत्तरेमद्य-
 पाश्चैवस्पृश्यानुणारजस्वलाइत्यनाचारत्वमाह अतएवहेमाद्रौमात्स्ये कर्नाटकादीनांतत्कारिणांश्राद्धेनिषेधः
 योपदेवेनापिलिखितंब्राह्मम् यत्रमातुलजोद्वाहीयत्रवैवृषलीपतिः श्राद्धंनगच्छेत्तद्विप्राःकृतयच्चनिरामिष-
 मिति तस्मान्मातृतःपंच पितृतःसप्तत्यक्त्वोद्वाहेदितिसिद्धम् ।

आतां जे स्मृतिचंद्रिका माधव—“इत्यादिक सांगतात कीं, तिसऱ्या पिढींत आम्हीं उभयतां (वधूवर) संगत होतीं.
 चवथ्या पिढींत आम्हीं उभयतां संगत होतीं” ह्या शतपथश्रुतीवरून; आणि “मातुलीची कन्या आल्याच्या पुत्राचा जसा
 भाग आहे, तसा हे इंद्रा ! ही पशूची वपा तुझा भाग आहे, तो तूं ग्रहण कर” ह्या मंत्रार्थावरून; आणि “गर्भे नु नौ
 जनिता दंपतीकः०” अर्थ—“यमी यमास म्हणजे—सर्वांचे शुभाशुभप्रेरक असा सर्वात्मक देव गर्भावस्थेचेठायींच
 आम्हांला दंपती करिता झाला. म्हणजे एका उदरांत दोघांचा सहवास झाल्यामुळे दंपती झालीं. ह्या प्रजापतीचीं कर्मे
 कोणीही लोपवीत नाहीत, या कारणास्तव गर्भावस्थेचे ठायींच प्रजापतीने दांपत्य केले असतां संभोग कर ! आणखी—
 आमचें हें मातेच्या उदरांत सहवासपणानें झालेलें दंपतिल पृथिवी जाणते. आणि घुलोकही जाणतो.” ह्या मंत्रार्थावरून;
 आणि “माता आहे स्वसा म्हणजे भगिनी ज्याची तो (अर्थात् मातुल) त्याची कन्या आणि आल्याची कन्या यांच्याशीं
 क्वचित् देशांत कोणी सापिंड्याचा संकोच करून विवाह करितात” ह्या शातातपवचनावरून मातुलकन्येशीं विवाह

१ मातृष्वसुतामिति । माता स्वसा यस्य स मातृष्वसा मातुलस्तत्सुतामित्यर्थः । मातुलस्य सुतामितिपाठांतरात् । २ लोकविद्विष्ट-
 मिति लोचं दर्शने-लोचयते इति लोकां इष्टानिष्टसाधनतया ज्ञायमायं सदसत्कर्म तद्विभिदिष्टं द्वेषविषयीकृतं विहितमपि नाचरेदित्यर्थः ।
 ३ दाक्षिणाल्येति उद्वाहेदक्षिणे विद्वान् मातुलस्य च वै सुताम् । उत्तरे नोद्वाहेद्विप्रो द्वेष धर्मः सनातनः । मातुलस्य सुतां विप्रो दक्षिणे
 तां समुद्वाहेत् । वर्जनीया प्रयत्नेन सैव वाजसनेयिभिरिति आचारानुरोपिवाक्यात् । ४ असिद्धाविति अप्राप्ताशंस्य स्तावकत्वांसंभवात् ।
 ५ गांधर्वादीति । ब्राह्मादिषु विवाहेषु उदा कन्या यदा भवेत् । भर्तृगोत्रेण कर्तव्यास्तयाः पिंडोदकक्रिया इति । गोत्ररिक्तेजनयि-
 त्तुर्नभजेद्विमःसुत इति मनुवाक्ये उद्देशविशेषणस्य पुंस्त्वस्याविवक्षितत्वेन दानकर्मणा जनककुले संबन्धनिवृत्तेः सापिंड्यस्यापि निवृ-
 त्तिरुक्ता । एवं च ब्राह्मादिविवाहे कन्यादानसत्त्वेन सापिंड्यनिवृत्तिस्तत्परं मातुलकन्यापरिणयनवचनं आहुरादिषु तदभावात् सापिंड्य-
 निवृत्तिरिति तत्पराणि प्रायश्चित्तवचंसीत्यर्थः । ६ योषापत्यं मातुलीयं यथाभागः पितृष्वसुः । पुत्रस्यैवं वपातेंऽशं जुषस्तेद्रेत्युपिजैगौ ॥
 महाभारतटीका चतुर्थी.

करावा. आतां जरी ह्या वचनावरून आल्याच्या कन्येशीं देखील विवाह प्राप्त झाला, तथापि “जें कर्म अस्वर्ये (स्वर्गप्राप्ति-बंधक) व ज्या कर्माचा लोक द्वेष करितात, तें कर्म धर्मात्त्व हितकारक असें समजलें तरी आचरण करूं नये.” असा निषेध असल्यावरून; व इतर वचनांनीं आल्याच्या कन्येशीं विवाह सांगितला नसल्याकारणानेही तो करूं नये. हा मातुल-कन्योद्वाह दक्षिणात्य लोकांच्या आचारावरून करावा. आतां पूर्वी सांगितलेल्या मातुलकन्याविवाहबोधक श्रुति अर्थवादमात्र (स्तुतिमात्रबोधक) आहेत. मातुलकन्याविवाहविधायक नाहीत, असें म्हणूं नये; कारण, दुसऱ्या प्रमाणानें सिद्ध न झालेल्या अर्थाविषयीं अनुवाद (अर्थवाद) अनुपपन्न (असंगत) असल्यामुळे ‘उपरि हि देवेभ्यो धारयति’ या श्रुतिवाक्या-प्रमाणें वरील श्रुतीचे ठायीं “मातुलकन्योद्वाहः कार्यः” असा विधि कल्पित होतो. आतां जें शातातप—“मातुलकी कन्या, तशीच मातेच्या गोत्रांतील कन्या, आणि सप्रवरकन्या, ह्यांच्याशीं विवाह केला असतां त्यांचा त्याग करून चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें,” आणि जें मनु—“आत्याची कन्या, मावशीची कन्या, मातुलकी कन्या यांच्या ठिकाणीं गमन केलें असतां चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें. ह्या तीन भगिनी आहेत, शाहाण्या मनुष्यानें ह्या तिघांचा भार्येकरितां स्वीकार करूं नये,” आणि जें व्यास—“ब्राह्मणादिकांनीं मातेच्या सपिंडांतील कन्या प्रयत्नानें वर्ज्य करावी” असें सांगतात, तीं वचनें गांधर्वादिक विवाहविधीनें विवाह केलेल्या मातुविषयक आहेत. कारण, गांधर्वादिक विवाहानें विवाहित स्त्रियांचे ठायीं पित्याच्या गोत्राची निवृत्ति होत नाही. म्हणूनच मार्कंडेयपुराण—“गांधर्वादिक विवाहांचे ठायीं पितृगोत्रानें धर्मवेरयानें व्यवहार करावा.” ब्राह्म, दैव इत्यादि विवाह झालेल्या मातृगोत्रांतील वरावीच. भट्टलोमेश्वरही तिसऱ्या अध्यायांत वाक्यपादांत मातुलकन्याविवाहाचें उदाहरण देऊन स्मृतीला विरुद्ध असून आचारानें प्राप्त झालेल्या ह्या मातुलकन्या-विवाहाचा वार्तिकांत निषेध सांगितला तरी पूर्वी सांगितलेल्या व स्मृतीपेक्षां बलिष्ठ अशा श्रुत्यर्थावरून हा मातुलकन्या-विवाह करावा, असें सांगतो. तें हें मत दत्तकाची पालक जी माना तिच्या सहोदर भ्रात्याच्या कन्याविषयक, किंवा असवर्ण मातुलकन्याविषयक अथवा इतर युगविषयक म्हणून उपपन्न असलें तरी अविचारांनं जसें तसें रमणीय असो. तरी पण कलियुगांत तर निषिद्ध आहे. कारण, “मातेच्या गोत्रांतील व सपिंडांतील कन्येशीं विवाह, आणि मधुपर्कांत गोवध हे कलियुगांत करूं नयेत” असें आदिपुराणवचन आहे. माधवीयांत बौधायनही ह्याची निंदा सांगतो—“पांच प्रकारचा अनाचार दक्षिणेकडे आहे. तमाच उत्तरेकडेही आहे. दक्षिणेकडे अनाचार असा—ऊर्णोवस्त्राचा विक्रय, अनुपनी-तमुलासह व स्त्रीसह भोजन, शिल्या अन्नाचें भोजन, मातुलकन्येशीं विवाह, आणि आतेच्या कन्येशीं विवाह. आतां उत्तरेकडे आमवपान” इत्यादिक सांगून पुढें सांगतो—“इतर (दक्षिणेकडचा) मनुष्य उत्तर देशांत तसें करील तर तो दोषी होईल. आणि उत्तरेकडचा मनुष्य दक्षिण देशांत तसें करील तर तो दोषी होईल.” भट्ट लोमेश्वरानें देखील—स्मृतिविरुद्ध अशा मातुलकन्याविवाहादिकांना ह्या (बौधायन) वचनावरून अप्रामाण्य, असें सांगितलें आहे. बृहस्पतिही—“दक्षिणात्य ब्राह्मण मातुलकन्येशीं विवाह करतात. पूर्व देशांत मनुष्य मासे खातात, आणि स्त्रिया व्यभिचार करतात. उत्तर देशांत मद्यपान करतात, आणि पुरुषाला रजस्वला स्पर्श करतात” असा हा अनाचार आहे असें सांगतो. हा मातुलकन्याविवाह अनाचार आहे, म्हणूनच हेमाद्रीत मातस्यांत मातुलकन्योद्वाह करणाऱ्या कर्नाटकादि ब्राह्मणांचा श्राद्धांत निषेध केला आहे. बोपदेवानेही ब्रह्मपुराणांतील वचन लिहिलें आहे, तें असें—“ज्या ठिकाणीं मातुलकन्या-विवाह केलेला ब्राह्मण असेल, व जेथें वृषल (शूद्र) पति ब्राह्मण असेल त्या श्राद्धांत भोजनाला जाऊं नये. आणि जें आमिपरहित श्राद्ध तेंथें भोजनाग जाऊं नये.” तस्मात् मातेकडून पांच आणि पित्याकडून सात पुरुष टाकून विवाह करावा, असें सिद्ध झालें.

१ ‘उपरि हि देवेभ्यो धारयति’ या वेदवाक्याचा अर्थ—यज्ञांनीं पात्रे सांगितली आहेत, त्यांत, धुवा, उपश्रुत, जुहू हीं तीन पात्रे आहेत. धुवा या पात्रांत घृत देवावाक्याचें अर्पण. तें पात्र हालवावयाचें नाही. त्यांतील घृत उपश्रुतींत घेऊन त्याजवर जुहू धरावयाची असते. तेथें—देवोद्देश्यक याग असतां उपश्रुतीवर जुहू धरितो, असा अर्थ ‘उपरि’ ह्या वरील वाक्याचा झाला आहे. ह्या वाक्यांत ‘हि’ शब्द आहे, व विधिवोधक प्रत्यय नाही, म्हणून हें विधिवोक्य म्हणतां येत नाही. अनुवादक आहे, तरी इतर वाक्यानें जुहूचें उपश्रुतीवर धारण सांगितलें नसल्यामुळे, ह्या वाक्यानेंही विधि कल्पित होतो. म्हणजे जुहूचें उपश्रुतीवर धारण करावें, असा अर्थ ह्या वाक्याचा होतो. तसा ‘मातुलकी कन्या आत्याच्या पुत्राचा जसा भाग आहे’ या श्रुत्यर्थावरून ‘मातुलकन्याविवाह करावा’ असा विधि कल्पित होतो, असा भाव. २ येथें कौस्तुभकार असें सांगतो की, “दशभिः पुत्रैः खयाताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् । उद्वेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमी ॥ पंचमी तदभावे तु पितृप्रेक्ष्यं विधिः ॥ सप्तमी च वषा षष्ठी पंचमी च तथैव च ॥ एवमुदाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरभयोरपि ॥ विवाहवैष्मन्तः प्राह पाराशर्येणिरा यमः ॥” ह्या चतुर्विंशतिस्मृतीमये सप्तमी, पंचमी, षष्ठी, तृतीयां, चतुर्थीं, ह्या प्रत्येक पदाशीं ‘महाकुलात्’ ह्या पदाचा संबंध करावयाचा आहे. म्हणजे महाकुलांतील कन्या सांपडत असेल तर सापिण्यसंकोच करून विवाह करण. सापिण्यसंकोचाच्या भीतीनें महाकुल टाकून अथमकुलांतून कन्या वरूं नये. असें आहे म्हणूनच जाबजबाबानें प्रथम जुहू-

संबंधविवेके सुमंतुः ब्राह्मणानामेकपिंडस्वधानामादशमाद्धर्मविच्छित्तिर्भवति आसप्तमात्रिक्य-
विच्छित्तिर्भवति आतृतीयात्पिंडविच्छित्तिरन्यथा पिंडशौचक्रियाविच्छेदाद्ब्रह्महतुल्योभवति अस्यार्थमाह
शूलपाणिः जीवत्पित्रादित्रिकस्यवृद्धप्रपितामहादयस्त्रयःश्राद्धदेवतात्वात्पिंडभाजोभवति तदूर्ध्वत्रयोनव-
पुरुषपर्यंतालेपभाजः श्राद्धकर्ताचदशमइतिदशमादूर्ध्वसापिंड्यनिवृत्तिः दशमादित्युपलक्षणं तेनपितृपिता-
महजीवनेनवपुरुषपर्यंतपितृजीवनेचाष्टपुरुषपर्यंतसापिंड्यमितिज्ञेयम् अपुत्रधनग्रहणेसन्निहिताभावेसप्त-
पुरुषपर्यंतमधिकारः धनप्राहिणमारभ्यतृतीयःपौत्रः तदूर्ध्वश्राद्धविच्छेदः अन्यथाधनहारित्वेऽपुत्रश्राद्धाद्य-
करणेब्रह्महेत्यर्थः आतृतीयादित्यनूढकन्याविषयं अप्रत्तानांतुष्णीणांत्रिपुरुषविज्ञायतइतिवसिष्ठोक्तेः
एतद्भाषाशौचविषयंसापिंड्यं नतुविवाहादौ तत्रपूर्वोक्तवचनैःपंचमत्वसप्तमत्वनियमादितिमेधानितिप्रमुखा-
दाक्षिणात्याः वाग्दानोत्तरमेतदितिशुद्धिविवेकः मातृकुलविषयंकानीनकन्यकाविषयंचैतत् अन्यथा
अप्रत्तानांतथाष्णीणांसापिंड्यंसाप्तपौरुषं प्रत्तानांभर्तृसापिंड्यंप्राहदेवःप्रजापतिरितिकौर्मेणविरोधःस्यादिति
रत्नाकरस्मृतितत्त्वादिगौडग्रंथाः युक्तंचैतत् अन्यथाकन्योत्पत्तौपुरुषत्रयपर्यंतमेवसूतकंस्यान्नोर्ध्वम् ।

संबंधविवेकांत सुमंतुः—“एक आहे पिंडदान व श्राद्धक्रिया ज्यांस अशा ब्राह्मणांचे दहाव्या पुरुषापलीकडे धर्म-
विच्छेद (पिंडादि निवृत्ति) होतो. सातव्या पुरुषापलीकडे जिंदगीवरचा वारसा नष्ट होतो. तिसऱ्या पुरुषापलीकडे पिंडवि-
च्छेद होतो. अन्यथा पिंड, शौच, क्रिया यांचा विच्छेद केल्याने ब्रह्मघातकीतुल्य होतो” ह्या सुमंतुवचनाचा अर्थ सांगतो
शूलपाणिः—“ज्या पुरुषाचे पिता, पितामह, प्रपितामह, हे तिघे जीवंत आहेत त्याला, वृद्धप्रपितामहादिक तिघे श्राद्ध-
देवता असल्यामुळे ते वृद्धप्रपितामहादिक तिघे पिंडभागी होतात. त्यांच्या पूर्वीचे तिघे नव पुरुषपर्यंत लेपभागी होतात.
आणि श्राद्धकर्ता दहावा. त्याच्यापुढे सापिंड्यनिवृत्ति होते. दहाव्या पुरुषापलीकडे हे उपलक्षण आहे. तेणेंकरून ज्याचे
पिता व पितामह दोघे जीवंत आहेत त्याचें नऊ पुरुषांपर्यंत सापिंड्य. पिता जीवंत असेल त्याचें आठ पुरुषांपर्यंत सापिंड्य
असें जाणावें. निपुत्रकाच्या धनग्रहणाविषयीं जवळचा वारस नसेल तर सात पुरुषांपर्यंत अधिकार आहे. निपुत्रकाची
जिंदगी ग्रहण करणारा धरून त्यापासून तिसरा म्हणजे त्याचा पौत्र तेथपर्यंत निपुत्रकाचें श्राद्ध करावें. त्या पौत्राच्यापुढे
म्हणजे चवथ्यास त्या निपुत्रकाचें श्राद्ध करावयास नको. अन्यथा म्हणजे धनग्रहण करून त्या निपुत्रकाचें श्राद्ध न करील
तर तो ब्रह्मघातकी होतो, असा इत्यर्थ समजावा. ह्या सुमंतुवचनांत ‘आतृतीयात्’ म्हणजे तृतीय पुरुषापलीकडे सापिंड्य
नाहीं, असें सांगितलें तें अविवाहितकन्याविषयक समजावें. कारण, “अविवाहित स्त्रियांना त्रिपुरुषसापिंड्य जाणावें” असें
वसिष्ठवचन आहे. हे त्रिपुरुषसापिंड्य आशौचाविषयीं समजावें. विवाहादिकांविषयीं समजूं नये. कारण, विवाहादिकांविषयीं
पूर्वी सांगितलेल्या वचनांनीं मातेकडून पंचमल व पित्याकडून सप्तमल यांचा नियम केला आहे, असें **मेघातिथिप्रमुख**
दाक्षिणात्य (दक्षिणेकडील पंडित) सांगतात. हे त्रिपुरुषसापिंड्य वाग्दानोत्तर कन्याविषयक समजावें, असें **शुद्धिविवेक**
सांगतो. हे त्रिपुरुषसापिंड्य मातृकुलविषयीं व अविवाहित स्त्रियेचे कन्येविषयीं समजावें. असें न समजतां अविवाहित
कन्याविषयक समजलें तर “दान न केलेल्या स्त्रियांना सात पुरुषांपर्यंत सापिंड्य. आणि दान केलेल्या स्त्रियांना भर्त्याचें
सापिंड्य आहे, असें देव प्रजापति सांगतो.” ह्या **कूर्मपुराण**वचनाशीं विरोध येईल, असें **रत्नाकर—स्मृतितत्त्व**
इत्यादि गौड ग्रंथकार सांगतात. हे मत युक्त आहे. अन्यथा (अविवाहित कन्यांना त्रिपुरुषसापिंड्य मानलें तर) कन्या
उत्पन्न झाली असतां तीन पुरुषांपर्यंतच जननाशौच होईल. तीन पुरुषांपुढे (सात पुरुषांपर्यंत) होणार नाहीं.

सापन्नमातामहकुलेत्वाह मिताक्षरायां शंखः यथेकजातावहवःपृथक्क्षेत्राःपृथक्जनाः एकपिंडाः
पृथक्शौचाःपिंडस्त्वावर्ततेत्रिषु पृथक्क्षेत्राःभिन्नजातीयस्त्रीषुजाताः पृथक्जनाः सजातीयभिन्नमातृषुजाताः
अत्रत्रिपुरुषसापिंड्यमितिविज्ञानेश्वरोव्याचख्यौ पृथ्वीचंद्रोदये सापिंड्यदीपिकायांचैवम् **मद-**

परीक्षाच सांगितली आहे. म्हणजे वधूवरगुणापेक्षा प्रधान कुलपरीक्षाच आहे. याविषयीं वर सांगितलेल्या श्रुतीही प्रमाण आहेत.
यावरून कलियुगांतही ज्यांच्या कुलांत व देशांत सापिंड्यसंकोच परंपरागत आला असेल, त्यांचा तसा विवाह झाला असतां
दोष नाहीं. त्या स्त्रियेचे ठायीं भार्यात्व उत्पन्न होतें. त्यासहवर्तमान इतरांना व्यवहार करण्यास दोष नाहीं. आपल्या कुलाचारास
व देशाचारास विरुद्ध असा सापिंड्यसंकोच करून विवाह केला असतां दोष होतच आहे. व तिच्या ठिकाणीं भार्यात्वही उत्पन्न
होत नाहीं. म्हणूनच मातुलकन्याविवाह करणाऱ्याला हेमादिप्रभृति ग्रंथांत श्राद्धविषयीं निषेध केला आहे, तो देखील आपल्या
कुलांत व देशांत तसा आचार नसून सापिंड्यसंकोच करणाऱ्याविषयीं आहे, असें जाणावें.

नपारिजानेतु पृथक्क्षेत्रजाः भिन्नमातृजाः पृथग्जनाः भिन्नजातीयाः एतद्विजातीयसापन्नमातृकुलविषयम् सवर्णसापन्नमातृकुलेचतुःपुरुषसंपिंड्यं पंचमीसप्तमीचैवमातृतःपितृतस्तथेति वसिष्ठोक्तेः सप्तमीमिति ब्राह्मणादीनां क्षत्रियादिदारोत्पन्नपितृकुलविषयंचेत्युक्तं तत्स्वकपोलकल्पितत्वाद्वांशान्तरविरोधाच्च निर्मूलम् पितृपद्वयः सर्वामातरइत्युक्त्वा सुमंतुना तदपत्यानि भागिनेयानीति पृथङ्निषेधाच्च अन्यथा संपिंडत्वेन निषेधात् सापन्नमातुलत्वादिनिर्देशोऽव्यर्थः अतएव तेन स्मृतिः कौमुद्यां सवर्णसापन्नमातामहकुलपरत्वेन तथैव शंखवचनं व्याख्यातम् तेन वासिष्ठं पंचमीसप्तमीमतीत्येति व्याख्येयम् तस्मात्प्राच्येव व्याख्यायुक्ता प्रयोगरत्ने भट्टैः स्मृतितत्त्वादिगोडप्रथेपुचसापन्नमातामहकुलेयावदुक्तं वाचनिकमेव सापिंड्यमुक्तम् यथाह सुमंतुः मातृपितृसंबन्धा आमप्रमादविवाहा भवन्ति आपंचमादन्येषां पितृपद्वयः सर्वामातरस्तद्वातरोमातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्द्विहतरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाध्यापयितुरेतदेवेति आपंचमादिति मातृकुले त्रिगोत्रांतरितविषयं वेति प्राच्याः मानस्ये समानप्रवराचैव शिष्यसंततिरेव च ब्रह्मदातुर्गुरोश्चैव संततिः प्रतिपिध्यते तद्भगिन्यो मातृष्वसारइतितु आकरेन पठितम् कचिद्वचनादविवाहः यथा गृह्णापरिशिष्टे अविरुद्धसंबंधामुपयच्छेतेत्युक्त्वा विरुद्धसंबंधः स्वयमेवोक्तः यथा भार्यास्वसुर्दुहितापितृव्यपत्नीस्वमाचेति बौधायनः मातुः सपत्न्या भगिनी तत्सुतांच विवर्जयेत् पितृव्यपत्न्या भगिनी तत्सुतांच विवर्जयेत् अतो मातृष्वसुः सापन्नपुत्रकन्याप्यविवाहा सापन्नमातृकुलजातमिति मदनपारिजातोक्तेरितिकेचित् ।

सापन्नमातामहाच्या कुलांत तर मांगतो मितार्थरेंत शंख—“यद्येकजाना बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथग्जनाः ॥ एकपिंडाः पृथक्क्षेत्राः पिउस्त्वावर्तते त्रिपु” याचा अर्थ—एका ब्राह्मणादिकापामून बहुत उत्पन्न झाले ते असे—“पृथक्क्षेत्र” म्हणजे भिन्न जातीच्या स्त्रियांचे ठायीं उत्पन्न झाले, आणि “पृथग्जन” म्हणजे समानजातीच्या भिन्न भिन्न स्त्रियांचे ठायीं झाले ते सारे संपिंड होतात. पण त्यांचे आशोच वेगवेगळे आहेत, ते आशोचप्रकर्णी पाहावे. आणि त्यांचे सापिंड्य त्रिपुरुषपर्यंतच आहे. अशी विज्ञानेश्वरांनी व्याख्या केली आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत व सापिंड्यदीपिकेंतही असेंच आहे. मदनपारिजातांत तर—“पृथक्क्षेत्र” म्हणजे भिन्न मानांचे ठायीं झालेले. “पृथग्जन” म्हणजे भिन्न जातीचे होत. हे त्रिपुरुषसापिंड्य विजातीय गापन्नमानेच्या कुलविषयक आहे. समान जातीच्या गापन्नमानेच्या कुलांत चार पुरुषांपर्यंत सापिंड्य आहे. कारण, “मातेकडून पांचवी आणि पित्याकडून सातवी कन्या वरावी” असे वसिष्ठवचन आहे. पांचवी सांगितली ही सापन्नमातेकडून समजावी. सातवी असे सांगितले तें ब्राह्मणादिकांना क्षत्रियादिस्त्रियांचा ठायीं उत्पन्न पितृकुलविषयक समजावे, असेही सांगितले आहे. तें मदनपारिजातांत स्वकपोलकल्पित सांगितल्यामुळे व इतर ग्रंथांचा विरोध येत असल्यामुळे निर्मूल आहे. आणि “पितृपत्न्यः गर्भा मानवः” असे सांगून “तदपत्यानि भागिनेयानि” अशा सुमंतूनां भागिनेयांचा वेगळा निषेध केलेलाही आहे. जर सापन्नमातृकुलांत चतुःपुरुषपर्यंत सापिंड्य असेल तर सापिंड्यानेच भागिनेयांचा निषेध सिद्ध असल्याने सापन्नमातुलत्वादि निर्देश व्यर्थ होईल. सापन्नमातृकुलांत चतुःपुरुषसापिंड्य नाही म्हणूनच त्यांनी स्मृतिः कौमुदीत समान जातीच्या सापन्नमातामहकुलविषयक तें शंखवचन असे म्हणून त्या वचनाची तशीच (विज्ञानेश्वरासारखीच) व्याख्या केली आहे. तेणेंकरून ‘पंचमी सप्तमी चैव’ ह्या वसिष्ठवचनाची ‘पांचवी’ व ‘सातवी’ टाकून वरावी, अशी व्याख्या करावी. तस्मात् त्या शंखवचनाची पूर्वीचीच (विज्ञानेश्वरांनी केलेलीच) व्याख्या युक्त आहे. प्रयोगरत्नांत नारायणभट्ट—आणि स्मृतितत्त्वादि गोडप्रथांत ते ते ग्रंथकार—सापन्नमातामहकुलांत जितकें सांगितलें तितकें वाचनिकच (वचनानें उक्त) सापिंड्य समजावे, असे मांगतात. तें वाचनिक सापिंड्य सुमंतु मांगतो, तें असें—“मातृसंबंधी आणि पितृसंबंधी कन्या सात पुरुषांपर्यंत अविवाहा होतात. अन्यांच्या मती पांच पुरुषांपर्यंत अविवाहा होतात. पित्याच्या सान्या पत्नी आपल्या माता होतात. त्यांचे प्राते ते आपले मातुल होतात. त्यांच्या भगिनी त्या आपल्या मावशी होतात. त्यांच्या (मातुल्यांच्या व मावशीच्या) कन्या त्या आपल्या भगिनी होतात. व त्या भगिनींचीं मुलें तीं आपलीं भागिनेय होतात. असे मानले नाही तर विवाहादि संबंध करून संकरकारी होतील. तसेंच वेदादिक पदविणारा जो गुरु त्याचें हेंच सापिंड्य समजावे.” या सुमंतुवचनांत ‘आपंचमातृ’ असे पद आहे त्याचा अर्थ—अन्यांच्या मती पांचपर्यंत अविवाहा होतात, पुढें विवाहा आहेत. अथवा मातृकुलसंबंधी तीन गोत्रांतून चवथ्या गोत्रांत उत्पन्न झालेली कन्या पांचांच्या पुढची करावी, अशाविषयी ‘आपंचमातृ’ हें पद आहे, असे प्राच्य सांगतात. मात्स्यांत—“सप्रवर, क्षिप्यांची संतति, आणि वेदाध्ययन सांगणाऱ्या गुरुष्वी संतति

१ हे सुमंतूचें वचन जवळच पुढें येणार आहे, तेथें त्याचा अर्थ पाहावा.

विवाहाविषयीं निषिद्ध केली आहे.” ह्या वरील सुमंतुवचनांत ‘तद्गिन्यो मातृष्वसारः’ हें वाक्य आकरांत (हेमाद्यादिकान्त) पठित नाही. क्वचित्स्थलीं (सापिंड्य नसलें तरी) वचनावरून अविवाह (विवाहनिषेध) आहे. जसें गृह्यपरिशिष्टांत—“जीचा विरुद्ध संबंध होईल तिला वरूं नये.” असें सांगून विरुद्ध संबंध कसा तो स्वतःच परिशिष्टकारांनीं सांगितला आहे. जशी भायेंच्या वहिणीची कन्या. आणि चुलत्याच्या पत्नीची वहीण. पहिल्या उदाहरणांत कनिष्ठपणावें (कन्येचें) नातें येतें. आणि दुसऱ्या उदाहरणांत चुलत्याची मेहुणी म्हणजे वरिष्ठ नातें येतें. **बौधायन**—“मातेच्या सवतीची भगिनी आणि तिची कन्या वर्ज्य करावी. पितृव्यपत्नीची भगिनी आणि तिची कन्या वर्ज्य करावी” यावरून मावशीच्या सापन्न पुत्रांची कन्या देखील अविवाह्य आहे. कारण, “सापन्नमातेच्या कुलांतील कन्या वर्ज्य करावी” असें **मदनपारिजातांत** उक्त आहे, असें केचित् सांगतात.

केचित् ज्येष्ठोभ्रातापितुःसमइति **मनूक्ते** स्तपत्न्याः मातृत्वात्तपितुर्मातामहत्वात् ज्येष्ठभ्रातृपत्नीभगिनीनविवाह्या तथा उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदःपितेति **मनूक्ते**र्गुरुणात्रिपुरुषसापिंड्यंसखापिनिर्वाप्यः अतस्तेपांकन्यानोद्वाह्याः गायत्र्याउपदेष्टृकन्यांनैवोद्बहेद्विजः गुरोश्चकन्यांशिष्योवातत्संतत्यापिनेष्यते पुरुषत्रयपर्यंतंभ्रात्रादेर्नैतदिष्यते वाक्संबंधकृतानांतुस्नेहसंबंधभागिनां विवाहोत्रनकर्तव्योलोकगर्हाप्रसज्यतइतिवचनाच्चेत्याहुः तत्रमूलंचित्यम् ।

केचित् विद्वान् तर—“ज्येष्ठ भ्राता पित्यासमान आहे” ह्या **मनु**वचनावरून त्या ज्येष्ठ भ्रात्याची पत्नी माता झाल्यामुळें तिचा पिता मातामह असल्यामुळें ज्येष्ठ भ्रात्याच्या पत्नीची भगिनी विवाहाला योग्य नाही. तसेंच “जनक पिता आणि ब्रह्म (वेद) दाता पिता (गुरु) ह्या दोघांमध्ये ब्रह्मदाता पिता श्रेष्ठ आहे” ह्या **मनु**वचनावरून गुरुमहत्वंतमान त्रिपुरुषसापिंड्य आहे. आणि सख्यालाही पिंडनिर्वापण असल्यामुळें निर्वाप्यलक्षण सापिंड्य आहे, म्हणून त्यांच्या कन्या विवाहाला योग्य नाहीत. “गायत्रीचा उपदेश करणाराची कन्या द्विजांत वरूं नये. गुरूची कन्या शिष्यांत वरूं नये. गुरूच्या संततीवरोवरही विवाह इष्ट नाही. तीन पुरुषांपर्यंत भ्राता इत्यादिकांना गुरुसंततीशीं संबंध इष्ट नाही. वाक्संबंध झालेले व स्नेहसंबंधी यांचा विवाहसंबंध करूं नये. कारण, केला असतां लोकांत निंदा होते” असें वचनही आहे, असें सांगतात. या केचिन्मताविषयीं मूल चित्य (अनुपलब्ध) आहे.

दत्तकविषयेतुच्यते तत्रगौतमः ऊर्ध्वसप्तमात्पितृबंधुभ्योबीजिनश्चमातृबंधुभ्यःपंचमादिति बंधुग्रहणाद्दत्तकमात्रपरमिदम् किंतुसंतानेपितृतत्क्षेत्रजादिसर्वंक्यामुध्यायणपरमितिहरदत्तः अत्रस्मृतित्चंद्रिका नियोगात्तयउत्पादयतितस्माद्वीजिनोप्यूर्ध्वसप्तमादित्यर्थइति दत्तकस्यजनकविषयमेतदिति **सापिंड्यमीमांसायाम्** तेनदत्तकस्यजनककुलेसाप्तपौरुषंपजननीकुलेपांचपौरुषंसापिंड्यं दत्तक्रीतादिपुत्राणांबीजवत्पुःसपिंडता सप्तमीपंचमीचैवगोत्रित्वंपालकस्यचेतिबृहन्मनूक्तेः बीजिनश्चेतिगौतमोक्तेश्च पालकपितृकुलेतुपंचपुरुषं पालकमातृकुलेत्रिपुरुषं तथाचा **पराकैपैठीनसिः** त्रीन्मातृतःपंचपितृतःपुरुषानतीत्योद्बहेदिति एतत्सप्तपञ्चाचख्यौदत्तकदादीन्पुत्रान्पितृपक्षतोनिवृत्तपिंडगोत्रार्पेयान्प्रत्येतदुच्यतेपंचपितृतइतिनान्यान्प्रतीति यत्तुबृहद्गौतमः स्वगोत्रेषुक्रुतायेस्युर्दत्तक्रीतादयःसुताः विधिनागोत्रमायांतिनसापिंड्यंविधीयते यच्चबसिष्ठः अन्यशाखोद्भवोदत्तःपुत्रश्चैवोपनायितः स्वगोत्रेणस्वशाखोक्तविधिनास्यात्स्वशाखभागिति यच्चनारदः धर्मार्थवर्धिताःपुत्रास्तत्तद्गोत्रेणपुत्रवत् अंशपिंडविभागित्वंतेषुकेवलमीरितमिति तत्पालककुलेसाप्तपौरुषंसापिंड्यंनित्येवंपरं नतुसर्वथासापिंड्यनिषेधपरमिति **सापिंड्यमीमांसायाम् मदनपारिजातादपि** दत्तकानुप्रवेशेऽल्पंसापिंड्यंप्रतिभाति तथाहि तेनत्रीनतीत्येत्युदाहृत्यस्यमातादत्तपुत्रीप्रतिग्रहीत्रापुत्रीकृतातस्याःप्रतिग्रहीतृकुलेत्रीनतीत्येति पंचपितृतइतियस्यदत्तपुत्रःपितातस्यदत्तस्ययजनककुलंतद्विषयमित्युक्तम् वस्तुतस्तुपूर्ववचसांमहानिबंधेषुकाप्यनुपलंभाद **पराकार्का**दिलिखनाभावान् पूर्वोक्तव्यवस्थयाश्चप्रातिभज्ञानतुल्यत्वाद्यैरेतस्त्रिस्तंतेषामेवशोभते ।

दत्तकविषयीं तर सापिंड्य सांगतो—**गौतम**—“पितृबंधु व बीजी (जनक) यांच्याकडून सातव्या पुरुषापलीकडे सापिंड्य निवृत्त होतें. मातृबंधूकडून पांचव्या पुरुषापलीकडे सापिंड्य निवृत्त होतें.” ह्या वचनांत ‘बंधु’ ह्या पदार्थें ग्रहण केल्यावरून हें वचन केवळ दत्तकविषयींच समजूं नये; तर त्याच्या संततीविषयींही समजावें. ब्रामुध्यायण (दोन पिसांचे

पुत्र) जे क्षेत्रज, दत्तक इत्यादिक पुत्र त्या सर्वाविषयीं सापिंड्यबोधक हें वचन आहे, असें ह्मणून सांगतो. येथे 'ऊर्ध्व सप्तमात्०' ह्या गौतमवचनाचा अर्थ स्मृतिचंद्रिकाकार सांगतो की, परस्मिन्ने ठायीं नियोगानें जो उत्पन्न करितो त्या बीजी (जनक) पित्याकडे देखील सातव्या पुरुषापलीकडे विवाहयोग्यत्व आहे, असा अर्थ समजावा. दत्तकाच्या जनक-विषयक हें गौतमवचन आहे, असें सापिंड्यमीमांसेत सांगितलें आहे. तेणेंकरून दत्तकाच्या जनककुलांत सात पुरुषांपर्यंत सापिंड्य. आणि जननीकुलांत पांच पुरुषांपर्यंत सापिंड्य. कारण, "दत्त, क्रीत, इत्यादि पुत्रांना जनक पित्याचें सात पुरुषांपर्यंत सापिंड्य. जननी मातेचें पांच पुरुषांपर्यंत सापिंड्य. आणि गोत्रिल पालक पित्याचेंच आहे" असें बृहद्गमनुवचन आहे. आणि "बीजी (जनक) पित्याच्या कुलांत सात पुरुषांपलीकडे सापिंड्य निवृत्त होतें" असें गौतमाचेंही वचन आहे. पालक पित्याच्या कुलांत तर पांच पुरुषांपर्यंत आणि पालक मानूकुलांत त्रिपुरुषपर्यंत सापिंड्य समजावें. तसेंच सांगतो अपराकांत पैठीनसि—“मातेकडून तीन आणि पित्याकडून पांच पुरुष सोडून विवाह करावा” ह्या पैठीनसि-वचनाची व्याख्या त्याच अपराकांतें केली आहे. ती अशी—पितृपक्षाकडून सापिंड्य सगोत्र सप्रवररहित कुलांत जे दत्तकादिक पुत्र झाले अगतील त्यांना पितृकुलांत पांच पुरुष सापिंड्य, असें सांगितलें आहे. इतरांना हें सांगितलें नाही. अर्थात् जनकपितृकुलमंथवी सात पुरुषांपर्यंत आहेच. आतां जें बृहद्गौतम —“परगोत्रांतील दत्तक—क्रीत इत्यादिक पुत्र जे स्वगोत्रांत केले असतील ते दत्तकादि विधीनं गोत्र पावतात, त्यांना सापिंड्य येत नाही.” आणि जें वसिष्ठ—“अन्य शास्त्रेंत उत्पन्न झालेला पुत्र दत्तक घेऊन त्याचें स्वगोत्रांनं स्वशास्त्रोक्त विधीकरून उपनयन केलें असतां स्वशाखाभागी होतो.” आणि जें नारद—“जे धर्माथे त्या त्या गोत्रांनं वाढविलेले पुत्र ते जिद्दीचे वारम व पिंडविभागी केवळ होतात. अर्थात् सपिंड होत नाहीत.” ह्या वचनावरून पालककुलांत सापिंड्य नाही असें दिसतें, पण तीं वचनं सर्वथा सापिंड्यनिषेधक नाहीत, तर पालककुलांत सामपुरुष सापिंड्य नाही, इतक्याच अर्थाचीं बोधक आहेत; असें सापिंड्यमीमांसेत सांगितलें आहे. मदनपारिजातावरूनही दत्तकाचा संबंध अमतां अन्य सापिंड्य भागतां. तेंच उपपादन करितो—त्या ग्रंथकारांनं—“मातेकडून तीन पुरुष टाकून कन्या वरावी” हें उदाहरण देऊन ज्याची माता दत्तकपुत्री घेणारांनं पुत्री केली असेल तिचे तीन पुरुष टाकून कन्या प्रतिग्रहीत्याच्या कुलांत वरावी, असा अर्थ होय. 'पांच पितृतः पुरुषान् अतीत्योद्ब्रूत' हें वचन—ज्याचा पिता दत्तक असेल त्या दत्तकाचें जें जनककुल नद्विषयक आहे, असें सांगितलें आहे. वास्तविक म्हटलें तर पूर्वी सांगितलेलीं बृहद्गौतमादि वचनं महानिबंधांत (हेमाद्रादिकांनं) कोडेंही अनुपलब्ध असल्यामुळें व अपराकादिकांनं न लिहिल्यामुळें पूर्वांक्त जी (पालककुलांत सामपुरुष सापिंड्य नाही इतक्याच अर्थे इत्यादि) व्यवस्था ती प्रातिभ ज्ञान (बुद्धितरंग ज्ञान)—तुल्य असल्याकारणांनं ज्यांनीं हें असें लिहिलें त्यांनाच तें शोभतें.

ममतुपालककुलेणकपिंडदानक्रियान्वयित्वरूपंसाप्रपौरुपमेवमापिंड्यं बीजिनश्चेतिगौतमोक्तेर्जनक-कुलेपितावदेव त्रीन्मातृतइत्यादितुमवर्णमापन्नमातृकुलपरं यथेकजानावहवइतिशांनैकवाक्यत्वादितियु-क्तंप्रतिभाति अतएवास्वय्यामुप्यायणवहंहेमाद्रिप्रवरमंजरीवृत्तिकृत्तारायणादिभिरुक्तम् भट्टसोमे-श्वरेणापिपृथायाःकुंतिभोजस्यपालककन्यात्वेपि ऊर्ध्वसप्तमात्पितृबंधुभ्योबीजिनश्चेतिगौतमोक्तेर्द्वित्रिमा-याःपृथायाःजनकस्यशूरसेनस्यकुलेपिमाप्रपौरुपंपालककुलेपितावदेवसापिंड्यमुक्तमपिवाकारणाग्रहणे-इत्यत्र सापिंड्यदीपिकायांतुदत्तक्रीतादीनांजनकगोत्रेणोपनयनेकृतेजनककुलेसाप्रपौरुपंसापिंड्यम् पाल-कमातापितृकुलेत्रिपुरुषं पिंडनिर्यापान्नविष्यलक्षणंत्रिपुरुषंसापिंड्यम् पालकगोत्रेणोपनयनेतत्कुलेसाप्रपौरु-पमित्युक्तम् तत्र चूडोपायनसंस्कारानिजगोत्रेणवैकृताः दत्ताद्यास्तनयास्तेस्युरन्यथादासउच्यतइतिकालि-कापुराणादुपनयनोत्तरंदत्तकनिषेधान् त्रिपुरुषमित्यत्रापिमूलंमृगमित्यलंबहुना ।

मला तर—पालककुलांत एक पिंडदान क्रिया संबंधरूप सात पुरुषांपर्यंतच सापिंड्य आहे. 'बीजिनश्च' ह्या गौतमाच्या उक्तीवरून जनक पित्याच्या कुलांतही तिनकेंच (सात पुरुषांपर्यंतच) सापिंड्य आहे. 'त्रीन्मानृतः०' इत्यादि पैठीनसि-वचन तर सवर्ण (सजातीय) जी सापन्न माता तिच्या कुलाविषयी आहे. कारण, असें म्हटलें असतां "यथेकजाना बहवः पृथक्-क्षेत्राः पृथग्जनाः ॥ एकपिंडाः पृथक्सांचाः पिंडस्त्वावर्तते त्रिपु" ह्या शांखवचनांत 'पृथक्क्षेत्र' म्हणजे सजातीय भिन्न मातांचे ठायीं झालेले, त्यांचें त्रिपुरुष सापिंड्य, असें सांगितलें आहे, त्याच्याशीं एकवाक्यता होते; हें युक्त आहे, असें भासतें. म्हणूनच हेमाद्रि-प्रवरमंजरीकार—वृत्तिकार नारायण इत्यादिकांनीं हा दत्तकादिक ब्यामुप्यायण (दोन पिण्याचा पुत्र) आहे असें सांगितलें आहे. भट्टसोमेश्वरानें देखील—“अपिवाकारणाग्रहणे०” ह्या जैमिनीच्या सूत्रावर—पृथा (कुंती) ही कुंतिभोजराजाची पालककन्या असली तरी 'ऊर्ध्व सप्तमात् पितृबंधुभ्यो बीजिनश्च' ह्या गौतमाच्या उक्तीवरून त्या दत्तक कुंतीचा जनकपिता जो शूरसेन त्याच्या कुलांत सामपौरुष सापिंड्य, आणि पालक कुलांतही तिनकेंच (सातपौरुषांच)

सापिण्य असे सांगितलें आहे. सापिण्यदीपिकेत तर—दत्त—क्रीत इत्यादिकांचें जनक गोत्रानें उपनयन केलें असतां जनककुलांत साप्तपौरुष सापिण्य. आणि पालक मातापितृकुलांत पिंडनिवेपण असल्यामुळें निर्वाण्यरूपी त्रिपुरुष सापिण्य आहे. दत्तकादिकांचें पालक गोत्रानें उपनयन केलें असेल तर पालककुलांत साप्तपौरुष सापिण्य आहे, असें सांगितलें आहे. तें बरोबर नाहीं. कारण, “चौल, उपनयन हे संस्कार आपल्या (पालकाच्या) गोत्रानें ज्यांचे केले असतील ते दत्तकादिक पुत्र होतात. अन्यथा (पालकगोत्रानें संस्कार झाले नसतील तर) ते दास म्हणजे आहेत” ह्या कालिकापुराणवचनावरून उपनयनोत्तर दत्तकाचा निषेध आहे. आणि पालककुलांत त्रिपुरुष सापिण्य, असें जें सांगितलें त्याविषयीं देखील मूल शोधावें. आतां बहुत सांगणें पुरे करितों.

मातापितृद्वारकसापिण्यवतीनांकन्यानामिसंख्यारामवाजपेयिनोक्ता उद्बोदुःपितरौपितुश्चपितरौ-
तज्जन्मकृदंपतीद्वंद्वंतस्यचतुष्कमप्रचततोप्यस्यक्रमात्षोडश वंशारंभकदंपतीप्रमितिरित्यासप्तकक्षरदाएकैका-
न्वयकन्यकाःपितृकुलेत्वासप्तकक्षेत्रवे यद्यप्येकस्यबहवःसुताःस्युस्तदपीहनु संबंधसाम्यादेकैवगणितेत्यव-
धार्यताम् एकस्मान्मिथुनात्सुतोथदुहिताद्वंद्वद्वयंतद्वयात्स्माद्वंद्वचतुष्कमप्रचतनोतःषोडशाऽतोरदाः यावत्स-
प्तमकक्षमप्रिक्तवःकन्याद्वहैकान्वयेतादंतैर्गुणितारसैकवदशोवंशोसपिंडाःपितुः मातुर्जन्मदंपतीचमिथुनद्व-
द्वंतयोःसागरास्तस्याःपंचमकक्षमष्टमितिरित्येकान्वयःपुंसुते द्वंद्वद्वंद्वयुगंभतोऽध्ययइतोऽष्टौपंचकक्षंशरक्षोण्यः
सप्तगुणाःशराभ्रविधवोमातुःसपिंडाःकुले कुलद्वयस्यकन्यकायुतामिधःसपिंडकाः हिमांशुद्वगंधरादशोविवा-
हकर्मवर्जिताइति एतच्चसर्ववर्णसाधारणं सर्वत्रसापिण्यसद्भावादिति विज्ञानेश्वरोक्तेः पंचमात्सप्तमादू-
र्ध्वमावृतःपितुःक्रमात् सपिंडतानिवर्तैतसर्ववर्णेष्वयंविधिरितिहरनाथधृनुदेववलवचनाच्च संबंधतत्त्वे
सुमंतुः पितृष्वसुसुतांमातृष्वसुसुतांमातुलसुतांमातृसगोत्रांसमानार्पणींविवाह्याचांद्रायणंचरेत्परित्यज्यैनां-
मातृवद्विभृयादितिदिक् ।

रामवाजपेयीनं, मातृ-पितृद्वारक सापिण्यवती कन्यांची संख्या सांगितली आहे. ती अशी—“उद्बोदा (वर) त्याचे मातापितर दोन. त्यांपैकी पित्याचं जनकदांपत्य १, त्यांचे जनक दंपती २, त्यांचे जनकदंपती ४, त्यांचे जनकदंपती ८, त्यांचे जनकदंपती १६, आणि त्यांचे जनकदंपती ३२ याप्रमाणें पितृकुलांत सात पुरुषार्पयंत कन्या होतात, त्या सांगतां. जरी एका पुरुषाचे बहुत पुत्र असतात, तरी त्या बहुतांचा संबंध सारना असल्यामुळें एक एकच धरून येथें गणना करितो, असें समजावें. ह्या बत्तीस दांपत्यांपैकी एका दांपत्यापासून एक पुत्र व एक कन्या अशीं दोन झालीं. त्या दोघांपासून ४ म्हणजे दोन द्वंद्वे झालीं. त्या दोन द्वंद्वांपासून ४ द्वंद्वे झालीं. त्या चार द्वंद्वांपासून ८ द्वंद्वे झालीं. त्या आठ द्वंद्वांपासून १६ द्वंद्वे. व त्या सोळा द्वंद्वांपासून ३२ द्वंद्वे झालीं. ह्यांची गणना केली असतां वर सांगितलेल्या बत्तीस दांपत्यांपैकी एका दांपत्याच्या कन्या त्या मूळ दांपत्यास धरून सातव्या पिढीपर्यंत ६३ होतात. त्यांस बत्तीसांनीं गुणिलें असतां २०१६ इतक्या कन्या पितृवंशांत सपिंड होतात. हा प्रकार पित्याकडे समजावा. आतां मातेचें उत्पादक दांपत्य १, त्या दांपत्यांचीं जनक दांपत्ये २, त्या दोन दांपत्यांचीं जनकदांपत्ये ४, त्या चार दांपत्यांचीं जनकदांपत्ये ८, याप्रमाणें मातृकुलांत पांच पुरुषार्पयंत कन्या होतात, त्या सांगतो—त्या आठ दांपत्यांपैकी एका दांपत्यापासून एक पुत्र व एक कन्या अशीं दोन झालीं. त्या दोघांपासून २ द्वंद्वे झालीं. त्यांपासून ४ द्वंद्वे आणि त्यांपासून ८ द्वंद्वे झालीं. मिळून माता धरून पांच पिढीपर्यंत एका मूळ दांपत्याच्या ह्या साऱ्या कन्यांची गणना केली असतां १५ कन्या होतात. त्यांस सातांनीं गुणिलें असतां २०५ इतक्या कन्या मातेच्या कुलांत सपिंड होतात. पितृकुलांतील व मातृकुलांतील सपिंड कन्या एकत्र मिळविल्या असतां १०२१ इतक्या होतात. ह्या विवाहकर्मविषयीं वर्ज्य आहेत. हें सापिण्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ह्या सर्व वर्णांना साधारण सांगितलें आहे. कारण, ‘सर्वांचे ठायीं सापिण्य आहे’ असें विज्ञानेश्वराचें सांगणें आहे. आणि ‘मातेकडून पांचव्या पिढीपुढें व पित्याकडून सातव्या पिढीपुढें सापिण्य निवृत्त होतें; हा प्रकार साऱ्या वर्णांविषयीं समजावा’ असें हरनाथानें धरलेलें वेचलवचनही आहे. संबंधतत्त्वांत सुमंतुः—‘आल्याची कन्या, मावशीची कन्या, मातुलाची कन्या, मातृगोत्रांतील कन्या, सप्रवर कन्या, यांच्याशीं विवाह केला असतां चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें. आणि तिचा भोगाविषयीं त्याग करून तिचें मातेप्रमाणें पालन करावें.’ याप्रमाणें ही दिशा दाखविली आहे.

ऋषेरिदमार्षप्रवरः गोत्रप्रसिद्धं समानेआर्षगोत्रेयस्यतस्माज्जातायानभवतिताम् ।

विवाहप्रकरणाच्या आरंभी दिलेल्या याज्ञवल्क्यवचनांत सापिण्यरहित कन्या बरावी, असें आहे, त्या सापिण्याचा निर्णय

सांगितला. आतां 'असमानार्थगोत्रजां' ह्या पदाचा अर्थ—ऋषीचें हें तें आर्य म्हणजे प्रवर होय. समान (एक) आहे आर्य (प्रवर) व गोत्र ज्याचें त्यापासून झालेली नसेल ती कन्या वरावी, असा आहे.

अथसंक्षेपेणगोत्रप्रवरनिर्णयः तौचभिन्नौनिषेधेनिमित्तम् सगोत्रायदुहितरंनप्रयच्छेदित्याप-
स्तंबोक्तेः असमानप्रवरैर्विवाह इतिगौतमोक्तेश्च तत्रगोत्रलक्षणमाहप्रवरमंजरी बौधायनः
विश्वामित्रोजमदग्निर्भरद्वाजोथगौतमः अत्रिर्वसिष्ठःकश्यपइत्येतेसप्तऋषयः सप्तानामृषीणामगत्याष्टमानांय-
दपत्यंतद्गोत्रमिति यद्यपिकेवलभार्गवेष्वार्ष्ट्रिषेणादिपुकेवलंगिरसेपुहारितादिपुचनैतत् भृग्वंगिरसोहृत्केष्वन-
तर्गतेः तथाप्यत्रेष्टापत्तिरेवेतिकेचित् अतएवस्मृत्यर्थसारे प्रवरैक्यादेवात्राविवाहोक्तः यद्यपिवसिष्ठा-
दीनांनगोत्रत्वंयुक्तं तेपांसप्तर्षित्वेनतदपत्यत्वाभावान् तथापितत्पूर्वभाविबसिष्ठाद्यपत्यत्वेनगोत्रत्वंयुक्तम् अत-
एवपूर्वेषांपरेषांचैतद्गोत्रम् अत्रविशेषोऽस्मत्कृतप्रवरदर्पणेज्ञेयः ।

आतां संक्षेपानं गोत्रप्रवरनिर्णय सांगतो—

गोत्र आणि प्रवर हे विवाहाच्या निषेधाविषयी वेगवेगळे कारण आहेत. म्हणजे बधूवरांचें गोत्र एक असलें तर विवाह होत नाही. आणि गोत्र भिन्न असून प्रवर एक असला तरी विवाह होत नाही. कारण, “सगोत्राला कन्या देऊं नये” असें आपस्तंबाचें वचन आहे. आणि “प्रवर समान नसेल त्यांच्याशीं विवाह होतो” असें गौतमाचें वचनही आहे. आतां गोत्र म्हणजे काय ? अशी आकांक्षा झाली असतां त्याचें लक्षण सांगतो प्रवरमंजरीत बौधायन—“विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, हे सात ऋषि आणि आठवा अगस्त्यऋषि यांचें जें अपत्य म्हणजे पुत्र, पौत्र वगैरे तें गोत्र होय.” येथेंच पुढें वत्स, विद, आर्ष्ट्रिषेण, यास्क, मित्रयु, वैन्य, आणि शुनक हे सात गण भृगुकुलांतील सांगितले आहेत त्यांत पहिले वत्स, विद, हे दोन गण भृगुकुलांतील असून जमदग्नीच्या वंशांतील असल्यामुळें त्यांना गोत्रलक्षण आहे. आतां जरी आर्ष्ट्रिषेण इत्यादिक जे पांच गण ते केवळ भृगुवंशांतील अगल्यामुळें त्यांना हें वरील गोत्रलक्षण येत नाही. याचप्रमाणें आंगिरसाच्या वंशांतील गौतम, भरद्वाज आणि केवलांगिरस असे तीन मुख्य भेद पुढें सांगावयाचे आहेत, त्यांपैकी केवळ आंगिरम जे हारीतादिक त्यांना देखील हें वरील बौधायनोक्त गोत्रलक्षण येत नाही. कारण, भृगु आणि आंगिरा हे त्या बौधायनवचनांत नाहीत. तात्पर्य—आर्ष्ट्रिषेण इत्यादिक आणि हारीतादिक यांना गोत्रलक्षण नाही, असें झालें. तथापि तें इष्ट आहे, असें कितीएक विद्वान् सांगतात. त्यांना गोत्रलक्षण नाही म्हणूनच स्मृत्यर्थसारांत त्यांचा एक प्रवर असल्यामुळेंच त्यांचा परस्पर विवाह होत नाही, असें सांगितलें आहे. ते सगोत्र आहेत म्हणून विवाह होत नाही, असें सांगितलें नाही. आतां जरी वसिष्ठ, कश्यप इत्यादिक हे वर सांगितलेल्या सात ऋषींमध्ये असल्यामुळें ते त्यांचे अपत्य नसल्याकारणानें त्यांना गोत्रलक्षण असणें युक्त होत नाही. म्हणजे गोत्रांमध्ये त्यांची गणना पुढें आहे ती अयुक्त होते, असें आलें, तरी ती अयुक्त होत नाही. कारण, त्यांच्या पूर्वीं झालेल्या वसिष्ठादिकांचे हे वसिष्ठादिक अपत्य होत असल्यामुळें ह्या वसिष्ठादिकांना गोत्रलक्षण म्हटलें तें युक्त आहे. म्हणूनच ह्या ऋषींच्या पूर्वींचे जे त्यांचें आणि पुढच्यांचेही हें गोत्र आहे. या विषयाचा विशेष निर्णय आम्हीं (कमलाकरभट्टानं) केलेल्या प्रवरदर्पणांत पाहावा.

प्रवरास्तुप्रवरणानिप्रवराः कल्पकाराहिवासिष्ठेतिहोतावसिष्ठवदित्यध्वर्युरित्यादिनायेषांप्रवरणमामनं-
तितेप्रवराः तच्चवरणंयद्यपिगोत्रभूतस्यापिकचिद्दृश्यते तथापिपूर्ववदृषिभेदोद्गच्छत्यः अन्यथा तेषांत्र्यार्षेये-
एकार्षेइत्यादिनिर्देशानुपपत्तेः अन्येतुतद्गोत्राणांत्र्यार्षेयइतिभेदमाहुरितिविद्वक् तत्त्वंतुगोत्रभूतस्यापिदृष्टितामह-
प्रपितामहाएवप्रवराः पितैवाग्नेथपुत्रोथपौत्रइतिज्ञानपथश्रुतेः परंपरंप्रथममित्याश्वलायनोक्तेश्च अत्र-
विशेषमाहबौधायनः एकएवऋषिर्यावत्प्रवरैष्वनुवर्तते तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्रभृग्वंगिरसांगणादिति
स्मृत्यर्थसारे त्रियमाणतयावापिसत्तयावानुवर्तनम् एकस्यदृश्यतेयत्रतद्गोत्रंतस्यकथ्यते भृग्वंगिरोगोणेषुतु-
माधवीयेस्मृत्यंतरे पंचार्षेत्रिपुसामान्यादविवाहस्त्रिपुद्वयोः भृग्वंगिरोगोणेष्वेवशेषेष्वेकोपिवारयेत् शेष-
गोत्रेषुएकोपिसमानःप्रवरोविवाहंवारयेदित्यर्थः बौधायनोपि भृग्वंगिरसावधिकृत्यार्षेयसन्निपातेऽ-
विवाहकृत्यार्षेयाणांत्र्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहःपंचार्षेयाणामिति भृग्वंगिरोगोणेष्वपिजमदग्निगौतमभरद्वाजैष्वे-
कप्रवरसाम्येसर्वेषामप्यसाम्येवासगोत्रत्वादेवाविवाहइतिदिक् ।

प्रवर म्हणजे काय तें सांगतो—

प्रवर म्हणजे वरण होय. कल्पसूत्रकारांनीं 'वासिष्ठेति होता वसिष्ठवदित्यध्वयुः' इत्यादि वाक्यानें ज्यांचा उच्चार करून यज्ञामध्ये ऋत्विजांचें वरण सांगितलें आहे ते प्रवर होत. आतां जरी तें वरण क्वचित् ठिकाणीं गोत्राचाही उच्चार करून सांगितलेलें दृष्टीस पडतें तरी त्या ठिकाणीं तो गोत्रऋषि वेगळा आहे आणि प्रवरऋषि वेगळा आहे, असें समजावें. जसें— वर सांगितलें आहे कीं, पूर्वीच्या वसिष्ठादिकांचे हे वसिष्ठादिक अपत्य होत, त्याप्रमाणे इतर ऋषींचे हे प्रवर आहेत, असें समजावें. अन्यथा म्हणजे ऋषींचे प्रवर मानिले नाहीत तर "त्या ऋषींचे तीन प्रवर, एक प्रवर" इत्यादि जें सांगितलें त्याची संगति होणार नाही. इतर विद्वान् तर 'त्या गोत्रांचे त्रिप्रवर असतां' असा गोत्रऋषि व प्रवरऋषि यांचा भेद सांगतात. ही दिशा दाखविली आहे. याचा खरा प्रकार म्हटला तर असा आहे कीं, गोत्ररूप ऋषीचे पिता, पितामह, प्रपितामह हेच प्रवर होत. कारण, प्रवर वरण्याच्या वेळीं "प्रथम पिताच येतो, नंतर पुत्र, तदनंतर पौत्र येतो" अशी शतपथश्रुति आहे. आणि "पलीकडचा पलीकडचा तो प्रथम येतो" असें आश्वलायनाच्या सूत्रांतही सांगितलें आहे. गोत्रप्रवरांविषयीं विशेष सांगतो बौधायन— "प्रवर सांगत असतां त्या प्रवरांमध्ये जोंपर्यंत एकच ऋषि चाललेला आहे तोपर्यंत त्या साऱ्या प्रवरांचें एक गोत्र समजावें. हा प्रकार केवळ भृगुगण (आर्ष्टिपेणादिक) आणि केवलांगिरसगण (हरितादिक) हे बगळून समजावा." स्मृत्यर्थसारांत— "ज्या गणामध्ये वरण होत असल्यामुळे अथवा आपल्या सत्तेच्या योगानें एकाची अनुवृत्ति (संबंध, विद्यमानता) दृष्टीस पडते त्या गणाचें तें गोत्र म्हटलें आहे." भृगुगण आणि आंगिरसगण यांविषयीं तर सांगतो माधवीयांत स्मृत्यंतरांत— "भृगुगण आणि आंगिरसगण यांचे ठायीं पंचप्रवरी बध्वरांचे तीन प्रवर समान असतां विवाह होत नाही. आणि त्रिप्रवरी बध्वरांचे दोन प्रवर समान असतां विवाह होत नाही. भृगु व आंगिरस यांवांचून इतर गोत्रांचे ठायीं एकही समान प्रवर असतां विवाह होत नाही." बौधायनी— भृगुगण व आंगिरसगण यांचा उद्देश करून सांगतो— "त्रिप्रवऱ्यांचे दोन प्रवर समान असतां विवाह होत नाही. आणि पंचप्रवऱ्यांचे तीन प्रवर समान असतां विवाह होत नाही." भृगुगणांतील जामदग्न्य (वत्स, बिद), आणि आंगिरस गणांतील गांतम आणि भरद्वाज यांचे ठायीं एक प्रवर समान असला तरी अथवा सारे प्रवर समान नमले तरी त्यांना सगोत्रत्व असल्यामुळे त्यांचा विवाह होत नाही. ही दिशा दाखविली आहे.

अथगोत्राणिप्रवराश्चोच्यंते तत्रबौधायनः गोत्राणांतुसहस्राणिप्रयुतान्यर्बुदानिच ऊनपंचाश-
देवैषांप्रवराऋषिदर्शनात् तत्रसप्तभृगवः वत्साबिदाआर्ष्टिपेणायस्कासित्रयुवोवैन्याःशुनकाइति वत्सानां
भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वजामदग्न्येति भार्गवौर्वजामदग्न्येतिवा भार्गवच्यावनाप्रवानेतिवा विद्वानांपंच भार्ग-
वच्यावनाप्रवानौर्वबैदेति भार्गवौर्वजामदग्न्येतिवा एतौद्वौजामदग्न्यसंज्ञौ आर्ष्टिपेणानां भार्गवच्यावनाप्रवा-
नार्ष्टिपेणानूपेति भार्गवार्ष्टिपेणानूपेतिवा एषांत्रयाणांपरस्परमविवाहः वात्स्यानाम् भार्गवच्यावनाप्रवानेति
वत्सपुरोधसयोःपंच भार्गवच्यावनाप्रवानवात्स्यपौरोधसेति वैजमथितयोःपंच भार्गवच्यावनाप्रवानवैजम-
थितेति एतेत्रयःकचित् एषामपिपूर्वविवाहः अत्रतत्तदुणस्थाऋषयोऽन्यश्चविशेषोमत्कृते प्रवरद-
र्पणेज्ञेयः यस्कानां भार्गवचैतदव्यसवेतसेति मित्रयुवां भार्गववाध्यश्चद्वैवोदासेति भार्गवच्यावनद्वैवोदा-
सेतिवा वाध्र्यश्चैकोवा वैन्यानांभार्गववैन्यपार्थेति एतएवश्येताः शुनकानांशुनकेतिवा गात्सर्मदेतिवा
भार्गवगात्सर्मदेतिद्वौवा भार्गवशौनहोत्रगात्सर्मदेतित्रयोवा वेदविश्वज्योतिषांभार्गववेदवैश्वज्योतिषेति शाठ-
रमाठराणांभार्गवशाठरमाठरेति एतौद्वौ कचित् यस्कादीनांस्वगणंत्यक्त्वासर्वैर्विवाहः तदुक्तंस्मृत्यर्थ-
सारे यस्कामित्रयवोवैन्याःशुनकाःप्रवरैक्यतः स्वंस्वहित्वागणंसर्वैर्विवहेयुःपरावरैरिति ।

आतां गोत्रे आणि प्रवर सांगतो—

याविषयीं बौधायन— "गोत्रे किती आहेत असें म्हटलें तर तीं सहस्रावधि, लक्षावधि, कोट्यवधि आहेत त्यांची संख्या करावयास येणार नाही. त्यांच्या प्रवरांचे ऋषि पाहिले असतां त्या सहस्रावधि गोत्रांचे प्रवरभेद एकूणपन्नासच होतात." गोत्रे अनंत असलीं तरी त्यांचे प्रवरभेद ४९ आहेत; ते येणेंप्रमाणे—भृगुगण ७, आंगिरसगण १७, अत्रिगण ४, विश्वा-
मित्रगण १०, कश्यपगण ३, वसिष्ठगण ४, अगस्तिगण ४, हे सारे मिळून ४९ गण होतात. त्या एकेका गोत्रगणामधील अंतर्गत गोत्रे बहुत आहेत, परंतु त्यांचे प्रवर एक असल्यामुळे तो एक गोत्रगण समजावा. याप्रमाणे बौधायनांनीं ४९

गोत्रगण सांगितले आहेत; तरी इतर ग्रंथांतून सांगितलेले अधिकही गोत्रगण आहेत ते त्या त्या प्रसंगी सांगू. कोणकोणाचा विवाह होतो आणि कोणकोणाचा विवाह होत नाही हे स्पष्ट समजावयासाठी प्रवरांची कोष्टके देतो. एका कोष्टकांत असलेल्यांची भिन्न गोत्रे व भिन्न प्रवर असले तरी विवाह होत नाही. ज्या ठिकाणी भिन्न कोष्टकांत असलेल्या गोत्रांचाही विवाह होत नाही, असे असले त्या ठिकाणी टीप दिलेली आहे.

भृगुगण ७ ते असे—

वत्स—मार्कंडेय इत्यादिक दोनशेंहूनअधिक गोत्रे आहेत ते सारे वत्स त्यांचे 'भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वजामदभ्येति' हे पांच प्रवर आहेत. अथवा 'भार्गवौर्वजामदभ्येति' हे तीन प्रवर किंवा 'भार्गवच्यावनाप्रवानेति' हे तीन आहेत.

विद—शैल, अवट इत्यादिक विसांहून अधिक गोत्रे आहेत ते सारे विद होत. त्यांचे—'भार्गवच्यावनाप्रवानौर्वबैदेति' पांच प्रवर. अथवा 'भार्गवौर्वजामदभ्येति' तीन प्रवर.

आष्टिषेण—नैर्ऋति, याम्यायण इत्यादिक विसांहून अधिक आष्टिषेण होत. त्यांचे—'भार्गवच्यावनाप्रवानाष्टिषेणानूपेति' पांच प्रवर. अथवा 'भार्गवाष्टिषेणानूपेति' तीन प्रवर. वत्स, विद, आष्टिषेण या तिघांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, दोन किंवा तीन प्रवर समान आहेत.

वात्स्यांचे—'भार्गवच्यावनाप्रवानेति' तीन प्रवर.

वत्सपुरोधसांचे—'भार्गवच्यावनाप्रवानवत्सपुरोधसेति' पांच.

वैजमथितांचे—'भार्गवच्यावनाप्रवानवैजमथितेति' पांच. वात्स्य, वत्सपुरोधस आणि वैजमथित हे तीन गण अधिक क्वचित् आहेत. या तिघांचा परस्पर आणि वर सांगितलेल्या तीन गणांशी विवाह होत नाही.

यस्क—मौन, मूक इत्यादि त्रैपचाहून अधिक यस्क आहेत. त्यांचे—'भार्गव वैतहव्य सावेतसेति' तीन प्रवर.

मित्रयु—रौद्राग्रयन सार्पिडिन इत्यादि तिसांहून अधिक मित्रयु आहेत. त्यांचे—'भार्गववाध्रयश्वदैवोदासेति' तीन अथवा 'भार्गवच्यावनदैवोदासेति' तीन. किंवा 'वाध्रयश्वेति' एक प्रवर.

वैन्य—पार्थ, वाष्कल, द्येत, हे वैन्य होत. यांचे—'भार्गव वैन्य पार्थेति' तीन प्रवर.

शुनक—गार्त्समद, यज्ञपति इत्यादिक सत्तरांहून अधिक शुनक होत. त्यांचे—'शौनकेति' एक अथवा 'गार्त्समदेति' एक किंवा 'भार्गव गार्त्समदेति' दोन. अथवा 'भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति' तीन आहेत.

क्वचित् ठिकाणीं दोन गण अधिक आहेत ते असे—

वेदविश्वज्योतिष—यांचे 'भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति' तीन.

शाठरमाठर—यांचे—'भार्गव शाठर माठरेति' तीन.

वर सांगितलेले यस्क, मित्रयु, वैन्य, शुनक, यांचे आपआपले गण सोडून बाकीच्या सर्वांशी विवाह होतो. ते सांगतो **स्मृत्यर्थसारांत**—“यस्क, मित्रयु, वैन्य, आणि शुनक यांचा आपआपल्या गणाचा प्रवर एक असल्यामुळे आपआपला गण सोडून पुढच्या व मागच्या सर्वांशी विवाह होतो” याचप्रमाणे वेदविश्वज्योतिष आणि शाठरमाठर यांचाही परस्पर व पूर्वांशी विवाह होतो.

इति भृगुगण.

अथांगिरसः ते गौतमाः भरद्वाजाः केवलांगिरसश्चेतित्रिधा अत्रगौतमाद्दश आयात्याः शारद्वताः कौमंडाः दीर्घतमसः औशनसाः कारेणुपालेयाः राहूगणाः सोमराजकाः वामदेवाः बृहदुक्थाश्चेति तत्रायात्यानां आंगिरसायास्यगौतमेति शारद्वतानां आंगिरसगौतमशारद्वतेति कौमंडानां आंगि-

१ आणि वत्स व विद हे जामदग्न्य असल्यामुळे ते सगोत्रही आहेत. आतां जरी त्रिप्रवरी आष्टिषेणांला वत्सविदसह दोन किंवा तीन प्रवर समान होत नाहीत, व आष्टिषेण हे जामदग्न्य नसल्यामुळे सगोत्रत्वही नाही तथापि एक पक्षी पंचप्रवरी आष्टिषेण असल्यामुळे त्यांतील त्रिप्रवरसाम्य विवाहाबाधक आहे.

रसौतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमंडेतिवा आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेतिवा आंगिरसौतथ्यगौतमौशि-
जकाक्षीवतेतिवा आंगिरसौशिजकाक्षीवतेतित्रयोवा दीर्घतमसां आंगिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति
आंगिरसौतथ्यदैर्घतमसेतित्रयोवा औशनसानां आंगिरसगौतमौशनसेतित्रयः कारेणुपालेयानां आंगिरस-
गौतमकारेणुपालेतित्रयः राहूगणानां आंगिरसराहूगणगौतमेति सोमराजकानां आंगिरससोमराजकगौत-
मेति वामदेवानां आंगिरसवामदेव्यगौतमेति बृहदुक्थानां आंगिरसबाह्वदुक्थगौतमेति आंगिरसवामदे-
वबाह्वदुक्थेतिवा उतथ्यानामांगिरसौतथ्यगौतमेति औशिजानामांगिरसौशिजकाक्षीवतेत्यापस्तंबः
आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति कात्यायनः एतौद्वौक्चित् रघुवानां आंगिरसराघुवगौतमे-
तिकेचित् तत्रमूलंचित्यम् एषांसर्वेपांगौतमानामविवाहः ।

आतां आंगिरसगण सांगतो—

ते आंगिरस गण तीन प्रकारचे—गौतम, भरद्वाज, आणि केवलांगिरम.

गौतम १० ते येणेंप्रमाणें—

आयास्य—श्रोणिवेध, मूढरथ, इत्यादि अष्टांहुन अधिक आयास्य होत. त्यांचे—‘आंगिरसायास्यगौतमेति’ तीन.
शारद्वत—अभिजित, राहिण्य इत्यादि सत्तरांहुन अधिक शारद्वत होत. त्यांचे ‘आंगिरसगौतमशारद्वतेति’ तीन.
कौमंड—मामथरेषण, मासुराक्ष, इत्यादि दहांहुन अधिक कौमंड होत. त्यांचे ‘आंगिरसांतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमंडे-
ति’ पांच, किंवा ‘आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति’ पांच, किंवा ‘आंगिरसांतथ्यगौतमौशिजकाक्षीव-
तेति’ पांच अथवा ‘आंगिरसौशिजकाक्षीवतेति’ तीन.
दीर्घतमस्—यांचे ‘आंगिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति’ पांच. अथवा ‘आंगिरसांतथ्यदैर्घतमसेति’ तीन.
औशनस्—दिश्य, इत्यादि नवांहुन अधिक औशनस् होत. त्यांचे ‘आंगिरसगौतमौशनमेति’ तीन.
करेणुपालि—वास्तव्य, श्वेतीय इत्यादि सातांहुन अधिक करेणुपालि होत. त्यांचे—आंगिरसगौतमकारेणुपालेति’ तीन.
राहूगण—यांचे ‘आंगिरसराहूगणगौतमेति’ तीन.
सोमराजक—यांचे ‘आंगिरससोमराजकगौतमेति’ तीन.
वामदेव—यांचे ‘आंगिरसवामदेव्यगौतमेति’ तीन.
बृहदुक्थ—यांचे ‘आंगिरसबाह्वदुक्थगौतमेति’ तीन. अथवा ‘आंगिरसवामदेव्यबाह्वदुक्थेति’ तीन.

क्वचित् दोन गण अधिक आहेत ते असे—

उतथ्य—यांचे ‘आंगिरसौतथ्यगौतमेति’ तीन.
औशिज—यांचे ‘आंगिरसौशिजकाक्षीवतेति’ तीन, असे आपस्तंब सांगतो. ‘आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति’
पांच, असे कात्यायन सांगतो.
राघुव—यांचे ‘आंगिरसराघुवगौतमेति’ तीन, असे केचित् सांगतात. याविषयी मूल (प्रमाण) चिंत्त आहे. या सर्व
गौतमांचा परस्पर विवाह होत नाही.

अथभरद्वाजाः तेचत्वारः भरद्वाजाःगर्गाःऋक्षाःकपय इति भरद्वाजानामांगिरसबाह्वस्पत्यभा-
रद्वाजेतित्रयः गर्गाणामांगिरसबाह्वस्पत्यभारद्वाजसैन्यगार्ग्येतिपंच आंगिरससैन्यगार्ग्येतित्रयोवा अंत्ययो-
र्व्यत्ययोवा भारद्वाजगार्ग्यसैन्येतिवा गर्गभेदानां आंगिरसतैत्तिरिकापिभुवेति ऋक्षाणांकपिलानांचांगिरस-
बाह्वस्पत्यभारद्वाजवांदनमातवचसेतिपंच आंगिरसवांदनमातवचसेतित्रयोवा कपीनामांगिरसामहीयवौरु-
क्षयसेति आत्मभुवाम् आंगिरसभारद्वाजबाह्वस्पत्यमंत्रवरात्मभुवेतिपंच अयंक्वचित् भरद्वाजानांसर्वेषा-
मविवाहः ।

आतां भरद्वाज गण ४ ते येणेंप्रमाणें—

भरद्वाज—श्राम्यायण, देवाश्च इत्यादि १६० हून अधिक भरद्वाज आहेत. त्यांचे—‘आंगिरसर्षास्त्वस्यभारद्वाजेति’
तीन प्रवर.

गर्ग—सांभरायण, सखीनय इत्यादि ५० हून अधिक गर्ग. त्यांचे—‘आगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजसैन्यगार्ग्येति पांच अथवा ‘आगिरससैन्यगार्ग्येति’ तीन. किंवा ‘अ’गिरसगार्ग्यसैन्येति’ तीन. अथवा ‘भारद्वाजगार्ग्यसैन्येति’ तीन. गर्गभेदांचे—‘आगिरसतैत्तिरिकापिभुवेति’ तीन.

ऋक्ष—रौक्षायण, कपिल इत्यादि ९ हून अधिक ऋक्ष. त्यांचे—‘आंगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवादनमातवचसेति’ पांच. अथवा ‘आंगिरसवादनमातवचसेति’ तीन.

कपि—स्वस्तितरि, दंडिन् इत्यादि २५ हून अधिक कपि. त्यांचे—‘आंगिरसामहीयवौरुक्षयसेति’ तीन.

आत्मभुव्—यांचे—‘आंगिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यमंत्रवरात्मभुवेति’ पांच. हा गण क्वचित् आहे. ह्या सर्व भरद्वाजांचा परस्पर विवाह होत नाही.

अथकेवलांगिरसः तेच पदं हारिताः कुत्साः कण्वाः रथीतराः मुद्गलाः विष्णुवृद्धाश्चेति हारितानां आंगिरसांबरीपथौवनान्नेति आद्योमांघातावा कुत्सानां आंगिरसमांघातकौत्सेति कण्वानामांगिरसाजमीढकाण्वेति आंगिरसघोरकाण्वेतिवा रथीतराणामांगिरसवैरूपराथीतरेति आंगिरसवैरूपपार्षदश्चेतिवा अष्टादंष्ट्रपार्षदश्चवैरूपेतिवा अंत्ययोन्यंत्ययोवा मुद्गलानामांगिरसभार्म्याश्रमौद्गल्येति आद्यस्ताक्षर्योवा आंगिरसताक्षर्यमौद्गल्येतिवा विष्णुवृद्धानामांगिरसपौरुकुत्सत्रासदस्यवेति एषांस्वगणंविहायसर्वैर्विवाहोभवति हारितकुत्सयोस्तुनभवति ।

आतां केवल आंगिरस गण ६ ते येणेंप्रमाणें—

हारित—सौमग, नैयगव इत्यादि ३२ हुन अधिक हारित. त्यांचे—‘आंगिरसांबरीषयौवनाश्चेति’ तीन. किंवा या तीन प्रवरांमध्ये पहिल्या स्थानी ‘मांधाता’ आहे.

कुत्स—यांचे 'आंगिरस मांधातृ क्रांत्सेति' तीन.

कण्व—औपमर्कट, वाष्कलायन इत्यादि २१ हून अधिक कण्व. त्यांचे—'आंगिरसाजमीडकाण्वेति' तीन. अथवा आंगिरसघोरकाण्वेति' तीन.

रथीतर—हस्तिद, नंतिरक्षि इत्यादि १४ हून अधिक रथीतर. त्यांचे—‘आंगिरसवैरूपाथीतरेति’, अथवा ‘आंगिरसवैरूपापदध्वेति’ किंवा ‘अष्टादंष्ट्रवैरूपापदध्वेति’, किंवा शेवटच्या दोघांचा विपर्यास आहे.

मुद्रल—साल्यमुप्रिय इत्यादि १८ हून अधिक मुद्रल. त्यांचे—‘आंगिरसभार्म्याश्चमौद्रल्येति’ तीन. किंवा पहिल्या ‘तार्क्ष्य’ अथवा ‘आंगिरसतार्क्ष्यमौद्रल्येति’ तीन.

विष्णुवृद्ध—शठ, भरण, इत्यादि २५ हून अधिक विष्णुवृद्ध. त्यांचे—‘आंगिरसपौहकुत्स्यत्रासदस्यवेति’ तीन.

ह्या केवळगिरसांचा आपआपला गण वेगळून सर्वांशीं विवाह होतो. हारित आणि कुत्स यांचा मात्र परस्पर होत नाही.

अथात्रयः तेचत्वारः अत्रयः वाद्भुतकाः गविष्टिराः मुद्गलाइति आद्यानामात्रेयार्चनानसंशयावा-
श्वेति वाद्भुतकानां आत्रेयार्चनानसंवाद्भुतकेति धनंजयानां आत्रेयार्चनानसंधानंजयेतिकचित् गविष्टिराणां
मात्रेयार्चनानसंगाविष्टिरेति आत्रेयगाविष्टिरपौर्वातिथेति वा मुद्गलानामात्रेयार्चनानसंपौर्वातिथेति वामर-
ध्यसुमंगलबैजवापानामात्रेयार्चनानसंतिथेति आत्रेयार्चनानसंगाविष्टिरेति वा सुमंगलानां अत्रिसुमंगलश्या-
वाश्वेति केचित् अत्रेः पुत्रिकापुत्राणाम् आत्रेयवामरध्यपौत्रिकेति अत्रीणां सर्वेषामविवाहः ।

१ तित्तिरि, काषिभूति, आणि खेळित हे तीन गर्गमेद आहेत. २ चत्वारोऽत्रय आपात्रिवाहुतकगविष्टिराः । मुद्राभयेति शब्देन्यासप्रवरैक्याच्च नान्वयः ॥

३८ निर्ण०

आतां अत्रि गण ४ ते येणंप्रमाणे—

अत्रि—भूरि इत्यादि १४ हून अधिक अत्रि. त्यांचे—‘आत्रेयार्चनानसद्यावाधेति’ तीन प्रवर.

बाहुतक—यांचे—‘आत्रेयार्चनानसबाहुतकेति’ तीन.

धनंजय—यांचे ‘आत्रेयार्चनानसधानंजयेति’ तीन. हा गण कचित् आहे.

गविष्ठिर—दक्षि, भलंदन इत्यादि २४ हून अधिक गविष्ठिर. त्यांचे—‘आत्रेयार्चनानसगविष्ठिरेति’ तीन. किंवा ‘आत्रेयगविष्ठिरपौर्वातिथेति’ तीन.

मुद्गल—शालिसंधि, अर्णव इत्यादि १० हून अधिक मुद्गल. त्यांचे—‘आत्रेयार्चनानसर्पातिथेति’ तीन.

वामरथ्य, सुमंगल, वैजवाप, यांचे ‘आत्रेयार्चनानसातिथेति’ तीन. किंवा आत्रेयार्चनानसगविष्ठिरेति’ तीन.

सुमंगल—यांचे—‘अत्रिसुमंगलस्यावाधेति’ तीन. हे चार गण कचित् सांगतात.

वालेय—कौद्रेय, शौत्रेय, वामरथ्य इत्यादि अत्रीचे पुत्रिकापुत्र. त्यांचे—‘आत्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति’ तीन प्रवर.

सान्या अत्रींचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, सगोत्र आहे आणि सप्रवर आहे. अत्रीच्या पुत्रिकापुत्रांचा वसिष्ठ आणि विश्वामित्र यांच्याशीही विवाह होत नाही.

अथविश्वामित्राः तेदश कुशिकाः लोहिताः रौक्षकाः कामकायनाः अजाः कताः धनंजयाः
अघमर्षणाः पूरणाः इंद्रकौशिका इति कुशिकानांवैश्वामित्रदेवरातादलेति लोहितानांवैश्वामित्राष्टकलौहि-
तेति अंत्ययोर्व्येययोवा वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाष्टकेतिवा वैश्वामित्राष्टकेतिद्वौवा रौक्षकाणांवैश्वामित्रगाथिनरै-
वणेति वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेतिवा कामकायनानांवैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति अजानांवैश्वामित्रमाधु-
च्छंदसाजेति वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेतिवा धनंजयानांवैश्वामित्रमाधुच्छंदसधानंजयेति वैश्वामित्रमाधुच्छंद-
साघमर्षणेतिवा कतानांवैश्वामित्रकात्याकीलेति अघमर्षणानांवैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति पूरणानांवैश्वामि-
त्रपौरणेतिद्वौ वैश्वामित्रदेवरातपौरणेतिवा इंद्रकौशिकानांवैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेतिद्वौ एतेबौधायनोक्ताः ॥
रौहिणानांवैश्वामित्रमाधुच्छंदसरौहिणेति रेणूनांवैश्वामित्रगाथिनरैवणेति वेणूनांवैश्वामित्रगाथिनवैवणेति
जहूनांवैश्वामित्रशालंकायनकौशिकेति आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति उदवेणूनांवैश्वामित्रगाथि-
नवैवणेति एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः अन्यैस्त्वन्येपिषट्गणाउक्ताः तेऽन्यत्रमत्कृतौह्येयाः एषां-
विश्वामित्राणामविवाहः ॥

आतां विश्वामित्र गण १० ते येणंप्रमाणे—

कुशिक—पर्णजंघ, नारक्य इत्यादि ७० हून अधिक कुशिक. त्यांचे—‘वैश्वामित्रदेवरातादलेति’ तीन प्रवर.

लोहित—कुडक्य, चाक्रवर्णायन इत्यादि ५ हून अधिक लोहित. त्यांचे—‘वैश्वामित्राष्टकलौहितेति’ तीन. किंवा श्वेटच्या दोहोंचा विपर्यास आहे. अथवा ‘वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाष्टकेति’ तीन. किंवा ‘वैश्वामित्राष्टकेति’ दोन प्रवर.

रौक्षक—यांचे—‘वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति तीन. अथवा ‘वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति’ तीन.

कामकायन—देवश्रवस्, देवतरस इत्यादि ५ हून अधिक कामकायन. त्यांचे—‘वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति’ तीन.

अज—यांचे—‘वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाजेति’ तीन. किंवा ‘वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति’ तीन.

१ साहुलाः हिरण्यरेतसः सुवर्णरेतसः कपोतरेतसः घृतकौशिकाः कथकाः इति षट्गणाः साहुलानां वैश्वामित्रसाहुलमाहुलेति त्रयः
हिरण्यरेतसां वैश्वामित्रहिरण्यरेतसेतिद्वौ । सुवर्णरेतसां वैश्वामित्रसुवर्णरेतसेतिद्वौ कपोतरेतसां वैश्वामित्रकपोतरेतसेतिद्वौ । घृतकौशिकानां
वैश्वामित्रघृतकौशिकेतिद्वौ । कथकानां वैश्वामित्रकथकेति प्रवरदर्पणं. २ विश्वामित्रगणानां सर्वेषां परस्परमविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवर-
त्वात् । कुशिकानां देवरातप्रवरसान्येन देवराताद्देवानिर्णयाद्दक्ष्यमाणदेवरातवदेव जामदग्न्यैरप्यविवाह इति भाति । धनंजयानांविश्वा-
मित्रैरभिधाविवाहः कतानां मरदावैविश्वामित्रैश्चाविवाहः द्विगोत्रत्वात् । इति धर्मसिंधुसारे ।

कंत—औडुंवारि, शैबिरि इत्यादि २० हून अधिक कत. त्यांचे—'वैश्वामित्रकात्याकीलेति' तीन.

धनंजय—पार्थिव, बंधुल, इत्यादि ७ हून अधिक धनंजय. त्यांचे—'वैश्वामित्रमाधुच्छंदसधनंजयेति' तीन. किंवा वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाधमर्षणेति' तीन.

अधमर्षण—यांचे—'वैश्वामित्राधमर्षणकौशिकेति' तीन.

पूरण—यांचे—'वैश्वामित्रपौरणेति' दोन. किंवा 'वैश्वामित्रदेवरातपौरणेति' तीन.

इंद्रकौशिक—यांचे—'वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति' दोन.

हे वरील १० गण बौधायनानें सांगितले आहेत.

रौहिण—यांचे—'वैश्वामित्रमाधुच्छंदसरौहिणेति' तीन प्रवर.

रेणु—यांचे—'वैश्वामित्रगायिनरेणेति' तीन.

वेणु—यांचे—'वैश्वामित्रगायिनवेणेति' तीन.

जन्हु—यांचे—'वैश्वामित्रशालंकायनकौशिकेति' तीन.

आश्मरथ्य—यांचे—'वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति' तीन.

उद्वेणु—यांचे—'वैश्वामित्रगायिनवेणेति' तीन.

हे वरील ६ गण आश्वलायनांनी व मात्यांत सांगितलेले आहेत. इतर ग्रंथकारांनी दुसरेही ६ गण सांगितले आहेत. ते कमलाकरभट्टांनी केलेल्या प्रवरदर्पणांत आहेत ते वर संस्कृत टीपेत दिले आहेत.

ह्या सर्व वैश्वामित्रगणांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, हे सगोत्र आणि सप्रवर आहेत.

अथकश्यपाः तेषां निधुवाः कश्यपाः रेभाः शंडिलाः लौगाक्ष्यश्च निधुवाणां काश्यपावत्सारनैधुवेति कश्यपानां काश्यपावत्सारसितेति रेभाणां काश्यपावत्साररैभ्येति शंडिलानां काश्यपावत्सारशंडिल्येति अंत्यस्थाने देवलोवासितोवा शंडिलासितदेवलेतिवा काश्यपासितदेवलेतिवा अंत्ययोर्व्यत्ययोवा देवलासितेतिद्वौवा लौगाक्षीन्वक्ष्यामः एषां कश्यपानामविवाहः ॥

आतां कश्यप ५ ते येणें प्रमाणें—

निधुव—हे १४० हून अधिक आहेत. त्यांचे—'काश्यपावत्सारनैधुवेति' तीन.

कश्यप—यांचे—'काश्यपावत्सारसितेति' तीन प्रवर.

रेभ—यांचे—'काश्यपावत्साररैभ्येति' तीन.

शंडिल—कोहल, उदमेव इत्यादि ६० हून अधिक शंडिल. त्यांचे 'काश्यपावत्सारशंडिल्येति' तीन. अथवा शेवटच्या स्थानी देवल किंवा असित. किंवा 'शंडिलासितदेवलेति', अथवा 'काश्यपासितदेवलेति' अथवा शेवटच्या दोहोंचा विपर्यास, अथवा 'देवलासितेति' दोन प्रवर.

लौगाक्षि—हे द्विगोत्रांत पुढें सांगूं.

ह्या सर्व कश्यपांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, हे सगोत्र व सप्रवर आहेत.

अथवसिष्ठाः तेषां वसिष्ठाः कुंडिनाः उपमन्यवः पराशराः जातूकर्ण्यश्चेति वसिष्ठानां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति वासिष्ठेत्येकोवा कुंडिनानां वासिष्ठमैत्रावरुणकौंडिन्येति उपमन्यूनां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेतिवा आद्ययोर्व्यत्ययोवा पराशराणां वासिष्ठशक्त्यपाराशर्येति जातूकर्ण्यानां वासिष्ठानिजातूकर्ण्येति वसिष्ठानां सर्वेषामविवाहः अंत्यस्यात्रिभिश्च ॥

१ कतांचा भरद्वाज व विश्वामित्र यांच्याशी विवाह होत नाही. कारण, ते द्विगोत्री आहेत, असें धर्मसिंधुसारांत आहे.
२ धनंजयांचा विश्वामित्र व अत्रि यांच्याशी विवाह होत नाही. दोन्ही गोत्रें त्यांस (धनंजयांस) आहेत. ३ पक्षांकश्यपानां परस्पर अविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च । तदुक्तं । सर्वेच कश्यपगणानिधुवारेमशंडिलाः । गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्चनोद्देशेऽप्युपरस्परमिति ॥
४ वसिष्ठानामिति गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च । तदुक्तं । वसिष्ठाः कुंडिनाश्च उपमन्युपराशराः ॥ वसिष्ठावसिष्ठवसिष्ठो गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च । तदुक्तं ।

आतां अत्रि गण ४ ते येणंप्रमाणं—

अत्रि—भूरि इत्यादि ९४ हून अधिक अत्रि. त्यांचे—‘आत्रेयार्चनानसद्यावाधेति’ तीन प्रवर.

षाद्भुतक—यांचे—‘आत्रेयार्चनानसद्याद्भुतकेति’ तीन.

धनंजय—यांचे ‘आत्रेयार्चनानसधानंजयेति’ तीन. हा गण क्वचित् आहे.

गविष्ठिर—दक्षि, भलंदन इत्यादि २४ हून अधिक गविष्ठिर. त्यांचे—‘आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति’ तीन. किंवा ‘आत्रेयगविष्ठिरर्पांवातिथेति’ तीन.

मुद्रल—शालिसंधि, अर्णव इत्यादि १० हून अधिक मुद्रल. त्यांचे—‘आत्रेयार्चनानसर्पांवातिथेति’ तीन.

वामरथ्य, सुमंगल, बैजवाप, यांचे ‘आत्रेयार्चनानसातिथेति’ तीन. किंवा आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति’ तीन.

सुमंगल—यांचे—‘अत्रिसुमंगलस्यावाधेति’ तीन. हे चार गण केचित् सांगतात.

वालेय—कौद्रेय, शौत्रेय, वामरथ्य इत्यादि अत्रीचे पुत्रिकापुत्र. त्यांचे—‘आत्रेयवामरथ्ययांत्रिकेति’ तीन प्रवर.

साऱ्या अत्रींचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, सगोत्र आहे आणि सप्रवर आहे. अत्रीच्या पुत्रिकापुत्रांचा वसिष्ठ आणि विश्वामित्र यांच्याशीही विवाह होत नाही.

अथविश्वामित्राः तेदश कुशिकाः लोहिताः रौक्षकाः कामकायनाः अजाः कताः धनंजयाः
अघमर्षणाः पूरणाः इंद्रकौशिका इति कुशिकानां वैश्वामित्रदेवरातांदलेति लोहितानां वैश्वामित्राष्टकलौहि-
तेति अंत्ययोर्व्यत्ययो वा वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाष्टकेति वा वैश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा रौक्षकाणां वैश्वामित्रगाथिनरै-
वणेति वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा कामकायनानां वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति अजानां वैश्वामित्रमाधु-
च्छंदसाजेति वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति वा धनंजयानां वैश्वामित्रमाधुच्छंदसधानंजयेति वैश्वामित्रमाधुच्छंद-
साधमर्षणेति वा कतानां वैश्वामित्रकात्याक्कीलेति अघमर्षणानां वैश्वामित्राधमर्षणकौशिकेति पूरणानां वैश्वामि-
त्रपौरणेति द्वौ वैश्वामित्रदेवरातपौरणेति वा इंद्रकौशिकानां वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ एते बौधायनोक्ताः ॥
रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छंदसरौहिणेति रेणूनां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति वेणूनां वैश्वामित्रगाथिनवैवणेति
जहूनां वैश्वामित्रशालंकायनकौशिकेति आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति उद्वेणूनां वैश्वामित्रगाथि-
नवैवणेति एते आश्वलायनमात्स्योक्ताः अन्यैस्त्वन्येपि षट्गणा उक्ताः तेऽन्यत्र मत्कृतौ ब्रूयाः एषां-
विश्वामित्राणामविवाहः ॥

आतां विश्वामित्र गण १० ते येणंप्रमाणं—

कुशिक—पर्णजंघ, नारक्य इत्यादि ७० हून अधिक कुशिक. त्यांचे—‘वैश्वामित्रदेवरातांदलेति’ तीन प्रवर.

लोहित—कुडक्य, चाक्रवर्णायन इत्यादि ५ हून अधिक लोहित. त्यांचे—‘वैश्वामित्राष्टकलौहितेति’ तीन. किंवा शेवटच्या दोहोंचा विपर्यास आहे. अथवा ‘वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाष्टकेति’ तीन. किंवा ‘वैश्वामित्राष्टकेति’ दोन प्रवर.

रौक्षक—यांचे—‘वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति तीन. अथवा ‘वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति’ तीन.

कामकायन—देवश्रवस्, देवतरस इत्यादि ५ हून अधिक कामकायन. त्यांचे—‘वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति’ तीन.

अज—यांचे—‘वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाजेति’ तीन. किंवा ‘वैश्वामित्राश्मरथवाधूलेति’ तीन.

१ साहुलाः हिरण्यरेतसः सुवर्णरेतसः कपोतरेतसः घृतकौशिकाः कथकाः इति षट्गणाः साहुलानां वैश्वामित्रसाहुलमाहुलेति त्रयः
हिरण्यरेतसां वैश्वामित्रहिरण्यरेतसेति द्वौ । सुवर्णरेतसां वैश्वामित्रसुवर्णरेतसेति द्वौ । कपोतरेतसां वैश्वामित्रकपोतरेतसेति द्वौ । घृतकौशिकानां
वैश्वामित्रघृतकौशिकेति द्वौ । कथकानां वैश्वामित्रकथकेति प्रवरदर्पणं. २ विश्वामित्रगणानां सर्वेषां परस्परमविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवर-
त्वात् । कुशिकानां देवरातप्रवरसांभ्येन देवराताग्नेदानिर्णयाद्भ्यमाणदेवरातवदेव जामदग्न्यैरप्यविवाह इति भाति । धनंजयानां विश्व-
मित्रैरपि विश्वामित्राः कतानां अरदाजैर्विश्वामित्रैश्च विवाहः द्विगोत्रत्वात् । इति धर्मेसिंधुसारे ।

कैत—औदुंबरि, शैबिरि इत्यादि २० हून अधिक कत. त्यांचे—'वैश्वामित्रकात्याकीलेति' तीन.

धनंजय—पार्थिव, बंधुल, इत्यादि ७ हून अधिक धनंजय. त्यांचे—'वैश्वामित्रमाधुच्छंदसधनंजयेति' तीन. किंवा वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाधमर्षणेति' तीन.

अधमर्षण—यांचे—'वैश्वामित्राधमर्षणकौशिकेति' तीन.

पूरण—यांचे—'वैश्वामित्रपौरणेति' दोन. किंवा 'वैश्वामित्रदेवरातपौरणेति' तीन.

इंद्रकौशिक—यांचे—'वैश्वामित्रद्रकौशिकेति' दोन.

हे वरील १० गण बौधायनानें सांगितले आहेत.

रौहिण—यांचे—'वैश्वामित्रमाधुच्छंदसरौहिणेति' तीन प्रवर.

रेणु—यांचे—'वैश्वामित्रगायिनरैणेति' तीन.

वेणु—यांचे—'वैश्वामित्रगायिनवैणेति' तीन.

जन्हु—यांचे—'वैश्वामित्रशालंकायनकौशिकेति' तीन.

आश्मरथ्य—यांचे—'वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधूलेति' तीन.

उदवेणु—यांचे—'वैश्वामित्रगायिनवैणेति' तीन.

हे वरील ६ गण आश्वलायनांनी व मात्स्यांत गागितलेले आहेत. इतर ग्रंथकारांनीं दुसरेही ६ गण सांगितले आहेत. ते कमलकरभट्टांनं केलेल्या प्रवरदर्पणांत आहेत ते वर संस्कृत टीपेत दिले आहेत.

ह्या सर्व वैश्वामित्रगणांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, हे सगोत्र आणि सप्रवर आहेत.

अथकश्यपाः तेषंच निधुवाः कश्यपाः रेभाः शंडिलाः लौगाक्षयश्च निधुवाणांकाश्यपावत्सारनैधुवेति कश्यपाणांकाश्यपावत्सारसितेति रेभाणांकाश्यपावत्साररंभ्येति शंडिलानांकाश्यपावत्सारशंडिल्येति अंत्यस्थानेदेवलोवासितोवा शंडिलासितदेवलेतिवा काश्यपासितदेवलेतिवा अंत्ययोर्व्यत्ययोवा देवलासितेतिद्वौवा लौगाक्षीन्वक्ष्यामः एपांकाश्यपानामविवाहः ॥

आतां कश्यप ५ ते येणेंप्रमाणें—

निधुव—हे १४० हून अधिक आहेत. त्यांचे—'काश्यपावत्मारनैधुवेति' तीन.

कश्यप—यांचे—'काश्यपावत्मारसितेति' तीन प्रवर.

रेभ—यांचे—'काश्यपावत्माररंभ्येति' तीन.

शंडिल—कोट्टल, उदमेव इत्यादि ६० हून अधिक शंडिल. त्यांचे 'काश्यपावत्सारशंडिल्येति' तीन. अथवा शेवटच्या स्थानीं देवल किंवा असित. किंवा 'शंडिलासितदेवलेति', अथवा 'काश्यपासितदेवलेति' अथवा शेवटच्या दोहोंचा विपर्यास, अथवा 'देवलासितेति' दोन प्रवर.

लौगाक्षि—हे द्विगोत्रांत पुढें सागूं.

ह्या सर्व कश्यपांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, हे सगोत्र व सप्रवर आहेत.

अथवसिष्ठाः तेषंच वसिष्ठाः कुंडिनाः उपमन्यवः पराशराःजातूकर्ण्याश्चेति वसिष्ठानां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति वासिष्ठेत्येकोवा कुंडिनानां वासिष्ठमैत्रावरुणकौंडिन्येति उपमन्यूनां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेतिवा आद्ययोर्व्यत्ययोवा पराशराणांवासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति जातूकर्ण्यानां वासिष्ठानिजातूकर्ण्येति वसिष्ठानांसर्वेषामविवाहः अंत्यस्यात्रिभिश्च ॥

१ कतांचा भरद्वाज व विश्वामित्र यांच्याशीं विवाह होत नाही. कारण, ते द्विगोत्री आहेत, असें धर्मसिंधुसारांत आहे.

२ धनंजयांचा विश्वामित्र व अत्रि यांच्याशीं विवाह होत नाही. दोन्ही गोत्रें त्यास (धनंजयांस) आहेत. ३ एपांकाश्यपानां परस्पर अविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च । तदुक्तं । सर्वेच कश्यपगणानिधुवारेभंशंडिलाः । गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्चनोद्वेदेषुःपरस्परमिच्छि ॥

४ वसिष्ठानामितिगोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च । तदुक्तं । वसिष्ठाःकुंडिनाश्चैवउपमन्युपराशराः ॥ वसिष्ठावसिष्ठत्वारो गोत्रैक्याच्चाप्यनुमिच्छि ॥

आतां वसिष्ठ ५ ते येणंप्रमाणे—

वसिष्ठ—वैतालकवि, रकि इत्यादि ६० हून अधिक वसिष्ठ. त्यांचे—‘वासिष्ठेद्रप्रमदाभरद्वस्विति’ तीन. अथवा ‘वासिष्ठेति’ एक प्रवर.

कुंडिन—लोहितायन, गुग्गुलि इत्यादि २५ हून अधिक कुंडिन. त्यांचे—‘वासिष्ठमैत्रावरुणकौंडिन्येति’ तीन प्रवर.

उपमन्यु—औदलि, इत्यादि ७० हून अधिक उपमन्यु. त्यांचे—‘वासिष्ठेद्रप्रमदाभरद्वस्विति’ तीन. किंवा ‘वासिष्ठाभरद्वस्विद्रप्रमदेति’ अथवा पहिल्या दोघांचा विपर्यास.

पराशर—कांडशय, वाजि इत्यादि ४७ हून अधिक पराशर. त्यांचे—‘वासिष्ठशाक्यपाराशर्येति’ तीन.

जातूकर्ण्य—यांचे—‘वासिष्ठत्रिजातूकर्ण्येति’ तीन.

ह्या सर्व वसिष्ठांचा परस्पर विवाह होत नाही. आणि जातूकर्ण्यांचा अर्नीशीही विवाह होत नाही.

अथागस्त्याः तेचत्वारः इध्मवाहाः सांभवाहाः सोमवाहाः यज्ञवाहाश्चेति आद्यानां आगस्त्य-
दार्ढ्यच्युतैध्मवाहेति आगस्त्येत्थेकोवा सोमवाहानां आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसोमवाहेति सांभवाहानांसांभवा-
होऽन्त्यः यज्ञवाहानांयज्ञवाहोऽन्त्यः आद्यौपूर्वोक्तावेव सारवाहानांतदंतास्त्रयः दर्भवाहानांतदंतास्त्रयः अग-
स्तीनामागस्त्यमाहेंद्रमायोभुवेति पूर्णमासानां आगस्त्यपौर्णमासपारणेति हिमोदकानां आगस्त्यहैमवर्चिहैमो-
दकेति पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति एतेषद्वक्कचित् अगस्तीनांसर्वेषामविवाहः ॥

आतां अगस्त्य ४ ते येणंप्रमाणे—

इध्मवाह—विशालाय, स्फालायन इत्यादि ५० हून अधिक इध्मवाह. त्यांचे—‘आगस्त्यदार्ढ्यच्युतैध्मवाहेति’ तीन, अथवा ‘आगस्त्येति’ एक.

सांभवाह—यांचे—‘आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसांभवाहेति’ तीन.

सोमवाह—यांचे—‘आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसोमवाहेति’ तीन.

यज्ञवाह—यांचे—‘आगस्त्यदार्ढ्यच्युतयज्ञवाहेति’ तीन.

सारवाह—यांचे—‘आगस्त्यदार्ढ्यच्युतसारवाहेति’ तीन.

दर्भवाह—यांचे—‘आगस्त्यदार्ढ्यच्युतदर्भवाहेति’ तीन.

अगस्ति—यांचे—‘आगस्त्यमाहेंद्रमायोभुवेति’ तीन.

पूर्णमास—यांचे—‘आगस्त्यपौर्णमासपारणेति’ तीन.

हिमोदक—यांचे—‘आगस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति’ तीन.

पाणिक—यांचे—‘आगस्त्यपैनायकपाणिकेति’ तीन.

सारवाहांपासून पुढचे ६ गण क्वचित् आहेत.

ह्या सर्व अगस्त्यांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, हे सगोत्र आणि सप्रवर आहेत.

अथद्विगोत्राः शौंगशैशिरिणीं आंगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्याक्षीलेतिपंच कात्याक्षील्योःस्थानेशौ-
गशैशिरिवा आंगिरसकात्याक्षीलेतित्रयोवा एषांभरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः एवंकपिलानांकतानांचसंकृति-
पूतिमाषादीनां आंगिरसगौरिवीतिसांकृतेति शाक्यगौरिवीतिसांकृतेतिवा अंत्ययोन्येत्ययोवा एषांस्वगण-
स्यैर्वसिष्ठैः शौंगशैशिरैर्लौगाक्षिभिश्चाविवाहः कश्यपैरपीतिप्रयोगपारिजाते लौगाक्षीणांकाश्यपावत्सा-
रवासिष्ठेति काश्यपावत्सारसितेतिवा एतेहैर्वसिष्ठानक्तंकश्यपाः एषांवसिष्ठैःकश्यपैःसंकृतिभिश्चाविवाहः
देवरातस्यजामादयैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहइति प्रयोगपारिजाते तदयुक्तं बह्वृचश्रुतौयथैवांगिरसःसन्नुपेयां

१ तत्रभारद्वाजकुंभात् वैश्वामित्रस्यशैशिरैः क्षेत्रेजातः शौंगशैशिरिर्कपिस्तस्मिन्ब्रह्मक्षणात्तत्वाज्ञोत्पत्त्वं ॥ २ अहर्वसिष्ठाः दिनकर्मणि
कृतिहृत्पश्युक्तकार्यभाजः रात्रिकर्मणिकाश्यपस्यप्रयुक्तकार्यभाजस्वयैः ॥

तवपुत्रतां आंगिरसोजन्मनास्याजीगर्तिः श्रुतः कविरित्यंगिरोगणस्थत्वेन भार्गवजामदभ्यत्वस्मृतेर्हरिवंशावि-
स्मृतेश्च बाधात् तेन द्वौ देवरातौ एकं आंगिरसः श्रुत्युक्तः अन्यो भार्गवः तयोः कल्पभेदेऽप्यांगिरसेन देवरातेन
जामदग्न्यैर्भवत्येव विवाहः भार्गवेण तुनेतितत्त्वम् धनंजयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्च विवाहः जातूकर्ण्यानां
वसिष्ठैरत्रिभिश्च विवाहः एवं दत्तकीतृत्रिमस्वयंदत्तपुत्रिकापुत्रादीनां उत्पादकपालकयोः पित्रोर्गोत्रप्रवरावर्ज्या
इति प्रवरमंजरीनारायणवृत्तिप्रयोगपारिजातादयः अत्र सर्वत्रोपपत्तयः मूलं च मत्कृते प्रवर-
दर्पणे ज्ञेयमिति दिक् ॥

आतां द्विगोत्री सांगतो—

भरद्वाज गोत्रांतल्या शृंगकृषीपासून विश्वामित्रगोत्री शैशिरकृषीच्या क्षेत्राचे ठायीं (पत्नीचे ठायीं) झालेला शौंगशैशिरि
नांवाचा ऋषि. त्याजवर गोत्राचें लक्षण येत असल्यामुळे तो गोत्र आहे. त्या शौंगशैशिरि गोत्राचे 'आंगिरसबाह्स्पत्यभार-
द्वाजकात्याक्षीलेति' पांच प्रवर. अथवा 'आंगिरसबाह्स्पत्यभारद्वाजशौंगशैशिरि' पांच प्रवर. किंवा 'आंगिरसकात्याक्षीलेति'
तीन प्रवर. यांचा सर्व भरद्वाजांशीं आणि सर्व विश्वामित्रांशीं विवाह होत नाही.

याचप्रमाणे कपिल, कत, संकृति, पूतिमाष इत्यादिकांचे—'आंगिरसगौरिवीतिसांकृतेति' तीन प्रवर. अथवा
'शात्तयगौरिवीतिसांकृतेति' तीन प्रवर. यांचा आपआपल्या गणाशीं, सर्व वसिष्ठांशीं, शौंगशैशिरिंशीं आणि लौगाक्षींशीं
विवाह होत नाही. कश्यपांशीं देखील विवाह होत नाही असे प्रयोगपारिजातांत सांगितले आहे.

लौगाक्षि, दार्भायण, इत्यादि ३८ हून अधिक लौगाक्षि. त्यांचे 'काश्यपावत्सारवासिष्ठेति' तीन. किंवा 'काश्यपावत्सारा-
सिष्ठेति' तीन प्रवर. हे अहर्वेमिष्ट आणि नक्तकश्यप म्हणजे दिवसा कर्माविषयीं वानिष्ठगोत्री आणि रात्रीं कर्माविषयीं काश्य-
पगोत्री आहेत. यांचा वसिष्ठांशीं, कश्यपांशीं, आणि संकृतींशीं विवाह होत नाही.

देवरात गोत्राचा जामदग्न्य व विश्वामित्र यांच्याशीं विवाह होत नाही, असे प्रयोगपारिजातांत सांगितले आहे. तें
अयुक्त आहे. कारण, वहूचश्रुतींत (ब्राह्मणांत) "देवरात म्हणतो—मी आंगिरस असून तुझा (विश्वामित्राचा) पुत्र
झालां आहे. तो अजीगनाचा पुत्र विद्वान व जन्मानें आंगिरस होना." या श्रुतीवरून आंगिरस गणांतील असल्यामुळे 'हा
भार्गव जामदग्न्य आहे' या स्मृतीचा व हरिवंशादि स्मृतीचा वाध होत आहे. ह्या श्रुतीवरून व हरिवंशादि स्मृतीवरून दोन
देवरात आहेत. श्रुतींत सांगितलेला एक आंगिरस देवरात. आणि दुसरा स्मृतींत सांगितलेला भार्गव देवरात. ते दोन निर-
निराळ्या कल्पांत झालेले असले, तरी आंगिरस देवरात गोत्राचा जामदग्न्यांशीं विवाह होतच आहे. भार्गव देवराताचा
जामदग्न्यांशीं विवाह होत नाही. हें तत्त्व समजावें.

धनंजय गोत्राचा विश्वामित्र आणि अत्रि यांच्याशीं विवाह होत नाही. जातूकर्ण्यांचा वसिष्ठ व अत्रि यांच्याशीं
विवाह होत नाही. याचप्रमाणे दत्तक, कीत (विकत घेतलेला), स्वयंदत्त (आपले आपण दान केलेला), पुत्रिकापुत्र
इत्यादिकांचा जनक पित्याचे आणि पालक पित्याचे गोत्रप्रवरांशीं विवाह होत नाही, असे प्रवरमंजरी, नारायणवृत्ति,
प्रयोगपारिजात इत्यादि ग्रंथांत सांगितले आहे. या सर्वाविषयीं उपपत्ति व मूलप्रमाण हें मी (कमलाकरभट्टानें) केलेल्या
प्रवरदर्पणांत पाहावें. ही दिशा दाखविली आहे.

क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धांतः यद्यपि वहूचपरिशिष्टे कपि भरद्वाजयोर्विवाह उक्त-
स्तथापि भरद्वाजाश्च कपयोगगौरौ क्षायणाडित्चत्वारोपि भरद्वाजगोत्रैक्यान्नावयुर्मिथः कपिगर्गभरद्वाजामि-
थोरौ क्षायणाद्विजाः नोद्वहेयुः सगोत्रत्वात् प्रवरैक्याच्च कुत्रचिदिति स्मृत्यर्थसाराद्युक्तेरविवाह एव तयोरिति
प्रवरमंजरी स्वगोत्राव्यज्ञानेन सत्यापादः अथाज्ञातबंधोः पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वेति आचा-
र्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् दत्वात्मानंतु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जमदग्निजः

१ धनंजयानां विश्वामित्रमाधुच्छेदसधानंजयेति त्रयः प्रवराः अत्रेयार्चनान्तसधानंजयेति पक्षांतरे प्रवरसाभ्यात् सगोत्रत्वात् विश्व-
मित्रानुवृत्तेश्च । तदुक्तं अत्रेयस्वगणस्यापि विश्वामित्रगणस्य च ॥ धानंजयाख्यगोत्रेण नाम्न्योन्यां पाणिपीडनमिति । अन्येतु पुत्रिकापुत्रा
वामरध्यादयस्तथा ॥ विश्वामित्रात्रिगोत्राभ्यां नोद्वहेयुर्धनंजया । इति वामरध्याधनंजयाश्च विश्वामित्रात्रिभ्यां नोद्वहेयुरित्यर्थः ॥ २ जातू-
कर्ण्यानामिति । वासिष्ठात्रेयजातूकर्ण्येति त्रयः प्रवराः वसिष्ठात्रेयोरनुवृत्तेः तदुक्तं । तथैव जातूकर्ण्यांश्च वसिष्ठैरत्रिभिः सह । नोद्वहेयुरिति-
शेषः ॥ ३ अनेनैव न्यायेन परगोत्रोत्पन्नदत्तकादीनामिदानींतनानामपि द्विगोत्रत्वात् जनकप्रतिग्रहीतृपित्रोर्द्वयोरपि सगोत्रैः सह अवि-
वाहो ज्ञेयः ॥ नात्र पुरुषसंस्था तेन दत्तपुरुषोत्तरमपि द्विगोत्रत्वं तापेति इति भर्गमिधुसारे ॥

विवाहं च न ते नैव गोत्रेण तु स माचरेदिति कश्चित् दिवोदासीयेपि स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत् ॥

क्षत्रिय आणि वैश्य यांचें स्वतःचें गोत्र व प्रवर नाही. पुरोहिताचे गोत्र-प्रवर जे असतील तेच क्षत्रियवैश्यांचे गोत्रप्रवर समजावे, हा सर्व ग्रंथांचा सिद्धांत आहे. आतां जरी बहुचर्चापरिशिष्टांत कपि आणि भरद्वाज यांचा परस्पर विवाह सांगितला आहे, तरी “भरद्वाज, कपि, गर्ग, आणि रीक्षायेण ह्या चौघांचें भरद्वाज गोत्र एक असल्यामुळें यांचा परस्पर विवाह होणार नाही. कपि, गर्ग, भरद्वाज, व रीक्षायेण ह्या द्विजांचें एक गोत्र व एक प्रवर असल्यामुळें ह्यांनीं परस्पर विवाह करूं नये” अशा स्मृत्यर्थसारादिकांच्या उक्तीवरून कपि व भरद्वाज ह्यांचा विवाह होतच नाही, असें प्रवरमंजरीकार सांगतो. आपले गोत्रप्रवर माहीत नसतील तर सांगतो सत्याषाढ—“आतां ज्याचे प्रवर माहीत नसतील त्यांचीं विवाहादि कार्यें पुरोहिताच्या प्रवरानें अथवा उपनयनकर्त्या आचार्याच्या प्रवरानें करावीं.” “आचार्याचे गोत्रप्रवर जाणत नसेल अशा द्विजांनीं कोणाला तरी आपलें आपण दान करून त्याचे गोत्रप्रवरी आपण व्हावें. अथवा आपले गोत्रप्रवर जाणत नसेल तो जमदग्नि-गोत्रप्रवरी समजावा. त्याच जमदग्नि गोत्रप्रवराशीं त्यांनीं विवाह करूं नये” असें कोणी एक सांगतो. दिवोदासीयांतही—“आपल्या गोत्रप्रवरांचें ज्ञान नसेल तर जमदग्निगोत्राचा आश्रय करावा.”

अथ मातृगोत्रवर्जननिर्णयः शातातपः मातुलस्य सुतामूढामातृगोत्रांतथैवच समानप्रवरांचैव गत्वाचांद्रायणंचरेत् यद्यपि सगोत्रां मातुरप्येकेनेच्छंत्युद्वाहकर्मणि जन्मनामोरोविज्ञानेप्युद्बहेदविशंकितइति व्यासोक्तेरज्ञातनामत्वेनसगोत्रत्वदोषस्तथापिनेदंकलौप्रवर्तते गोत्रान्मातुःसर्पिंडाच्चविवाहो गोवधस्तथेति कलिवर्ज्यत्वेऽपि इदं मातृगोत्रवर्जनं माथ्यंदिनीयानामेव मातृगोत्रमाथ्यंदिनीयानामपुत्रायाश्चेति सत्याषाढोक्तेरितिकश्चित्त्रिर्मूलम् अतएव आह प्रवरमंजरीकारः दोषस्यातिगुरुत्वानुसर्वेषामातृगोत्रवर्ज्यमिति यत्तु एकस्मिन्प्रवरेतुल्येमातृगोत्रेवरस्यच तमुद्वाहं न कुर्वीतसाकन्याभगिनीस्मृतेति मातृकुले प्रवरचितनमुक्तम् तदासुरादिविवाहोदापरमितिदिक् । विस्तरस्तुग्रंथांतरेभ्योज्येयः ।

आतां मातृगोत्रवर्जनाचा निर्णय सांगतो—

शातातप—“मातुलाची कन्या, मातेच्या गोत्रांतील (मातामहाच्या गोत्रांतील) कन्या आणि सप्रवर कन्या यांच्याशीं विवाह करून गमन करील तर चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें.” आतां जरी “किती एक विद्वान् विवाहाविषयीं मातेच्या गोत्रांतली देखील कन्या इच्छीत नाहीत. त्या मातृगोत्रांतली कन्येच्या वडिलांचें, अमुकापासून अमुक झाला इत्यादि जन्म, आणि त्यांचें नांव बरोबर माहीत नसेल तर कोणतीही शंका न धरितां तिच्याशीं विवाह करावा” ह्या व्यासवचनावरून नांवाचें ज्ञान नसेल तर त्या कन्येला मातृसगोत्रत्वरूप दोष नाही; तरी हें वचन कलियुगांत प्रवृत्त होत नाही. कारण, “मातेच्या गोत्रांतील व मातेच्या सर्पिंडांतील कन्येशीं विवाह आणि मधुपर्कान्त गोवध हे कलियुगांत वर्ज्य करावे” असें पुढें (तृतीयपरिच्छेद-पूर्वार्धाच्या शेवटी) कलिवर्ज्यप्रकरणंत सांगितलें आहे. ही मातृगोत्रांतील कन्या वर्ज्य सांगितली ती माथ्यंदिन शाख्यांनाच आहे. इतरांना वर्ज्य नाही. कारण, “मातृगोत्र वर्ज्य सांगितलें तें माथ्यंदिनांनाच समजावें” असें सत्याषाढाचें वचन आहे, असें कोणी एक सांगतो. तें निर्मूल आहे. म्हणूनच प्रवरमंजरीकार सांगतो—“मातृगोत्रांतील कन्या वरणें हा दोष फार मोठा असल्यामुळें सर्वांना मातृगोत्र वर्ज्य आहे.” आतां जें “वराच्या मातेचें गोत्र व प्रवर आणि वधूचें गोत्र व प्रवर एक झाला असतां त्या वधूवरांचा विवाह करूं नये. कारण, ती कन्या त्या वराची भगिनी म्हणली आहे.” ह्या वचनानें मातेच्या कुलांतील प्रवर पहावा, म्हणून सांगितलें आहे. तो प्रकार आसुर, गांधर्व इत्यादि विवाहानें विवाहित मातेविषयीं समजावा. ही दिशा दाखविली आहे. याचा विस्तर पाहणें असल्यास इतर ग्रंथांतून पाहावा.

सगोत्रादिविवाहेप्रायश्चित्तं स्मृत्यर्थसारे इत्यंसगोत्रसंबंधविवाहविषयेस्थिते यदिकश्चिज्ज्ञानतस्तांक-न्यामूढोपगच्छति गुरुतत्पत्रताच्छुद्धेर्द्रुमस्तज्जोऽन्यतां व्रजेत् भोगतस्तांपरित्यज्यपालयेज्जननीमिव अज्ञाना-

१ मातृगोत्राभितिसगोत्रानिपेधेनैवमातृगोत्रानिपेधसिद्धेमातृविवाहात्पूर्वगोत्रमित्यर्थात्सिद्धं मातामहगोत्रमित्यर्थः ॥ २ आसुरादीति पुत्रिकापुत्रोपलक्षणमिदम् ॥ ३ मातामहगोत्रांतील कन्या वर्ज्य सांगितली ती गांधर्व, आसुर इत्यादि विवाहानें विवाहित कियेच्या पुत्रांना वर्ज्य समजावी. कारण, त्या गांधर्वादि विवाहांत विधिपूर्वक दान नसल्यामुळें पित्याच्या गोत्रापासून ती स्त्री सुटत नाही. ब्राह्म विवाहानें विवाहित कियेच्या पुत्रांना तर सर्वांना मातामहगोत्र वर्ज्य नाही. किंतु माथ्यंदिनशाख्यांनाच वर्ज्य आहे. कारण, ‘मातृगोत्र माथ्यंदिनांना वर्ज्य’ असें सत्याषाढवचन आहे. आणि तसाच शिष्टाचारही आहे. असा धर्मसिंधुसाराचा अभिप्राय आहे. ४ चांद्रायण, कृच्छ्र यांचीं स्वरूपं ग्रंथाच्या शेवटीं देऊं.

द्वैतैः शुद्धे त्रिभिर्गर्भस्तु काश्यपः एवं सापिंड्येऽपि सपिंडापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयत इति बृहद्गोत्रोक्तेः
तिथितत्त्वबोधायनः सपिंडांसगोत्रांचेदमलोपयच्छेन्मातृवदेनाभिभूयात् ।

सगोत्र सपिंड कन्येशीं विवाह झाला असतां प्रायश्चित्त सांगतो **स्मृत्यर्थसारांत**—“याप्रमाणे सगोत्रसंबंधी विवाहविषय उपस्थित झाला असतां जर कोणी जाणून त्या सगोत्र कन्येशीं विवाह करून तिजप्रत गमन करील तर त्यानें गुरुपत्नीगमनाचें प्रायश्चित्त करावें, म्हणजे तो शुद्ध होईल. आणि त्यापासून झालेला गर्भ असेल तो चांडाल होईल. याकरितां सगोत्र कन्येशीं विवाह झाला असतां संभोगाविषयीं तिचा त्याग करून मातेसारखें तिचें पालन करावें. न जाणून सगोत्र कन्येशीं विवाह करील व तिचा संभोग करील तर तीन चांडायणांनीं त्याची शुद्धि होईल आणि त्यापासून झालेला गर्भ कादयप गोत्री होईल.” हाच प्रकार सपिंडांतील कन्येविषयीं देखील समजावा. कारण, “सपिंडांतील कन्या व त्रिया यांचे ठायीं गमन केलें असतां प्राणत्याग होईल असें प्रायश्चित्त मांगितलें आहे” असें **बृहद्गमाचें** वचन आहे. **तिथितत्त्वांत बोधायन**—“सगोत्र व सपिंड कन्येशीं न जाणून जर विवाह करील तर तिचें मातेसारखें पालन करावें.”

कन्याविवाहकालउक्तोज्योतिर्निबंधे पडव्दमध्येनोद्वाह्याकन्यावर्षद्वयंततः सोमोभुंकेततस्त-
 द्वं धर्वश्च तथाऽनलः **राजमार्तंडः** अयुग्मेदुर्भगानारीयुग्मेतुविधवाभवेत् तस्माद्गर्भान्वितेयुग्मेविवाहेसा
 पतिव्रता मासत्रयादूर्ध्वमयुग्मवर्षेयुग्मेपिमासत्रयमेवयावत् विवाहशुद्धिप्रवदंतिसंतोवात्स्यादयः स्त्रीजनिज-
 न्ममासान् **पराशरमाधवीयेतु** जन्मतोगर्भाधानाद्वापंचमाव्दात्परं शुभं कुमारीवरणंदानं मेखलाबंधनं
 तथेत्युक्तम् **संबंधतत्त्वयमः** कन्याद्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्तावसेदृहे ब्रह्महत्यापितुस्तस्याः साकन्यावरयेत्स्वयं
भारते त्रिंशद्वर्षः षोडशवर्षाभार्याविंदेतनम्रिकां द्व्यष्टवर्षां ऽष्टवर्षावाधर्मंसीदतिस्त्वरः अतोऽप्रवृत्तेरजसिक-
 न्यादद्यात्पितासकृत् **तत्रैव** सप्तसंवत्सरगदूर्ध्वविवाहः सार्ववर्णिकः कन्यायाः शस्यतेराजन्नयथाधर्मगर्हितः
राजमार्तंडः राहुग्रस्तेतथायुद्धेपितृणांप्राणसंशये अतिप्रौढाचयाकन्याचंद्रलप्रवलेनतु **मनुः** त्रिंशद्वर्षोवहे-
 त्कन्यां द्वाद्वादशवर्षीकीं त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षावाधर्मंसीदतिस्त्वरः यद्यपि विवाहस्त्यष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्य-
 तेवधैरिति **संवर्तोक्तेर**त ऊर्ध्वं जस्वलेत्यादेश्च दशवर्षादूर्ध्वविवाहो निषिद्धः तथापि दातुरभावेद्वादशषोडशान्वे-
 ज्ञेयेत्रीणि वर्षाण्यृतुमतीकांक्षेतपितृशासनमिति **पराशरमाधवीयेबोधायनोक्तेश्च मनुः** स्त्रीसंबंधे
 दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् हीनक्रियं निःपुरुषं निःशृंगं दोगेमशार्शमम श्रय्यामयाव्यपस्मारिश्चित्रिकुष्ठिकुला-
 निच नश्वृक्षनदीनाम्रीनांत्यपर्वतनामिकां नपक्ष्यहि प्रेण्यनाम्रीं नत्रिभीपणनामिकाम् **यमः** तस्माद्वादहयेत्क-
 न्यां यावन्नर्तुमतीभवेत् तथामूलजादीनां फलंप्रागुक्तम् **तथा** वर्णवश्यग्रहमैत्र्यादिघटितविचारोज्योतिर्विद्भ्यो-
 ज्ञेयः विस्तरात्तु नोच्यते ।

कन्येचा विवाहकाल सांगतो **ज्योतिर्निबंधांत**—“सहा वर्षाच्या आंत कन्येचा विवाह करू नये. कारण, दोन वर्षे सोम तिला भोगतो, नंतर दोन वर्षे गंधर्व भोगतो, पुढे दोन वर्षे अग्नि भोगतो.” **राजमार्तंड**—“कन्येचा विषमवर्षी विवाह केला असतां ती स्त्री दुर्भगा होईल. आणि समवर्षी विवाह केला असतां ती स्त्री विधवा होईल. तस्मात् गर्भापासून समवर्षी विवाह करावा, म्हणजे ती पतिव्रता होईल. कन्येचें जन्म ज्या मासांत असेल त्या जन्ममासापासून अयुग्म (विषम) वर्षी तीन महिन्यांनंतर आणि समवर्षी तीन महिनेपर्यंत विवाहाचा काल शुद्ध आहे, असें वात्स्यादिमुनि सांगतात.” **पराशर-माधवीयांत** तर “कन्येचें वरण, कन्येचें दान आणि मांजीबंधन हें जन्मापासून किंवा गर्भस्थापनापासून पांचव्या वर्षाच्या पुढे शुभ आहे” असें सांगितलें आहे. **संबंधतत्त्वांत यम**—“बारा वर्षांपर्यंत जी अविवाहित कन्या पित्याच्या घरी राहिल तिच्या पित्याला ब्रह्महत्या दोष प्राप्त होईल. म्हणून त्या कन्येनें आपण होऊन पति वरावा.” **भारतांत**—“तीस वर्षांच्या पुरुषांनं ऋतुप्राप्त न झालेली अशी सोळा वर्षांची स्त्री वरावी. अथवा सोळा वर्षांच्या पुरुषांनं आठ वर्षांची भार्या वरावी. म्हणजे धर्माचे ठायीं तो राहतो. नम्रिका (ऋतु प्राप्त न झालेली) वरावी, असें आहे म्हणून कन्येला ऋतु प्राप्त झाला नसेल तोंपर्यंत तिचें दान पित्यानें एकवार करावें.” तेथेंच—“सात वर्षांच्या पुढे कन्येचा विवाह ब्राह्मणादि सर्व वर्णांना प्रशस्त आहे. असा न होईल तर तो धर्मानें निंदित होईल.” **राजमार्तंड**—“चंद्रमूर्यग्रहणांत सांगितलेल्या कर्माविषयीं, युद्धांत करावयाच्या कार्याविषयीं, मातापितरांच्या वांचण्याचा संशय उत्पन्न असतां कन्येच्या विवाहाविषयीं आणि अति प्रौढ झालेल्या कन्येच्या विवाहाविषयीं चंद्रबल व लग्नबल पाहावयाचें कारण नाही.” **मनु**—“तीस वर्षांच्या पुरुषांनं आपणास आवरणपरी बारा वर्षांची कन्या वरावी. अथवा चोवीस वर्षांच्या वरानें आठ वर्षांची कन्या वरावी. म्हणजे तो धर्माचे ठायीं स्थिर होतो.”

आतां जरी “आठ वर्षांच्या कन्येचा विवाह विद्वानांनीं प्रशस्त सांगितला आहे” ह्या **संवर्तवचनावरून**; आणि “आठ वर्षांची गौरी, नऊ वर्षांची रोहिणी, दहा वर्षांची कन्या, याच्या पुढें रजस्वला म्हटली आहे” इत्यादि **बृहस्पतिवचनावरूनही** दहा वर्षांच्या पुढें कन्येचा विवाह निषिद्ध आहे; तथापि दात्याच्या अभावीं बारा वर्षांच्या व सोळा वर्षांच्या कन्येचा विवाह सांगितला आहे, असें समजावें. आणि “विवाहाच्या पूर्वी ऋतु प्राप्त झालेल्या कन्येनें, पित्यानें करावयाच्या विवाहाची तीन वर्षे प्रतीक्षा करावी, नंतर स्वतः आपण होऊन योग्य बराला बरावें” असें **पराशरमाधवीयांत बौधायन** वचनही आहे.

मनु—“स्त्रीसंबंध (विवाह) करावयाचा असतां दहा कुलांतील कन्या वर्ज्य करावी. तीं दहा कुलें येणेंप्रमाणें—ज्या कुलांत वेदशास्त्रविहित कर्मे होत नाहीत असलें कुल, ज्या कुलांत पुरुष उत्पन्न होत नाहीत असलें कुल, वेदाध्ययनरहित कुल, अंगावर बहुत केश उत्पन्न होणारें कुल, ज्यांत मुळव्याधीचा रोग उत्पन्न होत आहे असलें कुल, ज्यांत क्षयरोगी होतात असलें कुल, ज्यांत दीर्घकालपर्यंत रोगी असतात असलें कुल, ज्यांत अपस्मार (फेफरें) येत असतो असलें कुल, ज्या कुलांत अंगावर पांढरें कोड होतें तें कुल, आणि ज्या कुलांत कुष्ठ (महारोग) उत्पन्न आहे तें कुल, ह्या दहा कुलांतील कन्या वर्ज्य करावी. तसेंच—आखल, वृक्ष, नदी, अंखज, पर्वत, पक्षी, सर्प, दाम, यांच्या नांवाची आणि भयकारक नांवाची कन्या वरूं नये.” **यम**—“तस्मात् जोपर्यंत ऋतुमती झाली नसेल तोपर्यंत कन्येशीं विवाह करावा.” तसेंच मूलनक्षत्र, आश्लेषा-नक्षत्र इत्यादिकांवर झालेल्या कन्यांचें फल पूर्वी जातकनिर्णयप्रसंगीं सांगितलें आहे, त्याचा विचार करावा. तसेंच वर्षी, वक्ष्य, ग्रहमैत्री इत्यादि बध्द्वरांचा घटित विचार ज्योतिर्वेत्त्यांपासून जाणावा. फार विस्तार होईल म्हणून येथें सांगत नाहीं.

अथगुर्वर्कचलं ज्योतिर्निबंधेगर्गः स्त्रीणांगुरुवलंश्रेष्ठपुरुषाणांगुर्वर्कचलं तयोश्चंद्रवलंश्रेष्ठमितिगर्गो-
णभाषितम् जन्मत्रिदशमारिस्थःपूजयाशुभदोगुरुः विवाहेऽथचतुर्थोष्टद्वादशशोभुतिप्रदः **देवलः** नष्टात्म-
जाधनवतीविधवाकुशीलापुत्रान्विताहृतधवासुभगाविपुत्रा स्वामिप्रियाविगतपुत्रधवाधनाढ्याबंध्याभवेत्सुर-
गुरौक्रमशोभिजन्मा **बृहस्पतिः** झपचापकुलीरस्थोजीवोप्यशुभगोचरः अतिशोभनतांदद्याद्विवाहोपनया-
दिपु **लल्लुः** द्वादशदशमचतुर्थेजन्मनिपष्टाष्टमेवृत्तीयेच प्राप्तेपाणिग्रहणेजीवेवैधव्यमाप्नोति **गर्गः** सर्वत्रापि-
शुभंदद्याद्वादशान्दानपरंगुरुः पंचपष्टाष्टद्वयोरेवशुभगोचरतामता सप्रमात्पंचवर्षेषुस्वोच्चस्वर्गगतोयदि अशु-
भोपिशुभंदद्याच्छुभक्रक्षेपुकिंपुनः रजस्वलायाःकन्यायागुरुशुद्धिनचिंतयेन् अष्टमेपिप्रकर्तव्योविवाहस्त्रिगु-
णार्चनात् अर्कगुर्वेर्कलंगौरीरोहिण्यर्कबलास्मृता कन्याचंद्रबलाप्रोक्तावृषलीलप्रतोबला अष्टवर्षाभवेद्गौरीनव-
वर्षाचरोहिणी दशवर्षाभवेत्कन्यातर्तुर्ध्वैरजस्वला ।

आतां गुरु व रवि यांचें बल सांगतो—

ज्योतिर्निबंधांत गर्ग—“स्त्रियांना गुरुबल श्रेष्ठ आणि पुरुषाला रविबल श्रेष्ठ. स्त्रिया व पुरुष या दोघांना चंद्रबल श्रेष्ठ आहे, असें गर्गांनीं सांगितलें आहे. विवाहकालीं गोचरींचा जन्मस्थ, तिसरा, दहावा. आणि सहावा गुरु असतां पूजेनें (बृहस्पतिशांति केल्यानं) शुभकारक होतो. आणि चवथा, आठवा, व बारावा असला म्हणजे तो मृत्युदायक आहे.” **देवल**—“स्त्रियेच्या विवाहकालीं गुरु जन्मराशीस असतां नष्टपुत्रा, दुसरा असतां धनयुता, तिसरा असतां विधवा, चवथा असतां निग्रशीला, पांचवा असतां पुत्रयुता, सहावा असतां मृतभर्तृका, सातवा असतां सुभगा, आठवा असतां पुत्ररहिता, नववा असतां पतिप्रिया, दहावा असतां पतिपुत्ररहिता, अकरावा असतां धनाढ्य, आणि बारावा असतां बंध्या अशी स्त्री होते.” **बृहस्पति**—“मीन, धनु आणि कर्क या स्थानींचा गुरु जन्मराशीस अशुभ असला तरी विवाह, उपनयन इत्यादि मंगलकार्यांचे ठायीं तो अति शुभकारक होईल.” **लल्लु**—“स्त्रियेच्या पाणिग्रहण (विवाह) समयीं बारावा, दहावा, चवथा, जन्मराशिस्थ, सहावा, आठवा, व तिसरा गुरु प्राप्त झाला असतां त्या स्त्रियेला वैधव्य प्राप्त होतें.” **गर्ग**—“कन्येचा विवाह बारा वर्षांच्या पुढें करावयाचा असतां कोणत्याही ठिकाणीं गुरु असला तरी तो शुभदायक होतो. पांचव्या व सहाव्या दोन वर्षांत विवाह कर्तव्य असतां गोचरींचा गुरु शुभस्थानीं असावा, असें सांगितलें आहे. सात वर्षांपासून बाराव्या वर्षापर्यंत पांच वर्षांत विवाह कर्तव्य असतां जर खोबींचा किंवा स्वस्थानींचा गुरु असेल तर मग तो गोचरीं अशुभस्थानीं असला तरी शुभदायक होईल, मग शुभस्थानीं असला म्हणजे शुभदायक होईल हें काय सांगावें ? ऋतु प्राप्त झालेल्या कन्येचा विवाह कर्तव्य असतां गुरुबलाचा विचार करूं नये. गोचरीं आठवा गुरु असला तरी तीन

१ द्वादशेशुभलीस्मृतेतिपाठान्तरं । अस्वफलश्रुतिमाह । मात्स्यः—गौरीददद्ब्रह्मलोकांसावित्रोरोहिणींददत् ॥ कन्यांददत्स्वर्गलोकमतः परमसद्भित् ॥ प्राप्नोतीतिशेषः ॥ गौरीविवाहितासौख्यसंपन्नास्त्यापतिव्रता ॥ रोहिणीधनधान्यादिपुत्राब्दाशुभगाभवेत् ॥ कन्याविवाहि-
तासंपत्सधुद्रास्मिपूजितेति ॥

वेळां गुरुपूजा (बृहस्पतिशांति) करून विवाह करावा. गौरीला रविगुरूचें बळ पाहावें. रोहिणीला रवीचें बळ पाहावें. कथेला चंद्रबळ पाहावें. आणि वृषलीला (ऋतुमतीला) लग्नबळ पाहावें. आठ वर्षांची कन्या गौरी म्हटली आहे, नऊ वर्षांची रोहिणी, दहा वर्षांची ती कन्या म्हटली आहे. याच्यापुढें रजस्वला म्हटली आहे.”

अथबृहस्पतिशांतिः शौनकः कन्यकोद्वाहकालेतुआनुकूल्यनविद्यते ब्राह्मणस्योपनयनेगुरोर्विधि-
रुदाहृतः सुवर्णेनगुरुकृत्वापीतवस्त्रेणवेष्टयेत् ईशान्यांधवलंकुंभंधान्योपरिनिधायच दमनमधुपुष्पंचपालाश-
चैवसर्षपान् मांसीगुडूच्यपामार्गीविडंगीशंखिनीवचा सहदेवीहरिकांतासर्वौषधिशतावरी बलाचसहदेवी-
चनिशाद्वितयमेवच कृत्वाज्यभागपर्यंतस्वशास्त्रोक्तविधानतः ग्रहोक्तमंडलेभ्यश्चर्यपीतपुष्पाक्षतादिभिः देवपू-
जोत्तरेकालेततःकुंभानुमंत्रणम् अश्वत्थसमिधश्चाज्यंपायसंसर्पिषायुतं यवव्रीहितिलाःसाज्यामंत्रेणैवबृहस्पतेः
अष्टोत्तरशतसंख्यहोमशेषं समापयेत् पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् कुंभाभिर्मंत्रणोक्तैश्चसमुद्रज्येष्ठमंत्रतः
प्रतिमांकुंभवस्त्रंचआचार्यायनिवेदयेत् ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छुभदःस्यान्नसंशयः इतिबृहस्पतिशांतिः।

आतां बृहस्पतिशांति सांगतो—

शौनक—“कन्येच्या विवाहकाली आणि ब्राह्मणाच्या उपनयनकाली गुरुचें आनुकूल्य (बळ) नसेल तर विधि सांगितला आहे, तो असा—सुवर्णाची गुरुप्रतिमा करून पीतवस्त्राचें वेष्टित करावी. स्थंडिलाचे ईशानी दिशेस धान्यराशीवर श्वेतकलश स्थापून त्यांत पंचगव्य आणि कुशोदक घालून दवणा, मोहाचें पुष्प, पलाशपुष्प, सर्पप, जटामांसी, गुळवेल, आघाडा, वावाडिंग, शंखिनी, वेवेंड, महदेवी, विष्णुकांता, सर्वौषधि, शतावरी, चिकणा, सहदेवी, हळद, आंबेहळद, ह्या सर्व औषधि घालून त्याजवर पूर्णपात्र ठेऊन त्याजवर ग्रहमखांत सांगितल्याप्रमाणें पीताक्षतांनीं निर्मित वीर्ध चतुरस्र पीठावर सांगितलेली गुरुप्रतिमा स्थापून स्थंडिलावर अमिस्थापनादिक कृत्य आपल्या शान्त सांगितल्याप्रमाणें आज्यभागा-
पर्यंत करून नंतर त्या प्रतिमेवर पीत वस्त्रें दोन, पीत यज्ञोपवीत, पीतचंदन, पीताक्षता, पीतपुष्प, घृतदीप, दध्नीदण-
नैवेद्य, सुवर्णदक्षिणा इत्यादि पौडशोपचारांनीं गुरुपूजा करावी. नंतर ग्रहमखांत सांगितलेल्या रीतींनीं कुंभानुमंत्रण करावें. नंतर बृहस्पतीच्या मंत्रांनीं अश्वत्थसमिधा, आज्य, घृतयुक्त पायस, घृतयुक्त मिश्रित यवव्रीहितिल, ह्या चार द्रव्यांचा वेगवेगळा अष्टोत्तरशत होम करावा. नंतर प्रायश्चित्तादि होमशेष समाप्त करून पीतगंधाक्षतपुष्पयुक्त ताम्रपात्रस्थ उदकाचें अर्घ्य द्यावें. नंतर त्या कुंभांतील उदक घेऊन कुंभाभिर्मंत्रणाच्या सांगितलेल्या मंत्रांनीं, आणि समुद्रज्येष्ठा ह्या मंत्रांनीं पुत्रस्त्रीसहित यजमानाच्या अभिषेक करावा. नंतर ती प्रतिमा, कलश, वस्त्रें हीं आचार्याला द्यावीं. नंतर ब्राह्मणांस भोजन घालावें. असें केलें असतां गुरु शुभदायक होईल, यांत संशय नाही.” याप्रमाणें बृहस्पतिशांति समजानी.

शौनकः गुर्वादिलेव्यतीपातेवक्रातीचारगेगुरौ नष्टेशशिनिकुकेवाबालेवृद्धेथवागुरौ पौपेचैत्रेऽथवर्षासु-
शरदधिकमासके केतूद्रुमेनिरंशेकेसिहस्थेमरमंत्रिणि विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकं क्षौरंविद्योपवि-
द्यांचयन्नतःपरिवर्जयेत् मदनपारिजातेज्योतिःसागरे बालेशुक्रेवृद्धेशुक्रेवृद्धेजीवेनष्टेजीवे बालेजीवे-
जीवेसिंहसिंहादिलेजीवादिले तथामलिम्लुचेमासिसुराचार्येतिचारगे वापीकूपविवाहादिक्रियाःप्रागुदिता-
स्यजेत् सिंहस्थंमकरस्थंचगुरुयत्नेनवर्जयेत् लल्लुः अतिचारगतोजीवस्तरांशिनैवचेत्पुनः लुप्तःसंवत्सरो
ज्ञेयःसर्वकर्मबहिष्कृतः सिंहस्थगुरोरपवादमाहपराशरः गोदाभागीरथीमध्येतोद्वाहःसिंहगेगुरौ मघा-
स्थेसर्वदेशेषुतथामीनगतेरवौ वसिष्ठोपि विवाहोदक्षिणेकूलेगौतम्यानेतरत्रतु भागीरथ्युत्तरेकूलेगौतम्या-
दक्षिणेतथा विवाहोव्रतबंधश्चसिंहस्थेज्येनदुष्यति ।

शौनक—“व्यतीपात, गुर्वादिल (द्व० गुरुचे राशीस (धन-मीनाम) सूर्य, आणि सूर्याचेराशीस (सिंहास) गुरु तो गुर्वादिल), गुरुचा वक्र, अतिचार (शीघ्रगतींनीं एका वर्षांत एक राशी उल्लंघन करून दुसऱ्या राशीस जाणें), नष्टवृद्ध, शुक्राचें व गुरुचें अस्त, बालल आणि वृद्धल, पौषमास, चैत्रमास, वर्षाकाल, शरदतु, अधिकमास, धूमकेतूचा उदय, निरंशी रवि, सिंहस्थगुरु, यांतून कोणतेही असतां विवाह, मौंजीबंधन, यात्रा, नगर, बंगला, गृह, चोल, विद्या, उपविद्या हीं कृत्यें यत्नांनीं वर्ज्य करावीं.” मदनपारिजातांत ज्योतिःसागरांत—“शुक्राचें बालल आणि वृद्धल, गुरुचें अस्त, वास्त्य

१ गुरुक्षेत्रगतोभानुर्मानुक्षेत्रगतोगुरुः । गुर्वादिलःसवित्रेयोगहितःसर्वकर्मसु ॥ २ निरंशेके राशिप्रथमभागस्थेऽथैव । ३ शीघ्र-
गत्वापूर्वराशिषेधमतिक्रम्यराश्यंतरसंचारोतिचारस्तंप्राप्तोगुरुः पुनःपूर्वराशिबकगत्यादिनायातितासमुत्तसंवत्सरःसर्वकर्मसुवर्ज्यः । तत्र
मेघवृषभशुक्रकुंभमीनराशिपुनर्दोषः । ४ अपवादमितिआवश्यकेकर्मणील्लयः ।

आणि वार्धक्य, सिंहस्थगुरु, सिंहस्थरवि, गुर्वादित्य, मलमास, गुरुचा अतिचार, यांतून कांहीएक असतां पूर्वी सांगितलेल्या बाबी, रूप, विवाह इत्यादि क्रिया करूं नयेत. ह्या क्रियाविषयीं सिंहाचा गुरु आणि मकराचा गुरु यज्ज्ञांन टाकावा.” लल्लु—“शीघ्रगतीनें एक राशि भोगून पुढच्या राशीस गेलेला गुरु जर पुनः मागच्या राशीस न येईल तर तो संवत्सर लुप्त जाणावा. तो संवत्सर सर्व कर्माना बहिष्कृत आहे.” सिंहस्थ गुरुचा अपवाद सांगतो पराशर—“सिंहस्थ गुरु असतां गोदा आणि भागीरथी यांच्या मध्यप्रदेशीं विवाह होत नाही. मघा नक्षत्रात गुरु असतां सर्व देशांत विवाह होत नाही. आणि मीनात रवि असतां विवाह होत नाही.” वसिष्ठही—“सिंहस्थ गुरु असतां गोदेच्या दक्षिणतीरास विवाह होतो. इतर ठिकाणीं होत नाही. सिंहस्थ गुरु असतां भागीरथीच्या उत्तरेस आणि गोदेच्या दक्षिणेस विवाह आणि मौंजीबंधन दूषित होत नाही.”

कन्यादातृक्रममाहयाज्ञवल्क्यः पितापितामहो भ्रातासकुल्योजननीतथा कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतित्थः परःपरः अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ गर्भयंत्रत्वभावेदातृणांकन्याकुर्यात्स्वयंवरं भ्रातृणांसंस्कृतानामेवाधिकारमाहसपवयाज्ञवल्क्यः असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः भगिन्यश्च निजादंशाद्वत्वांशंतुर्तुरीयकम् अत्रचकारेण पूर्वसंस्कृतैरित्यस्यानुवृत्तेर्विवाहपर्याप्तद्वयदानेस्वांशचतुर्थभागदानेवासंस्कृतग्रहणं व्यर्थस्यात् अतः कर्तृनियमोऽयं तेनानुपनीत भ्रातृमात्रादिसत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न भ्रातरित्युक्तं संबंधनत्वाद्वा कन्यास्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नांदीश्राद्धं कार्यम् तत्र च स्वयंप्रधानसंकल्पमात्रं कृतवान्यद्वा ह्यणद्वाराकारयेदिति प्रयोगपारिजाते वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नांदीश्राद्धं कुर्यान् न माता पुत्रे पुत्रिविद्यमानेषु नान्यवैकारयेत्स्वधामिति निषेधान् उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाच्चेति पृथ्वीचंद्रोदयः माधवीये परार्के च नारदः पितादद्यात्स्वयंकन्यां भ्रातावानुमते पितुः मातामहो मातुलश्च मकुल्यो वांधवस्तथा मातात्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदिवर्तते तस्यामप्रकृतित्थायांकन्यादंशुः स्वजातयः सकुल्यः पितृपक्षीयो वांधवो मातृवंशजः मदनपारिजाते कात्यायनः स्वयमेवौ रसीदद्यात्पित्रभावे स्ववांधवाः मातामहस्तो न्यांहि मातावाधर्मजां सुताम् ततो न्यामौ रसीभिर्ना धर्मजानियोगान् क्षेत्रजं मातामहो मातामातुलो वा दद्यात् तेनौ रसीदाने पितृबंधुपुसत्सु मातामहादीनां नाधिकारः अनुमतिविना अस्यापवादस्तत्रैव दीपप्रवासयुक्ते पुपौ गंडेषु च बंधुषु मातातुसमये दद्यादौ रसीमपिकन्यकां मनुः यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्याराजानमात्रजेन ।

कन्यादानाचे अधिकारी क्रमानें सांगतो याज्ञवल्क्य—“कन्येचा पिता प्रथम अधिकारी, त्याच्या अभावीं तिचा पितामह, त्याच्या अभावीं तिचा भ्राता, त्याच्या अभावीं सकुल्य (पितृकुलांतील पितृव्यादिक, त्याच्या अभावीं मातृकुलांतील मातामह, मातुल इत्यादिक), त्याच्या अभावीं माता हे कन्येच्या दानाविषयीं अधिकारी होत. हे सांगितलेले अधिकारी स्वस्थचित्त असतील तर समजावे. कोणत्याही कारणानें अस्वस्थचित्त अगतील तर पुढचा पुढचा अधिकारी होतो. यांतून कोणता अधिकारी असेल त्यानें कन्येचा विवाह केला नाही तर तिच्या प्रत्येक ऋतुकालीं त्याला भ्रूणहत्यादोष प्राप्त होईल. ह्या वर सांगितलेल्या सर्व अधिकाऱ्यांच्या अभावीं कन्येनें विवाहसंबंध करण्यास योग्य अशा पतीला स्वतः आपण होऊन वरावे.” भ्रात्यांना अधिकार सांगितल्या तो संस्कार झालेल्याच भ्रात्यांना अधिकार, असें सांगतो तोच याज्ञवल्क्य—“पूर्वी संस्कृत भ्रात्यांनीं संस्कार न झालेल्या भ्रात्यांचे संस्कार करावे. आणि पूर्व संस्कृत भ्रात्यांनीं आपल्या विभागास आलेल्या द्रव्यांतून चतुर्थांश द्रव्य काढून त्या द्रव्यानें भगिनींचे संस्कार करावे.” या वचनांत ‘भगिन्यश्च’ येथील चकारानें पूर्वाधीतील ‘पूर्वसंस्कृतैः’ या पदाची अनुवृत्ति (संबंध) होत असल्यामुळे, जर भगिनींच्या विवाहाला पुरेल इतकें द्रव्य देण्याविषयी किंवा आपल्या विभागांतून चतुर्थांश द्रव्य देण्याविषयी भ्रात्यांना सांगितलें आहे असें म्हटलें तर, चकारानें ‘पूर्वसंस्कृतैः’ या पदाची अनुवृत्ति केलेली व्यर्थ होईल. म्हणून पूर्वी संस्कृत असलेल्याच भ्रात्यांना भगिनीविवाहाचें कर्तृत्व आहे. असंस्कृत भ्रात्यांना कर्तृत्व नाही. असा कर्तृत्वाचा नियम या वचनांत केलेला आहे. यावरून अनुपनीत भ्राता आणि माता इत्यादिक असतां माता इत्यादिकांनाच अधिकार आहे. अनुपनीत भ्रात्याला भगिनीच्या विवाहाचा अधिकार नाही, असें संबंधतत्त्व इत्यादि ग्रंथांत सांगितलें आहे. कन्या आपण होऊन पतीला वरणारी असतां किंवा कन्यादान करणारी माता असतां त्यांनींच नांदीश्राद्ध करावें. ह्या नांदीश्राद्धांत प्रधान संकल्पमात्र स्वतः करून बाकीचें कृत्य ब्राह्मणद्वारा करावें, असें प्रयोगपारिजातांत सांगितलें आहे. वराचा विवाहकर्ता संस्कृत भ्राता वगैरे नसेल तर त्यानें स्वतःच नांदीश्राद्ध करावें. मातेनें नांदीश्राद्ध

१ पितेति प्रकृतित्थः उन्मादादिदोषहीनः सकुल्यः पितृव्यतत्पुत्रादिः । २ गर्भं स्वयंवरं कुर्यादित्यन्वयः । गर्भ्यगमनाई सावण्यादि-
गुणयुक्तं । ३ तुरीयांशस्यालाधिक्येऽतिन्यूनत्वे वा दोष इति विवाहपर्याप्तपंतुरीयपदमिति भावः ।

करुं नये. कारण, “पुत्र वियमान असतां इतराकडून श्राद्ध करवूं नये” या वचनानें पुत्रव्यतिरिक्तांना श्राद्धाचा निषेध आहे. पुत्राला अधिकार नसला म्हणजे मत्तेनें करावें, असें आहे तरी या ठिकाणीं वराला अधिकार नाहीं असें नाहीं. कारण, वराचें उपनयन झालेलें असल्यामुळें सर्व कर्मांचा अधिकार झालेला आहे, असें पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. **माघवीयांत व अपराकांत नारद**—“आपल्या कन्येचें दान स्वतः पित्यानें करावें. अथवा पित्याच्या संमतीनें भ्रात्यानें करावें. त्याच्या अभावीं मातामह, मातुल, सकुल्य (पितृव्यादिक), बांधव (मातृवंशांतील) यांनीं कन्यादान करावें. सर्वांच्या अभावीं कन्येची माता जर स्वस्थचित्त असेल, तर तिनें कन्यादान करावें. माता अस्वस्थचित्त असेल तर आपल्या जातींतील लोकांनीं कन्या द्यावी. वरती आलेल्या ‘सकुल्य’ व ‘बांधव’ या पदांचे अर्थ सांगतो—सकुल्य म्हणजे पितृवंशांतील पितृव्य, पितृव्यपुत्र इत्यादि. आणि बांधव म्हणजे मातृवंशांतील मातामहभ्राता, मातुलपुत्र इत्यादिक समजावे.” **मदनपारिजातांत कात्यायन**—“औरसी कन्येचें दान स्वतः पित्यानें करावें. पित्याच्या अभावीं पितृकुलांतील बांधवांनीं करावें. औरसी-भिन्न असून धर्मजा म्हणजे परकीय क्षेत्राचे ठायीं परपुरुषापासून उत्पन्न झालेली कन्या तिचें दान मातामहानें किंवा मातेनें अथवा मातुलांनें करावें.” यावरून औरस कन्येच्या दानविषयीं पितृकुलांतील बांधव असतां मातामहादिकांना अधिकार नाहीं. याचा अपवाद तेथेंच गांगतो—“कन्येचे वडील फार दिवस प्रवासांत आहेत, व बंधु बालक आहेत, आणि कन्येचा विवाहकाल प्राप्त झाला असेल तर औरस कन्या अमली तरी तिचें दान योग्यगमयीं मातेनें करावें.” **मनु**—“ज्या वेळीं कन्येचें दान करणारा कोणी नसेल त्या वेळीं कन्येनें राजाजवळ जाऊन आपला विवाह करण्यास सांगावें.”

परकीयकन्यादानविशेषोमदनरत्नेस्कांदे आत्मीकृत्यमुवर्णेनपरकीयांतुकन्यकाम् धर्मेणविधिनादान-मसगोत्रेपियुज्यते अत्रप्रकृतिस्थप्रहणादप्रकृतिस्थेनकृतमकृतमेव स्वतंत्रोयदितत्कार्यं कुर्यादप्रकृतिगतः तदप्य-कृतमेवस्यादम्यातंत्र्यस्यहेतुतइत्यपराकं नारदोक्तेः यदितुसप्तपदीविवाहहोमादिप्रधानंजातंतदंगवैकल्ये-पिनावृत्तिर्विवाहस्य गौडाअप्येवमाहुः तत्रैवमरीचिः गौरीददन्नाकप्रष्टवैकुण्ठरोहिणीददत् कन्याददद्ब्रह्म-लोकौरवंतुर्गजस्वलाम् ॥

परकीयकन्यादानाविषयीं विशेष गांगतो **मदनरत्नांत स्कांदांत**—“परकीयकन्या असली तर तिच्या वडिलांस प्रत्यक्ष देऊन ती आपलीशी करून धर्मानें यथाविधि तिनें दान करावें. याप्रमाणें भिन्न गोत्रांनींल कन्या असली तरी त्या कन्येचें दान युक्त आहे.” या कन्यादानप्रकरणां वरील याज्ञवल्क्यवचनांत आणि नारदवचनांत ‘प्रकृतिस्थ’ असें पद आहे. त्याचा अर्थ स्वस्थचित्त असा आहे. यावरून अस्वस्थचित्तानें केलेंलें तें न केल्यामारखेंच समजावें. कारण, “कोणतेंही कार्य करावयाचें असतां कोणताही मनुष्य जर स्वतंत्र असेल (पराधीन नसेल) तर त्यानें तें कार्य करावें. जर तो अस्वस्थचित्त (पराधीन) असून कोणतेंही कार्य करील तर तो पराधीन अगत्याकारणानें त्यानें केलें तें न केल्यामारखें होईल” असें **अपराकांत नारद** वचन आहे. जर सप्तपदीकमण, विवाहहोम इत्यादि प्रधान कर्मे झालेलें असेल, आणि त्यांत एकादें अंग विकल झालेलें असेल, तरी विवाहाची (विवाहप्रयोगाची) पुनः आवृत्ति होत नाही. **गौड**ही असेंच गांगतात. तेथेंच **मरीचि**—“गौरी (आठवर्षांची) कन्या देणारा स्वर्गाम जातो. रोहिणी (नऊवर्षांची) कन्या देणारा वैकुण्ठाम जातो. दहा वर्षांची कन्या देणारा ब्रह्मलोकाम जातो. रजस्वला कन्या देणारा गंरव नरकाम जातो.”

अथमासनिर्णयः तत्रजन्ममासेविशेषःप्रागुक्तः ज्योतिःप्रकाशेन्यासः माघफाल्गुनवैशाखे-यन्मूढामार्गशीर्षके ज्येष्ठेवार्षाढमासेचसुभगावित्तसंयुता श्रावणेवापिपौषेवाकन्यामाद्रपदेतथा चैत्राश्वयुक्ता-र्तिकेपुयातिवैधव्यतांलघु नारदः माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाःशुभप्रदाः कार्तिकोमार्गशीर्षश्चमध्यमौनि-दिताःपरे वसिष्ठः पौषेपिकुर्यान्मकरस्थितेकंचैत्रेभवेन्मेघगतोयदास्यात् प्रशस्तमाषाढकृतंविवाहंवदंतिग-र्गमिथुनस्थितेकं आचार्यचूडामणौज्योतिर्गर्गराजमार्तंडौ मांगल्येषुविवाहेषुकन्यासंवरणेषुच दशमासाःप्रशस्त्यंतैत्रपौषवर्जिताः आपस्तंबः सर्वकृतवोविवाहस्य शैशिरौमासोपरिहाय्योत्तमंचनैदा-घम् अत्रमाघफाल्गुनाषाढवर्जनवमासामुख्यःकालइति सुदर्शनभाष्येइडबिलायांब्रह्मविद्याती-र्थैश्चोक्तम् बौधायनसूत्रेपि सर्वमासाविवाहस्यशुचितपस्तपस्यवर्ज्यमित्येके तेनपूर्वोत्तरौशिशिरसंबंधि-नौमासौपौषचैत्रौविहायइति निर्णयामृतव्याख्यानंमौल्यैकृतमित्युपेक्ष्य निशिचेत्सर्वेषुद्वादशक्षपिसा-सेपूद्बहेदितिकालादर्शः येतुज्योतिषेमाघादिविधयस्तेगृह्यसूत्राणांद्विजपरत्वेनप्राबल्याच्छूद्रादिपराः ज्यो-

तिवे वात्स्योवर्षमनूतमिच्छतितथारैभ्योनचोत्तरंश्रीवासंतभृतुंविहायमुनयोमांडव्यशिष्याजगुः चैत्रप्रो-
ज्ज्यपराशरःपरिणयेपौषंचदौर्भाग्यदंष्ट्रापाढादिचतुष्टयंनहितदकैश्चित्प्रदिष्टंवधैः चंडेश्वरः मार्गमासितथा
ज्येष्ठेश्वरैरपरिणयंत्रतम् ज्येष्ठपुत्रदुहितोस्तुयत्नेनपरिवर्जयेत् कृत्तिकास्थारवित्यक्त्वाज्येष्ठपुत्रस्यकारयेत् उत्स-
वादिषुकार्येषुदिनानिदशवर्जयेत् रत्नकोशे जन्मर्क्षेजन्मदिवसेजन्ममासेशुभंयजेत् ज्येष्ठेमास्याद्यगर्भस्य-
शुभंवर्ज्यस्त्रियाअपि पराशरः अज्येष्ठाकन्यकायत्रज्येष्ठपुत्रोवरोयदि व्यत्ययोवातयोस्तत्रज्येष्ठमासःशुभ-
प्रदः मिहिरः ज्येष्ठस्यज्येष्ठकन्यायाविवाहो न प्रशस्यते तयोरन्यतरेज्येष्ठेज्येष्ठोमासःप्रशस्यते द्वौज्येष्ठौम-
ध्यमौप्रोक्तावेकंज्येष्ठशुभावहं ज्येष्ठपुत्रयंतकुर्वीतविवाहेसर्वसंततम् यत्सुसार्वकालमेकेविवाहमिति तदासुरादि-
विवाहविषयम् धर्म्येषुविवाहेषुकालपरीक्षणनाधर्म्येष्वितिगृह्यपरिशिष्टात् रत्नमालायामप्येवं
(तेनासुरादयोमाघचैत्रादिनिषिद्धकालेष्वपिभवन्ति मासाः सौराः सौरौमासोविवाहादावित्युक्तेः झषोननिं-
द्योयदिफाल्गुनेस्यादजस्तुवैशाखगतोननिंद्यइतित्वपवादः ॥)

आतां विवाहाविषयीं मासनिर्णय सांगतो—

त्यांत जन्ममासाविषयीं विशेष निर्णय पूर्वी (उपनयनप्रकरणी) सांगितला आहे. ज्योतिःप्रकाशांत व्यास—
“माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, ज्येष्ठ आणि आषाढ, या मासांत विवाह केला असतां ती ह्रीं सुभगा आणि द्रव्ययुक्त
अशी होते. श्रावण, पौष, भाद्रपद, चैत्र, आश्विन आणि कार्तिक या मासांत विवाह केला असतां तिला वैधव्य प्राप्त होतें.”
नारद—“माघ, फाल्गुन, वैशाख आणि ज्येष्ठ हे मास विवाहाविषयीं शुभकारक आहेत. कार्तिक आणि मार्गशीर्ष दोन
मध्यम आहेत. बाकीचे मास निंदित आहेत.” वसिष्ठ—“भकराशीग सूर्य असतां पौषांतही विवाह करावा. मेषराशीस
सूर्य असतां चैत्रांत विवाह करावा. मिथुनराशीस सूर्य असतां आषाढांत विवाह करावा तो प्रशस्त आहे, असें गर्गमुनि
सांगतात.” आचार्यचूडामणींत ज्योतिर्गर्ग आणि राजमातंड सांगतात—“मांगलिक विवाह आणि कन्यावरण ह्या
कृत्यांविषयीं चैत्र आणि पौष हे दोन मास वर्ज्य करून बाकीचे दहा मास प्रशस्त आहेत.” आपस्तंब—“शिशिरऋतूचे
दोन मास व ग्रीष्मऋतूतील अंत्य मास हे तीन मास वर्ज्य करून गारे ऋतु विवाहास मांगितले आहेत.” ह्या आपस्तंबसूत्रा-
वरून माघ, फाल्गुन, व आषाढ, हे तीन मास वर्ज्य करून बाकीचे नऊ मास विवाहाचा मुख्यकाल आहे, असें सुदर्शन-
भाष्यांत आणि इडबिलाग्रंथांत ब्रह्मविद्यातीर्थांनीं सांगितलें आहे. बांधायनसूत्रांतही—“आषाढ आणि फाल्गुन
हे दोन मास वर्ज्य करून बाकीचे गारे मास विवाहाचा काल आहे, असें कितीएक आचार्य सांगतात.” यावरून (सुदर्शन-
भाष्य, इडबिला, बांधायनसूत्र, यांवरून) ‘शिशिरां मासां परिहाय’ ह्या आपस्तंबसूत्राचें, ‘शिशिरऋतुसंवंधी दोन मास
वर्ज्य करून म्हणजे शिशिरऋतूच्या पूर्वीचा एक तो पौष आणि शिशिरऋतूच्या पुढचा एक तो चैत्र हे दोन मास वर्ज्य करून’
असें निर्णयामृतकारांनीं केलेलें व्याख्यान मूर्खत्वानें केलेलें अगत्यामुळे तें उपेक्षणीय (अग्राह्य) आहे. रात्रीं जर विवाह
करावयाचा असेल, तर तो बाराही मासांत करावा, असें कालादर्शकार सांगतो. आपस्तंब-वैधायनसूत्रांवरून माघ, फाल्गुन,
आषाढ हे विवाहास वर्ज्य आहेत, असें झालें. आतां जे ज्योतिषांत माघ, फाल्गुन, आषाढमास विवाहास उक्त आहेत ते
शूद्रादिकांना समजावे. कारण, द्विजांचे धर्म सांगण्याकरितां शूद्रासूत्रें प्रवृत्त असल्यामुळे ते धर्म प्रवळ असल्याकारणानें
शूद्रासूत्रोक्त विधि द्विजांना समजावे. आणि इतर ग्रंथांत सांगितलेले विधि शूद्रादिकांना समजावे. ज्योतिषांत—“वात्स्य-
मुनि सारें वर्ष (बाराही मास) विवाहाचा काल सांगतो, रैभ्यमुनि उत्तरायण विवाहकाल सांगतो. मांडव्यमुनीचे शिष्य
वसंतऋतु वर्ज्य करून विवाहकाल सांगतात. पराशर मुनि चैत्र वर्ज्य करून विवाहकाल सांगतो. कितीएक विद्वान् विवाहाविषयीं
पौषमास दुर्भाग्यदायक आहे, आणि आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन हे चार मास हितकारक नाहींत, असें सांगतात.”
चंडेश्वर—“मार्गशीर्ष आणि ज्येष्ठ या मासांत ज्येष्ठ पुत्र व ज्येष्ठ कन्या यांचें चौलादि मुंडन, विवाह व उपनयन हीं यत्नां
वर्ज्य करावीं. कृत्तिका नक्षत्राचा रवि सोडून ज्येष्ठ पुत्राचें उपनयनादिक मंगल करावें. उत्सवादिकार्यांविषयीं, कृत्तिकानक्षत्रास
रवि असतां दहा दिवस वर्ज्य करावे.” रत्नकोशांत—“जन्मनक्षत्रावर, जन्मदिवशीं व जन्ममासांत शुभकार्य करूं नये.
ज्येष्ठ मासांत ज्येष्ठ पुत्राचें व ज्येष्ठ कन्येचें मंगल कार्य वर्ज्य करावें.” पराशर—“ज्या विवाहांत वधू ज्येष्ठ नाहीं आणि वर
ज्येष्ठ आहे किंवा वर ज्येष्ठ नाहीं आणि वधू ज्येष्ठ आहे त्या विवाहांत ज्येष्ठ मास शुभदायक आहे.” मिहिर—“ज्येष्ठ वर
आणि ज्येष्ठ वधू यांच्या विवाहास ज्येष्ठ मास प्रशस्त नाहीं. त्या वधूवरांमध्ये एक ज्येष्ठ असेल तर ज्येष्ठ मास प्रशस्त आहे.
दोन ज्येष्ठ मध्यम सांगितले आहेत. एक ज्येष्ठ शुभदायक आहे. विवाहाविषयीं तीन ज्येष्ठ (वधू ज्येष्ठ, वर ज्येष्ठ, मास ज्येष्ठ)

करं नयेत, हे मत सर्वांना मान्य आहे.” आतां जें “कितीएक आचार्य सर्वकालीं विवाह करावा, असें सांगतात” असें **आश्वलायनगृह्यसूत्राचें** वचन आहे, तें आसुर, पैशाच, राक्षस ह्या विवाहांविषयीं समजावें. कारण, “धर्मयुक्त विवाहां-विषयीं सुहृत् पाहावा. अधर्मयुक्त विवाहांविषयीं सुहृत् पाहण्याचें कारण नाहीं” असें **गृह्यपरिशिष्टांत** सांगितलें आहे. **रत्नमालेंतही** असेंच सांगितलें आहे.

अथदशदोषाः व्यवहारोच्चये वेधश्चलत्ताचतथैवपातःखर्जूरवेधोदशयोगचक्रं युतिश्चजामित्रमु-
पग्रहश्चवाणाख्यवज्रेचदशैवदोषाः एपांलक्षणंज्योतिषेज्ञेयम् अतिचारगेगुरौतुवसिष्ठः अतिचारगतेजी-
वेवर्जयेत्तदनंतरं विवाहादिपुकार्येषुअष्टाविंशतिवासरान् **रत्नमालायाम्** एकपंचनवयुगमपट्दशत्रीणिसप्त-
चतुरष्टलाभगः द्वादशाजवृषभमदिराशितोघातचंद्रइतिर्कीर्तितोबुधैः **नारदः** भूवाणनंदहस्ताश्रसदिव-
हिशैलजाः वेदावसुशिवादित्याघातचंद्रोयथाक्रमम् यात्रायांयुद्धकार्येषुघातचंद्रंविवर्जयेत् विवाहेसर्वमांग-
ल्येचौलादौव्रतबंधने घातचंद्रो नैवचित्यइतिपाराशरोब्रवीत् **ज्योतिर्निबंधे** विवाहचौलव्रतबंधयज्ञेपट्टा-
भिषेकेचतथैवराज्ञां सीमंतयात्रासुतथैवजातेनोचितनीयःखलुघातचंद्रः **नारदः** अकालजामवेयुश्चेद्विजुनी-
हारवृष्टयः प्रत्येकपरिवेषेद्रचापध्वनयोयदि दोषायमंगलेनूनंतदोषायैवकालजाः अकालवृष्टिस्वरूपमाह
लल्लुः पौषादिचतुरोमामानप्रोक्तावृष्टिरकालजेति **शार्ङ्गधरः** निर्घातेक्षितिचलनेग्रहयुद्धेराहुदर्शनेचैव
आपंचदिनात्कन्यापरिणीतानाशमुपयाति उल्कापातंद्रचापप्रवलघनराजाधूमनिर्घातविजुदृष्टिप्रत्येकदोषादिषु-
सकलबुधैस्त्याज्यमेवैकगत्रम् दुःस्वप्नेदुर्निमित्तेष्वशुभफलदृशोदुर्मनोभ्रांतबुद्धौचौलेमौजीनिबंधेपरिणयनवि-
धौसर्वदात्याज्यमेव **ज्योतिःप्रकाशे** अर्वाक्षोडशनाड्यःसंक्रांतेःपुण्यदाःपरतः उपनयनव्रतयात्रापरिण-
यनादौविवर्ज्यास्ताः **गर्गः** दिग्दाहेदिनमेकंचग्रहेमप्रदिनानितु भूकंपेचसमुत्पन्नेत्र्यहमेवतुवर्जयेत् उल्का-
पातेत्रिदिवसंधूमेपंचदिनानिच वज्रपातेचैकदिनंवर्जयेत्सर्वकर्मसु दर्शनादर्शनाद्राहुकेत्वोःसमदिनंयजेत्
यावत्केतूद्रमस्तावदशुभःसमयोभवेत् अस्यापवातोऽद्भुतसागरे अथदिवसत्रयमध्येमृदुपानीयंयदाभवति
उत्पातदोषशमनंतदैवसंप्राप्तुमचायाः **संबंधनच्चे** भूकंपादेर्नदोषोऽस्तिवृद्धिश्राद्धेकृतेसति ॥

आनां दशदोष सांगतो—

व्यवहारोच्चयांत— वेध, लत्ता, पान, खर्जूर, दशयोगचक्र, युति, जामित्र, उपग्रह, वाणयोग आणि वज्रयोग हे दहा दोष सुहृतांत असतात.” ह्या दहा दोषांना लक्षणं ज्योतिषग्रंथांतून पाहतावी. गुरूचा अतिचार असेल तर सांगतो **वसिष्ठः**—“गुरूचा अतिचार (शीघ्र गर्तान एक राशि भोगून दुसऱ्या राशीस जाणें तो) झाला अमतां विवाहादि मंगल-कार्याविषयी अशुभीस दिवस वर्ज्य करावें ” **रत्नमालेंत—** ‘मेघगर्भीस पहिला, वृषभाम पांचवा, मिथुनास नववा, कर्कास दुसरा, मिहास सहावा, कन्येस दहावा, तुळाम तिसरा, वृश्चिकाम गानवा, धनुराशीस चवथा, मकरास आठवा, कुंभास अकरावा, आणि मीनास बारावा, याप्रमाणें असलेल्या चंद्र घातचंद्र म्हणून विद्वानांनी सांगितला आहे.” **नारदः**—“अर्थ तमाच आहे. तो असा—मेपादि १२ राशींपासून अनुक्रमानें १।१।१।२।३।१।१।०।३।०।४।८।१।१।१।२। या स्थानीं असलेला चंद्र यात्रेचे ठायीं आणि युद्धकार्यांत घातचंद्र वर्ज्य करावा. विवाह, चोल, मोजीबंधन इत्यादि सर्व मंगल कार्याविषयीं घातचंद्र पाहूं नये, असें पाराशर ऋषि सांगतो.” **ज्योतिर्निबंधांत—** “विवाह, चोल, उपनयन, यज्ञ, राजांचा पट्टाभिषेक, सीमंतोन्नयन, यात्रा, आणि जातकर्म यांविषयीं घातचंद्र पाहूं नये.” **नारदः**—“बीज, धुक, वृष्टि, सूर्याच्या सभोवतीं परिवेष (खळें) पडणें, इंद्रधनुष्य, मेघगर्जना ही जर अकाली होतील, तर ती मंगलकार्याचे ठायीं दोषकारक आहेत असें समजावें. आणि आपल्या कालीं जर होतील तर दोषकारक नाहींत.” अकालवृष्टीचे स्वरूप सांगतो **लल्लुः**—“पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र ह्या चार मासांत झालेली वृष्टि अकाली वृष्टि समजावी. **शार्ङ्गधरः**—“बीज वगैरे पडणें, भूकंप होणें, ग्रहांचें युद्ध, चंद्र-सूर्याचें ग्रहण, हीं झालीं असून पांच दिवसांचे आंत कन्येचा विवाह केला असतां ती कन्या नाश पावते. आकाशांतून अभिरूपी तारा पडणें, इंद्रधनुष्य उगवणें, प्रबळ दाट धूलि उडणें, धूम होणें, बीज वगैरे पडून पाषाण वगैरे फुटणें, बीज होणें, पर्जन्य पडणें, सूर्यास परिवेष पडणें, इत्यादि दोष उत्पन्न झाले असतां चोल, उपनयन, विवाह या कार्याविषयीं सकळ विद्वानांनीं एक दिवस टाकावा. चोल, उपनयन, विवाह या कार्यामध्ये दुष्टस्वप्नाचें दर्शन झालें, एकादें दुष्ट निमित्त उत्पन्न झालें, अशुभफलसूचक चिह्नें दृष्टीस पडलीं, दुश्चित्त झालें, किंवा बुद्धि भ्रांतिष्ट झाली असतां त्या वेळीं तीं कार्ये वर्ज्य करावीं.” **ज्योतिःप्रकाशांत—** “संक्रांतीच्या पहिल्या सोळा घटिका आणि पुढच्या सोळा घटिका पर्वकाळ आहे. त्या घटिका उप-

नयन, यात्रा, विवाह इत्यादि कार्यांचे ठायीं वर्ज्य कराव्या.” गर्ग—“दिशा पेटल्या असतां एक दिवस टाकावा. ग्रहण झालें असतां सात दिवस टाकावे. आणि भूकंप झाला असतां तीन दिवस टाकावे. सधें कार्याविषयीं, उल्कापात (आकाशांतून अभिरूप तारा पडणें) झाला असतां तीन दिवस टाकावे. धूम उत्पन्न असतां पांच दिवस टाकावे. आणि वीज पडली असतां एक दिवस टाकावा. चंद्रसूर्याचें ग्रहण असून तें दृष्टीस पडलें किंवा दृष्टीस पडलें नाहीं तरी सात दिवस टाकावे. धूमकेतु (शेंडेनक्षत्र) उत्पन्न झाला असतां त्याचा उदय जांपर्यंत आहे तोपर्यंतचा काल अशुभ आहे.” याचा अपवाद सांगतो **अद्भुतसागरांत**—“उत्पात उत्पन्न झाल्यानंतर तीन दिवसांत समुद्राचें किंवा नद्यादिकांचें पाणी जेव्हां शांत व निर्मळ होईल तेव्हांच उत्पात दोष शांत होतो, असें आचार्य सांगतात.” **संवंधनत्वांत**—“नांदीश्राद्ध केल्यावर भूकंपादि झालें असतां त्याचा दोष नाहीं.”

अथापरिहार्येकन्यायावैधव्ययोगेविशेषपठ्यतेमार्कंडेयपुराणे वालवैधव्ययोगेतुकुंभद्रुप्रतिमादिभिः कृत्वालग्नंरहःपश्चात्कन्योद्वाह्यंतिचापरे अत्रपुनर्भूदोषाभावउक्तो**विधानग्वंडे** स्वर्णावुषिपलानांचप्रतिमा विष्णुरूपिणी तयामहविवाहेतुपुनर्भूतंनजायते **सूर्यारुणसंवादे** विवाहात्पूर्वकालेचचंद्रतारावलान्विते विवाहोक्तेचतांकन्यांकुंभेनसहचोद्वहेत् सूत्रेणवेष्टयेत्पश्चादशनंतुविधानतः कुंकुमालंकृतंदेहंतयोरेकांतमंदिरे ततःकुंभंचनिःसार्यप्रभज्यमलिलाशये ततोभिषेचनंकुर्यात्पंचपद्मववारिभिः कुंभप्रार्थनातत्रैव वरुणांगस्वरूपायजीवनानांसमाश्रय पतिजीवयकन्यायाश्चिरंपुत्रसुखंकुरु देहि विष्णोवरंदेवकन्यांपालयदुःखतः ततोल्कारवस्त्राढ्यां वारायप्रतिपादयेत् **इतिकुंभविवाहः ॥**

आतां कन्याचा वैधव्ययोग अपरिहार्य (परिहार करण्यमा अशक्य) असतां विशेष सांगतो—**मार्कंडेयपुराणांत**—“कन्येला वालवैधव्ययोग असेल तर उदकांत भरलेला कुंभ, अर्धव्याद्विभक्त, सुवर्णाची विष्णुप्रतिमा इत्यादिकांसह तिचा विवाह करून नंतर त्या कन्येचा वराशीं विवाह करावा. असें कितीएक विद्वान् सांगतात.” असा विवाह केला असतां पुनर्विवाहाचा दोष उत्पन्न होत नाहीं, असें सांगतो **विधानखंडांत**—“सुवर्ण, उदक, आणि पिंपळ यांची जी प्रतिमा ती विष्णुरूपिणी आहे. तिच्यासह विवाह करून वरागृह विवाह केला असतां ती स्त्री पुनर्भू (द्विवाविवाहित) होत नाहीं.” **सूर्यारुणसंवादांत**—“घरांत एकांतस्थलीं कन्येच्या अंगाम व कुंगाग दळदकुंकू त्याऊन विवाहाच्या पूर्वी चंद्रवळ व तारावळ यांनीं युक्त विवाहोक्त मुहूर्तावर त्या कन्येचा कुंगागृह विवाह करावा. नंतर त्या कन्येला व कुंभाला ‘परिला’ इत्यादि मंत्रांनीं खालीं आणि वरती सूत्रांनं वेष्टन करावें. तदनंतर कुंभ नेऊन जलाशयांत फोडून पंचपद्धत्यांनीं शुद्ध उदक घेऊन ‘समुद्रज्येष्ठा’ इत्यादि मंत्रांनीं कन्येवर अभिषेक करावा. आणि ब्राह्मणभोजन घालावें.” कुंभाशीं विवाह करतेंसमयीं कुंभाची षोडशोपचार पूजा करून त्याची प्रार्थना करावी. ती कुंभप्रार्थना तथेंच सांगतां—**प्रार्थनामंत्र**—“वरुणांगस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय ॥ पति जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः ॥” याप्रमाणे कुंभविवाह केल्यानंतर त्या कन्येवर अलंकार आणि वस्त्रे घालून ती कन्या वराला द्यावी.” इति कुंभविवाह.

मूर्तिदानमपिनत्रैवोक्तं ब्राह्मणांसाधुमामंज्यसंपूज्यविविधार्हणैः तस्मैदद्याद्विधानेनविष्णोर्मूर्तिचतुर्भुजां शुद्धवर्णसुवर्णेनवित्तशक्त्याथवापुनः निर्मितांरुचिरांशंखगदाचक्राब्जसंयुताम् दधानांवाससीपीते-कुमुदोत्पलमालिनीं सदक्षिणांचतांदयान्मंत्रमेतमुदीरयेत् यन्मयाप्रांचिजनुपिप्रत्यापतिसमागमम् विपोपवि-पशन्नायैर्हंतोवातिविरक्तया प्राप्यमानंमहावोरंयशःसौख्यधनापहम् वैधव्याद्यतिदुःखौघनाशायशुभलब्धये बहुसौभाग्यलब्धैचमहाविष्णोरिमांतनुम् सौवर्णांनिर्मितांशक्त्यातुभ्यंसंप्रदेद्विज अनघाद्याहमस्मीतित्रिवारंप्रजपेदिति एवमस्त्वितितस्याशीर्गृहीत्वास्वगृहंविशेत् ततोवैवाहिककुर्याद्विधिदातामृगीदृशः अन्येष्यश्चरत्थ-विवाहवृक्षसेचनादयस्तत्रैवज्ञेयाः विस्तरभयाच्चोच्यंते ॥

मूर्तिदानही तथेंच सांगतो—“उत्तम ब्राह्मणाला बोलावून त्याची अनेक उपचारांनीं पूजा करून त्याला, सांगितलेल्या विधीनें विष्णूची चतुर्भुजमूर्ति द्यावी. ती अशी—उत्तम शंभरनंवरी सोनें आपल्या शक्तीप्रमाणें ४ कप किंवा त्याहून कमी घेऊन त्याची सुंदर चतुर्भुज विष्णुमूर्ति करावी. ती शंख, चक्र, गदा, पद्म या आयुधांनीं युक्त करावी. व त्या मूर्तीची आचार्यानें अभ्युत्तारादिपूर्वक षोडशोपचारांनीं पूजा करावी. पूजेनं वस्त्रार्पणसमयीं दोन पीत वस्त्रे द्यावीं. आणि पुष्पार्पण-कालीं श्वेतकमलांची माला अर्पण करावी. पूजा झाल्यानंतर कन्येनें देवाला नमस्कार करून पुढील मंत्र म्हणून सुवर्णदक्षिणा-सहित ती प्रतिमा त्या ब्राह्मणास द्यावी. **दानमंत्र**—“यन्मया प्राचि जनुषि द्रंत्या पतिसमागमम् ॥ विषोपविषशस्त्रायैर्हंतो

वापि विरक्त्या ॥ प्राप्यमाणं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् । वैधव्याद्यतिदुःखौघं तं नाशय सुखासये ॥ बहुसौभाग्यलब्धौ च महाविष्णोरिमां तनुम् ॥ सौवर्णी निर्मितां शक्या तुभ्यं संप्रपदे द्विज ॥ याप्रमाणं विष्णुमूर्तीचं दानं कुरु कन्येनं 'अनघाद्याहमस्मि' असे त्रिवारं म्हणावे. ब्राह्मणां 'एवमस्तु' असे त्रिवारं म्हणावे. नंतर कन्येनं घरांत जावे. नंतर ब्राह्मणभोजन घालावे. तदनंतर त्या कन्येचा विवाह करावा." वैधव्यनाशक अध्वन्यविवाह, वृक्षसेचन इत्यादिक दुसरेही विधि सांगितले आहेत ते तेथंच पाहावे. विस्तार फार होईल या भीतीने येथे सांगत नाही.

अथप्रतिकूलादि ज्योतिर्निबंधेर्गर्गः कृतेतुनिश्चयेपश्चान्मृत्युर्भवतिकस्यचित् तदानमंगलंकुर्यात्कृतेवैधव्यमाप्रयान् **ज्योतिर्मंधानिधिः** वधूवरार्थेघटितेतुनिश्चितेवरस्यगेहेष्वथकन्यकायाः मृत्युर्यदि-स्यान्मनुजस्यकस्यचित्तदानकार्यंखलुमंगलंबुधैः मंगलं विवाहः **स्मृतिचंद्रिकायाम्** कृतेवाङ्निश्चयेपश्चान्मृत्युर्भवतिगोत्रिणः तदानमंगलंकार्यंनार्गवैधव्यदंध्रुवं भृगुः वाग्दानानंतरंयत्रकुलयोःकस्यचिन्मृतिः तदोद्वाहोनेवकार्यःस्ववंशक्षयदोषतः **शौनकः** वरवध्वोःपितामातापितृव्यश्चसहोदरः एतेपांप्रतिकूलंचमहाविघ्नप्रदंभवेन् पितापितामहश्चमातामहपितामही पितृव्यःस्त्रीसुतोभ्राताभगिनीचाविवाहिता एभिरत्र-विपत्रैश्चप्रतिकूलंबुधैःस्मृतं अन्यैरपि विपत्रैस्तेकुचिद्वृचुर्नतद्भवेत् **मांडव्यः** वाग्दानानंतरंमातापिताभ्राता-विपद्यते विवाहोनेवकर्तव्यःस्ववंशस्थितिर्मिच्छता ।

आतां प्रतिकूलादिविचार सांगतो—

ज्योतिर्निबंधान् गर्गः—“वधवरंगां विवाहति तप कन्यावर त्यांच्या कुर्यांत कोणा एकाचा मृत्यु प्राप्त होईल तर त्यांचा विवाह करू नये. कारण, कन्या अगतां वधवरंगें वैधव्य प्राप्त होईल.” **ज्योतिर्मंधानिधिः**—“वधूवरांचा ज्योतिःशास्त्रोक्त नाहीगणादिक घटितेविचार होऊन विवाहाने तप ज्ञानानंतर वरंगा किंवा कन्येच्या घरांत कोणाएका मनुष्याला जर मृत्यु प्राप्त होईल तर त्या वधवरंगां विवाह जाणवोना करू नये.” **स्मृतिचंद्रिकेत**—“वधूवरांचा वाङ्निश्चय झाल्यानंतर गोत्रांतील मनुष्य मरेल तर त्याचा विवाह करू नये. कारण, कन्या अगतां वधूला तो वैधव्यदायक आहे.” **भृगु**—“ज्या विवाहाने वाग्दान केल्यानंतर वधवरंगाच्या कुर्यांत कोणाचा मृत्यु प्राप्त होईल तर तो विवाह करू नये. केला अगतां वंशाचा क्षय होईल.” **शौनक**—“वधवा व वरगाचा पिता, माता, पितृव्य, सहोदर भ्राता यांपैकी एकाचा मरेल तर ते विवाहप्रतिकूल महाविघ्नदायक होईल. कारणने मरण विवाहाच्या प्रतिकूल होतें तें सांगतो—“वधूवरांचा पिता, पितामह, माता, पितामही, पितृव्य, वरगाची पत्नीपत्नी व पुत्रपुत्र, भ्राता, आंबाबाई भगिनी, यांपैकी कोणा एकामे मरण आलें अगतां ते विवाहाच्या प्रतिकूल असे विद्वानासां सांगितले आहे. वधवरंगांच्या कुर्यांत इतरागदी मरण आलें अगतां प्रतिकूल होतें, असें कितीएक सांगतातः परंतु उग्राचें मरण प्रतिकूल होत नाही.” **मांडव्य**—“वाग्दान केल्यानंतर माता, पिता किंवा भ्राता मृत होईल तर, आपला वंश नष्टदान अगतां, अर्था इच्छा करणारानें त्याचा तो विवाह करू नये.”

संकटेतुमेधानिधिः वाग्दानानंतरंयत्रकुलयोःकस्यचिन्मृतिः तदामंयन्मरगदध्वविवाहःशुभदोभवेन् **स्मृतिरत्नावल्याम्** पितुर्ध्वमशौचंस्यान्तर्ध्वमातुर्गेवच मामत्रयेतुभार्यायान्मदध्वभ्रातृपुत्रयोः अन्येषांतु सपिंडानामाशौचंमासमीरितं तदंतेशान्तिकंक्रुत्वातनालंघनंविधीयते **ज्योतिःप्रकाशं** प्रतिकूलपिकर्तव्यो-विवाहोमासतःपरम् शान्तिविधायगादन्वावाग्दानादिचरेत्पुनः शान्तिविनायकशान्तिं तथाच**मेधानिधिः** संकटेसमनुप्रापेयाज्ञचन्त्येनयोगिना शान्तिरुक्तागणेशस्यक्रुत्वातांशुभमाचरेदिति प्रतिकूलनकर्तव्योगच्छेद्या-वहतुत्रयं प्रतिकूलपिकर्तव्यमित्याहुर्बहुविप्रवे प्रतिकूलमपिडस्यमाममेकंविचर्जेयन् **ज्योतिःसागरे** दुर्भिक्षेराष्ट्रभंगेचपित्रोर्वाप्राणसंशये प्रौढायामपिकन्यायांनानुकूल्यंप्रतीक्ष्यते **मेधानिधिः** पुरुषत्रयपर्यंतप्रति-कूलस्वगोत्रिणां प्रवेशान्निगमस्तद्वन्तथाभंडनमुंडने प्रेतकर्माण्यनिर्वैद्यचरेन्नाभ्युदयक्रियां आचतुर्थततःपुंसि-पंचमेशुभदंभवेन् ।

संकट (दुसरा योग्य वर न मिळणे वगैरे) प्राप्त असल तर सांगतो मेधानिधिः—“ज्या वेळीं वाग्दान केल्यानंतर वधूवरांच्या कुलांत कोणाएकाला मरण प्राप्त होईल त्या वेळीं तो विवाह करू नये. संवत्सर गेल्यावर त्या वधूवरांचा विवाह करावा, तो शुभदायक होईल.” **स्मृतिरत्नावलीत**—“पित्याचें आशौच एकवर्ष; मातेचें आशौच सहा महिने; भायेंचें

आशौच तीन महिने; आल्याचें व पुत्राचें आशौच दीड महिना; आणि इतर सर्पिडांचें आशौच एक महिना सांगितलें आहे. याप्रमाणें सांगितलेलें आशौच संपल्यावर शांति करून नंतर विवाह करावा.” **ज्योतिःप्रकाशांत**—“प्रतिकूल (सर्पिडादि-मरण) झालें असलें तरी एक मास गेल्यावर विवाह करावा. विवाहाचे वेळीं विनायकशांति करून गोप्रदान करून पुनः वाग्दानादि कृत्य करावें.” येथें शांति सांगितली ती विनायकशांति समजावी. तेंच सांगतो **मेधातिथि**—“संकटमस्य प्राप्त असतां, योगियाज्ञवल्क्यानें विनायकशांति सांगितली आहे ती करून नंतर मंगलकार्य करावें. प्रतिकूल झालें असतां सहा महिने गेल्यावांचून विवाह करूं नये. चोर, दुष्काळ, देशभंग इत्यादिक बहुत उपद्रव उत्पन्न झाले असतां प्रतिकूल झालेलें असलें तरी विवाहादि मंगलकार्य करावें, असें कितीएक सांगतात. सर्पिडांचें प्रतिकूल झालें असतां एकमास वर्ज्य करावा.” **ज्योतिःसागरांत**—“दुर्मिक्ष पडलें, राष्ट्रभंग झाला, मानापितरांच्या वांचण्याचा संशय उत्पन्न झाला, अथवा कन्या प्रौढ झाली, यांपैकी कोणतेंही झालें असतां आनुकल्याची (प्रतिकूल झाल्यापामून वर्ज्य दिवस गोडून पुढें येणाऱ्या अनुकूलदिवसांची) वाट पाहूं नये. अर्थात् अनुकूल दिवस येण्यापूर्वीच विवाह करावा.” **मेधातिथि**—“आपल्या गोत्रांत तीन पुरुषांचे आंत कोणी मरेल तर प्रतिकूल होतें. तमेंच प्रवेष्ट (पुत्रविवाह) झाल्यावर निर्गम (कन्याविवाह) करूं नये, हा निषेध आणि मंडन (मौंजी, विवाह) केल्यावर मुंडन (चोलादि) करूं नये हा निषेध तीन पुरुषांपर्यंत समजावा. सर्पिडांत चार पुरुषांचे आंत प्राप्त झालेलीं प्रेतकर्म (सर्पिडीकरण, मार्मिके वगैरे) केल्यावांचून वृद्धिश्चाद करूं नये. पांचव्या पुरुषाचे ठायीं, प्रेतकर्म केल्यावांचून वृद्धिश्चाद झालें तर तें अमदायक होईल.”

अथरजोदोषेनिर्णयः माधवीये प्राग्भातप्राग्विवाहस्यमानार्यादिरजस्वला निवृत्तिमस्यकर्तव्याम-हत्वश्रुतिचोदनात् प्राग्भातनांदीश्राद्धात् नांदीमुख्यविवाहादविन्यादिनातस्यैवप्राग्भोक्तः **मेधानिधिः** चौलेचव्रतबंधेचविवाहेयज्ञकर्मणि भार्यारजस्वलायस्यप्रायसस्यजशोभनं वधूवरगन्यतरयोर्जननीचेद्रजस्वला तस्याःशुद्धेःपरंकार्यमांगल्यमनुरब्रवीत् **वृद्धमनुः** विवाहव्रतचूटामुनार्यादिरजस्वला तदानमंगलकार्य-शुद्धौकार्यशुभेप्सुभिः **गर्गः** यस्योद्वाहादिमांगल्यमानार्यादिरजस्वला तदानतत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरंतः नांदीश्राद्धोत्तरंरजोदोषेतुकपर्दिकारिगामु मुनिकोदकयोःशुद्धौगोमत्याद्वाहोमपृथक्कम प्रापेकर्मणिशुद्धिः-स्यादितरस्मिन्नशुध्यति अलाभेमुहूर्तस्यरजोदोषेचसंगत श्रियंमपृथ्यत्कुर्यात्पाणिप्रहरणमंगलं हेमीमाप-मितांपद्मांश्रीसूक्तविधिनाचयेन प्रत्यृचंपायमंहत्वाअभिषेकंममाचरोदिति सूतकादिसंकटेनु कृष्मांडीभि-धृतंहुत्वापयस्विनींगांचदत्वाविवाहादिकुर्यादितिचवक्ष्यते ।

आतां रजोदोषविषयींचा निर्णय सांगतो—

माधवीयांत—“विवाहाचा प्रारंभ होण्याच्या पूर्वी जर वधूची किंवा वराची माता रजस्वला होईल, तर रजाची निवृत्ति होईपर्यंत विवाह होत नाही. कारण, माता व पिता या दोघांना मिळून अपत्याच्या संस्काराचा अधिकार श्रुतीनें सांगितला आहे.” येथें विवाहाचा प्रारंभ म्हणजे नांदीश्राद्ध समजावें. कारण, “विवाहादि मंगल कार्यांचे अग्नी नांदीश्राद्ध हा प्रारंभ.” इत्यादि वचनानें नांदीश्राद्ध हाच प्रारंभ सांगितला आहे. **मेधातिथि**—“चौल, उपनयन, विवाह, यज्ञ, या कर्मांमध्ये ज्याची भार्या रजस्वला होईल त्याचें फारकरून शुभ होत नाही. वधूची किंवा वराची माता जर रजस्वला होईल तर ती शुद्ध झाल्यानंतर मंगल कार्य करावें असें मनु सांगतो.” **वृद्धमनु**—“विवाह, उपनयन, चौल ही कर्तव्य अथवा जर माता रजस्वला होईल तर तें विवाहादि मंगल करूं नये. कल्याणच्छेदीं तिची शुद्धि झाल्यानंतर तें मंगल करावें.” **गर्ग**—“ज्याचें विवाहादि मंगल कार्य करावयाचें असतां जर त्याची माता रजस्वला होईल तर त्या वेळीं तें मंगल कार्य करूं नये. कारण, त्या वेळीं केलेलें तें मंगलकार्य त्याच्या आयुष्याचा क्षय करणारें आहे.” नांदीश्राद्ध झाल्यानंतर रजोदोष उपस्थित झाला असेल तर सांगतो **कर्पदिकारिकेंत**—“सूतिका आणि रजस्वला यांच्या शुद्धीमाठीं होम करून गोप्रदान करावें. म्हणजे प्राप्त असलेल्या कर्माविषयीं शुद्धि होते. इतर कर्माविषयीं शुद्धि होत नाही. रजोदोष प्राप्त झालेला अमुन दुसरा चांगला मुहूर्त मिळत नसेल, तर लक्ष्मीची यथाविधि पूजा करून उपस्थित झालेलें विवाहादि मंगल करावें. लक्ष्मांच्या पूजेचा प्रकार असा—माषपरिमित सुवर्णाची लक्ष्मीप्रतिमा करून श्रीसूक्तविधीनें तिची पूजा करावी. नंतर श्रीसूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेनें पायसाचा होम करून अभिषेक करावा.” सूतकादि संकट उपस्थित झालें असेल तर तैत्तिरीयशाखेंतील कृष्मांडी ऋचांनीं घृताचा होम करून दूध देणारी गाई ब्राह्मणाला देऊन विवाहादि मंगल कार्य करावें, असें पुढें विवाहमेद सांगितल्यावर सांगावयाचें आहे.

अथैकक्रियानिर्णयः ज्योतिर्निबंधेवृद्धमनुः एकमातृजयोरेकवत्सरेपुरुषस्त्रियोः नसमान-

क्रियांकुर्यान्मातृभेदेविधीयते एतेन एकस्य पुंसो विवाहद्वयमेकदिने निषिद्धं मातृभेदाभावात् नारदः पुत्रोद्वा-
हात्परंपुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मंडनादपि मुंडनं वराहः विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यं-
तरे यदि असंशयं त्रिभिर्वैस्तत्रैकाविधवा भवेत् मदनरत्ने वसिष्ठः न पुं विवाहोर्ध्वमृतुत्रयेऽपि विवाहकार्यदु-
हितुः प्रकुर्यात् न मंडनाच्चापि हि मुंडनं च गोत्रैकतायां दिनाद्भेदः एकोदरभ्रातृविवाहकृत्यं स्वसुर्नपाणिग्रहणं-
विधेयं षण्मासमध्ये मुनयः समूचुर्न मुंडनं मंडनतोऽपि कार्यं एतदपवादस्तत्रैव ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदप्यव्य-
स्य प्रवेशनं तदाहोकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्तं सारावल्याम् फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने भेदा-
द्वदस्य कुर्वीत न तु त्रयविलंघनं संहिताप्रदीपे ऊर्ध्वविवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्धं अप्रा-
प्य कन्यां श्वशुरालयं च बधूः प्रवेश्यास्तु गृहं च नादौ मदनरत्ने वसिष्ठः द्विशो भनत्वेकगृहेऽपि नेष्टुं भंतुपश्चात्त-
त्रभिर्दिनैस्तु आवश्यकं शोभनमुत्सवोवाद्वा रेथवाचार्यविभेदतो वा एकोदरप्रसूतानां नाभिकार्यत्रयं भवेत्
भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपो ब्रवीत् ज्योतिर्निबंधे कात्यायनः कुले ऋतुत्रयादौ गमंडनात् भृतुमुंडनं
प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् कुर्वीत मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु लघुवागुरुवा कार्यप्राप्तनैमित्तिकं-
तु यत् पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः मुंडनं चौलमित्युक्तं ततोद्वाहौ तु मंगलं चौलं मुंडनमेवोक्तं वज्र-
येन्मंडनात्परम् मौंजीचोभयतः कार्याय तो मौंजीन मुंडनम् अभिन्नवत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्रभेदेन अनेदेतु-
विनाशः स्यात्तदुक्त्यादेकमंडपे ।

आतां एकक्रियेचा निर्णय सांगतो—

ज्योतिर्निबंधांत वृद्धमनु—“एका मातेपासून उत्पन्न अशा पुत्र व कन्या यांचे समान संस्कार एका संवत्सरांत करूं
नयेत. त्या दोघांच्या माता भिन्न असतील तर करावे.” यावरून एका पुरुषाचे दोन विवाह एका दिवशीं निषिद्ध आहेत.
कारण, भिन्न माता नाहीत. नारद—“पुत्राच्या विवाहानंतर सहा महिन्यांच्या आंत कन्येचा विवाह करूं नये. पुत्राच्या
किंवा कन्येच्या विवाहानंतर सहा महिन्यांच्या आंत मौंजीबंधन करूं नये. मंडन (मौंजी किंवा विवाह) केल्यावर सहा
महिन्यांच्या आंत मुंडन (चौलदि) करूं नये.” वराह—“एकापासून झालेल्या अपत्यांचा एक विवाह झाल्यावर सहा
महिन्यांच्या आंत दुसरा विवाह होईल तर त्यांपैकी एक स्त्री तीन वर्षांत विधवा होईल, यांत संशय नाही.” मदनरत्नांत
वसिष्ठ—“एका गोत्रांत (त्रिपुरुषांत) पुरुषाचा विवाह झाल्यानंतर सहा महिन्यांच्या आंत कन्येचा विवाह करूं नये.
आणि मंडनानंतर सहा महिन्यांत मुंडन करूं नये, हा निषेध वर्षभेद झाला नसेल तर समजावा. एका उदरांत उत्पन्न
झालेल्या भ्रात्याचा विवाह केल्यावर सहा मासांचे आंत भगिनीचा विवाह करूं नये. आणि मंडन (मौंजी, विवाह) झाल्यावर
मुंडनही करूं नये, असें मुनि सांगतात.” याचा अपवाद सांगतो तेथेंच—“एक विवाह केल्यावर सहा महिन्यांच्या आंत
जर दुसरे संवत्सर प्राप्त होईल, तर सहोदराचा देखील सहा महिन्यांच्या आंत दुसरा विवाह प्रशस्त आहे.” साराव-
लीत—“फाल्गुनमासांत पुत्राचा विवाह केल्यावर चैत्रमासांत वर्षभेद झाल्यामुळे दुसऱ्या पुत्राचें उपनयन करावें. या
ठिकाणीं तीन ऋतु (सहा महिने) टाकावे, असें नाही.” संहिताप्रदीपांत—“पुत्राचा विवाह झाल्यावर सहा महिन्यांच्या
आंत कन्येचा विवाह करूं नये. कन्या श्वशुरगृहीं पांचविण्याचे पूर्वी आपल्या घरांत बधूप्रवेश करूं नये.” मदनरत्नांत
वसिष्ठ—“एका घरांत दोन मंगल कार्ये इष्ट नाहीत. एक मंगल कार्ये झाल्यावर नऊ दिवस गेल्यानंतर दुसरे मंगल कार्ये
करावें. आवश्यक मंगल कार्ये किंवा उत्सव कर्तव्य असेल तर द्वारभेदान किंवा आचार्यभेदान करावें. सहा महिन्यांच्या आंत
सहोदरांचीं अभिकार्ये (अभिप्रापक कार्ये म्हणजे मौंजी आणि विवाह हीं) तीन करूं नयेत. भिन्नोदरांचीं तीन अभिकार्ये
सहा महिन्यांच्या आंत करूं नयेत, असें शातातप सांगतो.” ज्योतिर्निबंधांत कात्यायन—“त्रिपुरुषात्मक कुलंत
मंडन झाल्यानंतर सहा महिन्यांच्या आंत मुंडन करूं नये. प्रवेश (पुत्रविवाह) झाल्यावर सहामासांत निर्गम (कन्या-
विवाह) इष्ट नाही. आणि सहा महिन्यांच्या आंत तीन मंगले करूं नयेत. त्रिपुरुषात्मक कुलांत ज्येष्ठ मंगल झाल्यावर सहा
महिन्यांच्या आंत लघुमंगल करूं नये. कितीएक मुनि ज्येष्ठ मंगल झाल्यानंतर वर्षभेद झाला असतां लघु मंगल करितात.
लघुमंगल किंवा गुरुमंगल जें नैमित्तिक प्राप्त असेल तें करावें. (बाहेर मंडपांत जें विहित तें ज्येष्ठ मंगल होय, त्याबाबत
इतर तें लघुमंगल होय). प्रवेश म्हणजे पुत्रविवाह. निर्गम म्हणजे कन्याविवाह. मुंडन म्हणजे चौल. आणि मंडन
म्हणजे उपनयन आणि विवाह होत. मुंडन म्हणजे चौल तें मंडनानंतर वर्ज्य करावें. मौंजीबंधन हें विवाहाच्या पूर्वी व
पश्चात्ती करावें. कारण, मौंजीबंधन हें मुंडन होत नाही. संकट असेल तर सोदरांचेही समान संस्कार करावे.”

करावे. दिवस मात्र भिन्न असावा. एका दिवशीं सोदरांचे समान संस्कार होतील तर त्या एकाचा विनाश होईल, तसेंच सोदरांचे समान संस्कार एका मंडपांत करू नयेत."

संकटे तु कपर्दिकारिका वराहमिहिरश्च उद्वाहपुत्रींनपिताविदध्यात्पुत्र्यंतरस्योद्वहनंकदाचित्
यावत्तुर्थदिनमत्रपूर्वसमाप्यचान्योद्वहनंविदध्यात् कश्यपः मौजीबंधस्तथोद्वाहःपणमासाभ्यंतरेपिवा
 पुत्र्युद्वाहनं कुर्वीतविभक्तानानंदोपकृत् **ज्योतिर्निबंधे** विवाहमारभ्यचतुर्थमध्येश्राद्धदिनं दर्शदिनंयदित्यात्
 वैधव्यमाप्नोति तदाशुकन्याजीवेत्पतिश्चेदपत्यतास्यान **तथा** विवाहमध्येयदिचेत्क्षयाहस्तत्रस्वमुखाःपितरो-
 नयांति वृत्तेविवाहेपरतस्तु कुर्याच्छ्राद्धंस्वधाभिर्ननुदपयेत्तम् येवाभद्रं दृश्यंतिस्वधाभिरिति **श्रुतेश्च** मासि-
 कविष्येकालहेमाद्रौशाठ्यायनिः प्रेतश्राद्धानिसर्वाणिमपिंडीकरणंतथा अपकृप्यापि कुर्वीतकर्तुनांदी-
 मुखं द्विजः वृद्धिं विनापकर्षेदोपमाहृतत्रैवोशनाः वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानियश्चरेत् सश्राद्धीनरके
 घोरेपितृभिः सह मज्जतीति **मेधातिथिः** प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्यचरेन्नाभ्युदयक्रियां आचतुर्थततःपुंसिपंचमेशु-
 भं भवेत् **स्मृत्यंतरे** सपिंडीकरणाद्वर्गापकृप्यकृतान्यपि पुनरप्यपकृप्यंते वृद्धवृत्तगनिषेधनात् ।

संकट असेल तर सांगतो **कपर्दिकारिका** आणि **वराहमिहिर**—“पित्यानें एका कन्येना विवाहं कर्तुं चार दिव-
 सांचे आंत दुसऱ्या कन्येचा विवाह कधीही करू नये. पूर्वाचे विवाहकृत्य समाप्त करून दुसरा विवाह करावा.” **कश्यप**—
 “त्रिपुरुषात्मक कुल्योत विवाह केल्यावर सहा मासांचे आंत मौजीबंधन होत नाही त्यान पुनर्विवाह केल्यावर सहा
 महिन्यांच्या आंत कन्याविवाह करू नये. हा निषेध एकत्र अगतीत तर समजावा विभक्ताना नाही.” **ज्योतिर्निबंधान्त**—
 “विवाहाचा आरंभ (नांदीश्राद्ध) केल्यावर चतुर्थार्धमे (मंडपोद्वाहन) होईपर्यंत मागे श्राद्धदिवस किंवा अमावास्या जर
 प्राप्त होईल तर त्या कन्येचा पति लवकर मरेल, जर कदाचित् पति वाचेल तर तिला अपत्य होणार नाही.” तसेच—
 “विवाहकर्मामध्ये जर वडिलांचे सांवन्मरिक श्राद्धाचा दिवस प्राप्त असेल तर त्या दिवशी स्वधामुल पितर येत नाहीत,
 विवाहादि मंगल कर्म समाप्त झाल्यावर त्रिपुरुषगपिंडींनी श्राद्ध करावे कारण ते मंगल कार्य स्वधा श्राद्धांनी दूषित करू
 नये.” आणि “जे राश्रम मंगलाम स्वधांनी दूषित करितात त्या गर्भे राश्रमारा रोमदेव रापाकरण देवो, अथवा निकृतीच्या
 (पापदेवतेच्या) उत्संगावर त्यांना टाको.” अशी **श्रुतिही** (क. सं. अप. १ अ. ३ व ४) आहे. **मामिकाविषयी**
 सांगतो **कालहेमाद्रौ शाठ्यायनि**—“नांदीश्राद्ध करावयाचे असेल तर मागे प्रेतश्राद्धे आणि सपिंडीकरणश्राद्ध ही
 अपकर्ष करून देखील करावी.” वृद्धिश्राद्ध करावयाचे नसता प्रेतश्राद्धाचा अपकर्ष केल्यावर दोष समाप्त येतच **उशना**—
 “जो मनुष्य वृद्धिश्राद्ध करावयाचे नसता प्रेतश्राद्धे अपकर्षाने करील तो श्राद्ध करणारा पितृभार घोर नसताना पडतो.”
मेधातिथि—“चार पुरुषांच्या सपिंडांत प्रेतकर्म केल्यावांचून वृद्धिश्राद्ध करू नये. पानत्या पुष्पांत केले असेल तर
 शुभदायक होईल.” **स्मृत्यंतरांत**—“सपिंडीकरणाच्या पूर्वा मामिकश्राद्धे अपकर्ष करून केल्या अगत्या तसे ती पुनः
 आपआपल्या कालीं करावयाची असल्यामुळे व त्यांचा वृद्धिश्राद्ध झाल्यावर निषेध असल्याकारणाने वृद्धिश्राद्धाच्या पूर्वी
 पुनः देखील अपकर्ष करून ती करावी.

स्मृतिसारावल्याम् भ्रातृयुगेस्वस्युगेभ्रातृस्वस्युगेतथा एकस्मिन्मंडपेचैव न कुर्यान्मंडनद्वयं सोद-
 रविषयमेतत् **यमः** एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वासरेपुनः विवाहो नैव कुर्वीतमंडनोपरिमुंडनं **गार्ग्यः**
 भ्रातृयुगेस्वस्युगेभ्रातृस्वस्युगेतथा न कुर्यान्मंगलं किंचिदेकस्मिन्मंडपेहनि एकस्मिन्वासरेप्राप्तं कुर्याद्यमलजा-
 तयोः क्षौरं चैव विवाहं च मौजीबंधनमेव च **ज्योतिर्विवरणे** एकोदरयोरेकदिनोद्वहनं भवेत्तत्राशः नद्यंतर
 एकदिनेकेप्याहुः संकटे च शुभं ऊर्ध्वविवाहाच्छुभदोनरस्यनारीविवाहोनऋतुत्रयेस्यात् नारीविवाहात्तद्देहिपिशस्तं
 नरस्यपाणिग्रहमाहुर्गार्ग्यः भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरेविवाहमाह **मेधातिथिः** पृथग्भ्रातृजयोः कार्यो विवाह-
 स्त्वेकवासरे एकस्मिन्मंडपेकार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरस्थयोः भगिनीभ्या-
 सुभाभ्यांच यावत्सप्तपदी भवेत् यमयोस्तु विशेषः **भट्टकारिकायाम्** एकस्मिन्वत्सरेचैकवासरेमंडपे तथा
 कर्तव्यमंगलं स्वस्त्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः **ज्योतिर्निबंधे** नारदः प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मैदुहितृद्वयं न चैक-

जन्ययोः पुंसोरेकजन्येतुकन्यके नैवंकदाचिदुद्वाहो नैकदामुंडनद्वयं नैकजन्येतुकन्येद्वेपुत्रयोरेकजन्ययोः नपुत्रीद्वयमेकस्यैप्रदद्यात्तुकदाचनेति^१ ।

स्मृतिसारावलीत—“दोन भ्राते, दोन भगिनी, किंवा भ्राता व भगिनी यांचीं दोन मंडनें (विवाह व उपनयन) एका मंडपांत करूं नयेत.” हा निषेध सहोदरांविषयीं आहे. **यम**—“सहोदर अपत्यांचे एक दिवशीं विवाह करूं नयेत. तसेंच मंडनानंतर मुंडन करूं नये.” **गार्ग्य**—“दोन भ्राते, दोन भगिनी, आणि भ्राता व भगिनी यांचीं कोणतीही मंगल कार्ये एका मंडपांत एक दिवशीं करूं नयेत. जुंवळ अपत्यांचें चोल, विवाह, आणि मौजीबंधन हें एकदिवशीं करावें.” **ज्योतिर्विवरणान्त**—“एक दिवशीं सहोदरांचे विवाह झाले असतां नाश होईल. दोघांच्या मध्ये नदीचें अंतर असेल व संकटसमय असेल तर सहोदरांचे एक दिवशीं विवाह शुभ होतील, असें कितीएक आचार्य सांगतात. पुरुषाच्या विवाहानंतर तीन ऋतूंच्या आंत कन्येचा विवाह शुभदायक होत नाही. कन्याविवाह झाल्यानंतर त्या दिवशीं देखील पुरुषाचा विवाह प्रशस्त आहे, असें आर्य सांगतात.” भिन्नमातेच्या अपत्यांचे विवाह एक दिवशीं सांगतो **मेधातिथि**—“वेगवेगळ्या स्त्रियांपासून झालेल्या अपत्यांचे विवाह एक दिवशीं एका मंडपांत वेगवेगळ्या वेदांवर करावे. दोन भगिनींनीं परस्परांच्या मस्तकावर असलेल्या पुष्पपट्टिका (मंडावळ्या) मत्तपदीकमण होईपर्यंत परस्परांनीं पाहूं नयेत.” जुंवळांना तर विशेष सांगतो **भट्टकारिकेंत**—“जुंवळ झालेल्या दोन भगिनींचीं किंवा दोन भ्रात्यांचीं मंगल कार्ये एका वर्षांत एकदिवशीं एका मंडपांत करावीं. **ज्योतिर्विबंधान्त नारद**—“प्रत्युद्वाह (त्याची कन्या त्याच्या पुत्राला व त्याची कन्या त्याच्या पुत्राला देणें तो) करूं नयेच. एका पुरुषाला दोन कन्या देऊं नयेत. सहोदर दोन भ्रात्यांना सहोदर दोन कन्या देऊं नयेत. तसेंच एकापासून उत्पन्न अशा दोघांचे विवाह एक कालीं करूं नयेत. दोघांचें मुंडन (चालादि) एक कालीं करूं नये. एकापासून झालेल्या दोन कन्या एकापासून झालेल्या दोन पुत्रांस देऊं नयेत. दोन कन्या एका पुरुषाला कधीही देऊं नयेत.”

कन्यायारजोदर्शनेतुअपरांकसंवर्तः माताचैवपिताचैवव्येष्टभ्रातातथैवच त्रयस्तेनरकंयांतिदृष्ट्वा कन्यांरजस्वलां हारीतः पितुर्गहेतुयाकन्यारजःपश्यत्यसंस्कृता साकन्यावृषलीज्ञेयातत्पतिवृषलीपतिः **देवलात्रिकश्यपाः** पूर्वाधनदेव भ्रूणहत्यापितुस्तस्याःसाकन्यावृषलीस्मृता यस्तांसमुद्बहेत्कन्यांब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः अश्राद्धेयमपांक्त्यंतविद्यावृषलीपतिम् **माधवीयेबौधायनः** त्रीणिवर्षाण्यृतुमतीकांक्षेतपितृ-शासनम् **विष्णुः** ऋतुत्रयमुपास्यैवकन्याकुर्वात्स्वयंवरम् अत्रवरस्यदोषाभावमाह **यमः** कन्याद्वादशवर्षाणि याप्रदत्तावसेद्देहे भ्रूणहत्यापितुस्तस्याःसाकन्यावरयेत्स्वयं एवंचोपनतांपत्नीनावमन्येत्कदाचन नतुतांबंधकींविद्यान्मनुःस्वायंभुवोब्रवीत् **मनुः** अलंकारनाददीतपितृदत्तंस्वयंवरे भ्रातृदत्तमातृदत्तंस्तेयीस्याद्यदितं हरेत् वरंप्रत्याह पित्रेनदद्याच्छुल्लुकंतुकन्यामृतुमतीहरन् सहिस्वाम्यादतिक्रमेद्दतूनांप्रतिरोधनात् ।

कन्येला रजोदर्शन प्राप्त झालें असेल तर सांगतो—**अपरांकांत संवर्त**—“माता, पिता आणि ज्येष्ठ भ्राता हे तिचे विवाहाच्या पूर्वी कन्या रजस्वला झालेली पाहतील तर नरकाग जातील.” **हारीत**—“पित्याच्या घरीं अविवाहित कन्या रजस्वला होईल तर ती वृषली (शूद्रा) जाणावी. आणि तिचा पति तो वृषलीपति होय.” **देवल अत्रि व कश्यप**—“पित्याच्या घरीं अविवाहित कन्या ऋतुमती होईल तर तिच्या पित्याला भ्रूणहत्यादोष प्राप्त होईल. आणि ती कन्या वृषली म्हणली आहे. जो ज्ञानशून्य ब्राह्मण त्या कन्येची विवाह करील तो ब्राह्मण वृषलीपति झाल्यामुळे अपांक्त्य (पंक्तीस बसण्याला अयोग्य) व श्राद्धास अयोग्य जाणावा.” **माधवीयांत बौधायन**—“ऋतुमती झालेल्या कन्येनें पित्याच्या आज्ञेची तीन वर्षेपर्यंत प्रतीक्षा करावी.” **विष्णु**—“ऋतुमती झालेल्या कन्येनें तीन ऋतूंपर्यंत वाट पाहून नंतर कन्येनें आपणास योग्य स्वयंवर करावा.” ऋतुमतीकन्येच्या वराला हारीतादिकांनीं सांगितलेला जो वृषलीपतित्वरूप दोष तो दोष स्वयंवराला नाही, असें सांगतो **यम**—“जी कन्या बारा वर्षेपर्यंत अविवाहित असून पित्याच्या घरीं राहते, तिच्या पित्याला भ्रूणहत्या दोष प्राप्त होतो. त्या कन्येनें स्वतः योग्य वराला वरावें, याप्रमाणें अविवाहित असून स्वतः वरण्याला आलेली जी पत्नी तिचा वरानें अपमान करूं नये. ती स्वतः आल्यामुळे खेरीणी आहे, असें समजूं नये. असें स्वायंभुव मनु सांगता

१ वृषलीति । त्रिधा वृषली देवलोक्तोक्त-बंध्या च वृषली ज्ञेया वृषली च स्मृतप्रजा । अपरा वृषली ज्ञेया कुमारी या रजस्वलेति । तत्र रजस्वलापरिणये दोषः रजोदर्शनाभावे तु द्वादशाभ्यां अपि विवाहे न दोषः । यतः द्वादशी वृषली भवेदित्यादी वृषलीपदं रजस्वला-बंधं । तथा च विवाहात्पूर्वं रजोदर्शनें यथा न भवति तथा कार्यमिति न तु द्वादशे वर्षे तस्या वृषलीसंज्ञा । अन्यथा—त्रिदशवर्षोद्बहेत्कन्यां इत्यां द्वादशवर्षिकीमिति मनुवाक्यं विरुध्येत. २ अलंकारं नाददीतं पितृयं कन्या स्वयंवरे । मातृकं भ्रातृवर्षं वा स्तेना स्यादिति तं हरेत् इति पाठांतरम् ।

झाला.” मनु-“स्वयंवर करणाऱ्या कन्येनें; पित्यानें, मातेनें, किंवा भ्रात्यानें पूर्वी दिलेला अलंकार असेल तो ग्रहण करू नये; तो अलंकार ग्रहण करील तर ती चोर होईल.” बराला सांगतो मनु-“ऋतु प्राप्त झालेल्या कन्येला हरण करणारांने तिच्या पित्याला शुल्क (तिचें मूल्य) देऊं नये. कारण, तिच्या ऋतूचा प्रतिबंध केल्यामुळे (म्ह० ऋतुकालीं योग्य वराचा संयोग करून न दिल्यामुळे) पित्याची तिच्यावरची सत्ता नष्ट होते.”

अत्र प्रायश्चित्तमुक्तमाश्वलायनेन कन्यामृतुमतीं शुद्धांकृत्वानिष्कृतिमात्मनः शुद्धिचकारयित्वातामुद्धेदानृशंस्यधीः पिताऋतून्स्वपुत्र्यास्तुगणयेदादितः सुधीः दानावधिगृह्येयत्वात्पालयेच्चरजोवतीं दद्यात्तदनुसंख्यागाः शक्तः कन्यापितायदि दातव्यैकापिनिःस्वेनदानेनस्याथाविधि दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वाभ्रमतिनिःस्वः सदर्क्षिणं तस्यातीततुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् उपोष्य त्रिदिनं कन्यागत्रौ पीत्वा गवांपयः अदृष्टं रजसे दद्यात्कन्यायै रत्नभूषणम् तामुद्धहन्वरश्चापि कृष्मांडैर्जुहुयाद्दिजडति मदनपारिजाते यज्ञपार्श्वः विवाहे वितते तत्रे होमकाल उपस्थिते कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वतियाज्ञिकाः स्नापयित्वा तुनां कन्यामर्चयित्वा याथाविधि युंजा नामाहुतिं हुत्वा तत्संभ्रं प्रवर्तयेत् बौधायनसूत्रे अथ यदि कन्योपमाशमाना चोद्यमाना वा रजम्बलाभ्यां तामनुमंत्रयेत् पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ पुमानिन्द्रसूर्यश्च पुमांसं च दधात्वियमिति अथ द्वादशरात्रमलंकृत्य प्राशयेत्पंचगव्यमथ शुद्धांकृत्वा विवहेत् ।

अविवाहित कन्या ऋतुमती झाली असतां प्रायश्चित्त सांगतो आश्वलायन-“कन्यादात्यानें ऋतुमती कन्येची शुद्धि करून आपण प्रायश्चित्त करावें, म्हणजे तो कन्यादात्याला योग्य होतो वरानें, कन्यादात्याकडून कन्येची शुद्धि करवून तिच्यावर कोणताही दोषारोप न करितां तिच्याशीं विवाह करावा, तो शुद्धिप्रकार येणेप्रमाणे—पित्यानें ऋतुमती झालेल्या कन्येचा विवाह होईपर्यंत आपल्या घरांत तिचें प्रयत्नानें रक्षण करावें, आणि पहिल्यापासून त्या कन्येला किती ऋतु प्राप्त झाले यांची गणना करावी, कन्येचा पिता समर्थ असेल तर कन्येच्या जितकें ऋतु प्राप्त झाले अगतील तितक्या गाई त्यानें ब्राह्मणांस द्याव्या, दरिद्री पिता असल्यास तिचें याथाविधि दान करण्याकरितां एक गाई तरी ब्राह्मणाय द्यावी, अथवा फार दरिद्री असल्यास त्या कन्येचे जितकें ऋतु गेले अगतील तितक्या ब्राह्मणांस दक्षिणामहित भोजन द्यावें नंतर ती कन्या बराला द्यावी, ही कन्यादात्याची निष्कृति (प्रायश्चित्त) होय. आतां कन्येची शुद्धि अशी—कन्येनें तीन दिवस उपवास करून रात्री गाईचें दूध प्राशन करून जिला रजोदर्शन झालें नसेल अशा ब्राह्मणकुमारीला रत्न व भूषणें द्यावी, असें केल्यावर ती कन्या विवाहाला योग्य होते. वरानें कृष्मांडमंत्रांनीं होम करून तिच्याला विवाह करावा म्हणजे तो दोषी होत नाही.” मदनपारिजातांत यज्ञपार्श्व-“विवाहाचें तंत्र (प्रयोग) चालवेलें असून त्यांत होमकाल प्राप्त झाला असतां त्यासमर्थी कन्येला रजोदर्शन झालें तर याज्ञिकांनीं कसें करावें? त्या कन्येला स्नान घालून याथाविध अर्चकृत करून ‘युंजा०’ ह्या तैत्तिरीय शाखेच्या मंत्रानें प्रायश्चित्तहोम करून तदनंतर होममंत्र चालवावें” बौधायनसूत्रांत-“आता विवाहांत कन्या वराचे जवळ बसविलेली असतां किंवा तिजकडून विवाहप्रापक, गणपदीकमणादि कामे करवीत असता ती जर रजस्वला होईल तर तिला अनुमंत्रण करावें, अनुमंत्रणाचा मंत्र-‘पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ ॥ पुमानिन्द्रसूर्यश्च पुमांसं च दधात्वियम् ॥’ याप्रमाणे अनुमंत्रण केल्यावर वारा दिवस तिला अलंकृत करून पंचगव्य प्राशन करावें, याप्रमाणें शुद्ध करून तिच्याशीं विवाह करावा.”

अत्र गांधर्वाद्यष्टौ विवाहास्तद्व्यवस्थाचकारे ज्ञेया मनुः पडानुपूर्व्या विप्रस्यक्षत्रस्य चतुरो वरान् विट्शूद्रयोस्तुतानेव विवाहस्य न राक्षसान् चतुरः आसुरगांधर्वराक्षसपैशाचान् तान् राक्षसवर्ज्यान् वैश्यशूद्रयोः सप्तव आसुरवैश्यशूद्रयोः हेमाद्रौ पैठीनसिः राक्षसवैश्यस्य पैशाचः शूद्रस्य प्रचेताः पैशाचो संस्कृतप्रसूतानां प्रतिलोमजानां च मनुः राक्षस्तथासुरवैश्यशूद्रे चात्यस्तुगर्हितः क्षत्रियादेः संकटपैशाचमाह माधवीये घत्सः सर्वापायैरसाध्यास्यात्सुकन्यापुरुषस्य चायैणापि विवाहेन साविवाह्यारहः स्थिता गांधर्वादिविवाहेष्वप्युदकपूर्वकंदानमाहतत्रैव यमः नोदकेन नवावाचा कन्यायाः पतिरुच्यते पाणिग्रहणसंस्कारात्पतित्वं समेपे पराशरमाधवीये देवलोपि गांधर्वादिविवाहेषु पुनर्वैवाहिको विधिः कर्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैः समर्थ-

१ ततः कर्मणि योजयेत् इति पाठांतरं ॥ यदा विवाहदोमे प्रकृतिः यदि कन्या रजस्वला ॥ विराजं दंपती स्यातां दुष्कृत्या-सनाशौ ॥ चतुर्थेऽपि संज्ञातौ तस्मिन्नपि यथाविधि । विवाहदोमं कुर्यातामित्यादि संग्रहः ॥

नाग्निसाक्षिकः त्रैवर्णोक्तैर्गांधर्वादौविप्रवर्जमधिकारउक्तः तत्रैवपरिशिष्टे गांधर्वासुरपैशाचविवाहाराक्षसश्चयः पूर्वपरिश्रयस्तेषुपश्चाद्धोमोविधीयते अतोहोमादावकृतेभार्यात्वाभावाद्ब्राह्मणरायदेया तथाचतत्रैव वसिष्ठबौधायनौ बलादपहृताकन्यामंत्रैर्यदिनसंस्कृता अन्यस्मैविधिवद्देयायथाकन्यातथैवसेति अत्रमंत्रसंस्काराभावेऽन्यस्मैदानस्यसर्वविवाहेषुसाम्याद्बलादपहारेराक्षसपैशाचयोर्विशेषवचनंन्यर्थं तेनतयोर्द्येनसंस्कृतासंस्कृतावेत्यावृत्त्यकन्यानुमत्याभावेन्यस्मैदेयेतिव्याख्येयं मदनपारिजातेनारदः पाणिग्रहणिकामंत्रानियतंदारलक्षणं तेषांचनिष्ठाविज्ञेयाविद्वद्भिःसप्तमेपदे स्मृतिचंद्रिकायामपराकंचैव ।

ब्राह्मादिक आठ विवाह आणि ते कोणाकोणाला उक्त इत्यादिक त्यांची व्यवस्था आकरांतून पाहावी. थोडीशी येथें सांगतो—
मनु—“पहिल्यापासून अनुक्रमानें सहा विवाह ब्राह्मणाला उक्त आहेत. क्षत्रियाला शेवटचे चार (गांधर्व, आसुर, पैशाच, राक्षस हे) उक्त आहेत. वैश्य आणि शूद्र यांना तेच चार विवाह राक्षस वर्ज्य करून उक्त आहेत.” **मनुच** सांगतो—“वैश्य व शूद्र यांना आसुरविवाह श्रेष्ठ आहे.” **हेमाद्रि**त **पैडीनसि**—“राक्षस विवाह वैश्याला सांगितला आहे. आणि पैशाच शूद्राला सांगितला आहे.” **प्रचेता**—“विवाहादि संस्कारावांचून स्त्रीचे ठायीं उत्पन्न आणि प्रतिलोमज (उत्तम वर्णाचे स्त्रीचे ठायीं कनिष्ठ वर्णाच्या पुरुषापासून उत्पन्न) यांना पैशाच विवाह उक्त आहे.” **मनु**—“क्षत्रियांना आसुर विवाह नियम आहे. आणि वैश्य व शूद्र यांना राक्षस विवाह नियम आहे.” क्षत्रियादिकांना संकटमयीं पैशाच विवाह सांगतो—**माधवीयांत वत्स**—“जी चांगली कन्या मंत्रे उपायांनीं पुरुषास साध्य होत नसेल, ती चोरून आणूनही एकांतीं तिच्याशीं विवाह करावा.” गांधर्वादिक जे पुढचे चार विवाह सांगितले, त्यांमध्ये देखील कन्येचे उदकपूर्वक दानादिसंस्कार सांगतो तेथेंच **यम**—“केवळ उदकांत किंवा केवळ वाणीनें कन्येचा पति होतो, असें सांगितलें नाहीं. सातव्या पदाचेठायीं पाणिग्रहरूप संस्कार झाल्यानें कन्येचा पति होतो.” **पराशरमाधवीयांत देवलही**—“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या तीन वर्णांनीं गांधर्वाद विवाहांनें कन्या ग्रहण केली असतां पुनः अग्नीच्या समग्र पाणिग्रहणादि विवाहविधि करावा.” तेथेंच **परिशिष्टांत**—“गांधर्व, आसुर, पैशाच आणि राक्षस ह्या चार विवाहांमध्ये पूर्वी कन्येचा स्वीकार करून पश्चात् होम करावा, असें सांगितलें आहे.” यावरून होमादि विवाहविधि झाला नसेल तर तिच्याठिकाणीं भार्याल झालेलें नसल्यामुळें ती कन्या इतर वराला द्यावी. तमेंच सांगतात तेथेंच **वसिष्ठ** आणि **बौधायन**—“एकाद्या पुरुषानें बलात्कारानें कन्या हरण केलेली असून जर मंत्रांनीं संस्कार केल्ली नसेल, तर ती कन्या दुसऱ्या वराला यथाविधि द्यावी. कारण, जशी कन्या (अविवाहित) तशीच ती आहे.” या ठिकाणीं मंत्रांना संस्कार झालेली नगनां ती कन्या इतर योग्यवराला देणें, हा प्रकार सर्व विवाहांमध्ये समान असल्यामुळें, बलात्काराने अपहृत केलेली (अर्थात् राक्षस व पैशाच विवाहांतील) कन्या मंत्रांनीं संस्कार झालेली नसेल तर इतर वराला द्यावी असें विशेष सांगणें व्यर्थ होईल. म्हणून या वचनांतील ‘संस्कृता’ या पदाची आवृत्ति करून राक्षस व पैशाच विवाहांत संस्कार झालेली नसली किंवा संस्कार झालेली असली तरी त्या कन्येची अनुमति नसेल तर ती कन्या इतराला द्यावी, अशी व्याख्या करावी. **मदनपारिजातांत नारद**—“पाणिग्रहणाचे मंत्र (मंत्रांनीं केलेल्या संस्कार) हें भार्यालाचें निश्चित लग्न होय. म्हणजे पाणिग्रहणाच्या मंत्राचा संस्कार जिच्यावर झाला आहे, ती भार्या समजावी. त्या मंत्राचा संस्कार स्थिर कंदां होतो, असें म्हटलें तर सातव्या पदाचे ठायीं तो संस्कार स्थिर होतो, असें विद्वानांनीं समजावें.” **स्मृतिचंद्रिकेंत** आणि **अपराकी**तही असेच सांगितलें आहे.

आशौचेतुयाज्ञवल्क्यः दानेविवाहेयज्ञेचसंप्रामेदेशविप्लवे आपद्यपिचकष्टायांसद्यःशौचविधीयते

१ ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य, आर्षि, गांधर्व, आसुर, पैशाच, आणि राक्षस असे आठ विवाह आहेत त्यांचीं लक्षणे सांगतो **आश्वलायन-गृह्यसूत्रांत**—“कन्येला अलंकार घालून योग्य वराला तिचे उदकपूर्वक दान करणे तो ब्राह्मविवाह म्हण्टला आहे. तिच्या ठिकाणी झालेला पुत्र बारा पूर्वाच्या आणि बारा पुढच्या पुरुषांना पवित्र करितो. यज्ञांत ऋविजाचें कर्म करणाराला अलंकृत करून कन्या देणे तो दैवविवाह. तिचा पुत्र दहा पूर्वाच्या आणि दहा पुढच्या पुरुषांना पवित्र करितो. तूं हिच्यासह गृहस्थाश्रम धर्म आचरण करावा. ही जीवत असेपर्यंत दुसरा विवाह किंवा चतुर्थीश्रम घेऊं नये, अशी बोली करून कन्या देणें तो प्राजापत्यविवाह होय. तिचा पुत्र आठ पूर्वाच्या आणि आठ पुढच्या पुरुषांना पवित्र करितो. वरापासून एक गोमिथुन (गाई व बैल) घेऊन त्याला कन्या देणें तो आर्षिविवाह. तिचा पुत्र सात पूर्वाच्या आणि सात पुढच्या पुरुषांना पवित्र करितो. वर आणि वधू यांचा परस्परांच्या हच्छेनें संयोग होणें तो गांधर्वविवाह. कन्येच्या शातीला यथेच्छ द्रव्य देऊन विवाह करणें तो आसुरविवाह. चौथेकर्मनें कन्या हरण करणें तो पैशाचविवाह. आणि युद्धादिक करून शातीला रडवून कन्या रोदन करीत असतां तिचें हरण करणें तो राक्षसविवाह. या आठ विवाहांमध्ये पहिल्या चार विवाहांत पहिला पहिला श्रेष्ठ. आणि पुढच्या चार विवाहांत पुढचा पुढचा निम्न होय.

केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तं दातुः प्रतिप्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत् विवाहविष्णोः कन्याया लाजहोमा-
विकर्मणीति व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमैर्चेन जपे आरब्धे सूतकं न स्यादैनारब्धे तु सूतकमिति विष्णुवचनाच्च
श्रांभस्तेनैवोक्तः प्रारंभो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः नांदीमुखं विवाहादौ श्राद्धपाकपरिक्रियेति वरणमिति-
मधुपर्कपरं गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः पश्चादशौचेऽपि तितेन भवेदिति निश्चय इति ब्राह्मोक्तेः मधु-
पर्कात्पूर्वतु भवत्येवाशौचमिति शुद्धिविवेकः रामांडारभाष्येऽप्येवम् नांदीमुखावधिश्रस्मृत्यंतरे एक-
विंशत्यह्यज्ञे विवाहे दशवासराः त्रिपट्चौलोपनयने नांदीश्राद्धं विधीयते आरंभाभावेऽपि लाजहोमावेगम-
विष्णुः न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपीति अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः अनार-
ब्धविशुद्ध्यर्थं कृष्मांडैर्जुहुयाद् व्रतमाह गांद्यापंचगव्याशीतनः शुध्यति सूतकी संग्रहेऽपि संकटे समनुप्राप्ते सू-
तके समुपागते कृष्मांडीभिर्घृतं हुत्वा गांच दद्यात्पयस्विनीम् चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् यदैवसूतक-
प्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया ।

विवाहांत आशौच उत्पन्न झालें अगतां सांगतो याज्ञवल्क्य—“दान, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशाचा भिन्नंग, आणि दुःख
हेणारी आपत्ति यांमध्ये आशौच प्राप्त अगतां यद्यः (नृकाल) शुद्धि सांगितली आहे ” कोणाची मद्य शुद्धि झटकी तर
सांगतो ब्रह्मपुराणांत—“कन्यादानाचे ठायी कन्यादाना, आणि प्रतिप्रहीता यांना आशौच नाही, आणि विवाहाने होणाऱ्या
कन्येला लाजहोमादि कर्माचे ठायी आशौच नाही,” आणि “व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा जप, यांचे ठायी आरंभ
झाल्यावर सूतक प्राप्त असेल तरी ते सूतक नाही, आरंभ होण्याच्या पूर्वा प्राप्त असेल तर सूतक आहे ” असे विष्णुवचनाही
आहे, प्रारंभ कोणता तें तोच (विष्णुच) सांगतो—“यज्ञाचा प्रारंभ ऋत्विजवरण व्रत आणि सत्र यांचा प्रारंभ संकल्प
होय, विवाहादिकांचा प्रारंभ नांदीश्राद्ध, आणि श्राद्धाचा प्रारंभ पाकप्राशन ” ऋत्विजांचे वरण म्हणजे मधुपर्क, यजमानाचा
कारण, “यजमानापासून ऋत्विजांनी मधुपर्कपूजा घेतल्यावर पश्चात् आशौच प्राप्त असता ते आशौच त्या ऋत्विजांना नाही
असा निश्चय आहे,” असे ब्राह्मवचन आहे, मधुपर्काच्या पूर्वा आशौच होतच आहे असे शुद्धिविवेक सांगतो, रामां-
डारभाष्यांतही असेच सांगितलें आहे, नांदीश्राद्धाचा अवाच सांगतो स्मृत्यंतरांत—“अहयशामये एकवस दिवस
पूर्वी नांदीश्राद्ध होतें, विवाहांत दहा दिवस होतें, चौथ्यान तीन दिवस आणि उपनयनांत नार दिवस पूर्वा नांदीश्राद्ध
होतें,” आरंभ झालेला नसला तरी दुसरा सुहृत् नसेल तर गयारूपान सांगतो विष्णु—“देवप्रतिष्ठा आणि विवाह यांचे
सर्वे साहित्य संपादन केलें अगतां जर सूतक प्राप्त असेल तर ते सूतक नाही ” आरंभ नसून सूतक प्राप्त असेल तर प्राय-
श्चित्त सांगतो मदनपारिजातांत विष्णु—“आरंभ झालेला नसून सूतक प्राप्त असेल तर शुद्धागता कृष्मांडमंत्रांनी
घृताचा होम करून गोप्रदान करावें, आणि पंचगव्य प्राशन करावें म्हणजे सूतकी शुद्ध होणारी संग्रहांतही—“संकट
(मृताशौच) प्राप्त झालें किंवा जननाशौच प्राप्त झालें अगतां तैत्तिरीयश्रांतांत कृष्मांडी ऋत्विजां यांच्या होम करून दुस-
रेणारी गंडी ब्राह्मणास द्यावी, नंतर चाल, उपनयन, विवाह, देवप्रतिष्ठा इत्यादि कार्य करावा मात्र ज्या दिवशी सूतक प्राप्त
असेल त्याच दिवशी शुद्धश्राद्धादिक आभ्युदयिक कर्म करावें.”

अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरासृतसूतके परैरन्नप्रदानव्यंभोक्तव्यं-
च द्विजोत्तमैः परैरसगोत्रैः भुंजानेषु त्विषेपुत्वंतरासृतसूतके अन्यगोहोदकाचानाः संवेते शुचयः स्मृताः एतदा-
शौचात् पूर्वमपृथक् कृतान्नविषयं तत्र शेषमन्नं त्याज्यमित्यर्थः पृथक् कृतेषु बृहस्पतिराह विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंत-
रासृतसूतके पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तित इति ।

ह्या आशौचांत अन्नादिकां विषयी विशेष सांगतो षट्त्रिंशन्मतांत—“विवाह, उत्सव, यज्ञ या कर्मांमध्ये मृताशौच
प्राप्त होईल तर असगोत्रांनी अन्न द्यावें, तें अन्न ब्राह्मणश्रेष्ठांनी भोजन करावें, ब्राह्मण भोजन करीत असतां मध्ये यजमा-
नाला मृताशौच प्राप्त होईल तर ब्राह्मणांनी उदृत दुसऱ्याच्या घरांतील उदकानें आचमन करावें, म्हणजे ते सारे ब्राह्मण
शुद्धच आहेत,” हें वचन आशौचाच्या पूर्वी वेगळें न केलेल्या अन्नाविषयी समजावें, या ठिकाणी शेष अन्न असेल तें ब्राह्म-
णांनी टाकावें, असा भाव, आशौचाच्या पूर्वी पृथक् केलेलें अन्न असेल तर सांगतो बृहस्पति—“विवाह, उत्सव, यज्ञ,
या कर्मांचे ठायी मध्ये मृताशौच प्राप्त होईल तर पूर्वा संकल्पित असलेल्या अन्नाविषयी दोष नाही, असे सांगितलें आहे.”

धर्मार्थविवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यमेकचोद्वाहयेद् द्विजं तेनाप्याप्रोतितम्
स्थानं शिवभक्तो नरो भुवम् अपराकंदक्षः मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः यः स्थापयति तस्येह

पुण्यसंख्यानविद्यते **मदनरत्ने भविष्ये** विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणं यः प्रवच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं भेत् कन्यागृहे भोजननिषेधोपितत्रैव अप्रजायांतु कन्यायां न भुंजीत कदाचन दौहित्रस्य सुखं दृष्ट्वा किमर्थं मनुशोचति **अपराकं आदित्यपुराणे** विष्णुजामातरं मन्येत स्य कोपनकारयेत् अप्रजायांतु कन्यायां नाश्रियात्तस्यैव गृहे ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वा श्रियात्कदाचन अथ भुंजीत मोहाच्चेत्पूयाशेन रकेव सेत् **तत्रैव कश्यपः** अहतं यंत्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयं भुवा शस्तं तन्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा यंत्रनिर्मुक्तं नूतनं विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोष इत्याह **हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडे गालवः** विवाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं द्विजन्मभिः एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम् विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषमाकृ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् **मिताक्षरायामप्येवम् रत्नमालायां** मूलमैत्रमगरोहिणीकरीः पौष्णमास्तमघोत्तरान्वितैः भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनविधिर्विधीयते अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं **ज्योतिषे** विपत्तरे गुडं दद्यान्न धने तिलकां च नम् प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागं दद्यात्त्रिजन्मसु चंद्रशंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तं दुलांश्च धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योमे विरुद्धे कनकं प्रदेयम् ।

धर्माधेविवाह करण्याचें फल सांगतो **महाभारतांत**—“आपलें द्रव्यगामर्थ पाहून एका ब्राह्मणाचा विवाह करावा. त्या योगानें त्या शिवभक्त मनुष्याला तें उत्तम स्थान निश्चयानें प्राप्त होतें.” **अपराकांत दक्ष**—“माता, पिता यांनीं रहित अशा ब्राह्मणाचा उपनयन, विवाहादि संस्कार करून धर्माचे ठायीं जो स्थापन करील त्याच्या पुण्याची संख्या करितां येत नाही.” **मदनरत्नांत भविष्यांत**—“विवाहादि कार्यगम्यां त्या कार्याच्या निद्रीचें जें कारण द्रव्यादिक असेल, तें जो करून देईल त्याला अश्वमेधाचें फल प्राप्त होईल.” कन्येच्या घरीं भोजनाचा निषेधही तेंथच सांगतो—“कन्येला पुत्र झालेला नसतां तिच्या घरीं कधींही भोजन करूं नये. दौहित्राचें (कन्यापुत्राचें) सुख पाहिल्यावर शोक करण्याचें (भोजननिषेध मानण्याचें) कारण नाही.” **अपराकांत आदित्यपुराणांत**—“जांवरें हा विष्णुरूपी आहे, असें मानून त्याला कोप येईल असें करूं नये. कन्येला प्रजा झालेली नसतां जामात्याच्या घरीं भोजन करूं नये. ब्रह्म देणारी अशी जी कन्या ती देऊन जामात्याच्या घरीं कधींही भोजन करूं नये. आतां मोहाच्या (अज्ञानाच्या) योगानें जर भोजन करील तर पूयाश (पुवाच्या) नरकांत जाईल.” तेंथच **कश्यप**—“यंत्रांतून निघालेले नूतन वस्त्र तें ब्रह्मदेवानें अद्वन म्हणून सांगितलें आहे. तें अहतवस्त्र मंगलकार्यामध्ये तावत्कालपर्यंत प्रशस्त म्हणून सांगितलें आहे. सर्वदा प्रशस्त नाही.” विवाहांत स्त्रियेसह भोजन केलें तरी दोष नाही, असें सांगतो **हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडांत गालव**—“विवाहकालीं, यात्रासमयीं, मार्गांत, आणि चोर असनील त्या वेळीं दुसरा कोणी गाहाय्य नसेल तर ब्राह्मणादिकांनीं स्त्रियेसह वर्तमान एका यानांत बसावें, आणि एका पात्रांत भोजन करावें. याप्रमाणें विवाहकालीं, यात्रासमयीं, आणि मार्गांत स्त्रीसह एका पात्रांत भोजन केलें असतां तो ब्राह्मण दोषी होत नाही. इतर वेळीं एका पात्रांत स्त्रियेसह भोजन करील तर दोषी होईल. त्या दोषाच्या निवारणासाठीं चान्द्रायणप्रायश्चित्त करावें.” **मिताक्षरेंतही** असेंच सांगितलें आहे.

रत्नमालेंत—“मूल, अशुराधा, मृग, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, तीन उत्तरा, ह्या नक्षत्रांवर; भौम, शनि, रवि हे वार वर्ज्य करून इतर वारी विवाह करावा.” ह्या विवाहकालीं तारा वगैरे अनिष्ट असतां दान सांगतो **ज्योतिषांत**—“विषदूतारा असतां गुड द्यावा. निधनतारा असतां तिल व सुवर्ण द्यावें. प्रत्यरतारा असतां लवण द्यावें. आणि त्रिजन्मतारा (जन्मनक्षत्र, त्यापासून दहावें आणि एकोणिसावें नक्षत्र) असतां बोकड द्यावा. चंद्र अनिष्ट असतां शंख द्यावा. तारा अनिष्ट असतां लवण द्यावें. तिथि अनिष्ट असतां तंडुळ द्यावे. करण, आणि वार अनिष्ट असतां धान्य द्यावें. योग अनिष्ट असतां सुवर्ण द्यावें.”

विवाहमंडपमाहवसिष्ठः षोडशारत्निकं कुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् मंडपंतोरणैर्युक्तं तत्र वेदिप्रकल्पयेत् अष्टहस्तं तुरचयेन मंडपं वा द्विषट्करं दैवज्ञमनोहरः चित्राविशाखाशततारकाश्विनीज्येष्ठाभरण्यौ शिवभा-

१ ईषद्वौत नवं श्वेतं सदृशं वस्त्रमहतसंज्ञं । २ न दोष इति अन्यथा तु दोष एव नाश्रीयात् भार्ययासार्धमिति मनुवचनात् तस्य सार्धं एकपात्रे इत्यर्थः । यत्तु ब्राह्मण्या सह योश्रीयादुच्छिष्टं वा कदाचन । न तस्य दोषमिच्छति नित्यमेव मनीषिण इत्यत्रोक्तं तद्विवाहपरं । पतेन-ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं कञ्चिद्भुंजीत चाध्वनि । अधोवर्ण्या स्त्रिया सार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणमिति व्याख्यातं तद्विवाहेऽध्वनि च । ३ चान्द्रायणाचें स्वरूप ग्रंथाच्या शेवटीं सांगूं. ४ विषदूतारा वगैरे पूर्वीं तीर्णतसंस्कारप्रकरणीं सांगितल्या आहेत.

केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तं दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत् विवाहयिष्णोः कन्याया लाजहोमा-
दिकर्मणीति प्रत्यज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमे च नैजेपे आरब्धे सूतकं न स्यादं नारब्धे तु सूतकमिति विष्णुवचनाच्च
आरंभस्तेनैवोक्तः प्रारंभो वरणयज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः नादीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रियेति वरणमिति-
मधुपर्कपरं गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाश्च ऋत्विजः पश्चादशौचैपतितेन भवेदिति निश्चय इति ब्राह्मोक्तेः मधु-
पर्कात्पूर्वतु भवत्येवाशौचमिति शुद्धिविवेकः रामांडारभाष्येऽप्येवम् नादीमुखं वधिश्च स्मृत्यन्तरे एक-
विंशत्यहयज्ञे विवाहे दशवासराः त्रिपट्चौलोपनयने नादीश्राद्धं विधीयते आरंभाभावेऽपि लाजहोमाभावे गच्छ-
विष्णुः न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपीति अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः अनार-
ब्धविशुद्धयर्थं कृष्मांडैर्जुहुयाद्भूतम् गां दद्यात्पंचगव्याशीततः शुध्यति सूतकी संग्रहेऽपि संकटे समनुप्राप्ते सू-
तके समुपागते कृष्मांडीभिर्घृतं हुत्वा गांच दद्यात्पयस्विनीम् चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् यदैव सूतक-
प्रतिष्ठा वैवाभ्युदयक्रिया ।

विवाहांत आशौच उत्पन्न झालें असतां सांगतो याज्ञवल्क्य—“दानं, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशाचा विजय, आणि दुःख
क्षेपारी आपत्ति यांमध्ये आशौच प्राप्त असतां ययः (तत्काल) शुद्धि सांगितली आहे.” कोणाची मध्यःशुद्धि म्हण्टी तर
सांगतो ब्रह्मपुराणांत—“कन्यादानाचे ठायीं कन्यादाता, आणि प्रतिग्रहीता यांना आशौच नाही. आणि विवाहित होणाऱ्या
कन्येला लाजहोमादि कर्मांचे ठायीं आशौच नाही.” आणि “व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप, यांचे ठायीं आरंभ
झाल्यावर सूतक प्राप्त असले तरी तें सूतक नाही. आरंभ होण्याच्या पूर्वा प्राप्त असले तर सूतक आहे” असे विष्णुवचनही
आहे. प्रारंभ कोणता तें तोच (विष्णुच) सांगतो—“यज्ञाचा प्रारंभ ऋत्विग्वरण, व्रत आणि व्रत यांना प्रारंभ संकल्प
होय, विवाहादिकांचा प्रारंभ नांदीश्राद्ध, आणि श्राद्धाचा प्रारंभ पाकप्राशन.” ऋत्विजांचें वरण म्हणजे मधुपर्क, समजावा.
कारण, “यजमानापासून ऋत्विजांनी मधुपर्कपूजा घेतल्यावर पश्चात् आशौच प्राप्त असतां तें आशौच त्या ऋत्विजांना नाही,
असा निश्चय आहे.” असे ब्राह्मवचन आहे. मधुपर्काच्या पूर्वा आशौच होतच आहे, असे शुद्धिविवेक सांगतो. रामां-
डारभाष्यांतही असेच सांगितलें आहे. नांदीश्राद्धाचा अर्वाधि सांगतो स्मृत्यन्तरांत—“अहर्गजामध्ये एकाच दिवस
पूर्वी नांदीश्राद्ध होतें. विवाहांत दहा दिवस होतें. चालीन तीन दिवस. आणि उपनयनांत सहा दिवस पूर्वा नांदीश्राद्ध
होतें.” आरंभ झालेला नसला तरी दुसरा सुद्धें नसेल तर गव्यरूपानें सांगतो विष्णु—“देवप्रतिष्ठा आणि विवाह यांचें
सर्व साहित्य संपादन केलें असतां जर सूतक प्राप्त असले तर तें सूतक नाही.” आरंभ नसून सूतक प्राप्त असले तर प्राय-
श्चित्त सांगतो मदनपारिजातांत विष्णु—“आरंभ झालेल्या नसून सूतक प्राप्त असले तर शुद्धागारा कृष्मांडसंत्रांनी
घृताचा होम करून गोप्रदान करावें, आणि पंचगव्य प्राशन करावें, म्हणजे सूतकी शुद्ध होतो.” संग्रहांतही—“संकट
(मृताशौच) प्राप्त झालें किंवा जननाशौच प्राप्त झालें असतां तैत्तिरीयशास्त्रांतल्या कृष्मांडी ऋचांनी घृताचा होम करून दूध
क्षेपारी गाई ब्राह्मणास द्यावी, नंतर चाल, उपनयन, विवाह, देवप्रतिष्ठा इत्यादि करीत करावी. मात्र ज्या दिवशी सूतक प्राप्त
असेल त्याच दिवशी वृद्धिश्राद्धादिक आभ्युदयिक कर्म करावें.”

अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते विवाहोत्सवयज्ञेषु पुत्वंतरामृतसूतके परैरन्नप्रदातव्यं भोक्तव्यं-
षट्त्रिंशत्समैः परैरसगोत्रैः भुंजानेषु तु विप्रेषु पुत्वंतरामृतसूतके अन्यगोहोदकाचानाः सर्वे ते शुचयः स्मृताः एतदा-
शौचात् पूर्वमप्रथकृतान्नविषयं तत्र शेषमन्नं त्याज्यमित्यर्थः प्रथकृतेषु तु बृहस्पतिराह विवाहोत्सवयज्ञेषु पुत्वंत-
रामृतसूतके पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तित इति ।

ह्या आशौचांत अन्नादिकां विषयीं विशेष सांगतो षट्त्रिंशन्मतांत—“विवाह, उत्सव, यज्ञ या कर्मांमध्ये मृताशौच
प्राप्त होईल तर असगोत्रांनी अन्न द्यावें, तें अन्न ब्राह्मणधेरांनीं भोजन करावें. ब्राह्मण भोजन करीत असतां मध्ये यजमा-
नाला मृताशौच प्राप्त होईल तर ब्राह्मणांनी उठून दुसऱ्याच्या घरातील उदकांन आचमन करावें, म्हणजे ते सारे ब्राह्मण
शुद्धच आहेत.” हें वचन आशौचाच्या पूर्वी वेगळें न केलेल्या अन्नाविषयीं समजावें. या ठिकाणीं शेष अन्न असेल तें ब्राह्म-
णांनीं टाकावें, असा भाव. आशौचाच्या पूर्वी प्रथक् केलेलें अन्न असेल तर सांगतो बृहस्पति—“विवाह, उत्सव, यज्ञ,
या कर्मांचे ठायीं मध्ये मृताशौच प्राप्त होईल तर पूर्वी संकल्पित असलेल्या अन्नाविषयीं दोष नाही, असें सांगितलें आहे.”

धर्मार्थविवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यमेकचोद्वाहयेद्भिजं तेनाप्याप्रोतितम्
स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम् अपराकंदक्षः मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः यः स्थापयति तस्येह

पुण्यसंख्यानविधये **मदनरत्ने भविष्ये** विवाहादिक्रियाकालेत्क्रियासिद्धिकारणं यः प्रवच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधफलं भेत् कन्यागृहे भोजननिषेधोपितत्रैव अप्रजायांतुकन्यायां नमुंजीतकदाचन दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशोचति **अपराकै आदित्यपुराणे** विष्णुजामातरं मन्येतस्कोपनकारयेत् अप्रजायांतुकन्यायां तां श्रीयात्तस्यैव गृहे ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वा श्रीयात्कदाचन अथमुंजीतमोहाच्चेत्पूयाशेनरके वसेत् तत्रैव **कश्यपः** अहतं यंत्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयं भुवा शस्तं तन्मांगलिक्ये पुतावत्कालं न सर्वदा यंत्रनिर्मुक्तं नूतनं विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोष इत्याह **हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडे गालवः** विवाहकाले यात्रायां पथि चौरसमाकुले असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं द्विजन्मभिः एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम् विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् **मिताक्षरायामप्येवम् रत्नमालायां** मूलमैत्रमृगरोहिणीकरैः पौष्णमारुतमश्रोत्तगन्धिवैः भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनविधिर्विधीयते अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं **ज्योतिषे** विपत्तरे गुडं दद्यान्निधने तिलकां च नम्रं प्रत्यरे लवणं दद्याच्छागंदद्यान्निजन्मसु चंद्रचशंगं लवणं च तारेति थौ विरुद्धे त्वथ तंदुलांश्च धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं प्रदेयम् ।

धर्माथैविवाह करणाचें फल सांगतो **महाभारतांत**—“आपलें द्रव्यामार्थ पाहून एका ब्राह्मणाचा विवाह करावा. त्या योगानें त्या शिवभक्त मनुष्याला तें उत्तम स्थान निश्चयानें प्राप्त होतें.” **अपराकांत दक्ष**—“माता, पिता यांनीं रहित अशा ब्राह्मणाला उपनयन, विवाहादि संस्कार करून धर्माचे ठायीं जो स्थापन करील त्याच्या पुण्याची संख्या करितां येत नाही.” **मदनरत्नांत भविष्यांत**—“विवाहादि कार्यामयीं त्या कार्याच्या सिद्धीचें जें कारण द्रव्यादिक असेल, तें जो करून देईल त्याला अश्वमेधाचें फल प्राप्त होईल.” कन्येच्या घरीं भोजनाचा निषेधही तेथेंच सांगतो—“कन्येला पुत्र झालेला नरातां तिच्या घरीं कधींही भोजन करूं नये. दौहित्राचें (कन्यापुत्राचें) मुल पाहिल्यावर शोक करण्याचें (भोजननिषेध मानण्याचें) कारण नाही.” **अपराकांत आदित्यपुराणांत**—“जावई हा विष्णुरूपी आहे, असें मानून त्याला कोप येईल असें करूं नये. कन्येला प्रजा झालेली नमतां जामात्याच्या घरीं भोजन करूं नये. ब्रह्म देणारी अशी जी कन्या ती देऊन जामात्याच्या घरीं कधींही भोजन करूं नये. आतां मोहाच्या (अज्ञानाच्या) योगानें जर भोजन करील तर पूयाश (पुवाच्या) नरकांत जाईल.” तेथेंच **कश्यप**—“यंत्रांतून निघालेले नूतन वस्त्र तें ब्रह्मदेवांन अहत म्हणून सांगितलें आहे. तें अहत वस्त्र मंगलकार्यामार्थें तावत्कालपर्यंत प्रशस्त म्हणून गांणिलें आहे. गवेदा प्रशस्त नाही.” विवाहांत स्त्रियेसह भोजन केळें तरी दोष नाही, असें सांगतो **हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडांत गालव**—“विवाहकालीं, यात्रासमयीं, मार्गांत, आणि चोर असतील त्या वेळीं दुसरा कोणी माहात्म्य नसेल तर ब्राह्मणादिकांनीं स्त्रियेसह वर्तमान एका यानांत बसावें, आणि एका पात्रांत भोजन करावें. याप्रमाणें विवाहकालीं, यात्रासमयीं, आणि मार्गांत स्त्रीसह एका पात्रांत भोजन केलें असतां तो ब्राह्मण दोषी होत नाही. इतर वेळीं एका पात्रांत स्त्रियेसह भोजन करील तर दोषी होईल. त्या दोषाच्या निवारणासाठीं चान्द्रायणप्रायश्चित्त करावें.” **मिताक्षरेंतही** असेंच सांगितलें आहे.

रत्नमालेंत—“मूल, अनुराधा, मृग, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, तीन उत्तरा, ह्या नक्षत्रांवर; भौम, शनि, रवि हे वार वर्ज्य करून इतर वारीं विवाह करावा.” ह्या विवाहकालीं तारा वर्गरे अनिष्ट असतां दान सांगतो **ज्योतिषांत**—“विषदूतारा असतां गुड द्यावा. निधनतारा असतां तिल व सुवर्ण द्यावें. प्रत्यरतारा असतां लवण द्यावें. आणि त्रिजन्मतारा (जन्मनक्षत्र, त्यापासून दहावें आणि एकोणिसावें नक्षत्र) असतां बोकड द्यावा. चंद्र अनिष्ट असतां शंख द्यावा. तारा अनिष्ट असतां लवण द्यावें. तिथि अनिष्ट असतां तंदुल द्यावे. करण, आणि वार अनिष्ट असतां धान्य द्यावें. योग अनिष्ट असतां सुवर्ण द्यावें.”

विवाहमंडपमाहवसिष्ठः पोडशारत्निकंकुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् मंडपंतोरणैर्युक्तं तत्र वेदिप्रकल्पयेत् अष्टहस्तं तुरचयेन मंडपं वा द्विपट्करं दैवज्ञमनोहरः चित्राविशाखाशततारकाश्विनीज्येष्ठाभरण्यौ शिवभा-

१ ईश्वरौत नवं श्वेतं सदशं वस्त्रमहतसंज्ञं । २ न दोष इति अन्यथा तु दोष एव नाश्रीयात् भार्ययासाधेयमिति मनुवचनात् तस्य सार्धं एकपत्रे इत्यर्थः । यत्तु ब्राह्मण्या सह योश्रीयादुच्छिष्टं वा कदाचन । न तस्य दोषमिच्छति नित्यमेव मनीषिण इत्यविरोधात् सर्वं तद्विवाहपरं । पतेन-ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं क्वचिद्भुजीत चाध्वनि । अधोवर्ण्या स्त्रिया सार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणमिति व्यासस्य कश्चिद्विवाहेऽध्वनि च. ३ चान्द्रायणाचें स्वरूप ग्रंथाच्या शेवटीं सांगूं. ४ विषदूतारा वर्गरे पूर्वी तीमंतसंस्कारप्रकरणीं साधितवया आहेत.

केषामित्यपेक्षिते ब्रह्मपुराणे उक्तं दातुः प्रतिग्रहीतुश्च कन्यादाने च नो भवेत् विवाहयिष्णोः कन्याया लाजहोमा-
धिकर्मणीति व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमे चैव न जपे आरब्धे सूतकं न स्याद नारब्धे तु सूतकमिति विष्णुवचनञ्च
आरंभस्तेनैवोक्तः प्रारंभो वरणयज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः नांदीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रियेति वरणमिति-
मधुपर्कपरं गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाश्च ऋत्विजः पश्चादशौचैव पतिते न भवेदिति निश्चय इति ब्राह्मोक्तेः मधु-
पर्कात्पूर्वतु भवत्येवाशौचमिति शुद्धिविवेकः रामांडारभाष्येऽप्येवम् नांदीमुखावधिश्रस्मृत्यंतरे एक-
विंशत्यहयज्ञे विवाहे दशवासराः त्रिपट्चौलोपनयने नांदीश्राद्धं विधीयते आरंभाभावेऽपि लग्नांतरा भावेऽप्य-
विष्णुः न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोरपीति अत्र प्रायश्चित्तमाह मदनपारिजाते विष्णुः अनार-
ब्धविशुद्ध्यर्थं कृष्मांडैर्जुहुयाद्भूतम् गां दद्यात्पंचगव्याशीततः शुध्यति सूतकी संग्रहेऽपि संकटे समनुप्राप्ते सू-
तके समुपागते कृष्मांडीभिर्धृतं हुत्वा गांच दद्यात्पयस्विनीम् चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् यदैव सूतक-
प्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया ।

विवाहांत आशौच उत्पन्न झालें अमतां सांगतो याज्ञवल्क्य—“दान, विवाह, यज्ञ, युद्ध, देशाचा विजय, आणि दुःख
क्षेपारी आपत्ति यांमध्ये आशौच प्राप्त अमतां गव्यः (तत्काल) शुद्धि सांगितली आहे.” कोणाची गव्यः शुद्धि म्हण्टली तर
सांगतो ब्रह्मपुराणांत—“कन्यादानाचं ठायीं कन्यादाता, आणि प्रतिग्रहीता यांना आशौच नाही. आणि विवाहित होणाऱ्या
कन्येला लाजहोमादि कर्मांचे ठायीं आशौच नाही.” आणि “व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप, यांचे ठायीं आरंभ
झाल्यावर सूतक प्राप्त असलें तरी तें सूतक नाही. आरंभ होण्याच्या पूर्वी प्राप्त असेल तर सूतक आहे” असे विष्णुवचनही
आहे. प्रारंभ कोणता तें तोच (विष्णुच) सांगतो—“यज्ञाचा प्रारंभ ऋत्विग्वरण, व्रत आणि गव्य यांचा प्रारंभ संकल्प
होय, विवाहादिकांचा प्रारंभ नांदीश्राद्ध, आणि श्राद्धाचा प्रारंभ पाकप्राशन.” ऋत्विजांचें वरण म्हणजे मधुपर्क गमजावा.
कारण, “यजमानापासून ऋत्विजांनी मधुपर्कपूजा घेतल्यावर पश्चात् आशौच प्राप्त असतां तें आशौच त्या ऋत्विजांना नाही,
असा निश्चय आहे.” असे ब्राह्मवचन आहे. मधुपर्काच्या पूर्वी आशौच होतच आहे, असे शुद्धिविवेक सांगतो. रामां-
डारभाष्यांतही असेच सांगितलें आहे. नांदीश्राद्धाचा अर्वाश्च सांगतो स्मृत्यंतरांत—“अहयज्ञांमध्ये एकवीस दिवस
पूर्वी नांदीश्राद्ध होतें. विवाहांत दहा दिवस होतें. चाव्यांत तीन दिवस. आणि उपनयनांत सहा दिवस पूर्वी नांदीश्राद्ध
होतें.” आरंभ झालेला नसला तरी दुसरा सुद्धे नसेल तर गव्यरूपानें सांगतो विष्णु—“देवप्रतिष्ठा आणि विवाह यांचें
सर्व साहित्य संपादन केलें अमतां जर सूतक प्राप्त असलें तर तें सूतक नाही.” आरंभ नसून सूतक प्राप्त असेल तर प्राय-
श्चित्त सांगतो मदनपारिजातांत विष्णु—“आरंभ झालेला नसून सूतक प्राप्त असेल तर जुद्धागाटी कृष्मांडमंत्रांनी
धृताचा होम करून गोप्रदान करावें, आणि पंचगव्य प्राशन करावें, म्हणजे सूतकी शुद्ध होतो.” संग्रहांतही—“संकट
(मृताशौच) प्राप्त झालें किंवा जननाशौच प्राप्त झालें अमतां तत्तिर्यग्यज्ञांमधील कृष्मांडी ऋचांनी धृताचा होम करून दूध
क्षेपारी गाई ब्राह्मणस यावी, नंतर चावल, उपनयन, विवाह, देवप्रतिष्ठा इत्यादि कांय करावें. मात्र ज्या दिवशी सूतक प्राप्त
असेल त्याच दिवशी वृद्धिश्राद्धादिक आभ्युदयिक कर्म करावें.”

अन्नादिषु विशेषः षट्त्रिंशन्मते विवाहोत्सवयज्ञेषु पुर्वंतरा मृतसूतके परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं-
च द्विजोत्तमैः परैरसगोत्रैः भुंजानेषु तु विप्रेषु पुर्वंतरा मृतसूतके अन्यगोहोदकाचा तातः सर्वे ते शुचयः स्मृताः एतदा-
शौचात् पूर्वमपृथक् तात्र विषयं तत्र शेषमन्नं त्याज्यमित्यर्थः पृथक् ते पुतु बृहस्पतिराह विवाहोत्सवयज्ञेषु पुर्वंत-
रा मृतसूतके पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तित इति ।

ह्या आशौचांत अन्नादिकां विषयी विशेष सांगतो षट्त्रिंशन्मतांत—“विवाह, उत्सव, यज्ञ या कर्मांमध्ये मृताशौच
प्राप्त होईल तर असगोत्रांनी अन्न द्यावें, तें अन्न ब्राह्मणधेष्टांनीं भोजन करावें. ब्राह्मण भोजन करित असतां मध्ये यजमा-
नाला मृताशौच प्राप्त होईल तर ब्राह्मणांनी उठून दुसऱ्याच्या घरांतील उदकांन आचमन करावें, म्हणजे ते सारे ब्राह्मण
शुद्धच आहेत.” हें वचन आशौचाच्या पूर्वी वेगळें न केलेल्या अन्नाविषयी समजावें. या ठिकाणीं शेष अन्न असेल तें ब्राह्म-
णांनीं टाकावें, असा भाव. आशौचाच्या पूर्वी पृथक् केलेलें अन्न असेल तर सांगतो बृहस्पति—“विवाह, उत्सव, यज्ञ,
या कर्मांचे ठायीं मध्ये मृताशौच प्राप्त होईल तर पूर्वी संकल्पित असलेल्या अन्नाविषयी दोष नाही, असें सांगितलें आहे.”

धर्मार्थविवाहकरणे फलमुक्तं महाभारते ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्ये कंचोद्वाहयेद्विजं तेनाप्याप्नोति तत्
स्थानं शिवभक्तो नरो ध्रुवम् अपरार्कदक्षः मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः यः स्थापयति तत्स्थेह

पुण्यासंख्यानाविद्यते मदनरत्ने भविष्ये विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणं यः प्रवक्ष्यति धर्मज्ञः ।
सोश्चमेधफलं भेत् कन्यागृहे भोजननिषेधोपितत्रैव अप्रजायांतु कन्यायां न भुंजीत कदाचन दौहित्रस्य सुखं
दृष्ट्वा किमर्थं मनुशोचति अपराकै आदित्यपुराणे विष्णुजामातरं मन्येत्यकोपनकारयेत् अप्रजायांतु-
कन्यायांना श्रीयात्तस्यैव गृहे ब्रह्मदेयां न वै कन्यां दत्त्वा श्रीयात् कदाचन अथ भुंजीत मोहाच्चेत् पूयाशेन रके वसेत्
तत्रैव कश्यपः अहतं यंत्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयं भुवा शस्तं तन्मांगलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा यंत्रनिर्मुक्तं नू-
तनं विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडे गालवः विवाहकाले यात्रायां प-
थि चौरसमाकुले असहायो भवेद्विप्रस्तदा कार्यं द्विजन्मभिः एकयानसमारोह एकपात्रे च भोजनम् विवाहे पथि-
यात्रायां कृत्वा विप्रो न दोषभाक् अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत् मिताक्षरायामप्येवम् रत्न-
मालायां मूलमैत्रमृगरोहिणीकरोः पौष्णमासु तमश्चोत्तरान्वितैः भौमसौररविवारवर्जिते पाणिपीडनविधि-
र्विधीयते अत्रानिष्टनक्षत्रादौ दानमुक्तं ज्योतिषे विपक्षरे गुडं दद्यान्निधने तिलकां च नमः प्रत्यरे लवणं दद्याच्छा-
गं दद्यात्त्रिजन्मसु चंद्रचशंगलवणं च नारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तंदुलांश्च धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे क-
नकंप्रदेयम् ।

धर्माश्च विवाह करणाय फल सांगतो महाभारतांत—“आपलें द्रव्यगामर्थ पाहून एका ब्राह्मणाचा विवाह करावा.
त्या योगानें त्या शिवभक्त मनुष्याला तें उत्तम स्थान निध्यानें प्राप्त होतें.” अपराकांत दक्ष—“माता, पिता यांनीं रहित
अशा ब्राह्मणाचा उपनयन, विवाहादि संस्कार करून धर्माचे ठायीं जो स्थापन करील त्याच्या पुण्याची संख्या करितां येत
नाहीं.” मदनरत्नांत भविष्यांत—“विवाहादि कार्यामयीं त्या कार्याच्या मिद्रीं जें कारण द्रव्यादिक असेल, तें जो करून
देईल त्याला अश्वमेधाचें फल प्राप्त होईल.” कन्येच्या घरीं भोजनाचा निषेधही तेथेंच सांगतो—“कन्येला पुत्र झालेला
नसातां तिच्या घरां कधींही भोजन करूं नये. दौहित्राचें (कन्यापुत्राचें) मुख पाहिल्यावर शोक करण्याचें (भोजननिषेध
मानण्याचें) कारण नाहीं.” अपराकांत आदित्यपुराणांत—“जावई हा विष्णुहृषी आहे, असें मानून त्याला कोप
येईल असें करूं नये. कन्येला प्रजा झालेली नगतां जामात्याच्या घरां भोजन करूं नये. ब्रह्म देणारी अशी जी कन्या ती देऊन
जामात्याच्या घरां कधींही भोजन करूं नये. आतां मोढाच्या (अज्ञानाच्या) योगानें जर भोजन करील तर पूयाश (पुवाच्या)
नरकांत जाईल.” तेथेंच कश्यप—“यंत्रांतून निघालें नूतन वस्त्र तें ब्रह्मदेवानें अहत म्हणून सांगितलें आहे. तें अहतवस्त्र
मंगलकार्यामर्थें तावत्कालपर्यंत प्रशस्त म्हणून सांगितलें आहे. गर्भदा प्रशस्त नाहीं.” विवाहांत स्त्रियेसह भोजन केलें तरी
दोष नाहीं, असें सांगतो हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडांत गालवः—“विवाहकालीं, यात्रासमयीं, मार्गांत, आणि चोर
असतील त्या वेळीं दुसरा कोणी गाहाय्य नसेल तर ब्राह्मणादिकांनीं स्त्रियेसह वर्तमान एका यानांत बसावें, आणि एका पात्रांत
भोजन करावें. याप्रमाणें विवाहकालीं, यात्रासमयीं, आणि मार्गांत स्त्रीसह एका पात्रांत भोजन केलें असतां तो ब्राह्मण दोषी
होत नाहीं. इतर वेळीं एका पात्रांत स्त्रियेसह भोजन करील तर दोषी होईल. त्या दोषाच्या निवारणासाठीं चांद्रायणप्रायश्चित्त
करावें.” मिताक्षरेंतही असेंच सांगितलें आहे.

रत्नमालेंत—“मूल, अनुराधा, मृग, रोहिणी, हस्त, रेवती, स्वाती, मघा, तीन उत्तरा, ह्या नक्षत्रांवर; भौम, शनि,
रवि हे वार वर्ज्य करून इतर वारीं विवाह करावा.” ह्या विवाहकालीं तारा वगैरे अनिष्ट असतां दान सांगतो ज्योतिषांत—
“विषद्वारा असतां गुड द्यावा. निधनतारा असतां तिल व सुवर्ण द्यावें. प्रत्यरतारा असतां लवण द्यावें. आणि त्रिजन्मतारा
(जन्मनक्षत्र, त्यापासून दहावें आणि एकोणिसावें नक्षत्र) असतां वोळद द्यावा. चंद्र अनिष्ट असतां शंख द्यावा. तारा
अनिष्ट असतां लवण द्यावें. तिथि अनिष्ट असतां तंदुल द्यावे. करण, आणि वार अनिष्ट असतां धान्य द्यावें. योग अनिष्ट
असतां सुवर्ण द्यावें.”

विवाहमंडपमाहवसिष्ठः षोडशारत्निकंकुर्याच्चतुर्द्वारोपशोभितम् मंडपंतोरेणैर्युक्तं तत्र वेदिप्रकल्पयेत्
अष्टहस्तं तुरचयेन मंडपं वा द्विपट्करं दैवज्ञमनोहरः चित्राविशाखाशततारकाश्विनीज्येष्ठाभरण्यौ शिवभा-

१ ईषद्वौतं नवं श्वेतं सदृशं वस्त्रमहतसंज्ञं । २ न दोष इति अन्यथा तु दोष एव नाश्रीयात् भार्ययासार्धमिति मनुवचनात् तस्य
सार्धं एकपात्रे इत्यर्थः । यत्तु ब्राह्मण्या सह योश्रीयादुच्छिद्यं वा कदाचन । न तस्य दोषमिच्छति नित्यमेव मनीषिण इत्यंतिरोक्तार्थं
तद्विवाहपरं । एतेन-ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं कश्चिद्भुंजीत चाध्वनि । अधोवर्ण्या स्त्रिया सार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणादिति व्याकृतार्थं कश्चि-
द्विवाहेऽध्वनि च. ३ चांद्रायणाचें स्वरूप ग्रंथाच्या शेवटीं सांगूं. ४ विषद्वारा वगैरे पूर्वीं सीमंतसंस्कारप्रकरणीं साधितवशा आहेत.

चतुष्टयम् हित्वाप्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकंकडनमंडपादिकम् हेमाद्रौ व्यासः कंडनदलनयवारकमंड-
पमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलं तत्संबंधिगतागतमृद्वैवाहिकेकुर्यात् यवारकंचिकसाद्विप्रसिद्धम् वैवाहिकेतुदिवसे-
शुभेवाथतिथौ शुभे चतुर्थिकंप्रकुर्वीतविधिदष्टेनकर्मणा वेदिमाहनारदः हस्तोच्छ्रितांचतुर्हस्तैश्चतुरस्रां-
संततः स्तंभैश्चतुर्भिःसुरक्षणां वामभागेतुसद्वानि समांतथाचतुर्दिक्षुसोपानैरतिशोभिताम् प्रागुदक्प्रवणारं-
भांस्तंभैर्हस्तशुकादिभिः एवंविधामारुक्षेन्मिथुनं सौमित्रिवेदिकामिति सप्तर्षिमतं मंगलेषुचसर्वेषुमंडपो-
हमानतः कार्यः षोडशहस्तोवा द्विपदहस्तोदशावधि स्तंभैश्चतुर्भिरेवात्रवेदीमध्येप्रतिष्ठिता हस्तोर्वध्वाः सोपानं
पश्चिमतः उपरिभागेउत्कपरिमाणाद्भिन्नम् ।

विवाहास मंडप सांगतो वसिष्ठ—“कनिष्ठ अंगुलीपर्यंत जो हात तो अरलि म्हटला आहे. अशा सोळा हातांचा लांब
रुंद मंडप करावा. तो चार द्वाऱांनी सुशोभित करावा. आणि तोरणे बांधावीं. नंतर त्या मंडपांत वेदी करावी. अथवा आठ
हात किंवा बारा हात लांब व रुंद मंडप करावा.” दैवज्ञमनोहर—“नित्रा, विशाखा, शनारका, अधिनी, ज्येष्ठा, भरणी,
आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा हीं नक्षत्रे सोहून बाकीच्या नक्षत्रांवर फळ, तैल, वेदिका, हळद, कांटणें, मंडप इत्यादिक
विवाहसंबंधी कर्मे करावीं.” हेमाद्रौ व्यास—“कांडण, दळण, यवारक (चिकसा), मंडप, मृत्तिकाहरण, वेदी, चित्रें
वगैरे काढणें, आणि जाणें येणें हीं विवाहसंबंधीं गारीं कृत्ये विवाहनक्षत्रावर करावीं. विवाहोक्त शुभदिवशीं शुभतिथीस
चैतुर्थीकर्म यथाविधि करावें.” वेदी सांगतो नारद—“घराच्या वामभागीं एक हात उंचीची चार हात लांबीची व चार हात
रुंदीची अशी चतुरस्र वेदी करावी. तिच्या चार बाजूंस केळीचे चार स्तंभ असावे. ती वेदी चारी दिशांस गारखी असून तिला
पायऱ्या असाव्यात. ती वेदी पूर्वेस व उत्तरेस किंचित् उत्तरी असावी. आणि त्या वेदीवर केळीचे स्तंभ, व हंग, शुक्र
इत्यादि पक्षी असावेत. अशा प्रकारच्या वेदीवर अग्नीसह वधूवरांनीं चढावें.” सप्तर्षिमतान्—“सर्व मंगलकार्यांत घराच्या
मानांजें सोळा हात, किंवा चवदा हात, अथवा बारा हात किंवा दहा हात मंडप घालावा त्या मंडपांत चारी बाजूंस चार
स्तंभ लावून वेदी करावी.” या ठिकाणीं हात वधूचा घ्यावा. वेदीला पायऱ्या सांगितल्या त्या पश्चिमदिशेस कराव्या. वर
सांगितलेलें जें वेदीचें प्रमाण त्याच्या बाहेर पायऱ्या असाव्यात.

अथमृदाहरणं ज्योतिर्निबंधेनारदः कर्तव्यमंगलेष्वदासंगलायांकुगर्पणम् नवमेसप्रमेवापि
पंचमेदिवसेपिवा तृतीयेबीजनक्षत्रेशुभवारेशुभोदये सम्यग्गृहाण्यलंकृत्यवितानध्वजतोरणैः सहवादित्रनु-
त्याचैर्गत्वाप्रागुत्तरांदिशम् तत्रमृत्सिकतांश्रुक्षणांगृहीत्वापुनर्गततः मृन्मयेष्वथवात्रेणवेपुपात्रेपुयोजयेत् अने-
कबीजसंयुक्तांतोयपुष्पोपशोभिताम् शौनकः आधानंगर्भसंस्कारं जातकर्मचन्तामच हित्वान्यत्रविधातव्यं
मंगलंकुरवापनम् बृहस्पतिः आत्यंतिकेपुकार्येषुकार्यसद्योऽंकुगर्पणम् तत्रैववाग्दानंहरिद्रावंदनंचकार्यम्
ज्योतिःप्रकाशे चतुर्थोमंडपःश्रेष्ठःसप्तमःपंचमस्तथा नवमेकादशेश्रेष्ठोऽनेष्टोपष्टतृतीयको विवाहमेखो-
दयेवाकन्यावरणमाचरेत् वरस्यापिवरणमाहचंडेश्वरः उपवीतंफलंपुष्पंवासांसिविविधानिच देयं वराय-
वरणेकन्याभ्रात्राद्विजेनवेति ॥

आतां अंकुरार्पणाकरितां मृत्तिकाहरण सांगतो—

ज्योतिर्निबंधांत नारद—“मंगलकार्यामध्ये आधीं मंगलागाठीं नवव्या, सातव्या, पांचव्या, किंवा तिसऱ्या दिवशीं,
बीज पेरण्यास सांगितलेल्या नक्षत्रावर शुभवारीं शुभमलावर अंकुरार्पण करावें. पताका, ध्वज, तोरणे लावून घरें चांगलीं
भूषित करून वाद्यगजर, वारांगनांचा नाच करीत ईशान्यदिशेस जाऊन त्या ठिकाणची चांगली मृदु माती घेऊन पुनः घरीं
यावें. नंतर ती माती मातीच्या पात्रांत किंवा वेळूच्या पात्रांत ठेवून त्यांत अनेक धान्यांचीं बीजें पेरून पाणी घालावें, आणि
वर फुलें घालावीं. हें अंकुरार्पण होय.” शौनक—“गर्भाधान, गर्भाचे संस्कार, जातकर्म, नामकरण, हीं कर्मे वर्ज्य करून
बाकीच्या मंगलकार्यांत अंकुरार्पण करावें.” बृहस्पति—“थोड्या अवकाशांत करावयाच्या कार्यांत सद्यः (तत्कालीं)
अंकुरार्पण करावें.” या वेळींच वाग्दान आणि हरिद्रावंदन हीं करावीं. ज्योतिःप्रकाशांत—“चैवथा मंडप श्रेष्ठ आहे.

१ साप्तीतिभिन्नपदं मिथुनस्वविशेषणं. २ व्रतबंधे बटोः संस्कार्यत्वात् बटुहस्तेनवेदिनिर्मितिः विवाहे तु कन्यागृहेष्व वरपूजन-
सोक्तत्वात् गृहस्वाश्रमस्य तदायत्तत्वाच्च कन्याहस्तेनैव वेदिनिर्माणं. ३ चतुर्थीकर्माचा होमादिक विधि संस्कारनौस्तुभांत सांगि-
तला आहे, तो तेथें पहावा. ४ वरणं प्रार्थना—वाचा दत्ता त्वया कन्या पुत्रार्थं स्वीकृता मया । वरावलोकांनविधौ निश्चितस्त्वं
छुषी भवेत्येवंरूपा वाग्दानास्येति. यावत्. ५ येथें चवथा मंडप म्हणला यावरून किती तरी मंडप आहेत असें होतें; ते मंडप

तसाच सातवा आणि पांचवा श्रेष्ठ आहे. नववा आणि अकरावा हेही श्रेष्ठ आहेत. सहावा आणि तिसरा हे दोन इष्ट नाहीत. विवाहनक्षत्रावर किंवा विवाहनक्षत्राच्या उदयावर कन्यावरण करावें.” वराचेंही वरण सांगतो **चंडेश्वर**—“वराच्या वरण-कालीं कन्येच्या भ्रात्यानें किंवा ब्राह्मणानें वराला यज्ञोपवीत, फलें, पुष्पें आणि अनेक प्रकारचीं वस्त्रें हीं द्यावीं.”

वाग्दानोत्तरवरमरणेऽपरार्कस्मृतिचंद्रिकायांवसिष्ठः अद्विर्वाचाच दत्तायां भ्रियेतोर्ध्ववरोयदि नचमंत्रोपनीतास्यात्कुमारीपितुरेवसा यत्तु नारदः उद्वाहितपिसाकन्यानचेत्संप्राप्तमैथुना पुनः संस्कारमर्हे-तयथाकन्यातथैवसेति यच्च कात्यायनः वरोयद्यन्यजातीयः पतितः स्त्रीवएवच विकर्मस्थः सगोत्रोवादासो दीर्घामयोपिवा ऊढापिदेयासान्यस्मैसहावरणभूषणेति इदंकलौनिषिद्धम् देवरेणसुतोत्पत्तिर्देत्ताकन्यानदी-यतेइत्यादित्यपुराणेकलौनिषेधान् दत्ताशब्द ऊढापरः ऊढायाः पुनरुद्वाहमिति हेमाद्रावुक्तेः अतएव-सगोत्रासपिंडादि विवाहेऽपि भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननीमिवेत्युक्तम् ।

वाग्दानोत्तर वर मृत झाला असतां सांगतो **अपरार्कांत व स्मृतिचंद्रिकेंत वसिष्ठ**—“उदकानें आणि वाणीनें कन्या दिली असतां नंतर जर वर मरेल आणि कन्या पाणिग्रहणाच्या मंत्रांनीं संस्कार केलेली नसेल तर ती कन्या पित्याचीच आहे.” आतां जें **नारद**—“विवाहित झालेली कन्या असली तरी जर तिचा संभोग (मैथुन) केलेला नसेल तर ती पुनः संस्काराला (विवाहाला) योग्य होते. जशी कन्या (अविवाहित) तशीच ती समजावी.” आणि जें **कात्यायन**—“जर वर अन्यजातीचा असेल, अथवा पतित किंवा पंड असेल, अथवा वेदशास्त्रविरुद्ध कर्म करणारा, किंवा सगोत्री अथवा दास किंवा दीर्घरोगी असा असेल तर विवाहित कन्या अमली तरी ती कन्या वस्त्रालंकारसहित दुसऱ्याला द्यावी.” असें सांगतो. हें करणें कलियुगांत निषिद्ध आहे. कारण, “स्त्रियेनें भर्त्याच्या अभावीं दिरापासून पुत्रोत्पत्ति करणें, आणि दिलेली कन्या पुनः दुसऱ्याला देणें.” या वचनानें त्या कर्माचा **आदित्यपुराणांत** कलियुगांत निषेध केलेला आहे. ह्या आदित्यपुराणांतील वचनांत ‘दत्ता’ असें पद आहे, त्याचा अर्थ विवाहित समजावा. कारण, “विवाहित कन्येचा पुनः विवाह कलियुगांत निषिद्ध असें हेमाद्रीन सांगितलें आहे. म्हणूनच सगोत्रा, रापिंडा इत्यादि कन्येचा विवाह झाला असेल तर “संभोगाविषयीं तिचा त्याग करून मातृप्रमाणें तिचें पालन करावें” असें सांगितलें आहे.

देशांतरगमनेतुकात्यायनः वरयित्वातुयः कश्चित्प्रणश्येत्पुरुषोयदा ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्यकन्या-न्यंवरयेद्वरम् अपरार्कैनारदोपि प्रतिगृह्यतुयः कन्यां वरोदेशांतरं व्रजेत् त्रीनूतनसमतिक्रम्य कन्याऽन्यं व-रयेद्वरम् शुल्कदानेतुमनुवसिष्ठौ कन्यायां दत्तशुल्कायां भ्रियेत्येयदि शुल्कदः देवराय प्रदातव्यायदिकन्यानु-मन्यते चंद्रिकायां कात्यायनः प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा धार्यासावर्षमेकं तु देयान्यस्मै-विधानतः अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूदायां तु तत्रैव पूर्वागतश्च सर्वे पांलभेताद्यवरस्तुताम् पश्चाद्वरेण्यदत्तं तस्याः प्रतिलभेतसः अथागच्छेन्नवोदायां दत्तपूर्ववरोहरेत् याज्ञवल्क्यः सकृत्प्रदीयते कन्याहरं स्तांचौरदं-डभाक् दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वरआव्रजेत् पूर्वस्यदोषसत्त्वेदमिति विज्ञानेश्वरः संबंधतश्चेव-सिष्ठः कुलशीलविहीनस्य पश्चाद्विपतितस्यच अपस्मारिविधर्मस्य रोगिणां वैषधारिणाम् दत्तामपि हरेत्कन्यां-सगोत्रोदांतथैवच मनुः पंडांधवधिरादीनां विवाहोऽस्त्यथोचितम् विवाहासंभवेतेषां कनिष्ठो विवहेत्तदा पितृव्यपुत्रेसापत्नेपरदारसुतेषुच विवाहाधानयज्ञादौपरिवेदो न दूषणम् अन्यद्वत्तव्यं विस्तरभीतेनोच्यते-इतिदिक् ।

वर देशांतरीं गेला असेल तर सांगतो **कात्यायन**—“जेव्हां जो कोणी पुरुष कन्येला वरून नाहीसा होईल तेव्हां त्याची तीन ऋतु (सहा महिने) पर्यंत प्रतीक्षा करून नंतर त्या कन्येनें दुसरा वर वरावा.” **अपरार्कांत नारदही**—“जो वर कन्येचा प्रतिग्रह (वाग्दानादि कर्म) करून देशांतरीं जाईल त्याची सहा महिनेपर्यंत प्रतीक्षा करून कन्येनें दुसरा वर वरावा.” कन्येला मूल्य दिलें असेल तर सांगतात **मनु** आणि **वसिष्ठ**—“कन्येला शुल्क (मूल्य) दिलेले असून जर मूल्य देणारा मरेल तर ती कन्या त्याच्या (मूल्य देणाराच्या) भ्रात्राला द्यावी. पण कन्येची जर संमति असेल तर टीकेंत सांगितले आहेत, ते असे—१ ला आठ हातांचा, २ रा दहा हातांचा, ३ रा बारा हातांचा, ४ था चवदा हातांचा, ५ वा सोळा हातांचा, ६ वा अठरा हातांचा, ७ वा बीस हातांचा, ८ वा पंचवीस हातांचा, ९ वा पन्नास हातांचा, १० वा अंबर हातांचा, ११ वा सहस्र हातांचा, याप्रमाणें अकरा मंडप सांगितले आहेत. त्यांपैकी पहिले दोन आणि आठवा हे निश्चितही नाहीत व निषिद्धही नाहीत.

दावी. अर्थात् नसेल तर देऊं नये.” **चंद्रिकेत कात्यायन**—“जो पुरुष कन्येला शुल्क (मूल्य) आणि स्त्रीधन देऊन देशांतरी जाईल त्याची प्रतीक्षा करीत एक वर्षपर्यंत ती कन्या ठेवावी; नंतर दुसऱ्या वराला ती कन्या यथाविधि दावी. अनेक वरांला कन्या दिलेली असून तिचा कोणाशीं विवाह झालेला नसेल तर त्या सर्वांमध्ये प्रथम आलेल्या पहिल्या वराला ती कन्या प्राप्त होईल. मार्गाहून आलेल्या वरांनं जें काहीं द्रव्यादिक दिलें असेल तें त्याला परत मिळेल. आतां जर तिचा दुसऱ्या वराशीं विवाह झाल्यावर पहिला वर प्राप्त होईल तर त्यानं जें काहीं द्रव्यादिक दिलें असेल तें त्याला परत मिळेल.” **याज्ञवल्क्य**—“कन्येचें दान एकवार होतें. एकवार दिलेली कन्या जो पुरुष हरण करून आणील त्याला चोराची शिक्षा प्राप्त होईल. जर उत्तम वर प्राप्त होईल तर पूर्वी दिलेली कन्या असली तरी त्यापासून हरण करून आणावी.” हें सांगणें पूर्ववराला दोष असेल तर समजावें, असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. **संवधतस्यांत वसिष्ठ**—“हीन कुलांतील, दुःशील, पतित, अपस्मार (फेंपरे) असलेला, वेदशास्त्रविरुद्ध आचरण करणारा, रोगी, स्त्रियादिकांचे वेपधारी, आणि मगोत्री यांना दिलेली असली तरी ती कन्या हरण करून आणावी.” **मनु**—“पंड, आंधळा, बेहरा, इत्यादिकांचा यथायोग्य विवाह होतो. यांचा विवाह न होईल तर त्याच्या कनिष्ठ भ्रात्यांनं विवाह करावा. पितृव्याचा पुत्र, मापनप्राता, परस्त्रियांचे पुत्र (दत्तकादिक) हे ज्येष्ठ असून अविवाहित असतां कनिष्ठांनं विवाह, अग्न्याधान, यज्ञ इत्यादि केलें तरी त्याला परिवेदनरूप दोष प्राप्त होत नाही.” इतर काहीं सांगायचाचें आहे, परंतु विस्तार फार होईल या भीतीनं सांगत नाहीं. ही फक्त दिशा दाखविली आहे.

अत्रनांदीश्राद्धविशेषंतदधिकारिविशेषंचाग्नेवक्ष्यामः इदंचाद्यविवाहेपिताकुर्याद्वितीयादौवगम्य नांदीश्राद्धंपिताकुर्यादाद्येपाणिग्रहेपुनः अत ऊर्ध्वंप्रकुर्वीतस्वयमेवतुनांदिकमितिस्मृतः त्रिकांडमंडनोपि पित्रोस्तुजीवतोःकुर्यात्पुनःपाणिग्रहंयदा पितुनांदीमुखंश्राद्धंनोक्तंतस्यमनीषिभिरिति रेणुकारिका उक्तेकाले-विवाहांकुर्वात्रांदीमुखंपिता देशांतरेविवाहश्चेत्तत्रगत्वाभवेदिदम् अथलघघटीस्थापनमाह नारदः पडंगुलमितोत्सेधंद्वादशांगुलमायतम् कुर्यात्पातालवत्ताम्रपात्रंतदृशभिःपलैः ताम्रपात्रंजलैःपूर्णमुत्पात्रंवाथवाशुभं मंडलाधोदयंवीक्ष्यरवेस्तत्रविनिक्षिपेत् तत्रमंत्रः मुख्यंत्वमसियंत्राणांब्रह्मणानिमितंपुरा भवभावायदंपत्योः कालसाधनकारणमिति ।

या विवाहांत नांदीश्राद्धाविषयीं विशेष विचार आणि त्याच्या अधिकाऱ्यांचा विशेष निर्णय पुढें (उत्तर्गर्धान श्राद्धप्रकरणं) सांगूं. हें नांदीश्राद्ध पहिल्या विवाहांत पित्यांनं करावें. द्वितीयादि विवाहांत वरानेंच करावें. कारण, “पहिल्या विवाहांत नांदीश्राद्ध पित्यांनं करावें. पहिला विवाह झाल्यावर पुढें नांदीश्राद्ध करावयाचें अगतां तें स्वतःच करावें.” अशी स्मृति आहे. **त्रिकांडमंडनही**—“माता पिता जीवंत असतां जर पुनः विवाह करील तर त्या विवाहाचें नांदीश्राद्ध करण्याग विद्वानांनीं पित्यास सांगितलें नाहीं.” **रेणुकारिका**—“विवाहाकालीं विवाहाचें अंगभूत नांदीश्राद्ध पित्यांनं करावें. देशांतरीं विवाह होईल तर त्या ठिकाणीं पित्यांनं जाऊन हें नांदीश्राद्ध करावें.” आतां लघघटीस्थापन सांगतो **नारद**—“दहा पलें (४० कर्ष) तांबें घेऊन त्याचें सहा अंगुलें उंच आणि बारा अंगुलें विस्तृत असें वैद्यकशास्त्रांत पातालयंत्राप्रमाणें मध्यें छिद्र पाडलेलें असें ताम्रपात्र करावें. तें घटिकासधण्याचें यंत्र होय. उदकांनं भरलेल्या तांब्याच्या भांड्यांत अथवा चांगल्या मातीच्या भांड्यांत, सूर्याच्या अर्धमंडलाचा उदय झालेला पाहून त्या वेळीं तें घटिकायंत्र ठेवावें. त्याविषयीं मंत्र—“मुख्यं त्वमसि यंत्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ भव भावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम् ॥”

१ ‘परि’ उपसर्गपूर्वक ‘विद्’ लाजे’ ह्या धातूपासून ‘परिवेद’ ‘परिवेदन’ ‘परिवेत्ता’ इत्यादिक शब्द होतात. त्याचा अर्थ—‘परि’ म्हणजे ज्येष्ठचा परित्याग करून ‘वेद’ म्हणजे कनिष्ठाला स्त्रियेचा व अग्नीचा लाभ होणें, हा आहे. **मनु**—“ज्येष्ठ अविवाहित असतां जो कनिष्ठभ्राता स्त्रियेचा व अग्निहोत्राचा संयोग करितो तो परिवेत्ता आहे. आणि ज्येष्ठ तो परिविंत्ति होय.” हें परिवेदन झालें असतां कन्यादाता, वर, आणि आचार्य या तिघांला प्रायश्चित्त सांगितलें आहे. हा दोष सहोदर भ्रात्याविषयीं आहे.

२ ‘द्वादशार्धपलोनमानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्’ श्रीमद्भागवत तृतीयस्कंध. याचा अर्थ—५ गुंजा ह्या १ मासा. १६ मासे (८० गुंजा) ह्या १ एक कर्ष. ४ कर्ष ह्या १ एक पल होय. १६ पलें ह्या १ एक प्रस्थ होतो. सहा पलें ताम्राचें पात्र करून त्याला चार मासे (२० गुंजा) सोन्याची चार अंगुलें लांब शलाका करून त्या शलाकेनं मध्यें छिद्र करावें. म्हणजे ती शलाका जाण्याजोगें छिद्र करावें. त्या पात्राचा (घटिकायंत्राचा) आकार केवढा असावा तें सांगतो—जेवढा आकार केव्हांनं त्या छिद्रांतून एक प्रस्थ (१६ पलें) उदक आंत भरून नंतर तें पात्र पाण्यांत बुडेल एवढ्या आकाराचें करावें. त्या पात्राला घटिकायंत्र (घटिका) म्हणतात. कोणी असें सांगतात कीं, गुरुअक्षरें ६० उच्चार करण्याला जो काल लागतो त्या कालास पल हें नांव आहे. ६० पलें म्हणजे एक घटिका होते.

वरस्यमधुपर्कमाहयाज्ञवल्क्यः प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः प्रियोविवाहश्च तथा यज्ञप्रत्युत्विजः पुनः अत्र विशेषेण गृह्यपरिशिष्टे वरस्यामभवेच्छाखातच्छाखागृह्यचोदितः मधुपर्कः प्रदा-
तव्यो ह्यन्यशाखेपि दातर अत्र वरदातृशब्दौ ऋत्विगाद्युपलक्षणम् **तदाहुः** अर्च्यशाखयामधुपर्क इति अर्च्यस्य यच्छाखीयं कर्म तच्छाखयामधुपर्क इति **याज्ञिकाः** जयंतस्तु वरणवत्सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्क इत्याह तत्तु नाद्रियं ते **बृद्धाः** अत्र पंचाशताभवेद्ब्रह्मातर्द्धेन तु विष्टर इत्यादि गृह्यपरिशिष्टादेर्विष्टरादिलक्षणं मधुपर्कादि-
विधिश्च स्वगृह्यादेर्ज्ञेयः ।

वराला मधुपर्क सांगतो **याज्ञवल्क्य**—“स्नातक, आचार्य आणि राजा यांची प्रतिवर्षी मधुपर्कानें पूजा करावी. श्रेष्ठ ब्राह्मण आणि विवाहाला प्राप्त झालेला जो वर त्याची मधुपर्कानें तशीच पूजा करावी. यज्ञामर्त्ये ऋत्विजांची मधुपर्कानें पूजा करावी.” या मधुपर्काविषयीं विशेष सांगतो **गृह्यपरिशिष्टांत**—“कन्यादाता इतर शाखेचा असला तरी वराची जी शाखा असेल त्या शाखेच्या गृह्यसूत्रानें सांगितलेला मधुपर्क वराग द्यावा.” या वचनांत ‘वर’ आणि ‘दाता’ हे शब्द ‘ऋत्विक्’ ‘यजमान’ इत्यादिकांचे उपलक्षक आहेत. तेंच सांगतात—“ज्याची पूजा करावयाची त्याच्या शाखेनें मधुपर्क होतो.” म्हणजे ज्याची पूजा करावयाची असेल त्याचें कर्म ज्या शाखेनें होतें त्या शाखेनें मधुपर्क होतो, असें याज्ञिक सांगतात. **जयंत** तर—यज्ञानं ऋत्विजांचें वरण जमं यजमानशाखेनें होतें तसा मधुपर्क यजमानाच्या शाखेनेंच होतो, असें सांगतो. तें जयंताचें सांगणें ब्रह्म स्वीकारीत नाहीत. या ठिकाणीं ‘पन्नास दर्भांनीं ब्रह्मा होतो’ ‘पंचवीस दर्भांनीं विष्टर होतो’ इत्यादि विष्टरादिकांचें लक्षण गृह्यपरिशिष्टादिकांतून आणि मधुपर्कादिकांचा विधि आपल्या गृह्यसूत्रादिकांतून जाणावा.

कन्यादानेप्रतिपितामहपूर्वकमित्युक्तं **स्मृत्यर्थसारे** नांदीमुखेविवाहेचप्रतिपितामहपूर्वकं नामसंकीर्तयेद्विद्वा-
नन्यत्रपितृपूर्वकम् नांदीमुखेइतिवह्वाचायतिरिक्तविषयम् **गृह्यपरिशिष्टे** पित्राद्यानुलोम्याभ्रानात् **व्यासः**
भुक्त्वासमुद्रहेतुकन्यामावित्रीप्रहणं तथा उपोषितः सुतां दद्यादचित्ताय द्विजाय तु भुक्त्वेति मधुपर्कैव भोजनपरं
गृह्यपरिशिष्टे कन्यां वरयमाणानामेपधर्मो विधीयते प्रत्यङ्मुख्यावरयंति प्रतिगृह्णंति प्राङ्मुखाः **मदनरत्ने-**
ऋष्यशृंगः वरगोत्रं समुच्चार्य प्रतिपितामहपूर्वकं नामसंकीर्तयेद्विद्वांकन्यायाश्चैव मेव हि तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता-
वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् मधुपर्काचित्तायैनांतस्मै दद्यात्सदक्षिणाम् उदपात्रंततो गृह्यमंत्रेणानेन दापयेत् गौरीं कन्या-
मिमां विप्रयथाशक्ति विभूषिताम् गोत्राय शर्मणे तु भ्यंदत्तां विप्रसमाश्रयेति भूमिगांचैव दासीचवासांसि च स्वश-
क्तितः महिषीं वाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि ततः स्वगृह्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् यथाचारं विधेयानि
मांगल्यकुतुकानि च एतत्कन्यादानं त्रिः कार्यमिति **शौनकः ।**

कन्यादानप्रयोगांत प्रतिपितामहपूर्वक उच्चार सांगतो **स्मृत्यर्थसारांत**—“नांदीश्राद्धांत आणि विवाहांत कन्यादानप्रसंगी पूर्वीं प्रतिपितामहाचे, नंतर पितामहाचे, तदनंतर पित्याचे नांवाचा उच्चार करावा. इतर ठिकाणीं पितृपूर्वक नांवाचा उच्चार करावा.” नांदीश्राद्धांत प्रतिपितामहपूर्वक उच्चार सांगितला तो ऋक्शाखी वगैरे वगळून इतरांविषयीं समजावा. कारण, **गृह्यपरिशिष्टांत** पित्रादिकमानें उच्चार सांगितला आहे. **व्यास**—“वरानें भोजन करून कन्याप्रतिग्रह करावा. आणि बटूनें भोजन करून गायत्रीचा उपदेश द्यावा. कन्यादात्यानें उपोषित राहून पूजा केलेल्या वराला कन्या द्यावी.” या वचनांत ‘वरानें भोजन करून’ असें जें सांगितलें तें मधुपर्कांत विधिप्राप्तभोजनविषयक समजावें. **गृह्यपरिशिष्टांत**—“कन्या वरणाऱ्यांचा अमा धर्म सांगितला आहे की, पथिमेकडे मुख करून राहून वरते. आणि प्राङ्मुख होऊन कन्याग्रहण करतात.” **मदनरत्नांत ऋष्यशृंग**—“वराचे गोत्राचा उच्चार करून प्रतिपितामहपूर्वक नांवाचा उच्चार करावा. कन्येचाही याप्रमाणेंच गोत्राचा उच्चार करून प्रतिपितामहपूर्वक नांवाचा उच्चार करावा. कन्यादाता पूर्वमुख असावा, आणि वर प्रत्यङ्मुख असावा. मधुपर्कानें पूजित अशा त्या वराला दक्षिणासहित कन्या द्यावी. आणि उदकपात्र द्यावें. याप्रमाणें दान केल्यावर कन्यादात्यानें पुढचा मंत्र म्हणावा. तो मंत्र—‘गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषितां ॥ गोत्राय शर्मणे तु भ्यंदत्तां विप्र समाश्रय ॥’ नंतर आपल्या शक्तीप्रमाणें भूमि, गार्ह, दासी, वस्त्रे, महिषी, घोडे, आणि सुवर्णाचे मणी इत्यादिक द्यावे. तदनंतर आपल्या गृह्योक्तविधीनें होमादि कर्म करावें. जसा आचार असेल तसा मांगल्य कौतुकही करावी.” हें कन्यादान त्रिवार करावें, असें **शौनक** सांगतो.

गृहप्रवेशनीयहोमेशिवेशोपमाहश्वलायनः अर्धरात्रेव्यतीतेतुपरेषुः प्रातरेव हि **गृहप्रवेशनीयः**
स्यादितियज्ञविदो विदुरिति औपासनहोमेशिवेशोपमाह **शौनकः** यदिरात्रौ विवाहाभिरुत्पन्नः स्वाचवाससि

उपक्रम्योत्तरस्याहः सायंपरिचरेदमुम् यदि रात्रौ न वनाडीमध्येऽभ्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारंभः तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारंभ इति सुदर्शनभाष्ये उक्तम् ।

गृहप्रवेशनीय होमाविषयी विशेष सांगतो आश्वलायन—“अर्धरात्रीच्या पुढें विवाहहोम झाला असतां गृहप्रवेशनीय होम प्रातःकालीच करावा, असें यज्ञवेत्ते सांगतात.” औपासनहोमाविषयी विशेष सांगतो शौनक—“जर रात्री विवाहाभि उत्पन्न झाला असेल तर दुसऱ्या दिवशीं सायंकाळीं उपासनारंभाचा संकल्प करून औपासन होम करावा.” जर रात्री नऊ घटिकांचे आंत अभि उत्पन्न झाला असेल तर त्यावेळींच औपासनहोमाचा आरंभ करावा. नऊ घटिकांचे पुढें जर अभि उत्पन्न असेल तर दुसऱ्या दिवशीं सायंकाळीं औपासनहोमाचा आरंभ करावा, असें सुदर्शनभाष्यांत सांगितलें आहे.

अथ देवकोत्थापनं यदाहनारदः समेच दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः षष्ठं च विषमनेष्टं मुक्त्वा पंचमसप्तमौ निर्णयदीपे गार्ग्यः नांदीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम् दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च अपसव्यं स्वधार्कारं नित्यश्राद्धं तथैव च ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलं घनम् उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च नैव कुर्यात्सपिंडाश्रमं षोडशसनावधि बृहस्पतिः तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्रवे नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति योगियाज्ञवल्क्यः नस्त्रायादुत्सवे तीते मंगलं विनिवर्त्य च अनुब्रज्य सुहृद्भूतं न च यित्वेष्टदेवताम् ज्योतिषे स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्मप्रेतानुयानं कलशप्रदानम् अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मंगलतो बद्धमेकम् मासपटुं विवाहादौ व्रतप्रारंभेणैव जीर्णभांडादिन त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ऊर्ध्वविवाहात्पुत्रस्य तथा च व्रतबंधनान् आत्मनो मुंडनं नैव वर्षपर्वपार्थमेव च अभ्यंगे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि मांगल्येषु च सर्वेषु न धार्य गोपिचंदनं ज्योतिर्निबंधे उद्वाहात्प्रथमेशु चोद्य दिवसे द्वातुर्गृहे कन्याकाह्न्यात्तज्जननीं श्रयेति जतनुं ज्येष्ठपतिज्येष्ठकम् पौषे च श्वशुरं पतिं च मलने चैत्रे म्वपि त्रालयेति प्रंतीपितं गंहं तिनभयं तेषामभावे भवेत् निबंधे विवाहात्प्रथमेषौ पेआपादेचाधिसासके नसाभर्तुर्गृहेति ष्वेत्रे पितृगृहे तथा हेमाद्रौ स्मृत्यंतरं विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धतदर्धकम् पिंडदानं मृदास्नानं कुर्यात्तिलतर्पणम् तथा अर्धपूर्ववत् सपिंडानैव कुर्वीरन्नङ्गिः स्नानमृतुत्रये तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृज्ज्ञेसहालये कृतोद्वाहोपिकुर्वीत पिंडनिर्वपणं सदा ।

आतां देवकोत्थापन सांगतो—

नारद—“सहावा दिवस वर्ज्य करून बाकीच्या समदिवशीं देवकोत्थापन करावें. विषम दिवसांत पांचव्या आणि सातव्या दिवशीं देवकोत्थापन करावें. बाकीचे विषम दिवस वर्ज्य आहेत.” निर्णयदीपांत गार्ग्य—“नांदीश्राद्ध केलें असतां जोंपर्यंत मातृकाविसर्जन (देवकोत्थापन) होई तोंपर्यंत दर्शश्राद्ध, सांवत्सरिकश्राद्ध, शीतोदकांन स्नान, अपसव्य, स्वशाशब्दोच्चार, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, अध्ययन, नदीचें व सीमेचें उल्लंघन, उपवास, व्रत आणि श्राद्धभोजन हीं कृत्ये त्रिपुरुषसपिंडांनीं करूं नयेत.” बृहस्पति—“तीर्थाचे ठायीं, विवाहांत, यात्रेमध्ये, युद्धामध्ये, देशाचा विनाश होत असल त्या समर्थी, आणि नगर किंवा गांव जळत असल त्या वेळीं इतर जातीच्या स्पर्शास्पर्शाचा दोष नाही.” योगियाज्ञवल्क्य—“देवादिकांचा उत्सव केल्यावर, मंगलकार्य समाप्त केल्यावर, सुहृत् व प्रिय यांना पोचवून आल्यावर आणि इष्टदेवतेची पूजा केल्यावर सचैल स्नान करूं नये.” ज्योतिषांत—“सचैलस्नान, तिलयुक्त कर्म (तर्पणादि), प्रेताबरोबर जाणें, उदकुंभदान, पूर्वी न पाहिलेल्या तीर्थाचें व देवाचें दर्शन हीं कृत्ये मंगलकार्य केल्यापासून एकवर्षपर्यंत वर्ज्य करावीं. विवाहादि मंगलकार्य केलें असतां आणि व्रताचा प्रारंभ केला असतां सहा महिनेपर्यंत जीर्णभांडीं वगैरे असतील तीं टाकूं नयेत. तसेंच घराचें संमार्जन करूं नये. पुत्राचा विवाह केल्यापासून एक वर्षपर्यंत आपलें मुंडन करूं नये. आणि पुत्राचा व्रतबंध केल्यापासून सहा महिनेपर्यंत आपलें मुंडन करूं नये. अभ्यंग केला असतां, सूतकांत, विवाहांत, पुत्रजन्म झाला असतां, आणि सर्व मंगलकार्यांत गोपीचंदन लावूं नये.” ज्योतिर्निबंधांत—“विवाह झाल्यापासून पहिल्या आषाढांत जर पतीच्या घरीं कन्या वास करील तर ती सासूचा नाश करील. क्षयमासांत जर पतिगृहीं राहील तर ती आपला नाश करील. ज्येष्ठ मासांत जर पतीच्या घरीं राहील तर ती पतीच्या ज्येष्ठ भ्रात्याचा नाश करील. पौषांत जर पतिगृहीं राहील तर ती श्वशुराचा नाश करील. अधिक मासांत जर पतिगृहीं राहील तर ती पतीचा नाश करील. चैत्रांत जर बापाच्या घरीं राहील तर ती बापाचा नाश करील.

१ समे इति विवाहोत्तरं समे दिवसे इत्यर्थः इति पीयूषधारायामुक्तं । धर्मसिंधौ तु स्थापनदिनात्समदिवसेत्युक्तं. २ अत्र स्वधार्कार-
ग्रहणं तत्सहचरितवैश्वदेवतिषेधार्थं. ३ अत्र सपिंडास्त्रिपुरुषपर्यंता इति पुरुषार्थे चित्तामणौ । ४ आत्मनो मुंडनमिति । कर्मागतया प्राप्तं
राशभासं च मुंडनं निषिध्यते ।

सासू इत्यादिकांचा अभाव असेल तर हा दोष नाही.” निबंधांत—“विवाह शाल्यापासून पहिल्या पौषांत, अषाढांत, आणि अधिक मासांत पतीच्या घरीं कन्येहें राहूं नये. आणि चैत्रांत बापाच्या घरीं राहूं नये.” हेमाद्रीत स्मृत्यंतरांत—“विवाह, व्रतबंध, नील हीं कायें झालें असतां अनुक्रमानें एक वर्ष, सहा महिने, तीन महिनेपर्यंत पिंडदान, घृतिकादान आणि तिलतर्पण करूं नये.” तसेंच विवाहादिक मंगल झालें असतां त्रिपुरुषसपिंडांनीं सहा महिनेपर्यंत शीतोदक स्नान करूं नये.” अपवाद—“विवाह केलेला असला तरी तीर्थांचे ठायीं, मातापितरांच्या सांवत्सरिकांत, प्रेतश्राद्धांत, पित्र्याच्या औष्व-देहिक कर्मांत, आणि महालयांत सर्वदा पिंडप्रदान करावें.”

अथवधूपवेशः जयतुंगे मार्गशीर्षतथामाघमाधवेज्येष्ठसंज्ञके सुप्रशस्तेभवेद्वैशंप्रवेशोनवयोषिताम् **नारदः** आरभ्योद्वाहदिवसात्पष्ठेवाप्यष्टमेदिने वधूप्रवेशःसंपत्त्यैदशमेथसमेदिने संग्रहे विवाहमारभ्य वधूप्रवेशेयुग्मेदिनेषोडशवासरांतात् ऊर्ध्वततोऽन्वेऽयुजिपंचमांतादतःपरस्तान्नियमोनचास्ति **नारदः** समेवर्षसमेमासियदिनारीगृहं व्रजेत् आयुष्यंहरतेभर्तुःसानारीमरणं व्रजेत् **प्रयोगरत्ने** वधूप्रवेशःप्रथमे तृतीये शुभप्रदःपंचमकेथवाह्नि द्वितीयेकेवाथचतुर्थकेवापष्ठेविद्योगामयदुःखदःस्यादित्युक्तं तत्रमूलं चित्यम् **वृद्धवसिष्ठोपि** पश्चाष्टमेवादशमेदिनेवाविवाहमारभ्यवधूप्रवेशः पंचांगसंशुद्धदिनविनापि विधावसद्गोचरगेपिकार्यः **लल्लुः** स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्रवेतथोद्वाहे नववध्वागृहगमने प्रतिशुक्रविचारणानास्ति **मांडव्यः** नित्ययाने गृहे जीर्णप्राजानां तेषु सप्रसू वधूप्रवेशे मांगल्येन मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ज्योतिःप्रकाशे वामेशु केन बोढायाः सुगंधानिश्चदक्षिणे धनंधान्यंच पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरःस्थिते नवोढायास्तु वैध्वयं यदुक्तं संमुखे भृगो तदेव विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे पूर्वतोऽभ्युदितेशु के प्रयाया हस्त्रिणापरे पश्चादभ्युदिते चैव यायात्पूर्वोत्तरे दिशौ व्यवहारतत्त्वे पौष्णानकभास्त्रवणाच्च युग्मे हस्तत्रये मूलमघोत्तरासु पुण्ये च मैत्रे च वधूप्रवेशो रिक्तेतरेऽन्येऽर्के कुजे च शस्तः **गर्गः** व्यतीपाते च संक्रांतौ ग्रहणे वैधृतावपि श्राद्धं विना शुभं नैव प्रापकालेऽपि मानवः तथा अमासंक्रांतिविध्वादौ प्रापकालेऽपि नाचरेदिति ॥

आतां वधूप्रवेश सांगतो—

जयतुंगांत—“मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख, आणि ज्येष्ठ या मासांत नूतनविवाहित स्त्रियांचा गृहप्रवेश प्रशस्त आहे.” **नारद**—“विवाहदिवसापासून सहाव्या, किंवा आठव्या अथवा दहाव्या व इतर सम दिवशी वधूप्रवेश संपत्तिदायक होतो.” **संग्रहांत**—“विवाहदिवसापासून सोळा दिवसांचे आंत सम दिवशी वधूप्रवेश शुभ आहे. सोळा दिवसांचे पुढे पांच वर्षांचे आंत विषमवर्षी शुभ आहे पाच वर्षांच्या पुढे हा समविषममाचा नियम नाही.” **नारद**—“विवाहापासून समवर्षी व सममासांत जर स्त्री गृहप्रवेश करील तर ती भर्त्याचें आयुष्य हर्षण करील आणि ती स्त्री मरेल.” **प्रयोगरत्नांत** तर—“विवाहापासून पहिल्या, तिसऱ्या, अथवा पांचव्या दिवशी, तमाच दुसऱ्या किंवा चवथ्या दिवशी वधूप्रवेश शुभदायक आहे. सहाव्या दिवशी वधूप्रवेश वियोग, व्याधि इत्यादि दुःखदायक आहे.” असे सांगितलें आहे. या वचनांविषयी मूलवचन चित्य (प्रमाणशून्य) आहे. **वृद्धवसिष्ठोपि**—“विवाहदिवसापासून सहाव्या किंवा आठव्या, अथवा दहाव्या दिवशी पंचांगशुद्धि नसली तरी, आणि चंद्रवळ नसले तरी वधूप्रवेश करावा.” **लल्लु**—“आपल्या घरी व आपल्या नगरीं जावयाचें असतां, देशाचा विध्वंस होतेशीं कोठें गमन करावयाचें असतां, विवाहाकरितां जाणें असतां, नववधूचा गृहप्रवेश करावयाचा असतां, संमुख शुक्रदोषाचा विचार करूं नये.” **मांडव्य**—“नेहमीचें जाणें, जीर्णगृहाची दुरुस्ती करणें, गर्भाधानादिक अन्नप्राशनापर्यंतचे सात संस्कार करणें, वधूप्रवेश, आणि मांगलिक कृत्य यांविषयीं गुरुशुक्रांचा अस्तदोष नाही.” **ज्योतिःप्रकाशांत**—“नूतनविवाहित स्त्रियेच्या गृहप्रवेशसमयीं वामभागीं शुक्र असतां सुख होतें. दक्षिणभागीं शुक्र असतां हानि होते. पृष्ठभागीं शुक्र असतां धनधान्यप्राप्ति होते. आणि संमुख शुक्र असतां सर्वनाश होतो. संमुख शुक्र असतां नूतन विवाहित स्त्रियेला वैधव्य प्राप्त होतें, असें जें सांगितलें तेंच विद्वानांनीं केवळ द्विरागमनाविषयीं समजावें. शुक्राचा उदय पूर्वेस असतां दक्षिणेस आणि पश्चिमेस जावें. शुक्राचा उदय पश्चिमेस असतां पूर्वेस आणि उत्तरेस जावें.” **व्यवहारतत्त्वांत**—सोळा दिवसांच्या पुढे वधूप्रवेशास दिवस—“रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृग, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, मित्रा, स्वाती, मूल, मघा, तीन उत्तरा, पुष्य, अनुराधा, स्वा नक्षत्रांवर; रिक्ता तिथि सोडून बाकीच्या तिथींस; रवि आणि शनिदेव वर्ज्य करून बाकीच्या वारी वधूप्रवेश शुभ आहे.” **गर्ग**—“व्यतीपात, संक्रांति, सूर्यचंद्रांचें ग्रहण, वैश्वेति यांचेवर आकाशवाचून इतर कर्म शुभदायक होत नाही; म्हणून इतर कर्मांचा काल प्राप्त असला तरी तें कर्म त्या दिवशीं मज्ज्यानें करूं नये.”

तसेच—“अमावास्या, संक्रांति, विष्टि इत्यादि दुष्ट दिवस असतां कर्माचा काल प्राप्त असला तरी तें कर्म त्यादिवशीं करूं नये.”

अथद्विरागमनम् ऋक्षोक्षये माघफाल्गुनवैशाखेशुक्लपक्षेशुभेदिने गुर्वादित्यविशुद्धौस्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः **बादरायणः** नीहारांशुदिनोत्तरादितिशुक्रब्राह्मणुराधाश्विनीशक्रेभास्करवायुविष्णुवरुणत्वा-
ष्ट्रेप्रशस्तेतिथौ कुंभाजालिगतेरवौशुभकरेप्राप्तोदयेभार्गवेजीवज्ञास्फुजितांदिनेनववधूवेशमप्रवेशःशुभः ।

आतां द्विरागमन सांगतो—

ऋक्षोक्षयांत—“माघ, फाल्गुन, वैशाख या मासांत शुक्लपक्षीं शुभ दिवशीं गुरु आणि रवि हे लग्नास शुभस्थानीं असतां वधूचें द्विरागमन करावें.” **बादरायण—**“कुंभ, मेष, वृश्चिक, या संक्रांतीस रवि असतां आणि शुक्राचा उदय असतां तीन उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, ज्येष्ठा, हस्त, स्वाती, श्रवण, शततारका, चित्रा, त्या नक्षत्रांवर; शुभतिथीस; शुभलग्नावर चंद्र, गुरु, बुध, शुक्र, यांच्या वारीं नववधूचा गृहप्रवेश शुभ आहे.”

अथपुनर्विवाहः श्रीधरीये पुनर्विवाहवक्ष्यामिदंपत्योःशुभवृद्धिदम् लग्नेदुलभयोर्दोषेग्रहतारादि-
संभवे अन्येष्वशुभकालेषुदुष्टयोगादिसंभवे विवाहेचापिदंपत्योराशौचादिसमुद्भवे तस्यदोषस्यशांत्यर्थपुनर्वै-
वाह्यमिष्यते **याज्ञवल्क्यः** सुरापीव्याधिताधूर्तावंध्यार्थेऽप्यप्रियंवदा स्त्रीप्रमूश्राधिवेत्तव्यापुरुषद्वेषिणी तथा
मनुः वंध्याष्टमेधिवेत्तव्यादशमेतुमृतप्रजा एकादशेस्त्रीजननीस्वभ्रमप्रियवादिनी **संग्रहेतु** अप्रजादशमे-
वर्षेस्त्रीप्रजाद्वादशेयजेतु मृतप्रजापंचदशेसद्यस्त्वप्रियवादिनीम् **याज्ञवल्क्यः** एकामुत्कम्यकामार्थमन्यां-
लब्धुंयच्छति समर्थस्तोषयित्वार्थैःपूर्वोढामपरां व्रजेन आज्ञासंपादिनीं दक्षांवीर्यमंप्रियवादिनीम् त्यजन्दाप्य-
स्तृतीयांशमद्रव्योभरणस्त्रियाः **मनुः** अधिविन्नातुयानारीनिर्गच्छेद्रोषितागृहान सामयःमन्निरोद्धव्यात्या-
ज्यावाकुलसन्निधाविति **हेमाद्रौकात्यायनः** अग्निशिष्टादिशुश्रूपांवहृभार्यःसवर्णया कायेतद्वहृत्वेज्ये-
ष्ठयागर्हितानचेदिति **याज्ञवल्क्यः** मत्यामन्यांसवर्णयांधर्मकार्यनकारयेन सवर्णामुविधौधर्म्येज्येष्ठया-
नविनेतरा ॥

आतां पुनर्विवाह सांगतो—

श्रीधरीयांत—“दंपतीला शुभवृद्धि करणारा अगा पुनर्विवाह सांगतो—दुष्टलग्नावर, राशीस दुष्टचंद्रावर, ग्रह, तारा इत्यादिकांचें आनुकूल्य नसतां; इतरही दुष्ट योगादिकांनीं अशुभ असलेल्या कालीं; विवाह झाला असेल आणि सूतकादिकांत कूष्मांड होमादिविधीवांचून विवाह झाला असेल तर त्या दोषाच्या शांतीसाठी त्याच वधूवरांचा समुहूर्तावर पुनः विवाह करावा.” **याज्ञवल्क्य—**“सुरापान करणारी, व्याधिष्ट, धूर्त, वांझोटी, द्रव्यनाश करणारी अप्रियभाषण करणारी, कन्या प्रसवणारी, आणि पुरुषाचा द्वेष करणारी, अशी स्त्री असेल तर दुमरी स्त्री करावी.” **मनु—**“वांझोटी स्त्री असेल तर आठव्या वर्षी दुसरी स्त्री करावी. मुलें मरणारी असेल तर नऊ वर्षां वाट पाहून दहाव्या वर्षी दुमरी स्त्री करावी. कन्या प्रसवणारी असेल तर अकराव्या वर्षी दुमरी स्त्री करावी. अप्रिय भाषण करणारी असेल तर तत्काल दुमरी स्त्री करावी.” **संग्रहांत** तर—“वांझोटी स्त्रियेला दहाव्या वर्षी सोडावी. कन्या प्रसवणारीला बाराव्या वर्षी सोडावी. मुलें मरणारीला पंधराव्या वर्षी सोडावी. आणि अप्रियभाषण करणारीला सद्यः सोडावें.” **याज्ञवल्क्य—**“जो पुरुष एका स्त्रीला टाकून कामासाठी दुसरी स्त्री मिळविण्याविषयीं इच्छितो तो पुरुष समर्थ असल्यास द्रव्यादिकांच्या योगानें पहिल्या स्त्रियेला संतुष्ट करून दुसऱ्या स्त्रियेप्रत जावें. पतीची आज्ञा संपादन करणारी, कार्यविषयीं दक्ष, वीरपुरुष प्रसवणारी, प्रियभाषण करणारी अशा स्त्रियेचा त्याग करील तर राजानें त्याजकडून त्याच्या द्रव्यांतून तिमरा हिस्सा त्या स्त्रियेला देववावा. द्रव्य-
रहित असेल तर त्या स्त्रियेचें पोषण करावें.” **मनु—**“ज्या स्त्रियेवर दुसरी स्त्री केल्यामुळें ती पहिली स्त्री रुष्ट होऊन जर घरांतून बाहेर पडेल तर तिला तत्काल घरांत कोंडून ठेवावी. अथवा बापाच्या घरीं तिला पांचवावी.” **कात्यायन—**“ज्या पुरुषास अनेक जातींच्या बहुत स्त्रिया असतील त्यानें अग्नि, शिष्ट इत्यादिकांची शुश्रूषा सजातीच्या स्त्रियेकडून

१ द्विरागमे षोडशवासंतांतरेकादशाहे समवासरेषु ॥ नचात्र ऋक्षं न तिथिर्न योगो न वारशुद्ध्यादि विचारणीयम् ॥” अर्थ—

द्विरागमन विवाहदिवसापासून सोळा दिवसांचे आंत अकराव्या दिवशी आणि सम दिवशी करावयाचें असतां त्या ठिकाणीं नक्षत्र, तिथि, योग, वार इत्यादिकांचे शुद्धीचा विचार करूं नये. **धर्मसिंधुसार.** २ अत्राप्रीयवाद्दोष्यभिचारः प्रतिकूलभाषणरूपस्य तस्य प्रायः कसौ सार्वधिकत्वम् । धर्मसिंधुसारः ।

करवावी. सजातीच्या स्त्रिया बहुत असतील तर ज्येष्ठ स्त्री निव्व नसल्यास तिजकडून करवावी.” याज्ञवल्क्य—“सजातीची स्त्री असतां धर्मकार्य इतर जातीच्या स्त्रियेकडून करवूं नये. सजातीच्या स्त्रिया बहुत असतील तर धर्मकार्याविषयीं ज्येष्ठ स्त्रियेवांचून इतर स्त्रियेची योजना करूं नये.”

द्वितीयविवाहोमेभिमाह कात्यायनः सदारोऽन्यान्पुनर्दारातुद्रोदुंकारणांतरात् यद्दीच्छेदभिमान्कुलहोमोस्यविधीयते स्वेप्नावेवभवेद्धोमोलौकिकेनकदाचन त्रिकांडमंडनोपि आद्यायाविद्यमानायाद्वितीयामुद्रहेद्यदि तदावैवाहिककर्मकुर्यादावसथेभिमान सुदर्शनभाष्येतु द्वितीयविवाहोमोलौकिकएवन्पूर्वोपासनेइत्युक्तम् इदंचासंभवे तत्रचाभिद्वयसंसर्गःकार्यस्तदाहशौनकः अथाभ्योगृह्ययोग्योंगसपत्नीभेदजातयोः सहाधिकारसिद्धयर्थमहंवक्ष्यामिशौनकः अरोगामुद्रहेत्कन्याधर्मलोपभयात्स्वयं कृतेतत्रविवाहेचव्रतांतेतुपरेहनि पृथक्स्थंडिलयोरभिंसमाधाययथाविधि तंत्रकृत्वाज्यभागांतमन्वाधानादिकंततः जुहुयात्पूर्वपत्न्यग्नौतयान्वारब्धआहुतीः अग्निमीळेपुरोहितंसूक्तेननवर्चनंतु समिध्यैनंसमारोप्यअयंतेयोनिरित्युचाप्रत्यवरोहेत्यनयाकनिष्ठाग्नौनिधायतम् आज्यभागांततंत्रादिकृत्वारभ्यतदादितः समन्वारब्धएताभ्यांपत्नीभ्यांजुहुयाद्भूतम् चतुर्गृहीतमेताभिर्ऋग्भिःपङ्क्तिभिर्यथाक्रमम् अग्न्याग्निश्चरतीत्यग्निनाग्निःसमिध्यते अस्तीदमितितिस्मृभिःपाहिनोअग्रएकया नतःस्विष्टकृदारभ्यहोमशेषंसमापयेत् गोयुगंदक्षिणादेयाश्रोत्रियायाहिताग्नये पत्न्योरेकायदिस्मृतादध्वातेनैवतांपुनः आदधीतान्ययासार्धमाधानविधिनागृहीति ॥

दुमत्या विवाहाच्या होमाविषयीं आंम सांगतो कात्यायन—“सपत्नीक व अभि धारणकरणां पुरुष असून कोणत्याही कारणानें जर दुसरा विवाह करण्याविषयी इच्छील तर त्या दुमत्या विवाहाचा होम कोठें होईल ! त्याच्या पूर्वीच्या अग्नीवरच दुसऱ्या विवाहाचा होम होईल. लौकिकाग्नीवर कधीही होणार नाही.” त्रिकांडमंडनही—“पहिली स्त्री विद्यमान असतां जर दुसरी स्त्री करील तर अभिमान पुरुषानें त्या दुमत्या विवाहाचें कर्म पहिल्या औपासनाग्नीवर करावें.” सुदर्शनभाष्यांत तर—दुमत्या विवाहाचा होम लौकिकाग्नीवरच होतो, पूर्वीच्या औपासनावर होत नाही, असें सांगितले आहे. हें सांगणें पूर्वाच्या औपासनाग्नीवर असंभव अगतां समजावें. लौकिकाग्नीवर दुसऱ्या विवाहाचा होम केला असतां तो उत्पन्न झालेला अभि गृह्याभि अगत्यामुळे पहिला गृह्याभि व दुसरा गृह्याभि यांचा संसर्ग करावा. तें सांगतो शौनक—“आतां दोनी पत्नीला सहाधिकाराची मिद्धि होण्याकरितां दोन पत्नीच्या दोन गृह्यामींचा एकत्र योग मी शौनक सांगतो. विवाह केला नाही तर धर्माचा लोप होईल या भीतीनं रोगरहित अशा कन्येशीं विवाह करावा. तें विवाहकृत्य समाप्त झाल्यावर दुमत्यादिवशीं वेगवेगळीं दोन स्थंडिलें घालून दक्षिणेकडच्या स्थंडिलावर ज्येष्ठ पत्नीचा गृह्याभि आणि उत्तरेकडच्या स्थंडिलावर कनिष्ठपत्नीचा गृह्याभि यथाविधि प्रतिष्ठित करून पहिल्या अग्नीवर ज्येष्ठपत्नीनें अन्वारब्ध होऊन अन्वाधानादिक आज्यभागांत तंत्र करून त्याच अग्नीवर त्या ज्येष्ठ पत्नीनें अन्वारब्ध होऊन ‘अग्निमिळे’ ह्या नऊ ऋचांनीं आज्यहोम करावा. नंतर होमशेष समाप्त करावा. नंतर ‘अयंतेयोनि’ ह्या मंत्रानें त्या ज्येष्ठपत्नीचा समिधेवर समारोप करून ‘प्रत्यवरोह’ या मंत्रानें कनिष्ठपत्नीवर ती समिधा घावी. म्हणजे पहिल्या अग्नीचा प्रत्यवरोह करावा. नंतर अभिध्यान करून दोन पत्नींनीं अन्वारब्ध होऊन अन्वाधानादिक आज्यभागांत तंत्र करून दोन पत्नींनीं अन्वारब्ध होऊन पुढें सांगितलेल्या सहा ऋचांनीं अनुक्रमानें प्रत्येक ऋचेस स्रुचेवर चार वेळ आज्य घेऊन होम करावा. त्या ऋचा (मंत्र) येणेंप्रमाणें—‘अग्नाग्निश्चरति’ ही एक ऋचा, ‘अग्निनाग्निः समिध्यते’ ही एक ऋचा ‘अस्तीदमधि’ ह्या तीन ऋचा, ‘पाहिनो अग्र’ ही एक ऋचा मिळून ह्या ६ ऋचा समाजाव्या. नंतर स्विष्टकृदादिक होमशेष समाप्त करावा. नंतर अभिहोत्री ब्राह्मणाला दोन गाईं घाव्या, आणि ब्राह्मणभोजन करावें. जर दोन पत्नींतून कोणतीही एक पत्नी मरेल तर त्याच अग्नीनें तिचें दहन करून त्या गृहस्थानें दुसऱ्या स्त्रियेसह आधानविधीनें अग्न्याधान करावें.”

बौधायनसूत्रेतु अथयदिगृहस्थोद्वेभार्येविंदेतकथंतत्रकुर्यादितियस्मिन्कालेविंदेतोभावमीपरिचरेदपराभिमुपसमाधायपरिस्तीर्याज्यं विलाप्यस्रुचिचतुर्गृहीतंगृहीत्वाऽन्वारब्धायांजुहोतिनमस्तक्रपेरादाव्यं धार्येत्वास्वधार्यैत्वामानइंद्राभिमतस्त्वष्ट्वादिष्टांसएवब्रह्मन्नवेदमुस्वाहेत्यथाऽयंतेयोनिर्ऋत्विजइतिसमिधिसमारोपयेत् पूर्वाभिमुपसमाधायजुह्वान उद्बुध्यस्वाम्नइतिसमिधमाधायपरिस्तीर्यस्रुचिचतुर्गृहीत्वाद्वयोर्भार्ययोरन्वारब्धयोर्यजमानोभिभृशतियोब्रह्मब्राह्मणइत्येतेनसूक्तेनैकंचतुर्गृहीतंजुहोत्याभिमुखान्कृत्वापकाजुहोतिसंमिन्नसंकल्पेथामिति पुरोनुवाक्यामनूच्यामेपुरीष्येइतियाज्ययाजुहोत्यथाज्याहुतीरुपजुहोतिपुरीष्यमक्षमिन्नंवापः

नुषाकस्वस्त्रिकृत्यभृतिसिद्धमावेनुवरदानादथाप्रेणामिदंभस्तंबेहुतशेषंनिदधातिब्रह्मज्ञानंपिताविराजामि-
सिद्धाभ्यामितिसंसर्गविधिःकार्यः ॥

बौधायनसूत्रांत तर—“आतां जर गृहस्थाश्रमी दोन भार्या करील तर त्यानें कोणत्या गृह्यामीची उपासना करावी ? ज्या कालीं दोन भार्या करील त्या कालापासून पुढें दोन अग्नीची उपासना करावी. ती अग्नी—दुसऱ्या अग्नीची स्थंडिलावर स्थापना करून परिस्तरणादि तंत्र करून आज्य पातळ करून सुचेवर चारवेळ घेऊन कनिष्ठ पत्नीनें अन्वारब्ध होऊन ‘नमस्त ऋषेरादाव्यथायैस्वा० स्वाहा’ ह्या मंत्रानें होम करावा, नंतर ‘अयंते योनिर्ऋतिय०’ ह्या मंत्रानें त्या कनिष्ठामाची समिधेवर समारोप करावा. नंतर दुसऱ्या स्थंडिलावर पहिल्या अग्नीची स्थापना करून ‘आजुह्वान उबुध्यस्वामि०’ ह्या मंत्रानें त्याजवर ती समिध देऊन परिस्तरणादि तंत्र करून सुचेवर चार वेळ आज्य घेऊन दोन भार्यानीं अन्वारब्ध होऊन यजमानानें स्पर्श करावा. आणि ‘यो ब्रह्मा ब्रह्मण०’ ह्या सूक्तानें चतुर्थहीत आज्याचें एक अवदान यावें. नंतर अग्निमुखापर्यंत तंत्र करून चरुचा होम करावा. ‘संमितं संकल्पेथां०’ ह्या पुरोनुवाक्येचा अनुवाद करून ‘अग्ने पुरीष्ये०’ ह्या याज्येनें होम करावा. नंतर ‘पुरीष्यमस्तं०’ हा अनुवाक समाप्त होईपर्यंत जे मंत्र असतील त्यांनीं आज्याहुतीचा होम करावा. नंतर म्विष्टकृदादि गोप्रदानापर्यंतचें तंत्र करून नंतर अग्नीच्या अग्रभागीं ‘ब्रह्मज्ञानं०’ ‘पिताविराजं०’ ह्या दोन मंत्रांनीं हुतशेष असेल तें दर्भस्तंबावर ठेवावें.” याप्रमाणें दोन अग्नींचा संसर्गविधि करावा.

द्वितीयादिविवाहेकालउक्तःसंग्रहे प्रमदामृतिवासरादितःपुनरुद्वाहविधिर्वरम्यच विपमेपरि-
वत्सरेषुभोयुगलेचापिमृतिप्रदोभवेत् तृतीयविवाहेनिषेधोमात्स्ये उद्वेद्रतिसिद्धयर्थतृतीयांनकदाचन मोहा-
दज्ञानतोवापियदिगच्छेत्तुमानुषीम् नश्यत्येवमसंदेहोर्गस्यवचनंयथेति संग्रहे तृतीयांयदिकोद्वाहेतर्हिमा-
विधवाभवेत् चतुर्थादिविवाहार्थतृतीयेऽर्कसमुद्गहेत् ॥

द्वितीयादिविवाहाविषयीं काल सांगतो—

संग्रहांत—“भार्या मृत झालेल्या बराचा पुनः विवाह करावयाचा तो भार्यामृतदिवसापासून विषम वर्षी करावा, तो शुभ आहे. समवर्षी केली असता मृत्युदायक होईल.” तिसऱ्या ख्रियेशी विवाहाचा निषेध सांगतो—**मात्स्यांत**—“मुरत-
सिद्धीसाठीं तिसरी स्त्री कधीही विवाह नये. मोहित होऊन किंवा अज्ञानानें जर तिसरी मनुष्यजातीची स्त्री विवाहील तर तो विनाश पावेल, यांत संदेह नाही, असें गर्गमुनीचें वचन आहे.” **संग्रहांत**—“पुरुष तिसऱ्या ख्रियेशी जर विवाह करील तर ती स्त्री विधवा होईल. चवथ्या वर्गरे विवाह करण्यासाठीं तिसरा अर्कासह (रुईमह) विवाह करावा.”

तद्विधिस्तु रविशन्योर्हस्तेवावरःसंकल्प्यस्वतिवाचनंनानादीश्राद्धं कृत्वाचार्यवृत्वा आकृष्णेनेतिछायायु-
तंसूर्यमर्कसंपूज्यगुडौदनं दत्वा वस्त्रेणतंतुभिरावेष्टय त्रिलोकवासिन्सप्तश्रद्धाययासहितोऽरवे तृतीयोद्वाहजं
दोषनिवारयसुखं कुर्वितिसंप्रार्थ्यजलेनत्रिःसिंचेत् ममप्रीतिकरायेयंमयासृष्टापुरातनी अर्कजाब्रह्मणासृष्टाअ-
स्माकंप्रतिरक्षतु नमस्तेमंगलेदेविनमःसवितुरात्मजे त्राहिमांकृपयादेविपत्नीत्वमइहागता अर्कत्वंब्रह्मणासृष्टः
सर्वप्राणिहितायच वृक्षाणामादिभूतस्त्वंदेवानांप्रीतिवर्धनः तृतीयोद्वाहजंपापमृत्युंचासुविनाशयेति ततआ-
चार्यःकाश्यपगोत्रामादित्यस्यप्रपौत्रीसवितुःपौत्रीमर्कस्यपुत्रीमर्ककन्याममुकगोत्रायवरायदास्येइति वाग्दानं-
कृत्वावरस्यमधुपर्ककृत्वांऽतःपटं धृत्वास्वस्तिनइतिसूक्तंजप्त्वापूर्ववत्कन्यां दत्वा अर्ककन्यामिमामित्यूहेनकन्या-
दानमंत्रमुक्त्वादक्षिणां दद्यात् ततोगायत्र्यावेष्टितसूत्रेणबृहत्सामेतिमंत्रेणकंकणंभवाऽर्कस्यचतुर्दिक्षुंकुंभेषुवि-
ष्णुंसंपूज्याभिप्रतिष्ठाप्याधारंतेसंगोभिरितिबृहस्पतये यस्मैत्वाकामकामायेत्यृचाऽमयेव्यस्तसमस्तव्याहृतिभि-
राज्यंकृत्वाचार्यायगोयुगंदत्वा मयाकृतमिदंकर्मस्थावरेषुजरायुणा अर्कापत्यानिनोदेहितत्सर्वंक्षुंतुमर्हसीतिन-
ममेतिदिक् इतिनिर्णयसिंधौविवाहः ॥

त्या अर्कविवाहाचा विधि असा—बरानें रविवारी किंवा शनिवारी अथवा हस्त नक्षत्रावर पुष्पफलांनीं युक्त अशा अर्क (रुईचे) वृक्षाजवळ जाऊन संकल्प करून आचार्य वरून स्वस्तिपुण्याहवाचन आणि नान्दीश्राद्ध करून अर्ककन्यादाता आचार्य बरावा. नंतर ‘आकृष्णेन०’ या मंत्रानें अर्कवृक्षावर छायासहित सूर्याची पूजा करून गुडौदनाचा नैवेद्य समर्पण करून

१ हा बौधायनांनीं सांगितलेला अग्निद्वयसंसर्गप्रयोग त्या शाखेचे असतील त्यांनीं सुधारून घ्यावा. त्या मंत्रांची व प्रयोगाची क्षमिती बरोबर नसल्याकारणानें यथाशक्त छिडिले आहे त्याची विद्वानांनीं क्षमा करावी.

ह्या वृक्षात् वेतवत्तानं आणि घृतानं वेष्टन करून 'त्रिलोकवासिन् सत्ताम्ब छायाया सहितो रवे ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु' ह्या मंत्रानें त्याची प्रार्थना करून उदकानें त्रिवार सिंचन करावें. 'मम प्रीतिकरा येवं मया स्पृष्टा पुरातनी ॥ अर्कजा ब्रह्मणा स्पृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु । नमस्ते मंगले देवि नमः सवि-
तुरात्मजे ॥ प्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं म इहागता ॥ अर्कं त्वं ब्रह्मणा स्पृष्टः सर्वप्राणिहिताय च ॥
ब्रह्मणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धनः ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ॥' ह्या मंत्रांनीं
प्रदक्षिणा करावी. नंतर कन्यादात्या आचार्यानें 'काश्यपगोत्रां आदित्यस्य प्रपौत्री सवितुः पौत्री मम पुत्रीमर्ककन्यामसुकगोत्र-
वराय दास्ये' असें वाग्दान करून वराला मधुपर्क करून अंतःपट धरून 'स्वस्तिनो०' या सूक्ताचा जप करून वर सांगितल्या-
प्रमाणें कन्यादान करून 'अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषितां ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥' असा
कन्यादानमंत्र म्हणून दक्षिणा घावी. नंतर गायत्रीमंत्रेंकरून वेष्टित सूत्रानें 'बृहत्साम०' ह्या मंत्रानें अर्क आणि वर यांना
कंकण बांधून अर्कवृक्षाच्या चारही दिशांस चार कलशांवर विष्णूची पूजा करून अमीची स्थापना करून आधारान्त तंत्र
करून 'संगोभिरागिरसो०' या मंत्रानें बृहस्पतीला, 'यस्मैत्वाकामकामाय०' या ऋचेनें अमीला, आणि व्यस्तसमस्तव्याहतींनीं
अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति यांना आज्यहोम करून आचार्याला दोन गाई देऊन 'मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरयुणा ॥
अकीपत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षंतुमर्हसि ॥' ह्या मंत्रानें नमस्कार करावा. ही दिशा दाखविली आहे.

इति विवाहप्रकरणं संपूर्णम्.

अथाधानम् रत्नमालायाम् प्राजापत्येपूषभेसद्विदैवेपुष्येज्येष्ठास्वैदवेकृत्तिकासु अग्न्याधानं छुत्तरा-
णां त्रयेपि चित्रादित्येकीर्तितंगर्गमुख्यैः **आश्वलायनः** अग्न्याधेयंकृत्तिकासुरोहिण्यां मृगशिरसि फल्गुनीपु-
विशाखयोरुत्तरयोः प्रोष्ठपदयोरेतेषां कस्मिंश्चिद्ब्रह्मण आदधीत प्रीष्म वर्षां शरत्सु क्षत्रियवैश्योपकुट्टा-
यस्मिन् कस्मिंश्चिद्वृद्धावादधीत सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्नक्षत्रम् सोमाधाने ऋत्वाधानालोचनमार्तपरम् अथो-
खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदधादधीत सैवास्याद्विरिति सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्नक्षत्रं तदेतदार्तस्यातिवेलंबा-
श्रद्धायुक्तस्य भवतीति बौधायनोक्तेरिति **मदनरत्ने वृद्धगार्ग्यः** पुण्याग्नेययुत्तरादित्यपौष्णज्येष्ठावि-
त्रार्कद्विवैद्वेदभेषु कुर्युर्बह्वधाधानमाद्यं वसंत प्रीष्मोष्मातेष्वेव विप्रविप्रविप्रार्कः **कालादर्शः** अग्निहोत्रदर्शपूर्णमा-
सावप्युत्तरायणे उपक्रम्य यथाकालमुपासीरन् द्विजातयः सोमंच पशुबंधंच सर्वाश्च विकृतीरपि सौम्यायने यथा-
कालं विदध्युर्गृहमेधिनः अत्र विशेषः पूर्वमुक्तः ॥

आतां आधान सांगतो—

रत्नमालेत—“रोहिणी, रेवती, विशाखा, पुष्य, ज्येष्ठा, मृग, कृत्तिका, तीन उत्तरा, चित्रा, हस्त, ह्या नक्षत्रांवर
गर्गादि मुनींनीं अग्न्याधान करावें असें सांगितलें आहे.” **आश्वलायन**—“कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, पूर्वाफल्गुनी,
उत्तराफल्गुनी, विशाखा, उत्तराप्रोष्ठपदा हीं नक्षत्रें अमीच्या आधानास सांगितलीं आहेत. ह्यांतून कोणत्याही नक्षत्रावर
वसंत ऋतूंत पर्वांचे ठायीं ब्राह्मणांनं आधान करावें. आणि प्रीष्म ऋतु, वर्षा ऋतु, शरत् ऋतु यांचे ठायीं अनुक्रमेणें क्षत्रिय,
वैश्य, उपकुट्टा यांनीं आधान करावें. सोमयाग करावयाचा असेल तर कोणत्याही ऋतूंत आधान करावें. त्याविषयीं ऋतु व
नक्षत्र यांचा विचार करूं नये.” सोमासाठीं आधानाविषयीं ऋतु वगैरे पाहूं नयेत, असें जें सांगितलें तें आर्ताविषयीं समजावें.
कारण, “आतां ज्या वेळीं आधानाची श्रद्धा उत्पन्न होईल त्या वेळीं आधान करावें. तोच काल चांगला आहे. सोमाचा याग
करावयाचा असेल तर ऋतु, नक्षत्र यांचा प्रश्न करूं नये. हें सांगणें आर्ताला किंवा फार दिवस श्रद्धायुक्त असेल त्याला आहे.”
असें बौधायन वचन आहे. **मदनरत्नांत वृद्धगार्ग्य**—“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यांनीं वसंत, प्रीष्म, वर्षा या ऋतूंत
पुष्य, कृत्तिका, तीन उत्तरा, पुनर्वसु, रेवती, ज्येष्ठा, चित्रा, रोहिणी, विशाखा, मृगशीर्ष, ह्या नक्षत्रांवर पहिलें अग्न्याधान
करावें.” **कालादर्शांत**—“अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास यांचा उत्तरायणांत उपक्रम करून द्विजातींनीं यथाकालीं ते करावे.
गृहस्थाश्रम्यांनीं सोम, पशुबंध, आणि साच्या विकृति ह्या उत्तरायणांत यथाकालीं कराव्या.” या विषयाचा विशेषनिर्णय पूर्वी
(प्रथम परिच्छेदांत) सांगितला आहे.

अग्निहोत्रकालउक्तः **छंदोगपरिशिष्टे** उदितेनुदितेचैव समयाभ्युषितेतथा सर्वथावर्ततेयज्ञाद्वितीयवैवि-
कीभुतिः एतेषां स्वरूपंतत्रैव रात्रेस्तुषोडशे भागेग्रहणक्षत्रभूषिते कालं त्वनुदितं ज्ञात्वा होमं कुर्याद्विचक्षणः तत्रा-
प्रभातसमयेनष्टेनक्षत्रमंडले रविवारबृहद्वयेतसमयाभ्युषितंचतत् रेखामात्रप्रदश्येतरदिमभिश्चसम्बिन्धः
उदितंतद्विजानीवातत्रहोमप्रकल्पयेत् **आश्वलायनः** उपोदयं व्युषित उदितेवा सायं बुध्नय प्रकल्पयेत्

महति गौणकालमाहसएव प्रदोषांतोहोमकालःसंगवांतःप्रातरिति छंदोगपरिशिष्टे यावत्सम्यङ्गन्भाव्यतेनभस्यृक्षाणिसर्वतः नचलोहितिमापैतितावत्सायंतुहूयते औपासनेऽप्येवम् तस्याग्निहोत्रेणप्रादुष्करण-होमकालौव्याख्यातावित्याश्वलायनोक्तेः ॥

अग्निहोत्राचा काल सांगतो छंदोगपरिशिष्टांत—“उदित, अनुदित आणि समयाध्युषित ह्या तीन कालीं सर्व प्रकारचा यज्ञ (होम) होतो, असें हें वेदांतील श्रुतीनं सांगितलें आहे.” ह्या उदितादिकालांचें स्वरूप तेथेंच सांगतो—“प्रह व नक्षत्रें यांनीं युक्त असा रात्रीच्या शेवटचा सोळावा भाग तो अनुदित काल समजावा. ह्या कालीं विद्वानांनं होम करावा. तसाच प्रभातकालीं सारीं नक्षत्रें अदृश्य झालीं असून जोंपर्यंत सूर्य दिसूं लागला नाहीं, तो काल समयाध्युषित समजावा. फक्त रेखा व किरण दिसूं लागले असतां तो उदित काल समजावा. ह्या कालीं होम करावा.” आश्वलायन—“उषःकालीं, व्युषितकालीं किंवा उदितकालीं होम करावा.” सायंहोमाचा काल तोच सांगतो—“सूर्य अस्तंगत झाला असतां होम करावा.” गौणकाल तोच सांगतो—“सायंकालीं प्रदोषापर्यंत होमकाल आहे. आणि प्रातःकालीं संगवकालापर्यंत होमकाल आहे.” छंदोगपरिशिष्टांत—“आकाशांत सर्व बाजूंस जोंपर्यंत चांगलीं नक्षत्रें दिसूं लागलीं नाहींत, आणि आकाशाचा लालपणा गेला नाहीं तोंपर्यंत सायंकालीं होम करावा.” औपासनाच्या होमाविषयीं देखील अग्राच काल समजावा, कारण, “त्या औपासनाचा प्रादुष्करणकाल, आणि होमकाल हे अग्निहोत्राच्या कालांनं सांगितले आहेत” असें आश्वलायनगृहसूत्र आहे.

अथावसथ्याधानम् पारस्करः आवसथ्याधानंदारकालेदायाद्यकालएकेषामिति दाय्याद्यकालोविभागकालः मदनरत्नेव्यासः अग्निर्वैवाहिकोयेननगृहीतःप्रमादिना पितर्युपरतेतेनगृहीतव्यःप्रयत्नतः योऽगृहीत्वाविवाहमिगृहस्थइतिमन्यते अन्रतस्यनभोक्तव्यंवृथापाकोहिसस्मृतः ज्येष्ठभ्रातरिपितरिवासाभौ-कनिष्ठस्यपुत्रस्यवाऽभ्यभावेपिनदोषः तदाहृतत्रैवगार्ग्यः पितृपाकोपजीवीवाभ्रातृपाकोपजीविकः ज्ञानाध्ययननिष्ठोवानदुष्येताभिनाविना गृहस्थस्याप्यध्ययनमाहसत्यव्रतः अनधीन्यद्विजोवेदस्त्वावोद्वाह्ययथा-तथा अधीतेब्रह्मचर्येणसांगवेदंगुरोर्गृहे इदंचाधानंज्येष्ठेऽकृताधानेनकार्यम् दाराग्निहोत्रसंयोगंकुरुतेयोप्रजे-स्थिते परिवेत्तासविज्ञेयःपरिवित्तिस्तुपूर्वजइतिमनुशानानपोक्तेः स्मार्तप्येवम् सोदर्येतिप्रतिज्येष्ठनकुर्याद्धारसंग्रहम् आवसथ्यंतथाधानंपतितस्तुतथाभवेदितितत्रैवगार्ग्योक्तेः आज्ञायांतवदोपमाहसुमंतुः ज्येष्ठोभ्रातायदातिष्ठेदाधानंनैवचाश्रयेत् अनुज्ञातस्तुकुर्वीतशंखस्यवचनंयथा वृद्धवसिष्ठः अग्रजस्तुयदाऽनभिारादध्यादनुजःकथम् अग्रजानुमतःकुर्यादग्निहोत्रंयथाविधि हारीतः सोदगणांतुमर्वेपांपरिवेत्ताकथं भवेत् दारैस्तुपरिविधंतेनाग्निहोत्रेणेज्यया अधिकारिणोपिभ्रातुरनुज्ञयाकुर्यादितिमदनपारिजानः विवाहस्त्वनुज्ञयापिनेत्यर्थः सोदरोक्तेरसोदराणांसापन्नदत्तकादीनांदोषः तदाहहेमाद्रौ वसिष्ठः पितृव्यपुत्रान्सापन्नान्परनारीसुतांस्तथा दाराग्निहोत्रसंयोगेनदोषःपरिवेदने परनारीसुतादत्तकादयः देशांतरे-विशेषमाहसएव अष्टौदशद्वादशवर्षाणिवाज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणःप्रायश्चित्तीभवतीति ॥

आतां औपासनाग्नीचें आधान सांगतो—

पारस्कर—“औपासनाग्नीचें आधान विवाहकालीं होतें. कितीएकांच्या मतीं दायविभागकालीं होतें.” मदनरत्नांत व्यास—“ज्या पुरुषांनं प्रमादाच्या योगांनं विवाहाभि धारण केला नसेल त्यांनं पिता मृत झाल्यावर मोठ्या प्रयत्नांनं ध्यावा, जो मनुष्य विवाहाभि प्रहण केल्यावांचून आपण गृहस्थ असें मानितो त्याचें अन्न भक्षण करूं नये; कारण, तो वृथापाक म्हणला आहे.” ज्येष्ठ भ्राता किंवा पिता हे सामिक असतील तर कनिष्ठ भ्राता किंवा पुत्र यांचा अग्नि नसला तरी दोष नाहीं. तें सांगतो तेथेंच गार्ग्य—“पित्याच्या पाकांनं उपजीवन करणारा अथवा भ्रात्याच्या पाकांनं उपजीवन करणारा किंवा ज्ञान व अध्ययन यांविषयीं तत्पर असलेला पुरुष विवाहाभि नसला तरी दूषित होत नाहीं.” गृहस्थाश्रम्यालाही अध्ययन सांगतो सत्यव्रत—“द्विजाचें समावर्तनाच्या पूर्वी वेदाध्ययन झालें नसेल तर जसें तसें समावर्तन करून विवाह करून नंतर गुरूच्या घरी ब्रह्मचर्य धारण करून सांगवेदाचें अध्ययन करावें.” हें वर सांगितलेलें श्रौताग्नीचें आधान ज्येष्ठ भ्रात्यांनं आधान केलें नसेल तर कनिष्ठानं करूं नये. कारण, “ज्येष्ठ भ्राता अनहिताभि असतां जो कनिष्ठ भ्राता पत्नी आणि अग्निहोत्र यांचा संयोग करितो तो परिवेत्ता जाणावा. आणि ज्येष्ठ भ्राता परिविति होय.” असें मनु, शांतातप यांचें वचन आहे. स्मार्ताधानाविष-

यीही असेंच समजावें. कारण, “सहोदर ज्येष्ठ भ्राता अविवाहित असतां कनिष्ठानें पत्नीसंग्रह आणि आवस्थ्यामीचें (स्नाता-
मीचें) आधान करूं नये. करील तर पक्षित होईल.” असें तेथेंच (मदनरत्नांतच) गार्ग्यवचन आहे. ज्येष्ठाची आज्ञा
असेल तर दोष नाही, असें सांगतो **सुमंतु**—“जेव्हां ज्येष्ठ भ्राता असेल आणि आधान करणार नाही तेव्हां त्याची आज्ञा
घेऊन कनिष्ठानें आधान करावें, असें शंखाचें वचन आहे.” **वृद्धवसिष्ठ**—“जेव्हां ज्येष्ठ भ्राता अनभिक्त असेल तेव्हां
कनिष्ठानें कसें करावें ? अग्रजाची आज्ञा घेऊन कनिष्ठानें यथाविधि अभिहोत्र करावें.” **हारीत**—“सर्व सहोदर भ्रात्यांमध्ये
परिवेत्ता कसा होईल ? ज्येष्ठाला सोडून कनिष्ठ विवाह करील तर तो परिवेत्ता होईल. अभिहोत्र किंवा यज्ञ केल्यानें परिवेत्ता
होत नाही.” ज्येष्ठ भ्राता अधिकारी असला तरी त्याच्या अनुज्ञेनें कनिष्ठानें आधान करावें, असें **मदनपारिजात** सांगतो.
विवाह तर अनुज्ञेनें देखील करूं नये, असें तात्पर्य. वरील हारीतवचनांत ‘सोदराणां’ म्हणजे सोदरांना दोष, असें सांगि-
तल्यावरून असहोदरांना दोष नाही. तेंच सांगतो **हेमाद्रीत वसिष्ठ**—“पितृव्याचे पुत्र, सापळ भ्राते, परनारीसुत
(दत्तकादिक), यांना सोडून भार्या आणि अभिहोत्र यांचा संयोग केला असतां परिवेदनाचा दोष नाही.” देशांतरीं असेल
तर तोच विशेष सांगतो—“देशांतरीं गेलेल्या ज्येष्ठ भ्रात्याची आठ, दहा, किंवा बारा वर्षेपर्यंत प्रतीक्षा न करणारा
(म्ह० तितक्या वर्षांच्या आंत विवाह करणारा) प्रायश्चित्ताला योग्य होतो.

क्षीवादावप्यदोषमाहकात्यायनः देशांतरस्थक्षीवैकवृषणानसहोदरान् वेदयानिष्ठांश्चपतितशूद्रतुल्याति-
रोगिणः जडमूकांधवधिरकुब्जवामनखंजकान् अतिवृद्धानभार्याश्चकृपिसक्तान्नृपस्यच धनवृद्धिप्रसक्तान्श्चका-
मतोकारिणस्तथा कुटिलोन्मत्तचोरांश्चपरिविद्वद्गुण्यति **आशाकैःपि** उन्मत्तःकिल्बिषीकुष्ठीपतितःक्षीब-
एववा राजयक्षसामयाचीवनन्याय्यःस्यात्प्रतीक्षितुम् एवंज्येष्ठेच्छिन्नहस्तादावपिनपरिवेत्तृत्वम् तदाह**त्रिकांड-**
मंडनः दर्शेष्टिपौर्णमासेष्टिसोमेज्यामभिसंग्रहम् अभिहोत्रंविवाहंचप्रयोगेप्रथमेस्थितम् नकुर्याज्जनकेज्येष्ठे-
सोदरेचाप्यकुर्वति क्षेत्रजादावनीजानेविद्यमानेपिसोदरे नाधिकारविधातोस्तिभिन्नोदर्येपिचौरसे पंगबंधमूक-
वधिरपतितोन्माददूषणे संन्यस्तेच्छिन्नहस्तादौयद्वापंढादिदूषणे जनकेसोदरेज्येष्ठेकुर्यादेवेतरःक्रियामिति
आरोहतंदशतंशकरीर्ममेत्याधाने**मंत्रवर्णाच्च** शकरीरंगुलीः **तंत्ररत्ने**प्युक्तम् अंगवैकल्यात्पूर्वमाहिताभित्वे-
ऽधिक्रियेतैवनिषेधे आधानंतुनकुर्यात्तस्यनैमित्तिकत्वादिति एवंचतुरंगुलेपि षडंगुलकाणविषणोर्देस्त्वस्येवा-
धिकारः एकादशसुदशांतर्गतेः शरीरकार्श्यवाविप्रतिपिद्धमिति**हिरण्यकेशिसूत्रे**कर्माशक्तिहेतोरेवांगवै-
कल्यस्यनिषेधान् अतएव**कात्यायन**सूत्रेयाज्यश्चप्रथमैस्त्रिभिर्गुणैरितिन्यूनांगस्याप्यधिकारोक्तः **अपराकै-**
उशानाः पिनापितामहोयस्यअग्रजोवाथकस्यचित् तपोभिहोत्रमंत्रेपुनर्दोषःपरिवेदने पितुराज्ञायामप्यदोष-
माह**मदनरत्नेसुमंतुः** पित्रायस्यतुनाधातंकथंपुत्रस्तुकारयेन् अभिहोत्रेधिकारोस्तिशंखस्यवचनंयथेति
नाधातंनाधानंकृतमित्यर्थः एतदाज्ञायामेवेति**हेमाद्रिः** यत् पितुःसत्यप्यनुज्ञानेनादधीतकदाचनेति तत्स-
त्यधिकारेज्ञेयम् ॥

ज्येष्ठभ्राता षड वंगरे असताही दोष नाही, असें सांगतो **कात्यायन**—‘देशांतरीं गेलेला, षड, एकवृषण, सहोदर-
भिन्न, वेदयासक्त, पतित, शूद्रतुल्य, अतिरोगी, मूर्ख, मुका, आंधळा, बहिरा, कुबडा, खुजा, लंगडा, अतिवृद्ध, मृतपत्नीक,
कृषिकर्माविषयी आसक्त, राजाच्या द्रव्यवृद्धीविषयी आसक्त, खेळनें विवाह न करणारा, कुटिल, उन्मत्त, चोर, अशा
प्रकारच्या ज्येष्ठास सोडून कनिष्ठ विवाह करील तर तो दोषी होणार नाही.” **आशाकैतही**—“उन्मत्त, पापी, कुष्ठी,
पतित, षड, आणि राजयक्ष्मी (क्षयी) अशा प्रकारच्या ज्येष्ठाची प्रतीक्षा करणें न्याय्य होणार नाही.” याप्रमाणें ज्येष्ठ
हात तुटलेला वंगरे असताही परिवेत्तृत्व दोष होत नाही. तें सांगतो **त्रिकांडमंडन**—“दर्शेष्टि, पौर्णमासेष्टि, सोमयाग,
अभ्याधान, अभिहोत्र, विवाह, यांचा प्रथम प्रयोग जनकपिता व सहोदर ज्येष्ठभ्राता करीत नसतां कनिष्ठानें करूं नये.
सहोदर क्षेत्रजादि भ्राता विद्यमान असून तो अभिहोत्रादि होम करीत नसेल अथवा सापळ भ्राता असून तो करीत नसेल तर
कनिष्ठाला अधिकार नाही, असें नाही. पांगळा, आंधळा, मुका, बहिरा, पतित, उन्मादरोगी, संन्यास घेतलेला, हात
वंगरे तुटलेला अथवा षडल इत्यादि दूषणांनं युक्त असा जनक पिता किंवा सहोदर भ्राता असतां कनिष्ठादिकानें अभि-
होत्रादि कर्म करावेंच.” आणि आधानाच्या मंत्रांत ‘माझ्या दहा अंगुलींप्रत’ असेंही सांगितलें आहे, यावरून **आधान-**
कालीं दहा अंगुली अवश्य असल्या पाहिजेत असेंही होतें. **तंत्ररत्नांतही** सांगतो—“अंग विकल (छिन्नादि) होण्याच्या
पूर्वीं अग्नीचें आधान केलेलें असेल तर पुढें अंग विकल झालें तरी नित्यकर्माविषयी अधिकारी होईलच. आधान तर
अंगवैकल्य असतां करूं नये. कारण, आधान हें नैमित्तिक आहे. याप्रमाणें छिन्न हस्त असतां जसें आधान होत नाही.

तसेंच एका हातास चार अंगुलि असतांही आधान होत नाही. एका हातास सहा अंगुलि असलेला, काणा, वगैरहित इत्यादिकांना तर अधिकार आहेच. कारण, अकरा अंगुलीत दहा अंगुलि आहेत. “अथवा शरीरकार्य हे प्रतिबिद्ध सांगितले आहे.” हा हिरण्यकेशिसूत्रांत ज्या अंगाच्या विकलत्वांन (राहिल्यांन) त्या कर्माविषयी असमर्थ होईल त्याच अंगविकलत्वाचा निषेध केलेला आहे. म्हणूनच कात्यायनसूत्रांत—“पहिल्या तीन गुणांनी जो शुक्ल त्याच्याकडून यजन करावे.” असा अंगन्यून असलेल्या पुरुषासही अधिकार सांगितला आहे. अपराकीर्त उशना—“ज्याचा पिता, पितामह, आणि ज्येष्ठ भ्राता यांनी केलेलें नसून जर कोणी तप, अभिहोत्र, आणि वेदाध्ययन करील तर त्याला परिवेदनरूप दोष प्राप्त होत नाही.” पित्याची आज्ञा असतांही दोष नाही, असें सांगतो मदनरत्नांत सुमंतु—“ज्याच्या पित्याने आधान केलें नसेल त्याचा पुत्र आधान कसें करील? त्याला अभिहोत्राविषयी अधिकार आहे, असें शाखांचें वचन आहे.” हा पुत्राला अभिहोत्राविषयी अधिकार पित्याची आज्ञा असतांच आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. आतां जें “पित्याची आज्ञा असली तरी पुत्रांन कधीही आधान करूं नये” असें सांगितलें आहे, तें पित्याला अधिकार असतां समजावें.

अथशूद्रसंस्काराः यमः शूद्रोप्येवंविधः कार्याविनामंत्रेण संस्कृतः न केनचित्समसृजच्छंदसातं प्रजापतिः छंदसामंत्रेण व्यासोपि गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोजातकर्मच नामक्रियानिष्क्रमोन्नप्राशनं वपनक्रिया कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः केशांतःस्नानमुद्राहोविवाहाग्निपरिग्रहः त्रेताग्निप्रग्रहश्चैव संस्काराः षोडशस्मृता इत्युक्त्वाह नवैताः कर्णवेधांतामंत्रवर्जस्त्रियाः क्रियाः विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतोदशेति मदनरत्ने हिरण्यगर्भदाने तु गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं तथा कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्तद्विजपुंगवा इत्युक्त्वा जातकर्मदिकाः कुर्यात्क्रियाः षोडशचापरा इत्यत्र स्त्रिया जातकर्मनामकरणे निष्क्रमणाग्नप्राशनचूडा विवाहाः षट् शूद्राणां तु षडेते पंचमहायज्ञाश्चैत्येकादशेत्युक्तम् रूपनारायणहरिहरभाष्ययोरप्येवम् शार्ङ्गधरस्तु द्विजानां षोडशैवस्युः शूद्राणां द्वादशैव हि पंचैव मिश्रजातीनां संस्काराः कुलधर्मतः वेदव्रतोपनयनमहानाग्नीमहाव्रतम् विना द्वादशशूद्राणां संस्कारानाममंत्रत इत्याह अपराकिंस्तु गर्भाधानमृतौ पुंसइत्यत्राह एतच्चातुर्वर्ण्यपरम् न द्विजातिमात्रपरम् तथासत्युपनयनं विधायवाच्यं स्यादिति तेन तन्मतेऽप्येवं भवति ब्राह्मे तु विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदेत्युक्तम् अत्र स दसच्छूद्रगोचरत्वेन देशभेदाद्व्यवस्था यत्तु मनुः न शूद्रेपातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हतीति तदर्थमाह मेधातिथिः यत्सामान्यतो निषिद्धं संत्येयानृतादिनतदतिक्रमेण्यपापं यथा द्विजानाम् उपनयनरूपं संस्कारं च नार्हतीति ते चतुर्णां कार्याः शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विनेति व्यासोक्तेः अमंत्रस्य तु शूद्रस्य मंत्रो विप्रेण गृह्यते इति मरीच्युक्तेश्च इयं परिभाषा सर्वार्थां तेन शूद्रधर्मेषु सर्वत्र विप्रेण मंत्रः पठनीयः सोपि पौराण्येति शूलपाणिः एवं स्त्रीणामपीति दिक् इति रामकृष्णभट्टात्मज कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ संस्कारनिर्णयः ॥

आतां शूद्राचे संस्कार सांगतो—

यम—“याप्रमाणें शूद्राचेही संस्कार मंत्रावांचून (अमंत्रक) करावे, प्रजापतीनं कोणत्याही मंत्रासह त्यास उत्पन्न केलेला नाही.” व्यासही—“गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोजयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, कर्णवेध, व्रतबंध, वेदारंभविधि, केशांत, समावर्तन, विवाह, गृह्यामीचें आधान, श्रौतामीचें आधान, हे सोळा संस्कार म्हटले आहेत” असें बोलून सांगतो—“यापैकी कर्णवेधापर्यंतचे नऊ संस्कार स्त्रियांचे मंत्ररहित करावे. आणि स्त्रियांचा विवाहसंस्कार मंत्रांनीं करावा. शूद्रांचे हे दहा संस्कार अमंत्रक करावे.” मदनरत्नांत हिरण्यगर्भदानप्रकरणांत तर—“हिरण्यगर्भाचे गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोजयन, हे संस्कार त्या ब्राह्मणश्रेष्ठांनीं करावे.” असें सांगून “इतर जातकर्मादिक षोडश संस्कारही करावे.” या ठिकाणीं स्त्रियांना जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, विवाह हे सहा संस्कार सांगितले आहेत. शूद्रांना तर—हे सहा संस्कार आणि पंचमहायज्ञ पांच मिळून अकरा आहेत, असें सांगितलें आहे. रूपनारायणग्रंथांत आणि हरिहरभाष्यांतही असेंच सांगितलें आहे. शार्ङ्गधर तर—“द्विजानाच सोळा संस्कार होतात. शूद्रांना बाराच होतात. मिश्रजातींना कुलधर्मांन पांचच संस्कार होतात. वेदव्रत, उपनयन महानाग्नी आणि महाव्रत हे चार वर्ज्य करून बाकीचे बारा संस्कार शूद्रांचे नाममंत्रांन होतात” असें सांगतो. अपराकिं तर—“ऋतुकाळीं गर्भाधान इत्यादि संस्कार करावे” या वचनावर सांगतो—हे वचन चारी वर्णांविषयी आहे. द्विजातिविषयक नाही. द्विजातिविषयक आहे असें म्हटलें तर, उपनयन विधान करून सांगण्याचें होतें. यावरून अपराकांचे मर्ती गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म,

नामकरण, निष्कर्मण, अन्नप्राशन, वृडा, विवाह, हे आठ संस्कार श्रद्धांचे होतात. ब्राह्म्यांत तर “विवाह मात्र संस्कार श्रद्धालाही प्राप्त व्हावा.” असे सांगितले आहे. ह्या वर सांगितलेल्या प्रकारांची व्यवस्था सच्छ्रद्धाना व असच्छ्रद्धाना धरून करावी, किंवा देशभेदाने करावी. आतां जें मनु—“श्रद्धाला कोणतेही पातक नाही. आणि तो श्रद्धा संस्कारास योग्य होत नाही.” या वचनाचा अर्थ सांगतो **मेधातिथि**—“जें चौर्य, अन्त इत्यादिक सामान्यतः निषिद्ध म्हणून सांगितले आहे, त्याचा अतिक्रम (उल्लंघन) केला असतां जसें द्विजांना पाप आहे तसें श्रद्धाला पाप नाही. आणि श्रद्धा उपनयनरूप संस्काराला योग्य होत नाही.” ते श्रद्धांचे संस्कार अमंत्रक करावे. कारण, “चवथा श्रद्धावर्ण हा वर्ण असल्यामुळे धर्माचा योग्य होतो. हा प्रकार वेदमंत्र, स्वाहा, स्वाहा, वषट्कार इत्यादिकांवांचून समजावा” असे व्यासवचन आहे. “मंत्ररहित अशा श्रद्धांचा मंत्र ब्राह्मणांनं उच्चारवा.” असे मरीचिवचनही आहे. ही परिभाषा (नियम) सर्वत्र लागू आहे. यावरून श्रद्धाधर्माचे ठायीं सर्वत्र ठिकाणीं ब्राह्मणांनं मंत्र पठण करावा, तो मंत्रही पौराणिकच असावा, असे शूलपाणी सांगतो. याचप्रमाणे स्त्रियांना देखील समजावें. ही दिशा दाखविली आहे.

इति निर्णयसिधौ भाषाटीकायां संस्कारनिर्णयः ॥

अथशुद्धकालाः तत्रजलाशयस्य वराहः हस्तेचांनुपपौष्णकेशवमधामित्रोत्तरारोहिणीदेवज्ये-
पुचशुकसौम्यशशभृद्वागीशवारांशके रिक्तांछिद्रतिथिविहायवृषभेनकेकुलीरेषधेमीनेकूपतडागकर्ममुनयःशंसं-
तिशुद्धेष्टमे हस्तोमृगानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणिरोहिण्यः शतभिषगित्यारंभेकूपानांशस्यतेभगणः हेमाद्री
भविष्ये तस्मिन्सलिलसंपूर्णकार्तिकेतुविशेषतः मुनयःकेचिदिच्छंतिव्यतीतेचोत्तरायणे नकालनियमस्त-
त्रसलिलंतत्रकारणम् **दीपिकापि** मार्तण्डेदूडशुद्धौमुरजिदशयनेमाषपट्कस्यशुद्धेमूलापाढोत्तराश्विभ्रवणगु-
रुकरेपौष्णशकाप्यचात्रे मैत्रेब्राह्मेचपूर्णाभमदन १३ रवि १२ तिथौसद्वितीयातृतीयेकार्यातोयप्रतिष्ठाज्ञगुह-
सितदिनेकालशुद्धेसुलमे **वराहः** आग्नेयेयदिकोणेग्रामस्यपुरस्यवाभवतिकूपः नित्यंसकरोतिभयंदहचंस-
मानसंप्रायः नैर्ऋत्येवालभयंवनिताक्षयंचवायव्ये दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वाशेषास्तुशुभावहाःकूपाः वास्तु-
शास्त्रे भूतिपुष्टिपुत्रहानिपुरंघ्रीनाशंमृत्युसंपदंशत्रुबाधाम् किंचित्सौख्यंशंभुकोणादिकुर्यात्कूपोमध्येरोह-
मर्थक्षयंच ॥

आतां शुद्धकाल सांगतो—

त्यांत प्रथम जलाशयाचा काल सांगतो **वराह**—“हस्ती, शततारका, रेवती, भ्रवण, मघा, अनुराधा, तीन उत्तरा, रोहिणी, पुष्य, ह्या नक्षत्रांवर; शुक, बुध, चंद्र, गुरु यांच्या वारी व यांच्या अशी, रिक्तातिथि आणि छिद्रातिथि वर्ज्य करून बाकीच्या तिथींवरः वृषभ, मकर, कर्क, कुंभ, मीन या लक्षांवर, अष्टमस्थान शुद्ध असतां कूप, तलाव यांचें कर्म प्रशस्त आहे, असें मुनि सांगतात.” “हस्त, मृग, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीन उत्तरा, रोहिणी, आणि शततारका हीं नक्षत्रे कूपांच्या आरंभास प्रशस्त आहेत.” **हेमाद्रींत भविष्यांत** “तो जलाशय उदकांनं संपूर्ण भरलेला असतां विशेषकरून कार्तिक मासांत त्या जलाशयाची प्रतिष्ठा करावी. कितीएक मुनि उत्तरायण गेलें असतां प्रतिष्ठा इच्छितात. प्रतिष्ठेविषयीं कालनियम नाही. प्रतिष्ठेला कारण उदक आहे. अर्थात् उदक असेल त्या वेळीं प्रतिष्ठा करावी.” **दीपिकाही**—“विष्णुशयन (चातुर्मास्य) वर्ज्य करून माघापासून सहा मासांच्या शुरुपक्षांत सूर्य, चंद्र, नक्षत्रे यांची शुद्ध असतां; मूल, पूर्वाषाढा, तीन उत्तरा, अश्विनी, भ्रवण, पुष्य, हस्त, रेवती, ज्येष्ठा, शततारका, मृग, अनुराधा, रोहिणी या नक्षत्रांवर; पंचमी, दशमी, पूर्णिमा, त्रयोदशी, द्वादशी, द्वितीया, तृतीया, या तिथींवर; बुध, बृहस्पति, यांच्या वारी; शुद्ध कार्ती; शुभ लग्ना-
वर; उदकप्रतिष्ठा करावी.” **वराह**—“गांवाच्या किंवा नगराच्या आग्नेय दिशेस जर कूप असेल तर तो नेहमीं भय आणि प्रायः मनाला त्रास उत्पन्न करील. नैर्ऋत्य कोणास असेल तर बालकांस भीति होईल. वायव्य कोणास असेल तर स्त्रियांना भीति होईल. म्हणून आग्नेय, नैर्ऋति आणि वायव्य ह्या तीन दिशा सोडून बाकीच्या दिशांस असलेले कूप शुभ आहेत.” **वास्तुशास्त्रांत**—“ईशानी दिशेस भूति, पूर्वेस पुष्टि, आग्नेयीस पुत्रनाश, दक्षिणेस स्त्रीनाश, नैर्ऋतीस मृत्यु, पश्चिमेस संपत्ति, वायव्येस शत्रूपासून बाधा, आणि उत्तरेस अल्पसौख्य याप्रमाणें प्रत्येक दिशांस असलेल्या कूपांचीं फळे समजावी. आणि घरामध्यें असेल तर द्रव्यनाश होईल.”

१ या अर्थाचा श्लोक जुन्या लेखी प्रतीत नाही. २ चतुर्दशी, ऋतुधी, अष्टमी, नवमी, पौषी, द्वादशी ह्या पक्षिच्छिद्र तिथीं तीसंतसंस्कारप्रकरणीं सांगितल्या आहेत, त्यांच्या त्याच ऋतुका तेथेंच पाह्या.

उत्सर्गविधिश्चोक्तो बह्वक्षपरिशिष्टे अथातो वापीकूपतडागयज्ञव्याख्यास्यामः पुण्येह्युदकसमीपेऽग्निस्माधायवारुणं चरुं श्रपयित्वा ज्यभागांते आज्याहुतीर्जुहुयात् समुद्रज्येष्ठेति प्रत्यृचं ततो हविषाष्टौ तन्वायामीति पंचत्वं नो अग्ने इति द्वे द्वे ममेवरुणेति च स्विष्टकृतं न वमम् मार्जनांते धेनुं तारयेत् अवतीर्यमाणामनुमंत्रयेत् इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूता अमृताः संतु नित्यम् मां तारयंती कुरुती र्थाभिषेकं लोकां लोकोत्तरं तेतीर्यते चेति पुच्छाग्ने न्वारब्ध उच्चीर्योपो अस्मान्मातरः शुंधयं त्वित्यथा पराजितायां दिश्युत्थापयेत् सृयवसाद्भगवतीति हिं कृतं चेद्विंशत्कृण्वतीत्यलंकृतां विप्राय दद्यादितरां वा शक्त्या दक्षिणां तत उत्सृजेद्देवपितृमनुष्याः प्रीयंतामिति ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयति विस्तरस्तु मात्स्योक्तोऽस्तकृतजलाशयोत्सर्गविधौ ज्ञेयः कूपादेरुत्सर्गाकरणे दोष उक्तो भविष्ये सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतं कुशाग्नेनापिराजेंद्रनस्पृश्यमसंस्कृतं तथा वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम् अपेयं तद्भवेत्सर्वपीत्वा चांद्रायणं चरेत् ।

कूपादिकां च उत्सर्गविधि सांगतो—

बह्वक्षपरिशिष्टांत—“आतां वापी, कूप, तलाव यांचा उत्सर्गसंस्कार सांगतां—शुभ दिवशीं वापी इत्यादि जलाच्या समीपे अभिस्थापना करून त्याजवर वरुणदेवताक चरु शिजवून, आज्यभागापर्यंत तंत्र झाल्यावर ‘समुद्रज्येष्ठां’ या सूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेनें आज्याहुतींचा होम करावा. नंतर चरुच्या आठ आहुति द्याव्या. त्या येणें प्रमाणें—‘तत्त्वायामि०’ ह्या पांच, ‘त्वनो अग्ने०’ ह्या दोन, आणि ‘इमं मेवरुण०’ ही एक, मिळून आठ आहुति झाल्यावर स्विष्टकृताची नववी आहुति देऊन प्रायश्चित्तादि होमशेष समाप्त झाल्यावर मार्जनांतीं त्या उदकांत धेनूला तरवावी. त्या तरविण्याचा मंत्र—‘इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व शुद्धाः पूता अमृताः संतु नित्यम् ॥ मां तारयंती कुरु तीर्याभिषेकं लोकां लोकोत्तरं तेतीर्यते च ॥’ या मंत्रानें तिचें पुच्छाग्र धरून आंत उतरून ‘आपो अस्मान्०’ या मंत्रानें मार्जन करून नंतर ईशानी दिशेस तिला वर काढावी. वर काढावयाचा मंत्र—‘सृयवसाद्भगवती०’ हा समजावा. ती धेनु हुंकार करूं लागली असेल तर ‘हिं कृण्वती०’ हा मंत्र म्हणून वर काढावी. नंतर तिला अलंकृत करून ब्राह्मणांस द्यावी. अथवा आपल्या शक्तीप्रमाणें इतर दक्षिणा द्यावी. नंतर ‘देवपितृमनुष्याः प्रीयंतां’ असं म्हणून त्या जलाशयाचा उत्सर्ग करावा. नंतर ब्राह्मणांस भोजन घालून त्यांच्याकडून पुण्याहवाचन म्हणवावें.” याचा विस्तार पहावयाचा असेल तर मत्स्यपुराणोक्त आर्हो (कमलाकरभट्टानें) केलेल्या जलाशयोत्सर्गविधीत पाहावा. कूपादिकांचा उत्सर्ग केला नसेल तर दांष्ट्र सांगतो भविष्यांत—“उदकं हं सर्वदा पवित्र आहे. पण, संस्कार केलेलें नसेल तर तें अपवित्र आहे. हे राजश्रेष्ठ ! असंस्कृत उदकाला कुशाग्रानें देखील स्पर्श करू नये.” तसेंच—“वापी, कूप, तलाव इत्यादिकांत जें संस्कार केलेलें उदक नसेल तें सारें अपेय (प्राशनाम अयोग्य) होईल. तें प्राशन केलें तर चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें.”

अथ वृक्षारोपणं चंडेश्वरः आदित्यचांद्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरंगमवारुणाश्च एतेषु तारकागणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमिहोपदिशंति धीराः ।

आतां वृक्षारोपण सांगतो—

चंडेश्वर—“पुनर्वसु, मृग, मघा, पुष्य, विशाखा, रेवती, मूल, तीन उत्तरा, अश्विनी, शततारका, ह्या नक्षत्रांवर वृक्षादिक लावणें मनुष्यांस प्रशस्त आहे, असं विद्वान् सांगतात.”

अथ मूर्तिप्रतिष्ठा वसिष्ठः हस्तत्रयेमित्रहरित्रयेचपौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु तिस्रोत्तराधातृशशांकभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात् मात्स्ये चैत्रे वा फाल्गुने वा पित्र्येष्ठे वा माघवेतथा माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् नारदस्तु चैत्रनिषेधति विचैत्रे वेवमासेषु माघादिपुचपंचस्विति तेनात्र विकल्पः अत्र माघमासो विष्णुप्रतिष्ठाव्यतिरिक्तविषयः माघे कर्तुं विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेदिति विष्णुधर्मांतेरिति हेमाद्रिः मात्स्ये दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा चतुर्थ्यानां शमाप्रोति यमस्य स्यात्सुखावहा विनायकस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा पंचम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत् षष्ठ्यां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यारोगनाशिनी अष्टम्यां धान्यबहुलानवम्यां च विनश्यति भद्रकाल्याः कृतातत्र कर्तुर्भवति तुष्टये धर्मवृद्धिकीर्त्या दशम्यांतु तथा तिथौ एकादश्यांतथा युक्ता द्वादश्यांसर्वकामदा त्रयोदश्यांतथा ज्ञेया चतुर्दश्यां-

विनश्यति कृष्णपक्षेपंचदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत् पंचदश्यां तथा शुक्लसर्वकामकरी भवेत् अषाढे द्वे तथा मूल-
मुत्तरात्रयमेव च ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा हस्तोत्थिनी रेवती च पुष्यमृगशिरास्तथा अनूराधा-
तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते श्रीपतिः रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवानूराधैदवजीवभेषुग-
दितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कंदयोर्मैत्रेति गमरुचः करे निश्चिते भेदुर्गादिका-
नां शुभम् गणपरिवृद्धरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे श्रवसिसुगतनाम्नो वासवे लोक-
पानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु तेजस्विनीक्षेमकृद्भिदाहविधायिनी स्याद्वनदादृढा च आनंदकृत्कल्प-
विनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत्प्रतिष्ठा माधवीये वैश्वानसः मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः महि-
षासुरहृन्नीचस्थाप्या वैदक्षिणायने वैशब्दोप्यर्थे ।

आतां मूर्तिप्रतिष्ठा सांगतो—

वसिष्ठ—“हस्त, चित्रा, स्वाती, अनूराधा, ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीन उत्तरा, रोहिणी, मृग या नक्षत्रांवर सर्वे देवांची प्रतिष्ठा उत्तम म्हण्टी आहे.” मात्स्यांत—“चैत्रांत, फाल्गुनांत किंवा ज्येष्ठांत, अथवा वैशाखांत किंवा माघांत सर्वे देवांची प्रतिष्ठा शुभ होईल.” नारद तर चैत्राचा निषेध करितो, तो असा—“माघादिक जे पांच मास त्यांमध्ये चैत्र वर्ज्य करून इतरांत देवप्रतिष्ठा शुभ होईल.” चैत्र मात्स्यचंचनांनं घेतला आणि नारदानें निषिद्ध केला यावरून चैत्राविषयी विकल्प समजावा. येथें माघमास जो सांगितला तो विष्णुप्रतिष्ठांचून इतरांविषयी समजावा. कारण, “माघांत केलेली प्रतिष्ठा कर्त्याचा विनाश करणारी होईल. फाल्गुनांत केलेली प्रतिष्ठा शुभ-
दायक होईल.” असे विष्णुधर्मांत वचन आहे, अमें हेमाद्रि सांगतो. मात्स्यांत—“प्रतिपदेस केलेली प्रतिष्ठा धन देणारी, वृद्धि करणारी व दृढ अशी होते. द्वितीये धन देणारी होते. तृतीये धनप्रद होते. चतुर्थीस प्रतिष्ठा केली असतां नाश होतो. यमाची प्रतिष्ठा शुभावह होते. तशीच चतुर्थीस विनायकाची प्रतिष्ठा हितकारक होते. पंचमीस कर्त्याला वरदायक व लक्ष्मीयुक्त अशी होते. षष्ठीस सदा लक्ष्मीयुक्त होते. सप्तमीस रोगनाश करणारी होते. अष्टमीस बहुत धान्य देणारी होते. नवमीस विनाश करणारी होते. त्या नवमीस भद्रकाली देवीची प्रतिष्ठा केली असतां कर्त्याला आनंद करणारी होते. दशमीस धनवृद्धि करणारी होते. एकादशीस नशीच आहे. द्वादशीस सर्वे मनोरथ देणारी होते. त्रयो-
दशीस तशीच समजावी. चतुर्दशीस विनाश करणारी होते. अमावास्यास केलेली प्रतिष्ठा कर्त्याचा क्षय करणारी होईल. आणि पौर्णिमेस केलेली प्रतिष्ठा सर्वे काम पूर्ण करणारी होईल पूर्वाषाढा, मूल, तीन उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशीर्ष, अनूराधा, स्वाती, हीं नक्षत्रे देवांच्या प्रतिष्ठेविषयी प्रशस्त आहेत.” श्रीपति—“रोहिणी, उत्तरा, रेवती, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, धनिष्ठा, अनूराधा, मृग, पुष्य, त्या नक्षत्रांवर विष्णूची प्रतिष्ठा शुभ आहे. पुष्य, श्रवण, अभिजित्, या नक्षत्रांवर इंद्र व ब्रह्मदेव यांची; अनूराधांवर कुबेर व कार्तिकस्वामी यांची; हस्तावर सूर्याची; आणि मूलावर दुर्गादेवी इत्यादिकांची प्रतिष्ठा शुभ आहे. गणाधिप, राक्षस, यक्ष, भूतें, दैत्य, प्रमथ, शेष, सरस्वती, इत्यादिकांची प्रतिष्ठा रेवतीवर; बुद्धाची प्रतिष्ठा श्रवणावर; लोकपालांची प्रतिष्ठा धनिष्ठांवर; आणि सर्वांची प्रतिष्ठा स्थिर नक्षत्रांवर सांगितली आहे. रविवारी तेजस्विनी; सोमवारी कल्याणकारी; मंगळवारी अभिदाहकारी; बुधवारी धन देणारी; गुरुवारी दृढ; शुक्रवारी आनंदकारी; शनिवारी कल्पांती विनाश पावणारी अशी प्रतिष्ठा होते.” माधवीयांत वैश्वानस—“मातृका, भैरव, वराह, नारसिंह, त्रिविक्रम आणि देवी यांची प्रतिष्ठा दक्षिणायनांतही करावी.”

लिंगप्रतिष्ठायां विशेषः हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चये उत्तराशागते भानौ लिंगस्थापनमुत्तमम् दक्षिणेत्य-
यने पूज्यत्रिवर्षार्धे भयावहम् स्वगृहे स्थापननेष्टं तस्माद्वैदक्षिणायने स्थापनंतु प्रकर्तव्यं शिशिरादावुत्तये प्रावृषि-
स्थापितं लिंगं भवेद्द्वययोगदम् हेमंतज्ञानदं चैव लिंगस्थारोपणं मतम् रत्नावल्याम् माघफाल्गुनवैशाखज्ये-
ष्ठाषाढेषु पंचसु मासेषु शुक्लपक्षेषु लिंगस्थापनमुत्तमम् विष्णोरप्याहृतत्रैव वैश्वानसः मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ नि-
दितौ ब्रह्मणापुरा मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च वृषे वाप्यश्रुयद्भासे श्रावणे मासि वा भवेत् बौधायन-
सूत्रे विष्णुप्रतिष्ठा मुपक्रम्य द्वादश्यां श्रोणायां वायानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणीति कृत्तिकादि विशाखांते त्वित्यर्थः
सर्वदेवेषु मासविशेषो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे माघे कर्तुं विनाशाय फाल्गुने शुभदा भवेत् लोकानंदकरी चैत्रे-
वैशाखे वरसंयुता आज्ञायुता सदा ज्येष्ठे अषाढे धर्मवृद्धिदा श्रावणे धनहीना स्यात्प्रोष्ठपादे विनश्यति आश्विने-
नाशमाप्नोति बह्निना कार्तिके तथा सौम्ये सौभाग्यमतुलं पौषे पुष्टिरनुत्तमा दोषान्विता धिमासे स्यात्कर्तुं रात्मन्यप्य-

येति अत्राश्रवणाश्विनयोर्निषेधोमार्गशीर्षविधिश्चविष्णुव्यतिरिक्तविषयः पूर्वोक्तवचनादिति हेमाद्रिः
माघश्रावणभाद्रपदनिषेधः शिवव्यतिरिक्तविषयः तत्रतस्योक्तेः देवीस्थापनेतत्रैव विशेषो देवीपुराणे
वैष्णवाश्विनमेसासेत्तमाससर्वकामदा तथा नतिथिर्नचनक्षत्रंनोपवासोत्रकारणम् सर्वकालप्रकर्तव्यंकृष्ण-
पक्षविशेषतः अन्यश्चात्रविचारो हेमाद्रौ हेयः नारदः ह्येतर्हदीनाकर्तारं मंत्रहीनातु ऋत्विजम् स्त्रियलक्षण-
हीनातुनप्रतिष्ठासमोरिपुः ॥

लिंगप्रतिष्ठेविषयी—विशेष सांगतो हेमाद्रौ लक्षणसमुच्चयांत—“सूर्याचे उत्तरायणांत लिंगाचें स्थापन उत्तम आहे. दक्षिणायनांत लिंगाचें स्थापन केलें असतां दीड वर्षाचे आंत भय उत्पन्न करणारें होतें. तस्मात् कारणात् दक्षिणायनांत आपल्या घरी लिंगस्थापना इष्ट नाही. शिशिर, वसंत, ग्रीष्म या तीन ऋतूंत लिंगाचें स्थापन करावें. प्राष्ठ ऋतूंत लिंगस्थापन केलें असतां तें वरदायक आणि योगदायक होतें. आणि हेमंत ऋतूंत लिंगाचें स्थापन ज्ञानदायक होतें.”
रक्षावलींत—“माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, या पांच मासांत शुक्रपक्षीं लिंगाचें स्थापन उत्तम आहे.”
विष्णूचैही स्थापन सांगतो तेथेंच वैखानस—“मार्गशीर्ष आणि पौष हे दोन मास ब्रह्मदेवानें पूर्वी निश्चित केले आहेत. मासांमध्यें फाल्गुन, चैत्र आणि वैशाख हे श्रेष्ठ आहेत. अथवा ज्येष्ठ किंवा आश्विन किंवा श्रावण या मासांत विष्णूची स्थापना करावी.”
बौधायनसूत्रांत—विष्णुप्रतिष्ठेचा उपक्रम करून सांगतो—“द्वादशीस श्रावणावर किंवा जी इतर पुष्पनक्षत्रें (कृत्तिकादिक विशाखांपर्यंत) त्यांजवर विष्णूची स्थापना करावी. सर्व देवांविषयी विशेष मास सांगतो हेमाद्रौ लिंगप्रतिष्ठेविषयी—“माघांत केलेली प्रतिष्ठा कल्याणाचा नाश करणारी होते. फाल्गुनांत शुभदायक होते. चैत्रांत लोकांना आनंद करणारी, वैशाखांत वर देणारी, ज्येष्ठांत आज्ञाधारक, आषाढांत धर्म वाढविणारी, श्रावणांत धनरहिता, भाद्रपदांत विनाश पावणारी, आश्विनांत नाश पावणारी, कार्तिकांत अमीच्या योगानें नाश पावणारी, मार्गशीर्षांत अनुल सांभाळायदायक आणि पौषांत उत्तम पुष्टिदायक अशी होते. अधिक मासांत केलेली प्रतिष्ठा स्वतः दोषयुक्त होऊन कल्याण दोषकारक होते.” या वचनांत श्रावण आणि आश्विन यांचा निषेध (निवृत्त) केला आणि मार्गशीर्ष व पौष यांचा विधि केला तो विष्णूवाचून इतरांविषयी समजावा. कारण, याविषयी वर सांगितलेलें वैखानसवचन आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. माघ, श्रावण, भाद्रपद यांचा निषेध शिवव्यतिरिक्तविषयक आहे. कारण, त्या मासांत शिवलिंगाची स्थापना सांगितली आहे. देवीस्थापनाविषयी तेथेंच सांगतो—देवीपुराणांत—“माघांत व आश्विनांत देवीची स्थापना सर्वकाल उत्तम आहे.” तसेंच—“देवीच्या स्थापनाविषयी तिथि, नक्षत्र, उपवास यांचें कारण नाही. सर्वकाल देवीचें स्थापन करावें. कृष्णपक्षांत विशेषेंकरून करावें,” याविषयीचा इतर विशेष विचार हेमाद्रौतून पाहावा. नारद—“अर्थ (द्रव्य) हीन प्रतिष्ठा कल्याणाचा नाश करिते. मंत्रहीन प्रतिष्ठा ऋत्विजांचा नाश करिते. लक्षणहीन प्रतिष्ठा स्त्रियेचा नाश करिते. यास्तव प्रतिष्ठेसारखा दुसरा रिपु नाही.”

अत्राधिकारिणउक्ताः कृत्यकल्पतरौ देवीपुराणे वर्णाश्रमविभेदेन देवाः स्थाप्यास्तु नान्यथा ब्रह्मातु ब्राह्मणैः स्थाप्योगायत्रीसहितः प्रभुः चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः भैरवोपि चतुर्वर्णैरत्य-
जानांतथामतः मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः लिंगगृहीयतिर्वापि संस्थाप्यतु यजेत्सदा शिव-
सर्वस्वे भविष्ये यस्तु पूजयते लिंगं देवादिमांजगत्पतिम् ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा मत्परायणः तस्य-
श्रीतः प्रदास्यामि शुभलोकाननुत्तमान् तिथितत्त्वेस्कांदे शूद्रः कर्माणियोनित्यं स्वीयानि कुरुते प्रिये तस्याह-
मर्चागृहामि चंद्रखंडविभूषिते ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थश्च सुव्रते एवं दिने दिने देवपूजयेदं विकापतिम् संन्या-
सी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत् नमो ते नृशिवे नैव स्त्रीणां पूजाविधीयते एतच्च पुराणप्रसिद्धजीर्णलिंगपूजाविषयम्
यानि तु त्रिस्थलीसेतौ नारदीये यः शूद्रेणार्चितं लिंगं विष्णुं वा प्रणमेन्नरः न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्ता-
युतैरपि न मेघः शूद्रसंस्पृष्टं लिंगं वा हरिमेव वा स सर्वयातनाभोगीयावदाचंद्रतारकम् पाखंडपूजितं लिंगं नत्वा
पाखंडतां व्रजेत् आभीरपूजितं लिंगं नत्वा नरकमभ्रुते योषिद्विः पूजितं लिंगं विष्णुं वापि न मे तु यः सकोटिकुलसं-
युक्तमाकल्पं रौरवं वसेदित्यादीनि तानि नूतनस्थापितलिंगादिविषयाणि यदा प्रतिष्ठितं लिंगं मंत्रविद्विज्याविधि-
तदा प्रभृतिशूद्रश्च योषिद्विपिनसंस्पृशेदिति तत्रैवोक्तेः ।

मूर्तिप्रतिष्ठेविषयी अधिकारी सांगतो.

कृत्यकल्पतरुंत देवीपुराणांत—“ज्या वर्णास व आश्रमास ज्या देवाची प्रतिष्ठा सांगितली असेल त्या वर्णानें त्या आश्रमांत त्या देवाची प्रतिष्ठा करावी. इतरां कळू नये. गायत्रीसहित ब्रह्मदेवाची स्थापना ब्राह्मणांनी करावी. विष्णूची

स्थापना सुखेच्छु अशा चारही वर्णांनी करावी. आणि भैरवाची स्थापना चार वर्णांनी व अंत्यजांनी करावी. मातांची स्थापना सर्व लोकांनी करावी आणि पूजा करावी. लिंगाची स्थापना गृहस्थाश्रम्यने किंवा संन्याशाने करून त्याचें सतत पूजन करावें.”

शिष्यसर्वस्वांत भविष्यांत—भगवान् शंकर म्हणतात—“सकल देवांचा आदिभूत व जगताचा पति अशा माप्ती पूजा लिंगाचे ठायीं जो करितो; मग तो ब्राह्मण असो, क्षत्रिय असो, वैश्य असो किंवा मत्परायण शूद्र असो, त्याला मी संतुष्ट होऊन उत्तमोत्तम असे शुभ लोक देतो.”

तिथितत्त्वांत स्कांदांत—भगवान् शंकर म्हणतात—“हे प्रिये, जो शूद्र आपणास सांगितलेलीं कर्मे नित्य करितो त्यानें केलेली पूजा मी घेतों. चांगलें व्रत धारण करणारा ब्रह्मचारी, किंवा गृहस्थाश्रमी अथवा वानप्रस्थ यांनें प्रतिदिवशीं भवानीपति शंकराची पूजा करावी. संन्याशानें शंकराची पूजा प्रणवानेंच करावी. स्त्रियांना शंकराची पूजा ‘शिवायनमः’ याच मंत्रानें सांगितली आहे.” स्त्रिया, शूद्र इत्यादिकांस जो पूजेचा प्रकार सांगितला तो पुराणप्रसिद्ध जें पुरातन लिंग त्याच्या पूजेविषयीं समजावा. आतां जीं **त्रिस्थलीसेतू नारदीयांत**—“शूद्रानें पूजित लिंगास किंवा विष्णूस जो मनुष्य नमस्कार करील त्याची निष्कृति (पापनिरास) दहा हजार प्रायश्चित्तांनीं देखील कोठें पाहिली नाही. जो मनुष्य शूद्रानें स्पर्श केलेल्या लिंगास किंवा विष्णूस नमस्कार करील तो मनुष्य चंद्र व तारका आहेत तोपर्यंत सर्व यातना भोगणारा होईल. पाखंडानें पूजित लिंगास नमस्कार केल्यानें पाखंडी होईल. गवळ्यानें पूजित लिंगास नमस्कार केल्यानें नरकप्राप्ति होते. स्त्रियांनीं पूजित लिंगास किंवा विष्णूस जो नमस्कार करील तो कोटि कुळांनीं सहित कल्पपर्यंत रौरव नरकांत वास करील.” इत्यादिक वचनें नीं नवीन स्थापित लिंग, प्रतिमा इत्यादिविषयक समजावीं. कारण, “ज्या वेळीं मंत्रवेत्त्या ब्राह्मणांनीं यथाविधि लिंगाची प्रतिष्ठा केली असेल त्या वेळेपासून पुढें शूद्र किंवा स्त्रिया यांनीं त्याला स्पर्श करूं नये” असें तेथेंच सांगितलें आहे.

प्रतिष्ठायांतु शूद्रादीनांनाधिकारः स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणांच जनेश्वर स्थापनेनाधिकारोस्ति विष्णोर्वाशंकरस्य वा यः शूद्रसंस्कृतलिंगं विष्णुं वापिनमेन्नरः इहैवानंतदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु शूद्रो वा नुपनीतो वा स्त्रियो वापितोपि वा केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वानरकमश्नुते इति बृहन्नारदीयस्कांदोक्तेरिति त्रिस्थलीसेतौ-
पितामहचरणाः चतुर्वर्णैरिति पूर्वोक्तवचनाद्विष्णवादिप्रतिष्ठायां शूद्रस्य विकल्प इति युक्तं पश्यामः तत्रैव-
गौतमः शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः वाचस्पतिधृतम् प्राकृपश्चिमोदगास्यस्तु प्रातः सायं नि-
शासुचेति प्रयोगपारिजाते गृह्यपरिशिष्टे प्रतिमाः प्राङ्मुखी रुदङ्मुखो जेताऽन्यत्र प्राङ्मुखः एतच्च-
स्थिरप्रतिमाविषयं अन्यत्र च लार्चासु ।

प्रतिष्ठेविषयीं तर शूद्रादिकांना अधिकार नाही. कारण, “स्त्रिया, उपनयन न झालेले, आणि शूद्र यांना विष्णूच्या किंवा शंकराच्या स्थापनाविषयीं अधिकार नाही. जो मनुष्य शूद्रानें स्थापित लिंगास किंवा विष्णूस नमस्कार करील तो येथेंच अत्यंत दुःखें अनुभवितो; मग परलोकी गेल्यावर अनुभवील हें काय सांगावयाचें आहे? शूद्र किंवा अनुपनीत अथवा स्त्री किंवा पतित यांनीं विष्णूला किंवा शंकराला स्पर्शल्यानें त्यांम नरकप्राप्ति होते” असें बृहन्नारदीयांत स्कांदवचन आहे, असें **त्रिस्थलीसेतू** आमच्या पितामहांनीं (नारायणभट्टांनीं) सांगितलें आहे. ‘चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः’ ह्या वर सांगितलेल्या **देवीपुराण** वचनावरून विष्णु इत्यादिकांचे प्रतिष्ठेविषयीं शूद्राला विकल्प योग्य आहे, असें आम्हीं (कमलाकरभट्ट) समजतो. तेथेंच **गौतम** ‘याप्रमाणें शुचिर्भूत होऊन उत्तरेकडे मुख करून रावेदा शिवपूजा करावी.’ वाचस्पतीनें धरलेलें वचन—“प्रातःकालीं प्राङ्मुख होऊन पूजा करावी. सायंकालीं पश्चिमाभिमुख होऊन पूजा करावी. रात्रीं उत्तराभिमुख होऊन पूजा करावी.” **प्रयोगपारिजातांत** **गृह्यपरिशिष्टांत**—“प्राङ्मुखप्रतिमांची पूजा उदङ्मुख बसून करावी. चलप्रतिमांची पूजा प्राङ्मुख होऊन करावी.” या वचनांत उदङ्मुख बसून जी पूजा सांगितली ती स्थिर प्रतिमांची समजावी.

अथ प्रतिमाः भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये सौवर्णा राजतीताम्रीमृन्मयी च यथाभवेत् पाषाणधातुयुक्ता वारीतिकास्य मयी तथा रीतिः पितलं शुद्धदारुमयी वापि देवतार्चाप्रशस्यते अंगुष्ठपूर्वादारभ्य वित-
स्ति यावदेव तु गृहेषु प्रतिमाकार्यानाधिकाशस्य ते बुधैः पंचरात्रे तु मृदारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयी न त्विति निषेधोक्तः **भागवते** शैलीदारुमयी लौहीलेप्यालेख्याचसैकती मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता काष्ठमधुकस्यैव तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे कृत्वा तत्प्रतिमांचैव प्रतिष्ठाविधिना र्चयेदिति वाराहोक्तः
देवीपुराणे सप्तांगुलं समारभ्य यावच्च द्वादशांगुलम् गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादे वा धिकाशुभा ।

आतां देवतांच्या प्रतिमा सांगतो.

भार्गवार्चनदीपिकेंत भविष्यांत—“सोन्याची, रुप्याची, तांब्याची, मातीची, किंवा पाषाणाची, पितळेची, कळीस
४३ निर्ण.

कांत्याची अथवा शुद्ध काष्ठ्याची देवताप्रतिमा प्रशस्त आहे. अंगुष्ठपूर्वापासून एक वित्तीचे आंत उंचीची प्रतिमा घरांत असावी. वित्तीपेशां अधिक उंचीची प्रतिमा घरांत प्रशस्त नाही, असें विद्वान् सांगतात.” पंचरात्रांत तर—“माती, काष्ठ, लाक्षा, गोमेद, मेण यांची प्रतिमा करूं नये” असा निषेध सांगितला आहे. श्रीमद्भागवतांत—“पाषाणाची, काष्ठ्याची, लोहाची (धातूची), मृत्तिकेनें वगैरे लिपलेली, रंगांनीं काढलेली, वाळूची, मनांत आणलेली, आणि मण्याची केलेली अशी प्रतिमा आठ प्रकारची सांगितली आहे.” काष्ठ्याची प्रतिमा सांगितली, तें काष्ठ मोहाचेंच असावें. कारण, “त्या काष्ठांमध्ये मधुकाचें (मोहाचें) काष्ठ आणून त्याची प्रतिमा करून प्रतिष्ठाविधीनें तिची पूजा करावी.” असें बराहपुराणवचन आहे. देवीपुराणांत—“सात अंगुलांपासून बारा अंगुलंपर्यंत उंचीची घरांत अर्चा करावी. याच्याहून मोठी प्रतिमा मंदिरांत शुभकारक होते.

तिथितत्त्वेकालिकापुराणे प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्य देवस्य-
वाहरेः अन्येषामपि देवानां प्रतिमासु च पार्थिव प्राणप्रतिष्ठाकर्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये वासुदेवस्य जीजेन तद्वि-
ष्णोरित्यनेन च तथैव हृदयें गुह्यं दत्त्वा शस्त्रं च मंत्रं वित्तु एभिर्मंत्रैः प्रतिष्ठां तु हृदयं पि ममाचरेत् अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठं तु-
अस्यै प्राणाः क्षरंतु च अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कञ्चन हयशीर्षपंचरात्रे अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्या-
तिशयनात् आभिरूपाश्च विद्वानां देवः सान्निध्यमृच्छति प्रयोगपारिजातं व्यासः प्रतिमापट्टयंत्राणां
नित्यं स्नानं न कारयेत् कारयेत् पर्वदिवसे यदा वामलधारणम् ।

तिथितत्त्वांत कालिकापुराणांत—“प्रतिमेच्या दोन कपोलांग (गालांग) दक्षिण हस्तानें स्पर्श करून त्या प्रतिमे-
वर हरीची प्राणप्रतिष्ठा करावी. इतरही देवनांच्या प्रतिमांचे ठायीं देवपणा मिळ होण्यासाठी प्राणप्रतिष्ठा करावी. मंत्रवेत्त्या
ब्राह्मणांन वासुदेवाचें बीज आणि ‘तद्विष्णोः’ हा मंत्र उच्चारून अर्चेच्या हृदयाचे ठायीं वारंवार हात देऊन प्राणप्रतिष्ठा
करावी. तशीच पुढील मंत्रांही हृदयाचे ठायीं हात देऊन प्राणप्रतिष्ठा करावी. तो मंत्र—“अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठं तु
अस्यै प्राणाः क्षरंतु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कञ्चन ॥” हयशीर्षपंचरात्रांत—“अर्चा कर-
णाऱ्याच्या तपःसामर्थ्यानें, पूजेचा अतिशय ज्ञात्यानें आणि प्रतिमांच्या गोंदऱ्यानें प्रतिमांचे ठायीं देवाचें सान्निध्य होतें.”
प्रयोगपारिजातांत व्यास—“प्रतिमा, पट्ट आणि यंत्र यांना नित्य स्नान घालूं नये. पर्वदिवशी स्नान घालवें. किंवा
जेव्हां त्यांच्यावर मळ धरेल तेव्हां स्नान घालवें.”

लिंगविशेषस्थितितत्त्वे भविष्ये मृदुस्मगोशकृत्पिप्रताम्रकांस्यमयं तथा कृत्वा लिंगं कृत्वा पूज्य वसेत्क-
ल्पायुतं दिवि वाक्ष्वित्तप्रदं लिंगं स्फटिकं सर्वकामदं कृत्वा पूज्य विप्रेन्द्रलभ्यसे वाञ्छितं फलम् तत्रैव कालकौ-
मुद्यां स्कांदे अक्षादल्पपरीमाणं लिंगं कुत्रचिन्नरः कुर्वीतां गुप्ततो हस्तेन कदाचित् ममाचरेत् अक्षोऽशीति-
गुंजाः गुंजाः पंचालपमापकः तेषोऽक्षाक्षः कर्पोऽस्त्रीत्यमरकोशात् प्रयोगपारिजातं क्रियासारां नवाष्टस-
प्तांगुलिकं लिंगं श्रेष्ठमिहोच्यते पट्पंचकचतुर्मानं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् त्रिव्यं कांगुलिमानं यत्र विधंत कनीयसम्
एवं न व विधं प्रोक्तं चरलिंगं यथाक्रमम् ।

लिंगविषयी विशेष सांगतो तिथितत्त्वांत भविष्यांत—“मृत्तिका, भस्म, गोमय, पीठ, तांबें, कांसं यांपैकी कोणत्याही
पदार्थाचें लिंग करून एकवार त्याची पूजा केल्यानें अयुत (दहाहजार) कल्पपर्यंत स्वर्गांत त्याचा वास होईल. वृक्षाचें लिंग
द्रव्य देणारें आहे. स्फटिकाचें लिंग सर्व काम देणारें आहे. हे राजश्रेष्ठ ! तें लिंग तूं करून त्याची पूजा कर म्हणजे वाञ्छित
फल पावशील.” तेथेंच कालकौमुदीत स्कांदांत—“मनुष्यानें अक्षाहून अल्प प्रमाणाचें लिंग कोठेंही करूं नये. आणि
अंगुष्ठाहून आखड लिंग कधीही करूं नये.” अक्ष म्हं ८० गुंजा. कारण, “पांच गुंजा म्हणजे १ मासा. आणि ते सोळा
मासे म्हणजे एक अक्ष. त्यालाच कर्ष असें म्हणतात.” असा अमरकोश आहे. प्रयोगपारिजातांत क्रियासारांत—
“नऊ, आठ, किंवा सात अंगुलें प्रमाणाचें तीन प्रकारचें लिंग श्रेष्ठ म्हटलें आहे. सहा, पांच आणि चार अंगुलें प्रमाणाचें
तीन प्रकारचें लिंग मध्यम म्हटलें आहे. आणि तीन, दोन, व एक अंगुल प्रमाणाचें तीन प्रकारचें लिंग कनिष्ठ म्हटलें आहे.
याप्रमाणें चरलिंग अनुक्रमानें नऊ प्रकारचें सांगितलें आहे.”

अथ पंचसूत्रीनिर्णयः गौतमीतंत्रे लिंगमस्तकविस्तारोलिंगोच्छ्रायसमोमतः परिधिस्तत्रिगुणि-
तस्तद्वृत्तीठं व्ययस्थितम् प्रनालिकातथैव स्यात्पंचसूत्रविनिर्णयः अत्रेदंतत्त्वम् लिंगमस्तकविस्तारं लिंगोष्-
त्तासमं कृत्वा तत्रिगुणसूत्रवेष्टनाहं लिंगस्यौल्यं कृत्वा तत्समं वृत्तं चतुरस्रं वा पीठविस्तारमधश्चोर्ध्वं च कुर्वात् पीठोष्-

तातुलिंगोच्चतातोद्विगुणा पीठमध्येलिंगाद्विगुणस्थूलपीठोच्चतातृतीयांशेनकठंकृत्वातस्योर्ध्वअधश्चसमंबप्रद्वयं-
त्रयंवाकृत्वालिंगविस्तारपष्ठांशेनपीठोपरिबाह्यमेखलांकृत्वातदंतःसंलग्नतत्समंखातंकृत्वा पीठाद्वहिलिंगसम-
दीर्घापीठार्धदीर्घावामूलेदैर्घ्यसमविस्तारांअग्रेतदर्धविस्तारांतृतीयांशेनमध्येखातांपीठवत्समेखलांप्रनालिकांकु-
र्यादिति अत्रमूलंसिद्धांतशेखरेशैवागमेचज्ञेयम् ।

आतां पंचसूत्रीनिर्णय सांगतो—

गौतमीतंत्रांत—“लिंगाचे मस्तकाचा विस्तार, लिंगाची उंची, लिंगाचें स्थूलत्व, पीठविस्तार आणि प्रणालिका यांच्या मानाचीं पांच सूत्रं म्हटलीं आहेत. लिंगाचे मस्तकाचा विस्तार लिंगाचे उंचीइतका असावा. त्याच्या तिप्पट परिधि (लिंग-स्थूलत्व) असावा. तसेंच पीठ आणि प्रणालिकाही तशीच असावी. हा पंचसूत्रांचा निर्णय होय.” याचें तत्त्व असें आहे की, एका सूत्रांनं लिंगाचे मस्तकाम घेउन करावें. त्या सूत्राइतकें उंच लिंग करावें. त्याच्या तिप्पट सूत्राचें वेष्टन होईल इतकें स्थूल लिंग करावें. लिंगाच्या स्थौल्याइतका पीठाचा विस्तार वर्तुल किंवा चतुरस्र खालीं आणि वरती करावा. लिंगाचे उंचीचे दुप्पट पीठाची उंची करावी. पीठाच्या मध्यभागीं लिंगाहून दुप्पट स्थूल व पीठाच्या उंचीचे तृतीयांशानें कंठ करावा. कंठाच्या ऊर्ध्वभागीं आणि अधोभागीं गमान असे दोन किंवा तीन वस्त्र करून पीठावरती लिंगविस्ताराच्या पष्ठांशानें बाह्य मेखला करून त्याच्या आंत संलग्न असें त्याच्या गमान खात करावें. पीठाच्या बाहेर उत्तरेकडे लिंगाचे उंचीइतक्या लांबीची किंवा पीठाच्या उंचीच्या निम्मे लांबीची, मुळाग लांबीचे गमान विस्ताराची, अग्रभागीं त्याच्या निम्मे विस्ताराची, मध्यभागीं खात केलेली, पीठाप्रमाणें मेजलागहित अशी प्रणालिका करावी. याचीं मूलवचनं सिद्धांतशेखरांत आणि शैवागमांत पाहावीं.

तिथितत्त्वब्राह्मे सर्वत्रैवप्रशस्नोऽजःशिवसूर्यार्चनविना तत्रैववाराहपाद्मयोः गृहेलिंगद्वयनार्च्यं शालग्रामद्वयंतथा द्वेचक्रेद्वारकायास्तुनार्च्यंसूर्यद्वयंतथा शक्तित्रयंतथानार्च्यंगणेशत्रयमेवच द्वौशंखौनार्चये-
च्चैवभग्रांचप्रतिमांतथा नार्चयेच्चतथासमत्स्यकूर्मादिदशकंतथा गृहेप्रिदग्धाभग्राश्रनार्चाःपूज्यावसुंधरे एतासां पूजनान्नित्यमुद्वेगंप्राप्रयाद्गृही शालग्रामाःसमाःपूज्याःसमेपुद्धितयंनहि विपमानैवपूज्यास्तुविपमेष्वेकएवहि शालग्रामशिलाभग्रापूजनीयामचक्रका खंडिताभकुटितावापिशालग्रामशिलाशुभा वाराहे दद्याद्भक्त्यायो देविशालग्रामशिलांनरः मुवर्णमहितांदिव्यांपृथ्वीदानफलंलभेत् **तत्रैव** यःपुनःपूजयेद्भक्त्याशालग्रामशिला-
शतम् तत्फलनैवशक्तोहंवक्तुंवर्षशतंरपि **विष्णुपुराणे** ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रश्चपृथिवीपते स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयतिनान्यथा ।

तिथितंत्रांत ब्राह्मांत—“शिवपूजा आणि सूर्यपूजा यांचाचून इतर सर्वत्र ठिकाणीं पूजासमयीं शंख असणें प्रशस्त आहे.” तेथेंच **वाराहपुराणांत पद्मपुराणांत—**“घरांत दोन लिंगांची पूजा करूं नये. तशीच दोन शालग्रामांची पूजा करूं नये. द्वारकेंतील दोन चक्रांकांची पूजा करूं नये. तशीच दोन सूर्यकांतांची पूजा करूं नये. तशीच तीन शक्तींची (देवींची) आणि तीन गणपतींची पूजा करूं नये. दोन शंखांची पूजा करूं नये. भग्न झालेल्या प्रतिमेची पूजा करूं नये. मत्स्य, कूर्म इत्यादिक दहा अवतारांची पूजा करूं नये. अग्नांनं जळालेल्या व भग्न झालेल्या (फुटलेल्या) प्रतिमा घरांत पुजूं नयेत. यांच्या पूजनानें गृहस्थाश्रम्याला नित्य उद्वेग प्राप्त होईल. शालग्राम सम पुजावे. समांमध्ये दोन पुजूं नयेत. विषम पुजूं नयेत. पण विषमामध्ये एकच पुजावा. शालग्रामशिला भग्न झालेली असली तरी चक्रयुक्त असली म्हणजे ती पुजावी. शालग्रामशिला तुकडे झालेली किंवा फुटलेली असली तरी ती शुभकारक आहे.” **वाराहान्त—**“जो मनुष्य सुवर्णसहित शालग्रामशिला भक्तास देईल त्याला पृथ्वीदानाचें फळ मिलेल.” तेथेंच—“जो मनुष्य मोठ्या भक्तीनं शंभर शालग्रामांची पूजा करील त्याचें फळ शेंकडों वर्षांनीं देखील सांगण्यास मी समर्थ नाहीं.” **विष्णुपुराणांत—**“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र हे स्वधर्मतत्पर होऊन विष्णूची आराधना करितात. स्वधर्मविमुख होऊन करीत नाहींत.”

अविभक्तानामपिपृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजाते आश्वलायनः पृथगप्येकपाकानां ब्रह्म-
यज्ञोद्विजातिनाम् अग्निहोत्रसुरार्चाचसंध्यानित्यंभवेत्पृथक् तत्रैवविष्णुधर्मे शालग्रामशिलांवापिचक्रांकि-
तशिलांतथा ब्राह्मणःपूजयेन्नित्यंक्षत्रियादिनपूजयेत् इदंस्पर्शसहितपूजाविषयम् शूद्रोवापुनपीतोबाह्यो-
वापतितोपिवा केशवंवाशिवंवापिस्पृहानरकमभुते ब्राह्मण्यपिहरंविष्णुंनस्पृशेच्छेयइच्छती सनाथावुत्तना-
वापतितोपिवा केशवंवाशिवंवापिस्पृहानरकमभुते ब्राह्मण्यपिहरंविष्णुंनस्पृशेच्छेयइच्छती सनाथावुत्तना-

वातस्यानास्तीहनिष्कृतिः स्त्रीणामनुपनीतानांशूद्राणांचजनेश्वर स्पर्शनेनाधिकारोस्तिविष्णोर्वाशंकरस्यचेति-
स्कांदात् स्पर्शरहिततुतयोर्भवत्येव शालग्रामंनस्पृशेत्तुहीनवर्णोवसुंधरे स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शोवज्रस्पर्शाधिको-
 मतः मोहाद्यःसंस्पृशेच्छूद्रोयोषिद्वापिकदाचन स्वपतेनरकेयोरेयावदाभूतसंप्रवम् यदिभक्तिर्भवेत्तस्यस्त्रीणां-
 वापिवसुंधरे दूरादेवास्पृशनपूजांकारयेत्सुसमाहितइति **वाराहोक्तेः** शालग्रामशिलामात्रेनिर्बोधनप्रति-
 मादौ सर्ववर्णैस्तुसंपूज्याःप्रतिमाःसर्वदेवताः लिंगान्यपितुपूज्यानिमणिभिःकल्पितानिचेतितत्रैवोक्तेः
 चत्वारोब्राह्मणैःपूज्यास्त्रयोरजन्यजातिभिः वैश्यैर्द्वौवैवसंपूज्यौतथैकःशूद्रजातिभिरिति**स्कांदात्** अन्येतु-
 दीक्षितविषयत्वेनव्यवस्थामाहुः **विष्णुधर्मे** तयोरसंभवेर्चावैसाचेहनवधास्मृता रत्नजाहेमजाचैवराजती-
 ताम्रजातथा रैतिक्यर्चातथालौहीशैलजाद्रुमजातथा अधमाधमाचविज्ञेयामृन्मयीप्रतिमाचया एषांफलानि-
 तत्रैवज्ञेयानि नाच्योगृहेऽश्मजामूर्तिश्चतुर्गुलतोधिका नवितस्यधिकाधातुसंभवाश्रेयश्छत्ता एवंलक्षणसंप-
 न्नापारंपर्यक्रमागता उत्तमासातुविज्ञेयागुरुदत्तापितत्समा **तत्रैवपादो** शालग्रामंप्रकम्य तत्राप्यामलकीतु-
 ल्यापूज्यासूक्ष्मैवयाभवेत् यथायथाशिलासूक्ष्मातथास्यातुमहत्फलम् **तथा** यवमात्रंतुगर्तःस्याद्यवार्धलिंग-
 मुच्यते शिवनाभिरितिख्यातस्त्रिपुलोकेषुदुर्लभः **तत्रैव** शालग्राममयीमुद्रासंस्थितायत्रकुत्रचिन वाराणस्या-
 यवाधिक्यंसमंताद्योजनत्रयम् योमृतस्तत्समीपेतुमृतोवानीयतेतिकम् मवैमोक्षमवाप्नोतिमत्यंसत्यंनचान्यथा
तत्रैव चक्रांकमिथुनंपूज्यनैकचक्रांकमर्चयेत् चक्रांकमिथुनात्सार्धशालग्रामंप्रपूजयेत् तत्रैव**वाराहे** म्लेच्छ-
 देशेशुचौवापिचक्रांकोयत्रतिष्ठति योजनानांतथात्रीणिममक्षेत्रंवसुंधरे **तत्रैव**शालग्रामंप्रकम्य कयक्रीतापरि-
 ज्ञेयामध्यमायाचिताधमा **प्रयोगपारिजाते वाराहे** एवंलक्षणसंपन्नापारंपर्यक्रमागता उत्तमासातु-
 विज्ञेयागुरुदत्तापितत्समा ।

अविभक्तानां देखील पृथक् देवपूजा सांगतो **प्रयोगपारिजातांत आश्वलायन**—“एकत्र ठिकाणां पाक करून
 भोजन करणा-याही द्विजांस ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवपूजा, संख्या ही नित्य वेगवेगळीं सांगितली आहेत.” तेथेंच **विष्णु-**
धर्मांत—“शालग्रामशिला आणि चक्रांकितशिला यांची पूजा ब्राह्मणांनीं नित्य करावी. क्षत्रियांनीं करूं नये.” हा क्षत्रि-
 यादिकांस निषेध सांगितला तो स्पर्श करून पूजेविषयीं समजावा. कारण, “शूद्र, किंवा मुंज न झालेला किंवा स्त्रिया
 अथवा पतित हे विष्णूला किंवा शिवाला स्पर्श करितील तर नरकास जातील. कल्याण इच्छिणाऱ्या ब्राह्मणाच्या स्त्रियेनें
 देखील शिवाला आणि विष्णूला स्पर्श करूं नये. मग ती सर्भर्तृका अगो किंवा गृत्तर्भर्तृका असो, ती जर शिवाला किंवा
 विष्णूला स्पर्श करील तर त्या पापाची ह्या लोकां निष्कृति होणार नाही. स्त्रिया, मुंज न झालेले, आणि शूद्र यांम विष्णूच्या
 किंवा शंकराच्या स्पर्शविषयीं अधिकार नाही,” असें **स्कांद**वचन आहे. विष्णूची व शंकराची स्पर्शरहित पूजा तर
 स्त्रीशूद्रांना होतच आहे. कारण, “हीनजातीच्या मनुष्यांनीं शालग्रामास स्पर्श करूं नये. शालग्रामास स्त्रियेच्या किंवा शूद्राच्या
 हाताचा स्पर्श वज्राच्या स्पर्शाहून अधिक मानला आहे. जो कोणी शूद्र किंवा स्त्री मोहाच्या योग (अविवेकानें) जर
 कधीं स्पर्श करील तर तो प्रलयकालपर्यंत नरकांत पडेल. जर त्या शूद्राची किंवा स्त्रियांची शालग्रामावर भक्ति असेल तर
 स्पर्श केल्यावांचून दुरूनच समाधान अंतःकरणानें पूजा करावी.” असें **वाराह**वचन आहे. हा स्पर्शाचा निषेध शालग्राम-
 माविषयीं समजावा. प्रतिमादिकांविषयीं स्पर्शाचा निषेध नाही. कारण, “सर्व देवतांच्या प्रतिमा साऱ्या वर्णांनीं पुजाव्या.
 आणि मण्यांचीं केलेलीं लिंगं देखील साऱ्या वर्णांनीं पुजावी,” असें तेथेंच सांगितलें आहे. आणि “ब्राह्मणांनीं चार पुजावे,
 क्षत्रियांनीं तीन पुजावे, वैश्यांनीं दोनच पुजावे. आणि शूद्रांनीं एक पुजावा,” असें **स्कांद**वचन आहे. इतर विद्वान् तर—
 ज्यानें दीक्षा घेतली असेल त्या हीनवर्णांनींही पूजा करावी. दीक्षा घेतली नसेल त्यानें पूजा करूं नये. अशी वरील वचनाची
 व्यवस्था सांगतात. **विष्णुधर्मांत**—“शालग्राम व बाण यांचा असंभव असेल तर अर्चा (प्रतिमा) करावी. ती प्रतिमा
 नऊ प्रकारची सांगितली आहे, ती अशी—रत्नाची, सुवर्णाची, रुप्याची, तांब्याची, पितळेची, लोहाची, पाषाणाची,
 काष्ठाची, आणि सर्वांत कनिष्ठ मातीची प्रतिमा करावी.” या प्रतिमांचीं फलं तेथेंच जाणावीं. “पाषाणाची मूर्ति चार अंगु-
 लांहून मोठी घरांत पूजूं नये. आणि धातूची मूर्ति विंतीहून मोठी घरांत पूजूं नये.” तेथेंच पाद्मांत शालग्रामाचा उपक्रम
 करून सांगतो—“त्यांत देखील जी आंवळ्यासारखी सूक्ष्म असेल तीच पूजावी. शालग्रामशिला जशी जशी सूक्ष्म असेल
 तसें तसें मोठें फल प्राप्त होतें. तसेंच—ज्या शालग्रामास यवाएवढा गर्त (छिद्र) असून त्यांत यवार्धाएवढें लिंग
 असेल तो शालग्राम **शिखनाभि** म्हणला आहे. तो तीन लोकांत दुर्लभ आहे.” तेथेंच—“जेथें कोठें शालग्रामाची

शिला असेल तें स्थळ आसमंतात भागीं तीन योजनेंपर्यंत वाराणसीहून अधिक फलदायक आहे. त्या शालग्रामाच्या समीप जो मरेल किंवा मेल्यावर शालग्रामाच्या समीप नेला जाईल, तो मोक्षास जाईल हें सत्य सत्य आहे. असत्य होणार नाही.” तेथेंच—“दोन चक्रांकितांची पूजा करावी. एक चक्रांकित पुजूं नये. दोन चक्रांकितांसह शालग्रामाची पूजा करावी.” तेथेंच वाराहांत—“म्लेच्छदेशांत किंवा अशुचि प्रदेशांतही जेथें चक्रांक असेल तें तीन योजनेंपर्यंत माझें (भगवंताचें) क्षेत्र आहे.” तेथेंच शालग्रामाचा उपक्रम करून सांगतो.—“द्रव्य देऊन विकत घेतलेली शालग्रामशिला मध्यम आहे. याचना करून आणलेली कनिष्ठ आहे.” प्रयोगपारिजातांत वाराहांत—“या लक्षणांनीं युक्त परंपरेनें प्राप्त झालेली ती उत्तम समजावी. आणि गुरूनें दिलेली असेल तर तीही त्याच्यासारखी उत्तम जाणावी.”

अथपार्थिवपूजा नंदिपुराणे आयुष्मान्बलवान्श्रीमान्पुत्रवान्धनवान्सुखी वरमिष्टंलभेक्षिं पार्थिवःसमर्चयेत् तस्मात्पार्थिवंलिंगंज्ञेयंसर्वार्थसाधकं तत्रैव गोभूहिरण्यवल्गादिबलिपुष्पनिवेदने ह्येयो-
नमःशिवायेतिमंत्रःसर्वार्थसाधकः सर्वमंत्राधिकश्चायमोकाराद्यःपडश्चरः भविष्ये मूर्तयोष्टौशिवस्यैताः-
पूर्वादिक्रमयोगतः आग्नेय्यंताःप्रपूज्यास्तुवेद्यांलिंगेशिवंयजेत् अत्रनप्राचीमप्रतःशंभोरितिरुद्रयामलेनिषेधात्
नांतरालंप्राची किंतुप्रसिद्धैव तिथितत्त्वेदेवीपुराणे मृदाहरणसंघट्टेप्रतिष्ठाह्वानमेवच स्तूपनंपूजनंचैव-
विसर्जनमतःपरं हरोमहेश्वरश्चैवशूलपाणिःपिनाकधृक् शिवःपशुपतिश्चैवमहादेवइतिक्रमः स्कांदे शुष्का-
ण्यपिचपत्राणिश्रीवृक्षस्यनिवेदयेत् तत्रैवभविष्ये धत्तूरकैश्चयोलिंगंसकृत्पूजयतेनरः सगोलक्षफलंप्राप्य-
शिवलोकेमहीयते योगिनीतंत्रे शिवागारेऽल्लक्षकंचसूर्यागारेचशंखं दुर्गागारेवंशवाद्यंमधूरीचनवादेत्ये-
वश्राद्धहेमाद्रौस्कांदे स्पृष्ट्वा रुद्रस्यनिर्मात्यंवाससाआहुतःशुचिः प्रयोगपारिजातेक्रियासारे मध्य-
मानामिकामध्येपुष्पसंगृह्यपूजयेत् अंगुष्ठतर्जन्यग्राभ्यांनिर्मात्यमपनोदयेत् अपनीतंचनिर्मात्यंचंडेशायनिवे-
दयेत् अशून्यमस्तकंलिंगंसदाकुर्वीतपूजकः शूलपाणौलैंगे वरंप्राणपरित्यागःशिरसोवापिकर्तनम् नचै-
वापूज्यभुंजीतशिवलिंगेमहेश्वरम् सूतकेसूतकेचैवनत्याज्यंशिवपूजनम् तिथितत्त्वेऽलैंगे विनाभस्मत्रिपुंड्रे-
णविनारुद्राक्षमालया पूजितोपिमहादेवोनस्यात्तस्यफलप्रदः तस्मान्मृदापिकर्तव्यंललाटेवैत्रिपुंड्रकम् ।

आतां पार्थिवपूजा सांगतो—

नंदिपुराणांत—“जो पार्थिवलिंगाची पूजा करील तो आयुष्यवान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी असा होऊन अभीष्ट वर पावेल. तस्मात् कारणात् पार्थिवलिंग सर्वार्थांचें साधक आहे, असें जाणावें.” तेथेंच सांगतो—“गाई, भूमि, सुवर्ण, वस्त्रं वगैरे, बलि, पुष्पं यांच्या निवेदनाविषयीं ‘नमः शिवाय’ हा मंत्र जाणावा. हा मंत्र सर्वार्थसाधक आहे. या मंत्राच्या आधीं ‘ॐकार लावून पडश्चर (राहा अक्षरांचा) मंत्र होतो, तो सर्व मंत्रांहून अधिक आहे.” **भविष्यांत**—“क्षिति, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, सोम, सूर्य, ह्या आठ सूर्यां शिवाच्या आहेत. पूर्वेपासून (प्राचीपासून) अनुक्रमानें आग्नेयीपर्यंत आठ दिशांस यांची क्रमानें पूजा करावी. आणि वेदीचे ठायीं लिंगावर शिवाची पूजा करावी.” येथें प्राची दिशा कोणती समजावी ! कारण, ‘पूज्य आणि पूजक यांच्या मधील दिशा प्राची कल्पावी,’ या वचनावरून मधली प्राची आली आहे, ती घ्यावी की काय ! असा संशय आला म्हणून सांगतो—“शिवाच्या अग्रभागीं प्राची कल्पूं नये” असा रुद्रयामलांत निषेध असल्यामुळे येथें पूज्यपूजकांच्या मधली दिशा प्राची समजूं नये. तर प्रसिद्ध जी प्राची तीच येथें घ्यावी. **तिथितत्त्वांत देवीपुराणांत**—“माती आणणें, ती मळून तिचें लिंग करणें, प्रतिष्ठा करणें, आवाहन करणें, स्नानादिक उपचार करणें, पूजा करणें, आणि विसर्जन करणें; हे सर्व उपचार अनुक्रमानें हर, महेश्वर, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति, महादेव, ह्या नाममंत्रांनीं करावे.” **स्कांदांत**—“बिंबवृक्षाचीं शुष्क पत्रें असलीं तरी तीं निवेदन करावीं.” तेथेंच **भविष्यांत**—“जो मनुष्य धत्तूरपुष्पांनीं एकवार लिंगाची पूजा करितो तो लक्ष गोप्रदानांचें फल पावून शिवलोकीं पूज्य होतो.” **योगिनीतंत्रांत**—“शिवमंदिरांत झांज, सूर्यमंदिरांत शंख, आणि देवीच्या मंदिरांत पांवरी, मधूरी हीं वाजवूं नयेत.” **श्राद्धहेमाद्रौत स्कांदांत**—“शिवनिर्माल्यास स्पर्श केला असतां वस्त्रसहित स्नान करावें, म्हणजे शुद्ध होतो.” **प्रयोगपारिजातांत क्रियासारांत**—“मध्यमा व अनामिका ह्या दोन अंगुलींमध्यें पुष्प घेऊन पूजा करावी. अंगुष्ठ व तर्जनी यांच्या अग्रानीं निर्मात्य काढावा. काढलेला निर्मात्य चंडेशाला निवेदन करावा. पूजकानें सर्वेकालीं लिंगाचें मस्तक शून्य करूं नये.” **शूलपाणींत लिंगपुराणांत**—“प्राणत्याग किंवा मस्तकच्छेद झालेला श्रेष्ठ आहे; पण शिवलिंगावर शिवाची पूजा केल्यावांचून भोजन करूं नये. जननाशौचांत किंवा वृत्ताशौचांतही

शिवपूजन टांकू नये.” तिथितत्वांत लिपुःराणांत—“भस्माचा त्रिपुंड्र केल्यावांचून व रुद्राक्षमाळा धारण केल्यावांचून महादेवाची पूजा केली तरी ती त्यास फलप्रद होणार नाही. तस्मात् मृतिकेचा तसे लळाटावर त्रिपुंड्र करावा.”

रुद्राक्षधारणेविशेषः शिवरहस्ये एकवक्त्रःशिवःसाक्षाद्ब्रह्महत्यांव्यपोहति अवध्यत्वंप्रतिस्रोतोव-
ह्विस्तंभकरोतिच द्विवक्त्रोहरगौरीस्याद्रोवधाघचनाशकृत् त्रिवक्त्रोह्यभिजन्माथपापराशिप्रणाशयेत् चतुर्वक्त्रः-
स्वयंब्रह्मानरहत्यांव्यपोहति पंचवक्त्रस्तुकालाभिरगम्याभक्ष्यपापनुत् पड्वक्त्रस्तुगुहोद्भेयोभ्रूणहत्यादिनाशयेत्
सप्तवक्त्रस्त्वनंतःस्यात्स्वर्णस्तेयादिपापहृत् विनायकोष्टवक्त्रःस्यात्सर्वानृतविनाशकृत् भैरवोनववक्त्रस्तुशिवसा-
युज्यकारकः दशवक्त्रःस्मृतोविष्णुभूतप्रेतभयापहः एकादशमुखोरुद्रोनायज्ञफलप्रदः द्वादशस्यस्तथादित्यः-
सर्वरोगनिबर्हणः त्रयोदशमुखःकामःसर्वकामफलप्रदः चतुर्दशस्यःश्रीकंठोवंशोद्धारकरःपण्डितः ।

रुद्राक्षधारणाविषयीं विशेष सांगतो—शिवरहस्यांत—“एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव आहे, त्याचें धारण केल्यानें ब्रह्महत्यापाप जातें, उदकांत मरण येत नाही, अग्नींत पडला असतां अग्नीचें स्तंभन होतें. त्रिमुखी रुद्राक्ष हा हरगौरीस्वरूपी आहे, तो गोवधादि पाप दूर करितो. त्रिमुखी रुद्राक्ष हा अभिजन्मा (कार्तिकस्वामी) आहे, तो पापराशीचा नाश करितो. चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वतः ब्रह्मदेव आहे, तो मनुष्यहत्येचें पाप दूर करितो. पंचमुखी रुद्राक्ष हा कालाभि आहे, तो अगम्या-गमनादि पाप दूर करितो. षण्मुखी रुद्राक्ष गुह आहे, तो भ्रूणहत्यादि पाप घालवितो. गणमुखी रुद्राक्ष अनंत आहे, तो स्वर्ण-स्तेयादि पाप दूर करितो. अष्टमुखी रुद्राक्ष विनायक आहे, तो गान्या अनृतपातकांचा नाश करितो नवमुखी रुद्राक्ष भैरव आहे, तो शिवसायुज्य देणारा आहे. दशमुखी रुद्राक्ष विष्णु आहे, तो भूतप्रेतभयाचा दूर करितो. एकादशमुखी रुद्राक्ष रुद्र आहे, तो अनेक यज्ञांचें फल देणारा आहे. द्वादशमुखी रुद्राक्ष आदित्य आहे, तो सर्व रोग दूर करणारा आहे. त्रयोदश-मुखी रुद्राक्ष काम आहे, तो सर्व कामना पूर्ण करणारा आहे. चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष हा श्रीकंठ आहे, तो वंशाचा उद्धार करणारा आहे.”

तथा विनामंत्रेणयोधत्तेरुद्राक्षंभुविमानवः सयातिनरकानयोगन्यावदिंद्राक्षनुदंश पंचामृतपंचगव्यं
ज्ञानकालेप्रयोजयेत् रुद्राक्षस्यप्रतिप्रायांमंत्रंपंचाक्षरंतथा त्रियंवकादिमंत्रंचतथातत्रप्रयोजयेत् यद्वा ॐ
अघोर ओंह्रै अघोरतर ॐ न्ह्रौंन्हांनमस्तेरुद्ररूपन्ह्रैस्वाहा अनेनाभिर्मन्त्र्यधारयेत् **तथा** अष्टोत्तरशतंका-
र्थाचतुःपंचाशदेववा सप्तविंशतिमानावातनोहीनाधमाभृता **प्रजापतिः** मोक्षार्थीपंचविशत्याधनार्थीत्रिंश-
ताजपेत् पुष्ट्यर्थीपंचविंशत्यापंचदश्याभिचारके सप्तविंशतिरुद्राक्षमालयादेहसंस्थया यत्करोतिनरःपुण्यंस्व-
कोटिगुणंभवेत् योददातिद्विजेभ्यश्चरुद्राक्षंभुविस्मन्मुख्यम तस्यप्रीतोभवेद्गुहःस्वपदंचप्रयच्छतीति **पदार्था-**
दर्शो बोपदेवः रुद्राक्षानकंठदेशेदशनपरिमितानमस्तकेविंशतीदृष्टपट्पट्कर्णप्रदेशेकस्यगुलकृतेद्वादशद्वा-
दशैव बाहोरींदोःकलाभिर्नयनयुगकृतेएकमेकंशिखायांवक्षस्यप्राधिकंयःकलयतिशतकंसम्वयंनीलकंठः ॥

तसेंच—“ जो मनुष्य भूलोकी मंत्रावांचून रुद्राक्ष धारण करितो तो मनुष्य चवदा इंद्र आहेत तोपर्यंत घोर नरकांत जातो. रुद्राक्षाला ज्ञान घालण्याच्या सप्तर्षी पंचामृतेत आण पंचगव्ये ही घालावी. रुद्राक्षाच्या प्रतिप्रायपरीं पंचाक्षर मंत्र योजावा. तसाच त्या ठिकाणीं ‘त्र्यंबकं०’ हा मंत्रही योजावा.” अथवा—“ॐ अघोर ॐ न्ह्रै अघोरतर ॐ न्ह्रौंन्हां नमस्ते रुद्ररूपन्ह्रै स्वाहा” ह्या मंत्रांन रुद्राक्षाचें अभिमंत्रण करून धारण करावें. तसेंच—“एकजे आठ रुद्राक्षांची माळा करावी. किंवा चौपन्न रुद्राक्षांची करावी. अथवा सत्तावीस रुद्राक्षांची करावी. याहून कमी रुद्राक्षांची माळा अधम म्हणली आहे.” **प्रजापति—**“मोक्षाची इच्छा करणारांन पंचवीस रुद्राक्षांच्या मालेनें जप करावा. धनेच्छेनें तीस रुद्राक्षांच्या मालेनें जप करावा. पुष्टीच्या इच्छेनें पंचवीस रुद्राक्षांच्या मालेनें जप करावा. अभिचार (जागणादि) कर्माविषयीं पंधरा रुद्राक्षांच्या मालेनें जप करावा. सत्तावीस रुद्राक्षांची माळा अंगावर घालून मनुष्य जें पुण्यकर्म करितो तें गारें कोटिपट होतें. भूलोकीं जो मनुष्य उत्तममुखाचा रुद्राक्ष ब्राह्मणांना देतो त्याला रुद्र संतुष्ट होऊन आपलें पद देतो.” **पदार्थादर्शांत बोपदेव—**“कंठांत बत्तीस, डोक्यांत चाळीस, एकएका कानांत सहा सहा, एका एका हातांत बारा बारा, एकएका बाहूवर सोळा सोळा, दोन डोळ्यांस एक, शेंडींत एक आणि वक्षस्थलावर १०८ रुद्राक्ष असे जो रुद्राक्ष धारण करितो तो स्वतः नीलकंठ (महादेव) आहे, असें समजावें.”

हेमाद्रौशिवधर्मे ज्ञानपलशतज्ञेयमभ्यंगःपंचविंशतिः पलानांद्वेसहस्रेतुमहाज्ञानप्रकीर्तितम् पंचविं-
शत्पलंलिंगेअभ्यंगकारयेदथ शिवस्यसर्पिषाज्ञानंप्रोक्तंपलशतेनच तावतामधुनाचैवदध्नाचैवततःपुनः ताव-

तैवक्षीरेणगव्येनैवभवेत्ततः भूयःसार्धसहस्रेणपलानामैक्षवेणच रसेनकारयेत्स्नानंभक्त्याचोष्णांबुनाततः
विष्णवाद्दौतुस्कांदे क्षीरादशगुणंद्राघृतेनैवदशोत्तरम् घृतादशगुणंक्षौद्रंक्षौद्राक्षैश्वजंतथा ब्राह्मे
देवानांप्रतिमायत्रघृताभ्यंगक्षमाभवेत् पलानितत्रदेयानिश्रद्धयापंचविंशतिः इदंकोडीकृताभिप्रायेण तत्रैव
संग्रहे विष्वक्सेनायदातव्यनैवेद्यस्यशतांशकम् पादोदकंप्रसादंचलिंगेचंडेश्वरायतु ।

हेमाद्रीत शिवधर्मांत—“दूध, दही इत्यादि द्रव्यांचें स्नान शंभर पलांनीं (म्ह० ८० गुंजांचा एक कर्ष अशा ४०० कर्षांनीं) होतें. पंचवीस पलांनीं घृतादिकांचा अभंग होतो. दोन हजार पलांनीं महान्नान होतें. लिंगावर अभ्यंग करावयाचा तो पंचवीस पलें द्रव्य घेऊन करावा. शिवाला घृताचें स्नान शंभर पलांनीं सांगितलें आहे. तितक्याच मधानें व दद्यानं स्नान होतें. तितक्याच गोदुग्धानें स्नान होतें. उंसांचा रम १५०० पलें घेऊन मोठ्या भक्तीनं स्नान घालावें. नंतर उष्णोदकनं स्नान घालावें.” विष्णु इत्यादि देवतांविषयीं तर सांगतो स्कांदांत—“दुधाच्या दसपट दही दद्यांच्या दसपट घृत, घृताच्या दसपट मध, आणि मधाच्या दसपट उंसाचा रम असें स्नानाविषयीं योजावें.” ब्राह्मांत—“ज्या ठिकाणीं देवांनीं प्रतिमा घृताच्या अभ्यंगाविषयीं शक्त असेल त्या ठिकाणीं घृताचीं पंचवीस पलें (१०० कर्ष) श्रद्धेनं द्यावीं.” हें, गवै वचनांचा अभिप्राय एकदम करून सांगितलें आहे. तेथेंच संग्रहांत—“विष्णूच्या नैवेद्याचा शंभरावा अंश विष्वक्सेनाला द्यावा. पादोदक आणि प्रगादही द्यावा. शिवलिंगाचा नैवेद्य, प्रसाद आणि पादोदक चंडेश्वराला द्यावें.”

पंचायतनसन्निवेशमाह बोपदेवः पदार्थादर्शश्च शंभौमध्यगतेहरीनहरभूदेव्योहरीशंकरे-
भास्येनागसुतारवौहर्गणेशांजिकाःस्थापिताः देव्यांविष्णुहरेभक्करवयोलंबोदरेजेश्वरेनांबाःशंकरभाग-
तोऽतिसुखदाय्यस्तास्तुहानिप्रदाः शंकरभागतः ईशानकोणादारभ्यप्रदक्षिणमित्यर्थः अत्रदिवस्वरूपमुक्तं-
प्रयोगपारिजातेमंत्रशास्त्रे देवस्यमुख्यमारभ्यदिशंप्राचींप्रकल्पयेत् तदादिपरिवाराणांमंगाद्यावरण-
स्थितिः तत्रक्रमः पादौ रविर्विनायकश्चंड्रीईशोविष्णुस्तुपंचमः अनुक्रमेणपूज्यंतैव्युत्क्रमेतुमहद्भयम् तथा
पूज्यपूजकयोर्मध्येप्राचींप्रोक्ताविचक्षणैः ।

पंचायतनाची मांडणी सांगतो—

बोपदेव आणि पदार्थादर्श—“शिवपंचायतन मध्यभागीं शिव, ईशान्येस विष्णु, ओग्नेयीस सूर्य, नैर्ऋतीस गण-
पति, वायव्येस देवी. विष्णुपंचायतन—मध्यभागीं विष्णु, ईशान्येस शिव, ओग्नेयीस गणपति, नैर्ऋतीस सूर्य, वायव्येस
देवी. सूर्यपंचायतन—मध्यभागीं सूर्य, ईशान्येस शिव, ओग्नेयीस गणपति, नैर्ऋतीस विष्णु, वायव्येस देवी. देवीपंचा-
यतन—मध्यभागीं देवी, ईशान्येस विष्णु, ओग्नेयीस शिव, नैर्ऋतीस गणपति, वायव्येस सूर्य. गणपतिपंचायतन—
मध्यभागीं गणपति, ईशान्येस विष्णु, ओग्नेयीस शिव, नैर्ऋतीस सूर्य, वायव्येस देवी. याप्रमाणें ईशानकोणापासून आरंभ
करून प्रदक्षिण मांडावे, म्हणजे अतिसुखदायक होतात. याच्या विपरीत मांडले असता हानिदायक होतात.” येथें दिशेचें
स्वरूप सांगतो प्रयोगपारिजातांत मंत्रशास्त्रांत—“जिकडे देवाचें मुख तिकडे प्राची दिशेची कल्पना करावी. ती प्राची
दिशा धरून तदनुसारानें त्या देवाचे परिवार, अंगदेवता, उपांगदेवता, आवरणदेवता, यांची स्थापना करावी.” पंचायतन
देवतांच्या पूजेचा क्रम सांगतो पाद्मान—“सूर्य, गणपति, देवी, शिव आणि पांचवा विष्णु हे अनुक्रमानें पुजावे. विपरीत
क्रमानें पूजिले असतां मोठें भय होतें.” तसंच—“पूज्य आणि पूजक यांच्या मध्ये प्राची दिशा विद्वानांनीं सांगितली आहे.”

अथकेशवादिमूर्तयः बोपदेवः केविगोवादापुहुप्रेप्रज्ञाच्युकुममात्रिना वाधोनुहसानिश्रीपा-
शाङ्गेविगपेचपे अत्रकेविगवित्याद्यैःकेशवविष्णवादिचतुर्विंशतिमूर्तयोऽभिधीयंते शान्तशंखात् चगे चक्र-
गदे ज्ञेयेइत्यर्थः शिष्टेभुजेपद्मत्वर्थतःसिद्धं अत्रदक्षिणोर्ध्वकरक्रमेणज्ञेयम् दक्षिणोर्ध्वकरक्रमादितिहेमाद्रीव-
चनात् तेनहेमाद्रिणासंवादः विशब्देनविपरीतंगचेइत्यर्थः अत्रापिशादनुवृत्तिः शंखाद्गदाचकेइत्यर्थः गपेइ-
त्यत्रापिशादनुवर्तते शंखाद्गदापद्मेइत्यर्थः विपरीतेपद्मगदेइत्यत्रापिशंखाज्ञेये चपेचक्रपद्मे शंखाचक्रपद्मेइ-
त्यर्थः विइत्यत्रापि पद्मचकेइत्यर्थः तेनचगेइत्यष्टौमूर्तयः गपेइत्यष्टौमूर्तयः चपेइत्यत्रच अत्रमूलंहेमाद्रीज्ञेयम् ।

१ ‘दक्षिणाधःकरक्रमेणज्ञेयं दक्षिणाधःकरक्रमात् इति हेमाद्री वचनात्’ असा जुन्या लेखी व छापीप्रतीतून पाठ आढळतो. तोच
पाठ बरा आहे, असें वाटतें. त्याचा अर्थ—आयुधांचा क्रम दक्षिण खालच्या हस्तापासून धरावा. व तो प्रदक्षिण क्रम परमं हुक
आहे—असा होतो.

आतां केशवादि चोवीस मूर्तींचीं लक्षणें सांगतो—

बोपदेव—“केविगोवादापुहुपेप्रजाच्युकुममात्रिना ॥

वाधोवृहसानिधीपा शाचगे वि गपे चपे ॥

अर्थ—“के (केशव), वि (विष्णु), गो (गोविंद), वा (वासुदेव), दा (दामोदर), पु (पुरुषोत्तम), ह (हृषी-केश), उपे (उपेंद्र), प्र (प्रद्युम्न), ज (जनार्दन), अच्यु (अच्युत), कृ (कृष्ण), म (मधुसूदन), मा (माधव), त्रि (त्रिविक्रम) ना (नारायण), वा (वामन), अधो (अधोक्षज) नृ (नृसिंह) ह (हरि) स (संकर्षण), अनि (अनिरुद्ध) श्री (श्रीधर), प (पद्मनाभ) याप्रमाणें चोवीस मूर्ति सांगितल्या आहेत. त्या कोणत्या रीतीनें समजाव्या, तें सांगतो—शात् म्हणजे शाखापासून आरंभ करून चगे म्हणजे चक्र आणि गदा हीं दोन आयुधें जाणावीं. याप्रमाणें तीन आयुधें तीन हातांत सांगितलीं. अवशिष्ट राहिलेल्या चवथ्या हातांत अवशिष्ट असलेलें पद्म अर्थात् सिद्ध होतें. आतां ह्या आयुधांचा क्रम कोणत्या हातापासून समजावा, असें म्हणाल तर उजव्या खालच्या हातापासून वरती करीत यावा. कारण, ‘दक्षिणोर्ध्वकरकमात्’ असें हेमाद्रीत वचन आहे. यावरून ह्या श्लोकाचा हेमाद्रीबरोबर संवाद आहे. विवाद (विरुद्धपणा) नाही. येथें ऊर्ध्वक्रमानें सांगितलें यावरून प्रथम दक्षिण खालच्या हस्तापासून शंख, चक्र, गदा, पद्म, हीं आयुधें केश-वाचीं. नंतर तीच आयुधें दक्षिण ऊर्ध्व हस्तापासून विष्णूचीं. तींच आयुधें डाव्या ऊर्ध्व हस्तापासून गोविंदाचीं. तींच आयुधें डाव्या खालच्या हस्तापासून वासुदेवाचीं होत. याप्रमाणें ‘चगे’ ह्यांच्या चार मूर्ति झाल्या. ‘वि’ विपरीत ‘चगे’ म्हणजे ‘गचे’ गदा व चक्र हीं समजावीं. या रीतीनें ‘गचे’ ह्यांच्या चार मिळून आठ मूर्ति होतात. अशाच रीतीनें ‘गपे’ ह्यांच्या आठ आणि ‘चपे’ ह्यांच्या आठ समजाव्या.” त्या चोवीस मूर्ति स्पष्ट येथें लिहितां—आयुधांचा क्रम धरणें तो दक्षिण खालच्या हस्तापासून ऊर्ध्वहस्तक्रमानें धरवा. तो असाः—शंख, चक्र, गदा, पद्म यांनीं युक्त तो केशव. पद्म, शंख, चक्र, गदा यांनीं युक्त तो विष्णु. गदा, पद्म, शंख, चक्र यांनीं युक्त तो गोविंद. चक्र, गदा, पद्म, शंख, यांनीं युक्त तो वासुदेव. शंख, गदा, चक्र, पद्म, यांनीं युक्त तो दामोदर. पद्म, शंख, गदा, चक्र यांनीं युक्त तो पुरुषोत्तम. चक्र, पद्म, शंख, गदा यांनीं युक्त तो हृषीकेश. गदा, चक्र, पद्म, शंख यांनीं युक्त तो उपेंद्र. शंख, गदा, पद्म, चक्र यांनीं युक्त तो प्रद्युम्न. चक्र, शंख, गदा, पद्म यांनीं युक्त तो जनार्दन. पद्म, चक्र, शंख, गदा यांनीं संपन्न तो अच्युत. गदा, पद्म, चक्र, शंख, यांनीं युक्त तो कृष्ण. शंख, पद्म, गदा, चक्र, यांनीं युक्त तो मधुसूदन. चक्र, शंख, पद्म, गदा यांनीं युक्त तो माधव. गदा, चक्र, शंख, पद्म यांनीं युक्त, तो त्रिविक्रम. पद्म, गदा, चक्र, शंख यांनीं युक्त तो नारायण. शंख, चक्र, पद्म, गदा यांनीं युक्त तो वामन. गदा, शंख, चक्र, पद्म यांनीं युक्त तो अधोक्षज. पद्म, गदा, शंख, चक्र यांनीं युक्त तो नारसिंह. चक्र, पद्म, गदा, शंख यांनीं युक्त तो हरि. शंख, पद्म, चक्र, गदा यांनीं युक्त तो संकर्षण. गदा, शंख, पद्म, चक्र यांनीं युक्त तो अनिरुद्ध. चक्र, गदा, शंख, पद्म यांनीं युक्त तो श्रीधर. पद्म, चक्र, गदा, शंख, यांनीं युक्त तो पद्मनाभ. याप्रमाणें चोवीस मूर्तींचीं लक्षणें जाणावीं.

अथबौधायनसूत्रत्रैविक्रमीचानुसृत्य लिंगार्चाप्रतिष्ठोच्यते यजमानःपूर्वोक्तकालेपूर्वेणुः दश-द्वादशपौडशान्यतरहस्तमंडपंकृत्वाभ्येहस्तमात्रंचतुरस्रकुंडं स्थंडिलवापूर्वतोहस्तमात्रावेदीनैर्ऋतेवास्तुमंडपं मध्येवेदीतदुपरिसर्वतोभद्रंकृत्वाप्राणानायम्यास्यांमूर्तौलिंगोवादेवस्यसान्निध्यसिद्ध्यर्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकाम-समृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकमूर्तिप्रतिष्ठांकरिष्येइतिसंकल्प्य गणेशपूजापुण्याहवाचनमातृकापूजननांदीश्राद्धा-निकृत्वाचार्यचतुरोऋत्विजश्चवृत्वावस्त्राद्यैःपूजयेत् अथाचार्यः यदत्रसंस्थितमितिसर्वपानविकीर्यापोहिष्ठेति-कुशोदकेनभूमिप्रोक्ष्य देवाआयांतु यातुधानाअपयांतु विष्णोदेवयजनंरक्षस्वेतिभूमौप्रादेशंकृत्वाऽस्मत्कृत तुलापद्धतिमार्गेणमंडपप्रतिष्ठांकृत्वाऽकृत्वावापूर्वरात्रौहिरण्योपधानंदेवंपंचगव्यहिरण्ययवदूर्वाश्वत्थपलाशप-र्णान्यदुक्तंभेप्रक्षिप्यताभिरद्विरापोहिष्ठेतिस्तुभिर्हिरण्यवर्णाइतिचतसृभिः पवमानःसुवर्जनइत्यनुवाकेना-भिषिच्यव्याहृतिभिरिदंविष्णुरितिफलयवदूर्वाःसमर्प्यरक्षोहणमितिहस्तेकंकणंभवावाससाच्छाद्य अवतेहे-ळउदुत्तममितिजलेऽधिवासयेत् इदंबौधायनोक्तम् ॥

आतां बौधायनसूत्र व त्रिविक्रमपद्धति यांना अनुसरून लिंगप्रतिष्ठा व मूर्तिप्रतिष्ठा सांगतो—पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें देवप्रतिष्ठेचा सुहृत् पाहून त्या सुहृत्ताच्या पूर्वदिक्शीं यजमानानें दहा, बारा किंवा सोळा हातांचा मंडप करून त्या मंडपांत आभेयीद्विशेष एक हाताचें चतुरस्र (चतुष्कोण) कुंड किंवा स्थंडिल करावें. आणि पूर्वेस एक हाताची वेदी, नैर्ऋतीस वास्तुमंडप, मध्यभागी वेदी, व त्या वेदीवर सर्वतोभद्र करून प्राणायाम करून संकल्प करावा. तो असा—‘अस्यां मूर्तौ

देवस्य सान्निध्यस्थिर्यं रीर्चायुल्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोमुक्तमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये' असा संकल्प करून गणपतिपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, आणि नांदीश्राद्ध करून आचार्य आणि चार ऋत्विज वरून वस्त्रादिकांनीं त्यांची पूजा करावी. नंतर आचार्याने 'यद्वज्रसंस्थितं०' या मंत्रानें सर्षप टाकून 'आपोहिष्ठा०' या मंत्रांनीं कुशोदकानें भूमीचें प्रोक्षण करून नंतर "देवा आयांतु, यातुधाना अपयांतु, विष्णो देवयजनं रक्षस्व" असें म्हणून भूमीवर प्रादेश करावा. मंडपप्रतिष्ठा करावयाची असल्यास आम्हीं (कमलाकरभट्टांनं) केलेल्या तुलापद्धतीच्या रीतीनं करावी. किंवा न करावी. नंतर मंडपांत प्रवेश करून वेदीच्या उत्तरेकडे जलाधिवास करावा. तो असा-पूर्वेरात्री देवाला हिरण्यार ठेऊन, पंचगव्य, हिरण्य, यव, दूर्वा, अश्वत्थपर्णे व पलाशपर्णे कलशांत टाकून त्या उदकांनीं 'आपोहिष्ठा०' ह्या तीन ऋचांनीं, 'हिरण्यवर्णा०' ह्या चार ऋचांनीं, 'पवमानः सुवर्जनः०' ह्या अनुवाकानें अभिषेक करून व्याहृतिमंत्रांनीं आणि 'इंद्रविष्णु०' ह्या मंत्रांनीं फळें, यव आणि दूर्वा समर्पण करून 'रक्षोहणं०' ह्या मंत्रानें हातांत कंकण बांधून वस्त्रानें आच्छादन घालून 'भवतेहेळो०, उदुत्तमं०' ह्या मंत्रांनीं उदकांत अधिवासन करावें. हा प्रकार बौधायनानें सांगितलेला आहे.

ततश्चलर्लिंगोर्चायांवाअत्राग्निप्रतिष्ठाप्य गोक्षीरेनीवारचरुंकृत्वाविष्णुश्चेतकृसरमपिश्रपयित्वाज्यभागां-तेपलाशोदुंबराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्धिः आज्येनचरुणातिलैर्वाप्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौवाहुतीर्लोकपालमूर्ति-मूर्तिपतिभ्योहुत्वास्थाप्यदेवमंत्रेणपूर्वाक्तसमितिलनैवारचर्वाज्यैरष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिंवाहुत्वा अग्नि-र्यजुर्भिरित्यनुवाकेनदशाहुतीर्जुहुयान् प्रतिद्रव्यहोमांतेदेवंपादनाभिशिरसिस्पृशेत् आज्यहोमेचोत्तरतःसज-लकुंभेसंपातान्नयेत् तेषांमंत्राः इंद्रायेंदोइतींद्रस्य स्योनेतिपृथिवीमूर्तेः अघोरेभ्योइतितत्पतेःशर्वस्य अग्नआया-हीत्यग्नेः अग्निदूतमित्यग्निमूर्तेः नमःशर्वायचपशुपतयेचेतिपशुपतेः यमायसोमंयमस्य असिहिवीरितियज-मानमूर्तेः स्तुहिश्रुतंतत्पतेःउग्रस्य असुन्वंतंनिर्ऋतेः आकृष्णेनसूर्यमूर्तेः योरुद्रोअग्नौइतितत्पतेरुद्रस्य इममे-वरुणस्य शंनोदेवीजलमूर्तेः नमोभवायेतिभवस्य आनोनियुद्धिरितिवायोः वातआवातुवायुमूर्तेः तमीशानं-तत्पतेरीशानस्य आप्यायस्वेतिकुबेरस्य वयंसोमेतिसोममूर्तेः तत्पुरुषायमहादेवस्य अभित्वाईशानस्य आदि-त्पन्नस्येत्याकाशस्य नमउग्रायचेतितत्पतेर्भीमस्य ततोदेवस्यपादौस्पृशेत् एवंद्वितीयेहुत्वानाभितृतीयमध्यंचतु-र्थेऽरःपंचमेशिरःस्पृष्ट्वा प्रतिपर्यायसंपातजलेनदेवंअभिषिचेत् ततःस्विष्टकृदादिहोमशेषसमाप्त्यार्चाशोधयेत् स्थिरलिंगाचर्चादौतुनेदानीमग्निस्थापनहोमादिकार्यम् ॥

आतां लिंगाची किंवा मूर्तीची चलप्रतिष्ठा असल्यास या वेळीं अग्निस्थापन करून गोक्षीरांत नीवारचरु शिजवून विष्णु-मूर्ति असेल तर कृसर (तिलमिश्रओदन) देखील शिजवून आज्यभागांच्या अंतीं पळस, उंबर, अश्वत्थ, शमी, अपामार्ग यांच्या समिधा, आज्य, चरु किंवा तिल या प्रत्येक द्रव्याच्या अष्टशत, अष्टविंशति किंवा आठ आहुति लोकपाल, मूर्ति आणि मूर्तिपति यांना होम करून स्थापन करावयाच्या देवाच्या मंत्रांनीं वर सांगितलेल्या समिधा, तिल, नैवारचरु, आणि आज्य या द्रव्यांनीं अष्टसहस्र, अष्टशत किंवा अष्टाविंशति आहुति होम करून 'अग्निर्यजुर्भिः०' ह्या अनुवाकानें दहा आहुति याव्या. प्रत्येक द्रव्याचा होम झाल्यावर देवाच्या पादांना, नाभीला आणि मस्तकाला स्पर्श करावा. आज्यहोम झाल्यावर उत्तरेकडे असलेल्या उदकयुक्त कलशांत आज्याचें संपात पाडवावें. आतां वर सांगितलेल्या लोकपालादिकांचे मंत्र येणेंप्रमाणें— 'इंद्रायेंदो०' हा इंद्राचा मंत्र. 'स्योना०' हा पृथिवीमूर्तीचा मंत्र. 'अघोरेभ्यो०' हा पृथिवीपतिशर्वाचा मंत्र. 'अग्नआयाहि०' हा अग्नीचा मंत्र. 'अग्निदूतं' हा अग्निमूर्तीचा मंत्र. 'नमः शर्वायच पशुपतयेच' हा अग्निपति पशुपतीचा मंत्र. 'यमायसोमं०' हा यमाचा मंत्र. 'असिहिवीर०' हा यजमानमूर्तीचा मंत्र. 'स्तुहिश्रुतं०' हा यजमानपतिउग्राचा मंत्र. 'असुन्वंतं०' हा निर्ऋतीचा मंत्र. 'आ कृष्णेन०' हा सूर्यमूर्तीचा मंत्र. 'योरुद्रो अग्नौ०' हा सूर्यपतिरुद्राचा मंत्र. 'इममे०' हा वरुणाचा मंत्र. 'शंनोदेवी०' हा जलमूर्तीचा मंत्र. 'नमोभवाय०' हा जलपतिभवाचा मंत्र. 'आनोनियुद्धिः०' हा वायूचा मंत्र. 'वातआवातु०' हा वायुमूर्तीचा मंत्र. 'तमीशानं०' हा वायुपति ईशानाचा मंत्र. 'आप्यायस्व०' हा कुबेराचा मंत्र. 'वयंसोम०' हा सोममूर्तीचा मंत्र. 'तत्पुरुषाय०' हा महादेवाचा मंत्र. 'अभित्वा०' हा ईशानाचा मंत्र. 'आदित्पन्नस्य०' हा आकाशाचा मंत्र. 'नमःशर्वा-यच०' हा आकाशपति सीमाचा मंत्र. असा एक पर्याय झाल्यावर देवाच्या पादांना स्पर्श करावा. याप्रमाणें दुसरा पर्याय झाल्यावर देवाच्या नाभीला स्पर्श करावा. तिसरा पर्याय झाल्यावर देवाच्या मध्याला स्पर्श करावा. चवथा पर्याय झाल्यावर देवाच्या उराला स्पर्श करावा. पांचवा पर्याय झाल्यावर देवाच्या मस्तकाला स्पर्श करावा. आणि प्रत्येक पर्यायावर संकल्प लव्हेन देवाला अभिषेक करावा. तदनंतर स्विष्टकृदादि होमशेष समाप्त करून मूर्तीचें शोधन करावें. हा प्रकार चल्होपनिषद् समजावा. स्थिरलिंग किंवा स्थिरमूर्ति यांची प्रतिष्ठा असेल तर या वेळीं अग्निस्थापन, होम इत्यादि कार्ये नवे.

ततोदेवंतत्वा स्वागतदेवदेवेशविश्वरूपनमोस्तुते शुद्धेपित्वदधिष्ठानेशुद्धिकुर्मः सहस्रतामितिसंप्राप्य उत्तिष्ठन्नमस्ते इति सन्नतिगुत्थाप्य पूर्वमकृतेभ्युत्तारणे अधुनावकार्यम् अग्निः सन्निमित्तिसूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत् एवमष्टसहस्रमष्टशतमष्टविंशतिं वा पठन् जलं पातयेत् ततोर्चाद्वादशवारं मृदाजलेन च प्रक्षाल्य मंत्रवत् पंचगव्यं कृत्वा पयः पृथिव्यामावोराजानमिति च संस्त्राप्य आप्यायस्वदधिकाव्णस्ते जोसि मधुवाता आयंगौरिति पंचामृतैः संस्त्राप्य लिंगं चेन्नमस्ते रुद्रमन्यव इत्यष्टाभिः संस्त्राप्य घृतेनाभ्यज्योद्वर्तनेनोद्वर्त्योष्णोदकेन प्रक्षाल्य गंधं दत्त्वा संपातोदकेनाभिषिच्य सपल्लवैश्चतुर्भिः कुंभैरापोहिष्ठेति त्रिभिराकलशेष्विति च प्रत्येकं समुद्रज्येष्ठा इति चतुर्भिराकलशेष्विति च मिलितैः संस्त्राप्यौदुंबरादिपीठैर्चासुपवेश्य परितोऽष्टदिक्षु सजलकुंभान् संस्थाप्य तेषु गंधपुष्पदूर्वाः क्षिप्वाऽऽद्ये सप्तमृदः द्वितीये पुष्करपर्णशमी विकंकताश्मंतकत्वचः पल्लवांश्च तृतीयादिषु सप्तधान्यं पंचरत्नफलपुष्पाणि कुशदूर्वागोरोचनसंपातोदकगंधफलसर्वौषधीः क्षिप्वा क्रमेणापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति च तिसृभिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्यैककुंभेशमीपलाशवटग्वदिग्वित्वा श्वत्थविकंकतपनसाम्नशिरीषोदुंबराणां पल्लवानकपायांश्च क्षिप्वा अश्वत्थेव इत्यभिषिच्य पंचरत्नोदकेन हिरण्यवर्णा इति संस्त्राप्य वाससीदत्त्वा उपवीतादिदीपांतं कृत्वा हिरण्यगर्भः य आत्मदा यः प्राणतः यस्य मे येन द्यौः यंकंदसी आपो ह्यतः यश्चिदापो इत्यष्टौ पिष्टदीपान् दत्त्वा सुवर्णशलाकया तैजसा पात्रस्थं मधुघृतं च गृहीत्वा चित्रं देवानां तैजोसीति मंत्राभ्यां ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय तेन मइति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मंत्रावृत्त्या लिखेत् अंजं तित्वेयं जनेन मधुना चांक्त्वा देवस्य त्वासं वितुः प्रसवे ० इंद्रस्येंद्रियेणानज्मीति मध्वाज्यशर्कराभिरंक्त्वा तैर्वा जनेन पुनर्जयेत् स्थिरलिंगे तु स्वर्णसूच्या गंधेन ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायो मा प्रियाय नम इत्यंजनादिनां जयेत् ततः आदर्शभक्ष्यादिदर्शयेत् ततः कर्ता आचार्याय गामृत्विग्यश्च दक्षिणां दद्यात् अथाचार्यः प्रत्यूचमादौ प्राणवंदनं पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा वंशपात्रे पंचवर्णां देवेन देवस्य नीराजनं कारयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात् मंत्रं नु ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीपश्लधरायो मा दयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमो नमः शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहेति अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति केचिदेतद्वा त्रैस्थिरप्रतिष्ठायामिच्छंति ॥

तदनंतर देवाला नमस्कार करून 'स्वागतं देव देवेश विश्वरूप नमोस्तु ते ॥ शुद्धेपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्र तां ॥' अशी प्रार्थना करून 'उत्तिष्ठन्नमस्ते' ह्या मंत्रानं ऋत्विजांसहित यजमानानं देवाला उठवून अग्न्युत्तारण पूर्वी केलेले नसेल तर या वेळीं करावें. तें असें—'अग्निःसंतिं' हें सूक्त अग्निपदरहित म्हणून पुनः अग्निपदसहित म्हणावें. असें अष्टसहस्र, किंवा अष्टशत अथवा अष्टविंशतिवार म्हणत असून देवावर उदकधार धरावी. याप्रमाणे अग्न्युत्तारण झाल्यावर मूर्तीला बारा वेळां मृत्तिका लावून उदकानं प्रक्षालन करावें. नंतर समंत्रक पंचगव्य करून 'पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु' या मंत्रानें व 'आवोराजानं' ह्या मंत्रानें, मूर्तीला स्नान घालून 'आप्यायस्व', दधिकाव्णो, ते जोसि, मधुवाता, आयंगार्याः' ह्या पांच मंत्रांनीं पंचामृतांचें स्नान घालावें. लिंग असेल तर 'नमस्ते रुद्रमन्यव' ह्या आठ ऋचांनीं स्नान घालावें. नंतर घृताचा अभ्यंग करून उठणें लावून उष्णोदकानं प्रक्षालन करावें. नंतर गंध लावून संपातोदकानं अभिषेक करून पल्लवसहित चार कलशांनीं अनुक्रमानें 'आपोहिष्ठा', योवः शिव, तस्मा, आकलशेषु' ह्या चार मंत्रांनीं स्नान घालून 'समुद्रज्येष्ठा' ह्या चार ऋचा, आणि 'आकलशेषु' ही एक ऋचा यांनीं एकत्र मीलित चार कलशांनीं स्नान घालून उदुंबरादिक पीठावर मूर्तीं बसवून सभोंवतीं आठ दिशांना आठ उदक कलश स्थापून त्यांत गंध, पुष्प, दूर्वा घालून; पहिल्या कलशांत सप्तमृत्तिका; दुसऱ्या कुंभांत कमलपत्र, शमीपत्र, विकंकत व आपटा यांच्या साली आणि पल्लव; तिसऱ्या कलशांत सप्त धान्ये; चवथ्या कलशांत पंचरत्ने; पांचव्या कलशांत फलें व पुष्पे; सहाव्या कलशांत कुश, दूर्वा, व गोरोचन; सातव्या कलशांत संपातोदक; आठव्या कलशांत सर्वौषधि टाकून अनुक्रमानें 'आपोहिष्ठा' ह्या तीन ऋचा, 'हिरण्यवर्णाः शुचयः' ह्या चार ऋचा, आणि 'पवमानः सुवर्जनः' हा अनुवाक ह्या मंत्रांनीं अभिषेक करून, एका कलशांत शमी, पलस, वट, खदिर, बिल्व, अश्वत्थ, विकंकत, पनस, आम्र, क्षिरीष, उदुंबर, यांचे पल्लव आणि कषाय टाकून 'अश्वत्थेवो' ह्या मंत्रानें अभिषेक करून पंचरत्नोदकानें 'हिरण्यवर्णा' ह्या मंत्रानें स्नान घालून दोन वल्लें देऊन यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूप, आणि दीप देऊन 'हिरण्यगर्भः, य आत्मदा, यः प्राणतो, यस्येमे, येन द्यौ, यंकंदसी, आपो ह्यतः, यश्चिदापो' ह्या आठ मंत्रांनीं

आठ पिठाचे दीप देऊन सुवर्णशलाकेनें तैजस पात्रांतील मध व घृत घेऊन 'चित्रं देवानां०, तेजोसि०' हे दोन मंत्र आणि 'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः ॥ हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ॥' हा मंत्र यांची आहुति करून दक्षिण, व वाम नेत्रांना लेखन करावें. 'अंजंतिता०' ह्या मंत्रानें अंजन व मध डोळ्यांत घालून 'देवस्यत्वा० हस्ताभ्यामभेस्ते-जसासूर्यस्यवर्चसंद्रस्येंद्रियेणानजिम' हा मंत्र म्हणून मध, आज्य, शर्करा यांचें अंजन घालून वरील अंजन पुनः घालावें. स्थिर लिंगप्रतिष्ठा असेल तर सुवर्णाचे सूचीनें गंध घेऊन 'ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपा-योमाप्रियाय नमः' ह्या मंत्रानें डोळ्यांत अंजनादिक घालावें. तदनंतर आरसा व भक्ष्यादि पदार्थ दाखवावे. तदनंतर यजमानानें आचार्याला गोप्रदान आणि ऋत्विजांना दक्षिणा द्यावी. तदनंतर आचार्यानें पुरुषसूक्ताच्या प्रत्येक ऋषेच्या आधीं प्रणव म्हणून पुरुषसूक्तानें स्तुति करून वेळूच्या पात्रांत पंचवर्ण ओदन घालून देवाला ओवाळून रुद्राला चवाव्यावर वगैरे द्यावें. त्याचा मंत्र—'ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमोनमः शिवमर्गाहंत कर्मास्तु स्वाहा' आणि अश्वत्थपर्णावर 'भूतेभ्यो नमः' असें द्यावें. केचित् विद्वान् हें रुद्राला पंचवर्णोदनदान रात्रीं स्थिरप्रतिष्ठेचे ठायीं करावें असें सांगतात.

अथाचार्यः सर्वतोभद्रे देवानावाहयेत् मध्ये ब्रह्माणम् पूर्वादिदिक्षु इंद्रादिलोकपालान् ईशानेंद्राद्यंतरालेषु वसून् रुद्रान् आदित्यान् अश्विनौ विश्वान् देवान् पितॄन् नागान् स्कंदवृषौ ब्रह्मेशानाद्यंतरालेषु दक्षं विष्णुं दुर्गां स्वधाकारं मृत्युरोगान् समुद्रान् सरितः मरुतः गणाधिपंचेति मध्ये एव पृथिवीमेरुसंस्थाप्य देवंचावाह्य प्रागादि वज्रं शक्तिं दंडं खड्गं पाशं अंकुशं गदां शूलं तद्वाह्ये गौतमं भरद्वाजं विश्वामित्रं कश्यपं जमदग्निं वसिष्ठं अत्रिं अरुंधतीं च तद्वाह्ये नवग्रहां च तद्वाह्ये ऐंद्रीं कौमारीं ब्राह्मीं वाराहीं चामुंडां वैष्णवीं माहेश्वरीं वैन्यायकीमिति एताः नामभिरावाह्यसंपूज्य अर्चायां देवं तन्मंत्रेणावाह्य मंडलमध्ये चासुप्रतिष्ठो भवेति निवेद्य संपूज्य वह्नौ मंडलदेवतानां नामभिरित्याज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा पुष्पांजलिं समर्प्य नमो महति देवेन त्वामंडलादुत्तरतः स्वस्तिके मंचकं तदुपरिशय्यां कृत्वा उत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य मंगलघोषैः शय्यायां देवमारोप्य पुरुषसूक्तोत्तर नारायणाभ्यां स्तुत्वा देवेन्यासं कुर्यात् तत्रैव पुरुषात्मने नमः प्राणात्मने नमः प्रकृतितत्त्वाय ० बुद्धितत्त्वाय ० अहंकारतत्त्वाय ० मनस्तत्त्वाय ० इतिसर्वांगे प्रकृतितत्त्वाय ० बुद्धितत्त्वाय ० हृदि शब्दतत्त्वाय ० शिरसि स्पर्शतत्त्वाय ० त्वचि रूपतत्त्वाय ० हृदि एवं हृद्ये वरसंगं श्रोत्रत्वक् चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक् पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यग्नेजोवाय्वाकाशमत्वरजस्तमोदेहतत्त्वानि विन्यसेत् ततः पुरुषसूक्तस्याद्यमृगद्वयं करयोः तदुत्तरं जान्वोः तदुत्तरं कश्योः तं यज्ञमिति तिस्रः नाभिहृत्कंठे पु तस्मादश्वेति द्वयं बाह्वोः ब्राह्मणोऽस्येति द्वयं नासयोः नाभ्येति द्वय-मक्ष्णोः अंत्यां शिरसि केचित्तत्त्वान्यासमन्यथा आहुः पुरुषप्रकृतिमहदहंकारतत्त्वानि शब्दस्पर्शरूपसंगंधत-न्मात्राणि आकाशवायुतेजोपृथिवीश्रोत्रत्वक् चक्षूरसनाघ्राणवाक् पाणिपादपायूपस्थमनस्तत्त्वानीति केचिदेतानि स्थिरलिंगादावेवेच्छंति ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं स्थापयित्वा मंडलशय्ययोरेतरालेन गंतव्यमिति प्रै-षंदत्त्वा स्थिरकृदादिहोमशेषं समाप्य मंडलदेवताभ्यो नामभिः पायसेन च रुणावाबलीन्दद्यात् नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम् नेदं स्थिरप्रतिष्ठायाम् ।

तदनंतर आचार्यानें सर्वतोभद्रावर देवांचें आवाहन करावें. तें असें—मध्ये ब्रह्मा, पूर्वादि आठ दिशांचे ठायीं इंद्रादिक आठ लोकपाल, ईशान व इंद्र यांच्या मध्ये वसु, इंद्र अग्नि यांच्या मध्ये रुद्र, अग्नि यम यांच्या मध्ये आदित्य, यम नैर्ऋति यांच्या मध्ये अश्विनौ, नैर्ऋति व वरुण यांच्या मध्ये विश्वेदेव, वरुण वायु यांच्या मध्ये पितर, वायु सोम यांच्या मध्ये नाग, सोम ईशान यांच्या मध्ये स्कंद वृष यांचें आवाहन करावें. आतां ब्रह्मा आणि ईशानादिक आठ लोकपाल यांच्या मध्ये अनुक्रमानें दक्ष, विष्णु, दुर्गा, स्वधाकार, मृत्युरोग, समुद्र, सरित्, मरुत्, गणाधिप ह्या आठांचें आवाहन करावें. आणि मध्यभागीं च पृथिवी, मेरु व स्थापन करावयाचा देव यांचें आवाहन करावें. पूर्वादि आठ दिशांचे ठायीं वज्र, शक्ति, दंड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, शूल यांचें आवाहन करावें. त्यांच्या बाहेर गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि, अरुंधती यांचें आवाहन करावें. त्यांच्या बाहेर नवग्रहांचें आवाहन करावें. त्यांच्या बाहेर ऐंद्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुंडा, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैन्यायकी यांचें नाममंत्रानें आवाहन करून सर्वांची पूजा करून मूर्तीचे ठायीं स्थापन करावयाच्या देवांचें त्यांच्या मंत्रानें आवाहन करून मंडलमध्ये 'सुप्रतिष्ठितो भव' असें म्हणून मूर्ति ठेवून पूजा करावी. नंतर अभीमर्ष्यें मंडल-देवतांच्या नाममंत्रांनीं तिल आणि आज्य यांच्या दहादहा आहुति देऊन पुष्पांजलि समर्पण करून 'नमो मह०' या मंत्रानें

देवांश्च नमस्कार करून मंडलाच्या उत्तरेस स्वस्तिकावर मंचक आणि मंचकावर शय्या करून 'उत्तिष्ठ०' या मंत्रानें देवाला उठवून मंगलघोषांनीं शय्येवर बसवून पुरुषसूक्त व उत्तरनारायण ह्या दोन सूक्तांनीं स्तुति करून देवांचे ठायीं न्यास करावा. तो असा—पुरुषात्मनेनमः प्राणात्मने० प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० अहंकारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० असा सर्वांगाचे ठायीं न्यास करावा. प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० हृदि. शब्दतत्त्वाय० शिरसि. स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि. रूपतत्त्वाय० हृदि. याप्रमाणें हृदयाचे ठायींच रस, गंध, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, पृथिवी, अप्, वेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम या तत्त्वांचा न्यास करावा. तदनंतर पुरुषसूक्तन्यास येणें प्रमाणें—'सहस्र०' वामकरे. 'पुरुष०, दक्षिण करे. 'एतावा०' वामजानुनि. 'त्रिपादूर्ध्व०' दक्षिणजानुनि. 'तस्माद्विराळ०' वामकट्यां. 'यत्पुरुषेण०' दक्षिणकट्यां. 'तयज्ञं०' नाभौ. 'तस्माद्यज्ञा०' हृदि. 'तस्माद्य०' कंठे. 'तस्मादक्षा०' वामबाहौ. 'यत्पुरुषं०' दक्षिणबाहौ. 'ब्राह्मणे०' वामनासायां. 'चंद्रमा०' दक्षिणनासायां. 'नाभ्या०' वामनेत्रे. 'सप्तास्या०' दक्षिणनेत्रे. 'यज्ञेनयज्ञ०' शिरसि. तदनंतर 'सुखसायीभव' असें म्हणून शय्येचे ठायीं देवाला निजवून 'मंडलशय्ययोरंतराले न गंतव्यं' असा प्रैष देऊन स्विष्टकृदादि होमशेष समाप्त करून मंडलदेवतांना नाममंत्रांनीं पायसाचे किंवा चरूचे बलि द्यावे. नीवारचरुशेषांनं दिग्बलि द्यावा. हे बलिदान स्थिरप्रतिष्ठेचे ठायीं करावयाचें नाहीं.

स्थिरलिंगार्चादौत्वयंविशेषः अग्निस्थापनहोमवर्ज्यसर्वपूर्ववत्कृत्वा इदानीमग्निस्थापनंकृत्वा पूर्वोक्तहोमंकुर्वीत नात्रनैवारध्वरुः विष्णुश्चेत्पूर्वोक्तहोमंकृत्वापुरुषसूक्तेनप्रत्यृचमाज्यंहुत्वाइदंविष्णुरितिपादौ-स्पृष्ट्वापुनस्ताएवहुत्वाविष्णोर्नुक्तमितिनाभिस्पृष्ट्वापुनस्ताएवहुत्वाअतोदेवेतिशिरःस्पृष्ट्वा पुनस्ताएवहुत्वापुरुषसूक्तेनसर्वांगंस्पृशेत् स्थिरलिंगाचेदग्निस्थापनादिपूर्वोक्तसमिदाज्यतिलाहुतीहुत्वा यातइपुरित्यनुवाकांतंत्राप्तेसह-स्नाणीत्यनुवाकाभ्यांचप्रत्यृचमाज्यंहुत्वासर्वोक्तरुद्रइतिमूलंस्पृशेत् पुनस्ताएवहुत्वाकद्रुद्रायेतिमध्यं पुनस्ताएवहुत्वा नमोहिरण्यबाहवइत्यग्रम् पुनस्ताएवहुत्वासर्वरुद्रेणसर्वांगंस्पृशेत् ततोधामंतइतिपूर्णाहुतिजुहुयाभवा एवमभिवासनंकृत्वापरेद्युःसद्योवापीठिकांस्नापयित्वा महीमूर्ध्वित्यावाह्य अदितिर्द्यौरितिस्तुत्वा हीनमइति संपू-ज्य तेनैवपूर्णाहुतिहुत्वा उत्तिष्ठब्रह्मणस्पतइतिदेवमुत्थाप्यपुष्पांजलिंदत्वा पुरुषसूक्तेनस्तुत्वा उदुलमित्युत्थाप्य-कनिकददितिसूक्तेनविष्णुं सद्योजातमितिपंचानुवाकैर्लिंगगृहंप्रवेश्य पीठिकायां इंद्रादिनामभिरष्टरत्नानिश्चि-त्वासप्तधाभ्यन्यरूप्यवृक्षमनःशिलाःक्षिप्वापायसेनसंलिप्य प्रणवेनांगन्यासंकृत्वा सुवर्णशलाकामंतरितांकृत्वा अंसुलमेप्रतिष्ठिप्रपरमेश्वरेत्युक्त्वा अतोदेवेतिविष्णुं रुद्रेणचलिंगंस्थापयेत् ततःप्राणप्रतिष्ठा ॥

लिंग व मूर्ति इत्यादीकांची स्थिरप्रतिष्ठा असेल तर पूर्वी सांगितल्या प्रकारांत विशेष आहे, तो असा—अग्निस्थापन व होम वर्ज्य करून बाकीचें सारें कृत्य पूर्वीप्रमाणें करावें. (म्हणजे संकल्पादिक जलाधियासापर्यंतचें कृत्य करून देवाला नमस्कार करून 'स्वागतं देवदेवेश०' इत्यादि प्रार्थना, उत्थापन, अग्न्युत्तारण इत्यादि नेत्रोन्मीलनापर्यंत करून पुरुषसूक्तस्तुति इत्यादि करावें. नंतर मंडलदेवतास्थापनापर्यंतचें कृत्य करून मंडलाचे ठायीं मूर्तिनिवेश, शय्येचे ठायीं देवतारोहण, नंतर स्तुति, पूर्वीकृत्यास, आणि शय्येवर देवशयन करावें.) इतकें झाल्यावर अग्निस्थापन करून पूर्वी सांगितलेला होम करावा. स्थिर-प्रतिष्ठेचे ठायीं स्थाप्यदेवताहोमाविषयीं नैवारचरु नाहीं. विष्णूची स्थिरप्रतिष्ठा असेल तर पूर्वी सांगितलेला लोकपाल, मूर्ति, मूर्तिपति यांस समिधा, तिल, आज्यहोम झाल्यावर पुरुषसूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेनें आज्यहोम करून 'इदंविष्णुः०' ह्या मंत्रानें देवाच्या पायांना स्पर्श करावा. पुनः त्याच आहुति देऊन 'विष्णोर्नुक्तं०' ह्या मंत्रानें नाभीला स्पर्श करावा. पुनः त्याच आहुति देऊन 'अतोदेवा०' ह्या मंत्रानें मस्तकाला स्पर्श करावा. पुनः त्याच आहुति देऊन पुरुषसूक्तानें सर्वांगाला स्पर्श करावा. लिंगाची स्थिरप्रतिष्ठा असेल तर अग्निस्थापनादि करून पूर्वी सांगितलेल्या समिधा, आज्य, तिल यांचा होम करून 'यातइष्टुः०' हा अनुवाकसमाप्तीपर्यंतचे मंत्र, 'द्रापे०' हा अनुवाक आणि 'सहस्राणि०' हा अनुवाक ह्यांच्या प्रत्येक ऋचेनें आज्यहोम करून 'सर्वोक्तरुद्रः०' ह्या मंत्रानें लिंगाच्या मुळास स्पर्श करावा. पुनः त्याच आहुतीचा होम करून 'कद्रुद्राय०' ह्या मंत्रानें लिंगाच्या मध्याला स्पर्श करावा. पुनः त्याच आहुतीचा होम करून 'नमो हिरण्यबाहवे०' ह्या मंत्रानें लिंगाच्या अप्राला स्पर्श करावा. पुनः त्याच आहुतीचा होम करून सान्या रुद्रानें सर्वांगाला स्पर्श करावा. तदनंतर 'धामंते०' ह्या मंत्रानें पूर्णाहुति द्यावी. किंवा पूर्णाहुति देऊं नये. याप्रमाणें पूर्वदिवशीं अधिवासन करून दुसऱ्या दिवशीं, अथवा सद्यःपक्ष असेल तर त्याच दिवशीं, पीठिकेला स्नान घालून 'महीमूषु०' ह्या मंत्रानें आवाहन करून 'अदितिर्द्यौ०' ह्या मंत्रानें स्तुति करून 'ह्रीं नमः' ह्या मंत्रानें पूजा करून त्याच मंत्रानें पूर्णाहुति देऊन 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०' ह्या मंत्रानें देवाला उठवून पुष्पांजलि देऊन पुरुषसूक्तानें स्तुति करून 'उदुलं०' ह्या मंत्रानें उठवून 'कनिकदत्०' ह्या सूक्तानें विष्णुमूर्तीला आणि 'सद्योजातं०' ह्या पांच अनुवाकांनीं

लिंगाला गृहांत प्रवेश करवून पीठिकेवर इंद्रादि नांवांनीं आठ रखें टाकून, सप्तधात्र्यें, रौप्य, मनःशिला टाकून पायसानें ठेप करून प्रणवानें अंगन्यास करून सुवर्णशलाका अंतरित करून चांगल्या लमावर (सुहूर्तावर) 'प्रतिष्ठि परमेश्वर' असें उच्चारून 'अतो देवाः' ह्या मंत्रांनीं विष्णूची आणि रुद्रांनीं लिंगाची स्थापना करावी. तदनंतर प्राणप्रतिष्ठा करावी.

चलार्चादौत्वधिविवासनातेपरेद्युर्हृत्तिष्ठब्रह्मणस्पतइतिदेवमुत्थाप्यपुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यांस्तुत्वाधृतेग्री-
हिचरुंक्त्वातदेवतामंत्रेणदशाहुतीर्हुत्वानामभिर्जुहुयान् अग्रयेस्वाहा सोमायस्वाहा धन्वंतरयेस्वाहा कुहू-
स्वाहा अनुमल्यैस्वाहा प्रजापयेस्वाहा परमेश्विनेस्वाहा ब्रह्मणेस्वाहा अग्रयेस्वाहा सोमायस्वाहा अग्रयेन्नादाय-
स्वाहा अग्रयेन्नपतयेस्वाहा प्रजापतयेस्वाहा विश्वेभ्योदेवेभ्यःस्वाहा सर्वेभ्योदेवेभ्यःस्वाहा भूर्भुवःस्वःस्वाहा
अग्रयेस्विष्टकृतेइति ततः सप्तमेअप्रेनस्त्वेत्याभ्यांपूर्णाहुतिः ततःआचार्योयाओषधीरितिपुष्पफलसर्वोषधीः-
समर्प्य संपातोदकंताम्रपात्रेआदायदेवमंत्रेणशतवारमभिमन्त्र्य तेनैवामभिषिचेत् ततः उत्तिष्ठेतिदेवमुत्थाप्य
विश्वतश्चक्षुरित्युपस्थायदेवंध्यात्वाजपेत् ब्रह्मणेनमः एवंविष्णवेरुद्राय० इंद्रादीनष्टौ वसुभ्योरुद्रेभ्यआदित्ये-
भ्योऽश्विभ्यांमरुद्भ्यः कुबेरायगंगादिमहानदीभ्योऽग्नीषोमाभ्यांमित्राग्निभ्यांद्यावापृथिवीभ्यांधन्वंतरयेसर्वेशा-
यविश्वेभ्योदेवेभ्योब्रह्मणेनमइति ततः संपातोदकेनयजमानमभिषिच्य देवंध्यात्वाप्रतिष्ठिपरमेश्वरेतिपुष्पा-
जलिनिवेद्य सच्चिदानंदब्रह्मैवभक्तानुग्रहायगृहीतविग्रहंकरचरणाद्यवयविनंशंखचक्राद्यायुधवंतंनिजवाहनाद्यु-
पेतंनिजहृत्कमलेऽवस्थितंसर्वलोकसाक्षिणमणीयांसंपरमेश्वरसिपरमांश्रियंगमयेतिमंत्रेणपुष्पांजलावागतंवि-
भाव्याऽर्चायांविन्यस्यप्राणप्रतिष्ठांकुर्यात् ॥

मूर्तीची वगैरे चलप्रतिष्ठा अमेळ तर अधिवासन झाल्यावर दुसऱ्या दिवशीं 'उत्तिष्ठब्रह्मणस्पते०' ह्या मंत्रानें देवाला उठवून पुरुषसूक्त आणि उत्तरनारायणसूक्त यांनीं स्तुति करून घृतांत ग्रीहिचरु करून त्या देवतेच्या मंत्रानें दहा आहुति होम करून पुढच्या नाममंत्रांनीं होम करावा. तो असा—अग्रये स्वाहा, सोमाय०, धन्वंतरये०, कुहू०, अनुमल्यै०, प्रजाप-
तये०, परमेश्विने०, ब्रह्मणे०, अग्रये०, सोमाय०, अग्रयेऽन्नादाय०, अग्रयेऽन्नपतये०, प्रजापतये०, विश्वेभ्योदेवेभ्यः०, सर्वे-
भ्योदेवेभ्यः०, भूर्भुवःस्वः०, अग्रयेस्विष्टकृते०. तदनंतर 'सप्ततेअग्ने०', 'पुनस्त्वा०' ह्या दोन मंत्रांनीं पूर्णाहुति द्यावी. तदनंतर आचार्यानं 'या ओषधीः०' ह्या मंत्रानें पुष्पं, फलं, आणि सर्वोषधि समर्पण करून संपातोदक ताम्रपात्रांत घेऊन देवमंत्रानें शंभर वेळां अभिमंत्रण करून त्या उदकांनं देवावर अभिषेक करावा. तदनंतर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मण०' ह्या मंत्रानें देवाला उठवून 'विश्वतश्चक्षुः०' ह्या मंत्रानें उपस्थान करावें. तदनंतर देवाचें ध्यान करून जप करावा, तो असा—ब्रह्मणे नमः विष्णवे नमः रुद्राय नमः इंद्रादि अष्टलोकपालांस नमस्कार करावा. वसुभ्यो नमः रुद्रेभ्यो० आदित्येभ्यो० अश्विभ्यां० मरुद्भ्यो० कुबेराय० गंगादिमहानदीभ्यो० अग्नीषोमाभ्यां० इंद्राग्निभ्यां० द्यावापृथिवीभ्यां० धन्वंतरये० सर्वेशाय० विश्वेभ्यो देवेभ्यो० ब्रह्मणे नमः तदनंतर संपातोदकांनं यजमानाला अभिषेक करावा. नंतर देवाचें ध्यान करून 'प्रतिष्ठि परमेश्वर' असें म्हणून पुष्पांजलि निवेदन करून 'सच्चिदानंदं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं करचरणाद्यवयविनं शंखचक्राद्यायुधवंतं निजवाहनाद्युपेतं निज-
हृत्कमलेऽवस्थितं सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं परमेश्वरसि परमांश्रियं गमय' ह्या मंत्रानें पुष्पांजलीचेठायीं सच्चिदानंदब्रह्म आलेलें आहे, अशी भावना करून तो पुष्पांजलि मूर्तीचेठायीं ठेऊन नंतर प्राणप्रतिष्ठा करावी.

यथा अस्यश्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्यब्रह्मविष्णुरुद्राऋषयः ऋग्यजुःसामानिच्छंदांसि क्रियामयवपुःप्राणाख्या-
दैवता आंबीजम् क्रौंशक्तिः प्राणप्रतिष्ठायांविनियोगः ततोऋध्यादीनक्रमेणशिरोमुखहृदयगुह्यपादेषुविन्यस्य
ॐफंखंगंधं अंपृथिव्यप्रेजोवाय्वाकाशात्मने आंहृदयायनमः ॐचंछंजंझं इंशब्दस्पर्शरूपरसगंधात्म-
नेईशिरसेस्वाहा ॐटंठंडंढंउंश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मनेऋंशिखायैवपट् ॐतंथंदधंनं एंवाक्पाणिपादपा-
यूपस्थात्मनेऐंक्वचायहुम् ॐ पंफवंभंमंओंवचनादानविहरणोत्सर्गानंदात्मने औंनेत्रत्रयायवौषट् ॐयंरंलं-
वंशंपंसंहंलंशं अंमनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्रायफट् एवंआत्मनिदेवेवकृत्वादेवस्पृष्ट्वाजपेत् ॐआंही-
क्रोंअंयंरंलंवंशंपंसंहंशः देवस्यप्राणाइहप्राणाः ॐ आंहीक्रोंअंयंरंलंवंशंपंसंहंशः देवस्यजीवइहस्थितः ॐ
आंहीक्रोंअंयंरंलंवंशंपंसंहंशः देवस्यसर्वेन्द्रियाणि ॐ आंहीक्रोंअंयंरंलंवंशंपंसंहंशः देवस्यवाय्वानश्चक्षुःश्रोत्र-
जिह्वाघ्राणप्राणाइहागल्यस्वस्त्येसुखेनसुचिरितिष्ठतुस्वाहेति ततोऽर्चाहृद्यगुधंदत्वाजपेत् अस्यैप्राणाःप्रतिष्ठुंअ-
स्यैप्राणाःक्षरंतुच अस्यैदेवत्वमर्चायैमामहेतिचक्षनेति ततः प्रणवेनसंरुध्यसजीवंध्यात्वा मुवाधौरितिपुष्पं-

जह्वाकर्णेगायत्रीदेवमंत्रं च जत्वा पुरुषसूक्तोपस्थापनाभिः शिरःस्पृष्ट्वा इहैवैषीति त्रिजपेत् ततः कर्ता स्वागतं देवदेवेशमद्वाग्यात्त्वमिहागतः प्राकृतं त्वमहद्वा मां बालवत्परिपालय धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शुभायनः सान्निध्यं तु सदा देवस्वार्चायां परिकल्पय यावच्चंद्रावनीसूर्यास्तिष्ठंत्यप्रतिधातिनः तावत्स्वयात्र देवेशस्यैवं मत्कानु-
कंपया भगवन् देवदेवेशत्वं पितृता सर्वदेहिनाम् येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् तेन रूपेण देवेशस्वार्चायां-
सन्निधौ भवेति न मेत् एतदंतं सर्वदेवानां समानं देवमंत्रं मूलमंत्रो वैदिको वाग्राह्यः अथाचार्यः कर्ता वालिगम-
र्चावा ॐ भूः पुरुषमावाहयामि ॐ भुवः पुरुषमावाहयामि ॐ सुवः पुरुषमावाहयामि ॐ भूर्भुवः सुवः पुरुषमा-
वाहयामीत्यावाह्यं प्रणवेनासनं दत्त्वा तैनेव दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रांतापद्ममिश्रपाद्यम् इमा आपः शिवतमाः पूताः-
पूततमा मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवेन मद्-
तिपाद्यम् भगवान् महादेवो रुद्राय नम इति लिंगे एवं देवतांतरे पूज्यं इमा आप आचमनीयास्ता जुषतामित्याचमनी-
यम् अर्घ्या इत्यर्घ्यम् ततो वेदमंत्रैः संस्त्राप्य इदं विष्णुरिति विष्णौ नमो अस्तु नीलप्रीवायेति लिंगे प्रतिसरं विस्त्रस्य
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च दत्त्वा इमे गंधाः शुभा दिव्याः सर्वगंधैरलंकृताः पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः इति गं-
धम् इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः पूता इत्यादि माल्यम् इमे पुष्पाः शुभा इत्यादि पुष्पम् वनस्पतिर-
सोद्भूतो गंधाढ्यो धूप उत्तमः आग्नेयः सर्वदेवानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्णात्वित्यादि धूपम् ज्योतिः शुक्रं च ते-
जश्च देवानां सततं प्रियः प्रज्योतिः सर्वभूतानां दीपोयं प्रतिगृह्यताम् इति दीपं दत्त्वा विष्णो संकर्मण वा सुदेव प्रशु-
भ्रानि रुद्र पुरुषोत्तमा धोक्षज नृसिंहा न्युतज नार्द नोपेंद्र हरि श्री कृष्णेति द्वादशनामभिः केशवादि द्वादशनामभिर्वा-
पुष्पाणि समर्प्य तैरेव तर्पणं कृत्वा पायसगुडौदनचित्रौदनानि पवित्रं ते विततमिति निवेद्य संकर्मणादि पूर्वोक्त-
नामभिर्द्वादशकृत्सेराहुतीर्हुत्वा तैनेव शार्ङ्गिणे श्रियैः सगस्वत्यै विष्णवे दत्ति हुत्वा विष्णो नुं कवीर्याणि ० तदस्य प्रिय-
मभिपाथो ० प्रतद्विष्णुस्तव ते वीर्येण ० परोमात्रयातन्वा वृधान ० विचक्रमे प्रथिवी मे पणतां ० त्रिदेवः पृथिवी मे-
पणतां ० इति जुहुयान पुनः द्वादशनामभिर्जुहुयान ॥

ती अशी—‘प्राणप्रतिष्ठा मंत्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्राक्षयः ०’ यात्रा आरंभ करून ‘स्वस्मये सुमेन मुचिरं गतिं नु स्वाहा’ एधपर्यंत झाल्यावर प्रतिमेच्या हृदयावर अंगुष्ठ देऊन पुढील मंत्र जपावा. तो मंत्र—‘अस्य प्राणाः प्रतिप्रंतु अस्य प्राणाः क्षरंतु च ॥ अस्यै देवत्वमर्थेयं मामहेति च कश्चन ॥’ तदनंतर प्रणवानें रोधून मूर्ति गळाव आहे असे ध्यान करून ‘ध्रुवायाः ०’ ह्या तीन ऋचांचा जप करून कर्णांत गायत्रीचा व देवमंत्राचा जप करून पुरुषसूक्तानें उपस्थान करून पाद, नाभि व मस्तक यांना स्पर्श करून ‘इहैवैधि’ याचा त्रिवार जप करावा. तदनंतर कर्त्याने ‘स्वागतं देवदेवेश मद्वाग्यात्त्वमिहागतः ॥ प्राकृतं त्वमहद्वा मां बालवत्परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं ०’ इत्यादि प्रार्थना करून नमस्कार करावा. प्राणप्रतिष्ठेला आरंभ करून येथपर्यंत कृत्य सर्व देवांचें समान आहे. या ठिकाणी देवमंत्र ध्यावयाचा तो मूलमंत्र किंवा वैदिकमंत्र ध्यावा. तदनंतर आचार्याने किंवा यजमानानें त्या लिंगाची किंवा मूर्तीची पूजा करावी. ती अशी—‘ॐ भूः पुरुषमावाहयामि ०’ इत्यादि मंत्रानें आवाहन करून प्रणवानें आसन देऊन प्रणवाचा उच्चार करून ‘इमा आपः शिवतमाः पूताः पूततमा मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवेन मः’ ह्या मंत्रानें दूर्वा, श्यामाक, विष्णुक्रांता, कमल, यांनी मिश्रित असें पाय द्यावें. लिंग असेल तर ह्याच मंत्रांत ‘महाविष्णुर्विष्णवेन मः’ ह्याच्या स्थानी ‘महादेवो रुद्राय नमः’ असें म्हणावें. याप्रमाणें इतर देवता असेल तर तसा ऊह करावा. आचमनीया विषयी ‘इमा आपः शिवतमाः ०’ ह्या मंत्रांत ‘आचमनीयास्ता जुषतां ०’ असा ऊह करून आचमनीय द्यावें. ‘इमा आपः ०’ ह्याच मंत्रांत ‘अर्घ्यास्तां ०’ असा ऊह करून अर्घ्य द्यावें. नंतर देवाला वेदमंत्रांनीं स्नान घालून ‘इदं विष्णु ०’ या मंत्रानें विष्णूच्या प्रतिमेचे ठिकाणीं आणि ‘नमो अस्तु नीलप्रीवाय ०’ ह्या मंत्रानें लिंगाचे ठिकाणीं प्रतिसर (कंकण) सोडावा. ‘इमे गंधाः शुभा दिव्याः सर्वगंधैरलंकृताः ॥ पूता ब्रह्म-
पवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ पूताः पूततमा ०’ हा मंत्र पूर्वीप्रमाणें म्हणून गंध द्यावें. ‘इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमा-
ल्यैरलंकृताः ॥ पूताः पूततमा ०’ इत्यादि म्हणून माला द्याव्या. ‘इमे पुष्पाः शुभा ०’ इत्यादि मंत्रानें पुष्पें द्यावी. ‘वनस्पतिरसो
धूपोयं प्रतिगृह्यतां ॥ प्रतिगृह्णातु भगवान् ०’ इत्यादि म्हणून धूप द्यावा. ‘ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियः ॥ प्रज्योतिः
सर्वभूतानां दीपोयं प्रतिगृह्यतां ॥ प्रतिगृह्णातु भगवान् ०’ इत्यादि मंत्र म्हणून दीप द्यावा. विष्णूचे ठिकाणीं ‘संकर्मणाय नमः

वासुदेवायनमः' इत्यादि बारा नांवांनीं किंवा 'केशवायनमः' इत्यादिक बारा नांवांनीं पुष्पे समर्पण करून त्याच नांवांनीं तर्पणः करून पायस, गुडौदन, चित्रौदन यांचा 'पवित्रंतेविततं०' ह्या मंत्रानें नैवेद्य समर्पण करून पूर्वी सांगितलेल्या संकषणादिकः बारा नांवांनीं गृहसिद्धकृशराच्या (तिलमिश्र ओदनाच्या) बारा आहुति अग्नींत देऊन त्याच कृशरानें 'शार्ङ्गिणे० श्रियै० सरः स्वत्यै० विष्णवेस्वाहा' ह्या आहुतीचा होम करून 'विष्णोर्बुक्०, तदस्यप्रिय०, प्रतद्विष्णु०, परोमात्रया०, विचक्रमे०, त्रिदैवः पृथिवी०' ह्या सहा मंत्रांनीं सहा आहुति द्याव्या. नंतर पुनः बारा नांवांनीं होम करावा.

लिंगोत्तीर्णांत कृत्वा भवायदेवाय० शर्वाय० ईशानाय० पशुपतये० रुद्राय० उमाय० भीमाय० महोदेवायनमइति पुष्पाणिदत्वा तैरेवतर्पणकृत्वा पवित्रंतेइतिपायसंगुडौदनंचनिवेद्यपूर्वोक्तनामभिःकृसरं- हुत्वा भवस्यदेवस्यपठ्यैस्वाहेत्याद्यष्टभिर्गुडौदनंहुत्वा भवस्यदेवस्यसुतायस्वाहेत्याद्यैरिन्द्रौदनंहुत्वा त्र्यंबकंयजा महे० मानोमहांतमुतमानो० मानस्तोकेतनये० आरात्तेगोन्नमुतपूरुपत्रे० विकिरिदविलोहित० सहस्राणि स हस्र० इतिद्वादशणेतैर्हुत्वा शिवाय० शंकराय० सहमानाय० शितिकंठाय० कपर्दिने० ताम्राय० अरुणाय० अपगुरमाणाय० हिरण्यवाहवे० सर्पिंशराय० बभ्रुशाय० हिरण्यायेतिचजुहुयान् ततःस्विष्टकृदादिहो- मशेषंसमाप्य पूर्वोक्तमवहविभिर्विष्णवेर्लिगायवाबलिंदद्यान् मंत्रस्तु त्वामेकमायंपुरुषंपुरातनंनारायणंवि- श्वसृजंयजामहे त्वमेवयज्ञोविहितोविधेयस्त्वमात्मनात्मनप्रतिगृह्णीष्वहव्यमिति लिंगेननारायणपदेरुद्रंशिव- मितिचदेन् ततोऽश्वत्थार्पणंभूर्भुवःस्वरोमितिहुतशेषंनिधायप्रदक्षिणीकृत्यविश्वभुजेआत्मनेपरमात्मनेनमइति- नत्वा आचार्यायशतंतदर्थतदर्थद्वादशतिस्रएकंवागांदत्वाऋत्विग्भ्योपिदक्षिणांदत्वाशतंद्वादशवाब्राह्मणान्भो- जयेदितिसंक्षेपः प्रासादमात्रेनूतनेतुमात्स्योक्तजलाशयप्रतिष्ठाविधिमैवकुर्यान् गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादितुनभ- वति द्वारलोपान् वारुणहोमस्थानेवास्तुहोमः अन्यत्तद्वदेव इतिभट्टकमलाकरकृतौलिंगार्चाप्रतिष्ठाविधिः ॥

लिंग असेल तर दीपापर्यंत पूजा करून 'भवायदेवायनमः' इत्यादि आठ नाममंत्रांनीं पुष्पे समर्पण करून त्याच नाममंत्रांनीं तर्पण करून 'पवित्रंते०' ह्या मंत्रानें पायस आणि गुडौदन नैवेद्य समर्पण करून 'भवाय देवाय स्वाहा' ह्या आठ नाममंत्रांनीं कृमराचा होम करून नंतर 'भवस्य देवस्य पठ्यै स्वाहा' इत्यादिक आठ मंत्रांनीं गुडौदनाचा होम करून 'भवस्य देवस्य सुताय स्वाहा' इत्यादिक आठ मंत्रांनीं हरिद्रौदनाचा होम करून 'त्र्यंबकं०, मानोमहांत०, मानस्तोके०, आरात्तेगोन्न०' ह्या चार आणि 'विकिरिदविलोहित०, सहस्राणि सहस्रवा०' ह्या बारा ऋचा ह्यांनीं होम करून 'शिवाय०, शंकराय०,' ह्या बारा नामांनीं होम करावा. तदनंतर स्विष्टकृदादि होमशेष समाप्त करून पूर्वीच्या साऱ्या हवींनीं विष्णूला किंवा लिंगाला बलि द्यावा. बलिंदानाचा मंत्र—'त्वामेकमायं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे ॥ त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन प्रतिगृह्णीष्व हव्यम् ॥' लिंग असेल तर त्या मंत्रांत 'नारायणं' ह्या स्थानीं 'रुद्रंशिवं' असें म्हणावें. तदनंतर अश्वत्थाच्या पानावर 'भूर्भुवःस्वरोम्' ह्या मंत्रांनीं हुतशेष ठेवून प्रदक्षिणा करून 'विश्वभुजे सर्वभुजे आत्मने परमात्मनेनमः' असें म्हणून नमस्कार करून आचार्याला शंभर, पञ्चाम, पंचवीस, बारा, तीन, किंवा एक गाई देऊन ऋत्विजांनाही दक्षिणा देऊन शंभर किंवा बारा ब्राह्मणांना भोजन घालावें. असा हा थोडक्यांत प्रयोग सांगितला आहे. देवप्रतिष्ठा पूर्वीची असून केवळ प्रासाद नवीन केलेला असेल तर मात्स्योक्त जलाशयप्रतिष्ठाविधिच करावा. त्या प्रयोगांत गाईंचें उत्तारण वगैरे सांगितलेले आहे तें वर प्रासादप्रतिष्ठेत होत नाही. कारण, त्याचें येथें द्वार नाही. वारुणहोमाच्या स्थानीं वास्तुहोम करावा, बाकीचें सारें कृत्य त्यासारखेंच-समजावें.

इति लिंगार्चाप्रतिष्ठाविधिः ॥

अथपुनःप्रतिष्ठा तामधिकृत्यहयशीर्षपंचरात्रे चांडालमद्यसंस्पर्शदूषितावह्निनाथवा अपुण्य- जनसंस्पृष्टाविप्रक्षतजदूषिता संस्कार्येतिशेषः पदार्थादर्शब्राह्मे खंडितेस्फुटितेदग्धेभ्रष्टेमानविवर्जिते यागहीनेपशुस्पृष्टेपतितेदुष्टभूमिषु अन्यमंत्रार्चितेचैवपतितस्पर्शदूषिते दशस्वेतेषुनोक्तकुःसन्निधानंविबौकसः यागःपूजा पशुर्गर्दभादिः पंचरात्रे खंडितास्फुटितादग्धायस्मादर्चाभयावहा तस्मात्समुद्धरेत्तातुपूर्वोक्तवि- धिनानरः अर्चाभंगादावुपवासःकार्यः नराह्णोविप्लवेश्रीयात्सुरार्चाविप्लवेतथेति विष्णुधर्मोक्तेः सिद्धां- तशेखरेचौरचंडालपतितश्वेदक्यास्पर्शनेसति श्वाद्युपहतौचैवप्रतिष्ठांपुनराचरेत् पंचरात्रे अंगादंगवि- संधानेप्रतिष्ठांपुनराचरेत् जलाधिवासविहितनेत्रोन्मीलनवर्जिताम् शुद्धिविवेकेविष्णुः इत्यमृतम्

सौभाग्यदेवतार्चानांभूयःप्रतिष्ठापनेनशुद्धिरिति अर्चाःप्रतिमाः तद्व्यवस्थताम्रादेरुक्तशौचकृत्वा पुनःप्रतिष्ठां-
कुर्यादित्यर्थः स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् ॥

आतां पुनःप्रतिष्ठा सांगतो—

पुनःप्रतिष्ठेचा उपक्रम करून सांगतो—इयशीर्षपंचरात्रांत—“देवाची मूर्ति चांडाल, मद्य यांच्या स्पर्शानें दूषित झाली, अथवा अग्नीनें दग्ध झाली, किंवा पापीजनांच्या स्पर्शानें दूषित झाली, अथवा ब्राह्मणाच्या रक्तांनं दूषित झाली तर त्या मूर्तीची पुनःप्रतिष्ठा करावी.” पदार्थादर्शांत ब्राह्मणांत—“देवाच्या मूर्तीचे तुकडे उडाले, मूर्ति फुटली, दग्ध झाली, स्थानभ्रष्ट झाली, अपमानित झाली, पूजारहित झाली, कुत्रा गर्दभ इत्यादिक नीच पशूनें स्पष्ट झाली, दूषित भुईवर पडली, श्मश्रुदिकांनीं पूजित झाली, पतित-रजस्वला इत्यादिकांच्या स्पर्शानें दूषित झाली, ह्या दहा प्रकारांतून कोणताही प्रकार झाला असतां त्या मूर्तीचे ठायीं देव राहात नाहीत.” पंचरात्रांत—“ज्या कारणास्तव खंड झालेली, फुटलेली, व दग्ध झालेली प्रतिमा भय उत्पन्न करणारी आहे त्या कारणास्तव पूर्वी सांगितलेल्या विधीनें तसल्या प्रतिमेचा उद्धार करावा.” देवाच्या मूर्तीचा भंग वगैरे झाला असतां उपवास करावा. कारण, “राजाचा नाश झाला असतां भोजन करूं नये. तसेंच देवाच्या मूर्तीचा भंग झाला असतां भोजन करूं नये” असें विष्णुधर्मांत वचन आहे. सिद्धांतशेखरांत—“चोर, चांडाल, पतित, कुत्रा, रजस्वला, आणि शव इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असतां पुनःप्रतिष्ठा करावी.” पंचरात्रांत—“अंगदिकांचें संधान झालें असतां जलाधिवासांत विहित जें नेत्रोन्मीलन तें वज्र करून पुनःप्रतिष्ठा करावी.” शुद्धिविवेकांत विष्णु—“ताम्रादि धातूंच्या प्रतिमा दूषित झाल्या असतील तर त्या त्या धातूंची जी शुद्धि सांगितली असेल ती शुद्धि त्या प्रतिमांची करून पुनःप्रतिष्ठा करावी, म्हणजे शुद्धि होते.” म्हणजे त्या ताम्रादि धातूंच्या सांगितलेली शुद्धि करून त्या प्रतिमांची पुनः प्रतिष्ठा करावी, असा भाव. स्मृत्यर्थसारांतही असेंच सांगितलें आहे.

तद्विधिर्बौधायनसूत्रे पूर्वप्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वमेकरात्रद्विरात्रमेकमासद्विमासंवार्चनादिविच्छेदेशू-
र्रजस्वलाद्युपस्पर्शनेपूर्वोक्तेकालेपुण्याहंवाचयित्वायुग्मानब्राह्मणानभोजयित्वानिशायांजलाधिवासंकृत्वाश्वो-
भूतेकलशपूर्णेनपंचगव्येनतत्तन्मंत्रैःस्नापयित्वाऽन्यंकलशंशुद्धोदकेनापूर्यतस्मिन्नवरत्नानिप्रक्षिप्य तंकलशंतत्त-
द्वायत्र्याष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिवारंबाभिमन्त्र्यतेनोदकेनदेवंस्नापयेत्ततः शुद्धोदकेनस्नापयेदष्टसहस्रमष्टश-
तमष्टाविंशतिवारपुरुषसूक्तेनमूलमंत्रेणच ततःपुष्पाणिदत्त्वायथासंभवमर्चयित्वागुडौदनंनिवेदयेदिति बुद्धिपूर्व-
तुविच्छेदेपूर्वोक्तांप्रतिष्ठांपुनःकुर्यात् पूर्वोक्तविष्णुवचनात् इदंमलमासशुक्रास्तादावपिकार्यमितिमदनरत्ने-
हेमाद्रौच देवार्चाप्रासादभेदेनेतु शूलपाणौकाश्यपः वापीकूपारामसेतुसभातडागवप्रदेवतायतनभे-
दनेप्रायश्चित्तचतस्रआज्याहुतीर्जुहुयात् इदंविष्णुधर्मान्तोक्तेविष्णोःकर्माणिपादोत्येति यादेवतामुत्सादयति
तस्यैदेवतायैब्राह्मणानभोजयेदिति शंखलिखितौ प्रतिमारामकूपसंकमध्वजसेतुनिपातभंगेपुतत्समुत्थानं-
प्रतिसंस्कारोऽष्टशतंचनिपातितानामिति समुत्थानं प्रतिक्रिया प्रतिसंस्कारः पुनःप्रतिष्ठा अष्टशतंपणादंब-
ध्वेत्यर्थः ॥

पुनःप्रतिष्ठेचा विधि सांगतो—

बौधायनसूत्रांत—“पूर्वीं प्रतिष्ठित देवाची साहजिक (मुद्दाम होऊन नव्हे) एक दिवस, दोन दिवस, किंवा एक
महिना दोन महिनेपर्यंत पूजा वगैरे झालेली नसेल; अथवा शूद्र, रजस्वला इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असेल; तर पूर्वीं सांगित-
लेल्या सुसुहृतावर पुण्याहवाचन करून युग्म ब्राह्मणांना भोजन घालून रात्रीं जलाधिवास करून दुसऱ्या दिवशीं कलश करून
पंचगव्य घेऊन त्या पंचगव्यानें त्या त्या मंत्रांनीं स्नान घालून दुसरा कलश शुद्धोदकांनं भरून त्या कलशांत नवरत्नें टाकून त्या
कलशाचें त्या त्या देवतेच्या गायत्रीनें अष्टसहस्र, अथवा अष्टशत, किंवा अष्टाविंशतिवार अभिमन्त्रण करून त्या उदकांनं
देवाला स्नान घालावें. नंतर शुद्धोदक घेऊन पुरुषसूक्तांनं आणि मूलमंत्रानें अष्टसहस्र, किंवा अष्टशत अथवा अष्टाविंशतिवार
स्नान घालावें. तदनंतर पुर्वें समर्पण करून यथासंभव पूजा करून गुडौदनाचा नैवेद्य दाखवावा.” पूजादिकांचा विच्छेद
मुद्दाम दोऊन केलेला असेल तर वर सांगितलेल्या विष्णुवचनावरून पूर्वीं सांगितलेली प्रतिष्ठा पुनः करावी. ही पुनःप्रतिष्ठा
मलमासांत व शुक्रादिकांच्या अस्तादिकांतही करावी, असें मदनरत्नांत व हेमाद्रौच सांगितलें आहे. देवाची मूर्ति, देवाचा
प्रासाद यांचा भेद केला असेल तर सांगतो. शूलपाणींत काश्यप—“वापी, कूप, आराम (उपवन), पूल, सभा,
तडाग, प्राकार, देवालय यांचा भेद केला असेल तर प्रायश्चित्त करावें; तें असें—इदंविष्णुः०, मानस्तोके०, विष्णोः

कर्माणं, पादोऽयं' ह्य चार मंत्रांनीं चार आज्याहुतींचा होम करावा. आणि ज्या देवतेचा उच्छेद करील त्या देवतेच्या उद्देशानें ब्राह्मणांना भोजन घालवें." स्तंख व लिखित—“देवाची प्रतिमा, आराम, कूप, किङ्कयाचा मार्ग, ध्वज, सेतु हीं पाडलीं असतां त्यांची दुरुस्ती करावी. व त्यांची पुनःप्रतिष्ठा करावी. आणि ज्यांनीं तीं पाडलीं असतील त्यांना आठशें पण दंड करावा."

अथजीर्णोद्धारः सचलिंगादौदग्धेभग्नेचलितेवाकार्यः अयंचानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिंगादौभंगादिदुष्टे-
पिनकार्यः तत्रतुमहाभिषेकंकुर्यादिति**त्रिविक्रमः** कर्तामुकदेवस्यजीर्णोद्धारकरिष्येइत्युक्त्वा पुण्याहवाच-
यित्वानांदीश्राद्धांतंकृत्वाआचार्यमृत्विजश्चवृत्वापीठेमंडलदेवताआवाह्य लिंगोऽव्यापकेश्वरहृदयायनमः
ऽव्यापकेश्वरशिरसेस्वाहेत्येवंपडंगंकृत्वा देवतांतरेमूलमंत्रेणपडंगंकृत्वाअर्चयेत् अघोरमंत्रंअष्टोत्तरशतंज-
त्वाऽग्निप्रतिष्ठाप्याघोरेणघृतसर्पपैःसहस्रंहुत्वा इंद्रादिभ्योनाम्नाबलिदत्वाजीर्णदेवंप्रणवेनसंपूज्यसाज्यतिलैर्भ-
क्षादिमंडलदेवतानांहोमंपूर्वोक्तंकृत्वादेवंप्रार्थयेत् जीर्णभग्नमिदंदेवसर्वदोषावहंनृणाम् अस्योद्दारेकृतेशांतिः-
शास्त्रेऽस्मिन्नकथितात्वया जीर्णोद्धारविधानंचनृपराष्ट्रहितावहम् तदधस्तिष्ठतांदेवप्रहरामितवाज्ञयेति ततःश्री-
राज्यमधुर्वीभिःसमिद्धिश्चाष्टोत्तरसहस्रंअष्टोत्तरशतंवादेवमंत्रेणहुत्वाऽगानांदशांशेनलिंगचालनार्थंसहस्रंश-
ायेनसेनहुत्वालिंगंप्रार्थयेत् लिंगरूपंसमागत्ययेनेदंसमधिष्ठितम् यायास्त्वंसमितंस्थानंसंत्यज्यैवशिवा-
अत्रस्थानेचयाविद्यासर्वविद्येश्वरैर्युता शिवेनसहसंतिष्ठेतिमंत्रितजलेनाभिषिच्यविसर्जयेत् ततोऽस्त्रमं-
खनित्रेणखात्वा लिंगमादायनद्यादौवामदेवेनलिंगंप्रणवेनमूर्तिंक्षिपेत् दारुजंतुमधुनाऽभ्यज्याघोरेणद-
मरत्नादिमयंतुदग्धंचलितंवापुनस्तत्रैवस्थापयेत् ततःशांत्यैअघोरेणतिलैःसहस्रंहुत्वाप्रार्थयेत् भगवन्-
ज्येशोलोकनाथजगत्पते जीर्णलिंगसमुद्धारःकृतस्तवाज्ञयामया अग्निनादारुजंदग्धंक्षिप्तंशैलादिकंजले
स्तायदेवेशअघोरास्त्रेणतर्पितम् ज्ञानतोऽज्ञानतोवापियथोक्तंकृतयदि तत्सर्वपूर्णमेवास्तुत्वत्प्रसादान्म-
ते ततोयजमानःप्रार्थयेत् गोविप्रशिल्पिभूतानामाचार्यस्यचयज्वनः शांतिर्भवतुदेवेशअच्छिद्रंजायता-
मूर्तौतुविशेषः त्वत्प्रसादेननिर्विद्वेहंनिर्माययत्यसौ वासंकुरुसुरश्रेष्ठतावच्चंचाल्यकेगहे वसन्हे-
हमूर्तिंवैतवपूर्ववन यावत्कारयतेभक्तःकुरुतस्यचवाञ्छितमिति ततो नवांमूर्तिलिंगाकृत्वोक्तविधिना-
त् मूलं**त्वग्निपुराणे**स्पष्टम् इतिजीर्णोद्धारः ॥

आनां जीर्णोद्धार सांगतो—

जीर्णोद्धार लिंग किंवा प्रतिमा दग्ध, भग्न किंवा चलित झाली असतां करावा. हा जीर्णोद्धार, अनादि व सिद्धानें
। असें लिंग वगैरे असेल तर त्या ठिकाणीं भंगादि दोष उत्पन्न झाल्या असल्या तरी करूं नये. त्या ठिकाणीं महाभिषेक
असं **त्रिविक्रम** सांगतो. जीर्णोद्धारचा प्रयोग—कर्त्यानें 'अमुकदेवस्य जीर्णोद्धार करिष्ये' असा संकल्प करून
।।चन नांदीश्राद्ध करून आचार्य आणि ऋत्विज यांना वरून लिंगाचे ठायीं 'ऽव्यापकेश्वर हृदयायनमः,' 'ऽव्यापकेश्वर
वाहा' याप्रमाणें पडंगन्यास करून इतर देवतेचे ठायीं मूलमंत्रानें पडंगन्यास करून पूजा करावी. नंतर 'अघोर०' ह्या
एकशेंआठ जप करून अग्निस्थापन करून 'अघोर०' ह्या मंत्रानें घृतयुक्त सर्पपांनीं एक सहस्र होम करून इंशदि
। नाममंत्रानें बलि देऊन जीर्णदेवाची प्रणवानें पूजा करून ब्रह्मादिमंडलदेवतांचा पूर्वी (प्रतिष्ठेत) सांगितलेला
रून देवाची प्रार्थना करावी. ती अशी—'जीर्णभग्नमिदं देव सर्वदोषावहं नृणां ॥ अस्योद्दारे कृते शांतिः शास्त्रेऽस्मिन्
लया ॥ जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रभयावहम् ॥ तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया ॥' नंतर दूध, आज्य, मध,
।।ंचा आणि समिधांचा अष्टोत्तरसहस्र किंवा अष्टोत्तरशत देवमंत्रानें होम करून अंगांचा दशांशानें होम करून
ऊनासाठीं सहस्र किंवा शत पायसाचा होम करून लिंगाची प्रार्थना करावी. 'लिंगरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् ॥
। संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्रस्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता ॥ शिवेन सह संतिष्ठ' याप्रमाणें
करून मंत्रितजलानें अभिषेक करून विसर्जन करावें. नंतर अन्नानें मंत्रित असें खनित्र (कुदळ वगैरे) घेऊन
तें लिंग घेऊन वामदेवमंत्रानें तें लिंग, मूर्ति असेल तर प्रणवानें ती मूर्ति नदीच्या वगैरे उदकांत टाकावी. काष्ठानें
वगैरे असेल तर मधानें भिजवून अघोरमंत्रानें दहन करावें. सुवर्णादि धातूचें किंवा रत्नाचें असेल तर गीट करून
।।च ठिकाणीं स्थापन करावें. तदनंतर शांतीकृतितां अघोरमंत्रानें तिल्यांचा सहस्र होम करून प्रार्थना करावी. ॥

अशी—‘भगवन् भूतभक्ष्येश लोकनाथ जगत्पते ॥ जीर्णलिंगसमुद्धारः कृतस्तवाज्ञया मया ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षितं शैलादिकं जले ॥ प्रायश्चित्ताय देवेश अघोराखणे तर्पितम् ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि ग्रथोक्तं न कृतं यदि ॥ तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥’ तदनंतरं यजमानानं प्रार्थना करावी, ती अशी—“गोविप्रशिलिपभूतानामाचार्यस्य च यज्वनः ॥ शांतिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जायतामिदम् ॥”. नवी मूर्ति करावयाची असेल तर विशेष सांगतो—‘त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्माययस्यौ ॥ वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥ वसन्क्लेशं सहिलैव मूर्तिं वै तव पूर्ववत् ॥ यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥’ अशी प्रार्थना करून नवी मूर्ति किंवा नवे लिंग करून पूर्वी सांगितलेल्या विधीने स्थापन करावे. या जीर्णोद्धारची मूलवचने अभिपुराणांत सांगितली आहेत.

इति जीर्णोद्धारविधि समाप्त झाला.

अथतुलसीग्रहणम् देवयाज्ञिककृते स्मृतिसारे वैधृतौचव्यतीपातेभौमभार्गवभानुषु पर्वद्वयेचसंक्रांतौद्वादश्यांसूतकद्वये तुलसीयेविचिन्वितितेछिदंतिहरेःशिरः विष्णुधर्मोत्तरं रविवारविनादूर्वा-तुलसीद्वादशीविना जीवितस्याविनाशायप्रविचिन्वीतधर्मविन तथा संक्रांतावर्कपश्चातेद्वादश्यानिशिसंध्ययोः यैश्छिन्नंतुलसीपत्रतैश्छिन्नंहरिमस्तकम् पाद्मे द्वादश्यांतुलसीपत्रंधात्रीपत्रंचकार्तिके लुनातिमनरो-गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् रुद्रयामले द्वादश्यांचदिवास्वापन्तुलस्यवचयस्तथा विष्णोश्चैवदिवास्नानंवर्ज-नीयंसदाबुधैः विष्णुधर्मे नछिद्यात्तुलसीविप्रोद्वादश्यांवैष्णवःकचिन देवाथेंतुलमीच्छेदोहोमार्थममिधां-तथा इंदुक्षयेनदुष्येतगवाथेंतुतृणस्यच ग्रहणमंत्रस्तुपाद्मे तुलस्यमृतजन्मासिमदात्वंकेशवप्रिये केश-वार्थविचिन्वामिवरदाभवशोभने इति पारिजातेदक्षः ममित्पुष्पकुशादीनांद्वितीयःप्रहरोमतः ॥

आतां तुलसीग्रहणाचा प्रकार सांगतो—

देवयाज्ञिककृत स्मृतिसारांत—‘वैधृति, व्यतीपान, भौमवार, गगुवार, रविवार, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रांति, द्वादशी, जननाशौच, मृताशौच यांपैकी कोणतेही अमृतां जे मनुष्य तुलसीचा लेद करितात ते भगवंतांचे मस्तक तोड-तात.’ विष्णुधर्मोत्तरांत—‘रविवारीं दुर्वा तोडली, आणि द्वादशीस तुळस तोडली तर आयुष्याचा नाश होतो, म्हणून धर्मवेत्त्यानं दुर्वा रविवारीं काढूं नये. आणि द्वादशीस तुळस काढूं नये.’ तसेच—‘संक्रांति, रविवार, पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, रात्र, आणि रात्रिदिवसांचे दोन संध्यासमय यांचे ठायीं ज्यांनी तुलसीपत्र तोडलें त्यांना भगवंतांचें मस्तक तोडलें म्हणून समजावें.’ पाद्मांत—‘द्वादशीस तुलसीपत्र, आणि कार्तिकमासांत आंवळीच पान जां तोडतो, तो मनुष्य अति-निय अशा नरकांस जातो.’ रुद्रयामलांत—‘द्वादशीस दिवानिद्रा, तुलशी तोडणें, आणि विष्णूला दिवसा स्नान घालणें हीं तीन कृत्यें विद्वानांनीं सदा वर्ज्य करावीं.’ विष्णुधर्मांत—‘विष्णुभक्त ब्राह्मणांत द्वादशीस कर्धाही तुळस काढूं नये. अमावास्यास वनस्पतीची हिंसा निषिद्ध आहे त्याचा अपवाद सांगतो—अमावास्यास देवाकरिता तुळशी तोडणे, होमाकरितां समिधा तोडणें आणि गाईकरितां गवत तोडणें दोषावह होत नाही.’ तुळसी काढण्याचा मंत्र सांगतो पाद्मांत—‘तुलस्यमृत-जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ॥ केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥’ पारिजातांत दक्ष—‘रामिया, पुष्पं, कुश इत्यादि काढण्याला दुसरा प्रहर सांगितला आहे.’

अथपुष्पादेःपर्युषितत्वम् भार्गवार्चनेभविष्ये प्रहरंतिप्रतेजातीकरवीरमहर्निशम् तुलस्यां-बिल्वपत्रेषुसर्वेषुजलजेषुच नपर्युषितदोषोस्तिमालाकारगृहेपिच बृहन्नारदीये वर्ज्यपर्युषितंपुष्पंवर्ज्यपर्यु-षितंजलम् नवर्ज्यतुलसीपत्रंनवर्ज्यजाह्नवीजलम् तत्रैवपाद्मे तुलसीपर्युषितानैवबिल्वंतुत्रिदिनावधि पद्मं पंचदिनात्त्याज्यंशेषंपर्युषितंविदुः स्कांदे पालाशंदिनमेकंतुपंकजंचदिनत्रयम् पंचाहंबिल्वपत्रंचदशाहंतुल-सीदलम् पदार्थादर्शबोपदेवस्त्वन्यथाह बिल्वापामार्गजातीतुलसिसिमिशताकेतकीभृंगदूर्वामंदांभोजा-हिदूर्भासुनितिलतगरब्रह्मकल्हारमल्लयः चंपाश्वारातिकुंभीदमनमरुबकाबिल्वतोहानिशस्ताक्षिश ३०३ये ३का १ र्येदरी ६शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू १ भू १ यमा २ भूय एवम् अस्यार्थः शताशतावरी मंदःमंदारः अहिर्नाग-केशरः मुनिरगस्त्यः अश्वारातिःकरवीरः कुंभीपाटलेतिकैदेवनिघंडुः अरयःषट् ईशाःएकादश उदधयश्च-त्वारः निधयोनव वसवोऽष्टौ भूःएकः यमौद्वौ बिल्वमारभ्याऽहिपर्यंतंगणयित्वादर्भमारभ्यपुनश्चिंशदावि-गणयेदित्यर्थः एतद्दिनोत्तरंपर्युषितानीत्यर्थः टोडरानंदे स्कांदे दमनमुपक्रम्य तस्यमालाभगवतःपरम-

प्रीतिकारिणी शुष्कापर्युषितावापिनदुष्टाभवतिक्वचित् तिथितत्त्वेमात्स्ये विल्वपत्रंचमाध्यंचतमालाम-
लकीदले कल्हारंतुलसीचैवपद्मांशुनिपुष्पकम् एतत्पर्युषितंनस्यात्कुशाश्रकलिकास्तथा स्मृतिसाराव-
ल्याम् जलजानांचसर्वेषांपत्राणामहतस्यच कुशपुष्पस्यरजतसुवर्णकृतयोरपि नपर्युषितदोषोस्तितीर्थतोय-
स्यचैवहि मुकुलैर्नार्चयेद्देवंपंकजैर्जलजैर्विना ॥

आतां पुष्पे, पत्रे हीं किती कालाने पर्युषित (बाशीं) होतात ते सांगतो-

भार्गवार्चनांत भविष्यांत—“जाईचीं फुलें एक प्रहर राहतात, नंतर पर्युषित होतात. कण्हेरीचीं फुलें अहोरात्रपर्यंत राहतात. तुलसी, विल्वपत्रे आणि सारीं कमलें यांना पर्युषित दोष नाही. आणि माळ्याच्या घरीं असलेल्या पुष्पांना देखील पर्युषित दोष नाही.” **बृहन्नारदीयांत**—“पर्युषित (बासें) पुष्प आणि पर्युषित उदक वर्ज्य करावें. पण तुलसीपत्र आणि भागीरथीचें उदक हें पर्युषित असलें तरी वर्ज्य करूं नये.” तेथेंच **पाद्मांत**—“तुळस पर्युषित होतच नाही. विल्वपत्र तीन दिवस पर्युषित होत नाही. कमल पांच दिवस पर्युषित होत नाही. इतर पुष्पे वगैरे एकरात्र गेल्यावर पर्युषित होतात.” **स्कांदांत**—“पलसाचें पुष्प एक दिवस राहतें. कमळ तीन दिवस राहतें. विल्वपत्र पांच दिवस राहतें. आणि तुलसीपत्र दहा दिवस राहतें.” **पदार्थादर्शांत वोपदेव** तर वेगळ्याच रीतीनें सांगतो—“विल्वपत्र ३० दिवस, आघाडा ३ दिवस, जाईचें पुष्प १ दिवस, तुळसी ६ दिवस, शमीपत्र ६ दिवस, शतावरी ११ दिवस, केतकी ४ दिवस, माका ९ दिवस, दुर्वा ८ दिवस, मंदारपुष्प १ दिवस, कमळ १ दिवस, नागाचांप्याचें पुष्प २ दिवस, दर्भ ३० दिवस, अगस्त्यपुष्प ३ दिवस, तिल-पुष्प १ दिवस, तगर ६ दिवस, पलसाचें पुष्प ६ दिवस, कल्हार (संध्याविकासी शुक्रकमल) ११ दिवस, मोगरी ४ दिवस, चांफा ९ दिवस, कण्हेर ८ दिवस, पाटला १ दिवस, दवणा १ दिवस, श्वेतमर्वा २ दिवस, येथपर्यंत पर्युषित होत नाहीत. याच्यापुढें पर्युषित होतात.” **टोडरानंदांत स्कांदांत**—दवण्याचा उपक्रम करून सांगतो—“त्या दवण्याची माळा भगवंताला अतिशय आनंद करणारी आहे. ती शुष्क झाली किंवा पर्युषित झाली तरी कधीही दुष्ट होत नाही.” **तिथितत्त्वांत मात्स्यांत**—“विल्वपत्र, कुंदपुष्प, तमालवृक्षाचें पत्र, आंवळीचें पत्र, कल्हारकमल, तुलसीपत्र, कमल, अगस्त्यपुष्प, कुश आणि पुष्पांच्या कळ्या हीं पूर्वीच्या दिवसाची अमलीं तरी पर्युषित होत नाहीत.” **स्मृतिसारावलींत**—“सारीं कमलें, सारीं पत्रे, कुश, पुष्पे हीं कुजलीं किंवा गडलीं नमतील तर त्यांना पर्युषित दोष नाही. आणि सोन्याहण्याचीं केलेलीं असतील त्यांना पर्युषितदोष नाही. तसाच तीथांदकाला पर्युषितदोष नाही. जलकमळांवांचून इतर पुष्पांच्या कळ्यांनीं देवाची पूजा करूं नये.”

अथशिवनिर्मात्यनिर्णयः सिद्धांतेश्चरे धराहिरण्यगोरक्षताम्ररौप्यांशुकादिकान् विहायशेष-
र्षनिर्मात्यंचंडेशायनिवेदयेत् अन्यदन्नादिपानीयंतांबूलगंधपुष्पकम् दद्याच्चंडायनिर्मात्यंशिवभुक्तुसर्वशः
आचार्यशिवचंडानामाज्ञाभंगेतुलक्षकम् धनस्यभक्षणेतेपांपादोनंलक्षमीरितम् निर्मात्येभक्षितेलक्षपादतः
शुद्धिरीरिता दानंचभक्षणसमंतदधृतपुष्पेक्षणे अकामाद्भक्षणेयद्वानिर्मात्यस्यजपेतुधीः ब्रह्मपंचकसाहस्रंधर्मेण
सहितंततः कामतोभक्षणेदीक्षाप्रायश्चित्तंचान्यतः निर्मात्यलंघनेघोरंप्रजपेदयुतंततः स्पर्शश्चलंघनसमोवि-
क्रयोभक्षणेनच स्मृत्यर्थसारेपि शैवसौरनिर्मात्यनैवेद्यभक्षणेचांद्रम् अभ्यासेद्विगुणं मत्याभ्यासेप्रतपनम्
अन्यनिर्मात्येप्यनापद्येवमिति इदंचज्योतिर्लिंगाद्यतिरिक्तविषयम् तथाचपुरुषार्थप्रबोधेभविष्ये ज्योति-
र्लिंगविनालिंगयःपूजयतिसत्तमः तस्यनैवेद्यनिर्मात्यभक्षणात्तत्प्रकृच्छ्रकम् शालग्रामोद्भवेलिंगेबाणलिंगेस्वयं
भुवि रसलिंगेतथापंचसुरसिद्धप्रतिष्ठिते हृदयेचंद्रकांतेचस्वर्णरौप्यादिनिर्मिते शिवदीक्षावताभक्तेनंदंभक्ष्य-
मितीर्यते तथा बाणलिंगेस्वयंभूतेचंद्रकांतेहृदिस्थिते चांद्रायणसमंज्ञेयंशंभोर्नैवेद्यभक्षणं लिंगेस्वयंभुवेबाणे-
रब्रजेरसनिर्मिते सिद्धप्रतिष्ठितेचैवचंडाधिकृतिर्भवेत् यत्रचंडाधिकारोस्तितद्भोक्तव्यंनमानवैः चंडाधिकारो-
नोयत्रभोक्तव्यंतत्रभक्तितः त्रैविक्रम्याम् बाणलिंगेचलौहेचसिद्धलिंगेस्वयंभुवि प्रतिमासुचसर्वासुनचंडो-
धिकृतोभवेत् अत्र ब्रह्महापिशुचिर्भूत्वानिर्मात्यंयस्तुधारयेत् तस्यपापंमहच्छ्रीग्रंताशयिष्येमहाप्रते इतिस्कां-
दादशुचिनामग्राहंशिवनिर्मात्यं किंतुस्नात्वेतिस्मार्ताः अनुपनीतेननग्राहमितिश्रीदत्तः शिवदीक्षादी-
नैर्नग्राहमितिशैवाः तिथितत्त्वेहेमाद्रौपरिशिष्टे अग्राहंशिवनैवेद्यंपत्रपुष्पफलंजलं शालग्रामशिला-
संगात्सर्वयातिपवित्रताम् पंचायतनपूजायांतत्रेणचनिवेदितमित्यर्थः शिवपुराणे येवीरभद्रशपिन्नाःशिव-

भक्तिपराङ्मुखाः शंभोरन्यत्रदेवेषुभक्तायेनदीक्षिताः तेषामनर्हमीशस्यतत्प्रसादचतुष्टयम् काशीखंडे जलस्यधारणमूर्ध्निविश्वेशस्नानजन्मनः एषजालंधरोबंधःसमस्तसुरवह्नभः तथा स्नापयित्वाविधानेनयो लिङ्गस्नपनोदकं त्रिःपिबेत्रिविधंपातंत्येहाशुविनश्यति लिङ्गस्नपनवार्धिर्यःकुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनं गंगास्नान-फलंतस्यजायतेऽत्रविपाप्मनः इदंपूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषयमितिकेचित् काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्ग-विषयम् काशीखंडेरत्नेश्वराख्याने तथैवदर्शनादित्यन्ये ॥

आतां शिवनिर्माल्याचा निर्णय सांगतो—

सिद्धांतशेखरांत—“भूमि, हिरण्य, गाई, रत्ने, ताम्र, रौप्य, वस्त्रे इत्यादि वेगळून इतर शिवनिर्माल्य चंडेशाला निवेदन करावा. इतर शिवनिर्माल्य कोणता तें सांगतो—अन्नादि भोज्य व भक्ष्य पदार्थ, पाणी, तांबूल, गंध, पुष्पे इत्यादि शिवानें उपभुक्त म्हणून निर्माल्य झालेले सर्व पदार्थ चंडाला द्यावे. आचार्य, शिव आणि चंड ह्यांच्या आज्ञेचा भंग केला असतां लक्ष गायत्रीजप करावा. त्या आचार्यादिकांचें द्रव्य खाळें असतां पाऊण लक्ष गायत्रीजप करावा. निर्माल्य भक्षण केला असतां पंचवीस हजार जप करावा, म्हणजे शुद्धि होते. दान करणें हें भक्षणासमान आहे. आणि कोणी भक्षण किंवा दान करीत असतां त्याची उपेक्षा केली असतां त्याच्या निम्में प्रायश्चित्त करावें. अथवा इच्छा नसून साहजिक निर्माल्य भक्षण केला असतां सांगितलेल्या विधीनें पांच हजार गायत्रीचा जप करावा. आणि मुद्दाम होऊन भक्षण केलें असतां दीक्षा घ्यावी. ह्यावांचून दुसरें प्रायश्चित्त नाही. निर्माल्याचें उल्लंघन केलें असतां अघोरमंत्राचा दहा हजार जप करावा. निर्माल्यास स्पर्श करणें तो उल्लंघनासारखा आहे. आणि विक्रय करणें तो भक्षणासारखा आहे.” **स्मृत्यर्थसारांतली—**शिवाचा व सूर्याचा निर्माल्य आणि नैवेद्य भक्षण केला असतां चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें. वारंवार भक्षण केला असतां द्विगुणित करावें. मुद्दाम होऊन वारंवार भक्षण केला असतां प्रतपन (सातपन) कृच्छ्र करावें. इतर देवांच्या निर्माल्याविषयीं देखील आपत्काल नसतां असेंच समजावें. हा शिवनिर्माल्याचा निषेध ज्योतिर्लिंगादिव्यतिरिक्त लिङ्गविषयक आहे. तेंच सांगतो **पुरुषार्थप्रबोधांत भविष्यांत—**“जो भक्त ज्योतिर्लिंगावांचून इतर लिंगाची पूजा करितो, त्यानं त्या लिंगाच्या नैवेद्याचें व निर्माल्याचें भक्षण केलें तर तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. शालग्रामाचें लिङ्ग, वाणलिङ्ग, स्वयंभूलिङ्ग, पारदाचें लिङ्ग, ऋषिलिङ्ग, देवांनीं व सिद्धांनीं प्रतिष्ठित लिङ्ग, मानसपूजेंत हृदयांतील लिङ्ग, चंद्रकांताचें लिङ्ग, सुवर्ण-रौप्य इत्यादिकांचें लिङ्ग, यांचा नैवेद्य व निर्माल्य शिवदीक्षा घेतलेल्या भक्तांनं भक्षण करावा, असें सांगितलें आहे. तसेंच—वाणलिङ्ग, स्वयंभूलिङ्ग, चंद्रकांतलिङ्ग, हृदयस्थलिङ्ग, यांच्या नैवेद्याचें भक्षण चांद्रायणासमान पवित्र करणारें आहे. स्वयंभूलिङ्ग, वाणलिङ्ग, रत्नाचें लिङ्ग, पारदलिङ्ग, आणि सिद्धानें स्थापितलिङ्ग यांच्या निर्माल्यग्रहणाविषयीं चंडाला अधिकार नाही. ज्या ठिकाणीं चंडाचा अधिकार असेल त्या लिंगाचा नैवेद्य वगैरे मनुष्यांनीं भक्षण करूं नये. ज्या ठिकाणीं चंडाचा अधिकार नसेल त्या ठिकाणाचा नैवेद्य वगैरे भक्तिपूर्वक भक्षण करावा.” **त्रिविक्रमपद्धतींत—**“वाणलिङ्ग, धातुलिङ्ग, सिद्धलिङ्ग, स्वयंभूलिङ्ग, आणि साऱ्या प्रतिमा, इतक्या ठिकाणीं चंडाला अधिकार असत नाही.” ह्या विषयावर ग्रंथकार असं सांगतो की, “महादेव म्हणतात हे पार्वति ! ब्रह्मघातकी असली तरी शुद्ध होऊन जो माझा निर्माल्य धारण करील, त्याच्या मोठ्या पापाचा मी लवकर नाश करीन,” ह्या **स्कंदपुराणांतील** वचनावरून अशुचि अवस्थेंत शिवनिर्माल्य ग्रहण करूं नये. तर स्नान करून ग्रहण करावा, असें **स्मार्ते** सांगतात. उपनयन झालें नसेल त्यानं शिवनिर्माल्य ग्रहण करूं नये, असें **श्रीदत्त** सांगतो. शिवदीक्षा घेतली नसेल त्यांनी शिवनिर्माल्य ग्रहण करूं नये, असें **शैव** सांगतात. **तिथितत्त्वांत** आणि **हेमाद्रींत परिशिष्टांत—**“शिवाचा नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल आणि उदक हीं ग्रहण करण्याला योग्य नाहीत. पंचायतनपूजेमध्ये व एकतंत्रानें अर्पण केलेलीं असतील तर शालग्रामाच्या संगतीनं तीं सारीं ग्रहण करण्याला योग्य होतात.” **शिवपुराणांत—**“जे मनुष्य वीरभद्रानें शापित असल्यामुळें शिवभक्तीविषयीं पराङ्मुख असतील, जे मनुष्य शंकरावांचून इतर देवांचे भक्त असतील, ज्यांनीं शिवदीक्षा घेतली नसेल, त्यांना शिवाचे चार प्रसाद (नैवेद्य, निर्माल्य, तीर्थ, गंध) ग्रहण करण्यास योग्य होत नाहीत.” **काशीखंडांत—**“विश्वेश्वराला स्नान घालून तें उदक मस्तकावर धारण करणें हा जालंधरोबंध सर्व देवांना आवडणारा आहे.” तसेंच “जो मनुष्य लिंगाला यथाविधि स्नान घालून तें स्नानोदक त्रिवार प्राशन करील त्याचें त्रिविध (कायिक, वाचिक, मानसिक) पाप तत्काल नष्ट होतें. जो मनुष्य लिंगाला स्नान घालून तें उदक आपल्या मस्तकावर सिंचन करील, तो पाप-रहित होऊन त्याला गंगास्नानाचें फळ प्राप्त होतें.” ह्या दोन वचनांनीं स्नानोदकाचें प्राशन व सिंचन सांगितलें तें पूर्वीच्या वचनावरून विश्वेश्वराविषयीं समजावें, असें **केचित्** सांगतात. काशीतील पुराणप्रसिद्ध जीं लिंगें, त्या सर्वांविषयीं समजावें, कारण, काशीखंडांत **रत्नेश्वराच्या** आख्यानांत तसेंच दृष्टीस पडतें, असें इतर सांगतात.

अथकृषिः राजमार्तंडः ऋक्षेष्टतरयौष्णवैष्णवमधामूलानुराधाश्विनीप्राजापत्यकरद्विदैवतगुरु-

प्रालेयपादेषुच निर्दोषैर्वृषभैर्हलैश्चसुमनोमालाभिरभ्यर्चितैर्दत्त्वाक्षेत्रपतेर्बल्लिहलधरःक्षेत्रततःकर्षयेत् प्राजेश-
श्रवणोत्तरादितिमघामार्तडतिष्ठाश्विनीपौष्णानुष्णमरीचयःशतभिषक्स्वातीविशाखातथा जीवाकेंदुसितेंदु-
नंदनदिनेलभ्रेचसौम्योदयेसस्यानांवपनेतथैवलवनेशस्तास्तथापोणे चंडेश्वरः हस्तचित्रादितिस्वातीरेवत्यां-
श्रवणत्रये स्थिरलभ्रेगुरोर्वारेबीजं धार्यज्ञशुक्रयोः ॐ धनदायसर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा लेखयित्वा इमं-
मंत्रं धान्यागारे निधापयेत् सस्यवृद्धिपरां कुर्यात्पूजितं प्रतिपूजयेत् दक्षिणदिङ्मुखगमनं गमनमभिनवासुनारीषु
व्ययमपि सस्य धनानां न बुधावुधवासरे कुरुः शनिवारे च नो कार्यो धनधान्यव्ययो बुधैः ॥

आतां कृषिकर्म (शेती) सांगतो—

राजमार्तंड—“तीन उत्तरा, रेवती, श्रवण, मघा, मूल, अनुराधा, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, विशाखा, पुष्य, मृगशीर्ष,
या नक्षत्रांवरः क्षेत्रपतीला बलि देऊन नंतर दोषरहित वृषभ घेऊन त्यांना पुष्पांच्या मालांनीं अर्चित (अलंकृत) करून
नांगर बांधून शेतकऱ्याने शेत नांगरावे. रोहिणी, श्रवण, तीन उत्तरा, पुनर्वसु, मघा, हस्त, पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशीर्ष,
शततारका, स्वाती, विशाखा, ह्या नक्षत्रांवरः गुरु, रवि, चंद्र, शुक्र, बुध या वारीं; शुभलमावरः शेतें पेरावीं, शेतें लावावीं
आणि शेतें कापावीं.” चंडेश्वर—“हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, या नक्षत्रांवरः
गुरु, बुध, शुक्र, यांच्या वारीं; स्थिरलमावर धान्य सांठवावे. ‘ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा’ हा मंत्र
लिहून धान्याच्या कोठारांत ठेवावा, म्हणजे धान्याची अत्यंत वृद्धि करील; कारण, धान्यदेवतेची आपण पूजा केली असतां
ती देवता आपली पूजा करील. दक्षिण दिशेस गमन, नव्या स्त्रियेप्रत गमन, धान्याचा व धनाचा व्यय हे विद्वानांनीं बुधवारीं
करूं नयेत. तसाच धनाचा व धान्याचा व्यय शनिवारीं करूं नये.”

अथ वस्त्रं श्रीपतिः रोहिणीपुकरपंचके शिभेच्युत्तरासुचपुनर्वसुद्वये रेवतीषु वसुदैवते च भेनव्य वस्त्र-
परिधानमिष्यते जीर्णैरवौ सततं मंभुभिरार्द्रमिंदौ भौमेशु चेबुधदिने नुभवेद्वेदनाय ज्ञानाय मंत्रिणिभृगौ प्रियसंगमा-
यमंदेमलाय च न वान्वरधारणस्यात् रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे यात्रिभर्तिन व वस्त्रभूषणे सानयोषिदबलंबते पतिं स्ना-
नमाचरति वारुणे पिया ॥

आतां वस्त्रधारण सांगतो—

श्रीपति—“रोहिणी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, अश्विनी, तीन उत्तरा (उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तरा-
भाद्रपदा), पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, धनिष्ठा, या नक्षत्रांवर नवे वस्त्र धारण करावे. नव्या वस्त्रांचे धारण रविवारीं केलें असतां
तें लवकर जीणें होतें, सोमवारीं सतत उदकांनं आर्द्र होतें, भौमवारीं शोककारक होतें, बुधवारीं धन देणारें होतें. गुरुवारीं
ज्ञान देणारें होतें, शुक्रवारीं प्रियसंगतिदायक होतें, मंदवारीं मलदायक होतें. जी स्त्री रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, आणि उत्तरा
या नक्षत्रांवर नवे वस्त्र व नवा अलंकार धारण करिते, आणि शततारका नक्षत्रावर स्नान करिते, ती स्त्री पतीचा आश्रय
करीत नाही.”

अथालंकारवल्यादि दैवज्ञवल्लभः नासत्यपूषवसुभिः करपंचकेन मार्तंडभौमगुरुदानवमंत्रिवारे
मुक्तासुवर्णमणिविद्रुमशंखदंतरक्तांबराणि विधृतानि भवंतिसिद्धयै ज्योतिर्निबंधे हस्तानुराधमृगपूषधनिष्प-
युक्तचित्रोत्तरासुचपुनर्वसुरोहिणीषु लभ्रेस्थिरेविसुतेंदुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम् तत्रै-
व श्रीपतिः पौष्णाश्विनीवसुकरादिपुपंचके पुकौसुंभहेममणिविद्रुमकाचशंखाः नार्याधृताः सुतसुखार्थकरा-
भवन्ति त्राहोत्तरादिदिगुरुष्वसुखाय भर्तुः तत्रैव शंखादिवरत्नानि पुष्यादित्युत्तरासुच रोहिण्यां नैवगृहीत-
भर्तुर्जीवितकांक्षिणी ॥

आतां अलंकार, वलय इत्यादि धारण सांगतो—

दैवज्ञवल्लभ—“अश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, या नक्षत्रांवरः रवि, भौम, गुरु,
शुक्र, या वारीं; मोती, सुवर्ण, मणि, पोंवळी, शंखाचे व हस्तिदंताचे अलंकार, आणि रक्तवस्त्रे धारण केलीं असतां सिद्धि-
कारक होतात.” ज्योतिर्निबंधांत—“हस्त, अनुराधा, मृगशीर्ष, रेवती, धनिष्ठा, चित्रा, उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी, या
नक्षत्रांवरः स्थिरलमावरः शनि, बुध, गुरु, या वारीं; मनुष्यांना सुवर्णादिकांचे धारण सांगितलें आहे.” तेथेंच श्रीपति—
“रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, या नक्षत्रांवरः कुडुंभानें रंगविलेलें वस्त्र, सुवर्ण, मणि,

पोंवळीं, काचेचे व शंखाचे अलंकार, स्त्रियेनं धारण केले असतां पुत्र, सुख, द्रव्य देणारे होतात. आणि रोहिणी, तीन उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य, या नक्षत्रांवर धारण केले असतां भर्त्याला दुःखदायक होतात.” तेथेंच—“भर्त्याचें आयुष्य इच्छिणाऱ्या स्त्रियेनं पुष्य, पुनर्वसु, तीन उत्तरा, आणि रोहिणी या नक्षत्रांवर शंखादिकांचे अलंकार आणि श्रेष्ठ रत्नं ग्रहण करूं नयेत.”

अथसूचीकर्म वासवादितिभत्वाष्ट्रमैत्रचांद्राश्विनीपुच सूचीकर्मतनुत्राणमेभिर्कक्षैःप्रशस्यते **अथ-शय्या** हस्तादितिप्राज्ञगुरूत्तराणिपौष्णाश्विमूलेंदुभचित्रभानि वारेपुजीवेंदुसितेंदुजानांशय्यासनारंभणमु-त्तमंस्यात् **अथशस्त्रधारणम्** पुष्येचादितिचित्रपद्मनयेशकोत्तरारेवतीस्वातीवाजिविशाखमित्रसहिते भानौगुरौभार्गवे कुंभेकीटगृहवृषेमृगपतौचेंदौशुभैर्वीक्षितेसन्नाहःशरस्त्रकुंतलुरिकाधार्थानृपाणांहिताः **अथस्वामिसेवा चंडेश्वरः** रोहिण्युत्तरपौष्णेपुवसुवारुणयोरपि सेवेतस्वामिनंभृत्यःशुभवारादयेतथा **ज्योतिर्निबंधे** दासीदासादिभृत्यानांकुर्यात्संग्रहणंबुधैः स्थिरलग्नेशुभैर्हृष्टेमंदवारेविशेषतः ॥

आतां सूचीकर्म सांगतो—“धनिष्ठा, पुनर्वसु, चित्रा, अनुराधा, मृगशीर्ष, अश्विनी, या नक्षत्रांवर आंगरखा चिल-खत वगैरे शिवण्याचें काम करणें प्रशस्त आहे.” आतां **शय्या** सांगतो—“हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, तीन उत्तरा, रेवती, अश्विनी, मूल, मृगशीर्ष, चित्रा या नक्षत्रांवरः गुरु, चंद्र, शुक्र, बुध, यांच्या वार्गीः शय्या, आग्न यांचा आरंभ करणें उत्तम आहे.” आतां **शस्त्रधारण** सांगतो—“पुष्य, पुनर्वसु, चित्रा, रोहिणी, ज्येष्ठा, तीन उत्तरा, रेवती, स्वाती, अश्विनी, विशाखा, अनुराधा, या नक्षत्रांवरः रवि, गुरु, शुक्र या वार्गीः वृषभ, गिंह, वृश्चक्र, कुंभ या लग्नांवरः चंद्र शुभ-ग्रहावलोकित असतां राजांनीं चिलखत वगैरे चढविणेंः बाण, खड्ग, कुंत, लुरिका इत्यादि शस्त्रें धारण करणें; हितकारक आहेत.” आतां **स्वामिसेवा** सांगतो—**चंडेश्वर**—“रोहिणी, तीन उत्तरा, रेवती, धनिष्ठा, शततारका, या नक्षत्रांवरः शुभवारीं व शुभ लग्नावर चाकरांनं धन्याची सेवा करण्यास आरंभ करावा.” **ज्योतिर्निबंधांत**—“विद्वानांनीं दासी, दास, चाकर इत्यादिकांचा संग्रह शुभग्रहांनीं अवलोकित अशा स्थिर लग्नावर विशेषकरून मंदवारीं करावा.”

अथगजाश्वदोलाः सएव पौष्णप्रजेशादितिभट्टयानिहस्तादिपट्टश्रवणोत्तराणि दोलादिमातंगतुरंग-माणामारोहणेभीष्टफलप्रदानि **अथनृत्यम्** हस्तःपुष्योवासवंरोहिणीचज्येष्ठापौष्णवारुणचोत्तराश्च पूर्वाचा. यैःकीर्तितश्चक्रवर्तीनृत्यारंभेशोभनोऽयंभवर्गः **अथराजदर्शनं श्रीपतिः** मृगाश्विपुष्यश्रवणश्रविष्ठाह-स्तध्रुवत्वाष्ट्रभूषभानि मैत्रेणयुक्तानिनरेश्वराणांवलोकनेभानिशुभप्रदानि **अथक्रयविक्रयौ** भाद्रद्वयत्रिद-शमंत्रिदिवाकरेपुमूलानिलोत्तरतुरंगमरेवतीपु सारंगपाणिरजनीकरमैत्रभेपुलाभःसदैवभवतिक्रयविक्रयाभ्यां **वस्त्रे** चित्राशतभिषास्वातीरेवतीचाश्विनीशुभा श्रवणश्चतथाप्रोक्तावस्त्राणांक्रयणेशुभाः **अथसेतुः** स्वातीयुक्तेमंदवारेवृषलग्नेशुभेदिने सेतूनांबंधनकार्यध्रुवभेचार्यजीवयोः ॥

आतां हत्ती, घोडे, मेणा यांच्यावर आरोहण सांगतो—

तोच चंडेश्वर—“रेवती, अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हीं नक्षत्रे डोली, मेणा, हत्ती, घोडे इत्यादिकांवर बसण्यास प्रशस्त आहेत.” **आतां नृत्य सांगतो**—“हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, रेवती, शततारका, तीन उत्तरा हीं श्रेष्ठ नक्षत्रें नृत्याच्या आरंभाविषयीं प्रशस्त आहेत.” **आतां राजदर्शन सांगतो—श्रीपति**—“मृग, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, रोहिणी, तीन उत्तरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा, हीं नक्षत्रें राजांच्या दर्शनाविषयीं शुभकारक आहेत.” **आतां क्रय आणि विक्रय सांगतो**—“पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, हस्त, मूल, स्वाती, तीन उत्तरा, अश्विनी, रेवती, श्रवण, मृगशीर्ष, अनुराधा, या नक्षत्रांवर खरेदी आणि विक्री केली असतां सर्वदा लाभ होतो.” **वस्त्राविषयीं तर सांगतो**—“चित्रा, शततारका, स्वाती, रेवती, अश्विनी आणि श्रवण, हीं नक्षत्रें वस्त्रांची खरेदी करण्याविषयीं शुभ आहेत.” **आतां सेतुबंधन सांगतो**—“स्वातीनक्षत्रयुक्त मंदवारीं शुभदिवशीं वृषभ लग्नावर सेतुबंधन करावें. आणि रविवारीं व गुरुवारीं ध्रुव (रोहिणी, तीन उत्तरा) नक्षत्रावर सेतुबंधन करावें.”

अथपशुकृत्यम् श्रीपतिः चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीपुचतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु स्थानप्रवेशोगमनंवि-दध्यायुमान्पशूनांकदाचिदेव **चंडेश्वरः** हस्तमूलविशाखासुरेवत्याश्रवणेतथा मैत्रेचवारुणेश्रेष्ठपशुकृयण-मुच्यते पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेपुङ्द्रामिवाजिवसुवारुणशंकरेषु एतेषुगोमहिषदतितुरंगमादिनानाप्रकारप-ञ्चाजातिगतिःप्रशस्ता ॥

आतां पशुकृत्य सांगतो—

श्रीपति—“चित्रा, तीन उत्तरा, श्रवण, रोहिणी, या नक्षत्रांवर; आणि चतुर्दशी, अमावास्या, अष्टमी या तिथीस पशूंचा गोठ्यांत प्रवेश आणि हिकडून तिकडे नेणें हें कधीही करूं नये.” **चंडेश्वर—**“हस्त, मूल, विशाखा, रेवती, श्रवण, अनुराधा, शततारका या नक्षत्रांवर पशु विकत घ्यावे. पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा. मृगशीर्ष, कृत्तिका, विशाखा, अश्विनी, धनिष्ठा, शततारका, आर्द्रा, या नक्षत्रांवर: गाई, महिषी, हत्ती, घोडे इत्यादि नाना प्रकारच्या पशूंच्या जातींचें गमन प्रशस्त आहे.”

अथ गजदंतच्छेदः ज्योतिर्निबंधे त्वाष्ट्रैर्वैष्णवअश्विन्यामादिलेवसुदैवते दंतिनांशुभदं कर्मपुण्ये- हस्तेचकर्तनम् अथ निक्षेपः भरणीत्रीणिपूर्वाणिआर्द्राश्लेषामघातथा चित्राज्येष्ठाविशाखाचमूलमृगपुनर्वसू एभिर्दत्तंप्रयुक्तंचयत्रिष्वप्येतेधनम् पृष्ठतोधावमानस्यधनिनोपपद्यते ॥

आतां हस्तिदंतच्छेद सांगतो—ज्योतिर्निबंधांत—“चित्रा, श्रवण, अश्विनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, या नक्षत्रांवर हत्तीच्या दंतांचें छेदन शुभदायक आहे.” आतां **ठेव ठेवणें**, व्याजास लावणें वगैरे सांगतो—“भरणी, पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, विशाखा, मूल, मृग, पुनर्वसु, या नक्षत्रांवर एकाद्यास द्रव्य दिलें, व्याजास लाविलें, किंवा एकाद्यापाशीं ठेविलें अगतां तें पुनः परत मिळणार नाही.”

अथ ऋणमोक्षः श्रीधरः वागीशमंददिवसांशकलप्रयुक्तेरिक्तासुमंददिवसेकुलिकोदयेच मैत्रद्वितीय- पदमैत्रमुहूर्तयुक्तेराशुद्रमेचऋणमोक्षमुशंतिसंतः **अथराजमुद्रा** मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषुभेषुयोगेप्रशस्तेशनि चंद्रवर्ज्ये वारेतिथौपूर्णजयाह्वयेचमुद्राप्रतिष्ठाशुभदाहिराज्ञाम् **अथनौः चंडेश्वरः** पौष्णाश्विनीतुरगवारु- णमित्रचित्राशीतोष्णरश्मिवसवोनलवत्यमूनि वारेचजीवभृगुनंदनकेप्रशस्तेनौकादिसंघटनवाहनमेषुकुर्यात् **अथभोगः** गुरुभरविभानुराधाविधातृपौष्णाश्विरोहिणीषुस्यात् स्वात्युत्तरासुकुर्याच्छयनासनभोगभोगावि ।

आतां ऋणमोक्षाविषयीं मुहूर्त सांगतो—

श्रीधर—“गुरु, शनि, हे वार व ह्या वारांचीं लग्नें आणि लग्नांचे अंश, रिक्तातिथि, कुलिक मुहूर्त (ज्योतिषांत प्रसिद्ध), अनुराधा नक्षत्राचा द्वितीयपाद, आणि मैत्रमुहूर्त (दिवसाचा तृतीय मुहूर्त) युक्त लग्न, यांचे ठायीं ऋणमोक्ष करावा, असें पंडित सांगतात.” **आतां नाणें पाडण्याचा मुहूर्त सांगतो—**“मृदु (मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा,) ध्रुव (रोहिणी, उत्तरात्रय), क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका) ह्या नक्षत्रांची; शुभ योग अमतां: शनि व चंद्र हे वार वर्ज्य करून अन्य वारी: ३१८१२१५१७१९ ह्या तिथींचे ठायीं राजांनीं टांकशळेंत नाणें पाडवें.” **आतां नौका (गलवतें) बांधण्याचा मुहूर्त सांगतो—चंडेश्वर—**“रेवती, अश्विनी, शततारका, अनुराधा, चित्रा, मृग, हस्त, धनिष्ठा, कृत्तिका ह्या नक्षत्रांवर: गुरु व शुक्र ह्या वारीं नौका इत्यादिक बांधण्यास व हाकारण्यास आरंभ करावा.” **आतां पलंग इत्यादि भोग्यवस्तूंचा उपभोग घेण्याविषयीं मुहूर्त सांगतो—**“पुष्य, हस्त, अनुराधा, अभिजित्, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, स्वाती, उत्तरात्रय, ह्या नक्षत्रांवर पलंग, आसन, इत्यादि भोग्यवस्तूंचा उपयोग करावा.”

अथश्मश्रुकर्म श्रीपतिः पुण्येपौष्णेचाश्विनीष्वेदवेचशाक्रेहस्ताद्यत्रिकेभेप्यदित्याः क्षौरंकार्यवैष्ण- वादित्रयेचमुक्त्वाभौमादित्यपातंगिवारान नस्नातभुक्तोत्कटभूषितानामभ्यक्तयात्रासमरोत्सुकानां क्षौरंविद- ध्यान्निशिसंध्ययोर्वाजिजीविपूणांनवमेनचाहि त्रिस्थलीसेतौवृद्धगार्ग्यः रथ्यारसौरवारेपुरात्रौपातेप्र- ताहनि श्राद्धाहःप्रतिपद्विक्ताभद्राःक्षौरपुवर्जयेत् **गार्ग्यः** पष्ठयमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमीतथा आसुसन्नि- हितंपापतैलेमांसेभगेक्षुरे **राजमार्तंडः** देवकार्येपितुःश्राद्धेरंशपरिक्षये क्षौरकर्मनकुर्वीतजन्ममासेचज- न्मभे **बृहस्पतिः** राजकार्येनियुक्तानंतराणांभूपजीविनाम् श्मश्रुलोमनखच्छेदेनास्तिकालविशोधनम् **तथा** क्षौरंनैमित्तिकंकार्यनिषेधेसत्यपिध्रुवम् पित्रादिमृतिदीक्षासुप्रायश्चित्तेजत्रतीर्थके केचित्तृत्तारधेमन्यथा पठंति मुंडनस्यनिषेधेपिकर्तनंतुविधीयतइति **नारदः** नृपविप्राज्ञयायज्ञेमरणेबंधमोक्षणे उद्वाहेखिलवारक्षे- तिथिषुक्षौरमिष्टदम् **भारते** प्राबुखःश्मश्रुकर्माणिकारयेतसमाहितः उदब्बुखोवाथभूत्वातथायुर्विदत्तेमहत् अपराकें उदब्बुखःप्राबुखोवावपनंकारयेत्सुधीः केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्स्थानिवापयेत् दक्षिणंकर्म

मारभ्यधर्मार्थपापसंक्षये शिखाद्यंनवसंस्कारेशिखाद्यंतंशिरोवपेत् यतीनांतुविशेषोनिगमे कक्षोप-
स्थशिखावर्जमृतुसंधिषुवापयेदिति अन्येपिविधिप्रतिषेधाःप्रागुक्ताः । ”

आतां इमश्चुकर्माविषयीं मुहूर्त सांगतो—

श्रीपति—“पुष्य, रेवती, अध्विनी, मृग, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, ह्या नक्षत्रां इमश्चुकर्म करावें. मंगळ, रवि, शनि हे वार वर्ज्य करावे. स्नात, भुक्त, उत्तम भूषित, तैलाभ्यंग केलेला, देशांतरी व युद्धास निघणारा यांनी इमश्चुकर्म करूं नये; आणि रात्रीं, संध्याकाळीं, नवव्या दिवशीं इमश्चु करूं नये.” **त्रिस्थली-सेतूत—बृद्धगार्ग्य—**“रवि, मंगळ, शनि, ह्या वारीं इमश्चु करूं नये. रात्रीं, व्यतीपातादि दुर्योगाचे ठायीं व व्रतदिवशीं इमश्चु करूं नये. श्राद्धदिवस, प्रतिपदा, रिक्तातिथि, भद्रा हे दिवस इमश्चुकर्माविषयीं वर्ज्य करावे. **गार्ग्य—**“षष्ठी, अमा-वास्या, पूर्णिमा, व्यतीपात, चतुर्वशी, अष्टमी, ह्या तिथींचे ठायीं तैलाभ्यंग, मांसभक्षण, स्त्रीसेवन, आणि इमश्चुकर्म हीं करूं नयेत.” **राजमार्तंड—**“देवकार्य, मातापितरांचा श्राद्धदिवस, ग्रहण, जन्ममाम, जन्मनक्षत्र यांचे ठायीं क्षौर करूं नये.” **बृहस्पति—**“राजकार्याविषयीं नेमलेले राजाचे सेवक यांस इमश्चुकर्माविषयीं काळविचार नाही. तसेंच—वरील निषेध असला तरी नैमित्तिक क्षौर प्राप्त होईल तर तें करावें, तें असं—मातापितर इत्यादिकांचें मरण, दीक्षा, प्रायश्चित्त व तीर्थ यांचेठायीं क्षौर अवश्य करावें.” केचित् ग्रंथकार ‘पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्ते च तीर्थके’ ह्या स्थानीं ‘मुंडनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते’ असा पाठ करितात. त्याचा अर्थ “मुंडन करूं नये असा जरी निषेध आहे, तथापि केशांचें कर्तन करावें.” **नारद—**“क्षौराविषयीं राजाची आज्ञा, ब्राह्मणांनी आज्ञा, यज्ञ, मरण, बंधांतून मुक्ति, विवाह ह्यांतून कोणतेंही एक निमित्त असतां सर्व तिथि, सारे वार, सारीं नक्षत्रं यांजवर इमश्चुकर्म करावें.” **भारतांत—**“पूर्वाभिमुख व सावधान होऊन इमश्चुकर्म करवावें. अथवा उत्तराभिमुख होऊन इमश्चुकर्म करवावें: तसें केलें असतां दीर्घायुष्य प्राप्त होतें.” **अपराकांत—**“इमश्चुकर्म करविणें तें पुरुषांनें उत्तराभिमुख किंवा पूर्वाभिमुख होऊन करवावें. केश, इमश्चु, लोम आणि नखें यांचा छेद उदकसंस्थ करवावा. धर्मासाठीं कर्तव्य असतां उजव्या कर्णापासून आरंभ करून इमश्चुकर्म करावें. पापनाशकरितां कर्तव्य असतां शिखाय करावें. नवीन संस्कार असतां शिखेस आरंभ व शिखेवर समाप्ती होईल असें करावें. **संन्याशांविषयीं विशेष सांगतो निगमांत—**‘संन्यासी यांनी ऋतूचे संधिकालीं कक्ष, उपस्थ, शिखा वर्ज्य करून क्षौर करावें.’” ह्या इमश्चुकर्माविषयीं इतर विधिप्रतिषेध पूर्वी चालप्रसंगीं गांगितले आहेत ते तेथें पाहावे.

अथंधनसंग्रहः ब्रह्मानिलार्कमघमूलत्रिपूर्वरौद्रपौष्णानुराधगुरुविष्णुविशाखयुक्ते वारेकुजार्कभृगुनं-
दनसोमजानाश्रिष्ठेधनस्यकरणंभवतिप्रशस्तम् **अथनवान्नम् श्रीपतिः** रेवतीश्रुतिपुनर्वसुहस्तब्राह्मतःपृ-
थगपिद्वितयेच त्र्युत्तरेषुगदितंपृथुकानांप्राशनंनवनवान्नविधानं **अथनवभोजनपात्रम् ज्योतिर्निबंधे**
भोज्यपात्रसुधासिंधौघटयेद्वासमाहरेत् तत्रान्नप्राशनप्रोक्तेकालेभोजनमाचरेत् **अथनववर्णफलदिभ-**
क्षणम् चंडेश्वरः मूलश्विमेत्रकरतिष्यहरींद्रभेषुपौष्णोत्तरैंदवपुनर्वसुवासवेपु वारेषुभूमितनयार्कजवार-
वर्जतांबूलनूतनफलाद्यशनंहिताय ।

आतां काष्ठें, गोवऱ्या इत्यादिकांचें संग्रहाविषयीं मुहूर्त सांगतो—

“रोहिणी, स्वाती, हस्त, मघा, मूल, तीन पूर्वा, आर्द्रा, रेवती, अनुराधा, पुष्य, श्रवण, विशाखा ह्या नक्षत्रांवर; मंगळ, रवि, शुक्र, सोम ह्या वारीं काष्ठें, गोवऱ्या यांचा संग्रह करावा.” **आतां नवान्नभक्षणाविषयीं मुहूर्त सांगतो श्रीपति—**“रेवती, अध्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, रोहिणी, मृग, तीन उत्तरा ह्या नक्षत्रां नवान्न भक्षण करावें.” **भोजनपात्राविषयीं मुहूर्त सांगतो ज्योतिर्निबंधांत—**“नवें भोजनपात्र सोमवारीं घडावें किंवा विकत घ्यावें. व त्या भोजनपात्रांत भोजन करणें तें अन्नप्राशनाला सांगितलेल्या दिवशीं करावें.” **आतां नवीं पानें, सुपाऱ्या वगैरे भक्षणाचा मुहूर्त सांगतो. चंडेश्वर—**“मूल, अध्विनी, अनुराधा, हस्त, पुष्य, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, तीन उत्तरा, मृग, पुनर्वसु, धनिष्ठा ह्या नक्षत्रांवर; मंगळ, शनि हे वार वर्ज्य करून अन्य वारीं; नवीन नागवेलीपत्रें, नवीन सुपाऱ्या इत्यादि फळें भक्षण करावीं.”

अथहोमेआहुतिपातः ज्योतिषे तरणिविहृगुभास्करिचंद्रमाःकुजसुरेज्यविधुंतुदकेतवः रविभ-
तोदिनभंगणयेत्क्रमात्प्रतिखगंत्रितयंत्रितयन्यसेत् दिनकरार्कितमःकुजकेतवोद्गतभुजेनशुभास्त्वितरेशुभाः
द्वपत्तचक्रमिदंप्रविलोक्यतांद्ववनकर्मणिस्वसमृद्धये अत्रशान्तिहस्ताविष्णुधर्मे कूरप्रहमुखेचैवसंजाते-

हवनेशुभे शान्तिविधायगांदद्याद्ब्राह्मणायकुटुंबिने आयसींप्रतिमांकृत्वानिक्षिपेत्तासधोमुखीं गोमूत्रमधुगंधा-
घैरर्घितांप्रतिमांततः स्वस्थानिधायसंपूज्यतत्रहोमोविधीयते अत्रापवादःक्रियासारे नित्येनैमित्तिके-
दुर्गाहोमादौनविचारयेत् ।

आतां होमाविषयीं आहुति पाहण्याचा प्रकार सांगतो—

ज्योतिषांत—“सूर्यनक्षत्रापासून दिवसनक्षत्रापर्यंत नक्षत्रं मोजून तीन तीन नक्षत्रे एकेक ग्रहावर बसवावीं; तीं
अशींः—पहिल्या तीन नक्षत्रांवर सूर्याचे मुखीं, दुसऱ्या तीन नक्षत्रांवर बुधाचे मुखीं, तिसऱ्या तीन नक्षत्रांवर शुक्राचे मुखीं,
चवथ्या तीन नक्षत्रांवर शनीचे मुखीं, पांचव्या तीन नक्षत्रांवर चंद्राचे मुखीं, सहाव्या तीन नक्षत्रांवर मंगळाच्या मुखीं, सातव्या
तीन नक्षत्रांवर बृहस्पतीच्या मुखीं, आठव्या तीन नक्षत्रांवर राहुमुखीं, नवव्या तीन नक्षत्रांवर केतुमुखीं, याप्रमाणे आहुति
पडतात. रवि, शनि, राहु, मंगळ, केतु या ग्रहांच्या मुखीं आहुति पडते ती अशुभ; व इतर ग्रहांचे मुखीं पडते ती शुभ
होय. हें आहुतिचक्र सर्व होमकर्माविषयीं पहावें, तेणेंकरून सर्व समृद्धि होते.” **पापग्रहाच्या मुखीं आहुति पडली**
असतां शान्ति सांगतो विष्णुधर्मांत—“पापग्रहाचे मुखीं होमाहुति पडली अमतां शान्ति करून कुटुंबी ब्राह्मणाला
गोप्रदान करावें. लोहानी प्रतिमा करून ती अघोमुखी स्थापन करून गोमूत्र, मधु, गंध इत्यादिक उपचारांनीं पूजा करून
नंतर उताणी करून यथाविधि पूजा करून शान्तिहोम करावा.” **ह्या आहुतिचक्राविषयीं अपवाद सांगतो क्रिया-**
सारांत—“नित्यहोम, नैमित्तिकहोम, दुर्गाहोम, आदिशब्देकरून संस्कारहोम यांविषयीं आहुतिचक्र व अमिचक्र यांचा
विचार करूं नये.”

अथज्वरादौफलम् श्रीपतिः स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासुशाकैरोगोत्पत्तिर्जायतेयस्यपुंसः तद्वैषज्यव्या-
पृतोनिःप्रयत्नःस्याहुग्धावधेर्वधजन्मापिवैद्यः व्याध्युत्पत्तिर्यस्यपौष्णेसमेत्रप्राणत्राणजायतेतस्यकृच्छ्रात् वैश्वे-
सौम्येरोगमुक्तिस्तुमासाद्विशत्यास्याद्वासरानांमघासु पश्चाद्वस्तेवासवेमद्विदैवेमूलाश्विन्योरमिधिष्ण्येनवाहात्
याम्येत्वाष्ट्रैवेणवेवारुणेचनैरुज्यंस्यान्ननमेकादशाहान् अहिर्बुध्न्येतिष्यसंज्ञेयमाख्येप्राजापत्यादित्ययोःसप्तरा-
त्रात् रोगान्मुक्तिर्जायतेमानवानांनिःसदिग्धंजल्पितंमर्गमुख्यैः **ज्योतिषे** एकाहोनिधनंदशाहमनिलाबाणा-
विपत्पर्वताःसप्तांगविलयश्चमासयुगुलंमासोमृतिःपक्षकः द्वौमासावथविंशतिर्दशनिशाःपक्षांतपक्षानखामा-
सौपक्षदशांतपक्षकुभःपीडादिनान्यश्चिभान् **दैवज्ञः** उरगवरुणरौद्रावासवेंद्रत्रिपूर्वायमदहनविशाखापाप-
वारेणयुक्ताः तिथिपुनर्वमिष्यीद्वादशीवाचतुर्थीभवतिमरणयोगोरोगिणांकालहेतुः अत्रकुंभेहैमीनक्षत्रदेव-
ताप्रतिमांसंपूज्यद्वादशदलेपुसंकर्षणादिद्वादशमूर्तीद्वादशादित्यानवासंपूज्यदूर्वासमितिलक्ष्मीराज्यैर्गायत्र्यातद्दे-
वतायैअष्टोत्तरशतंहुत्वाध्योदंनवलिंदत्वाचार्यायगांप्रतिमांचदत्वाविप्रानभोजयेदितिसंक्षेपः विशेषस्तुव्रत-
हेमाद्रौपदार्थादर्शेचज्ञेयः ॥

आतां अश्विन्यादि नक्षत्रांवर ज्वरादिक रोगोत्पत्ति असतां फल सांगतो—

श्रीपति—“स्वाती, आश्लेषा, आर्द्रा, तीन पूर्वा, ज्येष्ठा ह्या नक्षत्रांवर ज्या पुरुषाला रोगोत्पत्ति होते त्याला
औषधसेवनादि उपाय करण्याविषयीं वैद्य प्रयत्न करील तर ते व्यर्थ होतील. **रेवती, अनुराधा** ह्या नक्षत्रांवर ज्वरादिक
उत्पन्न होईल तर संकटांनीं त्याचें प्राणरक्षण होईल. **उत्तराषाढा, मृग** ह्या नक्षत्रांवर रोगोत्पत्ति असतां तीस दिवस
पीडा होईल. **मघानक्षत्रावर** रोगोत्पत्ति असतां वीस दिवस पीडा. **इस्त, धनिष्ठा, विशाखा** ह्या नक्षत्रांवर रोगोत्पत्ति
असतां पंधरा दिवस पीडा. **मूल, अश्विनी, कृत्तिका** ह्या नक्षत्रांवर रोगोत्पत्ति असतां नऊ दिवस पीडा. **भरणी, चित्रा,**
श्रवण, शततारका ह्या नक्षत्रांवर रोगोत्पत्ति असतां निश्चयें अकरा दिवसांनीं निरोगी होईल. **उत्तराभाद्रपदा, पुष्य,**
भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु या नक्षत्रांवर रोगोत्पत्ति असतां निश्चयें सात दिवसांनीं रोगनिरसन होतें असें गर्गप्रभृति ऋषि
सांगतात.” **ज्योतिषांत**—“अश्विन्यादि नक्षत्रांवर रोगोत्पत्ति झाली असतां कर्मकरून पीडा दिवस सांगतो—**अश्विनीवर**
रोग असतां एक दिवस पीडा, भरणीवर रोग असतां मरण, कृत्तिकांवर दहा दिवस, रोहिणी—सात दिवस, मृग—पांच

१ शुक्रप्रतिपदेपासून वर्तमानतिथीपर्यंत तिथि मोजून जी संख्या येईल तीत एक मिळवावा आणि जो वर्तमानवार असेल तिचे
अंक त्यांत मिळवून त्या संख्येस ४ यांनीं भागून शेष अंक उरले त्यावरून अग्नि पहावा. शून्य किंवा ३ शेष असतां भूमीवर अग्नि
असतो, एक शेष असतां स्वर्गलोकीं, दोन शेष असतां पाताळांत अग्नि. भूमीवर अग्नि शुभ. स्वर्ग व पाताळ लोकीं असतां तो
अशुभ जाणावा. हें अग्निचक्र होय.

दिवस, आर्द्रा—मृत्यु, पुनर्वसु—सात दिवस, पुष्य—सात दिवस, आश्लेषा—सहा दिवस, मघा—मरण, पूर्वा—दोन महिने, उत्तरा—एक महिना, हस्त—मरण, चित्रा—पंधरा दिवस, स्वाती—दोन महिने, विशाखा—वीस दिवस, अनुराधा—दहा दिवस, ज्येष्ठा—पंधरा दिवस, मूल—मृत्यु, पूर्वाषाढा—पंधरा दिवस, उत्तराषाढा—वीस दिवस, श्रवण—दोन महिने, धनिष्ठा—पंधरा दिवस, शततारका—दहा दिवस, पूर्वाभाद्रपदा—मृत्यु, उत्तराभाद्रपदा—पंधरा दिवस, रेवती—दहा दिवस पीडा होते.” दैवज्ञ—“आश्लेषा, शततारका, आर्द्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, तीनपूर्वा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा यांतून कोणते एक नक्षत्र असून त्या दिवशी पापवार (रवि, मंगळ, शनि) असेल व नवमी, षष्ठी, द्वादशी, चतुर्थी ह्या तिथींपैकी कोणती एक तिथि ह्या तिहींचा योग असतां त्या दिवशीं जर रोगोत्पत्ति होईल तर निश्चयानें मृत्यु येतो.” यांविषयीं ज्ञाति—ज्या नक्षत्रावर ज्वरादि रोग उत्पन्न झाला असेल त्या नक्षत्रदेवतेची सुवर्णप्रतिमा करून तिची कलशावर स्थापना करून पूजा करावी. नंतर द्वादशदलकमलावर संकषणादिक बारा मूर्ति, किंवा बारा आदित्य यांची पूजा करून दूर्वा, समिधा, तिल, दुग्ध आणि आज्य यांहींकरून गायत्रीमंत्रानें त्या देवतेच्या उद्देशानें १०८ होम करून दधिभाताचा बलि देऊन आचार्याला गोप्रदान व प्रतिमादान करावें. आणि ब्राह्मणांना भोजन घालावें. याप्रमाणें हा संक्षेपानें प्रयोग सांगितला आहे. याचा विशेष विचार व्रतहेमाद्रि व पदार्थादर्श ह्या ग्रंथांत पाहवा.

अथभेषजं चंडेश्वरः मूलानुराधमृगतिष्यपुनर्वसौचपौष्णाश्विनीश्रवणशक्ररत्रयेच वारेषुवाक्प-
तिसितेंदुदिनेषुशस्तंभेषज्यभक्षणममीषुहितंनराणाम् **अथारोग्यस्नानम् श्रीपतिः** इंदोवारेभार्गवेच
ध्रुवेषुसार्पादित्यस्वातियुक्तेषुभेषु पित्र्येचांतेवापिकुर्यात्कदाचिन्नैवस्नानंरोगनिर्मुक्तजंतुः चरेविलग्नैरविभौमवा-
रेरिक्तेतिथौस्याद्बहुलेचपक्षे धिष्येचरेरोगनिपीडितानांस्नानंनराणानिरुजत्वकारि **अथदंतधावनम्**
पृथ्वीचंद्रोदयेविष्णुः प्रतिपददर्शषष्ठीपुचतुर्दश्यष्टमीपुच नवम्यांभानुवारेचदंतकाष्ठविवर्जयेत् नारदः
चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीसंक्रमणेपुच नंदासुचनवम्यांचदंतकाष्ठविवर्जयेत् श्राद्धेयज्ञेचनियमेतथाप्रोषितभर्तृका
व्यतीपातेचसंक्रांत्यांनंदाभूताष्टपर्वसु तैलक्षौरंरतिमांसंदंतकाष्ठचवर्जयेत् **वसिष्ठः** शन्यर्कशुक्रवारेपुक्-
जाहेव्रतवासरे जन्माहेश्राद्धदिवसेदंतकाष्ठविवर्जयेत् **हेमाद्रौस्कांदे** अभ्यंगेजलधिस्नानेदंतधावनमैथुने
जातेचनिधनेचैवतत्कालव्यापिनीतिथिः **संवर्तः** रवौविवाहाशौचेवर्जयेदंतधावनं **व्यासः** अलाभेदंत-
काष्ठानानिषिद्धानांतथातिथौ अपांद्वादशगंडूषैर्विदध्यादंतधावनम् ॥

आतां औषध सेवनाविषयीं मुहूर्त सांगतो—

चंडेश्वर—“मूल, अनुराधा, मृग, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाती, ह्या नक्षत्रांवर गुरु, शुक्र, सोम ह्या वारीं औषधभक्षण शुभ होय.” आतां **आरोग्यस्नान श्रीपति**—“तीन उत्तरा, रोहिणी, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाती, मघा, रेवती, ह्या नक्षत्रां: सोम व शुक्र ह्या वारीं रोगमुक्त मनुष्यानें कदापि स्नान करूं नये. चर लग्न; रवि व भौमवार; रिक्ता तिथि; श्रवण, धनिष्ठा, शततारका नक्षत्रे: व शुक्रपक्ष अशा कालीं रोगमुक्त मनुष्यांनीं स्नान करावें.” **आतां दंतधावन सांगतो—पृथ्वीचंद्रोदयांत विष्णु**—“प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, चतुर्दशी, अष्टमी, नवमी, रविवार ह्या दिवशीं काष्ठानें दंतधावन करूं नये.” **नारद**—“चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णिमा, संक्रांति, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, आणि नवमी, श्राद्धदिवस, यज्ञ, व्रतदिवस, ह्या दिवशीं काष्ठानें दंतधावन करूं नये. ज्या ज्ञियेचा पति प्रवासांत असेल तिनेंही करूं नये.” व्यतीपात, संक्रांति, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पौर्णिमा ह्या दिवशीं तैल-भक्षण, क्षौर, मैथुन, मांसभक्षण, काष्ठानें दंतधावन हीं करूं नयेत. **वसिष्ठ**—“शनि, रवि, शुक्र, मंगळ ह्या वारीं; व्रत-दिवशीं, जन्मदिवशीं, श्राद्धदिवशीं, काष्ठानें दंतधावन करूं नये.” **हेमाद्रौत स्कंदपुराणांत**—“अभ्यंग, ससुद्रस्नान, दंतधावन, मैथुन, उत्पत्ति, मरण, ह्यांविषयीं तिथि ध्यावयाची ती त्या वेळीं असलेली ध्यावी.” **संवर्त**—“रविवारीं, विवाहांत, व आशौचांत दंतधावन बर्ज्य करावें.” **व्यास**—“दंतधावनाचीं काष्ठें मिळत नसतील त्यावेळीं किंवा निषिद्धतिथि असतां त्या दिवशीं उदकाचे बारा चूळ करून दंतांचें धावन करावें.”

अथामलकस्नानं व्यासः श्रीकामःसर्वदास्नानंकुर्वीतामलकैर्नरः सप्तमीनवमीचैवपर्वकालंविवर्ज-
येत् चंद्रसूर्योपरागेचस्नानमामलकैस्त्यजेत् **ऋतुः** षष्ठीचसप्तमीचैवनवमीचत्रयोदशी संक्रांतौरविवारेच-
स्नानमामलकैस्त्यजेत् **यजुः** नवमीदशमीचैववृतीयाचत्रयोदशी प्रतिपद्वादशीकृष्णास्नानंतासुविवर्जयेत्
यच्च दर्शस्नानंकुर्वीतामातापित्रोःसुजीवतोः पुत्रःकुर्वन्निराचष्टेपित्रोरुभतिजीवितेइतिकण्वयमाधैःस्नान-
मात्रंनिषिद्धं तद्भोगार्थंस्नानपरं ननित्यनैमित्तिकपरमितिहेमाद्रिः ॥

आतां आमलकस्नान सांगतो—

व्यास—“संपत्तीची इच्छा करणाऱ्या मनुष्यानें सर्वदा आंवळे वाढून अंगास लावून स्नान करावे; परंतु सप्तमी, नवमी, पर्वकाल, चंद्रसूर्याचें प्रहण या दिवशीं आमलकस्नान करूं नये.” **ऋतु**—“षष्ठी, सप्तमी, नवमी, त्रयोदशी, संक्रांति, रविवार ह्या दिवशीं आमलकस्नान करूं नये.” आतां जें “नवमी, दशमी, तृतीया, त्रयोदशी, प्रतिपदा, कृष्णद्वादशी या दिवशीं स्नान (आमलकस्नान) वर्ज्य करावें,” आणि जें “ज्याचे मातापिता जीवंत आहेत अशा पुरुषांनें अमावास्याच्या दिवशीं स्नान करूं नये, केले असतां मातापितरांचा आयुर्दाय व उत्कर्ष यांचा क्षय होतो,” याप्रमाणें कण्व, यम इत्यादिकांच्या वचनांनीं सामान्य स्नानाचा निषेध केला आहे, तो भोगार्थ जें स्नान तद्विषयक आहे. नित्यनैमित्तिक स्नानाविषयीं नाही, असें हेमाद्रि सांगतो.

अथतैलस्नाननिषेधः कात्यायनः पक्षादौचरवौषष्ट्यांरिक्तायांचतथातिथौ तैलेनाभ्यग्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते **गर्गः** पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांरविसंक्रमे द्वादश्यांसप्तमीषष्ठ्योस्तैलस्पर्शविजयेत् नचकुर्यात्तृतीयायांत्रयोदश्यांतिथौतथा शाश्वतीगतिमन्विच्छन्नदशम्यामपिपंडितः **तत्रैवायुर्वेदे** षष्ठ्यांवि- नक्षयेष्टम्यामेकादश्यांचपर्वसु द्वादश्यांचचतुर्दश्यांचम्यांप्रतिपत्तिथौ व्रतेश्राद्धदिनेजन्मत्रितयेश्रवणाद्रयोः ज्येष्ठोत्तराफल्गुनीपुष्यतीपातेचवैधृतौ विष्टियोगेचसंक्रांतौमन्वादिषुयुगादिषु नाभ्यंगंतत्रवालानांबृह्णानांतुन- दोषकृदिति **व्यवहारतत्त्वे** संक्रांतिभद्राव्यतिपातवैधृतिषष्ठ्यष्टमीपर्वसुनार्कभूसुते स्नानेद्वितीयादशमी- चगर्हिताः षष्ठ्यादिमाद्यारदधावनेधमाः **अस्यापवादमाह** तत्रैवप्रचेताः सार्षपंगंधतैलंचयत्तैलं पुष्पवा- सितं अन्यद्रव्ययुतंतैलंनदुष्यतिकदाचन **आयुर्वेदे** निषिद्धतिथिवारश्रृंगप्रहणेध्वपिरात्रिषु किंचिद्गोघृतयुक्तं वाविप्रपादरजोन्वितं भानोर्दूर्वान्वितंभौमेभूयुक्तपुष्पयुग्गुरौ सर्वेषांसर्वदातैलमभ्यंगेषुनदुष्यति मंगलेष्वप्य- दोषः मांगल्यंविद्यतेस्नानंशुद्धिपूर्वोत्सवेषुच स्नेहमात्रसमायुक्तमध्याह्नातप्राकृतदिष्यते **इतिमदनपारिजा- तेकात्यायनोक्तेः हेमाद्रौबृहन्मनुः** तैलाभ्यंगोनार्कवारेनभौमेनोसंक्रांतौवैधृतौविष्टिषष्ठ्योः पर्वस्वष्ट- म्यांचनेष्टःसद्यष्टःप्रोक्तानमुक्त्वावासरेसूर्यसूनोः **तिलस्नाननिषेधस्तुषट्त्रिंशन्मते** तथासप्तम्य- मावास्यासंक्रांतिप्रहजन्मसु धनपुत्रकलत्रार्थीतिलपिष्टनसंस्पृशेत् ॥

आतां तैलाभ्यंगपूर्वक स्नानाचा निषेध सांगतोः—

कात्यायन—“प्रतिपदा, रविवार, षष्ठी, रिक्ता तिथि यांचे ठायीं तैलाभ्यंग करणारा चतुर्विधपुरुषार्थापासून हीन होतो.” **गर्ग**—“पौर्णिमा, अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी, सूर्यसंक्रांति, द्वादशी, सप्तमी, षष्ठी, या दिवशीं तैलस्पर्श वर्ज्य करावा. शाश्वत गति इच्छिणारां तृतीया, त्रयोदशी, आणि दशमी या तिथींचेठायींही तैलस्पर्श करूं नये.” **तेथेंच आयुर्वेदांत सांगतो**—“षष्ठी, दिनक्षय, अष्टमी, एकादशी, पर्वदिवस, द्वादशी, चतुर्दशी, पंचमी, प्रतिपदा, व्रतदिवस, श्राद्धदिवस, जन्मनक्षत्र, जन्मनक्षत्राहून दहावें व एकोणिसावें नक्षत्र, श्रवण, आर्द्रा, ज्येष्ठा, उत्तराफल्गुनी, व्यतीपात, वैधृति, भद्रा, संक्रांति, मन्वादितिथि, युगादितिथि, ह्यांचे ठायीं बालकांस अभ्यंग करूं नये, वृद्ध जे त्यांनीं केला असतां दोष नाही.” **व्यवहारतत्त्वांत**—“संक्रांति, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति, षष्ठी, अष्टमी, पर्वदिवस, रविवार, मंगलवार, द्वितीया, दशमी ह्यांचे ठायीं तैलाभ्यंगस्नान करूं नये. षष्ठी, अष्टमी, पर्व तिथि ह्या दंतधावनाविषयीं निषिद्ध होत.” **याचा अपवाद सांगतो तेथेंच प्रचेता**—“सार्षपतेल, सुगंधितेल, जें पुष्पांनीं सुवासित केलेलें (मोगरा चमेली इत्यादि) तेल, दुसरें द्रव्य घालून मिश्र केलेलें तेल ह्या तेलानें निषिद्धदिवशीही अभ्यंग केला असतां दोष नाही.” **आयुर्वेदांत**—“निषिद्ध अशा तिथि, वार, नक्षत्रे, प्रहण, रात्रि यांचे ठायीं तैलाभ्यंग कर्तव्य असतां त्या तेलानें गाईचें घृत किंवा ब्राह्मणाची पाद- धूलि घालून त्या तेलानें अभ्यंग करावा. रविवारी तेलानें दूर्वा, भौमवारीं सृष्टिका, गुरुवारीं पुष्प तेलानें टाकून त्या तेलानें सर्वांनीं अभ्यंग करावा असें केले असतां निषिद्ध दिवसाचा दोष नाही.” मंगलकार्यातही तैलाभ्यंगविषयीं दोष नाही. कारण, “नांदीश्राद्धपूर्वक जीं मांगलिककृत्यें त्यांचेठायीं तैलाभ्यंगपूर्वक मांगलिक स्नान आहे, तें कोणत्याही तेलानें मय्यान्व- कालाचे पूर्वीं करावें” असें **मदनपारिजातांत कात्यायनाचें** वचन आहे **हेमाद्रिंत बृहन्मनु**—“रविवार, भौमवार, संक्रांति, वैधृति, भद्रा, षष्ठी, पर्वदिवस, अष्टमी, यांचेठायीं तैलाभ्यंग करूं नये. निषिद्ध दिवस वर्ज्य करून शनिवारी तैलाभ्यंग करावा.” **तिलस्नानाचा निषेध सांगतो**—**षट्त्रिंशन्मतांत**—“धन, पुत्र, स्त्री यांची इच्छा करणाऱ्या पुरुषांनें शनिवारी, अमावास्या, संक्रांति, प्रहण, आणि जन्मदिवस यांचेठायीं तिलपिष्टस्नान करूं नये.”

अथगृहारंभःज्योतिर्निबंधेबादरायणः वैशाखेफाल्गुनेपौषेश्रावणेमार्गशीर्षके सूत्रारंभःशिला-
न्यासःस्तंभारंभःप्रशस्यते **नारदः** सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः मासाःस्युर्गृहनिर्माणेपुत्रारो-
ग्यधनप्रदाः अत्रवृषसिंहवृश्चिकाः वैशाखश्रावणकार्तिकाः सौराश्वेयाइतिकालादर्शः तत्रैवकारणतंत्रे-
स्थिरमासेस्थिरैराशौस्थिरैशेनववेश्मनाम् कुर्वीतस्थापनंशंकोःस्तंभस्थापनमेववा कार्तिकनिषेधस्तुलापरः
कुंभेमासेऽपिसर्वेषांमंदिराणामुपक्रमम् महर्षयःप्रशंसंतिधान्यागारंविहायच निषेधोधान्यगृहपरः पाकभोज-
नशालादौमार्गशीर्षश्चफाल्गुनः रथ्यागेहमठादौचसहस्यःशुचिरेवतु पौषाषाढनिषेधस्तुप्रधानगृहपरः नप्र-
धानगृहारंभंकुर्यात्पौषेशुचावपीतितत्रैवोक्तेः **ज्योतिस्तत्त्वे** पूर्वापरस्यंतुनभोलपौषेयाम्योत्तरास्यंसहसि-
द्वितीये कार्यगृहंजीवबुधर्क्षगार्कनीचास्तगौजीवसितौचहित्वा **रत्नमालायां** कर्कनक्रहरिकुंभगतेऽर्केपूर्वप-
श्चिममुखानिगृहाणि तौलिमेष्टपष्टश्रिकयातेदक्षिणोत्तरमुखानिवदंति **दैवज्ञवल्लभः** शोकंधान्यपंच-
तानिःपशुत्वस्वाप्तिनैःस्वसंगारंभृत्यनाशम् स्वश्रीप्राप्तिंवह्निभीतिचलक्ष्मीकुर्युश्चैत्राद्यागृहारंभकाले ॥

आतां गृहारंभाविषयीं मुहूर्त सांगतो—

ज्योतिर्निबंधांत बादरायण—“वैशाख, फाल्गुन, पौष, श्रावण, मार्गशीर्ष, या मासांत सूत्रारंभ, शिलान्यास,
स्तंभारोपण हीं प्रशस्त होत.” **नारद—**“मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, कार्तिक, हे मास गृह बांधण्याविषयीं
शुभ होत; ते पुत्र, आरोग्य, धन, यांतं देणारे होतात.” येथें वृषभ, सिंह, वृश्चिक या संक्रांतीस रवि असतां क्रमेंकरून वैशाख,
श्रावण, कार्तिक, हे मास सौरमानांत घ्यावे, असें **कालादर्श** सांगतो. तेथेंच **कारणतंत्रांत** सांगतो—“स्थिरमासांत स्थिर-
लगावर आणि स्थिरांशीं नूतन गृहाचें शंकुस्थापन, व स्तंभस्थापन हीं कृत्ये करावीं.” कार्तिकमासाचा जो निषेध सांगितला
तो तुलासंक्रांतिरूप कार्तिकविषयक आहे. “कुंभसंक्रांतीस रवि असतां सर्व प्रकारचे गृहांचा आरंभ करावा, धान्यागाराचा
(कोठाराचा) मात्र आरंभ करूं नये, असें महर्षि सांगतात.” कुंभमासाचा निषेध सांगितला आहे तो धान्यगृहविषयक
समजावा. “स्वयंपाकगृह, भोजनगृह, इत्यादि गृहांविषयीं मार्गशीर्ष, फाल्गुन हे मास शुभ होत. रथ्यागृह (धर्मशाळा),
मठ, इत्यादिकांविषयीं पौष, आषाढ हे मास उक्त होत.” पौष व आषाढ यांचा निषेध आहे तो मुख्य गृहाविषयीं जाणावा.
कारण, “पौष व आषाढ या मासांत मुख्य गृह बांधूं नये” असें तेथेंच सांगितलें आहे. **ज्योतिस्तत्त्वांत—**“श्रावण,
फाल्गुन, पौष या मासांत गृह पूर्वाभिमुख व पश्चिमाभिमुख बांधावें. मार्गशीर्ष, वैशाख या मासांत गृह दक्षिणाभिमुख व
उत्तराभिमुख बांधावें. धन, मीन, मिथुन, कन्या, ह्या राशींत रवि वर्ज्य करून व नीचस्थानगत आणि अस्संगत गुरु व शुक्र
वर्ज्य करून गृह बांधावें.” **रत्नमालेंत—**“कर्क, मकर, सिंह, कुंभ ह्या राशींस रवि असतां पूर्वाभिमुख व पश्चिमाभिमुख
गृहें बांधावीं. तुला, मेष, वृषभ, वृश्चिक या स्थानीं रवि असतां दक्षिणोत्तरमुख गृहें बांधावीं.” **दैवज्ञवल्लभ—**“शोक,
धान्य, मरण, पशुराहित्य, द्रव्यवृद्धि, द्रव्यनाश, युद्ध, भृत्यनाश, धनप्राप्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, अग्निभीति, लक्ष्मीप्राप्ति, याप्रमाणें
क्रमेंकरून चैत्रादिमासांचीं फलें जाणावीं.”

गर्गः च्युत्तरामृगरोहिण्यांपुष्येमैत्रेकरत्रये धनिष्ठाद्वितयेपौष्णेगृहारंभःप्रशस्यते रोहिण्याश्रावणत्रयेवि-
तियुगेहस्तत्रयेमूलकेरेवत्युत्तरफल्गुनीष्वुरगभेमैत्रोत्तराषाढयोः शस्तंवास्तुकुर्जाकवर्जितदिनेगोकुंभसिंहेमुखे-
कन्यायांमिथुनेनभःशुचिसहोराधोर्जेकफाल्गुने **कालादर्शसन्तकुमारः** आदित्यभौमवर्जतुसर्वेवाराः-
शुभप्रदाः **वास्तुशास्त्रे** मार्गशीर्षेतथापौषेवैशाखेश्रावणेतथा फाल्गुनेचक्रतंत्रेवेश्मसर्वसंपन्नप्रदंभवेत् कार्ति-
केमाघमासेचचैत्रेज्येष्ठेतथाश्विने मास्याषाढेमाद्रपदेनकुर्यात्सर्वथागृहं द्वितीयाचतृतीयाचपंचमीसप्तमीतथा
त्रयोदशीचदशमीपूर्णाचैकादशीतथा वेश्मारंभेशुभायस्युर्विशेषाच्छुक्लपक्षगाः **व्यवहारसारे** शिलान्यासः
प्रकर्तव्योगृहाणांश्रावणेष्टौ पौष्णेहस्तेचरोहिण्यांपुष्याश्विन्युत्तरात्रये **वास्तुप्रदीपे** अधोमुखैर्मैर्विदधीतखा-
तंशिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्चपट्टम् तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानंगृहप्रवेशोष्टुभिर्ध्रुवैश्च **लल्लुः** स्नानंचपाकंशयनंच
भोज्यंगजालयंवाजिगृहंधनस्य देवस्यपूर्वादिदिशिक्रमेणमध्येसभाभूपनिवेशनाय **शिल्पशास्त्रे** कन्यासिं-
हेतुलायांभुजगपतिमुखंशंभुकोणेस्त्रिधातंवायव्येस्यात्तदास्यंत्वालिधनमकरेईशखातंवदंति कुंभेमीनेचमेषेनिर्ऋ-
तिदिशिमुखंखातवायव्यकोणेचाग्नेःकोणेशुखंवैवृषमिथुनगतेकर्कटेश्खातं **तत्त्वचिंतामणौ** यत्रदैर्घ्यगृहा-

दीनांद्वात्रिंशद्वस्तोधिकं नतत्रचितयेद्धीमान्गुणानायव्ययादिकान् राजमार्तंडः आयव्ययौमासशुद्धि-
णागारेनचितयेत् शिलान्यासादिनोक्त्यागारेपुरातने व्यवहारतत्त्वे निषिद्धेष्वपिकालेषुस्वानुकूलेषु-
भेदिने तृणाकाष्ठगृहारंभेमासदोषोक्तविद्यते चंडेश्वरः पूर्णादिवष्टमीयावत्पूर्वाख्यवर्जयेद्गृहं उत्तराख्यंनकुर्वी-
तनवम्यादिचतुर्दशीं अमावास्याष्टमीयावत्पश्चिमाख्यंविजयेत् नवम्यादौतथायाम्यंयावत्कृष्णचतुर्दशीं ध्रुवं
दृष्ट्वाथवास्मृत्वाकर्तव्यंवास्तुरोपणम् सायाह्नवर्जदिवसेरात्रौत्यक्त्वामहानिशाम् वराहः दक्षिणपूर्वकोणेकृ-
त्वापूजांशिलान्यसेत्प्रथमाम् शेषाःप्रदक्षिणेनस्तंभाश्चैवंसमुत्थाप्याः कालादर्शवास्तुशास्त्रे खातेचैव-
शिलान्यासेवृषचक्रंप्रशस्यते तच्चोक्तंशांतिरत्ने चतुर्दशप्रमाणंतुखात्वागर्तसमततः कुंभोदकैःसेचयेयुः-
शांतिपाठपुरःसरं ततईशानदिग्भागेसाक्षतरंनृपंचकम् साज्यंकुंभंस्थिरंमुक्त्वावास्तुपूजनपूर्वकं कुंभपरिशि-
लान्यासःकर्तव्यस्तदनंतरम् ॥

गृहाविषयीं नक्षत्रादि सांगतो गर्गः—“तीन उत्तरा, मृग, रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, स्वाती, धनिष्ठा, शततारका, रेवती ह्या नक्षत्रांवर गृह बांधण्यास आरंभ करावा. रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, रेवती, उत्तराफल्गुनी, आश्लेषा, अनुराधा, उत्तराषाढा, ह्या नक्षत्रांवर; मंगळ व रवि वर्ज्य करून इतर वारीं: वृषभ, कुंभ, सिंह, कन्या, मिथुन ह्या लग्नांवर: श्रावण, आपाढ, मार्गशीर्ष, वैशाख, कार्तिक; फाल्गुन, ह्या मासांत गृहारंभ प्रशस्त होय.” **कालादर्शीत सनत्कुमारः**—“आदित्य व भौम हे वर्ज्य करून इतर सर्व वार शुभ होत.” **वास्तुशास्त्रांत**—“मार्गशीर्ष, पौष, वैशाख, श्रावण, फाल्गुन या मासांत घर बांधलें असतां तें सर्वसंपत्तिदायक होतें. कार्तिक, माघ, चैत्र, ज्येष्ठ, आश्विन, आपाढ, भाद्रपद या मासांत कदापि गृह बांधूं नये. द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी, पूर्णिमा, एकादशी, ह्या तिथी गृहारंभ करण्याविषयीं शुभ होत. ह्याच तिथि शुक्लपक्षांच्या विशेष शुभ होत.” **व्यवहारसारांत**—“श्रवण, मृग, रेवती, हस्त, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, तीनउत्तरा ह्या नक्षत्रांवर गृहांचा शिलान्याम (जोतें बांधण्यास आरंभ) करावा.” **वास्तुप्रदीपांत**—“अधोमुख नक्षत्रावर गृहाचा खात (म्हणजे भूमि खणून शुद्धि करणें तो), व शिलान्याम हीं कृत्यें करावीं. ऊर्ध्वमुख नक्षत्रावर पट्टबंधन (पाटबंध) करावें. तिर्थंबुमुख नक्षत्रांवर द्वार, कपाट, यात्रा, हीं कृत्यें करावीं. मृग, रेवती, अनुराधा, चित्रा, तीन उत्तरा, रोहिणी ह्या नक्षत्रांवर गृहप्रवेश करावा.” **लल्लु**—“राजांनं स्नानगृह, पाकगृह, शयनगृह, भोजनगृह, हस्तिगृह, अश्वगृह, कोशगृह, देवगृह, हीं आठ गृहें पूर्वादि आठ दिशांग अनुक्रमानें बांधावीं, आणि मध्यभागीं सभागृह करावें.” **शिष्यशास्त्रांत**—“कन्या, सिंह तुला ह्या राशींग रवि अमतां शेषाचें मुख ईशानदिशें अमत्तें. खात आग्नेयदिशें करावें. वृश्चिक, धन, मकर ह्या राशींस रवि असतां निर्ऋतिदिशें शेषमुख आहे. खात वायव्यदिशें अमत्तें. खात ईशानकोणीं करावें. कुंभ, मीन, मेष, ह्या राशींस रवि असतां निर्ऋतिदिशें शेषमुख आहे. खात वायव्य कोणीं करावें, आणि वृषभ, मिथुन, कर्क ह्या राशींस रवि असतां आग्नेयीं शेषमुख आहे. खात निर्ऋतिदिशेंकडे करावें.” **तत्त्वचिंतामणींत**—“वत्तोम हातांहून अधिक लांबीचीं गृहें, राजवाडे, धर्मशाळा यांविषयीं बुद्धिमान् पुरुषानें आय, व्यय इत्यादि गुण पाहूं नयेत.” **राजमार्तंडः**—“जुनें घर व गवताचें घर यांविषयीं आय, व्यय, आणि महिना यांची शुद्धि पाहण्याचें प्रयोजन नाही, व शिलान्यासादि कृत्येही करूं नयेत.” **व्यवहारतत्त्वांत**—“तृण, काष्ठं गांचविण्यामाठीं गृह कर्तव्य अमतां मास वगैरे निषिद्ध असले तरी आपणास अनुकूल चंद्र, व शुभदिवस पाहून त्याचा आरंभ करावा. मास पाहण्याचें कारण नाही.” **चंडेश्वरः**—“पौर्णिमेपासून कृष्णष्टमीपर्यंत पूर्वाभिमुख गृह बांधूं नये. नवमापासून चतुर्दशीपर्यंत उत्तराभिमुख गृह बांधूं नये. अमावास्यापासून शुक्ल अष्टमीपर्यंत पश्चिमाभिमुख गृह वर्ज्य करावें. शुक्ल नवमापासून शुक्ल चतुर्दशीपर्यंत दक्षिणाभिमुख गृह बांधूं नये. वास्तुपुरुष पुरावयाचा त्या कार्त्त ध्रुवाचें दर्शन अथवा स्मरण करावें. वास्तुपुरुष दिवसा पुरणें असेल तर सायंकाल वर्ज्य करावा. रात्रीं वास्तुपुरुष पुरणें असेल तर महानिशा (मध्यरात्रीचा १ प्रहर) टाकावी.” **वराहः**—“दक्षिणपूर्व कोणीं (आग्नेय दिशें) पूजा करून प्रथम

१ आय पाहण्याचा प्रकार—गृहाची लांबी आणि रुंदी यांचा गुणाकार करून आठांनीं भागून शेष अंक राहील तो आय होय.

१ ध्वज, २ धूम, ३ सिंह, ४ शुनक, ५ वृष, ६ गर्दभ, ७ गज, ८ काक हे आय अनुक्रमानें पूर्वादिदिशांचे ठायीं बलिष्ठ होय. हे यथायोग्य ध्यावे. ध्वजआय आल्यास सर्व दिशांकडे गृहमुख (ओटीचें द्वार) करावें. सिंहायीं पूर्वदक्षिणेत्तर दिशांकडे गृहद्वारें करावीं, पश्चिमदिशेकडे करूं नये. वृषायीं पूर्वदिशेकडेच गृहद्वार करावें. गजायीं पूर्वेकडे अथवा दक्षिणेकडे गृहमुख करावें. हे ४ आय सर्ववर्णांस प्रशस्त होत. २ व्यय पाहण्याचा प्रकार—गृहाचे लांबीरुंदीचा गुणाकार आठांनीं गुणून २७ नीं भागून शेष राहील तें गृहनक्षत्र जाणावें. तें नक्षत्र ८ नीं भागून शेष राहील तो व्यय होतो. स्वल्प आय आणि बहुत व्यय असे गृह नसावें, तर बहुत आय व स्वल्प व्यय गृह असावें.

शिळा पुरावी. बाकीच्या सर्व शिळा प्रदक्षिणक्रमानें पुराव्या. संभारोपणही याप्रमाणेंच करावें.” **कालादर्शांत—वास्तुशास्त्रांत—**“खात व शिलान्यास यांविषयीं वृषवास्तुचक्र प्रशस्त होय. तें शांतिरत्नांत सांगितलें आहे. (तें असें—सूर्यनक्षत्रापासून दिवसनक्षत्रापावेतों नक्षत्रें मोजावीं. पहिलीं सात नक्षत्रें अशुभ. आठव्या नक्षत्रापासून अकरा नक्षत्रें शुभ. अवशिष्ट दहा तीं अशुभ. याप्रमाणें वृषवास्तुचक्र पाहून ज्या दिवशीं शुभनक्षत्र असेल त्या दिवशीं आरंभ करावा. अथवा अवध्या नक्षत्रापासून, पंधराव्या नक्षत्रापासून, आणि तेविसाव्या नक्षत्रापासून क्रमानें ४।४।५ हीं नक्षत्रें गृहारेभ व प्रवेश यांविषयीं अशुभ होत.) “आसमंतात् चार हस्तप्रमाण असा खाडा खणून तो खाडा, कुंभोदकानें शांतिस्नानाचा पाठ करीत ब्राह्मणांनीं सिंचन करावा. नंतर त्यांत ईशानी दिशेस तंडुलसहित पंचरत्नें घालून घृतयुक्त कलश स्थापन करून त्या कलशावर वास्तुपूजन करून खावर मुहूर्तशिला पुरावी.”

अथगृहप्रवेशः बृहस्पतिः नंदायांदक्षिणद्वारंभद्रायांपश्चिमेनतु जयायासुत्तरद्वारंपूर्णायांपूर्वतोविशेत् **वसिष्ठः** कृत्वाशुक्रं पृष्ठतोवामतोऽर्कविप्रानपूज्यानग्रतः पूर्णकुंभं हर्म्यैरम्यंतोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वीगीतवाद्यैर्विशेष व्यवहारतत्त्वे सौम्यायनेश्रावणमार्गपौषेजन्मक्षलमोपचयोदयेशे वामंगतेर्केगृहवास्तुपूजांकृत्वाविशेद्वेऽम्भकूटशुद्धम् **वास्तुशास्त्रे** लम्नात्प्रागादितोदिक्षुद्वौद्वौराशीनियोजयेत् एकमेकंम्यसेत्कोणेशूर्यवामंविचिंतयेत् **वसिष्ठः** चंद्रजार्थसितवासरेषुचश्रीकरंसुतमहार्थलाभदं सूर्यसुतुदिवसेस्थिरप्रदंकिंतुचौरभयमत्रनिर्दिशेत् **रत्नकोशे** पुण्येधनिष्ठाभृगवारुणेपुष्पायंभुवक्षेत्रिपुचोत्तरासु अक्षीणचंद्रेशुभदोनृपस्यतिथावरिक्तेचगृहप्रवेशः **नारदः** प्रवेशोमध्यमोऽज्ञेयःसौम्यकार्तिकमासयोः माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषुशोभनः अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनं गृहनप्रविशेद्वीमानापदामाकरोहितत् ज्येष्ठःक्षुद्रग्रहपरः **बृहद्गार्ग्यः** भानोश्चभौमस्यविहायवारौशूलादियोगानशुभाप्रवापि रिक्तातिथिश्चापिमृदुभुवर्धेसौम्यायनेश्चप्रविशेद्गृहाणि **रत्नमालायाम्** त्वाष्ट्रमित्रशशिपूषदैवतान्यामनंतिमुनयोमृदून्यथ मैत्रगेहरतिभूषणांबरोद्रीतमंगलविधानमेषुच रोहिण्युत्तरात्रयंचध्रुवाणि प्रवेशश्चवास्तुपूजांकृत्वाकार्यः जीर्णोद्वारेतद्योधानेतथा गृहनिवेशने नवप्रासादभवनप्रासादपरिवर्तने द्वाराभिवर्तनेतद्वत्प्रासादेषुगृहेषुच वास्तूपशमनंकुर्यात्पूर्वमेव विश्वक्षणइतिमात्स्योक्तेः **तत्रैव** कृत्वाप्रतोद्विजवरानथपूर्णकुंभंदध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् दत्वाहिरण्यवसनानितथाद्विजेभ्योमंगल्यशांतिनिलयंस्वगृहंविशेच्च गृहोक्तहोमविधिनाबलिकर्मकुर्यात्प्रासादवास्तुशमनेचविधिर्युक्तः संतर्पयेद्विजवरानथभक्ष्यभोज्यैःशुक्लांबरःस्वभवनप्रविशेत्सुरुपम् ॥

आतां गृहप्रवेशास मुहूर्त सांगतो—

बृहस्पतिः—“नंदा (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी) तिथींचे ठायीं दक्षिणद्वारानें गृहांत प्रवेश करावा. भद्रा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) तिथींचे ठायीं पश्चिमद्वारानें प्रवेश करावा. जया (म्हणजे तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी) तिथींचे ठायीं उत्तरद्वारानें प्रवेश करावा. आणि पूर्णा (म्हणजे पंचमी, दशमी, पौर्णिमा) तिथींचे ठायीं पूर्वद्वारानें गृहांत प्रवेश करावा.” **वसिष्ठः—**“शुक्र पृष्ठभागीं करून आणि सूर्य वामभागीं करून गृहप्रवेश करावा. (म्हणजे जर शुक्र पूर्वदिशेस उदय पावणारा आहे तर पूर्वद्वारानें गृहांत प्रवेश करावा. शुक्र पश्चिम दिशेस उदय पावणारा आहे तर पश्चिमद्वारानें प्रवेश करावा.) **वामभागीं सूर्य—**प्रवेश लम्नाच्या अष्टमस्थानापासून पांचलमीं सूर्य असतां पूर्वाभिमुख गृहप्रवेशीं वामभागीं सूर्य होतो. प्रवेशलम्नाच्या द्वितीयस्थानापासून पांचलमांस सूर्य असतां पश्चिमाभिमुख गृहीं वामभागीं सूर्य होतो. प्रवेशलम्नाच्या पंचमस्थानापासून पांचलमांस सूर्य असतां दक्षिणाभिमुख गृहीं वामभागीं सूर्य होतो. आणि प्रवेशलम्नाच्या एकादशस्थानापासून पांचलमांस सूर्य असतां उत्तराभिमुख गृहीं वामभागीं सूर्य होतो.) ज्या नूतन गृहांत प्रवेश करावयाचा तें गृह तोरणें, पुष्पमाला, चांदवे यांनीं सुशोभित करून नंतर ब्राह्मणांची पूजा करून अग्रभागीं उदकपूर्णकुंभ करून ब्राह्मण, सुवासिनी स्त्रिया यांसहित मंगल वाद्यांनीं युक्त, माला धारण करणाऱ्या यजमानानें गृहांत प्रवेश करावा.” **व्यवहारतत्त्वांत—**“उत्तरायणांत, आणि श्रावण, मार्गशीर्ष, पौष, या मासांत, जन्मलभ व जन्मराशीपासून शुभ लमीं व शुभ लमांशीं; वामरवि असतां, वास्तुपूजा करून शुद्ध राशिकूटावर गृहांत प्रवेश करावा.” **वामरवि पाहण्याचा प्रकार—वास्तुशास्त्रांत—**“प्रवेशलम्नापासून प्रत्येक दिशेस दोन दोन आणि विदिशेस एक एक असे राशी अप्रदक्षिण क्रमानें योजावे. आणि वामभागीं सूर्य पाहावा.” (म्हणजे प्रवेशलभ मेष असेल तर मेष वृषभ पूर्वेंस, मिथुन ईशानीस, कर्क सिंह उत्तरेस, कन्या वायव्येस. येथें वृषभापासून कन्याराशीपर्यंत कोणत्याही राशीस सूर्य असतां पश्चिमद्वारानें प्रवेश असल्यास वामभागीं सूर्य होतो.

याप्रमाणे इतर राशींचाही जाणावा.) वसिष्ठ—“बुध, गुरु, शुक्र ह्या बारी गृहप्रवेश केल्या असतां ते गृह संपत्ति, पुत्र व अर्थलाभ देणारे होत. शनिवारी स्थैर्यकारक होत, पण चोरभय प्राप्त होत असे समजावे.” रत्नकोशांत—“पुष्य, धनिष्ठा, मृग, शततारका, रोहिणी, तीन उत्तरा, ह्या नक्षत्रांवर; चंद्र पूर्ण असतां रिकारहिततिथीचे ठायीं गृहप्रवेश शुभदायक आहे.” नारद—“मार्गशीर्ष व कार्तिक या मासांत गृहप्रवेश मध्यम होय. माघ, फाल्गुन, वैशाख, आणि ज्येष्ठ या मासांत गृहप्रवेश शुभ होय. दरवाजे, भिंती, आच्छादन यांहीं विरहित अशा गृहांत बुद्धिमान पुरुषांनीं कदापि प्रवेश करू नये. तसेंच वास्तुशांति, व ब्राह्मणभोजन हीं केल्यावांचून गृहप्रवेश करू नये. केला असतां अनेक आपत्ति प्राप्त होतात.” ज्येष्ठमास प्रवेशाविषयी शुभ सांगितला तो अल्पगृहाविषयी समजावा. वृद्धगार्ग्य—“रवि, भौम हे वार; शुक्रादिक अशुभ नक्षत्रांवर; आणि रिकालातिथी हे सर्व वर्ज्य करून मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीन उत्तरा, रोहिणी ह्या नक्षत्रांवर उत्तरायणांत गृहप्रवेश करावा.” रत्नमालेत—“चित्रा, अनुराधा, मृग, रेवती हीं मृदुनक्षत्रे; ह्या नक्षत्रांवर मित्रकार्य, गृहप्रवेश, क्रीडा, अलंकार, वस्त्र, गायन, मंगलकृत्ये, हीं करावीं.” गृहप्रवेश वास्तुशांति करून करावा. कारण, “जीर्णोद्धार, उद्यान (बाग), गृहप्रवेश, नवीन प्रासाद (राजवाडा, देवालय) करणे, प्रासाद फिरवणे, द्वार फिरवणे, प्रासादगृह करणे, यांचेठायीं पूर्वीच वास्तुपूजा (वास्तुशांति) करावी” असे मत्स्यपुराणवचन आहे. तेथेच सांगतो—“दधि, अक्षता, आम्रपल्लव, पुष्पे, फळे यांहीं सुशोभित असा उदकपूर्णकुंड व ब्राह्मण यांना अग्रभागीं करून व ब्राह्मणांना सुवर्ण आणि वस्त्रे देऊन मांगल्य व शांतिमंत्रांचा घोष करीत गृहाप्रवेश प्रवेश करावा. आपापल्या गृहसत्त्वांत सांगितलेल्या विधीनें होम व बलि द्यावे, आणि प्रासादवास्तुशमनाविषयी जो विधि सांगितला आहे तो करावा. मध्यमोज्य पदार्थांनीं ब्राह्मणांना तृप्त करून श्वेतवस्त्र धारण करून स्वगृहांत प्रवेश करावा.”

अथकलिवर्ज्यानि बृहन्नारदीये समुद्रयातुःस्वीकारःकमंडलुविधारणं द्विजानामसवर्णासुकन्या-
सूपयमस्तथा देवराजसुतोत्पत्तिर्मधुपर्कपशोर्वधः मांसदानंतथाश्राद्धवानप्रस्थाश्रमस्तथा दत्ताक्षतायाःकन्या-
याःपुनर्दानंपरम्यच दीर्घकालंब्रह्मचर्यनरमेधाश्वमेधकौ महाप्रस्थानगमनंगोमेधश्चतथामखः इमान्धर्मान्-
कलियुगेवर्ज्यानाहुर्मनीषिणः कमंडलुःसोदकंचकमंडलुमित्युक्तः मृन्मयोवा दत्ताऊढा ऊढायाःपुनरुद्धा-
हंज्येष्टांशंगोवधस्तथा कलौपंचनकुर्वीतभ्रातृजायांकमंडलुमिति हेमाद्रौवचनान ऊढायाः पुरापुरुषसंयो-
गान्मृतेदेयेतिकेचनेत्यादिभिर्विवाह्यतोक्ता हेमाद्रौब्राह्मे गोत्रान्मातुःमपिंडाच्चविवाहोगोवधस्तथा नराश्व-
मेधौमद्यंचकलौवर्ज्यद्विजातिभिः गोत्राद्गोत्रजायाः पितृष्वसुः मातृसपिंडान्मातुलान्तत्कन्यायाविवाहः
कलौनकार्यः तेनयानितद्विधायकानितानियुगांतरविषयाणि तथाव्यासः तृतीयांमातृतःकन्यांतृतीयांपि-
तृतस्तथा शुल्केनचोद्वहिष्यतिविप्राःपापविमोहिताइतिकलौतस्त्रिंशदामाह मातृतस्तृतीयांमातुलकन्यामित्यर्थः
उक्तंचैतनप्राक् मद्यंस्त्रीभ्यश्चसुरामाचाममित्यादिनावहितमपिवर्ज्यम् ॥

आतां कलियुगांत वर्ज्य कर्म कोणतीं तीं सांगतो—

बृहन्नारदीय पुराणांत—“गलबतांत बसून समुद्रपर्यटन करणाऱ्याला जातींत घेणे, उदकयुक्त किंवा मृन्मय कमण्डलु धारण करणे, भिन्न जातीच्या कन्यांशीं द्विजांनीं विवाह करणे, दिरापासून पुत्र उत्पन्न करणे, मधुपर्कामध्ये पशूचा वध, श्राद्धांत मांस देणे, वानप्रस्थाश्रम स्वीकारणे, दत्ता (दान केलेली) जी कन्या ती अशुक्त असतां तिचे दान पुनः दुसऱ्यास करणे, दीर्घकाल ब्रह्मचर्यधारण, नरमेध, अश्वमेध, महाप्रस्थानगमन (उत्तरदिगमन), गोमेध, राजसूययज्ञ हे धर्म कलि-
युगांत वर्ज्य होत, असे पंडित सांगतात.” वरील वचनांत ‘दत्ता’ म्हणजे ऊढा (विवाहिता) समजावी. कारण, “ऊढा-
कन्येचा पुनर्विवाह, ज्येष्ठ भ्रात्याला उद्धाररूप श्रेष्ठ भाग देणे, मधुपर्कामध्ये गोवध, भ्रातृपत्नीचा स्वीकार, कमंडलुधारण हीं पांच कर्म करू नयेत” असे हेमाद्रौत वचन आहे. ऊढाकन्येचा “पुरुषसंयोग होण्याचे पूर्वी पति मृत झाला असतां दुसऱ्या बराला ती द्यावी, असे केचित् सांगतात. इत्यादिक वचनांनीं पुनर्विवाह सांगितला आहे, तो येथे निषिद्ध केला. हेमाद्रौत—ब्राह्मांत—“आतेबहीण व मामेबहीण यांच्याशीं विवाह, मधुपर्कामध्ये गोवध, नरमेध, अश्वमेध, आणि मयपान हीं कलियुगांत द्विजातींनीं वर्ज्य करावीं.” यावरून जीं मातुलकन्यादि विवाहविधायक वचनें तीं इतर युगविषयक होत. तसेंच व्यास—“मातृकुलकडून तिसरी व पितृकुलकडून तिसरी कन्या वरणारे आणि कन्येला मोल देऊन विवाह करणारे विप्र ते पापी होत.” अशी मामेबहीण व आतेबहीण यांच्याशीं विवाह करणारांची, व्यास निंशा सांगतो. मातृकुल-
कडून तिसरी म्हणजे मातुलकन्या, हा प्रकार पूर्वी (विवाहप्रकरणीं) सांगितला आहे. अन्वयानुसारब्राह्मणेयवीं निषिद्धांशु-
“स्त्रियांचे पिंडाला सुरा, आचाम (भाताची पेज) अर्पण करावीं.” असे आश्वलायनसूत्रांत नमूद आहे. असे मद्यं स्त्रीभ्यश्च सुरा, आचाम (भाताची पेज) अर्पण करावीं.” असे आश्वलायनसूत्रांत नमूद आहे.

हेमाद्रौ आदित्यपुराणे विधवायां प्रजोत्पत्तौ देवरस्य नियोजनं बालायाः क्षतयोऽन्यास्तु वरेणान्येन सं-
 स्क्रुतिः कन्यानामसवर्णानां विवाहश्च द्विजन्मभिः आततायिद्विजाभ्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् द्विजं स्याद्वै तु नौ-
 यातुः शोधितस्यापि संग्रहः सत्रदीक्षाचसर्वेषां कर्मण्डलुविधारणम् महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञमिश्रगोसवे सौत्रा-
 मण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः अग्निहोत्रहवन्याश्च लेहोलीढापरिग्रहः वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमग्नसंकोचनं तथा
 प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणांतिकं संसर्गदोषस्तेनान्यमहापातकनिष्कृतिः संसर्गदोषस्तत्संर्गाच्च पंचमइ-
 द्युक्तः स्तेयं च तदन्यानि महापातकानि ब्रह्महत्यासुरापगुरुतत्पानित्रीणि तेषां कर्मकृतानां मरणांतिकं प्रायश्चित्तं-
 विप्राणां कलौ नैत्यर्थः मरणांतिके हि जातिवधनिमित्तं द्वादशाब्दद्विगुणं ब्रह्मवधनिमित्तं च द्विगुणं भवति तच्चतुर्थे-
 नास्ति निष्कृतिरिति निषिद्धम् न चात्महत्याविधिना तद्वाधः तेन ह्यात्महत्यानिमित्तस्यैव बाधो न जातिवधनिमित्तस्य
 भिन्नविषयत्वात् संसर्गिणस्तु कामतोपि त्रतस्यैवोक्तेर्न मरणांतिकम् नापि स्तेये तत्र राज्ञो वधकर्तृत्वात् तेन तयो-
 र्मरणांतिकाभावात् तयोरेव निष्कृतिर्नान्येषां त्रयाणां युगान्तरे तु कलौ निषेधबलान्प्रवृत्तिः एतद्विप्रपरम् न
 क्षत्रियादेः तदुक्तं विप्राणां मरणांतिकमिति विशेषोऽस्तत्कृते प्रायश्चित्तरत्ने ज्ञेयः वगतिथिपितृभ्यश्च-
 पशूपाकरणक्रिया दत्तौरेव तरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः सवर्णान्यांगानादुष्टैः संसर्गः शोधितैरपि अयोनीसंग्रहे वृत्ते-
 परित्यागो गुरुस्त्रियः परोद्देशात्मसंत्याग उद्दिष्टस्यापि वर्जनम् प्रतिमाभ्यर्चनायां संकल्पश्च मधर्मकः अस्थिसं-
 चयनादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च शामित्रचैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा पट्टभक्तानशने चान्नहरणं हीनकर्मणा माध-
 वीयेष्टुध्वीचंद्रोदये च शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणां भोज्यान्नागृहस्थस्य तीर्थमेवातिदूरतः शिष्य-
 स्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिशीलता आपदवृत्तिर्द्विजाभ्याणामश्वस्तनिकता तथा प्रजायंतु द्विजाभ्याणां प्रजारणि परि-
 ग्रहः ब्राह्मणानां प्रवासित्वं सुखमिधमनक्रिया बलात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः यत्तेश्च सर्ववर्णेषु भि-
 क्षाचर्याविधानतः नवोदके दशाहं च दक्षिणागुरुचोदिता ब्राह्मणादिपुश्टस्य पचनादि क्रियापि च भृग्वभिपतनै-
 श्चैव युद्धादिमरणं तथा गोतृमिश्रिष्टे पयसि शिष्टैराचमनक्रिया पितापुत्रविरोधेषु माक्षिणां दंडकल्पनं यतेः सायं-
 गृहत्वं च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः निवर्तितानि विद्वद्भिर्व्यवस्थापूर्वकं नुधैः
 सुराग्रहणस्य तत्कर्तुः संग्रहो व्यवहारकः नवमद्यं चेति सामान्येन निषिद्धस्याऽनेनोपसंहार इति वाच्यम् निषेधस्य-
 निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षत्वात् न हि स्यादित्यन्येन ब्राह्मणं हन्यादित्यनेनोपसंहारे हिंसांतर्गस्यादोषत्वाप-
 त्तेश्च निरूपितं चैतद्धेमाद्रिणाऽन्यत्रेत्युपरम्यते सुराग्रहस्योद्देश्यस्य सौत्रामणि विशेषणाविवक्षया वाजपेयेपि-
 निषेधः सौत्रामण्यांतु पयोग्रहावासुरित्या पस्तंबोक्तेर्वैकल्पिकपयोग्रहैरप्यधिकारः वाजपेये तु तत्प्राप्तौ माना-
 भावात् सोमसुरयोः सहलग्नो न शेषसुराद्रव्यत्वात् तत्प्रख्यतया यागनामत्वेन तां विना संज्ञायोगान् कलौ नाधिकार इ-
 त्युक्तं प्रतीमः त्रिकांडमंडनादिलिखनं तु निर्मूलमनाकरं च वृत्तेति एकाह ब्राह्मणः शुध्येद्योमि वेदसमन्वि-
 त इति उक्तः अघस्याशौचस्य संकोचः न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वभिपतनादृते इत्युक्तस्य प्रायश्चित्तस्य विधानं उप-
 देशः कलौ कर्तव्यलिप्यते इति व्यासोक्तेः पतितसंसर्गदोषसत्त्वे पिपातित्यनेत्यर्थः अन्यथा संसर्गः शोधितैर-
 पीति विरोधापत्तेः स्तेयभिन्ने महापापे रहस्यकृते प्रायश्चित्तनेत्यर्थः सवर्णान्यासवर्णाक्षत्रियादिस्तयादुष्टैः अयो-
 नौशिष्यादौ च तस्मिन्स्तु परित्याग्याः शिष्यगागुरुगाचयेत्युक्तस्त्यागः परोद्देशेन ब्राह्मणाद्यर्थ आत्मत्यागः यद्वा
 परोद्देशात्मत्यागः गोदानं मनसा पात्रमुद्दिश्येत्युक्तं उद्दिष्टस्य त्यक्तस्य वर्जनं प्रतिग्रहसमर्थोपीत्युक्तम् वेतनग्रहणे-
 न प्रतिमा पूजा स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागात् इत्युक्तः स्पर्शः षडिति उपोषितव्यं हंस्थित्वाधान्यमब्रा-
 ह्मणाद्धरेदित्युक्तमन्नचौर्यम् आपदि क्षात्रादिवृत्तिः मुखे नैव धमेदग्निमित्युक्तं धमनं दशाहं नैव शुष्येत भूमिष्ठं च-

१ अग्निहोत्रेति अग्निहोत्रं हूयते यथा वैकं कतलुचा साग्निहोत्रहवनी तस्या अग्निहोत्रहोमतं नरदुतावशिष्टप्राशनार्थं जिह्वा लेहः कथंचि-
 ल्लीढायाः पुनर्ग्रहोऽग्निहोत्रसाधनत्वम् ॥ २ भोज्यान्नानापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेदिति पाठांतरम् ॥ ३ प्रजार्थं त्विति । कचिच्छा-
 न्नायां जातकर्महोमे प्रजाजीवनार्थं अरणिपरिग्रहो विहितः ॥

नवोदकमित्युक्तोदशाहः गुरवेतुवरंदत्वेत्युक्तादक्षिणा शूद्रेषुदासगोपालेति कंदूपकस्नेहपकंयश्चदुग्धेनपाचितम् एतान्यशूद्राब्रह्मजोभोज्यानिमनुरब्रवीदित्यपराकैसुमंतूक्ताशूद्रस्यपाकक्रिया पितापुत्रविवादेतुसाक्षिणां- त्रिपणोदमइत्युक्तः सायंगृहत्वं विधूमेसन्नमुसलेइत्युक्तं पृथ्वीचंद्रेणतु अंतित्वसुधाविप्राः पृथिवीदर्श- नायच अनिकेताह्वनाहारायत्रसायंगृहास्तुतेइतिविष्णुपुराणोक्तनिषिद्धम् तेनाज्ञातशीलपांथादेःश्रा- द्धादौविनियोगोनकार्यः कलावित्यर्थोक्तः एतानिवर्ज्यानीत्यर्थः ॥

हेमार्द्रांत आदित्यपुराणांत—“प्रजोत्पत्तीसाठी विधवा भ्रातृपत्नीशीं दिराची योजना (नियोग), विवाहित असून क्षत्रयोनी (उपभुक्त) अशा कन्येचा दुसऱ्या वराशीं विवाहसंस्कार करणे, द्विजातींचा असवर्ण कन्याशीं विवाह, आततायी ब्राह्मणांची धर्मयुद्धांत हिंसा, गलवतांत वस्त्र ससुद्रपर्यटन करणाराचा प्रायश्चित्त देऊनही त्याचा स्वीकार करणे, सर्वांना मंत्रवीक्षा, कर्मंडलधारण, यावद्देहपातपर्यंत उत्तरदिग्गमन, गोमेष, सौत्रामणीयज्ञाचेठायींही सुरापान करणाराचा स्वीकार, अग्निहोत्रांत सुचीपात्रांनं होम दिल्यानंतर अवशिष्ट घृतादिक हवनीय द्रव्य जिव्हेनं चाटणे, व चाटलेली सुची पुनः घेणे, अग्निहोत्री वेदाध्ययन करणारा एकदिवस आशौच धरून शुद्ध होतो इत्यादि सांगितल्यावरून आशौचसंकोच करणे तो, ब्राह्मणांना मरणांतिक प्रायश्चित्तविधि, संमर्गदोष व सुवर्णस्त्रेय यांवांचून इतर जी महापातकं (ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नी- गमन) त्यांची निष्कृति, ही कृत्ये कलियुगांत नाहीत.” “प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणांतिकम् । संमर्गदोषस्त्रेयान्यमहा- पातकनिष्कृतिः” या वचनाचा अर्थ—संमर्गदोष म्हणजे “ब्रह्महत्यादि चार महापाप्यांचा संमर्ग पांचवा तोही महापापी होतो” या वचनानं सांगितलेला दोष, आणि चोरी, यांवांचून इतर तीन (ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन) ही पापं बुद्धिपूर्वक करणाऱ्या ब्राह्मणांचा मरणांतिक प्रायश्चित्त कलियुगांत नाही. कारण, मरणांतिक प्रायश्चित्त केलं असतां जातिवध झाला, ब्रह्महत्या झाली, आणि आत्महत्या घडली. त्यांना जातिवधनिमित्तक द्वादशाब्द द्विगुण प्रायश्चित्त. ब्रह्मवधनिमित्तक द्वादशाब्द द्विगुण प्रायश्चित्त आहे. आणि पुर्वीच केलेलं महापाप व आत्महत्या ही झाल्यामुळे ‘चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः’ म्हणजे चवथ्या पापाचा निष्कृति नाही, त्या वचनानं मरणांतिक प्रायश्चित्त निषिद्ध केलं आहे. आतां मरणांतिक प्रायश्चित्त कायें, अशा विधीनं जातिवधादिप्रत्युक्त पापाचा वाध होईल ! असें म्हणतां येणार नाही. कारण, त्यानं आत्महत्यानिमित्तक दोषाचा वाध होतो. जातिवधनिमित्तक दोषाचा वाध होत नाही. त्याचा विषय वेगळा आणि याचा विषय वेगळा आहे. संमर्गदोष तर बुद्धिपूर्वक घडला तरी त्याला त्रतच (कृच्छादिकच) सांगितल्यामुळे त्याला मरणांतिक प्रायश्चित्त नाही. चोरीविषयीही मरणांतिक प्रायश्चित्त नाही. कारण, चोरीविषयी राजानं वध करावयाचा आहे. यावरून संमर्गदोष व चोरी यांविषयी मरणांतिक प्रायश्चित्त नमल्यामुळे त्या दोषांचीच निष्कृति (शुद्ध) होते, इतर तीन महापाप्यांची शुद्धि होत नाही. कलियुगांत मरणांतिक प्रायश्चित्ताचा निषेध केल्यामुळे इतर युगांत मरणांतिक प्रायश्चित्ताची प्रवृत्ति आहे. हा मर- णांतिक प्रायश्चित्तनिषेध ब्राह्मणांना आहे, क्षत्रियादिकांस नाही. तेंच सांगतो—‘विप्राणां मरणांतिकं’ याचा विशेष निर्णय आर्म्ही (कमलाकरभट्टानं) केलेल्या प्रायश्चित्तसंहितांत पहावा. “वर, अनिधि, पितर यांच्यासाठीं पशु अभिमंत्रित करून मारणें, दत्तक व और्य यांवांचून इतर कीत इत्यादिक (मनु-याज्ञवल्क्य इत्यादिकांनीं सांगितलेल्या) दशविध पुत्रांचें पुत्रत्वकरून ग्रहण (मानणें), ब्राह्मणादि उत्कृष्ट जातीच्या स्त्रियांच्या संभोगानं दुष्ट झालेल्या शूद्रादिकांचा प्रायश्चित्त देऊनही संसर्ग करणें, गुरुस्त्रियेंशीं शिष्यादिकांचा संयोग झाला अगतां त्या गुरुस्त्रियेचा त्याग करणें, परोदेशेंकरून (गाई, ब्राह्मण यांच्याकरितां) प्राणत्याग करणें, दान सोडून ठेविलेलेही वर्ज्य करणें (न घेणें), द्रव्यप्राप्तीसाठीं (वेतन घेऊन) प्रतिमापूजा करणें, कार्यमिद्धीकरितां देवपूजा इत्यादिकांचा संकल्प करणें, दशाहाशांचांत अस्थिसंचयन झाल्यानंतर (आशौच कमी झाल्यामुळे) स्पर्श करणें, ब्राह्मणांनीं यज्ञांत पशु मारणें, व गोमकय करणें, तीन दिवस उपोषित राहणारांनं पाप्या- पासूनही धान्य चोरून आणणें, हे धर्म कलियुगांत वर्ज्य आहेत.” **माधवीयांत आणि पृथ्वीचंद्रोदयांत**—“शूद्रांमध्ये दास, गोपाल (गांठी) कुलमित्र (कुलपरंपरेचा मित्र), अधेसीरी (अर्थां वांट्यानं शेती करणारा), यांचें अन्न गृहस्थाश्रमी ब्राह्मणांनं भक्षण करणें; अतिदूर तीर्थसेवा करणें; गुरुपत्नीचे ठिकाणीं शिष्यांनं गुरुप्रमाणें वर्तन करून राहाणें; श्रेष्ठ ब्राह्मणांनीं आपत्काली क्षत्रिय-वैद्यादि वृत्ती (उपजीविका) स्वीकारणें; एक दिवस निर्वाहापुरतें धान्य संग्रह करून राहाणें (अधिक धान्यसंग्रह न करणें), कोणत्याएका शाखेंत प्रजा जीवंत राहण्यासाठीं जातकर्म होमांत अरणिस्वीकार सांगितला आहे तो; ब्राह्मणांनीं प्रवास करणें; मुखानं (कुंकणीवांचून) अग्नि पेटवणें; बलात्कारादिकांनं दुष्ट झालेल्या स्त्रियांना जातींत घेणें; संन्याशांनीं सर्व वर्णांची (ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादिकांची) भिक्षा घेणें; भूमीवर नवें उत्पन्न झालेलें उदक दहा दिवसांनीं शुद्ध म्हणून सांगितलें आहे, त्याच्यापूर्वी तें न स्वीकारणें; गुरूनं सांगितलेली दक्षिणा देणें; ब्राह्मणादिकांची अन्नपाकादिक्रिया शूद्रानं करणें; शूद्रादिकांना पर्वताच्या कज्यावरून उडी टाकून किंवा अग्नींत उडी टाकून मरण विहित आहे तें मरण; गाईंनीं प्राशन करून अवशिष्ट राहिलेल्या सांचीव उदकांत शिष्टांनीं आचमन करणें; पितापुत्रांच्या विवादांत असलेल्या साक्ष्यांना

दंड सांगितला आहे, तो दंड करणे; संन्याशांनीं दिवसाच्या सायंकाळीं भिक्षा मागावी, अशी सांगितलेली सायंकालिकभिक्षा; हे धर्म कलियुगांत करूं नयेत, असें तत्त्वद्वये महारामे अशा विद्वानांनीं कलियुगाच्या आरंभीं व्यवस्थापूर्वक सांगितलें आहे.” वर सांगितलेल्या ‘सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः’ या वचनाचा अर्थ—सौत्रामणि यज्ञांतही सुरा(मद्य)ग्रह करणाराशीं व्यवहारसंबंध कलियुगांत वर्ज्य आहे. आतां असें म्हणतो कीं, ‘नराश्रमेधौ मद्यं च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः’ ह्या वर सांगितलेल्या हेमाद्रिस्य ब्राह्मवचनानं सर्वसाधारण मद्याचा निषेध केलेला आहे, त्या निषेधाचा ह्या वचनानं उपसंहार (संकोच) केला आहे. म्हणजे मद्य वर्ज्य म्हणून जें सांगितलें तें सौत्रामणि यज्ञांत समजावें. अर्थात् इतर वर्ज्य नाही; असें म्हणतां येणार नाही. कारण, निषेधाचें तात्पर्य निवृत्ति होणें इतकेंच असल्यामुळें, कोणत्या ठिकाणीं निवृत्ति होते व कोणत्या ठिकाणीं नाहीं इत्यादि विशेष अर्थाची त्या निषेधाला गरज नाही. आणि याप्रमाणें सामान्य निषेधाचा विशेष निषेधानें उपसंहार केला तर ‘सर्वभूतांची हिंसा करूं नये’ ह्या सामान्य निषेधाचा ‘ब्राह्मणाला मारूं नये’ ह्या विशेष वचनानें उपसंहार होईल. तसा उपसंहार झाला असतां इतर हिंसा निर्दोषीही होईल ! हा सर्व निर्णय हेमाद्रीनं इतर ग्रंथांत सांगितलेला आहे, म्हणून मी याविषयीं विशेष निर्णय सांगत नाहीं. सौत्रामणियागांत सुराग्रहणाचा उद्देश करून संग्रहनिषेधाचें विधान केलें आहे. येथें उद्देश्य जें सुराग्रहण त्याचें विशेषण जें सौत्रामणि त्याची अविषया अमल्यामुळें वाजपेययज्ञांतही सुराग्रहणाचा निषेध होतो. सौत्रामणि यागांत तर “अथवा दुधाचे ग्रह (पात्रें) होतील” ह्या आपस्तंब वचनावरून विकल्पानें पयोग्रह सांगितले असल्यामुळें त्यांनींही सौत्रामणीयागाविषयीं अधिकार येतो. वाजपेयांत तर दुग्धप्राप्ति अमल्या-विषयीं प्रमाण नसल्यामुळें: सोम व सुरा यांचा सहत्याग (आहुति) अमल्यानं त्याच्या अंशांत सुरा द्रव्य अमल्यामुळें त्या योगानंच त्या यागाला वाजपेय असें नांव असल्याकारणानें ती सुरा नमेल तर वाजपेय नांव येणार नाही, म्हणून कलियुगांत वाजपेययागाविषयीं अधिकार नाही, हें म्हणणें युक्त आहे असें आम्ही (कमलाकरभट्ट) समजतां. त्रिकांड-मंडनादिकांचा लेख तर मूलरहित व आकरग्रंथ सोडून आहे. “प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणांतिकं” या पूर्वीच्या वाक्याचा अर्थ—“पर्वताचा कडा किंवा अग्नि यांत देहत्यागावाचून दुमरें त्या महापापांना प्रायश्चित्त नाही” याप्रमाणें जें प्रायश्चित्त सांगणें, तें कलियुगांत सांगूं नये. हें वाक्य पंचमहापापांविषयीं आहे. त्यांत संगमपापांविषयीं असें आहे की, ‘कलौ कर्तव्यं लिप्यते’ या व्यासवचनावरून कलियुगांत कर्त्यालाच पातित्य आहे. संगमर्गा पाण्याला नमकादि प्राप्ति असली तरी पातित्य नाही. संगमर्गाला सर्वथा दोष नाही असें म्हटलें, तर ‘सर्वगान्यांगनादुष्टैः संगमः शोधितैरपि’ या पूर्वीक वचनानं संगमर्गाचा निषेध सांगितला आहे, त्याचा विरोध येईल. म्हणून संगमर्गाला दोष नाही असें म्हणतां येत नाही. तर स्तेयभिन्न एकांतीं घडलेल्या महापापाविषयीं प्रायश्चित्त सांगूं नये, असा भाव. लोकांत प्रसिद्ध बुद्धिपूर्वक घडलेल्या महापापाविषयीं निष्कृति नाही. व तो पापी व्यवहारांतही येत नाही, हें पूर्वीच सांगितलें आहे. शूद्रामध्ये दाम, गोपाळ, कुलाचा मित्र, अर्ध्या शेतीचा वांटेकरी यांचें अन्न गृहस्थानं भक्षण करूं नये. हा निषेध कोणाचा असें म्हटलें तर—“निष्ठायांवर भाजलेले, घृतादिक पक्क केलेले, आणि दुग्धामध्ये शिजविलेले हे पदार्थ: शूद्राच न खाणाराला भक्षण करण्यास योग्य आहेत असें मनु सांगतो.” याप्रमाणें अपराकांत सुमंतून् सांगितलेला शूद्राक तो ‘शूद्रेषु दासगोपाल०’ या वचनानं कलींत निषिद्ध केला आहे. ‘पितापुत्रांचा विवाद असतां साक्ष्यांना तीन पण (कार्पापण, ६ पैसे) दंड करावा’ असा सांगितलेला दंड तो ‘साक्षिणां दंडकल्पनं’ या वचनानं निषिद्ध केला आहे. ‘यते: सायंगृहलं च०’ याचा अर्थ—“लोकांच्या घरांतील धूर गेला, मुसळांचा शब्द नाहीसा झाला, चुलींतील निखारे विझाले, सर्व लोकांचें भोजन झालें म्हणजे तीन प्रहर दिवस होऊन गेल्यावर संन्याशांनीं भिक्षेस जावें” असें मनूनं सांगितलेलें सायंकाळीं भिक्षादन तें ‘यते: सायंगृहलं०’ या वचनानं निषिद्ध केलें आहे. पृथ्वीचंद्रग्रंथकारानं तर—“पृथ्वी पाहण्याकरितां भूमीवर ब्राह्मण फिरतात. त्यांना गृह नसून आहारही मिळत नाही, ते सायंकाळीं ज्या घरां जातील तीं घरां त्यांची आहेत अर्थात् ते सायंगृह होत” ह्या विष्णु-पुराणवचनानं सांगितलेलें सायंगृहल तें कलियुगांत निषिद्ध केलें आहे यावरून ज्या ब्राह्मणाचा स्वभाव, आचरण वगैरे माहीत नसेल अशा पांथादिकाला कलियुगांत श्राद्धादिकांत सांगूं नये, असा अर्थ सांगितला आहे.

निगमः अग्निहोत्रंगवाल्भंसंन्यासपलपैतृकं देवराज्ञस्तोतृपत्तिः कलौपंचविजर्जयेत् अग्निहोत्रंतदर्थ-माधानं एतच्चसर्वाधानपरं अर्धाधानंस्मृतंश्रौतस्मार्ताभ्योस्तुपृथक्कृतिः सर्वाधानंतयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रिते-तिलौगाक्षिवचनादितिस्मृतिचंद्रिकायाम् एतेन चत्वार्यब्दसहस्राणिचत्वार्यब्दशतानिच कलैर्यदागमिष्यंतितदात्रैतोपरिग्रहः संन्यासश्चनकर्तव्योब्राह्मणेनविजानतेतिन्यासवचनंन्याख्यातम् सर्वाधानेपि विशेषमाहदेवलः यावद्वर्णविभागोस्तियावद्वेदःप्रवर्तते संन्यासंचाग्निहोत्रंचतावत्कुर्यात्कलौयुगेइति

१ मीमांसंत उद्देश्यविशेषणाची अविषया होते, असें आहे. प्रथमपरिच्छेदांत ग्रहप्रकर्णी बौद्धतुल्यमतखंडनावसरीं त्याचें हिंदुदर्शन आहे, तें पहावें. २ त्रेतापरिग्रहोनामसर्वाधानम् ।

अत्रपूर्वयुगाश्रितेतिलौगाक्षिवाक्येपूर्वयुगानिकृतादीनीत्येकोऽर्थः अन्येतु युगस्यपूर्वं कलेःपूर्वभागः सच-
त्वार्यब्दसहस्राणीतिपूर्वोक्तवाक्याच्चतुश्चत्वारिंशच्छतवर्षावच्छिन्नः तस्मिन्भागेसर्वाधानकार्यम् तदुत्तरंतुया-
वद्वर्णविभागोस्तीतिवाक्यात् वर्णविभागपर्यंतमर्धाधानमित्याहुः संन्यासस्त्रिदंडः इतिश्रीमन्नारायणभट्टसूरि-
सूनु रामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौतृतीयपरिच्छेदेकलिवर्ज्यानि समाप्तानि ।

निगम—“अग्निहोत्र, मधुपर्कात् गोवध, संन्यास, मांसानं श्राद्ध करणं, दिरापाप्म पुत्रोत्पत्ति, हीं पांच कर्म कलियुगांत वर्ज्य करावीं.” अग्निहोत्र म्हणजे अग्निहोत्रासाठीं आधान करणें. हा निषेध सर्वाधानविषयक आहे. कारण, “श्रौतामि व स्मार्तामि हे वेगवेगळे राखणें (अर्धा स्मार्तामि श्रौताम्रींत मिळवून अर्धा वेगळा राखणें) हें अर्धाधान म्हटलें आहे. आणि श्रौताम्रींत स्मार्तामि मिळविणें (वेगळा न ठेवणें) हें सर्वाधान पूर्वयुगांत सांगितलें आहे. कलियुगांत नाही.” असें कलियुगांत सर्वाधाननिषेधक लौगाक्षिवचन आहे, असें स्मृतिचंद्रिकेंत सांगितलें आहे. यावरून “कलियुगाचीं ४४०० वर्षे गेल्या-
नंतर ज्ञात्या ब्राह्मणांनं त्रेतापरिग्रह (सर्वाधान) आणि संन्यास हे करूं नयेत” या व्यासवचनाची व्यवस्था केल्यासारखी झाली. तात्पर्य—त्रेतापरिग्रह म्हणजे सर्वाधान तें निषिद्ध आहे. अर्धाधान निषिद्ध नाही. सर्वाधानाविषयीही विशेष सांगतो देवल “जोंपर्यंत ब्राह्मणादिक वर्णांचा (जार्णांचा) विभाग आहे, जोंपर्यंत वेदविहित कर्म चाललेलीं आहेत, तोंपर्यंत कलि-
युगांत संन्यास आणि अग्निहोत्र (अर्धाधान व सर्वाधान) करावें.” वर सांगितलेल्या लौगाक्षिवाक्यांत ‘पूर्वयुगाश्रिता’ याचा अर्थ—पूर्वयुगें म्हणजे कृत्त, त्रेता, द्वापार यांमध्ये सर्वाधान आहे असा एक अर्थ झाला. इतर ग्रंथकार तर—‘युगस्य पूर्व पूर्वयुगं’ म्हणजे कलियुगाचा पूर्वभाग होय. तो किती म्हटला तर ‘चत्वार्यब्दसहस्राणि०’ ह्या पूर्वोक्त व्यासवचनावरून ४४०० वर्षपर्यंत समजावा. तेथपर्यंत कलियुगांत सर्वाधान करावें. त्याच्यापुढें तर ‘यावद्वर्णविभागोस्ति०’ ह्या देवलवचना-
वरून वर्णविभाग आहे तोपर्यंत अर्धाधान करावें, असें सांगतात. वरील व्यासवचनांत संन्यासाचा जो निषेध केला, तो त्रिदंड संन्यासाचा समजावा. इति कलिवर्ज्य प्रकरणाची प्राकृत टीका समाप्त झाली.

इति तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्धः समाप्तः

निर्णयसिंधु— तृतीयपरिच्छेद उत्तरार्ध.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथश्राद्धनिर्णयः नानानिवंधवैमत्यभ्रांतचित्तोद्दिधीर्पया कमलाकरसंज्ञेनक्रियतेश्राद्धनिर्णयः तत्स्वरूपमाह **पृथ्वीचंद्रोदयेमरीचिः** प्रेतपितृश्रुतिर्दिश्यभोज्यंयत्प्रियमात्मनः श्रद्धयादीयतेयत्रतच्छ्राद्धंपरिकीर्तितम् ब्राह्मणस्वीकारांतश्चतुर्थ्यतपदोपनीतपित्राद्युद्देश्यकस्यागःश्राद्धमित्यर्थः तत्रयद्यपिहोमपिंडभोजनानिप्रधानमितिहेमाद्रिः होमश्चपिंडदानंचतथाब्राह्मणभोजनम् श्राद्धशब्दाभिधेयंस्यादेकस्मिन्नौपचारिकमिति **श्रीधरश्च** तथापिकचिद्विशेषवक्ष्यामः निमित्तभेदेभोजनस्यपिंडानांवा निषेधो नप्राधान्यं विरुणद्धि असोमयाजिनोदधिपयोयागवत् **यच्चशूलपाणिः** नित्यश्राद्धमदैवंस्यादर्थ्यपिंडविवर्जितमिति**हारीनीये**नित्यश्राद्धमद्यादौपिंडनिषेधोस्ति नचप्राप्तिविनासः नचातिदेशंविनाप्राप्तिः नचांगत्वेनविनातिदेशः प्रधानस्यानतिदेशात् **सप्तमे** उपकारकत्वेनातिदेशोक्तेः तेनभोजनंप्रधानंपिंडांगम् पिंडदानमात्रविधिस्त्वंगभूतान्कर्मांतरमेव प्रकरणांतरन्यायादिति तत्र जातश्राद्धेनदद्यात्तुपकान्नंब्राह्मणेण्वपि नपक्वभोजयेद्विप्राप्तमच्छद्दोषिकदाचनेत्याद्यैर्जातश्राद्धशूद्रश्राद्धादौभोजनस्यनिषेधेनांगत्वापत्तेः **नतौपशौकरोनीति**वदुपजीव्यविरोधेन विकल्पापत्तेश्च तेनश्राद्धशब्दाभिधेयत्वेनोभयप्राप्तौनिषेधःपर्युदासोवा **दीक्षितोनददानिनजुहोतिना सोमयाजीसन्नये**दिति वदितितत्त्वम् **धर्मप्रदीपे**पि यजुषांपिंडदानंतुवह्वचानां द्विजार्चनम् श्राद्धशब्दाभिधेयंस्यादुभयंसामवेदिनां तच्चपितृनयजेतपितृभ्योदद्यादित्युभयप्रयोगदर्शनाद्यागदानोभयात्मकम् पितरोदेवताइतिपितृद्देश्यकत्वाद्यागत्वंविप्रापेक्षयाचदानत्वमित्यविरुद्धम् एतेन नायंयागः देवतोद्देशेनत्यागोयागः यागोद्देश्याचदेवतेत्यात्माश्रयादितिगौडमतमपास्तं वैधशब्दविशेषोद्देश्यत्वस्यतस्यैवमितिस्वत्वारोपप्रतियोगित्वस्यवादेवतात्वात् तत्रैव**सुमंतुः** श्राद्धात्परतरंनान्यच्छ्लेयस्करमुदाहृतम् **आदित्यपुराणे** नसंतिपितरश्चेति कृत्वामनसियोनरः श्राद्धंनकुरुतेतत्रतत्परकंपिबंतिते ॥

आतां श्राद्धनिर्णय सांगतो—

नानाप्रकारच्या निवधांतील विरुद्ध मतांच्या वाक्यांनीं भ्रांति उत्पन्न झालेल्या पुरुषांच्या चित्ताचा उद्धार (भ्रांतिनिवारण) करण्याच्या इच्छेनें **कमलाकर** नांवाचा मी (ग्रंथकार) श्राद्धनिर्णय करितों.

श्राद्धचें स्वरूप **पृथ्वीचंद्रोदय** ग्रंथांत **मरीचि** सांगतो, तें असं—“आपल्याला प्रिय असलेलें भोज्य (भक्षण करण्यास योग्य वस्तु), प्रेत व पितर यांच्या उद्देशानें ज्यांत ब्राह्मणाला श्रद्धेनें दिलें जातें, त्या कर्माला **श्राद्ध** असें म्हटलें आहे.” म्हणजे चतुर्थ्यंत पदानें (‘पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः’ इत्यादि पदानें) उपस्थापित जे पित्रादिक त्यांच्या उद्देशानें केलेलें दान ब्राह्मणानें स्वीकारलें म्हणजे तें श्राद्ध होतें, असा श्राद्ध शब्दाचा इत्यर्थ होय. आतां त्या श्राद्धामध्ये होम, पिंडदान आणि ब्राह्मणभोजन हीं तीन प्रधान आहेत असें **हेमाद्रि** सांगतो; आणि “श्राद्धशब्दाचा अर्थ म्हटला म्हणजे होम, पिंडदान आणि ब्राह्मणभोजन हीं तीन मिळून होतो; या तिहींतून एकावर श्राद्धशब्दाथल मुख्य येत नाही, तर औपचारिक (गौण) येतें.” असें **श्रीधर**ही सांगतो. या दोन्ही ग्रंथकारांच्या (हेमाद्रिश्रीधरांच्या) मतानें होम, पिंडदान आणि ब्राह्मणभोजन या तिघांना प्राधान्य सांगितलें; असें जरी आहे, तरी पुढें क्वचित्स्थळीं आहीं विशेष सांगूं. भिन्न भिन्न निमित्तानें एकादे ठिकाणीं भोजनाचा किंवा पिंडाचा निषेध केलेला असला तरी तो निषेध (त्या भोजनपिंडांच्या) प्राधान्याचा विरोध करीत नाही; म्हणजे एकादे ठिकाणीं पिंडांचा किंवा भोजनाचा निषेध असला तरी श्राद्धातील त्यांच्या प्राधान्याचा तो विघातक होत नाही. जसें—अग्निहोत्र्यानें असोमयाजी असतां म्हणजे सोमयाग केला नसतां दधियाग, पयोयाग करूं नयेत; असा जरी दधिपयोयागांचा निषेध केला आहे, तरी त्या त्या यागांमध्ये त्या दधिपयोयागांचें प्राधान्य नष्ट होत नाही; कारण,

असोमयाजिनमित्तापुरताच निषेध आहे. तें निमित्त नसेल तर त्यांना प्राधान्य आहे. त्याप्रमाणें भोजन व पिंड याविषयीं समजावें. आतां जें शूलपाणि सांगतो, "नित्यश्राद्ध देव, अर्घ्य आणि पिंड यांनीं विरहित करावें." या हारीतवचनांत नित्यश्राद्धांत व मघादिश्राद्धांत पिंडनिषेध सांगितला आहे. तो निषेध पूर्वीं पिंडांची प्राप्ति असल्याशिवाय होत नाही. अतिदेशावांचून पिंडांची प्राप्ति नाही, आणि तो अतिदेश अंगत्वावांचून होत नाही; कारण, प्रधानाचा अतिदेश सांगितला नाही. जैमिनींनीं पूर्वमीमांसेंत सातव्या अध्यायांत अंगांचा अतिदेश सांगितला आहे. प्रधानाचा अतिदेश सांगितला नाही. तात्पर्य—पिंडांचा निषेध केल्यावरून अतिदेश व अतिदेशामुळें अंगल सिद्ध झालें आहे म्हणून श्राद्धामध्ये भोजन प्रधान व पिंड अंग होतें. आतां ज्या कर्मांत केवळ पिंडदानाचाच विधि सांगितला आहे, भोजन नाही; तें कर्म या अंगभूत पिंडदान असलेल्या कर्मांहून भिन्न आहे; कारण, तें प्रकरण भिन्न व हें प्रकरण भिन्न आहे; प्रकरणभेदानें कर्मभेद होतो, असें मीमांसेंत सांगितलें आहे असें जें शूलपाणि म्हणतो, तें बरोबर नाही. कारण, एकाद्या ठिकाणीं पिंडांचा निषेध केल्यामुळें जर श्राद्धामध्ये पिंडांना अंगल प्राप्त होतें, तर "जातकर्मातील श्राद्धाचे ग्रंथीं ब्राह्मणांना देखील (अपिशब्दानें दर्भवद्गताही) पक्षाक्ष देऊं नये. तमेंच सच्छूद्र जरी असेल तरी त्यांना ब्राह्मणांना कधीही शिजविलेल्या अन्नाचें भोजन घालूं नये;" इत्यादि-वाक्यांनीं जातश्राद्ध, शूद्रश्राद्ध इत्यादिकांचे ठिकाणीं भोजनाचा निषेध अगल्यामुळें (पिंडांप्रमाणें) भोजनालाही अंगल प्राप्त होईल. दुसरा दोष असा की, पशुयाग म्हणून एक याग सांगितलेला आहे, त्या ठिकाणीं, चोदकानें अतिदेशानें आज्यभाग प्राप्त होताना, आणि "न तौ पशौ करोति" या वाक्यानें ते आज्यभाग पशुयागाचे ठिकाणीं करूं नयेत असा निषेध केला आहे; तो निषेध उपजीव्यविरोधामुळें (ज्यानें आपलें उपजीवन झालें त्याचा विरोध होत असल्यामुळें) सर्वथा त्यांचा प्रतिबंध न करितां एकवेळां प्रतिबंध व एकवेळां त्या आज्यभागांची प्रवृत्ति, मिळून विकल्प होत असतो; त्याप्रमाणें या ठिकाणींही अतिदेशानें प्रवृत्ति व वचनानें निषेध असें केलें अगतां प्रवृत्तीनें निषेधानें उपजीवन असल्यामुळें उपजीव्यविरोधानें त्या पिंडांच्या प्रवृत्तीचा सर्वथा वाध न करितां एकवेळ प्रवृत्ति व एकवेळ निषेध अशा रीतीनें विकल्प प्राप्त होईल. म्हणून आनिदेशिक प्रवृत्ति मानणें योग्य नाही. तर श्राद्धामध्ये भोजन व पिंड या दोघांनाही प्राधान्य असल्यामुळें वरील उदाहरणांत (नित्यश्राद्ध-मघादि श्राद्धादिकांचे ग्रंथी) श्राद्धशब्दानें दोन्ही (भोजन व पिंड) प्राप्त झालीं असतां निषेध किंवा पर्युदास करावा. जसें—"दीक्षितो न दद्याति न जुहोति" या ठिकाणीं दीक्षितानें कर्तव्या अंगलेकरून विहितव्यतिरिक्त पुरुषार्थलेकरून विहित जीं दानादिक तीं करूं नयेत. असा त्या नकाराचा अर्थ निषेध करावा. किंवा पर्युदास करावा. तो असा की, दीक्षितानें पुरुषार्थ जीं दानादिक कर्म त्यावांचून इतर कर्म कृतुकरावीं, असा अर्थ केला असतां निषेध आर्थिक होतो. तसाच "नागोमयाजी संनयेत्" या वाक्यानें गोमयाग केल्यावांचून साक्षाथ्याग करूं नये; या निषेधानें गोमयागानंतर साक्षाथ्यागाचा उत्कर्ष प्रतिपादित केला जातो. या वरील दोन्ही उदाहरणांप्रमाणें श्राद्धामध्ये निमित्तविशेषीं भोजनाचा किंवा पिंडदानाचा निषेध किंवा पर्युदास करावा, असें वरील वाक्यांचें तत्त्व होय. धर्मप्रदीपग्रंथांतही "यजुर्वेद्यांना पिंडदान हें श्राद्ध होतें. बहुवांना (ऋग्वेद्यांना) द्विजार्चन म्हणजे अन्नादिकांनीं ब्राह्मणपूजन हें श्राद्ध होतें. आणि सामवेद्यांना तीं दोन्ही (पिंडदान व द्विजार्चन) मिळून श्राद्ध होतें." असें सांगितलें आहे. "पितृन् यजेत, पितृभ्यो दद्यात्" अशीं दोन्ही प्रयोगांचीं वाक्यें दृष्ट आहेत. म्हणून तें श्राद्ध यागदान उभयरूपी आहे. एका श्राद्धावर उभयरूपल विरुद्ध कां होत नाही, असें म्हणाल तर "पितरो देवता" या वाक्यानें पितरांच्या उद्देशानें विहित असल्यामुळें त्या श्राद्धकर्मावर यागरूपल येतें आणि ब्राह्मणांना दिलें जातें म्हणून दानरूपलही येतें. ते दोन्ही धर्मे पृथक्संबंधानें आलेले असल्यामुळें विरुद्ध होत नाहीत, असा वरील व्यवस्थेनें श्राद्धाला यागल सिद्ध झाल्यामुळें "जें गौड म्हणतात की, हा याग नव्हे, कारण, देवतेच्या उद्देशानें जो केलेला त्याग तो याग, आणि यागाला जी उद्देश्य ती देवता म्हणजे पितरांना देवताल सिद्ध झाल्यावांचून श्राद्धाला यागल सिद्ध होत नाही, आणि श्राद्धाला यागल सिद्ध झाल्यावांचून पितरांना देवताल नाही; अर्थात् देवताज्ञानाला यागज्ञान पाहिजे व यागज्ञानाला देवताज्ञान पाहिजे. यावरून "स्वज्ञाने स्वज्ञानापेक्षा" म्हणजे आपल्या ज्ञानाला आपलेंच ज्ञान पाहिजे, असा आत्माश्रय दोष येतो; म्हणून हा याग होत नाही" असें जें गौडांचें मत तें खंडित होतें. कारण, यागाला उद्देश्य ती देवता, असें आद्वीं म्हणत नाही; तर विधिवान्यानीं विशेषशब्दानें जिचा उद्देश केला असेल ती देवता; अथवा देय-पदार्थाचेग्रंथीं 'त्याचें हें' असा स्वकीय स्वलनिवृत्तिपूर्वक ज्याच्या स्वलाचा आरोप केला जातो ती देवता समजावी; असें देवतेचें

१ अतिदेश म्हणजे त्याच्यासारखें हें करावें, असें सांगणें होय. पावणश्राद्धांत पिंडादिक सर्व श्राद्धधर्मे सांगितले आहेत. त्याच्यासारखें हें असल्यामुळें या ठिकाणीं ते सारे धर्मे आले आहेत, म्हणूनच त्या धर्मांचा अंगत्व आहे असा भाव. २ म्हणजे श्राद्धावर पितरांच्या संबंधानें यागत्व आणि ब्राह्मणांच्या संबंधानें दानरूपलही येतें. जसें एकच स्त्री असून ती बापाची कन्या होते, पतीची पत्नी होते, भ्रात्याची बहीण होते, तिजवर कन्यात्व पत्नीत्व भगिनीत्व हे धर्मे वेगवेगळ्या संबंधानें आलेले असल्यामुळें जसे विरुद्ध होत नाहीत, तसें हें श्राद्ध पितरांस याग होतो, ब्राह्मणांस दान होतें, म्हणजे पितृनेरूपित यागत्व आणि ब्राह्मण-निरूपित दानत्व हे दोन्ही धर्मे अविरोधानें असतात.

लक्षण केल्याने बरील आत्माश्रयदोष येत नाही, असें समजावें. त्याच ग्रंथांत (पृथ्वीचंद्रोदयांत) **सुमंतु** सांगतो-“श्राद्धा-वाचून दुसरें अत्यंत श्रेयस्कर असें कोणतेंही कर्म सांगितलें नाही.” **आदित्यपुराणांत**-“पितर नाहीत असें मनांत आणून जो मनुष्य श्राद्ध करीत नाही त्या समर्थी (श्राद्धकाली) आलेले त्याचे ते पितर त्याचें (श्राद्ध न करणाऱ्या मनु-ष्याचें) रक्त पितात.”

तद्भेदानाहविश्वामित्रः नित्यनैमित्तिककाम्यंवृद्धिश्राद्धसंपिंडनम् पार्वणंचेतिविज्ञेयंगोष्ठयांशुद्धयर्थम-ष्टमं कर्मांगनवमंप्रोक्तदैविकदशमंस्मृतम् यात्रास्वेकादशंप्रोक्तपुश्वर्थद्वादशंस्मृतमिति एपांलक्षणानि **भविष्ये** अहन्यहनियच्छ्राद्धंतन्नित्यमितिकीर्तितम् वैश्वदेवविहीनतदशकावुदकेनतु एकोद्विष्टतुयच्छ्राद्धंतन्नैमित्तिकमु-च्यते तदप्यदैवकर्तव्यमयुग्मानभोजयेद्विज्ञान् कामायविहितकाम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये वृद्धयान्तक्रियतेश्राद्धंशु-द्धिश्राद्धंतदुच्यते गंधोदकतिलैर्मिश्रंकुर्यात्पात्रचतुष्टयं अर्घ्यार्थपितृपात्रेपुत्रेपात्रप्रसेचयेत् येसमानाद्विद्वान-भ्यामेतज्ज्ञेयंसंपिंडनं नित्येनतुल्यशेषंस्यादेकोद्विष्टस्त्रियापि एतदुभयमेवस्त्रियाः तेनस्त्रीकर्तृकस्त्रीसंप्रदानकं-चेत्युभयनियमइतिकल्पतरुः अमावास्यायांयान्तक्रियतेतत्पार्वणमितिस्मृतम् क्रियतेवापर्वणियत्तत्पार्वण-मितिस्थितिः अत्रपर्व चतुर्दश्यमष्टमीचैवअमावास्याचपौर्णिमा पर्वाण्येतानिगर्जंरविस्क्रमणंतथेति **विष्णु-पुराणोक्तसंक्रांत्यादि** गोष्ठयांयान्तक्रियतेश्राद्धंगोष्ठीश्राद्धंतदुच्यते बहूनांविदुषांसंपत्सुग्वार्थपितृवृत्तये क्रियते शुद्धयेयत्तुब्राह्मणानांतुभोजनम् शुद्धयर्थमितितत्प्रोक्तंवेनेतेयमनीषिभिः निपेककालेभोमेचमीमंतोन्नयेनेतथा ज्ञेयंपुंसवननेचैवश्राद्धंकर्मांगमेवच देवानुद्दिश्ययच्छ्राद्धंतत्तुदैविकमुच्यते गच्छन्देशांतरंयस्तुश्राद्धंकुर्यात्तुम-र्षिषा यात्रार्थमितितत्प्रोक्तंप्रवेशेचनसंशयः शरीरोपचयेश्राद्धमर्थोपचयएवच पुष्टयर्थमेतद्विज्ञेयमोपचायिक-मुच्यते गोष्ठयांश्राद्धकर्तृसमुदायेसंभूयसामग्रीसंपादनेनश्राद्धमित्यर्थः युगपतीर्थादिप्राप्तौविदुषांश्राद्धसंपदा-सुखार्थमिन्नपाकाशक्तौबहुपितृकश्राद्धमेकःकुर्यादितिकल्पतरुः **शंखधरश्च** शुद्धिश्राद्धंप्रायश्चित्तांगमिति-**मैथिलाः** अत्र पार्वणैकोद्विष्टवृद्धिसंपिंडीकरणात्मकंचतुर्विधमेवमुख्यम् तस्यैवायंप्रपंचः ॥

आतां श्राद्धांचे भेद सांगतो—

विश्वामित्रः—“नित्यश्राद्ध १ नैमित्तिकश्राद्ध २, काम्यश्राद्ध ३, वृद्धिश्राद्ध ४, संपिंडनश्राद्ध ५, पार्वणश्राद्ध ६, गोष्ठी-श्राद्ध ७, शुद्धिश्राद्ध ८, कर्मांगश्राद्ध ९, दैविकश्राद्ध १०, यात्राश्राद्ध ११, आणि पुष्टिश्राद्ध १२ वारांचे असे श्राद्धांचे भेद बारा आहेत.” ह्या बारा श्राद्धांचीं लक्षणे सांगतो **भविष्यंत**—“प्रतिदिवशीं (दररोज) जें श्राद्ध करावयाचें म्हणून सांगि-तलें तें **नित्यश्राद्ध** म्हटलें आहे. तें श्राद्ध विश्वेदेवरहित होतें. तितकेंही (एका ब्राह्मणानें देखील) करावयास सामर्थ्य नसेल तर केवळ उदकानें देखील तें नित्यश्राद्ध होतें. जें श्राद्ध **एकोद्विष्ट** (संपिंडनाच्यापूर्वी) म्हणून सांगितलें आहे, तें नैमित्तिक श्राद्ध होय. तेंही विश्वेदेवरहित करावें. या श्राद्धांत अयुग्म (तीन, किंवा एक) ब्राह्मणांना भोजन घालावें. कामनेला विहित श्राद्ध म्ह० आपली मनकामना सिद्ध होण्यासाठी जें करावयाचें तें श्राद्ध **काम्य** होय. वृद्धिकर्माचेठायीं जें श्राद्ध करितात, तें **वृद्धि-श्राद्ध** म्हटलें आहे. ज्या श्राद्धामध्ये अर्घ्याकरितां गंध, उदक, तीळ यांनीं युक्त अशीं चार पात्रे करून “येगमाना०” इत्यादि दोन मंत्रांनीं त्यांतील एका प्रेतपात्रांतील उदक तीन्ही पितृपात्रांमध्ये प्रसेचन करावें म्हणजे मिळवाचें, म्हणून सांगितलें आहे, तें **संपिंडनश्राद्ध** होय. संपिंडनश्राद्धाच्या प्रसंगानें एकोद्विष्टाचें लक्षण सांगतो—तें असें की, एकाच्या उद्देशानें करावयाचें श्राद्ध तें **एकोद्विष्ट** होय. या एकोद्विष्टाचीं अंगें नित्यश्राद्धासारखीं असतात. हें एकोद्विष्ट दोन प्रकारचेंच स्त्रियेला श्राद्ध होय; म्हणजे श्राद्धकर्त्री स्त्री असेल तर एकोद्विष्टच करावें, हा एक नियम आणि श्राद्धभोक्त्री स्त्री असेल तर एकोद्विष्टच करावें, असा दुसरा नियम, असा दोन प्रकारचा नियम आहे असें **कल्पतरु** सांगतो. जें श्राद्ध अमावास्याला करावयाचें म्हणून सांगितलें तें **पार्वणश्राद्ध** म्हटलें आहे; अथवा पर्वाचेठिकाणीं करावयाचें तें **पार्वण**; अशी शास्त्रमर्यादा आहे. श्राद्धाला पूर्वे सांगतो—“चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पौर्णिमा, आणि तशीच संक्रांति हीं पूर्वे आहेत, अशीं **विष्णुपुराणांत** सांगि-तलेलीं संक्रांति वगैरे पूर्वे श्राद्धप्रकरणीं घ्यावी. गोष्ठी म्हणजे बहुत ब्राह्मणसमुदाय बहुत विद्वान् एकत्र मिळून पितरांची तृप्ति होऊन आपणांस संपत्ति व सुख प्राप्त व्हावें; म्हणून श्राद्ध करितात तें **गोष्ठीश्राद्ध** म्हटलें आहे. आपली शुद्धि होण्यासाठी जें ब्राह्मणभोजन करितात, तें **शुद्धयर्थश्राद्ध** होय, असें विद्वानांनीं सांगितलें आहे. गर्भाधान, सोमयाग, सीमंतोन्नयनसंस्कार, आणि पुंसवनसंस्कार, इतक्या ठिकाणीं जें नांदीश्राद्ध करितात, तें **कर्मांगश्राद्ध** होय. देवांच्या

उद्देशाने जें श्राद्ध करितात तें **दैविकश्राद्ध** म्हटलें आहे. देशांतरी जाण्यासाठी घरांतून निघतेवेळीं घृतानें श्राद्ध करावयाचें तें **यात्रार्थश्राद्ध** म्हटलें आहे. तसेंच देशांतराहून घरीं आल्यावरही घृतश्राद्ध करावें म्हणून सांगितलें तेंही **यात्रार्थश्राद्ध**च होय याविषयीं संशय नाही. शरीरवृद्धि होण्याविषयीं तसेंच अर्थाची (द्रव्यादिसंपत्तीची) वृद्धि होण्याविषयीं जें श्राद्ध सांगितलें आहे तें **पुण्यर्थश्राद्ध** होय. हेंच **औपचायिक** श्राद्ध म्हटलें आहे.” वरील गोष्टीश्राद्ध लक्षणवचनाचा इत्यर्थ—अनेक ब्राह्मणांच्या समुदायामध्ये श्राद्धकृतें बहुत ब्राह्मण एकत्र सामग्री संपादन करून श्राद्ध करितात, तें होय असा समजावा. **कल्पतरु** आणि **शंख** हे ग्रंथकार, अनेक विद्वान् ब्राह्मणांना एकदम तीर्थादिक प्राप्त झालें असतां **अनेकांना** भिन्न भिन्न पात्रे होणें अशक्य असल्यामुळें, फार आयासावां वून यथास्थित श्राद्ध संपादन व्हावें, म्हणून सर्वांच्या पितरांचें श्राद्ध एकानें करावें असें सांगतात. शुद्धिश्राद्ध हें प्रायश्चित्तांग आहे, असें **मैथिल** सांगतात. ह्या वरील द्वादशश्राद्धांमध्ये पार्वण, एकोद्दिष्ट, वृद्धि आणि सपिंडीकरण हें चार प्रकारचेंच श्राद्ध मुख्य आहे, त्याचाच हा प्रपंच म्हणजे वर सांगितलेले बारा प्रकार होत.

अथश्राद्धदेशाः मनुः शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् दक्षिणाप्रवणंचैव प्रयत्नेनोपपादयेत् **पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुधर्मं** दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ च गृहेऽपि वा भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः तत्रैव **प्रभासखंडे** तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतः शुभे **भारते** तस्य देशाः कुरुक्षेत्रं गंगया गंगासरस्वती प्रभासं पुष्करं चेति तेषु श्राद्धं महाफलं **स्कांदे** तुलसीकाननच्छायायत्रयत्रयभवे द्विज तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितॄणां तु मिहेतवै **माधवीये** श्राद्धोपक्रमे **व्यासः** महोदधौ प्रयागे च काशीयांच कुरुजांगले **शंखः** गंगायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकंटके नर्मदावाहुदातीरे भृगुलिंगे हिमालये गंगाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा सन्निहत्यांगयायांच दत्तमक्षय्यतांत्रजेन अपि जायेत सोमोस्माकं कुलं कश्चिन्नरोत्तमः गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्स माहितः **एष्टव्या बहवः** पुत्राय ये कोपि गयांत्रजेन यजेत वाश्रमे धेनूनीलं वा वृषमुत्सृजेत् **आदित्यपुराणे** पंचक्रोशंगयाक्षेत्रं क्रोशमेकंगयाशिरः महानद्याः पश्चिमेन यावद्वृष्टेश्वरो गिरिः उत्तरे ब्रह्मयूपस्य यावदक्षिणमानसम् एतद्व्याशिरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतमिति **शूलपाणौ बृहस्पतिः** गंगायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा गयाशीर्षे क्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षय्यम् धर्माग्न्यं धर्मपृष्ठं धेनुं कारण्यमेव च दत्तं तानि पितॄंश्चार्चनं वंशान्विशतिमुद्धरेत् **त्रिस्थलीसेतौ वायवीये** शमीपत्रप्रमाणेन पिंडं दद्यात् याशिरे उद्धरेत् स प्रगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतं स प्रगोत्राणि तु पितामाता च भार्या च भगिनी तु हितान तथा पितृमातृपुत्रसाचैव स प्रगोत्राणि त्रैविदुरिति एषां गोत्राणामेकोत्तरं शतं कुलं पुरुषा इत्यर्थः ते चोक्तास्तत्रैव तत्त्वानि विंशतिनृपा द्वादशैकादशादश अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतं तत्त्वानि चतुर्विंशतिः ते च द्वादशपूर्वाद्वा दशपराः एवमग्रेऽपि **प्रयोगपारिजाते पाद्मे** शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् वाराणस्यां वा धिक्प्रयसं मताद्यो जनत्रयं तथा यत्किंचित् पैतृकं कुर्यात्स पिंडं वा तदंतिके विष्णुलोके स गच्छेत् तुलभतेशाश्रितं पदम् तत्रैव **वाराहे** स्लेच्छदेशे शुचौ वापि च कांको यत्र तिष्ठति । योजनानां तथा त्रीणि ममक्षेत्रं वसुंधरे । चक्रां कस्य तु सान्निध्ये यत्कर्म क्रियते नरैः स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतांत्रजेत् ॥

आनां श्राद्धाला देश सांगतो—

मनु—“श्राद्धाला जागा एकांती, शुद्ध अशी पाहून ती गोमयानें सारवावी; ती जागा दक्षिणेकडून उतरती अशी यज्ञानें (खणून वगैरे) तयार करावी.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत विष्णुधर्मांत**—“गंदावर्षादितीर्थांचे ठायीं अथवा गृहाचे ठिकाणीं दक्षिणेकडे उतरती असून संस्कारादिकांनीं शुद्ध केलेल्या अशा भूमीवर प्रयत्नानें श्राद्ध करावें.” तेथेंच **प्रभासखंडांत**—“आपल्या घरीं श्राद्ध करणाराला तीर्थाहून आठपट पुण्य प्राप्त होतें.” **भारतांत** “श्राद्धाचे देश म्हटले म्हणजे **कुरुक्षेत्र**, गया, गंगा, सरस्वतीनदी, प्रभासतीर्थ, पुष्करतीर्थ, हे होत; यांचे ठायीं श्राद्ध केलें असतां मोठें फळ मिळतें.” **स्कांदांत**—“तुळशीच्या वनाची छाया ज्या ज्या ठिकाणीं असेल त्या त्या ठिकाणीं पितरांच्या तृप्तीसाठी श्राद्ध करावें.” **माधवीयांत** श्राद्धोपक्रम असतां **व्यास** सांगतो—“महोदधि (मोठा समुद्र), प्रयाग, काशी, आणि कुरुजांगल, यांचे ठिकाणीं श्राद्ध करावें.” **शंख**—“गंगातीर, यमुनेचें तीर, पयोष्णीनदी, अमरकंटक, नर्मदातीर, बाहुदातीर, भृगुलिंग, हिमालयपर्वत, गंगाद्वार, प्रयाग, नैमिषक्षेत्र, पुष्करतीर्थ, सनिहति, गया, इतक्या ठिकाणीं दिलेलें अक्षय्य होतें. पितर आशा करितात की, गयाशीर्षाचे ठायीं आणि अक्षयवटाखालीं समाधानांतःकरणानें आमचें श्राद्ध करणारा असा कोणी नरभ्रेष्ठ आमच्या कुळांत उत्पन्न होईल काय ? बहुत पुत्र व्हावे म्हणून इच्छा करावी; कारण, त्यांतून एकादा तरी गयेस जाईल, अर्थात् त्या ठिकाणीं

श्राद्ध करील अथवा अश्वमेध याग करील, किंवा नीलवृषाचा उत्सर्ग करील.” आदित्यपुराणांत—“गयाक्षेत्र पांच कोश आहे, आणि गयाशिर एक कोश आहे. महानदीच्या पश्चिमेकडे रुद्रेश्वरगिरीपर्यंत आणि ब्रह्मयूपाच्या उत्तरेकडे दक्षिणमान-सापर्यंत जें क्षेत्र तें हें गयाशिर नांवानें तीन्ही लोकांत प्रसिद्ध आहे.” शूलपाणींत बृहस्पति—“गया, धर्मपृष्ठ, ब्रह्म-सरोवर, गयाशीर्ष, आणि अक्षयवट इतक्या ठिकाणीं पितरांना दिलेलें अक्षय होतें. धर्मारण्य, धर्मपृष्ठ, आणि धेनुकारण्य यांना पाहून पितरांची पूजा करणारा वीस वंशांचा उद्धार करील.” त्रिस्थलीसेतूत वायवीयांत—“गयाशिराचे त्रायी शमीपत्रप्रमाणानें पिंड द्यावे, म्हणजे सात गोत्रांचा ह्य० एकशें एक कुलांचा उद्धार होईल.” तीं सात गोत्रं येणेंप्रमाणें—“पितृगोत्र, मातृगोत्र (मातामहगोत्र), भार्येचें गोत्र (श्वशुरगोत्र), बहिणीचें गोत्र, कन्येचें गोत्र, आत्येचें गोत्र, आणि मावशीचें गोत्र, हीं सात गोत्रं होत. ह्या सात गोत्रांचें एकशेंएक कुल म्हणजे पुरुष समजावे.” ते पुरुष त्याच ठिकाणीं सांगितले आहे ते असे—“पितृगोत्राचे २४ पुरुष, मातृगोत्राचे २० पुरुष, भार्यागोत्राचे १६ पुरुष, भगिनीगोत्राचे १२ पुरुष, कन्यागोत्राचे ११ पुरुष, आत्याचे गोत्राचे १० पुरुष, आणि मावशीचे गोत्राचे ८ पुरुष, मिळून सात गोत्रांचे एक-शेंएक १०१ पुरुष होतात. हे सांगितलेले पुरुष निम्मे पूर्वीचे व निम्मे पुढचे समजावे, जसे पितृगोत्राचे २४ पुरुष म्हणून सांगितले ते बारा पूर्वीचे व बारा पुढचे म्हणून समजावे. याचप्रमाणें इतर गोत्रांचेही पुरुष समजावे.” प्रयोगपारिजातांत पाषांतांत—“शालग्रामरूपी मुद्रा (शिला) जेथें कोठें आहे, त्याच्या आसमंतात तीन योजनेपर्यंतचा प्रदेश वाराणसीहून किंमिंत अधिक आहे, म्हणून समजावें. तसंच त्या शालग्रामाच्या संनिध जो मनुष्य थोडें बहुत पतक (पिनगांच्या उद्देशानें) कर्म करील अथवा सपिंडक श्राद्ध करील तो विष्णुलोकाम जाईल व त्याला शायतपद प्राप्त होईल.” तेथेंच वाराहांतांत—“म्लेच्छ देशांत अथवा दुसऱ्या अशुद्ध देशांतही चक्रांकित शिला ज्या ठिकाणीं आहे, तेथें तीन योजनेपर्यंत [भगवान् म्हणतात] माझें क्षेत्र आहे. त्या चक्रांकाच्या संनिध स्नान, दान, तप, श्राद्ध इत्यादिक जें कर्म मनुष्य करितात तें सर्व कर्म अक्षय होतें.”

अथनिषिद्धदेशाः पृथ्वीचंद्रोदयेस्कांदे त्रिशंकोर्वर्जयेद्देशंमर्वद्वादशयोजनं उत्तरेणमहानद्याद-क्षिणेनतुकीकटान् देशस्त्रैशंकवोनामश्राद्धकर्मणिवर्जितः वायवीये प्रनष्टाश्रमधर्माश्चदेशावर्ज्याःप्रयत्नतः यमः रूक्षंकृमिहतंक्लिन्नंस्कीर्णानिप्रगंधिकं देशंत्वनिष्टशब्दंचवर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि तत्रैवशंग्वः गोगजाश्रा-दिजुष्टेषुकृत्रिमायांतथाभुवि नकुर्याच्छ्राद्धमेतेपुप्राक्यासुचभूमिषु यमः परकीयप्रदेशेषुपितृणानिर्वपेतुयः तद्भूमिस्वामिपितृभिःश्राद्धकर्मविहन्यते ब्राह्मभारतयोरपि परकीयगृहेयस्तुस्वानपितृन्सर्पयेद्यदि तद्भूमि-स्वामिनस्तस्यहरंतिपितरोबलान् अग्रभागततस्तेभ्योदद्यान्मूल्यंचजीवितम् श्राद्धार्हाणामग्रभागंश्राद्धतदनर्हा-णांशूद्राणांमुल्यमितिक्वेचित् पोडशीपिंडेऽवांधवानामपिपिंडोक्तः येऽवांधवावांधवावेत्यादितर्पणवाधा-पत्तेश्च नामगोत्रपूर्वश्राद्धनिषेधोनान्यत्रेतिगौडाः विप्रासुतस्यशूद्रापुत्रश्राद्धनिषेधोनान्यत्र अग्रदानंचान्नत्या-गात्पूर्वकार्यमितिमैथिलाः तत्र अग्रभागस्यश्राद्धपरत्वेमानाभावान् अन्नदानेचनिषेधाभावान् त्यागात्पूर्व-करणेऽनंगेनव्यवधानापत्तेः अंगत्वेचमानाभावान् इदंचस्वाम्यनुज्ञाभावे तदुक्तंतत्रैवब्राह्मे स्वनलिप्रेपुगेहे-पुस्वेऽनुज्ञापितेषुच श्राद्धमेतेपुदातव्यंवर्जयेतेपुनोच्यते किरातेपुकालिगेपुकांणेपुखसेऽवपि सिंधोरुत्तरकूले-पुनर्मदायाश्चदक्षिणे पूर्वणकरतोयायानदेयंश्राद्धमुच्यते इदंकाम्यविषयं अन्यथातत्रत्यानां सर्वश्राद्धाकर-णापत्तेः नर्मदादक्षिणेऽपवादःस्कांदे सद्यस्वचोद्भवोयत्रयत्रगोदावरीनदी पृथिव्यामपिकृत्स्नायांसंप्रदेशोति-पावनः परकीयत्वापवादआदित्यपुराणे अटवीपर्वताःपुण्यानदीतीराणियानिच सर्वाण्यस्वामिकान्याहु-र्नहितेषुपरिग्रहः वनानिगिरयोन्मद्यस्तीर्थान्यायतनानिच देवखाताश्रगर्ताश्चनस्वाम्यंतेपुविद्यते स्मृतिसारे नैकवासानचद्वीपेनांतरिक्षेकदाचन श्रुतिस्मृत्युदितंकर्मनकुर्यादशुचिःकचित् दिवोदासीये म्लेच्छदेशे-तथारात्रौसंध्यायांविप्रवर्जिते नश्राद्धमाचरेद्विद्वान्नचाकाशेकथंचन ।

आतां श्राद्धाला निषिद्ध देश सांगतो.—

पृथ्वीचंद्रोदयांत स्कांदांत—“त्रिशंकूचा देश बारा योजनेपर्यंत आहे, तो सर्व वर्ज्य करावा. तो असा—महा-नदीच्या उत्तरेस व कीकट देशाच्या दक्षिणेस दोहोंच्या मध्यभागी असलेला देश त्रिशंकूचा म्हणून प्रसिद्ध आहे. तो श्राद्ध-कर्माविषयी वर्ज्य करावा.” वायवीयांत—“ज्या देशांत आश्रमधर्म नष्ट झाले आहेत ते देश प्रयत्नानें वर्ज्य करावे.” यम—“रूक्ष, कृमींनी व्यापलेला, चिखल असलेला, अनेकप्रकारच्या दुर्गंधांनी व्याप्त, आणि ज्या ठिकाणीं बहुत अपशब्द

एकं येतात, ते सारे देश श्राद्धकर्माविषयीं वर्ज्य करावे.” तेथेंच शंख—“गुरांचा गोत्र, हत्ती बांधण्याची जागा, घोण्यांची पागा, दगडांनीं वगैरे बांधलेली भूमि, आणि परकीय (दुसऱ्याची) भूमि इतक्या ठिकाणीं श्राद्ध करूं नये.” यम—“परकीय भूमीवर जर श्राद्ध केलें तर, त्या भूमीच्या मालकांचे पितर त्या श्राद्धकर्माचा विघात करतात.” ब्राह्मांत व भारतांतही सांगतात—“दुसऱ्याच्या घरीं जर आपल्या पितरांचें श्राद्ध केलें तर त्या भूमीच्या मालकांचे पितर बलात्कारांनं तें श्राद्ध हरण करून घेतात. याकरितां त्या भूमिस्वामीच्या पितरांना अग्रभाग द्यावा, आणि जीवनसाधनमूल्य (जागेचें भाडें) द्यावें.” एथें असें समजा कीं, श्राद्धाला योग्य असतील त्यांना अग्रभाग श्राद्ध द्यावें; आणि श्राद्धाला अयोग्य शुद्ध असतील तर त्यांना मूल्य द्यावें, असें कोणी सांगतात. आतां हे परकीय असल्यामुळें यांना श्राद्धयोग्यता कशी येईल असें कोणी म्हणेल तर षोडशीश्राद्धांत (काम्यवृषोत्सर्गांत) अबांधवांनाही पिंड सांगितले आहेत यावरून अबांधवांना म्ह० परकीयांना देखील श्राद्धयोग्यता आहे. परकीयांना श्राद्धयोग्यता मानली नाही तर त्याच षोडशीप्रयोगांत “येऽबांधवा बांधवा वा०” अशा मंत्रांनं तर्पण सांगितलें आहे त्याचा वाध होईल. याकरितां परकीयांचें नाम व गोत्र यांचा उच्चार करून श्राद्ध करूं नये. असा श्राद्धनिषेध आहे: नामगोत्रोच्चारवाचून परकीयांचें श्राद्ध करण्याचा निषेध नाही, असें गौड सांगतात. ब्राह्मणीपुत्राला शुद्धास्त्रीपुत्राच्या श्राद्धाविषयीं निषेध आहे. अन्यश्राद्धाविषयीं ब्राह्मणीपुत्राला निषेध नाही. आतां त्या अग्रभाग श्राद्धांत अन्नदान करावयाचें तें अन्नत्यागाच्या (अन्न निवेदनाच्या) पूर्वीं करावें, असें मैथिल सांगतात; तें बरोबर नाही. कारण, अग्रभाग हें श्राद्ध आहे अशाविषयीं प्रमाण नाही. अन्नदान करण्याविषयीं निषेध नाही; अर्थात् केव्हाही करा. पण, श्राद्धामध्ये अन्ननिवेदनाच्या पूर्वीं अन्नदान करावें, असें जें मैथिल म्हणतात, तें तसें केलें असतां श्राद्धाचें - अन्नं (अंग नव्हे) जें परकीयांना अन्नदान त्यानं व्यवधान येऊं लागेल. आतां हें अन्नदान श्राद्धांगच आहे, म्हणून त्यानं व्यवधान आलें तरी दोष नाही, असें म्हणतां येत नाही; कारण, हें अन्नदान श्राद्धांगच आहे, असें म्हणण्यास प्रमाण नाही. हें जें अग्रभागरूप अन्नदान सांगितलें तें, भूमीच्या मालकाची अनुज्ञा नमेल तर समजावें. अनुज्ञा असेल तर श्राद्धाचा निषेधच नाही, असें त्याच ठिकाणीं ब्राह्मांत सांगतात—“गोमयादिकानं स्वच्छ सारवून शुद्ध केलेल्या आपल्या घरीं व परकीय असेल तर त्याची अनुज्ञा घेऊन सारवून शुद्ध केलेल्या अशा दुसऱ्याच्या घरीं देखील पितरांचें श्राद्ध करावें. अशा घरीं श्राद्ध वर्ज्य करावें असें सांगितलें नाही. किरातदेश, कलिंगदेश, कोंकणदेश, खसदेश, सिंधुनदीच्या उत्तरेकडचे देश, नर्मदेच्या दक्षिणेकडचे देश, आणि करतोयानदीच्या पूर्वेकडील देश इतक्या देशांत श्राद्ध करूं नये असें सांगितलें आहे.” कामनिक श्राद्धाविषयीं हा निषेध समजावा; सर्व श्राद्धाविषयीं जर हा निषेध मानला तर त्या त्या देशांत राहणारांनीं सर्व प्रकारचीं (नित्यनैमित्तिक देखील) श्राद्धं करतां कामा नयेत, अशी आपत्ति प्राप्त होईल. नर्मदेच्या दक्षिणेकडील देशाचा जो निषेध त्याचा अपवाद सांगतात स्कांदांत—“ज्या ठिकाणीं सत्याद्रीचा उद्भव झालेला आहे, व ज्या ठिकाणीं गोदावरी नदी आहे, तो प्रदेश साऱ्या पृथिवीमध्ये अति पावन (अति पवित्र) आहे.” परकीय भूमीवर श्राद्ध करूं नये, म्हणून जें सांगितलें त्याचा अपवाद आदित्यपुराणांत—“पुण्यकारक अशीं जीं अरण्यं, पर्वत आणि नद्यांचीं तीरं तीं सारीं अस्वामिक (स्वामिरहित) सांगितलीं आहेत; कारण, तीं कोणीं ग्रहण केलेलीं नाहीत. वनं, पर्वत, नदी, तीर्थ, देवालये, देवळात, आणि गर्त (मोठीं सरोवरे) यांचे ठिकाणीं कोणाची मालकी नाही.” स्मृतिसारांत—“श्रुतीनं व स्मृतीनं सांगितलेलें कर्म; अंगावर दुमरें वस्त्र घेतल्यावाचून, तसेंच द्वीपावर (चट्टकडून पाणी असलेल्या भूमीवर), आणि अंतर्दिशांत (भूमीला सोडून मध्यंतरीं कधीही) करूं नये. आणि तें कर्म आपण अशुद्ध असतां कधीही करूं नये.” दिवोदासीयांत—“म्लेच्छदेशांत, रात्रीं, संध्याकाळीं, ब्राह्मणरहितदेशीं, आणि आकाशांत, कधीही विद्वानांनं श्राद्ध करूं नये.”

अथश्राद्धकालाः तेचसंक्रांतियुगादिमहालयादयःप्रायेणपूर्वपरिच्छेदद्वयेउक्ताएव केचित्तूच्यते
पृथ्वीचंद्रोदयेवृद्धपराशरः श्राद्धवृद्धावचंद्रेभच्छायाग्रहणसंक्रमे नवोदकेनवात्रेचनवच्छनेतथाग्रहे नवैक्ष्वेयुचेहंतपितरोहिमघास्वपि पितरःस्पृह्यंयत्नमष्टकासुमघासुचेतिशान्तातपपाठः नवोदके नवकूपवा-
 प्यादावितिकेचित् वर्षोपक्रमेआर्द्राप्रवेशइतिगौडाः नवान्नश्राद्धविशेषोऽज्योतिषे ज्येष्ठाशेषार्धगेसूर्यमृग
 नेत्रानिशात्मके नवान्नैर्भोजनश्राद्धंजन्मचंद्रतिथौनच आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठाभूलाजपदगेपुच गुरुभौमदिने-
 रिकेतिथौनाद्याग्रवोदनं तत्रैव वृश्चिकेशुक्रपक्षेतुनवान्नशस्यतेबुधैः अतःकृष्णपक्षेनेतिगौडाः मैथिलास्तु
 अकृताप्रयणंचैवधान्यजातंनरोत्तमइतिवाराहोक्तेः प्रतिधान्यंश्राद्धमाहुः तन्न जातपदस्यश्राद्धयोग्यसमूह-
 परत्वात् हेमाद्रौजातूकर्ण्यः प्रहोपरागेचमुतेचजातेपित्र्येगयायामयनद्वयेच नित्यंचशंखेचतथैवपक्षे
 दत्तंभवेन्निष्कसहस्रतुल्यम् शंखंप्रादुरमावास्यांक्षीणचंद्राद्विजोत्तमाः अष्टकासुभवेत्पञ्चतत्रदत्तंथाक्षयम्
 तत्रैवशंखः यथाविधिर्न्यतीपातोभानुवारस्तथैवच पञ्चकंनामतत्प्रोक्तमयनाषचतुर्गुणम् ॥

आतां श्राद्धाचे काळ सांगतो—

ते काळ संक्रांति, युगादि, महालय इत्यादिक फार करून पहिल्या दोन परिच्छेदांत सांगितले आहेतच; कांहींसे येथें सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धपराशर**—“वृद्धि (जातकर्म, विवाह वगैरे), अमावास्या, गजच्छाया, ग्रहण, संक्रांति, नवोदक, नवें अन्न, नवीन घर शाकारणें, नवा गूल झाला असतां, आणि मघा नक्षत्र आलें असतां, इतक्या वेळीं पितर श्राद्धाची इच्छा करितात.” शातातपाणें ‘नवैक्षवेपु०’ या ठिकाणीं ‘पितरःस्पृहयंत्यन्नं०’ असा पाठ केलेला आहे. त्याच्या मतीं नवा गूल वर्ज्य करून बाकीच्या वेळीं आणि अष्टका प्राप्त झाल्या असतां, पितर अन्नाची इच्छा करितात, असा अर्थ होतो. नवोदक म्हणजे नवा कूप (विहीर), नवी वापी वगैरे घ्यावी असें कोणी सांगतात. वर्षोपक्रम म्हणजे आर्द्रप्रवेश झाला असतां असें गौड म्हणतात. नवान्नश्राद्धविषयीं **ज्योतिषांत** विशेष सांगितला आहे, तो असा—“मृगनक्षत्रावर रात्रि आल्या असतां (मार्गशीर्षमासीं) ज्येष्ठा नक्षत्राच्या उत्तरार्धांत सूर्य गेला असतां नवान्नांनीं भोजन व श्राद्ध करूं नये. तसंच जन्मस्थचंद्र व जन्मतिथि असतां नवान्नभोजन व श्राद्ध करूं नये. आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाभाद्रपदा, या नक्षत्रांवर; शुक्र व मंगळ या वारी; आणि रिक्तातिथि (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) या तिथींवर नवान्न भोजन करूं नये. **त्याच ठिकाणीं** “वृश्चिकसंक्रांतींत शुक्रपक्षामध्ये नवान्न विद्वानांनीं प्रशस्त केले आहे.” असे आहे म्हणून कृष्णपक्षांत प्रशस्त नाही, असें गौड सांगतात. **मैथिल** तर—“आग्रयण केल्यावांचून धान्यजात (कोणतेही धान्य) भक्षण करूं नये.” असें **वाराह**ांत सांगितलें आहे, म्हणून प्रत्येक धान्याला श्राद्ध करावें, असें सांगतात; त्यांचें (मैथिलांचें) तें म्हणणें बरोबर नाही. कारण, ‘धान्यजात’ यांतील जात पदाचा अर्थ—श्राद्धाला योग्य समुदाय, असा आहे. **हेमाद्रीत जातूकर्ण्य**—“ग्रहण, पुत्र झाला असतां, पितृपक्ष, गयातीर्थ, दोन अयनें (मकर व कर्क ह्या दोन संक्रांति), शंख, पद्म इतक्या ठिकाणीं ब्राह्मणाला दिलें असतां सहस्र निष्क दिल्यासारखें होतें. चंद्राचा क्षय झालेल्या अमावास्याला शंख, असें ब्राह्मण म्हणतात, आणि अष्टकांत पद्म असें म्हणतात, त्या शंख व पद्माचे ठावीं दिलेलें अक्षय्य होतें.” तेथेंच **शंख**—“ज्या दिवशीं विष्टि, व्यतीपात आणि रविवार या तिघांचा योग होतो, तेव्हां त्याला पद्मक योग म्हणतात, हा योग अयनाहून (मकर कर्कसंक्रांतीहून) चांपट अधिक आहे.”

याज्ञवल्क्य: अमावास्याष्टकावृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयं द्रव्यब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः व्यतीपा-
तोगजच्छायाग्रहणचंद्रसूर्ययोः श्राद्धप्रतिकृतिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः कृष्णपक्षः सर्वोपि शाकेनाप्यपरपक्षं
नातिक्रामेत् मासिमासिवाशनमिति श्रुतेः ऊर्ध्ववाचतुर्भ्यायदहः संपद्यते ऋते चतुर्दशीमिति कात्यायनोक्तेः
मासिमासिकार्यमपरपक्षस्यापराहः श्रेयानित्यापस्तंबोक्तेश्च वीप्सया सर्वकृष्णपक्षे पुनित्यम् तेनोपसंहारान्म-
हालयपरत्वं परास्तं अत्र प्रत्यहंपंचम्यादियदहः संपत्तिर्वेतित्रयः पक्षाः यदैकदिने श्राद्धं तदादाशीं पृथगेव याज्ञव-
ल्क्येनामावास्यायाः पृथङ्निर्देशात् एतेन कृष्णपक्षेयदहः संपद्यते अमावास्यायां तु विशेषेणैतिनिगमोक्ते-
गुणोपरपक्षश्राद्धस्यामावास्येति **शूलपाणिमत**मप्यपास्तम् अशक्तौ दर्शनापि मासिश्राद्धसिद्धिरिति **नारा-**
यणवृत्तिः निरम्रिकानां कस्मिंश्चिद्दिने आहिताग्नेस्तु दर्शेण व न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मन इति-
मनूक्तेः सर्वकृष्णपक्षाशक्तौ **मात्स्ये** अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरुच्येह निर्वापेत् कन्याकुंभवृषस्येकैककृष्णपक्षे च-
सर्वदा कर्कोपि आहिताग्नेः संवत्सरे त्रिः श्राद्धनियम इति **देवलः** अनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात्संवत्सरं सकृत्
द्विश्चतुर्वार्यथा श्राद्धं मासे मासे दिने दिने कृष्णपक्षेष्वपि महालयस्य श्रेष्ठत्वं तच्चोक्तं प्राक् व्यतीपाते विशेषमाह-
हेमाद्रौ शंखः फलं लक्षं समुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते पतने शतकोट्यस्तु पाते ते सप्तनाडिकाः अंत्यौ च द्वौ व्यतीपातौ-
शास्त्रे द्वाविंशतिस्तथोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः पतने दशनाड्यस्तु पाते ते सप्तनाडिकाः अंत्यौ च द्वौ व्यतीपातौ-
प्रागुक्तौ **हेमाद्रौ मार्कंडेयः** यदा च श्रोत्रियोभ्येति गृहवेदविदमिच्छित् तेनैकनापिकर्तव्यं श्राद्धं च विषुवच्छुभे
इदं चापि ङ्कार्यमिति **हेमाद्रिः** एतज्जीवत्पितृकोपि कुर्यात् उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे तीर्थे ब्राह्म-
ण आयाते वेडे ते जीवत्पितुरिति **मैत्रायणीयपरिशिष्टोक्तेः** ॥

याज्ञवल्क्य—“अमावास्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष, दोन्ही अयनें, अपूर्वेद्रव्यप्राप्ति, उत्तम ब्राह्मणप्राप्ति, विषुवसंक्रांति (मेघ व तुला), व्यतीपात, गजच्छाया, चंद्रसूर्याचें ग्रहण, आणि श्राद्धविषयीं श्राद्धा होणें, हे इतके श्राद्धाचे काळ आहेत.” याज्ञवल्क्यांनीं कृष्णपक्ष जो सांगितला तो बाराही मासांतला कृष्णपक्ष श्राद्धकाळ आहे, म्हणून समजावा; कारण, “शाकेनं तरी अपरपक्षाचें उल्लंघन करूं नये; महिन्यामहिऱ्यांत पितरांस भोजन आहे” अशी श्रुति आहे. “अथवा चतुर्थीच्या

पुढें चतुर्दशी वर्ज्य करून ज्या दिवशीं सामग्रीसंपन्न होईल त्या दिवशीं करावें.” असें कात्यायनानें सांगितलें आहे. “महिन्यामहिन्याचे ठायीं करावें, कृष्णपक्षाचा अपराह्णकाळ श्रेयस्कर आहे” असें आपस्तबानेंही सांगितलें आहे. छाब-रच्या वचनांत “मासिमासि” महिन्यामहिन्याचे ठायीं, अशी वीप्सा केलेली आहे, म्हणून साऱ्या (बाराही महिन्यांच्या) कृष्णपक्षांत श्राद्ध नित्य आहे. बरील वचनांनीं सर्व कृष्णपक्षांत श्राद्धाला नित्यत्व प्रतिपादन केल्यानें; एथें याज्ञवल्क्यवच-नांतील कृष्णपक्ष शब्द उपसंहार न्यायानें (संकोच करून) महालयापरपक्षबोधक समजावा, असें किलेकाचें म्हणणें खंडित झालें. या कृष्णपक्षांत श्राद्धाचे तीन पक्ष आहेत, ते असे—कृष्ण प्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत दररोज श्राद्ध करावें हा एक पक्ष पंचमीपासून अमावास्येपर्यंत करावें हा दुसरा, आणि जो दिवस सामग्रीसंपन्न असेल त्या दिवशीं करावें हा तिसरा पक्ष, त्यांतून तिसरा पक्ष घेऊन जेव्हां एक दिवशीं श्राद्ध करावयाचें असेल तेव्हां तें करून दर्शश्राद्ध वेगळेंच करावें. कारण, बरील याज्ञवल्क्याच्या वचनांत अमावास्या पृथक् सांगितली आहे. दर्शश्राद्ध पृथक् सांगित-ल्यानें; “कृष्ण पक्षांत जो दिवस संपन्न असेल त्या दिवशीं करावें, अमावास्याला तर विशेषतः करावें” असें निगमानें सांगितलें आहे, म्हणून अमावास्या ही अपरपक्ष श्राद्धाचाच गुण आहे, स्वतंत्र नाही, असें जें शूलपाणीचें मत तेंही परास्त (खंडित) झालें. सामर्थ्य नसेल तर दर्शश्राद्धानेंच मासिश्राद्धाची (प्रतिमागांत करावयाच्या श्राद्धाची) सिद्धि होते, असें नारायणवृत्तिकार सांगतो. निरम्लिक (भार्यारहित) अमनील त्यांनीं कृष्णपक्षांत कोणत्याही दिवशीं करावें. आहिताग्नि (अग्निहोत्री) यांनीं दर्शगमन करावें; कारण, “आहिताग्नि ब्राह्मणाला दर्शावांचून श्राद्ध नाही” असें मनूनें सांगितलें आहे. साऱ्या (बारा) कृष्णपक्षांत श्राद्ध करणें अशक्य असेल तर मास्यांत सांगतो—“अशा (पूर्वोक्त) विधीनें वर्षांतून तीन वेळां श्राद्ध करावें, तें कन्या, कुंभ आणि वृषभ ह्या तीन संक्रांतींचे ठायीं कृष्णपक्षांत सर्वदा (प्रति-वर्षीं) श्राद्ध करावें.” कर्कही सांगतो—आहिताग्नीला संवत्सरांत तीन वेळां श्राद्धाचा नियम (आवश्यकता) आहे. देवल—“अशा (पूर्वोक्त) विधीनें संवत्सरांत एक वेळां श्राद्ध करावें, अथवा दोन वेळां किंवा चार वेळां, अथवा महिन्यामहिन्याला, किंवा प्रतिदिवशीं करावें.” साऱ्या (बारा) ही कृष्णपक्षांत महालय (भाद्रपद कृष्णपक्ष) श्रेष्ठ आहे, तें आग्नी पूर्वी (द्वितीयपरिच्छेदांत) सांगितलें आहे. व्यतीपाताविषयीं विशेष सांगतो—हेमाद्रीत शंख—“उत्पत्तीचे ठायीं दानाचें फळ लक्षपट होतें, भ्रमणाचे ठायीं कोटिपट होतें, पतनाचे ठायीं शतकोटिपट होतें, आणि पाताचे ठायीं दान केलेलें अक्षय्य होतें.” बरील उत्पत्त्यादि शब्दांचा अर्थ ज्योतिःशास्त्रांत सांगतात—“व्यतीपाताच्या पहिल्या बावीस घटिका उत्पत्ति होय, पुढच्या एकवीस घटिका भ्रमण, त्याच्या पुढें दहा घटिका पतन, पुढें सात घटिका पतित, शेवटच्या दोन घटिका व्यतीपात, ते पूर्वी सांगितले आहेत. हेमाद्रीत मार्कंडेय—“ज्या दिवशीं आपल्या घरीं वेदवेत्ता अग्निचैयन केलेला असा श्रोत्रिय ब्राह्मण येईल त्या एका ब्राह्मणावरही श्राद्ध करावें, तो दिवस विषुवायनसं-क्रांतीप्रमाणे शुभकारक आहे.” हें श्राद्ध अपिष्टक करावें, असें हेमाद्री सांगतो. हें श्राद्ध जिवन्पितृकानेंही करावें. कारण, “विवाह, पुत्रोत्पत्ति, पितरांची इष्टि, गोमयाग, गयादि तीर्थ, आणि वेदवेत्ता ब्राह्मण घरीं येणें, हे सहा काळ पिता जीवत असतां मुलांस श्राद्ध करण्याविषयीं सांगितले आहेत.” असें मैत्रायणीयपरशिष्टांत सांगितलें आहे.

तिथिविशेषेफलविशेषोयाज्ञवल्क्येनोक्तः कन्यांकन्यावेदिनश्चपशून्वैसत्सुतानपि नूतंकृषिचवाणिज्यं-द्विशफैकशफांस्तथा ब्रह्मवर्चस्विनःपुत्रान्स्वर्णरौप्येसकुप्यके ज्ञातिश्रेष्ठ्यंसर्वकामानाप्नोतिश्राद्धदःसदा प्रतिप-त्प्रभृतिष्वेकांवावर्जयित्वाचतुर्दशी एताःकृष्णपक्षस्याएव महालयेतुफलभूमेतिपृथ्वीचंद्रोदयः पौर्णमास्यां-हेमाद्रीपितामहः अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यप्रकासुच विद्वान्श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते एतन्मा-व्यादिपरम् ब्रीहिपाकेचकर्तव्यंयवपाकेचपार्थिव पौर्णमासीतथामाघीश्रावणीचनृपोत्तम प्रौष्ठपद्यामतीतायां-तथाकृष्णत्रयोदशी एतांस्तुश्राद्धकालान्वेनित्यानाहप्रजापतिरिति विष्णुधर्मोक्तेः विष्णुः माघीप्रौष्ठप-दूर्ध्वकृष्णत्रयोदशीति अत्रमाघीपौर्णमासीतिकल्पतरुः श्रावण्यूर्ध्वमपिमघायोगसंभवात्रयोदशी विशेष-षणमितिगौडाः नक्षत्रेष्वपियाज्ञवल्क्यः स्वर्गह्यपत्यमोजश्रवण्यौर्ध्वक्षेत्रंवलंतथा पुत्रान्श्रेष्ठ्यंचसौभाग्यंस-मृद्धिमुख्यतांशुभम् प्रवृत्तचक्रतांवातिवाणिज्यप्रभृतीनपि अरोगित्वंयशोवीतशोकतांपरमांगतिं धनंवेदान्भि-पकृसिद्धिकुप्यंगामप्यजाविकं अश्वानाद्युश्र्वविधिवद्यःश्राद्धसंप्रयच्छति कृत्तिकादिभरण्यंतंसकामान्प्राप्नुयादि-मान् फलांतराण्यपिमहाभारतकौर्मदेर्ज्ञेयानि माघवीयेमरीचिः कृत्तिकादिपुष्करपुश्राद्धेयत्फल-मीरितम् विष्कंभादिषुयोगेपुतदेवफलमिष्यते बृहस्पतिः आरोग्यंचैवसौभाग्यंशत्रूणांचपराजितं सर्वान्-

कामान्प्रियाविद्याधनमायुर्यथाक्रमम् सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्धकृत्कृत्भतेफलं बवादिकरणेष्वेतत्श्राद्धकृत्कृत्भते-
फलम् अन्यानिचषण्णवतिश्राद्धादीनिप्रागुक्तानि मार्कंडेयपुराणे 'श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौतथादुःस्वप्नदर्शने
जन्मर्क्षेग्रहीडासुश्राद्धकुर्वीतचेच्छया ॥

विशेष तिथीला विशेष फल याज्ञवल्क्य सांगतो—“कन्या, कन्यापाणिग्रहण करणारे पशु (गाई वगैरे) उत्तम पुत्र, द्यूत कौशल, कृषि (शेतकी), व्यापार, द्विशफ (दोन गेळांचे पशु गोमहिष्यादिक), एकशफ (अश्यादिक), ब्रह्मवर्चस्वी (वेदाध्ययनसंपन्न) पुत्र, सोने, रुपें, सोन्यारुप्यावांचून इतर द्रव्य, ज्ञातींमध्ये श्रेष्ठपणा, आणि इच्छित सर्व काम, हे अनुक्रमानें प्राप्त होतात. एक चतुर्दशी वर्ज्य करून प्रतिपदेपासून चवदा तिथींच्या श्राद्धांचें वेगवेगळें हें फल समजावें,” ह्या तिथि कृष्णपक्षांतीलच होत. महालयाचें तर फल फार मोठें आहे, असें पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. पौर्णमासीविषयीं हेमाद्रीत पितामह सांगतो—“अमावास्या, व्यतीपात, पौर्णमासी, आणि अष्टका यांचेठायीं श्राद्ध न करणारा विद्वान (जाणता) नरकास जातो.” हें जें पौर्णमासीला श्राद्ध सांगितलें तें माध्यादि पौर्णमासीला समजावें. कारण, “त्रीहि (शालि) पिकले, म्हणजे श्राद्ध करावें. जव पिकले म्हणजे श्राद्ध करावें आणि माघीपौर्णमासी, श्रावणीपौर्णमासी, तशीच श्रौष्ठपरीच्या पुढची कृष्णत्रयोदशी, हे श्राद्धकाल नित्य आहेत, असें प्रजापति सांगतो.” असें विष्णुधर्मांत सांगितलें आहे. विष्णु—“माघी व श्रौष्ठपरीच्या पुढची कृष्णत्रयोदशी, श्राद्धकाल आहे.” या वाक्यांत माघी म्हणजे माघांतील पौर्णमासी समजावी, असें कल्पतरु सांगतो. श्रावणी पौर्णिमेच्या पुढच्याही त्रयोदशीला मघानक्षत्रयोगाचा संभव असल्यामुळें माघी हें त्रयोदशीचें विशेषण करावें, असें गौड सांगतात. नक्षत्रांविषयीही याज्ञवल्क्य सांगतो—“स्वर्ग, अपत्य, ओज (तेज), शौर्य क्षेत्र, बळ, पुत्र, श्रेष्ठपणा, सौभाग्य, समृद्धि, सुख्यपणा, कल्याण, अप्रतिहित आज्ञा, व्यापार वगैरे, रोगराहित्य, यश, शोकराहित्य, परमगति, धन, वेद, वैद्यकी, सोन्यारुप्यावांचून इतर द्रव्य, गाई, शेळ्या, मेंढ्या, अश्व, आणि आयुष्य हीं सत्तावीस; कृतिकांपासून भरणीपर्यंत वेगवेगळ्या नक्षत्रावर श्राद्धाचीं अनुक्रमानें फळें समजावीत.” दुसरीं देखील फळें महाभारत, कूर्मपुराण इत्यादिकांतून जाणावीं. माघवीयांत मरीचि—“कृतिकादि नक्षत्रांवर श्राद्ध केलें असतां जें फळ सांगितलें, तेंच विष्कंभादि योगांवर श्राद्धाचें फळ समजावें.” बृहस्पति—“आरोग्य, सौभाग्य, शत्रुपराभव, सर्वमनोरथप्राप्ति, आवडती विद्या, धन, आणि आयुष्य, हीं सात; सूर्यादि वारांचेठायीं श्राद्धकरणाराला अनुक्रमानें फळें प्राप्त होतात. आणि बवादिकरणाचेठायीं श्राद्ध करणारालाही हींच फळें प्राप्त होतात.” दुसरीं षण्णवति (९६) श्राद्धें वगैरे पूर्वीं सांगितलीं आहेत. मार्कंडेय पुराणांत सांगतो—“श्राद्धाला योग्य द्रव्यें प्राप्त झालीं असतां, दुष्ट स्वप्न पडलें असतां, जन्मनक्षत्र प्राप्त झालें असतां, ग्रहांची पीडा झाली असतां, इतक्यावेळीं आपल्या इच्छेन (कोणाच्या अनुज्ञे-वांचून) श्राद्ध करावें.”

अथश्राद्धाधिकारिणः चंद्रिकायांसुमंतुः मातुःपितुःप्रकुर्वीतसंस्थितस्यौरसःसुतः पैतृमेधिक संस्कारमंत्रपूर्वकमादृतः तत्रैवहेमाद्रौशंखः पितुःपुत्रेणकर्तव्यापिंडदानोदकक्रिया पुत्राभावेतुपत्नीस्यात्तदभावेतुसोदरः अत्रयद्यपिपुत्रपदक्षेत्रजादिद्वादशविधपुत्रपरम् तेचद्वादशपुत्रायाज्ञवल्क्येनोक्ताः औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समःपुत्रिकासुतः क्षेत्रजःक्षेत्रजातस्तुसगोत्रेणेतरेणवा गृहेप्रच्छन्नउत्पन्नोगूढजस्तुसुतःस्मृतः कानीनःकन्यकाजातोमातामहसुतःस्मृतः अक्षतायांक्षतायांवाजातःपौनर्भवस्तथा दद्यान्मातापिताभ्यांसपुत्रोदत्तकोभवेत् क्रीतश्चताभ्यांविक्क्रीतःकृत्रिमःस्यात्स्वयंकृतः दत्तात्मातुस्वयंदत्तोर्गर्भेविन्नःसहोदजः उत्सृष्टो-गृह्यतेयस्तुसोपविद्धोभवेत्सुतः पिंडदोशहरश्चैषांपूर्वाभावेपरःपरइति तथापि दत्तौरसेतरेषांपुत्रत्वेनपरिग्रह-इति हेमाद्रावादित्यपुराणेकलावितरेषांपुत्रत्वनिषेधादौरसदत्तकपरमेव यद्यपि पिंडदोशहरश्चैषांपूर्वाभावेपरःपरइति याज्ञवल्क्योकेरौरसाभावेदत्तकप्राप्तिस्तथाप्यौरसाभावेपौत्रःतदभावेपौत्रस्तदभावेदत्तकप्राप्त्येतिज्ञेयं पुत्रेणलोकान्जयतिपौत्रेणानंत्यमश्नुते अथपुत्रस्वपौत्रेणब्रह्मस्याप्नोतिविष्टपमितिजीमूतवाहन-धृतवसिष्ठहारीतशंखलिखितोक्तेः लोकानंत्यंदिवःप्राप्तिपुत्रपौत्रप्रपौत्रैरितियाज्ञवल्क्योक्तेश्च पुत्रःपौत्रश्चतपुत्रःपुत्रिकापुत्रएवच पत्नीभ्राताचतज्जश्चपितामाताल्लुण्णतथा भगिनीभागिनेयश्चसपिंडःसोद-कस्तथा असभिधानेपूर्वेषामुत्तरेपिंडदाःस्मृता इतिस्मृतिसंग्रहे प्रपौत्रानंतरंपुत्रिकापुत्रोक्तेस्तत्समत्वाच्च दत्तकस्य यद्यपिबृहस्पतिना पौत्रश्चपुत्रिकापुत्रःस्वर्गप्राप्तिकारुबौ रिकथेचपिंडदानेचसमौतौपरिकीर्तिता-

वितिपौत्रसाम्यमुक्तं याज्ञवल्क्येनच औरसोधर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतइति औरससाम्यम् तथापि लोके राजसमो मंत्रीत्यादौ किंचिद्भ्यूने संमशब्दप्रयोगात् गौणमुख्ययोः साम्यायोगाच्च स्तुत्यर्थतत् नतु समविकल्प इति भ्रमितव्यं पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रोवाभ्रातावाभ्रातृसंततिः सर्पिडसंततिर्वापिक्रियाहानृपजायते तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसंततिः मातृपक्षसर्पिडेन संबंधो योजनेन वा कुलद्वयेपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रियानृप तत्संघातगतैर्वापितद्विकथात्कारयेन्नृपइति विष्णुपुराणाच्चेति प्रपौत्रानंतरंदत्तकादय इति पृथ्वीचंद्रमदनरत्नकालादर्शादयः मदनपारिजातेष्वेवम् ॥

आतां श्राद्धाचे अधिकारी (कर्ते) सांगतो—

चंद्रिकेंत सुमंतु—“माता, पिता मृत झाले असतां त्यांचा प्रेतसंस्कार औरसपुत्रानें आदरपूर्वक समंत्रक करावा.” त्याच ठिकाणीं हेमाद्रिंत शंख—“पित्याची पिंडदान-उदकदानादिक सर्वक्रिया पुत्रानें करावी. पुत्र नसेल तर पत्नीनें करावी. पत्नी नसेल तर सहोदर (सख्या) भ्रात्यांनें करावी.” या वचनांत पुत्रपद बाराप्रकारच्या पुत्रांचें बोधक आहे, व ते बाराप्रकारचे पुत्र याज्ञवल्क्यानें सांगितले आहेत, ते असे—“धर्मपत्नीचे ठिकाणीं उत्पन्न झालेला तो औरस पुत्र. त्याच्या सारखा पुत्रिकापुत्र होय. आपल्या क्षेत्रांत (स्त्रियेचे ठिकाणीं) सगोत्रापासून अथवा इतरापासून झालेला तो क्षेत्रज्ञ होय. घरामध्ये गुप्तपणानें (कोणास नकळतां) झालेला तो गूढज पुत्र होय. कन्येला (विवाहाच्यापूर्वी) झालेला तो मातामहपुत्र (कन्येच्या बापाचा पुत्र) म्हणून आहे. कन्या, पतीनें भुक्त असो अथवा अभुक्त असो तिला बापाच्या घरीं परपुरुषापासून झालेला पुत्र पौनर्मव होय. हाही कन्येच्या बापाचा पुत्र. आईबापांनीं जो दिला तो दत्तक पुत्र होय. आईबापांनीं जो विकत दिला तो घेणाराचा क्रीत पुत्र होय. आपण पुत्रलेंकरून केलेला तो कृत्रिम पुत्र. आपण आपलें दान केलेला तो दत्त पुत्र. गर्भिणी कन्येचा विवाह झाला अमतां विवाहानंतर झालेला पुत्र तो सहोदज होय. टाकून दिलेला घेतला असतां तो अपविद्ध पुत्र होतो. ह्या बारा प्रकारच्या पुत्रांमध्ये पहिला पहिला नसेल तर पुढच्या पुढच्यानें पित्याची पिंडदानादिक क्रिया करावी आणि त्याची जिद्दी घ्यावी.” असें जरी आहे तथापि दत्तक व औरस यावांचून इतरांचा पुत्रलेंकरून परिग्रह (ग्रहण) होत नाही, असें हेमाद्रिंत आदित्यपुराणांत कलियुगांत इतरांचा पुत्रत्वाचा निषेध आहे म्हणून “पितुः पुत्रेण कर्तव्या” ह्या वचनांतील पुत्रपद औरस व दत्तक यांचेंच बोधक आहे. आतां जरी पिंडदेणारा व जिनगीचा वारस पहिला पहिला नसेल तर पुढचा आहे, या अर्थाच्या “पिंडदोसहरश्चैव पूर्वाभावे परः परः” या याज्ञवल्क्याच्या वचनांनं औरस पुत्राच्या अभावीं दत्तक प्राप्त होतो; तथापि औरसाच्या अभावीं पौत्र व पौत्राच्या अभावीं प्रपौत्र आणि त्या प्रपौत्राच्या अभावीं दत्तकादिक अधिकारी जाणावे. कारण, “पुत्राच्या योगानें स्वर्गादि लोक स्वाधीन करितो, पौत्राच्या योगानें आनंद (अन्तलोक) पावतो, आणि प्रपौत्राच्या योगानें ब्रह्मलोक प्राप्त होतो.” अशाप्रकारचीं जीमूतवाहनानें ग्रहण केलेलीं वसिष्ठ, हारीत, शंख व लिखित यांचीं वचनें आहेत. आणि “पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र यांच्या योगानें अन्तलोक व स्वर्ग यांची प्राप्ति होत” असें याज्ञवल्क्यानेंही सांगितलें आहे. पुत्र, पौत्र, त्याचा पुत्र, पुत्रिकापुत्र, पत्नी, भ्राता, भ्रातृपुत्र, पिता, माता, भ्रुषा (सून), भगिनी, भगिनेय (भगिनीपुत्र), सर्पिडे, आणि सोदक यांमध्ये पूर्वीच्या अभावीं पुढचे पिंड देणारे (औध्वेदेहिक कर्माचे अधिकारी) होतात.” ह्या स्मृतिसंग्रहांत प्रपौत्रानंतर पुत्रिकापुत्र सांगितला आहे. आणि दत्तक हा त्याच्या सारखा (पुत्रिकापुत्रासारखा) आहे व कलियुगांत इतर पुत्रांचा निषेध आहे, म्हणून प्रपौत्रानंतर दत्तक समजावा. आतां यद्यपि वृद्धरूपतीनें—“पौत्र व पुत्रिकापुत्र हे दोघे स्वर्गप्राप्ति करून देणारे आहेत, जिद्दी घेण्याविषयी व पिंडदानाविषयी ते दोघे सारखे आहेत” या वचनांत पुत्रिकापुत्राला पौत्रसाम्य सांगितलें, आणि याज्ञवल्क्यानें, धर्मपत्नीला झालेला तो औरस व त्याच्या सारखा पुत्रिकापुत्र, या वचनांत औरससाम्य सांगितलें, तथापि लोकांत प्रधान राजासारखा आहे इत्यादि वाक्यांत किंचिद्भ्यूनावर समशब्दाचा प्रयोग करितात. आणि गौण व मुख्य ह्यांचें वास्तविक साम्य येत नाही, म्हणून पुत्रिकापुत्रावर वरील वचनांनीं जें औरससाम्य किंवा पौत्रसाम्य सांगितलें तें त्याच्या स्तुतीकरितां समजावें. दोघे (पुत्रिकापुत्र आणि औरसपौत्र) सम असल्यामुळे विकल्प (ज्याच्याशीं साम्य सांगितलें त्याच्याशीं पुत्रिकापुत्राला अधिकाराचा वगैरे विकल्प म्हणजे एकवेळा तो व एकवेळा पुत्रिकापुत्र) असा भ्रम करूं नये. आणि “पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भ्राता, भ्रातृपुत्र, सर्पिडाची संतति, हे क्रियेला योग्य आहेत. त्या सर्वांच्या अभावीं समानोदकाची संतति अधिकारी, अथवा मातृपक्षांतील सर्पिड किंवा ज्याचा उदकसंबंध असेल तो अधिकारी. दोन्ही (पितृ-मातृ) कुलांचा उच्छेद झाला असतां (पुरुष नसतां) स्त्रियांनीं क्रिया करावी. अथवा त्याच्या संघातील पुढची-कडून मृताच्या द्रव्यानें राजानें क्रिया करवावी.” असें विष्णुपुराणवचन आहे म्हणून प्रपौत्रानंतर दत्तकादिक अधिकारी

होतात, असें पृथ्वीचंद्र, मदनरत्न, कालादर्श, इत्यादिक ग्रंथकार सांगतात. मदनपारिजातांतही, असेंच सांगितलें आहे.

बोपदेवरुद्रधरादयस्तु पुत्रेषुविद्यमानेषुनान्यवैकारयेत्स्वधामिति **सुमंतूक्तौ** पितामहःपितुःप-
श्चात्पंचत्वयदिगच्छति पौत्रेणैकादशाहदिकर्तव्यंश्राद्धषोडशं नैतत्पौत्रेणकर्तव्यंपुत्रवांश्चेत्पितामहइति छंदो-
गपरिशिष्टेच पुत्रशब्दस्यद्वादशविधसुतपरत्वात्पूर्वाभावेपरःपरइत्यस्यानन्यपरत्वाच्च दत्तकाद्यभावे पौत्रा-
दीनामप्यधिकारइत्याहुः तद्रौणमुख्ययोःसाम्यायोगादत्तकेसतिपौत्रस्यांशहरत्वस्याप्यभावापत्तेः पुत्रपदस्यौ-
रसमात्रपरत्वाच्चित्तम् अतएवनिषेधादुपनीतपौत्रसत्त्वेऽप्यनुपनीतपुत्रस्यैवाधिकारः औरसश्रानुपनीतोपि
कुर्यादित्याह **पृथ्वीचंद्रोदयेसुमंतुः** श्राद्धंकुर्यादवश्यंतुप्रमीतपितृकोद्विजः व्रतस्थोवाव्रतस्थोवाएकएवभ-
वेद्यदि **वृद्धमनुः** कुर्यादनुपनीतोपिश्राद्धमेकोहियःसुतः पितृयज्ञाहुतिंपाणौजुहुयाद्ब्राह्मणस्यसः एकोमुख्य
औरसइत्यर्थः **मनुः** नह्यस्मिन्युज्यतेकर्मकिंचिदामौजिबंधनात् नाभिव्याहारयेद्ब्रह्मस्वधानिनियनादृते ब्रह्म
वेदः **सुमंतुरपि** नाभिव्याहारयेद्ब्रह्मयावन्मौजीनबध्यते मंत्राननुपनीतोपिपठेदेवैकऔरसः अयंमंत्रपाठः-
त्रिवर्षकृतचूडस्यैव अनुपनीतोपिकुर्वीतमंत्रवत्पैतृमेधिकम् यद्यसौकृतचूडःस्याद्यदित्याच्चत्रिवत्सरइति
सुमंतूक्तेः यत्तुव्याघ्रः कृतचूडस्तुकुर्वीतउदकंपिंडमेवच स्वधाकारंप्रयुजीतवेदोच्चारनकारयेदिति यच्च
स्मृतिसंग्रहे कृतचूडोनुपेतश्चपित्रोःश्राद्धसमाचरेत् उदाहरेत्स्वधाकारंनुवेदाक्षराण्यसाविति तन्प्रथम-
वर्षचूडाविषयमितिमाधवमदनरत्नपृथ्वीचंद्राः त्रिवर्षोर्ध्वमंत्रवत्स्वविकल्पइतिचंद्रिकाबोपदे-
वश्च दत्तकादिपरोनिषेधइतिवयम् ॥

बोपदेव, रुद्रधर इत्यादिक तर “पुत्र विद्यमान असतां दुसःयाकडून स्वधाकार (और्ध्वदेहिक) करवूं नये.” ह्या **सुमंतु**वाक्यांत; आणि “पित्याच्या मागांहून पितामह मृत झाला असेल तर त्याची एकादशाहादिक सर्व क्रिया व षोडश श्राद्धं पौत्रांनं करावीं. परंतु पितामहाला जर पुत्र असेल तर ती और्ध्वदेहिक क्रिया पौत्रांनं करूं नये.” ह्या छंदोगपरि-
शिष्टांतही पुत्रपद द्वादश प्रकारच्या पुत्रांचें बोधक असल्यामुळें आणि पूर्वींचा नसेल तर पुढचा पुढचा अधिकारी अशा अर्थाचें **याज्ञवल्क्या**चेंही वचन अनन्यपर (दत्तकाचेंच बोधक) असल्यामुळें दत्तकादिकांचा अभाव असेल तर पौत्रा-
दिकांचा अधिकार, असें सांगतात. तें त्यांचें सांगणें गौण (दत्तकादिक) व मुख्य (औरसपुत्र, पौत्र वगैरे) यांचें साम्य होत नसल्यामुळें; आणि दत्तक असतां पौत्राला जिदगीचा वारसाही मिळणार नाही, अशी आपात् प्राप्त झाल्यामुळें; आणि ‘पुत्रेषु विद्यमानेषु’ ह्या वचनांतील पुत्रपद औरसाचेंच केवळ बोधक असल्यामुळें (बोपदेवादिकांचें मत) चित्त आहे. या वरील वाक्यांनीं पुत्र असतां इतरांचा निषेध केला म्हणूनच उपनीत (मुंज केलेला) पौत्र असतांही अनुपनीत (मुंज न केलेला) पुत्र असला तरी पुत्रालाच अधिकार आहे. औरसपुत्र अनुपनीत असला तरी त्यांनं श्राद्ध करावें, अशाविषयीं सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत सुमंतु**—“बाप मेला आहे व त्याचा पुत्र जर मुख्य औरसच आहे, मग तो व्रतस्थ (ब्रह्मचारी) असो किंवा व्रतस्थ नसो, त्यांनं अवश्य श्राद्ध करावें.” **वृद्धमनु**—“जो मुख्य (औरस) पुत्र आहे तो अनुपनीत असला तरी त्यांनं श्राद्ध करावें. त्या औरस पुत्रांनं ब्राह्मणाच्या हातावर पितृयज्ञाच्या (अर्घाकरण्याच्या) आहु-
तीचा होम करावा.” या वरील दोन वचनांत ‘एक’ पद आहे त्याचा अर्थ, मुख्य म्हणजे औरस हा आहे. **मनु**—“मौजी-
बंधन होईपर्यंत ह्या मुलाला कोणतेंही कर्म उक्त नाही. स्वधानिनयनावांचून (श्राद्धावांचून) यांनं वेदाचा उच्चार करूं नये.” **सुमंतुही** सांगतो—“जोंपर्यंत मुंज बांधली नाही, तोंपर्यंत वेदाचा उच्चार करूं नये. परंतु एक औरस पुत्र अनुपनीत असला तरी त्यांनं बापाच्या श्राद्धांत मंत्र म्हणावे.” हा जो मंत्रांचा अधिकार सांगितला तो तीन वर्षांचा असून चौलसंस्कार झालेल्यासच आहे. कारण, “अनुपनीत असतांही जर चूडासंस्कार झालेला आहे व तीन वर्षांच्या वयाचा आहे तर त्यांनं बापाचें और्ध्वदेहिक कर्म समंत्रक करावें.” असें **सुमंतू**नं सांगितलें आहे. आतां जें **व्याघ्र** म्हणतो की, “चौलसंस्कार झालेल्या मुलानें उदकदान व पिंडदान करावें, स्वधाशब्दाचा उच्चार करावा, वेदोच्चार करूं नये.” आणि जें **स्मृतिसंग्रहांत** सांगितलें आहे की, “चौल केलेला व अनुपनीत अशा पुत्रांनं आईबापांचें श्राद्ध करावें, स्वधा शब्दाचा उच्चार करावा, पण वेदाक्षरांचा उच्चार करूं नये.” असा जो दोन वचनांनीं वेदोच्चारचा निषेध सांगितला तो निषेध पहिल्यावर्षी चूडासंस्कार झालेल्या पुत्राविषयीं आहे, असें **माधव, मदनरत्न** आणि **पृथ्वीचंद्र** हे सांगतात. तीन वर्षांनंतर मंत्रोच्चारचा विकल्प (म्हणजे केला तर ठीकच आहे, न केला तरी दोष नाही), असें **चंद्रिका** आणि **बोपदेव** सांगतात. वरील वचनांनीं वेदोच्चारचा जो निषेध केला तो दत्तकादिकांना आहे, असें **आम्हीं** सांगतो.

मदनरत्नेस्कांदे यज्ञेषुमंत्रवत्कर्मपत्नीकुर्याद्यथानृप तथौर्ध्वदेहिकंकर्मकुर्यात्साधर्मसंस्कृता अशकौतु
कात्यायनः असंस्कृतेतुपन्थाचक्षुभिदानंसमंत्रकम् कर्तव्यमितरत्सर्वकारयेदन्यमेवहि पुत्रश्चनजन्मतोधि-
 कारी किंतु वर्षांतरमित्याहकालादर्शः चौलादाद्याब्दिकाद्वार्कनकुर्यात्पैतृमेधिकम् **मदनरत्नेसुमंतु-**
 रपि पुत्रश्चोत्पत्तिमात्रेणसंस्कुर्यादृणमोचनात् पितरंनाब्दिकाचौलात्पैतृमेधेनकर्मणा एतच्चौरसस्यैव दत्तका-
 दीनांतुपनीतानामेवाधिकारइतिकालादर्शः **पृथ्वीचंद्रोदयेपिस्कांदे** पित्रोरुपनीतोपिबिदध्यादौ-
 रसःसुतः और्ध्वदेहिकमन्येतुसंस्कृताःश्राद्धाकारिणइति अन्यत्रापिदर्शमहालयादावतुपनीतस्याधिकारो-
 स्माभिःपूर्वमुक्तः प्रपौत्राभावेदत्तकादयएकादशपुत्राः तदभावेभर्तुःपत्नीतस्याश्चसः अपुत्राशयनभर्तुःपाल-
 यंतीव्रतेस्थिता पन्थेवदद्यात्पिंडंकृत्स्नमंशलभेतचेति **बृद्धमनूक्तेः** भार्यापिंडपतिर्दद्याद्भर्तृभार्यातथैवच
 श्रश्वादेश्चलुपाचैवतदभावेसपिंडकाइति पुत्राभावेतुपत्नीस्यात्पन्थभावेतुसोदरइतिच**हेमाद्रौशंखोक्तेः**
पृथ्वीचंद्रोदयस्तु कानीनगूडसहजपुनभूतनयाश्चये पन्थभावेधिकुर्युस्तेअप्रशस्ताःस्मृताहितेइति**स्मृति-**
संग्रहात् पन्थभावेकानीनादयइत्याह ॥

मदनरत्नांत स्कांदांत—“धर्मानं विवाहित पत्नी यज्ञामध्ये जसें समंत्रक कर्म करिते, तसेंच तिनें पतीचें और्ध्वदेहिक
 कर्म समंत्रक करावें.” और्ध्वदेहिकाविषयीं शक्ति नसेल तर सांगतो **कात्यायन—**“पुत्र असंस्कृत आहे तर पत्नीनें पतीला
 समंत्रक अग्नि द्यावा, व इतर सारें कर्म दुसऱ्याकडून करावें.” पुत्र हा जन्मतः अधिकारी नाही, तर एक वर्षांतर अधि-
 कारी, असें **कालादर्श** सांगतो—“चौल होण्याच्या पूर्वी व एक वर्ष होण्याच्या पूर्वी त्यानें पित्याचें और्ध्वदेहिक कर्म करूं
 नये.” **मदनरत्नांत सुमंतुही** सांगतो—“पुत्र उत्पन्न झाल्याबरोबर त्यानें बापाला पितृकृणापासून मुक्त केल्यामुळे
 त्याच्यावर तो एकतःहेचा संस्कार करील, पण एक वर्ष होण्याच्या पूर्वी व चौलसंस्कार होण्याच्या पूर्वी और्ध्वदेहिक कर्मानें
 बापाला संस्कार करणार नाही.” ही गोष्ट औरम पुत्रालाच लागू आहे. दत्तकादिकांल तर उपनयन झाल्यावरच अधिकार
 असें **कालादर्श** सांगतो. **पृथ्वीचंद्रोदयांतही स्कांदांत—**“औरसपुत्र अनुपनीत असतांही त्यानें आईबापांचें और्ध्व-
 देहिक कर्म करावें, अन्य जे कोणी असतील ते उपनयन संस्कार झाल्यावरच श्राद्धाधिकारी होतात.” दुसऱ्याठिकाणीं देखील
 दर्श, महालय इत्यादिकांविषयीं अनुपनीताला अधिकार आम्हीं पूर्वी सांगितला आहे. प्रपौत्राच्या अभावीं दत्तकादिक अकरा
 प्रकारचे पुत्र अधिकारी होतात. त्यांच्या अभावीं भर्त्यांच्या श्राद्धादिकांची अधिकारिणी पत्नी व पत्नीचा श्राद्धाधिकारी पति
 आहे. कारण, “भर्त्याचें शयन पालन करणारी म्हणजे परपुरुष मनांत न आणणारी व ब्रह्मचर्यव्रती राहणारी अशी जी
 अपुत्र स्त्री तिनेंच पतीला पिंड द्यावा आणि त्याची सारी इस्टेट द्यावी.” असें **बृद्धमनूनें** सांगितलें आहे. “भायेंला पिंड
 पतीनें द्यावा, तसाच भर्त्याला पिंड भायेंनें द्यावा, सासूइत्यादिकांना पिंड मुनेनें द्यावा, त्यांच्या अभावीं सपिंडांनीं द्यावा.
 पुत्रांच्या अभावीं पत्नी व पत्नीच्या अभावीं सोदर अधिकारी.” असेंही **हेमाद्रौत शंखानें** सांगितलें आहे. **पृथ्वीचंद्रो-**
दय तर—“कानीन, गूड, महोड, आणि पौनर्भव हे जे पुत्र सांगितले ते पत्नीच्या अभावीं अधिकारी आहेत. कारण, ते
 अप्रशस्त पुत्र म्हटले आहेत.” असें **स्मृतिसंग्रहांत** सांगितलें आहे, म्हणून पत्नीच्या अभावीं **कानीनादिक** पुत्र
 अधिकारी, असें सांगतो.

पत्युरपिसपत्नीपुत्रेसतिनाधिकारः पितृपन्थःसर्वामातरः इति**सुमंतूक्तेः** विदध्यादौरसःपुत्रोजनन्या
 और्ध्वदेहिकं तदभावेसपत्नीजःक्षेत्रजाद्यास्तथास्मृताः तेषामभावेतुपतिस्तदभावेसपिंडकाइति**मदनरत्ने-**
कात्यायनोक्तेश्च वहीनामेकपत्नीनामेपएवविधिःस्मृतः एकाचेतुपुत्रिणीतासांसर्वासांपिंडदस्तुसइति
बृहस्पतिवचनाच्च अपराक्येवम् तेनयच्छुद्धिविवेकेउक्तसत्यपिसपत्नीपुत्रेपत्युरेवाधिकारइति तन्निर-
 स्तम् यच्चतत्रैव**कात्यायनः** नभार्यायाःपतिर्दद्यादपुत्रायाअपिकचित् यच्च**विष्णुपुराणं** कुलद्वयेपिचोत्स-
 न्नेस्त्रीभिःकार्याक्रियानृपेति यच्च**मार्कंडेयपुराणम्** सर्वाभावेस्त्रियःकुर्युःस्वभर्तृणाममंत्रकमिति तदासुरादि-
 विवाहोढाविषयम् धर्मेर्विवाहैरूढायासापत्नीपरिकीर्तिता क्रयक्रीतातुयानारीनसापन्थभिधीयते नसादैवेन-
 वापिन्थेदासीतांमुनयोविदुरिति **माधवीयेशातातपोक्तेः** यत्तुशुद्धिरत्नाकरः शूलपाणिश्च
 अपुत्रस्वच्यापुत्रीसापिपिंडप्रदाभवेत् तस्यपिडांनदशैकंवाएकाहेनैवनिक्षिपेदिति**जाबालोक्तेः** भर्तुर्धनहरा-
 पत्नीतांविनादुहितास्मृता अंगादंगात्संभवतिपुत्रवदुहितानृणामिति**बृहस्पतिनादुहितुर्धनहारित्वोक्तेः**पुत्रा-

भावैक्यत्वात्भावैसपत्नीपुत्रइत्याहुः तत्पूर्वविरोधात् मातुर्दुहितरःशेषमृणात्ताभ्यक्ततेन्वयइतिदुहितुर्मातृ-
धनप्राप्तिस्वेनपुत्रस्यतच्छ्रद्धानधिकारापत्तेःपेक्ष्यम् वचनंतुभ्रातृपुत्रार्थभावविषयम् पत्न्यभावेअविभक्त-
सोदरः पूर्वोक्तश्लेषवचनात् विभक्तस्यतुदुहिता धनहारित्वात् पूर्वोक्तजाबालवचनाच्च तत्राप्यूढानूढ-
समवायेऊढैव दुहितापुत्रवत्कुर्यान्मातापित्रोस्तुसंस्कृता आशौचमुदकंपिंडमेकोद्दिष्टसदातयोरितिभरद्वा-
जोक्तेः तदभावेदौहित्रः धनहारित्वात् मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकं कुर्वन्मातामहस्यापित्रती-
नभ्रश्यतेप्रतादितिचंद्रिकायांवृद्धमनूक्तेः यथाव्रतस्थोपिसुतःपितुःकुर्यात्क्रियानृप उदकायांमहावा-
होदौहित्रोपि तथाहतीत्यपराकं भविष्योक्तेश्च एतद्धनहारिणा आवश्यकंनान्येत्येत्याहुतत्रैवस्कंदः श्राद्ध-
मातामहानांतुअवश्यंधनहारिणा दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यैकतन्त्रंपूर्वमुत्तरमिति तेनदौहित्रोऽत्रपुत्रीकृतइतिदेव-
याज्ञिकोक्तिःपरास्ता अत्रपत्नीदौहित्रसमवायंशहरत्वात्पत्न्येवकुर्यात् ॥

पत्नीच्या श्राद्धाविषयीं सापत्न पुत्र असेल तर पतीला देखील अधिकार नाही. कारण, “पित्याच्या साऱ्या स्त्रिया पुत्राच्या माता आहेत.” असें सुमंतूनें सांगितलें आहे. आणि “मातेचें और्ध्वदेहिक कर्म औरसपुत्रानें करावें, त्याच्या अभावीं सापत्न पुत्रानें करावें, त्याच्या अभावीं क्षेत्रजादिक पुत्रांनीं करावें, त्यांच्या अभावीं पतीनें व त्याच्या अभावीं सपिंडांतील पुत्रांनीं करावें” असें मदनरत्नांत कात्यायनानेही सांगितलें आहे. आणि “एकाच्या अनेक स्त्रिया अमतील त्याठिकाणीं ह्याच विधि आहे. त्यांतून एकीला जर पुत्र असेल तर त्या सर्वांना पिंड देणारा तोच आहे.” असें बृहस्पतिचेंही वचन आहे. अपराकांतही असेंच आहे. ह्या सर्व प्रमाणांवरून ‘जें शुद्धिविवेकांत सांगितलें की, सापत्न पुत्र असला तरी पतीलाच अधिकार आहे’ त्याचा निरास झाला. आतां जें त्याठिकाणीं कात्यायन सांगतो किं, “अपुत्र जरी भार्या असेल तरी तिला पतीनें कधीही पिंड देऊं नये.” आणि जें विष्णुपुराण-“दोन्ही कुलांचा उच्छेद झाला असतां स्त्रियांनीं क्रिया करावी, अर्थात् पूर्वी करूं नये.” आणि जें मार्कंडेयपुराण-“सर्वांचा अभाव असेल तर स्त्रियांनीं आपआपल्या पतींच्या क्रिया अमंत्रक कराव्या.” तीं सारीं वचनें औसुरादि विवाहानें विवाहित ज्या स्त्रिया तद्विषयक आहेत. कारण, “धर्मविवाहांनीं विवाहित जी ती पत्नी म्हण्टली आहे. द्रव्य देऊन विकत घेतलेली जी स्त्री ती पत्नी होत नाही, म्हणून ती देवकर्मविषयीं अथवा पित्र्यकर्मविषयीं अधिकारी होत नाही, सुनि तिला दासी असें म्हणतात.” अशी माधवीयांत शातातपाची उक्ति आहे. आतां जें शुद्धिरत्नाकर व शूलपाणि -“निपुत्रकाची जी कन्या ती देखील पिंड देणारी आहे; तिनें त्याचे दहा व एक पिंड एकाच दिवशीं यावे अशी जाबालाची उक्ति आहे. आणि “भर्याचें धन घेणारी पत्नी आहे, तिच्या अभावीं कन्या वारस. कारण पुत्राप्रमाणें कन्या पुरुषाच्या अंगापासूनच उत्पन्न होते.” याप्रमाणें बृहस्पतीनें कन्येला धनहारिल (वारसा) सांगितलें आहे, म्हणून पुत्राच्या अभावीं कन्या अधिकारी, तिच्या अभावीं सापत्न पुत्र, असें ते दोघे (शुद्धिरत्नाकर व शूलपाणि) सांगते झाले. त्याला पूर्वीचा (‘तदभावे सपत्नीजः’ ह्या कात्यायनोक्तीचा व एका चतुर्विणी तासां’ ह्या बृहस्पतिवचनाचा वगैरे) विरोध येतो म्हणून आणि “मातेचें ऋण देऊन शेष उरलेलें द्रव्य कन्यांनीं घ्यावें, त्या नसतील तर इतरांनीं घ्यावें.” या वचनानें कन्येला मातृधनहारिल सांगितल्यानें पुत्राला मातृश्राद्धाचा अनधिकार येऊं लागेल ! याकरितां त्यांचें (शुद्धिरत्नाकरादिकांचें) तें म्हणणें उपेक्षणीय (अप्राह्य) आहे. आतां ‘अपुत्रस्य च या पुत्री’ हें वचन तर भ्रातृपुत्रादिकांच्या अभावविषयक आहे, असें समजावें. पत्नीच्या अभावीं अविभक्त असेल तर सोदर भ्राता अधिकारी. कारण, ‘पुत्राभावेतु पत्नी स्यात् पत्न्यभावेतु सोदरः’ असें शंखवचन पूर्वी सांगितलें आहे. विभक्त असेल तर कन्या अधिकारी. कारण, ती धनहारिणी आहे, व पूर्वी “अपुत्रस्यच” असें जाबालवचन सांगितलें आहे. त्यांत विवाहित व अविवाहित अशा असल्या तर विवाहितच अधिकारी. कारण, “संस्कृत (विवाहित) कन्येनें आईबापांचें आशौच, उदकदान व पिंडदान हें सर्व पुत्राप्रमाणें करावें; पण कन्येनें आईबापांचें श्राद्ध करणें तें सदा एकोद्दिष्ट करावें.” असें भरद्वाजानें सांगितलें आहे. कन्येच्या अभावीं दौहित्र अधिकारी—कारण, तो जिदगीचा वारस आहे. आणि “ब्रह्मचर्यानें आई, बाप, उपाध्याय, आचार्य, आणि मातामह यांचें और्ध्वदेहिक कर्म केलें तरी तो आपल्या व्रतापासून भ्रष्ट होत नाही.” अशी चंद्रिकेंत वृद्धमनूची उक्ति आहे. आणि पुत्र व्रतस्थ (ब्रह्मचारी) असला तरी त्यानें जशी बापाची क्रिया करावी असें आहे, तशीच दौहित्रानेही मातामहाची उदकदानादिक सर्व क्रिया करावी” असें अपराकांत भविष्यपुराणवचनही आहे. हें मातामहाचें और्ध्वदेहिक कर्म इस्टेट घेणारा असेल त्याला आवश्यक आहे, इतराला आवश्यक नाही, असें त्याच ठिकाणीं सांगतो स्कंद—“मातामहाची जिदगी घेणारा जो दौहित्र त्यानें द्रव्याची निष्कृती (फेड) होण्यासाठीं मातामहाचें पूर्वे उत्तर (दहा दिवसांचे आतलें व बाहेरचें) श्राद्ध अवश्य करावें.” ह्या वचनावरून, ‘श्राद्धाविषयीं पुत्रीकृत दौहित्र

अधिकारी' असें देवयाज्ञिकानें सांगितलेलें तें परास्त (खंडित) झालें. आतां पत्नी व दौहित्र दोन्ही असतील तर वध घेणारी पत्नी असल्यामुळे तिनेच पतीची क्रिया करावी.

दौहित्रभ्रातृपुत्रसत्त्वेविभक्तस्यदौहित्रः अविभागेभ्रातृपुत्रः भ्रातृतत्पुत्रसत्त्वेकनिष्ठश्चेत्भ्रातैव ज्येष्ठश्चेत्पुत्रः कुर्यादिति दाक्षिणात्यग्रंथाः हारलतादौ तु भ्रातृभ्रातास्वयंचक्रेतद्वार्याचेन्नविद्यते तस्य भ्रातृसुतश्चक्रेयस्यनास्ति सहोदर इति ब्राह्मोक्तेः पत्नीकुर्यात्सुताभावेपत्न्यभावेसहोदर इति कौर्माच्च ज्येष्ठभ्रातैव कुर्यान्नतत्पुत्रः यत्तु नानुजस्य तथा प्रज इति तत्कनिष्ठभ्रातृसत्त्वविषयम् यच्च मनुः सर्वेषामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् सर्वास्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीदिति तत्सहोदराभावविषयमित्युक्तं 'एतेन पुत्रत्वातिदेशोऽयम् अतस्तस्मिन्सति एकादशपुत्राः प्रतिनिधयोनकार्याः स एव पिंडदोशहरश्चेति वाचस्पतिमनुदीका कल्पतरु रत्नाकरादयः परास्ताः द्वादशपुत्राभावेपत्नीदुहितर इति याज्ञवल्क्योक्तेश्च तस्माद्वत्पुत्रप्रशंसेयमिति विज्ञानेश्वरः अविभक्तविषयं' मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे पुत्रः कुर्यात्पितुः श्राद्धं पत्नीचतदसन्निधौ धनहार्यथ दौहित्रस्ततो भ्राताचतत्सुतः भ्रात्रोः सहोदरो भ्राता कुर्याद्वाहादितत्सुतः ततस्त्वसोदरो भ्राता तदभावेचतत्सुत इति भ्रातृपुत्राभावेकमेणपितृमातृलुषास्वसृतत्पुत्रादयः धनहारित्वात् भगिनीतत्सुतयोर्विशेषमाह मदनरत्ने कात्यायनः अनुजाअग्रजावापि भ्रातुः कुर्वीतसंस्क्रियाम् ततस्त्वसोदरातद्वत्कमेणतनयस्तयोः अपरार्कैकाष्णाजिनिः पुत्रः शिष्योऽथवापत्नीपिताभ्रातालुषागुरुः स्त्रीहारीधनहारीच कुर्यात्पितृदोदकक्रियाम् मार्कंडेयपुराणे पुत्रो भ्राताचतत्पुत्रः पत्नीमातातथापिता वित्ताभावेतु शिष्यश्च कुर्वीरभौर्ध्वदेहिकम् तेन धनहारी एतद्विज्ञ इति कालादर्शः अत्र पाठक्रमो न विवक्षितः पूर्ववाक्येष्वथ ततः शब्दादिभिः श्रौतक्रमोक्तेः अथ जिह्वाया अथ वक्षस इति वत् ॥

दौहित्र आणि भ्रातृपुत्र हे दोघे असतील तर विभक्ताची क्रिया दौहित्रानें करावी, आणि अविभक्ताची भ्रातृपुत्रानें करावी. भ्राता आणि भ्रातृपुत्र हे दोघे असतील तर कनिष्ठ भ्राता असल्यास त्यानें करावी, व तो ज्येष्ठ असेल तर त्याच्या पुत्रानें करावी, असे दाक्षिणात्यग्रंथ आहेत. हारलतादिकांत तर—“जर मृताची भार्या नसेल तर भ्रात्याची क्रिया भ्राता स्वतः करितो. ज्याचा सहोदर भ्राता नाही त्याची क्रिया भ्रात्याचा पुत्र करितो” ह्या ब्राह्मवचनावरून आणि “पुत्रांच्या अभावीं पत्नीनें करावी, पत्नीच्या अभावीं सहोदर भ्रात्यानें करावी” ह्या कूर्मपुराणवचनावरूनही कनिष्ठची सुद्धा क्रिया ज्येष्ठ भ्रात्यानेच करावी; त्याच्या पुत्रानें करूं नये असें आहे. आतां जें “कनिष्ठची क्रिया अग्रजानें (ज्येष्ठानें) करूं नये.” तें कनिष्ठ भ्राता असेल तर तद्विषयक समजावें. आतां जें मनु “एकापासून झालेल्या भ्रात्यांमध्यें एक जर पुत्रवान् होईल तर ते सारे भ्राते त्या पुत्रानें पुत्रवंत होतात, असें मनु सांगना झाला” हें मनुचें म्हणणें सहोदर भ्राता नसेल त्यावेळचें समजावें असें सांगितलें आहे. ह्या वरील वचनांनीं सहोदर भ्राता नसेल तर भ्रातृपुत्र अधिकारी, असें झाल्यामुळे “ह्या मनुवचनांनं भ्रातृपुत्राचेचार्थी पुत्रत्वाचा अतिदेश (आरोप) केला आहे, म्हणून तो भ्रातृपुत्र असतां अकरा प्रकारचे पुत्र प्रतिनिधि करूं नयेत; कारण, तोच पिंड देण्यास व जिंदगी घेण्यास अधिकारी आहे” असें सांगणारे वाचस्पति, मनुदीका, कल्पतरु, रत्नाकर इत्यादिक ग्रंथ परास्त झाले. कारण, “बारा प्रकारच्या पुत्रांच्या अभावीं पत्नी, कन्या अधिकारी” असें याज्ञवल्क्यानेंही सांगितलें आहे. आणि ह्या वरील वचनांनेंही दत्तकपुत्राची प्रशंसा केली आहे, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. अथवा हें वचन अविभक्ताविषयीं समजावें. मदनरत्नांत स्मृतिसंग्रहांत—“पित्याचें श्राद्ध पुत्रानें करावें. पुत्र जवळ नसेल तर पत्नीनें करावें. पत्नी नसेल तर इस्टेट घेणाऱ्या दौहित्रानें करावें. त्याच्या अभावीं भ्रात्यांनं व भ्रातृपुत्रानें करावें. त्यांत सहोदर व असहोदर (सापन्न) असतील तर सहोदरानें दाहादिक कर्म करावें. सहोदराच्या अभावीं सहोदराच्या पुत्रानें करावें. त्याच्या अभावीं असहोदरानें (सापन्नभ्रात्यांनं) करावें. त्याच्या अभावीं सापन्नभ्रातृपुत्रानें करावें.” भ्रातृपुत्राच्या अभावीं अनुक्रमानें पिता, माता, लुषा, भगिनी, भगिनीपुत्र इत्यादिक अधिकारी होतात. कारण, ते जिंदगीचे वारस आहेत. भगिनी व भगिनीपुत्र यांविषयीं विशेष सांगतो मदनरत्नांत कात्यायन—“भगिनी कनिष्ठ असो किंवा ज्येष्ठ असो, तिनें आपल्या भ्रात्याची सत्क्रिया करावी. सोदर भगिनीच्या अभावीं सापन्न भगिनीनें तशीच क्रिया करावी. तिच्या अभावीं त्याच क्रमानें त्या दोन्ही भगिनींच्या पुत्रानें करावी.” अपरार्कांत काष्णाजिनि—“पुत्र, शिष्य, अथवा पत्नी, पिता, भ्राता, लुषा, गुरु, स्त्रीसंरक्षण करणारा, इस्टेट घेणारा यांनं पिंड—उदकदानादिक क्रिया करावी.” मार्कंडेयपुराणांत—“इष्ट नसेल तर पुत्र, भ्राता, भ्रातृपुत्र, पत्नी, माता, पिता, आणि शिष्य यांनीं और्ध्वदेहिक कर्म करावें.” या वचनांत भिन्नभाव

असता' असें आहे म्हणून इस्टेट घेऊन क्रिया करणारा तो यांहून वेगळा समजावा, असें कालादर्श सांगतो. या वचनांत पाठक्रम ध्यावयाचा नाही, म्हणजे पुत्राच्या अभावीं भ्राता, त्याच्या अभावीं भ्रातृपुत्र असे अधिकारी समजावयाचे नाहीत. कारण, पूर्ववचनांमध्ये 'अथ-ततः' इत्यादिक पदांनीं श्रौतक्रम सांगितला आहे. जसें—“हृदयस्याग्रे अवयति अथ जिह्वाया अथ वक्षसः” ह्या वाक्यांत हृदयाचें पूर्वीं अवदान सांगतलें, नंतर जिह्वेचें, नंतर वक्षसचें, ह्यांत क्रमबोधक 'अथ' हा शब्द आहे. व्यासप्रमाणें येथें 'अथ' इत्यादि शब्दांनीं बोधन केलेला क्रम ध्यावा.

पृथ्वीचंद्रोदयेवृद्धमनुः स्नुषास्वस्त्रीयतत्पुत्रज्ञातिसंबंधिबांधवाः पुत्राभावेतुर्कुर्वीरनसपिंडांतंयथा-विधि **मार्कंडेयपुराणे** पुत्राद्युत्सन्नबंधोश्चस्वस्वापिश्वशुरस्यच जामातास्नेहवत्कुर्यादखिलंपैतृमेधिकम् **चंद्रिकायांवृद्धशातातपः** मातुलोभागिनेयस्यस्वस्त्रीयोमातुलस्यच श्वशुरस्यगुरोश्चैवसख्युर्मातामहस्यच एतेषांचैवभार्याणांस्वसुर्मातुःपितुस्तथा श्राद्धमेपांतुकर्तव्यमिति वेदविदो विदुः **शुद्धिविवेकेपृथ्वीचंद्रोदयेचब्राह्मे** दत्तानांवाप्यदत्तानांकन्यानांकुरुतेपिता चतुर्थेऽहनितास्तेपांकुर्वीरनसुसमाहिताः दत्तावाग्दत्ताः मातामहानांदौहित्राःकुर्वत्यहनिचापरे तेपितेपांप्रकुर्वतिद्वितीयेहनिसर्वदा जामातुःश्वशुराश्चकुस्तेपांते-पिचसंयताः मित्राणांतदपत्यानांश्रोत्रियाणांगुरोस्तथा भागिनेयसुतानांचसर्वेपांतवपरेहनि राज्ञोसतिसपिंडेतु-निरपत्येपुरोहितः मंत्रीवातदशौचंतुपुराचीर्त्वाकरोतिसः अत्रद्वितीयाह्वादौश्राद्धविधानमस्थिसंचयपरम् **कालादर्शे** दाहादिमंत्रवत्पित्रोर्विंदध्यादौरसःसुतः तदभावेतुपौत्रश्चप्रपौत्रःपुत्रिकामुतः दौहित्रो धनहारीच भ्रातातत्पुत्रएवच पितामातास्नुषाचैवस्वसातत्पुत्रएवच सपिंडःसोदकोमातुःसपिंडश्चसहोदकः स्त्रीचशिष्यविविगाचार्याजामाताचस्वस्वापिच उत्सन्नबंधोरिकथेनकारयेदवनीपतिः **गौतमः** पुत्राभावेसपिंडामातृसपिंडाःशिष्याश्चदद्युस्तदभावेऋत्विगाचार्या यतुचंद्रिकायांवृद्धशातातपः प्रीत्याश्राद्धंप्रकर्तव्यंसर्वेषां वर्णालिगिनामितितत्सर्वणविषयम् ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानांनकुर्व्यात्कर्मकिंचन कामालोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा-तज्जातितांत्रजेदिति **ब्राह्मोक्तेः** नब्राह्मणेनकर्तव्यंशूद्रस्याप्यौर्ध्वदेहिकं शूद्रेणवाब्राह्मणस्यविनापारशवात्कचि-दिति **पारस्करोक्तेश्च** पारशवः उदशूद्रापुत्रः ॥

पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धमनुः—“पुत्राच्या अभावीं स्नुषा, भागिनेय, त्याचा पुत्र, ज्ञाति, संबंधी, बांधवः ह्यांनीं सपिंडांत क्रिया यथाविधि करावी.” **मार्कंडेयपुराणांत**—पुत्रादिक अधिकारी कोणीही नसतील तर सकल और्ध्वदेहिक कर्म स्नेहानें मित्रानेंही करावें, आणि श्वशुराचें जामातानें करावें.” **चंद्रिकेंत वृद्धशातातपः**—“भागिनेयाचें मातुलानें व मातुलाचें भागिनेयानें, श्वशुराचें जामाल्यानें, गुरूचें शिष्यानें, मित्राचें मित्रानें, मातामहाचें दौहित्रानें, याप्रमाणें और्ध्वदेहिक करावें. तसेंच ह्यांच्या भार्याचें, ह्यांच्या भगिनीचें, ह्यांच्या मातेचें आणि ह्यांच्या पित्याचें श्राद्धादिक कर्म त्यानें त्यानें करावें, असें वेदवैते सांगतात.” **शुद्धिविवेकांत** आणि **पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत**—“दत्ता (वाग्दान केलेल्या) अथवा अदत्ता अशा कन्यांचें पित्यानें करावें. आणि त्या कन्यांनीं समाधान अंतःकरणपूर्वक पित्रादिकांचें अस्थिसंचयनादिक कर्म चवथ्या दिवशीं करावें.” ह्यांत दत्तापदाचा अर्थ वाग्दत्ता असा आहे. “मातामहाचें श्राद्ध (अस्थिसंचयन) दौहित्र दुसऱ्या-दिवशीं करितात. ते मातामह देखील दौहित्रांचें (अस्थिसंचयनादिक) सर्वदा दुसऱ्या दिवशीं करितात. जामाल्याचें श्वशुर व श्वशुराचें जामाते करितात. मित्र, मित्रांचीं अपत्यें, श्रोत्रिय, गुरु, भागिनेयांचे पुत्र, ह्या सर्वांचें अस्थिसंचयनादिक दुसऱ्या-दिवशीं करितात. राजाला अपत्य नसतां सपिंडही कोणी नसेल तर पुरोहित किंवा मंत्री पूर्वीं आशीच धरून नंतर त्याचें और्ध्वदेहिक कर्म करितो.” ह्या वरील वचनांत दुसऱ्या वगैरे दिवशीं श्राद्धविधान केलें तें अस्थिसंचयनबोधक आहे. **कालादर्शांत** सांगतो—“आईबापांचें दाहादिक कर्म औरसपुत्रानें समंत्रक करावें. त्याच्या अभावीं पौत्र, त्याच्या अभावीं प्रपौत्र, त्याच्या अभावीं पुत्रिकापुत्र अधिकारी. त्याच्या अभावीं इस्टेट घेणारा दौहित्र, भ्राता, भ्रातृपुत्र, पिता, माता, स्नुषा, भगिनी, भगिनीपुत्र, आपला सपिंड, सोदक, मातेचा सपिंड, मातेचा सोदक, स्त्री, शिष्य, ऋत्विक्, आचार्य, जामाता, मित्र, हे अनुक्रमानें अधिकारी होतात. ह्यांपैकी ज्याचे कोणी नाहीत त्याचें और्ध्वदेहिक कर्म, त्याच्याच द्रव्यानें दुसऱ्याकडून राजानें करावें.” **गौतमः**—“पुत्राच्या अभावीं आपले सपिंड, मातृसपिंड, शिष्य यांनीं पिंडदानादिक करावें, त्यांच्या अभावीं ऋत्विक्

१ ज्या ठिकाणीं क्रमबोधक पदें अथ-ततः इत्यादिक छुत आहेत, त्या ठिकाणीं श्रौतक्रम समजावा. क्रमबोधक पदें नसतील त्या ठिकाणीं पाठक्रम समजावा. श्रौतक्रम असतां पाठक्रम ध्यावयाचा नाही. कारण, विशेष यत्नानें (क्रमबोधक पदांनीं) क्रम मुचविण आहे.

आणि आचार्य यांनी पिंडादिक द्यावे.” आतां जें चंद्रिकेंत वृद्धशातातप सांगतो की, “ब्राह्मणाधिपर्णाच्या (जातीच्या) लक्षणांनीं युक्त असतील त्या सर्वांचें श्राद्ध प्रीतीनें करावें.” हें वचन सवर्णविषयक आहे. म्हणजे मृताच्या जातीचा जो असेल त्यानें करावें. कारण, “ब्राह्मणानें अन्यवर्णाचें कांहीं कर्म करूं नये. कामानें, लोभानें, भयानें, किंवा मोहानें (अविचारानें) करील तर तो करणारा त्याच्या जातीत जाईल.” असें ब्राह्मणवचन आहे. आणि “शूद्राचें औष्वदेहिक कर्म ब्राह्मणानें करूं नये. अथवा पारशवावांचून इतर शूद्रानें ब्राह्मणाचें औष्वदेहिक करूं नये.” असें पारस्करवचन आहे. पारशव म्हणजे ब्राह्मणानें विवाहित शूद्राचा पुत्र होय.

अत्रेदंतत्त्वम् सर्वत्रपुत्रादेः पूर्वस्याभावेपढ्यादेरधिकारउक्तः तत्राभावोऽसन्निधिर्नाशश्चोच्यते अतएवपूर्वत्र असंनिधानेपूर्वेषामित्युक्तम् तत्रासन्निधौपढ्यादेः सर्वाधिकारेप्राप्ते प्रोपितावसितेपुत्रः कालादपिचिरादपि एकादशाद्याः क्रमशोऽप्येष्वसंविधिवन्क्रियाः ज्येष्ठेनैवतुत्यक्तमित्याद्यैर्दशांतरेपवादात्पुत्रनाशएवपढ्यादेः संपिंडनादौ अधिकारः असन्निधौतुतत्पूर्वमेव नोर्ध्वं अतोऽनधिकारिणाभ्रात्रादिनाकृतमप्यकृतमेवेति पुनरावर्तनीयम् मासिकापकर्षोऽप्यावर्तनीयः एकादशाहमासिकानिनावर्तते तज्यायसापिकर्तव्यंसंपिंडीकरणं पुनरिति ववावृत्तिविधानाभावादितिकेचित् तत्र अस्यनिर्मूलत्वान् अतस्तदपिकनिष्ठकृतमावर्तते वृद्धिश्रौतपिंडपितृयज्ञार्थतुक्तंनावर्तते नासंपिंड्याभिमानपुत्रः पितृयज्ञसमाचरेत् नपार्वणंनाभ्युदयंकुर्वन्नलभतेफलमिति वृद्धपुत्तरनिषेधनादिति भ्रातावाभ्रातृपुत्रोवेत्यादिहारीतादिवचोभ्यः कनिष्ठादेरप्यधिकारात् यथात्रज्येष्ठकर्तृकत्वबाधस्तथापुत्रकर्तृकत्वस्यापिबाधः संपिंडनेतुवहुवक्तव्यंतन्निर्णयेवद्वयामः ॥

या अधिकाराविषयीचें तत्त्व सांगतो—

मृताच्या सर्वकर्माविषयी पुत्रादिकांच्या अभावीं पढ्यादिकांना अधिकार सांगितला आहे. त्या ठिकाणीं अभाव म्हणजे असंनिधि (समीप नसणे) आणि नाश होय. असें आहे म्हणूनच पूर्वाक्तवचनांत पूर्वाच्या अधिकाऱ्यांचें सांनिध्य नसतां परांना अधिकार, असें सांगितलें आहे. त्या वाक्यावरून पुत्रादिकांचें सांनिध्य नसेल त्या ठिकाणीं पढ्यादिकांना सर्व अधिकार प्राप्त झाला; परंतु “पिता प्रयानांत मृत झाला अमतां चिरकालानें जरी पुत्राला समजलें तरी त्यानें सर्व कर्म करावें. एकादशाहादिक सर्व क्रिया ज्येष्ठपुत्रानें अनुक्रमानें यथाशक्ती कराव्या. सर्वांच्या मतांन ज्येष्ठपुत्रानें जें केलें तें सर्वांनीं केलें असें होतें.” इत्यादिवचनांनीं देशांतरीं पुत्र अमतां (संनिध नसतां) पढ्यादिकांच्या अधिकाराविषयीं अपवाद (निषेध) आहे, म्हणून पुत्रांचा नाश असल तरच पढ्यादिकांना संपिंडीविषयीं योग्य अधिकार आहे. आतां पुत्रादिक संनिध नसतील तर पूर्वे (एकादशाहापर्यंत) क्रियांविषयींच अधिकार. एकादशाहोत्तर क्रियांविषयीं पढ्यादिकांना अधिकार नाही. असें आहे म्हणूनच अनधिकारी असे जे कनिष्ठ भ्रात्रादिक त्यांनीं केलें तरी अकृतच आहे, म्हणून ज्येष्ठ भ्रात्यानें पुनः करावें. त्याचप्रमाणें संपिंडीसाठीं अपकर्षानें करावयाचीं मासिकें त्यांची देखील ज्येष्ठानें पुनरावृत्ति करावी. कोणी म्हणतात—एकादशाहादिक मासिकांची आवृत्ति होत नाही; कारण, “तें संपिंडीकरण कनिष्ठानें केलें असलें तरी पुनः ज्येष्ठानेंही करावें.” ह्या वचनानें संपिंडीकरणाची जशी आवृत्ति सांगितली, तशी मासिकांची आवृत्ति सांगितली नाही; असें जें कोणी म्हणतात, तें बरोबर नाही. कारण, त्यांचें तें म्हणणें निर्मूल (वचनरहित) आहे. म्हणून तें देखील कनिष्ठानें केलें असलें तरी ज्येष्ठानें पुनः करावें. विवाहादिवृद्धि, श्रौतपावैणविधि आणि पिंडपितृयज्ञ यांगांठी केलीं असतील तर त्यांची पुनः आवृत्ति होणार नाही. कारण, “सांनिधिक पुत्रानें संपिंडी केल्यावांचून पिंडपितृयज्ञ, पावैणविधि आणि आभ्युदयिक (विवाहादिक मंगल) कर्म हीं करूं नयेत. केलीं असतां त्यांचें फल मिळणार नाही.” (ह्या वचनानें पूर्वी संपिंडी केलीच पाहिजे असें होतें). वृद्धिश्राद्धानंतर संपिंडीकरण—मासिकादिकांचा निषेध आहे. (ह्यावरून ज्येष्ठानें पुनः करितां कामा नयेत असें होतें). “भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा” (ह्या वचनावरून इतरांनाही अधिकार आहे असें होतें) इत्यादिक हारीतादिवचनांनीं कनिष्ठादिकांना देखील अधिकार असल्यामुळे जसा ज्येष्ठाने कर्तृत्वाचा बाध केला, तसा पुत्राच्या कर्तृत्वाचा देखील बाध केला असें होतें. संपिंडीकरणाविषयीं बहुत सांगावयाचें आहे, तें संपिंडीनिर्णयाच्या वेळीं पुढें मागे.

अधिकारविशेषेणक्रियाव्यवस्थोक्ताविष्णुपुराणे पूर्वाः क्रियामध्यमाश्चतुर्थाचैवोत्तराः क्रियाः त्रिप्रकाराः क्रियाह्येतास्तासांभेदाच्छृणुष्वमे आदाहाद्वादशाहान्मध्येयाः स्युः क्रियानृप ताः पूर्वामध्यमामासिमास्येकोद्विष्टसंज्ञिताः प्रतेपितृत्वमापन्नेसंपिंडीकरणादनु क्रियतेयाः क्रियाः पुत्रैः प्रोच्यंतेतानृपोत्तराः पितृमासपितृवैश्वसमानसलिलैस्तथा तत्संघातगतैश्चैवराज्ञावाधनहारिणा पूर्वामध्याश्चकर्तव्याः पुत्राद्यैरेवोत्तराः दौहि-

त्रैर्वानरभ्रेष्ठाकार्यास्तत्तनयैस्तथा मृताहनितुकर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः दौहित्रतत्पुत्रयोर्धनहारिणोरिदम् एवमन्यस्य धनहर्तुः यश्चाथहरः सपिंडदायीत्यापस्तंबोक्तेः प्रेतस्य प्रेतकार्याणि अकृत्वा धनहारकः वर्णानां यद्वधे प्रोक्तं तद्व्रतं यतश्चरेदिति पृथ्वीचंद्रोदये व्याघ्रपादोक्तेः मदरस्नेस्कांदेपि मलमेतन्मनुष्याणां द्रविणं यत्प्रकीर्तितमित्युक्त्वा ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टानिष्कृतिः पावनीपरा आदेहपतनात्तस्य कुर्याद्विण्डोदकक्रियामित्युक्तं क्रियानिवंधे कात्यायनः न च मातान च पिता कुर्यात्पुत्रस्य पैतृकम् नाम्नश्च तथा भ्राता भ्रातृणां तु कनीयसां पृथ्वीचंद्रोदये बौधायनः पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां तु कथंचन भ्रात्रा चैव न कर्तव्यं भ्रातृणां च कनीयसाम् यदि स्नेहेन कुर्यात्तां सपिंडीकरणं विना गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत् अन्याभावे पित्रा विरपि कुर्यात् उत्सन्नबांधवं प्रेतं पिता भ्राताथ वा प्रजः जननी चापि संस्क्रुयान्महदेनोन्यथा भवेदिति सुमंतूक्तेः ।

आतां अधिकारविशेषानं क्रियाव्यवस्था सांगतो—

विष्णुपुराणांत—“पूर्वा, मध्यमा आणि उत्तरा, अशा ह्या क्रिया तीन प्रकारच्या आहेत; त्यांचे भेद सांगतो, श्रवण करा । प्रेतदाह झाल्यापासून द्वादशाहापर्यंत मध्ये होणाऱ्या ज्या क्रिया त्या पूर्वक्रिया होत. महिन्यामहिन्याचे ठायीं होणाऱ्या एकोविष्टसंज्ञक क्रिया मध्यम होत. आणि सपिंडीकरणानंतर प्रेताला पितृत्व प्राप्त झाले असतां ज्या क्रिया पुत्र करितात, त्या उत्तरक्रिया म्हणल्या आहेत. पितृसपिंडांनीं, मातृसपिंडांनीं, पितृसमानोदकांनीं, मातृसमानोदकांनीं, अथवा त्यांच्या कुलांतील पुरुषांनीं, किंवा मृताचें द्रव्य घेऊन राजानें, मृताच्या पूर्वक्रिया व मध्यमक्रिया कराव्या. आणि उत्तरक्रिया पुत्रादिकानींच कराव्या. अथवा दौहित्रांनीं किंवा दौहित्रतनयांनीं कराव्या. याचप्रमाणें स्त्रियांच्या देखील मृतदिवशीं उत्तरक्रिया कराव्या.” दौहित्र व त्याचा पुत्र हे इस्टेट घेणारे असतील त्यांनाच हें सांगितलें आहे. याचप्रमाणें दुसरा कोणी द्रव्य घेईल तर त्यांनींही कराव्या; कारण, “जो मृताचें द्रव्य घेईल तो पिंड देईल.” अशी आपस्तंबाची उक्ति आहे. आणि “प्रेताचीं प्रेतकार्ये न करितां जो त्याचें धन ग्रहण करितो त्यानें ब्राह्मणादिवर्णाचा वध केला असतां जें प्रायश्चित्त सांगितलें आहे तें प्रायश्चित्त करावें” अशी पृथ्वीचंद्रोदयांत व्याघ्रपादाची उक्ति आहे. मदरस्नांत स्कांदांतही—“द्रव्य हें मनुष्यांना मळ (पाप) सांगितलें आहे” असें सांगून—“ऋषींनीं त्या मळाची अत्यंत पवित्र करणारी निष्कृति (शुद्धि) सांगितली आहे, ती अशी—आपला देह आहे तोपर्यंत त्याची (ज्याचें द्रव्य घेतलें त्याची) पिंडोदकदानादि क्रिया करावी.” असें सांगितलें आहे. क्रियानिवंधांत कात्यायन—“माता व पिता यांनें पुत्राचें पैतृक (और्ध्वदेहिक) कर्म करूं नये. तसेंच ज्येष्ठभ्रात्यानें कनिष्ठभ्रात्याचें और्ध्वदेहिक करूं नये.” पृथ्वीचंद्रोदयांत बौधायन—“पुत्राचें श्राद्ध कधींही पित्यानें करूं नये. कनिष्ठभ्रात्याचें श्राद्ध ज्येष्ठानें करूं नये. जर स्नेहानें ते (पिता, ज्येष्ठभ्राता) करतील तर सपिंडीकरणाबाधून करावें. गयेमध्ये तर ज्येष्ठानें देखील विशेषतः करावें.” अन्याच्या अभावीं पित्रादिकांनें देखील करावें. कारण, “ज्याचा कोणी बांधव (पुत्रादिक) नाहीं अशा प्रेताचा, पित्यानें अथवा ज्येष्ठभ्रात्यानें किंवा मातेनें संस्कार करावा, हे त्या प्रेताचा संस्कार न करतील तर त्यांना मोठें पाप लागेल” अशी सुमंतूची उक्ति आहे.

ब्रह्मचारिणां तु शुद्धिविवेके पृथ्वीचंद्रोदये च ब्राह्मे असमाप्तव्रतस्यापि कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोतिसः श्राद्धं मासिकाद्विदकादिसर्वकार्यमित्यर्थः न त्विति निषेधो न्यसत्त्वे यत्तु चंद्रो-
गपरिशिष्टे न त्यजेत्तूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वयंकचित् नदीक्षणात्परं यज्ञेन कृच्छ्रादितपश्चरन् पितर्यपि मृतैर्नैषां-
दोषो भवति किंचित् आशौचं कर्मणो ते स्याद्यहं वा ब्रह्मचारिणां यच्च याज्ञवल्क्यः न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदक-
पतितास्तथेति तदप्यन्यसत्त्वे अन्याभावे तु ब्रह्मचारिणापि कार्यं पूर्वोक्तवृद्धमनुवचनात् आचार्यपिशुपाध्याया-
भिर्हृत्यापि व्रती व्रती संकटाग्रचना श्रीयान्न चतैः सह संवसेदितितेनैवोक्तेः ब्रह्मचारिणः श्वकर्मिणो व्रताभिवृत्तिर-
न्यत्र मातापित्रोरिति वसिष्ठोक्तेः अत्राशौचमेकाहं वक्ष्यामः प्रागुपनयनान्मृतस्य तु पंचवर्षोत्तरं सपिंडीकरण-
वर्ज्योदशश्राद्धादिसर्वकार्यमित्युक्तं देवजानीये असंस्कृतानां भूमौ पिंडं दद्यात्संस्कृतानां कुशेष्विति प्रचेतो-
वचनाच्च एतच्च प्रेक्ष्यामः ।

ब्रह्मचार्याचें तर शुद्धिविवेकांत आणि पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत सांगतो—“ब्रह्मचार्याचें व्रत समाप्त झालें नसून तो मृत होईल तर त्याचें श्राद्ध मातापितरांनीं करावें; पण मातापितरांचें श्राद्ध (और्ध्वदेहिक) तो ब्रह्मचारी करणार

नाहीं." या वचनांत श्राद्ध म्हणजे मासिक, आबिदक वगैरे सर्व समजावें. आतां ब्रह्मचारी करणार नाही, हा जो निषेध तो दुसरा अधिकारी असतां समजावा. आतां जें **छंदोगपरिशिष्टांत**—"सूतकांत (मृताशौचांत) ब्रह्मचाऱ्यानें आपलें कर्म कधीही टाकूं नये. यज्ञामध्ये वीक्षा घेतल्यावर, तसेंच कृच्छ्रादि तप करीत असतां आशौच नाही, पिता जरी मृत झाल्य असेल तरी यांना कधीही दोष नाही. अथवा त्यांचें तें तें कर्म समाप्त झाल्यानंतर त्यांनीं आशौच धरावें. ब्रह्मचाऱ्यांनीं ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त झाल्यानंतर तीन दिवस आशौच धरावें." आणि जें **याज्ञवल्क्य** सांगतो की, "ब्रह्मचाऱ्यांनीं मृताला उदक देऊं नये, तसेंच पतितांनींही देऊं नये." हें त्यांचें (छंदोगपरिशिष्ट व याज्ञवल्क्य यांचें) सांगणें अन्य अधिकारी असतां समजावें. दुसरा नसेल तर ब्रह्मचाऱ्यानें देखील मातापितरांचें कर्म करावें; कारण, अशाविषयी पूर्वी **बृद्धमनुष्ये** वचन सांगितलें आहे. आणि "आचार्य, पिता, उपाध्याय, यांचें प्रेत ब्रह्मचाऱ्यानें नेलें तरी तो व्रतापासून भ्रष्ट होत नाही, परंतु त्यानें आशौच्यांचें अन्न भक्षण करूं नये व त्यांच्याशीं स्पर्श करूं नये." असें त्यानेंच (याज्ञवल्क्यानेंच) सांगितलें आहे. तसेंच—"ब्रह्मचारी प्रेतकर्म करील तर तो व्रतापासून निवृत्त (भ्रष्ट) होतो, ही गोष्ट मातापितरांचांचून अन्य प्रेत-कर्मविषयीं समजावी" असें **वसिष्ठा**नें सांगितलें आहे. प्रेतकर्मविषयीं ब्रह्मचाऱ्याला आशौच एक दिवस आहे. तें पुढें (आशौचप्रकरणांत) सांगूं. पांच वर्षांनंतर उपनयनाच्या पूर्वी मृत झाला असतां त्याचें सपिंडीकरणरहित षोडशश्राद्धादिक सर्व कर्म करावें, असें **देवजानीयांत** सांगितलें आहे. आणि "ज्यांचा संस्कार झालेला नाही त्यांना भूमीवर पिंड द्यावा, संस्कार झालेल्यांना कुशावर पिंड द्यावा" असें **प्रचेताचें**ही वचन आहे. हें पुढें (आशौचप्रकरणीं) सांगूं.

अविभक्तानां विशेषमाहृथ्वीचंद्रोदयेमरीचिः बहवःस्थुर्यदापुत्राःपितुरेकत्रवासिनः सर्वेषांतु मत्कृत्याज्येष्टेनैवतुत्यक्तं द्रव्येणचाविभक्तेनसर्वैरेवकृतंभवेत् ज्येष्ठस्यकृतत्वेपिसर्वेफलभागिनइत्यर्थः तेन-येब्रह्मचर्यपराब्रजर्जनादयःफलसंस्कारास्तेसर्वेषांभवंतीतिसिद्धम् संसृष्टिनामप्येवम् तुल्यत्वात् विभक्तानां विशेषमाहोशनाः नवश्राद्धसंपिंडवत्श्राद्धान्यपिचषोडश एकेनैवतुकार्याणिसविभक्तधनेष्वपि लघुहारीतः सपिंडीकरणांतानियानिश्राद्धानिषोडश पृथङ्नैवसुताःकुर्युःपृथग्द्रव्यापिकचित् ऊर्ध्वसपिंडीकरणा-त्सर्वेकुर्युःपृथक्पृथक् **मदनरत्ने** विभक्तास्तुपृथक्कुर्युःप्रतिसंवत्सरादिकं एकेनैवाविभक्तेषुकृतेसर्वैस्तुतत्कृतम् एतेनाबिदकादिष्वविभक्तानामनियमइतिवदन्**शूलपाणिः**परास्तः ।

अविभक्तानां विशेष सांगतो—

पृथ्वीचंद्रोदयांत मरीचिः—"जेव्हां बापाचे बहुत पुत्र असून ते एकत्र रहात असतील तेव्हां त्या सर्वांचें मत घेऊन ज्येष्ठ पुत्रांचें सामायिक द्रव्यां जें और्ध्वदेहिक कर्म केलें तें सर्वांनींच केल्यासारखें होतें." म्हणजे ज्येष्ठनें केलें असलें तरी त्याचें फळ सर्वांना मिळतें, असा इत्यर्थ आहे. त्यामुळें ब्रह्मचर्य पराब्रजर्जन इत्यादिक होणारे संस्कार ते सर्वांना होतात, असें सिद्ध झालें. संसृष्टि (पूर्वी विभक्त असून नंतर एकत्र झालेले) जे त्यांना देखील असेंच समजावें. कारण, ते यांच्यासारखेच आहेत. **विभक्तानां** विशेष सांगतो **उशनाः**—"प्रातः विभक्त असले तरी नवश्राद्ध (दशाहांत होणारें), सपिंडीकरण आणि षोडशश्राद्ध हीं एकांचें करावीं." **लघुहारीतः**—"पुत्र वेगवेगळे द्रव्य घेऊन राहणारे असले तरी त्यांनीं सपिंडीकरणापर्यंत होणारीं षोडश श्राद्ध कधीही वेगवेगळीं करूं नयेत. सपिंडीकरणानंतरचीं श्राद्ध सर्वांनीं वेगवेगळीं करावीं." **मदनरत्नांत** सांगतो—"विभक्त असतील त्यांनीं प्रतिसंवत्सरादिक श्राद्ध वेगवेगळें करावें. आणि अविभक्त असतील तर एकांचें केलें असतां तें सर्वांनीं केल्यासारखें होतें" असें सांगितल्यामुळें 'आबिदकादिश्राद्धाविषयीं अविभक्तांस—एकांचेंच करावें' असा नियम नाही. असें सांगणारा **शूलपाणि** परास्त (खंडित) झाला.

दत्तकस्तुजनकस्यपुत्राद्यभावेदद्यान्नतत्सत्त्वे गोत्ररिक्थेजनयितुर्नभजेदत्रिमःसुतः गोत्ररिक्थानुगःपिंडो-व्यपैतिददतःस्वधेति**मनुक्तेः** इदंजनकस्यपुत्रसत्त्वविषयम् एतच्चप्रवरमंजर्या कात्यायनलौगाक्षि-भ्यांस्पष्टमुक्तं अथयेदत्तकक्रीतकृत्रिमपुत्रिकापुत्राः परपरिग्रहेणानार्पेयाजातास्तेभ्यामुप्यायणाभवंति यथाशौ-गशैरीणिणांयानिचान्यान्येवंसमुत्पत्तीनिकुलानिभवंतीत्यादिनाद्वयोःपित्रोःप्रवरानुस्त्वोक्तम् अथययोषांस्वासु भार्यास्वपत्यंनस्याद्विक्थंहरयुःपिंडैचैभ्यस्त्रिपुरुषंद्युयद्युभयोर्नस्यादुभाभ्यामेवदयुरेकस्मिन्श्राद्धेपृथगुद्दिश्यैक पिंडेद्वावनुकीर्तयेत्परिगृहीतारंचोत्पादयितारंचातृतीयात्पुरुषादिति हेमाद्रौकाष्ठाजिनिः यावंतःपिंड-

१ माता, पिता, उपाध्याय, आचार्य आणि मातामह यांचें और्ध्वदेहिक करणारा ब्रह्मचारी आपल्या ब्रह्मचर्यव्रतापासून भ्रष्ट होत नाही, असें चंद्रिकेंत बृद्धमनुष्यवचन आहे.

वर्ग्याः स्मृत्स्वावद्भिर्दत्तकादयः प्रेतानां योजनं कुर्युः स्वकीयैः पितृभिः सह द्वाभ्यां सहाथतत्पुत्राः पौत्रास्त्वेकेन तत्समं चतुर्थपुरुषेष्ठं तस्मादेष्टात्रिपूरुषी साधारणेषु कालेषु विशेषेणोनास्ति वर्गिणाम् मृताहेत्वेकमुद्दिश्य कुर्युः श्राद्धं यथाविधीति अस्यायमाह हेमाद्रिः दत्तकादयः जनकपालकयोः कुले प्रेतानां स्ववर्गीयैः सपिंडनं कुर्युः दत्त-
क्रानां पुत्रास्तु पितुर्दत्तकस्य पितृभ्यां जनकपालकाभ्यां स्वपितामहाभ्यां सपिंडनं कुर्युः तेषां पौत्राः स्वपितरं दत्तकेन-
पितामहेन तज्जनकेन च सपिंडयेयुः चतुर्थोपितकुलस्थ एव तेषां प्रपौत्रस्तु दत्तकस्य प्रपितामहस्य पालककुलस्थं
चतुर्थयोजयेन्न वा छंदश्च्छा दशमहालयदौ तु द्वयोः पित्रोः पितामहयोः प्रपितामहयोर्वा श्राद्धं देयं तत्र द्वयोः पि-
त्राद्योः पृथक्पिंडदानं द्वयोरुद्देशेनैकोवेति अत्र केचित् आवयोरयमिति परिभाष्यो दत्तस्तस्येदं द्वयोः पित्रोः-
श्राद्धं यस्त्वपरिभाष्य दत्तः समग्रहीतुरेव स पालकायैव दद्यादित्याहुः अत्र मूलत एव प्रष्टव्याः ।

आतां दत्तकादिकां विषयीं सांगतो—

दत्तकपुत्रानं तर जनक पित्याला पुत्रादिक नसतां त्याचें श्राद्धादिक करावें, पुत्रादि असतील तर त्याचें श्राद्धादि करूं नये. कारण, “दत्तक पुत्राला जनकपित्याचें गोत्र व द्रव्य प्राप्त होत नाही; गोत्र व धन यांना अनुसरून असणारा पिंड व स्वधाशब्द (श्राद्ध) तो पुत्र देणारास (जनक पित्यास) प्राप्त होत नाही” असें मनूचें वचन आहे. हें मनुवचन जन-
काला पुत्र असतां समजावें. हा प्रकार प्रवरमंजरीत कात्यायन व लौगाक्षि यांनी स्पष्ट सांगितला आहे; तो असा—
“आतां जे दत्तक, क्रीत, कृत्रिम, व पुत्रिकापुत्र हे दुसऱ्याने घेतल्यामुळे अनापेय (प्रवररहित) झाले ते ब्राम्हणायायण (द्विगोत्री) होतात; जशी-शौगशैक्षिरीचीं कुलें झालीं आहेत; त्याचप्रमाणे दुसरीं देखील अशींच उत्पन्न झालेलीं कुलें द्विगोत्र होतात.” इत्यादि ग्रंथांने दोन्ही पित्यांचे प्रवर सांगून पुढें सांगितलें की, “आतां जर ह्यांना (पित्यांना) स्वकीय भार्यांचे ठायीं अपत्य नसेल तर ज्यांना नसेल त्यांचें द्रव्य ह्या दत्तकादिकांनीं घ्यावें, आणि त्यांना पिंड त्रिपुरुषपर्यंत द्यावा; जर दोन्ही पित्यांना (जनक व पालक यांना) अपत्य नसेल तर दोघांनाही पिंड द्यावा: एका श्राद्धांत दोघांचा वेगवेगळा उच्चार करून एकपिंडाचे ठायीं ग्रहीता व उत्पादयिता ह्या दोन्ही पित्यांचें अनुकीर्तन करावें. याप्रमाणें त्रिपुरुषपर्यंत करावें.”
हेमाद्रीत कार्णाजिनि—“दत्तकादिकांनीं जितके पितृवर्गातील असतील तितक्या स्वकीय पितरांगहवर्तमान प्रेतांचें संयोजन (सपिंडन) करावें. दत्तकादिकांच्या पुत्रांनीं आपल्या पित्यांचें (दत्तकादिकांचें) दोघां (जनकपालकां) सहवर्तमान सपिंडन करावें. दत्तकादिकांच्या पौत्रांनीं तर आपल्या पित्यांचें (दत्तकादिकांच्या पुत्रांचें) एकासह (दत्तकादिसह) सपिंडन करावें. चवथ्या पुरुषाचे ठायीं जशी इच्छा असेल त्याप्रमाणें (दत्तकादि प्रपौत्रांनीं) करावें; चवथ्या पुरुषास नियम नाही म्हणून ही त्रिपूरुषी आहे. साधारण जे काल (अमावास्यादिक) त्यांचे ठायीं जनकवर्गाचें किंवा पालकवर्गाचें करावें, याविषयीं विशेष सांगितला नाही. मृतदिवशीं मात्र जो मृत असेल त्या एकाच्या उद्देशानें यथाविधि श्राद्ध करावें.”
ह्या (वर लिहिलेल्या अर्थाच्या) कार्णाजिनिवचनाचा अर्थ सांगतो हेमाद्रि—“दत्तकादिकांनीं जनक व पालक ह्या दोघांच्या कुलांत जे मृत असतील त्यांचें आपआपल्या वर्गातील पितरांशीं सपिंडन करावें. दत्तकांच्या पुत्रांनीं तर आपला पिता जो दत्तक त्याचें, जनकपिता आणि पालकपिता म्हणजे आपले पितामह त्यांसहवर्तमान सपिंडन करावें. त्यांच्या (दत्तकांच्या) पौत्रांनीं आपल्या पित्यांचें, दत्तक जो पितामह त्यासह आणि त्याच्या जनकासह सपिंडन करावें. चवथा देखील त्याच कुलांतला समजावा. दत्तकांच्या प्रपौत्रांनीं तर दत्तक जो प्रपितामह त्याला पालककुलस्थ चतुर्थ मिळवावा किंवा न मिळवावा. याविषयीं त्याची इच्छा नियामक आहे. दर्श महालय इत्यादिकांचे ठायीं तर दोन पिते, दोन पितामह व दोन प्रपितामह यांना श्राद्ध द्यावें. ह्या वाक्यांत ‘वा’ आहे त्यानं विकल्प बोधित होतो. त्या श्राद्धांत दोन जे पित्रादिक त्यांच्या उद्देशानें वेगवेगळे पिंड द्यावे, अथवा दोघांच्या उद्देशानें एक पिंड द्यावा. असा हेमाद्रीनें केलेला अर्थ समजावा. या ठिकाणीं कोणी असें म्हणतात की, ‘ह्या दोघांचा हा’ अशी बोली करून जो पुत्र दिला आहे त्याला, हें दोन पितरांना (जनक पालकांना) श्राद्ध द्यावें, म्हणून सांगितलें. जो पुत्र बोली केल्यावांचून दिलेला आहे, तो ग्राहकानाच पुत्र होय म्हणून त्यानं पालकालाच (ग्राहकालाच) श्राद्ध द्यावें, असें कोणी सांगतात. तें असें सांगण्याविषयीं मूलवचन कोणतें आहे तें त्यांनाच विचारावें.

वस्तुतस्तु जनकस्य पुत्रपत्न्याद्यभावे दत्तको द्वयोर्दद्यादन्यथा पालकायैव प्रागुक्तकात्यायनवचनात् मानवीयमप्येतद्विषयमेव गोत्रंतु श्राद्धे पालकस्यैव विवाहादौ तूभयोरित्यादि मत्कृतप्रवरदर्पणज्ञेयम् यस्तु मूल्य-

१ भारद्वाज गोत्रातील शुंगापासन विश्वामित्र गोत्रातील शैक्षिरीचे क्षेत्रांत झालेला जो ऋषि तो शौगशैक्षिरी होय. हा द्विगोत्र म्हणजे भारद्वाज आणि विश्वामित्र ह्या दोन गोत्रांचा आहे. २ हेमाद्रीनें केलेल्या अर्थांत बरेच संशय आहेत. याकरितां जसा देशाचार असेल त्याप्रमाणें करावें.

क्रीतायां परभार्यायां दास्यांचोत्पन्नः सवीजिन एव दद्यात् मूल्यं विना स्वयमुपनतायां तु क्षेत्रिण एव तदुक्तं पृथ्वी-
चंद्रोदये कौर्मं अनियोगात्सुतोयंस्तु शुल्कतो जायते त्विह प्रदद्याद्बीजिने पिंडं क्षेत्रिणे तु ततो न्ययेति क्षेत्रजापे-
विशेषस्तु कलौ तदभावात् नोच्यत इति दिक् जारजानां विशेषमाहापराकें नारदः जायंते त्वनियुक्तायामेकेन ब-
हुभिस्तथा अरिक्थभाजस्ते सवैवीजिनामेव ते सुताः दद्युस्ते बीजिने पिंडमाता चेच्छुल्कतो ह्यता अशुल्कोपहृता-
यां तु पिंडदाबोदुरेवते ॥

वास्तविक म्हटलें तर जनकपित्याला पुत्र, पत्नी इत्यादिकांचा अभाव असतां दत्तकानें दोघांना (जनकपालकांना) श्राद्ध
द्यावें, जनकाला पुत्रादिक असेल तर पालकालाच द्यावें. कारण, अशा विषयीं पूर्वी सांगितलेलें कात्यायनवचन आहे. आणि
मनुवचन (गोत्ररिक्थे०) हेंही अशा विषयींच समजावें. श्राद्धामध्यें गोत्र तर पालकाचें द्यावें. विवाहादिकांचे ठायीं तर
दोघांचें द्यावें, इत्यादिक विचार मीं केलेल्या प्रवरदर्पणांत आहे तो जाणावा. जो पुत्र द्रव्य देऊन विकत घेतलेल्या
परस्त्रियेचे ठायीं आणि दासीचे ठायीं उत्पन्न झाला त्यानं, ज्याच्या पासून झाला असेल त्यालाच पिंड द्यावा. द्रव्य दिल्यावांचून
आपण होऊन आलेल्या परस्त्रियेचे ठायीं उत्पन्न झाला असेल त्यानं, ज्याची ती स्त्री असेल त्यालाच पिंड द्यावा. तो प्रकार
सांगतो पृथ्वीचंद्रोदयांत कौर्मंत—“नियोगावांचून (माझ्या ठिकाणीं पुत्र उत्पन्न कर, असें सांगितल्यावांचून)
संभोगाचें मूल्य देऊन परस्त्रियेचे ठायीं जो पुत्र उत्पन्न केला असेल त्यानं, ज्याच्या वीर्यापासून झाला असेल त्याला पिंड
द्यावा. असें नसेल तर ज्याची ती स्त्री असेल त्याला त्या पुत्रांनं पिंड द्यावा.” क्षेत्रजादिकांचा विशेष प्रकार, कलियुगांत
त्यांचा अभाव असल्यामुळें सांगत नाहीं. याप्रमाणें ही दिशा दाखविली आहे. जारापासून उत्पन्न झालेल्या पुत्रांचा विशेष-
प्रकार अपराकींत नारद सांगतो—“नियोग न केलेल्या स्त्रियेचे ठायीं एकापासून किंवा बहुतांपासून पुत्र उत्पन्न होतात
त्या सर्व पुत्रांना वापाचें (ज्याची स्त्री त्याचें) द्रव्य मिळणार नाहीं, तर ज्यांच्या बीजापासून झाले असतील त्यांचेच ते
पुत्र होत. जर माता वापाचें मूल्य देऊन ग्रहण केली आहे, तर तिच्या त्या पुत्रांनीं त्या वापाला (ज्याचें बीज त्याला)
पिंड द्यावा. मूल्य दिल्यावांचून आपण होऊन आली असेल तर तिच्या त्या पुत्रांनीं ज्याची ती स्त्री त्यालाच पिंड द्यावा.

धर्मार्थश्राद्धकरणे फलमाह चंद्रिकायां शातातपः प्रीत्याश्राद्धंतु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम् एवं कुर्व-
न्नरः सम्यङ्ग्रहं तीश्रियमाप्नुयात् गयायामपितत्रैव ब्रह्मवैवर्ते आत्मजो वाथवान्योऽपि गयाशीर्षेयदातदा यन्ना-
भ्राप्राप्येते पिंडंतं न येद्ब्रह्मशाश्वतम् एतच्च यदा फलभूमार्थिना द्विस्त्रिर्वाक्रियते तदा प्रेतशिलाश्राद्धवर्ज्यं कुर्यात्तस्य प्रे-
तत्वविमोक्षार्थत्वात् सत्यं जातत्वादितिकेचित् वस्तुतस्तु संन्यासिश्राद्धवदत्रापि सर्वकार्यम् सांगेधिकारादि-
तियुक्तं प्रतीमः संन्यस्तपित्रादिस्तु पितुः पित्रादिभ्यः सर्वश्राद्धेषु दद्यादित्युक्तं प्राक् वक्ष्यते च जीवत्पितृकश्राद्धे ।

धर्मार्थ श्राद्ध केलें असतां त्याचें फळ चंद्रिकेंत शातातप सांगतो—“सर्वे ब्राह्मणादिवर्णांचें श्राद्ध प्रीतीनं करावें. असें
प्रीतीनं उत्तम प्रकारें श्राद्ध करणाऱ्या मनुष्याला मोठी संपत्ति प्राप्त होते.” गयेंत देखील श्राद्ध केल्याचें फळ त्याच ग्रंथांत
ब्रह्मवैवर्तांत सांगतो—“पुत्र अथवा दुसरा कोणीही गयाशीर्षाचे ठायीं ज्या वेळीं ज्याच्या नांवानं पिंडदान करील, त्या
वेळीं त्याला तो शाश्वत अशा ब्रह्मपदाप्रत नेईल.” हें गयाश्राद्ध जेव्हां फळ मोठें मिळावें अशा हेतूनं द्विवार किंवा त्रिवार
करावयाचें असतें, तेव्हां प्रेतशिलाश्राद्ध वर्ज्य करून बाकीचें करावें. कारण, तें प्रेतशिलाश्राद्ध प्रेतलमोक्षासाठीं आहे, व तें
पूर्वीं एकवार झालेंलें आहे, असें कोणी म्हणतात. वास्तविक म्हटलें तर संन्याशाच्या श्राद्धाप्रमाणें या ठिकाणीं देखील सर्व
करावें. कारण, सांगकर्माविषयीं अधिकार आहे, असें हें योग्य आम्हीं समजतो. ज्याचा पिता संन्याशी आहे त्यानं तर
सर्व श्राद्धांमध्यें आपल्या वापाच्या पितरांना पिंडादिक द्यावें; असें पूर्वीं सांगितलें आहे. आणि जीवत्पितृकाच्या श्राद्ध-
प्रकरणीं पुढेंही सांगूं.

अत्र स्त्रीशूद्राणां श्राद्धं मंत्रवर्जनूष्णीं भवति स्त्रीणाममंत्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासु तस्य च प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात् सैव-
कुर्युस्तथैव तदिति हेमाद्रौ मरीचिवचनात् अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मंत्रवर्जितः अमंत्रस्य तु शूद्रस्य च त्रयो-
विप्रेण गृह्यते इति ब्राह्मोक्तेश्च गृह्यते संबध्यते अस्य श्राद्धप्रकरणे पाठेऽपि परिभाषत्वात् प्रकरणेन संकोचो युक्तः
तेन शूद्रस्य स्नानदानादावपि विप्रेण मंत्रपाठः कार्यः अमंत्रस्येति विशेषणान्न स्त्रिया अपीति शूलपाणिः यमुतेनो-
क्तम् मंत्रजन्यनियमादृष्टसिद्धिस्तु नमस्कारेण अनुमतोऽस्य नमस्कारो मंत्र इति गौतमोक्तेरिति तत्र दृष्ट्वा-
वहितत्वात् प्रामिर्न स्वातंत्र्येण अन्यथानस्त्वपि पूतेष्ववघातजन्यादृष्टार्थसोऽपि क्रियेतेति यत्किंचिदेतत् तेन पिशूपांताः

मगोत्रतद्द्वयादौयत्रद्विजानामपिनाममंत्रउक्तस्तत्रप्रतिप्रसवमात्रार्थयुक्तम् नतिलावपनादावपि अत्रकेचित् वैश्विकमंत्रोविप्रस्य पौराणस्तुशूद्रैःपठनीयः नहिवेदेष्वधिकारःकचिच्छूद्रस्यविद्यते पुराणेष्वधिकारोमेदशि-
तोब्राह्मणैरिहेतितत्रैवपाद्योक्तेरित्याहुः गौडाअप्येवम् तन्न नाध्येतव्यमिदंशास्त्रंशूद्रस्यतुसन्निधाविति
कौर्मैपुराणनिषेधेनवेदस्यदूरापास्तत्वात् अध्येतव्यंब्राह्मणेनवैश्येनक्षत्रियेणच श्रोतव्यमेवशूद्रेणनाध्येतव्यं-
कदाचन श्रौतंस्मार्तंचवैधर्मप्रोक्तमस्मिन्नूपोत्तम तस्माच्छूद्रैर्विनाविप्रंनश्रोतव्यंकदाचनेतितत्रैवपुराणाधिकारे
अविध्योक्तेश्च एतेननाध्येतव्यमितिनिषेधोमंत्रेतरपुराणपरइतिश्रीदत्तादिमतमपास्तम् तेनपौराणमंत्रा-
णामेवविशेषणपाठोनवैदिकानामितिसिद्धम् द्विजस्त्रियस्तुसंकल्पमात्रंस्वयंकृत्वावैदिकमंत्रयुक्तंसर्वब्राह्मणद्वारा-
कारयेयुरितिप्रयोगपारिजातः अतएवस्त्रीणामित्यकृतविवाहस्त्रीपरमितिहेमाद्रिराह अनुपनीतस्तुवै-
दिकमंत्रयुक्तंस्वयमेवकुर्यादित्युक्तंभाक् यत्तुप्राग्द्विजाश्चव्रतादेशादितितदशकविषयमचूडविषयंवेतदिक् ।

आतां स्त्रीशूद्रांविषयीं सांगतो—

स्त्रिया व शूद्र यांनीं करावयाचें श्राद्ध मंत्ररहित मुकाळ्यानें (केवळ तंत्रांनं) होतें. कारण, “स्त्रियांना श्राद्ध अमंत्रक आहे, तसेंच शूद्रांपुत्रालाही अमंत्रक आहे. आणि उपनयन होण्याच्या पूर्वीचे जे द्विज (ब्राह्मणादिक) त्यांनींही तें श्राद्ध तसेंच (मंत्ररहित) करावें” असें हेमाद्रींत मरीचिवचन आहे. आणि “हाच (ब्राह्मणांना सांगितलेला) विधि शूद्रांना मंत्रवर्जित सांगितला आहे. अमंत्रक जो शूद्र त्याचा मंत्र ब्राह्मणांनीं म्हणावा.” असें ब्राह्मणवचनही आहे. ह्या वचनांत ‘गृह्यते’ याचा अर्थ संबद्ध होतो, असा आहे. हें वचन श्राद्धप्रकरणांत पठित असलें तरी परिभारूप असल्यामुळें श्राद्ध-प्रकरणांतच लागू होतें, असें म्हणणें योग्य नाहीं. तर इतर ठिकाणींही लागू होतें, म्हणून शूद्रांच्या ज्ञान-दान इत्यादि कर्मांचे ठायीं देखील ब्राह्मणांनीं मंत्रपाठ करावा, असें आहे. वरील वचनांत ‘अमंत्रस्य’ असें विशेषण आहे, म्हणून मंत्ररहित ज्या स्त्रिया त्यांचाही मंत्र ब्राह्मणांनीं म्हणावा, असें शूलपाणि सांगतो. आतां जें ह्या शूलपाण्यानें सांगितलें की, मंत्रापासून उत्पन्न होणारें जें नियमानें अष्ट (अष्टयफल) त्याची सिद्धि तर ह्या शूद्रादिकांना, नमस्कारानें होते. कारण, “ह्या शूद्राला नमस्कारमंत्र हा सर्वास अनुमत आहे” अशी गौतमाची उक्ति आहे. असें जें शूलपाण्याचें म्हणणें तें बरोबर नाहीं. कारण, दृष्टफलाच्या द्वारानेंच अष्टयफलाची प्राप्ति होते, स्वातंत्र्यानें होत नाहीं. अर्थात् मंत्रोक्त कर्म स्मरून कर्म केलें असतां अष्टयफलाची प्राप्ति होते, ती केवळ नमस्कारानें कशी होईल ? जर दृष्टफलावांचून स्वातंत्र्यकरून अष्ट-यची प्राप्ति होत असेल, तर ‘व्रीहीनवहंति’ ह्या वाक्यानें भात कांडून तांदूळ करून होमास घ्यावे असें सांगितलें आहे ह्या ठिकाणीं नखांनीं सोलून तांदूळ झाले तरी, मुसळाच्या अवघातापासून उत्पन्न होणाऱ्या अष्टयफलासाठीं, तोही मुसळाचा अवघात करावा, असें होईल ? म्हणून हें सांगणें काहीं तरी आहे. हें सांगणें योग्य नसल्यामुळें ‘पितरांच्या नामगोत्रांचा उच्चार करून द्यावें’ इत्यादि ज्या स्थळीं द्विजांना देखील नाममंत्र सांगितला आहे, त्या स्थळीं शूद्रादिकांना नाममंत्राचा निषेध येत होता, त्याचा प्रतिप्रसव (बाध) च करण्यासाठीं हें वचन युक्त आहे. तिलावप करणें इत्यादि स्थळीं जो मंत्रनिषेध त्याचा बाध करण्यासाठीं हें वचन समजू नये. या ठिकाणीं कोणी म्हणतात—वैदिकमंत्र ब्राह्मणाला आहे, पौराणमंत्र शूद्रांनीं म्हणावा. कारण, “वेदाविषयीं कोठेंही शूद्राला अधिकार नाहीं. पुराणाविषयीं मला (शूद्रांपुत्राला) अधिकार ब्राह्मणांनीं येथें दाखविला आहे.” अशी ह्या ठिकाणींच (हेमाद्रींत) पाद्योक्ति आहे, असें कोणी म्हणतात. गौड देखील असेंच म्हणतात. तें त्यांचें म्हणणें बरोबर नाहीं. कारण, “हें शास्त्र शूद्रांच्या संनिध म्हणूं नये” असा कौर्मंत पुराणाचा निषेध केल्यामुळें वेद तर दूरच राहिला. “हें शास्त्र ब्राह्मणांनीं म्हणावें; वैश्यानें व क्षत्रियांनींही म्हणावें; शूद्रांनीं केवळ ऐकावें, कधीही म्हणूं नये. हे राजा ! या ठिकाणीं श्रौत (वैदिक) आणि स्मार्त धर्म सांगितले आहेत; त्याकरितां कधीही ब्राह्मणावांचून शूद्रांनीं ऐकूं नये” असें त्याच ठिकाणीं पुराणाधिकांरांत भविष्यवचनही आहे. असें सांगितल्यानें ‘अध्ययन करूं नये, असा जो निषेध तो मंत्रावांचून इतर पुराणांविषयीं समजावा’ असें श्रीदत्तादिकांचें मत अपास्त (खंडित) झालें. ह्या वरील सांगण्यानें शूद्रादिकर्मांत पौराणमंत्रांचा ब्राह्मणांनीं पाठ करावा, वैदिकमंत्रांचा करूं नये, असें सिद्ध झालें. द्विजस्त्रियांनीं तर स्वतः केवळ संकल्प करून वैदिकमंत्रयुक्त सर्व कर्म ब्राह्मणांकडून करावें, असें प्रयोगपारिजातकार सांगतो. स्त्रियांचें समंत्रक कर्म ब्राह्मणांकडून होतें, म्हणूनच ‘स्त्रीणाममंत्रकं’ ह्या वचनांतील ‘स्त्रीणां’ हें पद अविवाहित स्त्रियांचें बोधक आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. अनुपनीत (संज न झालेल्या) पुत्रांनीं तर वैदिक मंत्रयुक्त सर्व कर्म स्वतःच करावें, असें पूर्वी सांगितलें. आतां जें ‘प्राग्द्विजाश्च’ संज्याच्या पूर्वी द्विजांनीं अमंत्र करावें, असें जें वरील मरीचिवचन तें क्षत्रि नसेल त्याविषयीं अथवा चूडाकर्म झालें नसेल त्याविषयीं समजावें, अशी ही दिशा दाखविली आहे.

शूद्रस्य तु स दामश्राद्धमेव सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयत इति सुमंतूक्तेः पृथ्वीचंद्रोदये मा-
त्स्येऽपि एवं शूद्रोपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धं च सर्वदा नमस्कारेण मंत्रेण कुर्यादामाश्रवत्सदा तत्रैव वृद्धपराशरः
आमाश्रनतु शूद्रस्य तु पूर्णां तु द्विजपूजनं कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य स जातीनां शयेंदथ स एव आमं शूद्रस्य पकारं पक्कमु-
च्छिष्टमुच्यते हेमाद्रौ भविष्ये धर्मेऽस्य वस्तु धर्मज्ञाय दिशूद्राः प्रकुर्वते अमौ करणमंत्रश्च नमस्कारो विधीयते
आवाहनादिकर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु देवानां देवनाम्ना तु पितृणां नाम गोत्रतः पिंडादीन्निर्वपेद्वीरनामतो गोत्रत-
स्तथा शूद्राणां गोत्राभावे पिकाशयपंगोत्रं ज्ञेयम् तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति श्रुतेः गोत्रनाशे तु काश्यप-
इति व्याघ्रपादोक्तेः श्रुतिहेमाद्रिः एव मन्यत्र गोत्राज्ञानेऽप्यंतर्पणादिपुण्येयम् तत्रैव भविष्ये शूद्रस्तु-
गृहपाकेन पिंडान्निर्वपेत्तथा सक्तुमूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम् गौतमः अनुमतोऽस्य नमस्कारो मंत्र इति
देवताभ्यः पितृभ्यश्चैत्यं नमस्कारमंत्र इति केचित् विज्ञानेश्वरोऽप्येवमाह हेमाद्रिस्तु शूद्रोऽयं मंत्रवत्कु-
र्यादनेन विधिना बुध इति मात्स्ये मंत्रनिषेधात्नाममंत्रेणेत्याह पृथ्वीचंद्रोदये स्कांदे राजकार्ये नियुक्तस्य बंध-
ननिग्रहवर्तिनः व्यसने पुत्रसर्वेषु श्राद्धविप्रेण कारयेत् यत्तु भारते राजधर्मे पु यवनाः किराता गांधाराश्चीनाः श-
बरवर्गः शकास्तु पागः कंकाश्रपह्वाश्रां धर्मद्रका इत्युक्त्वा ब्रह्मश्रत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः कथं-
धर्माश्च रिपयः तिस्रैर्विषयवासिनः इति चोक्त्वा वेदधर्मक्रियाश्चैत्रे पांधर्मो विधीयते पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपा-
श्रशयनानि च दानानि च यथा कालं द्विजेभ्यो विमुज्जेत्सदा तथा दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूमि मिच्छता पाक-
यज्ञामहार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभिरिति स्तेच्छादीनां श्राद्धविधानम् तदपि स जातीयभोजनद्रव्यदानादिपरंतु-
श्राद्धपरमिति इति श्रीनागायणभट्टमूर्तिस्मृत्युगमकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ अधिकारनिर्णयः ॥

आतां शूद्रांचा श्राद्धविधि सांगतो—

शूद्राला तर सदा आमश्राद्धच आहे. कारण, “शूद्रांना तर सर्वकाळ आमश्राद्धच सांगितलं आहे.” असे सुमंतूचें वचन आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत मात्स्यांत ही सांगतो—“व्याघ्रमाणे शूद्रांनंही सर्वदा सामान्यश्राद्ध व वृद्धिश्राद्ध हें नमस्कारमंत्रांचें, आमाश्रानें सर्वकाळ करावें.” त्याच ठिकाणी वृद्धपराशर—“शूद्रांचें आमाश्र देऊन ब्राह्मणांचें मंत्ररहित पूजन करून श्राद्ध समाप्त करून नंतर आपल्या ज्ञातीच्या भोजन घालावें.” तोच पराशर सांगतो—“शूद्रांचें आमाश्र म्हणजे पक्वान्न होय आणि पक्वान्न म्हणजे उच्छिष्ट म्हणजे आहे.” हेमाद्रिंत भविष्यांत सांगतो—“धर्म जाणणारे व धर्माची इच्छा करणारे असले शूद्र जर श्राद्ध करीत असतील, तर त्यांना अमौकरणाविषयी मंत्र नमस्कार सांगितला आहे. शूद्रांचें आवाहनादिक कसे करावें, तें सांगतो, ऐक ! देवांचें आवाहनादिक देवांच्या नामांचें करावें, आणि पितरांचें नामगोत्रांचें करावें. नांवाचा व गोत्राचा उच्चार करून पिंडादिक द्यावे.” शूद्रांना गोत्राचा अभाव अगला तरी काश्यपगोत्र जाणवें. कारण, “सर्व प्रजा काश्यपाच्या आहेत असें सांगतात” अशी श्रुति आहे. “गोत्र नसेल त्या ठिकाणीं काश्यप समजावें.” अशी व्याघ्रपादाचीही उक्ति आहे, असें हेमाद्रि सांगतो. असेंच दुसऱ्या ठिकाणीं गोत्राचें ज्ञान नसेल तेथें समजावें. याचप्रमाणे तर्पणादि विषयी समजावें. त्या ठिकाणींच भविष्यांत सांगतो—“शूद्रांचें घरांत शिजविलेल्या अन्नानें पिंड देऊं नयेत. सातू (जवांचें पीठ), अथवा मूले, फळे, पायस यांचे त्यांना पिंड द्यावे.” गौतम—“ह्या शूद्राला नमस्कारमंत्र सांगितला आहे.” देवताभ्यः पितृभ्यश्च हा नमस्कारमंत्र असें केचित् म्हणतात. विज्ञानेश्वरही असेंच सांगतो. हेमाद्रि तर “शूद्रांनंही अमंत्रक ह्या (पूर्वांत) विधीनं करावें.” ह्या मात्स्यपुराणवचनांत मंत्राचा निषेध अगल्यामुळे नाममंत्रांचें करावें, असें सांगतो. पृथ्वीचंद्रोदयांत स्कांदांत—“राजकार्याविषयीं नियुक्त (आज्ञा केलेला), तमाच बंदीत, अटकाव इत्यादिकांत असलेला, व कोणत्याही संकटांत असलेला त्यांना श्राद्ध ब्राह्मणाकडून करावें.” आतां जें भारतांत राजधर्मांत—“यवन, किरात, गांधार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुयार, कंक, पल्लव, आंध्र, मद्रक” असें सांगून “ब्राह्मण व क्षत्रिय यांपासून उत्पन्न झालेले तसेच वैश्य व शूद्र हे सर्व मनुष्य देशांमध्ये राहणारे आहेत, यांनीं कसे धर्म आचरण करावे ?” असेंही बोलून पुढें सांगतो—“वेदश्रोत धर्म व क्रिया हा त्यांना धर्म सांगितला आहे. तो असा—त्यांनीं पितृयज्ञ (श्राद्ध) करावे, निहिरी बांधाव्या, पाणपोई घालाव्या, धर्मशाळा बांधाव्या, ब्राह्मणांस योग्य कार्ली सर्वदा दातें द्यावी, तसेंच सर्व यज्ञांचीं दक्षिणा त्यांनीं द्यावी, महायोग्य असे जे पाकयज्ञ ते त्या सर्व दस्यूंनीं (म्लेच्छादिकांनीं) करावे” ह्या वचनानें म्लेच्छादिकांना श्राद्ध सांगितलें आहे तेंही आपआपल्या ज्ञातीला भोजन, द्रव्यदान वगैरे करावें अशा अर्थाचें आहे, असें समजावें. श्राद्ध करावें, अशा अर्थाचें समजूं नये.

इति श्रीनिर्णयसिंधौ अधिकारनिर्णये भाषाटीका समाप्ता ।

अथपितरः हेमाद्रौमातस्यदेवलौ नामगोत्रपितृणांप्रापकंहव्यकव्ययोः अग्निष्वात्तादयस्तेषा-
माधिपत्येव्यवस्थिताः नाममंत्रास्तदादेशभावांतरगतानपि प्राणिनः प्रीणयत्येवतदाहारत्वमागतान् देवोयदिपि-
ताजातः शुभकर्मानुयोगतः तस्यान्नममृतंभूत्वादेवत्वेष्यनुगच्छति गांधर्वभोगरूपेणपशुत्वेचतृणंभवेत् श्राद्धान्नं
वायुरूपेणनागतत्वेप्युपतिष्ठति पानंभवतियक्षत्वेराक्षसत्वेतथामिषम् दनुजत्वेतथामसंप्रेतत्वेरुधिरोदकम् मनु-
ष्यत्वेन्नपानादिनानाभोगकरंभवेत् अत्रपित्रादिशब्दैर्जनकादीनामेवदेवतात्वमुच्यते नवस्वादीनाम् असावेत-
त्तेइति यजमानस्यपित्रेइति शतपथश्रुतेः यस्यपिताप्रेतः स्यात्सपित्रेपिंडनिधायेति विष्णवादिस्मृतेश्च
यतुमनुदेवलौ वसवः पितरोज्ञेयारुद्राज्ञेयाः पितामहाः प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषासनातनी यच्च
याज्ञवल्क्यः वसुरुद्रादितिमुताः पितरः श्राद्धदेवताइति तदभेदध्यानाथं यानितुहेमाद्रौनंदिपुराणे
विष्णुः पितास्यजगतोदिव्योयज्ञः सएवच ब्रह्मापितामहोज्ञेयोह्यहंचप्रपितामहइति यच्च भविष्ये अनिरुद्धः
स्वयंज्ञेयः प्रद्युम्नश्चपितास्मृतः संकर्षणस्तज्जनकोवासुदेवस्तुतत्पिता स्वयंकर्ता यतुनत्रैव प्रथमोवरुणोज्ञेयः
प्राजापत्यस्तथापरः तृतीयोऽग्निः स्मृतः पिंडोद्घोषपिंडविधिः स्मृतः यच्च मनुः सोमपानामविप्राणांक्षत्रियाणांह-
विर्भुजः वैश्यानामाज्यपानामशूद्राणांतुसुकालिनः यच्चादित्यपुराणे मासाश्चपितरोज्ञेयाऋतवश्चपितामहाः
संवत्सरः प्रजानांचसुष्टेकः प्रपितामहः यच्च नंदिपुराणे अग्निष्वात्ताब्राह्मणानांपितरः परिकीर्तिताः राज्ञांव-
र्हिषदोनामविशांकाव्याः प्रकीर्तिताः सुकालिनस्तुशूद्राणांव्यामाम्लेच्छांयजातिषु अत्रावाहनादिषुपित्रादयः
समुच्चयेनविकल्पेनवायथाचारंतत्तदेवतारूपेणवाच्याइतिहेमाद्र्यादयः ॥

आतां पितर सांगतो—

हेमाद्रौ मातस्य च देवल—“पितरांस हव्य कव्य (अन्नादिक) प्राप्त करून देणारें त्यांचें नाम व गोत्र आहे. पितरांचे अधिकारी (न्याय मनसुबा वगैरे व्यवस्था करणारे) अग्निष्वात्तादि पितर आहेत. नाममंत्र हे त्या अग्निष्वात्तादिकांचे आदेश (आज्ञा) होत. ते नाममंत्र दुसऱ्या जन्मांत गेलेल्या देखील प्राण्यांस संतुष्ट करितात. कारण, नाममंत्राच्या योगानें तें श्राद्धान्न त्यांचा आहाररूप होतें, तें येणेंप्रमाणें—जर पिता आपल्या पुण्यकर्माच्या योगानें देव झाला, तर त्याला दिलेलें श्राद्धान्न तें अमृत होऊन देवपणींही त्याला प्राप्त होतें. गंधर्व झाला असेल तर श्राद्धान्न भोगरूपानें प्राप्त होतें. पशु झाला असेल तर तृण होऊन त्याला प्राप्त होतें. सर्प झाला असेल तर श्राद्धान्न वायुरूपानें प्राप्त होतें. यक्ष झाला असतां श्राद्धान्न पान होतें. राक्षस झाला असतां मांस होतें. दैत्य झाला असतां मद्य होतें. प्रेत झाला असतां रक्तोदक होतें. मनुष्य झाला असतां तें श्राद्धान्न अन्नपानादि अनेक भोग देणारें होतें.” ह्या श्राद्धप्रकरणीं पिता इत्यादि शब्दांनीं जनकादिकांनाच देवतात्व सांगितलें आहे. वसु, रुद्र इत्यादिकांना देवतात्व नाही. कारण “हा पिंड, हें उदक तुला, हें सांगणें यजमानाच्या पित्याला” अशी शतपथश्रुति आहे. आणि “ज्याचा पिता मृत असेल त्यानें आपल्या पित्याला पिंड देऊन” अशी विष्णु इत्यादिकांची स्मृतिही आहे. आतां जें मनु व देवल सांगतात—“वसु हे पितर, रुद्र हे पितामह, आणि आदित्य हे प्रपितामह जाणावे, अशी सनातन श्रुति आहे.” आणि जें याज्ञवल्क्य सांगतो—“वसु, रुद्र, आदित्य हे श्राद्धदेवता पितर आहेत” तें मनु देवल याज्ञवल्क्य यांचें सांगणें, पित्रादिकांचे ठायीं वस्त्रादिकांच्या अभेदाचें ध्यान करण्यासारें आहे. आतां जीं वचनें—
हेमाद्रौ नंदिपुराणांत—“ह्या जगाचा पिता विष्णु, तोच दिव्य यज्ञ आहे. ब्रह्मा पितामह, आणि मी (शिव) प्रपितामह होय.” आणि जें भविष्यांत—“अनिरुद्ध हा आपण (यजमान), प्रद्युम्न हा पिता, संकर्षण हा पितामह, आणि वासुदेव हा प्रपितामह.” आतां जें तैत्थेय सांगतो—“पिंडाविषयीं प्रथम (देवता) वरुण, दुसरा प्राजापत्य, तिसरा अग्नि, हा पिंडांचा विधि म्हण्टो आहे.” आणि जें मनु—“ब्राह्मणाचे पितर सोमप, क्षत्रियांचे पितर हविर्भुज, वैश्यांचे पितर आज्यप, शूद्रांचे पितर सुकालि.” आणि जें आदित्यपुराणांत—“मास हे पितर, ऋतु हे पितामह, संवत्सर हा सर्व प्रजांचा एक प्रपितामह होय.” आणि जें नंदिपुराणांत—“ब्राह्मणांचे पितर अग्निष्वात्त, राजांचे पितर बर्हिषद, वैश्यांचे पितर काव्य, शूद्रांचे पितर सुकालि, म्लेच्छ व अलंज यांचे पितर व्याम होत.” त्या नंदिपुराणादिवचनाची व्यवस्था—श्राद्धांत आवाहनादिकांत—पित्रादिकांचा उच्चार करून त्या त्या पितरांच्या देवतारूपानें देशाचारकुलाचाराप्रमाणें समुच्चयानें विष्णु, प्रद्युम्न इत्यादिकांचा उच्चार करावा, अथवा विकल्पानें विष्णवादिकांचा उच्चार करावा, असें हेमाद्रिप्रभृति ग्रंथकार सांगतात.

हेमाद्रौ ब्राह्मे पार्वणिकुरुतेयस्तुकेवलंपितृहेतुकम् मातामहान्कुरुतेपितृहासप्रजायते धौम्यः पित-
रोयन्नपूर्यतेतत्रमातामहाधुवम् अविशेषेणकर्तव्यंविशेषाभ्रकंप्रजेत् अस्यापवादमाहकात्यायनः कर्षू-
स-

मन्वितमुक्त्वा तथा च श्राद्धषोडशम् प्रत्याब्धिकं च शेषेषु पिंडाः स्युः षडिति स्थितिः कर्षुसमन्वितं संपिंडीकरणम् दर्शादौ सपत्नीकानामेव देवतात्वम् स्वेन भर्त्रासमं श्राद्धमातामुंके सुधासमं पितामही च स्वेनैव तथैव प्रपितामहीति तत्रैवोक्तेः चंद्रिकायां चतुर्विंशतिमते क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया केचिद्विच्छतिनारीणां पृथक् श्राद्धं महर्षयः अन्वष्टका सुवृद्धौ च गयायां च क्षये हनि अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सद्देति कात्यायनोक्तेः अत्यनिर्मूलतां वदंतो गौडास्त्वज्ञा एव अत्र भाग इत्यध्याहारः अन्यथा सपतिकार्ये मात्रे इति प्रयोगापत्तेः अत्र मातृशब्दो जनन्यामेव मुख्यः तेन सपत्नमातृभ्यो न दद्यात् एवं पितामह्यादिशब्दैः पितृजनन्यादय एवोच्यते इति तत्सपत्नीभ्यो न देयमिति हेमाद्रिः कारुण्येन तु महालयादौ देयमितिस एव ।

हेमाद्रीत ब्राह्मांत—“जो मनुष्य केवल पिता, पितामह, प्रपितामह यांचेंच पार्षण करितो, मातामहादिकांचें करित नाही, तो पितृघातक होतो.” **धौम्य**—“ज्या ठिकाणीं पितरांची पूजा करावयाची त्या ठिकाणीं मातामहांचीही पूजा करावी. पितर व मातामह यांत भेद करील तर नरकास जाईल.” ह्याचा अपवाद सांगतो **कात्यायन**—“कर्पूनें युक्त असलेलें श्राद्ध, (सर्पिंडीकरण) पहिलीं षोडशश्राद्धं (मासिकें) आणि प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध हीं वर्ज्यकरून इतर श्राद्धांमध्ये पिंड सहा करावे, अशी शास्त्रमर्यादा आहे.” दर्शादि श्राद्धांमध्ये पित्रादिकांना सपत्नीकांनाच देवतात्व आहे, म्हणून माता इत्यादिकांना पृथक् पिंड नाही. कारण, “माता आपल्या पतीबरोबर अमृताप्रमाणें श्राद्ध भक्षण करिते, पितामही आपल्या पतीबरोबर व प्रपितामही आपल्या पतीबरोबर सेवन करिते.” असें त्याच ठिकाणीं हेमाद्रीत उक्त आहे. **चंद्रिकेंत चतुर्विंशतिमतांत**—“एक संवत्सर दिवस (सांवत्सरिक) वर्ज्य करून स्त्रियांना पृथक् श्राद्ध नाही, कोणी महर्षि स्त्रियांना पृथक् (वेगळें) श्राद्ध आहे असें म्हणतात. अन्वष्टका (भाद्रपद कृष्ण नवमीस वगैरे होणाऱ्या), वृद्धिश्राद्ध, गया, आणि मृतदिवस इतक्या ठिकाणीं मातेला पृथक् (वेगळा) भाग आहे. इतर ठिकाणीं पतीसह वर्तमान मातेला श्राद्ध प्राप्त होतें” असें कात्यायन वचनही आहे. हें वचन निर्मूल असें म्हणणारे गौड तर अज्ञच आहेत. “अत्र मातुः पृथक्” ह्या वचनांत ‘भागः’ असा अध्याहार करावा. म्हणजे वेगळा भाग आहे असा अर्थ समजावा. असा अर्थ केला नाही तर मातेला प्राधान्य बोधित होऊन ‘सपतिकार्ये मात्रे’ असा प्रयोग प्राप्त होईल. ह्या वरील वचनांत मातृशब्दानें जननीच घ्यावी, असें आहे म्हणून सापत्न मातेला श्राद्ध देऊं नये. याप्रमाणें पितामही इत्यादि शब्दानां पित्रादिकांच्या जननीच घ्यावयाच्या आहेत म्हणून त्यांच्या सपत्नींना देऊं नये, असें हेमाद्रि सांगतो. महालयादिकांत दयेनें सापत्नमाता इत्यादिकांस द्यावें, असें तोच (हेमाद्रि) सांगतो.

अथ विश्वेदेवाः हेमाद्रीशंगवृहस्पती इष्टिश्राद्धे क्रतूदक्षौ सत्यौ नांदीमुखे वसू नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धुरिलोचनौ पुरुरवारद्वौ चैव पार्षणे स मुदा हतौ तत्रैव उत्पत्तिनाम चैते पांन विदुर्ये द्विजातयः अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्राद्धासमन्वितैः आगच्छंतु महाभागा विश्वेदेवामहाबलाः ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते इति इष्टिश्राद्धं श्राद्धं प्रति रुचिरित्युक्तमिति कल्पतरुः आधानादिकर्मागमित्यने नैमित्तिकमेको हिष्टम् एको हिष्टतुयच्छ्राद्धंत नैमित्तिकमुच्यते इति भविष्योक्तेः एतद्यद्यपि एको हिष्टंदैवहीनमितितत्र विश्वेदेवनिषेधस्तथापि नवश्राद्धदशाहानिनवमिश्रंतु पड्कतून् अतः परंपुराणवैत्रिविधं श्राद्धमुच्यते यस्मिन्नवेपुराणे वा विश्वेदेवानलेभिरे आसुरंतद्भवेच्छ्राद्धं पलमंत्रवार्जितमिति बह्वचपरिशिष्टात् एतच्च बह्वचानामेव तेषामेवोक्तेः अन्येषां तु नात्र विश्वेदेवा इति कात्यायनोक्तेस्तन्निषेध एवेति पृथ्वीचंद्रोदयः अन्येतु नैमित्तिकं संपिंडीकरणमाहुः भविष्ये यद्यप्येको हिष्टंतच्छ्रद्धेनोक्तं तथापि तदप्यद्वैकर्तव्यमयुग्मान्भोजयेद्विजानितितत्रैव विश्वेदेवनिषेधात् यद्यपि संपिंडीकरणं शत एको हिष्टंतं तथापि सर्पिंडीकरणश्राद्धंदैवपूर्वनियोजयेदिति वचनात् तत्परत्वम् हेमाद्रावादित्यपुराणे विश्वेदेवौ क्रतुर्दक्षः सर्वास्त्रिष्टुकीर्तितौ नित्येनांदीमुखे श्राद्धे वसू सत्यौ च पैतृके नवाब्जलं भने देवौ कामकालौ सदैव हि अपिकन्यागते सूर्ये काम्ये च धुरिलोचनौ पुरुरवारद्वौ चैव विश्वेदेवौ तु पार्षणे कचिद्विश्वेदेवापवादमाह हेमाद्रीशातातपः नित्यं श्राद्ध-

१ इष्टिश्राद्ध म्हणजे गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन ह्या तीन संस्कारांचें अंगभूत जें नांदीश्राद्ध तें आणि अम्बाधान व सीमंयाग यांचें अंगभूत जें नांदीश्राद्ध तें इष्टिश्राद्ध व कर्मांगश्राद्ध होय.

मदैवंस्वावेकोद्दिष्टतथैवच मातुःश्राद्धचयुगमैःस्याददैवंप्राञ्जुखैःपृथक् योजयेद्देवपूर्वाणिश्राद्धान्यन्यानियततः
नांदीश्राद्धेभिन्नप्रयोगपक्षेमातुःश्राद्धमदैवमितिहेमाद्रिः ।

आतां श्राद्धांत विश्वेदेव सांगतो—

हेमाद्रींत शंख व बृहस्पति—“इष्टिश्राद्धांत क्रतुदक्ष, नांदीश्राद्धांत सत्यवसु, नैमित्तिकश्राद्धांत कामकाल, काम्य-
श्राद्धांत धुरिलोचन, पार्वणश्राद्धांत पुरुरवार्ष याप्रमाणे विश्वेदेव होत.” तेथेच सांगतो—“ज्या ब्राह्मणांना या विश्वेदेवांची
उत्पत्ति व नांव कळत नाही त्यांनी श्रद्धायुक्त होऊन हा (पुढील) श्लोक म्हणावा” तो असा—“**आगच्छंतु महाभागा
विश्वेदेवा महाबलाः ॥ ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवंतु ते ॥**” वरील वचनांत इष्टिश्राद्ध म्हणजे
श्राद्धकालप्रकरणी ‘श्राद्धं प्रति रुचिर्धैव’ या वचनाने विहित श्राद्ध ते समजावे, असें **कल्पतरु** सांगतो. आधानादिकांत
कर्मागें श्राद्ध ते इष्टिश्राद्ध असें अन्य म्हणतात. नैमित्तिकश्राद्ध म्हणजे एकोद्दिष्ट होय. कारण, “जें एकोद्दिष्ट श्राद्ध ते
नैमित्तिक म्हणलें आहे” असें **भविष्यवचन** आहे. जरी “एकोद्दिष्ट देवहीन करावें” या वचनानें एकोद्दिष्टांत विश्वेदेवांचा
निषेध केला आहे, तथापि नवश्राद्ध आणि द्वादशमासिकें या ठिकाणीं कामकाल विश्वेदेव समजावे. “दशाहांत करावयाचें
श्राद्ध ते नवश्राद्ध, एकवर्षपर्यंत करावयाचें श्राद्ध ते नवमिश्र आणि वर्षानंतर करावयाचें ते पुराण याप्रमाणें तीन प्रकारचें
श्राद्ध सांगितलें आहे. ज्या नवश्राद्धांत किंवा पुराणश्राद्धांत विश्वेदेवांना भाग मिळाला नाही ते श्राद्ध आसुर (दैत्यांना प्रापक)
असें मंत्रवर्जित श्रुतुत्त्व होतें” असें **बह्वचरशिष्टवचन** आहे. हा प्रकार (नवश्राद्धांत विश्वेदेव असणें) बह्वचनाच
लागू आहे. कारण, त्यांनाच सांगितले आहेत, इतरांस तर “या ठिकाणीं विश्वेदेव नाहीत” या **कात्यायन**वचनानें विश्व-
देवांचा निषेधच आहे असें **पृथ्वीचंद्रोदय** सांगतो. दुसरे ग्रंथकार तर नैमित्तिक म्हणजे संपिंडीकरण श्राद्ध, असें सांगतात.
जरी भविष्यवचनांत तच्छब्दानें एकोद्दिष्ट सांगितलें तथापि “तें एकोद्दिष्टही देवरहित करावें, अयुग्म (११३) अशा
ब्राह्मणांना भोजन घालावें” या वचनानें त्याच ठिकाणीं विश्वेदेवांचा निषेध केला आहे. जरी संपिंडीकरणश्राद्ध अंशानें
एकोद्दिष्ट आहे, म्हणून त्या ठिकाणीं विश्वेदेवांचा निषेध प्राप्त झाला, तरी “संपिंडीकरण श्राद्ध देवपूर्वक करावें” ह्या वचनानें
तें विश्वेदेवयुक्त आहे. **हेमाद्रींत आदित्यपुराणांत—**“सर्व इष्टिश्राद्धांत क्रतुदक्ष हे विश्वेदेव, नांदीश्राद्धांत सत्यवसु,
नवश्राद्धांत कामकाल, सूर्य कन्याराशिस्थ असतां जें महालय श्राद्ध व इतर काम्यश्राद्ध त्यांत धुरिलोचन, आणि पार्वणश्राद्धांत
पुरुरवार्ष विश्वेदेव होत.” कचित्स्थलीं विश्वेदेवांचा अपवाद सांगतो **हेमाद्रींत शातातप—**“नित्यश्राद्ध देवरहित करावें,
तसेंच एकोद्दिष्ट (संपिंडीकरणाच्या पूर्वी होणारें तें) देवरहित होय. मातृश्राद्ध देवरहित आहे तें वेगळे दोन ब्राह्मण
प्राञ्जुख बसवून करावें, इतर श्राद्धे देवपूर्वक करावीं.” वरील वचनांत मातृश्राद्ध देवरहित सांगितलें तें नांदीश्राद्धाचा भिन्न-
प्रयोग करावयाचा त्यापक्षां समजावें असें **हेमाद्रि** सांगतो. इति श्राद्धदेवतानिर्णय.

अथविप्राः तेचोत्तममध्यमाधमभेदेनत्रिविधाः तत्राद्याः **अत्रमदीयाःश्लोकाः** त्रिनाचिकेतस्त्रिम-
धुश्चबह्वचोप्याथर्वणोजुषसामगौच पङ्गविचित्रिसुपर्णवेत्ताप्यथर्वशीर्ष्णाध्ययनेतरश्च शतायुवेदार्थविदौप्र-
वक्तास्याद्ब्रह्मचारीचतथाग्निचिच्च सीददृत्तिःसत्यवाक्पूरुषैःस्वैर्मातापित्रोःपंचभिःख्यातवंशः पत्नीयुक्तोज्येष्ठ-
सामापुराणवेत्तापुत्रीचेतिहासेष्वभिज्ञः योगीभिर्भुःसामगोब्रह्मवेत्तापंचाग्निश्चश्रोत्रियस्तस्तुतोवा शंभुध्यायी-
श्रीशपादाब्जसेवीपांथश्चैतेतूत्तमाःसंप्रदिष्टाः भिक्षुर्योगीपांथएतेत्वल्भ्याभागाजल्लब्धाश्चेत्तदाभोजनीयाः श्राद्धे-
विप्रेषूपविष्टेषुपश्चात्संप्राप्ताश्चेद्विप्रपत्तौतुभोज्याः अत्रमूलं**हेमाद्रौजेयम्** तत्रैवनारदः योवैयतीननादृत्य
भोजयेदितरान्द्विजान् विजानन्वसतोग्रामेकव्यंतद्यातिराक्षसान् **दीपकलिकायांदक्षः** विनामांसेनम-
धुनाविनादक्षिणयाशिषा परिपूर्णंभवेच्छ्राद्धंयतिषुश्राद्धभोजिषु एतच्चज्ञानिविषयम् त्रिनाचिकेतस्त्रिसुपर्णोय-
जुर्वेदैकदेशौतद्गतेनतदध्यायिनौ यस्यसप्तपूर्वसोमपाःसत्रिसुपर्णइति**बोपदेवः** त्रिमधुर्ऋग्वेदैकदेशः तद-
ध्यायी केचिन्नाचिकेतंचयनंत्रिःकृतवानित्यर्थमाहुस्तद्धेमाद्रिविरुद्धम् **हेमाद्रौगौतमः** युवभ्योदानप्रथमं-
पितृवयसह्येके **मात्स्येमनुः** यश्चव्याकुस्तेवाचंयश्चमीमांसतेध्वरम् सामस्वरविधिज्ञश्चपंक्तिपावनपा-
वनाः **कौर्मे** असमानप्रवरकोह्यसगोत्रस्तथैवच असंबंधीचविज्ञेयोब्राह्मणःश्राद्धसिद्धये **गारुडे** श्राद्धेषु-

१ नांदीश्राद्धविषयीं तीन पक्ष आहेत ते असे—तीन दिवस तीन पार्वणे करावीं हा एक पक्ष. एक दिवशीं वेगवेगळीं तीन पार्वणे
करावीं, हा दुसरा पक्ष. अथवा सप्ततंत्रानें पार्वणत्रय करावें हा तिसरा पक्ष. जेव्हां तीन पार्वणे वेगवेगळीं करावयाचीं तेव्हां मातृ-
पार्वण देवरहित करावें, असा भाव.

विनियोज्यास्तेब्राह्मणाब्रह्मवित्तमाः येयोनिगोत्रमंत्रांतेवासिसंबंधवर्जिताः **मनुः** नमित्रभोजयेच्छ्राद्धेधनैः-
कार्योऽस्यसंग्रहः नारिनमित्रंयोविद्यांतुश्राद्धेनिमंत्रयेत् द्वयोर्भ्रात्रोःश्राद्धेभोजननिषिद्धं पितृपुत्रौभ्रातरौद्वौ-
निरप्रिगुर्विणीपतिम् सगोत्रप्रवरंचैवश्राद्धेपुपरिवर्जयेदितिश्राद्धदीपकलिकायांजातूकर्णयोक्तेः ॥

आतां श्राद्धाविषयीं ब्राह्मण सांगतो—

ब्राह्मण तीन प्रकारचे—उत्तम, मध्यम, आणि अधम. त्यांत पहिले (उत्तम) सांगतो—या ब्राह्मणांविषयीं मी (कम-
लाकरभट्टांत) केलेले श्लोक—“त्रिनाचिकेत व त्रिसुपर्ण (हे यजुर्वेदांतील भाग आहेत त्यांचें व्रतपूर्वक अध्ययन करणारे),
त्रिमधु (त्रिमधु म्हणून ऋग्वेदांतील एकदेश त्याचें अध्ययन करणारा), ऋग्वेदी, अथर्वण वेद म्हटलेला, यजुर्वेद म्हट-
लेला, सामवेद म्हटलेला, वेदांचीं सहा अंगें जाणणारा, त्रिसुपर्णवेत्ता, अथर्वशीर्षाच्या अध्ययनाविषयीं रत, शतायु (शंभर
वर्षे वांचलेला), वेदार्थवेत्ता, वेदार्थ सांगणारा, ब्रह्मचारी, अग्निचयन करणारा, उपजीविकारहित, सत्यवक्ता, मातृकुलांतील
व पितृकुलांतील पांच पुरुषांनीं ज्याचा वंश प्रख्यात आहे तो, सपत्नीक, ज्येष्ठसामा (सामवेदांतील ज्येष्ठसामभाग अध्ययन
केलेला), पुराणवेत्ता, पुत्रवान, भारतादि इतिहास जाणणारा, योगाभ्यासी, संन्यासी, सामगान करणारा, ब्रह्मज्ञानसंपन्न, पांच
अग्नि धारण करणारा, श्रोत्रिय (वेदपारंगत), श्रोत्रियाचा पुत्र, शंकराचें ध्यान करणारा, विष्णूच्या चरणकमलाची सेवा
करणारा, पांथ (मार्ग चालून आलेला), हे ब्राह्मण उत्तम म्हणून सांगितले आहेत. मिथु, योगी आणि पांथ हे अलभ्य
आहेत, भाग्यवशानें प्राप्त झाले तर त्यांना भोजन घालवें. श्राद्धामध्ये ब्राह्मण बसल्यानंतर जर हे प्राप्त झाले तर ब्राह्मणांच्या
पंक्तीमध्ये यांना भोजन घालवें.” ह्या श्लोकांचें मूल हेमाद्रींत पाहावें. तेथेंच **नारद** सांगतो—“यति गांवांत राहात आहेत
असें जाणून त्यांचा अनादर करून जो मनुष्य श्राद्धांत इतर ब्राह्मणाला भोजन घालतो, त्याचें तें श्राद्ध राक्षसांस प्राप्त होतें.”
दीपकलिकेत दक्ष—“यतींना श्राद्धभोजन घातलें असतां मांगावांचून, मधावांचून, दक्षिणवांचून व आशीर्वादावांचून
श्राद्ध परिपूर्ण होतें.” हें सांगणें यति ज्ञानी असतील तद्विषयक आहे. पूर्वश्लोकांतील त्रिनाचिकेत व त्रिसुपर्ण हे यजुर्वेदाचे
एकदेश आहेत त्यांचें व्रतग्रहणपूर्वक अध्ययन करणारे रामजावे. ज्याचे सात पूर्वज सोमपान केलेले तो त्रिसुपर्ण असें
वोपदेव सांगतो. त्रिमधु म्हणून ऋग्वेदाचा एकदेश तो म्हणणारा. **केचिन्** ग्रंथकार—नाचिकेताचें चयन त्रिवार करिता
झाला तो त्रिनाचिकेत, असें म्हणतात, तें हेमाद्रीविरुद्ध आहे. हेमाद्रींत **गौतम**—“तरुणांना दान प्रथम करावें. पित्याच्या
वयाचा जो ब्राह्मण त्याला प्रथम द्यावें, असें कोणी म्हणतात.” **मातस्यांत व मनु**—“व्याकरणशास्त्रवेत्ता, यज्ञाची सीमांसा
जाणणारा आणि सामवेदाचा स्वरविधि जाणणारा हे तिघे पंक्तिपावनांनाही पवित्र करणारे आहेत.” **कौर्मांत**—“भिन्न-
प्रवरी, भिन्नगोत्रा व संबंधरहित असे जे ब्राह्मण ते श्राद्धाविषयीं समजावे.” **गारुडांत**—“योनिबंधी (मातुल, श्वशुर,
शालक इत्यादि), गोत्रबंधी (स्वगोत्रांतील), मंत्रबंधी (मंत्रदीक्षा दिलेले व घेतलेले), आणि शिष्यत्वबंधी हे वर्ज्य
करून इतर ब्रह्मवेत्ते ब्राह्मण श्राद्धाविषयीं योजावे.” **मनु**—“मित्राला श्राद्धांत सांगूं नये, द्रव्य देऊन त्याला वश करावा.
जो शत्रु नाही व मित्र नाही त्याला श्राद्धाचें आमंत्रण द्यावें.” एका श्राद्धांत दोन ब्राह्मणां सांगण्याचा निषेध आहे; कारण,
“पितापुत्र, दोन भ्राते, अग्निरहित, गर्भिणीपति, सगोत्र, सप्रवर, हे श्राद्धाविषयीं वर्ज्य करावे.” असें श्राद्धदीपकलिकेत
जातूकर्ण्याचें वचन आहे.

अथमध्यमाः हेमाद्रौकौर्मगार्ग्यौ नैकगोत्रेहविर्दद्याद्यथाकन्यातथाहविः अभावेह्यन्यगोत्राणा-
मेकगोत्रास्तुभोजयेत् अत्रकेचित्स्वशास्त्रीयान्मुल्यानाहुः **पठंतिच** निमंत्रयीतपूर्वेणुः स्वशास्त्रीयान्द्विजोत्त-
मान् स्वशास्त्रीयद्विजाभावेद्विजानन्यान्निमंत्रयेदिति इदंतुनिर्मूलत्वाद्देमाद्रिणादूपितत्वाच्चोपेक्ष्यम् **मनुरपि**
यत्नेनभोजयेच्छ्राद्धेब्राह्मणवेदपारंगं शाखांतगमथाध्वयुंछंदोगंवासमाप्तिगम् एषामन्यतमोयस्यभुंजीतश्राद्धम-
र्चितः पितृणांतस्वतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसाप्तपौरुषी अत्र**मामकःश्लोकः** मातामहोमातुलभाग्निनेयदौहित्रजा-
मातृगुरुस्वशिष्याः ऋत्विक्चयाज्यश्वशुरौस्वबंधुश्चालागुणाह्यास्त्वनुकल्पभूताः बंधवोमातृवसृपितृवसृ-
मातुलपुत्रादिति**वोपदेवः** अत्रमूलहेमाद्रौज्ञेयम् सगुणस्वस्त्रीयाद्यतिक्रमेदोपएव सप्तपूर्वान्सप्तपरान्पुरु-
षानात्मनासह अतिक्रम्यद्विजानेताभ्रक्रेपातयेत्स्वग संबन्धिनस्तथासर्वान्दौहित्रंविदपतितथा भाग्निबंधि-
शेषेणतथाबंधुंस्वगाधिपेति**मदनरत्नेभविष्योक्तेः** अतएवयाज्ञवल्क्यो ब्राह्मणप्रातिवेशयानामेतेषु
वानिमंत्रणइतिगुण्यतिक्रमेदशपणंदंडमाह आसन्नमात्रपरमिदम् मूर्खेतुनदोषः ब्राह्मणातिक्रमोनास्तिमूर्खे-
ब्रविर्जितेज्वलंतमप्रिमुत्सृज्यनहिभस्मनिद्वयेतदितिकात्यायनोक्तेः विप्रस्वापिदोषः अविद्वान्भस्मिद्विद्वानो-

भस्मीभवतिदाहवदितिमनूक्तेः अपरार्कंअग्निः षड्भ्यस्तुपुरुषेभ्योऽर्वागश्राद्धेयास्तुगोत्रिणः षड्भ्य-
स्तुपरतोभोव्याःश्राद्धेस्त्युर्गोत्रजाअपि एतच्चब्राह्मणालाभे अपिशब्दात् असंभवेहेमाद्रीगौतमः शिष्यां-
क्षेकेसगोत्रांश्चभोजयेदूर्ध्वत्रिभ्योगुणवतः आपस्तंबः ब्राह्मणान्भोजयेद्योनिगोत्रमंत्रांतेवास्यसंबंधिनः
गुणहान्यांतुपरेषांसमुदितःसोदर्योपिभोजयितव्यः एतेनांतेवासिनोव्याख्याताइति अत्रविशेषमाहात्रिः
पितापितामहोभ्रातापुत्रोवाथसर्पिडकः नपरस्परमर्घ्याःस्युर्नश्राद्धेऋत्विजस्तथा ऋत्विक्पुत्रादयोप्येतेसकुल्या-
ब्राह्मणाःस्मृताः वैश्वदेवेनियोक्तव्यायद्येतेगुणवत्तराः सगोत्राननियोक्तव्याःस्त्रियश्चैवविशेषतइति ।

आतां मध्यम ब्राह्मण सांगतो—

हेमाद्रीत कौर्म व गार्ग्य—“एकगोत्रांत हवि (श्राद्धाज) देऊं नये; कारण, जशी कन्या तसें हवि आहे. अन्य-
गोत्र्यांचा अभाव असेल तर एकगोत्रांनाही भोजन यावें.” येथें कोणी आपल्या शाखेचे ब्राह्मण मुख्य आहेत असें म्हणतात
व त्याविषयी वचनही सांगतात—“पूर्वेदिवशीं आपल्या शाखेचे उत्तम ब्राह्मण सांगावे, आपल्या शाखेचे न मिळतील तर
इतर ब्राह्मण सांगावे.” हें वचन निर्मूल असल्यामुळें व हेमाद्रीनें दूषित केल्यामुळें उपेक्षणीय आहे. **मनुही**—“श्राद्धाविषयीं
प्रयत्नानें वेदपारंगत असा ब्राह्मण सांगावा; शाखाध्ययन केलेला यजुर्वेदी सांगावा; किंवा छंदोग समाप्त झालेला असा ब्राह्मण
सांगावा. ज्याच्या श्राद्धांत ह्या तिघांपैकी एक पूजित होऊन भोजन करील त्याच्या पितरांची सात पुरुषपर्यंत शाश्वत तृप्ति
होईल.” या ठिकाणीं मी (कमलाकरां) केलेला श्लोक—“मातामह, मातुल, भगिनीपुत्र, कन्यापुत्र, जामाता, गुरु,
शिष्य, ऋत्विक्, यज्ञ करणारा, श्वशुर, बंधु, शालक, हे गुणयुक्त असतील तर मध्यम होत.” वरील श्लोकांतील बंधुशब्दानें
माउसबंधु, आतेबंधु, व मामेबंधु हे ध्यावे, असें बोपदेव सांगतो. ह्या श्लोकाचें मूल हेमाद्रीत पाहावें. गुणयुक्त अशा
भागिनेयादिकांचा अतिक्रम केला (न सांगितले) तर दोषच आहे. कारण, “सारे संबंधी, दौहित्र, जामाता, भागिनेय आणि
बंधु ह्या ब्राह्मणांचा अतिक्रम करील तर आपणासहवर्तमान सात पूर्वीच्या व सात पुढच्या पुरुषांस नरकांत पाडील.” असें
मदनरत्नांत भविष्यवचन आहे, म्हणूनच याज्ञवल्क्यानें “जवळच्या ब्राह्मणांना निमंत्रण केलें नाहीं तर हाच दंड” ह्या
वचनानें गुणी ब्राह्मणांचा अतिक्रम झाला असतां दहा पण (पैसे) दंड सांगितला. हा भविष्योक्त दोष गुणवान् जवळ असतील
तद्विषयक आहे. मूर्ख असतील तर दोष नाहीं. कारण, “मूर्ख वेदरहित असा असतां अतिक्रम केला तर दोष नाहीं; कारण,
प्रथीत अग्नि ठाकून भस्माचे ठिकाणीं होम करावयाचा नाहीं. अर्थात् वेदरहित तो भस्मासारखा होय.” असें कात्यायन-
वचन आहे. अविद्वान् ब्राह्मणालाही दोष आहे. कारण, “अविद्वान् प्रतिग्रह करील तर काष्ठाप्रमाणें भस्मरूप होतो” असें
मनुवचन आहे. **अपरार्कत अग्नि**—“सहा पुरुषांच्या अलीकडचे स्वगोत्रज ब्राह्मण श्राद्धाला योग्य नाहींत. सहा
पुरुषांच्या पलीकडचे गोत्रज असले तरी ते श्राद्धाला सांगावे.” “गोत्रजा अपि” येथें अपिशब्द आहे त्यावरून ब्राह्मण न
मिळतील तर गोत्रज सांगावे, असें होतें. ब्राह्मणांचा असंभव असतां हेमाद्रीत गौतम—“अन्य आचार्य असें
सांगतात कीं, गुणवंत असे तीन पुरुषांच्या पलीकडचे गोत्रज व शिष्य हे श्राद्धाला सांगावे.” **आपस्तंब**—“योनि, गोत्र,
मंत्र, शिष्यत्व या संबंधांनीं रहित अशा ब्राह्मणांस भोजन घालवें; गुणी ब्राह्मण न मिळेल तर इतर ब्राह्मणांच्या समुदायांत
सहोदर भ्रात्यालाही भोजन घालवें. येणेंकरून अंतेवासी म्हणजे शिष्य याचें स्पष्टीकरण झालें.” येथें विशेष सांगतो **अत्रि**—
“पिता, पितामह, भ्राता, पुत्र, अथवा सर्पिड हे परस्पर पूजेला योग्य होत नाहींत. तसेच श्राद्धामध्ये ऋत्विज योग्य
नाहींत. ऋत्विजांचे पुत्रादिक हे सकुल्य ब्राह्मण म्हटले आहेत. जर हे गुणवंत असतील तर यांना वैश्वदेवस्थानी योजावे,
सगोत्र ब्राह्मण सांगूं नयेत व विशेषंकरून स्त्रियाही सगोत्र सांगूं नयेत.”

अथवर्ज्याः अत्रमामकाःश्लोकाः वर्ज्यान्प्रवक्ष्येत्वथरोगिवैरिहीनाधिकांगान्कितवान्कृतवान्
नक्षत्रश्रावणेचजीवमानान्भैषज्यवृत्त्यापिचराजधृत्यान् संगीतकायस्थकुसीदवृत्त्यावेदत्रयेणापिकवित्ववृत्त्या
देवाचनेनापिचजीवमानान्स्वाध्यायदाराभिसुतोऽङ्गकाणान् दुर्बालखल्वाटकुनख्यधर्मिनटांश्चपौनर्भवकृष्णदं-
तान् अगारदाहीगरदःसमुद्रयायीचकुंडात्रयकूटकारी बालांश्चयोध्यापयतेस्वपुत्रादवाप्तविद्यस्त्वथकुंडगोलौ
अप्रेदिविध्वाःपतिरस्रकर्तासोमक्रीयैतैलिककेकराक्षौ युद्धाचार्यःपक्षिणांपोषकश्चस्रोतोभेत्तावृक्षसंरोपकश्च
मेघाणांभामाहिषाणांचपुष्ट्यास्त्रीयस्त्रीषुप्रहितैर्यश्चजारैः जीवत्यभ्येतुश्चदत्तानुयोगाद्भव्यप्राप्त्यैवेदमुद्धाटयन्तः
प्रमयाजिपशुकेश्विक्रीयैस्तेनशिल्पिपितृवादाकारकान् अर्थकामरतशूद्रयाजकश्मश्रुहीनजटिमुडिनिर्घृणाव्
वस्त्वैकगृहिणीरजस्वलास्वार्थमाकरतप्तापदायकान् ङीबकुष्ठयतिविच्छेदितेक्ष्णान्कुष्ठज्वामनयुषाभिशापिनः

पुत्रहीनमथकूटसाक्षिणंप्रातिहारिकमयाज्ययाजकं स्वात्मदातृपरिवेतृयाजकस्तेनहिंसकमुखाविवर्जयेत् अत्र-
मूलहेमाद्रौपृथ्वीचंद्रोदयेचक्षेत्रे भारतेदानधर्मेपुश्राद्धवर्ज्यविप्राधिकारे कितवोभूणहायक्ष्मीपशुपा-
लोनिराकृतिः ग्राम्यप्रेष्योवार्धुषिकोगायकःसर्वविक्रयी सामुद्रिकोराजभृत्यसैलिकःकूटकारकः पित्राविवद-
मानश्चयस्यचोपपतिर्गृहे अभिशस्तस्तथास्तेनःशिल्पंयश्चोपजीवति पर्वकारश्चसूचीचमित्रधुकृपारदारिकः
अत्रतानामुपाध्यायःकांडपृष्ठस्तथैवच श्वभिश्चयःपरिक्रामेद्यःशुनादष्टएवच परिवर्तिस्तथास्तेनोदुश्चर्मागुरु-
तल्पगः कुशीलवोदेवलकोनक्षत्रैर्यश्चजीवति ईदृशाब्राह्मणाज्ञेयाअपांकेत्यायुधिष्ठिर तथा ऋणकर्ताचयोरारज-
नयश्चवार्धुषिकोनरः कांडपृष्ठःस्वशाखांल्यक्त्वापरशाखयोपनीतः तदध्यायीच क्षत्रियवैश्यवृत्तौ नारदस्तु
तस्यामेवतुयोवृत्तौब्राह्मणोवसतेरसान् कांडपृष्ठःश्रुतोमार्गात्सोपांकेयःप्रकीर्तितइत्याह हारीतः शूद्रापुत्राः-
स्वयंदत्तायेचैतैक्रीतकाःसुताः तेसर्वेमनुनाप्रोक्ताःकांडपृष्ठानसंशयः ।

आतां वर्ज्य ब्राह्मण सांगतो—

येथें मी (कमलकरभट्टाचें) केलेले श्लोक—“वर्ज्य सांगतो—रोगी (ज्वर-अतिमार-क्षय इत्यादि रोगयुक्त),
शत्रु, एकादा अवयव नमलेला, एकादा अवयव अधिक असलेला, कपटी, कृतघ्न (मित्रद्रोही), ज्योतिषशास्त्रां ज्ञीं जीवन
करणारा, वैद्यकीवर जीवन करणारा, राजसेवक, गायक, लेखक, व्याजवध्यां ज्ञीं जीवन करणारा, वेदविक्रय करणारा, कवित्व
करून निर्वाह करणारा, देवपूजा करून जीवन करणारा, अध्ययनत्याग करणारा, स्त्रीत्याग करणारा, अभित्याग करणारा,
पुत्रत्याग करणारा, दुष्ट केशांचा, टकल पडलेला, कुत्सितनग्न, अधर्मा, नट, पौनर्भव, (द्विवारविवाहित स्त्रीचा पुत्र),
काळ्या दांतांचा, घर जाळणारा, विष घालणारा, समुद्रयान करणारा, कुंडांचें अन्न खाणारा, खोटें करणारा, बालकांस शिक-
विणारा, आपल्या पुत्रापासून विद्या शिकलेला, कुंडे, गोळे, अग्नेदिधिपूचा पति, शस्त्रास्त्रे करणारा, सोमविक्रय करणारा, तेल
गाळणारा, केकराक्ष, युद्धाचा आचार्य, पक्षिपोषक, जलप्रवाह फोटणारा, वृक्ष लावणारा, मेंढ्यांचा पोषक, महिषांचा पोषक,
आपल्या स्त्रियांचे ठिकाणीं जारकर्मानें जीवन करणारा, शिष्यांपासून द्रव्य घेऊन जीवन करणारा, द्रव्यप्राप्तीसाठीं वेदघोष
करणारा, गांवाचा उपाध्याय, पशुविक्रयी, केशविक्रयी, चोर, शिल्प करणारा, पित्याशीं वाद करणारा, द्रव्य काम यांत निमग्न
अमलेला, शूद्राचा याग करणारा, रमथुरहित, जडाधारी, मुंडलेला, निर्दय, ज्याची स्त्री रजस्वला तो, आपल्याकरितांच पाक
करणारा, शाप देणारा, नपुंसक, कुष्ठरोगी, अत्यंत लाल डोळे असलेला, कुबडा, खुजा, शब्दानें दोषी झालेला, पुत्रहीन,
खोटी माक्ष देणारा, द्वारपाल, पतिनादिकांचा याग करणारा, आपलें दान करणारा, परिवर्त्याचा याग करणारा, चोर, हिंसक
इत्यादि ब्राह्मण वर्ज्य करावे.” यांचें मूल हेमाद्रींत व पृथ्वीचंद्रोदयांत पाह्यां. भारतांत दानधर्मांत श्राद्धवर्ज्य
विप्राधिकारी सांगतो—“कपटी, गर्भहत्या करणारा, क्षयरोगी, पशुपालक, स्वशाखाध्ययनरहित, गांवाचा दूत, वाणिज्य
करणारा, गायक, सर्व विक्रय करणारा, सामुद्रिक करणारा, राजसेवक, तेल गाळणारा, खोटें करणारा, पित्याशीं विवाद कर-
णारा, ज्याच्या स्त्रियेला दुसरा उपपति आहे तो, सुरापानादि मिथ्या दोष ठेवलेला, चोर, शिल्पकर्मानें जीवन करणारा,
पेरें करणारा, सुई करणारा, मित्रद्रोही, परस्त्रीचेचर्या जाणारा, उपनयनरहितांचा उपाध्याय, कांडपृष्ठ, कुत्र्यांबरोबर फिर-
णारा, कुत्र्यांनं दंड केलेला, परिवर्त्याचा ज्येष्ठ अविवाहित भ्राता, चोर, कुष्ठी, गुरुपत्नीगामी, नर्तक, देवैलक, जोशी, अशा
प्रकारचे ब्राह्मण अपांकेय (अपवित्र) आहेत. तसेच ऋणकर्ता, वाणिज्यकारी हे वर्ज्य. कांडपृष्ठ म्हणजे आपली शाखा
टाकून परशाखेनं उपनीत व त्या शाखेचें अध्ययन करणारा होय. नारद तर—“जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यवृत्ति पतकून
रसांचा व्यवहार करितो, तो मार्गापासून न्युन व अपांक्त असा कांडपृष्ठ होय” असें सांगतो. हारीत—“श्राद्धे पुत्र
आपलें आपण दान केलेले व विकत घेतलेले ते सारे पुत्र कांडपृष्ठ म्हणून मनुनं गांगितले आहेत.”

अन्येपिहेमाद्रौमात्स्ये त्रिशंकूनवर्बरानांध्रान्चीनद्रविडकौंकणान् कर्णाटकांस्तथाभीरान्कालिंगांश्च
विवर्जयेत् तत्रैवसौरपुराणे अंगवंगकलिंगांश्चसौराष्ट्रान्गुर्जरांस्तथा आभीरान्कौंकणांश्चैवद्राविडान्वाक्षि-
णायनान् आंवल्यान्मागधांश्चैवब्राह्मणांस्तुविवर्जयेत् चंद्रिकायांयमः काणाःकुब्जाश्चषंडाश्चकृतव्रातगुदव-

१ भर्ता जीवत असतां जारापासून झालेला तो कुंड. २ भर्ता मृत असतां जारापासून शाखा तो गोलक. ३ ज्येष्ठ भगिनी
अविवाहित असतां कनिष्ठेचा विवाह केला तर ती कनिष्ठा अग्नेदिधिषू. आणि ज्येष्ठा दिधिषु म्हटली आहे. ४ ज्येष्ठ भ्राता अविवाहित
असतां कनिष्ठानें विवाह केला तर तो परिवेत्ता होतो. ५ द्रव्याच्या इच्छेनं नित्य देवपूजा तीन वर्षेपर्यंत करणारा तो देवव्रत
व देवव्रतग्रहण करणारा तोही देवव्रत होय, तो सर्वकर्माविषयी वर्ज्य.

ल्यमाः मानकूटास्तुलाकूटाः शिल्पिनोपामयाजकाः राजभृत्यांधवधिरमूकखल्वाटपंगवः वणिजोमधुहर्तारोग
रदाबनबाहकाः समयानांचभेत्तारः प्रदानेयेनिवारकाः प्रब्रज्योपनिवृत्ताश्चवृथाप्रब्रजिताश्च ये यश्चप्रब्रजिता-
ज्जातः प्रब्रज्यावसितश्चयः अवकीर्णांचवीरप्रोगुरुप्रः पितृदूषकः **श्राद्धकाशिकायां कात्यायनः** द्विर्नमः
कीलदुश्चर्मशुष्ठोतिकपिलस्तथा छिप्रोष्ठश्छिन्नलिंगश्चनैवकेतनमर्हति द्विर्नमः पित्रोर्वंशे त्रिपुरुषं विच्छिन्न-
वेदामिः **हेमाद्रौ मरीचिः** अविद्वकर्णः कृष्णश्चलंबकर्णस्तथैवच वर्जनीयाः प्रयत्नेन ब्राह्मणाः श्राद्धकर्मणि
ब्राह्मे मूकश्चपूतिनासश्चछिन्नांगश्चाधिकांगुलिः गलरोगीचगडमानस्फुटितांगश्चसज्वरः पंडतूवरमंदांश्च-
श्राद्धेष्वेतां न्विवर्जयेत् लंबकर्णचाहृतत्रैव **गोभिलः** हनुमूलादधः कर्णौ लंबौ तु परिकीर्तितौ द्व्यंगुलौ त्र्यंगुलौ-
शस्ताविति शातातपोब्रवीत् चंद्रिकायां **यमः** द्व्यंगुलातीतकर्णस्य भुंजते पितरो न तु पंडश्चात्र चंद्रिकोक्तः सप्त-
विधो ब्राह्मः यथा पंडको वातजः पंडः पंडः क्लीबोनपुंसकः कीलकश्चेतिसप्तैव क्लीबभेदाः प्रकीर्तिताः **पराशर-**
माधवीयेतु चतुर्दशविधा उक्ताः तेषां स्वरूपाणि तत्रैव ज्ञेयानि ।

दुसरेही **हेमाद्रौ त मात्स्यांत** सांगतो—“त्रिशंकूच्या देशांतील, वर्बरदेशांतील, आंध्र, चीन, द्रविड, कोंकणस्थ,
कर्णाटकस्थ, आसीर आणि कालिंग हे वर्ज्य करावे.” तेथेंच **सौरपुराणांत**—“अंग, वंग, कलिंग या देशांतील, सौराष्ट्र,
गुर्जर, आसीर, कोंकण, द्राविड, दक्षिणदेशस्थ, आंव्य, मागध, हे ब्राह्मण वर्ज्य करावे.” **चंद्रिकेंत यम—**“काणे, कुवडे,
पंड, मित्रद्रोही, गुरुपत्नीगमन करणारे, खोटें माप करणारे, खोटें वजन करणारे, शिल्पकारी, गांवाचे यजन करणारे,
राजसेवक, बहिरें, मुके, खल्वाट, पांगळे, वाणिज्य करणारे, मध चोरणारे, विप घालणारे, वन जाळणारे, शास्त्रनियमांचा
भंग करणारे, दान करणाराचें निवारण करणारे, संन्यास घेऊन त्याचा त्याग करणारे, दाम्भिक संन्यासी, संन्याशापासून
झालेला, संन्यास समाप्त केलेला, ब्रह्मचर्यव्रत दुष्ट झालेला, वीरहल्यारी, गुरुघातक, पितृदूषक, हे वर्ज्य.” **श्राद्धकाशिकेंत**
कात्यायन—“द्विर्नम, अंगावर चर्मकीलकांनीं दुष्ट कानडी झालेला, अति पांढरा, अति कपिलवर्णी, ओंठ छिन्न झालेला,
शिश्न छिन्न झालेला, असा ब्राह्मण निमंत्रणास योग्य नाही.” **हेमाद्रौ त मरीचि—**“ज्याचा कान टोंचलेला नाही तो,
कृष्णवर्ण, ज्याचे कान लांब आहेत तो, हे ब्राह्मण श्राद्धकर्माविषयीं यत्नानें वर्ज्य करावे.” **ब्राह्मांत—**“मुका, पूतिनास
(ज्याच्या नाकांतून सतत पू येतो तो), अवयव छिन्न झालेला, अधिक अंगुलि असलेला. गलरोगी, गलगंड झालेला, अंग
फुटलेला, ज्वरी, पंड, योग्यकारी इमंशु न आलेला, भाग्यहीन किंवा आलशी, हे ब्राह्मण श्राद्धाविषयीं वर्ज्य करावे.” लंबकर्ण
सांगतो तेथेंच **गोभिल—**“हनुवटीच्या मूळाच्या खाली सुटलेले कर्ण ते लंब होत. दोन किंवा तीन अंगुळें असलेले कर्ण
प्रशस्त आहेत, असें शातातप सांगता झाला.” चंद्रिकेंत **यम—**“ज्याचे कान दोन अंगुलांपेक्षां अधिक खाली आले त्याला
दिलेले अन्न पितर सेवन करीत नाहीत.” येथें पंड **चंद्रिकेंत** सांगितलेला सात प्रकारचा ध्यावा. तो असा—“पंडक,
वातज, पंड, पंड, क्लीब, नपुंसक, आणि कीलक, याप्रमाणें सात प्रकारचे पंड सांगितले आहेत.” **पराशरमाधवीयांत**
तर चवदा प्रकारचे सांगितले आहेत, त्यांचीं स्वरूपें तेथेंच पाहावीं.

चंद्रिकायां शातातपः अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येयज्यल्पदक्षिणैः तेषामन्नं भोक्तव्यमपांक्तास्ते प्रकी-
र्तिताः एतच्च शक्तौ सत्यां अपराकें भारते अत्रतीकितवः स्तेनः प्राणिविक्रयकोपिवा पश्चाच्चेत्पीतवान्सोमं-
सोपिकेतनमर्हति **श्राद्धदीपकलिकायां यमः** अपत्नीकश्च वर्ज्यः स्यात्सपत्नीकोप्यनम्रिकः **तत्रैवाश्व-**
लायनः प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तुसः जीवनार्थं परास्थीनि धृत्वा तीर्थं प्रयाति यः मातापित्रोर्विना सो-
पि पतितः परिकीर्तितः तत्रैव जातूकर्ण्यः यत्र मातुलजो द्वाहीयत्र वा वृपलीपतिः श्राद्धं न गच्छेत्तद्विप्राः कृत्यं-
च निरामिषं पिष्टपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् सगोत्रप्रवरंचैव श्राद्धे पुपरिवर्जयेत् **बृहन्नारदीये** शंखं-
चक्रं मृदां यस्तु कुर्वात्तस्मात्सेनवा सशस्त्रवद्वहिः कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः शंखचक्राद्यं कनचगीतनृत्यादिकं तथा
एकजातेरयंधर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः तेन येतस्तमुद्रादिविधयस्तेशूद्रविषया इति **पृथ्वीचंद्रोदये** शिवके-
शवयोरेकान् शूलचक्रादिकान् द्विजः न धारयेत मतिमान् वैदिके वर्त्मनि स्थित इत्याश्वलायनोक्तेश्च नृत्यंचो-
दराथर्था निषिद्धमिति **श्रीधरस्वामी** अन्येपि निषेधानि बंधेषु ज्ञेया इति दिक् ।

चंद्रिकैत शातातप—“अग्निष्टोमादिक यज्ञ अल्प दक्षिणा देऊन जे करितात त्यांचें अन्न खाऊं नये, ते अपांक्ष म्हटले आहेत.” हें सांगणें शक्ति असतां समजावें. **अपराकांत भारतांत—**“ब्रह्मचर्यादिव्रतहीन, कपटी, चोर, प्राणि-विक्रय करणारा, असा ब्राह्मण असून नंतर जर सोमपान करील तर तोही निमंत्रणास योग्य आहे.” **श्राद्धरीपकलिकैत यम—**“अपत्नीक वर्ज्य आहे. सपत्नीक असून अग्निरहित असेल तर तोही वर्ज्य आहे.” तेथेंच **आश्वलायन—**“जो प्रतिमाविक्रय करितो तो पतित आहे. आपल्या जीविकेसाठीं मातापितरांवांचून दुसऱ्यांच्या अस्थि घेऊन जो तीर्थास जातो तोही पतित म्हटला आहे.” तेथेंच **जातूकर्ण्य—**“जेथें मातुलकन्याविवाह केलेला आहे, किंवा जेथें शूद्रिणीचा पति आहे, आणि जें श्राद्ध आमिष (मांस) रहित आहे त्या श्राद्धांत भोजनास जाऊं नये. पितापुत्र, दोन भ्राते, अग्निरहित, गर्भिणीपति, सगोत्र आणि सप्रवर हे ब्राह्मण श्राद्धीं वर्ज्य करावे.” **बृहन्नारदीयांत—**“जो ब्राह्मण अंगावर शंख चक्र मातीनें किंवा तापलेल्या लोखंडांनें करील त्याला शूद्राप्रमाणें सर्व द्विजकर्मापासून दूर करावा. शंख चक्र इत्यादि चिन्हें करणें; गायन, नृत्य वगैरे करणें हा शूद्रजातीचा धर्म आहे, ब्राह्मणाचा धर्म नव्हे.” यावरून तत्समुद्रादि धारणाचे जे विधि ते शूद्रविषयक आहेत, असें **पृथ्वीचंद्रोदयांत** आहे. आणि “वैदिकमार्गाचेदार्ढीं राहणाऱ्या विद्वान् ब्राह्मणांनें शूल, चक्र इत्यादिक शिव विष्णु यांचीं चिन्हें धारण करूं नयेत” असें **आश्वलायन** वचनही आहे. नृत्य उदराकरितां निषिद्ध आहे असें **श्रीधरस्वामी** सांगतो. अन्यही निषेध निबंधांत आहेत ते पाहावे. ही दिशा दाखविणी आहे.

अत्रविप्राणां प्राहृत्योक्त्यैव तद्वर्ज्यानां निषेधे सिद्धे पुनर्वर्ज्यपरिगणनं निषिद्धवर्ज्यनिर्गुणप्राप्त्यर्थमिति विज्ञानेश्वरः कुष्ठिकाणादेरपवादो हेमाद्रौ वसिष्ठः अपि चेन्मंत्रविशुक्तः शरीरैः पंक्तिदूषणैः अदूष्यतं यमः प्राह-पंक्तिपावनएवसः क्वचिद्विप्राणां जातिमात्रेण प्राहृत्यमुक्तं चंद्रिकायामाग्नेये यदिपुत्रोगायां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् तानेव भोजयेद्विप्रांन्ब्रह्मणायै प्रकल्पिताः ब्रह्मणा कृतसंस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः अमानुपागया विप्रा ब्रह्मणायै प्रकल्पिताः तेषु पुत्रेषु संतुष्टाः पितृभिः सह देवताः तत्रैव न विचार्य कुलं शीलं विद्या च तप-एव च पूजितैस्तैस्तु संतुष्टा देवाः सपितृगुह्यकाः गायत्र्या निर्गुणा अपिते एव भोज्या इति हेमाद्रौ अक्षय्यवटश्राद्ध-एव तन्नियमो नान्यत्रेति त्रिस्थलीसेतौ पितामहचरणाः पृथ्वीचंद्रोदये पिपादो तीर्थे पुत्रा ब्रह्मणैव परीक्षेत कदाचन अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् स्कांदेपि ब्राह्मणा न परीक्षेत तीर्थक्षेत्रनिवासिनः मनुः न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवकर्मणि धर्मवित् पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः असंभव परमेतदिति मेधा-तिथिः हेमाद्रौ व्यासः गायत्रीमात्रमारोपिवरं विप्रः सुयंत्रितः नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वांशी सर्वविक्रयी काणाः कूटाश्च कुन्दाश्च दरिद्रा न्याधितास्तथा सर्वे श्राद्धे नियोक्तव्या मिश्रिता वेदपारंगैः ।

येथें ब्राह्मण ग्राह्य सांगितल्यावरूनच वर्ज्य ब्राह्मणांचा निषेध सिद्ध अमतां पुनः वर्ज्य ब्राह्मण भोगने ते सांगितले हे कशाकरितां असें म्हणाल तर जेथें गुणी ब्राह्मण मिळत नाहीत तेथें निषिद्ध वर्ज्य करून निर्गुण अवले तरी घ्यावे, असें समजण्याकरितां आहे, असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. कुष्टी (पांडव्या कोटाचा), काणा इत्यादिकांचा अपवाद सांगतो **हेमाद्रौ वसिष्ठ—**“मंत्रवेत्ता असून तो जरी शरीरपंक्तिदूषणांनीं युक्त आहे तथापि तो अदूष्य (दूषणाला अनर्ह) आहे असें यम सांगतो; कारण, तो ब्राह्मण पंक्तिपावनच आहे.” क्वचित् स्थळीं जातीचा ब्राह्मण अगला म्हणजे तो ग्राह्य होतो, असें सांगतो **चंद्रिकैत अग्निपुराणांत—**“कालवर्षे कधीही जर पुत्र गयेय जाईल तर तेथें ब्रह्मदेवांनां कल्पिलेले जे ब्राह्मण त्यांनाच भोजन घालावें. वेदानें ज्यांचें स्थान करून दिलें आहे ते ब्राह्मण ब्रह्मसमान आहेत, गर्येत ब्रह्मदेवांनां कल्पिलेले जे ब्राह्मण ते अमानुष (देवजातीतील) आहेत, ते तुष्ट झाले अमतां पितरांगह संपूर्ण देवता संतुष्ट होतात.” तेथेंच सांगतो—“कुल, शील, विद्या व तप यांचा विचार करूं नये, त्यांची पूजा केली म्हणजे देव, पितर, गुह्यक हे संतुष्ट होतात.” गर्येत निर्गुण असले तरी तेच ब्राह्मण श्राद्धाग गांगावे, असें **हेमाद्रि** सांगतो. अक्षय्यवटश्राद्धाविषयींच हा नियम आहे, इतराविषयीं नाही, असें **त्रिस्थलीसेतु** ग्रंथांत पितामह (नारायणभट्ट) सांगतात. **पृथ्वीचंद्रोदयांतही पाशांत—**“तीर्थांचेदार्ढी कधीही ब्राह्मणाची परीक्षा करूं नये, अन्नार्थी प्राप्त झाला अमतां त्याला भोजन घालावें, असें मनु सांगता झाला.” **स्कांदांतही—**तीर्थांचेदार्ढी क्षेत्रस्थ ब्राह्मणांची परीक्षा करूं नये.” **मनु—**“धर्मेवेत्यानें दैवकर्माविषयीं ब्राह्मणाची परीक्षा करूं नये, पित्र्यकर्म प्राप्त असतां प्रयत्नानें ब्राह्मणाची परीक्षा करावी.” ‘ब्राह्मणाची परीक्षा करूं नये’ हें सांगणें असंभवविषयक आहे असें **मेधातिथि** (मनुटीकाकार) सांगतो. **हेमाद्रौ व्यास—**“सुयंत्रित (नियमानें वागणारा) असा ब्राह्मण केवळ गायत्रीच म्हटलेला असला तरी तो श्रेष्ठ आहे. नियम सोडून वागणारा सर्व भक्षण करणारा व सर्व विक्रय करणारा असा चतुर्वेदी असला तरी तो योग्य नाही. काणे, कूट (कपटी, अनृतकारी), कुबडे, दरिद्री, व्याधियुक्त, हे सारे ब्राह्मण श्राद्धाचेदार्ढीं वैदिकांत मिश्र करून बसवावे.”

अथविप्रनिमंत्रणम् चंद्रिकायां वाराहे वस्त्रशौचादिकर्तव्यं श्रुतं कर्तास्सीति जानता स्थानोपलेप-
नं कृत्वा ततो विप्रान् निमंत्रयेत् दंतकाष्ठं च विसृजेद्ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत् तत्रैव प्रचेताः दक्षिणं चरणं विप्रः सव्यं-
वैश्वत्रियस्तथा पादावादाय वैश्वोद्वौ शूद्रः प्रणतिपूर्वकम् बृहस्पतिः उपवीत ततो भूत्वा देवार्थं तु द्विजोत्तमान्
अपसव्येन पित्र्येथ स्वयं शिष्योथ वा सुतः प्रचेताः सवर्णप्रेषयेदामं द्विजानां तु निमंत्रणे पृथ्वीचंद्रोदये-
स्कांदे राजकार्ये नियुक्तस्य बंधुनिग्रहवर्तिनः व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धविप्रेण कारयेत् चंद्रिकायां यमः अभो-
ज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमंत्रितम् तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमंत्रितम् तत्रैव पैठीनसिः सप्तपंचद्वौ वा श्रोत्रि-
याभिः निमंत्रयेत् आश्वलायनसूत्रे एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन्वा वृद्धौ फलभूयस्त्वं द्वाविति वृद्धिश्राद्धे
गौतमः नवावरान् भोजयेद्युजो बायथोत्साहम् याज्ञवल्क्यः द्वौ दैवप्राक् त्रयः पित्र्ये उदगैकैकमेव वा
मातामहानामेव्यं तंत्रं वा वैश्वदेविकम् दीपकलिकायां पराशरः संपत्तावर्थं पात्राणामेकैकस्य त्रयस्य स्यः पि-
त्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्च त्वारो वैश्वदेविके वृद्धयाज्ञवल्क्यः दशैकं पंचवा विप्रान् पार्ष्णे विनियोजयेत् अत्र वैश्व-
देवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादीनामेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन् पंचमन्नववोपवेशयेदिति निष्पण्णोर्थः मनुः द्वौ दैवपि-
तृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा भोजयेत्सुसृद्धोपि प्रसज्येत विस्तरे सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः पंचै-
तान्विस्तरो हंतितस्मान्नेहेतुविस्तरम् पृथ्वीचंद्रोदये शानातपः द्वौ दैवथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखौ उपवेशयेत्
पित्र्ये तूदङ्मुखौ स्त्रींश्च बृहत्पाद्वर्युसामगान् अत्यशक्तौ हेमाद्रौ देवलः एकेनापि हि विप्रेण पट्पिंडं श्राद्धमाच-
रेत् पडर्ध्यान् दापयेत् तत्र पडर्ध्यान् दद्यात्तथा हविः गोभिलः यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे लंघं दोगंतत्र भोजयेत् ऋचो य-
जुं पिसामानि त्रितयं तत्र विधत्ते ।

आतां ब्राह्मणांचं निमंत्रण सांगतो—

चंद्रिकेत वाराहान्—“उयां श्राद्ध करावयाचें अगलें म्हणजे पूर्वदिक्शीं वस्त्रे वंगरे धुवून वाळन घालवीं, घर
सारवून स्वच्छ करावें, नंतर ब्राह्मणांस निमंत्रण द्यावें. दंतभावन काष्ठानें करूं नये. ब्रह्मचर्य धारण करून शुद्ध असावें.”
तेथेंच प्रचेता—“ब्राह्मणां ब्राह्मणाच्या दक्षिणपादां स्पर्श करून निमंत्रण सांगावें, क्षत्रियां उज्या पादां स्पर्श
करून सांगावें, वैश्यां दोन्ही पादांना स्पर्श करून सांगावें आणि शूद्रां नमस्कारपूर्वक निमंत्रण करावें.” बृहस्पति—
“स्वतः श्राद्धकर्त्यां अथवा शिष्यां किंवा पुत्रां उपवीती करून देवांचे ब्राह्मण सांगावे, प्राचीनानीती करून पितरांचे
ब्राह्मण सांगावे.” प्रचेता—“ब्राह्मणांच्या निमंत्रणाविषयी आपल्या जातीचा आस मनुष्य पाठवावा.” पृथ्वीचंद्रोदयांत-
स्कांदां—“राजकार्याविषयी आज्ञा केलेल्या, बंदी अटकाव इत्यादिकांत राहिलेला, व इतर संकटांत असलेला त्यांना
ब्राह्मणाकडून श्राद्ध करावें.” चंद्रिकेत यम—“शूद्रां निमंत्रण केलें असतां ते ब्राह्मणांचे अन्न अभोज्य (भोजनाला
अयोग्य) होतें, तसेंच शूद्रांचे अन्न ब्राह्मणां निमंत्रण केलें असतां अभोज्य होतें.” तेथेंच पैठीनसि—“सात, पांच
किंवा दोन श्रोत्रिय (वैदिक) ब्राह्मण सांगावे.” आश्वलायनसूत्रांत—“एक पितराला एक एक, दोन दोन, किंवा तीन-
तीन सांगावे. जितके अधिक सांगावे तितकें फल अधिक मिळतें.” दोन दोन सांगितले ते वृद्धश्राद्धांत समजावे. गौतम—
“नवापेक्षां अधिक सांगावे, अथवा जसा आपणास उत्साह असेल त्याप्रमाणें विषम सांगावे.” याज्ञवल्क्य—“देवांविषयी
दोन ब्राह्मण प्राङ्मुख बसवावे, आणि पितरांविषयी तीन ब्राह्मण उदङ्मुख बसवावे, अथवा देवांना एक व पितरांना एक
असे बसवावे, मातामहपार्वणांला देखील असेच बसवावे. अथवा मातामहपार्वणांविषयी पृथक् विश्वेदेव नकोत. तर तंत्रां
विश्वेदेवांची सिद्धि होते.” दीपकलिकेत पराशर—“द्रव्यं, पात्रे यांची संपत्ति असेल तर एक एक पितराला तीन तीन
ब्राह्मण सांगावे, आणि विश्वेदेवांना चार सांगावे.” वृद्ध याज्ञवल्क्य—“पार्वणश्राद्धाचे ठायीं अकरा अथवा पांच ब्राह्मण
सांगावे.” ह्या सर्व वचनांची कुठकुठ करून निष्पन्न झालेला अर्थ—वैश्वदेवस्थानीं दोन किंवा चार बसवून पित्रादिकांच्या
एकेकाच्या स्थानीं एक, किंवा तीन, अथवा पांच, किंवा सात, अथवा नऊ बसवावे असा आहे. मनु—“सुवपन्न असला
तरी त्यांना देवांच्या स्थानीं दोन व पितरांच्या स्थानीं तीन असे ब्राह्मण सांगावे, अथवा दोहींकडे एक एक सांगावा,
विस्ताराच्या प्रसंगांत पडूं नये; कारण, विस्तार केला असतां उत्तम कर्म होणें, योग्यभूमि, अपराण्हादिकाल, शुद्धता आणि
गुणी ब्राह्मण मिळणें ह्या पांचांचा विघात होतो, तस्मात् विस्तार करूं नये.” पृथ्वीचंद्रोदयांत शातातप—“देवांकडे
अथर्वणवेदी दोन ब्राह्मण प्राङ्मुख बसवावे. पितरांकडे ऋग्वेदी, यजुर्वेदी व सामवेदी हे तीन ब्राह्मण उदङ्मुख बसवावे.”

१ एक कर्म बहुतांना उपशुक्त होतें त्यास तंत्र म्हटलें आहे. एक कर्म करतांना त्यास जोडून दुसरे करणें हेंही तंत्र होय.

अस्यंत अशक्ति असतां हेमाद्रीत देवत्व—“एका ब्राह्मणावरही सहा पिंडांचें श्राद्ध करावें, तेथें सहा पितरांना सहा अर्थ्य द्यावे, तसेंच सहा पितरांस अन्ननिवेदन करावें.” गोभिल—“जर श्राद्धविषयीं एक ब्राह्मण सांगावयाचा असेल तर तेथें छंदोग ब्राह्मण सांगावा; कारण, ऋचा, यजु आणि सामें हीं तीन त्या छंदोगाचे ठिकाणीं आहेत.”

अत्रवैश्वदेवविशेषमाहृतत्रैववसिष्ठः यद्येकंभोजयेच्छ्राद्धेद्वैतत्रकथंभवेत् अन्नपात्रेसमुद्भूतसर्वस्यप्रकृतस्यच देवतायतनेकृत्वाततःश्राद्धंसमाचरेत् प्रास्येदम्रौतदन्नंतुदद्याद्वाब्रह्मचारिणे एतच्चसर्पिंडीकरणवर्ज्यज्ञेयम् नत्वैवैकंसर्वेषांकाममनाद्येइत्याश्वलायनोक्तेः अस्यार्थउक्तोनारायणवृत्तौ आद्यंसर्पिंडीकरणंतद्वर्ज्येषुश्राद्धेपुकांमंत्रयाणामेकंभोजयेत् सर्पिंडीकरणेतुनियतंत्रिभिर्भवितव्यमिति अनाद्येपार्षणवर्जितेवा अभोजनेआमहेमश्राद्धादौवा अन्नाभावेइतिव्याख्यांतरंतत्रैवज्ञेयम् कारिकापि दैवेपित्र्येयवैकंसर्पिंडीकरणंविनेति अत्रैकविप्रेसाग्नेर्विशेषमाहपृथ्वीचंद्रोदयेप्रचेताः एकस्मिन्नब्राह्मणेदैवसाग्नेरग्निर्भवेत्सदा अनग्नेःकुशमुष्टिःस्याच्छ्राद्धकर्मणिसर्वतः सर्वथाविप्रालाभेतत्रैवहेमाद्रीचसत्यव्रतः निधायदर्भनिचयमासनेपुसमाहितः प्रैपानुप्रेपसंयुक्तंसर्वश्राद्धंप्रकल्पयेत् अत्रानन्यभावात्सत्रेइवऋत्विक्कार्येयजमानविधौनदक्षिणेतिकेचित् तन्न अष्टप्रार्थायादक्षिणायाःप्राप्तेः सर्वतत्रिजटेतुभ्यंयच्चश्राद्धमदक्षिणमितिपाद्मात् विदध्याद्वौतमन्यश्चेदक्षिणार्धहरोभवेत् स्वयंचेदुभयंकुर्यादन्यस्मैप्रतिपादयेदितिछंदोगपरिशिष्टाच्च एवंयतिश्राद्धेपि कात्यायनः यज्ञवस्तुनिमुष्टौचस्तंभेदर्भवदौतथा दर्भसंग्यानविहिताधिप्ररास्तरणेपुच मातृश्राद्धेतुविप्रालाभे सुवासिन्योपिभोजनीयाइत्याहापरार्कंवृद्धवसिष्ठः मातृश्राद्धेतुविप्राणामलाभेपूजयेदपि पतिपुत्रान्विताभन्यायोपितोष्टौकुलोद्भावाइति अष्टावितृद्धिश्राद्धविषयं ।

ह्या एकब्राह्मणाच्या श्राद्धांत विश्वेदेवांविषयीं विशेष सांगतो तेथेंच वसिष्ठ—“जर श्राद्धाचेठायीं एक ब्राह्मण सांगावयाचा तर तेथें दैवकर्म कसें होईल ! तें सांगतो—श्राद्धाविषयीं तयार केलेलें जें अन्न असेल त्यांतून सर्वप्रकारचें अन्न एका पात्रावर वाढून देवाच्यापुढें नेऊन देवावें, नंतर श्राद्ध यथाविधि करावें, नंतर देवापुढें तें अन्न अर्घांत टाकावें अथवा ब्राह्मचाऱ्याला द्यावें.” हा एका ब्राह्मणावर श्राद्धाचा प्रकार सर्पिंडीकरणव्यतिरिक्त श्राद्धाविषयीं समजावा. कारण, ‘नवैवैकं सर्वेषां काममनाद्ये’ असें आश्वलायनसूत्र आहे. त्या सूत्राचा अर्थ नारायणवृत्तींत सांगितला आहे तो अगा—आद्य म्हणजे सर्पिंडीकरण त्यावांचून इतर श्राद्धांचेठायीं यथेच्छ (इच्छेप्रमाणें) तीन पितरांना एक ब्राह्मण सांगावा, सर्पिंडीकरणांत तर अवश्य तीन ब्राह्मण सांगावे. हा अनायशब्दाचा अर्थ झाला. अथवा अनाय म्हणजे पार्वणवर्जित श्राद्ध त्या ठिकाणीं एकही सांगावा, किंवा अनाय म्हणजे भोजनरहित अशा आमश्राद्ध-हिरण्यश्राद्धादिकांत एकही सांगावा. अथवा अनाय म्हणजे अन्नाभाव असतां एक सांगावा ही अनाय शब्दाची इतर व्याख्या तेथें पहावी. कारिकाही “अथवा सर्पिंडीकरणावांचून इतर श्राद्धांत दैवाविषयीं व पितृयक्रमाविषयीं एकएक ब्राह्मण सांगावा.” एका ब्राह्मणावर श्राद्ध कर्तव्य असतां साप्ताहिक विशेष सांगतो पृथ्वीचंद्रोदयांत प्रचेता—“सर्वत्र श्राद्धकर्मांचेठायीं एक ब्राह्मण सांगितला अगतां साप्ताहिकं वैश्वदेवस्थानीं अग्निं योजावा आणि निराग्निकां कुशमुष्टिं योजावा.” मगथा ब्राह्मण मिळाला नसतां तेथेंच (पृथ्वीचंद्रोदयांत) व हेमाद्रीत सत्यव्रत—“समाधान अंतःकरण करून आसनांचेठायीं दर्भनिचय (काहीं दर्भ) ठेवून प्रेष अनुप्रेष (वचन प्रतिवचन) यांनीं युक्त असें सर्व श्राद्ध करावें.” हेंच चटश्राद्ध होय. जसें-सैत्रयागामध्ये ऋत्विजांचें कार्य यजमानांनीं करावयाचें आहे, व इतर ब्राह्मणांचा अभाव आहे म्हणून त्या ठिकाणीं दक्षिणा नाहीं, त्याप्रमाणें त्या चटश्राद्धामध्ये इतर ब्राह्मणांचा अभाव असल्यामुळें दक्षिणा नाहीं, असें केचित् म्हणतात. त्यांचें तें म्हणणें बरोबर नाहीं. कारण, अष्ट (न दिगणाऱ्या) फलामाठीं दक्षिणा पाहिजे असें आहे. “हे त्रिजटे राक्षसि, ज्या श्राद्धांत दक्षिणा नाहीं तें सर्व श्राद्ध तुला प्राप्त होवो.” या पक्षपुराणवचनावरून दक्षिणारहित श्राद्ध राक्षसीला प्राप्त होतें, असें आहे. आणि “होत्याचें कर्म दुमरा करील तर त्याला अर्धा दक्षिणा मिळेल, आणि स्वतःच यजमान आपलें व होत्याचें अर्शा दोन्ही कर्म करील तर दक्षिणा दुमऱ्या ब्राह्मणाला द्यावी” असें छंदोगपरिशिष्टवचनही आहे. याचप्रमाणें यतींना वमदून श्राद्ध करावयाचे ठिकाणींही समजावें. कात्यायन—“यज्ञाच्या वस्तु, दर्भमुष्टि, कुशस्तंभ, दर्भवट (चट), दर्भविष्टर आणि दर्भासन यांचेठिकाणीं दर्भ किती असावे त्यांची संख्या विहित नाहीं.” मातेच्या श्राद्धांत तर ब्राह्मण मिळाले नसतां सुवासिनीनाही भोजन घालावें, असें सांगतां अपरार्कांत वृद्धवसिष्ठ—“मातृश्राद्धांत ब्राह्मण मिळाले नाहीं तर कुलीन पतिपुत्रयुक्त प्रौढ अशा आठ स्त्रियांचीही पूजा करावी.” आठ सांगितल्या ह्या वृद्धिश्राद्धाविषयीं आहेत.

पाप्मेउत्तरखंडे सकृदभ्यर्चितलिंगशालग्रामशिलांचयः पीठेसंस्थापयित्वाश्राद्धचक्रुरुतेनरः पितर-
स्तस्यतिष्ठतिकल्पकोटिशतंदिवि चंद्रिकायांमात्स्ये पठन्निमंत्र्यनियमान्श्रावयेत्पैतृकान्बुधः अक्रोधनैः-
शौचपरैःसततब्रह्मचारिभिः भवितव्यंभवद्विश्मयाचश्राद्धकारिणा यत्तु मनुः सर्वायासविनिर्मुक्तैः
कामक्रोधविवर्जितैः भवितव्यंभवद्विर्नःश्रोभूतेश्राद्धकर्मणीति तत्पूर्वेद्युर्निमंत्रणपरं नतदहः तत्रैव देवलः
असंभवेपरेशुर्वाब्राह्मणांस्तान्निमंत्रयेत् अज्ञातीनसमानार्थानयुग्मानात्मशक्तितः कात्यायनः अनिघेनामं-
त्रितोनापक्रामेत्केतनंगृह्यशक्तः ।

पाप्मांत उत्तरखंडांत—“पूजा केलेलें लिंग तमाच शालिग्राम आगनावर ठेवून जो मनुष्य एकवार श्राद्ध करितो
त्याचे पितर शेंकडों कल्पकोटीपर्यंत स्वर्गाचेठायीं राहतात.” **चंद्रिकेंत मात्स्यांत**—“ब्राह्मणांस निमंत्रण करून पितृ-
संबंधि नियम स्वतः पठण करून ब्राह्मणांकडून ऐकवावे” ते नियम—“क्रोधरहित शौचपर सतत ब्रह्मचर्य धारण करणारे
असे तुम्हीं व्हा व मी श्राद्धकर्ताही तसाच होतो.” आतां जें **मनु** सांगतो—“आमच्या उदयीक श्राद्धकर्माचेठायीं तुम्हीं
सर्व आयासरहित व कामक्रोधविवर्जित असे व्हा.” तें पूर्वेदिवशीं निमंत्रणविषयक आहे, श्राद्धदिवशीं नव्हे. तेथेंच
देवल—“पूर्वेदिवशीं असंभव असातां श्राद्धदिवशीं ज्ञातिभिन्न समानप्रवररहित अयुग्म (विपम) अशा—आपल्या
शक्तीप्रमाणें—ब्राह्मणांना निमंत्रण द्यावें.” **कात्यायन**—“निर्दोष यजमानानें आमंत्रण दिलें व तें घेतल्यावर श्राद्धीं
जाण्यास सक्षक असून त्या आमंत्रणाचा त्याग करूं नये.”

अथश्राद्धकर्तृभोक्तृनियमाः तत्रनिमंत्रितविप्रत्यागेऽपरार्कयमः केतनंकारयित्वातुयोतिपातय-
तिद्विजम् ब्रह्महत्यामवाप्रोतिशूद्रयोर्नौचजायते आमंत्र्यब्राह्मणंस्तुयथान्यायंनपूजयेत् अतिकृच्छ्रासुधोरा
सुतिर्य्योनिषुजायते प्रमादाच्यागेतुहारीतः प्रमादाद्विस्मृतंज्ञात्वाप्रसाधैर्नप्रयत्नतः तर्पयित्वायथान्यायंस-
र्वतत्फलमभ्रुते प्रमादाभावेतुनारायणः एतस्मिन्नेनसिप्राप्तेब्राह्मणोनियतःशुचिः यतिचांद्रायणंकृत्वातस्मा-
त्पापात्प्रमुच्यते यमः आमंत्रितस्तुयोविप्रोभोक्तृमन्यत्रगच्छति नरकाणांशतंगत्वाचांडालेष्वभिजायते तत्रै-
वदेवलः पूर्वनिमंत्रितोत्येनकुर्यादन्यप्रतिग्रहं भुक्ताहारोश्चबाभुंकेसुकृतंतस्यनश्यति यदिविप्रोविलंबेततदो-
क्तमादित्यपुराणे आमंत्रितश्चिरंनैवकुर्याद्विप्रःकदाचन देवतानांपितृणांचदातुरन्नस्यचैवहि चिरकारीभ-
वेद्रोहीपच्यतेनरकाग्निना पृथ्वीचंद्रोदयेयमः निमंत्रितस्तुयोविप्रोहृद्वानंथातिदुर्मतिः भवंतिपितरस्त-
स्यतंमासंपांसुभोजनाः आमंत्रितस्तुयःश्राद्धेहिंसावैकुरुतेद्विजः पितरस्तस्यतंमासंभवंतिरुधिराशनाः आमं-
त्रितस्तुयोविप्रोभारमुद्रहतेद्विजः पितरस्तस्यतंमासंभवंतिस्वेदभोजनाः निमंत्रितस्तुयोविप्रःप्रकुर्यात्कलहंयदि
पितरस्तस्यतंमासंभवंतिमलभोजनाः ।

आतां श्राद्धकर्ता व श्राद्धभोक्ता यांचे नियम सांगतो—

श्राद्धाचेठायीं निमंत्रण केलेल्या ब्राह्मणाचा त्याग केला असतां **अपरार्कतं यमः**—“जो मनुष्य आमंत्रण देऊन त्या
ब्राह्मणाचा त्याग करील त्यास ब्रह्महत्या दोष प्राप्त होतो व तो मनुष्य शूद्रयोर्नीत जातो. जो मनुष्य ब्राह्मणास आमंत्रण
देऊन त्याची यथायोग्य पूजा करित नाही, तो मनुष्य अतिकष्टदायक भयंकर अशा तिर्यग (पश्यादिकांच) योर्नीत उत्पन्न
होतो.” प्रमादानें त्याग केला असतां **हारीतः**—“प्रमादानें ब्राह्मणाची विस्मृति झाली असें जाणून त्या ब्राह्मणाला प्रयत्नानें
(हात जोडून वगैरे) प्रसन्न करून यथान्याय तृप्त करावा, म्हणजे ब्राह्मणभोजनाचें सर्व फल मिळतें.” प्रमाद नसून बुद्धि-
पूर्वक त्याग केला असेल तर **नारायण**—“हें (ब्राह्मणत्यागरूप) पातक प्राप्त असतां ब्राह्मणानें नियमित शुचिर्भूत होऊन
यतिचांद्रायण करावें, म्हणजे त्या पापापासून मुक्त होतो.” **यम**—“जो ब्राह्मण एकीकडचें आमंत्रण घेऊन भोजनास दुस-
रीकडे जातो, तो शंभर नरकांत जाऊन चांडालयोर्नीत उत्पन्न होतो.” तेथेंच **देवल**—“जो ब्राह्मण पूर्वीं एकाचें निमंत्रण
घेऊन दुसऱ्याचा प्रतिग्रह करितो, अथवा पूर्वीं आहार भक्षण करून नंतर श्राद्धांत भोजन करितो त्याचें सुकृत नष्ट होतें.”
जर ब्राह्मणानें विलंब केला तर सांगतो **आदित्यपुराणांत**—“आमंत्रण केलेल्या ब्राह्मणानें कधीही विलंब करूं नये;
विलंब करणारा ब्राह्मण देवता, पितर, दाता आणि अन्न इतक्यांचा द्रोही होऊन नरकरूप अग्नीनें पक होतो.” **पृथ्वी-
चंद्रोदयांत यम**—“निमंत्रण केलेला जो दुष्टमति ब्राह्मण मार्गक्रमण करितो, त्याचे पितर तो महिना पांसु (धूलि) भोजन

करणारे होतात. जो श्राद्धास आमंत्रित ब्राह्मण हिंसा करितो त्याचे पितर तो महिना रक्तभोजी होतात. जो आमंत्रित ब्राह्मण भार वाहातो त्याचे पितर तो महिना खेदभोजी होतात. जो निमंत्रित ब्राह्मण कलह करील तर त्याचे पितर तो महिना मलभोजी होतात.”

शंखः निमंत्रितस्तुयःश्राद्धेमैथुनंसेवतेद्विजः श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाचयुक्तःस्यान्महतैनसा मैथुनंश्रुताव-
पिनिषिद्धम् ऋतुकालेनियुक्तवानैवगच्छेत्स्त्रियंकचित् तत्रगच्छन्नवाप्रोतिष्ठानिष्ठानिफलानितु इतितत्र**माध-
वीयेचवृद्धमनुक्तेः** श्राद्धंकरिष्यन्कृत्वावाभुक्त्वावापिनिमंत्रितः उपोष्यचतथाभुक्त्वानोपेयाश्चक्रतावपि
भोक्ष्यन्करिष्यन्श्वःश्राद्धंपूर्वरात्रौप्रयत्नतः व्यवार्थंभोजनंचापिऋतावपिविवर्जयेत्इतितत्रैवा**श्वलायनो-
क्तेश्च विज्ञानेश्वरेण**तुश्राद्धेऋतौगच्छतोपिनदोपइत्युक्तंत्वरगतिकगतित्वेज्ञेयम् **बृहस्पतिः** द्विनिशंश्र-
चारीस्याच्छ्राद्धकृद्ब्राह्मणैःसह अन्यथावर्तमानौतुस्यातांनिरयगामिनौ पुनर्भोजनमध्वानंभारमायासमैथुनम्
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैवसर्वमेतद्विवर्जयेत् स्वाध्यायंकलहंचैवदिवास्वापंतथैवच यत्तु **श्राद्धकारिकायांपु-
राणसमुच्चये** कृत्वातुरुधिरस्त्रावंनविद्वान्श्राद्धमाचरेत् एकंद्वेत्रीणिवाविद्वान्दिनानिपरिवर्जयेत् इतितन्नि-
र्मूलम् **पृथ्वीचंद्रोदयेयमः** पुनर्भोजनमध्वानंभाराध्ययनमैथुनम् संध्याप्रतिग्रहंहोमंश्राद्धभोक्ताऽष्टवर्जयेत्
इति संध्यानिषेधःप्रायश्चित्तात्पूर्वज्ञेयः यथाहो**शनाः** दशकृत्वःपिवेदापोगायत्र्याश्राद्धभुक्द्विजः ततःसंध्या-
मुपासीतजपेच्चतुहुयादपि गौडास्तु सायंसंध्यांपरान्नंचछेदंनंचवनस्पतेः अमावास्यांनकुर्वीतरात्रिभोजनमे-
वच द्यूतंचकलहंचैवसायंसंध्यांदिवाशयम् श्राद्धकर्ताचभोक्ताचपुनर्भुक्तिंचवर्जयेत् इतिकामधेनौ**वारा-
हाद्युक्तेः** श्राद्धकर्तुरपिसायंसंध्यानिषेधमाहुः शिष्टास्तुनिर्मूलत्वमाहुः होमनिषेधस्तुस्वविषयः सूतकेचप्र-
वासेचअशक्तौश्राद्धभोजने एवमादिनिमित्तेपुहावयेन्नतुहापयेत् इति**छंदोगपरिशिष्टात्** तत्रैवा**दित्यपु-
राणे** निमंत्रितस्तुनश्राद्धेकुर्याद्धार्यादिताडनम् **चंद्रिकायांप्रचेनाः** श्राद्धभुक्प्रातरुत्थायप्रकुर्यादंतधावनम्
श्राद्धकर्तानकुर्वीतदंतानांधावनंबुधः **हेमाद्रौजाबालिः** दंतधावनतांबूलेतैलाभ्यंगमभोजनम् रस्यौषधंप-
रान्नंचश्राद्धकृत्समवर्जयेत् इति **विष्णुरहस्ये** श्राद्धोपवासदिवसेखादित्वादंतधावनम् गायत्र्याशतसंपूतमं-
बुप्राश्यविशुध्यति पुनर्भोजनमध्वानंयानमायासमैथुनम् दानप्रतिग्रहौहोमंश्राद्धभुक्त्वष्टवर्जयेत् सोमोत्पत्तौ
वनस्पतिगतेसोमेयस्तुहिंस्याद्वनस्पतिम् घोरायांभ्रूणहत्यायांयुज्यतेनात्रसंशयः एतद्विहितेध्मादिव्यतिरेकेण
वनस्पतिगतेसोमेऽनडुहोयस्तुवाहयेत् नाश्रन्तिपितरस्तस्यदशवर्षाणिपंचच वनस्पतिगतेसोमेमंधानंयस्तुका-
रयेत् गावस्तस्यप्रणश्यतिचिरकालमुपस्थिताः वनस्पतिगतस्वरूपमाह **पृथ्वीचंद्रोदयेऽग्यासः** त्रिमुहूर्त-
वसेदकंत्रिमुहूर्तवसेजले त्रिमुहूर्तवसेद्रोपुत्रिमुहूर्तवनस्पतौ **कलिकायांवृद्धमनुः** निमंत्रयविप्रांस्तद्वर्हवर्ज-
येन्मैथुनंभूरं प्रमत्ततांचस्वाध्यायंक्रोधाशौचेतथानृतम् केचिन्निमंत्रणात्पूर्वशुद्धयर्थपूर्वेहिश्रौरंकुर्वति तत्रमूलंभु-
ग्यम् **मरीचिः** पष्ठ्यांपर्वसुपश्चादौरिक्ताभद्रातिथिष्वपि पातेश्राद्धेव्रताहेचश्रौरंवर्ज्यनिशासुच यदाकर्तुरश-
क्त्यातत्पुत्रशिष्यादिःश्राद्धंकरोतितदाकर्त्राप्रतिनिधिनाचप्रागुक्तनियमाःकार्याः नशक्तोतिस्वयंकर्तुंयदाह्यनव-
काशतः श्राद्धंशिष्येणपुत्रेणतद्वान्येनापिकारयेत् नियमानाचरेत्सोपिनीयतांश्रवसुंधरे यजमानोपितान्सर्वा-
नाचरेत्सुसमाहितइति**हेमाद्रौवाराहोक्तेः** स्त्रियास्तु**पाद्मे** मुक्तकच्छातुयानारीमुक्तकशीतथैवच हस्ते-
वदतेचैवनिराशाःपितरोगताः **आश्वलायनः** श्राद्धेहिभोजयेद्वास्तौनवालानपियत्नतः प्राक्पिंडदानाद्वं-
धावैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहम् वास्तौगृहे ।

शंख—“जो श्राद्धाचेयर्षी आमंत्रण केलेला ब्राह्मण मैथुन करितो तो, तमंच श्राद्ध करून मैथुन करितो किंवा श्राद्धास भोजन करून मैथुन करितो तो मोठ्या पापानें युक्त होतो.” मैथुन ऋतुकार्त्तद्विषय निषिद्ध आहे. कारण, “श्राद्धास निमंत्रित ब्राह्मण असून ऋतुकार्त्त नियोग केलेला असला तरी त्यानं स्त्रीगमन कधीही करू नये, स्त्रीगमन करणारास अनिष्ट फल प्राप्त होतात” असे **पृथ्वीचंद्रोदयांत व माधवीयांत वृद्धमनुवचन** आहे. आणि “उद्यां श्राद्ध करावयाचं असतं

पूर्वदिवशी, अथवा श्राद्ध करून त्या दिवशी, तसेच ब्राह्मणांनी निमंत्रण घेतल्यानंतर व श्राद्धभोजन केल्यानंतर, तसेच उद्यो-
षण करून त्या दिवशी व पारणा करून त्या दिवशी ऋतुकालीही स्त्रीगमन करू नये! दुसऱ्या दिवशी श्राद्धभोजनात जाणारा,
व श्राद्ध करणारा यांनी पूर्वादशी ऋतुकालीदेखील मैथुन व भोजन हें प्रयत्नांनी वर्ज्य करावें.” असें तेथेंच **आश्वलायन-**
वचनही आहे. **विद्वानेश्वरानें** तर श्राद्धदिवशी ऋतुकाली स्त्रीगमन केलें तरी दोष नाही, असें सांगितलें तें, गमन
केल्यावांचून गति नाही असें असेल त्याविषयी समजावें. **बृहस्पति**—“श्राद्धकर्त्यांनी ब्राह्मणांसहवर्तमान दोन रात्रीं
ब्रह्मवर्च धारण करून असावें, श्राद्धकर्ता व ब्राह्मण हे दोघे ब्रह्मचर्यत्याग करतील तर नरकगामी होतील. श्राद्धकर्ता
व भोक्ता यांनी पुनः भोजन, मार्गकमण, भार वाहाणें, आयास, मैथुन हें सर्व वर्ज्य करावें. तसेंच वेदाध्ययन, कलह,
दिवसा निद्रा हीं तशींच वर्ज्य करावीं.” आतां जें **श्राद्धकारिकेंत पुराणसमुच्चयांत** विद्वानांनी रक्तसाव करून श्राद्ध
करू नये, रक्तसाव केल्यावर एक, दोन अथवा तीन दिवस वर्ज्य करावे” असें सांगितलें तें निर्मूल आहे. **पृथ्वीचंद्रोद-**
यांत यम—“श्राद्धभोक्त्यांनी, पुनर्भोजन, मार्गकमण, भार वाहाणें, अध्ययन, मैथुन, संस्था, प्रतिग्रह, होम, हीं आठ
वर्ज्य करावीं.” हा संस्थानिषेध प्रायश्चित्ताच्या पूर्वी समजावा. कारण, **उशाना** सांगतो—“श्राद्धभोक्त्या ब्राह्मणांनी गायत्रीनें
दाहावेळ उदकाचें अभिमंत्रण करून तें उदक प्राशन करावें, नंतर संस्था करावी, जप करावा, होमही करावा.” **गौड** तर—
“सायंसंस्था, पराश्र, वनस्पतीचें छेदन आणि रात्रीभोजन हीं अमावास्यास करू नयेत. श्राद्धकर्ता व भोक्ता यांनी धूत, कलह,
सायंसंस्था, दिवसा निद्रा आणि पुनर्भोजन हीं वर्ज्य करावीं” असें **कामधेनु** ग्रंथांत वराहादि वचन आहे. म्हणून श्राद्धकर्त्या-
लाही सायंसंस्थानिषेध सांगतात. शिष्ट तर हेंच वचन निर्मूल म्हणतात. पूर्वीच्या यमाच्या वचनांत होमनिषेध आहे तो
स्वविषयक समजावा. कारण, “आशौचांत, प्रवासांत, सामर्थ्य नसतां, श्राद्धभोजन केलें अमतां इत्यादि निमित्तांचे ठायीं
दुसऱ्याकडून होम करवावा, होमत्याग करू नये.” असें **छंदोगपरिशिष्ट** वचन आहे. तेथेंच **आदित्यपुगणांत**—
“श्राद्धाविषयीं निमंत्रित ब्राह्मणांनी भार्यादिकांचें ताडण करू नये.” **चंद्रिकेंत प्रचेता**—“श्राद्धभोक्त्यांनी प्रातःकाली उठून
दंतधावन करावें; श्राद्धकर्त्यांनी दंतधावन करू नये.” **हेमाद्रींत जाबालि**—“श्राद्धकर्त्यांनी दंतधावन, तांबूलमक्षण,
तैलाभ्यंग, उपवास, सुरत, औषध, पराश्र हीं सात वर्ज्य करावीं.” **विष्णुरहस्यांत**—“श्राद्धदिवशी व उपवासदिवशी
दंतधावन करणारा गायत्रीनें शंभरवेळां अभिमंत्रण केलेलें उदक प्राशन करून शुद्ध होतो. दुसऱ्यांदां भोजन, मार्ग चालणें,
वाहनावर वसणें, आयास, मैथुन, दान, प्रतिग्रह, होम हीं आठ श्राद्धभोक्त्यांनी वर्ज्य करावीं.” **सोमोत्पत्तिग्रंथांत**—“सोम
वनस्पतींत गेला असतां जो मनुष्य वनस्पतीची हिंसा करील तो घोर अशा भूणहत्यापातकांनीं युक्त होईल, यांत संशय
नाही.” हा निषेध विहित जो इन्मादिकांसाठीं हिंसा ती वर्ज्य करून इतर हिंसाविषयक समजावा. “सोम वनस्पतींत गेला
असतां जो बैलांकडून ओसें वाहविनो त्याचें पितर पंधरा वर्षें उपोषित राहतात. सोम वनस्पतींत गेला असतां जो मंथन
करितो त्याच्या चिरकाल अगलेल्या गाई नष्ट होतात.” वनस्पतिगत गेलेल्या सोमाचें स्वरूप सांगतो **पृथ्वीचंद्रोदयांत**
व्यास—“सोम सूर्यांत तीन मुहूर्ते राहतो, उदकांत तीन मुहूर्ते, गाईंत तीन मुहूर्ते आणि वनस्पतींत तीन मुहूर्ते राहतो.”
कलिकेंत वृद्धमनु—“ब्राह्मणांस निमंत्रण करून त्या दिवशीं मैथुन, क्षौर, प्रमाद, वेदाध्ययन, कोप, अशुचिल,
असत्य हीं वर्ज्य करावीं.” केचित् पूर्वदिवशीं निमंत्रणाच्या पूर्वी शुद्धीसाठीं क्षौर करितात, त्याविषयीं मूळ शोधवांचें.
मरीचि—“पट्टी, पर्वदिवस, प्रतिपदा, रिक्तातिथि, व्यतीपात, श्राद्धदिवस, व्रतदिवस आणि रात्र इतक्यांचे ठायीं क्षौर
वर्ज्य आहे.” जेव्हां कर्त्याला शक्ति नसल्यामुळें त्याचा पुत्र, शिष्य इत्यादिक प्रतिनिधि श्राद्ध करितो तेव्हां पूर्वीक नियम
कर्त्यानें व प्रतिनिधीनें दोघांनीही करावे; कारण, ज्या वेळीं स्वतः श्राद्ध करण्याविषयीं अशक्त असेल किंवा अवकाश नसेल
त्या वेळीं श्राद्ध शिष्याकडून, पुत्राकडून व इतराकडूनही करावें; श्राद्धाचे सर्व नियम श्राद्धकर्त्यांनी (प्रतिनिधींनी) व यज-
मानांनीही आचरण करावे” असें **हेमाद्रींत वराह** वचन आहे. त्रियांविषयीं तर **पाश्चांत** सांगतो—“कच्छ सोडलेली,
केश सोडलेली, हंसणारी व बोलणारी अशी स्त्री असेल तर पितर निराश होऊन जातात.” **आश्वलायन**—“श्राद्ध-
दिवशी घरांत बालांना देखील भोजन घालू नये. पिंडदान करण्याच्या पूर्वी आपल्या देहाला गंधादिकांनीं अलंकार करू नये.”

अथश्राद्धवस्तूनि तत्रादौकुशाः पृथ्वीचंद्रोदयेदक्षः समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः परिकीर्तितः
अष्टधाभक्तेदिने द्वितीयो भाग इत्यर्थः तत्रैव यमः समूलस्तुभवेद्दर्भः पितृणां श्राद्धकर्मणि मूलनलोकान्जयति-
शक्यसुमहात्मनः **व्यासः** तर्पणादीनिकर्माणि पितृणां या नि कानिचित् तानि स्युर्द्विगुणैर्दर्भैः सप्तपथैर्विशेषतः
शालंकायनः सपिंडीकरणं यावद्दुर्दर्भैः पितृक्रिया सपिंडीकरणाद्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद्भवेत् **शंखः** अन-
तर्पिभिर्णसां प्रकौशं द्विदलमेव च प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् **हारीतः** पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्भिर्दर्भ-
भिर्जुलैः एकैकं न्यूनमुद्दिष्टवर्णैर्वर्णैश्चाक्रमम् स्मृत्यर्थं सारे सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं प्रथितं नवम् **रत्ना-**
बल्याम् द्वयोस्तु पूर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद्बुधः **हेमाद्रीस्कांदे** अनामिका धृतादर्भाद्येकानामिकयापि वा

द्वाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके पवित्राभावे तु तत्रैव सुमंतुः समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे कदे सन्ये चैव तत्रात्री न्वै बिभृयात्सर्वकर्मसु बौधायनः हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासने पितृथैव च दर्भग्रहणे मंत्रमाह-
शंखः विरिचिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गजं नृदसर्वाणि पापानि दर्भं स्वस्तिकरो भव स्मृत्यर्थसारे हुंफट-
कारेण मंत्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत् **भारद्वाजः** प्रेतक्रियार्थपित्रर्थमभिचारार्थमेव च दक्षिणाभिमुखं स्थित्वा-
त्प्राचीनावीतिको द्विजः कुशाभावेऽपराकैः सुमंतुः कुशाः काशाः शरो गुंद्रो यवा दूर्वा थवल्बजाः गोकेशं जु-
कुंदाश्च पूर्वाभावे परः परः काशादौ विशेषमाह **शंखः** काशहस्तस्तु नाचामेकदाचिद्विधिशंकया प्रायश्चित्तेन-
युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च **पृथ्वीचंद्रोदये यमः** मासि मास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव चोदिताः षट्त्रिंश-
न्मते मासेन स्यादमावास्या दर्भो ग्राह्यो न वः स्मृतः **गृह्यपरिशिष्टे** ये च पिंडाश्चिता दर्भायैः कृतं पितृतर्पणं
अमेध्याशुचिलिप्तायेते पांत्या गोविधीयते **लघुहारीतः** पथि दर्भाश्चिंतो दर्भाये दर्भायज्ञभूमिषु स्तरणासनपिं-
डे पुपटकुशानपरिवर्जयेत् ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे हतामूत्रपुरीपाभ्यां ते पांत्या गोविधीयते **हेमाद्रौ**
अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च हेमात्मकपवित्रस्य ह्येकानां हतिवैकल्यम् ।

आतां श्राद्धवस्तु सांगतो—

त्यांमध्ये आधीं **कुश** सांगतो—**पृथ्वीचंद्रोदयांत दक्ष**—“गमिथा, फुलें, कुश इत्यादिक आणावयाचा काल दिव-
गाचा दुसरा भाग सांगितला आहे.” दिवसाचे आठ भाग करून त्यांतील दुसरा भाग समजावा, तेथेंच **यम**—“पितरांच्या
श्राद्धकर्माविषयीं सगळें दर्भ असावा. दर्भमूलाच्या योगानें महात्मा जो इंद्र त्याचे लोक प्राप्त होतात.” **व्यास**—पितरांचीं
जीं कांहीं तर्पणादिक कार्यं तीं द्विगुण दर्भांनीं करावीं, त्यांत विशेषतः सात पानांचे दर्भ असवे.” **शालंकायन**—“सपिं-
डीकरणापर्यंत पितृक्रिया ऋजुदर्भांनीं करावी, सपिंडीकरणानंतर द्विगुण दर्भांनीं पितृक्रिया यथाविधि होते.” **शंख**—“जेथें
कोणें पवित्र ध्यावयाचें तेंथें आंत दर्भरहित साग्र प्रादेशमात्र अशा दोन दर्भांचें पवित्र समजावें.” **हारीत**—“चार दर्भांचें
पवित्र ब्राह्मणाच सांगितलें आहे. क्षत्रियादि वर्णांना अनुक्रमानें एक एक दर्भानें न्यून पवित्र सांगितलें आहे.” **स्मृत्यर्थ-
सारांत**—“अथवा ब्राह्मणादि सर्व वर्णांना दोन दर्भांचें गांठ दिलेलें नवें पवित्र असावें.” **रत्नावलींत**—“विद्वानां
दोन पेरांच्या मध्यभागीं पवित्र धारण करावें.” **हेमाद्रौत स्कांदांत**—अनामिका म्हणजे कनिष्ठेजवळची अंगुली तींत
दर्भपवित्र धारण करावें. एका अनामिकेंत धारण करावें किंवा दोन अनामिकांत दोन दर्भपवित्रें धारण करावीं.” पवित्रांचा
अभाव असेल तर तेंथेंच **सुमंतु**—“सर्व कर्मांत मूळ व अप्र यांनीं युक्त गर्भरहित असे दोन कुश उजव्या हातांत धारण
करावे आणि डाव्या हातांत तसेच तीन कुश धारण करावे.” **बौधायन**—“दोन हातांमध्ये दोन दोन व तसेच आसनाचे-
ठायींही दोन दर्भ धारण करावे.” दर्भग्रहणाविषयीं मंत्र सांगतो **शंख**—“विरिचिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ॥
नृद सर्वाणि पापानि दर्भं स्वस्तिकरो भव.” **स्मृत्यर्थसारांत**—“हुंफट, या मंत्रानें एकवार कापून दर्भ ध्यावे.”
भारद्वाज—“प्रेतक्रियेसाठीं, पितृकर्मासाठीं व अभिचारा (जारणमारणा) करितां ब्राह्मणां प्राचीनावीती करून दक्षिणेकडे
मुख करून दर्भ कापावे.” कुशांचा अभाव असतां **अपराकांत सुमंतु**—“कुश, काश (कसई), शर (वाणटण), गुंद्र
(गांढणी गवत), जव, दूर्वा, लव्हाळा, गोकेश, मोळ आणि कुंद यांमध्ये पूर्वीच्या अभावीं पुढचे पुढचे ध्यावे.” काशादिकां-
विषयीं विशेष सांगतो **शंख**—“हातांत काश (कसई) असतां आचमन करूं नये; कुशांप्रमाणें काश हातांत ठेऊन आच-
मनाचा विधि आहे अशा शंकेनें जर कधींही आचमन करील तर प्रायश्चित्ती होईल. तशाच दूर्वा हातांत असून आचमन
करूं नये.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत यम**—“ज्या ज्या महिन्यांत दर्भ काढले असतील त्या त्या महिन्यांतच त्यांचा उपयोग
सांगितला आहे.” **षट्त्रिंशन्मतांत**—“महिन्यांन अमावास्यास नवे दर्भ काढावे, असें सांगितलें आहे.” **गृह्यपरि-
शिष्टांत**—“जे दर्भ पिंडास लागले असतील, ज्या दर्भांनीं पितरांचें तर्पण केलें, ज्या दर्भास अपवित्र अशुद्ध पदार्थ
लागला असेल त्यांचा त्याग करावा.” **लघुहारीत**—“मागीत पडलेले दर्भ, सशानांतील दर्भ, यज्ञभूमीवरचे दर्भ, आस्त-
रणाचे दर्भ, आसनाचे दर्भ, आणि पिंडाचे दर्भ हे सहा प्रकारचे दर्भ वर्ज्य करावे. ब्रह्मयज्ञाचे दर्भ, पितृतर्पणाचे दर्भ आणि
मूत्रपुरीपांनीं दूषित दर्भ या सर्व दर्भांचा त्याग करावा.” **हेमाद्रौत**—“कुश, दूर्वा इत्यादिकांचीं इतर पवित्रें सुवर्ण-
पथित्राच्या षोडशांशाची बरोबरी करीत नाहींत.”

अथहविः हेमाद्रौ प्रचेताः कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः सूर्यवशालयः महायवाग्रीहियवास्तथैव च-

मधूलिकाः कृष्णाः श्वेताश्चलोहाश्चग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि महायवावेणुबीजं मधूलिकायावनाला इति हेमाद्रिः कल्पतरुश्च भारते वर्षमानतिलं श्राद्धमक्षय्यं मनुरब्रवीत् सर्वकामैः सयजते यस्ति लैर्यजते पितृन् चंद्रिकायां देवलः इष्टापूर्तं मृताहे च दर्शवृद्ध्यष्टकासु च पात्रेभ्यस्तेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनं सायणीये अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्रविजितं तैलपकेन रहितं कृतमप्यकृतं भवेत् हेमाद्रावत्रिः अगोधूमं च यच्छ्राद्धं कृतमप्यकृतं भवेत् तत्रैव ब्राह्मे यवैर्ब्रीहितिलैर्मौषैर्गोधूमैश्च णकैस्तथा संतर्पयेत् पितृन् मुद्रैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः नीवारैर्हरिश्यामाकैः प्रियंगुभिरथार्चयेत् हेमाद्रौ कार्ष्णाजिनिः यदिष्टं जीवतश्चासीत्तदद्यात्स्यन्नतः सत्प्रोदुस्तरं मार्गततो याति न संशयः कलिकायामाश्वलायनः कदल्यादिफलैः शस्तेर्मूलैराद्रादिकैरपि गोरसैर्मधुना दध्ना श्राद्धे संतर्पयेत् पितृन् कदल्यान्म्रफलादीनि श्राद्धे संपादयेत् सुधीः ।

आतां श्राद्धाविषयीं हवि सांगतो—

हेमाद्रीत प्रचेता—काळे उडीद, तीळ, जव, तांदूळ, महायव (वेळूचें बीज), व्रीहियव तसेच काळे पांढरे लोहवर्णाचे मधूलिक हे सर्व श्राद्धकर्माविषयीं श्रेष्ठ आहेत.” मधूलिक म्हणजे यावनाल (जोंधळे) असें हेमाद्रि व कल्पतरु सांगतो. भारतांत—“ज्या श्राद्धांत तीळ वाढल्या प्रमाणांत असतात तें श्राद्ध अक्षय्य होतें, असें मनूनें सांगितलें आहे. ज्यानें तिलानीं पितरांचा याग (पूजा) केला त्यानें इच्छिलेले सारे याग केले असें होतें.” चंद्रिकेंत देवल—“इष्ट (यज्ञकर्म), पूर्त (वापी, कूप, आराम, देवालय इत्यादि कर्म), मृतदिवस, दर्श, वृद्धि (विवाहादि), अष्टका, ह्या कालांचे ठायीं ब्राह्मणांना कुभोजन (निचभोजन) देऊं नये.” सायणीयांत—“ज्या श्राद्धांत गव्हांचा पदार्थ नाही, उडीद व मूग नाहीत आणि तैलपक्क नाही तें श्राद्ध केले तरी न केल्यासारखें होतें.” हेमाद्रीत अत्रि—“ज्या श्राद्धांत गोधूम (गहू) नाहीत तें श्राद्ध केले असून न केल्यासारखें होय.” तेथेंच ब्राह्मांत—“जव, व्रीहि (भात), तीळ, उडीद, गोधूम, चणे, मूग, सांवे, मोहरीचा कल्क यांनीं पितरांना तृप्त करावें; आणि देवभात, हरिसांवे, राळे यांनींही पितरांस तृप्त करावें.” हेमाद्रीत कार्ष्णाजिनि—“जीवंत असतां पित्रादिकांला जो पदार्थ आवडता असेल तो पदार्थ मेल्यानंतर प्रयत्नानें त्याला द्यावा. तो प्राणी तृप्त झाला म्हणजे दुस्तर मार्गाचें उल्लंघन करून जातो, यांत संशय नाही.” कलिकेंत आश्वलायन—“केळीं वंगैरे प्रशस्त फळें, आलें इत्यादिक मुळें, गोरस, मध, दही यांनीं श्राद्धांत पितरांस तृप्त करावें; श्राद्धाचे ठायीं केळी, आंबे इत्यादि फळें अवश्य मिलावानीं.”

हेमाद्रौ पृथ्वीचंद्रोदये च मार्कंडेयः गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्रैः सतीनैश्च णकैरपि श्राद्धे पुदत्तैः प्रीयंते मासमेकं पितामहाः विदार्याच भरुंडैश्चितिलैः शृंगाटकैस्तथा कंचुकैश्च तथा कंदैः कर्कधूवदरैरपि पालेवतैराहूकैश्चाप्यक्षोटैः पनसैस्तथा काकोल्याक्षीरकाकोल्यातथा पिंडालकैः शुभैः लाजाभिश्च सधानाभिश्च पुर्वैराहूचिभटैः सर्षपां राजशाकाभ्यामिगुदैराजजंबुभिः प्रियालामलकैर्मुख्यैः फल्गुभिश्चितिलंटकैः वेत्रांकुरैस्तालकंदैश्च क्रिकाक्षीरिकावचैः लोचैः समोचैर्लकुचैस्तथा वैबीजपूरकैः मुंजातकैः पद्मफलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च संस्कृतैः रागखांडवचोष्यैश्च त्रिजातकसमन्वितैः दत्तैस्तु मासं प्रीयते श्राद्धे पुपितरो नृणाम् एपां कोशे हेमाद्रादिव्याख्या वैद्यकाद्यनुसारेण मध्यदेशभाषयानामान्युच्यंते सतीनैः कलायैः कलायस्तु सतीन कइत्यमरः बटुरीति प्रसिद्धैः विदार्यातस्कंदेन भरुंडं जलजं मकाणा इति श्राद्धमंजर्या भूकूटमांडमित्यन्ये शृंगाटकसिंघाडा कंचुकः कंचनारः कंदः सूरणः अशोन्नः सूरणः कंद इत्यमरः कर्कधूः वन्यसूक्ष्मंबदरं पालेवतं कोशातकी आरुहंकरुई अक्षोटं अखरोटः काकोलीक्षीरकाकोल्यौ गौडेपुप्रसिद्धौ पिंडालकं सुथनी महाराष्ट्राणां मोहलकंद इति प्रसिद्धं त्रुप्सादयस्त्रयः कर्कटीभेदाः चिर्भटं खर्बुजम् सर्षपा इति दीर्घश्रृंङादसः प्रियालचिरौ जी फल्गु उदुंबरं तिलंटकं पडोलकं तालकंदः कंदविशेषः चक्रिकातिं तिणी बिंबा क्षीरिका स्त्रीरिणी मोचं कदलीफलं लकुचंबडहरम् मुंजातकं गौडदेशे प्रसिद्धं पद्मफलंगट्टा रागखांडवः पिप्पली शुंठियुक्तस्तुमुद्रयूषस्तुखांडवः रागखांडवतां याति शर्करासंयुतं तुतत् इत्युक्तः पानविशेषः त्रिजातं लवंगैलापत्रकाणि मदनरत्नेकौर्म कालशाकं च वास्तूकं मूलकं कृष्णनालिका प्रशस्तानीति विशेषः ।

हेमाद्रीत व पृथ्वीचंद्रोदयांत मार्कंडेय—“गहूँ, उंसाचे पदार्थ (गूळ साखर), मूग, वाटाणे, चणे, हे श्राद्धांत दिले असतां एक महिनाभर पितामह तृप्त होतात. विदारीकंद, भरंड (मकाणा किंवा सुईकोंडाळा), शिंगाडे, कंचनारकंद, सूरण, मोठें बोर, सूक्ष्मबोर, पोंसाळें, आरुह (अरुह), अकोड, फणस, काकोली व क्षीरकाकोली ह्या गोंडांत प्रसिद्ध, पिंडालक (महाराष्ट्रांत मोहलकंद म्हणून प्रसिद्ध), लाह्या, धाना (भर्जितयव), त्रपुस (कांकडी), एव्हार (कर्कटीविशेष), चिर्भट (खर्वुज), मोहरी, राजशाक, हिंगणबेट, मोठी जांभळें, प्रियाल (चिरोंजी, चारोळी). आंबळे, फल्गु (उदुंबर), तिलंडक (पटोल), वेताचे अंकुर, तालकंद (कंदविशेष), चुक्रिका (चिंच किंवा तोंडली), क्षीरिका (खिरणी), वच, लोच, मोच (केळें), लकुच (वडहर, ओंठ), महाळुंग, मुंजतक (गोंडदेशांत प्रसिद्ध), पद्मफळ (गदा), भक्ष्य (लाडू वगैरे), भोज्य (अन्नादिक) हे सारे घृत तेल इत्यादिकांनीं संस्कार केलेले, रागखांडव (पिंपळी सुंठ यांनीं युक्त मुगांचा गूष (कढण) तो खांडव आणि तोच शर्करायुक्त रागखांडव होय), चोष्य (चोमृत खाण्याचे पदार्थ), दालचिनी, तमाल-पत्र, वेलची, हे पदार्थ दिले असतां एक महिनापर्यंत पितरांची तृप्ति होते.” **मदनरत्नांत कौर्मांत**—“कालशाक, वास्तूक (चंदनवट्टा), मुळा, कृष्णनालिका हीं प्रशस्त आहेत.”

हेमाद्रीपृथ्वीचंद्रोदयेचवायुपुराणे कालशाकमहाशाकद्रोणशाकंतथार्द्रकं विल्वामलकमृद्वीकाप-
नसाम्रातदाडिमं चव्यंपालिवताश्रोतंग्वर्जूरचक्रसेरुकं कोविदारश्रकंदश्रपटोलबृहतीफलं पिप्पलीमरिचं
चैवपलाशुंटीचसैधवं शर्करागुडकपूरवदरीद्रोणपत्रकं तथा मधुकंरामठंचैवकपूरंगुडमेवच श्राद्धकर्मणि
शस्तानिसैधवंत्रपुसंतथा रामठंहिंगु कसेरुःकोविदारश्रतालकंदस्तथाबिसम तमालंशतकंदश्रमध्वालुःशीत-
कंदकं कालेयंकालशाकंचमुनिपण्णमुवर्चलं मांसंशाकंदधिक्षीरंचांबुवेत्रांकुरस्तथा कटफलंकौकणीद्राक्षातिंदु-
कंमोचमेवच अलावुंश्रीवकंचारंकर्धुर्मधुसाह्वयम् वैकंकतनारिकेलंशृंगाटकपरूपकं पिप्पलीमरिचंचैवपटो-
लंबृहतीफलं एवमादीनिचान्यानिस्वादूनिमधुराणिच नागरंचार्द्रकंदेयंदीर्घमूलकमेवचेति तथा शर्करा क्षीर-
संयुक्ताःपृथुकानित्यमक्षयाः द्रोणशाकंगूसइतिप्रसिद्धम् मृद्वीकाद्राक्षा आम्रांतंआंबाडाइतिप्रसिद्धोवृक्षःतत्फ-
लंच पालिवतंजंबीरं पालिआलमितगौडप्रसिद्धंवा ख्वर्जूरंख्वजूरइतिप्रसिद्धम् कसेरुःजलजःकंदः कोविदारः
कंचनारसदृशः तालकंदःतालमूली विसंभसीडं शतकंदःशतावरी शालुकंसेरुकीतिप्रसिद्धम् कालेयंकाल-
संज्ञःशाकः दारुहरिद्रावेति **पृथ्वीचंद्रोदयः** मुनिपण्णकंर्कटीसदृशंमुलटियाइतिगौडप्रसिद्धं सुवर्चलंशा-
कविशेषः कटफलंश्रीपर्णीवृक्षफलं कौकणीअम्लरसाद्राक्षा तिंदुकंडिडिसमितिकैदेवः तिंदुफलंवाश्रीवकंफ-
लविशेषः चारंभुद्रतालं मधुसाह्वयंमधुकपुष्पफलंवा वैकंकतंचैचीतिगौडख्यातम् परूपकंपरूसमितिप्रसिद्धम्
नागरंशुंठी **पृथ्वीचंद्रोदयेब्राह्मे** आभ्रमाभ्रातंकविल्वंदाडिमंवीजपूरकं प्राचीनामलकंक्षीरनारिकेरंपरू-
पकं नारंगकंचख्वर्जूरंद्राक्षानीलकपित्थकम् एतानिफलजानानिश्राद्धेदेयानियततः **मात्स्ये** अन्नंतुसदधिक्षी-
रंगोघृतंशर्करान्वितम् मांसंप्रीणातिसर्वांनैपितृनित्याहकेशवः ।

हेमाद्रीत व पृथ्वीचंद्रोदयांत वायुपुराणांत—“कालशाक, महाशाक, द्रोणशाक, (गूस असें प्रसिद्ध), आलें, बेलफळ, आंबळा, द्राक्ष, फणस, आंबाडा, डाळिव, चवक, पालिवत (जंघीर किंवा पलिआल गोंडप्रसिद्ध), अकोड, खारीक, कसेरुक (जलजकंद), कोविदार, सुरण, पडवळ, डोळीफळ, पिंपळी, मिच्यें, वेलची, सुंठ, सेंधव, साखर, गूळ, कापूर, बोर, द्रोणपत्रक, तसंच ज्येष्ठमध, हिंग, कापूर, गूळ, सेंधव, त्रपुस हीं श्राद्धकर्माविपर्यां प्रशस्त आहेत. कसेरु, कोविदार (कंचनार-सदृश), तालकंद (तालमूली), कमळाचा दंठ, तमालपत्र, शतकंद (शतावरी), मध्वालु, शीतकंदक (शालूक, सेरुकी असा प्रसिद्ध), कालेय (कराल नांवाचा शाक किंवा दारुहळद), कालशाक, मुनिषण्ण (फांकडीसारखें सुलटिया म्हणून गोंडप्रसिद्ध), सुवर्चल (शाकविशेष), मांस, शाक, दही, दूध, उदक, वेत्रांकुर, कटफल (श्रीपर्णीवृक्षफल), कौकणी (आंबट द्राक्ष), तिंदुक (डिडिस किंवा तिंदुफल), केळें, द्राक्ष, मांपळा, शीवक (फलविशेष), चारोळी, बोर, मधुसाह्वय (मोहाचें फूल), विकंकतफल (चैची असें गोंडप्रसिद्ध), नारळ, शिंगाडे, परूपक (फाळसा), पिंपळी, मिच्यें, पडवळ, डोळीफळ हीं व दुसरीं जीं स्वादिष्ट मधुर असतील तीं श्राद्धांत प्रशस्त आहेत. सुंठ, आलें, लांबटमुळा हीं देखील प्रशस्त आहेत. दूध साखर घालून पोहे यावे.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत**—“आंबा, आंबाडा, बेलफळ, डाळिव, महाळुंग, प्राचीनामलक, क्षीर, नारळ, फालसा, नारिंग, खारीक, द्राक्ष, नील, कंवट, हीं सारीं फलें श्राद्धांत मोठ्या यत्नानें घालीं.” **मात्स्यं**—“अन्न, दही, दूध, गोघृत, शर्करा हीं दिल्यानें सर्व पितरांना एक महिना तृप्त करितात, असें केशव सांगतो.”

याज्ञवल्क्यः हविष्यान्नेनवैमासंपायसेनतुवत्सरम् मात्स्यहारिणकौरभ्रशकुनच्छागपार्धैः ऐणरौर-
बवाराहशाशैमासैर्यथाक्रमं मासवृद्ध्याभितृप्यंतिदत्तैरिहपितामहाः खड्गामिषमहाशल्कमधुमुन्यभ्रमेवच
लोहामिषकालशकंमांसवार्ध्राणसस्यच (निर्गमः त्रिःपिबंत्विद्रियक्षीणंश्वेतंवृद्धमजापतिम् वार्ध्राणसंतुतप्रा-
हुर्याक्षिकाःश्राद्धकर्मणि वार्ध्राणसोजरच्छागइतिमेधातिथिः कात्यायनः छागोसमेधानालभ्यशेषाणि-
क्रीत्वालब्ध्वावास्वयंमृतानांवाहृत्यपचेत् कौर्मै क्रीत्वालब्ध्वावास्वयंवाथमृतानाहृत्यवाद्विजः दद्याच्छ्राद्धेप्रयत्नेन-
तदस्याक्षय्यमुच्यते) श्राद्धेदत्तस्यमांसस्याभक्षणेदोषमाहमनुः नियुक्तस्तुयथान्यायंयोमांसंनान्तिमानवः सभ्रे-
त्यपशुतांयातिसंभवानेकविंशतिं अत्रबहुषुवचनेषुश्राद्धमांसमधुनोःप्राशस्त्योक्तेः विनामांसेनयच्छ्राद्धंकृतमप्य-
कृतंभवेदितिहेमाद्रौदेवलोक्तेः यच्छ्राद्धमधुनाहीनंतद्रसैःसकलैरपि मिश्रन्नैरपिसंयुक्तंपितृणांनैवतृप्ये
अणुमात्रमपिश्राद्धेयदिनस्याश्चमाक्षिकम् नामापिकीर्तनीयंस्यात्पितृणांप्रीतयेततइति हेमाद्रौब्राह्मणोक्तेश्च
मांसमधुनोःश्राद्धेनियतवंगम्यते गौडनिबंधेमात्स्यसुमंतू मध्वभावेगुडोदेयःक्षीरस्यचतथादधि न
लभ्यतेघृतंयत्रकुर्याद्धृतवतीजपं श्राद्धकलिकायांनागरखंडे कथंचिद्विद्विप्रेभ्योनदंतंभोजनेमधु पिंडा-
स्तुनैवदातव्याःकदाचिन्मधुनाविना बृहत्पराशरस्तुमांसनिषेधति यस्तुप्राणिवधंकृत्वामांसैस्तृप्यते पितृन्
सविद्वान्चंदनंदग्ध्वाकुर्यादंगारविक्रयम् क्षिप्त्वाकूपेयथाकिंचिद्वालआदातुमिच्छति पतत्यज्ञानतःसोपिमांसे-
नश्राद्धकृतथा सएव सर्वथान्नयदानस्यात्तदैवामिषमाश्रयेत् ब्राह्मणश्चस्वयंनद्यात्तच्चश्चादिहृतंयदि भागव-
तेपि नदद्यादामिषंश्राद्धेनचाद्याद्धर्मतत्त्ववित् मुन्यन्नैःस्यात्पराप्रीतिर्यथानपशुहिंसया तथेतेशेषः अत्रके-
चित् मुन्यन्नंब्राह्मणस्योक्तंमांसंक्षत्रियवैश्ययोः मधुप्रदानंशूद्रस्यसर्वेषांवाविरोधियदितिहेमाद्रौपुलस्त्यो-
क्त्याव्यवस्थामाहुः ।

याज्ञवल्क्यः—“श्राद्धांत हविष्यान् दिल्यानें एक मासपर्यंत पितर तृप्त होतात. पायस दिल्यानें एक संवत्सरपर्यंत तृप्त होतात. मत्स्य, हरण, मेंढा, पक्षी, बोकड, पृषत, एण, रुरु, डुकर, ससा यांचें मांस श्राद्धांत दिल्यानें अनुक्रमानें एक एक महिना अधिक पितामहांची तृप्ति होते. खड्गामिष (गेंड्याचें मांस), महाशल्य (सालई), मध, मुनीचें अन्न (नीवारादि), लोहामिष, कालीं उत्पन्न शाक आणि वार्ध्राणसाचें मांस हीं श्राद्धांत उक्त आहेत.” (निर्गम—“तीन अवयवांनीं उदक पिणारा इंद्रियें क्षीण झालेला श्वेतवर्ण वृद्ध असा जो बोकड त्याला याज्ञिक, श्राद्धकर्माविषयीं वार्ध्राणस म्हणतात.” वार्ध्राणस म्हणजे जीणें झालेला छाग असें मेधातिथि सांगतो. कात्यायन—“छाग, मेष यांना मारून मांस घ्यावें, इतरांचें विकत घ्यावें किंवा स्वतः मिळवावें अथवा मृतांचें आणवें आणि पचन करावें.” कौर्मैत—“द्विजानें विकत घेऊन किंवा स्वतः मिळवून अथवा मृतांचें आणून श्राद्धाचे ठायीं प्रयत्नानें मांस घ्यावें, तें दिलें असतां अक्षय्य होतें.”) श्राद्धांत दिलेलें मांस ब्राह्मणानें भक्षण केलें नाहीं तर दोष सांगतो मनु—“यथान्यायानें दिलेलें मांस जो मनुष्य भक्षण करीत नाहीं तो मेल्यानंतर एक-वीस जन्मपर्यंत पशु होतो.” येथें बहुत वचनांमध्ये श्राद्धांत मांसाला व मधाला प्राशस्त्य सांगितलें आहे; आणि “मांसा-वांचून जें श्राद्ध तें केलें तरी न केल्यासारखें होतें” असें हेमाद्रौत देवचलवचन आहे. तसेंच “जें श्राद्ध मधानें रहित तें सकल रसांनीं व मिश्रणांनीं जरी युक्त असलें तरी पितरांच्या तृप्तीकरितां होत नाहीं; म्हणून श्राद्धांत जर अल्पही मध नसेल तर पितरांच्या तृप्तीसाठीं मधानें नांव तरी घ्यावें” असें हेमाद्रौत ब्राह्मणवचनही आहे. यावरून श्राद्धांत मांस व मध हे नियमानें असावे असें सूचित होतें. गौडनिबंधांत मात्स्य व सुमंतू—“मधाच्या अभावीं गुड यावा, दुधाचे अभावीं दही घ्यावें, जेथें घृत मिळत नाहीं तेथें घृतवती ऋचेचा जप करावा.” श्राद्धकलिकेंत नागरखंडांत—“ब्राह्मणांना भोजनाविषयीं कसेहीकरून जर बध दिला नाहीं तर पिंड तरी मधावांचून कधीही देऊं नयेत.” बृहत्पराशर तर मांसाचा निषेध करितो.—“जो मनुष्य प्राणिवध करून मांसानें पितरांस तृप्त करितो तो शहाणा चंदन जाकून कोळसे विकतो. जसा बालक कांहीं वस्तु विहिरींत टाकून ती काढण्याविषयीं इच्छितो आणि न जाणतां विहिरींत पडतो, तसा मांसानें श्राद्ध करणारा समजावा.” तोच सांगतो—“ज्या वेळीं सर्वथा अन्न मिळावयाचें नाहीं त्या वेळींच मांस घ्यावें, तें मांस कुत्रा इत्यादिकांनें मारलेलें असेल तर ब्राह्मणानें स्वतः भक्षण करूं नये.” भागवतांतही—“श्राद्धांत आमिष देऊं नये, व धर्मतत्त्ववेत्त्यानें तें मांस भक्षणही करूं नये. जशी ऋषींच्या अज्ञांनीं पितरांची परमप्रीति होते तशी पशुहिंसेनें होत नाहीं” असें आहे. ह्या मांसाविषयीं केचित्प्रबंधकार—“ब्राह्मणाला ऋष्यक्ष सांगितलें, क्षत्रियवैद्यांना मांस सांगितलें

आहे, मध हा श्राद्धा लांगितला, अथवा जे विरुद्ध नसेल ते सर्वाना उक्त आहे,” अशी हेमाद्रिस्थ पुलस्त्यवचनावरून व्यवस्था सांगतात.

पृथ्वीचंद्रोदयस्तु अक्षतागोपशुश्रैवश्राद्धेमांसंतथामधु देवराक्षसुतोत्पत्तिः कलौपंचविबर्जयेदिति-
निगमोक्तेः वरातिथिपितृभ्यश्चपशुपाकरणक्रियेति कलिवर्ज्येषु हेमाद्रावादिपुराणात् मांसदानं-
थाश्राद्धेवानप्रस्थाश्रमस्तथेत्युक्त्वा इमान्धर्मानकलियुगेवर्ज्यानाहुर्मनीषिण इति बृहन्नारदीयेभिधाना-
मांसविधिः कलिव्यतिरिक्तविषयः कलौमांसनिषेधानांच देशाचाराद्यवस्था तथाच बृहन्नारदीये श्राद्धप्र-
कृत्य यथाचारंप्रदेयंतुमधुमांसादिकंतथा देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशीयजैर्नरैः अन्यथापतितोज्ञेयः सर्व-
धर्मबहिष्कृत इति यस्मिन्देशेपुरेप्रामेत्रैर्विचैर्नगरेपिवा योयत्रविहितो धर्मस्तंधर्मनविचालयेदिति भृगुक्ते-
त्याह तत्र होलाकाधिकरणन्यायेन देशविशेषव्यवस्थापकपदकल्पनायोगात् निरूपितंचैतत्पितामहचरणैर्मा-
समीमांसायामितिदिक् ।

पृथ्वीचंद्रोदय तर—“अभुक्त कन्येचा पुनरुद्धाह, मधुपर्कांत गोवध, श्राद्धांत मांस, तसाच मध व दिरापासून पुत्रोत्पत्ति
हीं पांच कर्मे कलियुगांत वर्ज्य करावीं” असें निगमवचन आहे म्हणून आणि ‘वर, अतिथि, पितर यांच्याकरितां
पशुहिंसा’ हें कलिवर्ज्यांत हेमाद्रांत आदिपुराणवचन आहे म्हणून आणि ‘श्राद्धांत मांसदान, तसाच वानप्रस्थाश्रम’
असें सांगून नंतर ‘हे धर्म कलियुगांत वर्ज्य आहेत असें विद्वान् सांगतात’ असें बृहन्नारदीयांतही सांगितलें आहे
म्हणून मांसविधि कलिव्यतिरिक्तविषयक आहे. कलियुगांत मांसनिषेधक वचनें आहेत त्यांची देशाचारावरून व्यवस्था
समजावी; कारण, तेंच बृहन्नारदीयांत श्राद्धाचा उपक्रम करून सांगतो—“मधु, मांस इत्यादिक जसा आचार असेल
तसें थावें, त्या त्या देशांतील मनुष्यांनीं त्या त्या देशाचे आचार ग्रहण करावे, देशाचाराविरुद्ध जो आचरण करितो तो
पतित सर्वधर्मबहिष्कृत असा समजावा.” आणि “ज्या देशांत, ज्या गांवांत अथवा ज्या नगरांत विद्वानांनीं जो धर्म विहित
केला त्या धर्माचें उल्लंघन करूं नये” असें भृगुवचनही आहे, अशी पृथ्वीचंद्रोदय मांसनिषेधाची व्यवस्था सांगतो. तें
बरोबर नाहीं. कारण, होलाकाधिकरणन्यायानें मांस अमुकदेशीं थावें व अमुकदेशीं देऊं नये अशी व्यवस्था करणाऱ्या
पदाची कल्पना होत नाहीं. अर्थात् सर्वदेशविषयक निषेध समजावा. ह्याचें निरूपण पितामहचरणांनीं (नारायण-
भट्टांनीं) मांसमीमांसंत केले आहे. मीं ही दिशा दाखविली आहे.

मनुः संवत्सरंतुगव्येनपयसापायसेनच वार्ध्रीणमस्यमांसेनतृप्तिर्द्वादशवार्षिकी त्रिःषिबंस्त्रिद्वयक्षीणंश्वेतं
वृद्धमजापतिं वार्ध्रीणसंतुतंप्राहुर्याज्ञिकाः श्राद्धकर्मणि क्षीरादौविशेषमाह हेमाद्रौसुमंतुः पयोदधिघृतंचै-
वगवांश्राद्धेपुपावनम् महिषीणांघृतंप्राहुः श्रेष्ठंनतुपयः क्वचित् याज्ञवल्क्यः संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयः प-
रिवर्जयेत् औष्ट्रमैकशफस्त्रैणमारण्यकमथाविकम् हेमाद्रौहारीतः नवसूतायाः सप्तरात्रादित्येके दशरात्रा-
दित्यपरे मासेनोपेयुषंभवतीतिधर्मविदः एतद्रजोभावपरं देवलः अजाविमहिषीणांतुपयः श्राद्धेषुवर्जयेत्
विकारान्पयसश्चैवमाहिपंतुघृतंहितम् तत्रैवब्राह्मे माहिपंचामरंमार्गमाविकैकशफोद्धवम् स्त्रैणमौष्ट्रपाचितं-
चदधिक्षीरंयजेद्धृतम् सगुडंमरिचाक्तंतुतथापर्युषितंदधि जीर्णतक्रमपेतंचनष्टास्वादंचफेनवत् माहिपापवादो-
पारकैंब्राह्मे देयंतंक्तुसद्यस्कंनवनीतादनुद्धृतम् आरण्यमहिषीक्षीरंशर्करासुतिसंयुतम् मध्वक्तंतुहितंचैव-
दद्यात्तदमृतंतयतः सुतिःक्षीरशरः श्राद्धकौमुद्यांचैवम् यद्यपि याज्ञवल्क्येन अन्नंपर्युषितंभोज्यंस्ने-
हाक्तंचिरसंस्थितम् अस्नेहापिगोधूमयवगोरसविक्रियाइति पर्युषितंदध्यादिभोज्यमुक्तम् तथापिगुडमरी-
चाक्तस्यपर्युषितदोपोत्रोच्यतइतिहेमाद्रिः तत्रैवब्राह्मे कालशक्तंतुलीयंवास्तुकंमूलकंतथा शाकमारण्यकं-

१ होलाकादिक शिष्टाचार व तद्विषयक हारीतादिसृतिविशेष विशेषदेशा प्रमाण आहेत. सर्वदेशीं नाहींत; कारण, होलाकादिक
आचार विशेषदेशीं दृष्ट आहेत. जसे—होलाकादिक प्राच्य कृतितात. वसंतोत्सव होलाका (होळी) आग्नीनेवुकादिक दाक्षिणात्य कृतितात.
आपआपल्या कुलपरंपरागत करंज—अर्कादि त्यावरदेवतापूजनादिक हे आग्नीनेवुक म्हटले आहे. उद्धवभयश्वादिक उदीच्य कृतितात.
ज्येष्ठमासाच्या पौर्णिमेस वृषभांची पूजा करून त्यांस भांवावयाचें तो उद्धवभय होय. याप्रमाणें हारीतादिसृति विशेषदेशीं दृष्ट
आहे यास्तव हे आचार त्या त्या देशांचे प्रमाण आहेत सर्व देशीं नाहींत, असें म्हणाल तर तसें नाहीं; कारण, त्या शिष्टाचारावरून
व सृतिवरून अनुमान केलेला जो वेद तो सर्वसाधारण असल्यामुळे ते आचारही सर्वत्र प्रमाण आहेत.

चैव दद्याच्छ्राद्धेषु नित्यशः तंदुलीयसूक्ष्मपत्रमिति हेमाद्रिः महाराष्ट्राणां माठ इति प्रसिद्धम् अरण्यकं फांजी-
चूचादितत्रैव दाडिमं मागधी चैव नागरार्द्रकं ति तिणी आम्नातकं जीरकं च कुबंरं चैव योजयेत् मागधी पिप्पली
नागरं शंठी कुबंरं कुस्तुंबरं धनिया इति प्रसिद्धम् वायवीये अगस्त्यस्य शिखास्तान्नाः कापायाः सर्व एव च शिखा-
नवपल्लवाः प्रभासखंडे आरामस्य तु सीमंताः कलायाः सर्व एव च सीमंताः नवपल्लवाः कौर्मे तमालं शतकं-
दं च मध्वालुः शीतकंदली मध्वालुः मोहलकंदः शीतकंदली राताळू इति प्रसिद्धम् ।

मनु—“गाईचें दूध, पायस दिल्यानें एक वर्षपर्यंत पितरांची तृप्ति होते. वाघ्रांणसाच्या मांसांनं वारावर्षपर्यंत पितरांची तृप्ति होते. तीन अवयवांनीं पिणारा (उदक पीत असतां दोन कान पाण्याम लागतात तो), इंद्रियक्षीण श्वेत वृद्ध अमा बोकड त्यास याज्ञिक श्राद्धकर्माविषयीं वाघ्रांणस म्हणतात.” क्षीरादिकां विषयीं विशेष सांगतो हेमाद्रीतं सुमंतु—“श्राद्धाचे ठायीं दूध, दही, तूप हीं गाईचीं पवित्र आहेत. महिषींचें घृत श्रेष्ठ आहे असें सांगतात, दूध श्रेष्ठ आहे असें कोठें नाहीं.” याज्ञवल्क्य—“गर्भास जाणारी, व्याल्यावर दहा दिवस न झालेली, वत्सरहित अशा गाईचें दूध वर्ज्य करावें. उंटी, एकशफा (घोडी इत्यादिक) स्त्रिया, अरण्यांतील पक्ष, मेंढी यांचें दूध वर्ज्य करावें.” हेमाद्रीतं हारीत—“नवीन प्रसूत झालेलीस सात दिवस झाल्यावर ग्रहण करावें, असें कोणी म्हणतात. दहा दिवसांनंतर घ्यावें, असें दुसरे सांगतात.” एक मासानंतर ग्रहण करण्यास योग्य असें धर्मवेत्ते सांगतात. हें रज असेल तर तद्विषयक आहे. देवल—“वकरी मेंढी आणि महिषी यांचें दूध श्राद्धांत वर्ज्य करावें आणि दुधाचे विकार (दही, तक्र इत्यादिक) तेही वर्ज्य करावे. महिषांचें घृत योग्य आहे.” तेथेंच ब्राह्मांत—“महिषी, चमरी (मृगविशेष), मृगी, मेंढी, घोडी इत्यादिक एकशफी, स्त्रिया, उंटी, या सर्वांचें व याचना केलेलें असें दही, दूध, घृत हें वर्ज्य करावें. तसेंच गूळ मिऱ्यें घालून पर्युषित (शिळें) झालेलें दही टाकावें. फुटून निवळी झालेलें, खाद नष्ट झालेलें व फेंसयुक्त असें तक्र टाकावें.” महिषीदुग्धादिविषयीं अपवाद सांगतो अपराकांत ब्राह्मांत—“सद्यः त्या वेळीं केलेलें तक्र लोणी काढल्याशिवाय यावें. अरण्यांतील महिषींचें दूध वरची साय, साखर व मध हे मिश्र करून उत्तम झालेलें तें दूध यावें; कारण, तें अमृतासारखें आहे.” श्राद्धकौमुदीतही असेंच सांगितलें आहे. जरी याज्ञवल्क्यानें—“तैलादिक स्नेहांनीं मिश्रित असें अन्न फार घेल राहून पर्युषित झालें तरी तें भोज्य (भक्षणाला योग्य) आहे आणि गहू, जव, गोरस यांचे विकार पर्युषित (शिळे) असून स्नेहरहित असले तरी ते भोज्य आहेत.” ह्या वचनानें पर्युषित दही वगैरे भोज्य आहे असें सांगितलें, तथापि गूळ मिऱ्यें यांनीं युक्त जें दही त्याला पर्युषितत्व (शिळे-पणाचा) दोष येथें सांगितला आहे असें हेमाद्रि सांगतो. तेथेंच ब्राह्मांत—“कालशाक (उन्हाळा), तांदुळजा (माठ) धातुक (चंदनबटुवा), मुळा, आरण्यक शाक (फांजीचूचादि), हीं शाके श्राद्धांत नित्य यावीं.” तांदुळजा सूक्ष्मपानाचा घ्यावा असें हेमाद्रि सांगतो. तेथेंच—“डाळिव, पिपळी, मुंठ, आलें, चिंच, आंवाडा, जिरे, कांथविर (धण) हीं श्राद्धांत यावीं.” वायवीयांत—“अगस्त्याचे तांबडे नवपल्लव, कापायरांगाचे सारे पल्लव श्राद्धास उक्त आहेत.” प्रभासखंडांत—“उपवनांतील नवपल्लव, आणि गंडदुर्वा उक्त आहेत.” कौर्मांत—“तमालपत्र, शतावरी, मध्वालु (मोहलकंद), शीतकंदली (राताळू), हीं श्राद्धास उक्त आहेत.”

अथ वर्ज्य मार्कंडेयपुराणे यच्चोत्कोचादिनाप्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् अन्यायकन्याशुल्कार्थद्रव्यंचा-
त्रविगर्हितं पितृर्धमेप्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यश्चाप्युपाहृतं चंद्रोदये शंखः भूस्तृणसुरसाशिप्रपालंकी मृचुकंतथा
कूष्मांडालाबुवार्ताकविदारांश्च वर्जयेत् पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वैपिंडमूलकम् कृतचलवणं सर्ववंश्रां च विवर्ज-
येत् राजमाषान् मसूरांश्च कोद्रवान् कोरदूषकान् लोहितान् वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् भूस्तृणकाश्मीर-
देशे प्रसिद्धं सुरसानि गुंडीति माधवः तुलसीति पृथ्वीचंद्रोदयः साच भक्ष्यत्वेन निषिद्धा नपुष्पत्वेनेति-
गौडाः पालंकीपालक इति प्रसिद्धा मृचुकं जलजः शाकः ससुकमिति पाठे खदिरशाक इति हेमाद्रिः मरीचा-
न्याद्राणीति हेमाद्रिः कृतलवणं सांभरभिन्नं सैधवं लवणं चैव तथा मानससंभवम् यच्च सामुद्रिकं भवेदिति
शूलपाणौ पाठः पवित्रे परमेष्ठे ते प्रत्यक्षे अपि नित्यश इति वायवीयोक्तेः मानससांभरम् यत्तु भविष्यम्
तर्ज्यन्यादंतकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथेति तत्र क्षारलवणं खारीति प्रसिद्धं निषिद्धं भुक्त्वा तु क्षारलवणं त्रिरात्रं तु नेव-
सेदिति ब्राह्मोक्तेरिति शूलपाणिः क्षीरलवणमिति पाठात् क्षीरमिश्रलवणं निषिद्धमिति वाचस्पतिः
राजमाषाः रतरा इति प्रसिद्धाः कोरदूषकः वनकोद्रवः चंद्रिकायां शंखः पिंडालकं च तुंडीरं करमर्दचना-
लिकं कूष्मांडं बहुबीजानि श्राद्धे दत्वा ब्रजत्यधः पिंडालकं महाराष्ट्रेषु पेंडरमिति प्रसिद्धम् तुंडीरं बिंबीफलमिति कै-

वृद्धपराशर—“करीरशुद्धाचीं फले व पुष्पे, वावडिं, सिन्धे, जंभारिका, जंभरें लिंबू, पक झालेलें महाखुंग, सुख जांभूळ, भोंपळा, पिंपळी, पडवळ, पिंडमूळक, मसुरा, अंजन, पुष्प, हीं श्राद्धांत दिलीं अमतां अयोग्यतीस जातो.” **माधवीयांत चतुर्विंशतिमतांत**—“यावनाल (जांथळे), आणि कुलिथ्य हे विद्वान् वर्ज्य करितात.” येथें श्राद्धप्रकरणांत जीं चणकादिक (आदि शब्दानां अलावू, पटोल इत्यादि) विहित असून पुनः निषिद्ध आहेत त्यांचा विकल्प समजावा.

विकल्प न मानला तर “इयामाक, चणकशाक, नीवार, राळे, गोधूम, तिल, मूग यांनी एक महिना पितर तृप्त होतात आणि गोधूम, इक्षु, मूग, वाटाणा, चणे यांनीही मासपर्यंत तृप्ति होते” अशा हेमाद्रीतील कूर्मपुराण विष्णुधर्म इत्यादि वचनांचा विरोध येईल. पिंपली, मिऱ्ये इत्यादिक प्रत्यक्ष निषिद्ध आहेत, अन्यद्रव्यमिश्रित निषिद्ध नाहीत. कारण, “ज्या ठिकाणी आंबट बोर, तिखट, लवण इत्यादिकांनी उत्तम पाकसिद्धि होते; तेथें महाळुंग, मिऱ्ये इत्यादियोगानें सिद्ध केलेले पदार्थ यावे, ते दुष्ट होत नाहीत” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धपराशरवचन आहे. तेथेंच—“ज्या पदार्थावर दात्याच्या मनाचा अभिलाष (आवड) असेल, व जो पदार्थ देण्याविषयी श्रद्धा होईल तोच पदार्थ श्राद्धाचे ठायीं यावा, तें दान अक्षय्य होतें असें विद्वान् बोलतात.” हें वचन निषिद्धपदार्थव्यतिरिक्त विषयक आहे. चंद्रिकेत—“श्राद्धकर्मांत सारीं काळीं धान्यें वर्ज्य करावीं. तिल, मूग, उडीद हे कृष्ण असले तरी वर्ज्य करूं नयेत.” मात्स्यांत—“मसुरा, तागाचें धीज, निष्पाव, राजमाष, कुसुंबिका, कमल, बेलेंफळ, रुई, धोतरा, पौरिभद्र, आँटरूषक हे पितृकार्यांत देऊं नयेत. तसेंच बकरीचें व मेढीचें दूध देऊं नये. कोद्रव, उद्गार, वरक, कपित्थ, मँधुक, जवस, श्राद्ध इच्छिणारांनं हीं देखील पितरांना देऊं नयेत.” कठिण शब्दांचा अर्थ १ निष्पाव म्हणजे वाल. आतां जे मार्कंडेय सांगतो कीं “प्रियंगु (राळे), कोविदार, आणि निष्पाव हे श्राद्धांत प्रशस्त” तेथें (मार्कंडेयवचनांत) निष्पाव म्हणजे श्वेतशिबी असें दानसागरांत व श्राद्धप्रकाशांत उक्त आहे. २ रक्तबेलफळ निषिद्ध. कारण, “जंबीर, रक्तबेलफळ आणि शालाचें फळ हें टाकावें” असें ब्राह्मवचन आहे. ३ पारिभद्र म्हणजे कडूनिंब, असें अमरांत आहे. रक्तमंदार असें हेमाद्रि सांगतो. ४ आँटरूषक म्हणजे अडुळगा त्याचें फूल. ५ उद्गार म्हणजे कांचनार. ६ वरक म्हणजे वनमूग. ७ मधुक म्हणजे ज्येष्ठीमध असें चंद्रिकाकार सांगतो.

हेमाद्रौब्रह्मांडे आसनारूढमन्नाद्यंपादोपहतमेवच अमेध्यैर्जगमैःस्पृष्टंशुष्कंपर्युषितंचयन द्विःस्विन्नं परिदग्धंचतथैवाप्रावलेहितम् शर्कराकीटपाषाणैःकेशैर्यज्ञान्युपद्रुतम् पिण्याकंमथितंचैवतथातिलवणंचयन सिद्धाःकृताश्चयेभक्ष्याःप्रत्यक्षलवणीकृताः वाससाचावधूतानिवर्ज्यानिश्राद्धकर्मणि द्विःस्विन्नयत्सकृत्पाकेन भक्ष्यमपिहिंगुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनःपच्यतेतद्वर्ज्यम् यत्तुक्तिशकान्नविकारादिद्विःपाकेनैवभक्षणार्हंतन्न निषिद्धं अप्रावलेहितमास्वादितपूर्वं पर्युषितस्यसदानिवेषेपिपुनर्वचनं अपूपाश्चरकंभाश्चधानावटकसक्तवः शाकंमांसमपूपंचसूपंकुसरमेवच यवागूःपायसंचैवयज्ञान्यत्स्नेहसंयुतं सर्वंपर्युषितंभोज्यंभुक्तंचेत्परिवर्जये-
विति माधवीयेयमोक्तवटकदेरपिपर्युषितस्यनिषेधार्थमितिचंद्रिकादयः वर्ज्येषुविश्वाभिन्नः कपि-
त्थंकुसुमंचैवनालिकेलंचपैनिकम् जंबूफलादिपकंचपिण्याकंतंदुलीयकम् हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मते वर्ज्या-
मर्कटकाःश्राद्धेराजमाषास्तथैवच मर्कटकाः लांकाइतिप्रसिद्धाः पैठीनसिः वृताकंनलिकापोतकुसुभाश्म-
तकानिच शाकानामभक्ष्याइति पोतपोईइतिप्रसिद्धम् मार्कंडेयः वर्ज्याश्चाभिपवानित्यंशतपुष्पागवेधुकाः
जंबीरकंफलवर्ज्यकोविदारश्चनित्यशः अभिषवःसूक्तमितिचंद्रिका संधानकमितिपृथ्वीचंद्रः शतपुष्पा
ओवाइतिप्रसिद्धम् शाठ्यायनः मारिषंनालिकाचैवरक्तायाचकलंबिका असुरान्नमिदंसर्वपितृणानोपतिष्ठते
मारिषं मध्यदेशेमरुसाइतिमहाराष्ट्रेपुराजगिराइतिप्रसिद्धं कलंबिकावेण्वाकृतिपत्रा तत्रैव गांधारिकापटोलानि-
श्राद्धकर्मणिर्वर्जयेत् गांधारिकातंदुलीयमितिचंद्रिका जवासाख्यादुरालभेतिकैदेवः भारते हिंगु-
द्रव्येषुशकेषुअलाबुलंशुनंतथा कुकुंडकान्यलाबूनिक्वणलवणमेवच पुनरलाबुग्रहणमुभयालाबुनिषेधार्थमिति
पृथ्वीचंद्रः कुकुंडकंवर्तुलंछत्राकम् तत्रैव कुस्तुबुरुकलिंगोत्थंवर्जयेदाम्लवेतसम् ।

हेमाद्रीत ब्रह्मांडपुराणांत—“जें अन्नादिक आसनावर पडलेलें, पाय लागलेलें, अपवित्र अशा मार्जारादिकांनीं स्पृष्ट झालेलें, शुष्क, पर्युषित (शिळें), ‘द्विःस्विन्न’ (दोन वेळां पक केलेलें), करपलेलें, पूर्वीं चाखून पाहिलेलें, वाळू, कीटक, पाषाण व केश यांनीं मिश्रित, पिण्याक (पेंड), घुसळलेलें, अतिखाट, जे तयार केलेले भक्ष्य प्रत्यक्ष लवणा-
सारखे झाले ते, वृक्षानें गाळलेले पदार्थ हे सारे श्राद्धकर्मांत वर्ज्य आहेत.” द्विःस्विन्न म्हणजे जें एक वेळां पक केल्यानें भक्षणास योग्य असतांही हिंग, जिरे इत्यादि संस्काराकरितां पुनः पक करितात तें वर्ज्य होय. जें कडुशाक, अन्नविकृति इत्यादिक द्विवार पक केल्यानंच भक्षणास योग्य होतें तें निषिद्ध नाही. पर्युषित सदा निषिद्ध असतां पुनः या वचनांत पर्युषित निषिद्ध सांगितलें याचा हेतु असा आहे कीं, “अपूप, करंभ, धाना (अन्नयव), वटक, सातु, शाक, मांस, अपूप, सूप (वरण), खिचडी, यवागू, पायस आणि जें दुसरें जेहयुक्त असेल तें सारें पर्युषित भोज्य आहे; त्यांतील भक्षण केलेलें असेल तर वर्ज्य करावें.” ह्या माधवीय ग्रंथांतील यमवचनांनं पर्युषित वटकादि भोज्य सांगितलें त्याचाही निषेध करण्यासाठीं

पुनः पर्युषित प्रहण आहे, असें चंद्रिकाकारादिक म्हणतात. वर्ज्यांचे ठायीं विश्वासिन्न सांगतो—कपित्थ, नारळाचें पुष्प, पैनिक, पिकलेलें जांभूळ वगैरे, पिप्पली (तिळकूट), तांदूळजा हीं वर्ज्य होत.” हेमाद्रीत षट्त्रिंशन्मतांत—“श्राद्धांत मर्कटक (लांक), तसेंच राजमाष हे वर्ज्य होत.” पैठीनसि—“वांगें, नलिका, पोत (पोई), कुसुम, अश्मंतक (आपटा) हीं शाकांमध्ये अभक्ष्य आहेत.” मार्कंडेय—“अभिषव (सूक किंवा संधानक), शतपुष्पा (ओंवा), गवेषुका (कसईचें बीं, कसाड) हीं नित्यवर्ज्य आहेत. जंबीरफल आणि कोविदार (कांचन) हीं नित्य वर्ज्य होत.” शाक्यायन—“मारिष, नालिका, (कमलाचा दंड), लालकलंबिका (वेढूसारख्या पत्राची थोर मयाळ) हीं सारें अशुरांचें अन्न आहे, पितरांना प्राप्त होत नाहीं.” १ मारिष म्हणजे मध्यदेशांत मरुसा म्हणतात. महाराष्ट्रांत राजगिरा म्हणून प्रसिद्ध. तेथेंच—“गांधारिका आणि पटोलें (पडवल) हीं श्राद्धकर्मांत वर्ज्य करावीं.” २ गांधारिका म्हणजे तांदूळजा असें चंद्रिकाकार म्हणतो. जवासा (धमासा) असें कैदेव म्हणतो. भारतांत—“पदार्थांत व शाकांत हिंग वर्ज्य करावा; तसाच अलाबु (भोंपळा), लसूण, कुकुंडक (वतुलछत्राक), अलाबु, आणि काळें मीठ हीं वर्ज्य करावीं” दोन वेळां ‘अलाबु’ याचें प्रहण केलें आहे तें दोन प्रकारच्या अलाबूंचा (भोंपळ्यांचा) निषेध करण्यासाठीं आहे, असें पृथ्वीचंद्र म्हणतो. तेथेंच—“कालिंग देशांतील कुस्तुंबुरु (कोथिंबीर) आणि अम्लवेतस वर्ज्य करावें.”

हेमाद्रौब्राह्मे वार्ताकंपंचशिंवंचलोमशानिफलानिच कलिंगरक्तचारंचवीणाकंधृतचारकम् कपालं काचमारीचकरंजपिंडमूलकम् गुंजनंचुक्रिकांचैवगाजरंजीवकंतथा वृंताकंश्वेत कंहुंरांश्वेतवृंताकंभुंभांडंचवि वर्जयेदितिदेवलोक्तेः तेनकृष्णस्यानिषेधइतिचंद्रिकामाधवौ वस्तुतस्तुसदाश्वेतनिषेधात्पुनःश्राद्धेनिषेधोव्यर्थः तेनभक्ष्यस्यकृष्णवृंताकस्यापिनिषेधार्थमिदमितिवयम् कंहुंराकपिकच्छूः कुंभांडंवृत्तालाबुः पंच-शिंवंचलमसूरराजमापमठकुलित्थाः लोमशानिकपित्थानि रक्तचारंलोहितचारफलम् वीणाकंकृष्णदीर्घकर्मडी धृतचारकंचिरस्थितचारफलम् चारोलीतिप्रसिद्धं कपालंनारिकेलं काचंकवुवृक्षफलं मारीचंआर्द्रमरीचानि गुंजनंपलांडुभेदः पश्चिमदिशिप्रसिद्धः नतुगाजरम् तस्यपृथगुक्तेः हेमाद्रिणातुगंजनंगाजरमेवोक्तम् गौडश्राद्धकौमुद्यामप्येवं तच्चित्यम् चुक्रिकाचिरकालशुक्तंपानकम् चंद्रिकायांहारीतः नवटप्ल क्षोदुंबरशेलुदधित्थनीपमातुलंगानिभक्षयेत् शेलुःश्लेष्मातकःभोकरसंज्ञः दधित्थंकपित्थं स्मृतिसारे क्षीरेतुलवणंदत्वाउच्छिष्टेपिचयदृतम् स्नानंरजकतीर्थपुताग्रेगव्यंसुरासमम् गौडनिबंधसागरेस्मृतिः नारिकेरोदकंकांस्येताम्रपात्रेस्थितंमधु गव्यंचताम्रपात्रस्थंमद्यतुल्यंघृतंविना ताम्रपात्रेधृतंमांसंयज्ञगव्यंघृतेतरत् आमिपंतुगवांमांसंदधिमसंपयोरजः द्रव्यांतरयुतंमांसंपयसांसंयुतंदधि पयोनुद्धृतसारंचताम्रपात्रेनदुष्यति।

हेमाद्रीत ब्राह्मांत—“वृंताक (वांगें), पंचशिव, लोमश (कंवठ), कलिंग, रक्तचार (लोहितचारफल), वीणाक (लांबट काळी कांकडी), धृतचारक (चारोली), कपाल (नारळ), काच (कचुकवृक्षफल), मारीच (ओलीं मिर्च), करंज, पिंडमूलक, गुंजन, चुक्रिका, गाजर, जीवक हीं वर्ज्य होत.” वृंताक श्वेत निषिद्ध. कारण, “कंहुंरा (कुहिली), श्वेतवृंताक आणि कुंभांड (वतुल भोंपळा) वर्ज्य करावें.” असें देवलवचन आहे. तेणेंकरून कृष्णवृंताकाचा निषेध नाहीं जसें चंद्रिका आणि माधव सांगतो. वास्तविक म्हटलें तर श्वेतवृंताकाचा सदा निषेध असल्यामुळें पुनः श्राद्धांत निषेध करण्याचें कारण नसून ज्यापेक्षां श्राद्धांत निषेध केला, त्यापेक्षां भक्ष्य असें जें कृष्णवृंताक त्याचाही श्राद्धांत निषेध आहे, असें आम्हीं (कमलाकरमठ) म्हणतो. पंचशिव म्हणजे वाल, मसुरा, राजमाष, मठ, आणि कुलित्थ होत. गुंजन म्हणजे पलांडूची एक जात पश्चिमदेशांत प्रसिद्ध आहे. गाजर नव्हे. कारण, तें वेगळें सांगितलें आहे. हेमाद्रीतें गुंजन म्हणजे गाजरच सांगितलें. गौडश्राद्धकौमुदीतही असेंच आहे. तें चित्य (प्रमाणश्चत्य होय). चुक्रिका म्हणजे मधुर द्रव पदार्थ चिरकाल राहून आंबट झालेला होय. चंद्रिकेंत हारीत—“वट, द्रक्ष (पायरी), उंबर, शेळ (भोंकर), कंवठ, नीप, महाकुंग हीं भक्षण करूं नयेत.” स्मृतिसारांत—“दुधांत मीठ, उच्छिष्ट पदार्थांत घृत, रजकांच्या तीर्थांत ज्ञान, आणि ताम्रपात्रांत गोरस हें सुरातुल्य होतें.” गौडनिबंधसागरांत स्मृति—कांस्यपात्रांत नारळाचें पाणी, ताम्रपात्रांत मद्य, आणि ताम्रपात्रांत घृतावांचून इतर गोरस हीं मद्यतुल्य होतात. ताम्रपात्रांत घृतावांचून इतर गोरस ठेवले असतां मांस, तुल्य होतात. ताम्रपात्रांत आमिष गोमांस होतें, दही मद्य होतें, आणि दूध रज होतें. अन्यद्रव्यानें युक्त मांस, दुधाचें युक्त दही, आणि लोणी काढल्यावांचून दूध हीं ताम्रपात्रांत दुष्ट होत नाहीत.”

अथजलम् याज्ञवल्क्यः शुचिगोवृत्तिकृतोयंप्रकृतिसंमहीगतं वर्ज्यजलमुक्तंहेमाद्रौब्रह्मांशे दुर्गाधिफेनिलंक्षारंपंकिलंपल्वलोदकम् नभवेद्यत्रगोवृत्तिनंकंयबाधुपाहतम्, यजसर्वाय्यमुत्सृज्यंकाशोव्य-

निपानजम् तद्वर्ज्यसलिलतातसदैवश्राद्धकर्मणि निपानोजलाशयः शुद्धितस्त्वेशांखः स्नानमाचमनंदानंदेवता-
पितृतर्पणं शूद्रोदकैर्नकुर्वीततथाभेदाद्विनिःसृतैः हेमाद्रावादित्यपुराणे चिरंपर्युषितंवापिशूद्रस्पृष्टमथा-
पिवा जाह्नव्याःस्नानदानादौपुनात्येवसदापयः कात्यायनः अपोनिशिनगृहीयात्रपिविषकदाचन उद्ध-
त्याभिसुपर्यभेदांभोधाग्नइतीरयेत् रजोदोषेतुप्रागुक्तं नारदीये त्यजेत्पर्युषितंपुष्पंत्यजेत्पर्युषितंजलम् नत्यजे-
ज्जाह्नवीतोयंतुलसीबिल्वपद्मकम् ।

आतां उदक सांगतो—

याज्ञवल्क्य—“जेथं गाईची तृप्ति होत असते त्या ठिकाणचें भूमिगत न विघडलेलें उदक शुद्ध आहे.” वर्ज्य उदक सांगतो हेमाद्रीत ब्रह्मांडपुराणांत—“दुर्गंधयुक्त, फेंसयुक्त, खारट, गडूळ, अल्पसरोवरांतील, जेथं गाईची तृप्ति होत नाही तें व रात्रीं आणलेलें उदक वर्ज्य ज्या उदकाचा सर्वाकरितां उत्सर्ग केलेला नाही तें आणि अमोक्ष्य जे शूद्रादिक त्यांच्या जलाशयांतील असलेलें उदक श्राद्धकर्माचे ठायीं गदा वर्ज्य करावें.” शुद्धितत्वांत शंख—“स्नान, आचमन, दान, देव, आणि पितर यांचें तर्पण हीं कृत्यें शूद्रोदकांनीं करूं नयेत. तशींच पावसाच्या पाण्यानं करूं नयेत.” हेमाद्रीत आदित्यपुराणांत—“भागीरथीचें उदक बहुत दिवस राहिलेलें अमलें तरी अथवा शूद्रस्पृष्ट झालें तरी स्नानदानादि-कर्माविषयीं सदा पवित्रच करणारें आहे.” कात्यायन—“उदक रात्रीं आणूं नये. व रात्रीं कधीही पिऊं नये. प्याल्यावांचून गति नसेल तर अग्नीचा उद्धार (प्रज्वलन) करून त्याजवर उदक ठेऊन ‘धान्नो धान्नो०’ हा मंत्र म्हणून नंतर प्यावें.” उदकाला रजोदोष अमेल तर पूर्वी (द्वितीयपरिच्छेदांत) सांगितल्या आहे. नारदीयांत—“पर्युषित पुष्प टाकावें व पर्युषित उदक टाकावें. परंतु भागीरथीचें उदक, तुलसीपत्र, बिल्वपत्र, आणि कमल हीं पर्युषित टाकूं नयेत.”

अन्यान्यपिपृथ्वीचंद्रोदयेमात्स्ये मध्याह्नःखड्गपात्रंचतथानेपालकंबलः रौप्यंदर्भास्तिलागावोदौहि-
त्रश्चाष्टमःस्मृतः पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्यसंतापकारिणः अष्टावेतेयतस्तस्मात्कुतपाइतिविश्रुताः ब्राह्मे यति-
स्त्रिदंडःकरुणाराजतंपात्रमेवच दौहित्रंकुतपःकालश्छागःकृष्णाजिनंतथा शस्त्रानीतिशेषः दौहित्रंखड्गपात्र-
मितिकल्पतरुः अपराकैस्मृत्यंतरे अपत्यंदुहितुश्चैवखड्गपात्रंतथैवच घृतंचकपिलायागोदौहित्रमिति-
कीर्तितम् ब्रह्मांडे अमावास्यागतेसोमेयातुखादतिगौस्त्वृणम् तस्यागोर्यद्भवेक्षीरंतदौहित्रमुदाहृतम् स्मृति-
संग्रहे उच्छिष्टंशिवनिर्माल्यंवातंचमृतकर्पटम् श्राद्धेसप्तपवित्राणिदौहित्रःकुतपस्तिलाः उच्छिष्टंवत्सस्य-
दुग्धमित्यर्थः शिवनिर्माल्यंगंगोदकं वातंमधु मृतकर्पटंतसरीपट्टं तिलेष्वापस्तंबः अटव्यायेममुत्पन्नाअ-
कृष्टफलितास्तथा तेवैश्राद्धेपवित्राःस्युस्तिलास्तेनतिलास्तिलाः अभावेग्राम्याः गौराःकृष्णास्तथारण्यास्तथैव
त्रिविधास्तिलाइतिब्राह्मोक्तेः ।

इतरही सांगतो पृथ्वीचंद्रोदयांत मानस्यांत—“मध्याह्न, खड्गपात्र, नेपालकंबल (शाल), रौप्य, दर्भ, तिल, गाई, आठवा दुहितापुत्र, हे आठ कुतप आहेत; कारण, पाषाळा ‘कु’ म्हणजे कुत्सित म्हणतात. त्याला ताप (नाश) करणारे हे आठ पदार्थ आहेत म्हणून हे कुतप म्हटले आहेत.” ब्रह्मांत—“त्रिदंडसंन्यासी, दया, रूपाचें पात्र, दौहित्र, कुतपकाल (आठवा मुहूर्त), बोकड, आणि कृष्णाजिन हीं प्रशस्त आहेत.” दौहित्र म्हणजे खड्गपात्र असें कल्पतरु सांगतो. अपरा-
कांत स्मृत्यंतरांत—“कन्येचें अपत्य, खड्गपात्र, कपिलागाईचें घृत, यांना दौहित्र म्हटलें आहे.” ब्रह्मांडपुराणांत—
“अमावास्याच्या दिवशीं सोम तृणांत गेल्या असतां जी गाय तृण भक्षण करते त्या गाईचें जें दूध तें दौहित्र म्हटलें आहे.” स्मृतिसंग्रहांत—“उच्छिष्ट (वत्सोच्छिष्टदुग्ध), शिवनिर्माल्य (गंगोदक), वात (मध), मृतकर्पट (तसरीपट्ट), दौहित्र, कुतप आणि तिल हे सात पदार्थ श्राद्धविषयीं पवित्र होत.” तिलांविषयीं आपस्तंब—“नांगरल्यावांचून अरण्यांत जे उत्पन्न झालेले ते तिल श्राद्धांत पवित्र आहेत. इतर तिल ते तिल नव्हत.” त्यांच्या अभावीं ग्राम्य ध्यावेत; कारण, “गौर, कृष्ण आणि आरण्य (अरण्यांत उत्पन्न) असे तील तीन प्रकारचे.” असें ब्राह्मवचन आहे.

अथवर्ज्यानि चंद्रिकायांयमः ककुटोविडुराहश्चकाकश्चाथविडालकः वृषलीपतिश्चवृषलःपंडोवी-
रारजखला एतेतुश्राद्धकालेवैवर्जनीयाःप्रयत्नतः खंजःकाणःकुणिःश्वित्रीदातुःप्रेष्यकरस्तथा न्यूनांगोप्यतिरि-
क्तांगस्तमप्यपनयेत्ततः वायवीये अन्नंपश्येयुरेतेतुयदिवैहव्यकव्ययोः उत्सृष्ट्यंप्रधानार्थसंस्कारस्त्वापदि-
सृतः सुमंतुः चांडालादिवीक्षितमन्नमभोज्यमन्यत्रसृद्धस्महिरण्योदकस्पर्शान् तत्रैवजमदग्निः शुद्ध-

बलौथकूष्मांड्यः पावमान्यस्तरत्समाः पूतेनवारिणादभैरभदोषमपानुदेत् चंद्रोदये पादुकोपानहौष्ठत्रिचित्र-
रक्तांबरंतथा रक्तपुष्पंचमार्जारं श्राद्धभूमौविवर्जयेत् निर्णयदीपे घंटानिनादोहयसंनिधानंशंबूकशंखकद-
लीदलंच उन्मत्तजात्यकंहयारिजानिश्राद्धस्ववैगुण्यकराण्यमूनि हयारिजंमहिषीक्षीरादि ।

आतां वर्ज्य सांगतो—

चंद्रिकेत यम—“कोंबडा, गांवडुकर, कावळा, मार्जार, शूद्रिणीचा पति, शूद्र, नपुंसक, पतिपुत्ररहित स्त्री, रजस्वला, हे श्राद्धकालीं प्रयत्नानें वर्ज्य करावे. लुला, काणा, हात गेलेला, पांढऱ्या कोडाचा, चाकर, अंगविकल, अधिक अवयवाचा, यांना श्राद्धस्थानापासून दूर करावे.” वायवीयांत—“हे पूर्वीक वृषलादिक जर देवपितरांचें अन्न पाहातील तर तें अन्न टाकावें. आपत्कालीं (न पाहाण्यासारखें स्थल नसेल तर) प्रधान अन्नाची शुद्धि करावी.” सुमंतु—“चांडालादिकांनीं पाहिलेलें अन्न अमोज्य आहे. त्याजवर मृत्तिका, भस्म, सुवर्ण व उदक हीं टाकून शुद्ध केल्यावर तें भोज्य होतें.” तेथेंच जमवृक्षि—“शुद्धवती, कूष्मांडी आणि पवमानांतील तरत्समंरी ह्या ऋचांनीं अभिमंत्रित उदक दर्भानीं शिंपडून अन्नाचा दोष घालवावा.” चंद्रोदयांत—“पादुका, उपानह (जोडा), छत्री, चित्र व रक्तवस्त्र, रक्तपुष्प आणि मार्जार हीं श्राद्धभूमीवर वर्ज्य करावीं.” निर्णयदीपांत—“घंटेचा नाद, घोड्याचें सांनिध्य, शिंपला, शंख, केळीचें पान, धोतरा, जाई, रुई यांचीं फुलें हयारिज (महिषीक्षीरादि) हीं श्राद्धाला वैगुण्य उत्पन्न करणारीं आहेत.”

अथश्राद्धदिनकृत्यम् चंद्रोदयेउशनाः गोमयोदकैर्भूमिभाजनशौचं कुर्यात् पराशरः कांजि-
कंदधितक्रंचशृत्वाशृतमेवच पूर्वमेव न दातव्यमेकोद्विष्टेधर्वावर्णे हेमाद्रौपराशरः गृहमिशिशुदेवानां
ब्रह्मचारितपस्विनाम् तावन्नदीयतेकिंचिद्यावपिंडान्ननिर्वपेत् कौर्मे तिलानवकिरेत्तत्तत्सर्वतोबंधयेदजाम्
तत्रैवदेवलः तथैवयंत्रितोदाताप्रातःस्नात्वासहान्वरः आरभेतनवैः पात्रैरन्नारंभंचबांधवैः अत्रात्मनेपदात्स-
यमेवपाकः कार्यः अशक्तौपदया तदभावेबांधवैः ततस्तानिपपाचाशुसीताजनकनंदिनीतिपात्रालिंगादिति
हेमाद्रिः श्राद्धदीपकलिकायामाश्वलायनः समानप्रवरैर्मिश्रैः सपिंडैश्चगुणान्वितैः कृतोपकारि-
भिश्चैवपाककार्यप्रशस्यते व्यासः गृहिणीचैवसुस्नातापाकंकुर्यात्प्रयत्नतः निष्पन्नेषुचपाकेषुपुनः स्नानंसमाच-
रेत् पृथ्वीचंद्रोदयेब्राह्मे रजस्वलांचपाखंडांपुश्चलीपतितांतथा त्यजेच्छूद्रांतथावंध्याविधवांचान्यगोत्र-
जाम् व्यंगकर्णीचतुर्थीहः स्नातामपिरजस्वलाम् वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थममातृपितृवंशजाम् मातृपितृवंशजभिन्ना-
त्यजेदित्यर्थः स्मृतिसारे नपाकंकारयेत्पुत्रीमन्यांवाप्यन्यगोत्रजाम् मृतवंध्यांचगर्भग्रीगर्भिणीचैवदुर्मुखी ।

आतां श्राद्धदिवशींचं कृत्य सांगतो—

चंद्रोदयांत उशना—“गोमय व उदक यांनीं भूमी, पात्रें इत्यादिकांची शुद्धि करावी.” पराशर—“एकोद्विष्टांत व
पार्वणश्राद्धांत कांजी, दर्हा, तक, आणि पक्क (शिजविलेलें) व अपक्क यांपैकी कोणताही पदार्थ श्राद्ध होण्याच्या पूर्वी
कोणास देऊं नये.” हेमाद्रिंत पराशर—“श्राद्धदिवशीं जोपर्यंत पिंडदान केलें नाहीं तोपर्यंत गृहातील अभि, बालक,
देवता, ब्रह्मचारी (मधुकर), तपस्वी यांना कांहीं देऊं नये.” कौर्मांत—“श्राद्धभूमीवर तील टाकावे, चव्दूकडे बोकड
बांधावे.” तेथेंच देवल—“श्राद्धकर्यानें प्रातःकालीं नियमित होऊन सचैल स्नान करून नवीं शुद्ध पात्रें घेऊन बांधवांसह-
वर्तमान अन्नाच्या पाकाला आरंभ करावा.” ह्या वचनांत ‘आरमेत’ हें (क्रियापद) आत्मनेपद असल्यामुळें स्वतः पाक करवा,
असें होतें. स्वतः करण्यास अशक्ति असेल तर पत्नीनें करावा. तिच्या अभावीं बांधवांनीं करावा. कारण, “तदनंतर जनकाची
कन्या सीता अन्नाचा पाक लवकर करिती झाली” ह्या पद्मपुराणांतील वचनानें स्त्रियांस पाकाधिकार सुचविलेला आहे,
असें हेमाद्रि सांगतो. श्राद्धदीपकलिकेत आश्वलायन—“सपिंड, सप्रवर, गुणी व उपकार केलेले अशा मनुष्यांनीं
पाक करणें प्रशस्त आहे.” व्यास—“स्त्रियेनें स्वच्छ स्नान करून मोठ्या यत्नानें उत्तम पाक करावा, सर्व पाक सिद्ध झाल्या-
वर पुनः स्नान करावें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत—“रजस्वला, पाखंडी, जारिणी, पतित, शूद्रा, वांघोरी, अन्य गोत्रांतील
विधवा, जीचे कर्ण व्यंग आहेत ती, रजस्वला चतुर्थी दिवशीं स्नान केलेली, जी मातृवंशांतील किंवा पितृवंशांतील नव्हे ती,
ह्या स्त्रिया श्राद्धपाकाविषयीं वर्ज्य कराय्या.” स्मृतिसारांत—“कन्या, अन्यगोत्रांतील स्त्री, मृतवंध्या (जीचीं मुलें बांचत
नाहींत ती), गर्भहत्या करणारी, गर्भिणी, व दुर्मुखी यांच्याकडून पाक करवूं नये.”

१ मूलप्रतीत हयारिज म्ह. सहिषीक्षीरादि असें म्हटलें आहे; तथापि येथें हयारिजशब्दानें भत्तूरादि पुष्पसाहचर्येकरून कण्ठेरीचे
पुष्प ध्यावें असें बरें वाटतें. कारण त्या कण्ठेरीला हयमारक असें नांव आहे.

पाकभांडानितुहेमाद्रौनागरखंडे सौवर्णान्यथरौप्याणिकांस्तथाप्रोद्भवानिच मार्तिक्यान्यपिभव्या-
निनूतनानिद्वानिच तत्रैवादित्यपुराणे पचेदन्नानिमुक्तातःपात्रेषुशुचिषुस्वयं स्वर्णादिधातुजातेषुमृन्मये-
ष्वपिवाद्विजः अच्छिद्रेष्वविलिप्तेतुथानुपहतेषुच नायसेषुनभिन्नेषुदूषितेष्वपिकर्हिचित् पूर्वकृतोपयोगेषुमृन्म-
येषुनतुकचित् वायुपुराणे नकदचित्पचेदन्नमयस्थालीषुपैतृकं अयसोदर्शनादेवपितरोपिद्रवंतिहि कालाय
संविशेषेणनिंदतिपितृकर्मणि फलानांचैवशाकानांछेदनार्थानियानितु महानसेपिशस्त्राणितेपामेवहिसन्निधिः
इष्यतेनेतरस्यात्रशस्त्रमात्रस्यदर्शनं श्राद्धदेशेतुविदुषापितृणांतृप्तिमिच्छता महानसेपियुक्तानामपिकार्येनदर्श-
नम् तत्रैव पंचमानस्तुभांडेषुभक्त्याताम्रमयेषुच समुद्धरतिवैधोरात्पितृनदुःखमहार्णवात् तैजसानामभावे-
तुपिठरेमृन्मयेपिच नवेशुचौप्रकुर्वीतपाकंपित्रर्थमादरात् तत्रैवादिपुराणे पक्वान्नस्थापनार्थेतुशस्यतेदारुजा-
न्यपि दव्यादीन्यपिकार्याणियक्षियैरपिदारुभिः यमः विवाहेप्रेतकार्यंचमातापित्रोःक्षयेहनि नवभांडानि
कुर्वीतयज्ञकालेविशेषतः ।

आतां पाकाविषयीं भांडीं सांगतो—

हेमाद्रौत नागरखंडांत—“सोन्याचीं, रुप्याचीं, कांशाचीं, व तांब्याचीं पात्रें असावीं. नवीं दड (न फुटणारी)
चांगलीं अशीं मातीचींही पात्रें असावीं.” तेथेंच आदित्यपुराणांत—“द्विजानें स्वच्छ स्नान करून शुद्ध अशा सुवर्णादि
धातुपात्रांत अन्नाचा पाक स्वतः करावा, अथवा मृन्मयपात्रांत करावा. तीं पात्रें फुटकी, इतर पदार्थानें लिप्त किंवा दूषित
असूं नयेत. लोहपात्रें, फुटकी, व दुष्ट अशा पात्रांत कधीही पाक करूं नये. पूर्वीं उपयोगांत आणलेल्या अशा मातीच्या
पात्रांत कधीही पाक करूं नये.” वायुपुराणांत—“लोहपात्रांत पितृसंबंधी अन्नाचा पाक कधीही करूं नये; कारण,
लोहाच्या दर्शनानें पितर जातात. काळें लोखंड विशेषेंकरून पितृकर्मविषयीं निंघ आहे. फळें शाका हीं कापण्याकरितां जीं
शस्त्रें पाकशालेंत असतील तींच असूं यावीं, पितर तृप्त व्हावे असें इच्छिणारानें श्राद्धप्रदेशीं इतर शस्त्रांचें दर्शन होऊं देऊं नये.
पाकशालेंत असलेल्या शस्त्रांचेंही दर्शन होऊं देऊं नये.” तेथेंच सांगतो—“श्राद्धदिवशीं ताम्रमयपात्रांत भक्तीनें पाक करणारा
घोरदुःखसागरापासून पितरांचा उद्धार करितो. धातुपात्रांचा अभाव असतां नव्या शुद्ध अशा मृन्मयस्थालीमध्ये पितरां-
करितां मोठ्या आदरानें पाक करावा.” तेथेंच आदिपुराणांत—“पक्क केलेलें अन्न ठेवण्यासाठीं लांकडाचीं पात्रेंही
प्रशस्त आहेत. पळी वगैरे पात्रें देखील यज्ञिय (यज्ञांत उक्त) वृक्षांचीं करावीं.” यम—“विवाह, प्रेतकार्य, मातापितरांचा
मृतदिवस यांचे ठायीं नवीं पात्रें करावीं. यज्ञकालीं विशेषेंकरून नवीं करावीं.”

अथपाकाग्निः हेमाद्रौप्रजापतिः औपासनेनाग्निसिद्धिरग्नौकरणमेवच पृथ्वीचंद्रोदयंसगिराः
शालाग्नौतुपचेदन्नलौकिकेवापिनित्यशः यस्मिन्नग्नौपचेदन्नतस्मिन्होमोविधीयते मनुः वैवाहिकेग्नौकुर्वीतगृ-
ह्णकर्मयथाविधि पंचयज्ञविधानंचपत्तिचान्वाहिकीद्विजः श्राद्धस्यगृह्यत्वंचोक्तमपराक्रेण अत्रविशेषःकर्म
प्रदीपे प्रातर्होमंतुनिर्वर्त्यसमुद्धृत्यहुताशनात् शेषंमहानसेकृत्वातत्रपाकंसमाचरेत् पाकांतमितमाहृत्यगृह्या-
ग्नौतुपुनःक्षिपेत् ततोस्मिन्वैश्वदेवादिकर्मकुर्यादन्नद्वितः तदभावेलौकिके ततःपचेयुरन्नानिनिर्वापानंतरंरक्षैः
वैवाहिकेग्नौवाग्न्यत्रलौकिकेवापिसंयतइतिकलिकायांसंग्रहोक्तेः पितृर्थनिर्वापंकृतेत्यर्थः अतएवहेमा-
द्रौवायुपुराणे पितृर्थनिर्वपेद्भूमौकूर्चैवादर्भसंस्कृते तत्रैवपाक्नमात्स्ययोः अग्निमाग्निर्वपेत्पत्रंचरुंवास-
ममुष्टिभिः पितृभ्योनिर्वपामीतिसर्वदक्षिणतोऽन्यसेत् चरुप्रहणाग्नशाकादावितिहेमाद्रिः पिंडपितृयज्ञार्थ-
पाकविषयोयंनिर्वापइतितुयुक्तं अन्यचेतरेषामस्ति ।

आतां पाक करण्याचा अग्नि सांगतो—

हेमाद्रौत प्रजापति—“औपासनाग्नीनें अन्नाचा पाक करावा व अग्नौकरणही त्यांतच करावें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत
अंगिरा—“अग्निशालेंतील अग्नीवर अथवा लौकिकाग्नीवर नित्यपाक करावा. ज्या अग्नीवर पाक केला असेल त्याच अग्नीवर
त्याचा होम करावा.” मनु—“गृह्यकर्म, पंचमहायज्ञ व दुरोजचा पाक हें सर्व विवाहाग्नीवर यथाविधि करावें.” श्राद्ध हें
गृह्यकर्म आहे असें अपराकानें सांगितलें आहे. येथें विशेष सांगतो कर्मप्रदीपांत—“प्रातःकालीं होम करून नंतर त्या
अग्नींतून अग्नि काढून चुलींत घाडून त्याजवर पाक करावा. पाक झाल्यावर तो अग्नि पुनः गृह्याग्नीत नेऊन टाकावा. तद-
नंतर त्या अग्नीत वैश्वदेवादिकर्म निरालस्यपणानें करावें.” त्याच्या अभावीं लौकिकाग्नीत करावें. कारण, “पितरांच्या उद्देशावें

निर्वाप करून नंतर विवाहामीवर हळूहळू पाक करावा. अथवा लौकिकामीवरही पाक करावा” असें कलिकैत संप्रहृषय आहे. म्हणूनच हेमाद्रीत वायुपुराणांत सांगतो—“भूमीवर किंवा दर्भाच्या कूर्चावर पितरांच्या उद्देशानें निर्वाप करावा.” तेथेंच पाक्षांत व मात्स्यांत—“सामिकानें चरू करावयाच्या द्रव्याचा विषम मुष्टीनीं पितरांसाठीं ‘पितृभ्यो निर्वपामि’ ह्या मंत्रानें निर्वाप करावा. नंतर निर्वाप केलेलें सर्व द्रव्य दक्षिणेस ठेवावें.” या वचनांत ‘चरू’ असें पद आहे म्हणून शाकादिकांविषयीं निर्वाप नाही, असें हेमाद्रि सांगतो. पिंडपितृयज्ञाच्या पाकाविषयीं हा निर्वाप असें म्हणणें गुप्त आहे. हा औपासनामीवर पाक इतर शास्त्रींना आहे.

आश्वलायनानां तु गुरुणाभिमृताअन्यतोवापक्षीयमाणा अमावास्यायांशांतिकर्मकुर्वीरभित्यावि-
सूत्रेणपचनाग्नेस्यागमुक्त्वाइहैवायमितरोजातवेदाइत्यर्धचैन्नशमीमयीभ्यामरणिभ्यामग्निंमंथयेत्सपचना-
ग्निर्भवतीतिसूत्रेष्टुतौचोक्तेःपचनाग्नावेवपाकः बौधायनेनाप्युक्तम् आहृतपचनाग्निमौपासनंबाभिप्र-
व्रजंतीति स्मार्तामौपाकस्त्वन्यशाखाविषयइतिकेचित् वस्तुतस्तुपूर्वोक्तस्यसर्वाधानविषयत्वयुक्तम् शिष्टाचारे-
पिनपचनोदृश्यते अंडविलायामपिसर्वाधानपक्षेवैश्वदेवंश्राद्धंचपचनेकुर्यादन्यथौपासनेइत्युक्तं अमौकर-
णंतुप्रयोगपारिजातादिभिराब्दिकादिसर्वश्राद्धेपुण्ड्रपितृयज्ञव्यतिषगोक्तैर्लौकिकेपचनेवापाकेकृतेपि-
गृह्यामौपकचरुणैवकार्यमितप्रतिभाति मदनरत्नेष्वेवम् विधुरोत्सन्नाभ्यादेस्तुष्ट्रोदिविविधानेनाग्निस्पंदन-
मित्युक्तं हरिहरभाष्ये इतिपाकाग्निः ।

आश्वलायनांस तर “ज्यांचा गुरु (पित्रादिक) मृत असेल अथवा पुत्र, पशु, सुवर्ण इत्यादिक नष्ट झालीं असतील त्यांनीं अमावास्यास शांतिक कर्म करावें, तें असें—सूर्योदयाच्या पूर्वी भस्मासहित अग्नि घेऊन ‘कव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं०’ ह्या अर्ध ऋचेनें तो दक्षिण दिशेस टाकावा.” ह्या सूत्रानें पचनाग्नीचा त्याग सांगून नंतर ‘इहैवायमितरोजातवेदा०’ ह्या अर्धचैनें अपराह्णकालीं शमीच्या अरणींनीं अग्नीचें मंथन करावें, तो पचनाग्नि होतो.” असें गृह्यसूत्रांत व त्याच्या वृत्तींत सांगितलें आहे म्हणून, पचनाग्नीवरच त्यांचा पाक होतो. बौधायनानेंही सांगितलें की, “पचनाग्नि किंवा औपासनाग्नि ध्यावा.” स्मार्तामीवर पाक हा इतर शाखाविषयक आहे असें केचित् म्हणतात. वास्तविक म्हटलें तर पूर्वोक्त जो पचनाग्नीवर पाक हा सर्वाधानविषयक आहे. शिष्टाचारांतही पचनाग्नि दिसत नाही. अंडविलाप्रंथांतही सर्वाधानपक्षी वैश्वदेव आणि श्राद्ध हें पचनाग्नीवर करावें. अन्यथा औपासनाग्नीवर करावें, असें सांगितलें आहे. आश्वलायनाम अमोकरण तर, प्रयोगपारि-
जातादिग्रंथकारांनीं आब्दिकादि सर्व श्राद्धाविषयीं पिंडपितृयज्ञव्यतिषगें सांगितला आहे म्हणून लौकिकामीवर किंवा पच-
नाग्नीवर पाक केला असला तरी गृह्यामीवर पक्क केलेल्या चरुनेंच करावें, असें वाटतें. मदनरत्नांतही असेंच आहे. विधुर व उच्छिन्नाग्नि इत्यादिकांना ‘पुष्टोदिवि०’ ह्या विधीनें अग्निस्पंदन हरिहरभाष्यांत सांगितलें आहे. याप्रमाणें पाकाम्नीचा निर्णय समजावा.

चंद्रिकायांमार्कंडेयः अहःपदसमुद्धर्तेपुगतेपुप्रयतानद्विजान् प्रत्येकंप्रेपयेत्तेषांप्रदायामलकोवकम्
देवलः ततोनिवृत्तेमध्याह्नेकृतरोमनखान्द्विजान् अभिगम्ययथान्यायंप्रयच्छेदंतधावनम् तैलमभ्यंजनं
स्नानंस्नानीयंचपृथग्विधम् पात्रैरौदुंबरैर्दद्याद्वैश्वदेविकपूर्वकम् औदुंबरैस्ताम्रमयैः अत्रक्षौरामलकस्नानावि-
निषिद्धतिथ्यादिव्यतिरिक्तविषयमितिहेमाद्रिर्माधवश्च यतुचंद्रिकायांप्रचेताः तैलमुद्धर्तनंस्नानंवद्या-
त्पूर्वाह्णवच श्राद्धभुग्भ्योनखमशुच्छेदंनुनकारयेदिति तन्निषिद्धतिथ्यादिविषयम् निषिद्धतिथ्यावि-
तुप्रागुक्तं अभ्यंगेतुकलिकायांकात्यायनः तैलमुद्धर्तनंदेव्याह्णगेभ्यःप्रयत्नतः तैरभ्यंगश्चकर्तव्योवर्ष्य
कालंनचित्तेत्येत् अपराकैंप्रचेताः स्नातोधिकारीभवतिदैवेपिष्येचकर्मणि श्राद्धकृच्छुक्लवासाःस्यान्मौनी
चविजितेंद्रियः हेमाद्रौजाबालः तांबूलदंतकाष्ठंचस्नेहस्नानमभोजनम् रत्यौषधंपरास्नानिश्राद्धकर्ताविव-
र्जयेत् वस्त्रेविशेषमाहतत्रैवभृगुः नमःस्यान्मलवद्वासानमःकौपीनकेवलः द्विकच्छोनोत्तरीयश्चअच्छोवस्त्र-
एवच नमःकाषायवासाःस्यान्नम्रश्चाद्रपटःस्मृतः नम्रोद्विगुणवस्त्रःस्यान्नम्रोक्तपटःस्मृतः नमस्तुक्षिणवस्त्र-
स्यान्नमःस्युतपटस्तथा ।

१ सारा स्मार्ताग्नि औताम्रीत मिळवणें हें सर्वाधान म्हटलें आहे. आणि अर्धा स्मार्ताग्नि वेगळा ठेऊन अर्धा औताम्रीत मिळवणें, हें अर्धाधान म्हटलें आहे. २ व्यतिषंग म्हणजे दोषांचें बरोबर अनुष्ठान करणें हें होय.

आतां ब्राह्मणस्नानादि सांगतो—

चंद्रिकेत मार्कंडेय—“दिवसाचे सहा मुहूर्त गेल्यावर (बारा घटिका दिवसानंतर) नियमित असलेल्या प्रत्येक ब्राह्मणाकरिता वाटलेली आंबळकाठी व उदक देऊन कोणासही पाठवावें.” **देवल**—“तदनंतर मध्यान्हकाल निवृत्त झाला असतां इमश्रु केलेल्या व रोमनख काढलेल्या ब्राह्मणांप्रत जाऊन यथान्यायानें दंतधावन यावें. नंतर वैश्वदेवपूर्वेक सर्व ब्राह्मणांना अभ्यंगाकरितां तेल व ताम्रपात्रांनीं स्नान व स्नानीय उदक वेगवेगळें द्यावें.” येथें क्षीर व आमलकोदकस्नानादिक सांगितलें तें निषिद्ध तिथ्यादिव्यतिरिक्तविषयक आहे, असें हेमाद्रि व माधव सांगतो. आतां जें चंद्रिकेत प्रचेता सांगतो कीं, “तेल, उटी, स्नान हें श्राद्धभोक्त्यांना पूर्वाह्नीं द्यावें. नख, इमश्रु यांचें छेदन करवूं नये,” तें निषिद्ध तिथि वार इत्यादि-विषयक आहे. निषिद्ध तिथि वगैरे पूर्वीं सांगितलें आहे. अभ्यंगाविषयीं तर **कलिकेत कात्यायन**—“तेल आणि उद्वर्तन हें ब्राह्मणांना प्रयत्नांनें द्यावें. त्यांनीं अभ्यंग करावा; वर्ज्य कालाचा विचार करूं नये.” अपराकांत **प्रचेता**—“दैवपित्र्य-कर्माविषयीं स्नान केल्यावर अधिकारी होतो. श्राद्धकर्त्यांनें शुक्ल वस्त्र परिधान करावें, मौनधारण करावें, जितेंद्रिय असावें.” **हेमाद्रिंत जाबाल**—“तांबूल, काष्ठानें दंतधावन, लेहयुक्त स्नान, उपवास, मैथुन, औषध, आणि पराश्र हीं श्राद्धकर्त्यांनें वर्ज्य करावीं.” वस्त्राविषयीं विशेष सांगतो तेथेंच **भृगु**—“मळकट वस्त्र परिधान करणारा, केवळ कौपीन धारण करणारा, दोन कच्छ घालणारा, अंगावर वस्त्र नसलेला, कच्छरहित, वस्त्ररहित, काषायवस्त्रधारी, ओलें वस्त्र नेसलेला, दुर्गें वस्त्र नेसलेला, रंगविलेंलें वस्त्र नेसणारा, चिकट वस्त्र परिधान केलेला आणि शिवलेलें वस्त्र परिधान केलेला हे सारे नमः म्हटले आहेत.”

ततःकर्ता ऊर्ध्वपुंड्रकुर्यात् जपेहोमेतथादानेस्वाध्यायेपितृकर्मणि तत्सर्वनश्यतिक्षिप्रमूर्ध्वपुंड्रंविनाकृतमिति हेमाद्रावुक्तेः यज्ञोदानंजपोहोमःस्वाध्यायःपितृकर्मच वृथैर्भवतिविप्रेन्द्रा ऊर्ध्वपुंड्रंविनाकृतमिति बृहन्नारदीयात् ऊर्ध्वचितिलंकुर्याद्वैवेपित्र्येचकर्मणीतिबृद्धपराशरोक्तेश्च अन्येतु ऊर्ध्वपुंड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमोविधिः श्राद्धकालेतुसंप्राप्तेकर्ताभोक्ताचतत्त्यजेत् वामहस्तेचदर्भास्तुगृहंरंगवलितथा ललाटेतिलकं दृष्ट्वा निराशाःपितरोगताइतिसंग्रहोक्तेः ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिपुंड्रं वाचंद्राकारमथापि वा श्राद्धकर्तानकुर्वीतयावत्पिंडाग्निरूपेदिति विश्वप्रकाशो वचनाच्चनकार्यमित्याहुः अत्राचाराव्यवस्था अतएव बृहन्नारदीये ऊर्ध्वपुंड्रं च तुलसीश्राद्धेनेच्छंतितेकेचेनेति ऊर्ध्वपुंड्रं विधिविप्रविषयः निषेधः कर्तृपरइति पृथ्वीचंद्रः यतु हेमाद्रौ देवलः ललाटे पुंड्रं दृष्ट्वा स्कंधे माल्यंतथैव च निराशाः पितरो यांति दृष्ट्वा च वृषली पतिमिति तद्भूधेन त्रिपुंड्रं विषयम् प्राक् पिंडदानाद्गंधाद्यैर्नालंकुर्यात्स्वविग्रहमित्यांश्चालायनोक्तेः पुंड्रं वर्तुलमित्यपरांकेमदनरत्ने च पृथ्वीचंद्रस्तु पुंड्रं त्रिपुंड्रं ऊर्ध्वचितिलंकुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुंड्रं निराशाः पितरो यांति दृष्ट्वा चैव त्रिपुंड्रं कृतमिति बृहत्पराशरोक्तेः भोक्तुस्तिर्यग्लेपो भवत्येव वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा तिर्यग्यध्वं पुंड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नत इति व्यासोक्तेरित्याह पृथ्वीचंद्रोदये ब्राह्मे सदभेजे तु हस्तेन यः कुर्यात्तिलकं बुधः आचम्य सविशुध्येत दर्भयागेन चैव हि श्राद्धारंभकालमाहापरांके गौतमः आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादरौहिणं बुधः विधिहो विधिमास्थारौहिणं तु नलंघयेत् एतदेकोद्दिष्टे पार्वणे तूक्तं मातस्ये ऊर्ध्वमुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयं मुहूर्तपंचकं ह्येतत्स्वधा भवनमिष्यते तथा मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मंदी भवति भास्करः तस्मादनंत फलदस्तत्रारंभो विशिष्यते ।

तदनंतर कर्त्यानें ऊर्ध्वपुंड्रं करावा; कारण, “जप, होम, दान, स्वाध्याय, पितृकर्म यांविषयीं ऊर्ध्वपुंड्रं केल्यावांचून जें काहीं कर्म केलें असेल तें सारें तत्काल नष्ट होतें” असें हेमाद्रिंत उक्त आहे. “यज्ञ, दान, जप, होम, स्वाध्याय (अध्ययन), पितृकर्म, हीं ऊर्ध्वपुंड्रं धारण केल्यावांचून केलीं असतां व्यर्थ होतात” असें बृहन्नारदीयवचन आहे. आणि “दैव, पितृय कर्माविषयीं ऊर्ध्व तिलक करावा.” असें बृद्धपराशरवचनही आहे. अन्यग्रंथकार तर—“ब्राह्मणांना ऊर्ध्वपुंड्रं धारण करणें ह्या अग्निहोत्रतुल्य विधि आहे. श्राद्धकाल प्राप्त असतां कर्त्यानें व भोक्त्यानें तो ऊर्ध्वपुंड्रं वर्ज्य करावा. वामहस्तांत दर्भ, घरांत रंगावलि, आणि ललाटावर तिलक हे पाहून पितर निराश होऊन जातात” असें संप्रह्ववचन आहे. श्राद्धकर्त्यानें जोंपर्यंत पिंडदान केलें नाहीं तोपर्यंत ऊर्ध्वपुंड्रं अथवा त्रिपुंड्रं, अर्धचंद्राकार मस्तकावर करूं नये.” असें विश्वप्रकाशांत वचनही आहे म्हणून ऊर्ध्वपुंड्रं करूं नये असें सांगतात. याविषयीं (दोन प्रकारचीं मते आहेत म्हणून) देशाचारांनें व्यवस्था करावी. म्हणूनच बृहन्नारदीयांत सांगतो—“कोणी श्राद्धाचे ठायीं ऊर्ध्वपुंड्रं आणि तुलसी इच्छीत नाहींत.” ऊर्ध्वपुंड्राच विधि ब्राह्मणांविषयीं आणि निषेध श्राद्धकर्त्यांविषयीं समजावा, असें पृथ्वीचंद्र म्हणतो. आतां जें हेमाद्रिंत देवल सांगतो—“श्राद्धांत ललाटावर पुंड्रं (तिलक), स्कंधावर मास्य (पुष्पमाला), आणि झट्टेचा पति यांना पाहून पितर निराश होऊन

जातात.” हे सांगणे गंधानें त्रिपुंड्र केल्याविषयी आहे. कारण, “पिंडदानाच्या पूर्वी गंधादिकांनीं आपल्या देहीला अर्पण करू नये” असें आश्वलायनवचन आहे. पुंड्र म्हणजे वर्तुल (वाटोळा) असें अपराकांत व मदनराजांत आहे. पृथ्वीचंद्र, तर-पुंड्र म्हणजे त्रिपुंड्र म्हणतो. कारण, “ऊर्ध्वतिलक करावा, त्रिपुंड्र करू नये. कारण, त्रिपुंड्र पाहून पितर निराश होऊन जातात” असें बृहत्पराशरवचन आहे. श्राद्धभोक्त्याला गंधादिकांचा तिर्यक् (आडवा) लेप होतच आहे. कारण, “श्राद्धकालीं सर्वदा ललाटावर तिलक वज्य करावा. आडवा किंवा ऊर्ध्वपुंड्र प्रयत्नानें धारण करावा” असें व्यासवचन आहे, असें (पृथ्वीचंद्र) सांगतो. पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत—“जो मनुष्य दर्भयुक्त हस्तानें तिलक करील तो दर्भलागू करून व आचमन करून शुद्ध होईल.” श्राद्धारंभाचा काल सांगतो अपराकांत गौतम—“श्राद्धविधि जाणणाच्या विद्वानां कुतप मुहूर्तावर श्राद्धाला आरंभ करून रौहिण मुहूर्तापर्यंत करावें, रौहिण मुहूर्ताचें उल्लंघन करू नये.” हे एकोविंश विषयीं समजावें. पार्वणाविषयीं सांगतो मात्स्यांत—“कुतप मुहूर्तापासून पुढचे चार मुहूर्त म्हणजे कुतप धरून झालेले जे पांच मुहूर्त त्या कालीं श्राद्ध करणें इष्ट आहे. तसेंच—ज्या कारणास्तव मध्यान्हकालीं सर्वदा सूर्य मंदासारखा होतो तस्मात् त्या मध्यान्हीं श्राद्धाचा आरंभ अनंत फल देणारा असल्यामुळे विशिष्ट आहे.”

अथश्राद्धपरिभाषा चंद्रिकायांकात्यायनः दक्षिणपातयेजानुदेवानपरिचरन्सदा पातयेदितरंजानुपितृनपरिचरन्सदा बौधायनः प्रदक्षिणुदेवानापितृणामप्रदक्षिणं देवानामृजवोदर्भाःपितृणां द्विगुणास्तथा पृथ्वीचंद्रोदयेशंखः आवाहनार्थ्यसंकल्पेपिंडदानान्नदानयोः पिंडाभ्यंजनकालेतुतथैवांजनकर्मणि अक्षय्यासनयोःपावेगोत्रंनामप्रकाशयेत् तत्रैव परिशिष्टे दक्षिणापिंडदानेचंगंधधूपपाक्षमेतथा संकल्पेचासनेदीपेअंजनाभ्यंजनेतथा अन्नार्घ्यदानाद्यंतेपुगोत्रंनामचकीर्तयेत् कलिकायांसंग्रहे आसनावाहनेपावेअन्नदानेतथैवच अक्षय्येपिंडदानेचपट्सुनामानिकीर्तयेत् मात्स्ये संबंधप्रथमंब्रूयाद्गोत्रंनामतथैवच पश्चाद्रूपविजानीयात्क्रमेणपसनातनः तत्रैव सकारेणतुवक्तव्यंगोत्रं सर्वत्रभीमता सकारःकुतपोक्षेयस्तस्माद्यत्नेनतंवदेत् यथाकाश्यपसगोत्रेति पराशरसगोत्रस्यवृद्धस्यतुमहात्मनः भिक्षोःपंचशिखस्याहंशिष्यःपरमधार्मिकइतिमोक्षधर्मेधूपप्रयोगाच्च तेनगोत्रसगोत्रयोःपर्यायत्वाच्छाखाभेदाद्व्यवस्थेतिशूलपाणिः एतद्येषामाभ्राततेपामेव हेमाद्रौबृहत्प्रचेताः गोत्रंस्वरांतं सर्वगोत्रस्याक्षय्यकर्मणि गोत्रस्तुतर्पणेप्रोक्तपवंदानतानमुवाच सर्वत्रैवपितःप्रोक्तःपितातर्पणकर्मणि पितुरक्षय्यकालेतुपित्र्येसंकल्पनेतथा शर्मन्मर्त्यादिकेकार्यं शर्मातर्पणकर्मणि शर्मणोक्षय्यकालेतुपितृणां दत्तमक्षय्यं स्वरांतंसंबुद्धांतमितिहेमाद्रिः तत्रैवचंद्रिकायां चरमृत्यंतरे गोत्रस्यत्वपरिज्ञानेकाश्यपंगोत्रमुच्यते यस्मादाहश्रुतिःसर्वाःप्रजाःकाश्यपसंभवाः यत्तुसत्याषाढः अथाज्ञातबंधोःपुरोहितगोत्रेणाचार्यगोत्रेणवेति तद्विवाहपरम् नामोच्चारणेविशेषमाहहेमाद्रौबौधायनः शर्मांतंब्राह्मणस्योक्तंवर्मांतंक्षत्रियस्यतु गुप्तांतंचैववैश्यस्यदासांतंशूद्रजन्मनः पित्रादिनामाज्ञानेतत्रैव पृथिवीपत्पितावाच्यस्तत्पिताचांतरिक्षसन् अभिधानापरिज्ञानेदिविपत्प्रपितामहः पित्रादीनां नामयदापुत्रैर्नज्ञायतेतदा आपस्तंबसूत्रेप्येवम् एतदन्यशाखापरम् आश्वलायनानांतूक्तं तत्सूत्रे यदिनामान्यविद्वान्स्ततपितामहप्रपितामहेतिब्रूयान् तन्कारिकापि नामानिचेन्नजानीयात्ततेत्यादिवदेत्क्रमात् ततेतिसंबंधमात्रपरम् तेनपितृव्यादावपितथेतिगौडाः स्त्रीणांदांतंनामज्ञेयम् दांतंनामस्त्रीणामितिपृथ्वीचंद्रोदयेगोभिलोक्तेः केचिदेवीशब्दांतमाहुः अन्येदेवीदाइतिद्वयोःसमुच्चयमाहुः ।

आतां श्राद्धाची परिभाषा सांगतो—

चंद्रिकेंत कात्यायन—“देवांची परिचर्या (पूजा) करीत अमतां सर्वदा उजव्या पायाचा जानु (गुडघा) भूमीवर टेंकावा. आणि पितरांची परिचर्या करणारांनं वाम पायाचा गुडघा भूमीवर सर्वदा टेंकावा.” बौधायन—“देवांचें कर्म प्रदक्षिण करावें, आणि पितरांचें कर्म अप्रदक्षिण करावें. देवांना दर्भ ऋजु असावे आणि पितरांना दर्भ द्विगुणभुम असावे.” पृथ्वीचंद्रोदयांत शंख—“आवाहन, अर्घ्यदान, संकल्प, पिंडदान, अन्नदान, पिंडांचें अभ्यंजन व अंजन, अक्षय्योदक, आसन, आणि पाय इतक्या ठिकाणीं पितरांचें गोत्र नाम यांचा उच्चार करावा.” तेथेंच परिशिष्टांत—“दक्षिणा, पिंडदान, गंध, धूप, अक्षय्योदक, संकल्प, आसन, दीप, अंजन, अभ्यंजन, अन्नदान, अर्घ्यदान यांचेप्रती गोत्र व नांव यांचा उच्चार करावा.” कलिकेंत संग्रहांत—“आसन, आवाहन, पाय, अन्नदान, अक्षय्योदक, आणि पित्राग्न्याचा शिखर

टिकाणीं नांवाचा उच्चार करावा.” मात्स्यांत—“पूर्वी संबंध बोलावा, नंतर गोत्र व नांव बोलावें, नंतर रूप जाणावें, हा अनादि क्रम आहे.” तेथेंच—“विद्वानानें सर्वत्र टिकाणीं सकारयुक्त गोत्राचा उच्चार करावा, सकार हा कुपत (पापनाशक) आहे म्हणून यज्ञानें त्याचा उच्चार करावा.” जसें—‘काश्यपसगोत्र’, आणि “पराशरसगोत्र वृद्ध महात्मा पंचशिखा जो भिक्षु त्याचा मी परम धार्मिक शिष्य आहे.” असा मोक्षधर्मांत प्रयोगही आहे. यावरून गोत्र व सगोत्र हे दोन शब्द पर्याय (एकाची नांवें) झाल्यामुल्ले शाखाभेदानें व्यवस्था करावी असें शूलपाणि सांगतो. हें सकारोच्चारण ज्यांना सांगितलें आहे त्यांनाच समजावें. हेमाद्रींत बृहत्प्रचेता—“सर्वत्र टिकाणीं गोत्राचा उच्चार अकारांत ‘काश्यपगोत्र’ असा करावा. अक्षय्योदकाविषयी ‘अमुकगोत्रस्य’ असा करावा. आणि तर्पणाविषयी ‘अमुकगोत्रः’ असा करावा, असें करून श्राद्धकर्ता अविवेकी होत नाही. सर्वत्र टिकाणीं ‘पितः’ असा उच्चार करावा. तर्पणाविषयी ‘पिता’ असा करावा. अक्षय्य उदककालीं व संकल्पकालीं ‘पितुः’ असा उच्चार करावा. अर्घ्यादिकांविषयी ‘शर्मन्’ असा उच्चार करावा. तर्पण कर्माविषयी ‘शर्मा’ असा करावा. अक्षय्य उदककालीं ‘शर्मणः’ असा करावा. याप्रमाणें पितरांस दिलेलें दान अक्षय्य होतें.” बरील वचनांत ‘स्वरांत’ असें पद आहे त्याचा अर्थ—संबुध्यंत होय, असें हेमाद्रि सांगतो. तेथेंच व चंद्रिकेंतही अन्यस्मृतींत सांगतो—“गोत्राचें ज्ञान नसेल तर काश्यपगोत्र सांगितलें आहे. कारण, सर्व प्रजा काश्यपापासून उत्पन्न आहेत असें श्रुति सांगते.” आतां जें सत्याषाढ सांगतो कीं, “ज्याचें गोत्र अज्ञात आहे त्याचें कृत्य पुरोहितगोत्रानें किंवा आचार्यगोत्रानें करावें.” तें विवाहविषयक आहे. नामोच्चारणाविषयी विशेष सांगतो हेमाद्रींत बौधायन—“ब्राह्मणाच्या नांवाच्या अंती—‘शर्मन्’ असें लावावें; क्षत्रियाच्या नांवाच्या अंती ‘वर्मन्’ असें लावावें; वैश्य्याच्या नांवाच्या अंती ‘गुप्त’ असें लावावें; आणि शूद्राच्या नांवाच्या अंती ‘दास’ असें लावावें.” पिता इत्यादिकांच्या नांवाचें ज्ञान नसेल तर तेथेंच सांगतो—“पिता इत्यादिकांचीं नांवें पुत्रादिकांना माहीत नसतील तेव्हां पित्याचें नांव ‘पृथिवीषत्’ घ्यावें; पितामहाचें नांव ‘अंतरिक्षसत्’ आणि प्रपितामहाचें नांव ‘दिविषत्’ असें समजावें.” आपस्तंबसूत्रांतही असेंच आहे, हें अन्यशाखाविषयक आहे. आश्वलायनांस तर त्याच्या सूत्रांत सांगतो—“जर नांवें जाणत नाहीं तर ‘तत’ ‘पितामह’ ‘प्रपितामह’ असें बोलावें.” आश्वलायन कारिकादि—“जर नांवें जाणत नाहीं तर ‘तत’ इत्यादि अनुक्रमानें म्हणावें.” ‘तत’ याचा अर्थ ‘तात’ आहे. हें पद सर्वसंबंधोपेक्षक आहे, म्हणून ज्याचा संबंध असेल त्याचा उच्चार करावा: जसें—चुलत्याचें नांव माहीत नसतां उच्चार करतेवेलीं ‘पितृव्य’ असा उच्चार करावा. याचप्रमाणें इतरांविषयीं देखील समजावें, असें गौड सांगतात. श्रियांच्या नांवाच्या अंती ‘दा’ असें लावावें. कारण, “श्रियांचें नांव दांत आहे” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत गोभिलवचन आहे. केचित् ग्रंथकार श्रियांच्या नांवाचे अंती ‘देवी’ शब्द लावावा, असें सांगतात. अन्य ग्रंथकार तर ‘देवी दा’ हे दोन्ही शब्द श्रियांच्या नांवाचे अंती लावावे, असें सांगतात.

हेमाद्रीनारायणः विभक्तिभिस्तुयत्किंचिदीयतेपितृदैवते तत्सर्वसफलंज्ञेयंविपरीतनिरर्थकम् चंद्रिकास्मृत्यर्थसारयोश्चनारदीये अक्षय्यासनयोःषष्ठीद्वितीयावाहनेतथा अन्नदानेचतुर्थीस्याच्छेषाःसंबुद्धयःस्मृताः यत्तु व्यासः चतुर्थीचासनेनित्यसंकल्पेचविधीयते प्रथमातर्पणेप्रोक्तासंबुद्धिमपरेजगुरिति अत्रशाखाभेदाद्व्यवस्थेतिहेमाद्रिः हेमाद्रीभृगुः अर्घ्यावनेजनं पिंडमन्नप्रत्यवनेजनम् संबुद्धितत्रकुर्वीतशेषेषष्ठीविधीयते तत्रैवमातुर्विशेषोनागरखंडे मातर्मात्रेतथामातुरासनेकल्पनेक्षये गोत्रेगोत्रायैगोत्रायाः प्रथमाद्याविभक्तयः ।

हेमाद्रींत नारायणः—“देवपितरांना श्राद्धाचेठायीं नांवाच्या अंती विभक्ति लावून जें कांहीं देतात तें सफल होतें; विभक्ति लावल्याशिवाय जें देतात तें निरर्थक होतें.” चंद्रिका व स्मृत्यर्थसार यांत नारदपुराणांत—“अक्षय्योदक, आसन यांजविषयीं षष्ठी विभक्ति लावावी. आवाहनाविषयीं द्वितीया विभक्ति, अन्नादानाविषयीं चतुर्थी. बाकी सर्वत्र टिकाणीं संबुद्धि विभक्ति समजावी.” आतां जें व्यास सांगतो कीं, “आसन व संकल्प यांचे ठायीं नित्य चतुर्थी सांगितली आहे. तर्पणाविषयीं प्रथमा; इतर टिकाणीं संबुद्धि सांगतात.” या मतभेदाविषयीं शाखाभेदानें व्यवस्था, असें हेमाद्रि सांगतो. हेमाद्रींत भृगु—“अर्घ्य, पाद्य, पिंड, अन्नदान, प्रत्यवनेजन इतक्या टिकाणीं संबुद्धि करावी, इतर टिकाणीं षष्ठी सांगितली आहे.”

हेमाद्रीप्रभासखंडे यज्ञोपवीतिनाकार्यदैवकर्मप्रदक्षिणं प्राचीनावीतिनाकार्यपितृकर्माप्रदक्षिणं अनुपनीतकीशूद्रादेस्तुचरीयेणैवसव्यापसव्येज्ञेये तस्योपवीतस्थानीयत्वात् अपसव्यंक्रमाद्वृत्तत्वाकश्चित्सगोत्रजइतिप्राक्षाभेतिवाचस्पतिः यत्तुकेचित् सदोपवीतिनाभाव्यमित्यस्यपुरुषार्थत्वात् प्राचीनावीतकालेयुपवीतांतरेणत्तत्कार्यमेवेति तत्र विशेषवाधात् जमदग्निः सूक्तोत्रजपंत्यस्त्वापिंडाग्राणंचदक्षिणाम् आह्वानं

स्वागतंचार्च्यविनाचपरिवेषणं विसर्जनंसौमनस्यमाशिषांप्रार्थनंतथा विप्रप्रदक्षिणांचैवस्वस्तिवाचनकंविना
पितृनुद्दिश्यकर्तव्यंप्राचीनावीतिनासदा हेमाद्रौसंग्रहे आदौविप्रांशिशौचांतैर्भ्यर्चनेविकिरेकृते पिंडाभ्यु-
प्यार्चयित्वाचविसर्ज्यब्राह्मणांस्तथा आचामेच्छाद्धकर्ताचस्थानेष्वेतेषुसप्तसु आद्यंतयोर्द्विराचामेच्छेपेषुसक्त-
त्सकृत् तत्रैव श्राद्धारंभेवसानेचपादशौचार्चनान्तयोः विकिरेपिंडदानेचषट्स्वाचमनमिष्यते आश्वलायनः।
दानाध्ययनदेवार्चाजपहोमव्रतादिकान् नक्षुर्याच्छ्राद्धदिवसेप्राग्विप्राणांविसर्जनात् एतन्मित्रवर्ज्यमितिबोप-
देवः इदंविष्णुभिन्नदेवपरम् विष्णोर्निवेदिताग्नेयष्टव्यदेवतांतरम् पितृभ्यश्चापितदेयंतदानंत्यायकल्पते
पितृशेषंतुयोदद्याद्वरयेपरमात्मने रेतोधाःपितरस्तस्यभवन्तिकेशभागिन इतिस्कांदात् पितरःसर्वमनुष्या
विष्णुनाशितमभंतीतिश्रुतेः यःश्राद्धकालेहरिभुक्तशेषंदातिभक्त्यापितृदेवतानाम् तेनैवपिंडांस्तुलसीविमि-
श्रानाकल्पकोटिपितरस्तुतृप्ता इतिब्राह्मोक्तेश्चेतिश्रीधरस्वामिनृसिंहपरिचर्यादयः एतत्सर्वनिबंध-
विरोधान्निर्मूलं ।

हेमाद्रीत प्रभासखंडांत—“देवकर्म यज्ञोपवीती करून प्रदक्षिण करावें; पितृकर्म प्राचीनावीती करून अप्रदक्षिण करावें.” अनुपनीताला (मौंजी न झालेल्यास), व स्त्रिया शूद्र इत्यादिकांस उत्तरीय वस्त्रानेंच सव्य आणि अपसव्य जाणावें; कारण, तें उत्तरीय वस्त्र यज्ञोपवीतस्थानीं आहे. आणि “कोणी सगोत्रज क्रमानेंच वस्त्र अपसव्य करून” असें ब्राह्मणवचनही आहे, असें वाचस्पति सांगतो. आतां जें केचित् म्हणतात कीं, “सर्वदा उपवीती असावी” हें सांगणें पुरुषार्थ आहे म्हणून प्राचीनावीतीकालीं देखील इतर यज्ञोपवीतानें उपवीती करावीच. तें बरोबर नाही. कारण, विशेषानें प्राचीनावीतीविधानानें सामान्य उपवीतीचा बाध होतो. जमदग्नि —“सूक्त म्हणणें, स्तोत्रजप, पिंडांचें आघ्राण, दक्षिणा, आवाहन, स्वागत, अध्येदान, परिवेषण (अन्न वाढणें), विसर्जन, सौमनस्य, आशिषःप्रार्थना, ब्राह्मणप्रदक्षिणा, स्वस्तिशब्दाचा उच्चार इतक्या कर्मावांचून इतर कर्म पितरांच्या उद्देशानें करावयाचीं तीं सर्वदा प्राचीनावीतीनें करावीं.” हेमाद्रीत संग्रहांत—“श्राद्धाच्या आरंभी, ब्राह्मणपादप्रक्षालनानंतर, ब्राह्मणपूजेच्या अंती, विकिरदान केल्यावर, पिंडदानाचे अंती, पिंडपूजा केल्यावर, आणि ब्राह्मणविसर्जनाच्या अंती, ह्या यात स्थानीं श्राद्धकर्त्यानें आचमन करावें. आदीं व अंतीं द्विवार आचमन करावें, इतर ठिकाणीं एकवारच करावें.” तेथेंच—“श्राद्धाच्या आरंभी, व शेवटीं, पादक्षालनाच्या अंती, ब्राह्मणपूजेच्या अंती, विकिराचे अंती, आणि पिंडदानाच्या अंती ह्या सहा स्थानीं आचमन करावें.” आश्वलायन—“श्राद्धाच्या दिवशीं ब्राह्मणविसर्जनाच्या पूर्वीं दान, अध्ययन, देवपूजा, जप, होम, आणि व्रतादिक हीं करूं नयेत.” हें नित्य वर्ज्य आहे, असें बोपदेव सांगतो. हे वचन विष्णुव्यतिरिक्त देवविषयक आहे. कारण, “विष्णूला निवेदन केलेल्या अन्नानें इतर देवतांचा याग (पूजा) करावा. पितरांनाही तेंच द्यावें, तें दान अनंत होतें. जो मनुष्य परमात्म्या हरीला पितृशेष देईल त्याचे पितर रेतभक्षण करणारे क्लेशभागी होतील.” असें स्कांदवचन आहे. “पितर व सर्व मनुष्य विष्णूनें भक्षण केलेलें अन्न भक्षण करतात” अशी श्रुति आहे. “जो मनुष्य श्राद्धकालीं विष्णूचें भुक्तशेष अन्न पितर व देवता यांना मोठ्या भक्तीनें देतो, व त्याच अन्नांत तुलसी मिश्र करून पिंडदान करितो त्याचे पितर कल्पकोटीपर्यंत तृप्त होतात” असें ब्राह्मणवचनही आहे, असें श्रीधरस्वामी, नृसिंहपरिचर्यादिक सांगतात. हें सारें निबंधांचा (हेमाद्र्यादिकांचा) विरोध असल्यामुळे निर्मूल आहे.

अत्रविशेषोहेमाद्रौविष्णुधर्मं श्राद्धाह्निषुसमभ्यर्च्यनृवराहंजनार्दनं शिवपुराणे पूजयित्वाशि-
वंभक्त्यापितृश्राद्धप्रकल्पयेत् पूर्वनिषेधस्तुविहितभिन्नपरः तथाहेमाद्रौ देवार्चादक्षिणांगादिःपादजान्वंस
मूर्धसु शिरोंसजानुपादेपुवामांगादिचपैतृकं कलिकायांस्मृत्यंतरे श्राद्धारंभेतुयेदर्भाःपादशौचेविसर्ज-
येत् अर्चनादौतुयेदर्भाउच्छिष्टांतेविसर्जयेत् मार्जनादौतुयेदर्भाःपिंडोत्थानेविसर्जयेत् उत्तानादौतुयेदर्भादक्षि-
णांतेविसर्जयेत् प्रार्थनादौतुयेदर्भानमस्कारेविसर्जयेत् ऊहमाहविष्णुः मातामहानामयेवंश्राद्धंक्षुर्याद्विष-
क्षणः मंत्रोद्देनयथान्यायंशेषाणांमंत्रवर्जितं यथान्यायमिति यत्रबहुवचनांतःपितृशब्दस्तत्सर्वपितृवाचित्वा-
न्नोहः तत्रापिशुंधंतांपितरइत्यन्नोहएव सर्वपितृवाचित्वेउत्तरमंत्रद्वयवैयर्थ्यात् बहुवचनंतुनोहते प्रकृतवाचसम-
र्थत्वात्पाशानितिबत् श्रुगतेचनोहः तस्मादृचनोहोदितिनिषेधात् एकोद्दिष्टेयेवम् प्रेतैकोद्दिष्टेत्वेकवचनंश्राद्धो-
त्तैकोद्दिष्टेइतिविष्णुत्केरूहः अत्रबहुवचनस्याप्युहोवचनात् वृद्ध्यादौतुविशेषवक्ष्यामः शेषाणामितिपितृ-
व्याचोकोद्दिष्टेआवाहनादिमंत्रवर्ज्यकार्यमितिकल्पततः उद्द्योग्यपितृपदवाचमंत्रपदतत्रनप्रयोगः ।

मापिपितृप्रदरहितः प्रयोज्य इति शूलपाणिः अर्थांतरं चोक्तं प्राक् बहुवचकारिकापि अर्घ्यप्रदानमंत्रे तु मात्रा-
विपदमावपेत् शुंधंतामिति पित्रादौ मात्रादिपदमावपेत् मातृश्राद्धे पिंडदानेनैव च त्वामत्रान्वित्यत्र नो ह इति वृत्ति-
कृत् तथा मातुः श्राद्धेऽप्यनूहेन कुर्यात्पिंडानुमंत्रणम् दशादानमुपस्थानंतद्वत्कार्यमिति स्थितिः प्रवाहणमनूहेन
तद्वत्प्राशनमभ्यस्यते तथा आयंतुनस्तिलोसीति उशंतस्त्वेतियानितु अनूहः पितृशब्दोऽत्र पितृसामान्यवाचकः
आपस्तंबानां तु वक्ष्यते ।

येन विशेष सांगतो हेमाद्रीति विष्णुधर्मात—“श्राद्धदिवशीं पुरुषश्रेष्ठ जनार्दनाची पूजा करून श्राद्ध करावें.”
शिषपुराणांत—“शिवाची पूजा भक्तीनें करून नंतर पितृश्राद्ध करावें.” पूर्वीचा (आश्वलायनवचनानें केलेला) निषेध
विहित जी विष्णुशिवपूजा तद्भिन्नविषयक आहे. हेमाद्रीति—“देवब्राह्मणांची पूजा उजव्या अंगाकडून पाय, जातु, अंस
(स्कंध), मस्तक या क्रमानें करावी. पितृब्राह्मणांची पूजा वामांगाकडून मस्तक, स्कंध, जातु आणि पाय या क्रमानें करावी.”
कलिकेंत स्मृत्यंतरांत—“श्राद्धारंभीचे जे दर्भ ते पादशालनांतीं टाकावे. पूजादिकांविषयीं जे दर्भ ते उच्छिष्टांतीं टाकावे.
मार्जनादिकांविषयीं जे दर्भ ते पिंडोत्थान झाल्यावर टाकावे. पात्राचे उत्तानादिकर्माविषयीं जे दर्भ ते दक्षिणादानांतीं टाकावे.
प्रार्थनादिकांविषयीं जे दर्भ ग्रहण केले असतील ते नमस्कारांतीं टाकावे.” ऊह सांगतो विष्णु—“याप्रमाणें मातामहांचें
देखील यथायोग्य मंत्रांचा ऊह करून श्राद्ध करावें. शेषांचें (इतर पितृव्यादिकांचें) ऊहयोग्य मंत्रवर्जित श्राद्ध करावें.” वचनांत
‘यथाव्याय’ असें पद आहे त्याचा अर्थ—ज्या मंत्रांत बहुवचनांत पितृशब्द आहे तेथें तो सर्व पितरांचा वाचक असल्यामुळे
त्याचा ऊह करूं नये. तशा प्रकारच्या मंत्रांमध्येही ‘शुंधंतां पितरः’ या मंत्रांत ऊह करावाचः कारण, हा पितृशब्द सर्वपितृ-
वाचक नाही. सर्वपितृवाचक मानला तर पुढचे जे मंत्र ‘शुंधंतां पितामहाः’ ‘शुंधंतां प्रपितामहाः’ हे व्यर्थ होतील. बहुवच-
नाचा तर ऊह करावयाचा नाही. कारण, प्रत्येकाच्या ठिकाणीं ‘शुंधंतां पितरः’ या मंत्रांत बहुवचन असमर्थ (एकाचें
अबोधक) असल्यामुळे पूजार्थ बहुवचन सिद्ध आहे. तें तसेंच इतरत्रही ठेवावें. जसें—प्रकृतीच्या ठिकाणीं असमर्थ जो
बहुवचनांत पौशमंत्र त्याचा विकृतीच्या ठिकाणीं ऊह नाही, तद्वत्. याप्रमाणें ‘मातरः शुंधंतां इत्यादि’ प्रयोगही जाणावा.
ऋचेच्या मंत्रांत ऊह नाही; कारण, ‘ऋचेचा ऊह करूं नये’ असा निषेध आहे. एकोद्दिष्ट श्राद्धांतही असेंच समजावें.
प्रेताच्या एकोद्दिष्टश्राद्धांत तर “एकोद्दिष्टांत मंत्रांचा एकवचनांत ऊह करावा” असें विष्णुवचन आहे, म्हणून ऊह आहे.
ह्या वचनावरून एकोद्दिष्टांत बहुवचनाचाही ऊह आहे. वृद्धिश्राद्धादिकांविषयीं तर विशेष पुढें मांगूं. ऊहविधायक पूर्वीच्या
विष्णुवचनांत ‘शेषाणां मंत्रवर्जितं’ असें आहे त्याचा अर्थ—पितृव्य इत्यादिकांचें एकोद्दिष्ट कर्तव्य असतां आवाहनादि मंत्र-
रहित करावें, असें कल्पतरु सांगतो. ऊह करण्यास योग्य असें पितृपद ज्या मंत्रांत आहे त्या मंत्राचाच प्रयोग त्या ठिकाणीं
करूं नये. म्हणजे ऊह करावयाचा नाहीच, आणि ‘पितृ’ या पदानें रहित असा मंत्रही म्हणावयाचा नाही. तर तसला मंत्रच
वेधे ध्यावयाचा नाही, असें शूलपाणि सांगतो. ‘शेषाणां’ याचा दुसरा अर्थ पूर्वी सांगितला आहे. बहुवचकारिकाही—
“मातेच्या श्राद्धांत अर्घ्यदानाच्या मंत्रांत ‘पितः’ इत्यादि स्थानीं ‘मातः’ इत्यादि योजावें. ‘शुंधंतां’ याच्या पुढें ‘पितरः’ इत्यादि
स्थानीं ‘मातरः’ इत्यादि पद योजावें.” मातृश्राद्धांत पिंडदानाचे ठिकाणीं ‘येचत्वामत्रातु’ या मंत्रांत ऊह करावयाचा नाही,
असें वृत्तिकार सांगतो. तसेंच “मातेच्या श्राद्धांत पिंडानुमंत्रण, दशादान, उपस्थान, प्रवाहण, आणि प्राशन इतक्या
ठिकाणीं ऊह करणें इष्ट नाही. तसेंच ‘आयंतुनः पितरः’ ‘तिलोसि’ ‘उशंतस्त्वा’ या मंत्रांचा जो ‘पितृ’ शब्द आहे तो
सर्व पित्रांचा वाचक असल्यामुळे त्याचा ऊह करावयाचा नाही.” आपस्तंबानां तर पुढें सांगायचाच आहे.

हेमाद्रौमार्कंडेयः स्नातः स्नातान्समाहूतान्स्वागतेनार्चयेत्पृथक् कलिकायां नारदीये प्रायश्चि-
त्तविशुद्धात्मातेभ्यो नृणां प्रगृह्य च दद्याद्ब्रह्मदंडार्थं हिरण्यकुशमेव च तत्रैव संप्रहृहे तिथिवारादिकं ज्ञात्वा संक-
ल्प्य च यथाविधि प्राचीनावीतिनार्कसर्वसंकल्पनादिकं संबंधं प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रेतथैव वस्वादिरूपांतां च
पितृपितृणामनुक्रमात् चंद्रोदये नारदीये श्राद्धार्थं समनुप्राप्तान् विप्रान् भूयो निमंत्रयेत् आपस्तंबस्तु पूर्वं
शुर्निमंत्रणं परेशुर्द्वितीयं तृतीयमामंत्रणमित्याह यूयं मयानिमंत्रणी या इति निवेदनरूपं आद्यं तद्विधिमाह शौनकः

- १ ज्योतिषोमांत अग्नीषोमीय पशूचे ठिकाणीं एकवचनांत व बहुवचनांत असे दोन पाशमंत्र आहेत ते असे—‘अदितिः पाशं
प्रमुमोक्त्वेतम्’ हा एक आणि ‘अदितिः पाशान् प्रमुमोक्त्वेतान्’ हा दुसरा मंत्र. प्रकृति अग्नीषोमीयपशु एक पशूनी असल्यामुळे त्या
ठिकाणीं बहुवचनांत पाशमंत्र जसा प्रयुक्त आहे त्याप्रमाणें विकृतीच्या ठिकाणींही बहुवचनांत पाशमंत्राचा प्रयोग होतो. पाश एक
असला तरी त्याच्या अवयवांचें बहुत्व पाशावर आरोपित करून बहुवचनाची उपपत्ति होते. याप्रमाणें एका व्यक्तीवर बहुवचनाचे
ब्रह्म व्यवहारांत बहुत येतात.

गृहीत्वामुकसंज्ञस्यामुकगोत्रस्य चामुके आह्वेतुवैश्वदेवार्थकरणीयः क्षणस्त्वया श्लेष्वाद्वाह्वेतुवैश्वदेव-
त्तुसः श्राद्धस्य कर्ता संभूयात्तं प्राप्नोतु भवानिति सवदेत् प्राप्रवानीति इतरस्तं प्रतिद्विजः देवौ पार्ष्णपुरुषवार्द्धवौ-
वाच्यौ पित्रादेरप्यनेनैव वृणीतविधिना द्विजान् ततः कर्ता बह्वचोऽनाहिताभिः पिंडपितृयज्ञपरिस्तरणादीभ्याधा-
नांतं कुर्यात् अर्धाधानिनोप्येवमिति प्रयोगपारिजाते परिशिष्टे च भाष्यकारमते आह्विकेप्येवम्
वृत्तिकारमतेनेदम् ।

हेमाद्रीत मार्कंडेयः—“कर्त्यानें स्वतः स्नानं कर्तुं, आलेल्या ब्राह्मणांचें वेगवेगळें स्वागतशब्दानें पूजन करावें.”
कलिकेत नारदीयांत—“स्वतः प्रायश्चित्तानें शुद्ध होऊन ब्राह्मणांपासून अनुज्ञा घेऊन त्यांना ब्रह्मदंडार्थं हिरण्यं व कुश
यावे.” तेथेंच **संग्रहांत**—“तिथि, वार, नक्षत्र इत्यादिक जाणून यथाविधि संकल्प करून पितरांचें सर्व संकल्पादिक
प्राचीनावीतीनें करावें, तें असें—पूर्वी संबंध उच्चारवा, नंतर नांव आणि गोत्र पुढें वसरूप, रुद्ररूप इत्यादि, याप्रमाणें स्वपि-
तरांचा अनुक्रमानें उच्चार करावा.” **चंद्रोदयांत नारदीयांत**—“श्राद्धासाठीं प्राप्त झालेल्या ब्राह्मणांना पुनः निमंत्रण
करावें.” **आपस्तंब तर**—“पूर्वदिवशीं निमंत्रण, दुसऱ्यादिवशीं दुसरें निमंत्रण आणि तिसरें आमंत्रण” असें सांगतो.
‘तुझाला निमंत्रण द्यावयाचें आहे’ असें निवेदन करणें हें पहिलें निमंत्रण समजावें. निमंत्रणाचा विधि सांगतो **शौनक**—
“दर्भ घेऊन ‘अमुकशर्मणः अमुकगोत्रस्य अमुकश्राद्धे वैश्वदेवार्थं त्वया क्षणः करणीयः’ असें श्राद्धकर्त्यानें म्हणावें. ब्राह्मणां-
‘ओंतथा’ असें म्हणावें. श्राद्धकर्त्यानें ‘प्राप्नोतु भवान्’ असें ब्राह्मणास बोलावें, ब्राह्मणां ‘प्राप्रवानी’ असें बोलावें. पार्ष्णश्राद्धांत
देव ‘पुरुषवार्द्धव’ बोलावे. पित्रादिक ब्राह्मणांनाही ह्याच विधीनें क्षण द्यावे.” तदनंतर श्रौताभिरहित बह्वक्षाखी श्राद्धकर्ता
असेल त्यानें पिंडपितृयज्ञ परिस्तरणापासून इभ्याधानांत करावा. अर्धे आधान करणारालाही असेंच **प्रयोगपारिजातांत**
व **परिशिष्टांत** सांगितलें आहे. भाष्यकाराच्या मतीं आह्विक श्राद्धांतही असेंच आहे. वृत्तिकारमतानें हें समजावें.

हेमाद्रीशंभुः संमार्जितोपलिप्तेद्वारिकुर्वीतमंडले उदक्प्लवमुदीच्यं स्यादक्षिणं दक्षिणाप्लवम् व्याघ्रः
उत्तरेक्षतसंयुक्तान्पूर्वाग्रान्विन्यसेत्कुशान् दक्षिणेदक्षिणाग्रान्स्तुसतिलान्विन्यसेत्कुशान् तत्रैव बौधायनः
चतुरस्रत्रिकोणचवर्तुलंचार्धचंद्रं कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मंडलम् तत्रैव लौगाक्षिः हस्तद्वयमितं
कार्यं वैश्वदेविकमंडलम् दक्षिणेचचतुर्हस्तं पितृणामग्निशोधने कलिकायां संग्रहेतु प्रादेशमात्रं देवानांचतु-
रस्रंतुमंडलं त्यक्त्वा पादंगुलंतस्मादक्षिणेचवर्तुलंतथेत्युक्तम् यत्तु स्मृत्यंतरे गर्तः पंचांगुलो विप्रेजानुमात्रो मही-
भुजि प्रादेशमात्रे वैश्येच साधिकः सतु शूद्रे तिर्यग्ध्वं प्रमाणेन व्याख्यातो दैवपित्र्ययोः चतुरस्रचवर्तुलंच कथितं-
गर्तलक्षणम् पादप्रक्षालनं प्रोक्तमुपवेश्यासने द्विजान् तिष्ठंश्चेत्क्षालनं कुर्यान्निराशाः पितरो गता इति तत्समूलत्वे-
मंडलाग्रे पृथक्क्षेत्रम् तत्र गोमये हेमाद्रीभृगुः अत्यंतजीर्णदेहायावंध्यायाश्च विशेषतः आर्तायानवसूतायान-
गोर्गोमयमाहरेत् मानस्ये अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्योपसव्यवन् विप्राणां क्षालयेत्पादावभिवंदयन् पुनः-
पुनः प्रत्यङ्मुखस्थितः कुर्याद्विप्रपादाभिषेचनं तत्रैव भविष्ये प्रक्षालयेद्विप्रपादानं शनो देवीरभीत्यूचा पृथ्वी-
चंद्रोदये वृद्धवसिष्ठः नकुशमग्निहस्तस्तु पादं दद्याद्विचक्षणः कलिकायां संग्रहे ततः प्रक्षालयेत्पादौ-
भार्यास्नातवारिणा तथा श्राद्धकाले यदा पत्नीवामेनीरप्रदाभवेत् आसुरंतद्वेच्छाद्वं पितृणां नोपतिष्ठते तत्रैव
नाथः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु पाद्यानंतरमर्घ्यमपि दद्यादिति हेमाद्रीः तत्रैव लौगाक्षिः मंडला-
दुत्तरे देशे दद्यादाचमनीयकं तत्रैव विधाय क्षालनं तेषां द्विराचमनमिष्यते स्वयंचापि द्विराचामेद्विधिज्ञः श्रद्धया-
न्वितः हेमाद्री नारदीये यत्राचमनवारीणि पादप्रक्षालनोदकैः संगच्छंते बुधाः श्राद्धमासुरंतप्रचक्षते ।

हेमाद्रीत शंभुः—“संमार्जनं करून गोमयानें उपलेपन केलेल्या गृहाच्या द्वारदेशीं दोन मंडलें करावीं, तीं अशीं—एक
उत्तरेकडे करावें तें उदक्प्लव (उदक्संस्थ). दुसरें दक्षिणेकडे करावें तें दक्षिणाप्लव.” **व्याघ्र**—“उत्तरेकडच्या मंडलावर
अक्षतायुक्त पूर्वाग्र कुश टाकावे. दक्षिणेकडच्या मंडलावर तिलसहित दक्षिणाग्र दर्भ टाकावे.” तेथेंच **बौधायन**—“ब्राह्म-
णादिकांच्या ठिकाणीं जें मंडल करावयाचें तें चतुरस्र, त्रिकोण, वर्तुल आणि अर्धचंद्राकार असें अनुक्रमानें करावें.” तेथेंच
लौगाक्षि—“वैश्वदेव ब्राह्मणाचे पाद पुण्यासाठीं जें मंडल तें दोनहस्तपरिमित करावें. आणि पितृ ब्राह्मणाचे पाद पुण्यासाठीं
जें मंडल तें दक्षिणें चतुर्हस्तपरिमित करावें.” **कलिकेत संग्रहांत तर**—“देवांचें मंडल प्रादेशमात्र चतुरस्र करावें.
व्यापासून सहा अंगुळें टाकून त्याच्या दक्षिणें वर्तुल मंडल तसेंच करावें.” असें सांगितलें आहे. आतां जें स्तर वृत्तिकार

सांगतो कीं—ब्राह्मणश्राद्धांत पंचांगुलप्रमाण गर्त (खळगा) करावा, क्षत्रियश्राद्धांत जानुप्रमाण, वैश्यश्राद्धांत प्रादेशमात्र आणि शूद्रश्राद्धांत त्याच्याहून किंचित अधिक करावा. हें गर्ताचें प्रमाण उंचीचें व रुंदीचें समजावें. देवांचा गर्त चतुरस्र आणि पितरांचा गर्त वर्तुल, याप्रमाणें गर्तलक्षण सांगितलें आहे. आसनावर ब्राह्मणांना बसवून त्यांचें पादप्रक्षालन सांगितलें आहे. ब्राह्मण उभे करून त्यांचें पादप्रक्षालन करील तर पितर निराश होऊन जातात.” हें स्मृत्यंतरवचन समूल असेल तर प्रत्येक मंडलाच्या अग्रभागीं वेगवेगळें गर्त समजावें. येथें गोमयाविषयीं हेमाद्रीत भृगु सांगतो—“अत्यंत वृद्ध झालेल्या वंध्या रोगपीडित व नवीन प्रसूत झालेल्या अशा गाईचें गोमय घेऊं नये.” मात्स्यांत—“अपसव्य करून अक्षता व पुष्प यांनी त्या मंडलांची पूजा करून ब्राह्मणांचे पाद पुनःपुनः नमस्कार करून धुवावे. पश्चिमेकडे मुख करून ब्राह्मणांचे पाद धुवावे.” तेथेंच भविष्यांत—“‘शंनोदेवी’ ह्या मंत्रानें ब्राह्मणांचें पादक्षालन करावें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धवसिष्ठ—“कुस-पवित्रयुक्त हस्तानें पादप्रक्षालन करूं नये.” कलिकेंत संग्रहांत—“भार्येन उदक पायांवर घालून श्राद्धकर्त्यानें पादक्षालन करावें. तसेंच—ज्या श्राद्धांत पत्नी वामभागीं राहून उदक देते तें श्राद्ध आसुर होतें, पितरांना प्राप्त होत नाहीं.” तेथेंच सांगतो—“पित्रादिकांच्या श्राद्धांत अधोभागीं पादप्रक्षालन करूं नये.” पायानंतर अर्घ्यही द्यावें, असें हेमाद्रि सांगतो. तेथेंच लौगाक्षि—“मंडलाच्या उत्तरप्रदेशीं आचमन द्यावें.” तेथेंच—“ब्राह्मणांचें पादक्षालन झाल्यावर त्यांना दोन वेळां आचमन सांगितलें आहे. विधिज्ञ श्राद्धकर्त्यांनींही श्रद्धायुक्त होऊन दोन वेळां आचमन करावें.” हेमाद्रीत नारदीयांत—“ज्या श्राद्धांत पादक्षालनोदक व आचमनोदक यांचा संगम होतो, तें श्राद्ध आम्र होतें असें विद्वान् सांगतात.”

हेमाद्रौच्यासः सव्येनैवासनं धृत्वा दक्षिणे दक्षिणं करं व्याहृतिभिः समस्ताभिरासनं पूपवेशयेन समाध्व-मिति चैवोक्त्वा दक्षिणं जानुसंस्पृशन् आस्यतामिति तान् ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि हेमाद्रौ शान्तानपः द्वौ दै-वेथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखानुपवेशयेत् पित्र्ये तु दङ्मुखान्क्षींश्च बह्वृचाध्वर्युसामगान् याज्ञवल्क्यः द्वौ दैवप्राक्त्र-यः पित्र्ये उदगैकैकमेव वा यतु हेमाद्रौ हारीतः दक्षिणाग्रदंभे पुप्राङ्मुखान् ब्राह्मणान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके-इतितन्मैत्रायणीयविषयम् प्राङ्मुखान् भोजयेदुदङ्मुखानित्येके इतितत्परिशिष्टात् विकल्पइति हेमाद्रिः माधवीयेयमः मिश्रको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः उपविष्टेष्वनुप्राप्तः कामंतमपि भोजयेत् कौमं अतिथिर्यस्य नाश्रातिततच्छ्राद्धं प्रचक्षते विप्रनियमो माधवीये पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शवर्जयंतः परस्परं तत्रासनानि पृथ्वीचंद्रोदयेयमः आसनं कुतः पदं दद्यादितरद्वापवित्रकं हेमाद्रौ च मत्कारखंडे पितृणां घटितं हैमराजतं वा पिचासनम् येन ताम्रमयं दत्तमासनं पितृकर्मणि सर्वे दि-व्यासनारूढो न हि प्रच्यवते दिवः हेमाद्रौ नागरखंडे अयःशंकुमयं पीठं प्रदेशं नोपवेशने कलिकायां सं-ग्रहे क्षौमं दुकूलं नैपालमाविकंदारुजंतथा तार्णपार्णवृसीचैव विष्टरादिचविन्यसेत् अग्निदग्धान्यायसनिभ-प्रानिचिविवर्जयेत् हेमाद्रौ छागलेयः पश्चाद्वागादुपक्रम्य प्राच्यां पंक्तिर्यथा भवेत् दक्षिणासंस्थिता ह्ये पापि-तृणां श्राद्धकर्मणि पुलस्त्यः श्रीपर्णी वारुणी क्षीरी जंबुका म्रकदंबकं सप्तमं बाकुलं पीठं पितृणां दत्तमक्षयं संग्रहे शमीचकाश्मरी शेळुः कदंबो वारुणस्तथा पंचासनानि शस्तानि श्राद्धे द्वावर्चने तथा कारिका द्वौ दैवप्राङ्मुखौ पि-त्र्ये त्रीन् विप्रानुदगाननान् पैठीनसिः कुतः प्राङ्गवेलायां श्रोत्रियो यदित्दृश्यते आश्वलायनः नीवीवा-सो दशांतेन स्वरक्षार्थं प्रबंधयेत् वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयं यत्तु कातीयम् नीवीकार्यो दशागुप्तिर्वा मकुशौ कुशैः सहेति तद्द्विश्चाद्धे पितृणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविक इति स्मृत्यंत-रात् वामे दक्षिणे वेलाचाराव्यवस्थेति मदनपारिजाते ।

हेमाद्रीत व्यासः—“वामहस्तानें आसन धरून उजव्या हस्तानें ब्राह्मणाचा उजवा हात धरून समस्तव्याहृति उच्चारून ‘समाध्वं’ असें म्हणून दक्षिणजानूला व आसनाला स्पर्श करून ‘आस्यतां’ असें बोलून ब्राह्मणांना आसनावर बसवावें.” **हेमाद्रीत शातातपः**—“अथर्वणवेरी दोन ब्राह्मण देवांकडे प्राङ्मुख बसवावे. पितरांकडे बह्वृच, अध्वर्यु, सामवेरी असे तीन ब्राह्मण उदङ्मुख बसवावे.” **याज्ञवल्क्यः**—“देवांकडे दोन प्राङ्मुख, पित्रांकडे तीन उदङ्मुख किंवा दोहीकडे एकएक असे बसवावे.” आतां जें हेमाद्रीत हारीत सांगतो कीं, “दक्षिणाग्रदर्भाचे ठायीं प्राङ्मुख ब्राह्मणांना भोजन घालावें, उदङ्मुखांना घालावें, असें कोणीएक म्हणतात” तें मैत्रायणीयविषयक आहे. कारण, ‘प्राङ्मुखांना भोजन द्यावें, उदङ्मुखांना द्यावें असें कोणीएक म्हणतात’ असें मैत्रायणीयपरिशिष्ट आहे. प्राङ्मुख किंवा उदङ्मुख हा विकल्प आहे, असें हेमाद्रि

सांगतो. **माधवीयांत यम**—“ब्राह्मण बसल्यावर सन्याशी किंवा ब्रह्मचारी भोजनासाठी प्राप्त असेल तर त्याला यथेच्छ भोजन द्यावें.” **कौर्मंत**—“ज्या श्राद्धांत अतिथि भोजन करीत नाही तें श्राद्ध म्हणत नाहीत.” ब्राह्मणांचे नियम सांगतो **माधवीयांत**—“सारे ब्राह्मण हातांत पवित्रक घाळून व मौनव्रत धारण केलेले असावे. त्यांनीं उच्छिष्टोच्छिष्टाचा संस्पर्श करूं नये.” श्राद्धांत आसनें सांगतो **पृथ्वीचंद्रोदयांत यम**—“आसनास कुतप (नेपालकंबल) किंवा इतर पवित्र द्यावें.” **हेमाद्रींत चमत्कारखंडांत**—“पितरांना सुवर्णानें किंवा रुप्यांनें मळविलेलें आसन द्यावें. पितृकर्माविषयीं ज्यांनें तान्नमय आसन दिलें तो मृत झाल्यावर दिव्यासनावर आरूढ होऊन स्वर्गापासून च्युत होत नाही.” **हेमाद्रींत नागरखंडांत**—“लोखंडाचे खिळे मारलेलें आसन ब्राह्मणास बसावयास देऊं नये.” **कलिकेंत संग्रहांत**—“जवसानें केलेलें पाटाव, शालजोडी, कंबलासन, वृक्षाचा पाट, तृणासन, पर्णासन, वृसी (वृतीचें आसन), विष्टर यांपैकी कोणतेंही आसन बसावयास द्यावें. अग्नीनें दग्ध, लोखंडाची व फुटकीं अशीं आसनें वर्ज्य करावीं.” **हेमाद्रींत छागलेय**—“श्राद्धकर्मांत दक्षिणेकडे बसवावयाची पितृब्राह्मणपंक्ति पश्चिमेस आरंभ करून पूर्वेस जाईल अशी बसवावी” **पुलस्त्य**—“शिवण, वारुण (वायवर्णा), क्षीरिबृक्ष (वट, उंबर वगैरे), जांभूळ, आंबा, कळंब, सातवा बकुळवृक्ष यांचें आसन पितरांस दिलें असतां अक्षय्य होते.” **संग्रहांत**—“श्राद्धांत व देवपूजेंत शमी, शिवण, भोंकर, कळंब, वायवर्णा, ह्या पांच वृक्षांचीं आसनें प्रशस्त आहेत.” **कारिका**—“प्राञ्च्य दोन ब्राह्मण देवांकडे, आणि उदञ्च्य तीन ब्राह्मण पितरांकडे बसवावे.” **पैठीनसि**—“श्राद्धकालीं श्रोत्रिय जर आलेला दिसेल तर तो कुतप (पापनाशक) आहे. अर्थात तो बसवावा.” **आश्वलायन**—“आपल्या रक्षणाकरितां नेगलेलें वस्त्र त्याच्या शेवटांनीं षट् बांधावें.” **वृद्ध याज्ञवल्क्य** तर—“दक्षिणकटिप्रदेशीं तिलासहित तीन कुश ठेवावे.” आतां जें **कातीयांचें** सांगणें—“डाव्या कुशींत नेसलेल्या वस्त्राच्या दशा कुशांसह गुप्त कराव्या” तें वृद्धश्राद्धांत समजावें. कारण, “पितृकर्मामध्ये दक्षिणपार्श्वभागीं आणि दैविककर्मामध्ये वामपार्श्वभागीं” अशी **अन्यस्मृति** आहे. डाव्या किंवा उजव्या कटीस जरा आचार असेल तशी व्यवस्था करावी, असें **मदनपारिजातांत** आहे.

आचार्यः प्राणायामत्रयंकृत्वागायत्रीस्मरणंतथा श्राद्धकर्तास्सीतिवद्विप्रैर्वार्च्यंकुरुष्वच ब्राह्मे ततः स्तिलानगृहेतस्मिन्विकिरेच्चप्रदक्षिणम् श्रद्धयापरयायुक्तो जपेदपहताइति स्मृत्यर्थसारं अपहताइति तिला-
न्विकीर्य उदीरतामित्यूचाप्रोक्षेत् **पराशरः** तद्विष्णोरिति मंत्रेण गायत्र्याच प्रयत्नतः प्रोक्षयेदन्न जातंतु शुद्ध दृष्ट्यादि शुद्धये **हेमाद्रौ ब्रह्मांडे** श्राद्धभूमौ गायत्र्या ध्यात्वा ध्यात्वा देवगंदाधरम् वस्वादींश्च पितृन् ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तते देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्यश्च नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव न मोनमः आदिमध्यावसा नेपुत्रिरावृत्तं जपेद्बृधः पितरः क्षिप्रमायां तिराक्षसाः प्रद्रवंति च तत्रैव स्कांदे तिलारक्षंत्सुरान्दर्भारक्षंत्सुराक्ष-
सान् पंक्तिवैश्रोत्रियोरक्षेदतिथिः सर्वरक्षकः **वसिष्ठः** शुद्धवतीभिः कूष्मांडीभिः पावमानीभिश्च पाकादि प्रोक्षयेत् ।

आचार्य—“तीन प्राणायाम करून तसेंच गायत्री स्मरण करून ‘श्राद्धं करिष्ये’ असें बोलवें, ब्राह्मणांनीं ‘कुरुष्व’ असें बोलवें.” **ब्राह्मांत**—“तदनंतर परमश्रद्धायुक्त होऊन ‘अपहता०’ या मंत्रानें त्या घरांत अग्रदक्षिण तिल टाकावे.” **स्मृत्यर्थसारांत**—“‘अपहता०’ या मंत्रानें तिल टाकून ‘उदीरता०’ या ऋचेंत प्रोक्षण करावें.” **पराशर**—“श्रद्धादिकांनीं पाहिलेला वगैरे दोष जाण्याकरितां ‘तद्विष्णो०’ या मंत्रानें व गायत्रीनें मोठ्या यत्नानें सर्व अज्ञातें प्रोक्षण करावें.” **हेमाद्रींत ब्रह्मांडपुराणांत**—“‘श्राद्धभूमौ गायत्र्या ध्यात्वा०’ हा मंत्र म्हणावा. ‘देवताभ्यः पितृभ्यश्च०’ ह्या मंत्राचा आदी, मध्ये व अंती त्रिवार जप करावा. असें केल्यां पितर लवकर येतात व राक्षस पळतात.” तेथेंच **स्कांदांत**—“‘तिला रक्षंत्सुरान्०’ हा मंत्र म्हणावा.” **वसिष्ठ**—“शुद्धवती, कूष्मांडी व पावमानी ऋचांनीं पाकादिप्रोक्षण करावें.”

अथ देवार्चा तत्र प्रत्युपचारमागंतयोरपोदद्यादित्युक्तं वृत्तौ स्मृत्यर्थसारे च हेमाद्रौ ब्राह्मे आस-
नेष्वासनंदद्याद्वा मेवादक्षिणेपि वा पितृकर्मणि वा मेचदैवदेद्या तु दक्षिणे प्रचेताः आसनेष्वासनंदद्यान्न तु पाणौ-
कदाचन धर्मोसीत्यथ मंत्रेण गृहीयुस्ते तु तान् कुशान् धर्मोसि विशिराजाप्रतिष्ठित इति मंत्रः **गालवः** दर्भानादा-
यहस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणेकरे दैवेक्षणः क्रियतां तु निरंगुष्ठं करंततः ओं तथेति द्विजाब्रूयुस्ते प्राप्नोतु भवानिति कर्ता-
ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्रवानीति वैवदेत् **पृथ्वीचंद्रोदये बृहन्नारदीये** यवैर्दर्भैश्च विश्वेषां देवानां सिद्धमासनं
दत्वेति भूयो दद्याद्वै दैवेक्षण इति क्षणं तच्च षष्ठ्या चतुर्थ्या वा कार्यमिति स एव ततोर्घ्यकल्पयेदिति मन्वावयः

शौनकजयंताभ्यामर्धरहितस्यदेवार्चनस्योक्तेः आश्वलायनानांदैवैर्ध्वदानंनेतिबोपदेवः तत्र परिशिष्ट-
प्रयोगपारिजातविरोधात् वृद्धिश्राद्धेतुदैवेऽप्यर्ध्वदद्यात् देवेभ्योऽपिपृथग्दद्यादिहार्ध्वश्रुतिचोदनादिति-
शौनकोक्तेः ।

आतां देवार्चा सांगतो—

श्राद्धांत प्रत्येक उपचाराला आदीं व अंतीं उदक द्यावें, असें वृत्तींत व स्मृत्यर्थसारांत सांगितलें आहे. हेमाद्रींत ब्राह्म्यांत—“आसनावर वामभागीं किंवा दक्षिणभागीं दर्भरूप आसन द्यावें. पितरांकडे वामभागीं व देवांकडे दक्षिणभागीं द्यावें.” प्रचेता—“आसनाचे उर्यां आसन द्यावें, हातांत कधीही देऊं नये. ‘धर्मोऽसि विशिराजा प्रतिष्ठितः’ या मंत्रांनं ब्राह्मणांनीं ते आसनदर्भ घ्यावे.” गालव—“दोन हातांनीं दर्भ घेऊन ब्राह्मणांच्या दक्षिण हस्तांत द्यावे, आणि त्याचा हात अंगुष्ठरहित धरून कर्त्यानं ‘दैवे क्षणः कियतां’ असें म्हणावें, ब्राह्मणांनीं ‘ओंतथा’ असें म्हणावें. तदनंतर कर्त्यानं ‘प्राप्नोतु भवान्’ असें म्हणावें. ब्राह्मणांनीं ‘प्राप्रवानि’ असें म्हणावें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत बृहन्नारदीयांत—“यव आणि दर्भ यांनीं ‘विश्वेषां देवानामिदमासनं’ असें म्हणून आसन देऊन पुनः ‘दैवे क्षणः कियतां’ असें म्हणून क्षण द्यावा.” तें क्षण-दान षष्ठी किंवा चतुर्थी विभक्तीनं करावें असें तोच सांगतो. नंतर अर्घ्य द्यावें, असें मन्वादिक सांगतात. शौनक आणि जयंत यांनीं अर्धरहित देवार्चन सांगितलें आहे, म्हणून आश्वलायनांना देवांविषयीं अर्ध्वदान नाही असें बोपदेव सांगतो. तें बरोबर नाही; कारण, परिशिष्ट व प्रयोगपारिजात यांच्याशीं विरोध येतो. वृद्धिश्राद्धांत तर देवांसही अर्घ्य द्यावें. कारण, “येथें श्रुतीनं सांगितलें म्हणून देवांनाही पृथक् अर्घ्य द्यावें” असें शौनकवचन आहे.

अथार्घ्यपात्रं पृथ्वीचंद्रोदयेमात्स्यपाद्मयोः पात्रंवनस्पतिमयंतथापर्णमयंपुनः जलजंवापि कुर्वीततथासागरसंभवं ब्राह्मे सौवर्णताम्ररौप्याश्मस्फाटिकंशंखशुक्यः भिन्नान्यपिहिज्योत्ज्यानिपात्राणिपि-
तृकर्मणि हेमाद्रीप्रजापतिः सौवर्णराजतंताम्रंखड्गंमणिमयंतथा यज्ञियंचमसंवापिअर्घ्यार्थंपूरयेदुधः अ-
त्रविप्रैकत्वद्वित्वचतुष्टयादावर्घ्यपात्रेद्वेएव मानवसूत्रेतुद्वैश्वदेविकेत्रीणिपिच्ये एकैकमुभयत्रवेत्युक्तम् तदेक-
विप्रपरं पात्रालाभपरंचेतिहेमाद्रिः मदनरत्नेतुदैवेएकपात्रमुक्तं पृथ्वीचंद्रोदयोपित्रीणिपैतृकपात्राणिद्वे-
द्वैवैश्वदेविकइतिबृहत्पराशरोक्तेर्द्वेएवेत्याह बहुचानांतुदैवेविप्रद्वित्वेयेकमर्घ्यपात्रंअर्धशोदद्यादित्युक्तं-
परिशिष्टेप्रयोगपारिजातेच कलिकायांहारीतः दत्तमक्षय्यतांयातिखड्गेनार्घ्यतुयत्कृतम् वृद्ध-
मनुः मृन्मयंदारुजंपात्रमयःपात्रंचयद्भवेत् राजतंदैविकेकार्येशिलापात्रंचवर्जयेत् पुराणसमुच्चये मृत्स्ना-
भवंतथाकांस्यमारकंजंतुसंभवम् त्रपुसीसलोहभवंसदापात्रंविचर्जयेत् तत्रैव अष्टांगुलंभवेत्पात्रंपितृणाराज-
तंशुभं दशांगुलंतुदेवानांसौवर्णशक्तिःकृतं स्थापयेद्वर्घ्यपात्रेद्वेन्युज्जेतत्रकुशोपरि द्वेद्विपत्रिविधिवत्पात्रयोश्चो-
परिक्षिपेत् यज्ञपाश्वर्यः पवित्रेस्थेतिमंत्रेणपवित्रेलेदयेत्तुते ओषधीमंतरेकृत्वाअंगुष्ठांगुलिपर्वणोः स्थेनकाष्ठे-
नलोहेननमृन्मयनखादिभिः वसिष्ठः तूर्णींप्रोक्ष्यांभसापात्रेकुर्यादूर्ध्वंत्रिलेततः पूरयेत्पात्रयुग्मंतुकृत्वो
परिपवित्रके ।

आतां अर्घ्यपात्र सांगतो.

पृथ्वीचंद्रोदयांत मात्स्यांत व पाद्मांत—“अर्घ्यपात्र वनस्पतीचें तसेंच पानाचें किंवा समुद्रांत उत्पन्न शंख शिंपा ह्यादिकांचें करावें.” ब्राह्म्यांत—“सुवर्ण, ताम्र, रौप्य, पाषाण, स्फटिक, शंख, शुक्ति यांचीं पात्रें फुटलेलीं असलीं तरी तीं पितृकर्माविषयीं योजावीं.” हेमाद्रींत प्रजापति—“सौवर्ण, राजत, ताम्र, खड्गपात्र, मणिमय, किंवा यज्ञातील चमसपात्र यांतून कोणतेही पात्र अर्घ्यासाठीं पाण्यानं भरावें.” येथें ब्राह्मण एक, दोन किंवा चारही असले तरी अर्घ्यपात्रें शौनक असावीं. मानवसूत्रांत तर—“विश्वेदेवांकडे दोन, पितरांकडे तीन, किंवा दोहींकडे एक एक पात्र असावें” असें सांगितलें तें एक विप्र असतां व पात्राचा अभाव असतां समजावें, असें हेमाद्रि सांगतो. मदनरत्नांत तर—देवां-
विषयीं एक पात्र सांगितलें आहे. पृथ्वीचंद्रोदयही “पितृपात्रें तीन आणि देवपात्रें दोन दोन असावीं” असें बृहत्परा-
शरवचन आहे म्हणून देवांकडे दोनच पात्रें असें सांगतो. बहुचानां तर—देवांकडे दोन ब्राह्मण असले तरी एक अर्घ्य-
पात्र अर्धें अर्धें द्यावें, असें परिशिष्टांत व प्रयोगपारिजातांत सांगितलें आहे. कलिकेत हारीत—“खड्गपात्रांनीं
अर्घ्य करून तें दिलें असतां अक्षय होतें.” वृद्धमनु—“देवकार्याविषयीं मातीचें, काष्ठचें, लोखंडाचें, रुप्याचें व पाषाणाचें

पात्र वर्ज्यं करावें.” पुराणसमुच्चयांत—“मृत्तिकापात्र, कांस्यपात्र, आरक्तपात्र, जंतूपासून उत्पन्न पात्र, कथिलाचें, शिशाचें व लोहाचें पात्र सदा वर्ज्यं करावें.” तेथेंच—“पितरांस रजताचें पात्र अष्टांगुलपरिमित करावें. देवांना सुवर्णाचें पात्र आपल्या शक्तीप्रमाणें दशांगुलपरिमित करावें. ब्राह्मणाच्या पुरोभागीं कुशांवर दोन पात्रें उपडीं ठेवावीं. त्या पात्रांवर यथाविधि दोन दोन पवित्रें ठेवावीं.” यज्ञपाश्वर्च—“अंगुष्ठ व अंगुलि यांच्या पेटांत ओषधीं मध्यें करून त्या पवित्रांचा छेद ‘पवित्रेस्थ०’ या मंत्रानें स्फुर म्हाणजे यज्ञांतील शस्त्रविशेष त्यानें, काष्ठानें किंवा लोहानें करावा. मृन्मयानें किंवा नखादिकांनीं करूं नये.” वसिष्ठ—“मंत्रावांचून उदकानें त्या पात्रांचें प्रोक्षण करून नंतर तीं उताणीं करावीं, त्यांच्यावर पवित्रें ठेऊन तीं दोन्ही पात्रें उदकानें भरावीं.”

वृद्धपराशरः पात्रद्वयमथार्घ्यार्थतैजसचैकवस्तुनः प्राङ्मुखोमरतीर्थेनशन्नोदेव्योदकंक्षिपेत् यवोसीति-
यवांस्तत्रतूष्णींपुष्पाणिचंदनं मानवसूत्रेसुमनसःप्रक्षिप्योपूययवानप्रक्षिप्येति यवोसीतिमंत्रः पाद्मे
यवोसिधान्यराजोवावारुणोमधुमिश्रितः निर्णोदःसर्वपापानांपवित्रमृषिभिःस्मृतः राजोवावारुणोमधुसंयुत
इतिपरिशिष्टपाठः गोभिलेनतु यवोसिसोमदेवत्यइतितिलमंत्रोत्रस्वाहायुक्तोक्तः हेमाद्रौयमः यवहस्त-
स्ततोदेवान्विश्वाप्यावाहनंप्रति आवाहयेदनुज्ञातोविश्वेदेवासइत्यृचा वृद्धपराशरः ततःसव्यकरंन्यस्य
विप्रदक्षिणजानुनि देवानावाहयिष्येहमितिवाचमुदीरयेत् आवाहयेत्यनुज्ञातोविश्वेदेवासआगत विश्वेदेवाः
शृणुतेममितिमंत्रद्वयंपठेत् श्राद्धविशेषेविश्वेदेवानामज्ञानेहेमाद्रौवृहस्पतिः उत्पत्तिनामचैतेषांनविदुर्येद्वि-
जातयः अयमुच्चारणीयस्तैमंत्रःश्रद्धासमन्वितैः आगच्छंतुमहाभागाविश्वेदेवामहाबलाः येअत्रविहिताःश्राद्धे
सावधानाभवंतुते इदंचावाहनमर्घ्यपात्रामादनात्प्राक्हेमाद्रिणोक्तम् तत्रकातीयैःप्राक्कार्यतथैवतत्सूत्रात्
अन्यैस्तदुत्तरं पृथ्वीचंद्रोदयेशंखः मयंवंपुष्पमादायचरणादिशिरोतकं अर्चतेत्यर्चनंकुर्यादंतरेचोदकं-
तथा पित्र्येतुमूर्धादिपादांतं पादप्रभृतिमूर्धांतदैविकेपूजनंभवेत् शिरःप्रभृतिपादांतंनमोवइतिपैतृके इतिमद्-
नरत्नेप्रचेतसोक्तेः कलिकायांसंग्रहे तिष्ठनकृतांजलिर्भूत्वापठेन्मंत्रौसमाहितः विश्वेदेवाःशृणुत
इत्यागच्छंत्वपरंततः हेमाद्रौजातूकर्ण्यः ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिवाचयित्वाद्रिजोत्तमान् तदप्रेचार्यपात्रंतु
स्वाहार्घ्याइतिविन्यसेन् गार्ग्यः दत्वाहस्तेपवित्रंचकृत्वापूजांचपादतः यादिव्याइतिमंत्रेणहस्तेष्वर्घ्यविनि-
क्षिपेत् संग्रहे विश्वेदेवाइदंबोर्घ्यमितिदानंसमादिशेत् तदंतस्वाहानमइतिवाच्यम् यादिव्याइतिमंत्रेणस्वाहा-
कारंनमोतकमितिहेमाद्रौनागरखंडात् अथर्वणसूत्रेण पाथमर्घ्यमाचमनीयमितिद्विजकरेननयेदि-
त्यस्यैवत्रयमुक्तं गभस्तिः अर्घ्यचपिंडदानंचस्वस्त्यक्षय्येतथैवच गंधपुष्पादिकंसर्वहस्तेनैवतुदापयेत् प्रतिवि-
प्रयादिव्येत्यावृत्तिः बहूचानांत्वनेनदत्तार्घ्यानुमंत्रणं ततःपात्रंदेवेभ्यःस्थानमसीतिन्युज्जमुत्तानंवाकार्यमिति-
गारुडेउक्तम् एतदापस्तंबानांनियतमन्येषान् ।

वृद्धपराशरः—“अर्घ्यासाठीं एका वस्तूचीं दोन पात्रें असावीं, त्यांत ‘शंनोदेवी०’ या मंत्रानें देवतीर्थानें प्राङ्मुख
होऊन उदक घालावें. ‘यवोसि०’ या मंत्रानें यव आणि मंत्ररहितपुष्पें व चंदन घालावें.” मानवसूत्रांत—“पुष्पें टाकून
उत्पवन करून यव टाकावें” असें आहे. ‘यवोसि०’ हा मंत्र पात्रांत सांगतो तो असा—“यवोसि धान्यराजो वा
वारुणो मधुमिश्रितः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृतः” या मंत्रांत ‘वारुणो मधुसंयुतः’ असां
परिशिष्टाचा पाठ आहे. गोभिलानें तर “यवोसि सोमदेवत्यो०” हा तिलमंत्र येथें ‘स्वाहा’ शब्दानें म्हणावा, असें सांगितलें
आहे. हेमाद्रौत यम—“तदनंतर हातांत यव घेऊन आवाहनाविषयीं देवांची अनुज्ञा मागून त्यांनीं अनुज्ञा दिल्यावर
‘विश्वेदेवास०’ या ऋचेन आवाहन करावें.” वृद्धपराशरः—“तदनंतर ब्राह्मणाच्या उजव्या जानूवर आपला डावा हात
ठेऊन ‘देवान् आवाहयिष्येहम्’ असें वाक्य उच्चारवें. ब्राह्मणानें ‘आवाहय’ अशी अनुज्ञा दिल्यावर ‘विश्वेदेवास आगत०’
‘विश्वेदेवाः शृणुतेमं०’ हे दोन मंत्र म्हणावे.” कोणत्या श्राद्धांत कोणते विश्वेदेव याचें ज्ञान नसेल तर सांगतो हेमाद्रौत
वृहस्पति—“जे ब्राह्मण विश्वेदेवांची उत्पत्ति व त्यांचें नांव जाणत नाहीं त्यांनीं श्रद्धायुक्त होऊन हा पुढील मंत्र म्हणावा,
तो असा—“आगच्छंतु०.” हें आवाहन अर्घ्यपात्रासादनाच्या पूर्वी हेमाद्रौनें सांगितलें. तें कालायनानां पूर्वी करणें.
कारण, तसेंच त्याचें सूत्र आहे. इतरांनीं अर्घ्यपात्रासादनानंतर करावें. पृथ्वीचंद्रोदयांत शंख—“यवसहितं पुष्पं
वेऊन पायांपासून मस्तकापर्यंत ‘अर्चत०’ या मंत्रानें पूजन करावें, मध्यें उदक घालें.” पितरांकडे मस्तकापासून पायांपर्यंत

करावें. कारण, “देवांचें पूजन पायांपासून मस्तकापर्यंत करावें, आणि पितरांचें पूजन मस्तकापासून पायांपर्यंत ‘नमोः०’ या मंत्रानें करावें” असें **मदनरत्नांत** प्रचेतसाचें वचन आहे. **कलिकेंत** **संग्रहांत**—“उभें राहून हात जोडून समाहितपणानें दोन मंत्र म्हणावे, ते असे-‘विश्वेदेवाः शृणुते०’ हा एक व ‘आगच्छंतु०’ हा दुसरा.” **हेमाद्रींत** **जातू-कर्ण्य**—“तदनंतर अर्घ्यपात्र संपन्न झालें असें ब्राह्मणांकडून म्हणवून त्यांच्या पुढें ‘स्वाहाऽर्घ्याः’ असें म्हणून अर्घ्यपात्र ठेवावें.” **गार्ग्य**—“पायांपासून मस्तकापर्यंत पूजा करून ब्राह्मणाच्या हातांत पवित्र देऊन ‘मा दिव्या०’ ह्या मंत्रानें ब्राह्मणाच्या हातावर अर्घ्य द्यावें.” **संग्रहांत**—“‘विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यं’ असें म्हणून द्यावें.” त्याच्या अंती ‘स्वाहानमः’ असें म्हणावें. कारण, “‘यादिव्या०’ ह्या मंत्राच्या अंती ‘स्वाहानमः’ असें म्हणून द्यावें” असें **हेमाद्रींत** **नागरखंडांत** आहे. **अथर्वणसूत्रांत** तर “पाद, अर्घ्य, आचमनीय हें ब्राह्मणाच्या हातांत द्यावें” अशी ह्या मंत्रालाच तीन सांगितली आहेत. **गमस्ति**—“अर्घ्य, पिंडदान, स्वस्ति, अक्षय्योदक, गंधपुष्पादिक हें सारें हस्तांनंच द्यावें.” प्रतिब्राह्मणाला ‘यादिव्या०’ ह्या मंत्राची आवृत्ति करावी. **बह्वचर्चां** तर दिलेल्या अर्घ्याचें ह्या मंत्रानें अनुमंत्रण करावें. तदनंतर तें पात्र ‘देवेभ्यः स्थानमसि०’ ह्या मंत्रानें दक्षिणेस उपडें किंवा उताणें करावें असें **गरुडपुराणांत** सांगितलें आहे. हें आपस्तंबांना नियत आहे, इतरांस नियत नाही.

हेमाद्रौविष्णुधर्मे गंधैःपुष्पैश्चधूपैश्चवस्त्रैश्चाप्यथभूपणैः अर्चयेद्ब्राह्मणानशक्त्याश्रद्धानःसमाहितः **पृथ्वीचंद्रोदयेमार्कंडेयः** चंदनागरुकूपूरकुंकुमानिप्रदापयेत् **विष्णुः** चंदनकुंकुमकर्पूरागरुपद्माकान्यतुलेपनायेति **व्यासः** अपवित्रकरोगैर्गंधद्वारेतिपूजयेत् **कलिकायांस्मृतिः** गंधद्वारेतिवैगंधमायनेतेचपुष्पकं धूरसीत्यमुनाधूपमुदीप्यस्वेतिदीपकं युवंवस्त्राणिमंत्रेणवस्त्रंदद्यानप्रयत्नतः आमन्नेस्वाम्ननंत्र्यादध्यैस्त्वर्ध्वद्विजोत्तमः सुगंधिश्चसुपुष्पाणिसुमाल्यानिमुधूपकः सुज्योतिश्चैवदीपेतुम्याच्छादनमितिक्रमः विप्राणांगंधेनवर्तुलंत्रिपुंड्वानकार्यं **हेमाद्रौदेवलः** ललाटेपुंड्रकंद्विद्वारंस्केधेमालांतथैवच निराशाःपितरोयांतिद्विद्वारचवृषलीपतिम् पुंड्रकंवर्तुलमित्यपराकेंमदनरत्नेच पुंड्रंत्रिपुंड्वर्तुलमर्धचंद्रं च ऊर्ध्वंचतिलकंकुर्यान्नकुर्याद्वैत्रिपुंड्रं ऊर्ध्वंचतिलकंकुर्याद्वैपित्र्येचकर्मणि निराशाःपितरोयांतिद्विद्वारचैवत्रिपुंड्रकमितिवृद्धपराशरोक्तेः तिर्यग्लेपोभवत्येव वर्जयेत्तिलकंभालेश्राद्धकालेचसर्वदा तिर्यगप्यूर्ध्वपुंड्वंधारयेत्प्रयत्नतइति**व्यासोक्तेरितिपृथ्वीचंद्रः** यत्तुनारदीये ऊर्ध्वपुंड्रंचतुलसीश्राद्धेनेच्छतिकेचनेतितनकर्तृपरम् **हेमाद्रौब्राह्मे** पूतिकंमृगनाभिंचरोचनंरक्तचंदनं कालेयकंतुम्रगंधंतुरुष्कंचापिबर्जयेत् कस्तूर्याविकल्पइति**हेमाद्रिः** वृद्धशातातपः पवित्रंतुकरेकृत्वायःसमालभतेद्विजान् राक्षसानांभवेच्छादंनिराशैःपितृभिर्गतेः पुष्पंतुब्राह्मे जातीचंपकलोप्राश्चमल्लिकाबाणवर्बरी चूताशोकाटरुषंचतुलसीशतपत्रकं कुञ्जकंतगरंचैवभृंगमारण्यकेतकी यूथिकामतिमुक्तंचश्राद्धेयोग्यानिभोद्विजाः कमलंकुमुदंपद्मंपुंडरीकंचयत्नतः इंदीवरंकोकनंदंकल्हारंचनिवेदयेत् **हेमाद्रौवायुभविष्ययोः** सुकुमारैःकिसलयैर्यवदूर्वाकुरैरपि संपूजनीयाःपितरःश्रेयस्कामेनसर्वदा **स्कांदे** जातिश्चसर्वादातव्यामल्लिकाश्वेतयूथिका जलोद्भवानिसर्वाणिकुसुमानिचंचपकं तत्रैववृद्धमनुः ननियुक्तःशिखावर्ज्यमाल्यंशिरसिधारयेत् ।

हेमाद्रींत विष्णुधर्मांत—“समाहित व श्रद्धायुक्त होऊन गंध, पुष्प, धूप, वस्त्रें, भूषणें, यांनीं यथाशक्ति ब्राह्मणांची पूजा करावी.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत-मार्कंडेय**—“चंदन, अगरू, कर्पूर, केशर हीं द्यावीं.” **विष्णु**—“चंदन, केशर, कापूर, अगरू, पद्मक हीं अंगास लावण्यास द्यावीं.” **व्यास**—“हातांतील पवित्र काडून ‘गंधद्वारां०’ या मंत्रानें गंधांनीं पूजा करावी.” **कलिकेंत स्मृति**—“‘गंधद्वारां०’ या मंत्रानें गंध ‘आयनेते०’ या मंत्रानें पुष्प, ‘धूरसि०’ यानें धूप, ‘उदीप्यस्व०’ यानें दीप, ‘युवंवस्त्राणि०’ या मंत्रानें वस्त्र, याप्रमाणें द्यावें. आसन दिलें असतां ब्राह्मणानें ‘स्वासनं’ असें म्हणावें. अर्घ्य दिलें असतां अस्त्यर्घ्यं असें म्हणावें. गंध दिला असतां ‘सुगंधि’ पुष्पें दिलीं असतां ‘सुपुष्पाणि सुमाल्यानि’ धूप दिला असतां ‘सुधूपः’ दीप दिला असतां ‘सुज्योतिः’ आच्छादन दिलें असतां ‘स्वाच्छादनं’ याप्रमाणें क्रम समजावा.” विप्रांना गंधानें ललाटावर वर्तुल किंवा त्रिपुंड्र करूं नये. कारण, **हेमाद्रींत देवल** सांगतो—“ललाटावर पुंड्रक आणि स्केधावर माला व वृषलीपति यांना पाहून पितर निराश होऊन जातात.” या वचनांत पुंड्रक म्हणजे वर्तुल, असें **अपराकांत व मदनरत्नांत** सांगितलें आहे. पुंड्र म्हणजे वर्तुल, त्रिपुंड्र व अर्धचंद्राकार समजावा. कारण, “ऊर्ध्वतिलक करावा, त्रिपुंड्र करूं नये. दैवपित्र्यकर्मविषयीं ऊर्ध्वतिलक करावा, त्रिपुंड्रक पाहून पितर निराश होऊन जातात.” असें **वृद्धपराशर** वचन आहे. गंधाचा आडवा लेप

होतच आहे. कारण, श्राद्धकालीं सर्वदा ललाटावर तिलक वर्ज्य करावा, आडवा लेप किंवा ऊर्ध्वपुंड्र प्रयत्नांनी धारण करावा” असे व्यासवचन आहे, असे पृथ्वीचंद्र सांगतो. आतां जें नारदीयांत—“श्राद्धांत कोणी ऊर्ध्वपुंड्र व तुलसी इच्छीत नाहीत.” तें सांगणें कर्तृविषयक आहे. हेमाद्रीत ब्राह्मांत—“पूतिक (चाणेरा करंज), कस्तूरी, गोरोचन, रक्तचंदन, कालेयक (पीतचंदन), उग्रगंध, तुरुष्क (ऊद) हे वर्ज्य करावे.” कस्तूरीविषयी विकल्प असे हेमाद्रि सांगतो. वृद्ध-शातातप—“जो मनुष्य हातांत पवित्र धरून ब्राह्मणाला [गंध लावण्याकरितां] स्पर्श करितो त्याचें श्राद्ध राक्षसांस प्राप्त होतें व पितर निराश होऊन जातात.” श्राद्धास पुष्पें सांगतो ब्राह्मांत—“जाई, सोनचांफा, लोध्र, मल्लिका (मोगरी), बाण (नीलवर्णकोरांटा), बबरी (तिलवण), आम्र, अशोक, अड्डसा, तुलसी, कमल, कुब्जक, तगर, माका, अरण्यकेतकी, यूथिका (जुई), अतिमुक्त (कुसरी, मधुमाधवी), हीं पुष्पें श्राद्धाला योग्य आहेत. कमल, शुभ्रकमल, पुंडरीक, निळेंकमळ, रक्तकमळ, आणि कन्हार (संश्याविकासी कमळ), हीं श्राद्धांत यावीं.” हेमाद्रीत वायु व भविष्यपुराणांत—“कल्याणेच्छु पुरुषानें कोमल पद्मव, जव, दूर्वाकुर यांनीं देखील पितरांची सर्वदा पूजा करावी.” स्कांदांत—“सर्व प्रकारची जाई, मोगरी, धेतजुई, उदकापासून उत्पन्न सर्व पुष्पें, चंपक हीं पितरांस यावीं.” तेथेंच वृद्धमनु—“ब्राह्मणानें शिष्यांचून मस्तकावर माला धारण करूं नये.”

वर्ज्यानिपृथ्वीचंद्रोदयेभविष्ये केतकीतुलसीपत्रविल्वपत्रचवर्जयेत् द्रोणचकरवीरचधत्तूरकिंशु-कंतथा माधवीयेभृत्यर्थमावेचतुलसीनिषिद्धा तुलसीनिषेधोनिर्मूलइतिहेमाद्रिः समूलत्वेपिपिंडपर। तुल-सीगंधमाघ्रायपितरस्तुष्टमानसाः प्रयातिगरुडारूढास्तत्पदंचक्रपाणिनइतिप्रयोगपारिजातेपाद्मोक्ते-रितिबोपदेवः वृद्धपराशरः नजातीकुसुमैर्विद्वानविल्वपत्रैश्चनार्चयेत् जपादिकुसुमंक्षिटीरूपिकासकुंर-टिका पुष्पाणिवर्जनीयानिश्राद्धकर्मणिनित्यशः हेमाद्रौशंखः उग्रगंधीन्यगंधीनिचैत्यवृक्षोद्भवातिच पुष्पाणिवर्जनीयानिरक्तवर्णानियानिच जलोद्भवानिदेयानिरक्तान्यपिचिशेषतः अंगिराः नजातीकुसुमानिद-द्यान्नकदलीपत्रमिति जालाविकल्पइतिहेमाद्रिः निषेधःपिंडविषयः कुंदंशंभौचनोदद्यान्नोन्मत्तंगरुडध्वजे पिंडेजानीचनोदद्यादेवीमर्कणनार्चयेदितिवृद्धयाज्ञवल्क्योक्तेरितिबोपदेवः स्मृतिसारे अगस्त्यभृंग-राजंचतुलसीशनपत्रिका चंपकतिलपुष्पचंपडेंतेपितृवल्लभाः केतकीकरवीरचवकुलकुंदकंतथा पाटलांचैवजा-तींचश्राद्धेयत्वेनवर्जयेत् केचित्पिंडेतुलसीमाहुः पितृपिंडार्चनंश्राद्धेयैःकृतंतुलसीदलैः प्रीणिताःपितरस्तैस्तुया-वचंद्राकमेदिनीतिमार्कंडेयोक्तः ।

वर्ज्य पुष्पें सांगतो पृथ्वीचंद्रोदयांत भविष्यांत—“केतकी, तुलसीपत्र, विल्वपत्र, द्रोणपुष्प, कण्हेर, धोतरा, पळस, हीं वर्ज्य करावीं.” माधवीयांत आणि भृत्यर्थसारांत तुलसी निषिद्ध आहे. तुलसीचा निषेध निर्मूल असे हेमाद्रि सांगतो. तुलसीनिषेध समूल (कृपिप्रणीत) असला तरी तो पिंडाविषयीं ममजावा. कारण, “तुलसीगंध ग्रहण करून पितर संतुष्ट होऊन गरुडावर वसून विष्णूच्या पदास जातात.” असे प्रयोगपारिजातांत पाद्मवचन आहे, असे बोपदेव सांगतो. वृद्ध-पराशर—“श्राद्धांत जाईच्या फुलांनीं व विल्वपत्रांनीं पूजन करूं नये. जाखंदीचीं वंगरे पुष्पें, पिंवळा कोन्हांटा व इतर कोन्हांटा हीं पुष्पें श्राद्धकर्मांत निल्य वर्ज्य करावीं.” हेमाद्रीत शंख—“उग्र गंध अगलेलीं पुष्पें, गंधरहित पुष्पें, समंद, ब्रह्मराक्षस वंगरे अगलेल्या वृक्षांचीं पुष्पें, आणि रक्तवर्ण पुष्पें हीं वर्ज्य करावीं. पाण्यांत उत्पन्न झालेलीं रक्तवर्ण असलीं तरी तीं विशेषतः यावीं.” अंगिरा—“जाईचीं पुष्पें व केळीचें पान हीं देऊं नयेत” जाईविषयीं विकल्प असे हेमाद्रि सांगतो. निषेध पिंडाविषयीं आहे. कारण, “शंभूच्या कुंद, विष्णूला धोतरा, आणि पिंडाय जाई देऊं नये. देवीची पूजा रुईच्या फुलांनीं करूं नये” असे वृद्धयाज्ञवल्क्यवचन आहे, असें बोपदेव सांगतो. स्मृतिसारांत—“अगस्त्य, भृंगराज, तुलसी, शतपत्रिका (कमल), चंपक, तिलपुष्प हीं महा प्रकारचीं पुष्पें पितरांस प्रिय आहेत. केतकी, कण्हेर, बकुल, कुंद, पाडळ, आणि जाई हीं श्राद्धविषयीं यत्नांनीं वर्ज्य करावीं.” केचित् ग्रंथकार पिंडाविषयीं तुलसी यावी, असें सांगतात. कारण, “ज्यांनीं श्राद्धांत तुलसीपत्रांनीं पितरांच्या पिंडाचें पूजन केलें त्यांनीं धंद, सूर्य व पृथ्वी आहे तोंपर्यंत पितर संतुष्ट केले.” असें मार्कंडेयवचन आहे.

धूपस्तत्रैवविष्णुधर्मे धूपस्तुगुगुलुर्द्वैयस्तथाचंदनसारजः अगरुक्षसकर्पूरस्तुरुक्षत्वक्तयैवच विष्णुः घृतमधुयुक्तंगुगुलुंश्रीखंडदेवदारुसरलादिदद्यादिति तत्रैवदेवलः येहिप्राण्यंगजाधुपाहस्तवाता-हताश्रये नतेश्राद्धेनियोक्तव्यायेचकेचोप्रगंधयः घृतनकेवलंदद्यादुष्टंवातृणगुगुलुं शीपमाहविष्णुः घृतेन-

दीपोदातव्यस्तिलतैलेनवापुनः वसामेदोद्भवदीपप्रयत्नेनविवर्जयेत् वस्त्राद्यो कौशेयशौमकार्पासंदुकूलम-
हंततथा श्राद्धेष्वेतानियोदद्यात्कामानाप्रोत्तितोत्तमान् हेमाद्रौब्रह्मवैवर्ते यज्ञोपवीतंदातव्यंस्त्राभावेवि-
ज्ञानता पितृभ्योवस्त्रदानस्यफलतेनाश्रुतेखिलम् तत्रैवपादो निष्कयोवायथाशक्तिवस्त्राभावेप्रदीयते अन्या-
म्यपिचदेयानि तत्रैवकालिकापुराणे धात्वादिनिर्मितारम्यादीपिकाःश्राद्धकर्मणि पितृनुद्दिश्ययोदद्यात्स-
भवेद्भाजनश्रियः योधूपदानपात्रंतुपात्रमारार्तिकस्यच दद्यात्पितृभ्यःप्रयतस्तस्यस्वर्गेक्षयागतिः विष्णुधर्मे
यःकंचुकंतथोष्णीषंपितृभ्यःप्रतिपादयेत् उग्ररोद्भवानिदुःखानिसकदाचिन्नपश्यति स्त्रीणांश्राद्धेतुसिंदूरदद्युश्च-
डातकानिच निमंत्रिताभ्यःस्त्रीभ्योयेतेस्युःसौभाग्यसंयुताः हेमाद्रावादित्यपुराणे नक्षत्रवर्णदातव्यं-
नापिकार्पाससंभवं पितृभ्योनापिमलिनंनोपभुक्तंकदाचन नच्छिद्रितंतापदर्शनयौतंकारुणापिच कार्पासनिषे-
धोऽन्यसंभवे तत्रैव पितृन्सत्कृत्यवासोभिर्दद्याद्यज्ञोपवीतकं यज्ञोपवीतदानेनविनाश्राद्धंतुनिष्फलं एतद्यति-
शुद्धस्त्रीश्राद्धेपिदेयमितिहेमाद्रिः ।

धूप तेथेंच सांगतो विष्णुधर्मांत—“गुग्गुलु, चंदनाचा साड, अगर, कापूर, ऊदवृक्षाची साल यांचा धूप द्यावा.”
विष्णु—“घृतमधुयुक्त असा गुग्गुलु, पांढरा चंदन, तेल्या देवदार, सरल इत्यादिकांचा धूप द्यावा.” तेथेंच देवल—
“प्राण्याच्या अंगापासून उत्पन्न झालेले, हातानें वारा घातलेले, आणि उग्रगंधि ते सारे धूप श्राद्धांत देऊं नयेत. धूपांत केवळ
घृत देऊं नये, कचऱ्यानें दुष्ट असलेल्या गुग्गुळाचा धूप देऊं नये.” दीप सांगतो विष्णु—“घृताचा दीप द्यावा, अथवा
तिळांच्या तेल्याचा द्यावा. चवीं व मेद यांचा दीप प्रयत्नानें वर्ज्य करावा.” वस्त्र सांगतो ब्राह्मण—“रेशमी वस्त्र, पाटाव,
कापसाचें वस्त्र, आणि दुकूल हीं नवीं वस्त्रें श्राद्धांत जो देतो त्याचे उत्तम मनोरथ पूर्ण होतात.” हेमाद्रौत ब्रह्मवैव-
र्तांत—“पितरांना वस्त्राच्या अभावीं यज्ञोपवीत द्यावें, त्या योगानें वस्त्रदानाचें सारें फळ मिळतें.” तेथेंच पाश्चांत—
“वस्त्राच्या अभावीं यथाशक्ति वस्त्राचा निष्कय (द्रव्य) द्यावें.” अन्यही देयपदार्थ सांगतो. तेथेंच कालिकापुराणांत—
“बांदी, पितळ इत्यादि धातूंच्या सुंदर लावलेल्या समया श्राद्धकर्मानें जो पितरांच्या उद्देशानें देतो तो संपत्तीला पात्र होतो.
जो धूपपात्र आणि आरार्तिकय दीपपात्र पितरांस देईल त्याची स्वर्गांत अक्षय गति होईल.” विष्णुधर्मांत—“जो मनुष्य
पितरांस कंचुक (बांदी) व पागोटें देईल त्याला संतापजन्य दुःखें कधीही होणार नाहीत. स्त्रियांच्या श्राद्धांत निमंत्रण
केलेल्या सुवासिनी स्त्रियांना जे सिंदूर आणि चंडातकें (परकर वगैरे वस्त्रें) देतील ते सौभाग्ययुक्त होतील.” हेमाद्रौत
आदित्यपुराणांत—“पितरांना काळें वस्त्र देऊं नये. कापसाचें देऊं नये. मलिन, पूर्वी उपभोग केलेलें, छिद्र पडलेलें दशा-
रहित आणि कोष्ठ्यानें सुद्धां धुतलेलें कधीही देऊं नये.” इतर वस्त्रांचा संभव असतां कार्पासवस्त्राचा निषेध समजावा.
तेथेंच—“पितरांना वस्त्रांनीं सत्कार करून यज्ञोपवीत द्यावें, यज्ञोपवीत दिल्यावांचून श्राद्ध केलेलें निष्फल होतें.” हें
यज्ञोपवीत यति (संन्याशी), शूद्र, स्त्रिया यांच्या श्राद्धांतही द्यावें, असें हेमाद्रि सांगतो.

तत्रैवतृसिंहपुराणे कमंडलुंताभ्रमयंश्राद्धेषुप्रददातियः काष्ठेननिर्मितंवापिनारिकेलमथापिवा दद्यात्
कमंडलुंश्राद्धेसश्रीमानभिजायते योभुक्तिकाविरचितानश्राद्धेषुचघटानशुभान् प्रदद्यात्करकान्वापिसोऽक्षयं-
विंदतेसुखं तत्रैव उपानच्छत्रवस्त्राणिभुक्तिपात्रंकमंडलुं शयनासनयानानिदर्पणव्यजनानिच अन्नसुसंस्कृ-
तंगंधांस्तांबूलदीपचामरे पितृभ्योयःप्रयच्छेत्तुविष्णुलोकंसगच्छति सौरपुराणे चामरंतालवृंतंचश्वेतच्छत्रं-
चदर्पणं दत्वापितृणामेतानिभूमिपालोभवेदिह तत्रैवनंदिपुराणे अलंकाराःप्रदातव्यायथाशक्तिहिरण्यमाः
केयूरहारकटकमुद्रिकांडुलदायः तथा स्त्रीश्राद्धेषुप्रदेयाःस्युरलंकारास्तुयोषिताम् मंजीरमेखलादामकर्णिका-
कंकणादयः आदर्शव्यजनच्छत्रशयनासनपादुकाः मनोज्ञाःपट्टवासाश्चसुगंधाश्चूर्णमुष्टयः अंगारधानिकाः
शीतेयोगपट्टाश्चयष्टयः कटिसूत्राणिरौप्याणिमेखलाश्चैवकंबलाः कर्पूरादेश्चभांडानिांबूलायतनंतथा भोजना-
धारयंत्राणिपतद्वाहांस्तथैवच तथांजनशलाकाश्चकेशानांचप्रसाधनं एतान्दद्यात्तुयःसम्यक्सोश्वमेधफलंभेत्
स्कांदे सौवर्णराजतंवापिकांसेनाप्यथनिर्मितं दत्वाभोजनपात्रंतुसम्राट्भवतिभूतले वामनपुराणे बंदी-
कृतास्तुयेकेचित्स्यंवायदिवापरैः येनकेनाप्युपायेनयस्तान्मोचयतेनरः पितरस्तस्यगच्छंतिशश्वतंपद्मव्ययं
पराशरः वाचयेत्परिपूर्णत्वंवासोदत्वाविधानतः ।

तेथेंच नृसिंहपुराणांत—“जो मनुष्य श्राद्धाचे ठायीं तांब्याचा कमंडलु, अथवा लांकडाचा, किंवा मारलाचा कमंडलु देतो तो मनुष्य श्रीमान् होतो. जो मनुष्य मातीचे सुंदर घट किंवा कमंडलु श्राद्धांत देतो त्याला अक्षय सुख प्राप्त होतें.” तेथेंच—“जोडा, छत्री, वस्त्रे, भोजनपात्र, कमंडलु, शयन, आसन, वाहन, दर्पण, पंखा, उत्तम अन्न, गंध, तांबूल, शीप, चामर, हीं जो पितरांस देईल त्यास विष्णुलोक प्राप्त होईल.” **सौरपुराणांत**—“चामर, पंखा, श्वेत छत्री, वर्पण, हीं पितरांस देईल तो येथें राजा होईल.” तेथेंच **नंदिपुराणांत**—“केयूर (बाहुभूषणें), हार, कडी, आंगठ्या, कुंडलें इत्यादि अलंकार यथाशक्ति सुवर्णाचे करून द्यावे.” तसेंच सांगतो—“स्त्रियांच्या श्राद्धांत स्त्रियांना अलंकार द्यावे, ते येथें प्रमाणें—नूपुरें, मेखला, सरी, कर्णिका (तानवडें), कंकण इत्यादि; आरसा, पंखा, छत्र, शयन, आसन, जोडा, सुंदर पद्मवस्त्रें, सुगंध चूर्णें, शीतकालीं शेंगळ्या, योगपट्ट, यष्टी (काठी), रुप्याचीं कटिसूत्रें, मेखला (कमरपट्टा), शाल, कपूरादिकांचीं पात्रें, पानसुपारीचें तबक, भोजनपात्रें (ताटें), पतद्माह (पिकदाणी), डोळ्यांस अंजनाच्या शलाका, फणी, हीं जो उत्तम प्रकारें देईल त्याला अश्वमेधाचें फल प्राप्त होईल.” **स्कंदांत**—“सुवर्णाचें किंवा रुप्याचें अथवा कांस्याचें केलेलें भोजनाचें ताट जो देतो तो भूमीवर सम्राट् (राजा) होतो.” **वामनपुराणांत**—“जे कोणी मनुष्य आपण किंवा दुसऱ्यांनीं बंदीत घातले असतील त्यांना कोणत्याही उपायानें जो मनुष्य सोडवितो त्याचे पितर शाश्वत अक्षयपदास जातात.” **पराशर**—“यथाविधि वस्त्र देऊन त्यांच्याकडून परिपूर्ण आहे असें म्हणवावें.”

नारदीये देवैश्वस्यमनुज्जातोयजेत्पितृगणत्वथ तत्रपित्र्येआसनाद्यशेषमर्चनकांडवैश्वदेविकक्षेत्रं विशेष-स्तूच्यते तत्रासनेद्विगुणभुम्भाःकुशाःअत्रावाहनमासनात्पूर्वार्ध्यपूरणोत्तरंवाप्रौकरणोत्तरंवेतिस्मृतिपुपक्षा-उक्ताःतेषांशाखाभेदेनव्यवस्था द्वितीयपक्षएवबहुसंमतःतत्रार्ध्यमाह्राश्वलायनःतैजसाश्ममयमृन्मयेषु-त्रिपुपात्रेष्वेकद्रव्येपुवादार्भातर्हितेष्वपआसिच्य शंनोदेवीरभिष्टय इत्यनुमंत्रितासुतिलानापति तिलोसिसो-मदेवयोगोसवेदेवनिर्मितःप्रब्रवद्भिःप्रतःस्वधयापितुनिमालोकानुप्रीणयाहिनःस्वधानमइति अश्ममयंस्फा-टिकादि मृन्मयं हस्तकृतमेव कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरंदैविकनतत् तदेवहस्तघटितंदैविकेकवलयंतथेतिछंदोग-परिशिष्टात् अन्यान्यपिपात्राणिपूर्वमुक्तानि मनुःअन्नाभावेद्विजाभावेयद्येकोब्राह्मणोभवेत् पात्राण्यासा-दयेत्रीणिनतुब्राह्मणसंख्यया दत्तकादेःकर्तुर्द्विपितृत्वादावपिवचनात्त्रीण्येवपात्राणीतिहरिहरः माधवीये-बैजवापःअर्घ्यपितृणांत्रीण्येवकुर्यात्पात्राणिधर्मवित् एकस्मिन्बावहुषुवाब्राह्मणेषुयथाविधि हेमाद्राव-प्येवं अत्रानुमंत्रणंसकृत् तिलोसीत्यस्यप्रतिपात्रमावृत्तिःपितृशब्दस्यानूहश्चेतिवृत्तिकृत् दर्भश्चत्रिगुणंपवित्रं तिस्रस्तिस्रःशलाकास्तुपितृपात्रेषुपार्वणे एकोद्विष्टशलाकैकानिधायोदकमाहरेदितिहेमाद्रीचतुर्विंशति-मतात् तत्रैवविष्णुः दक्षिणाग्रदंभेषुदक्षिणापवर्गचमसेषुपवित्रांतर्हितेष्वपआसिचेच्छंनोदेवीतिमंत्रेण-जलसेचनंबह्वचभिन्नविषयं अत्रास्मिन्पक्षेप्रतिपात्रमंत्रावृत्तिः ।

नारदीयांत—“देवांची आज्ञा घेऊन नंतर पितरांची पूजा करावी.” पितरांकडे आसनादिक सारे पूजोपचार विश्व-देवांकडे सांगितले ते समजावे, त्यांमध्यं विशेष आहे तो सांगतो—पितरांकडे आमनांचे ठायीं द्विगुण भुम (मोडून) कुश द्यावे. पितरांकडे आवाहन आसनाच्या पूर्वी करावें, किंवा अर्घ्यपात्रपूरणोत्तर करावें, अथवा अमौकरणोत्तर करावें, असे आवाहनाचे तीन पक्ष स्मृतींत सांगितले आहेत, त्यांची शाखाभेदानें व्यवस्था समजावी. त्यांत दुसरा पक्षच (अर्घ्यपात्र-पूरणोत्तर करणें हाच) बहुतांसां संमत आहे. पितरांकडे अर्घ्य सांगतो **आश्वलायन**—“तैजस (सुवर्ण, रौप्य इत्यादि धातुनिर्मित), अश्ममय (स्फटिकादिकृत), आणि मृन्मय अर्थां तीन द्रव्यांचीं तीन अर्घ्यपात्रें करावीं; अथवा एका द्रव्याचीं (पदार्थांचीं) तीन पात्रें करावीं; त्या पात्रांत उदक घालून ‘शंनो देवी०’ या मंत्रानें अनुमंत्रण करावें. नंतर त्या पात्रांत ‘तिलोसि सोमदेवत्यो०’ या मंत्रानें तिल टाकावे.” येथें सांगितलेलें मृन्मयपात्र हातानें केलेलेंच असावें; कारण, “कुंभाराचे चाकावर निष्पन्न झालेलें पात्र आसुर होतें तें दैविक होत नाहीं; तेंच केवळ हातानें घडलेलें दैविक होतें” असें छंदोगपरिशिष्ट-वचन आहे. इतरही पात्रें पूर्वी (वैश्वदेवप्रकरणीं) सांगितलीं आहेत तीं घ्यावीं. **मनु**—“अन्नाच्या अभावीं (अशक्ति असतां) किंवा इतर ब्राह्मणांच्या अभावीं जरी एक ब्राह्मण असेल तरी अर्घ्यपात्रें तीन करावीं, ब्राह्मणांच्या संख्येइतकी पात्रसंख्या करूं नये.” दत्तकादिक श्राद्धकर्ता असतां त्याचे दोन दोन पित्रादिक असले तरी स्मृतिवचनावरून तीनच पात्रें असावीं, असें हरिहर सांगतो. **माधवीयांत बैजवाप**—“एक ब्राह्मण किंवा बहुत ब्राह्मण असले तरी धर्मवेत्त्यानें पितरांच्या अर्घ्याविषयीं तीनच पात्रें यथाविधि करावीं.” **हेमाद्रींतही** असेंच आहे. येथें ‘शंनोदेवी०’ या मंत्रानें अनुमंत्रण सांगितलें तें एकवार करावें. ‘तिलोसि०’ या मंत्राची प्रत्येक पात्राला आवृत्ति करावी, त्या मंत्रांतील पितृशब्दाचा एकवार

वयाचा नाही, असें वृत्तिकार सांगतो. पात्रांत दर्भ सांगितले ते त्रिगुण पवित्र असावे; कारण, “पार्वणश्राद्धांत पितृपात्रांचे त्रयी तीन तीन दर्भ आणि एकोद्दिष्टांत एकेक दर्भ ठेवून उदक घालावे” असें हेमाद्रीत चतुर्विंशतिसृतिवचन आहे. तेथेंच विष्णु—“ब्राह्मणांच्या पुढें दक्षिणाग्र दर्भावर दक्षिणापवर्गानें स्थापित पात्रांवर पवित्रें ठेऊन ‘शंनोदेवी०’ या मंत्रानें उदक घालावे.” मंत्रानें उदक घालणें तें बह्वचमिन्नविषयक आहे. मंत्रानें उदक घालणें या पक्षीं प्रतिपात्राला मंत्राची आवृत्ति करावी.

कारिकायाम् गंधपुष्पाणिचैतेषुपात्रेषुप्रक्षिपेदथ **ब्राह्मे** जलंक्षीरं दधिघृतं तिलतंडुलसर्षपान् कुशाग्र-
मधुपुष्पाणिदत्वाचामेततः स्वयम् **जातूकर्ण्यः** ततोर्घ्यपात्रसंपत्तिवाचयित्वा द्विजोत्तमान् तदग्रेचाध्यं
पात्राणि स्वधाध्याइति विन्यसेत् ततस्तिलहस्तो विप्रसव्यजानौ दक्षिणकरं न्यस्यावाहनं पृच्छेत् अत्रगोत्रसंबंधना-
मानि द्वितीयांतत्वं च प्रागुक्तम् **बैजवापगृह्ये** तिष्ठन् पितृनावाहयिष्यामीत्यामंत्र्य **कौर्मे** अपसव्यंततः
कृत्वा पितृणां दक्षिणा मुखः आवाहनंततः कुर्यादुशंतस्वेत्युवाच बुधः आवाह्यतदनुज्ञातो जपेदायं तु नस्ततः अत्र-
सव्यस्यापि प्रागुक्तेर्विकल्पः अत्राद्यमंत्रावृत्त्याऽस्मत्पितरममुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपमावाहयामीत्युक्त्वा-
मूर्धादिपादांतं तिलांस्विकीर्यायं तु न इति सर्वते स कृज्जपेदिति **निबंधाः** अत्रोपवेशनसंवेशनपाद्याध्याचमनीया-
न्यपि हेमाद्रिणोक्तानि तान्यथर्ववेदिनां नियतानि नान्येषां तेषांच प्रपितामहादिपित्रंतं प्रातिलोभ्येन सर्वः प्रयोगः ।

कारिकेंत—“उदक घातल्यानंतर पात्रांत गंधपुष्पें घालावीं.” **ब्राह्मांत**—“जल, दूध, दधि, घृत, तिल, तंडुल, सर्षप, कुशाग्रें, मध, पुष्पें हीं पात्रांत देऊन नंतर स्वतः आचमन करावें.” **जातूकर्ण्य**—“तदनंतर ‘अर्घ्यपात्रं सुसंपन्नं’ असें ब्राह्मणांकडून म्हणवून ब्राह्मणांच्या अग्रभागीं ‘स्वधाध्याः’ असें म्हणून अर्घ्यपात्रें ठेवावीं.” तदनंतर हातांत तिल घेऊन ब्राह्मणांच्या डाव्या जानूवर आपला दक्षिणहस्त ठेऊन आवाहनप्रश्न करावा. येथें आवाहनप्रश्नवाक्यांत गोत्र, संबंध, नांव यांचा उच्चार द्वितीयाविभक्तीनें करावा, असें पूर्वी (देवावाहनप्रकरणीं) सांगितलें आहे. **बैजवापगृह्यांत**—“उभें राहून ‘पितृन् आवाहयिष्यामि’ असें आमंत्रण करून” **कौर्मांत**—“तदनंतर अपसव्य करून दक्षिणेकडे मुख करून ‘उशंतस्त्वा०’ या ऋचेन पितरांचें आवाहन करावें. त्यांची अनुज्ञा घेऊन आवाहन करून तदनंतर ‘आयंतुनः०’ या मंत्राचा जप करावा.” आवाहनाविषयीं पूर्वी सव्य सांगितलें आणि येथें अपसव्य सांगितलें म्हणून विकल्प समजावा. येथें पहिल्या (उशंत०) मंत्रा-
वृत्तीनें ‘अस्मत् पितरं अमुकशर्माणममुकगोत्रं वसुरूपमावाहयामि’ असें ह्याणून मस्तकापासून पादापर्यंत तिल टाकून सर्व पितरांचें आवाहन झाल्यावर शेवटीं ‘आयंतुनः०’ हा मंत्र एकवार जपावा, असें **निबंधग्रंथकार** सांगतात. येथें उपवेशन, संवेशन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय हीं देखील हेमाद्रीनें सांगितली आहेत, तीं अथर्ववेद्यांना नियत आहेत, इतरांस नाहीत. त्या अथर्ववेद्यांचा प्रपितामहापासून पित्यापर्यंत उलट उच्चार करून सर्व प्रयोग आहे.

वाराहे गंधपुष्पार्चनं कृत्वा दद्याद्वस्तेतिलोदकं **गार्ग्यः** शिरस्तः पादतो वापिसम्यगभ्यर्चयेत्ततः ततः
स्वधाध्याइति पितृपितामहादि विप्राग्रे प्रत्येकनिवेदयेदिति **कारिकायां वृत्तौ च आश्वलायनः** प्रसव्येने-
तरपाण्यंगुष्ठांतरेणोपवीतित्वा दक्षिणेन वासव्योपगृहीतेन पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अर्घ्यं प्रपितामहेदं ते अर्घ्य-
मित्यपपूर्वताः प्रतिग्राहयिष्यन्सकृत्सकृत्स्वधाध्याइति प्रसृष्टानुमंत्रयीत यादिव्या आपः पृथिविसंभूवुर्या
अंतरिक्ष्या उत पार्थिवीर्याः हिरण्यवर्णाय ज्ञियास्तान आपः शंस्यो नाभवंतु अर्घ्यादि प्रागंधाद्येर्ज्ञोपवीतमेव अ-
र्घ्यदानात् प्रागन्या अपोदद्यात् यद्यप्यत्र सव्येन दक्षिणेन वा अर्घ्यं दद्यादित्युक्तं तथापि दक्षिणेनेत्यभिमतोर्थः **कारि-**
कायां वृत्तौ चैवम् पित्रादेस्त्रिभिः पात्रैर्दद्यात् पितुः स्थाने विप्रत्रयंचेदेकाध्याविभज्य दद्यात् त्रयाणां स्वधाअ-
र्घ्याइति सकृत्प्रश्नः एवंपैतामहादावपि अन्यजलदानमर्घ्यमंत्राश्च प्रतिविप्रमावर्तते तेषु गंधादौ च प्रतिविप्रं ददा-
र्यानुसमयः कांडानुसमयो वा पित्रादि त्रयाणामेकविप्रपक्षेत्रिभिः पात्रैरेकस्यैवाध्यादद्यादिति वृत्तिः **कारि-**
कापि स्वधाध्याइत्यपोर्व्यास्ता उपवीतीनिवेदयेत् निवेदनात् प्राक् प्राचीनावीतमेवेत्यर्थः अर्घ्यसंशेषमादाय द-
क्षिणेन तु पाणिना सव्यहस्तगृहीतेन निनयेत् पितृतीर्थतः दत्त्वा दत्त्वानिनीतास्तायादिव्यार्चानुमंत्रयेत् यत्
यादिव्या इति मंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेदिति **यश्च वाराहे** तिलांनुनाचापसव्यं दद्यादध्यादिकं द्विजइति **यश्च-**
व्यासः गोत्रसंबंधनामानि पितृणामनुकीर्तयन् एकैकस्य तु विप्रस्य अर्घ्यपात्रं विनिक्षिपेदिति तद्बह्वृचातिरिक्तवि-
षयं तत आचामेत् एवमातामहेष्वपि ।

वाराहांत “गंधपुष्पाचनं करुण हातावर तिलोदक यावें.” गार्ग्य—“मस्तकापासून किंवा पायांपासून उत्तम पुष्प करारें.” तदनंतर ‘स्वधाऽर्घ्याः’ असें म्हणून पिता, पितामह इत्यादि ब्राह्मणांच्या अप्रभागीं प्रत्येकाला निवेदन करावें, असें कारिकेंत व वृत्तीतही आहे. आश्वलायनसूत्र—“सारे पितृकर्म अप्रदक्षिण करावें. पितृकर्माविषयीं प्राचीनावीती असावी, कर्ता उपवीती आहे—ज्या हातानें कर्म करितो (दक्षिणहस्तानें करो किंवा वामहस्तानें करो) त्या स्कंधावर यज्ञोपवीत असतां प्राचीनावीती होतो; इतर स्कंधावर यज्ञोपवीत असतां उपवीती होतो असें आहे—येथें उपवीती असल्यामुळे कर्म प्राचीनावीतीनं होण्यासाठीं वामहस्ताच्या अंगुष्ठांगुलींच्या मध्यानें (पितृतीर्थानें) अर्घ्य द्यावें, हा इत्यर्थ आहे. अथवा वामहस्त शिष्टांनीं निदित आहे म्हणून त्यानें प्रत्यक्ष देऊं नये, तर वामहस्तानें दक्षिणहस्त धरून त्या दक्षिणहस्तानें अर्घ्य द्यावें, तें असें—‘पितरिदं ते अर्घ्यं, पितामहेदं ते अर्घ्यं, प्रपितामहेदं ते अर्घ्यं’ ह्या तीन मंत्रांनीं पित्रादित्रयांना अनुक्रमानें अर्घ्य द्यावें. अर्घ्यदानाच्या पूर्वी दुसरें उदक द्यावें. अर्घ्यदानाच्या पूर्वी ‘स्वधा अर्घ्याः’ ह्या मंत्रानें पितृस्थानीं जे ब्राह्मण असतील त्या सर्वांना एकवार अर्घ्य निवेदन करावें, प्रत्येक ब्राह्मणाला करूं नये. याप्रमाणें पितामहस्थानीं व प्रपितामहस्थानीं असतील त्यांना एक एक वार अर्घ्य निवेदन करावें. इतर उदकदान व अर्घ्यमंत्र यांची मात्र प्रत्येक ब्राह्मणाला आवृत्ति आहे; निवेदनाची आवृत्ति नाही. निवेदन, इतर उदकदान व अर्घ्यदान यांविषयीं पदार्थानुसमय किंवा कांडानुसमय समजावा. तसाच गंधपुष्पादि दानाविषयींही होय. हा प्रकार एक एक पितराला अनेक ब्राह्मण असतां समजावा. एक एक पितराला एक एक ब्राह्मण असेल तर एकेक पात्र एकेकाला निवेदन करून इतर उदक एकेकाला देऊन अर्घ्योदकही एकेकाला द्यावें. सर्वांना एक ब्राह्मण असेल तर तीन्ही पात्रें त्यालाच निवेदन करून पुनः पुनः इतर उदक देऊन त्यालाच तीन मंत्रांनीं तीन अर्घ्य द्यावीं. ब्राह्मणांनीं हातांत घेऊन सोडलेलीं जीं अर्घ्योदकें त्यांचें ‘या दिव्या आपः०’ ह्या मंत्रानें अनुमंत्रण करावें.” अर्घ्यदानाच्या पूर्वी पात्रांत गंधपुष्पादिदान यज्ञोपवीतीनेंच करावें. येथें जरी वामहस्तानें किंवा दक्षिणहस्तानें अर्घ्य द्यावें, म्हणून सांगितलें तरी दक्षिणहस्तानें द्यावें हा अर्थ आचार्याम मान्य आहे. कारिकेंत व वृत्तीतही असेंच आहे. पितृस्थानीं तीन ब्राह्मण असतील तर एका अर्घ्याचा विभाग करून तिघांना द्यावें. तिघांना ‘स्वधा अर्घ्याः’ हा एकवार प्रश्न करावा. याप्रमाणें पितामहादिकांविषयींही समजावें. अन्य उदकदान व अर्घ्यमंत्र यांची प्रतिब्राह्मणाला आवृत्ति होते. याविषयीं व गंधादिदानाविषयीं प्रतिब्राह्मणाला पदार्थानुसमय किंवा कांडानुसमय समजावा. पित्रादित्रयस्थानीं एक ब्राह्मणपक्षीं तीन पात्रांनीं एकालाच अर्घ्य द्यावें, असें वृत्तिकार सांगतो. कारिकाही—“उपवीती करून ‘स्वधा अर्घ्याः’ या मंत्रानें तीं अर्घ्योदकें ब्राह्मणाला निवेदन करावीं, निवेदनाच्या पूर्वी प्राचीनावीतीच असावी, हें तात्पर्य. वामहस्तानें गृहीत अशा दक्षिणहस्तानें सशेष अर्घ्य घेऊन पितृतीर्थानें ब्राह्मणाला द्यावें, देऊन सन्नू लागलेल्या उदकांचें ‘या दिव्या०’ या ऋचेनें अनुमंत्रण करावें.” आतां जें “‘या दिव्या०’ या मंत्रानें हातांवर अर्घ्य द्यावें.” आणि जें वाराहांत—“ब्राह्मणानें तिलोदक देऊन अपसव्यानें अर्घ्यादिक द्यावें.” आणि जें व्यास सांगतो—“पितरांचें गोत्र, संबंध, नांव यांचें अनुकीर्तन करून एकेक ब्राह्मणाला अर्घ्यपात्र द्यावें.” तें सारें बहुचातिरिक्तविषयक आहे. तदनंतर आचमन करावें. याचप्रमाणें मातामहाना देखील अर्घ्य वगैरे द्यावीं.

आश्वलायनः संस्रवान्समवनीयताभिरद्भिः पुत्रकामोमुखमनक्ति संस्रवः शेषः संस्रवोहिपरिशिष्टो भवतीति शतपथश्रुतेः केचित्तु हस्तगलितांबुवदंति समवनीयांत्येद्वेपात्रेपितृपात्रे आसिच्येति वृत्तिः प्रथमेपात्रे संस्रवान्समवनीयेति कातीयसूत्राच्च ब्राह्मेतु प्रतिबिंबावलोकनमुक्तं स्वादित्वायुः कामस्य नेत्रासेचनमुक्तं पितृयविप्रैः प्राङ्मुखस्य कर्तुरभिपेकः कार्यइतिकेचित् आश्वलायनः नोद्धरेत्प्रथमं पात्रं पितृणामर्घ्यपातितं आवृत्तास्तत्र तिष्ठति पितरः शौनको ब्रवीत् यावद्विप्रविसर्जनमितितुर्यपादेयमीयः पाठः अवृत्तिः पितृपात्रं समवनयनदेशाच्चालयेद्वा श्राद्धसमाप्तेः यस्मात्तत्र तृतीयपात्रेणावृता इति यद्वा प्रथमपात्रमेव न्यग्बिलं कुर्यादिति कामाभावेऽपि दमेव शेषप्रतिपादनं हेमाद्रौ कौर्मै संस्रवांश्च ततः सर्वान्पात्रे कुर्यात्समाहितः पितृभ्यः स्थानमसीति न्युज्जं पात्रं निधापयेत् शूलपाणौ यमस्तु पैतृकप्रथमं पात्रं तस्मिन् पैतामहं न्यसेत् प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेत्प्रथमं चालयेदित्याह अथ संस्रवानानीय तृतीयेनाच्छाद्य न्युज्जीकुर्यादिति सर्वैकवाक्यतया इतिकेचित् अत्रिः गंधादिभिस्तदभ्यर्च्य तृतीयेनापि धापयेत् पितृभ्यः स्थानमसीति शुचौ देक्षे चित्तेर्चयेत् अर्चनं न्युज्जीकृते पितृल्यं न्युज्जमुत्तरतो न्यसेदिति प्रचेतसोक्तेः सर्वविप्रोत्तरतो न्यसेदिति

१ एक पदार्थ गंधादिक सर्वांना देऊन नंतर दुसरे पुष्पादि पदार्थ त्याच क्रमानें सर्वांना देणें, हा पदार्थानुसमय. आणि ठिकाणीं सारे पदार्थ देऊन नंतर दुसऱ्या ठिकाणीं सारे पदार्थ देणें, हा कांडानुसमय.

हेमाद्रिकल्पतरू विप्रवामेइतिहलायुधः कर्तुर्बामेइतिशूलपाणिः उत्तानविधृतंवापिपितृपात्रंनतद्-
वेदित्युशानसोक्तेर्न्युज्जतेवसाधुः मातामहादिसंस्त्रवानपिपितृपात्रंएवगृहीत्वाप्रयाजवत्तंत्रेणन्युज्जीकुर्या-
दितिशूलपाणिः एकोद्दिष्टतूहेनन्युज्जतेतिपितृभक्तौश्रीदत्तः यमोपि स्पृष्टमुत्तानमन्यव्रनीतमुद्धा-
टितंतथापात्रंद्वाम्रजंलाशुपितरस्तंशपंतिच वैश्वदेवेउत्तानमितिमदनपारिजातः ।

आश्वलायन—“संख उदकं एकत्र करून त्या उदकांनीं पुत्रकाम असेल त्यानें मुखलेप करावा.” संख म्हणजे उधरित उदक. कारण, “संख हा परिशेष असेल तो होतो” अशी शतपथश्रुति आहे. कोणी हातापासून गळालेलें उदक संख म्हणतात. सूत्रांतील ‘समवनीय’ शब्दाचा अर्थ—पुढच्या दोन पात्रांतील उदक पितृपात्रांत घालून, असा वृत्तिकार सांगतो. “पहिल्या पात्रांत संख मिळवून” असें कातीयसूत्रही आहे. ब्राह्मांत तर—प्रतिविंबाचें अवलोकन सांगितलें आहे. स्कांदांत तर—आयुष्यकामाला नेत्रासेचन सांगितलें आहे. पित्रांकडील ब्राह्मणांनीं प्राङ्मुख अशा श्राद्धकर्त्याला अभिषेक करावा, असें केचित् म्हणतात. **आश्वलायन**—पितरांना अर्घ्य पाडलेलें प्रथम पात्र उचलूं नये; कारण, त्या पात्राचे ठायीं आवृत होऊन पितर राहतात, असें शौनक सांगता झाला. “नोद्धरेत्०” श्लोकाच्या चवथ्या चरणीं ‘यवद्वि-प्रविसर्जनम्’ असा यमवचनीं पाठ आहे. येथें वृत्तिकार सांगतो—पितृपात्र समवनयन(एकीकरण)देशाहून श्राद्ध समाप्त होईपर्यंत चाळवूं नये. कारण, त्या ठिकाणीं तिसऱ्या पात्रांनें आवृत पितर राहतात. अथवा प्रथम पात्रच उपडें करावें. कोणती कामना नसताही शेष उदकाची ही व्यवस्था समजावी. **हेमाद्रीत कौमांत**—“समाधानपूर्वक सर्व संख एक पात्रांत करावें, ‘पितृभ्यः स्थानमसि’ या मंत्रांनें पात्र उपडें घालवें.” **शूलपाणीत यम** तर—“पित्याचें पहिलें पात्र त्यांत पितामहपात्र ठेवावें, नंतर प्रपितामहपात्र त्याजवर ठेऊन नंतर उचलूं नये व चाळवूंही नये.” असें सांगतो. आतां सर्वांची एकवाक्यता करून असा अर्थ झाला की, सारे संख एकत्र मिळवून तिसऱ्या पात्रांनें आच्छादन करून उपडें करावें, असें केचित् म्हणतात. **अत्रि**—गंधादिकांनें त्याचें पूजन करून तिसऱ्या पात्रांनें आच्छादन करावें, नंतर पूजित शुद्ध देशावर ‘पितृभ्यः स्थानमसि’ या मंत्रांनें त्या पात्राची पूजा करावी.” उपडें केलें तरी पूजन समानच आहे. “उपडें करून उत्तरेकडे ठेवावें” असें प्रचेतसाचें वचन आहे म्हणून सर्व ब्राह्मणांच्या उत्तरेकडे ठेवावें, असें हेमाद्रि व कल्पतरू सांगतात. ब्राह्मणांच्या वामभागीं ठेवावें, असें हलायुध सांगतो. कर्त्याच्या वामभागीं असें शूलपाणि सांगतो. “उताणें किंवा विधृत (उघडें) असें पितृपात्र होऊं नये” असें उशनसाचें वचन आहे म्हणून उपडें करणें हेंच चांगलें. माता-महादिपात्रांतीलही संख पितृपात्रांतच घेऊन प्रयाज यागांच्या तंत्राप्रमाणें एकतंत्रांनें उपडें करावें, असें शूलपाणि सांगतो. एकोद्दिष्टांत तर ‘पितृभ्यः०’ या मंत्रांत ऊह करून उपडें करावें, असें पितृभक्तिग्रंथांत श्रीदत्त सांगतो. **यमही**—“स्पर्श केलेलें, उताणें केलेलें, दुसऱ्या ठिकाणीं नेलेलें, उघडलेलें, असें पात्र पाहून पितर शीघ्र जातात व शाप देतात.” विश्वेदेवांचें पात्र उताणें ठेवावें, असें मदनपारिजात सांगतो.

बैजवापः तस्योपरिकुशान्दत्वाप्रदद्यादेवपूर्वकं गंधपुष्पाणिधूपंचदीपंवस्त्रोपवीतके अत्रगंधादेदैवेपि-
त्र्येचपदार्थानुसमयस्य याज्ञवल्क्योक्तकांडानुसमयेनविकल्पोज्ञेयः बहुचानांतुसूत्रेदैवानुक्तेःकांडानुसमयएव
अत्रप्राचीनावीतीनामगोत्रसंबुद्धाद्युक्तंप्रागन्यदैववत्तदतेआचमनंच हेमाद्रौकालिकापुराणे निर्वर्त्य-
ब्राह्मणादेशात्क्रियामेवंयथाविधि भाजनानिततोदद्याद्धस्तशौचंपुनःक्रमात् आदेशात्पात्राणिदद्यादित्यन्वयः
तेनतत्रापिप्रभानुज्ञेज्ञेये तत्रैवब्राह्मे मंडलानिचकार्याणिनैवारैश्वर्णकैःशुभैः गौरमृत्तिकयावापिभस्मनागोम-
येनवा भृगुः भस्मनावारिणावापिकारयेन्मंडलंततः चतुःकोणद्विजाग्रयस्यत्रिकोणक्षत्रियस्यतु मंडलाकृति
वैश्यस्यशूद्रस्याभ्युक्षणंस्मृतं बहुचपरिशिष्टे तु दैवचतुरस्रपित्र्येवृत्तंमंडलंकृत्वाक्रमेणसयवान्सतिलांश्च-
दर्भान्दद्यादित्युक्तं मार्कंडेयः यातुधानाःपिशाचाश्चक्रूरायेचैवराक्षसाः हरंतिरसमन्नस्यमंडलेनविवर्जितं ।

बैजवाप—“त्या पात्रावर कुश देऊन नंतर देवपूर्वक ब्राह्मणांना गंध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र, यज्ञोपवीत हीं द्यावीं.” या ठिकाणीं देवांकडे व पितरांकडे गंधादिकांचा पदार्थानुसमय सांगितला आणि याज्ञवल्क्यानें कांडानुसमय सांगितला म्हणून त्याचा विकल्प समजावा. बहुचानांच्या सूत्रांत तर देव सांगितले नाहीत म्हणून त्यांना कांडानुसमयच आहे, असें सम-जावें. येथें गंधादिपूजेविषयीं प्राचीनावीती व नामगोत्रादिकांचा संबुद्धीनें उच्चार इत्यादिक पूर्वी सांगितले आहे. इतर सारा विधि देवांप्रमाणें समजावा. पूजेच्या अंती आचमनही सांगितलें आहे. **हेमाद्रीत कालिकापुराणांत**—“याप्रमाणें यथा-विधि पूजनकिया करून ब्राह्मणांची आज्ञा घेऊन भोजनपात्रें मांडावीं, नंतर क्रमानें पुनः हातावर शुद्ध्य पाणी घालावें.” वचनांत आज्ञा घेऊन पात्रें घ्यावीं, असें सांगितल्यावरून येथेही प्रश्न व अनुज्ञा पाहिजे असें होतें. तेथेंच ब्राह्मांत—

“नीवारां(तृणधान्यां)चीं बारीक चूर्णे करून त्यांनीं, किंवा गौरवर्ण मृत्तिकेनें अथवा भस्मानें किंवा गोमथानें मंडळें करावीं.” भृगु—“भस्मानें किंवा उदकानें मंडळ करावें. ब्राह्मणाचें मंडळ चतुष्कोण, क्षत्रियाचें त्रिकोण, वैश्याचें मंडळ कृति आणि शूद्राचें अभ्युक्षण समजावें.” बह्वचपरिशिष्टांत तर—देवांकडे चतुरस्र आणि पितरांकडे वर्तुल असें मंडळ करून क्रमानें यवसहित आणि तिलसहित दर्भ मंडळांवर द्यावे, असें सांगितलें आहे. मार्कंडेय—“मंडलरहित पात्र असेल तर यातुधान, पिशाच आणि क्रूर राक्षस हे अज्ञाचा रस हरण करितात.”

हेमाद्रौहारीतः भूमावेवनिदध्याओपरिपात्राणीति तानिचहेमाद्राबत्रिराह भोजनेहैमरौप्याणि दैवेपित्र्येयथाक्रमं **हारीतः** राजतपाणंताम्रकांस्यपात्राणिभोजनेइति तत्रैववाराहे सौवर्णांनीह्रौप्याणि कांस्यानितदसंभवे अन्यान्यपिहिकार्याणिदाहजन्यपिजानता नायसान्यपिकार्याणिपैतलानिनतुकचित् नच सीसमयानीहशस्यंतत्रपुजान्यपि **अत्रिः** पंचाशत्पलिकंकांस्यंअधिकंभोजनायवै गृहस्थैस्तुसदाकार्यमभावे हैमरौप्ययोः पालाशेभ्योविनानस्युःपर्णपात्राणिभोजने **पृथ्वीचंद्रस्तु** कांस्यपात्रेहविट्टद्वानिराशःपितरोग-ताइति**ब्राह्मोक्तेः**कांस्यपात्रनिषेधमाह **वोपदेवस्तु**स्मृतिसंग्रहमुदाजहार श्राद्धेपालाशपात्राणिमधुकोदुंबरा-णिच पारिकाकुटजपूक्षककचानिक्रमाज्जगुः कदलीचूतपनसजंबुपुत्रागचंपकाः अलाभेमुख्यपात्राणांप्राद्याः-स्युःपितृकर्मणीति **हेमाद्रौ**तुकदलीपात्रनिषेधमाह**ांगिराः** नजातीकुसुमानिदद्यान्नकदलीपत्रमिति **क्रतुः** असुराणांकुलेजातारंभापूर्वपरिग्रहे तस्यादर्शनमात्रेणनिराशःपितरोगताः एवंपात्राण्यासाद्यभस्ममर्यादांकृ-त्वाविग्रहस्तशोधनंकुर्यात् तत्रपिशंगरक्षणाणेइतिमंत्रद्वयकेचित्पठन्ति **मात्स्ये** अकृत्वाभस्ममर्यादायःकुर्या-त्पाणिशोधनं आसुरंतद्भवेच्छ्रद्धंपितृणानोपतिष्ठते तत्रैव**ब्रह्मांडे** प्रक्षाल्यहस्तपात्रादिपश्चादद्विविधानवत् प्रक्षालनजलंदर्भैस्तिलैर्मिश्रंक्षिपेच्छुचौ मंडलोपरीतिहेमाद्रिः ।

हेमाद्रौत हारीतः—“भोजनपात्रं भूमीवरच ठेवावीं, मध्यंतरीं ठेऊं नयेत.” तीं पात्रें **हेमाद्रौत अत्रि** सांगतो—“भोजनाविषयीं देवांकडे व पितरांकडे अनुक्रमानें सोन्याचीं व रुप्याचीं पात्रें असावीं.” **हारीतः**—“भोजनाविषयीं रुपें, पानें, तांबें, कांस्य यांचीं पात्रें असावीं.” तेथेंच **चाराहंतः**—“श्राद्धांत गोम्याचीं, रुप्याचीं, कांशाचीं पात्रें असावीं, त्यांच्या अभावीं इतरही काग्याचीं करावीं. लोहाचीं व पितळेचीं कधींही करूं नयेत. तशींच शिशाचीं व कथलाचीं पात्रें प्रशस्त नाहींत.” **अत्रिः**—“गृहस्थांनीं सुवर्ण, रुपें यांच्या अभावीं बावन्न पल (शाखीय चार तोळ्यांचें एक पल या मानानें) परिमित कांस्याचें पात्र सर्वदा भोजनाला करावें. पळसाच्या पानांवांचून इतर पानांचीं पात्रें भोजनास सांगितलीं नाहींत.” **पृथ्वीचंद्र** तर—“कांस्यपात्रांवर हवि (अन्न) पाहून पितर निराश होऊन जातात” असें **ब्राह्मवचन** आहे म्हणून कांस्यपात्राचा निषेध सांगतो. **वोपदेव** तर **स्मृतिसंग्रह** सांगता झाला, तो असा—“पळस, मोह, उंबर, पारिका, कुडा, पाईर, कफच, यांचीं पात्रें श्राद्धाविषयीं सांगतात. पितृकर्मविषयीं मुख्यपात्रांच्या अभावीं केळ, आंबा, फणस, जांभूळ, नागचांफा, सोन-चांफा यांचीं पात्रें ध्यावीं.” **हेमाद्रौत** केळीचे पानाचा निषेध सांगतो. **अंगिराः**—“जाईचीं फुलें व केळीचें पान देऊं नये.” **क्रतुः**—“पूर्वी ज्या वेळीं केळ उत्पन्न झाली त्या वेळीं ती असुरांच्या कुळांत उत्पन्न झालेली आहे, तिच्या दर्शनमात्रानें पितर निराश होऊन जातात.” याप्रमाणें पात्रें मांडून भस्माची मर्यादा करून ब्राह्मणाच्या हस्ताचें शोधन करावें. भस्ममर्यादे-विषयीं ‘पिशंग’ ‘रक्षाणो’ हे दोन मंत्र केचित् म्हणतात. **मात्स्यांतः**—“भस्ममर्यादा केल्यावांचून जो हस्तशोधन करितो त्याचें तें श्राद्ध आसुर होतें, पितरांना प्राप्त होत नाहीं.” तेथेंच **ब्रह्मांडपुराणांत**—“यथाविधि उदकांनीं हस्तपात्रादिकांचें प्रक्षालन करून तें प्रक्षालनोदक दर्भतिलांनीं मिश्र असें शुद्ध भूमीवर टाकावें.” मंडलावर टाकावें, असें **हेमाद्रि** सांगतो.

अथाग्नौकरणं हेमाद्रौमार्कंडेयः आहितामिस्तुजुहुयादक्षिणामौसमाहितः अनाहितामिश्रौपासने अग्न्यभावेद्विजेप्सुवा **वायवीये** आहृत्यदक्षिणामितुहोमार्थवैप्रयत्नतः अग्न्यर्थलौकिकंवापिजुहुयात्कर्मसिद्धये आहितामिःसर्वाधानी अर्धाधानीतुगृहएवेतिचंद्रिकापरार्कमिताक्षरामाधवाद्यः तस्यापिदक्षिणाम्नौ लौकिकोगृहइतिहेमाद्रिः कल्पतरुश्च आद्यपक्षएवतुयुक्तःबहुसंमतश्च यद्यपिस्मार्तामौकरणंश्रौतेदक्षिणा-ग्नौनयुक्तंथापिवचनाद्भवतीतिहेमाद्रिचंद्रिकाद्यः इदंदर्शश्राद्धएव आब्दिकादिषुतुसर्वाधानीपाणौ अर्धाधानीगृहोक्त्यादितिहेमाद्रिर्माधवाद्यश्च पक्षांतकर्मनिर्वर्त्यवैश्वदेवंचसामिकः पिंडयज्ञंतदःइत्यादि-तोन्वाहायर्कंबुंधइतिलौगाक्ष्यादिभिःक्रमोकेर्विहृतदक्षिणामिसत्त्वात् अतएवात्रबचनेसामिकः आहितामिः-

इत्येहेमाद्रिणा एतदापस्तंबादीनामेव आश्वलायनस्याहिताग्नेःपाणावेवेतिवृत्तिः अर्धाधानिनःगृह्येएव-
व्यतिषंगेतिप्रयोगपारिजातेपरिशिष्टेच वोपदेवस्त्वाह होमशब्दःपिंडपितृयज्ञपरः पितृयज्ञेतु-
जुहुयादक्षिणाग्नौसमाहितः श्राद्धेत्वौपासनाग्नौतुनिरग्निर्लौकिकेनले अनग्निर्दूरभार्यश्चपार्वणेसमुपस्थिते संधा-
याम्रिततःकुर्याद्वोममग्निंसमुत्सृजेदितित्रिकांडमंडनोक्तेः श्राद्धेगृह्याग्नावेवेति लौकिकाग्न्यादिविधानंच-
तैत्तिरीयादिविषयं बह्वृचस्यत्वनमेरपिपाणिहोमएव अग्निपाणीविनासूत्रेविधानांतरानुक्तेः अग्न्यभावेतुवि-
प्रस्यपाणावेवोपपादयेदितिमनुक्तेश्च वृत्तावप्येवम् ।

आतां अग्नौकरण सांगतो—

हेमाद्रीत मार्कंडेय—“श्रौताग्नि धारण करणारानें दक्षिणाग्नीवर अग्नौकरणहोम करावा, श्रौताग्निरहितानें गृह्याग्नीवर होम करावा, आणि अग्नीच्या अभावीं ब्राह्मणाच्या हातावर किंवा उदकांत होम करावा.” वायवीयांत—“होमाकरितां प्रयत्नानें दक्षिणाग्नि आहरण करून अथवा कर्मसिद्धि होण्याकरितां लौकिकाग्नी (गृह्याग्नी)वर होम करावा.” वरील मार्कंडेय वचनांत ‘आहिताग्नि’ म्हणजे सर्वाधानी समजावा. अर्धाधानीनं गृह्याग्नीवरच अग्नौकरण करावें; असें चंद्रिका, अपरार्क, मिताक्षरा, माधव इत्यादिक ग्रंथकार सांगतात. अर्धाधानीला देखील दक्षिणाग्नीत होम आणि लौकिक म्हणजे गृह्याग्नि असें हेमाद्रि व कल्पतरु सांगतो. येथें पहिला पक्ष (अर्धाधानीचा गृह्याग्नीवर होम) हाच युक्त व बहुतांना संमतही आहे. जरी स्मार्त असें जें अग्नौकरण तें श्रौत अशा दक्षिणाग्नीवर युक्त नाही, तरी करावें असें वचन आहे म्हणून होतें, असें हेमाद्रि, चंद्रिका इत्यादिक सांगतात. हें दर्शश्राद्धाविषयीच समजावें. सांवत्सरादिक श्राद्धांत तर सर्वाधानीनं हस्तावर आणि अर्धाधानीनं गृह्याग्नीवर करावें असें हेमाद्रि, माधव इत्यादिक सांगतात. कारण, “साम्रिकानें पश्चान्त कर्म (अन्वाधान) व वैश्वदेव करून नंतर पिंडपितृयज्ञ करून दर्शश्राद्ध करावें” असा लौगाक्षिप्रभृतींनीं क्रम सांगितला आहे म्हणून विहार केलेला दक्षिणाग्नि दर्शाचे ठिकाणीं असतो. म्हणूनच ह्या वचनांत साम्रिक म्हणजे आहिताग्नि हेमाद्रीनं सांगितला आहे. हें आपस्तंबादिकांनाच समजावें. आश्वलायनशास्त्री जो आहिताग्नी त्याचा हातावरच होम, असें वृत्तिकार सांगतो. अर्धाधा-
नीचा गृह्याग्नीवरच व्यतिषंगानें (सहप्रयोगानें) होम असें प्रयोगपारिजातांत व परिशिष्टांत आहे. वोपदेव तर असें सांगतो की, वरील वायवीय वचनांत होम शब्द आहे तो पिंडपितृयज्ञाचा बोधक आहे. कारण, “पिंडपितृयज्ञांतील होम दक्षिणाग्नीवर करावा, श्राद्धांतील होम औपासनाग्नीवर करावा, निरग्रिकानें लौकिकाग्नीवर करावा. अग्निरहितानें व ज्याची भार्या दूर आहे त्यानं पार्वणश्राद्ध प्राप्त असतां अग्निसंधान करून होम करून नंतर अग्नीचा उत्सर्ग (त्याग) करावा” असें त्रिकांडमंडनवचन आहे, म्हणून श्राद्धांत गृह्याग्नीवरच होम सांगितला आहे. निरग्रिकांला लौकिकाग्नीचं वर्गरे विधान हें तैत्तिरीयादिविषयक आहे. बह्वृचाचा तर निरग्रिकाचाही हातावरच होम होतो. कारण, अग्नि व हस्त यांचाचून दुसरें विधान सूत्रांत सांगितलें नाही. आणि “अग्नीच्या अभावीं ब्राह्मणाच्या हातावर होम करावा” असें मनुवचनही आहे. सूत्रवृत्तींत-
ही असेंच आहे.

कवित्साग्नेरपिपाणिहोमउक्तोगृह्यपरिशिष्टे अन्वष्टक्यंचपूर्वेणुर्मासिमास्यथपार्वणं काम्यमभ्युदयेष्ट-
म्यामेकोदिष्टं तथाष्टमं चतुर्ष्वपेधुसामिनांनवहौहोमोविधीयते पित्र्यब्राह्मणहस्तेस्यादुत्तरेपुचतुर्ष्वपीति एकोदि-
ष्टंसपिंडीकरणं शुद्धेतन्निषेधात् बह्वृचभाष्यकारास्तुसर्वेकोदिष्टेपुपाणिहोममाहुः इदंबह्वृचानामेव अत्रेदं
तत्त्वम् स्थालीपाकेनसहपिंडार्थमुद्धृत्येतिसूत्रे नात्रापूर्वःस्थालीपाकश्चोद्यते सर्वश्राद्धेषुप्रसंगात्तेनानुवादोयमिति
वृत्तिकारोक्तेःपार्वणेआर्थिकस्यानंगस्यव्यतिषंगस्यवार्षिकादिष्वनतिदेशादर्धाधानिनोपिपाणिहोमएवेतिवृ-
त्तिस्वरसः एवंमासिकादावपि षोडशेमासिकेश्राद्धेसपिंडीकरणेतथा पाणावेवतुहोतन्यमन्यत्राग्नौतुहूय-
तेइतिवोपदेवोदाहृतवचनाच्च भाष्यकारमतेतु सूत्रेस्थालीपाकेनेतिकरणत्वान्नित्यवच्छ्रवणाच्चपार्वणे
सांगं ततःकाम्याविशुतदभावेकार्यस्यपिंडदानस्याप्यभावः एतदेवानुसृत्यविकृतावपिवार्षिकादौव्यतिषंगउक्तः
प्रयोगपारिजातेपरिशिष्टेच तेनैतन्मतेश्रद्धाधानिनोभावेव वस्तुतस्तुस्थालीपाके सहशाखयाप्रस्तंरं
प्रहरतीतिवत्सहभावमात्रश्रुतेः पत्नीवतेत्वष्टुरुपलक्षणमिवनांगत्वम् तत्त्वेवानांगानुरोधेनप्रधानभूतपिंडदान-

१ सर्वाधानी म्हणजे सर्व गृह्याग्नि श्रौताग्नीत मिळविलेला. आणि अर्धाधानी म्हणजे अर्धा गृह्याग्नि श्रौताग्नीत मिळवून अर्धा गृह्याग्नि राखण्यात तो होय.

त्यागोयुक्तः तेनव्यतिषंगभावेऽप्यग्राह्योभोभवतीतिबोपदेवः अनाहिताग्नेर्गृह्णाग्निमतस्तुसर्वमतेप्रावेव वार्षि-
कादौवृत्तितमेव्यतिषंगेन अन्यमतेत्वस्ति अत्रयथाचारमनुष्ठेयं ।

कचित् श्राद्धांत सामिकालही पाणिहोम गृह्यपरिशिष्टांत सांगितला आहे. तो असा—“अन्वष्टक्यंश्राद्ध, पूर्वेषुःश्राद्ध, मासिसिंश्राद्ध, पार्वणश्राद्ध, काम्यश्राद्ध (पंचमीस पुत्रकामला इत्यादि), अभ्युदयश्राद्ध (वृद्धयादिनिमित्त), अष्टमी-
श्राद्ध, आणि आठवें एकोद्दिष्ट. याप्रमाणे हीं आठ श्राद्धे आहेत त्यांमध्ये पहिल्या चार श्राद्धांत सामिकांना अग्नीत होव
सांगितला आहे. आणि पुढच्या चार श्राद्धांत ब्राह्मणांच्या हस्तावर होम सांगितला आहे.” येथें एकोद्दिष्ट म्हणजे सपिंडीकरण
समजावें. कारण, केवळ एकोद्दिष्टांत पाणिहोमाचा निषेध आहे. बहुचर्चाभाष्यकार तर सर्व एकोद्दिष्टांत पाणिहोम सांगतात.
हें सांगितलेलें बहुचर्चांनाच समजावें. येथें खरा प्रकार म्हणजे असा आहे कीं, “स्थालीपाकेन सह पिंडार्थमुद्धृत्य” ह्या आश्वलायन
सूत्राचे ठायीं ‘या ठिकाणीं अपूर्वे स्थालीपाक सांगत नाहीं. कारण, जर स्थालीपाक अपूर्वे सांगितला तर सर्व श्राद्धांत स्थाली-
पाकाची प्रसक्ति होईल, याकरितां पूर्वी सिद्ध असलेल्या स्थालीपाकाचा येथें सूत्रकारानें अनुवाद केला आहे’ असें वृत्तिकारानें
सांगितलें आहे म्हणून पार्वणाचे ठायीं अंगभूत नसून आर्थिक प्राप्त झालेला जो व्यतिषंग (उभयोः सहानुष्ठान) त्याचा
वार्षिकादि श्राद्धांत अतिदेश नाही म्हणून अर्धाधानीला देखील पाणिहोमच आहे, असें वृत्तीचें स्वरूप समजावें. याप्रमाणें
मासिकादिक श्राद्धांतही पाणिहोम समजावा; कारण, “बोडश मासिकश्राद्धे, सपिंडीकरण यांचे ठायीं हातावरच होम करावा;
इतरत्र अग्नीत होम” असें बोपदेवानेंही वचन सांगितलें आहे. भाष्यकाराच्या मतीं तर—सूत्रांत ‘स्थालीपाकेन’ असें
सांगितलें म्हणून स्थालीपाकाला करणल आहे व तो नित्यासारखा श्रुत आहे म्हणून पार्वणश्राद्धांत स्थालीपाक हा अंग आहे.
काम्यादिक श्राद्धांत त्या स्थालीपाकाचा अभाव आहे म्हणून त्याचें कार्य जें पिंडदान त्याचाही अभाव आहे. त्याच अनुसरून
पार्वणश्राद्धाची विकृतिरूप जें वार्षिकादिक श्राद्ध त्या ठिकाणीं देखील प्रयोगपारिजातांत व परिशिष्टांत व्यतिषंग
सांगितला आहे. त्यावरून भाष्यकाराच्या मतीं अर्धाधानीला अग्नीवरच होम आहे. वास्तविक म्हटलें असतां जसें—‘सह
शाखया प्रस्तेरं प्रहरति’ ह्या वाक्यानें पलाशशाखेसहवर्तमान प्रस्तराचा त्याग आहवनीय अग्नीत सांगितला आहे, तेथें शाखेला
अंगल नाही, त्याप्रमाणें येथें स्थालीपाकाला महभावमात्र श्रवण आहे. अंगल नाही. पत्नीवत म्हणून एक ग्रह (सोमपात्र)
आहे, त्या ठिकाणीं जसें—सोमपानाविषयीं त्वष्टेचें उपलक्षण होत नाही, तसें येथेंही स्थालीपाकाला अंगल नाही. अथवा स्थाली-
पाकाला अंगल मानलें तरी त्या अंगानुरोधानें (अंगभूत स्थालीपाकाच्या अभावानें) श्राद्धांत प्रधानभूत जें पिंडदान त्याचा
त्याग करणें योग्य नाही. म्हणून व्यतिषंगाच्या अभावानें देखील अग्नीत होम होतो, असें बोपदेव सांगतो. आहिताग्नि नसून
गृह्णाग्निमान् त्याचा सर्वमतीं अग्नीतच होम. वार्षिकादिक श्राद्धांत वृत्तिकाराच्या मतीं व्यतिषंग नाही, इतरांच्या मतीं आहे.
येथें जसा आचार असेल तसें करावें.

आश्वलायनः उद्धृत्यघृताक्तमन्नमनुज्ञापयत्यग्नौकरिष्येकरवैकरवाणीतिवाप्रत्यभ्यनुज्ञाक्रियतांकुरुष्व-
कुर्वित्यथाग्राहुहोतियथोक्तपुरस्तादिति व्यतिषंगपक्षेऽदमिति वृत्तिः करवैकरवाणीत्यत्राग्निवत्यनुपंगः पुर-
स्तात्पिंडपितृयज्ञे तच्चैवं मेक्षणेनावदायावदानसंपदाजुहुयात्सोमायपितृमतेस्वधानमोम्रयेकव्यवाहनायस्व-

१ मार्गशीर्षादि चार महिन्यांच्या वद्य नवमीस होणारां अन्वष्टक्ये. २ त्याच सप्तमीस होणारां पूर्वेषुःश्राद्धे. ३ हीं आठ श्राद्धे आश्व-
लायन गृह्यसूत्राच्या चवथ्या अध्यायांत श्राद्धप्रकरणीं वृत्तींत सांगितली आहेत, तेथें पाह्यावा. ४ वृत्तिकारानेंही एकोद्दिष्टांत पाणि-
होम सांगितला आहे. ५ दर्शपूर्णमासप्रकरणीं साम्राय्य हवीचा याग सांगितला आहे त्या ठिकाणीं पळसाची शाखा आणून तिनें
गार्दचें वस दूर करून दूध काढावें व त्या दुधाचें हवि करून याग करावा तो साम्राय्ययाग. तेथें वस दूर करण्याकरितां जी शाखा
तिचा त्याग प्रस्तरासह आवाहनीयांत सांगितला म्हणजे ज्या वेळीं प्रस्तराचा त्याग त्या वेळीं शाखेचा त्याग ह्या त्यागाला प्रतिपत्तिकर्म
म्हणतात. प्रतिपत्ति म्हणजे काहीएक विशिष्टत्वबोधक संस्कार. जसें राजानें नवित तांबूलाचा सोन्याच्या पीकदाणींत त्याग, तद्वत्.
यावरून तो त्याग झाला नाही म्हणून कतूला वैगुण्य आहे अशी गोष्ट नाही. जर शाखेला अंगत्व असतें व तिचा त्याग झाला नाही
तर वैगुण्य आलें असतें. पण येथें वस दूर करण्याविषयीं उपयुक्त जी शाखा तिला पुनः अंगत्व नाही, असें मीमांसकांनीं सांगितलें
आहे. ६ पत्नीवत ग्रहाचे ठिकाणीं सोमभक्षणमंत्र आहे तो असा—“अग्रा ३ १ पत्नीवन्सज्जुद्वेन त्वष्टा सोमं पिब स्वाहा” ह्या मंत्रांत
पत्नीवान् जो अग्नि त्याला संबोधन करून त्वष्टा जो देव त्यासह सोमपान कर असें सांगितलें आहे म्हणून पत्नीवान् अग्नि जशी
सोमपानाची देवता तशी त्वष्टाही आहे याकरितां पत्नीवतासह त्वष्टेचेंही उपलक्षण (बोधन) होतें, असें पूर्वपक्षी म्हणतो. सिद्धांती
असें म्हणतो कीं, मंत्रांतील ‘सज्जु’ (सह) या पदानें पानकालीं त्वष्टेचें सह अवस्थान (स्थिति) मात्र बोधित होतें; कारण, मंत्रांत
त्याला संबोधन नाही व बरोबर आहे इतक्यानेंच त्याला पानकर्तृत्व संभवत नाही, म्हणून त्वष्टा त्या सोमाची देवता नाही;
याकरितां त्याचें उपलक्षण (बोधन) होत नाही.

धानमस्ति सोमोऽङ्गारेणवाग्निपूर्वयज्ञोपवीतीमेक्षणमनुग्रह्येति अवदानसंपदाउपस्तरणाद्यपेक्षेत्यर्थः व्यति-
पङ्गपक्षे अतिप्रणीतेत्यहोमोन्मथामुख्ये अतिप्रणीतेमाविधममुपसमाधायेतिबहुचपरिशिष्टात् केचित्स्यर-
क्षोनिर्बह्णार्थत्वान्मुख्येवदंति तदेतद्विरोधाच्चित्यम् प्रयोगपारिजातेष्वेवम् शौनकः स्वाहाकारेणहोमेतु-
भवेद्यज्ञोपवीतवान् तत्रप्रागग्रयेहुत्वापश्चात्सोमायहूयते अग्नौयज्ञोपवीत्येवप्रक्षिपेन्मेक्षणंततः छंदोगपरि-
शिष्टे अग्नौकरणहोमश्चकर्तव्यउपवीतिना अपसव्येनवाकार्योदक्षिणाभिमुखेनच कातीयानांत्वपसव्यमेव
पिंडपितृयज्ञवत्हुत्वेतिस्वातिदेशात् सव्यंतुछंदोगपरम् गोभिलेनैतदुत्तरमेवापसव्योक्तेः छंदोगाजुहुयुः-
सव्येनापसव्येनयाजुषाद्विष्टयाज्ञवल्क्योक्तेश्च ।

आश्वलायन—“भात पात्रावर घेऊन त्याजवर घृत घालून ‘अग्नौकरिष्ये’ किंवा ‘अग्नौकरवै’ अथवा ‘अग्नौकरवाणि’
अग्नी ब्राह्मणांकडे अनुज्ञा मागावी; नंतर ब्राह्मणांनीं अनुक्रमानें ‘क्रियतां’ किंवा ‘कुरुष्व’ अथवा ‘कुरु’ अग्नी अनुज्ञा यावी.
नंतर पूर्वी (पिंडपितृयज्ञांत) सांगितल्याप्रमाणें अग्नींत होम करावा” व्यतिपङ्गपक्षीं हें अग्नौकरण, असें वृत्तिकार सांगतां.
पूर्वीं सांगितलेलें तें असें—“मेक्षण म्हणजे भात घेण्याचें चमच्यासारखें लोंकडाचें पात्र त्यानें अवदान घेऊन अवदानसंबंधी
उपस्तरणादिक करून पुढील मंत्रांनीं होम करावा. ते मंत्र असे—‘सोमाय पितृमते स्वधानमः’ ‘अग्नये कव्यवाहनाय स्वधानमः’
या मंत्रांनीं होम करावा. अथवा ‘स्वधा’ शब्दाच्या स्थानीं ‘स्वाहा’ शब्द उच्चारून अग्नीला पूर्वी व सोमाला नंतर होम करावा,
त्या वेळीं यज्ञोपवीती असावी आणि मेक्षणाचें अग्नींत अनुग्रहरण (त्याग) करावें.” व्यतिपङ्गपक्षीं अतिप्रणीत अग्नींत हा होम,
अतिप्रणीत नसेल तर मुख्याग्नीवर होम; कारण, “अतिप्रणीत अग्नीवर इध्माचें उपसमाधान करून इत्यादि” असें बहुचपरि-
शिष्टांत आहे. केचित् ग्रंथकार—तो अतिप्रणीत अग्नि राक्षसांच्या नाशकरितां आहे म्हणून मुख्याग्नीवर होम, असें
सांगतात. तें केविन्मत ह्या वरील परिबिष्टमतास विरुद्ध आहे. म्हणून चित्य (मूलशून्य) आहे. प्रयोगपारिजातांतही
असेंच आहे. शौनक—“स्वाहाकारानें होम करीत असतां यज्ञोपवीती असावी. व तेथें पूर्वी अग्नीला होम करून पश्चात्
सोमाला होम करावा. यज्ञोपवीती असूनच अग्नींत मेक्षणाचा प्रक्षेप करावा.” छंदोगपरिशिष्टांत—“अग्नौकरणहोम उप-
वीतीनें करावा अथवा दक्षिणाभिमुख होऊन अपसव्यानें करावा.” कातीयानां तर अग्नौकरणाविषयीं अपगव्यच आहे; कारण,
‘पिंडपितृयज्ञवत् हुत्वा’ ह्या पदानें पिंडपितृयज्ञाच्या सर्व धर्मांचा अतिदेश केलेला आहे. वरील वचनांत सव्य जें सांगितलें तें
छंदोगविषयक आहे. कारण, गोभिलानें—अग्नौकरणोत्तरच अपसव्य सांगितलें आहे. आणि ‘छंदोगांनीं सव्यानें होम
करावा व याजुषांनीं अपसव्यानें होम करावा” असें वृद्धयाज्ञवल्क्यवचनही आहे.

अथपाणिहोमः आश्वलायनः अभ्यनुज्ञायांपाणिष्वेवेति पिंडपितृयज्ञकल्पाभावेनाग्न्यभावेका-
म्यादिष्वित्यर्थः तेनबहुचानामेकोद्विष्टपाणिहोमोभवत्येव निषेधोऽन्यपरः पाणिष्वितिबहुवचनात्सर्वविप्र-
पाणिषुहोमइतिवृत्तिः एवंमातामहेपि शौनकोपि सर्वेषामुपविष्टानांविप्राणामथपाणिषु विभज्यजुहुयात्स-
र्वसोमायेत्यादिमंत्रतः यत्तुहेमाद्रौकात्यायनः पित्रेयःपंक्तिमूर्धन्यस्तस्यपाणावनम्रिकः हुत्वामंत्रवदन्येषां
तूष्णींपात्रेषुनिक्षिपेदितितद्बहुचातिरिक्तानां यत्तुतत्रैवमात्स्ये अग्न्यभावेतुविप्रस्यपाणौवाथजलेपिवा अज-
कर्णेऽथकर्णेवागोष्ठेवाथशिलांतिकइति तत्तीर्थश्राद्धविषयं तद्यदापांसमीपेस्याच्छ्राद्धंज्ञेयोविधिस्तदेतितत्रैव-
कात्यायनोक्तेः निर्जलेऽजकर्णादौ यत्तुचंद्रोदयेयमः दैवविप्रकरेनम्रिःकृत्वाग्नौकरणंद्विजइति तद-
भार्यपरम् अपत्नीकोयदाविप्रःश्राद्धंकुर्वीतपार्वणं पित्र्यविप्रैरनुज्ञातोविधेदेवेषुहूयतेइति तत्रैवकात्याय-
नोक्तेः हूयतेइतिछांदसोव्यत्ययः हेमाद्रौवायवीये विधुरोदैविकेकुर्याच्छेषंपित्र्येनिवेदयेत् दैवविप्रा-
नेकत्वेतत्रैव वैश्वदेवेयदैकस्मिन्भवेषुर्ब्यादयोद्विजाः तदैकपाणौहोतव्यस्याद्विधिर्विहितस्तदा सोप्याद्यः प्रथ-
मंवानियम्येतेतिन्यायात् तेनमृतभार्यस्यदैवेहोमः अनुपनीतब्रह्मचार्यादेस्तुपित्र्ये अग्न्यभावःस्मृतस्तावद्याव-
द्भार्यानविंदतीतिहेमाद्रौजातूकर्णोक्तेः सभार्यनष्टाग्रेरपिपित्र्यविप्रकरेइतिपृथ्वीचंद्रः उपवीतित्वे-
नदैवेहोमः प्राचीनावीतेनपित्र्ये यद्वासर्वत्रदैवपित्र्यकरयोर्विकल्पइतिहेमाद्रौमदनरत्नेपारिजातेच
यदातुपितृमातामहयोदैवपित्र्यविप्रभेदस्तदाभेदेनपाणिहोमइत्यपरार्कचंद्रिकादयः यदातुदैवंतंत्रंतदातंत्रे-
णसकृदेवपाणिहोमइतिकेचित् हेमाद्रिस्तु मातामहस्यभेदेपिकुर्यात्तंत्रेचसाग्निकइतिकातीयस्मृतेर्भेद-
माह एवंपित्र्येपि माधवीयेत्येवं एवंसाग्रेरपिनिवेदादौपाणिहोमोह्येयः यत्तुकर्णेणामिनाश्राद्धमेव-

नास्तीत्युक्तम् तत्संपिंडीकरणवार्षिकाद्यकरणापत्तेर्यत्किंचिदेव यत्तु बृहन्नारदीये अनभिर्दूरभार्यश्रुपार्वणेस-
मुपस्थिते भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं सामिकैर्विधिवद्भिजाः क्षयाहदिवसे प्राप्ते स्वस्याभिर्दूरगोयदि तथैव भ्रातरः-
स्युश्चैलौकिकाम्रावितिस्थितिः औपासनामौदूरस्थेसमीपे भ्रातरिस्थिते यद्यमौजुहयाद्वापिपाणौ वासहिपातकी
औपासनामौदूरस्थेकेचिद्विच्छंतिसत्तमाः पाणावेव तु होतव्यमिति नैतत्समंजसं तद्ब्रह्मानादरादुपेक्ष्यम् हेमा-
द्रौयमः अमौकरणवत्तत्र होमो विप्रकरे भवेत् पर्युक्ष्यदर्भानास्तीर्ययतो ह्यग्निस्समोद्विजः मेक्षणेन करेण वा-
होमः मेक्षणप्रवरणेनैतिवृत्तिः स्मृतिरन्नावल्याम् नानुज्ञापाणिहोमेत्यान्नस्तः पर्युह्नोक्षणे नाप्रेतमद्या-
दिति च न स्यातामिधमेक्षणे कर्काचार्योप्येवमाह माधवीये चंद्रिकायां चानुज्ञादिसर्वं भवतीत्युक्तं ।

आतां पाणिहोम सांगतो—

आश्वलायन—“अथवा अभ्यनुज्ञा अमतां हातावरच होम करावा” म्हणजे पितृपितृयज्ञकल्पाच्या अभावानें अग्नीचा
अभाव असतां अर्थात् काम्यादिक श्राद्धांत हातांवर होम करावा; असा ह्या आश्वलायनसूत्राचा अर्थ आहे. यावरून बहुचर्चांना
एकोद्दिष्टांत पाणिहोमच होतो. एकोद्दिष्टांत जो पाणिहोमनिषेध तो इतरविषयक आहे. सूत्रांत ‘पाणिपु’ असें बहुवचन आहे
म्हणून मान्या ब्राह्मणांच्या हातांवर होम करावा, असें वृत्तिकार सांगतो. याचप्रमाणें मातामहपार्वणाचे ठायींही समंजावें.
शौनकही—“सारे उपविष्ट (बसलेले) जे ब्राह्मण त्यांच्या हातांवर, अन्नाचा विभाग करून ‘रोमाय०’ इत्यादि मंत्रांनीं
होम करावा.” आतां जें हेमाद्रीत कात्यायन सांगतो की, “पित्र्यब्राह्मणांच्या पंक्तीत जो पहिला ब्राह्मण त्याच्या हाता-
वर अनग्निकांसें समंत्रक होम करावा, इतर ब्राह्मणांच्या पात्रांवर तूर्णीं (मंत्रावांचून) अन्न ठेवावें” तें बहुचातिरिक्तांना
समजावें. आतां जें तथेच (हेमाद्रीत) मात्स्यांत—“अग्नीच्या अग्नीर्वा ब्राह्मणांच्या हातांवर अथवा उदकांत किंवा बोक-
टाच्या कानांत किंवा घोड्याच्या कानांत अथवा गोठ्यांत किंवा दगटाच्या समीप होम करावा” तें तीर्थश्राद्धविषयक आहे.
कारण, “जेव्हां उदकाच्या समीप श्राद्ध होईल तेव्हां तो विधि जाणावा” असें तथेच कात्यायनवचन आहे. निर्जलदेशीं
अजकणादिकांत होम समजावा. आतां जें चंद्रोदयांत यम सांगतो की, “निरग्निक ब्राह्मणानें अमौकरण देवब्राह्मणाच्या
हातावर करावें” तें माथेंच्या अभावविषयक आहे; कारण, “जेव्हां पत्नीरहित ब्राह्मण पार्वणश्राद्ध करील तेव्हां पित्र्यब्राह्म-
णांची अनुज्ञा घेऊन त्यानें विधेदेवब्राह्मणांच्या हातावर होम करावा” असें तथेच कात्यायनवचन आहे. वचनांत ‘हूयते’
हें कर्मणि क्रियापद छांदग (आपे) असल्यामुळे विपर्यामानें जालेलें आहे, तें कर्तरी समजावें. हेमाद्रीत वायवीयांत—
“विभुरां देवांकडे होम करावा, शेष अन्न पित्रांकडे निवेदन करावें.” देवांकडे ब्राह्मण अनेक असतील तर तथेच सांगतो—
“जेव्हां विधेदेवांकडे दोन-चार इत्यादिक ब्राह्मण असतील तेव्हां एकाच्या हातावर होम करावा, म्हणजे शास्त्रोक्त विधि
होतो.” तो ब्राह्मण पहिला समजावा; कारण, “प्रथम जो असेल त्याचा नियम करवा, कारणावांचून प्रथमाचा अतिक्रम करू
नये” असा न्याय (जैमिनिसूत्र) आहे. यावरून ज्याची भार्या मृत असेल त्याचा होम देवांकडे होतो, अनुपनीत व ब्रह्म-
चारी इत्यादिकांचा पित्रांकडे होम. कारण, जोपर्यंत भार्या प्राप्त नाही तोपर्यंत अग्नीचा अभाव, अर्थात् सवेधा अग्न्यभाव
नाहीं.” असें हेमाद्रीत जानूकर्ण्यवचन आहे. भार्यायुक्त असून नष्टाग्नि असेल त्याचाही पित्र्यब्राह्मणांच्या हातांवर होम,
असें पृथ्वीचंद्र सांगतो. उपवीतीनें देवांकडे होम आणि प्राचीनावीतीनें पित्रांकडे होम करावा. अथवा सर्वत्र देवांच्या व
पितरांच्या ब्राह्मणांच्या हातांवर होमाचा विकल्प आहे, असें हेमाद्रीत मदनरत्नांत व पारिजातांतही आहे. जेव्हां
पितृपार्वणाच्या व मातामहपार्वणाच्या देवांचे ब्राह्मण व पितरांचे ब्राह्मण भिन्न असतील तेव्हां भेदानें (वेगळेपणानें)
पाणिहोम होतो, असें अपराक, चंद्रिका इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. जेव्हां दोन्ही पार्वणांच्या देवांचें तंत्र असेल तेव्हां
तंत्रानें एकवारच पाणिहोम असें केचित् म्हणतात. हेमाद्रि तर—“मातामहं चा भेद अगत्या तरी व तंत्र असलें तरी
सामिकांनें होम भिन्न करावा.” अशी कातीयस्मृति आहे म्हणून होमाचा भेद सांगतो. याचप्रमाणें पित्र्यब्राह्मणांकडेही
समजावें. माधवीयांतही असेंच आहे. याप्रमाणें सामिकालाही परदेशीं वर्गरे पाणिहोम समजावा. आतां जें कर्कानें
‘अग्नीवांचून श्राद्धच नाही’ असें सांगितलें तें मांगणें यत्किंचित् (कांहीं तरी) आहे; कारण, अग्नीवांचून श्राद्ध नसेल तर
अनग्निकाला संपिंडीकरण वार्षिक इत्यादिकांचा अभाव प्राप्त होईल. आतां जें बृहन्नारदीयांत सांगतो की, “ज्याचा अग्नि
नाहीं व ज्याची भार्या दूर आहे त्याला पार्वणश्राद्ध प्राप्त असतां त्यानें सामिक भ्रात्यांकडून यथाविधि श्राद्ध करावें. माता-
पितरांचा क्षयदिवस प्राप्त असून आपला अग्नि जर दूर आहे व भ्रातेही तसेच आहेत तर लौकिकामीवर होम करावा, अशी
शास्त्रमर्यादा आहे. जर औपामनाग्नि दूर आहे व समीप भ्राता आहे व त्याच्या अग्नीवर होम करील किंवा हातावर होम
करील तर तो पातकी होतो. औपासनाग्नि दूर असतां केचित् विद्वान् ‘हातावरच होम करावा’ असें इच्छितात, पण हें चांगलें
नाहीं.” हें सारें मत वृद्धांनीं स्वीकारलें नाहीं म्हणून उपेक्ष्य (अप्राग्य) आहे. हेमाद्रीत यम—“हातावर होम करावा,

याचा ह्या पैकीं अग्नौकरणाप्रमाणें पर्युक्षणपरिस्तरण करून ब्राह्मणाच्या हातावर होम करावा; कारण, ब्राह्मण अग्नीसारखा आहे.” भक्षणानें किंवा हाताचें होम करावा. भक्षणचें ग्रहण नाही, असें वृत्तिकार सांगतो. स्मृतिरत्नावलीत—“पाणिहोमाचे ठिकाणीं अनुज्ञा नाही, परितमूहन व पर्युक्षण नाही, ‘अग्नेतमया०’ हा मंत्र नाही आणि इध्मा व भक्षण हीं नाहीत.” कर्काचार्यही असेंच सांगतो. माधवीयांत व चंद्रिकेत पाणिहोमाचे ठायीं अनुज्ञा इत्यादिक सर्व आहे असें सांगितलें आहे.

पाणिहोमेप्रभाद्याहापराकेशौनकः अनग्निश्चेदाज्यंगृहीत्वाभवत्स्वेवाग्नौकरणमिति पूर्ववत्तथास्त्विति **आश्वलायनः** यदिपाणिष्वाचांतेष्वन्यदन्नमनुदिशत्यन्नमन्नेसृष्टंदत्तमृधुकमिति पाणौहुतंपात्रेनिधायविप्रैराचम्यभोजनार्थमन्नेपरिविष्टेहुतशेषंपात्रेषुदद्यादित्यर्थः सृष्टंप्रभूतं नैमित्तिकंचेदमाचमनं नहुतभक्षणनिमित्तम् अन्नंपाणितलेदत्तपूर्वमभ्युद्वयः पितरस्तेनवृष्यंतिशेषांनलभंतिते यच्चपाणितलेदत्तयच्चान्यदुपकल्पितं एकीभावेनभोक्तव्यंपृथग्भावोत्तरेविद्यतेइतिबहुचपरिशिष्टात् हेमाद्रावप्याचमनेहेत्वर्थवादोक्तः पाण्यास्योहिद्विजःस्मृतइति भाष्येत्वाचांतेषुभक्षितेषु चमुभक्षणेभक्षणोत्तरंचनाचमनं अग्निसाम्यात् पूर्वनिषेधस्तुसपिंडीकरणेभ्यः ददातिचोदितत्वात् नत्वत्र जुहोतिचोदितत्वादित्युक्तं नत्वेतद्बहुसंमतं यत्तुबौधायनेन तस्मिन्प्रशितेदद्यादन्नंप्रकृतंभवेदितिभक्षणमुक्तं तत्तच्छाखीयानामेवेतिहेमाद्रिः तत्रैवयमः पित्र्यपाणिहुताच्छेषंपितृपात्रेषुनिक्षिपेत् अग्नौकरणशेषंतुनदद्याद्वैश्वदेविके एतदग्निहोमेपिसमं कर्कस्तुसृष्टेहुतशेषंदत्वेत्यविशेषात् सर्वविप्रेषुदद्यादित्याह तत्रैवबृद्धवसिष्ठः पित्र्यविप्रकरेहुत्वाशेषंपात्रेषुनिक्षिपेत् पिंडेभ्यःशेषयेत्किंचिन्नदद्याद्वैश्वदेविके ।

पाणिहोमाविषयीं प्रश्नादिक सांगतो **अपराकृत शौनकः**—“अग्निं कानं आज्यं ग्रहणं करून पूर्वीप्रमाणें (अग्नौकरणाप्रमाणें) ‘भवत्स्वेवाग्नौकरणं’ इत्यादि प्रश्न करावा व ब्राह्मणांनीं अनुज्ञाही घ्यावी.” **आश्वलायनः**—“जर हातावर होम केला तर ब्राह्मणांनीं हातावरचें अन्न पात्रांवर ठेऊन उठून आचमन करून बसल्यावर भोजनासाठीं पात्रांवर दुसरें अन्न वाढून झाल्यावर होम शेष राहिलेलें अन्न पात्रांवर वाढावें. व ब्राह्मण तृप्त होऊन शेष पात्रावर राहिल असें अन्न वाढावें.” येथें आश्वलायननांहीं आचमन सांगितलें हें नैमित्तिक आहे. हातावर हवन केलेल्या अन्नाचें भक्षण करून त्या भक्षणनिमित्तक आचमन नव्हे; कारण, “हातावर दिलेलें अन्न अबुद्धि (अज्ञानी) असतील ते पूर्वी भक्षण करितात. त्यांच्या त्या भक्षणानें पितर तृप्त होऊन पुढें दिलेलें अन्न पितरांस प्राप्त होत नाही. जें हातांवर दिलेलें अन्न तें व जें दुसरें दिलेलें अन्न तें एकत्र करून भोजन करावें; त्या दोन्ही अन्नांचें पार्थक्य करूं नये” असें बहुचपरिशिष्टानें पूर्वी अन्नभक्षण निषिद्ध केलें आहे. हेमाद्रींतही आचमनाविषयीं हेतुमूलक अर्थवाद (स्तुतिरूप) सांगितला आहे, तो असा—“ब्राह्मणांचा हात हेंच मुख असें सांगितलें आहे.” भाष्यांत तर—“आचांतेषु” या सूत्रांतील पदाचा अर्थ—ब्राह्मणांनीं अन्न भक्षण केलें असतां दुसरें अन्न वाढावें, असा आहे. ‘आचांतेषु’ यांत ‘चमु’ धातूचा अर्थ भक्षण आहे. भक्षण केल्यावर आचमन नाही. कारण, ब्राह्मण अग्निसमान आहे. पूर्वी (बहुचपरिशिष्टांत) उक्त जो भक्षणाचा निषेध तो सपिंडीकरणांत समजावा. कारण, सपिंडीकरणांत ‘ददाति’ ह्या पदानें ब्राह्मणांच्या हातावर अन्न देण्यास सांगितलें आहे तें भक्षण करूं नये. या ठिकाणीं ‘जुहोति’ या पदानें होम सांगितला आहे म्हणून तें भक्षण करावें, असें (भाष्यांत) सांगितलें. हें मत बहुतांला संमत नाही. आतां जें बौधायनानें “हातावरचें अन्न प्राशन केलें असतां जें अन्न भोजनासाठीं केलेलें असेल तें घावें” असें भक्षण सांगितलें तें बौधायनशाखी असतील त्यांनाच समजावें, असें हेमाद्री सांगतो. तेथेंच यमः—“पित्र्य ब्राह्मणांच्या हातांवर होम करून शेष असलेलें अन्न पित्र्यपात्रांवर घावें. अग्नौकरणाचें शेष विश्वेदेवब्राह्मणांच्या पात्रांवर देऊं नये.” हें सांगणें अग्निहोमाविषयींही समान आहे. कर्काचार्य तर—“सूत्रांत ‘हुतशेष देऊन’ असें सामान्य सांगितलें आहे म्हणून सर्व ब्राह्मणांच्या पात्रांवर घावें” असें सांगतो. तेथेंच बृद्धवसिष्ठः—“पित्र्यब्राह्मणांच्या हातांवर होम करून शेष राहिलेलें अन्न किंचित् पिंडाला देऊन बाकीचें पित्र्य ब्राह्मणांच्या पात्रांवर घावें, विश्वेदेवांच्या पात्रांवर देऊं नये.”

अथापस्तंबानां सूत्रे उद्भ्रियतामग्नौचक्रियतामित्यामंत्रयते काममुद्भ्रियतांकामसग्नौचक्रियतामित्यति-सृष्टउद्धरेजुहुयाच नष्टमिविधुरादेर्विशेषोबृहन्नारदीये नष्टमिर्दूरभार्यश्चपार्वणेसमुपस्थिते संधायाम्रिततो

१ सपिंडीकरणांत असें सांगितलें आहे की, ‘हुतशेषं पित्र्यः पाणिषु ददाति’ म्हणजे हुतशेष ब्राह्मणांच्या हातावर घावें. २ येथें सूत्रकारानें असें सांगितलें की “अथाग्नौ जुहोति यथोक्तं पुरस्तादन्यनुवायां पाणिष्वेव वा” म्हणजे पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें अग्नीत होम करावा, अथवा अनुवा असेल तर हातावरच होम करावा.

होमंकृत्वातं विसृजेत्युनः अयाश्चेतितकालेभिंसंधायहुत्वात्यजेदित्यर्थः एतदापस्तंबानामैव पाणिहोमस्तुष्टो-
गादीनां विश्वप्रकाशोऽपि सामिरीपासनेनभिरमौकुर्वीतलौकिके पाणीहोमंप्रशंसंतिनत्वापस्तंबशास्त्रिणां
स्नातकाविधुरावास्थुर्यदिवाब्रह्मचारिणः अमौकरणहोमंतुकुर्युत्तेलौकिकेऽनले अयाश्चाग्नेमनोज्योतिरुदुध्यम्या-
हृतीर्हुनेत् ततोनुज्ञातोभीधनाद्याज्यभागातेयन्मेमातेत्याद्यैर्जुहुयात् तत्रसप्ताह्राहुतयः षडाज्बस्येतित्रयोदश
व्यत्ययोवा यथा यन्मेमाताप्रल्लोभ० तन्मेरेतःपितावृत्तां०, यास्तिष्ठंतीतिद्विभ्याममुष्मैस्वाहेतिपितुर्नाम्ना-
द्वौहोमौ यन्मेपितामहीप्रल्लोभ० तन्मेरेतःपितामहोवृत्तां०, अंतर्दधेइतितन्नाम्नापितामहायद्वौ यन्मेप्रपि-
तामहीप्रल्लोभ० तन्मेरेतःप्रपितामहोवृत्तां०, अंतर्दधेऋतुभिरितितन्नाम्नाप्रपितामहायद्वौमातामहेषुनुहः
यन्मेमातामही० तन्मेरेतोमातामहोवृत्तां०, अन्यंमातामहादधेइत्यादौ यन्मेमातुःपितामहीप्रल्लोभ०
तन्मेरेतोमातुःपितामहोवृत्तां०, अन्यंमातुःपितामहादधे० यन्मेमातुःप्रपितामहीप्रल्लोभ० तन्मेरेतोमातुः-
प्रपितामहोवृत्तां०, अन्यंमातुःप्रपितामहादधे०, सर्वत्राप्यमुष्माइत्यत्रङ्कंतंतत्तन्नामयोज्यं तद्गुह्यसंग्रहे
योज्यःपित्रादिशब्दानांस्थानेमातामहादिकः अन्नहोमेतथास्पर्शजलपिंडादिदानके यन्मेमातामहीत्यादितत्रो-
दाहरणंभवेत् ततोयेचेत्येकान्नाहुतिः ततःस्वाहापित्रेइत्याद्यैराज्यंहुत्वास्विष्टकृतंहुत्वासर्वभक्ष्यंकिंचिदादायोद-
गुणंभस्मापोह्यतत्रतूष्णींस्वाहाकारेणजुहोति परिषेचनांतस्थालीपाकवत् ।

आतां आपस्तंबांचें अमौकरण सांगतो—

आपस्तंबसूत्रांत—“उद्वियतां, अमौ च कियतां” अशी अनुज्ञा मागावी. नंतर ब्राह्मणांनीं ‘काममुद्रियतां, काम-
ममौच कियतां’ अशी अनुज्ञा दिल्यावर अन्नाचा उद्धार करावा, आणि होमही करावा.” नष्टाभि, विधुर इत्यादिकांस विशेष
सांगतो बृहन्नारदीयांत—“ज्याचा अभि नष्ट असेल त्यानें व भार्यो दूर असेल त्यानें अग्नीचें संधान करून होम करून
पुनः अग्नीचें विसर्जन करावें” म्हणजे ‘अयाश्वा०’ ह्या मंत्रांनं त्या कालीं अभिसंधान करून होम करून अभिम्लग्न करावा.
हें आपस्तंबांनाच समजावें. पाणिहोम तर छंदोगादिकांना आहे. विश्वप्रकाशांतही—याम्रिकानं औपासनामीवर अमौकरण
करावें, निरम्रिकानं लौकिकामीवर करावें. आपस्तंबशास्त्रांनी पाणिहोम प्रशस्त, असें सांगत नाहींत. स्नातक (समावर्तन
केलेले), विधुर अथवा ब्रह्मचारी यांनीं लौकिकामीवर अमौकरणहोम करावा. ‘अयाश्वाभ्र’, ‘मनोज्योति०’, ‘उदुध्य’ या मंत्रांनीं
व व्याहृतींनीं होम करून लौकिकाभि उत्पन्न करावा.” तदनंतर ब्राह्मणांची अनुज्ञा घेऊन अभिप्रज्वलनादिक आज्यभागांत
करून ‘यन्मे माता०’ इत्यादि मंत्रांनीं होम करावा. तेथें सात अन्नाहुति आणि सहा आज्याहुति मिळून तेरा आहुति होतात.
अथवा याच्या विपरीत म्हणजे सहा अन्नाहुति व सात आज्याहुति समजाव्या. त्या आहुति येणेप्रमाणें—‘यन्मे माता प्रल्लोभ
चरत्यननुव्रता । तन्मे रेतः पिता वृत्तां०, यास्तिष्ठंती’ या दोन मंत्रांनीं ‘अमुष्मैस्वाहा’ असें म्हणून पित्याच्या नांवानें दोन होम
(आहुति) द्यावे. ‘यन्मेपितामही प्रल्लोभ० तन्मे रेतः पितामहो वृत्तां०, अंतर्दधे पयैत० रंतरन्यं पितामहादधे खधानमः’
या मंत्रांनीं पितामहाच्या नांवानें दोन होम. ‘यन्मे प्रपितामही प्रल्लोभ० तन्मे रेतः प्रपितामहो वृत्तां०, अंतर्दधे ऋतुभि०
रन्यं प्रपितामहादधे०’ या मंत्रांनीं प्रपितामहाच्या नांवानें दोन होम. याप्रमाणें पितृपावण्याचा होम समजावा. मातामहांचा
होम कर्तव्य असतां मंत्रांत ऊह करावा. तो असा—‘यन्मे मातामही प्रल्लोभ० तन्मे रेतो मातामहो वृत्तां०, रन्यं मातामहा-
दधे०’ इत्यादि. ‘यन्मे मातुःपितामही प्रल्लोभ० तन्मे रेतो मातुः पितामहो वृत्तां०, अन्यं मातुः पितामहादधे०’ ‘यन्मे
मातुः प्रपितामही प्रल्लोभ० तन्मे रेतो मातुःप्रपितामहो वृत्तां०, अन्यं मातुः प्रपितामहादधे०’ ह्या सर्व मंत्रांचे
ठिकाणीं त्याचें त्याचें नांव चतुर्थविभक्त्यंत योजावें. त्यांच्या (आपस्तंबांच्या) गुह्यसंग्रहांत—“अन्नाचा होम, स्पर्श
करणे, उदकदान व पिंडादिदान इतक्या ठिकाणीं पिता इत्यादि शब्दांच्या स्थानीं मातामह इत्यादिक शब्द योजावे.
त्याचें उदाहरण—‘यन्मेमातामही०’ इत्यादिक आहे तदनंतर ‘येच०’ या मंत्रांनं एक अन्नाहुति द्यावी. तदनंतर
‘स्वाहा पित्रे.’ इत्यादि मंत्रांनीं घृताचें हवन करून स्विष्टकृताचा होम करून नंतर सर्व भक्ष्य पदार्थ किंचित् घेऊन
उत्तरेकडे उष्ण भस्म अपवाहन करून तेथें मंत्रावांचून स्वाहाकारानें होम करावा. नंतर परिषेकांत कर्म स्थालीपाक-
प्रमाणें करावें.

अयममौकरणहोमोमासिकश्राद्धएव तबस्मार्ताभ्यभावेनकार्यमिति केचित् कार्यमेवेतिबहवः अतएव
सर्वाधानिनोहोमवर्जमासिकश्राद्धमुक्तमुद्दर्शनभाष्ये महालयेतद्वदित्येके प्रकरणांतरत्वात् कर्माव-
धेः

त्वेनस्मार्तपार्षणवत्कार्यमितिवत्सुदुरवः आब्दिकादिषुतुस्मार्तपार्षणविधिरेव एवमातृवार्षिकादिषु मासि-
श्राद्धविकृतावष्टकायांमातृश्राद्धेवैकृतहोमेनप्राकृतहोमबाधः अन्वष्टकासुमातृश्राद्धेनेतिभाष्ये तत्रापिश्राद्धां-
तरवत्क्रियमाणेतुयन्मेमातेत्यादौगुणत्वेपिमातृप्राधान्यविवक्षितं मासिश्राद्धेनकल्पोव्याख्यातइतिसूत्रात्
आग्नेय्येवमनोताकार्यमितिवचनादग्निशब्दस्येववैकृतदेवताभिधायित्वम् तेनामुष्माइत्यत्रामुकशर्मभ्यांपितृ-
भ्यामित्याद्यूहःकार्यः तच्चमासिश्राद्धंजीवत्पित्रादिनाव्युत्क्रममृतपित्रादिनाचकार्यमित्युक्तंसुदर्शनभाष्ये
तत्प्रकारस्तुवक्ष्यते मातापित्रोर्द्वित्वादौतुनोहः तस्मादृचनोहेदितिनिषेधान् प्रकृतावूहाभावाच्चपत्नीसन्नद्येति-
वत् उपदेशिमतेनूहः यथायन्मेमातरौप्रलुलोभतुश्चरंत्यावननुव्रतेइत्याद्यस्मत्पितृकृतमासिश्राद्धनि-
र्णयेज्ञेयमितिदिक् अन्यत्प्रागवत् ।

हा अग्नौकरणहोम मासिकश्राद्धांतच आहे. तें अग्नौकरण स्मार्तग्रीच्या अभावीं करूं नये, असें केचित् म्हणतात. करावेंच
असें बहुत सांगतात. म्हणूनच सर्वाधानीला स्मार्ताभि नमल्यामुळें होमरहित मासिकश्राद्ध सुदर्शनभाष्यांत सांगितले
आहे. महालयांत मासिकश्राद्धाप्रमाणें करावें, असें कोणी म्हणतात. महालयाचें प्रकरण भिन्न असल्यामुळें तें कर्म भिन्न आहे
म्हणून स्मार्तपार्षणश्राद्धाप्रमाणें करावें असें आमचे गुरु सांगतात. आब्दिकादिक श्राद्धांविषयीं तर स्मार्त पार्षणाचाच विधि
समजावा. याप्रमाणें मातेच्या वार्षिकादिश्राद्धांत समजावें. मासिश्राद्धाची विकृती अष्टकाश्राद्ध आहे त्या ठिकाणीं मातृश्राद्धांत,
विकृति जी अष्टका तिच्या होमानें प्रकृतिभूत जें मासिश्राद्ध त्याच्या होमाचा बाध होतो. अन्वष्टकाश्राद्धांत मातृश्राद्ध नाही,
असें भाष्यांत सांगितलें आहे. त्या अन्वष्टकाश्राद्धांतही इतर श्राद्धाप्रमाणें करावयाचें असेल तर 'यन्मेमाता०' इत्यादिक
मंत्रांमध्ये मातेला गुणत्व (अप्रधानत्व) आहे तरी त्या ठिकाणीं मातेला प्रधानत्व विवक्षित आहे. कारण, 'मासिश्राद्धां
कल्पश्राद्धाचें व्याख्यान झालें' असें सूत्र आहे. 'आग्नेय्येव मनोताकार्या' (?) ह्या वचनानें अग्निशब्दाला जसें विकृतींतील
देवतावाचकत्व आहे तसें-येथें मासिश्राद्धाची विकृति ज्या अष्टका त्यांतील जी देवता माता तिचा वाचक मंत्र होतो. त्या
योगानें 'अमुष्मे' या ठिकाणीं 'अमुकशर्मभ्यां पितृभ्यां' इत्यादिक उद्ग करावा. तें प्रकृतिभूत मासिश्राद्ध जीवत्पितृकादिकानें
व ज्याचे पित्रादिक व्युत्क्रमानें (पितामह जीवंत अमतां पिता मरणें या क्रमानें) मृत आहेत त्यानें करावें, असें
सुदर्शनभाष्यांत सांगितलें आहे. त्याचा प्रकार पुढें सांगूं. दोन माता, दोन पिता इत्यादिक अमतां मंत्रांचा उद्ग
नाहीं; कारण, 'ऋचेचा (मंत्राचा) उद्ग करूं नये' असा उद्गाचा निषेध आहे. आणि प्रकृति जी मासिश्राद्ध त्यांतही उद्ग
नाहीं. जसें-दर्शपूर्णमासप्रकरणीं 'पत्नीं सन्नद्य' असा मंत्र आहे. अर्थ पत्नीचें संनहन (बंधन) करून, असा आहे. एकपत्नीक
यजमान अमतां ठीकच आहे. पण द्विपत्नीक यजमान असला तरी पत्नीशब्दाविषयीं उद्ग नाही, असें मीमांसेत सांगितलें
आहे त्याप्रमाणें एथें मंत्रांत उद्ग केल्यावांचून दोन मातेचा होम होतो. उपदेशीच्या मनीं तर उद्ग आहे. तो असा—'यन्मे
मातरौ प्रलुलोभतुश्चरंत्यावननुव्रते' इत्यादिक आमच्या (कमलाकरभट्टाच्या) वडिलांनीं केलेल्या मासिश्राद्धनिर्णयांत पाहावा.
ही दिशा दाखविली आहे. बाकीचें सर्व पूर्वी प्रमाणेंच समजावें.

अथपरिवेषणं तच्चोपवीत्येवाज्येनदेवपूर्वमामासुपकमितिपात्राण्युपस्तीर्यकुर्यादितिहेमाद्रिः भारते-
दानधर्मेपि आजाह्युतिंविनानेवयत्किंचित्परिविष्यते दुराचारेश्चयद्भुक्तंतभांगरक्षसांविदुः तत्रैवशौनकः
विधिनादेवपूर्वतुपरिवेषणमाचरेत् तत्रैवधर्मः फलस्यानंतताप्रोक्तास्वयंचपरिवेषणे तत्रैववायुभवि-
ष्ययोः भार्ययाश्राद्धकालेतुप्रशस्तंपरिवेषणं ब्रह्मांडे नापवित्रेणनैकेनहस्तेननविनाकुशम नायसेनायसेनै-
वश्राद्धेतुपरिवेषयेत् वसिष्ठः आयसेनतुपात्रेणयदन्नंसंप्रदीयते भोक्ताविष्टासमंभुंक्तेदाताचनरकंज्जेत्
पैठीनसिः सीसकायसरीतिपात्राण्ययज्ञियानि तत्रैवहारीतः सौवर्णराजताभ्यांचखझेनौदुंबरेणवा दत्त-
मक्षय्यतांयातिफल्युपात्रेणवापुनः कार्णार्जिनिः दर्व्यादेयंघृतंचान्नसमस्तव्यंजनानिच उदकंचैवप-
क्षांननोदर्व्यातुक्दाचन यमः पंत्यांविषमधातुश्चनिष्कृतिर्नैवविद्यते पृथ्वीचंद्रोदयेपराशरः सर्वदा-
चतिलाप्राद्याःपितृकुल्येविशेषतः भोज्यपात्रेतिलान्दद्यान्निराशाःपितरोगताः चंद्रिकायांवृद्धशातातपः
हस्तदत्तास्तुयेस्नेहालवणव्यंजनादयः पितृणांनोपतिष्ठतिभोक्ताभुंजीतर्किल्लिषं घृतपात्रेविशेषोमंथांतरे ओद-
नेपरमात्रेचपात्रमासाधमुग्धधीः घृतेनपूरयेत्पात्रंतद्धृतरुधिरंभवेत् घृतादिपात्राणिभूमौस्थापयेन्नभोजनपात्र-
इतिमदनरत्ने संग्रहे हस्तदत्तंतुनाभीयाल्लवणव्यंजनादिकम् अपकंतैलपकंचहस्तेनैवप्रदीयते ।

आतां अन्नाचें परिवेषण सांगतो—

तें परिवेषण उपवीतीनेच पूर्वी 'आमासुपक०' या मंत्रानें देवपूर्वक सवेपात्रांना घृत लावून नंतर करावें, असें हेमाद्रि सांगतो. भारतांत दानधर्मातही—“पात्रांवर आज्य (तृप्त) लावल्याशिवाय जें अन्न वाढितात तें आणि दुराचारी ब्राह्मण जें भक्षण करितात तें हा सारा राक्षसांचा भाग आहे, असें सांगतात.” तेथेंच शौनक—“सांगितलेल्या विधीनं पहिल्याने देवांच्या पात्रांवर नंतर पितरांच्या पात्रांवर अन्न वाढावें. तेथेंच धर्म—“खतः अन्न वाढलें अमतां फल अनंत प्राप्त होतें.” तेथेंच वायु व भविष्यपुराणांत—“श्राद्धकालीं भार्येन परिवेषण करणे (वाढणे) प्रशस्त आहे.” ब्रह्मांडांत—“श्राद्धांत अपवित्र हस्तानें, एका हस्तानें व कुशरहित हस्तानें वाढूं नये.” लोहपात्रांत व लोहपात्रांनं वाढूं नये.” वसिष्ठ—“लोहपात्रांनं जें अन्न वाढतात तें अन्न भक्षण करणारा विष्टातुल्य भक्षण करितो, आणि दाना नरकाग जातो.” पैठीनसि—“क्षिमें, लोमंड, पितळ यांनीं पात्रे यज्ञाय अयोग्य आहेत.” तेथेंच हारीत—“गोनैऋत्यांनीं पात्रे, खड्गपात्र, किंवा ताम्रपात्र, यांनीं वाढलेलें अथवा फल्गुपात्रांनं वाढलेलें अन्न अक्षय्य होतें.” काष्ठाणि-जिनि—“घृत, अन्न, मांसं व्यंजनं (कोशिबिरी वगैरे) हीं पळीनं वाढावीं. उदक आणि पक्वान्न हें पळीनं कधीही वाढूं नये.” यम—“एका पंक्तांत विषम (एकाच एक दुसऱ्याच एक असें) वाढणारा निष्कृति (पापमुक्ति, प्रायश्चित्त) सांगितली नाही.” पृथ्वीचंद्रोदयांत पराशर—“सर्वेकालीं तिल प्राद्य आहेत, पितृकुल्यांत विशेष प्राद्य आहेत; परंतु भोजनाच्या पात्रांवर तिल दिसले अमतां पितर निराश होऊन जातात.” चंद्रिकेंत बृहद्देशातानप—“क्षेह (घृतादिक), लवण, व्यंजनं (कोशिबिरी वगैरे) इत्यादिक पदार्थ हातांनं वाढले अमतां ते पितरांय प्राप्त होत नाहींत, आणि भोक्ता ब्राह्मण पाप त्यातो.” घृतपात्राविषयी विशेष सांगतो ग्रंथांतरांत—“जो गृह मनुष्य मालांत किंवा पायगांनं पात्र ठेऊन तुपांनं भरितो त्यानं तें तप रक्षितरुल्य (रक्तमद्वय) होतें ” घृतादिकांचा पात्र भूगीवर ठेवावी, भोजनपात्रावर ठेऊं नयेत. असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. संग्रहांत—“लवण, नटण्या, कोशिबिरी, मेनकट वगैरे, हे पदार्थ हातांनं वाढलेले ब्राह्मणांनीं भक्षण करूं नयेत; अपक्व पदार्थ आणि नैऋत्य पदार्थ हे हातांनं वाढावें.”

पात्रालंभनमुक्तचतुर्विंशतिमते उत्तानंदक्षिणाम्बयनीचंपात्राण्युपस्पृशेत् याज्ञवल्क्यः दत्वांशं पृथिवीपात्रमितिपात्राभिर्मंत्रणम् कृत्वेदंविष्णुस्मिन्नेद्विजांगुप्रनिवेशयेत् वौधायनः विप्रांगुप्रेतानखेनानु दिशति पृथिवीतेपात्रंयौरपिधानं ब्राह्मणस्यमुत्वेऽस्मतेऽस्मृतं जुहोमि ब्राह्मणानां त्वाविश्यावतां प्राणापानयो जुहोम्य श्रितममिमामेपितृणां श्रेष्ठा अमुत्रामुष्मिहोकेऽति अत्र जुहोम्यग्रं स्वाहाशब्दः कानीयसूत्रे उक्तः पैत्रेस्वधा-शब्दः अंगुप्रेविशेषमाह हेमाद्रौ धौम्यः पश्चिम्यनचांगुप्रद्विजस्यान्नेनिवेशयेत् तथा उत्तानेन तुहस्तेन द्विजांगुप्रनिवेशनं यः करोति द्विजो मोहात्तद्वैश्रांमिभुंजते तत्रैव यमः विष्णो हव्यंचकव्यंच ब्रूयाद्रक्षस्वचक्रमात् देवेष्विच्येचैत्यर्थः तत्रैवाग्निः संवंधनामगोत्राणि इदमन्नंतनः स्वधा पितृक्रमादुदीर्येति स्वमत्तां विनिवर्तयेत् हस्ते-नामुक्तमन्नायमिदमन्नमुदीरयेत् अत्रान्नदानेचतुर्थीस्यादित्यादि विशेषाः पूर्वमुक्ताः अत्र पूर्वोक्तमंत्रांत पुरुषवा-द्रवसंज्ञकाविश्वेदेवादेवता इदमन्नं परिकरं हव्यं अयं ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थं दत्तं दास्यमानं चातृप्रेः गभेयं भूः गदा-धरो भोक्ता इदमन्नं ब्रह्मसौवर्णपात्रस्थमन्नमक्षय्यवत् च्छायास्थं अमुकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमन्नमसुतरूपं परि-विष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्रेः स्वाहानमोनममेति वहुचपरिणिष्ट हेमाद्राद्यनुमतः प्रयोगः एवं पिच्ये अमुकगो-त्रवरूपपादितचक्रामन्नं यम ततोयेदेवाम इति देवेष्वेह पितर इति पिच्येकेचिजपति ।

अन्न निवेदनाविषयी पात्राचें आलंभन (धरणे) सांगतो चतुर्विंशतिमतांत—“पिच्यपात्रे दक्षिणहस्त उताणा खाली व वामहस्त वर ठेऊन धरावा, अर्घण देवपात्रे वामहस्त खाली व दक्षिण हस्त वर ठेऊन धरावा.” याज्ञवल्क्य—“अन्न वाढून 'पृथिवी ते पात्रं०' ह्या मंत्रानें पात्राचें आलंभन करून 'इदं विष्णु०' या मंत्रानें ब्राह्मणाचा अंगुष्ठ (आंगठा) अन्नावर ठेवावा.” वौधायन—“ब्राह्मणाचा नवरहित अंगुष्ठ लावून निवेदन करावें.” निवेदनमंत्र अगा—“पृथिवी ते पात्रं यौरपिधानं ब्राह्मणस्य० अमुत्रामुष्मिहोके.” या मंत्रांत प्रथम आलेल्या 'जुहोमि' या पदाच्या पुढें कानीयसूत्रांत 'स्वाहा' शब्द उक्त आहे. पित्रांकडे 'स्वधा' शब्द उच्चारवा, अंगुष्ठाविषयी विशेष सांगतो हेमाद्रौ धौम्य—“ब्राह्मणाचा अंगुष्ठ फिरवून अन्नांत निवेशन करूं नये. तमेंच—जो यजमान अज्ञानं करून उताण्या हस्तांनं अज्ञांत ब्राह्मणाच्या अंगुष्ठानें निवेशन करितो, त्याचें तें अन्न राक्षस खातात.” तेथेंच यम—“देवांकडे 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' व पित्रांकडे 'विष्णो कव्यं रक्षस्व' असें अनुक्रमानें म्हणावें.” तेथेंच अग्नि—“पिता, पितामह इत्यादि क्रमानें संवंध, नांव, गोत्र यांचा उच्चार करून 'इद-मन्नं०' इत्यादि म्हणून नंतर 'स्वधा' शब्द उच्चारवा, आणि अन्नावरची आपली सत्ता निवृत्त करावी, अन्नादिकांवरचा हात

न सोढता 'इदमज्ञं' असें म्हणावें." या ठिकाणी 'अन्नदानाविषयीं चतुर्थी करावी' इत्यादि विशेष पूर्वी सांगितले आहेत. एथें वर सांगितलेल्या बौधायनमंत्राच्या अंती 'पुरुवर्यांवेदसंज्ञका विश्वेदेवा देवता॥ स्वाहा नमोनमम' असा मंत्र म्हणावा, हा प्रयोग बह्वचपरिशिष्ट, हेमाद्रि इत्यादिकांस अनुमत आहे. याप्रमाणें पित्रांकडे अमुक नाम अमुकगोत्र अमुकरूप इत्यादि ज्याचें जें असेल त्याचें तें उच्चारवें. तदनंतर देवांकडे 'ये देवासो' हा मंत्र, पितरांकडे 'येचेहपितरो' हा मंत्र कोणी म्हणतात.

ततोछिद्रवाचयेत् तत्रैव प्रचेताः आपोशनकरे विप्रेसंकल्प्याच्छिद्रभाषणात् निराशाः पितरो यांति देवैः सह न संशयः पारस्करः संकल्पपितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः श्राद्धनिवेद्यापोशनं जुषप्रैषो भोजनं निवेद्येति ब्रह्मार्पणं कृत्वेत्यर्थः अतएव बृहन्नारदीये त्रयागमुक्त्वोक्तं दत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे वैवैसमर्पयेदिति यत्तु कृत्यरत्ने कार्णाजिनिः अपसव्येन कर्तव्यं पितृकृत्यमशेषतः अन्नदानाद्वेत्ते सर्वमेव मातामहं हेषपीति तदप्येतत्परं तच्च ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः हरिर्दाता चतुर्भिश्चेतिकेचित्पठंति धर्मप्रदीपे ततोऽन्नपितृदेवेभ्यः संकल्प्य च यथाविधि दत्तं यद्वा स्यमानं च आतृप्तेन ममेति च तथा श्राद्धीयान्नस्य संकल्पो भूमावेव प्रदीयते हस्तेषु दीयमानं तु पितृणां नोपतिष्ठते वैश्वदेवस्य वामे तु पितृपात्रस्य दक्षिणे संकल्पो दकदाने स्यान्नित्यं श्राद्धे यथा रुचि प्रचेताः आपोशनं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिजपेदथ मधुवाता इति वृचं मध्वित्येतन्निकंतथा मिताक्षरायां पारस्करः संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः श्राद्धनिवेद्यापोशनं जुषप्रैषो भोजनं गायत्री त्रिः स कृद्धापि जपेद्वा हतिपूर्विकां मधुवाता इति वृचं मध्वित्येतन्निकंतथा याज्ञवल्क्यः सव्याहृतिं च गायत्रीं मधुवाता इति वृचं जप्त्वा यथा सुखं वाच्यं भुंजीरं स्तोपि वाग्यताः यथा सुखं जुषध्वमिति वाच्यं अत्रिः असंकल्पितमन्नाद्यां पाणिभ्यां यशुपस्पृशेत् अभोज्यं तद्भवेदन्नं पितृणां नोपतिष्ठते अन्नं दत्तं न गृहीयाद्याद्यो यं न संपिबेत् आपोशने विशेषमाह स्मृतिसमुच्चये आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत् दक्षभागे तु यः कुर्यात् सोमपानसमं भवेत् तथा पुनरपूर्यापोशनं सुरापानसमं भवेत् हेमाद्रावत्रिः दत्ते वाप्यथ वा दत्ते भूमौ यो निक्षिपेद्ब्रह्मं तदन्नं निष्फलं याति निराशैः पितृभिर्गतैः केचिदाज्येन कुर्वन्ति तत्र पायसेन तथा ज्येन माषाग्नेन तथैव च न कुर्याद्ब्रह्मं दानं तु ओदनेन प्रकल्पयेदिति स्मृति-सारे निषेधात् शंखः श्राद्धे नियुक्तान् भुजानान् पृच्छेत् लवणादितु उच्छिष्टाः पितरो यांति पृच्छतो नात्र संशयः ।

तदनंतर ब्राह्मणाकडून 'जायतां सर्वमच्छिद्रं' असें म्हणवावें. तेथेंच प्रचेता—“ब्राह्मणाच्या हातावर आपोशन असतां संकल्प केल्या (उदक सोडलें) किंवा अच्छिद्रभाषण करविलें तर देवांसह पितर निराश होऊन जातात.” म्हणून हातावर उदक देऊन संकल्पादि करूं नये. पारस्कर—“देवपितरांला अन्नाचें उदक सोडून ब्रह्मार्पण करून गायत्री, मधुमती ऋचा यांचा जप करावा, नंतर ब्राह्मणांनीं आपोशन घ्यावें. नंतर कर्त्यानें 'जुषध्वं' असें म्हणावें. ब्राह्मणांनीं 'जुषामहे' असें म्हणून भोजन करावें.” वचनांत 'निवेद्य' असें आहे त्याचा अर्थ—ब्रह्मार्पण करून असा समजावा. म्हणूनच बृहन्नारदीयांत—अन्नाचें दान सांगून सांगितलें की, “दिलेलें हवि व तें सारें कर्म विष्णूला अर्पण करावें.” आतां जें कृत्यरत्नांत कार्णाजिनि सांगतो की, “अन्नदानावांचून बाकीचें सारें पितृकृत्य अपसव्यानें करावें, याप्रमाणें मातामहकृत्यही अपसव्यानें करावें, अन्नदान सव्यानें करावें.” तें सव्यानें अन्नदान 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः०' 'हरिर्दाता०' 'चतुर्भिश्च०' या मंत्रांनीं केचित् करितात. धर्मप्रदीपांत—“तदनंतर देवपितरांला अन्नदानाचा यथाविधि संकल्प करून 'दत्तं यद्वा स्यमानं चातृप्तेन मम' असें म्हणावें. तसेंच श्राद्धीय अन्नाच्या संकल्पाचें उदक भूमीवरच घावें, ब्राह्मणांच्या हातांवर दिलें तर पितरांला तें प्राप्त होत नाही. विश्वेदेवांच्या वामभागी व पितृपात्रांच्या दक्षिणभागी संकल्पोदकें घावीं. नित्यश्राद्धांत इच्छेप्रमाणें घावें.” प्रचेता—“आपोशन देऊन गायत्रीचा त्रिवार जप करावा, 'मधुवाता०' या तीन ऋचा आणि 'मधु' हा शब्द त्रिवार म्हणावा” याज्ञवल्क्य—“व्याहृतींसह गायत्री व 'मधुवाता०' या तीन ऋचा जपून 'यथा सुखं जुषध्वं' असें म्हणावें, ब्राह्मणांनीं वाणीचें नियमन करून भोजन करावें.” अत्रि—“अन्नाचें संकल्पोदक सोडण्याच्या पूर्वी ब्राह्मण जर हातानें त्या अन्नाला स्पर्श करील तर तें अन्न अभोज्य होतें, पितरांस प्राप्त होत नाही. ब्राह्मणांनीं जोपर्यंत आपोशन घेतलें नाही तोपर्यंत दिलेलें अन्न घेऊं नये.” आपोशनाविषयीं विशेष सांगतो स्मृतिसमुच्चयांत—“वामभागी आपोशन सुरापानतुल्य होतें. दक्षिणभागी आपोशन सोमपानतुल्य होतें. तसेंच हातावर उदक घेतल्यावर पुनः त्यांत उदक घालून आपोशन केलें असतां तें सुरापानतुल्य होतें.” हेमाद्रीत अत्रि—“आपोशनोदक दिलेलें असो किंवा न दिलेलें असो, भूमीवर जो बलिदान करितो त्याचें तें अन्न निष्फल होतें, व पितर निराश होऊन जातात.” कोणी आज्यानें बलिदान करितात. तें बरोबर नाही.

कारण, “पायसानं, आज्यानं तसैव सावाजानं बलिदानं कर्तुं नये. ओदनां (भातानं) बलिदानं करावें” असा ह्मस्ति-
सारांत आज्यानं बलिदानाचा सर्वत्र निषेध आहे. शंख—“आद्याविषयीं नियुक्तब्राह्मण भोजन करीत असतां लवणादिकां-
विषयीं त्यांना प्रश्न करूं नये, प्रश्न केला असतां उच्छिष्ट पितर जातात, यांत संशय नाही.”

कात्यायनः अभवत्सुजपेत्सव्याहृतिकांगायत्रीसकृन्निर्वाशोष्नीः पौरुषं सूक्तमप्रतिरथमिति हेमाद्री-
सौरपुराणे ऐंद्रचपौरुषं सूक्तं श्रावयेद्ब्राह्मणांस्ततः **मात्स्यपाद्मयोः** ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणांस्तोत्राणि वि-
विधानि च इंद्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्वशक्तिः मंडलं ब्राह्मणं तद्वत्प्रीतिकारिचयत्पुनः अभावे सर्वविद्यानां
गायत्रीजपमाचरेत् **पृथ्वीचंद्रोदयब्राह्मे** वीणावंशध्वनिचाथविप्रेभ्यः संनिवेदयेत् जपेच्चपौरुषं सूक्तं ना
चिकेतत्रयंतथा त्रिमधुत्रिसुपर्णचपावमानीर्यजूषि च **हेमाद्रावन्निः** हुंकारेणापि यो ब्रूयाद्धस्ताद्यापि वेदुषान्
भूतलाच्चोदरेत्पात्रं मुंचेद्धस्तेन वापि वेत् प्रौढपादो बहिः कच्छो बहिर्जानुं करोषि वा अंगुष्ठेन विना भ्रातिमुखश्च दे-
नवापुनः पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्यापि वेत् स्वादिता र्थात्पुनः स्वादेन्मोदकानि फलानि च मुखेन वा धमेदभ्रं-
निष्ठीवेद्वाजनेपि वा इत्थमभ्रद्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिं **जाबालिः** इष्टमुष्णं हविष्यं च दद्याद्भंशज्ञैः-
ज्ञैः **वृद्धशतातपः** अपेक्षितं याचितव्यं श्राद्धार्थमुपकल्पितं न याचते द्विजो मूढः स भवेत्पिष्टघातकः यत्तु
यमः श्राद्धद्विजो नैव दद्यात्त्रयाचेन्नैव दापयेदिति तदसंपादितवस्तु विषयमिति हेमाद्रिः **हारीतः** ऊर्ध्वपाणि-
श्च विहसन् सकोपो विस्मयान्वितः भुम्रपृष्ठश्च यद्हुंकेन तत्प्रीणातिवैपितृन् **प्रचेताः** न स्पृशेद्ब्राम्हस्तेन भुंजानो भ्रं-
कदाचन नपादौ न शिरो वस्तिन पदाभाजं न स्पृशेत् **शंखः** श्राद्धपंक्तौ भुंजानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् तदभ्रम-
त्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् **उशनाः** भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन अन्यत्र दत्तं क्षीराद्वा क्षौद्रा-
त्सक्तुभ्य एव च ब्राह्मे न चाश्रुपातयेज्जातु न शुष्कां गिरिमीरयेत् न चोद्दीक्षेत भुंजानां च कुर्वीत मत्सरम् ।

कात्यायनः—“ब्राह्मण भोजन करीत असतां व्याहृतिगृहितं गायत्री एकवार किंवा त्रिवार जपावी. राक्षोष्नी ऋचा,
पुरुषसूक्त, अप्रतिरथ (आशु.शिशानमृक्त), यांचा जप करावा.” **हेमाद्रीत सौरपुराणांत**—“‘इंद्रागोमां’ हें सूक्त,
पुरुषसूक्त हें ब्राह्मणाकडून ऐकवावें.” **मात्स्यांत व पाद्मांत**—“ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र यांचीं अनेक स्तोत्रं; इंद्र, ईश,
सोम यांचीं सूक्ते; पवमानऋचाः ब्राह्मणमंडल; तमंच पितरांची प्रीति करणारें असेल तें याचा जप करावा, सर्वांच्या अभावीं
गायत्रीचा जप करावा.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत**—“वीणा, वंश (वेदूचं) वाद्य हें ब्राह्मणाला भोजन करतेवेळीं
ऐकवावें. पुरुषसूक्त, नाचिकेतत्रय, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, पावमानी आणि यजु यांचा जप करावा.” **हेमाद्रीत अत्रिः**—“जो
ब्राह्मण ‘हुं’ असं देखील बोलतो; हातांत देखील पदार्थांचे गुण वर्णन करितो; भूमीवरून पात्र वर उचलून सोडतो; हातातें
पितो; पाय सोडलेला, कच्छ बाहेर पडलेला, किंवा डोपराचे बाहेर हात करून, अंगुष्ठावांचून चार बोटांनीं असा भोजन
करितो; अथवा फूत्कारादि मुखशब्द करून भोजन करितो; पात्रांनील पाणी पिऊन उच्छिष्ट अवशिष्ट राहिलेलें पाणी पुनः
पेऊन पितो; लाडू-फळें इत्यादिक अर्थां खाऊन खालीं ठेवून ती पुनः खानो; अन्नावर मुखांतें बारा घालतो; अथवा पात्रावर
शुंकतो; याप्रमाणें भोजन करणारा ब्राह्मण श्राद्धाचा घात करून अधोगतीन जातो.” **जाबालिः**—“वाटणारानें आवडणारे
उन्वून पदार्थ हळू हळू वाढावे.” **वृद्धशतातपः**—“श्राद्धामार्गी उपकल्पित पदार्थांतून जो अपेक्षित असेल तो ब्राह्मणानें
मागवा, जो मूढ ब्राह्मण मागत नाही, तो पितृघातक होतो.” आतां जें **यम** सांगतो की, “श्राद्धांत ब्राह्मणानें देऊं नये,
मागूं नये व देववूं नये.” तें असंपादित पदार्थावपयक समजावें, असें **हेमाद्रि** सांगतो. **हारीतः**—“हात वर करून,
हंसत हंसत, कोप, आश्चर्य यांनीं युक्त होऊन, पाठ वांकवून अगा जो ब्राह्मण भोजन करितो, त्याच्या त्या भोजनानें पितर
तृप्त होत नाहीत.” **प्रचेताः**—“भोजन करीत असतां वामहस्तानें कधीही अन्नाला स्पर्श करूं नये. तयाच पाय, मस्तक,
वस्ति (नामीच्या खालचा भाग) यांठिकाणीं वामहस्तानें स्पर्श करूं नये. पात्राला पाय लावूं नये.” **शंखः**—“श्राद्धपंक्तीत
ब्राह्मण भोजन करीत असतां दुसऱ्या ब्राह्मणाला स्पर्श करील तर तें अन्न न टाकतां भोजन करावें आणि भोजनोत्तर
अष्टशत गायत्री जप करावा.” **उशनाः**—“ब्राह्मणानें दही, दूध, मध, मातू यांवांचून इतर अन्न निःशेष भोजन करूं नये;
तर पात्रावर शेष राखावें.” जेवीत असतां डोळ्यांतून पाणी कधीही काढूं नये, शुष्कवाणी, बोळूं नये, इतर जेवणारांकडे
पाहूं नये, व मत्सर करूं नये.”

यमः स्वाध्यायं श्रावयेत्सम्यग्धर्मशास्त्राणि चैव हि **प्रचेताः** भुंजानेपुतुविप्रेपुङ्गव्यजुः सामलक्षणं जपे-
द्भिमुखो भूत्वा पिभ्यं चैव विशेषतः यजुषि चैव रुद्रं च राक्षोष्नीं च एव च **राक्षोष्नीः** कृपुश्चरद्बोह्ममिच्छाः

तत्रैवनिगमः भुंजत्सुजपेत्पावमानीरुदीरतामध्वन्नवतीश्च अन्नवत्यःपितुंनुस्तोषमिति पृथ्वीचंद्रोदये
भरद्वाजः भुंजानेषुतुविशेषुप्रमादात्स्ववतेगुदम् पादकृच्छ्रंततःकृत्वाअन्यविप्रंनियोजयेत् क्षणपाद्यादि
 दत्वेत्यर्थः ।

यम—“स्वाध्याय (वेद) आणि धर्मशास्त्रे हीं ब्राह्मणाकडून ऐकवावीं.” **प्रचेता**—“ब्राह्मण भोजन करीत असतां अभिमुख होऊन ऋग्यजु, साम या वेदमंत्रांचा जप करावा, व पित्र्यसूक्तांचा विशेषकरून जप करावा. यजु, रुद्र, आणि राक्षोघ्नी ऋचा (कृणुष्व०, रक्षोहणं० इत्यादिक) ह्या म्हणाव्या.” तेथेंच **निगम**—“ब्राह्मण भोजन करीत असतां पावमानी, उदीरता, मधुमती आणि अन्नवती (पितुंनुस्तोषं०) ह्या ऋचा म्हणाव्या.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत भरद्वाज**—“ब्राह्मण भोजन करीत असतां प्रमादानें गुदमाव होईल तर पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करून इतर ब्राह्मणाची योजना क्षणपाद्यादि देऊन करावी.”

विप्रवमनेतत्रैवदक्षः निमंत्रितस्तुयःश्राद्धेभोजनेमुखनिःसृते तदैवहोमंकुर्वीतस्वाग्नौविप्रःसमाहितः
 प्राणादिपंचभिर्मंत्रैर्यावद्वात्रिंशसंख्यया ब्राह्मणस्तुततःकृत्वाघृतप्राशनमाचरेत् ऋग्विधानेतु इंद्रायमामसू-
 क्तेनश्राद्धविघ्नोयदाभवेत् अग्न्यादिभिर्भोजनेनश्राद्धसंपूर्णमेवहीत्युक्तं अग्न्यादिभिरितिलौकिकाग्निस्थापनचरु
 निर्वापाज्यभागांतेनामगोत्रपूर्वमग्नौपितृनावाह्यसंपूज्यान्नत्यागंकृत्वाप्राणादिभिर्द्वात्रिंशदाहुतीहुनेदित्यर्थः भोज-
 नेनपुनःश्राद्धेन तेनहोमःपुनःश्राद्धंचेतिपक्षद्वयमुक्तं सूक्तजपस्तुभ्यानुगतः **स्मृतिसंग्रहे** प्राधान्यपिंडदान
 स्यभोजनस्यतदंगता अतोभुक्तिक्रियाहूनौश्राद्धावृत्तिनमन्वते पिंडदानोत्तरंवांतौहोमएवनावृत्तिः पिंडदानान्
 प्राग्वांतौतद्दिनेउपवासंकृत्वापरेद्युःपुनःश्राद्धंकार्यमित्यर्थः तत्रैव श्राद्धपंक्तौतुभुंजानोब्राह्मणोवमतेयदि लौकि-
 काग्निप्रतिष्ठाप्यअर्चयेच्चहुताशनं तथा एकएवयदाविप्रोभोजनेलर्दितोयदि तदैवाग्निमाधायहोमंकुर्यादथ-
 विधि द्वितीयपक्षेऋग्विधाने भोजनोपक्रमदूर्ध्वप्रक्रमात्पूर्वतोयदि श्राद्धविघ्नेपुनःकार्यजपहोमौनवृत्तिदौ
स्मृतिसंग्रहे अकृतेपिंडदानेतुभुंजानोब्राह्मणोवमते पुनःपाकात्तुकर्तव्यंपिंडदानंयथाविधि पिंडदानंश्राद्धं
 अकृतेपिंडदानेतुपितायदिवमेतदा पुनःपाकंप्रकुर्वीतश्राद्धंकुर्यादथविधीतितत्रैवोक्तेः तथा पित्र्यार्थानांत्रयाणां-
 चपिताचवमतेयदि तद्दिनेचोपवासःस्यात्पुनःश्राद्धंपरेहनि वमनेवाविरेकेवातद्दिनंपरिवर्जयेत् एषुवचनेपु-
 मूलंचित्यं इदंमासिकाब्दिकविषयं दर्शादौतुवांतावामेनतदैवकार्यम् श्राद्धविघ्नेद्विजातीनामामश्राद्धंप्रकीर्तितं
 अमावास्यादिनियतंमाससंवत्सरादृतइति**मरीचिस्मृतेः** श्राद्धेपिंडदानमेवप्रधानमिति**कर्काचार्याः** तन्म-
 तेदक्षोक्तोहोमएवनावृत्तिः विप्रभोजनमिति**मेधातिथिः** भोजनपिंडदानाग्नौकरणानीतिकर्पदूर्ध्व-
स्वामिहेमाद्र्यादयः तन्मतेपूर्वोक्तोनिर्णयः अन्नत्यागमात्रंप्रधानं भोजनंतुप्रतिपत्तिरूपमंगं अतोवांतौ-
 तद्धानेपिनावृत्तिरिति**गौडमैथिलादयः** तत्र श्राद्धस्ययागदानोभयरूपत्वात्संपूर्णदानाभावात् भोजनस्यांग-
 गत्वेपिसोमवमनेइवैनैमित्तिकविधानमितियुक्तंप्रतीमः ।

ब्राह्मणाचें वमन झालें असतां तेथेंच **दक्ष**—“श्राद्धांत निमंत्रित ब्राह्मण भोजन करून ओकला असतां त्या वेळींच आपल्या अग्नौत ‘प्राणाय स्वाहा’ या पांच मंत्रांनीं बत्तीस आहुतींचा होम करावा. ब्राह्मणानें तर घृत प्राशन करावें.”
ऋग्विधानांत तर—“ज्या वेळीं श्राद्धांत विप्र उत्पन्न होईल त्या वेळीं ‘इंद्रायमाम०’ सूक्त, अग्न्यादिकृत्यं आणि भोजन, यांनीं श्राद्ध संपूर्ण होतें.” वचनांत ‘अग्न्यादिभिः’ असें पद आहे त्याचा अर्थ—लौकिकाग्निस्थापन, चरुनिर्वाप, आज्यभाग यांच्या अंती नामगोत्रपूर्वक अग्नीच्या ठिकाणीं पितरांचें आवाहन करून पूजन करून व अन्नत्याग करून प्राणादिमंत्रांनीं बत्तीस आहुति होम करावा, असा समजावा. ‘भोजनेन’ या पदाचा अर्थ—पुनः श्राद्धांत, असा आहे, तेणेंकरून होम आणि पुनःश्राद्ध असे दोन पक्ष सांगितले. सूक्तजप तर दोन्हींपक्षां आहे. **स्मृतिसंग्रहांत**—“श्राद्धांत पिंडदान प्रधान आणि भोजन हें त्याचें अंग आहे, याकरितां भोजनकियेची हानि झाली तरी विद्वान् श्राद्धाची आवृत्ति मानीत नाहीत”. याचें तात्पर्य—पिंडदानोत्तर वांति झाली असतां होमच, आवृत्ति नाही. पिंडदानाच्या पूर्वी वांति झाली असतां त्या दिवशीं उपवास करून दुसऱ्या दिवशीं पुनः श्राद्ध करावें. तेथेंच—श्राद्धपंक्तींत भोजन करणारा ब्राह्मण जर ओकेल तर लौकिकाग्नीचें स्थापन करून अग्नीची पूजा करावी”. तसेंच—“जर भोजन करतेवेळीं एकच ब्राह्मण ओकेल तर त्या वेळीं अग्निसंधान करून यथाविधि होम करावा.” दुसरा पक्ष **ऋग्विधानांत** सांगतो—“भोजनोपक्रमानंतर प्रक्रमाच्या (पिंडदानाच्या) पूर्वी जर श्राद्धविघ्न होईल तर पुनः श्राद्ध करावें; जर व होम यांनीं पितरांची तृप्ति होत नाही”. **स्मृतिसंग्रहांत**—“पिंडदान न

केलें असतां भोजन करणारा ब्राह्मण ओकेल तर पुनः पाक करून यथाविधि पिंडदान (श्राद्ध) करावें.” वचनांत ‘पिंडदान’ असें पद आहे त्याचा अर्थ—श्राद्ध होय; कारण, “पिंडदान न केलें असतां जर पितृस्थानाचा ब्राह्मण ओकेल तर पुनः पाक करून यथाविधि श्राद्ध करावें,” असें तेथेंच सांगितलें आहे. तसेंच “पितरांकडच्या तीन ब्राह्मणांपैकी जर पितृस्थानीय ब्राह्मण ओकेल तर त्या दिवशीं उपवास करून दुसऱ्या दिवशीं पुनः श्राद्ध करावें. वमन किंवा रेच ब्राह्मणांस झाले असतां तो दिवस वर्ज्य करावा.” ह्या दोन वचनांविषयी मूल चिंत्य (विचारणीय) आहे. त्या दिवशीं उपवास करून दुसऱ्या दिवशीं श्राद्ध करणें हें मासिक, आबिंदक यांविषयी आहे. दर्शादिश्राद्धांत वांति झाली असतां त्याच दिवशीं आमश्राद्ध करावें; कारण, “ब्राह्मणादिकांना श्राद्धविप्र प्राप्त असतां आमश्राद्ध सांगितलें आहे. तें आमश्राद्ध मासिक किंवा सांत्वसरिक यांवांचून अमावास्यादि श्राद्धांविषयीं नियत (निश्चित) आहे.” असें मरीचिवचन आहे. श्राद्धांत पिंडदानच प्रधान, असें कर्काचार्य सांगतात. त्यांच्या मतीं दक्षानें वर सांगितलेला होमच करावा; श्राद्धाची आवृत्ति (पुनः श्राद्ध) करूं नये. श्राद्धांत ब्राह्मणभोजन प्रधान असें मेधातिथि सांगतो. भोजन, पिंडदान, अग्नौकरण हीं तीन प्रधान, असें कपर्दि, धूर्तस्वामि, हेमाद्रि इत्यादिक सांगतात. त्यांच्या मतीं पूर्वेक निर्णय म्हणजे श्राद्धाची आवृत्ति गमजावी. श्राद्धांत अन्नत्याग (दान) मात्र प्रधान. ब्राह्मण-भोजन हें प्रतिपत्तिरूप अंग आहे, याकरितां वांति झाली किंवा भोजनाची हानि (अभाव) झाली तरी श्राद्धाची आवृत्ति नाही, असें गोड, मैथिल इत्यादिक सांगतात, तें बरोबर नाही. कारण, श्राद्ध हें याग-दान उभयरूपी आहे म्हणून मध्ये वांति झाली असतां संपूर्ण दानाचा अभाव आहे, याकरितां भोजनाला अंगल अगलें तरी जसें—गोमवमन झालें असतां तन्निमित्तांतें श्यामाकचरूचा याग सांगितला, तसें येथेही नैमित्तिकविधान (वमननिमित्तक होम-आवृत्ति इत्यादि) युक्त समजतां.

अत्रेदंतत्त्वं वैश्वदेविकस्यवमनेहोमएव नावृत्तिः अंगत्वात् तच्चरुश्राद्धत्वादिष्टिश्राद्धेकतूदक्षावित्यादि-स्मृतेश्च तत्रजयान्जुहुयादितिवत् पितामहादेरपितथा पितेत्युक्तेरितिकेचित् तस्यापिप्रधानत्वात्पितृवदि-तितुयुक्तं सपिंडीकरणादौर्वापिकवत् सपिंडीकरणादीनियानिश्राद्धानिपोडश तत्रपिंडप्रधानत्वंप्रेतत्वविनिव-र्तकमितिस्मृतेः महैकोदिश्राद्धान्तूभयप्राधान्यादावृत्तिरेव एकएवद्विजोभोज्यःपिंडोप्येकोविधीयतइति-स्मृतेः वृद्धिसंकल्पनित्यश्राद्धादौतुभोजनप्राधान्याद्वांतावावृत्तिरेव वृद्धिश्राद्धेविकल्पेनपिंडदानंयुधैःस्मृतं नित्यश्राद्धमदैवंस्यापिपिंडदानविवर्जितमितिस्मृतेः भुक्तिक्रियायाःप्राधान्यंश्राद्धेसंकल्पसंज्ञके तत्रैवपिश्य-विप्रस्यतूपघातेपुनःक्रियेतिसंग्रहोक्तेश्च मघादावप्येवं तीर्थमहालयादौदर्शवदित्याशार्काशालोचनेनप्रतीमः ।

ब्राह्मणवमनाविषयीं सरा प्रकार म्हणजे म्हणजे अगा की, विश्वदेव ब्राह्मणाचें वमन झालें असतां होमच करावा; आवृत्ति नाही. कारण, विश्वदेव अंग आहे. तें अंग श्राद्धरक्षणार्थ आहे; कारण, इष्टिश्राद्धांत कतूदर्शा इत्यादि स्मृतींनींही रक्षणार्थ सांगितले आहेत. ज्या कर्मानें ऋद्धि (गमूद्धि) प्राप्त व्हावी अशी दृष्ट्या अंगल तेथें वैदिककर्मांत जैयांचा होम सांगितला आहे, त्याप्रमाणें येथें समजावें. पितामहस्थानच्या ब्राह्मणाचें वमन झालें असतांही आवृत्ति नाही; कारण, पूर्वीच्या स्मृति-संग्रहांतील वचनांत ‘पिता ओक्तो’ असें सांगितलें आहे, असें केचित् म्हणतात. पितामहाला देखील प्रधानल अगल्यामुळें पित्याप्रमाणें पुनरावृत्ति करणें हें योग्य आहे. सपिंडीकरणादि श्राद्धांत पित्र्यविप्राचें पिंडदानाच्या पूर्वी वमन झालें असतां वार्षिकप्रमाणें दुसऱ्या दिवशीं श्राद्ध करावें. अन्यथा होम करावा. कारण, “सपिंडीकरणादिक जीं पोडश श्राद्धें त्यांत प्रेतत्व-निवृत्ति करणारे असल्यामुळें पिंड प्रधान आहेत” असें स्मृतिवचन आहे. महैकोदिश्राद्धांत भोजन व पिंडदान या दोघांना प्राधान्य असल्यामुळें वमन झालें असतां श्राद्धाची पुनरावृत्तीच गमजावी. कारण, “महैकोदिश्राद्ध एकाचब्राह्मणाला भोजन द्यावें, आणि पिंडही एकच करावा” या स्मृतीनें दोघांना प्राधान्य सांगितलें आहे. वृद्धिश्राद्ध, सांक्लिकविधीनें श्राद्ध, नित्यश्राद्ध इत्यादिकांत भोजन प्रधान असल्यामुळें वांति झाली असतां आवृत्तीच करावी. कारण, “वृद्धिश्राद्धांत विकल्पानें पिंडदान सांगितलें आहे, आणि नित्यश्राद्ध देवार्हिन पिंडदानरहित होतें.” या स्मृतीनें वृद्ध्यादिश्राद्धांत भोजनप्राधान्य सांगितलें आहे. आणि “सांक्लिक श्राद्धांत भोजनक्रियेला प्राधान्य आहे, त्या ठिकाणीं पित्र्यब्राह्मणाचा उपघात (वमन) होईल तर पुनः श्राद्ध करावें” असें संग्रहवचनही आहे. मघादिश्राद्धांतही असेंच समजावें. तीर्थश्राद्ध, महालय इत्यादिकांत दर्शाप्रमाणें, असें आशार्कादि ग्रंथांच्या आलोचनांत समजतां.

आश्वलायनः वृत्तानज्ञात्वामधुमतीःश्रावयेदक्षन्नमीमदंतेतितचसंपन्नमितिप्रष्टायशदन्नमुपभुक्तंतत्तत् स्थालीपाकेनसहपिडार्थमुद्धृत्यशेषनिवेदयेत् अभिमतेनुमतेवेति अत्रगायत्रीमन्त्रित्तिकजपोपिज्ञेयः वृत्तान्-

१ येथें जुन्या प्रतीत ‘एष वचनेषु मूलं चित्यं’ हा पाठ नाही. २ प्रतिपत्ति म्हणजे संस्काररूप दृष्ट अर्थ, जसें—राजाने चविष्ठ तांबूलाचें सोन्याच्या पिढ्याणीं धुकणें, म्हणजे विनियोग चांगल्या ठिकाणीं होणें, हें नातपथ. तें झालें नाही म्हणून वैगुण्य वेंतें बक्षी गोष्ट नाही. याला प्रतिपत्तिकर्त म्हणतात. ३ ‘चिंचचस्ताहा’ इत्यादिक ‘जया’ श्रुतांत सांगितल्या आहेत.

मुष्वाभमादायसतिलपूर्ववज्रपेदितिप्रचेतसोक्तेः व्यासः तृप्ताःस्येतिपृष्ठास्तेब्रूयुस्तृप्ताःस्मइत्यथ अमि-
मतेविप्रैःस्वीकर्तुमिष्टे शौनकोपि अन्नशेषैश्चर्किकार्यमितिपृच्छेततांस्ततः तेइष्टैःसहभोक्तव्यमितिप्रत्युक्ति-
पूर्वकं प्रदद्युःसकलंतस्मैस्वीकुर्युर्वायथारुचि श्राद्धविशेषेप्रभेदमाहहेमाद्रौविष्णुः पित्र्येस्वदितमिति
गोष्ठ्यांसुश्रुतं संपन्नमित्यभ्युदये दैवरोचतमिति आयुष्यमितिस्वैरिषु स्वैरमिच्छाश्राद्धं याज्ञवल्क्यः अन्न-
मादायतृप्ताःस्थशेषंचैवानुमान्यच तदन्नप्रकिरेद्भूमौदद्यादापःसकृत्सकृत् इदंचात्रविकिरदानमन्यशाखिनां
आश्वलायनानांतुपिंडांतएवसूत्रकृतोक्तम् कात्यायनस्तु विकिरोत्तरंगायत्र्यादिजपंतृप्तिप्रभंचाह हेमाद्रौ
देवलः ततःसर्वाशनंपात्रेगृहीत्वाविविधंबुधः तेषामुच्छेपणस्थानेविकिरंभुविनिक्षिपेत् माधवीयेप्रचेताः
सार्ववर्णिकमादाययेअग्नीतिभुविक्षिपेत् सचकुशेकार्यः दभेपुविकिरश्चयइत्युक्तेः मंत्रःकातीयःअग्निदग्धाश्च-
येजीवायेप्यदग्धाःकुलेमम भूमौदत्तेनतृप्यंतुतृप्तायांतुपरांगतिमिति अन्येतु असोमपाश्वयेदेवायज्ञभागवि-
बजिताः तेषामन्नंप्रदास्यामिविकिरंवैश्वदेविकमिति हेमाद्रौगोभिलोक्तेनदैवे असंस्कृतप्रमीतायेत्यागि-
न्योयाःकुलस्त्रियः दास्यामितेभ्योविकिरमन्नंताभ्यश्चपैतृकमित्यग्निपुराणोक्तेनपित्र्येन्नंविकीर्य येअग्निद-
ग्धाइत्युच्छिष्टपिंडंकुशोपरिपृथग्दद्यादित्याहुः पृथ्वीचंद्रोदयेप्येवम् ब्राह्मे ततःप्रक्षाल्यहस्तौचद्विराच-
म्यहरिस्मरेत् माधवीयेगौतमः विकिरमुच्छिष्टैःप्रतिपादयेत् हेमाद्रौव्यासः उच्छिष्टैरेवविकिरस-
दैवप्रतिपादयेत् भृगुः पिंडवत्प्रतिपत्तिःस्याद्विकिरस्येतितात्त्वलिः श्राद्धकारिकायाम् यजमानस्यदा-
सादीतुइश्यद्विजसत्तम तस्मादन्नंत्यजेद्भूमौवामभागेपुपैतृके मनुः उच्छेपणंभूमिगतमजिह्मस्याशठस्यच
दासवर्गस्यतरिष्येभागधेयंप्रचक्षते ।

आश्वलायन—“ब्राह्मण तृप्त झालेले जाणून मधुमती (मधुवाता० या तीन ऋचा) आणि ‘अक्षन्नमीमदंत०’ ही एक
ऋचा ब्राह्मणास ऐकवाव्या. त्यांना ‘श्राद्धं संपन्नं’ असे विचारून त्यांनी ‘सुसंपन्नं’ असे म्हटल्यावर, जे जे अन्न ब्राह्मणांनीं
भुक्त असेल त्या सर्वांतून थोडथोडे घेऊन-ज्या श्राद्धांत स्थालीपाक असेल तेथें स्थालीपाकांतील अन्न पिंडांमार्तीं एकत्र करावें.
जेथें स्थालीपाक नाही तेथें भुक्तशेष अन्नांतीलच-सर्व प्रकारचें अन्न पिंडांसाठीं घ्यावें. आणि शेष अन्न ब्राह्मणांना निवेदन
करावें. ब्राह्मणांनीं स्वीकारावें किंवा ‘इष्टैः सह भुज्यतां’ अशी भोजनाविषयीं अनुज्ञा यावी.” ब्राह्मण तृप्त झाल्यावर गायत्री
आणि मधुत्रिक यांचाही जप समजावा. कारण, “तृप्त झालेले जाणून सतिलअन्न ग्रहण करून भोजनाच्या पूर्वीप्रमाणें जप
करावा” असें प्रचेतसाचें वचन आहे. व्यास—“ब्राह्मणांना ‘तृप्ताःस्थ’ असा प्रश्न करावा, ब्राह्मणांनीं ‘तृप्ताःस्मः’ असें
म्हणावें.” शौनकही—“ब्राह्मणांना ‘अन्नशेषैः किं कार्यं’ असा प्रश्न करावा, नंतर त्यांनीं ‘इष्टैः सह भोक्तव्यं’ असें प्रतिवचन-
पूर्वक सकल अन्न श्राद्धकर्त्याला द्यावें, अथवा त्यांची इच्छा असेल तर स्वीकारावें.” कांहीं श्राद्धांत वेगवेगळे प्रश्न सांगतो
हेमाद्रौत विष्णु—“पित्र्यश्राद्धांत ‘स्वदितं’ असा प्रश्न करावा. गोष्ठीश्राद्धांत ‘सुश्रुतं’ असा, अभ्युदयश्राद्धांत ‘संपन्नं’,
दैविकश्राद्धांत ‘रोचतं’, ऐच्छिक श्राद्धांत ‘आयुष्यं’ असा प्रश्न करावा.” याज्ञवल्क्य—“अन्न घेऊन ‘तृप्ताःस्थ’ असा
प्रश्न करून शेषाच्चाची-भोजनाविषयीं-अनुज्ञा घेऊन भूमीवर अन्नाचे विकिर द्यावे आणि विकिरांवर एक एक वेळां उदक
द्यावें.” हें येथें विकिरदान इतर शाखीयांना आहे. आश्वलायनांचें तर पिंडदानाच्या अंतीच सूत्रकारानें सांगितलें आहे.
कात्यायन तर—विकिर दिल्यानंतर गायत्री इत्यादि जप आणि तृप्तिप्रश्न सांगतो. हेमाद्रौत देवल—“अनेक प्रकारचें
सर्व अन्न पात्रांत घेऊन ब्राह्मणांच्या उच्छिष्टांजवळ भूमीवर विकिर द्यावा.” माधवीयांत प्रचेता—“सर्व प्रकारचें अन्न
घेऊन ‘ये अग्नि०’ या मंत्रानें भूमीवर विकिर द्यावा.” तो विकिर कुशांवर द्यावा; कारण, “जो विकिर तो दर्भावर देतात”
असें सांगितलें आहे. याचा मंत्र कात्यायनप्रोक्त आहे तो असा—“अग्निदग्धाश्चये० परांगतिं.” अन्यग्रंथकार तर-
“असोमपाश्व० वैश्वदेविकं” या हेमाद्रौतील गोभिलोक्त मंत्रानें देवांकडे, आणि ‘असंस्कृतप्रमीता० पैतृकम्’ या अग्निपुराणोक्त
मंत्रानें पित्रांकडे अन्नाचा विकिर देऊन ‘ये अग्निदग्धा०’ या मंत्रानें उच्छिष्टपिंड कुशांवर द्यावा” असें सांगतात. पृथ्वी-
चंद्रोदयांतही असेंच आहे. ब्राह्मांत—“तदनंतर हस्तप्रक्षालन करून दोन वेळां आचमन करून हरिस्मरण करावें.”
माधवीयांत गौतम—“उच्छिष्टांसह विकिर टाकावा.” हेमाद्रौत व्यास—“उच्छिष्टांसह देवांकडचा व पितरां-
कडचा विकिर टाकावा.” भृगु—“पिंडांप्रमाणें विकिराचें प्रतिपादन (त्याग) होतें, असें तात्त्वलि सांगतो.” श्राद्ध-

१ अन्वहृदय (मार्गशीर्षीदि चार महिन्यांच्या वष नवमीस उक्तश्राद्धें), पूर्वेषुःश्राद्ध (त्याच महिन्यांच्या वष सप्तमीस उक्तश्राद्धें),
मासिमासिःश्राद्ध, पार्वण, या चार श्राद्धांत स्थालीपाक करून अग्नौकरण होम अग्नींत सांगितला आहे.

कारिकेंत—“पितरांच्या श्राद्धांत यजमानाच्या दासादिकांच्या उद्देशानें त्या अर्चांतून अन्न घेऊन पितरांच्या वाममागीं भूमीवर यावें.” मनु—“पितृकर्मांतील भूमिगत उच्छिष्ट हें निष्कपटी व सरळ मनाच्या दासवर्गाचा भाग आहे, असें ज्ञाते सांगतात.”

विष्णुः उदङ्मुखेष्वाचमनमादौ दद्यात्ततः प्राङ्मुखेषु पित्र्येदैवेचेत्यर्थः शातातपः विश्वेदेवनिविष्टा-
नांचरमंहस्तधावनम् हेमाद्रीवाराहे हस्तप्रक्षाल्ययश्चापःपिवेद्भुक्त्वाद्विजःसदा तदन्नमसुरैर्भुक्तनिराशाः
पितरोगताः **मरीचिः** हस्तप्रक्षाल्यगंडूषयःपिवेदविचक्षणः आसुरंतद्भवेच्छाद्धंपितृणांनोपतिष्ठते तत्रैव-
संग्रहे पवित्रग्रंथिमुत्सृज्यमंडलेभुविनिक्षिपेत् हस्तादीनश्चालयेद्विद्वान्शरावादौतुकुत्रचित् व्यासः तांबू-
लोद्विरणचैवगंडूपोद्विरणंतथा कांस्पपात्रेतथाताभ्रेनकुर्वीतकदाचन उष्णोदकैर्धान्यचूर्णैःकरोश्मश्रूणिशोधयेत् ।

विष्णु—“उत्तरेकडे मुख करून बसलेल्या (पितरांकडच्या) ब्राह्मणांस आचमन पूर्वी यावें. नंतर प्राङ्मुख (देवां-
कडच्या) ब्राह्मणांस यावें.” **शातातप**—“विश्वेदेव ब्राह्मणांचें हस्तादिप्रक्षालन शेवटीं समजावें.” **हेमाद्रीत वारा-**
हंत—“जो ब्राह्मण भोजन करून हस्तप्रक्षालन करून उदक प्राशन करील त्या ब्राह्मणानें भुक्त अन्न तें असुरांनीं भुक्त होऊन
पितर निराश होऊन गेले, असें समजावें.” **मरीचि**—“जो अज्ञानी ब्राह्मण हस्तप्रक्षालन करून गंडूष प्राशन करील त्यानें
भुक्त तें श्राद्ध आसुर होतें, पितरांना प्राप्त होत नाहीं.” तेथेंच **संग्रहांत**—“हातांतील पवित्रकाची ग्रंथि सोडून तें भूमीवर
मंडलावर टावावें आणि कोठेंही शरावादिकांत हस्तादिकांचें क्षालन करावें.” **व्यास**—“कांस्पपात्रांत किंवा ताम्रपात्रांत कंभीही
तांबूल व गंडूष थुंकू नये. उष्णोदकांनीं, धान्याच्या चूर्णांनें हात व श्मश्रु यांचें शोधन करावें.”

अथपिंडदानं तच्चार्चनोत्तरमप्रौकरणोत्तरभोजनोत्तरविकिरोत्तरंस्वधावाचनोत्तरंविप्रविसर्जनोत्तरंचे-
तिहेमाद्रीस्मृतिपुपश्चाउक्ताः तेषांशाखाभेदेनव्यवस्था प्रेतश्राद्धेषुपूर्वमन्येषुभोजनोत्तरमित्यंचंद्रिका-
माधवौ सर्वत्रभोजनोत्तरमितिवहवः **आश्वलायनः** भुक्तवत्स्वनाचांतेपुपिंडाभिदध्यादाचांतेष्वेके
भुक्तवत्स्वितिपूर्वनियेधार्थं माग्निरतिप्रणीतसमीपेऽनभिर्द्विजसमीपे **हेमाद्रीजातूकर्ण्यः** व्याममांत्रसमु-
त्सृज्यपिंडांस्तत्रप्रदापयेत् प्रसारितभुजांतरंव्यामः संकटेतुव्यासः अरन्निमात्रमुत्सृज्येति यत्तुतत्रैव
सिकताभिर्मृदावापिवेदीदक्षिणनिम्नोतेतदन्यशाग्विपरं **देवलः** ततस्तेरभ्यनुज्ञातोदक्षिणांदिशमेत्यच
चंद्रिकायां पिंडनिर्वपणकार्यंकुशाभावेविचक्षणैः काशेपुगाजर्द्वासुपवित्रेपरमेहिते **आश्वलायनः**
स्फ्येनरेग्यामुल्लिखेत् अपहृताअमुगारश्चांसिवेदिपदइति तामभ्युक्ष्यमृदाच्छिन्नैर्दर्मैरवस्तीर्यप्राचीनावीतीरे-
खांत्रिदकेनोपनयेच्छुंधंतांपितरःशुंधंतांपितामहाःशुंधंतांप्रपितामहाइतितस्यांपिंडात्रिप्रणीयान्प्राचीनपानिः
पित्रेपितामहाय प्रपितामहायैतत्तत्सौयंचत्वामत्रान्विति **हेमाद्रीपारस्करः** कराभ्यामुल्लिखेत्स्फ्येनकुशैर्वा-
पिमहीद्विजः बहुचानांकरेणैव लेखाचाग्रेग्यभिमुवेतिवृत्तिः दक्षिणाप्राचीवेदिमुदृत्येत्पापस्तंबोक्तेभ्यः ।

आतां पिंडदान सांगतो—

तें पिंडदान ब्राह्मणपूजनोत्तर, अर्पणकरणांतर, ब्राह्मणभोजनानंतर, विकिरदानानंतर, स्वधाशब्दोच्चारानंतर किंवा विप्र-
विसर्जनानंतर करावें, असे महा पक्ष स्मृतींत सांगितले आहेत. त्यांची शाखाभेदांनं व्यवस्था समजावी. प्रेतश्राद्धांत पूर्वी
आणि इतर श्राद्धांत ब्राह्मणभोजनोत्तर पिंडदान करावें, असें **चंद्रिका** आणि **माधव** सांगतात. सर्वत्र ठिकाणीं भोजनोत्तर
पिंडदान, असें बहुत सांगतात. **आश्वलायन**—“ब्राह्मण जेवल्यानंतर आचमनाच्या पूर्वी म्हणजे उठण्याच्या पूर्वी पिंड
यावे. हस्तप्रक्षालन करून आचमन केल्यावर पिंड यावे, असें किनीएक आचार्य सांगतात.” ह्या सूत्रांत ‘भुक्तवत्सु’ या पदानें
भोजनाच्या पूर्वी देऊं नयेत, असें सुचविलें आहे. सांप्रिकानें अतिप्रणीत अर्माच्या समीप पिंड यावे. अनधिकानें ब्राह्मणांच्या
समीप पिंड यावे. **हेमाद्रीत जातूकर्ण्य**—“ब्राह्मणांच्याजवळ एक वावपर्यंत जागा सोडून पिंड यावे.” इतकी जागा
सोडणें अशक्य असेल तर **व्यास** सांगतो—“अरणि (म्हणजे कतिशांगुलिपासून हात) परिमिति जागा सोडून यावे.”
आतां जें तेथें सांगतो की, “वाढून किंवा मृत्तिकेन दक्षिणेकडे उतरती अशी वेदी करावी.” तें अन्यशास्त्रीयविषयक आहे.
देवल—“तदनंतर ब्राह्मणांनीं अनुज्ञा दिल्यावर दक्षिणेकडे जाऊन **चंद्रिकेंत**—“कुशांच्या अभावीं काश, राजर्द्वा
यांच्या ठिकाणीं पिंडदान करावें; कारण, ते काश (कसाड), राजर्द्वा परम पवित्र आहेत.” **आश्वलायन**—“स्फ्य
म्हणजे यज्ञांतील शस्त्रविशेष त्यानें रेखा काढावी आणि ‘अपहृता अमुगार रक्षांसि वेदिपदः’ या मंत्रानें तिचें उद्वहनं
अभ्युक्षण करून तिच्यावर एकदां कापलेले दर्भ पसरून प्राचीनावीती करून ‘शुंधंतां पितरः’ ‘शुंधंतां पितामहाः’ ‘शुंधंतां

प्रपितामहाः' या तीन मंत्रांनीं तीन वेळां त्या रेखेवर उदक द्यावें. तदनंतर पितृतीर्थ खालीं केलेल्या हातानें 'पित्रे' 'पितामहाय' 'प्रपितामहाय' या तीन मंत्रांनीं व 'एतत्ते असां ये चत्वारामत्रानु' असें म्हणून त्या रेखेवर पिंड द्यावे." **हेमाद्रीत पारस्कर**—"भूमीवर हातांनीं, किंवा स्फ्यानें अथवा कुशांनीं रेखा काढावी." बहुचांनीं हातानेंच आग्नेयी-दिशाभिमुख रेखा काढावी, असें वृत्तिकार सांगतो. "दक्षिणा व प्राची यांच्या मध्यदिशेनुरूप वेदी उद्धरून" असें आपस्तंबानेही सांगितलें आहे.

देवलः आवाहयित्वादर्भाग्रैस्तेपांस्थानानिकल्पयेत् तेष्वामीनेपुपात्रेणप्रयच्छेत्सतिलोदकं पराचीनेन निम्नपितृतीर्थेन वायवीये मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीनपिंडान्निर्वपेद्बुधः त्रिस्थलीसेतौ तिलमन्नंचपानीयं धूपंदीपंपयस्तथा मधुसर्पिःखंडयुक्तं पिंडमष्टांगमुच्यते याज्ञवल्क्यः सर्वमन्नमुपादायसतिलंदक्षिणामुखः उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् केचिन्पिंडेषुमापान्बर्जयति मापाःश्राद्धेषुवैप्राह्मवर्ज्याश्चैवाग्निपिंडयोः ब्राह्मणेषुयथामद्यंतथामापोऽग्निपिंडयोरितिस्मृतिसारात् मापान्सर्वत्रवैदद्यापिंडेभौचविबर्जयेदितिस्मृतेश्च अन्नमूलंचित्यं हेमाद्रावपिसर्वशब्दस्यप्रकृतार्थत्वात्सर्वांन्नग्रहणमुक्तं अन्नशेषमन्नमनुज्ञाप्यसर्वमेकत्रोद्भूत्योच्छिष्टसमीपेदर्भेपुत्रींस्त्रीनपिंडान्दद्यादितिगोभिलसूत्रेसर्वस्मान्प्रकृताद्ब्रान्पिंडान्मधुतिला-न्वितानितिचशेषपनियमात्तदभावेपिंडनिवृत्तिःप्राप्नोतीतिमैथिलवाचस्पती तत्र तुपोपवापवत्परप्रयुक्तद्रव्यवस्त्वैप्यर्थकर्मत्वाद्गुणानुरोधेनप्रधानत्यागाच्चशेषलोपेपिद्रव्यांतरेणकार्यं अतोनेयंप्रतिपत्तिः किंतुप्रधानमित्युक्तंप्राक् अन्यथासपिंडीकरणादौसंयोजनादेःप्रधानस्यलोपापत्तेरितिदिक् ।

हेषल—"पितरांचें आवाहन करून कुशाग्रानीं त्यांचीं स्थाने कल्पावीं; नंतर ते पितर बसले आहेत असें समजून पात्रांन तिलसहित उदक द्यावें." **वायवीयांत**—"मधु, सर्पि, तिल यांनीं युक्त असे तीन पिंड द्यावे." **त्रिस्थलीसेतूत**—"तिल, अन्न, पाणी, धूप, दीप, दूध, मध, तूप, यांनीं युक्त पिंड अष्टांग सांगितला आहे." **याज्ञवल्क्य**—"दक्षिणेकडे मुख करून तिलसहित सर्व प्रकारचें अन्न घेऊन पिंडपितृयज्ञाप्रमाणें उच्छिष्टांच्या संनिध पिंड द्यावे." कोणी पिंडांचेअर्घ्यां माष (उडीद) वर्ज्य करितात. कारण, "श्राद्धांचे ठायीं माप द्यावे: अग्नि व पिंड यांविषयीं वर्ज्य करावे, ब्राह्मणाला जसें मद्य तसा अग्नि व पिंड यांना माप समजावा" असें स्मृतिसारवचन आहे. आणि "सर्वत्र ठिकाणीं माष द्यावे पिंडाविषयीं व अग्नीविषयीं वर्ज्य करावे" अशी स्मृतिही आहे. या मापनिषेधकवचनाविषयीं मूल चिंत्य (अनुपलब्ध) आहे. **हेमाद्रीत**ही वरील याज्ञवल्क्य वचनांतील 'सर्वे' हा शब्द प्रकृत अन्नाचा बोधक असल्यामुळे पिंडाविषयीं सर्व अन्न ग्रहण करावें, असें सांगितलें आहे. या ठिकाणीं "शेष अन्नाविषयीं ब्राह्मणांची अनुज्ञा घेऊन सर्व प्रकारचें अन्न एकत्र करून उच्छिष्टांच्या समीप दर्भावर तीन तीन पिंड द्यावे" या गोभिलसूत्रांत "सर्व प्रकारच्या प्रकृत (शेष) अन्नापासून मध व तिल यांनीं युक्त पिंड करावे" या वचनांनेही पिंडाविषयीं शेष अन्नाचा नियम असल्यामुळे, शेषान्नाच्या अभावीं पिंडांची निवृत्ति (अभाव) प्राप्त आहे, असें मैथिल आणि वाचस्पति सांगतात, तें बरोबर नाही. कारण, जसा—श्रांतांत तुपांचा उपवाप (कपालावर धारण) हा पराविषयीं म्हणजे पुरोडाशश्रपणाविषयीं थोडलेल्या कपालावरच होतो, त्या तुपोपवापाकरितां स्वतंत्र कपाल सांगितलें नाही, असें जरी आहे तरी तें अर्थकर्म (अर्थ म्हणजे याग त्याला साधनरूप कर्म) आहे. त्याप्रमाणें येथेही भोजनाविषयीं उपयुक्त जें द्रव्य (अन्न) त्याच द्रव्यानें पिंडदान सांगितलें तरी तें पिंडदान अर्थकर्म अर्थ म्हणजे आह्न त्याला साधनरूपकर्म आहे, म्हणून; व गुणाच्या अनुरोधानें (शेषान्नानुरोधानें) प्रधान अशा पिंडदानाचा त्यागही होत नाही, याकरितां शेष अन्न नसलें तरी इतर द्रव्यानें पिंडदान करावें. म्हणून हें पिंडदान प्रतिपत्तिकर्म नव्हे, तर प्रधानकर्म आहे, असें पूर्वी सांगितलें आहे. असें न मानलें तर सपिंडीकरणादिक श्राद्धांत प्रधान अशा संयोजनादिकाचा लोप प्राप्त होईल. अशी ही दिशा दाखविली आहे.

अथपिंडप्रमाणं हेमाद्रावंगिराः कपित्थबिल्वमात्रान्वापिंडान्दद्याद्विधानतः कुकुटांडप्रमाणा-न्वामलकैर्बदरैःसमानिति तत्रैवधूम्नः कपित्थस्यप्रमाणेनपिंडान्दद्यात्समाहितः तत्समं विकिरंदद्यात्पिंडांते-

१ 'कपालेषु श्रपयति' म्हणजे पुरोडाश. कपालांत शिजवावा असें सांगितलें. 'पुरोडाशकपालेन तुषान् उपवपति' म्हणजे पुरोडाशच्या कपालांत तुष (कोंडा) धारण करावा. नंतर 'रक्षसांभागोसि' या मंत्रानें ते कपालसहित तुष नैर्ऋतीदिशेस ठेवावे, असें सांगितलें आहे. पुरोडाशविषयीं उपयुक्त कपाल तेंच तुषधारणाविषयीं प्रसंगानें सिद्ध होतें, अपूर्व कपाल तुषधारणाविषयीं सांगितलें नाही, तरी तें तुषधारण यज्ञांत राक्षसांचा भागरूप असल्यामुळे अर्थकर्म आहे. २ ब्राह्मणभोजनोत्तर वमनविचारप्रसंगीं प्रतिपत्तिकर्माचें स्वरूप सांगितलें आहे.

तुपडंगुले अंयेष्टिपद्धतौ भट्टास्तु एकोद्दिष्टेसपिंडेतुकपितृत्वंतुविधीयते नारिकेलप्रमाणंतुप्रत्यब्देमासिकेतथा तीर्थेदर्शेचसंप्रापेकुटांडप्रमाणतः महालयेगयाश्राद्धेकुर्यादामलकोपममित्याहुः कलिकायामाचार्यः यत्रस्युर्वहवःपिंडास्तत्रवित्त्वफलोपमाः यत्रचैकोभवेत्पिंडस्तत्रखर्जूरसन्निभः प्रेतपिंडस्तुदैर्घ्येणद्वादशांगुलउच्यतइति वायवीये पत्नीपिंडास्तुमृत्पीयात्रिवर्गस्यसहायिनी हेमाद्रीलौगाक्षिः महालयेगयायांचप्रेत श्राद्धेद्वादशाहिके पिंडादशप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्रकीर्तयेत् शाखायानिः असावेतत्तइत्युक्त्वातदंतेचस्वधानमः असावित्यत्रसंबंधरूपगोत्रादिविशिष्टपित्रादिनामसंबुद्धयंतमुक्त्वापुनश्चतुर्थ्यंततदंतेयंपिंडइदमन्नंवास्वधानमोनममेतिवदेदितिहेमाद्रिः पित्रादीनामज्ञानेत्वापस्तंबः यदिनामानिनविद्यात्स्वधापितृभ्यःपृथिवीपद्मइतिप्रथमंपिंडंदद्यात् स्वधापितृभ्योतरिक्षसम्यज्जइतिद्वितीयं स्वधापितृभ्योदिविपद्मइतितृतीयं एवंमातामहेपुमात्पुच बहुचानांतूक्तंप्राक् कलिकायांस्मृतिः यावदेवोच्चरेन्मंत्रंतावत्प्राणनिरोधयेत् येषांतुष्टोक्तेदर्शेमातुःश्राद्धंपृथगुक्तेतेषांपितृभ्यःपश्चिमेमातृभ्यस्तत्पश्चिमेमातामहीभ्यःपिंडादिदेयमिति सांख्यायनः अग्निन्यपश्चेतत्पश्चिमेमातामहीभ्योपिदद्यादितिहेमाद्रिः पूर्वसुपितृभ्योदद्यादपरासुखीभ्यइतिसूत्राच्च एवं यत्रतीर्थमहालायादौ केचिदिच्छंतिनारीणांपृथक्श्राद्धंमहर्षयइतिचतुर्विंशतिमतात् पित्रादिनवदैवत्यंतथाद्वादशदैवतमित्याग्निपुराणाच्चमातृणांपृथगुक्तं यत्रवा आचार्यगुरुशिष्येभ्यःसमिज्ञातिभ्यएवच तत्पत्नीभ्यश्चमर्वाभ्यस्तथैवचजलांजलीन पिंडांस्तेभ्यःमदादद्यात्पृथग्मादप्रदेत्तरः तीर्थेषुचैवसर्वेषुमाघमासेमघासुचेतित्तुर्विंशतिमते दौहित्रपुत्रदागश्च्येकनिष्ठाःमहोदराः निःसंतानाभूतायेचेतभ्योप्यत्रप्रदीयतइतिभविष्ये एकोद्दिष्टान्युक्तानितत्रापितत्पश्चिमेपिंडदानंज्ञेयं येषांप्रथमकृतेःसपत्नीकाःपित्रादयोवाच्याः अन्वष्टकागयामातृश्राद्धंचैवमृतेहनि एकोद्दिष्टंथामुक्त्वाखीपुनान्यत्पृथग्भवेदितिशांख्योक्तेश्च ।

आनां पिंडांचं प्रमाण सांगतो—

हेमाद्रीत अंगिरा—“कपित्थफळाण्वंदे किंवा चेलफळाण्वंदे पिंड करून यथाविधि द्यावे. अथवा कोंबज्याच्या आंब्याएवढे किंवा आवळा, बोर याच्यागारमे पिंड द्यावे.” तेथेच धृष्ट—“कपित्थफळाप्रमाणांचं पिंड द्यावे. आणि पिंडाच्या शेवटी महा आंगनांतर पिंडागारमा वरकर यावा.” अंत्येष्टिपद्धतीन नारायणभट्ट नर—“गपिटीत व एकोद्दिष्टांत कपित्थाण्वदा पिंड मांनितला आहे. मांयमांरकांत व मांनिकांत गारकाएवढे पिंड द्यावे. तीर्थश्राद्धांत व दर्शश्राद्धांत कोंबज्याच्या आंब्याएवढे पिंड द्यावे. महालायांत व गयाश्राद्धांत आंब्यागारमे पिंड द्यावे.” असे मांगनात. कलिकेंत आचार्य—“जेथे बहुत पिंड आहेत तेथे चेलफळागारमे पिंड करावे. जेथे एक पिंड तेथे चारकपण्डा करावा. प्रेतपिंडाची लोखी बारा अंगुळें मांनितली आहे.” वायवीयांत—“धर्म, अर्थ, काम या त्रिवर्गाला महायभूत अशा पत्नीने पिंड करावे.” हेमाद्रीत लौगाक्षि—“महालय, गया, दशाहंतीत प्रेश्राद्ध, उत्कथा ठिकाणीं ‘पिंड’ या शब्दाचा प्रयोग आहे; इतर ठिकाणीं ‘अन्न’ असे म्हणावे.” शाखायानि—“अर्गां किंवा ‘एतन् ते’ असे उच्चारून त्याच्या (चतुर्थीत नांवाच्या) अंती ‘स्वधानमः’ असे उच्चारवे.” अर्गां या ठिकाणीं संयंभ-रूप-गोत्र इत्यादिकयुक्त असे पिता इत्यादिकांचं नांव संबुद्धिविभक्ताने उच्चारून पुनः तसेच पिता इत्यादिकांचं नांव चतुर्थां विभक्ताने उच्चारून त्याच्या अंती ‘अयं पिंडः, किंवा इदमन्नं स्वधानमोनमम’ असे उच्चारवे, असे हेमाद्रि मांगतो. पिता इत्यादिकांचं नांव अज्ञात असेल तर सांगतो आपस्तंब—“जर कर्ता नांवें जणून नाही तर ‘स्वधापितृभ्यः पृथिवीपद्मः’ असे म्हणून प्रथमपिंड द्यावा. ‘स्वधापितृभ्योतरिक्षसम्यजः’ असा दुसरा. आणि ‘स्वधापितृभ्यो दिविपद्मः’ असा तिसरा पिंड द्यावा.” याप्रमाणे मातामहपावर्णांत व मातृपावर्णांत समजावे. बहुचाना तर पिता, पितामह इत्यादि नांवांचेच द्यावे, असे पूर्वी मांगितलें आहे. कलिकेंत स्मृति—“जोपर्यंत मंत्राचा उच्चार करीत आहे तोपर्यंत प्राणरोध करावा.” ज्यांच्या गृहसूत्रांत दर्शाचे ठायीं मानेचें श्राद्ध पृथक् मांगितलें आहे त्यांनीं पित्रादिकांच्या पश्चिमेग मात्रादिकांम पिंडादि द्यावे, त्याच्या पश्चिमेस मातामहांना द्यावे असे सांख्यायन सांगतो, ह्या पक्षां मातामहांच्या पश्चिमेग मातामहींनाही द्यावे, असे हेमाद्रि सांगतो. आणि “पूर्वेखांतर पितरांना द्यावे, आणि अपर (पश्चिम) रेखांतर स्त्रियांना द्यावे” असे सूत्रही आहे. याप्रमाणे जेथे तीर्थश्राद्ध, महालय इत्यादिकांत ‘केचित् महर्षि स्त्रियांचे पृथक् श्राद्ध इच्छितात’ ह्या चतुर्विंशतिमतावरून; आणि “पित्रादित्रय, मात्रादित्रय आणि मातामहादिमपत्नीकत्रय ह्या नऊ देवतांचे; तसेंच पित्रादित्रय, मात्रादित्रय मातामहादित्रय आणि मातामहादित्रय ह्या द्वादश देवतांचे श्राद्ध करावे.” ह्या अग्निपुराणवचनावरूनही मातांचे श्राद्ध पृथक् सांगितलें

तेथें; अथवा ज्या ठिकाणी “आचार्य, गुरु, शिष्य, सखा, ज्ञाति, व त्यांच्या सर्व पत्नी यांना भाद्रपदमासी, सर्व तीर्थारम्यें, माघमासी मघानक्षत्रावर वेगवेगळे जलांजलि व पिंडदान करावें” ह्या चतुर्विंशतिमतांत; तसेंच “कन्यापुत्र, पुत्र, स्त्रिया, कनिष्ठ सहोदर भ्राते आणि संतानरहित मृत झालेले त्यांनाही येथें पिंडादि देतात.” ह्या भविष्यपुराणांत एकोद्दिष्टे सांगितली आहेत त्या ठिकाणीही त्यांच्या (पित्रादिकांच्या) पश्चिमेस पिंडदान जाणावें. ज्यांच्या सूत्रांत स्त्रियांना पृथक् पिंडदान सांगितलें नाहीं त्यांनीं पित्रादिक संपन्नोक्त उच्चारवे. “अन्वष्टका, गया, मृतदिवस या ठिकाणचें मातृश्राद्ध व एकोद्दिष्टश्राद्ध हीं वेगळून इतर ठिकाणीं स्त्रियांचें श्राद्ध पृथक् होत नाहीं” असें शंखवचनही आहे.

मनुः तेषुदर्भेषुतंहस्तनिमृजेलेपभागिनां हस्तलेपाभावेपिहस्तनिमृज्यादेवेतिमेधातिथिः विष्णुः-
अत्रपितरोमादयध्वमितिदर्भमूलेकरावचर्षणं कलिकायांसुमंतुः एकोद्दिष्टेषुवर्षासुदर्भलेपोनविद्यते सपिं-
डीकरणादौतुलेपःसर्वत्रास्यते मनुः आचम्योदक्परावृत्यत्रिरायम्यशनैरसूत्रं पङ्क्तुंश्चनमस्कुर्यात्पितृने-
वचमंत्रवत् उदकंनिनयेच्छेषंशनैःपिंडांतिकेपुनः त्रिःप्राणायाममकृत्वैतिमेधातिथिः अमंत्रप्राणान्निरुध्येतिक-
कांथाः मंत्रवत् वसंतायनमः नमोवःपितरइत्याद्यैः शेषपूर्वावनयनशेषं आश्वलायनः निवृताननुमंत्रये
तात्रपितरोमादयध्वंयथाभागमावृषायध्वमिति सव्यावृत्तुदङ्कावृत्ययथाशक्तिप्राणन्नासित्वाऽभिपर्यावृत्याप्नीमदं
तपितरोयथाभागमावृषायीपतेतिचिरोःप्राणभक्षंभक्षयेन्नित्यंनिनयनमिति नित्यग्रहणंशेषाभावेपिकुर्यादित्यर्थः
शौनकः अथैषामत्रपितरइत्याद्येनानुमंत्रणं अमीमदंतेल्याद्येनमंत्रेणाप्यनुमंत्रयताम् पिंडशिष्टचरोरन्नंकिं-
चिदाग्रायतत्त्यजेत् प्रक्षाल्याचम्यशुंघंतामित्याद्यैरेवपूर्ववत् मंत्रैःपिंडेषुपानीयंनिषिंचेत्पितृतीर्थतः व्याघ्रः
अद्भिःप्रक्षाल्यतत्पात्रं प्रतिपिंडंतुपूर्ववत् कृत्वावनेजनंकुर्यात्पिंडपात्रमधोमुखं एतत्कातीयादीनां ।

मनुः “पिंड दित्यावर लेपभागी पितरांसाठी पिंडांच्या दर्भाचे ठिकाणीं हात चोळावा.” हाताला लेप नसला तरी हात चोळावाच, असें मेधातिथि सांगतो. **विष्णुः**—“अत्र पितरो मादयध्वं” असें म्हणून दर्भाच्या मुळांचे ठिकाणीं हस्त चोळावा.” **कलिकेंत सुमंतुः**—“एकोद्दिष्टांत व वर्षाऋतूतील त्रयोदशीश्राद्धांत दर्भाना लेप सांगितला नाहीं. सपिंडीकरणा-
दिक सर्व श्राद्धांत दर्भाना लेप लावणें प्रशस्त आहे.” **मनुः**—“उत्तरेकडे फिरून आचमन करून हळूहळू त्रिवार प्राणायाम करून ‘वसंतायनमः’ इत्यादिमंत्रांनीं सहा ऋतूंना आणि ‘नमोवः पितरं’ ह्या मंत्रांनीं पितरांना नमस्कार करावे. आणि पूर्वी पितृअर्थपात्रांतील समवनयनशेष उदक पुनः पिंडांच्या समीप यावें.” ‘त्रिरायम्य’ याचा अर्थ-त्रिवार प्राणायाम करून, असें मेधातिथि सांगतो. अमंत्रक प्राणांचा रोध करून असें कर्कादिक सांगतात. **आश्वलायनः**—“हिलेल्या पिंडांचें ‘अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वं’ या मंत्रांनीं अनुमंत्रण करावें. डावीकडून उत्तरेकडे वळून यथाशक्ति प्राणांचा, रोध करून पिंडांच्या अभिमुख फिरून ‘अमीमदंत पितरो यथाभागमावृषायीषत’ असें म्हणून पिंडांतील शेष अन्न अवग्राण करून टाकावें, नंतर पिंडांवर नित्य उदक यावें.” येथें ह्या आश्वलायनसूत्रांत ‘नित्य’ असें सांगितलें आहे, यावरून समवन-
यन शेष उदक नसलें तरी उदक यावें, असा इत्यर्थ समजावा. **शौनकः**—“पिंड दित्यावर ‘अत्र पितरं’ या मंत्रांनीं त्या पिंडांचें अनुमंत्रण करावें. ‘अमीमदंतं’ ह्या मंत्रांनींही त्या पिंडांचें अनुमंत्रण करून पिंड केलेल्या चरूंतील शेष किंचित् अन्न अवग्राण करून तें टाकावें. नंतर हस्त प्रक्षालन करून आचमन करून ‘शुंघंतां पितरः’ इत्यादि मंत्रांनीं पिंड देण्याच्या पूर्वी उदक हेण्यास सांगितल्याप्रमाणें पिंडांवर पितृतीर्थांनीं पाणी यावें.” **व्याघ्रः**—“पिंडांचें पात्र उदकांनीं प्रक्षालन करून त्या उदकांनीं पूर्वीप्रमाणें (ब्राह्मणपादक्षालनाप्रमाणें) प्रतिपिंडाचें क्षालन करून नंतर पिंडपात्र उपडें करावें.” हें कात्या-
यनादिशास्त्रीयांना समजावें.

आचार्यः ततःसम्यग्द्विराचम्यनीवींविस्त्रस्यवाग्यतः आश्वलायनः असावभ्यंक्ष्वासावंक्ष्वेतिपिंडे
ष्वभ्यंजनंजनेवासोदद्याद्दशमूर्णास्तुकांवापंचाशद्वर्षतायाऊर्ध्वस्वंहोमैतद्वःपितरोवासोमानोतोन्त्यपितरोयुङ्-
ध्वमिति श्राद्धचिंतामणौब्राह्मे एतद्वःपितरोवासइतिजल्पन्पृथक्पृथक् अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यंवासः-
पठेदुधः इदंकातीयाणां एतद्वइतिसूत्राणिप्रतिपिंडमितितत्सूत्रात् हेमाद्रौब्राह्मे श्रेष्ठमाहुबैककुदमंज-
नंनित्यमेवहि तैलंकृष्णतिलेभ्यश्चदद्यादभ्यंजनंहितं त्रैककुदंसुरमाइतिप्रसिद्धं अंजनप्राथम्यमापस्तंबादिविषयं
तत्रैवव्याघ्रः गंधपुष्पाणिधूपंचदीपंचविनिवेदयेत् देवलः दक्षिणांसर्वभोगांश्चप्रतिपिंडंप्रदापयेत् भक्ष्या-
प्यपूपानिक्षुंश्चव्यंजनान्यशनानिच तत्रैवशंखः यत्किंचित्पच्यतेगेहेभक्ष्यंभोज्यमगर्हितं अनिवेद्यनभोक्तव्यं-
पिंडमूलेकथंचन एतस्सव्येनेतिकेचित् युक्तंवपसव्येन मनुः अवजिघ्रेषतात्पिडान्यथान्युपान्नांसमाहितः

सनोनमोवःपितरद्वयइत्यादिनोपस्थानं **मात्स्ये** अथाचांतेपुचाचम्यवारिदशात्सकृत्सकृत् तिलपुष्पाक्षतान्य-
श्चादक्षय्योदकमेवच अत्रदैवेसव्यंपिण्डेत्येवपसव्यमितिकर्कः परिभाषोक्तवचनात्सव्यमितियुक्तं अत्रशिवा-
आपःसंतुसौमनस्यमस्त्वित्यादिप्रयोगोद्भेयः **मात्स्ये** नत्वाशीःप्रतिगृहीयाद्द्विभ्यःप्राङ्मुखोबुधः अघोराः-
पितरःसंतुसंवित्युक्तेपुनर्द्विजैः गोत्रंतथावर्धतानस्तथेत्युक्तःसतैःपुनः दातारोनोभिवर्धतामन्नंचैवेत्युदीरयेत्
स्वस्तिवाचनकंकुर्यात्पिंडानुद्धृत्यभक्तिः ।

आचार्य—“उदकं दित्यावर चांगले दोन वेळ आचमन करून कमरेम बांधलेले वस्त्र शिथिल करून वाणीचें नियमन करून अगावें.” **आश्वलायन**—“असौ अभ्यंक्ष्व” असें म्हणून पिंडांग तेल लावावें. ‘असौ अंक्ष्व’ असें म्हणून अंजन (काजळ) लावावें. ‘एतद्दः पितरो तसो मानोतोम्यपितरो युद्ध्वं’ असें म्हणून ऊर्णावस्त्राची दशा किंवा पक्षास वर्षांहून अधिक वयाच्या श्राद्धकर्त्यानें आपल्या अंगावरचें लोम हें वस्त्र म्हणून पिंडांग यावें.” **श्राद्धचिंतामणीत ब्राह्मांत**—“एतद्दः पितरो वामः” असें म्हणून वेगवेगळे ‘अमुक नाम अमुक गोत्र एतत्तुभ्यं वामः’ असें बोलावें.” हें कातीयांना असें समजावें कारण, “‘एतद्दः’ या मंत्रानें प्रतिपिंडाला सूत्रें यावीं” असें त्यांचें सूत्र आहे. **हेमाद्रीत ब्राह्मांत**—“त्रैककुद (मुरमा) हें अंजन सवेदा श्रेष्ठ आहे, असें सांगतात. आणि काढ्या तिळांचे तेलचा अभ्यंग करावा, तो हितकारक आहे.” या वचनांत अंजन प्रथम मांशिनले हें आपस्ववादिविषयक समजावें. तेथेंच **व्याघ्र**—“गंध, पुष्पं, धूप, वीप हीं निवेदन करानीं.” **देवळ**—“दक्षिणा आणि सारे भोग हे प्रत्येक पिंडाला यावे. लाडू वगैरे भक्ष्य पदार्थ, अपूप, उंसाचे पदार्थ, चटण्या, कोशिंबिरी, व इतर खाण्याचे पदार्थ हे सारे पिंडांग यावे.” तेथेंच **शंख**—“घरामः ये जं कांहीं अनिय असें भक्ष्य (लाडू वगैरे) व भोज्य (अन्नादिक) शिजविलेले असेल तें पिंडांना निवेदन केल्यावांचून भक्षण करूं नये.” हें सव्यानें करावें, असें **केचित्** म्हणतात. अपमग्न्यानें कर्णं योग्य आहे. **मनु**—“जसें पिंड दिले असतील त्या क्रमानें पिंडांचें अव-
प्राण करावें.” तदनंतर ‘नमोवः पितर इषे’ इत्यादिमंत्रानें उपस्थान करावें. **मात्स्यांत**—“ब्राह्मणांनीं आचमन केल्यावर स्वतः आचमन करून त्यांच्या हातावर एक एक वेळां उदक यावें. नंतर तिल, पुष्पं, अक्षता याच्या तदनंतर अक्षय्योदक यावें.” देवांकडच्या ब्राह्मणांस गव्यानें, व पितरांकडच्या ब्राह्मणांस अपमग्न्यानें यावें, असें कर्क सांगतो. श्राद्धपरिभाषेत मांशितलेल्या वचनावरून गव्यानें यावें, तें योग्य आहे. येथें ‘शिवा आपः संतु सौमनस्यमस्तु’ इत्यादिप्रयोग जाणावा. **मात्स्यांत**—“पूर्वेकडे तोंड करून ब्राह्मणांपासून आशीर्वचन घेऊं नये. ‘अघोराः पितरः संतु’ असें कर्त्यानें म्हणावें. ब्राह्मणांनीं ‘संवघोराः पितरः’ असें म्हणावें. ‘गोत्रं वर्धतां नः’ असें कर्त्यानें म्हणावें. ब्राह्मणांनीं ‘तथा’ असें म्हणावें. कर्त्यानें ‘दातारो नोभिवर्धतां, अन्नं च नो बहु भवेत्’ इत्यादि म्हणावें. ब्राह्मणांनीं ‘दातारो नोभिवर्धतां, अन्नं च नो बहु भवेत्’ इत्यादि म्हणावें. नंतर भक्तीनें पिंडांचा उद्धार करून स्वस्तिशब्दोच्चार ब्राह्मणाकडून करवावा.”

स्वस्तिवाचनात्प्राक्पात्रचालनकार्यं **हेमाद्रौबृहस्पतिः** भाजनेपुचतिष्ठत्सुस्वस्तिकुर्वतियेद्विजाः तद-
न्नमसुर्भुक्तनिराशैःपितृभिर्गतैः **जातूकर्ण्यः** पात्राणिचालयेच्छ्राद्धेस्वयंशिष्योथवामुतः नस्त्रीभिर्नचवा-
लेननामजात्याकथंचन **याज्ञवल्क्यः** स्वस्तिवाच्यंततःकुर्यादक्षय्योदकमेवच तत्रैवबृहदाज्ञातातपः
पितृणांनामगोत्रेणकरेदेयंतिलोदकं प्रत्येकंपितृतीर्थेनअक्षय्यमिदमस्त्विति अत्रपट्टीप्रागुक्ता तत्रैवनागर-
खंडे उत्तानमर्च्यपात्रंतुकृत्वाचदक्षिणां हिरण्यंदेवतानांचपितृणांरजतंतथा **बृहस्पतिः** तस्मात्पणंका-
किर्णीवाफलंपुष्पमथापिवा प्रदद्यादक्षिणांयज्ञेतयाससफलोभवेन अत्रपितृद्देशेनदक्षिणादानेअपसव्यं विप्रोद्दे-
शेनसव्यमिति**माधवः कलिकायामाचार्यः** दद्याद्यज्ञोपवीत्येवतांवृलंदक्षिणांतथा अग्निः वदेष्टां-
स्ततोविप्रान्पित्रादिभ्यःस्वधोच्यतां **गोभिलः** अघोराःपितरःसंवित्युक्तेस्वधांवाचयिष्यइतिपृच्छतिपि-
तृभ्यःस्वधोच्यतामित्युक्तेस्तुस्वधेत्युच्यमानेधारांदद्यादूर्जवहंतीति **आपस्तंबेनतुपुत्रान्नपौत्रानभितर्पयंतीरि-**
त्यपिपरिपेचनेमंत्रउक्तः ।

ब्राह्मणांनीं स्वस्तिवाचन करण्याच्या पूर्वी उच्छिष्टपात्रांचें चालन करावें. कारण, **हेमाद्रीत बृहस्पति** सांगतो—
“भोजनपात्रें तशींच असतां जे ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करितात त्यांनीं भुक्त तें अन्न असुरांनीं भुक्त झाल्यामुळे पितर निराश
होऊन जातात, असें समजावें.” **जातूकर्ण्य**—“श्राद्धांतील ब्राह्मणांची उच्छिष्टपात्रें श्राद्धकल्यानें किंवा शिष्यानें अवघा
पुत्रानें चाळवावीं. स्त्रियांनीं, बालकांनीं किंवा असजाति मनुष्यानें कधीही चाळवूं नयेत.” **याज्ञवल्क्य**—“स्वस्तिवाचन
केल्यावर अक्षय्योदक यावें.” तेथेंच **बृहदाज्ञातातप**—“पितरांच्या नांवांचा व गोत्रांचा उच्चार करून प्रत्येक ब्राह्मणाच्या

हातावर 'इदमक्षय्यमस्तु' असे म्हणून तिलोदक द्यावें." ह्या अक्षय्योदकदानाविषयी पितरांच्या नांवादिकांची षष्ठीविभक्ती करावी, असे पूर्वी सांगितलें आहे. तेथेंच **नागरखंडांत**—"अर्घ्यपात्र उताणें करून देवांना सुवर्ण आणि पितरांना रजत दक्षिणा द्यावी." **बृहस्पति**—"ब्राह्मणांना पण (तांच्याचा पैसा) किंवा कवची अथवा फल, पुष्प इत्यादि काहींतरी श्राद्धयज्ञाचे ठिकाणी दक्षिणा द्यावी; कारण, त्या दक्षिणेनें तो यज्ञ सफल होतो." येथें पितरांच्या उद्देशानें दक्षिणादान असतां अपसव्य आणि ब्राह्मणाच्या उद्देशानें दक्षिणादान अमतां सव्य, असें **माधव** सांगतो. **कलिकेंत आचार्य**—"यज्ञोपवीतीनेंच तांबूल आणि दक्षिणा द्यावी." **अत्रि**—"तदनंतर त्या ब्राह्मणांना 'पित्रादिभ्यः स्वधोच्यताम्' असें सांगावें." **गोभिल**—"अघोरः पितरः संतु" असें म्हटल्यावर 'स्वधा वाचयिष्ये' असा ब्राह्मणांस प्रश्न करावा. अर्थात् 'वाच्यतां' असें उत्तर दिल्यावर कर्त्यानें 'पितृभ्यः स्वधोच्यते' असें म्हटल्यावर ब्राह्मणांनीं 'अस्तु स्वधा' असें म्हटलें असतां 'ऊर्ज वहंती०' या मंत्रानें उदकधारा द्यावी." **आपस्तंबानां** तर 'पुत्रान् पौत्रानभितर्पयंतीः०' हाही मंत्र परिषेचनाविषयी सांगितला आहे.

आश्वलायनः अथैतान्प्रवाहयेत् परेतनपितरः सोम्यासोगंभीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः दत्वायाम्भ्यं द्विविणेह भद्रं रथिचनः सर्ववीरं नियच्छतेति **मात्स्ये** वाजेवाजे इति जपन्कुशाग्रेण विमर्जयेत् **प्रचेताः** स्वस्तिवाच्यंततः कृत्वा पितृपूर्वविमर्जयेत् **आश्वलायनः** अन्नं प्रकीर्योपवीन्योस्वधेति विमृजेदस्तु स्वधेति वा **ब्रह्मवैवर्ते** आमावाजेति मंत्रं तु पठित्वा च प्रदक्षिणां द्वारोपांते ततः कृत्वा संयतः प्रविशेद्गृहं प्रांजलिश्च ततः प्रा-
ह्मन्विप्रान्सत्यवादिनः दातारो नो भिवर्धतामन्नं च न इति वद्विति एवमस्मिन्निति तं च कथयंति समाहिताः एत-
न्मंडलदेशे कार्यमिति हे **माद्रिः मनुः** दातारो नो भिवर्धतां वेदाः संततिरेव च श्रद्धा च नो माव्यगमद्गृहे यंच-
नोस्त्विति **बौधायनः** अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि याचितारश्च नः संतु मा च याचिष्म कंचनेति अत्र-
दातारो नो भिवर्धतां लभध्वं याचिद्वमित्याहूहे न पठित्वा विप्रैः प्रतिवचनं कार्यमिति **सुदर्शनभाष्ये** स्वादुपंसद-
इति ब्राह्मणासः पितर इति च मंत्रं द्रव्यं पठति **शौनकः** ब्राह्मणान् थनिर्यातान् परीत्य त्रिः प्रदक्षिणं मस्त्रीकः स्वज-
नैः सार्धं प्रणमेद् रचितां जलिः कनिष्ठप्रथमाज्येष्ठचरमाः स्युः प्रदक्षिणे हे **माद्रौ बृहस्पतिः** अद्य मे सफलं ज-
न्म भवत्पादावज्जवंदनात् अद्य मे वंशजाः सर्वे यातावो नुग्रहाद्दिवं पत्रशकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः तत्क्लेश-
जातं चित्ता तु विस्मृत्य क्षंतुमर्हथ **प्रचेताः** विमृजेद्भक्तिसंयुक्तः सीमांतं चाप्यनुव्रजेत् ।

आश्वलायन—"परेतन पितरः सोम्यासो०" या मंत्रानें त्या पिंडांचें प्रवाहण करावें." **मात्स्यांत**—"वाजे वाजे० या मंत्राचा जप करीत कुशाग्रानें पितरांचें विसर्जन करावें." **प्रचेता**—"स्वस्तिवाचन करून पितरांचें पूर्वा व देवांचें मागाहून विसर्जन करावें." **आश्वलायन**—"अन्नाचा प्रकिर देऊन उपवतीनें 'ॐ स्वधा' किंवा 'अस्तु स्वधा' असें म्हणून विसर्जन करावें." **ब्रह्मवैवर्तांत**—"आमावाज०" हा मंत्र म्हणून घराच्या द्वारांत प्रदक्षिणा करून नंतर नियमित होऊन घरांत जावें. तदनंतर सत्यवादी अशा त्या ब्राह्मणांस हात जोडून आशीर्वाद मागावें, ते असे—'दातारो नो भिवर्धनां, अन्नं च नो बहु भवेत्' इत्यादि. तदनंतर ब्राह्मणांनीं समाधानपूर्वक 'एवमस्तु' असें त्याजप्रत बोलवें." ही आशीर्वादप्रार्थना ब्राह्मणाचे पाद धुण्यासाठीं मंडल केलें असेल त्या ठिकाणीं करावी, असें **हेमाद्रि** सांगतो. **मनु**—"दातारो नो भिवर्धतां वेदाः संततिरेव च । श्रद्धा च नो माव्यगतम् बहुदेयं च नोस्तु" असें कर्त्यानें बोलवें. **बौधायन**—"अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः संतु मा च याचिष्म कंचन" असें कर्त्यानें बोलवें. येथें ब्राह्मणांनीं 'दातारो नो भिवर्धतां' अशा प्रमाणें 'न'च्या ठिकाणीं 'व' शब्दाचा ऊह करून तसाच 'लभेमहि' या ठिकाणीं 'लभध्वं' 'याचिष्म' या ठिकाणीं 'याचिद्वं' असा ऊह करून तींच वाक्यें म्हणून प्रतिवचन द्यावें, असें **सुदर्शनभाष्यांत** सांगितलें आहे. आणि 'स्वादुपंसदः०' 'ब्राह्मणासः पितरः०' हे दोन मंत्रही येथें पठण करितात. **शौनक**—"तदनंतर निघालेल्या ब्राह्मणांस स्त्री स्वजन यांस हवर्तमान त्रिवार प्रदक्षिणा करून हात जोडून नमस्कार करावा. प्रदक्षिणा करणें ती कनिष्ठानें प्रथम व ज्येष्ठानें शेवटीं करावी." **हेमा-
द्रीत बृहस्पति**—"अद्य मे सफलं जन्म०" हे दोन श्लोक म्हणावे." **प्रचेता**—"भक्तियुक्त होऊन ब्राह्मणांचें विसर्जन करावें आणि सीमेपर्यंत त्यांस पोचवावयालाही जावें."

अथ पिंडप्रतिपत्तिः हेमाद्रौ ब्रह्मांडे पिंडमग्नौ सदा दद्याद्गो गार्थीप्रथमं नरः पयै प्रजार्थं दद्याद्द्वैम-
ध्यमं संप्रपूर्वकं उत्तमांगतिमन्विच्छन् नोषुनित्यं प्रयच्छति आह्नां प्रह्नां यशः कीर्तिमस्तु पिंडं प्रवेशयेत् प्रार्थयन् नदी-
वर्मायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति आकाशं गमयेदस्तु स्थितो वा दक्षिणामुखः **आश्वलायनः** वीरमेदत्तपितर-

इतिपिंडानामध्यमंपत्नीप्राशयेदाधत्तपितरोगर्भकुमारंपुष्करस्त्रजं यथायमरपाअसदिति भर्त्रादत्तस्यआयेना-
दायद्वितीयेनप्राशनं आपस्तंबस्तुदानेनमंत्रमाह अपांतोपधीनारसंप्राशयामिभूतकृतंगर्भधत्सेतिमध्यमंपत्न्यै-
प्रयच्छतीति प्राशनेपि यथेहपुरुषोअसदितितद्वितीयःपाठः अन्येपांतस्तच्छाखायांज्ञेयः तत्रैवशांस्त्रः
पत्नीवामध्यमंपिंडमश्रीयादार्तवान्विता कलिकायांछागलेयः प्राचीनावीतिनामंम्यपत्नीःपिंडोविभज्यते
प्रतिपत्त्यस्यमंत्रस्यकर्तव्यावृत्तिरत्रतु माधवीयेविष्णुधर्मे तीर्थश्राद्धेसदापिंडान्निक्षेपेत्तीर्थेसमाहितः
याज्ञवल्क्यः पिंडांस्तुगोजविप्रेभ्योदद्यादम्रौजलेपिवा बृहस्पतिः अन्यदेशगतापत्नीरोगिणीगर्भिणी-
तथा तदातंजीर्णवृषभश्छागोवाभोक्तुमर्हति ।

आतां पिंडांची प्रतिपत्ति (त्याग) सांगतो—

हेमाद्रींत ब्रह्मांडपुराणांत—“मोगाची इच्छा करणारानें पहिला पिंड अमीच्या ठिकाणीं सदा यावा. प्रजेची इच्छा
करणारानें मध्यम पिंड मंत्रपूर्वक पत्नीला खाण्यासाठीं यावा. उत्तम गतीची इच्छा करणारानें गाईला खाण्यासाठीं पिंड यावा.
आज्ञा चालावी, प्रज्ञा (बुद्धि) वाढावी, यश व कीर्ति व्हावी अशी इच्छा असेल त्यानें उदकांत पिंड सोडावा. दीर्घ आयु-
ष्याची इच्छा करणारानें वायगांना पिंड यावा. अथवा उदकांत दक्षिणेकडे मुख करून उभा राहून पिंड आकाशांत टाकावा.”
आश्वलायन—“वीरं मे दत्त पितरोः” या मंत्रानें तीन पिंडांनील मध्यम पिंड पत्नीला भक्षणामाठीं यावा. भल्यानें दिलेला
पिंड पत्नीनें ग्रहण करून ‘आधत्त पितरो गर्भे कुमारं पुष्करस्त्रजं । यथायमरपा अमत्’ या मंत्रानें प्राशन करावा.” आपस्तंब
तर पिंडदानाविषयीं मंत्र सांगतो, तो असा—“‘अपांतोपधीनां रसं प्राशयामि भनकृतं गर्भं धत्स्व’ या मंत्रानें मध्यमपिंड
पत्नीला यावा. प्राशनाविषयीं मंत्र सांगतो, तो पूर्वोक्तच ‘आधत्त पितरो’ हा मंत्रजावा. त्या मंत्रानें ‘यथायमरपा असत्’ या
ठिकाणीं ‘यथेह पुरुषो अगत्’ असा आपमंत्रवाचा पाठ आहे. दत्तगंग त्यांच्या त्यांच्या शर्मंत मंत्र जाणावा. तेथेंच शांस्त्र—
“ऋतुमती स्त्रियेनें मध्यम पिंड भक्षण करावा.” कलिकेंत छागलेय —“अनेक पत्नी अमनील त्यानें प्राचीनावीती करून
पत्नींना बोलावून पिंडाचा विभाग करून प्रत्येक पत्नीला पिंडविभाग यावा. आणि त्या पूर्वोक्त मंत्राची प्रत्येक पत्नीविषयीं
वेगवेगळी आज्ञाति करावी.” माधवीयांत विष्णुधर्मांत—“तीर्थश्राद्धाचे शर्थां गवेदा तीर्थांत पिंड टाकावे.” याज्ञ-
वल्क्य —“गाई, वकरे, ब्राह्मण यांग पिंड यावे, अथवा अम्रानें किंवा उदकांत टाकावे.” बृहस्पति —“पत्नी अन्यदेशी
असेल किंवा रोगिणी अथवा गर्भिणी असेल तेव्हां तो पत्नीचा पिंड म्हानारा वृषभ किंवा बोकड यानें भक्षण करावा.”

अथपिंडोपघातेहेमाद्रीप्रायश्चित्तकांडेदेवलः श्वसृगालखरैःपिंडःस्पृष्टोभिन्नःप्रमादतः कर्तुरायु-
ष्यनाशःस्यात्प्रेतस्त्वनोपमर्षति जातृकर्ण्यः पूर्वश्लोकांते तद्दोषपरिहारार्थंप्राजापत्यंप्रकल्पयेत् पुनःस्नात्वा-
तदाकर्तापिंडंकुर्याद्यथाविधि काकस्पर्शंनुतदोषः पिंडोपघातंप्रकल्प्य धनस्यचविनाशःस्यात्काकस्पर्शादिकंकि-
नेति तत्रैवश्लोकेगौतमोक्तंः स्मृतिदर्पणेऽत्रिः मार्जारमूपकम्पर्शंपिंडेचद्विदलीकृते पुनःपिंडाःप्रदात-
व्यास्तेनपाकेनतत्क्षणात् बौधायनः श्रचांडालादिभिःस्पृष्टःपिंडोयद्युपहन्यते प्राजापत्यंचरित्वाथपुनःपिं-
डंसमाचरेत् बोपदेवोप्येवमाह अथदिनान्तरेतुप्राजापत्यमात्रं शेषप्रतिपत्तित्वेनपिंडावृत्तौमानाभावादि-
तिमैथिलाः तत्र सपिंडीकरणादौशेषनाशेसंयोजनादिलोपापत्तेः तेनवचनाद्वमनेह्वात्रापितन्मात्रपिंडवा-
नावृत्तिः अतएव नचनक्तंश्राद्धंकुर्वीतारव्येवाभोजनसमापनादित्यापस्तंबसूत्रम गत्रौभोजनमात्रंपूर्वेष्टुः
कार्यं श्राद्धसमाप्तिस्तुपरदिनेएव समाप्तिपर्यंतकर्तुरुपवासश्चेतिहरदत्तेनव्याख्यातं तस्मात्पाकांतरेणपिंड-
दानमात्रंकार्यं ।

आतां पिंडाच्या उपघाता(नाशा)विषयीं सांगतो—

हेमाद्रींत प्रायश्चित्तकांडांत देवल—“कुत्रा, कोल्हा, गर्दभ यांनीं पिंडाला स्पर्श केला; किंवा प्रमादानें पिंड
फुटला तर कर्त्याच्या आयुष्याचा नाश होतो, आणि प्रेत त्या पिंडाजवळ ग्रहण करण्यास ज्ञात नाही.” जातृकर्ण्य—पूर्व
श्लोकाच्या पुढें सांगतो —“त्या दोषाच्या परिहारासाठीं कर्त्यानें प्राजापत्य कृच्छ्र करावें. पिंडोपघात होईल त्या वेळीं कर्त्यानें
ज्ञान करून पुनः यथाविधि पिंड करावे.” काकस्पर्श झाला असेल तर दोष नाही. कारण पिंडोपघाताचा उपक्रम करून
“काकस्पर्शादिकावांचून पिंडोपघात झाला असेल तर द्रव्याचा विनाश होईल” असें त्याच श्लोकावर गौतमवचन आहे.
स्मृतिदर्पणांत अत्रि—“मार्जार, उंदीर यांचा पिंडास स्पर्श झाला किंवा पिंड फुटला तर तत्क्षणीं त्या पाकानें पुनः पिंड
५८ निर्णय.

करून नावे.” **बौधायन**—“कुत्रा, चांडाल यांचा पिंडाला स्पर्श झाला किंवा पिंडाचा उपघात झाला तर प्राजापत्य कृच्छ्र आचरण करून पुनः पिंड करावे.” **बोपदेव**ही असेंच सांगतो. आतां दुसऱ्या दिवशीं प्राजापत्य कृच्छ्र मात्र करावें, पुनः पिंड करूं नये; कारण, पिंडलाग हा शेषाचें प्रतिपत्तिरूप कर्म असल्यामुळें त्याचा उपघात झाला तरी पुनः पिंडाची आवृत्ति करण्याविषयीं प्रमाण नाही, असें मैथिल सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, सपिंडीकरणादिकांचे ठायीं शेष-नाश झाला असतां संयोजनादिकांचा लोप प्राप्त होईल. त्या कारणानें पुनः पिंड करण्याविषयीं वचन असल्यामुळें, व्रमन झालें असतां जशी भोजनाची आवृत्ति, तशी येथेंही तितक्याच पिंडदानधर्माची आवृत्ति समजावी. म्हणूनच “रात्रीं श्राद्ध करूं नये, रात्रीं श्राद्धाला आरंभ केला तर ब्राह्मणभोजनसमाप्तीपर्यंत करावें” असें आपस्तंबसूत्र आहे, त्याची व्याख्या—‘रात्री ब्राह्मणभोजन मात्र पूर्वदिवशीं करावें, श्राद्धसमाप्ति तर दुसऱ्या दिवशींच करावी, समाप्तीपर्यंत कर्त्यानें उपवास करावा,’ अशी **हरदत्ता**नें केली आहे. तस्मात् दुसऱ्या पाकानें पिंडदान मात्र करावें.

अथपिंडनिषिद्धकालः सचप्रायेणमहालयादिनिर्णयेपूर्वमुक्तः **हेमाद्रौबृहत्पराशरः** युगादि-पुमघायांचविपुवत्यनेतथा भरणीपुचकुर्वीतपिंडनिर्वपणंनहि **स्मृतिरत्नावल्यां** पुत्रेजातेव्यतीपातेग्रह-णेचंद्रसूर्ययोः श्राद्धंकुर्यात्प्रयत्नेनपिंडनिर्वपणादृते तत्रैवकात्यायनः वृद्धेरनंतरंचैवयावन्मासःसमाप्यते तावत्पिंडाभैवदद्यान्नकुर्यात्तिलतर्पणं **बौधायनः** संस्कारेपुतथान्येपुमासंमासार्धमेवच तथा भानौभौमे-त्रयोदश्यानंदंभृगुमघासुच पिंडदानंमृदास्नानंनकुर्यात्तिलतर्पणं **त्रिस्थलीसेनौकार्णाजिनिः** विवा-हप्रतचूडासुवर्षमर्धतर्धकं उत्तरार्धप्राग्वत् वृद्धिमात्रेतथान्यत्रपिंडदाननिराक्रिया कृतागर्गादिभिर्मुख्यैर्मास-मेकंतुकर्मणां **हेमाद्रौज्योतिःपराशरः** विवाहेविहितेमासांस्त्यजेयुर्द्वादशैवहि सपिंडाःपिंडनिर्वापमौ-जीबंधेपडेवहि तत्रैव महालयेगयाश्राद्धेमातापित्रोःक्षयेहनि यस्यकस्यापिमर्त्यस्यसपिंडीकरणेतथा कृतोद्वा-होपिकुर्वीतपिंडनिर्वपणंसदेति मातापित्रोरितिक्षयाहविशेषणं हविरुभयत्ववदविवक्षितं तेनभ्रातृपितृव्यादि-वार्षिकेपिपिंडदानंकार्यमितिक्वेचित् सपिंडीकरणंनवश्राद्धषोडशश्राद्धोपलक्षणार्थमितिनिर्णयामृतेउक्तं ।

आतां पिंडांना निषिद्धकाल सांगतो—

तो निषिद्धकाल पूर्वी महालयादिनिर्णयप्रसंगीं बहुतेक सांगितला आहे. **हेमाद्रीत बृहत्पराशर**—“युगादिश्राद्धं, मघाश्राद्ध, विषुवायनश्राद्ध, अयनश्राद्ध, आणि भरणीश्राद्ध (हीं श्राद्धं द्वितीयपरिच्छेदांत उक्त आहेत) यांचे ठायीं पिंडदान करूं नये.” **स्मृतिरत्नावलीत**—“पुत्र झाला असतां, व्यतीपात आणि चंद्र व सूर्यग्रहण इतक्या ठिकाणीं पिंडदानावांचून श्राद्ध करावें.” तेथेंच **कात्यायन**—“वृद्धिकर्म झाल्यानंतर जोपर्यंत महिना समाप्त होई तोपर्यंत पिंड देऊं नये, व तिलतर्पण करूं नये.” **बौधायन**—“संस्कारांचे ठायीं वृद्धिश्राद्ध असतां एकमहिना व इतर ठिकाणीं अर्धमहिनापर्यंत पिंडदान व तिल-तर्पण करूं नये. तसेंच “रविवार, मंगळवार त्रयोदशी, नंदातिथि (११.६.११), श्रुगवार, मघानक्षत्र, यांचे ठायीं पिंडदान मृत्तिकास्नान आणि तिलतर्पण हीं करूं नयेत.” **त्रिस्थलीसेनौत कार्णाजिनि**—“विवाह, उपनयन, चूडाकर्म, यांचे ठायीं अनुक्रमें एक वर्ष, सहा महिने, तीन महिनेपर्यंत पिंडदान, मृत्तिकास्नान आणि तिलतर्पण करूं नयेत. इतर ठिकाणीं कर्म-संबंधी वृद्धिश्राद्ध असतां एक महिनापर्यंत पिंडदानाचा निषेध गर्गादिक ऋषींनीं केला आहे.” **हेमाद्रीत ज्योतिःपरा-शर**—“विवाह झाला असतां सपिंड पुरुषांनीं बारा महिने पिंडदान वर्ज्य करावें आणि मौजीबंधन झालें असतां सहा महिने पिंडदान वर्ज्य करावें.” तेथेंच—विवाह केला असला तरी महालय, गयाश्राद्ध, मातापितरांचा क्षयदिवस (सांवसरिकश्राद्ध) आणि कोणत्याही मनुष्याचें सपिंडीकरण इतक्या ठिकाणीं पिंडदान सर्वदा करावें.” वरील अर्थात ‘क्षयदिवस’ या पदाला ‘मातापितरांचा’ असें विशेषण दिलेलें आहे तें अविवक्षित (अनावश्यक) आहे, जसें—‘हवीलें’ ‘उभय’ हें विशेषण अविवक्षित आहे तद्वत्. तेणेंकरून (क्षयदिवसाला ‘मातापितरांचा’ असें विशेषण नसल्यामुळें) भ्राता, पितृव्य इत्यादिकांच्या वार्षिकांतही पिंडदान करावें, असें केचित् म्हणतात. वरील वचनांतील ‘सपिंडीकरण’ या पदानें उपलक्षणेकरून दशाहांतील नवश्राद्धे आणि षोडशश्राद्धे ध्यावी, असें निर्णयामृतांत सांगितलें आहे.

१ प्रतिपत्तिकर्म अक्षौकरप्रकर्णीं सांगितलें आहे. २ ‘पिंडयज्ञे च यज्ञे च सपिंड्यां दधुरेव च । विकृत्यन्वष्टकादौ यत्र युक्तः पिंडविधिषेधश्च पूर्वेष्टुःश्राद्धादौ पिंडपितृयज्ञविकृतित्वं तत्रापि न पिंडनिषेध उक्तः प्राक् इति’ असा एका पुस्तकावर पाठ आहे. ३ दशपूर्णमासयागप्रकर्णीं ‘यस्योभयं हविरातिमाच्छेद्यं पेंद्रं पंचशरावभोदनं निर्वपेत्’ याचा अर्थ—उषाचें उभय (दोन वेळचें) हवि नष्ट होईक त्यानें इंद्राला पंचशराव ओदनाचा होम करावा. या ठिकाणीं हविराति (हविर्नाश) हेंच पंचशरावभोदनयागाला निमित्त आहे. उभय हें विशेषण अविवक्षित आहे तद्वत्.

क्षयाहेविशेषःसंग्रहे मातापित्रोराब्दिकेतुविवाहादिषुसर्वदा तिलैःपिंडाःप्रदातव्याअन्यश्राद्धेविश्वदेवैश्च अत्रमूलंचित्यम् रामकौतुके नंदाश्वकामरव्यारभृग्वभिपिठकालभे गंडेवैधृतिपातेचपिंडास्त्याग्याःसुते-
प्सुभिः विश्वरूपनिबंधे तिथिवारप्रयुक्तोद्योषोवैसमुदाहृतः सश्राद्धेतन्निमित्तेस्याभान्यश्राद्धेकदाचन
अन्यत्तूक्तंप्राक् उच्छिष्टोद्वासनमाहहेमाद्रौवसिष्ठः श्राद्धेनोद्वासनीयानिउच्छिष्टान्यादिनक्षयात् ऋयोतं-
तेवैसुधाधारास्ताःपिबंत्यकृतोदकाः व्यासः उच्छिष्टंनप्रमृज्यातुयावभ्रास्तमितोरविः इवंगृहान्तरसंस्वे-
एकगृहेतु मनुः उच्छेपणंतुतत्तिष्ठेयावद्विप्राविसर्जिताः ततोगृहबलिंकुर्यादितिधर्मोव्यवस्थितः बलिंवैश्वदे-
वादिनित्यकर्मैति मेधातिथिः ब्रह्मांडे शूद्रायचानुपेतायश्राद्धोच्छिष्टंनदापयेत् तथा कामंदयाचसर्वतु-
शिष्यायचसुतायच भोक्तुरितिशेषः जातूकर्ण्यः द्विजमुक्तावशिष्टंतुशुचिभूमौनिखानयेत् ।

श्रयाहाविषयीं विशेष गांगतो संग्रहांत—“विवाहादिक मंगलामर्थं मातापित्यांचं आब्दिक प्राप्त असतां सर्वदा तिलांनीं पिंड द्यावे, इतरांच्या श्राद्धांत वर्ज्य करावे.” या वचनाविषयीं मूल चित्य (अनुपलब्ध) आहे. रामकौतुकांत—“नंदा (१।६।११), यममी, त्रयोदशी, रविवार, भौमवार, भृगुवार, कृत्तिका, मघा, भरणी, गंडयोग, वैश्रुति, व्यतीपात इतक्या ठिकाणीं पुत्रेच्छु पुरुषांनीं पिंड तर्ज्य करावे ” विश्वरूपनिबंधांत—“तिथिवार प्रयुक्त जो पिंडदानाविषयीं दोष (निषेध) सांगितला तो दोष तिथि-वारनिमित्तक श्राद्धाचे त्रयी समजावा. इतर श्राद्धाचे ठायीं तो दोष नाही.” इतर जें काहीं सांगा-
वयाचें तें पूर्वीं सांगितलें आहे. उच्छिष्टांचें उद्वासन (काढणें) गांगतो हेमाद्रौत वसिष्ठ—दिवस आहे तोंपर्यंत श्राद्धाचीं उच्छिष्टें (उष्टी) काढूं नयेत, कारण, त्या उच्छिष्टांपासून अमृतधारा गळून अमृतात, ज्या प्रेतांना उदक दिलेलें नसतें ते प्रेत त्या अमृतधारा प्राशन करतात ” व्यास—“जोपर्यंत सूर्याचें अस्त झालें नाही तोंपर्यंत उच्छिष्ट काढूं नये.” सूर्यास्त-
पर्यंत उच्छिष्ट न काढणें हें इतर गृह अमृता समजावें. एकगृह असेल तर मनु गांगतो—“जोपर्यंत ब्राह्मणांचें विसर्जन करीत आहे तोंपर्यंत उच्छिष्ट राहूतें; ब्राह्मणांचें विसर्जन केल्यावर उच्छिष्ट काढून गृहसंबंधी बलि (वैश्वदेवादि) करावा, असा धर्म व्यवस्थित आहे.” वचनात ‘बलि’ याचा अर्थ-वैश्वदेवादि नित्यकर्म, असा मेधातिथि गांगतो. ब्रह्मांडपुरा-
णांत—“श्राद्धसंबंधी उच्छिष्ट शूद्राला व मुंज न झालेल्याला कोणाला-देतील तर-देऊं नये. तसेंच-श्राद्धभोक्त्यांच्या मुंज न झालेल्या शिष्याला व पुत्राला सर्वे यथेच्छ द्यावें.” जातूकर्ण्य—“ब्राह्मणांनीं भोजन करून अवशिष्ट राहिलेलें उच्छिष्ट शुद्ध भूमीत पुरून टाकावें.”

अथवैश्वदेवादि अत्रमामकःश्लोकः श्राद्धेनमिककर्तृकेमिकरणात्पश्चाज्जुहोतिर्बलिस्त्वन्तेस्यादथ
वाभवेद्विकिरतःपश्चात्प्रथक्त्वेपचेः श्राद्धांतैवथवामहालयविधाधूर्ध्वभुजेःस्यात्क्षयेत्वंतेमासुचमध्यतःशुभ-
विधावादौतथासाम्निके अस्यार्थः साम्नेःप्रथक्पाकेनसर्वत्रादौवैश्वदेवः पश्चांतंकर्मनिर्वर्त्यवैश्वदेवंचसाम्निकः
पिंडयज्ञंततःकुर्यात्ततोन्वाहार्यकंबुधः पित्रर्थनिर्वपेत्पाकवैश्वदेवार्थमेवच वैश्वदेवंनपित्रर्थनदर्शवैश्वदेविकमिति
लौगाक्षिसंस्मृतः अत्रसाम्निकआहिताग्निरितिहेमाद्रिः श्राद्धात्प्रागेवकुर्वीतवैश्वदेवंतुसाम्निकः एकादशा-
हिकंमुक्त्वातत्रह्यंतैविधीयतेइतिहेमाद्रौशालंकायनोक्तेश्च तत्रैवपरिशिष्टे संप्राप्तेपार्वणश्राद्धेएकोदि-
ष्टेतथैवच अग्रतोवैश्वदेवःस्यात्पश्चादेकादशेहनि स्मार्ताग्निमतांतद्रहितानांवाप्रौकरणोत्तरंविकिशोत्तरंवाहो
ममात्रंप्रथक्पाकेन भूतयज्ञादितुश्राद्धांतएव अत्रमूलंहेमाद्रिचंद्रिकादौस्पष्टं सर्वेषांश्राद्धांतैवातत्पाकेनवै-
श्वदेवनित्यश्राद्धादीतितृतीयः श्राद्धंनिर्वर्त्यविधिवद्वैश्वदेवादिकंततः कुर्याद्विश्रांततोद्द्याहृतकाराविकंतयेति
पैठीनसिंस्मृतः ततःश्राद्धशेषान् श्राद्धाह्निश्राद्धशेषेणवैश्वदेवंसमाचरेदितिचतुर्विंशतिमताश्च एवं
वैश्वदेवकालत्रयस्यआशार्केशांस्वायनपरिशिष्टमुदाहृत्यैवंव्यवस्थोक्ता आदौशुद्धौक्षयेचांतैदंशंमध्ये-
महालये एकोदिष्टेनिवृत्तेतुवैश्वदेवोविधीयतइति बहुस्मृत्युक्तत्वात्सर्वेषांश्राद्धांतैवेतिमेधातिथिसंस्मृति-
रत्नाबल्यादयोबहवः ।

आतां वैश्वदेवादि सांगतो—

येथें मी (कमलकरभट्टां) केलेल श्लोक—“श्राद्धाचे दिवशीं अनमिकां (स्मार्ताभिमान् व अभिरहित गान्)
अप्रौकरणोत्तरं प्रथक् पाकानें वैश्वदेवाचा होम मात्र करावा, अथवा विकिरदानोत्तरं वैश्वदेवहोममात्र करावा आणि भूतयज्ञादिक
श्राद्धांतीं करावें. किंवा सर्वांनीं श्राद्धांतीं श्राद्धपाकानें वैश्वदेव, नित्यश्राद्ध इत्यादि करावें. महालयांत ब्राह्मणभोजनोत्तरं करावा,

वार्षिकश्राद्धांत अंती, दर्शश्राद्धांत मध्ये, वृद्धिश्राद्धांत आधी व साम्निकानें आधी वैश्वदेव करावा.” याचा स्पष्ट अर्थ-साम्निकानें वेगळ्या पाकानें सर्वत्र ठिकाणीं श्राद्धाचे आधी वैश्वदेव करावा. कारण “साम्निकानें” अन्वाधान व वैश्वदेव करून नंतर पिंड-पितृयज्ञ करून नंतर दर्शश्राद्ध करावें. पितरांसाठीं निराळा पाक करावा व वैश्वदेवासाठीं निराळा करावा. वैश्वदेवाच्या पाकानें पितरांचें श्राद्ध करूं नये व पितरांच्या पाकानें वैश्वदेव करूं नये” अशी लौगाक्षिस्मृति आहे. येथें साम्निक म्हणजे अग्नीचें आधान केलेला होय, असें हेमाद्रि सांगतो. आणि “साम्निकानें श्राद्धाच्या पूर्वीच वैश्वदेव करावा. अकराव्या दिवशीं करावयाचें जें एकोद्दिष्ट तें सोडून हा नियम समजावा; कारण, त्या एकोद्दिष्टांत अंती वैश्वदेव सांगितला आहे” अशी हेमाद्रीत शालंकायमाची उक्तिही आहे. तेथेंच परिशिष्टांत—“पार्वणश्राद्ध, तसेंच एकोद्दिष्ट प्राप्त असतां पूर्वी वैश्वदेव करावा आणि अकराव्या दिवशीं करावयाच्या श्राद्धांत अंती वैश्वदेव करावा.” स्मार्ताभिमानांनीं व तद्रहितांनीं अमौकरणोत्तर किंवा विकिरोत्तर वैश्वदेवहोममात्र वेगळ्या पाकानें करावा. भूतयज्ञादिक तर श्राद्धांतीच करावे. याचें मूल हेमाद्रि, चंद्रिका इत्यादि ग्रंथांत स्पष्ट आहे. अथवा सर्वांनीं श्राद्धांती श्राद्धपाकानें वैश्वदेव, नित्यश्राद्ध इत्यादि करावें. हा तिसरा पक्ष होय. कारण, “यथाविधि श्राद्ध करून त्या श्राद्धशेष अन्नानें वैश्वदेव करावा, तदनंतर माधुकरि यांना भिक्षा द्यावी आणि हंतकारादिक करावा.” असें पैठनसिस्मृतिवचन आहे. आणि “श्राद्धदिवशीं श्राद्धशेषानें वैश्वदेव करावा” असें चतुर्विंशतिस्मृतिवचनही आहे. याप्रमाणें वैश्वदेवाचे तीन काल सांगितले त्यांची व्यवस्था आशार्क ग्रंथांत शांखायनपरिशिष्ट घेऊन केली आहे, ती अशी—“वृद्धिश्राद्धांत आधीं, सांवत्सरिकांत अंती, दर्शांत व महालयांत मध्ये आणि एकोद्दिष्टांत अंती वैश्वदेव सांगितला आहे.” बहुत स्मृतींनीं अंती सांगितल्यामुळे सर्वांनीं श्राद्धांतीच वैश्वदेव करावा, असें मेधातिथि, स्मृतिरत्नावली इत्यादिक बहुत ग्रंथकार सांगतात.

बोपदेवस्तुष्टिकारेणविसर्जनांतश्राद्धमुक्त्वाउच्छेषणंत्वितिपूर्वोक्तमनुवाक्योदाहरणाद्वृद्धाणांश्राद्धांत-एव मध्यपक्षस्तवन्यशाखापरइत्याह हेमाद्रिस्तुष्ट्यावप्यंतएववैश्वदेवमाह कानीयानांतुश्रौतस्मार्ताभिमतामादावेकेनैवपाकेनेतिकर्कः अन्येषामंते तैत्तिरीयाणांतुसाम्निकानांसर्वत्रादौवैश्वदेवःपंचयज्ञाश्चअंतेवेतिसुदर्शनभाष्येउक्तं अस्यपक्षद्वयस्यपूर्ववद्वयवस्था हेमाद्रौमार्कंडेयः ततो नित्यक्रियांकुर्याद्भोजयेच्चततोतिथीन् ततस्तदन्नभुंजीतसहभृत्यादिभिर्नरः ततःश्राद्धशेषान् नित्यक्रियानित्यश्राद्धं तत्रपृथक्पाकेन नैयकमिति तेनैवोक्तेः पाकैक्येविकल्पः ।

बोपदेव तर वृत्तिकारानें विसर्जनांत श्राद्ध सांगून ‘उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेत्०’ हें पूर्वी उच्छिष्टप्रकरणीं सांगितलेलें मनुवचन सांगितल्यावरून बहुवांना श्राद्धांतीच वैश्वदेव उक्त आहे, असें होतें. श्राद्धामध्ये वैश्वदेव करावा हा पक्ष इतरशाखाविषयक आहे, असें (बोपदेव) सांगतो. हेमाद्रि तर वृद्धिश्राद्धांत देखील अंतीच वैश्वदेव सांगतो. श्रौतान्निमान् व स्मार्तान्निमान् अशा कातीयांनीं तर श्राद्धाच्या पूर्वी एकाच पाकानें वैश्वदेव करावा, असें कर्क सांगतो. इतरांनीं (निरम्निकांनीं) अंती करावा. तैत्तिरीयांनीं तर साम्निकांनीं सर्वत्र ठिकाणीं श्राद्धाच्या आधीं वैश्वदेव आणि पंचमहायज्ञ करावे, अथवा अंती करावे असें सुदर्शनभाष्यांत सांगितले आहे. ह्या दोन पक्षांची पूर्वीप्रमाणें व्यवस्था समजावी. हेमाद्रीत मार्कंडेय—“त्या श्राद्धशेषानें नित्यश्राद्ध करावें, आणि अतिथींना भोजन घालावें. तदनंतर त्या श्राद्धशेषाचाच भृत्यादिकांसहवर्तमान भोजन करावें.” येथें ‘पृथक् पाकानें नित्यश्राद्ध करावें’ असें त्यानंच (मार्कंडेयानंच) सांगितले आहे म्हणून एकपाकाविषयी विकल्प सिद्ध होतो.

अथनित्यश्राद्धं हेमाद्रौन्यासः एकमप्याशयेद्विप्रणणामप्यन्वहंगृही अपीत्यनुकल्पः प्रचेताः नामंत्रणंनहोमंचनाह्वानंनविसर्जनं नर्पिडदानंविकिरंनदद्यादत्रदक्षिणां अत्र निर्दिश्यभोजयित्वातुकिंचिदत्वा विसर्जयेदितितेनैवोक्तेर्दक्षिणाविकल्पः यत्तु नित्यश्राद्धदैवहीनंनियमादिविवर्जितं दक्षिणारहितचैवदावभोक्तृ-ब्रतोऽक्षितमितिकाशीखंडे तद्विप्राभावपरमितिपृथ्वीचंद्रः भविष्ये आवाहनंस्वधाकारंपिंडाभौकरणादिकं ब्रह्मचर्यादिनियमाविश्वेदेवानचैवहि दातृणामथभोक्तृणांनियमोनचविद्यते एतद्विवासंभवेरात्रावपिकार्यम् दिवोदितानिकर्माणिप्रमादादकृतानिचैव यामिन्याःप्रहरंयावत्तावत्कर्माणिकारयेदितिवृहन्नारदीयोक्तेः रात्रौप्रहरपर्यंतंदिवाकृत्यानिकारयेत् ब्रह्मयज्ञंचसौरंचवर्जयित्वाविशेषतइतिपृथ्वीचंद्रधृतसंग्रहोक्तेश्च नचदार्शिकाब्दिकाद्यपिरात्रौस्यादितिवाच्यं इष्टापत्तेः (तस्यतिथिसंबंधित्वात् संध्यारात्रौनकर्तव्यंश्राद्धंखलु-

विचक्षणैरिति विष्णवाद्यैरात्रौ निषेधान् अतएवाल्पद्वादश्यां उपःकाले द्वयंकुर्यात्प्रातर्माध्याह्निकं तपैत्याद्यै-
र्वाक्यैश्च यो दशीश्राद्धं नापकृष्यते भिन्नविषयत्वादित्युक्तं मदनरत्ने नित्यत्वं पकृष्यते अन्वहमित्युक्तेः स्थिति-
सर्वार्थिकाभावात् यथाच सुदर्शनभाष्ये परपक्षे पित्र्याणीति नियमेऽपि नित्यश्राद्धत्वेऽसंस्तरमित्यतस्तस्यो-
गेद्वितीयाबलाच्छुद्धपक्षेऽपीत्युक्तं तथात्रात्रावपि) तथाच माधवेन प्रतिपत्करणे स्पष्टमुक्तं वयंचा प्रेवश्यामः
अस्य दिने करणे लोप एव रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीतेति निषेधादिति पृथ्वीचंद्रोदयः पात्राभावे कौमे उद्धृत्य बायथाश-
क्तिर्किंचिदं प्रकल्पयेत् तत्प्रतिपत्तिमाह विष्णुः भिक्षुकाभावे अन्नगोभ्यो दद्याद्गौवाप्रक्षिपेदिति हेमाद्रौ
नागरखंडे नित्यश्राद्धं न कुर्वीत प्रसंगाद्यत्र सिध्यति श्राद्धांतरे कृते न्यत्र नित्यत्वात्तत्राहापयेत् पक्षद्वये पृथक्-
नेत्यर्थः ।

आनां नित्यश्राद्ध सांगतो—

हेमाद्रौ त व्यास—“गृहस्थाश्रम्यान् पिता इत्यादि महा देवतांच्या उद्देशानं दरोज एका तरी ब्राह्मणाला भोजन घालावें.” या वचनांत ‘अपि’ म्हणजे तरी असें म्हटल्यावरून हा अनुकल्प (कनिष्ठ पक्ष) आहे असें होतें. प्रचेता—
“ह्या नित्यश्राद्धांत आमंत्रण (धन), अम्रांकरण, आवाहन, विगर्जन, पिंडदान, विकिर, आणि दक्षिणा हीं नाहींत.” येथें
“ब्राह्मणाला गांगून भोजन घालून कांहीं लाला देऊन विगर्जन करावें” असें त्यानंच (प्रचेतानंच) सांगितलें यावरून दक्षि-
णेचा विकल्प समजावा. आतां जें “नित्यश्राद्ध तें विश्वेदेवरहित, नियमादिर्वाजित, दक्षिणारहित, आणि कर्ता व भोक्ता यांच्या
नियमरहित असें आहे” असें काशीखंडांत सांगितलें तें ब्राह्मणाच्या अभावीं समजावें, असें पृथ्वीचंद्र सांगतो.
भविष्यपुराणांत—“आवाहन, स्वधाशब्दोच्चार, पिंडदान, अम्रांकरण, ब्रह्मचर्यादि नियम, विश्वेदेव, आणि दात्याचे व
भोक्त्या ब्राह्मणाचे नियम, हे गारे नित्यश्राद्धांत नाहींत.” हें नित्यश्राद्ध दिवसा असंभव असेल तर रात्रौ देखील करावें.
कारण, “दिवसा करण्यास सांगितलेलीं कर्मे प्रमादानं (अवधान नगल्यामुळे) दिवसा केलीं नगतील तर रात्रौचा प्रथम
प्रहर आहे तोपर्यंत तीं कर्मे करावीं” असें गृहधाराद्रीयवन आहे. आणि “रात्रौ प्रहरपर्यंत दिवसाचीं कृत्ये करावीं.
ब्रह्मयज्ञ आणि गौर हीं दोन मात्र रात्रौ विशेषतः वर्ये करावीं” असें पृथ्वीचंद्रानें धरलेंलें संप्रहवचनही आहे. शंका—
नित्यश्राद्ध दिवसा न झालें तर रात्रौ सांगितलें नसें दर्शश्राद्ध, गांव्यमरिक इत्यादिकही रात्रौ होईल व तें अनिष्ट आहे ? असें
म्हणूं नये; कारण, तें दर्श, गांव्यमरिक इत्यादि श्राद्ध दिवसा न झालें तर रात्रौ करणें इष्ट आहे. तेंच माधवानें प्रति-
पत्करणग्रंथांत स्पष्ट सांगितलें आहे व आमी देखील पुढें (क्षयाहर्निषिनिर्णयप्रसंगी) गांगूं हें नित्यश्राद्ध दिवसा न केलें तर
त्याचा लोपच होतो. कारण, “रात्रौ श्राद्ध करूं नये” असा निषेध आहे, असें पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. नित्यश्राद्धास पात्रा-
(ब्राह्मणा) चा अभाव असतां सांगतो कौमांत—“यथाशक्ति कांहीं अन्न वाढून पितरांच्या उद्देशानें गोडावें.” त्या अन्नाची
प्रतिपत्ति (त्यास) सांगतो विष्णु—“तें अन्न निशुक्काला द्यावें. त्याच्या अभावीं गाईना द्यावें, किंवा अमीत टाकावें.”
हेमाद्रौ त नागरखंडांत—“महा देवतांचे (पित्रादित्रय व मानामहादित्रय यांचे) इतर श्राद्ध केलें असतां त्याच्या
प्रसंगानें नित्यश्राद्ध सिद्ध होतें म्हणून त्या दिवशीं नित्यश्राद्ध वेगळें करूं नये. इतर दिवशीं तें नित्य असल्यामुळे टाकूं नये.”

मात्स्ये ततस्तु वैश्वदेवाते सभृत्य सुतवांधवः भुंजीतातिथिसंयुक्तः सर्वपितृनिषेवितं सर्वपर्वनिषिद्धं मांस-
मापाद्यपीत्यर्थः एवं कृष्णेकादश्यादौ गृहिणोऽपि भोजनम् अस्य वैधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेः एवं ग्रहणवेधेऽपि यत्स्वना-
हिताग्रमापमांसं व्रतयेदित्युक्तं तद्वयमेव श्रौतत्वेन तस्य बलवत्त्वान् देवलः श्राद्धं कृत्वा तु यो मर्त्यान् भुंक्त्य-
कदाचन देवाहव्यं न गृह्णाति कव्यानिपितरस्तथा शिवरात्र्येकादश्यादौ त्ववग्राणमेवेत्युक्तं प्राक् यत्र तूपवासो-
नावश्यकस्तत्रैकभक्तमया चित्तं वा कार्यमिति हेमाद्रिः **जानृकपर्वः** अह्न्येव तु भोक्तव्यं कृते श्राद्धे द्विजन्मभिः
अन्यथा ह्यसुरां श्राद्धं परपाके च सेविते ।

मात्स्यांत—“श्राद्ध केल्यानंतर वैश्वदेवाच्या अर्ती भृत्य, पुत्र, वांधव, अतिथि यांस हवर्तमान पितरांनीं सेवित जें अन्न
तें सारं (पर्वदिवशीं निषिद्ध असें मांस-माप इत्यादि मुद्धां) भोजन करावें. याप्रमाणें कृष्णएकादशीसही गृहस्थाश्रम्यास
भोजन सांगितलें आहे. हें श्राद्धश्राद्धाभोजन विहित असल्यामुळे भोजननिषेधाची प्रशंसा होत नाहीं. याप्रमाणें ग्रहणाच्या
वेधांतही भोजन करावें. आतां जें “अमीचें आधान करणारानें माप-मांस वर्जनरूपवत करावें” असें सांगितलें आहे, तें

१ याच्या पुढें—‘तस्य तिथिसंबंधी’ याला आरंभ करून—‘तथा रात्रावपि’ एतत्पर्यंत ग्रंथ नवीन पुस्तकांत आढळतो. परंतु तो
ग्रंथ प्राचीन पुस्तकांत नसल्यामुळे व विसंगत असल्यामुळे प्रक्षिप्त आहे असें वाटतें.

(नक्ष-माष) आर्वे (आहिताग्नीने) दानवैश्च. कारण, वर्जनरूपव्रत औत (श्रुतिविहित) असल्यामुळे स्मार्त (स्मृतिविहित) अशा श्राद्धशेषभोजनापेक्षा प्रबल आहे. देवल—“जो मनुष्य श्राद्ध करून भोजन करीत नाही, त्याचें हव्य (देवांना दिलेलें हवि) देव ग्रहण करीत नाहीत. आणि त्याचीं कर्मे (पितरांस दिलेलीं) पितर ग्रहण करीत नाहीत.” शिवरात्रि, एकादशी इत्यादिकांचे ठरवीं अवघाणाच करावें, असें पूर्वी सांगितलें आहे. जेथें उपवास आवश्यक नाही तेथें एकभक्त किंवा अयाचित करावें, असें हेमाद्रि सांगतो. जातूकर्थ—“द्विजातींनीं श्राद्ध केलें असतां दिवसाचे ठरवींच भोजन करावें. भोजन केलें नाही तर, आणि परकीय अन्नाचें भोजन केलें तर आधुर (अधुरांना प्राप्त होणारें) श्राद्ध होतें.”

श्राद्धशेषभोजनस्य कचिन्निषेधमाह हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकांडे मार्कंडेयः पित्रादीनामथाऽन्येषां श्राद्ध-शेषाभोजनम् व्रतिनां विधवानां च यतीनां च विगर्हितं अन्ये भिन्नगोत्राः व्रतिनो ब्रह्मचारिणः श्राद्धावशिष्ट-भोक्तारस्ते वै निरयगामिनः सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृदिति तत्रैवोक्तेः तत्रैव जाबालिः विप्र-स्त्वन्यगृहे श्राद्धे शिष्टान्नं भोजनं चरेत् प्राजापत्यं विशुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रेन दोषकृत् यतीनां वपनं लक्षं प्रणवजपश्चे-तितत्रैवोक्तं अस्यापवादमाह स एव श्वशुरस्य गुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य यो-गिनः एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वादोषो न विद्यते इति केचित्प्रशंसंति मुनयस्तदसंप्रतं विशेषांतरं तत्रैव ज्ञेयं हेमाद्रौ जाबालिः तांबूलदंतकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम् रत्नौषधपराग्नान्निश्राद्धकर्ता विवर्जयेत् पृथ्वी-चंद्रोदये आचार्यः नशूद्रं भोजयेत् स्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि इति जग-ह्नु रत्नारायणभट्टसूरामकृष्णभट्टसुतकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ पार्वणश्राद्धम् ।

श्राद्धशेषभोजनाचा कचित् ठिकाणीं निषेध सांगतो हेमाद्रौ त प्रायश्चित्तकांडांत मार्कंडेय—“भिन्नगोत्री पिता इत्यादिकांचे श्राद्धशेषान्नचें भोजन ब्रह्मचारी, विधवा आणि संन्यासी यांना निंद्य आहे.” वचनांत ‘अन्येषां, याचा अर्थ भिन्नगो-त्र्यांच्या’ असा समजावा. कारण, “श्राद्धशेषभोजन करणारे ते नरकगामी होतात. सगोत्र, सकुल्य आणि ज्ञाति यांना श्राद्धशेष-भोजन दोषकारक होत नाही” असें तेंथेंच सांगितलें आहे. तेंथेंच (हेमाद्रौ) जाबालि—“ब्राह्मण दुसऱ्याच्या घरी श्राद्धाचें शेषान्न भोजन करील तर प्राजापत्य कृच्छ्रानें त्याची शुद्धि होईल. आपल्या ज्ञातींत, गोत्रांत श्राद्धशेषाच दोषकारक नाही.” यतींनीं श्राद्धशेषान्नभोजन केलें असतां वपन आणि एक लक्ष प्रणवजप करावा. म्हणजे शुद्धि होते, असें तेंथेंच सांगितलें आहे. याचा (श्राद्धशेषान्ननिषेधाचा) अपवाद तोच सांगतो—“श्वशुर, गुरु, मातुल, ज्येष्ठभ्राता, पुत्र, आणि ब्रह्म-निष्ठ असा योगी यांचें श्राद्धशेषान्नभोजन केलें असतां दोष नाही. याप्रमाणें केचित् मुनि यांच्या श्राद्धशेषान्नाची प्रशंसा करितात, पण तें युक्त नाही.” यासंबंधी इतर विशेष निर्णय तेथेंच जाणावा. हेमाद्रौ त जाबालि—“तांबूल, काष्ठानें दंतधावन, अभ्यंगस्नान, उपवास, मैथुन, औषध आणि पराग्न हीं श्राद्धकर्त्यांनीं वर्ज्य करावीं.” पृथ्वीचंद्रोदयांत आचार्य—“श्राद्धदिवशीं त्या घरीं शूद्राला भोजन घालूं नये, सर्वांमध्येंही शूद्रांना श्राद्धशेष देऊं नये.”

इति श्रीनिर्णयसिंधूतील पार्वणश्राद्धाची तरणिरूपा भाषाटीका समाप्त झाली.

अथानुकल्पाः तत्र विप्रालाभे भोजयेदथवाप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनं दैवेकृत्वा तु नैवेद्यं पश्चात्तस्य तु निर्व-पेदिति शंखोक्तेरेको विप्रः पूर्वमुक्तः विप्राभावे दर्भबटुः निधाय वा दर्भबटूनासने पुसमाहितः प्रेषानुप्रेषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेदिति देवलोक्तेः अशक्ता वामश्राद्धं आपद्यन्मौतीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि आमश्राद्धं प्रकुर्वी-त भार्यारजसि संक्रमे इति कात्यायनोक्तेः पृथ्वीचंद्रोदये जमदग्निः यावत्स्यान्नामिसंयुक्त उत्सन्नामि-रथापि वा आमश्राद्धं तदा कुर्याद्वस्तेमौकरणं भवेत् कौमे अनम्रिरधनो वा पितृव्यसन्निवितः आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद्वृषलस्तु सदैव हि आहिताग्नौ प्रवासास्येतत्पत्नीगृहे दर्शः ऋत्विगादिना कारयेत् अमावास्यादिनयतं प्रोषिते धर्मचारिणी पत्यौ तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिने तिलघुहारीतोक्तेरिति पृथ्वीचंद्रोदयः आदि-पदमाब्दिकादिसर्वपार्वणपरमिति शूलपाणिः सुमंतुः पाकाभावे धिकारः स्याद्विप्रादीनां राधिप अपत्नी-नां महाबाहो विदेशगमनादिभिः सदाचैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विदुर्बुधाः प्रचेताः श्रीशूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्म-णिचाप्यथ आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु स्वयंपचतीति स्वपचः विष्णूशनसौ आत्मनो देशकाला-भ्यां विष्णवे समुपस्थिते आपद्यन्मौतीर्थे च प्रवासे पण्यसंभवे चंद्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादांमं विशेषतः नपक्कं भोजये-द्विद्वानसच्छूद्रोपिकदाचन भोजयन्प्रत्यवायी स्यान्न च तत्सफलं लभेत् अत्र प्रवासातीर्थग्रहणादा वामहेमश्राद्ध-

मेव पाकश्राद्धं तु न भवत्येवेति हेमाद्रिरन्नाचल्यादयः अपरार्कविज्ञानेश्वरादयस्तु पाकाभावि-
जातीनामामश्राद्धविधीयत इति सुमंतूक्तेः साम्रिकैर्निरमिकैश्च प्रवासादौ सर्वत्र पाकाभावे आमादिष्वपि
पाकसंभवे च नैवेद्याहुः अतएव पाकश्राद्धमुक्त्वा एतवानुपनीतोपि कुर्व्यात्सर्वेषु कर्मसु भार्याविरहितो ज्येष्ठ-
त्प्रवासस्थोपिनित्यश्रुतिमात्स्ये निरग्रेरपि पाकेनोक्तमिति शूलपाणिकरूपतरु एतच्छब्दः श्राद्धमात्रपर-
त्यन्ये एकोद्दिष्टकर्तव्यं पाके नैव सदसाख्यमितिलघुहारीतीयमपि साम्नेरेव निरग्रेमहैकोद्दिष्टमप्यामेन
श्रुत्यनुदशाहपिंडाद्यामेनेति हलायुधः उत्समाद्रीनां त्वामश्राद्धमेव पूर्वोक्तजमदग्निवाक्यात् मरीचिः
श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धप्रकीर्तितं अमावास्यादिनियतं माससंबत्सरादृते स्मृतिदर्पणे मृताहं च सर्पि-
डं च गयाश्राद्धमहालयं आपन्नोपिन कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित् ।

आतां श्राद्धाचे अनुकल्प सांगतो—

श्राद्धाचे ठायीं ब्राह्मण मिळत नसतील तर “अथवा देवांना नैवेद्य करून नंतर पंक्तिपावन अशा एका ब्राह्मणाला भोजन घालावे” असे शंखवचन आहे. म्हणून एक ब्राह्मण सांगवा, असे पूर्वी सांगितले आहे. ब्राह्मणांच्या अभावी दर्भबटु (चट) करावा. कारण, “समाहित अंतःकरणाने आमनाचे ठायीं दर्भबटु ठेऊन वचन-प्रतिवचन यांनी युक्त सर्व श्राद्धाचा विधि करावा” असे देववचन आहे. पक्वान्नाश्राद्धविषयी शक्ति नसतां आमश्राद्ध करावे. कारण, “आपत्काली, विवाहाद्रीच्या अभावी (भार्याभावी), तीर्थांत, प्रवासांत, पुत्रजन्मकाली, भार्या रजस्वला असतां आणि संक्रांतीस, इतक्या ठिकाणी आमश्राद्ध करावे” असे कात्यायनवचन आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत जमदग्नि—“जोपर्यंत अमियुक्त झाला नाही (विवाह झाला नाही) तोपर्यंत अथवा भार्या मृत झाल्याने अग्नि उच्छिन्न झाला असेल त्या वेळीं आमश्राद्ध करावे, आणि हस्तावर अग्न्यकरण करावे.” कर्मपुराणांत—“अग्निरहित, अथवा द्रव्यरहित, तगाच संकटयुक्त अशा द्विजांनी आमश्राद्ध करावे. शूद्रांनी तर सर्वदा आमश्राद्धच करावे.” अग्निहोत्री प्रवासांत असतां त्याच्या पत्नीने घरी ऋत्विक् इत्यादिकांकडून दर्शश्राद्ध करावे. कारण, “पति प्रवागम गेला अमतां पत्नीने नियमित असे अमावास्यादि श्राद्ध ऋत्विक् इत्यादिकांकडून मदा करावे” असे लघुहारीतवचन आहे, असे पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. ह्या वचनांतील ‘अमावास्यादि-या आदिपदाने गांवामरिक इत्यादि मारं पार्वण समजावे, असे शूलपाणि सांगतो. सुमंतु—“परदेशगमन इत्यादि कारणांनी पत्नीरहित अशा ब्राह्मणादिकांम पाकाच्या अभावी आमश्राद्धाविषयी अधिकार आहे. शूद्रांना तर विद्वानांनी सर्वदा आमश्राद्धच सांगितले आहे.” प्रचेना—“स्त्रिया, शूद्र, व स्वतः पाक करणारा, यांनी आणि सर्वांनी जातकर्मसंस्कारांत सर्वदा पार्वणविधीने आमश्राद्ध करावे.” विष्णु व उशना—“देशाच्या योगाने व कालाच्या योगाने आपला विनाश झाला असतां, आपत्काली, अग्नि नसतां, तीर्थांचे ठायीं, प्रवासांत, पत्नीच्या अभावी, चंद्राच्या व सूर्याच्या ग्रहणांत विशेष करून आमश्राद्ध करावे. मच्छूद्रांनही ब्राह्मणांम कधी पक्वान्नाचे भोजन घालू नये; भोजन घालील तर तो दोषी होईल व त्यास भोजनाचे फळ मिळणार नाही.” येथे प्रवाग, तीर्थ, ग्रहण इत्यादिकांचे ठायीं आमश्राद्ध व हिरण्यश्राद्धच होतें. पक्वान्नाश्राद्ध तर होतच नाही; असे हेमाद्रि, रत्नावली इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. अपरार्क, विज्ञानेश्वर इत्यादि तर—“पाकाच्या अभावी ब्राह्मणादिकांना आमश्राद्ध सांगितले” अशा सुमंतूच्या वचनावरून साम्रिकांनी व निरमिकांनी प्रवासादिकांत सर्वत्र ठिकाणी पाकाच्या अभावी आमश्राद्ध वर्गरे करावे. पाकाचा संभव असतां अज्ञानेच करावे, असे सांगतात. म्हणूनच पाकश्राद्ध सांगून “अनुपनीतांनही सर्व कर्मांमध्ये हें (पाक) श्राद्ध करावे, आणि भार्यारहिताने व प्रवासांत असणारांनही हें पाकश्राद्ध सर्वदा करावे” असे मात्स्यपुराणांत निरमिकाला देखील पाकाने श्राद्ध सांगितले आहे, असे शूलपाणि व करुपतरु हे सांगतात. वचनांतील ‘एतत्’ या शब्दाने सर्वप्रकारचे श्राद्ध समजावे, असे इतर ग्रंथकार सांगतात. “एकोद्दिष्ट तर सर्वदा स्वतः पाकानेच करावे” हें लघुहारीताने सांगितलेलेही साम्रिकालाच आहे. निरमिकाला महैकोद्दिष्टी आमनेच समजावे. शूद्राला तर दशाह्नीत पिंड वर्गरे आमनेच समजावे, असे हलायुध सांगतो. ज्याच्या भार्या मृत झाल्याने अग्नि उच्छिन्न झाला असेल त्यांनी आमश्राद्धच करावे; कारण, याविषयी पूर्वी (यावत्स्याजामि०) हें जमदग्नीचे वचन उक्त आहे. मरीचि—“द्विजांना पाकश्राद्धाविषयी विप्र प्राप्त असतां आमश्राद्ध सांगितले आहे. जे श्राद्ध ज्या तिथीस नियमित (अंतरित झाले असतां लुप्त होतें) अशा अमावास्यादि श्राद्धाविषयी हें आमश्राद्ध समजावे. मासिक, सांवत्सरिक यांविषयी हें आमश्राद्ध समजून नये.” स्मृतिदर्पणांत—“सांवत्सरिक, सर्पिरीकरण, गयाश्राद्ध आणि महा-लय ही श्राद्धे आपत्कालीं देखील कधीही आमनाचे कळू नयेत.”

हेमाद्रीव्यासः आमंदवतुर्कौतियदद्यादामंचतुर्गुणं द्विगुणं त्रिगुणं वापित्वेकगुणमर्पयेत् सिद्धमेष्टु-
विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौविधिः आवाहनादिसर्वस्यात्पिंडदानं च भारत दशाष्टबद्धिजातिभ्यः श्रुतं वा श्रुतं

मेववा तेनामौकरणकुर्त्यात्पिंडांस्तेनैवनिर्वपेत् पश्चांतरमाह सएव आमंददद्विकौतेयतदामंद्विगुणंचरेत् त्रिगुणंचतुर्गुणंवापितत्वेकगुणमर्पयेत् स्मृत्यर्थसारेसममप्युक्तं षट्त्रिंशन्मते आमश्राद्धंयदाकुर्त्यात्पिंडदानंकथंभवेत् गृहपाकात्समुद्धृतसकुभिःपायसेनवा पिंडान्दद्याद्यथालाभंतिलैःसहविमत्सरः पृथ्वीचंद्रोदयेन्यासः आमश्राद्धंयदाकुर्त्याद्विधिःश्राद्धदःसदा हस्तेमौकरणकुर्त्याद्वाहणस्यविधानतः एतत्सामेर्निरूपेःसदातत्सत्त्वात् यत्तु आमेनपिंडं दद्याच्चेद्विप्रांन्पाकेनभोजयेत् पक्वेनकुरुतेपिंडमामात्रंयःप्रयच्छति तावुभौमनुजौप्रोक्तौनरकाहौनसंशयइति तददर्शादिपरं देशाचाराव्यवस्थेति युक्तं मरीचिः आवाहनेस्वधाकारेमंत्राऊह्याविसर्जने अन्यकर्मण्यनूह्याःस्युरामश्राद्धविधिःस्मृतः आवाहने हविषेअत्तवइत्यत्रस्वीकर्तव्येइत्यूहः स्वधाकारेनमोवःपितरइषेइत्यत्रइषेपदस्थानेआमद्रव्यायेत्यूहः विसर्जनेवाजेवाजेइत्यत्रतृप्ताइतिस्थानेतत्स्थित-रूप्यतेतिवोहः यद्यपितस्मादृचनोहेदितिकृच्छ्रहोनिषिद्धः तथापिबचनान्द्रवति तृप्तिप्रभ्रवगाहश्चजुप्रभ्रवोय-थासुखं आमश्राद्धेभवेन्नैतदपोशनंचपंचमं अयंचानुवादः खलेवाल्यांछेदनादीनामिवार्थाभावाद्भोपसिद्धेः ।

हेमाद्रीत व्यास—“श्राद्धाचे ठायीं आमात्र देऊं या, पण तें आमात्र जितकें भोजनाला पाहिजे तितकेंच देऊं नये: तर चौपट, दुप्पट, अथवा तिप्पट द्यावें. पक्काज्राद्धाविषयीं जो विधि सांगितला आहे: तोच विधि आमश्राद्धाविषयीं सम-जावा. आवाहन इत्यादि सर्वे विधि व पिंडदान हें आमश्राद्धांत करावें. ब्राह्मणांस जें काहीं पक्क किंवा अपक्क (आम) अन्न दिलें असेल त्यानंच अमौकरण करावें, व पिंडही त्याच अन्नानें द्यावे.” दुसरा पक्ष सांगतो—**तोच (व्यास)**—“आम देणारा जो त्यानें तें दान दुप्पट, तिप्पट किंवा चौपट करावें. एकपट करूं नये.” **स्मृत्यर्थसारांत** गमही (जितकें भोजनास पाहिजे तितकेंही) आमदान सांगितलें आहे. **षट्त्रिंशन्मतांत**—“जेव्हां आमश्राद्ध करील तेव्हां पिंडदान कसें होईल ? तर घरांत शिजविलेलें अन्न, पीठ किंवा पायस यांतून जें मिळेल तें घेऊन तिलांगहित त्याचे पिंड करून ते द्यावे.” **पृथ्वीचंद्रोदयांत व्यास**—“श्राद्धकर्ता जेव्हां आमश्राद्ध करील तेव्हां त्यानें ब्राह्मणाच्या हातावर यथाविधि अमौकरण करावें.” हें सामिकाला समजावें. निरमिकाला सर्वदा (पक्काज्राद्धांतही) ब्राह्मणांच्या हातावरच अमौकरण आहे. आतां जें “जो पक्कानां ब्राह्मणांना भोजन घालील व आमार्ने पिंड देईल तो, आणि जो आमात्र ब्राह्मणांना देईल व पक्कानां पिंड करील तो, हे दोन्ही मनुष्य नरकास जाण्यास योग्य आहेत, यांत संशय नाही.” असें आमात्र ब्राह्मणांस दिल्यावर पक्काज्राद्धांत निषेध सांगितला तो दर्श इत्यादि विषयक समजावा. देशाचारावरून व्यवस्था समजावी. हें योग्य आहे. **मरीचि**—“आवाहन, स्वधाकार, आणि विसर्जन इतक्या ठिकाणीं आलेल्या मंत्रांचा ऊह करावा. इतर ठिकाणीं ऊह करूं नये, हा आमश्राद्धविधि समजावा.” आवाहनाचे ठिकाणीं ‘पितृहविषे अत्तवे’ या मंत्रांत ‘हविषे स्वीकर्तव्ये’ असा ऊह समजावा. स्वधाकाराचे ठिकाणीं ‘नमोवः पितर इषे’ या मंत्रांत ‘इषे’ या पदाच्या स्थानीं ‘आमद्रव्याय’ असा ऊह समजावा. विसर्जनाचे ठिकाणीं ‘वाजेवाजे’ या मंत्रांत ‘तृप्ता’ या पदाच्या स्थानीं ‘तत्स्थानं’ किंवा ‘तृप्यत’ असा ऊह समजावा. जरी ‘ऋचेचा ऊह करूं नये’ ह्या वचनानें ऋचेचे ठायीं ऊह निषिद्ध आहे तरी, या ठिकाणीं करावा, या वचनानें ऊह होतो. “आमश्राद्धाचे ठायीं ‘तृप्ताःस्य’ हा तृप्तिप्रश्न, अन्नांत अंगुष्ठमूलावगाहन, ‘जुषध्वं’ हा जुषप्रश्न ‘यथासुखं’ हें वाक्य, आणि आपोशन हीं पांच होत नाहीत.” आमश्राद्धांत पक्काज नसल्यामुळे ह्या पांचांचा निषेध हा अपूर्व नाही, तर सिद्धाचा अनुवाद आहे. कारण, सायस्कनावाचा एक याग आहे, त्या यागामध्यें खलेवाली यूप (पशुबंधनस्तंभ) सांगितला आहे. खलेवाली म्हणजे शेतकरी लोकांनीं खळ्यांत बैल बांधण्याकरितां पुरलेला जो स्तंभ ती खलेवाली होय. तिच्या ठिकाणीं पशु-बंधनादिक यूपार्ची कार्ये सांगितली आहेत. तो स्तंभ शेतकऱ्यांनीं तासून वगैरे तयार केलेलाच असतो म्हणून त्या ठिकाणीं छेदनादिक कार्ये कर्तव्य नसल्यामुळे जसा त्यांचा लोप (अभाव) सिद्ध होतो, तसा येथें भोजन नसल्यामुळे तृप्त्या-दिकांचा अभाव असल्यामुळे तृप्तिप्रश्नादिकांचा लोप सिद्ध झाला आहे.

धर्मप्रदीपेतु आमंचतुर्गुणंदद्यादथवाद्विगुणंतथा हेमचाष्टगुणंतद्वयमेहैमेप्यसौविधिः आमेहैमेतथा-नित्येनादीश्राद्धेतथैवच व्यतीपातादिकेश्राद्धेनियमान्परिवर्जयेत् गृहपाकात्समुद्धृतसकुभिःपायसेनवा पिंड-दानंप्रकुर्वीतआमेहैमेकृतेसति आमश्राद्धेचवृद्धौचप्रेतश्राद्धेतथैवच विकिरनैवकुर्वीतमुनिःकात्यायनोब्रवीत् आमश्राद्धमनंगुष्ठममौकरणवर्जितं तृप्तिप्रभ्रविहीनंतुर्कृत्यव्यमानवैश्रुवम् आवाहनामौकरणविकिरपात्रपूर्णं तृप्तिप्रभ्रनकुर्वीतआमेहैमेकदाचनेत्युक्तं एतच्च आवाहनंभवेत्कार्यमर्च्यदानंतथैवचेतिहेमाद्रौभविष्या-विविरोधावित्यम् शाखांतरविषयंवास्तु विकिरोप्यामेनेतिहेमाद्रिः शुद्रस्यतुतत्रैवोक्तम् अमौकरणमंत्र-

अनमस्कारोविधीयते अग्रयेकव्यवाहनायनमः सोमायपितृमतेनमइत्ययंमंत्रः **मान्स्यान्वे मंत्रवर्जहिशूद्रस्वस-**
र्वमेवविधीयते एवंशूद्रोपिसामान्यवृद्धिश्राद्धंचसर्वदा नमस्कारेणमंत्रेणकुर्वादामाभावेबुधः **तच्चपूर्वाह्निकार्थम्**
आमश्राद्धंतुपूर्वाह्निकोद्दिष्टंचमध्यतः पार्वणंचपराह्णेतुप्रातर्वृद्धिनिमित्तकमिति **हारीतोक्तेः** एतद्विधिविषयं
शूद्रकर्तृकंपराह्णैव मध्याह्नात्परांतोयस्तुकुतुपःसमुदाहृतः आमश्राद्धंतुतत्रैवपितृणां दत्तमभयमिति **सुमंतू-**
क्तेरित्यपराकैहेमाद्रीचोक्तम् ॥

धर्मप्रदीपांत—“श्राद्धाचे ठायीं आम यावयाचें असतां जितकें अन्न भोजनाला लागतें त्याच्या चौपट आमाच यावें,
किंवा द्विगुणित यावें. हेम (द्रव्य) यावयाचें असतां तें आठपट यावें. आमश्राद्धांत जसा विधि तसा हेमश्राद्धांतही हा सव्वे
विधि समजावा. आमश्राद्ध, हेमश्राद्ध, नित्यश्राद्ध, नांदीश्राद्ध आणि व्यतीपातादिश्राद्ध यांचे ठिकाणीं नियम वर्ज्य करावे.
आमश्राद्ध व हेमश्राद्ध केलें असतां घरांत शिजविलेल्या अन्नानें, पिठानें किंवा पायसानें पिंडप्रदान करावें. आमश्राद्धांत, वृद्धि-
श्राद्धांत आणि प्रेतश्राद्धांत, विकिर देऊं नये, असें **कात्यायनमुनि** सांगता झाला. अन्नांत अंगुष्ठनिवेशन, अमौकरण,
तृप्तिप्रश्न यांनीं विवर्जित असें आमश्राद्ध करावें. आवाहन, अमौकरण, विकिर, अर्घ्यपात्रपूरण, आणि तृप्तिप्रश्न हीं आम-
श्राद्धांत व हेमश्राद्धांत करूं नयेत” असें (धर्मप्रदीपांत) सांगितलें आहे. “आवाहन तसेंच अर्घ्यदान करावें” असें **हेमा-**
द्रीन भविष्यपुराणादि वचन आहे. त्याच्याशीं विरोध येतो म्हणून हें धर्मप्रदीपकारानें सांगितलें वित्य (अनादरणीय)
आहे. अथवा इतर शास्त्राविषयक अगो. आमश्राद्धांत विकिरही आमार्ने यावा, असें **हेमाद्री** सांगतो. शूद्राला तर ‘तेथेंच
सांगितलें आहे. “शूद्राला अमौकरणाचा मंत्र नमस्कार सांगितला आहे” तो अगा—‘अग्रये कव्यवाहनाय नमः, सोमाय पि-
तृमते नमः’ हा मंत्र समजावा. **मान्स्यांत—**“शूद्राला मंत्रवर्जित सर्व श्राद्धविधि सांगितला आहे. इतरांप्रमाणें शूद्रानें देखील
सामान्यश्राद्ध व वृद्धिश्राद्ध नमस्कारमंत्रानें आमश्राद्धाप्रमाणें गर्वेरा करावें” तें आमश्राद्ध पूर्वाह्नीं करावें. कारण, “आमश्राद्ध
पूर्वाह्नीं, एकोद्दिष्ट मध्याह्नीं, पार्वणश्राद्ध अपराह्नीं आणि वृद्धिनिमित्तक (नांदीश्राद्ध) प्रातःकालीं करावें,” असें **हारीतवचन**
आहे. हें द्विजांविषयीं समजावें. शूद्रानें करावयाचें श्राद्ध तर अपराह्नींच करावें. कारण, “मध्याह्नाच्या पुढें जो कुतुप मुहूर्त
सांगितला आहे, त्या मुहूर्ताचेठायीं आमश्राद्ध करावें. त्या वेळीं पितरांन दिलेलें आमाच अक्षय होतें” असें **सुमंतुवचन**
आहे, असें **अपराकांत** व **हेमाद्रीत** उक्त आहे.

तदभावेहेमश्राद्धमाह **हेमाद्रीमरीचिः** आमात्रस्याप्यभावेतुश्राद्धं कुर्वीतबुद्धिमान् धान्याण्यतुगुणैः-
वहिरण्येनसुरोचिषा धर्मः आमंतुद्विगुणंप्रोक्तंहेमतद्वचनंतुगुणं **स्मृत्यर्थसारे** हिरण्यमष्टगुणंचतुगुणंसमंवा
दद्यात् **हेमाद्रीभविष्ये** अत्राभावेद्विजाभावेप्रवासेपुत्रजन्मनि हेमश्राद्धंसंप्रहेचतथास्त्रीशूद्रयोरपि षट्-
त्रिंशन्मते तुर्यपादे वर्जयित्वाक्षयेहनीतिपाठः यस्यभार्यारजस्वलेतित्रयास्तपाठः पुत्रोत्पत्तौतुहेमनियम-
माह **संवर्तः** पुत्रजन्मनिकुर्वीतश्राद्धंहेमैवबुद्धिमान् नपकेननचामेनकल्याणान्यभिकामयन् **भविष्ये**
गृहपाकात्ममुद्गत्यसक्तुभिःपायसेनवा पिंडदानंप्रकुर्वीतहेमश्राद्धेकृतेसति शूद्रस्तुगृहपाकेननपिंडाभिर्वपेत्तथा
सक्तुमूलफलंतस्यपायसंवाभवेत्स्मृतं हेमश्राद्धेपिंडदानंनेतिदिबोदासः **स्मृत्यर्थसारे**तुविकल्पउक्तः तदा-
शयनविद्यः षट्त्रिंशन्मते नामंत्रणाप्रौकरणेविकिरोनैवदीयते तृप्तिप्रश्नोपिनैवात्रकर्तव्यःकेनचिद्भवेत्
अत्रमरीचिना आमाभावेहेमविधानेनस्थानापत्त्याधर्मप्राप्तेःपूर्ववन्मंत्रोहःपूर्वाह्निकालताचक्षेयेतिविक पूर्वो-
क्तधर्मप्रदीपोक्तेश्च ॥

आमाच्या अभावीं हेमश्राद्ध सांगतो—

हेमाद्रीत मरीचि—“आमाचा अभाव असेल तर धान्याच्या किंमतीच्या चौपट अशा उत्तम सुवर्णानें श्राद्ध करावें.”
धर्म—“आम दुप्पट व हेम चौपट सांगितलें आहे.” **स्मृत्यर्थसारांत—**“सुवर्ण आठपट, चौपट, किंवा समान यावें.”
हेमाद्रीत भविष्यांत—“अन्नाच्या अभावीं, ब्राह्मणांच्या अभावीं, प्रवासांत, पुत्रजन्मकालीं, प्रहणांत, इतक्या ठिकाणीं
हेमश्राद्ध करावें. तसेंच स्त्रिया व शूद्र यांनाही हेमश्राद्ध सांगितलें आहे.” या वचनांत ‘तथा स्त्रीशूद्रयोरपि’ या चवथ्या
पादांत ‘वर्जयित्वा क्षयेहनि’ म्हणजे मृतदिवस वर्ज्य करून, असा षट्त्रिंशन्मत्प्रपांठा पाठ आहे. याच ठिकाणीं ‘यस्य
भार्या रजस्वला’ म्हणजे ज्याची स्त्री रजस्वला आहे, असा व्यासाचा पाठ आहे. पुत्रजन्मकालीं हेमश्राद्धाचा नियम सांगतो
संवर्त—“पुत्रजन्मकालीं हेमानेंच श्राद्ध करावें, कल्याण इच्छिणारानें पक्कानें किंवा आमार्ने श्राद्ध करूं नये.”
भविष्यपुराणांत—“हेमश्राद्ध केलें असतां घरांत शिजविलेल्या अन्नानें, पिठानें, किंवा पायसानें पिंडप्रदान करावें,
५९ निर्ण.

शूद्रानं तर क्षिजविलेख्या अणानं पिंडप्रदानं कुरु नये. त्या शूद्रानं पीठ, मुळें, कलें अथवा पायस यांचे पिंड करावे.” हेम-
श्राद्धांत पिंडदान नाही, असें दिव्योदास सांगतो. स्मृत्यर्थसारांत तर पिंडांक विकल्प सांगितला आहे, त्याचा आशय
समजत नाही. षट्त्रिंशन्मतांत—“हेमश्राद्धांत आमंत्रण (क्षण), अमौकरण, विकिर, आणि तृतिप्रश्न हे कोणीही करूं
नयेत.” मरीचीनं आम्याच्या अभावी हेमार्चें विधान केल्यामुळें आमस्थानी हेम प्राप्त झाल्यानें त्या आमश्राद्धाचे धर्म हेम-
श्राद्धांत प्राप्त झाल्यामुळें पूर्वीप्रमाणें (आमश्राद्धाप्रमाणें) या हेमश्राद्धांत मंत्रांचा ऊह आणि पूर्वाह्नकाल समजावा. ही दिशा
दाखविली आहे. पूर्वी सांगितलेल्या धर्मप्रदीपाच्या वचनावरूनही आमश्राद्धाचे धर्म हेमश्राद्धांत समजावे.

व्यासः हिरण्यमामं श्राद्धीयलब्धयत्क्षत्रियादितः यथेष्टं विनियोज्यं स्याद्गुंजीयाद्ब्राह्मणात्स्वयं विप्रलब्धं भुं-
जीयात् क्षत्रियादिलब्धेतु यथेष्टं विनियोगः तेनापिश्राद्धवैश्वदेवादिनकार्यं देवोद्देशेन तत्स्य देवतांतरायात्यागा-
योगादिति देवयाज्ञिकः शूद्रलब्धेतु कृतं त्रैव षट्त्रिंशन्मते आमं शूद्रस्य यत्किंचिच्छूदिकं प्रतिगृह्यते तत्स-
वभोजनायालं नित्यनैमित्तिकेन चेति शुद्धितत्त्वे गिराः शूद्रवैश्वमनिविप्रेण क्षीरं वायुं दिवा दधि निवृत्तेन न भो-
क्तव्यं शूद्राभंतदपि स्मृतं शूद्राद्विप्रगृहेष्वन्नं प्रविष्टं तु सदा शुचि पराशरः तावद्भवति शूद्रान्नं यावन्न स्पृशति द्विजः
द्विजातिकरसंस्पृष्टं सर्वतन्नं विरुध्यते विष्णुपुराणे संप्रोक्षयित्वा गृहीयाच्छूद्रान्नं गृहमागतं अंगिराः
पात्रांतरगतं ग्राह्यं दुग्धं स्वगृहमागतं ।

व्यास—“क्षत्रिय, वैश्य यांपासून श्राद्धसंबंधी जें द्रव्य व आम्राज प्राप्त झालें असेल त्याचा यथेच्छ विनियोग करावा.
आणि ब्राह्मणापासून जें श्राद्धसंबंधी प्राप्त असेल तें स्वतः भक्षण करावें.” ब्राह्मणापासून लब्ध असेल तें खावें, आणि
क्षत्रियादिकांपासून लब्धाचा यथेच्छ विनियोग करावा, परंतु त्यांनींही श्राद्ध, वैश्वदेव इत्यादि करूं नये. कारण, देवतेच्या
उद्देशानें दिलेल्याचा इतर देवतेला त्याग होत नाही, असें देवयाज्ञिक सांगतो. शूद्रापासून प्राप्त असतां तेथेंच षट्त्रिं-
शन्मतांत सांगतो—“शूद्रापासून जें काहीं श्राद्धसंबंधी आम्राज ग्रहण करितो तें भोजनाविषयीं उपयोगांत आणावें, नित्य-
कर्मांत व नैमित्तिकांत त्याचा उपयोग करूं नये.” शुद्धितत्त्वांत अंगिरा—“शूद्राच्या घरीं ब्राह्मणानें कर्म करून निघा-
ल्यावर दूध किंवा दही भक्षण करूं नये. कारण, तेंही शूद्राजच म्हटलें आहे. शूद्रापासून ब्राह्मणाच्या घरीं आणलेलें अन्न
सर्वदा शुद्ध आहे.” पराशर—“जोपर्यंत अन्नाला ब्राह्मणानें स्पर्श केला नाही तोपर्यंत तें शूद्राज समजावें. ब्राह्मणाच्या
हाताचा स्पर्श झाल्यावर सारें तें अन्न भक्षणाला विरुद्ध (निषिद्ध) होत नाही.” विष्णुपुराणांत—“घरीं प्राप्त झालेले शूद्राज
प्रोक्षण करून ग्रहण करावें.” अंगिरा—“शूद्रानें ब्राह्मणाच्या घरीं आणलेलें दूध ब्राह्मणानें दुग्ध्या पात्रांतून ग्रहण करावें.”

सपिंडश्राद्धाशक्तावाह हेमाद्रौ संवर्तः समग्रं यस्तु शक्नोति कुतुंबैव हेमपार्वणं अपिसंकल्पविधिना कालेतस्य
विधीयते पात्रेभोज्यस्य चात्रस्य त्यागः संकल्प उच्यते व्यासः सांकल्पंतु यदा कुर्यान्न कुर्यात् पात्रपूरणं नावाह-
नामौकरणे पिंडांश्चैव न दापयेत् पात्रमर्च्यस्य समंत्रकावाहनस्य निषेधः तूष्णीं तु भवत्येवेति हेमाद्रिः स्मृत्य-
र्थसारे विकिरंतु न दातव्यमिति तृतीयपादे पाठः स्मृत्यंतरे त्यजेदावाहनं चार्धममौकरणमेव च पिंडांश्च वि-
किराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके हेमाद्रौ वृद्धशातातपस्तु पिंडनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते स्वधावाच-
नलोपोत्रविकिरस्तु न लुप्यत इत्याह पृथ्वीचंद्रोदये वसिष्ठः आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डामौकरणं तथा विकि-
रं पिंडदानं च सांकल्पेषु द्विर्जयेत् विकिरे विकल्पः स्मृत्यंतरे अंगानि पितृव्यज्ञस्य यदा कुतुंबशक्त्या सतदा-
वाचयेद्ब्राम्हणं संकल्पात्सिद्धिरस्त्विति छागलेयः पिंडो यत्र निवर्तते मघादिपुक्थंचन सांकल्पंतु तदा कार्यं नि-
यमाद्ब्रह्मवादिभिः कार्ष्णाजिनिः मौजीबंधाद्वत्सरार्धवत्सरं पाणिपीडनात् पिंडान्सपिंडानोदशुः प्रेतपिं-
डं विना त्रतु अस्यापवादः पित्रोराब्दिकादौ पूर्वमुक्तः त्यक्तामेरपि सांकल्पमुक्तं षट्त्रिंशन्मते अतमिकोय-
दाविप्रउत्सन्नामिस्तथैव च तथा वृद्धिषु सर्वासु संकल्पश्राद्धमाचरेत् ।

सपिंडक श्राद्धाविषयीं अशक्ति असतां सांगतो—

हेमाद्रौ संवर्त—“जे मनुष्य श्राद्धदिवशीं समग्र श्राद्ध करण्याविषयीं समर्थ होत नाही, त्यानें त्या कालीं संकल्पविधीनं
श्राद्ध करावें. योग्य ब्राह्मणाला भोजन करण्याचें अन्न देणें, याला संकल्प असें म्हटलें आहे.” व्यास—“जेव्हां मनुष्य
संकल्पश्राद्ध करील तेव्हां अर्घ्यपात्रपूरण, आवाहन, अमौकरण, आणि पिंडदान हीं करूं नयेत.” समंत्रक आवाहनाचा
निषेध, मंत्ररहित आवाहन करावें, असें हेमाद्रि सांगतो. वरील वचनांत ‘नावाहनामौकरणे’ या तिसऱ्या पादांत ‘विकिरं

न दातव्यं' असा स्मृत्यर्थसारांत पाठ आहे. **स्मृत्यंतरांत**—“सांकल्पिकश्राद्धाचे ठायीं आवाहन, अर्घ्य, अमौकरण, पिंड-प्रदान, विकिर, अक्षय्योदक हीं वज्य केलीं.” हेमाद्रीत वृद्धशतातातप तर—पिंडप्रदानरहित जें श्राद्ध सांगितलें आहे त्या ठिकाणीं स्वधाशब्दोच्चारणाचा (स्वधोच्यतां, याचा) लोप (अभाव) होतो. विकिराचा लोप होत नाही” असें सांगतो. **पृथ्वीचंद्रोदयांत वसिष्ठ**—“आवाहन, स्वधाशब्द, अर्घ्य, अमौकरण, विकिर आणि पिंडदान हीं सहा सांकल्पिकश्राद्धांत वज्य करावीं.” विकिराविषयी विकल्प समजावा. **स्मृत्यंतरांत**—“जेव्हां श्राद्धाचीं अंगे करण्याविषयी शक्ति नसेल तेव्हां ‘संकल्पात्मिद्विरस्तु’ असें ब्राह्मणांकडून म्हणवावें.” **छागलेय**—“जेथे मघादिश्राद्धांत पिंडांची निवृत्ति (अभाव) असेल तेथे ब्राह्मणांनीं नियमानें सांकल्पिकश्राद्ध करावें.” **कार्णाजिनि**—मौजीबंधापासून सहा महिनेपर्यंत आणि विवाहापासून एक वर्षेपर्यंत गणितोनीं श्राद्धांत पिंड देऊं नयेत. कोणी मृत असेल तर त्याच्या प्रेतपिंडाविषयीं निषेध नाही.” या वचनाचा अपवाद, मातापितरांच्या वार्षिकदिश्राद्धांत पिंड द्यावे असें पूर्वी सांगितलें आहे. ज्याचा अग्नि नसेल त्यालाही सांकल्पिक-श्राद्ध **पट्विशन्मतांत** सांगितलें आहे तें असें—“अनम्रिकानें व ज्याचा अग्नि उच्छिन्न असेल त्यानं, तसेंच सर्वे प्रकारच्या वृद्धांत (विवाहादिकांत) सांकल्पिक श्राद्ध करावें.”

अशक्तौपृथ्वीचंद्रोदयेवृहन्नारदीये द्रव्याभावेद्विजाभावेअन्नमात्रंतुपाचयेत् पैतृकेतनुसूक्तेनहोमं कुर्याद्विचक्षणः **देवलः** पिंडमात्रप्रदानव्यमभावेद्रव्यविप्रयोः श्राद्धीयाह्निसंप्राप्तेभवेन्निरशनोपिवा वृद्ध-**वसिष्ठः** किंचिद्द्यादशकस्तुउदकुंभादिकंद्विजे तृणानिवागवेदद्यान्पिंडान्वाप्यथनिर्वपेत् तिलदर्भैःपितृ-
न्वापितर्पयेत्स्नानपूर्वकं हेमाद्रौभविष्ये अग्निनावादहेतुकश्राद्धकालेसमागते तस्मिन्वोपवसेदह्निजपे-
द्वाश्राद्धसंहितां श्राद्धसंहिता समंत्रश्राद्धसंकल्पः **विष्णुवराहपुराणयोः** असमर्थोन्नदानस्यधान्यमांसं स्वशक्तिः प्रदास्यतितिलान्वापिस्त्वान्वापिचक्षिणां सर्वाभावेवगंगत्वाकक्षामूलप्रदर्शकः सूर्यादिलोकपा-
लानामिदमुच्चैःपठिष्यति नमेस्त्वित्तंनधनंनचात्रंश्राद्धोपयोगिस्वपितृभ्रतोमि तृप्यंतु भक्त्यापितरोमयैतौभु-
जौकृतौवर्त्मनिमारुतस्य इत्येतन्पितृभिर्गीतंभावाभावप्रयोजनं यःकरोतिकृतेतेश्राद्धंभवतिभारत **प्रभा-
सखंडे** गत्वारण्यसमानुष्यमूर्ध्वबाहुर्विर्गौयदः निरजोनिर्धनोदेवाःपितरोमानृणंकृथाः नमेस्त्वित्तंनधनं-
नभार्याश्राद्धकथंवःपितरःकरोमि वनंप्रविश्येहेतुतन्मयोच्चैर्भुजौकृतौवर्त्मनिमारुतस्य श्राद्धंमेतद्भवतांप्रदत्तं
मह्यंद्यध्वंपितृदेवतायाः आख्यायचोद्विष्यभुजौतनोबैदिवाचरात्रिममुपोष्यतिप्रेत भवेत्सर्वेतेनकृतेनतेपा-
मृणेनमुक्तःपितृदेवतानाम इत्यनुकल्पाः ।

शक्ति नयतां **पृथ्वीचंद्रोदयांत वृहन्नारदीयांत** सांगतो—“द्रव्याच्या अभावीं व ब्राह्मणांच्या अभावीं अन्नमात्र शिजवावें आणि पितृभूतानें होम करावा. ’ **देवल**—“श्राद्धदिवस प्राप्त झाला अमतां द्रव्याच्या व ब्राह्मणांच्या अभावीं पिंड मात्र द्यावे, अथवा उपवास करावा.” **वृद्धवसिष्ठ**—“श्राद्ध करण्याची शक्ति नसेल त्यानं स्नान करून कांहीं उदकुंभ वगैरे ब्राह्मणाम द्यावा; अथवा गाईच्या तृण द्यावें. किंवा पितरांना पिंड द्यावे: किंवा तिळांनीं व दर्भांनीं पितरांचें तर्पण करावें.” **हेमाद्रीत भविष्यांत**—“अथवा श्राद्धकाल प्राप्त अमतां गवत रचून त्याला आग लावून तें जाळून टाकावें. किंवा त्या दिवशीं उपवास करावा. अथवा समंत्रक श्राद्धसंकल्पाचा जप करावा.” **विष्णुवराहपुराणांत**—“अन्नदानाची शक्ति नसेल त्यानं आपल्या शक्तीप्रमाणें धान्य व मांस द्यावें, किंवा तिळ द्यावे अथवा अन्न दक्षिणा द्यावी. सर्वांच्या अभावीं अरण्यांत जाऊन सूर्यादिक लोकपालांना कांखा वर करून दाखवून हा (पुढील) श्लोक मोठ्यानें म्हणावा. ‘न मेस्ति वित्तं न धनं न चात्रं श्राद्धोपयोगि स्वपितृभ्रतोमि । तृप्यंतु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य’ याप्रमाणें हें पूर्वेक, द्रव्य असल्याचें व नमल्याचें प्रयोजन पितरांनीं सांगितलें तें जो करितो त्यानं श्राद्ध केलें असें होतें.” **प्रभासखंडांत**—“मनुष्यरहित अशा अरण्यांत जाऊन बाहु वर करून असें रडावें कीं ‘हे देव पितर हो ! मी अन्नरहित निर्धन आहं, मला अतृणी करा’ ‘न मेस्ति वित्तं न धनं न भार्या श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि । वनं प्रविश्येहेतु तन्मयोच्चैर्भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥ श्राद्धंमेतद् भवतां प्रदत्तं मह्यं द्यध्वं पितृदेव-
तायाः’ याप्रमाणें पठण करून भुजा वर करून तदनंतर तो दिवस व रात्र उपोषण करून राहावें. असें केल्यानें तो मनुष्य पितृदेवतांच्या ऋणापासून मुक्त होईल.” याप्रमाणें श्राद्धाचे अनुकल्प समजावे.

अथश्राद्धभोजनेप्रायश्चित्तं दशेषदप्राणायामाः वृद्धोत्रयः संस्कारेपुजातर्कमादिचूडांतेपुसांतपर्न
आद्येचांद्रवा अन्यसंस्कारेपूपासः सीमंतेचांद्रमिति विज्ञानेश्वरः आपदिनवश्राद्धैकादशाष्टौभोजनेषु

कायः द्वादशाहेऊनमासेचपादोनः द्विमासेत्रिपक्षेऊनपष्ठोनाब्दयोश्चाथकृच्छ्रः त्रिमासाद्याब्दिकांतेषुसपिंड-
नेचपादकृच्छ्रः उपवासोवा गुरुद्रव्यार्थभोजनेर्धं जपशीलेतदर्थं अनापदितूनमासांतेषुचांद्रकायंवा द्विमा-
सादौपादोनं त्रिमासादावर्धकायः आब्दिकेपादोनकायः पुनराब्दिकेएकाहः क्षत्रियादिश्राद्धेपुद्वित्रिचतुर्गुणा-
निज्ञेयानि चांडालसर्पश्वादिवहपतितल्लीबादिनवश्राद्धेचांद्रं आयमासिकांतेचांद्रंपराकश्च द्वादशाहादौपराकः
द्विमासादावतिकृच्छ्रः त्रिमासादौकायः आब्दिकेपादः अभ्यासेसर्वद्विगुणं आमहेमसंकल्पश्राद्धेपुतत्तदधीनि
यतिर्ब्रह्मचारीचोक्तंप्रायश्चित्तंकृत्वात्रीनुपवासान्प्राणायामान्धृताशनंचाधिकंकृत्वात्रतशेषंसमापयेत् अनाप-
दिद्विगुणंदर्शादौदशगायत्रीमंत्रिताआपःपिवेत् पटप्राणायामावा संस्कारेषुचौलेकृच्छ्रः सीमंतेचांद्रं अन्ये-
षूपवासइतदिक् अत्रमाधवमिताक्षरादौकचिद्विरोधोविषयभेदात्परिहार्यः एकादशाहेचांद्रं पुनःसंस्कारश्चे-
तिप्रायश्चित्तकांडे हेमाद्रिः यन्शानाः दशकृत्वःपिवेदापोगायत्र्याश्राद्धभुग्विजइतितदनुक्तप्रायश्चित्त-
श्राद्धपरमिति विज्ञानेश्वरः ।

आतां श्राद्धभोजनाविषयीं प्रायश्चित्त सांगतो—

दर्शश्राद्धाचे ठायीं भोजन केलें असतां सहा प्राणायाम करावे. त्रिद्विश्राद्धांत भोजनीं तीन प्राणायाम. जानकमापासून
चौलापर्यंत संस्कारांचे ठायीं भोजन केलें असतां सांतपनकृच्छ्र करावें. अथवा पहिल्या (जानकर्म) संस्कारांत चांद्रायण करावें.
इतर संस्कारांचे ठायीं भोजनीं उपवास करावा. सीमंतसंस्काराचे ठायीं भोजनीं चांद्रायण असें विज्ञानेश्वर सांगतो. आप-
त्कालीं नवश्राद्ध व एकादशाहश्राद्ध यांचे ठायीं भोजनीं प्राजापत्यकृच्छ्र करावें. द्वादशाह व ऊनमासिक यांचे ठायीं भोजनीं
पादन्यूनप्राजापत्यकृच्छ्र. द्विमासिक, त्रैपक्षिक, ऊनपष्ठमासिक आणि ऊनाब्दिक यांचे ठायीं अर्धकृच्छ्र. त्रैमासिकापासून
आब्दिकापर्यंत श्राद्धांत व सपिंडीकरणांत भोजनीं पादकृच्छ्र किंवा उपवास करावा. गुरुला द्रव्य देण्यासाठीं भोजन केलें
असतां अर्धं प्रायश्चित्त समजावें. नेहमीं जप करणाऱ्या ब्राह्मणाम चतुर्थांश प्रायश्चित्त. आपत्ति नमतां ऊनमासिकापर्यंत
श्राद्धांत भोजन केलें असतां चांद्रायण किंवा प्राजापत्य कृच्छ्र. द्विमासिक इत्यादिश्राद्धांत भोजनीं पादन्यून चांद्रायण किंवा
प्राजापत्य. त्रैमासिकादिकांत अर्धप्राजापत्य. आब्दिकांत पादन्यून प्राजापत्य. अधिकमासप्रसंगीं पुनराब्दिक सांगितलें तेथें
भोजनीं एकाह (उपवास). क्षत्रिय, वैश्य इत्यादिकांच्या श्राद्धांत हीच प्रायश्चित्तें द्विगुणित, त्रिगुणित, चतुर्गुणित अशीं सम-
जावीं. चांडाल, सर्प, कुत्रा इत्यादिकांनीं मारलेल्याच्या नवश्राद्धांत आणि पतित, नपुंसक इत्यादिकांच्या नवश्राद्धांत भोजनीं
चांद्रायण. यांच्या आयमासिकापर्यंत श्राद्धांत भोजनीं चांद्रायण व पराक. द्वादशाहादिश्राद्धांत पराक. द्विमासिक इत्यादिकांत
अतिकृच्छ्र. त्रैमासिक इत्यादिकांत प्राजापत्य. आब्दिकांत पादकृच्छ्र. वारंवार भोजन केलें असतां सारं प्रायश्चित्त द्विगुणित
समजावें. आमश्राद्ध, हेमश्राद्ध, सांकल्पिकश्राद्ध यांचे ठायीं त्याच्या त्याच्या निम्मे प्रायश्चित्तें समजावीं. संन्याशी व ब्रह्मचारी
यांनीं श्राद्धीं भोजन केलें असतां वर सांगितलेलें प्रायश्चित्त करून तीन उपवास व प्राणायाम आणि घृतप्राशन अधिक
करून शेष राहिलेलें व्रत समाप्त करावें. आपत्काल नसतां श्राद्धीं भोजन करील तर द्विगुणित प्रायश्चित्त समजावें. दर्शादि-
श्राद्धांत दशगायत्रींनीं अभिमंत्रण केलेलें उदकप्राशन करावें. अथवा सहा प्राणायाम करावे. संस्कारांचे ठायीं चौलांत कृच्छ्र-
सीमंतांत चांद्रायण. इतर संस्कारांत उपवास ही दिशा समजावी. ह्या वर सांगितलेल्या प्रायश्चित्तांत कचित् स्थलीं माधव,
मिताक्षरा इत्यादि ग्रंथांत विरोध येतो त्याचा परिहार विषयभेदानें करावा. एकादशाहश्राद्धांत भोजन केलें असतां चांद्रायण
आणि पुनःसंस्कार करावा, असें प्रायश्चित्तकांडांत हेमाद्रि सांगतो. आतां जें उशाना सांगतो कीं, “श्राद्धभोक्त्या ब्राह्म-
णानें गायत्रीनं दहा वेळां उदक अभिमंत्रण करून प्राशन करावें” असें तें, ज्या श्राद्धाविषयी प्रायश्चित्त उक्त नाही तद्विषयक
समजावें, असें विज्ञानेश्वर सांगतो.

अथक्षयाहश्राद्धं तत्स्वरूपमाह हेमाद्रौव्यासः मासपक्षतिथिस्पष्टेयोज्यस्मिन्नभ्रियतेहनि प्रत्यब्द-
तुतथाभूतक्षयाहंतस्यतंविदुः नारदीये पारणेमरणेनृणांतिथिस्तात्कालिकीस्मृता अत्रचांद्रमानंज्ञेयं आब्दि-
केपितृकार्येचचांद्रोमासःप्रशस्यतइतिगर्गोक्तेः मलमासमृतस्यतुसौरं मलमासमृतानांतुसौरंमानंसमाश्रये-
वितिहेमाद्रावुक्तेः एतन्मृतमासस्यैवाधिक्येज्ञेयं ब्राह्मे प्रतिसंवत्सरंकार्यमातापित्रोर्भूतेहनि पितृव्य-
स्याप्युत्तरस्यभ्रातुर्ज्येष्ठस्यचैवहि अपुत्रस्येतिभ्रात्राप्यन्वयः ज्येष्ठस्येतिकनिष्ठस्यानावश्यकत्वार्थं मदनरत्ने-

भविष्ये सर्वेषामेवश्राद्धानांश्वेषां वत्सरंमतम् तथा भोजकोयस्तुवैश्राद्धंनकरोतिस्वगाधिप मातापितृभ्यांस-
तंतवर्षेवर्षेभृतेहनि सयातिनरकंधोरंतामिखंनानाममतः तच्च नानास्मृतिष्वेकोद्दिष्टपार्वणंचोक्तं आद्यमाहयमः
सपिंडीकरणाद्भ्रूवंप्रतिसंवत्सरंमुनैः मात्रापित्रोःपृथकार्यमेकोद्दिष्टंतेहनि **व्यासः** एकोद्दिष्टंनुक्तंव्यंपित्रो-
श्वेवभृतेहनि एकोद्दिष्टंपरित्यज्यपार्वणंकुरुतेनरः अकृतंतद्विजानीयाद्भूवेषपितृघातकः अंत्यमाहशातातपः
सपिंडीकरणंकृत्वाकुर्यात्पार्वणवत्सदा प्रतिसंवत्सरंश्राद्धंलागलेनोदितोविधिः यःसपिंडीकृतंप्रेतंपृथक्पिंडे-
नियोजयेत् विधिघ्नस्तेनभवतिपितृहाचोपजायते अत्रौरसक्षेत्रजयोःपार्वणंदत्तकादीनामेकोद्दिष्टमित्येकःपक्षः
साम्नेःपार्वणंनिर्गम्रेकोद्दिष्टमित्यपरः तद्दूषणंमिताक्षरादौज्ञेयं कल्पतरुस्तुसाध्योरीरसक्षेत्रजयोः
पार्वणं निरम्रिकयोस्त्वेकोद्दिष्टमित्याह **अपराकल्पेव** दत्तकादयोदशपुत्रास्तुसाम्न्योनिरम्रयश्चेकोद्दिष्टमेव-
कुर्युः प्रत्यद्वंदपार्वणेनैवविधिनाक्षेत्रजौरसौ कुर्यातामितरेकुर्युरेकोद्दिष्टमुतादशेति **जातृकण्योक्तेः** यदा-
तुदत्तकस्यपितादर्शमहालयैवाभूतस्तत्रपार्वणैकोद्दिष्टयोर्विकल्पः वस्तुतस्तुसर्वेषांपार्वणैकोद्दिष्टयोर्वीहियवव-
द्विकल्पः सचदेशाचाराद्व्यवस्थितइतिसर्वनिबंधसिद्धांतः अतएवपृथ्वीचंद्रोदयेषुद्वपराशरः माता-
पित्रोःपृथकार्यमेकोद्दिष्टंतेहनीत्युक्त्वाह देशधर्मसमाश्रित्यवंशधर्मतथापरे सूरयःश्राद्धमिच्छंतिपार्वणंचक्ष-
यान्दृषीति तच्चकेवलपितृणां नमपत्नीकानामितिहेमाद्रिः अत्रमातामहानकार्याः कर्पूसमन्वितंमुक्त्वात-
थाश्वंश्राद्धपोडशं प्रत्याद्विदकंचशेषेपुपिंडाःस्युःपडितिस्थितिरितिकात्यायनोक्तेः कर्पूसमन्वितंसपिंडनं
यैरेकोद्दिष्टंक्रियतेतेषामपिकचिनपार्वणमेव अमावास्यांश्रयोयस्यप्रेतपक्षेथवापुनः पार्वणंतस्यकर्तव्यंनैको-
द्दिष्टंकाचनेति शङ्कोक्तेः ।

आनां क्षयाहश्राद्ध (सांवत्सरिक) सांगतो—

क्षयाहाने स्वरूप सांगतो हेमाद्रीत व्यास—“माग, पक्ष, तिथि यांना स्पष्ट केलेल्या ज्या दिवशी जो मनुष्य मृत होतो त्या मनुष्याचा प्रतिवर्षा त्या माग, पक्ष, तिथि यांना स्पष्ट केलेल्या तो दिवस क्षयाह, असे सांगतात.” नारदीयांत— “मनुष्यांच्या उपवासाच्या पारणावपरीं आणि मरणावपरीं तिथि ध्यावयाची ती त्या कार्या अगळेही समजावी.” येथे चांद्र-मान समजावें. कारण, “सांवत्सरिक पितृकार्याचे ठायीं चांद्रमास प्रधान आहे” असे सांगताना आहे. मलमागांत मृत झालेल्यानें सौरमान समजावें. कारण, “मलमागांत मृताचे सौरमान प्रधान करावें” असे हेमाद्रीत वचन आहे. हें मान ज्या मागांत मृत असेल तो अधिक अगता समजावें. ब्राह्मांत—“प्रतिवर्षा मातापितरांच्या मृतादिवशीं श्राद्ध करावें. पुत्ररहित अशा पितृव्याचें (नुक्त्याचें) व पुत्ररहित ज्येष्ठप्रात्याचेंही प्रतिवर्षा श्राद्ध करावें.” या वचनांत ज्येष्ठ प्रात्याचें असें सांगितल्यावरून कनिष्ठचे श्राद्ध अवश्यक नाही, असे सूचित होतें. मदनमूर्तांत भविष्यांत—“गर्वश्राद्धांमध्ये सांवत्सरिक श्राद्ध श्रेष्ठ सांगितलें आहे. तसें भोजन करणारा जो मनुष्य मातापितरांचें प्रतिवर्षा मृतादिवशीं श्राद्ध करित नाही, तो तामिष्यनांवाच्या भयंकर नरकास जातो.” तें प्रतिमावत्सरिक श्राद्ध अनेक स्मृतींमध्यें एकोद्दिष्ट आणि पार्वण असें दोन प्रकारचें सांगितलें आहे. पहिलें (एकोद्दिष्ट) सांगतो यम—“पुत्रांना सापिंडीकरणानंतर प्रतिवर्षा मृतादिवशीं मातापितरांचें वेगवेगळें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करावें.” व्यास—“मातापितरांचें मृतादिवशीं एकोद्दिष्ट करावें. जो मनुष्य एकोद्दिष्ट पर्व्य करून पार्वण करितो, त्यानें तें केलेलें श्राद्ध न केल्यामार्गे समजावें, व तो मनुष्य पितृघातक होतो.” दुयरे (पार्वण) सांगतो शातातप—“सपिंडीकरण करून प्रतिवर्षा सदा पार्वणाप्रमाणे श्राद्ध करावें, हा विधि छागव्यानें सांगितल्या आहे. जो मनुष्य सपिंडीकरण केलेल्या प्रेतास पृथक् पिंडाचे ठायीं योजील, तो मनुष्य त्या कमीनें विधिनाशक व पितृघातक होतो.” येथे औरस व क्षेत्रज या दोन पुत्रांनीं पार्वण करावें, आणि दत्तक इत्यादि पुत्रांनीं एकोद्दिष्ट करावें, हा एक पक्ष. सामिकांन पार्वण व निरम्रिकांन एकोद्दिष्ट हा दुयरा पक्ष. त्या दोन्ही पक्षांना दोष आहे, तो मिताक्षरा इत्यादि ग्रंथांतून जाणावा. कल्पतरु तर—सामिक अशा औरस-क्षेत्रजांनीं पार्वण करावें, आणि निरम्रिकांनीं एकोद्दिष्ट करावें, असें सांगतो. अपराकांतही असेंच आहे. दत्तक इत्यादि दहा प्रकारचे पुत्रं सामिक अगोत किंवा अग्निरहित अगोत, त्यांनीं एकोद्दिष्टच करावें. कारण, “क्षेत्रज व औरस दोन पुत्रांनीं प्रतिवर्षा पार्वणविधीनें श्राद्ध करावें. इतर दहा प्रकारच्या पुत्रांनीं एकोद्दिष्ट करावें” असें जातृकण्योक्ते वचन आहे. जेव्हां दत्तकाचा पिता दशांचे ठायीं किंवा महाग्यांत मृत असेल तेव्हां तें पार्वणाचा व एकोद्दिष्टाचा विकल्प समजावा. वाम्तविक म्हणेलें तर सर्वांना पार्वण व एकोद्दिष्ट यांचा विकल्प आहे. जसा श्रौतांत हवनीय-

द्रव्याविषयी 'ब्रीहि व यव यांचा विकल्प सांगितला आहे तद्वत्. त्या पार्वण-एकोद्दिष्टाच्या विकल्पाची देशाचारावरून व्यवस्था समजावी, म्हणजे ज्या देशी पार्वणाचा आचार असेल त्या देशी पार्वण आणि ज्या देशात एकोद्दिष्टाचा आचार असेल तेथें एकोद्दिष्ट समजावें, हा सर्व निबंधांचा सिद्धांत आहे. म्हणूनच पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धपराशर—“मातापितरांचें मृत-दिवशी वेगवेगळें एकोद्दिष्ट करावें” असें बोलून सांगतो—“देशधर्माचा तसाच कुलधर्माचा आश्रय करून इतर विद्वान् मृत-दिवशी देखील पार्वणश्राद्ध इच्छितात.” तें सांवत्सरिकश्राद्ध केवळ पिता इत्यादि तिघांचें समजावें. सपत्नीकांचें समजू नये, असें हेमाद्रि सांगतो. या श्राद्धांत मातामह नाहीत. कारण, “कर्पूयुक्त (सपिंडीकरण), षोडशमासिकें आणि प्रतिसांवत्सरिक हीं वर्ज्य करून इतर श्राद्धांचे ठायीं सहा पिंड होतात, अशी शास्त्रमर्यादा आहे” असें कात्यायनवचन आहे. जे एकोद्दिष्ट करितात त्यांनाही क्वचित् ठिकाणीं पार्वण आहेच. कारण, “अमावास्यास्य किंवा पितृपक्षांत जो मृत झाला त्याचें पार्वण करावें, एकोद्दिष्ट करूं नये” असें शांख्यवचन आहे.

एवंसंन्यासिनोपि एकोद्दिष्टयतेर्नोस्तित्रिदंडग्रहणादिह सपिंडीकरणाभावानुपार्वणंतस्यसर्वदेतिप्रचेत-
सोक्तेः वायवीये संन्यासिनोप्यान्दिक्कादिपुत्रःकुर्याद्यथाविधि महालयेतुयच्छ्राद्धंद्वादश्यांपार्वणंहितत्
पृथ्वीचंद्रोदयेवृद्धपराशरः संग्रामेसंस्थितानांचप्रेतपक्षेक्षशिक्षये तेषांपार्वणमेवोक्तंक्षयाहेपिचमत्तमैः
चंद्रक्षयानाशकसंयुगेपुत्रःप्रेतपक्षेमृतवानसपिंडः सपिंडितानामपिचाण्डिकानिभवंतितेपामिहपार्वणानि तथा
भ्रातुर्येष्ठस्यकुर्वीतज्येष्ठोभ्रातानुजस्यच दैवहीनंतुतत्कुर्यादितिधर्मविदब्रवीत् दैवहीनमेकोद्दिष्टं ज्येष्ठोभ्राता-
नाद्यगर्भजः तथाचतत्रैवशानातपः अनाद्यगर्भज्येष्ठोपिभ्रातासद्भिर्निगद्यते ऋतेसपिंडनात्सत्यनैवपार्वण-
माचरेत् आद्यगर्भेतुपार्वणमेकोद्दिष्टवैत्यर्थः मातुस्तुहेमाद्रौकात्यायनः प्रत्यद्वंद्वयोयथाकुर्यात्पुत्रःपित्रे
सदाद्विजः तथैवमातुःकर्तव्यंपार्वणंचान्यदेववा यतुतेनैवोक्तं सपिंडीकरणादूर्ध्वपित्रोरेवहिपार्वणं पितृव्य-
भ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टंसदैवत्विति तत्सापन्नमातृपरं यत्तुवृद्धपराशरः अपुत्रस्यपितृव्यस्यतत्पुत्रोभ्रातृजो-
भवेत् सगवास्तुत्कुर्वीतपिंडदानादिक्रियां पार्वणंतेनकार्यस्यात्पुत्रवद्भातृजेनतु पितृस्थानेतुतत्कृत्वाशेषंपूर्व-
वदुच्चेदिति तत्पितृवद्देशाचारवद्भवस्थितमितिपृथ्वीचंद्रः श्राद्धदीपकलिकायांचतुर्विंशतिम-
तेतु पितृव्यभ्रातृमातृणांज्येष्ठानांपार्वणंभवेत् एकोद्दिष्टंकनिष्ठानांपत्योःपार्वणंमिश्रः अपुत्रस्यपितृव्यस्यभ्रा-
तुश्चैवाग्रजन्मनः मातामहस्यतत्पत्न्याःश्राद्धंपार्वणवद्भवेदित्युक्तं तत्पत्न्याःकर्तृत्वेपिपार्वणमेव सर्वाभावेस्वयं-
पत्न्यःस्वभर्तृणाममंत्रकं सपिंडीकरणंकुर्युस्ततःपार्वणमेवचेतिलौगाक्षिस्मृतेः ततःपत्न्यपिकुर्वीतसापिंड्यं
पार्वणंतथेति**सुमंतुक्ते**श्चेति**निर्णयामृते**उक्तं अन्यत्वेतत्पाक्षिकपार्वणपरमाहुः अतएव भर्तुःश्राद्धंतुया-
नारीमोहात्पार्वणमाचरेत् नतेनवृष्यतेभर्ताकृत्वातुनरकंक्रजेदितिवचनंक्षयाहेपाक्षिकैकोद्दिष्टप्रशंसार्थं नपार्व-
णनिषेधार्थमित्युक्तं**त्रिस्थलीसेतौभट्टचरणैः** स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यइत्यनेनविरोधाच्च ।

याप्रमाणें संन्याशाचेंही पार्वण समजावें. कारण, “संन्याशानें त्रिदंडग्रहण केल्यामुळे सपिंडीकरणाचा अभाव असल्यानें त्याला एकोद्दिष्ट नाही, त्याचें सर्वदा पार्वण करावें” असें प्रचेतसाचें वचन आहे. वायवीयांत—“संन्याशाचेंही सांव-
त्सरिकादिश्राद्ध पुत्रांनं यथाविधि करावें. महालयांत करावयाचें तें द्वादशीस पार्वण करावें.” पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धपरा-
शर—“युद्धामध्ये मृत झालेल्यांचें पितृपक्षांत अमावास्यास पार्वणच सांगितलें आहे व मृतदिवशी देखील पार्वणच करावें. अमावास्यास, अनशन (अभक्षण) व्रताचे ठायीं, युद्धांत, आणि पितृपक्षांत जे सपिंड मृत असतील त्यांचीं सपिंडीकरणें झालीं असतांही सांवत्सरिकें पार्वणें होतात. तसेंच ज्येष्ठ भ्रात्याचें कनिष्ठानें व कनिष्ठभ्रात्याचें ज्येष्ठभ्रात्यानें दैवहीन (एकोद्दिष्ट) श्राद्ध करावें, असें धर्मवेत्ता सांगता झाला.” येथें ज्येष्ठभ्राता द्वितीयादिगर्भापासून झालेला समजावा. कारण, तसेंच तेथें शातातप सांगतो—“द्वितीयादिगर्भापासून झालेलाही ज्येष्ठभ्राता म्हटला आहे. त्याचें सपिंडीकरणावांचून पार्वण करूं नये.” पहिल्या गर्भाचें तर पार्वण किंवा एकोद्दिष्ट, असा इत्यर्थ होय. मातेचें श्राद्ध तर हेमाद्रौत कात्यायन सांगतो—“जो पुत्र पित्याचें प्रतिवर्षी जसें करील तसेंच मातेचें पार्वण किंवा एकोद्दिष्ट करावें.” आतां जें त्यानेंच (कात्यायनानेंच) सांगितलें

१ ‘ब्रीहियेजेत’, ‘यवयेजेत’ अर्थ—एका वाक्यानें ब्रीहीनीं होम करावा, असें सांगितलें व दुसऱ्या वाक्यानें यवानीं होम करावा, असें सांगितलें आहे. हीं दोन्ही वेदवाक्यें प्रमाण असल्यामुळे इच्छेप्रमाणें पाहिजे त्या द्रव्यानें होम करावा, असें झाल्यानें, अर्थात् ब्रीहीचा व यवांचा विकल्प सिद्ध झाला. त्याप्रमाणें येथें कित्येक स्मृतींनीं एकोद्दिष्ट व कित्येक स्मृतींनीं पार्वण सांगितल्यामुळे दोन्ही पक्षांच्या स्मृति प्रमाण मानून विकल्प समजावा.

की, “सपिंडीकरणानंतर मातापित्रांचेंच पार्वण करावें. बुलता, भ्राता, माता यांचें सदा एकोद्दिष्ट करावें” या वचनांत मातेचें एकोद्दिष्ट सांगितलें तें सापन्नमौक्षियक होय. आतां जें वृद्धपराशर सांगतो की, “आत्याचा पुत्र नेच पुत्ररहित अशा पितृव्याचा पुत्र होतो; त्याच भ्रातृपुत्रां पितृव्याची पिंडदान वगैरे किया करावी; पुत्राप्रमाणें आत्याच्या पुत्रांन पार्वण करावें. पितृस्थानी पितृव्याचा उच्चार करून इतर उच्चार पूर्वीप्रमाणें (पित्याप्रमाणें) करावा.” असें पार्वण सांगितलें त्याची देशाचाराप्रमाणें व्यवस्था समजावी, असें पृथ्वीचंद्र सांगतो. श्राद्धदीपकलिकेंत चतुर्विंशतमितांत तर—“पितृव्य, भ्राता, माता, हीं कर्त्यापेक्षां वयानें अधिक अगतील तर त्यांचें पार्वण होतें. कनिष्ठ असतील तर एकोद्दिष्ट. पत्नीनं ब्रियेचें व ब्रियेनं पत्नीचें परस्पर पार्वण करावें. पुत्ररहित असा पितृव्य, ज्येष्ठभ्राता, मातामह आणि मातामही यांचें श्राद्ध पार्वणाप्रमाणें होतें” असें सांगितलें आहे. तें पत्नीनं करावयाचें असलें तरी पार्वणच. कारण, “गर्वाच्या अभावीं पत्नींनीं आपापल्या भर्त्याचें सपिंडीकरण अमंत्रक करावें, तदनंतर पार्वणच करावें” असें लौगाक्षिसृष्टिवचन आहे. “इतरांच्या अभावीं पत्नींनींही सपिंड्य व तमैच पार्वण करावें” असें सुमंतूचें वचन आहे, असें निर्णयामृतांत सांगितलें आहे. इतर ग्रंथकार तर हें वचन एकपक्षी पार्वणविषयक आहे, असें सांगतात. म्हणूनच “जी स्त्री अविचारानें भर्त्याचें पार्वणश्राद्ध करील, त्या श्राद्धानें भर्ता तृप्त होत नाही व तसें पार्वण करून ती नरकाम जाईल” हें वचन मृतदिवशीं एकपक्षीं एकोद्दिष्टाचे प्रशंसेसाठीं आहे, पार्वणाच्या निषेधासाठीं नाही असें त्रिष्यलीसेतुं नारायणभट्टांनीं सांगितलें आहे. आणि जर पार्वणनिषेधासाठीं म्हटलें तर “ब्रियेनं आपला भर्ता, त्याचा पिता व पितामह या निघांना श्राद्ध यावें” या वचनाशीं विरोधी येतो.

अपुत्राणांचाह हेमाद्रावापस्तंबः अपुत्रायेमृताः केचिन्स्त्रियोवापुरुषाश्च ये तेपामपिचदेयस्यादेकोद्दिष्टं नपार्वणं मित्रबंधुमपिंडेभ्यः स्त्रीकुमारिभ्यएवच दशाद्वैमासिकं श्राद्धं सांवत्सरमतोन्यथा पारिजाते तु अन्यथापार्वणमित्युक्त्वा सर्वत्रपार्वणमित्युक्तं एकोद्दिष्टवाक्यानि तु तीर्थमहालयपराणीत्युक्तं पृथ्वीचंद्रोदये वृद्धगार्ग्यः मातुः सहोदरायाचपितुः सहभवाचया तयोश्चनेव कुर्वीतपार्वणं पिंडनाहते प्रचेताः सपिंडीकरणादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विश्रीयते अपुत्राणांच सर्वेषामपत्नीनांतथैवच अपत्नीनांत्रक्ष्माचार्यादीनां मार्कंडेयपुराणे प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः मृताहनियथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितं नृणामिति दृष्टान्तान् गोविप्रहतपाखंड्यादीनांमपिंडनाभावेपिमांस्वत्सरमेकोद्दिष्टं कार्यमेवेति शूलपाणिः अत्रिवृद्धवसिष्ठौ सपिंडीकरणादूर्ध्वयत्रयत्रप्रदीयते भ्रात्रेभगिन्येपुत्रायस्वामिनेमातुलायच पितृभ्यगुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं नपार्वणं यत्तुजातुर्कर्ण्यः पितृव्यभ्रातृमातृणामपुत्राणांतथैवच मातामहस्यामुतस्य श्राद्धादिपितृवद्वेदिति तदावश्यकत्वार्थान्तुपार्वणापर्यमिति हेमाद्रि युक्तं त्वेवम मातुः पितरमागभ्यत्रयोमानामहाः स्मृताः तेषांतुपितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्द्विहितमृत्नवइति पुलस्त्योक्तेमातामहस्यपार्वणमेव तत्साहचर्यांतपितृव्यादौ तथा पितृव्यभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं नपार्वणमिति श्रयाहोकोपक्रमेपुलस्त्योक्तेश्च विकल्पः केचिन्वापस्तंबादिवाक्यानि व्युत्क्रमाच्चप्रतीतानानेवकार्यामपिंडतेत्यस्यपितृव्यादिपरन्वाद्कृतमपिंडनपितृव्यादिपराणीत्याहुः मानामपन्नमाना एकोद्दिष्टंतु कनिष्ठपरमिति पृथ्वीचंद्रोदयेत्येवम विशेषस्त्वधिकारिर्निर्णये प्रागुक्तः केचिन्पुत्रांतराभावेपि पितामहवार्पिकमाप्यावश्यकम् पुत्राभावेचननपुत्रः पत्नीमातातथापि ता वित्ताभावेपिमच्छिष्यः कुर्यात्तस्योर्ध्वदेहिकमिति मार्कंडेयपुराणादित्याहुस्तत्र पौत्रेणैकादशाहादिकर्तव्यं श्राद्धं षोडशमितिकानीये विशेषोक्तः ।

पुत्रहितांना सांगतो हेमाद्रीत आपस्तंब पुत्ररहित जे कोणी स्त्रिया किंवा पुरुष मृत अगतील त्यांचींही श्राद्ध करावें, तें एकोद्दिष्ट. पार्वण करूं नये. मित्र, बंधु, सपिंड, स्त्रिया, कुमारी यांचें मासिकश्राद्ध करावें. आणि सांवत्सरिक एकोद्दिष्ट करावें.” पारिजातांत तर अन्यथा म्हणजे पार्वण असें सांगून सर्वत्र पार्वण, असें सांगितलें. एकोद्दिष्ट करावें म्हणून जीं वाक्ये आहेत ती तीर्थश्राद्ध, महालय यांच्या विषयी आहेत, असें सांगितलें आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धगार्ग्य—“मावशी व आल्या यांचें श्राद्ध सपिंडीकरणानांतून पार्वण करूं नये.” प्रचेता—पुत्ररहित व अपत्नीक (प्रक्ष्माची इत्यादिक) यांचें सपिंडीकरणानंतर एकोद्दिष्ट करावें.” मार्कंडेयपुराणांत—“पुरुषांनीं स्त्रियांचें प्रतिवर्षी. मृतदिवशीं यथाविधि एकोद्दिष्ट करावें. जसें पुरुषांचें मृतदिवशीं श्राद्ध सांगितलें आहे तद्वत्.” या वचनांत ‘नृणां’ म्हणजे पुरुषांचें, या दृष्टांतवरून गाई, बाघाण यांनीं मारलेले व पाखंडी इत्यादिकांचें सपिंडीकरण नयलें तरी प्रतिसांवत्सरिक एकोद्दिष्ट करावेंच, असें शूलपाणि सांगतो. अत्रि आणि वृद्धवसिष्ठ—“भ्राता, भगिनी, पुत्र, स्वामी, मातुल, पितृव्य, गुरु यांना सपिंडीकरणानंतर ज्या ज्या ठिकाणीं श्राद्ध यावयाचें त्या त्या ठिकाणीं एकोद्दिष्ट यावें. पार्वण देऊं नये.” आतां जें आतुर्कर्ण्य सांगतो की, “पितृव्य,

आता, माता हे पुत्ररहित असतां आणि अपुत्र मातामह यांचें श्राद्धादिक पित्याप्रमाणें होईल" असें तें अवश्य करावें इत-
क्यासाठी आहे. पार्वणासाठी नाही, असें हेमाद्रि सांगतो. युक्त म्हटलें म्हणजे अहं-आह कीं, "मातेचा पिता आरंभ करून
तिचे (मातेचा पिता, पितामह व प्रपितामह) मातामह म्हटले आहेत, त्यांचें श्राद्ध कन्यापुत्रां पित्याप्रमाणें करावें." या
पुलस्त्यवचनावरून मातामहाचें पार्वणच करावें. जातृकर्ण्यवचनांत मातामहांबरोबर पितृव्यादिक असल्यामुळे त्यांचें (पितृ-
व्यादिकांचें) तसेंच करावें. आणि "पितृव्य, भ्राता, माता यांचें एकोद्दिष्ट करावें, पार्वण करूं नये" असेंही क्षयाहाच्या उप-
क्रमांत (निर्णयारंभी) पुलस्त्यवचन असल्यामुळे पार्वणाचा विकल्प होतो. केचित् ग्रंथकार नर—पूर्वोक्त आपस्तंब
वृक्षगार्ग्य इत्यादिकांचीं एकोद्दिष्ट विधायक वचनं "व्युत्क्रमानं (उलट-म्हणजे वडील जीवंत असतां कनिष्ठ मरणें. या
क्रमानें) मृत असतील त्यांचें संपिंडीकरण करूं नये" हें वाक्य पितृव्य, भ्राता, माता इत्यादिविषयक असल्यामुळे ज्यांचें
संपिंडीकरण झालेलें नाही, अशा पितृव्यादिविषयक (आपस्तंबादिवचनं) आहेत, असें सांगतात. ह्या वरील वचनांत माता
म्हणजे सापलमाता समजावी. एकोद्दिष्ट तर कनिष्ठविषयक आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत असेंच आहे. विशेष तर अधिकारि-
निर्णयांत पूर्वी सांगितला आहे. केचित् ग्रंथकार—पुत्र नाही, पौत्र आहे, अशा स्थलीं त्या पौत्राला पितामहाचें गांवस-
रिक्की आवश्यक आहे. कारण, "पुत्राच्या अभावीं पौत्रानें, पत्नीनें, मातेनें, पित्यानें, आणि द्रव्याच्या अभावीं देखील सच्छि-
व्यानं मृताचें और्ध्वदेहिक करावें," असें मार्कंडेयपुराणवचन आहे, म्हणून सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, "पौत्रानें
एकादशाहादिक षोडश श्राद्धं करावी" या कातीयांत विशेष (षोडश श्राद्धं, असा) सांगितला आहे.

अथक्षयाहद्वैधेनिर्णयः तत्रैकोद्दिष्टमध्याह्नकार्यं मध्याह्नश्चपंचधाविभक्तदिनतृतीयभागइतिमा-
धवः आमश्राद्धंतुपूर्वाह्णेएकोद्दिष्टमुमध्यमे पार्वणंचापरह्णेतुप्रातर्वृद्धिनिमित्तकमिति हारीतोक्तौप्रातःशब्द
साहचर्यात् तत्रापिकुतपादिपुमुहूर्तद्वितयेज्ञेयं प्रारभ्यकुतपेश्राद्धं कुर्यादारौहिणंबुधः विधिज्ञोविधिमास्थायरौ-
हिणंतुलंघयेदितिगौतमोक्तेरेतत्परत्वान् रौहिणोनवमोमुहूर्तः मैथिलाः श्राद्धकौमुदीचैवम्
अन्यथा ऊर्ध्वमुहूर्तात्कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयं मुहूर्तपंचकंहेतत्स्वाभवनमिष्यतइत्यादिविरोधान् दीपिकापि
एकोद्दिष्टमुपक्रमेतकुतपइति माधवीयेन्यासोपि कुतपप्रथमेभागेएकोद्दिष्टमुपक्रमेत् आवर्तनसमीपेवा-
तत्रैवनिथितात्मवान् पृथ्वीचंद्रोदयेष्वेव तेनकुतपादिरौहिणांतोमुख्यःकालः दिनद्वयेतद्व्याप्तौसमव्याप्तौच-
पूर्वा विषमव्याप्तावाधिक्येननिर्णयः अव्याप्तौपूर्वेव परविद्धायानिपेधान् साचपूर्वदिनेरौहिणलंघनापत्तेः-
परैवेतिगौडाः शुक्लकृष्णवशात्स्वर्चदर्पाद्यैर्वाव्यवस्थेत्यन्ये तत्र परविद्धानिपेधप्राबल्यात् अत्रमूलकाल-
माधवीयेज्ञेयं ।

आतां क्षयाह (मृततिथि) दोन दिवशीं असतां निर्णय सांगतो—

त्यांत एकोद्दिष्ट मध्याह्नीं करावें. मध्याह्न म्हणजे दिवसाचे पांच भाग करून त्यांतील तिसरा भाग होय, असें माधव
सांगतो. कारण, "आमश्राद्ध पूर्वाह्नीं, एकोद्दिष्ट मध्याह्नीं, पार्वण अपराह्नीं आणि वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध प्रातःकालीं करावें." या
हारीतवचनांत 'प्रातः' हा शब्द आहे त्याच्याबरोबर असलेला मध्यमशब्दही तशाच भागाचा वाचक आहे. त्या मध्याह्नांतही
कुतप व रौहिण या दोन मुहूर्तांत करावें: कारण, विधि जाणणारांनं कुतपावर श्राद्ध आरंभून रौहिणमुहूर्तापर्यंत करावें. रौहिणाचें
तर उल्लंघन करूं नये" हें गौतमवचन ह्या एकोद्दिष्टविषयक आहे. आठवा मुहूर्त कुतप आणि नववा रौहिण. मैथिल व
श्राद्धकौमुदीकार हे असेंच (गौतमवचन एकोद्दिष्टविषयक) सांगतात. हें वचन एकोद्दिष्टविषयक मानलें नाही तर
"कुतप व त्याच्या पुढचें चार मुहूर्त मिळून हे पांच मुहूर्त श्राद्धाला इष्ट आहेत" इत्यादि वचनांशीं विरोध येईल. दीपि-
काही—"कुतपावर एकोद्दिष्ट आरंभावें." माधवीयांत व्यासही—"कुतपाच्या पहिल्या भागीं एकोद्दिष्टाचा उपक्रम
करावा; अथवा आवर्तन कालाच्या (मध्याह्नसंधीच्या) जवळ कुतपावरच आरंभ करावा." पृथ्वीचंद्रोदयांतही असेंच आहे.
यावरून कुतपापासून रौहिण आहे तोपर्यंत एकोद्दिष्टाचा मुख्य काल समजावा. दोन्ही दिवशीं संपूर्ण मुख्यकालव्यापिनी किंवा
समव्यापिनी (तिथि असतां) पूर्वा घ्यावी. दोन दोन दिवशीं कमीजास्त व्याप्ति असेल तर जी अधिक व्याप्ति असेल ती
तिथि घ्यावी. दोन्ही दिवशीं मुख्यकालव्याप्ति नसेल तर पूर्वांच घ्यावी. कारण, परतिथीनं विद्ध तिथि घेऊं नये, असा
निषेध आहे. तो पुढें सांगायचा आहे. पूर्व दिवसाची घेतली असतां त्या तिथींत श्राद्ध होणें अवश्य आहे म्हणून रौहिण-
मुहूर्ताचें उल्लंघन होईल, याकरितां पराच घ्यावी, असें गौड सांगतात. शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष यावरून किंवा खर्व (साम्य)
व दर्प (वृद्धि) इत्यादिकांवरून व्यवस्था समजावी. असें इतर ग्रंथकार सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, परविद्धा-
निषेध प्रबळ आहे. याविषयीं मूल कालमाधवीयांत जाणावें.

पार्वणत्वपराह्णकार्यं पूर्वोक्तवचनात् मध्याह्नव्यापिनीयास्यात्सैकोद्दिष्टेतिथिर्भवेत् अपराह्णव्यापिनीया पार्वणेसातिथिर्भवेदिति पृथ्वीचंद्रोदयेवृद्धगौतमोक्तेश्च पूर्वेषु रेवपरेषु रेववापराह्णव्याप्तौ सैवग्राह्या दिनद्वयेतद्व्याप्तौ तदस्पृशतः समव्याप्तौ वा पूर्वैव विषमव्याप्तौ त्वधिकाग्राह्या अपराह्णव्यापिनीयादादिकस्य यदातिथिः महतीयत्रतद्विद्वांशं संतिमहर्षय इति मरीचिस्मृतेः दर्शच पूर्णमासंचपितुः सांवत्सरदिनं पूर्व- विद्धामकुर्वाणो नरकंप्रतिपद्यत इत्यपराकनारदोक्तेः ग्रहेष्वव्यापिनीचेत्स्यान्मृताहस्ययदातिथिः पूर्व- विद्धाप्रकर्तव्या त्रिमुहूर्ता भवेद्यदीति सुमंतूक्तेः पूर्वस्यां निर्वपेत्पिंडानित्यांगिरसभाषितमिति हेमाद्रौ पाठः तत्रैव वृद्धमनुः नद्यह्नव्यापिनीचेत्स्यान्मृताहस्यचयातिथिः पूर्वविद्धैव कर्तव्या त्रिमुहूर्ता चया भवेत् मदन- रत्नेष्वेवं यत्तु कार्णार्जिनिव्याप्तौ अहोस्तमयवेलायां कलामात्रायदातिथिः सैव प्रत्यादिके ज्ञेयानाप- रापुत्रहानिदेति त्रिमुहूर्तस्तुतिः पूर्वेषु सायं त्रिमुहूर्ता भवेत्तु परैव त्रिमुहूर्तानचेद्वाद्यापैव कुतपेहिसेति काला- दर्शंगोभिलोक्तेः कालादर्शेऽपि प्रत्यादिकेष्वेवमेवतिथिर्ग्राह्यापराह्णिकी उभयत्र तथात्वे तु महत्त्वेन विनिर्णयः समत्वे पूर्वविद्धैव ह्यतथात्वेऽपि सायं त्रिमुहूर्ता भवेत्सायंसर्वेष्टोयं विनिर्णयः अन्यत्रापि सायंत- न्यपरत्रचेन्मृततिथिः सैवादि के मासिके ग्राह्यासा अपराह्णयोर्यदितदायत्राधिका सामता तुल्याचेदुभयापराह्ण- समये पूर्वानचेत्तु द्वये पूर्वैव त्रिमुहूर्तग्रास्तमयेनोचेत्परैवोचिता ।

पार्वणं तर अपराह्णं करावें. कारण, याविषयी पूर्वी मांगितलेलं हारीतवचन आहे. आणि “जी मध्याह्नव्यापिनी ती एकोद्दिष्टविषयी तिथि ध्यावी. व जी अपराह्नव्यापिनी ती पार्वणाविषयी तिथि गमजावी” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धगौ- तमाचें वचनही आहे. पूर्वदिवशींच किंवा परदिवशींच अपराह्नव्याप्ति असतां तीच ध्यावी. दोन दिवशीं संपूर्ण अपराह्नव्याप्ति अगतां किंवा मुळींच अपराह्नव्याप्ति नसतां अथवा अंशानें मारखी व्याप्ति अगतां पूर्वांच ध्यावी. विषम (कमीजास्त) व्यप्ति अगतां अधिक असेल ती ‘यावी. कारण, ‘सांवत्सरिकाची तिथि ज्या वेळीं दोन दिवशीं अपराह्नव्यापिनी असेल त्या वेळीं अधिकव्यापिनी असेल तिची प्रशंगा महापिं करितात” अशी मरिचिस्मृति आहे. “दर्शपूर्णमास याग, व बापाचें सांवत्सरिक ह्रीं पूर्वविद्ध तिथीय न करणारा नरकाय जातो” असें अपराकांत नारदवचन आहे. “सांवत्सरिकाची तिथि ज्या वेळीं दोन्ही दिवशीं अपराह्नव्यापिनी नाहीं, त्या वेळीं पूर्वदिवशीं सायंकाळीं तीन मुहूर्त असेल तर ती पूर्वा करावी” असें सुमंतुवचन आहे. ‘पूर्वविद्धा’ या शिक्कां ‘पूर्वस्यां निर्वपेत् पिंडानित्यांगिरसभाषितं’ असा हेमाद्रौ पाठ आहे. त्याचा अर्थ—‘पूर्वतिथ्यांत पिंड यावे, असें आंगिरस मांगतो’ असा आहे. तेथेंच वृद्धमनु—“जी मृतदिवसाची तिथि दोन्ही दिवशीं अपराह्नव्यापिनी नसेल व सायंकाळीं त्रिमुहूर्तव्यापिनी असेल ती पूर्वविद्धाच करावी.” मदनरत्नांतही असेंच आहे. आतां जें कार्णार्जिनि व व्यास मांगतो की, जेव्हां सूर्यास्तगमयी कलामात्र तिथि असेल तेव्हां प्रतिमां वत्सरिकाम तीच तिथि ध्यावी, परा घेऊं नये; कारण, परतिथि पुत्रहानि करणारी आहे ही पूर्वी मांगितलेल्या त्रिमुहूर्तांची स्तुति आहे. पूर्वदिवशीं सायंकाळीं तीन मुहूर्त नसेल तर पराच ध्यावी. कारण, पूर्वदिवशीं सायंकाळीं तीन मुहूर्त नसेल तर घेऊं नये, पराच ध्यावी; कारण, ती कुतपकाळी आहे,” असें कालादर्शांत गोभिलवचन आहे. कालादर्शांतही “प्रतिमां वत्सरिकांतही अशीच अपराह्नव्यापिनी असेल ती तिथि ध्यावी. दोन्ही दिवशीं अपराह्नव्यापिनी असेल तर अधिक ती ध्यावी. दोन दिवशीं समव्याप्ति असतां व मुळींच व्याप्ति नसतां जर सायंकाळीं त्रिमुहूर्त असेल तर ती पूर्वविद्धाच ध्यावी, हा निर्णय सर्वांना ईष्ट आहे.” अन्यग्रंथांतही—दुमन्या दिवशीं सायंकाळीं जर मृत तिथि असेल तर तीच प्रत्यादिकाम व मासिकाम ध्यावी, ती जर दोन्ही दिवशीं अपराह्ण असेल तर अधिक असेल ती ध्यावी. दोन्ही अपराह्ण गमान असेल तर पूर्वी ध्यावी. दोन्ही दिवशीं अपराह्ण नसेल व पूर्व दिवशीं सूर्यास्तगमयी तीन मुहूर्त असेल तर ती पूर्वांच ध्यावी. सायंकाळीं तीन मुहूर्त नसेल तर पराच योग्य आहे.”

माधवपृथ्वीचंद्रौ तु दिनद्वयेपराह्नव्याप्तौ अंशतः समव्याप्तौ च क्षये पूर्वावृद्धौ परा खर्वदोषोपरोप्या- वित्युक्तेः अपराह्नद्वयव्यापिन्यतीतस्य चयातिथिः क्षये पूर्वाचर्कतव्यावृद्धौ कार्यातथोत्तरेति बौधायनोक्तेः क्षयाहस्यतिथिर्यातु अपराह्नद्वयेयदि पूर्वाक्षये तु कर्तव्यावृद्धौ कार्यातथोत्तरेति बृहन्नारदीया चेत्याहुः वृद्धि- क्षयौ चात्र परतिथेर्नोत्प्राप्त्यतिथेः तस्याः क्षये पराह्नद्वयव्याप्तेरसंभवात् तदाह माधवः नप्राप्त्यतिथिर्नोवृद्धि- क्षयावृद्धतिथेस्तुताविति यतु पृथ्वीचंद्रः पूर्वोक्तवचनेषु यत्र सायाह्नास्तमययोगिनीतिथिरुक्ता तत्रापराह्न- व्यापिनीक्षेया सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यात्तत्र भ्रातृनकारयेदिति मान्स्यादौ सायाह्ननिवेधान् यत्र त्रिमुहूर्तास्त्रिमुहूर्त-

तच्छ्राद्धार्हापराह्णरूपत्रिमुहूर्तपरमित्याह तद्देमाद्रिमदनरत्नकालादूर्ध्वादिप्रथमविरोधाह्मभ्रणपक्षेत्र-
चित्यम् तस्मात्पूर्वोक्तमेवसाधु ।

माधव आणि **पृथ्वीचंद्र** तर दोन्ही दिवशीं अपराह्णव्याप्ति आणि अंशानें समव्याप्ति असतां तिथि क्षय होणारी असेल तर पूर्वा आणि तिथि वृद्धि होणारी असेल तर परा प्यावी. कारण, 'स्वर्व (साम्य) आणि दर्प (वृद्धि) हे पर योग्य आहेत' असें वचन आहे. "मृताहाची जी तिथि दोन दिवशीं अपराह्णव्यापिनी असेल ती क्षय असतां पूर्वा आणि वृद्धि असतां परा करावी" असें **बौधायनाचें** वचन आहे. आणि "मृताहाची तिथि जर दोन अपराह्णांत आहे तर क्षयगामिनी असतां पूर्वा आणि वृद्धिगामिनी असतां उत्तरा करावी" असें **बृहन्नारदीयांतही** वचन आहे, असें सांगतात. येथें वृद्धि आणि क्षय हे परतिथीचे समजावे. ग्राह्यतिथीचे समजूं नयेत: कारण, ग्राह्यतिथि क्षयगामिनी असेल तर दोन दिवशीं संपूर्ण अपराह्णव्याप्ति संभवणार नाही. तेंच **माधव** सांगतो- "ग्राह्यतिथीचे वृद्धिक्षय समजूं नयेत. पुढच्या तिथीचे गमजावे." आतां जें **पृथ्वीचंद्र** सांगतो की, 'जेथें पूर्वोक्त (कार्णाजिनि-व्यासादि) वचनांत मायाहीं अस्तमयव्यापिनी तिथि गांगितली तेथें अपराह्णव्यापिनी समजावी. कारण, "सायाह्ण काल तीन मुहूर्त आहे, त्या कालीं श्राद्ध करूं नये" असा **मत्स्यपुराणादिकांत** सायाह्णाचा निषेध आहे. आणि पूर्वोक्त सुमंतु इत्यादि वचनांत जें त्रिमुहूर्तादि तिथीचें ग्रहण सांगितलें तें श्राद्धाला योग्य जो अपराह्णरूप त्रिमुहूर्त तद्विषयक आहे, असें सांगतो. तें पृथ्वीचंद्राचें मत: **हेमाद्रि, मदनरत्न, कालादर्श** इत्यादि ग्रंथांशीं विरुद्ध असल्यामुळे आणि सायाह्ण शब्दाची अपराहीं लक्षणा कंठ लागेल म्हणून वित्य (अनादृणीय) आहे. तस्मात् पूर्वोक्त (पूर्वदिवशीं सायंकालीं त्रिमुहूर्त नसेल तर परा इत्यादि) निर्णयच वरोबर आहे.

यदाविघ्नवशादिनेसांवत्सरश्राद्धनकृततदारात्रावपिकार्यं मृनाहंसमतिक्रम्यचंडालेष्वभिजायतइति**मरी-
चिना**मृताहातिक्रमेदोषोक्ते: नचनक्तंश्राद्धंकुर्वीतारब्धेवाभोजनसमापनमित्यापस्तंबेनगौणकालोक्तेश्चेति
माधव: आरब्धेवाब्धेविघ्नवशाद्रात्रिभागेपतेभोजनसमाभ्यंतरात्रौकार्यशेषममाभि:परदिनेएवेति**हरदत्त:**
ग्रहणदिनेवार्षिकप्राप्तौतद्दिनएवात्रेनामेनहैन्नावाकुर्यात् नोत्तरदिनेइत्युक्तंप्राक्**ग्रहणनिर्णये** तच्चप्रथमाब्दि-
कंत्रयोदशेमलमासेकार्यमन्यथान प्रत्यव्दंद्वादशेमासिकार्यापिंडक्रियासुते: कचित्रयोदशेपित्यादाद्यमुक्त्वातु-
वत्सरमितिलघु**हारीतो**क्ते: इदमंत्याधिकमासपरं द्वादशेत्रयोदशेवातीतइत्यर्थ: तेनयत्रद्वादशमासिकं-
शुद्धमासेभवति तत्रत्रयोदशेधिकेएवाब्दिकंकार्यं यत्राधिकमध्येद्वादशमासिकंतत्रतस्यद्विरावृत्तिकृत्वाचतुर्दशे-
शुद्धएवप्रथमाब्दिकमिति**माधवीये हेमाद्रौ**चैवं द्वितीयाब्दिकंतुशुद्धमासएवनाधिकेनाप्युभयो: मल-
मासमृतानांतुयदासएवाधिक:स्यात्तदातत्रैवकार्यमन्यथाशुद्धएवेतिप्रागुक्तम् ।

जेव्हां कोणत्याही विघ्नाच्या योगानें दिवसा सांवत्सरिक श्राद्ध केलें नसेल तेव्हां तें रात्रीही करावें. कारण, "मृतदिवसाचें अतिक्रमण केलें तर चंडालांत जन्म होतो" असा **मरीचीनें** मृतदिवसाच्या उल्लंघनाविषयी दोष सांगितला आहे. "रात्री श्राद्ध करूं नये, व श्राद्धाला आरंभ केला तर ब्राह्मणभोजनापर्यंत करावें" या **आपस्तंब**वचनानें रात्री गौणकाल सांगितला आहे, असें **माधव** सांगतो. श्राद्धाला आरंभ केला असून विघ्नवेशंकरून रात्रि प्राप्त झाली असतां भोजनसमाप्तिपर्यंत रात्री करावें, शेषश्राद्धाची समाप्ति दुसऱ्या दिवशींच करावी, असें **हरदत्त** सांगतो. ग्रहणदिवशीं वार्षिक श्राद्ध प्राप्त असतां त्याच दिवशीं अर्चानं, आमनां किंवा हिरण्यानें करावें, दुसऱ्या दिवशीं करूं नये, असें पूर्वी **ग्रहणनिर्णयांत** सांगितलें आहे. तें श्राद्ध प्रथमाब्दिक असेल तर मृतमासापासून तेरावा मलमास असतां त्या मलमासांत करावें. अन्यथा म्हणजे द्वितीयादि आब्दिक तेराव्या मलमासांत करूं नये. कारण, "प्रतिवर्षी बारावा मास गेल्यावर तेराव्याच्या प्रारंभी पिंडदानक्रिया पुत्रांनीं करावी. क्वचित्स्थली (तेरावा अधिकमास असतां) प्रथमाब्दिक वर्ज्य करून द्वितीयादि आब्दिक तेरावा मास गेल्यावर चवदाव्याच्या प्रारंभी करावें" असें **लघुहारीत**वचन आहे. हें वचन तेरावा अधिकमास असेल तद्विषयक आहे. तेणेंकरून जेथें द्वादश मासिक शुद्धमासांत होतें तेथें तेराव्या अधिकांतच प्रथमाब्दिक करावें. जेथें अधिकांत बारावें मासिक होतें म्हणजे मृतमास धरून बारावा मास अधिक येतो, तेथें त्या द्वादशमासिकाची मलांत व शुद्धांत दोन वेळ आवृत्ति करून चवदाव्या शुद्धमासांतच प्रथमाब्दिक करावें, असें **माधवीयांत** आहे. **हेमाद्रींतही** असेंच आहे. द्वितीयादि आब्दिक तर शुद्धमासांतच करावें. अधिकांत किंवा दोन्ही मासांत करूं नये. मलमासांत-मृत झालेल्यांचें तर जेव्हां तोच मास अधिक येईल तेव्हां त्या अधिकांतच करावें. अन्यथा शुद्धांतच करावें, असें पूर्वी (प्रथमपरिच्छेदांत) सांगितलें आहे.

दर्शेवार्षिकेचेतत्तापूर्ववार्षिककृत्वातत:पिंडपितृयज्ञोदर्शश्राद्धेतिनिर्णयदीपेक्रमउक्त: स्मृतिसारेपि
दर्शेक्षयाहेसंप्राप्तैकयंकुर्वतियाजिका: आदौक्षयाहर्निर्वर्त्यपश्चाद्दर्शोविधीयतइति युक्तंवेवम् तद्वचनेमूलाभा-

वान् पिंडयज्ञंततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकंबुधइति दर्शश्राद्धे पिंडपितृयज्ञानंतर्यात्तस्याब्दिकेऽप्यतिदेशात्प्राप्तेऽपितृयज्ञानंतरं वार्षिकंततो दर्शश्राद्धमिति व्यतिषंगस्तु न भवत्येव तस्यार्थिकत्वात् कालादर्शोऽपि निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणमिति सर्वान् प्रत्यैकरूप्याभावात् क्षयाहनिमित्तस्यानियतत्वम् देवजानीयेऽप्येवं एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयं प्रत्यक्षं यो यथा कुर्यात्स तान्यपीतिसर्वातिदेशात् मृताहवृषोत्सर्गउक्तो हेमाद्रौ विष्णुधर्मे अयनद्वितये चैव मृताहैवांधवस्य च उत्सृजेन्नीलवृषभंकौमुद्याः समुपागमे कौमुदीकार्तिकी ।

दर्शाच्या दिवशी वार्षिक प्राप्त असेल तर पूर्वी वार्षिक करून नंतर पिंडपितृयज्ञ आणि दर्शश्राद्ध करावे, असा निर्णय-दीपांत कम सांगितला आहे. स्मृतिसारांतही “दर्शांत क्षयदिवस प्राप्त असतां याज्ञिक कसें करितात ? आधी क्षयाह-श्राद्ध करून नंतर दर्श करितात.” युक्त म्हटलें तर असें आहे की, त्या निर्णयदीपाच्या वचनास मूलप्रमाण नाही. आणि “पिंडयज्ञ करून नंतर दर्शश्राद्ध करावे” या वचनानें दर्शश्राद्धाचे ठायीं पिंडपितृयज्ञानंतरच सिद्ध झाल्यानें तें पिंडपितृयज्ञानंतरच अतिदेशानें (प्रकृति दर्श व त्याची विकृति गांवत्सरिक, प्रकृतीप्रमाणें विकृति करावी अशा अर्थानें) गांवत्सरिकाचे ठायींही प्राप्त असल्यामुळे पिंडपितृयज्ञानंतर गांवत्सरिक, नंतर दर्शश्राद्ध करावे. व्यतिषंग (पितृयज्ञ व वार्षिक यांचें सहा-नुष्ठान) तर होतच नाही; कारण, तो आर्थिक आहे. दर्शाच्या पूर्वी वार्षिकाविषयीं वरील स्मृतिसाराचें वचन आहे. आणि कालादर्शोऽती गांगतो—“दर्शापेक्षां पूर्वी करण्याचें कारण, याचें (गांवत्सरिकाचें) निमित्त अनियमित आहे हें होय.” सर्वानां क्षयाहश्राद्धे दर्शाग नाहीत म्हणून क्षयाहनिमित्त अनियमित होय. देवजानीयांतही असेंच आहे. याचप्रमाणें मासिकादिकांविषयीही गमजातें. कारण, ‘प्रतिवर्षां जो जसें करील त्यानें तीं (मासिकादिक) ही तशींच करावी’ असा सर्वांचा अतिदेश केलेला आहे. मृतदिवशीं वृषोत्सर्ग गांगितला आहे हेमाद्रौत विष्णुधर्मांत—“दोन अयनीं (दक्षिणायनी व उत्तरायणी), बांधवाच्या मृतदिवशीं आणि कार्तिकी पौर्णिमेस नीलवृषभाचा उत्सर्ग करावा.”

अथ शुद्धश्राद्धं दिवोदासीये सपिंडीकरणादूर्ध्वयावदब्दत्रयं भवेत् तावदेवनभोक्तव्यं क्षयेहनि-कदाचन वर्षान्तसपिंडनेत्येतत्तुल्यं मृताहनिनुसंप्राप्तेयावदब्दचतुष्टयं बहिःश्राद्धं प्रकुर्वीत न कुर्याच्छ्राद्धभोजनं प्रथमेऽप्यनिमित्तं द्वितीये मांसभक्षणं तृतीये रुधिरं प्रोक्तं श्राद्धं शुद्धं चतुर्थं कमिति श्राद्धकारिकोक्तः शुद्धं किंचिदिति ज्ञेयं स्मृत्यन्तरे सप्तत्रिंशच्चयोमासान् श्राद्धं मुंकेत मोहतः संपत्किदूषितः पापः प्रेताशीच भवेत्तु सः तत्र प्रथमेऽवर्षान्तसपिंडनपक्षे मृताहातपूर्वं हि सपिंडनमद्भूतिं श्राद्धं च कृत्वा पापेऽपि पूर्वापि कुर्यादिति स्मृत्यर्थ-सारे उक्तं हेमाद्रिस्तु मृताहसपिंडीकरणेनैव वार्षिकसिद्धिः पूर्णसंवत्सरे पिंडः पोडशः परिकीर्तितः तेनैव च सपिंडत्वं तेनैवाद्भिकमिष्यत इति वचनादित्याह इदमेव युक्तं ।

आनां शुद्ध श्राद्ध सांगतो—

दिवोदासीयांत—“सपिंडीकरणानंतर तीन वर्षे होत तोंपर्यंत वार्षिकश्राद्धांत कधीही भोजन करूं नये.” वर्षातीं सपिंडीकरण असतांही हा निषेध सारखाच (तीन वर्षे पुढें) आहे. कारण, “चार वर्षे होतपर्यंत मृतदिवस प्राप्त असतां बाहेर श्राद्ध करावे, व त्या श्राद्धांत भोजन करूं नये. प्रथमवर्षी अस्थि व मज्जा, दुसऱ्या वर्षी मांस आणि तिसऱ्या वर्षी रक्त भक्षण केल्यासारखे होतें. चवथें श्राद्ध किंचित् शुद्ध होय” असें श्राद्धकारिकें वचन आहे. इतर स्मृतींत—“अज्ञानानें नष्टबुद्धि असलेला जो मनुष्य मृतमासापासून सद्गतीस मायपर्यंत श्राद्धाचे ठायीं भोजन करितो, तो पापी, प्रेतभक्षी व पंक्ति-दूषित होतो.” तेथें प्रथमवर्षी वर्षातीं सपिंडीकरण या पक्षीं मृतदिवसाच्या पूर्वदिवशीं सपिंडीकरण आणि अद्भूतश्राद्ध करून दुसऱ्या दिवशीं वार्षिक करावे, असें स्मृत्यर्थसारांत उक्त आहे. हेमाद्रि तर—मृतदिवशीं सपिंडीकरणानेंच वार्षिकाची सिद्धि होते; कारण, “पूर्ण संवत्सर झालें असतां सोळावा पिंड सांगितला त्यानेंच सपिंडत्व (सपिंडीकरण) आणि आद्भिक होतें” असें वचन आहे, असें सांगतो. हेंच युक्त आहे.

अथ क्षयाहाज्ञानेमरीचिः श्राद्धविघ्नेसमुत्पन्ने अविज्ञाते मृते हनि एकादश्यांतु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषे-पतः इत्युक्तेः शुद्धेकादश्यामपि बृहस्पतिः न ज्ञायते मृताहश्चेत्परीतेऽपि तस्य मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्श-स्याद्वाद्भिकं दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्थयदापुनः प्रस्थानमासदिवसौ प्राण्यौ पूर्वोक्तयादिशा मन्वन्तर-भविष्ये मृताहं योनजानातिमानवो विनतात्मज तेन कार्यममावास्यां श्राद्धं संवत्सरं सदा दिनमेव तु जानाति-मासं नैव तु योनरः मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत् निर्णयामृते तु यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमे-

वतु तदाचाषाढकेमासिमाघेवातद्दिनंभवेत् इतिबृहस्पतिस्मृतेराषाढोप्युक्तः कालादर्शोपि मासाज्ञानेदिनज्ञानेकार्यमाषाढमाघयोरित्युक्तं हेमाद्राप्रभासखंडे मृताहंयोनैजानातिमासंवापिकथंचन तेनकार्यमावास्यांश्राद्धमाघेऽथैवमार्गके भविष्ये मृतवार्ताश्रुतेर्ग्राह्यांतौपूर्वोक्तक्रमेणेतु पूर्वोक्तेतिप्रस्थानदिनाज्ञानेमासज्ञानेचतद्दर्शे मासाज्ञानेदिनज्ञानेचमार्गादावितिबृहस्पतिवर्णनेपिज्ञेयमित्यर्थः श्रवणदिनमासाज्ञानेमाघमार्गदर्शेकार्यं पूर्वोक्तप्रभासखंडात् अतोत्रलोपइतिशूलपाण्युक्तंहेयं तिथितत्त्वेयमः गतस्यनभवेद्वार्तायावद्वादशवार्षिकी प्रेतावधारणंतस्यकर्तव्यंसुतबांधवैः यन्मासियदहर्थातस्तन्मासितदहःक्रिया विनाज्ञानंकुहूस्तस्यआषाढस्याथवाकुहूः ।

आतां क्षयाहाचें (मृत दिवसाचें) अज्ञान असतां सांगतो—

मरीचि—“कोणत्याही कारणांनं श्राद्धाला विघ्न उत्पन्न झालें असतां आणि मृतदिवसाचें अज्ञान अगतां विशेषकरून कृष्णपक्षाच्या एकादशीस तें श्राद्ध करावें.” या वचनांत विशेषकरून असें म्हटल्यावरून शुक्लएकादशीमही करावें. **बृहस्पति—**“प्रवासांत मृत असतां मृतदिवसाचें ज्ञान नसून महिन्याचें ज्ञान असेल तर त्या महिन्याच्या अमावास्यास वार्षिक श्राद्ध करावें. जेव्हां मरणदिवस आणि मरणमास यांचें ज्ञान नसेल तेव्हां त्या मनुष्याने घरांतून प्रस्थान ज्या मासांत ज्या दिवशीं केलें असेल तो मास व तो दिवस पूर्वोक्त रीतीनें—म्हणजे मागजान असून दिवसाचें अज्ञान असतां दर्श इत्यादि रीतीनें घ्यावा.” **मदनरत्नांत भविष्यांत—**“ज्या मनुष्यास मृतदिवसाचें ज्ञान नसेल त्यानें सर्वदा अमावास्यास सांवत्सरिक करावें. दिवसाचें ज्ञान असून मासाचें ज्ञान नसेल त्यानें मार्गशीर्ष, भाद्रपद किंवा माघ या मासांत तो दिवस (तिथि) घ्यावा.” **निर्णयामृतांत** तर—जेव्हां मासाचें ज्ञान नाही, दिवसाचें मात्र ज्ञान आहे तेव्हां आपाढांत किंवा माघांत तो दिवस घ्यावा.” ह्या बृहस्पतिस्मृतीवरून आषाढही सांगितला आहे. **कालादर्शांतही** मागाचें अज्ञान व दिवसाचें ज्ञान असतां आषाढ व माघ यांत करावें” असें सांगितलें आहे. **हेमाद्रांत प्रभासखंडांत—**“ज्याला मृत दिवसाचें व मागाचें ज्ञान नसेल त्यानें माघांत अथवा मार्गशीर्षांत अमावास्यास श्राद्ध करावें.” **भविष्यांत—**“मागाचें व दिवसाचें ज्ञान नगतां मृताची वार्ता ज्या मासांत व ज्या दिवशीं ऐकली असेल तो मास व तो दिवस पूर्वोक्त क्रमानें म्हणजे पूर्वीं जसें प्रस्थानदिवसाचें अज्ञान असून प्रस्थानमासाचें ज्ञान असतां त्या मासाच्या अमावास्यास, मासाचें अज्ञान असून दिवसाचें ज्ञान असतां मार्गशीर्ष इत्यादिकांत सांगितलें; तसें—येथें वार्ताश्रवण झालेल्या मासदिवसाचें ठायीं जाणावें, असा इत्यर्थ होय. वार्ताश्रवणाचा दिवस व मास यांचें अज्ञान असतां माघ व मार्गशीर्ष यांच्या अमावास्यास करावें; कारण, याविषयी पूर्वीं हेमाद्रांत प्रभासखंडांतील वचन सांगितलें आहे. म्हणून ‘येथें वार्ताश्रवणदिवसाचें वगैरे ज्ञान नसतां श्राद्धाचा लोप होतो’ असें शूलपाणीनें सांगितलेलें त्याज्य आहे. **तिथितत्त्वांत यम—**“प्रवासांत गेलेल्याची वार्ता बारा वर्षे समजली नाही, म्हणजे त्याचा प्रेतसंस्कार पुत्रांनीं व बांधवांनीं करावा. ज्या महिन्यांत ज्या दिवशीं घरांतून गेलेला असेल त्या मासांत त्या दिवशीं त्याची क्रिया करावी. गेलेल्या दिवसाचें अज्ञान असतां अमावास्या घ्यावी. मासाचें व दिवसाचें अज्ञान असतां आषाढी अमावास्या घ्यावी.”

अथश्राद्धविघ्नेनिर्णयः तत्रविप्रस्थनिमंत्रणोत्तरंसूतकेमृतकेचाशौचाभावः निमंत्रितेपुत्रिपुत्रारब्धे श्राद्धकर्मणि निमंत्रणाद्विप्रस्थस्वाभ्यायाद्विरतस्यच देहेपितृपुतिष्ठत्सुनाशौचंविद्यतेकचिदितिब्राह्मोक्तेः कर्तुस्तुविष्णुराह व्रतयज्ञविवाहेषुश्राद्धेहोमेर्चनेजपे आरब्धेसूतकंनस्यादनारब्धेतुसूतकं श्राद्धेप्रारंभस्तैनैवोक्तः प्रारंभोवरणयज्ञेसंकल्पोव्रतसत्रयोः नांदीमुखंविवाहादौश्राद्धेपाकपरिक्रियेति माधवीयेब्राह्मोपि श्राद्धादौपितृयज्ञेचकन्यादानेचनोभवेत् मिताक्षरायांस्मृत्यंतरेसद्यःशौचंप्रकृत्य यज्ञेसंभृतसंभारेविवाहेश्राद्धकर्मणीति तिथितत्त्वादिगौडग्रंथास्तुनिमंत्रणोत्तरंकर्तुर्भोक्तृश्रनाशौचं निमंत्रणोत्तरंश्राद्धेप्रारंभःस्यादितिस्मृतिरिति विष्णूक्तेः यत्तुश्राद्धेपाकपरिक्रियेति तद्दर्शेश्राद्धविषयमित्याहुः दातृगृहेमरणादौ ब्राह्मोक्तं भोजनार्थंतुसंभुक्तेविप्रैर्दातुर्विपद्यते गृहेइतिशेषः यदाकश्चित्तदोच्छिष्टंशेषंयत्क्वासमाहिताः आचम्यपरकीयेनजलेनशुचयोद्विज्जाइति अस्यश्राद्धविषयत्वहेमाद्रिणोक्तं पृथ्वीचंद्रोदयेष्वं ममतुप्रतिभाति इदंविवाहादिविषयं नतुश्राद्धविषयं तत्पदाभावात् विवाहोत्सवयज्ञेष्वित्युपक्रम्य मुंजानेषुतुविप्रेषुत्वंतरामृतसूतके अन्यगोहोदकाचांताःसर्वेतेषुचयःस्मृताइति षट्त्रिंशन्मतैकवाक्यात् निमंत्रितेपुत्रिमे-

पुप्रारब्धेश्राद्धकर्मणीतिपूर्वोक्तविरोधाच्च श्राद्धेतुयद्यपिविष्णुनापाकोत्तरमशौचाभावउक्तस्तथापिकतुरेवसः भोक्तुर्दोषोऽस्येव अपिदाहृगृहीत्रोश्चसूतकेतुतथा अविज्ञातेनदोषःस्याच्छ्राद्धादिवृत्तयश्चन विज्ञातेभोक्तुरेवस्यात्प्रायश्चित्तादिकंक्रमात् इतिमाधवीयेब्राह्मोक्तेः आदिशब्देनाशौचमुच्यते तथाहविष्णुः ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवात्रमभ्रातितस्यतावदाशौचंयावत्तेषामाशौचव्यपगमेप्रायश्चित्तं कुर्यादिति यत्तु देहे-पितृपुत्रिष्ठसुनाशौचंविद्यतेकचिदितिब्राह्मंतच्छ्राद्धकालीनस्यनिषेधकंनतदुत्तरकालीनस्य शुद्धिदीपस्तुनि-मंत्रितेध्वित्यामश्राद्धपरं भोजनार्थेध्वित्यादित्वन्नश्राद्धपरमेत्याह ।

आतां श्राद्धाला सूतकादि विघ्न प्राप्त असतां निर्णय सांगतो—

ब्राह्मणांना निमंत्रण दिल्यावर त्याच्या मणिंज्जंन जनन किंवा मरण झाले तरी त्यास आशौच नाही. कारण, “ब्राह्मणांना निमंत्रण देऊन श्राद्धकर्माला आरंभ झाला असतां निमंत्रणाच्या योगानें वेदाध्ययन बंद करणाऱ्या ब्राह्मणाच्या अंगान्तर पितर येऊन राहिले अगतां त्या ब्राह्मणाला कोणतेंही आशौच नाही” असें ब्राह्मवचन आहे. श्राद्धकर्माला तर विष्णु सांगतो— “व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप, यांचा आरंभ केला असतां सूतक नाही. आरंभ केला नसेल तर सूतक प्राप्त होतें.” श्राद्धाचा प्रारंभ कोणता तो त्यानेच (विष्णूने) गांणितला आहे, तो अगा— “यज्ञाचा प्रारंभ ऋत्विगवरण समजावा. व्रत आणि मन्त्र यांचा प्रारंभ संकल्प होय. विवाहादि मंगलकर्मांचा प्रारंभ नांदीश्राद्ध होय. आणि श्राद्धाचा प्रारंभ पाककिंवा होय. माधवीयांत ब्राह्मांतही - “श्राद्धादिकर्मांत, पित्याच्या और्ध्वदेहिकांत व कन्याविवाहांत आशौच होत नाही.” मितक्षरैत इतर स्मृतींत—गद्यशौच प्रकरण चालले अगतां गांगनी—“गद्ये गामग्री संपादन केलेल्या अशा यज्ञांत, विवाहांत आणि श्राद्धकर्मांत आशौच प्राप्त अगतां गद्यशौच (नात्काल शुद्धि) होते.” तिथितत्त्वादि गौडग्रंथ तर—ब्राह्मणांना निमंत्रण दिल्यानंतर कर्त्याला व भोक्त्याला आशौच नाही. कारण, “ब्राह्मणनिमंत्रण झाल्यावर श्राद्धाला प्रारंभ होतो, अशी स्मृति आहे.” असें विष्णुवचन आहे. आतां जें श्राद्धाचे ठायीं पाकक्रिया हा प्रारंभ, असें पूर्वी सांगितलें तें दर्शश्राद्ध-विषयक आहे, असें गांगतान. श्राद्धकर्त्याच्या घरीं कोणी गृत वर्गरे असतां ब्राह्मांत सांगितलें आहे तें असें—“ब्राह्मणांनीं अर्धं भोजन केलें अगतां जेव्हां दात्याच्या (यज्ञमानाच्या) घरांत कोणी मरेल तर त्या वेळीं ब्राह्मणांनीं शेष उच्छिष्ट टाकून पात्रावरून उठून दुग्ण्या उदकांन आचमन केलें अगतां ते ब्राह्मण शुद्ध होतात.” हें वचन श्राद्धविषयक आहे, असें हेमाद्रीनें सांगितलें आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांतही असेंच आहे. मला तर असें वाटतें की, हें वचन विवाहादिविषयक आहे. श्राद्ध-विषयक नाही; कारण, या वचनांत श्राद्धाद नाही. असें मानलें असतां, विवाहोत्सव, यज्ञ यांचा उपक्रम करून “ब्राह्मण भोजन करीत असतां मध्यंतरां गृतायांच व जननाशौच प्राप्त असतां ब्राह्मणांनीं उठून दुग्ण्या घरांतील उदकांन आचमन करावें, म्हणजे ते गारे शुद्ध होतात.” या पृथ्वीशमनाशीं एकवाक्यता (गमान् अर्थ) होते. आणि वरील वचन श्राद्धविषयक मानलें तर ब्राह्मणाला निमंत्रण दिलें व श्राद्धकर्माला आरंभ केला अगतां आशौचाचा अभाव” म्हणून सांगितलें त्याच्याशीं विरोधी येतो. श्राद्धाचे ठायीं जरी विष्णूनें पाक झाल्यानंतर आशौच नाही म्हणून सांगितलें तरी तें कर्त्यालाच समजावें. भोक्त्याला दोष आहेच. कारण, “श्राद्धादिकर्मांमध्यें कर्ता व भोक्ता यांना सूतकांच व सूतकांचें ज्ञान नसतां मुळींच दोष नाही, ज्ञान असेल तर भोक्त्यालाच दोष आहे, म्हणून त्यानें अनुक्रमानें प्रायश्चित्तादिक करावें” असें माधवी-यांत ब्राह्मवचन आहे. या वचनांत ‘प्रायश्चित्तादिकं’ यांत ‘आदि’ शब्द आहे त्यानें आशौच गमजावें. तेंच आशौच विष्णु सांगतो—“ब्राह्मणादिकांच्या आशौचांत जो एकवारच अन्न भक्षण करितो त्याला, जितकें त्या ब्राह्मणादिकांस आशौच तितकें समजावें. आशौच गेल्यानंतर प्रायश्चित्त करावें.” आतां जें “अंगावर पितर आले असतां कोणतेंही आशौच नाही” असें पूर्वी ब्राह्मवचन सांगितलें तें श्राद्धकालीं आशौचाचा निषेध करणारें आहे. श्राद्धोत्तर आशौचाचा निषेध करणारें नव्हे. शुद्धिदीप तर ‘निमंत्रितेषु’ हें ब्राह्मवचन आमश्राद्धविषयक आहे. ‘भोजनार्थे तु’ हें ब्राह्मवचन सिद्धांतश्राद्ध-विषयक आहे, असें सांगतो.

प्रायश्चित्त्वाहमार्कडेयः भुक्त्वातुब्राह्मणाशौचेचरेत्सांतपनं द्विजः एतत्कामतः अभ्यासेशंखः ब्राह्मणस्यतथाभुक्त्वामासमेकव्रतीभवेदिति अज्ञानालुच्छागलेयः एकाहंचत्र्यहंपंचसप्तरात्रमभोजनम् ततःशुचिर्भवेद्विघ्नःपंचगव्यपिबेन्नरइति वर्णक्रमेणेदम् अभ्यासेतुर्द्विगुण्यमित्यदिमिताक्षरामाधवीया-दौज्ञेयं मितक्षरामाधवादौतुश्राद्धेकर्तुर्भोक्तुश्चसर्वथादोषाभावउक्तः आशौचमध्येश्राद्धदिनप्राप्तौतुमाधवी-येकालादर्शंचऋष्यशृंगः देयेपितृणांश्राद्धेतुआशौचंजायतेयदा आशौचेतुव्यतिक्रांतेतेभ्यःश्राद्धंप्रदीयसे श्राद्धचिंतामणौज्योतिषे प्रतिसांबत्सरंश्राद्धमाशौचात्पतितंचयत् मलमासेपितृकार्यमितिभागुरिभा-

षितं आशौचांशदिनत्वेननिमित्तत्वादित्यर्थः एतन्मासिकादिपरं नदार्शिकादौ अतएवसुदर्शनभाष्ये अपरपक्षेपिष्याणीतिनियमात् कृष्णपक्षश्राद्धलोपेप्रायश्चित्तमेव नतुगौणकालेकरणं तद्योपवासः वेदोदिता-
नानित्यानां कर्मणां समतिक्रमे स्नातकप्रतलोपेचप्रायश्चित्तमभोजनमिति मनुक्तेरित्युक्तं आशौचेतुप्रायश्चित्त-
मपिनमुख्यकालेअनधिकारान् ।

वरील वचनांत सांगितलेलें प्रायश्चित्त तें सांगतो **मार्कंडेय**—“ब्राह्मणाच्या आशौचांत ब्राह्मणानें आपल्या इच्छेनं भोजन केलें असतां सांतपन कृच्छ्र करावें.” आशौचांत वारंवार भोजन केलें असतां **शंख** सांगतो—“ब्राह्मणाच्या आशौचांत पुनःपुनः भोजन केलें असतां एक मास व्रत (कृच्छ्र) करावें.” अज्ञानानें भोजन केलें असतां सांगतो **छागलेय**—“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र यांच्या आशौचांत ब्राह्मणानें न जाणून भोजन केलें असतां अनुक्रमानें एक दिवस, तीन दिवस, पांच दिवस, आणि सात दिवस उपवास करून पंचगव्य प्राशन करावें, म्हणजे तो शुद्ध होतो.” याप्रमाणें वारंवार भोजन केलें असतां द्विगुणित प्रायश्चित्त करावें, इत्यादिप्रकार **मिताक्षरा**, **माधवीय** इत्यादि ग्रंथांतून जाणावा. **मिताक्षरा**, **माधव** इत्यादि ग्रंथांत तर श्राद्धाचे ठायीं कर्त्याला व भोक्त्याला सर्वथा दोष नाही, असें सांगितलें आहे. आशौचा-
मध्ये श्राद्धदिवस प्राप्त असेल तर **माधवीयांत** व **कालादर्शांत ऋष्यशृंग** सांगतो—“पितरांचें श्राद्ध कर्तव्य असतां जेव्हां आशौच प्राप्त होईल तेव्हां आशौच समाप्त झाल्यानंतर पितरांना श्राद्ध द्यावें.” **श्राद्धचिंतामणींत ज्योतिषांत**—“मलमासांत पडलेलें सांवत्सरिक आणि पूर्वमासांतील श्राद्ध आशौचामुळें मलमासांत प्राप्त झालेलें तें मलमासांतही करावें, असें भागुरिसुनीचें सांगणें आहे.” आशौचसमाप्ति मलमासांत असल्यामुळें तो दिवस श्राद्धाला निमित्त आहे असा भाव. हें वचन मासिक, वार्षिक यांविषयी आहे. दर्शादिविषयीं नाही. म्हणूनच **सुदर्शनभाष्यांत**—“कृष्णपक्षांत पितृकर्म करावीं.” अशा नियमावरून कृष्णपक्षांतली श्राद्धाचा लोप असतां प्रायश्चित्तच करावें; गौणकालीं करणें नाही. तें प्रायश्चित्त उपवास होय. कारण, “वेदविहित अशा नित्यकर्माचा अतिक्रम (लोप) झाला असतां आणि स्नातकाच्या व्रतांचा लोप असतां त्याला प्रायश्चित्त उपवास होय” असें **मनुचें** वचन आहे, असें सांगितलें आहे. अमावास्येस आशौच असेल तर प्रायश्चित्तही नाही. कारण, मुख्यकालीं श्राद्धाचा अधिकार नाही.

आशौचांतेऽसंभवेतुद्यासः श्राद्धविघ्नेसमुत्पन्नेत्वंतरामृतसूतके अमावास्यांप्रकुर्याद्वैशुद्धावेकेमनीषिणः हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मतेपि मासिकेचाव्दिकेत्वहिसंप्राप्तेमृतसूतके वदतिशुद्धांतत्कार्यदर्शेचापिविचक्षणाः गोभिलः देयेप्रत्याव्दिकेश्राद्धेअंतरामृतसूतके आशौचानंतरंकुर्यात्तन्मासेंदुक्षयेतथा मरीचिः श्राद्धवि-
घ्नेसमुत्पन्नेप्यविज्ञातेमृतेहनि एकादश्यांतुक्तव्यंकृष्णपक्षेविशेषतः विशेषतइत्युक्तेःशुद्धैकादश्यामपि आशौ-
चेतरविघ्नेएतदितिमाधवपृथ्वीचंद्रौ यत्त्वत्रिः तदहश्चेत्प्रदुष्येतकेनचित्सूतकादिना सूतकानंतरंकुर्या-
त्पुनस्तदहरेवचेतितपूर्वकालाभावेक्षेयं एतद्विदिकेतरश्राद्धपरं यच्चदेवलः एकोद्दिष्टेतुसंप्राप्तेयदिविघ्नःप्रजा-
यते मासेन्यस्मिंस्तिथौतस्मिन्श्राद्धंकुर्यात्प्रयत्नतइतितदपिमासिकपरमितिमदनरत्नेहेमाद्रौच इदमपिपूर्व-
कालासंभवे व्याध्यादौविस्मरणेचैवक्षेयं ।

सांवत्सरिकादिकांचा आशौचांतीं असंभव असेल तर **व्यास** सांगतो—“श्राद्धामध्ये आशौच प्राप्त होऊन श्राद्धाला विघ्न उत्पन्न झाले असतां तें श्राद्ध अमावास्येस करावें. कोणी विद्वान् शुद्धी झाल्यावर करावें असें सांगतात.” **हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मतांतही**—“मासिक व वार्षिक यांच्या दिवशीं आशौच प्राप्त असतां शुद्धि झाल्यावर तें श्राद्ध करावें, असें सांगतात. दर्शासही करावें, असें विद्वान् सांगतात.” **गोभिल**—“प्रतिवार्षिक श्राद्ध कर्तव्य असतां मध्ये आशौच प्राप्त होईल तर आशौचानंतर करावें. तसेंच त्या महिन्याच्या दर्शास करावें. **मरीचि**—“श्राद्धाला विघ्न प्राप्त असतां आणि मृत-
दिवसाचें ज्ञान नसतां एकादशीस करावें. कृष्णपक्षांत विशेषकरून करावें.” विशेषतः असें सांगितल्यावरून शुद्ध एकादशीसही करावें. आशौचाषांचून इतर विघ्न असतां हें वचन आहे, असें **माधव** आणि **पृथ्वीचंद्र** हे सांगतात. आतां जें **अत्रि**—
“कोणत्याही सूतकादिकारणामुळें तो श्राद्ध दिवस जर दुष्ट होईल तर सूतकानंतर पुनः तो दिवस (तिथि) येईल तेव्हांच करावें.” असें सांगतो, तें पूर्वी सांगितलेल्या कालाचा (आशौचांश दिवस व दर्श यांच्या) अभावीं समजावें. हें वचन वार्षिकव्यतिरिक्त (मासिकादि) श्राद्धविषयक आहे. आतां जें **देवल**—“एकोद्दिष्ट प्राप्त असतां जर विघ्न उत्पन्न होईल तर दुसऱ्या मासांत त्या तिथीस श्राद्ध करावें.” हें वचनही मासिकविषयक आहे, असें **मदनरत्नांत** आणि **हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मते** आहे. हेही वचन पूर्वोक्तकालाच्या असंभवीं समजावें. व्याधि वगैरे उत्पन्न होऊन श्राद्ध राहिलें असतां व विस्मरण झालें असतां असेंच जाणावें.

अथ भार्यारजोदर्शनेतदार्शिकमात्रेण कार्यं श्राद्धविभेद्विजातीनामामश्राद्धप्रकीर्तितं अमावास्यादि-
नियतमाससंवत्सरादौ इति हेमाद्रौ हारीतोक्तेः व्याघ्रपादोपि आर्तवेदेशकालानां विभवेसमुपस्थिते
आमश्राद्धद्वित्रैः कार्यशूद्रः कुर्यात्सदैव हीति दीपिकापि दर्शेण भार्यार्तवेद्यामश्राद्धविधिप्रवासिविधुराधाश्चा-
चरेयुर्द्विजाः वस्तुतस्तु पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धविधीयत इति सुमंतूक्तेः पाककर्त्रतरसत्त्वेऽग्नेनान्य-
थामेनेतियुक्तं मासिकानिसपिंडानि अमावास्यातथाचिदं अग्नेनैवतु कर्तव्यं यस्य भार्यारजस्वलेतिकलि कार्या-
वचनाच्च कालादर्शेण तु स्त्रियारजोदर्शने दर्शश्राद्धपंचमेहनीतिपक्षांतरमुक्तं पारिजातेष्वेवं एवमहालय-
युगादावपि ।

आतां श्राद्धदिवशीं भार्या रजस्वला असतां सांगतो—

भार्या रजस्वला अमतां दर्शश्राद्ध आमात्राने करावें. कारण, “द्विजातीनां श्राद्धविघ्न प्राप्त झालें अमतां आमश्राद्ध सांगितलें
आहे. मासिक, मांस्वगिक वर्ज्य करून अमावास्यादिश्राद्धविषयक हें सांगणें आहे” असें हेमाद्रौत हारीतवचन आहे.
व्याघ्रपादही—“भार्येला ऋतु प्राप्त अमतां, देश व काल यांचा विनाशगमय अमतां द्विजांनीं आमश्राद्ध करावें. शूद्रानें तर
सदा आमश्राद्धच करावें.” दीपिकाही—“दर्शाचे ठायीं भार्या रजस्वला अमतां आमश्राद्ध करावें. आणि प्रवासी, भार्यारहित
इत्यादिकांनीं देखील आमश्राद्धविधि करावा.” वास्तविक म्हणलें तर “पाकाच्या अभावीं द्विजांना आमश्राद्ध सांगितलें आहे”
ह्या सुमंतूवचनावरून पाककर्ता दुसरा कोणी अगतां अन्नानें करावें. पाक करणारा कोणी नसेल तर आमतां करावें, हें युक्त
आहे. आणि “ज्याची भार्या रजस्वला असेल त्यानें मर्षिीकरण, मासिकें अमावास्याश्राद्ध, व आचिदं, हीं अन्नानेंच करावीं.”
असें कलिकेत वचनही आहे. कालादर्शांत तर—स्त्रियेला रजोदर्शन अमतां दर्शश्राद्ध पांचव्या दिवशीं करावें, असा
निराळा पक्ष सांगितला आहे. पारिजातानंती असेंच आहे. याप्रमाणें महालय, युगादिक यांचे ठायीही समजावें.

आचिदं कर्तुरजोदर्शनेपितद्दिने एव कार्यं पुष्पवत्स्वपिदारेपुविदेशस्थोऽन्यतमिकः अग्नेनैवाचिदं कुर्याद्विज्ञावा-
मेननकचिदिति माधवीये लौगाक्षिस्मृतः मरीचिरपि अनमिकः प्रवासीचयस्य भार्यारजस्वला
आमश्राद्धप्रकुर्वीतनतत्कुर्यान्मृतेहनि काष्ठाजिनिः आपन्नोऽप्याचिदं नैव कुर्यादमेनकुत्रचित् अग्नेनतद-
मायांवाकृष्णेवाहरिवामरे प्रयोगपरिजाते रजस्वलायां भार्यायां क्षयाहंयः परित्यजेत् सवैनरकमाप्नोतिया-
वदाभूतसंप्लवं मासिकानिसपिंडं च अमावास्यातथाचिदं अग्नेनैवतु कर्तव्यं यस्य भार्यारजस्वला देवयाशि-
कनिबंधेपि भर्तुः श्राद्धपंचमेहिकुर्याद्भार्यारजस्वला पुत्रः पित्रोः प्रकुर्वीतमृताहनिशुचिर्यतः कालादर्शेपि
रजस्वलांगनोन्मिर्विदेशस्थोऽथवाचिदं दर्शादाविचनामेनत्वन्नेनश्राद्धमाचरेत् अन्यत्रापि विदेशकोवाविगता-
मिकोवारजस्वलायामपिधर्मपत्न्यां श्राद्धमृताहेविदधीतपाकैर्नामेनहेन्नानुपंचमेहि एवमासिकेपि यत्तु
मरीचिः आचिदं केसमनुप्राप्तेयस्य भार्यारजस्वला पंचमेऽह्नितच्छ्राद्धं नतत्कुर्यान्मृतेहनि माधवीये श्राद्धं त-
दानकर्तव्यं कर्तव्यं पंचमेहनीत्युत्तरार्थं तदपुत्रस्त्रीकर्तृकश्राद्धविषयं अपुत्रातुयदा भार्यासंप्राप्ते भर्तुराचिदं रज-
स्वलाभवेत्सातुकुर्यात्तत्पंचमेहनीतिश्लोकगौतमोक्तेः दैवेकर्मणिपित्र्येवापंचमेहनिशुद्ध्यतीतिप्रभासखं-
डाच्च नन्वशुचित्वादेवतत्रपंचमेहन्यर्थाच्छ्राद्धं प्राप्तमितिवचनं व्यर्थं मैवं गर्भिणीसूतिकादिश्च कुमारीवान्यरो-
गिणी यदाशुद्धातदान्येनकारयेत्प्रयतास्वयमिति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः अनुपनीतस्त्रीशूद्राश्च श्राद्धमृत्विजा-
कारयेयुः स्वयं वामंत्रं कुर्युरिति स्मृत्यर्थं साराचान्यद्वाराकरणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्य त्वदुक्तदिशाशौचानंतरं
श्राद्धकर्तव्यतावदेकवाक्यवैयर्थ्याच्च अतः प्रागुक्तमरीच्युक्तेः पत्नीपंचमेहनीतियुक्तं यत्तु सप्ताहात्पिष्टदे-
वानां भवेद्योग्याव्रतार्चने इति तद्रजोनिवृत्तिपरमिति हेमाद्रिभिन्नसर्वनिबंधसिद्धान्तः ।

वार्षिक तर भार्येला रजोदर्शन असतांही त्याच दिवशीं करावें. कारण, “स्त्रिया रजस्वला. असतांही, प्रवासांत असला
तरी आणि अग्निरहित असला तरी, त्यानें सांस्वगिक अन्नानेंच करावें. हिरण्यद्वारा किंवा आमतां कधीही करूं नये” असें
माधवीयांत लौगाक्षीचें वचन आहे. मरीचिही—“अग्निरहित, प्रवासी, व ज्याची भार्या रजस्वला असेल त्या सर्वांनीं
आमश्राद्ध करावें. पण तें आमश्राद्ध मृतदिवशीं (सांस्वगिक) करूं नये.” काष्ठाजिनि—“आपत्कालीं देखील आचिदं श्राद्ध
आमात्रानें कधीही करूं नये. अन्नानें त्या दिवशीं करण्यास सवड नसेल तर त्या मासाच्या अमावास्यास किंवा कृष्ण एकादशीस

अन्नानें करावें.” प्रयोगपारिजातांत—“भार्या रजस्वला असतां जो मनुष्य पितरांच्या मृतदिवसाचा परित्याग करील (श्राद्ध करणार नाही) तो मनुष्य सर्व भूतांचा प्रलय होईपर्यंत नरकांत पडतो. मासिक, संपिंडीकरण, दर्श, आणि वार्षिक हीं श्राद्ध ज्याची भार्या रजस्वला असेल त्यानें अन्नानेंच करावीं.” देवयाज्ञिकनिबंधांतही—“रजस्वला स्त्रियेनें भर्त्याचें श्राद्ध पांचव्या दिवशीं करावें. पुत्रानें मातापितरांचें श्राद्ध मृतदिवशीं करावें. कारण, माता रजस्वला असली तरी तो शुद्ध आहे.” कालादर्शांतही—“ज्याची भार्या रजस्वला तो, अभिरहित, प्रवासी, यांनीं दर्शादिकश्राद्धाप्रमाणें संवत्सरदिवशीं आमन्त्रानें श्राद्ध करूं नये. तर अन्नानें करावें.” इतर एका ग्रंथांतही—“विदेशस्थ अगो किंवा अभिरहित अगो अथवा धर्मपत्नी रजस्वला असो, मातापितरांच्या मृतदिवशीं श्राद्ध पाकानें करावें. आमश्राद्ध किंवा हिरण्यश्राद्ध करूं नये. आणि पांचव्या दिवशींही करूं नये.” याप्रमाणें मासिकाविषयीही समजावें. आतां जें मरीचि—“सांक्सरिक प्राप्त असतां ज्याची भार्या रजस्वला होईल त्यानें पांचव्या दिवशीं श्राद्ध करावें. मृतदिवशीं करूं नये” या वचनाचें उत्तरार्ध “श्राद्धं तदा न कर्तव्यं कर्तव्यं पंच-मेहनि” असें माधवीयांत आहे. हें मरीचिवचन पुत्ररहित स्त्रियेनें करावयाच्या श्राद्धाविषयीं आहे. कारण, “भर्त्याचें सांक्सरिक प्राप्त असतां भार्या पुत्ररहित असून रजस्वला होईल तर तिनें तें श्राद्ध पांचव्या दिवशीं करावें.” असें श्लोकगौतमवचन आहे. आणि “देवकर्मविषयीं व पित्र्यकर्मविषयीं स्त्री पांचव्या दिवशीं शुद्ध होते” असें प्रभासखंडीं वचनही आहे. शंका—स्त्री रजस्वला असतां अशुचि असल्यामुळेच अर्थात् पांचव्या दिवशीं श्राद्ध प्राप्त झालें. म्हणून त्याविषयीं वचनाचें कारण नाही. समाधान—“गर्भिणी, प्रसूत झालेली, कुमारी अथवा रोगिणी अशी स्त्री जेव्हां अशुद्ध (कर्माळा अयोग्य) असेल तेव्हां तिनें दुग्ण्याकडून कर्म करावें, कर्माळा योग्य असेल तर तिनें स्वतः करावें असें हेमाद्रींत भविष्यवचन आहे. आणि “सुंज न झालेला, स्त्रिया, शूद्र यांनीं श्राद्ध ऋज्विजांकडून करावें, अथवा स्वतः असंजक करावें” असें स्मृत्यर्थसारांत वचनही आहे. यावरून स्त्री रजस्वला असतां तिनें इतरांकडून श्राद्ध करावें, असें प्राप्त झालें: त्याची निवृत्ति (निषेध) करणाऱ्यां तीं गौतमादिवचन आहे. या गौतमादिवचनाची ‘आर्शाचानंतर श्राद्ध करावें’ याच्याशीं एकवाक्यता करावी, असें म्हटलें तर शंकाकाराच्या रीतीनें ती एकवाक्यताही व्यर्थ होईल. म्हणून पूर्वीक मरीचिवचनावरून पत्नीनें पांचव्या दिवशीं करावें, असें योग्य आहे. आतां जें “मान दिवसानंतर पितर व देव यांच्या व्रताविषयीं व पूजेविषयीं योग्य होते” तें ज्या स्त्रीचें रज निवृत्त झालें नसेल तीविषयीं आहे. हा हेमाद्रीवाचून इतर सर्व निबंधांचा सिद्धांत आहे.

हेमाद्रिस्तुश्राद्धादौ स्त्रियासहैवाधिकास्तत्स्यारजोदुष्टायांत निवृत्तेरेकभार्येण पंचमेहनिकार्यं प्रागुक्त-मरीच्युक्तेः भार्यातरसत्त्वेतु पुष्पवत्स्वपीतिवचनात्तद्दिने एवेत्याह दीपिकापि भार्यातौ सति पंचमेचदिव-सेस्याद्वाधिकं मासिकं पक्वात्रैबहुभार्यकस्त्वधिकृतेपदयंतरेतिष्ठति कुर्यात्तद्वितयं स्वमुख्यदिवसे इति तच्चित्यं सहाधि-कारः सहत्वश्रुत्यावा एकफलभाक्त्वेन वापाककर्तृत्वेन वा नाद्यः तदभावान् पाणिग्रहणाद्विसहत्वं कर्मस्वित्य-स्याभिप्रासध्यकर्मविषयत्वात् आर्विकस्यचनिरग्रेरपि पाकेनैवोक्तेः स्मार्ताभिप्रासध्यत्वा नित्यमात्तामपरुध्येति पूर्वो-क्तवचनसत्त्वाच्च कथंच भार्यातरसत्त्वेधिकारः ज्येष्ठयानविनेतरेतिनित्यमात् ज्येष्ठपरत्वेचेतनैव सिद्धेर्वचनवै-यर्थ्यात् नद्वितीयः अविभक्तभ्रातृष्वेकस्याऽऽशुचित्वेन्यस्यानधिकारापत्तेः नतृतीयः प्रवासनिर्देशसूति-कारोगिण्यादिष्वप्यकरणापत्तेः आरभेतनवैः पात्रैरन्नारंभचबांधवैरिति देवलोक्तावात्मनेपदात्स्वस्य बांधवानां चपाककर्तृत्वोक्त्याविरोधाच्च ततस्तानिपपाचाशुसीताजनकनंदिनीति पाद्मादिलिंगात्प्राशस्त्यं भार्यापाकस्यो-च्येत नतत्कस्याप्यनिष्ठं तेनैतद्वचनं युक्त्यायभावात् पूर्वोक्तवचोविरोधाच्चयत्किंचिदेव यदपि श्राद्धीयाहनि संप्राप्तेयस्य भार्यारजस्वला श्राद्धंतत्रनकर्तव्यं कर्तव्यं पंचमेहनीति श्लोकगौतमपाठोन्यथादर्शितः माधवीये चतद्वशात्पक्षांतरमुक्तं तेनापि नाभिप्रेतार्थसिद्धिः यस्य प्रेतस्येत्यर्थात् तेनात्र हेमाद्रिर्ब्राम्हेति बहुवक्तव्येपि-विस्तरभीतेनोच्यते ।

हेमाद्रि तर—श्राद्धादिकां विषयीं स्त्रीसहवर्तमानच पुरुषाला अधिकार असल्यामुळे ती स्त्री आर्तवानं दुष्ट असतां त्या आर्तवाची निवृत्ति झाल्यानंतर ज्याची एक भार्या असेल त्यानें पूर्वीक मरीचिवचनावरून पांचव्या दिवशीं करावें. इतर भार्या असेल तर ‘पुष्पवत्स्वि०’ या पूर्वीक लौगाक्षिस्मृतीवरून त्याच दिवशीं करावें, असें सांगतो. दीपिकाही—“भार्या ऋतुमती असतां पांचव्या दिवशीं वार्षिक, मासिक पक्वान्नांनीं करावें. ज्याच्या बहुत स्त्रिया असतील त्याची इतर स्त्री अधिकारी असतां तीं दोन्ही श्राद्ध आपापल्या मुख्य दिवशीं करावीं.” हें हेमाद्रि व दीपिका यांचें मत चित्य, (युक्तिशून्य) आहे. कारण, पुरुषाला सहाधिकार (पत्नीबरोबर अधिकार) हेमाद्रीनें सांगितला, तो वचनांत ‘सह’ या शब्दाच्या श्रवणानें सांगितला, किंवा शोधे (स्त्रीपुरुष) एकफलभागी असल्यामुळे सांगितला. अथवा स्त्री पाक करणारी आहे म्हणून सांगितला.

पहिला पक्ष नाही. कारण, वचनांत 'सह' शब्द नाही. 'विवाहापासून कर्मांचे ठायीं सहस्र आहे' हें वचन गृह्यामीनें साध्य होणारीं जीं कर्मे त्याविषयीं आहे. आच्छिन्नश्राद्ध निरमिकाला देखील पाकानें सांगितलें आहे; म्हणून स्मार्ताभिसाध्य आहे, असा नियम नाही. आणि 'त्या स्त्रियेला गृहांतरीं ठेऊन' या अर्थाचें पूर्वी (हेमाद्रीत) वचनही सांगितलेलें आहे. सहाधिकार असेल तर इतर भार्या असतांही कसा अधिकार येईल ! कारण, 'ज्येष्ठ पत्नीबरोबरच अधिकार, इतरांबरोबर नाही' असा नियम आहे. इतर भार्या म्ह० ज्येष्ठा शुद्ध असतां असें म्हटलें तर त्या पूर्वीक नियमानेंच सिद्ध असल्यामुळें त्याविषयीं वचन (पुण्यत्वस्वपि, पश्यंतरे इत्यादि) व्यर्थ होईल, दुसरा पक्ष (दोघे एकफलभागी असल्यामुळें सहाधिकार हा) नाही. कारण, भ्राते अविभक्त अमतां एकाला अशुचित्त असेल तर इतराला अधिकार प्राप्त होणार नाही. कारण, ते सारे भ्राते श्राद्धापासून झालेल्या एकफलाचे भागी आहेत. तिसरा पक्ष (स्त्री पाक करणारी असल्यामुळें सहाधिकार हा) ही नाही. कारण, आपण प्रवासांत आहे (पत्नीजवळ नाही) किंवा पत्नी दहा दिवगांपुढची सूतिका आहे अथवा रोगिणी वगैरे आहे अशा वेळीं देखील श्राद्ध करूं नये, असें प्राप्त होईल. आणि "बांधवांगह नव्या पात्रांनीं पाकाला आरंभ करावा" या देवत्ववचनांत 'आरमेत' हें आत्मनेपद असल्यामुळें स्वतः श्राद्धकर्त्याला व बांधवांना पाककर्तृत्व सांगितल्यानें विरोधही येतो. "तदनंतर जनककन्या सीता पाक करिती झाली" या पद्मपुराणादिवचनाच्या अर्थावरून गार्थनें केलेला पाक प्रशस्त सांगितला आहे, म्हणून तें वचन कोणालाही (इतरांनींही पाक करावा, असें म्हणणाऱ्यांनाही) अतिष्ठ नाही. तेणेंकरून "हें पंचम दिवशीं करावें" अशा अर्थाचें दीपिकावचन युक्ति, मूलवचन इत्यादिकांवा अभाव असल्यामुळें कांहीं तरी आहे, असें समजावें. आतां जें श्राद्ध-दिवस प्राप्त असतां ज्याची भार्या रजस्वला असेल त्यानें त्या दिवशीं श्राद्ध करूं नये, पांचव्या दिवशीं करावें" हा श्लोक गौतमवचनाचा पाठ वेगळा (येथें पूर्वी दानविला आहे तगा) असून माधवीयांत निराळा (वर लिहिल्याप्रमाणें) दाखविला, व त्यावरून पक्षांतर (निराळा पक्ष, पांचव्या दिवशीं करावें हें) सांगितलें. तेणेंकरून देखील इष्ट अर्थाची सिद्धि होत नाही. कारण, 'यस्य भार्या रजस्वला' या वचनाचा अर्थ— ज्या मृताची भार्या रजस्वला असेल त्याचें श्राद्ध तिनें त्या दिवशीं करूं नये, असा समजावा. यावरून येथें हेमाद्रि भ्रमिष्ठ झाला. यावर पुष्कळ बोलावयाचें आहे तरी विस्तार होईल म्हणून बोलत नाही.

अथान्वारोहणेनिर्णयः लौगाक्षिः मृताहनिमसासेनपिंडनिर्वपणंप्रथक् नवश्राद्धंचदंपत्योरन्वारोहणएवतु समासेनतंत्रेण द्विपितृकश्राद्धचनद्वयोरेकःपिंडोविप्रश्र पिंडशब्दःश्राद्धपरः नवश्राद्धंप्रथगिति-हेमाद्रिपृथ्वीचंद्रौ अत्रमृताहनीत्येकत्वानदिनभेदेदिनेक्येवामृततिथिरेकत्वेकालैक्यंकर्तृक्यंपाकैक्यंच एकचित्यधिरोहेतुतिथिरेकैवजायते एकपाकेनपिंडैक्येद्वयोर्गृहीतनामनी इतिस्मृत्यंतराच्च अंत्येष्टिप-द्धनौभट्टैरप्युदाहृतं अन्वारोहेतुनारीणांपत्युश्चैकोदकक्रिया पिंडदानक्रियातद्वच्छ्राद्धप्रत्यादिंकंतथा नव-श्राद्धानिमर्वाणिमपिंडीकरणंप्रथक् एकएववृषोत्सर्गागौरेकान्तर्द्वीयतेइति तिथिभेदतुवार्पिकंप्रथगेव तथावा-र्पिकेममामविधानादन्यत्रमर्वत्रप्रथक्त्वेप्राप्ते नवश्राद्धमेवप्रथगितिपरिस्वरयान्यत्रप्रथगुक्तेष्वपिवापिकपो-डशश्राद्धतीर्थमपिंडनान्वप्रक्यादिपुसमासाणवेतिमदनपारिजातनिर्णयामृतादयः अतःसमासवि-धिवलान् ज्येष्ठपुत्रस्यकर्तृत्वेमापन्नमातुर्नवारोहणेतत्पुत्रंसत्यपितृवार्पिकादिकमविभक्तःसापन्नपुत्रएवज्येष्ठः-कुर्यान्नौरसः वक्ष्यमाणपृथ्वीचंद्रादिमतेतु औरसएवमातुःप्रथक्कुर्यात् एवंवहीष्वपिमातृपुत्रेयं त्रिस्थ-लीसेतौपितामहचरणैरप्येवमुक्तम् यत्तुगार्ग्यः एकचित्यांसमारूढोदंपतीनिधनंगतौ प्रथक्श्राद्धंतयोः कुर्यादोदंतंचप्रथक्प्रथक् ओदंतंपिंडः तन्नवश्राद्धविषयं यत्तुभृगुः यासमारोहणंकुर्याद्धृतुश्चित्यांपतिव्रता तांमृताहनिसंप्राप्तेप्रथक्पिंडेनियोजयेत् प्रत्यब्दंचनवश्राद्धंयुगपतुसमाचरेत् तस्यांवापिकमेकोदिष्टमुक्तंद्वि-पयं प्रत्यब्दंचमृताहनीत्यन्वयः नवश्राद्धंयुगपदिति दर्शवर्गद्वयवदेकतंत्रेणप्रथगित्यर्थमाह हेमाद्रिः एतन्मृ-ततिथेर्भेदविषयमितिपृथ्वीचंद्रनिर्णयामृताद्याः देवयाज्ञिकोप्येवम् पराशरमाधवस्तुगार्ग्य-भृगवादिवचनात्लौगाक्षिवाक्येसमासेनपाकादितत्रैक्येनदर्शवर्गद्वयवत्प्रथक्श्राद्धंकुर्यात् नवश्राद्धंच-तथेत्याह ।

आतां अन्वारोहणा(सहगमना)विषयींचा निर्णय सांगतो—

लौगाक्षि—"अन्वारोहण (पत्नीचें सहगमन) असतां दंपतीचें मृतदिवशीं पिंडनिर्वपण म्हणजे श्राद्ध तंत्रानें करावें. जसे—दत्तकदिकाला दोन पित्यांचें श्राद्ध तंत्रानें सांगितलें त्याप्रमाणें येथें दोघांना एक पिंड व एक ब्राह्मण योजून श्राद्ध ६१ निर्ण०

करावें. या वचनांतील 'पिंड' शब्दाचा अर्थ श्राद्ध हा आहे. आणि नवश्राद्ध हें दोघांचें पृथक् करावें," असा ह्या वचनाचा अर्थ हेमाद्रि व पृथ्वीचंद्र करतात. या वचनांत 'मृताहनि' असें एकवचन आहे त्यावरून दोघांचा मृतदिवस भिन्न असो किंवा एक असो दोघांची मृततिथि एक असली म्हणजे दोघांच्या श्राद्धाचा काल एक, कर्ता एक आणि पाक एक समजावा. "एका चितीवर दोघांचें अधिरोहण असतां दोघांची मृततिथि एकच होते. एका पाकानें एका पिंडावर दोघांचीं नांवें घ्यावीं." असें इतर स्मृतीचें वचनही आहे. अंत्येष्टिपद्धतींत नारायणभट्टांनीं देखील सांगितलें आहे,—"सहगमन असतां ज्ञियांची व पतीची उदकदानक्रिया एक व तशीच पिंडदानक्रिया एक. आणि प्रतिवार्षिक श्राद्धही तसेंच होतें. सारीं नवश्राद्धे व संपिंडीकरण हीं पृथक् होतात. वृषोत्सर्ग एक व त्या ठिकाणीं गोप्रदान एक समजावें." दोघांची मृततिथि भिन्न असतां वार्षिक श्राद्ध निरनिराळेंच करावें. वरील लौगाक्षिवचनानें वार्षिकाचे ठायीं तंत्राचें विधान केल्यावरून इतर सर्व श्राद्धांना पृथक् (वेगळेपणा) प्राप्त असतां 'नवश्राद्ध पृथक्' हें वचन व्यर्थ होऊन 'नवश्राद्धच पृथक् करावें' अशा परि-संख्येन (नियमानें), इतर ग्रंथी पृथक् सांगितलेल्याही वार्षिक-षोडशश्राद्ध-तीर्थश्राद्ध-संपिंडीकरण-अन्वष्टक्य इत्यादि श्राद्धांत तंत्रच करावें, असें मदनपारिजात, निर्णयामृत इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. ह्या तंत्रविधीच्या बलांनं ज्येष्ठ पुत्र कर्ता असून त्याच्या सापळ मातेचें सहगमन असतां तिचा औरस पुत्र असल्या तरी दोघे अविभक्त असतील तर तिचें वार्षिका-दिक श्राद्ध ज्येष्ठ सापळ पुत्रानेंच करावें, औरस पुत्रानें करूं नये असें झालें. पुढें सांगावयाच्या पृथ्वीचंद्रादिकांच्या मतीं तर औरस पुत्रानेंच मातेचें श्राद्ध पृथक् करावें. बहुत माता असतांही असेंच जाणावें. त्रिस्थलीसेतूत पितामहचर-णांनीं (नारायणभट्टांनीं) देखील असेंच सांगितलें आहे. आतां जें गार्ग्य—"दोघे भार्यापती मृत होऊन एका चितीवर गेले असतां त्यांचें श्राद्ध पृथक् करावें. पिंडही पृथक् द्यावा" असें सांगतो, तें वचन नवश्राद्धविषयक आहे. आतां जें भृगु—"जी पतिव्रता स्त्री भर्त्याच्या चितीवर आरोहण करील तिला प्रतिवर्षी मृतदिवस प्राप्त असतां पृथक् पिंड द्यावा. आणि नवश्राद्ध दोघांचें एकदम करावें" असें सांगतो, तें ज्यांचें वार्षिकश्राद्ध एकोद्दिष्ट सांगितलें त्यांविषयीं समजावें. या वचनांत 'नवश्राद्ध युगपत्' म्हणजे—दर्शाचे ठिकाणीं जसें, पितृवर्ग व मातामहवर्ग या दोन वर्गांचें श्राद्ध एका तंत्रानें पृथक् होतें तसें—हें नवश्राद्ध एकतंत्रानें पृथक् करावें, असा अर्थ हेमाद्रि सांगतो. हें वचन दंपतीची मृततिथि भिन्न असतां तद्विषयक आहे, असें पृथ्वीचंद्र, निर्णयामृत इत्यादिक सांगतात. देवयान्निकही असेंच सांगतो. पराशरमाधव तर—गार्ग्य, भृगु इत्यादिकांच्या वचनांवरून लौगाक्षिवाक्यांतील 'समासेन' म्हणजे पाकादिकांचें एक तंत्र करून—जसें दर्शाचे ठायीं दोन वर्गांचें (पितृवर्ग व मातामहवर्ग यांचें) पृथक् श्राद्ध होतें तसें—येथें (दंपतीचें) पृथक् श्राद्ध करावें. नवश्राद्धही तसेंच करावें, असें सांगतो.

पृथ्वीचंद्रचंद्रिकादयस्तु द्वयोरेकपिंडदानलौगाक्षिवचनंचापद्विषयं पृथक्पिंडदानंतुमुख्यःकल्पः तदाह वृद्धपराशरः आरुह्यभर्तुश्चितिमंगनायाप्राप्तोतिमृत्युंखलुसत्त्वयुक्ता एकादशाहेतुतयोर्विधेयंश्राद्धंपृथक्स्वर्गमपेक्ष्यसद्भिः एकत्वमिच्छंतिमतिप्रहीणाएकादशाहादिषुयेनृनार्योः तेस्वर्गमार्गविनिह्यकुर्बुःस्त्रीसत्त्वघातान्नरकाधिवास भर्त्रासहमृतायातुनाकलोकमभीप्सती साहच्यच्छ्राद्धंपृथक्पिंडाननैकत्वंतुस्मृतंतयोः पृथगेवहिकर्तव्यंश्राद्धमेकादशाहिकं यानिश्राद्धानिसर्वाणितान्युक्तानिपृथक्पृथक् विश्वादर्शोपि मातुर्गयाष्टकाष्टदृष्टमृताहेषुमहालये श्राद्धंकुर्यात्पृथग्द्वैवंतंत्रचानुगतावपि एकचित्यांसमारुह्यमृतयोरेकवर्हिषि पित्रोःपिंडान्पृथग्दद्यात्पिंडत्वापत्सुतत्सुत इत्यग्निस्मृतेरित्याहुः यत्तुषट्त्रिंशन्मते एकत्वंसांगताभर्तुःपिंडेगोत्रेचसूतके नपृथक्पिंडदानंतुतस्मात्पत्नीषुविद्यते इतितदर्शादिपरं चंद्रप्रकाशोपि एकचित्यांसमारूढौदंपतीप्रमृतौयदि पृथक्श्राद्धंप्रकुर्वीतपत्युरेवक्ष्येहनि मृतानामपिभृत्यानांभार्याणांपतिनासह पूर्वकस्यमृतस्यादौद्वितीयस्यततःपुनः तंत्रेणश्रपणंकृत्वाश्राद्धंस्वामिक्ष्येहनि तृतीयस्यततःकुर्यात्सनिपातेष्वयंकमइति ।

पृथ्वीचंद्र, चंद्रिका इत्यादिक तर—दोघांना एक पिंड देणें व त्याविषयीं लौगाक्षीनं सांगितलें तें आपत्तिविषयक आहे. पिंडदान पृथक् करावें, हा मुख्य कल्प आहे. तें सांगतो वृद्धपराशर—"जी धैर्ययुक्त स्त्री भर्त्याच्या चितीवर आरोहण करून मृत होते स्त्री क्षीपुरुषांचें अकराव्या दिवशीं श्राद्ध स्वर्गप्राप्ति व्हावी म्हणून पृथक् करावें. जे मंदमति नर त्या क्षीपुरुषांचें एकादशाहादिकांत एक श्राद्ध करतात ते नर तिच्या स्वर्गमार्गाचा विघात करून ज्ञियेच्या सत्त्वाचा घात केल्यामुळें नरकवास करितील. जी स्वर्गलोकाची इच्छा करणारी स्त्री भर्त्यासहवर्तमान मृत झाली ती पृथक् श्राद्धाला व पृथक् पिंडांना योग्य होते. त्या क्षीपुरुषांचें एक श्राद्ध कोठें सांगितलें नाहीं. त्यांचें एकादशाहिक श्राद्ध वेगळेंच करावें. जीं श्राद्धे करावयाचीं तीं सारीं वेगवेगळीं करावीं." **विश्वादर्शांती**—"सहगमन असतांही गया, अष्टका, वृद्धि, मृतदिवस, महालय, यांचे ठिकाणीं मातेचें श्राद्ध पृथक् करावें व विधेदेवांचें तंत्र करावें. एका चितीवर आरोहण करून मृत झालेल्या मातापित-

रांना त्यांच्या पुत्रांनं पृथक् पिंड द्यावे. आपत्कालीं एक पिंड द्यावा” अशी अग्निस्मृति आहे, असें सांगतात. आतां जें षट्त्रिंशन्मतांत—“क्रियेचा विवाह झाल्यावर पिंड, गोत्र व सूतक हें भर्त्याचें व तिचें एक होतें; म्हणून पत्नीना पृथक् पिंडदान नाही” असें सांगितलें, तें दर्शदिश्राद्धविषयक आहे. चंद्रप्रकाशांतही—“जर एका चितीवर आरोहण करून जायापती मृत होतील तर पतिमरणदिवशीच दोघांचें पृथक् श्राद्ध करावें. स्वामीसहवर्तमान दास मृत होतील व पतीसहवर्तमान क्रिया मृत होतील तर स्वामीच्या मृतदिवशी तंत्रानें पाक करून पूर्वी मृत असेल त्याला आधी, पश्चात् मृत असेल त्याचें नंतर, तिसऱ्याचें त्याच्यानंतर श्राद्ध करावें. एका दिवशीं प्राप्त झालेल्या श्राद्धांविषयीं हा क्रम समजावा.”

सहगमनेसर्वत्रश्राद्धार्थमेकपाकइत्याह मदनरत्नेप्रचेताः एकचित्यांसमारूढौप्रियेतेदंपतीयदि तंत्रेणश्रपणंकुर्यात्पृथक्पिंडसमावपेत् पृथ्वीचंद्रोदयेऽप्येव अत्रभर्तुराशौचमध्येऽन्यदिनेस्त्रीमरणेपतिमरणदिनगणनयाशौचपिंडदानैकादशाहदिकार्यं नात्रपक्षिणीवृद्धिः मृतपतिमनुव्रज्यपत्नीचेदनलंगता नतत्रपक्षिणीकार्यपैतृकादेवशुद्धयति पुत्रोन्योवाग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचित्तयोः नवश्राद्धसंपिंडचयुगपत्तुसमापयेदिति षडशीतिमतात् यदानारीविशेदग्निप्रियस्यप्रियवांछया तदाशौचविधातव्यंभर्ताशौचक्रमेणहीतिलघुहारीनोक्तेश्च भर्ताशौचोत्तरमन्वारोहणेतुत्र्यहमाशौचं ऋग्वेदेवादात्साध्वीस्त्रीनभवेदात्मघातिनी व्यहाराशौचेनिवृत्तेतुश्राद्धंप्राप्तेतिशास्त्रतइतिब्राह्मोक्तेरिति पृथ्वीचंद्रापराकौ एतदन्वारोहणेणव नत्वैकचितौ ऋग्वेदेवादःइमानारीरविधवेत्यादिः एतदसवर्णापरमित्यन्ये ।

सहगमन असतां सर्वत्र श्राद्धागार्थीं एक पाक, असें सांगतो मदनरत्नांत प्रचेता—“जर एका चितीवर आरोहण करून दंपती मृत होतील तर तंत्रानें पाक करावा, आणि पृथक् पिंड द्यावा.” पृथ्वीचंद्रोदयांतही असेंच आहे. सहगमन असतां भर्त्याच्या आशौचामध्ये भर्तृमरणाच्या इतर दिवशीं स्त्री मृत झाली असेल तर पति मृत झालेल्या दिवसापासून गणना करून आशौच, पिंडदान, एकादशाहदि कृत्य करावें. मातेच्या मरणनिमित्तानें पक्षिणी अधिक आशौच धरावें, असें पुढें आशौचप्रकरणीं गांगवयाचें आहे, तें अधिक पक्षिणी आशौच येथें (महगमनं) नाही. कारण, “मृत झालेल्या पतीच्या मागाहून जाऊन पत्नी जर अग्निप्रवेश करील तर तेथें पक्षिणी अधिक आशौच करूं नये. पित्याच्याच आशौचानें पुत्र शुद्ध होतो. तिला अग्नि देणारा पुत्र किंवा दुसरा कोणी असेल तो त्या पतीच्या आशौचापर्यंतच अशुचि होतो. त्या दोघांचें नवश्राद्ध आणि गपिंडीकरण एकदम समाप्त करावें” असें षडशीति स्मृतिवचन आहे. आणि “जेव्हां स्त्री पतीचें प्रिय करावें, अशा इच्छेनें अग्नींत प्रवेश करील तेव्हां भर्त्याच्या आशौचक्रमानें क्रियेचें आशौच करावें” असें लघुहारीत्ववचनही आहे. पतीचें आशौच समाप्त झाल्यावर अनुगमन करील तर तीन दिवस आशौच आहे. कारण, “ऋग्वेदाच्या (इमा नारीरविधवा इत्यादिका) वादा वरून अनुगमन करणारी पतिव्रता स्त्री आत्मघातकी होत नाही. तीन दिवस आशौच झाल्यानंतर शास्त्रावरून ती श्राद्ध पावते.” असें ब्राह्मवचन आहे, असें पृथ्वीचंद्र व अपरार्क सांगतात. हें वचन अनुगमनाविषयींच समजावें. एकचितीवर सहगमनाविषयीं समजू नये. हें वचन अगमनवर्णाच्या स्त्रीविषयीं आहे, असें इतर ग्रंथकार सांगतात.

स्मार्तगौडास्तु देशांतरमृतेपत्नीसाध्वीतत्पादुकाद्वयमित्युपक्रम्यब्राह्मे त्र्यहाराशौचेतुनिवृत्तेद्वत्युक्तेर्भर्ताशौचोत्तरमन्वारोहणेऽत्र्यहः सहगमनेतुपूर्णदशाहादि पिंडास्तुदशापिसहैव तथाचजनकशूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासः संस्थितपतिमालिंग्यप्रविशेद्याहुताशनं तस्याःपिंडादिकंक्षेयंक्रमशःपतिपिंडवत् अन्वितापिंडदानंतुयथाभर्तुर्दिनेदिने तदन्वारोहिणीयस्मात्सामृतानात्मघातिनीतिविष्णूक्तेश्च पृथक्चितौतुभर्ताशौचमध्येतदूर्ध्ववासत्यांयह्येणदशपिंडाः अन्वितायाःप्रदानतयादशपिंडारूपहेणतु स्वाम्याशौचेव्यतीतेतुतस्याःश्राद्धंप्रदीयतइतितत्रैवपैत्रीनसिस्मृतेः भर्ताशौचोत्तरमृतौतुचतुर्थंक्षिश्राद्धं शूलपाणिनात्विदमग्निपराणीयत्वेनोक्तं युद्धतत्त्वस्यसद्यःशौचेत्वन्वारोहणेत्रिरात्रं एकचितौतुसंस्थितपतिमितिप्रागुक्तव्यासोक्तैःसद्यःशौचमित्याहुः अन्यसपिंडाशौचमध्येविदेशमृतान्वारोहणत्वंनाशंक्यमेव शुचितायाअंगत्वात् अन्येतुरजोवत्याःसूतिकायाश्चानुगमननिषेधादितराशौचस्यानिषेधः अन्यथाप्रत्यक्षभर्तृमरणेकागतिरित्याहुः तन्मूलवचनंविनाचित्यमेव स्मृत्यर्थसारेपि सहगमनेसर्वत्रश्राद्धपिंडादौपाकैक्यंकालैक्यंकर्त्रैक्यंचेद्विद्यातुपतिमुद्दिश्याऽन्यकालेऽन्यतिथावन्वारूढातस्याःश्राद्धतत्त्वयतिथौकार्यनभर्तृतिथौ पारणेमरणेनृणांक्षितिः

सात्कालिकीस्मृतेतिस्कांदात् तिथिरैकैव जायत इत्यादिवचनाच्चेति मदनरत्नपारिजातपृथ्वीचंद्रा-
दयः अन्येतुतस्याः पतिमरणेन मृतप्रायत्वात् सहायतः पृष्ठतो वा तद्भूतया भ्रियते यदि तस्याः श्राद्धप्रदातव्यं
पृथक्पत्युः क्षये हनीति स्मृत्यंतरात् अतः पृष्ठतो वा पितद्भूतया भ्रियते यदि तस्याः श्राद्धं सुतैः कार्यं पत्युरेव-
क्षये हनीति पुराणसमुच्चयाच्च भर्तृतिथावेवेलाहुः अत्रमूलंचित्यं अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्मृत्यंतरे
मातामंगलसूत्रेण भ्रियते यदि तद्दिने उद्दिश्य विप्रपत्नीतां भोजयेच्च सुवासिनीम् ।

स्मार्तगौड तर-“देशांतरं पति मृत असतां सांख्ये त्रियेने पतीच्या दोन पादुका घृहण करून” असा उपक्रम करून
“तीन दिवस आशौच निवृत्त झाले असतां श्राद्ध पावतें” असें ब्राह्मणं सांगितल्यावरून भर्त्याच्या आशौचानंतर अनुगमन
असतां तीन दिवस आशौच. सहगमन असतां संपूर्ण दशाहादि आशौच. पिंड तर दहाही पतीवरोवरच यावे. नसेन मांगतो
जनकशूलपाणि व शुद्धितत्त्व यांत व्यास-“जी स्त्री मृत झालेल्या पतीम आळिंगन करून अग्नींत प्रवेश करील तिला
पतिपिंडाप्रमाणे अनुक्रमानें पिंडादिक यावें.” आणि “सहगमन करणाऱ्या स्त्रियेला पिंडदान जसे तिच्या भर्त्याला प्रतिदिवशीं
करावयाचें तसें करावें. ती स्त्री पतीच्या बरोबर जाऊन मृत झाली आहे, म्हणून आत्मघातिनी होत नाही.” असें विष्णु-
वचनही आहे. भर्त्याच्या आशौचामध्ये किंवा नंतर स्त्रियेची पृथक् चिती असेल तर तीन दिवसांत दहा पिंड यावे. कारण
“अनुगमन करणाऱ्या स्त्रियेला तीन दिवसांत दहा पिंड यावे. पतीचें आशौच निवृत्त झाल्यानंतर श्राद्ध यावें.” असें तैत्तिरीय
पैठीनसि स्मृतिवचन आहे. भर्त्याच्या आशौचानंतर मृत असेल तर तिला चवथ्या दिवशीं श्राद्ध यावें **शूलपाणीनें**
तर हें वचन अग्निपुराणांतील सांगितलें आहे. युद्धांत मृत झालेल्याचें मयःशौच (तत्काल शुद्धि) होतें. अन्वारोहण
असतां त्रिरात्र आशौच. दंपतींची एकचिती असतां ‘संस्थितं पतिमाळिग्रहं’ ह्या वर सांगितलेल्या **व्यासवचना**वरून
स्त्रियेचें मयःशौच होतें. असें (**स्मार्तगौड**) सांगतात. विदेशांत मृत झालेल्या पतीशीं अन्वारोहण इतर गृहिणांच्या
आशौचामध्ये असेल तर, असें आशौकं नयेः कारण, अन्वारोहणाविषयीं शुचिल हें अंग आहे. **इतर ग्रंथकार तर-**
रजस्रला व सूतिका यांना सहगमनाचा निषेध असल्यामुळे इतरांच्या आशौचाचा निषेध नाही. इतरांशांचाचा निषेध
मानला तर प्रत्यक्ष भर्ता मेला असतां आशौचाची गति काय ? असें सांगतात. या इतर ग्रंथकारांच्या मतान् मूलवचन
नसल्यामुळे तें मत चिंत्त (उपेक्षणीय) च आहे. **स्मृत्यर्थसारांतही-**सहगमन असतां सर्वत्र िकाणीं श्राद्ध, पिंड
इत्यादिकांत पाक एक, काल एक आणि कर्ताही एकच. जी स्त्री पतीच्या उद्देशानें अन्य कारीं अन्यतिथीम अन्वारोह झाली
(सती गेली) तिचें श्राद्ध तिच्या मृततिथीस करावें. पतीच्या मृततिथीस करूं नये. कारण, “उपवागाची पाण्णा व मरण
यांचे ठायीं तत्कालीं तिथि असेल ती ध्यानी” असें स्कंदपुराणवचन आहे. आणि “एकचितीवर आरांहण केलें असतां
तिथि एकच होते” इत्यादि वचनही आहे, असें **मदनरत्न, पारिजात, पृथ्वीचंद्र** इत्यादिक सांगतात. **अन्य ग्रंथकार**
तर-ती स्त्री पति मेल्यानें मृतप्राय झाल्यामुळे “पतीच्या भक्तीनें त्याच्या बरोबर किंवा पूर्वी अथवा मागाहून जर स्त्री
मरेल तर तिचें श्राद्ध पतीच्या मृत दिवशीं पृथक् करावें.” ह्या स्मृत्यंतरवचनावरून आणि “पतीच्या पूर्वी किंवा मागाहून
पतीच्या भक्तीनें जर स्त्री मरेल तर तिचें श्राद्ध पुत्रांनीं पतीच्याच मृतदिवशीं करावें” ह्या **पुराणसमुच्चय**वचनावरूनही
पतीच्या मृततिथीसच करावें, असें सांगतात. याविषयीं मूलवचन चिंत्त (अनुपलब्ध) आहे. येथे विशेष सांगतो **हेमाद्रौ त**
स्मृत्यंतरांत-“माता मंगलसूत्राग्रह (सुवासिनी) मृत होईल तर तिच्या मृतदिवशीं श्राद्धीयब्राह्मणांच्या पत्नींत तिच्या
उद्देशानें सुवासिनीला भोजन घालावें.”

अथश्राद्धसंपाते निर्णयः अत्रपित्रोर्मृततिथ्यैकत्वेमरणक्रमेण दर्शवर्गद्वयवत्तंत्रेण श्राद्धं कुर्यात् पौर्वा-
पर्याज्ञानेऽपि पितृपूर्वकं कुर्यादिति हेमाद्रिः माधवादयस्तु पित्रोः श्राद्धे समंप्राप्तेन वेपर्युपिते पिवा पितृपूर्व-
सुतः कुर्यादन्यत्रासंनियोगत इति काष्ठाजिनिस्मृतेः सर्वत्रपितृपूर्वमिन्नप्रयोगमाहुः पार्वणैकोद्दिष्टयोः-
संपाते माधवीयेजाबालिः यद्येकत्र भवेयातामेकोद्दिष्टंच पार्वणं पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत्
गृह्दहादिनायुगपन्मरणे भृगुः एककाले गतासूनां बहूनामथवादयोः तंत्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक्
पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः तृतीयस्य ततः कुर्यात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ऋषयश्शृंगः भवेद्यदिसपिंडानां
युगपन्मरणं तदा संबंधासत्तिमालोच्य तत्क्रममाच्छ्राद्धमाचरेत् गार्हपत्ये एकेनैव तुपाकेन श्राद्धानि कुरुते त्रिहो
विकिरं त्वेकतः कुर्यात्पिंडान्दद्यात्पृथक्पृथक् अत्रातुगमने च दाहसपिंडनादौ विशेषं वक्ष्यामः अत्रिः बहूनाम-
थवाद्वाभ्यां श्राद्धं चेत्स्यात्समेहनि तंत्रेण श्रपणं कृत्वा पृथक् श्राद्धानि कारयेत् पुलस्त्यः महालये गया श्राद्धे गतासूनां-
क्षये हनि तंत्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक्पृथक् इदंच पृथक्पाकेन भिन्नश्राद्धाशक्तौ पृथक्पाकेन संबंधासत्या-

श्राद्धभेदस्तुमुख्यः पक्षः एकत्रैवदिनेश्राद्धद्वयंप्राप्त्यदातदा चरेदेवपुरावर्षात्पितुर्मातृश्रुतत्सुतः एकस्मिन्यः-
करोत्यद्विद्वयोः श्राद्धंयदाद्विजः तदापूर्वमृतस्यादौकृत्वास्नात्वायथाविधि पश्चात्पश्चान्मृतस्यैवपृथक्पाकैः-
समाचरेत् नैकस्मिन्दिनसेश्राद्धत्रयाणांकुत्रचिद्विजः एकःकुर्यात्तथाप्राप्तेअन्योभ्रातासमाचरेत् भ्रातर्यविश-
मानेतुतत्परेहिसमाचरेत् अन्यथाश्राद्धहंतास्याच्छ्राद्धसंकरकृद्भवेत् इत्याश्वलायनोक्तेरिति पृथ्वीचंद्रः ।

आतां श्राद्धसंपात (अनेक श्राद्धे एक दिनशीं प्राप्त) असतां निर्णय सांगतो—

त्यांत मानेची व पित्याची मृततिथि एक असतां मरणाच्या क्रमानें (पूर्वी मृताचा पूर्वी उद्देश करून) जमें-दर्शाचे ठायीं पितृवर्ग व मातामहवर्ग या दोघांचें तंत्र होतें तसें तंत्रानें श्राद्ध करावें. पूर्वी कोण मृत झालें व नंतर कोण याचें ज्ञान नसेल तर पितृपूर्वक श्राद्ध करावें, असें हेमाद्रि सांगतो. माधव इत्यादिक तर—“आईबापांचें नवश्राद्ध किंवा पुराणश्राद्ध एका दिवशीं प्राप्त असतां पुत्रानें पितृपूर्वक करावें. वरोवर मृत नगतील त्यांविषयीं हा नियम नाही” ह्या कारणाजिनि स्मृती-वरून सर्वत्र पितृपूर्वक भिन्न प्रयोगानें करानें, असें सांगतात. पार्वण व एकोद्दिष्ट यांचा संपात असतां माधवीयांत जावालि—“एकोद्दिष्ट आणि पार्वण हीं दोन श्राद्धे जर एक दिवशीं प्राप्त होतील तर पार्वण करून नंतर एकोद्दिष्ट करावें.” पर जळणें इत्यादि कारणांनीं अनेक मनुष्य एकदम मृत झाले असतां भृगु—“एककालीं बहुत किंवा दोन मृत झाले असतां तंत्रानें (एकदम) पाक करून वेगवेगळें श्राद्ध करावें. त्यांमध्ये पूर्वी मृताचें पूर्वी करावें. पश्चात् मृताचें नंतर करावें. तिमण्याचें तदनंतर करावें. श्राद्धांचा संपात (अनेक श्राद्धे एककालीं प्राप्त) असतां हा क्रम गमजावा.” ऋष्य-शृंग—“जेव्हां गणितांचें एकदम मरण असेल तेव्हां संबंधगामींय पाहून त्या क्रमानें श्राद्ध करावें.” गारुडांत—“एकाच पाकानें अनेक श्राद्धे करितो तेव्हां त्या श्राद्धांत विरिज एका ठिकाणीं देऊन वेगवेगळे पिठ घाले.” एककालीं अनेक मरतील त्या ठिकाणीं आणि अनुगमनाचे ठायीं दाह, गणितीकरण इत्यादिकांविषयीं विशेष निर्णय पुढें सांगे. अत्रि—“बहु-तांचें अथवा दोघांचें श्राद्ध एक दिवशीं प्राप्त असेल तर तंत्रानें एक पाक करून श्राद्धे वेगवेगळीं करावीं.” पुलस्त्य—“महालयांत, गयेंत आणि मृतदिवशीं तंत्रानें एक पाक करून बहुत मृतांचें वेगवेगळें श्राद्ध करावें.” एक पाकानें पृथक् श्राद्ध करणें हें वेगवेगळ्या पाकानें भिन्न भिन्न श्राद्ध करण्याविषयीं शक्ति नगतां गमजावें. संबंधगामींय पाहून भिन्न भिन्न पाकानें भिन्न श्राद्ध करणें हा मुख्य पक्ष आहे. कारण, “पित्याचें व मानेचें अशीं दोन श्राद्धे एका दिवशीं जेव्हां प्राप्त होतील तेव्हां तीं वर्षाच्या आंतील असतील तरी त्यांच्या पुत्रानें करावीं. जो द्विज एका दिवशीं दोघांचीं श्राद्धे करीत असेल तेव्हां त्यानें पूर्वी मृताचें आधीं यथाविधि श्राद्ध करून स्नान करून नंतर पश्चात् मृताचें पृथक् पाकानें श्राद्ध करावें. एका द्विजानें (ब्राह्म-णादिकानें) तिघांचें श्राद्ध कोठेंही करूं नये. एका दिवशीं तिघांचें श्राद्ध प्राप्त असतां इतर ब्राह्म्यांनें तें तिसरें श्राद्ध करावें. भ्राता नसेल तर तें तिसरें श्राद्ध दुसऱ्या दिवशीं करावें. अन्यथा म्हणजे एका दिवशीं तिघांचें श्राद्ध करील तर श्राद्धसंकरकारी श्राद्धाचा घात करणारा होईल” असें आश्वलायनवचन आहे, असें पृथ्वीचंद्र सांगतो.

कात्यायनः द्वेवहृनिमित्तानिजायेरत्रेकवासरे नैमित्तिकानिकार्याणिनिमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् जावालिः श्राद्धकृत्वातुतस्यैवपुनःश्राद्धंततदिने नैमित्तिकंतुकर्तव्यनिमित्तानुक्रमोदयं कालादर्शं नित्य-
दार्शिकयोश्चोदकुंभमासिकयोरपि दार्शिकस्ययुगादेश्चदार्शिकालभ्ययोगयोः दार्शिकस्यचमन्वादेःसंपातेश्राद्ध-
कर्मणः प्रसंगादितरस्यापिसिद्धेरुत्तरमाचरेत् अस्यदेवताभेदेपवादमाहसप्तव नित्यस्यचोदकुंभस्यनित्यमा-
सिकयोरपि दर्शस्यचोदकुंभस्यदर्शमासिकयोरपि नित्यस्यचाद्रिदकस्यापिदार्शिकाद्रिदकयोरपि युगाद्याद्रिदक-
योश्चैवमन्वाद्याद्रिदकयोस्तथा प्रत्याद्रिदकस्यचालभ्ययोगेपुविहितस्यच संपातेदेवताभेदाच्छ्राद्धयुगमंसमाच-
रेत् निमित्तानियतिश्चात्रपूर्वातुप्राप्तकारणं पित्रोस्तुपितृपूर्वत्वंसर्वत्रश्राद्धकर्मणि माधवीधेस्मृतिसंग्रहे
काम्यतंत्रेणनित्यस्यतंत्रश्राद्धस्यसिध्यति ।

कात्यायन—“एक दिवशीं दोन किंवा बहुत श्राद्धादिकांचीं निमित्तें प्राप्त होतील तर ज्या क्रमानें निमित्त उत्पन्न असेल त्या क्रमानें तीं नैमित्तिक कर्म करावीं.” जावालि—“एकदां एकाचें श्राद्ध करून पुनः त्या दिवशीं त्याचेंच श्राद्ध होत नाही. नैमित्तिक असेल तर तें, निमित्त उत्पन्न असेल त्या क्रमानें करावें.” कालादर्शांत—“नित्यश्राद्ध व दर्श, उदकुंभ-श्राद्ध व मासिक, दर्श व युगादिश्राद्ध, दर्श व अलभ्ययोगनिमित्तक श्राद्ध, दर्श व मन्वादिक श्राद्ध, अशीं दोन दोन श्राद्धे एक दिवशीं प्राप्त असतां पुढच्या श्राद्धाच्या प्रसंगानें पूर्वश्राद्धाची देखील मिद्धि होते, ती अशी की, दर्शानें नित्यश्राद्धसिद्धि, मासिकानें उदकुंभसिद्धि इत्यादि होते म्हणून पुढचें श्राद्ध करावें.” संपाताच्या देवता भिन्न असतां अपवाद तोच सांगतो—

“नित्यश्राद्ध व उदकुंभ, नित्यश्राद्ध व मासिक, दर्श व उदकुंभ, दर्श व मासिक, नित्यश्राद्ध व आब्दिक, दर्श व आब्दिक, शुगादिश्राद्ध व आब्दिक, मन्वादि व आब्दिक, प्रत्याब्दिक व अलभ्ययोगनिमित्तक यांचा संपात (हीं दोन दोन एक दिवशी प्राप्त) असतां देवतांचा भेद असल्यामुळे दोन श्राद्ध करावीं. ज्या श्राद्धाचें निमित्त नियत (ठरीव) नसेल तें श्राद्ध पूर्वी करावें. मातेचें व पित्याचें श्राद्ध एक दिवशीं प्राप्त असतां सर्वत्र ठिकाणीं पित्याचें पूर्वी करावें.” माघवीयांत स्मृति-संग्रहांत—“काम्यश्राद्धाच्या तंत्रानें नित्यश्राद्धाचें तंत्र सिद्ध होतें.”

अथश्राद्धांगतर्पणम् पारिजातेपृथ्वीचंद्रोदयेचगर्गः पूर्वतिलोदकंकृत्वाअमाश्राद्धतुकारयेत् प्रत्यब्देनभवेत्पूर्वपरेऽह्नितिलोदकं पक्षश्राद्धेहिरण्येचअनुव्रज्यतिलोदकं नचनित्यतर्पणस्यायंपरेह्ययुक्कर्षः ननुश्राद्धांगतर्पणमस्तीतिवाच्यं यस्तर्पयतितान्विप्रःश्राद्धंकृत्वापरेहनि पितरस्तेनतृप्यंतिनचेत्कुप्यंतिवैभृश-मितिगर्गेणफलनिर्दार्यवादाभ्यामंगत्वेनोक्तेः श्राद्धप्रक्रमाद्वाषिकं बृहन्नारदीयेप्याब्दिकंप्रक्रम्य परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्योयेनतर्पयतेपितृन् तस्यतेपितरःकुद्धाःशापदत्वाव्रजंतिहि पितृशब्दश्चश्राद्धेज्यवर्गपरः तेनतर्पण-स्यपशुपुरोडाशयागवत्प्रस्तरप्रहरणवच्चेष्टदेवतासंस्कारकता तेनाब्दिकेदिनेनित्यंस्वपित्रादितर्पणकार्यमेव श्राद्धां गभूतस्यैवपरेद्युरुक्तेः तदुक्तं प्रत्यब्दांगतिलंदद्यान्निषिद्धेपिपरेहनि वर्गैकस्यवचोयेपामन्येपांतुविवर्जयेत् ।

आतां श्राद्धांगतर्पण सांगतो—

पारिजातांत आणि पृथ्वीचंद्रोदयांत गर्गः—“अमावास्यापूर्वी तिलोदक देऊन नंतर श्राद्ध करावें. प्रतिमांक्सरिक श्राद्धांत पूर्वी तिलोदक नाही, दुसऱ्या दिवशी तिलोदक द्यावें. पक्षश्राद्धांत व हिरण्यश्राद्धांत श्राद्ध झाल्यावर ब्राह्मणंम पोंचवून नंतर तिलोदक द्यावें.” आतां कोणी असें म्हणेल कीं, ‘नित्यतर्पण करावयाचें तेंच मांक्सरिकांत ह्या गर्गवचनानें दुसऱ्या दिवशीं करावें म्हणून सांगितलें आहे. नित्यतर्पणावांचून निराळें श्राद्धाचें अंगभूत तर्पण नाही.’ तर तसें त्याला म्हणतां येणार नाही; कारण, “जो ब्राह्मण श्राद्ध करून दुसऱ्या दिवशीं त्या पितरांना तर्पण करितो, त्या तर्पणानें पितर तृप्त होनात. त्यानें तर्पण केलें नाही तर पितर अत्यंत कुपित होतात.” या गर्गवचनानें तर्पण करणाराला फल व न करणाराची निंदा असे दोन अर्थवाद सांगितल्यावरून तर्पण हें श्राद्धाचें अंग आहे असें होतें. श्राद्धाच्या उपक्रमावरून ह्या वचनांतील श्राद्ध वार्षिक होय. बृहन्नारदीयांतही—आब्दिकश्राद्धाचा उपक्रम करून सांगतो—“जो श्राद्ध करणारा मनुष्य दुसऱ्या दिवशीं पितरांचें तर्पण करीत नाही, त्याचे ते पितर कुद्द होऊन शाप देऊन जातात.” या वचनांतील ‘पितृ’ हा शब्द श्राद्धांत पूज्य वर्गाचा बोधक आहे. यावरून तर्पण हें इष्ट देवतेला (पूज्य पित्रादिकांना) एक प्रकारचा संस्कार करणारें आहे. जसें—ज्योतिष्ठो-माचा अंगभूत जो अग्नीषोमीय पशुयाग त्या ठिकाणीं असें आहे कीं, ‘अग्नीषोमीयं पशुपुरोडाशमेकादशकपालं निषेपति’ याचा अर्थ—अग्नीषोमदेवताक पशुपुरोडाशयाग एकादशकपालांत निर्वाप करून करावा. तेथें पशुयागाची जी देवता अग्नीषोम तिलाच हा पुरोडाशयागसंस्कार आहे. हा प्रकार जैमिनीयन्यायमाला अध्याय १० पाद १ अधिकरण ९ या ठिकाणीं विवेचन करून सांगितला आहे. तसें—श्राद्धाच्या ज्या देवता त्यांनाच हें तर्पण संस्कार करणारें आहे. आणि पूर्वी अग्नीकरणप्रकरणीं प्रस्तरप्रहरण सांगितलें आहे तसेंही हें तर्पण समजावें. तेणेंकरून प्रतिमांक्सरिकाच्या दिवशीं पित्रादिकांचें नित्यतर्पण करावेंच. कारण, श्राद्धाचें अंगभूत जें तर्पण तेंच दुसऱ्या दिवशीं सांगितलें आहे. तेंच सांगतो—“प्रतिवार्षिकाचें अंगभूत तिलतर्पण, तर्पणाला निषिद्ध अशाही दुसऱ्या दिवशीं द्यावें. तें ज्या वर्गाचें श्राद्ध असेल त्या वर्गाला द्यावें, इतरांना वर्ज्य करावें.”

कचिद्विशेषमाहगर्गः कृष्णेभाद्रपदेमासिश्राद्धंप्रतिदिनंभवेत् पितृणांप्रत्यहंकार्यनिषिद्धाहंपितर्पणं तर्पण-तिलतर्पणं निषिद्धाहेपीत्युक्तेः सकृन्महालयेश्वःस्यादष्टकास्वंतएवहि अत्रसप्तमीनिर्देशात्अंगितास्फुटैव तत्र-जयान्जुहुयात् मंद्रप्रायणीयायांमंद्रप्रातःसवनेइत्यादिवत् अस्यापवादोबृहन्नारदीये वृद्धिश्राद्धेसपिंड्या-चप्रेतश्राद्धेनुमासिके संवत्सरविमोकेचनकुर्वात्तिलतर्पणं तदयमर्थः दर्शेविप्रनिमंत्रणोत्तरपाकारंभोत्तरवाश्रा-द्धप्रयोगस्यारब्धत्वात् ब्रह्मयज्ञोत्तरंनित्यतर्पणेनैवश्राद्धांगतर्पणस्यतंत्रेणप्रसंगेनवासिद्धिः ततः पूर्ववैश्वदेवो-त्तरवाश्राद्धयज्ञकरणेश्राद्धांगतर्पणप्रथकार्यं पित्रोर्वार्षिकेतुनित्यतर्पणतिलवर्ज्यकार्यं नैवश्राद्धदिनेकुर्यात्तिलैस्तु-पितृतर्पणं श्राद्धंकृत्वापराह्णेचतर्पणंतुतिलैःसहेतिवचनात् सप्तम्यांभानुवारेचमातापित्रोर्मृतेहनि तिलैर्यस्तर्पण-कुर्यात्सभवेत्पितृघातकइति स्मृतिरन्नावल्यांबृद्धमनूक्तेश्च अत्रनित्यतिलतर्पणेतिलमात्रनिषेधोननु-

वर्पणस्य तिलैरित्यस्यैवध्यापनेः यत्तुकातीयम् उपरागेपितुःश्राद्धेपातेमायांचसंक्रमे निषिद्धेपिहिसर्प-
तिलैस्तर्पणमाचरेदिति तत्परेषुःश्राद्धांगतर्पणविषयमितिकेचित् श्राद्धाशक्तस्यतत्स्थानापन्नतर्पणविषयसि-
तियुक्तं सकृन्महालयपरेषुस्तर्पणं अष्टकासुतुसप्तम्यष्टमीश्राद्धयोरन्तेतदैववर्गद्वयस्य अन्वष्टक्येतुमावर्गव्यापि
तीर्थश्राद्धदर्शवत् माध्यादिष्वष्टकावदन्ते अनेकश्राद्धसंपातेतुयदितत्प्रसंगसिद्धिः तदातदीयमेवतर्पणं तन्त्रत्वेतु-
श्राद्धसमसंख्यत्वेआदावन्तेवा विषमसंख्यायांबहुनुरोधइति तस्माच्छ्राद्धांगतर्पणंसिद्धम् ।

क्वचित्स्थलीं विशेष सांगतो गर्ग—“भाद्रपदमासीं कृष्णपक्षांत प्रतिदिवशीं पितरांचं श्राद्ध होतें त्या ठिकाणीं निषिद्ध-
दिवशीं देखील प्रत्यहीं पितरांचं तर्पण करावें.” या वचनांत ‘निषिद्ध दिवशीं देखील’ असें म्हटलें आहे, म्हणून तर्पण
म्हणजे तिलतर्पण समजावें. “सकृन्महालयीं (भाद्रपदकृष्णपक्षीं) एकवार महालय करावयाचा त्यापक्षीं) दुसऱ्या दिवशीं
तिलतर्पण. अष्टकाश्राद्धांत श्राद्धाच्या अंतीच तिलतर्पण करावें.” या वचनांत ‘सकृन्महालये’, ‘अष्टकासु’ अशी सप्तमी विभक्ति
केली आहे यावरून सकृन्महालय इत्यादिश्राद्ध अंगि व तर्पण हें त्याचें अंग, असें स्पष्ट होतें. जसें—श्रौतांत ‘येन कर्मणोत्सेत्
तत्र जयान् जुहुयात्’ हें वाक्य कोणत्याही यज्ञप्रकरणावांचून पठित आहे. त्याचा अर्थ—ज्या कर्माचें समृद्धि व्हावी, अशी
इच्छा असेल त्या कर्मांत जयाहोम करावा. या वाक्यांत ‘तत्र’ या सप्तमी विभक्तीवरून त्या कर्माचें जयाहोम अंग आहे,
असें होतें. व जसें—प्रायणीय इष्टीचे ठायीं मंद स्वर सांगितला. प्रातःसवनांतही मंद स्वर सांगितला आहे. ते जसें—‘प्रातः-
सवने’ इत्यादि सप्तमीवरून प्रातःसवनाचा मंद स्वर अंग आहे तसेंच हें तर्पण श्राद्धाचें अंग होय. या तिलतर्पणाचा अप-
वाद बृहन्नारदीयांत—“ग्रहिश्राद्ध, सर्पिडीकरण, प्रेनश्राद्ध, अनुमासिक, संवत्सरविमोक्तश्राद्ध (अब्दपूर्तिश्राद्ध) इत्याद्या
ठिकाणीं तिलतर्पण करूं नये.” ह्या वरील सर्व तर्पणवचनाचा भावार्थ असा—दर्शाचे ठायीं ब्राह्मणनिमंत्रण झाल्यावर किंवा
पाकारंभ झाल्यानंतर श्राद्धप्रयोगाला आरंभ झाल्यामुळें ब्रह्मयज्ञोत्तर करावयाचें जें नित्यतर्पण त्यानेंच श्राद्धांगतर्पणाची तंत्रांनीं
किंवा प्रसंगानें सिद्धि होते. विप्रनिमंत्रणाच्या किंवा पाकारंभाच्या पूर्वी ब्रह्मयज्ञ केला असतां अथवा श्राद्धांतीं वैश्वदेव झाल्यावर
ब्रह्मयज्ञ असतां श्राद्धांग तर्पण निराळें करावें. मातापितरांच्या वार्षिक श्राद्धाचे दिवशीं नित्यतर्पण तिलरहित करावें. कारण,
“श्राद्धाच्या दिवशीं तिलांनीं पितृतर्पण करूं नये. श्राद्ध करून अपराह्नीं तिलतर्पण करावें” असें वचन आहे. आणि “सप्तमी,
भानुवार, व आईवापांचे मृतदिवस यांचे ठायीं जो मनुष्य तिलांनीं तर्पण करील तो पितरांचा घात करणारा होईल” असें
स्मृतिरत्नावलींत वृद्धमनूचें वचनही आहे. नित्य तिलतर्पण करीत असेल तर येथें तिलांचा मात्र निषेध आहे. तर्पणाचा
निषेध नाही. तर्पणाचा निषेध मानला तर वचनांत ‘तिलैः’ हें पद व्यर्थ होईल. आतां जें कातीयवचन—“चंद्र-सूर्य-
ग्रहण, वापांचं श्राद्ध, व्यतीपात, अमावास्या, संक्रांति यांचे ठायीं तर्पणाला निषिद्ध दिवस असतांही तिलांनीं तर्पण करावें”
असें आहे, तें दुसऱ्या दिवशीं श्राद्धांगतर्पणविषयक आहे, असें केचित् म्हणतात. श्राद्धाविषयीं अशक्त असेल त्याला
श्राद्धाच्या स्थानीं तर्पण सांगितलें आहे त्याविषयीं हें कातीयवचन आहे, असें म्हणणें युक्त आहे. सकृन्महालयाचे ठायीं
दुसऱ्या दिवशीं तर्पण करावें. अष्टकांमध्ये सप्तमीश्राद्धांत व अष्टमीश्राद्धांत त्याच वेळीं अंती दोन वर्गांचें (पितृवर्ग व माता-
महवर्ग यांचें) तर्पण करावें. अन्वष्टक्यांत मातृवर्गाचेंही करावें. तीर्थश्राद्धांत दर्शाप्रमाणें करावें. माध्यावर्षादिकश्राद्धांत
अष्टकाप्रमाणें अंती करावें. अनेक श्राद्धांचा संपात असतां एक श्राद्धानें इतरांची प्रसंगसिद्धि असेल तर ज्याचें श्राद्ध केलें
असेल त्याचेंच तर्पण करावें. विरुद्धतर्पणाच्या श्राद्धांचें तंत्र असतां श्राद्धांची समसंख्या असेल तर आधीं किंवा अंती करावें.
विषमसंख्या असेल तर बहुत श्राद्धांच्या अनुरोधानें तर्पण करावें. तस्मात् श्राद्धांगतर्पण सिद्ध झालें.

तद्विधिःसंग्रहे स्नात्वातीरंसमागत्यउपविश्यकुशासने संतर्पयेत्पितृन्सर्वान्स्नात्वावस्त्रंचधामयेत् तर्प-
णोत्तरंनित्यस्नानंकृत्वेत्यर्थः अपसव्यंततःकृत्वासव्यंजान्वाच्यभूतले नामगोत्रस्वधाकारैर्द्वितीयातेनतर्पयेत्
अत्रवस्त्रादिरूपतोक्तस्मृत्यर्थसारे वसुरुद्रादितिसुतान्श्राद्धार्थंतर्पयेत्पितृन् तत्रबहुचानांदक्षिणेनैव अना-
देशेदक्षिणंप्रतीयादितिसूत्रात् अत्रप्रत्यंजलिमंत्रावृत्तिः निर्वापवत्तत्संध्यार्घ्यदानवच्च द्व्यभेदात् अवघा-
तवेदिप्रोक्षणादौतुद्रव्यैकत्वान्नमंत्रावृत्तिः केचित्तुपरिव्याणमंत्रवत्क्रियमाणानुवादित्वेनकरणत्वाभावात्स
कृद्विच्छंति तन्न तत्रापूपद्रव्यैक्यात्परवीरसीतकरणीभूतमंत्रांतरसत्त्वादन्यतरेणव्यवधानापस्योभयोःकर-
णत्वायोगात् कर्त्रभेदेनविकल्पायोगाच्चक्रियमाणानुवादित्वंनत्वत्रतथेतिबौधायनादिवचनात्करणत्वमेव-
तेनावृत्तिरेवयुक्ता एवंनित्येपि यत्सुसंग्रहेनाप्रापठंति पित्रोःश्रयाहेसंप्राप्तेयःकुर्यान्नित्यतर्पणं आसुरंतद्भवे-
च्छ्राद्धंतत्तोयंरुधिरंभवेत् सर्वदातर्पणंकुर्याद्रक्षयज्ञपुरःसरं मृताहेनैवकर्तव्यंकृतंचेन्निरूप्यंभवेत् तत्समूल्यै-
सतिलविविधं यथपठंति कपिलः मन्वादिपुण्याद्यासुदर्शसंक्रमणेषुच पौर्णमास्यांव्यतीपातेव्याप्तपूर्व-

तिलोदकं अधोदयेगजच्छायेषष्ठीषुचमहालये भरण्यांचमघाश्राद्धेतदतैतर्पणंविदुः शौनकः मातापित्रोर्भृ-
ताहेचपरेह्नितिलोदकं कारुण्यश्राद्धविषयेसद्योदद्यात्तिलोदकं एतन्निर्मूलं ।

तर्पणाचा विधि सांगतो—

संग्रहांत—“तीर्थाच्या उदकांत स्नान करून तीरास जाऊन दर्भासनावर बसून साऱ्या पितरांचें तर्पण करावें. नंतर नित्यस्नान करून दुसरें वस्त्र परिधान करावें.” तर्पणाचा प्रकार—“अपसव्य करून डावा गुठ्या भूमीवर टेंकून पितरांचें नांव गोत्र यांचा द्वितीयाविभक्तीनें उच्चार करून त्याच्या पुढें स्वधा शब्द उच्चारून तर्पण करावें.” या तर्पणाच्या ठिकाणीं वसु इत्यादिरूपांचा उच्चार स्मृत्यर्थसारांत सांगितला आहे तो असा—“वसु, रुद्र, आदित्य अशा पितरांचें श्राद्धाचे ठायीं तर्पण करावें” बहूचांना दक्षिण हस्तानेंच तर्पण. कारण, “ज्या ठिकाणीं कोणता हस्त घ्यावा हें मांजितलें नाहीं त्या ठिकाणीं दक्षिणहस्त समजावा” असें सूत्र आहे. ह्या तर्पणाच्या ठिकाणीं प्रत्येक अंजलीला मंत्राची (स्वधानमस्तर्पयामि, इत्यादिकांची) आवृत्ति करावी. कारण, जशी चरुद्रव्याच्या निर्वापाचे ठिकाणीं प्रत्येक निर्वापाला द्रव्य भिन्न असल्यामुळें मंत्राची आवृत्ति आहे. तसेंच संध्येंतील प्रत्येक अर्ध्याला उदकरूप द्रव्य भिन्न असल्यामुळें मंत्राची आवृत्ति आहे तशी येथें प्रतिवेळीं वायवाचें उदक भिन्न असल्यामुळें मंत्राची आवृत्ति आहे. ग्रीहींचा अवघात (कंडन), अग्निहोत्राच्या वेदीचें प्रोक्षण इत्यादि ठिकाणीं द्रव्य एक असल्यामुळें प्रतिवेळीं मंत्राची आवृत्ति नाहीं. **केचित्** विद्वान् तर—जगा परिव्याणमंत्र (गुंठालण्याचा मंत्र) करावयाचें जें कर्म (गुंठालणें) त्याचा अनुवादक असल्यामुळें करण होत नाहीं, तथा हा तर्पणाचा मंत्र करावयाचें जें अंजलिदानरूप कर्म त्याचा अनुवादक असल्याकारणानें करण होत नाहीं म्हणून तर्पणाचा मंत्र एकावार उच्चारवा, असें इच्छितात. तें बरोबर नाहीं. कारण, परिव्याणमंत्राचे ठिकाणीं अपूपरूप द्रव्य एक असल्यामुळें व त्या ठिकाणीं ‘परिवीरमि०’ असा दुसरा मंत्रही आहे म्हणून एका क्रियेला दोन करणें संभवत नाहींत. कारण, करण म्हणजे क्रियेला नाशान् अत्यंत उपकारक होय; तें दोघांना आणावयास लागलें असतां क्रियेच्या व करणाच्या मध्यें दुसरें करण पडल्यामुळें त्याचें व्यवधान येतें मग अशा ठिकाणीं एकांला कोणाला तरी करणत्व मानावयाचें खरें, पण अमुकालाच मानावें, असें प्रमाण नमल्यामुळें एकांला मानिलें तर दुसऱ्याला कां न मानावें, असा विरोध येत असल्यामुळें दोघांनाही मानूं नये. असें हातें. आतां एकावार एकांला करणत्व आणि एकवार दुसऱ्याला करणत्व असा विकल्प म्हणूं ! तर तमेंही म्हणतां येत नाहीं. कारण, दोघांचा कर्ता एक आहे. अर्थात् त्या परिव्याण मंत्राला करणत्व नाहीं. तर तो क्रियमाणाला अनुवादक आहे. या ठिकाणीं (तर्पणाच्या ठिकाणीं) जो मंत्र तो, द्रव्य भिन्न असल्यामुळें क्रियमाण जें अंजलिदानरूप कर्म त्याचा अनुवादक नाहीं; अशा **वौधायना**दिकांच्या वचनावरून करणत्वच आहे. तेणेंकरून प्रत्येक अंजलीला मंत्राची आवृत्ति करणें युक्त आहे. याप्रमाणें नित्यतर्पणाविषयीं देखील समजावें. आतां जें **संग्रहांत** श्राद्धाचें नांव घेऊन सांगतात—“मातापितरांचा मृतदिवस प्राप्त असतां जो मनुष्य नित्यतर्पण करील त्याचें तें श्राद्ध आसुर (असुरांना प्राप्त) होतें, आणि त्यानें दिलेलें उदक रुधिर होतें. ब्रह्मचर्यांतील तर्पण सर्वदा करावें, मातापितरांच्या मृतदिवशीं करूं नये. केलें तर निष्फल होईल.” हें मूल वचन असेल तर तिलसहित तर्पणविषयक समजावें. आतां जें वचन सांगतात की, **कपिल**—“मन्वादिक, युगादिक, दर्श, संक्रान्ति, पूर्णमासी, आणि व्यतीपात यांचे ठिकाणीं श्राद्धाच्या पूर्वीं तिलोदक द्यावें. अधोदयपर्व, गजच्छाया, षष्ठी, महालय, भरणी आणि मघाश्राद्ध यांचे ठायीं श्राद्धाच्या अंती तर्पण सांगतात.” **शौनक**—“मातापितरांचा मृत दिवस असतां दुसऱ्या दिवशीं तिलोदक द्यावें. कारुण्यानं केलेल्या श्राद्धाविषयीं तत्कालीं तिलोदक द्यावें.” हीं वचन निर्मूल आहेत.

अथनित्यतर्पणनिषेधः गार्ग्यः भानौभौमेत्रयोदश्यांनंदाभृगुमघासुच पिंडदानंमृदास्नानंनकुर्वा-
त्तिलतर्पणं स्मृत्यर्थसारे विवाहप्रत्यूहासुवर्षमर्धतदर्थकं अर्धतदेव वृद्धौसत्यांचतन्मासिनेत्याहुस्तिलत-
र्पणं हेमाद्रौमरीचिः सप्तम्यारविवारेचगृहेजन्मदिनेतथा निशासंध्यासुपुत्रार्थानकुर्वात्तिलतर्पणं यत्तु
संग्रहे नंदायांभार्गवदिनेकृत्तिकासुमघासुच भरण्यांभानुवारेचगजच्छायाह्वयेतथा अयनद्वितयेचैवमन्वा-
दिपुयुगादिषु पिंडदानंमृदास्नानंनकुर्वात्तिलतर्पणमिति तच्चित्यं पानीयमप्यत्रतिलैर्विमिश्रंदद्यात्पितृभ्यःप्रय-
तोमनुष्यइत्यादिविरोधात् अत्रापवादःपृथ्वीचंद्रोदये तीर्थेतिथिविशेषेचगंगायांप्रेतपक्षके निषिद्धेपिदिने
कुर्वात्तर्पणंतिलमिश्रितं स्मृत्यर्थसारेपि तिथितीर्थविशेषेषुकार्थप्रेतेचसर्वदेति गोभिलः तिलाभावेनि-
षिद्धाहेसुवर्णरजतान्वितं तदभावेनिषिधेचतुर्धर्ममंत्रेणवापुनः पतितस्यतिलोदकंवक्ष्यामः ।

आतां तिलतर्पणाचा निषेध सांगतो—

गार्ग्य—“रविवार, भौमवार, त्रयोदशी, नंदा (१६।११ या तिथि), मृगुवार, मघानक्षत्र, यांचे ठायीं पिंडदान, मृत्तिकास्नान आणि तिलतर्पण करूं नये.” **स्मृत्यर्थसारांत**—“विवाह, उपनयन, चोल हे संस्कार झाले असतां अनुक्रमानें एक वर्ष, अर्धें वर्ष आणि तीन महिनेपर्यंत पिंडदानादिक करूं नयेत. वरील विवाहादिव्यतिरिक्त वृद्धिश्राद्ध झालें असतां त्या मागांत तिलतर्पण करूं नये, असें सांगतात.” **हेमाद्रीत मरीचि**—“मत्तमी, रविवार, घर, जन्मदिवस, रात्र, संध्याकाळ यांचे ठिकाणीं पुत्रार्थानें तिलतर्पण करूं नये.” आतां जें **संग्रहांत**—“नंदा (१६।११ या तिथि), मृगुवार, कृत्तिकाक्षत्र मघा, भरणी, भानुवार, गजच्छाया, दक्षिणायन व उत्तरायण, मन्वादिक, युगादिक, इतक्या ठिकाणीं पिंडदान मृत्तिकास्नान आणि तिलतर्पण करूं नये” असें सांगितलें, तें चिंत्य (उपेक्षणीय) आहे. कारण, “येथें (मन्वादिकांचे ठायीं) मनुष्यानें पितरांना तिलमिश्रित पाणी तरी द्यावें” इत्यादि वचनाशीं विरोध येतो. निषेधापवाद **पृथ्वीचंद्रोदयांत** सांगतो—तीर्थांचे ठायीं, विशेष तिथि असतां, गंगेचे ठायीं, आणि पितृपक्षांत निषिद्ध दिवशीं देखील तिलमिश्रित तर्पण करावें.” **स्मृत्यर्थसारांत**—“विशेष तिथि आणि विशेष तीर्थ प्राप्त असतां आणि कोणी मृत अगतां सर्वदा तिलतर्पण करावें.” **गोभिल**—“तिलांच्या अभावीं व निषिद्ध दिवशीं गोमं रुपें यांनीं युक्त उदकांनं तर्पण करावें. सोमं रुपें यांच्या अभावीं दध्म व मंत्र यांनीं उदक द्यावें.” पतिताया तिलोदक पुढें (आर्शोचप्रकरणीं) सांगू.

अथवृद्धिश्राद्धं तन्निमित्तं पृथ्वीचंद्रोदये ब्राह्मे जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च पितृनांदीमु-
ग्नान्नमतर्पयेद्विधिपूर्वकं देवव्रतेपुत्राधानयज्ञपुंसवनेपुत्र नवान्नभोजने स्नाने रुढायाः प्रथमार्तवे देवारामत-
डागादिप्रतिष्ठास्मत्पुत्रेपुत्र राजाभिषेकेवालाज्ञभोजने वृद्धिसंज्ञकान् वनस्थायाश्रमंगच्छन्पूर्वेषुः सद्यएव वा
पितृन्पूर्वोक्तविधानान्तर्पयेत्कर्मसिद्धये **विष्णुपुराणे** यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासुमेखलाबंधमोक्षयोः पुत्रजन्मवृषोत्स-
र्गवृद्धिश्राद्धं समाचरेत् तत्रैव नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिकेत्युक्तेर्निकृष्टमात्रप्राशनयोर्न श्राद्धमिति **मै-
थिलाः** तत्र पूर्वोक्तविरोधान्नानिष्ठेति निषेधान्नमुनोत्पत्तौ तथा श्राद्धे अन्नप्राशनिकेत्येति राजमार्तं डाच्च
यत्तु चंद्रोदोगपरिशिष्टं सूर्योदोः कर्मणी ये च तयोः श्राद्धं न विस्मरेदिति तत्तेषामेवेति कल्पतरुः **बह्वचकारि-
कायां** स्यादाभ्युदयिकं श्राद्धं वृद्धिपूर्वकं पुंसुः मघनमीमंतचोलोपनयनेष्विव विवाहे चानलाधेयप्रभृति-
श्रौतकर्मणि इदं श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजा वृद्धिनिमित्तकं अन्यैः षोडशसंस्कारावप्यादिष्वपीष्यते वाप्यागुणाप-
नादौ तु कुर्युः पूर्वनिमित्तकं **वोपदेवकालादर्शौ** सीमंतव्रतचोलनामकगणान्नप्राशनेपुन्यनस्नानाधानविवा-
हयज्ञतनयोत्पत्तिप्रतिष्ठासु च पुंमृत्यावमथप्रवेगनमुताग्रास्यावलोकाश्रमस्वीकारक्षितिपाभिषेकदयितागर्तौ च-
नांदीमुखं यत्तु कामधेनौ जलाशयप्रतिष्ठायां वृषोत्सर्गादिकर्मसु वनसगर्भ्यंतरेपित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि
वृद्धिश्राद्धं न कुर्वन्त इति तदन्यत्र समाचरेदिति तत्र जलाशये वृद्धिश्राद्धस्य निषेधो न तु कर्मगम्येति केचित् अन्ये त्व-
स्य निर्मूलतामाहुः **श्राद्धकौमुद्यां निर्णयामृतं च मात्स्ये** अन्नप्राशे च सीमंतेपुत्रोत्पत्तिनिमित्तके पुंसवे-
चनिषेके च नवेऽमप्रवेगने देववृक्षजलादीनां प्रतिष्ठायां विशेषतः तीर्थयात्रावृषोत्सर्गवृद्धिश्राद्धप्रकीर्तितं इदं-
चावश्यकं वृद्धौ न तर्पिता ये वै पितरो गृहमेधिभिः तद्धीनमफलं ज्ञेयमासुरो विधिरेव स इति **शानातपोक्तेः**
अत्र श्राद्धत्रयं स एवाह मातृश्राद्धं तु पूर्वस्यापितृणां तदनंतरं ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ।

आतां वृद्धिश्राद्ध सांगतो—

वृद्धिश्राद्धाचें निमित्त **पृथ्वीचंद्रोदयांत ब्राह्मांत**—“पुत्राचें जन्म, उपनयन आणि विवाह यांचे ठिकाणीं नांदीमुख पितरांचे विधिपूर्वक तर्पण (श्राद्ध) करावें. देवांचीं व्रतें, अग्नीचें आधान, यज्ञ, पुंसवनसंस्कार, नवान्नभोजन, समाव-
र्तनसंस्कार, स्त्रियेला प्रथम रजोदर्शन, देव-आराम-तलाव इत्यादिकांची प्रतिष्ठा, उन्मव, राजाभिषेक, बालांचें अन्नप्राशन यांचे ठायीं वृद्धिसंज्ञक पितरांचें श्राद्ध करावें. वानप्रस्थादिक आश्रम वेणारानें पूर्वे दिवशीं किंवा त्याच दिवशीं पितरांचें पूर्वांक्त विधीनं श्राद्ध करावें.” **विष्णुपुराणांत**—“यज्ञ, विवाह, देवादिकांची प्रतिष्ठा, मांजीबंधन, सोडमुंज, पुत्रजन्म, आणि वृषोत्सर्ग यांचे ठायीं वृद्धिश्राद्ध करावें.” तेथेंच—“बालांच्या नामकर्माचे ठायीं व चूडाकर्मादिकांत श्राद्ध करावें” असें सांगितल्यावरून निष्क्रमण व अन्नप्राशन यांचे ठायीं श्राद्ध करूं नये, असें **मैथिल** सांगतात, तें बरोबर नाहीं. कारण पूर्वी सांगितलेल्या ब्राह्मवचनाशीं विरोध येतो. व “पितरांचें यजन केल्यावांचून कोणतेंही कर्म करूं नये” असा शातातपानें निषेध

केल आहे. आणि पुत्रोत्पत्तीच्या ठिकाणी तसेंच अन्नप्राशनांत जें श्राद्ध" असें **राजमार्तें** डवचनही आहे. आतां जें **छंदोगपरिशिष्ट**—“सूर्यचंद्रांची जीं कर्मे त्यांचेठायीं वृद्धिश्राद्ध नाहीं.” तें त्या छंदोगांनाच समजावें, असें **कदपतरु** सांगतो. **बह्वचकारिकेंत**—“वृद्धिकर्मे आणि पूर्त (तलावादि) कर्मे यांचे ठायीं आभ्युदयिक श्राद्ध होतें. तें असें—**पुंसवन, सीमंत, चौल, उपनयन, विवाह, अग्न्याधान** इत्यादि श्रौतकर्में, यांचे ठायीं हें श्राद्ध वृद्धिनिमित्तक करितात. इतर ब्राह्मण षोडशसंस्कार, श्रावणी इत्यादिकर्मे यांचे ठायीं देखील करितात. वापी, कूप, तडाग इत्यादिकांच्या उद्यापनादि कर्मांमध्ये पूर्तनिमित्तक करितात.” **बोपदेव व कालादर्श**—“सीमंत, व्रत, चौल, नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन, आधान, विवाह, यज्ञ, पुत्रोत्पत्ति, देवादिप्रतिष्ठा, पुंसवन, गृहप्रवेश, पुत्रादिकांचें सुखावलोकन, वानप्रस्थादि आश्रम ग्रहण करणें, राजाभिषेक, स्त्रियेला प्रथम रजोदर्शन, इतक्या ठिकाणीं नांदीमुख श्राद्ध करावें.” आतां जें **कामधेनु** ग्रंथांत—“जलशयाची (तलावादिकांची) प्रतिष्ठा, वृषोत्सर्गादि कर्में, आणि मातापितरांचें प्रथमवर्षाचे आंत वृषोत्सर्गकर्मे यांचे ठायीं वृद्धिश्राद्ध करूं नये, इतर ठिकाणीं करावें.” त्यांत जलशयाचे ठायीं वृद्धिश्राद्धाचा निषेध, कर्मागश्राद्धाचा निषेध नाही, असें **केचित्** ग्रंथकार म्हणतात. **इतरग्रंथकार** तर हें वचन निर्मूल म्हणतात. **श्राद्धकौमुदी** आणि **निर्णयामृतांत मात्स्यांत**—“अन्नप्राशन, सीमंत, पुत्रोत्पत्ति, पुंसवन, गर्भाधान, नवीनगृहप्रवेश, देव-वृक्ष-जलशय-इत्यादिकांची प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा आणि वृषोत्सर्ग यांचे ठायीं विशेषेंकरून वृद्धिश्राद्ध सांगितलें आहे.” हें वृद्धिश्राद्ध आवश्यक आहे. कारण, वृद्धिकर्मांचे ठायीं ज्यांनीं पितरांची तृप्ति केली नाही, त्यांचें तें कर्म पितृतृप्तिहीन झाल्यामुळें निष्फल जाणावें. श्राद्धरहित तो आसुर विधि होय” असें **शातातप** वचन आहे. ह्या वृद्धिश्राद्धांत तीन श्राद्धें तोच सांगतो—“मातृव्रयीचें श्राद्ध पूर्वी, नंतर पितृव्रयीचें, तदनंतर मातामहव्रयीचें श्राद्ध. याप्रमाणें वृद्धिकर्मांचे ठायीं तीन श्राद्धें सांगितलीं आहेत.

तत्कालमाहपृथ्वीचंद्रोदयेगार्ग्यः मातृश्राद्धंतुपूर्वेशुःकर्माहनिनुपैतृकम्. मातामहंचोत्तरेषुर्वृद्धौ श्राद्धत्रयंसंस्मृतं अत्राप्यशक्तौसएव पृथक्दिनेष्वशक्तश्चेदेकस्मिन्पूर्ववासरे श्राद्धत्रयंप्रकुर्वीतवैश्वदेवंतुतांत्रिकमिति **वृद्धमनुरपि** अलाभेभिन्नकालानानांदीश्राद्धत्रयंबुधः पूर्वेषुर्वैप्रकुर्वीतपूर्वाह्नेमातृपूर्वकं अत्रमहत्सुपूर्वेशुस्तदहरल्पेष्विति **गृह्यपरिशिष्टाद्व्यवस्थाज्ञेया** तच्चप्रातरेव पार्वणंचापराह्णेतुप्रातर्वृद्धिनिमित्तकमिति **शातातपोक्तेः** अत्रप्रातःशब्दःसार्धप्रहरपरः प्रहरोप्यर्धसंयुक्तःप्रातरित्यभिधीयतइतिगार्ग्योक्तिरिति-**पृथ्वीचंद्रः** इदंचपुत्रजन्मातिरिक्तविषयं तदाह्रात्रिः पूर्वाह्णैवैभवेद्वृद्धिर्विनाजन्मनिमित्तकं पुत्रजन्ममि कुर्वीतश्राद्धंतात्कालिकंबुधइति एतदनियतनिमित्तपरं नियतेपुनिमित्तेपुप्रातर्वृद्धिनिमित्तकं तेषामनियतत्वेतुतवानंतर्धमिव्यतइतिलौगाक्षिस्मृतेः आधानांगंनानांदीश्राद्धत्वपराहएव आमश्राद्धंतुपूर्वाह्णसिद्धात्त्रेनतुमध्यतः पार्वणंचापराह्णेतुवृद्धिश्राद्धंतथाग्निकमिति**निर्णयामृतेगालवोक्तेः** नांदीमुखाहयंप्रातराग्निकत्वपराह्नत इतिविष्णुक्तेश्च ।

त्या तीन श्राद्धांचे काल सांगतो **पृथ्वीचंद्रोदयांत गार्ग्य**—“वृद्धिकर्माच्या पूर्वे दिवशीं मातृश्राद्ध करावें. वृद्धिकर्माचे दिवशीं पितृश्राद्ध करावें. कर्माच्या उत्तर दिवशीं मातामहांचें श्राद्ध. याप्रमाणें वृद्धिकर्मांत तीन श्राद्धें सांगितलीं आहेत.” ह्या तीन श्राद्धाविषयीं देखील अशक्ति असतां तोच सांगतो—“वेगवेगळ्या तीन दिवशीं श्राद्धाविषयीं शक्ति नसेल तर वृद्धिकर्माच्या पहिल्या एका दिवशीं तीन श्राद्धें करावीं. त्या ठिकाणीं विश्वदेवांचें तंत्र करावें.” **वृद्धमनुर्ही**—“वेगवेगळे काल सांपडत नसतील तर तीन्ही नांदीश्राद्धें वृद्धिकर्माच्या पूर्वेदिवशीं मातृश्राद्धपूर्वक पूर्वाह्णी करावीं.” मोठ्या कर्मांमध्ये पूर्वेदिवशीं व अल्प कर्मांमध्ये त्याच दिवशीं वृद्धिश्राद्ध करावें” ह्या **गृह्यपरिशिष्टाच्या** वचनावरून येथें व्यवस्था जाणावी. तें वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालींच करावें. कारण, “पार्वणश्राद्ध अपराह्णी आणि वृद्धिनिमित्तक श्राद्ध प्रातःकाली” असें **शातातप** वचन आहे. ह्या वचनांतील ‘प्रातः’ हा शब्द दीड प्रहर कालाचा बोधक आहे. कारण, “दीड प्रहराला प्रातः असें म्हटलें आहे” असें **गार्ग्य** वचन आहे, म्हणून **पृथ्वीचंद्र** सांगतो. वृद्धिनिमित्तक प्रातः करावें, हें सांगणें पुत्रजन्मातिरिक्तविषयक आहे. तेंच **अत्रि** सांगतो—“जन्मनिमित्तावांचून इतर वृद्धिश्राद्ध पूर्वाह्णी होतें. पुत्र जन्म असतां तत्कालीं वृद्धिश्राद्ध करावें.” वृद्धिश्राद्धाचीं निमित्तें नियत (ठरीव उत्पन्न) नसतील तद्विषयक हें वचन आहे. कारण, “नियमित निमित्तांचे ठायीं वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालीं करावें. आणि निमित्तें नियमित नसतील तर निमित्तोत्पत्तीच्या नंतर वृद्धिश्राद्ध करावें” असें **लौगाक्षि** स्मृतिवचन आहे. आधानाचें अंगभूत जें वृद्धिश्राद्ध तें अपराह्णीच करावें. कारण, “आमश्राद्ध पूर्वाह्णी, सिद्धान्नानें मध्याह्नी, पार्वणश्राद्ध अपराह्णी, आणि अग्निनिमित्तक वृद्धिश्राद्ध तेही अपराह्णी करावें” असें **निर्णयामृतांत गाल** वचन आहे. “नांदीमुखसंज्ञक श्राद्ध प्रातःकालीं करावें, आणि अग्निनिमित्तक अपराह्णी करावें” असें **विष्णु** वचनही आहे.

इदंचमातृपितृमातामहादिक्रमेणनवदैवत्यं कार्यं तत्रमातामहाः सपत्नीकाः वृद्धप्रमातामहप्रमातामहमाता-
महानांसपत्नीकानामिति पृथ्वीचंद्रोदयेगारुडगद्यरूपेण पाठात् हेमाद्रीशंखः नांदीमुखे सत्यवसूंसंकी-
र्त्यौवैश्वदेविके वृद्धपराशरः नांदीमुखेभ्योदेवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनं पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति
स्मृतिः यत्तु वृद्धवसिष्ठः नांदीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्वकं नामसंकीर्तयेद्विद्वानन्यत्र पितृपूर्वकं यच्च
स्मृत्यर्थसारे वृद्धमुख्यास्तु पितरो वृद्धिश्राद्धेषु भुंजत इति यच्च गारुडे व्युत्क्रमप्रतिपादनं तच्च शाखांतरविषयं
पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्य इति बहुच परिशिष्टे कात्यायनेन चानुलोम्यान्नानात् पृथ्वीचंद्रोदये-
प्येवं यत्तु केचि वृद्धपदपित्रादिषु भुंजते तन्न अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् अनानामतिलाद्यैश्च नां-
दीश्राद्धंतु सव्यवदिति पृथ्वीचंद्रोदये संग्रहोक्तेः नच निषेधादेव विधिः कल्यत इति वाच्यम् प्रौष्ठपदीश्राद्धे-
प्रपितामहात्परेषां वृद्धपित्रादीनां देवतात्वान्नांदीश्राद्धत्वसाम्येनेहापितृप्राप्तौ निषेधात् गोत्रनामादिनिषेधस्तु
शुभार्थी प्रथमां तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेदित्युपक्रम्यानस्मद्वृद्धशब्दानामित्युक्तेः संकल्पश्राद्धपरः सर्पिडके तु सर्व-
भवतीति प्रयोगपारिजातात् गोत्रनामभिरामं व्यपितृभ्योऽर्थप्रदापयेदिति छंदोगपरिशिष्टे तद्विधा-
नान् यत्तु ब्राह्मे पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः त्रयोह्यश्रुमुखाद्येते पितरः परिकीर्तिताः तेभ्यः पूर्वतराये-
च प्रजावंतः सुखैधिताः तेतुनांदीमुखानांदीसमृद्धिरितिकथ्यत इति यच्च मार्कंडेयपुराणे येस्युः पितामहा-
दूर्ध्वतेतुनांदीमुखाः स्मृता इति तज्जीवत्पित्रादित्रिकर्तृकवृद्धिश्राद्धविषयं तेन तस्येदमावश्यकं यत्तु विष्णुः
पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यादिति तद्दर्शादिविषयमिति कल्पतरुः मदनपारिजातेप्येवं
हेमाद्रिस्तुनांदीमुखानां श्राद्धंतु कन्यागशिगतेरवौ पौर्णमास्यांतु कर्तव्यं वराहवचनं यथेति प्रौष्ठपदीश्राद्धैक-
वाक्यत्वान्न तत्रैव पूर्वपाददेवतात्वमित्याह अत्र सत्यवसूविश्वेदेवावित्युक्तं प्राक् यत्तु शातातपः मातुः श्राद्धं तु-
युगमैः स्याददैवप्राज्जुखैः पृथगिति तद्विज्ञप्रयोगमातृश्राद्धपरं यच्च मार्कंडेयपुराणे विश्वेदेव विहीनंतु केचि-
द्विच्छंति मानवा इति तद्विज्ञप्रयोगमातृश्राद्धभिन्नश्राद्धद्वये विश्वेदेव विकल्पार्थं प्रयोगैक्येतु देव नियम इति
हेमाद्रिः ।

हे वृद्धिश्राद्ध मानृत्रय, पितृत्रय आणि मानामहत्रय अशा क्रमानें नऊ देवतांचें करावें. त्यांत मानामह सपत्नीक ध्यावे.
कारण, “वृद्धप्रमातामह, प्रमातामह, मातामह यांचें सपत्नीकांचें करावें” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत गारुडांत गद्य
(फाकका) रूपानें सांगितलें आहे. हेमाद्रीत शंख—“नांदीमुखश्राद्धांत विधेदेव सत्यवसू म्हणावे.” वृद्धपराशर—
“नांदीमुख देवांना कुशासन प्रदक्षिण द्यावें. आणि नांदीमुख पितांनाही प्रदक्षिणच द्यावें, अशी स्मृति आहे.” आतां जें
वृद्धवसिष्ठ—“नांदीमुखांत व विवाहांत प्रपितामहपूर्वक त्रयीच्या नांवाचा उच्चार करावा. इतर ठिकाणीं पितृपूर्वक त्रयीच्या
नांवाचा उच्चार करावा.” आणि जें स्मृत्यर्थसारांत—“वृद्धिश्राद्धाचे त्रयीं प्रपितामहाच्या पुढे वृद्धप्रपितामहादिक
पितर श्राद्ध सेवन करतात.” आणि जें गारुडपुराणांत—उलट क्रमानें (प्रपितामह, पितामह, पिता अशा क्रमानें) पितर
घेतले आहेत तें सारें इतर शाखाविषयक आहे. कारण, “पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः” असें बहुच परिशिष्टांत
व कात्यायनांनीं अनुलोम (सरळ) क्रमानें वृद्धिश्राद्धाच्या देवता सांगितल्या आहेत. पृथ्वीचंद्रोदयांतही असेंच
आहे. आतां जें केचित् ग्रंथकार—पिता इत्यादिकांचे ठिकाणीं ‘वृद्ध’ या पदाचा प्रयोग करतात तें बरोबर नाहीं. कारण,
“अस्मच्छब्द, वृद्धशब्द, वस्वादिरूप, गोत्र, आणि नांव यांनीं विवर्जित अशा पितरांचें त्यादि विवर्जित द्रव्यांनीं सव्यां
नांदीश्राद्ध करावें” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत संग्रहवचन आहे. आतां या वचनानें नांदीश्राद्धांत ‘वृद्ध’ शब्दाचा निषेध
केलेला आहे त्यावरून ‘वृद्ध’ या शब्दाचा उच्चार करावा, अशा विधीची कल्पना करूं; कारण, विधीवाचून निषेध संभवत
नाहीं; असें कोणी म्हणेल तर तसें म्हणूं नये. प्रौष्ठपदीश्राद्धांत प्रपितामहाच्या पूर्वीच वृद्धप्रपितामहादिक देवता असल्यामुळे
नांदीश्राद्धाच्या साम्यांनं येथेही वृद्धशब्दाची प्राप्ति असतां त्याचा निषेध केला आहे. आतां गोत्र, नांव इत्यादिकांचा निषेध
केला त्याची प्राप्ति कोठे आहे ? असें म्हणालं तर—“कल्याणाथां असेल त्यां वृद्धीच्या ठिकाणीं सांकल्पिक श्राद्ध करावें”
याचा उपक्रम करून ‘अनस्मद्वृद्धशब्दानां’ हीं वरील निषेधक वचन सांगितल्यामुळे तो गोत्र, नांव इत्यादि निषेध सांकल्पिक-
श्राद्धविषयक आहे. सर्पिडक वृद्धिश्राद्धांत सर्व (गोत्रनामादिक) होतें, असें प्रयोगपारिजातांत सांगितलें आहे. “गोत्र,
नांव यांनीं आमंत्रण (उच्चार) करून पितरांना अर्घ्य द्यावें” ह्या छंदोगपरिशिष्टवचनांत गोत्रनांवाचें विधान आहे.

आतां जें **ब्राह्मांत**—“पिता, पितामह, आणि प्रपितामह हे तीन पितर अश्रुमुख आहेत. त्यांच्या पूर्वींच जे प्रजावंत सुखानें वाढलेले ते नांदीमुख होत. कारण, नांदी म्हणजे समृद्धि म्हटली आहे.” आणि जें **मार्कंडेयपुराणांत**—“जे पितामहाच्या पूर्वींच ते नांदीमुख म्हटले आहेत.” अशीं तीं दोन्ही वचनं ज्याची पितृत्रयी जीवंत असेल त्यानें करावयाच्या नांदीश्राद्धविषयक आहेत. तेणेंकरून त्या जीवपित्रादित्रिकाला हें नांदीश्राद्ध (वृद्धप्रपितामहादिकांनं श्राद्ध) आवश्यक आहे. आतां जें **विष्णु**—“पिता, पितामह, व प्रपितामह हे जीवंत असतां श्राद्ध करूं नये” तें दर्शाणूक श्राद्धविषयक आहे, असें कल्पतरु सांगतो. **मदनपारिजातांत**ही असेंच आहे. **हेमाद्री तर**—“सूर्य कन्याराशीच गेला असतां पौर्णमासीस (प्रौष्ठपदीस) नांदीमुखपितरांचें श्राद्ध करावें, असें बराहवचन आहे.” या वचनानें सांगितल्या प्रौष्ठपदी श्राद्धाशी वरील ब्राह्मादि वचनाची एकवाक्यता (एक अन्वय) केल्यावरून त्या प्रौष्ठपदी श्राद्धांतच वृद्धप्रपितामहादिक देवता आहेत, असें सांगतो. नांदीश्राद्धांत सत्यवसू विश्वेदेव, असें पूर्वी श्राद्धदेवताप्रकरणीं सांगितलें आहे. आतां जें **शातातप**—“मातेचें श्राद्ध तर प्राङ्मुख दोन ब्राह्मणांनीं देवरहित पृथक् होतें.” या वचनानं देव नाहीत असें सांगितलें तें वेगळ्या प्रयोगानें मातेचें श्राद्ध करावयाचें त्या पक्षीं समजावें. आणि जें **मार्कंडेयपुराणांत**—“केचित् मनुष्य वृद्धिश्राद्ध विश्वेदेवरहित इच्छितात” असें सांगितलें तें, तीन्ही पार्वणांचीं तीन श्राद्धें भिन्नभिन्न प्रयोगानें करावयाच्या पक्षां मान्पूर्वाणावांचून इतर पार्वणाच्या दोन श्राद्धांत विश्वेदेवांचा विकल्प होण्याकरितां समजावें. एक प्रयोगानें तिघांचें श्राद्ध असतां विश्वेदेव आहेतच, असें हेमाद्री सांगतो.

एतच्चमातृपूजापूर्वकं कार्यं अकृत्वामातृयागंतुयः श्राद्धं परिवेषयेत् तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसा मिच्छंति मातर-
इति शातातपोक्तेः कौर्मपि पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गंधाद्यैर्भूषणैरपि पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुध-
इति छंदोगपरिशिष्टे कर्मादिपुतुसर्वेषु मातरः सगणाधिपाः पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयंति ताः प्रतिमा-
सुचशुद्धासुलिखितावपटादिषु अपि वाक्षतपुजेषु नैवेद्यैश्च पृथक् विधैः कुड्यलमांसोर्धारांसप्रधारांघृतनेतु
कारयेत्पंचधारां वानातिनीचानचोच्छ्रितां आयुष्याणि च शाल्यार्थं जह्वातत्र समाहितः पद्भ्यः पितृभ्यस्तदनु-
श्राद्धदानमुपक्रमेत् अत्र सर्वेष्विति ग्रहणाद्ग्रहयज्ञतद्विकारेष्वपि नित्यं श्राद्धं नानिष्ठातुपितृश्राद्धे कर्म किंचित्समा-
चरेदिति शातातपोक्तेश्च इयंच वसोर्धारातच्छाखीयानां नित्यताऽन्येषां त्वनित्यता बह्वत्पं वास्वगृहोक्तमि-
त्युक्तेः करणत्वभ्युदयः यन्नाम्रातस्वशाखायामित्युक्तेः आयुष्याणि आनोभद्रा इत्यादीनि पद्भ्य इति मात्रादि-
त्रिकोपलक्षणमिति पृथ्वीचंद्रोदयः छंदोगानां पद्भ्यैव त्वमन्येषां न वदैव त्वमित्याशार्कः मम तु मतं कोकि-
लमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहा इति मात्रासहैव मातामहश्राद्धकरणान् तद्विषयमिदं पद्भ्य इति ।

हें नांदीश्राद्ध पूर्वीं मातांची पूजा करून नंतर करावें. कारण, “मातांची पूजा केल्यावांचून जो श्राद्ध करील त्यावर माता क्रोधाविष्ट होऊन त्याचा नाश इच्छितात” असें शातातपवचन आहे. **कौर्म**ातही—“पुष्प, धूप, नैवेद्य, गंधादिक उपचार, भूषणें, यांनीं मातृगणाची पूजा करून नंतर तीन श्राद्धें करावीं.” **छंदोगपरिशिष्टांत**—“सर्वकर्मांमध्ये गणाधिप-
सहित मातांची पूजा करावी. कारण, त्यांची पूजा केली असतां त्या आपली पूजा (उत्कर्ष) करितात. सुवर्णादिधातूंच्या शुद्ध प्रतिमा, किंवा वस्त्रादिकांवर काढलेल्या आकृति अथवा अक्षतांचे पुंज (राशि) यांजवर नानाविध नैवेद्यादिकांनीं मातांची पूजा करावी. भिंतीवर वसोर्धारा करावी, ती अशी—तुपांनं सात किंवा पांच धारा फार उंच किंवा फार नाच न होतील अशा कराव्या. मातृगणाच्या पूजासमयीं शांतीसाठीं आयुष्यसूक्तें (आनोभद्रा इत्यादिक) जपून नंतर सहा पितरांचें श्राद्ध करण्यास आरंभ करावा.” या छंदोगपरिशिष्टवचनांत “सर्वेषु” असें पद आहे, त्यावरून ग्रहयज्ञ व ग्रहयज्ञाच्या चिकृति यांचे ठायीं देखील श्राद्ध नित्य आहे. आणि “श्राद्धाचे ठायीं पितरांची पूजा केल्यावांचून कोणतेंही कर्म करूं नये” असें शातातपवचनही आहे. ही वर सांगितलेली वसोर्धारा छंदोगशाखीयांना नित्य आहे, इतरांना नित्य नाही. कारण, “बहुत किंवा अल्प आपल्या गृह्यांत उक्त असेल तें केल्यानें सर्वे केल्यासारखे होतें” असें सांगितलें आहे. केलें तर अभ्युदय (उत्कर्ष) आहे. कारण “आपल्या शाखेंत उक्त नसून अवरूद्ध असेल तें परशाखीय ध्यावें” असें आहे. वचनांत ‘सहा पितरांचें श्राद्ध’ असें म्हटलें तें मात्रादि तीनत्रयींचें उपलक्षण (बोधक) आहे, असें पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. छंदोगाचें श्राद्ध सहा देवतांचें, इतरांचें नऊ देवतांचें, असें आशार्क सांगतो. माझें (कमलाकरभट्टाचें) तर मत असें आहे की, कोकिलमतानुसारांना ‘मातृ-
मातामहप्रमातामहाः’ या प्रकारें मातेसहच मातामहश्राद्ध सांगितलें आहे, तद्विषयक हें सहा पितरांचें श्राद्ध सांगितलें आहे.

मातरस्तत्रैवोक्ताः गौरीपद्माश्वीमेधासावित्रीविजयाजया देवसेनास्वधास्वाहामातरोलोकमातरः
धृतिः पुष्टिस्तथातुष्टिरात्मदेवतयासह गणेशेनाधिकाद्येतावृद्धौ पूज्याश्चतुर्दश मातरोलोकमातर इति सर्वविशे-

षणं तेनचतुर्दशत्वं यदाषोडशेतिपाठस्तदादेवतांतरं चंद्रिकायांचतुर्विंशतिमितेत्वम्याज्ज्ज्ञाः तिस्रः पूज्याःपितुःपक्षेतिस्त्रोमातामहेतथा इत्येतामातरःप्रोक्ताःपितुर्मातुःस्वसाष्टमी आसांजीवनेप्रत्यक्षपूजनं मृता-नांत्वक्षतपुंजेष्वितिहेमाद्रिः ब्रह्माण्याद्यास्तथासप्तदुर्गाक्षेत्रगणाधिपान् वृद्ध्यादौपूजयित्वातुपश्चात्तदौमुखा-न्पितृन् मातृपूर्वांन्पितृन्पूज्यततोमातामहानपि मतामहीस्ततःकेचिद्युग्माभोज्याद्विजातयइति अत्रद्वादशदैव-तस्यदेशाचारव्यवस्था ब्रह्माण्याद्याः ब्राह्मीमाहेश्वरीचैवकौमारीवैष्णवीतथा वाराहीचतथेंद्राणीचामुंडासप्त-मातर इत्यपराकैःउक्ताः अत्रचौलादीनांयौगपद्येतंत्रतोक्ताछंदोगपरिशिष्टे गणशःक्रियमाणानांमातृभ्यः-पूजनंसकृत् सकृदेवभवेच्छ्राद्धमादौनपृथगादिपु मातृभ्य इतिपृथगर्थंचतुर्थी गणशःएकानेकपुत्राणांसंस्कारे-ष्वेकदिनेदेशकालकत्रैक्यादित्यर्थः तथा असकृद्यानिकर्माणिक्रियेरन्कर्मकारिभिः प्रतिप्रयोगनैवस्युर्मातरः-सगणाधिपाः कर्मावृत्तावपिकुत्रश्राद्धकार्यकचनेत्युक्तंनचैव आधानेहोमयोश्चैववैश्वदेवतथैवच बलिकर्मणि-दर्शंचपूर्णमासेतथैवच नवयज्ञेचयज्ञज्ञावदंत्येवंमनीषिणः एकमेवभवेच्छ्राद्धमेतेषुनपृथक्पृथक् एतेषुप्रति-प्रयोगंनावर्ततेकिंत्वादौ एतद्विज्ञेसोमयागादौप्रतिप्रयोगमावर्ततेएवश्राद्धमित्यर्थः ।

सर्वे कर्मांत मातांची पूजा सांगितली, त्या माता तेथंच सांगितल्या आहेत. त्या अशा—“गौरी, पद्मा, शची, मेधा, गावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, वृत्ति, पुष्टि, तुष्टि, आणि आत्मदेवता ह्या चवदा माता म्हणजे लोकमाता यांची गणेशासह वृद्धिकर्मांत पूजा करावी.” श्लोकांत ‘मातरो लोकमातरः’ हें पद सर्वांचें विशेषण आहे म्हणून चवदा होतात. जेव्हां ‘चतुर्दश’ येथें ‘षोडश’ असा पाठ असेल तेव्हां ‘मातरः लोकमातरः’ ह्या दोन निराळ्या देवता समजाव्या. चंद्रिकेंत चतुर्विंशतिमतांत तर दुसऱ्या माता सांगितल्या आहेत त्या अशा—“पित्याकडच्या तीन, मातामहाकडच्या तीन, आल्या आणि आठवी मावशी ह्या जीवून असतां ह्यांची प्रत्यक्ष पूजा करावी. मृत असतां अक्षतपुंजावर करावी, असें हेमाद्रि सांगतो. अशाच ब्राह्मी इत्यादिक सात माता, दुर्गा, क्षेत्रपाल, गणाधिप ह्यांची वृद्ध्यादिकर्मांत पूजा करून नंतर नांभी-मुख पितरांची पूजा करावी. ती अशी—पूर्वी मातृत्रयी नंतर पितृत्रयी तदनंतर मातामहत्रयी यांची पूजा करावी. तदनंतर मातामहीत्रयीचीही पूजा करावी. असें केचित् म्हणतात. प्रत्येक त्रयीला दोन दोन ब्राह्मणांना भोजन घालवें.” येथें श्राद्धांत बारा देवता सांगितल्या त्यांची देशाचारावरून व्यवस्था जाणावी. ब्राह्मी इत्यादिक माता येणेंप्रमाणें—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इंद्राणी, व चामुंडा ह्या सात माता अपराकांत उक्त आहेत. चौल इत्यादिक संस्कार एककालीं करावयाचे असतां मातृपूजनांचें व वृद्धिश्राद्धाचें तंत्र (एकवार अनुष्ठानांनं सर्वोपयोगी होणें) छंदोगपरिशिष्टांत सांगतो—“एक पुत्राचे अनेक संस्कार किंवा अनेक पुत्रांचे अनेक संस्कार एक दिवशीं एक देशीं एक कालीं एककर्त्यानें करावयाचे असतां मातांचें पूजन एकवार आधीं करावें. वृद्धिश्राद्धही एकवार आधीं करावें. प्रत्येक कर्माच्या आधीं नाहीं.” तसेंच “कर्म करणारे वारंवार जीं कर्म करितात त्या ठिकाणीं प्रत्येक प्रयोगाला गणाधिपमहिन मातांची पूजा नाहीं.” कर्माची आवृत्ति असतांही कोठें श्राद्ध करावें व कोठें करूं नये, तें तेथेंच सांगितलें आहे, तें असें—“आधान, सायंप्रातर्होम, वैश्वदेव, बलिकर्म, दर्शयाग, पूर्णमासयाग, नवयज्ञ, यांचे ठिकाणीं विद्वान् असें सांगतात की, आधीं एकच श्राद्ध होतें, प्रत्येक प्रयोगाला श्राद्धाची आवृत्ति नाहीं.” यावांचून इतर सोमयागादिकांत प्रत्येक प्रयोगाला वृद्धिश्राद्धाची आवृत्ति होतेच असा भाव.

कचिदादावपिनिषेधमाहसएव नाष्टकासुभवेच्छ्राद्धंनश्राद्धेश्राद्धमिष्यते नसोऽप्यंतीजातकर्मप्रोषितागत-कर्मसु विवाहादिःकर्मगणोयउक्तोर्गर्भाधानंशुश्रुमोयस्यचान्ते विवाहादावेकमेवात्रकुर्वाच्छ्राद्धनादौकर्मणःकर्म-णःस्यात् सोऽप्यंत्याआसन्नप्रसवायाः सोऽप्यंतीमभ्युक्ष्येत्युक्तंकर्म कात्यायनोक्तस्यश्राद्धस्यपाकप्राधान्यात्-स्यच जातश्राद्धेनदद्यात्पुत्रांनब्राह्मणेध्वपीतिनिषेधान्नजातकर्मणिनांदीश्राद्धमित्याशार्कः आमाम्नेनवाकार्य-मित्यपितेनैवेक्तं गौडास्तु जातकर्मण्येवनिषेधः पुत्रजन्मनिमित्तकंतुकार्यमेव जन्मन्यथोपनयनेइत्युक्तेः नैमित्तिकमथोवक्ष्येश्राद्धमभ्युदयात्मकं पुत्रजन्मनितत्कार्यंजातकर्मसमनंरैरितिमार्कंडेयपुराणाभेद्याहुः हारलतायांश्राद्धविवेकेचैवं एतेनजातकर्मणिकालांतरेश्राद्धनिषेधोनपुत्रजन्मदिनेइतिवाचस्पतिमतंप-रास्तं अत्रनिषेककालेइतिवचनात् गर्भाधानेननिषेधः निषेककालेसोमेचसीमंतोन्नयनेतथा ज्ञेयंपुंसवनेश्राद्धं-कर्मांगविधिवत्कृतमिति पारस्करः प्रोषितेति प्रोष्यैत्यगृहानुपतिष्ठतेपुत्रंद्राजपतीतिविहितंकर्म विवाहादिः

गर्भाधानांतौगृहप्रवेशचतुर्थीकर्मादिकर्मसमूहोक्तः सूत्रकारेण तत्रापिप्रतिकर्मनेत्यर्थः अन्येपिहलाभियो-
गाद्योपवादविषयास्तत्रैवज्ञेयाः अप्रचारात्नोच्यते ।

क्वचित्स्थलीं आधीं देखील निषेध तोच सांगतो—“अष्टकाश्राद्धांचे ठायीं श्राद्ध होत नाही. कारण, श्राद्धाचे ठायीं श्राद्ध इष्ट नाही. प्रसूतिकाल जवळ आलेल्या गरोदर स्त्रियेचें कर्म, जातकर्म, प्रवासास जाऊन आल्यावर करावयाचें कर्म इतक्या ठिकाणीं वृद्धिश्राद्ध नाही. विवाह आदिकरून गर्भाधानापर्यंत जीं कर्मां सांगितलीं, त्या कर्मांत विवाहाच्या आधीं एकच श्राद्ध करावें. प्रत्येक कर्माच्या आधीं श्राद्ध करूं नये.” सोप्यंती म्हणजे प्रसूतिकाल जवळ असलेली स्त्री, तिचें कर्म तिला अभ्युक्षण करून बगैरे सांगितलेलें आहे तें समजावें. **कात्यायनानें** सांगितलेलें श्राद्ध पाकप्रधान असल्यामुळें त्याचा जातकर्माचे ठायीं ब्राह्मणांला देखील पक्वान्न देऊं नये” या वचनानें निषेध केला असल्यामुळें जातकर्मांत नांदीश्राद्ध नाही, असें **आशार्क** सांगतो. अथवा आमामानें करावें, असंही त्यांचंच (आशार्कानंच) सांगितलें आहे. **गौड** तर—वरील वचनानें जातकर्माचे ठायींच नांदीश्राद्धाचा निषेध. पुत्रजन्मनिमित्तक करावेंच. कारण, “पुत्रजन्मकालीं, व उपनयनांत श्राद्ध करावें.” असें वचन आहे. आणि “आतां नैमित्तिक आभ्युदयिक श्राद्ध सांगतो, तें श्राद्ध मनुष्यांनीं जातकर्माप्रमाणें पुत्रजन्मसमयीं करावें” असें **मार्कंडेयपुराण** वचन आहे, असें सांगतात. **हारलतैत** व **श्राद्धविवेकांत**ही असेंच आहे. येणेंकरून (जातकर्मांत श्राद्धनिषेध केल्यानें) ‘कालांतरीं जातकर्म करावयाचें असतां तेथें श्राद्धाचा निषेध, पुत्रजन्मदिवशीं श्राद्धनिषेध नाही. असें **वाचस्पतीचें** मत खंडित झालें. “गर्भाधान, सोमयाग, सीमंतोन्नयन, पुंसवन, यांचे ठायीं कर्मांश्राद्ध यथाविधि करावें” या **पारस्कर** वचनावरून गर्भाधानांत श्राद्धाचा निषेध नाही. वरील वचनानां ‘प्रोषितागतकर्म’ याचा अर्थ—“प्रवासांतून घरीं येऊन पुत्राला पाहून जप करावा” इत्यादि विहित कर्म समजावें. अन्यही ह्यभियोग इत्यादिक श्राद्धाच्या अपवादाचे विषय आहेत, ते तेथेंच पहावे, त्यांचा प्रचार नसल्यामुळें ते येथें सांगत नाही.

अत्राधिकारिणः विष्णुपुराणे जातस्यजातकर्मादिक्रियाकांडमशेषतः पितापुत्रस्यकुर्वीतश्राद्धं-
चाभ्युदयात्मकं अत्रकेचित् जीवत्पितुःसाग्नेरेववृद्धिश्राद्धेधिकारः नतुनिरग्नेः नजीवत्पितृकःकुर्याच्छ्राद्ध-
मग्निमृतेद्विजः येभ्यएवपितादद्यात्तेभ्यःकुर्वीतसाम्निकः पितामहेभ्येवमेवकुर्याज्जीवतिसाम्निकः साम्निकोपि न
कुर्वीतजीवतिप्रपितामहे इतिचंद्रिकायां**सुमंतूक्ते**रित्याहुः **प्रयोगपारिजाते**प्यनाहिताग्निर्नकुर्यादितिदं-
व्याख्यातं तत्र अनग्निकोपिकुर्वीतजन्मादौवृद्धिकर्मणि येभ्यएवपितादद्यात्तानेवोद्दिश्यतर्पयेदिति**हारी-**
तोक्तेः सौमंतवंतुवृद्धिश्राद्धमिन्नश्राद्धपरमित्युक्तं**मदनरत्ने** श्राद्धपदंपिंडपितृयज्ञपरमिति**पृथ्वीचंद्रो-**
दयः निर्णयामृतेतुहारीतीयेऽनग्निकोनाहिताग्निरभिप्रेतः पूर्ववचनेतुसाम्निकःश्रौताग्निःस्मार्ताग्निश्चोच्यते
तेनोभयाग्निहीनस्यनेत्युक्तं तत्र पूर्वोक्तदिशागतिसंभवेनग्निपदस्यस्मार्ताग्निपरत्वेमानाभावात् वक्ष्यमाणनि-
त्यानित्यसंयोगविरोधात् पितरोजनकस्येज्यायावद्व्रतमनाहितं समाहितव्रतःपश्चात्त्वान्यजेतपितामहानिति
पृथ्वीचंद्रोदयेयमवचोविरोधाच्च **अपराकोपि** समावर्तनेब्रह्मचारीस्वयमेवनांदीश्राद्धंकुर्यादित्याह अतः
पूर्वमेवसाधु **बोपदेवोप्येव**माह यत्तुमतं जीवत्पितुःपुत्रनामकर्मादौनवृद्धिश्राद्धं **हारीतीये** जन्मादावि-
त्यादिशब्देनतत्प्राप्तावपि उद्वाहेपुत्रजननेपित्र्येष्टयांसौमिकेमखे तीर्थब्राह्मणआयातेपडेतेजीवतःपितुरिति-
भैत्रायणीयपरिशिष्टेउद्वाहएवतस्योपसंहारात् एवंयत्रतुसंस्कारादिपदंतदप्युद्वाहादिवपरमेवेति तत्र उद्वा-
हपदस्यस्वविवाहपरत्वस्यापिसंभवात् पुत्रविवाहपरत्वेमानाभावात् नामकर्मणिबालानांचूडाकर्मादिकेतथेत्या-
दिभिर्नित्यश्राद्धस्यचौलाद्यंगत्वावगतौनित्यानित्यसंयोगविरोधाच्च अतोजन्मादावितिसर्वसंस्कारसंग्रहः
तथा**कात्यायनः** स्वपितृभ्यःपितादद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु पिंडानोद्वाहनात्तेपांतस्याभावेतुतत्क्रमात् सुतानां-
चौलादिसंस्कारेषुपितास्वपितृभ्यःपिंडानश्राद्धं पिंडदोऽशहरश्चैषामिति**दर्शनात्** ओद्वाहनाद्विवाहपर्यंतंदद्यात्
विवाहश्चप्रथमः नांदीश्राद्धंपिताकुर्यादाद्येपाणिग्रहेबुधः अत ऊर्ध्वंप्रकुर्वीतस्वयमेवतुनांदिकमिति**स्मृत्यैः** तस्य-
पितुरभावेतत्क्रमात् असंस्कृतास्तुसंस्कार्याश्चात्रभिःपूर्वसंस्कृतैरितियःकर्तृक्रमःतेनक्रमेणज्येष्ठश्चात्रादिर्वद्या-

दिति चंद्रिकादयः हेमाद्रिस्तुतस्यपितुरभावेयःपितृव्यमातुलादिःसंस्क्रुयात्सतत्कमात्संस्कार्यपितृकमानं
इद्यान्नतुस्वपितृभ्यइतिव्याचख्यौ । *

आतां वृद्धिश्राद्धाविषयीं अधिकारी सांगतो—

विष्णुपुराणांत—“शालेल्या पुत्राचे सारे जातकर्मादि संस्कार आणि अभ्युदयात्मक श्राद्ध (वृद्धिश्राद्ध) हे सारे बापांनी करावे.” येथे केचित् ग्रंथकार, जीवत्पिता सामिक असेल तर त्यालाच वृद्धिश्राद्धाविषयीं अधिकार, निरभिकाला नाही, कारण, “अग्नि अमल्यावांचून जीवत्पितृकांनं श्राद्ध करूं नये, पिता ज्यांचें श्राद्ध करीत असेल त्यांचें श्राद्ध सामिक जीवत्पितृकांनं करावें. पितामह जीवंत असतां असेंच श्राद्ध सामिकांनं करावें. प्रपितामह जीवंत असतां सामिकांनं देखील श्राद्ध करूं नये” असें चंद्रिकेंत सुमंतुवचन आहे, असें सांगतात. प्रयोगपारिजातांतही ज्यांनीं अग्नीचें आधान केलें नाही त्यांनीं हें वृद्धिश्राद्ध करूं नये, असें त्या वरील सुमंतुवचनाचें व्याख्यान केलें आहे, तें बरोबर नाही. कारण, “अग्निरहितांनं देखील पुत्रजन्म इत्यादि वृद्धिकर्मांत श्राद्ध करावें. ज्या पितरांना बाप श्राद्ध देतो त्यांचाच उद्देश करून पुत्रांनीं तृप्ति करावी” असें हारीतवचन आहे. वरील सुमंतूचें वचन तर वृद्धिश्राद्धावांचून इतरश्राद्धविषयक आहे, असें मदनरत्नांत सांगितलें आहे. वरील सुमंतुवचनांत ‘श्राद्ध’ या पदानें पिंडपितृयज्ञ समजावा, असें पृथ्वीचंद्रोदय सांगतो. निर्णयामृतांत तर—वरील हारीतवचनांतील ‘अग्निक’ या पदानें ज्यांनीं अग्नीचें आधान केलें नाही तो समजावा. सर्वथा अग्निरहित समजूं नये, अर्थात् स्मार्ताग्रिमाम् होय. सुमंतूच्या वचनांतील सामिक शब्दानें श्रौताग्रि व स्मार्ताग्रि समजावा. तेणेंकरून दोन्ही प्रकारच्या अग्निरहिताच्या वृद्धिश्राद्ध नाही, असें सांगितलें आहे. तें बरोबर नाही. कारण, पूर्वीच रीतींनीं (सुमंतुवचन वृद्धिश्राद्धव्यतिरिक्त-श्राद्धविषयक इत्यादि रीतींनीं) दोन्ही वचनांची गति (अविवेक) होत अगतां ‘अग्निक’ या पदानें स्मार्ताग्रिक घेण्याविषयीं प्रमाण नाही. पुढें मांगवायाच्या रीतींनीं नित्य व अनित्य अशा वृद्धिश्राद्धांना एकत्र ठिकाणीं विरोध येईल. आणि निरभिक जीवत्पितृकाला अधिकार नसेल तर “जोपर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत प्राप्त झालें नसेल तोपर्यंत जनकाचे पितरांची पूजा करावी. ब्रह्मचर्यव्रत घेतल्यानंतर आपल्या पितामहांनीं स्वतः पूजन करावें” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत यमाचें वचन आहे त्याचा विरोधही येईल.

अपराकटी—“गमावर्तनाचे ठायीं ब्रह्मनाच्यांनीं स्वतःच नांदीश्राद्ध करावें, असें सांगतो. या कारणास्तव पूर्वी जें सांगितलें (अग्निकानेंही करावें) तेंच मांगलें आहे. वोपदेवाचेंही असेंच सांगितलें आहे. आतां जें मन असें आहे की, जीवत्पितृकाला पुत्राच्या नामकर्मादिकांत वृद्धिश्राद्ध नाही. वरील हारीतवचनांत ‘जन्मार्दा’ येथील आदिपदानें नामकर्मादिकांत तें प्राप्त झालें तर “विवाह, पुत्रोत्पत्ति, पित्र्यउष्ट्र, गोमयाग, तीर्थ, आणि विद्वान् श्राद्धयोग्य ब्राह्मणाचें आगमन, हे महा काल जीवत्पितृकाला श्राद्धाचे आहेत.” त्या मैत्रपरिशिष्टांत, आदिपदानें प्राप्त झालेल्या संस्कारांचा संकोच करून फक्त विवाहच ध्यावा, असें सांगितलें आहे. याप्रमाणें ज्या ठिकाणीं संस्कारादिपद आहे तें देखील विवाहादिवोधकच आहे. तें मन बरोबर नाही. कारण, वरील परिशिष्टांतील ‘उद्वाह’ या पदानें आपल (कर्त्याचा) ही विवाह घेनां येईल. पुत्रविवाह घेण्याविषयीं प्रमाण नाही, म्हणून वर सांगितलेला उपमंहा (संकोच) करितां येत नाही. आणि “बालांच्या नामकर्मांत तसेंच चूडाकर्मादिकांत वृद्धिश्राद्ध करावें” इत्यादि वचनांवरून बौल्यादिक संस्कारांचें अंगभूत नित्यश्राद्ध आहे, असें बोधन झालें अगतां त्या वचनांनीं सांगितलेलें नित्य व वरील वचनांनीं सांगितलेलें अनित्य अशा नित्य व अनित्य वृद्धिश्राद्धांचा एकत्र कर्त्याचे ठायीं विरोधही प्राप्त होईल. म्हणून वरील हारीतवचनांतील ‘जन्मार्दा’ या पदानें माच्या संस्कारांचें ग्रहण होतें. तसेंच कात्यायन सांगतो—“पुत्रांच्या विवाहापर्यंत संस्कारकर्माभ्यं पित्यांनीं आपल्या पितरांना पिंड (श्राद्ध) द्यावे. पित्याच्या अभावीं त्याच क्रमानें पितरांना इतर कर्त्यांनीं द्यावे” या कात्यायनवचनाचा अर्थ—पुत्रांच्या बौल्यादिक संस्कारांत पित्यांनीं पिंड म्हणजे श्राद्ध द्यावें. ‘पिंड देणारा व जिद्गी घेणारा’ इत्यादि मनुवचनांत ‘पिंड’ या शब्दाचा अर्थ ‘श्राद्ध’ होत आहे. ‘ओद्वाहनात्’ म्हणजे विवाहपर्यंत द्यावे, येथें विवाह म्हणजे प्रथम समजावा; कारण, “पढित्या विवाहांत नांदीश्राद्ध पित्यांनीं करावें. प्रथम विवाह झाल्यानंतर नांदीश्राद्ध स्वतःच करावें” अशी स्मृति आहे. ‘तस्याभावे तु तत्कमात्’ म्हणजे पित्याच्या अभावीं “ज्या श्राद्यांचा संस्कार झाला नसेल त्यांचा संस्कार, पूर्वां संस्कार केलेल्या श्राद्यांनीं करावा” असा जो कर्त्याचा क्रम त्या क्रमांनीं ज्येष्ठ भ्राता इत्यादिकांनीं नांदीश्राद्ध द्यावें असें चंद्रिका इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. हेमाद्रि तर—पित्याच्या अभावीं पितृव्य, मातुल इत्यादिक जो कोणी संस्कार करील त्यांनीं त्या क्रमांनीं म्हणजे संस्कार करावयाचा जो माणवक (मुलगा) त्याच्या पितृकमानें द्यावें. कर्त्यांनीं आपल्या पितरांना देऊं नये. असें व्याख्यान करितां झाल्या.

समावर्तनस्यापि विवाहप्राचीनसुतसंस्कारत्वात्पितृव्येवनांदीश्राद्धं कुर्यात् तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादिः तदभावे स्वयमेव कुर्यात् उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् एवमाद्यविवाहेपीति पृथ्वीचंद्रोदयचंद्रिकादयः मदनरत्नेऽप्येवं यदातुपितरिसंस्त्येत्प्रोषितेपतितेबाधमार्थतत्पुत्रमन्यः संस्क्रुयात्तदा संस्कार्यपितुः पित्रादि-

भ्योदद्यात् पितरोजनकस्येज्यायावद्रतमनाहितं समाहितव्रतः पश्चात्स्वान्यजेतपितामहानिति पृथ्वीचंद्रोद-
येयमोक्तेः जीवत्पितृकस्यविशेषमाह कात्यायनः वृद्धौतीर्थेचसंन्यस्तेतातेचपतितेसति येभ्यएवपिताद-
द्यात्तेभ्योदद्यात्स्वयंसुतइति यत्तु बह्वचपरिशिष्टे जीवत्पितासुतसंस्कारेषुमातृमातामहयोः कुर्यात् तस्यां
जीवत्यांमातामहस्यैवेतितत्तच्छास्त्रीयानामेवेतिदिक् स्मृतितत्त्वादिगौडग्रंथेषु जीवन्मातृकःपिता-
मह्यादिभ्योवृद्धौदद्यात् जीवंतमतिदद्याद्वाप्रेतायात्रोदकेद्विजइति कात्यायनोक्तेः जीवेतस्मिन्सुताः कुर्युः
पितामह्यासहैवतु तस्यांचैवतुजीवत्यांतस्याः श्वश्वेतिनिश्चयइतिहारीनोक्तेः श्वेत्युक्तं तस्मिन्भर्तारं दाक्षि-
णात्यास्तुपूर्वोक्तस्यसपिंडीकरणादिविषयत्वान् जीवेत्युदिवर्गाद्यस्तंवर्गतुपरित्यजेदितिवचनात्तद्वर्गस्यलोप-
एवेत्याहुः यत्तुचंद्रिकायांपारस्करः निपेककालेसोमेचसीमंतोन्नयनेतथा ज्ञेयंपुंसवनेश्राद्धंकर्मांगविधि-
वच्चतदिति तत्रगर्भाधानादौकर्मांगं जातकर्मादावुक्तंतुवृद्धिश्राद्धप्रथगेव विधिवदित्युक्तेः गौडनिबं-
मात्स्ये अन्नप्राशेचसीमंतोपुत्रोत्पत्तिनिमित्तके पुंसवेचनिपेकेचनववेश्मप्रवेशे वेदव्रतेजलादीनांप्रतिष्ठा-
यांतथैवच तीर्थयात्रावृषोत्सर्गवृद्धिश्राद्धप्रकीर्तितं अन्नभूतनिमित्तानांवृद्धिन्वम भाविनिमित्तानामंगत्वं वृद्धि-
शब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थइतिगौडाः अन्येतुनिपेकादौकर्मांगवृद्धिश्राद्धयोःममुच्चयमाहुः नांदीश्राद्धसंज्ञातु-
भयानुगता ।

समावर्तनं देखील विवाहाच्या पूर्वीचा पुत्राचा संस्कार असल्यामुळे पित्यानेच नांदीश्राद्ध करावे, त्याच्या अभावी ज्येष्ठ
भ्राता इत्यादिकांनं, ज्येष्ठ भ्राता इत्यादिकांच्या अभावी स्वतःच मुल्याने नांदीश्राद्ध करावे. कारण, उपनयन झाल्यानं कर्माचा
अधिकार त्यास झालेला आहे. याप्रमाणे पहिल्या विवाहांतही समजावे, असें पृथ्वीचंद्रोदय, चंद्रिका इत्यादि ग्रंथकार
सांगतात. मदनरत्नांतही असेंच आहे. जेव्हां पित्याने संन्यास घेतला असेल किंवा पिता परदेशी गेला असेल अथवा
पतित असेल तेव्हां त्याच्या पुत्राचा संस्कार धर्मार्थ इतर कोणी करील त्या वेळीं संस्कार करावयाच्या मुलाच्या पित्याचा पिता
इत्यादिकांम संस्कारकर्त्याने नांदीश्राद्ध यावे. कारण, “जोपर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत प्राप्त झाले नसेल तोपर्यंत जनकाच्या (पित्याच्या)
पितरांची संस्कारकर्त्याने पूजा करावी. ब्रह्मचर्यव्रत प्राप्त झाल्यानंतर त्याने स्वतः आपल्या पितामहादिकांचें पूजन करावे.”
असें पृथ्वीचंद्रोदयांत यमवचन आहे. जीवत्पितृकाला विशेष सांगणो कात्यायन—“वृद्धिश्राद्धांत, तीर्थश्राद्धांत, वाप
संन्यास घेतलेला किंवा पतित असतां ज्या पितरांना पिता श्राद्ध देईल त्या पितरांना पुत्राने स्वतः श्राद्ध यावे.” आतां जें
बह्वचपरिशिष्टांत—“जीवत्पितृकानं पुत्राच्या संस्कारांत माता व मातामह यांना श्राद्ध यावे. माता जीवंत असतां माता-
महालाच श्राद्ध यावे.” असें सांगितलें, तें त्या बह्वचशास्त्रीयांनाच समजावे. ही दिशा आहे. स्मृतितत्त्व इत्यादिक गौड-
ग्रंथांत तर—जीवन्मातृकानं पितामही इत्यादिकांना वृद्धिश्राद्ध यावे. कारण, “जीवंत असलेल्याम सोडून प्रेताला अन्न व
उदक यावे.” असें कात्यायनवचन आहे. आणि भर्ता जीवंत असतां पुत्रांनीं पितामहीसह श्राद्ध यावे. पितामही जीवंत
असतां तिच्या सासूंसह श्राद्ध यावे” असें हारीतवचनही आहे, असें सांगितलें आहे. दाक्षिणात्य तर—पूर्वोक्त वचन
सपिंडीकरणादिविषयक असल्यामुळे “ज्या वर्गाचा (त्रयीचा) पहिल्या जीवंत असेल त्या वर्गाचा त्याम करावा” या वचना-
वरून त्या वर्गाचा लोपच (अभावच) होतो असें सांगतात. आतां जें चंद्रिकेंत पारस्कर—गर्भाधान, सोमयोग,
सीमंतोन्नयन, आणि पुंसवन यांचे ठायीं विधीप्रमाणें तें कर्मांग श्राद्ध समजावे” तें गर्भाधानादिकांत कर्मांग आणि जातकर्मा-
दिकांत सांगितलेलें वृद्धिश्राद्ध तर वेगळेंच आहे. कारण, वचनांत ‘विधिवत्’ विधीप्रमाणें असें सांगितलें आहे. गौडनिबं-
धांत मात्स्यांत—“अन्नप्राशन, सीमंत, पुत्रोत्पत्तिनिमित्त, पुंसवन, गर्भाधान, नव्या गृहांत प्रवेश, वेदांचीं व्रतें, उदका-
दिकांची (तलाव इत्यादिकांची) प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, आणि वृषोत्सर्ग इतक्या ठिकाणीं वृद्धिश्राद्ध सांगितलें आहे.” यामध्ये
असें समजावे कीं, वृद्धिश्राद्धाचीं निमित्तं पूर्वीं झालेलीं असतील तेथें वृद्धिश्राद्ध, आणि निमित्तं पुढें व्हावयाचीं असतील तेथें
कर्मांगश्राद्ध होय. सर्वांना वृद्धिश्राद्ध म्हटलें आहे तें त्या वृद्धिश्राद्धाच्या धर्माचा अतिदेश करण्यासाठीं समजावे, असें
गौड सांगतात. इतर ग्रंथकार तर—गर्भाधानादिकांत कर्मांगश्राद्ध आणि वृद्धिश्राद्ध हीं दोन्ही करावीं, असें सांगतात.
नांदीश्राद्ध ही संज्ञा (नांव) तर दोघांनाही आहे.

अथेतिकर्तव्यता पृथ्वीचंद्रोदयेवृद्धपराशरः मालत्याः शतपथ्यावामल्लिककुञ्जयोरपि केत-
क्याः पाटलायावादेयामालानलोहिताः श्राद्धेमालानिषेधस्यायमपवादः तथा सुवेपभूषणैस्तत्रसालंकारैस्तथा-
नरैः कुंकुमाद्यनुलितांगैर्भाव्यंतुब्राह्मणैः सह स्त्रियोपि स्युस्तथाभूतागीतनृत्यादिहर्षिताः हेमाद्रौब्रह्मांडे

कुशस्थानेचदर्वाःस्युर्मगलस्याभिवृद्धये कुशाअपिवक्ष्यते छंदोगपरिशिष्टे प्रातरामंत्रितान्विप्रान्युगमानुभ-
यनस्तथा उभयतःदैवेपित्र्येच वैश्वदेवद्वौविप्रौपित्रादीनामेकैकस्यद्वौद्वौवितिविंशतिः त्रिकेवाद्वावित्यष्टौविप्राः
अत्रविप्रालाभेस्त्रियोपिमोज्याइत्याहाशाकंवृद्धवसिष्ठः मातृश्राद्धेत्वविप्राणामलाभेपूजयेदपि पतिपुत्रा-
न्विताभव्यायोपितोष्ट्रौकुलोद्भवाः मातृत्रिकेचतस्रः मातामहीत्रिकेचैत्यष्टावितिहेमाद्रिः अत्रपित्र्येप्राङ्गु-
ग्राविप्राः पाद्येपित्र्येचतुरग्नमंडलमितिजयंतः हेमाद्रौब्राह्मे विप्रान्प्रदक्षिणावर्तप्राङ्गुखानुपवेशयेत्
छंदोगपरिशिष्टे गोत्रनामभिरामंत्र्यपितृभ्योर्ध्वप्रदापयेत् नात्रापसव्यकरणंनपिच्यंतीर्थमिष्यते ज्येष्ठो-
त्तरकरान्युगमान्कराग्राप्रपवित्रकान् कृत्वावर्धसंप्रदातव्यनैकैकस्यात्रदीयते पित्रादेर्द्वौद्वौविप्रौतयोर्दक्षिणहस्तौ
संयोज्यप्रथमोपवेशितविप्रकरोपरितंत्रेणद्वयोरर्ध्वदद्यादित्यर्थः बहुचकारिकायांतु दत्तार्धस्यैकदेशात्स्या-
दवर्धदानंप्रतिद्विजं आवृत्तिरपिमंत्रस्यप्रतिब्राह्मणमिष्यते प्रतिद्विजंपृथक्कुर्यान्नृवीत्यर्थांनुमंत्रणमित्युक्तं मधु-
मध्वितियन्तत्रत्रिजपोशितुमिच्छतां गायत्र्यातंत्रंस्तोत्रंमधुमंत्रविवर्जितं नचाश्रंतुजपेदत्रकदाचित्पितृसूक्तं
तथा संपन्नमितितृप्राःस्थप्रश्रस्थानेविधीयते मुसंपन्नमितिप्रोक्तेशेपमन्नंनिवेदयेत् अक्षय्योदकदानंचअर्ध-
दानवदिष्यते पप्र्येवनियंतंकुर्यान्नचतुर्ध्याकदाचन ।

आतां नांदीश्राद्धाची इतिकर्तव्यता (करण्याचा प्रकार) सांगतो—

पृथ्वीचंद्रोदयांत वृद्धपराशर—' जाई, कमळ, मोगरी, कुत्र, केवडा, आणि पाटला यांच्या फुलांच्या माला
गाव्या. तांबड्या फुलांच्या देऊ नयेत.' श्राद्धांत मातेचा निषेध आहे त्याचा हा अपवाद होय. तमेंच त्या नांदीश्राद्धांत
ब्राह्मणासहित पुत्रांना नांगर देणे, भूषणे व पंचभक्ष्य आरण करणे; केशर, नंदन इत्यादिक अंगार लावणे. स्त्रियांनी देखील
पंचभक्ष्य, भूषणे वगैरे आरण करून गायन, गीत इत्यादिकांनी आनंदित असावे.' हेमाद्रिंत ब्रह्मांडपुराणांत—“मंगलाच्या
अभिवृद्धीसाठी कुशांच्या म्हाणी रत्नां गाव्या.” कुश देवांत पुढे आम्ही गांगू. छंदोगपरिशिष्टांत—“प्रातःकालीं देवांकडे
व पितरांकडे दोन दोन ब्राह्मण गांगारें” विद्वदेतम्यानीं दोन ब्राह्मण आणि पिता इत्यादि एकेकास दोन दोन ब्राह्मण, असे
तीस ब्राह्मण गांगारें, अथवा एकेका त्रयीला दोन दोन अंगे आठ ब्राह्मण गांगारें. या श्राद्धांत ब्राह्मणांच्या अभावीं स्त्रियांसही
गोत्रन घालावे, असे गांगारें आशाकोत वृद्धवसिष्ठ—“मातेच्या श्राद्धांत ब्राह्मणांच्या अभावीं पतिपुत्रवती भव्य
(चांगल्या) अशा आठ कुत्रेन गिऱ्याची पत्ता करावी.” येथे आठ मांगिल्या त्या अशा—मातृत्रयीला चार आणि
मातामहीत्रयीला चार मिळून आठ असे हेमाद्रि गांगारें. या श्राद्धांत पितरांकडे प्राभुस ब्राह्मण वगवावे. पाषाचे ठायीं
पितरांकडे मंडल चतुरस्र करावे, असे जयंत गांगारें. हेमाद्रिंत ब्राह्मांत—“प्राचुष ब्राह्मणांना दक्षिणसंस्थ वगवावे.”
छंदोगपरिशिष्टांत—“गांच नांव यांचा उच्चार करून पितरांना अर्घ्य द्यावे. येथे अपसव्य करणे नाही व पितृतीर्थही इष्ट
नाहीं. हातोंत पवित्रक घालेल्या पित्रादिम्यानीं वगळेल्या दोन दोन ब्राह्मणांचे दक्षिण हस्त पहिल्या ब्राह्मणाचा वर व
दुसऱ्याचा मागीं अशा रीतीनें जोटून पहिल्या ब्राह्मणाच्या हातावर तंत्रांनं दोघांना अर्घ्य द्यावे. प्रत्येकाला निरनिराळें अर्घ्य
देऊ नये.” बहुचकारिकेंत तर—“दिलेल्या अर्घ्याच्या एकदेशांतून प्रत्येक ब्राह्मणाला अर्घ्यदान करावे. प्रत्येक
ब्राह्मणाला मंत्राची आवृत्तीही करावी. नितीतीनें अर्घ्यानुमंत्रण प्रत्येक ब्राह्मणाला निरनिराळें करावे” असे सांगितलें आहे.
“श्राद्धांत ब्राह्मणभोजनाच्या घेळा 'मधु मधु' या मंत्राचा त्रिवार जो जप गांगितल्या त्याच्या म्हाणी गायत्रीजप आणि मधुमंत्र-
वर्जित स्तोत्रजप करावा. या वृद्धिश्राद्धांत ब्राह्मण जेवत असतां कधीही पितृसूक्ताचा जप करू नये.” तसेंच—“तूसाःस्थ'
या प्रश्रम्यानीं 'मंपन्नं' असा प्रश्न करावा. ब्राह्मणांनीं 'मुसंपन्नं' असे गांगितल्यानंतर शेष (उरलेल्या) अन्नाचें त्यांस
निवेदन करावे. अक्षय्योदकदान अर्घ्यदानाप्रमाणें करावे. ते अक्षय्योदकदान पट्टीविभक्तीनेंच करावे. नतुर्धाविभक्तीनें
कधीही करू नये.”

चंद्रोदयेब्राह्मे पठेच्छकुनिमूक्तंतुस्वस्तिमूक्तंशुभंतथा नांदीमुखान्पितृन्भक्त्यासांजलिश्चसमाह्वयेत्
तथा शाल्यत्रंदधिमध्वक्तंवदराणियवांस्तथा मिश्रीकृत्वातुचतुर्गःपिंडान्श्रीफलसंनिभान् दद्यान्नांदीमुखेभ्यश्च
पितृभ्योविधिपूर्वकं द्राक्षामलकमूलानियवांश्चविनियोजयेत् तान्येवदक्षिणार्थतुदद्याद्विप्रेषुसर्वदा तत्रैवचतु-
विंशतिमते द्वौद्वौचाभ्युदयेपिंडावेकैकस्मैविनिक्षिपेत् एकंनाप्रापरंतूष्णींदाद्यात्पिंडान्पृथक्पृथक् वसिष्ठः
प्राङ्मुखोदेवतीर्थेनप्राकूलेषुकुशेषुच दत्त्वापिंडान्नकुर्वीतपिंडपात्रमधोमुखं नांदीमुखेभ्यःपितृभ्यःस्वाहेतिवा

पिंडदानमंत्र इति वृत्तिः अत्र पिंडाः कृताकृता इत्युक्तं तत्रैव भविष्ये पिंडनिर्वपणं कुर्यान्नवाकुर्याद्विचक्षणः वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्यतु छागलेयः अग्नौ करणमर्घ्यं चार्वाहनं चावने जनं पिंडश्राद्धे प्रकुर्वीत पिंडहीने निवर्तते तेनात्र भोजनस्यैव प्रधानत्वाद्यदिविप्रस्य वमनं तदा तस्यैव पार्वणस्य पुनरावृत्तिरिति सिद्धं अत्र सांकल्पविशेषः योगपारिजाते संग्रहे शुभार्थी प्रथमांतेन वृद्धौ सांकल्पमाचरेत् न पृथगाय दिवा कुर्यान्महादोषो भिजायते नाम गोत्रादि निषेधोऽप्यत्रैव ननु सपिंडकश्राद्धे इति स एव ।

चंद्रोदयांत ब्राह्मंत—“शुभकारक अशा शकुनिसूक्ताचा व स्वस्तिसूक्ताचा जप करावा. नांदीमुखपितरांना भक्तीने हात जोडून आव्हान करावें” तसेंच “दही, मध यांनी युक्त भात, बोरें, यव हे गारे पदार्थ मिश्र करून त्यांचे नारळामारखे चार पिंड करून ते नांदीमुख पितरांना विधिपूर्वक द्यावे. त्यांत द्राक्षे, आंवळे, सुळें, आणि यव यांचा विनियोग करावा. ब्राह्मणांना दक्षिणेसाठी सर्वदा तींच (द्राक्षादिक) द्यावी.” तेथेंच **चतुर्विंशतिमतांत—**“नांदीश्राद्धांत एक एक पितराच्या दोन दोन पिंड द्यावे. एक पिंड नांवांने व दुसरा उच्चारावांचून द्यावा, असे वेगवेगळे पिंड द्यावे.” **वसिष्ठ—**“पूर्वकडे अन्न करून ठेवलेल्या कुशावर पूर्वकडे तांड करून पिंड द्यावे. पिंडाचें पात्र उपडें करूं नये.” अथवा ‘नांदीमुखेभ्यः पितृभ्यः स्वाहा’ हा पिंडदानाचा मंत्र असें **वृत्तिकार** सांगतो. या श्राद्धांत पिंड कृताकृत (करावे किंवा न करावे) असें सांगितलें आहे. तेथेंच **भविष्यांत—**“वृद्धिश्राद्धे ठायीं कुलधर्माचें अवलोकन करून पिंडदान करावें किंवा न करावें.” **छागलेय—**“अग्नौ करण, अर्घ्यदान, आवाहन, पाय, हीं सपिंडक श्राद्धांत करावीं. पिंडरहित श्राद्धांत वर्ज्य करावीं.” तेणेंकरून ह्या श्राद्धांत भोजनाच्या प्रधान्य असल्यामुळें जर ब्राह्मणाला वमन झालें असेल तर त्याच पार्वणाची पुनः आवृत्ति करावी, असें सिद्ध झालें. येथें सांकल्पश्राद्धांत विशेष सांगतो—**प्रयोगपारिजातांत संग्रहांत—**“कल्याणार्थी यानें वृद्धिकर्मांमध्ये प्रथमाविभक्तीने सांकल्पिक श्राद्ध करावें. षष्ठीविभक्तीनें करूं नये. जर षष्ठीविभक्तीनें करील तर मोठा दोष उत्पन्न होईल.” नाम, गोत्र, इत्यादिकांचा निषेधही सांकल्पश्राद्धांतच आहे, सपिंडकांत नाहीं, असें तोच सांगतो.

अत्रायंक्रमः नांदीश्राद्धे दैवेक्षणः क्रियतामिति द्वौ युगपन्नमंत्र्य ओतथेति विप्राभ्यां युगपदुक्ते प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवाव इति वैश्वदेववपिच्येच द्विवचनांतेन विप्रद्वये प्रयोगं कुर्यात् आहिताग्निस्तु हेमाद्रौ ब्राह्मे योमो- तु विद्यमाने पितृद्वौ पिंडान्निर्वपेत् पतंति पितरस्तस्य नरके सच पच्यते **बह्वचपरिशिष्टे** द्वौ दर्भोपवित्राणि च- त्वारि शंनो देवीत्यनुमंत्रिता सुयवानावपति यवोसिसोमदेवयोगोसवेदेवनिर्मितः प्रववद्भिः प्रतः पुष्ट्यानांदी- मुखान्पितृनिमांल्लोकान्प्रीणयाहिनः स्वाहेति स्वाहाध्या इति पृच्छति विश्वेदेवा इदं वो अर्घ्यं नांदीमुखाः पितर इति यथालिगमर्घ्यदानं गंधादिदानं द्विद्विः पाणोहोमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेत्यतो देवा अवंतुन इत्यंगुष्ठग्रहणं पावमानीः शंवतीरैद्रीरप्रतिरथंच श्रावयेन्मधुवाताकचः स्थाने उपास्मै गायतेति पंचमधुमतीः श्रावयेदक्षत्रसीमदंतेति च पष्ठीभुक्तशेषेणैकैकस्य द्वौ द्वौ पिंडौ दद्यादिति **चंद्रिकायां वृद्धवसिष्ठः** पितृप्रभेतु- संपन्नं देवैरुचितमित्यपि अधिकं धुमिश्राद्धपिंडाः कार्या यथाक्रमं **काल्यायनः** तमपुवाजिनमिति विप्रांश्च वि- सर्जयेत् नांदीमुखाः पितरः प्रीयंतामित्यक्षय्यस्थाने स्वधांवाचयिष्य इत्यस्य स्थाने नांदीमुखान्पितृन्वाचयिष्ये इति- नस्वधां प्रयुंजीतेति अत्र साग्निरनर्वादौ वैश्वदेवं कुर्यात् आदौ वृद्धौ क्षयेचांते दर्शमध्ये महालये एकोद्विष्टे निवृत्ते- तु वैश्वदेवो विधीयत इत्याशार्केशां गायनपरिशिष्टात् हेमाद्रौ शेषमन्नमनुज्ञाप्य वैश्वदेवक्रियांततः श्राद्धाह्निश्राद्धशेषेण वैश्वदेवं समाचरेदिति **चतुर्विंशतिमता** नांदीश्राद्धेऽप्यंते वैश्वदेव उक्तः **बह्वचानामपि-** वृत्त्यालोचनात्तथैव पूर्वोक्तं तु ये पांरिशिष्टं द्विपयमन्यविषयं वाज्ञेयं अत्र श्राद्धांगतर्पणं नेत्युक्तं प्राक् इति श्रीजग- द्गुरुनारायणभट्टात्मज रामकृष्णभट्टसूक्तमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ वृद्धिश्राद्धम् ।

नांदीश्राद्धाचा क्रम असा—

‘नांदीश्राद्धे दैवेक्षणः क्रियतां’ असें म्हणून दोन ब्राह्मणांना एकदम क्षण देऊन ‘ओं तथा’ असें दोन्ही ब्राह्मणांनीं एकदम म्हटलें असतां कर्त्यानें ‘प्राप्नुतां भवन्तौ’ असें म्हणवें. नंतर ब्राह्मणांनीं ‘प्राप्नुवाव’ असें म्हणवें. विश्वेदेवप्रयोगाप्रमाणें पित- रांकडे दोन ब्राह्मणांचे ठायीं द्विवचनानें प्रयोग करावा. अग्निहोत्राला सांगतो—**हेमाद्रौ तं ब्रह्मपुराणांत—**“अग्निं विद्य- मान असतांही जो वृद्धिश्राद्धांत पिंडदान करीत नाहीं त्याचे पितर नरकांत पडतात, व तो नरकांत पक होतो.” **बह्वचप- रिशिष्टांत—**“दोन दर्भांचीं पवित्रें चार असावीं. ‘शंनो देवी’ या मंत्रानें अर्घ्यपात्रांतील उदक अनुमंत्रण करून ‘यवोसि

गोमदेवत्यो गोमवेदेवनिर्मितः । प्रबवद्भिः प्रतः पुष्ट्या नांदीमुत्पान् पितृनिमाळोकान् प्रीणयाहि नः स्वाहा' या मंत्रानं अर्घ्य-
पात्रांत यव टाकावे. 'स्वाहाऽर्घ्याः' असा प्रश्न करावा. 'विश्वेदेवा इदं वोर्घ्यं', 'नांदीमुत्ताः पितर इदं वोर्घ्यं' याप्रमाणे जसे पुष्टिग
किंवा स्त्रालिंग असेल त्याप्रमाणे ऊह करून अर्घ्यदान करावें. गंध पुष्पे इत्यादिकांचें दान दोन दोन वेळां करावें. 'अमये
कव्यवाहनाय स्वाहा', 'गोमाय पितृमते स्वाहा' या मंत्रांनीं ब्राह्मणाच्या हातावर होम करावा. 'अतो देवा अवंतुनो' या मंत्रानं
अन्ननिवेदनसमयीं अंगुष्ठ धरावा. पावमानी ऋचा, शंवती, ऐंद्री व अप्रतिरथ हीं सूक्ते ब्राह्मणांकडून ऐकवावीं. 'मधुवाता०'
ह्या ऋचांच्या स्थानीं 'उपार्सं गायता०' ह्या पांच ऋचा व सहावी 'अक्षजमीमदंत०' ह्या सहा ऋचा ऐकवाव्या. ब्राह्मणांनीं
भोजन करून शेष उरलेल्या अन्नाचे पिंड करून एकएकाला दोन दोन पिंड द्यावे. "चंद्रिकेत वृद्धयसिष्ट—'तृप्ति-
प्रश्नाचे तृयीं 'संपन्नं' असा प्रश्न करावा. देवांकडे 'रुचिर्न' असाही करावा. दही व बोरें यांनीं मिश्रित अन्नाचे पिंड करून
अनुक्रमानें द्यावे." कात्यायन—'त्यम्पुवाजिनं०' या मंत्रानें ब्राह्मणांचें धर्मजन करावें. अक्षय्योदकस्थानीं 'नांदीमुत्ताः
पितरः प्रीयतां' असें म्हणून उदक द्यावें. 'स्वधां वाचयिष्ये' याच्या स्थानीं 'नांदीमुत्तान् पितृन् वाचयिष्ये' असें म्हणावें. स्वधा-
शब्दाचा उच्चार करूं नये." नांदीश्राद्धदिवशीं यागिक अगो किंवा निरगिक अगो आधीं वैश्वदेव करावा. कारण, "वृद्धिश्राद्धांत
आधीं, वार्षिकांत अंती, दर्शाने व महालयाने मध्ये, एकोद्दिश्यांत श्राद्ध आल्यावर वैश्वदेव सांगितला आहे." असें आशा-
कीत शांखायनपरिशिष्ट आहे. हेमाद्रींत तर—'शेष उरलेल्या अन्नाची अनुज्ञा घेऊन नंतर वैश्वदेव करावा. श्राद्ध-
दिवशीं श्राद्धशेषांनीं वैश्वदेव करावा" असें चतुर्विंशतिमतांत—वचन आहे. म्हणून नांदीश्राद्धांतही अंतीं वैश्वदेव
सांगितला आहे. बहुतांशा देवाला सुत्रग्रंथ पाहिल्यावरून तमैच (अंतीं वैश्वदेव) आहे. पूर्वीं सांगितलेले आधीं वैश्वदेव
करावा तें तर ज्यांचें परिशिष्ट तमै आहे त्यांच्याविषयीं किंवा इतरांच्या विषयीं समजावें. येथें (नांदीश्राद्धांत) श्राद्धांगतर्पण
नाहीं, असें पूर्वा (तर्पणप्रकरणीं) सांगितलें आहे.

इति निर्णयसिध्दौ वृद्धिश्राद्धे महाराष्ट्रीका समाप्ता.

अथजीवत्पितृकश्राद्धं तत्रानेकपश्चाद्व्ययते जीवंतपितरंभोजयित्वापरयोःश्राद्धं कुर्यादित्येकः होमां-
तमेव कुर्यादित्यन्यः होमांतःपितृयज्ञःस्याजीवेपितरिजानतः पितरंभोजयित्वावापिंडान्निप्रणुयात्परावित्य-
ज्ञापार्श्वोक्तेः यदिजीवत्पितरानद्यादाहोमात्कृत्वाविग्मेदित्यापस्तंबोक्तेश्च जीवतांपिंडानमौहुत्वापरे-
भ्योदेयमित्यपरः जुहुयाजीवेभ्यइत्याश्वलायनोक्तेः जीवतामजीवतांचपिंडदानमितीतरः जीवताम-
जीवतांवादेयमेवेतिहिगण्यकेतुरितितिनिगमात् तस्माजीवत्पिताकुर्याद्वाभ्यामेव न संशय इति भविष्योक्ते-
र्द्वाभ्यामेवेत्यन्यः एतेपश्चाःकलौ निपिद्धाः प्रत्यक्षमर्चनंश्राद्धनिपिद्धंमनुग्रवीन् पिंडनिर्वपणंचापिमहापातक-
संमितमितिपृथ्वीचंद्रोदयेभविष्योक्तेः चंद्रिकाप्येवं तस्मात्पितरिजीवतिश्राद्धानारंभण्वेत्येकः पक्षः
सपितुःपितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यत इति कात्यायनोक्तेः जीवेपितरिवैपुत्रःश्राद्धकालं विवर्जयेदितिहारी-
तोक्तेश्च पितुःपित्रादिभ्योदद्यादितिसिद्धान्तः ध्रियमाणेतुपितरिपूर्वपामेव निर्वपेदितिमनूक्तेः पितुःपि-
तृभ्योवाद्यात्सपितेत्यपराश्रुतिरितिकात्यायनोक्तेश्च अथग्रहसंमतःपक्षः अन्येशाग्राभेदेनज्ञेयाः एवंजी-
वन्मातामहेनाप्यूहेनकार्यं मातामहानामप्येवंश्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः मंत्रोहेनयथान्यायंशेषाणांमंत्रवर्जितमिति-
विष्णुक्तेः एवमात्रादिकस्यापितथामातामहादिकेडितिपृथ्वीचंद्रोदयेग्निपुराणाश्च पितरिजीवतितुस्व-
मातरिभुतायामपिपितुरेवमातृमातामहयोःकुर्यान् येभ्यएवपितादद्यादितिवक्ष्यमाणवचनादिति पितामह-
चरणाः मदनरत्नेतुजीवत्पितास्वमातृमातामहयोर्दद्यादित्युक्तं कालादर्शप्येवं स्मृतेतुपितरिजीवन्मातृ-
कःपितामहादिभ्योवृद्धोदद्यादितिस्मृतिरत्नवादिगौडग्रंथाः दाक्षिणात्यास्तु पितृवर्गमातृवर्गेतथा
मातामहस्यच जीवेतुयदिवर्गाद्यस्ववर्गंतुपरित्यजेदितिवचनात्तदुर्गत्यागण्वेत्याहुः ।

आतां जीवत्पितृकानं करावयाचं श्राद्ध सांगतो—

याचे अनेक पक्ष स्मृतींमध्ये दिसतात ते असे—जीवंत अमलेल्या पित्याला भोजन घालून इतरांचें (पितामह व प्रपि-
तामह यांचें) श्राद्ध करावें, हा एक पक्ष. होमापर्यंतच श्राद्ध करावें, हा दुसरा पक्ष. कारण, "पिता जीवंत असतां
होमापर्यंत पितृयज्ञ करावा. अथवा पित्याला भोजन घालून इतरांना पिंड द्यावे" असें यज्ञपार्श्वोचें वचन आहे. आणि
"जर जीवत्पितृक असेल तर पिंड देऊं नये, होमापर्यंत करून समाप्त करावें" असें आपस्तंबवचनही आहे. जीवंताचे
पिंडांचा अर्घीत होम करून इतरांना द्यावे, हा तिसरा पक्ष; कारण, "जीवंतांना अर्घीत होम करावा" असें आश्वलायन-

वचन आहे. जीवतांना व मृतांना पिंडदान करावें, हा चवथा पक्ष. कारण, “जीवतांना व मृतांना याबेंच, असें हिरण्य-केतु सांगतो” असें निगमवचन आहे. “तस्मात् कारणात् जीवत्पित्यानें दोषांचेंच श्राद्ध करावें, यांत संशय नाही” असें भविष्यवचन आहे, म्हणून दोघांनाच श्राद्ध यावें, हा पांचवा पक्ष. हे पक्ष कलियुगांत निषिद्ध आहेत. कारण, “श्राद्धाचे ठायीं प्रत्यक्ष पिता इत्यादिकांचें पूजन निषिद्ध आहे, असें मनूनं सांगितलें आहे. तसेंच प्रत्यक्ष पिता इत्यादिकांना पिंड देणें हेंही महापातकासारखें आहे” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत भविष्यवचन आहे. चंद्रिकाही अशीच आहे. तस्मात् पिता जीवंत असतां श्राद्धारंभच करूं नये, हा एक पक्ष आहे. कारण, “सपितृकाल पितृकृत्याविषयी अधिकार नाही” असें कात्यायन-वचन आहे. आणि “पिता जीवंत अमतां पुत्रांनं श्राद्धकालं वर्ज्यं करावा” असें हारीनवचनही आहे. पित्याच्या पित्रादि-कांना श्राद्ध यावें, हा सिद्धांत होय. कारण, “पिता जीवंत अमतां पूर्वे पितरांनाच श्राद्ध यावें” असें मनुवचन आहे. आणि “सपितृकाले पित्याच्या पितरांना यावें, अशी दुसरी श्रुति आहे” असें कात्यायनांनींही सांगितलें आहे. हा पक्ष बहुतांना संमत (मान्य) आहे. इतर पक्ष शाखाभेदानें जाणावे. याप्रमाणें ज्याचा मातामह जीवंत असेल त्यानें देखील ऊह करून प्रमातामहादिकांचें श्राद्ध करावें. कारण, “मातामहांचें देखील असेंच मंत्राचा ऊह करून यथाविधि श्राद्ध करावें. इतरांचें मंत्रवर्जित (अमंत्रक) करावें” असें विष्णुवचन आहे. आणि “याप्रमाणें मातृव्रयींचेही करावें. तसेंच मातामहा-दिकांचेही करावें” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत अग्निपुराणवचनही आहे. पिता जीवंत अमतां व कृत्याची माता मृत असल्या तरी पित्याच्याच मातृव्रयींचें व मातामहांचें करावें. कारण, “ज्यांना पिता देतो त्यांना पुत्रांनं मृतः यावें” ह्या पुढें गांगाव याच्या वचनावरून, असें पितामहचरण (नारायणभट्ट) सांगतात. मदनरत्नांत तर—जीवत्पितृकाले आपली माता व मातामह यांना यावें, असें सांगितलें आहे. कालादर्शांतही असेंच आहे. पिता मृत असेल व माता जीवंत असेल तर पितामही इत्यादिकांना वृद्धिश्राद्धांत यावें, असें स्मृतितत्त्व इत्यादिक गौडग्रंथ आहेत. दाक्षिणात्य तर—“पितृवर्गांत, मातृवर्गांत, तसेंच मातामहवर्गांत ज्या वर्गाचा आद्य (पहिला) जीवंत असेल तो वर्ग वर्ज्य करावा” या वचनावरून त्या वर्गाचा त्यागच आहे, असें सांगतात.

एवंपतितसंन्यस्तपितृकादेरपिज्ञेयं वृद्धौतीर्थेचसंन्यस्तेनातेचपतितेसति येभ्यएवपितादद्यात्तेभ्योदद्यात्स-
यंसुतइतिषट्त्रिंशन्मतात्संन्यस्तेजीवतीत्यर्थः मृतेतुसंन्यस्ततदाद्यवदेयं मृतेपिपरेभ्यएवेतिगौडाः
कात्यायनोपि ब्राह्मणादिहतेनातेपतितेसङ्गवर्जिते व्युत्क्रमाच्चमृतेदयंयेभ्यएवदद्यात्समा अयंचसंन्यस्तपित्रा-
देरविशेषात्सर्वश्राद्धधिकारः एतन्निर्दिष्टपरं एकादशाहपार्वणवार्पिकाद्यापितस्यैव अहन्वेकादशेप्राप्तपार्वणतु-
विधीयतेइत्युक्त्वा त्रिदंडग्रहणादेवंप्रेतत्वंनैवजायतेइत्युक्तानसाविशेषोक्तः ब्राह्मणादिहतेइत्यादिनिषेधस्त्वे-
कदंडादिपरः अतःपरमहंसानांवार्पिकादिकमपिनकार्यमितिशूलपाणिश्राद्धतत्त्वादयोगौडग्रंथाः
इदमेवतुयुक्तं यतुहेमाद्रौकौंडिन्यः दर्शश्राद्धंगयाश्राद्धंश्राद्धंचापरपक्षिकं नजीवत्पितृकःकुर्यात्तिलैस्त-
र्पणमेवचेतितत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयं मैत्रायणीयपरिशिष्टे उद्वाहेपुत्रजननेपित्र्येष्टांमौमिकेमयं
तीर्थेब्राह्मणआयातेपडेतेजीवतःपितुः तत्रैव महानदीपुसर्वासुतीर्थेषुचगयामृते जीवत्पितापिकुर्वातश्राद्धंपार्व-
णधर्मवत् गयामृतेइतिमातृव्यतिरिक्तविषयं अन्वष्टक्यंगयाप्राप्तौसत्यांयचमृतेहनि मातुःश्राद्धंसुतःकुर्यात्पि-
तर्यपिचजीवतीतितत्रैवोक्तेः गयाप्राप्तौप्रासंगिक्यां गयांप्रसंगतोगत्वामातुःश्राद्धंसमाचरेदितिवचनात्
तेनमृतमातृकोगयायांतत्पार्वणमात्रंकुर्यात् तज्जीवनेतुतीर्थश्राद्धमपिनेतिकालादर्शस्मृतिदर्पणादयः
अन्येतुगत्वाश्राद्धनेतिनिषेधार्थः सामान्यतःप्राप्ततीर्थश्राद्धंभवत्येवगयायामित्याहुः ।

याप्रमाणें ज्याचा पिता पतित किंवा संन्यास घेतलेला वगैरे असेल त्यालाही असेंच समजावें. कारण, “जीवत्पितृकाले वृद्धिश्राद्धांत व तीर्थश्राद्धांत आणि पिता संन्यास घेतलेला किंवा पतित असतां ज्या पितरांना पित्यानें श्राद्ध यावयाचें त्यांना खतः पुत्रांनं यावें” असें षट्त्रिंशत्स्मृतिवचन आहे. संन्यास घेतलेला पिता मृत असेल तर तो पहिल्यानें धरूनच श्राद्ध यावें. मृत असला तरी पूर्वीच्यांनाच यावें, त्याला नाही, असें गौड सांगतात. कात्यायनही — “पिता, ब्राह्मण, गार्ह इत्यादिकांनीं मारला गेला, पतित (महापातकी) झाला, त्यानें संन्यास घेतला किंवा उलट कमानें (पितामह जीवंत असतां) मृत झाला, असा असेल तर ज्या पितरांना पित्यानें श्राद्ध यावयाचें त्यांना पुत्रांनं यावें.” ज्याचा पिता संन्यस्त वगैरे झाला असेल त्याला जो श्राद्धाविषयी अधिकार सांगितला तो अमुक श्राद्धाविषयी, असें विशेष सांगितलें नसल्यामुळें सर्व श्राद्धा-विषयी तो आहे. हें सांगणें त्रिदंडी संन्याशाविषयी आहे. अकराव्या दिवशीं पार्वणश्राद्ध आणि वार्षिकादिक श्राद्ध हें देखील त्या त्रिवंशीलाच आहे. कारण, “अकरावा दिवस प्राप्त असतां पार्वण करावें” असें सांगून “त्रिदंडाचें ग्रहण केल्यानंच त्याला

प्रेतत्व प्राप्त होन नाही.” असें उशनसानें विशेष सांगितलें आहे. ‘ब्राह्मणादिहेताते०’ ह्या कात्यायनांनं जो निषेध केल्या तो एकदंशी वगैरे संन्याशी यांना आहे. म्हणूनच परमहंसांचें वार्षिकादिकही करूं नये, असें शूलपाणी, श्राद्धतत्त्व इत्यादिक गौडग्रंथ आहेत. हेंच युक्त आहे. आतां जें हेमाद्रीत कौंडिन्य—“जीवत्पितृकानं दर्शश्राद्ध, गयाश्राद्ध, महालय, हीं करूं नयेतः व तिलांहीं तर्पणही करूं नये” असें निषेधक वचन तें ज्याच्या पिता संन्याशी वगैरे नसेल त्याविषयीं आहे. संन्याशी वगैरे नगतां श्राद्धाधिकार कया ! असें म्हणाल तर सांगतो—मैत्रायणीयपरिशिष्टांत—“विवाह, पुत्रोत्पत्ति, पितृयज्ञ, गोमयाग, तीर्थ आणि श्राद्धयोग्य ब्राह्मणांचें आगमन, हे सहा काळ जीवत्पितृकांला श्राद्धाचे आहेत. तेथेंच “सर्वे महानद्या, गयेवांचून इतर तीर्थे, यांचें श्राधीं जीवत्पितृकानें देखील पावेणश्राद्धाच्या धर्मानें श्राद्ध करावें.” गयेवांचून असें जें म्हटलें तें सातुव्यतिरिक्तविषयक आहे; कारण, “पिता जीवत अगतांही अन्नपचय श्राद्ध, गयातीर्थ प्राप्त अगतां, आणि मृतदिवसां (संवत्सरदिवसां) मातेचें श्राद्ध पुत्रांनं करावें” असें तेथेंच सांगितलें आहे. गयातीर्थप्राप्ति इतर प्रसंगानें होईल तर करावें. मुद्दाम त्यानकरितां जाऊन करूं नये. कारण, “प्रसंगानें गयेग गेला अगतां तेथें मातेचें श्राद्ध करावें” असें वचन आहे. यावरून असें मज्जा होतें कीं, ज्याची माता मृत असेल त्यांनं गयेचें श्राधीं तिचें पावेण मात्र करावें, ती माता जीवत असेल तर तीथश्राद्धही करूं नये, असें कालादर्श, स्मृतिदर्पण इत्यादिक ग्रंथकार सांगतात. इतर ग्रंथकार तर—“गयागते” या निषेधाच्या अण-गयेत जाऊन श्राद्ध करूं नां, असा आहे. सामान्यतः प्राप्त झालेलें तीर्थश्राद्ध गयेचे श्राधीं होतच आहे, असें सामान्य.

यदातुपितुःप्रतिनिधित्वेनगयांयातितदायजमानस्यपितृपितामहप्रपितामहाइत्येवंश्राद्धं तत्रमातुःपितृपत्नी-
ध्वनेकोद्दिष्टकृत्वामातृध्वनेनपुनःपार्वणिकुर्यादिनित्रिस्थलीसेतौ तत्रफल्गुविष्णुपदाक्षय्यवटेष्वेवेतिकेचित्
आशातेपेवेत्यन्ये मध्यमांतड्यपरे संकोचेहेत्वभावात्तत्रत्यसर्वश्राद्धानिमातुःकार्याणीतिपुक्तंप्रतिभाति यत्तु
मदनपारिजातं नजीवत्पितृकःकुर्याच्छ्राद्धमग्निमृतेद्विजः येभ्यएवपितादद्यात्तंभ्यःकुर्वीतसाग्निकइति
सुमंतुक्तेःसांग्रमेवजीवत्पितृकस्यतीर्थादिश्राद्धमुक्तं सांग्ररपिमैत्रायणीयशाखीयस्थेवनान्येषाम् पडेतेजीव-
तःपितुरितितत्परिशिष्टेपुत्रोत्कर्तरित्वावलीदिवोदासाद्याः तद्युक्तं सौमंतवंपिंडपितृयज्ञविषयं
संन्यस्तपित्राव्यतिरिक्तविषयंवेतिपृथ्वीचंद्रोदयोक्तेः वृद्धैर्ताथैचत्यादेःसाधारण्येनाप्यपितृत्वात्वाच्च तथा-
निरग्रेरपिनांदीश्राद्धमुक्तंप्राक् एवंपितामहजीवनेपिज्ञेयं विशेषःपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णयेज्ञेयः ।

जेव्हा पिताचा प्रातर्भाव होऊन पुत्र गयेत जाईल तेव्हां ‘यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहाः’ असा उच्चार करून श्राद्ध करावें. त्या वेळां मृतमातृकानें मातेचें पितृपत्नीवत्करण एकोद्दिष्ट करून मातृपेक्षेन पुनः पावेण करावें, असें त्रिस्थ-
लीसेतु ग्रंथात आहे तें सातुश्राद्ध फल्गुनदी, विष्णुपद आणि अक्षय्यवट यांचे श्राधींच करावें, असें केचित् म्हणतात. पहिल्या श्राद्धाच्या अर्वाच करावें, असें अन्य म्हणतात. मध्यम श्राद्धाच्या अर्वां करावें, असें इतर म्हणतात. श्राद्धाचा संकोच करण्याविषयीं प्रमाण नगत्यामुळे तेथील गारा श्राद्धे मातेचा करावा, हें युक्त वाटतें. आतां जें मदनपारिजातांत—
“जीवत्पितृकानं अग्नि नगतां श्राद्ध करूं नये. त्या पितरांना पिता श्राद्ध देतो, त्यांनाच साग्निकानें द्यावें” या सुमंतुवचनावरून जीवत्पितृक साग्निक अगता त्याच्या तीर्थादि श्राद्ध सांगितलें आहे. साग्निकाच्या देखील मैत्रायणीयशाखेचा असेल त्यालाच, इतरांना नाही. कारण, हे सहा काळ श्राद्धाचे जीवत्पितृकांला आहेत” असें त्यांच्याच परिशिष्टांत उक्त आहे, असें रत्नावली,
दिवोदास इत्यादिक ग्रंथकार सांगतात. तें अयुक्त आहे. कारण, वरंग सुमंतुवचनानें केवळा निषेध पिंडपितृयज्ञविषयक किंवा ज्याचा पिता संन्यस्त वगैरे नसेल तडिपयक आहे, असें पृथ्वीचंद्रोदयानें सांगितलें आहे. आणि ‘श्रद्धिश्राद्धांत, तीर्थश्राद्धांत, पिता संन्यस्त वगैरे अगता’ हे पूर्वीक वचन सर्वसाधारण अगत्यामुळे हें (महानदीपु गर्वाशु इत्यादि वर सांगितलेलें) ही तसेंच सर्वसाधारण आहे. तसेंच निर्गमिकांलाही जीवत्पितृकांला श्रद्धिश्राद्ध पूर्वी सांगितलें आहे. पितामह जीवत अगतांही असेंच समजावें. विशेष निर्णय माझ्या (कमलाकरभट्टाच्या) पित्यानें केलेल्या जीवत्पितृकनिर्णय-
ग्रंथांतून जाणावा.

अथपितामहेजीवतिमृतेचपितरि यद्यपि पितामहोवातच्छ्राद्धंभुंजीतेत्यब्रवीन्मनुरितिमनुनाजीवतःपिता-
महस्यभोजनमुक्तं तथापिप्रत्यक्षाचनस्यपूर्वनिपिद्धत्वात्पितामहंविहायपितृप्रपितामहवृद्धप्रपितामहेभ्योदेयं
पितायस्यनिवृत्तःस्याज्जीवेच्चापिपितामहः पितुःसनामसंकीर्त्यकीर्तयेत्प्रपितामहमितिमनूक्तेः अयमेवसर्व
समतःपक्षः यत्तुछंदोगपरिशिष्टे पितामहेभ्रियमाणेपितुःप्रतस्यनिर्वपेत् पितुस्तस्यचवृत्तस्यजीवेत्तत्प्रपि-
तामहइतिएकपुरुषंद्विपुरुषंवापार्वणमाहृततीर्थपितृयज्ञपरं वृद्धापूर्वोक्तमेव एवंपूर्वोर्ध्वतयोः प्रपितामहे

जीवतिपितृमात्रे मृते परयोर्जीवतोश्च वृद्धप्रपितामहादिभ्यो ज्ञेयं जीवंतमतिदद्याद्वाप्रेतायात्रोदके द्विजइति का-
 त्यायनोक्तेः एतत्सर्वमनसिकृत्वा हेमाद्रौ विष्णुः पितरि जीवतियः श्राद्धं कुर्याद्ये पांपिता कुर्यात्ते पां पित-
 रिपितामहे च जीवतियेषां पितामहः पितरिपितामहे प्रपितामहश्च जीवतितैव कुर्यात् यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिं-
 डं निधाय पितामहात् पराभ्यां दद्यात् यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिंडं निधाय प्रपितामहात् पराभ्यां दद्यात्
 यस्य पितापितामहश्च प्रेतौ स्यातां सताभ्यां पिंडौ दत्वा पितामहपितामहाय दद्यात् मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्वि-
 चक्षणः मंत्रो हेनयथान्यायं शेषाणां मंत्रवर्जितमिति अत्र पितृवन्मातामहे जीवतितत्पित्रादिभ्यः यथा तत्र त्रि-
 षु जीवत्सु नैव कुर्यात्तथा त्रापीत्यादिसर्वमतिदेश्यम् एवंमातृजीवने पीतिशूलपाणिकालादर्शौ तत्र येभ्य
 एवेत्यादौ यच्छब्दादेर्व्यक्तिविशेषवाचित्वेन तदप्रसंगादिति दिक् उत्तरार्धव्याख्यातं प्राक् यच्च त्रविज्ञानेश्वरे-
 णोक्तं पित्रे पिंडं निधायेति पितुरेको हिष्टविधिना श्राद्धं कृत्वा प्रपितामहादिभ्यः पार्वणं कुर्यात् तद्व्युत्क्रममृतसपिं-
 डीकरणाभावपक्षे सपिंडीकरणस्थाना पन्नं ज्ञेयं व्युत्क्रमात् प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडतेति वचनात् दर्शादौ तु पितु-
 रेको हिष्टमेव कार्यम् न जीवंतमतिददातीति श्रुतेः जीवेत्पितामहो यस्य पिता चांतरितो भवेत् पितुरेकस्य दातव्य-
 मेव माहुर्मनीषिण इति यज्ञपार्श्वोक्तेः पितामहे जीवति वै पितयैव समापयेदिति हारीनोक्तेः शिष्टास्तु
 व्युत्क्रमात् प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडता यदि मातायदि पिता भर्तानेपविधिः स्मृत इति माधवीयस्कांदोक्ते-
 र्युत्क्रममृतसपिंडीकरणाभावः पितृव्यादिविषय इत्याहुः एष विधिर्निपेक्षरूपः ।

आतां पितामह जीवंत असून पिता मृत झाला असतां जरी 'त्या श्राद्धांत पितामहाला भोजन घालवें' ह्या मनुवचनानं
 जीवंत पितामहाला भोजन सांगितलें आहे तरी प्रत्यक्ष वडिलांचें पूजन पूर्वीं निषिद्ध म्हणून सांगितलें अगत्यामुळें पितामह
 वर्ज्य करून पिता, प्रपितामह व वृद्धप्रपितामह यांना श्राद्ध द्यावें: कारण, ज्याचा पिता मृत असेल आणि पितामह जीवंत
 असेल त्यानें पित्याचें नांव घेऊन प्रपितामहाचें नांव घ्यावें" असें मनुचें वचन आहे. हाच पत्र सर्वांना मान्य आहे. आतां
 जें छंदोगपरिशिष्टांत—“पितामह जीवंत असतां मृत झालेल्या पित्याचें श्राद्ध करावें. प्रपितामह जीवंत असेल आणि
 पिता व पितामह मृत असतील तर त्या दोघांचें श्राद्ध करावें असें एक पुरुषाचें व दोन पुरुषांचें पार्वण सांगितलें आहे, तें
 तीर्थश्राद्ध-पिंडपितृयज्ञविषयक आहे. वृद्धश्राद्धांत पूर्वीं सांगितलें तेंच समजावें. याप्रमाणें पिता व पितामह मृत असून
 प्रपितामह जीवंत असेल अथवा पिता मात्र मृत असून पितामह व प्रपितामह जीवंत असतील तर वृद्धप्रपितामहादिकांना
 श्राद्ध द्यावें, असें समजावें. कारण, “जीवंत असेल त्याला सोडून प्रेताला अन्न व उदक द्विजानें द्यावें” असें कात्यायनवचन-
 ही आहे. हा वर सांगितलेला सर्व प्रकार मनांत धरून सांगतो हेमाद्रौ विष्णु-“पिता जीवंत असतां जो श्राद्ध करील
 त्यानें ज्याचें पिता श्राद्ध करितो त्याचें करावें. पिता व पितामह जीवंत असतां ज्याचें पितामह करितो त्याचें करावें. पिता,
 पितामह व प्रपितामह तिघे जीवंत असतील तर त्यानें श्राद्धच करूं नये. ज्याचा पिता मृत असेल त्यानें पित्याला पिंड देऊन
 पितामहाच्या पूर्वींच्या दोघांना द्यावें. ज्याचा पितामह मृत असेल त्यानें त्या पितामहाला पिंड देऊन प्रपितामहाच्या
 पूर्वींच्यांना द्यावे. ज्याचा पिता व पितामह दोघे मृत असतील त्यानें त्या दोघांना पिंड देऊन पितामहाच्या प्रपितामहाला
 द्यावा. ज्याचा पितामह मृत असेल त्यानें त्याला पिंड देऊन प्रपितामहाच्या पूर्वींच्या दोघांना द्यावें. मातामहाचें देखील
 असेंच मंत्राचा ऊह करून यथाविधि श्राद्ध करावें. इतरांचें अमंत्रक करावें.” येथें (मातामहश्राद्धांत) पित्याप्रमाणें मातामह
 जीवंत असतां त्याच्या पित्रादिकांना द्यावें. जसें ते पिता इत्यादिक तिघे जीवंत असतां श्राद्ध करूं नये तसें येथेंही (मातामह-
 त्रयीतही) करूं नये इत्यादिक सर्वांचा अतिदेश (हवाला) जाणावा. माता जीवंत असतांही असेंच समजावें, असें शूल-
 पाणि व कालादर्श सांगतात, तें बरोबर नाहीं. कारण, “येभ्य एव पिता दद्यात्तैभ्यो दद्यात्स्वयं मुनः” इत्यादि वाक्यां-
 तील 'येभ्यः' इत्यादि शब्द विशेष व्यक्तींचे (पुरुषांचे) वाचक असल्यामुळें त्या वचनाची माता-पितामही इत्यादिकांवर
 प्रसक्तीच येत नाहीं. उत्तरार्धाची (मंत्रोहेन यथान्यायं) ह्या अर्थ श्लोकाची व्याख्या पूर्वीं (पार्वणश्राद्धप्रकरणें) केली आहे.
 आतां जें येथें (जीवत्पितृकादिश्राद्धप्रकरणें) विज्ञानेश्वरानें सांगितलें आहे कीं, “पित्याला पिंड देऊन” म्हणजे
 पितामह जीवंत असतां पित्याचें एकोद्दिष्टविधीनं श्राद्ध करून प्रपितामहादिकांचें पार्वण करावें” असें, तें उलट क्रमानें (वडील
 जीवंत असून पुत्र मरणें अशा क्रमानें) मृतांचें सपिंडीकरण करावयाचें नाहीं, या पक्षीं सपिंडीकरणाच्या स्थानीं समजावें.
 कारण, “उलट क्रमानें मृतांचें सपिंडीकरण करूं नये.” असें वचन आहे. दर्शादिश्राद्धांत तर पित्याचें एकोद्दिष्ट करावें.
 कारण, “जीवंत असेल त्याचें उल्लेखन करून पूर्वींच्यास देऊं नये” अशी श्रुति आहे. ज्याचा पितामह जीवंत असून पिता
 मृत असेल त्यानें एकत्रा पित्याला श्राद्ध द्यावें, असें विद्वान् सांगतात.” असें यज्ञपार्श्वोचें वचन आहे. आणि “पितामह

जीवंत असतां पित्याच्या ठिकाणीं श्राद्ध समाप्त करावें” असें हारीताचें वचनही आहे. शिष्ट तर—“उलट क्रमानें मृत झाले अमतील त्यांचें संपिंडीकरण करूं नये. जर माता, किंवा पिता, अथवा भर्ता मृत असेल तर त्यांचे ठायीं हा संपिंडीकरण निषेध नाही” असें माधवीयांत स्कंदवचन असल्यामुळे उलट क्रमानें मृत झालेल्यांचें संपिंडीकरण नाही म्हणणें हें पितृव्य-ज्येष्ठ भ्राता इत्यादिविषयक समजावें, असें सांगतात.

त्रिपुजीवत्सुविष्णुराह त्रिपुजीवत्सुनैवकुर्यादितितद्दर्शादिविषयं नांदीश्राद्धंतुपरेभ्यस्त्रिभ्योभवत्येवेति-
कल्पतरुः पृथ्वीचंद्रोदयस्तु दद्यात्त्रिभ्यः परेभ्यस्तुजीवेच्छेत्रितयंयदीतिमनूक्तेः सर्वत्रविकल्पः सच-
देशाचाग्राह्यवतिष्ठतइत्याह सुदर्शनभाष्येतुमासिकश्राद्धंजीवत्पित्रादिनाव्युत्कममृतपित्रादिनाचकार्यमे-
वेत्युक्तं मदनरत्नेक्रतुः अष्टकादिपुस्तकांतोमन्वादिपुत्रुगादिपु चंद्रसूर्यग्रहेपातेस्वेच्छयालभ्ययोगतः जीव-
न्पितानैवकुर्याच्छ्राद्धंकास्यंतथाखिलं अन्येविशेषाः श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णयेभट्टकृतत्रिस्थली-
सेतौचक्षेयाः इतिश्रीभट्टकमत्याकरकृतेनिर्णयसिंधौजीवत्पितृकादिश्राद्धम् ।

आतां तिथि जीवंत अगतां विष्णु सांगतो—“पिता इत्यादिक जीवंत तिथि अगतां श्राद्ध करूं नये.” असें तें दर्शश्राद्ध-
विषयक समजावें. नांदीश्राद्ध तर पूर्वीच्या तिथींना (वृद्धप्रणितामहादिकांना) द्यावें, असें कल्पतरु सांगतो. पृथ्वीचंद्रोदय
तर—“पिता इत्यादिक त्रयी जीवंत असेल तर पूर्वीच्या तिथींना द्यावें” असें मनुवचन असल्यामुळे सर्व श्राद्धांचे ठायीं
विकल्प समजावा. त्याची (विकल्पाची) देशाचारावरून व्यवस्था समजावी, असें सांगतो. सुदर्शनभाष्यांत तर—ज्याचे
पिता इत्यादिक जीवंत अगतील व उलट क्रमानें मृत अगतील त्यानें मासिक श्राद्ध करावेंच, असें सांगितलें आहे. मदन-
रत्नांत क्रतु—“अष्टका इत्यादिक श्राद्धे, संक्रांति, मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, चंद्रसूर्यग्रहण, व्यतीपात, अलभ्ययोग
इतक्या ठिकाणीं जीवत्पितृकांन आपल्या इच्छेप्रमाणें करावें. गारें कास्यश्राद्ध जीवत्पितृकांन करूं नयेच.” इतर विशेष,
पित्यानें केलेल्या जीवत्पितृकनिर्णयांत व नारायणभट्टांनीं केलेल्या त्रिस्थलीसेतूंत जाणावे.

इति जीवत्पितृकादिश्राद्धाची महाराष्ट्रीका समाप्त झाली.

अथविभक्ताविभक्तनिर्णयः पृथ्वीचंद्रोदयेमरीचिः वहवःस्युर्यदापुत्राःपितुरेकत्रवासिनः
सर्वेषांनुमंतकृत्वाज्येष्ठनैवतुयत्कृतं द्रव्येणचाविभक्तेनसर्वैरेवकृतंभवेत् ज्येष्ठस्यकर्तृत्वेपिसर्वेफलभागिनइत्यर्थः
तेनयेवब्रह्मचर्यादिनियमास्नेफलिसंस्कारत्वात्मर्षेःकार्याः एवंसंस्पृष्टानामपि तुल्यत्वान् मिताक्षरायां-
नारदः भ्रातृणामविभक्तानामेकोधर्मःप्रवर्तते विभागेसतिधर्मापिभवेत्तेषांपृथक्पृथक् बृहस्पतिरपि
एकपाक्तेनवसतांपितृदेवद्विजार्चनं एकंभवेद्विभक्तानांतदेवस्यादृहेगृहे अत्रयद्यप्यविशेषश्रवणान् ब्रह्मयज्ञसं-
ध्यादिप्वप्यविभक्तानांपृथङ्निषेधःप्राप्नोति तथापिद्रव्यमाध्यश्राद्धवैश्वदेवादिप्वेवसः द्रव्यस्यानेकस्वामिकत्वे-
नैकस्यव्ययेनधिकागतं यानितुद्रव्यमाध्यनिमंत्रजपोपवामसंध्याब्रह्मयज्ञपारायणादीनिनित्यनैमित्तिकका-
स्यानितेपुपृथगेवाधिकारः द्रव्यव्ययाभावेनुमत्यनपेक्षणात् द्रव्येणचाविभक्तेनेत्यस्याविषयत्वात् पृथगप्येक-
पाकानांब्रह्मयज्ञोद्विजातिनां अग्निहोत्रंमुरार्चाचसंध्यानित्यंभवेत्तथेतिप्रयोगपारिजातेआश्वलायन-
स्मृतेश्च अग्निहोत्रशब्दोमिसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्मपरः तेष्वप्यन्यानुमत्यैवाधिकारेणन्यायसाम्यात् पितृ-
श्राद्धादिपुतुल्यफलेपुनित्येवपुनमतिविनाप्येकस्याधिकारः एकोपिस्थावरेकुर्याद्दानाध्ययनविक्रयं आपत्कालेकु-
टुंबार्थधर्माथैवचविशेषतइतिवचनात् धर्माथैवश्यकर्तव्येपितृश्राद्धादाविति विज्ञानेश्वरः केचित्त्वविभ-
क्तानामपिपृथक्पाकदेवदेशांतरेचदार्शिकान्दिकयोःपृथक्त्वमाहुः भ्रातृणामविभक्तानांपृथक्पाकोभवेद्यदि
वैश्वदेवादिकंश्राद्धंकुर्युस्तेवैपृथक्पृथक् इतिहारीतोक्तेः अविभक्तेनपुत्रेणपितृमेधोमृताहनि देशांतरेपृथ-
क्कार्योदर्शश्राद्धंतथैवचेतियमोक्तेश्चेति तत्रमूलंचित्यं तदयमर्थः पंचमहायज्ञमध्येदेवभूतपितृमनुष्ययज्ञान-
न्यानुमत्याज्येष्ठएवकुर्यात् होमाप्रदानरहितंनभोक्तव्यंकदाचन अविभक्तेपुसंसृष्टेष्वेकेनापिपुत्रंभूतमिति-
व्यासोक्तेश्च यस्यतुज्येष्ठेनाकृतेवैश्वदेवंसिध्येत्तेनतूष्णीममौकिंचित्स्त्रिष्वभोक्तव्यं यस्यत्वेषामप्रतोषं-
सिध्येत्सन्नियुक्तममौकृत्वाप्रेक्षाक्षणाद्यत्वाभुंजीतेत्यविभक्ताधिकारेपृथ्वीचंद्रोदयेगोभिलोक्तेः ।

आतां विभक्ताविभक्तांचा निर्णय सांगतो—

पृथ्वीचंद्रोदयांत मरीचि—“जेव्हां पिलाचे बहुत पुत्र एके ठिकाणीं (अविभक्त) अगतील तेव्हां सर्वांच्या मतांनीं सामायिक द्रव्य खर्च करून ज्येष्ठानेंच केलेलें श्राद्धादिक कर्म सर्वांनीं केल्यासारखें होतें, म्हणजे ज्येष्ठ कर्ता असल्या तरी त्या कर्माचें फल (पुण्य वगैरे) सर्वांना प्राप्त होतें.” यावरून ब्रह्मचर्य इत्यादिक नियम हे ज्यांना फल प्राप्त व्हावयाचें त्यांचे संस्कार असल्यामुळे ते सर्वांनीं करावे, असें होतें. पूर्वी विभक्त असून नंतर एकत्र झाले असतील त्यांनाही असेंच समजावें. कारण ते अविभक्तासारखेच आहेत. **मिताक्षरेत नारद—**“अविभक्त अशा भ्रात्यांचा एक धर्म प्रवृत्त होतो. द्रव्याचा विभाग झाला असतां धर्म देखील वेगवेगळा होतो.” **बृहस्पतीही—**“एके ठिकाणीं पाक करून जेवण करणारे अशा वंशूंचें श्राद्धकर्म, देवपूजा, ब्राह्मणभोजन हें सारें एक होतें. विभक्त अगतील त्यांचें आपापल्या घरीं वेगवेगळें होतें. या वचनांत पितृकर्म, देवपूजा इत्यादिक कर्म अविभक्तांचें एक होतें, वेगळें नाहीं, असें सामान्यतः सांगितल्यावरून जरी ब्रह्मयज्ञ, संन्या इत्यादि देखील वेगळीं करूं नयेत, असा निषेध प्राप्त झाल्या तरी द्रव्याच्या सर्वांनीं होणारीं अर्धी श्राद्ध वैश्वदेव इत्यादि कर्मे त्यांनाच तो (वेगवेगळें करूं नये हा) निषेध समजावा. कारण, द्रव्य अनेकांचें असल्यामुळे तें खर्च करण्याविषयीं एकाला अधिकार नाहीं. जीं कर्मे करण्याविषयीं द्रव्याची जरूर नाहीं अर्धी—मंत्राचा जप, उपवास, संन्या ब्रह्म-यज्ञ, वेदपारायण इत्यादिक नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मे त्यांच्याविषयीं प्रत्येकाला वेगवेगळा अधिकार आहे. कारण द्रव्याचा खर्च नसला म्हणजे इतरांच्या अनुमोदनाची अपेक्षा नसल्यामुळे ‘द्रव्येण चाविभक्तं.’ (सामायिक द्रव्य खर्च करून) हें बरील मरीचिवचन एथें प्राप्त होत नाहीं. आणि “एकपाकानें भोजन करून राहणाऱ्या द्विजांचे ब्रह्मयज्ञ, अग्निहोत्र, देवपूजा आणि संन्या हीं नित्य वेगवेगळीं होतात” असें प्रयोगपारिजातांत आश्वलायनस्मृतिवचनही आहे. या वचनांतील ‘अग्निहोत्र’ या शब्दानें अग्नीनें राख्य होणारीं अर्धी श्रांत व स्नाने नित्य कर्मे समजावीं. कारण जगा अग्निहोत्राविषयीं इतरांच्या अनुमोदनांनं अधिकार प्राप्त होतो, तथा इतर अग्निसाध्यकर्माविषयीं देखील इतरांच्या अनुमोदनांनं अधिकार असल्यामुळे अग्निहोत्र व इतर अग्निसाध्य कर्मे यांविषयीं न्याय समान आहे. आपतां सर्वांना समान फल देणारी अर्धी जी पिता इत्यादिकांचीं श्राद्धादिक नित्यकर्मे त्यांविषयीं इतरांच्या अनुमतीवांचून देखील एकाला अधिकार प्राप्त होतो. कारण, “आपत्कालीं कुटुंबपोषणार्थी आणि धर्मागारीं एका वंशूनें देखील म्यावरपदार्थांचें दान आणि विक्रय वर्धेपेकरून करावा” असें वचन आहे. ‘धर्मार्थ’ याचा अर्थ—अवश्य कर्तव्य पितृश्राद्धादिकांविषयीं. असा विज्ञानेश्वर सांगतो. **केचित् ग्रंथकार** तर—आते अविभक्त असूनही स्वदेशीं त्यांचा पाक वेगवेगळा होत असतां आणि ते देशांतरीं असतां दर्श आणि वार्षिक वेगवेगळें होतें, असें सांगतात. कारण, “अविभक्त अशा भ्रात्यांचा पाक वेगवेगळा होत असेल तर त्यांनीं वैश्वदेवादिकर्म आणि श्राद्ध वेगवेगळें करावें” असें हारीतवचन आहे. आणि “अविभक्त अशा पुत्रांनं देशांतरीं आपाच्या गृहदिवशीं सांवगरिक पृथक् करावें, दर्शश्राद्धही तसेंच करावें.” असें यमवचनही आहे. ह्या वचनांविषयीं मूल नित्य (अनुपलब्ध) आहे. बरील सर्व वचनांचा भावार्थ असा—पंचमहायज्ञांमध्ये देवयज्ञ, मनयज्ञ, पितृयज्ञ, आणि मनुष्ययज्ञ हे चार यज्ञ इतरांच्या अनुमतीनें ज्येष्ठानेंच करावे. कारण, यांविषयीं वर आरंभीं मरीचिवचन आहे. आणि “होम, आणि अन्नदान (अज्ञांतील बरील अज्ञांचें दान) केल्यावांचून कधीही भोजन करूं नये. आते अविभक्त असतां अथवा विभक्त होऊन नंतर एकत्र झाले असतां तें एकानें जरी केलें तरी सर्वांनीं केलें असें होतें” असें व्यासवचनही आहे. ज्येष्ठ भ्रात्यांनं वैश्वदेव केला नसतां ज्याचें अन्न सिद्ध होईल त्यानें मंत्रावांचून अग्नीत थांढें टाकून भोजन करावें. कारण, “ह्या वंशूंमध्ये ज्याचें अन्न वैश्वदेवाच्या पूर्वी सिद्ध होईल त्यानें नियमानें अग्नीत टाकून अन्न (पहिलें थांढें अन्न) ब्राह्मणांला देऊन नंतर भोजन करावें” असें अविभक्ताधिकारी पृथ्वीचंद्रोदयांत गोभिलवचन आहे.

आश्वलायनस्तुपाकर्पाथ्येऽपृथक्त्वंतदेकत्वेऽपृथक्त्वमाह वसतामेकपाकंनविभक्तानामपिप्रभुः एक-स्तुचतुरोयज्ञान्कुर्याद्वायज्ञपूर्वकान् अविभक्ताविभक्तावापृथक्पाकाद्विजातयः कुर्युःपृथक्पृथग्यज्ञान्भोजना-त्प्राग्दिनेदिनइति ब्रह्मयज्ञसंध्यास्नानतर्पणादितूक्तहेतोःपृथगेव देवपूजातूक्तवचनद्वयादेकत्रपृथग्वा दर्शग्रहण-श्राद्धादित्वेकस्यैव तीर्थश्राद्धाद्यपियुगपत्सर्वेषामविभक्तानांप्राप्तावेकस्यभेदेनप्राप्तौभिन्नं गयाश्राद्धेऽप्येवं एष्टव्या-वहवःपुत्राःशीलवंतोऽगुणान्विताः तेषांतुसमवेतानांयद्येकोपिगयांत्रजेत् तारिताःस्मोवयंतेनसयातिपरमां-गतिमितिहेमाद्रौकौर्मोक्तेः काम्येपिदानहोमादावन्यानुमत्यैवाधिकारः द्रव्यासाध्यजपादौतांविनापि अपराकंपैठीनसिः विभक्तैस्तुपृथक्कार्यप्रतिसंवत्सरादिकं एकेनैवाविभक्तेषुकृतेसर्वैस्तुतत्कृतम् सांवत्स-रात्पूर्वणिमासिकान्येकत्रैव तदाहलघुहारीतः सपिंडीकरणांतानियानिश्राद्धानिपोडश पृथङ्नैवसुताः-कुर्युःपृथग्द्रव्यापिकचित् सपिंडनंमासिकोपलक्षणं अर्वाक्संवत्सराज्येषुःश्राद्धंकुर्यात्समेत्यत ऊर्ध्वसपिंडी-

करणात्सर्वेकुर्युःप्रथक्प्रथगिति व्यासोक्तेः उशनाः नवश्राद्धसंपिंडत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश एकेनैव-
तुकार्याणिसंविभक्तधनेष्वपि मघात्रयोदशीश्राद्धं त्वविभक्तानामपि पृथगित्युक्तं प्राक् यतुवृद्धवसिष्ठः
मासिकं च वृषोत्सर्गसंपिंडीकरणंतथा ज्येष्ठेनैव प्रकृतं व्यसादिकं प्रथमतः इति तन्निर्मूलं बहुचपरिशिष्टेन-
श्राद्धसहस्रदुः ।

आश्वलायन—तर पाक वेगळा असेल तर वैश्वदेवादिक नेगळें करावें. एक असेल तर एक करावें, असें सांगतो—
“विभक्त असून देखील एकत्र पाक करून राहणाऱ्या बंधूंचे ब्रह्मयज्ञ आहे. पूर्वी ज्यांच्या असे देवयज्ञादिक चार यज्ञ एकाच
करावे. आते विभक्त असोत किंवा अविभक्त असोत ते भोजनाचा पाक वेगळा करीत असतील तर त्यांनीं प्रतिदिवशीं भोज-
नाच्या पूर्वी वेगवेगळे यज्ञ करावे.” ब्रह्मयज्ञ, संभ्या, स्नान, तर्पण इत्यादि कर्म तर वर सांगितलेल्या हेतूस्तव (ब्रह्माचा स्वर्च
नयत्वाकारणास्तव) वेगवेगळेंच करावें. देवपूजा वर सांगितलेल्या दोन प्रकारच्या (वृहस्पतिवचनांनं एकत्र, आश्वलायनवच-
नांनं पृथक्) वचनावरून एकत्र किंवा पृथक् करावी. दर्श, ग्रहणांतील श्राद्ध इत्यादिक तर एकाचनें करावें. तीर्थश्राद्धादिकही
साच्या अविभक्त भाल्यांना एकदम प्राप्त असतां एकाळाच अधिकार. भिन्न भिन्न प्राप्त असतां भिन्न भिन्न करावें. गयाश्रा-
द्धांतील असेच समजावें. कारण, “पितर स्मृतास्त—गृहीत गुणवंत असे बहुत पुत्र दच्छावे. त्यांमध्यें एकादा तरी गयेस
जाईल आणि आद्याला तारील व तो परम मनीस जाईल” असें हेमाद्रिंत कौर्मवचन आहे. कामनिक अशा दान-होम
इत्यादिकाविषयीं देखील इतरांच्या संमतीनें अधिकार आहे. ब्रह्माच्या सर्वांचांचून होणाऱ्या जपारिकांविषयीं इतरांच्या संमती-
चांचूनही अधिकार आहे. **अपराकृत पैठीनसि**—विभक्तांनीं प्रतिगांवरगार्गस श्राद्ध वेगवेगळें करावें. अविभक्त असतां
एकाचनें केले स्मरणजे सर्वांनीं तें केले असे होतें. “संवत्सराच्या पूर्वींनीं मानिकें एकत्र करावें. तेंच सांगतो **लघुहारीत**—
“पुत्र विभक्त झालेले असले तरी त्यांनीं आईबापांनीं सांपिंडीकरणापर्यंत होणाऱ्या जीं षोडशश्राद्ध तीं कधींही वेगवेगळीं
करंच नयेत” या वचनांत सांपिंडीकरण हे मानिकांनं बंधक आहें. कारण, “संवत्सराच्या आतां पडलेले श्राद्ध (मासिक)
गारे आते एकत्र मिळत जेपणें करावें. सांपिंडीकरणांतर (वर्षांतर) सर्वांनीं वेगवेगळे करावें” असें व्यासवचन आहे.
उशना—“बंधु विभक्त झाले अगतांही नवश्राद्ध, सांपिंडीकरण, आणि षोडशमासिकें हीं एकाचनें करावें.” मघात्रयोदशी-
श्राद्ध तर अविभक्तांनीं देखील वेगवेगळे करावें, असें पुरा (द्वितीयपत्रिच्छेदांत) सांगितलें आहे. आतां जें **वृद्धवसिष्ठ**—
“मासिक, वर्षास्यं, सांपिंडीकरण, आणि प्रथमादि दत्त हीं जेपणेंच करावें असें सांगतो, तें निमळ आहे. **बहुचपरिशि-**
ष्टांत—“नवश्राद्ध सर्वांनीं एकत्र मिळत जावें” असें आहे.

अथतीर्थश्राद्धं तत्रयज्ञस्यस्मृतिनामहकृतत्रिस्थलीमेतुरेवजागर्तितथापिकिंचिदुच्यते तत्रयात्रायां
महाप्रियासपत्नीकोगच्छेत्तीर्थानिमंयतः प्रायश्चित्तीत्रजेत्तीर्थपत्नीविरहितोपिवा यज्ञेष्वनधिकारीवायश्रवामंत्र
साधकइति **कौर्मा**दिवचनात्मात्रेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः **भारते** ब्राह्मणः श्रत्रियोवैश्यः शूद्रोवागजसत्तम
नवियोनित्रजं येतस्नानातीर्थमहान्मनः **स्कांदे** विधवाधर्मेषु स्नानं दानं तीर्थयात्रां विष्णुनामग्रहं मुहुः एतत्पु-
त्राश्रनुमत्यैव मधवायाः पत्न्यामहैवेति प्रागुक्तं **काशीखंडे** मातुः पितुः श्रेष्ठमनास्तथास्थिसुतस्तुकुर्यात्त्वलु-
तीर्थयात्रां तद्विधिः **स्कांदे** तीर्थयात्रांचिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे गणेशं च पितृन् विप्रान्माभून्शक्त्या प्रपूज्य च
कृतपाणकोट्टोगच्छेन्नियमभृक्पुनः आगत्याभ्यर्च्य च पितृनयथां कृतफलभाभवेत् उपवासात्प्राग्मुंडनं च कार्यं
प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः कवानां वपनं कुर्यान्न श्रान्तविकचो भवेदिति **विष्णूक्तेः** प्रायश्चित्तार्थ-
यात्रायांगंगायांचेतदित्येकं केचित्तु हेमाद्रौ **भारते** केशदमश्चुतस्वादीनां वपनं न च शस्यते अतो न कार्यव-
पनं गयाश्राद्धार्थिनामदा येमातेस्मिन् पितृकर्मतत्पराः संधार्य केशानतिभक्तिभाविताः ऋणक्षयार्थं पितृतीर्थ-
मागतास्ते पाश्र्म्यं संश्रयमेप्यतिष्ठुवमिति निषेधानुगयायात्रांगं वपनं न कार्यमित्याहुः वस्तुतस्तु गयाधिकरणकस्यै-
वार्यनिषेधः ननु यात्रांगस्य श्राद्धार्थित्वमुक्तेः विशालं विरजंगयामित्यनेनैकवाक्यत्वाच्च श्राद्धं च पदं न द्वादश-
देवतं वा धृतेन कार्यं गच्छेद्देशांतरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्समर्पिषेति **विष्णुपुराणात्** यात्रांगवृद्धिश्राद्धोक्तेश्च ।

आतां तीर्थश्राद्ध सांगतो—

त्या तीर्थश्राद्धाविषयीं जरी आमच्या आजोबांनीं (नारायणभट्टांनीं) केलेला त्रिस्थलीमेतु ग्रंथ जाणत आहे तरी येथें अल्प
सांगतां. तीर्थाच्या यात्रेविषयीं अधिकार “सांमिक असेल तर पत्नीसह तीर्थास जावें. अथवा पत्नीविरहितानें प्रायश्चितासाठीं
६४ निर्ण०

तीर्थास जावें. अथवा यज्ञविषयीं अनधिकारी असेल त्यानें किंवा मंत्र साध्य करावयाचा असेल त्यानें तीर्थास जावें” ह्या **कूर्मपुराणा**दिवचनावरून सामिकाला पत्नीसहच आहे. **भारतांत**—“ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शूद्र यांनीं तीर्थांत **ज्ञान** केलें असतां ते वाईट योनींत जात नाहीत.” **स्कांदांत विधवाधर्मांत**—“ज्ञान, दान, तीर्थयात्रा आणि वारंवार **विष्णुनाम**ग्रहण विधवेनें करावें.” हें पुत्रादिकांच्या अनुमतीनेंच करावें. सुवासिनीला पतीसहच अधिकार, असें पूर्वी सांगितलें आहे. **काशीखंडांत**—माता व पिता यांच्या अस्थि तीर्थांत टाकण्याकरितां पुत्रांनें तीर्थयात्रा करावी.” त्या तीर्थयात्रेचा विधि सांगतो **स्कांदांत**—“तीर्थयात्रा करावयाची म्हणजे पूर्वी घरीं उपवास करून गणपति, पितर, ब्राह्मण, साधु यांची यथा-शक्ति पूजा करून नंतर पारणा करून नियम धारण करून मोठ्या हर्षानें तीर्थास जावें. नंतर परत आल्यावर पितरांची पूजा करावी, म्हणजे तीर्थयात्रेचें संपूर्ण फल प्राप्त होतें.” उपवासाच्या पूर्वी मुंडनही करावें. कारण, “प्रयागाचे ठायीं तीर्थयात्रेचे ठायीं, पिता व माता मृत असतां केशांचें वपन करावें, परंतु मस्तकावरील सर्वकेशरहित होऊं नये.” असें **विष्णुवचन** आहे. प्रायश्चित्तार्थ यात्रेचे ठायीं आणि गंगेचे ठायीं हें वपन, असें कितीएक ग्रंथकार सांगतात. **केचित् ग्रंथकार** तर-**हेमाद्रींत भारतांत**—“केश, श्मश्रु, नखें इत्यादिकांचें वपन करणें प्रशस्त नाही; म्हणून गयाश्राद्ध करणारानें वपन मदा करूं नये. या भरतखंडांत जे पितृकर्माविषयीं तत्पर अतिभक्तीनें युक्त असे असून पितृकृपापासून मुक्त होण्यामाठीं केश धारण करून पितृतीर्थास येतील ते पितृकृपापासून निश्चयानें मुक्त होतील.” या वचनानें वपनाचा निषेध अमल्यामुळे गया-यात्रेचें अंगभूत वपन करूं नये, असें सांगतात. वास्तविक म्हटलें तर हा वपनाचा निषेध गयेचे ठायींच आहे. यात्रेच्या अंगभूत वपनाचा निषेध नाही. कारण वरील वचनांत गयाश्राद्धार्थी असेल त्यानें करूं नये, असें सांगितलें आहे. आणि ‘विशालं विरजं गया’ या क्षेत्रांत वपन करूं नये, ह्याची ह्याच प्रकरणीं पुढें सांगावयाच्या वचनाशीं एकवाक्यताही होते. निघण्याच्या वेळीं श्राद्ध सांगितलें तें सहा, नऊ किंवा वारा देवतांचें घृतानें करावें. कारण, “जो देशांतरी जाण्याविषयीं निघेल त्यानें घृतानें श्राद्ध करावें” असें **विष्णुपुराण**वचन आहे. आणि यात्रेचें अंगभूत वृद्धिश्राद्धही सांगितलें आहे.

श्राद्धचपारणादिनएव उपोष्यरजनीमेकांप्रातःश्राद्धंविधायच गणेशंब्राह्मणान्नत्वामुक्त्वाप्रस्थितवान्मुधी-रितिस्कांदलिंगात् गौडनिबंधेगौतमः तीर्थयात्रासमाप्तमेतीर्थात्प्रत्यागमेपिच वृद्धिश्राद्धंप्रकुर्वीतबहु-सर्पिःसमन्वितं वृद्धिपदंतद्धर्मार्थं श्राद्धोत्तरंयात्रासंकल्पइति**भट्टाः वागवीय** उद्यतस्तुगयांगंतुश्राद्धंकृत्वा-विधानतः विधायकार्पटीवेषंप्रागंगत्वाप्रदक्षिणम् ततोग्रामांतरंगत्वाश्राद्धशेषस्यभोजनं घृतस्यभोजनं तच्च क्रोशमध्ये श्राद्धोत्तरंक्रोशगमननिषेधात् ततःप्रतिदिनंगच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः गयायामेवतन्त्रान्यत्रेतिकेचित् **हेमाद्रिस्तु** गयायांश्राद्धदिनेएवप्रस्थानं तीर्थांतरेतुश्राद्धोत्तरदिनइत्याह **प्रभासखंडे** यश्चान्यकारयेच्छ-त्त्यातीर्थयात्रानंतरेश्वरः स्वकीयद्रव्ययानाभ्यातस्यपुण्यंचतुर्गुणं यात्रामध्येआशौचैरजसिवाशुद्धिपर्यंतस्थित्वा तदंतरेगच्छेत् मार्गवैषम्येत्वदोषः यात्रामध्येतीर्थांतरप्राप्तौश्राद्धादिकार्यमेव वाणिज्याद्यर्थंगतेनतु मुंडनोपवा-सादिनकार्यमितिप्रयागसेतो**भट्टाः** वस्तुतस्तुतत्रापिमुंडनोपवासश्राद्धादिकार्यं अर्धतीर्थफलंतस्ययःप्रसंगेन-गच्छतीतिब्राह्मोक्तेः **स्कांदे** द्विर्भोजनंतृतीयांशंहरेत्तीर्थफलस्यच वाणिज्यंतींस्तथाभागान्हंतिसर्वप्रति-ग्रहः यानंधर्मचतुर्थांशंछत्रोपानहमेवचेत्युत्तरार्धपाठांतरम् ।

श्राद्ध करणें तें पारणादिवशींच करावें. कारण, “एक दिवस उपोषण करून प्रातःकार्त्ती श्राद्ध करून गणेश, ब्राह्मण यांना नमस्कार करून भोजन करून तो विद्वान् प्रस्थान करिता झाला” असें **स्कांदांत** पारणादिवशीं श्राद्ध केल्याचें बोधक वचन आहे. **गौडनिबंधांत गौतम**—“तीर्थयात्रेच्या आरंभीं आणि तीर्थाहून आल्यावर बहुत घृतानें युक्त असें वृद्धिश्राद्ध करावें.” येथें वृद्धिश्राद्ध असें म्हटलें आहे. तें या श्राद्धांत वृद्धिश्राद्धाचे धर्म यावे म्हणून आहे. श्राद्ध झाल्यानंतर यात्रेचा संकल्प करावा, असें **नारायणभट्ट** सांगतात. **वायवीयांत**—“गयेस जाण्याविषयीं उद्युक्त झाला असेल त्यानें यथाविधि श्राद्ध करून कापरी लोकांचा वेष करून ग्रामाला प्रदक्षिणा करून नंतर दुसऱ्या गांवास जाऊन तदनंतर श्राद्धशेष घृतानें भोजन करावें.” येथें श्राद्धशेषघृतानें भोजन सांगितलें तें एका कोशाच्या आंत समाजवें; कारण, श्राद्ध केल्यानंतर एक कोश जाण्याचा निषेध आहे. “तदनंतर कोणाचाही प्रतिग्रह वर्ज्य करून प्रतिदिवशीं गमन करावें.” हें सर्व गयेच्या यात्रेविषयींच आहे, इतरांविषयीं नाही, असें **केचित्** म्हणतात. **हेमाद्रि** तर—गयेच्या यात्रेविषयीं श्राद्धदिवशींच प्रस्थान करावें. इतर तीर्थांविषयीं तर श्राद्धाच्या दुसऱ्या दिवशीं करावें, असें सांगतो. **प्रभासखंडांत**—“जो राजा आपलें द्रव्य आणि वाहन दुसऱ्यास देऊन त्याच्या कडून तीर्थयात्रा यथाशक्ति करवील त्याला त्या यात्रेचें पुण्य चौपट प्राप्त होईल,” यात्रेमध्ये आशौच किंवा स्त्री रजस्सल होईल तर शुद्धीपर्यंत राहून शुद्धी झाल्यावर पुढें जावें. मार्ग बिकट

असेल (राहण्यासारखा नसेल) तर नाही राहिले तरी दोष नाही. यात्रेमध्ये अन्यतीर्थ प्राप्त असतां श्राद्धादिक करावेच. व्यापार वगैरे करण्यासाठी जाणारांनं तर मुंडन-उपवास वगैरे करू नये, असे प्रयोगसेतूंत भट्ट सांगतात. वास्तविक म्हटले तर व्यापारादिकासाठी जाणारांनं देखील मुंडन, उपवास, श्राद्ध इत्यादि करावे. कारण, “जो इतर कार्याच्या प्रसंगानें तीर्थांम जातो त्याला तीर्थाचें पुण्य अर्धे प्राप्त होतें” असे ब्राह्मवचन आहे. स्कन्दपुराणांत—“यात्रेत दुरो ज द्विवार भोजन केलें असतां तीर्थफलाचा तिसरा हिस्सा कमी होतो. व्यापार केला असतां तीर्थफलाचे तीन भाग कमी होतात. आणि प्रतिग्रह केला असतां तीर्थाचें फल सारें नष्ट होतें.” या वचनाच्या उत्तरार्धात ‘यानं धर्मचतुर्धांश्छत्रोपानहमेव च’ असें पाठांतर आहे. त्याचा अर्थ—वाहन, छत्र, जोडा हें घेतलें असतां धर्माचा (पुण्याच्या) चतुर्धांश कमी होतो.

अत्रनदीपुविशेषः मार्गेतरानदीप्राप्तौ स्नानादिपरंपारतः अर्वांगेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः यत्तु पितृनतर्पयित्वा तु नदीस्तरतियो नरः तस्यास्तृक्पानकामास्ते भवन्ति भृशदुःखिता इति तत्सरस्वतीपरम् शंखः तीर्थप्राप्त्यानुपगणे स्नानतीर्थसमाचरेन् स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राकृतं तु स एव नखवंती मत्तिकामेदनवसिच्य तीर्थप्राप्तौ तु प्रभासखंडे यानानितुपरित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः लुठित्वा लोठनीतत्र कृत्वा कार्पाटिकाकृतिं कृत्वेति गृहान्निर्गमसमये करणे इदं प्रथमं चालयेत् तीर्थप्रणवेन जलं शुचि अवगाह्य ततः स्नायाद्यथा वनमंत्रयोगतः मंत्रश्च प्रभासखंडे नमोस्तु देवदेवाय शितिकंठाय दंडिने रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः सरस्वतीच सावित्रीवेदमाता गरीयसी सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थपापप्रणाशिनीति मंत्रवत् स्नानं च वपनोच्चरं कार्यं पूर्वमावाहनं तीर्थमुंडनं तदनंतरं ततः स्नानादिकं कुर्यात्पश्चाच्छ्राद्धं समाचरेदित्युक्तेः यत्तु गत्वा स्नानं प्रकुर्वीत वपनं तदनंतरं मितितनमुशलस्नानं परं काशीखंडे तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुंडनं तथा उपवासेतत्रैवोक्तं यद्वितीर्थप्राप्तिः स्यात्तद्गन्धपूर्ववाग्ने उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्ते हि श्राद्धो भवेत् अत्र उपवासंततः कुर्यात्तस्मिन्नहनिमुव्रतइति प्राप्तिदिने पूषामोक्तेर्विकल्पः मुंडने तु स्कांददेवलौ मुंडनंचोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः वर्जयित्वा कुक्षेत्रं विशालं विरजंगयां विरजलोणाग इति प्रसिद्धम् महातीर्थपरः सर्वतीर्थशब्दः ।

यात्रेत नद्यांच्या ठिकाणीं विशेष सांगतो—“मार्गामध्ये नदी प्राप्त असतां स्नान-संथा वगैरे कर्मे परतीरास करावे. आणि सरस्वतीनदीच्या पूर्वेतीरासच करावे, हा मार्गगमनाचा विधि गमजावा.” आतां जें “जो मनुष्य अलीकडे पितरांचें तर्पण केल्यावांचून नदी उतरून पळीकडे जातो, त्यांचे पितर अत्यंत दुःखां होऊन त्याच्या रक्तपानाची इच्छा करितात.” असे वचन तें सरस्वतीविषयक आहे. शंख—“इतर कार्याच्या अनुपंगानें तीर्थ प्राप्त असतां तीर्थाचें ठायीं स्नान करावे, म्हणजे स्नानाचें फल त्याला प्राप्त होतें. तीर्थयात्रेचें फल त्याला प्राप्त होत नाही.” तोच शंख—“वाहणाऱ्या नदीत स्नान केल्यावांचून पुढें जाऊं नये.” तीर्थ प्राप्त झालें असतां सांगतो प्रभासखंडांत—“तीर्थ जवळ आलें असतां त्या ठिकाणीं वाहनांतून खालीं उतरून जमिनीवर लोढून पायांनीं चालूं लागावे. आणि कापडी लोकांचा वेप ग्रहण करावा.” कर्पटीवेप ग्रहण करणें हें घरांतून निघतें वेळां करावे. “प्रथमतः तीर्थाचें शुद्ध उदक प्रणवाचा उच्चार करून हातांनीं चालवावे. नंतर बुडी माहून यथाविधि मंत्र म्हणून स्नान करावे.” मंत्र सांगतो प्रभासखंडांत—“नमोस्तु देवदेवाय शितिकंठाय दंडिने । रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः । सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी । सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थपापप्रणाशिनी” हें समंत्रक स्नान वपन केल्यानंतर करावे. कारण, “तीर्थाचे ठायीं पूर्वा आवाहन तदनंतर मुंडन व मुंडन केल्यावर स्नानादिक करावे, पश्चात् श्राद्ध करावे” असें मागितलें आहे. आतां जें “तीर्थास जाऊन स्नान करून नंतर वपन करावे” असें स्नानानंतर वपन सांगितलें तें सुसलस्नानविषयक आहे. काशीखंडांत—“तीर्थोपवास करावा आणि तसंच मस्तकाचें मुंडन करावे.” उपवासाविषयीं तेथेंच सांगतो—“ज्या दिवशीं तीर्थ प्राप्त होईल त्याच्या पूर्वे दिवशीं उपवास करावा, आणि तीर्थ प्राप्त झालेल्या दिवशीं श्राद्ध करावे” या वचनानें पूर्वे दिवशीं उपवास सांगितला आणि एथें (काशीखंडांत) “तदनंतर त्या दिवशीं व्रती होऊन उपवास करावा.” या वचनानें तीर्थप्राप्तिदिवशीं उपवास सांगितल्यावरून विकल्प समजावा. मुंडनाविषयीं तर स्कान्द व देवल सांगतात—“कुक्षेत्रं, विशाल, विरज (लोणार) आणि गया हीं वर्ज्य करून इतर सर्वतीर्थांचे ठायीं (प्रसिद्ध महातीर्थांचे ठायीं) मुंडन आणि उपवास हा विधि आहे.”

अत्र विशेषः स्मृत्यन्तरे ऊर्ध्वमव्दाहिमा सोनात्पुनस्तीर्थत्रजेद्यदि मुंडनंचोपवासंच ततोयत्नेन कारयेत् तदा तद्वपनं शंसं प्रायश्चित्तमृते द्विजेति पाठः प्रयागे प्रति यात्रंतु योजनत्रय इष्यते क्षौरं कृत्वा तु विधिवत्ततः स्नायादिति तसिते तथा च बृहस्पतिः क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवं पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेष्वतीर्थे

अपराकैत्कादि उद्बुधः प्राबुधोवावपनकारयेत्सुधीः केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानिवापयेत् इदं-
प्रयागेसधवानामपिसमूलंभवतीति**भट्टाः** युक्तं तु सर्वान्केशान्समुद्धृत्यैदं गुलद्वयं एवमेवहिनारीणांश-
स्यतेवपनक्रियेति तच्चाकृतचूडानानकार्यमतिकेचित् तत्त्वंतुनैमित्तिकत्वात्पित्रादिमृतवत्कार्यमेवेति तदपि-
प्रयागेनित्यं नान्यत्र तच्चयतिभिस्तीर्थैःपिक्तुसंधिष्वेवकार्यनान्यदा कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिपुवापायेदिति-
स्मृतेः इदंजीवत्पितृकेणापितीर्थकार्यं नच मुंडनं पिंडदानेचेतिदक्षवचनेननिषेधः विनातीर्थविनायज्ञंमाता-
पित्रोर्मृतिविना योवापयतिलोमानिसपुत्रःपितृघातकइतिस्मृत्यातत्संकोचान् तदपिप्रयागेप्रतियात्रमन्यतीर्थे-
आद्ययात्रायामेवेति**शिष्टाः** ततःस्नानम् ।

मुंडन व उपवासाविपर्यां विशेष सांगतो **स्मृत्यंतरांत**—“एकवार तीर्थांग जाऊन सर्व विधि करून पुनः दहा महिन्यां-
नंतर जर त्याच तीर्थांग जाईल तर मुंडन आणि उपवास प्रयत्नानं करावे.” याच्या उत्तरार्धांत “तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्त-
मृते द्विजः’ असा पाठ आहे; त्याचा अर्थ—“तेव्हां प्रायश्चित्तावांचून वपन करणं प्रशस्त आहे.” “प्रयागाचे ठायीं तीन योजनांत
प्रत्येक यात्रेला यथाविधि क्षौर करून नंतर गंगायमुनेच्या संगमांत स्नान करावें” तेंच **बृहस्पति** सांगतो—“माता व पिता
यांचें मरण, दीक्षा, प्रायश्चित्त आणि तीर्थ हीं निमित्तें प्राप्त झालीं असतां इतर कारणांनीं क्षौराचा निषेध असला तरी नैमि-
त्तिक क्षौर करावें.” **अपराकांत स्कांदांत**—“उत्तरेकडे किंवा पूर्वेकडे मुन्य करून वसून वपन करावें. केश, श्मश्रु,
लोम, नखें हीं दक्षिणेकडून उत्तरेकडे कापवीत आणवावीं.” हें वपन प्रयागांत मुवाग्निनीला देखील मूलापासून होतें, असें
नारायणभट्ट सांगतात. युक्त म्हटलें म्हणजे “सारे केश वर एके ठिकाणीं धरून दोन अंगुळें कापावे, असेंच स्त्रियांचें
वपन करणें प्रशस्त आहे.” तें वपन ज्यांचें चूडाकर्म झालें नसेल त्यांचें करूं नये, असें **केचिन्** म्हणतात. **खरा प्रकार**
म्हटला तर हें वपन नैमित्तिक असल्यामुळें पिता वगैरे मृत असतां जसें करावयाचें तसें करावेंच. तेंही प्रयागांत नित्य आहे,
इतर ठिकाणीं नाही. तें वपन सन्याश्यांनीं तीर्थाचे ठायीं देखील ऋतूंच्या संधीचे ठायींच करावें, अन्यकालीं करूं नये. कारण,
“कांखा, उपस्थ आणि शिखा वर्ज्य करून ऋतुसंधीचे ठायीं वपन करावें” अशी **स्मृति** आहे. हें वपन जीवत्पितृकानें देखील
तीर्थाचे ठायीं करावें. आतां “मुंडन, पिंडदान, आणि सर्वे प्रेतकर्म हीं जीवत्पितृकानें करूं नये” या दक्षवचनानें वपनाचा
(मुंडनाचा) निषेध प्राप्त झाला, असें कोणी म्हणल तर तसें नाही; कारण, “तीर्थावांचून, यज्ञावांचून, आईवापांच्या
मरणावांचून जो केशांचें वपन करितो तो पितृघातक होतो” या स्मृतीनं त्या वरील वचनाचा संकोच (तीर्थादिकांविषयीं
अप्रवृत्ति) होतो. तें वपनही प्रयागाचे ठायीं प्रत्येक यात्रेला करावें, इतर तीर्थांचे ठायीं पहिल्या यात्रेलाच करावें. असें **शिष्ट**
सांगतात. वपन झाल्यानंतर स्नान करावें.

पारार्थेतुमार्कंडेयपुराणे मातरंपितरंजायांभ्रातरंसुहृदंगुणं यमुदिश्यनिमज्जेतअष्टमांशलभेत्ततः **पैठी-**
नसिः प्रतिकृतिंकुशमयीतीर्थवारिणिसज्जयेत् मज्जयेच्चयमुदिश्यसोष्टभागफलंभेत् ततस्तर्पणश्राद्धे **पृथ्वी-**
चंद्रोदयेब्रह्मदेवीपुराणकाशीखंडादिषु अकालेप्यथवाकालेतीर्थश्राद्धंचतर्पणं अविलंबेनकर्तव्यं
नैवविघ्नसमाचरेत् **मातस्ये**पितृणांचैवतर्पणमितितुर्यपादः तत्रदेवताःमहालयेप्रागुक्ताः **शंखदेवलौ** तीर्थ-
द्रव्योपपत्तौचनकालमवधारयेत् पात्रंचब्राह्मणंप्राप्यसद्यःश्राद्धंसमाचरेत् **हारीतः** दिवावायुदिवारात्रौभु-
क्तोवोपोषितोपिवा नकालनियमस्तत्रगंगांप्राप्यसरिद्वरां **भारते** भुक्तोवाप्यथवाभुक्तोरात्रौवायुदिवदिवादिवा
पर्वकालेथवाकालेशुचिर्वाप्यथवाशुचिः यदैवदृश्यतेतत्रनदीचत्रिपथाप्रिय प्रमाणंदर्शनंतस्मान्नकालस्तत्रकारणं
आशौचेपिकार्यं विवाहदुर्गयज्ञेपुयात्रायांतीर्थकर्मणि नतत्रसूतकंतद्वत्कर्मयज्ञादिकारयेदिति**पैठीनसिस्मृतः**
तदानीमकरणेत्वाशौचांतैएवकुर्यात् **प्रभासखंडे** नवारंनचनक्षत्रंनकालस्तत्रकारणं यदैवदृश्यतेतीर्थतदा-
पर्वसहस्रकं मलमासेपिकार्यं नित्यनैमित्तिकेकुर्यात्प्रयतःसन्मलिम्लुचे तीर्थश्राद्धंगजच्छायांप्रेतश्राद्धंतथैव-
चेति**बृहस्पतिस्मृतेः** ।

दुसऱ्याकरितां स्नान करावयाचें असतां सांगतो **मार्कंडेयपुराणांत**—“माता, पिता, पत्नी, भ्राता, मित्र, गुरु यांमध्यें
ज्याच्या उद्देशानें स्नान करील त्याला त्या स्नानाचें अष्टमांश फल प्राप्त होतें.” **पैठीनसि**—“ज्याची कुशमय प्रतिमा करून
तीर्थोदकांत बुडवील आणि ज्याच्या उद्देशानें बुडी मारील त्याला अष्टमांश फल प्राप्त होतें.” स्नान केल्यानंतर तर्पण व श्राद्ध
सांगतो **पृथ्वीचंद्रोदयांत** ब्रह्मपुराण, देवीपुराण, काशीखंड इत्यादिकांत—“तीर्थ प्राप्त असतां श्राद्धाचा व तर्पणाचा काल
असो किंवा नसो श्राद्ध व तर्पण लवकर करावें, त्याविषयीं विघ्न (अवकाश) करूं नये.” या वचनाच्या चवथ्या पादीं

‘पितृणां चैव तर्पणं’ म्हणजे पितरांचें तर्पण लवकर करावें, असा **मत्स्यपुराणांत** पाठ आहे. त्याविषयी देवता पूर्वी महालयप्रकरणीं गांगितल्या आहेत. **शंख व देवल**—“तीर्थ व द्रव्यांची उपपत्ति असली म्हणजे काल पाहूं नये. पात्रभूत ब्राह्मण प्राप्त असतां तत्काल श्राद्ध करावें.” **हारीत**—“सर्व नद्यांमध्ये श्रेष्ठ अशी गंगा प्राप्त झाली असतां दिवस असो किंवा रात्र असो, भोजन केलेला असो अथवा उपोषित असो, त्या ठिकाणीं कालाचा नियम नाही.” **भारतांत**—“भोजन केलेला असो किंवा उपोषित असो, दिवस असो किंवा रात्र असो, पर्वकाल असो किंवा नगो, शुचि असो किंवा अशुचि असो, ज्या वेळीं भागीरथीचें दर्शन होईल तो काल सर्व कर्मांचा होय. कारण, त्या ठिकाणीं भागीरथीचें दर्शन हेंच प्रमाण म्हणजे स्नानादिकाला कारण आहे. काल कारण नाही.” आशौचांतही करावें. कारण, “विवाह, किड्डा, यज्ञ, यात्रा, तीर्थांतील कर्म, इतक्या ठिकाणीं सूतक नाही. त्याचप्रमाणें यज्ञादिकर्मांमध्ये सूतक नसल्यामुळे तें यज्ञादिकर्म करावें” अशी **पैठनसि-स्मृति** आहे. आशौच अगतां तीर्थदर्शनकालीं स्नानश्राद्धादि कर्म केलें नसेल तर आशौच समाप्तीनंतरच करावें. **प्रभास-खंडांत**—“वार नक्षत्र, काल हे तीर्थांचे ठायीं स्नान-श्राद्धादिकाला कारण नाहीत. ज्या वेळीं तीर्थांचें दर्शन होतें त्या वेळीं हजार पर्व आहेत.” मलमासांतही करावें. कारण, “नित्य, नैमित्तिक, तीर्थश्राद्ध, गजच्छाया, आणि प्रेतश्राद्ध हीं मलमासांतही करावीं.” अशी **बृहस्पतिस्मृति** आहे.

एतच्चाशौचैकृतभोजनस्य रात्रौ वा स्नानश्राद्धादिकमाकस्मिकतीर्थप्राप्त्या वामहेमश्राद्धविषयग्रहणादिवत् ननु-बुद्धिपूर्वमाशौचादौतीर्थप्राप्तिः कार्या मलमासे तु मासद्वये तीर्थश्राद्धं कार्यमिति चंद्रिकायां **देवीपुराणे** श्राद्धे च न त्रकर्तव्यमर्थ्यावाहनवर्जितं हेमाद्रौ अर्थमावाहनं चैव द्विजांगुप्रनिवेशनं तृप्तिप्रश्नच विकिरं तीर्थ-श्राद्धे विवर्जयेत् **भविष्ये** आवाहनं विमुष्टिश्रतत्रतेषां न विद्यते आवाहनं न तीर्थस्यान्नाद्यर्घदानं तथा भवेत् आहू-ताः पितरस्तीर्थकृताः संति वियतः अग्नौ करणं च नेति रत्नावल्यां अत्र पदद्वये त्रश्राद्धे पिमात्रादीनां पिंडमात्रं-देयं हविः शेषं ततो मुष्टिमादायैकैकमाहृतः क्रमशः पितृपत्नीनां पिंडनिर्वपणं चरेदिति तीर्थोपक्रमे **देवलोके** रिति-**पृथ्वीचंद्रः** ततः सामान्यपिंडं दद्यात् ततः पिंडमुपादाय हविषः संस्कृतस्य च ज्ञातिवर्गस्य सर्वस्य सामान्यापि-डमुत्सृजेदिति तेनोक्तेः **पाद्मे** तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्षात्रे न विशेषतः आमात्रे न हि ग्रथेन कंदमूलफलैरपि ।

आशौचांत स्नान-श्राद्धादिक गांगितले तें आणि भोजन केल्यावर रात्री स्नान-श्राद्धादिक गांगितलें हें अकस्मात् एकाएकी तीर्थ प्राप्त अगतां आमश्राद्ध-हिरण्यश्राद्धाधिपतीं नामजावें. जसे ग्रहणांत आमहिरण्यश्राद्ध गांगितलें तद्वत्. आशौचादिक अगतां बुद्धिपूर्वक तीर्थास जाऊं नये. मलमासांत गांगितलें तें तर-मलमास अगतां मलमास व शुद्धमास या दोहोंत तीर्थ-श्राद्ध करावें. असे **चंद्रिकेंत** सांगितलें आहे. **देवीपुराणांत**—“तीर्थांचे ठायीं अर्थ आणि आवाहनहित श्राद्ध करावें.” **हेमाद्रांत**—“अर्थ, आवाहन, अज्ञांत ब्राह्मणांच्या अंगुष्ठांचें निवेशन, तृप्तिप्रश्न आणि विकिर हे तीर्थश्राद्धांत बर्क्य करावें.” **भविष्यपुराणांत**—“पितरांचें आवाहन आणि धर्मजन हें तीर्थश्राद्धांत नाही. तीर्थांत आवाहन आणि अर्घ्यदान होत नाहीः कारण, तीर्थांचे ठायीं आवाहन केलेंल व अर्थ दिलेंल असे पितर अगतात” अग्नौ करणही नाही, असें **रत्नावली-ग्रंथांत** आहे. एथें (तीर्थांचे ठायीं) महा देवतांच्या श्राद्धांतही माना इत्यादिकांला पिंड मात्र द्यावा. कारण, “पिता इत्यादिकांय पिंड दिल्यावर शेष अज्ञांतील एक एक मुष्टि भक्षण आदरपूर्वक अनुक्रमानें पितृपत्नींला पिंडदान करावें” असें तीर्थांच्या उपक्रमांत **देवला**चें वचन आहे, असें **पृथ्वीचंद्र** सांगतो. तदनंतर सामान्य पिंड द्यावा. कारण, “तदनंतर त्या संस्कार केल्यावर शेष अज्ञांचा पिंड करून साम्या ज्ञातिवर्गांला सामान्य पिंड द्यावा.” असें त्यानें (देवलांन) सांगितलें आहे. **पद्मपुराणांत**—“तीर्थश्राद्ध विशेषकरून पक्षाज्ञानें करावें. आमाज्ञानें, हिरण्यानें, अथवा कंद-मूल-फलें यांनीं देखील करावें.”

पिंडद्रव्यानिदेवीपुराणे हेमाद्रौ ब्राह्मे च मनुभिः पिंडदानं च संयावैः पायसेन वा कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा पिंडानां तीर्थप्रक्षेपणवद्वान्याप्रतिपत्तिरित्युक्तं प्राक् एतच्च विधवयाऽपुत्रया कार्यं न सपुत्र-येत्युक्तं प्राक् सपुत्रयानकर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचनेति स्मृतेः च अनुपनीतेनापिकार्यं एतच्चानुपनीतोपिकुर्या-त्सर्वपुपर्वस्विति **पाद्मे** तीर्थश्राद्धमुपक्रम्योक्तेः एतच्च जीवत्पितृकेणापिकार्यमित्युक्तं प्राक् यतिना तु न कार्यं न कु-र्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिंडोदकक्रियां त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं तत्र गोत्रादिचरणं सर्वपितृमातृकुलंधन-मिति स्मृतेः गयायां तूक्तं वायवीये दंडप्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वानपिंडदः दंडं स्पृष्ट्वा विष्णुपदे पितृभिः सह-मुच्यते गयायां धर्मप्रदं च कूपे यूपे वदेतथा दंडप्रदर्शयन् भिक्षुः पितृभिः सह मुच्यते कृत्यरत्ने प्रभासखंडे

तीर्थेचेप्रतिगृह्णातिब्राह्मणोवृत्तिदुर्लभः दशांशमर्जितंदद्यादेवंकुर्वन्नहीयते इति विशेषांतराणिभट्टकृतत्रि-
स्थलीसेतौज्ञेयानीतिदिक् इतिकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौतीर्थश्राद्धविधिःसमाप्तः ॥

पिंडांचीं द्रव्ये सांगतो—**देवीपुराणांत** आणि **हेमाद्र्यांत ब्रह्मपुराणांत**—“सातूंचे पीठ, अथवा गव्हांचा बिरा, किंवा पायस (दुधाचे विकार), अथवा तिलकूट, किंवा गूळ यांचे पिंड करून ते द्यावे, असें ऋषींनीं सांगितलें आहे.” पिंड तीर्थांतच टाकावे, दुसरीकडे टाकूं नयेत, असें पूर्वी (पावैणश्राद्धप्रकरणीं) सांगितलें आहे. हें तीर्थश्राद्ध निपुत्रिक विधवेनें करावें. सपुत्रिक विधवेनें करूं नये, असें पूर्वी सांगितलें आहे. आणि जिला पुत्र असेल तिनें भल्यांचें श्राद्ध कधींही करूं नये” अशी स्मृतिही आहे. ज्याचें मौजीबंधन झालें नाहीं त्यानेंही करावें; कारण, “हें अनुपनीतानें देखील सर्व पर्वांचे ठायीं करावें” असें पञ्चपुराणांत तीर्थश्राद्धाचा उपक्रम (आरंभ) करून सांगितलें आहे. हें तीर्थश्राद्ध जीवत्पितृकानें देखील करावें. असें पूर्वी सांगितलें आहे. तीर्थश्राद्ध संन्यास्यानें तर करूं नये; कारण, “संन्यास्यानें सूतक (आशौच), श्राद्ध, पिंडदान, उदकदान, हीं करूं नयेत. कारण, संन्यास ग्रहण केल्यानें गृहस्थाश्रमाचे धर्म इत्यादिक, व्रत, गोत्रप्रवर, पितृकुल, मातृकुल व द्रव्य या सर्वांचा त्यानें त्याग केला आहे.” अशी स्मृति आहे. गयेचे ठायीं तर वायवीयांत सांगितलें आहे, तें असें—“संन्यास्यानें गयेत जाऊन दंड दाखवावा; पिंड देऊं नयेत. विष्णुपदाचे ठायीं दंडाचा स्पर्श करून तो पितरांसह मुक्त होतो. गया, धर्मपृष्ठ, कूप, यूप आणि अक्षयवट यांचे ठायीं दंड दाखवून संन्याशी पितरांसह मुक्त होतो.” **कृत्यरत्नांत प्रभासखंडांत**—“ब्राह्मण उपजीविका चाळत नसल्यामुळे तीर्थाचे ठायीं जर प्रतिग्रह करील तर त्यानें मिळविलेल्या द्रव्यांतून दहावा अंश इतरांस द्यावा, असें करणारा स्वधर्मापासून न्युन होत नाहीं.” तीर्थासंबंधी इतर विशेष नारायणभट्टांनीं केलेल्या त्रिस्थलीसेतुग्रंथांत पाहावे अशी ही दिशा दाखविनी आहे. इति श्रीनिर्णयसिंधौ तीर्थश्राद्धविधीची महाराष्ट्रीका समाप्त झाली.

इति श्रीनिर्णयसिंधौ तृतीयपरिच्छेदे श्राद्धप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथाशौचप्रकरणप्रारभ्यते ।

नारायणात्मजश्रीमद्रामकृष्णसूनुना । कमलाकरसंज्ञेनाशौचनिर्णयतेधुना ॥ १ ॥

मरीचिः आचतुर्थाद्वेत्सावःपातःपंचमषष्ठयोः अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादशाहसूतकं भवेत् बृहत्परा-
शरः गर्भस्त्रावेतुनेरुक्तारात्रयोमाससंमिताः स्त्रावंगर्भस्यविद्वांसोमासादर्वाक्चतुर्थकात् पातमूर्ध्ववदत्येकेत-
त्राधिकंतुसूतकं स्त्रावेमातुस्त्रिरात्रंस्यात्सपिंडाशौचवर्जनं पातेमातुर्यथामाससंपिंडानांदिनत्रयं अत्रसर्वत्रमूलं
मिताक्षरायांज्ञेयं अत्रमासत्रयेत्रिरात्रंस्यादित्यनुवादः रजस्वलात्वेनैवतत्सिद्धेः यद्यप्यनेनचतुर्थमासेपि-
त्रिरात्रंप्राप्नोति तथापि षण्मासाभ्यंतरंयावद्गर्भस्त्रावोभवेद्यदि तदामाससमैस्तासांदिवसैःशुद्धिरिष्यते इत्या-
दिपुराणात् रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावेविशुध्यतीति**मनूक्तेः** गर्भस्त्रावेयथामासमचिरेतूत्तमेत्रयइ-
तिमरीच्युक्तेश्चतुरात्रंज्ञेयं अचिरेत्रिमासमध्ये उत्तमेब्राह्मणे अत्रसंपिंडानांस्नानं सद्यःशौचसंपिंडानांगर्भ-
स्यपतनेसतीति**तत्रैवोक्तेः** एतदाचतुर्थमासात्पातेत्रिदिनस्योक्तेः अकारणायाःशुद्धेरसंभवात् सद्यःपदं-
स्नानपरं एवमप्रेषि गर्भस्त्रावेस्नानमात्रं पुरुषस्येति**वृद्धवसिष्ठोक्तेः** पुरुषस्येति सपिंडोपलक्षणपूर्वोक्तवच-
नात् आचतुर्थमाससंपिंडानांस्नानं किंतु पुंस एव पातेत्रिदिनं निर्गुणपरं गुणवतस्तु अजातदंतैतनयेशिशौग-
र्भच्युतेतथा सपिंडानांतुसर्वेषामेकरात्रमशौचकमिति**यमोक्तेरेकादशतिमदनपारिजातः ।**

आतां आशौचप्रकरणाला प्रारंभ करितो—

नारायणभट्टांचा पुत्र जो श्रीमान् रामकृष्णभट्ट त्याचा पुत्र कमलाकरभट्ट आतां आशौचाचा निर्णय करितो ॥ १ ॥

मरीचि—“गरोदर स्त्रियेचा चार महिन्यांच्या आंत कोणत्याही कारणानीं गर्भरूप शुक्रशोणितांचा स्त्राव होतो त्याला स्त्राव असें म्हणतात. पांचव्या व साह्याव्या महिन्यांत कोणत्याही कारणानीं कठिण झालेला शुक्रशोणितरूपी गर्भ पडतो म्हणून त्याला पात असें म्हणतात. सातव्या महिन्यापासून पुढे कधींही गर्भ स्वस्थानापासून बाहेर आला असता त्याला प्रसूति असें म्हणतात. प्रसूति झाली असता सूतक (प्रसूतिनिमित्तक आशौच) दहा दिवस असतें.” **बृहत्पराशर**—“गर्भस्त्राव

असतां गर्भात् जितके महिने शाले असतील तितके दिवस त्या झियेला आशौच. कितीएक विद्वां चार महिन्यांच्या आस गर्भाचा खाव असं म्हणतात. चार महिनींच्या पुढं पात असं म्हणतात. तो पात असतां आशौच अधिक आहे. गर्भाचा खाव असतां त्या गर्भाच्या मातेला त्रिरात्र (तीन दिवस) आशौच आहे व सर्पिडांला आशौच नाही. गर्भाचा पात असतां जितक्या महिन्यांचा गर्भ असेल तितके दिवस मातेला आशौच. व सर्पिडांना तीन दिवस आशौच.” या सर्वाविषयींचं मूळ **मिताक्षरेंत** पाहावें. या वरील वचनांत खाव असतां मातेला त्रिरात्र असं सांगितलें तें अनुवाद (सिद्धाचें कथन) आहे, अपूर्व सांगितलेलें नाही. कारण, ती स्त्री रजस्वला असल्यामुळें तीन दिवस आशौच सिद्धच आहे. जरी ‘खावे मातु-त्रिरात्र’ ह्या वचनांत चवथ्या मासौ देखील त्रिरात्र आशौच प्राप्त होतें तरी “सहा महिने पूर्ण होईपर्यंत जर गर्भखाव होईल तर त्या वेळीं मासगमान दिवसांनीं त्या स्त्रियांची शुद्धि होते” ह्या **आदिपुराण**वचनावरून आणि “गर्भखाव असतां मास-तुल्य रात्रींनीं (दिवसांनीं) स्त्री शुद्ध होते” ह्या **मनु**वचनावरून आणि “ब्राह्मणाचे ठायीं गर्भखाव असतां जितक्या मामांचा गर्भ असेल तितके दिवस झियेला आशौच. तीन महिन्यांचा गर्भ असेल तर तीन दिवस आशौच आहे” ह्या **मरीचि**वचनावरूनही चवथ्या मासौ चार दिवस आशौच समजावें. एथें सर्पिडांना ज्ञान समजावें. कारण, “गर्भाचें पतन अमतां सर्पिडांना सद्यःशौच (सद्यःशुद्धि) आहे” असं तेथेंच (मिताक्षरेंत) सांगितलें आहे. हें सद्यःशौच चतुर्थमासपर्यंत होय; कारण, वरील बृहस्पराशरवचनांत चतुर्थमासानंतर पात असतां तीन दिवस सांगितलें आहे. कारणावांचून शुद्धीचा असंभव असल्यामुळें वरील वचनांतील ‘सद्यः’ या पदानें ज्ञान समजावें. याप्रमाणें पुढेंही जेथें ‘सद्यः’ पद असेल तेथें ज्ञान समजावें. ‘सद्यः’ या पदानें ज्ञान समजावें, असं वर सांगितलें याचें कारण, “गर्भखाव असतां पुरुषाला ज्ञान मात्र आहे” असं **वृद्धवसिष्ठ**वचन आहे. पूर्वी सांगितलेल्या ‘सद्यःशौचं सर्पिडांना’ ह्या वचनावरून ह्या वृद्धवसिष्ठवचनांतील ‘पुरुषस्य’ हें पद सर्पिडांचें उपलक्षण (बोधक) आहे. चतुर्थमासपर्यंत गर्भखाव असतां सर्पिडांना ज्ञान नाही; तर पुरुषालाच (गर्भजनन-कालाचें) ज्ञान आहे. वरील बृहस्पराशरवचनांत पाताविषयीं त्रिदिन आशौच सांगितलें तें निर्गुणाला आहे. गुणवंताला तर “दंत उत्पन्न होण्याच्या पूर्वी पुत्र मृत असतां, तसेंच गर्भपात असतां, सर्व सर्पिडांना एक रात्र आशौच आहे” ह्या **यम-**वचनावरून एकाह आशौच, असं **मदनपारिजात** सांगतो.

सप्रममासादिदशाहं एतत्सर्ववर्णविषयं तुन्यं वयसि सर्वेषामतिक्वांतेनथैवचेति व्यासोक्तेः पराशरः जातेविप्रोदशाहेनद्वादशाहेनभूमिपः वैश्यःपंचदशाहेनशूद्रोमासेनशुध्यति संवर्तः जातेपुत्रेपितुःज्ञानंस-चैलंतुविधीयते माताशुध्येदशाहेनज्ञानात्तुम्पर्शनंपितुः पुत्रपदात्कन्योत्पत्तौनपितुःज्ञानमितिहारलतायां तत्र पुत्रपदस्य पौत्रीमातामहस्तेनेतिकन्यायामपिप्रयोगान् यश्चतत्रैवोक्तम् सूतकेतुमुखं दृष्ट्वाजातस्यजन-कस्ततः कृत्वासचैलज्ञानंतुशूद्रोभवतितत्क्षणात् इत्यादित्यपुराणान्मुग्यदर्शनोत्तरमेवपितुःज्ञानमिति तत्र विदेशेमुखदर्शनावध्यमपृश्यतापत्तेः मुखदर्शनोत्तरंपुनःज्ञानार्थमिदमिति स्मार्तगौडाः तत्र मूलैक्ये-नज्ञानमात्रपरत्वान् इदं सर्ववर्णसमं सूतिकासर्ववर्णपुद्गशरात्रेणशुध्यति ऋतोचनपृथक्शौचंसर्ववर्णेष्वर्थ-विधिरिति हारलतायांप्रचेतसोक्तेः यत्तुब्राह्मे ब्राह्मणीश्चत्रियावैश्याप्रसूतादशमिर्दिनैः गतैःशूद्रा-चसंस्पृश्यात्रयोदशभिरेवचेतिप्रयोगपारिजातेपारस्करः द्विजातेःसूतिकायास्यात्सादशाहेनशुध्यति त्रयोदशेहिसंप्राप्तेशूद्राशुध्यत्यसंशयइति तदस्पृश्यत्वपरम् ।

सातव्या महिन्यापासून पुढें दहा दिवस आशौच. हें सर्व वर्णांला समजावें. कारण, “सर्ववर्णांला तुल्य आशौच आहे. अतिक्वांत अमतांही तसेंच आहे” असं **व्यास**वचन आहे. **पराशर**—“उत्पत्ति झाली अमतां ब्राह्मण दहा दिवसांनीं, क्षत्रिय बारा दिवसांनीं, वैश्य पंधरा दिवसांनीं, आणि शूद्र एका महिन्यानें शुद्ध होतो.” **संवर्त**—“पुत्र झाला असतां पित्याला सचैल (वस्त्रसहित) ज्ञान सांगितलें जाई. माता दहा दिवसांनीं शुद्ध होई. ज्ञान केल्यावर पिता इतरांना स्पर्श करण्याविषयीं शुद्ध होतो.” ह्या वचनांत ‘पुत्र’ असं पद असल्यामुळें कन्येची उत्पत्ति अमतां पित्याला ज्ञान नाही, असं **हारलतेंत** सांगितलें आहे. तें बरोबर नाही. कारण, पुत्राच्या (कन्येच्या) पुत्रांनं मातामह पौत्री होतो, अशा अर्थाच्या ‘पौत्री मातामहस्तेन’ ह्या **मनु**वचनावरून पुत्रपदाचा प्रयोग कन्येचेठायीं देखील आहे. आतां जें तेथेंच सांगितलें की, “जननाशौच असतां जनक (पिता) उत्पन्न झालेल्या अपत्याचें मुख पाहून नंतर सचैल. ज्ञान करून तत्क्षणीं शुद्ध होतो” ह्या **आदित्यपुराण**वरून मुखदर्शनोत्तरच पित्याला ज्ञान, असं, तें बरोबर नाही. कारण, परदेशी पिता असेल तर त्याला मुखदर्शनापर्यंत अस्पृश्यत्व प्राप्त होईल. हें वचन मुखदर्शनोत्तर पुनःज्ञानासाठीं आहे, असं **स्मार्तगौड** सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, अशुचित्वाचें मूळ दोन्ही ठिकाणीं एक (अपत्योत्पत्ति) असल्यामुळें उत्पत्तीचें सामान्य ज्ञान प्यावयाचें आहे. हें

दशाह आशौच सर्व वर्णां (ब्राह्मणादिकां) समान आहे. कारण, सर्ववर्णामध्ये सृत्तिका (बाळंतीण) दहा दिवसांनी शुद्ध होते. तिची रजस्वलासंबंधाने वेगळी शुद्धि नाही. साऱ्या वर्णामध्ये हा विधि समजावा” असे हारलतेंत प्रचेतसाचें वचन आहे. आतां जें ब्राह्मांत—“ब्राह्मणी, क्षत्रिया, आणि वैदया ह्या स्त्रिया प्रसूत झाल्या असतां दहा दिवस गेल्यानें शुद्ध होतात. आणि शूद्रा तेरा दिवस गेल्यावर स्पर्श करण्यास योग्य होते.” असें सांगितलें तें, आणि प्रयोगपारिजातांत पारस्कर—“द्विजातीची (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यांची) जी सृत्तिका ती दहा दिवसांनी शुद्ध होते. तेरावा दिवस प्राप्त झाला असतां शूद्रा शुद्ध होते यांत संशय नाही” असें सांगतो तें शूद्रेला अस्पृश्यत्वाविषयी समजावें.

अंगिराः सूतकेसृत्तिकावर्जसंपर्शाननिपिध्यते संस्पर्शसूत्तिकायास्तुस्नानमेवविधीयते नाशौचसूतकं-
पुंसःसंसर्गचेन्नगच्छति रजस्तत्राशुचिज्ञेयतश्चपुंसिनविद्यते संसर्गोमैथुनं स्पर्शइत्यन्ये मातुरेवसूतकं तांस्पृश-
तश्चेतिहारलतायांसुमंतूक्तेरिति तत्र संस्पर्शसूत्तिकायास्तुस्नानमेवविधीयतइतिस्नानमात्रोक्तेः सौमंत-
वचनस्यस्नानपर्यंतमस्पृश्यत्वमात्रबोधकत्वात् एवकारोवालस्पृश्यत्वार्थः माधवस्तु यस्तैःसहसर्पिडोपि-
प्रकुर्याच्छयनासनं बांधवोवापरोवापिसदशाहेनशुध्यतीतिबृहस्पतिस्मृत्यैः शयनासनादिरूपसंसर्गमाह
पराशरः यदिपद्मांप्रसूतायांद्विजःसंपर्कमृच्छति सूतकंतुभवेत्तस्ययदिविप्रःपडंगविन पितृवत्मापन्नमातुः-
प्राक्स्नानादस्पृश्यत्वम् सूत्तिकास्पर्शेतुयावदाशौचं अन्यास्तुमातर्गमद्वत्तद्द्रुहंनव्रजंतिचेदितिब्राह्मोक्तेरिति-
शुद्धितत्त्वादयः तत्र तद्वेगंत्वास्तिकायांदिनस्पृशंतितादस्पृश्याः अन्यथानेतितन्यार्थः ।

अंगिरा—“जननाशौचांत सृत्तिका वर्ज्य करून इतर सर्पिडांला स्पर्शाचा निषेध नाही. सृत्तिकेला स्पर्श केल्या असतां स्नानच सांगितलें आहे, सृत्तिकेशीं पुरुषाचें संसर्ग जर केला नसेल तर पुरुषाला प्रसूतिनिमित्तक आशौच (अस्पृश्यत्व) नाही. कारण, त्या ठिकाणीं अशुचि रज आहे, तें पुरुषाचें ठायीं नाही.” या वचनांत ‘संसर्ग’ या शब्दाचें मैथुन समजावें. इतर ग्रंथकार संसर्ग म्हणजे स्पर्श असें म्हणतात. कारण, “मातेलाच सूतक आहे आणि तिला स्पर्श करणारालाही आहे” असें हारलतेंत सुमंतुवचन आहे. हे इतर ग्रंथकारांचें म्हणणें बरोबर नाही. कारण “सृत्तिकेचा स्पर्श झाल्या असतां स्नानच सांगितलें आहे” ह्या अंगिरावचनानें स्पर्श असतां स्नानच सांगितलें, आशौच सांगितलें नाही. सुमंतूचें वचन स्पर्श असतां स्नानापर्यंत स्पर्शाला योग्य नाही, इतक्याचेंच बोधक आहे, आशौचबोधक नाही. सुमंतुवचनांतील ‘एव’कारानें बाल स्पृश्य आहे, असें मुचविलें आहे. **माधव** तर—“सर्पिड असो किंवा बांधव असो अथवा दुसरा कोणी असो त्या आशौचवृत्तांगह निजणें, बसणें इत्यादि जो करील तो दहा दिवसांनी शुद्ध होतो” ह्या बृहस्पतिस्मृतीवरून शयन-आसनरूप संसर्ग, असें सांगतो. **पराशर**—“पत्नी प्रसूत असतां पडंग वेदवेत्ता ब्राह्मण जर तिच्याशीं संपर्क करील तर त्याला सूतक (प्रसूति-निमित्तक आशौच) प्राप्त होईल.” उत्पन्न झालेल्या अपत्यनिमित्तानें स्नानाच्या पूर्वी पिल्याला जमें अस्पृश्यत्व (स्पर्शाला अयोग्यत्व) तसें सापन्नमातेलाही स्नानाच्या पूर्वी अस्पृश्यत्वरूप आशौच आहे. सापन्नमाता सृत्तिकेला स्पर्श करील तर आशौचपर्यंत तिला अस्पृश्यत्व आहे. कारण, “इतर माता जर सृत्तिकाघरांत न जातील तर त्यांना पिल्याप्रमाणें अस्पृश्यत्वरूप आशौच आहे” असें ब्राह्मवचन आहे, असें शुद्धितत्त्वादि ग्रंथकार सांगतात. सापन्नमातेला स्नानाच्या पूर्वी अस्पृश्यत्व हे त्याचें सांगणें बरोबर नाही. कारण, त्या ब्राह्मवचनाचा अर्थ—सापन्नमाता सृत्तिकेच्या घरांत जाऊन त्या सृत्तिकेला जर स्पर्श न करतील तर त्या स्पर्शयोग्य आहेत. आणि स्पर्श करतील तर त्या स्पर्शाला योग्य नाहीत—असा आहे.

कर्मानधिकारमाहपैठीनसिः सूतिकांपुत्रवतींविंशतिरात्रेणकर्माणिकारयेन्मासेनस्त्रीजननीं इदमाशौ-
चोत्तरं अन्यथाशूद्राःसर्पिडानामाशौचेतदभावःस्यात् विध्यनुवादविरोधश्च एतच्चसोमयागादिश्रौतभिन्नपरं
प्रजातायाश्चदशरात्रादूर्ध्वस्नानादितिकात्यायनोक्तेः व्यासः प्रथमेदिवसेपष्ठेदशमेचैवसर्वदा त्रिष्वेते-
षुनकुर्वीतसूतकंपुत्रजन्मनि पुत्रशब्दोपत्यमात्रपरः ब्राह्मो देवाश्चपितरश्चैवपुत्रेजातेद्विजन्मनां आयातित-
स्मात्तदहःपुण्यपष्ठंचसर्वदा जननेविशेषःप्रागुक्तः ।

कर्माविषयी अनधिकार सांगतो पैठीनसि—“पुत्र झालेली सृत्तिका असेल. तर तिच्याकडून वीस दिवस झाल्यानंतर कमें करावार्ही. आणि कन्या झालेली सृत्तिका असेल तर तिच्याकडून एक महिन्यानंतर कमें करावार्ही.” हा वीस दिवस व एक महिना जो सृत्तिकेला अनधिकार सांगितला तो, आशौचोत्तर समजावा. अन्यथा म्हणजे आशौचाचे दहा दिवस धरून जर वीस दिवस व वीस दिवस अनधिकार म्हणजे शूद्रांशी सृत्तिका असेल तर तिच्या सर्पिडांनी एक महिना आशौच असतां त्या सृत्तिकेला अनधिकाराचा अभाव (अधिकार) प्राप्त होईल. आणि ‘शूद्रो मासेन शुध्यति’ या पूर्वीक पराशरवचनानें

श्रद्धेला एक मासपर्यंत जननाशौचाचें विधान असल्यामुळें अनधिकार सिद्ध असतां ह्या पैठीनसिवचनाचें अनुवाद (सिद्धां-
कथन) केला असें म्हटलें म्हणजे विधायीक वचनानें एक मास अनधिकार आणि अनुवादक वचनानें वीस दिवस अनधिकार
असें झाल्यामुळें त्या दोघांचा विरोधी प्राप्त झाल्य. हा पैठीनसिवचनानें सांगितलेला अनधिकार सोमयागादिश्रौतकर्मव्यति-
रिक्तविषयक आहे. कारण, “सूतिकेला दशरात्रानंतर ज्ञानानें अधिकार आहे” असें कात्यायनवचन आहे. व्यास—
“अपत्याचें जन्म झालें असतां प्रथमदिवस, सहावा दिवस आणि दहावा दिवस ह्या तीन दिवसांचेसाठीं सर्वदा आशौच धरूं
नये.” ब्राह्मांत—“द्विजातीना पुत्र झाला असतां देव आणि पितर येतात म्हणून तो दिवस आणि सहावा दिवस सर्वदा
पुण्यकारक आहे.” जननाविषयी विशेष (जातकर्मादि) पूर्वीं सांगितला आहे.

अत्रप्रयोगपारिजातः पुं प्रसवेदशाहः क्यपत्येतुत्र्यहः पुंजन्मनिसर्पिडानां दशाहान्छुद्धिरिष्यते
त्र्यहादेकोदकानांच एकाहसूतकंकचिन् स्त्रीजन्मनिसर्पिडानांसोदकानां त्र्यहान्छुच्चिः स्त्रीपुत्रिपुरुषं ज्ञेयं सर्पिड-
त्वं द्विजोत्तमा इत्यग्निस्मृतेरित्याह मेधातिथिरपि अप्रतानांतु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते इति वासिष्ठमु-
क्त्वा शौचेणैवैतद्विवाहेतुविधिर्दर्शित एवेत्याह अन्येतु त्रिपुरुषसापिंड्यस्य कानीन कन्यापरत्वमाहुः अप्रतानांत-
था स्त्रीणां सापिंड्यं सामपौरुषं प्रतानां भर्तृसापिंड्यं प्राह देवः प्रजापतिरिति कौर्मविरोधाच्च अत्रेदंतत्त्वम्
पंचमात्सप्रमाद्वीमान्यः कन्यामुद्रहे द्विजः गुरुतल्पी सविज्ञेय इत्यादि विरोधात् त्रिपुरुषं प्रकरणान्मरणाशौचपरम्
वासिष्ठे तदग्रे उदकदानोक्तेः तेन कन्याप्रसवेपिसामपौरुषं दशरात्रमेव न च कन्यापुत्रकृतप्रसवे षडालंका-
प्युक्तं अग्निस्मृतिस्त्वनुकल्पो विगीतावेतिसर्वसिद्धान्तः अन्यथा त्रिपुरुषसापिंडानामष्टमादिसोदकानां-
च त्र्यहसाम्यायोगात् चतुर्थादिसप्रमातांतां च किमपिन स्यात् तेन कन्याप्रसवेदशाह एव किंच स्त्रीजन्मोद्देशेन-
त्रिपुरुषसापिंड्यं तेषांच त्रिरात्रमित्यनेकार्थविधिः कथं स्यात् वाक्यभेदापत्तेः न च चतुर्थादीनांसोदकत्वं
कापिसिद्धं तेन त्रिपुरुषचतुर्थादीनांच स्त्रीजन्मनिसोदकत्वं विधाय पुनस्तेषां त्रिरात्राशौचविधौ विध्यनुवादविरो-
धो वाक्यभेदद्वयंचेत्यसंवादा र्थास्मृतिर्हेया ।

ह्या जननाशौचाविषयी प्रयोगपारिजात—पुत्र झाला असतां दहा दिवस आणि कन्या झाली असतां तीन दिवस
आशौच. कारण, “पुरुष जन्म असतां दहा दिवसांनीं सर्पिडांची शुद्धि होते. गमानोदकांची तीन दिवसांनीं शुद्धि होते.
आणि कोणाला एकाह आशौच आहे. कन्याजन्म असतां सर्पिड व गमानोदक यांची तीन दिवसांनीं शुद्धि होते. स्त्रियां-
विषयीं सर्पिड्य त्रिपुरुष जाणवें” अशी अग्निस्मृति आहे, असें सांगतो. मेधातिथि देखील—“अविवाहित स्त्रियांना
त्रिपुरुष सर्पिड्य गांभितलें आहे” हें वसिष्ठवचन गांगून आशौचाविषयीं हें वचन, विवाहाविषयीं तर विधि दाखविल्या
आहेच, असें सांगतो. इतर ग्रंथकार नर-अविवाहित कन्येपासून उत्पन्न कन्येविषयीं त्रिपुरुष सर्पिड्य आहे, असें
सांगतात. यावरून इतर कन्यांना त्रिपुरुष सर्पिड्य नाही. आणि इतर कन्यांविषयीं त्रिपुरुष सर्पिड्य मानलें तर “अविवाहित
स्त्रियांना सर्पिड्य सामपौरुष आहे. आणि विवाहित स्त्रियांना पत्नीचें सर्पिड्य आहे, असें देव प्रजापति सांगतो” ह्या कौर्म-
पुराणवचनाशीं विरोधी येतो. ह्या सर्पिड्याविषयींचा खरा प्रकार असा आहे की, कन्याविषयीं त्रिपुरुष सर्पिड्य मानलें
असतां “जो विद्वान् पांचव्या किंवा सातव्यापासून कन्येशीं विवाह करील तो गुरुपत्नीगमन करणारा समजावा” इत्यादि वच-
नाशीं विरोध येत असल्यामुळें त्रिपुरुष सर्पिड्य हें प्रकरणावरून मरणाशौचाविषयीं समजावें. विवाहाविषयीं समजू नये.
कारण, मेधातिथीनें सांगितलेल्या वसिष्ठवचनानें पुढें उदकदान सांगितलें आहे. यावरून कन्येची उत्पत्ति झाली असली तरी
सात पुरुष सर्पिडांना दहा दिवसच जननाशौच आहे. कन्याप्रसूति निर्बळ आणि पुत्रप्रसूति प्रबळ असें कोठेंही सांगितलें नाही.
वर सांगितलेली अग्निस्मृति तर—अनुकल्प (अथमपक्ष) किंवा लोकनिश्चय आहे, हा सर्वांचा सिद्धान्त आहे. अन्यथा
म्हणजे अग्निस्मृति स्वीकारली तर त्रिपुरुष सर्पिडांना आणि आठव्यापासून पुढील समानोदकांना सारखें तीन दिवस आशौच
सांगितलें तें युक्त नाही. आणि त्याच स्मृतीवरून चतुर्थ पुरुषापासून सप्तम पुरुषपर्यंत कोणींच आशौच येणार नाही. यावरून
कन्येची उत्पत्ति असतां दशाहच आशौच. आणखी ती स्मृति स्वीकारली असतां त्या स्मृतीनें स्त्रीजन्माच्या उद्देशेकरून
त्रिपुरुष सर्पिड्याचें विधान आणि त्या त्रिपुरुष सर्पिडांना त्रिरात्र आशौचाचें विधान, असा अनेकार्थक विधि कसा होईल ?
कारण, तसा विधि केला तर ‘स्त्रीषु त्रिपुरुषं सर्पिड्यं, तेषांच सर्पिडांना त्रिरात्र आशौच’ म्हणजे स्त्रियांचा जन्म असतां
त्रिपुरुष सर्पिड्य समजावें. सर्पिडांना त्रिरात्र आशौच समजावें, अशी निज वाक्यें होतील. आणि चवथ्या पुरुषापासून
पुढच्यांना समानोदकत्व कोठेंही सांगितलेलें नाही; म्हणून ह्याच वचनानें स्त्रीजन्माविषयीं त्रिपुरुष सर्पिड्याचें विधान आणि
चतुर्थादिकाल समानोदकत्वाचें विधान करून पुनः त्यांना त्रिरात्र आशौचाचें विधान केलें असतां विधिवाक्याचा व अशुश-
वनाक्याचा विरोध येतो आणि दोन वाक्यभेद होतात. म्हणून असंगत असलेली ती अग्निस्मृति साज्य आहे.

अथमृताशौचहारीतः जातमृतेमृतजातेवासपिंडानां दशाहमिति स्वाशौचपरं जातमृतेनालच्छेदोर्ध्वं यावन्न छिद्यतेनालं तावन्नाप्रोतिसूतकं छिन्नेनालंततः पश्चात्सूतकंतु विधीयत इति जैमिन्युक्तेः । नाड्यां छिन्नायामाशौचमिति हारीतोक्तेश्च एतन्मृताशौचपरमेव जननाशौचंतु नालच्छेदोत्कर्षेपि जननाद्येव मृतजातेनालच्छेदाभावात् षष्ठीपूजायुत्कर्षापेक्षे च तेन नाडीछेदात्प्राङ्मातुः स्पर्शेन दोष इति शुद्धितत्त्वोक्तिः परास्ता नाभिच्छेदात्प्राङ्मातुतौ बृहन्मनुः जीवन्जातो यदिततो मृतः सूतक एव तु सूतकसकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकं इदं च प्रसवाशौचमेव शावनिमित्तं स्नानमात्रं प्राङ्मानमकरणात्सद्यः शौचमिति शांखोक्तेः ।

आनां मृताशौच सांगतो—

हारीतः—“मूल उपजून मेलें अथवा मरून उपजलें असतां दहा दिवस आशौच” हें वचन आपल्या आशौचाविषयी आहे. मुलाच्या निमित्तानें आशौचाविषयी मूल उपजून मृत अमृतां नालच्छेदानंतर आशौच. कारण, “जोपर्यंत नालच्छेद झाला नाही तोपर्यंत सूतक प्राप्त होत नाही. नालच्छेद झाल्यानंतर सूतक सांगितलें आहे” असें जैमिनि वचन आहे. आणि “नाडीछेद झाला असतां आशौच” असें हारीत वचनही आहे. नालच्छेदानंतर आशौच सांगितलें हें मृताशौचाविषयकच आहे. जननाशौच तर नालच्छेद पुढें होणारा असल्या तरी उत्पन्न झाल्यापासून आहे. नालच्छेदाच्या पूर्वी जननाशौच नाही, असें म्हटलें तर मरून उपजलेल्या मुलाचें नालच्छेद नमल्यामुळे जननाशौच प्राप्त होणार नाही. आणि नालच्छेदाच्या पूर्वी जातकर्मादि करावयाचें म्हणून आशौच नाही, असें म्हटलें तर षष्ठीपूजनादिकालपर्यंतही आशौच प्राप्त होणार नाही. जननापासून आशौच आहे, असें सांगितल्यानें ‘नाडीछेदाच्या पूर्वी मातेला स्पर्श केला असतांही दोष नाही’ अशी शुद्धितत्त्वाची उक्ति खंडित झाली. नाभिच्छेदाच्या पूर्वी मृत असेल तर सांगतो बृहन्मनु—“जर जीवंत उत्पन्न होऊन नंतर जननाशौचांतच मेल्या तर मातेला संपूर्ण आशौच. आणि पिता इत्यादिकांना त्रिरात्र आशौच” हें जननाशौचच समजावें. मरणनिमित्तक स्नानमात्र आहे. कारण, “नामकरणाच्या पूर्वी सद्यःशौच (स्नान)” असें शांख वचन आहे.

अत्रकश्चिदाह नामकरणमाशौचांतकालोपलक्षणं आशौचव्यपगमेनामधेयमिति विष्णुक्तेः आशौचेचव्यतिक्रांतेनामकर्मविधीयते इति मनुक्तेश्च नामान्नोनियतकालत्वात् न च नामधेयं दशम्यांतुद्वादश्यां वापिकारयेत् पुण्येतिथौ मुहूर्तेवान्नत्रेवागुणान्वित इति मनुक्तेरनियतकालत्वम् दशम्यामतीतायां विप्रः द्वादश्यामतीतायां क्षत्रियः वैश्यः षोडशे शूद्रा एकात्रिंशे इत्यपि ज्ञेयं पुण्य इत्याद्यनुकल्पः तेन नाम्नः कालोपलक्षणं एव दंतजननेपि दंतजन्मसप्तमे मासीत्युपनिषदि नियतकालत्वात् चौलेतुन कालोपलक्षणम् प्रथमे च्छेदतृतीये वाकर्तव्यं श्रुतिचोदनादिति मनुक्तेः ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्मविधीयते द्वितीये वा तृतीये वाकर्तव्यं स्मृतिदर्शनादित्यमोक्तेश्च तस्यानियतकालत्वादिति तन्मदं चौलवन्नामदंतजननयोरपि स्वरूपेण निमित्तत्वापत्तस्तद्विशिष्टकालानुवादे वाक्यभेदात् सप्तममासादवर्गादंतजनने तदभावप्रसंगाच्च यस्तूपनिषद्दर्शनेन निर्णयं कुर्यात् सनूनं शतायुः पुरुष इति श्रुतेरर्वाक्पितृमरणेतदंत्यकर्मपित्यजेत ननु कालानुपलक्षणेनामोत्कर्षेत तदभावे वा स्नानमात्राच्छुद्धिः स्यात् ततः किम् अस्तु अतएवोक्तं आदंतजन्मनः सद्य इति साचविष्णुवचनाद्वाहाभावविषयेति वाक्ष्यामः त्रिवर्षादावपिस्यादिति चेत् न दाहदंतादिनिमित्तैर्विशेषाशौचैः पूर्वस्य बाधात् तदुक्तं पूर्वाबाधेनोत्पत्तिरुत्तरस्य हि सिध्यतीति जननादशरात्रे व्युत्प्रेशतः संवत्सरे चेति परिशिष्टे द्वादश्यामपरे रात्र्यां मासे पूर्णतयापरे अष्टादशे हनिता वा दंत्यन्ये मनीषिण इति भविष्ये च नाम्नः कालानियमाच्च न च प्राथम्यादशरात्रेतीते इति मुख्यः कालः अन्यस्त्वनुकल्प इति वाच्यम् चौलेपितथापत्तेः न च दंतजननकालानुपलक्षणे स दंतजातमृतस्य दाहैकाहप्रसंगः दशाहेन बाधात् नामकरणोत्तरमेव दाहप्रवृत्तेः दशाहाभ्यंतरे बाले प्रमीते तस्य बांधवैः शावाशौचनक्तं रव्यं सूत्याशौचां विधीयते इति बृहन्मनुक्तेश्च आशौचं दाहोपलक्षणं सूतकवदिति पारस्करोक्तेः यत्तु विष्णुः अनिवृत्ते दशाहेतुपंचत्वं यदि गच्छति सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रियेति तदपि प्रेताशौचनिषेधार्थं न तु सद्यस्त्वपरं वाक्यभेदात् किंच नामकालात्प्राङ्मृतस्य स्नानम् तदुत्तरं त्वेकाहादिनामकाले त्वेकादशाहे मृतस्य न किमपिस्यात् अथ शांखवचनेत्यल्लोपेपंचमीतदाप्रागिति नोपपद्येत नान्निवापि कृते सतीति मन्वादि विरोधात् कृतनाम इति माधवमिताक्षरादिविरोधाच्च न कालोपलक्षणं कापीति दिक् ।

येथे कश्चित् (कोणी एक) असें सांगतो कीं, नामकरण या पदानें उपलक्षणें करून आशौचसमाप्तीचा काल समजावा. कारण, “आशौच समाप्त झालें असतां नीमकरण करावें” ह्या विष्णुवचनावरून आणि “आशौच गेलें असतां नामकरण करावें” ह्या मनुच्या वचनावरूनही नामकरणाचा नियमित काल आहे. आतां असें म्हणूं की, “नामकरण दहाव्या किंवा बाराव्या रात्रीं करावें, अथवा पुण्यतिथि व मुहूर्तावर किंवा गुणयुक्त नक्षत्रावर करावें” या मनुवचनावरून नामकरणाचा काल अनियमित आहे. तर तसें नाहीं; कारण, त्या मनुवचनाचा अर्थ असा कीं, दहावी रात्र गेली असतां ब्राह्मणानें करावें. बारावी गेली असतां क्षत्रियातें करावें. याचप्रमाणें सोळाव्या दिवशीं वैश्यातें व एकतिसाव्या दिवशीं शूद्रातें असेंही आपापल्या आशांचोत्तर जाणावें. पुण्यतिथि मुहूर्तावर इत्यादि सांगितलें तो अनुकूल आहे. यावरून आशांचोत्तर काल झाला. अनियत नाहीं, म्हणून नामकरण हें नामकरणकालाचें उपलक्षण झालें. याचप्रमाणें दंतजननही दंतोत्पत्तीच्या कालाचें उपलक्षण (बोधक) आहे. म्हणजे दंतजननशब्दानें दंतोत्पत्तीचा काल घ्यावा. कारण, “दंतांची उत्पत्ति सातव्या मासी होते” या उपनिषदांत दंतजन्माचा काल नियमित सांगितला आहे. याप्रमाणें चौलाविषयीं कालाचें उपलक्षण नाहीं. कारण, “पहिल्या वर्षी किंवा तिसऱ्या वर्षी श्रुतीतें सांगितल्यावरून चौल करावें” ह्या मनुवचनावरून, आणि “संस्कार पूर्ण झालें असतां चूडाकर्म सांगितलें आहे. अथवा दुसऱ्या किंवा तिसऱ्या वर्षी करावें, कारण, अशी स्मृति आहे” ह्या यमवचनावरूनही चौलाचा काल अनियमित आहे. हें कश्चित् (कोणी एकाचें) मत मंद (असार, पोकाळ) आहे. कारण, चौल जसें आशौचाविषयीं स्वरूपात (स्वनः) निमित्त आहे तसेंच नामकरण व दंतजनन यांना देखील स्वरूपातें निमित्तत्व उपपन्न (युक्त) अगतां तद्युक्त कालाचा अनुवाद (कथन) केला तर वाक्यभेदरूप दोष प्राप्त होईल. तो असा-वरील शंखवचनांत-‘नामकरणात्प्राक् सयःशौचं, तच्च आशौचोत्तरं’ अशीं दोन वाक्यें करावयाग लागतील. याप्रमाणें दंतजननाविषयीं समजावें. आणि सातव्या महिन्याच्या आंत दंत उत्पन्न अगतां दंतोत्पत्तिनिमित्तक सांगितलेलें आशौच प्राप्त होणार नाहीं. ‘सातव्या मासी दंतोत्पत्ति होते’ ह्या उपनिषदावरून जो आशौचाचा निर्णय करील तो “पुरुष शतायु आहे” ह्या श्रुतीवरून शंभरवर्षांच्या आंत वाप मेल्या अगतां त्याचें अंयकर्म करणार नाहीं. शंका-नामकरणातें कालाचें उपलक्षण केलें नाहीं, आणि नामकरण पुष्कळ दिवसांनीं केलें किंवा मुळींच केलें नाहीं; म्हणजे नामकरण नमल्यामुळें पुष्कळ दिवसांचा मृत झाला तरी ज्ञानमात्रातें शुद्धि होईल. समाधान. ज्ञानमात्रातें शुद्धि झाली तर काय होईल. अमो. म्हणूनच सांगितलें आहे की, ‘दंतोत्पत्तीपर्यंत सयःशुद्धि आहे.’ ती सयःशुद्धि विष्णुवचनावरून दादाच्या अभावीं आहे, असें पुढें गांयूं. आतां ती ज्ञानमात्रातें शुद्धि तीन वर्षांचा वर्गारे मृत अमेल त्या ठिकाणीं देखील होईल, असें म्हणाल तर त्या ठिकाणीं दाह, दंतजनन इत्यादि निमित्तक विशेष आशौचांनीं पूर्वीच्या अल्प आशौचाचा (सयःशौचादिकांचा) बाध होईल. तेंच सांगितलें आहे-‘पूर्वीच्याचा बाध केल्यावांचून पुढच्याची मिद्धि होत नाहीं.’ आणि पूर्वी कश्चिन्मनवाल्यातें सांगितलें की, नामकरणाचा काल नियमित आहे, तोही नाहीं. कारण, “उत्पन्न झाल्यापामून दहा दिवस, शंभर दिवस किंवा एक वर्ष गेल्यावर नामकरण करावें,” असें परिशिष्टांत आहे. आणि “बाराव्या रात्रीं (दिवशीं) करावें, असें कोणी सांगतात; माय पूर्ण झाल्यावर करावें, असें इतर सांगतात. अठराव्या दिवशीं करावें, असें अन्य विद्वान सांगतात” असें भविष्यपुराणांतही आहे, म्हणून नामकरणाच्या कालाचा नियमही नाहीं. आतां असें म्हणूं की, प्रथम सांगितल्यामुळें दहावा दिवस गेल्यावर जो काळ तो नामकरणाचा मुख्य काळ आहे. इतर काळ अनुकरणीय आहे. असें म्हणतां कामा नये; कारण, चौलाविषयीं देखील तसेंच प्राप्त होईल. आतां कश्चिन्मताप्रमाणें दंतजनन शब्दानें कालाचें उपलक्षण केलें नाहीं तर दंतग्रहित उत्पन्न होऊन तो मेल्या अगतां त्याचा दाह व एकाह आशौच प्राप्त होईल. असें म्हणूं नये. कारण, मृताशौचाचरंभी हारीतानें दशाह आशौच सांगितलें त्यातें एकाहाचा बाध होईल. नामकरणोत्तरच दाहाची प्रवृत्ति आहे, पूर्वा नाहीं. कारण, “दहा दिवसांच्या आंत बालक मृत असतां त्याचें बांधवांनीं मृताशौच करूं नये, जननाशौच करावें” असें बृहन्मनूचें वचनही आहे. ह्या वचनांत मृताचें आशौच म्हणजे उपलक्षणें करून दाह समजावा. कारण, ‘सूतकाप्रमाणें करावें’ असें पारस्कराचें वचन आहे. आतां जें विष्णु-“दहा दिवसांच्या आंत जर मूल मरेल तर सय शुद्धि होत; प्रेतसंस्कार व उदकदान किया होत नाहीं” असें सयःशौच सांगितलें तें देखील मृताशौचाच्या निषेधासाठीं सांगितलें. सयःशुद्धि होत असा याचा अभिप्राय नाहीं. कारण, वाक्यभेद होईल. तो असा-‘दशाहाभ्यंतरे मृतं न संस्कुर्वान्, तस्य च सयःशुद्धिः’ अशीं भिन्न वाक्यें होतील. आणि नामकरणदिवसाच्या पूर्वी मृताचें ज्ञान, नामकरणदिवसोत्तर एकाह इत्यादि आशौच, व नामकरणाच्या अकराव्या दिवशीं काहींच आशौच प्राप्त होणार नाहीं. आतां ‘प्राक् नामकरणान्’ ह्या पूर्वोक्त शंखवचनांत त्याचें अभ्ययाचा लोप करून पंचमी झाली आहे. ती अशी ‘नामकरणं व्याय’ म्हणजे नामकरणदिवस व्यापून, असा अर्थ केला असतां ‘प्राक्’ हें पद मयुक्तिक लागत नाहीं. आणि “नामकरण केलें असतां” अशा मनु इत्यादि वचनाशीं विरोध येतो म्हणून व “नाम केलेल्याचें आशौच” असें माधव, मिताक्षरा इत्यादि ग्रंथांत सांगितलें आहे त्याच्याशीही विरोध येत असल्यामुळें कोठेही काळाचें उपलक्षण नाहीं. ही विषा दाखविली आहे.

नामोत्तरं दंतोत्पत्तेः प्राग्वाहसत्यहः अदंतजातेतनयेशिशौर्गर्भच्युतेतथा सर्पिडानांतुसर्वेषामहोरात्रमशौ-
चकमितियमोक्तेः दाहाभावेतुस्नानमात्रं अदंतजातेप्रेतेसद्यएवनास्याग्निं संस्कारइति विष्णुना दाहाभावेत-
दुक्तेः आदंतजन्मनः सद्यइति याज्ञवल्कीयाच्च दाहविकल्पंचाहलौगाक्षिः तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीसं-
स्कारमेवच सर्वेषांकृतचूडानामन्यत्रापीच्छयाद्वयं अन्यत्राकृतचूडे अत्रचूडाकरणंतृतीयवर्षरूपकालोपलक्ष-
णार्थमिति मेधातिथिहरदत्तौ मनुरपि नात्रिवर्षस्यकर्तव्याबांधवैरुदकक्रिया जातदंतस्यवाङ्मर्यादाभि-
वापिकृतेसतीति उदकं दाहोपलक्षणं दंतोत्पत्त्यनंतरंप्राक्त्रिवर्षातान्मृतेहः दंतजातेप्यकृतचूडेवहोरात्रेणशु-
द्धिरिति विष्णुक्तेः त्रिवर्षोर्ध्वकृतचूडेऽकृतचूडेवाप्रागुपनयनात्र्यहः यद्यप्यकृतचूडेवैजातदंतस्तुसंस्थितः
तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेदिति अंगिरसोक्तेः (अकृतायामपि चूडायां त्रिवर्षोर्ध्वदाहादिनियतं
नात्रिवर्षस्येति वचनात् कृतायां वर्षत्रयात्प्रापितंतूष्णीमेव) अत्रजातदंतत्वमुद्देश्यविशेषणत्वादविवक्षितं
दाहयित्वेत्यप्यनुवादः उभयविधौ वाक्यभेदात् त्रिवर्षात्प्राक्चूडाभावेभिदानेत्र्यहस्तदभावे विष्णुक्तेरेकाहइति-
माधवः यत्तु कश्चिदाह अत्र त्रिवर्षविषयादस्मादेवार्थात् त्रिवर्षोर्ध्वमपितत्सिद्धिः विज्ञानेश्वरोक्तंच त्रि-
वर्षोर्ध्वमकृतचूडाविषयत्वं चित्यम् जातदंतपदवैयर्थ्यादिति तत्तुच्छं दाहस्याविधेयत्वात् नृणामकृतचूडानाम-
शुद्धिनैशिकीभृतेति मनूक्तेस्त्रिवर्षोर्ध्वमेकाहापत्तेरर्थात् त्र्यहसिद्धेः त्वयाप्यप्रेतथांगीकारात्पदवैयर्थ्यस्य सा-
म्याद्वाक्यार्थाज्ञानाच्चेत्यलमिताक्षरार्थानभिज्ञदूषणेन प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य सदात्र्यहः निवृत्तचूडकानांतु-
त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यतइति मनूक्तेः एतत्सर्वप्रागुक्तंसर्पिडानां ।

नामकरणोत्तरं दंतोत्पत्तीच्या पूर्वी दाह केला असतां एक दिवस आशौच. कारण, “दंत उत्पन्न होण्याच्या पूर्वी पुत्र मेल
असतां तसाच गर्भापासून बाहेर आलेला बालक मृत असतां सर्व सर्पिडाना अहोरात्र आशौच” असे यमवचन आहे. दाह
नसेल तर स्नानमात्र आहे. कारण, “दंत उत्पन्न होण्याच्यापूर्वी बालक मृत असतां सद्यःच शुद्धि होते, त्याचा अग्निस्कार
नाहीं” ह्या विष्णुवचनानें दाहाच्या अभावीं सद्यःशौच (स्नान मात्र) सांगितलें आहे. आणि “दंतजन्मापर्यंत सद्यःशौच”
असे याज्ञवल्क्याचेंही वचन आहे. दाहाविषयी विकल्प सांगतो लौगाक्षि—“चूडाकर्म (चॉल) केलेल्या सर्व बालकांना
उदक अमंत्रक द्यावें आणि संस्कारही अमंत्रकच करावा. चूडाकर्म न केलेल्यांना ही दोन्ही (उदकदान व संस्कार) इच्छेस
वाटलीं तर करावी, किंवा न करावी.” येथें चूडाकर्म म्हणजे उपलक्षणानें तृतीयवर्षरूप काल समजावा, असे मेधातिथि व
हरदत्त सांगतात. मनुही—“तीन वर्षे ज्याला झालीं नाहीं त्याची बांधवांनीं उदकक्रिया करूं नये. अथवा ज्याला दांत
आले आहेत त्याची, नामकरण केलें असतां उदकक्रिया करावी.” येथें उदक म्हणजे उपलक्षणानें दाह समजावा. दंतोत्पत्ती-
नंतर तीन वर्षांच्या आंत मृत असतां एक दिवस आशौच. कारण, “दांत उत्पन्न असून चूडाकर्म केलें नसतां एका दिवसांनें
शुद्धि होते” असें विष्णुवचन आहे. तीन वर्षांनंतर चूडाकर्म केलेलें असो किंवा नसो मुंज होण्याच्या पूर्वी मृत असतां
तीन दिवस आशौच. कारण, “दांत उत्पन्न झालेला असून जरी चूडाकर्म केलेलें नसतां मृत झाला असेल तरी त्याचा दाह
करून तीन दिवस आशौच करावें” असें अंगिरसाचें वचन आहे. (चूडाकर्म केलेलें नसलें तरी तीन वर्षांनंतर दाहादि-
कर्म निश्चित आहे. कारण, ‘नात्रिवर्षस्य०’ असें मनुवचन आहे. चूडाकर्म केलें असतां लौगाक्षिवचनानें प्राप्त झालेलें अमं-
त्रकच आहे.) ह्या अंगिरसाचे वचनांत ‘जातदंत’ हें उद्देश्याचें (मृताचें) विशेषण असल्यामुळें अविवक्षित आहे. आणि
‘दाहयित्वा’ म्हणजे दाह करून, हा अनुवाद आहे. कारण, दाह आणि त्र्यह आशौच या दोघांचें विधान केलें तर वाक्यभेद
होईल, तो असा—‘मृतं दहेत्, आशौचं च त्र्यहं चरेत्’ अशीं भिन्न दोन वाक्ये होतील. या वचनाचें तात्पर्य—तीन वर्षांच्या
पूर्वी दाह केला तर तीन दिवस आशौच. दाह न केला तर पूर्वोक्त विष्णुवचनावरून एकाह आशौच, असें माधव सांगतो. आतां
जें कश्चित् (कोणी एक) सांगतो कीं, ‘त्रिवर्षविषयक असें जें हें अंगिरसाचें वचन त्यावरूनच त्रिवर्षानंतरही अर्थात् त्याची
(दाहाची व त्र्यहआशौचाची) सिद्धि होते. विज्ञानेश्वरानें सांगितलेलें जें त्रिवर्षानंतर चूडाकर्म झालेलें नसेल तद्विषयक
हें वचन आहे, तें चित्य (अयुक्त) आहे. कारण, त्रिवर्षोर्ध्वविषयक हें वचन मानलें तर ‘जातदंत’ हें पद व्यर्थ होईल.’
असें कश्चित् सांगतो तें तुच्छ आहे. कारण, या वचनांत दाहाचें विधान नसल्यामुळें “चूडाकर्म न झालेल्या मनुष्याचें
आशौच एक दिवस सांगितलें आहे” ह्या मनुवचनावरून त्रिवर्षानंतरचें एक दिवस आशौच प्राप्त असल्यामुळें, या वचनानें
वर तूं सांगितलेली ‘अर्थात् तीन दिवस आशौचाची सिद्धि होत नाहीं. तूं (कश्चिन्मतकारानें) देखील पुढें तसेंच स्वीकारि-

लेलें आहेस. पद व्यर्थ होईल म्हणून सांगितलेस तें तुलाही सारखेंच आहे. बाक्यार्थाचें ज्ञानही तुला नाही, विज्ञानेश्वराचें केलेल्या मिताक्षरेचा अर्थ न समजून दृष्ट्य दिलेंस इतकें सांगणें पुरे आहे. प्रथम वर्षादिकांत चूडाकर्म झालें असतां सदैव तीन दिवस आशौच. कारण, “ज्यांचें चूडाकर्म झालें असेल त्यांचें आशौच तीन दिवस इष्ट आहे” असें मनुवचन आहे. हें सारें पूर्वी सांगितलेलें आशौच संपिंडाना समजावें.

मातापित्रोस्तुदशाहोर्ध्वमृतेसर्वत्रत्रिरात्रं बालानामजातदंतानां त्रिरात्रेण शुद्धिरितिकथ्यपोक्तेः बैजिका-
दभिसंबंधादनुत्तुल्यादयं त्रयहमिति मनुक्तेश्च शुद्धितत्त्वादयोगौडास्तु अजातदंतमरणेपित्रोरेकाहमि-
ष्यते दंतजाते त्रिरात्रं स्याद्यदित्यातां तु निर्गुणाविति कौर्मात्काशयपशूदपरं अनुढानां तु कन्यानां तथा वैशूद्रजन्म-
नामिति त्रयहानुवृत्तौ शंखोक्तेः त्रिरात्रं तु भवेच्छूद्रेपण्मासेपिशिशौ मृत इति मन्स्यसूक्ताच्च दंतजाते शुद्धेतु-
पंचाहः यथा हांगिराः शूद्रे त्रिवर्षाभ्यनेतु मृते शुद्धिस्तु पंचभिः अत ऊर्ध्वमृते शूद्रे द्वादशाहो विधीयते पङ्-
वर्षांतमतीतोयः शूद्रः संम्रियते यदि मासिकं तु भवेच्छौचमिति यांगिरसभाषितमिति यत्तु अनुढभार्यः शूद्रस्त्विति-
शंखोक्तं मासाशौचं तत्सगुणशूद्रपरम् निर्गुणे त्वनुढभार्येशूद्रे त्रिवर्षोर्ध्वद्वादशाहः पडब्दोर्ध्वमासः पडब्दा-
त्प्रागपि कृतोद्वाहे मास इत्याहुः एतत्तुल्यं वयसि सर्वेषामिति विरोधाच्छिष्टविगानां नार्तव्यमिति विज्ञानेश्वरा-
दयः दाक्षिणात्यानां तथैव अन्यदेशे प्रागुक्तमिति गौडाः एवं कन्यास्वपि तास्वप्यजातदंतासु पित्रोरेकं रात्र-
मिति माधवः यत्तु विज्ञानेश्वरेणोक्तं ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हीति याज्ञवल्क्योक्तेः गर्भस्थे-
प्रेते मातुर्दशाहं जात उभयोः कृतेनाग्नि सोदराणां चेति पैंग्योक्तेश्च पित्रोः सोदराणां च दशाहमस्पृश्यत्वमिति-
तन्नेदानीं प्रचरति अतएव स्मृत्यर्थसारे तन्नादृतं कन्यासु चोलात्प्राक् मृतौ स्नानं अचूडायां तु कन्यायां सद्यः-
शौचं विधीयत इत्यापस्तंबोक्तेः इदं त्रिपुरुषमध्ये अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायत इति वसिष्ठोक्तेः
इदं वाग्दानोत्तरमिति गौडाः अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिंड्यं सामपौरुषमिति वचनान् ।

दहा दिवसानंतर मृत अमतां आईबापांना तर गर्भत्र तीन दिवस आशौच. कारण, “दांत उत्पन्न न झालेल्या बालकाचें तीन दिवस आशौच” असे कथ्यपाचें वचन आहे. आणि “त्रीजाचा संबंध अगल्यामुळें तीन दिवस अशुद्धि होते” असें मनुवचनही आहे. शुद्धितत्त्व इत्यादि गौडप्रंथकार तर-“दंत उत्पन्न होण्याच्या पूर्वी मृत असतां आईबापांना एक दिवस आशौच. दांत उत्पन्न झाले अमतां जर आई बाप निर्गुण अमनील तर त्यांना तीन दिवस आशौच.” ह्या कौमैवच-
नावरूनच पूर्वीक कथ्यवचन शूद्राविषयी आहे. कारण, “अविवाहित ज्या कन्या तसेंच शूद्र यांचें तीन दिवस आशौच” असें शंखवचन आहे. आणि “महा महिन्यांचें मूल मृत अमलें तरी शूद्राला तीन दिवस आशौच होतें” असें मन्स्यसूक्त-
वचनही आहे. दंत उत्पन्न झालेला मृत अमतां शूद्राला तर पांच दिवस आशौच, असें अंगिरा सांगतो-“तीन वर्षांच्या आंतील शूद्र मृत असतां पांच दिवसांनीं शुद्धि होतें. तीन वर्षांनंतरचा शूद्र मृत अमतां बारा दिवस आशौच. सहा वर्षांच्या पुढचा शूद्र मरेल तर एक महिना त्याचें आशौच होतें, असें अंगिरसाचें सांगणें आहे.” आतां जें अविवाहित शूद्राचें एक महिना आशौच शंखानें सांगितलें तें गुणवंतशूद्रविषयक आहे. निर्गुण असून अविवाहित शूद्र मृत असेल तर तीन वर्षांनंतर बारा दिवस. सहा वर्षांनंतर एक महिना. सहा वर्षांच्या पूर्वी देखील विवाह केलेला असेल तर एक महिना आशौच असें सांगतात. हें गौडमत “वयाच्या निमित्तानें उक्त आशौच सर्वांना (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यांना) गमान आहे” ह्या वचनाशीं विरोध येत असल्यामुळें आणि शिशूंनीं निदित अमत्यामुळें ग्रहण करण्यास योग्य नाही, असें विज्ञानेश्वर इत्यादि प्रंथकार सांगतात. दाक्षिणात्य शूद्रांना तसेंच (वयोनिमित्तक सर्वांना गमानच) आहे. इतर देशांतील शूद्रांना पूर्वीक समजावें, असें गौड सांगतात. वर सांगितलेलें दशाहानंतर मृत अमतां मातापितरांना तीन दिवस आशौच तें तसेंच कन्याविषयी देखील समजावें. कन्या दांत उत्पन्न होण्याच्या पूर्वी मृत अमनील तर आईबापाला एक दिवस आशौच, असें माधव सांगतो. आतां जें विज्ञानेश्वरानें सांगितलें की, “दोन वर्षांच्या आंतील मृत अमतां आईबाप या दोघांना आशौच, आणि प्रसूतिनिमित्तक मातेलाच आशौच” ह्या याज्ञवल्क्यवचनावरून आणि “गर्भस्थ मृत अमतां मातेला दशाह आशौच, उत्पन्न झालेला मृत असतां आईबाप या दोघांना दहा दिवस, आणि नामकरण केलेला मृत असतां मातापितरांना आणि सहोदर भ्रात्यांनाही दहा दिवस आशौच” ह्या पैंगीच्या वचनावरूनही आईबापांना आणि सहोदर भ्रात्यांनाही दहा दिवस अस्पृश्यत्वसम आशौच, असें सांगितलें तें सांप्रतकालीं प्रचारांत नाही. म्हणूनच स्मृत्यर्थसारांत तें स्वीकारिलें नाही. चोळच्या पूर्वी कन्या मृत असतां ज्ञान. कारण, “चूडाकर्म न केलेली कन्या मृत असतां सद्यःशौच सांगितलें आहे” असें आपस्तंबवचन आहे. हें आशौच तीन पुरुषांमध्ये समजावें. कारण, “अविवाहित कन्यांचें त्रिपुरुष सापिंड्य सांगितलें आहे” असें वसिष्ठ-

वचन आहे. हे सापिंज्य वाग्दानोत्तर समजावें, असें गौड सांगतात. कारण, “अविवाहित स्त्रियांचें सात पुरुष सापिंज्य आहे” असें वचन आहे.

चौलानंतर वाग्दानात्पूर्वतास्वेकाहः अविशेषेण वर्णानामर्वाक्संस्कारकर्मणः त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्व-
ह्वाविधीयत इत्यंगिरसा त्रिरात्रविषये होविधानात् अतः शुद्रस्योपनयनस्थानीयविवाहात्पूर्वत्रिरात्रं विवा-
होत्कर्षेतुपोडशाब्दमध्ये त्रिरात्रमेवेत्यपराकांक्षाः शुद्रेतुनिर्गुणेऽप्यदोर्ध्वपंचाहः षडदोर्ध्वविवाहाभावेपि-
द्वादशाह इति गौडाः सगुणानां पोडशाब्दोर्ध्वतुविवाहाभावेपि पूर्णांशौचं वक्ष्यते तदुत्तरप्राग्विवाहाद्भ्रूकुलेपि-
तृकुलेच सप्तपुरुषावधित्रिरात्रं अवारिपूर्वप्रतातुयानैव प्रतिपादिता असंस्कृता तु साक्षेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतमि-
ति मरीच्युक्तेः रत्नाकरे शुद्धितत्त्वे च शंखः पितृवेशमनियानारीरजः पश्यत्यसंस्कृता तस्यांमृतायांना-
शौचं कदाचिदपिशाम्यति यावज्जीवमाशौचमिति वाचस्पतिमिश्राः ।

चौलानंतर वाग्दानाच्या पूर्वी कन्याविषयीं एक दिवस आशौच. कारण, “सर्व वर्णांची, संस्कार करण्याच्या पूर्वी मृत असतां तीन दिवसांनीं शुद्धि आणि कन्या मृत असतां एका दिवसांनीं शुद्धि होते.” या अंगिरसाच्या वचनांनीं त्रिरात्राविषयीं एका दिवसाचें विधान आहे. या वचनावरून, शूद्राचा उपनयनस्थानीं विवाह अमत्यामुळे त्याचें विवाहाच्या पूर्वी त्रिरात्र आशौच. विवाह लांबला असतां सोळा वर्षांच्या आंत मृत असतां त्रिरात्रच आशौच, असें अपराकांदिक् ग्रंथकार सांगतात. निर्गुण शुद्र असेल तर तीन वर्षांनंतर पांच दिवस आशौच. सहा वर्षांनंतर विवाह नमेल तर वारा दिवस आशौच, असें गौड सांग-
तात. शुद्र गुणवंत असतील तर सोळा वर्षांनंतरही विवाह नसला तरी संपूर्ण आशौच पुढें सांगूं. स्त्रियांचें वाग्दानोत्तर विवा-
हाच्या पूर्वी पितृकुलांत आणि पतिकुलांतही सात पुरुषांपर्यंत त्रिरात्र आशौच. कारण, “जीचें दान वाणीनें केलेलें असून उदकपूर्वक झालेलें नाही ती कन्या असंस्कृत (संस्काररहित) म्हणून समजावी. ती मृत असतां दोन्ही कुलांत त्रिरात्र आशौच सांगितलें आहे” असें मरीचिवचन आहे. रत्नाकरांत व शुद्धितत्त्वांत शंख-“जी स्त्री वापाच्या घरीं अवि-
वाहित असून रजस्वला होईल ती मृत असतां तिचें आशौच कधींही शांत होत नाही.” मातापिता जीवत आहेत तोपर्यंत आशौच, असें वाचस्पतिमिश्र सांगतात.

अथानुपनीते किंचिदुच्यते नाम्नः पूर्वखननमेव तदूर्ध्ववर्षत्रयात्पूर्वचौलाभावेऽप्युदकदानविकल्पः नात्रि-
वर्षस्य कर्तव्याधां वैरुदकक्रिया जातदंतस्य वा कुर्वुर्नाम्रिवापिकृते मतीति मनुक्तेः उदकक्रिया साहचर्याद्वाहो-
पलक्षणं खननेतुनान्यदोर्ध्वदेहिकं ऊनद्विवर्षनिखनेन क्रूर्यादुदकंतत इति याज्ञवल्क्योक्तेः उदकमंत्यकर्म-
परमित्यपराकः यमः ऊनद्विवर्षिकं प्रेतं धृताक्तं निखनेऽपि यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुसरन् माध-
वीये ब्राह्मेपि स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्योजातो मृतोऽथवा अजातदंतो मासैर्वा मृतः पद्भिर्गतेर्बहिः वस्त्राद्यैर्भूषितं
कृत्वा निक्षिपेत्तुं काष्ठवत् खनित्वाशनकैर्भूमौ सद्यः शौचं विधीयते अलंकरणमपि वक्ष्यते कृतचूडस्य तु त्रि-
वर्षात्प्रागूर्ध्ववाऽप्युदकदानं नियतं यत्तु वसिष्ठः ऊनद्विवर्षे प्रेतो गर्भपतने वा सपिंडानां त्रिरात्रमिति तत्प्रथमावदचू-
डापरं वर्षत्रयादूर्ध्वमकृतचूडस्यापि नियतम् वर्षत्रयोर्ध्व उपनयनात्पूर्वचतुष्णीमप्युदकदानम् तूष्णीमेवोदकं
कुर्यात्तूष्णीसंस्कारमेव चेति पूर्वोक्तलौगाक्षिस्मृतेः पिंडदानमपि कार्यम् असंस्कृतानां भूमौ पिंडं दद्यात् संस्कृ-
तानां कुशेष्विति प्रचेतसोक्तेः उदकदानं सपिंडैः कृतचूडस्येति गौतमोक्तेः उदकग्रहणमोर्ध्वदेहिकपरमिति
हरदत्तः द्वादशाद्वत्सरादर्वाक्पौगंडमरणे सति सपिंडीकरणं न स्यादेको हिष्टानि कारयेदिति हरदत्तधृत-
देवलोक्तेश्च मरीचिरपि प्रेतपिंडं बहिर्दद्याद्भूमं त्रिविवर्जितमिति एतदनुपनीतपरमिति विज्ञानेश्वरः
अत्र चूडैव पूर्वावधिः पूर्ववाक्येषु तद्ग्रहणात् उदकग्रहणस्योपलक्षणत्वादाहः पूर्वावधिरितिकेचित् द्वादशाद्वत्स-
रादित्यनुपनीतद्विजानुद्दशद्विषयं त्र्यहाशौचे पिंडदानविधिमाह पारस्करः प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिंडाः-
समाहितैः द्वितीये चतुरोदद्यादस्थिसंचयनं तथा त्रींस्तु दद्यात्तृतीये ह्निवस्त्रादिक्षालयेत्तत इति ।

आतां अनुपनीताविषयीं थोडें सांगतों—

नामकरणाच्या पूर्वी मृताचें खननच करावें (पुरावें). नामकरणानंतर तीन वर्षांच्या आंत चौल झालेलें नसतां दाह व उदकदान यांचा विकल्प आहे. कारण, “तीन वर्षांच्या आंतील मृताची उदकक्रिया (दाहादिक्रिया) करूं नये. अथवा दांत

उत्पन्न झालेले असून नामकरण केलेले असेल तर करावी.” असे मनुवचन आहे. खनन केले असेल तर दुसरे त्याचें औषध-
देहिक कर्म नाही. कारण, “दोन वर्षांचे आत मृत असेल त्याला भूमीत पुरावे, त्याला उदक देऊ नये” असे याज्ञवल्क्याचें
वचन आहे. या वचनांत ‘उदक’ म्हणजे अंत्यकर्म समजावें, असे अपरार्क सांगतो. यम—“दोन वर्षांच्या आंतील मृत
असतां यमसूक्ताचें स्मरण करून यमाची गाथा गायन करीत त्या प्रेतावर घृत घालून तें प्रेत भूमीत पुरावें.” माधवीयांत
ब्राह्मांतही “स्त्रियांचा गर्भ पतित झाला, अथवा उत्पन्न होऊन तत्काल मृत झाला किंवा दांत उत्पन्न न झालेला सहा
महिन्यांचा बालक मृत झाला तर त्याला बाहेर नेऊन वस्त्रादिकांनीं भूषित करून काष्ठाप्रमाणें त्याला भूमीत पुरून सप्तशौच
(स्नान) करावें.” त्याला अलंकारही पुढें सांगू. चौल झालेला तीन वर्षांच्या पूर्वीचा किंवा पुढचा असला तरी त्याला दाह व
उदकदान निश्चित आहे. आतां जें वसिष्ठ—“दोन वर्षांच्या आंतील बालक मृत असतां किंवा गर्भपात असतां सपिंडांना
त्रिरात्र आर्शांच असे सांगतो तें पहिल्या वर्षी चौल झालें असेल तद्विषयक आहे. तीन वर्षांनंतर चौल झालें नसलें तरी त्रिरात्र
आर्शांच नियमित आहे. तीन वर्षांनंतर उपनयनाच्या पूर्वी मंत्रवर्जित दाह व उदकदान करावें. कारण, “अमंत्रक उदक
द्यावें व संस्कारही अमंत्रक करावा” अशी पूर्वी सांगितलेली लौगाक्षिसृष्टि आहे. पिंडदानही करावें. कारण “संस्कार
न झालेल्यांना भूमीवर पिंड द्यावा, संस्कार झालेल्यांना कुशावर पिंड द्यावा” असे प्रचेतसाचें वचन आहे. “चालकर्म
केले असेल त्याला सपिंडांनीं (वांधवांनीं) उदकदान करावें.” असे गौतमवचन आहे. येथें उदक म्हणजे औषधदेहिक कर्म,
असे हरदत्त सांगतो. आणि “बाराव्या वर्षाच्या आत पांगडवयामांयें बालक मृत असतां त्याचें सपिंडीकरण होत नाही.
एकोद्दिष्ट करावी” असे हरदत्तानें त्रुत देवत्ववचनही आहे. मरीचिही—“दर्ग व मंत्ररहित प्रेतपिंड बाहेर द्यावा” हें
वचन मौजी न झालेल्याविषयी आहे, असे विश्वनेश्वर सांगतो. येथें म्हणजे पिंडदानाविषयी चूडाकर्मच पहिला अवधि
म्हणजे चूडकर्मानंतर पिंडदान करावें; कारण, पूर्वीच्या गौतमवचनांत चूडाकर्मच ग्रहण आहे. उदकग्रहण दाहाचें उपलक्षण
असल्यामुळे पिंडदानाला दाह पहिला अवधि आहे, असे केचित् म्हणतात. वर्गल देवत्ववचनांत ‘द्वादशात् वत्सरात्’
म्हणजे बाराव्या वर्षाच्या आत, असे सांगितले तें मौजी न झालेले द्वित्र आणि अविवाहित शूद्र यांच्या विषयी आहे. तीन दिव-
सांचें आर्शांच अमतां पिंडदानाचा विधि सांगतो—पारस्कर—पहिल्या दिवशीं तीन पिंड द्यावे. दुसऱ्या दिवशीं चार पिंड
आणि अश्विमेवयथाक्रम करावें. आणि तीन पिंड तिसऱ्या दिवशीं द्यावे. नंतर वस्त्रादि धाऊन करावें.”

अत्रदेवयाज्ञिकनिबंधविशेषः शिशुगदंतजननाद्बालः स्यात्पावदाशिश्वः कथ्यतेसर्वशास्त्रेषु कुमारो मौ-
जिवंधनान् आपंचवर्षात्कौमारं पौगंडो न वहायनः तथा गर्भनष्टे क्रियानाम्निदुग्धं देयं शिशो मृते पंचपायसंक्षी-
रं दद्याद्बालविपत्तिः एकादशद्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिविना तथा यत्र प्रसीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते किंचि-
त्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च मुखभक्षिका तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि-
तत्समे कुमारगणांच्च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनं यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्रायदीयते तथा भूमिनिक्षेपणं बाले आ-
वर्षद्वयमाशिश्वं ततः पंचवर्षां प्रदेह दद्याद्दोषा विधिवि अचूडेयुध्वं नवनननिवृत्त्यर्थमावर्षद्वयमिति प्रागपिकृतचूड-
स्य तन्निवृत्त्यर्थमाशिश्वमिति तथा चूडाकर्मणिसंज्ञाते विपत्तिस्तु यदा भवेत् सत्काले प्रकृतव्यवृत्तपस्योत्सर्जनं तथा
तत्र दाहः प्रकृतव्यवृत्तकृतं तत्र निश्चितं श्राद्धानि पौडशापिभ्युः सपिंडीकरणविना इदं पंचवर्षोत्तरं जन्मतः पंचवर्षा-
णि भुंक्ते दत्तमसंस्कृतं पंचवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते वृषोत्सर्गादिकं कर्म कर्तव्यमुदकंततः अहन्यहनि
संप्राप्ते कुर्याच्छ्राद्धानि पौडशा पायसे न गुडैर्नैव पिंडं दद्यात्पाकं उदकुंभप्रदानं च पददानानि यानि च दीपदानानि
यत्किंचित्पंचवर्षाधिके मेदा कर्तव्यं तु गव्यश्रेष्ठं त्रतर्वाक्प्रेतनृपये स्वाहाकारेणैव कार्याण्येको हि श्रानि पौडशा ऋजु-
दर्भे स्तिलैः शुद्धैः प्राचीना वीतिना तथेति तत्रैवोक्तेः अत्रमूलं चित्यम् वार्षिकादितुन भवत्येव सपिंडनाभावे-
पितृत्वायोगात् वचनाभावाच्च ।

येथें (बालकाविषयी) देवयाज्ञिक निबंधांत विशेष सांगतो—“दंतोत्पत्तीपर्यंत बालकाला शिशु म्हणतात. तदनंतर
शिश्वा राखणेपर्यंत बाल असे म्हणतात. त्याच्यापुढें मौजीबंधन होईपर्यंत सर्व शास्त्रांत कुमार असे म्हटलें आहे. पांच
वर्षांपर्यंत कुमार आणि नऊ वर्षांपर्यंत पौगंड असे म्हणतात.” तसेच-गर्भ पतन झाला असतां कोणतीही क्रिया नाही. शिशु
मृत असतां दूध द्यावें. बाल मृत असतां दूध व पायस द्यावें. एकादशाह व द्वादशाहकृत्य आणि वृषोत्सर्गविधि करू नये.”
तसेच “ज्या ठिकाणी बाल मृत होतो त्या ठिकाणी समानवयाच्या मुलांना किंचित् अन्न संस्कार करून यथाविधि भक्ष्य-भोज्य
आणि मुखभक्षिका ही द्यावी. त्याची वस्त्रे त्याचा जोडा ही सारी त्याच्या समान वयाच्या मुलास द्यावी. कुमार व बाल यांना
भोजन व त्याची बंदी वर्गरे वस्त्रे सर्व द्यावी. जे जे तो बालक वापरीत असेल ते ते ब्राह्मणाला द्यावें.” तसेच-दोन वर्षांच्या

आंतील व शिखराखणेपर्यंत बालक मृत असतां त्याला भूमीत पुरावें. त्याच्या पुढें यथाविधि दाह करावा.” दोन वर्षांच्या नंतर चौल झालेलें नसलें तरी खनन (भूमीत पुरणें) करूं नये, असें होण्यासाठी, ‘दोन वर्षांच्या आंतील असें म्हटलें आहे. दोन वर्षांच्या आंत चौल झालें असतां मृत असेल तर खनन करूं नये, असें सुचविण्याकरितां शिखराखणेपर्यंत असें सांगितलें आहे. तसेंच “चौल झालेलें असतां जेव्हां बालक मृत होईल तेव्हां सूतकाच्या अंतीं वृषोत्सर्ग करावा. त्याचा दाह व उदकदान निश्चयानें करावें. सपिंडीकरणावांचून षोडशमासिकें करावीं.” हें सांगणें पांच वर्षांनंतरचें समजावें. कारण, जन्मापासून पांच वर्षांपर्यंत मृत असतां संस्काररहित दिलेलें अन्न भक्षण करितो. पांच वर्षांहून अधिक वयाचा बालक जर मृत असेल तर वृषोत्सर्गादिक कर्म करावें. उदकदान करावें. आणि मासिक श्राद्धांचे दिवस प्राप्त असतां षोडशमासिकें करावीं. पायसाचे व गुळाचे अनुक्रमानें पिंड द्यावे. उदकुंभ द्यावा. आणि जी पददानें व दीपदानें सांगितलीं आहेत तीं सारीं, पांच वर्षांहून अधिक वयाचा उपनयन होण्याच्या पूर्वी मृत असतां त्याच्या तृप्तीसाठीं करावीं. तसेंच प्राचीनावीनी करून ऋतु दर्भांनीं पांडव्या तिकांनीं स्वाहाकारमंत्रानेंच षोडश मासिकें एकोद्दिष्टें करावीं” असें तेथेंच सांगितलेलें आहे. याविषयीं मूल चिंत्य (अनुपलब्ध) आहे. वार्षिकादिक श्राद्ध होतच नाही. कारण, सपिंडीकरण नसल्यामुळें पितृत्व येत नाही. आणि करव्याविषयीं वचनही नाही.

दिवोदासीये अत्रतेनिधनंप्राप्तेविप्रादौशूद्रजातिवत् क्रियाःसर्वाःसमुद्दिष्टाःसपिंडीकरणंविना उदकपिंडदानंचकृतचूडेविधीयतइति स्त्रीणांतूद्वाहात्प्रागुदकपिंडदानविकल्पः स्त्रीणांचैकेप्रतानामितिगौतमोक्तेः स्त्रीशूद्राश्चसधर्माणइतिवचनाच्छूद्रेष्येवं एतद्वयोनिमित्ताशौचसर्ववर्णसमं तुल्यंबयसिसर्वेषामितिक्तांतेतथैवचेति व्याघ्रपादोक्तेः यानितु निर्वृत्तचूडकेविप्रेत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यतेइति निवृत्तेक्षत्रियेषुद्विवैश्येनवभिरुच्यते शूद्रेत्रिवर्षन्यूनेतुमृतेशुद्धिस्तुपंचभिः अत ऊर्ध्वमृतेशूद्रेद्वादशाहोविधीयते पटुर्पातमतीतेतुशूद्रेमासमशौचकमित्यांगिरसादीनि तानिशिष्टविगानात्रादर्तन्यानीतिविज्ञानेश्वरमदनपारिजातादयः तेनैतद्वशाच्छूद्राणांव्यवस्थाप्रागुक्ताहेयैव तुल्यंबयसिसर्वेषामितिदाक्षिणात्यपरं अन्यदेशेकौर्मोक्ताव्यवस्थेतिशुद्धितत्त्वे ।

दिवोदासीयांत—“ब्राह्मणादिक उपनयन झालेलें नसून मृत असतां सपिंडीकरणावांचून इतर सर्व क्रिया शूद्रजातीप्रमाणें कराव्या. चौल झालें असेल तर उदकदान व पिंडदान करावें.” स्त्रियांना तर विवाहाच्या पूर्वी उदक व पिंडदान यांचा विकल्प आहे. कारण, “अविवाहित स्त्रियांना उदक व पिंडदान करावें असें किनीएक विद्वान् सांगतात” असें गौतमवचन आहे. “स्त्रिया व शूद्र समानधर्मा आहेत” या वचनावरून शूद्रालाही असेंच समजावें. हें वयाच्या निमित्तानें सांगितलेलें आशौच सर्व वर्णांना (ब्राह्मणादिकांना) समान आहे. कारण, “वयाच्या निमित्तानें उक्त आशौच सर्वांना तुल्य आहे. तसेंच अतिक्रांत (दशाहादि मुख्य आशौच दिवस होऊन गेल्यावर समजलेलें) आशौचही सर्वांना समान आहे” असें व्याघ्रपादाचें वचन आहे. आतां जीं “चौल झालेल्या ब्राह्मणाच्या आशौचाची तीन दिवसांनीं शुद्धि होते. चौल झालेल्या क्षत्रियाची सहा दिवसांनीं आणि वैश्याची नऊ दिवसांनीं शुद्धि होते. तीन वर्षांहून कमी वयाचा शूद्र मृत असतां पांच दिवसांनीं शुद्धि, तीन वर्षांच्या पुढें शूद्र मृत असतां बारा दिवस आशौच करावें. सहा वर्षे होऊन गेलेला शूद्र मृत असतां एक महिना आशौच करावें” अशीं आंगिरसादिकांचीं वचनें तीं शिष्टांनीं निंदित असल्यामुळें अग्राह्य आहेत, असें विज्ञानेश्वर, मदनपारिजात इत्यादिक सांगतात. तेणेंकरून या वचनांवरून पूर्वीं सांगितलेली शूद्रांची व्यवस्था त्याज्यच आहे. ‘तुल्यं बयसि सर्वेषां’ हें वचन दाक्षिणात्यविषयक आहे. इतर देशांत कूर्मपुराणांतील व्यवस्था समजावी, असें शुद्धितत्त्वग्रंथांत आहे.

अथजात्याशौचं तच्च द्विजपुंसामुपनयनोर्ध्वप्रवर्तते त्रिरात्रमात्रतादेशादशरात्रमतःपरं क्षत्रस्यद्वादशाहानिविशःपंचदशैवतु त्रिंशदितानिशूद्रस्यतदर्धन्यायवर्तिनइतियाज्ञवल्क्योक्तेः यत्तुसएवत्रिरात्रंदशरात्रंवाशाशौचमिष्यतइत्याह तत्रदशाहेत्रिरात्रमस्पृश्यत्वं एकदिनोत्पन्नेआशौचद्वयेदशाहमस्पृश्यत्वं मरणंयदितुल्यंस्यान्मरणेनकथंचन अस्पृश्यतुभवेद्गोत्रं सर्वमेवसबांधवमित्यांगिरसोक्तेः दशाहाशौचपरत्वेदशरात्रमतःपरमित्यनेनपौनरुक्त्यापत्तेरितिशुद्धिविवेकादयः स्मृतिभेदात्रिरात्रंदशरात्रंवेतिविकल्पायोगाच्च यस्तुपुत्राणांवेदानध्याप्यवृत्तिविदधातितत्राह्याश्वलायनः द्वादशरात्रंमहागुरुपुदानाध्ययनेवर्जयेदिति अत्रयावदुक्तनिषेधोवास्त्युच्यत्वमात्रंवा नतुकर्मानधिकारः एकादशाहंतेवैश्वदेवोक्तेः एकादशा-

द्विकेमुक्त्वातत्राहतेविधीयतइति शुद्धितत्त्वेतु त्रयः पुरुषस्यातिगुरवो भवन्ति मातापिताचार्यश्चेति विष्णुः
पित्रादयो महागुरवः भर्तापुत्रो रामायणे पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता देवतंगुरवेव च शातातपः पतिरेको गुरुः-
स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः एकपदमूढानां पितृमातृनिषेधार्थं सोदकानां त्रिरात्रं त्र्यहस्तद्वक्त्रायिन इति स्म-
नूक्तेः अग्निपुराणे सपिंडतातु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते समानोदकभावस्तु निवर्ततचतुर्दशे जन्मनामस्मृ-
तेर्वैकेतत्परंगोत्रमुच्यते बृहस्पतिः दशाहेन सपिंडास्तु शुद्धिर्निषेत्तसूतके त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु ज्ञात्वा शुद्धि-
तिगोत्रजाः ।

आतां ब्राह्मणादि जातीचें आशौच सांगतो—

तें जातिनिमित्तक आशौच ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यांच्या पुरुषांना मौज्जीबं धनानंतर प्रवृत्त होतें. कारण, “उपनयनापर्यंत
तीन दिवस, उपनयनोत्तर ब्राह्मणाला दहा दिवस, क्षत्रियाला बारा दिवस, वैश्याला पंधरा दिवस, शूद्राला तीस दिवस आशौच
आणि न्यायानें वागणाऱ्या शूद्राला (वर सांगितलेल्याच्या) अर्धे आशौच समजावें” असें याज्ञवल्क्यवचन आहे. आतां जें
तोच (याज्ञवल्क्य)—“तीन दिवस किंवा दहा दिवस मृताशौच करावें” असें सांगतो, त्यांत दहा दिवसांच्या आशौचांत
तीन दिवस अस्पृश्यत्व, आणि एका दिवशीं दहा दिवसांचीं दोन आशौचें उत्पन्न असतां दहा दिवस अस्पृश्यत्व संमजावें.
कारण, “जर एक मरण दुसऱ्या मरणानें समान होईल (दोन एका दिवशीं मृत होतील) तर त्या ठिकाणीं बांधवांसहित
सारे गोत्रज अस्पृश्य होतील.” असें अंगिरसाचें वचन आहे. ह्या याज्ञवल्क्यवचनाचा असा अर्थ न करितां हें वचन
दशाहाशौचविषयक मानलें तर ‘दशरात्रमतः परं’ ह्या वरील याज्ञवल्क्यवचनानें पुनरुक्तिः (पुनः सांगितलें) हा दोष
प्राप्त होईल, असें शुद्धिविवेकादिक ग्रंथकार सांगतात. स्मृतिभेदानें त्रिरात्र किंवा दशरात्र करावें, असा विकल्पही
करितां येत नाही. कारण, स्मृति एक आहे. जो पिता पुत्रांना वेद पढवून त्यांची उपजीविका करितो, त्याविषयी सांगतो
आश्वलायन—“महागुरु मृत झाले असतां बारा दिवसपर्यंत दान व अध्ययन वर्ज्य करावें.” या ठिकाणीं जितकें सांगि-
तलें तितक्याचाच (दानाध्ययनाचाच) बारा दिवस निषेध किंवा स्पृश्यत्वाचा निषेध गमजावा. कर्माचा अनधिकार नाही.
कारण, अकराव्या दिवशीं वैश्वदेव सांगितला आहे. ‘अकराव्या दिवशीं ब्राह्मणांनीं वैश्वदेव सांगितला आहे’ असें पूर्वी शालं-
कायनवचन सांगितलें आहे. शुद्धितत्त्वांत तर—“पुरुषाचे तीन अति गुरु होतात—माता, पिता आणि आचार्य” या विष्णु-
वचनावरून पिता इत्यादिक महागुरु आहेत. झियेला भर्ताही गुरु रामायणांत सांगितला आहे—“पति हा बंधु, गति
(शरण), भर्ता (पोषणकर्ता), देवत आणि गुरु आहे.” शातातप—“स्त्रियांचा पति एकच गुरु आहे. सर्वांचा गुरु अतिथि
आहे.” या वचनांत ‘एक’ पद आहे तें विवाहित स्त्रियांचा पिता व माता गुरु नाही, असा समज करण्याकरितां आहे. समा-
नोदकांना (सातपुरुषांच्या पत्नीकडच्यांना) त्रिरात्र आशौच. कारण, “समानोदक तीन दिवसांनीं शुद्ध होतात” असें मनु-
वचन आहे. अग्निपुराणांत—“सातव्या पुरुषाला सपिंडता (सापिंड्य) निवृत्त होतें. समानोदकपणा तर चवदाव्या
पुरुषाला निवृत्त होतो, म्हणजे आठव्या धर्मुन सात पुरुषांपर्यंत सपिंड. आठव्यापासून तेरापर्यंत समानोदक. कित्येक विद्वान्
म्हणतात त्या पुरुषांचें जन्म व नांव यांचें स्मरण आहे तोपर्यंत समानोदक समजावे, त्याच्या पुढचे गोत्रज म्हटले आहेत.”
बृहस्पति—“मृतसूतक अमतां दहा दिवसांनीं सपिंड शुद्ध होतात. सकुल्य (समानोदक) तीन दिवसांनीं शुद्ध होतात.
आणि गोत्रज ज्ञानानें शुद्ध होतात.”

स्त्रीशूद्रयोस्तु विवाहोर्ध्वजात्याशौचं वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृत इत्युक्तेः दत्तानां भर्तुरेव हि
स्वजात्युक्तमशौचं स्यान्मृतके जातकेतथेति माधवीये ब्राह्मणं शूद्रस्य विवाहाभावेऽपि षोडशवर्षोर्ध्वमासः
अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परं मृत्युसमधिगच्छेन्नमासात्तस्यापि बांधवाः शुद्धिसमधिगच्छन्ति नात्र-
कार्या विचारणेत्यपरां केशं खोक्तेः निर्णया मृतमदनपारिजातादौ त्वन्यथोक्तं हारीतः आर्मा-
जीबं धनाद्विप्रः क्षत्रियश्च धनुर्ग्रहात् आप्रतो दमहाद्वैश्यः शूद्रो वस्त्रद्वयग्रहात् धनुःप्रतो दावष्टमे च्छेदावशेषक-
द्वयमिति मेघानिथिस्तु त्रिरात्रमात्रतादेशादित्यत्र प्रतंकालोपलक्षणार्थं सचकालः स्वकीयः सर्वेषांचाष्ट-
मवर्षरूपः तेन चतुर्णामपि वर्णानामुपनयनाभावेऽप्यष्टमादूर्ध्वपूर्णमेवाशौचं तत्रापि प्रागष्टमाच्छिदशः प्रोक्ता इति
स्मृत्यंतरा दूर्ध्वसंपूर्णमर्वां च त्रिरात्रं येऽप्यष्टोदशाद्भवेद्दाल इत्याहुः तेषामप्यष्टमादूर्ध्वशूद्रमास एव ऊर्ध्वमष्टमो-
वर्षेभ्यः शुद्धिशूद्रस्य मासिकीति वचनादित्याह हारलता शुद्धितत्त्वादिगौडग्रंथेऽप्युक्तं अनुपनीतौ-

विप्रश्रयुक्त्वा त्रियतेयत्रतत्रत्यादाशौचंयहमेवहीति द्विजन्मनामयंकालक्षयाणांतुषडाब्दिकइत्यादिपुराणो-
क्तैरुपनयनंकालोपलक्षणं षडब्दपदमासत्रयाधिकपरं गर्भाष्टमेष्टमेवाब्दइत्युक्तेः यत्तुजाबालः। व्रतचूडा-
द्विजानांचप्रतीतिषुयथाक्रमं दशाहत्रयहएकाहैःशुध्यंत्यपिहिनिर्गुणाइति द्विजादंताः इदंप्रतीतिष्वित्युक्तेःपं-
चाब्दोपनीतपरमिति तदेतन्नाद्रियंतैबृद्धाः ।

स्त्रिया व शूद्र यांना तर विवाहोत्तर हें जातीचें आशौच आहे. कारण, स्त्रियांना उपनयनस्थानीं विवाहविधि सांगितला आहे.” असें वचन आहे. आणि “विवाहित स्त्रियांना भर्त्यांचेच जातीला सांगितलेलें आशौच मृतकाविषयीं व उत्पत्तीविषयीं समजावें.” असें माधवीयांत ब्राह्मवचनही आहे. शूद्राचा विवाह झाला नमला तरी सोळा वर्षांनंतर एक महिना आशौच. कारण, अविवाहित शूद्र जर सोळा वर्षांनंतर मरेल तर त्याचेही बांधव एका महिन्यानें शुद्ध होतात, याविषयीं संशय नाही.” असें अपराकांत शंखवचन आहे. निर्णयामृत, मदनरत्न, पारिजात इत्यादिकांत तर निराळें सांगितलें आहे. तें असें-हारीत-“मौजीबंधनानं ब्राह्मण, धनुष्यग्रहणानं क्षत्रिय, चावूकग्रहणानं वैश्य, दोन वस्त्रे ग्रहणानं शूद्र हे संस्कृत होतात. धनुष्यग्रहण व चावूकग्रहण आठव्या वर्षीं होतें. आणि शूद्रानें दोन वस्त्रे ग्रहण करणें तीं बाराव्या वर्षीं करावीं.” यावरून तें तें ग्रहण केल्यावर पूर्ण आशौच. मेधातिथि तर-“त्रिरात्रमात्रतादेशात्” ह्यावरील याज्ञवल्क्यवचनांतील ‘व्रत’ शब्दानें व्रताचा (उपनयनाचा) काल घ्यावा. तो काल सर्वांचा (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यांचा) आठवें वर्ष होय. तेणेंकरून चारही वर्णांचें उपनयन झालें नमलें तरी आठव्या वर्षांनंतर मृत भगतां संपूर्णच आशौच आहे. त्यांतही “आठव्या वर्षाच्या पूर्वीं शिशु म्हटले आहेत” ह्या इतर स्मृतीवरून आठव्या वर्षांनंतर संपूर्ण आशौच व त्याच्या पूर्वीं मृत असतां त्रिरात्र आशौच. जे कोणी सोळा वर्षपर्यंत बाल असें म्हणतात त्यांच्या मनीं देखील आठव्या वर्षांनंतर शूद्राचें एक महिनाच आशौच. कारण, “आठ वर्षांनंतर मृत शूद्राची एकामहिन्यानें शुद्धि होते” असें वचन आहे, असें सांगतो. हारलता-शुद्धितत्त्व इत्यादि गौड ग्रंथांतही सांगितलें आहे कीं उपनयन न झालेला ब्राह्मण असें सांगून “जेथें (ज्या कुलांत) मरेल तेथें तीन दिवस आशौच. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या तिघांचा हा गहा वर्षापर्यंत तीन दिवस आशौचाचा काल आहे.” ह्या आदिपुराणवचनावरून उपनयन म्हणजे उपनयनाचा काल समजावयाचा आहे. सहा वर्षे म्हणजे सहा वर्षे अधिक तीन महिने समजावें. कारण, “उपनयन गर्भापासून आठव्या वर्षीं किंवा जन्मापासून आठव्या वर्षीं असें सांगितलें आहे. आतां जें जाबालि-“उपनयनाची प्रतीति (ज्ञान) भगतां मृत असेल तर दहा दिवसांनीं, चौलाची प्रतीति भगतां मृत असेल तर तीन दिवसांनीं आणि दंतांची प्रतीति भगतां मृत असेल तर एका दिवसांनीं निर्गुण असेल तरी शुद्ध होतात.” प्रतीति (ज्ञान) असतां असें म्हटलें आहे म्हणून हें वचन पांच वर्षांचा उपनयन झालेला असेल तद्विषयक आहे, असें सांगितलें आहे, तें बृद्ध स्वीकारीत नाहीत.

यानितु पराशरः एकाहब्राह्मणःशुध्येद्योम्रिवेदंसमन्वितः त्र्यहात्केवलवेदस्तुद्विहीनोदशभिर्दैनैः केवलवेदःकेवलश्रौताग्नेरप्युपलक्षणं अयंसंकोचोहोमाध्ययनपरण्व नतुसंध्यादावितिहारलतायांअंगिराः सर्वेषामेववर्णानांसूतकेमृतकेतथा दशाहाच्छुद्धिरेतेपामितिशातातपोब्रवीत् देवलः आशुच्यंदशरात्रंतुसर्वेषामपरेविदुः निधनेप्रसवेचैवपश्यंतःकर्मणःक्षयं अत्यंतोत्कृष्टस्यकर्महानौपीडावतोविप्रपरिचर्यापरशूदस्यदशरात्रमितिहारलतायां दक्षः सद्यःशौचंतथैकाहकृयहश्चतुरहस्तथा पददशद्वादशाहश्चपक्षोमासस्तथैवच मरणांतंथाचान्यदृशपक्षास्तुसूतके मिताक्षरायांस्मृत्यंतरे चतुर्थेदशरात्रस्यानुष्णिनशाःपुंसिपंचमे षष्ठेचतुरहाच्छुद्धिःसप्तमेत्वहरेवतु इत्यादीनितान्यापदनापट्टणवदगुणवद्विपयाणि देशांतरभेदाद्ब्राह्मेयानि सद्यःशौचादिपडहांताःपक्षायायावरादिपराः अत्रमरणांतंजननादिनिमित्ताद्विभ्रम शिष्टविगानाद्भादर्तव्यानीतिविज्ञानेश्वरः अस्नात्वाचाप्यहुत्वाचअदत्त्वाभ्रंस्तथाद्विजः एवंविधस्यविप्रस्यसर्वदासूतकंभवेदितिदक्षोक्तया अन्यपूर्वायस्यगोहेभार्यास्यात्तस्यनित्यशः आशौचंसर्वकार्येषुदेहेभवतिसर्वदेति ब्राह्मादिपक्षाद्यवस्थेत्यपरार्कमदनपारिजातादयः ।

आतां जी वचनें पराशर-“जो ब्राह्मण अग्नि (श्रौताग्नि व स्मार्ताग्नि) आणि वेद यांनीं युक्त असेल तो एका दिवसांनीं शुद्ध होईल. केवल वेदानें युक्त असेल तो तीन दिवसांनीं शुद्ध होईल. आणि जो अग्नि व वेद यांनीं रहित तो दहा दिवसांनीं शुद्ध होईल.” या वचनांत ‘केवल वेद’ या शब्दानें उपलक्षणेंकरून केवल श्रौताग्निही घ्यावा. हा आशौचाचा संकोच होम व

अध्ययनं यांविषयीच आहे. संध्यादिकर्माविषयी नाही, असें हारलतेंत सांगितलें आहे. अंगिरा—“ब्राह्मणादि चारही वर्णांचें सूतक (जननाशौच) व मृताशौच असतां त्यांची दहा दिवसांनीं शुद्धि होते, असें शातातप सांगतो.” देवल—“जनन तसेंच मरण असतां अवश्य कर्माचा क्षय होत आहे असें पाहणारे इतर विद्वान् ब्राह्मणादि चारही वर्णांना दहा दिवस आशौच सांगतात.” शूद्राला दहा दिवस आशौच सांगितलें हें अत्यंत उत्कृष्ट असून कर्माची हानि झाली असतां दुःख पावणारा असा ब्राह्मणाची सेवा करणारा जो शूद्र त्याविषयीं समजावें, असें हारलतेंत सांगितलें आहे. दक्ष—“सद्यः शौच, एक दिवस, तीन दिवस, चार दिवस, सहा दिवस, दहा दिवस, बारा दिवस, पंधरा दिवस, एक महिना आणि मरणपर्यंत असे आशौचाचे दहा पक्ष आहेत.” मिताक्षरेंत इतर स्मृतींत—“चवथ्या पुरुषाला दहा दिवस, पांचव्या पुरुषाला सहा दिवस, सहाव्या पुरुषाला चार दिवस, आणि सातव्या पुरुषाला एक दिवस आशौच.” इत्यादिक वचनें आहेत, तीं आपत्ति, आपत्ति नगणं, गुणवंत, निर्गुणी, यांच्याविषयीं समजावीं. अथवा देशांतरभेदानें जाणावीं. सद्यःशौच आरंभ करून सहा दिवस आशौच यापर्यंत जे पांच पक्ष आशौचाचे सांगितले ते यांवावर इत्यादिकांविषयीं आहेत. एथें मरणांत आशौच सांगितलें हें जननादि आशौचव्यतिरिक्त आहे. अशीं वरील वचनें तीं शिष्टांनीं निदित असल्यामुळें स्वीकारूं नयेत, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. “घ्नान केल्यावांचून, होम केल्यावांचून व दान दिल्यावांचून भोजन करणारा असा जो ब्राह्मण त्याला गवेदा सूतक अगते” ह्या दक्षवचनानें; आणि “पुनर्निवाह झालेची पत्नी ज्याच्या घरांत असेल त्याला सर्व कार्यामध्यें नित्य आशौच व त्याच्या देहाला गवेदा आशौच” ह्या ब्राह्मणादि वचनावरून मरणांत आशौचाची व्यवस्था समजावी, असें अपरार्क, मदनपारिजात इत्यादिक सांगतात.

माधवस्तु वृत्तस्वाध्यायमापेक्षमधसंकोचनंतथैतिकलिवज्येंपुक्तेः दशाहण्वविप्रस्यसपिंडमरणेसति कल्पांतराणि कुर्वाणः कलौ भवति कलिविपीति हारीनो केच न्यूनाशौचपक्षायुगांतरविषयाः मरणांतादिपक्षास्तु निदार्थवादः अन्यथा नामधारकविप्रस्तुदशाहंमृतकीभवेदिति विरोधः स्यादित्याह यत्तु देवलः दशाहदित्रिभागेन कृते संचयनेकमान् अंगस्पर्शनमिच्छंति वर्णानांतत्त्वदर्शिन इति पूर्णांशौचे स्पृश्यतामाह यच्चानुपनीतातिक्तांताशौचे त्रिग्रादादौ नैनवोक्तं म्याशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं तु त्रिभागांत इति तदपियुगांतरेषु अस्थिसंचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव चेति माधवीये कलौ तन्निषेधान् यत्तु हारलतायां चतुर्थे हनिकर्तव्यः संस्पर्शो ब्राह्मणस्य त्विति प्रचेतमोक्तं न्यहैकादाशौचेपि चतुर्थाहण्वांगस्पर्श इति तत्र देवलादिवशेनास्य दशाहगोचरत्वान् येतु वर्णसंस्पर्शमूर्धावसिक्ताद्यान्पामाशौचविशेषः कलौ नोपयुक्त इति नोच्यते प्रतिलोमजानानां शौचं मलापकर्पणार्थं तु स्नानमात्रमिति विज्ञानेश्वरः माधवस्तु शौचाशौचे प्रकुर्वीरनशूद्रवर्णस्य संस्कारा इति ब्राह्मोक्तेः शूद्रवदाह हारलतायामेव च ।

माधव तर—“विहित कर्मानुष्ठानं व वैदाध्ययनं यांच्या योगानें आशौचाचा संकोच करणें हें कलौत निषिद्ध आहे” असें कलिवज्यांत सांगितल्यामुळें; आणि “मर्पि उ मृत अगतां ब्राह्मणाला दहा दिवसच आशौच आहे. इतर पक्ष करणारा कलियुगांत दोषां होतो” ह्या हारीतवचनावरूनही दहा दिवसांपेक्षां न्यून आशौचाचे जे पक्ष सांगितले ते इतर युगांविषयीं आहेत. कलियुगांत नाहीत. मरणांतादि पक्ष सांगितला तो निदार्थ अर्थवाद आहे. असें न म्हटलें तर “नामधारक (अर्थात् ब्रह्मकर्मरहित) ब्राह्मणानें दहा दिवस सूतक धरावें” ह्या वचनाचा विरोध येईल, असें सांगतो. आतां जें देवल—“दशाहदिक आशौचाचे तीन भाग करून तिसरा भाग होऊन गेल्यावर अस्थिसंचयन झालें अमतां तत्त्वद्वये विद्वान् त्या आशौचवाल्यांचा अंगस्पर्श इच्छितात” असें पूर्ण आशौच अगतां स्पृश्यत्व सांगतो आणि जें अनुपनीताचे व अतिक्तांचे त्रिरात्रादिक आशौचाविषयीं त्यानेंच (देवत्यान) सांगितलें की, “आपल्या आशौचकालाचे तीन भाग करून तिसरा भाग गेल्यावर स्पर्श करावा” असें, तेंही कर्मावांचून उतर युगांत समजावें. कारण, “अस्थिसंचयनानंतर अंगस्पर्श निषिद्ध आहे” या वचनानें माधवीयांत कलियुगांत त्याचा (स्पर्शाचा) निषेध केला आहे. आतां जें हारलतेंत—“चवथ्या दिवशीं ब्राह्मणाचा स्पर्श करावा” या प्रचेतसाचे वचनावरून तीन दिवसांचें व एका दिवसाचें आशौच असलें तरी चवथ्या दिवशींच अंगस्पर्श करावा, असें सांगितलें आहे. तें बरोबर नाही. कारण, वरील देवलादि वचनानुरोधानें हें प्रचेतसाचें वचन दशाहशौचविषयक इतर युगांत आहे. जे वर्णसंस्कारापासून उत्पन्न झालेले मूर्धावसिक्त इत्यादिक त्यांना विशेष आशौच कलियुगांत उपयुक्त नसल्यामुळें येथें सांगत नाही. प्रतिलोमज जे (उत्तम वर्णांची स्त्री व कनिष्ठ वर्णांचा पुरुष यांपासून उत्पन्न) त्यांना आशौच नाही. मळ जाण्याकरितां स्नान मात्र आहे, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. **माधव** तर—“ईकर

जातीचे मनुष्यांनी शौच व आशौच हे श्रद्धास सांगितलेले करावे" ह्या ब्राह्मणवचनावरून श्रद्धाप्रमाणे सांगतो. हारलतें तही असेच आहे.

दत्तक्रीतकृत्रिमाविपुत्रेषु अहीनवर्णासुस्त्रीषुचसर्पिडत्वेपि प्रसवेमरणेचपूर्वापरपित्रोर्भर्तुश्चत्रिरात्रमेव न दशाहवि अनौरसेषुपुत्रेषुजातेषुचमृतेषुच परपूर्वासुभार्यासुप्रसूतासुमृतासुचेतित्रिरात्रानुवृत्तौविष्णुक्तेः सर्पिडानांत्वेकाहः परपूर्वासुभार्यासुपुत्रेषुकृतकेषुच भर्तुपित्रोश्चिरात्रस्यादेकाहस्तुसर्पिडतइति माधवीये-हारीतोक्तेः सूतकेमृतकेचैवत्रिरात्रंपरपूर्वयोः एकाहस्तुसर्पिडानांत्रिरात्रंयत्रवैपितुरिति मरीच्युक्तेश्च शंखः अनौरसेषुपुत्रेषुभार्यास्वन्यगतासुच परपूर्वासुचस्त्रीषुत्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते परपूर्वापुनर्भूः इदंस्व-र्णासु हीनवर्णासुतुशंखलिखितौ परपूर्वासुभार्यासुपुत्रेषुकृतकेषुच नानध्यायोभवेत्तस्यनाशौचंनोदकक्रिया ब्राह्मेपि आशौचंतुत्रिरात्रंस्यात्समवर्णेषुनिश्चितं यत्तुषडशीतौ अन्यपूर्वावरुद्धासुत्रिदिनाच्छुद्धिरिष्यते तास्वेवानन्यपूर्वासुपंचाहोभिर्विशुध्यतीति तत्रपंचाहेमूलंचित्यम् यत्तुयाज्ञवल्क्यः अनौरसेषुपुत्रेषुभार्या-स्वन्यगतासुचेत्येकाहमाह तदसंभिन्नौज्ञेयम् यदापितुरेकाहस्तदासर्पिडानांस्नानं अन्याश्रितेषुदारेषुपरपत्नी-सुतेषुच गोत्रिणःस्नानशुद्धाःस्युश्चिरात्रेणैवतत्पितेति प्रजापत्युक्तेः पितेतिबोदुरुपलक्षणं तथोपक्रमात् यत्तुदत्तकेपालकप्रतियोगिकपुत्रत्वात्पूर्वपितुर्नत्रिरात्रं पूर्वसंबंधनिवृत्तेश्चन दशाहादीतिकश्चित् तत्र जनकेपि वैजिकादभिसंबंधादनुहंयादधंयहमितिवाचनिकाशौचस्यानिवार्यत्वात् ।

दत्तक, क्रीत (विकत घेतलेला), कृत्रिम इत्यादिक पुत्र; हीन वर्णांशीं न जाणाऱ्या अशा स्त्रिया; यांचें सर्पिड्व असतांही यांच्या ठिकाणीं जनन व मरण झालें असतां पहिल्या व दुसऱ्या मातापितरांना आणि पतीला तीन दिवसच आशौच. दशाहा-दिक नाही. कारण, "औरसावांचून इतर पुत्रांचे ठायीं उत्पत्ति व मरण असतां, पूर्वीं एकाच्या असून नंतर दुसऱ्याच्या झालेल्या स्त्रिया त्या प्रसूत किंवा मृत झाल्या असतां त्रिरात्र आशौच." असें विष्णुवचन आहे. सर्पिडानां तर एक दिवस आशौच. कारण, "पूर्वीं एकाच्या असून नंतर दुसऱ्याच्या झालेल्या स्त्रिया, कृतक (केलेले) पुत्र यांच्या ठिकाणीं जनन किंवा मरण असतां पती व आईबाप यांना तीन दिवस आणि सर्पिडानां एकदिवस आशौच" असें माधवीयांत हारीतवचन आहे. आणि "जनन व मरण असतां पूर्वींच्यांना व पुढच्यांना तीन दिवस आशौच. जेथें पित्याला तीन दिवस तेथें सर्पिडानां एक दिवस आशौच." असें मरीचिवचनही आहे. शंख—"औरसभिन्न पुत्र, व्यभिचारिणी स्त्रिया, आणि परपूर्वा (पुनर्विवाहित) अशा स्त्रिया यांच्या ठिकाणीं जनन किंवा मरण असतां तीन दिवसांनीं शुद्धि होते." हें वचन आपल्या समान वर्णांच्या स्त्रियांविषयीं आहे. हीन वर्णांच्या स्त्रियांविषयींतर सांगतात—शंख व लिखित—"परपूर्वा भार्या (कमी जातीच्या दुसऱ्याच्या स्त्रिया आपण ठेवलेल्या), आणि पुत्र नसून पुत्रासारखे केलेले यांच्या ठिकाणीं जनन किंवा मरण असतां वेदाध्य-यनाला अनध्याय होत नाही. त्याचें आशौच नाही व उदकदानक्रियाही नाही." ब्राह्मांतही—"समान वर्णांचे ठायीं तीन दिवस आशौच निश्चित आहे." आतां जें षडशीतीत—"ज्यांचा पूर्वीं अन्य पति होता त्या स्त्रिया आपण अवरोधून ठेवल्या असतां त्यांत जनन किंवा मरण असेल तर तीन दिवसांनीं शुद्धि होते. ज्यांचा पूर्वीं अन्यपति नाही अशा स्त्रिया आपण अवरोधून ठेवल्या असून त्यांत जनन व मरण असेल तर पांच दिवसांनीं शुद्धि होते." या वचनांत पांच दिवसां-विषयीं मूल चिंत्य (अनुपलब्ध) आहे. आतां जें याज्ञवल्क्य—"औरसभिन्न पुत्र, परगामिनी भार्या, यांचे ठिकाणीं जनन व मरण असतां एकदिवस आशौच" असें सांगतो तें संनिध नसतां समजावें. जेव्हां पित्याला व पतीला एक दिवस सांगितलें तेव्हां सर्पिडानां स्नान समजावें. संनिध असतां पित्याला व पतीला तीन दिवस. कारण, "परगामिनी स्त्रिया, दुसऱ्यांच्या पत्नींचे पुत्र यांचे ठिकाणीं जनन व मरण असतां गोत्रज स्नानशुद्ध होतात, व पिता आणि पति हे तीन दिवसांनींच शुद्ध होतात" असें प्रजापतिवचन आहे. वचनांत 'पिता' या शब्दापें पतीही घ्यावा. कारण, दोघांचा उपक्रम आहे. आतां जें 'दत्तक हा पालक पित्याचा पुत्र असल्यामुळें पहिल्या (जनक) पित्याला त्याचें तीन दिवस आशौच नाही. आणि पहिल्या संबंध निवृत्त (सुटल) असल्यामुळें दहा दिवस वगैरे नाही' असें कोणी म्हणतो, तें बरोबर नाही. कारण, जनक पित्याला देखील "बीजसंबंध असल्यामुळें तीन दिवस अथ (आशौच) होईल" या मनुवचनानें प्राप्त झालेल्या आशौचाचें निवारण होणार नाही.

पितृमरणेपिदत्तकादीनांत्रिरात्रं शुद्धितत्त्वेब्राह्मे दत्तकश्चस्वयंदत्तःकृत्रिमःक्रीतएवचेत्युपक्रम्य सूत-केमृतकेचैवअशौचसंभोगिनइत्युक्तेः स्मृतिकौमुद्यांहारलतायामप्येवं दत्तकसपुत्रपौत्राणां

जननेमरणेबासर्पिडानामेकाहः क्षीजिनश्चेतिगौतमेनसाप्तपौरुषसापिंड्योक्तेः सर्पिडानांचैकाहस्योक्तत्वात् सर्पिडेत्तुपुत्रीकृतेदशाहएव तत्राकांक्षाभावात् सर्पिडत्वेनदशाहप्राबल्याच्च पूर्वापरभर्तुस्तपन्नयोःपुत्रयोस्त्वा-
हमाधवीयेमरीचिः मातुरैक्याद्विपित्कौभ्रातरावन्यगोत्रजौ एकाहंसूतकेतत्रित्रात्रंमृतकेतयोरितिदिक् ।

पिता मेल्य तरी दत्तक इत्यादि पुत्रांना तीन दिवस आशौच. कारण, शुद्धितत्त्वांत ब्राह्मांत “दत्तक, आपण होऊन दिलेला, कृत्रिम पुत्र, विकृत घेतलेला” असा उपक्रम करून सांगतो—“जनन व मरण असतां हे पुत्र तीन दिवस आशौचाचे भागी आहेत” असे सांगितलें आहे. स्मृतिकौमुदींत हारलतेंतही असेंच आहे. दत्तकाच्या पुत्रांप्रीं जांचें जनन किंवा मरण असतां सर्पिडांना एक दिवस आशौच. कारण, दत्तकाचे बीजी (जनक) कुलामध्येही सात पुरुषपर्यंत सर्पिष्णु गौतमानें सांगितलें आहे व सर्पिडांना एक दिवस आशौच वर सांगितलें आहे. सर्पिडांतल्या दत्तक इत्यादि पुत्र असेल तर त्याचें दहा दिवसच आशौच. कारण, तो सर्पिड असल्यामुळें त्याविषयी किती आशौच अशी आकांक्षा होत नाही. आणि वरील वचनांनीं तीन दिवस इत्यादि आशौच प्राप्त झालें तरी सर्पिड म्हणून दशाह आशौच जें सांगितलें तें ह्या ग्रंथादि आशौचापेक्षां प्रबलही आहे. पहिल्या व दुसऱ्या भर्त्यांपासून उत्पन्न पुत्रांना सांगतो माधवीयांत मरीचि—“माता एक असतां तिच्या ठिकाणीं भिन्न गोत्री अशा दोन पुरुषांपासून उत्पन्न दोन पुत्र ते परस्पर भ्राते होतात. त्यांमध्ये जनन असतां एक दिवस आणि मरण असतां तीन दिवस परस्पर आशौच समजावें.” ही दिशा समजावी.

ऊढकन्यानांतुविष्णुराह संस्कृतासुब्रीपुनाशौचंपितृपक्षे तत्प्रसवमरणेचेत्पितृगृहेस्यातांतदैकरात्रं-
रात्रंचेति प्रसवेएकरात्रंमरणेत्रिरात्रमितिचिज्ञानेश्वरापराकौ माधवस्तु प्रसवेपित्रिरात्रंपित्रोः एक-
रात्रंभ्रात्रादिवंधुवर्गस्य दत्तानारीपितुर्गेंहेसूयेताथम्रियेतवा तद्धुवर्गस्त्वेकेनशुचिस्तज्जनकस्त्रिमिरितिब्राह्मो-
क्तेरित्याह यत्तुक्श्चिदाह पक्षपदेनभ्रातरोगृह्यते वाक्यांतरेणभगिनीमृतौत्रिरात्रोक्तेरिति तथित्यम्
तदभावादेतद्विरोधाच्च भ्रातुःप्रसवेणैकाहः मृतौत्रिरात्रमितिकेचित् युक्तातुपक्षिणी परस्परंमृतौभ्रातृभ-
गिन्योःपक्षिणीभवेदितिब्राह्म्यात् भ्रातृभिन्नानामेकाहः वर्गोक्तेः इतरेपांतुयथाविधीतिवक्ष्यमाणवचनाच्च
यत्तुप्रधानगृहेमृतौपित्रोःपूर्णभ्रातृरुग्रहइतिकश्चिन् सनिर्मूलत्वाभ्याशौचंपितृपक्षेइत्येतद्विरोधाच्चभ्रांतः दत्ता-
नारीपितुर्गेंहेप्रधानेसूयतेयद् अग्रियतेवानदानस्याःपिताशुभ्येत्रिभिर्दिनैरितिकल्पतरौशुद्धितत्त्वेच पति-
गृहेप्रसवेतुपित्रादीनामाशौचंनास्ति मृतौपित्रोस्त्रिरात्रमस्त्येव प्रत्ताप्रत्तासुयोपित्सुसंस्कृतासंस्कृतासुच माता-
पित्रोस्त्रिरात्रंस्यादितरेपांतुयथाविधि अजातदंतासुपित्रोरेकरात्रमितिमाधवीये शंखकार्णाजिनि-
स्मृतेः बैजिकादभिसंबंधादित्युक्तेश्च स्मृत्यर्थसारेण्येवं ।

विवाहित कन्यांचें तर विष्णु सांगतो—“विवाहित स्त्रियांचें आशौच पितृपक्षांत (पितृकुळांत) नाही. त्या विवाहित कन्या बापाच्या घरीं प्रसूत किंवा मृत होतील तर एक दिवस आणि तीन दिवस आशौच होतें.” प्रसूत अगतां एक दिवस आणि मृत असतां तीन दिवस, असें विज्ञानेश्वर व अपराकौ सांगतात. माधव तर—प्रसूत अगतांही आईबापांल्य तीन दिवस आणि भ्राता इत्यादि बंधुवर्गाला एक दिवस. कारण, “विवाहित कन्या पित्याच्या घरांत प्रसूत होईल किंवा मरेल तर तिचा बंधुवर्ग एका दिवसांन व तिचा बाप तीन दिवसांनीं शुद्ध होतो” असें ब्राह्मवचन आहे, असें सांगतो. आतां जें कोणी एक सांगतो कीं, ‘विष्णुवचनांतील ‘पितृपक्षे’ या पदानें भ्राते ध्यावे, अर्थात् भ्रात्यांना त्रिरात्र समजावें. कारण, इतर वाक्यांनं भगिनी मृत असतां त्रिरात्र सांगितलें आहे’ तें वित्य (अयुक्त) आहे. कारण, इतर वाक्यांनं त्रिरात्र म्हणतो तें इतर वाक्य नाही. आणि ह्या ब्राह्मवचनाशीं विरोधही येतो. पित्याच्या घरीं प्रसूत असेल तर भ्रात्याला एक दिवस, आणि मृत असेल तर तीन दिवस, असें केचित् म्हणतात. परंतु पक्षिणी युक्त आहे. कारण, “भ्राता व भगिनी मृत असतां परस्पर-
रांल्य पक्षिणी आशौच होतें” असें ब्राह्मवचन आहे. भ्रात्याहून इतरांना एक दिवस आशौच. कारण, वरील ब्राह्मवचनांत बंधुवर्ग एक दिवसांन शुद्ध होतो, असें म्हटलें आहे. आणि माता व पिता यावांचून इतरांला यथाविधि म्हणजे जसें सांगितलें असेल तसें आशौच, असें पुढें सांगायचाचें वचनही आहे. आतां जें-बापाच्या मुख्य घरीं कन्या मृत असतां आईबापांना पूर्ण (दहा दिवस) आशौच. आणि भ्रात्यांल्य तीन दिवस, असें कोणीएक सांगतो, त्याचें तें सांगणें निर्मूल असल्यामुळें व ‘नाशांचें पितृपक्षे’ ह्या वरील विष्णुवचनांशीं विरोधही येत असल्यामुळें तो भ्रातिष्ठ झाला, असें समजावें. “दिकेरी कन्या पित्याच्या मुख्य घरीं जेव्हां प्रसूत होईल किंवा मरेल तेव्हां तिचा पिता तीन दिवसांनीं शुद्ध होईल” असें कश्यपकृत व शुद्धितत्त्वांतही आहे. कन्या पतीच्या घरीं प्रसूत असतां पिता इत्यादिकांना आशौच नाही. मृत असेल तर तीन दिवस

आशौच आहेच. कारण, “दिलेल्या व न दिलेल्या, संस्कार केलेल्या व संस्काररहित अशा कन्या मृत असतां आईबापांना तीन दिवस व इतरांना यथाविधि (जसें उक्त असेल तसें) आशौच समजावें. ज्यांना दांत उत्पन्न झाले नाहीत त्यांचें आईबापाला एकदिवस आशौच” असें **माधवीयांत शंख व कार्णाजिनिस्मृतिवचन** आहे. आणि “बीजसंबंध असल्यामुळें तीन दिवस” असें मनुवचनही उक्त आहे. **स्मृत्यर्थसारांतही** असेंच आहे.

माधवस्तु इदं त्रिरात्रं जातदंतपरम् दंतोत्पत्तेः प्रागेकरात्रपित्रोः सद्यस्त्वप्रौढकन्यायांप्रौढायां वासरा-
च्छुचिः प्रदत्तायां त्रिरात्रेण दत्तायां पक्षिणी भवेदिति **पुलस्त्योक्तेरन्यत्र कन्यामृतौ** पित्रोः पक्षिणी त्याह **षड-
शीतावपि** पितृगेहादितोन्यत्र यदि पुत्री प्रमीयते पक्षिणी तत्र पित्रोः स्यान्नान्येषामिति निश्चय इति ग्रामांतरे इ-
यमिति **स्मृत्यर्थसारे** भ्रातुस्तु पक्षिणी श्वशुरयोर्भगिन्यांच मातुलान्यांच मातुले पित्रोः स्वसरितद्वयपक्षिणी-
क्षपयेन्निशमिति **वृद्धवृहस्पतिस्मृतेः शुद्धितत्त्वकौर्मे** आदंतात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम् आप्र-
दानात्रिरात्रं स्यादशरात्रमतः परं पित्रोर्भृतौ स्त्रीणां त्रिरात्रं पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानांतु कथं भवेत् त्रिरात्रेणैव शु-
द्धिः स्यादित्याह भगवानन्यमइति **माधवीये वृद्धमनूक्तेः** इदं दशाहांतः ऊर्ध्वतु पक्षिणी भ्रातुर्भगिनी गृहेत-
स्यावातद्गृहे मृतौ त्रिरात्रमन्यत्र तु पक्षिणी तिषडशीतावुक्तं **ब्राह्मेपि** परस्परमृतौ भ्रातृभगिन्योः पक्षिणी भवेत्
मातुलाशौचवत्पुत्र्याः पितृव्याशौचमिष्यतइति **शिष्टास्त्वस्य निर्मूलत्वात्पितृव्ये स्नानमात्रमाहुः ।**

माधव तर-हें तीन दिवस आशौच दांत उत्पन्न झालेल्या कन्यांविषयीं आहे. दांत उत्पन्न होण्याच्या पूर्वी आईबापांना एक दिवस. कारण, “अप्रौढ (लहान) कन्येविषयीं सद्यःशौच, प्रौढ असेल तर एक दिवसांतें शुद्धि, दांत उत्पन्न झालेली असेल तर तीन दिवसांनीं शुद्धि, आणि दिलेली असेल तर पक्षिणी आशौच होतें.” ह्या **पुलस्त्य** वचनावरून पित्याच्या घरावांचून इतर ठिकाणीं कन्या मृत असतां आईबापांच्या पक्षिणी आशौच, असें सांगतो. **षडशीतीतही**—“बापाच्या घरा-
वांचून इतर ठिकाणीं जर कन्या मृत होईल तर आईबापांना पक्षिणी आशौच. इतरांना नाही, असा निश्चय आहे.” ही पक्षिणी अन्यगांवीं मृत असतां समजावी, असें **स्मृत्यर्थसारांत** आहे. आल्याला तर पक्षिणी. कारण, “सासू, सासरा, बहीण, मातुलाची पत्नी, मातुल, आल्या व मावशी यांचें आशौच पक्षिणी करावें” अशी **वृद्धवृहस्पतिस्मृति** आहे. **शुद्धितत्त्वांत कौर्मांत**—“दांत उत्पन्न होईपर्यंत सोदराविषयीं सद्यःशौच. चाल होईपर्यंत एकरात्र. विवाहांत तिचें दान होईपर्यंत त्रिरात्र. याच्यापुढें पतिकुलांत दहा दिवस.” आईबाप मृत असतां स्त्रियांना तीन दिवस आशौच. कारण, “आई-
बाप मृत असतां ऊढ स्त्रियांना आशौच कसें होईल ? तीन दिवसांनींच शुद्धि होईल, असें भगवान् यम सांगतो” असें **माधवीयांत वृद्धमनुवचन** आहे. हें दहा दिवसांच्या आंत समजलें असतां आहे. दहा दिवसांनंतर समजेल तर आईबापांचें कन्येला पक्षिणी आशौच. बहिणीच्या घरीं भाऊ मृत असतां अथवा बंधूच्या घरीं बहीण मृत असतां एक-
मेकांना तीन दिवस. इतर ठिकाणीं मृत असतां पक्षिणी, असें **षडशीतिस्मृतींत** सांगितलें आहे. **ब्राह्मांतही**—“भाऊ व बहीण हीं मृत असतां परस्परांचें परस्परांला पक्षिणी आशौच. मातुलाच्या आशौचाप्रमाणें (पक्षिणी) पितृव्याचें (चुल-
त्याचें) आशौच कन्येनें करावें.” **शिष्टतर** हें वचन निर्मूल असल्यामुळें पितृव्याविषयीं स्नान मात्र सांगतात.

त्रिंशच्छ्लोक्यां प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियर्विक्कसयाज्यस्वस्त्रीयेषु त्रिरात्रं त्रिदिवसमशुचिः
सोदकस्तूभन्न पक्षिण्याशौचमृत्विक्कुदुहितृसुतसहाध्यायिवंधुत्रयांते वासिश्चश्रूसमित्रश्चशुरभगिनिकाभागिने-
यप्रयाणे मातामह्यांचपित्रोः स्वसरिचविरतौ मातुले मातुलान्यांचाथोसज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्रामनाथेचनष्टे
शिष्योपाध्यायबंधुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुलेचैकरात्रं रात्रिसत्रह-
धारिण्यथतु कथमपि स्वल्पसंबंधयुक्ते स्नानं वा सोयुतं स्यादितदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यमिति अत्रमूलं **मिताक्ष-
रादौ** स्पष्टं दौहित्रभागिनेययोरुपनीतयोस्त्रिरात्रं अनुपनीतयोः पक्षिणी संस्थिते पक्षिणीं रात्रिदौहित्रभागिनी-
सुते संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितइति **वृद्धमनूक्तेः** संस्कृते दाहेन तेन दाहे त्रिरात्रं नान्यथेति
गौडाः तन्न विशेषवैयर्थ्यात् मातुलादौ सन्निधिविदेशाभ्यां पक्षिण्येकाहयोर्व्यवस्था **मनुः** त्रिरात्रमाहुरा-
शौचमाचार्ये संस्थिते सति तस्य पुत्रेच पत्न्यांच दिवारात्रमिति स्थितिः श्रोत्रिये स्वगृहे मृते त्रिरात्रं श्रोत्रियेतूपसंप-
न्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेदिति **स्मृतेरिति माधवः** एकग्रामीणे त्वेकाहः ऋत्विक्षुबह्वल्पकालश्रौतस्मार्तयाजनपरे-
त्रिरात्रैकरात्रेभ्ये यद्यपि कर्मकुर्वत एष वाचकः शब्दो भवतीति **शंभराचार्यैः** कर्ममध्ये ऋत्विक्स्वमुक्तम् तथा-

पिकर्मण्याशौचनिषेधात्तदुत्तरमेवैतज्ज्ञेयं गौडास्तु समानोदकानां त्र्यहोगोत्रजानामहःस्मृतं मातृबंधौगुरौ-
मित्रेर्मंडलाधिपतौतथेतिजाबालोक्तेर्मातृबंधुवैकाहमाहुः शिष्येस्वोपनीतेत्यहः शिष्यसतीर्थ्यब्रह्मचारि-
पुक्रमेण त्रिरात्रमहोरात्रमेकाहइतिमाधवीयेबौधायनोक्तेः अन्यत्रतुमनुः मातुलेपक्षिणीरात्रिशिष्य-
स्त्विक्वांधवेपुचेति बंधुत्रयंआत्मपितृष्वस्तमातृष्वस्तमातुलपुत्राः पितुःपितृष्वस्तमातृष्वस्तमातुलपुत्राः मातुः
पितृष्वस्तमातृष्वस्तमातुलपुत्राश्चेतिविज्ञानेश्वरः अत्रपक्षिणी पितृष्वस्नादिकन्यानामूढानांत्वेकाहः तद्वंधु-
वर्गस्त्वेकेनेतिपूर्वोक्तब्राह्मात् यत्पण्डशीत्यां एवंपित्रोर्भगिन्यौयेयेपितामहयोस्तथा येमातामहयोश्चैव
भगिन्यौतत्प्रजाश्रयाः मातुलाःस्वस्यपित्रोश्चपत्न्यश्चैषांप्रजाश्रयाः भ्रातरश्चेतिसर्वेषुपक्षिणीस्वगृहेत्यहम् एवं
श्वशुरजामातृदौहित्रविपदिस्मृतं यच्चयमः जामातरिमृतेशुद्धिखिरात्रेणोभयोःस्मृता पक्षिणीशालकानांस्या-
दितिशातातपोब्रवीत् इति तन्निर्मूलत्वान्मिताक्षरादिविरोधाच्चेष्ट्यम् ।

त्रिंशच्छ्लोकींत—“आचार्य, मातामह (आईचा बाप), कन्येचा पुत्र, श्रोत्रिय, ऋत्विज, यजमान, बहिणीचा पुत्र हे
आपल्या घरी मृत असतां तीन दिवस आशौच. समानोदक हा दोन्ही ठिकाणी (आपल्या घरी व परगुही कोठेही) सत
असतां तीन दिवस आशौच. ऋत्विज, कन्यापुत्र, सहाध्यायी (बरोबर अध्ययन करणारा), तीन प्रकारचे बंधु, शिष्य,
सासू, मित्र, मामरा, वहीण, बहिणीचा पुत्र, मातामही (आईची आई), आत्या, मावशी, मावळा, मावळ्याची पत्नी, हे
मृत असतां पक्षिणी आशौच. आपल्या देशाचा राजा, ग्रामाचा अधिपति हे मृत असतां सज्जोति आशौच. शिष्य, उपा-
ध्याय, तीन प्रकारचे बंधु, गुरुपुत्र, आचार्य, पत्नीगोत्रज, अनूचान (गुरुपासून सांगवेदाचें अध्ययन केलेला), श्रोत्रिय,
आणि मातुल हे आपल्या घरावांचून इतर ठिकाणी मृत अगतां एकदिवस आशौच. स्वाध्यायी ब्रह्मचारी मृत असतां एकरात्र
आशौच. सरणाराचा कसाही अन्य संबंध अगला तरी वस्त्रगृहित स्नान करावें. हें सारं आशौच ब्राह्मणादिक चारी वर्णांना
समान आहे.” याविषयी मूलवचनं मिताक्षरादि ग्रंथांन स्पष्ट आहेत. दौहित्र व भगिनीपुत्र हे मुंज झालेले मृत असतील
तर तीन दिवस. मुंज झालेले नयतील तर पक्षिणी. कारण, “दौहित्र, आणि बहिणीचा पुत्र हे मृत अगतां पक्षिणी आशौच.
हे संस्कार केलेले मृत अगतील तर तीन दिवस आशौच, अगा धर्म व्यवस्थित आहे.” असे वृद्धमनुवचन आहे. या
वचनांत संस्कार म्हणून तो दाहानें संस्कार केलेला असेल तर तीन दिवस आशौच. दाह नसेल तर आशौच नाही, असें
गौड सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, संस्कार केलेला असेल तर हें विशेष गांवाणें व्यर्थ होईल. वरील वचनांत मातुल,
शिष्य, तीन प्रकारचे बंधु इत्यादिकांचें पक्षिणी व एक दिवस सांगितलें तें संनिध अगतां पक्षिणी आणि विदेशी असतां एक
दिवस, अशी व्यवस्था समजावी. मनु—“आचार्य मृत अगतां तीन दिवस आशौच असें सांगतात. आचार्याचा पुत्र व पत्नी
मृत असतां एक दिवस आशौच, अशी मर्यादा आहे.” श्रोत्रिय घरी मृत अगतां तीन दिवस. कारण, “श्रोत्रिय मृत
असतां तीन दिवस आशौच करावें” अशी स्मृति आहे. असे माधव सांगतो. एका गांवांत मृत अगतां एक दिवस.
ऋत्विज मृत अगतां त्यानं प्रांत स्मार्ताचें गजन बहुत नाळ केलें असेल तर त्रिरात्र, आणि अल्पकाल केलें असेल तर पक्षिणी
समजावें. जरी कर्म करीत अगलेला जो विप्र त्याचा वाचक ऋत्विज शब्द आहे म्हणून शंकराचार्यांनीं कर्मानर्थे त्यांना
ऋत्विक् म्हणावें, नंतर ते ऋत्विक् नाहीत, असें सांगितलें तरी कर्मानर्थे आशौचाचा निषेध अगत्यामुलें कर्म झाल्यावरच
हें आशौच जाणावें. गौड तर—“समानोदकांचें आशौच तीन दिवस, गोत्रजांचें एक दिवस, मातेचा बंधु, गुरु, मित्र, व
राजा हे मृत असतां एकदिवस” ह्या जावालिबचनावरून मानृधंयूंना एक दिवस सांगतात. आपण उपनयन केलेला शिष्य
मृत असतां तीन दिवस. कारण, “शिष्य, सतीर्थ्य (ज्यांचा गुरु एक ते परस्पर), ब्रह्मचारी, हे मृत अगतां अनुक्रमानें
तीन दिवस, रात्रदिवस, एक दिवस आशौच” असे माधवीयांत बौधायनवचन आहे. इतर शिष्य मृत असेल तर सांगतो
मनु—“मातुल, शिष्य, ऋत्विक्, बंधव हे मृत अगतां पक्षिणी आशौच.” तीन प्रकारचे बंधु म्हणजे आमबंधु, पितृ-
बंधु, व मातृबंधु समजावे; ते असे—आपल्या आत्याचा पुत्र, आपल्या मावशीचा पुत्र, आपल्या मातुलाचा पुत्र हे आत्मबंधु.
पित्याच्या आत्याचा पुत्र, पित्याच्या मावशीचा पुत्र, पित्याच्या मातुलाचा पुत्र हे पितृबंधु. मातेच्या आत्याचा पुत्र, व मातेच्या
मावशीचा पुत्र, व मातेच्या मातुलाचा पुत्र हे मातृबंधु होत; असे विज्ञानेश्वर सांगता; हे मृत अगतां पक्षिणी आशौच.
आत्या, मावशी इत्यादिकांची विवाहित कन्या मृत अगतां एक दिवस आशौच. कारण, “तिचा बंधुवर्ग एका दिवसांनं शुद्ध होतो”
असें पूर्वी उक्त ब्राह्मवचन आहे. आतां जें पण्डशीर्तीत—“याप्रमाणें ज्या आईबापांच्या” भगिनी, पितामह पितामहीच्या
भगिनी, मातामह मतामहीच्या भगिनी, आणि त्यांच्या प्रजा (अपत्यें), आपले व आईबापांचे मातुल व त्यांच्या पत्नी आणि प्रजा

१ तीन प्रकारचे बंधु येथेंच पुढें विज्ञानेश्वरोक्त लिहिलेले आहेत, ते पाहावे. २ पक्षिणी म्हणजे दिवसा असेल तर तो दिवसरात्र
आणि पुढचा दिवस. रात्री असेल तर ती रात्र पुढचा दिवस आणि दुसरी रात्र बास पक्षिणी असें म्हणतात.

(अपक्षे), हे सारे भ्राते (बंधु) आहेत, हे मृत असतां पक्षिणी आशौच. आपल्या घरीं मृत असतील तर तीन दिवस आशौच. याप्रमाणें श्वशुर, जामाता, व दौहित्र हे मृत असतां समजावें.” आणि जैष्यम्—“जामाता मृत असतां दोघांची (श्वशुर व सासू यांची) तीन दिवसांनीं शुद्धि होते. शालकांची (पत्नीच्या भ्रात्यांची) पक्षिणीनें शुद्धि होते, असें शातातप सांगता झाला.” असें सांगतो तें निर्मूल असल्यामुळे व मिताक्षरा इत्यादि ग्रंथांशीं विरोध येत असल्यामुळे उपेक्षणीय (अप्राग्य) आहे.

मदनपारिजातेविष्णुः असपिंडेस्ववेश्यनिमृताकरात्रं अत्रहरदत्तः अंतःशवेचेत्यापस्तंबसूत्रतः शवेप्रामेधनुः शताद्वर्गाग्नमभोज्यं दीपमुदकुंभं बोपनिधाय तु भुंजीत यदिसमानवंशनगृहमेवंसूतिकायामित्याह प्रधानगृहमृतौ तु गृहेयस्य मृतः कश्चिदसपिंडः कथंचन तस्याप्यशौचविज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशय इत्यंगिरसोक्तमिति माधवः एतेन त्रिरात्रमसपिंडेषु स्वगृहे संस्थितेषु चेति कौर्मव्याख्यातं शुद्धितत्त्वबृहन्मनुः श्वश्रूद्रपतिताश्चात्यामृताश्चेद्विजमंदिरे शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा दशरात्राच्छुनिमृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः द्वाभ्यां तु पतिते गृहमंत्ये मासचतुष्टयात् अत्यंत्येव जयेद्वेहमित्येवं मनुरब्रवीत् अंत्यो म्लेच्छः अत्यंत्यः श्रपाक इति वाचस्पतिः तत्रैव यमः द्विजस्य मरणे वेदमविशुध्यति दिनत्रयात् संवर्तः गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःश्वशवदूषिते प्रोत्सृज्य मृन्मयं भांडं सिद्धमंत्रं तथैव च गोमयेनोपलिप्यथ छागेन प्रापयेद्बुधः ब्राह्मणैर्मंत्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः सर्वमभ्युक्षयेद्वेदमततः शुध्यत्यसंशयम् बृहद्विष्णुः ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात् गृहे पश्चादौमृतेत्येवं ।

मदनपारिजातांत विष्णुः—“आपल्या घरीं सपिंडव्यतिरिक्त मृत असतां एकदिवस आशौच.” येथें हरदत्त—“आंत शव असतां” या आपस्तंबसूत्रावरून गांवांत शव असतां शंभर धनुष्यांच्या आंत तें शवगृह असेल तर अन्न भोजन करूं नये. तें शवगृह आपल्या समान वंशांतील नसेल तर दीप किंवा उदकुंभ मध्ये ठेऊन भोजन करावें. सूतिकाविषयीही असेंच समजावें, असें सांगतो. मुख्य घरीं असपिंड मृत असेल तर—“ज्याच्या घरीं कोणी असपिंड मरेल त्यालाही आशौच तीन दिवस, याविषयी संशय नाही.” असें अंगिरसांनीं सांगितलेलें करावें, असें माधव सांगतो. येणेंकरून “आपल्या घरीं असपिंड मृत असतां तीन दिवस आशौच” ह्या कौर्मवचनाचें व्याख्यान झालें. **शुद्धितत्त्वांत बृहन्मनुः**—“ब्राह्मणाच्या घरीं कुत्रा, शूद्र, पतित आणि अंत्य हे मृत असतील तर त्याविषयीं जसें मनुनें सांगितलें तसें सांगतो—कुत्रा मृत असतां दहा दिवसांनीं घर शुद्ध होतें. शूद्र मृत असतां एक महिन्यांनीं शुद्ध होतें. पतित मृत असतां दोन महिन्यांनीं घर शुद्ध होतें. अंत्य (म्लेच्छ) मृत असतां चार महिन्यांनीं घर शुद्ध होतें. अत्यंत्य मृत असतां घर वर्ज्य करावें, असें मनु सांगता झाला.” अत्यंत्य म्हणजे चांडाल, असें वाचस्पति सांगतो. तेथेंच यम—“घरांत ब्राह्मण मृत असतां तीन दिवसांनीं घर शुद्ध होतें.” संवर्त—“आंत शव राहून दूषित झालेल्या घराची शुद्धि सांगतो—मातीचीं भांडीं टाकून तसेंच शिजलेलें अन्न टाकून गोमयांनीं सारवून बोकडाकडून हुंगवावें. ब्राह्मणांनीं मंत्रांनीं पवित्र केलेलें असें सुवर्ण व कुशयुक्त उदक घेऊन साऱ्या घराला प्रोक्षण करावें. म्हणजे घर शुद्ध होतें यांत संशय नाही.” **बृहद्विष्णुः**—“कोणाचाही शव गांवांमध्ये जांपर्यंत राहिलेला आहे तोपर्यंत गांवाला आशौच. शव गेलें असतां गांव शुद्ध होतो.” घरांत पशु इत्यादिक मृत असतांही असेंच समजावें.

यतुमाधवीयेप्रचेतसामावृषसादिपुत्रिरात्रमुक्तं मावृषसामातुलयोः श्वश्रूश्च शुरयोर्गुरोः मृते चर्विजियाज्ये च त्रिरात्रेण विशुध्यतीति गुरुराचार्यः ऋत्विक्कुलागतः तत्स्वगृहमृतौ ज्ञेयं श्वशुरयोरेन्यत्र मृतावपि सन्निधौ त्रिरात्रम् असन्निधौ पक्षिणी देशांतरे एकरात्रम् वक्ष्यमाणविष्णूक्तेरिति माधवगौडादयः अन्यत्र तु मावृषसादिपु पित्रोः स्वसरितद्वक्षपक्षिणीं क्षपयेन्निशामिति वृद्धमनूक्तम् यतुवृद्धमनुः भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते शालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुध्यतीति तद्वा एदौहित्रादौ देशांतरे शालकसुतजामात्रोः स्वदेशे ज्ञेयं शालके तु स्वदेशे एकाहः आचार्यपत्नीपुत्रोपाध्याय मातुलश्च श्वश्रूश्च श्वश्रूर्यसहाध्यायि शिष्येष्वेकरात्रमिति माधवीयेविष्णूक्तेः हरदत्तीये दशश्लोक्या मज्येवं श्वश्रूर्यः शालकः देशांतरे स्नानम् श्वश्रुर्योर्देशांतरे एकाहः जाबालः एकोदकानां तु ग्र्यहोगोत्रजानामहः स्मृतं सर्वत्र मूल्याभावेपि क्रियाकर्तुर्देशाहः गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् प्रेताहारैः समंतत्र दशरात्रेण शुध्यतीति मनुक्तेः शिष्य इत्युपलक्षणं निरन्वये सपिंडे तु मृते ससिद्धान्वितः तद्दशौचं पुराषीर्वा-

कुर्यात्पितृवृत्तक्रियामितिमाधवीयेब्राह्मोक्तेः दिवोदासीये सगोत्रोवासगोत्रोवायोमिदधात्सत्त्वेनरः सोपिकुर्यान्नवश्राद्धंशुध्येच्चदशमेहि यत्रैकविपयेपक्षिण्येकाहादिपक्षद्वयमुक्तं तत्रसन्निधिविदेशमैत्र्यादिकृता व्यवस्था ।

आतां जे माधवीयांत प्रचेतसानें मावशी इत्यादिकांचें तीन दिवस सांगितलें—“मावशी, मातुल, सासू, सासरा, गुरू (आचार्य), ऋत्विज (कालपरंपरागत) आणि यजमान हे मृत असतां तीन दिवस आशौच” असें तें आपल्या घरी मृत असतां जाणावें. सासू सासरा हे अन्यत्र ठिकाणीं मृत असेल तरी संनिध असतां तीन दिवस. धसंनिध असतां पक्षिणी. देशांतरीं मृत असतां एक दिवस, असें पुढें सांगावयाच्या विष्णुवचनावरून समजावें, असें माधव, गोड इत्यादिक सांगतात. मावशी इत्यादिक आपल्या पंगवांचून इतर ठिकाणीं मृत अगतील तर “आईबापांची बहीण मृत असतां पक्षिणी आशौच” हें वृद्धमनूनें उक्त समजावें. आतां जे वृद्धमनु—“संस्कार केलेली बहीण, संस्कार केलेला भ्राता, मित्र, जामाता, दौहित्र, बहिणीचा पुत्र, शालक, व शालकपुत्र हे मृत अगतां मद्यःस्नानानें शुद्ध होते” असें सांगतो तें भ्राता, दौहित्र इत्यादिक देशांतरीं मृत असतां समजावें. शालकपुत्र व जामाता हे स्वदेशीं मृत अगतां समजावें. शालक स्वदेशीं मृत असेल तर एक दिवस. कारण, “आचार्यपुत्रा, आचार्यपुत्र, उपाध्याय, मातुल, सासू, सासरा, शालक, गृहाध्यायी, आणि शिष्य हे मृत असतां एक दिवस” असें माधवीयांत विष्णुवचन आहे. दृग्दत्ताच्या ग्रंथांत दशश्लोकींतही असेंच सांगितलें आहे. श्रुत्युयं सणजे शालक तो देशांतरीं मृत अगतां स्नान. सासू, सासरा हे देशांतरीं मृत अगतां एक दिवस. जावाल—“समानोदकांना (आठव्या पुरुषापासून पुढच्यांना) तीन दिवस, आणि गोत्रजांना एक दिवस आशौच.” मूल्य धेतल्यावांचून देखील अत्यकर्म करणाराला दहा दिवस आशौच कारण, “मृत झालेला गुरूचें शिष्यानें त्याच्या संपिंडांसह वर्तमान गृहून पंतुक कर्म (अत्यकर्म) करावें. तो अत्यकर्म करणारा शिष्य दहा दिवसांनीं शुद्ध होतो” असें मनुवचन आहे. या वचनांत ‘शिष्य’ हें उपलक्षण आहे कारण, “संपतिरहित असा संपिंड मृत असेल तर दयायुक्त होऊन त्याचें आशौच पूर्वीं आचरण करून त्या संपिंडाची क्रिया पित्याप्रमाणें करावी.” असें माधवीयांत ब्राह्मवचन आहे. दिवोदासीयांत—“गोत्र क्रिया अगतांचे जो कोणी मगाला आर्ति देईल त्यानें देखील नवश्राद्ध करावें; आणि तो दहाव्या दिवशीं शुद्ध होईल.” जेथें एकाविपयीं पक्षिणी व एक दिवस आशौच असे दोन पक्ष सांगितले आहेत तेथें संनिधि व असंनिधि, मैत्री इत्यादिकांवरून व्यवस्था समजावी.

त्रिंशच्छ्लोकयाम् वानप्रस्थयतां चोपरमतिकुलजेपंढकेवाप्रवः स्याशोपिदोविप्रगृह्यैमृतवतितुदिनयुद्ध- विद्धेतुसद्यः अत्रमूलमाकरेस्पष्टम् युद्धमग्निमृतस्यस्नानं उग्रतेनगहवेयश्वैःश्वत्रधर्महतस्यच सद्यःसंतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमितिस्थितिगितिमनूक्तेः यज्ञोत्थकर्मसर्वतदेवेत्यर्थः यस्तुभारतेराजधर्मेषु अशोच्योहि- हतःशूरःस्वर्गलोकेमहीयते नह्यन्नमुदकं तस्यस्नानंनान्यशौचकमितिश्राद्धादिनिषेधःमपुत्राद्यभावपरः अत- एवतत्रकर्णादीनांश्राद्धमुक्तम् अन्येतुदशपिंडनिषेधमाहुर्यतिवचनं यत्तुपराशरः आहवेपिहतानांचणकरात्रम- शौचकमिति तद्युद्धक्षतेनकालांतरमृतेज्यम् असन्निधोस्नानमितिमाधवः शुद्धितत्त्वेष्विपुराणे दंष्ट्रिभिः- शृग्भिर्वापिहताम्लेच्छैश्चतस्करैः येम्याम्यर्थेहतायांतिराजनस्वर्गनसंशयः सर्वपामेववर्णानांश्रित्रियस्यविशे- पतः यत्तुवृहस्पतिः दिवाहवेविशुताचराज्ञागोविप्रपालने मद्यःशौचंमृतस्याहकुर्यहंचान्येमहर्षयः तच्छस्त्रं विनापराङ्मुखहतेचत्रिग्रात्रं गज्ञावध्येहतेमद्यःशौचमन्यत्रत्रिग्रात्रं तत्रैवव्याघ्रः क्षतेनश्रियतेयस्तुतस्या- शौचंभवेद्विधा आसप्राहत्रिग्रात्रंस्याहजग्रात्रमतःपरं शम्बाघातेऽयहादूर्ध्वयदिकश्चित्प्रमीयते आशौचंप्राकृतं- तस्यसर्ववर्णपुनित्यशः शम्बाघातेक्षतंविना श्वस्पशंनुहारीनः श्वस्पशोप्राप्तमंनप्रविशेयुरानक्षत्रदशनात्रा- त्रौचेदादित्यस्य यत्तुमनुः अहार्चकेनराज्याचत्रिग्रात्रैरेवचत्रिभिः श्वस्पशोविशुध्यंतित्यहातूदकदायितनइति अहाराज्याचेत्यहोरात्रमित्युक्तं त्रिभिस्त्रिग्रात्रैरितिनवरात्रमेवंदशरात्रमित्यर्थः नतदभ्राशनेतद्गृह्वासेनापदिच- ज्ञेयं अंगिराः आशौचंयस्यसंसर्गादापतेद्गृहमेधिनः क्रियास्तस्यनलुप्यंतेगृहाणांचनतद्भवेत् ।

त्रिंशच्छ्लोकींत—“आपल्या कुलांतील कोणी वानप्रस्थ, संन्याशी व नमुंग मृत असेल तर स्नान करावें. श्री, गार्ह, ब्राह्मण यांच्या संरक्षणाकरितां कोणी मृत असेल तर एक दिवस आशौच करावें. युद्धामध्ये शस्त्रानें विद्ध होऊन मृत असेल तर सद्यःशुद्धि (स्नान) होतें.” याविषयीं मूलवचन आकर ग्रंथांत स्पष्ट आहे. समरांगणांत मृत असेल तर स्नान कारण, “युद्धामध्ये शस्त्रानें एकामेकांस मारीत असतां क्षात्रधर्मानें मृत असेल तर तत्काल यज्ञ होतो, व तशीच तत्काल ६७ निर्ण०

शुद्धि होते” असें मनुवचन आहे. यज्ञ म्हणजे सर्व अंत्यकर्म त्या वेळींच होतें, असा अर्थ आहे. आतां जो भारतांत राजधर्मांत—“युद्धामध्ये शूर मेला असतां त्याचा शोक करूं नये; कारण, तो स्वर्गलोकामध्ये पूज्य होतो. त्याला अन्न व उदक द्यावयास नको. त्याच्या निमित्तानें ज्ञान व आशौच नाही” असा श्राद्धादिकांचा निषेध सांगितला, तो पुत्रादिकांचा अभाव असतां समजावा. म्हणून तेथें कर्णादिकांचें श्राद्ध सांगितलें आहे. इतर ग्रंथकार तर-संन्याशाप्रमाणें दशपिंडांचा निषेध सांगतात. आतां जें पराशर—“युद्धामध्ये मृतांचें देखील एक दिवस आशौच” असें सांगतो. तें युद्धांत क्षत होऊन कालांतरी मृत असतां समजावें. असंनिध असतां ज्ञान असें माधव सांगतो. शुद्धितत्त्वांत अग्निपुराणांत—“चारही वर्णामध्ये जे कोणी आपल्या खात्रीसाठीं झटत असतांना व्याघ्र, महिष, म्लेच्छ, तस्कर (चोर) इत्यादिकांनीं मारले असतील ते स्वर्गास जातात, यांत संशय नाही. आणि अशा हेतूकरितां क्षत्रिय मृत असेल तर तो विशेषकरून स्वर्गास जातो.” आतां जें बृहस्पति—“छत्रां लोकांच्या लढाईत; विजेनें; राजानें; गाई, ब्राह्मण यांच्या संरक्षणविषयीं जो मृत असेल त्याचें सद्यःशौच (ज्ञान) होतें. इतर ऋषि तीन दिवस आशौच असें सांगतात” तें युद्धास पराब्रुव झालेला शस्त्रावांचून मृत असतां तीन दिवस समजावें. राजानें मारण्यास योग्य अशाला मारलें असतां सद्यःशौच. इतरांविषयीं तीन दिवस. तेथेंच व्याघ्र—“शस्त्रानें क्षत होऊन जो मरतो त्याचें आशौच दोन प्रकारचें होतें. सात दिवसांच्या आंत मरेल तर तीन दिवस. सात दिवसांनंतर मरेल तर दहा दिवस आशौच. शस्त्रानें क्षत झाल्यावांचून तीन दिवसानंतर कोणी मरेल तर चारही वर्णामध्ये प्राकृत (इतर मृतांसारखें) आशौच सर्वदा समजावें.” शवाला स्पर्श केला तर सांगतो. हारीत—“शवाला स्पर्श करणांरीं नक्षत्रदर्शन होईपर्यंत गांवांत प्रवेश करूं नये. रात्रां स्पर्श करितील तर सूर्यदर्शनापर्यंत गांवांत प्रवेश करूं नये.” आतां जें मनु—“शवाला स्पर्श करणारे एका दिवसानें आणि तीन त्रिरात्रांनीं मिळून दहा दिवसांनीं शुद्ध होतात. उदक देणारे (समानोदक) तीन दिवसांनीं शुद्ध होतात.” असें दहा दिवस आशौच सांगतो, तें आशौचाचें अन्न-भक्षण करीत असतां व त्यांच्या घरीं रहात असतां आणि आपत्काल नसतां समजावें. अंगिरा—“ज्या गृहस्थाश्रम्याला इतराच्या संसर्गांनें आशौच प्राप्त होईल त्याच्या क्रिया (कर्म) छुप्त होत नाहीत. कारण, तें आशौच गृह्यकर्माना नाही.”

अथनिर्हाराशौचम् स्नेहेनसवर्णनिर्हारेतदन्नाशनेतद्गृहवासेचदशाहः तदन्नानशनेतद्गृहवासे-
त्र्यहः गृहवासेन्नाभक्षणेचैकाहः भृतिप्रहणेननिर्हारेदाहेचतज्जात्याशौचं यदिनिर्हरतिप्रेतं प्रलोभाक्रांतमानसः
दशाहेनद्विजः शुध्येद्दशहेनभूमिपः मासार्धेनचवैश्यस्तुशूद्रोमासेनशुध्यतीति कौर्मोक्तेः विजातीयनिर्हा-
रेतुशवजातीयमाशौचं अत्रभृतिप्रहेद्विगुणं अवरश्चेद्वरं वर्णवरोवाप्यवरं यदि बहेच्छवंतदाशौचं द्रव्यार्थेद्वि-
गुणं भवेदिति व्याघ्रोक्तेः कौर्ममेतदिति गौंडाः दाहेष्येवं यतु ब्राह्मे योसवर्णतुमूल्येन नीत्वा चैव दहेन्नरः
आशौचंतु भवेत्स्यप्रेतजातिसमं नृपेति तदापदिज्ञेयं सोदकनिर्हारेतुदशाह इति माधवः अलंकरणेतु शंखः
कृच्छ्रपादोऽसपिंडस्य प्रेतालंकरणे कृते अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते धर्मार्थमनाथसवर्णहरेण प्रेता-
करणे च द्विजस्यानंतयज्ञफलं स्नानप्राणायामो म्निस्पर्शश्चेति माधवीये अग्निदेव्येवं प्रेतसंस्पर्शसंस्कारैर्ब्राह्मणो-
नैष दुष्यति बोढाचैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुध्यतीत्यपराकं बृहदपराशरोक्तेः मातुलत्वादिसंबंधे-
त्रिरात्रं असंबंधिद्विजान्वहित्वादहित्वाचसद्यःशौचसंबंधे त्रिरात्रमिति पैठीनसिस्मृतेः ।

आतां प्रेत निर्हरणादिकांचें आशौच सांगतो—

जेहाच्या योगानें आपल्या जातीचें प्रेत नेलें असतां त्याचें अन्न भक्षण करून त्याच्या घरीं वास करील तर दहा दिवस आशौच. त्याचें अन्न भक्षण न करितां त्याच्या घरीं वास करील तर तीन दिवस आशौच. त्याच्या घरीं वासही करीत नाही व अन्नही भक्षण करीत नाही तर एक दिवस आशौच. द्रव्य घेऊन प्रेत नेईल व त्याचा दाह करील तर आपल्या जातीचें आशौच समजावें. कारण, “द्रव्यलोभानें जर प्रेत नेईल तर ब्राह्मण दहा दिवसांनीं शुद्ध होईल, क्षत्रिय बारा दिवसांनीं, वैश्य पंधरा दिवसांनीं, आणि शूद्र एका महिन्यानें शुद्ध होतो” असें कौर्मवचन आहे. भिन्न जातीचें प्रेत नेईल तर प्रेताच्या जातीचें आशौच. भिन्न जातीचें प्रेत नेण्याविषयीं मजुरी घेईल तर दुप्पट आशौच. कारण, “कमी जातीचा मनुष्य उत्तम जातीच्या प्रेताला वाहील अथवा उत्तम जातीचा मनुष्य कमी जातीच्या प्रेतुला वाहील तर त्या प्रेताच्या जातीचें आशौच त्याला प्राप्त होईल. आणि द्रव्यासाठीं वाहील तर दुप्पट आशौच होईल.” असें व्याघ्रवचन आहे. हें कौर्मवचन असें गौंड म्हणतात. दाहाविषयीं देखील असेंच समजावें. आतां जें ब्राह्मण—“जो मनुष्य दुसऱ्या जातीच्या प्रेताला मजुरीनें नेऊन दहन करील त्याला प्रेताच्या जातीसारखें आशौच होईल.” येथें दुप्पट सांगितलें नाही, तें आपत्कालीं समजावें. समानोदक प्रेताचें निर्हरण केलें तर दहा दिवस आशौच, असें माधव सांगतो. प्रेताला अलंकार करील तर सांगतो शंख—“अस-

पिंडाच्या प्रेताला अलंकार करील तर पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. अज्ञानानें करील तर उपवास करावा. उपवासाविषयीं शक्ति नसेल तर ज्ञान करावें. धर्मासाठीं अनार्थ अशा समानवर्णाच्या प्रेताचें निर्हरण व क्रिया करील तर द्विजाला अनंत यज्ञाचें फल प्राप्त होतें. ज्ञान, प्राणायाम व अग्निस्पर्श करावा म्हणजे शुद्ध होते, असें माधवीयांत मागितलें आहे. अग्नि देणाऱ्या-विषयीं देखील असेंच समजावें. कारण, “प्रेताचा स्पर्श व संस्कार केल्यानें ब्राह्मण दोषी होत नाही. प्रेत वाहणारा व अग्नि देणारा तत्काल ज्ञान करून शुद्ध होतो” असें अपराकांत वृद्धपराशरवचन आहे. मातुल इत्यादिसंबंधी प्रेत असेल तर तीन दिवस आशौच. कारण, “संबंधरहित अशा द्विजांचीं प्रेतें वाहून व जाळून सद्यःशौच होतें. संबंधी प्रेत असेल तर तीन दिवस आशौच.” अशी पैठीनसिस्मृति आहे.

गौतममिताक्षरायांवृद्धात्रिः सूतकाद्विगुणंशवंशावाह्विगुणमार्तवं आर्तवाह्विगुणासूतिस्ततोपि-शवदाहकः अत्रपूर्वेणोत्तरनिवृत्तिरित्यर्थः **विष्णुः** मृतद्विजंनशूद्रेणहारयेन्नशूद्विजेन **देवलः** ब्रह्मचारी-नकुर्वीतशववाहादिकक्रियाम यदिकुर्वाश्चेत्कृच्छ्रं पुनःसंस्कारमेवच **याज्ञवल्क्यः** आचार्यपितृपाध्याया-निर्हत्यापित्रतीव्रती अनुगमनेतुमपिडेनदोषः विहितंहिमपिंडानांप्रेतनिर्हरणादिकं तेषां करोतियः कश्चित्तस्या-धिक्यंनवित्यतइतिदेवलोक्तः दोषःस्यात्त्वसपिंडस्यतत्रानाथक्रियांविनेतिहारीनोक्तेश्च समोत्कृष्टवर्णे-तुमाधवीयेकण्वः अनुगम्यशवंबुद्ध्यास्नात्वास्पृष्टाहुताशनं सर्पिःप्राश्यपुनःस्नात्वाप्राणायामैर्विशुध्यतीति हीनवर्णे तु शत्रियेहः वैश्येपक्षिणी शूद्रेत्रिरात्रम् शत्रियस्यवैश्येहः शूद्रेपक्षिणी वैश्यस्यशूद्रेहरिति **विज्ञानेश्वरः** माधवस्तु विप्रस्यवैश्येद्वयहः शत्रस्यशूद्रेप्येवं अन्यत्प्राग्वन स्नानाग्निस्पर्शघृताशनानिसर्वत्रेत्याहहीनवर्णस्यदाहौर्ध्वदेहिककरणे तु **ब्राह्मे** ब्राह्मणोहीनवर्णस्यनकुर्यादौर्ध्वदेहिकं कामाहोभातथामोहात्कृत्वात-जातितांत्रजे न **मनुः** ब्राह्मणानां याजनंकृत्वापरेपामंत्यकर्मच अभिचारमहीनंचत्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति परेषां सर्ववर्णानांहीनपुतहैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गुण्यावृद्धम् ।

गौतममिताक्षरें वृद्धात्रि—“जननाशांन्यापेक्षां मृताशांचाचा दोष दुष्पट आहे. मृताशांचाहून आर्तवाचा दोष दुष्पट आहे. आर्तवाहून सूतिकेचा दोष दुष्पट. आणि सूतिकेहून शवदाहकाचा दोष दुष्पट आहे.” यांत पूर्वे आशौचानें पुढच्याची निवृत्ति होत नाही, असें तात्पर्य. **विष्णु—**“मृत झालेल्या द्विजाला शूद्राकडून नेवतूं नये. व शूद्राला द्विजाकडून नेवतूं नये.” **देवल—**“ब्रह्मचाऱ्यानें प्रेत वाहणें वगैरे कर्म करूं नये; जर करील तर प्रायश्चित्ताचें प्राजापत्यकृच्छ्र व पुनः-संस्कार करावा.” **याज्ञवल्क्य—**“आचार्य, पिता आणि उपाध्याय यांच्या प्रेताला नेऊनही ब्रह्मचारी आपल्या व्रतापासून अष्ट होत नाही.” सर्पिडप्रेताला अनुगमन केलें तर दोष नाही. कारण, “सर्पिडांना प्रेताचें वाहणें वगैरे शास्त्रविहित आहे. जो कोणी सर्पिडप्रेताचें वाहणें वगैरे करितो त्याला अधिक दोष नाही” असें देवलवचन आहे. “अनाथप्रेतकियेवांचून अगर्पिडाच्या प्रेताचें वाहणें वगैरे करील तर दोष आहे.” असें हारीतवचनही आहे. आपल्या समानजातीचा किंवा उत्कृष्ट जातीचा प्रेत असेल तर सांगतो **माधवीयांत कण्व—**“बुद्धिपूर्वेक प्रेताशीं अनुगमन करील तर ज्ञान करून अग्निस्पर्श करून घृतप्राशन करून पुनः स्नान करून प्राणायाम करावे, म्हणजे शुद्ध होतो.” हीन जातीच्या प्रेताशीं अनुगमन करील तर शत्रियाच्या प्रेताविषयीं एक दिवस; वैश्यप्रेताविषयीं पक्षिणी; शूद्रप्रेताविषयीं तीन दिवस. वैश्यप्रेताविषयीं क्षत्रियाला एक-दिवस. शूद्राच्या प्रेताविषयीं पक्षिणी. शूद्रप्रेताविषयीं वैश्याला एक दिवस. असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. **माधव** तर-ब्राह्मणाला वैश्याविषयीं दोन दिवस. क्षत्रियाला शूद्राविषयींही दोन दिवस आशौच. बाकीचें सारें पूर्वी मागितल्याप्रमाणें समजावें. ज्ञान, अग्निस्पर्श व घृतप्राशन हीं सर्वत्र आहेतच असें सांगतो. हीन जातीच्या प्रेताचा दाह, और्ध्वदेहिक कर्म उत्तम जातीचा मनुष्य करील तर सांगतो **ब्राह्मण—**“ब्राह्मणानें हीन जातीच्या प्रेताचें और्ध्वदेहिक (अलंकार) करूं नये. कामाच्या योगानें किंवा लोभानें अथवा अविचारानें करील तर त्याच्या जातींत जाडेल.” **मनु—**“उपनयनादि संस्काररहितांचें होम पूजा इत्यादि कर्म; सर्व जातीच्या मनुष्यांचें अलंकारकर्म; समान किंवा उत्तम जातीच्या मनुष्यांचें अभिचार (जारण, मारण) कर्म हीं केळीं असतां तीन प्राजापत्य कृच्छ्रांनीं शुद्ध होतो.” आपल्याहून हीन जातीचें करील तर क्षत्रियाचें केलें असतां द्विगुणित प्रायश्चित्त. वैश्याचें केलें तर त्रिगुणित. शूद्राचें करील तर चतुर्गुणित इत्यादि तर्कांनीं जाणावें. •

अथरोदने समोत्तमवर्णयोःसंचयनात्पूर्वसचैलज्ञानमूर्ध्वमाचमनं हीनवर्णेषुतुसंचयात्प्राक्सचैलमूर्ध्वं ज्ञानमात्रं विप्रस्यशत्रुवैश्यविषयेतुब्राह्मे अस्थिसंचयनेविप्रोरोतितेक्षत्रवैश्ययोः तदास्नातःसचैलसुद्विती-वेहनिशुष्यसि कृतेतुसंचयेविप्रःज्ञानेनैवशुचिर्भवेत् क्षत्रस्यवैश्येप्येवं शूद्रेतुसंचयात्प्राक्विप्रस्यत्रिरात्रं क्षत्र-

वैश्ययोर्द्विरात्रं ऊर्ध्वतुद्विजानामेकाहः शूद्रस्यशूद्रेस्पर्शविनासंचयत्पूर्वमेकाहः ऊर्ध्वसज्योतिरितिमाधवी-
येज्ञेयम् शुद्धितत्त्वेपारस्करस्तु अस्थिसंचयनादूर्ध्वमासंयावद्दिजातयः दिवसेनैवशुद्ध्यंतिवासंक्षा-
नेनच सजातेर्दिवसेनैवव्यहृत्क्षत्रियवैश्ययोरित्युक्तं सपिंडानारोदननिर्हारादावदोपइत्युक्तंप्राक् विज्ञाने-
श्वरस्तु मृतस्यबांधवैःसार्धकृत्वातुपरिदेवनम् वर्जयेत्तदहोरात्रंदानश्राद्धादिकर्मचेतिपारस्करोक्तेः सर्व-
त्रैकरात्रमाह ।

आतां रोदनाविषयीं सांगतो—

समान वर्णाच्या व उत्तम वर्णाच्या प्रेताविषयीं अस्थिसंचयनाच्या पूर्वी रोदन केलें असतां वस्त्रसहित स्नान करावें. अस्थिसंचयनानंतर रोदन केलें असतां आचमन करावें. हीन वर्णाच्या प्रेताविषयीं अस्थिसंचयनाच्या पूर्वी रोदन केलें असतां वस्त्रसहित स्नान करावें. अस्थिसंचयनानंतर करील तर स्नान मात्र करावें. ब्राह्मणाळा क्षत्रिय-वैश्याविषयीं तर सांगतो ब्राह्मणांत—“क्षत्रिय व वैश्य यांचेविषयीं अस्थिसंचयन करानयाचें असतां ब्राह्मण जर रोदन करील तर वस्त्रसहित स्नान करून दुसऱ्या दिवशीं शुद्ध होतो. संचयन केलें असतां ब्राह्मण रोदन करील तर स्नानानेंच शुद्ध होईल.” वैश्याविषयीं क्षत्रियालाही असेंच समजावें. शूद्राविषयीं अस्थिसंचयनाच्या पूर्वी रोदन केलें असतां ब्राह्मणाळा तीन दिवस, क्षत्रिय वैश्यांना दोन दिवस आशींच. अस्थिसंचयनानंतर शूद्राविषयीं रोदन करणाऱ्या ब्राह्मणादिकांना एक दिवस आशींच. शूद्राविषयीं शूद्र स्पर्श केल्यावांचून अस्थिसंचयनाच्या पूर्वी रोदन करील तर एक दिवस अस्थिसंचयनानंतर रोदन करील तर गंज्योति आशींच. असें माधवीयांत जाणावें. शुद्धितत्त्वांत पारस्कर तर—“अस्थिसंचयनानंतर एक मास हांडेपर्यंत कर्थाही ब्राह्मणादिक रोदन करितील तर एक दिवस आशींच धरून वस्त्रांचें क्षालन करून शुद्ध होतील. सजातीय प्रेताविषयीं रोदन करील तर एका दिवसानेंच शुद्ध होतात. क्षत्रिय व वैश्य यांच्याविषयीं रोदन करील तर तीन दिवसांनीं शुद्ध होईल” असें सांगतो, असें सांगितलें आहे. सपिंडांना रोदन, निर्हरण इत्यादिकांविषयीं दोष नाही, असें पूर्वी सांगितलें आहे. विज्ञानेश्वर तर—“मृताच्या बांधवांसहवर्तमान रोदन केलें असतां त्या दिवशीं दान, श्राद्ध इत्यादि कर्म वर्ज्य करावें” ह्या पारस्कर वचनावरून सर्वाविषयीं एक दिवस आशींच सांगतो.

अथाशौचान्नभक्षणेविष्णुः ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमभ्रातितस्यतावदाशौचंयावत्ते-
पामाशौचंयपगमेप्रायश्चित्तमिति अज्ञानेत्वंगिराः अंतर्दशाहेभुक्त्वाभ्रंसूनकेमृतकेपिवा अस्याशौचंभ-
वेत्तावद्यावदन्नंभ्रजत्यधः प्रायश्चित्तंत्वमत्याविप्रस्यवर्णक्रमेणैकाहत्र्यहपंचाहसप्ताहोपवासाः दशविंशतिः-
षष्टिःशतंचप्राणायामाः पंचगव्याशनंच अभ्यासेद्विगुणं आपदितुप्राणायामशतंपंचशतमष्टशतमष्टसहस्रं-
गायत्रीजपश्च मत्यापदितुसवर्णाशौचेत्रिरघमर्षणगायत्र्यष्टसहस्रंच क्षत्रियाशौचेउपवासस्तच्च वैश्याशौचेत्रि-
रात्रोपवासश्च शूद्राशौचेकृच्छ्रः क्षत्रवैश्ययोः पंचशतमष्टशतंगायत्रीजपः उत्तमेपुशूद्रस्यसर्वत्रस्नानं मत्याना-
पदिविप्रस्यवर्णेपुसांतपनकृच्छ्रमहासांतपनचांद्राणि अभ्यासेनुमासिकद्वैमासिकपाण्मासिकत्रैमासिकानीत्या-
दिमाधवीयादौज्ञेयम् ।

आतां आशौचांचे अन्नभक्षणाविषयीं सांगतो—

विष्णु—“ब्राह्मणादिकांना आशींच असतां जो एकवारच त्यांचें अन्न भक्षण करितो त्याला, त्यांचें आशींच असेल तोपर्यंत आशींच समजावें. आशींच गेल्यावर त्यांचें अन्न भक्षण करणारानें प्रायश्चित्त करावें.” अज्ञानानें भक्षण केलें तर सांगतो अंगिरा—“जननाशौचांत किंवा मृताशौचांत दहा दिवसांचे आंत अन्न भक्षण केलें असतां जोपर्यंत तें अन्न शौचमार्गानें पडून गेलें नाहीं तोपर्यंत त्याला आशींच होतें.” वरील वचनांत आशींचसमाप्तीनंतर प्रायश्चित्त सांगितलें तें असें—जर ब्राह्मण आशींचवत अशा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यांचें अन्न साहजिक भक्षण करील तर त्यानें अनुक्रमानें एक दिवस, तीन दिवस, पांच दिवस, सात दिवस उपवास करावा. आणि तसेच अनुक्रमानें दहा, वीस, साठ, शंभर प्राणायाम करावे. आणि शेवटीं पंचगव्य प्राशन करावें. पुनःपुनः भक्षण करील तर वर सांगितलेलें द्विगुणित करावें. आपत्कालीं साहजिक भक्षण करील तर अनुक्रमानें शंभर प्राणायाम, पांचशें, आठशें, आठ हजार गायत्रीजप करावा. आपत्कालीं समान वर्णाच्या आशींचांत बुद्धिपूर्वक (मुद्दाम होऊन) अन्न भक्षण करील तर त्रिवार अघमर्षण करून आठ हजार गायत्रीजप करावा. ब्राह्मण

क्षत्रियाच्या आर्शांचांत बुद्धिपूर्वक अन्न भक्षण करील तर त्यानें उपवास आणि आठ हजार गायत्रीजप करावा. वैश्याशौचाचें अन्न भक्षण करील तर तीन दिवस उपवास आणि आठ हजार गायत्रीजप. शूद्राशौचांत क्षत्रिय वैश्यांस प्राजापत्य कृच्छ्र आणि पांचशें व आठशें गायत्रीजप. उत्तम वर्णाच्या आर्शांचांचें अन्न शूद्र भक्षण करील तर त्याला सर्वत्र स्नान सांगितलें आहे. आपत्काल नसून ब्राह्मणादिवर्णाच्या आर्शांचांचें अन्न ब्राह्मण बुद्धिपूर्वक भक्षण करील तर त्याला अनुक्रमें सातपन, कृच्छ्र, महासातपन, चांद्रायण हीं प्रायश्चित्ते आहेत. आपत्काल नमतां ब्राह्मण पुनःपुनः बुद्धिपूर्वक (मुद्दाम होऊन) ब्राह्मणादिकांचें अन्न भक्षण करील तर अनुक्रमानें एक मास कृच्छ्र, दोन मास कृच्छ्र, तीन मास कृच्छ्र, गहा मास कृच्छ्र इत्यादिक माधवीयांत जाणावें.

अथ दामस्य स्वदास्युत्पन्नस्य मण्डिमृतौ स्नानमात्रेण स्वामिकार्ये स्पृश्यत्वम् भक्तदासस्य स्यहोर्ध्वं सद्यः स्पृश्यो गर्भदामो भक्तदासस्य हाच्छुचिरिति स्मृत्यंतरोक्तेः मूल्यकर्मकराः शूद्रादासीदासस्तथैव च स्नानेशरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यदुपिता इति शानातपोक्तेश्च एतच्चानन्यमाध्यतत्कार्यमात्रे अन्यत्र मासाद्याशौचमस्त्येव एवं दास्यामपि मृत्तिकायास्तस्या अस्पृश्यत्वमपि माममात्रं दामीदामश्च सर्वो वैश्यस्य वर्णस्यो भवेत् तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्यामासस्तु मृतकमित्यंगिरसोक्तेः पडशीतावपि स्वामिशौचेन दासायाः स्पृश्या मासात्तु कर्मसु योग्याः स्युर्मासतो दामीमृताचेत् स्पृश्यतामियान् दत्तदामादीनां स्वमण्डिमरणादौ स्वाम्याशौचमसंन्यादिनोर्ध्वमन्यपि मामाद्याशौचे स्वामिकार्ये स्पृश्यतेति हरदत्तः दामांतेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्रवासिनः स्वामितुल्येन शौचेन शुभ्रं तिसृत्तमृतक इति बृहस्पतिस्मृतेश्च दामश्चात्र गृहजातस्तथाक्रीतो लब्धो दद्यादुपागतः अन्नकालभृतमन्त्रदाहितः स्वामिना च यः मोक्षितो महत्तृणाद्युद्धप्रापः पणोजितः तवाहमित्युपागतः प्रप्रज्यावसितः कृतः भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहतः विक्रताचात्मनः शास्त्रे दामाः पंचदश स्मृता इति नारदोक्तेषु गर्भभक्तदामो विनाज्ञेयाः वडवादामीतयाहतः तामुद्राद्यदामो जात इत्यर्थः अंतेवास्यपितैरेवोक्तः स्वशिल्पमिच्छन्नाहनुवां धवनामनुजया आचार्यस्य वसेदंते कृत्वा कालं मुनिश्चितं आचार्यः शिक्षयेदेवं स्वगृहे दत्तभोजनमिति शिष्यस्तुल्यो विद्यार्थी दामादेः स्वामितन्मण्डिमरणे तु विष्णुः पत्नीनां दासानामानुलोम्येन स्वामितुल्यमाशौचं मृते स्वामिन्यान्मीयमिति प्रतिलोमदामानामाशौचाभावः वर्णानामानुलोम्येन दास्यं प्रतिलोमत इति याज्ञवल्क्योक्तेः ।

आनां दासां विषयीं आशौच सांगतो—

आपल्या दामीचे शरीर उत्पन्न जो दाम त्याचा रापि ५ मृत अगता स्वामिकार्याविषयी त्याच्या (दागाच्या) स्नानानें स्पृश्यत्व येतें. भक्तीनें झालेला जो दाम त्याचा रापि ५ मृत अगता तीन दिवसांना स्वामिकार्याविषयी स्पृश्यत्व येतें. कारण, "दामीचे शरीर झालेला जो गर्भदाम तो गय. (स्नान करून) स्पृश्य होतो. आणि भक्त झालेला जो दाम तो तीन दिवसांनीं शुद्ध होतो" असें इतर स्मृतींचें वचन आहे. आणि "मृत्यु (मजुर्ग) भेळून कर्म करणारे शूद्र, दामी आणि दाम हे ज्ञानाविषयी, गरीबाचा तेल उडी वगैरे त्यावण्याविषयी आणि घरांतील कामाविषयीं धृष्टि नार्हीत" असें शानातपवचनही आहे. हें दामांना सांगितलेले गयःशीच दुसऱ्याला न होणाऱ्या अशा त्याच्याच कार्याविषयीं गमजावें. इतर कैमांविषयीं एक मास वगैरे आर्शांच आहेत. याप्रमाणें दामीविषयीं देखील गमजावें. दामी प्रसूत असेल तर तिच्या अस्पृश्यत्व एक महिनापर्यंत आहेच. कारण, "दामी व दान हा गर्भ ज्या वर्णाचा जो असेल त्या वर्णाचें त्याच्या आशौच होतें आणि दामीला तर एक महिना जननाशौच होतें" असें अंगिरसाचें वचन आहे. पडशीतीतही—"दामादिकांना आशौच प्राप्त अमतां स्वामीच्या आर्शांच दिवसांनी ते दामादिक स्पृश्य होतात. आपल्या कर्माविषयीं एका महिन्यानें योग्य होतात. दामी प्रसूत असेल तर एका महिन्यानें ती स्पर्शाला योग्य होते." दत्तदामादिकांच्या रापिडाचें मरण वगैरे असेल तर त्यांना एक मास वगैरे आर्शांच अगळे तर स्वामीच्या आर्शांचाडनक्या दिवसांनंतर स्वामिकार्याविषयी त्यांना स्पृश्यत्व आहे, असें हरदत्त सांगतो. कारण, "दाम, अंतेवासी, भृतक (मजुरीनें काम करणारे), शिष्य हे स्वामीवगेवर एकत्र राहणारे असून त्यांना मृताशौच प्राप्त अमतां स्वामीच्या तुल्य आर्शांचांचें शुद्ध होनात" असें बृहस्पतिस्मृतिवचन आहे. येथें दास कोणते ते सांगतो—"घरां उत्पन्न झालेला, विकृत घेतलेला, मिळालेला, दायापासून (वडिलाजित त्रिदगीतून) प्राप्त झालेला, भोजनगमयी भोजन देऊन पोषण केलेला, त्याच्या पूर्ण स्वामीनें ठेवलेला, मोठ्या ऋणापासून मुक्त केलेला, युद्धांत प्राप्त

झालेला, पणांत जिंकलेला, 'तुझा मी आहे' असें म्हणून आलेला, सर्वस्व त्याग करून प्राप्त झालेला. दास असा केलेला, भक्त असून दास झालेला, दासीशीं विवाह करून झालेला, आपण विकून घेणारा, असे शास्त्रामध्ये पंधरा दास सांगितले आहेत." ह्या नारदानें सांगितलेल्या दासांमध्ये गर्भदास आणि भक्तदास हे दोन वर्ज्य करून बाकीचे दास वरील बृहस्पतिवचनांत घ्यावे. वडवा म्हणजे दासी तिच्याशीं विवाह करून झालेला जो दास तो वडवाहून होय. अंतेवासीदेखील कोणता तो त्यानेंच (नारदानें) सांगितला, तो असा-"बडिलांच्या आह्मेनें आपलें कसब शिकण्यासाठीं अमुक कालपर्यंत गहावयाचें असा कालाचा निश्चय करून आचार्यांच्या जवळ राहील, व आचार्य त्याला आपल्या घरीं भोजन घालून कसब शिकवील, तो अंतेवासी होय." शिष्य म्हणजे त्याच्यासारखाच विद्यार्थी होय. दास, पत्नी यांचा स्वामी (यजमान) किंवा यजमानाचा सर्पिड मृत असेल तर सांगतो विष्णु-"अंनुलोमानें विवाहित पत्नी व अंनुलोमानें उत्पन्न दास यांना यजमानाचा सर्पिड मृत असतां यजमानाच्या बरोबर आशौच होतें. यजमान मृत असतां आपल्या जातीचें आशौच." प्रैतिलोमदासांना आशौच नाही. कारण, "ब्राह्मणादि वर्णांच्या अनुलोमानें उत्पन्न असतील ते दास होतील. प्रतिलोमानें उत्पन्न ते दास होत नाहीत." असें याज्ञवल्क्यवचन आहे.

अथरात्रौजननेमरणेवारात्रिभिर्भागांकृत्वाद्यभागद्वयेचेत्पूर्वदिनं अंतेतूत्तरमितिमिताक्षरायां यत्तुप्रा-
गर्धरात्रात्प्राग्वासूर्योदयात्पूर्वदिनमित्युक्तं तत्रदेशाचारतोव्यवस्था सर्वचाशौचमाहिताभेदाहंतद्वित्रयमरण-
मारभ्यज्ञेयम् अनभिमतउत्क्रांतेशौचादिद्विजातिषु दाहादभिमतोविद्याद्विदेशस्थेमृतेसतीति पैठीनसि-
स्मृतैः साभि्राहिताभिःआहिताभिश्चेत्प्रवसन्निध्येतपुनःसंस्कारंकृत्वाश्ववदाशौचमितिबसिष्ठेविशेषो-
क्तेः दाहादेवतुक्तव्ययस्यवैतानिकोविधिरितिब्राह्मणं यत्तु धूर्तस्वामिनारामांडारेणोक्तं आहि-
ताभेरेपिमरणाद्येवदशरात्रं दशाहंशवमाशौचमितिमरणनिमित्तत्वात्तस्य यत्तु दाहादेवतस्याशौचमुक्तम्
तत्संस्कारनिमित्ताशौचंपृथगेव तेनगृह्याभेःसंस्कारांगंत्रिरात्रं श्रौताभेस्तुदशरात्रं मरणनिमित्तंतूभयोर्दशाहं
दाहात्प्रागपीति तदेतद्वचनविरोधात्पूर्वस्यैवोत्कर्षान्मूलकल्पनालाघवाच्चित्यम् ।

आतां आशौचाविषयीं रात्रीचा निर्णय सांगतो—

रात्रीं जनन किंवा मरण असतां रात्रीचे तीन भाग करून पहिल्या दोन भागांत जनन व मरण असेल तर पहिला दिवस संमजावा. तिसऱ्या भागांत जनन किंवा मरण असेल तर उत्तर दिवस धरावा, असें मिताक्षरेंत सांगितलें आहे. आतां जें अर्धरात्रीच्या पूर्वी असेल तर किंवा सूर्योदयाच्या पूर्वी असेल तर पहिला दिवस, असें सांगितलें आहे, त्याविषयीं देशाचारावरून व्यवस्था जाणावी. सारें आशौच आहिताभि (अग्नीचें आधान केलेला) मृत असेल तर त्याच्या दाहापासून समजावें. आधानरहित मृत असेल तर त्याच्या मरणापासून समजावें. कारण, "ब्राह्मणादिकांमध्ये अभिरहित असा परदेशांत मृत असतां त्याच्या प्राणोत्क्रमणापासून आशौच वगैरे समजावें. आणि श्रौताभिमान् मृत असतां त्याचा दाह झालेल्या दिवसापासून आशौच वगैरे समजावें" असें पैठीनसिस्मृतिवचन आहे. या वचनांत अभिमान् म्हणजे आहिताभि समजावा. कारण, "आहिताभि जर प्रवासांत मृत होईल तर पुनः संस्कार करून शवाप्रमाणें आशौच धरावें" असें वसिष्ठस्मृतींत आहिताभि, असें विशेष सांगितलें आहे. आणि "ज्याचे श्रौताभि आहेत त्याचें आशौच दाह झालेल्या दिवसापासूनच करावें" असें ब्राह्मणवचनही आहे. आतां जें धूर्तस्वामीनें व रामांडारानें सांगितलें कीं, आहिताग्नीला देखील मरणदिवसापासूनच दहा दिवस. कारण, "श्वनिमित्तक आशौच दहा दिवस" या मनु इत्यादि वचनांवरून मरणनिमित्तक तें आशौच असल्यामुळें मरणदिवसापासूनच धरावें. आतां जें दाह केलेल्या दिवसापासूनच आशौच सांगितलेलें तें संस्काराचें अंगभूत आशौच निराळेंच आहे. तेणेंकरून गृह्याभियुक्ताला संस्कारांग आशौच तीन दिवस. आणि श्रौताभिमांताला संस्कारांग आशौच दहा दिवस. मरणनिमित्तक आशौच दोघांनाही दहा दिवस. तें दाहाच्या पूर्वी देखील आहे, असें सांगितलें, तें त्यांचें (धूर्तस्वामी व रामांडार यांचें) मत, ह्या वरील वचनाशीं विरोध येत असल्याकारणानें; पूर्वीचेंच आशौच पुढें दाहानंतर धरणें होत असल्यामुळें; आणि असें मानून व्यवस्था होत असतां स्वतंत्र निराळें आशौच मानण्याविषयीं मूलवचनाची कल्पना करावयास नको, हें लाघव भेत असल्यामुळें, (त्यांचें मत) चित्य (अप्राप्त) आहे.

१ उत्तम वर्णाच्या पुरुष व कनिष्ठ वर्णाची स्त्री यांचा विवाह तो अनुलोमविवाह. जसें-ब्राह्मण पुरुष व क्षत्रिय, वैश्य यांची कन्या. २ उत्तम वर्णाच्या पुरुषापासून कनिष्ठ वर्णाच्या स्त्रियेचेठायीं झालेला तो अनुलोम दास होय. ३ उत्तम वर्णाच्या स्त्रियेचे ठायीं कनिष्ठ वर्णाच्या पुरुषापासून उत्पन्न तो प्रतिलोम दास होय.

अथातिकांताशौचं तत्राशौचमध्येजननादौज्ञातेतच्छेषेणशुद्धिः विगतंतुविदेशस्थंशृणुयाद्योहनिर्द्वं यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेदिति मनुक्तेः अत्र केचिदेतत्पुत्रातिरिक्तविषयं तेषां त्वाशौचमध्ये श्रवणे- पितृदायेव दशाहादि पितरौ चेन्मतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेदित्यस्य- सर्वापवादात्त्वादित्याहुः तन्न ज्ञातमरणस्य निमित्तत्वात् अनभिमत उत्क्रांतेरित्यादिविरोधाच्च स्मृत्यर्थसारेपि जनने मरणे वा प्रथमदिना दूर्ध्वज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिरिति षडशीतावपराकैचैवं दशाहादूर्ध्वज्ञाते तु- वृद्धवसिष्ठः मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्पण्मासे पक्षिणी तथा अहं नुनवमादवर्गां गूर्ध्वज्ञानेन शुध्यति जनने त्वत्क्रां- ताशौचं नास्त्येव नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपीति देवलोक्तेः पितुः स्नानं तत्रापि भवत्येव निर्दशं ज्ञाति- मरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्मच सवासाजलमाशुत्य शुद्धो भवति मानव इति मनुक्तेः तथा तिकांताशौचं दशाहादिजा- त्याशौचविषयं न त्वनुपनीतादिनिमित्तं त्रिरात्रादौ उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवाति कालजमिति व्याघ्रोक्तेः निर्दशं ज्ञातिमरणं अतिकांते दशाहे त्विति मनुक्तेश्च माधवीये देवलस्तु आग्निपक्षाभिरात्रं स्यात्पण्मासा- त्पक्षिणीततः परमेकाहमावर्षादूर्ध्वज्ञातो विशुध्यतीत्याह तत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था इदंचैकदेशे ।

आतां अतिकांत आशौच सांगतो—

जननाशौच व मृताशौच उत्पन्न होऊन तें दहा दिवसांचे आंत समजलें तर आशौचाचे जितके दिवस राहिले असतील तितक्या दिवसांनी शुद्धि होते. कारण, “परदेशांत मृतसर्पिंडाला जो दहा दिवसांचे आंत श्रवण करील त्याला दहा दिवसांचे शेष दिवस जितके अमतील तितकेच दिवस आशौच होतें” असें मनुवचन आहे. येथें केचित् ग्रंथकार—हें वचन पुत्रातिरिक्ताविषयी आहे. पुत्रांना तर आशौचामध्ये (दहा दिवसांचे आंत) जरी मातापितृमरण ऐकूं आलें तरी त्या ऐकिलेल्या दिवसापासूनच दशाह आशौच वगैरे समजावें. कारण, “आईबाप मृत झाले आणि पुत्र दूर देशी आहे तरी श्रुत झालेल्या दिवसापासून दहा दिवस आशौच भरावें” हें वचन सर्व वचनांचा अपवाद (बाधक) आहे, असें सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, जाणलेलें मरण आशौचाविषयी निमित्त आहे. हें जाणलेलें मरण दहा दिवसांनंतरही असतें, म्हणून दुसरा हेतु सांगतो—“परदेशांत अभिरहित मृत असतां त्याचें आशौचादिक प्राणोःक्रमणापासून समजावें.” ह्या वर सांगितलेल्या पैठीनसिस्मृति इत्यादिकांचा विरोधही येतो. स्मृत्यर्थसारांतही जनन किंवा मरण प्रथम दिवसाच्या पुढें समजलें असतां पुत्रादिकांची शेषदिवसांनीच शुद्धि होते. षडशीतींत व अपराकांतही असेंच आहे. दहा दिवस होऊन गेल्यावर समजलें तर सांगतो वृद्धवसिष्ठ—“तीन महिन्यांचे आंत समजलें असतां तीन दिवस. सहा महिन्यांच्या आंत समजलें असतां पक्षिणी. नऊ महिन्यांच्या आंत समजलें तर एक दिवस. नऊ महिने होऊन गेल्यावर समजेल तर ज्ञानांनं शुद्ध होतो.” जननाशौचाविषयी तर अतिकांत आशौच नाहीच. कारण, “जननाशाचाचे दिवस गेल्यावर आशौच नाही” असें देवलवचन आहे. तें जननाशौच अतिकांत अमलें तरी पित्याला ज्ञान सांगितलें आहेच. कारण, “दहा दिवस होऊन गेल्यावर ज्ञातीचें (सर्पिटाचें) मरण समजलें व दहा दिवस झाल्यावर पुत्राचें जन्म समजलें तर वस्त्रामहित ज्ञान करून मनुष्य शुद्ध होतो” असें मनुवचन आहे. तें अतिकांताशौच दशाहादिक ज्ञातीच्या आशौचाविषयी समजावें. उपनयनादिक नमलेल्या निमित्तानें प्राप्त झालेलें जें त्रिरात्र—एकरात्र इत्यादि आशौच त्याविषयी अतिकांताशौच नाही. कारण, “उपनयन झालेला मृत असतां त्याच्याच विषयी वर्णनिमित्त विषमाशौच व अतिकांताशौच आहे” असें व्याघ्रवचन आहे. आणि “ज्ञातिमरण दहा दिवसांनंतर समजलें असतां वस्त्रमहित ज्ञान करून मनुष्य शुद्ध होतो” हें वर सांगितलेलें, तसेंच “दहा दिवस अतिकांत असतां” असें मनुवचनही आहे. माधवीयांत देवल तर—“दहा दिवसांनंतर तीन पक्षांचे आंत समजेल तर तीन दिवस. सहा महिन्यांच्या आंत समजेल तर पक्षिणी. सहा महिन्यांच्या पुढें वर्षाच्या आंत समजेल तर एक दिवस. वर्षांनंतर समजेल तर ज्ञान करून शुद्ध होतो” असें सांगतो. या वचनांत तीन पक्षांनंतर पक्षिणी व पूर्वीच्या वृद्धवसिष्ठवचनांत तीन महिन्यांनंतर पक्षिणी सांगितलें. तसेंच या वचनांत वर्षापर्यंत एक दिवस. व पूर्वीच्या वृद्धवसिष्ठवचनांत नवममासानंतर ज्ञान सांगितलें त्यामध्ये आपत्काल व अनापत्काल पाहून व्यवस्था करावी. हें त्रिरात्रादि आशौच एकदेशी मृताचें समजावें.

देशांतरेतु स्नानमात्रं देशांतरमृतं श्रुत्वा ह्येवैस्नानसेयतौ मृते स्नानेन शुध्यंति गर्भस्त्रावेच गोत्रिण इति परा- शारोक्तेरिति विज्ञानेश्वरः स्नानवत्सरांतें अर्वाह त्रिपक्षाभिरात्रं पण्मासादिवानिशं अहःसंघत्सरादूर्ध्व- देशांतरमृतेष्वपीति विष्णुक्तेरिति माधवः इदं सर्पिंडानां देशांतरे स्नानं सोढवकानामिति युक्तं कथ्यं ज्ञेयं

बृहस्पतिः महानद्यंतरं यत्र गिरिर्वाव्यवधायकः वाचोयत्र विभिद्यते तद्देशांतरमुच्यते देशांतरं बद्धं केपि हि-
 ओजनमायतं चत्वारिंशद्व्यं त्रिंशद्व्यं तथैव चेति एतत्सर्वमातापितृभिर्न विषयं तयोस्तु पितरौ चेदिति पूर्व-
 पैठीनसिवाक्यात्सदा पूर्णमेव दशाहादि स्मृत्यर्थसारेपि मातापितृमरणे दूरदेशेपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशा-
 हादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात् स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवमिति शुद्धितत्त्वाद्योगौडास्तु ऊर्ध्वसंवत्स-
 राद्याद्बंधुश्चेच्छ्रूयते मृतः भवेदेकाहमेवात्र तच्च संन्यासिनां न त्विति देवलोक्तेः पित्रो र्वदमध्ये त्रिरात्रमूर्ध्वमे-
 काहः बंधुमातापिताभर्ता च पूर्वोक्तदशाहस्तु कलिं गादिदेशपर इत्याहुः तेषां धुपदस्य पित्रादिपरत्वे मानाभावा-
 दुपेक्षया सापन्नमातुस्तु दक्षः पितृपद्व्यामपेतायां मातृवर्जं द्विजोत्तमः संवत्सरे व्यतीतेः पित्रात्रमशुचिर्भवेत्
 हीनवर्णमातृषु सपत्नीषु चैवमिति स्मृत्यर्थसारे केचित्पितुः पद्व्यां प्रसीतायामौरसेतनयेतथेति ब्राह्मोक्ते-
 स्वौरसेपीदमाहुः षडशीतावप्येव एतत्सर्ववर्णतुल्यं तुल्यं वयसि सर्वेषामति क्रांते तथैव चेति व्याघ्रोक्तेः ।

देशांतरी मृत असतां दहा दिवसानंतरं समजेल तर न्नान मात्र आहे. कारण, “देशांतरीं सपिंड मृत झालेला समजलें
 असतां; व नपुंसक, वैखानस, संन्याशी हे मृत झाले असतां त्यांचे गोत्रज न्नान करून शुद्ध होतात. आणि गर्भवाव झाला
 असतां गोत्रज न्नानां नें शुद्ध होतात” असें पराशरवचन आहे, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. देशांतरीं मृत असला तरी
 वर्षानंतर न्नान. कारण, “तीन पक्षांच्या आंत समजेल तर तीन दिवस; सहा महिन्यांच्या आंत दिवसरात्र; वर्षाच्या आंत
 एक दिवस; हें देशांतरीं मृताविषयी देखील समजावें” असें विष्णुवचन आहे, असें माधव सांगतो. हें माधवा नें सांगित-
 लेलें सपिंडांना समजावें. देशांतरीं मृत असतां समानोदकांना (आठव्यापासून पुढच्यांना) न्नान हें युक्त आहे. देशांतराचें
 लक्षण सांगतो बृहस्पति-“महानदी किंवा मोठा पर्वत मध्यं असून भाषेचा ज्या ठिकाणीं भेद होतो, तें देशांतर म्हणतलें
 आहे. साठ योजनं (२४० कोश) दूर झालें म्हणजे देशांतर, असें कितीएक म्हणतात. इतर विद्वान् चाळीस योजनं दूर
 म्हणजे देशांतर म्हणतात. दुसरे विद्वान् तीस योजनं दूर अगलें म्हणजे देशांतर म्हणतात.” तीन दिवस आशौच सांगितलें
 हें सारें मातापिता यांहून इतरांविषयी आहे. माता व पिता यांचें तर “जर मातापिता गन असून पुत्र दूर अगला तरी श्रुत
 झालेल्या दिवसापासून दहा दिवस सूतक धरावें” या पूर्वी सांगितलेल्या पंथीनसि वचनावरून सर्वदा (कालांतरीं देखील)
 संपूर्णच दशाहादि आशौच समजावें स्मृत्यर्थसांगांतही-माता व पिता मृत असतां पुत्र दूर देशीं अगला तरी वर्षानंतर
 समजलें तरी त्या नें दशाहादिक पूर्ण आशौच करावें. याचप्रमाणे पत्नीचें स्त्रिये नें व स्त्रियेचें पत्नी नें आणि सवती नें सवतीचें
 देशांतरीं व कालांतरींही पूर्ण दशाहादि आशौच करावें, असें सांगितलें आहे. शुद्धितत्त्व इत्यादि गौडग्रंथ तर-“बंधु
 मृत झालेला एक वर्ष होऊन गेल्यावर जर समजेल तर त्याचें आशौच एक दिवसच होतें. तें संन्याशांना नाही.” त्या
 देवत्ववचनावरून मातापितरांचें वर्षाच्या आंत तीन दिवस. वर्षानंतर एक दिवस. या वचनांत बंधु म्हणजे माता, पिता व
 भर्ता समजावा. पूर्वी सांगितलेलें दशाह आशौच तर कलिंग इत्यादि देशाविषयी समजावें, असें सांगतात. तेथें बंधु या
 पदाचा माता पिता इत्यादि अर्थ करण्याविषयी प्रमाण नमल्यामुळें त्यांचें तें मत उपेक्षणीय (अग्राह्य) आहे. सापन्न मातेला
 तर सांगतो दक्ष-“माता वर्ज्य करून दुसरी बापाची पत्नी मृत असतां एक वर्ष होऊन गेल्यावर समजलें तरी तीन दिवस
 आशौच धरावें.” आपल्यापेशां कमी जातीच्या माता व सवती यांविषयी देखील असेंच समजावें, असें स्मृत्यर्थसारांत
 सांगितलें आहे. केचित् ग्रंथकार-“बापाची पत्नी मृत असतां, तसाच औरस पुत्र मृत असतां” ह्या ब्राह्मवचनावरून
 औरस पुत्राचें देखील असें समजावें, असें सांगतात. षडशीतीं तरी असेंच आहे. हें अतिक्रान्तांशांच ब्राह्मणादि चारी
 वर्णांना समान आहे. कारण, “वयोनिमित्तक आशौच आणि अतिक्रान्त आशौच हें सर्व वर्णांना समान आहे” असें व्याघ्र-
 वचन आहे.

अथाशौचसंपाते उच्यते तत्र शावेशावसूतके सूतकं शावेसूतकं सूतकेशाववा तत्राप्युत्तरं कालतः
 पूर्वेंणसमन्यूनमधिकं चेति द्वादशभेदाः यदैकदिने समन्यूनमधिकं वा शौचद्वयं तत्र तत्रेणान्यसिद्धिः द्वयोरेकका-
 लत्वात् यदा तु द्वितीयादिदिनेषूत्तरं सजातीयं शावेजननं वा समकालं न्यूनकालं वा परं स्यात्तदा षट्सुपक्षेऽप्युत्तरं शेषेण
 शुद्धिः अंतराजन्ममरणेशोपाहोभिर्विशुध्यतीति याज्ञवल्क्योक्तेः अंतराज्ञाते इत्यर्थः ज्ञातस्यैव जननादे-
 र्निमित्तत्वात् पूर्वाशौचोत्तरं तन्मध्योत्पन्ने ज्ञाते तु उत्तरमेव कार्यम् शुद्धितत्त्वेऽप्युक्तं पूर्वाशौचांतरूपं संसमानं
 लघुवानिमित्तं तत्कालादुपरिश्रुतं स्वाशौचहेतुरेव अज्ञातं तु न अविज्ञातेन दोषः स्याच्छास्त्रादिषु कथंचनैत्यस्याशौ-
 चसंकर्येऽपि प्रयुक्तेः तेनाज्ञानाद्दोषोत्सर्गादौकृतेऽप्यज्ञातेऽपि नावृत्तिरिति माधवीयेयमपि जनने जननंचे-

त्यान्मरणेमरणं तथा पूर्वशेषेण शुद्धिः स्यादुत्तराशौचवर्जनं अत्र केचिदंतर्दशाहेत्याशां चैत्पुनर्मरणजन्मनी ताव-
त्स्यादशुचिर्विप्रोयावत्तस्यादनिर्दशमिति मनु पराशराद्यैर्दशाहग्रहणात्पूर्णाशौच एव पूर्वशेषेण शुद्धिः त्र्यहा-
द्यल्पाशौचसंपाते तूत्तरेणैव शुद्धिरित्याहुः हरदत्तोप्येवमाह गौडा अप्येवं तत्र याज्ञवल्क्यादिवशेन दशा-
हस्यतुल्यकालाशौचोपलक्षणत्वात् समानाशौचसंपाते प्रथमेन समापयेत् असमानाद्वितीयेन धर्मराजबचो-
येति माधवीये शब्दोक्तेः अपरार्कमिताक्षरादिविरोधाच्च ।

आतां आशौचसंपाताविषयीं सांगतो—

आशौचसंपाताचे मेद बारा होतात, ते असे—१ मृताशौचांत सममृताशौच, २ मृताशौचांत न्यूनमृताशौच, ३ मृता-
शौचांत अधिकमृताशौच, ४ जननाशौचांत समजननाशौच, ५ जननाशौचांत न्यूनजननाशौच, ६ जननाशौचांत अधिक-
जननाशौच, ७ मृताशौचांत समजननाशौच, ८ मृताशौचांत न्यूनजननाशौच, ९ मृताशौचांत अधिकजननाशौच, १० जन-
नाशौचांत सममृताशौच, ११ जननाशौचांत न्यूनमृताशौच, १२ जननाशौचांत अधिकमृताशौच. याप्रमाणे बारा मेद सम-
जावे. ज्या वेळीं एका दिवशीं दोन आशौचे समान दिवसांची उत्पन्न होतील किंवा एक कमी व एक अधिक अशीं दोन उत्पन्न
होतील त्या वेळीं एक आशौच धरल्याने तंत्रं करून इतराची सिद्धि होते. कारण, दोन्ही आशौचांचा काल एक आहे. ज्या वेळीं
पूर्वी एक आशौच असतां दुसऱ्या-तिसऱ्या इत्यादि दिवशीं त्याच जातीचें (पूर्वीचें मृताशौच असेल तर मृताशौच, जन-
नाशौच असेल तर जननाशौच) उत्पन्न होईल अथवा मृताशौचांत जननाशौच उत्पन्न होईल, व तें नंतर उत्पन्न झालेलें
आशौच पहिल्या आशौचाशीं समान कालाचें किंवा न्यूनकालाचें असेल तर सदां मेदांमध्ये (मृताशौचांत सममृताशौच,
मृताशौचांत न्यूनमृताशौच, जननाशौचांत समजननाशौच, जननाशौचांत न्यूनजननाशौच, मृताशौचांत समजननाशौच,
मृताशौचांत न्यूनजननाशौच या पक्षांमध्ये) पहिल्या आशौच समाप्तीने दुसऱ्या आशौचाची शुद्धि होते. कारण, आशौचा-
मध्ये जनन किंवा मरण होईल तर पहिल्या आशौचाच्या शेपदिवसांनीं शुद्धि होते” असे याज्ञवल्क्यवचन आहे. पहिल्या
आशौचामध्ये दुसऱ्या आशौचाचें ज्ञान झालें असतां पूर्वीच्यानं दुसऱ्याची शुद्धि असा अर्थ त्या वचनाचा आहे. कारण,
जाणलेलें जनन व मरण हेंच आशौचाविषयीं निमित्त आहे. पहिल्या आशौचांत उत्पन्न झालेलें आशौच, पहिलें आशौच
संपल्यावर समजेल तर दुसरें केलेंच पाहिजे. शुद्धितरवांतही सांगितलें आहे—पहिल्या आशौचामध्ये समान किंवा अल्प
आशौच उत्पन्न झालें असून पहिल्या आशौचाचे समाप्तीनंतर समजेल तर तें आपल्या आशौचाला कारण आहेच; म्हणजे नि-
वृत्ति होत नाही. त्याचें ज्ञान नसेल तर आशौच नाही. कारण, “आशौच अज्ञात असेल तर श्राद्धादिकर्माविषयीं दोष नाही”
हें वचन ह्या आशौचसंपातांतही प्रयुक्त होतें. तेणें करून (ज्ञानापूर्वी दोष नगल्यामुळे) आशौचज्ञान नसताना श्रुतौत्सर्गादिक
कर्म केलें, नंतर आशौचाचें ज्ञान झालें तरी पूर्वीच्या कर्मांनीं (श्रुतौत्सर्गादिकाची) आश्रुति (पुनःकरण) होत नाही.
माधवीयांत यमही—“जननाशौचांत जननाशौच, मरणाशौचांत मरणाशौच प्राप्त असतां पूर्वीच्या आशौचाच्या शेपानें
शुद्धि होते, दुसरें आशौच वर्ज्य करावें.” येथें केचित् विद्वान्—“दशाह आशौचामध्ये दुसरें जनन किंवा मरण उत्पन्न
होईल तर जांपर्यंत तें पहिलें दशाह आशौच आहे तोपर्यंत ब्राह्मण अशुचि होतो.” अशा वचनामध्ये मनु-पराशर इत्या-
दिकांनीं ‘दशाह’ या पदाचें ग्रहण केल्यामुळे पूर्ण आशौचांतच पहिल्या शेपानें शुद्धि होते. तीन दिवसांच्या वगैरे अल्प
आशौचांचा संपात असेल तर दुसऱ्या आशौचानेंच शुद्धि होते, असे सांगतात. हरदत्त असेच सांगतो. गौडही असेच
सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, याज्ञवल्क्यादिवचनानुषंगानें मनु-पराशरादिवचनांतील ‘दशाह’ हें पद तुल्यकालीन
आशौचाचें उपलक्षण (बोधक) आहे. म्हणजे समान कालाच्या पहिल्या आशौचानें समान कालाचें दुसरें आशौच निवृत्त
होतें, असा भाव. “समान आशौचांचा संपात असतां पहिल्या आशौचानें दुसरें आशौच समाप्त करावें, असमान आशौ-
चांचा संपात असतां दुसऱ्या आशौचानें समाप्त करावें, असे यमधर्माचें वचन आहे” असे माधवीयांत शब्दवचन
आहे. आणि अपरार्क, मिताक्षरा इत्यादिकांचा विरोधही येतो.

यदातुसूतकेशावंसमं न्यूनमधिकं वा तदान पूर्वशेषाच्छुद्धिः तदा हांगिराः सूतकेशमृतकं चेत्यान्मृतकेशव-
सूतकं तत्राधिकृत्य मृतकशौचं कुर्यान्नसूतकं षट्त्रिंशन्मने शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकतुयदा भवेत् शावेन-
शुध्यते सूतिर्नसूतिः शावशोधनी चतुर्विंशतिमनेपि मृतेन शुध्यते जातं न मृतं जातं केन तु अतो यदा दशाहज-
ननमध्ये तदंते वा त्र्यहादिशावंतदा पूर्वेण शुद्धाद्विपत्तिमिति मनु स्पृश्यत्वं भवत्येव मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरण-
भवेदितिकौर्माक्ष गौतमव्याख्यायां बृहद्वित्रिरपि सूतकादिगुणं शावंतशावादिगुणमार्तवं आर्तवादिगुण-
सूतिस्ततोपि शवदाहकः अत्र पूर्वपूर्वेण नोत्तरोत्तरनिवृत्तिरस्तु इत्यत्राधिक्यादित्यर्थः ब्रह्मक्षीतावपि ब्रह्मव-

बहुसूक्तिस्तुन्यूनशौचविशोधनीति रात्रिशेषादौवर्धितद्वित्रिदिनैरागंतुकैः सूतेर्बहुत्वनस्वभावेन अतस्तत्रन्यून-
शावस्यापिनपूर्वेणशुद्धिरितिवस्तुस्वभावेत्युक्तं ब्राह्मेपि नागंतुकैराथाभिराशौचमपनुद्यते नचपातनिमित्ते-
नशावस्यान्यस्यशोधनमिति एवंनचपक्षाः यदातुत्र्यहाद्यल्पाशौचमध्येसजातीयंविजातीयंवादीर्घकालमु-
त्तरंवाप्युत्तरंपूर्णकार्यं नपूर्वेणशुद्धिः स्वल्पाशौचस्यमध्येतुदीर्घाशौचंभवेद्यदि नचपूर्वेणशुद्धिः स्यात्स्वकालेनैव-
शुध्यतीत्युद्धानसोक्तैः तेनत्र्यहादिशावमध्येदशहादिसूतेकेपिनपूर्वेणशुद्धिरित्यपरार्कः शावनिमित्तम-
स्पृश्यत्वंचभबलेव शुद्धिविवेकेतु शावेनशुध्यतेसूतिरितिप्रागुक्तः तत्राप्युत्तराशौचनिवृत्तिरुक्ता तत्र
उत्तरस्यकालाधिक्येनबलवत्त्वात् माघवीयेयमपि अचवृद्धिमदाशौचंपश्चिमेनसमापयेत् यथात्रिरात्रे
प्रकांतेदशहंप्रविशेद्यदि आशौचंपुनरागच्छेत्तत्समाप्यविशुध्यति हारीनोपि गुरुणालुशुध्येतुलघुनानैव-
तद्वर्षिति गुरुत्वंलघुत्वंचकालकृतमेव पूर्वानुरोधात् एतच्चहरदत्तेनस्पष्टमुक्तं मिताक्षरायामप्येवं यत्तु
अधानांयौगपद्येतुज्ञेयाशुद्धिर्गरीयसा मरणोत्पत्तियोगेतुगरीयोमरणंभवेदिति हारीतकौर्मादि तत्रास्पृश्य-
त्वाभिप्रायंशावस्यगुरुत्वंज्ञेयम् ।

ज्या वेळीं जननाशौचांत मृताशौच समकालीन किंवा न्यूनकालीन अथवा अधिककालीन प्राप्त होईल त्या वेळीं पूर्वीच्या
जननाशौचाच्या शेषानें उत्तराशौचाची शुद्धि होत नाही. तें सांगतो अंगिरा-“जर जननाशौचांत मृतक उत्पन्न झालें अथवा
मृतकांत जनन उत्पन्न झालें तर त्या ठिकाणीं मृतक धरून शुद्धि करावी. जननाशौच धरून शुद्धि करूं नये.” षट्त्रिंश-
न्मतांत-“ज्या वेळीं मृताशौचांत जननाशौच उत्पन्न होईल त्या वेळीं मृताशौचानें जननशौच जातें. जननाशौचानें मृताशौच
जात नाही.” चतुर्विंशत्तिमतांतही-“मृताशौचानें जननाशौच शुद्ध होतें. जननाशौचानें मृताशौच शुद्ध होत
नाहीं. म्हणून ज्या वेळीं दहा दिवसांचे जननाशौचामध्ये किंवा त्याच्या अंतीं तीन दिवसांचे वगैरे मृताशौच प्राप्त होईल
तेव्हां पूर्वीच्या जननाशौचानें शुद्धि झाली तरी मृताशौचनिमित्तानें अस्पृश्यत्व आहेच. आणि “मरण व उत्पत्ति यांचा योग
असतां त्यांमध्ये मरण गुरु (अधिक) आहे” असें कूर्मपुराणाचें वचनही आहे. गौतमव्याख्येंत वृद्धात्रिही सांगतो-
“जननाशौचाहून मृताशौच दुप्पट दोषी आहे. मृताशौचाहून दुप्पट स्त्रियांचें आर्तव दोषी आहे. आर्तवाहून दुप्पट सूतिका
दोषी आहे. सूतिकाहून प्रेतदाहक अधिक दोषी आहे.” यांत पहिल्या पहिल्यानें पुढच्या पुढच्याची निवृत्ति होत नाही.
कारण, पुढच्या पुढच्याला अस्पृश्यत्व दोष अधिक आहे, असा भाव. षडशीर्तीतही-“स्वभावानें बहुत असलेलें सूतिकेंचें
आशौच न्यून असलेल्या मृताशौचाचें शोधन करितें.” या वचनांत ‘स्वभावानें बहुत असलेलें सूतिकेंचें आशौच’ असें म्हण-
ण्याचें कारण, आशौचाच्या दहाव्या रात्रीं दुसरें आशौच प्राप्त असतां पहिल्या आशौचाचे दोन किंवा तीन दिवस वाढवून तितक्या
दिवसांनीं दुसऱ्या आशौचाची निवृत्ति होते असें पुढें सांगायचाचें आहे, त्याप्रमाणें ज्या ठिकाणीं सूतिकेच्या आशौचाचे
दिवस वाढवून सूतिकाशौच बहुत झालें असेल त्या ठिकाणीं वाढविलेल्या बहुत अशा पहिल्या सूतिकाशौचानें अल्प अशाही
मृताशौचाची निवृत्ति होत नाही, असें सांगण्याकरितां स्वभावानंच बहुत असलेलें सूतिकाशौच अल्प मृताशौचाचें शोधक
म्हणून सांगितलें, असें समजावें. ब्राह्मांतही-“आगंतुक (वाढविलेल्या) दिवसांनीं-अर्थात् तिसरें-आशौच जात नाही.
गर्भपातनिमित्तक आशौचानें इतर मृताशौचाची शुद्धि होत नाही.” याप्रमाणें पहिले सहा पक्ष आणि जननाशौचांत सम,
न्यून, व अधिक मृताशौचाचे हे तीन पक्ष मिळून नऊ पक्षांची व्यवस्था सांगितली. ज्या वेळीं तीन दिवस, पक्षिणी इत्यादि
अल्प आशौचामध्ये त्याच जातीचें (मृताशौचांत मृताशौच इत्यादि) किंवा भिन्न जातीचें दुसरें आशौच अधिक दिवसांचें प्राप्त
होईल त्या वेळींही दुसरें आशौच संपूर्ण करावें. पहिल्या आशौचानें दुसऱ्याची शुद्धि होत नाही. कारण, “जर स्वल्प आशौचामध्ये
दीर्घ आशौच उत्पन्न होईल तर पूर्वे अल्प आशौचानें दुसऱ्या दीर्घ आशौचाची शुद्धि होत नाही. तर आपल्या कालानेंच त्या
दीर्घाशौचाची शुद्धि होते” असें उद्धानसाचें वचन आहे. तेणेंकरून तीन दिवसांचें वगैरे मृताशौचांत दशाहादिक जननाशौच
उत्पन्न झालें तरी पहिल्या आशौचानें शुद्धि होत नाही, असें अपरार्क सांगतो. मृताशौचनिमित्तक अस्पृश्यत्व होतच आहे.
शुद्धिविवेकांत तर-“मृताशौचानें जननाशौच शुद्ध होतें, असें पूर्वी उक्त षट्त्रिंशन्मताच्या वचनावरून अल्प मृताशौ-
चांतही अधिक जननाशौचाची निवृत्ति सांगितली आहे, तें बरोबर नाही. कारण, दुसऱ्या आशौचाचा काल अधिक असल्या-
मुळे तें प्रबल आहे. माघवीयांत यमही-“अधिक दिवसांचें आशौच पूर्वीच्या आशौचांत समाप्त करूं नये. जसें-
तीन दिवसांचें आशौच प्राप्त असतां त्यांत जर दहा दिवसांचें आशौच उत्पन्न झालें तर तें आशौच प्राप्त होतें, तें समाप्त
झाल्यावर शुद्ध होतें.” हारीतही-“गुरु आशौचानें लघु आशौचाची शुद्धि होते. लघु आशौचानें गुरुची शुद्धि होत नाही.”
या वचनांत पूर्वीच्या अनुरोधानें गुरु व लघु हे कालानें केलेलेंच समजावें. हा प्रकार हरदत्तानें स्पष्ट सांगितला आहे.
मिताक्षरेंतही असेच आहे. आतां जें “अनेक आशौचें एक काल प्राप्त होईल तर गुरु आशौचानें लघु आशौचाची

शुद्धि जाणावी. मृताशौच व जननाशौच यांचा योग झाला असेल तर त्यांमध्ये मृताशौच गुरु आहे” असे हारीस-कौर्मादिवचन आहे, त्यांत अस्पृश्यत्वामुळे मृताशौचाला गुरुत्व सांगितलें आहे, असे समजावें.

कचिदल्पकालेनापि दीर्घकालाशौचनिवृत्तिमाह देवलः परतः परतो शुद्धिरध्वद्वौ विधीयते स्वाधेत्वं च त-
मादहः पूर्वेणैवात्र शिष्यते अस्यार्थः अघवृद्धौ दीर्घाशौचे परतो शुद्धिः परमाशौचं यदि पूर्वाशौचमुत्तरस्वपंच-
मदिनात्परतो नुवर्तते तदा पूर्वेणैव शुद्धिः पूर्वस्योत्तराशौचाधिकाधिककालव्यापित्वे पूर्वशेषाच्छुद्धिरित्यर्थः यथाप-
ष्ठमासे गर्भपातनिमित्तपडहाशौचमध्ये दशाहपाते पूर्वेणोत्तरनिवृत्तिः यथावा त्र्यहमध्ये स्नावपातनिमित्तपड-
हपंचाहयोरितिकश्चित् तत्र दशाहवधिपूर्वशेषशुद्ध्यावेदकवाक्यविरोधान् षष्ठादिदिने पूर्णाशौचमंत्यरात्रौ-
तुल्यहइत्यनौचित्याच्च अस्मद्गुरुवस्तुपंचतमादह आशौचंततो न्यूनत्र्यहादिचेत्स्यादस्मिन्विषये पूर्वेणैवाशुद्धिः-
शिष्यते दशाहादिरात्रिशेषेत्यहादिपाते त्र्यहाद्यल्पाशौचानां परस्परं रात्रिशेषे संपाते च न द्व्यहविद्वुद्धिरित्यर्थ-
माहुः कचित्पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादमाह गौतमः रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिरिति प्रभातं त्र्यहमेव रात्रि-
शेषे द्व्यहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचिक्रयहादिति शातातपोक्तेः इदं शावांते सूतकपाते सजातीये वा तुल्यं अत्र
केचित् रात्रिशब्दः अहोरात्रपरः अहःशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिरिति शांखलिखितोक्तेः अथयद्विश-
रात्राः सन्निपते युराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमादिवसादत ऊर्ध्वद्विरात्रेण व्युत्प्रायां त्रिरात्रेणेति बौधायनोक्तेः
पुनः पाते दशाहात्प्राक्पूर्वेण सहगच्छति दशमे ह्यपतेयस्याहर्द्वयात्सविशुध्यतीति प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं-
विधिरिति देवलोक्तेः नवमदशमशब्दौ चोपांत्यां दिनपरौ तेन श्रुत्रियादावपि तथेत्याहुः माधवीयेत्येवम्।

कचित् स्थलीं अल्पकालीन आशौचानं ही दीर्घकाल आशौचाची निवृत्ति सांगतो. देवल—“पहिल्या आशौचांत दुसरें दीर्घ आशौच प्राप्त असतां पहिल्यानें दुसरें जात नाहीं. जर पहिलें आशौच दुसऱ्या आशौचाच्या पांचव्या दिवसाच्या पुढें अनुवृत्त असेल तर पहिल्या आशौचानेंच त्या दीर्घ आशौचाची शुद्धि होते.” म्हणजे पहिलें आशौच दुसऱ्या आशौचाच्या निम्मेपेक्षां पुढें गेलें असेल तर पहिल्या आशौचाच्या शेपानें शुद्धि होते, हा इत्यर्थ होय. जसे—सहाव्या महिन्यांत गर्भपात होऊन तन्निमित्तक सहा दिवसांच्या आशौचामध्ये दुसरें दहा दिवसांचें आशौच प्राप्त असेल तर पहिल्या आशौचानें दुसऱ्याची निवृत्ति होते. अथवा तीन दिवसांच्या आशौचामध्ये स्नाव-पातनिमित्तक चार-पांच दिवसांचें आशौच प्राप्त असतां त्या तीन दिवसांच्या आशौचानें त्या चार-पांच दिवसांच्या आशौचाची निवृत्ति होते; असे कोणी एक सांगतो. तें हें कोणी एकानें सांगितलेलें देवलमत बरोबर नाहीं. कारण, या अर्थानें असे झालें की, पहिलें आशौच दुसऱ्या आशौचाला अर्धापेक्षा अधिक व्यापील तर म्हणजे पहिल्या दहा दिवसांच्या आशौचांत पांचव्या दिवसाचे आंत दुसरें दहा दिवसांचें प्राप्त होईल तर पहिल्यानें दुसऱ्याची निवृत्ति होईल असे झालें. म्हणून पूर्वी सांगितलेल्या “दहा दिवसांचें आंत दुसरें आशौच प्राप्त असतां पहिल्यानें दुसऱ्याची निवृत्ति होते” या मनु इत्यादिकांच्या वचनाशीं विरोध येतो. आणि या देवलवचनानें, सहाव्या-सातव्या इत्यादि दिवशीं दुसरें आशौच प्राप्त असतां निवृत्ति होत नाहीं, तर दुसरें पूर्ण आशौच धरावें, असें झालें. व पुढें सांगावयाच्या शातातप-देवल—इत्यादि वचनांनीं पहिल्या आशौचाच्या शेवटच्या रात्रीं दुसरें प्राप्त असतां दोन दिवस आशौच, असें झालें तें अनुचितही आहे. आमचे गुरु तर—वरील देवलवचनाचा अर्थ—पांचव्या दिवसाचे आंतील म्हणजे तीन दिवसांचें वगैरे आशौच दहा दिवसांच्या आशौचांत पडलें तर पहिल्या आशौचानें अशुद्धि राहते, आणि दशाहादि आशौचाच्या शेवटच्या रात्रीं तीन दिवसांचें आशौच पडलें तर आणि दोन्ही तीन दिवसांच्या वगैरे अल्प आशौचांचा संपात शेवटच्या रात्रीं पडला तर दोन-तीन दिवसांची शुद्धि होत नाहीं, असा अर्थ करितात. कचित्स्थलीं पूर्वशेषानें शुद्धीचा अपवाद सांगतो गौतम—“पहिल्या आशौचाची रात्रि शेष असतां दुसरें आशौच समजलें तर दोन दिवसांनीं शुद्धि होते. आणि प्रभातकालीं म्हणजे रात्रीच्या शेवटच्या प्रहरीं समजलें तर तीन दिवसांनीं शुद्धि होते.” या वचनांत प्रभात म्हणजे शेवटचा प्रहर समजावा; कारण, “रात्रिशेष असेल तर दोन दिवसांनीं शुद्धि आणि रात्रीचा एक प्रहर शेष असतां समजेल तर तीन दिवसांनीं शुद्धि होते” असे शातातपवचन आहे. हें सांगणें मृताशौचाच्या अंती जननाशौच समजलें असतां किंवा मृताशौचाच्या अंती मृताशौच व जननाशौचाच्या अंती जननाशौच समजलें असतां समान आहे. येथें केचित् ग्रंथकार—या गौतमवचनांतील ‘रात्रि’ शब्द दिवसरात्रीचा बोधक आहे. कारण, “पहिलें आशौच एक दिवस शेष असून दुसरें समजेल तर दोन दिवसांनीं शुद्धि व प्रभातकालीं समजेल तर तीन दिवसांनीं शुद्धि” असे शांखलिखितवचन आहे. “पहिलें आशौच दहा दिवसांचें असून आशौचानें नव दिवसांचें आंत दुसरें दहा दिवसांचें आशौच पडलें तर तें संपतें. नव दिवसांच्या पुढें दहाव्या दिवशीं दुसरें दहा दिवसांचें

आशौच पडलें तर दोन दिवसांनीं शुद्धि होते. पहाटेस पडेल तर तीन दिवसांनीं शुद्धि होते.” असें बौधायनवचन आहे. “दहाव्या दिवसाचे आंत पुनः दुसरें आशौच पडेल तर पहिल्या आशौचाच्या बरोबर दुसरें जातें. ज्याला दुसरें आशौच पहिल्याच्या दहाव्या दिवशीं पडेल तो दोन दिवसांनीं शुद्ध होतो. प्रभातकालीं पडेल तर तीन दिवसांनीं शुद्ध होतो. दहा दिवसांच्या आशौचाविषयीं हा विधि समजावा” असें देवलवचनही आहे. वरील वचनांत ‘नवम’ या शब्दानें आशौचाचे शेवटच्या दिवसाजवळचा दिवस समजावा. आणि ‘दशम’ या शब्दानें आशौचाचा शेवटचा दिवस समजावा. तेणेंकरून क्षत्रिय-वैश्य इत्यादिकांच्या बारा व पंधरा दिवसांच्या आशौचांतही तसेंच समजावें, असें (कंचित्) सांगतात. माधवाच्या ग्रंथांतही असेंच आहे.

अन्येत्वाहुः अंतर्दशाहेत्यातांचेत्पुनर्मरणजन्मनी तावत्स्यादशुचिर्विप्रोयावत्तस्यादनर्दशमिति मनु-
पराशराद्यैर्दशमदिनेनोत्तरस्यशुद्धेरुक्तत्वात् विरोधःस्पष्टएव विरोधेच यद्वैकिंचनमनुरवदत्तद्वेषजं कलौ-
पराशरस्मृतिरित्येनेनपूर्ववचसांवाधः अतएववाचस्पतिनातेषामनाकरत्वमुक्तं साकरत्वेपिजाति-
मात्रविप्रादिविषयं देशांतरविषयंवा युगांतरविषयंवास्तु तेनगौतमीये रात्रिशब्दो नाहोरात्रपरः रात्रिमा-
त्रावशिष्टेइतिमिताक्षरोक्तेश्च नकुक्कविकृतेरिवान्यथाव्याख्यायुक्ता माधवस्तु अनिर्गतदशाहमिति पूर्व-
स्वग्रंथविरोधादुपेक्ष्यइति **अस्मत्पितृचरणास्तुबौधायनीये** आनवमादिवसादिति द्वितीयाशौचस्य-
नवमंदिनंप्रथमस्यदशममेवाह ग्रहादिवृद्धेःपूर्वशेषापवादत्वात्तस्यचन्यायतोद्वितीयदिनादेवप्रवृत्तेः अतऊ-
र्ध्वमितिदशमरात्रिपरं **शंखलिखितोक्तौदेवलोक्तौ**चाह शेषेदशमेह्निचातीतेरात्रौपतेदित्यर्थः दश-
म्यांपितानामकुर्वादितिवत् तेननमन्वाद्यैर्विरोधोनापिमिताक्षराद्यैरित्याहुः **अपराकैर्निर्णयामृतस्वर-**
सोप्येषं यत्तुतत्रैवब्राह्मे आद्यंभागद्वयंयावत्सूतकस्यतुसूतकं द्वितीयंपतित्वाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते
अतऊर्ध्वद्वितीयात्सूतकांताच्छुचिःस्मृतः एवमेवविचार्यस्यान्मृतकेमृतकांतरं मृतकस्यांतरेयत्रसूतकंप्रतिप-
द्यते सूतकस्यांतरेवाथमृतकंयत्रविद्यते मृतकांतंभवेत्तत्रशुद्धिर्वर्णेषुसर्वशइति अस्यास्तत्रैवोक्तः पूर्वा-
शौचचरमाहोरात्रस्यदिनरूपेआद्यभागद्वयेन्याशौचपातेपूर्वेणशुद्धिः भागद्वयोर्ध्वरात्रौ सूतकांतरेद्वितीया-
त्पूर्वभिन्नात्सूतकांताद्ग्रहादिरूपाच्छुद्धिरिति **अपराकैर्त्वाशौचकालत्रेधाविभज्यनिर्गुणविषयत्वेनेदमुक्तं**
अस्यवचनस्यनिर्मूलत्वोक्तिरहोक्तिरेव अतःपूर्वाशौचांतरात्रावन्याशौचेहोरात्रद्वयमधिकंरात्रेरंत्ययामेतुदिन-
त्रयमिति**भट्टचरणोपदिष्टःपंथाः** एतत्संपूर्णाशौचसंपातेएव रात्रिशेषेत्रात्रादिसंपातेतुपूर्वशेषेणै-
वशुद्धिः द्विरात्रादिवृद्धेःपूर्ववाक्यैर्दशाहविषयत्वादपवादाभावेःशेषशुद्धेरेवसामान्यतःप्रवृत्तेः **षडशी-**
तौतुदशाहंतेग्रहपातेपिद्वित्रिदिनवृद्धिरुक्ता रात्रिशेषेयदाशौचपूर्वानधिकमापतेत् ऊर्ध्वदिनद्वयंपूर्वग्राम-
शेषेदिनत्रयमिति अनधिकंसमन्यूनंवा तत्तुच्छं निर्मूलत्वादंतपेक्षिण्यादिपातेपिद्विरात्रादिवृद्ध्यापतेत्पूर्वा-
शौचांतर्वर्धितद्वित्रिदिनमध्येधिकाशौचांतरपातेतुवर्धितस्याल्पत्वादधिकेनैवशुद्धिः नचवर्धितस्यपूर्वशेषत्वंशं-
कनीयं रात्रिशेषपूर्वशेषशुद्ध्यपवादेनैमित्तिकावृत्तिन्यायोजीवनात् अपवादाभावेउत्सर्गस्यप्राप्तेः ।

इतर ग्रंथकार तर असें सांगतात कीं, “दहा दिवसांचे आंत पुनः मरण किंवा जनन उत्पन्न झालें तर जोपर्यंत पहिल्याचे दहा दिवस संपले नाहीत तोपर्यंत ब्राह्मण अशुद्ध होतो” ह्या मनु-पराशर-इत्यादिकांच्या वचनांनीं दहाव्या दिवशीं समजेल तर दुसऱ्या आशौचाची शुद्धि सांगितल्यामुळें पूर्ववचनांचा व यांचा विरोध स्पष्टच आहे. विरोध आला असता “जें कांहीं मनु सांगता झाला तें मेषज (हित) आहे,” “कलियुगांत पराशरस्मृति प्रमाण आहे” या वाक्यांनीं पूर्वीच्या शंखलिखितादिवचनांचा बाध होतो. म्हणूनच वाचस्पतीनें तीं वचनें आकरांत (निबंधांत) नाहीत असें सांगितलें. आकरांत असलीं तरी जातीचेच केवळ ब्राह्मणादिक असतील त्यांविषयीं, किंवा देशांतराविषयीं अथवा इतर युगां-
विषयीं असोत. तेणेंकरून वरील गौतमाच्या वचनांतील ‘रात्रि’ शब्द दिवसरात्रीचा बोधक नाही. आणि शेवटची रात्र केवळ अवशेष असेल तर, असें मिताक्षरेंतही सांगितलें आहे. कुत्सित कवीच्या कृतीप्रमाणें अन्यथा (इतर रीतीची) व्याख्या युक्त नाही. माधव तर-दहा दिवस गेले नाहीत तों समजेल तर, ह्या पूर्वीच्या त्याच्याच ग्रंथाशीं विरोध असल्यामुळें तो उपेक्षणीय (अप्राप्त) आहे. आमचे बडील (रामकृष्णभट्ट) तर-वरील बौधायनवचनांत ‘आनवमादिवसात्’ म्हणजे दुसऱ्या आशौचाचा नववा दिवस तोच पहिल्या आशौचाचा दहावा दिवस सांगितला आहे. कारण, दहाव्या दिवसानंतर

दोन वगैरे दिवसांची वृद्धि सांगितली ती पूर्वी सांगितलेल्या पहिल्या शेषानें निवृत्तीचा अपवाद आहे. तें दुसरें आशौच पहिल्या आशौचाच्या दुमऱ्या दिवसापासूनच प्रवृत्त झालें आहे. म्हणून त्याचें तात्पर्य असें की, पहिल्या आशौचाच्या दहाव्या दिवशीं दुमऱ्या आशौचाचे नऊ दिवसांपर्यंत कोणताही दिवस पडेल तर पहिल्यानें दुमऱ्याची निवृत्ति होते. त्याच्या पुढें म्हणजे पहिल्याच्या दहाव्या रात्री पडेल तर दोन दिवसांनीं शुद्धि असें समजावें. शंखलिखितवचनांतील 'शेष' शब्द आणि देवत्ववचनांतील 'दशमेहि' यांचा अर्थ—दहावा दिवस जाऊन रात्रीं दुसरें आशौच पडेल तर दोन दिवसांची वृद्धि होते, असा समजावा. जसें दहाव्या रात्रीं पित्यानें मुलाचें नांव ठेवावें, या वाक्यांत दहावी रात्र गेली असतां अकराव्या दिवशीं असा अर्थ करितात तसा येथें करावा. असा अर्थ केल्यानें मनु-पराशर-इत्यादि वचनांशीं विरोध येत नाही. आणि मित्ताक्षरा इत्यादि ग्रंथांशीही विरोध येत नाही, असें सांगतात. अपराकांत निर्णयामृताचें स्वरूपही असेंच आहे. आतां जें तेथेंच ब्रह्मांत सांगतो—“जननाशौचाच्या पहिल्या दोन भागांत दुसरें जननाशौच पडलें असतां पहिल्या जननाशौचानें शुद्धि होते. दोन भागांच्या पुढें दुसरें पडलें तर दुसरें समाप्त झाल्यावर शुद्धि होते. मृताशौचांत मृताशौच पडेल तर असेंच समजावें. ज्या ठिकाणीं मृताशौचांत जननाशौच किंवा जननाशौचांत मृताशौच पडेल त्या ठिकाणीं मृताशौच समाप्त झाल्यावर सर्ववर्णीची शुद्धि होते” या वचनांचा अर्थ तेथेंच असा केला आहे की, ‘पहिल्या आशौचाच्या शेवटच्या रात्रि-दिवसाचे दिवसरूपी पहिल्या दोन भागांत इतर आशौच पडलें असतां पहिल्या आशौचानें शुद्धि होते. दोन भाग गेल्यावर रात्री इतर सूतक पडलें असतां प्रथमसूतकव्यतिरिक्त असें जें दोन-तीन दिवस वाढविलेलें सूतक तें समाप्त झाल्यावर शुद्धि होते.’ अपराकांत तर-आशौचकालाचे तीन भाग करून निर्गुणाला हें सांगितलें, असें सांगितलें आहे. हें वचन निर्मूल म्हणणारे अज्ञच समजले पाहिजेत. या कारणास्तव वर केलेल्या अर्थावरून पहिल्या आशौचाच्या शेवटच्या रात्री इतर आशौच पडलें असतां दोन अहोरात्र अधिक आशौच करावें. शेवटच्या रात्रीच्या शेवटच्या प्रहरी पडेल तर तीन दिवस अधिक आशौच करावें, हा भ्रष्टांनीं सांगितलेला मार्ग आहे. दोन, तीन दिवस वाढवून आशौच सांगितलें हें संपूर्ण (दहा दिवसांचें) आशौच पडेल तरच आहे. शेवटच्या रात्री तीन दिवसांचें वगैरे अल्प आशौच पडेल तर पहिल्या शेषानेंच शुद्धि होते. कारण, दोन-तीन दिवसांची वृद्धि सांगितली ती पूर्वीच्या (देववादिकांच्या) वचनांवरून दहा दिवसांच्या आशौचाविषयीं आहे. म्हणून पडलेल्या तीन दिवगांच्या आशौचाविषयीं दोन दिवस वाढवावे इत्यादिक अपवादवाक्य नसतां पूर्वीच्या याज्ञवल्क्यादिवचनांनीं सांगितलेली शेषानें शुद्धि तीन सामान्यतः प्रवृत्त होते. पडशीतीत तर—दहा दिवसांच्या आशौचाच्या अंती तीन दिवसांचें आशौच पडलें तरी दोन-तीन दिवसांची वृद्धि (अधिक आशौच) सांगितली आहे. कारण, “पहिल्या आशौचाची रात्रि शेष अमतां पहिल्या आशौचाच्या समान किंवा न्यून आशौच पडेल तर पहिल्या आशौचापेक्षां अधिक दोन दिवस आशौच. आणि एक प्रहर रात्र शेष अमतां पडेल तर तीन दिवस आशौच करावें.” हें षडशीतिमत तुच्छ आहे. कारण, हें मांगणें मूलवचनरहित आहे. आणि या रीतीनें म्हटलें म्हणजे पक्षिणी इत्यादि आशौच पडलें तरी दोन-तीन दिवसांची वृद्धि (अधिक) प्राप्त होईल. पहिल्या दहा दिवसांच्या आशौचाच्या अंती इतर आशौच पडल्यामुळे वाढविलेले जे दोन-तीन दिवस त्यामध्ये अधिक (दहा दिवसांचें वगैरे) आशौच तिसरें प्राप्त झालें असेल तर वाढविलेलें आशौच अल्प असल्यामुळे अधिक प्राप्त झालेल्या आशौचानेंच शुद्धि होते. आतां वाढविलेलें आशौच पहिल्या आशौचाचा शेष आहे, म्हणून त्यानें तिसऱ्याची निवृत्ति होईल, अशी शंका करू नये. कारण, रात्रिशेष असतां दोन दिवस आशौचवृद्धि करावी, हें वचन पूर्वशेषशुद्ध्याचा अपवाद असल्यामुळे वाढविलेल्या आशौचामें पूर्वशेषत्व नाही, म्हणून निमित्ताची (मरणादिकाची) आवृत्ति असतां नैमित्तिक जें आशौच त्याची आवृत्ति होते त्या न्यायाचें येथें उज्जीवन झालें. वर्धित आशौचानें इतराचे शुद्धीविषयी अपवाद नसल्यामुळे उत्तमर्ग (पूर्वा सांगितलेल्या आशौचविधि) वाक्याचीच प्रवृत्ति होते.

अपवादांतरमाहशब्दः मान्यप्रमीतायामशुद्धाभ्रियतेपिता पितुःशेषेणशुद्धिःस्यान्मातुःकार्यातुपक्षिणी पादत्रयस्पष्टम् तुयस्त्वव्यमर्थः पित्राशौचमध्येमातृमृतौपित्राशौचांतेमातुःपक्षिणीमधिकांकुर्यादिति अत्राशुद्धावित्युक्तेरात्महादेःपितुराशौचाभावान्मातृमरणेनपक्षिणी किंतुपूर्णमेवाशौचं इयंचपक्षिणीतृतीयादिबिनप-रानाद्यदिनद्वये प्रतिनिमित्तनैमित्तिकावृत्तिन्यायापवादत्वादितिपितृचरणाः सपिंडाद्याशौचेनमातापित्रो-राशौचापगमोनास्त्येव एवंभर्तुरपि इयंचपक्षिणीदशमदिनात्पूर्वमातृमरणेभ्ये दशम्यांरात्रौतत्प्रमातेवामातृम-रणेह्यहयहसमुभितापक्षिणीतित्कश्चित् तत्र संख्यांतरोपजननापत्त्याह्यह्यदिश्रुतिबाधापत्तेः अतएवैकादे-यापददेयाइत्यादौश्रुतसंख्याबाधापत्तेःसमुच्चयोनिरस्तोद्वादशे गुरुणालघुशुभ्येदित्युक्तेः ।

दुसरा अपवाद सांगतो शब्द—“माता प्रथम मृत असतां आशौचामध्ये पिता मृत होईल तर मातेच्या शेष आशौचानें पित्याच्या आशौचाची शुद्धि होते. आणि पित्याच्या आशौचामध्ये पिता मृत असेल तर पित्याच्या आशौचाचे असें

मातेचें पक्षिणी आशौच अधिक करावें.” या वचनांत ‘अशुद्धींत मृत असेल’ असें म्हटलें आहे म्हणून आत्महत्या वगैरे करणारा जो पिता त्याचें आशौच नसल्यामुळें माता मृत असेल तर पक्षिणीच अधिक नाही, तर मातेचें पूर्ण आशौच करावें. ही मातेची अधिक पक्षिणी सांगितली ती पित्याच्या तिसऱ्या दिवसापासून पुढें मृत असेल तर समजावी. पहिल्या दोन दिवशीं मृत असेल तर अधिक पक्षिणी नाही. कारण, प्रत्येक निमित्ताला नैमित्तिकाची (आशौचाची) आश्रुति करावी, असा जो न्याय त्याचा अपवाद आशौच संपात वचनें आहेत, असें पितृचरण सांगतात. सपिंडादिकांच्या आशौचानें मातापितरांचें आशौच जात नाहीच. याप्रमाणें पतीचेंही आशौच इतराशौचानें जात नाहीच. अधिक पक्षिणी सांगितली ही दहा दिवसांचे आंत माता मृत असतां समजावी. पित्याच्या आशौचाचे दहाव्या रात्री किंवा पहाटेस माता मृत असतां दोन दिवस किंवा तीन दिवस अधिक धरून आणि पक्षिणी धरावी, असें कोणी एक सांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, आशौचाचे दिवसांस इतर संख्येची (साडेतीन किंवा साडेचार दिवसांची) उत्पत्ति प्राप्त झाल्यामुळें वचनांत तीन दिवस इत्यादि श्रुतसंख्येचा बाध होईल, तो होतां कामा नये; म्हणूनच आधानप्रकरणीं ‘एका पैया, षट् पैयाः, द्वादश पैयाः’ असें वाक्य आहे त्या ठिकाणीं एक देऊन सहा दिल्या तर वाक्यांत श्रुत जी एकल, षट्क इत्यादि संख्या तिचा बाध होईल म्हणून समुच्चयाचा (एक देऊन सहा देणें इत्यादिकांचा) निरास (निषेध) जैमिनिस्-श्रीच्या बाराव्या अध्यायांत केला आहे. आणि गुरु आशौचांत लघु आशौच अंतर्गत झाल्यानें गुरु आशौचानें लघूची शुद्धि होते, असें पूर्वी सांगितलेंही आहे.

यदानारीविशेदमिप्रियस्यप्रियवाङ्मया तदाशौचविधातव्यमर्त्राशौचक्रमेणहीतिपृथ्वीचंद्रोदयेलघु-
हारीतोक्तेः तत्रैवषडशीतिमतेपि मृतपतिमनुब्रज्यपत्नीचेदनलंगता नतत्रपक्षिणीकार्यपैतृकादेवशु-
ध्यति पुत्रोन्योवाभिदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः नवश्राद्धसपिंडचयुगपत्तुसमापयेत् गृहीताशौचानांपुत्रा-
णापितुःसंस्कारेमातुःसपिंडस्यवामरणेनायंनिर्णयः अतिक्रांतकालाद्विद्यमाननिमित्तस्यबलवत्त्वात् द्वादशव-
र्षोत्तरसंस्काराशौचमध्येसपिंडमरणेनप्येवं यत् अपराकैब्राह्मे ऋग्वेदावादात्साध्वीस्त्रीनभवेदात्मघातिनी
व्यहशौचेतुनिर्वृत्तेश्राद्धप्राप्तिशाल्वदिति तद्वर्तुराशौचोत्तरमन्वारोहणेत्रिरात्राशौचपरमितिपृथ्वीचंद्रः
ब्राह्मणादेःक्षत्रियाद्यनुगमनेस्पाशौचपरमित्यपरार्कः शुद्धितत्त्वादयोगौडास्तु भर्तुराशौचोत्तरम-
न्वारोहणेत्रिरात्रं सहगमनेतुसंपूर्णम् युद्धहतस्यसद्यःशौचेन्वारोहणेब्राह्मोक्तस्त्रिरात्रत्वात् भर्तुरपिच्यहेणपि-
डदानं एकचित्तौतुसद्यःशौचमित्याहुः अन्यतप्रागुक्तम् ।

मातेचें अन्वारोहण (सतीगमन) असेल तर पक्षिणी नाही. कारण, “पतीचें प्रिय करानें, अशा इच्छेनें ज्या वेळीं पत्नी अर्मांत प्रवेश करील त्या वेळीं पतीच्या आशौचक्रमानें पत्नीचें आशौच करावें” असें पृथ्वीचंद्रोदयांत लघुहा-
रीतवचन आहे. तेथेंच षडशीतिमतांतही—“मृत झालेल्या पतीच्या मागाहून जाऊन पत्नी जर अर्मांत प्रवेश करील तर त्या ठिकाणीं पुत्रानें मातेचें पक्षिणी आशौच अधिक करूं नये. तो पित्याचे आशौचानेंच शुद्ध होतो. तिला अग्नि पैणारा पुत्र किंवा दुसरा कोणी असेल तो पित्याच्या आशौचापर्यंतच अशुचि होतो. त्या दोघांचें नवश्राद्ध व सपिंडीकरण एकदम समाप्त करावें.” पूर्वी पुत्रांनीं पित्याचें आशौच धरलें असून पित्याचा संस्कार करतेवेळीं आशौच धरावयाचें त्या वेळीं माता किंवा सपिंड मृत असेल तर त्याविषयीं हा (पित्याच्या आशौचांत इतरांचें संपत्तें हा) निर्णय नाही. कारण, अतिक्रांत आशौचनिमित्तापेक्षां विद्यमान आशौचनिमित्त बलिष्ठ आहे. बारावर्षांनंतर संस्काराच्या आशौचामध्ये सपिंड भरण असतांही असेंच समजावें. आतां जें अपराकांत ब्राह्मांत—“ऋग्वेदाच्या वादावरून (इमानारीविधवा० इत्यादिकावरून) अन्वारोहण (सतीगमन) करणारी साध्वी स्त्री आत्मघातकी होत नाही. तीन दिवसांचें आशौच समाप्त झाल्यावर यथाशास्त्र तिला श्राद्ध प्राप्त होते” असें तीन दिवस आशौच सांगितलें, तें भर्त्याचें आशौच संपल्यावर स्त्रियेनें अन्वारोहण केलें असतां त्रिरात्र आशौचविषयक आहे, असें पृथ्वीचंद्र सांगतो. ब्राह्मणादिपतीच्या क्षत्रियादिक स्त्रियेनें अनुगमन केलें असतां अल्प आशौचाविषयीं हें वचन आहे, असें अपराकै सांगतो. शुद्धितत्त्व इत्यादिक गौड तर-
पतीचें आशौच संपल्यावर स्त्रियेचें अन्वारोहण असतां तीन दिवस आशौच. सहगमन असतां संपूर्ण आशौच. पति युद्धांत मृत असतां त्याचें सद्यःशौच असून पत्नीनें अन्वारोहण केलें असतां बरील ब्राह्मवचनानें तीन दिवस आशौच सांगित-
ल्यामुळें भर्त्याला देखील तीन दिवसानंतर पिंडदान करावें, दोघांची एक चित्ति असेल तर सद्यःशौच करावें, असें सांग-
तात. अन्वारोहण केलेलीचा इतर विषय (श्राद्धादि प्रकार) पूर्वी श्राद्धप्रकरणीं सांगितला आहे.

पूर्वशेषेणशुद्धेरपवादांतरमुक्तषडशीत्यां पूर्वाशौचेनयाशुद्धिःसूतकेमृतकेचसा सूतिकाभिमिदं हित्वा
श्वेतस्यचसुतानपि निर्जण्यामृते स्मृतिसंग्रहेपि इयंविशुद्धिरुद्धितासूतिकाभिमिदंविना इदंमूल्येनदाह-

करणे मातुलादिसंबन्धेन दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तं प्राक् **वृद्धाग्निः** सूतकाद्विगुणं श्रावशावाह्विगुणमा-
र्तवं आर्तवाह्विगुणासूतिस्ततोपिशवदाहकः तथा शौचसंपाते नशावजनननिमित्तकार्यप्रतिबंधः आशौचे तु स-
मुत्पन्ने पुत्रजनमयदाभवेत् कर्तुं तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यतीति प्रजापतिस्मृतेः आशौचे तु द्विविधे-
पिच्छानात्तपः अंतर्दशाहेजननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिंडदानं यथाविधि प्रारब्धे प्रेत-
पिंडे तु मध्ये चेज्जननं भवेत् तथैवाशौचपिंडांस्तु शेषान्दद्याद्यथाविधि मातुःपक्षिणीमध्ये पितुरेकादशाहं कुर्वात्
आद्यं श्राद्धमशुद्धोपिकुर्यादेकादशे हेन इति स्मृतेः केचित्त्विदं क्षत्रियादिपरम् विप्रादेस्त्वाशौचांतर एकावज्ञा-
हश्राद्धं नेत्याहुः अतएव विज्ञानेश्वरेण दशमं पिंडमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेदिति शुचित्वं महौ कोटिद्विग-
विप्रनिमंत्रणपरमिति वदता तत्र शुद्धेरंगत्वं दर्शितं एवं वृषोत्सर्गशय्यादानादावपि देवयाज्ञिकेन त्वाशौचांत-
रेपि भवत्येवेत्युक्तम् ।

पहिल्या आशौचशेषानं शुद्धि सांगितली तिचा दुसरा अपवाद सांगतो **बडशीतीत**—“जननाशौचाविषयी व मृता-
शौचाविषयी पहिल्या आशौचाच्या शेषानं शुद्धि सांगितली ती सूतिका, प्रेताला अग्नि देणारा व मृताचे पुत्र यांना बर्ज्य करून
इतराविषयी समजावी.” निर्णयामृतांत स्मृतिसंग्रहांतही—“ही शुद्धि सूतिका व अग्नि देणारा यांचाचून इतरांची
सांगितली आहे.” अग्नि देणाराला पूर्ण आशौच सांगितलं हें मूल्य घेऊन दाह करणाराविषयी आहे. मातुलादि संबंध
असल्यामुळे दाह मात्र केला असेल तर तीन दिवसच आशौच, असे पूर्वी सांगितलं आहे. **वृद्धाग्नि**—“जननाशौचाहून
मृताशौच द्विगुणित दोषी आहे. मृताशौचाहून स्त्रियांचं आर्तं द्विगुणित आहे. आर्तं वाहून सूतिका द्विगुणित आहे. आणि
सूतिकेहून शवदाहक अधिक दोषी आहे” तसेच आशौचांचा संपात असतां जनन व मरण यांच्या निमित्तानें होणाऱ्या
कार्याचा प्रतिबंध होत नाही. कारण, “आशौच उत्पन्न अगतां जेव्हां पुत्रजन्म होईल तेव्हां जातकर्मदि कल्याणी तात्कालिक
शुद्धि होते, म्हणजे तो कर्ता पहिल्या आशौचाचें शुद्ध होतो” अशी प्रजापतिस्मृति आहे. दोन्ही प्रकारच्या आशौचांत
तर शातातप सांगतो—“जननानंतर दहा दिवगांच्या आंत मरण होईल तर प्रेताचा उद्देश करून यथाविधि पिंडदान
करावें. प्रेतपिंडाला आरंभ केला अमतां मध्ये जर जनन होईल तर तसेच शेष राहिलेले प्रेतपिंड यथाविधि द्यावे.” मातेचें
अधिक पक्षिणी आशौच म्हणून सांगितलं, त्या ठिकाणीं मध्ये पित्याचें एकादशाह श्राद्ध करावें. कारण, “पहिलें श्राद्ध
अकराव्या दिवशीं अशुद्ध असेल तरी त्याचें करावें” अशी स्मृति आहे. केचित् विद्वान् तर—हें स्मृतिवचन
क्षत्रियादिविषयक आहे. ब्राह्मणादिकांचें तर दुसऱ्या आशौचांत एकादशाह श्राद्ध होत नाही, असे सांगतात म्हणूनच
विज्ञानेश्वरानें “कर्ता दहावा पिंड देऊन शवदच्या रात्री शुद्ध होतो” या वचनानें सांगितलेलें शुचिल हें अकराव्या
दिवशीं महौकोटिद्विगुणा ब्राह्मणांचे निमंत्रणाविषयी आहे, असे सांगितल्याने त्या श्राद्धाविषयी शुद्धि हें अंग आहे, असें
दर्शिलें आहे. याप्रमाणें वृषोत्सर्ग, शय्यादान इत्यादिकाविषयी शुद्धि अमली पाहिजे असे झालें. देवयाज्ञिकानें तर-
अकराव्या दिवशीं इतर आशौच अगलें तरी एकादशाह श्राद्ध होतच आहे, असे सांगितलें आहे.

अथाशौचापवादः मचपंचधा कर्तुतः कर्मतः द्रव्यतः मृतदोषतः विधानाच्च आद्यो ब्रह्मचारिय-
त्यादिषु नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणां नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृत इति कौर्मोक्तेः तुर्य-
पादेशावेवापि तथैव चेति देवलोपाठः आशौचमन्यकर्मोपलक्षणं ब्रह्मचारीनकुर्वीतशवबाहविकाः क्रियाः यवि
कुर्याच्चरेत्कृच्छ्रपुनः संस्कारमेव चेति देवलोक्तेः एतत्पित्राद्यतिरिक्तविषयं आचार्यस्वमुपाध्यायं मातरपितरं-
गुरुं निर्हृत्य तु व्रती प्रेतं व्रतेन वियुज्यत इति मनूक्तेः हारीनः मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः व्रत-
स्थोपि हि कुर्वीत पिंडदानोदकक्रियाम् भवत्यशौचं नैवास्य नैवाग्निस्तस्य लुप्यते स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत पूर्ववद्विधिद-
र्शितं संवर्तः अन्यगोत्रोपसंबंधः प्रेतस्याग्निददातियः पिंडं चोदकदानं च सदशाहं समाचरेत् निर्हरणमन्यक-
र्मपरं एवं मातामहस्य यथा व्रतस्थोपि सुतः पितुः कुर्यान्क्रियां नृप तथा मातामहस्यापि दौहित्रः कर्तुमर्हतीत्यपरा-
र्कं भविष्योक्तेः मातापित्रो रुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकं कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भवत्येव व्रतादिसिक्ता-
लादर्शाच्च तत्रान्यकर्मनिमित्तमसृष्ट्यत्वं दशाहमस्येव सगोत्रोवासगोत्रोबायोभिदद्यात्सत्केनरः सोमिकुर्वी-
न्नवश्राद्धं शुभ्ये तु दशमे हनीति दिवोदासोक्तवचनात् अतएव ब्रह्मचारिणः श्रवकर्मिणो व्रताजिह्विरिव ब्रह्म-
मातापित्रोर्गुरोश्चेति गौतमीये व्रतनिवृत्तेरेव पर्युदासो नाशौचस्य संख्यादिकर्मोपस्तुनासि नमोऽस्त्यु-
दासो नाशौचस्य संख्यादिकर्मोपस्तुनासि नमोऽस्त्यु-

कर्मब्रह्मचारीस्वकंकचिदितिछंदोगपरिशिष्टात् पित्रोगुरोर्विपत्तौतुब्रह्मचार्यपियःसुतः सम्रतश्चापिकुर्वीत-
अग्निपिंडोदकक्रियां तेनाशौचनकर्तव्यंसंध्याचैव न लुप्यते अग्निकार्यचकर्तव्यंसायंप्रातश्चनित्यशइति चंद्रि-
कायांसंवर्तौक्तेश्च अत्रकर्मनधिकाररूपाशौचनिषेधएव अपरार्कमाधवाद्यस्तुएकाहमाशौचमाहुः
आचार्यवाप्युपाध्यायंगुरुवापितरंचवा मातरंवास्वयंदग्ध्वाव्रतस्थस्त्रभोजनं कृत्वापततिनोतस्मात्प्रेतान्नंतत्र-
भक्षयेत् अन्यत्रभोजनं कुर्यान्नचतैःसहसंवसेत् एकाहमशुचिर्भूत्वाद्वितीयेहनिशुध्यतीतिब्राह्मोक्तेः तदत्र-
भोजनेतुप्रायश्चित्तं पुनरुपनयनमाशौचंच ।

आतां आशौचाचा अपवाद सांगतो—

त्या आशौचापवादाचे प्रकार पांच, ते असे—१ कितीएक कर्त्याना आशौच नाही. २ कितीएक कर्माविषयी आशौच नाही. ३ कितीएक द्रव्याविषयी (पदार्थाविषयी) आशौच नाही. ४ कितीएक मृतदोषांनी आशौच नाही. ५ कितीएक विधा-
नांनी आशौच नाही. या पांचांमध्ये पहिला प्रकार ब्रह्मचारी, यती इत्यादिकांविषयी आहे. कारण, “नैष्ठिक (नियम धारण करून
जपादि कर्मे करणारे), वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी, यांना विद्वानांनी आशौच सांगितलें नाहीं. आणि पतित मृत अनयां
त्याचें आशौच नाहीं.” असें कौर्मवचन आहे. या वचनाच्या चवथ्या पादांत ‘शावे वापि तथैवच’ असा देवलाचा पाठ
आहे. अर्थ—“जननांत किंवा मृतकांत त्यांना आशौच नाहीं.” या वचनांत ‘आशौच’ हें अत्यकर्मचें उपलक्षण (बोधक)
आहे. कारण, “ब्रह्मचान्यानें शववाहणें इत्यादि क्रिया करूं नयेत. जर तो करील तर कृच्छ्रप्रायश्चित्त व पुनः संस्कार
करावा.” असें देवलवचन आहे. ब्रह्मचान्यानें प्रेतकर्म करूं नये, हें पिता इत्यादिव्यतिस्कांविषयीं समजावें. कारण,
“आचार्य, आपला उपाध्याय, माता, पिता, गुरु यांचें प्रेत ब्रह्मचान्यानें नेऊनही तो आपल्या व्रतापासून भ्रष्ट होत नाहीं”
असें मनुवचन आहे. हारीत—“ब्रह्मचर्यव्रताचरण करणाऱ्या पुत्रांनें व्रतस्थ असूनही मातापितरांचें शास्त्रविहित जें
पिंडदान—उदकदान इत्यादि कर्मे तें करावें, त्याला आशौच नाहीं व त्याचा अग्निही लुप्त होत नाहीं. पूर्वीप्रमाणें विधीनें
सांगितलेलें वेदाध्ययनही त्यानें करावें.” संवर्त—“जो अन्यगोत्री प्रेताला अग्नि देतो व पिंडदान, उदकदान करितो त्यानें
दहा दिवस आशौच करावें.” वरील मनुवचनांत प्रेताचें निर्हरण (नेणें) सांगितलें तेणेंकरून अत्यकर्म समजावें. याप्रमाणें
ब्रह्मचान्यानें मातामहाचें करावें. कारण, “पुत्र व्रतस्थ असूनही जशी पित्याची क्रिया करितो, तशी दाहित्र व्रतस्थ असूनही
मातामहाची देखील क्रिया करण्याविषयी योग्य आहे.” असें अपराकांत भविष्यवचन आहे. आणि “माता, पिता,
उपाध्याय, आचार्य, आणि मातामह यांचें औष्वदेहिक (अत्यकर्म) करणारा ब्रह्मचारी आपल्या व्रतापासून भ्रष्ट होत नाहीं.”
असें कालादर्शाचें वचनही आहे. तें कर्म करीत असतां ब्रह्मचान्याला अत्यकर्मनिमित्तक अस्पृश्यत्व दहा दिवस आहेच.
कारण, “सगोत्र किंवा असगोत्र जो अग्नि देईल त्यानेंच नवश्राद्ध करावें, व तो दहाव्या दिवशीं शुद्ध होईल.” असें दिवो-
दासानें उक्त वचन आहे. ब्रह्मचान्याला दहा दिवस अस्पृश्यत्व आहे म्हणूनच “अत्यकर्म करणाऱ्या ब्रह्मचान्याची ब्रह्मचर्य-
व्रतापासून निवृत्ति होते. माता, पिता व गुरु यांचें कर्म करणाराची व्रतापासून निवृत्ति होत नाहीं.” ह्या गौतमवचनांत
व्रतनिवृत्तीचाच निषेध केला आहे. आशौचाचा निषेध केला नाहीं. संध्यादि नित्यकर्माचा लोप तर होत नाहीं. कारण,
“सूतकामध्ये ब्रह्मचान्यानें आपलें कर्म कधीही टाकूं नये” असें छंदोगपरिशिष्टवचन आहे. आणि माता, पिता, गुरु हे
मृत असतां जो पुत्र ब्रह्मचारी उत्तमव्रत धारण करणारा असेल त्यानेंही अग्निसंस्कार, पिंडदान, उदकदान इत्यादि क्रिया
करावी. त्यानें आशौच करूं नये, व त्याच्या संध्याचा लोपही होत नाहीं. त्यानें दररोज सायंकाली व प्रातःकाली अग्निकार्य
करावें” असें चंद्रिकेंत संवर्तवचनही आहे. येथें कर्माविषयी अनधिकार उत्पन्न करणाऱ्या आशौचाचाच निषेध केला
आहे. अपरार्क—माधव इत्यादिक तर—एक दिवस आशौच सांगतात. कारण, “व्रतस्थ असून आचार्य, किंवा उपाध्याय,
अथवा गुरु किंवा पिता, अथवा माता यांना स्वतः दग्ध करून त्यांच्यांत भोजन करील तर तो पतित होईल, यास्तव
त्या ठिकाणीं प्रेतान्न भक्षण करूं नये. दुसऱ्या ठिकाणीं भोजन करावें. त्यांच्या बरोबर वास करूं नये. त्यानें असें केल्यानें तो
एक दिवस अशुचि होऊन दुसऱ्या दिवशीं शुद्ध होतो” असें ब्राह्मवचन आहे. त्या आशौचवंताचें अन्न भक्षण करील तर
प्रायश्चित्त, पुनः उपनयन, आणि आशौच हीं करावीं.

विद्योदासादयस्तु ब्राह्मोक्तेः प्रथमेऽह्निसंध्यादिलोपः ब्रह्मचारीयदाकुर्यात्पिंडनिर्षपणंपितुः ताव-
त्कालमशौचंस्यापुनः स्नात्वाविशुध्यतीतिप्रजापतिवचनात् द्वितीयाहादौपिंडदानकालेऽवास्पृश्यत्वमात्रं
नान्यदेवाहुः दशाहमस्पृश्यत्वेपि कर्माग्नान्नविधानार्थमेतदित्युक्तं अत्यकर्मकरणे तु ब्रह्मचारिणः पित्रादि-
भरणेऽप्यशौचाभावएवसोपिब्रह्मचर्यकालएव समावर्तनोत्तरंतुपूर्वभूतानां गृहशौचंभवत्येव आदिष्टीनोदकं-

कुर्यादाश्रतस्यसमापनात् समाप्तेतुदकंदत्वात्रिरात्रमशुचिर्भवेदिति मन्त्रः । तत्रापि विकल्पः पितृवैविध्येनै-
षांदोषोभवति कर्हिचित् आशौचकर्मणोतेत्याह्यं ब्राह्मचारिणामिति छंदोगपरिशिष्टात् तथाकृतजी-
वच्छूद्धेन किमप्याशौचनकार्यमिति हेमाद्रिः शुद्धितत्त्वे कौमं सद्यःशौचसमाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपश्रवे
डिबाह्वहृतानां च विद्युतापार्थिवैर्द्विजैः उपश्रव्यंतमरके उपसर्गमृतैश्च सद्यःशौचविधीयत इति पराशरोक्तेः
उपसर्गांतं मरकडतिशूलपाण्यनिरुद्धभट्टादयः याज्ञवल्क्योपि आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं
विधीयत इति मरणसमये पिनाशौचं तथा च शुद्धिरक्षाकरे दक्षः स्वस्थकाले त्विदं सर्वसूतकंपरि कीर्तितम्
आपद्धतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकं अतः सति वैराग्ये संन्यासोऽप्यातुरस्य भवतीति केचित् ।

दिवोदास इत्यादिकं तर-वर सांगितलेल्या ब्राह्मवचनावरून पहिल्या दिवशीं संन्यासि कर्माचा लोप होतो. कारण,
“ज्या वेळीं ब्राह्मचारी पित्याला पिंडप्रदान करील तावकालपर्यंत त्याला आशौच आहे. पुनः ज्ञान करून तो शुद्ध होतो” ह्या
प्रजापतिवचनावरून दुसऱ्या दिवशीं वगैरे पिंडदानकालींच अस्पृश्यत्वरूपच आशौच, अन्यकालीं आशौच नाही, असें
सांगतात. दहा दिवस अस्पृश्यत्व असतांही कर्मांगज्ञान गांगण्याकरितां हें वचन आहे, असें म्हणणें युक्त आहे. अंत्यकर्म
करणारा नसेल तर ब्राह्मचाऱ्याला पिता इत्यादि मृत अगतांही आशौच नाहीच व तें ब्राह्मचर्याकालींच नाही. समावर्तन
(सोडमुंज) केल्यानंतर पूर्वीं मेलेल्यांचें तीन दिवस आशौच येतच आहे. कारण, “ब्राह्मचाऱ्यानें आपलें व्रत समाप्त होई-
तोपर्यंत मृत झालेल्यांना उदक देऊं नये. व्रत समाप्त झाल्यावर उदक देऊन तीन दिवस आशौच धरावें.” असें मनुवचन
आहे. समावर्तनोत्तरही आशौचाचा विकल्प आहे. कारण, “पिता देखील मृत असतां ब्राह्मचाऱ्यांना कधीही दोष
(आशौच) नाही. अथवा ब्राह्मचाऱ्यांना कर्माच्या अंतीं तीन दिवस आशौच आहे” असें छंदोगपरिशिष्टवचन आहे.
तमेंच ज्यानें जीवच्छ्राद्ध (पिता जीवत असतां त्याचें श्राद्ध करणें तें) केलें असेल त्यानें देखील आशौच धरूं नये. असें
हेमाद्रि सांगतो. शुद्धितत्त्वांत कौर्मत—“दुष्कालांत मेलेल्यांचें; उपद्रवांत (महामारी, प्रेग इत्यादिकांनीं) अतिशय
मरकांत) मृतांचें; युद्धांत मृतांचें; विजेनें, राजांनीं व ब्राह्मणांनीं मारलेल्यांचें सद्यःशौच (तत्कालशुद्धि) सांगितलें आहे.”
या वचनांत ‘उपद्रव’ म्हणजे अत्यंत मरक गमजावें. कारण, “उपसर्गांत मृत अगतां सद्यःशौच सांगितलें आहे” असें
पराशरवचन आहे. उपसर्ग म्हणजे अत्यंत मरक, असें शूलपाणि, अनिरुद्धभट्ट इत्यादिक सांगतात. याज्ञव-
ल्क्यही—“अतिशय कष्ट देणारी आपत्ति प्राप्त असतांही सद्यःशौच सांगितलें आहे.” मरणममयीं देखील आशौच नाही,
तेंच सांगतो शुद्धिरक्षाकरांत दक्ष—“हें गार्ग सूतक (आशौच) स्वस्थकालीं सांगितलें आहे. आपलीं प्रसूत झालेल्या
सर्वे मनुष्याला सूतकांतही सूतक नाही.” या वचनावरून वैराग्य उत्पन्न झालेलें अगतां सूतकांत आतुराला संन्यासही
होतो, असें केचित् म्हणतात.

अथकर्मनः त्रिंशच्छ्लोक्यां तत्तत्कार्येषु सत्रत्रितृपनृपवहीक्षितत्विक्स्वदेशंशापात्स्वयनेकधु-
तिपठनभिपक्कारुशिलयातुगणां संप्राग्वधेषुदानोपनयनयजनश्राद्धयुद्धप्रतिष्ठाचूडार्थीर्थयात्राजपपरिणयना-
द्युत्सवेष्वेतदर्थं नाशौचमिति शेषः मन्त्रीअन्नसन्नवान् मुख्यसत्रस्य दीक्षितपदात्सिद्धेः प्रतीअनंतप्रताविनिय-
मवान् नवप्रतिनां व्रते इति विष्णुः प्रचेताः कारवःशिल्पिनो वेशादासीदासास्तथैवच राजानोराजभृत्या-
श्चसद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः कारवःसूपकाराद्याः शिल्पिनश्चैलनिर्णजकाद्याः आतुरस्यव्याधिनाशार्थेदानादौ-
तुलादानादेः प्रारंभोनांदीश्राद्धसंकल्पोवा यजनंतडागोत्सर्गोकोटिहोमादिः लघुविष्णुः प्रतयज्ञविवाहेषु
श्राद्धहोमेर्चेनेजपे आरवधेसूतकंनस्यादनारवधेसूतकं प्रारंभोवरणयज्ञेसंकल्पोव्रतसत्रयोः नांदीश्राद्धविवा-
हादौश्राद्धेपाकपरिक्रियेति पाकस्यपरिमंतात्क्रियापाकप्रोक्षणमिति शुद्धिप्रदीपः तन्मंदं रुढेयोंगाहू-
त्वान् तीर्थेति आशौचेआकस्मिकतीर्थप्राप्तौ विवाहदुर्गयज्ञेषुयात्रायांतीर्थकर्मणि नतप्रसूतकंतद्वत्कर्मयज्ञादि-
कारयेदिति पैठीनसिस्मृतैः अत्रविशेषः प्रागुक्तः जपःपुरश्चरणादिः स्तोत्रपाठःअविच्छेदेन संकल्पित-
हरिवंशश्रवणादिश्च अतएवोक्तं ब्राह्मे . गृहीतनियमस्यापिनस्यादन्यस्यकस्यचिदिति एवदेवपूजादि अद्वय-
पारिजातेयमोपि शिवविष्णवर्चनंदीक्षायास्यचाग्निपरिग्रहः श्रौतकर्माणि कुर्वीतस्मात् शुद्धिमवाप्नुयात्
गौडशुद्धितत्त्वेमंत्रमुक्तावल्यां जपोदेवार्चनविधिः कायोंदीक्षान्वितैरैरैः नास्तिपापंयत्क्षोपासूतकं-
वायतात्मनाम् राघवमदीयेनारदः अथसूतकिनःपूजांवक्ष्याम्यागमबोधिवाम् आत्मनिर्वाणं च निर्वर्तते

मानस्याक्रिययातुवै बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् यदिकामो न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् यत्तु नृसिं-
हकल्पे स दामंत्रजपमुक्त्वा यद्विद्यादशुचिर्नरः मनसा बहिस्तत्स्मरेन्मंत्रं तन्तूषरेत् तन्मूत्राद्याशौचपरं
रात्रार्चनचंद्रिकायां अष्टुचिर्वाशुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन्स्वप्नप्राप्ति मंत्रैकस्मरणो विद्वान्मनसैव सदाभ्यसेत्
कालनियमाभावे तु हेयमेव उत्सवोरथयात्रादिः एषु नाशौचं अयंचाशौचाभावो न न्यगतित्वे आतौचज्ञेयः
अत्रमूलमाकरे स्पष्टम् ।

आतां किती एक कर्माविषयीं आशौच नाही, तो प्रकार सांगतो—

त्रिंशच्छ्लोकीत—“अन्नसत्री, व्रती, राजा, राजसेवक, दीक्षित (यज्ञदीक्षा घेतलेला), ऋत्विक्, स्वदेशाचा विनाश,
आपत्काल, अनेक वेदपठण, वैद्य, स्वयंपाकी (आचारी), धोबी वगैरे, आतुर (रोगग्रस्त), यांचे ठिकाणी त्यांच्या त्यांच्या
कर्माविषयीं आशौच नाही. मोठे दान, उपनयन, कोटिहोम वगैरे, श्राद्ध, युद्ध, देवादिप्रतिष्ठा, चूडाकर्म, तीर्थयात्रा, जप,
विवाह आणि उत्सव हीं कर्मे आरंभिलीं असतां त्या त्या कर्माविषयीं आशौच नाही.” ह्या श्लोकांत ‘सत्री’ म्हणजे अन्नसत्र-
वान् समजावा. कारण, यज्ञांतील जे मुख्यसत्र त्याविषयीं ‘दीक्षित’ या पदानें आशौच नाहीं हें सिद्ध झालें आहे. व्रती म्हणजे
अनंतव्रतादिनियमयुक्त समजावा; कारण, ‘व्रतीना व्रताविषयीं आशौच नाही’ असें विष्णुवचन आहे. **प्रचेता—**“कार
(स्वयंपाकी वगैरे), श्लिपी (धोबी वगैरे), वैद्य, दासी, दास, राजे, आणि राजसेवक यांना सद्यःशौच सांगितलें आहे.”
आतुराला व्याधिनाशकरितां दानादिकांविषयीं आशौच नाही. दानादिकांचा प्रारंभ असतां आशौच नाही, तो प्रारंभ नांदीश्राद्ध
किंवा संकल्प समजावा. यजन म्हणजे तडागाचा उत्सर्ग, कोटिहोम इत्यादि समजावें. **लघुविष्णु—**“व्रत, यज्ञ, विवाह,
श्राद्ध, होम, पूजा, जप, हीं आरंभ केलीं असतां सूतक नाही. आरंभ केलीं नसतील तर सूतक आहे. यज्ञाचा प्रारंभ म्हणजे
ऋत्विगवरण होय. व्रत व सत्र यांचा संकल्प हा प्रारंभ होय. विवाहादिकर्मांत नांदीश्राद्ध हा प्रारंभ. आणि श्राद्धाचा प्रारंभ
म्हणजे पाकपरिक्रिया होय.” पाकाची आसमंतात्क्रिया म्हणजे पाकप्रोक्षण, असें शुद्धिप्रदीप सांगतो, तें सांगणें मंद आहे.
कारण, रुढीपेशां व्युत्पत्तीनें अर्थ करणें निर्बल आहे. तीर्थाच्या ठिकाणीं आशौच नाही तें असें—आशौचांत अकस्मात् तीर्थ
प्राप्त असतां आशौच नाही. कारण, “विवाहांत, दुर्गांत, यज्ञांत, यात्रेचे ठायीं तीर्थकर्माविषयीं सूतक नाही. तसेंच यज्ञादि-
कर्माविषयीं सूतक नाही. तें तें कर्म करावें” असें पैठीनसिस्मृतिवचन आहे. तीर्थाविषयींचा विशेष निर्णय पूर्वी श्राद्धप्रकरणीं
सांगितला आहे. जप म्हणजे पुरश्चरणादिक व सतत स्तोत्रपाठ आणि संकल्प करून श्रवण करणाऱ्या हरिवंशादिक सम-
जावा. म्हणूनच ब्राह्मांत सांगतो—“इतर कोणी मनुष्यानें नियम घेतला असेल तर त्यालाही आशौच नाही.” देवपूजादि-
कांविषयीही असेंच समजावें. **मदनपारिजातांत यमही—**“ज्याला शिवविष्णूच्या पूजेची दीक्षा आहे व ज्यानें अभ्यासान
केलें आहे, त्यानें तीं कर्मे करावीं, आशौच असेल तर ज्ञान केला म्हणजे तो शुद्ध होतो.” **गौडशुद्धितत्त्वांत मंत्र-
मुक्तावलीत—**“दीक्षा घेतलेल्या मनुष्यांनीं जप व देवपूजा करावी. कारण, नियम धारण करणाऱ्या त्या मनुष्यांना पातक
किंवा सूतक नाही.” **राघवभट्टीयांत नारद—**“आतां सुतक्याला आगमोक्त पूजा सांगतां. सुतक्यानें ज्ञान करून नित्य-
कर्म (संध्या) करून निष्काम असेल तर दररोज करावयाच्या बाह्य पूजेच्या अनुक्रमानें मनानें ध्यान करून मानसपूजा
करावी. सकाम असेल तर सुतकाच्या पूर्वीप्रमाणें नित्य करावी.” आतां जें **नृसिंहकल्पांत—**“जर मनुष्य अशुचि असेल
तर त्या वेळीं सर्वदा मंत्राचा जप टाकून समाधानपूर्वक मनानें मंत्राचें स्मरण करावें, उच्चार करूं नये.” असा मंत्रोच्चारचा
निषेध केला तो मूत्रादिकानें प्राप्त झालेल्या आशौचाविषयीं आहे. **रामार्चनचंद्रिकेंत—**“विद्वान् मनुष्य अशुचि असो किंवा
शुचि असो, त्यानें चालत असतां, उभें राहत असतां किंवा निजत असतां मंत्राचेंच स्मरण करीत असून मनानेंच सर्वकाळ
अभ्यास करावा.” ज्या कर्माविषयीं काळाचा नियम नसेल असेल कर्म आशौचांत टाकावेंच. वरील त्रिंशच्छ्लोकीच्या वचनांत
उत्सव म्हटला तो रथयात्रा इत्यादिक समजावा. यांचेठायीं आशौच नाही. हा वर त्रिंशच्छ्लोकींत सांगितलेला आशौचाचा
अभाव त्या त्या कडून तें तें कर्म केल्यावांचून दुसरी गति नसेल त्या वेळीं आणि एक प्रकारची पीडा असेल त्या वेळीं
जाणावा. याविषयीं मूलवचन आकरांत स्पष्ट आहेत.

अत्रदीक्षितस्य अबधृतात्पूर्वमेवाशौचाभावः तदादित्वाशौचमस्त्येव तेनवैतानोपासनाः कार्या इतिवैतान-
त्वेप्यवधृतादिनभवेत्येव अतएवोक्तमाधवीये ब्राह्मे तद्ब्रह्मदीतदीक्षस्तत्रैविधस्यमहामखे ज्ञानं त्ववधृथेया-
वसावत्तस्यनसूतकमिति वैतानोपासनाः कार्या इत्यनेनैवसिद्धेः त्विजान्दीक्षितानांचेतिपुनर्दीक्षितप्रहणंयजमा-
नेस्वयंकर्तृत्वार्थज्ञानप्राप्त्यर्थेतिविज्ञानेश्वरः वस्तुनस्तुदीक्षणीयासंस्कृतस्यप्रागवधृतात्कर्मप्राप्त्यर्थ
दीक्षितप्रहणं तेनततःपूर्वनिषेधपक्ष यत्तु प्रारंभोवरणंयज्ञेइतितद्वत्विक्स्पर्ं तथाचछंदोगपरिशिष्टे नदी-

क्षिप्याः परंयज्ञेन कृच्छ्रादितपश्चरमिति शुद्धिर्न रवेऽप्येवम् ऋत्विजांचमधुपर्कौत्तरमाशौचाभावः गृहीत-
मधुपर्कस्य यजमानात्तु ऋत्विजः पश्चादशौचेऽपि तितेन भवेदिति निश्चय इति ब्राह्मणम् अतएव रामांडारः पशु-
र्णावरणपक्षेऽन्येषामाशौचेऽन्यथागमयितव्या इत्याह एवंस्मार्तेऽपि तुलाकोटिहोमादौ मधुपर्कस्य तिदोषाभावो ज्ञेयः
यत्तु प्रारंभोवरणं यज्ञ इति तत्रापि मधुपर्कांतं ज्ञेयं तेनाधानेऽपि पशुबंधादौ तदभावादप्येव भवतीति सिद्धं ।

येयं वीक्षिताला आशौचाचा अभावः सांगितला तो अवभृथज्ञानाच्या पूर्वीच समजावा, अवभृथज्ञान धरून पुढच्या कर्मा-
विषयी आशौच आहेच. तेणें करून “श्रुतीनें सांगितल्यावरून श्रौतामीच्या उपासना कराव्या” या वचनानें श्रौताभिर्दंबंधी
कर्म करावें असें झालें तरी, अवभृथ धरून पुढचीं कर्मे होतच नाहीत. म्हणूनच माधवीयांत ब्राह्मणें असें सांगितलें
की, “मोठ्या यज्ञाविषयीं ज्यानें दीक्षा घेतली आहे त्याला अवभृथज्ञानावधिक कर्मांमध्ये सूतक नाही.” “सूतकांत सूतक नाही,
श्रौतामीच्या उपासना कराव्या” या याज्ञवल्क्यवचनावरून वीक्षिताला आशौच नाही, असें सिद्ध झालें असून पुनः “ऋत्वि-
जांना व वीक्षितांना आर्गांच नाही” या वचनांत वीक्षितग्रहण केलें हें अशाकरितां की, वीक्षिताला आशौच नसल्यामुळें
स्वतः कर्तृत्व बोधन करण्याकरितां किंवा ज्ञान प्राप्त नाही तें प्राप्त होण्याकरितां आहे, असें विज्ञानेश्वर सांगतो.
वास्तविक म्हटलें तर वीक्षणीयासंस्कारां जे त्याला संस्कार केलेला आहे त्याला सूतकांत अवभृथाच्या पूर्वीचीं कर्मे प्राप्त होण्या-
करितां वीक्षितग्रहण आहे. तेणें करून वीक्षणीयासंस्कार नसेल तर निषेधच आहे. आतां जें “यज्ञाला प्रारंभ म्हणजे ऋत्वि-
ग्वरण होय, तें झाल्यावर सूतक नाही” असें सांगितलें तें ऋत्विजांविषयीं गमजावें. तोच प्रकार छंदोगपरिशिष्टांत
सांगतो—“यज्ञामध्ये वीक्षणीयासंस्कार झाल्यावर पुढें सूतक नाही. कृच्छ्र, चांद्रायण इत्यादि तप करणाराला आशौच नाही.”
शुद्धितत्त्वांतही असेंच आहे. ऋत्विजांनाही मधुपर्क झाल्यावर आशौच नाही. कारण, “यजमानापासून ज्यानें मधुपर्क
घेतला आहे त्याला नंतर आशौच प्राप्त असतां तें त्याला आशौच होत नाही. असा निश्चय आहे” असें ब्राह्मणवचन आहे.
म्हणूनच रामांडार—“चार ऋत्विजांचें वरण केलें असेल त्यापशीं एकांना आशौच असेल तर दुसरे बोलमावे” असें
सांगतो. ही श्रौतकर्मविषयीं व्यवस्था सांगितली. याप्रमाणें तुलादान, कोटिहोम इत्यादि स्मार्तकर्मामध्येही मधुपर्क झाल्या
असतां ऋत्विजांना दोष नाही. आतां जें यज्ञाला प्रारंभ ऋत्विग्वरण असें सांगितलें, तेथंही तें ऋत्विग्वरण मधुपर्कांत सम-
जावें. मधुपर्क झाल्यावांचून आशौचाभाव नाही, असें झाल्यानें; आधानेऽपि, पशुबंध इत्यादि कर्मांमध्ये मधुपर्क नसल्यामुळें
सूतक प्राप्त असतां दुसरे ऋत्विज होतात, असें सिद्ध झालें.

अपवादांतरमाह याज्ञवल्क्यः वेतानोपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदानात् तत्र त्यागमात्रे ज्ञानोत्तरं
स्वयंकर्तृत्वं श्रौतेकर्मणितत्कालात्तः शुद्धिमवाप्नुयादिति स्मृतेः यागातिरिक्ते तु श्रौतेस्मार्तचान्यस्यैव कर्तृत्वं
सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने प्रवामादि निमित्ते पुहावयेऽनुहापयेदिति बृहस्पत्युक्तेः नित्यानिर्बर्ते-
रन्यैतानवजं शालाग्नौ चैकेन्य एतानि कुर्युरिति पैठीनसि स्मृतेः श्रुतिविज्ञानेश्वरः एकग्रहणं पूजार्थं तेन स्मार्त
कार्यमेवेति हारलतायां दाक्षिणात्यास्तु विकल्पमाहुः अपराकादि निर्बन्धास्तु श्रौतसर्वस्वकार्यं
स्मार्तं तु यागातिरिक्तेन्यस्यैव कर्तृत्वं त्यागमात्रे तु स्वस्य कर्मवैतानिकं कार्यं ज्ञानोपसर्गवान् स्वयमिति हारीतोक्तेः
दर्शच पूर्णमासंच कर्मवैतानिकं च यत् सूतकेऽपि त्यजन्मोहात्प्रायश्चित्तीयते द्विज इति मरीच्युक्तेः जन्महान्यो-
र्वितानस्य कर्मत्यागो न विद्यते शालाग्नौ केवलो होमः कार्य एवान्यगोत्रजैरिति जाधालोक्तेः श्रेयाहुः आशार्क-
प्येवं याज्ञिका अप्येवं सूतके तु सत्पुत्रे स्मार्तकर्मकथं भवेत् पिंडयज्ञं चरंहोममसगोत्रेण कारयेदिति जातूक-
प्योक्तेः चरुः स्मार्तस्थालीपाकः श्रवणाकर्मादिश्चेति विज्ञानेश्वरः प्रारब्धंतु संपिंडेनापि कार्यं न च तत्क-
र्मकुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचिर्भवेदिति मनूक्तेः छंदोगपरिशिष्टेऽपि होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्काभेन फलेन वा
अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतं अकृतं श्रीह्यादि कृताकृतं तुलादि स्मार्तहोमादौ तु विकल्पो ज्ञेयः शाला-
ग्नौ चैक इति प्रागुक्तेः यदा करणं तदानीयद्वारा ।

दुसरा अपवाद सांगतो याज्ञवल्क्य—“सूतक प्राप्त असलें तरी श्रुतीनें सांगितल्यामुळें श्रौतामीच्या उपासना व तत्संबंधी
क्रिया कराव्या.” त्यांत त्यागाविषयीं मात्र ज्ञान केल्यावर स्वतः यजमानाला कर्तृत्व येतें. कारण, “सूतक प्राप्त असतां श्रौत-
कर्मविषयीं तत्काल ज्ञान करून शुद्ध होतो” असें स्मृतिवचन आहे. त्यागावांचून इतर श्रौत व स्मार्त कर्मविषयीं ज्ञानाज्वल
कर्तृत्व आहे. कारण, “जननाशौचांत, मृताशौचांत, अशक्ति असतां, श्राद्धभोजन केलें असतां, आणि आपण प्रवासादिच्छेद
गेलें असतां दुसऱ्याकडून होम करावा. होमावांचून दिवस चालूं नये” असें बृहस्पतिवचन आहे. आणि “श्रौतकर्माचीच
इतर नित्यकर्म सूतकांत बर्ज्य होतात, हीं नित्य कर्म शालाग्नौ व (शुष्काग्नौ) इतरांनीं करावी, असें ऋषीयुक्त अर्थार्थ

सांगतात" अशी पैठीनसिंस्थितीही आहे, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. या वचनांत 'एके' पद पूजेसाठी आहे, विकल्पासाठी नाही; त्यामुळे स्मार्तकर्म करावेच, असें हारलतेंत सांगितलें आहे. दाक्षिणात्य तर-स्मार्तकर्मविषयी विकल्प सांगतात. अपराके इत्यादि निबंधकार तर-सारे श्रौतकर्म यजमानानें स्वतः करावे. त्यागव्यतिरिक्त स्मार्तकर्मविषयी तर सूतकामध्ये अन्धालाच कर्तुल आहे. त्यागविषयी मात्र यजमानाला कर्तुल आहे. कारण, "सूतकांत स्नान, आचमन करून स्वतः श्रौतकर्म करावे" असें ह्यारीतवचन आहे. "दर्शपूर्णमासयाग व दुसरें श्रौतकर्म असेल तें सूतकामध्ये देखील जो अज्ञानानें टाकील तो प्रायश्चित्ताला योग्य होतो" असें मरीचिवचन आहे. आणि "जनन व मरण झालें असतां श्रौतकर्माचा त्याग होत नाही. स्मार्तकर्माचा अन्यगोत्रजांनीं शालामीवर केवळ होम करावाच" असें जाबालवचनही आहे, असें सांगतात. आशार्कतही असेंच आहे. याज्ञिकही असेंच सांगतात. कारण, "सूतक उत्पन्न झालें असतां स्मार्तकर्म कसें होईल ? पिंडपितृयज्ञ, चरु आणि होम अन्यगोत्रजाकडून करावा" असें जातूकर्ण्यवचनही आहे. या वचनांत 'चरु' म्हणजे स्मार्त स्थालीपाक आणि श्रवणाकमादिक समजावा, असें विज्ञानेश्वर सांगतो. आरंभिल्लें कर्म असेल तर सूतकांत संपिंडानें देखील करावे. कारण, "आरंभिल्लें कर्म करणारा संपिंड देखील अशुचि होत नाही" असें मनुवचन आहे. छंदोगपरिशिष्टांतही-"श्रौतांतील होम शुष्क अन्नानें किंवा फलानें करावा. स्मार्तकर्मातील होम व्रीधादिकांचा करावा, त्यांच्या अभावीं तंडुलदिकांचा करावा." स्मार्तहोमादिकांविषयीं तर विकल्प जाणावा. कारण, "शालामौ चैके" असें पूर्वी पैठीनसिंस्थितिवचन सांगितलें आहे. करावयाचा असेल तर अन्यद्वारा करावा, स्वतः करूं नये.

अत्रेदंतत्त्वं येषांबह्वचादीनांद्वादशरात्रमहोमेपिनाम्रिविच्छेदःतैर्नकार्यं तैत्तिरीयाद्यैःकार्यं त्रिरात्रमहू यमानोभिलौकिकःसंपद्यतेइतिसुदर्शनभाष्येवचनात् समारूढत्वमौतेनापिनकार्यम् किंतुपुनराधानमेव समारोपप्रत्यवरोहयोराशौचापवादाभावादनन्यकर्तृकत्वाच्च अन्यथापुनराधानमपिस्यात् यत्त्वाश्वलायनः तौचापिसूतकेशावेपर्वणीष्टिमहापदि पुष्पवत्यांचभार्यायांनकुर्यातांकदाचन स्मार्ताम्रिःसूतकेशावेस्वयंनजुहुयाद्विजः श्रौताम्रिस्तुसकृद्बुत्वासमापेवास्वयंदुनेदिति तदपिसमारूढपरम् तदाहसएव स्मार्ताम्रिरात्मनोन्येषामभावेसूतकादिषु समारोप्यतदंतेषुविहृत्यजुहुयात्स्वयमिति तथाचमनुः प्रत्यूहेन्नाम्रिषुक्रियाइति वैश्वदेवस्यत्वम्रिसाध्यत्वेपिवचनाम्रिवृत्तिः विप्रोदशाहमासीतवैश्वदेवविवर्जितइतिसंवर्तोक्तेः यद्यपि पंचयज्ञविधानंतुनकुर्यांन्मृतजन्मनोरितितेनैवोक्तेःपूर्वनिषेधोव्यर्थस्तथाप्यापस्तंबादीनांवैश्वदेवस्यपंचयज्ञभिन्नत्वात्पृथक्निषेधः हरदत्तस्त्वाशौचेपिबह्वचैवैश्वदेवःकार्यः तस्यद्वावनध्यायौयदात्माशुचिर्यद्देशइतिब्रह्मयज्ञस्यैवाशौचेविशिष्यनिषेधात् ।

होमाविषयींचा खरा प्रकार म्हणजे असा की, ज्या बह्वचादिकांचा (ऋग्वेद्यादिकांचा) बारा दिवसपर्यंत होम केला नाही तरी अग्नीचा विच्छेद होत नाही त्यांनीं सूतकांत होम करूं नये. तैत्तिरीयादिकांनीं करावा. कारण, "तीन दिवस होम केला नाही तर तो अग्नि लौकिक (इतर अग्नीसारखा) होतो" असें सुदर्शनभाष्यांत वचन आहे. अग्नीचा समारोप केलेला असेल तर तैत्तिरीयानें देखील करूं नये. तर पुनः आधानच करावे. कारण, अग्नीचा समारोप व प्रत्यवरोह यांविषयीं आशौचाचा अपवाद नाही, म्हणजे आशौचांत समारोप व प्रत्यवरोह करण्याविषयीं वचन नाही. आणि ते समारोप प्रत्यवरोह दुसऱ्याकडून करितांही येत नाहीत. जर ते दुसऱ्याकडून करितां येतील तर दुसऱ्याकडून पुनराधानही होईल. आतां जें आश्वलायन-"जननाशौच किंवा मृताशौच असतां, मोठी आपत्ति प्राप्त असतां, भार्या रजस्वला असतां, पर्वकालीं इष्टि कधीही करूं नये. स्मार्ताभिमान् असेल त्यानें जननाशौचांत व मृताशौचांत स्वतः होम करूं नये. श्रौताभिमान् असेल त्यानें प्रथमतः एकवार होम करावा अथवा सूतक समाप्त झाल्यावर स्वतः होम करावा." या वचनानें सूतकांत स्वतः होम करूं नये म्हणून सांगितलें आहे, तें देखील समारोपबोधक आहे, तें तोच (आश्वलायन) सांगतो-"स्मार्ताभिमताने सूतकादिकांत आपला किंवा इतरांचा अभाव असतां अग्नीचा समारोप करून सूतकांतीं प्रत्यवरोह करून स्वतः होम करावा." तसेंच मनु सांगतो-"अग्नीच्या ठिकाणीं क्रियांचा विषात करूं नये." वैश्वदेव तर अग्नीवरच होणारा असला तरी वचनानें त्याची निवृत्ति होते, तें वचन असें-"सूतक असतां ब्राह्मणानें दहा दिवस वैश्वदेवरहित असावे" असें संवर्तवचन आहे. जरी "मृताशौचांत व जननाशौचांत पंचमहायज्ञ करूं नयेत" असें त्यानेंच सांगितल्यावरून वैश्वदेवाचा निषेध झाला असतां वर सांगितलेला निषेध व्यर्थ आहे, तरी तो व्यर्थ नाही. कारण, आपस्तंबादिकांचा वैश्वदेव पंचयज्ञांहून भिन्न असल्यामुळे पंचयज्ञांच्या निषेधानें वैश्वदेवाचा निषेध होत नाही. म्हणून निराळा वैश्वदेवाचा निषेध सांगितला आहे. हरदत्त तर आशौचांत देखील बह्वचांनीं वैश्वदेव करावा. कारण, "ब्रह्मयज्ञाचे दोन अनध्याय. शरीर अशुद्ध असणें हा एक अनध्याय, व देश अशुचि हा दुसरा अनध्याय." या सूत्रानें आशौचांत ब्रह्मयज्ञाचाच विशेषकरून निषेध केला आहे.

संध्यादीनामप्यपवादमाहापराकृतपुलस्त्यः संध्यामिष्टिचरंहोमयावजीवसमाचरेत् नत्यजेत्सूतकेवापि-
त्यजन्गच्छेदधोद्विजः सूतकेमृतकेचैवसंध्याकर्मसमाचरेत् मनसोच्चारयेन्मंत्रान्प्राणायामसूतेद्विजः यत्तुचं-
द्रिकायांजाबालः संध्यापंचमहायज्ञानैत्यकंस्मृतिकर्मच तन्मध्येहापयेत्तेषां दशाहान्तेपुनःक्रियेति यच्च
संवर्तेः सूतकेकर्मणांत्यागःसंध्यादीनांविधीयते यच्चविष्णुपुराणं सर्वकालमुपासातुसंध्ययोःपार्थिवेष्यते
अन्यत्रसूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितइति तत्पूर्णसंध्यापरं अर्घ्यातामानसीसंध्याकुशवारिविवर्जितेतिशुद्धि-
दीपेच्यवनोक्तेः पैठीनसिस्त्वर्ध्वमंत्रोच्चारणमाह सूतकेसावित्र्यांजलिप्रक्षिप्यसूर्यध्यायन्नमस्कुर्यात्
प्रयोगपारिजातेभरद्वाजोपि सूतकेमृतकेकुर्यात्प्राणायामममंत्रकं तथामार्जनमंत्रांस्तुमनसोच्चार्यमा-
र्जयेत् गायत्रीसम्यगुच्चार्यसूर्याध्यायनिवेदयेत् मार्जनंतुनवाकार्यमुपस्थानंनचैवहि ग्रहणेथाद्वादावप्याशौचा-
पवादमाहव्याघ्रः स्मार्तकर्मपरित्यागोराहोरन्यत्रसूतकेइति लैंगेपि सूतकेमृतकेचैवनदोषोराहुदर्शने ताव-
देवभवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्नहृदयते प्रयोगपारिजातेबृहस्पतिः कन्याविवाहेसंक्रांतौसूतकंकदाचन
वृद्धशानातपः यदाभोजनकालेतुअशुचिर्भवतिद्विजः भूमौनिक्षिप्यतंप्रासंस्नात्वाविप्रोविशुध्यति भक्ष-
यित्वातुतंप्रासमहोरात्रेणशुध्यति अशित्वासर्वमेवात्रात्रेणविशुध्यति इदमविशेषात्सूतकादिपरमपीति
शुद्धितत्त्वेशूलपाणौच ।

संध्यादिकर्माविपर्यां देखील अपवाद गांगो-अपराकृत पुलस्त्य-“संध्या, इष्टि, चक्र, होम, हे जोपर्यंत जीवंत
आहे तोपर्यंत करावे. सूतकामध्येही ते टाकू नयेत. टाकणारा द्विज अभोगतीम जातो. जननांत व मृतकांत संध्याकर्म
करावें. मंत्रांचा उच्चार मनानं करावा. प्राणायाममंत्रांचा उच्चार मनानेही करू नये.” आतां जें चंद्रिकेत जाबाल-“संध्या
पंचमहायज्ञ, आणि नित्यस्मृतिकर्म, हे सूतकामध्ये वर्ज्य करावें. आशौचांनीं पुनः तें कर्म करावें.” आणि जें संवर्ते-
“सूतकामध्ये संध्यादिकर्मांचा त्याग गांगितला आहे.” आणि जें विष्णुपुराण-“दोन्ही संध्यांची गांगिकाल उपासना इष्ट
आहे. परंतु सूतक, आशौच, विभ्रम, रोग, गीति यांमध्ये संशोपासना इष्ट नाही.” या तीनही वचनांनीं गांगितलेला संध्याचा
निषेध तो संपूर्ण संध्याविपर्यां आहे. कारण, “कृश, उदक यांनीं वर्जित मानगसंध्या अर्ध्यापर्यंत करावी” असें शुद्धिदीपांत
च्यवनवचन आहे. पैठीनसि तर अर्ध्याविपर्यां मंत्रोच्चार गांगो-“सूतकामध्ये गायत्रीमंत्रांनं अर्ध देऊन सूर्याचें ध्यान
करून नमस्कार करावा.” प्रयोगपारिजातांत-भरद्वाजही “जननांत व मृतकांत अमंत्रक प्राणायाम करावा. मार्जनाचे
मंत्रांचा मनानं उच्चार करून मार्जन करावें. गायत्रीचा चांगला उच्चार करून सूर्याला अर्घ्य द्यावें. अथवा मार्जन करू नये.
उपस्थानही करू नये.” ग्रहणांत धाद्वादिकर्माविपर्यां देखील आशौचाचा अपवाद गांगो व्याघ्र-“राहुदर्शनावांचून इतर वेळीं
सूतकामध्ये स्मार्तकर्मांचा परित्याग होतो.” लिंगपुराणांतही-“जननांत व मृतकांत राहुदर्शनीं (ग्रहणांत) दोष नाही.
जननादि सूतकांत जोपर्यंत ग्रहणमुक्ति झाली नाही तोपर्यंतच शुद्धि आहे.” प्रयोगपारिजातांत बृहस्पति-“कन्या-
विवाहाचेठायीं व संक्रांतीचेठायीं कथांही सूतक नाही.” वृद्धशानातप-“जेव्हां ब्राह्मण भोजनसमयीं अशुचि होतो,
तेव्हां तो तोंडांतील घ्राण भूमांवर टाकून स्नान करून तो ब्राह्मण शुद्ध होतो. तो घ्राण भक्षण करील तर एक दिवसांनं
उपवास करून शुद्ध होईल. पात्रावरचें सारं अन्न भक्षण करील तर तीन दिवसांनीं उपवास करून शुद्ध होईल.” या वचनांत
अमुक कारणानं अशुचि, असें विशेप न मागितल्यामुळे सूतकादि अशुचाविपर्यां देखील हें वचन आहे, असें शुद्धितत्त्वांत
व शूलपाणिग्रंथांत सांगितलें आहे.

अथद्रव्यतः मरीचिः लवणेमधुमांसेचपुष्पमूलफलेषुच शाककाष्ठतृणेष्वप्सुदधिसर्पिःपयःसुच
तिलौषधाजिनेचैवपकापकेख्यग्रहः पण्येषुचैवसर्वेषुनाशोचंमृतसूतके ख्यमेवस्वाम्यनुज्ञायाम्राष्ट्रं नतद्वस्ता-
दित्यर्थः क्रयेतुतद्वस्तादपिनदोषः पंकलङ्कादि अपकंतंइलादि एतदन्नसत्रपरं अन्नसत्रेप्रवृत्तानामाममन्न-
मगर्हितं भुक्त्वापकात्रमेतेषांत्रिरात्रंतुव्रतीभवेदित्यंगिरसोक्तेः पकात्रमोदनादि नतुभक्ष्यं षट्त्रिंश-
न्मते उभाभ्यामपरिज्ञातेसूतकनैवदोषकृत् एकेनापिपरिज्ञातेभोक्तुर्दोषमुपावाहेत् विवाहोत्सवयज्ञेषुत्वंतरा-
मृतसूतके परैरन्नप्रदातव्यंभोक्तव्यंचंद्रितोक्तैः भुंजानेषुतुविप्रेपुत्वंतरामृतसूतके अन्यगोहोदकाचांताःसर्व-
तेशुचयःस्मृताः बृहस्पतिः विवाहोत्सवेत्याशुक्त्वा पूर्वसंकल्पितान्नेपुनदोषःपरिकीर्तितः षडशीतौ
संसर्गाद्यस्यवाशौचंयस्यातिक्रांतकालता तदीयस्यपदार्थस्यनाशौचंविधत्तेकचित् शुद्धितत्त्वे शुष्येदित्यनु-
वृत्तौ विष्णुः प्रोक्षणेनपुष्कमिति ।

आतां कितीएक द्रव्याविषयीं आशौच नाहीं, तो प्रकार सांगतो—म्रीचि—“मीठ, मध, मांस, पुष्पे, सुळें, फळें, शाका, काष्ठें, तृण, पाणी, दही, तूप, दूध, तिल, औषध, अजिन (चर्म), पक्क (त्याडू वगैरे), अपक्क (तांदूळ वगैरे) हे पदार्थ सुतक्यापासून स्वतः आपल्या हातानें घ्यावे. सुतक्याच्या हातानें घेऊं नयेत. विकृत घेणें असेल तर सुतक्यापासून विकृत घेण्याच्या पदार्थाविषयीं अशुद्धि नाहीं म्हणजे त्याच्या हातानें घेतले तरी दोष नाहीं ” पक्कापक्क सांगितलें हें अन्नसत्राविषयीं आहे. कारण, “आशौचांत अन्नसत्र्यांचें आमात्र निंदित नाहीं. सुतक्या अन्नसत्र्यांचें पक्कात्र (ओदनादिक) भोजन करील तर तीन दिवस व्रत (कृच्छ्र) करावें ” असें अंगिरसाचें वचन आहे. येथें पक्कात्र म्हणजे ओदनादिक समजावें, त्याडू वगैरे भक्ष्य समजूं नये. षट्त्रिंशन्मतांत—“दात्याला व भोक्त्याला सुनकाचें ज्ञान नसेल तर दोष नाही. दोघांपैकी एकाला जरी ज्ञान असेल तरी भोजन करणाराला दोष प्राप्त होईल. विवाह, उत्सव, यज्ञ यांमध्ये जर सुतक प्राप्त होईल तर इतरांनीं (अन्यगोत्र्यांनीं) अन्न घावें आणि ब्राह्मणश्रेष्ठांनीं तें भोजन करावें. ब्राह्मण भोजन करीत असतां मध्यं यजमानाला सुतक प्राप्त होईल तर, त्या ब्राह्मणांनीं उठून दुसऱ्या घरांतील उदकांनें आचमन करावें, म्हणजे ते सारे ब्राह्मण शुद्ध आहेत.” बृहस्पति—“विवाह, उत्सव, यज्ञ इत्यादि वरील वचन सांगून पुढें सांगतो—पूर्वा संकल्पित अन्नाविषयीं दोष सांगितला नाहीं.” षडशीर्तीत—“ज्याला दुसऱ्याच्या संसर्गानें आशौच असेल किंवा ज्याला अतिक्रान्त आशौच प्राप्त असेल, त्याच्या पदार्थाविषयीं कोठेंही आशौच नाहीं.” शुद्धितत्त्वांत विष्णु—“पुस्तक प्रोक्षणानें शुद्ध होतें.”

अथमृतदोषे हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मते कौर्मैच व्यापादयेद्यत्मात्मानंस्वयमभ्युदकादिभिः विहितं तस्यनाशौचंनपिकायौदकक्रिया शवदर्शनंयावदाशौचमस्त्येव हतानांनृपगोविप्रैरन्वक्षंचात्माघातिनामिति याज्ञवल्क्योक्तेः शुद्धितत्त्वेकौर्मै सद्यःशौचंसमाख्यातंशापादिमरणेतथा आदिपदादभिचारहते भविष्ये स्वेच्छयामरणेविप्राच्छृंगिदंष्ट्रिसरीसृपैः अंत्यांयजविषोद्वधैरात्मनाचैवताडनैः पाखंडमाश्रिताश्चैवमहापातकिनस्तथा स्त्रियश्चव्यभिचारिण्यारूढपतितास्तथा नतेषांज्ञानसंस्कारौनश्राद्धंनसपिंडंन गौतमः प्रायोनाशकशस्त्राभिविषोदकाद्वधनप्रपतनैश्चेच्छतामिति नाशौचमितिशेषः अंगिराः चंडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि दंष्ट्रिभ्यश्चपशुभ्यश्चमरणपापकर्मणां उदकपिंडदानंचप्रेतभ्योयत्प्रदीयते नोपतिष्ठतितत्सर्वमंतरिक्षेविनश्यति षट्त्रिंशन्मतेप्येवं ब्राह्मेपि शृंगिदंष्ट्रिन्स्वख्यालविषवह्निक्रियाजलैः व्यालौगजः सुदूरात्परिहृत्यैःकुर्वन्कीडांसृतस्तुयः नागानांविप्रिण्यकुर्वन्हतश्चाप्यथविद्युता निगृहीतःस्वयंराज्ञाचौर्यदोषेणकुत्रचित् परदारानहरंतश्चद्वेषात्तुपतिभिर्हताः असमानैश्चसंकीर्णैश्चंडालाद्यैश्चविग्रहं कृत्वातैर्निहतास्तद्वच्चंडालादीन्समाश्रिताः शस्त्राभिरगदश्चैवपाखंडाःक्रूरबुद्धयः क्रोधात्प्रायंविषवह्निसंस्त्रुधनंजलं गिरिवृक्षप्रपातंचयेकुर्वन्तिनराधमाः कुशिल्पजीविनोयेचसूनालंकारधारिणः मुखेभगास्तुयेकेचिच्छीब्रप्रायानपुंसकाः ब्रह्मदंडहतायेचयेचापिब्राह्मणंहताः महापातकिनोयेचपतितास्तेप्रकीर्तिताः पतितानांनदाहःस्यान्नात्येष्टिर्नास्थिसंचयः नचाश्रुपातःपिंडोवाकार्यश्राद्धादिकंकचित् एतानिपतितानांतुयःकरोतिविमोहितः तमकृच्छ्रद्वयेनैवतस्यशुद्धिर्नचान्यथा ।

आतां कितीएक मृतदोषाविषयीं आशौच नाहीं, तो प्रकार सांगतो—हेमाद्रीत षट्त्रिंशन्मतांत कौर्मैत—“जो मनुष्य आपणाला अग्नि, उदक इत्यादिकांनीं मारील त्याचें आशौच सांगितलें नाहीं व त्याची उदकक्रियाही करू नये.” मृत झाल्यापासून शवदर्शन होईपर्यंत आशौच आहेच. कारण, “राजा, गाई, ब्राह्मण यांनीं मारलेल्याचें आणि आत्मघातक्यांना प्रत्यक्ष पाहिलें असतां त्याचें आशौच नाहीं” असें याज्ञवल्क्यवचन आहे. शुद्धितत्त्वांत कूर्मपुराणांत—“शाप इत्यादि कारणांनें मरण आलें असतां सद्यःशौच (ज्ञानानें शुद्धि) सांगितलें आहे.” या वचनांतील आदिपदानें जारणमारणक्रियेनें मरण असतांही सद्यःशौच समजावें. भविष्यांत—“बुद्धिपूर्वक स्वेच्छेनं शस्त्र, विष, उदक इत्यादिकेंकरून मरण आलें असतां; तसेंच ब्राह्मण, शृंगी (महिषादिक), दंष्ट्री (व्याघ्रादिक), सर्प, म्लेच्छ, चंडाल, विष, उद्ध्वधन, आपलें आपण ताडन करून घेणें यांनीं मरण आलें असतां; पाखंडी, पंचमहापातकी, व्यभिचारिणी असून पति, गर्भ इत्यादिकांचा घात करणाऱ्या स्त्रिया या सर्वांना मरण आलें असतां; त्यांचें ज्ञान नाहीं, संस्कार नाहीं, श्राद्ध नाहीं व सपिंडीकरण नाहीं.” गौतम—“मरणाच्या इच्छेनं, बहुत उपवास, शस्त्र, अग्नि, विष, उदक, उद्ध्वधन, (दांगून घेणें), पर्वतादिकांवरून उडी घेणें इत्यादि कारणांनीं मृत असतां त्यांचें आशौच नाहीं.” अंगिरा—“चंडाल, उदक, सर्प, ब्राह्मण, वीज, आणि दावांचे पशु यांनीं पापकर्म्यांना मरण प्राप्त होतें. उदक व पिंडदान जें प्रेताना देतात, तें यांना प्राप्त होत नाहीं. मर्त्येच नष्ट होतें.” षट्त्रिंशन्मतांतही असेंच आहे. ब्राह्मांतही—“शृंगी, दावांचे पशु, नखांचे पशु, गज, विष,

अग्नि, उदक यांच्याशी क्रीडा करीत असून जो मृत असेल त्याला दूर वर्ज्य करावा. नागांचा (सर्पांचा) द्वेष करीत असून त्यांनी मारलेला; वीज पडून मेलेला; कोठेही चौर्य केल्यामुळे स्वतः राजाने ताडनादिकरून मारलेला; परस्त्रिया हरण करीत असतां त्यांच्या पतींनी द्वेषाने मारलेला; आपल्या असमान संकीर्ण जातीच्या व चंडालादिकांच्या बरोबर युद्ध करून त्यांनी मारलेले; तसेच चंडालादिकांचा आश्रय करून राहिलेले; शस्त्रांनी लोकांचा घात करणारे; घरे वगैरे जाळणारे; विष घालणारे; पाखंडी; जे क्रुद्धाचे अधम मनुष्य क्रोधाच्या योगाने अनशन (उपवास), विष, शस्त्र, उद्गंधन, उदकप्रवेश, पर्व-तावरून किंवा वृक्षावरून उडी टाकणे, हीं करितात; जे निंय शिल्पकर्माने उपजीवन करणारे; पशुबंधसंबंधी अलंकार धारण करणारे; जे मुखयोनि नपुंसक; ब्रह्मदंडाने (शापादिकाने) मृत झालेले; ब्राह्मणांनी मारलेले; आणि पंचमहापातकी हे सारे पतित म्हणले आहेत. पतितांचा दाह नाही, अस्थिसंचयन नाही; त्यांच्यासंबंधाने अश्रुपात (रडणे), पिंडदान किंवा धाढ्यादि कर्म हे कोठेही नाही. जो अविचारी मनुष्य पतितांची दाहादि कर्मे करितो त्याची शुद्धि दोन तप्तकृच्छ्रांनी होते; यावाचून त्याची शुद्धि होत नाही.”

एतद्वुद्धिपूर्वसर्वेषांकरणेतुमाधवीयेवसिष्ठः य आत्मत्यागिनां कुर्यात्स्नेहाप्रेतक्रियां द्विजः स तप्तकृच्छ्र-सहितंचरेशां द्रायणव्रतं अज्ञानेन कृत्वा प्रमुदकं स्नानं संस्पर्शवहनं कथां रज्जुच्छेदाश्रुपातंच तप्तकृच्छ्रेण शुध्यती-ति श्रेयं प्रत्येकं बुद्धिपूर्व एतदिति मदनपारिजातः प्रत्येकं तु स्पर्शाश्रुणोर्मिताक्षरायां तच्छ्रवणं केलं स्पृष्टम-श्रुवापतितं यदि पूर्वोक्तानामकारीचेदेकरात्रमभोजनं एकरात्रं तु नाभीयाभिरात्रं बुद्धिपूर्वकमिति माधवीये उत्तरार्थे अन्येषु तु संवर्तः एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सातपनंचरेत् अज्ञाने-त्वंथ एतदनाहिताग्नेः आहिताग्नेः कृच्छ्र एवेति माधवः मिताक्षरायां आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया तेषामपि तथांगांताये संस्थापनं हितम् ।

हीं पतितांचीं दाहादिक सारीं कर्मे बुद्धिपूर्वक करील तर सांगतो माधवीयां वसिष्ठ-“जो द्विज आत्मत्याग कर-णाऱ्या मनुष्यांची प्रेतक्रिया स्नेहाने करील त्याने तप्तकृच्छ्रमहित चांद्रायणव्रत करावें.” अज्ञानाने करील तर “आत्मत्यागी मनुष्यांना अग्निदान, उदकदान, स्नान, स्पर्श, वाहणे, कथा, रज्जुच्छेद, अश्रुपात हीं केलीं असतां तप्तकृच्छ्राने शुद्ध होतो” असें जाणावें. अग्निदानादि बुद्धिपूर्वक केले असतां प्रत्येकाला हें तप्तकृच्छ्रप्रायश्चित्त असें मदनपारिजात सांगतो. स्पर्श व अश्रुपात या प्रत्येकाला मिताक्षरेंत सांगतो-“त्या आत्मघातक्यांच्या शवाला केवळ स्पर्श केला किंवा अश्रु ठाळले आणि पूर्वाक्त दाहादिक न करणारा त्याने एक दिवस उपवास करावा.” या वचनाचे उत्तरार्थे माधवीयांत असे-“एक दिवस भोजन करूं नये. बुद्धिपूर्वक करील तर तीन दिवस भोजन करूं नये.” स्पर्श व अश्रुपात यांवाचून इतरांविषयी तर संवर्त सांगतो-“वर सांगितलेल्या कोणत्याही प्रेत जो बाहील किंवा जाळील, प्रेतोदकक्रिया करील त्याने सातपन कृच्छ्र करावें.” न जाणून करील तर अर्धे प्रायश्चित्त. हें मृत आहिताग्नि नसेल त्याचें समजावें. आहिताग्नीचें कृच्छ्र व आहे, असें माधव सांगतो. मिताक्षरेंत-“आत्मत्यागी मनुष्यांची तशीच पतितांची औषधेदेहिक क्रिया नाही. त्यांचें प्रेत गंगोद-कांत टाकणें हितकारक आहे.”

आहिताग्नेस्तु विशेषेण हेमाद्रौ भविष्ये वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यंचतु पथे पात्राणि तु दहेद्दमौ साम्रिके-पापकर्मणि छंदोगपरिशिष्टेपि महापातकसंयुक्तो दौरात्स्यादग्निमान्यदि पुत्रादिः पालयैदग्नीन्युक्त आदोषसंश्रयान् प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वाभ्रियते यदि गृह्यनिर्वापयेच्छ्रौतमस्वस्येत्सपरिच्छदं पात्राणि दद्या-द्विप्राय दहेद्गृह्येव वा क्षिपेत् माधवीये पराशरः आहिताग्निमृतो विप्रश्चंडालेनात्मघातकः दहेत ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्रौ मंत्रवर्जितं प्राजापत्यंचरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनान् दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्यक्षीरेण शालयेत्ततः स्वेनाग्निना स्वमंत्रेण पृथगेन पुनर्दहेत् हेमाद्रौ तु दाहयित्वा शवंतेपांशूरेव विधिपूर्वकमित्युक्त एतदपि दिनाम-रणे स्नेहं तांस्तेप्रेत्याभिगच्छंतियेके चात्महजना इति श्रुतावात्महजनं एव दोषोक्तेः प्रमादमरणे त्वाशौचादिसर्व-भवेत्येव तदाह आंगिराः अथ कश्चित्प्रमादेन भ्रियेताम्युदकादिभिः तस्याशौचविधातव्यं कर्तव्याचोदकक्रिया ब्राह्मेपि प्रमादादपि निःशंकस्त्वकस्माद्विधिचोदितः शृंगिदंष्ट्रिनग्न्यालविषविशुज्जलादिभिः चंडालैरथ-वाचोरैर्निहतो वापि कुत्रचिन् तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मात्प्रपतितस्तु मइति प्रमादमरणे त्रिरात्रमाशौचमिति गौडाः शुद्धितत्त्वाद्यः दशाहादितीदाक्षिणात्याः अस्यापवादो हेमाद्रौ भविष्ये प्रमादादिच्छया-

वापिनकुर्यात्सर्पतोमृते नागपूजांविनानकुर्यादित्यर्थः बौधायनोपि बुद्धिपूर्वात्महंतृणांक्रियालोपोविधीयते क्रियांलकर्म ।

आहिताग्निप्रेताला तर विशेष सांगतो हेमाद्रीत भविष्यांत-“अग्निमान् पापकर्मो मृत झाला असतां त्याचे श्रौताग्नि उदकांत टाकावे. गृह्याग्नि चवाग्यावर टाकावा. आणि अग्निसंबंधी पात्रे अग्नीत जाळावीं.” छंदोगपरिशिष्टांतही-“जर सामिक ब्राह्मण दुष्टबुद्धीने महापातकी होईल तर प्रायश्चित्तादिकाने दोष क्षीण होत तोंपर्यंत त्याच्या पुत्रादिकाने अग्नीचे पालन करावे. प्रायश्चित्तादिकाने दोष क्षीण होईपर्यंत तो प्रायश्चित्त करणार नाही, अथवा प्रायश्चित्त करीन असतां मरेल तर त्याचे गृह्य विस्ववून श्रौताग्नि सामग्रीसह उदकांत टाकावे. पात्रे ब्राह्मणाला द्यावीं, किंवा जाळावीं अथवा उदकांतच टाकावीं.” माधवीयांत पराशर-“आहिताग्नि ब्राह्मण चांडालाने मारला जाईल किंवा आत्मघाताने मरेल तर त्याच्या प्रेताचा ब्राह्मणाने अमंत्रक दाह करून नंतर ब्राह्मणांच्या आज्ञेने प्राजापत्य कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे. त्याचे प्रेत जाळून अस्थि धेऊन त्या दुधाने धुवून श्रौताग्नीने निराळा अस्थीचा पुनः दाह करावा.” हेमाद्रीत तर-“त्याचे प्रेत शूद्रांनीं विधिरहित जाळावे” असे सांगितले आहे. हा सर्व प्रकार गर्वादिकेंकरून मरण आले असतां जाणावा. कारण, “जे कोणी आत्महत्यारी जन आहेत ते मेल्यावर अंधतामिष लोकाप्रत जातात” या श्रुतीत आत्म्याचा घात केला असतांच दोष सांगितला आहे. प्रमादाने मृत असेल तर आर्शांचादिक सारे कृत्य होतच आहे. ते सांगतो अंगिरा-“आतां कोणी प्रमादाने अग्नि, उदक इत्यादिकांनीं मरेल तर त्याचे आर्शांच करावे, त्याची उदकदानादिक सारी क्रिया करावी.” ब्राह्मांतही-“सावधपणा नसल्यामुळे अथवा निःशंकपणाने अकस्मात् प्रारब्धाने प्रेरित होऊन शृंगयुक्त पशु, दाढायुक्त पशु, नखी, हत्ती, विष, विद्युद्धता, उदक, चंडाल, चोर, इत्यादिकांची गांठ पडून त्यांनीं मारला जाईल अथवा इतर कारणांनीं कोठेही मरेल तर त्याचे दाहादिक कर्म करावे; कारण, तो पतित नाही.” प्रमादाने मरण असतां तीन दिवस आर्शांच करावे, असे गौड-शुद्धितत्त्वादि ग्रंथकार सांगतात. दशाहादिक आर्शांच करावे, असे दाक्षिणात्य सांगतात. याचा अपवाद हेमाद्रीत भविष्यांत-“प्रमादाने अथवा इच्छेने सर्पापासून मृत असेल तर नागपूजा केल्यावांचून और्ध्वदेहिक करूं नये.” बौधायनही-“बुद्धिपूर्वक आत्महत्या करणारांचे अंल्यकर्म करूं नये.”

तत्रदुर्मरणनिमित्तदानादिकार्यं तच्चविश्वप्रकाशादौशातातपीयेच व्याघ्रेणनिहतेविप्रेविप्रकन्यां-विवाहयेत् सर्पदष्टेनागबलिर्देयःसर्पश्चक्रांचनः चतुर्निष्कमित्तहैमंगजंदद्याद्गजैर्हते राज्ञाविनिहतेदद्यात्पुरुष-तुहिरण्मयं चौरेणनिहतेधेनुवैरिणानिहतेवृषं वृषेणनिहतेदद्याद्यथाशक्त्यातुकांचनं शय्यामृतेप्रदातव्याशय्या-तूलीसमन्विता निष्कमात्रसुवर्णस्यविष्णुनासमधिष्ठिता शौचहीनेमृतेचैवद्विनिष्कस्वर्णजंहरिं संस्कारहीनेच-मृतेकुमारमुपनाययेत् निष्कत्रयस्वर्णमित्तदद्यादश्वंहयाहते शुनाहतेक्षेत्रपालस्थापयेन्नजशक्तिः सूकरेणह-तेदद्यान्महिषंदक्षिणान्वितं कृमिशिश्ममृतेदद्याद्गोधूमानपंचखारिकाः वृक्षंवृक्षहतेदद्यात्सौवर्णवस्त्रसंयुतं शृंगि-णानिहतेदद्याद्गुपभंवस्त्रसंयुतं शकटेनहतेदद्याद्गव्यंसोपस्करान्वितं भृगुपातमृतेचैवप्रदद्याद्धान्यपर्वतं अग्नि-नानिहतेकार्यमुदपानंस्वशक्तिः दारुणानिहतेचैवकर्तव्यासदनेसभा शस्त्रेणनिहतेदद्यान्महिषींदक्षिणान्वितां अश्मनानिहतेदद्यात्सवत्सांगांपयस्विनीं विषेणचमृतेदद्यान्मेदिनींहेमनिर्मितां उद्धंधनेनचमृतेकपिकनकनि-र्मितं मृतेजलेनवरुणहैमंदद्याद्विनिष्कजं विपूचिकामृतेस्वाद्भोजयेच्चशतंद्विजान् घृतवेनुःप्रदातव्यांकंठात्र-कवलेमृते कासरोगेणचमृतेअष्टकृच्छ्रव्रतंचरेत् अतिसारमृतेलक्ष्मगायत्र्याःप्रयतो जपेत् शाकिन्यादिग्रहप्रस्तेज-पेद्बुध्रंयथोदितं विद्युत्पातेननिहतेविद्यादानं समाचरेत् अंतरिक्षमृतेकार्यवेदपारायणंतथा सच्छास्त्रपुस्तकंदद्या-दस्पृश्यस्पर्शतोमृते पतितेचमृतेकुर्यात्प्राजापत्यांस्तुषोडश मृतेचापत्यरहितेकृच्छ्राणांनवतिंचरेत् एवंकृते विधानेतुविदध्यादौर्ध्वदेहिकं ।

वर सांगितलेल्या दुष्टमरणांने मृत असतां त्या दुर्मरणाच्या निमित्ताने दानादिक करावे. ते दानादिक विश्वप्रकाशा-दिकांत व शातातपीयांत सांगतो-“व्याघ्राने ब्राह्मण मारिला असतां ब्राह्मणकन्येचा विवाह करावा. सर्पाने दंश करून मृत असतां नागबलि करावा. आणि सुवर्णाचा सर्प करून ब्राह्मणास द्यावा. हत्तींनीं मारला असतां चार निष्कपरिमित सुवर्णाचा हत्ती करून ब्राह्मणास द्यावा. राजाने मारला असतां सुवर्णाचा पुरुष करून द्यावा. चोराने मारला असतां धेनु द्यावी. शत्रूने मारला असतां वृषभ द्यावा. वृषभाने मारला असतां यथाशक्ति सुवर्ण द्यावे. शय्येवर मेल्या असतां तूली (सडई)-युक्त व निष्कमात्र सुवर्णाची विष्णुप्रतिमा वर नसवून शय्या द्यावी. शौचरहित असून मृत असतां दोन निष्कांची सोन्याची

हरिप्रतिमा करून ती द्यावी. संस्काररहित मृत असतां ब्राह्मणाच्या मुलाचें उपनयन करावें. अश्वानें मारला असतां तीन निष्क सुवर्णाचा अश्व द्यावा. कुत्र्यानें मारला असतां आपल्या शक्तीप्रमाणें क्षेत्रपालाची स्थापना करावी. डुकरानें मारला असतां दक्षिणागहिा महिष द्यावा. कृमींनीं मृत असतां पांच खारीपरिमित गोधूम द्यावे. वृक्षानें मृत असतां सुवर्णाचा वृक्ष वल्कासहित द्यावा. गुरंगानें मृत असतां वस्त्रयुक्त वृषभ द्यावा. गाढीनें मृत असतां उपस्कर (माहिल) गहित कांहीं द्रव्य द्यावें. पर्वताच्या शिखरावरून पडून मृत असतां धान्याचा पर्वत करून तो द्यावा. अमीनें मृत असतां आपल्या शक्तीप्रमाणें कूप (विहीर) करून त्याचा उत्सर्ग करावा. काष्ठानें मृत असतां धर्मार्थ मभा करावी. शस्त्रानें मृत असतां दक्षिणासहित महिषी द्यावी. पाषाणानें मृत असतां दूध देणारी सवत्स गाई द्यावी. विषानें मृत असतां सुवर्णनिर्मित भूमि द्यावी. उद्ध्वघनानें मृत असतां सुवर्णनिर्मित वानर द्यावा. उदकांनें मृत असतां दोन निष्क सुवर्णाची वरुणाची मूर्ति करून ती द्यावी. पटकीनें मृत असतां शंभर ब्राह्मणांना गोड भोजन घालावें. चशमार्थ्ये अस्त्राचा घास लागून मृत असतां घृताची घेनु द्यावी. खोकल्यानें मृत असतां आठ कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. अतिसारानें मृत असतां गायत्रीचा लक्ष जप करावा. शाकिनी, डाकिनी इत्यादि प्रहान्नीं पीडित होऊन मृत असतां ह्दाचा जप करावा. वीज पडून मृत असतां विद्येचें दान करावें. अंतरिक्षांत मृत असतां वेद-पारायण करावें. अस्पृश्यांच्या स्पर्शानें मृत असतां उत्तम शास्त्राचें पुस्तक द्यावें. पतित मृत असतां सोळा प्राजापत्य कृच्छ्र करावे. अपत्यरहित मृत असतां नव्वद कृच्छ्र करावे. असें दानादिविधान केल्यावर त्याचें और्ध्वदेहिक कर्म करावें.

तथावैधमरणेपिनदोषः तदाह तुर्मनुवृद्धगार्ग्यौ वृद्धःशौचमृतेलुप्तप्रत्याख्यातभिषक्त्रियः आत्मानंघा-
तयेद्यस्तुभृग्वभ्यनशानांनुभिः तस्यत्रिरात्रमाशौचंद्वितीयेत्वस्थिसंचयः तृतीयेतूदकंदत्वाचतुर्थेभ्रादृमाषदे-
दिति हेमाद्रौविष्णुधर्मेपि नरस्तुव्याधिरहितोनत्यजेदात्मनस्तनुं असूर्यानामतेलोकाअंघेनतमसावृताः
तांस्तेप्रेत्याभिगच्छंतियेकेचात्मह्नोजनाः अरिष्टैरगत्मनोज्ञात्वामृत्युकालमुपस्थितं व्याधितोभिषजात्यक्तःपूर्णे-
वायुपिचात्मनः यथायुगानुसारेणमन्यजेदात्मनस्तनुं तस्मिन्कालितन्युगागाद्यष्टेप्रफलमाप्रुयात् आयुषस्तपुरा-
दष्टमरणब्राह्मणस्यच नेतिगौडानामपपाठः उत्तरार्धेसंगतेः क्षत्रियस्यतुसंप्राप्तेमृतेभर्तुरियोपितः अपरा-
केंब्रह्मगर्भः योजीवितुंनयत्कोतिमहाव्याध्युपपीडितः मोघ्युदकंमहायात्रांकुर्वन्ननदुप्यति अत्रोक्तवक्ष्य-
माणवचोनिचयात्प्रयागातिरिक्तेऽचिकित्स्यरोगानुपहतानामधिकारः सोपिजीर्णवानप्रस्थस्यैवेतिविज्ञाने-
श्वरदेवयाज्ञिकादयः अतएवमिनाक्षरादौभृगुपानानशनादिकंवानप्रस्थस्यैवोक्तं मनुरपि आसां-
महर्षिचर्याणांत्यक्त्वान्यतमयातनुं वीतशोकभयोविप्रोब्रह्मभूयायकल्पतइति तेनान्यत्रापितद्विपयतेव मूलै-
क्यादितिकेचित् तत्र वानप्रस्थमरणेआशौचनिषेधान् तेनप्रहस्थादिपरमेवेदं तेनयतेर्नाधिकारः काम्येनधि-
काराच्च नैमित्तिकत्वेत्वकरणेदोषानित्यताचस्यात् प्रयागेत्वरोगिणारोगिणांच यत्तु शूद्राश्चक्षत्रियावैश्या
अंत्यजाश्चतथाधसाः एतेत्यजेषुःप्राणान्वैवर्भयित्वाद्विजंनृप पतित्वाब्राह्मणस्तत्रब्रह्महाचात्ममहाभवेदिति तन्नि-
र्मूलमितिभट्टाः तत्त्वंतु हेमाद्रौव्रतकांडेलिखन्नात्रिर्मूलत्वंचिंत्यमेव प्रकृमातुपतित्वेतिभृगुपातमात्रप-
रंयुक्ते ब्राह्मणस्याप्यनुज्ञानमितिवक्ष्यमाणविरोधाच्च यत्त्वादित्यपुराणे अब्राह्मणोवास्वर्गादिमहाफलजि-
गीषया प्रविशेन्नवलंतनोयंकरोत्यनशनंतथेति तत्प्रयागातिरिक्तपरमितिकेचित् हेमाद्रौत्वेतदपि प्रयागव-
टशाखाप्रादित्युक्तेब्राह्मणस्यप्रयागेपिनेतिप्रतीयते ।

तसंच शास्त्रविहितं जग्यादि मरणाधिपरीती दोष नाही. तें सांगताना मनु व वृद्धगार्ग्ये-“वृद्ध झालेला पापी नसून अप-
रिह्य रोगांनीं पीडलेला असा जो मनुष्य मोठा पर्वताचा कडा, अग्नि, अनशन (उपवास), उदक यांनीं आपल्या देहाचा
घात करील त्याचें तीन दिवस आशौच धरावें. दुसऱ्या दिवशीं अस्थिसंचयन करावें. तिसऱ्या दिवशीं उदक देऊन चवथ्या
दिवशीं भ्रादृ करावें.” हेमाद्रौत विष्णुधर्मांतरी-“व्याधिरहित मनुष्यानें आपल्या देहाचा त्याग करूं नये. जे कोणी
आत्मघातकी मनुष्य ते अंधतमानें आवृत्त असें जे मर्यगृहित लोक त्या लोकांस जानात. अरिष्टांनीं (मरणसूचक चिन्हांनीं)
आपणाम मृत्युकाल प्राप्त झाला असें जाणून अथवा पूर्ण आयुष्य असतांही व्याधिप्रस्त होऊन वैद्यांनीं सोडला असें जाणून
युगानुरोधेकरून आपल्या देहाचा त्याग करावा. अशा कालीं देहत्याग केल्यानें यथेष्ट फल प्राप्त होतें. आयुष्य संपण्याच्या पूर्वीं
ब्राह्मणाला मरण, वर सांगितल्याप्रमाणें आहे. क्षत्रियाला युद्धामध्ये आणि क्षत्रियांना भर्ता मृत असतां मरण सांगितलें आहे.”
या वचनांत ‘मरणं ब्राह्मणस्य न’ असा गौडानाचा पाठ तो अशुद्ध आहे. कारण, तथा पाठानें उत्तरार्धाची संगति होत नाही.
अपराकांत ब्रह्मगर्भ-“जो मनुष्य मोठ्या व्याधीनें पीडित होऊन जीवंत राहाण्याविषयीं समर्थ होव नाही तो मनुष्य
७०. निर्ण.

अग्निप्रवेश किंवा उदकप्रवेश अथवा महापात्रा करीत असतां दोषी होत नाहीं.” येथें पूर्वी सांगितलेल्या व पुढें सांगावयाच्या वचनसमुदायावरून प्रयागावांचून इतर ठिकाणीं मरण्याविषयीं अपरिहार्य 'रोगाधिकानीं' पीडितांना अधिकार आहे, तो जीर्ण झालेल्या वानप्रस्थालाच आहे, असें विद्वानेभार, देख्यादिक इत्यादिक सांगतात. म्हणूनच मिताक्षरादि ग्रंथांत मोठ्या कड्यावरून पतन, अनशन इत्यादिक वानप्रस्थालाच सांगितलें आहे. मनुही-“ह्या सांगितलेल्या महर्षींच्या आचरणांतून कोणत्याही एका आचरणानें देहाना त्याग करणारा ब्राह्मण शोकभयरहित होऊन ब्रह्मल पावतो.” हा प्रकार वानप्रस्थाला सांगितला आहे, त्यावरून प्रयागातिरिक्त ठिकाणीं देखील मरणाविषयीं अनुज्ञा वानप्रस्थालाच आहे. कारण, त्या वचनांनीं सांगितलेल्या व यानें सांगितलेल्या तनुत्यागाचें मूल एक आहे, असें केचित् म्हणतात. तें बरोबर नाहीं. कारण, वानप्रस्थ मृत असतां आशौचाचा निषेध आहे. तेणेंकरून गृहस्थादिविषयकच हें मरण आहे. म्हणून ह्या मरणाविषयीं संन्याशाला अधिकार नाहीं. आणि काम्यकर्माविषयीं संन्याशाला अधिकारही नाहीं. हें मरण काम्य नसून नैमित्तिक (रोगादिनिमित्तानें) आहे, असें म्हटलें तर केलें नाहीं म्हणजे दोष प्राप्त होईल आणि नित्यही होईल. प्रयागांत मरण्याविषयीं तर रोगरहितांना व रोग्यांनाही अधिकार आहे. आतां जें “ह्यद्र, क्षत्रिय, वैश्य, अंत्यज, तसेच अधम यांनीं प्राणत्याग करावा. ब्राह्मणानें करूं नये. तेथें उदकांत ब्राह्मण पडेल तर ब्रह्महत्यारी व आत्महत्यारी होईल” असें वचन तें निर्मूल आहे, असें अहं सांगतात. खरा प्रकार म्हटला म्हणजे हेमाद्रींत व्रतकांडांत हें वचन लिहिलें असल्यामुळें निर्मूल म्हणणें चित्त (हेतुशून्य) आहे. पूर्वीच्या उपक्रमावरून 'पतिला' हें पर्वताच्या पतनस्थानावरून पडण्याविषयींच आहे, असें म्हणणें युक्त दिसतें. या वचनावरून प्रयागांत मरण्याविषयीं ब्राह्मणाला अधिकार नाहीं, असें होत नाहीं. आणि तसें मानलें तर ब्राह्मणाला देखील तीर्थांचे ठायीं प्राणमोक्षाची अनुज्ञा आहे” ह्या पुढें सांगावयाच्या विवस्वानाच्या वचनाशीं विरोधही येतो. आतां जें आदित्यपुराणांत-“ब्राह्मणभिन्न असेल त्यानें स्वर्गादिक मोठ्या फलाच्या इच्छेन अग्निप्रवेश किंवा उदकप्रवेश करावा. तसेंच अनशन (उपवास) करावें” या वचनानें ब्राह्मणाला उदकप्रवेश वर्ज्य केला आहे. तो प्रयागातिरिक्तविषयक आहे, असें केचित् म्हणतात. हेमाद्रींत तर-या वचनाच्या पुढें 'प्रयागांतील वटाच्या शाखाप्रावरून देहत्याग करितो' असें सांगितल्यावरून करणारा वरील वचनांतील अब्राह्मण, असें झाल्यानें प्रयागांतदेखील ब्राह्मणाला अधिकार नाहीं असें प्रतीतीस येतें.

माधवीयेपराकंचादित्यपुराणे दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितस्तुपुमानपि प्रविशेज्ज्वलनदीप्तं करोत्यनशनंतथा अगाधतोयराशिचभृगोः पतनमेवच गच्छेन्महापथंवापितुषारगिरिमादरात् प्रयागवटशाखाप्रादेहत्यागंकरोतिच स्वयंदेहविनाशस्यकालेप्राप्तेमहामतिः उत्तमान्प्राप्रयाग्लोकात्रामत्ताघातीभवेत्कचित् महापापक्षयात्स्वर्गे दिव्यान्भोगान्समश्नुते एतेषामधिकारस्तुसर्वेषांसर्वजंतुषु नराणामथनारीणांसर्ववर्णेषुसर्वदा ईदृशंमरणंयेषांजीवतांकुत्रचिद्भवेत् आशौचंस्याप्यहंतेषांवज्रानलहतेतथा वाराणस्यांअग्नियेद्यस्तुप्रत्याख्यातमिषक्षियः काष्ठपाषाणमध्यसोजाह्ववीजलमध्यगः अविमुक्तोन्मुखस्तस्यकर्णमूलगतोहरः प्रणवंतारकंभूतेनान्यथाकुत्रचित्कचित् हेमाद्रीचैवं अत्रप्राप्तकालेइत्युक्तेरप्राप्तमरणकालायाः क्रियाःअन्वारोहणेसंपूर्णमेवाशौचं पृथ्वीचंद्रस्त्वत्रापिष्यहमाह शुद्धितत्त्वादिगौडग्रंथेष्वप्येवम् ।

माधवीयांत व अपराकृत आदित्यपुराणांत-“अत्यंत कष्टाध्य किंवा असाध्य महारोगांनीं पीडलेला पुरुषही प्रसीत अग्नीमध्ये प्रवेश करितो; अनशन (उपवास) करितो; मोठ्या डोंहांत उबी घेतो; पर्वतावरून उबी घेतो; अथवा हिमाचलाच्या 'मोठ्या (ऋषि इत्यादिकांनीं सेवित) अशा मार्गास जातो; मरणसमय प्राप्त असतां प्रयागांतील वटाच्या शाखाप्रावरून स्वतः देहत्याग करितो, त्याला उत्तम लोक प्राप्त होतात. तो आत्मघातकी कधीही होत नाहीं. महापातकाचा अर्थ होऊन स्वर्गामध्ये त्याला दिव्यभोग प्राप्त होतात. ह्या वर सांगितलेल्या मरणांचा अधिकार सर्व प्राण्यांना आणि सर्व वर्णांच्या पुरुषांना व क्रियांना सर्वकाल आहे. अशा प्रकारचें मरण कोणत्याही ठिकाणीं ज्या मनुष्यांना प्राप्त होईल त्यांचें आशौच तीन दिवस होतें. तसेंच विजेच्या अग्नीनें मृत असतां समजावें. वैद्यांनीं सोडलेला असा जो मनुष्य वाराणसीमध्ये काष्ठ व पाषाण यांच्या मध्यभागीं भागीरथीच्या उदकामध्ये जाऊन मृत होईल त्याच्या कानाजवळ भगवान् शंकर जाऊन तारक प्रणवाचा उपदेश करितो. इतर ठिकाणीं कोठेही तारकप्रणवाचा उपदेश नाहीं.” हेमाद्रींतही असेंच सांगितलें आहे. येथें वरील वचनांत 'मरणसमय प्राप्त असतां' असें म्हटलें आहे, म्हणून क्रियांचा मरणकाल प्राप्त नसून तिनें पतीच्या मागाहून अन्वारोहण (अनुगमन) केलें असतां तिचें संपूर्णच आशौच करावें. पृथ्वीचंद्र तर अनुगमनांतही तीन दिवस आशौच सांगतो, शुद्धितत्त्व इत्यादिक गौडग्रंथांतही असेंच सांगितलें आहे.

एतच्चवृद्धादिमरणं कलौ निषिद्धं युगवृत्तिपतनेऽथैव वृद्धादिमरणं तथेति माधवेन पृथ्वीचंद्रेण च कलिवर्षे पूते; नचात्र यावदुक्तनिषेधः विद्धि होइशे वाक्यभेदात् नच कलौ वानप्रस्थाभ्रमनिषेधादेव सिद्धेर्मरणनिषेधो-

व्यर्थइतिवाच्यं सर्ववर्णेष्वित्यादिभिस्तन्निष्ठापिप्राप्तेः काम्यंभवत्येव येवैतन्ववित्तुजंतीतिश्रुतेःस्मृत्या-
संकोचायोगात् नचेयंस्वाभाविकमृत्युपरा धीरपदोक्तेः मात्स्यभारतादिषु नलोकावचनासातनवेदवच-
नादपि मतिरुत्क्रमणीयातेप्रयागमरणंप्रतीत्युक्तेः अतएवविष्णुधर्मैरोग्यादिवरणमुक्त्वोक्तं यथायुगानु-
सारेणसंत्यजेदात्मनस्तनुमितिकाश्यामप्युक्तं मात्स्ये अग्निप्रवेशयेक्युर्युरविमुक्तेविधानतः प्रविशंतिमुखांते-
मेनिःसंदिग्धंवरानने हेमाद्रौविवस्वान् सर्वेद्वियवियुक्तस्यस्वव्यापाराक्षमस्यच प्रायश्चित्तमनुष्ठातव्यमग्निपा-
तोमहापथः धर्माज्जनासमर्थस्यकर्तुःपापांकितस्यच ब्राह्मणस्याप्यनुष्ठातंतीर्थेप्राणविमोक्षणं अपराकृतैवैवं
सहगमनंकलौभवत्येव कलौनान्यागतिःस्त्रीणांसहानुगमनादृतइतिब्रह्मवैवर्तात् एतेनमरणांतिकप्रायश्चित्तं
काशीखंडादौ चातुर्वर्ण्यस्यतनुत्यागविधयश्चयुगांतरपराएव ।

हे वर मनु व वृद्धगार्ग्य इत्यादिकांनीं सांगितलेले वृद्धादिमरण कलियुगांत निषिद्ध आहे. कारण, “मृगुवरुन
(पर्वताच्या कच्चावरून) उभी घेणें, अग्नीत उभी टाकणें या कर्मांनीं सांगितलेले वृद्धादिमरण तसेंच म्हणजे कलियुगांत
निषिद्ध आहे” असें माधवानें व पृथ्वीचंद्रानें कलिवर्ज्यांत सांगितलें आहे. आतां असें कीं, त्या वचनांत मृगुपतन व
अग्निपतन यांनीं सांगितलेलें जें वृद्धादिमरण तें कलियुगांत निषिद्ध, असें सांगितल्यामुळे तितक्याचाच निषेध, इतर वृद्धादि-
मरणाचा निषेध नाही, असें म्हणूं ? तर असें म्हणतां येत नाही. कारण, मृगु-अग्निपतनविशिष्ट (युक्त) वृद्धादिमरणाचा
उद्देश करून निषेधाचें विधान केलें असतां वाक्यभेदरूप दोष येतो, तो असा—मृगवग्निपतनांनीं वृद्धादिमरण सांगितलें आहे,
तें कर्लीत निषिद्ध आहे, अशीं दोन वाक्यें होतात. आतां असें म्हणूं कीं, कर्लीत वानप्रस्थाश्रमाचा निषेध असल्यामुळेच
मरणाचा निषेध सिद्ध असून पुनः मरणाचा निषेध निराळा सांगितला तो व्यर्थ आहे ? तर असें म्हणतां येणार नाही. कारण,
‘सर्ववर्णेषु सर्वदा’ इत्यादि वचनांनीं वानप्रस्थाश्रमरहिताला देखील वृद्धादिमरण प्राप्त आहे, म्हणून त्याचा निराळा निषेध
केला आहे. कामनिक मरण होतच आहे. कारण, ‘ये वै तन्वं १ विमृजंति धीराः’ अशी श्रुति आहे. अर्थ—भागीरथी व यमुना
या दोन नद्यांचा संगम ज्या ठिकाणीं होतो, तेथें ज्ञान करणारे स्वर्गास जातात. व जे धीर मनुष्य तेथें देहत्याग करितात
ते मोक्षाय जातात. श्रुति स्मृतीपेक्षां प्रबळ असल्यामुळे या श्रुतीचा कर्लीत देहत्यागनिषेधक स्मृतीनें संकोच (म्हणजे श्रुति
कलियुक्तिरिक्त विषयक आहे असा) करितां येत नाही. आतां ही श्रुति प्रयागाचेठायीं ज्याला स्वाभाविक (बुद्धिपूर्वक नव्हे)
मृत्यु प्राप्त असेल त्याविषयी आहे ! असें म्हणतां येत नाही. कारण, श्रुतीमध्ये ‘धीराः’ इ. मरणाविषयीं न भिणारे, असें
पद आहे. स्वाभाविक मृत्युविषयीं हें पद लागत नाही. मात्स्यपुराण, भारत इत्यादिकांत सांगतो—“कोणी एक मनुष्य
हुसल्याला म्हणतो—प्रयागमरणाविषयीं जी तुम्ही बुद्धि झाली आहे ती लोकांच्या सांगण्यावरून नाही आणि वेदवचनावरूनही
झालेली नाही” असें सांगितलें आहे. कामनिक मरणाचा कर्लीत निषेध नाही म्हणूनच विष्णुधर्मांत—रोगी इत्यादिकांचें
मरण सांगून पुढें सांगितलें कीं, “जसें ज्या युगांत सांगितलें आहे त्याप्रमाणें आपल्या तनूचा त्याग करावा” या वचनां
काशीतही मरण सांगितलें आहे. मात्स्यांत—“क्षिप म्हणतात—अविमुक्तक्षेत्रांत जे विधीनें अग्निप्रवेश करतील ते माझ्या
मुखांत प्रवेश करतील, यांत संदेह नाही.” हेमाद्रौत विवस्वान्—“ज्याचीं सारीं इन्द्रियें पराधीन होऊन आपल्या
(देहाच्या) व्यापाराविषयीं असमर्थ असेल त्याला प्रायश्चित्त अग्नींत प्रवेश हा मोठा मार्ग शास्त्रानें सांगितला आहे. पापयुक्त
असून धर्मसंपादन करण्याविषयीं असमर्थ अशा ब्राह्मणालाही तीर्थांत प्राणत्यागाची शास्त्रानें अनुज्ञा दिली आहे.” अपरा-
कृतही असेच आहे. स्त्रियांना सहगमन कलियुगांत होतच आहे. कारण, “कलियुगांत स्त्रियांना सहगमनांचाचून दुसरी
गति नाही.” असें ब्रह्मवैवर्तवचन आहे. यावरून मरणांतिक प्रायश्चित्त सांगितलेलें तें आणि काशीखंडादिपंथांत वारही
वर्णना देहत्यागाचे सांगितलेले विधि ते सारे इतर युगांविषयीं समजावे.

प्रयागेपित्रिस्थलीसेतौस्कांदे यथाकथंचित्तीर्थेस्मिन्प्राणत्यागं करोति यः तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुया-
दीप्सितान्यपि पापे विष्णुः देहत्यागंतथाधीराः कुर्वन्ति मम सन्निधौ मत्तनुं प्रविशंत्येव न पुनर्जन्मनेन राः
कौर्मै व्याधितो यद्विवाहीनः क्रुद्धो वा पिभवेन्नरः गंगायमुनमासाद्यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ईप्सितान् भतेका-
मान् वदंति मुनिपुंगवाः तथा यागतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः सागसिंस्तंजतः प्राणान्गंगाधुनसंगमे
वाराहे तत्र यो मुंचति प्राणान् वटमूलेषु सुंदरि सर्वलोकानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते तथा अकामो वा स कामो-
वा वटमूलेषु सुंदरि शीघ्रं प्राणान्मुंचेत यदीच्छेत्परमां गतिं तथा पंचयोजनविस्तीर्णं प्रयागं स्तु गंधके वृक्षी-
तान्पुष्पान् वृक्षभविष्यांश्चतुर्वर्षं नरकारयते सर्वान्यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ब्राह्मे

प्रयागेविष्णुत्वरः तनुंयजतिवैमाधेतस्यमुक्तिरसंशयः दुष्कृतोपिदुराचारोब्रह्महत्यादिपातकी हरिंध्यात्वा-
त्यजेद्देहंप्रायशोमुक्तिमान्भवेत् भविष्योत्तरे समाःसहस्राणितुसप्तवैजलैर्दशैकमग्नौपतनेचषोडश महाह-
वेषष्टिरशीतिगोप्रहेअनाशकेभारतचाक्षयागतिः इतिसामान्यतोपिफलं एवमन्येपिविधयोज्ञेयाः यत्तुगौडाः
प्रयागादिमरणं ब्राह्मणभिन्नविषयमित्याहुस्तदूपापितामहचरणैः प्रयागविधौकृतमितितानोच्यते ।

प्रयागांत कामनिकमात्र कर्त्तव्यं होतं असें सांगतो **त्रिस्थलीसेतूत स्कांदांत**—“ह्या प्रयागतीर्थांत कसाही जो प्राणत्याग करितो त्याला आत्मघाताचा दोष नाही व तो ईप्सितफलें पावतो.” **पद्मपुराणांत विष्णु**—“माझ्या संनिध जे धीर मनुष्य देहत्याग करितात ते माझ्या देहांत प्रवेश करितातच. त्यांना पुनर्जन्म प्राप्त होत नाही.” **कौमांत**—“व्याधिष्ठ अथवा वीन किंवा कुद्ध झालेला जो मनुष्य गंगा व यमुना यांच्या संगमाजवळ येऊन प्राणत्याग करील त्याचे अभीष्ट मनोरथ पूर्ण होतील, असें ऋषिष्ट्रेष्ठ सांगतात.” तसेंच—“विद्वान् सत्त्वस्थ योग्याला जी गति प्राप्त होते ती गति गंगा व यमुना नदीच्या संगमांत प्राणत्याग करणाराला प्राप्त होते.” **वाराहांत**—“तेथें वटमूलाचेठायीं जो प्राणांचा त्याग करितो तो सर्व लोकांचा अतिक्रम करून माझ्या लोकास प्राप्त होतो.” तसेंच—“अकाम असो किंवा मकाम अगो जर परमगतीची इच्छा करील तर वटमूलांचे ठायीं शीघ्र प्राणत्याग करावा. प्रयागाच्या पांच योजनें विस्तीर्ण अशा मंडलामध्यें जो प्राणांचा परित्याग करील तो मनुष्य पूर्वीच्या सात पुरुषांना व पुढच्या चवदा पुरुषांना तारितो.” **ब्राह्मांत**—“जो विष्णुत्वर मनुष्य विष्णूच्या चरण-कमलाचें ध्यान करून माघमासीं प्रयागाचे ठायीं देहाचा त्याग करितो त्याला मुक्ति होते, यांत संशय नाही. दुष्ट कर्म करणारा दुराचारी ब्रह्महत्या इत्यादि महापातक करणाराही मनुष्य हरीचें ध्यान करून देहत्याग करील त्याला फारकडून मुक्ति प्राप्त होईल.” **भविष्योत्तरपुराणांत**—“उदकांत देहत्याग करणाराला सात हजार वर्षपर्यंत उत्तम गति होते. अग्नींत देहत्याग करणाराला अकरा हजार वर्षे गति होते. भृगुपात करणाराला सोळा हजार वर्षे गति होते. मोठ्या युद्धांत देहत्याग करणाराला साठ हजार वर्षे गति होते. गाईच्या ग्रहणनिमित्तक युद्धांत प्राणत्याग करणाराला ऐंशी हजार वर्षे गति होते. अनाशकक्षेत्रांत देहत्याग करणाराला अक्षय गति होते.” असें गामान्यतःही प्राणत्यागाला फल सांगितलें आहे. याप्रमाणें इतरही प्राणत्याग-विधि जाणावे. आतां जें **गौड**-प्रयागादिकांचे ठायीं मरण सांगितलें तें ब्राह्मणांहून इतरविषयक आहे, असें सांगतात, त्याचें दूषण आमच्या पितामहांनीं (नारायणभट्टांनीं) प्रयागविधींत केलें आहे, म्हणून येथें सांगत नाही.

अत्रदशाहमाशौचं त्रिरात्रस्यप्राप्तकालगोचरत्वादिति **भट्टाः** युक्तंतुत्रिरात्रं **दिवोदासीयेष्येवं शुद्धितत्त्वेपिकाश्यपः** अनशनमृतानामशनहृतानामभिजलप्रविष्टानांभृगुसंप्रामदेशांतरमृतानांजातद-
तानांचत्रिरात्रमिति एवंमरणांतप्रायश्चित्तेपि पूर्वोक्तश्चात्महादेदांहाशौचादिनिषेधस्तदानीमेव वत्सरान्तेतु सर्वमौर्ध्वदेहिकंकुर्यात् गोब्राह्मणहतानांचपतितानांतथैवच ऊर्ध्वसंवत्सरात्कुर्यात्सर्वमेवौर्ध्वदेहिकमिति **हेमाद्रौषट्त्रिंशन्मतात्** एवंम्लेच्छीकृतानामपिगयाश्राद्धमपिकार्यं ब्रह्महाचकृतघ्नश्रगोघातीपंचपा-
तकी सर्वेतेनिष्कृतियांतिगयायांपिंडपातनादित्यग्निपुराणात् एवं**ब्राह्मेपि** क्रियतेपतितानांनुगतेसंवत्सरे कचित् देशधर्मप्रमाणत्वाद्गयाकूपेस्वबंधुभिः मार्तण्डपादमूलेवाश्राद्धंहरिहरौस्मरन् सूर्यपदइत्यर्थः ।

ह्या शास्त्रविहित मरणाचेठायीं सपिंडांनीं दहा दिवस आशौच धरावें. कारण, पूर्वी त्रिरात्र आशौच सांगितलें तें ज्याला मरणसमय प्राप्त असून मृत असेल तद्विषयक आहे, असें भट्ट सांगतात. योग्य म्हटलें म्हणजे त्रिरात्र आशौच करावें. **दिवोदासीयांतही** असेंच आहे. **शुद्धितत्त्वांतही काश्यप**—“अनशन (उपवास) करून मृतांचें; विजेनें मृतांचें; अग्नींत व उदकांत प्रवेश करणारांचें; भृगुपतन, युद्ध, परदेश यांचेठायीं मृतांचें; आणि ज्या मुलांना दंत उत्पन्न झाले आहेत त्यांचें त्रिरात्र आशौच करावें.” मरणांत प्रायश्चित्तांतही असेंच समजावें. आत्मघातकी, पतित इत्यादि मनुष्यांचा दाह, आशौच वगैरे करूं नये, म्हणून जो पूर्वी निषेध सांगितला तो त्या वेळींच समजावा. एक वर्ष झाल्यावर त्या मृतांचें सारें और्ध्वदेहिक (अंयकर्म) करावें. कारण, “गाई, ब्राह्मण यांनीं मारलेले, व पतित यांचें सर्व और्ध्वदेहिक कर्म एक वर्ष गेल्यावर करावें” असें हेमाद्रींत **षट्त्रिंशन्मत**वचन आहे. बाटून म्लेच्छ केलेल्यांचेही असेंच समजावें. वर सांगित-लेल्या आत्मघातक्यादिकांचें गयाश्राद्धही करावें. कारण, “ब्रह्महत्या करणारा, कुतघ्न, गोहत्या करणारा, पंचमहापातकी यांच्या नांवांनं गयेंत पिंडप्रदान केल्यानं ते सारे पातकरहित होतात” असें **आदित्यपुराण**वचन आहे. असें ब्राह्मांतही सांगतो—“पतितांचें मरून संवत्सर गेलें असतां कचित् कालीं देशधर्मप्रमाण मानून मृताचे बंधु गयाकूपाचे ठायीं किंवा सूर्यपदाचे ठायीं हरिहरांचें स्मरण करून श्राद्ध करितात.”

तत्रवर्षेभ्योऽप्युक्तमपराकैचायुपुराणे शुद्धपक्षेतुद्वादश्यांकुर्याच्छ्राद्धंतुवत्सरं द्वादशाहानिवाकुर्या-

च्छुद्धेचप्रथमेहनि छागलेयः नारायणबलिः कार्योलोकगर्हाभयान्नरैः तथातेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवी-
यमः व्यासः नारायणसमुद्दिश्यं शिवं वायत्पदीयते तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथेति स चात्मघातादि-
प्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यः तदुक्तं हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मते कृत्वा चां द्रायणं पूर्वक्रियाकार्या यथाविधि नारायण-
बलिः कार्योलोकगर्हाभयान्नरैः पिण्डोदकक्रियाः पश्चाद्भुपोत्सर्गादिकं च यत् एको हि प्राणि कुर्वीत स पिंडीकरणं तथा
द्विवोदासीयेषु ब्रह्मशान्तानपस्तु पतिते च मृते शुद्धौ प्राजापत्यांस्तु षोडश मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवति-
चरेदित्याह इदं प्रायश्चित्तार्हपित्रादिविषयं इंद्रियैरपरित्यक्ताये च मूढा विषादिनः घातयंति स्वमात्मानं चां डाला-
दिहताश्रये तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दयया समभिप्लुताः यथाश्राद्धं प्रतर्बन्ति विष्णुनामप्रतिष्ठितं तथा ते संप्रवक्ष्यामि-
नमस्कृत्य स्वयं भुव इति हेमाद्रौ नैतन्नोक्ते तत्रैव बौधायनोऽपि नारायणबलिं व्याख्यास्यामः [चंडालादुद-
कात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणां । विपश्चरज्जुपापाणां देशांतरमृतेवा]
अभिज्ञस्तपतितमुरापात्मत्यागिनां ब्राह्मणहतानां च द्वादशवर्षाणि त्रीणि वा कुर्वीतेति ।

जलादिमृत इत्यादिकां विषयीं तेषां वर्षाभये कृत्य सांगतो अपगर्कान् वायुपुराणांत-“संवत्सरपर्यंतं शुक्लपक्षांत
द्वादशीं यादृक् करावे, अथवा शुक्लपक्षाच्या प्रथम दिवशीं चारा दिवसांचें कृत्य करावे.” छागलेय-“लोकापवादाच्या
भीतीनें मनुष्यांनीं नारायणबलि करावा. तमें केले असता त्यांनीं शुद्धा होत, अन्यथा शुद्धि होत नाही, असें यम सांगता
आल्या.” व्यास-“नारायणाचा उद्देश करून किया शिवाचा उद्देश करून जे कांही कर्म करितो त्याचें तें कर्म शुद्धिकारक
होतें. अन्यथा शुद्धिकारक होत नाही.” तो नारायणबलि आत्मघातादि प्रायश्चित्त करून नंतर करावा. तें सांगतो हेमाद्रौ त
षट्त्रिंशन्मतांत-“पूर्वी चांदायण करून नंतर यथाविधि किया करावी. लोकार्हनेच्या भयानें मनुष्यांनीं नारायणबलि
करावा. नंतर पिंडदान, उदकदान इत्यादि किया, श्रुत्यर्थाधिकर्म, एतद्दिष्टे, आणि संपिंडीकरण हीं करावीं.” निवोदासी-
यांत ब्रह्मशान्तानप तर पतित मृत असता त्याच्या शुद्धीकरितां योग्य प्राजापत्यकृत्य करावे. अपत्यरहित मृत असतां
नव्वद कृत्य करावे” असें सांगतो. तें प्रायश्चित्त प्रायश्चित्तान्या योग्य अशा जो पिंडा इत्यादिक मृत असेल तद्विषयक आहे.
कारण, “जे मूढ दंष्ट्र्यांनीं पराधीन झालेले नमून विषादिकेकरून आपल्या देशाचा घात करितात व जे चांडालादिकांनीं
मारले जातात त्यांचे पुत्र किया पौत्र दयायुक्त होऊन विष्णुनामयुक्त ज्या विधीनें श्राद्ध करितात तो विधि ब्रह्मशाला नम-
स्कार करून तुला सांगतो.” असे हेमाद्रौ त त्यांचेच सांगितले आहे. तेषां बौधायनही-“नारायणबलि सांगतो-अभि-
ज्ञस्त (लोकापवादानें दूषित), पतित, मुरापी, आत्महत्यारी, आणि ब्राह्मणांनीं मारलेला यांचें द्वादश वर्षे किंवा तीन वर्षे
प्रायश्चित्त करून तो करावा.”

गृह्यपरिशिष्टे चंडालादित्यायुक्त्वा दग्ध्वाशरीरं धेतस्य संस्थाप्यास्मीनियत्नतः प्रायश्चित्तं तु कर्तव्यं
पुत्रैश्चां द्रायणत्रयमित्युक्तं मदनरत्ने ब्राह्मे प्रमादादपि निःशंकस्त्वकस्माद्विधिचोदितः चांडालैर्ब्राह्मणैश्चैरै-
र्निहतो यत्र कुत्रचित् तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तुमः चां द्रायणं तत्प्रकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये यदा कृच्छ्राप-
चदशकृत्वा तु विधिना दहेत् शुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समाचरेदित्युक्तं स्मृतिरन्वावल्यांतु द्विगुणं
प्रायश्चित्तं कृत्वा र्वागप्येव चात्मवैकार्यमित्युक्तं आत्मनो घातशुद्धयर्थं चरेच्छां द्रायणद्वयं तत्प्रकृच्छ्रचतुष्कंच त्रिंशत्कृ-
च्छ्राणि वा पुनः अत्राक्संवत्सरात्कुर्याद्दहनादियथोदितं कृत्वानारायणबलिमनित्यत्वात् तदायुपहति इदं चात्म-
वधनिमित्तं तज्जातिवधप्रायश्चित्तेन समुच्चितं कार्यं अतएव बौधायनेनोक्तं द्वादशवर्षाणि त्रीणि वेति मदन-
पारिजाते स्मृत्यर्थं सारं च ब्रह्महत्यानांतं योग्यं प्रायश्चित्तं कृत्वानारायणबलिः कार्य इत्युक्तं एवं स्लेच्छीकृ-
तानामपि यत्तु कश्चिदाह पुत्रकृतेन प्रायश्चित्तेन पितुः पापनाशे मानाभावः आत्मघाते तु वचनादस्तु महापा-
तके तु कथं स्यादिति सः स्वयमेवात्मवधप्रायश्चित्तस्य जातिवधनिमित्तं नमश्च यं वदन्हृदयशून्य एव नहि जाति-
वधनिमित्तं पुत्रैः कार्यमिति वचनमस्ति पुत्रकर्तृक सर्वप्रायश्चित्तादिविप्रवापतेः प्रागुक्तबौधायनवचनाच्चेति दिक्
इदं प्रायश्चित्तार्हणमेव प्रायश्चित्तानर्हणान्तु पतितोदकमात्रं कार्यमिति कंचिन् मदनपारिजातादिस्वरसो-
प्येवं वस्तुतस्तु दर्हानर्हयोर्वचनेन उपादानादविशेषात्तत्रापि नारायणबलिर्गयाश्राद्धं चेति युक्तम् ।

पृष्ठापरिक्षिप्तांत तर—‘चंडालादुक्तात्’ इत्यादिक सांगून—‘प्रेतांचें शरीर जाऊन त्याच्या अस्थि प्रव्रजानें ठेऊन पुत्रांनीं तीन चांद्रायणें प्रायश्चित्त करावें,’ असें सांगितलें आहे. **मदनरक्षांत ब्राह्मांत**—‘प्रमादानें अथवा निःशंकपणानें अकस्मात् देवानें प्रेरित होऊन चांडालांनीं, ब्राह्मणांनीं अथवा चोरांनीं कोठेही मारला जाईल त्याचें दाहादिकर्म करावें; कारण, तो पतित नाही. त्याच्या शुद्धीकरितां चांद्रायण व दोन तप्तकृच्छ्रें करावीं अथवा पंधरा कृच्छ्र करून यथाविधि दाह करावा. बुद्धिपूर्वक मृतांचे तीस कृच्छ्र करावे’ असें सांगितलें आहे. **स्मृतिरक्षावलींत** तर—दुष्पट प्रायश्चित्त करून प्रथम वर्षाच्या आंत देखील सारें कर्म करावें, असें सांगितलें आहे. तें असें—‘आत्महत्येची शुद्धि होण्याकरितां दोन चांद्रायणें आणि चार तप्तकृच्छ्रें अथवा तीस कृच्छ्रें करून संवत्सराच्या आंत नारायणबलि करून यथोक्त दाहादिकर्म करावें. कारण, कर्त्याचें आयुष्य अनित्य आहे.’ हें आत्महत्यानिमित्तक प्रायश्चित्त व जातिवधनिमित्तक प्रायश्चित्त अशीं मिळून दोन करावीं. म्हणूनच वर सांगितलेल्या वचनांत द्वादशवर्षे किंवा तीन वर्षे, असें बौधायनानें सांगितलें आहे. **मदनपारिजातांत व स्मृत्यर्थसारांत**—ब्रह्महत्यादिकरणांरांचें त्या पापाला योग्य प्रायश्चित्त करून नारायणबलि करावा, असें सांगितलें आहे. बाटवून म्लेच्छ केलेल्या मनुष्यांचेही असेंच समजावें. आतां जें **कोणीएक** सांगतो कीं, ‘पुत्रांनं केलेल्या प्रायश्चित्तानें पित्याच्या पापाचा नाश होण्याविषयीं प्रमाण नाही. आत्मघाताविषयीं तर पुत्रांनं केलेल्या प्रायश्चित्तानें पित्रादिकांच्या पापाचा नाश, वर सांगितलेल्यावचनावरून असो. परंतु महापातकाविषयीं नाश कसा होईल? असें म्हणणारा तो स्वतःच आत्मवध-प्रायश्चित्त व जातिवधप्रायश्चित्त हीं दोन समुच्चयानें करावीं, असें सांगणारा असल्यामुळें त्याचें अंतःकरणच ठिकाणावर नाही, असें समजलें पाहिजे. जातिवधनिमित्तक पुत्रांनीं करावें, असें वचन आहे काय? नाही. मग असें म्हटलें तर पुत्रांनीं करावयाच्या सर्व प्रायश्चित्तादिकांचा विप्रव (विनाश) प्राप्त होईल ! आणि महापातकादिविषयीं वर सांगितलेलें बौधायनवचनही आहे. ही दिशा दाखविली आहे. हा सर्व प्रकार प्रायश्चित्ताला योग्य असतील त्यांनाच समजावा. प्रायश्चित्ताला योग्य असतील त्यांना तर पतितोदक मात्र करावें; असें केचित् म्हणतात. **मदनपारिजान** इत्यादि ग्रंथांचें स्वारस्यही असेंच आहे. वास्तविक म्हटलें तर प्रायश्चित्ताला योग्य व अयोग्य असें वचनांत विशेष नसल्यामुळें प्रायश्चित्ताला अयोग्य मृत असतील त्यांविषयीं देखील नारायणबलि व गयाश्राद्ध करावें, हें युक्त आहे.

पतितोदकविधिस्तु पित्राद्यतिरिक्तविषयइत्यपरे सयथाहेमाद्रौब्राह्मे पतितस्यतुकारुण्याद्यस्तृप्तिर्कुरु-
मिच्छति सहिदासींसमाहूयसर्वगांदत्तचेतनां अशुद्धघटहस्तांतांयथावृत्तंनवीत्यपि हेदासिगच्छमूल्येनतिला-
नानयसत्वरं तोयपूर्णघटंचेमंसतिलंदक्षिणामुखी उपविष्टातुवामेनचरणेनततःक्षिप कीर्तयेःपातकीसंज्ञात्वं
पिबेतिमुहुर्वंदेः निशम्यतस्यवाक्यंसालब्धमूल्याकरोतितत् एवंकृतेभवेत्तृप्तिःपतितानांचनान्यथेति इदंचमृ-
ताहेकार्यं पतितस्यदासीमृताह्वयदाघटमपवर्जयेदेतावतायमुपचरितोभवतीति**मदनरत्नेविष्णूक्तेः** इदं
चात्मत्यागिविषयं आत्मत्यागिनःपतितास्तेनाशौचोदकभाजःस्युरित्युपक्रम्यविष्णुनाएतस्याभिधानादिति
गौडाः यत्तु**काश्चिदाह** यःपतितोघटस्फोटनबांधवैर्बहिष्कृतस्तद्विषयाणिक्रियानिषेधवाक्यानि जीवत्येव-
तस्मिन्नत्यकर्मणःकृतत्वात्तत्पुनःकरणाभावादिति स बंधुत्यागेनजातवैराग्यस्यकृतप्रायश्चित्तस्याप्यकरणापत्ते-
र्मिताक्षरादिविरोधमपश्यन्मूर्खइत्युपेक्षणीयः नचकृतघटस्फोटस्यसंग्रहविधिर्नैतिवाच्यं **मनुना**कृत-
घटस्फोटस्यत्यागमुक्त्वा प्रायश्चित्तेतुचरितेपूर्णकुंभमपांनवं तेनैवसाधंप्राप्त्येयुःस्नात्वापुण्येजलाशयइत्युक्तेः
अन्यथाप्रायश्चित्तमात्रेएतत्प्रसंगात् अतोघटस्फोटनबहिष्कृतस्यापिपित्रादेरब्दातेनारायणबलिः निषेधास्तु
पितृव्यादिपराइतितत्त्वं केचित्तुनारायणबलीकृतेप्यत्यकर्मसंपिंडनवर्जकार्यम् गोब्राह्मणहृतानांचपतितानां-
तथैवच व्युत्क्रमाच्चप्रसीतानांनैवकार्यासंपिंडतेतिवचनात् ब्राह्मणादिहृतेतातेपतितेसंगवर्जितइति**श्राद्धप्र-**
कारोक्तेश्चेत्याहुः तेहेमाद्रिस्थपूर्वोक्तषट्त्रिंशन्मतविरोधान्निर्मूलत्वाच्छ्राद्धप्रकारस्यवृद्धिश्राद्धविषय-
त्वादुपेक्ष्याः ।

पतितोदकाचा विधि तर पिता इत्यादि व्यतिरिक्तविषयक आहे, असें इतर ग्रंथकार सांगतात. तो पतितोदकविधि असा—**हेमाद्रींत ब्राह्मांत**—‘जो मनुष्य दयेच्या योगानें पतिताची तृप्ति करण्याविषयीं इच्छित असेल त्यानें सर्वांशीं गमन करणाऱ्या दासीस बोलवून तिला मूल्य (मजुरी) देऊन अशुद्ध घागर तिच्या हातांत देऊन तिला सांगावें की, हे दासि, तुला मजुरी देऊन सांगतो तें कर, सत्वर जाऊन तिला आणि ही घागर पाण्यानें भरून आणि, नंतर दक्षिणेकडे तोंड करून बसून डाव्या पायांनं तिलसहित ही घागर उपवी कर, व उपवी करतेवेळीं पातक्याचें नांव घेऊन ‘अमुकसंज्ञक प्रेत पिब पिब’ असें वारंवार बोल ! याप्रमाणें हें वाक्य तिनें ऐकून मूल्य घेऊन सांगितल्याप्रमाणें तें करावें. असें केलें

असतां पतितांची तृप्ति होते. अन्वया पतितांची तृप्ति होत नाही.” हें पतितोदकदान मृतविषयीं करावें. कारण, “पतितां मृतविषयीं जेव्हां दासी घट लवंगील तेव्हां तितक्यानें पतित तृप्त झाल्यासारखा होतो” असें मदनमोहनांत विष्णुपूजन आहे. हें आत्मघातकीविषयीं आहे; कारण, “आत्मत्यागी जे पतित त्यांचें आशौच व उदक नाही” असा उपक्रम करून विष्णूनें हें वरील वचन सांगितलें आहे, असें गौड सांगतात. आतां जें कश्चित् (कोणीएक) असें सांगतो की, ‘ज्या पतिताला घटस्फोट करून बांधवांनीं बहिष्कृत केला असेल त्याविषयीं वरील क्रियानिषेधक वाक्ये आहेत. कारण, तो जीवत असतांच त्याचें अंत्यकर्म केलेलें असल्यामुळे पुनः अंत्यकर्म करण्याचें कारण नाही’ तो मूर्ख आहे. कारण, घटस्फोट करून आत्मांनीं त्याग केल्यामुळे वैराग्य उत्पन्न होऊन ज्यानें प्रायश्चित्त केले असेल त्याचेंही अंत्यकर्म करावयास नको, असें प्राप्त झाल्यानें मिताक्षरादि ग्रंथांचा विरोध पहात नसल्यामुळे तो मूर्ख समजून त्याचें मत उपेक्षणीय (अप्राप्त) आहे. एकवार अंत्यकर्म करून घटस्फोट केल्यावर तो पुनः आपल्या जातींत येत नाही, म्हणून त्याचें पुनः अंत्यकर्म नको, असें म्हणतां कामा नये; कारण, मनुनें घटस्फोट केलेल्याचा त्याग (बहिष्कार) सांगून नंतर “त्यानें आपल्या पापाचें प्रायश्चित्त केले असतां त्याच्या बंधूंनीं त्या पाप्यासहवर्तमान पुण्योदकांत स्नान करून उदकांनें भरलेला पूर्ण नवा घट घेऊन सोडावा” असें सांगितलें आहे. हें वचन ज्याचा घटस्फोट केला असेल त्याला जातींत येण्याविषयीं समजले पाहिजे. असें न समजले तर साऱ्या प्रायश्चित्तांत ह्याचा (पूर्ण घटोदकत्यागाचा) प्रसंग येईल. म्हणून घटस्फोट करून बहिष्कृत केलेल्या देखील पित्रादिकांचा वर्षांनीं नारायणबलि करावा. निषेध तर पितृव्यादिविषयक आहेत, हें सर्व समजावें. केचित् ग्रंथकार तर—नारायणबलि केला तरी संपिंडीकरणवर्जित अंत्यकर्म करावें. कारण, “गाई व ब्राह्मण यांनीं मारलेल्यांचें, पतितमृतांचें, आणि उलट कमानें (वडील जीवत असून पुत्र मरणें या कमानें) मृतांचें संपिंडन कर्तव्य नये” असें वचन आहे. आणि “ब्राह्मणादिकांनीं मारलेला, पतित किंवा सर्वसंग त्याग करणारा असा पिता असतां संपिंडन कर्तव्य नये.” असें श्राद्धप्रकारवचनही आहे, असें सांगतात. त्यांचें तें मत पूर्वीक हेमाद्रीतील षट्त्रिंशन्मताशीं विरुद्ध होत असल्यामुळे व मूलरहित असल्यामुळे आणि श्राद्धप्रकार वृद्धिश्राद्धविषयक अमल्यामुळे उपेक्षणीय (अप्राप्त) आहे.

नारायणबलिस्तु हेमाद्र्याद्यनुमारेणोच्यते तत्रादौ क्रियानिवंधे गारुडे तर्पणमुक्तं कार्यपुरुषसूक्तेन मंत्रैर्वावैष्णवैरपि दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतविष्णुमिति स्मरन् अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः अक्षय्यः पुंडरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेति शुक्लेकादश्यां देशकालौ संकीर्त्यामुकगोत्रस्यामुकस्य दुर्मरणात्मघातजदोषनाशार्थं और्ध्वदेहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिद्धयर्थं नारायणबलिकरिण्यइतिसंकल्प्य ब्रह्माणं विष्णुं शिवं यमं प्रेतं च पंचकुंभेषु विष्णुः स्वर्णमयः कार्योरुदस्ताम्रमयस्तथा ब्रह्मारौप्यमयस्तत्रयमोलोहमयो भवेत् प्रेतोर्ध्वमयः कार्यइति देवप्रकल्पनेति गारुडोक्ता सुसर्वा सुहृमिपुवाप्रतिमा सुपोदशोपचारैः पुरुषसूक्तेनाभ्यर्च्यार्घ्यप्रतिष्ठाप्य चरुपुरुषसूक्तेन प्रत्यृचनं नारायणायेदमिति हुत्वा देवानामग्रे दक्षिणाग्रदंभे पविष्णुरूपं प्रेतं स्मरन् ब्राम्हणगोत्राभ्यां मधुघृततिलयुतान्दशपिंडान्यक्षोपवीत्येवामुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेतविष्णुरूपायं ते पिंड उपतिष्ठतामिति दत्त्वा पुरुषसूक्तेनाभिमंत्र्य तेनैव शंखोदकेनाभिपिच्य भ्यर्च्यामुकशर्मणमुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामीति पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचंतर्पयित्वा एकमामात्रं ब्रह्मादिपंचभ्यो दद्यात् मंत्रस्तु ब्रह्मविष्णुमहादेवाय मश्चैव सक्रिकरः बलिं गृहीत्वा कुर्वंतु प्रेतस्य च शुभांगतिमिति मिताक्षरायां तु होमबल्यादिनोक्तं ततः प्रतिद्वैतं त्रिविधं फलशंकरामधुगुडघृदानि च निवेद्य पिंडान् भ्यर्च्य नद्यां क्षिप्यारात्रौ नवसंप्रपंचवाविप्राभिमंत्र्योपोषितो जागरं कृत्वा श्वोभूते पुनर्विष्णुयमं संपूज्यैकोद्विष्टविधिना श्राद्धपंचकं करिष्ये इत्युक्त्वा विष्णुयमप्रेतान् स्मरन् विप्रानुपवेशयेत् प्रेतस्थाने चैकं विष्णुं स्मरन् पाद्याबाह्नार्घ्ययुतं तृप्तिप्रभातं कृत्वोत्प्रेतानां दिकृत्वा अशेषेण विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय यमाय स परिवाराय च तुरः पिंडान् दत्त्वा प्रेतनामगोत्रे स्मृत्वा विष्णुनाम्ना पंचमं दत्त्वा भ्यर्च्यार्घ्यां चांतेभ्यो दक्षिणां दत्त्वं क्रेतं स्मृत्वा विधेयतः संतोष्य विप्रैः प्रेतायेदं तिलोदकमुपतिष्ठतामिति सतिलमुदकं दापयित्वा भुंजीतेति अत्र विशेषांतरं भट्टकृतां त्येष्टिपद्धतौ क्षेत्रं ।

नारायणबलि तर हेमाद्रि इत्यादि ग्रंथांच्या अनुरोधानें सांगतो—त्यांत पूर्वी क्रियानिवंधांत गारुडपुराणांत तर्पण सांगितलें आहे तें असें—“दक्षिणाभिमुख होऊन प्रेताला विष्णु असें स्मरून पुरुषसूक्तानें किंवा विष्णुमंत्रांनींही तर्पण करावें. आणि ‘अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुंडरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव’ हा मंत्र म्हणून पाणी सोडावें. शुद्धपक्षाच्या एकादशीस देशकालांचें संकीर्तन करून ‘अमुकगोत्रस्य अमुकस्य ० करिष्ये’ असा संकल्प करून पांच कुंभांचे उर्या ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम, प्रेत या पांचांचें आवाहन करावें; तें असें—‘विष्णु शुवर्णाचा, श्व

तात्पाचा, ब्रह्मा रुप्याचा, यम लोहाचा, व प्रेत दर्भाचा करावा, अशी देवांची कल्पना समजावी.” ह्या गारुडांत सांगितलेल्या प्रतिमांवर किंवा साऱ्या सोन्याच्या करून त्यांजवर आवाहनादिषोडशोपचारानीं पुरुषसूक्तां पूजा करून अभिप्रतिष्ठापन करून पुरुषसूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेनें 'नारायणाय इदं' असा त्याग करून चरुचा होम करून स्थापन केलेल्या देवांच्या अग्रभागीं दक्षिणाग्रदर्भावर विष्णुरूपी प्रेताचें स्मरण करून यज्ञोपवीतीनेंच नांव आणि गोत्र यांचा उच्चार करून मधु घृत-तिल गुक्त दहा पिंड द्यावे; ते असे-“अमुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेत विष्णुरूपाय ते पिंड उपतिष्ठतां” असें म्हणून ते पिंड देऊन पुरुषसूक्तां त्यांचें अभिमंत्रण करून पुरुषसूक्तांनंच शंखोदकांनं अभिषेक करून पूजा करून 'अमुकशर्माणममुकगोत्रं विष्णुरूपं प्रेतं तर्पयामि' असें म्हणून पुरुषसूक्तांनं प्रत्येक ऋचेनें तर्पण करून एक आमात्र ब्रह्मादिक पांचांना द्यावें. त्याचा मंत्र—“ब्रह्मविष्णुमहादेवा यमश्चैव सकिंकरः । बलिं गृहीत्वा कुर्वन् प्रेतस्य च गुप्तां गतिं.” मिताक्षरेन तर-होम, बलि इत्यादिक सांगितले नाही. तदनंतर प्रत्येक देवतेला तीन प्रकारचें फल, शंकरा, मध, गूळ, घृत हीं निवेदन करून पिंडांची पूजा करून ते नदींत टाकून त्या रात्रीं नऊ, सात किंवा पांच ब्राह्मणांना दुसऱ्या दिवसाचें निमंत्रण देऊन उपोषित असून जागरण करून दुसऱ्या दिवशीं पुनः विष्णुयमांची पूजा करून 'एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपंचकं करिष्ये' असा संकल्प करून विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम, प्रेत यांचें स्मरण करून ब्राह्मणांना बसवून प्रेतस्थानीं एक ब्राह्मण विष्णुस्मरण करून बसवून पाय आवाहन-अर्घ्य सहित तृतिप्रश्नापर्यंत करून पिंडांकरितां उल्लेखनादिक करून उरलेल्या शेष अन्नांनं विष्णु, ब्रह्मा, शिव, सपरिवार यम यांना चार पिंड देऊन प्रेताचें नांव व गोत्र स्मरण करून विष्णूचे नांवांनं पांचवा पिंड देऊन पूजा करून ब्राह्मणांनीं आचमन करून त्यांना दक्षिणा देऊन प्रेतस्थानीं बसलेल्या एका ब्राह्मणाला विशेष करून संनोष करून ब्राह्मणांकडून 'प्रेताय इदं तिलोदकमुपतिष्ठतां' असें म्हणवून तिलमहित उदक देववून नंतर आपण भोजन करावें. यांत इतर विशेष नारायणभट्टांनीं केलेल्या अंल्येष्टिपद्धतींतून जाणावा.

सर्पहतेतुवर्षपर्यंतपूर्वेऽह्नयेकभक्तपूर्वशुक्लपंचम्यामुपवासंनक्तंवाकृत्वापिष्टमयंनागमनंतवासुकिशंखपद्मकंबलककोटकाश्वतरधृतराष्ट्रांश्वपालकालियतक्षककपिलेतिनामभिःप्रतिमासंपूज्यपायसेनविप्रान्संभोज्यवत्सरांतैर्हैमनागांगचंदत्वानारायणबलिकुर्यात् मूलंतुह्येमाद्रौज्ञेयं बौधायनसूत्रेसर्पमृतानांनमोस्तुसर्पभ्यइ-तितिल्लआहुतीर्हृत्वोदकेमृतानांसमुद्रायवयुनायहुत्वेति क्रियांकुर्यादतिशेषः व्यासः मौर्वणभारनिष्पन्ननागंकृत्वातथैवगां व्यासायदत्त्वाविधिवत्पितुरानृण्यमाप्तवान् हेमाद्रौभविष्ये पंचम्यांपन्नगैर्हैमस्वर्गेनैकेनकारयेत् श्रीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्यविप्रायदापयेत् प्रायश्चित्तसिद्धं प्रोक्तं नागदष्टस्यशंभुनेति अपराकैस्मृत्यंतरेपि तदैवशुध्यतिप्रेतो नारायणबलौकृते योददातिक्रियापिंडंतस्मैप्रेतायवैसुतः तस्यैवाशौचमुद्दिष्टंयहमेवनसंशयः विष्णुश्राद्धसमामोतुत्रयोदश्यांदिनत्रयं आशौचंपिंडदःकुर्यान्नतुतद्वंधुगोत्रजाः यस्यैवमृत्युकालेतुव्युच्छिन्नासंततिर्भवेत् सवसेन्नरकेनित्यंपंकमग्नः करीयथेत्युपक्रम्य बलिनारायणंकुर्यात्तस्योद्देशेनभक्तिमानितिगारुडोक्तेरपुत्रस्यापिपद्म्याद्यैः कार्यइत्युक्तं देवयाज्ञिकेन ।

सर्पानं मारलेला असेल तर एक वर्षपर्यंत शुक्लपंचमीच्या पूर्वदिवशीं एकभक्तवन करून शुक्लपंचमीचे दिवशीं उपवास किंवा नक्त करून पिठाचा नाग करावा, आणि अनंत, वासुकि, शंख, पद्म, कंबल, ककोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, कपिल, या बारा नांवांनीं प्रत्येक महिन्यांत एकएकनांवांनं त्या नागांची पूजा करून पायसानं ब्राह्मणांस भोजन घालून वर्षाच्या अंतीं सुवर्णाचा नाग व गार्द ब्राह्मणाला देऊन नारायणबलि करावा. याचीं मूलवचनं हेमाद्रौत पाहावी. बौधायनसूत्रांत—“सर्पानं मृतं झालेल्यांस 'नमोस्तुसर्पभ्यः' या मंत्रांनं तीन आहुती देऊन, उदकांत शृत झालेल्यांना 'समुद्राय वयुनाय' या मंत्रांनं होम करून नंतर क्रिया करवी” असें सांगितलें आहे. व्यास—“कोणीएकांनं एकभार सुवर्णाचा नाग करून तो व गार्द व्यासाला यथाविधि देऊन तो पित्याच्या ऋणांतून मुक्त झाला.” हेमाद्रौत भविष्यांत—“पंचमीस एक कर्ष सुवर्णाचा नाग करून दूध तृप्त यांच्या पात्रांत देऊन पूजा करून ब्राह्मणाला द्यावा, सर्पानं दंश केलेल्यास हें प्रायश्चित्त शंकरानं सांगितलें आहे.” अपराकांन स्मृत्यंतरांतही—“नारायणबलि केला असतां त्यावेळींच प्रेत शुद्ध होतो. त्या प्रेताला जो पुत्र श्राद्धपिंड देतो त्यालाच आशीच तीन दिवस सांगितलें आहे, यांत संशय नाही. विष्णुश्राद्ध (नारायणबलि) त्रयोदशीस समाप्त झाल्यावर पिंड देणारांनं (श्राद्धकृत्यांनं) तीन दिवस आशीच करावें, त्याच्या इतर बांधवांनीं आशीच करूं नये.” “ज्याच्या मृत्युसमयीं संतति विच्छिन्न होईल तो नित्य नरकांत वास करील. जसा कईमांत मम झालेला हत्ती असतो तसा तो नरकांत मम झालेला असतो” असा उपक्रम करून सांगतो—“त्याच्या-

विषयीं भक्तिमान् असेल त्यानें संततिरहित मृताच्या उद्देशानें नारायणबलि करावा" असें गद्यपुराणांत सांगितल्याप्रमाणे निपुत्रिकाचाही पत्नी इत्यादिकांनीं नारायणबलि करावा, असें देखण्यादिकांनीं सांगितले आहे.

अथविधानादाशौचाभावः यथा यतियुद्धमृतादिषु त्रयाणामाभ्रमाणांचकुर्वादादिकाः क्रियाः यतः किंचिन्नकर्तव्यं नचाप्येषां करोतिस इति ब्राह्मणात् उशनाः एकोद्दिष्टं कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा अह-
न्येकादशे प्राप्ते पार्वणंतु विधीयते सपिंडीकरणं ते पानकर्तव्यं सुतादिभिः त्रिदंडप्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते तत्सं-
स्कारं वक्ष्यामः दत्तात्रेयः एकोद्दिष्टं जलपिंडमाशौचं प्रेतसत्क्रियां न कुर्याद्वापि कादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे
वार्षिकादिति पूर्वभाविमासिकादिनिषेधो न तु दर्शादेः संन्यासिनोप्यादि कादिपुत्रः कुर्याद्यथाविधीति वायवी-
योक्तेः पृथ्वीचंद्रोदये प्रजापतिः अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणंतु विधीयते सपिंडीकरणं तस्य न कर्तव्यं
सुतादिभिः एषु सपिंडनादिनिषेधा तु वादेन पार्वणोक्तेस्तत्स्थानापन्नत्वं पार्वणस्य गम्यते न गिरागिरेति ब्रूयादेदं
कृत्वोद्वेगमिति बन् इदं वार्षिकादि विधानं च त्रिदंडिनामेव एकदंडिपरमहंसादीनां तु न किमपि कार्यं पूर्वोक्तो-
शनोवाक्ये त्रिदंडिप्रहणादिति शूलपाण्यादयोगौघाः त्रिदंडिशब्देन मनोदंडादिदंडत्रयोक्तेः यस्यैते निय-
तादंडाः स त्रिदंडीति चोच्यते इति स्मृतेः ।

आतां विधानं करून आशौच नाही, तो प्रकार सांगतो—

तो असा—संन्याशी मृत, युद्धांत मृत इत्यादिकांचें आशौच नाही. कारण, “तीन आश्रमांच्या (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ यांच्या) दाहादिक क्रिया कराव्या. संन्याशाचें कांहीं करूं नये, व तो संन्याशी इतरांचें कांहीं कर्म करीत नाही.” असें ब्राह्मणवचन आहे. उशना—“यतींचें सर्वकाळीं एकोद्दिष्ट करूं नये. अकराव्या दिवशीं पार्वण करावें. पुत्रादिकांनीं संन्याशांचें सपिंडीकरण करूं नये. त्रिदंड प्रहण केल्यानेंच त्याला प्रेतत्व येतच नाही.” त्याचा संस्कार पुढें सांगूं. दत्तात्रेय—“ब्रह्म-
रूपी झालेल्या संन्याशाला वार्षिकावांचून इतर एकोद्दिष्ट, उदक, पिंड, आशौच आणि प्रेतक्रिया हीं कांहीं करूं नयेत.” या वचनानें वर्षाच्या आंत होणाऱ्या मासिकादिकांचा निषेध केला आहे; दर्शादिकांचा निषेध नाही. कारण, “संन्याशांचेही आदि कादि भ्राद पुत्रांनं यथाविधि करावें” असें वायुपुराणांतील वचन आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांत प्रजापति—
“संन्याशांचें पुत्रादिकांनीं सपिंडीकरण करूं नये. अकरावा दिवस प्राप्त असतो पार्वणश्राद्ध करावें.” या बरील वचनांत सपिंडी-
करण—एकोद्दिष्ट यांच्या निषेधाचा अनुवाद (कथन) करून पार्वण सांगितल्यावरून त्यांच्या (सपिंडनादिकांच्या) स्थानीं पार्वण आहे, असें समजण्यांत येतें. जसे—ज्योतिशोमयज्ञांत असें सांगितलें आहे की, ‘यज्ञायज्ञावो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे’ ह्या ऋचेच्या सामांचें गान करावें. त्या गानाविषयीं ब्राह्मणांत असें सांगितलें आहे की, ‘न गिरागिरेति ब्रूयात्, ऐरं कृत्वोद्वेगं’ म्हणजे बरील ऋचेंत ‘गिरागिरा’ असें गान करूं नये, तर गकाररहित ‘इरा’ असें करून गान करावें. मग गातेवेळीं ‘इरा’ याच्यापूर्वी ‘आ, य, इ’ हे तीन वर्ण लावून ‘आयीरायीरा’ असें गान करावें, असें आहे. तें जसें—‘गिरागिरा’ याच्या स्थानीं ‘आयीरायीरा’ हे गान तसें येथे सपिंडीकरणादि स्थानीं पार्वण आहे, असें समजावें. हे एकादशाहीं पार्वण व बरील वचनानें सांगितलेलें वार्षिकादि विधान त्रिदंडीसंन्याशांसच समजातें. एकदंडी—परमहंस इत्यादिकांचें तर कांहींही करूं नये. कारण, पूर्वी वर सांगितलेल्या उशना वाक्यांत त्रिदंडप्रहण, असें पद आहे, असें शूलपाणि इत्यादि गौड सांगतात. कारण, ‘त्रिदंड’ या शब्दानें मनोदंड, वैहदंड, वाग्दंड, हे तीन वंड सांगितले आहेत. कारण, “ज्याला हे तीन वंड नियत आहेत तो त्रिदंडी, असा म्हटला आहे.” अशी स्मृति आहे.

बौधायनः नारायणबलि श्राव्यकतं ऋयोद्वाद्वाद्देशे हि अस्य पार्वणेन समुच्चयो ज्ञेयः तच्च स एवाह कृत्वा वि-
ष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत् अग्नौ कृत्वा तु तच्छेषं व्याहृतीभिः समाहितः यतीन् गृहस्थान् सार्धं नृपानि मंत्र्यहो-
दशाधरांश्च अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्मंत्र्यैर्द्वादशनामभिः संभोज्य हव्येनान्येन दक्षिणांचनिवेदयेत् त्रयोदशं द्विजभे-
मात्मज्ञं संयतं त्रिंशं विष्णुं यथा तथा अभ्यर्च्य पाशाद्यैश्च विधानतः दद्यात्पुरुषलूकेन गंधपुष्पादिकं कृत्वा वकाशं-
करणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् उच्छिष्टसमिधौ तस्य दर्मानास्तीर्यभूतले भूर्भुवः स्वः स्वधायुक्तैस्तोदयश्च हलि-
त्रयं अश्वमेधसहस्रस्य बाजपेयशतस्य च तत्कलं भते देवयः करोति यत्तिक्रियाम् ।

बौधायन—“ह्या (संन्याशाच्या) बाराव्या दिवशीं नारायणबलि करावा.” नारायणबलि व वार्षिक दोनीं ऋतूंनीं. ती नारायणबलि तोच (बौधायन) सांगतो—“त्रिण्वरी महापूजा करून वाक्य भेद करून घ्या. तस पार्वणोदक विनिवेदित

अर्पित व्याहृतीर्नीं होम करावा. बारापैक्षां अधिक यति, गृहस्थ अथवा साधू यांना निमंत्रण द्यावें. आणि त्यांची विष्णूच्या द्वादश नांवांनीं व मंत्रांनीं गंधपुष्पादिकेंकरून पूजा करावी. दुसऱ्या उत्तम अन्नानें त्या ब्राह्मणांना भोजन घालून दक्षिणा द्यावी. आत्मवेत्ता जितेंद्रिय असा तेरावा श्रेष्ठ ब्राह्मण सांगून विष्णूप्रमाणें त्याची पाद्यादिकांनीं यथाविधि पूजा करून पुरुष-सूक्तानें अनुक्रमेंकरून गंधपुष्पादिक द्यावें. त्याला वस्त्रें, अलंकार यथाशक्ति द्यावे. त्याच्या उच्छिष्टाजवळ भूमीवर दर्भ पसरून व्याहृतींनीं व स्वधाशब्दानां त्याला तीन बलि (पिंड) द्यावे. जो पुरुष याप्रमाणें संन्याशाची क्रिया करितो त्याला सहस्र अभ्यमेधांचें व शंभर वाजपेयांचें फल प्राप्त होतें.”

शौनकस्तु शौनकोहंप्रवक्ष्यामिनारायणबलिपरं चंडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैशुतादपि दंष्ट्रिभ्यश्चपशु-भ्यश्चरज्जुशस्त्रविषाशमभिः देशांतरमृतानांचमृतानांबान्यसाधनैः जीवच्छ्राद्धमृतानांचनिष्ठानांतथैवच यतीनांयोगिनांपुंसामन्येषांमोक्षकांक्षिणां पुण्यायाघक्षयार्थायद्वादशेहनिकारयेत् द्वादश्यांश्रवणेन्दतेपंचम्यां-पर्वणोस्तुवेत्युक्त्वा पूर्वोक्तसर्वविधमुक्त्वातोदेवतिषड्विःपुरुषसूक्तेनप्रत्यृचंपायसंहुत्वाकेशवादिद्वादशनाम-भिस्तद्रूपिणेपित्रेद्वादशविप्रान्संभोज्यतैरेवद्वादशपिंडान्दद्यादित्यधिकमाह युद्धमृतुप्रागुक्तं कृतजीवच्छ्रा-द्धमृतसपिंडैराशौचादिकार्यनवा तदुक्तंहेमाद्रौलैंगे मृतैकुर्यान्नक्रुर्याद्वाजीवन्मुक्तोयतःस्वयं कालंगतेद्विजे-भूमौखनेद्वापिदहेतवा पुत्रकृत्यमशेषचक्रत्वादोषोनविद्यते जीवत्यपिविशेषस्तत्रैवोक्तः नित्यनैमित्तिकंयत्तु-कुर्याद्वासंयजेतवा बांधवेपिमृतेतस्यनैवाशौचंविधीयते सूतकंचनसंदेहःस्नानमात्रेणशुध्यति एतद्योगिविषयम् योगमार्गतोपिचेतितस्याप्युक्तेः तथाहिताम्रौप्रोषितमृतेतदस्थिदाहात्पूर्वपुत्रादीनामाशौचंसंध्यादिकर्मलोपश्च-मास्ति अनभिमतउत्क्रांतेराशौचादिद्विजातिषु दाहादभिमतोविद्याद्विदेशस्थेमृतेसतीतिस्मृतेः आहिताग्नेर्दा-हात्प्रागपिदशाहः संस्कारांगंचभिन्नोदशाहइतिधूर्तस्वामीरामांडारश्च तर्बित्यं मूलैक्याद्वचोविरोधाच्च एतत्प्रागुक्तम् ।

शौनक तर-“मी शौनक दुसरा नारायणबलि सांगतां—चंडाल, उदक, सर्प, ब्राह्मण, वीज, दाढांचे पशु, रज्जु, शस्त्र, विष, पाषाण यांनीं मृत; देशांतरीं मृतः इतर साधनांनीं मृतः जीवंतश्राद्ध करून मृत; कनिष्ठ मृत; संन्याशी मृत; योगी मृत; व इतर मोक्षेच्छु मृत; यांचे पुण्योत्पत्तीकरितां व पातकनाशकरितां बाराव्या दिवशीं नारायणबलि करावा. अथवा वर्षातीं द्वादशीस, श्रवण नक्षत्रावर, पंचमीस किंवा पर्वावर नारायणबलि करावा.” असें सांगून पूर्वी सांगितलेला सर्व विधि सांगून ‘अतोदेवा० १’ ह्या सहा ऋचांनीं व पुरुषसूक्तानें प्रत्येक ऋचेनें पायसाचा होम करून केशवादिक बारा नांवांनीं तद्रूपी पित्याच्या उद्देशानें बारा ब्राह्मणांना भोजन घालून त्याच नांवांनीं बारा पिंड द्यावे. इतकें बरक्याहून अधिक सांगतो. युद्ध-मृताचें पूर्वी सांगितलें आहे. जीवंतश्राद्ध केलेला मेला असतां त्याचें आशौचादिक सपिंडांनीं करावें, किंवा न करावें. तें सांगितलें आहे-हेमाद्रौत लिंगपुराणांत-“जीवच्छ्राद्ध केलेला मृत असतां त्याचें अंत्यकर्म करावें अथवा न करावें. कारण, तो खतः जीवन्मुक्त आहे. असा ब्राह्मण मृत्यूप्रत गेला असतां भूमींत पुरावा किंवा दहन करावा. पुत्रांनं कर्तव्य सारें त्याचें कृत्य केलें असतां दोष नाही.” तो जीवंत असतांही विशेष तेथेंच सांगितला आहे-“जें त्याचें नित्यनैमित्तिक कर्म तें त्यानें करावें किंवा टाकावें. त्याचा बांधव मृत असतांही त्याला त्याचें आशौच नाहीच, व जननाशौचही नाही, यांत संशय नाही. तो ज्ञानानेंच शुद्ध होतो.” हें लिंगपुराणवचन योग्याविषयीं आहे. कारण, “योगमार्गेंतानेंही आशौचादिक करूं नयेत” या वचनानें त्यालाही आशौचाभाव सांगितला आहे. तसाच आहिताग्नि (अग्निहोत्री) प्रवासांत मृत असतां त्याच्या अस्थिदाहाच्या पूर्वी पुत्रादिकांना आशौच व संध्यादिकर्मलोप नाही. कारण, “अग्निरहित ब्राह्मण परदेशांत मृत असतां मृत दिवसापासून आशौचादि करावें. आणि आहिताग्नि परदेशांत मृत असतां त्याच्या समंत्रक दाह दिवसापासून आशौचादि करावें.” अशी पैटीनसि स्मृति पूर्वी सांगितली आहे. आहिताग्नीचें दाहाच्या पूर्वी देखील दशाह. आणि संस्कारांग दशाह, तें निराळें, असें धूर्तस्वामी व रामांडार सांगतात, तें चित्य (अग्रमाण) आहे. कारण, दोनीं आशौचांचें मूल एक आहे. आणि ब्राह्मणवचनविरोधही येतो. हा प्रकार पूर्वी अतिकांताशौचाजवळ सांगितला आहे.

अत्रदेहस्यैवसंभवेदाहः आहिताग्नौविदेशस्थेमृतेसतिकलेवरं निधेयंतामिभिर्यावत्तदीयैरपिदह्यतइति ब्राह्मोक्तेः तदभावेछंदोगपरिशिष्टे विदेशमरणेस्थिनिआहृत्याभ्यज्यसर्पिषा दाहयेद्बर्हिषाच्छाद्यपात्र न्यासमिपूर्ववत् अस्त्रामलाभेपर्णानिशकलान्युक्त्यावृता दाहयेदक्षिसंन्यानिततःप्रभृतिस्तुतं हेमाद्रौ षड्विंशत्यब्दे कुर्याद्दर्भेयवस्त्रेसंदर्भैस्त्रिसप्तषड्विभिः मालाशीभिःसमिद्धिर्वासंख्याचैवप्रकीर्तिता भविष्ये

चत्वारिंशच्छिरस्थानेप्रीवायांचदशैवतु बाह्वोश्चैकशतंदद्याद्विंशतिंचतधोरसि उदरेविंशतिंदद्याद्विंशतंकठि-
देशयोः ऊर्वोश्चैकशतंदद्यात्रिंशतंजानुजंघयोः पादांगुलीषुदशैवैषाचप्रेतकल्पना मदनरत्नेयज्ञपार्थः
शिरस्वशीत्यर्धदद्याद्वीवायांचदशैवतु बाह्वोश्चैकशतंदद्यादशचैवांगुलीषुच उरसिप्रिंशतंदद्याद्विंशतिंजठरोदरे
द्वादशाष्टवृषणयोरष्टांशंशिरभएवतु ऊर्वोश्चैकशतंदद्यात्रिंशतंजंघयोर्द्वयोः पादांगुलीषुद्वेदद्यादेतप्रेतस्यकल्पनम्
मस्तकेनारिकेलंतुअलाबुंतालुकेतथा पंचरत्नंमुखेन्यस्यजिह्वायांकदलीफलं चक्षुषोस्तुकपदौद्वौनासिकायांतुका-
लकं कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणिकेशेवटप्ररोहकाः नालकंकमलानांतुअश्रुस्थानेविनिक्षिपेत् मृत्तिकातुवसाधातुहृदि-
तालकांधकौ शुकेतुपारदंदद्यात्पुरीषेपितलंतथा संधीषुतिलपिष्टंतुमांसंस्याद्यवपिष्टकं मधुस्याहोहितस्थाने
त्वचास्थानेमृगत्वचा स्तनयोर्जंबीरेदेयेनासायांशतपत्रकं कमलंनाभिदेशेस्वाद्वृताकेषुषणाभिते लिंगेचरक्त-
मूलंतुपरिधानंदुकूलकं गोमूत्रगोमयगंधंसर्वौषध्यादिसर्वतइति ।

परदेशांत मृत आहिताग्नीचं शरीर राहील तर ठेऊन त्याच्याच श्रौताग्नीचं दाह करावा. कारण, “आहिताग्नि परदेशांत
मृत असतां त्याचें शरीर जांपर्यंत त्याचे अग्नीचीं दाह होईल तोपर्यंतही ठेवावें” असे ब्राह्मणचन आहे. शरीराच्या अग्नीचीं
सांगतो छंदोगपरिशिष्टांत—“परदेशांत मृत असतां त्याच्या अस्थि आणून त्यांना घृताचा अभ्यंग करून दर्भानीं आच्छा-
दित करून त्याच्या सर्भोवतीं पात्रें वगैरे ठेऊन शरीराप्रमाणें दाह करावा. अस्थि मिळत नसतील तर अस्थींचे संक्येइतकीं
पर्णशकलें उक्त रीतीनें ठेऊन दाह करावा, आणि त्या दिवसापासून सतक धरावें.” हेमाद्रीत षट्त्रिंशत्तमांत-
“तीनशें साठ दर्भ घेऊन त्या दर्भांचा प्रेत करावा. अथवा पळसाच्या समिधा (पानाचे देंठ) तीनशें साठ घेऊन त्यांचा प्रेत
करावा. ही संख्या सांगितली आहे.” भविष्यांत “मस्तकस्थानीं ४०, मानेस १०, दोन बाहुंना १००, उरःस्थानीं २०,
उदरस्थानीं २०, कटिप्रदेशीं ३०, मांज्याचेठायीं १००, जानु व जंघा यांच्या स्थानीं ३० पादांगुलींत १० अशा पळ-
साच्या समिधा ठेऊन प्रेतकल्पना करावी.” मदनरत्नांत यज्ञपार्थ—“मस्तकावर ४०, मानेस १०, दोन बाहुंना १००,
अंगुलींत १०, उराचेठायीं ३०, उदरावर २०, वृषणाय ६, शिश्नावर ४, मांज्यांस १००, जंघांला ३०, पायांच्या अंगुलींस
२, ही प्रेताची कल्पना समजावी. मस्तकस्थानीं नारळ, डाळूचे ठायीं भोपळा, मुखांत पंचरत्नं, जिह्वास्थानीं केळें, नेत्रस्थानीं
दोन कवडे, नाकांत निलपत्र, कर्णस्थानीं ब्रह्मपत्रं (पळमपत्रं), केशस्थानीं वडाच्या पारंरच्या, अंत्रस्थानीं कमलाचें नाल
योजावें. चर्बांच्या स्थानीं माती, धातुस्थानीं हर्नाळ व गंधक, शुक्रस्थानीं पारा यावा. विप्रास्थानीं गोमय, संधिस्थानीं तिलपिष्ट,
मांसस्थानीं यवांचें पीठ, रक्तस्थानीं मध, त्वचास्थानीं मृगचर्म, स्तनस्थानीं लिंबू, नागास्थानीं शतपत्र (कमलविशेष), नाभि-
स्थानीं कमल, वृषणस्थानीं वांगी, शिश्नस्थानीं रक्तमुळा, अंगावर रेशमीवस्त्र, गोमय, गोमय, गंध आणि सर्व ओषधि सर्वत्र
देऊन प्रेत कल्पना करावी.”

इदंनिरमेरपि तत्रैववृद्धमनुः प्रोपितस्यतथाकालोगतश्चेद्वादशविदकः प्राप्तेत्रयोदशेषप्रेतकार्याणिका-
रयेत् बृहस्पतिः यस्यनश्रूयतेवार्तायावद्वादशवत्सरात् कुशपत्रकदाहेनतस्यस्याद्वधारणा भविष्ये
पितरिप्रोषितेयस्यनवार्तानैवचागमः ऊर्ध्वपंचदशद्वर्षात्कृत्वातत्प्रतिरूपकं कुर्यात्तस्यतुसंस्कारयथोक्तविधि-
नाततः तदादीन्येवसर्वाणिप्रेतकर्माणिकारयेन् द्वादशाब्दप्रतीक्षापितृभिन्नविपयेतिमदनरत्नेउक्तं गृह्य-
कारिकायांतु तस्यपूर्ववयस्कस्यविंशत्यब्दोर्ध्वतःक्रिया ऊर्ध्वपंचदशब्दानुमध्यमेवयसिस्मृता द्वादशाब्द
त्सरादूर्ध्वमुचरेवयसिस्मृता चांद्रायणत्रयंकृत्वात्रिंशत्कृच्छ्राणिवासुतैः कुशैःप्रतिकृतिंदग्ध्वाकार्यांशौचाविका-
क्रिया इत्युक्तं पराशरः देशांतरगतोनष्टस्तिथिर्नज्ञायतेयदि कृष्णाष्टमीक्षमावास्याकृष्णाचैकादशीचया
उदकंपिंडदानंचतत्रश्राद्धंचकारयेन् इदंमासज्ञाने ।

वर सांगितलेला हा प्रकार निरमिकाला ही तेथेंच सांगतो वृद्धमनु—“प्रवासास गेल्यावर वार्ता न समजल्यावांचून बाप वरें
जाऊन तेवढें वर्ष प्राप्त असतां प्रेतकार्यें करावीं.” बृहस्पति—“बारावें पर्यंत ज्याची वार्ता श्रुत होत नाहीं त्याची कुक्ष-
पलाश प्रतिकृति करून दाह करावा, हा निश्चय आहे.” भविष्यांत—“पिता प्रवासाला गेला असतां त्याची वार्ता किंवा त्याचें
आगमन पंधरावर्षांपर्यंत नसेल तर पंधरावर्षांनंतर त्याचें प्रतिरूपक करून त्याचा यथाविधि संस्कार करावा. त्या संस्कारविष-
यापासूनच त्याचीं सारीं प्रेतकर्मे करावीं.” बारावें प्रतीक्षा सांगितली ती पित्याहून इतरांविषयीं समजावी, असें मदनरत्नांत
सांगितलें आहे. गृह्यकारिकेंत तर—“पूर्ववयाचा प्रवासांत जाऊन वार्ता न समजेल तर वीस वर्षांनंतर त्याची किंवा कणवें,
मध्यमवयाचा असेल तर पंधरावर्षांनंतर किंवा करावी, उत्तरवयाचा गेल असेल तर बारावर्षांनंतर किंवा करावी, पुनर्वयस्यी

“चांद्रयमं मित्रं तीस कृष्ण प्रयश्चित कल्ल कुशानीं प्रतिकृति कल्ल त्याचा दाह कल्ल आषौचादिक क्रिया करावी.” असे संमितके आहे. पराशर-“वेशांतरी जाऊन नष्ट झाला असेल व त्याची तिथि कोणती ती समजली नसेल तर कृष्ण अष्टमी, अमावास्या, कृष्णएकादशी यांतील घ्यावी. आणि त्या तिथीस उदक, पिंडदान व श्राद्ध करावें” हें मृत झालेल्या महिन्याचें ज्ञान असतां समजावें.

तत्राहिताग्नेःपूर्णाशौचं अनाहिताग्नेस्तुत्रिरात्रं अनाहिताग्नेर्देहस्तुदाहो गृह्याग्निनास्वयं तदभावेपलाशानां-
वृत्तैः कार्यः पुमानपि वेष्टितव्यस्तथायन्नात्कृष्णसारस्यचर्मणा ऊर्णासूत्रेण बध्वातु प्रलेप्तव्योयवैस्वस्था सुपिष्टैर्जल-
संमिश्रैर्वधव्यश्च तथाग्निना असौखर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वासवांधवैः एवंपर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवे-
दिति ब्राह्मणोक्तेः इदं त्रिरात्रं न दशाहमध्ये दाहे तत्र प्रोषिते कालशेषः स्यादित्युक्तेः किंतु तदूर्ध्वं तत्र पत्नी पुत्रयोः
पूर्वमगृहीताशौचयोर्दशाहाद्येव गृहीताशौचयोस्तु त्रिरात्रं पत्नीमृतौ भर्तुश्चैव सपत्न्योश्चैव मिति स्मृत्यर्थसारे
अन्यसपिंडानांतु सर्वत्र पर्णशरदाहे त्रिरात्रं तदा ह्यंगिराः देशांतरमृतं श्रुत्वानाशौचचेत्कथंचन गृहीतमिति-
शेषः कालात्ययेपि कुर्वीत दाहकाले दिनत्रयमिति स्मृत्यर्थसारे तु गृहीताशौचानां ज्ञानमात्रमुक्तं बहुच
परिशिष्टेऽपि अथातीतसंस्कारः सचेदंतर्दशाहं स्यात्तत्रैव सर्वसमापयेदूर्ध्वमाहिताग्नेर्दोहात्सर्वमाशौचं कुर्या-
दन्येषु पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोः सर्वमाशौचं गृहीताशौचयोः कर्मांग त्रिरात्रमिति षडशीतावप्येवं
विश्वाद्दशांतु प्रतिकृतिदहने तन्निवेद्या त्रिरात्रमित्युक्तं द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं दाहेतु पुत्रादीनां सर्वेषां त्रिरा-
त्रमिति कल्पतरुदिवोदासादयः ।

या ठिकाणीं आहिताग्नीचें पूर्ण आशौच करावें, अनाहिताग्नि असेल तर त्याचें आशौच तीन दिवस करावें. कारण, “अना-
हिताग्नीचा देह गृह्याग्नीनें दग्ध करावा. देह मिळाला नसेल तर पळसाच्या पानांच्या देंठांनीं पुरुषाची आकृति करावी. त्याच्या
सर्भोवतीं कृष्णसारमृगाचें कातडें गुंडाळावें. ऊर्णासूत्रानें बांधून पाण्यामध्ये जव बारीक वाटून त्याजवर लेप करावा. नंतर
गृह्याग्नीनें प्रेताप्रमाणें त्याच्या बांधवांनीं ‘असौ खर्गाय लोकाय स्वाहा’ असे म्हणून त्याचा दाह करावा. याप्रमाणें पर्णशरदाह
कल्ल तीन दिवस आशौच करावें” असे ब्राह्मणवचन आहे. हें तीन दिवस आशौच दहा दिवसांचे आंत दाह असतां समजूं
नये. कारण, प्रवासांत मृत झालेला दहा दिवसांचे आंत समजलें असतां शेष (उरलेले) दिवस आशौच” असे सांगितलें
आहे. तर दहादिवसानंतर असेल तर तीन दिवस समजावें. त्यामध्ये पत्नी व पुत्र यांनीं पूर्वी आशौच धरलें नसेल तर त्यांना
दशाहादिच आशौच. पूर्वी आशौच धरलेलें असेल तर तीन दिवस समजावें. पत्नी मृत असतां भर्त्यालाही असेंच समजावें.
सवतीलाही असेंच समजावें असे स्मृत्यर्थसारांत सांगितलें आहे. इतर सपिंडांना तर पर्णशर दाह केला असतां सर्व ठिकाणीं
त्रिरात्र आशौच. तें सांगतो अंगिरा-“देशांतरी मृत झालेला ध्रुवण कल्ल आशौच कसें तरी धरलें नसेल तर कालांतरी
हेखील दाहकार्लीं तीन दिवस आशौच करावें.” स्मृत्यर्थसारांत तर-पूर्वी आशौच धरलें असेल त्यांना ज्ञान मात्र सांगि-
तलें आहे. बहुचपरिशिष्टांतही-“आतां अतीत संस्कार सांगतां-तो जर दहा दिवसांचे आंत असेल तर दहा दिवसांतच
सर्व कृत्य समाप्त करावें. दहा दिवसांच्या पुढें आहिताग्नीचा दाह असेल तर दाहदिवसापासून पुढें सारें पूर्ण आशौच करावें.
आहिताग्नि व्यतिरिक्तांचा दहा दिवसांचे पुढें दाह असेल तर पत्नीपुत्रांनीं पूर्वी आशौच धरलें नसल्यास सारें (पूर्ण)
आशौच. पूर्वी धरलेलें असल्यास कर्मांग त्रिरात्र आशौच.” षडशीतींतही असेंच आहे. विश्वाद्दशांत तर-प्रतिकृतीचा
(पर्णशराचा) दाह असतां दाह करणाराला त्रिरात्र आशौच, असे सांगितलें आहे. प्रवासांत गेलेल्याचीं बारा वर्षे बगैरे
प्रतीक्षा पूर्वी सांगितली आहे, ती केल्यावर दाह केला असतां पुत्रादिकांना व इतर सर्वांना त्रिरात्र आशौच, असे कल्पतरु,
दिवोदास इत्यादिक सांगतात.

अथ प्रेतसंस्कारे कालः हेमाद्रौ गार्ग्यः प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिननैव विशोधयेत् आशौचमध्ये सं-
स्कारे दिनशोधयंतु संभवे आशौचविनिवृत्तीचेतुनः संस्क्रियते मृतः संशोधयैव दिनप्राह्मूर्ध्वं संवत्सराद्यदि प्रेत-
कार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठतत्रोत्तरायणं कृष्णपक्षश्च तत्रापि व्रजेत्येतु दिनत्रयं वाराहे चतुर्थाष्टमगेच त्रेद्वादशे च विवर्ज-
येत् प्रेतकृत्यव्यतीपाते वैधृतौ परिधेतथा करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मतारात्रये-
तथा जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः भारते नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः न प्रौष्ठपदयोः कार्य-
तथा भेषे च भारत दाहणे पुत्रसर्वेषु त्रयत्वे च विवर्जयेत् काश्यपः भरण्यार्द्रां मघां मूलं द्विचरणा निच प्रेत-

कृत्येतिदुष्टानिघनिष्ठाचंपंचकं फल्गुनीद्वितयंरोहिण्यनूराधापुनर्वसू अषाढेद्वेविशाखाचभानिष्ठिचरणानिच
ज्योतिर्नारदः चतुर्दशीतिथिनंदांभद्रांशुकारवासरौ सितेज्ययोरस्तमयंक्षयप्रभंविषमांश्रिभं शुक्लपक्षंचस-
त्यज्यपुनर्दहनमुत्तमं वसूत्तरार्धतःपंचनक्षत्रेषुत्रिजन्मसु पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैवदहनात्कुलनाशनं अस्यापवाद-
माहृतत्रैववैजवापः प्रेतस्यसाक्षाद्गंधस्यप्राप्तेत्वेकादशेहनि नक्षत्रतिथिवारादिशोधनीयंनकिंचन युगम-
न्वादिसंक्रांतिदशंप्रेतक्रियायदि दैवादापतितातत्रनक्षत्रादिनशोधयेत् विश्वप्रकाशोपि गुरुभार्गवयोर्मौ-
ढ्येपौषमासेमलिम्लुचे नातीतःपितृमेधःस्याद्वायांगोदाधरींविना दानमपितत्रैवोक्तं भद्रायांभूमिदानंस्याच्चिपा-
दक्षेहिरण्यदः वारेपुतत्तद्वर्णतुवासोदानंविधीयते धनिष्ठापंचकमृतेपंचरत्नानिदापयेत् एकाशीतिपलंकांस्व
तदध्वंवातदधकं नवपटत्रिपलंवापिदद्याद्विप्रायशक्तिइत्यलंप्रसंगेन ।

आनां प्रेतसंस्काराविषयीं काल सांगतो—

हेमाद्रीत गार्ग्यः—“प्रत्यक्ष शवाचा संस्कार करावयाचा अगतां दिवस शोधूं नये. अशीचामर्त्ये संस्कार कर्तव्य असतां
चांगला दिवस सांपडत असेल तर घ्यावा. आशीचाची निश्रुति झाल्यावर जर मृताचा संस्कार कर्तव्य असेल तर दिवस
शोधूनच घ्यावा. एक वर्ष होऊन गेल्यावर संस्कार कर्तव्य असेल तर उत्तरायण व कृष्णपक्ष घ्यावा. त्या कृष्णपक्षातही
तीन दिवस वर्ज्य करावे.” **वाराहोत**—“राशीम चवथा, आठवा आणि बारावा चंद्र असतां प्रेतकृत्य वर्ज्य करावे. तसेंच
व्यतीपात, वैश्रुति, परिध, विष्टिकरण, शनिवार, त्रयोदशी, हीं वर्ज्य करावीं. जन्मनक्षत्र, व त्यापासून दहावे आणि एकोणिसावे
नक्षत्र प्रेतकृत्याविषयीं विशेषकरून वर्ज्य करावे.” **भारतांत**—“जन्मनक्षत्र, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका, हीं व
सारीं दारुण नक्षत्रें (मूळ, आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा), आणि प्रत्यस्तागा हीं वर्ज्य करावीं.” **काश्यप**—“भरणी, आर्द्रा, मघा,
आश्लेषा, मूळ, द्विपाद नक्षत्रें (मृग, चित्रा, धनिष्ठा), आणि धनिष्ठादि पंचक हीं प्रेतकृत्याविषयीं अतिदुष्ट आहेत. पूर्वा,
उत्तरा, रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वसू, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, विशाखा, आणि द्विपाद नक्षत्रें हीं वर्ज्य करावीं.” **ज्योति-**
नारद—“चतुर्दशी. नंदा (प्रतिपदा, पक्षा, एकादशी), भद्रा (द्वितीया, मघमी, द्वादशी) ह्या तिथिः शुक्र व भौमवार;
शुक्र गुरु यांचें अस्त; द्विपाद नक्षत्रें; व विषमपाद नक्षत्रें आणि शुक्रपक्षः हीं वर्ज्य करून पुनः दाह करावा. धनिष्ठानक्षत्राचें
उत्तरार्ध व शततारकादि चार नक्षत्रें, तीन जन्मनक्षत्रें (जन्मनक्षत्र, त्यापासून दहावे व एकोणिसावे नक्षत्र), रेवती,
रोहिणी या नक्षत्रांवर दाह केला अमतां कुलना नाश होतो. पुनर्दाहादि निषिद्ध नक्षत्रादिकांचा अपवाद सांगतो तेथेंच
वैजवाप—“प्रत्यक्ष प्रेतांचें दहन केलें अमतां अकराव्या दिवशीं त्यांचे कर्माविषयीं नक्षत्र, तिथि, वार यांचा कोणताही
निषेध नाही. आणि देववशंकरून युगादि मन्वादि तिथि, संक्रांति, दश यांचे ठायीं जर प्रेतक्रिया पडेल तर नक्षत्रादिकांचा
विचार करू नये.” **विश्वप्रकाशांत**—“गुरुशुक्रांचें अस्त, पांपमाम, मलमाम, यांचेठायीं अतीत प्रेतक्रिया, गया व गोदा-
वरी यांचांचून इतर ठिकाणीं होत नाही.” दानही तेथेंच मांमिनलें आहे—“भद्रातीर्थोत्तरेयमीं मृत अमतां भूमिदान करावें.
त्रिपाद नक्षत्रावर मृत अमतां मुवर्ण यावें. निषिद्ध वारांचेठायीं मृत अमतां त्यांच्या त्यांच्या वर्णांचें वस्त्र यावें. धनिष्ठापंच-
कावर मृत अमतां पंचरत्नें यावीं. एक्याणेशीं पलें (८० गुंजा म्ह० १ कप. ४ कप म्ह० १ पल.) किंवा त्याच्या अर्धे
अथवा चतुर्थांश, किंवा नऊ पलें, सहा पलें अथवा तीन पलें परिमित कासे ब्राह्मणाला यथाशक्ति यावें.” आतां आशीच-
प्रसंगानें इतर सांगणें पुरे करितां.

हेमाद्रौवृद्धमुनः अमृतंमृतमाकर्ण्यकृतंयस्योर्ध्वदेहिकं प्रायश्चित्तमसौस्मार्तकृत्वाग्नीनादधीतच जीव-
न्यदिसमागच्छेद्भूतकुंभेनिमज्जयत उद्धृत्यस्नापयित्वास्थजानकर्मादिकारयेत् द्वादशाहंभ्रतचर्यात्रिराग्रमथवा-
स्यतु स्नात्वोद्भूततांभार्यामन्यांवातदभावतः अग्नीनाधायविधिवद्वायस्तोमेनवायजेत् अथेंद्राग्नेनपशुना
गिरिगत्वाचतत्रतु इष्टिमायुष्मतीकुर्वाहीप्सितांश्चक्रनूस्ततः अनाहिताग्नेस्तुचरुः मृतवार्ताश्रवणेत्वाश्चस्ना-
यनः सुरभयएवयस्मिन्जीवेमृतशब्दइति यस्यतुजीवतएवमृतिवार्ताश्रुत्वास्त्रियासहगमनंकृतं तदातद्वैधमेव
भर्तुर्मरणज्ञानस्यैवनिमित्तत्वात् प्रमादस्यगौरवेणायुक्तत्वाच्चेतिकेचित् तत्र मरणज्ञानस्यनिमित्तत्वेतीताना-
गतयोरपितस्वापत्तेः भर्तुर्वैधदाहभावेनतस्याःसहगमनाभावाच्च तस्मादाशौचवज्ज्ञातमरणस्यैवनिमित्तत्वं न
चात्रतद्वस्ति परंकाव्यंमरणमस्तु अतस्मात्सहगमनदोषोस्तीतितात्पादाः ।

जीवन्ताचे प्रेतकर्म केलें असतां सांगतो—

हेमाद्रीत वृद्धमनु—“जीवंत असून मृत झाला असें बांधवांनीं ऐकून ज्याचें और्ध्वदेहिक (अंत्यकर्म) केलें असेल त्याला स्मार्त प्रायश्चित्त करून अग्नीचें आधान करावें. बांधवांनीं अंत्यकर्म केल्यावर तो आला असतां त्याला घृतकुंडांत बुडवून बाहेर काढून ज्ञान घालून त्याचे जातकर्मदि संस्कार करावे. बारा दिवस ब्रह्मचर्यव्रत करावें, अथवा त्रिरात्र करावें. नंतर समावर्तन करून त्या पहिल्या भायेंशीं विवाह करावा, तिच्या अभावीं इतर भायेंशीं विवाह करावा. यथाविधि अग्नीचें आधान करावें. अथवा त्रात्यस्तोमानें यजन करावें. अथवा इंद्राग्निदेवतांचा पशुयाग करावा. पर्वतावर जाऊन आगुष्मती इष्टि करावी. नंतर ईप्सित यज्ञ करावे.” अनाहिताग्नीला चरुयाग सांगितला आहे. नमृताचें मृतवाग्नश्रवण झालें तर सांगतो **आश्वलायन**—“जो जीवंत असतां त्याविषयीं मृतशब्द हा कामधेनूच आहे.” जो पुरुष जीवंत असतांच त्याची मरण-वार्ता श्रवणकरून पत्नीनं सहगमन केलें तर तें सहगमन विधिविहितच आहे. कारण, भर्त्याचें मरणज्ञान हें सहगमनाला निमित्त आहे. पत्नीच्या ठिकाणीं व शास्त्राच्या ठिकाणीं तिचें गौरव असल्यामुळें प्रमादानें सहगमन झालें असें म्हणणें अयुक्तही आहे, असें केचित् म्हणतात, तें बरोबर नाही. कारण, मरणाचें ज्ञाननिमित्त, असें झालें असतां मरण झाल्यावर काहीं दिवसांनीं त्याचें ज्ञान झालें असतां त्या ठिकाणीं, आणि मरणाच्या पूर्वीं मरणज्ञान झालें असतां त्या ठिकाणींही मरणज्ञानाला निमित्तत्व प्राप्त होईल ! आणि भर्त्याचा विधिविहित दाह नसल्यामुळें तिच्या सहगमनाचा अभावही आहे. तस्मात् आशौचा-प्रमाणें जाणलेलें जें मरण तेंच सहगमनाला निमित्त आहे. तें जाणलेलें मरण ऐंथे नाही. म्हणून सहगमन नाही. दुसरें कामनिक मरण असो. म्हणून तिला आत्महत्याचा दोष आहे, असें आमचे तातपाद् (वडील) सांगतात.

तथासर्पसंस्कारेकृतेत्रिरात्रमाशौचंतद्विधिचाह **शौनकः** अथवक्ष्यामिसर्पस्यसंस्कारविधिमुत्तमं सिनी-
बाल्यांपौर्णमास्यांपंचम्यांवापिकाग्रेत कृतसर्पवधोविप्रःपूर्वजन्मनिवायदि वधप्रख्यापयेत्पापीचरेत्कृच्छ्रांश्च-
तुर्दश विप्रायलोहदंडंचतनमूल्यंवापिदापयेत् **मूल्यमाह** निष्कत्रयंद्विनिष्कंवा निष्कमेकंकनीयसं अनुमत्या-
दिकर्तृणां निष्कमर्धतदर्धकं इदंस्वर्णरूपययोःशक्त्याज्ञेयं **संस्कारमाह** प्रियंगुव्रीहिगोधूमैस्तिलपिष्टेनवापुनः
कृत्वासर्पाकृतिंशूर्पेनिधायप्रार्थयेदहिं एहिपूर्वमृतःसर्पअस्मिन्पिष्टेसमाविश संस्कारार्थमहंभक्त्याप्रार्थयामिस-
माहितः वक्षोपवीतगंधायैःसंपूज्यचहेद्रुहिः कुर्यात्संस्कारसंकल्पप्राणायामपुरःसरं यक्षोपवीतिनाकार्यंसर्प-
संस्कारकर्मतु लौकिकाग्निप्रतिष्ठाप्यसमिदाधानमाचरेत् ततोऽग्नेरग्निदिग्भागेभूमिसंप्रोक्ष्यवारिभिः चितिकृ-
त्वाथसंस्तीर्यकुशैराग्नेयकाग्रकैः पर्युक्ष्याग्निपरिस्तीर्यपरिषिच्यसमर्चयेत् कृत्वध्माधानमाचारौचक्षुषीचयथा-
विधि सर्पगृहीत्वायत्नेनचितिमारोपयेत्सुषीः स्तुवेणजुहुयादाज्यमस्रौव्याहृतिभिस्त्रिभिः सर्पास्येजुहुयादाज्यं
व्याहृत्याचसमप्रया आज्यशेषंस्तुवेणैवसर्पदेहेनिषेचयेत् चमसस्यैर्जलैःसर्पव्याहृत्याभ्युक्ष्यपाणिना अग्ने-
रक्षणइत्यनयासर्पायाग्निप्रदापयेत् उपतिष्ठेद्ब्रह्माननंमोस्तुसर्पमंत्रतः ज्ञानतोऽज्ञानतोवापिकृतःसर्पवधोमया
पूर्वजन्मनिवासर्पतत्सर्वंक्षंतुमर्हसि क्षीराज्येनततश्चाग्निप्रोक्ष्यव्याहृतिभिर्जलैः नास्थिसंचयनंकुर्यात्स्नात्वाच-
म्यगृहंभ्रजेत् ब्रह्मचर्यादिकंकार्यत्रिरात्राशौचमिष्यते सचैलंतुचतुर्थेन्हिस्नात्वाविप्रान्समर्चयेत् सर्पानंतस्तथा-
शेषःकपिलोमागएवच कालिकःशंखपालश्चभूधरश्चेतिनामभिः गंधपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरर्चयेद्विजान् घृतपा-
यसभक्ष्यैश्चद्विजानघ्नौतुभोजयेत् एवंकृतेविधानेनसर्पसंस्कारकर्मणि सर्पहिंसाकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशय
इति इतिसर्पसंस्कारः ।

तसेंच सर्पाचा संस्कार केला असतां त्रिरात्र आशौच आणि त्याचा विधि सांगतो **शौनक**—“आतां सर्पाचा उत्तम संस्कारविधि सांगतो—तो संस्कार चंद्रदर्शनयुक्त अमावास्यास, पौर्णमासीचे दिवशीं किंवा पंचमीस करावा. ज्यानें सर्पाचा वध राज्यान्मी किंवा पूर्वजन्मी केला असेल त्यानें तो केलेला वध लोकांस सांगून त्या योगानें आपण पातकी असें समजून चवदाकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. ब्राह्मणाला लोहदंड किंवा लोहदंडाचें मूल्य द्यावें.” **मूल्य** सांगतो—“लोहदंडाचें मूल्य तीन निष्क उत्तम, दोन निष्क मध्यम, व एक निष्क कनिष्ठ हें मूल्य प्रत्यक्ष सर्प मारणाराला समजावें. मारण्याविषयीं अनुमति वगैरे देणाराला एक निष्क, अर्धा निष्क अथवा पाव निष्क लोहदंडाचें मूल्य समजावें.” हें मूल्य सुवर्णाचें किंवा रुप्याचें आपल्या शक्तीनें जाणावें. संस्कार सांगतो—“राळे, व्रीहि, गंधूम, किंवा तीळ यांच्या पिठानें सर्पाची आकृति करून शर्पांत ठेऊन सर्पाची प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—‘एहि पूर्वमृतः सर्प अस्मिन् पिष्टे समाविश । संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः’ अशी प्रार्थना करून वक्ष, उपवीत, गंध इत्यादि उपचारांनीं त्याची पूजा करून बाहेर न्यावा. नंतर प्राणायाम करून संस्काराचा

संकल्प करावा. सर्पसंस्कार कर्म यज्ञोपवीतीनें करावें. नंतर लौकिकाग्नीची प्रसिद्धा करून समिधा द्यावी. तदनंतर अग्नीचे आग्नेयी दिशेस उदकानें भूमीचें प्रोक्षण करून चिति करून आग्नेयी दिशेस अग्नें करून कुश पसरवा. नंतर अग्नीचें परिक्षण करून, परित्स्तरण, पर्युक्षण करून पूजन करावें. नंतर इष्वाधान, आघारहोम व चक्षुषीहोम यथाविधि करून यज्ञानें (अपूत) तो सर्प घेऊन चितीवर ठेवावा. नंतर अग्नीमध्ये खुवानें तीन व्याहृतींनीं आज्यहोम करावा. नंतर सर्पाच्या मुखांत समस्त व्याहृतीनें आज्यहोम करावा. खुवानेंच शेष आज्य सर्पाच्या देहावर घालावें. चमसपात्रांतील उदकांनीं व्याहृतिमंत्रानें सर्पावर अभ्युक्षण करून 'अभेरक्षण' ह्या ऋचेनें सर्पाला अग्नि द्यावा. तो रूप जळत असतां 'नमोस्तु सर्प' ह्या मंत्रानें त्याचें उपस्थान करावें. तदनंतर 'ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया । पूर्वजन्मनि वा सर्पं तत्सर्वं शंतुमर्हसि' अशी प्रार्थना करून तदनंतर दूध घृतानें व उदकानें व्याहृतींनीं अग्नीचें प्रोक्षण करून अस्थिसंचयन करून नये, तर ज्ञान करून आचमन करून घरीं यावें, ब्रह्मचर्यादि नियम करावे. तीन दिवस आशौच धरावें. चवथ्या दिवशीं वस्त्रसहित ज्ञान करून ब्राह्मणांची पूजा करावी. सर्प, अनंत, शेष, कपिल, नाग, कालिक, शंखपाल, भूधर या नांवांनीं गंध, पुष्प, अक्षता, धूप, दीप, इत्यादि उपचारांनीं ब्राह्मणांची पूजा करावी. घृत, पायस, भक्ष्य (लाडू वगैरे), या पदार्थांनीं आठ ब्राह्मणांना भोजन घालावें. सर्पाचें संस्कारकर्म ह्या विधानानें केलें असतां सर्पहिंसेपासून उत्पन्न झालेल्या पापापासून मुक्त होतो, यांत संशय नाही."

इति सर्पसंस्कार.

कचित्तुजीवतोप्यत्यकर्मशौचंचकार्यं यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य घटस्फोटे पतितस्योदकं कार्यं सर्पि-
डैर्बांधवैः सह निंदितेह निसायाह्ने श्वात्युत्विग्गुरुसन्निधौ दासीघटमपांपूर्णपर्यस्येत्प्रेतवत्तदा अहोरात्रमुपासी-
रन्नाशौचं बांधवैः सहेति मनूक्तेः निंदितेरित्कादौ अपराकैव सिद्धोपि वेदविद्वाद्यकशूद्रयाजकोत्तमवर्ण-
वर्गपतितास्तेषां पात्रनिनयनमपात्रसंस्कारादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोऽसवर्णपुत्रोवाचं धुरसहशो वा गुणहीनः स-
व्येन पादेन प्रवृत्तापान्दर्भान्लोहितान्वोपस्तीर्यापः पूर्णपात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशाश्चातयोन्वाल्भे-
रन्नपसव्यं कृत्वा गृहे पुस्वैरमापघेरन्नत ऊर्ध्वतेन तं धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयंत इति उत्तमवर्णा ब्राह्मणादयः तेषां-
वर्गः समूहस्तमापतिता ब्रह्महादयः अपात्रसंस्कारः कुत्सितपात्रसमूहः प्रवृत्ताप्राः छिन्नाप्राः स्वैरयथेच्छं-
धर्मादिकार्यं कुर्युः अस्माद्वचनसामर्थ्यात् पात्रनिनयनात् प्राक्पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपराकैः
तस्य विद्यागुरुयो निसंबंधांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः पात्रांचास्य विपर्यस्येदुदासः कर्मकरो-
वावकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटात् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदाविपर्यस्येदमुमुदकं करोमीति नामग्राहं सर्वे-
न्वाल्भेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अपउपस्पृश्य प्रामं प्रविशेयुरिति गौतमोक्तेः उदकादीत्युक्तेर्दाहिनि-
वृत्तिः प्रेतकार्याण्येकादशाह श्राद्धांतानि दास्याद्दत्तांबुघटो दासीघटः तेनोदकेनामेध्यपात्रं पूरयित्वा दासादि-
न्युर्वृजं वामपादेन कुर्यादिति हरदत्तः अत्र नामग्राहवचनमुदकादिप्रेतकार्ये तद्वर्जनं त्वार्थं तेन तत्तूष्णीं भवति
एतच्च प्रायश्चित्तानिच्छोः तस्य गुरोर्बांधवानां राज्ञश्च समक्षं दोषान् भिक्ष्याप्यतमनुभाष्य पुनः पुनराचार्यं कुर्याद-
तिसयद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽप्यपात्रं विपर्यस्येदिति शंखोक्तेः जीवंतमेवोद्दिश्य पिंडोदकं अर्पयित्वा
आदद्यादित्यपराकैः ।

कचित्स्थलीं जीवंताचेंही अंत्यकर्म व आशौच करावें, तें असें-प्रायश्चित्त न इच्छिणारा जो पतित त्याचा घटस्फोट केल्या असतां जीवंत असतांही त्याचें अंत्यकर्म व आशौच करावें. कारण, "निंदित अशा रिवाडि सिबीचे दिवशीं सायंकाळीं ज्ञाति, ऋत्विक्, गुरु यांच्या संनिध पतिताच्या सर्पिंडांनीं बांधवांसह पतिताला उदकदान करावें. तें असें-उदकानें भरलेला घट दासीकडून आणवून लवंडवावा, आणि त्या वेळीं बांधवांसह सर्पिंडांनीं प्रेताप्रमाणें एक अहोरात्र त्याचें आशौच करावें." असें मनुवचन आहे. अपराकांतं व सिद्धी- "वेद बुडविणारे, बहुत शूद्राचा याग करणारे, ब्रह्महत्यादि महापातक करणारे असे जे पतित त्यांचें पात्रनिनयन करावें, तें असें-दास किंवा संकर जातीचा मनुष्य, अथवा गुणरहित अयोग्य असा बांधव यांनं निंदित अशा पात्रसमूहांतून एक पात्र घेऊन तें उदकानें पूर्ण भरून अग्नें तोंडलेले दर्भ किंवा ज्येष्ठ (तृणवि-
शेष) पसरून त्यांवर तें पात्र वामपादानें पतिताच्या उद्देशें करून लवंडवावें. पतिताच्या ज्ञातींनीं केश सोडून अपसव्य करून पात्र लवंडणाराला स्पर्श करावा. हें पात्रनिनयन होय. पात्रनिनयनानंतर सर्व ज्ञातींनीं आपल्या घरीं धर्मादि कार्ये बघेऊन आचरण करावें." पात्रनिनयनानंतर धर्मादि कार्य करावें, असें सांगितल्यावरून पात्रनिनयनाच्या पूर्वी पतिताच्या धर्मादि कार्ये बघाव्यात अत्रिंकार नाही, असें अपराकं सांगतो. "पतिताच्या ज्ञातींनीं पतिताचे विद्यासंबंधी, गुणसंबंधी, आदि कार्ये

संबंधी यांना जमवून उदकदानादिक सारीं प्रेतकार्यें करावीं. व त्यांनीं त्याजकरितां पात्र उलथें करावें. तें असें-दासानें किंवा चाकरानें उकीरव्यावरून अपवित्र पात्र आणून, दासीनें मातीच्या घागरीतून आणलेल्या उदकानें तें पात्र पूर्ण भरून दक्षिणे. कडे मुख करून तें पात्र डाव्या पायांनें उलथें करावें. आणि पतिताचें नांव घेऊन 'अमुं अनुदकं करोमि' असें म्हणावें. सारे श्राव्हीनीं प्राचीनावीती करून शिखा सोडून त्याला (उलथें पात्र करणाऱ्या दासादिकाला) स्पर्श करावा. नंतर सर्व ज्ञातींनीं ज्ञान करून गांवांत जावें" असें गौतमाचेंही वचन आहे. उदकदानादिक करावीं, असें सांगितल्यानें दाहाची निवृत्ति झाली. प्रेतकार्यें म्हणजे एकादशाहश्राद्धांत समजावीं. दासीनें आणलेल्या घागरीतील उदकानें अशुद्ध पात्र भरून दासादिकानें तें पात्र डाव्या पायांनें पालथें करावें, असें हरदत्त सांगतो. या वचनांत 'नामग्रहण करून' असें सांगितलें तें उदकादिक प्रेतकार्याविषयीं नाम वर्ज्य करण्याकरितां आहे म्हणून उदकादिक प्रेतकार्य नांव घेतल्यावांचून होतें. हा घटस्फोटविधि प्रायश्चित्त न इच्छिणाराचा आहे, असें समजावें. कारण, "त्या पतिताचा गुरु, बांधव व राजा यांच्या समक्ष त्याचे दोष प्रख्यात करून त्याला 'आचार ग्रहण कर' असें वारंवार सांगितलें असतांही त्याची बुद्धि जर स्थितीवर येत नसेल तर त्याला पात्र उलथें करावें" असें शांख्यवचन आहे. म्हणजे जीवताचा उद्देश करून पिंड, उदक, आणि श्राद्ध हीं त्याच्या नांवांनें द्यावीं, असें अपरार्क सांगतो.

कृतप्रायश्चित्तघटस्फोटकृतेपिसंग्रहविधिमाहगौतमः यस्तुप्रायश्चित्तेनशुद्धयेत्तस्मिन्शुद्धेशातकुंभमयं पात्रंपुण्यहृदात्पूरयित्वास्त्रवन्तीभ्योवाततएनमुपस्पर्शयेयुरथास्मैतत्पात्रंदद्युस्तत्सप्रतिगृह्यजपेच्छांताद्यौःशांता-पृथिवीशांतंविश्वमंतरिक्षंयोरोचनस्तमिहगृह्णामीत्येतैर्यजुभिःपावमानीभिस्तरत्समंदीभिःकूष्मांडैश्चाज्यंजुहुयाद्विरण्यंदद्याद्गांवांचाचार्याय यस्यतुप्राणांतिकंप्रायश्चित्तंसमृतःशुद्धयेत्सर्वाण्येवतस्मिन्नुदकादीनिप्रेतकर्माणिक्वुर्यु-रेतदेवशांत्युदकंसर्वेषूपपातकेष्विति घटस्फोटोत्तरंप्राणांतिकंप्रायश्चित्तेकृतेतुमुतएवशुद्धयेन्नतत्रसंग्रहविधिः अतस्तेनविनापिप्रेतकर्मकुर्यादित्यर्थः उपपातकेष्वपिघटस्फोटकृतेएवकार्यमित्यर्थः **याज्ञवल्क्यः** चरित-व्रतआयातेनिनयेरन्नवघटं जुगुप्सेरन्नचाप्येनंसंवसेयुश्चसर्वशः कृतघटस्फोटस्यैवायंपरिग्रहविधिरिति**मि-****ताक्षरायामपराकैच** अन्यथाप्रायश्चित्तमात्रेणेतत्प्रसंगान् **मनुरपि** घटस्फोटमुक्त्वा निवर्तेरस्ततस्त-स्मात्संभाषणसहासनेरित्युक्त्वा प्रायश्चित्तेतुचरितेपूर्णकुंभमपांनवं तेनैवसार्धंप्राश्रीयुःस्नात्वापुण्येजलाशये इतितच्छब्दंप्रायुक्तं **अपराकैवसिष्ठोपि** पतितानांचरितव्रतानांप्रत्युद्धारोऽथाप्युदाहरंति अग्नेभ्युद्धर-तांगच्छेत्कीडन्निवहसन्निव पश्चात्पातयतांगच्छेच्छोश्चन्निवरुदन्निवेत्याचार्यमातृपितृहंतारस्तत्प्रसादादपगत-पापाण्यतेवांप्रत्यापत्तिः पूर्णहृदत्प्रवृत्ताद्वासाकंचनपात्रमाहेयंवाद्भिःपूरयित्वापोहिष्ठीयाभिरेनमद्विरभिधि-चेयुः सर्वेषांभिषिक्तस्यप्रत्युद्धारःपुत्रजन्मनाव्याख्यातइति प्रत्युद्धारःपरिग्रहः तत्रोद्धरतांहसन्निवाप्नेसरः-स्यात् पातयतांघटस्फोटंकुर्वतांशोचन्निवपश्चाद्गच्छेत् मातापित्रादिहंतृणांपरिग्रहोन्नकार्यः तत्प्रसादेसतिचीर्ण-व्रतानांकार्यः प्रवृत्तंनिर्गमः पुत्रजन्मनेत्यभिषेकोत्तरंजातकर्मादयःसंस्काराःपुत्रजन्मवत्कार्याइत्य**पराको-****व्याचख्यौ** अतएव**विज्ञानेश्वरो** घटेपवर्जितेज्ञातिमध्यस्थोयवसंगवां प्रदद्यात्प्रथमंगोभिःसत्कृतस्यहिस-त्क्रियेत्यत्रगर्वाभक्षणाभावेपुनर्व्रतचरेदित्येतत्प्रकृतेष्वंचरितव्रतविधौविशेषोयमितिवदन्घटस्फोटोत्तरंपरिग्र-हएवैतन्नसर्वत्रेत्याह तस्मात्कृतेपिघटस्फोटेप्रायश्चित्तंपरिग्रहविधिःपुनःसंस्काराभवंतीतिसिद्धं तत्राजीषच्छा-द्वेकृते हेमाद्रौबौधायनः तत्राशौचंवशाहंस्यादित्यलंप्रसंगेन ।

कृतघटस्फोटाचा संग्रहविधि—

घटस्फोट केला असतांही त्यामें प्रायश्चित्त केलें असतां त्याचा संग्रहविधि सांगतो **गौतमः**—“जो प्रायश्चित्तानें शुद्ध होईल तो शुद्ध झाला असतां सुवर्णाचें उत्तम पात्र पुण्यकारक डोहांतून किंवा नदींतून भरून आणून त्याच्याकडून ज्ञान करवून तदनंतर तें पात्र त्याच्याजवळ द्यावें. त्यामें तें घेऊन 'शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं विश्वमंतरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामि' ह्या यजूंचा जप करावा. पावमानी ऋचा, तरत्समंदी ऋचा यांनीं त्या उदकाचें अभिमंत्रण करावें. कूष्मांडमंत्रांनीं त्यानें आज्यहोम करावा. आचार्याला हिरण्य द्यावें आणि गाय द्यावी. ज्याला प्राणांतिक प्रायश्चित्त असेल तो मेला असतां शुद्ध होतो, म्हणून त्याची उदकदानादिक सारीं प्रेतकार्यें करावीं. साऱ्या उपपातकाविषयीं हेंच शांत्युदक समजावें.” वरील वचनाचा भाव-घटस्फोटोत्तर प्राणांतिक प्रायश्चित्त केलें असेल तर मृत क्लृप्ता असतां शुद्ध होतो.

त्याविषयी संप्रहविधि नाही. म्हणून संप्रहविधि केल्याबाबतही त्यांचे प्रेतकर्म करावे. उपपातकांविषयीही घटस्फोट केल्या अमतां असे करावे, असा इत्यर्थ आहे. याज्ञवल्क्य—“प्रायश्चित्त करून आला असता त्याच्या ज्ञातींनी नवा घट भक्षण आणि सर्वांनी ते उदक प्यावे. त्याने वाईट कर्म पूर्वी केल्यामुळे त्याची निंदा करू नये. त्याच्याशी सर्व व्यवहार करावे.” ज्याचा घटस्फोट केल्या असेल त्याचाच या वचनाने सांगितलेला हा परिग्रहविधि आहे, असे मित्ताक्षरेंत व अपराकांत आहे. असे नसेल तर प्रत्येक प्रायश्चित्तांत याचा प्रसंग येईल. मनुही घटस्फोट सांगून “तदनंतर त्याच्याशी संभाषण, एकत्र बसणे वगैरे सर्व व्यवहार बंद करावे” असे सांगून नंतर “त्याने प्रायश्चित्त आचरण केले असता त्यासहस्रतमान सर्वांनी पुण्यजलाशयांत स्नान करून नवा कुंभ उदकांनी भरून आणि त्यासह ते उदक प्राशन करावे.” या वचनांत ‘त्यासह’ असे मनु सांगता झाला. अपराकांत वसिष्ठही—“पतितांनी प्रायश्चित्त केले असता त्यांचा प्रत्युद्धार (परिग्रह) करावा. आणि असेही सांगतात—ज्ञाति परिग्रह करीत असता त्यांच्या अप्रभागी क्रीडा करीत असत असल्याप्रमाणे जावे. आणि घटस्फोट करणाऱ्यांच्या मागाहून शोक करीत, रोदन करीत असल्याप्रमाणे जावे. आचार्य, माता, पिता यांना मारणारे जे असतील त्यांनी त्या आचार्यादिकांचा प्रसाद संपादन करून पापरहित झाले असतील तर त्यांचा परिग्रह असा—सुवर्णाचे किंवा मृन्मय पात्र पूर्ण डोहांतून अथवा झऱ्यांतून भरून आणि त्या उदकांनी “आपोहिष्ठा” या ऋचांनी त्यावर अभिषेक करावा. अभिषेक केल्यावर त्याचा सर्व परिग्रह पुत्रजन्माप्रमाणे समजावा.” माता, पिता इत्यादिकांना मारणाऱ्यांचा परिग्रह करू नये. त्यांचा प्रसाद झाला असता प्रायश्चित्त केल्यावर परिग्रह करावा. पुत्रजन्माने व्याख्यात म्हणजे अभिषेक झाल्यानंतर जातकर्मादिक संस्कार पुत्रजन्माप्रमाणे करावे, असे व्याख्यान अपराकं करिता झाला. वर सांगितलेला परिग्रह घटस्फोटोत्तर आहे म्हणूनच विज्ञानेश्वर—“घटस्फोट केला अमतां प्रायश्चित्त करून येईल तर ज्ञातींच्यामध्ये राहून गाईना तृण यावे. कारण, पूर्वी गाईंनी शुद्धि केलेल्याची शुद्धि करावयाची आहे.” या ठिकाणी गाईंनी तृण भक्षण केले नाही तर पुनः प्रायश्चित्त करावे. हे प्रकरण चालले असता—केलेल्या प्रायश्चित्ताविषयी असा हा विशेष विचार आहे, असे बोलणारा विज्ञानेश्वर घटस्फोटोत्तर परिग्रहाविषयीच हा विधि आहे, सर्वत्र नाही, असे सांगतो. तस्मात् घटस्फोट केला असताही त्याला प्रायश्चित्त, परिग्रहविधि आणि पुनःसंस्कार हे होतात, असे सिद्ध आहे. तसेच जीवच्छाद केले असता हेमाद्रीत बौधायन—“त्या ठिकाणी दहा दिवस आशौच होते.” आता हे प्रसंगाने सांगणे पुरे करितो.

एवंसापवादोऽशौचेऽप्युत्क्रान्तिशब्दभेदेऽप्यन्यकर्मणि साधारणं किंचिदुच्यते तत्राधिकारिणः प्रागुक्ताः सर्वाभावे धर्मपुत्रोवाकार्यः अपुत्रेण सुतः कार्योऽपि दत्तादृक्प्रयत्नतः पिंडोदकक्रिया हेतोर्नामसंकीर्तनाय चेति व्यासवचनात् गृह्यपरिशिष्टे असगोत्रः सगोत्रोवायदिसीयदिवापुमान् प्रथमेह नियोदद्यात्सदशाहं समापयेत् दद्यात्पिंडमिति शेषः भविष्ये यत्राद्योदीयते पिंडस्तत्र सर्वसमापयेत् ब्राह्मेऽपि प्रथमेह नियोदद्यात्प्रेतायात्रं समाहितः अननवसुचान्येषु सप्तप्रदद्यात्पि विज्ञानेश्वरादयस्तु केचित्तु अग्निदद्यादिति व्याचक्षते सगोत्रोवा सगोत्रोवायोऽग्निदद्यात्सर्वेतरः सोपिकुर्यान्नवश्राद्धं शुभे तु दशमेह नीतिदिवोदासीये वचनात् ।

आतां अंत्यकर्म सांगतो—

याप्रमाणे आशौच व आशौचाचा अपवाद सांगितल्या. अंत्यकर्म प्रत्येक शाखेचे वेगवेगळे आहे तरी त्याविषयी सर्वसाधारण कर्म किंचित् सांगतो—त्या अंत्यकर्माविषयी अधिकारी पूर्वी श्राद्धप्रकरणी सांगितले आहेत. अथवा सर्वांच्या अभावी धर्मपुत्र करावा. कारण, “निपुत्रिकां पिंड—उदकदान इत्यादि क्रियेसाठी व आपले नांव सांगण्यासाठी प्रयत्नाने जसा मिळेल तसा पुत्र करावा” असे व्यासवचन आहे. गृह्यपरिशिष्टांत—“असगोत्री किंवा सगोत्री, स्त्री किंवा पुरुष जो प्रथम दिवशी पिंड देईल त्याने दहा दिवस पिंड यावे.” भविष्यांत—“ज्या ठिकाणी पहिला पिंड दिला असेल त्या ठिकाणी सारे पिंड समाप्त करावे.” ब्राह्मांतही—“प्रेताला पहिल्या दिवशी जो अन्न देईल तोच इतर नऊ दिवसही अन्न देतो.” विज्ञानेश्वर इत्यादिक तर केचित् तर वरील गृह्यपरिशिष्टवचनांत ‘जो अग्नि देईल त्याने दशाह कर्म समाप्त करावे’ असे व्याख्यान करतात. आणि “सगोत्र किंवा भिन्नगोत्री जो मनुष्य अग्नि देईल त्यानेच नवश्राद्ध करावे, व तो दहाव्या दिवशी शुद्ध होईल” असे दिवोदास ग्रंथांत वचनही आहे.

तत्रैव दृष्टास्थानस्थमासन्नमर्थोन्मीलितलोचनं भूमिग्रंथितं पुत्रोदयदिदानं प्रदापयेत् तद्विडिङ्गवाभाह्वा-
दश्वमेधशतादपि तानियथा मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन मोक्षं देतु प्रदानेन मुकुंदः प्रीयतांम मेसि योक्ष-
चेनुमंत्रः ऐहिका मुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं शृणु तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददत्वोम मेसि कण्वेनोः आ-

जन्मोपाजितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः तत्सर्वनाशमायातु गोप्रदानेन केशवैति पापधेनोः भारते शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गंगायां चोत्तरायणे धन्यास्तातमस्मिन्ति हृदयस्थे जनार्दने हेमाद्रौ वाराहे व्यतीपातोऽथ संक्रांति-
कायैव प्रहर्षणं देः पुण्यकालास्तदासर्वेयं दामृत्युरूपस्थितः व्यासः आसन्नमृत्युना देयागौः सवत्सातु पूर्ववत् त-
दभावे तु गौरे वनरकोत्तरायण्यै तदा पदिनशक्नोसि दातुं वैतरिणीं तुगां शक्तोऽन्यउक्तगां दत्वा दद्याच्छ्रेयोमृतस्य तु ।

तेथैव सांगतो-“आसन्न मरण झालेला, अंधे डोळे उघडणारा, भूमीवर असलेला अशा पित्याला पाहून जर त्याचा पुत्र दान देईल तर तें दान गयाश्राद्धाहून व शंभर अश्वमेधांहूनही अधिक आहे.” तीं दानें अशीं-‘मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन । मोक्षधेनुप्रदानेन सुकुंदः प्रीयतां मम’ या मंत्रानें मोक्षधेनुदान. ‘ऐहिकमुष्मिकं यच्च सप्तजन्माजितं ऋणम् । तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेतां ददतो मम’ या मंत्रानें ऋणधेनुदान. ‘आजन्मोपाजितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः । तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव’ या मंत्रानें पापधेनुदान. भारतांत “शुक्लपक्षांत दिवसा भूमीवर गंगातीरीं उत्तरायणांत भगवान् जनार्दन हृदयांत ध्यान केलेला असतां जे मरतात ते धन्य (पुण्यवंत) होत.” हेमाद्रौ वाराहांत-“ज्या वेळीं मृत्यु प्राप्त होईल त्या वेळीं व्यतीपात, संक्रांति, चंद्रसूर्यांचें ग्रहण इत्यादि जे पुण्यकाल ने सारे आहेत, असें समजावें.” व्यास-“ज्याला मृत्यु समीप आला असेल त्यानें सवन्मगाईचें दान पूर्वीप्रमाणें (चांगल्या प्रकृतींत करावयाचें तसें) करावें. सवत्सगाईच्या अभावीं नरकापासून तरण्याकरितां वैतरणीगाईचं द्यावी. त्या वेळीं जर वैतरणीगाई देण्याविषयीं तो असमर्थ असेल तर दुसऱ्यानें उक्त गाई देऊन त्याचें श्रेय मृताला द्यावें.”

मदनरत्ने जातूकर्ण्यः उत्क्रांत्यादीनि दानानि दशद्यान्मृतस्य तु गोभूतिलहिरण्याज्यवासो धान्यगुडा-
निच रौप्यं लवणमित्याहुर्दशदानान्यनुकृमात् एतानि दशदानानि नराणां मृत्युजन्मनोः कुर्यादभ्युदयाधैतुप्रेतेपि-
हिरण्यवै ब्राह्मे तात्र पात्रं तिलैः पूर्णप्रस्थमात्रैर्द्विजाय तु सहिरण्यंच यो दद्यात् श्रद्धावित्तानुसारतः सर्वपापविशु-
द्धात्मा लभते गतिमुत्तमां उत्क्रांतिवैतरिण्यौ च दशदानानि चैव हि प्रेतेपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत् तत्रैव परि-
शिष्टे त्रियमाणस्य कर्णे तु पुण्यमंत्रान्जपेत्ततः क्रियानिबन्धे गारुडेत्यष्टौ दानान्युक्तानि तुलसीसन्निधौ कृ-
त्वा शालप्रामशिलांतथा तिलालोहं हिरण्यंच कार्पासं लवणं तथा सप्तधान्यं भित्तिर्गावपकैकं पावनं स्मृतमिति दश-
दानवैतरिणीधेनुक्रांतिधेनुदानादिभट्टकृतांत्येष्टिपद्धतौ ज्ञेयं कर्ता त्यकर्माधिकारात् त्रीनकृच्छ्रान्कुर्यादिति त-
त्रैवोक्तं अत्र देवयज्ञिकेन मुधुपर्कदानमुक्तं तदुक्तं वाराहे दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं यममार्गानुसारिणं प्रया-
णकाले तु नरो मंत्रेण विधिपूर्वकं मधुपर्कत्वरन् गृह्यइमं मंत्रमुदाहरेत् ॐ गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं-
ह्यमृतेन तुल्यं नारायणे नरचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शांतिकरणं सुरलोके पूज्यं अनेनैव तु मंत्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम्
नरस्य मृत्युकाले तु परलोके सुखावहम् ।

मदनरत्नांत जातूकर्ण्य-“मृताचीं उत्क्रांतिधेनु इत्यादिक दशदानं करावीं. तीं अशीं-गाई, भूमि, तिल, हिरण्य, आज्य, वस्त्र, धान्य, गुळ, रौप्य, लवण, हीं अनुक्रमेण दशदानं, असें सांगतात. हीं दशदानं मनुष्यांच्या मरणसमयीं व जन्मसमयीं करावीं. आणि मृत झाला असतां ही परलोकीं अभ्युदयाकरितां करावीं.” ब्राह्मांत-“जो मनुष्य श्रद्धेनें ब्रह्मानुसारें करून तांत्रिपात्र घेऊन तें प्रस्थपरिमित तिलांनीं पूर्ण भरून सुवर्णसहित ब्राह्मणाला देईल तो सर्व पातकांनीं रहित (शुद्ध) होऊन उत्तम गतीस जातो. उत्क्रांतिधेनु, वैतरणी आणि दश दानें मृत झाल्यावर देखील करून नंतर त्या प्रेताचा शवधर्मानें यथाविधि दाह करावा.” तेथेंच परिशिष्टांत-“मरणाचाच कानामध्ये पुण्यकारक मंत्रांचा जप करावा.” क्रियानिबन्धांत गारुडांत तर आठ दानें सांगितलीं आहेत. तुलसीसन्निध शालप्राम शिला करून तिळ, लोह, हिरण्य, कापूस, लवण, सप्त धान्ये, भूमि, गाई हें एक एक दान पावन करणारें आहे.” दशदानं, वैतरणीधेनुदान, उत्क्रांतिधेनुदान इत्यादि भट्टांनीं केलेल्या अंत्येष्टिपद्धतींतून जाणावीं. कल्याणें अंत्यकर्माधिकारासाठीं तीन कृच्छ्र करावे, असें तेथेंच (अंत्येष्टिपद्धतींत) सांगितलें आहे. एथें समुर्ध्वा (मरणाराला) देवयज्ञिकानें मधुपर्कदान सांगितलें आहे, तें वाराहांत सांगतो-“यममार्गास अनुसरणारा विह्वल झालेला असा मनुष्य पाहून त्याच्या मनुष्यानें प्रयाणकारी मंत्रानें यथाविधि लवें मधुपर्क घेऊन पुढें सांगावयाचा मंत्र म्हणावा. ‘गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं ० सुरलोके पूज्यं’ ह्या मंत्रानें मनुष्याच्या मृत्युकालीं परलोकीं सुखकर असा मधुपर्क द्यावा.”

अथ बुर्मरणे दिवोदासीये चंडालादि मृते विप्रेत्वंतरि शमृतेपि वा कृच्छ्रातिकृच्छ्रां त्रैस्तु शुद्धिस्तप्रप्री-
तिता द्रव्येजानीये जाबालिः शूद्रेण दग्धो यो विप्रो नलभेच्छाश्वती गतिं प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः पापशुद्धये

चांद्रायणंपराकंचप्राजापत्यंविशोधनं गृह्यकारिकायां उदक्यासूतिकावापियदिप्रेतंसृष्टंतिहि तस्यैवषिधि-
रादिष्टोवात्स्येनैवमहात्मना एषःसूतिकोक्तः मदनरत्नेस्मृत्यंतरे ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टेतथै-
वच अस्पृश्यस्पर्शनेचैवखटादिमरणेपिच श्रान्तक्रन्यादसंस्पर्शोकिमिकीटोद्वेपेच एतरोषानुसारेणप्रायश्चि-
त्तंसमाचरेत् कृच्छ्रांश्चिषट्पंचदशांश्चांद्रत्रयमथापिवा शुद्धैतदानींसंपाद्यशवधर्मेणदाहयेत् गृह्यकारि-
कायां खट्वायामरणेचैवत्रीन्त्रीन्कृच्छ्रान्प्रकल्पयेत् सप्तांत्यजैस्तुसंसृष्टोमृतोदैवात्कथंचन एकत्रिंशताकृच्छ्रै-
स्तुशुद्धिरुक्तामनीषिभिः कुणपेत्वर्धदधेतुचितास्पृष्टांत्यजादिभिः तत्स्पर्शनेदूषणंचत्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुध्यति
धर्मप्रदीपे चांडालसूतिकोदक्यास्पृष्टप्रेतेतथैवच तस्यपापविशुद्ध्यर्थंकृच्छ्रान्पंचदशाचरेदित्युक्तं मनुः
अवर्ग्याह्याहुतिःसास्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता अत्रापिकृच्छ्रत्रयं अस्पृश्यस्पर्शनेचैवेत्युक्तेः ।

आतां दुर्मरणाविषयीं सांगतो—

दिवोदासीयांत—“ब्राह्मण चंडालादिकांनी मारला असतां अथवा अंतरिक्षांत मृत असतां त्याची शुद्धि कृच्छ्र, अति-कृच्छ्र व चांद्रायण यांनीं सांगितली आहे.” **देवजानीयांत जाबालि**—“शूद्रां दग्ध केलेला जो ब्राह्मण त्याला शाश्वत गति प्राप्त होत नाही, म्हणून त्याच्या पापाची शुद्धि होण्याकरितां चांद्रायण, पराककृच्छ्र, व प्राजापत्य हें प्रायश्चित्त करावें.” **गृह्यकारिकेंत**—“उदक्या (रजस्वला) अथवा सूतिका जर प्रेताला स्पर्श करितेली तर त्याला वात्स्य ऋषींनीं हा विधि (स्तुतिकेला सांगितलेला) सांगितला आहे.” **मदनरत्नांत स्मृत्यंतरांत**—“ऊर्ध्वोच्छिष्ट, अधरोच्छिष्ट, उभयोच्छिष्ट यांजविपर्याय; अस्पृश्यांचा स्पर्श झाला असतां; खट्वा, मंचक इत्यादिकांवर मरण असतां; कुत्रा व इतर आममांसभक्षकप्राणी यांचा स्पर्श झाला असतां; कृमि, कीट यांच्या योगांनीं मरण झालें असतां; ह्या दोषानुरोधानें प्रायश्चित्त करावें. तें असें—तीन कृच्छ्र, सहा कृच्छ्र, पंधरा कृच्छ्र, अथवा तीन चांद्रायणें, त्या वेळीं शुद्धीकरितां संपादन करून नंतर प्रेताचा शवधर्मानें दाह करावा.” **गृह्यकारिकेंत**—“खट्वेचे ठायीं मरण असतां तीन तीन (नऊ) कृच्छ्र करावे. रजकादि सात प्रकारच्या अंत्यजांनीं स्पर्श केलेला असून देववशानें मृत झाला तर त्याची शुद्धि विद्वानांनीं एकतीस कृच्छ्रांनीं सांगितली आहे. प्रेत अर्धें दग्ध असतां त्या चितेली अंत्यजांनीं स्पर्श केला तर त्यांच्या स्पर्शाचा दोष तीन कृच्छ्रांनीं जातो.” **धर्मप्रदीपांत**—“चांडाल, सूतिका, रजस्वला, यांनीं प्रेताला स्पर्श केला असतां त्याच्या पापशुद्धयर्थें पंधरा कृच्छ्र करावे” असें सांगितलें आहे. **मनु**—“शूद्रसंपर्कानें दूषित झालेल्या प्रेताची आहुति स्वर्गप्राप्तीला अयोग्य होते.” येथेही (शूद्रस्पर्श असतां) तीन कृच्छ्र करावे. कारण, वरील स्मृत्यंतरांत ‘अस्पृश्य स्पर्श अमनां’ असें सांगितलें आहे.

तत्रैव कर्मप्रदीपे रात्रौ वारात्रिशेषे वा भ्रियंते चेद्भिजातयः दाहं कृत्वा यथान्यायं द्वापि भौनिर्वपेत्सुतः रज-
स्वलागर्भिण्यादिमृतौ तु वक्ष्यामः निर्णयामृते पारिजातेयमः संध्यायां वा तथारात्रौ दाहः पाथेयकर्मच-
नवश्राद्धचनोक्त्या त्कृतं निःफलतां त्रजेत् एतद्दिनमृतस्य रात्रिनिषेधार्थं यत्तु स्कांदे यदि रात्रौ दाहे सत्यसमाप्ति-
र्दहनस्य तु परे हन्युदिते सूर्ये कार्या तस्योदकक्रिया दग्धस्य तु नैव कार्या रात्रौ जातूदकक्रियेति तन्निर्मूलं रात्रिमृत-
स्य तु तत्रैव संग्रहे रात्रौ दग्ध्वा तु पिंडांतं कृत्वा वपनवर्जितं वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तीव वपनक्रियेति वपनं तु प्रातः
तच्च सबैः पुत्रैः कार्यं गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ आधाने सोमयागे च वपनं समुत्पृष्टमिति मिता-
क्षरायां स्मृतेः मरणस्यानंगित्वा त्रैमिक्तिकमिदम् तदेव संग्रहवचनेन परेश्वरकृष्यतेतीर्थवत् तेन कस्यचिद्दा-
हांगत्वोक्तिश्चित्या मदनरत्ने गालवः प्रथमे हनिकर्तव्यं वपनं चानुभाविनां प्रेतस्य केशश्च वा दिवापयित्वा-
थ दाहयेत् आशौचांते तु पुनः कार्यं विधिवत् । मदनपारिजातेत्येवं तेन सर्वस्यास्य निर्मूलत्वोक्तिरज्ञोक्तिरेव
स्मृतिरत्नावल्लयाम् शवंरात्र्युषितं चेत् त्रीनृच्छानृक्त्वा दाहेत्सुतः मदनरत्ने गिराः ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरो-
च्छिष्टेऽंतरिक्षमृतेपि वा कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणेऽपि च ।

तेथेंच **कर्मप्रदीपांत**—“रात्री किंवा रात्रिशेष असतां पहाटेस जर द्विजालि (ब्राह्मणादिक) मृत होतील तर यथाविधि त्यांचा दाह करून पुत्रांना दोन पिंड यावे.” रजस्वला, गर्भिणी इत्यादिकांच्या मरणाविषयी तर पुढें सांग्. **निर्व्यामृतांत** **पारिजातांत यम**—“संध्याकाली व रात्री दाह, पायेयकर्म, आणि नवश्राद्ध करूं नये, तें केलें असतां निष्फल होतें.” हे वचन दिवसा मृताचे रात्री दाहादि निषेधार्थ आहे. आतां जें **स्कांदांत**—“जर रात्री दाह केल तर त्या दाहाची सजा

दुसऱ्या दिवशीं सूर्योदय झाल्यावर करावी. व त्याची उदकदानक्रिया सूर्योदयोत्तर करावी. दुसऱ्याची रात्री उदकदानक्रिया कधीही करू नये" असें वचन तें निर्मूल आहे. आतां रात्री मृताचे सांगतो 'तेथेंच संग्रहांत-“रात्री मृताचा रात्री दाह करून वपनवर्जित पिंडदानांत कर्म करावें. वपन रात्री इष्ट नाही. वपनक्रिया दुसऱ्या दिवशीं प्रातःकाली करावी.” वपन प्रातःकाली तें सर्व पुत्रांनीं करावें. कारण, “गंगा, भास्करक्षेत्र, माता, पिता, व गुरु यांचा मरणसमय, आधान आणि सोमयाग ह्या सातांच्या ठिकाणीं वपन (शौर) सांगितलें आहे.” असें मिताक्षरेत स्पष्टीकरण आहे. वपनाचें मरण अंगि होत नाही, म्हणून मरणाचें वपन अंग नव्हे, तर हें वपन मरणनिमित्तक असल्यामुळें नैमित्तिक आहे. तेंच बरील संग्रहाच्या वचनानें दुसऱ्या दिवशीं करावें म्हणून सांगितलें; तीर्थांत जसें सांगितलें तद्वत्. यावरून कोणी एकांनं दाहचें वपन हें अंग असें सांगितलें, तें विल्य (अयुक्त) आहे. मदनरक्षांत गालव-“पुत्रादिकांनीं प्रथमदिवशी वपन करावें. प्रेताचे केश श्मश्रु इत्यादिकांचें वपन करतून दाह करावा.” आशीचांतीं तर पुनः वपन करावें. कारण, विधीनें सांगितलें आहे. मदनपारिजातांतही असेंच आहे. यावरून हें सर्व निर्मूल म्हणणारे अज्ञ आहेत. स्मृतिरक्षावर्तीत-“शव रात्रीं राहिलें असेल तर पुत्रांनीं तीन कृच्छ्र करून दाह करावा.” मदनरक्षांत अंगिरा-“ऊर्ध्वोच्छिष्ट व अधरोच्छिष्ट-विषयीं अथवा अंतरिक्षमरण असतां त्याविषयीं आणि आशीचांत मरण असेल तर त्याविषयींही तीन कृच्छ्र करावे.”

अथसामेर्विशेषः कारिकायां कृष्णपक्षेप्रमीयेतयद्यद्विप्रातराहुतीः शेषास्तुजुहुयादर्शपर्यताःपक्षहो-
मवत् प्रतिपत्प्रातर्होमांताइत्यर्थः यथाहिताभिरपरपक्षेत्रियेताहुतिभिरेनपूर्वपक्षेहरेयुरित्याश्वलायनोक्तेः
तदानीमेवजुहुयात्सायंकालाहुतीरपि सायंत्रियेतेचेत्सायमाहुतीर्जुहुयादथ तदानीमेवजुहुयात्प्रातःकालाहुती-
रपि सकृद्गृहीतमंत्रेष्टमभितंत्रंचहोमयोः दार्शचापिप्रकुर्वीतस्थालीपाकतदैवतु छंदोगपरिशिष्टे हुतायां-
सायमाहुत्यांदुर्बलश्चेद्गृहीभवेत् प्रातर्होमस्तदैवत्याजीवेक्षसपुनर्नवा इदंशुक्रपक्षपरं दुर्बलोमुर्धुः त्रिकांड-
मंडनः दर्शेष्टिचतदाकुर्यादिष्टिर्द्येदिनसंभवेत् देवतानांप्रधानानामेकैकसह्युनेत्पृथक् पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यां-
चतुरात्तघृताहुतीः तथा अग्नावरण्योरारूढेप्रमीयेतपतिर्यदि प्रेतस्पृष्टामथित्वाग्निज्वाचोपावरोहणं घृतच-
द्वादशोपात्तंतूष्णींहुत्वाश्वक्रिया विच्छिन्नश्रौताभ्रमृतौतुप्रेताधानंतत्रैवोक्तं प्रेतस्याग्र्यालयेक्षित्वामथिताग्र्या-
नलेरणी सन्निधायारणीमंथेद्यस्येतियजुषाततः यस्याग्रयोजुह्वतोमांसकामाःसंकल्पयंतयेजमानमांसं जायं-
तुतेहविषेसादितायस्वर्गलोकमिमंप्रेतंनयंत्वितिमंत्रतः प्रणीयपावकंतूष्णींद्वादशोपात्तसर्पिषा तूष्णींहुत्वाततः-
कुर्यात्प्रेतेमाल्याइतिक्रियां नष्टेष्वग्निवधारण्योर्नाशेस्वामीभ्रियेतचेत् आहरेदरणिद्वंद्वमनोज्योतिर्ऋचाततः ।

आतां सामिकाला विशेष सांगतो—

कारिकेत-“जर आहिताग्नि कृष्णपक्षांत दिवसा प्रातः मरेल तर दर्शपर्यंत शेष प्रातराहुतीचा होम पक्षहोमाप्रमाणें करावा.” दर्शपर्यंत म्हणजे प्रतिपत्प्रातर्होमापर्यंत करावा. कारण, “जर आहिताग्नि कृष्णपक्षांत मरेल तर त्याच्या शुक्रपक्षा-पर्यंत आहुति द्यावा” अशी आश्वलायनाची उक्ति आहे. आणि त्याच वेळीं सायंकालाहुतीचा देखील होम करावा. सायंकालीं मरेल तर सायंकालाच्या आहुतीचा होम करावा. आणि त्याच वेळीं प्रातःकालाहुतीचाही होम करावा. ह्या दोनां वेळच्या आहुती वेगवेगळ्या एकदम घेऊन त्यांचा होम करावा. म्हणजे प्रातःकालाच्या शेष आहुति एकदम घेऊन होम करावा. तसाच “सायंकालाच्या आहुति एकदम घेऊन होम करावा. आणि दर्शस्थालीपाकही त्याच वेळीं करावा.” छंदोग-परिशिष्टांत-“सायंकालाच्या आहुतीचा होम केला असतां जर यजमान दुर्बळ (मुमुर्षु) होईल तर त्याच वेळीं प्रातः-कालाचा होम करावा. नंतर तो जगेल तर पुनः प्रातःकालाचा होम करावा किंवा न करावा.” हें वचन शुक्रपक्षाविषयीं आहे. त्रिकांडमंडन-“दर्शेष्टि त्या वेळीं करावी. जर इष्टि न संभवेल तर स्रुचेच्या ठिकाणीं चार वेळ घृताहुती घेऊन पुरोनुवाक्या व याज्या मंत्रांनीं प्रधानदेवतांना वेगवेगळा एक एक होम करावा.” तसेंच “अग्नीचा अरणींत आरोह केला असतां जर पति मरण पावेल तर प्रेताला स्पर्श करून अग्नीचें मंथन करून व जप करून अग्नीचें अवरोहण करावें. नंतर बारा वेळ घृत घेऊन मंत्ररहित हवन करून नंतर प्रेतक्रिया करावी.” श्रौताग्नि विच्छिन्न झालेला मृत असेल तर प्रेताधान तेथेंच सांगितलें आहे-“प्रेत अग्निहालेंत ठेऊन दोनी अरणी संनिध ठेऊन ‘यस्याग्रयो० प्रेतं नयंतु’ ह्या यजु मंत्रानें मंथन करून अग्नीचें अग्निकुंडांत प्रणयन करून बारा वेळ आज्य घेऊन मंत्ररहित हवन करून त्या अग्नीनें दाहादि करावें. अग्नि नष्ट झाले असून अरणींचा नाश झाला असतां स्वामी मृत होईल तर ‘मनोज्योतिः’ या ऋचेनें दोन अरणी आणाव्या.”

यज्ञपार्श्वः यजमानेचितारूढेपान्नयासेकृतेसति वर्षाद्यभिहतेवह्नौकथं कुर्वतियाज्ञिकाः तदर्धदग्ध-
काष्ठेनमंथनंतत्रकारयेत् तच्छेषालाभतोन्त्येनदग्धशेषेणवापुनः हुत्वाज्यलौकिकेवह्नौहुतशेषंदहेमुवा अत्रा-

मिषुसत्सुपर्णशरैःशरीरोत्पत्तिः शरीरेवासतिप्रेताधानेनाभ्युत्पत्तिः उभयाभावेतुप्रेताधानेऽनधिकारादाहावि-
संस्कारलोपः उदकदानाद्येवकार्यमिति केशवीकारशतद्वयीप्रमुखाः तन्न निषेकाद्याः स्मशानांतास्तेषां वै-
मंत्रतः क्रियाइति विरोधान् क्रियालोपगतायेचेति निषेधात्तदभावेपलाशानां वृत्तैः कार्यः पुमानपीत्यभावे विधान-
स्याभ्यभावेपिसाम्याच्च तेनप्रेताहुत्यभावेपि खिष्टकृद्रव्यांतरोक्तेरदृष्टार्थत्वात् प्रेताधानं दाहोपि भवत्येष प्रतिकृ-
तेरग्नीनांचप्रेताधानप्रयोजकत्वाक्षतेः ।

यज्ञपार्श्वः—“यजमान चितेवर ठेऊन त्याजवर यज्ञपात्रें ठेऊन अग्नि लावला असून तो अग्नि वर्षादिकें करून नष्ट झाला
असतां याज्ञिक कसें करितात ? त्या ठिकाणीं अर्धदग्ध काष्ठानीं मंथन करून अग्नि करावा. मंथनकाष्ठें दग्ध होऊन शेष न
मिळतील तर इतर दग्धशेष काष्ठानें अग्नि करावा. अथवा लौकिकामीवर आज्यहोम करून हुतशेषाचा दाह करावा.” येथें
असें आलें कीं, श्रौताग्नि असतां शरीर नसेल तर पर्णशरांनीं शरीराची उत्पत्ति होते. शरीर असतां अग्नि नसेल तर
प्रेताधानानें अग्नि उत्पन्न होतो. अग्नि व शरीर दोनीं नसतील तर प्रेताधानाविषयी अधिकार नसल्यामुळें दाहादिक संस्का-
रांचा लोप होतो. उदकदानादिव करावें, असें केशवीकार, शतद्वयीप्रमुख सांगतात. तें बरोबर नाहीं. कारण,
“गर्भाधानापासून स्मशानांत जाईपर्यंत सवें त्याच्या क्रिया मंत्रानें होतात” या वचनाचा विरोध येतो. ‘क्रियालोप झालेले जे’
या वचनानें क्रियालोपाचा निषेध केला आहे. आणि “देहाच्या अभावीं पळसाच्या पानांच्या देंठनीं पुरुष करावा” ह्या
पूर्वोक्त ब्राह्मवचनानें देहाच्या अभावीं पर्णशराचें विधान केलें तें अग्नि नसतांही समानच आहे. तेणेंकरून, प्रेताहुतीचा
अभाव असतांही खिष्टकृताचें निराळें द्रव्य सांगितलें आहे तें अदृष्ट फलाकरितां असल्यामुळें प्रेताधान आणि दाह होतच
आहेत. प्रतिकृति (पर्णशर) आणि श्रौताग्नि हे प्रेताधानाला प्रयोजक नाहींत, असें नाहीं.

पठ्याअप्येवं दाहयित्वाग्निहोत्रेणस्त्रियंवृत्तवतीं पतिरिति याज्ञवल्क्योक्तेः यत्तु द्वितीयांचैवयोभार्या-
दहेद्वैतानिकाग्निभिः जीवत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमंमृतमितितदाधाने सहानधिकृताविषयमिति विज्ञाने-
श्वरः मदनरत्ने ब्राह्मेपि आहिताभ्योश्च दंपत्योर्धस्त्वादौ प्रियते मुवि तस्य देहः सपिंडैश्च दग्धव्यस्त्रिभिरग्नि-
भिः पश्चान्मृतस्य देहस्तु दग्धव्योलौकिकाग्निना अनाहिताग्निदेहस्तु दाहो गृह्याग्निना द्विजैः त्रिकांडमंडन-
स्तु विकल्पमाह ज्येष्ठयां विद्यमानायां द्वितीयायै स्वयोपिते काम्यं नित्याग्निहोत्रवानकथंचित्प्रयच्छति स्त्रीमात्र-
मविशेषेण दग्धवान्येवैदिकाग्निभिः विवाह्यादधते यद्वाधानमेवास्ति चेद्वदुरिति ।

पत्नीलाही असेंच समजावें. कारण, “चांगल्या वर्तनाचे स्त्रियेचा पतीनें अग्निहोत्रानें दाह करावा.” असें याज्ञवल्क्य-
वचन आहे. आतां जें “जो पुरुष प्रथमपत्नी जीवत असतां दुसऱ्या पत्नीला श्रौताग्नीनं दग्ध करील त्याचें तें कर्म सुरापान-
समान आहे.” असा पत्नीचा दाहनिषेध केला तो आधानाविषयी सहाधिकार न पावलेल्या पत्नीविषयी आहे, असें विज्ञाने-
श्वर सांगतो. मदनरत्नांत ब्राह्मांतही—“अहिताग्नि स्त्रीपुरुषांमध्ये जो आदीं मृत होईल त्याचा देह सपिंडांनीं तीन
अग्नींनीं दग्ध करावा. पश्चात् मृत असेल त्याचा देह लौकिकाग्नीनं दग्ध करावा. अनाहिताग्नीचा देह गृह्याग्नीनं दग्ध करावा.”
त्रिकांडमंडन तर विकल्प सांगतो—“ज्येष्ठ स्त्री विद्यमान असतां कनिष्ठ स्त्रियेला काम्य किंवा नित्य अग्निहोत्र यावयाचें
नाहीं. इतर विद्वान् कोणतीही स्त्री मृत असो तिला श्रौताग्नीनं दग्ध करून स्त्री नसेल तर विवाह करून आधान करितात.
अथवा स्त्री असेल तर आधानच करितात.”

अत्रेदंतत्त्वं साम्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पश्चौ पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्देहैर्दित्येकः पक्षः भार्यायै पूर्वमारिण्यै-
दत्त्वाग्नीनंत्यकर्मणि पुनर्दार्क्रियांकुर्यात्पुनराधानमेवचेति मनूक्तेः दाहयित्वाग्निहोत्रेणस्त्रियंवृत्तवतीं पतिरि-
तियाज्ञवल्क्योक्तेश्च पुनर्विवाहाशक्तौ निर्मथ्येनतां दग्ध्वा पूर्वाग्निप्वेवाग्निहोत्रेष्ट्यादिकार्यमित्यन्यः आहा-
येणाहिताग्निपत्नीचेत्याश्वलायनोक्तेः भरद्वाजोपि निर्मथ्येनपत्नीमिति पूर्वार्थेनैकदेशेन दहेदिति यज्ञ-
पार्श्वदेवयाज्ञिकादयः यानिच. तस्मादपत्नीकोप्यग्निहोत्रमाहरेदिति श्रुतिः विष्णुः छंदोगपरि-
शिष्टं च मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निर्न ह्यजेत् उपाधिनापितत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत् उपाधिर्हमकुशप-
त्न्यादिः अन्ये कुशमयी पत्नीकृत्वा तु गृहमेधिनः अग्निहोत्रमुपासंते यावज्जीवमनुव्रता इत्यपराकैस्मृत्यंतरात्
कात्यायनोपि रामोपिकृत्वा लौक्यानीं सीतां पत्नीयश्चिनीं इंजेबहुविधैर्देवैः सह ब्राह्मिरेच्युपव्रताहीति

तानिपूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रादिपराणि नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि ऋतुविधीनामाधानाप्रयोजकत्वात् अपत्नीक-
स्याधानाप्रवृत्तिरिति मानवपरिशिष्टाच्चसोमो न भवत्येव अपत्नीकोर्व्यसोमपइति श्रुतेः यत्तु भरद्वा-
जापस्तंबसूत्रं दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमभ्याधेयमिति अस्यार्थः पुनर्विवाहाशक्तौ यदभ्याधेयं पूर्वकृत-
मस्तितदात्मार्थमेव न पत्न्यैदद्यादिति ब्राह्मणभाष्यापराकार्शाकारामांडारादितत्त्वमप्येवं त्रिकां-
डमंडनस्तुपक्षद्वयमाह अन्येऽप्यपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्मः वृद्धयाज्ञवल्क्यः आहिताग्निर्व्य-
थान्यायंदग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरोजनः ऋतुः एवं वृत्तांमवर्णास्त्रीद्विजातिः पू-
र्वमारिणीं दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित कारिकायाम् पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वमृतायदि अनग्नि-
कांदहेदेवं कपालेन हविर्भुजा ।

याचं तत्त्व असें की, साम्रिकाला पत्नी मृत असतां दोन पक्ष आहेत-पुनः विवाहाची इच्छा असल तर पहिल्या अग्नींनी पत्नीचा दाह करावा हा एक पक्ष. कारण, “पूर्वी मरणाऱ्या स्त्रियेला अंत्यकर्माचे ठायीं अग्नि देऊन पुनः विवाह करावा व पुनः आधानही करावें” असें मनुवचन आहे. “सुशील स्त्रियेचा पतीनें अग्निहोत्रांनं दाह करावा.” असें याज्ञवल्क्यवचनही आहे. पुनः विवाहाविषयीं सामर्थ्य नसेल तर मंथन करून अग्नि उत्पन्न करून तिचा दाह करून पहिल्या अग्नीवरच अग्निहोत्र, इष्टि इत्यादि करावें, हा दुसरा पक्ष. कारण, “आहिताग्नीनें आहार्य अग्नीनें पत्नीचा दाह करावा” असें आश्वला-
यन वचन आहे. भरद्वाजही-“मंथन केलेल्या अग्नीनें पत्नीचा दाह करावा” पूर्वे अग्नींतून थोडा घेऊन पत्नीचा दाह करावा, व पहिले अग्नि ठेवावे, असें यज्ञपार्थ्व, देवयाज्ञिक इत्यादिक सांगतात. आतां जीं “तस्मात् कारणात् अपत्नी-
कानं देखील अग्निहोत्र करावें” अशी श्रुति आहे. विष्णु व छंदोगपरिशिष्ट-“भार्या मृत असतांही श्रौतामि टाकूं नये. तें अग्निहोत्रसंबंधी कर्म उपाधीनेंही यावज्जीवपर्यंत करावें.” उपाधि म्हणजे सुवर्ण, कुश यांची पत्नी होय. कारण, “इतर गृहस्थ कुशमयी पत्नी करून यावज्जीवपर्यंत अग्निहोत्राची उपासना करतात” असें अपराकांत स्मृत्यंतरवचन आहे. कात्यायनही-“रामांनेंही सुवर्णाची सीता पत्नी करून आल्यांसह वर्तमान बहुतप्रकारच्या यज्ञांनीं यजन केलें.” इत्यादिक वचनें तीं पूर्वे अग्नीचे ठायींच अग्निहोत्रादिविषयक आहेत. अपत्नीकाला आधान करावयास सांगण्याकरितां नाहींत. यज्ञ सांगितल्यावरून आधान करावें असें नाहीं. आणि “अपत्नीकाची आधानाविषयीं प्रवृत्ति नाहीं” असें मानवपरिशिष्टही आहे. सोमयाग होत नाहींच. कारण, “अपत्नीक तोही असोमप (सोमपान न करणारा) आहे” अशी श्रुति आहे. आतां जें भरद्वाजापस्तंबसूत्र-“जर भार्याकरण्याविषयीं अशक्त असेल तर आपल्याकरितां अभ्याधान आहे.” त्याचा अर्थ असा-
पुनः विवाहाविषयीं अशक्त असेल तर जें अभ्याधान पूर्वी केलेलें आहे तें आपल्याकरितांच ठेवावें, पत्नीला देऊं नये. ब्राह्मणभाष्य, अपराक, आशार्क, रामांडार इत्यादि ग्रंथांचें तत्त्वही असेंच आहे. त्रिकांडमंडन तर दोन पक्ष सांगता झाला, अन्यही ग्रंथकार अपत्नीकाला आधान सांगतात, त्यांचा आशय समजत नाहीं. वृद्धयाज्ञवल्क्य-“आहि-
ताग्नीचा तीन अग्नींनीं यथाशास्त्र दाह करावा. अनाहिताग्नीचा एक (गृह्य) अग्नीनें दाह करावा. इतर मनुष्याचा लौकिका-
ग्नीनें दाह करावा.” ऋतु-“चांगल्या वर्तनाची सवर्णा (आपल्या वर्णाची) स्त्री पूर्वी मृत असतां तिचा दाह धर्मवेत्त्या द्विजांनें अग्निहोत्रांनं व यज्ञपात्रांनीं करावा.” कारिकेंत-“पत्नी जर भर्त्याच्या आदीं मृत होईल तर तिलाही अशीच अग्निहोत्रांनं दग्ध करावी. अग्निरहित असेल ती कपालाग्नीनें दग्ध करावी.”

आशौचप्रकाशेऋतुः विधुरं विधवांचैव कपालस्याग्निना दहेत् ब्रह्मचारी यती चैव दहेदुत्तपनाग्निना तुषाग्निना च दग्धव्यः कन्यका बाल एव च अग्निवर्णकपालंतु कृत्वा तत्र विनिक्षिपेत् करीषादितो व ह्विर्जातोयः सकपालजः अनुपनीते यद्यपि जातारण्यग्निः कैश्चिदुक्तस्तथापितस्य कलौ निषिद्धत्वोक्तेरयमेव ज्ञेयः स्मृत्यंतरे गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निस्तु कपालजः उत्तपनस्तु दर्भाग्नेभिः प्रज्वाल्य पुनर्दग्धस्तु संयुतः पुनर्दग्धस्तु तीयोऽग्निरेष उत्तपनः स्मृतः यमः यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि च प्रेतत्वं च सदा तस्य सचा धर्मेण लिप्यते देवलः चंडालाग्निरेमेध्याग्निः सूतिकाग्निश्च कर्हिति पतितानि श्रिता-
ग्निश्च न शिष्टग्रहोचितः मनुः दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् पश्चिमोत्तरपूर्वेस्तु यथासंख्यं द्विजातयः अत्र प्रातिलोम्येन क्रमः पूर्वो मुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बांधवैर्गृहात् उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबांधवैरित्यादि पुराणादित्यपराकः तेन त्रिशङ्कोक्युक्तो न लोमक्रमोद्देश्यः आश्वलायनः ज्येष्ठप्रथमाः कनिष्ठजघन्यागच्छेयुः ।

आशौचप्रकाशांत क्रतु-“विधुर आणि विधवा यांचा कपालाग्नीर्न दाह करावा. ब्रह्मचारी व यति यांचा उत्तपनाग्नीर्न दाह करावा. कन्या व बालक यांचा तुषाग्नीर्न दाह करावा. कपाल अग्नीसारखें लाल करून त्यांत गोंवरी वगैरे घालून झालेला जो अग्नि तो कपालाग्नि होय.” अनुपनीताविषयीं जरी जातारणीसंबंधी अग्नि किलेकांनीं सांगितला आहे तरी तो कलियुगांत निषिद्ध सांगितल्यामुळे हाच (तुषाग्निच) जाणावा. **स्मृत्यंतरांत-**“गृहस्थाला औपासनाग्नि, ब्रह्मचाऱ्याला उत्तपनाग्नि, विधुर व विधवा स्त्रिया यांना तुषाग्नि तोच कपालाग्नि होय.” उत्तपनाग्नि असा-“दर्माचीं अग्नें प्रज्वलित करून पुनः दुसरे दर्भ त्याजवर पेटवावे. नंतर त्याजवर पुनः दर्भ पेटवून तिमच्या दर्भाचा जो अग्नि तो उत्तपन म्हटला आहे.” **यम-**“ज्याचा अग्नि, तूणें, काष्ठें आणि हवि हीं शूद्र आणतो त्याला सर्वदा प्रेतत्व अमर्तें, व तो शूद्र अधर्मानें लिप्त होतो.” **देवल-**“चांशालाग्नि, अशुद्धाग्नि, सूतिकाग्नि, पतिताग्नि, आणि चित्तेचा अग्नि हे शिष्टांना प्रहण करण्यास उचित नाहीत.” **मनु-**“मृतशाला नगराच्या दक्षिणेकडच्या द्वारानें स्मशानांत न्यावा. नगराच्या पश्चिम द्वारानें वैश्यास न्यावा. उत्तर द्वारानें क्षत्रियास न्यावा. आणि ब्राह्मणाला नगराच्या पूर्वे द्वारानें स्मशानांत न्यावा.” या वचनांत शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण असा प्रतिलोम (उलट) क्रम आहे. कारण, “मृत झालेला ब्राह्मण बांधवांनीं घरांतून पूर्वाभिमुख न्यावा. क्षत्रिय उत्तराभिमुख न्यावा. वैश्य पश्चिमाभिमुख न्यावा. आणि शूद्र बांधवांनीं दक्षिणाभिमुख न्यावा” असें **आदिपुराण** वचन आहे, असें **अपारक** सांगतो. यावरून **त्रिशच्छोकींत** अनुलोम क्रम सांगितला तो त्याज्य आहे. **आश्वलायन-**“स्मशानांत जातेवेळीं ज्येष्ठ प्रथम व कनिष्ठ मागाहून असे जावे.”

आधानोत्तरं द्वितीयविवाहे कृतयेजमानमरणेश्रौतस्मार्ताभ्योः संसर्गः **बौधायनसूत्रे** अथयथाहिता-
ग्निर्भार्ये विदेत प्राक्संयोगान्निप्रयेतौपासनसंपरिस्तीर्याज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गृहीत्वासमिद्धत्वाग्नीं जुहोति संमि-
तंसं कल्पेथामिति मिंदाहुतीर्व्याहृतीश्च हुत्वाथैतमग्निमयं ते यो निर्कृत्विय इतिसमिधिसमारोप्य गार्हपत्ये समिधम-
भ्यादधाति भवतनः समनसा वितिगार्हपत्य आज्यं विलाप्य चतुर्गृहीतं गार्हपत्ये जुहोत्यग्नावभिश्चरति प्रविष्ट इत्यपरं-
चतुर्गृहीत्वा चित्तिः स्मृगिति संप्रहं जुहोत्यग्ना गार्हपत्ये स्नुवाहुती जुहोति ब्राह्मण एक होते तिदशभिरथ प्राचीनावीत्यन्वा-
हार्यपचने जुहोति येसमाना येसजाता इति द्वाभ्यामथ तत्रैव स्नुवाहुतिं जुहोत्यग्ने कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधानमः
स्वाह्येत्यथ यज्ञोपवीती द्वादशगृहीतेन स्नुचं पूरयित्वा पुरुषसूक्तेना हवनीये जुहोत्यथ स्नुवाहुती जुहोत्यग्ने विविचये-
स्वाहा प्रये व्रतपतये प्रये पवमानाय प्रये पावकाय प्रये शुचये स्वाहा प्रये पथिकृते स्वाहा प्रये तंतुमते प्रये वैश्वानरायेत्य-
थ चतुर्गृहीतं जुहोति मनोज्योतिरित्यत ऊर्ध्वं पैतृकं कर्म प्रतिपद्यते इति ।

आधानोत्तरं दुसरा विवाह केला असतां यजमान मरेल तर श्रौताग्नि व स्मार्ताग्नि यांचा संसर्ग करावा. तो असा-**बौधा-
यनसूत्रांत-**“आतां आहिताग्नीर्न दोन भार्या केल्या व त्यांच्या अग्नींचा संयोग होण्यापूर्वीं जर यजमान मृत होईल तर त्याच्या औपासनाग्नीला परित्करण करून आज्य ऊन करून चार वेळां सुचींत घेऊन प्रज्वलित अग्नींत होम करावा. व मिंदा-
हुती व व्याहृती यांचा होम करून नंतर त्या अग्नीचा ‘अयं ते यो निर्कृत्विय’ ह्या मंत्रानें समिधेवर समारोप करून गार्हपत्य अग्नींत ती समिध ‘भवतं नः समनसां’ ह्या मंत्रानें यावी. नंतर गार्हपत्यांत घृत ऊन चार वेळां घेऊन ‘अग्नावभिश्चरति-
प्रविष्ट’ ह्या मंत्रानें गार्हपत्यांत होम करावा. पुनः चार वेळां घृत घेऊन ‘चित्तिः सुग्ं’ या मंत्रानें संप्रहं होम करावा. नंतर ‘ब्राह्मण एक होतां’ ह्या दहा मंत्रांनीं गार्हपत्यांत स्नुवाहुतीचा होम करावा. नंतर प्राचीनावीती करून ‘येसमाना’, ‘येसजाता’ ह्या दोन मंत्रांनीं अन्वाहार्यपचनाग्नींत होम करावा. नंतर तेथेंच ‘अग्नेयकव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधानमः स्वाहा, ह्या मंत्रानें स्नुवाहुतीचा होम करावा. नंतर यज्ञोपवीती करून बारा वेळ घृत घेऊन स्नुवा भरून पुरुषसूक्तानें आहवनीयांत होम करावा. नंतर स्नुवाहुतीचा होम करावा. तो असा-‘अग्नेये विविचये स्वाहा, अग्नेये व्रतपतये स्वाहा, अग्नेये पवमानाय, अग्नेये पावकाय, अग्नेये शुचये स्वाहा, अग्नेये पथिकृते स्वाहा, अग्नेये तंतुमते, अग्नेये वैश्वानराय, नंतर चार वेळां घृत घेऊन ‘मनोज्योति’ या मंत्रानें होम करावा. इतकें झाल्यावर और्ध्वदेहिक कर्म प्राप्त होतें तें करावें.”

आहितामौ विदेशमृते पथिकृतीं श्रुताग्निहोत्रं दाहः पात्रयोजनं च कल्पसूत्रादिभ्योऽस्मत्पितामहकृतपद्धते च
ज्ञेयमिति बहुवचन्येऽप्युपरम्यते स्मार्ताग्नेस्तु उक्तं **मदनरत्नेछंदोगपरिशिष्टेच** दुर्बलं स्नापयित्वा शुद्ध-
चैलाभिसंबृतं दक्षिणाशिरसं भूमौ बहिष्मत्यां निवेशयेत् घृतेनाभ्यक्तमाह्नव्यशुद्धवस्त्रोपवीतितं चंदनोक्षितस-
वांगं सुमनोभिर्विभूषयेत् हिरण्यशकलान्यस्य ह्रिद्वा छिंद्रे पुसतसु मुख्येऽप्यथापि धायैर्न निर्हरेयुः सुतावयः आस-
पात्रेऽस्मादाय प्रेतमग्निपुरःसरं एकोनगच्छेत् तस्यार्धमर्धपथ्युत्सृजेद्भुवि ऊर्ध्वमाह्नं कार्यमासीनो दक्षिणागृह्यः

सर्व्यं आन्वाध्यशनकैः सतिलं पिंडदानवत् अथ पुत्रादिरामृत्युकुर्याद्दारुचयं महत् तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणा-
शिरसं मुखे आज्यपूर्णं लुवं दद्याद्दक्षिणाप्रानं सिलुचं पादयोरधरां प्राचीं मरणीं मुरसीं तरां पार्श्वयोः शूर्पचमसौ स-
व्यदक्षिणयोः क्रमात् सुसमेतुन्यसेऽग्न्युज्जमंतरूवो रल्लखलं चात्रो विलीढमत्रैव अग्नयेरप्ययं विधिः अपसव्येन
कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिभ्युखः अथाम्रिसव्यमावृत्कोदद्याद्दक्षिणतः शनैः अस्मात्त्वमधिजातो सित्वदयं जायतां-
पुनः असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति परिकीर्तयेत् तथा एवमेवाहिताग्नेश्च पात्रन्यासादिकं भवेत् कृष्णाजिनादि-
कंचात्रविशेषो ध्वयुचोदितः तत्रैव अनयैवावृतानारीदग्धव्यायाव्यवस्थिता अग्निप्रदानमंत्रोत्थानप्रयोज्य इति
स्थितिः इदं छंदोगानामेव पात्रन्यासोक्तेरुत्तानदेहत्वं सामिपरं निरभिस्तु पुमानधोमुखः स्त्रीतूत्तानादाह्यास-
गोत्रजैर्गृहीत्वा तु चितामारोप्य तेशवः अधोमुखो दक्षिणादिक्चरणस्तु पुमानिति उत्तानदेहानारीतुसपिंडैरपि-
बंधुभिरित्यां विपुराणादिति शुद्धितत्त्वहारलतादयः उत्तरशिरस्त्वं सामगेतरपरं वाराहेत्वभिदानेऽन्यो-
मंत्रः कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पंचत्वमागतं धर्माधर्मसमायुक्तं लोभ-
मोहसमावृतं दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यां लोकान् समगच्छतु ज्वलमानं महावह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत् चतुर्वर्णेषु सं-
स्थानमेवं भवति पुत्रके ।

आहिताग्निं विदेशांतं मृत असतां पथिकृति इष्टि, मृताचं अग्निहोत्र, त्याचा दाह, पात्रयोजना हें सारं कल्पसूत्रादिकांतून
व आमच्या पितामहांनीं केलेल्या पद्धतींतून जाणावें, मी पुष्कळ सांगावयाचं आहे तरी पुरे करितो. स्मार्तांम्रीला तर सांगतो
मदनरत्नांत व छंदोगपरिशिष्टांत-“मृताला स्नान घालून शुद्ध वस्त्रांनं वेष्टित करून दक्षिणेकडे मस्तक करून कुशयुक्त
भूमीवर ठेवावा. घृत अंगाला लावून स्नान घालून शुद्ध वस्त्र व उपवीत घालून सर्वांगावर चंदन शिंपून पुष्पांनीं भूषित
करावा. प्रेताच्या मुख, नासिका, कर्ण, डोळे या सात छिद्रांत सुवर्णाचे तुकडे घालून नंतर त्याला आच्छादित करून पुत्रा-
दिकांनीं स्मशानांत न्यावा. अग्नि पुढें व त्याच्या मागाहून प्रेता न्यावें. अपक्व पात्रांत अन्न घेऊन एकांनं प्रेताच्या मागाहून
जावें. त्यांतील अर्धे अन्न अर्ध्यामार्गांत टाकावें पुढचें दहनापर्यंत कृत्य दक्षिणेकडे तोंड करून बसून डावा गुडघा भूमीवर
टेंकून पिंडदानाप्रमाणें तिलसहित करावें. प्रेत स्मशानांत नेल्यावर पुत्रादिकांनीं स्नान करून काप्रांचा मोठा ढीग रचावा. त्या
काप्रांवर प्रेत उताणें दक्षिणदिशेस मस्तक करून ठेवावें. प्रेताच्या मुखांत घृतांनं पूर्ण भरलेला सुवा यावा. नाकांत दक्षिणेंस
अन्न करून चुचा यावी. खालची अरणी दोन पायांवर यावी. उरावर वरची अरणी यावी. डाव्या पार्श्वभागीं सूप आणि
उजव्या पार्श्वभागीं चमसपात्र यावें. मांड्यांच्या मध्यभागीं खालीं तोंड केलेलें उखळ ठेवावें. (?)
वाणीचें नियमन करून दक्षिणदिशेस मुख करून हें सारें प्राचीनावीतीनं करावें नंतर दक्षिणदिशेकडे अग्नि लावून अप्रदक्षिण
हळूहळू अग्नि समोवतीं लावावा व मंत्र म्हणावा तो असा-“अस्मात्त्वमधिजातोसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय
लोकाय स्वाहा” याचा उच्चार करावा.” तसेंच-“अग्निहोत्र्याच्या प्रेतावर पात्रें ठेवणें वगैरे कृत्य असेंच समजावें. याच्या
प्रेतावर कृष्णाजिन वगैरे विशेषे अर्घ्यूनं सांगितला असेल तो समजावा. तेथेंच-मुशील जी स्त्री तिचा दाह अशाच रीतीनं
करावा. स्त्रियेच्या दाहाविषयीं अग्निदानमंत्राचा प्रयोग करूं नये, अशी शास्त्रमर्यादा आहे.” हें वचन छंदोगाचें शाखेलाच
लगू आहे. पात्रांचें स्थापन सांगितल्यामुळें प्रेतशरीर उताणें असावें, हें अग्निमान् असेल त्याजविषयीं समजावें. निरभिक
असेल तर पुरुष अधोमुख, आणि स्त्री उताणी जाळावी. कारण, “गोत्रजांनीं पुरुष शव घेऊन अधोमुख करून दक्षिणदिशेस
पाय करून चित्तेवर ठेवावा. आणि सपिंड व बांधव यांनीं स्त्रियेचा देह उताणा करून चित्तेवर ठेवावा” असें आदिपुराण-
वचन आहे, असें शुद्धितत्त्व, हारलता इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. उत्तर दिशेस मस्तक करणें हें सामगव्यतिरिक्तांस
समजावें. वाराहांत तर अग्निदानाविषयीं दुसरा मंत्र सांगितला आहे, तो असा-“कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता ।
मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पंचत्वमागतं । धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतं । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यां लोकान् स गच्छतु ।’
“पेटणारा मोठा अग्नि मस्तकस्थानीं यावा. चारी वर्णांच्या प्रेतांविषयीं अशी व्यवस्था होते.”

अत्र क्रियानिबंधगारुडेष्टर्पिंडदानमुक्तं मृतस्योक्तातिसमयेष्टर्पिंडान्क्रमशो ददेत् मृतिस्थानेतथा
द्वारिचत्वरेताक्ष्यकारणात् विश्रामेकाष्टचयनेतथासंचयनेचषट् तथा आदौ दैयास्तुष्टर्पिंडादशदेयादशहिकाः
स्थाने चार्धपथेतीतेचितायां शवहस्तके श्मशानबासिभूतेभ्यः षष्ठसंचयनेतथा ततः त्वंभूतकृज्जगद्योनेत्वं लोक-
परिपालकः उक्तः संहारकस्तस्मादेनं स्वर्गमृतनय इत्यभिदत्वाऽस्मात्त्वमिति मंत्रेणार्धदग्धे आज्याहुतिरुक्ता आहि-
तामौ प्रराशरः शम्यां शिभे विनिक्षिप्य अरणीमुष्कयोरपि जुहूंच दक्षिणे हस्तेषामेतूपधृतं न्यसेत् शिभेतूळ-

खलंदद्यात्पृष्ठेचमुसलंन्यसेत् उरसिस्थिपृष्ठद्वंद्वं दुलाज्यतिलान्मुखे ओत्रेचप्रोक्षणीं दद्यात्पृष्ठेस्थालीं च चक्षुषोः
कर्णेनेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलंन्यसेत् अग्निहोत्रोपकरणमशेषंतत्र निक्षिपेत् ।

या स्थली क्रियानिबन्धांत गारुडांत सहा पिंडांचें दान सांगितलें आहे—“मृताच्या प्राणोत्क्रमणसमयीं सहा पिंड क्रमानें यावे. ते असे—मरणस्थानीं, घराच्या द्वारांत, चवाळ्यावर, विश्रांति करण्याच्या स्थळीं, काष्ठांचा वीग केल्या असेल त्या ठिकाणीं, आणि संचयनाचे ठिकाणीं, असे सहा पिंड यावे.” तसेंच—“पहिल्या दिवशीं सहा पिंड यावे. आणि दहा दिवसांचे दहा पिंड यावे. मरणस्थानीं, अर्था मार्गांत, चित्तेचे ठायीं, शवाच्या हातावर, स्मशानवासी भूतांसाठीं इतक्या ठिकाणीं एक एक पिंड देऊन सहावा पिंड संचयनाचे ठिकाणीं यावा.” तदनंतर—“त्वं भूतकृजगद्योने त्वं लोकपरिपालकः । उक्तः संहार-कृतस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय.” ह्या मंत्रानें अग्नि देऊन अर्धदग्ध झालें असतां ‘अस्मारवं०’ ह्या मंत्रानें आज्याहुति सांगितली आहे. अग्निहोत्र्याविषयीं पराशर सांगतो—“शिश्नाचे ठायीं शमी ठेवावी. दोन अरणी दोन वृषणांवर ठेवाव्या. दक्षिण हस्तांत जुहू आणि वामहस्तांत उपभृत् ठेवावी. शिश्नाचे ठायीं उखळ व पाठीवर सुसळ ठेवावें. उरावर पाषाण, मुखांत तांदूळ, आज्य व तिल घालावे. कर्णांचे ठायीं प्रोक्षणी घ्यावी. नेत्रांवर आज्यस्थाली ठेवावी. कानांत, नेत्रांत, मुखांत आणि नाकांत सुवर्णाचे तुकडे ठेवावे. याप्रमाणें अग्निहोत्राचीं सारीं उपकरणें त्या प्रेतावर ठेवावीं.”

प्रचेताः स्नानप्रेतस्य पुत्राश्चैव स्वाधैः पूजन्ततः नम्रदेहं दहेन्नैव किंचिदेयं परित्यजेत् यमः प्रेतं दहेच्छुभै-
र्गंधैः स्नपितं स्रग्विभूषितं आश्वलायनसूत्रे संस्थिते प्रेतालंकारान् कुर्वति केशश्मश्रुलोमस्नानानि वापयति नल-
देनानुलिंपति नलदमालां प्रतिमुचंतीति माधवीये ब्राह्मणे दरिद्रोपनिदग्धव्यो नमः कस्यां चिदापि तथा निः-
शेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किंचित्च जेत्रः दाहकाले भिनाशे तु मदनरत्ने यज्ञपार्श्वः यजमाने मृते कापि चितादौ-
वाप्रवेशिते वर्षाद्यभिहते प्रौतकथं प्रेतविकल्पना शेषं दग्ध्वा प्रदग्धे पुनिर्मध्यैव तु कारयेत् अथ पर्णशरादि दाहेना-
भिनाशे पश्चात्तदेहलाभे मदनरत्ने ब्राह्मणे अथ पर्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति गतेष्वभिषुतदेहो यदूर्ध्वलभ्यते
कचित् तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तददेहं यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै नलभ्यते तदा तदस्थिखंडं तु निक्षिप्तव्यं
महाजले ।

प्रचेता—“पुत्रादिकांनीं प्रेताला स्नान घालून तदनंतर वस्त्रादिकांनीं पूजन करावें. नम्र देहाचें दहन करूं नये. कांहीं देय टाकावें.” यम—“शुभकारक गंधोदकांनीं प्रेताला स्नान घालून माल्यांनीं भूषित करून त्याचा दाह करावा.” आश्वला-
यनसूत्रांत—“मृत झाला असतां प्रेताला अलंकार करितात. त्याचे केश, श्मश्रु, लोम व नगें यांचें वपन करितात. त्याला वाळ्याची उटी लावितात. व वाळ्याची माळ घालितात.” माधवीयांत ब्राह्मणांत—“दरिद्री असून कोणतीही आपत्ति असली तरी नग्याचा (वस्त्ररहिताचा) दाह करूं नये. तसेंच निःशेष दाह करूं नये, शेष कांहीं तरी टाकावें.” दाहकालीं अग्नि नष्ट झाला असतां मदनरत्नांत यज्ञपार्श्व सांगतो—“यजमान मृत असून त्याला चितेवर ठेविला असतां पर्जन्यादिक-
करून अग्नि नष्ट झाला असेल तर प्रेताची व्यवस्था कशी करावी ? मंथन करून अग्नि करावा. यज्ञोपकरणे दग्ध होऊन प्रेत अदग्ध असेल तरी मंथन करूनच अग्नि करावा.” आतां पर्णशरादि दाह करून अग्नि नष्ट झाला असून पश्चात् देह मिळाला असतां मदनरत्नांत ब्राह्मणांत—“आतां पर्णशर दाहाच्या वेळीं पात्रें वगैरे सर्व जाळून अग्नि नष्ट झाले असून पश्चात् जर त्याचा देह कचित् मिळेल तर अर्धी दग्ध काष्ठें मंथन करून त्या अग्नीनें देहाचा दाह करावा. तत्संबंधीं अर्धदग्धकाष्ठ जर न मिळेल तर त्या वेळीं त्याच्या अस्थींचा तुकडा मोठ्या उदकांत टाकावा.”

दंपत्योरेकदामृतौ विशेषमहापस्तंबः तथैव प्रेतसहैव पितृमेधोद्विवचनलिंगान्मंत्रान्संधारयंति पितृमेधो
दाहांतं कर्म दाहांतमेकतंत्रत्वमिति बौधायनोक्तेः अस्थिसंचयनमप्येकं उदकपिंडदानादि पृथगेव सहग-
मनेप्येवं तदाह मदनरत्ने भाष्यार्थसंग्रहकारः एककालमृतौ भार्याभर्ताचयदिचेद्द्वयोः तत्रेण दहनं कुर्या-
त्पिंडश्राद्धं पृथक्पृथक् एककालमृतौ जायापतीयदित्वापितुः विभज्याभ्रिक्रियांकुर्यादित्यतः दसांप्रतं दाहां-
तमेकतंत्रत्वमित्याह्निकसंमतं मृतपतिमनुव्रज्ययानारीज्वलनंगता अस्थिसंचयनांते स्याभर्तुः संस्कारपञ्च-
कीकसानांतु संस्कारो न्यायसिद्धोऽपि योमतः एककालमृतेप्येवंकीकसानां विधिः स्मृतः नवश्राद्धसंपिंडांतं भिन्न-
कालमृतौ यथा कपर्दिकारिकापि मृतेभर्तरितदाहात्वाक्पत्नीभ्रियते यदि पश्यांवा प्राक्पत्नीवायां दद्या-
दवाक्पतिमृतः तत्र तत्रेण दाहः स्यान्मंत्रे पुदित्वमूषते कीकसानांतु संस्कारः पृथगेव तयोर्भवेत् एकादशसौ-

भुगपन्नवश्रद्धादिकंतयोः मृतपतिमनुष्यपत्नीचेदनलंगता तत्रापिदाहस्तंत्रेणपृथगस्थिक्रियाभवेत् अस्थिसंच-
यनपृथक्त्वेविकल्पः सहगमनेसर्वत्रपाकैक्यमाहप्रचेताः एकचित्यांसमारूढौभ्रियेतेदंपतीयदि तंत्रेणअप-
ण्कुर्व्यात्पृथक्पिंडसमाचरेत् ।

दंपती एका वेळीं मृत असतां विशेष सांगतो आपस्तंब-“दंपती असेच मृत असतां पितृमेध (दाहांत कर्म) दोघांचें बरोबरच होतें. या ठिकाणीं मंत्रांचा द्विवचनकरून उच्चार करतात.” या वचनांत पितृमेध म्हणजे दाहांत कर्म होय. कारण, “दाहांतकर्माचें एकतंत्र करावें” असें बौधायनवचन आहे. अस्थिसंचयनही दोघांचें एकच आहे. उदक, पिंडदान इत्यादि वेगवेगळें करावें. स्त्रियेचें सहगमन असतांही असेंच समजावें, तें सांगतो मदनरत्नांत भाष्यार्थसंग्रहकार-
“भार्या आणि पति दोघे असामी जर एककालीं मृत होतील तर त्या दोघांचा दाह तंत्रानें करावा. पिंडदान व श्राद्ध वेग-
वेगळें करावें. जर एककालीं भार्या व पति मृत असतील तर त्या वेळीं अमीचा विभाग करून पित्याची क्रिया करावी, असें जें मत तें अयुक्त आहे.” दाहांतकर्म एकतंत्रानें करावें, हें याज्ञिकांना संमत आहे. “मृत झालेल्या पतीच्या मार्गाहून जाऊन जी पत्नी अग्निप्रवेश करिते तिचा अस्थिसंचयनापर्यंत संस्कार भर्त्याच्याच संस्कारांत होतो, निराळा नाही. अस्थींचा संस्कार न्यायसिद्ध जो तोही एककालीं मृत असतांही असाच विधि सांगितला आहे. नवश्राद्ध व सपिंडीकरणापर्यंत भिन्नकालीं मृत असतां जसें होतें तसें एककालीं मृत असतांही होतें.” कपर्दिकारिकाही-“भर्ता मृत असतां त्याच्या दाहापूर्वीं जर पत्नी मृत होईल तर अथवा पत्नी पूर्वीं मृत असतां तिच्या दाहाच्या पूर्वीं जर पति मृत होईल तर त्या दोघांचा तंत्रानें दाह होतो. मंत्रांचे ठिकाणीं द्विवचनाचा ऊह करावा. त्या दोघांचा अस्थींचा संस्कार वेगवेगळाच होतो. एक दिवशीं दोघे मृत असतां त्या दोघांचें नवश्राद्धादिक एकदम होतें. मृत झालेल्या पतीच्या मार्गाहून जाऊन पत्नी जर अग्नींत प्रवेश करील तर त्या वेळीं देखील दाह तंत्रानें होतो. व अस्थिक्रिया वेगवेगळी होईल.” ह्या वरील वचनावरून अस्थिसंचयन वेगळें करण्या-
विषयीं विकल्प होतो. सहगमन असतां सर्वत्र ठिकाणीं पाक एक सांगतो प्रचेता-“एक चितीवर आरोहण करून दंपती (स्त्री व पुरुष) मृत होतील तर तंत्रानें पाक करून वेगवेगळा पिंड द्यावा.”

अथोदकदानंवसिष्ठः शरीरमग्नौसंयोज्यानवेक्षमाणाअपोभ्यवयंतिसव्योत्तराभ्यांपाणिभ्यामुदक
क्रियांकुर्वत्ययुग्मं आपस्तंबः मातुश्चयोनिसंबंधेभ्यःपितुश्चासप्तमात्पुरुषाद्यावतांवासंबंधोज्ञायतेतेषांप्रतेपूद-
कक्रियेति याज्ञवल्क्यः सप्तमादशमाद्वापिज्ञातयोभ्युपयंत्यपः अपनःशोशुचदधमनेनपितृदिद्भुखाः सकृ-
त्प्रसिंचंत्युदकंनमगोत्रेणवाग्यताः सप्तमादशमाद्वादिवसादवर्गितिबिज्ञानेश्वरः कातीयास्तुसप्तमादश-
माद्वापुरुषादित्याहुः सप्तमादशमाद्वापुरुषात्समानग्रामवासेयावत्संबंधमनुस्मरेयुरितिपारस्करोक्तेः मंत्र-
ज्ञानांगमेवेतिहेमाद्रिः प्रचेताः प्रेतस्यबांधवायथावृद्धमुदकमवतीर्यतोद्धर्षयेयुरुदकांतंप्रसिंचेयुरपसव्यय-
ज्ञोपवीतवाससोदक्षिणामुखाब्राह्मणस्योदब्धुखाःप्राङ्मुखाश्चराजन्यवैश्ययोः सएव नदीकूलंततोगतवत्युक्त्वा
सचैलस्तुततःस्नात्वाशुचिःप्रयतमानसः पापाणंततआदायविप्रेदद्यादशांजलीन् द्वादशक्षत्रियेदद्याद्वैश्येपंच-
दशस्मृताः त्रिंशच्छूद्राद्यदातव्यास्ततस्तुप्रविशेद्गृहं ततःस्नानंपुनःकार्यगृहशौचंचकारयेत् प्रेतस्नानेविशेषः
शुद्धितस्थे आदित्यपुराणे आदौवल्बचप्रक्षाल्यतेनैवाच्छादितस्ततः कर्तव्यतैःसचैलुत्स्नानंसर्वमलापहं
पूर्वपरिहितंवल्बप्रक्षाल्यपुनःपरिधायस्नायादित्यर्थः अपनइतिमंत्रेणवामहस्तानामिकयाजलालोडनं अवत-
रणेवृद्धपुरःसरत्वोक्तैर्यथाबालपुरस्कृत्येतिबौधायनीयंजलादुत्थानपरमितिहारलतादयः आश्वलायनः
सव्यावृत्तोत्रजंयतीक्षमाणायत्रोदकमबहूब्रूवसितत्प्राप्यसकृदुन्मज्ज्यैकांजलिमुत्सृज्यतस्यगोत्रंनमगृहीत्वेति
प्रचेतसान्वहमंजलित्रयमप्युक्तं त्रिःप्रसेकंकुर्वुःप्रेतस्तृप्यत्विति तथा दिनेदिनेऽजलीनपूर्णांप्रदद्यात्प्रेतकारणात्
ताबहूद्विषकृतव्यायावत्पिंडःसमाप्यते एकवृद्धिस्त्रिंशद्विर्वैत्यर्थः मदनरत्नेभरद्वाजगृह्येतुद्विकवृद्धि-
प्युक्ता आशौचांतंप्रदद्यात्प्रेतपुत्रस्त्रिलांजलीन् प्रथमेहिसकृदद्यात्पिंडयज्ञावृतादिवा श्रीश्रद्धाहृतीयेहि-
रुतीयेपंचएवच चतुर्थेसप्तसंख्यांस्तुपंचमेनवचोत्सृजेत् षष्ठेह्रिचैकादशकाःसप्तमेतुत्रयोदश अष्टमेपंचदश-
कान्वहमेदशसप्तच एकोनविंशतिंचाप्रेतज्ञतांजलिमतंस्मृतं केचिदशांजलीनोचुःकेचिदाहुःशतांजलीन् पंचपंचा-
शत्पंचमेदशाष्टोत्तरमवहव्या ।

आतां उदकदान सांगतो—

वसिष्ठ—“प्रेताला अग्नि देऊन त्याजकडे न पाहतां उदकाजवळ जातात, आणि डाव्या व उजव्या दोन हातांनी उदकांजलि विषम देतात.” **आपस्तंब**—“मातेचे योनिसंबंधी व पित्याचे सात पुरुषांचे आंतील सपिंड अथवा मातेचा व पित्याचा संबंध ज्यांचा माहीत असेल ते मृत असतां त्यांना उदकदान करावें.” **याज्ञवल्क्य**—“सातव्या किंवा दहाव्या दिवसाचे आंत ज्ञाति दक्षिणदिशेस मुख करून ‘अपनः शोशुचदधं०’ या मंत्रानें उदकाजवळ जातात व नामगोत्राचा उच्चार करून एकवार उदक देतात.” याज्ञवल्क्यवचनांत ‘सप्तमात् दशमात् वा’ याचा अर्थ—सातव्या किंवा दहाव्या दिवसाचे आंत, असा **विज्ञानेश्वर** सांगतो. **कातीय** तर—सातव्या किंवा दहाव्या पुरुषाचे आंतील जे मृत असतील त्यांना, असा अर्थ करितात. कारण, “सातव्या किंवा दहाव्या पुरुषार्थत एका गांवांत वाग असतां जोपर्यंत संबंधाचें स्मरण असेल तोपर्यंत मृतांना उदक द्यावें.” असें **पारस्कर**वचन आहे. उदकदान हें मंत्रज्ञानाचें अंगच आहे, असें **हेमाद्रि** सांगतो. **प्रचेता**—“प्रेताचे बांधवांनीं वृद्धांना पुढें करून सर्वांनीं उदकांत उतरून त्या ठिकाणीं उदक उडवूं नये; उदकाचे कडेस येऊन यज्ञोपवीत व वस्त्रें अपसव्य (उजव्या खांद्यावर) करून दक्षिणदिशेस मुख करून ब्राह्मणाला उदक सेचन करावें. उत्तरेस मुख करून क्षत्रियाला व पूर्वेस मुख करून वैश्याला उदक सेचन करावें.” तोच **प्रचेता**—तदनंतर नवीच्या तीरी जाऊन असें बोलून सांगतो—“तदनंतर वस्त्रमहित स्नान करून शुद्ध होऊन अंतःकरण स्वस्थ करून त्या ठिकाणांतून पाषाण (दगड) घेऊन त्याजवर ब्राह्मणाला दहा अंजलि द्यावे. क्षत्रियाला बारा द्यावे. वैश्याला पंधरा द्यावे. शूद्राला तीस द्यावे. तदनंतर घरांत प्रवेश करावा. तदनंतर पुनः स्नान करून गृहशुद्धि करावी.” प्रेतस्नानविषयी विशेष सांगतो—**शुद्धितत्त्वांत आदित्यपुराणांत**—“पूर्वी परिधान केलेलें वस्त्र धुवून तें परिधान करून पुत्रादिकांनीं सर्व मलनाशक सचेल स्नान करावें.” ‘अपनःशोशुचदधं०’ या मंत्रानें डाव्या हाताच्या अनामिका अंगुलीनें उदकाचें आलोडन करावें. वरील **प्रचेताचे** वचनांत ‘वृद्धपूर्वक उदकांत उतरावें’ असें सांगितल्यावरून, **वौघायन**वचनांत ‘बालकाला पुढें करून’ असें सांगितलें तें उदकांतून वर येण्याविषयी समजावें, असें **हारलता** इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. **आश्वलायन**—“प्रेताला अग्नि देऊन त्याला डावीकडे करून त्याजकडे न पाहतां ज्या ठिकाणीं उदक स्थिर आहे त्या ठिकाणीं जाऊन एकदां बुडी मारून त्या प्रेताचे नामगोत्राचा उच्चार करून एक अंजलि द्यावा.” **प्रचेतानें** दररोज तीन अंजलिही सांगितले आहेत—प्रेतस्तुप्युद्, असें म्हणून तीन वेळा पाणी द्यावें. तसेंच ‘दररोज प्रेताकरितां पूर्ण अंजलि द्यावे. जोपर्यंत पिंड (दहावा) समाप्त होई तोपर्यंत दररोज एक एक किंवा तीन तीन अंजलि वाढवावे.” **मदनरत्नांत भरद्वाजगृह्यांत** तर—दोन दोन अंजलिही वाढवावे, असें सांगितलें आहे—“आशौच समाप्त होईपर्यंत प्रेतपुत्रानें तिलांजलि द्यावे. प्रथम दिवशीं एक अंजलि द्यावा. दुसऱ्या दिवशीं तीन अंजलि द्यावे. तिसऱ्या दिवशीं पांच द्यावे. चवथ्या दिवशीं सात द्यावे. पांचव्या दिवशीं नऊ द्यावे. सहाव्या दिवशीं अकरा द्यावे. सातव्या दिवशीं तेरा द्यावे. आठव्या दिवशीं पंधरा द्यावे. नवव्या दिवशीं सतरा द्यावे. दहाव्या दिवशीं एकोणीस द्यावे. याप्रमाणें शंभर अंजलि द्यावे असें मत आहे. कितीएक पंडित दहा अंजलि सांगतात. कितीएक शंभर अंजलि सांगतात. इतर पंडित पंचावन्न अंजलि मांगतात. हे आपापल्या शास्त्रेंत उक्त व्यवस्थेनें सांगतात.”

छंदोगपरिशिष्टे अथानवेक्ष्यनपापःसर्वेचैवशश्वस्पृशः गोत्रनामपदांतेतुतर्पयामीत्यनंतरं दक्षिणाप्रा-
न्कुशान्कृत्वासतिलंतुपृथक्पृथक् **विष्णुपुराणे** सपिंडीकरणंयावद्भुजुदभैःपितृक्रिया सपिंडीकरणादूर्ध्वद्वि-
गुणैर्विधिवद्भवेत् **रामायणे** इदंपुरुषशार्दूलविमलदिव्यमक्षयं पितृलोकेपुपानीयमहत्तमुपतिष्ठतां दानवा-
क्येविकल्पः **याज्ञवल्क्यः** कामोदकंसविप्रतास्वस्त्रीयश्चशुरात्विजां कामइच्छा प्रेततृमीच्छायाद्वेयमम्य-
थानेत्यर्थः **शंखपारस्करौ** आचार्येचैवमातामहयोश्चस्त्रीणांचाप्रत्तानांकुर्वीरस्ताश्चतेषामितिद्विवचनात्
मातामह्यापि **शंखलिखितौ** उदकक्रियाकामंश्चशुरमातुलयोःशिष्येसहाध्यायिनिराजनिचेति **बृद्धमनुः**
स्त्रीबाद्यानोदकंकुर्युस्तेनान्रात्याविधर्मिणः गर्भभर्तृदुहश्चैवसुराप्यश्चैवयोपितः **याज्ञवल्क्यः** ममहाचारिणः
कुर्युरुदकंपतितास्तथा **षडशीतौ** स्वीयाचारादपिभ्रष्टाःपतितायेचदूषिताः नकुर्युरुदकंतेवैतेभ्योप्यन्येन-
चैवहि **मदनरत्नेहारीतः** पतितानामवृद्धानांचरंतीनांचकामतः प्रत्तानांचैवकन्यातानांनिवर्त्तासल्लिखिष्या
अपराकेशंखलिखितौ अपपात्रितस्यरिक्थपिंडोदकानिव्यावर्तते अपपात्रितःकृतघटस्कोटः तस्यापि-
संग्रहविधौकृतेआशौचोदकादिकुर्यादेवेत्याज्ञौचप्रकाशः ।

छंदोगपरिशिष्टांत—“प्रेताला अग्नि दिल्यानंतर प्रेतपुत्रानें व प्रेताला स्पर्श करणाऱ्या सर्वांनीं प्रेताच्या गोत्रनामाचा उच्चारातीं ‘तर्पयामि’ असें म्हणून कुशांचीं अग्नें दक्षिणदिशेस करून तिलमहित वेगवेगळें तर्पण करावें.” **विष्णुपुराणांत**

“सर्पिणीकरणापर्यंतची पितृक्रिया सरळ दर्मानीं करावी. सर्पिणीकरणानंतरची पितृक्रिया द्विगुणभुज दर्मानीं करावी, ती यथाशास्त्र होते.” **रामायणांत**—“हे पुरुषश्रेष्ठ ! इदं विमलं दिव्यं अक्षयं पानीयं महत्तं पितृलोकेषु उपतिष्ठत” असें उदकदानाचें वाक्य सांगितलें आहे, व वरील वचनांत उदकदानाचें वाक्य नाही, म्हणून दानवाक्याविषयी विकल्प आहे. **याज्ञवल्क्य**—“मित्र, विवाहित कन्या वगैरे, भगिनीपुत्र, श्वशुर, ऋत्विज हे मृत असतां त्यांची तृप्ति व्हावी अशी इच्छा असेल तर त्यांना उदक द्यावें. इच्छा नसेल तर देऊं नये.” **शंख व पारस्कर**—“आचार्य, मातामह व मातामही यांनाही मातापितरांप्रमाणें उदक द्यावें. अविवाहित स्त्रियांनाही उदक द्यावें. अविवाहित स्त्रियांनींही त्यांना द्यावें.” या वचनांत ‘मातामहयोः’ असें द्विवचन असल्यामुळे मातामहीलाही द्यावें. **शंख व लिखित**—“श्वशुर, मातुल, शिष्य, सहाध्यायी, व राजा यांना उदकदान देणाराचे इच्छेवर आहे.” **वृद्धमनु**—“नपुंसक इत्यादिकांनीं उदक देऊं नये. तसेंच चोर, उपनयन-संस्काररहित, विरुद्धधर्मी यांनीं आणि गर्भहत्या करणाऱ्या, भर्तृहत्या करणाऱ्या, मद्यपी अशा स्त्रियांनीं उदकदान करूं नये.” **याज्ञवल्क्य**—“ब्रह्मचारी आणि पतित यांनीं उदकदान करूं नये.” **षडशीर्तीत**—“आपल्या आचारापासून भ्रष्ट झालेले, पतित व जे इतर दोषांनीं दुष्ट झालेले त्यांनीं उदक देऊं नये; आणि त्यांनाही इतरांनीं उदक देऊं नये.” **मदन-रत्नांत-हारीत**—“पतित झालेल्या स्त्रिया, व तरुण असून यथेच्छ आचरण करणाऱ्या अशा स्त्रिया आणि विवाहित कन्या यांना उदकदान करूं नये.” **अपराकांत शंख व लिखित**—“ज्याचा घटस्फोट केला असेल त्याला जिवंदगीचा विभाग, पिंडदान, व उदकदान हीं निवृत्त होतात म्हणजे हीं देऊं नयेत.” अपपान्त्रित म्हणजे घटस्फोट केलेला होय. त्याचा संग्रह-विधि केला असतां त्याचेंही आशौचादिक करावेंच, असें **आशौचप्रकाश** सांगतो.

अथाशौचेनियमाः याज्ञवल्क्यः इतिसंश्रुत्यगच्छेयुर्गृहं बालपुरःसराः विदश्यन्निबपत्राणि निय-
ताद्वारिवेश्मनः आचम्याग्र्यादिसलिलगोमयंगौरसर्षपान् प्रविशेयुःसमालभ्यकृत्वाश्मनिपदंशनैः प्रवेश-
नादिकं कर्मप्रेतसंस्पर्शनामपि क्रीतलब्धाशनाभूमौ स्वपेयुस्ते पृथक्क्षितौ इदं चाद्येहि **वसिष्ठः** आद्येप्रस्तरे गृह-
मनभ्रंत आसीरन्क्रीतोत्पन्नेन वावर्तेरन् **शुद्धितत्त्वे ब्रह्मवापः** शमीमालभते शमीपापं शमयत्विति अश्मान-
मश्मेव स्थिरो भूयासमिति अभिमन्त्रिनः शर्मयच्छत्विति ज्योतिषांतरागाममुपस्पृशंतः क्रीत्वा लब्ध्वा वा न्य-
गेहोद्देकान्नमलवणमेकरात्रं दिवाभुंजीरं स्त्रिरात्रं च कर्मोपरमणं क्रीताद्यशनमुपवासाशक्तस्य **आश्वलायनस्तु**
नैतस्यां रात्र्यामन्नपचेरं स्त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनः स्युर्द्वादशरात्रं वेत्याह अशक्तौ रत्नाकरे आपस्तंबः भार्याः
परमगुरुसंस्थायां चाकालभोजनानि कुर्वीरन् यदा मृतिः परदिने तावत्कालमित्यर्थः **बृहस्पतिः** अधः शय्या-
सनादीनामलिनाभोगवर्जिताः अक्षारलवणात्राः स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा भोगोभ्यंगतांबूलादिः क्षाराः परिभा-
षायामुक्ताः **यत्तु मार्कंडेयपुराणे** तैलाभ्यंगोवांधवानामंगसंवाहनंचयत् तेन चाप्यायते जंतुर्नृचाभ्रंति स्ववां-
धवाः प्रथमे हितृतीये च सप्तमे नवमे तथा वस्त्रत्यागं वहिः स्नानं कृत्वा दद्यात्तिलोदकमिति तदंशदिनपरं आशौ-
चांते तिलककैः स्नाता गृहं प्रविशेयुरिति **विष्णूक्तेः** **विष्णुपुराणे** त्वस्थिसंचयनोर्ध्वभोगोप्युक्तः शय्या-
सनोपभोगस्तु सर्पिंडानामपीष्यते अस्थिसंचयनादूर्ध्वसंयोगस्तु नयोषिताम् ।

आतां आशौचांत नियम सांगतो—

याज्ञवल्क्य—“याप्रमाणें सांखनवचनें श्रवण करून बालकाला पुढें करून घरीं जावें. घराच्या दारांत उभें राहून निंबपत्रें चावून आचमन करून अग्नि, उदक, गोमय, पांढरे सषेप यांना स्पर्श करून दगडावर पाय ठेऊन घरांत प्रवेश वगैरे करावा. हें कर्म प्रेताला स्पर्श करणारे त्यांचेंही आहे. अन्न विकत घेऊन भोजन करावें. आणि भूमीवर पृथक् पृथक् शयन करावें.” हें अन्न विकत घेऊन भोजन करणें पहिल्या दिवशीं समजावें. कारण, **वसिष्ठ**—“प्रथम दिवशीं घरांत उपवास करून दर्शशय्येवर राहावें. अथवा विकत घेतलेलें अन्न भक्षण करून राहावें.” **शुद्धितत्त्वांत ब्रह्मवापः**—“शमी पापं शमयतु” या मंत्रानें शमीला स्पर्श करितात. ‘अश्मेव स्थिरो भूयासं’ या मंत्रानें दगडाला स्पर्श करितात. ‘अग्निर्नः शर्म यच्छतु’ यांनं अग्नीला स्पर्श करितात. ज्योति मध्यें करून गाई व बोकड यांना स्पर्श करून अन्न विकत घेऊन किंवा दुसऱ्याच्या घरांतून मिळवून एक प्रकारचें अन्न लवणरहित एक दिवस दिवसा भोजन करून राहावें. तीन दिवस सारीं कर्मे बंद करावीं.” अन्न विकत घेऊन वगैरे भोजन करणें हें उपवासाविषयीं अशक्त असेल त्याविषयीं आहे. **आश्वलायन** तर—“त्यांनीं त्या दिवशीं घरांत अन्न खिजवूं नये. तीन दिवस क्षार व लवणरहित अन्न भोजन करावें. अथवा बारा दिवस क्षार लवणरहित भोजन करून असावें” असें सांगतो. वर सांगितल्याप्रमाणें राहण्याची शक्ति नसेल तर सांगतो—**रत्नाकरांत आप-**

स्त्व-“परमगुरु (भर्ता इत्यादिक) मृत असतां भार्यादिकांनीं कालीं भोजन करूं नये. म्हणजे ज्या वेळीं मृत असेल त्याच्या दुसऱ्या दिवशीं त्या वेळपर्यंत भोजन करूं नये.” **बृहस्पति**—“भूमीवर निजावें व बसावें. रीन व मलिन असावें. अभ्यंग, तांबूल इत्यादिकांचा उपभोग करूं नये. क्षार व लवणरहित अन्न भोजन करावें. तसेंच दुसऱ्याकडून मिळालेले व विकत घेतलेले अन्न भक्षण करावें.” क्षार व्रतप्रकरणचे परिभाषेत प्रथमपरिच्छेदांत सांगितले आहेत. आतां जें **मार्कंडेय-पुराणांत**—“बांधवांचा तैलभ्यंग व जें अंगाचें संवाहन आणि जें बांधव भक्षण करितात त्या योगानेही मृत झालेला जीव शुद्धिगत होतो. पहिल्या दिवशीं, तिसऱ्या दिवशीं, सातव्या व नवव्या दिवशीं वस्त्रांचा त्याग व बाहेर स्नान करून तिलोदक घावें” या वचनांत तैलभ्यंग वगैरे सांगितला तो शेवटच्या (आशौचसमाप्तीच्या) दिवशीं समजावा. कारण, “आशौचाचे शेवटीं तिलांचा कल्क अंगास लावून स्नान करून घरांत प्रवेश करावा.” असें **विष्णुवचन** आहे. **विष्णुपुराणांत** तर—अस्थिसंचयनोत्तर शय्यादिभोगही सांगितला आहे. “अस्थिसंचयनानंतर सपिंडाना शय्या, आसन इत्यादिकांचा भोगही इष्ट आहे. स्त्रीसंग तर इष्ट नाही.”

भारते तिलान्ददतुपानीयंदीपंददतुजाप्रतु ज्ञातिभिःसहभोक्तव्यमेतत्प्रेतेषुदुर्लभं **मनुः** मांसाशनंच-नाश्रीयुःशरीरंश्चपृथक्क्षितौ **देवजानीयेकारिकायां** लवणक्षारमाषान्नापूपमांसानिपायसं वर्जयेदा-हताग्नेषुवालवृद्धातुरैर्विना उपवासोऽगुरौप्रेतेषुपन्थाःपुत्रस्यवाभवेत् **मरीचिः** प्रथमेहिवृत्तीयेचसप्तमेदशमेतथा ज्ञातिभिःसहभोक्तव्यमेतत्प्रेतेषुदुर्लभं भोजनंचदिवैव दिवाचैवतुभोक्तव्यममांसमनुजर्षभेति**विष्णुपुराणात्** क्रीत्वालब्ध्वादिवाज्रमश्रीयुरिति**पारस्करोक्तेश्च** **मदनरत्नेहारीतः** पाणिपुमन्मयेषुपर्णपुटकेषु-वाश्रीरन् **देवजानीयेब्राह्मे** आशौचमध्येयत्नेनभोजयेच्चस्वगोत्रजान् अंत्यदिनेतु**मदनरत्नेब्राह्मे** यस्य-यस्यतुवर्णस्ययद्यत्स्यात्पश्चिमंतवहः सतत्रगृहशुद्धिचवस्त्रशुद्धिकरोत्यपि अंत्यकर्मकालीनवस्त्रयोस्तुतत्रैवोक्तं प्रामाद्वहिस्ततोऽगत्वाप्रेतस्पृष्टेनुवाससी अंत्यानामाश्रितानांचत्यक्त्वास्नानंकरोत्यथेति **शंखः** दानंप्रतिग्रहोहो-मःस्वाध्यायःपितृकर्मच प्रेतपिंडक्रियावर्ज्यमाशौचेविनिवर्तते **काठकगृह्ये** यत्रप्राणोत्कमस्तत्रान्वहंमहाव-लिकुर्यादिति**पारस्करः** तदानीमेववस्त्रंतंडुलदीपंकांस्यभाजनंप्रतायदद्यात् **आशौचप्रकाशेभरद्वाजः** वासोन्नंचजलकुंभंप्रदीपंकांस्यभाजनं नम्रप्रच्छादनेश्राद्धेब्राह्मणायनिवेदयेत् **भृगुः** तिलोदकंतथापिंडाभ्रप्र-प्रच्छादनादिकं रात्रौनकुर्यात्संध्यायांयदिकुर्यान्निरर्थकम् ।

भारतांत—‘प्रेतांना तिल व पाणी यावें. दीप द्यावा. जागावें. ज्ञातींसह भोजन करावें. हें प्रेतांना दुर्लभ आहे.’ **मनु**—‘आशांचांत मांस भक्षण करूं नये. व भूमावर वेगवेगळें शयन करावें.’ **देवजानीयांत कारिकेंत**—‘बालक, वृद्ध, रोगी यांचाचून इतरांनी दुसऱ्याकडून अणलेल्या अन्नामध्ये देखील लवण, दूध, माषाण (उडदांचें अन्न), अपूप, मांस, पायस, हीं वर्ज्य करावी. पिता मृत असतां पत्नी व पुत्र यांना उपवास सांगितला आहे.’ **मरीचि**—‘प्रथम दिवशीं, तिसऱ्या दिवशीं, सातव्या व दहाव्या दिवशीं ज्ञातींसह भोजन करावें. हें प्रेतांना दुर्लभ आहे.’ भोजन दिवसासच सांगितलें आहे. ‘दिवसासच मांसवर्जित भोजन करावें’ असें **विष्णुपुराणवचन** आहे. आणि ‘दुसऱ्याकडून विकत घेऊन किंवा मिळालेलें अन्न दिवसा भोजन करावें’ असें **पारस्करवचन**ही आहे. **मदनरत्नांत हारीत**—‘हातावर अन्न घेऊन किंवा मातीच्या पात्रांत अथवा पानाच्या पत्रावळींत अन्न घेऊन भक्षण करावें.’ **देवजानीयांत ब्राह्मांत**—‘आशांचामध्ये प्रयज्ञांन आपल्या गोत्रजांना भोजन घालावें.’ शेवटच्या दिवशीं तर सांगतो **मदनरत्नांत ब्राह्मांत**—‘ज्या ज्या ब्राह्मणादि वर्णांचा जो जो दिवस आशांच समाप्तीचा असेल त्या दिवशीं त्यांचें गृहशुद्धि आणि वस्त्रांची शुद्धि करावी.’ अंत्यकर्मकालीं असलेल्या वस्त्रां-विषयीं तेथेंच सांगितलें आहे—‘तदनंतर आशौचममासिदिवशीं गांवाच्या बाहेर जाऊन प्रेताला स्पृष्ट झालेलीं वस्त्रे आणि पुढचीं धारण केलेलीं वस्त्रे टाकून देऊन नंतर स्नान करावें.’ **शंख**—‘दान, प्रतिग्रह, होम, वेदाध्ययन आणि प्रेतक्रियेबाचून इतर पितृकर्म हीं आशांचांत निवृत्त (बंद) होतात.’ **काठकगृह्यांत**—‘ज्या ठिकाणीं प्राणोत्कमण झालें असेल त्या ठिकाणीं दररोज महाबलि करावा.’ **पारस्कर**—‘त्या वेळींच वस्त्र, तंदुल, दीप, आणि कांस्यपात्र हीं प्रेताला द्यावी.’ **आशौचप्रकाशांत भरद्वाज**—‘वस्त्र, अन्न, उदक, कुंभ, दीप, कांस्यपात्र हीं नम्रप्रच्छादन श्राद्धाचे ठायीं ब्राह्मणाला द्यावी.’ **भृगु**—‘तिलोदक, पिंड, नम्रप्रच्छादनादिक कर्म, हीं रात्री व संध्याकालीं करूं नयेत; केलीं तर निरर्थक होतील.’

अथप्रेतपिंडः यद्यपिहेमाद्रौपारस्करेण ब्राह्मणेदशपिंडास्तुक्षत्रियेद्वादशस्तृताः वैश्येपंचदशः श्रोत्राःशूद्रेत्रिंशत्पृथक्तीर्तिताइत्युक्तं तथापि प्रेतेभ्यःसर्ववर्णेभ्यःपिंडान्दद्यात्सैवत्विसितेनेवोक्तेः सर्वेषांनैवैक-

ज्ञेयाः मदनरत्नेप्येवं तथाच हेमाद्रौ ब्राह्मपादयोः जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां कचिदेव हि देशध-
र्मान्पुरस्कृतप्रेतपिंडान्वपंयपीत्युक्त्वा विप्रान्येषु दशमपिंडोत्कर्षोक्तः देयस्तु दशमः पिंडो राज्ञां वैद्वादशेह नि वै-
श्यानां वैपंचदशे देयस्तु दशमस्तथा शुद्धस्य दशमः पिंडो मासे पूर्णे हिदीयते इति युद्धमृतादेः सद्यः शौचे त्र्यह्नादौ च ते-
नैवोक्तं सद्यः शौचे प्रदातव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा त्र्यह्ना शौचे प्रदातव्यः प्रथमे ह्येक एव हि द्वितीये ह निचत्वारस्तु-
तीये पंचचैव हि त्र्यह्ने प्रकारं तं प्रागुक्तं ज्ञानात्तपः आशौचस्य च हासेऽपि पिंडान् दद्याद्वा वैवतु तत्रैकपात्रे सकृ-
त्पक्त्वा दशपिंडान् दद्यात् उत्तरीयशिलापात्रकर्तृद्रव्यविपर्यये पूर्वदत्ताञ्जलीन्दद्यात्पूर्वपिंडांस्तथैव चेति गृह्य-
कारिकायां पात्रविपर्यये दोषोक्तेः शिलाविपर्यये घटस्फोटादेर्नावृत्तिः अक्षाभ्यंजनादिपदकर्मणः एकहा-
यनीनयनवदप्रयोजकत्वात् तद्वञ्चात्र लौकिकग्रहणं केचित्तु नवान्यादाय भांडानि आरुक् चरुकंतेत्येति प्रचेत-
सोक्तेः पात्रानेकत्वमाहुः क्रियाकर्तृनां शोभ्येन शेषः समापनीयः एवं क्रियाप्रवृत्तानां यदिकश्चिद्विपर्यये तद्वंधु-
ना क्रियाकार्या सर्वैर्वासहकारिभिरिति शुद्धितत्त्वे बृहस्पतिस्मृतेः पन्थाः कर्तृत्वे रजोदर्शने च तदंते कुर्यात्
शावादिगुणमार्तवमित्युक्तेः आशौचांते आर्तवे कर्तुं रसास्थ्येवान्येन क्रियासर्वार्तवनीया कर्तुर्विपर्ययात् काला-
तिक्रमयोगाच्च ।

आतां प्रेताचे पिंड सांगतो—

जरी हेमाद्रौत पारस्कराने—“ब्राह्मणाला दहा पिंड, क्षत्रियाला बारा, वैश्याला पंधरा आणि शुद्राला तीस पिंड
सांगितले आहेत” असे सांगितलें तरी—“सर्व जातीच्या प्रेतांना दहाच पिंड द्यावे” असे त्यानेच (पारस्करानें) सांगितल्या-
वरून सर्वांना दहाच पिंड समजावे. मदनरत्नांतही असेच आहे. तसेंच हेमाद्रौत ब्राह्मांत व पात्रांत—“जातीला
सांगितलेल्या आशौचदिवसांत के पिंड क्षत्रियादिकांना कचित्तच ठिकाणीं देतात. देशधर्मांना अनुसरूनही प्रेतपिंड देतात”
असे सांगून ब्राह्मणव्यतिरिक्तांना दहावा पिंड शेवटच्या दिवशीं सांगितला तो असा—“क्षत्रियांना दहावा पिंड बाराव्या दिवशीं
द्यावा. वैश्यांना दहावा पिंड पंधराव्या दिवशीं द्यावा. शुद्रांना दहावा पिंड महिना पूर्ण झाल्यावर शेवटच्या दिवशीं द्यावा.”
युद्धांत मृतांचे वगैरे सद्यःशौच असतां व तीन दिवसांचे वगैरे आशौच असतांही त्यानेच सांगितलें आहे—“सद्यःशौचांत
सारे पिंड एकदम द्यावे. तीन दिवसांचे आशौचांत पहिल्या दिवशीं एकच पिंड द्यावा. दुसऱ्या दिवशीं चार द्यावे. तिसऱ्या
दिवशीं पांच द्यावे.” तीन दिवसांचे आशौचांत दुसरा प्रकार पूर्वी (अनुपनीताशौचप्रकरणें) सांगितला आहे. शातातप-
“आशौच कमी असलें तरी पिंड दहाच द्यावे.” त्या ठिकाणीं एका पात्रांत एकवार पाक करून दहा पिंड द्यावे. कारण,
“उत्तरीयवस्त्र, उदकदान, शिला, पात्र, कर्ता, द्रव्य (तांदूळ वगैरे) यांचा विपर्यास (बदल) झाला असतां पूर्वी दिलेले
उदकाजळि, व पूर्वी दिलेले पिंड द्यावे.” असा गृह्यकारिकेंत पाकपात्राच्या विपर्यासाविषयीं दोष सांगितला आहे. शिलेचा
विपर्यय झाला तरी घटस्फोटादिकांची आवृत्ति नाहीं. कारण, जसें—ज्योतिष्टोमांत सोमकथाविषयीं सांगितलें आहे—“एकहायन्या
क्रीणाति” म्हणजे एक वर्षाच्या गाईनें सोम विकत घ्यावा. सोम विकत घेण्यासाठीं एक वर्षाची ती गाई आणतेवेळीं अध्वर्यूनें
तिच्या मागांठून जाऊन तिचे सातवें पद अंजलीनें धरून तत्संबंधी धूळ घेऊन ती अंजनांत मिश्र करून सोम आणण्याच्या
झक्याचे आंखांत तें अंजन घालवें, असे सांगितलें आहे. तेथें सोमकथाकरितां जसें गाईचे आनयन तसें आंखांचें अंजन-
रूप जें पदकर्म त्याकरितांही गाईचे आनयन आहे, म्हणून तें पदकर्म आनयनाचें प्रयोजक झालें, असें पूर्वपक्षी (शंकाकार)
म्हणतो. सिद्धांतकर्ता असें सांगतो—“एकहायन्या क्रीणाति” या वरील वचनांत “एकहायन्या” या तृतीयाविभक्तीनें सोम विकत
घेण्याकरितां गाईचे आनयन सूचित झालें आहे, म्हणून आनयनाचा प्रयोजक सोमकथच आहे. गाईचे आनयन (आणणें)
पदकर्माकरितां कोठेही वेदांत नाहीं, म्हणून तें पदकर्म अप्रयोजक आहे. तसा—येथें घटस्फोट शिलेचा अप्रयोजक आहे,
म्हणून लौकिकशिला ग्रहण करावी. केचित् ग्रंथकार तर—“आरुक् व चरुक् अशीं नवीं भांडीं ग्रहण करून” ह्या प्रचेत-
साचे वचनावरून पात्रें अनेक असावीं, असें सांगतात. क्रियाकर्त्याचा नाश झाला असतां अन्यानें शेषक्रिया समाप्त करावी.
कारण, “याप्रमाणें क्रियेविषयीं प्रवृत्त झालेल्यामध्ये जर कोणी मृत होईल तर त्याच्या बंधूनें क्रिया करावी. अथवा सहकारी
जे सर्व त्यांनीं क्रिया करावी” अशी शुद्धितत्त्वांत बृहस्पतिस्मृति आहे. स्त्री कर्त्री असून ती रजस्राला झाली असतां
शुद्ध झाल्यावर तिनें क्रिया करावी. कारण, “मृताशौचाद्वन आर्तवदोष दुष्पट आहे” असें पूर्वी सांगितलें आहे. आशौच-
समाप्तीच्या दिवशीं स्त्री कर्त्री असून तिला आर्तव असतां अथवा कर्त्याची प्रकृति बिघडली असतां इतरांनें सर्व क्रियेची
आवृत्ति करावी. कारण, कर्त्याचा विपर्यय (बदल) झाला आहे. शुद्ध झाल्यावर किंवा प्रकृति स्वस्थ झाल्यावर क्रिया करावी,
जसें म्हणलें तर क्रियेच्या कालाचा अतिक्रमणी होईल.

वाराहे स्थंडिलेप्रेतभागतुदद्यात्पूर्वाह्नएवतु कृत्वातुपिंडसंकल्पनामगोत्रेणसुंदरि मरीचिः प्रेतपिंडंवहि
र्दद्याद्दर्भमंत्रविवर्जितं प्रागुदीच्यांचहंकृत्वास्नातःप्रथतमानसः दर्भवर्जनमनुपनीतपरं असंस्कृतानांभूमौपिंडं
दद्यात्संस्कृतानांकुशेष्वितिप्रचेतसोक्तेः मिताक्षरायांस्मृत्यंतरे भूमौमात्यंपिंडपात्रीयमुपलेवादयुः
हारीतः अकूमचूडायेवालायेचगर्भाद्विनिःसृताः सृताअनुपनीतायेअनूढाअपिकन्यकाः येसृताश्चाप्य
संस्कारास्तेभ्योभूमौप्रदीयते पैटीनसिः शालीनांसक्तुभिर्वापिपिण्याकैर्वापिनिर्वपेत् शुनःपुच्छः फल-
मूलैश्चप्रयमाशाकेनचगुडेनच तिलमिश्रंतुदर्भेषुपिंडंदक्षिणतोहरेत् तूष्णींप्रसेकंपुष्पंचधूपंदीपंतयैवच शाली-
नांसक्तुभिर्वापिशकैर्वाप्यथनिर्वपेत् प्रथमेहनियद्रव्यंतदेवस्याहशाहिकं मदनरत्नेमात्स्ये तैजसंमृन्मयं
वाथपात्रंसंशोध्यन्नतः लौकिकाम्रावधिश्रित्यपचेदभंगृतहुतं स्नात्वाथतिलसंमिश्रंप्रदद्याद्दर्भसंस्तरे ।

वाराहांत—“प्रेताच्या नामगोत्रांनं पिंडाचा संकल्प करून पूर्वाह्नीच स्थंडिलाचे ठायीं प्रेताला भाग (पिंड) द्यावा.”
मरीचि—“ज्ञान करून खच्छ होऊन ईशान्यदिशेस चरु शिजवून दर्भ व मंत्रवर्जित असा प्रेतपिंड बाहेर द्यावा.” दर्भ-
वर्जित सांगितला तो मौंजी न झालेल्याविषयी समजावा. कारण, “मौंजीसंस्कार न झालेल्यांस भूमीवर पिंड द्यावा. संस्कार
झालेल्यांस कुशांवर पिंड द्यावा” असें प्रचेतसाचें वचन आहे. मिताक्षरेंत स्मृत्यंतरांत—“भूमीवर किंवा दगडावर
पुष्प, पिंड व पाणी द्यावें.” हारीत—“चूडाकरण न झालेले बालक, गर्भापासून गळालेले, मुंज झाल्यावांचून मृत, विवाह
न झालेल्या कन्या, व जे संस्कार झाल्यावांचून मृत त्यांना भूमीवर पिंडादि देतात.” पैटीनसि—“तांदुळांचे पिठाचे
किंवा पिण्याकाचे (तिलकुटाचे ही) पिंड द्यावे.” शुनःपुच्छ—“फलें, मूळें, दूध, शाक, गूळ यांचा पिंड तिलमिश्र करून
दक्षिणेकडे दर्भावर द्यावा. उदक, पुष्प, धूप, दीप हे मंत्ररहित द्यावे. शालींच्या पिठाचे अवघा शाकांचे पिंड द्यावे. प्रथम
दिवशीं पिंडांचें जें द्रव्य असेल तेंच द्रव्य दहा दिवस असावें.” मदनरत्नांत मात्स्यं—“ताम्रादि धातूंचें किंवा दारूचें
पात्र उत्तम शुद्ध करून लौकिकामीवर चढवून त्यांत अन्न पचन करून त्यांत घृत घालून नंतर ज्ञान करून त्याचा तिलमिश्र
पिंड दर्भमुष्टीवर द्यावा.”

शुद्धितत्त्वेदेवजानीयेच ब्राह्मे प्रथमेहनियोदद्यात्प्रेतायाभंसमाहितः अन्नंनवसुचान्येपुसएवप्रवृ-
दात्यपि मृन्मयंभांडमादायनवंस्नातःमुसंयतः तंडुलप्रसृतिंतत्रत्रिःप्रक्षाल्यपचेत्स्वयं सपवित्रैस्त्रिलैर्मिंशंकुमि-
केशविवर्जितं द्वारोपांतततःक्षिप्वाशुद्धावागौरमृत्तिकां भूपृष्ठेसंस्तरेदर्भान्याम्याप्रान्देशसंभवान् ततोऽवनेजनं
दद्यात्संस्मरन्गोत्रनामनी तिलसर्पिर्मधुक्षीरैःसंसिक्तंतप्तमेवहि दद्यात्प्रेतायपिंडंतुदक्षिणाभिमुखःस्थितः अयैः
पुष्पैस्तथाधूपैर्दीपैस्तोयैश्चश्रीतलैः ऊर्णांतंतुमयैःशुद्धैर्वासोभिःपिंडमर्चयेत् दिवसेदिवसेदेयःपिंडएवंक्रमेणतु
सद्यःशौचेप्रदातव्याःसर्वेपियुगपत्तथा त्र्यहाशौचेपिदातव्यास्त्रयःपिंडाःसमाहितैः द्वितीयेचतुरोदद्यादस्थिसं-
चयनंतथा त्रींस्तुदद्यात्तृतीयेह्विक्त्वादिक्षालयेत्ततः दशाहेपिचदातव्यःप्रथमेत्वेकएवहि एकस्तोयांजलिस्त्वेवं-
पात्रमेकंचदीयते द्वितीयेद्वौतृतीयेत्रीनित्याद्युक्त्वा एवंस्युःपंचपंचाशस्तोयस्यांजलयःक्रमात् तोयपात्राणिता-
वंतिसंयुक्तानितिलादिभिरिति पात्रंकुंभः अत्राहःपदमहोरात्रपरं तेनरात्रावपिदेयइतिगौडाः. दिवसपदा-
द्रात्रौनेतिमैथिलाः सएवेत्युक्तेः सपिंडेनदशपिंडेप्रक्रांतेपुत्रागमेपिसनदद्यात् असगोत्रःसगोत्रोवेतिप्रा-
गुक्तेः दाहकर्तैवदशाहंकुर्यादितिमिताक्षरायां शुद्धितत्त्वेवायवीयेपि असगोत्रःसगोत्रोवायविक्षी-
यदिवापुमान् यश्चाग्निदाताप्रेतस्यपिंडंदद्यात्सएवहीति तत्रैव पूरणेतुपिंडेनदेहोनिष्पद्येततः कृतस्वकरणा
योगात्पुनर्नावर्ततेक्रिया शुद्धिप्रकाशेवायवीयेपि निवर्तयतियोमोहात्क्रियामन्यनिवर्तिताम् विधिप्रस-
नभवतिपितृहाचोपजायते तस्मात्प्रेतक्रियायेनकेनापिचकृतायदि नतानिवर्तयेत्प्राज्ञःसतांधर्ममनुस्मरन्निशि
आदिपुराणे पितृशब्दंस्वधांचैवचनप्रयुंजीतकर्हिचित् अनुशब्दंतथाचेहप्रयत्नेनविवर्जयेत् उपतिष्ठतामयंपिंडः
प्रेतायेतिसमुच्चरेत् क्रियानिबंधे व्यासः प्रेतायपिंडंदत्वातुततोभ्रीयादिनात्यये भविष्ये ओषनाभि-
षसक्तूनांशाकमूलफलादिषु प्रथमेहनियदद्यात्तदद्यादुत्तरेहनि गृहद्वारिश्मशनेवातीर्थेदेवगृहेपिवा ब्राह्मे-
दीयतेपिंडस्तत्रसर्वसमापयेत् ।

शुद्धितत्त्वांत व देवजानीयांत ब्राह्मांत—“प्रथम दिवशीं प्रेताला जो मनुष्य अन्न देईल त्यानेंच इतर नऊ दिवस अन्न (पिंडादि) यावें. ज्ञान करून नियमित होऊन मातीचें भांडें नवें घेऊन त्यांत एक पसा तांदूळ तीन वेळां धुवून स्वतः (कर्त्यानें) शिजवावे. त्यांत कृमि व केश असूं नयेत. व पवित्रकें आणि तिल असावेत. तदनंतर घराच्या द्वारदेशांत शुद्ध माती किंवा गौर माती (गोपीचंदन) भुईवर ठेऊन तिजवर दक्षिणेकडे अग्रे केलेले आपल्या देशांत उत्पन्न असे दर्भ ठेऊन नंतर मृताचे गोत्रनांवाचें स्मरण करून दक्षिणदिशेच्या समोर राहून पाद्योदक यावें. तिल, तूप, मध व दूध यांनीं मिश्रित असा ऊनऊन पिंड करून तो प्रेताला द्यावा. नंतर अर्घ्ये, पुष्पे, धूप, दीप, शीत उदक, आणि शुद्ध अशीं ऊर्णावस्त्रे यांनीं पिंडाची पूजा करावी. या क्रमानें प्रतिदिवशीं पिंड द्यावा. सवःशौचांत सारेही पिंड एकदम द्यावे. तीन दिवसांचे आशौचांत पहिल्या दिवशीं तीन पिंड द्यावे. दुसऱ्या दिवशीं चार द्यावे. आणि अस्थिस्त्रयन श्राद्धही करावें. तिसऱ्या दिवशीं तीन पिंड द्यावे. नंतर वस्त्रादिकांचें क्षालन करावें. दहा दिवसांचे आशौचांत प्रथमदिवशीं एकच पिंड द्यावा. तसाच एक उदकांजलि द्यावा. व एक पात्र द्यावें. दुसऱ्या दिवशीं दोन उदकांजलि, तिसऱ्या दिवशीं तीन उदकांजलि, ‘असें सांगून’ अनुक्रमानें उदकांजलि एकंदर पंचावन्न होतात. तितकींच उदकाचीं पात्रे तिलादिकांनीं युक्त अशीं द्यावीं.” येथे पात्रे म्हणजे कुंभ समजावे. ह्या वरील वचनांत ‘अहः’ हें पद दिवसरात्रीचें बोधक आहे, म्हणून रात्रीं देखील द्यावा, असें गौड सांगतात. वरील वचनांत ‘दिवसे दिवसे’ असें आहे, म्हणून रात्रीं देऊं नये, असें मैथिल सांगतात. ह्या वरील वचनांत ‘पहिल्या दिवशीं देईल त्यानेंच इतर नऊदिवस द्यावें’ असें सांगितल्यावरून सर्पिंड पुरुषांनं दशाह पिंड देण्यास आरंभ केला असतां नंतर पुत्र आला तरी त्या पुत्रानें देऊं नये. कारण, ‘असगोत्र किंवा सगोत्र असेल त्यानेंच द्यावे’ असें पूर्वी (अन्यकर्मारंभीं गृह्यपरिशिष्टवचन) सांगितलें आहे. दहाकर्त्यानेंच दशाहकर्म करावें, असें मिताक्षरेंत सांगितलें आहे. **शुद्धितत्त्वांत वायवीयांतही**—“असगोत्रांतील किंवा सगोत्रांतील, स्त्री असो किंवा पुरुष असो जो प्रेताला अग्नि देईल त्यानेंच प्रेताला पिंडही द्यावे.” तेथेंच—“ज्या कारणास्तव पूरकपिंडानें देह निष्पन्न होतो, एकदां केलेले पुनः करणें होत नाही, म्हणून कियेची आवृत्ति होत नाही.” **शुद्धिप्रकाशांत वायवीयांतही**—“जो मनुष्य अन्यानें केलेली क्रिया अविचारानें पुनः करितो त्या करण्यानें तो विधिघातक होतो व पितृघातकही होतो. तस्मात् कारणात् कोणीही क्रिया केली असली तरी संतांचा धर्म स्मरण करून ती क्रिया पुनः करूं नये.” **आदिपुराणांत**—“येथें ‘पितृ’ शब्द आणि ‘स्वधा’ शब्द यांचा कधीही उच्चार करूं नये. आणि ‘अनु’ शब्द प्रयत्नानें वर्ज्य करावा. ‘प्रेताय अयं पिंड उपतिष्ठत’ असा उच्चार करावा.” **क्रियानिबंधांत व्यास**—“प्रेताला पिंड देऊन नंतर दिवसाचे अंती भोजन करावें.” **भविष्यांत**—“भात, आमिष, सातू, शाक, मूळें, फलें, यांतील पहिल्या दिवशीं जें देईल तें पुढच्या दिवसांत द्यावें. घराच्या द्वारांत, अथवा श्मशानांत, किंवा तीर्थांचे ठिकाणीं किंवा देवाळयांत ज्या ठिकाणीं प्रथम दिवशीं पिंड दिला असेल त्या ठिकाणीं सर्वे दशाहकृत्य समाप्त करावें.”

ब्राह्मे शिरस्वाधेनपिंडेनप्रेतस्यक्रियतेसदा द्वितीयेनतुकर्णाक्षिनासिकाश्वसमासतः गलांसभुजवक्षांसितृतीयेनयथाक्रमं चतुर्थेनतुपिंडेननाभिलिंगगुदानिच जानुजंघेतथापादौपंचमेनतुसर्वदा सर्वमर्माणिपष्ठेनसप्तमेनतुनाडयः दंतलोमान्यष्टमेनवीर्यतुनवमेनच दशमेनतुपूर्णत्वंप्रप्ताक्षुद्विपर्ययइति **याज्ञवल्क्येनतु** पिंडयज्ञावृतादेयंप्रेतायात्रंदिनत्रयमित्युक्तं अत्रफलतारतम्यंज्ञेयमिति**विज्ञानेश्वरः** तेनत्रयहाशौचपरत्वंदेवयाज्ञिकोक्तंचित्यं आशौचस्यचह्रासेपिपिंडान्दद्याद्दशैवत्वितिवचनाच्च दिनत्रयावश्यकत्वार्थमिति**हारलतादयः ।**

ब्राह्मांत—“पहिल्या पिंडानें प्रेताचें मस्तक उत्पन्न होतें. दुसऱ्या पिंडानें कान, डोळे, व नाक हीं नियमानें होतात. तिसऱ्या पिंडानें गळा, स्कंध, भुज, आणि वक्षस्थळ हीं उत्पन्न होतात. चवथ्या पिंडानें नाभि, लिंग व गुद हीं होतात. पांचव्या पिंडानें गुडघे, जांघा आणि पाय हे होतात. सहाव्या पिंडानें शरीरांतील सारीं मर्मे उत्पन्न होतात. सातव्या पिंडानें नाडी होतात. आठव्या पिंडानें दांत व लोम होतात. नवव्या पिंडानें वीर्य (शुक्र) उत्पन्न होतें. दहाव्या पिंडानें सर्वे परिपूर्णता, तृप्ति, भुधा व भुधानाश हीं होतात.” **याज्ञवल्क्यानें** तर—“पिंडयज्ञाच्या रीतीनें प्रेताला तीन दिवस अन्न द्यावें” असें सांगितलें आहे. ह्या वचनांत फलाचें तारतम्य जाणवें, म्हणजे अधिक दिवस दिलें असतां अधिक फल अल्पदिवस दिलें असतां अल्पफल, असें **विज्ञानेश्वर** सांगतो. अर्थात् हें वचन पिंडातिरिक्त अन्नविषयक आहे. तेणेंकरून, तीन दिवसांचे आशौचाविषयीं हें वचन आहे, असें **देवयाज्ञिकानें** सांगितलें तें चित्य (युक्तिशून्य) आहे. आणि “आशौच कमी झालें तरी पिंड दहाच द्यावे” असेंही वचन आहे. याज्ञवल्क्यवचनांत दहा पिंड द्यावे, असें नाही, म्हणून दशाहाशौच विषयक म्हणतां येत नाही. तीन दिवस अन्न अवश्य द्यावें, असें सांगण्याकरितां हें वचन आहे, असें **हारलता** इत्यादि ग्रंथकार सांगतात.

शातातपः जलमेकाहमाकाशेऽप्यंक्षीरंचमृन्मये **पारस्करः** मृन्मयेतारांक्षीरोदकेविहायसिनि-
दध्युः प्रेतात्रस्नाहीत्युदकं पिबचेदमिति क्षीरं इदं रात्रावेवेति **गौडाः** गारुडे तु अपके मृन्मये पात्रे दुग्धं दद्या-
दिनत्रयमित्युक्तं **हेमाद्रौ** पात्रे तु दशाहमुक्तं तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयोजलं सर्वतापोपशान्त्यर्थमध्व-
श्रमविनाशनं **देवजानीये** कारिकायां तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखंडितं कुर्यात्पदीपंतैलेन वारिपात्रंच
मार्तिकं भोज्याद्भोजनकाले तु भक्तमुष्टिचनिर्वपेत् नामगोत्रेण संबुद्ध्या धारित्र्यां पितृयज्ञवत् **शातातपः**
भूलोकात् प्रेतलोके तु गंतुं श्राद्धं समाचरेत् तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य तु ।

शातातपः—“एक दिवस उदक आकाशांत ठेवावें, आणि दूध मातीच्या भांड्यांत ठेवावें.” **पारस्कर**—त्या पहिल्या
रात्री मातीच्या पात्रांत दूध व पाणी आकाशांत ठेवावें. तें असें—‘प्रेत, अप्र ज्ञाहि’ असें म्हणून उदक ठेवावें. ‘पिब चेदं’
असें म्हणून दूध ठेवावें.” हें रात्रीच ठेवावें, असें **गौड** सांगतात. **गारुडपुराणांत** तर—“अपक्क अशा मातीच्या पात्रांत
तीन दिवस दूध यावें” असें सांगितलें आहे. **हेमाद्रौ** न **पात्रांत** तर दहा दिवस ठेवावें, असें सांगितलें आहे—“तस्मात्
कारणात् सर्वे तापाच्या शांतीकरितां व मार्गध्रमनाशाकरितां दहा दिवस अखंडित तेलचा दीप करावा, आणि उदकपात्र मातीचें
ठेवावें. आणि भोजनकालीं अज्ञात मूठभर भात घेऊन त्या प्रेताचे नामगोत्राचा संबुद्धीने उच्चार करून भूमीवर पितृयज्ञा-
प्रमाणं यावा.” **शातातपः**—“मृत झालेल्या मनुष्याला भूलोकापासून प्रेतलोकास जाण्याकरितां श्राद्ध करावें, तें त्यास
पाथेय (मार्गांत प्राप्त) होतें.”

अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः भविष्ये प्रवृत्ताशौचतंत्रस्तुयदिदर्शप्रपद्यते समाप्यचोदकं-
पिंडान्स्नानमात्रं समाचरेत् **ऋष्यशृंगः** आशौचमंतरादर्शोयदित्यात्सर्ववर्णिनां समाप्तिप्रेततंत्रस्य कुर्यादि-
त्याह गौतमः. **पैठीनसिः** आशौचादेवकर्तव्याप्रेतपिंडोदकक्रिया द्विर्देवतुर्कुर्वाणः पुनः शावंसमभुते माता-
पित्रोस्तु **श्लोकगौतमः** अंतर्दशाहदर्शश्चेत्तत्र सर्वसमापयेत् पित्रोस्तु यावदाशौचं दशापिंडाञ्जलाञ्जलीन्
इदमपि त्र्यहमध्ये दर्शपाते तदूर्ध्वदर्शेतु पित्रोरपितंत्रं समाप्यमेव पित्रोराशौचमध्ये तु यदिदर्शः समापतेत् ताव-
देवोत्तरतंत्रं पर्यवस्ये त्र्यहात्परमिति **गालवोक्तेः** अन्येषां तु त्र्यहमध्ये पिसमाप्तिरिति **पराशरमाधवीये-**
निर्णयामृते चोक्तं **कालादर्शे** पि दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वतंत्रं समापयेत् त्रिरात्रादुत्तरपित्रोश्चैताविति-
विनिश्चयः **मदनपारिजाते** तु गालवीयमापदनौरसपुत्रादिविषयं त्र्यहोर्ध्वमपि पित्रोर्न तंत्रं समाप्तिरित्युक्तं
मदनरत्ने प्येवं मम तु देशाचारात्प्रवस्येति प्रतिभाति ।

आतां दहा दिवसांमध्ये दर्श प्राप्त असतां निर्णय सांगतो—

भविष्यांत—“आशौचांतील कर्मांला आरंभ केला असून जर मध्ये दर्श प्राप्त होईल तर दहा दिवसांचें उदक व पिंड
यांची समाप्ति करून स्नान मात्र दहाव्या दिवसानंतर करावें.” **ऋष्यशृंगः**—“ब्राह्मणादि सर्व वर्णांना आशौचामध्ये जर दर्श
प्राप्त होईल तर प्रेतकृत्याची समाप्ति करावी, असें गौतम सांगतो.” **पैठीनसिः**—“पहिल्या चंद्रांतच (मृत झाल्यावेळीं जो
चंद्र होता तो आहे तोपर्यंतच) प्रेताची पिंड-उदकदान क्रिया करावी. दोन चंद्रांत जो प्रेतक्रिया करितो त्याला पुनः मृता-
शौच प्राप्त होतें.” मातापित्याविषयी तर सांगतो **श्लोकगौतमः**—“आशौचाचे दहा दिवसांचे आंत जर दर्श प्राप्त होईल
तर त्या दिवशीं सर्वे प्रेतकृत्य समाप्त करावें. मातापितरांचें तर जोपर्यंत आशौच असेल तोपर्यंत पिंड आणि उदकांजलि
यावे.” या वचनांत दर्शानंतरही पिंड सांगितले, हेंही तीन दिवसांचे आंत दर्श पडला असतां समजावें. तीन दिवसांनंतर
दर्श पडेल तर मातापितरांचेंही प्रेततंत्र समाप्त करावेंच. कारण, “मातापितरांच्या आशौचामध्ये जर दर्श पडेल व तीन
दिवस होऊन गेले असतील तर तितक्यांतच पुढची क्रिया समाप्त करावी.” असें **गालववचन** आहे. माता व पिता
यांचाचून इतरांची क्रिया तर तीन दिवसांमध्येही समाप्त करावी, असें **पराशरमाधवीयांत** आणि **निर्णयामृतांत**
सांगितले आहे. **कालादर्शांतही**—“दहा दिवसांमध्ये दर्श असेल तर पुढचें तंत्र समाप्त करावें. मातापितरांचे मरणविषयी
तीन दिवसांनंतर दर्श पडेल तर पुढच्या तंत्राची समाप्ति करावी, असा शास्त्रनिश्चय आहे.” **मदनपारिजातांत** तर—तीन
दिवसांपुढें दर्श पडेल तर मातापितरांचे तंत्राची समाप्ति करावी, असें जें गालवानें सांगितलें तें आपत्काल—औरसव्यतिरिक्त
पुत्र इत्यादिविषयक आहे. तर तीन दिवसांपुढेंही दर्श पडला तरी मातापितरांचे तंत्राची समाप्ति होत नाही, असें सांगितलें
आहे. **मदनरत्नांतही** असेंच आहे. मग तर देशाचाराप्रमाणें व्यवस्था करावी, असें वाटतें.

अथास्थिसंचयः तत्राश्वलायनेनचकृष्णपक्षेएकादशीत्रयोदशीदर्शेषुअषाढाफल्गुनीप्रोष्ठपदाभिन्नक्षेत्रे-
उक्तं तदाशौचमध्येऽसंभवेतदूर्ध्वचप्रागव्दात्करणेज्ञेयं आशौचमध्येतुमदनरत्नेसंचयः प्रथमेहि तृतीयेवा-
सप्तमेनवमेतथा अस्थिसंचयनंकार्यंदिनेतद्गोत्रजैःसह छंदोगपरिशिष्टेउ अपरेगुप्तृतीयेवाअस्थिसंचयनं
भवेदिति द्वितीयेप्युक्तं विष्णुकात्यायनौ संचयनंचतुर्ध्यामिति माधवीयेयमः भौमार्कमंदवारेपुति-
थियुग्मेविवर्जयेत् वर्जयेदेकपादक्षेत्रद्विपादक्षेत्रस्थिसंचयं प्रदातृजन्मनक्षत्रेत्रिपादक्षेत्रविशेषतः ब्राह्मे चतुर्थे
ब्राह्मणानांतुपंचमेहनिभूभृतां नवमेवैश्यजातीनांशूद्राणां दशमात्परं दशमेहनीतिवापाठः शौनकः पला-
शेष्वस्थिदाहैचसद्यःसंचयनंभवेत् काम्यमरणेतुतस्यत्रिरात्रमाशौचम् द्वितीयेत्वस्थिसंचयइत्युक्तं अंगिराः
प्रेतीभूतंतथोद्दिश्ययःशुचिर्नकरोतिचेत् देवतानांतुयजनंतंशंपत्यथदेवताः तद्विधिःस्वस्वसूत्रेभट्टकृतौचक्षेयः

आतां अस्थिसंचय सांगतो—

तं अस्थिसंचयन आश्वलायनानं—कृष्णपक्षांत एकादशी, त्रयोदशी व दर्श यांचे ठायीं पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा,
पूर्वा फल्गुनी, उत्तरा फल्गुनी, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा ह्यावांचून इतर नक्षत्रांवर करावें, असें सांगितलें आहे, तें
आशौचामध्ये असंभव असतां आशौचानंतर वर्षाच्या आंत करणें असेल तर समजावें. आशौचामध्ये तर सांगतो मदन-
रक्षांत संवर्त—प्रथम दिवशीं (दाह केलेल्या दिवशीं) किंवा तिसऱ्या दिवशीं अथवा सातव्या व नवव्या दिवशीं दिवसा
गोत्रजांसह अस्थिसंचयन करावें.” छंदोगपरिशिष्टांत तर—“दुसऱ्या दिवशीं किंवा तिसऱ्या दिवशीं अस्थिसंचयन होतें”
असें दुसऱ्या दिवशीं देखील सांगितलें आहे. विष्णु व कात्यायन—संचयन चवथ्या दिवशीं असें सांगतात. माधवीयांत
यम—“भौम, रवि, मंद ह्या वारीं; आणि युगमतिथीस अस्थिसंचयन वर्ज्य करावें. एकपाद व द्विपाद नक्षत्रांवर अस्थिसंचयन
वर्ज्य करावें. कर्त्याच्या जन्मनक्षत्रावर व त्रिपादनक्षत्रावर विशेषकरून वर्ज्य करावें.” ब्राह्मांत—चवथ्या दिवशीं ब्राह्मणांचें
अस्थिसंचयन करावें. पांचव्या दिवशीं राजांचें करावें. वैश्यांचें नवव्या दिवशीं करावें. आणि शूद्रांचें अस्थिसंचयन दहाव्या
दिवसाच्या पुढें करावें” अथवा दहाव्या दिवशीं करावें, असें पाठांतर आहे. शौनक—“पणशरदाह आणि अस्थिदाह असतां
सद्यः (तत्काळीं) अस्थिसंचयन होतें.” काम्य मरण असेल तर त्याचें तीन दिवस आशौच आणि दुसऱ्या दिवशीं अस्थि-
संचयन; असें सांगितलें आहे. अंगिरा—“जो मनुष्य शुचि असून प्रेताच्या उद्देशंकरून देवतांचें यजन करीत नाही त्याला
देवता शाप देतात.” त्याचा विधि आपापल्या सूत्रांत व भट्टांनीं केलेल्या अंशेष्टिपद्धतींत जाणावा.

हेमाद्रौनागरखंडे त्रीणिसंचयनस्यार्थेतानिवैशृणुसांप्रतं यत्रस्थानेभवेन्मृत्युस्तत्राहंप्रकल्पयेत् ए-
कोद्दिष्टततोमार्गेविश्रामोयत्रकारितः ततःसंचयनस्यार्थेतृतीयंश्राद्धमिष्यते अपराकैमदनरत्नेचब्राह्मे
सद्यःशौचेतथैकाहसद्यःसंचयनंभवेत् त्र्यहशौचेतृतीयेहिकर्तव्यस्त्वस्थिसंचयः तत्रैव श्मशानदेवतायागं
चतुर्थेदिवसेचरेत् मृन्मयेषुचभांडेषुपुंकेषुवा सुपकैर्मक्ष्यभोज्यैश्चपायसैःपानकैस्तथा फलैर्मूलैर्वनो-
स्थैश्चपूज्याःकव्याददेवताः धूपोदीपस्तथामाल्यमर्घ्यदेयंत्वराग्नितैः तत्रपात्राणिपूर्णानिश्मशानाग्नेःसमंततः
निवेदयद्भिर्वक्तव्यतैःसर्वैरनहंकृतैः नमःकव्यादमुख्येभ्योदेवेभ्यइतिसर्वदा येत्रश्मशानेदेवाःस्युर्भगवंतः
सनातनाः तेस्मत्सकाशाद्रुहंतुबलिमष्टांगमक्षयं प्रेतस्यास्यशुभांल्लोकान्प्रयच्छंतुचशश्वतान् अस्माकमायुरा-
रोग्यंसुखंचददतांचिरं एवंकृत्वाबलीन्सर्वान्क्षीरेणाभ्युक्ष्यवाग्यतः एवंदत्त्वाबलित्वैवदद्यात्पिंडत्रयंबुधः एकं
श्मशानबासिभ्यःप्रेतायैवतुमध्यमं तृतीयंतत्सखिभ्यश्चदक्षिणासंस्थमादरात् ततोयज्ञियवृक्षोत्थांशाखामादा-
यवाग्यतः प्रेतस्यास्थिनिगृह्णातिप्रधानांगोद्भवानिच शिरसोवक्षसःपाण्योःपार्श्वीभ्यांचैवपादतः पंचगव्येन
संस्त्राप्यक्षौमवस्त्रेणवेष्थच प्रक्षिप्यमृन्मयेभांडेनवेसाच्छादनेशुभे अरण्येवृक्षमूलेवाशुद्धेसंस्थापयत्यपि गृही-
त्वास्थीनितद्भस्मनीत्वातोयेविनिक्षिपेत् ततःसंमार्जनंभूमेःकर्तव्यंगोमयांबुभिः पूजांचपुष्पधूपार्चैर्बलिभिः
पूर्ववत्कमादिति ।

हेमाद्रौत नागरखंडांत—“अस्थिसंचयनाकरितां तीन श्राद्धे सांगतीं तीं एक ! ज्या स्थानीं मरण होईल तेथें श्राद्ध
एकोद्दिष्ट करावें. तदनंतर मार्गामध्ये जेथें विश्रांति घेतली असेल तेथें एकोद्दिष्ट करावें. तदनंतर अस्थिसंचयनाकरितां तिसरें
श्राद्ध करावें.” अपराकांत व मदनरक्षांत ब्राह्मांत—“सद्यःशौचांत न एक दिवसाचे आशौचांत सद्यः अस्थिसंचयन

होतें. तीन दिवसांचे आशौचांत तिसऱ्या दिवशीं अस्थिसंचयन करावें.” तेथेंच—“श्मशानांतील देवर्तांचा याग (बलिदानादि) मातीच्या भांड्यांत किंवा रुक्क कुंभांत चैवथ्या दिवशीं करावा. तो असा—लाडू, भात, पायस, पन्हीं, वनांतील फळें, मूळें यांनीं राक्षस देवतांची पूजा करावी. धूप, दीप, पुष्प, अर्घ्य हीं लवेंनें द्यावीं. त्या ठिकाणीं वरील पदार्थांनीं भरलेलीं मातीचीं बगैरे पात्रें श्मशानांमधीच्या आसमंताद्वागीं सर्वांनीं (पुत्रादिकांनीं) निषेदन करून अहंकाररहित होऊन पुढील प्रार्थनावाक्य म्हणावें—तें असे—‘नमः कव्यादमुख्येभ्यो देवेभ्य इति सर्वदा । येऽत्र श्मशानो देवाः स्युर्मंगवतः सनातनाः । तेऽस्मत्संकाशात् गृहंतु बलिमष्टांगमश्नय । प्रेतस्यास्य शुभान् लोकान् प्रयच्छंतु च शाश्वतान् । अस्माकमायुरारोग्यं सुखं च हृदयं चिरं ।’ याप्रमाणें प्रार्थना करून सर्व बलींवर दूध घालून वाणीचें नियमन करून बलि देऊन तीन पिंड द्यावे. ते असे—एक पिंड श्मशानवासियांना द्यावा. प्रेताला मध्यम (दुसरा) पिंड द्यावा. तिसरा पिंड प्रेतसखीळा द्यावा. हे उत्तरेकडून दक्षिणेकडे अनुक्रमें देत जावे. तदनंतर यज्ञिय (उंबर, पळस इत्यादि) वृक्षांची शाखा घेऊन प्रेतांच्या प्रधान अंगांच्या अस्थि घ्याव्या, त्या अशा—मस्तकाच्या, वक्षस्थलाच्या, हाताच्या, वरगड्यांच्या, व पायांच्या घ्याव्या. त्या अस्थि पंचाग्यानें धुवून रक्षामी वृक्षानें वेष्टून मातीच्या नव्या चांगल्या भांड्यांत ठेऊन त्याच्यावर आच्छादन घालून अरण्यांत किंवा वृक्षाच्या बुंधांत चांगल्या शुद्ध जागेवर पुरून ठेवाव्या. इतर अस्थि व त्या ठिकाणाची राख भरून पाण्यांत नेऊन टाकावी. तदनंतर गोमय व उदक यांनीं ती भूमी सारवून टाकावी. तदनंतर पुष्प, धूप इत्यादि उपचारांनीं व बलींनीं पूर्वीप्रमाणें अनुक्रमें पूजाही करावी.”

अथतीर्थस्थिप्रक्षेपविधिः तत्रैव तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वाकदाचिज्जाह्नवीजले कश्चिच्छिपतिसत्पुत्रो दौहित्रोवासहोदरः मातृकुलपितृकुलवर्जयित्वानराधमः अस्थिन्यन्यकुलस्थस्यनीत्वाचांद्रायणंचरेत् तत्रैव ब्रह्मांडपुराणे अस्थिनिमातापितृपूर्वजानानयंतिगंगामपियेकथंचित् सद्वांधवस्यापिदयाभिभूतास्तेषांतुतीर्थानिफलप्रदानि स्नात्वाततःपंचगव्येनसिक्त्वाहिरण्यमध्वाज्यतिलैश्चयोज्य ततस्तुमृत्पिंडपुटेनिधायपश्य-
न्दिशंप्रेतगणोपरूढां नमोस्तुधर्मायवदेत्प्रविश्यजलंसमेप्रीतइतिक्षिपेच्च उत्थायभास्वंतमवेक्ष्यसूर्यसदक्षिणांविप्रमुखायदद्यात् एवंकृतेप्रेतपुरस्थितस्यस्वर्गगतिःस्यात्तुमहेंद्रतुल्या यमः गंगातोयेपुयस्यास्थिप्रक्षिप्यतेशुभकर्मणः नतस्यपुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनान् तथा अस्तंगतेगुरौशुक्रेतथामासेमलिम्लुचे गंगायामस्थिनिक्षेपंनकुर्यादितिगौतमः दशाहान्तर्नदोपः दशाहस्यांतरेयस्यगंगातोयेस्थिमज्जति गंगायांमरणयादृक्तादृक्फलमवाप्नुयादिति मदनरत्नेष्टुद्रमनूक्तेः ।

आतां तीर्थांत अस्थिप्रक्षेपाचा विधि सांगतो.

तेथेंच—“कोणी मनुष्य किंवा दौहित्र अथवा सहोदर भ्राता यांनीं त्या अस्थि ठेवलेल्या स्थानापासून घेऊन हळू हळू नेऊन भागीरथीच्या उदकांत कधीं तरी टाकाव्या. मातृकुल व पितृकुल वर्ज्य करून इतर कुलाच्या अस्थि कोणी मनुष्य नेईल तर त्या अधमांनं चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें.” तेथेंच ब्रह्मांडपुराणांत—“जे गंगेस माना, पिता व त्यांचे पूर्वज यांच्या अस्थि कशातरी (मोठ्या यत्नानें) नेतात, आणि दयायुक्त होऊन उत्तम बांधवांच्याही नेतात, त्यांना तीर्थे फल देणारी होतात. गंगेजवळ अस्थि नेल्यावर स्नान करून अस्थींवर पंचगव्य शिंपून सुवर्ण, मध, तूप व तिळ हे त्या अस्थीत मिळवून नंतर मातीचे गोळ्यांत त्या अस्थि ठेऊन दक्षिण दिशेकडे पहात उदकांत प्रवेश करून ‘नमोस्तु धर्माय, स मे प्रीतः’ असें म्हणून उदकांत अस्थि टाकाव्या. नंतर उदकांतून बाहेर येऊन सूर्याला पाहून ब्राह्मणश्रेष्ठांला दक्षिणा द्यावी. याप्रमाणें केलें असतां प्रेतनगरांत राहिलेला जो प्राणी त्याला स्वर्गांत इंद्रतुल्य गति (स्थान) मिळतें.” यम—“ज्या पुण्यावान् प्राण्याचे अस्थि गंगेच्या उदकांत टाकतात, त्या प्राण्याची सनातन ब्रह्मलोकापासून पुनः आवृत्ति (मागे येणें) होत नाही.” तसेंच—“गुरु व शुक्र यांचें अस्त असतां तसेंच मलमासांत गंगेच्या ठायीं अस्थि टाकूं नयेत, असें गौतम सांगतो.” दहा दिवसांचे आंत टाकण्याविषयी हा गुरुशुक्रास्तादि दोष नाही. कारण, “ज्यांचें अस्थि दहा दिवसांचे आंत गंगेउदकांत पडतें त्याला गंगेचेठायीं मरण आलें असतां जसें फळ तसें फळ मिळतें” असें मदनरत्नांत वृद्धमनूचें वचन आहे.

शौनकः शौनकोहंप्रवक्ष्यामिअस्थिप्रक्षेपविधिक्रमान् आदौग्रामाद्बहिर्गत्वास्नानं कुर्यात्सचैलकं प्रोक्षयेत्पंचगव्येनभुवंमंत्रैर्विचक्षणः गायत्र्याद्यैःपंचगव्यमंत्रैर्निखातास्थिभूमिप्रोक्षेदित्यर्थः उपसर्पोदिभिर्मंत्रैःप्रार्थनंखननंतथा मृत्तिकोद्धरणंचास्त्रांप्रहणंचयथाक्रमं उपसर्पेतिचतुर्भिर्मंत्रैःक्रमेणप्रार्थनादिद्वयं स्नात्वास्त्रिशुद्धिकुर्वीतएतोन्विद्वेतिस्मृतः शुद्धास्पृष्टाततःस्नानंपंचगव्येनशुध्यति दशस्नानानि कुर्वीततत्तन्मंत्रैर्विचक्षणः गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकं भस्ममृन्मधुबारीणिमंत्रतस्तानिवैदश कुशैःसंमार्जयेदस्थिन्यतोदेवेक्षि-

अतः एतोन्विद्रंशुचीवेतितनतमहृतीतिच पावमानीर्ममाप्रेचरुद्रसूक्तंयथाक्रमं एतैःकुशैर्मार्जनम् हेमश्राद्ध-
ततःकुर्यात्पितृनुदिश्ययत्नतः पिंडदानंप्रकुर्वीतततश्चतिलतर्पणं अस्थिक्षेपांगंचेदं अजिनकंबलादर्भगोकेशाः-
शाणमेवच भूर्जपत्रताडपत्रंसप्तधावेष्टनंस्मृतं हैमंचमौक्तिकंरौप्यंप्रवालंनीलकंतथा निक्षिपेदस्थिमध्येतुशुद्धि-
र्भवतिनान्यथा ततोहोमंप्रकुर्वीततिलाज्येनविचक्षणः उदीरेतेतिसूक्तेनहुनेदष्टोत्तरंशतं ततोगत्वाक्षिपेत्तीर्थ-
स्पर्शदोषोनविद्यते मूत्रंपुरीषाचमनंकुर्वन्नास्थीनिधारयेत् अत्रदशदानंवैतरणीऋणमोक्षपापधेनुदानमुक्तं दि-
वोदासीयेकाशीखंडे धनंजयोपिधर्मात्माभक्तिकपरायणः आदायास्थीन्यथोभामार्तुर्गंगामार्गस्थितोभ-
वन् पंचगव्येनसंस्नाप्यतथापंचामृतेनवै यक्षकर्मलेपेनक्षिप्त्वापुष्पैःप्रपूज्यच आवेष्टयनेत्रवस्त्रेणततःपट्टां-
रेणच ततःसुरसवस्त्रेणततोमांजिष्ठवाससा नेपालकंबलेनाथमृदाचाथविशुद्धया ताम्रसंपुटकंकृतवामातुरंगा-
न्यथोवहेत् व्यासः पट्टवस्त्रंकौशेयंमांजिष्ठंश्वेतवस्त्रकं कंबलंशाणपट्टंचअजिनंचतथोत्तरं एषांविकल्पः
अन्यश्चात्रविशेषस्त्रिस्थलीसेतौदिवोदासीयेचज्ञेयः संचयनोत्तरंश्राद्धमाहाश्वलायनः श्राद्धमस्मै-
दशुरिति स्मृत्यर्थसारेसंचयनेकृतेमनुष्यलोकात्प्रेतलोकंगच्छतःपाथेयश्राद्धमाभेनकार्यमिति अनुपनी-
तस्यनसंचयनं ।

शौनक-“मी शौनक अस्थि टाकण्याचा विधि अनुक्रमानें सांगतां-आधीं गांवाचे बाहेर जाऊन वस्त्रसहित स्नान करावें.
गायत्री इत्यादिक पंचगव्याच्या मंत्रांनीं पृथक् पंचगव्यानें अस्थि पुरून ठेवलेल्या भूमीचें प्रोक्षण करावें ‘उपमर्प०’ ह्या चार
मंत्रांनीं अनुक्रमानें भूमीची प्रार्थना, खणणें, माती उपसणें, आणि अस्थिप्रहण करणें हीं एक एक मंत्रांनीं करावीं. नंतर स्नान
करून अस्थींची शुद्धि करावी ती अशी-अस्थींना स्पर्श करून ‘एतोन्विद्रं.’ ह्या सूक्तानें पंचगव्येंकरून पुनः पुनः स्नान करावें.
नंतर पुनः स्पर्श करून स्पर्श करूनच त्या त्या मंत्रांनीं दशस्नानें करावीं. तीं अशीं-गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दही, घृत,
कुशोदक, भस्म, मृत्तिका, मध व शुद्धोदक यांनीं दहा स्नानें त्या त्या मंत्रांनीं करावीं. नंतर पुढच्या मंत्रांनीं अस्थींवर कुशांनीं
मार्जन करावें. ते मंत्र येणेंप्रमाणें-अतोदेवा. १ ऋचा, एतोन्विद्रं. ३ ऋ०, शुचीवो. ३ ऋ०, नतमंहो०१ सूक्त, इति वा
इति मे० १ सूक्त, स्वादिष्टया. १० ऋ०, ममाप्रेवर्चो. ९ ऋ०, कद्रुद्राय. ९ ऋ०, ह्या मंत्रांनीं कुशांनीं मार्जन करावें. तदनंतर
ज्याच्या अस्थी असतील त्याच्या उद्देशानें हिरण्यश्राद्ध करावें. पिंडदान करून तिलतर्पण करावें.” हें श्राद्ध अस्थिप्रक्षेपाचें
अंगभूत आहे. “अजिन, कंबल, दर्भ, गोकेश, तागाचें वस्त्र, भूर्जपत्र, ताडपत्र, यांनीं अस्थींवर सात वेष्टनं करावीं. सोनें,
मोती, रुपें, प्रवाल, नीलमणि हीं अस्थींमध्यें घालावीं, म्हणजे अस्थींची शुद्धि होते, यावांचून शुद्धि होत नाही. तदनंतर
‘उदीरतां.’ ह्या सूक्तानें तिलघृताहुतींचा अष्टोत्तरशतसंख्याक होम करावा. तदनंतर अस्थि घेऊन जाऊन तीर्थांत टाकाव्या,
म्हणजे स्पर्शदोष नाही. मूत्र, पुरीष, आचमन करतेवेळीं अस्थि जवळ घेऊं नयेत.” येथें दशदानें, वैतरणी, ऋणधेनु,
मोक्षधेनु, पापधेनु यांचीं दानें सांगितलीं आहेत. दिवोदासीयांत काशीखंडांत-“धर्मात्मा असा धनंजयही मातेच्या
भक्तीविषयीं तत्पर होतसाता मातेच्या अस्थि घेऊन गंगेच्या मार्गास गेला. त्या वेळीं त्यानें पंचगव्यानें व पंचामृतानें अस्थि
धुवून यक्षकर्ममात्रा लेप करून फुलांनीं पूजा करून सूक्ष्मवस्त्रानें वेष्टन करून नंतर पट्टवस्त्रानें, नंतर सुरसवस्त्रानें, नंतर
मंजिष्ठेनें रंगविलेल्या वस्त्रानें, नंतर शालवस्त्रानें वेष्टन करून नंतर शुद्ध माती वर लावून तांब्याच्या संपुष्टांत त्या अस्थि
ठेवून त्या मातेच्या अस्थि वाहता झाला.” व्यास-“पट्टवस्त्र (पाटाव), रेशमीवस्त्र, मंजिष्ठेनें रंगविलेलें वस्त्र, शुभ्रवस्त्र,
धाबळी, तागाचें वस्त्र, आणि शेवटीं कृष्णजिन, यांनीं वेष्टन करावें.” यांचा विकल्प समजावा. येथें इतर विशेष त्रिस्थली-
सेतूत आणि दिवोदासीयांत जाणावा. अस्थिसंचयनोत्तरं श्राद्ध सांगतो आश्वलायन-“ज्याचें अस्थिसंचयन असेल
त्याला श्राद्ध यावें.” स्मृत्यर्थसारांत-संचयन केलें असतां मनुष्यलोकापासून प्रेतलोकास जाणाऱ्या प्राण्याला पाथेयश्राद्ध
आमात्रानें करावें, असें सांगितलें आहे. मुंज न झालेल्याचें संचयन नाही.

अथनवश्राद्धं पृथ्वीचंद्रोदयंगिराः प्रथमेह्निवृत्तीयेचपंचमेसप्तमेतथा नवमैकादशेचैवतन्नावश्राद्ध-
मुच्यते शिवस्वामी नवश्राद्धानिपंचाहुराश्वलायनशाखिनः आपस्तंबाःषडित्याहुर्विभाषात्विचारेषुहि पंच-
एकादशाहिकंविना मरणाद्विषमेषुदिनेष्वेकैकंनवश्राद्धंकुर्यादानवमाद्यदिनवमंविच्छिद्येतैकादशेतत्कुर्यादिति
मदनरत्नेषौधायनोक्तेः अविद्ये नवसप्तविंशाराज्ञानवश्राद्धान्यनुक्रमात् आद्यंतयोर्वर्णयोस्तुषडित्या-
हुर्महर्षयः हेमाद्रौषुद्धसिद्धः अलब्धवातुनवश्राद्धंप्रेतत्वाभैवमुच्यते अर्वाक्तुद्वादशाहस्यलब्धवातरति-
दुष्कृतं अतःपदेव एतान्येषविषमश्राद्धानीत्युच्यते नागरखंडेऽतु पंचमेसप्तमेतद्वद्वमेनवमेतथा दशमै-

कादशेचैवनवश्राद्धानितानिचेत्युक्तं कात्यायनस्तु चतुर्थेपंचमेचैवनवमैकादशे तथा यद्यप्रदीयतेजंतोस्त-
न्नवश्राद्धमुच्यते प्रथमेसप्तमेचैवेत्याद्यपादेऽन्यासपाठः बहुचानांतु नवश्राद्धं दशाहानिनवमिभंतुषड्भक्तुनि-
त्युक्तं नारायणवृत्तौ दीपिकायां अथतनुयादाद्येचतुर्थेदिनेश्राद्धपंचमसप्तमाष्टनवदिपुत्रेषुयुग्मद्विजैः
प्रथमेह्नितृतीयेह्निपंचसप्तनवस्वपि द्वौद्वौपिंडौप्रदातव्यौशेषेष्वेकंतुविन्यसेत् एकोविषमश्राद्धेवयवपिंडमैक-
इतिद्रावित्यर्थः अत्रशाखाभेदाद्व्यवस्था ।

आतां नवश्राद्ध सांगतो—

पृथ्वीचंद्रोदयांत अंगिरा—“पहिल्या दिवशीं, तिसऱ्या, पांचव्या, सातव्या, नवव्या आणि अकराव्या दिवशीं
करावयाचें श्राद्ध तें नवश्राद्ध म्हणलें आहे.” शिवस्वामी—“आश्वलायनशास्त्री नवश्राद्धें पांच सांगतात. आपस्तंबशास्त्री
नवश्राद्धें सहा सांगतात. इतर शास्त्रीयांना पांच किंवा सहा असा विकल्प समजावा.” पांच सांगितलीं तीं अकराव्या दिवसाचें
वर्ज्य करून समजावीं. कारण, “मरणदिवसापासून नवव्या दिवसापर्यंत विषम दिवसांचेठायीं एक एक नवश्राद्ध करावें, जर
नवव्या दिवशीं श्राद्ध होणार नाही तर तें अकराव्या दिवशीं करावें” असें मदनरक्षांत बोधायनवचन आहे. भविष्यांत—
“वैश्यांचीं नवश्राद्धें नऊ होतात. क्षत्रियांचीं सात होतात. ब्राह्मणांचीं व शूद्रांचीं नवश्राद्धें सहा होतात, असें महर्षि
सांगतात.” हेमाद्रींत बृहद्वसिष्ठ—“प्रेताला नवश्राद्ध मिळालें नाही तर तो प्रेतत्वापासून मुक्त होत नाही. बाराव्या
दिवसाचे आंत नवश्राद्ध मिळालें म्हणजे तो प्राणी दुष्कृत तरून जातो.” ह्या वचनावरून सहाच नवश्राद्ध होतात. हीच
विषमश्राद्धें म्हणली आहेत. नागरखंडांत तर—“पांचव्या, सातव्या, आठव्या, नवव्या, दहाव्या आणि अकराव्या दिवशीं
होतात तीं नवश्राद्धें होत” असें सांगितलें आहे. कात्यायन तर—“चवथ्या, पांचव्या, नवव्या, अकराव्या दिवशीं जें
प्राण्याला दिलें जातें तें नवश्राद्ध म्हणलें आहे.” या वचनांतील प्रथमपादांत ‘प्रथमे सप्तमे चैव’ असा व्यासाचा पाठ आहे.
बहुचाना तर—“दशाहोतील श्राद्धें नवश्राद्धें, सहा ऋतूतील (एका वर्षातील) तीं नवमिभ श्राद्धें” असें नारायणवृत्तींत
सांगितलें आहे. दीपिकेंत—“नंतर पहिल्या दिवशीं, चवथ्या दिवशीं, पांचव्या, सातव्या, आठव्या, नवव्या, दहाव्या,
अकराव्या या दिवशीं युग्म ब्राह्मण गांगून श्राद्ध करावें. पहिल्या, तिसऱ्या, पांचव्या, सातव्या आणि नवव्या दिवशीं दोन
दोन पिंड द्यावे. इतर दिवशीं एक एक पिंड द्यावा.” विषमश्राद्धाचा एक पिंड आणि अवयवपिंड एक असे मिळून दोन
पिंड विषमदिवशीं समजावे, असा भाव. ह्या नवश्राद्धांविषयीं अशीं अनेक मते आहेत त्यांची शाखाभेदांत व्यवस्था समजावी.

अपरार्कभविष्ये नवश्राद्धत्रिपञ्चपण्मासमासिकानिच नकरोतिमुतोयस्तुतस्थाधःपितरोगताः
वाराहे गतोसिदिव्यलोकं क्वंकृतांतविहितात्पथः मनसावायुभूतेनविप्रेत्वाह्नियोजये पूजयिष्यामिभोगै-
स्त्वामेवंविप्रनिमंत्रयेत् आवाहनेपितत्रैव इहलोकंपरित्यज्यगतोसिपरमांगतिं मनसावायुभूतेनविप्रेत्वाह्ननि-
योजयइति तत्रैवबहुचपरिशिष्टे अन्दूकमधूपंचगंधमाल्यविवर्जितं नवश्राद्धममंत्रंचपिंडोदकविवर्जितं
उदकमर्थः पिंडोदकंशुंधंतांपितरइत्यवनेजनादि एकोद्दिष्टेपुमर्वपुनस्वधानाभिरम्यतां नाम्नौकरणमंत्रश्चएकं-
द्यातिलोदकं अनपत्येषुसर्वेषुनस्वधानाभिरम्यतां स्वस्त्यस्तुविस्तृजेदेवंसकृत्प्रणववर्जितं एकोद्दिष्ट्यपिंडेनु-
अनुशब्दोनविद्यते पितृशब्दनकुर्वीतपितृहाचोपजायते सपिंडनात्प्रागितिहेमाद्रिः तेन नचस्वधांप्रयुंजीत-
प्रेतश्राद्धेदशाहिके इतिऋष्यशृंगोक्तौ दशाहिकोक्तेरेकादशाहेस्वधाप्रयोगप्वेतिहारलतापरास्ता ।

अपरार्कत भविष्यांत—“नवश्राद्धें, त्रैपक्षिक, ऊनपाण्मासिक, आणि मासिकें हीं जो पुत्र करीत नाही त्याचे पितर
अधोलेकीं जातात.” वाराहांत—“गतोसि दिव्यलोकं त्वं कृतांतविहितात्पथः । मनसा वायुभूतेन विप्रेत्वाह्नं नियोजये । पूजयि-
ष्यामि भोगैस्त्वां” असें म्हणून ब्राह्मणाला निमंत्रण द्यावें.” आवाहनाविषयींही तेथेंच सांगतो—“इहलोकं परित्यज्य गतोसि पर-
मांगतिं । मनसा वायुभूतेन विप्रेत्वाह्नं नियोजये ।” असें म्हणून आवाहन करावें.” तेथेंच बहुचपरिशिष्टांत—“अर्धरहित,
भूपरहित, गंधपुष्पवर्जित, मंत्ररहित आणि पिंडोदक (शुंधंतां पितर इत्यादि) वर्जित असें नवश्राद्ध होतें. सर्व एकोद्दिष्टांत
विसर्जनाचा स्वधाशब्द आणि ‘अभिरम्यतां’ आणि अम्नौकरणाचा मंत्र हीं नाहीत. एक तिलोदक आहे. अपसरहित वृत्त
असतील त्यांच्या श्राद्धाचे ठायीं ‘स्वधा’ आणि ‘अभिरम्यतां’ हे शब्द नाहीत. प्रवणरहित एकवार ‘स्वस्त्यस्तु’ असें म्हणून
विसर्जन करावें. एकोद्दिष्ट श्राद्धाचे पिंडप्रदानांत “अनु” हा शब्द नाही आणि ‘पितृ’ ह्या शब्दाचा उच्चार करूं नये. या
वरील शब्दांचा उच्चार करील तर पितृघातक होतो.” हा स्वधाशब्दादिकांचा निषेध सपिंडीकरणाचे पूर्वी आहे, असें
हेमाद्रि सांगतो. तेथेंकरून (सपिंडीच्या पूर्वी निषेध असल्यामुळे) “दहा दिवसांचे आंतील प्रेतश्राद्धांत ‘स्वधा’

आशीर्वादां प्रयोगं कर्तुं नये" ह्य'आश्विभृतांचे वचनांत 'दशाहिके' म्ह० दहा दिवसांचे आंतील असें म्हटलें आहे, म्हणून अकराव्या दिवशी 'स्वधा' याचा प्रयोग (उच्चार) आहेच, असा जो हारलतामंत्र'तो खंडित झाला.

रक्षावल्यां आशिषोद्दिगुणादर्भाजयाशीःस्वस्तिवाचनं पितृशब्दःस्वसंबद्धःशर्मशब्दस्तथैवच पात्रालं-
भोग्नागहश्चउत्मुकोद्धेवनदिकं तृप्तिप्रश्नश्चविकिरःशेषप्रश्नस्तथैवच प्रदक्षिणाविसर्गश्चसीमांतगमनंतथा
अष्टादशपदार्थाश्चप्रेतश्राद्धेविवर्जयेत् अत्रस्वधापितृनमःशब्दानांतिलोसीतिमंत्रेप्रेतशब्दोद्देनतूष्णींवातिला
वपनम् तूष्णीमर्घ्यदानं अमुष्मैस्वाहेतिप्रेतनाम्नापाणिहोमः नाम्नाएकःपिंडः निनयनमंत्रेऊहः अनुमंत्रणा-
दित्वमंत्रकं अभिरम्यतामिति विसर्जनं एवंनवश्राद्धवर्जैकोद्दिष्टेषु नवश्राद्धेत्वमंत्रकंसर्वमिति नारायण-
वृत्तिः क्रियानिबध्ने उत्तानस्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टेसदाबुधः न्युज्जंतुपार्वणेकुर्यात्तस्योपरिकुशान्नयसेत्
नवश्राद्धगृहेकुर्याद्धार्यायत्राप्रयोपिवा सपिंडीकरणांतानिप्रेतश्राद्धानिनियानिवै तानिस्थुलौंकिकेवह्वावित्याह-
त्त्राश्वलायनः इदं संभवेनेन कार्यं नवश्राद्धेषु च्छिष्टं गृहपत्युषितंचयत् दंपत्योर्भुक्तशेषंचनतःकुंजीतकहि-
चिदित्यगिरोवचनलिंगात् द्वाभ्यां तदातुकृच्छ्राभ्यां शुद्धिः स्यात्तु विवेकिनामिति ब्राह्मे उक्तं विघ्नेतु निर्ण-
यामृतकण्वः नवश्राद्धमासिकंचयद्यदंतरितं भवेत् तत्तदुत्तरसांतत्र्यादनुप्रेयंप्रचक्षते हेमाद्रौ गालवः
शावेतुसुतकंचेत्याग्निशायांचमृतांतथा नवश्राद्धानि देयानियथाकालं यथाक्रमं निशायामाशौचांतैक्यहवृद्धौ
अन्वारोहणे तु नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिंडीकरणं पृथक् एक एव वृषोत्सर्गो गौरे कातत्र दीयते ।

रक्षावर्तीत-"आशीर्वाद (आयुः प्रजां० इत्यादि), द्विगुणभुज (मोडलेले) दर्भ, जयाशीः (दानारोवो० इत्यादि), ब्राह्मणाकडून 'स्वस्ति' शब्द म्हणविणें, पितृशब्द (स्वधा, पितृ, नमः हे शब्द), आपल्या संबंधाचा शब्द, शर्मन शब्द, अज्ञानवेदनसंबंधी पात्रस्पर्श, अज्ञांत अंगुष्मूलनिवेशन, औपासनामूर्तीतून प्रदीप उत्सुक आग्नेय दिशेन नेणें व त्या दोन अर्मीच्या मध्ये आग्नेयाभिमुख रेखा काढणें वगैरे अग्नौकरणतंत्र, तृप्तिप्रश्न, विकिर, शेषाज्ञाचा प्रश्न, प्रदक्षिणा, विसर्जन, आणि ब्राह्मणाला सीमेपर्यंत पोचविणें, हे अठरा पदार्थ प्रेतश्राद्धांत वर्ज्य करावे." या प्रेतश्राद्धांत स्वधापितृनमःशब्दांनीं युक्त जो 'तिलोसिसोम०' मंत्र त्यांत त्या शब्दांचा उच्चार न करितां प्रेतशब्दांचा ऊह करून तिल टाकावे. अथवा मंत्रावांचून तिल टाकावे. अर्घ्यदानही अमंत्रक करावें. 'अमुष्मैस्वाहा' या मंत्राकरून प्रेताचे नांवांनि ब्राह्मणाचे हातावर अग्नौकरणहोम करावा. प्रेताचे नांवांन एक पिंड द्यावा. निनयनमंत्रांत ऊह करावा. अनुमंत्रण इत्यादिक सर्वे अमंत्रक होतें. 'अभिरम्यतां' असें म्हणून विसर्जन करावें. याप्रमाणें नवश्राद्धभिन्न एकोद्दिष्टांत समजावें. नवश्राद्धांत तर सारें अमंत्रक होतें असें नारायण-वृत्तिकार सांगतो. **क्रियानिबध्नांत**-"एकोद्दिष्टांत सर्वेदा पात्र उताणें स्थापन करावें. पार्वणश्राद्धांत पात्र उपडें ठेवावें. आणि त्याजवर कुश ठेवावे. ज्या ठिकाणीं भायां किंवा अभि आहेत त्या ठिकाणीं घरां नवश्राद्ध करावें. सपिंडीकरणापर्यंत जीं प्रेतश्राद्धें तीं लौकिकांमिीर होतात, असें आश्वलायन सांगतो." हें नवश्राद्ध अज्ञानें होण्याचा संभव असेल तर अज्ञानें करावें. कारण, "नवश्राद्धांत शेष राहिलेले, घरांत पयुषित (शिळें) असलेले, व स्त्रीपुरुषांनीं भोजन करून शेष राहिलेले असें अन्न कधीही भक्षण करूं नये" हें अंगिराचें वचन अज्ञानें करण्याविषयीं बोधक आहे. "त्या नवश्राद्धांतील भोजन केले असतां दोन कृच्छ्रांनीं विवेक्यांची शुद्धि होते" असें ब्राह्मण सांगितलें आहे. नवश्राद्धाला विघ्न आलें असेल तर सांगतो निर्णयामृतांत कण्व-"नवश्राद्ध आणि मासिक जें जें अंतरित होईल तें तें पुढच्या श्राद्धाच्या सहतंत्रांन करावें, असें सांगतात." हेमाद्रौ गालव-"मृताशौचांत जननाशौच असलें तरी आणि आशौचाचे शेवटचे रात्री मृत असतां दोन दिवसांची आशौचवृद्धि असतां नवश्राद्ध आपापल्याकालीं अनुक्रमानें करावी." खिंचेचें अनुगमन असेल तर "सारीं नवश्राद्धें आणि सपिंडीकरण हीं वेगवेगळीं होतात. त्या ठिकाणीं वृषोत्सर्ग एकच होतो. गाई एक द्यावी.".

आशौचांत्यादिनेकार्यमुक्तं ब्राह्मे यस्यस्यस्तुवर्णस्ययद्यत्स्यात्पश्चिमंतवहः सतत्रवत्सुद्धिंचगृहशुद्धिंक-
रोत्यपि संमाप्यदशमपिंडप्रेतस्पृष्टेतुवाससी अंत्यानामाश्रितानांचत्यक्त्वास्नानं करोति च इमं शुलोमनस्नानांच
यस्याप्यंतज्जहात्यपि गौरसर्पपकल्केन तिलकल्केन संयुतं शिरःस्नानंततः कृत्वातोयेनाचम्यवाग्यतः वृषभंगां-
सुवर्णचस्पृष्ट्वाशुद्धो भवेन्नरः क्रियानिबध्ने गृहकारिकायां अत्रपिंडत्रयंद्युस्तत्सखिभ्यस्तथादिमं प्रेता-
यमध्यमंतद्वचृत्तीयंचयमायवै तथा कर्त्रात्रार्थिताः संतो ज्ञातिसंबंधिवांधवाः द्युरभ्यंगतः पूर्वत्रीं स्त्रीन्धर्मो-
दकाजलीन् पूर्ववन्नामगोत्राभ्यां नियमोनेह कश्चन मदरत्ने विष्णुहारीतौ आशौचांतैकृत इमं शुकर्माण-
स्तिलककैः सर्पपकल्कैर्वा स्नाताः शुद्ध्वा सतो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शांतिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युरिति ।

आशौचसमाप्तिदिवशीं कृत्य सांगतो-**ब्राह्मांत**-"ज्या ज्या ब्राह्मणादि वर्णांचे जो जो आशौचसमाप्तीचा दिवस असेल, तो दिवशीं वस्त्रांची शुद्धि आणि घराची शुद्धि त्यांनी करावी. दहावा पिंड समाप्त केल्यावर प्रेताला स्पर्श केलेलीं वस्त्रे आणि अंग-कर्माचे ठायीं धारण केलेलीं वस्त्रे टाकून स्नान करावें. इमशु, लोम, नखें जीं काढावयाचीं तीं काढून टाकावीं. तदनंतर पांढरे सर्प व तिळ वाटून अंगास व मस्तकास लावून मस्तकावरून खेच्छ स्नान करून आचमन करून बाणीचें नियमन करून वृषभ, गार्ह, सुवर्ण यांना स्पर्श करून मनुष्यांतें शुद्ध व्हावें." क्रियानिबंधांत गृहकारिकेंत-"या दिवशीं तीन पिंड घ्यावे, ते असे-प्रेतसखींना प्रथम पिंड द्यावा. दुसरा पिंड प्रेताला द्यावा. तिसरा पिंड यमाला द्यावा." तसेंच-कल्याणें, हारि, संवंधी, बांधव यांना प्रार्थनापूर्वक सांगितल्याकरून त्यांनीं अभ्यंग करण्याच्या पूर्वी धर्मोदकाचे तीन तीन अंजलि घ्यावे. पूर्वी-प्रमाणें (प्रथमदिवसाप्रमाणें) नामगोत्राचा उच्चार करून घ्यावे. या ठिकाणीं कोणताही नियम नाही." **मदनरत्नांत** विष्णु व हारीत-"आशौच समाप्त झाल्यावर इमशुकर्म करून तिळ वाटून किंवा सर्प वाटून अंगास लावून स्नान करून शुभे वस्त्रें नेसून घरांत जावें आणि त्या ठिकाणीं शांतिकर्म करून ब्राह्मणाचें पूजन करावें."

देवल: दशमेहनिस्प्रामोखानंभ्रामाद्विर्भवेत् तत्रत्याज्यानिवासांसिकेशश्मश्रुनखानिच अपराकें **बृहस्पति**: नवमेवासमांत्यागोनखरोम्णांतथांतिमे तत्रैवव्यासः आशौचांत्यदिनेक्षौरंजनन्यांचगुरौमृते एतत्प्रेताल्पवयसामित्याहापस्तंबः अनुभाविनांचपरिवपनमिति अनुभाविनःकनिष्ठाइति **विज्ञानेश्वर**-**रत्नाकरादयः** आशौचमनुभवतांपुंसांसर्वाशौचेतुमुंडनं आह्वयानरपतेर्द्विजन्मनांदारकर्ममृतसूतकेषुच बंधमोक्षमखदीक्षणेष्वापिष्णौरमिष्टमखिलेषुचोडुपु इतिरत्नमालोक्तैर्जननाशौचेपीतिशुद्धितत्त्वावयः अत्रदेशाचारतोव्यवस्था परि शिखावर्जं केशश्मश्रुनखलोमानिवापयीतशिखावर्जमितिगोभिलोक्तैः य-**त्त्वापस्तंबः** नसमावृत्तावपेयुरन्यत्रविहारदित्येके विहारोदर्शादियागः तेनविनासमावृत्तागृहस्थानवपेयुरि-त्यर्थः यच्च वृथाछिनत्तियःकेशान्तमाहुर्ब्रह्मघातिनमिति तत् केशश्मश्रुधारयतामग्न्याभवतिसंततिरितिदानध-**र्मात्काम्यपरं** अनुभाविनःपुत्रादयइत्येके पुत्रःपत्नीचवपनंकुर्यादंतैयथाविधि पिंडदानोचितोन्योपिकुर्या-दित्यंसमाहित इत्यपराकेंव्यामोक्तैः यत्तुमिताक्षरायां द्वितीयेहनिर्कृतव्यंक्षुरकर्मप्रयत्नतः तृती-येपंचमेवापिदशमेवाप्रदानत इति आप्रदानतइतिचतुर्थादीनि तत्प्रथमदिनेसंभवेज्ञेयं अलुप्तकेशोयःपूर्वसो-त्रकेशानप्रवापयेत् द्वितीयेह्निर्तृतीयेह्निपंचमेसप्रमेपिवा यावच्छ्राद्धांप्रदीयेततावदित्यपरंमतमितिमाधवीये **मद-नरत्नेचबौधायनोक्तैः मदनपारिजातेतु** दशमेप्रथमेचसमुच्चयउक्तः यत्तु दशमंपिंडमुत्सृज्यरात्रि-शेषेशुचिर्भवेदिति तदेकादशाहश्राद्धांगविप्रनिमंत्रणार्थंज्ञेयं ।

देवल-"दहावा दिवस प्राप्त असतां गांवाच्या बाहेर स्नान करावें. त्या ठिकाणीं वस्त्रें टाकून घ्यावीं. आणि केश, इमशु, नखें हीं काढून टाकावीं." **अपराकांत बृहस्पति**-"नवव्या दिवशीं वस्त्रें टाकावीं. नखें, केश हे शेवटच्या दिवशीं टाकावे." तथेंच **व्यास**-"आशौचाचे शेवटच्या दिवशीं क्षौर करावें. आणि माता व पिता मृत असतां क्षौर करावें." हें क्षौर प्रेताहून अल्पवयाचे असतील त्यांना आहे, असें सांगतो **आपस्तंब**-"अनुभावींना परि शिखा वर्ज्यवपन आहे." अनुभावि म्हणजे प्रेताहून कनिष्ठ, असें **विज्ञानेश्वर**, **रत्नाकर**-इत्यादि सांगतात. "आशौच अनुभाविणांच्या पुरुषाला सर्वे आशौचांत मुंडन आहे. राजाची क्षौराविषयीं आज्ञा असेल त्या वेळीं, विवाह कर्तव्य असतां त्या वेळीं, मृतांशींचांत, जनना-शांचांत, बंदींतून मुक्तसमयीं, यज्ञादि दीक्षेच्या वेळीं सर्वे नक्षत्रांवर ब्राह्मणादिकांना क्षौर इष्ट आहे" **रत्नमालेच्या** वचना-वरून जननाशौचांतही क्षौर करावें, असें **शुद्धितत्त्वादि** ग्रंथकार सांगतात. ह्या क्षौराविषयीं देशाचारावरून व्यवस्था जाणावी: वरील आपस्तंबवचनांत 'परि' याचा-शिखावर्ज्य, असा अर्थ आहे. कारण, "शिखा वर्ज्य करून केश, इमशु, नखें, लोम यांचें वपन करावें." असें **गोभिलाचें** वचन आहे. आतां जें **आपस्तंब**-"समावर्तन केलेल्यांनीं (गृहस्थांनीं) विहारा-हून इतर दिवशीं वपन करूं नये, असें कितीएक सांगतात." विहार म्हणजे दर्शादियाग त्यावाचून समावर्तन केलेल्या गृह-स्थांनीं वपन करूं नये, असा अर्थ होय. आणि जें-"वृथा केशांचें छेदन करितो त्याला ब्रह्मघात म्हणतात" असें **सांगितलें** आहे, तें "केश, इमशु धारण करणाऱ्यांची संतति श्रेष्ठ होते" असें **दानधर्मांत** सांगितलेल्या काम्य केशाधारणाविषयीं आहे, असें समजावें. वरील आपस्तंबवचनांत 'अनुभावी' म्हणजे पुत्रादिक असें कितीएक सांगतात. कारण, "पुत्र व पत्नी यांनीं आशौचांतीं यथाविधि वपन करावें. पिंडदान करण्याविषयीं इतर जो कोणी योग्य असेल त्यानेंही असें करावें." असें **अपराकांत व्यास** वचन आहे. आतां जें **मिताक्षरेंत**-"दुसऱ्या दिवशीं प्रयत्नानें क्षौर करावें. तिसऱ्या दिवशीं, पांचव्या दिवशीं अथवा दहाव्या दिवशीं करावें." असे चार इत्यादिक क्षौरदिवस सांगितले ते प्रथम दिवशीं असें नव खरेलें आहे.

जाणावे. कारण, “ज्यानें पहिल्या दिवशीं केशवपन केलें नसेल त्यानें ह्या ‘पुढच्या’ दिवशीं केशवपन करावें. दुसऱ्या दिवशीं, तिसऱ्या दिवशीं, पांचव्या दिवशीं अथवा सातव्या दिवशीं जांपर्यंत श्राद्ध देत आहे तोंपर्यंत क्षौर करावें, असें दुसरें मत आहे” असें माधवीयांत आणि मदनरत्नांत बौधायनवचन आहे. मदनपारिजातांत तर-दहाव्या दिवशीं आणि प्रथम दिवशीं दोन्ही दिवशीं क्षौर करावें, असें सांगितलें आहे. आतां जें “दहावा पिंड देऊन त्या रात्रीं शुचि व्हावें” असें सांगितलें आहे, यावरून दहाव्या दिवशीं शुद्धि होते, असें कोणी म्हणू नये. कारण, ती शुद्धि अकराव्या दिवशीं करावयाचें जें श्राद्ध त्याचें अंगभूत जें ब्राह्मणनिमंत्रण त्याच्यापुरतीच आहे, असें जाणवें.

अथैकादशाहः मनुः विप्रःशुद्धयत्पःस्पृष्ट्वाक्षत्रियोवाहनायुधे वैश्यःप्रतोदंरश्मिन्वायष्टिशूद्रःकृत-
क्रियः शुद्धितत्त्वेदेवलः अघाहःसुनिवृत्तेषुसुस्नाताःकृतमंगलाः आशौचाद्विप्रमुच्यंतेब्राह्मणान्स्वस्तिवा-
च्यच याज्ञवल्क्यः मृतेहनिवृत्तकृत्यप्रतिमासंतुवत्सरं प्रतिवत्सरंचैवआद्यमेकादशेहनि क्षत्रियाद्यैरा-
शौचेभ्येकादशेहिश्राद्धकार्यम् आद्यंश्राद्धमशुद्धोपिकुर्यादेकादशेहनि कर्तुंस्तात्कालिकीशुद्धिरशुद्धःपुनरेवसइति-
हेमाद्रौशंखोक्तेः पैठीनसिः एकादशेहियच्छ्राद्धंतत्सामान्यमुदाहृतं चतुर्णामपिवर्णानांसूतकंतुपृथक्-
पृथक् यत्तुमरीचिः आशौचांतैततःसम्यक्पिंडदानंसमाप्यते ततःश्राद्धप्रदातव्यंसर्ववर्णेष्वयंविधिरिति
तत्सर्ववर्णानांदशाहाशौचपरं यत्तुविष्णुः अथाशौचापगमइति यच्चगौडग्रंथेहारीतः श्रोभूतेएकोद्दिष्टं-
कुर्यात् यच्चबैजवापः ऊर्ध्वदशम्याअपरेणुरिति तद्विप्रविषयं एतेनदशमपिंडोत्कर्षपक्षेअवयवपिंडासमा-
सौकथमेकादशाहेश्राद्धमितिमूर्खोक्तिःपरास्ता वचनादाशौचमध्यइवतत्राप्यविरोधान् ।

आतां एकादशाहकृत्याचा निर्णय मांगतो—

मनु—“ब्राह्मण स्नानादि केल्यावर उदकाला स्पर्श करून शुद्ध होतो. क्षत्रिय वाहनाला व आयुधाला स्पर्श करून शुद्ध होतो. वैश्य चाबूक किंवा पशु बांधण्याची वगैरे दोरी यांना स्पर्श करून शुद्ध होतो. आणि शूद्र काडीला स्पर्श करून शुद्ध होतो.” **शुद्धितत्त्वांत देवल**—“आशौचाचे दिवस गेले असतां मंगल (अभ्यगादि) करून स्वच्छ स्नान करून आणि ब्राह्मणाकडून स्वस्तिवाचन करवून आशौचापासून मुक्त होतात.” **याज्ञवल्क्य**—“वर्षपर्यंत प्रतिमासीं मृत दिवशीं श्राद्ध करावें. तदनंतर प्रतिवर्षीं मृत दिवशीं करावें. आद्यमासिक अकराव्या दिवशीं करावें.” क्षत्रियादिकांनीं आशौच असतांही अकराव्या दिवशीं श्राद्ध करावें. कारण, “पहिलें श्राद्ध अशुद्ध अमला तरी त्यानें अकराव्या दिवशीं करावें. कर्त्याची तात्का-
लिक (त्या श्राद्धापुरती) शुद्धि होते. पुनः तो अशुद्धच आहे.” असें हेमाद्रौत शंखवचन आहे. **पैठीनसि**—“अकराव्या दिवशीं जें श्राद्ध तें चारही वर्णांना सामान्य सांगितलें आहे. आशौच तर चार वर्णांला वेगवेगळें आहे.” आतां जें **मरीचि**—
“आशौचाचे शेवटच्या दिवशीं पिंडदान उत्तम रीतीनें समाप्त करावें. तदनंतर श्राद्ध करावें. सर्व वर्णांविषयीं हा विधि आहे.” असें सांगतो तें सर्व वर्णांला दहा दिवस आशौच अशा पक्षीं आहे. आतां जें **विष्णु**—“नंतर आशौच दूर झालें असतां श्राद्ध करावें” असें सांगतो. आणि जें **गौडग्रंथांत हारीत**—“अकराव्या दिवशीं एकोद्दिष्ट करावें” असें सांगतो. आणि जें **बैजवाप**—“दहाव्या रात्रीच्या नंतर दुसऱ्या दिवशीं शुद्ध झाल्यावर करावें.” ह्या वचनांनीं आशौच समाप्तीनंतर श्राद्ध सांगितलें तें ब्राह्मणविषयक आहे. क्षत्रियादिकांचें आशौचांतही होतें, यावरून क्षत्रियादिकांचा दहावा पिंड आशौच-
समाप्तीच्या दिवशीं म्हणजे क्षत्रियाचा बाराव्या दिवशीं, वैश्याचा पंधराव्या, आणि शूद्राचा तिसाव्या दिवशीं यावा, या पक्षीं अवयवपिंडांची समाप्ती झाल्याशिवाय अकराव्या दिवशीं श्राद्ध कसें करावें, असें मूर्खानें सांगितलेलें खंडित झालें. वचना-
वरून आशौचांत जसें करावयाचें तसें अवयवपिंडांची समाप्ती नसतांही करण्याविषयीं विरोध नाहीं.

भविष्ये एकादशभ्योविप्रेभ्योदद्यादेकादशेहनि भोजनंतत्रवैकस्मैब्राह्मणायमहात्माने यत्तुमात्स्ये
एकादशेहनि तथाविप्रानेकादशैवतु क्षत्रादिःसूतकांतैतुभोजयेदयुजोद्विजानिति तद्दुद्रगणश्राद्धपरमिति **मद-
नपारिजातः** गौडास्त्वस्माद्वचनात् क्षत्रियादीनामाशौचांतएवेत्याहुः **रामायणे**पि समतीतेदशाहेतु-
कृतशौचोयथाविधि चक्रेद्वादशिकंश्राद्धत्रयोदशिकमेवच द्वादशिकंद्वादशाहेननिर्वर्त्यत्रयोदशाहश्राद्धं त्रयोद-
शिकंचतुर्दशाहविधेयंसपिंडनपाथेयादि क्षत्रियाणांद्वादशाहाशौचेत्रयोदशेमेहैकोद्दिष्टंचतुर्दशेसपिंडनम् द्विवि-
धवाक्यादेकादशाहाशौचांतयोर्विकल्पइत्येके सद्यःशौचादौयुद्धतादेरेकादशाहे अन्येषामाशौचांतइति
वर्यं कौर्मै एकादशेहिकुर्वीतप्रेतमुद्दिश्यभावतः द्वादशेवाह्निकर्तव्यमनिधेय्यथावाहनि निधंप्रेतक्रियाकाल-

युक्तं एकादशेतुननिषेधइत्युक्तंप्राक् बृहस्पतिः वस्त्रालंकारशय्यादिपितुर्यद्वाहनादिकं गंधमाल्यैःसमभ्य-
र्च्यश्राद्धभोक्तृदत्तर्पयेत् श्रोत्रियाभोजनीयास्तुनवसप्तत्रयोदश जातयोवांधवानिःस्वास्तथाचातिथयोपरे देव-
याज्ञिकनिबंधे एकादशमुविघ्नेपुप्रेतमावाह्यभोजयेत् तत्राद्यायचशय्यादिदद्यादाद्यमितिस्मृतं विष्णुः
एकवन्मंत्रानूहेतैकोद्दिष्टे बहुवचनांतानेकवचनांतान्वदेदित्यर्थः एतद्वृष्टार्थत्वे ।

भविष्यांत—“अकराव्या दिवशीं अकरा ब्राह्मणांना भोजन घाल्वें. अथवा एका महात्म्या ब्राह्मणाला भोजन द्यावें.”
आतां जें **मात्स्यांत** “अकराव्या दिवशीं अकराच ब्राह्मणांना भोजन घालावें. क्षत्रियादिकांनीं सूतकांनीं अयुग्म ब्राह्मणांना
भोजन घालावें.” असें सांगितलें तें रुद्रगणश्राद्धविषयक आहे, असें **मदनपारिजात** सांगतो. **गौड** तर—ह्या वचनावरून
क्षत्रियादिकांनीं आर्शोचार्त्तीच आय मासिक करावें, असें सांगतात. **रामायणांत**ही—“दहावा दिवस गेला अमतां यथाविधि
शुद्धि करून द्वादशिक आणि त्रयोदशिक श्राद्ध करिता द्याव्या.” द्वादशिक म्हणजे बारा दिवसांनीं करावयाचें तें, अर्थात्
बारा दिवस होऊन गेल्यावर तेराव्या दिवशीं सांगितलेंलें गमजावें. त्रयोदशिक म्हणजे तेरा दिवस होऊन गेल्यावर चवदाव्या
दिवशीं करावयाचें गणितून, पाथेय इत्यादिक गमजावें. श्रत्रियांना बारा दिवस आशौन अमतां तेराव्या दिवशीं महैकोद्दिष्ट
आणि चवदाव्या दिवशीं गणपदीकरण सांगितलें आहे. हें रामायणवचन व वरील मात्स्यवचन अशा दोनीं प्रकारच्या वचनां-
वरून अकराव्या दिवशीं व आशौचांनीं करण्याचा विकल्प आहे, असें कितीएक विद्वान् सांगतात. युद्धांत मृत इत्यादिकांचें
सहःशौच वर्गरे अमतां अकराव्या दिवशीं करावें. इतरांचें आशौचांनीं करावें, असें आम्हीं (कमलाकरभट्ट) सांगतो.
कौर्मांत—“अकराव्या दिवशीं प्रेतांचा उद्देश करून श्राद्ध करावें. अथवा बाराव्या दिवशीं करावें. किंवा नियम नसेल अशा
दिवशीं करावें.” नियम म्हणजे प्रेतांच्या क्रियेचा काल जो असेल त्या दिवशीं करूं नये. अकराव्या दिवशीं हा निषेध नाही,
असें पूर्वी (गंगवचनावरून) सांगितलें आहे. **बृहस्पति**—“पित्यांनीं वस्त्रें, अलंकार, शय्या, वाहन इत्यादिक जें असेल
तें गंधपुष्पादिकांनीं पूजित करून श्राद्धभोजन्या ब्राह्मणाला अर्पण करावें. नऊ, सात किंवा तेरा श्रोत्रिय ब्राह्मणांना भोजन
घालावें. ज्ञाति, यांधव, दक्षिण व अतिथि यांनाही भोजन घालावें.” **देवयाज्ञिकनिबंधांत**—“अकरा ब्राह्मणांवर प्रेतांचें
आवाहन करून त्यांना भोजन घालावें. त्यांना पहिल्या ब्राह्मणाला शय्या इत्यादि द्यावें. तें आय श्राद्ध म्हटलें आहे.” **विष्णु**—
“एकोद्दिष्टांत बहुवचनांत मंत्रांचा एकवचनांत ऋतू करावा. जगा—(प्रवर्तद्धिः प्रतः प्रेतमिमान् लोकान् प्रीणयतिनः) अगा
ऋतू अर्धपात्राच्या मंत्रांन करावा. हा ऋतू बहुवचनाचा अर्थ प्रेतांविषयीं अनन्यत असेल त्या ठिकाणीं समजावा.

अश्वविघ्नेगौणकालमाह हेमाद्रौ वौधायनः एकोद्दिष्टं श्रमवस्याद्वा दशेहनिवापुनः अत ऊर्ध्वमयुग्मेपुकु-
र्वीताहः स्वशक्तिः अर्धमासेथवामासिकृतौ संवत्सरेपिवेति तत्रैवल्लघुहारीतः एकोद्दिष्टंतु कुर्वीतपाकैर्नैव-
सदास्वयं अभावेपाकपात्राणांतदहः समुपोषणम **गोभिलः** ब्राह्मणभोजयेदाद्येहोतव्यमनलेथवा पुनश्चभो-
जयेदेकं द्विगुत्तर्भवेदिति एतदाद्यमासिकाद्याद्विकयोः सिद्धयर्थमिति **भट्टाः** तेन महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धाद्वि-
त्रमेव अतएवायं सर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूतमेकादशइति विज्ञानेश्वरः अन्येत्याद्यमासिकाद्विकयोराद्यमेकादशे
हनीतिनियमादभेदमाहुः द्वयोस्मंत्रत्ववाधार्थं **गोभिलीयमित्यन्ये** युद्धहतादौ तु हेमाद्रौ पृथ्वीचंद्रोद-
ये पैठीनसिः सद्यः शौचेपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेहनि सप्यदिवसस्तस्य श्राद्धशय्यासनादिपु एवमेकाहादौ
अतोत्रद्वितीयेह्येकादशाहं वदनं **हौहुः शूलपाणिः स्मार्तगौड** श्रपरास्तः एतेनाद्यमेकादशेहनीत्याशौ-
चानंतरदिनपरमिति **विष्णूक्तेः** प्रागुक्तशंखादिवचनानां चानाकरत्वादितिवदंतः **कल्पतरुवाचस्पतिः**
प्रमुखाः सर्वमहानिबंधधविरोधादुपेक्ष्याः **उशनाः** त्र्यहशौचेपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेहनि अतीतविषये-
सद्यस्त्वहोर्ध्ववातदिष्यते ।

ह्या एकोद्दिष्टाला विघ्न अमतां गौणकाल सांगतो **हेमाद्रौ त वौधायन**—“एकोद्दिष्ट अकराव्या दिवशींच होतें. अथवा
बाराव्या दिवशीं होतें. त्या वेळीं न होईल तर याच्या पुढें विषम दिवशीं आपल्या शक्तीप्रमाणें करावें. अथवा पंधराव्या दिवशीं
अथवा महिन्याच्या दिवशीं किंवा ऋतूच्या दिवशीं किंवा संवत्सरदिवशीं करावें.” तेथेंच **लघुहारीत**—“स्वतः पाक करूनच
सर्वदा एकोद्दिष्ट करावें. पाकाच्या पात्रांचा अभाव असेल तर त्या दिवशीं उपोषण करावें.” **गोभिल**—“पहिल्या एकोद्दिष्ट
श्राद्धांत ब्राह्मणाला भोजन घालावें. अथवा अग्नीं होम करावा. पुनः एका ब्राह्मणाला सांगून श्राद्ध करून भोजन घालावें.
या ठिकाणीं श्राद्धाची द्विवार आश्रुति होते.” या वचनांत सांगितलेली दुसरी आश्रुति आय मासिक आणि आषाढिक यांच्या
सिद्धीकरितां आहे, असें **भट्ट** सांगतात. त्यावरून महैकोद्दिष्ट हें षोडशमासिकांहून वेगळेंच आहे. म्हणूनच पहिलें एकोद्दिष्ट
७५ निषेध.

हे सर्व एकोद्दिष्टांचे प्रकृतिभूत आहे, असे विज्ञानेश्वर सांगतो. इतर ग्रंथकार तर-“आद्यमेकादशेऽहनि” या वरील याज्ञवल्क्यवचनाने अकराव्या दिवशी, असा नियम केल्यावरून आद्य मासिक व आद्याब्दिक यांचा भेद (एकरूपत्व) सांगतात. दुसरे ग्रंथकार-शा दोघांचे तंत्र होईल त्याचा बाध करण्यासाठी वरील गोभिलांचे वचन आहे, असे सांगतात. युद्धांत वगैरे मृत असेल तर सांगतो हेमार्द्रांत पृथ्वीचंद्रोदयांत पैठीनसि-“सद्यःशौच असले तरी प्रेताला अकराव्या दिवशी श्राद्ध द्यावे. कारण, त्याच्या श्राद्ध, शय्या, आसन इत्यादिकांविषयी तोच दिवस आहे.” याचप्रमाणे एक दिवसाच्या वगैरे आशौचांत समजावे. असे आहे म्हणून सद्यःशौचादिकांत दुसऱ्या दिवशी एकादशाहकृत्य, असे सांगणारा ढौढू, शूलपाणि व स्मार्तगौड खंडित झाला. यावरून (सद्यःशौच, एकाहाशौच इत्यादिकांतही अकराव्या दिवशी एकादशाहकृत्य सांगितल्यावरून) ‘आद्यमेकादशेऽहनि’ हे वरील याज्ञवल्क्यवचन आशौचानंतरच्या दिवसांविषयी आहे. कारण, ‘अथाशौचापगमे’ असे विष्णुवचन आहे. आणि वर सांगितलेली शंखादिकांची वचने आकरांत नाहीत, असे सांगणारे कल्पतरु-वाचस्पति-प्रमुख ग्रंथकार सर्व महानिबंधग्रंथांचा विरोध असल्यामुळे उपेक्षणीय (अप्राह्य) आहेत. उशाना-“तीनदिवसांचे आशौचांतही आद्यश्राद्ध अकराव्या दिवशी करावे. अतिकांताशौचांविषयी सद्यः करावे किंवा तीन दिवसांनंतर करावे.”

याज्ञवल्क्यः एकोद्दिष्टदैवहीनमेकाद्यैकपवित्रकं आवाहनामौकरणरहितं त्वपसव्यवत उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने अभिरम्यतामिति वदेयुस्तेभिरतास्महे इति अमौकरणनिषेधोन्यपरः बह्वचानांसर्वे कोद्दिष्टेषु तद्भवत्येवेत्युक्तं प्राक् स्वदितमिति वृत्तिप्रभृति कात्यायनः प्रथमे पात्रे संस्त्रवानित्यस्य तृतीयेनापि धानस्य च बाधान्नपात्रन्युज्यतेति शूलपाणिः प्रचेताः नात्र पात्रात्वं मोनाशिषः प्रार्थयेत् अत्र विशेषो हेमार्द्रो वाराहे इमं शुक्रमृतकृत्यं न खच्छेदस्तथैव च स्नपनाभ्यंजने दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकं तथा उपवेश्यासने भद्रे छत्रं तत्र प्रकल्पयेत् पश्चादुपानहौ दद्यात्सर्वान्याभरणानि च विष्णुः दक्षिणांतं श्राद्धमुक्त्वा दत्ताक्षय्योदकेषु च चतुरंगुलपृथ्वीस्तावदंतरालास्तावदधः खातावितस्यायतास्त्रिः कर्पूः कुर्यात् कर्पूणांसमीपे मिमाधाय परिस्तीर्यैकैकस्मिन्नाहुतित्रयं जुहुयात् सोमाय पितृमते स्वधानमोमयेकव्यवाहनाय यमायांगिरस्वते इति स्थानत्रये प्राग्वत्पिंडनिर्वपणं दधिमधुघृतमांसैः कर्पूत्रयं पूरयित्वैतत्तदिति जपेत् शेषं न व श्राद्धवत् अत्र सामेरेण्ये तैवैश्वदेव इत्युक्तं प्राक् इदं दशाहकर्त्रा पुत्रेण वा कार्यमित्युक्तं क्रियानिबंधगृह्यकारिकायां तिलोसिंघे तदेव न्यः प्रेतलोकां हि नो तं मंत्रमुक्त्वा तिलने वं प्रक्षिपेदधर्यपात्रतः दक्षिणामुदकुंभं च मान्नं दत्वा तथैव गां तस्मै दद्याद्भुक्तशेषं तद्गंडान्यपि भाजनं विप्राभावे प्रावेकोद्दिष्टं अमौपायसंश्रपयित्वा ज्यभागां तत्तदग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वा मौप्रतमावाह्यं गंधाद्यैः संपूज्य पृथिवीते पात्रमित्यादिना त्रसंकल्पोदीरतामवर इत्यष्टाभिश्च तुरावृत्ताभिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिंडदानादि श्राद्धं समापयेदिति याज्ञवल्क्यः एतत्सर्पिंडीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ।

याज्ञवल्क्यः—“एकोद्दिष्ट देवरहित असते. एक अर्घ्य व एक पवित्रकाने करावे. आवाहन व अमौकरण करू नये. ते देवरहित असल्यामुळे सर्व एकोद्दिष्टकृत्य अपसव्याने करावे. अक्षय्योदकस्थानी ‘अक्षय्योदकमुपतिष्ठतां’ असे म्हणावे. ब्राह्मणविसर्जनविषयी ‘अभिरम्यतां’ असे म्हणावे. ‘अभिरताः स्मः’ असे ब्राह्मणांचे प्रतिवचन आहे.” अमौकरणाचा निषेध इतर शाखांविषयी आहे. बह्वचानां सर्व एकोद्दिष्टांत अमौकरण होतें, असे पूर्वी सांगितलें आहे. ‘स्वदितं’ असा वृत्तिप्रश्न करावा, असे कात्यायन सांगतो. एकोद्दिष्टांत अर्घ्यपात्र एक असल्यामुळे इतर पात्रांतील प्रथम पात्रांत संस्त्रव सांगितले, त्यांचा व तिसऱ्या पात्रांत आच्छादन सांगितलें त्याचा बाध होत असल्यामुळे, पात्र उपडें घालूं नये, असे शूलपाणि सांगतो. **प्रचेताः**—“अन्ननिवेदनसमयी पात्र धरणें नाहीं, व आशीर्वादांची प्रार्थना करूं नये.” एकोद्दिष्टांत विशेष सांगतो हेमार्द्रांत वाराहांत—“ब्राह्मणांचे इमं शुक्रमृतं न खच्छेद करावा. आणि त्याला यथाविधि ज्ञान व अभ्यंग द्यावा.” तसेंच—“ब्राह्मणाला चांगल्या आसनावर बसवावे, छत्री घ्यावी, पश्चात् जोडा द्यावा. आणि सर्वे आभरणे (अलंकार वगैरे) घ्यावी.” विष्णु-दक्षिणांत श्राद्ध सांगून “अक्षय्योदक दिल्यावर चार अंगुळें रुंद व तितकेच खोल एक वीत लांब असे तीन कर्पू म्हणजे खलगे करावे. कर्पूच्या समीप अभिस्थापन करून परित्स्तरण करून एक एकावर तीन तीन आहुतींचा होम करावा. ‘सोमाय पितृमते स्वधानमः, अमये कव्यवाहनाय स्वधानमः, यमाय अंगिरस्वते स्वधानमः’ या मंत्रांनी होम करावा. तीन स्थानी पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे पिंड द्यावे. दधि, मधु, घृत व मांस यांनी ते तीन कर्पू पूर्ण भरून ‘एतसे’ या मंत्राचा जप करावा.” अवशेष सर्वे प्रयोग नवश्राद्धाप्रमाणे करावा. येथें सामिकाचाही अंती वैश्वदेव, असे पूर्वी (श्राद्धवैश्वदेवप्रकर्णी) सांगितलें आहे. हे श्राद्ध दशाहकृत्य कर्त्यावे किंवा पुत्रांने करावे, असे सांगितलें आहे. क्रियानिबंधांत गृह्यकारिकेत—

“तिलोसि प्रेतदेवत्यः’ असा ऊह करावा. आणि ‘प्रत्नवद्भिः प्रतः प्रेतमिमान् लोकान् प्रीणयहिन्ः’ असा मंत्र म्हणून अर्घ्य-पात्रांत तिल टाकावे. दक्षिणा, अन्नसहित उदकुंभ आणि गाई ब्राह्मणाला देऊन, भुक्तशेष अन्न, त्याची भांडी, व इतर पात्र ही द्यावी.” ब्राह्मणाच्या अभावीं अग्नीवर एकोद्दिष्ट करावें, तें असें—अग्नीवर पायस शिजवून आज्यभागांच्या अंती अग्नीच्या अग्रभागीं श्राद्धप्रयोग करून अग्नीवर प्रेताचें आवाहन करून गंधादिकांनीं पूजा करून ‘पृथिवी ते पात्रं०’ या मंत्रानें अन्नाचा संकल्प करून ‘उदीरतां०’ ह्या आठ ऋचांच्या चार आहुतींनीं बत्तीस आहुतींचा होम करून पिंडदानादिक श्राद्ध समाप्त करावें. याज्ञवल्क्य—“हें संपिंडीकरण व एकोद्दिष्ट क्रियेचेंही करावें.”

अथवृषोत्सर्गः सचनित्यकाम्यः नकरोतिवृषोत्सर्गमुतीर्थेवाजलंजलिम् नदवातिसुतोयस्तुपितुरुष्ण-
रणवसः उच्चारःपुरीपं एष्टव्याश्चहवःपुत्रायदेकोपिगयांत्रजेत् यजेतवाश्वमेधेननीलंवावृषमुत्सृजेदितिमा-
त्स्यकौर्मोक्तेः एकादशेह्निप्रेतस्ययस्यनोत्सृज्यतेवृषः प्रेतत्वंसुस्थिरतस्यदत्तैःश्राद्धशतैरपीतिषट्त्रिंश-
न्मतेनिंदाश्रुतेः एवंकृत्वाह्यवाप्नोतिफलंवाजिमखोदितं यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलंसलभेतपरांगतिं वृषोत्सृष्टः-
पुनात्येवदशातीतान्दशापरानितिदेवीपुराणेभविष्यादौफलश्रुतेश्च अयंद्वादशाहेउक्तो भविष्ये
चैत्र्यांवापितृतीयायांविशाख्यांद्वादशेह्निवेति विष्णुधर्मैतुमृताहेप्युक्तः विषुवद्वितयेचैवमृताहेवांधवस्यचेति
अयंगृहेनकार्यः नगृहेमोचयेन्नीलंकामयन्पुष्कलफलमतिकालिकापुराणात् कामधेनौ वत्सराभ्यं-
तरेपित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि वृद्धिश्राद्धंनकुर्वीततदन्यत्रसमारभेत् तल्लक्षणंतुब्राह्मे लोहितोयस्तुवर्णेनमुखे-
पुच्छेचपांडुरः श्वेतःखुरविपाणाभ्यांसनीलोवृषउच्यते श्वेतवर्णस्यमुखादीनिश्यामानिश्यामस्यवाधेतानिय-
स्यसोपिनीलउक्तोमात्स्यादौ देवीपुराणे चतस्रोवत्सिकाभद्राद्वेवासंभवतोपिवा यत्तुपठंति वृषोत्सर्जनवे-
लायांवृषाभावःकथंचन मृद्धिःपिष्टैश्चदर्भैर्वावृषंकृत्वाविमोचयेन् नशक्यतेवृषोत्सर्गोहोमंवातत्रकारयेदिति
तन्निर्मूलं तद्विधिर्हेमाद्रौभट्टकृतौचज्ञेयः अत्रदेवयाज्ञिकेनवृषोत्सर्गात्पूर्वपुरुषसूक्तेनविष्णुरूपिप्रेतोद्देशेन-
विष्णुतर्पणमुक्तं तत्रमूलंचित्यं ।

आतां वृषोत्सर्ग सांगतो—

तो वृषोत्सर्ग नित्य आणि काम्य आहे. कारण, “जो पुत्र वृषोत्सर्ग करित नाही, किंवा उत्तम तीर्थांत पितरांना उदकांजलि देत नाही, तो पित्याचा उच्चार (पुरीप, मल) च आहे. बहुत पुत्रांची इच्छा करावी. कारण, त्यांतील एक पुत्र तरी गयेस जाईल, अथवा अश्वमेध याग करील, किंवा नीलवृषाचा उत्सर्ग करील.” असें मात्स्यांत व कौर्मोत वचन आहे. “ज्या प्रेताच्या उद्देशानें अकराव्या दिवशीं वृषोत्सर्ग केलेला नसेल त्याला शंकरां श्राद्धें दिलीं तरी त्याचें प्रेतत्व सुस्थिर राहतें.” असें षट्त्रिंशन्मतांत वृषोत्सर्ग नमल्याचें निंदाश्रवण आहे. म्हणून तो नित्य होय. “याप्रमाणें वृषोत्सर्ग केल्या असतां करणाराला अश्वमेधाचें फल प्राप्त होतें. ज्याच्या उद्देशानें वृषोत्सर्ग केला असेल त्याला उत्तमगति होते. उत्सर्ग केलेला वृष पूर्वीचे दहा व पुढचे दहा पुरुषांना पवित्र करितो” असें देवीपुराणांत व भविष्यादि पुराणांत फल सांगितलें आहे, यावरून तो काम्य होय. हा वृषोत्सर्ग बाराव्या दिवशीं सांगितला आहे. भविष्यांत—“चैत्राचे तृतीयेस किंवा वैशाखतृतीयेस अथवा बाराव्या दिवशीं वृषोत्सर्ग करावा.” विष्णुधर्मांत मृतदिवशींही सांगितला आहे—“दोनीं विषुवायनसंक्रांतीस आणि बांधवाच्या मृतदिवशीं करावा.” हा (वृषोत्सर्ग) घरीं करूं नये. कारण, “पुच्छ फल इच्छिणारानें घरीं नीलवृषोत्सर्ग करूं नये” असें कालिकापुराण आहे. कामधेनूत—“वर्षाच्या आंत मातापितरांच्या वृषोत्सर्गकर्मासर्थे वृद्धिश्राद्ध करूं नये. तें इतर वृषोत्सर्गांत करावें.” वृषाचें लक्षण सांगतो—ब्राह्मांत—“ज्याचा सर्व शरीराचा वर्ण लोहित (लाल) आहे, मुख व पुच्छ पांढरीं आहेत, आणि खुर व शिंगें हीं शुभ्र आहेत त्याला नीलवृष असें म्हटलें आहे.” ज्याच्या शरीराचा वर्ण शुभ्र असून मुख, पुच्छ, खुर, शिंगें हीं श्यामवर्ण आहेत तो किंवा शरीराचा वर्ण श्याम आणि मुखादिक शुभ्र आहेत तोही नीलवृष, असें मत्स्यपुराणादिकांत सांगितलें आहे. देवीपुराणांत—“चम किंवा दोन पाष्ठा असाव्यात. दोन न मिळतील तर एक तरी असावी.” श्वातां जें कोणी बोलतात कीं, “वृषोत्सर्गसमयीं वृषाचा अभाव असेल तर मातीचा, पित्तचा किंवा दर्भाचा वृष करून त्याचा उत्सर्ग करावा. अथवा ज्या ठिकाणीं वृषोत्सर्ग होण्यास शक्य नसेल त्या ठिकाणीं होम करावा” असें, तें निर्मूल (मूलरहित) आहे. त्या वृषोत्सर्गाचा विधि हेमाद्रौत व नारायणभट्टीस जाणावा. या ठिकाणीं देवयाज्ञिकानें वृषोत्सर्गाच्या पूर्वी पुरुषसूक्तानें विष्णुरूपी प्रेताच्या उद्देशानें विष्णुतर्पण सांगितलें आहे त्याविषयीं मूल चित्य (अनुपलब्ध) आहे.

पारस्करः सव्येनपाणिनापुच्छंसमालंब्यवृषस्यतु दक्षिणेनापआदायसतिलाःमकुशास्ततः प्रेतगोत्रंस-
मुच्चार्यअमुकस्मैइतिब्रुवन् वृषएषमयादत्तस्तंतारयतुसर्वदा सहेमसतिलंभूमावित्युच्चार्यविनिक्षिपेत् तथा
विधारयेन्नतचक्षिन्नचक्षन्नवाहयेत् नदोहयेन्नताधेनूर्नचक्षन्नबंधयेत् स्त्रीपुत्रविशेषःसंप्रहे पतिपुत्रवतीनारी-
भर्तुरप्रेमृतायदि वृषोत्सर्गनकुर्वीतगां दद्याच्चपयस्विनीं पतिपुत्रयोःसाहित्यंविबक्षितं अन्वारोहणेपिगोदानमे-
वेत्युक्तंप्राक् आशौचांतरेपिवृषोत्सर्गाद्यमासिकशय्यादिदद्यादेवेत्युक्तं क्रियानिवंधेस्मृत्यंतरे सूतकेमृत-
केचैवद्वितीयंमृतकंयदि पिंडदानंप्रकुर्वीतवृषोत्सर्गतथैवच नहन्त्यात्सूतकेकर्मद्वादशैकादशाहिकं शुद्धोवाय-
दिवाऽशुद्धःकुर्यादेवाविचारयन्निति ।

पारस्कर—“वृषाचें पुच्छ डाव्या हातानें धरून उजव्या हातांत तिलकुशसहित उदक घेऊन प्रेतगोत्राचा उच्चार करून
‘अमुकस्मै वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा’ असा उच्चार करून सुवर्णतिलसहित उदक भूमीवर सोडावें.” तसेंच—“त्या
सोडलेल्या वृषभाला कोणी धरूं नये. त्याच्याकडून भार वाहवूं नये. सोडलेल्या पाळ्यांचें (गाईचें) कोणी दूध काढूं नये व
बांधूं नयेत.” स्त्रियांविषयीं विशेष सांगतो **संग्रहांत**—“पतिपुत्रयुक्त अशी स्त्री भर्त्याच्या आधीं मृत होईल तर तिला
वृषोत्सर्ग करूं नये. त्याच्या स्थानीं दूध देणारी गाई द्यावी.” अथें पति व पुत्र जीवंत अमतील तर हा वृषोत्सर्गनिषेध
समजावा. स्त्रियेचें अनुगमन असतांही गोप्रदानच करावें, असें पूर्वी सांगितलें आहे. दुसरें आशौच अमलें तरी वृषोत्सर्ग,
आय मासिक, शय्या इत्यादि यावेंच, असें सांगितलें आहे, **क्रियानिवंधांत स्मृत्यंतरांत**—“जननाशौचांत किंवा मृता-
शौचांत दुसरें मृताशौच असलें तरी पिंडदान व वृषोत्सर्ग करावा. सूतकांत द्वादशाहिक व एकादशाहिक कर्म टाकूं नये.
शुद्ध असो किंवा अशुद्ध असो, विचार न करतां सर्वे कृत्य करावेंच.”

अत्रपददानमुक्तदेवजानीयेगारुडे एकादशाहंप्रक्रम्य तद्विहीयतेसर्वैर्द्वादशाहेविशेषतः पदानि
सर्ववस्तूनिवरिष्ठानित्रयोदश योददातिमृतस्येहजीवतोप्यात्महेतवे सुखीभूत्वामहामार्गेवैतयेयसगच्छति
तथा आसनोपानहौछत्रमुद्रिकाचकमंडलुः भोजनंभोजनाधारोवस्त्राप्यष्टविधंपदं **तथा** भाजनासनदाने-
नमुद्रिकाभोजनेनच आज्ययज्ञोपवीतेनपदंसंपूर्णतांत्रजेत् महिषीरथगोदानात्सुखीभवतिनिश्चितं सर्वोपस्कर-
युक्तानिपदान्यत्रत्रयोदश योददातिमृतस्येहजीवन्नप्यात्महेतवे सगच्छतिपरंस्थानंमहाकष्टविवर्जितः त्रयो-
दशपदानीत्थंप्रेतायैकादशेहनि दातव्यानियथाशक्तितेनासौप्रीणितांभवेत् अन्नंचवोदकंचैवोपानहौचकमं-
डलुः छत्रंवस्त्रंथायष्ट्रिलोहदंडंताथ्रामं अग्नीष्टिकांचदीपंचतिलांस्तांबूलमेवच चंदनंपुष्पदानंचोपदानानिच-
तुर्दश योश्चरथंगजंवापिब्राह्मणेप्रतिपादयेत् स्वमहिम्नोनुसारेणतत्तत्सुखमवाप्नुयादिति अत्रमूलंचित्यं ।

अकराव्या दिवशीं पददान सांगितलें आहे. **देवजानीयांत गारुडांत** एकादशाहाना उपक्रम करून सांगतो “अक-
राव्या दिवशीं सर्वे मनुष्य वरिष्ठ सर्ववस्तुरूप पदें तेरा देतात. चाराव्या दिवशीं विशेषकरून देतात. जो मनुष्य मृताच्या
उद्देशानें पदें देतो किंवा आपण जीवंत असतां आपल्याकरितां देतो तो मृत झालेला, प्रेताच्या मोठ्या मार्गांत सुखी होऊन
जातो.” तसेंच—“आसन, उपानह, (जोडा), छत्री, मुद्रिका, कमंडलु, भोजन (अन्न), भोजनपात्र, वस्त्र हें आठ प्रकार-
रचें पद होतें.” तसेंच—“भोजनपात्र, आसन, मुद्रिका, भोजन, घृत आणि यज्ञोपवीत यांच्या दानानें पद संपूर्ण होतें.
महिषी, रथ आणि गाई यांच्या दानानें निश्चयानें सुखी होतो. जो मनुष्य सर्वे साहित्यानीं युक्त अशीं तेरा पदें अकराव्या
दिवशीं मृताच्या उद्देशानें देतो; किंवा जीवंत असून आपल्या उद्देशानें देतो तो महाकष्टरहित होऊन उत्तम स्थानाला जातो.
याप्रमाणें तेरा पदें मृताला अकराव्या दिवशीं यथाशक्ति यावीं, त्या पददानानीं तो प्राणी संतुष्ट होतो. अन्न, उदक, उपा-
नह, कमंडलु, छत्री, वस्त्र, काठी, लोहदंड, शेंगडी, शीप, तिल, तांबूल, चंदन आणि पुष्पें हीं चवदा उपदानें आहेत. जो
मनुष्य आपल्या शक्तीला अनुसरून अन्न, रथ किंवा हत्ती ब्राह्मणाला देईल त्याला तें तें सुख प्राप्त होईल.” याविषयीं मूल-
वचन चित्यं (अनुपलब्ध) आहे.

अथशय्यादानं हेमाद्रौभविष्ये तस्माच्छय्यांसमासाद्यसारदारुमयीं दृढां दंतपत्रचितारंन्याहे-
मपट्टैरलंकृतां हंसतुलीप्रतिच्छिन्नान्शुभंगंडोपधानिकां प्रच्छादनपटीयुक्तांगंधधूपादिवासितां तस्यांसंस्थापये-
द्द्वैमहर्हिलक्ष्म्यासमन्वितं अत्रहरिस्थानेप्रेतं उच्छीर्षकेघृतभृतंकलशंपरिकल्पयेत् तांबूलकुंकुमभोदकपूरगा-
रुचंदनं दीपिकोपानहौछत्रंचामरासनभाजनं पार्श्वेषुस्थापयेद्भुक्त्यासन्नधान्यानिचैवहि शयनस्थस्यभवतियद-

न्यदुपकारकं भृंगारकरकाद्यंतुपंचवर्णवितानकं मंत्रस्तु यथानकृष्णशयनंशून्यंसागरजातया शय्याममाव्य-
शून्यास्तुतथाजन्मनिजन्मनि यस्मादशून्यंशयनंकेशवस्यशिवस्यच अर्धतदेव दत्तैवंतस्यसकलंप्रणिपत्यविस-
र्जयेत् एकादशाहेपितथाविधिरेपप्रकीर्तितः विशेषंचात्रराजेंद्रकध्यमानंनिशामय तेनोपभुक्तंयत्किंचिद्वस्त्रवा-
हनभाजनं यद्यदिष्टंचतस्यासीत्तत्सर्वंपरिकल्पयेत् तमेवपुरुषंहैमंतस्यांसंस्थापयेत्तदा पूजयित्वाप्रदातव्यामृत-
शय्यायथोदिता पाद्मे मृतकांतेद्वितीयेह्निशय्यांदद्यात्सलक्षणां कांचनंपुरुषंतद्वत्फलवस्त्रसमन्वितं संपूज्य-
द्विजदांपत्यंनानामणिविभूषितं उपवेश्यतुशय्यायांमधुपर्कततोवदेत् रजतस्यतुपात्रेणदधिदुग्धसमन्वितं
अस्थिलालाटिकंगृह्यसूक्ष्मंकृत्वासपायसं भोजयेद्विजदांपत्यंविधिरेषसनातनः एषएवविधिर्दृष्टःपार्वतीयै-
र्द्विजोत्तमैः एतत्प्रतिग्रहेतत्रैवोक्तम् गृहीतायांतुतस्यांवैपुनःसंस्कारमर्हति शय्यादानफलंभविष्ये स्वर्गो-
पुरंदरपुरेसूर्यपुत्रालयेतथा मुखंवसत्यसौजंतुःशय्यादानप्रभावतः आभूतसंप्लवंयावत्तिष्ठत्यातंकवर्जितमिति ।

आतां शय्यादान सांगतो—

हेमाद्रीन भविष्यांत—“साडाच्या लांकडाची दड (मजवूत) अशी शय्या (पलंग) तयार करावी. तिला हस्ति-
दंतांची पंचे बसवावी. मोन्याच्या पट्या साराग्या. ती शुभ वस्त्रांनं आच्छादित असावी. तिच्या बाजूचे दंड चांगले गुळगुळीत
असावे. उशी चांगली असावी. वरती पलंगपोग घातलेला असावा. गंध, धूप यांचा तिला वास यावा. लक्ष्मीसहित हरीची
मूर्ति मुवर्णाची करून त्या शय्येवर ठेवावी. ही मूर्ति ठेवणं इतरवेळीं आहे. अकराव्या दिवशीं हरिमूर्तीच्या स्थानीं प्रेताची
मूर्ति ठेवावी. उशाकडे तुपाचा भरलेला कलश ठेवावा. तांबूल, केशर वाटलेले, कापूर, अगर, दिवा, जोडा, छत्री, चवरी,
आसन, पात्र हीं मोठ्या भक्तीनं शय्येवर वाजग ठेवावीं. आणि सप्त धान्यं ठेवावीं. शय्यावर असतां जें इतर कांहीं अवश्य
पाहिजे असेतें म्ह. ० झारी, कमंडलु इत्यादिक तें असावें. आणि पांचरंगी चांदवा त्या शय्येला असावा. त्या शय्यादानाचा
मंत्र—‘यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया । शय्या समाप्यशून्याग्न्यु तथा जन्मनि जन्मनि । यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य
शिवस्य च । शय्या समाप्यशून्याग्न्यु तथा जन्मनि जन्मनि ।’ याप्रमाणे ब्राह्मणाला गर्वे देऊन नमस्कार करून विसर्जन करावें.
हा विधि इतर वेळीं शय्यादानाचा गांमिंतला आहे, त्याच अकराव्या दिवशा देखील शय्यादानाचा हाच विधि आहे. हे
राजा ! अकराव्या दिवशा विशेष आहे तो गांमंतो श्रवण कर ! मृत झालेल्यांनं जें कांहीं वस्त्र, वाहन, पात्र वगैरे उपभुक्त असेल
तें आणि त्याला जें जे टप्प असेल तें सारें ब्राह्मणाला यावे. तोच मृत झालेला पुरुष मुवर्णाचा करून त्या वेळीं त्या शय्येवर
स्थापन करावा. त्याची पूजा करून व ब्राह्मणाची पूजा करून अशी गांमित्या आहे तशी मृतशय्या यावी.” पद्मपुराणांत—
“मृताशांचाच्या शवर्षा दुसऱ्या दिवशा गांमितिलेव्या लक्षणांनीं युक्त अशी शय्या यावी. मुवर्णाचा पुरुष करून फल, वस्त्रें
यांनीं सहित तो यावा. ब्राह्मणाचे दंपतीची पूजा करून नानाप्रकारच्या मण्यांनीं त्यांना भूषित करून शय्येवर बसवून तद-
नंतर मधुपर्क हृत्पाच्या पात्रांनं दधिदुग्धयुक्त यावा. प्रेतांचे कल्याणाचें अस्थि (हाड) घेऊन बारीक चूर्ण करून तें पायसांत
झाकून ब्राह्मणाचे दंपतीला भोजन घालावें. हा विधि गैनातन आहे. हाच विधि पर्वतीय ब्राह्मणप्रेषांनीं गांमितला आहे.”
या शय्येचा प्रतिग्रह केला अगता तेथंच सांगितले आहे—“ती शय्या घेतन्य अगता पुनः संस्कार करण्याला पात्र होतो.”
शय्यादानाचें फल सांगतो भविष्यांत—“शय्यादानाच्या प्रभावानं तो प्राणी स्वर्गामध्ये इंद्राचे नगरींत, तसाच यमाच्या
घरां मुखानं वास करितो. भूतांचा प्रलय होई तावकालपर्यंत दुःखांनीं रहित होतसाला राहतो.”

अथोदकुंभः हेमाद्रौस्मृतिसमुच्चये एकादशाहात्प्रभृतिघटस्तोयान्नसंयुतः दिनेदिनेप्रदातव्यो-
यावत्संवत्सरंमुतेः लौगाक्षिः यस्यसंवत्सराद्वार्वाकमपिंडीकरणंभवेत् मासिकंचोदकुंभंचदेयंतस्यापिवत्सरं
उत्तरार्धे तस्याप्यन्नंसोदकुंभंदद्यात्संवत्सरंद्विजे इति याज्ञवल्क्यपाठः सपिंडनापकर्षेऽप्यापकर्षप्राप्तेबाधक-
मिदमिति शूलपाणिः तत्र प्रकृतिविकाराभावेनतदंतन्यायाविपयत्वात् मात्स्ये यावद्वंदंचयोदद्यादुदकुंभं-
विमत्सरः प्रेतायान्नसमायुक्तंसोश्वमेधफलंभेत् केचित्रयोदशाहमारभ्याहुस्तन्निर्मूलं देवयाज्ञिकः सपिं-
डनापकर्षेसंवत्सरंयावदुदकुंभंअर्वागेवदद्यान्नोर्ध्वं प्रेतलोकगतस्यान्नंसोवकुंभंप्रयच्छतेतिगोर्विंदराजधृत-
विष्णूक्तेः अन्नचैवस्वशक्त्यातुसंख्यांकृत्वाब्दिकावधि दातव्यंब्राह्मणेस्कंदघटादौनिष्कयंतुवा अपिब्राह्म-

१ हा विधि महाराष्ट्र देशातील शिष्ट स्वीकारित नाहीत. ज्या देशांत तो आचार असेल त्या ठिकाणीं जमो, जसे पर्वतीय-
क्षर लिहितात.

शतैर्दत्तैरुदकुंभविनानराः दरिद्रादुःखिनस्तातभ्रमंतिचभवारणवे तेनापकृष्यदातव्यंप्रेतस्याप्युदकुंभकमिति-
गोभिलभाष्येस्कांदाच्च सपिंडनात्प्रागेवतस्यविधानादूर्ध्वनिषेधादित्याह तन्न उदकुंभेपार्वणविधानानु-
पपत्तेरेवंव्याख्यायांमानाभावान्मिताक्षरादिविरोधाच्च वचनंयदिसमूलंतदावृद्धावपकर्षविधत्ते प्रेत-
श्राद्धानिसर्वाणिसपिंडीकरणंतथेति हेमाद्रौशाश्वत्यायनोक्तेः तस्याप्यन्नंसोदकुंभमिति याज्ञवल्क्य-
विरोधाच्च ।

आतां उदकुंभ मांगतो—

हेमाद्रीत स्मृतिसमुच्चयांत—“पुत्रांनीं अकराव्या दिवसापासून संवत्सरपर्यंत दररोज उ 'क व अन्न यांनीं युक्त घट थावा.” लौगाक्षि—ज्याचें सपिंडीकरण वर्षाचे आंत होईल त्याला देखील मासिक आणि उदकुंभश्राद्ध वर्षपर्यंत यावें.” या वचनाचे उत्तरार्धांत ‘तस्याप्यन्नं सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजे’ अग्रा याज्ञवल्क्याचा पाठ आहे अर्थ—त्याला देखील उद-
कुंभसहित अन्न संवत्सरपर्यंत ब्राह्मणांच्या ठिकाणीं यावें. वर्षातीं करावयाचें सपिंडीकरणाचा अपकर्ष करून वर्षाचे आंत केलें असतां उदकुंभाचा अपकर्ष प्राप्त झाला, त्याचें वाधक हें वचन आहे असें शूलपाणि मांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, ‘तदंतमपकर्षं स्यात्’ म्हणजे ज्याचा अपकर्ष सांगितला असेल तदंत जीं कर्मे त्यांचा अपकर्ष करावा, हा जमिनीचा सूत्रन्याय प्रकृतींत सांगितलेल्या कर्मांचा विकृतींत अपकर्ष करण्याकरितां आहे. या ठिकाणीं प्रकृतिकर्म आणि विकृतिकर्म नसल्यामुळें त्या न्यायाचा येथें विषय नाही. मात्स्यांत—“जो पुरुष मत्सररहित होऊन वर्षपर्यंत प्रेताला अन्नसहित उदक वेईल त्याला अश्वमेधाचें फल प्राप्त होईल.” केचित् ग्रंथकार—तेराव्या दिवसापासून उदकुंभ थावा, असें सांगतात, तें मूलरहित आहे. देवयाज्ञिक—सपिंडीकरणाचा अपकर्ष असतां संवत्सरपर्यंत थावयाचे उदकुंभ ते सपिंडीकरणाच्या पूर्वीच थावे; सपिंडीकरणानंतर देऊं नयेत. कारण, “प्रेतलोकास गेलेल्या प्राण्यास उदकुंभसहित अन्न यावें.” असें गोविंदराजांनं भरलेलें विष्णुवचन आहे. आणि “आपल्या शक्तीप्रमाणें एकवर्षपर्यंत लागणाऱ्या अन्नाची संख्या करून ब्राह्मणाला यावें. घटादिक यावें. तें घटादिक देण्याविषयीं अशक्य असेल तर निष्कय द्रव्य यावें. शेंकडों श्राद्धें केलीं तरी उदकुंभावांचून प्राणी दरिद्री व दुःखी होऊन भवसागरांत भ्रमण करतात, त्यामुळें प्रेताला अपकर्ष करूनही उदकुंभ थावा.” असें गोभिल-
भाष्यांत स्कांदवचनही आहे, म्हणून सपिंडीकरणाच्या पूर्वीच उदकुंभाचें विधान आहे, सपिंडीकरणानंतर निषेध आहे, असें सांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, उदकुंभाचे ठायीं पार्वणाचें विधान केलें आहे त्याची उपपत्ति होणार नाही. वरील वचनाची—सपिंडीच्या पूर्वीच विधान व नंतर निषेध—अशी व्याख्या करण्याविषयीं प्रमाण नाही. आणि तसें म्हटलें तर मिता-
क्षरा इत्यादि ग्रंथांचा विरोधही येतो. तें स्कांदादिवचन जर समूल असेल तर, वृद्धिश्राद्ध कर्तव्य असतां उदकुंभांचा अपकर्ष करावा, असें सांगतें. कारण, “सारीं प्रेतश्राद्धें आणि सपिंडीकरण यांचा अपकर्ष करावा” असें हेमाद्रीत शाश्वत्यायनवचन आहे. आणि सपिंडीकरणानंतर करावयाचीं नाहीत असें म्हटले तर ‘तस्याप्यन्नं सोदकुंभं’ ह्या वर सांगितलेल्या याज्ञवल्क्यवचनाशीं विरोधही येतो.

मदनब्रह्मेगौतमः अदैवंपार्वणश्राद्धंसोदकुंभमधर्मकं कुर्यात्प्रत्याव्दिक्काच्छ्राद्धात्संकल्पविधानान्वहं अधर्मकं ब्रह्मचर्यादिनियमहीनं एतन्मासिकवदेकोद्दिष्टंपार्वणंवाकार्यं अपरार्कस्तु सपिंडीकरणेवृत्तेपृथक्त्वं-
नोपपद्यते पृथक्त्वेतुकृतेपश्चात्पुनःकार्यासपिंडतेतिलघुहारीनोक्तावपि तस्याप्यन्नंसोदकुंभंदेयंसंवत्सरं-
द्विजेइति याज्ञवल्कीयेतस्येत्येकत्वोक्तेः सपिंडनोत्तरमप्येकोद्दिष्टमेवेत्याह अत्रपिंडदानंकृताकृतं अहरह-
रभ्रमसैब्राह्मणायोदकुंभंचदद्यात्पिंडमप्येकेनिवृणंतीतिहेमाद्रौपारस्करोक्तेः श्राद्धाशक्तौपिंडमात्रमिति
गौडाः तन्न अपिशब्दबाधापत्तेः हारीतः मृतेपितरिवैपुत्रःपिंडमब्दंसमाचरेत् अन्नकुंभंचविप्रायप्रेतनि-
र्देशधर्मतः प्रेतशब्दोच्चारणेनेतिहृलायुधः यद्वाप्रेतस्यनिर्देशोयत्रतदेकोद्दिष्टतद्धर्मकमित्यर्थः अत्राशौचांत
दिनाद्यब्दांतंयावद्वत्सरापूर्तःशौचंनाधिकारिविशेषणं तेनमृतिदिनमारभ्यैतत्कार्यमतिकेचित् तन्न हेमा-
द्रिधृतवचोविरोधात् मध्येआशौचादिनाबाधेतुलोपएवदर्शवत् तथाप्रथमाब्देदीपदानमुक्तंदेवजानीये
गाकूडे प्रत्यहंदीपकोदेयोमार्गेतुविषमेनरैः यावत्संवत्सरंवापिप्रेतस्यसुखलिप्सया ग्राह्युखोदग्राह्युखंदीपदेवा-
गारेद्विजालये कुर्याद्याम्यमुखंपिच्येअग्निःसंकल्प्यसुस्थितं ।

मदनब्रह्मांत गौतम—“संवत्सरिकश्राद्धपर्यंत दररोज उदकुंभश्राद्ध देवरहित पार्वण अधर्मक (ब्रह्मचर्यादि नियमरहित) असें संकल्पविधीनं करावें.” हें श्राद्ध मासिकाप्रमाणें एकोद्दिष्ट किंवा पार्वण करावें. अपरार्क तर—“सपिंडी

करण झालें असतां पृथक् करणें योग्य नाही. पृथक् केलें असतां पुनः सपिंडन करावें” असें लघुहारीतानें सांगितलें तरी “त्यालाही वर्षपर्यंत उदकुंभसहित*अन्न ब्राह्मणाच्या ठिकाणीं यावें.” ह्या याज्ञवल्क्यवचनांत ‘तस्य’ त्याच्याही, असें एकवचन अमत्यामुळें सपिंडीकरणांतरही एकोद्दिष्ट करारवें. असें सांगतो. ह्या उदकुंभश्राद्धांत पिंडदान कृताकृत आहे. कारण, “दरगेज प्रेताच्या उद्देशानें ब्राह्मणाला अन्न आणि उदकुंभ यावा. कितीएक विद्वान् पिंडही देतात” असें हेमाद्रीत पारस्करवचन आहे. श्राद्धाविषयी शक्ति नसेल तर पिंडच यावे, असें गौड सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, ‘पिंडमपि’ ‘पिंडही’ ह्या अपिशब्दाचा बाध होईल. हारीत—“पिता मृत असतां पुत्रानें वर्षपर्यंत पिंड यावा. प्रेतनिर्देशधर्मानें अन्न आणि उदकुंभ ब्राह्मणाला यावा.” प्रेतनिर्देशधर्मेतः म्हणजे प्रेतशब्दोच्चारण करून, असें हलायुध सांगतो. अथवा प्रेताचा निर्देश ज्यांना आहे ते एकोद्दिष्ट होय, त्याच्या धर्मानें करावें, असा अर्थ समजावा. येथें आशौचममासीच्या दिवसापासून वर्षाच्या शेवटच्या दिवसापर्यंत संवत्सराची पूर्तता होत नाही म्हणून अधिकारी याला शुद्ध हें विशेषण करावयाचें नाही. तेणेंकरून शुद्ध असला तरी मृत दिवसापासून आरंभ करून हें उदकुंभश्राद्ध करावें, असें केचित् म्हणतात. तें बरोबर नाही. कारण, वरील हेमाद्रीनें धरलेल्या स्मृतिसमुच्चयवचनाशीं विरोध येतो. मध्यें आशौचादिकानें उदकुंभश्राद्धाचा बाध झाला असतां दर्शदिश्राद्धाप्रमाणें लोपच होतो. तसेंच प्रथमवर्षी दीपदान सांगितलें आहे—देवजानीयांत गारुडांत—“प्रेताला विषम मार्गांत मुख व्हावें म्हणून दररोज संवत्सरपर्यंत दीप द्यावा. देवालायांत व ब्राह्मणाच्या घरी उदकानें संकल्प करून पूर्वेस मुख करून व उत्तरेस मुख करून दीप ठेवावा. आणि पितृ कर्मांमध्ये दक्षिणेस मुख करून दीप ठेवावा.”

अथमासिकानि तानिचकृतवैवसपिंडनकार्यं तथागोभिललौगाक्षी श्राद्धानिषोडशदत्वात्नैव-
कुर्यात्सपिंडनं श्राद्धानिषोडशापाद्यविदधीतसपिंडनं तानित्वाह जातूकर्ण्यः द्वादशप्रतिमास्यानिआद्यं-
षाण्मासिकंतथा त्रैपक्षिकादिकेचेतिश्राद्धान्येतानिषोडश आद्यषाण्मासिकादिकशब्दाःऊनमासिकोनषष्ठो-
नादिकपराः हेमाद्रीतुसपिंडीकरणंचैवइत्येतत्श्राद्धषोडशमित्युत्तरार्धेपाठः तदा आद्यमूनमासिकंद्वाद-
शाहे षाण्मासिकंऊनषष्ठोनादिकेइत्यर्थः कात्यायनस्त्वन्यथाह द्वादशप्रतिमास्यानिआद्यंषाण्मासिकेतथा
सपिंडीकरणंचैवइत्येतच्छ्राद्धषोडशम् एकाहेनतुपण्मासायदास्युरपिवात्रिभिः न्यूनःसंवत्सरश्चैवस्यातांषा-
ण्मासिकेतदा द्विवचनाद्नपण्मासादिकेइत्यर्थमाहपृथ्वीचंद्रः न्यासस्त्वन्यथाह द्वादशाहेत्रिपक्षेचप-
ण्मासेमासिकादिके श्राद्धानिषोडशेतानिसंस्मृतानिमनीपिभिः द्वादशाहपदमूनमासिकपरं तस्यद्वादशाहे-
प्युक्तेरिति कालादर्शः मदनरत्नेब्राह्मेत्वन्यथोक्तं नृणांतुत्यक्तदेहानांश्राद्धाःषोडशसर्वदा चतुर्थेपंच-
मेचैवनवमैकादशेतथा ततोद्वादशभिर्मासेःश्राद्धाद्वादशसंख्ययेति चतुर्थादीनिदिनानि भविष्येत्वन्यथोक्तं
अस्थिसंचयनंश्राद्धंत्रिपक्षेमासिकानितु रिक्तयोश्चतथातिथ्योःप्रेतश्राद्धानिषोडशेतिरिक्तयोस्तिथ्योरित्यूनषष्ठो-
नादिकपरमितिहेमाद्रिः अत्रदेशकुलशाखाभेदाद्यवस्थेति सर्वनिबन्धाः गालवः ऊनषाण्मासिकंपष्ठेमा-
सेवाप्यूनमासिकं त्रैपक्षिकंत्रिपक्षेस्यादूनाच्छ्राद्धाद्वादशेतथा ऊनमासिकेतुगोभिलः मरणाद्वादशाहेस्यान्मास्यू-
नेवोनमासिकं मदनरत्नेकालादर्शंच श्लोकगौतमः एकद्वित्रिदिनैरुनेत्रिभागेनोनपक्वा श्राद्धान्यू-
नादिकादीनिकुर्यादित्याहगौतमः क्रियानिबन्धेक्रतुस्तु सार्धेएकादशेमासेसार्धेवैपंचमेतथा ऊनाब्द-
मूनषण्मासंभवेतांश्राद्धकर्मणीत्युक्तं तत्रमूलंचित्यम् ।

आतां मासिकें सांगतो—

तीं मासिकें करूनच सपिंडन करावें. तेंच सांगतात गोभिल व लौगाक्षि—“षोडश श्राद्धं (मासिकें) केल्यावांचून सपिंडीकरण करूं नयेच. षोडश श्राद्धं करून नंतर सपिंडीकरण करावें.” तीं षोडश मासिकें सांगतो जातूकर्ण्य—“बारा महिन्यांचीं बारा, ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक, त्रैपक्षिक आणि ऊनाब्दिक अशीं हीं सारीं मिळून सोळा श्राद्धं होतात.” या वचनांत ‘आद्य’ ह्यां ऊनमासिक. ‘षाण्मासिक’ ह्यां ऊनषष्ठमासिक. ‘आब्दिक’ ह्यां ‘ऊनाब्दिक’ असें समजावें. हेमाद्रीत तर—वरील जातूकर्ण्यवचनाच्या उत्तरार्धांत ‘सपिंडीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम्’ असा पाठ आहे. त्यावेळीं आद्य ह्यां ऊनमासिक तें बाराव्या दिवशीं करावें. आणि षाण्मासिक म्हणजे ऊनषष्ठ व ऊनाब्दिक होय. कात्यायन तर निराळें सांगतो—“प्रत्येक महिन्याचीं बारा, आद्यमासिक, षाण्मासिकें, सपिंडीकरण हीं सोळा श्राद्धं होतात. सद्या महिषे

एक दिवसानें किंवा तीन दिवसांनीं होणारे असतील तेव्हां आणि संवत्सर एक दिवसानें किंवा तीन दिवसांनीं न्यून असेल तेव्हां तीं षण्मासिक श्राद्धें होतात.” या वचनांत ‘षण्मासिके’ असें द्विवचन असल्यामुळे ऊनषष्ठ आणि ऊनाब्दिक हीं दोन समजावीं, असा अर्थ सांगतो **पृथ्वीचंद्र. व्यास** तर वेगळेंच सांगतो—“बाराव्या दिवशीं. तीन पक्ष होतील त्या दिवशीं, साहाय्या मासांत, बारामासांत होणारीं आणि आब्दिक हीं सोळा श्राद्धें विद्वानांनीं सांगितलीं आहेत.” या वचनांत ‘द्वादशाहे’ असें पद आहे, त्यानें त्या दिवशीं होणारें ऊनमासिक समजावें. कारण, ऊनमासिक बाराव्या दिवशीं देखील सांगितलें आहे, असें **कालादर्श** सांगतो. **मदनरत्नांत** ब्राह्म्यांत तर दुसऱ्या रीतीनें सांगितलें आहे—“मृत झालेल्या मनुष्याचीं षोडश श्राद्धें सर्वदा करावीं. तीं अशीं—चवथ्या दिवशीं, पांचव्या, नवव्या, अकराव्या दिवशीं हीं चार होतात, आणि तदनंतर बारा महिन्यांचीं बारा श्राद्धें होतात.” **भविष्यांत** तर निराळेंच सांगितलें आहे—“अस्थिसंचयनश्राद्ध, त्रैपक्षिक, मासिकें, आणि रिक्त म्हणजे न्यून तिथींना दोन, अशीं प्रेतश्राद्धें सोळा होतात.” रिक्त तिथींना म्हणजे ऊनषष्ठ आणि ऊनाब्दिक समजावीं, असें **हेमाद्रि** सांगतो. असे षोडशश्राद्धांविषयीं मतभेद आहेत त्यांची व्यवस्था देशाचार, कुलाचार व शाखाभेद यांवरून करावी, असें सारे **निबंधकार** सांगतात. **गालव**—“ऊनषण्मासिक, सहाव्या मासांत, ऊनमासिक पहिल्या मासांत, त्रैपक्षिक तीन पक्षांचे ठायीं, आणि ऊनाब्दिक बाराव्या मासांत, अशीं होतात.” ऊनमासिका-विषयीं तर सांगतो **गोभिल**—“मरणदिवसापासून बाराव्या दिवशीं किंवा मास पूर्ण झाला नमतां ऊनमासिक करावें.” **मदनरत्नांत** व **कालादर्शांत श्लोकगौतम**—“पहिला महिना एक दिवसानें किंवा दोन दिवसांनीं अथवा तीन दिवसांनीं न्यून असतां ऊनमासिक करावें. असेंच सहावा मास एक, दोन किंवा तीन दिवसांनीं न्यून असतां ऊनषण्मासिक करावें. तसेंच बारावा मास एक, दोन किंवा तीन दिवसांनीं न्यून असतां ऊनाब्दिक करावें. अथवा त्या त्या मासाच्या त्रिभागांनीं तो तो महिना न्यून असतां तें तें करावें, असें गौतम सांगतो.” **क्रियानिवंधान्त**, **ऋतु** तर—“माडे अकरा महिन्यांनीं ऊनाब्दिक होतें. आणि साडे पांचमहिन्यांनीं ऊनषण्मासिक होतें” असें सांगतो, असें सांगितलें, त्याविषयीं मूल जिल (अनुपलब्ध) आहे.

ऊनेषुवर्ज्यान्याहमरीचिः द्विपुष्करेचनंदासुसिनीवाल्याभृगोर्दिने चतुर्दश्यांचनोनानिकृत्तिकासुत्रिपुष्करे ज्योतिषे त्रिपादक्षतिथिर्भद्राभौमेज्यरविभिःसह तदात्रिपुष्करेयोगोद्वयोयोगेद्विपुष्करः **गालवः**—त्रिभिर्वादिवसैरुनेत्वेकेनद्वितयेनवा आद्यादिपुचमासेपुकुर्यादूनाब्दिकादिकम् एकन्यूनपक्षेपंचम्यांमृतस्यतृतीयायांत्रिभिर्न्यूनप्रतिपदिब्रूनेद्वितीयायामितिकेचित् **माधवस्तु** षण्मासिकाब्दिकेश्राद्धेस्यातांपूर्वेषुगेवतं मासिकानिस्वकीयेतुदिवसेद्वादशेपिवेतिपैठीनसिवाक्येऊनषण्मासिकंमप्रममासगतमृताहात्पूर्वेषुःकार्य ऊनाब्दिकंतुद्वितीयाब्देमृताहदिनात्पूर्वेषुःकार्यमित्यर्थमाह पूर्वेषुमृताहादित्यर्थः मासिकानिस्वकीयेतुदिवसेद्वत्युक्तेः इदमेवयुक्तं **मदनरत्नेप्येवं याज्ञवल्क्यः** मृतेहनिवृत्तंव्यं प्रतिमासंतुवत्सरं प्रतिसंवत्सरंचैव माद्यमेकादशेहनि अत्रायमासिकमाब्दिकंचैकादशेहीति**निर्णयामृतादयः** ब्राह्मणभोजयेदाद्येहोतव्यमनलेथवा पुनश्चभोजयेद्विप्रंद्विरावृत्तिर्भवेद्वितीति**गोभिली**यंचतद्विपयमाहुः **अन्ये**तुमासपक्षतिथिस्पष्टेद्वत्यादिविरोधादाब्दिकंवर्षातेष्व मासिकंतुमासादौ द्विरावृत्तिस्तुएकादशाहिकाद्यमासिकपरा **देवयाज्ञिकोप्येवमाह लौगाक्षिरपि** मासादौमासिकंकार्यमाब्दिकंवत्सरेगते आयमेकादशेकार्यमधिकेत्वधिकंभवेत् **दीपिकायांतु** आद्यंरुद्रमितेर्कंसंमतिदिनेवास्यादित्युक्तं **गौडास्तु**मृततिथ्यवधिकेएकदिनाधिके माससंवत्सरपदंगौणं पूर्णव्देइतिईषदसमाप्तपरत्वमिति**शूलपाणिः** तेनद्वितीयादिमासादावाद्यमासिकादिति तन्मौर्त्यकृतं ।

ऊनमासिक, ऊनषण्मासिक व ऊनाब्दिक यांविषयीं वर्ज्य सांगतो **मरीचि**—“द्विपुष्करयोग, नंदातिथि (११६।११) चतुर्दशीयुक्त अमावास्या, शुक्रवार, चतुर्दशी, कृत्तिकाक्षत्र, आणि त्रिपुष्करयोग यांचे ठायीं ऊन श्राद्धें करूं नयेत.” त्रिपुष्कर व द्विपुष्कर योग यांचें लक्षण-**ज्योतिषांत**—“त्रिपाद नक्षत्र, भद्रा तिथि (२।७।१२) आणि भौम, गुरु, रवि हे वार यांपैकी तिथि, वार, नक्षत्र या तिथांचा योग असतां त्रिपुष्कर योग होतो. आणि दोघांचा योग असतां द्विपुष्कर योग होतो.” **गालव**—“प्रथम मास, सहावा मास, व बारावा मास हे, तीन दिवसांनीं किंवा दोन दिवसांनीं अथवा एक दिवसानें न्यून असतां अतुल्यं ऊनषण्मासिक व ऊनाब्दिक होतात.” हीं एक दिवसानें न्यून असतां ह्या पक्षीं पंचमीस मृतांचें तृतीयेस ऊनमासिकादि होतें. तीन दिवसांनीं न्यून असतां ह्यापक्षीं पंचमीस मृतांचें प्रतिपदेस ऊनमासिकादि श्राद्ध. आणि दोन दिवसांनीं न्यून असतां ह्या पक्षीं पंचमीस मृतांचे द्वितीयेस ऊनमासिकादि होतें, असें **केचित्** विद्वान् सांगतात.

माघव तर—“ऊनवर्षासासिक आणि ऊनाब्दिक हीं श्राद्धं पूर्वं दिवशींच होतात. आणि इतर मासिकें (आपापल्या दिवशीं किंवा बाराव्या दिवशीं होतात.” ह्या पैठीनसिवाक्याचा—ऊनवर्षासासिक सातव्या मासाच्या मृत तिथीच्या पूर्वं दिवशीं करावें. ऊनाब्दिक दुसऱ्या वर्षाच्या मृतदिवसाच्या पूर्वदिवशीं करावें, असा अर्थ सांगतो. पूर्वदिवशीं म्हणजे मृतदिवसाच्या पूर्वं दिवशीं समजावें. कारण, मासिकें आपापल्या दिवशीं (मृतदिवशीं) करावीं; असें सांगितलें आहे. अर्थात् पूर्वेषु ऋणजे त्याच्या पूर्वं दिवशीं समजावें. हेंच युक्त आहे. मदनरत्नांतही असेंच आहे. याज्ञवल्क्य—“संवत्सरपर्यंत प्रत्येक मासां मृतदिवशीं करावें. याप्रमाणें प्रत्येक वर्षी मृतदिवशीं करावें. आणि आद्य अकराव्या दिवशीं करावें.” या ठिकाणीं याच मासिक आणि आब्दिक अकराव्या दिवशीं, असा अर्थ निर्णयामृत इत्यादिक ग्रंथकार सांगतात. आणि “आद्यश्राद्धांत ब्राह्मणाला भोजन घालावें किंवा श्राद्धात्ताचा अर्घीत होम करावा. पुनः दुसऱ्या ब्राह्मणाला भोजन घालावें, याप्रमाणें येथे श्राद्धाची द्विरावृत्ति होते.” हें गोभिलाचें वचन याविषयीच ते (निर्णयामृतादिक) सांगतात. इतर ग्रंथकार तर—“मास, पक्ष, तिथि यांनीं स्पष्ट केलेल्या ज्या दिवशीं जो मृत असेल त्याचा तो क्षयदिवस आहे, त्या दिवशीं करावें” ह्या व्यासादिवचनाचा विरोध असल्यामुळे आब्दिक श्राद्ध वर्षांतीच करावें. मासिक तर मासाच्या आद्यतिथीस करावें. वरील गोभिलवचनांत द्विरावृत्ति सांगितली ती एकादशाहिक व आद्यमासिक यांविषयीं समजावी. देवयाज्ञिकही असेंच सांगतो. लौगाक्षिही—“मासाच्या आरंभी मासिक करावें. आणि संवत्सर गेल्यावर आब्दिक करावें. आद्य अकराव्या दिवशीं करावें. अधिक मासांत अधिक होतें.” दीपिकेंत तर—“आद्य अकराव्या दिवशीं किंवा बाराव्या दिवशीं होतें” असें सांगितलें आहे. गौड तर—मृततिथीपासून पुढच्या मासाच्या मृततिथीपर्यंत एक मास व एक दिवस होतो. एका दिवसांनं अधिक मासाला मास शब्द गौण (लाक्षणिक) आहे. याप्रमाणें दुसऱ्या वर्षाच्या मृततिथीपर्यंत एक वर्ष व एक दिवस होतो त्या ठिकाणींही संवत्सर पद गौण आहे. ‘पूर्ण अब्द असतां’ असें जें वाक्य तें किंचिच्चून वर्षबोधक आहे, असें शूलपाणि सांगतो. तेणेंकरून दुसऱ्या वगैरे मासाच्या आधीं (पूर्वदिवशीं) आद्यमासिक वगैरे होतात. तें म्हणणें मूर्खपणाचें आहे.

अशक्तौहारीतः मुख्यश्राद्धमासिमासिअपर्याप्तावृत्तुं प्रति द्वादशाहेनवाभोज्याएकाहेद्वादशापिवा ऋतुं-प्रतिद्वेद्वेइत्यर्थः यदापितुर्मरणात्रयोविंशतितमेदिनेदशोवृद्धिर्वास्यात्तदाद्वादशदिनेपुद्वादशमासिकानिकार्याणी-त्यर्थः त्रैपक्षिकंतुपक्षेतीतेमृताहेकार्यं त्रैपक्षिकंभवेद्वृत्तेत्रिपक्षेतदनंतरमिति भविष्योक्तेरिति मदनरत्ने उक्तं पृथ्वीचंद्रकालादर्शननिर्णयामृतादयस्तु ऊनान्युनेपुमासेपुविषमाहेसमेपिवा त्रैपक्षिकंत्रिपक्षेस्यामृताहेस्वितराणित्विति कार्णार्जिनिस्मृतनेः पूर्वत्रवृत्तेप्रवृत्तेइत्यर्थमाहुः तेतदनंतरशब्दविरोधाच्चै-पक्षिकद्वितीयमासिकयोः संकरापक्षेरेवंव्याख्यायांमानाभावाच्चोपेक्ष्याः त्रिपक्षसर्पिडनेत्वेवंशब्दाभावादधि-करणत्वमेवज्ञेयं यत्तुक्रियानिवंधेगारुडे त्रैपक्षिकंत्रिपक्षेतुप्रवृत्तेविषमेदिने मासिकान्यपिचोनानिअष्टाविंशतितमेदिनेइति तन्निर्मूलम् ।

प्रतिमासीं करण्याला शक्ति नसेल तर सांगतो हारीत—“महिन्यामहिन्याला श्राद्ध मुख्य आहे, म्हणजे प्रत्येक ऋतूला दोन दोन श्राद्ध पडतात; तीं करण्याविषयीं अशक्ति असेल तर बाराव्या दिवसापासून तेविसावे दिवसापर्यंत दररोज एकेक श्राद्ध करावें. अथवा एक दिवशीं बारा ब्राह्मणांना भोजन घालावें.” याचा अर्थ—ज्या वेळीं पित्याचे मरणदिवसापासून तेविसाव्या दिवशीं दर्श किंवा वृद्धि श्राद्ध असेल त्या वेळीं बारा दिवस बारा मासिकें करावीं, असा आहे. त्रैपक्षिक तर तीन पक्ष झाल्यावर मृतदिवशीं करावें. कारण, “तिसरा पक्ष झाला असतां तदनंतर त्रैपक्षिक होतें” असें भविष्यवचन आहे, असें मदनरत्नांत उक्त आहे. पृथ्वीचंद्र, कालादर्श, निर्णयामृत इत्यादिक तर—“ऊनश्राद्धें ऊनमासांचेठायीं विषम दिवशीं किंवा सम दिवशीं होतात. त्रैपक्षिक तिसऱ्या पक्षांत होतें. इतर मासिकें मृतदिवशीं होतात.” ह्या कार्णार्जिनि स्मृतीवरून वरील भविष्यवचनांत ‘तिसरा पक्ष वृत्त म्हणजे प्रवृत्त अमतां’ असा अर्थ करतात. त्यांच्या त्या अर्थांला त्याच भविष्यवचनांतील ‘तदनंतर’ या शब्दाचा विरोध येत असल्यामुळे; आणि तसा अर्थ केला असतां त्रैपक्षिक आणि द्वितीय-मासिक यांचा काल एक असल्याकारणानें संकर प्राप्त झाल्यामुळे; आणि अशी व्याख्या करण्याविषयीं प्रमाण नसल्यामुळेही त्यांची व्याख्या उपेक्षणीय (अग्राह्य) आहे. तिसऱ्या पक्षांत सर्पिडन करावें, असें सर्पिडीकरणप्रकरणीयवचन आहे त्या ठिकाणीं तर ‘तदनंतर’ अशा अर्थाचा शब्द नसल्यामुळे ‘तिसऱ्या पक्षांत’ असाच अर्थ समजावा. आतां जें क्रियानिवंधांत गारुडांत—“त्रिपक्ष प्रवृत्त असतां विषम दिवशीं त्रैपक्षिक होतें. मासिकें आणि ऊनश्राद्धें हीं अष्टाविसाव्या दिवशीं होतात” असें वचन, तें निर्मूल आहे.

स्मृतिरत्नावल्यां द्वादशाहेयदाकुर्यात्पितुःपुत्रःसर्पिडनं एकादशेद्विर्कुर्वीतप्रेतश्राद्धानिषोडश पैठी-नसिः सर्पिडीकरणादर्वाकुर्वन्श्राद्धानिषोडश एकोदशविधानेनकुर्यात्सर्वाभितावितु सर्पिडीकरणापूर्व

यथाकुर्यात्तदापुनः प्रत्यव्ययोरथाकुर्यात्तथाकुर्यात्सतान्यपि मदनरत्नेकात्यायनः श्राद्धमभिमतः कार्य दाहादेकादशेहनि ध्रुवाणितुप्रकुर्वीतप्रमीताहनि सर्वदा ध्रुवाणित्रैपक्षिकादूर्ध्वानि क्रियानिबन्धेगारुडे त्रिपक्षिपूर्वतः साग्नेवेत्संस्कारवासरे ऊर्ध्वमृतदिनेनग्नेः सर्वाण्येवमृताहतः एतानिचयदासपिंडनात्पूर्वयुगापत्कुर्यात्तदादेशकालकत्रैक्येतंत्रत्वादेकः पाकइतिकेचित् पाकभेदइतिभट्टचरणाः अत्रकेचिदाहुः देशकालकर्तृदैवतैक्येतंत्रत्वात् श्राद्धकालातिक्रमापत्तेर्द्वादशाहेथसर्वाणि संक्षेपेण समापयेत् तान्येवतुपुनः कुर्यात्प्रेतशब्दनकारयेत् इतिकात्यायनोक्तेनैकः श्राद्धद्वयंकुर्यात्समानेह निकुत्रचिदित्यदैवतैक्यपरत्वेप्यत्रतत्सत्त्वात् श्राद्धकृत्वातुतस्यैवपुनः श्राद्धनकारयेदितिजाबाल्युक्तेः षोडशसंख्यायाश्चवाजपेयेप्राजापत्यायागसप्तदशत्ववत्साभ्राग्यायागद्वित्ववच्चदर्शपातसंक्रांतिश्राद्धवतयुगापदनुष्ठानेष्यपुपत्तेराद्यमासिकाशूनाच्छिंकांतेषुषोडशश्राद्धेषुक्षणः क्रियतामित्येवप्रयोगेणैकोविप्रः पिंडोर्ध्यश्चेति विरुद्धविधिविध्वंस्येवं तन्मंदं द्वादशाहेनवाभोज्याएकाहेद्वादशापिवेतिहेमाद्रौहारीतवचोविरोधात् तेनविप्रभेदात्पिण्डार्ध्याद्यपिभिन्नमितिसिद्धम् ।

स्मृतिरत्नावलीत-“ज्या वेळी पुत्र पित्याचें सपिंडन बाराव्या दिवशीं करील त्या वेळीं सोळा प्रेतश्राद्धं (मासिकें) अकराव्या दिवशीं त्यानें करावीं.” पैठीनसि-“सपिंडीकरणाच्या पूर्वीं सोळा श्राद्धं करीत असतां तीं सारीं एकोद्दिष्टविधीनें करावीं. ज्या वेळीं सपिंडीकरणानंतर पुनः करील त्या वेळीं तीं श्राद्धं जसें प्रतिसांवसरिक करावयाचें तशीं करावीं.” मदनरत्नांत कात्यायन-“अभिमान जो असेल त्याचें श्राद्ध दाहदिवसापासून अकराव्या दिवशीं करावें. त्रैपक्षिकाच्या पुढचीं श्राद्धं सर्वदा मृतदिवशीं करावीं.” क्रियानिबन्धांत गारुडांत-“साभिकाचें त्रैपक्षिकाचे पूर्वींचें श्राद्ध संस्कार- (दाह) दिवशीं होतें. आणि त्रैपक्षिकाच्या पुढचें श्राद्ध मृतदिवशीं होतें. अनभिकाचीं सारींच श्राद्धं मृतदिवशीं होतात.” हीं श्राद्धं ज्या वेळीं सपिंडीच्या पूर्वीं एकदम करील त्या वेळीं देश, काल व कर्ता एक असतां तंत्र होत असल्यामुळें एक पाक करावा, असें केचित् विद्वान् सांगतात. पाकभेद करावा, असें भट्टचरण (नारायणभट्ट) सांगतात. येथें केचित् ग्रंथकार असें सांगतात कीं; देश, काल, कर्ता व देवता हीं एक असलीं म्हणजे तंत्र होत आहे; एक दिवशीं न केलीं तर श्राद्ध-कालांचा अतिक्रम होत आहे; “बाराव्या दिवशीं सारीं श्राद्धं संक्षेपानें समाप्त करावीं. व तींच श्राद्धं पुनः करावीं, त्या वेळीं प्रेतशब्दाचा उच्चार करूं नये” ह्या कात्यायनवचनानें एक दिवशीं करण्यास सांगितलीं आहेत; “एकाचें एक दिवशीं कधींही दोन श्राद्धं करूं नयेत” हें निषेधक वचन एक देवतेच्या श्राद्धाविषयीं असलें तरी या ठिकाणीं अनेकांची एक देवता असल्यामुळें तो निषेध येत आहे; “एक वेळां श्राद्ध करून पुनः त्याचेंच श्राद्ध करूं नये” ह्या जाबालिवचनानें एकवार करून नंतर त्या दिवशीं करण्याचा निषेध केला आहे; ह्या वरील सर्व वचनावरून एक दिवशीं तंत्रानें करावीं, असें होत आहे. आतां षोडश (सोळा) संख्येची उपपत्ति कशी ? असें म्हणाल तर, वाजपेय यज्ञांत ‘सप्तदश प्राजापत्यान् पशून् आलमेत’ असें श्रुतिवचन आहे. म्हणजे सतरा प्राजापतिदेवताक पशूंचे याग करावे. या ठिकाणीं जशी सतरा ह्या संख्येची उपपत्ति होते तशी; आणि साक्षात् हवीचे याग दोन करावे, या ठिकाणीं दोन संख्येची उपपत्ति होते तशी; व दर्श, व्यतीपात आणि संक्रांति एक दिवशीं प्राप्त असतां तीन श्राद्धांचें एकदम अनुष्ठान जसें होतें तशी एकदम अनुष्ठानां सोळा श्राद्धांची उपपत्ति होत आहे म्हणून, ‘आद्यमासिकाशूनाच्छिंकांतेषु षोडशश्राद्धेषु क्षणः क्रियतां’ अशा प्रयोगानें श्राद्धं करावीं. त्यांत एक ब्राह्मण असावा, एक पिंड व एक अर्घ्य द्यावा, असें सांगतात. विरुद्धविधिविध्वंसग्रंथांतही असेंच आहे. हें सांगणें मंद आहे. कारण, यांनीं एक ब्राह्मण वगैरे सांगितला आहे त्याला “बारा दिवस बारा ब्राह्मणांना भोजन घालवें, किंवा एक दिवशीं बारा ब्राह्मणांना भोजन घालवें” असें वर सांगितलेल्या हेमाद्रिंतील हारीतवचनानीं विरोध येतो. या वचनावरून ब्राह्मण अनेक असल्यामुळें पिंड, अर्घ्य इत्यादिकही अनेक होतात, असें सिद्ध झालें आहे.

एतानिद्वादशाहादौसपिंडनात्पूर्वकृतान्यपिवृद्धिंविनापकर्षेपुनःस्वकालेकार्याणि यस्यसंबत्सरादर्वाक्स-पिंडीकरणकृतं मासिकंचोदकुंभंचदेयंतस्यापिवत्स्तरमितिमदनरत्नेऽगिरसोक्तेः नचेदंमासिकानामपकर्षविधित्ते किंतुसपिंडनोर्व्वस्वकालेनुष्ठानमेवेतिवाच्यं श्राद्धानिषोडशदत्त्वाननुकुर्यात्सपिंडतामितिविरोधात् यस्यसंबत्सरादर्वाक्विहितातुसपिंडता विधिवत्तानिकुर्वीतपुनःश्राद्धानिषोडशेतिमाधवीयेगोभिलोक्तेश्च अर्वाक्संवत्सराद्यस्यसपिंडीकरणकृतं षोडशानांद्विरावृत्तिकुर्यादित्याहगौतमइतितत्रैवगालोक्तेः षोडशत्वचैकादशाहसपिंडनपक्षे तत्राद्यमासिकस्यकालसत्त्वात् अन्यपक्षेषुयथासंभवज्ञेयं यदुदीपिकायाम्

अनुमासिकानितुचरेत्तायेवसापिंड्यतःपश्चाद्वादशेत्युक्तेरुनानानपुनःकृतिरित्युक्तं तदेतद्विरोधाधिक्यम् यत्तु-
गौडाः सपिंडीकरणांतुज्ञेयाप्रेतक्रियावधैरिति **शातातपो** केर्मासिकानांप्रेतत्वविमोक्षार्थत्वात्सपिंड-
 नापकर्षेतदंतन्यायेनतेषामप्यपकर्षान्मासिकानानपुनःकृतिः यत्तु मासिकंचोदकुंभंचेति लौगाक्ष्यादिवचनं
 तन्निर्मूलं समूलवेपिदार्शपरंचेत्याहुः तेउक्तवक्ष्यमाणवचोनिबंधविरोधान्मूर्खाइत्युपेक्ष्याः यत्तु **मिताक्ष-**
रायांसपिंडनोर्ध्वस्वकाले एवकार्याणि अपकर्षस्त्वनुकल्पइत्युक्तं तदपिपूर्वविरोधाच्चित्यं तेनवृद्धिविनापकर्षे
 पुनःकृतिः अर्वाकसंवत्सराद्यस्यसपिंडीकरणंभवेत् प्रेतत्वमिहतस्यापिज्ञेयंसंवत्सरंनृपेत्यग्निपुराणात् वृद्धि-
 निमित्तापकर्षेत्वस्त्वेतन्निवृत्तिः अन्यथावृद्धयसंभवादिति **शूलपाणिः** ।

हीं षोडशश्राद्धं वाराव्या वगैरे दिवशीं सपिंडनाच्या पूर्वी केलीं असलीं तरी वृद्धिकर्मावांचून त्यांचा अपकर्ष झाला असतां पुनः त्यांच्या कालीं तीं करावीं. कारण, “ज्याचें सपिंडीकरण संवत्सराचे आंत केलें असेल त्याला देखील मासिक व उद-
 कुंभश्राद्ध हें संवत्सरपर्यंत द्यावें” असें **मदनरत्नांत अंगिरसाचें** वचन आहे. आतां ह्या वचनानें मासिकांचा अपकर्ष सांगितला नाहीं, तर सपिंडीकरणानंतर स्वकालीं करावींच असें सांगितलें म्हणून अपकर्ष करण्याचें कारण नाहीं, असें कोणी म्हणूं नये. कारण, तसें म्हटलें तर “षोडशश्राद्धं केल्यावांचून सपिंडीकरण करूं नये” या वचनाचा विरोध येईल. आणि “ज्याचें सपिंडीकरण संवत्सराचे आंत केलें असेल त्याचीं तीं षोडशश्राद्धें पुनः यथाविधि करावीं” असें **माधवीयांत गोभिल** वचनही आहे. “ज्याचें सपिंडीकरण संवत्सराचे आंत केलें असेल त्याच्या षोडशश्राद्धांची द्विरावृत्ति करावी, असें गौतम सांगतो.” असें तेथेंच **गालवाचें** वचन आहे. षोडशश्राद्धांची द्विरावृत्ति सांगितली ती अकराव्या दिवशीं सपिंडी-
 करणपक्षीं समजावी. कारण, त्या दिवशीं आद्यमासिकाचा काल आहे, त्यासहित सर्वांचा अपकर्ष होऊन केलेलीं असल्यामुळें सर्वांची पुनरावृत्ति समजावी. इतर दिवशीं सपिंडीकरणपक्षीं जितक्यांचा अपकर्ष केला असेल तितक्यांची पुनरावृत्ति समजावी. आतां जें **दीपिकेंत**—“सपिंडीकरणानंतर तींच अनुमासिकें वारा पुनः करावीं.” असें सांगितलें आहे, म्हणून ऊनश्राद्धें पुनः करूं नयेत असें सांगितलें तें दीपिकेचें सांगणें वरील गोभिलादिवचनानांशीं विरुद्ध असल्यामुळें चित्य म्हणजे प्रमाणशून्य आहे. आतां जें **गौड**—“सपिंडीकरणापर्यंत जी क्रिया ती प्रेतक्रिया जाणावी” ह्या **शातातप** वचनावरून मासिकें प्रेतत्वाची मुक्ति करणारीं असल्यामुळें सपिंडीचा अपकर्ष केला असतां ‘तदंतमपकर्षे स्यात्’ म्हणजे ज्याचा अपकर्ष सांगितला असेल तदंत जीं कर्म त्यांचा अपकर्ष होतो, ह्या **जैमिनि** सूत्रन्यायानें मासिकांचाही अपकर्ष असल्यामुळें त्या मासिकांची पुनरावृत्ति होत नाहीं. आतां जें “मासिक व उदकुंभ संवत्सरपर्यंत द्यावें” असें पूर्वी सांगितलें तें वचन निर्मूल आहे. समूल आहे, असें म्हटलें तरी दर्शश्राद्धविषयक समजावें, असें (गौड) सांगतात. त्यांचें तें सांगणें पूर्वी सांगितलेल्या व पुढें सांगावयाच्या वचनांशीं व निबंधग्रंथांशीं विरुद्ध असल्यामुळें मुख्य असें समजून तें उपेक्षणीय (अप्राग्य) आहे. आतां जें **मिताक्षरैत-**
 सपिंडीकरणानंतर आपल्या कालींच करावीं, अपकर्ष करणें हा अनुकल्प (कनिष्ठपक्ष) आहे, असें सांगितलें तेंही पूर्वी सांगितलेल्या वचनाशीं विरुद्ध असल्यामुळें चित्य आहे. तेणेंकरून वृद्धीवांचून अपकर्ष केला असतां पुनः करावीं. कारण, “ज्याचें सपिंडीकरण संवत्सराचे आंत होईल त्यालाही संवत्सरपर्यंत प्रेतत्व आहे” असें **अग्निपुराण** वचन आहे. वृद्धिनिमित्तानें अपकर्ष केला असेल तर त्या मासिकांची निवृत्ति आहेच. निवृत्ति केल्यावांचून वृद्धीचा असंभव आहे, असें **शूलपाणि** सांगतो.

कार्ष्णाजिनिः सपिंडीकरणादर्वागपकृष्यकृतान्यपि पुनरप्यपकृष्यतेवृद्ध्युत्तरनिषेधनात् निषेधंचाह **कात्यायनः** निर्वर्त्यवृद्धितंत्रंतुमासिकानिनतंत्रयेत् अयातयामंमरणंभवेत्पुनरस्यत्विति द्विरेनुष्ठानंचोत्त-
 रेषामेव नपूर्वेषांस्वस्वकालकृतानां तदाह**माधवीयेकार्ष्णाजिनिः** अर्वागन्दाद्यत्रयत्रसपिंडीकरणंकृतं तदूर्ध्वमासिकानांस्याद्यथाकालमनुष्ठितिः **हेमाद्रौशाठ्यायनिः** प्रेतश्राद्धानिनिष्ठानिसपिंडीकरणंतथा अपकृष्यापिकुर्वीतकर्तुंनान्दीमुखंद्विजः वृद्धिविनापकर्षेदोपमाहोशानाः वृद्धिश्राद्धविहीनस्तुप्रेतश्राद्धानिय-
 श्वरेत् सश्राद्धीनरकेधोरेपितृभिःसहमज्जतीति आधानेपकर्षमाह**हेमाद्रावुशानाः** पितुःसपिंडीकरणं वार्षिकेमृतिवासरे आधानाद्युपसंप्राप्तावेतत्प्रागपिवत्सरात् विशेषस्तुकोविवाहनिर्णये कण्वः नवश्राद्धं मासिकंचयद्यदंतरितंभवेत् तत्तदुत्तरसातंत्र्यादनुष्ठेयंप्रचक्षते **गारुडेपि** आपदाद्यकृतंयत्तुकर्यादूर्ध्वं मृताहनि ।

कार्ष्णाजिनिः—“सपिंडीकरणाच्या पूर्वी अपकर्ष करून केलीं असलीं तरी वृद्धिकर्म आलें असतां पुनः अपकर्ष करून करावी, कारण, वृद्धिकर्मानंतर त्या श्राद्धांचा निषेध आहे.” निषेध सांगतो **कात्यायनः**—“वृद्धिकर्म करून नंतर श्राद्धें

करं नयेत. कारण, वृद्धिकर्म केल्यावर पुनः याचें मरण अयातयाम (ताजें, प्रेतश्राद्ध ग्रहण करणारें) होत नाहीं.” द्वि-
 त्ति सांगितली ती संपिंडीच्या पुढच्याचीच समजावी. आपापल्या काळीं केलेल्या पूर्वीच्यांची नाहीं; तें सांगतो **माधवीयांत**
कार्णाजिनि—“वर्षाच्या आंत ज्या ज्या काळीं संपिंडीकरण केलें असेल त्याच्या पुढील मासिकांनं आपापल्या काळीं पुनः
 अनुष्ठान करावें.” **हेमाद्रीत शाठ्यायनि**—“द्विजानें अवशेष राहिलेलीं प्रेतश्राद्धें तसेंच संपिंडीकरण हीं नांदीमुख
 (नांदीश्राद्धयुक्तकर्म) करण्याकरितां अपकर्ष करूनी करावीं.” वृद्धीवांचून अपकर्ष केल असतां दोष सांगतो **उशना**—
 “जो मनुष्य वृद्धिश्राद्धावांचून प्रेतश्राद्धाचा अपकर्ष करितो, तो श्राद्ध करणारा घोर नरकांत पितरांसह बुडतो.” आधान
 कर्तव्य असतां अपकर्ष सांगतो **हेमाद्रीत उशना**—“पित्याचें संपिंडीकरण वर्षाच्या मृतदिवशीं होतें. आधानादिक प्राप्त
 असतां हें संपिंडीकरण संवत्सराचे पूर्वीं देखील होतें.” विशेष निर्णय तर विवाहनिर्णयप्रसंगीं सांगितला आहे. **कण्व**—“नव-
 श्राद्ध आणि मासिक जें जें अंतरित असेल तें तें उत्तर (पुढील) श्राद्धाच्या सहतंत्रानें करावें, असें विद्वान् सांगतात.”
गारुडांतही—“आपत्ति वगैरे असल्यामुळें जें केलें नसेल तें पुढच्या मृततिथीस करावें.”

अथसंपिंडीकरणं माधवीयेहारीतः यातुपूर्वामावास्यायामृताहादशमीभवेत् संपिंडीकरणंत-
 स्यांकुर्यादेवसुतोभिमान् मृताहादूर्ध्वदशमीएकादशीत्यर्थः संपिंडीकरणंकुर्यात्पूर्ववच्चाभिमान्सुतः परतो-
 दशरात्राश्वेत्कुहूरब्दोपरीतरइति**कार्णाजिनिस्मृत्ये** आहिताग्नेस्तेनविनाश्रौतपिंडपितृयज्ञासिद्धेः तदाह
गालवः संपिंडीकरणात्येतेपैतृकंपदमास्थिते आहिताग्नेःसिनीवाल्यांपितृयज्ञःप्रवर्तते **मदनरत्नेप्रजा-**
पतिः नासंपिंड्याभिमानपुत्रःपितृयज्ञसमाचरेत् **अपराकैकात्यायनः** एकादशाहंनिर्वर्त्यपूर्वदशाद्यथा-
 विधि प्रकुर्वीताभिमान्विप्रोमातापित्रोःसंपिंडतां आशौचांतप्रथमदर्शयोर्मध्येकस्मिंश्चिदह्नीत्यर्थः पित्रादीनां
 सपत्नीकानांदेवतात्वेनमातुरपिप्राग्दर्शात्संपिंडनंयुक्तमित्य**परार्कः** एवंपितामहादरेपिसंपिंडनंप्राग्दर्शात्कार्यं
 तेनविनापार्ष्णयोगात् द्वादशाहेवाकार्यम् सामिकस्तुयदाकर्ताप्रेतश्चानभिमान्भवेत् द्वादशाहेभवेत्कार्यस-
 पिंडीकरणंसुतैरिति**गोभिलोक्तेः** साम्नेःप्रेतस्यतुत्रिपक्षे प्रेतश्चेदाहिताग्निःस्यात्कर्तानभिर्नृदाभवेत् संपिंडी-
 करणंतस्यकुर्यात्पक्षेचतृतीयकइतिसुमंतूक्तेः **मदनरत्नेलघुहारीतोपि** अनभिस्तुयदावीरभवेत्कुर्यात्त-
 दागृही प्रेतश्चेदभिमांस्तुस्यात्रिपक्षेवैवसंपिंडनं द्वयोःसामित्रिवेद्वादशाहएव सामिकस्तुयदाकर्ताप्रेतोवाप्यभि-
 मान्भवेत् द्वादशाहेतदाकार्यसंपिंडीकरणंपितुरितितेनैवोक्तेः ।

आतां संपिंडीकरण सांगतो—

माधवीयांत हारीत—“जी अमावास्याच्या पूर्वीची आणि मृत दिवसाहून पुढची दशमी म्हणजे मृतदिवस धरून अकरावी
 तिथि असेल त्या तिथीस अभिमान् (श्रौताग्नि धारण करणाऱ्या) पुत्रानें पित्याचें संपिंडीकरण करावें.” “अभिमान् पुत्रानें
 मृतदिवसाहून दहा दिवसांचे पुढें अमावास्या असेल तर दहा दिवसांनंतर संपिंडीकरण करावें, इतरां (अनभिकां) वर्षानंतर
 संपिंडीकरण करावें.” अशी **कार्णाजिनिस्मृति** आहे, म्हणून अकराव्या दिवशीं संपिंडीकरण करावें. संपिंडीकरण केल्या-
 वांचून आहिताग्नीचा श्रौत पिंडपितृयज्ञ सिद्ध होत नाहीं. तें सांगतो **गालव**—“संपिंडीकरणापासून प्रेताला पितृत्व प्राप्त झालें
 असतां आहिताग्नीचा अमावास्यास पितृयज्ञ प्रवृत्त होतो.” **मदनरत्नांत प्रजापति**—“अभिमान् पुत्रानें संपिंडी केल्यावांचून
 पिंडपितृयज्ञ करूं नये.” **अपराकैत कात्यायन**—“अभिमान् ब्राह्मणानें दर्शाच्या पूर्वीं एकादशाहकृत्य यथाविधि करून
 नंतर मातापितरांचें संपिंडन करावें.” आशौचसमाप्तीचा दिवस आणि प्रथम दर्श यांच्यामध्ये कोणत्याही दिवशीं संपिंडन करावें,
 असा अर्थ समजावा. पिंडपितृयज्ञांत पित्रादिक सपत्नीक देवता असल्यामुळें मातेचेंही दर्शाच्या पूर्वीं संपिंडीकरण युक्त आहे,
 असें **अपराकै** सांगतो. याप्रमाणें पितामहादिकांचेंही दर्शाच्या पूर्वीं संपिंडन करावें. कारण, पितामहावांचून पार्ष्ण होत
 नाहीं. अथवा बाराव्या दिवशीं संपिंडन करावें. कारण, “जेव्हां कर्ता अभिमान् असेल आणि प्रेत अभिरहित असेल त्या वेळीं
 बाराव्या दिवशीं पुत्रानें संपिंडीकरण करावें” असें **गोभिलवचन** आहे. सामिक प्रेताचें तर तिसऱ्या पक्षांत करावें. कारण,
 “ज्या वेळीं प्रेत आहिताग्नि (श्रौताभिमान्) असून कर्ता अभिरहित असेल त्या वेळीं त्याचें संपिंडीकरण तिसऱ्या पक्षां
 करावें” असें **सुमंतुवचन** आहे. **मदनरत्नांत लघुहारीतही**—“ज्या वेळीं गृहस्थाश्रमी कर्ता अभिरहित असेल आणि
 मृत झालेला अभिमान् असेल त्या वेळीं त्याचें संपिंडीकरण तिसऱ्या पक्षां करावें.” दोन्ही अभिमान् असतील तर बाराव्या
 दिवशींच करावें. कारण, “ज्या वेळीं कर्ता अभिमान् आणि प्रेतही अभिमान् असेल त्या वेळीं त्या मृतपित्याचें संपिंडीकरण
 बाराव्या दिवशींच करावें” असें त्याचेंच सन्धितकें आहे.

द्वयोरनभिमतत्वेतु भविष्ये सर्पिंडीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनभिमान् अनाहिताग्नेः प्रेतस्वपूर्णेन्द्रे भरतर्चम् द्वादशेह निषण्णमासे त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा एकादशे पि वामासि मंगलस्याप्युपस्थितौ कात्यायनगोभिलौ यदहर्वावृद्धिरापद्येतेति तच्च वृद्धिदिने एवेति वाचस्पतिः तत्र प्रातर्वृद्धिनिमित्तकमिति नियमात्सर्पिंडनस्य चापराह्णकालीनत्वेन पूर्वत्वबाधापत्तेः वृद्धिदिने तत्पूर्वदिने वेति श्रीदत्तः स्मार्तगौडस्तु वृद्धिपूर्वः वर्षात्यक्षक्षणः सर्पिंडनस्य प्रेतत्वनाशे सहकारी तेन परेद्युर्विन्नाद्वृद्ध्यभावेऽपि तत्कर्तव्यतानि श्रयसहितमेव कालांतरक्रियमाणवृद्धिपूर्वक्षणसहकृतं प्रेतत्वनाशकमित्याह तत्र अकाले कृतस्य फलाजनकत्वात् एतेन निमित्तनिश्चयवत् एवाधिकारात् वृद्ध्यभावेऽपि न क्षतिरिति मिश्रोक्तिः परास्ता वृद्धिपूर्वदिनस्य च कालस्यांगत्वेन निमित्तत्वाभावात् तेन पुनः कार्यमित्यन्ये मदनरत्ने पुलस्त्यः निरभिक्तः सर्पिंडत्वं पितुर्मातुश्च धर्मतः पूर्णसंवत्सरे कुर्याद्वृद्धिर्वायदहर्भवेत् चतुर्विंशतिमते सर्पिंडीकरणं चाब्दे संपूर्णं भ्युदये पि वा द्वादशाहेतुकेषां चिन्मतं चैकादशे तथा ।

दोषे अभिरहित असतील तर सांगतो भविष्यात्—“यजमान (कर्ता) अभिरहित असून प्रेत अभिरहित असेल त्या वेळीं त्याचें सर्पिंडीकरण पूर्ण वर्षांती करावें. अथवा बाराव्या दिवशीं किंवा सहाव्या मासीं अथवा तिसऱ्या पक्षीं किंवा तिसऱ्या मासीं, अथवा अकराव्या मासीं किंवा मंगलकार्ये उपस्थित असतां सर्पिंडीकरण करावें.” कात्यायन व गोभिल—“अथवा ज्या दिवशीं वृद्धिश्चाद प्राप्त होईल त्या दिवशीं करावें.” तें वृद्धिप्रयुक्त सर्पिंडीकरण वृद्धिदिवशींच करावें, असें वाचस्पति सांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, वृद्धिश्चाद प्रातःकालीं करावें, असा नियम असल्यामुळे व सर्पिंडीकरणाचा अपराह्णकाल असल्यामुळे सर्पिंडीकरण पूर्वी झालें पाहिजे, त्याचा बाध होईल. वृद्धिश्चाद दिवशीं किंवा त्याच्या पूर्वे दिवशीं सर्पिंडीकरण करावें, असें श्रीदत्त सांगतो. स्मार्त गौड तर—सर्पिंडीकरणाला प्रेतत्वनाशरूप कार्य करण्याविषयीं वृद्धिकर्माचा पूर्वक्षण आणि वर्षाचा अंत्यक्षण हा सहकारी आहे. तेणें करून, दुसऱ्या दिवशीं विघ्नाच्या योगानें वृद्धिकर्म झालें नाही तरी वृद्धिकर्म करावयाच्या निश्चयानें सहितच कालांतरीं होणाऱ्या वृद्धीचा पूर्वक्षण प्रेतत्वनाशाविषयीं सर्पिंडनाला सहकारी होतो, असें सांगतात. तें बरोबर नाही. कारण, अकालीं केलेलें सर्पिंडन प्रेतत्वनाशरूप फल उत्पन्न करीत नाही. येणें करून, निसर्गाच्या (वृद्धिकर्माच्या) निश्चयवृत्तालाच अधिकार असल्यामुळे वृद्धिकर्म जरी झालें नाही तरी दोष नाही. कारण, वृद्धिकर्माचा निश्चय आहे, असें मिश्राचें सांगणें खंडित झालें. कारण, वृद्धिपूर्वदिनरूप जो काल तो सर्पिंडीकरणाला अंग असल्यामुळे त्या पूर्वदिनरूप कालाचा अभाव असल्यामुळे सर्पिंडीकरणरूप कर्म अंगहीन झालें. त्यामुळे तें सर्पिंडीकरण पुनः करावें, असें इतर विद्वान् सांगतात. मदनरत्नांत पुलस्त्य—“निरभिकानें पित्याचें व मातेचें सर्पिंडीकरण पूर्ण वर्षांती करावें. अथवा ज्या दिवशीं वृद्धिकर्म असेल त्या दिवशीं करावें.” चतुर्विंशतिमतांत—“सर्पिंडीकरण संपूर्ण वर्षाचें ठायीं करावें. किंवा आभ्युदयिक (वृद्धिकर्म) प्राप्त असतां करावें. कितीएकांचें मत बाराव्या दिवशीं, तसेंच अकराव्या दिवशीं सर्पिंडन करावें, असें आहे.

पृथ्वीचंद्रोदयेर्बौधायनः अथ सर्पिंडीकरणं त्रिपक्षे वा तृतीये वामासि पष्ठे चैकादशे वा द्वादशे वा द्वादशाहे चेति एतत्प्रक्रमे विष्णुः मासिकार्थद्वादशाहं श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशे हि वा कुर्यान्मंत्रवर्जं हि शूद्राणां द्वादशे हि संवत्सराभ्यंतरे यद्यधिमामासो भवेत्तदामासिकार्थं दिनमेकं वर्धयेदिति आशौचोत्तरं द्वादशस्वहः सुमासिकानितेष्वेवाद्यप्यद्वादशदिने पूतमासिकादीनि कृत्वा त्रयोदशे हि सर्पिंडनं कुर्यात् अधिमासे तु चतुर्दशे हि कुर्यात् शूद्रस्योदशे द्वादशे ह्येत्यस्य मासिकां त्यजित्वा दिति पृथ्वीचंद्रः पैठीनसिः संवत्सरांतं संसर्जनं न वमे मासीत्येके अत्र साग्रेन मेवोक्तकालाभावे त्रिपक्षादिसंवत्सरांता अनुकल्पाज्ञेयाः कल्पतरूस्त्वप्रे वृद्धिनिश्चय एव सर्वेषां कर्षप्रकारा इत्याह तत्र यदहर्वेति स्वातंत्र्यश्रुतेः यद्यपि वृद्धिनिमित्तोपकर्षो निरप्रेरेवोक्तस्तथापि साप्रावपि ज्ञेयः उक्तकालासंभवे वर्षांतादिगौणकालवद्वृद्धेरपि प्राप्तेः वक्ष्यमाणगोभिलवचनात् अयातयामं मरणं न भवेत्पुनरस्य त्विति दोषश्रुत्य विशेषाच्च अपरां र्कपृथ्वीचंद्रादिस्वरसोप्येवं अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम् सीमंतादौ तु वृद्धिश्चादलोप एवेत्याचार्यचूडामणिः पुंसवनाद्यभ्रप्राशान्तेष्वावश्यं केष्वपकर्ष इति श्राद्धविवेकः श्रुतिसागरेऽपि बृहस्पतिः प्रत्यवायो भवेद्यस्मिन्नकृते वृद्धिकर्मणि तन्निमित्तं समाकृत्य पित्रोः कुर्यात्सर्पिंडनं गर्भाधानस्य ऋतवतरेऽपि संभवात् अन्यश्राद्धपरांश्च गंधमाल्यं च मैथुनमिति द्वे बलेन प्रथमाब्दे मैथुननिषेधाच्च न तत्रापकर्ष इति श्राद्धकौमुद्यादयः तत्र ऋतुज्ञातां तु यो भार्यामिति निषेधाद्ब्रह्मचा-

येवपर्वाण्याद्याश्चतस्रश्चवर्जयेदिति मैथुनेदोषाभावाच्च पितामहमरणेणैत्रस्यवृद्धौनापकर्षः तस्यमहागुरुत्वाभावात् तत्रतदूर्ध्वेभ्योवृद्धिश्राद्धमिति श्राद्धचंद्रिका तत्र भ्राताचैत्यादौ तदभावेऽप्यपकर्षोक्तेः तेन निर्देशोऽप्युपलक्षणम् ।

पृथ्वीचंद्रोदयांत बोधायन-“आतां सपिंडीकरण तिस्र्या पक्षी, किंवा तिस्र्या मासीं, अथवा सहाव्या मासीं, किंवा अकराव्या मासीं, अथवा बाराव्या मासीं, किंवा बाराव्या दिवशीं करावें.” सपिंडीकरणाचा उपक्रम चालला असतां सांगतो **विष्णु-**“बारा दिवस बारा मासिकां देऊन तेराव्या दिवशीं करावें; शूद्राचें मंत्ररहित बाराव्या दिवशीं करावें, संवत्सरांमध्ये जर अधिक मास असेल तर मासिकाकरितां एक दिवस वाढवावा.” याचा अर्थ-अशौच समाप्तीनंतर बारा दिवस बारा मासिकें आणि त्यांत पहिल्या, सहाव्या व बाराव्या दिवशीं ऊनमासिक, ऊनषाणमासिक व ऊनाचिदिक हीं करून तेराव्या दिवशीं सपिंडन करावें. वर्षामध्ये अधिक मास असेल तर चवदाव्या दिवशीं सपिंडन करावें. शूद्रांत तेराव्या दिवशीं करावें. बाराव्या दिवशीं असें जें म्हटलें तें मासिकांच्या अंत्यदिवशीं असें आहे, असें **पृथ्वीचंद्र** सांगतो. **पैठीनसि-**“वर्षातीं सपिंडीकरण होतें. नवव्या मासांत करावें, असें कितीएक सांगतात.” ह्या सपिंडीकरणापरीं सामिकाला किंवा अमिरहिताला वर सांगितलेल्या मुख्य कालांच्या अभावीं त्रिपक्ष इत्यादिक संवत्सरापर्यंत अनुकल्प (कनिष्ठ) काल जाणावे. **कल्पतरु** तर-पुढें वृद्धिकर्माचा निश्चय असतांच सारे अपकर्षप्रकार आहेत, असें सांगतो. तें बरोबर नाहीं. कारण, “अथवा ज्या दिवशीं वृद्धि प्राप्त होईल त्या दिवशीं सपिंडन अपकर्ष करून करावें” असें **कात्यायन** व **गोभिल** यांच्या वर सांगितलेल्या वचनावरून वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष स्वतंत्र सांगितला आहे. जरी वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष निरमिकालाच सांगितला आहे तरी तो सामिकालाही जाणावा. कारण, वर सांगितलेल्या (एकादशाहादि) मुख्य कालाच्या असंभवीं वर्षांत इत्यादिक गौणकाल जसे सामिकाला प्राप्त होतात तसा वृद्धिकर्मरूप कालही त्याला प्राप्त होतो. ते गौणकाल पुढें सांगावयाच्या **गोभिला**च्या वचनावरून सामिकाला प्राप्त होतात. आणि “वृद्धिकर्म केल्यावर प्रेतश्राद्ध करून मरण ताजें करूं नये” ह्या **कात्यायन**वचनानें वृद्धिश्राद्धानंतर प्रेतश्राद्ध केलें असतां मरण ताजें होतें, हा दोष निरमिकालाच आहे असें नाहीं, तर सामिकालाही आहे. **अपराक,** **पृथ्वीचंद्र** इत्यादि ग्रंथांचें स्वारस्यही असेंच आहे. ह्या अपकर्षप्रकरणीं ‘वृद्धि’ या पदानें चौल, उपनयन, आणि विवाह हीं तीनच संस्कारकर्म समजावीं. सीमंतादि संस्कारांमध्ये तर वृद्धिश्राद्धाचा लोपच होतो, असें **आचार्यचूडामणि** सांगतो. पुंसवनादिक अन्नप्राशनांत आवश्यक संस्कारांमध्ये अपकर्ष करावा, असें **श्राद्धविवेक** सांगतो. **श्रुतिसागरांतही वृहस्पति-**“जें वृद्धिकर्म केलें नसतां प्रत्यवाय (दोष) उत्पन्न होईल त्या निमित्तानें माता-पितरांचें सपिंडन अपकर्ष करून करावें.” गर्भाधान इतर (पुढील) ऋतुदर्शनीं देखील होण्याचा संभव असल्यामुळे, आणि “इतराचें श्राद्धभोजन, पराश्र, गंधमाल्यांचा उपभोग आणि मैथुन हीं करूं नयेत.” ह्या **देवल**वचनानें प्रथम वर्षांत मैथुनाचा निषेध केल्यामुळेही त्या गर्भाधानाविषयीं सपिंडीचा अपकर्ष करूं नये, असें **श्राद्धकौमुदी** इत्यादि ग्रंथकार सांगतात, तें बरोबर नाहीं. कारण, “जो मनुष्य ऋतुज्ञात भार्येप्रत संनिध असतां गमन करीत नाहीं त्याला भ्रूणहत्यादोष प्राप्त होतो.” या वचनानें मैथुन न करण्याचा निषेध आहे. आणि “पर्वदिवस व पहिल्या चार रात्री वर्ज्य करून ऋतुकारी गमन करणारा ब्रह्मचारीच असतो.” या वचनानें मैथुनाविषयीं दोषही नाहीं. पितामह मृत असून पौत्राला वृद्धिकर्म करावयाचें असतां त्याचे सपिंडीकरणाचा अपकर्ष होत नाहीं. कारण, तो पितामह महागुरु नाहीं. त्या ठिकाणीं (पितामहमरण-समयीं) त्या पितामहाच्या पूर्वीच्यांचें वृद्धिश्राद्ध करावें, असें **श्राद्धचंद्रिका**कार सांगतो. तें बरोबर नाहीं. कारण, भ्राता मृत असतां, इत्यादि स्थलीं महागुरुचा अभाव असतां अपकर्ष सांगितला आहे. त्यावरून महागुरुचा निर्देश केला तो पितामहादिकांचें उपलक्षण (बोधक) आहे.

व्याघ्रः आनंत्यात्कुलधर्माणांपुंसंचैवायुषःक्षयात् अस्थितेश्चशरीरस्यद्वादशाहःप्रशस्यते एतदाशौचांतोपलक्षणं सर्वेषामेववर्णानामाशौचांतसपिंडनमिति निर्णयामृतेकात्यायनोक्तेः सर्वेषामिति त्रैवर्णिकपरं शूद्राणांत्वाशौचमध्ये मंत्रवर्जहिंशूद्राणांद्वादशेहनि कीर्तितमिति **विष्णु**क्तेः एतदर्शश्राद्धकारिशूद्रविषयमित्यपराकैकल्पतरौच वृद्धमनुः द्वादशेहनिविप्राणामाशौचांतेतुभूभुजाम् वैश्यानांतुत्रिपक्षाद्यवथवात्यात्सपिंडनं ।

व्याघ्र-“सपिंडीकरण लवकर न केलें तर कुलधर्म अनंत आहेत त्यांना नड येईल म्हणून, आणि पुरुषांचे आयुष्याचा क्षय असल्यामुळे शरीर स्थिर नाहीं, म्हणूनही सपिंडीकरणाला बारावा दिवस प्रशस्त आहे.” बारावा दिवस प्रशस्त असें सांगणें हें आशौचसमाप्तीचें उपलक्षण (बोधक) आहे. कारण, “सत्याच वर्णाचें सपिंडन आशौचांतीं होतें” असें निर्णयामृतांत कात्यायनवचन आहे. ह्या वचनानें ‘सर्वेषां’ हें पद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ह्या तीन वर्णांचें बोधक आहे.

श्रद्धांचें तर आशौचामध्ये सपिंडन होतें.” कारण, “श्रद्धांचें बाराव्या दिवशीं अमंत्रक सपिंडन सांगितलें आहे.” असें विष्णुवचन आहे. हें वचन दर्शश्राद्ध करणाऱ्या श्रद्धाविषयीं आहे, असें अपराकांत व कल्पतरूत सांगितलें आहे. वृद्धमनु—“अथवा ब्राह्मणांचें बाराव्या दिवशीं, क्षत्रियांचें आशौचांतीं, वैश्यांचें तिसऱ्या पक्षीं वगैरे सपिंडन होतें.”

निर्णयामृतेगोभिलः द्वादशाहादिकालेषुप्रमादादननुष्ठितं सपिंडीकरणंकुर्यात्कालेषुत्तरभाविषु इदं-
सामेककालासंभवेगौणकालविधानार्थमिति मदनपारिजातः मदनरत्नेष्वेवं ऋष्यशृंगः सपिं-
डीकरणश्राद्धमुक्तकालेनचेत्कृतं रौद्रेहस्तेचरोहिण्यामैत्रभेवासमाचरेत् कालादर्शोपि एकादशेद्वादशेद्वित्रि-
पक्षेवात्रिमासिवा षष्ठेचैकादशेवाब्देसंपूर्णवाशुभागमे सपिंडीकरणस्येत्यमष्टौकालाःप्रकीर्तिताः सामौक्य-
र्युभावाद्यौप्रेतेसामौक्यतीर्थकः अनप्रेस्तुद्वितीयाद्याःसप्तकालामुनीरिताः रोहिणीरौद्रेहस्तेषुमैत्रभेवापित्तचरेत्
नारदसंहितायांतु सपिंडीकरणंकार्यवत्सरेवार्धवत्सरे त्रिमासेवात्रिपक्षेवामासिवाद्वादशेद्विवेत्युक्तं
वत्सरेतीतेत्रेयम् ततःसपिंडीकरणंवत्सरात्परतःस्थितमिति भविष्योक्तेः पितुःसपिंडीकरणंवत्सरादूर्ध्व-
तःस्थितमितिनागरखंडोक्तेः पितुःसपिंडीकरणंवार्षिकेमृतिवासरेइत्युशनसोक्तेश्च पूर्णंवत्सरेपिंडः-
षोडशःपरिकीर्तितः तेनैवचसपिंडत्वंतेनैवाब्दिकमिष्यतइतिहेमाद्रीवचनाच्च अस्यानाकरत्वोक्तिर्मूर्खोक्ति-
रेव यत्तु पूर्णंवत्सरेकुर्यात्सपिंडीकरणंसुतः एकोद्दिष्टंचतत्रैवमृताहनिस्समापयेदिति धवलनिबंध्ये
जाबाल्युक्तेः पुत्रःसपिंडनंकृत्वाकुर्यात्स्नानंसचैलकम् एकोद्दिष्टततःकुर्यात्कुतपनविचारयेदिति स्वल्प-
मात्स्योक्तेश्चाब्दिकंतद्दिनेपुनःकार्यमितिकेचित् तेनिर्मूलत्वाद्देमाद्रीविरोधाच्चापेक्षयाः षोडशत्वंचस-
पिंडनस्यषोडशश्राद्धांतर्भावपक्षे स्मृत्यर्थसारेतु वर्षात्यदिनेसंवत्सरविमोक्षश्राद्धंसपिंडनंचकृत्वापरेषुमृ-
ताहेवार्षिकंकार्यमित्युक्तं गौडाअप्येवमाहुः तत्पूर्वविरोधाच्चित्यम् ॥

निर्णयामृतांत गोभिलः—“द्वादशाह इत्यादि कालांचे ठायीं प्रमादेंकरून सपिंडीकरण राहिलें असतां पुढें सांगित-
लेल्या कालांचे ठायीं सपिंडीकरण करावें.” हें वचन सामिकाला (श्रौतामिमंताला) उक्तकालाचा अर्धभूव असतां गौणकाल
सांगण्याकरितां आहे, असें मदनपारिजात सांगतो. मदनरत्नांतही असेंच आहे. ऋष्यशृंग—“सपिंडीकरणश्राद्ध उक्त-
कालीं जर केलें नसेल तर आर्द्रा, हस्त, रोहिणी व अनुराधा या नक्षत्रांवर करावें.” कालादर्शांतही—“अकरावा दिवस,
बारावा दिवस, तिसरा पक्ष, तिसरा मास, सहावा मास, अकरावा मास, वर्षे पूर्ण झाल्यावरचा दिवस, आणि इतर शुभदिवस,
हे सपिंडीकरणाचे आठ काल सांगितले आहेत. अभिमान् कर्ता असतां पहिले दोन काळ; मृत झालेला अभिमान् असतां
तिसरा काळ; आणि अनमिकाला दुसरा धरून सात काल सपिंडीकरणाचे मुनींनीं सांगितले आहेत. अथवा रोहिणी, आर्द्रा,
हस्त, व अनुराधा ह्या नक्षत्रांवरही सपिंडन करावें.” नारदसंहितेंत तर—“सपिंडीकरण संवत्सर झालें असतां करावें.
अथवा अर्धा वर्षी किंवा तिसऱ्या मासीं अथवा तिसऱ्या पक्षीं किंवा पहिल्या मासांत अथवा बाराव्या दिवशीं करावें” असें
सांगितलें आहे. या वचनांत ‘वत्सरे’ याचा अर्थ—वर्ष होऊन गेलें असतां, असा समजावा. कारण, “तदनंतर सपिंडीकरण
वर्षाच्या पुढें आहे.” असें भविष्यवचन आहे. “पित्याचें सपिंडीकरण वर्ष होऊन गेल्यानंतर आहे” असें नागर-
खंडाचें वचनही आहे. “पित्याचें सपिंडीकरण वर्षाच्या मृतदिवशीं होतें” असें उशनसाचें वचनही आहे. आणि “वर्ष
पूर्ण झालें असतां जो सोळावा पिंड (श्राद्ध) सांगितला आहे, तेणेंकरूनच सपिंडल येतें व त्यानंच आब्दिकही होतें”
असें हेमाद्रींत वचनही आहे. हें वचन आकरांत नाही, असें म्हणणें मूर्खाचेंच आहे. आतां जें “संवत्सर पूर्ण झालें
असतां पुत्रांन सपिंडीकरण करावें, आणि एकोद्दिष्टी त्याच मृतदिवशीं समाप्त करावें” ह्या धवलनिबंधांतील जाबालि-
वचनावरून; आणि “पुत्रांन सपिंडन करून सचैल ज्ञान करावें, आणि तदनंतर एकोद्दिष्ट करावें, कुतुपकालाचा विचार करू
नये” ह्या स्वल्पमात्स्यवचनावरूनही वर्षाच्या मृतदिवशीं सपिंडन करून त्याच दिवशीं पुनः आब्दिक करावें, असें
केचित् ग्रंथकार म्हणतात. त्यांचें तें म्हणणें मूलरहित असल्यामुळें आणि हेमाद्रीशीं (पूर्ण संवत्सरे पिंडः) या बरील
वचनाशीं) विरुद्धही असल्यामुळें उपेक्षणीय (अप्राग) आहे. बरील हेमाद्रीचे वचनांत सोळावा पिंड (श्राद्ध) तेंच
सपिंडन सांगितलें तें षोडशश्राद्धांत सपिंडन आहे त्यापक्षीं समजावें. स्मृत्यर्थसारांत तर—वर्षाच्या शेवटच्या दिवशीं
संवत्सरविमोक्षश्राद्ध व सपिंडन करून दुसऱ्या दिवशीं मृत तिथीस वार्षिक करावें, असें सांगितलें आहे. गौडही असेंच
सांगतात. तें पूर्वी सांगितलेल्या भविष्यादिवचनाशीं विरुद्ध असल्यामुळें चित्य (प्रमाणशून्य) आहे.

लक्षपुत्रेसतिनान्यः कुर्यात् श्राद्धानिषोडशादत्त्वातु कुर्यात्सपिंडतां प्रोषितावसिते पुत्रः कालादपिचिराद-
पीतिवायवीयोक्तेः षोडशश्राद्धानां वर्षादूर्ध्वकालाभावेपितान्यदत्त्वातु कुर्यात् किंतुदवैव तानियदिकनिष्ठ-
भ्रात्रादिना कृता नितदासपिंडनमेव कुर्यादित्यपराकः सपिंडनेतु कनिष्ठानां नैवाधिकार इत्यर्थः तत्रैव अज्ञाना-
दथवा मोहाद्भ्रुकृतचित्ते सपिंडता तत्रापि विधिवत्कार्या कालादपिचिरादपि तेष्वपि ज्येष्ठस्यैवाधिकारः ज्येष्ठेन जा-
तमात्रेण पुत्री भवति मानव इति मनूक्तेः अपराकं प्रचेना अपि एकादशाद्याः क्रमशो ज्येष्ठस्तु विधिवत्क्रियाः
कुर्यान्नैकैकशः श्राद्धमाब्धिकंतु पृथक् पृथक् मरीचिः सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतं तत्र द्रव्येण चाविभक्तेन
सर्वैरेव कृतं भवेत् यत्तु वाचस्पतिशूलपाणिभ्यामुक्तं द्रव्यदाना तु मत्तभावे कनिष्ठैः पृथक् कार्यमिति तत्र
एव कारस्य तदभावेपि पृथक्करणभावात् अर्थात् अंधादेरिव ज्येष्ठे सति कनिष्ठानामनधिकाराच्च अतस्तेषां प्रत्यवाय-
मात्रं आहिताग्निः कनिष्ठस्तु कुर्यादेव अन्यथापि तृयज्ञासिद्धेः एवमावश्यकद्वयावपि कनिष्ठोऽन्यः सपिंडो वा-
कुर्यात् भ्रातावा भ्रातृपुत्रो वा सपिंडः शिष्य एव च सहपिंडक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः तथैव काम्यं यत्कर्म व-
त्सरात्प्रथमादृते इति मदनरत्ने लघुहारीतवचनात् वृद्धयन्तरं प्रथमाब्दमध्येपि काम्यं कुर्यात् वृद्धयभावे तु प्र-
थमाब्दादूर्ध्वमेवेत्यर्थः काम्योक्तेरनावश्यकप्राप्तादौ नापकर्षः एतद्भावात् पुत्रादिसंस्कारे प्राप्ताधिकारस्य नां दी-
श्राद्धाधिकाराय अभ्युदयपदं च नां दीश्राद्धनिमित्तकर्म मात्र परमिति हेमाद्रिः तेन ज्येष्ठे देशांतरस्थे कनिष्ठः सपिं-
डनं विनैव वृद्धिं कृत्वा पुत्रसंस्कारं कुर्यादिति श्रीदत्तोक्तिः परास्ता भ्रातृशिष्याद्युक्तेर्नां दीश्राद्धे ज्येष्ठदेवतामात्रप-
रोपकर्ष इत्यपास्तं अस्य क्रममात्रपरत्वाद् वृद्धिकर्तव्यं सपिंडनं कुर्यादिति नियम इति गौडाः अतएव कन्यायामातृ-
मरणे भ्रात्रासपिंडने कृतेपितुर्दानाधिकारः ।

तै सपिंडीकरण पुत्र असतां दुस्त्रयाने कलं नये. कारण, “प्रवासांत मृत असतां पुत्राने चिरकालने देखील षोडश श्राद्धे
केल्यावांचून सपिंडीकरण कलं नये” असे वायुपुराणांतील वचन आहे. याचा अर्थ-सोळा श्राद्धांचा वर्षानंतर काल
नसला तरी तीं केल्यावांचून सपिंडीकरण कलं नये; तर तीं श्राद्धे करूनच सपिंडन करावे. तीं जर कनिष्ठ भ्राता इत्यादिकांने
केलीं असतील तर सपिंडनच ज्येष्ठाने करावे, असे अपराकं सांगतो. सपिंडनाविषयी तर कनिष्ठानां अधिकार नाहीच,
असा अर्थ समजावा. तेथेंच-“अज्ञानाने किंवा मोहाच्या योगाने जर सपिंडीकरण केले नसेल तर चिरकालने देखील यथा-
शास्त्र सपिंडन करावे.” त्या षोडशश्राद्धविषयी देखील ज्येष्ठ पुत्रालाच अधिकार आहे. कारण, “ज्येष्ठ पुत्र झाल्यानेच
मनुष्य पुत्रवान् होतो” असे मनुवचन आहे. अपराकांत प्रचेताही-“एकादशाहादिक क्रिया ज्येष्ठाने यथाविधि अनु-
क्रमाने कराव्या. प्रत्येकाने कलं नयेत. आब्दिकश्राद्ध तर प्रत्येकाने वेगवेगळें करावे.” मरीचि-“ज्येष्ठानेच सर्वे भ्रात्यांचे
मत घेऊन सामायिक द्रव्य खर्च करून जें कर्म केले तें सर्वांनीं केलेच असें होतें.” आतां जें वाचस्पति व शूलपाणि
यांनीं सांगितलें की, ‘द्रव्य आणि अनुमोदन कनिष्ठानीं दिलें नसेल तर त्यांनीं वेगळें कर्म करावे.’ असें सांगितलें तें बरोबर
नाहीं. कारण, ह्या मरीचिवचनांत ‘सर्वैरेव’ येथें ‘एव’ हें पद आहे, त्याचा अर्थ-द्रव्यादिक न दिलें तरी त्या सर्वांनींच तें
केले, अर्थात् पृथक् कलं नये, असा आहे. आणि श्रौतकर्माविषयी अंधादिकाला जसा अधिकार नाही तसा ज्येष्ठ भ्राता
असतां कनिष्ठ भ्रात्यांना अधिकारही नाही. म्हणून त्यांना कर्म झालें नाही किंवा अनुमोदन वेगळे दिलें नसेल तर दोष मात्र
प्राप्त होईल. आहिताग्नि कनिष्ठ असेल तर त्यानें करावेंच. तें केल्यावांचून पिंडपितृयज्ञाची सिद्धि होत नाही. याप्रमाणें
आवश्यक वृद्धिकर्म असतांही कनिष्ठाने किंवा इतर सपिंडाने करावे. कारण, “भ्राता किंवा भ्रात्याचा पुत्र, अथवा सपिंड
किंवा शिष्य यांनीं सपिंडनक्रिया करून तदनंतर आभ्युदयिक (वृद्धिकर्म) करावे. तसेंच जें काम्यकर्म असेल तेंही करावे.
प्रथमवर्षी काम्यकर्माकरितां अपकर्ष कलं नये.” असें मदनरत्नांत लघुहारीतवचन आहे. याचा अर्थ-वृद्धिकर्मानंतर
प्रथम वर्षामध्येही काम्यकर्म करावे. वृद्धिकर्म केले नसेल तर प्रथमवर्षानंतरच काम्यकर्म करावे, असा आहे. काम्यकर्म
प्रथम वर्षानंतर करावे, असें सांगितल्यावरून, आवश्यक नसलेलें यज्ञदानादिकर्म व वापी-कूप-तडाग इत्यादिकर्म, त्याविषयी
कनिष्ठादिकांने अपकर्ष कलं नये. हें वचन, भ्रातृपुत्रादिकांचे संस्काराविषयी ज्याला अधिकार प्राप्त असेल त्याला नांदीश्रा-
द्धाच्या अधिकाराकरितां आहे. या वचनांत ‘अभ्युदय’ असें पद आहे त्याचा अर्थ-नांदीश्राद्धाला निमित्त असलेलें सर्व कर्म,
असा हेमाद्रि सांगतो. तेणेंकरून (अभ्युदयनिमित्तक भ्राता इत्यादिकांना अधिकार सांगितल्यावरून) ज्येष्ठ देशांतरी
असतां कनिष्ठाने सपिंडन केल्यावांचून वृद्धिश्राद्ध करून पुत्राचा संस्कार करावा, असें श्रीदत्ताने सांगितलेलें खंडित झालें.
त्या वचनांत भ्राता, शिष्य इत्यादिकांना अधिकार सांगितल्यावरून, नांदीश्राद्धांत येणाऱ्या ज्या देवता (पिता इत्यादिक)

त्यांच्या सपिंडनाचा मात्र अपकर्ष करावा, असें मत तें खंडित झालें. हें वचन आल्यानें, त्याच्या अभावीं भ्रातृपुत्रांनं सपिंडन करावें इत्यादि कमाचें मात्र बोधक असल्यामुळें वृद्धिकर्त्यानेंच सपिंडन करावें, असा नियम नाही, असें गौड सांगतात. म्हणूनच कन्येची माता मृत असतां कन्येच्या आल्यानें सपिंडन केलें असतां तिच्या पित्याला कन्यादानाविषयीं अधिकार आहे.

शूलपाणिस्तु महागुरौप्रेतभूतेवृद्धिकर्मनयुज्यतइतिनिषेधात् मृतस्यभ्रात्रादिःसपिंडनंकृत्वातत्पुत्रकन्यादेरभ्युदयंकुर्यान्नतुस्वपुत्रसंस्कारे संस्कार्यपितुःसपिंडनंविनावृद्धौदेवतात्वाभावादित्याह तत्र देवताप्रयुक्तापकर्षस्यनिरस्तत्वात् वृद्धिंविनाकनिष्ठेनकृतेतु विदेशस्थेनज्येष्ठेनपुनःकार्यम् यवीयसाकृतंकर्मप्रेतशब्दंविहायतु तज्यायसापिकर्तव्यंसपिंडीकरणंपुनरिति स्मृतेः ज्येष्ठेनवाकनिष्ठेनसपिंडीकरणेकृते आद्यपादे मातापित्रोःकनिष्ठेनेतिवापाठः देशांतरगतानांचपुत्राणांतुकथंभवेत् श्रुत्वातुवपनंकार्यंदेशाहांतंतिलोदकम् ततःसपिंडीकरणंकुर्यादेकादशेहनि द्वादशाहेनकर्तव्यमितिशातातपोब्रवीदितिवचनाच्चेतिभट्टाः सिंगाभट्टीयेप्येवम् पूर्ववचनेऽत्रचमूलंचित्यम् स्मृत्यर्थसारेतु विभक्ताक्रादिकामाश्वेतुत्राःपृथक्सपिंडीकरणंकुर्युरित्युक्तम् अत्रदत्तकस्यतत्पुत्रादीनांविशेषःप्रागुक्तः केचित्तु वृद्धिंविनापिकनिष्ठस्यसपिंडनमाहुः मातापित्रोर्मृतेःकालेज्येष्ठेदेशांतरस्थिते कनिष्ठेनप्रकर्तव्यंसपिंडीकरणंतथेतिकाष्णार्जिनिस्मृतेः गतेवारोधितेज्येष्ठेपित्रावाप्रेषितेसति पणमासान्ननिवर्तंततदाकार्यकनीयसा संवर्तः पुनःसपिंडीकरणंश्राद्धंपार्षणवचरेत् अर्घ्यसंयोजनंनैवपिंडसंयोजनंनचेति तेषांवचसानिर्मूलत्वात्प्रोषितावसितेपुत्रइत्यादिविरोधाच्चेष्ट्याः ।

शूलपाणि तर—“महागुरु (पिता) प्रेतरूप असतां वृद्धिकर्म योग्य होत नाही” असा निषेध असल्यामुळे मृताचा भ्राता इत्यादिकांनं सपिंडन करून त्याच्या (मृताच्या) पुत्रकन्यादिकांचें अभ्युदय कर्म करावें. आपल्या पुत्राच्या संस्काराविषयीं ह्या निषेधावरून सपिंडन करूं नये. आणि संस्कार करावयाचे जे पुत्रादिक त्यांच्या पित्याचें सपिंडन झाल्याबचून वृद्धिभ्रातांत त्याला (पित्याला) देवतात्व येत नाही, असें सांगतो. तें बरोबर नाही. कारण, नांरीभ्रातांत येणाऱ्या ज्या देवता त्यांच्या सपिंडनाचा मात्र अपकर्ष, तो वर खंडित केला आहे. वृद्धिकर्मांचून कनिष्ठानें अपकर्ष केला असेल तर परदेशांत असलेल्या ज्येष्ठानें पुनः करावें. कारण, “कनिष्ठानं केलेलें सपिंडीकरणरूप कर्म तें पुनः प्रेतशब्द बर्ज्य करून ज्येष्ठानेही करावें” अशी स्मृति आहे. ज्येष्ठानं किंवा कनिष्ठानं सपिंडीकरण केलें असतां (येथें ‘मातापित्रोः कनिष्ठेन’ असें पाठांतर आहे त्याचा अर्थ—मातापितरांचे कनिष्ठानं सपिंडीकरण केलें असतां) देशांतरीं गेलेल्या पुत्रांचें कसें होईल ? देशांतरीं गेलेल्या पुत्रांनीं पितृमरण श्रवण करून वपन करावें. दहा दिवस तिलोदक यावें. तदनंतर अकराव्या दिवशीं सपिंडीकरण करावें. बाराव्या दिवशीं करूं नये, असें शान्तातप सांगता झाला.” असें वचनही आहे असें भट्ट सांगतात. **सिंगाभट्टीयांत**ही असंच आहे. बरील स्मृतिवचन व हें वचन यांविषयीं मूल चित्य (अनुपलब्ध) आहे. **स्मृत्यर्थसारांत** तर—विभक्त असून समुद्राची इच्छा करणारे जर पुत्र असतील तर त्यांनीं वेगवेगळें सपिंडीकरण करावें, असें सांगितलें आहे. येथें (सपिंडीकरणाविषयीं) दत्तकाला व त्याच्या पुत्रादिकांना विशेष निर्णय पूर्वां (भ्राद्धाधिकारिनिर्णयप्रसंगीं) सांगितला आहे. **केचित्तु** विद्वान् तर—वृद्धिकर्मांचांचूनही कनिष्ठाला सपिंडनाचा अधिकार सांगतात. कारण, “मातापितरांच्या मरणसमयीं ज्येष्ठ पुत्र देशांतरीं असतां कनिष्ठानं सपिंडीकरण करावें” अशी काष्णार्जिनिस्मृति आहे. “ज्येष्ठ पुत्र देशांतरीं गेला असतां, अथवा बंदीत असतां किंवा बापांनं पाठाविला असतां सहा महिनेपर्यंत जर आला नाही तर त्या वेळीं कनिष्ठानं करावें.” **संवर्त**—“पुनः सपिंडीकरणश्राद्ध पावेणाप्रमाणें करावें. अर्घ्याचें संयोजन करूं नये व पिंडांचेही संयोजन करूं नये.” त्या **केचित्तु** विद्वानांनीं सांगितलेलीं हीं वचनं निर्मूल अगल्यामुळे, आणि वर सांगितलेलें ‘प्रोषितावसिते पुत्रः’ हें वायवीयवचन व **मनु**, **प्रचेता** इत्यादिकांचीं वचनं यांच्याशीं विरोध येत असल्यामुळेही त्या केचित् विद्वानांचें मत उपेक्षणीय (अग्राह्य) आहे.

व्युत्क्रममृतांहेमाद्रौब्राह्मे मृतेपितरियस्याथविद्यतेचपितामहः तेनदेयाक्षयःपिंडाःप्रपितामहपूर्वकाः तेभ्यश्चपैतृकःपिंडोनियोक्तव्यस्तुपूर्ववत् मातर्यथमृतायांचविद्यतेचपितामही प्रपितामहीपूर्वस्तुकार्यस्तत्राप्ययंविधिः एवंप्रपितामहजीवनेतत्पित्रादिभिर्ज्ञेयम् तदाह**सुमंतुः** त्रयाणामपिपिंडानामेकेनापिसपिंडने पितृत्वमश्रुतेप्रेतइतिधर्मोव्यवस्थितः यत्तु व्युत्क्रमात्प्रमीतानांनैवकार्यासपिंडतेतितन्मातापितृभर्तृभिर्ज्ञविषयम् व्युत्क्रमेणमृतानांनसपिंडीकृतिरिष्यते यदिमातायदिपिताभर्तानैपविधिःस्मृतइति**साधवीये** **स्कांदोक्तेः** **मदनरत्नादौचैवम्** अत्रप्रपितामहादिभिःपितुःसपिंडनेकृतेपितामहेमृतेवत्सपिंडनेकृतिपुनः

स्तेनसहपितुःसपिंडनकार्यमिति हेमाद्रिर्मतमाह अन्येनैतन्मन्यते तत्त्वंतुपितुःसपिंडनाभावेपितामहेन सहपुनःकार्यनतत्सत्त्वे त्रयाणामपिपिंडानामेकेनापिसपिंडने पितृत्वमश्रुतेप्रेतइतिधर्मोव्यवस्थितइतिविष्णु-धर्मोक्तेः पितामहेप्रपितामहेवापुत्रांतरैरसंस्कृतेष्वसंस्कृताभ्यामेवपितुःसपिंडनकुर्यात् असंस्कृतौनसंस्कारौपूर्वपौत्रप्रपौत्रकैः पितरंतरत्रसंस्कुर्यादितिकात्यायनोब्रवीदितिछंदोगपरिशिष्टात् असंस्कृतौदाहाद्यैरितिकेचित् असपिंडीकृतावितितुनन्वम् अतएवोक्तंतत्रैव पापिष्ठमपिशुद्धेनशुद्धंपाकृतापिवा पितामहेनपितरंसंस्कुर्यादितिनिश्चयः पापिष्ठमकृतसपिंडनं नतुपतितादि अभिशस्तपतितभ्रूणघ्नाःस्त्रियश्चातिचारिणीर्नसंसृजेदितिबैजवापोक्तेः पापकर्मिणोनसंसृजेरन्निति गौतमोक्तेश्चेत्युक्तनिर्णयामृते ।

उलट क्रमानं मरण असेल तर सांगतो हेमाद्रिंन ब्राह्मांत—“ज्याचा पितामह जीवंत अमून पिता मृत असेल त्यानं प्रपितामहादि तिघांना तीन पिंड देऊन त्या तीन पिंडांत पित्याचा पिंड पूर्वीप्रमाणे (पितामह मृत अगतां जगा मिळवावयाचा तसा) मिळवावा. आतां माता मृत अगतां पितामही जीवंत असेल तर त्या ठिकाणींही प्रपितामही इत्यादिकांना तीन पिंड देऊन असाच विधि करावा.” याप्रमाणे प्रपितामह जीवंत अगतां त्याच्या पित्रादिकांशीं पित्याचें संयोजन जाणावें. तें सांगतो सुमंतु—“तीन पिंडांमध्ये देखील कोणत्याही एका पिंडाबरोबर सपिंडन केलें तरी प्रेताला पितृत्व प्राप्त होतें, अया धर्म व्यवस्थित आहे.” आतां जें “उलट क्रमानें मृत झालेल्याचें सपिंडन करूं नये” असें सांगितलें आहे तें माता, पिता, भर्ता यांवांचून इतरविषयक आहे. कारण, “उलट क्रमानें (वडील जीवंत असतां पुत्र मरणें अशा क्रमानें) मृत झालेल्याचें सपिंडीकरण इष्ट नाही, जर माता किंवा पिता अथवा भर्ता असल तर त्या ठिकाणीं हा निषेध नाही” अमें माध्वीयांत स्कांदवचन आहे. मदनरत्नादिकांतही असेंच आहे. ह्या उलट क्रमानें मरणस्थलीं प्रपितामहादिकांशीं पित्याचें सपिंडन केलें असतां नंतर पितामह मृत झाला व त्याचें सपिंडन केलें असतां पुनः त्या पितामहाबरोबर पित्याचें सपिंडन करावें, असें मत हेमाद्रि सांगतो. इतर ग्रंथकार तें मत मानात नाहीत. याचा खरा प्रकार म्हणजे, पित्याचें सपिंडन पूर्वी केलें नसेल तर पितामहाचें सपिंडन झाल्यावर पुनः पित्याचें सपिंडन करावें. पित्याचें सपिंडन केलें असेल तर पुनः त्याचें सपिंडन करूं नये. कारण, “तीन पिंडांमध्ये देखील कोणत्याही एकाशीं सपिंडन केलें तरी प्रेताला पितृत्व प्राप्त होतें, असा धर्म व्यवस्थित आहे” हें वरील सुमंतुवचन विष्णुधर्मांत उक्त आहे. पितामह किंवा प्रपितामह याचा त्यांच्या इतर पुत्रांनीं संस्कार केला नसेल तरी असंस्कृतांबरोबरच पित्याचें सपिंडन करावें. कारण, “पिता व प्रपितामह हे असंस्कृत असतां त्यांचा पौत्रप्रपौत्रांनीं संस्कार करूं नये. त्यांच्याशीं पित्याचा संस्कार करावा, असें कात्यायन सांगता झाला.” असें छंदोगपरिशिष्टवचन आहे. या वचनांत ‘असंस्कृत’ म्हणजे दाहादिकांनीं संस्कार न झालेले, असें केचित् म्हणतात. परंतु सपिंडी न झालेले, असा खरा अर्थ आहे. म्हणूनच तेथेंच सांगितलें आहे की, “पिता पापिष्ठ म्हणजे सपिंडी न झालेला असला किंवा शुद्ध म्हणजे सपिंडी झालेला असला तरी त्याचा सपिंडी झालेल्या किंवा न झालेल्याही पितामहाबरोबर संस्कार (संयोजन) करावा, असा निश्चय आहे.” या वचनांत ‘पापिष्ठ’ म्हणजे सपिंडी न झालेला समजावा. पतितादिक समजूं नये. कारण, “अभिशास्त (लोकापवादानें दूषित), पतित, गर्भघातक, आणि व्यभिचारिणी स्त्रिया यांचें संयोजन करूं नये” असें बैजवापवचन आहे. आणि “पापकर्म्याचें संसर्जन करूं नये” असें गौतमवचनही आहे, असें निर्णयामृतांत सांगितलें आहे.

पूर्वयोःपुत्राभावेतुपौत्रःकुर्यादेव पितामहःपितुःपश्चात्पंचत्वयदिगच्छति पौत्रेणैकादशाहादिकर्तव्यं श्राद्धषोडशम् नैतत्पौत्रेणकर्तव्यंपुत्रवांश्चेत्पितामहः पितुःसपिंडतांकृत्वाकुर्यान्मासानुमासिकमतिक्रान्त्यायनोक्तेः अपराकैशूलपाणौचैवम् तेनसपिंडनस्यानित्यत्वादकृतसपिंडनयोरेवपार्वणानुप्रवेशइति मूर्खोक्तिःपरास्ता कृतेसपिंडीकरणेप्रेतःपार्वणभागभवेदिति हारीतविरोधाच्च केचित्पुत्रांतराभावेपितामहवार्षिकमप्याहुः तन्न श्राद्धषोडशमितिनियमात् इच्छयाभवत्येव पितामहस्यचेदद्यादेकोद्दिष्टनपार्वणमिति वाचस्पतिधृतगर्गोक्तेः त्रयाणायौगपद्येतुप्राधान्यात्पितुःसपिंडनकृत्वापूर्वयोःकुर्यात् पितामहेमृतेदशाहान्तःपितुर्मृतेतुपितुःसंस्कारकृत्वापितामहस्यपुनःसर्वमावर्तयेत् वृत्तेदशाहेनैवम् अशक्त्यापित्रानुज्ञातेन पौत्रेणपितामहश्राद्धेप्रक्रांतेपितृमृतौतदाशौचंवहन्नेवपौत्रःपितामहकर्मकुर्यात्प्रक्रांतत्वादिति मदनपारिजातपृथ्वीचंद्रौ यत्तु उत्तरात्रितयरोद्गरोहिणीयाम्यसर्पपितृभेषुचाग्निभे इमश्चुक्रमसकलंचवर्जयेत्प्रेतकार्यमपिबुद्धिमान्न इतिसपिंडनप्रकरणेपाठान्मुख्यकालेनिषिद्धक्षेपसपिंडनापकर्षः सर्वकालेषुतद्वस्वेतद्वर्ज्यान्त्येव

पूर्वोक्तब्राह्मोक्तानिषोडशश्राद्धानिकार्याणीति वाचस्पतिमिश्राः तत्र अस्यपरिभाषात्वेनवाक्यात्सावकाश-
कर्मपरत्वात् अस्यप्रेतमात्रद्वैवत्याभावाच्च ।

पितामह व प्रपितामह यांना पुत्र नसेल तर पौत्रांनी सपिंडन करावेच. कारण, “पित्याच्या पश्चात् जर पितामह मरेल तर त्याचीं पौत्रांनी एकादशाहादिक षोडश श्राद्धे करावीं. पितामहाला जर दुसरा पुत्र असेल तर हें एकादशाहादिक कृत्य पौत्रांनीं करूं नये. पित्याचें सपिंडन करून प्रतिमार्गी अनुमासिक करावें.” असें कात्यायन वचन आहे. अपराकांत व शूलपाणिग्रंथांतही असेंच आहे. तेणेंकरून (पौत्रांनीं करावें, असें सांगितल्यावरून), सपिंडन अनित्य असल्यामुळे पितामह-प्रपितामहांचें सपिंडन झाल्यावांचूनच त्यांचा पार्वर्णांत प्रवेश होतो, असें मूर्खानें सांगितलेले मंडित झालें. आणि तसें म्हटलें तर “सपिंडीकरण केले असतां प्रेत पार्वणभागी होतो” ह्या हारीतवचनाशीं विरोधही येतो. केचित् विद्वान् पितामहाला दुसरा पुत्र नसेल तर त्याचें वार्षिकी करावें, असें सांगतात. तें बरोबर नाहीं. कारण, वरील वचनांत षोडशश्राद्धे करावीं, असा नियम केला आहे. आपल्या इच्छेनें करावयाचें असेल तर होईलच. कारण, “पितामहाचें जर कगवयाचें असेल तर एकोद्विष्ट करावें. पार्वण करूं नये” असें वाचस्पतीनें धरलेलें गर्गवचन आहे. पिता इत्यादि तिघांचें एकदम सपिंडन प्राप्त अगतां पित्याचें मुख्य असल्यामुळे पित्याचें सपिंडन करून नंतर पितामह-प्रपितामहांचें करावें. पितामह मृत अगतां दशाहांत पिता मृत असेल तर पित्याचा संस्कार करून पितामहाच्या सर्व कृत्याची पुनरावृत्ति करावी. दशाह होऊन गेल्यावर पिता मृत असेल तर पितामहाच्या कृत्याची पुनरावृत्ति नाहीं. पित्याला शक्ति नमल्यामुळे त्यानें पुत्राला कर्म करावयास सांगितल्यावरून पौत्रांनीं पितामहाचे दशाह कृत्यास आरंभ केला अगतां मध्ये पिता मृत होईल तर पित्याचें आशौच धारण करूनच पौत्रांनीं पितामहाचें कर्म करावें. कारण, त्यानें त्या कर्मास आरंभ केल्यामुळे दोष नाहीं, असें मदनपारिजात व पृथ्वीचंद्र सांगतात. आतां जें “उत्तरा, उत्तरापाडा, उत्तराभाद्रपदा, आर्द्रा, रोहिणी, भरणी, आश्लेषा, मघा, कृत्तिका, ह्या नक्षत्रांवर गळल इमश्रुकर्म वर्ज्य करावें. आणि प्रेतकार्यही विद्वानांनीं वर्ज्य करावें.” हें वचन सपिंडनप्रकरणीं पठित असल्यामुळे मुख्यकालीं निषिद्ध नक्षत्र असतां सपिंडनाचा अपकर्ष करावा. सर्व काळांचे ठायीं निषिद्ध नक्षत्र असेल तर सपिंडन वर्ज्य करून पुढें सांगितलेलीं ब्राह्मणांतील षोडशश्राद्धे करावीं, असें वाचस्पतिमिश्र सांगतात. तें बरोबर नाहीं. कारण, हें परिभाषारूप वाक्य असल्यामुळे अवकाश असलेल्या कर्माविषयी आहे. आणि ह्या सपिंडनाची प्रवचन केवळ देवता आहे, असें नाहीं म्हणूनही याविषयी तें वचन लागू होत नाहीं.

अथस्त्रीपूच्यते हेमाद्रौबृहस्पतिः भर्तृगोत्रेणनाम्नाचमातुःकुर्यात्सपिंडनम् यत्तुभविष्ये पितृगोत्रंममुत्स्यत्कुर्याद्भर्तृगोत्रतद्वितितदागमुरादिविवाहोटापरं आगुरादिविवाहेपुपितृगोत्रेणधर्मविदिति-
वृद्धशान्तानपोक्तेः तच्चा नेकवचनेषु पितामह्यापत्यामातामहेनवासहोक्तं तत्रव्यवस्थोक्ताभविष्ये जीवत्पितापितामह्यामातुःकुर्यात्सपिंडनं प्रमीतपितृकःपित्रातन्पित्रापुत्रिकामृतः तत्पित्रामातुःपित्रा लौगा-
क्षिः पितामह्यादिभिःसार्धमातंगंतुसपिंडयेन पितरिध्रियमाणेतुतेनवापरतमेति शंग्वः मातुःसपिंडीकरण-
कथंकार्यंभवेत्सुतेः पितामह्यादिभिःसार्धसपिंडीकरणंस्मृतं येनकेनापिमातुःसापिंड्येयत्रान्वष्टकादौमातुः-
श्राद्धंप्रथगुक्तं तत्रपितामह्यामहकार्यं नांदीमुखेष्टकाश्राद्धेगयायांचमृतेहनि पितामह्यादिभिःसार्धमातुःश्राद्धं-
समाचरेदितिशान्तानपोक्तेः अपुत्रायांतुपैठीनमिः अपुत्रायांमृतायांतुपतिःकुर्यात्सपिंडनं श्रश्वादि-
भिःसहैवास्याःसपिंडीकरणंभवेत् यत्तुलघुहारीतः पुत्रेणवतुकर्तव्यंसपिंडीकरणंस्त्रियाः पुरुषस्यपुनस्त्व-
न्येभ्रातृपुत्रादयोपियेइति यच्च मार्कंडेयपुराणे सपिंडीकरणंस्त्रीणांपुत्राभावेनविद्यतइति तत्पुत्रपत्यभावे-
ज्येयं अत्रसपत्नीपुत्रोपिज्ञेयः बह्वीनामेकपत्नीतामेकाचेत्पुत्रिणीभवेत् सर्वास्तास्तेनपुत्रेणप्राहपुत्रवतीर्मनुरिति-
मनुक्तेरेतत्परत्वात् यत्तु शान्तानपः मृतेपितरिमातुस्तुनकार्यासहपिंडिता पितुरेवसपिंडत्वेतस्यापिकृ-
तंभवेदितितदशक्तपरं केपाचिद्वामतमितिहेमाद्रिः ।

आतां स्त्रियांविषयीं सांगतो—

हेमाद्रौत बृहस्पति—“मातेचें सपिंडन भर्त्याच्या गोत्राचें व तिच्या नांवाचें करावें.” आतां जें भविष्यांत-
“स्त्रियेचें सपिंडन पित्याचें गोत्र टाकून भर्त्याच्या गोत्राचें करूं नये” असें सांगितलें तें आसुरादि विवाहांनें विवाहित स्त्री-
पयक आहे. कारण, “आसुरादि विवाहांनें विवाहित स्त्रियांविषयीं पित्याच्या गोत्राचें करावें.” असें वृद्धशान्तानपवचन

१ पथें पुनरावृत्ति सांगितली ती पूर्वी पित्यानें कर्म केलेले असल्यामुळे समजावी.

आहे. तें सपिंडीकरण अनेक वचनांमध्ये अनेक प्रकारांने म्हणजे पितामहीसह, पतीसह, किंवा मातामहासह सांगितलें आहे. त्याविषयी व्यवस्था भविष्यांत सांगितली आहे ती अशी-“जीवत्पितृकानं मातेचें सपिंडन पितामहीबरोबर करावें. मृतपितृकानं आपल्या पित्यासह मातेचें सपिंडन करावें. पुत्रिकापुत्रांनं मातेचें सपिंडन तिच्या पित्याशीं (मातामहाबरोबर) करावें.” लौगाक्षि-“पिता जीवंत असतां पितामही इत्यादिकांसह मातेचें सपिंडन करावें.” आणि पिता मृत असतां त्यासहच करावें.” शंख-“मातेचें सपिंडीकरण पुत्रांनीं कसें करावें ? पितामही इत्यादिकांसह सपिंडीकरण सांगितलें आहे.” मातेचें सपिंडन कोणाबरोबरही केलें असलें तरी ज्या अन्वष्टक्यादिश्राद्धांत मातेचें श्राद्ध पृथक् सांगितलें आहे, त्या ठिकाणीं तें पितामहीबरोबर करावें. कारण, “वृद्धिश्राद्धांत, अष्टकाश्राद्धांत, गयेचेठार्या आणि मृतदिवशीं इतक्या ठिकाणीं मातेचें श्राद्ध पितामही इत्यादिकांसह करावें.” असें शातातपवचन आहे. स्त्री निपुत्रिक असेल तर मांगतो पैटीनसि “पुत्ररहित स्त्री मृत असेल तर तिचें सपिंडन पतीनं करावें. सामूबरोबर द्विचें (निपुत्रिक स्त्रियेचें) सपिंडन होतें.” आतां जें लघु-हारीत-“स्त्रियेचें सपिंडीकरण पुत्रांनंच करावें. पुरुषाचें सपिंडन तर पुत्राच्या अभावीं जे कोणी भ्रातृपुत्रादिक अधिकारी असतील त्यांनींही करावें.” आणि जें मार्कंडेय पुराणांत-“पुत्रांच्या अभावीं स्त्रियांचें सपिंडन होत नाही.” असें सांगितलें तें पुत्र व पति यांच्या अभावीं जाणावें. या सपिंडीकरणाविषयीं सापन्नपुत्रही अधिकारी आहे. कारण, “एकाच्या बहुत पत्न्या असून त्यांमध्ये एक जर पुत्रवती होईल तर त्या पुत्रांनं त्या सर्व स्त्रिया पुत्रवती होतात, असें मनु सांगतो.” हें मनुवचन सापन्नपुत्राला सपिंडीकरणाचा अधिकारबोधक आहे. आतां जें शातातप-“पिता मृत असेल तर मातेचें सपिंडन करूं नये. कारण, पित्याचेंच सपिंडन केलें असतां तिचेंही सपिंडन केल्यागारचें होतें.” असें सांगितलें तें सपिंडनाला सामर्थ्य नसेल त्याविषयीं आहे. अथवा तें कितीपक्षांचें मत आहे. असें हेमाद्रि सांगतो.

अन्वारोहणेतुभत्रैवसापिंड्यं मृतायानुगतानाथंमातेनमहपिंडतां अर्हतिस्वर्गवासंचयावदाभूतसंप्रवसिति शातातपोक्तेः पत्याचैकेनकर्तव्यंसपिंडीकरणंस्त्रियाः सामृतापिहितेनैक्यंगतामंत्राहुतिव्रतैरिति यमोक्तेश्च अत्रैकशब्दःपितामह्यादिपश्ननिवृत्त्यर्थः पतिपदंवर्गपरं सपिंडनस्यपार्वणैकोद्दिष्टरूपत्वादिति माधवकल्प-तरुमदनरत्नादयः अन्येतुभत्रैवैकेनाहुः स्वेनभर्त्रासहैवास्याःसपिंडीकरणंभवेदित्येवकारश्रवणात् पृथ्वीचंद्रोदयेपिविकल्पउक्तः इदंतुत्त्वं यदाहेमाद्र्यादिमतद्वयोरैकःपिंडस्तदावर्गेणसह यदामाधव-पृथ्वीचंद्रादिमतपृथक्पिंडस्तदैकेनपत्यैकवचनाच्चैकेनापि अतोमातृपिंडमसपिंडीकृतैर्नैवपतिपिंडेनसंयो-ज्यैकीकृतपिंडद्वयंतत्पित्रादिभिःसंयोजयेत् अल्पपक्षएवयुक्तः स्मृत्यर्थसारेतु अन्वारोहणेनैकदिनमर-णेस्त्रियाःपृथक्सपिंडनंनास्ति भर्तुःकृतेस्त्रियाअपिकृतंभवतीत्युक्तंतन्मातृतरमस्तु इदंब्राह्मादिविवाहेषुज्ञेयं ।

मातेचें अनुगमन असेल तर भर्त्यासहच सपिंडन होतें. कारण, “जी स्त्री भर्त्याच्या मागांहून जाऊन मृत झाली ती त्या भर्त्यासह सापिंड्याला योग्य होते व ती भूतांचा प्रलय होईपर्यंत पतीसह स्वर्गवासालाही योग्य होते.” असें शातातपवचन आहे. आणि “स्त्रियेचें सपिंडीकरण एकापतीसह करावें. कारण, ती मृत झाली तरी समंत्रक आहुति व व्रतं यांहीं करून पतीशीं ऐक्य पावली आहे.” असें यमवचनही आहे. या वचनांत ‘एकेन’ हें पद वरील वचनानें पितामहीत्रयाबरोबर जें सपिंडीकरण सांगितलें त्या पक्षाची निवृत्ति करण्याकरितां आहे. आणि ‘पत्या’ ह्याचा अर्थ-पतिवर्गासह असा समजावा. कारण, सपिंडीकरण हें पार्वण व एकोद्दिष्टरूप आहे, असें माधव, कल्पतरु, मदनरत्न इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. इतर ग्रंथकार तर एका भर्त्याबरोबरच सपिंडन सांगतात. कारण, “स्त्रियेचें सपिंडीकरण स्वकीय भर्त्यासहच होतें” या वचनांत ‘एव’-काराचें श्रवण आहे. पृथ्वीचंद्रोदयांतही-विकल्प (पतीसह किंवा पतिवर्गासह करावें असा विकल्प) सांगितला आहे. याचा खरा प्रकार म्हटला म्हणजे असा आहे की, ज्या वेळीं हेमाद्रि इत्यादिकांच्या मतां अन्वारोहण असतां दोघांना (स्त्री-पुरुषांना एक पिंड सांगितला आहे त्या वेळीं (त्यापक्षां) पतिवर्गासह सपिंडीकरण समजावें, ज्या वेळीं माधव, पृथ्वीचंद्र इत्यादिकांच्या मतां दोघांना वेगवेगळा पिंड सांगितला आहे त्या वेळीं (त्यापक्षां) पतीच्या पिंडाबरोबर मिळावा. आणि वरील यमवचनांतही ‘पत्या एकेन’ असें सांगितल्यावरूनही एक सपिंडाबरोबरही सपिंडीकरण होतें. या कारणास्तव पित्याच्या पिंडाचें संयोजन करणाऱ्या पूर्वी मातेचा पिंड त्यांत मिळवून त्या दोन पिंडांचा एक पिंड करून नंतर पितामहादिपिंडांशीं त्याचें संयोजन करावें. या वरील दोन पक्षांमध्ये दुसरा पक्ष (माधवादिकांनीं सांगितलेला) च युक्त आहे. स्मृत्यर्थसा-रांत तर-अनुगमनेंकरून एकदिवशीं स्त्री मृत असतां तिचें पृथक् सपिंडन नाही. भर्त्याचें सपिंडन केलें असतां स्त्रियेचेंही केल्यासारखें होतें, असें सांगितलें आहे. तें निराळें मत असो. हें सपिंडीकरण ब्राह्मादिविवाह असतां समजावें.

आसुरादिषुतुशातातपः तन्मात्रातत्पितामह्यातच्छुश्रवासापिंडनं आसुरादिविवाहेषुविज्ञानांयोषितां

भवेत् मातामह्यमातुःपितामहात्पितामहाचेत्यर्थः **सुमंतुः** पितापितामहयोऽप्यः पूर्णसंवत्सरेभ्यः माता-
मातामहेतद्विद्याह भगवान् शिवः इदमासुरादिपरंपुत्रिकापुत्रपरंचोक्तं प्राक् **हेमाद्रिस्तु** ब्राह्मादिष्वपि सर्वत्र
देशभेदाद्विकल्पमाह अतः गुर्जरेषु कोकिलमतानुसारिणां मातृमातामहप्रमातामहाइति श्राद्धप्रयोगः सपिंडनच-
दृश्यते **हेमाद्रावापस्तंबोपि** कोकिलस्य तथा पुत्रा अन्यसंचयजीविनः पुत्रास्तेष्वकुलं यांति एवं नारीमृता-
सती यदपि **विज्ञानेश्वरो** मातामहेन मातुः सार्पिण्ये पितृश्राद्धवन्मातृश्राद्धं नित्यमित्याह यच्च वृद्धिश्राद्धे छं-
दोगपरिशिष्टं षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेदिति तदेतद्विषयमेव मातुः पृथक् श्राद्धाभावात्
अतएव **हेमाद्रौ भविष्ये** मातुः सपिंडनप्रक्रम्य उदितेनुदिते चैव होमभेदो यथा भवेत् तथा कुलक्रमायातमा-
चारं च चरेद्बुद्धत्युक्तं अस्य वृद्धावपवादमाह न वै वदयाघ्रपात् कुर्यान्मातामहश्राद्धं सर्वदामातृपूर्वकं विधि-
ज्ञो विधिमास्थाय वृद्धौ मातामहादिवत् **केचित्** दत्तपुत्रिकापुत्रपरमाहुः ।

आमुरादिविवाह अमतील तर सांगतो **ज्ञातानप**—“आमुरादि विवाहानं विवाहित स्त्रियांचं सपिंडन तिच्या (मातेच्या)
मातृपितामहीप्रपितामहीबरोबर होतें.” **सुमंतु**—“पिता मृत होऊन पूर्ण संवत्सर झाले अमतां पुत्रांनीं त्याचें पितामहाशीं
संयोजन करावें. त्याप्रमाणे मातेला मातामहाचे ठाणीं संयोजन करावें, असें भगवान् शंकर सांगतात.” हें वचन आमुरादि-
विवाहविषयक व पुत्रिकापुत्रविषयक आहे, असें पूर्वी सांगितलें आहे. **हेमाद्रि** तर—ब्राह्मादिक सर्वविवाहांमध्ये देशभेदानें
विकल्प सांगतो. म्हणून गुर्जरदेशांत कोकिलमताला अनुसरणाऱ्यां ‘मातृमातामहप्रमातामहा’ असा उच्चार करून श्राद्धप्रयोग
व सपिंडन दियत आहे. **हेमाद्रिंत आस्तंबही**—“कोकिलाचे जसे पुत्र अन्यांनीं केलेल्या संचयानें उपजीवन करून पुष्ट
होऊन ते आपल्या कुलांत येतात. तशी मृत झालेली स्त्री आपल्या कुलांत येते.” आतां जें **विज्ञानेश्वर**—मातामहाबरोबर
मातेचें सपिंडन केलें अमतां पितृश्राद्धाप्रमाणें मातेचें श्राद्ध नित्य आहे, असें सांगतो तें, आणि जें वृद्धिश्राद्धविषयीं **छंदो-**
गपरिशिष्ट—“तदनंतर गदा पितरांना श्राद्धदानाचा उपक्रम करावा” असें आहे तें ह्या (कोकिलमता) विषयींच आहे.
कारण, मातेचें पृथक् (मातामहावांचून) श्राद्ध नाहीं. मातेचें मातामहाशीं सपिंडन आहे म्हणूनच **हेमाद्रिंत भवि-**
ष्यांत—मातेच्या सपिंडनाचा उपक्रम करून “उदिते, नुदिति, अनुदिते नुदिति” अशा दोन वाक्यांवरून कितीएक सूर्यो-
दयोत्तर होम करितात, कितीएक अनुदय अगतां होम करितात. ते जसे इत्यपरंपरागत आहेत तसें कुलपरंपरेन आलेल्या
आचाराचें आचरण करावें” असें सांगितलें आहे. याचा वृद्धिश्राद्धांत अपवाद सांगतो तेश्च **व्याघ्रपात्**—“विधि जाण गारानें
विधीचा आश्रय करून सर्वदा मातामहश्राद्ध मातृपूर्वक करावें आणि वृद्धिश्राद्धांत मातामहपूर्वक करावें. अर्थात् मातामहश्राद्ध
मातृपूर्वक करूं नये.” **केचित्** विद्वान् हें वचन पुत्रिकापुत्रविषयक सांगताना.

पत्युः सार्पिण्यमाह लौगाक्षिः सर्वाभावे स्वयंप्रवयः स्वभर्तृणाममंत्रकम् सपिंडीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमे-
व चेति यत्तु वचनं अपुत्रस्य परेतस्य नैव कुर्यात्सपिंडतामिति यच्चापस्तंबः अपुत्रायेमृताः केचित्पुरुषावा-
स्त्रियोपिवा तेपांसपिंडनाभावादेकोद्दिष्टं न पार्वणमिति तत्पुत्रोत्पादतविधिप्रशंसार्थमिति **माधवः** सपिंडीक-
रणाद्धर्ममेकोद्दिष्टं विधीयते अपुत्राणांच सर्वेषां पामपत्नीनांतर्ध्वचेति **हेमाद्रौ प्रचेनसोक्ते** च अन्येतुद्विवि-
धवाक्यदर्शनाद्विकल्पमाहुः **स्मृत्यर्थसारपि** ब्रह्मचारिणामनपत्यानांच सपिंडनं नास्ति तेपांसदेकोद्दिष्ट-
मेव व्युत्क्रममृतानां सार्पिण्यं कार्यं नवा केचित्सर्वत्र सपिंडनमाहुरिति अपुत्रे व्युत्क्रममृते विशेषेण **कारि-**
कायां भ्रातावाभ्रातृपुत्रोवा सपिंडः शिष्यएव वा सपिंडीकरणं कुर्यात्पुत्रहीनमृते सति सर्वबंधुविहीनस्य पत्नी-
कुर्यात्सपिंडतां ऋत्विजं कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा वसुरुद्रादिति मुतैः कार्यतेपांसपिंडता व्युत्क्रमाच्च प्रसी-
तायेतद्विनाप्रेतताध्रुवं पुनः सपिंडनं तेपांकुर्यात्प्रेतेपितामहइति अत्रमूलमृग्यं यतीनांसपिंडनं नास्ति किंत्वेका-
दशेति पार्वणं कार्यं तदपि त्रिदंडिनः एकदंड्यादीनांतदपि नेत्युक्तं प्राक् दंडग्रहणात्पूर्वमृते तु दाहादिसपिंडनांतं
सर्वकार्यमिति **भट्टचरणाः** ।

पतीचें सपिंडीकरण सांगतो **लौगाक्षिः**—“सर्वे कल्यांच्या अभावीं पत्नींतं स्वतः आपल्या भर्त्याचें सपिंडीकरण अमंत्रक
करावें. तदनंतर पार्वणही करावें” आतां जें **वचन**—“निपुत्रिक मृताचें सपिंडन करूं नयेच.” आणि जें **आपस्तंब**—“जे
कोणी पुरुष किंवा स्त्रिया निपुत्रिक मृत असतील त्यांचें सपिंडन नमल्यामुळे एकोद्दिष्ट करावें. पार्वण करूं नये” असें सांनि-
तलें तें पुत्र उत्पन्न करण्याच्या विधीचे सुतीकरितां आहे, असें **माधव** सांगतो. अर्थात् हें वचन सपिंडनाचें निषेधक नाहीं,

म्हणून लैगाक्षिवचनां संपिंडन करावें असें झालें. आणि “सर्व निपुत्रिक व पतिरहित स्त्रिया यांचें संपिंडीकरणानंतर एकोद्दिष्ट सांगितलें आहे” असें हेमाद्रीत प्रचेतसाचें वचनही आहे. यावरून निपुत्रिकांचें संपिंडीकरण आहे. इतर विद्वान् तर-करावें व न करावें, अशीं दोन प्रकारचीं वाक्यें दृष्टीस पडतात म्हणून विकल्प सांगतात. स्मृत्यर्थसारांतही-“ब्रह्मचारी व अपत्यरहित यांचें संपिंडन नाही, त्यांचें सर्वदा एकोद्दिष्ट व आहे. उलट क्रमानें मृतांचें संपिंडन करावें किंवा न करावें. किती एक विद्वान् सर्वांचें संपिंडन सांगतात, असें सांगितलें आहे. निपुत्रिक मृत असतां व उलट क्रमानें मृत असतां विशेष सांगतो रेणुकारिकेंत-“पुत्रहीन मृत असतां भ्राना किंवा भ्रात्याचा पुत्र, अथवा संपिंडांतील पुरुष, किंवा शिष्य यांनं त्यांचें संपिंडन करावें. सर्वांनीं रहित जो मृत असेल त्याचें संपिंडन पत्नीनं स्वतः करावें. किंवा पत्नीनं ऋजिजा-कडून किंवा उपाध्यायकडून करावें. जे उलट क्रमानें मृत असतील त्यांचें संपिंडन वसु, रुद्र, आदित्य यांच्याशीं करावें. कारण, संपिंडन केलें नाही तर प्रेतत्व जात नाही, असा निश्चय आहे. उलटक्रमानें मृतांचे पितामह मृत अमतां त्याच्याशीं पुनः संपिंडन करावें.” ह्या वचनाविषयीं मूल शोधावें. उपलब्ध नाही. संन्याशांचें संपिंडन नाही. तर अकराव्या दिवशीं पार्वण करावें. तें देखील त्रिदंडी जे असतील त्यांचें करावें. एकदंडी वगैरे जे संन्याशी त्यांचें पार्वण देखील नाही. असें पूर्वीं सांगितलें आहे. दंड ग्रहण करण्याचे पूर्वीं मृत असेल तर दाहादिक संपिंडनापर्यंत सर्व कृत्य करावें, असें भट्टचरण-(नारायणभट्ट) सांगतात.

संपिंडनविधिमाहवैजवापः समाप्तेमंवत्सरेचत्वार्युदपात्राणिप्रयुक्तयेकंप्रेतायत्रीणिपितृभ्यःप्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वसिंचितयेसमानादितिद्वाभ्यामेवंपिंडोऽथाभिमृश्यपवोनुगतःप्रेतःपितरस्त्वंददामिवः शिवंभवतु. शोषाणांजायंतांचिरजीविनः समानीवःसंगच्छध्वंसंवदध्वमिति यद्यपि तच्चापिदेवरहितमेकार्ध्याकपवित्रकं नैवाग्नौकरणंतत्रतश्चावाहनवर्जितमितिमार्कंडेयेनोक्तं तथापि संपिंडीकरणंश्राद्धंदेवपूर्वनियोजयेदित्यादि-विरोधाद्विकल्पः प्रेतांशोवाज्ञेयम् अत्रकामकालौविश्वदेवावपीत्युक्तप्राक् मैत्रायणीयपरिशिष्टे पित्र्यविप्रकरेहोमःसाग्नरपिभवेदिह यत्तुगोभिलः अनुक्तकालेष्वपितुव्युत्क्रमेणमृतावपि आमेनवापिमा-पिंड्यहंभ्रावापिप्रकल्पयेदिति तदापदिमातृपितृभिन्नपरम् आपन्नोपिनिकुर्वीतश्राद्धमामेनकहिंचिदितितेनै-वोक्तेः शुद्धितत्त्वेकामधेनौचलघुहारीतः संपिंडीकरणंयावत्प्रेतश्राद्धंतुपोदशं पक्वाग्नेनैवकर्तव्यं-सामिषेणद्विजातिभिः विश्वप्रकाशे प्रेतःसंपिंडनादूर्ध्वपितृलोकेनुगच्छति कुर्यात्तस्यतुपाथेयंद्वितीयेद्वि-संपिंडनात् स्मृत्यर्थसारेप्येवं ततोवृद्धिश्राद्धंकुर्यात् एतन्मलमासेपिकार्यं अधिमासेनकर्तव्यंश्राद्धमाभ्यु-दयंतथा तथैवकाम्ययत्कर्मवत्सरात्प्रथमादृतइतिहेमाद्रौहारीनोक्तेः इतिभट्टकमलाकरकृतेनिर्णयसिंधौ-संपिंडीकरणं ।

संपिंडनविधि सांगतो वैजवाप-“संवत्सर समाप्त झाल्यावर संपिंडनश्राद्ध करावें, तें असें-चार अर्धपात्रे करावीं, एक अर्धपात्र प्रेताला आणि तीन पितरांना, (पितामहादिकांना) अमावीं. ‘ये समानां’ ह्या दोन मंत्रांनीं प्रेतपात्रोदक-पितरांच्या पात्रांत मिळवावें. याप्रमाणें वरील मंत्रांनीं प्रेतपिंड पितामहादिकांच्या पिंडांत मिळवावा. नंतर त्यांना स्पर्श करून पुढील मंत्र म्हणावे. ते मंत्र-‘एष वोनुगतः प्रेतः पितरस्त्वं ददामि वः । शिवं भवतु शोषाणां जायंतां चिरजीविनः ।’ समानीव० संगच्छध्वं० ह्या दोन मंत्रांनीं स्पर्श करावा.” जरी “तें संपिंडीश्राद्ध देवरहित, एक अर्धानें व एकपवित्रकानें युक्त आहे. त्यांत अग्नौकरण नाही व आवाहन नाही.” असें मार्कंडेयानें सांगितलें आहे तरी “संपिंडीकरण श्राद्ध देव-पूर्वक करावें” इत्यादि वचनांशीं विरोध येत असल्यामुळे विकल्प समजावा. अथवा मार्कंडेय वचनानें सांगितलेला देवराहित्य-एकार्ध्यादि विधि प्रेताच्या एकोद्दिष्टाकडे समजावा. संपिंडीकरण श्राद्ध पार्वण-एकोद्दिष्टरूप आहे. त्यांत कामकाल विश्वेदेव आहेत, असेंही पूर्वीं श्राद्धप्रकरणीं सांगितलें आहे. मैत्रायणीयपरिशिष्टांत-“ह्या संपिंडन श्राद्धांत साग्निकाचाही पित्र्य ब्राह्मणांच्या हातांवर अग्नौकरणहोम होतो.” आतां जें गोभिल-“उक्त काल नसला तरी व्युत्क्रमानें (उलट क्रमानें) मरण असलें तरी संपिंडीकरण श्राद्ध आमाम्नांनंही करावें किंवा हिरण्यद्वाराही संपिंडीकरण करावें.” तें आपत्कालीं माता पिता यांहून इतरविषयक आहे. कारण, “आपत्काल प्राप्त असला तरी मातापितरांचें श्राद्ध आमाम्नां कधीही करूं नये” असें त्यानंच (गोभिलानेंच) सांगितलें आहे. शुद्धितत्त्वांत व कामधेनुग्रंथांत लघुहारीत-“संपिंडीकरणापर्यंत जीं सोळा प्रेतश्राद्ध तीं ब्राह्मणांनीं आमिष (माषाक्ष) सहित पक्वान्नांचें करावीं.” विश्वप्रकाशांत-“प्रेत संपिंडनानंतर पितृलोकास जातो, त्याला संपिंडनाच्या दुसऱ्या दिवशीं पाथेयश्राद्ध करावें.” स्मृत्यर्थसारांतही असेंच सांगितलें आहे. तदनंतर वृद्धिश्राद्ध करावें. हें संपिंडनश्राद्ध मलमासांतही करावें. कारण, “अधिक मासांत श्राद्ध करूं नये, तसेंच आभ्यु-

दयिक कर्म (विवाहादि) मलमासांत करूं नये, आणि काम्यकर्म मलमासांत करूं नये. हा निषेध प्रथम वर्षातील श्राद्धाला समजूं नये.” असें हेमाद्रींत हारीतवचन आहे.

इति निर्णयसिंधौ महाराष्ट्रीयटीकायां सपिंडीकरणम्.

अथप्रथमाब्देनिषिद्धानि हेमाद्रौ स्नानंचैवमहादानंस्वाध्यायंचाम्रितर्पणम् प्रथमेब्देनकुर्वीतम-
हागुरुनिपातने अम्रितर्पणलक्षहोमादि नत्वाधानम् तत्तु प्रथमाब्देभवत्येव तदाहहेमाद्रावुशनाः पितुः-
सपिंडीकरणवार्पिकेस्मृतिवासरे आधानावुपसंप्राप्तावेतत्प्रागपिवत्सरात् अन्यतर्पणमितिशुद्धितत्त्वेपाठः
आदिपदंवृद्धिनिमित्तनित्यकर्मपरं दिवोदासीये महातीर्थस्यगमनमुपवासव्रतानिच संवत्सरंनकुर्वीतमहा-
गुरुनिपातने इदंश्राद्धकौमुद्यादेवीपुराणस्थमुक्तं गौडनिबंधमात्स्ये सपिंडीकरणादूर्ध्वप्रेतःपार्वण-
भुग्भवेत् वृद्धीष्टार्पयोग्यश्रृगृहस्थश्रसदाभवेन वर्षांतसपिंडनाभावेनाधिकारीत्यर्थः गृहस्थःसपिंडोपीत्यर्थः
अतएव प्रेतकर्माण्यनिर्वत्यचरेन्नाभ्युदयक्रियां आचतुर्थततःपुसिपंचमेभुभदंभवेदितिज्योतिषेउक्तं
माधवीये देवलः प्रसीतौपितरौयस्यदेहस्तस्याशुचिर्भवेन नद्वेवंनापिवापिपित्र्ययावत्पूर्णोनिवत्सरः इदंवर्षा-
नसपिंडनपरं तथैवकाम्यंयत्कर्मवत्सरात्प्रथमाहृतइतिलघुहारीनायेकवाक्यत्वात् वृद्धिनिमित्तापकर्षेतु-
काम्यादिभवेत्यवेतिगौडाः पित्र्यंसपिंडनम् अतएवलौगाक्षिः अन्येषांप्रतकार्याणिमहागुरुनिपातने
कुर्यात्संवत्सरादूर्वाकश्राद्धमेकंनुवर्जयेत् दाहायेकादशाहांतंकार्यं तत्राशौचांतरस्याप्रतिबंधकत्वात् आद्य-
श्राद्धमशुद्धोपिकुर्यादेकादशेदृष्टीत्युक्तंश्च एकंसपिंडनं ।

आतां प्रथम वर्षीं निषिद्ध सांगतो—

हेमाद्रींत—“महागुरु (पिता) मृत अमतां स्नान (गमावतने), महादान, वेदाध्ययन, आणि अम्रितर्पण हीं
प्रथमवर्षीं करूं नयेत.” या वचनांत अम्रितर्पण म्हणजे लक्षहोमादिक गमजावे. आधान गमजूं नये. ते आधान तर प्रथम-
वर्षीं होतच आहे. ते सांगतो हेमाद्रींत उशना—“पित्याचें सपिंडीकरण वर्षाच्या मृतदिवशीं करावें. आधानादिक प्राप्त
असतां वर्षाच्या आंत देखील हें सपिंडीकरण होतें.” वरील वचनांत ‘अम्रितर्पण’ या शब्दाची ‘अन्यतर्पण’ असा शुद्धितत्त्वांत
पाठ आहे. त्याच्या अर्थ-इतरांचें तर्पण, असा आहे. वरील उशनाचें वचनांत ‘आधानादि’ या ‘आदि’ पदानें वृद्धिश्राद्धाला
निमित्त जें नित्य कर्म ते घ्यावें. दिवोदासीयांत—“महागुरु (पिता) मृत अमतां महातीर्थाची यात्रा, उपवासव्रतें हीं
संवत्सरपर्यंत करूं नयेत.” हें वचन श्राद्धकौमुदींत देवीपुराणांतील म्हणून गागितलें आहे. गौडनिबंधांत मात्स्यांत—
“सपिंडीकरणानंतर प्रेत पावेणभागी होतो. नंतर गृहस्थ वृद्धिकर्म, यज्ञादिकर्म, वापीकृपादिकर्म यांविषयी योग्य होतो.”
वर्षांतीं सपिंडन केलें नसेल तर ह्या वृद्ध्यादि कर्मांविषयी अधिकारी नाही, असा अर्थ समजावा. गृहस्थ म्हणजे सपिंडी
समजावा. पुत्रच समजूं नये. म्हणूनच “प्रेतकर्म केल्यावांचून चार पुरुषांचें आंत आभ्युदयिक (वृद्धिनिमित्तक) क्रिया करूं
नये. पांचव्या पुरुषाला कल्याणकारक होईल. म्हणजे हा निषेध नाही.” असें ज्योतिषग्रंथांत गागितलें आहे. माध-
वीयांत देवल—“ज्याचें माता पिता मृत अगतील त्याचा देह अशुचि होतो, म्हणून जोपर्यंत संवत्सर पूर्ण झाला नाही
तोपर्यंत देवकर्म किंवा पित्र्यकर्म त्यानें करूं नये.” हें वचन वर्षांतीं सपिंडनपश्चात्विषयी आहे. वर्षाचे आंत सपिंडन केलें
असेल तर हा निषेध नाही. कारण, “वृद्धिश्राद्धानंतर प्रथम वर्षामध्येही काम्य करावें, वृद्धि नसेल तर काम्य कर्म प्रथम
वर्षानंतरच करावें” ह्या पूर्वी सांगितलेल्या लघुहारीनादिवचनांशीं एकवाक्यता (एकसंबंध) होत आहे. वृद्धिनिमित्तानें
सपिंडनाचा अपकर्ष असेल तर काम्यादिक कर्म प्रथम वर्षांत होतच आहेत, असें गौड सांगतात. वरील देवलवचनांत
‘पित्र्यकर्म’ म्हणजे सपिंडन समजावें. म्हणूनच लौगाक्षि—“पिता मृत अमतां संवत्सराचें आंत इतरांचीं प्रतकार्ये
(दाहादि एकादशाहांत कर्म) करावीं, एक सपिंडनश्राद्ध मात्र वर्ज्य करावें.” दाहादिक एकादशाहांत करावीं. कारण, त्यां-
विषयीं इतर आशांचाचा प्रतिबंध नाही. आणि ‘आद्यश्राद्ध अशुद्ध अगत्या तरी अकराव्या द्विवर्शीं करावें’ असेंही पूर्वी
सांगितलें आहे.

पद्म्यादैतवपवादमाहमाधवीयेकृष्यशृंगः पद्म्याःपुत्रस्यतत्पुत्रभ्रात्रोस्तत्तनयेपुत्र स्नुषास्वस्रोश्च
पित्रोश्चसंघातसरण्यदि अर्वागद्गन्मातृपितृपूर्वसापिंड्यमाचरेन लौगाक्षिः पत्नीपुत्रस्तथापौत्रोभ्राता-
तत्पुत्रकापि पितरौचयदैकस्मिन्पित्रियेरन्वासरेतदा आद्यमेकादशेकुर्यात्त्रिपक्षेतुसापिंडनं धवलनिबंधे

महागुरुनिपातेतुप्रेतकार्यथाविधि कुर्यात्संवत्सरादर्वागेकोद्दिष्टनपार्वणं भृगुः माताचैव तथा भ्राताभार्या-
पुत्रस्तथा कृषा एषां मृतौ च रेच्छादमन्यस्य न पुनः पितुः एतदपि सपिंडनपरम् पितुर्मृतावन्यस्य श्राद्धनाचरेदि-
त्यर्थः शुद्धितत्त्वे देवलः अन्यश्राद्धपराश्रंच गंधमाल्यंच मैथुनं वर्जयेद्गुरुपाते तु यावत्पूणो न वत्सरः पार-
स्करभाष्ये बृहस्पतिः पितर्युपरते पुत्रो मातुः श्राद्धाभिवर्तते मातर्यपि च पृत्तायां पितृश्राद्धादृते समं समं
पितरं विनान्यश्राद्धनेत्यर्थः शुद्धितत्त्वे देवलः महागुरुनिपाते तु काम्यं किंचिन्नचाचरेत् आर्त्थिज्यं ब्रह्मचर्यं-
च श्राद्धदेवक्रियां तथा एतत्सपिंडनात्प्रागिति केचित् तदुत्तरमपीत्यन्ये श्राद्धकौमुद्यां कालिकापुराणे-
पूर्वार्धे विशेषतः शिवपूजां प्रमीतपितृको नरः यावद्वत्सरपर्यंतं मनसापि न चाचरेत् केचित्तु पित्रोरब्द-
मशौचं स्यात्पणमासं मातुरेव च त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्थं भ्रातृपुत्रयोरिति स्मृतेः सापन्नमातुरब्दार्धमाहुः
श्राद्धकौमुदीकारस्तु द्वयोरेव महागुरवोरब्दमेकमशौचकं नान्येषामधिकाशौचं स्वजातिविहितात्किलेति-
समूलजातूकर्ण्यविरोधान्निर्मूलमाह ।

पत्नी इत्यादिकां च सपिंडनाविषयीं अपवादं सांगतो माधवीयां ऋष्यशृंग-“पत्नी, पुत्र, पौत्र, भ्राता, भ्रात्याचा
पुत्र, कृषा, भगिनी आणि माता, पिता यांना एकदम सरण प्राप्त होईल तर वर्षाचे आंत मानापिता यांचं सपिंडन पूर्वीं
करून नंतर सर्वांचं करावें.” लौगाक्षि-“पत्नी, पुत्र, पौत्र, भ्राता, भ्रात्याचे पुत्र, आणि माता व पिता हे ज्या वेळीं एका
दिवशीं मृत होतील त्या वेळीं त्यांचं आयश्राद्ध अकराव्या दिवशीं करावें आणि तिसऱ्या पक्षांत सपिंडन करावें.” धवल-
निबंधांत-“महागुरु (पिता) मृत असेल तर एका वर्षाचे आंत इतरांचं प्रेतकार्य एकोद्दिष्ट यथाविधि करावें. पावण करूं
नये.” भृगु-“पिता मृत असेल तर माता, भ्राता, भार्या, पुत्र, कृषा यांचं श्राद्ध प्राप्त असतां करावें. इतरांचं श्राद्ध करूं
नये.” हें वचनही सपिंडनाविषयींच आहे. शुद्धितत्त्वांत देवल-“पिता मृत असेल तर जोपर्यंत पूर्ण वर्ष झालें नाही
तोपर्यंत इतरांचं श्राद्ध, पराश्र, गंधमाल्याचा उपभोग व मैथुन वर्ज्य करावें.” पारस्करभाष्यांत बृहस्पति-“पूर्वीं
माता मृत असून नंतर पिता मृत असेल तर पुत्रांनं मातेचं श्राद्ध करूं नये. पित्याच्या नंतर माता मृत असेल तर पित्याच्या
श्राद्धावांचून इतरांचं श्राद्ध करूं नये.” शुद्धितत्त्वांत देवल-“महागुरु (पिता) मृत असेल तर कोणतेंही काम्यकर्म करूं
नये. तसेंच दुसऱ्याचा ऋत्विक्पणा, ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययनव्रत), श्राद्ध, आणि दैविक कर्म हें करूं नये.” हें सपिंडनाच्या
पूर्वीं करूं नये असें केचित् म्हणतात. सपिंडनानंतरही करूं नये, असें अन्य विद्वान् सांगतात. श्राद्धकौमुदींत
कालिकापुराणांत पूर्वार्ध-“ज्याचा पिता मृत असेल त्यानं विशेष करून शिवपूजा संवत्सरपर्यंत मनानेंही आचरण करूं
नये.” केचित् विद्वान् तर-“पित्याचं आशौच वर्षपर्यंत, मातेचं सहा महिने, भायेंचं तीन महिने, भ्राता व पुत्र यांचं दीड
महिना आशौच.” ह्या स्मृतीवरून सापन्न मातेचं सहा महिने आशौच सांगतात. श्राद्धकौमुदीकार तर-“दोन जे
महागुरु (माता व पिता) यांचंच एक वर्ष आशौच, इतरांचं आपल्या जातीच्या आशौचाहून अधिक आशौच नाही.” ह्या
समूल अशा जातूकर्ण्यवचनाशीं विरोध येत असल्यामुळे वरील स्मृतिवचन मूलरहित आहे, असें सांगतां.

हेमाद्रौ भविष्ये गयाश्राद्धमृतानांतु पूर्णत्वव्दं प्रशस्यते त्रिस्थलीसेतौ गारुडे तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं-
श्राद्धमन्यष्वपैतृकं अब्दमध्येन कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु इदं वृद्धयर्थं सपिंडनाभावे वृद्धांसपिंडनापकर्षे व्दमध्ये-
पिदर्शदिकार्यमेव पितुः सपिंडनं कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकमिति छंदोगपरिशिष्टात् सपिंडीकरणाद्व-
ध्वंप्रेतः पार्वणभुग्भवेदिति मात्स्यात् ततः प्रभृतिवैप्रेतः पितृसामान्यमभ्रुते विंदते पितृलोकंच ततः श्राद्धप्रव-
र्तते इति हारीताचेति शूलपाणिः यत्तु कातीयं सपिंडीकरणादूर्ध्वन दद्यात्प्रतिमासिकं एकोद्दिष्टविधा-
नेन दद्यादित्याह शौनक इति तत्रैकोद्दिष्टविधानान्न दद्यादित्यन्वयः तुर्यपादेन पार्वणे विकल्प उक्तः ब्रह्मवैवर्ते
उद्वाहश्चोपनयनं प्रथमे व्दमेही पते कृते सपिंडने प्यूर्ध्वमस्त्रांचोद्धरणं त्यजेत् तथापि कर्तुमिच्छंति त्रीणि चैतानि-
वैसुताः मासिकान्यवशिष्टानि चापकृष्यचरेत् पुनः ।

हेमाद्रौ भविष्यांत-“मृत झालेल्यांचं गयाश्राद्ध वर्ष पूर्ण झाल्यावर प्रशस्त आहे.” त्रिस्थलीसेतून् गारुडांत-
“महागुरु मृत असतील तर तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध व इतर पैतृकश्राद्ध एक वर्षांमध्ये करूं नये.” हा निषेध वृद्धीकरितां सपिंडन
केलें नसेल तर समजावा. वृद्धिश्राद्धविषयीं सपिंडनाचा अपकर्ष असेल तर वर्षांमध्येही दर्शदि श्राद्ध करावेंच. कारण,
“पित्याचं सपिंडन करून प्रतिमासी होणारें श्राद्ध करावें” असें छंदोगपरिशिष्टवचन आहे. “सपिंडीकरणानंतर प्रेत
पावर्णमोगी होतो” असें ब्राह्मवचन आहे आणि “सपिंडीकरण झाल्यापासून पुढें प्रेताला पितृत्वधर्म प्राप्त होतो आणि

पितृलोकही प्राप्त होती म्हणून त्याचें श्राद्ध प्रवृत्त होतें.” असें हारीतवचनही आहे, असें शूलपाणि सांगतो. आतां जें कातीय-“सपिंडीकरणांतर प्रतिमासिकं देजं नये. एकोद्दिष्टविधीनं यावें, असें शौनक सांगतो” असें वचन त्यांत ‘प्रति-मासिक एकोद्दिष्टविधीनं देजं नये’ असा अन्वय करावा. या वचनांतील चवथ्या पादानें ‘यावें असें शौनक सांगतो’ असें सांगितल्यावरून अर्थात इतर सांगत नाहीत असें झाल्यानें पार्वणाविषयी विकल्प उक्त झाला. ब्रह्मवैवर्त-“प्रथम वर्षांत सपिंडन केल्यानंतरही विवाह, मौजीबंधन आणि अस्थींचा उद्धार (तीर्थांत प्रक्षेप) हीं वर्य करावीं, असें आहे तरी हीं तीन कृत्ये करण्याविषयी पुत्र इच्छितात. त्यांनीं अवशिष्ट राहिलेलीं मांसिकें पुनः अपकर्षानें करून तीं विवाहादि कृत्ये करावीं.”

अत्रेदंतत्वं वृद्धिबिनावर्गागपिसपिंडनापकर्षेपितृत्वप्राप्तिर्वर्पातपत्र कृतेसपिंडीकरणेनरःसंवत्सरात्परं प्रेतदेहंपरित्यज्यभोगदेहंप्रपद्यतइतिविष्णुधर्मोक्तेः अर्वाकंसंवत्सराद्यस्यसपिंडीकरणंभवेत् प्रेतत्वमपित-स्यापिविज्ञेयंवत्सरंनुपेत्यश्रिपुराणाच्च तेनतत्सत्त्वेपिवृद्धिदेवपित्र्येष्वनधिकारः वृद्धिनिमित्तेत्वनंतरमेव अर्वाकंसंवत्सराद्ब्रह्माणंसेवत्सरेपिवा येसपिंडीकृताःप्रेतानतेपांतुपृथक्क्रियेति शातातपोक्तेः तथैव-काम्यमितिहेमाद्रिःवृत्तहारीनादिवशाच्चैवमिति तथा अस्थिक्षेपंगयाश्राद्धंश्राद्धंचापरपक्षिकम् प्रथमेव्दे-नकुर्वीतकृतेपितुःसपिंडने । अस्यापवादः । अस्थिक्षेपंगयाश्राद्धंश्राद्धंचापरपक्षिकं प्रथमेव्देपिकुर्वीत यदिस्याद्भुक्तिमान्मुतः भक्त्याग्यंश्राद्धंतद्वानितिमदनपारिजातादयः अन्येयथाश्रुतमाहुः तत्त्वंतु य-दीदंसमूलंतदावृद्धिबिनापकर्षपूर्वं वृद्धयर्थेत्तुपरमितियोज्यं पतितानांगयायांचिशेषोब्राह्मे क्रियतेपतितानां-चगतेसंवत्सरेकचिन् देशधर्मप्रमाणाद्वाश्राद्धंस्वबंधुभिः ।

वर्षावर्षांचा खरा प्रकार म्हणजे असा आहे की, श्राद्धकर्मावांचून वर्षाच्या आत जर सपिंडनाचा अपकर्ष केला तरी प्रेताला पितृत्वाची प्राप्त वषावांच होत. कारण, “सपिंडीकरण केले अगतां मनुष्य वर्षाच्या पुढे प्रेतदेह टाकून भोगदेह पावतो” असें विष्णुधर्मोक्त वचन आहे. आणि “ज्यानें सपिंडीकरण संवत्सराचे आतही झालें असेल त्याला देखील प्रेतत्व संवत्सरपर्यंत जाणावें” असें अश्रिपुराणवचनही आहे. नेणें म्हणून (प्रेतत्व अगत्यामुळे) सपिंडीकरण झालें तरी श्राद्ध देव-पित्र्यकर्मोपपत्ती अधिकार नाही. श्राद्धनामित्तक अपकर्ष असेल तर सपिंडीकरणानंतर अधिकार आहेच. कारण, “प्रथम वर्षाच्या आत श्राद्ध कर्तव्य अगतां अथवा संवत्सर पणे झालें अगतां ज्या प्रेतांचें सपिंडीकरण केले असेल त्याची पृथक् क्रिया (प्रेतत्वप्रयुक्त एकोद्दिष्ट) नाही.” असें शातातपवचन आहे. आणि “प्रथमवर्षावांचून इतर आम्बुदयिक व काम्यकर्म अधिक मागतां कर्तव्य नये.” या वर नागिनेल्या हेमाद्रिनें धरलेल्या हारीतवचनावरूनही असें समजावें. तसेंच “पितृत्वाचें नापडन केले असले तरी तो आप अस्थिप्रक्षेप, गयाश्राद्ध आणि अपरपत्रश्राद्ध (महालय) हीं प्रथमवर्षा कर्तव्य नयेत.” याचा अपवाद-“अस्थिक्षेप, गयाश्राद्ध आणि महालय हीं जर पुत्र भक्तमान् असेल तर त्यानें प्रथमवर्षाही करावीं.” भक्तमान् याचा अर्थ भक्ति नावानें श्राद्ध ज्ञानें केले असेल त्यानें करावीं, असें मदनपारिजातादिक सांगतात. इतर ग्रंथकार वर सांगितल्याप्रमाणें अर्थ सांगतात. मरें म्हणले तर जर हीं वचनें समूळ असतील तर वृद्धावांचून सपिंडनाचा अपकर्ष अगतां पहिले वचन, आणि वृद्धाकरिता अपकर्ष अगतां दुयें वचन, असें याजावें. पतितांचा गयेत विशेष सांगतो. ब्राह्मांत-“पतितांना मरण वर्ष होऊन गेल्यावर कर्षांतरी त्यांच्या बंधूंनीं देशधर्मप्रमाणावरून गयाश्राद्ध करावें.”

अथविधानानि तत्रपंचकमृतमदनरत्नेगारुडे आदौकृत्वाधनिप्रार्थमेतन्नक्षत्रपंचकं रेवत्यं-तंसदादृष्यमशुभंदाहकर्मणि अत्रस्यचसमीपेतुक्षेत्रव्याःपुत्तलास्तदा दर्भस्याम्बुचत्वारःक्षेत्रंभ्राभिर्मंत्रिताः ततोदाहःप्रकर्तव्यस्तंश्रपुत्तलकैःमहः सूतकांततःपुत्रैःकार्यशान्तिकर्षाष्टिकं पंचकेपुमृतोयोवैनगतिलभतेनरः तिलांश्चैवहिरण्यंचतमुद्दिश्यघृतंददेन् क्रियानिबंधे भाजतोपानेहोळत्रंहेममुद्रांचवाससी दक्षिणादीयते विप्रेसर्वपातकमोचनी मदनरत्नेगार्यः यद्विभद्रातिथीनांस्याद्भानुर्भासश्नश्चरैः त्रिपादंश्चसंयोगोद्व-योयोंगेद्विपुष्करः द्वित्रिपुष्करयोगेतुमृतिमृत्यंतगावहा दहनेमरणेचैवत्रिगुणंस्यात्रिपुष्करे खननेप्येवमेव-स्यादेतद्दोषोपशान्तये तिलपिष्टैर्वैर्वापिशरीरंकारयेत्ततः शूर्पनिधायालंकृत्यदाहयेत्पंतुकोपरि तदाहेमंत्रमाह बौधायनः अस्मान्त्वमितिमंत्रेणतिलपिष्टंप्रदाहयेत् द्वित्रिपुष्करयोर्दोषास्त्रिभिःकृच्छ्रैर्व्यपोहति वासवेमरणं-चेत्स्याद्देहापिपुनर्मृतिः सुवर्णदक्षिणांदाद्यात्कृष्णवस्त्रमथापिवा वासबंधनिद्रा कुंभमीनस्थितेचंद्रमरणंयस्य-

जायते नतस्योर्ध्वगतिर्दृष्टासंततौनशुभंभवेत् नतस्यदाहःकर्तव्योविनाशस्त्वेवजंतुषु अथवातद्दिनेकार्योदाह-
स्तुविधिपूर्वकं धनिष्ठापंचकेजीवोमृतोयदिकथंचन त्रिपुष्करेयाम्यभेवाकुलजान्मारयेद्भुवं तत्रानिष्टविनाश-
र्थविधानंसमुदीर्यते दर्भाणांप्रतिमाःकार्याःपंचोर्णासूत्रवेष्टिताः यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिःसहशवंदहेत् प्रेत-
वाहःप्रेतसखःप्रेतपुःप्रेतभूमिपः प्रेतहर्तापंचमस्तुनामान्येतानिचक्रमात् अत्रप्रतिमागंधपुष्पैःपूजयित्वाप्रथ-
मांशिरसि द्वितीयांनेत्रयोः तृतीयांवामकुक्षौ चतुर्थीनाभौ पंचमीपादयोर्न्यस्यतदुपरिनामभिर्घृतंहुत्वायमा-
यसोमंत्र्यंबकमितिमंत्राभ्यांप्रत्येकंतास्वाज्यंहुनेदिति भट्टाः सूतकांतैततःपुत्रःकुर्याच्छांतिकपौष्टिकं कांस्य-
पात्रस्थितंतैलवीक्ष्यदद्याद्विजन्मने ब्रह्मविष्णुमहेशंद्रवरुणप्रीतयेततः मापमुद्रयवत्रीहिप्रियंगवादिप्रयच्छति
स्वर्णदानंरुद्रजाप्यलक्षहोमोद्विजार्चनं गोभूदानंपंडशेनकुर्याद्दोषोपशांतये ।

आतां विधानं सांगतो—

त्यांत प्रथमतः पंचकांत मृताचें विधान सांगतो.

मदनगह्मांत गारुडांत—“धनिष्ठा नक्षत्राच्या उत्तरार्धापासून रेवतीपर्यंत जीं पांच नक्षत्रं तीं गदा दुष्ट आहेत व दाह-
कर्माविषयीं अशुभ आहेत. त्यांजवर मरण आलें असतां दर्भाचे पुतलक म्हणजे पुतळे चार करून त्या नक्षत्रांच्या मंत्रांनीं
अभिर्मंत्रित करून शवाचे समीप ठेऊन त्या पुतळ्यांसह दाह करावा. तदनंतर सूतकांती पुत्रांनीं शांतिक पौष्टिक कर्म करावें.
जे मनुष्य पंचकांत मृत असेल त्याला गति प्राप्त होत नाही, म्हणून त्याच्या उद्देशानें तिल, सुवर्ण आणि घृत हीं ब्राह्मणांस
द्यावी.” **क्रियानिबंधांत**—“भाजन, जोडा, छत्र, सुवर्णमुद्रिका, दोन वस्त्रे, आणि दक्षिणा हीं ब्राह्मणांस द्यावीं;
हीं सर्व पातकापासून मुक्त करणारीं आहेत.” **मदनगह्मांत गार्ग्य**—“भद्रा तिथि (२१७१२) : रवि, भौम व
शनि हे वार; आणि त्रिपाद नक्षत्रं (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा, विशाखा, उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा); ह्या तिघांचा (तिथि-
वारनक्षत्रांचा) योग असतां त्रिपुष्करयोग होय. आणि दोघांचा योग असतां द्विपुष्करयोग होय. द्विपुष्कर योगावर किंवा
त्रिपुष्कर योगावर मरण झालें असतां दुसरें मरण होतें. त्रिपुष्कर योगावर दहन व मरण असतां उक्त फल त्रिगुणित होतें.
खननाविषयींही (प्रेत पुरण्याविषयींही) असेंच समजावें. या दोघाच्या शांतीकरितां तिलांच्या पिठाचें किंवा जवांच्या पिठाचें
शरीर करून तें सुपांत ठेऊन त्याला अलंकार करून प्रेतावर ठेऊन त्याचा दाह करावा.” त्याच्या दाहाविषयीं मंत्र सांगतो
बौधायन—“अस्मात्त्वं०” ह्या मंत्रांनीं त्या तिलपिठादिकांचा दाह करावा. द्विपुष्करावर व त्रिपुष्करावर मरणाचा दोष तीन
कृच्छ्रांनीं जातो. धनिष्ठा नक्षत्रावर मरण होईल तर त्या घरामध्ये पुनः मरण होतें, याकरितां ब्राह्मणाला दक्षिणासहित
सुवर्णदान करावें. किंवा कृष्णवस्त्र द्यावें. कुंभ व मीन राशीस चंद्र असतां ज्याला मरण प्राप्त होतें, त्याला ऊर्ध्वगति
दिसत नाही व त्याच्या संततीला कल्याण होत नाही. त्याचा दाह शास्त्रावांचून करूं नये. अथवा त्या दिवशीं विधिपूर्वक दाह
करावा. जर प्राणी धनिष्ठापंचकावर मृत होईल किंवा त्रिपुष्कर योगावर अथवा भरणी नक्षत्रावर मृत होईल तर आपल्या
कुलांतील प्राण्यांना तो मारील, असा निश्चय समजावा. त्या ठिकाणीं अनिष्टनाशकरितां विधान सांगतो—दर्भाच्या पांच
प्रतिमा कराव्या त्यांना ऊर्णासूत्रांनीं वेष्टन करावें. जवांच्या पिठांनीं त्यांना लेप करावा त्या प्रतिमांसह प्रेताचा दाह करावा.
त्या प्रतिमांचीं अनुक्रमें नांवें सांगतो—प्रेतवाह, प्रेतसख, प्रेतपु, प्रेतभूमिप, आणि प्रेतहर्ता अशीं समजावीं. या नांवांनीं
गंधपुष्पांनीं त्यांची पूजा करून प्रेताच्या मस्तकावर पहिली ठेवावी, दुसरी नेत्रावर, तिसरी वामकुक्षावर, चवथी नाभीवर,
पांचवी पायावर अशा ठेऊन त्यांजवर पूर्वोक्त नाममंत्रांनीं घृताचा होम करून ‘यमायसोमं०’ ‘त्र्यंबकं०’ ह्या दोन मंत्रांनीं
प्रत्येक त्या प्रतिमांवर आज्याचा होम करावा, असें **नारायणभट्ट** सांगतात. “तदनंतर सूतकांती पुत्रांनीं शांतिक व पौष्टिक
कर्म करावें. कांस्यपात्रांत तिळाचें तेल घेऊन त्यांत आपलें प्रतिबिंब पाहून ब्राह्मणाला तें द्यावें. तदनंतर ब्रह्म, विष्णु,
महेश्वर, इंद्र, वरुण यांच्या प्रीतीकरितां उडीद, मूग, जव, ब्राहि (भात), प्रियंगु (राळे) इत्यादिकांचें दान करावें.
सुवर्णदान, रुद्रजप, लक्षहोम, ब्राह्मणभोजन, गोदान, भूमिदान हीं सहा दोषशांतीकरितां करावीं.”

अपराकें धनिष्ठापंचकमृतेपंचरत्नानितन्मुखे प्रास्याहुतित्रयंतत्रहुनेद्वहवपामिति ततोनिर्हरंङ्कुर्यादेव-
साप्रेर्विधिःस्मृतः इतरंनिखनेदेवजलेवाप्रतिपादयेत् त्रिपादक्ष्मृतेतद्वद्दृश्यशकलंमुखे तस्यपिष्टमयंकुर्यात्पु-
रुषत्रितयंततः होमःप्रतिमुखंकुर्यात्तथावहवपामिति कार्ष्णायसंचकार्पासंकुसुंभंप्रतिपाद्यच निर्यात्यसाम्रिसं-
स्क्रुर्याद्भुज्यमौषधान्यमुत्सृजेत् तत्रैव कनकंहीरकंनीलपद्मरागांचमौक्तिकं पंचरत्नमिदंप्रोक्तमृषिभिःपूर्वद-
र्शिभिः रत्नानांचाव्यभावेतुस्वर्णकर्षार्धमेवच सुवर्णस्याप्यभावेतुआज्यंक्षेत्रंविचक्षणैः **मदनरत्ने**प्येवं तथा

एकाशीतिपलकांस्थतदर्धवातदर्धकं नवषट्त्रिपलंवापिदद्याद्विप्रायशक्तिः तथान्यत्र स्वगृहोक्तविधानेन-
कृत्वाम्रेःस्थापनंततः अन्वाधानंनिर्वपणंदेवतानांतथाहुतिः यमायधर्मराजायमृत्यवेचांतकायच वैवस्वताय-
कालायसर्वभूतक्षयायच औदुंबरायदध्रायनीलायपरमेष्ठिने वृकोदरायचित्रायचित्रगुप्तायवैकमान् विधिना-
श्रपणंकृत्वाएकैकामाहुतिंहुनेत् कृष्णांगांकृष्णवस्त्रंचहैमनिष्कसमन्वितां दद्याद्विप्रायशांतायप्रीतोभवतुमेयमः
त्रिपादक्षेत्रेदेव अपराकैः पुनर्वसूत्तरापाढाकृत्तिकोत्तरफाल्गुनी पूर्वाभाद्रविशाखाचक्षेत्रेमेतन्निपादभं
मयूरचित्रेगर्गः मृतःस्मशानंयोनीतउपजीवतिमानवः गृहेयस्यप्रविष्टोसौतिष्ठेदथकदाचन अचिरान्मृत्यु-
मायातिहृतदारपरिग्रहः तत्रशांतिप्रवक्ष्यामिधर्मराजमतंयथा सश्रीराणांपृताक्तानामभ्रेहृत्वामुखेबुधः औदुं-
बरीणांविधिवततःशांतिःकृताभवेत् सावित्र्यष्टसहस्रेणक्षीरशांतिंचकारयेत् कपिलांतिलकांस्थंचहुतांतेभूरि-
दक्षिणेति ।

अपराकीर्त—“धनिप्रापंचकावर मृत अमतां प्रेताच्या मुखांत पंचरत्ने घालून ‘वहवपां०’ या मंत्रानें तीन आहुति
द्याव्या, तदनंतर प्रेत न्यावें, हा अग्निमान असेल त्याचा विधि गमनावा. अग्निरहित असेल तो पंचकावर मृत असतां
त्याला भूमींत पुरावा किंवा उदकांत टाकावा. त्रिपाद नक्षत्रावर मृत असेल तरी तसेंच मुवर्णाचा तुकडा मुखांत घालून त्याला
तीन प्रतिमा पिठाच्या कराव्या, आणि ‘वहवपां०’ या मंत्रानें प्रतिमुखांत तीन आहुतींचा होम करावा. काळें लोखंड, कापूस,
कुसुंभ हे ब्राह्मणाला देऊन प्रेताला नेऊन मार्गिक प्रेताचा संस्कार करावा. निरभिकाला भूमींत पुरावा किंवा अग्नींत टाकावा.”
तेथेंच—“मुवर्ण, हिरा, नीलमणि, पद्मराग आणि मोती यांना पूर्वैकृपांनीं पंचरत्ने म्हणली आहेत. रत्नांच्या अभावीं अर्धकर्ष
(अर्धतोळा) सोनें यावें. अथवा सोन्याच्या अभावीं गुन यावें.” **मदनरत्नांतही** असेंच आहे. तसेंच—“एक्याऐशीं पलें
कांस्य, किंवा त्याच्या अर्धे अथवा चतुर्थांश (एक्याऐशीं कपे), किंवा नऊ पलें, सहा पलें अथवा तीन पलें (बारा कर्षे),
आपल्या शक्तीप्रमाणें ब्राह्मणाला यावें.” तसेंच **इतर ग्रंथांत** “आपल्या गृहसूत्रांत सांगितलेल्या विधीनं अग्निस्थापन
करून यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतप्राय, औदुंबर, दध्र, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्त
ह्या चवदा देवतांचें अनुकमानें अन्वाधान करून चरुद्व्याचा निर्वाप करून चरुचें यथार्थाधि श्रपण (पचन) करून त्या
वरील देवतांना ‘यमाय, धर्मराजाय, मृत्यवे, अंतकाय, वैवस्वताय, कालाय, सर्वभूतक्षयाय, औदुंबराय, दध्राय, नीलाय,
परमेष्ठिने, वृकोदराय, चित्राय, चित्रगुप्ताय, यांच्या पुढें ‘स्वाहा’ शब्द लावून एकएक आहुतींचा होम करावा निष्कपरिमित
मुवर्णसहित कृष्ण गाई व कृष्ण वस्त्र शांत अशा ब्राह्मणाला ‘प्रीतो भवतु मे यमः’ असे म्हणून यावें.” त्रिपाद नक्षत्रावर
मृत अमतांही हेंच विधान करावें. **अपराकीर्त**—“पुनर्वसू, उत्तरापाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा हीं
त्रिपाद नक्षत्रें जाणावीं.” **मयूरचित्रांत गर्ग**—“जो मृत मनुष्य स्मशानांत नेलेला जीवत झाला असेल तो ज्याच्या घरांत
प्रवेश करील व राहील त्याचें स्त्री-पुत्र नष्ट होऊन तो लवकर मरेल. त्या ठिकाणीं धर्मराजाचे मताप्रमाणें शांति सांगतो—
उंबराच्या समिधा दुधांत व तुपांत भिजवून गायत्रीमंत्रानें आठ हजार होम करावा. म्हणजे शांति होते. होमानंतर कपिला
गाई, तिल, कांस्यपात्र आणि पुष्कळ दक्षिणा हीं यावीं.”

अथब्रह्मचारिमृतौशौनकः ब्रह्मचारिमृतौरीतिकथयामिसमासतः तत्रावकीर्णदोपस्यप्रायश्चित्तप्र-
शांतये द्वादशाब्दंपडब्दंवात्र्यब्दंशतथाथवाचरेत् स्नातक्रौब्रह्मचारीचनिधनंप्राप्रयाद्यदि संयोज्यचार्कविधि-
नासंयोज्यौतौततःपरं देशकालौम्भत्वा अमुकगोत्रामुकनामोमृतस्यब्रह्मचारिणोव्रतविसर्गकरिष्यइत्युक्त्वाहे-
भ्रानांदीश्राद्धंकृत्वाग्निप्रतिष्ठाप्याधारांतेंचतस्मिन्न्याद्वितिभिरग्रयेव्रतपतयेव्रतानुष्ठानसंपादनायविश्वेभ्योदेवे-
भ्यश्चाज्यंहुत्वास्विप्रकृदादिसमाप्यपुनर्देशकालौम्भत्वाकविवाहंकरिष्यइत्युक्त्वाहेभ्रानांदीश्राद्धंकृत्वाकशाखां-
शवंचहरिद्रयालिस्वापीतमूत्रेणवस्त्रयुग्मेनचावेष्ट्याग्निप्रतिष्ठाप्याधारांतेंमेवबृहस्पतयेविवाहविधियोजकायच
यस्मैत्वंकामकामायेतिकामायव्याहृतिभिश्चाज्यंहुत्वास्विप्रकृदादिसमाप्यार्कशाखांशवंचदहेत् **विधानमा-
लायां** येपांकुलेब्रह्मचारीनिधनंप्राप्रयाद्यदि तत्कुलंक्षयमाप्नोतिसोपिदुर्गतिमाप्नुयात् मृतस्यभ्रियमाणस्य
षडब्दंव्रतमादिशेत् त्रिंशद्भ्योब्रह्मचारिभ्योदद्यात्कौपीनकान्नवान् हस्तमात्रान्कर्णमात्रान्दद्यात्कृष्णाजिना-
निच पादुकाच्छत्रमाल्यानिगोपीचंदनमेवच मणिप्रवालमालाभ्रभूषणादिसमर्पयेत् एवंकृतेविधानेचबिभ्रः-
कोपिनजायते अत्रमूलंमृग्यम् ।

आतां ब्रह्मचारी मृत असतां सांगतो—

शौनक—“ब्रह्मचारी मृत असतां संक्षेपांनीं व्यवस्था सांगतो—त्या ठिकाणीं प्रथमतः ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट झाल्याबद्दलचें प्रायश्चित्त करावें. तें असें—द्वादशाब्द, षडब्द, त्र्यब्द अथवा आपल्या शक्तीप्रमाणें करावें. स्नातक (समावर्तन करून विवाहाला योग्य झालेले) आणि ब्रह्मचारी हे जर मृत होतील तर त्यांचा अर्कविवाह करून नंतर त्यांचा दाह करावा.” त्याचा प्रकार—देशकालांचें संकीर्तन करून ‘अमुकगोत्रामुकनाम्नो मृतस्य ब्रह्मचारिणो व्रतविसर्गं करिष्ये’ असा संकल्प करून हिरण्यद्वारा नांदीश्राद्ध करून अग्निप्रतिष्ठापन करून आधारहोमाच्या अंती चार व्याहतिमंत्रांनीं आज्यहोम करून व ‘अग्नये व्रतपतये स्वाहा’ ‘अग्नये व्रता-नुष्ठानफलसंपादनाय स्वाहा’ ‘विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा’ ह्या मंत्रांनीं तीन आज्याहुतींचा होम करून स्विष्टकृदादिक सर्व समाप्त करून पुनः देशकालांचें संकीर्तन करून ‘अर्कविवाहं करिष्ये’ असा संकल्प करून हिरण्यद्वारा नांदीश्राद्ध करून म्हैची शाल्या व प्रेत यांना हळद लावून पिवळ्या सूत्रांनीं आणि दोन वस्त्रांनीं गुंडाळून अग्निस्थापन करून आधारहोमाच्या अंती ‘अग्नये स्वाहा, वृहस्पतये स्वाहा, विवाहविधियोजकाय स्वाहा, यस्मै लं कामकामाय०” ह्या मंत्रांनीं आणि व्यसन्यमस्तव्याहतींनीं आज्यहोम करून स्विष्टकृदादिक सर्व होमकृत्य समाप्त करून म्हैची शाल्या व प्रेत यांचा दाह करावा.” **विधानमालेंत**—“ज्यांच्य कुलांत ब्रह्मचारी मरेल तर तें कुल नाश पावतें आणि त्यालाही दुर्गति प्राप्त होते, म्हणून मृत झाल्यावर किंवा मरणार असतां षडब्दव्रत प्रायश्चित्त करावें. तीम ब्रह्मचाऱ्यांना नवीं कोंपीनें (लंगोट्या) यावीं, त्या लंगोट्या एक हान लांब किंवा ह्या कानाहून त्या कानाइनक्या लांब यावा. कृष्णाजिनं यावीं. खडावा, छत्रं व पुष्पं, गोपीचंदन, मणि, पांढळीं यांच्या माथ्य, आणि भूषणं इत्यादिक यावीं, असें विधान केलें असतां कोणतेंही विघ्न (अरिष्ट) होत नाही.” याविषयीं मृत वनन गांपडत नाही.

कुष्ठिमृतौतुयमः मृतस्यकुष्ठिनोदेहेनिग्वनेद्रोष्टभूमिषु वासगत्रितयंपश्चादुद्धृत्यान्यत्रतंदहेत् नगंगा-
प्लवनंकार्यनिक्षेपेविधिरुच्यते षडब्दव्रतपूर्णनविधिनात्यंकनुंचरेन ततोस्थिसंचयंतस्यगंगायांप्रक्षिपेत्मुग्धीः
मासिसासिततःकुर्यान्मासिश्राद्धानिपार्वणान इत्येतनकुष्ठिमरणकथितंशास्त्रकोविदः शुद्धितत्त्वभविष्ये
शृणुकुष्ठगणविप्रउत्तरोत्तरतोगुरुं विचर्चिकतुदुश्चर्माचर्चरीयमृततीयकः विकर्चव्रणताम्रोचकृष्णश्चेततथा-
ष्टकमित्युक्त्वा मृतेतुप्रापयेत्तीर्थमथवातारूमूलकं नपिंडनोदकंकार्थनचदानक्रियांचरेन पण्मासीयस्त्रिमासी-
योमृतःकुष्ठीकदाचन यदिस्नेहाच्चेरदाहंयतिचांद्रायणंचरेन् अकृतप्रायश्चित्तकुष्ठयादिदाहेडप्रायश्चित्तं अत-
एवकुलख्यादिवत्कुष्ठिनोपिद्वादशरात्रंशूलपाणिनोक्तं अतएवान्यदीयकुष्ठिनोमरणांतमाशौचमुक्तंकौर्मं
क्रियाहीनस्यमूर्खस्यमहारोगिणएवच यथेष्टाचरणस्याहर्मरणांतमशौचकम महारोगास्तु वातव्याध्यश्मरी-
कुष्ठमेहोदरभगंदराः अर्शासिग्रहणीत्यष्टौमहारोगाःप्रकीर्तिनाइति ।

कुष्ठीमृताविषयीं सांगतो—

यम—“कुष्ठी मृत असतां त्याचें प्रेत गाईच्या गोठ्यांत पुरून तीन दिवस ठेवावें. नंतर काढून दुसऱ्या ठिकाणीं त्याचा दाह करावा. कुष्ठ्याचें प्रेत गंगेतून वाहवूं नये, त्याच्या अस्थिानक्षेपाविषयीं विधि गांगतो—त्याचें षड्प्रायश्चित्त पूर्ण करून विधीनें प्रेतसंस्कार करावा. तदनंतर त्याचें अग्निसेचयन करून गंगेत त्या अग्नि टाकाव्या. तदनंतर माह्न्यान्हिन्याला मासिकश्राद्धे पक्षेणविधीनें करावीं. असा हा प्रकार कुष्ठिमरणाविषयीं शास्त्रवेत्त्यांनीं सांगितल्या आहे.” **शुद्धितत्त्वांत भविष्यांत**—“उत्तरोत्तर अधिक दोषी असे कुष्ठ्याचे प्रकार गांगतो, श्रवण कर. विचर्चिका, दुश्चर्मा, नर्चरीय, विकर्च, व्रणकुष्ठ, ताम्रकुष्ठ, कृष्णकुष्ठ आणि श्वेतकुष्ठ, अशीं आठ कुष्ठे आहेत.” असें सांगून पुढें गांगतो—“या आठपैकी कुष्ठरोगी मृत असतां त्याचा देह तीर्थांत टाकावा; अथवा वृक्षाच्या खाली पुरावा. त्याच्या पिंड देऊं नये, उदक देऊं नये, व त्याच्या उद्देशानें दानही करूं नये. सहा महिने किंवा तीन महिने कुष्ठ असलेल्या रोगी जर मृत होईल व त्याचा स्नानां कोंणी दाह करील तर दाहकर्त्यानें यतिचांद्रायण प्रायश्चित्त करावें.” ज्या कुष्ठ्यादिरोग्यानें प्रायश्चित्त केलें नसेल त्याच्या दाहाविषयीं हे प्रायश्चित्त समजावें. सर्व कुष्ठ्यांच्या दाहाविषयीं हे प्रायश्चित्त नाही म्हणूनच कुनखी (नसें कुजलेला) याच्या दाहाप्रमाणें कुष्ठ्याच्या दाहाविषयीं देखील बारा दिवसांचें (प्राजापत्य) प्रायश्चित्त **शूलपाणीनें** सांगितलें आहे. म्हणूनच दुसऱ्याच्या कुष्ठिरोग्याचे मरणांत आशौच सांगितलें आहे, **कूर्मपुराणांत**—“क्रियारहित, मूर्ख, महारोगी आणि यथेच्छ आचरण करणारा यांचें मरणांत आशौच सांगतात.” महारोग तर—“वातव्याधि, अश्मरी (मूतखडा), कुष्ठ, मेह, उदर, भगंदर, मुळव्याध, संप्रहणी हे आठ महारोग सांगितले आहेत.”

१ वातव्याधि वगैरे हे आठ महारोग वैद्यकांत वाग्भटांनीं सांगितले आहेत. पण या ठिकाणीं महारोग्याची क्रिया करणारास

रजस्वलायास्तु वृद्धशान्तातपः रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि ताचरेत् ऊर्ध्वत्रिरात्रात्स्नातांतांश-
वधमेषदाहयेत् अतः प्रक्षाल्य काष्ठवद्गन्धान् यद्दहेत् संकटे तु मदनरत्नांतस्मृत्यंतरांतरे उदक्यासूतिका-
वापिमृतास्याद्यदि तांतदा आशौचेत्वनतिकांते दाहयेदंतारायदि उद्धृतेन तु तोयेन स्नापयित्वा तु मंत्रतः आपोहि-
प्रेतितिसृभिर्हिरण्यवर्णाश्च तस्मिन् पवमानानुवाकेन यदंतीति च सप्तभिः ततो यज्ञपवित्रेण गोमूत्रेणाथ ते द्विजाः
स्नापयित्वा न्यवसनेनाच्छाद्य शवधर्मतः दाहादिकंततः कुर्यात्प्रजापतिवचो यथा यज्ञपवित्रमापोऽस्मानिति
मिताक्षरायां पंचभिः स्नापयित्वा तु गन्धैः प्रेतां रजस्वलां वस्त्रांतगृतांकृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकं **गृह्यका-
रिकायां** अंतरिक्षमृताये च वस्त्रावपुःप्रमादतः उदक्यासूतिका नारीचरेष्वां द्रायणत्रयं ततो यवपिष्टे ज्ञानुलि-
प्याष्टोत्तरशतं शूर्पदिकैः संस्नाप्य भस्म गोमयमृत्कुशोदकपंचगव्यशुद्धोदकैः गोहिम्रापावमानीभिः संस्नाप्य न्य-
वस्त्रे वृते दहेदिति भट्टाः ।

रजस्वलेच्या मरणाविषयीं सांगतो—

वृद्धशान्तातपः—“रजस्वला मृत असतां तिचा संस्कार (समंत्रक दाह) वगैरे करूं नये. तीन दिवसांनंतर स्नान
केल्यावर समंत्रक दाह करावा.” तीन दिवसांचे आंत समंत्रक दाह नार्हो म्हणून तिचें शरीर धुवून काष्ठाप्रमाणें जाळून तीन
दिवसांनंतर अग्नीचा समंत्रक दाह करावा. संकट असेल तर **मदनरत्नांत स्मृत्यंतरांत**—“रजस्वला अथवा सूतिका जर
मृत असेल व त्या घेलीं त्यांचें आशीच (अशुचित) गमात नसेल व त्या अशुचित्यांत त्यांचा दाह करावयाचा असेल तर
आणलेल्या उदकांत लांग स्नान घालून नंतर ब्राह्मणांनीं ‘आपोहिण०’ या तीन कड्यांनीं, ‘हिरण्यवर्णा०’ या चार ऋचांनीं,
‘पवमानः०’ या अनुवाकानें, ‘यदंति०’ या गान कड्यांनीं, ‘आपोऽस्मान०’ या मंत्रांनीं स्नान घालून गोमूत्रांनीं स्नान घालून
दुसरे वस्त्र नेगवून व आच्छादन घालून शवाच्या धर्मानें दाहादिक करावें, असें प्रजापतीचें वचन आहे.” **मिताक्षरेंत**—
“रजस्वला मृत असतां तिच्या पंचगव्यांच्यां नानें घालून वस्त्रांन आच्छादन करून तिचा यथाविधि दाह करावा.” **गृह्य-
कारिकेंत**—“अंतरिक्षांत मृत झालेले, अग्नीत उदकांत प्रमादार्ति मृत झालेले, रजस्वला व सूतिका (बाळंतीण) मृत
झालेले स्त्री यांना तीन यां द्रायणें प्रार्थायित करावें.” नदनंतर जवांन पीठ अंगाला लावून मुपांतून आणलेल्या उदकांन
एकशें आठ नानें घालून भस्मस्नान, गोमयस्नान, मुनिकास्नान, कुशोदकस्नान, पंचगव्यांचें स्नान आणि शुद्धोदकाचें स्नान
घालून नंतर ‘आपोहिण०, पावमानी०’ या मंत्रांनीं स्नान घालून अन्य वस्त्रे नेगवून नंतर दाह करावा, असें भट्ट सांगतात.

अत्र प्रायश्चित्तमाहवौ धायनः उदक्यासूतिकासृत्यांचरेष्वां द्रायणत्रयमिति सूतिकायास्तु **मिता-
क्षरायां** सूतिकायां मृतायां तु कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः कुंभे मलिलमादाय पंचगव्यं क्षिपेत्ततः पुण्यभिर्गभिसं-
व्यापोवाचाशुद्धिलभेत्ततः तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्यात् यथाविधि अल्लिगाभिर्मंत्रिताभिर्वा मदेव्याभिरेव च
अन्यैश्च वारुणैर्मंत्रैः संस्नाप्य विधिना दहेत् **गृह्यकारिकायां** मृतिकामरणे प्राप्ते सर्वोपध्वनुलेपनं असूतकी-
तुसंस्पृष्टः शूर्पाणां तु शतं क्षिपेत् प्रायश्चित्ते विशेषस्तत्रैव सूतिका तु यदा सार्धं विस्नाता मरणंगता त्रिवर्षपूर्णपर्य-
ंतं शुध्येत् कृच्छ्रेण सर्वदा इदं चाव्यय्यहे सूतिका तु यदा नारी रजमानुपरिभुता प्रियेतचेत्तु सानारी द्विवर्षं कृच्छ्र-
माचरेत् इदं द्वितीय्यय्यहे सूतिका तु यदा सार्धं विस्नाता मरणंगता अर्द्धकृच्छ्रेण शुध्येत् त्र्यासस्य वचनं-
यथा इदं तृतीय्यय्यहे अत्राशक्तोपक्षांतमुक्तं तत्रैव सूतिका तु यदा नारी रजस्नाता मरणंगता त्रिपणवदिना-
दर्वागेकाव्देन विशुध्यति ऊर्ध्वं तु सूतिका तु यदा नारी प्राणांश्चैव परित्यजेत् माममेकावर्धियाव त्रिभिः कृ-
च्छ्रैर्विशुध्यति ।

यांच्याविषयीं प्रार्थयित् सांगता **वौ धायन** “रजस्वला व सूतिका मृत असेल तर तीन यां द्रायणें करावीं.” सूतिकेला
तर सांगता **मिताक्षरेंत**—“सूतिका मृत असेल तर याज्ञिक कमें करितात ! कुंभांत उदक घेऊन त्यांत पंचगव्य टाकून
पुण्यकारक वेदमंत्रांनीं त्या उदकाचें अभिमंत्रण करून त्यानंच स्नान घालून ब्राह्मणांच्या मुखांतून शुद्ध झाली असें म्हणवून
नंतर यथाविधि दाह करावा. आपोहिण०; वामदेव्य, आणि वरुणदेवताक मंत्र यांनीं स्नान घालून यथाविधि दाह करावा.”
गृह्यकारिकेंत—“सूतिका मृत असतां सर्व औषधी वाटून तिच्या अंगाग लावाव्या. मृतकी नसेल त्यांन स्पर्श करून शंभर
मरणांत आशीच सांगितले आहे: तर येथें मराराण शब्दानें वातव्याधि म्हणजे वातरक्त घेतां येईल. पण, या श्लोकांतील सारे वेतले
तर अदमर्ग, मह, इत्यादि रोग्यांच्या क्रियेचा निषेध होईल म्हणून याचा विद्वानांनीं विचार करावा.

सुपे पाणी तिच्या अंगावर ओतावे.” प्रायश्चित्ताविषयी विशेष सांगतो तेथेच-“साध्वी स्त्री बाळंतीण असून ज्ञान केल्यावांचून जेव्हां मृत होईल त्या वेळीं त्र्यम्बदकृच्छ्र प्रायश्चित्तानें तिची शुद्धि होईल.” हें प्रायश्चित्त पहिल्या तीन दिवसांत मृत असतां समजावें. “ज्या वेळीं सूतिका स्त्री रजानें भरलेली असून ती मरेल त्या वेळीं दोन वर्षे कृच्छ्र प्रायश्चित्तानें तिची शुद्धि होते.” हें दुसऱ्या तीन दिवसांत मृत असतां समजावें. “ज्या वेळीं सूतिका स्त्री ज्ञान केल्यावांचून मृत होईल त्या वेळीं ती एक वर्षे कृच्छ्र प्रायश्चित्तानें शुद्ध होईल, असें व्यासाचें वचन आहे.” हें प्रायश्चित्त तिसऱ्या तीन दिवसांत मृत असतां समजावें. ह्या प्रायश्चित्ताविषयी अशक्ति असतां दुसरा पक्ष तेथेच सांगितला आहे तो असा-“ज्या वेळीं सूतिका स्त्री ज्ञान केल्यावांचून तीन, सहा, नऊ दिवसांचे आंत मृत होईल तेव्हां ती एक अब्द (वर्ष) कृच्छ्रानें शुद्ध होईल. नऊ दिवसांपुढें एक मासपर्यंत सूतिका स्त्री जेव्हां प्राणत्याग करील तेव्हां ती तीन कृच्छ्रांनीं शुद्ध होते.”

गर्भिणीमृतौमदनरत्नेशौनकः गर्भिण्युदक्यासंस्कारं शिशुसंस्कारमेव च प्रवक्ष्यामि समासेन शौनको हं द्विजन्मनां गर्भिणीमरणे प्राप्ते गोमूत्रेण जलैः सह आपोहिष्ठादिभिर्मंत्रैः प्रोक्ष्य भर्ता समास्थितः प्रेतं श्मशाने नीत्वा योलिल्य सव्योदरं ततः पुत्रमादाय जीवं श्वेत्स्नं दत्त्वा सुताय तु यस्ते स्तनः शशय इत्युच्यते प्राप्ते निधाय च उदरं चाग्रणं कुर्यात् पृषदाज्येन पूर्य च मृदूस्मकुशगोमूत्रैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः स्नाप्य चाच्छाद्य वा सोभिः शवधर्मेण दाहयेत् तत्रैव षडशीतिमते गद्यानि गर्भिण्यां मृतायां दक्षिणाशिरसं निधाय तस्यानाभिरंध्रात् सव्यमुदरं चतुरंगुलं हिरण्यगर्भः समवर्तते तिष्ठित्वा गर्भश्चेदप्राणस्तं प्रक्षाल्य निखने तस्य दिजीवन् जीवत्वममपुत्रकेत्युक्त्वा क्षेत्रिये त्वेति पंचभिः स्नापयित्वा हिरण्यमंतर्धाय भूमौ निधाय व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य यस्ते स्तनः शशय इति स्तनं पाययित्वा शिशुं ग्रामं प्रापयेत् गर्भे छेदस्थले शतायुधायेति पंचाहुतीर्हुत्वा प्राणाय स्वाहा पूष्णे स्वाहेत्यनुवाकाभ्यां व्याहृत्या बाज्यं हुत्वा अभिभ्रमुदरं सूत्रेण संश्रयधृतेनानुलिप्य ब्राह्मणाय तिलाङ्गां भूमिं सुवर्णं दद्यादथ यथोक्तेन कल्पेन दहेत् **बौधायनेन** तु शतायुधायेति पंच होमानंतरं प्रयासाय यासाय वियासाय संयासाय उयासाय शुचे शोकाय तप्यते तप्यतै ब्रह्महत्यायै सर्वस्वै इति स्वाहांतैराहुतयोप्यधिका उक्ताः **गृह्यकारिकायां** यदा गर्भवती नारी सशल्या संस्थिता भवेत् कुक्षिभित्वा ततः शल्यं निहरेद्यदि जीवति प्रमीतं निखने चतुर्प्रायश्चित्तमतः परं सात्रयक्षिंशताकृच्छ्रैः शुध्यते शल्यदोषतः स गर्भदहने तस्यावर्णजं वधपातकं प्रायश्चित्तं चरित्वा तु शुध्यंति पापकारिणः बग्ध्वा तु गर्भसंयुक्तां त्रिरब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ।

गर्भिणीच्या मरणाविषयी सांगतो—

मदनरत्नांत शौनकः—“मी शौनक ब्राह्मणांच्या गर्भिणीचा व रजस्वलेचा संस्कार, आणि शिशुसंस्कार संक्षेपानें सांगतो. गर्भिणी स्त्री मृत असतां गोमूत्र व उदक यांनीं ‘आपोहिष्ठां’ इत्यादि मंत्रांनीं प्रोक्षण करून प्रेत श्मशानांत नेऊन भल्यांनीं शस्त्र घेऊन तिचें डावीकडचें उदर फाडून गर्भाशयांतून गर्भ काढून घेऊन तो गर्भ जीवंत असेल तर, ‘यस्ते स्तनः शशयं’ ह्या ऋचेनें पुत्राचे मुखांत स्तन देऊन पुत्राला गांवांत नेऊन ठेवावा. फाडलेले उदरांतील आंतडी जागच्याजागीं बसवून त्यांत दधियुक्त घृत घालून तें उदर व्रणरहित करावें, नंतर सूतिका, भस्म, कुशोदक, गोमूत्र यांनीं व ‘आपोहिष्ठा’ या तीन ऋचांनीं शुद्धोदकानें स्नान घालून वस्त्रांनीं आच्छादित करून प्रेतधर्मानें दाह करावा.” तेथेच **षडशीतिमतांतील** गयें—(फक्किारूप वचनें)—“गर्भिणी मृत असतां तिला दक्षिणदिशेस मस्तक करून ठेवून तिच्या नाभीच्या वाम बाजूचें उदर ‘हिरण्यगर्भः समवर्तते.’ या मंत्रानें चार अंगुलें फाडून त्यांतून गर्भ काढून तो जर मृत असेल तर त्याला धुवून पुरावें. तो जर जीवंत असेल तर ‘जीवतां मम पुत्रक’ असें म्हणून ‘क्षेत्रियेला’ ह्या पांच मंत्रांनीं स्नान घालून सुवर्ण अंतरित करून भूमीवर ठेवावा आणि व्याहृतींनीं अभिमन्त्रण करून ‘यस्ते स्तनः शशयं’ ह्या मंत्रानें स्तन पाजवून नंतर शिशु गांवांत पोचवावा. गर्भस्थानाच्या छेदाचे ठिकाणीं ‘शतायुधायं’ ह्या मंत्रांनीं पांच आहुति होम करून ‘प्राणाय स्वाहा, पूष्णे स्वाहा’ ह्या दोन अनुवाकांनीं किंवा व्याहृतिमंत्रांनीं आज्यहोम करून फाडलेले उदर सूत्रांनं चांगलें बांधून घृताचा लेप देऊन ब्राह्मणांना तिल, गाई, भूमि, सुवर्ण द्यावें. नंतर यथोक्तविधीनें त्या प्रेताचा दाह करावा.” **बौधायनानें** तर—वर सांगितलेले ‘शतायुधायं’ हे पांच होम केल्यानंतर ‘प्रयासाय, यासाय, वियासाय, संयासाय, उयासाय, शुचे, शोकाय, तप्यते, तप्यतै, ब्रह्महत्यायै, सर्वस्वै’ ह्या स्वाहाकारांत मंत्रांनीं अधिक आहुति सांगितल्या आहेत. **गृह्यकारिकेन**—“ज्या वेळीं गर्भिणी स्त्री गर्भ आंत राहून मृत होईल त्या वेळीं तिची कुक्षि फाडून उदरांतून गर्भ बाहेर काढावा. जर जीवंत असेल (तर विधिपूर्वक स्त्रीकार करावा.) मृत असेल तर तो भूमीत पुरून टाकावा, नंतर प्रायश्चित्त करावें. तेव्हातीस कृच्छ्र

प्रायश्चित्तानं ती स्त्री शल्यदोषापासून शुद्ध होते. गर्भसहित स्त्रियेचं दहन केलें असतां ज्या जातीचा गर्भ असेल त्या जातीच्या वधाचें पातक प्राप्त होतें. दहून करणारे पापकारी प्रायश्चित्त करून शुद्ध होतात. गर्भयुक्त स्त्रियेचा दाह केला असतां तीन अन्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें.”

अथान्वारोहणंस्त्रीणामात्मनोभर्तुरेवच सर्वपापक्षयकरंनिरयोत्तारणायच अनेकस्वर्गफलदंमुक्तिदंचतथैवच जन्मांतरेचसौभाग्यधनपुत्रादिवृद्धिदं देशकालौस्मृत्वाऽरुंधतीसमाचरत्वस्वर्गलोकमहीयमानत्वमनुष्यलोमसंख्याव्दावच्छिन्नस्वर्गवासभर्तृसहितचतुर्दशेंद्रावच्छिन्नकालिकक्रीडमानत्वमातृपितृश्वशुरकुलत्रयपूतत्वब्रह्मप्रमित्रप्रकृतप्रपतिपूतत्वपत्यवियोगकामाभर्तृज्वलश्चिंतारोहणकरिष्ये अनुगमनेतुफलमुल्लिख्येन्वारोहणंकरिष्येइत्युक्त्वा हरिद्राकुंकुमांजनादियुतशूर्पाणिसुवासिनीभ्योदद्यात् मंत्रस्तु लक्ष्मीनारायणोदेवो बलसत्त्वगुणाश्रयः गाढसत्त्वचमेदेयाद्वाणकैःपरितोषितः सोपस्कराणिशूर्पाणिवाणकैःसंयुतानिच लक्ष्मीनारायणप्रीत्यैसत्त्वकामाददाम्यहं अग्नेःसमीपमागत्यपंचरत्नानिपल्लवे नीलांजनंतथाबध्नामुखेमुक्ताफलंन्यसेत् ततोभिप्रार्थनंकृत्वामंत्रेणानेनमिश्रितं स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णसर्वगोत्रहुताशन सत्त्वमार्गप्रदानेननयमांभर्तुरंतिकं ततोभ्रावाज्येनाग्नयेतेजोधिपतयेविष्णवेसत्त्वाधिपतये कालायधर्माधिपतये पृथिव्यैलोकाधिप्राग्न्यैअज्ञोरसाधिप्रात्रीभ्यः वायवेबलाधिपतयेआकाशायसर्वाधिपतयेकालायधर्माधिप्रात्रे अज्यःसर्वसाक्षिणीभ्यः ब्रह्मणेवेदाधिपतये रुद्रायस्मशानाधिपतयेचहुत्वाग्निंप्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलांचसंपूज्यपुष्पांजलिंगृहीत्वाग्निंप्रार्थयेत् त्वमग्नेसर्वभूतानामंतश्चरसिसाक्षिवत् त्वमेवदेवजानीषेनविदुर्यानिमानुषाः अनुगच्छामिभर्तारंवैधव्यभयपीडिता सत्त्वमार्गप्रदानेननयमांभर्तुरंतिकं मंत्रमुच्चार्यशनकैःप्रविशेश्वहुताशनं गौडास्तु इमानारीरविधवाइति ॐ इमाःपतिव्रताःपुण्याःस्त्रियोयायाःसुशोभनाः सहभर्तुःशरीरेणसंविंशंतुविभावसुं इतिचविप्रःपठेदित्याहुः कातरांतु प्रेतोत्तरेसुप्तादेवरःशिष्योवाउदीर्घ्वेतिद्वाभ्यामुत्थापयेत् एतन्महिमा मिताक्षरादौज्ञेयः ।

आतां स्त्रियांचं अन्वारोहण (सहगमन) सांगतो—

“स्त्रियांचं अन्वारोहण आपल्या व पतीच्या सर्व पापाचा नाश करणारें आहे, आणि नरकापासून तारणारें आहे. अनेक स्वर्गातील फलें व मुक्ति देणारें, जन्मांतरीं (पुढील जन्मांत) सौभाग्य, धन, पुत्र इत्यादि वृद्धि करणारें असें आहे.” देशकालांचं संकीर्तन करून ‘अरुंधतीसमाचरत्व० करिष्ये’ असा संकल्प करावा. अनुगमन असेल तर बरील सर्व संकल्पाचा उच्चार करून ‘अन्वारोहणं करिष्ये’ असा संकल्प उच्चारवा. नंतर हळद, कुंकू, अंजन इत्यादियुक्त शूर्पें सुवासिनींना घावीं. दानमंत्र—‘लक्ष्मीनारायणो देवो० सत्त्वकामाददाम्यहं’ हे दोन मंत्र सुवासिनींना वायनं देण्याचे होत. “नंतर अग्नीच्या जवळ येऊन पंचरत्ने व नील अंजन वस्त्राचे पदरास बांधून तोंडांत मोती घालावें. “स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णसर्वगोत्रहुताशन । सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरंतिकम्” ह्या मंत्रांनं अग्नीची प्रार्थना करून तदनंतर अग्नींत मंत्रांनीं आज्याचा होम करावा. ते मंत्र—‘अग्नये तेजोधिपतये स्वाहा, विष्णवे सत्त्वाधिपतये स्वाहा, कालाय धर्माधिपतये स्वाहा, पृथिव्यै लोकाधिप्राग्न्यै स्वाहा, अज्ञो रसाधिप्रात्रीभ्यः स्वाहा, वायवे बलधिपतये स्वाहा, आकाशाय सर्वाधिपतये स्वाहा, कालाय धर्माधिप्रात्रे स्वाहा, अज्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः स्वाहा, ब्रह्मण वेदाधिपतये स्वाहा, रुद्राय स्मशानाधिपतये स्वाहा’ या मंत्रांनीं आज्याचा होम करून अग्नीला प्रदक्षिणा करून पाषाण व उपला यांची पूजा करून हातांत पुष्पांजलि घेऊन अग्नीची प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र—‘त्वमग्ने सर्वभूतानां० भर्तुरंतिकं ह्या दोन मंत्रांचा उच्चार करून हळू हळू अग्नींत प्रवेश करावा.’ गौड तर—‘इमानारीरविधवा.’ हा मंत्र आणि ‘इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो यायाः सुशोभनाः । सहभर्तुः शरीरेण संविंशंतु विभावसुं’ हा मंत्र ब्राह्मणानें म्हणावा, असें सांगतात. भित्री असेल तिला प्रेताचे उत्तरेस निजलेलीस दिरांनं किंवा शिष्यांनं ‘उरीर्ध्वातः०’ ह्या दोन मंत्रांनीं उठवावी. ह्या अन्वारोहणाचा (सहगमनाचा) महिमा मिताक्षरादि ग्रंथांतून जाणावा.

पृथ्वीचंद्रोदयेस्कांदे अनुव्रजतिभर्तारंगृहात्पितृवनंमुदा पदेपदेश्चमेधस्यफलंप्राप्नोत्यनुत्तमं यत्संगिराः यास्त्रीब्राह्मणजातीयामृतंपतिमनुव्रजेत् सास्वर्गमात्मघातेननात्मानंनपतिनयेदिति यथक्याप्रपात् नम्रियेतस्वयंभर्त्राब्राह्मणीशोककशिता नब्रह्मगतिमाप्नोतिमरणादात्मघातिनीतितत्पृथक्कृषितिपरं पृथक्चित्समाह्वनविप्रागंतुमर्हति अन्यासांचैवनारीणांस्त्रीधर्मोयंपरःस्युतइत्युशनसोक्तः ।

पृथ्वीचंद्रोदयांत स्कांदांत—“घरापासून इमशानांत मोठ्या दर्घानें पतीच्या मागाहून जाणारी स्त्री पावलापावलाला अश्वमेधयज्ञाचें उत्तम फल पावते.” आतां जें **अंगिरा**—“जी ब्राह्मणजातीची स्त्री मृत झालेल्या पतीला अनुगमन करिते ती आत्मघातांत आपल्याला व पतीला स्वर्गास नेत नाही.” आणि जें **व्याघ्रपाद**—“शोकानें क्रुश झालेल्या ब्राह्मणी स्त्रियें भल्यांसह स्वतः मरूं नये. कारण, मरणानें आत्मघातकी होऊन ब्रह्मगति पावन नाही.” असें निषेधक वचन तें पृथक्चित्ते-विषयक आहे. कारण, “ब्राह्मणी स्त्री पृथक्चित्तेवर आरोहण करून जाण्यास योग्य होत नाही. ब्राह्मणीवांचून इतर स्त्रियांना पृथक्चित्तेवर आरोहण करणें हा उत्तम स्त्रीधर्म सांगितला आहे.” असें **उशनसाचें** वचन आहे.

पृथक्चित्तिस्तुक्षत्रियादिपरा तद्विधिर्ब्राह्मे देशांतरेमृतेपत्यौमाध्वीतत्पादुकाद्वयं निधायोऽग्निसंशुद्धाप-विशेज्जातवेदसं ऋग्वेदवादात्साध्वीस्त्रीनभवेदात्मघातिनी त्र्यहाशौचेनितृत्तेतुश्राद्धंप्राप्नोतिप्राप्तवत इमाना-रीरविधवाइतिऋग्वेदवादः त्र्यहाशौचमन्वारोहणपरमितिस्मार्ताः निषेधवाक्यानिप्रायश्चित्तार्थमृतेनपतिते-नवासहमरणनिषेधपराणीत्याप्याहुः अस्थिदाहेपलाशदाहेवानपृथक्चित्तिदोषः अंगत्वेनस्थानापन्यावाशरीर-तुल्यत्वात् यत्तु ब्रह्मघ्नोवाकृतघ्नोवामित्रघ्नोवाभवेत्पतिः पुनार्याविधवानारीतमादायमृतानुयेतिहारीतीयं तत्प-तितदाहादिनिषेधेनसहगमनस्यदूरतोपास्तत्वादर्थवादमात्रमिति**पृथ्वीचंद्रः** जन्मांतरीयपापवतामहमरणे-नोद्धारइतिस्मार्तगौडाः **शुद्धिनस्त्वेव्यासः** दित्तैकगम्यदेशस्थामाध्वीचेकृतनिश्चया नदहेन्व्यामिनं-तस्यायावदागमनभवेत् तत्रैव**भविष्ये** तृतीयेह्निउदकयायामृतेभर्तारिवैद्विजाः तस्यानुमग्नार्थायस्थापयेदे-करात्रकं एकांचितांसमासाशभर्तारंग्यानुगच्छति तद्वर्तुर्यःक्रियाकर्तामत्तस्याश्चक्रियांचरेण एतदशाहांतरम-यश्चाग्निदाताप्रतस्यपिंडं दद्यात्सपृथ्वीति**वायवीयोक्तेः आपस्तम्बः** चित्तिभ्रष्टातुयानागमोहाद्विचलि-ताभवेत् प्राजापत्येनशुध्येतत्तमाद्वैपापकर्मणः **तथा** अन्वारोहेतुनारीणांपत्युश्चेकोदकक्रियां पिंडदानक्रियां-तद्वच्छ्राद्धंप्रत्यान्दिंकंतथा अन्वारोहेकृतेपद्यापृथक्पिंडांस्तिलांजलीन पृथक्शिलेनकुर्वीतदशदेकशिलेतथा अन्यत्प्रागुक्तं ।

पृथक्चित्ती तर क्षत्रियादिविषयक आहे. त्या पृथक्चित्तीचा विधि सांगतो **ब्राह्मांत**—“पति देशांतरीं मृत अगतां शुद्ध पतिव्रता स्त्रियेन त्याच्या दोन पादुका उरावर घेऊन अग्नींत प्रवेश करावा. ऋग्वेदाच्या वादानें अग्नींत प्रवेश करणारी साध्वी स्त्री आत्मघातकी होत नाही. तीन दिवस आशांच झाल्यावर ती शास्त्रानें सांगितलें श्राद्ध पावते.” ऋग्वेदवाद म्हणजे ‘इमानारीरविधवा’ हा समजावा. तीन दिवस आशांच सांगितलें हें अन्वारोहणविषयक आहे, असें **स्मार्त** सांग-तात. अंगिरादिकांचीं निषेधक वचनं तीं प्रायश्चित्तार्थं मृत झालेल्या किंवा पतित मृत झालेल्या पतीसह मरणाचीं निषेधक आहेत, असेंही सांगतात. पतीच्या अस्थींचा दाह किंवा पणशराचा दाह असतां पृथक्चित्तीचा दोष नाही. कारण, अस्थींचा दाह असेल तर अस्थि ह्या पतीचें अंग आहे. पणशरदाह असेल तर पणशर हा शरीरस्थानी आहे म्हणून ते दोन्ही दाह पतिशरीरसमान आहेत. आतां जें “ब्रह्मघातक किंवा कृतघ्न अथवा मित्रदोही असा पति असेल तरी जी मुवासिनी स्त्री त्या पतीला घेऊन मरते ती त्याला पवित्र करिते.” असें **हारीताचें** वचन तें सहगमन करणाऱ्या स्त्रियांच्या स्तुतिविषयीं मात्र आहे. कारण, ब्रह्मघातकांच्या दाहादि कर्मांचा निषेध असल्यामुळे सहगमन तर दूरच राहिलें आहे, असें **पृथ्वीचंद्र** सांगतो. जन्मांतरीं पाप केलेल्या पतीसह मरण केलें असतां त्या पापापासून पतीचा उद्धार करते. असा वरील हारीतवच-नाचा भावार्थ, असें **स्मार्तगौड** सांगतात. **शुद्धितत्त्वांत व्यास**—“एक दिवसानें जाण्यास योग्य इतक्या लांबीवर स्त्री असेल व तिचा सहगमनाविषयीं निश्चय झालेला असेल तर ती जांपयंत येईल तोंपयंत तिच्या पतीचा दाह करूं नये.” तेथेंच **भविष्यांत**—“रजस्वलेच्या तिसऱ्या दिवशीं तिचा भर्ता मृत होईल तर तिच्या सहगमनाकरितां एक रात्र प्रेता ठेवावें. जी स्त्री एकचित्तीवर आरोहण करून पतीबरोबर जाते तिच्या पतीची क्रिया करणारानें तिचीही क्रिया करावी.” हा प्रकार दशाहांतील आहे. कारण, “जो प्रेताला अग्नि देतो त्यानंच त्याला पिंड द्यावा” असें **वायवीय** वचन आहे. **आपस्तम्ब**—“जी स्त्री अविचारानें चंचलचित्त होऊन चितीपासून बाहेर येईल ती त्या पापकर्मापासून प्राजापत्य कृच्छ्रानें शुद्ध होईल.” तसेंच—“अन्वारोहण असतां स्त्रियांची व पतीची उदकदानक्रिया एक होते. तशीच पिंडदानक्रिया एक आणि प्रतिसांवस-रिक श्राद्धही एकच होतें. पत्नीनं अन्वारोहण केलें असतां पृथक् पिंड व पृथक् शिलेवर तिलांजलि देऊं नयेत. एका शिलेवर (दगडावर) द्यावे.” इतर निर्णय पूर्वी सांगितला आहे.

इदं गर्भिणीबालापत्यासूतिकारजस्वलाव्यभिचारिणीभिर्नकार्यं स्वैरिणीनांगर्भिणीनांपतितानांचयोषितां नास्तिपत्याभिःशेषःपतितौहितयाउभाभितिसमृद्धनरत्नेस्मृतिसंग्रहोक्तेः मदनरत्नेबृहस्पतिःबाल-

संबर्धनमुक्त्वावालापत्यानगच्छति व्रतोपवासनियतारक्षेद्भ्रमंचगर्भिणी तृतीयपादेरजस्वलासूतिकाचेति पृथ्वीचंद्रोदयेगौडीयशुद्धितत्त्वेचपाठः तत्रैवबृहन्नारदीयेपि बालापत्याचगर्भिण्योद्यदृष्टश्रुतब-
स्तथा रजस्वलाराजसुतेनारोहंतित्चित्तानुताः अत्र पतिव्रतासासंदीप्तप्रविशेशाहुताशनमिति भारताद्वेदवा-
दात्साध्वीस्त्रीनिब्राह्मण्यपतिव्रतानामेवाधिकारो नदुर्वृत्तानां यत्तु अवमत्यचयाः पूर्वपतिदुष्टेनचेतसा वर्त-
तेयाश्चसतसंभर्तृणांप्रतिकूलतः तत्रानुमरणकालेयाः कुर्वतितथाविधाः कामात्क्रोधाद्भयानमोहात्सर्वाः पूता-
भवत्युतेति भारतं तत्कैमुतिकन्यायेनस्तावकमिति पृथ्वीचंद्रः ब्राह्मण्याएकचित्तिरेवनपृथक्चित्तिः क्षत्रि-
यादीनांप्रथगेकावेति कल्पनरत्नाकरमदनपारिजातादयः शुद्धिचिंतामणौचैवं तत्रान्वारो-
हणेभर्तुःशौचमध्येतदूर्ध्ववाकृते त्रिरात्रमध्येएवदशपिंडाः सहगमनेतुभर्तुःशौचतुल्यमाशौचंपिंडदानंच
अन्वितायाःप्रदातव्यादशपिंडारूपहेणतु स्वाम्याशौचेव्यतीतेतुतस्याःश्राद्धप्रदीयते इति शुद्धितत्त्वेशूल-
पाणौचपैट्टीनसिस्मृतेः संस्थितपतिमालिङ्ग्यप्रविशेशाहुताशनं तस्याःपिंडादिकंदेयंक्रमशःपतिपिंडव-
दिति शूलपाणिशुद्धितत्त्वधृतव्यासोक्तेः अन्यत्रागुक्तं यदातुरजस्वलापिपत्नीमृतपत्यौदेशकालव-
शात्तदैवानुगच्छति नशुद्धिप्रतीक्षते तत्रविधिःदेवयाज्ञिकनिबंधे यदास्त्रियामुदक्यायांपतिःप्राणान्स-
मुत्सृजेत् द्रोणमेकतंडुलानामवहन्याद्विशुद्धये मुसलाघातैस्तदसृक्स्ववतेयोनिमंडलात् विरजस्कामन्यमा-
नास्वेचितेतदसृक्क्षयं दृष्ट्वाशौचंप्रकुर्वीतपंचमृत्तिकयापृथक् त्रिंशद्विंशतिर्देशचगवांस्त्वात्वहःक्रमत् विप्रा-
णांवचनाच्छुद्ध्यासमारोहेद्दुताशनं नारीणांसरजस्कानामियंशुद्धिरुदाहता अत्रश्राद्धादौनिर्णयःपूर्वमुक्तः इति-
श्रीभट्टकमलाकरकृतेनिर्णयसिंधावल्यकर्मनिर्णयः ।

हें अन्वारोहण गर्भिणी, जिचें मूल लहान असेल ती, बाळंतीण, रजस्वला, व्यभिचार करणारी ह्या स्त्रियांनीं करूं नये. कारण, “व्यभिचारिणी, गर्भिणी आणि पतित अशा स्त्रियांना पतीसह अग्निप्रवेश नाही. कारण, ह्या स्त्रिया जर पतीसह अग्निप्रवेश करतील तर दोन्ही पतित होतील” असें मदनरत्नांत स्मृतिसंग्रहवचन आहे. मदनरत्नांत बृहस्पति-
“जिचें मूल लहान असेल ती मुलाचें पालनपोषण टाकून जात नाही. तिणें व्रत व उपवास यांविषयीं तत्पर असावें. गर्भि-
णीनें गर्भाचें संरक्षण करावें.” ‘व्रतोपवासनियता’ या स्थानीं ‘रजस्वला सूतिकाच’ असा पृथ्वीचंद्रोदयांत व गौडांचे शुद्धितत्त्वांत पाठ आहे. तेथेंच बृहन्नारदीयांतही-“जिचें मूल लहान आहे ती, गर्भिणी, ऋतु प्राप्त न झालेली, रज-
स्वला, राजकन्या ह्या पतीच्या चितीप्रत आरोहण करीत नाहीत.” अन्वारोहण व सहगमन यांविषयीं “जी स्त्री पतिव्रता असेल तिनें अग्नींत प्रवेश करावा.” ह्या भारतवचनावरून आणि ऋग्वेदवादानें “पतिव्रता स्त्री आत्मघातकी होत नाही.” या ब्राह्मणवचनावरूनही पतिव्रतांनाच अधिकार आहे. दुष्टवर्तनाच्या स्त्रियांना अधिकार नाही. आतां जें “ज्या स्त्रिया पूर्वी दुष्ट चित्तानें पतीचा अपमान करून सतत पतीच्या प्रतिकूल वर्तन करितात, तशा प्रकारच्या ज्या स्त्रिया पतीच्या मरणकालीं अनुगमन करितात, मग त्या कामानें करोत किंवा क्रोधानें अथवा भयानें किंवा अविचारानें करोत त्या सर्व पवित्र होतात.” असें भारतांतील वचन तें कैमुतिकन्यायेंकरून (प्रतिकूल वर्तन करणाऱ्यादेखील पवित्र होतात, मग अनुकूल वर्तन कर-
णाऱ्या सुशील पवित्र होतील हें काय सांगावें, या न्यायानें) सहगमनाची स्तुति करणारें आहे असें पृथ्वीचंद्र सांगतो. ब्राह्मणी स्त्रियेची एकचित्तीच होते. पृथक्चित्ति नाही. क्षत्रियादिस्त्रियांची पृथक्चित्ति किंवा एकचित्ति होते, असें कल्प-
तरु, रत्नाकर, मदनपारिजात इत्यादि ग्रंथकार सांगतात. शुद्धिचिंतामणीतही असेंच आहे. त्यांत भर्त्याच्या आशौचामध्ये किंवा आशौचोत्तर अन्वारोहण (अस्थि किंवा पर्णशरावरोंवर गमन) केलें असतां तीन दिवसांमध्येच दहा पिंड द्यावे. सहगमन केलें असतां भर्त्याच्या आशौचाइतकेंच आशौच व पिंडदानही समजावें. कारण, “अनुगमन (अस्थ्या-
दिबरोबर गमन) करणाऱ्या स्त्रियेला तीन दिवसांत दहा पिंड द्यावे. पतीचें आशौच संपल्यावर तिला श्राद्ध द्यावें.” अशी शुद्धितत्त्वांत व शूलपाणींत पैट्टीनसि स्मृति आहे. मृत झालेल्या पतीला आलिंगन करून जी स्त्री अग्निप्रवेश करील तिला पतिपिंडाप्रमाणें अनुक्रमानें पिंडादिक द्यावें.” असें शूलपाणि व शुद्धितत्त्व यांनीं धरलेलें व्यासवचन आहे. इतर निर्णय पूर्वीं सांगितला आहे. ज्या वेळीं पत्नी रजस्वला असूनही पति मृत झाला असतां देशकालानुरोधानें त्या वेळींच जाण्याविषयीं इच्छिते, आपल्या शुद्धीपर्यंत राहत नाही, त्याठिकाणीं विधि सांगतो देवयाज्ञिकनिबंधांत-“ज्या वेळीं स्त्री रजस्वला असतां पति मृत होईल त्या वेळीं तिणें एक द्रोण (अदमण) परिमित तांदूळ मुसळानें सडावे. मुसळाच्या आधा-
तांनीं तिच्या योनिद्वारांतून रक्षाचा स्त्राव होतो. तो रक्तस्त्राव पाहून आपल्या चित्तांत रजोरोहित आपण झालों असें मानूक

पंचमृतिकांनीं वेगवेगळी शुद्धि करून पहिला दिवस असेल तर तीस गाई, दुसरा दिवस असेल तर वीस गाई, तिसरा दिवस असेल तर दहा गाई ब्राह्मणांस देऊन ब्राह्मणाकडून शुद्ध असें म्हणवून अर्पित प्रवेश करावा. रजस्वला स्त्रियांची ही शुद्धि सांगितली आहे.” याविषयी श्राद्धादिकांचा निर्णय पूर्वी सांगितला आहे.

इति श्रीनिर्णयसिंधौ अंत्यकर्मनिर्णयाची महाराष्ट्रटीका समाप्ता.

अग्निप्रवेशाशक्तौतुविष्णुः मृतेभर्तृरिब्रह्मचर्यतदन्वारोहणंचेति ब्रह्मवैवर्ते सहानुगमनंशस्तंवैधव्य-
स्याथपालनं यत्तुतत्रैव कलौनान्यागतिःस्त्रीणांसहानुगमनादृतइतितत्ब्रह्मचर्याशक्यत्वपरं तथाचमनुः
ब्रह्मचर्यचरेद्वापिप्रविशेद्वाहुताशनं काशीखंडेपि पत्यौमृतेपियायोपिद्वैधव्यपालयेत्कचित् सापुनःप्रा-
प्यभर्तारंस्वर्गलोकंसमभ्रुते अनुयातिनभर्तारंयदिदैवात्कथंचन तत्रापिशीलंसंरक्षेच्छीलभंगात्पतत्यधः तद्वै-
गुण्यादपिस्वर्गात्पतिःपततिनान्यथा तस्याःपिताचमाताचभ्रातृवर्गस्तथैवच ।

स्त्रियांना अग्निप्रवेशाविषयीं अशक्ति असतां सांगतो—

विष्णु—“भर्ता मृत असतां स्त्रियांना ब्रह्मचर्यधारण आणि पतीगृह गमन असे दोन प्रकार सांगितले आहेत.” ब्रह्मवै-
वर्तांत—“स्त्रियांना सहगमन किंवा वैधव्याचें पालन (संरक्षण) प्रशस्त आहे.” आतां जें तेथेंच—“कलियुगांत सहगम-
नावांचून स्त्रियांना दुसरी गति नाही.” असें सांगतो तें ब्रह्मचर्य धारणाविषयीं अशक्तिविषयक आहे. तसेंच सांगतो मनु-
“स्त्रियेनं पति मृत असतां ब्रह्मचर्य आचरण करावें, किंवा अग्निप्रवेश करावा.” काशीखंडांतही—“जी कोणी स्त्री पति
मृत असतां वैधव्याचें संरक्षण करील ती पुनः पतीला पावून स्वर्गलोकास जाते. जर वैधव्यगानें कोणत्याही रीतीनें भर्त्या-
बरोबर गमन करणार नाही तर त्या अवस्थेमध्ये तिनें आपल्या शीलचें (सद्गतेनाचें) संरक्षण करावें. सद्गतेनाच्या भंगानें
नरकांत पडते. तिच्या असद्गतेनाच्या योगानेंही पति स्वर्गापासून न्युत होतो, अन्यथा स्वर्गापासून न्युत होत नाही. तिचा
पिता, माता आणि भ्राते हे देखील तिच्या असद्गतेनानें स्वर्गापासून भ्रष्ट होतात.”

अथविधवाधर्माः मदनरत्नेस्कांदे विधवाकवरीवंधोभर्तृवंधायजायते शिरसोवपनंतस्मा-
त्कार्यविधवयासदा एकाहारःसदाकार्योनद्वितीयःकदाचन मासोपवासवाकुर्याच्चांद्रायणमथापिवा पर्य-
कशायिनीनारीविधवापातयेत्पतिं नैवांगोद्वर्तनंकार्यस्त्रियाविधवयाक्कचित् गंधद्रव्यस्यसंभोगोनैवकार्यस्त-
यापुनः तर्पणप्रत्यहंकार्यंभर्तुस्तिलकुशोदकैः तत्पितुस्तत्पितुश्चापिनामगोत्रादिपूर्वकम् इदमपुत्रापरमिति-
मदनपारिजातः नाधिरोहेदनडाहंप्राणैःकंठगतैरपि कंचुकंनपरीदध्याद्वास्नोनाविकृतंवसेत वैशाखेकार्ति-
केमाघेविशेषनियमंचरेत् प्रचेताः तांबूलाभ्यंजनंचैवकांस्यपात्रेचभोजनं यतिश्रब्रह्मचारीचविधवाचवि-
वर्जयेत् श्राद्धादौतुविशेषःप्रागुक्तः यत्तुबौधायनः संवत्सरंप्रेतपत्नीमधुमांसंविवर्जयेत् अधःशयीतपण्मा-
सानितिमौद्गल्यभाषितमितितदसवर्णापरमित्यपरार्कः ।

आतां विधवेचे धर्म सांगतो—

मदनरत्नांत स्कांदांत—“विधवेचा केशबंध पतीच्या बंधाला कारण होतो, या कारणास्तव विधवेनं सदा मस्तकाचें
वपन करावें. सर्वकाल एकवार भोजन करावें. दुसऱ्या वेळीं कधीही भोजन करूं नये. एक महिना उपवासव्रत करावें किंवा
चांद्रायण करावें. विधवा स्त्री पलंगावर शयन करील तर पतीचा अधःपात करील. विधवा स्त्रियेनं कधीही अंगाचें उद्धर्तन
(सुगंधिक चूर्ण वगैरे लावून धुणें) करूं नये. विधवेनं सुगंधि पदार्थांचा उपभोग करूं नये. तिलसहित कुशोदकांनीं दररोज
पति, त्याचा पिता व पितामह यांचें नाम, गोत्र इत्यादि उच्चार करून तर्पण करावें. हें तर्पण अपुत्र जी विधवा तिला सांगितलें
आहे, असें मदनपारिजात सांगतो. प्राण जात असले तरी तिनें बैलावर बसूं नये. कंचुकी धारण करूं नये. रंगविलेलें
वस्त्र नेसूं नये. वैशाखांत, कार्तिकांत व माघांत विशेष नियम धारण करावे.” प्रचेता—“तांबूल, अभ्यंग, कांशाच्या पात्रांत
भोजन हीं संन्याशी, ब्रह्मचारी व विधवा यांनीं वर्ज्य करावीं.” विधवेनं करावयाच्या श्राद्धाचा विशेषनिर्णय पूर्वी (द्वितीय-
परिच्छेदांत वगैरे) सांगितला आहे. आतां जें बौधायन—“मृताच्या पत्नीनें एक वर्षपर्यंत मध व मांस वर्ज्य करावें.
सहा महिने भूमीवर शयन करावें. असें मौद्गल्य ऋषीचें सांगणें आहे.” असें सांगतो तें भिन्न जातीच्या स्त्रीविषयीं आहे,
असें अपरार्क सांगतो.

अथसंन्यासः याज्ञवल्क्यः वनाद्गृहाद्वाकृत्वेष्विदं सार्ववेदसदक्षिणां प्राजापत्यांतदंतेतानम्रीनारोप्य-
चात्मनि अधीतवेदो जपकृतपुत्रवानन्नदोमिमान् शक्त्याचयज्ञकृन्मोक्षेनः कुर्यात्तु नान्यथा एतदाश्रमसमु-
च्चयपक्षे **जाबालश्रुतौ** त्वन्येपि पक्षा उक्ताः यदिचेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा अथ पुनरव्रती वास्ना-
तको वाऽस्नातको वोत्सन्नामिको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेदिति **अंगिराः** प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेच्च गृ-
हादपि वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वा थदुःखितः आतुरो मुमूर्षुः दुःखितश्चैरव्याघ्रादिभीतः **भारते** आतु-
राणां च संन्यासेन विधिर्नैव च क्रिया प्रेममात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् **जाबालश्रुतावपि** यथातुरः-
स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेदिति अत्र विप्रस्यैवाधिकारः ब्राह्मणाः प्रव्रजंतीति जाबालश्रुतेः आत्मन्यम्रीन्स-
मारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहादिति **मनुचे**त्तेश्चेति **विज्ञानेश्वरादयः** वृद्धयाज्ञवल्क्योपि चत्वारो ब्राह्म-
णस्योक्ता आश्रमाः श्रुतिचोदिताः क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यश्च द्वयोरिति **माधवस्तु** ब्राह्मणः क्षत्रियो-
वाथ वैश्यो वा प्रव्रजेद्गृहादिति **कौर्म्यु** क्तैर्वर्णत्रयस्याप्यधिकारः पूर्ववाक्यं तु कापायदंडादिनिषेधार्थं मुखजा-
नामयंधर्मोयद्विष्णोर्लिङ्गधारणम् गजजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वच इति **बौधायनो** क्तेरिति पक्षांतर-
माह **तत्त्वं** तु कुटीचकादिपरमेतदिति योपि संन्यासं पलपैतृकमितिकलौ निषेधः सोपि त्रिदंडादिपर इत्युक्तं प्राक् ।

आतां संन्यास सांगतो—

याज्ञवल्क्य—“वेदाध्ययनं केल्या, जप करणारा, पुत्रवान्, लोकांना अत्र देणारा, अग्नि धारण करणारा, आपल्या
शक्तीप्रमाणे यज्ञ करणारा अशा मनुष्याने वानप्रस्थाश्रमांत किंवा गृहस्थाश्रमांत प्राजापत्य इष्टी करून त्या इष्टीत सर्वेस्व
दक्षिणा देऊन नंतर त्या अग्नीचा आपल्या ठिकाणीं गमारोप करून मोक्षाविषयीं मन करावे. अन्यथा कलं नये.” हें वचन
सारे आश्रम करावे ह्यापक्षां आहे. **जाबालश्रुतींत** तर दुसरेही पक्ष मागितले आहेत, ते असे—“जर गर्व आश्रम शक्य
नसतील तर ब्रह्मचर्याश्रमांतच संन्यास घ्यावा. अथवा गृहस्थाश्रमांत किंवा वानप्रस्थाश्रमांत, मग तो व्रतधारण करणारा असो
किंवा नसो, स्नातक अगो किंवा अस्नातक असो, ज्यादिवशीं विरक्ता होईल त्याचदिवशीं संन्यस व्हावे.” **अंगिरा**—“विद्वानां
ब्रह्मचर्याश्रमांतही संन्यास घ्यावा. अथवा गृहस्थाश्रमांतही घ्यावा. किंवा वानप्रस्थाश्रमांत घ्यावा. अथवा मरणवस्थेंत घ्यावा.
किंवा दुःखित म्हणजे चार, व्याघ्र इत्यादिकांनीं भीत झालेला त्यानें घ्यावा.” **भारतांत**—“आतुरांच्या (मरणाऱ्यांच्या)
संन्यासाविषयीं विधि नाही आणि क्रिया (कर्म) ही नाही. त्या ठिकाणीं प्रेयाचा मात्र उच्चार करून संन्यासाविधि पुरा करावा.”
जाबालश्रुतींतही—“जर आतुर असेल तर मनांत किंवा वाणीनें संन्यास घ्यावा,” संन्यासाविषयीं ब्राह्मणालाच अधिकार
आहे. कारण, “ब्राह्मण संन्यस्त होतात.” अशी **जाबालश्रुति** आहे. आणि “ब्राह्मणां आपल्या ठिकाणीं अग्नीचा समारोप
करून गृहस्थाश्रमांतून निघून जावे म्हणजे संन्यास घ्यावा.” असें **मनु** वचनही आहे, असें **विज्ञानेश्वर** इत्यादि ग्रंथकार
सांगतात. **वृद्धयाज्ञवल्क्य**ही—“ब्राह्मणाला चार आश्रम श्रुतीनें सांगितले आहेत. क्षत्रियाला तीन आश्रम सांगितले आहेत.
वैश्याला दोन आणि शूद्राला एक आश्रम मागितला आहे.” **माधव** तर—“ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य यांनीं गृहस्थाश्रमांतून
संन्यास घ्यावा.” ह्या **कौर्म्यु** दिवचनावरून तीन वर्णांनाही अधिकार आहे. वरील वृद्धयाज्ञवल्क्याचें वचन तर कापायवन्न,
दंड इत्यादिकांच्या निषेधासाठीं आहे. कारण, “विष्णूचीं चिन्हें धारण करणें हा धर्म ब्राह्मणांचा आहे. क्षत्रिय वैश्यांचा
नाहीं, असें **दत्तात्रेयमुनींचें** वचन आहे.” असें **बौधायन** सांगतो, म्हणून हा दुसरा पक्ष असें (माधव) सांगतो. **खरा**
प्रकार म्हटला तर हें वचन कुटीचक इत्यादि संन्यासांचें क्षत्रिय-वैश्यांचा निषेधक आहे. आणि जो ‘संन्यासं पलपैतृकं’ या
वचनानें कलियुगांत संन्यासाचा निषेध सांगितला आहे तो देखील त्रिदंडादिविषयक आहे, असें पूर्वी (कलिवर्ज्यप्रकरण)
सांगितलें आहे.

सचसंन्यासश्चतुर्थेत्याह **हारीतः** कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात्स उ-
त्तमः **आद्यः** पुत्रादिना कुटीकारयित्वा तत्र गृहे वा वसनं कापाय वा साः शिखोपवीतत्रिदंडवान् बंधुषु स्व-
गृहे वा भुंजान आत्मज्ञो भवेत् एतदत्यंताशुकरम् **द्वितीयस्तु** बंधून् हि त्वासा प्रागारांणि भैक्षं चरन् पूर्वोक्तवेषः-
स्यात् **हंसस्तु** पूर्वोक्तवेषोप्येकदंडः एकंतु वैणवंदंडधारयेन्नित्यमादरादिति **स्कांदान्** विष्णुरपि यज्ञोपवी-
तदंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् तावान्परिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः **चतुर्थोपि स्कांदे** परमहंसं भिदंडं चरन्-
गोवालनिर्मिताम् शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्मपरित्यजेत् अयमप्येकदंड एव येतु शिखोपवीतादित्यागनिषेधा-

स्तेकुटीचकादिपराः यत्तुमेधानितिः यावन्नस्युल्लयोदंडास्तावदेकेनवर्तयेदिति तदपितत्परमेव यच्चात्रिः चतुर्थमिक्ष्वःप्रोक्ताःसर्वेचैवत्रिदंडिनइति तद्वागदंडादिपरंनयष्टिपरम् वागदंडोथमनोदंडःकर्मदंडस्तथैवच यत्तैतेनियतादंडाःसत्रिदंडीतिचोच्यते इतिमनूक्तेः तस्मात्परमहंसस्यैकदंडएव सोप्यविदुषः विदुषस्तु- सोपिनास्ति नदंडनशिखांनाच्छादनंचरतिपरमहंसइतिमहोपनिषदुक्तेः ज्ञानमेवास्यदंडइतिवाक्यशे- षाच्च यत्तु यमः काष्ठदंडोद्धृतोयेनसर्वाशीज्ञानवर्जितः सयातिनरकान्धोरान्महारौरवसंज्ञितानिति तद्वैरा- ग्यंविनाजीवनार्थसंन्यासपरं एकदंडसमाश्रित्यजीवंतिबहवोनराः नरकेरौरवेधोरेकर्मत्यागात्पतंतितइति- स्मृतैः यच्चाश्वमेधिके एकदंडीत्रिदंडीवाशिखामुंडितएववा काषायमात्रसारोपियतिःपूज्योयुधिष्ठिरेति तस्यापिपूर्वाक्तव्यवस्थान्नैया ।

तो संन्यास चार प्रकारचा आहे, असें सांगतो हारीत—“कुटीचक, बहूदक, हंस आणि परमहंस असे चार प्रकारचे संन्यास आहेत. जो पुढचा पुढचा तो तो पूर्वीच्यापेक्षा उत्तम उत्तम समजावा.” पहिला प्रकार—पुत्रादिकांकडून पण- कुटी करवून तीत राहणारा किंवा घरांत राहणारा, काषायवस्त्र धारण करणारा, शिखा यज्ञोपवीत व तीन दंड धारण करणारा, आपल्या बांधवांकडे किंवा घरी भोजन करून राहणारा असें असून आत्मज्ञान संपादन करावें, हा कुटीचक होय. हा प्रकार अत्यंत अशक्ताविषयी आहे. दुसरा प्रकार—आपल्या बांधवांना टाकून सात घरे भिक्षा मागून निर्वाह करणारा, वर सांगितलेल्या कुटीचकाचा वेष धारण करणारा असा असून आत्मज्ञान संपादावें, हा बहूदक होय. तिसरा प्रकार—हंय, याचा वेष बहूदकाप्रमाणेंच असतो. पण दंड एक असतो. कारण, “वेळूचा एक दंड आदरांनं नित्य धारण करावा.” असें स्कान्दवचन आहे. विष्णुही—“यज्ञोपवीत, दंड, जंतु निवारण करणारें वस्त्र, इतका परिग्रह सांगितला आहे. दुसरा परि- ग्रह हंसाला नाही.” चवथा प्रकारही सांगतो स्कान्दांत—“परमहंसांनं तीन दंड, गाईच्या केशांची दोरी, शिखा, यज्ञोपवीत आणि नित्यकर्म हीं टाकावीं.” यालाही एक दंडच आहे. आतां जे शिखा, यज्ञोपवीत इत्यादि त्यागांचे निषेध आहेत ते निषेध कुटीचक, बहूदक, हंस यांच्याविषयी आहेत. आतां जें मेधातिथि—“जोपर्यंत तीन दंड झाले नाहीत तोपर्यंत एकदंडांनं वर्तन करावें” असें सांगतो; तें देखील कुटीचकादिविषयक आहे. आतां जें अत्रि—“चार प्रकारचे संन्याशी सांगितले आहेत, ते सारे त्रिदंडी आहेत” असें सांगतो; तें वागदंडादिविषयक आहे. वेणुदंडाविषयी नाही. कारण, “वागदंड, मनोदंड, कर्मदंड हे तीन दंड ज्याला निश्चित आहेत तो त्रिदंडी असा म्हटला आहे.” असें मनुवचन आहे. तस्मात् परमहंसाला एक दंडच आहे. तोही ब्रह्मज्ञानरहितालाच आहे. ब्रह्मज्ञान्याला तर तोही नाही. कारण, “परमहंसाला दंड नाही, शिखा नाही, आच्छादन नाही, असा परमहंस संचार करितो.” असें महोपनिषदांत सांगितलें आहे. आणि ज्ञानच याला दंड, असें शेवटींही सांगितलें आहे. आतां जें यम—“काष्ठाचा दंड धारण करणारा, सर्व भक्षण करणारा, ज्ञानवर्जित तो महाभयंकर अशा महारौरव नरकांत जातो” असें सांगतो, तें वैराग्य असल्याशिवाय जीवनासाठीं जो संन्यास त्याविषयी आहे. कारण, “एका दंडाचा आश्रय करून जीवन करणारे बहुत मनुष्य आहेत यांनी आपल्या कर्मांचा त्याग केल्यामुळे ते भयंकर अशा रौरव नरकांत पडतात.” अशी स्मृति आहे. आतां जें अश्वमेधपर्वांत—“एकदंडी असो किंवा त्रिदंडी असो, शेंडी काढलेला असो किंवा नसो मुख्यत्वेकरून काषाय वस्त्र मात्र ग्रहण करणारा असा जो यति (संन्याशी) तो पूज्य आहे.” असें सांगितलें आहे त्याची देखील वर सांगितलेली व्यवस्था म्हणजे हें वचन ज्ञान्याविषयी आहे, असें समजावें.

अथतद्विधिः बौधायनः कृत्वाश्राद्धानिसर्वाणिपित्रादिभ्योऽष्टकंपृथक् वापयित्वाचकेशादीन्माजये- ष्मातृकाइमाः सर्वाणीतिस्वयनवश्राद्धषोडशश्राद्धादिकृत्वेत्यर्थः स्मृत्यर्थसारेपि एकोद्विप्रविधानेनकुर्या- च्छ्राद्धानिषोडश अग्रिमान्पार्वणेनैवविधिनानिर्वपेत्स्वयमिति कात्यायनः कृच्छ्रांस्तुचतुरःकृत्वापावनार्थ- मनाश्रमी आश्रमीचेत्तप्तकृच्छ्रंतेनासौयोग्यतांत्रजेत् बौधायनः सदैवमार्षकदिव्यपिड्यंमातृकमानुषे भौतिकंचात्मनश्चांतेअष्टौश्राद्धानिनिर्वपेत् अत्रक्रममाहहेमाद्रौशौनकः देवश्राद्धेब्रह्मविष्णुमहेश्वरादे- वताः आर्षेदेवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः देवर्षिक्षत्रर्षिमनुष्यर्षयोवा मरीच्यादिप्रथमइतिसंन्यासपद्धतौतत्वि- ल्यम् दिव्येषसुरुद्रादित्याः मानुषेसनकसनंदनसनातनाः भूतश्राद्धेपृथिव्यादिभूतानिचक्षुरादिकरणा- निचतुर्विधोभूतग्रामश्चेतित्तिलः पित्र्येपित्रादित्रयोमातामहाश्च मातृकमात्रादयस्तिलः आत्मश्राद्धेआत्मपितृ- पितामहादेवताः आत्मश्राद्धंपरमात्मदैवतमितिसंन्यासपद्धतौतत्तिलं सर्वत्रनांदीमुखत्वंविशेषणंज्ञेयं

सर्वत्रपिंडदानं युग्माविप्राः दक्षकृतसत्यवसूवाविश्वेदेवौअन्यन्नादीश्राद्धवदितिहेमाद्रिः स्मृत्यर्थसारे
केशश्मश्रु लोमनखंपापयित्वोपकल्पयेत् दंडंजलपवित्रंचशिक्ष्यंपात्रंकमंडलुं आसनंकौपीनमाच्छादनंकथां-
पादुकेइति दशपंचवा एतच्चपूर्वेद्युर्नांदीमुखंकृत्वापरेगुःपुण्याहवाचनंकृत्वाकार्यमितिशौनकः ।

आतां संन्यासाचा विधि सांगतो—

बौधायन—“सर्वे श्राद्धे म्हणजे आपली नव श्राद्धे, षोडश मासिके इत्यादिक करून आणि आठ पित्रादिक श्राद्धे वेगळी करून केशादिकांचे वपन करून पुढे सांगावयाच्या मातृकांचे मार्जन करावे.” स्मृत्यर्थसारांतही—“एकोद्दिष्टाच्या विधीने आपली षोडश (सोळा) श्राद्धे स्वतः करावीं. श्रौताग्निमान् असेल त्याने पार्षणविधीनेच स्वतः करावीं.” कात्यायन—“आश्रमरहित असेल त्याने आपल्या शुद्धीकरिता चार कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे. ब्रह्मचर्यादि आश्रमयुक्त असेल त्याने तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे. तेणेंकरून त्याला संन्यास घेण्याची योग्यता प्राप्त होते.” बौधायन—“देव, आर्ष, दिव्य, पित्र्य, मातृक, मानुष, भौतिक आणि अंती आत्मश्राद्ध (आपलें) अशीं आठ श्राद्धे करावीं.” या आठ श्राद्धांचा क्रम सांगतो हेमाद्रिंत शौनक—“देवश्राद्धांत ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर ह्या देवता. आर्ष (ऋषींचे) श्राद्धांत देवर्षि, ब्रह्मर्षि, क्षत्रर्षि हे देवता. अथवा देवर्षि, क्षत्रर्षि, मनुष्यर्षि देवता समजाव्या. मरीचि इत्यादि ऋषि देवता असें संन्यासपद्धतींत आहे, तें चिंत्य (प्रमाणशून्य) होय. दिव्यश्राद्धांत वसु, रुद्र, आदित्य देवता. मनुष्यश्राद्धांत सनक, सनंदन, सनातन देवता. भूतश्राद्धांत पृथिव्यादि भूतें, चक्षुरादि करणें, चार प्रकारचा भूतग्राम ह्या तीन देवता. पितृश्राद्धांत पिता, पितामह, प्रपितामह आणि मातामह, मातुःपितामह, मातुःप्रपितामह ह्या देवता. मातृकश्राद्धांत माता, पितामही, प्रपितामही ह्या देवता. आत्मश्राद्धांत आत्मा (आपण), पिता, पितामह ह्या देवता. आत्मश्राद्धांत परमात्मा देवता असें संन्यासपद्धतींत आहे तें चिंत्य (अप्रमाण) आहे. सर्वत्रपिंडकाणीं नांदीमुख हें त्या देवतांना विशेषण समजावे. सर्वत्र पिंडदान आहे. दोन दोन ब्राह्मण अगावेत. दक्षकृत अथवा गलवसू विधेदेव. इतर सर्व विधि नांदीश्राद्धाप्रमाणें समजावा, असें हेमाद्रि सांगतो. स्मृत्यर्थसारांत—“केश, श्मश्रु, लोम, नयें वपन करवून नंतर दंड, जल, पवित्र, शिकें, पात्र, कमंडलु, आसन, कौपीन, आच्छादन, कथा, दोन तडाव हीं दहा किंवा पांच संपादन करावीं.” हें केशवपनादि पूर्वदिवशीं नांदीश्राद्ध करून दुसऱ्या दिवशीं पुण्याहवाचन करून नंतर करावे, असें शौनक सांगतो.

बौधायनः त्रीनदंडानंगुलीस्थूलानवेणवानमूर्धसंमितान एकादशनवद्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान् वेष्टि-
तान्कृष्णगोवालरज्ज्वातुचतुर्गुलान् एकोवातादशोदंडोगोवालमदशोभवेत् अनग्निरग्निमुत्पाद्यनित्येनविधि-
नाततः पृष्ठोदिविविधानेनेत्यर्थः स्वाग्नावेवाग्निमान्कुर्यादपचर्गांक्तमादितः आज्यंपयोदधीत्येतन्निवृद्धाजल-
मेववा ॐभूरित्यादिनाप्राड्यरात्रिंचोपवसेत्ततः अथादित्यास्तसमयात्पूर्वमग्नीन्विहृत्यसः आज्यमग्नौगा-
हंपत्येसंस्कृत्येतनेचसुचा पूर्णयाहवनीयेतुजुहुयात्प्रणवेनतन ब्रह्मन्वाधानमेतत्स्यादग्निहोत्रेहुतेततः संस्ती-
र्यगार्हपत्यम्यदर्भानुत्तरनोत्रतु पात्राण्यासाद्यदर्भंपुत्रह्वायतनपञ्चतु जागृयात्रात्रिमेतांतुयावद्ब्राह्मोमुहूर्तकः
अग्निहोत्रंस्वकालेतुहुत्वाप्रातस्तनंततः इष्टिर्वैश्वानरीकुर्यान्प्राजापत्यामथापिवा जायालश्रुतौतद्वैकेप्राजा-
पत्यामेवेष्टिकुर्वतितनूतथानकुर्यादाग्नेयीमेवकुर्यात्पश्चात्रैधातवीयामेवकुर्यादित्युक्तं तेनात्रविकल्पः अत्राहुः
त्रेताग्नेःप्राजापत्या तद्वाक्यशेषेग्नीनितिबहुत्वश्रुतेः एकाग्नेस्त्वाग्नेयीति अनाहिताग्नेरिष्टिस्थानेवैश्वानरआग्नेयो-
वाचरुरितिमाधवः कात्यायनः आत्मन्यग्नीन्समारोप्यवेदिमध्यस्थितोहर्षि ध्यात्वाहृदित्वनुज्ञातोगुरु-
णाग्नेरमीरयेन कपिलः विधिवत्प्रेषमुक्त्वाथत्रिरूपांशुत्रिरूचकैः अभयंसंभूतेभ्योमन्तःस्वाहेत्यपोभुवि
निनीयदंडशिक्ष्यादिगृहीत्वाथवह्निर्ब्रजेन् बौधायनः सर्वमेत्यादिनादंडयेनदेवाःपवित्रकं यदस्यपारे-
शिक्ष्यंतुपात्रंत्र्याहृतिभिस्तथा युवासुवासाःकौपीनंगृहीत्वात्रांधवास्त्यजेन् ।

बौधायन—“अंगुलीएवढे स्थूल पायांपासून मस्तकापर्यंत पांचणारे असे वळूचे तीन दंड असावेत. त्यांना अकरा, नऊ, दोन, तीन, चार, किंवा सात अशीं पेरें असावीत. ते दंड काढ्या गाईच्या केशांचे दोरीने चार अंगुलें वेष्टिछेले असावेत. अथवा वर सांगितल्याप्रमाणें एक दंड गाईच्या केशांसारखा असावा. अनग्निमान् ‘पृष्ठोदिवि०’ या विधीकरून अग्नि उत्पन्न करून त्या अग्नीवर पूर्वीपासून सर्व संन्यासाचें कृत्य करावे. अग्निमान् असेल त्याने आपल्या अग्नीवरच सर्व कृत्य करावे. आज्य, दूध, दही, हीं एकत्र मिश्र करून घेऊन किंवा उदकच घेऊन ‘ॐ भूः सावित्री प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं’ इत्यादि मंत्रांनीं प्राशन करून त्या दिवशीं उपवास करावा. नंतर सूर्यास्ताचे पूर्वी अग्नि प्रज्वलित करून गार्हपत्य

अग्नीवर आज्याचा संस्कार करून त्या आज्यानें सूची पूर्ण भरून प्रणवानें आहवनीय अग्नींत होम करावा. हे ब्रह्मन्वाधान होय. तदनंतर अग्निहोत्राचा होम केल्यावर गार्हपत्य अग्नीच्या उत्तरेस दर्भ पसरून त्यांजवर पात्रांचें आसादन करून आपण ब्रह्म्याच्या स्थानीच बसून ती रात्र जागरण करावें. जों ब्राह्मसुहृते (पहांट) येईल तोंपर्यंत जागें असावें. नंतर स्नानादि करून प्रातःकालचा अग्निहोत्रहोम योग्यकालीं करून वैश्वानरेष्टि अथवा प्राजापत्येष्टि करावी.” **जात्रालभ्युनीत-**“किती एक प्राजापत्याच इष्टि करितात, तें तसें करूं नये, आग्नेयीच करावी. पश्चात् त्रैधातवीया करावी.” असें सांगितलें आहे. त्यावरून या ठिकाणीं विकल्प सिद्ध झाला. या स्थळीं विद्वान् असें सांगतात की, ‘तीन अग्नि ज्याला आहेत त्याला प्राजापत्या इष्टि उक्त आहे. कारण, त्याच्या वाक्यशेषांत ‘अग्नीन्’ असें बहुवचन श्रुत आहे. एक अग्नि ज्यानें धारण केला असेल त्याला आग्नेयी इष्टि समजावी.’ आहिताग्निभिन्नाला इष्टीच्या स्थानीं वैश्वानर किंवा अग्निदेवताक चरु उक्त आहे, असें **माधव** सांगतो. **कात्यायन-**“आपल्या ठिकाणीं अग्नींचा समारोप करून वेदीच्यामध्ये राहून हृदयांत हरीचें ध्यान करून गुरूची अनुज्ञा घेऊन प्रेषाचा उच्चार करावा.” **कपिल-**“तीन वेळां नीच स्वरांने व तीन वेळां उच्च स्वरांने यथाविधि प्रेषाचा उच्चार करून नंतर ‘अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा’ असें म्हणून भूमीवर उदकांजलि देऊन दंड, शिकें इत्यादि आपली सामग्री घेऊन बाहेर जावें.” **बौधायन-**“सखेमे०” इत्यादि मंत्रांने दंड ध्यावा. ‘येन देवाः०’ या मंत्रांने पवित्रक ध्यावें. ‘यदस्य पारे०’ या मंत्रांने शिकें ध्यावें. व्याहृतींनीं पात्र ध्यावें. ‘युवासुवासाः०’ या मंत्रांने कौपीन ध्यावें. याप्रमाणें घेऊन बांधवांचा स्नान करावा.”

अथक्रमः तत्रसंन्यासेधिकारसिद्धयर्थस्वस्थनवश्राद्धषोडशश्राद्धसर्पिडनानि साम्निःपार्वणान्यनग्नि-स्त्वेकोद्दिष्टविधिनाकृतवानाश्रमीचेत्कृच्छ्रचतुष्टयमन्यस्तुतप्तकृच्छ्रकृतवोदगयनेएकादश्यांद्वादश्यांवा साम्निः-मावास्यायांपौर्णमास्यांचतुर्दश्यांवायथापर्वणिप्राजापत्यास्यात् तत्रदेशकालौस्मृत्वापरमहंसादिसंन्यासप्रहणं-करिष्यइतिसंकल्प्य गणेशंसंपूज्यपुण्याहंवाचयित्वामातृकापूर्णावृद्धिश्राद्धचकृत्वास्तमयात्प्रागौपासनंसमि-ध्याहिताग्निस्तुगार्हपत्यं विधुरोग्निहोत्रीतुत्रिकांढमंडनोक्तदिशकुशपण्यासहपवमानेष्ट्यंतपूर्णहुत्वंतवाधा-नंकुर्यात् ब्रह्मचारीचेष्टौकिकेविधुरश्रेष्ठ्याहृतिभिःप्रणवेनचाग्निमादायान्वभिरुपसमित्यानीयपृष्ठोदिवीतिनि-धायतेनैवसमिध्य तत्सवितुस्तांसवितुर्विश्वानिदेवइतितिस्रःसमिधोभ्यादध्यात् एवमग्नौसिद्धेकक्षोपस्थवर्ज्य-वपनंकृत्वा पयोदधियुतमाज्यमपोवा ॐ भूःसावित्रींप्रविशामितत्सवितुर्वरेण्यमितिप्राश्याचम्य पुनरादाय ॐभुवःसावित्रींप्रविशामिभगोदेवस्यधीमहीतिद्वितीयं ॐस्वःसावित्रींप्रविशामिधियोयोनःप्रचोदयादितितृ-तीयंसमस्तयाचतुर्थं ॐभूर्भुवःस्वःसावित्रींप्रविशामि०तत्सवि०यातइति **संन्यासपद्धतौ**तुत्रिवृदसीतिप्र-थमं प्रवृदसीतिद्वितीयं विवृदसीतितृतीयंप्राश्यापःपुनंत्वितिजलंप्राश्यासावित्रीप्रवेशउक्तः ततः आहवनीयं-विहृत्यब्रह्माणमुपवेश्याज्यंसंकृत्य चतुर्द्वादशवागृहीत्वा समित्पूर्वमौस्वाहापरमात्मनइदमितिहुत्वोपवसेत् ततःसायंहोमैवश्वदेवंचकृत्वा अग्नेरुदकुशानास्तीर्यदंडादीनिदशपंचवासाद्यब्रह्मासनेकृष्णाजिनोपविष्टोरात्रौ-जागरंकृत्वाप्रातर्होमानंतरंप्राजापत्यांवैश्वानरींवाकृत्वाऋत्विग्भ्यःसर्वस्वंब्रह्मणेचमधुपूर्णतैजसपात्रंदत्वा दारु-पात्राण्याहवनीयेश्ममृन्मयानिचजलेक्षिपेत् कृष्णाजिनंत्वाददीत **अनाहिताग्निस्तु**वैश्वानरमाग्नेयंवाचरुं-हुत्वापात्राण्यग्नौक्षित्वा भूर्भुवःस्वरित्यपःस्पृष्ट्वातरत्समंदीतिजस्वाविप्रान्संभोज्यपुण्याहंवाचयित्वात्रवावपनं-कृत्वाहैमरूप्यकुशजलैःस्नात्वापुरुषायचरंकृत्वाप्राणायस्वाहेतिपंचाज्याहुतीर्हुत्वापुरुषसूक्तेनप्रत्यृचमाज्यंचरुं-चजुहुयात् ।

आतां संन्यास घेण्याचा क्रम सांगतो—

प्रथमतः संन्यासविषयी अधिकार सिद्ध होण्यासाठीं आपलीं नव श्राद्धें, षोडश श्राद्धें (मासिकें) व सर्पिडन हीं साम्निक्ने पार्वणविधीनें व निरग्निक्ने एकोद्दिष्टविधीनें करून अनाश्रमी असेल तर त्यानें चार कृच्छ्र व इतरानें तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करून उत्तरायणांत एकादशीस किंवा द्वादशीस संन्यास ग्रहण करावा. साम्निक्ने अमावास्यास किंवा पौर्णमासीस किंवा चतुर्दशीस ज्या रीतीनें पर्वाचे ठायीं प्राजापत्या इष्टि होईल त्या रीतीनें संन्यासग्रहणाचा आरंभ करावा. तो असा-त्या दिवशीं देशकालांचें संकीर्तन करून ‘परमहंसादिसंन्यासप्रहणंकरिष्ये’ असा संकल्प करून गणपतीची पूजा करून पुण्याह-वाचन करून मातृकापूजा आणि वृद्धिश्राद्ध करून सूर्यास्ताच्या पूर्वी औपासनामीला प्रज्वलित करून; आहिताग्नीनें गार्हपत्याग्नीचें

प्रज्वलन करून; विधुर अग्निहोत्र्यानें तर त्रिकांडमंडनानें सांगितलेल्या रीतीनें दर्भाचे पत्नीसह पवमान हृष्टीपर्यंत व पूर्णाहुतीपर्यंत आधान करावें; ब्रह्मचारी असेल तर त्यानें लौकिक अग्नीवर सर्व करावें; विधुरांनें तर व्याहृतीनीं किंवा प्रणवानें अग्नि घेऊन 'अन्वमिरुषसां०' या मंत्रानें आणून 'पृष्टोदिवि०' या मंत्रानें ठेवून त्याच मंत्रानें प्रज्वलित करून 'तत्सवितु०, तौसवितु०, विश्वातिदेव०' ह्या तीन मंत्रांनीं तीन समिधा याव्या. याप्रमाणें अग्नि सिद्ध झाला असतां कावेतील व उपस्थावरील केश वर्ज्य करून इतर केशांचें वपन करून दूध दहीं मिश्रित घृत किंवा उदक घेऊन 'ॐभूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं' या मंत्रानें प्राशन करून आचमन करून पुनः घेऊन 'ॐभुवः सावित्रीं प्रविशामि भगोदेवस्य धीमहि' असें म्हणून दुसरें प्राशन करावें. 'ॐस्वः सावित्रीं प्रविशामि धियोयोनः प्रचोदयात्' असें म्हणून तिसरें प्राशन करावें. 'ॐभूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितु० यात्' अशी सारी गायत्री म्हणून चवथें प्राशन करावें. हा सावित्रीप्रवेश होय. संन्यास-पद्धतींत तर 'त्रिवृदसि' असें म्हणून प्रथम प्राशन, 'प्रवृदसि' यानें दुसरें, 'विवृदसि' यानें तिसरें प्राशन करून 'आपः पुनंतु०' यानें उदक प्राशन करून नंतर सावित्रीप्रवेश सांगितला आहे. तदनंतर आहवनीय अग्नीला प्रज्वलित करून ब्रह्मचाला वसवून आज्यसंस्कार करून चार वेळ किंवा बारा वेळ आज्य सुचींत घेऊन पूर्वी समिध देऊन 'ॐ स्वाहा परमात्मने इदं' ह्या मंत्रानें हवन करून उपवास करावा. तदनंतर सायंकालचा होम व वैश्वदेव करून अग्नीच्या उत्तरेकडे कुशा पसरून त्यांजवर दंड, कमंडलु, कौपीन, आच्छादन, कंधा, पादुका हीं पांच किंवा शिक्क्यादि मिळून दहा हीं ठेवून ब्रह्मसनाचे ठायीं कृष्णाजिनावर बसून रात्री जागरण करून प्रातःकालचा होम केल्यानंतर प्राजापत्या किंवा वैश्वानरी इष्टि करून ऋत्विजांस सर्वस्व देऊन ब्रह्मचाला मधानें पूर्ण भरलेलें रूप्यादि धातुपात्र देऊन काष्ठाचीं पात्रें असतील तीं आहवनीय अग्नींत टाकून पाषाणाचीं व मातीचीं असतील तीं उदकांत टाकावीं. कृष्णाजिन आपण घ्यावें. ज्यानें अग्नीचें आधान केलें नसेल त्यानें वैश्वानर किंवा आग्नेय चरुचा होम (स्थालीपाक) करून पात्रें अग्नींत टाकून 'भूर्भुवःस्वः' यानें उदक स्पर्श करून 'तरत्समंदी०' याचा जप करून विप्रांना भोजन घालून अथवा एणें पुण्याहवाचन करून वपन करून हेम, रुपें, कुशा यांनीं युक्त उदकांनें स्नान करून पुरुषदेवताक चरु करून 'प्राणायस्वाहा' ह्या पांच मंत्रांनीं पांच आज्याहुती देऊन पुरुषसूक्ताचे प्रत्येक ऋचेनें आज्याचा व चरुचा होम करावा.

अत्रविरजाहोमंकेचिदाहुः यथोक्तं शिवगीतासु जुहुयाद्विरजामंत्रैः प्राणापानादिभिस्ततः अनुवाकांतमेकाग्रः समिदाज्यचरुं पृथक् आत्मन्यग्नीन्समारोप्ययाते अत्रेति मंत्रतः भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विसृज्यांगानिसंस्पृशेत् पापैर्विमुच्यते सत्यं मुच्यते नान्न संशयः यथा प्राणापानव्यानोदानसमानामेशु ध्यंतां ज्योतिरहं विरजाविषाम्भाभूयास स्वाहा सर्वत्रालिं गोकुतदेवताभ्य इदमित्यागः वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पावेशु ध्यंतां ज्योतिरहं । त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोस्तीनिमेशु ध्यंतां ज्योतिरहं । शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरुदरजंघाशिभ्रोपस्थपायवोमेशु ध्यंतां ज्योतिरहं । उन्तिष्ठ पुरुष हरितपिंगललोहितदेहिदेहि दापयितामेशु ध्यंतां । पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमेशु ध्यंतां ज्योतिः । शब्दस्पर्शरूपरसगंधामेशु ध्यंतां ज्योतिः । मनोवाक्कायकर्माणिमेशु ध्यंतां । अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिः । आत्मा मेशु ध्यंतां । अंतरात्मा मेशु ध्यंतां । परमात्मा मेशु ध्यंतां । क्षुधेस्वाहा क्षुत्पिपासायस्वाहा विविधैस्वाहा ऋग्विधानायस्वाहा कपोत्कायस्वाहा क्षुत्पिपासामलांज्येष्ठा मलक्ष्मीनाशायम्यहं अभूतिमसमृद्धिं च सर्वानिर्णुद मे पाप्मानं स्वाहा अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानंदमयात्मा मेशु ध्यंतां ज्योतिः । ततः स्वप्नकृदादिहुत्वा ब्रह्मणे हिरण्यमाज्यपात्रं धेनुं च दत्वा संमासिंचं त्वित्युपतिष्ठेत् अत्रकेचिदनम्रेः सावित्रीप्रवेशं पूर्णाहुतिं चाहुः ।

एथं विरजाहोम केचित् सांगतात. जसं शिवगीतेत सांगतो-“एकाग्र चित्तानं सान्या अनुवाकाच्या प्राणापानादिक विरजामंत्रांनीं समिधा, आज्य, चरु यांचा वेगवेगळा होम करावा. तदनंतर 'याते अग्ने यज्ञियातनू०' या मंत्रानें आपल्या ठिकाणीं अग्नीचा समारोप (ज्वालाप्राशन) करून 'अग्नि०' इत्यादि मंत्रांनीं भस्म घेऊन भस्म अंगाला लावून स्पर्श करावा. असें केल्यानें पापापासून खरोखर मुक्त होऊन मोक्ष पावतो यांत संशय नाही." ते विरजामंत्र असे-“प्राणापानव्यानोदानसमानामेशु ध्यंतां ज्योतिरहं विरजा विषाम्भाभूयास स्वाहा । प्राणादिभ्य इदं." असा मंत्रांतील देवतांना सर्वत्र त्याग करावा. 'वाङ्मनश्चक्षुः । वागादिभ्य इदं.' 'त्वक्चर्ममांस० । त्वादिभ्य इदं' 'शिरःपाणिपाद० । शिर आदिभ्य इदं,' 'उन्तिष्ठ पुरुष हरित० । पुरुषादिभ्य इदं,' 'पृथिव्यापस्तेजो० । पृथिव्यादिभ्य इदं,' 'शब्दस्पर्श० । शब्दादिभ्य इदं,' 'मनोवाक्कायकर्माणि० । मन आदिकर्मभ्य इदं,' 'अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिः । अव्यक्तादिभ्य इदं,' 'आत्मा मेशु ध्यंतां । आत्मने इदं,' 'अंतरात्मा मेशु ध्यंतां । अंतरात्मने इदं,' 'परमात्मा मेशु ध्यंतां । परमात्मने इदं,' 'क्षुधेस्वाहा क्षुधे इदं,' 'क्षुत्पिपासायस्वाहा क्षुत्पिपासाय इदं,'

अथयतिधर्माः प्रातरुत्थायब्रह्मणस्पतेइतिजपित्वादंडादीनिमृदंचनिधायमूत्रपुरीषयोगृहस्थचतुर्गुणं शौचंकृत्वाचम्यपर्वद्वादशीवर्ज्यप्रणवेनदंतधावनंकृत्वा तेनैवमृदाबहिःकटिप्रक्षाल्यजलतर्पणवर्ज्यस्नात्वाजंघेप्रक्षाल्यवस्त्रादीनिगृहीत्वामार्जनांतंकृत्वाकेशवादिनमोतनामभिस्तर्पयित्वाॐभूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीतितर्पयेत्ॐभूः स्वाहेतिस्वाहाशब्दांतैःस्वधाशब्दांतैश्चैभिरेवपुनस्तर्पयेदितिकेचित् ततआचम्यांजलिनाप्रणवेनजलमादायव्याहृतिभिरुद्धृत्यगायत्र्यात्रिःक्षित्वागायत्रीजपेत् उदितेसूर्येप्रणवेन व्याहृतिभिर्वाध्वंज्रिदत्वा मित्रस्यचर्षणीत्याद्यैःपूर्वोक्तसौरीभिरिदंविष्णुस्त्रिदंबोब्रह्मजज्ञानमितिचोपस्थायसर्वभूतेभ्योनमइतिप्रदक्षिणमावर्तते ततोतत्वा आदित्यायविद्महेसहस्राक्षायधीमहि तन्नःसूर्यःप्रचोदयादितित्रिजपेत् एवंत्रिकालंविष्णुपूजांब्रह्मयज्ञंचकुर्यात् ।

आतां यतिधर्म सांगतों—

संन्याशानें पहांटेस उठून 'ब्रह्मणस्पते०' याचा जप करून दंडादिक पदार्थ आणि मृत्तिका ठेऊन मूत्रपुरीषांविषयीं गृहस्थाहून चतुर्गुणित शौच (शुद्धि) करून आचमन करून पर्वदिवस व द्वादशी वर्ज्य करून इतर दिवशीं प्रणवानें दंतधावन करून प्रणवानेंच माती लावून कमरेचा बाहेरचा भाग धुवून जलतर्पणरहित स्नान करून जांघा धुवून नंतर वस्त्रादिक घेऊन मार्जनापर्यंत कृत्य करून 'केशवाय नमः' अशा नमोंत नामांनीं तर्पण करून 'ॐभूस्तर्पयामि' याप्रमाणें व्यस्त व समस्त व्याहृतींनीं 'महर्जनस्तर्पयामि' येथपर्यंत तर्पण करावें. केचित् विद्वान्—'ॐभूः स्वाहा, ॐभुवः स्वाहा' अशा स्वाहाशब्दांत व्याहृतिमंत्रांनीं तर्पण करून स्वधाशब्दांत त्याच मंत्रांनीं पुनः तर्पण करावें, असें सांगतात. तदनंतर आचमन करून प्रणवानें अंजलीनें उदक घेऊन व्याहृतिमंत्रांनीं वर करून गायत्रीमंत्रानें त्रिवार टाकून गायत्रीचा जप करावा. सूर्योदय झाला असतां प्रणवानें किंवा व्याहृतिमंत्रांनीं तीन वेळां अर्घ्य देऊन 'मित्रस्यचर्षणी०' इत्यादिक पूर्वीं सांगितलेल्या सूर्यदेवतामंत्रांनीं, व इदंविष्णु०, त्रिदेवः०, ब्रह्मजज्ञानं०, या मंत्रांनीं उपस्थान करून 'सर्वभूतेभ्योनमः' असें म्हणून प्रदक्षिण फिरावें. तदनंतर नमस्कार करून 'आदित्याय विद्महे सहस्राक्षाय धीमहि । तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्' याचा त्रिवार जप करावा. याप्रमाणें त्रिकाल विष्णुपूजा आणि ब्रह्मयज्ञ करावा.

अथभिक्षा विधूमेसन्नमुसलेव्यंगारेभुक्तवज्जने कालेपराह्मभूयिष्ठेनित्यंभिक्षांयतिश्चरेदित्युक्तेकालेउद्धयमितिचतसृभिरादित्यमुपस्थायतेनैक्यंध्यात्वा आकृष्णेनेतिप्रदक्षिणंकृत्वायेतेपंधानइतिजप्त्वाथोसौविष्णुबाह्व्यआदित्येपुरुषोतर्हृदिस्थितः सोहंनारायणोदेवइतिध्यात्वाप्रणम्यतम् त्रिदंडंदक्षिणेत्वंगेततःसंधायबाहुना पात्रंवामकरेक्षित्वाश्लेषयेदक्षिणेनत्वितिबौधायनोक्तदिशात्रीन्पंचसप्रवागृहान्नात्वाभवत्पूर्वभिक्षांयाचित्वापूर्णमसिपूर्णमेभूयाइत्यागल्यशुचिरन्नंप्रोक्ष्य ॐभूःस्वधानमइत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिःसूर्यादिदेवेभ्योभूतेभ्यश्चभूमौक्षित्वाभुक्त्वाप्रणवेनपोडशप्राणायामान्कुर्यादितिसंक्षेपः **गौतमव्याख्यायांभृगुः** यतिहस्तेजलंदत्वाभैक्ष्यंदद्यात्पुनर्जलं भैक्षंपर्वतमात्रंस्यात्तज्जलंसागरोपमं अत्रसर्वत्रमूलमाधवापरार्कमदनरत्नस्मृत्यर्थसारादौज्ञेयम् ।

आतां भिक्षा सांगतों

“लोकांच्या घरांतून धूर येईनासा झाला, मुमळाचे आघात बंद झाले, चुलींत निखारे नाहीसे झाले, सर्वांनीं भोजन केलें, अशा अपराधप्राय कार्लीं यतीनें नित्य भिक्षा मागावी.” ह्या मन्त्रां सांगितलेल्या कार्लीं ‘उद्धयं०’ ह्या चार ऋचांनीं आदित्याचें उपस्थान करून आदित्य व आपण एक आहें, असें ध्यान करून ‘आकृष्णं०’ ह्या मंत्रांनीं प्रदक्षिणा करून ‘येते पंधानः०’ याचा जप करून “जो हा विष्णुरूपी पुरुष सूर्यमंडलामध्यें आहे तोच हृदयांत असलेला नारायण देव मी आहे, असें ध्यान करून त्याला नमस्कार करून नंतर उजव्या अंगावर त्रिदंड घेऊन बाहूनें तो धरून वामहस्तांत पात्र घेऊन उजवा हात त्यास लावून” या **बौधायनानें** सांगितलेल्या प्रकारानें तीन, पांच किंवा सात घरीं जाऊन ‘भवान्भिक्षांयदात्तु’ अशा रीतीनें भवच्छब्दपूर्वक भिक्षा मागून ‘पूर्णमसि पूर्णमेभूयाः’ या मंत्रांनीं अभिमंत्रण करून येऊन शुद्ध त्या अन्नाचें प्रोक्षण करून ‘ॐभूः स्वधानमः’ इत्यादिक व्यस्त व समस्त व्याहृतींनीं सूर्यादि देवांना आणि भूतांना भूमीवर अन्न ठेऊन भोजन करून नंतर प्रणवानें सोळा प्राणायाम करावे, असा हा प्रकार थोडक्यांत सांगितला आहे. **गौतमाच्या व्याख्येंत भृगुः**—“संन्यासी भिक्षेस आला असतां संन्याशाच्या हातांत उदक देऊन नंतर भिक्षा घादी आणि पुढः उदक

घावें. असें दिलें असतां दिलेली भिक्षा पर्वतासारखी होते आणि उदक सागरासारखें होतें.” या सर्वाविषयींचीं मूळ वचनें माधव, अपरार्क, मदनरत्न, स्मृत्यर्थसार इत्यादिकांत पहावीं.

कण्वः एकरात्रवसेद्रामेनगरेपंचरात्रकं वर्षाभ्योन्यत्रवर्षासुमासांस्तुचतुरोवसेत् **जाबालश्रुतौ** शून्यागारदेवगृहृणकुटीवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाभिहोत्रगृहनदीपुलिनगिरिकुहरनिर्झरस्थंडिलेष्वनिकेतनइति **मात्स्ये** अष्टौमासान्विहारः स्याद्यतीनांसंयतात्मनां एकत्रचतुरोमासान्वार्षिकान्व्रवसेत्पुनः अविमुक्तप्रविष्टानांविहारस्तुनविद्यते **अत्रिः** भिक्षाटनंजपस्नानंध्यानंशौचंमुरार्चनं कर्तव्यानिपडेतानिसर्वथानृपदंडवत् मंचकंशुक्लवस्त्रंछत्रीकथालौल्यमेवच दिवास्वापंचयानंचयतीनांपतनानिपद् आप्ननपात्रलोभश्चसंचयःशिष्यसंग्रहः दिवास्वापोवृथाजल्पोयतेवंधकराणिपद् **दक्षः** नाध्येतव्यंनवस्तव्यंनश्रोतव्यंकथंचनयतिपात्राणिघृद्वेणुदार्वालुभयानिच **मदनरत्ने** **अत्रिः** पितृर्थकल्पितपूर्वमन्त्रदेवादिकारणात् वर्जयेत्तादृशीभिक्षांपरबाधाकरीतथा **बृहस्पतिः** नतीर्थवासीनित्यंस्यान्नोपवामपरोयतिः नचाभ्ययनशीलःस्यान्नव्याख्यानपरोभवेत् एतद्वेदार्थभिन्नपरम् **अत्रिः** स्नानंमुरार्चनंध्यानंप्राणायामोबलिस्तुतिः भिक्षाटनंजपःसंध्यात्यागःकर्मफलस्यच एतेयतिधर्माइत्यर्थः अन्येपिमाधवमिताक्षरादौज्ञेयाः यतिधर्मसमुच्चये नत्नानमाचरेद्विभुःपुत्रादिनिधनेश्रुते पितृमातृश्रयंश्रुत्वास्नात्वाशुद्धयतिमांवरः ।

कण्वः—“संन्याशानें वर्षाकालावांचून इतरकालीं एका गावांत एक दिवस राहावें. आणि एका नगरांत पांच दिवस राहावें, जास्ती राहूं नये. वर्षाकालीं एक ठिकाणीं चार महिने राहावें.” **जाबालश्रुतीं**—“शून्यगृह, देवालय, तृणकुटी, वाळू असलेलें वृक्षाचें मूळ, कुंभाराची शाळा, अभिहोत्राचें घर, नदीचें वाळवंट, पर्वताची गुहा, पाण्याचा झरा असलेलें स्थान, आणि स्थंडिल यांचेठायीं संन्याशानें वास करूं नये.” **मात्स्यांत**—“संन्याशांनीं इंद्रियें स्वाधीन ठेऊन आठ महिने फिरावें. आणि वर्षाकालाचे चार महिने एका स्थानीं वास करावा. अविमुक्तक्षेत्र वाराणसी त्या ठिकाणीं जे गेले असतील त्यांनीं दुसऱ्या ठिकाणीं फिरूं नये.” **अत्रिः**—“भिक्षेला फिरणें, जप, स्नान, ध्यान, शौच, देवपूजा, हीं सहा कृत्यें संन्याशांनीं राजाज्ञेप्रमाणें अवश्य करावीं. मंचकावर निद्रा, शुक्लवस्त्रपरिधान, स्त्रियांच्या गोष्टी, लौल्य (चंचल स्वभाव किंवा कोणत्याविषयीं आकांक्षा असणें), दिवसा निद्रा, वाहन हीं सहा कृत्यें संन्याशांना पतन करणारीं आहेत. आसनाचा लोभ, पात्रांचा लोभ, संचय करणें, शिष्य जमविणें, दिवसा निद्रा, योग्य कारणावांचून फार बोलणें, हीं सहा कृत्यें संन्याशाला बंध करणारीं आहेत.” **दक्षः**—“संन्याशानें कोणत्याही ग्रंथाचें अध्ययन करूं नये. कोणत्याही ठिकाणीं एकत्र वास करूं नये. कोणाच्याही गोष्टी व कथाभाग श्रवण करीत असूं नये. संन्याशाचीं पात्रें मातीचीं, वेळूचीं, काष्टाचीं व पांढऱ्या दुधभोंपल्याचीं असावीं. ताम्रादि धातूंचीं संन्याशांनीं वापरूं नयेत.” **मदनरत्नांत** **अत्रिः**—“पूर्वीं पितरांसाठीं तयार केलेल्या अन्नाची, आणि देवादिकांसाठीं तयार केलेल्या अन्नाची, भिक्षा संन्याशानें वर्ज्य करावी. तशीच ज्या भिक्षेपासून दुसऱ्यास पीडा होईल अशा तऱ्हेची भिक्षा संन्याशानें वर्ज्य करावी.” **बृहस्पतिः**—“संन्याशानें नित्य तीर्थाचे ठिकाणीं वास करूं नये. फार उपवास करूं नयेत. सतत अध्ययन करूं नये. आणि सतत व्याख्यान करूं नये.” या वचनानें व्याख्यानाचा निषेध केला हा वेदार्थव्यतिरिक्तविषयक आहे. **अत्रिः**—“स्नान, देवपूजा, ध्यान, प्राणायाम, बलिस्तुति, भिक्षाटन, जप, संध्या आणि केलेल्या कर्मांच्या फलाचा त्याग हीं संन्याशानें दिल्य करावीं.” हे संन्याशाचे धर्म समजावे. दुसरेही संन्याशाचे धर्म आहेत ते **माधव, मिताक्षरा** इत्यादि ग्रंथांतून जाणावे. **यतिधर्मसमुच्चयांत**—“संन्याशानें पुत्रादिकांचें मरण श्रवण केलें असतां स्नान करण्याचें कारण नाहीं. माता व पिता यांचें मरण श्रुत झालें असतां संन्याशी वस्त्रसहित स्नान करून शुद्ध होतो.”

अथयतिसंस्कारःस्मृत्यर्थसारे सर्वसंगनिवृत्तस्यध्यानयोगरतस्यच नतस्यदहनंकार्यनाशौचंनोदकक्रिया तथा कुटीचकंतुप्रदहेतूपुरयेत्तुबहूदकम् हंसोजलेतुनिक्षेप्यःपरहंसंप्रपूरयेत् पालाशमूलेनदीतीरेन्यत्रवागंधपुष्पालंकृतंशंववाद्यघोषेणनीत्वा दंडमात्रंन्याहृतिभिःखात्वासंप्रन्याहृतिभिःप्रोक्ष्य दर्भान्नास्तीर्थनवघटेपंचरत्नोदकंक्षित्वा नारायणःपरंब्रह्मेत्यभिर्मंत्रयतेनैवसंस्नाप्याष्टाक्षरेणवस्त्रगंधपुष्पधूपदीपादीन्दत्त्वाविष्णोहव्यंरक्षस्वेतिशंवंगतेर्निधायेदंविष्णुरितिदक्षिणहस्तेदंडं यदस्यपारंइतिसव्येशिक्यं येनदेवाःपवित्रेणेतिमुखेजलपवित्रंसावित्र्योद्रेपात्रंभूमिःश्वरेतिगुह्येकमंडलुंनिधायचित्तिःसुगितिदशहोत्राभिर्मंत्रयेदितिचिन्त्वा दशदीकायांस्मृत्यर्थसारेच **बृहच्छौनकस्तु** यतिंपुरुषसूक्तेनस्नापयित्वावतंततः प्रणवेनाष्टवारं

प्रोक्षयेदथसर्वतः विष्णोर्हव्यं रक्षस्वेतियजुषाप्रणवेन च गते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे इति मंत्रेण दंडं दद्यादक्षिणहस्तके मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शंखेन भेदयेत् गतं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत् सृगालश्चादिर-
श्वार्थसम्यग्गतं प्रपूरयेदिति ।

आतां यतिसंस्कार सांगतो.

स्मृत्यर्थसारांत-“सर्वसंग परित्याग केलेला, ध्यानयोगाविषयीं तत्पर असलेला असा जो संन्यासी त्याचा दाह करूं नये, आशौच धरूं नये आणि त्याची तिलोदकदानादिक्रिया करूं नये. तसेंच-कुटीचक जो संन्यासी त्याचा दाह करावा. बहूदकाला पुरावा. हंसास उदकामध्ये टाकावा. आणि परमहंसास उत्तम प्रकारें पुरावा.” पळसाच्या मुळाशी किंवा नवीतीरावर अथवा दुसऱ्या चांगल्या पवित्र ठिकाणीं संन्याशाचें प्रेत गंध, पुष्पे यांनीं अलंकृत करून वायघोषानें नेऊन त्या ठिकाणीं व्याहृतिमंत्रांनीं दंडप्रमाण खळगा खणून सप्तव्याहृतिमंत्रांनीं त्रिवार त्याचें प्रोक्षण करून त्यांत दर्भ पसरून नव्या मृन्मय कलशामध्ये पंचरत्ने व उदक घालून ‘नारायणः परंब्रह्म’ या मंत्रानें त्याचें अभिमंत्रण करून त्याच उदकानें प्रेताला स्नान घालून अष्टशतमंत्रानें वस्त्र, गंध, पुष्पे, धूप, दीप हे उपचार अर्पण करून ‘विष्णो हव्यं रक्षस्व’ या मंत्रानें त्या खळगांत प्रेत ठेऊन ‘इदं विष्णुः’ या मंत्रानें प्रेताच्या दक्षिण हस्तांत दंड, ‘यदस्य पारेः’ या मंत्रानें वाम हस्तांत शिष्य, ‘येन देवाः पवित्रेण’ या मंत्रानें मुखांत जलपवित्र, गायत्रीमंत्रानें उदरावर पात्र, ‘भूमिः श्वभ्रः’ या मंत्रानें गुणाचे ठिकाणीं कर्मांतल ठेऊन ‘चित्तिः स्रुः’ या दशहोतृमंत्रानें अभिमंत्रण करावें, असें विश्वादर्शटीकेंत आणि स्मृत्यर्थसारांत सांगितलें आहे. बहूच्छानक तर-“संन्याशाला पुरुषसूक्तानें स्नान घालून गतं (खळगा) केला असेल त्याला प्रणव मंत्रानें आठवेळ चव्हेकडे प्रोक्षण करावें. ‘विष्णो हव्यं रक्षस्व’ या यजूर्ने व प्रणवमंत्रानें गतांचे ठिकाणीं प्रेत ठेऊन ‘इदं विष्णुर्विचक्रमे’ या मंत्रानें दक्षिण हस्तांत दंड द्यावा. ‘भूर्भुवः स्वः’ असें म्हणून शंखानें मस्तकभेद करावा. पुरुषसूक्त म्हणून मीठ घालून गतं भरावा. कोव्हा, कुत्रा इत्यादिकांपासून रक्षण होण्यासाठीं मृत्तिका, पाषाण वगैरे घालून चांगल्या रीतीनें मजबूत गतं भरून टाकावा.”

कुटीचकस्य तु दाहः कार्यः यथा सर्वप्राग्वत्कुत्वाग्निप्रज्वालयसामेर्दक्षिणकरे उपावरो हेत्यवरोह्य निर्मध्य-
वागर्तंचित्तिं कृत्वाग्निनाग्निः समिध्यते इत्यग्निदत्त्वा सावित्र्याप्रणवेन वादहेत् ततोऽष्टशतंप्रणवं नारायणः परंब्रह्मे-
ति जप्त्वा सशिरः प्रणवव्याहृत्या गायत्र्या तद्भस्मास्थीनि तीर्थे क्षिप्वा स्नानाच्छुचिः नास्यान्यदौर्ध्वदेहिकम् त्रिदं-
डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायत इति उशनः स्मृतः एकादशे ह्यिषा पार्वणतदपि त्रिदंडिनः हंसपरमहंसपदीनां पार्व-
णादिकमपि न कार्यमिति शूलपाणिः श्राद्धचिंतामणौ दत्तात्रेयः एकोद्दिष्टजलपिंडमाशौचं प्रेतसत्-
क्रियाम् न कुर्याद्वापि दान्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे प्रेतक्रिययैकोद्दिष्टनिषेधे सिद्धे पुनस्तद्ग्रहणमाब्धिकपरं तेन त-
त्पार्वणमेव त्रिदंडिनां द्वादशेनारायणवलिः तद्विधिरन्यश्च विशेषः प्रागुक्त इत्यलंबहुना ।

कुटीचक संन्याशाचा तर दाह करावा, तो असा-वर नांगितल्याप्रमाणें प्रेत नेऊन खळगा खणून अग्नि प्रज्वलित करून सामिक संन्याशाच्या दक्षिण हस्तांत ‘उपावरोहः’ या मंत्रानें अवरोहण करून किंवा निर्मथन करून गतांचे ठिकाणीं चिति करून ‘अग्निनाग्निः समिध्यते’ या मंत्रानें अग्नि देऊन गायत्रीमंत्रानें किंवा प्रणवमंत्रानें दहन करावें. नंतर प्रणवाचा व ‘नारायणः परंब्रह्म’ याचा अष्टशत जप करून प्रणव, व्याहृति, गायत्री, गायत्रीशिर या मंत्रांनीं ती रीत आणि अस्थि तीर्थांत टाकून स्नान करून कर्ता शुद्ध होतो. संन्याशाची दुसरी और्ध्वदेहिकक्रिया नाही. कारण, “संन्याशानें त्रिदंड ग्रहण केल्यामुळेच त्याला प्रेतत्व प्राप्त होत नाही.” असें उशनसाचें स्मृतिवचन आहे. अकराव्या दिवशीं पार्वण श्राद्ध आहे, तें देखील त्रिदंडी संन्याशाचें आहे. हंभ, परमहंस इत्यादिकांचें पार्वणादिक कोणतेंही कर्म करूं नये, असें शूलपाणि सांगतो. श्राद्धचिंतामणीन दत्तात्रेय-“ब्रह्मीभूत जो संन्याशी त्याचें एकोद्दिष्ट, उदकदान, पिंड, आशौच, प्रेतसक्रिया, इत्यादि कोणतेंही कर्म करूं नये. वार्षिकश्राद्ध मात्र करावें.” या वचनांत प्रेतक्रियेच्या निषेधानें एकोद्दिष्टाचा निषेध सिद्ध झाला असतां पुनः एकोद्दिष्टाचा वेगळा निषेध केला तो अशकरितां की, वार्षिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट करूं नये, असें सुचविण्याकरितां आहे. यावरून तें वार्षिक श्राद्ध पार्वणच करावें. त्रिदंडी संन्याशांचा वाराव्या दिवशीं नारायणबलि करावा. त्या नारायणबलीचा विधि आणि दुसरा विशेष प्रकार पुढीं सांगितला आहे, आतां बहुत सांगणें पुरे करितां.

एवं निरूपितमिदं गहनं तु धर्मतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् तदोपदृष्टिमुपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्य-

विरतंप्रणतोस्त्रितेषु १ मयासद्वासद्वायदिह्रादितमंदमतिनाकिमेतच्छक्यंवाध्यवसितुमपिस्वल्पमतिना तदेवं-
यत्किंचिद्भूदितमिहविख्यातमहिमाप्रतापोयंसर्वोविकसतितुपित्रोश्चरणयोः २ योभट्टतंत्रगणनार्णवकर्णधारः
शास्त्रांतरेषुनिखिलेष्वपिमर्मभेत्ता योत्रश्रमःकिलकृतःकमलाकरेणप्रीतोमुनास्तुसुकृतीबुधरामकृष्णः ३ श्री-
भट्टरामेश्वरसूरिसूनुश्रीभट्टनारायणसूरिसूनोः श्रीरामकृष्णस्यसुतःकृतीमन्यधानिबंधंकमलाकराख्यः ४
नानानिर्णयवत्त्वानिर्णयसिंधुःप्रोच्यतांविबुधाः निर्णयसरोजवत्त्वानिर्णयकमलारोप्यस्तु ५ वसुक्रतुक्रतु-
भूमितेगतेब्देनरपतिविक्रमतोथयातिरौद्रे तपसिशिवतिथौसमापितोयंरघुपतिपादसरोरुहेर्पितश्च ६ जगति
सकलविद्यासिंधुमुष्टिंधयानांपरभणितिपरीक्षायुज्यतेसज्जनानां तदिहमननिबंधेदूषणंभूषणंवायदिभवतिविद-
ग्धैस्तद्व्यवश्यंविमृश्यम् ७ इतिश्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणश्रीमद्रामेश्वरभट्टसूरिसूनुनारायणभट्ट-
सुतविद्वन्मुकुटह्रीरांकुरश्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृतेनिर्णयसिंधौतृतीयपरिच्छेदः

समाप्तः ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

॥ ७ ॥

“है फार गहन धर्माचें तत्त्व ऋषींच्या वचनांनीं आणि मीमांसेच्या न्यायांनीं चांगला विचार करून याप्रमाणें निरूपण
केलें आहे. विद्वानांनीं दोषदृष्टी सोडून त्याचें चांगलें विवेचन करावें, म्हणून त्या विद्वानांच्या ठिकाणीं मी गतत नम्र आहें.
१ मंदमति असा जो मी (कमलाकरभट्ट) यानें या ग्रंथामध्यें जें कांहीं चांगलें किंवा वाईट सांगितलें तें स्वल्पमति अशा
माझ्या मनांत आणण्यास तरी शक्य आहे काय ? तर जें कांहीं यत्किंचित् सांगितलें हा सारा मातापित्यांच्या चरणकमलांचा
विख्यातमहिमाप्रताप विकसित होत आहे. २ कमलाकरानें जो या ग्रंथाचे ठिकाणीं श्रम केला आहे त्या श्रमानें, जो मीमांसा-
सागरामध्यें पोहणारा इतकेंच नव्हे, तर दुसऱ्यास तरविणारा, आणि इतर साऱ्या शास्त्रांचाही ममं भेदन करणारा अर्थात् तत्त्व-
जाणणारा असा धन्य पंडित रामकृष्णभट्ट संतुष्ट असो. ३ पंडित रामेश्वरभट्टाचा पुत्र पंडित नारायणभट्ट, त्याचा पुत्र राम-
कृष्णभट्ट, त्या रामकृष्णभट्टाचा पुत्र जो विद्वान् कमलाकरभट्ट त्यानें हा निबंध रचिला आहे. ४ हे पंडित हो ! नानाप्रकारच्या
शास्त्रार्थांचे निर्णय या निबंधांत आहेत म्हणून या निबंधास निर्णयसिंधु असं म्हणा. आणि शास्त्रार्थांचे निर्णय हीच कमलें
यांत असल्यामुलें निर्णयकमलाकर हेंही नांव याला असो. ५ कमलाकरभट्ट म्हणतो विक्रमशकाचीं १६६८ वर्षें गेल्यावर
रौद्र संवत्सराच्या माघ चतुर्दशीस हा निबंध (निर्णयसिंधु) समाप्त केला आणि तो श्रीरामचंद्राच्या चरणकमलाचेठायीं
अर्पणही केला. ६ ह्या जगामध्यें सकल विद्यासागराला अंजलीनें प्राशन करणाऱ्या अशा सज्जनानां दुसऱ्याच्या उत्तीर्ची
परीक्षा करणें योग्य आहे, म्हणून ह्या माझ्या ग्रंथामध्यें जें कांहीं दूषण किंवा भूषण असेल त्याचा विद्वानांनीं अवश्य
विचार करावा. ७ इतिश्री नवरे इत्युपाधिनेन बाबाजीभट्टात्मजेन कृष्णशर्मणा विरचिता निर्णयसिंधौ
भाषाटीका समाप्ता.



॥ निर्णयसिंधु समाप्त ॥

अथ कृच्छ्रादिलक्षणानि-मदनमहार्णवे-

तत्र पादरूपकृच्छ्रस्वरूपपरिज्ञानेप्राजापत्यस्वरूपस्यज्ञातुमशक्यत्वात्प्रथमपादकृच्छ्रलक्षणमभिधीयते
याज्ञवल्क्यः एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच उपवासेनचैवायंपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः एकभक्तनामदि-
वैवोदितमध्याह्नकालेउक्तनियमैरेककालकृतभोजनम् नक्तंतु सूर्यास्तमयानंतरमुक्तकालेसकृत्कृतभोजनम्
दिवावात्रात्रौवा अप्राथितोपनतस्यसकृद्भोजनमयाचितम् दिवैवाप्राथितोपनतभोजनमित्यपरे स्वीयस्यवा-
परकीयस्यवान्नस्ययाचनंयस्मिन्नविद्यतेतद्व्रतमयाचितम् । दिवावात्राप्यभोजनमुपवासः एवंच चतुरहः-
साध्यःपादकृच्छ्रः एकभक्तादौचग्राससंख्यानियमः **पराशरेणोक्तः** । सायंतुद्वादशप्रासाःप्रातःपंचदश-
स्मृताः चतुर्विंशतिरायाच्याःपरनिरशनंस्मृतमिति । सायनंक्ते प्रातरेकभक्ते **आपस्तंबस्तु** प्रकारांतरेणाह
सायंद्वाविंशतिप्रासाःप्रातःपड्मिंशतिःस्मृताः । चतुर्विंशतिरायाच्याःपरनिरशनाख्यः । कुकुटांडप्रमाणाः-
सूर्यथावास्यांविशेषोस्त्वमिति । अनेनानयोश्चपक्षयोःशतयपेक्षयाविकल्पः **आपस्तंबस्तु** चतुर्धाप्राजा-
पत्यकृच्छ्रंविभज्य वर्णानुक्रमेणपादकृच्छ्रव्यवस्थामाह । त्र्यहंनिरशनंपादःपादश्चायाचितंत्र्यहम् ।
सायंत्र्यहंतथापादःप्रातःपादस्तथात्र्यहम् । प्रातःपादंचरेच्छ्रद्रःसायंवैश्यस्यदापयेत् । अयाचितंतुराज-
न्येत्रिरात्रं ब्राह्मणेस्मृतम् । प्रातःपादएकभक्तत्रयं । सायंपादोनक्तत्रयम् । अयाचितं अयाचितत्रयम् ।
त्रिरात्रंउपवासत्रयं । अयाचितपादउपवासश्चेतिपादद्वयंमिलित्वाधंकृच्छ्रः नक्तपादरहितमवशिष्टंपादत्र-
यंपादोनकृच्छ्रः अतएवाह**आपस्तंबः** मायंप्रातर्विनार्धस्यात्पादोननक्तवर्जितमिति अर्धकृच्छ्रस्यप्रकारांतर-
मप्याहसण्व सायंप्रातस्तथैकैकदिनद्वयमयाचितम् । दिनद्वयंचनाभ्रीयात्कृच्छ्राधंतद्विधीयते । इतिपादकृ-
च्छ्रादिलक्षणम् ।

आतां कृच्छ्रादिकांचीं लक्षणं सांगतो-मदनमहार्णवान्-

त्यांत पादकृच्छ्राचं स्वरूप ममजत्याशिवाय प्राजापत्यकृच्छ्राचं स्वरूप (लक्षण) ममजावयाचं नाही, म्हणून प्रथम
पादकृच्छ्राचं लक्षण सांगतो. **याज्ञवल्क्यः**-“पहिल्या दिवशीं एकभक्त, दुसऱ्या दिवशीं नक्त, तिसऱ्या दिवशीं अयाचित,
आणि चवथ्या दिवशीं उपवास, याप्रमाणे चार दिवस केले असतां पादकृच्छ्र होतो.” एकभक्त म्हणजे दिवसासच मध्याह्नीं
सांगितलेल्या भोजनकाळीं शास्त्रानं सांगितलेल्या नियमांनीं युक्त होऊन अहोरात्रांतून एकवेळां भोजन करणें हें होय. नक्त
म्हणजे सूर्यास्तानंतर सांगितलेल्या भोजनकाळीं एकवार भोजन करणें होय. अयाचित म्हणजे सांगितल्यावांचून कोणी आणून
दिलेल्या अन्नाचें दिवसा किंवा रात्रीं एकवेळां भोजन करणें होय. कोणी आणून दिलेल्या अन्नाचें दिवसाच भोजन करणें हें
अयाचित, असें इतर सांगतात. स्वीय किंवा परकीय अन्नाची याचना ज्यांत नाही तें व्रत अयाचित होय. दिवसा आणि
रात्रीं देखील भोजन न करणें याचें नांव उपवास. याप्रमाणें चार दिवसांनीं साध्य करावयाचा तो पादकृच्छ्र होतो. एकभक्त,
नक्त, अयाचित यांविषयीं प्रासांची संख्या सांगतो **पराशरः**-“नक्तास १२ ग्रास सांगितले आहेत, एकभक्तास १५ ग्रास,
अयाचितास २४ ग्रास आणि उपवास म्हणजे निरशन होय.” **आपस्तंब** तर दुसऱ्या प्रकारानें सांगतो-“नक्तास बावीस
ग्रास, एकभक्तास सव्वीस ग्रास, अयाचितास चोवीस ग्रास, पुढचे तीन दिवस निरशन. ते ग्रास कोंबड्याच्या अंज्याएवढे
असावे, म्हणजे जेवढा ग्रास केला असतां आयामावांचून तोंडांत जाईल तेवढा करावा.” ग्रामांची संख्या पराशरानें वेगळी
सांगितली, आणि आपस्तंबानें निराळी सांगितली यांतून कोणती ध्यावी, असें म्हटलें तर व्रत करणारानें शक्ति पाहून त्या
शक्तीप्रमाणें योग्य असेल ती ध्यावी. **आपस्तंब** तर प्राजापत्यकृच्छ्राचें चार भाग करून ब्राह्मणादि चार वर्णांना अनुक्रमानें
एक एक पादकृच्छ्र सांगतो, तो असा-“तीन दिवस निरशन करणें हा एक पाद, तीन दिवस अयाचित करणें हा एक पाद,
तीन दिवस नक्त करणें हा एक पाद, तीन दिवस एकभक्त करणें हा एक पाद. एकभक्तपाद शूद्रानें करावा, नक्तपाद वैश्यानें
करावा, अयाचितपाद क्षत्रियानें करावा, आणि निरशनपाद ब्राह्मणानें करावा. अयाचितपाद आणि निरशनपाद हे दोन
मिळून अर्धकृच्छ्र होतो. नक्तपाद वेगळून बाकीचे तीन पाद मिळून पादोन (पाऊण) कृच्छ्र होतो. म्हणूनच सांगतो
आपस्तंबः-“नक्त व एकभक्त हे दोन पाद वेगळून बाकीचे दोन पाद अर्धकृच्छ्र होतो.” आणि नक्तपाद वेगळून बाकीचे
तीन पाद पादोनकृच्छ्र होतो.” अर्धकृच्छ्राचा दुसरा प्रकार तोच सांगतो-“एक दिवस एकभक्त, एक दिवस नक्त, दोन
दिवस अयाचित, आणि दोन दिवस उपवास, मिळून अर्धकृच्छ्र होतो. याप्रमाणें पादकृच्छ्रादिकांचीं लक्षणे समजावीं.

अथप्राजापत्यकृच्छ्रलक्षणम् याज्ञवल्क्यः यथाकथंचित्रिगुणःप्राजापत्योयमुच्यते । अत्रायमित्यनेनसर्वनाम्ना एकभक्तेनकेनतथैवायाचितेनच । उपवासेनचैवायंपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितइतिस्वोक्तः पादकृच्छ्रःपरामृश्यते । यथाकथंचिदित्यनेनचत्वारःपक्षाउपात्ताः एकभक्तादीनामानुलोम्येनस्वस्थानविवृद्धिरित्येकःपक्षः तद्यथा एकभक्तत्रयंनक्तत्रयमयाचितत्रयमुपवासत्रयंचेतिकमेणैकभक्तादीनांत्रयाणांकरणमानुलोम्येनस्वस्थानविवृद्धिरित्युच्यते यदाह**मनुः** त्र्यहंप्रातरुग्रहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् । त्र्यहंपरंचनाभ्रीयात्प्राजापत्यंचरनद्विजः । प्रातिलोम्येनस्वस्थानविवृद्धिरितिद्वितीयःपक्षः उपवासत्रयमयाचितत्रयंनक्तत्रयमेकभक्तत्रयमितिप्रातिलोम्येनस्वस्थानविवृद्धिः अमुंपक्षमाह **वसिष्ठः** प्रातिलोम्यंचरेयुरिति । दंडकलितवदावृत्तिरितितृतीयःपक्षः एकभक्तनक्तायाचितोपवासान्क्रमेणैकैकं कृत्वापुनरेकभक्तादीननुक्रमेणावर्तयेत् इयमावृत्तिर्दंडकलितवदावृत्तिरित्युच्यते एवंश्रिग्रावृत्तौप्राजापत्यकृच्छ्रंभवति अमुमपिपञ्चवसिष्ठपवाहः अहःप्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितम् । अहःपराकंतत्रैकमेवंचतुरहोपरौ । पराकशब्द उपवासपरः तथा अनुग्रहार्थविप्राणांमनुधर्मभृतांवराः बालवृद्धानुरेप्वेवंशिशुकृच्छ्रमुवाचहेति पूर्वोक्तपक्षत्रयमध्ये अन्यतमपक्षपक्षीकारेण वक्ष्यमाणजपहोमविवर्जनेनाचरणंचतुर्थःपक्षः एतंपक्षमाह**अंगिराः** तस्माच्छ्रद्धं समासाद्य सदाधर्मपथेस्थितम् । प्रायश्चित्तंप्रदातव्यंजपहोमविवर्जितमिति इतिप्राजापत्यकृच्छ्रलक्षणं ।

आनां प्राजापत्यकृच्छ्राचं लक्षणं सांगतो.

याज्ञवल्क्यः—“हा वर गांशितेन पादकृच्छ्रं कया तरी तिष्यत केन अमनां तो प्राजापत्य होतो.” कया तरी तिष्यत केन अमनां, असे गांशितल्यावरून चार पक्ष उत्पन्न झाले, ते असे—गांशितलेल्या अनुक्रमाने एकभक्तादिकांची तिष्यत करणे हा एक पक्ष. तो असा तीन दिवस एकभक्त, तीन दिवस नक्त, तीन दिवस अयाचित, आणि तीन दिवस उपवास, हा एक प्राजापत्य होतो. हा मनु सांगतो—“प्राजापत्य करणाराने तीन दिवस एकभक्त, तीन दिवस नक्त, तीन दिवस अयाचित, आणि तीन दिवस उपवास करणे.” आतां उलट क्रमाने तिष्यत करावी, म्हणजे दुसरा पक्ष होय. तो असा—तीन दिवस उपवास, तीन दिवस अयाचित, तीन दिवस नक्त, तीन दिवस एकभक्त. हा पक्ष सांगतो **वसिष्ठः**—“प्रतिशेकमाने प्राजापत्य करावा.” दंडकलितवत् आवृत्ति करणे हा तिष्यत पक्ष, तो प्रसा—एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास हे एक एक दिवस करून पुनः त्याच क्रमाने दोन वेळां करावे, या आश्रया या दंडकलितवत् आवृत्ति म्हणजे आहे. याप्रमाणे या तीन आवृत्ति झाल्या (म्हणजे १० दिवस झाले) म्हणजे प्राजापत्य कृच्छ्र होतो. हाही पक्ष **वसिष्ठः** सांगतो—“एक दिवस एकभक्त, एक दिवस नक्त, एक दिवस अयाचित, आणि एक दिवस उपवास, असे चार दिवस झाले. याप्रमाणे पुढेही चार चार दिवस दोन वेळां करावे, धर्म जाणणाऱ्या श्रेष्ठ मनुनें ब्राह्मणाच्या अनुग्रहासाठीं बालक, वृद्ध, आतुर यांस हा शिशुकृच्छ्र गांशितला आहे.” कृच्छ्रास उक्त जे जपहोम ते वेगळून दरीती गांशितलेल्या तीन पक्षांपैकी कोणत्याही एक पक्षाचे आचरण करणे तो नवथा पक्ष होय. हा पक्ष सांगतो **अंगिराः**—“सावैकाल धर्मेमागीं वनेन करणाऱ्या अशा शूद्रास कोणत्याही कारणासुद्धे कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त सांगायचाचें तें जपहोमविरहित कृच्छ्रादि सांगायें.” याप्रमाणे प्राजापत्याचें लक्षण गमजावें.

अथानिकृच्छ्रलक्षणम्—

मनुः एकैकग्रासमश्रीयात्त्र्यहानित्रीणिपूर्ववत् । त्र्यहंचोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रंचरनद्विजः । त्रीणि त्र्यहानिनवदिनानि पूर्ववत् एकभक्तादिकाले तन्नियमयुक्तःसन्नित्यर्थः **याज्ञवल्क्यः** अयमेवातिकृच्छ्रःस्यात्पाणिपूरान्नभोजनः । अयमेवपूर्वोक्तप्राजापत्यधर्मकण्व अयंतुविशेषः एकभक्तनक्तायाचितदिनेपुपाणिपूरणमात्रंप्रसूतिपूरणमात्रमंत्रंमुंजीत नतुपूर्वोक्तद्वाविंशत्यादिप्रासानिति अत्रच पाणिपूरणान्नमात्रमेवविधेयं नतुभोजनम् अतोयेषुदिनेपुप्राजापत्येभोजनंप्राप्तंदनुवादेनपाणिपूरणताविधीयतेइति नोपवासदिनेपुपाणिपूरान्नभोजनप्राप्तिः । मनुयाज्ञवल्क्योक्तग्रासपाणिपूरान्नमात्रभोजनयोःशक्त्यपेक्षोविकल्पः पापापेक्षोवा अतिकृच्छ्रपादादिव्यवस्थाप्राजापत्यवदेवद्रष्टव्या इत्यतिकृच्छ्रलक्षणम् ।

आतां अतिकृच्छ्रलक्षणं सांगतो.

मनुः—“पूर्वी प्राजापत्यकृच्छ्रास गांशितल्याप्रमाणे नियमयुक्त होऊन एकभक्त, नक्त, अयाचित यांच्या भोजनसमयीं

नऊ दिवस एक एक ग्रास भक्षण करावा, आणि पुढचे तीन दिवस उपवास करावा, म्हणजे हा अतिकृच्छ्र होतो.” याज्ञवल्क्य-“प्राजापत्यकृच्छ्रास ज्या दिवशी ज्या धर्मानें जसें भोजन सांगितलें आहे त्या दिवशीं त्या धर्मानें तसें भोजन, हातांत राहिल तितक्या अन्नाचें भोजन करणें हा अतिकृच्छ्र होतो.” या कृच्छ्रांत गारे धर्म प्राजापत्याचे आहेत; विशेष काय तो इतकाच कीं, एकभक्त, नक्त, अयाचित या दिवशीं पयामर अन्न खावें, प्राजापत्यांत सांगितलेले प्रास खाऊं नयेत. यावरून उपवासाच्या दिवशीं पयामर देखील अन्न खावयाचें नाहीं. यांत मनुनें सांगितलेलें एकग्रासमात्र भोजन आणि याज्ञवल्क्यानें सांगितलेलें पयामर अन्नाचें भोजन याची व्यवस्था शक्ति पाहून किंवा पाप पाहून करावी. अतिकृच्छ्राचे पादादिकांची व्यवस्था प्राजापत्याप्रमाणेंच गमजावी.

अथकृच्छ्रातिकृच्छ्रः तत्रगौतमः अचभक्षस्तृतीयःसकृच्छ्रातिकृच्छ्रइति । द्वादशरात्रमित्यनुवर्तते अतोद्वादशरात्रमुदकेनैववर्तनम् नाग्नेनेत्युक्तंभवति । यमः एकैकंपिंडमश्रीयान्त्र्यहंकल्पेच्यहंनिशि । अयाचितंत्र्यहंपिंडंवायुभक्षयहंपरम् । अतिकृच्छ्रंचरेदेतत्पवित्रपापनाशनम् । चतुर्विंशतिरात्रंनुनियताः समाजितेंद्रियः । कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत एकस्थाने द्विजोत्तमः । कल्पेप्रातः एकभक्तकालेइतियावत् । एकस्थाने इति एकयत्नेनपूर्वोक्तद्वादशाहमाध्यातिकृच्छ्रयोरेकःकृच्छ्रातिकृच्छ्रोभवतीत्यर्थः । **याज्ञवल्क्यः** कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसादिवसानेकविंशति । यमेनेतुचतुर्विंशतिरात्रमाध्वेकृच्छ्रातिकृच्छ्रंभोजनदिनेष्वेकैकग्रासमात्रविधानाद्दुग्धभोजनेपिपत्रपुटिकादिभिर्मासपरिमाणंकृत्वैकग्रासपर्याप्तदुग्धमश्रीयान् । एवंकर्तुमशक्तश्चेत्कृच्छ्रप्रकृतिभूतप्राजापत्योक्तग्रीत्यासायंतुद्वादशग्रासाहव्यादिग्राससंख्ययातावद्दुग्धपातय्य भोजनदिनेपुनौतमाशुक्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रपक्षेपुशक्त्यपेक्षयाविकल्पः इतिकृच्छ्रातिकृच्छ्रलक्षणम् ।

आनां कृच्छ्रानिकृच्छ्र सांगतो.

गौतम-“वारा दिवस केवळ उदक भक्षण करून राहणें; अन्न खावयाचें नाहीं, तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र होय.” **यम-**“अतिकृच्छ्र करणारानें दोनप्रहरां एकभक्तकालीं एक एक ग्रास तीन दिवस भक्षण करावा. रात्री नक्तकालीं एक एक ग्रास तीन दिवस भक्षण करावा. तीन दिवस अयाचितना एक एक ग्रास भक्षण करावा. आणि तीन दिवस वायुभक्षण करून राहावें. हा अतिकृच्छ्र पवित्र करणारा व पापनाश करणारा आहे. याच नियमानें जितेंद्रिय होऊन चौवीस दिवस राहावें, म्हणजे दोन अतिकृच्छ्र एकापुढें एक असें करणें म्हणजे तो एक कृच्छ्रातिकृच्छ्र होतो, असा फारिदाय.” **याज्ञवल्क्य-**“एकवीस दिवस दूध भक्षण करून राहणें तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र होतो.” या याज्ञवल्क्यानें सांगितलेल्या कृच्छ्रातिकृच्छ्रांत, दूध किती भक्षण करावें ? व तें कोणत्या दिवशीं ? असें कोणी म्हणल तर सांगितानेनाचें सांगितलेल्या कृच्छ्रातिकृच्छ्रांत चौवीस दिवसांमध्ये भोजनदिवसांत एक एक ग्रासच सांगितल्यामुळे या ठिकाणीं दुग्धभक्षण सांगितलें तर ग्रासपरिमित दुग्धाचें प्रमाण करून एक एक ग्रासप्रमाणानें दुग्ध भक्षण करावें. असें करण्यावरून अन्नक असेल तर सर्वे कृच्छ्राची प्रकृति जो प्राजापत्य कृच्छ्र त्याच्या रीतीनें नक्त भोजनाचे वारा ग्रास इत्यादि जी ग्रासगळ्या असेल तिनें दूध भोजनदिवसांचे ठायीं घ्यावें. ह्या कृच्छ्रातिकृच्छ्रांत गौतमानें एक पक्ष (केवळ उदकावर वर्तन) नागितला. यमानें चौवीस दिवसांचा सांगितला. आणि याज्ञवल्क्यानें एकवीस दिवसांचा सांगितला. ह्या तीन पक्षांतून ज्याची जशी शक्ति असेल त्यानें तो पक्ष घ्यावा.

इति कृच्छ्रातिकृच्छ्रः

अथतप्तकृच्छ्रः याज्ञवल्क्यः तप्तक्षीरघृतांबूनामेकैकंप्रत्यहंपिबेत् । एकरात्रोपवासश्चतप्तकृच्छ्र उदाहृतः अयंचदिनचतुष्टयमाध्यःकृच्छ्रः मिताक्षरायांतु अयमहातप्तकृच्छ्रइत्युक्तम् । तप्तकृच्छ्रस्तुद्विरात्रसाध्यइत्यप्युदीरितम् । तप्तक्षीरघृतांबुभिःसप्तस्तैरेकदिनंवर्ततेएकाह उपवासइतिब्रह्मसाध्यत्वंतप्तकृच्छ्रस्येति । तप्तकृच्छ्रंचरन्विप्रोजलक्षीरघृतानित्यान । प्रतित्र्यहंपिबेदुष्णान्मकृत्स्नार्याममाहितः । प्रतित्र्यहंपिबेदितिजलादीनप्रत्येकंत्र्यहंत्र्यहंपिबेदित्यर्थः अयंचद्वादशरात्रमाध्यःकृच्छ्रः । जलादिपरिमाणमाहपराशरः अपांपिबेत्तुत्रिपलद्विपलंतुपयःपिबेत् । पलमेकंपिबेत्सर्पिर्बिरात्रांचोष्णमारुतमिति । त्रिरात्रमुष्णोदकस्यवाष्पंपिबेदित्यर्थः त्रिरात्रमितिपूर्वत्राप्यन्वेति अतःअपांत्रिपलंत्रिरात्रंपिबेदित्येवंबोध्यम् । प्रकारांतरेणाप्यास्तप्तकृच्छ्रंपराशरः पदपलंतुपिबेदंभस्त्रिपलंतुपयःपिबेत् । पलमेकंपिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रंविधीयते । अत्रजलादिमुष्णमेवग्राह्यम् ।

आतां तप्तकृच्छ्र सांगतो.

याज्ञवल्क्य—“कठत दूध एक दिवस, कठत तूप एक दिवस, कठत पाणी एक दिवस प्यावें आणि एक दिवस उपवास करावा. याप्रमाणें हें चार दिवस केलें असतां हा तप्तकृच्छ्र होतो.” **मिताक्षरें** तर हा महातप्तकृच्छ्र म्हणून सांगितलें आहे. आणि तप्तकृच्छ्र तर दोन दिवसांनीं होतो, असेही मिताक्षरेंत सांगितलें आहे. त्याचा प्रकार असा—दूध, तूप, पाणी हे तीनही पदार्थ तापवून एक दिवस प्राशन करून राहावें. आणि एक दिवस उपवास करावा. म्हणजे हा तप्तकृच्छ्र दोन दिवसांनीं साध्य होतो. अन्य प्रकारांनीं सांगतो—“तप्तकृच्छ्र करणाऱ्या ब्राह्मणानें एकवार ज्ञान करून समाधान अंतःकरणानें तीन दिवस उष्णोदक प्यावें. तीन दिवस उष्ण दूध प्यावें. तीन दिवस उष्ण तूप प्यावें. तीन दिवस उष्णवायु प्यावा.” हा कृच्छ्र चार दिवसांनीं साध्य होतो. या ठिकाणीं उदकादिकांचें प्रमाण सांगतो **पराशर**—“तीन पलें (१२ कर्ष) उदक प्यावें दूध दोन पलें (८ कर्ष) प्यावें. तूप एक पल (४ कर्ष) प्यावें. आणि तीन दिवस उष्णवायु (उष्णोदकाची वाफ) प्यावा. बरती सांगितलेले पदार्थ तीन तीन दिवस प्यावे. तप्तकृच्छ्राचा दुसरा प्रकार सांगतो **पराशर**—“उदक सहा पलें (२४ कर्ष), दूध तीन पलें (१२ कर्ष), तूप एक पल (४ कर्ष), याप्रमाणें प्यावें म्हणजे तप्तकृच्छ्र होतो.” हे उदकादिक पदार्थ उष्णच घ्यावे.

अथसांतपनम् याज्ञवल्क्यः कुशोदकंतुगोःक्षीरंदधिमूत्रंशकृद्घृतम् । प्राश्यापरेह्यपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनंचरन्नित्यपराकपाठः मिताक्षरापाठस्तु गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकमिति गोमूत्रादीनिषड-
प्येकीकृत्यपीत्वाऽऽहारांतररहितःसंतिष्ठेत् परेद्युरुपवसेदितिदिनद्वयसाध्यःकृच्छ्रः याज्ञवल्क्येनोत्तरश्लोके-
गोमयादीनांपृथक्पृथक्षट्सुदिनेषुप्राशनविधानादत्रमिलितानामेकदिनएवप्राशनंगम्यते **पराशरः** गोमूत्रं-
गोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकं । निर्दिष्टपंचगव्यंतुपवित्रंकायशोधनमिति । गोमूत्रंताम्रवर्णायाःश्वेतायाश्चापि गोमयम् । पयःकांचनवर्णायानीलायाश्चतथादधि । घृतंचकृष्णवर्णायाःसर्वकापिलमेववा । अलाभेसर्ववर्णा-
नांपंचगव्येष्वयंविधिः । गोमूत्रेमाषकास्त्वष्ट्रौगोमयस्यतुषोडश । क्षीरस्यद्वादशप्रोक्तादभ्रस्तुदशकीर्तिताः । गोमूत्रवद्घृतस्येष्टास्तदर्धंतुकुशोदकम् । गायत्र्यादायगोमूत्रंगंधद्वारेतिगोमयम् । आप्यायस्वेतिचक्षीरंदधि-
क्वाणोतिवैदधि । तेजोसिशुकमित्याज्यंदेवस्यत्वाकुशोदकम् । पंचगव्यमृचापूतंहोमयेदग्निसंनिधौ । सप्तप-
त्रास्तुयेदर्भाअच्छिन्नाप्राःशुकत्विषः । एतैरुद्धृत्यहोतव्यंपंचगव्यंयथाविधि । इरावतीइदंविष्णुर्मानस्तोकेच-
शंवती । एताभिश्चैवहोतव्यंहुतशेषंपिवेद्विजः । प्रणवेनसमालोड्यप्रणवेनाभिर्मन्त्र्यच । प्रणवेनसमुद्धृत्यत-
त्पिबेत्प्रणवेनतु । मध्यमेनपलाशस्यपद्मपत्रेणवापिबेत् स्वर्णपात्रेणताम्रेणब्रह्मतीर्थेनवापुनः । यन्वगस्थिगतं पापंदेहेतिष्ठतिमानवे । ब्रह्मकूर्चोपवासस्तुदहत्यग्निरिवेधनमिति । याज्ञवल्क्योक्तदिनद्वयसाध्यसांतपनमेव-
ब्रह्मकूर्चइतिब्रह्मकूर्चोपवासइतिचाभिधीयते । विज्ञानेश्वरस्तुपूर्वेद्युरोष्यापरेद्युरुत्तरीत्यापंचगव्यप्राशनं ब्रह्मकूर्चइतिमन्यते ।

आतां सांतपन सांगतो—

याज्ञवल्क्य—“कुशोदक, गाईचें दूध, गोदधि, गोमूत्र, गोमय, गोघृत हीं प्राशन करून दुसऱ्या दिवशीं उपवास करावा, म्हणजे सांतपन कृच्छ्र होतो.” असा अपरार्कप्रथांत पाठ आहे. **मिताक्षरे**चा पाठ तर गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घृत, आणि कुशोदक” असा आहे. एक दिवशीं गोमूत्रादिक सहाही द्रव्यें एकत्र करून प्यावीं, आणि दुसरा कोणताही आहार केल्यावांचून त्या दिवशीं राहावें. दुसऱ्या दिवशीं उपवास करावा. याप्रमाणें दोन दिवसांनीं साध्य होणारा हा कृच्छ्र आहे. याज्ञवल्क्यांनीं पुढच्या श्लोकांत (महासांतपनलक्षणांत) गोमयादिक सहा द्रव्यें वेगवेगळीं सहा दिवस प्राशन करण्यास सांगितल्यामुळें या ठिकाणीं एकत्र मिळवून एक दिवसच प्राशन करावीं, असें सुचविल्यासारखें होतें. **पराशर**—“गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घृत, कुशोदक हें पंचगव्य म्हटलें आहे. हें पवित्र असून शरीर शुद्ध करणारें आहे. ताम्रवर्ण गाईचें गोमूत्र, पांढऱ्या गाईचें गोमय, पिवळ्या गाईचें दूध, निळ्या गाईचें दही, काळ्या गाईचें घृत घ्यावें. अशा वर्णांच्या गाईचे हे पदार्थ न मिळतील तर सारे पदार्थ कपिल गाईचे घ्यावे. गोमूत्र आठ मासे घ्यावें, गोमय १६ मासे घ्यावें, दूध १२ मासे घ्यावें, दही १० मासे घ्यावें, घृत ८ मासे घ्यावें, सर्वांच्या निम्मे कुशोदक घ्यावें. गायत्रीमंत्रानें गोमूत्र घ्यावें, ‘गंध-
द्वारो’ मंत्रानें गोमय घ्यावें. ‘आप्यायस्व’ मंत्रानें दूध घ्यावें. ‘दधिकाण्यो’ या मंत्रानें दही घ्यावें. ‘तेजोसिशुकं’ या मंत्रानें घृत घ्यावें. ‘देवस्यत्वा’ या मंत्रानें कुशोदक घ्यावें. या मंत्रांनीं पवित्र केलेल्या पंचगव्याचा अग्नीत होम करावा.

सात पानांचे अच्छिन्नाय पोपटाच्या वर्णाचे असे दर्भ घेऊन त्या दर्भांनी पंचगव्याचा अग्नीत यथाविधि 'इरावती०' 'इंद्रं विष्णु०' 'मानसोके०' 'शंवती०' या ऋचांनी होम करावा. आणि होम करून शेष असलेले पंचगव्य ब्राह्मणाने प्राशन करावे. प्रणवाने आलोडन करून प्रणवाने अभिमंत्रण करून प्रणवाने उद्धृत करून ते प्रणवाने प्राशन करावे. पळसाच्या मधल्या पानाने किंवा कमलपत्राने घ्यावे. अथवा सुवर्णाच्या किंवा तांब्याच्या पात्राने अथवा ब्रह्मतीर्थाचे घ्यावे. प्राशनाचा मंत्र- 'यत्पवगस्थितं पापं देहे तिष्ठति मानवे । ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्यग्निरिवेन्धनम् । याज्ञवल्क्याने सांगितलेले दोन दिवसांनी साध्य होणारे सांतपन, त्यालाच ब्रह्मकूर्च आणि ब्रह्मकूर्चोपवास म्हणतात. विज्ञानेश्वर तर- पूर्वदिवशी उपवास करून दुसऱ्या दिवशी, सांगितलेल्या रीतीने पंचगव्य प्राशन करणे, याला ब्रह्मकूर्च असे मानितो.

मरीचिः देवताःसंप्रवक्ष्यामिआनुपूर्व्येणयस्ययाः । वरुणोदेवतामूत्रेगोमयेहव्यवाहनः सोमःक्षीरेद्-
ध्रिवायुधृतेरविरुदाहृतः । गोमूत्रंताम्रवर्णायाःश्वेतायास्त्वथगोमयम् । पयःकांचनवर्णायानीलायास्त्वथवा-
दधि । घृतंवैकुण्ठवर्णायाविभक्तवर्णगोचरम् । उदकंसर्ववर्णतुतस्यवर्णोनगृह्यते । गोमूत्रस्यपलंप्राद्यमंगुष्ठा-
धृतुगोमयम् । क्षीरस्यत्रिपलंप्राद्यपलमेकंकुशोदकम् । आपोहिष्ठेतिवालोड्यउद्यम्यप्रणवेनतु । अग्नयेस्वा-
हासोमायस्वाहेंद्रायेदंविष्णुर्मानसोकेगायत्र्याप्रजापतेनत्वदेतानित्यमौजुहुयात् । नदीप्रस्त्रवणेतीरेरहस्येनि-
र्ऋतेतथा । शुक्लवासाःपवित्रात्माअहोरात्रोपितःपिबेत् । पालाशेनचपत्रेणबिल्वपत्रेणवापिबेत् । तृतीयंता-
म्रपात्रंब्राह्मपात्राणितानिवै । प्रतिमासंपौर्णमास्याममावास्यांचवापिबेत् । ब्रह्महापरदारीचयेचान्येस्थिगता-
मलाः । ब्रह्मकूर्चोदहेत्सर्वयथाभिस्तृणमेवतु । **जाबालः** गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् । एकैकं
प्रत्यहंपीत्वात्वहोरात्रमभोजनम् । कृच्छ्रःसांतपनोनामसर्वपापप्रणाशन इति । एतज्जाबालोक्तंसप्ताहसाध्यं
सांतपनम् । इति सांतपनलक्षणम् । **अथयतिसांतपनम् शंखः** एतदेवत्र्यहोभ्यस्तंयतिसांतपनं
स्मृतम् । एतदेवेत्यनेनमिश्रितंपंचगव्यंपरामृश्यते तत्पंचगव्यंदिनत्रयमाहारांतरनिरपेक्षेणपिबेदित्यर्थः इति-
यतिसांतपनलक्षणम् ।

मरीचिः—'ज्याच्या ज्या देवता आहेत त्या अनुक्रमाने मांगतां—गोमूत्रांत देवता वरुण, गोमयांत हव्यवाहन, दुधांत सोम, दद्यांत वायु, घृतांत रवि होय. ताम्र गाईचे गोमूत्र, शुभ्र गाईचे गोमय, पिवळ्या गाईचे दूध, निळ्या गाईचे दही, काळ्या गाईचे घृत, या प्रत्येकाचे वेगवेगळे वर्ण अमात्रे. उदक सर्व वर्णांचे आहे. कारण, त्याचा वर्ण कोणताही एवमजत नाही. गोमूत्र पलपरिमित (४ कपे) घ्यावे, गोमय अर्था अंगुष्ठाइतके घ्यावे, दूध तीन पले (१२ कपे) घ्यावे, कुशो-
दक एक पल (४ कपे) घ्यावे, 'आपोहिष्ठा०' ह्या मंत्राने आलोडन करून प्रणवाने उद्धृत करून 'अग्नयेस्वाहा' 'सोमाय०' 'इंद्राय०' 'इंद्रंविष्णु०' 'मानसोके०' गायत्री, 'प्रजापतेनत्वदेता०' ह्या मंत्रांनी त्या पंचगव्याचा अग्नीत होम करावा. नदीच्या प्रवाहाजवळ तीरावर एकांत स्थळीं अहोरात्र उपवास करून शुक्लवस्त्र परिधान करून पवित्र होऊन ते पंचगव्यप्राशन करावे. पळसाच्या पानाने किंवा वेलाच्या पानाने अथवा ताम्रपात्राने ते प्राशन करावे. ती ब्रह्मपात्रे म्हटली आहेत. प्रत्येक मासाच्या पौर्णिमेस किंवा अमावास्यास ते पंचगव्य प्राशन करावे. ब्रह्महत्या करणारा, परस्त्रीगमन करणारा यांची पापे; व दुसरी जीं अस्थिरगत पापं त्या सर्वांना हा ब्रह्मकूर्च (उपोषणपूर्वक पंचगव्यप्राशन) जाळून टाकितो, जमा अग्नि तृणास जाळितो तद्वत्. " **जाबालः**—'गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घृत, कुशोदक हीं एकेक प्रत्यही प्राशन करून वहोरात्र उपवास करावा, म्हणजे सांतपन कृच्छ्र होतो; हा कृच्छ्र सर्व पापांचा नाश करणारा आहे. " हें जाबालाने सांगितलेले सात दिवसांनी साध्य होणारे सांतपन समजावे. इति सांतपनलक्षण. आतां **यतिसांतपन**. शंख—'मिश्रित पंचगव्य तीन दिवस प्राशन करून राहोवं. दुसरा कोणताही आहार करू नये, म्हणजे ते यतिसांतपन होय."

अथमहासांतपनम् याज्ञवल्क्यः—पृथक्सांतपनद्रव्यैःपडहःसोपवासकः । सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयं
महासांतपनःस्मृतः गोमूत्रगोमयक्षीरंदधिघृतकुशोदकानिसांतपनद्रव्याणि एकैकस्मिन्दिनेएकैकपिबेत् ।
सप्तमदिनउपवासः एतानिकुशोदकादिप्राशनादीनिआहारांतरनिवर्तकानि एवमन्यत्रापि । **यमः** त्र्यहंपिबे-
त्तुगोमूत्रंत्र्यहंवैगोमयंपिबेत् । त्र्यहंदधित्र्यहंसर्पिकुशंक्षीरंततःशुचिः । महासांतपनंछेतत्सर्वपापप्रणाश-

१ 'अंगुल्यधेतीर्थे देवं स्वल्पंगुल्योर्मूले कायं । मध्येंगुष्ठांगुल्योः पितृवं मूलत्वंगुष्ठस्य ब्राह्मं' अथ—अंगुलीच्या अग्रभागी देवतीर्थे, कनिष्ठिका व अनामिका यांच्या मुळांत प्रजापतितीर्थे, अंगुली व आंगठा यांच्या मध्ये पितृतीर्थे आणि आंगठ्याच्या मुळांत ब्राह्मतीर्थे होय. अमर.

नम् । एतत्पंचदशाहसाध्यम् **जाबालः** षण्णामेकैकमेतेषां त्रिरात्रमुपयोजयेत् । त्र्यहंचोपवसेदत्यं महासांतपनं विदुरिति । षण्णां पूर्वोक्तगोमूत्रादीनां अयमेकविंशतिरात्रसाध्यो महासांतपनकृच्छ्रः । इति महासांतपनलक्षणम् ।

आतां महासांतपन सांगतो.

याज्ञवल्क्यः—“गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घृत, आणि कुशोदक हीं सांतपन द्रव्ये होत. यांपैकी एकएक एकएका दिवशीं प्यावें, दुसरें कांहीं खाऊं नये, आणि सातव्या दिवशीं उपवास करावा, म्हणजे महासांतपन होतें.” याज्ञवल्क्यानें ‘कुशोदक, गोक्षीर, गोदधि, गोमूत्र, गोमय, गोघृत असा कम धरला आहे. हें कुशोदकादिकांचें प्राशन सांगितलें तें इतर आहाराचें निवर्तक आहे. असेंच दुसऱ्या ठिकाणीं कोठें सांगेल तेथेही आहार वर्ज्य समजावा. यम—“तीन दिवस गोमूत्र प्यावें, तीन दिवस गोमय, तीन दिवस दही, तीन दिवस घृत, आणि तीन दिवस दूध प्यावें म्हणजे शुद्ध होतो. हें महासांतपन कृच्छ्र सर्व पापांचा नाश करणारें आहे.” हें कृच्छ्र पंधरा दिवसांनीं साध्य आहे. **जाबालः**—“गोमूत्र, गोमय, गोदूध, गोदधि, गोघृत, आणि कुशोदक ह्या सहा द्रव्यांपैकी एकएक तीनतीन दिवस प्राशन करून राहावें, आणि पुढें तीन दिवस उपवास करावा, म्हणजे तो महासांतपन होतो.” हा एकवीस दिवसांनीं साध्य होणारा महासांतपन कृच्छ्र आहे. इति महासांतपनम्.

अथ पराकः याज्ञवल्क्यः द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः । इति पराकलक्षणम् ।

आतां पराक सांगतो **याज्ञवल्क्यः**—“बारा दिवस उपवास केल्यानें पराक होतो.” इति पराकः.

अथ यावकव्रतम् शंखः गोपुरीषाद्यवाञ्चमासं नित्यं समाहितः । व्रतंतु यावकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये । गोर्भक्षणाथं यवान्दत्वा तदनंतरं गोमयमध्यनिःसृतान् यवान्गृहीत्वा तैर्यवैश्चरुवत्पक्त्वा तेनाग्नेनैकभक्तनक्तानि कुर्वन्मासं नयेत् । एतद्यावकव्रतमित्युच्यते पूर्ववदेव यवानादाय गोमूत्रे पाकं विधाय पूर्ववदेव मासवर्तनेन गोमूत्रयावकव्रतमित्युच्यते अतएवाह **योगियाज्ञवल्क्यः** आतृप्रेश्नागयित्वा गांगोधूमान् यवमिश्रितान् । गोमयोत्थांश्च संगृह्य पचेद्गोमूत्रयावकमिति । इति यावकव्रतलक्षणं गोमूत्रयावकव्रतलक्षणं च ।

आतां यावकव्रत सांगतो.

शंखः—गाईला यव चारावे, नंतर गाईच्या शेणांतून यव निघतील ते घेऊन ते शिजवून त्या अन्नानें एकभक्त, नक्त इत्यादि करून एक महिना काढावा, म्हणजे त्याला यावकव्रत म्हणतात.” याचप्रमाणें गाईच्या शेणांतून यव घेऊन ते गोमूत्रांत शिजवून पूर्वीप्रमाणें त्याजवर निर्वाह करून एक मास घालविला म्हणजे त्याला गोमूत्रयावक व्रत म्हणतात. म्हणूनच सांगतो **योगियाज्ञवल्क्यः**—“यवमिश्रित गोधूम गाईला तृप्त होईपर्यंत चारावे, नंतर त्या गाईच्या गोमयांतून ते ग्रहण करून गोमूत्रांत पचवून खावे, म्हणजे तें गोमूत्रयावक होतें.” इति यावकव्रतं गोमूत्रयावकव्रतं च.

अथ पयोव्रतम् तत्र कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसादिवसानेकविंशतिमिति याज्ञवल्क्योक्तप्रकारेण मासमेकग्रामात्रपरिपूर्णमयसावर्तनं पयोव्रतमित्युच्यते यस्मिन् व्रते येन द्रव्येण शरीरवर्तनं क्रियते तद्रतं तेन व्यपदिश्यते अतएव **मार्कंडेयः** पत्रैर्मतः पत्रकृच्छ्रः पुष्पैस्तत्कृच्छ्र उच्यते । मूलकृच्छ्रः स्मृतो मूलैस्तोयकृच्छ्रो जलेन त्विति । इति पयोव्रतम् ।

आतां पयोव्रत सांगतो—“केवळ दुधांनं एकवीस दिवस वर्तन केलें असतां तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र होतो.” ह्या याज्ञवल्क्योक्त प्रकारानें एक मासपर्यंत अन्नाच्या एक ग्रास परिमित दुग्धानें वर्तन करणें हें पयोव्रत म्हटलें आहे. ज्या व्रतांत ज्या द्रव्यानें शरीराचें वर्तन (निर्वाह) केलें जातें त्या व्रतास तें नांव मिळतें. म्हणूनच **मार्कंडेय** सांगतो—“पत्रांनीं (पर्णांनीं) जो होतो तो पत्रकृच्छ्र. पुष्पांनीं (पुष्पभक्षणानें) जो होतो तो पुष्पकृच्छ्र. मूलांनीं जो होतो तो मूलकृच्छ्र. आणि उदकांनं केला जातो तो उदककृच्छ्र होय.” इति पयोव्रतम्.

अथ चांद्रायणम् गौतमः अथातश्चांद्रायणंतस्योक्तो विधिः कृच्छ्र इति कृच्छ्रे प्राजापत्यकृच्छ्रे इत्यर्थः तथा तिष्ठेद्वह्निरात्रावासीतक्षिप्रकामः सत्यं वदेद नार्यैर्न संभाषेत रौरवयोधाजयेनित्यं प्रयुजीत अनुसवनमुदकोपसर्शनमापोहिष्ठेति च तत्सुभिः पवित्रवतीभिर्भार्जयेत् हिरण्यवर्णाः शुचय इत्यष्टाभिः अथोदकतर्पणम् नमो ह्यमा-

यमंहमायधून्वनेतापसायपुनर्वसवेनमोमौज्यायौर्म्यायवसुविंदायसर्वविंदायनमःपारायसुपारायमहापाराय-
पारयिष्णवेनमो रुद्रायपशुपतयेमहतेदेवायत्र्यंबकायैकचरायाधिपतयेहरायशर्वायेशानायोप्रायवज्रिणेष्टुणि-
नेकपर्दिनेनमःसूर्यादित्यायनमोनीलम्रीवायशितिकंठायनमःकृष्णायपिंगलायनमोज्येष्ठायश्रेष्ठायवृद्धायैंद्रायह-
रिकेशायोर्ध्वरेतसेनमःसत्यायपावकायपावकवर्णायकामायकामरूपिणेनमोदीप्तायदीप्तरूपिणेनमस्तीर्णायती-
र्णरूपिणेनमःसौम्यायपशुपुरुषायमहापुरुषायमध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषायब्रह्मचारिणेनमश्चंद्रललाटायकृत्ति-
वाससेनमइत्येतदेवादित्योपस्थानमेताएवाज्याहुतयइत्यादि अस्मार्थः तिष्ठेदहनिरात्रावासीतक्षिप्रकाम इति
यस्तुप्राजापत्यादिकृच्छ्रद्वयापनोद्यात्पापात्क्षिप्रमेकैवकृच्छ्रेणविमुक्तोभविष्यामीत्येवंकामयते अयमहन्त्याव-
श्यककर्माविरुद्धेषुकालेषुतिष्ठेत् । रात्रावासीत । तथा रौरवयोधाजयेसामनीनित्यकर्माविरोधिकालेषुप्रयुंजीत
पठेत् । पुनानःसोमधारयेत्यस्यामृचिदुहानऊधइत्यस्यामृचिचतृचत्वेनगीयमानेसामनीरौरवयोधाजयेअभि-
धीयेते अनुसवनमुदकोपस्पर्शनम् संध्यात्रयेस्नानंत्रिपवणस्नानमित्यर्थः हिरण्यवर्णाइत्यष्टाभिरपिमाज्जनमेव
एतच्चमाज्जनंस्नानानंतरम् अथोदकतर्पणम् उदकतर्पणमित्यनेनअत्रजलएवतर्पणंनस्थलइतिगम्यते तत्रमंत्राः
नमोहमायेत्येवमादयःकृत्तिवाससेनमइत्येतदंताः अत्रमंत्रसंदर्भस्यादावंतेचनमःशब्दश्रवणान्मंत्रादौमंत्राते-
चनमःशब्दोभवतितथाचैवंमंत्रप्रयोगःनमोहमायमंहमायधून्वनेतापसायपुनर्वसवेनमइतिएवंनमोमौजाये-
त्यारभ्यसर्वविंदायनमइत्येकोमंत्रःएवमुत्तरत्रापिदृष्टव्यम् । एतैस्त्रयोदशमंत्रैस्तर्पणंकुर्यात् । ततश्चातदेवा-
दित्योपस्थानमितिएतदेवमंत्रजातमादित्योपस्थानंआदित्योपस्थानसाधनम् कार्यकारणयोरभेदोपचारः तर्पणा-
नंतरमेतैरेवमंत्रैरादित्योपस्थानंकुर्यादित्यर्थः एताएवाज्याहुतयइतिएतैरेवमंत्रैराज्यहोमःकर्तव्यइत्यर्थः अयंच-
होमोलौकिकाग्निप्रतिष्ठाप्यकार्यः ।

आनां चांद्रायण सांगनो.

गौतम—“आनां चांद्रायणव्रत सांगनो—त्याचा विधि करावयाचा तो प्राजापत्यकृच्छ्रांत सांगितला आहे. तो असा—
जो मनुष्य, प्राजापत्यादिक दोन कृच्छ्रांनीं घालवावयाचें पाप प्राजापत्यादिक एकाच कृच्छ्रांनीं घालविण्याविषयीं इच्छीत असेल
त्या मनुष्यानें तो कृच्छ्र असा करावा की, स्नानसंध्यादिक नित्य कृत्यं व कृच्छ्राचीं अंगभूत होमादिकृत्यं वेळच्यावेळीं करून
वाकीच्या राहिलेल्या काळीं दिवसा उभें राहावें, आणि रात्रीं वमून राहावें, सत्य भाषण करावें, असत्य बोळं नये, अनार्या-
बरोबर भाषण करूं नये, आणि नित्यकर्म होऊन अवशेष राहिलेल्या काळीं रौरव आणि योधाजय ह्या दोन सामांचा पाठ
करावा. ‘पुनानः सोमधारया०’ ह्या ऋचेचे ठायीं आणि ‘दुहानऊध०’ ह्या ऋचेचे ठायीं तीन ऋचांनीं गान करावयाचीं जीं
सामें तीं रौरव व योधाजय म्हटलीं आहेत. त्रिकाळ स्नान करावें. ‘आपोहिष्टा०’ ह्या चार ऋचांनीं आणि ‘हिरण्यवर्णाः
ष्टुचयः०’ ह्या आठ ऋचांनीं मार्जन करावें. आनां उदकतर्पण सांगनो—उदकतर्पण तें उदकांत राहून तर्पण करावें. त्या तर्प-
णाचे मंत्र सांगतो—मंत्राच्या आदीं व अतीं नमःशब्दाचा प्रयोग करावा. तो अगा—‘नमोहमाय मंहमाय धून्वने तापसाय
पुनर्वसवे नमः’ ‘नमो मौज्यायौर्म्याय वसुविंदाय सर्वविंदाय नमः’ ‘नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमः’ ‘नमो
रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यंबकायैकचरायाधिपतये हराय शर्वायेशानायोप्राय वज्रिणे ष्टुणिने कपर्दिने नमः’ ‘नमः सूर्या-
यादित्याय नमः’ ‘नमो नीलम्रीवाय शितिकंठाय नमः’ ‘नमः कृष्णाय पिंगलाय नमः’ ‘नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायैंद्राय हरिके-
शायोर्ध्वरेतसे नमः’ ‘नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय कामाय कामरूपिणे नमः’ ‘नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमः’ ‘नमस्ती-
र्णाय तीर्णरूपिणे नमः’ ‘नमः सौम्याय पशुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणे नमः’ ‘नमश्चंद्रललाटाय
कृत्तिवाससे नमः’ ह्या तेरा मंत्रांनीं तर्पण करावें. तर्पणानंतर ह्याच तेरा मंत्रांनीं आदित्याचें उपस्थान करावें. नंतर ह्याच
मंत्रांनीं आज्यहोम करावा. हा होम लौकिकाग्नीची स्थापना करून त्यावर करावा.

एवमथातश्चांद्रायणंतस्योक्तोविधिःकृच्छ्रइत्यनेनसाधारणधर्मानतिदिश्यचांद्रायणेशिवशोधर्मानाह । तप-
नंत्रतंचरेच्छ्वोभूतांपौर्णमासीमुपवसेदाप्यायस्वसंतेपयांसिनबोनवइत्येताभिस्तर्पणमाज्यहोमोहविषश्चासुमंत्र-
णमुपस्थानंचंद्रमसोयदेवादेवहेडनमितिचतसृभिर्जुहुयान्देवकृतस्येतिचांतेसमिद्धिर्भूभुवःस्वर्महर्जनस्तपः
सत्यंशःश्रीरुजिडोजःपुरुषोधर्मःशिवइत्येतांसानुमंत्रणंप्रतिमंत्रंनमःस्वाहेतिवासर्वान्प्रासप्रमाणमाख्याभिः

कारेणभैक्षसत्तुकणयावकशकपयोदधिघृतमूलफलोदकानिहवींघृतत्तरोत्तंप्रशस्तानिपौर्णमास्यांपंचदशग्रासा-
न्मुक्त्वाएकापचयेनापरपक्षमभियात्अमावास्यामुपोष्यैकोपचयेनपूर्वपक्षविपरीतमेकेषामेषचंद्रायणोमा-
सएतदास्वातिपापोविपाप्मासर्वमेनोहंतिद्वितीयमास्वादशपूर्वान्दशपरानात्मानंचपंक्तिपुनातिसंवत्सरंचंद्रम-
सःसलोकतामाप्नोतीति । अस्यार्थः तपनं व्रतंचरेत्तापयतिपापमितितपनं वपनं व्रतंचरेदितिपाठेव्रतंचंद्राय-
णंवपनपूर्वकं अयमर्थः यदाप्रायश्चित्तनिमित्तंचंद्रायणतदावपनपूर्वकंचरेदिति । एतेननिमित्तमंतरेणसुकृता-
र्थंचंद्रायणाचरणेवपनंनास्तीत्युक्तंभवति श्वभूतंपौर्णमासीव्रतोपक्रमतिथिंश्वभूतानिरीक्ष्यपूर्वतिथौचतु-
र्दश्यामुपवसेदित्यर्थः आप्यायस्वेत्यादिभिर्नवोनवइत्यंतमंत्रैस्तर्पणंचंद्रमसःकृतवैतैरेवत्रिभिर्मंत्रैराज्यहोमंवि-
धायततोहविरनुमंत्र्यैतैरेवमंत्रैः पश्चादेतैरेवचंद्रमस उपस्थानं कुर्वीत ततोयद्देवादेवहेडनमित्तिचतसृभिर्देवकृ-
तस्येतित्येनयाचसमिद्धिर्यज्ञिकाष्टोद्धवाभिर्जुहुयान् कदाअंतैर्वर्षोक्तोपस्थानांते । अथानंतरंतिथिसंख्या-
कान्ग्रासान्कृत्वातान् ॐ भूर्भुवःस्वरित्यादिमंत्रैरभिमंत्रयीत ॐभूः । भुवः । स्वः । महः । जनः ।
तपः । सत्यं । यशः । श्रीः । ऊर्क् । इट् । ओजः । पुरुषः । धर्मः । शिवः । इतिमंत्रविभागः अत्रप्रति-
मंत्रंमंत्रांतेनमःस्वाहेतिवाप्रयुंजीत । प्रणवादिस्वःपर्यंतानामव्ययत्वेननमःस्वाहायोगेपिनचतुर्थीविभक्तिश्रव-
णम् । महाप्रभृतिषुचतुर्थीश्रवणंभवति महसेनमःमहसेस्वाहेतिवा । एवमन्यत्रापि । जनाय । तपसे ।
सत्याय । यशसे । श्रियै । ऊर्जे । इषे । ओजसे । पुरुषाय । धर्माय । शिवायेति । ग्रासप्रमाणमास्या-
विकारेणआस्यस्यमुख्यस्यादानेनयावदन्नंमुखंप्रविशतितावदन्नंग्रासप्रमाणंभवतीत्यर्थः चतुर्दश्यामुपोषित-
स्यपौर्णमास्यादितिथिषुग्रामसंख्यानियममाह पौर्णमास्यांपंचदशग्रासानित्यादिनापूर्वपक्षमित्यंतेन । एतच्च
पिपीलिकामध्यंचंद्रायणम् ।

याग्रमाणं हे प्राजापत्यं कृच्छ्रांतं सांगितलेले धर्मं चांद्रायणांत करावे, असे साधारण धर्म सांगून चांद्रायणाचे विशेष धर्म
सांगतो-‘तपनं व्रतं चरेत्’ म्हणजे पापाला तापविणारं असे व्रत चांद्रायण करावें.’ ‘वपनं व्रतं चरेत्’ असा पाठ आहे,
त्या वेळीं वपनपूर्वक व्रत म्हणजे चांद्रायण करावें, असा अर्थ होतो. म्हणजे ज्या वेळीं प्रायश्चित्तनिमित्तानं चांद्रायण कराव-
याचें असे त्या वेळीं वपन करून तें करावें. आणि निमित्तावांचून सुकृतामाटीं करावयाचें असेल त्या वेळीं वपन करूं नये,
असा भाव. व्रताचे आरंभाची तिथि पौर्णिमा उद्यां आहे, असे पाहून पूर्वदिक्शी चतुर्दशीस उपवास करावा. ‘आप्यायस्व०’
‘संतेपयांसि०’ ‘नवोनवो०’ ह्या तीन मंत्रांची चंद्राचें तर्पण करून ह्याच तीन मंत्रांनीं आज्यहोम करून तदनंतर ह्याच तीन
मंत्रांनीं हवीचें अभिमंत्रण करून ह्याच तीन मंत्रांनीं चंद्राचें उपस्थान करावें. तदनंतर ‘यद्देवादेवहेडनं०’ ह्या चार ऋचांनीं
आणि ‘देवकृतस्य०’ ह्या ऋचेचें यज्ञियवृक्षाच्या समिधांचा होम करावा. हा समिधांचा होम पूर्वांक्त उपस्थान झाल्यावर करावा.
नंतर जी तिथि असेल तिच्या संख्येइतके ग्रास करून पुढील मंत्रांनीं त्यांचें अभिमंत्रण करावें. ते मंत्र येणंप्रमाणें —
ॐ भूः । ॐभुवः । ॐस्वः । ॐमहः । ॐजनः । ॐतपः । ॐसत्यं । ॐयशः । ॐश्रीः । ॐऊर्क् । ॐइट् । ॐओजः ।
ॐपुरुषः । ॐधर्मः । ॐशिवः । ह्या प्रत्येक मंत्राच्या शेवटीं ‘नमः’ किंवा ‘स्वाहा’ याचा प्रयोग करावा. यावरून असे मंत्र
म्हणावे की, ‘ॐभूः स्वाहा’ ‘ॐभुवः स्वाहा’ ‘ॐस्वः स्वाहा’ ‘ॐमहसे स्वाहा’ ‘ॐजनाय स्वाहा’ ‘ॐतपसे स्वाहा’ ‘ॐसत्याय
स्वाहा’ ‘ॐयशसे स्वाहा’ ‘ॐश्रियै स्वाहा’ ‘ॐऊर्जे स्वाहा’ ‘ॐइषे स्वाहा’ ‘ॐओजसे स्वाहा’ ‘ॐपुरुषाय स्वाहा’ ‘ॐधर्माय
स्वाहा’ ‘ॐशिवाय स्वाहा.’ ग्रासांचें प्रमाण—मुख पसरून जितकें अन्न आयासावांचून तोंडांत जाईल तितक्या अन्नाचा एक
ग्रास होतो. ग्रासांचीं द्वयें सांगतो—भिक्षान्न, सातू, कण्वा, यवान्न, शाक, दूध, दही, घृत, मुळें, फळें, उदक हीं हविष्यानें
उत्तरोत्तर प्रशस्त आहेत. यांतून कोणत्या द्रव्याचे ध्यावयाचे असतील त्याचे पौर्णिमेस पंधरा ग्रास भक्षण करावेत. प्रतिपदेस
चवदा, द्वितीयेस तेरा, याग्रमाणें प्रत्येक तिथीस एक एक कमी करून कृष्णपक्ष घालवावा. आणि अमावास्यास उपवास करून
शुद्धप्रतिपदेस एक, द्वितीयेस दोन, याग्रमाणें एक एक वाढवून पौर्णिमेस पंधरा ग्रास भक्षण करावेत. हें पिपीलिकामध्य
चांद्रायण होय.

अथयवमध्यमाह—विपरीतमेकेषामिति । अस्मिन् यवमध्यंचंद्रायणे अमावास्यायामुपवासः प्रतिपदा-
दितिथिषु एकैकग्रासोपचयः पौर्णमासीमभिव्याप्य पुनः कृष्णपक्षादितिथिष्वमावास्यावधिकासु एकैकग्रासाप-
चयः अमावास्यायामुपवास इति क्रमः अत्र ग्रासग्रहणकालश्चंद्रोदयः । अभिमंत्रणमंत्रविकल्पादयश्चापेकृच्छ-

साधारणेति कर्तव्यता कथनसमये निरूपयिष्यन्ते । **याज्ञवल्क्यः** तिथिवृद्ध्या चरेत्पिंडानां शुद्धेशिख्यंडसं-
मितान् । एकैकं ह्यस्यैकृष्णेपिंडं चांद्रायणं चरेत् । इदुक्षये न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः । तिथिवृद्ध्या प्रथ-
मद्वितीयादि चंद्रकलायुक्तप्रतिपदि द्वितीयादि तिथिवृद्ध्या चरेत् भक्षयेत् । शुद्धेशुद्धपक्षे । शिख्यंडसंमितानम-
यूरांडप्रमाणान् । चांद्रायणं ह्यसवृद्धिभ्यां चंद्रस्यायनं चरणमिव चरणं यस्मिन् कर्मणि तच्चांद्रायणम् संज्ञायां दीर्घः
इति पिपीलिकामध्ययवमध्यचांद्रायणलक्षणम् ।

आतां यवमध्य चांद्रायण सांगतो.

“कित्येकां च्या मतीं हं चांद्रायण विपरीत करावे, ह्यणजे अमावास्यास उपवास करून शुक्रप्रतिपदादि तिथीचे ठायीं एक
एक तिथीला एक एक ग्रास वाढवीत जावा, ते पौर्णिमेपर्यंत वाढवून पुनः कृष्णप्रतिपदेपासून प्रत्येक तिथीला एक एक ग्रास
कमी करीत यावा, आणि अमावास्यास उपवास करावा, म्हणजे हें यवमध्यचांद्रायण होतें. ग्रासभक्षणाचा काल चंद्रोदय
आहे. ग्रासांच्या अभिमंत्रणाचे दुसरे मंत्रही आहेत. तो प्रकार पुढें कृच्छ्रसाधारणेतिकर्तव्यता सांगावयाच्या प्रसंगी सांगूं.
अतिपापी असेल त्यानें हें चांद्रायणव्रत केलें असतां पापरहित होऊन सर्व पातकांचा नाश होतो. दुसरें चांद्रायण केलें
असतां दहा पूर्वींचे व दहा पुढेचे पुरुष, आपणामुह आणि पंक्ति यांना पवित्र करितो. आणि एकवर्षपर्यंत केलें असतां
त्याला चंद्राचें सालोक्य प्राप्त होतें.” **याज्ञवल्क्य**—“चांद्रायण करणारानें शुद्ध पक्षांत चंद्राची एक एक कला जसजशी
वाढत जाते तसतशा प्रतिपदाद्वितीयादि तिथींचे ठायीं एकएका वृद्धीनें ग्रास भक्षण करावे. ते ग्रास मोराच्या अंघ्याएवढे
अमात्रे. त्याचप्रमाणें कृष्णपक्षांत चंद्राच्या कलेप्रमाणें एक एक ग्रास उतरीत यावा. आणि चंद्रक्षयदिवशीं (अमावास्यास)
उपवास करावा. हा चांद्रायणाचा विधि होय.” ज्या कर्मांत चंद्राच्या अयना (चरणा, संचारा) प्रमाणें चरण म्हणजे भक्षण
आहे तें कर्म चांद्रायण म्हटलें आहे. इति पिपीलिकामध्ययवमध्यचांद्रायणम्.

अथ यतिचांद्रायणादीनि । याज्ञवल्क्यः । यथा कथंचित्पिंडानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।
मासेनैवोपभुंजीत चांद्रायणमथापरम् । पिंडानां चत्वारिंशदधिकशतद्वयमासेनोपभुंजीत कथं यथा कथंचित् ।
अत्रायंक्रमः । दिनेदिने अष्टौ ग्रासान् भुंजीत अथवानक्तं चतुरोदिवा चतुर इति अथ त्रैकस्मिन् दिने चतुरोऽपरस्मि-
न्द्वादश । उत्तेकरात्रमुपोऽप्यपरस्मिन् षोडश । यद्वा दिनद्वयमुपोऽप्यतृतीयदिने चतुर्विंशतिः इत्यादि प्रकाराणां-
मध्ये शक्यपेक्षया भुंजीतेति । अत्र तिथ्यपेक्षया ग्रासनियमो नास्ति । उपक्रमस्तु शुद्धकृष्णप्रतिपदोऽन्यत्र ।
यस्तु नैरंतर्येणैवं विधौ चांद्रायणानुष्ठानं करोति तस्य तिथिवृद्धिह्यामवशेन कदाचिन् द्वितीयादिपञ्चमो भवति तत्र न-
दोषः चंद्रगत्यनुसरणमंतरेण त्रिंशदिनात्मकमाव न मासानुष्ठेयत्वात् । अस्मिन् चांद्रायणे पूर्वप्रकांतमेकादश्युप-
वासादि न लुप्यते तिथिनियमेन ग्रासनियमाभावान् । यत्र तु तिथिनियमेन ग्रासनियमस्तत्र पूर्वप्रकांतमुपवासा-
दिकमन्येन कारयेत् एवैव प्रकारेण पुनश्च ननु नाविशेषसंज्ञादर्शिता । अष्टावष्टौ समश्रीयात्पिंडान् मध्यदिने-
स्थिते । नियतात्मा हविष्यस्य यतिचांद्रायणं चरन् । चतुरः प्रातरश्रीयात्पिंडान् विप्रः समाहितः । चतुरोस्त-
मिते सूर्येशिशुचांद्रायणं चरेत् । यथा कथंचित्पिंडानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः । मासेनाश्रन् हविष्यस्य चंद्रस्यै-
तिसलोकतामिति । **यमः** त्रींशान् पिंडान्समश्रीयान्नियतात्मा दृढव्रतः । हविष्यान्नस्य वै मासं मृपिचांद्रायणं-
स्मृतमिति । इति यतिचांद्रायणादीनि ॥

आतां यतिचांद्रायणादिक सांगतो.

याज्ञवल्क्य—“जसे कसेतरी एका महिन्यांत दोनशें चाळीस (२४०) ग्रास भक्षण करावे, म्हणजे दुसरें एक प्रकारचें
चांद्रायण होतें.” याचा क्रम असा—प्रतिदिवशीं आठ आठ ग्रास भक्षण करावे; अथवा रात्री चार आणि दिवसा चार ग्रास
भक्षण करावे; अथवा एक दिवशीं चार आणि दुसऱ्या दिवशीं बारा; किंवा एक दिवस उपवास करून दुसऱ्या दिवशीं
सोळा; अथवा दोन दिवस उपवास करून तिसऱ्या दिवशीं चोवीस इत्यादि प्रकारांमध्यें आपल्या शक्तीप्रमाणें ग्रास भक्षण
करावे. या चांद्रायणाचे ठायीं तिथीवर ग्रासांचा नियम नाही. आरंभ करणें तो शुद्ध प्रतिपदेस किंवा कृष्णप्रतिपदेस करावा.
जो मनुष्य निरंतर याप्रमाणें चांद्रायण करतो त्याचा आरंभ, तिथीची वृद्धि किंवा क्षय होऊन एकादेवेळीं द्वितीयादि तिथींचे
ठायीं होतो, त्या विषयीं दोष नाही. कारण, चंद्राच्या गतीप्रमाणें दिवस न धरितां तीस दिवसांचा जो सावन मास तो
धरून त्याप्रमाणें या चांद्रायणाचें अनुष्ठान करावयाचें आहे. पूर्वी आरंभिल्ल्या एकादश्यादिवसतोपवास ह्या यतिचांद्रायणादिकांचे

ठर्यां मोडत नाही. कारण, या ठिकाणीं तिथींना अनुसरून घ्रासाचा नियम नाही. ज्या ठिकाणीं (पिपीलिकामध्यादिकांच्या ठर्यां) तिथीच्या नियमानें घ्रासाचा नियम सांगितला आहे त्या ठिकाणीं पूर्वी आरंभिलेलें दुसरें उपवासादि व्रत दुसऱ्या कडून करावें. हे व्रत सांगितलेले जे चांद्रायणाचे प्रकार त्यांच्या विषयींच किलेकांना मनुनं विशेष संज्ञा सांगितली आहे, ती अशी—“दोनप्रहरीं हविष्याचे आठ आठ घ्रास भक्षण करावे, म्हणजे यतिचांद्रायण होतें. ब्राह्मणानें समाधानपूर्वक दिवसा चार घ्रास आणि रात्रीं चार घ्रास भक्षण करावे, म्हणजे शिशुचांद्रायण होतें. एका महिन्यांत जसे कसेतरी २४० घ्रास भक्षण करावे, म्हणजे चंद्राचें सालोक्य प्राप्त होतें.” यम—“इंद्रियें जिकून, दृढ व्रत धारण करून एक मासपर्यंत हविष्यान्नाचे तीन तीन घ्रास भक्षण करावे, म्हणजे ऋषिचांद्रायण होतें.” इति यतिचांद्रायणादि.

अथकृच्छ्रांचांद्रायणेतिकर्तव्यता याज्ञवल्क्यः कुर्यान्निषवणस्नायीकृच्छ्रांचांद्रायणंतथा । पवित्राणिजपेत्पिंडान्गायत्र्याचाभिमंत्रयेत् । त्रिषवणस्नानंचतप्तकृच्छ्रव्यतिरेकेण । तप्तकृच्छ्रेतुमनुनास-
कृत्स्नायीसमाहितइतिविशेषाभिधानात् । पवित्राणिमूक्तानिचाघमर्पणंदेवकृतशुद्धवत्यस्तरसमंदीत्यादिव-
सिष्ठादिप्रदर्शितानिऋग्यजुःसामसुव्यवस्थितानियथाशाखंजपेत् अविरुद्धेपुकालेपु पिंडान्घ्रासान्प्रत्येकंगा-
यत्र्याचाभिमंत्रयेत् घ्रासानुमंत्रणेगौतमोक्तैरौभूरित्यादिमंत्रैःमहर्गायत्र्याविकल्पः एवंजपादिष्वप्येककार्या-
णामंत्राणाविकल्पःभिन्नकार्याणानुसमुच्चयइतिविवेकः । मनुः महाव्याहृतिभिर्होमःकर्तव्यःमयमन्वहम् । अर्हिसासत्यमन्त्रोधमार्जवंचसमाचरेत् । त्रिरहस्त्रिनिशायांतुमवासाजलमाविशेत् । स्त्रीशूद्रपतितान्श्वेवना-
भिभाषेतकर्हिचिन् । स्थानासनाभ्यांविहरन्नशक्तोदःशयीतवा । ब्रह्मचारीव्रतीचस्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः । सावित्रीचजपेन्निलंपवित्राणिचशक्तिः । सर्वेष्वेवव्रतेष्वेवंप्रायश्चित्तार्थमाहइति । त्रिरहइत्यादि दिवात्रिः-
रात्रौत्रिरित्यदत्रषट्सुसवनेपुस्नानंतच्छक्तविषयं । एवंन्यूनाधिकस्नानान्यन्यान्यपिशक्ताशक्तापेक्षयातानि ।

आतां कृच्छ्रांचांद्रायणांची इतिकर्तव्यता सांगतो.

याज्ञवल्क्यः—“कृच्छ्रं व चांद्रायणं करीत असतां त्रिकाळ स्नान करावें, पवित्र सूक्तांचा जप करावा, आणि भक्षण करावयाचे घ्रास गायत्रीमंत्रांनं अभिमंत्रित करावे.” त्रिकाळ स्नान सांगितलें तें तप्तकृच्छ्र व्यतिरिक्त करून समजावें. कारण, तप्तकृच्छ्राने ठिकाणीं तर मनुनं एकवार स्नान करावें, असा विशेष सांगितला आहे. पवित्र सूक्तं सांगितलीं तीं—अघमर्पण, देवकृत, शुद्धेवतीऋचा, तरस्वमंदी इत्यादिक वसिष्ठादि ऋषींनीं दाखविलेलीं ऋग्वेदांतील, यजुर्वेदांतील, सामवेदांतील आपल्या शाखेप्रमाणें त्यांचा जप करावा. यांचा जप कोणत्या वेळीं करावा असें म्हणाल तर नित्यक्रम होऊन अवशेष राहिलेल्या काळीं करावा. येथें याज्ञवल्क्यानं घ्रासांचें अभिमंत्रण गायत्रीनं सांगितलें, आणि पूर्वी गौतमानें ‘ॐभूः’ इत्यादि मंत्रांनीं सांगितलें यावरून गायत्रीचा व त्या मंत्रांचा विकल्प समजावा. याप्रमाणें एककार्यमंत्रांच्या जपादिकांविषयीं विकल्प होय. आणि भिन्नकार्यमंत्रांचा समुच्चय होय. मनु—“सर्वव्रतांचे ठर्यां आदरपूर्वक करावयांचें सांगतो—महाव्याहृतिमंत्रांनीं दूररोज स्वतः होम करावा; हिंसा वर्ज्य करावी; सत्य भाषण करावें; क्रोध वर्ज्य करावा; आर्जव (सरळपणा) ठेवावें; दिवसा तीन वेळां आणि रात्रीं तीन वेळां उद्कांत प्रवेश करून स्नान करावें; स्त्रिया, शूद्र आणि पतित यांच्याशीं कधींही भाषण करूं नये; सर्व काळ उभें राहून किंवा बसून असावें; अशक्त असेल त्यानं भूमीवर पडावें; ब्रह्मचर्य व्रत धारण करावें; नित्य शुद्ध, देव आणि ब्राह्मण यांची पूजा करावी; यथाशक्ति गायत्रीचा जप आणि पवित्रसूक्तांचा जप करावा; हे नियम सर्व व्रतांचे ठर्यां पापनिरसनाकरितां आदरपूर्वक करावे.” या मनुवचनांत दिवसा तीन वेळां आणि रात्रीं तीन वेळां जें स्नान सांगितलें तें सशक्ताला समजावें. याप्रमाणें कमी किंवा अधिक जीं स्नानं इतर ठिकाणीं सांगितलीं आहेत तीं अशक्ताला व सशक्ताला समजावीं.

जाबालः आरंभेसर्वकृच्छ्राणांसमाप्तौचविशेषतः । आज्येनैवहिशालाम्रौजुहुयाद्वाहृतीःपृथक् । श्राद्धं कुर्याद्भूतांतेचगोहिरण्यादिदक्षिणा । स्त्रीणांहोमोनादातव्यःपंचगव्यंतथैवच । पराशरः स्त्रीशूद्रस्यशुद्धयर्थं प्राजापत्यंसमाचरेत् पंचगव्यंतुकुर्वीतस्नात्वापीत्वाशुचिर्भवेत् । स्त्रीशूद्रयोःपंचगव्यस्यविहितप्रतिषिद्धत्वात्तद्विकल्पः । जाबालेनशालाम्रौहोमंविधायस्त्रीणांहोमोनादातव्यइतिनिषेधात्तृगृह्णामावेवहोमनिषेधः अतश्चस्त्री शूद्रयोरपिब्राह्मणद्वारालौकिकाम्रौभवत्येव । अयंचहोमोंगहोमः नतुकृच्छ्रप्रत्याग्रायभूतप्रधानहोमः । आरंभेसर्वकृच्छ्राणांसमाप्तौचविशेषतः । आज्येनैवहिशालाम्रौजुहुयाद्वाहृतीःपृथक् इतिजाबालेनविशेषाभिधा-

नात् । कृच्छ्रप्रत्याग्रायभूतयोस्तु प्रधानयोजपहोमयोः स्त्रीशूद्रयोर्नाधिकारः । तथाचांगिराः तस्माच्छूद्र-
समासाद्यसदाधर्मपथेऽस्थितम् । प्रायश्चित्तप्रदातव्यजपहोमविवर्जितम् । अत्रशूद्रशब्दरूपपलक्षणार्थः तयोः
समानधर्मत्वात् । वैशंपायनः स्नानद्विकालमेव स्यात्त्रिकालं वा द्विजन्मनः । शंखः एकवासा आर्द्रवा-
सालघ्वाशीस्यंडिलेश्यइति । हारीतः अवरं शुद्धवतीभिः स्नात्वा घमर्पणमंतर्जले जपित्वा धौतमहत्तवासः प-
रिधाय साम्रासौम्येनादित्यमुपतिष्ठेतेति ।

जाबाल—“सर्वे कृच्छ्रांच्या आरंभीं व समाप्त झाल्यावर शालाग्रीवर (गृह्याग्रीवर) वेगवेगळ्या व्याहृतिमंत्रांनी आज्या-
चाच होम करावा; व्रताच्या शेवटीं श्राद्ध करावें; गाई, सुवर्ण इत्यादि दक्षिणा द्यावी. स्त्रियांना होम सांगूं नये, आणि तसेंच
पंचगव्य देऊं नये.” **पराशर**—“स्त्रिया व शूद्र यांच्या शुद्धीसाठीं त्यांनीं प्राजापत्य कृच्छ्र करावें; आणि पंचगव्य करून ज्ञान
करून तें पिऊन त्यांनीं शुद्ध व्हावें.” स्त्रिया व शूद्र यांग या पराशरवचनानें पंचगव्य विहित असल्यामुळे आणि बरील
जाबालानें प्रतिषिद्ध अगल्यामुळे पंचगव्याचा त्यांना विकल्प समजावा. स्त्रिया व शूद्र यांस जाबालानें जो होमनिषेध सांगि-
तला तो गृह्याग्रीवर होमनिषेध समजावा. लौकिकाग्रीवर ब्राह्मणाकडून स्त्रिया व शूद्र यांचा होम होतच आहे. हा स्त्रिया व
शूद्र यांग सांगितलेला होम कृच्छ्रांगहोम समजावा. कृच्छ्रप्रतिनिधि जो प्रधानहोम तो समजूं नये. कारण, बरील जाबाल-
चनानें विशेष अंगहोम सांगितला आहे. कृच्छ्राचे प्रतिनिधिभूत जे जप व होम त्यांविषयीं त्यांना अधिकार नाही. तें
सांगतो. **अंगिरा**—“धर्ममागीं राहणाऱ्या शूद्र आल्या असतां त्याला जप होम वर्ज्य करून कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त सांगावें.”
या ठिकाणीं शूद्रशब्द आहे तो स्त्रीचें उपलक्षण अगल्यामुळे स्त्रियेलाही असेंच समजावें. कारण स्त्रिया, व शूद्र यांचे धर्म
समान आहेत. **वैशंपायन**—कृच्छ्रादि व्रत करीत असतां दोन्ही काळीं (प्रातःकाळीं व सायंकाळीं) ज्ञान करावें. अथवा
तीन्ही काळीं करावें.” **शंख**—“व्रती यानें एक वस्त्र धारण करावें, ओले वस्त्र धारण करावें. लघु अन्नाचा अल्प आहार
करावा, म्थंडिलाचें ठिकाणीं शयन करावें.” **हारीत**—शुद्धवती ऋचांनीं स्नान करून उदकांत राहून अघमर्पणसूक्ताचा
जप करून नवें धुनलेलें वस्त्र परिधान करून गौम्य गमानें आदित्यानें उपस्थान करावें.

षट्त्रिंशन्मते जपहोमादियत्किंचित्कृच्छ्रोक्तं संभवेन्नचेत् । सर्वव्याहृतिभिः कुर्याद्वायत्र्याप्रणवेनचेति ।

शंखः एकवासाश्चरेद्विश्रान्नात्वा वामो नपीडयेत् । गायत्र्यादशसाहस्रमाह्निकं जप उच्यते । **बौधायनः**
अहत्तवासो वसीत सावित्रीव्याहृतीश्च जपेदष्टसहस्रकृत्वः । अकारमादितः कृत्वारूपे रूपे तथांततः । भूमौ
वीरासने युक्तः कुर्याज्जप्यमुसंयतः । आसीनः शल्यविद्धो वापि वेद्व्यं पयः सकृत् । गव्यस्य पयसो लभ्ये गव्यमेव
भवेद्धि दध्नो लभे भवेत्क्रतुक्रमावेतु यावकं । एषामन्यतमं यत्तु उत्पद्येत च तत्पिबेत् । शल्यविद्धो वेति वाशब्द
उपमार्थे । शल्यविद्ध इव निश्चलः सन्नासीनः पयःपिबेदित्यर्थः **यमः** अंगुल्यग्रे स्थितं पिंडं गायत्र्याचामि मंत्रि-
तम् । प्रादय्याचम्य पुनः कुर्यादन्यस्याप्यभिमंत्रणम् । ये तु प्राणाग्निहोत्राधिकारिणस्तेषामापोशनकर्मानंतरं प्राणा-
हुतयोऽपि पंचभिर्ग्रासैर्भवन्ति । तत्र च पूर्वोक्तप्रणवगायत्र्याद्यन्यतमैर्मंत्रैर्ग्रासानभिमंत्र्य प्राणायामाद्देहादिभिर्म-
त्रैः प्राणाग्नौ होमः कार्यः यदा त्वेकदा त्रिचतुरो वा प्रासास्तत्र बौधायनोक्तो विशेषो प्राह्यः तद्यथा अश्रीयात्प्राणाय-
तिप्रथममपानायेति द्वितीयं व्यानायेति तृतीयमुदानायेति चतुर्थं समानायेति पंचमम् । यदा च त्त्वारो-
प्रासाभक्ष्यं ते तदाद्य द्वितीयाभ्यां मंत्राभ्यां प्रथमं ग्रासं प्रसेतं तृतीयेन द्वितीयं चतुर्थेन तृतीयं पंचमेन चतुर्थं । यदा-
त्रयस्तदाद्य द्वितीयाभ्यां प्रथमं तृतीयं चतुर्थाभ्यां द्वितीयं पंचमेन तृतीयं । यदा द्वौ तदा प्रथमत आरभ्य त्रिभिः प्रथ-
ममस्ति । द्वाभ्यां द्वितीयं । यदा त्वेकस्तदा सर्वैरेव तं प्रसेदिति । **हारीतः** चांद्रमसं चरुं श्रपयित्वा न बोधयति-
हुत्वा ज्योत्स्नायां चरुशेषान् पिंडान् सावित्र्याभिमंत्रितान् प्राश्रीयादिति । ज्योत्स्नाशब्देन च चंद्रोदयोलक्ष्यते
तेनार्धरात्रावपि भोजने दोषो नास्ति । **शंखः** आर्द्रामलकमात्रास्तु प्रासाद्भुज्यते स्मृताः । तथैवाहुतयस्तत्र शौ-
चाथं चैव मृत्तिकाः ॥ इति कृच्छ्रचंद्रायणसाधारणेति कर्तव्यता ॥

षट्त्रिंशन्मतांत—“कृच्छ्राचे ठिकाणीं जें कांहीं जप होमादि कृत्य सांगितलें आहे तें त्या मंत्रांनीं तसें करण्यास
अक्षय असेल तर तें सारें व्याहृतिमंत्रांनीं, गायत्रीमंत्रानें आणि प्रणवानें करावें.” **शंख**—“एक वस्त्र धारण करून निश्चेष्ट

जावें, ज्ञान कैल्यावर वन्न पिळूं नये, गायत्रीमंत्राचा दहा हजार जप हें त्याचें आम्हिक (दिवसाचें कर्म) सांगितलें आहे.”

बौधायन—“नवें धुतलेलें वस्त्र परिधान करावें, गायत्री आणि व्याहृति यांचा आठ हजार जप करावा; भूमीवर वीरासन घालून बसावें आणि प्रत्येक मंत्राच्या आदीं व अंतीं ॐकार लावून त्या गायत्रीचा जप करावा; एकाद्रे शल्यानें विद्ध जसा असतो तसा झाला असतां बसून एक वेळां गाईचें दूध प्यावें; गाईचें दूध न मिळेल तर गाईचेंच दही प्यावें दही न मिळेल तर गाईचें ताक प्यावें; ताक न मिळेल तर जवांचें पीठ प्यावें. यांपैकी जें मिळेल तें प्यावें.”

यम—“अंगुलीवर ग्रास घेऊन गायत्रीमंत्रानें त्याचें अभिमंत्रण करून त्याचें प्राशन करून आचमन करून पुनः दुसऱ्या ग्रासाचें अभिमंत्रण करावें.” जे प्राणाहुतीचे अधिकारी (ब्राह्मणादिक) असतील त्यांचें आपोशन झाल्यानंतर प्राणाहुति देखील पांच ग्रामांनीं होनात. त्या ठिकाणीं पूर्वी सांगितलेल्या गायत्र्यादिकांपैकी कोणत्याही मंत्रांनीं ग्रामांचें अभिमंत्रण करून ‘प्राणाय स्वाहा’ इत्यादि मंत्रांनीं पांच ग्रासांच्याच प्राणाहुति घ्याव्या. जेव्हां एकवेळीं तीन किंवा चार ग्राम घ्यावयाचे असतील त्या वेळीं बौधायनानें सांगितलेला विशेष घ्यावा, तो असा—‘प्राणायस्वाहा’ या मंत्रानें प्रथम ग्राम भक्षण करावा, ‘अपानाय स्वाहा’ या मंत्रानें दुसरा, ‘व्यानाय स्वाहा’ या मंत्रानें तिसरा, ‘उदानाय स्वाहा’ या मंत्रानें चवथा, ‘समानाय स्वाहा’ या मंत्रानें पांचवा ग्राम भक्षण करावा. जेव्हां चार ग्रास असतील तेव्हां ‘प्राणाय, अपानाय’ या दोन मंत्रांनीं प्रथम ग्रास भक्षण करावा. तिसऱ्या मंत्रानें दुसरा ग्रास, चवथ्या मंत्रानें तिसरा ग्रास, पांचव्या मंत्रानें चवथा ग्रास भक्षावा. जेव्हां तीन ग्रास असतील तेव्हां पहिल्या व दुसऱ्या मंत्रानें पहिला ग्रास, तिसऱ्या व चवथ्या मंत्रानें दुसरा ग्रास, आणि पांचव्या मंत्रानें तिसरा ग्रास भक्षावा.” जेव्हां दोन ग्रास असतील तेव्हां पहिल्या तीन मंत्रांनीं पहिला ग्रास भक्षावा. आणि पुढच्या दोन मंत्रांनीं दुसरा भक्षावा. जेव्हां एक ग्रास भक्षायचा असेल तेव्हां पांचही मंत्रांनीं तो भक्षावा.”

हारीत—“चंद्रदेवतावर चरु शिजवून ‘नवो नवो’ ह्या मंत्रानें त्याचा होम करून अवशेष राहिलेल्या चरुचे पिंड (ग्राम) करून ज्योत्स्नेत (चंद्रिकेत) गायत्रीमंत्रानें त्याचें अभिमंत्रण करून ते प्राशन करावे.” या वचनांत ज्योत्स्नाशब्दानें चंद्रोदय घ्यावा, म्हणजे चंद्रोदयवेळीं भोजन करावें, असें झालें. या योगानें अर्धरात्री देखील भोजन केलें तरी दोष नाही.

शंख—“चांद्रायणाचे ठायीं ग्राम करावयाचे ते ओल्या आंबळयाएवढे करावे. त्या ठिकाणीं होमाहुतीचें प्रमाण तेवढेंच समजावें. आणि शांतामाटीं मृत्तिकेचे गोळे करावयाचे तेही तेवढेच करावे.”

इति कृच्छ्रचांद्रायणांची साधारण इतिकर्तव्यता समाप्त.

